| en grande karakteria erakteria erakteria erakteria erakteria eta erakteria erakteria erakteria erakteria erakte |
|---|
| |
| |
| 사용성 환경 보다 사람들이 가는 사람들이 가장 사람들이 되었다. 그 당시에 가장 그리고 있는데 나온데 나는데 |
| |
| - 하다면(함께 보고 : 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| 그런 양화물이 되는 이번에 가는 사람들이 되었다. 그는 그 나를 이번 가는 것은 것이 되었다. |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| - 漢桑藤森 () - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |
| |

THE YOGAVĀSISŢHA OF VĀLMĪKI

With the Commentary
VÄSISŢHAMAHĀRĀMĀYAŅATĀTPARYAPRAKĀSHA

Part II

Containing Nirvana - Purvardha and Uttarardha

Wāsudeva Laxmaņa Śāstrī Paņsīkar



Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.

Originally published in 1918
by : Nirnaya Sagar Press, Bombay

Published by Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., 54 Rani Jhansi Roud, New Delhi, 1,0056 and Printed by Mehra Offset Press, Dans Capital Selhi-110002.



श्रीमद्राल्मीकिमहर्षिप्रणीतः

योगवासिष्ठः।

श्रीवासिष्ठमद्दारामायणतात्पर्यप्रकाशारूयव्यारूयासहितः ।

अन्तिमषष्ठ-निर्वाणप्रकरणपूर्वार्धोत्तरार्धयुतः ।

अयं

पणशीकरोपाह्मविद्रद्वरलक्ष्मणशर्मतनुजनुषा वासुदेवशर्मण। पदच्छेदपरसवर्णादिसंस्करणपूर्व संशोधितः।

द्वितीयो भागः

तृतीयाषृतिः



मुक्शीराम ममोहरलाल पार्वेलशर्स पा.कि.

योगवासिष्ठस्थविषयानुक्रमणिका ।

| सर्गाः | विषया: | | ष्टांकाः | सर्गाः विषयाः प्र | इका: |
|--------|--|---|-------------|---|-------------|
| | निर्वाणप्रकरणम् ॥ ६ ॥ | (पूर्वार्धम्) | | ४२ परमारमामिधानम् | ८७३ |
| 9 | दिवसव्यवहारवर्णनम् | | €v u | ४३ विश्रान्तिवर्णनम् | ८७५ |
| | | ••• | ७७५ | ४४ जित्तसत्तासूचनम् | ८७७ |
| | | ••• | 992 | ४५ बिल्बोपास्यानम् | 609 |
| | A | ••• | 560 | ४६ शिलाकोशोपदेशः | 669 |
| | राषवधिभ्रान्तिवर्णनम् | | 460 | ४७ चिद्वनोपदेशः | 663 |
| | मोद्दमाहात्म्यम् | ••• | V29 | ४८ ब्रह्मेकात्मप्रतिपादनम् | 664 |
| | अज्ञानमाहात्म्यम् | *** | ७८५ | ४९ संस्रतिविचारयोगः | ८८६ |
| | | ••• | V63 | ५० अक्षसंवेदमधिचारयोगोपदेशः | 666 |
| | 0.0. | ••• | 059 | ५१ इन्द्रियार्थीपलम्भविचारः | 659 |
| | अविद्याचिकित्सावर्णनम् | ••• | ७९३ | ५२ अर्जुनोपाख्याने नरनारायणावतारकवनम् | 698 |
| | जीवन्मुक्तनिश्वययोगोपदेशवर्णनम् | | 4 | ५३ ,, अर्जुनोपदेशः | 656 |
| | जीबन्मुक्तसंशयनिरूपणम् | | 600 | ५८,, आत्मज्ञानोपदेशः | 903 |
| 93 | शानविचारयोगोपदेशः | ••• | 609 | ५५ ., जीवतस्वनिर्णयः | 9 • 3 |
| 98 | भुगुण्डोपाख्याने मेरुशिखरव | र्गनम् | ८०२ | ५६ ,, चित्तवर्णनम् | 5-4 |
| | ,, भुशुण्डदर्शनम् | ••• | 608 | ५७ ,, अर्जुनविश्रान्तिवर्णनम् | 9,09 |
| | ,, बसिष्ठभुशुण्डसमायोगः | | ८०५ | ५८ ,, अर्जुनकृतार्यतावर्णनम् | 59 0 |
| | | ••• | ८०७ | ५९ प्रत्यगातमावयोधः | 4.99 |
| | • • • | ••• | 600 | ६० विभृतियोगोपदेशः | 59% |
| | | ••• | ८०९ | ६१ जगत्स्वप्रकथनम् | 518 |
| | ,, भुशुण्डसहपनिहपणम् | ••• | 699 | ६२ जीषटोपाख्याने सप्तशतस्त्रीये | 594 |
| | ,, विरजीवितदृतान्तकथनम् | • | ८१३ | मिश्चकसंसारोदाहरणम् | |
| | ,, चिरजीवितवर्णनम् | ••• | ८१६ | ६३ ,, खप्रशतरहीयकथनम् | 535 |
| | ,, समाधानसंकल्पनिराकरणम् | | ८१९ | ६४ ,, गणलप्राप्तिगर्णनम् | ९२३ |
| | ,, प्राणविचारणम् | ••• | ८२१ | ६५ ,, विद्योत्तरविस्मयवर्णनम् | ९ २६ |
| | | ••• | ८२३ | ६६ ,, भिश्चबंस्रतिकथनम् ६७ ब्रह्मेक्यप्रतिपादनम् | ९२७ |
| | | ••• | ८२६ ८२८ | | \$36 |
| | मुञ्जूण्डापाल्यानसम्मातः परमार्थमोगोपदेशः | • | 238 I | | 53 • |
| | _ | ••• | 643 | | 533 |
| | | சென்னன் | | | 936 |
| | विवयूजोपाख्याने चेलोन्सुख मनःमविवस्तरम | | | | ५३७ |
| | मनःप्रतिपादनम् देह्रपातविचारः | | | | 536 |
| | <u> </u> | | 249 | ७२ वतालास्वानसभाप्तः | 535 |
| | द्रतस्यप्रातपादनम् श्रापरमेश्वरोपदेशः | ••• | 244 | ७'५ भगीरथनिर्धाणम् | 563 |
| | महादे वस्य पूज्य सीमान्तत्वकथनम् | ••• | CHO | ७६ गद्गानतरणम् | ९४३ |
| - | परमेश्वरवर्णनम् | *** | 649 | ७७ चूडालोपारुयाने शिखिध्वजविलासकथनम् | 388 |
| | नियतिनृत्यवर्णनम् | | 660 | ७८ ,, बूहालाप्रनोभः | 386 |
| • | नाश्चपूजनम् | | ८६३ | ७९ ,, चूडाकारमलाभः | 588 |
| 35 | देवार्षनविभिवर्णनम् | *** | 254 | ८० ,, पश्चकविलासः | 549 |
| • | देवतातस्यविचारः | *** | 646 | ८१ अप्तीषोमनिचारणम् | 546 |
| | जगरिमध्यामा प्रतिपादनम् | ••• | 645 | | 444 |

| सर्गाः | विषयाः | | Ą | हांकाः | स र्गाः | | विषयाः | | | á | Tien: |
|------------|---------------------------------------|---|---------|-----------------|----------------|---|-------------------------------|---------------|-------------------|-----|-------|
| ८३ | किराटोपाख्यानम् | | ••• | ५६६ | १२७ भार | द्वाजानुशासन | 珥 | ••• | ••• | •• | 9046 |
| cx | शिखिध्वजश्रवज्यावर्णनम् . | | | 9.66 | | यु त्थानम् | | | | | |
| 64 | सुखविचारयोगोपदेशः | | ••• | 500 | | | | ···· | | | |
| ८६ | कुम्भजननस्थनम् | | ••• | 900 | नि | बीणप्रकरष | mar I) 8 | 111 | उत्तरार्ध | н) | |
| ८৩ | शिखिध्वजावबोधवणनम् । | ••• | ••• | و به و | | | • | | | | |
| 66 | चूडालोपाख्याने मणिका | चोपास्याः | ाम् | 569 | i . | ग चिकित्साय | | | | | 9088 |
| د ٩ | ,, हस्तिकोपाख्यानम् | ••• | ••• | 9.63 | | बी जदाहयोग | | ••• | | | 9-09 |
| | ,, चिन्तामणिसाधकपृतान्ता | | | 6.2.8 | 1 | ोप रामयोगो ष | | | | | • |
| | ्,, हस्तिकाख्यानतात्पर्धवि व र | | | 9,28 | | न्तानिरासः | | | | | • |
| | ,, सर्वेखागकरणम् | | | 9,69 | | <u>वाधरोपा</u> य | | | | | 9005 |
| ४ ३ | ,, शिखिध्वजावबोधनम् | ••• | • • • | 9,69 | | वेराग्यवर्णनम | | | | | 9960 |
| | ,, शिखिध्वजावबोधनम् | | ••• | 3 45 | | जगदक्षयीज न | | | | | 9063 |
| | ,, बिखिष्बजविश्रान्तिवर्णना | Ę | ••• | ન્ડલ ૬ | | मायामण्डप व | | | | | 4004 |
| | ** | ··· ··· | ••• | 356 | , ,, | चित्कचनयोग सर्गापवर्गप्रति | ॥५दशः क्षां≅कोको | Trans | ••• | ••• | 3008 |
| 90 | ,, शिखिध्वजप्रबोधनम् | | | 9007 | | | | | | | |
| | ,, शिखिध्वजावबोधनम् | ••• | | 9003 | | यथाभूतार्थवे | | | | | |
| | ,, शिखिष्वजावयोधनम् | ••• | | 900,4 | 14,, | संकल्पसर्गयो (न्द्रोपास्याने | रक्षश्रातप स्टब्स्याचेश्वर | १ए। अस्रोध | ••• प्रकारिकार | ••• | 1065 |
| 300 | ,, बिलिध्वजप्रमानन्दबोध | नम् … | | book | ! | | _ | | | | |
| | ** | • | | 9006 | | (न्द्राण्वास्या | | | | | |
| | ,, शिखिष्वजसमाधानम् | ••• | | 9035 | | द्याभरनिय | | | | | 9084 |
| | ,, कुम्भपुनरागमनम् | ••• | | १०१२ | 1 | ••• | | | | | 9058 |
| | ्र, जीवन्मुक्तव्यवहारप्रतिपार | रनम् | | 9094 | i | लासत्तायोग | | | | | 9090 |
| | 77 4 | • | ••• | 3090 | 1 | जा लकोशस | | | | | 9.50 |
| 904 | ,, लीलाविवाह्वर्णनम् | ••• | • ••• | १०२० | ! | डात्मवर्णन म् | • | | | | 17-1 |
| 900 | ,, शक्रगमनम् | | • ••• | १०२२ | | वनिर्वा ण योगो | | | | | 1908 |
| 9 . 6 | ,, चूडालाखरूपदर्शनम् | | ••• | ३०२४ | | विवारः | | | ••• | | 9904 |
| 909 | ,, चुडालाप्रकटीभवनम् | | | १०२६ | 1 | योगोपदेशः | | | ••• | | 11-6 |
| 990 | ,, शिखिध्बजनिर्वाणम् | | • • • • | 9025 | २३ मा | ह्युपाच्याने | । महिनिर्व | गम् | ••• | ••• | 111- |
| 939 | कवोपास्याने कवप्रवोधः | | | १०३१ | ا ور ا | मक्त्रिवेराग्यम | · | | | | 1117 |
| 992 | मि यापुरुषोपाख्याने आकार | शस्त्रगम् | | 9•23 | 5 4'4 j | मङ्बोधनम् | | ••• | ••• | | 9994 |
| 993 | गिश्यापु रुयोपास्मानम् | | | 9038 | ં ૨૬ ,, : | मिक्किनिबीणस | माप्तिबर्णन | ाम् | ••• | | 1115 |
| | परमार्थीपदेशः | | | | | :ययोगोप देश | | | ••• | | 1116 |
| | वतत्रयनिरूपणम् | | | | २८ श | शत रवसिद्धा न | | नम् | ••• | | 1115 |
| | गलितचित्तलक्षणकथनम् | | | 9038 | | बनाप्रतिपादः मार्थोपन्यास | | ••• | ••• | | 9939 |
| | इक्षाकुमनुसंबादः | ••• | | 9.80 | | मायापन्यास र्वाणयुक्तयुपदे | | ••• | ••• | ••• | 7779 |
| | · · · · · · | ••• | | 9089 | | गागञ्जभञ्जभ सा वयोधनोप | - | ••• | *** | ••• | |
| 999 | | • | | १८४३ | | यानगापनाप या र्थानमा स | | ••• | ••• | ••• | 1121 |
| | सप्तभूमिकाविभागः | | | | ं २२ तर | आ नानमा त्र (मा र्वेगोगो पर्वे | | ••• | ••• | ••• | 1141 |
| 939 | इक्ष्वाकुमनुसंवादः | | | 9088 | , . | (म डा स्टरन | | ••• | ••• | ••• | 1136 |
| 922 | इश्वाकुत्रवीधनम् | | | 9084 | | त्मकल रूपन सार् वी अकद | | ••• | ••• | ••• | 3334 |
| | अहादेईस्य विशेषकणनम् | ••• | | 9080 | | (गार्याच्यायाः) स्वोपदेशयोग | • | ••• | ••• | ••• | |
| | मृगव्याथीयम् | | | 9080 | | र्वाणवर्णनम् | | ••• | ••• | ••• | |
| 124 | दुर्वे स्पेनीपायकथनम् | | | 9085 | | सेश्रगीता स्र | | | | | |
| 926 | परमार्थसम्हदवर्णतम् | | | ু ল াব্ৰ | 1 | सिष्ठगीतासुः | | | | ••• | 1145 |
| | | | | | | | | | | | |

| | and the second s | J | 74 | Carlo Carlo Carlo | pen con | and the second second second second | el era el arabanalan | | V |
|-----------|--|------------|---|----------------------|-----------|--|------------------------|---------|---|
| सर्गाः | | | | पृष्ठांकाः | सर्गाः | विष | याः | | पृष्ठीकाः |
| *1 | सहपविश्रान्सर्थमुपदेशकर | गम् . | | 994. | 69 | पाषाणीपास्याने पाथिंव | | | |
| | निर्वाणीपदेशः | | | 9949 | ĺ | न्खप्रतिपादनम् | ••• | | 9269 |
| | नद्मकतानतोपदेशः | | | 9948 | 66 | ٠, ,, | ••• | | 9368 |
| | मनोमृग्बिप्द्वर्णनम् | | | 9946 | 64. | ,, दश्यमनोमात्रलप्रतिष | गदनम् | | 9265 |
| | मनोहरिणकोपाख्यानम् | ••• | | 9959 | 90 | ,, जलजगद्दर्णनम् ,, तेजसजगद्दर्णनम् | ••• | ••• | 4260 |
| | साम्यावबोधनम् | ••• | | ११६४ | 59 | ,, तेजसजगद्दणन्म् | ••• | ••• | 1365 |
| | मुसुध्रयमकोपकमः | | | 9988 | | ,, परमार्थसगेयोरेक्यप्रा | | | |
| | विवेकमाहारम्यम् | ••• | | ११६८ | | ,, आकारामण्डवसिद्धस | | | १२७६ |
| | सर्वोपशान्तिवर्णनम् जीवसप्तकप्रकारवर्णनम् | | | 9900 | । ९४ । | ,, पिशाचनर्णनप्रसंगन | | | |
| | विश्रान्तियोगोपदेशः | | | 9908 | ١ | तिपादनम् | | ••• | |
| | c · | | | 9364 | | ,, वसिष्ठशरीरवर्णनम् | | | 9264 |
| | ब्रह्मसम्पर्वणनम् निर्वाणवर्णनम् | | | 9946 | | अमरसप्रतिपादनम् विवेकिविरस्त्वत्रर्णनम् | | ••• | |
| | A.A. ~ | | | ११८ १ ११८२ | 4/3 | ाववाकावरलस्वणनम् सञ्जनसमागमप्रशंसावण | ••• | | 9266 |
| 7 ° | जगतः परमार्थमयत्ववर्णनम् | | | 9368 | | परमार्थनिरूपणम् | | | - १२५३ - १२९३ |
| | पाषाणोपाख्याने आका | - | | 1104 | | नास्तिक्यनिरूपणम् | | | 1338 3388 |
| 28 | | | | | | परभोषदेशः | | | 9755 |
| | माधानवर्णम् | | | 9960 | | मरणाद्यमानोपदेशः | | | |
| | ,, विदितवेबाहंकारविचारः | ••• | ••• | 9960 | 1 | सकलभावाभावोपदेशेन | • . | | |
| | | | | 9968 | | जगदसत्ताप्रतिपादनम् | | | |
| | ,, जगज्जालवर्णनम् | | | 395.0 | | जाब्रत्सप्रक्रयप्रतिपादन | | | |
| | ,, जगनालवूर्णनम् | | | 9965 | | कार्यकारणनिरासः | | *** | |
| ٤9 | ,, जगदाकारीकबोधः | ••• | | 999.0 | 1 | अधिद्याभावप्रतिपादनम | | | |
| | ,, चिद्वयुवर्णनम् | | | 9995 | | अ विद्याक्षेत्रले पार्थि | | | |
| | ,, जगत्तत्वैययप्रतिपादनम् | | | १२०२ | | ्र, विष• अभि प्रवेशा ई | | | 932- |
| | ,, विद्याधरीन्यसनवर्णनम् | | | 3508 | | ,, विष ० सं घामवर्णनम् | | | . 9३२२ |
| | ,, विद्याधरीजन्मव्यवहारव | | ••• | | | ,, विष० चतुर्दिगगत व | | | 9334 |
| | ,, बिलान्तरवर्णनम् | | ••• | | | ्र, विष• बलपरिश्रंशः ्र, विष• बलपरिश्रंशः | | | . १३२७ |
| | ,, अभ्यासप्रशंसा | | • | | 993 | ्रि, विष• समहवर्णनम् विष• समहवर्णनम | ••• | ••• | 1325 |
| | ,, प्रमाणाप्रतिसिच्या दश्याः | प्रपत्तिव | णेनम् | 9393 | 992 | ्र, विप• समुद्रवर्णनम् ्र, विप• दिग्दर्शनम् | ••• | ••• | . 9339 |
| 45 | ,, सर्गप्राप्तिः | ••• | ••• | 9398 | 900 | ,,, विप० विपश्चिदनुच | क्रमप्रदा र्थ | र्णनम् | . 9333 |
| y o | 🕠 बिलान्तर्भगत्पितामद्या | क्यानि । | • | 9296 | 996 | ्र, विष• विषश्चि दनु चः | क्रतश्वकाक | कोकि- | • |
| 49 | ,, कल्पक्षोभवर्णनम् | *** | ••• | 9396 | ''' | लान्योक्तिवर्णन | ਸ | **** | . 9335 |
| | ,, निर्वाणवर्णनम् | | | 3449 | 9.0 | ,, विव॰ पद्मश्रमरहंस | 1 | | . 1380 |
| | ,, बिराडात्मवर्णनम् | | | १२२३ | 39 | ्र, विष० इंरिणवकमयू | रमम्बाहिन रमम्बाहिन | र्णेनम् | . १३५० |
| | ,, विराडारमवर्णनम् | | | 9226 | 998 | ,, विप॰ पिषकाविरहा | यत्तवर्णनम | | |
| 44 | महाकल्पान्तामिवर्णनम् | | | 9226 | 930 | ,, विप॰ दिगन्तरपृत्ति | वारवादिव ^{र्} | निम | . 9346 |
| હદ્ | े,, पुष्करावती डम्बरवर्णनम् | ••• | ••• | १२३१ | 939 | ु, विप• विपश्चित्रिर्णय | [: | ••• | , ૧૨૫૭ |
| 99 | ,, पुष्करावर्तदृष्टिविसंष्ठुलज | गद्वर्णनम् | (| १२३३ | | ,,, अविद्योपाक्यानान | | | • |
| | 22 | | | १२३६ | 1,44 | . आवधानायमानाः स्थाने भर्णवपरिक्रम | | | . 9346 |
| | ,, बाबनाभावप्रतिपादनम् | | | 9230 | 95: | ,, दिग्बिहरणम् | | *** | . 9360 |
| | ,, श्रान्तिमात्रलप्रतिपादनम | | | 9289 | 937 | ,, द्वी पेड विपश्चिमवहार | | | . 9369 |
| 69 | ,, कालरात्रिवर्णनम् | - | | 1286 | 950 | , , जीवन्मुक्तकलनम् | ••• | | . 9353 |
| | ,, शिवसह्यवर्णनम् | | | 9240 | | ,, विपधिजन्मान्तराय | रणम् | ••• | . 9360 |
| 43 | ,, विश्वह्यदर्शनम् | | | 1242 | 93 | ,, भूगोलकनिर्णयः . | | ••• | . 9345 |
| - T | ,, शिवशिक्षिवर्णनम् | ••• | | 1248 | 92 | ्र, त्रहागीतासु त्रहाक | ।शविपश्चित्र | गबन्द- | |
| 64 | ,, प्रकृतिपुरुषक्रमवर्णनम् | ••• | | 9 440 | | इशेनम् . | | *** | . 1309 |
| 26 | ,, जगदन्यान्यलम्भनम् | ••• | | 9546 | 135 | ,,, विविधनमृगलाभः | | | |
| • 4 |)) मनव्यासम्बद्धसम्बद्धाः । । । । । । । । । । । । । । । । । । । | ••• | | | ! • ` | v 35 | | | - |

| सर्गाः | विषया: | | पृष्ठोकाः | सर्गाः | विषया: | , . | पृष्ठीकाः |
|--------|------------------------------------|---|-------------|--------|---|-------|-----------|
| 930 | विपश्चिदुपास्याने मृगविद्वप्रवेशः | ••• | १३७६ | 908 | नद्मगीतासु निर्वाणोपदेशः | ••• | 9845 |
| 933 | ,, भाससंसारवर्णनम् | | 9306 | 904 | ,, परमार्थगीताखद्देतयुक्तिवर्णनम् | • • • | 1863 |
| 932 | ,, भासवर्णितस्वजनमपरंपरा | • | १३८३ | | | • • • | १४८२ |
| | ,, रायोपाख्याने महाशब र्णनम | | 1368 | | ,, सत्यवर्णनम् | • • • | 9868 |
| | ** | ••• | १३८६ | 906 | ,, ऐन्द्रबोपाख्यानम् | ••• | 1860 |
| | | | 3340 | | ,, अग्रम्यलप्रतिपादनम् | | 9890 |
| | | | 9340 | | ,, तापसोपा€यानम् | | 9853 |
| | ,, | | 9355 | | | | 1865 |
| | | | 9356 | 965 | तापसोपारुयानान्तर्गतसप्तद्वीपेश्र | गरो∙ | |
| | " | | १३९८ | ! | पारुयाने सप्तद्वीपेश्वरवर्णनम् | | 9884 |
| | ,, हृदयकल्पनावणनम् | | १४०२ | 163 | ,, द्वीपसप्तकाष्टकवर्णनम् | | 9856 |
| | ,, करुपान्तवर्णनम् | | 3808 | 168 | ,, कुन्ददन्तोपदेशः | | 94.9 |
| | ,, जगदूतकमेनिर्णयः | | 4804 | | ,, कुन्ददन्तप्रबोधः | | 9403 |
| | ,, निर्वाणबोधोपवेशः | | 9806 | 924 | ्र, सर्वेखल्विदंबद्देवि प्रतिपादनम् | | 9404 |
| | ं,, पदार्थविचारः | ••• | 4845 | 960 | ,, जीवस्य संस्रतिप्रतिपादनम् | | 9405 |
| | , ,, जाप्रत्खप्रसुषुप्तवर्णनम् | ••• | 9895 | 966 | ,, जीवरूपवर्णनम् | | 9493 |
| | ,, सुषुप्तविचारः | | 9895 | 969 | ,, बह्येकताप्रतिपादनम् | • • • | 9494 |
| | ु,, खप्रोप्रहम्भनम् | | 9839 | | ,, रामविश्रान्तिः | | 9496 |
| | ्र, सप्तिर्णयः | | 9833 | 989 | ,, महावादबोधनम् (तस्वानुसंधानम्) | | 9422 |
| | , ,, कारणविचारः | | 4.854 | | ,, विश्रान्त्युपगमवर्णनम् | | 9423 |
| | ,, परमोपदेशः | | १४२७ | 953 | ,, विश्रान्तिकथनम् | | 9458 |
| | ,, अभावदर्शनम् | | 3250 | 958 | ्र, रामविश्रान्त्युपगमः | | 9424 |
| | ,, मुनिरात्रिसंकथावर्णनम् | | . १४३० | 954 | , ,, बोधप्रकाशीकरणयोगोपदेशः | ••• | 1436 |
| | ,, सर्वेकारम्यप्रतिपादनम् | ••• | . १४३२ | 1996 | ,, काष्ट्रवैद्रशिकोपाख्याने चिन्तामणि • | ••• | 1431 |
| | ,, यथाभूतार्थवर्णनम् | ••• | १४३३ | | ,, शासमाहातम्यम् | ••• | 9433 |
| | ,,, भाविसंपत्तिवर्णनम् | | 98ई४ | 1986 | ,, समद्दिप्रशंसानर्गनम् | | 1458 |
| | ,, सिन्धुसंबोधनम् | • | . १४३६ | 155 | ,, मुक्तपुरुवस्थितिवर्णनम् | | 1435 |
| | ,, सिन्धुनिर्वाणम् | ••• | . १४३८ | 200 | ,, साधुदादसपर्यादिवर्णनम् | ••• | 1436 |
| | :,, शवनिर्णयः | ••• | 9880 | २०१ | ,, विश्रान्तिप्रकटीकरणम् | | 1483 |
| | . ,, विपश्चित्संसारश्रमवर्णनम् | | 9889 | | ,, आत्मविश्रामाज्ञीकरणम् | | 9483 |
| | • ,, खर्गनरकोपलम्भवर्णनम् | *** | , ዓሄሄሄ | २०३ | ,, निर्वाणवर्णनम् | | 9488 |
| | ,, निवीणवर्णनम् | | . 9880 | १ २०४ | ्र, चिदाकाशैकताप्रतिपादनस् | ••• | 3486 |
| 963 | ,, अविद्यानिरसनम् | ••• | . १४४९ | २०५ | सर्गकारणनिरासः | ••• | 1486 |
| 9 € 3 | ्र, इन्द्रियजयोपायशास्त्रवर्णनम् | ••• | . १४५१ | २०६ | , ब्रह्मविषयमद्वात्रश्नः | ••• | 944. |
| 96 | ८ जगत्परमारमनोरैक्यप्रतिपादनम् | | . 9843 | 200 | महाप्रश्लोतरवर्णनम् | ••• | 9'448 |
| | ५ जाधरस्वप्रैक्योपदेशः | | . 9844 | | महाप्रश्रोत्तरमोक्षणम् | | 9448 |
| | शिलोपास्यानम् | ••• | . 9846 | | महाप्रश्लोत्तरे सर्वास्तिलानुभूतिदर्शनम् | ••• | 9446 |
| | • जागत्स्वप्रसुषुह्यभावप्रतिपादनम् | ••• | 9845 | 1 | महाप्रश्रोत्तरबाक्यसमाप्तिः | ••• | 9446 |
| | ८ शासमाजकोपदेशः | ••• | . 9869 | • | परमार्थोपदेशः | | 9460 |
| | ९ विश्रान्तिषश्चर्णनम् | ••• | | | परमार्थनिरूपणम् | | 9463 |
| - | • तरवज्ञव्यवद्वारवर्णनम् | ••• | | | प्राक्तनरामशिष्यकोपाक्ष्यानम् | | 9463 |
| | १ द्वैतेक्यनिरामययोगोपदेशः | ••• | | | र उपदेशमहोरसबबर्णनम् | | 9466 |
| | र जगतो बद्धालप्रतिपादनम् | ••• | | | प्रन्थप्रशंसातद्वाचनादिविधिः | ••• | 9469 |
| | अहागीतासु परमाबीपदेशः | | | 1 | गुरुभ्यः शिष्मेरात्मनिवेदम् | | 3409 |
| , • | Calletter 152 scarainett. | | | 1 11 | (@4 - do 141 - d / 1/4 141 d d d d 141 141 | ••• | |

निर्वाणप्रकरणपूर्वाभौत्तराधिविषयानुक्रमः ।

श्रीः ।

योगवासिष्ठः।

श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशाख्यव्याख्यासंवछितः ।

निर्वाणप्रकरणं पूर्वार्धम् ६।

प्रथमः सर्गः १

ξ

3

श्रीवाल्मीकिरुवाच।

उपरामप्रकरणादनन्तरिमदं शृणु । त्वं निर्वाणप्रकरणं क्षातं निर्वाणदायि यत् ॥ कथयत्येयमुद्दामयचने मुनिनायके । अवणेकरसे मानस्थिते राजकुमारके ॥ मुनिचागर्यनिक्षित्तमनस्यस्ततपः क्रिये । राजलोके गतस्पन्दे चित्रार्पित इव स्थिते ॥

श्चिवमभयमनाद्यनन्तमध्यं परमसुखाद्वयबोधमात्रसारम् । उपरतसकलश्रमं विशुद्धं निजमहसा स्फुरदात्मतत्त्वमीडे ॥ १ ॥

उत्पत्तिस्थित्युपशमाख्येकिमिः प्रकरणेर्जगन्ननमस्थितिल्यं स्थापकानां 'अयात आदेशो नेतिनेति' इत्यादिसर्यप्रधानिषे-धकानां च वेदान्तवाक्यानामध्यारोपापवादन्यायेनात्मतस्वव्यु-त्पादकतया वासनाक्षयमनोनाशपर्यन्तज्ञानेन परमपुरुषायं ता-त्पर्यपर्यवसानं दर्शितम् । अथेदानीं 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्य-च्छूणोति नान्यद्विजानाति स भूमा यो वै भूमा तत्सुखम्' 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वात्र विभेति कुतश्रवन' 'तदेतद्वद्धापूर्वमनपरमनन्तरमबाद्य-मयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभ्ः' 'निष्कलं निष्क्रयं शान्तं निरवयं निरजनम् । अमृतस्य परं सेतुं दग्येन्धनमिवानलम्' इत्यादि-श्रुतितात्पर्यसिद्धं प्रागुक्तसर्वसाधनसाध्यसाक्षात्कारज्ञानफलं नि-वाणं व्युत्पादयितुं निर्वाणास्यमिदं प्रकरणं श्रावयितुं भगवान् श्रीवाल्मीकिदवाच—तत्रायसर्गे ।

सुनिवाक्याविहोत्यानं श्रोदणामाहिकीकिया । श्रुतार्थाचिक्तानिद्राभ्यां रात्रियापनमीर्यते ॥ १ ॥

तत्रादी प्वीतरप्रकरणयोहें तुतासंगति सूचयन् वक्तव्यं प्रति-जानीते—उपशमेति । जगजन्मस्थितिभक्तहेतुलक्पशुःयुक्तत-टस्थलक्षणस्य मृह्लोइविस्फुलिक्वादिदश्चान्तैः 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सल्पम्' इति श्रुतिप्रदर्शितन्यायेनैव

बसिष्ठयचसामर्थं विचारयति सादरम् । लसदङ्गुलिभङ्गेन मुनिसार्थं स्फुरद्भुवि ॥ ४ विस्मयालोकनोल्लासप्रोत्फुल्लनयनालिनि । पुरिश्चियों गम्भीरतस्मश्चरितां गते ॥ ५ स्रे वासरचतुर्भागदेशं दिनकरे स्थिते । किंचिउक्वानोद्यात्सीम्ये किंचिच्छममुपेयुषि ॥ ६

'अन्नेन सोम्य शुन्नेनापोमूलमन्बिच्छाद्भिः सोम्य शुन्नेन तेजो-मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुक्तेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्टाः स य एषो-ऽणिमैतदारम्यमिदं सर्वे तत्सत्यं स आत्मा' इति श्रुतितात्पर्यवि-षये ऐकातम्ये पर्यवसानव्युत्पादनपरप्रकरणत्रयानन्तरं तत्फ-लीभूतस्य 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' इत्यादिश्रुतिदर्शितस्ररूपरुक्षणस्य 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' 'अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः' इत्यादिम-हावाक्यार्थस्य तद्वीधकफलनिर्वाणस्त्रह्पस्य च व्युत्पादकत्वाधिः बीणाख्यं प्रकरणं श्रविवत्वर्थः ॥१॥ प्रतिज्ञातमर्थे प्रस्तुतकथा-मेवावलम्ब्य वर्णयिष्यश्चपशमप्रकरणोपदेशान्ते दशरथसभायां यदुतं तदाह--कथयतीत्यादिना । सर्वेषां सप्तम्यन्तानां 'मेरी-पटहराङ्कानां ध्वनिरासी'दिति षोडशस्थेनान्वयः । मुनिनायके वसिष्ठे । राजकुमारके रामे ॥ २ ॥ अस्ता त्यक्ता तपो मान-सं बाह्यार्थालोचनं, क्रिया शरीरचेष्टा च येन । तदेवाह-गत-स्पन्दे इति ॥ ३ ॥ अङ्गलिभक्षेन उत्क्षिप्ततर्जनीचेष्टाभिनयेन । स्फुरद्भवि । सश्रमङ्गमिति यावत् ॥४॥ विस्मयः परमार्थ्यस्पः प्रखगात्मा तदालोकनोहासेन गम्भीरा मकरन्दाखादनासक-भ्रमरैर्निष्कम्पशब्दा या तहमजरी तद्भावमिव गते॥ ५॥ यत्र वासरस्य चतुर्थमागमात्रावशेषो लक्ष्यते तस्मिन्देशे प्रदेशे श्रवणायेव स्थिते । अतएव किंचिज्ज्ञानोदयादिव सौम्ये दृष्टि-

अवणायेव संशान्ते वितानस्पन्दमाछिते। मौनं मरुति मन्दारमधुरामोददायिनि॥ पुष्पदामसुषुप्तासु महाभ्रमरपङ्किषु । हातक्षेयतया नूनं सम्यग्ध्यानवतीिष्वव॥ मुक्ताजालकलापान्तर्गतास्वन्तरभूमिषु। कचत्यपगतस्पन्दं तोये श्रोतुमिवास्थिते ॥ गृहान्तरं प्रविष्टेषु गवाक्षे दूरमंशुषु। विभामार्थमिवादीर्घं नभः पान्थेषु शीतलम् ॥ मुक्ताजालप्रभाजालभसनोब् लितास्मनि । शंसतीव शमं शाम्यदिनदेहे दिवातपे॥ करे लीलासरोजेषु शेखरेषु च भूभृताम्। श्रुत्वा सुरसमामोदादवृत्तिषु मनेस्स्विव ॥ १२ बालकेप्बन्नलोकेषु लीलापक्षिषु सादरम्। भोजनार्थे वधुलोकमुपरुन्धत्स्वनारतम्॥ १३ भ्रमञ्जमरपक्षोत्थवातधृतरजस्यसम् । कौमुदे परिविधान्ते चामरेष्वक्षिपश्मसु॥ १४ रिक्मष्वगगुरोन्मुकच्छायाजालभयोदिव । गवाक्षादिष्विबोड्डीय प्रविष्टेषु गृहान्तरम् ॥ १५ आसीद्दिनचतुर्भागसत्तावेदनतत्परः। मेरीपटहराङ्कानां दिक्युखापूरको ध्वनिः॥ १६ तेन तत्तारमप्याद्य वचोऽन्तर्धानमाययौ। मीनं जलदनादेन मायुर इव निःस्वनः॥ १७ आश्चरधा श्चरधपक्षालिः पञ्चरस्था खगावली।

प्रिये किंचित्तापोपशममुपेयुषीवेत्युत्तरादनुकृष्यान्वयः ॥ ६ ॥ अवणायेव संशान्ते इत्येतदेहलीदीपन्यायेन मरुतीलाशापि सं-बध्यते । क्रुसुमवितानस्पन्देन मालिते स्नग्विणे । अतएव मन्दारमधुरामोददायिनि ॥ ७ ॥ ८ ॥ मुक्तामयानां जालक-लापानां जालाकारवापीवरणीनां अन्तर्गतासु अन्तरभूमिषु म-ध्यस्थवापीप्रदेशेषु श्रोतुमास्थिते सोत्कण्ठ इव अपगतस्पन्दं निखलं कचित मुक्तादिप्रभामिदीप्यमाने सति ॥ ९ ॥ अंशुषु रबिरिश्मषु शीतलं गृहान्तरं श्रवणशालामध्यं विधामार्थमिव प्रविष्टेषु । देशतः कालतश्च आदीर्घ नभसि पान्थेषु । चिरदू-रप्रचारभाग्वेष्विति यावत् ॥ १० ॥ शाम्यतो दिनस्य देहभूते मुक्ताजालकानां प्रभागाललक्षणेन भस्मना उद्गृतितात्मनि तदन्तः प्रविष्टे दिवातपे तपखिलक्षणे खात्मनि शर्म शान्ति-गुणं शंसति सूचयतीव सति ॥ ११ ॥ भूसतां राज्ञां करे पाणी शेखरेषु शिरस्यु च स्थितेषु लीलासरोजेषु शोभना रसा यस्मि-स्तत्सुरसं वातशोपदेशं श्रुला आमोदादानन्दाविभीवात्तेषां मन-स्खिब अवृत्तिषु निमीलनोन्मुखेषु सरसु॥ १२ ॥ लीलापिक्षपु पन्नरस्थश्चकादिषु उपरम्भरसु । लरयत्खिति यावत् ॥ १३ ॥ कीमुदे ईषद्विकासीन्मुखकुमुदसंबन्धिन श्रमद्भमराणां पक्षी-

त्थैर्यातेरुद्धते रजसि चामरेप्वक्षिपक्षममु च परिता विश्रान्ते सति ॥ १४ ॥ सूर्यरिमषु अगानां मेर्नादिपर्वतानां गुहाभ्य उन्मुकाच्छायासमूहात्मकात्तमसो भगादिव उद्वीय पलाय्य गवा-क्षादिषु द्वारेषु निलयनाय गृहान्तरं गृहमध्यं प्रविष्टेष्विव ॥१५॥ दिनचतुर्थभागस्य सत्ता परिशेषस्तस्यावेद्रने तत्परः ॥ १६ ॥ तेन ध्वनिना तत्तारमपि मुनेरिदं मीनं वासिष्टं वचः अन्तर्धान-माययौ ॥ १७ ॥ तरसा जैवेन आक्षुच्या संचलिता जातेख-र्थः । आतालीपस्रवा आकम्पिततालीदला वनावलीव ॥ १८ ॥ सारवं रोदनशब्दसहितं यथा स्यात्तथा श्वन्नकोटरं श्वन-द्वयमध्यमिव ॥ १९ ॥ ईषत्करालः क्षुन्धो बाहः प्रवाहो यासां ताभ्यः । श्रमराणां रजोगीरखद्योतनायाम्बुकणदृष्टान्तः ॥२०॥ बासरस्य वृद्धत्वे चतुर्थे वयसि प्राप्ते सति ॥२१॥ प्रस्तुतं वस्तु वक्तवार्थं संहरश्रुपसंहरन् ॥ २२ ॥ क्रोडीकृत्व हृदि रुद्धेतिया-वत् ॥२३॥ अक्षीणः अक्षयो मद्भिरामर्थः । हंसेन अम्भसः । अम्मःपरिखज्येति ल्यब्लोपे पश्चमी ॥ २४ ॥ अनेन बासना-क्षयमनोनाशप्राणसंरोधज्ञानाभ्यासपथा ॥ २५॥ २६ ॥ यथा अन्धरत्यक्तदीयो बा पुरुषोऽवटे गर्ते पतित तद्वत् ॥२०॥ अस्य मदुक्तार्थस्य सिद्धये यथाप्राप्तो व्यवहारः असन्नेन कार्य इत्येवं सर्वशासपरमतात्पर्यविषयं सिद्धान्तमादाय मनसिकृत्य उदा-

भूकम्पे तरसा तालीपहावेष बनावली। १८ आययुर्भयवित्रस्ता बाला धात्रीकुचान्तरम्। सारवं प्रावृषीबाद्धाः प्रोन्नतं श्टङ्गकोटरम् ॥ १९ ८ उत्तरधुरवतंसेभ्यो भूभृतां भ्रमरस्रजः। ईचत्करास्रघाहाभ्यः सरिक्षोऽम्बुकणा इव ॥ २० ९ एवं प्रश्नमिले तस्मिन्गृहे दाशरथे तदा। प्राप्ते वासरवृद्धत्वे शान्तश्रास्त्रवने शनैः॥ २१ संहरन्प्रस्तुतं वस्तु वचो मधुरवृत्तिमत्। उवाच मुनिशार्दूलः सभामध्ये रघूद्रहम्॥ २२ राघवानघ वाग्जालं मयैतत्प्रविसारितम्। तेन चित्रखगं बद्धा कोडीकृत्यात्मतां नय॥ २३ किश्चहरीतो भवता मद्रिरामर्थ ईडशः। त्यक्त्वा दुर्बोधमक्षीणो हंसेनेवाम्भसः पयः॥ २४ विचार्येतद्शेषेण स्वधियेवं पुनःपुनः। अनेनैव पथा साधो गन्तव्यं भवताधुना ॥ २५ अनयैव धिया राम विहरकेव यध्यसे। अन्यथाधः पतस्याद्य विन्ध्यसाते यथा गजः॥ २६ सुगृहीतं धिया राम मद्यचो न करोपि चेत्। तस्पतस्यवदे स्वक्तदीपो चान्धो निशास्त्रिच ॥ २७ असक्रेन यथा प्राप्तो व्यवहारोऽस्य सिद्धये। इत्येव शास्त्रसिद्धान्तमादायोदारवान्भव॥ २८ हे सभ्या हे महाराज रामलक्ष्मणभूमिपाः। सर्वे एव भवन्तोऽद्य तावद्यापारमाहिकम्॥ २९

१ वरणं वृतिराच्छादनं वा. २ बळेन पा.

कुर्वन्त्वयं हि दिवसः प्रायः परिणतासृतिः। शेपं विचारथिष्यामो विचार्य प्रातरागताः॥ 30 श्रीवाल्मीकिरुवाच । इत्युका मुनिना तेन सा सर्वैव तदा सभा। प्रोत्तस्थौ पद्मवदना सविकासेव पद्मिनी।। 38 राजानः स्तृतराजानः कृतराघवधन्दनाः। परिष्टुते वसिष्ठे ते जग्मुरात्मनिवेशनम् ॥ ३२ विश्वामित्रेण सहितो वसिष्ठो गन्तुमाश्रमम्। उत्तस्थावासनाच्छीमान्नमस्कृतनभश्चरः॥ ३३ दशरथप्रभृतयो राजानो मुनयस्तथा। यथानुरूपं वक्तारमनुगम्य मुनि चिरम्॥ ३४ आपृच्छय केचिद्रगनं ययुः केचिद्रनान्तरम्। केचिद्राजगृहं सन्तो भृङ्गाः पद्मोत्थिता इय ॥ 34 वसिष्ठपादयोस्त्यक्त्वा पुष्पाञ्जलिमनाविलम् । दारैरचुगतो राजा प्रविवेश गृहान्तरम्॥ 38 रामलक्ष्मणशत्रुघाः प्राप्तस्य स्वाश्रमं गुरोः। अभ्यर्च्य चरणौ भत्तया त्वाजग्मुर्नृपमन्दिरम् ॥ ३७ सदनानि समासाद्य श्रोतारः सर्व एव ते। सस्रानर्चुरभ्येयुर्देवान्यिप्रान्पितृंस्तथा॥ રૂડ

| यथाक्रमं स्वभृत्यान्तेर्विप्राधैश्च परिच्छदैः। | |
|--|------------|
| समं बुभुजिरे भोज्यं घर्णधर्मकमोदितम्॥ | 3 < |
| अस्तं गते दिनकरे समं दिवसकर्मृमिः। | |
| अभ्यागते रात्रिक्रे समं रजनिकर्मिमः॥ | Ro |
| स्थित्वा तल्पेषु कौशेयशयनेष्यासनेषु च। | |
| भूचरा मुनिराजानो राजपुत्रा महर्षयः॥ | કર |
| संसारोत्तरणोपायं वसिष्ठवदनेरितम्। | |
| यथावदेकाप्रधियश्चिन्तयामासुरादताः ॥ | ४२ |
| ततः प्रहरमात्रेण निद्रामामुद्रिताननाः। | |
| उत्स्वप्रसुन्दरीमीयुः पद्मा इव दिनार्थिनः॥ | કર |
| रामुळक्ष्मण्दात्रुघाः प्रहरत्रयमेव तत्। | |
| वासिष्ठमुपदेशं ते चिन्तयामासुरक्षतम्॥ | કક |
| प्रहरस्यार्थमात्रं ते तत आमुद्रितेक्षणाः। | _ |
| उत्स्वप्तमाययुर्निद्रां क्षणाद्विद्रावितश्रमाम्॥ | 84 |
| १ ति द्युभमनसां विवेकभाजा- | |
| मधिगतसारतयोदिताशयानाम् । | |
| अभजत विर्रात तदा त्रियामा | |
| मलिननिशाकरवक्रतां जगाम ॥ | ४६ |
| | |

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदृतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे दिवसव्यवहारवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

ब्रितीयः सर्गः २

8

श्रीवाल्मीकिरुवाच। ततः क्रिन्नेन्दुबदना पर्याकुलतमःपदा। क्षीयमाणा बभौ स्यामा विवेक स्व वासना॥ पूर्वे ध्वस्ततयालोकं दृश्यमाने परेऽचले।

रवान् अपरिच्छित्रात्मबोधवान्भवेत्यर्थः ॥ २८ ॥ २९ ॥ प्रातः श्वः सभायामागताः सन्तः । 'धातुसंबन्धे प्रत्ययाः' इति भवि-ष्यति कः ॥ ३० ॥ इति उक्ता आज्ञप्ता । पद्मानीव पद्मान्येव च बदनानि यस्याः ॥ ३१ ॥ स्तुतो राजा दशरथो यैस्ते स्तुतराजानः । वसिष्ठे परिष्टुते सर्वैः प्रणम्य प्रशंसिते सति ॥ ३२ ॥ नमस्कृता नभश्ररा देवा येन ॥ ३३ ॥ वक्तारमु-पदेष्टारम् । चिरमाश्रमान्तमनुगम्य ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अनाविलं निर्मलम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ देवान्पितृथ आनर्चुः । विप्रान् अतिथीन् अभ्येयुः अमिमुखं आ ईयुः । अभिगमनादिना पूज-नाय खीचकुरित्यर्थः । 'अभ्येतुः' इति पाठे तु अभ्येतुरतियि-वर्गस्य मध्ये वित्रानानर्जुरित्येवं योज्यम् ॥ ३८ ॥ परिच्छदैः परिवारैः सह ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ भाविशुभस्-चकलादुत्कृष्टसप्रैः सुन्दरी रमणीयाम् । तथाच श्रुतिः 'अथ यत्र देव इव राजेव अहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः 'इति खाप्रसार्वातम्यदर्शनस्य भाविमोक्षफलसूचकतां दशेयति । दिनार्थिनो राज्यतिकमणकामा इति यावत् ॥ ४३ शयालीकावतंसाभं तापको निकरो दश्रौ॥ २ अवश्यायकणाकर्षी परामृष्टेन्दुमण्डलः। ज्योतकाकवलनालोको बभौ प्राभातिकोऽनिलः॥ ३

॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अधिगतसारतया आत्मतस्वप्रबोधेन उदितः सविश्वास आधायो येषां रामादीनाम् । त्रियामा रात्रिः । वि-रतिमुपरमं अभजत प्राप । अतएवारुणकिरणव्यास्या मिलनो निशाकर एव वकं यस्यास्तद्भावं जगाम ॥ ४६॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणताल्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे प्रथमः सर्गः १

इह रामादिभिः प्रातर्षसिष्ठस्य सभानयः । उक्तार्थस्यरणात्तस्वे विश्वामश्चोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

क्षित्रो म्लान इन्दुरेव वदनं यस्याः । क्षीयमाणा मरणोन्मुखी ॥ १ ॥ ततो निकरो निर्मच्छित्करणस्तापकः सूर्यः प्रा-खुक्षैर्जनैर्दरयमाने पूर्वे पूर्वदिक्स्थे अचले शक्तमेदैर्घ्वस्ततया प्रतिबद्धतया तलदन्तरालनिर्मतमालोकं शयाः प्रसारितहस्ता-स्तदामं दधा । प्रस्टखुर्खेर्जनैर्दरयमाने परे पश्चिमदिक्स्थे अचले तु अलीको मिध्याकित्पतो वतंसः किरीटादिकिरो-भूषणं तदाममालोकं दधाविति द्वन्द्वे विभज्याम्बयः ॥ २ ॥ ज्योत्कानां कवलनाय आलोकश्वक्षःप्रसार इव सौरालोको यस्येति सूर्यस्य तदीयचक्षुद्वारोपादियमुक्तिः। रामलक्ष्मणदात्रुघा उत्थायानुचरैः सह। ययुर्वन्दितसंध्यास्ते पुण्यं वासिष्ठमाश्रमम् ॥ तत्र वन्दितसंध्यस्य निर्गतस्यापि सम्रतः। 4 मुनेर्ववन्दिरे पादी पदोर्दस्वार्घ्यसंततिम् ॥ क्षणात्तत्सदनं मौनं मुनिब्राह्मणराजभिः। हस्त्यश्वरथयानेश्च शनैनीरन्ध्रतां ययो॥ દ્દ अथासी मुनिशार्दृलस्तयेव सह सेन्या। गृहं दाद्यारथं काले रामाद्युगती यथा ॥ तत्रैनं पूर्वसंबन्धः रूतसंध्यो महीपतिः। दूरमार्गे विनिर्गत्य पूजयामास सादरम्॥ पुष्पमुक्तामणिवातेर्भूयोऽत्यधिकभूषिताम् । सभां प्रविदय ते सर्वे विविद्युर्विष्टरालिषु ॥ अथ तिसम्नवसरे ह्यस्तनाः सर्वे एव ते। श्रोतारः समुपाजग्मुर्नभश्चरमहीचराः॥ १० विवेश सा सभा सौम्या कृतान्योन्याभिवन्दना। वभौ राजसमाभोगा शान्तवातेव पश्चिनी ॥ ११ यथाप्रदेशमेवाञ्ज निविष्टेषु यथासुखम्। तेषु तद्देशयोगेषु विप्रर्षिमुनिराजसु ॥ १२ मृतुनि स्वागतरवे शनैः शममुपागते। सभाकोणोपविष्टेषु शान्तशब्देषु बन्दिषु॥ १३ तरसैवोदितेष्वाञ्च श्रोतुमभ्यागतेष्विव। गवाक्षादिव जालेषु प्रविष्टेप्वकेरिक्मषु॥ १४ सत्वरप्रविशच्छ्रोतृहस्तस्पर्शघटोद्भवे । मुक्ताजालञ्चणत्कारे निद्रायामिव शाम्यति ॥ १५ कुमारः शंकरस्येष कचो देवगुरोरिव । प्रहाद इव शुक्रस्य सुपर्ण इव शार्क्षिणः ॥ १६

अनेन धुत्तृषार्त इवेत्युत्प्रेक्षा गम्यते ॥ ३ ॥ अह्ना-तानां श्रवणानधिकारात्स्नाला वन्दितसंध्याः । एवमग्रेऽपि ॥ ४ ॥ निर्गतस्य निर्गमिष्यतः ॥ ५ ॥ नीरन्ध्रतां निरवकाश-ताम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ गृहप्रवेशात्पूर्वमेव संबधाति मेरुयतीति पूर्वसंबन्धस्त्वरोत्साहो यस्य तथाविधो महीपतिर्दशरथः ॥ ८॥ विष्टरादिषु आसनपङ्किषु । 'वृक्षासनयोविष्टरः' इति पत्नम् ॥ ९ ॥ ह्यस्तनाः पूर्वेद्युर्भवाः ॥ ९० ॥ राज्ञा सम आभोगः संस्थानस्थितिर्यस्याः । राजानं यतवाकायचेष्टं रष्ट्रा सर्वेऽपि तथा आसन्निति भावः ॥ ११ ॥ तद्देशयोगेषु सभाप्रदेशप्रविष्टेषु वि-प्रादिषु यथाप्रदेशं प्रात्यहिकक्क्षुप्तप्रदेशानुक्रमेण निविष्टेषुपविष्टेषु सरसु ॥ १२ ॥ सृदुनि परस्परस्वागतप्रश्नरवे ॥ १३ ॥ उदि-तेष्वर्करह्मिषु श्रोतुमिव तरसेबाभ्यागतेषु गवाक्षाद्भवाक्षं प्राप्ये-व तजालिखद्रेषु प्रविष्टेषु सत्सु ॥ १४॥ सखरं सभां प्रविशतां श्रोतृणां हस्तस्परीरङ्गघर्दनेश्रोद्भवो यस्य तथाविधे मुक्ताजाल-कभूषणादिक्षणत्कारे निद्रायामिव निस्पन्दभावाच्छाम्यति सति ॥ १५ ॥ दृष्टेर्भक्तिगौरवोत्कण्ठाद्यतिशयद्योतवाय बहुन्युपमा-

वसिष्ठस्थानने रामः शनैर्देष्टिं न्यवेशयत्। भ्रमन्तीमम्बरोपान्ते फुह्नपद्म इवालिनीम्॥ १७ मुनिस्त्वनुज्झितेनाथ तेनैव रघुनन्दनम्। ऋमेणोवाच वाक्यको वाक्यं वाक्यार्थकोबिदम् ॥१८ श्रीवसिष्ठ उघाच । कबित्सरसि यत्प्रोक्तं श्वो मया रघुनन्दन। वाक्यमत्यन्तगुर्वर्धं परमार्थावबोधनम्॥ १९ इदानीमवबोधार्थमन्यश्व रिपुमर्दन। उच्यमानं मयेषं च शृणु शाश्वतसिद्धये॥ २० वैराग्याभ्यासवदातस्तथा तस्वावबोधनात्। संसारस्तीर्यते तेन तेष्वेवाभ्यासमाहर ॥ २१ सम्यक्तरवावबोधेन दुर्बोधे क्षयमागते। गलिते वासनावेदी विशोकं प्राप्यते पद्म्॥ २२ दिकालाद्यनचिछन्नमस्ष्टोमयकोटिकम् । एकं ब्रह्मैव हि जगितस्थतं द्वित्वमुपागतम् ॥ २३ सर्वभावानविच्छन्नं यत्र ब्रह्मैय विद्यते । शान्तं समसमाभासं तत्रान्यत्वं कथं भवेत्॥ इति मत्वाहमित्यन्तर्मुक्त्वा मुक्तवपुर्महान्। एकरूपः प्रशान्तात्मा साक्षात्स्वात्मसुखो भव ॥२५ नास्ति चित्तं न चाविद्या न मनो नच जीवकः। पताः स्वकलना राम कृता ब्रह्मण पव ताः॥ याः संपदो याश्च रहो। याश्चितो यास्तदेषणाः। ब्रह्मेच तद्नाद्यन्तमध्धिवत्प्रविज्ञम्भते ॥ २७ पाताले भूतले स्वर्गे तृणे प्राण्यम्बरेऽपि च । दृश्यते तत्परं ब्रह्म चिद्र्पं नान्यद्स्ति हि॥ २८ उपेक्ष्यहेयोपादेयबन्धवो विभवा वपुः।

नानि ॥ १६ ॥ अम्बरे भ्रमन्तीमलिनीं भ्रमरीं फुले पद्मे उद-यादिकालो निवंशयति तद्वत् ॥ १७ ॥ तेन प्रागनुकान्तेनैव क्रमेण ॥ १८ ॥ द्यः पूर्वेद्यः ॥ १९ ॥ २० ॥ प्रायुक्तकममे-वानुक्रम्य दर्शयति-वैराग्येखादिना ॥ २२ ॥ २२ ॥ दिका-लाद्यनविच्छन्नं त्रिविधपरिच्छेदशुन्यम् । तस्यैव विवरणं अद-ष्टेति । न दृष्टे देशतः कालतो वा उमे कोटी पूर्वापरावधी द्वैतं च यस्य । उभशब्दस्य समासे द्विवचनलुकि 'उभयोऽन्यत्र' इत्ययन् ॥२३॥समेषु साधारणेषु गोत्वादिष्वप्यतुगतलात्समसमाभासता तत्परिशेषेण प्रथमानम् ॥ २४ ॥ इति उक्तब्राखभावं मला निधित्य अहमित्यभिमानं मुक्ला खात्मेव सु शोभनं खमाकाश-मानन्दो वा यस्य तथाविघो भव ॥ २५ ॥ स्वाः कलनाः कल्पनाः ॥ २६ ॥ संपदो भोग्याः । दशस्तद्भोगवृत्तयः । चितस्तत्प्रति-फलितचिदाभासाः स्मृतयो वा । तेषां भोगानामेषणाः स्पृहाः ॥ २७ ॥ पातास्रादिदेशमेदे तृणादिवस्तुमेदे चकाराद्भृतादि-कालमेदे च तदेव सर्वदश्यात्मना दृश्यते नान्यदित्यर्थः ॥ २८ ॥ उपेक्ष्याः हेया उपादेया इति सामान्यतः । तन्नाप्युत्तरोत्तर-

२ संसाराचीर्यत इति पाठः. ३ सम्यकृतावबोधेन' इति पाठः.

ब्रह्मेच विगताचन्तमन्धिवत्प्रविजम्भते॥ રલ यावद्शानकलना याघदब्रह्मभावना। यावदास्था जगज्जाले ताविश्वसादिकल्पना ॥ 30 देहे यार्वदहंभावो दश्येऽस्मिन्यायदात्मता। यावन्ममेदमित्यास्था तावश्चित्तादिविभ्रमः॥ 38 यावन्नोदितमुचैस्त्वं सज्जनासङ्गसङ्गतः। याबन्मीरूर्ये न संक्षीणं तावश्वित्तादिनिस्रता॥ याविच्छिथिलतां यातं नेदं भुवनभावनम्। सम्यग्दर्शनशक्तयान्तस्ताविश्वत्तादयः स्फुटाः॥ ३३ याबद्दश्रत्वमन्धत्वं वैवद्यं विषयादाया। मौर्ख्यान्मोहसमुच्छ्रायस्तावश्चित्तादिकरूपना॥ 38 यावदाशाविषामोदः परिस्फुरति हृहने। 34 प्रविचारचकोरोऽन्तर्न तावत्प्रविशस्यलम्॥ भोगेष्वनास्थमनसः शीतलामलनिर्वृतेः। छिन्नाशापाशजालस्य श्रीयते चित्तविभ्रमः॥ 36 तृष्णामोहपरित्यागाश्चित्यशीतलसंविदः। पुंसः प्रशान्तचित्तस्य प्रबुद्धाः त्यकचित्तभूः॥ इ७ असंस्तुतमिवानास्थमवस्तु परिपद्दयतः। दूरस्थमिव देहं स्वमसन्तं चित्तभूः कुतः॥ 3८ भावितानन्तचित्तत्त्वरूपरूपान्तरात्मनः। स्वान्तावलीनजगतः शान्तो जीवादिविभ्रमः॥ असम्यग्दरीने शान्ते मिथ्याभ्रमकरात्मनि। उदिते परमादित्ये परमार्थेकदर्शने॥ 80

मुपादेयतमा बन्धवो विभवा वपुरित्येवंप्रकारेणेत्यर्थः ॥ २९॥ कि सर्देव तथा विजम्भते, नेत्याह - याविदत्यादिना ॥ ३० ॥ आत्मना स्वेन ममेदमित्यास्था । कियत इति शेषः ॥ ३१ ॥ उचैस्त्वं पूर्णता । वित्तादिप्रयुक्ता निम्नता नीचता ॥३२॥३३॥ अञ्चलरूपमन्धलम् ॥३४॥ आशालक्षणो विषगन्धः । ताबत् प्रकृष्टात्मविचारलक्षणश्रकोरोऽन्तर्न प्रविशति ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अनास्थया खक्ता चित्तभूः प्रवुद्धा प्रबोधफलवती भवति नास्य-फोल्यर्थः ॥ ३७ ॥ चित्तानुदय एव तत्त्याग इत्याशयेनाह---असंस्तुतमिति । असंस्तुतमनुपयुक्तं दूरस्थमवस्तु अतएव।सन्त-मञ्जपुरुषाकारमिव स्त्रं देहमनास्थं परिपश्यतिधत्तस्य भवनं वित्तभुः कुतः ॥ ३८ ॥ भावितं श्रवणमनननिदिध्यासनसा-क्षात्कारेः परिष्कृतमनन्तं चिन्मात्ररूपं संसारप्रसिद्धरूपादूपान्त-रमात्मा च यस्य । खान्ते मनसि अवलीनं जगद्यस्य ॥ ३९ ॥ असम्यादर्शने सम्यादर्शनविरोधिनि अज्ञाने मिध्याश्रमान्करोति तथाविभस्तभावे नष्टे सति ॥ ४० ॥ ४९ ॥ चित्ताभावे कथं व्यवहारसात्राह-जीवन्युक्ता इत्यादिना । चित्तपदवी जले ग्रुष्के सिकतास जलरेखेव चित्तप्रचाररेखा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ प्रश्नमन्ति व्यवहरन्ति । सत्त्वसंस्थितिप्रयुक्तया हेलया अना- अपुनर्दर्शनायैव दग्धसंद्युष्कपर्णवत्। चित्तं विगलितं विद्धि वही घृतलवं यथा॥ કર जीवन्मुक्ता महात्मानो ये परावरदर्शिनः। तेषां या चित्रपद्वी सा सत्त्वमिति कथ्यते॥ કર जीवन्मुकदारीरेषु वासना व्यवहारिणी। न चित्तनाम्नी भवति सा हि सत्त्वपदं गता॥ ઇર્ર निश्चेतसो हि तस्वज्ञा नित्यं समपदे स्थिताः। लीलया प्रभ्रमन्तीह सत्वसंस्थितिहेलया॥ 88 शान्ता व्यवहरन्तोऽपि सत्त्वस्थाः संयतेन्द्रियाः। नित्यं पर्यन्ति तज्ञयोतिर्न द्वैतैषयेन वासना॥ ४५ अन्तर्भुखतया सर्वे चिद्वही त्रिजगत्तृणम्। जुद्धतोऽन्तर्निवर्तन्ते मुनेश्चित्तादिविम्रमाः॥ ક્રફ विवेकविदादं चेतः सत्वमित्यभिधीयते। भृयः फलति नो मोहं दग्धर्व(जिमियाङ्करम्॥ 80 यात्रत्सत्वं विमृद्धान्तः पुनर्जननधर्मिणी। चित्तराद्याभिधानोक्ता विपर्यस्यति बोधतः॥ ४८ प्राप्तप्राप्यो भवान्नाम सत्वभाषमुपागतम्। चित्तं क्वानाग्निना दग्धं न भूयः परिरोहति॥ છેલ્ संरोहतीपणाविद्धं यया परद्युनाविना। नतु ज्ञानाग्निनिर्दग्धं प्रबोधविदादं मनः॥ ńο ब्रह्मवृंहै व हि जगज्जगद्य ब्रह्मवृंहणम्। विद्यते नानयोभेदश्चिद्धनब्रह्मणोरिष ॥ ५१ चिवन्तरस्ति त्रिजगन्मरिचे तीश्णता यथा।

स्थया ॥४४॥ तर्हि कि तेषां वासनया व्यवहारपरमार्थीभयद-र्शनाइतंक्यंनेत्याह—शान्ता इति । तदद्वयं ज्योतिर्नित्यं परय-न्ति तद्वाधिते द्वैतैक्ये तद्वासना वा न संभवतीखर्थः ॥ ४५ ॥ तदेव स्पष्टमाह-अन्तर्भुखतयेति ॥ ४६ ॥ अतएवाक्रचित्ता-त्सलस्य वैलक्षण्यमित्याशयेनाह—विवेकेति ॥ ४७ ॥ वि-मृढानां जनानामन्तश्चित्तशब्दाभिधानोक्ता सा भवति ताव-देव पुनर्जननधर्मिणी । बोधतस्त सा सत्वं सती विपर्धस्यति । जन्मवृत्तिलक्षणं विपरीतकार्यं करोतीत्वर्थः ॥ ४८ ॥ तवेति शेषः ॥ ४९ ॥ कीहशं तर्हि भूयः संरोहति तदाह-संरोहतीति । ईपणा एपणा वित्तपुत्रलोकविषयास्ताभिराविद्धं खिवतम् । यथा पर्द्युना च्छित्रमाप्रेना दग्धमपि तृणादि अन्तर्वाजशक्त्या विदं भूयः प्ररोहति तद्वत् । निर्दम्धं निर्दग्धै-षणाबीजशक्तिकम् ॥ ५० ॥ ज्ञानामिना कुतो जगद्वीजशक्ति-दाहरतत्राह-अद्वीत । हि यस्माजगद्रह्मण एव मोहाद्वंहा आरोपितरूपेण वृद्धिः । यस्माच ज्ञानान्नगदपि वास्तवब्रह्मख-भावाभिष्टद्धिकं, यतश्च अनयोर्बद्धाजगतोरज्ञानमः श्रकृतो भेदस्त-माशे न विद्यते अतो न प्ररोहतीलर्थः ॥ ५१ ॥ त्रिजगिबद्-न्तश्चिद्वपेणैवास्ति यथा तीक्ष्णतैकरसे मरिचे तीक्ष्णता तद्वत ।

१ अवैको यावच्छन्दोऽवधारणार्थः साकल्यार्थो वा. सकले

दृश्ये इति ममैवेदमिति वान्वयः. २ त्कारैक्पस्कृत.

नातश्चिज्ञगती मिन्ने तस्मात्सवसती मुधा॥ ५२ शब्दशब्दार्थसंकेतावासनेह न संविदा। चिद्योमत्वादुमे भातस्त्यजातः सदसन्मती॥ ५३ अचिन्मयत्वान्नासि त्वं स्वात्मा किमिव रोदिषि। अचिन्मयत्वे जगतामभावे कल्पनं कुतः॥ ५४ चिन्मयं चेत्सदा सर्वं तिचत्त्वं प्रविचारय। शुद्धं सत्वमनाद्यन्तं तत्राङ्ग कल्पना कुतः॥ ५५ चिदात्माति निरंशोऽसि पारावारविवर्जितः। रूपं सर निजं स्कारं माऽस्मृत्या संमितो भव॥५६ तां स्वसन्तां गतः सर्वमसर्वं भावयोदयी। ताहप्रपोऽसि शान्तोऽसि चिद्दसि ब्रह्मरूप्यसि॥५७ विच्छिलोद्रमेवासि नासि नानास्थाप्यसि। योसि सोसि न सोसीव सदस्यसदसि स्वमाः॥५८ यः पदार्थविशेषोऽन्तर्न त्वं न होव सोऽस्ति ते। तदस्यतदसि स्वस्थश्चिद्धनात्मन्नमोस्तु ते॥ ५९

> आद्यन्तवर्जितविशालिशान्तराल-संपीडिचिद्धनवपुर्गगनामलस्त्वम् । स्वस्थो भवाजठरपह्नवकोशलेखा लीलास्थिताखिलजगज्जय ते नमस्ते॥६०॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे विश्रान्तिसुदढीकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

श्रीविसष्ट उवाच । भाविभूरितरङ्गाणां पयोवृन्दमिवाम्बुधौ । या चिद्वहत्यनन्तानि जगन्त्यनघ सो भवान्॥ भव भावनया मुक्तो भावाभावविवर्जितः।

अतस्तरवदशा चिम्नगती न भिन्ने। तस्मान्सदसती वसुप्ररोह-प्रक्रयो सुधा मायाप्रयुक्तञ्चान्तिरेवेलार्थः ॥ ५२ ॥ तर्हि 'अ-सद्वा इदमप्र आसीत्ततो वै सदजायत' इत्यादिश्रीताः, घटोऽस्ति घटो नास्तीत्यादिलाकिकाश्व सदसच्छन्दाः किं निरर्थकाः, ने-स्याह—शब्देति । इह श्रीतलैकिकव्यवहारे परस्परव्यावृत्ताः शब्दा व्यावृत्तेष्वधेषु संकेतिमा इति वक्तुश्रोतृवासनैव व्यावृ-स्याकारेण भासते । तैदंशशब्दकृता संविदा प्रमा न । अवस्तुभू-ताया व्यावृत्तेः शब्दार्थलाभावात् । एवं व्यावृत्त्यपगमे उभे सदसच्छब्दवाच्ये अव्याष्ट्रताननुगतिचयोमलावेव परमार्थतो भात इति तदेव परमार्थवस्तुशब्दार्थ इत्यर्थः ॥ ५३ ॥ एवं सदसद्विकल्पत्यागेन निन्मात्रदर्शने देहाद्यात्मताश्रमप्रयुक्तजन-नमरणाद्यनर्थप्राप्तिप्रयुक्तरोदनस्यापि न प्रसक्तिरित्याह-अचि-न्मयलादिति। त्वं लमिति व्यवहियमाणं रामामिधं सदसत्खभावं शरीरमात्मा खर्यं नासि अचिन्मयलात्। सर्वस्य जगतः अचिन्म-यत्वे अभावे चावगते देहादिकल्पनैव तव कुत इत्यर्थः॥५४॥ यदि तु चिद्यावृत्तिलक्षणजाष्यमात्रपरित्यागाचिन्मयभेव जगदि-ति मन्यसे तदा चित्त्वं चित्त्वभावं प्रविचारय । तच सम्यग् वि-चार्यमाणं शुद्धं त्रिविधपरिच्छेदशून्यमेकरसम् । तत्र देहाद्यनर्थ-कलना कृत इत्यर्थः ॥ ५५ ॥ अस्मृत्या चित्खरूपविस्मरणेन संमितः परिच्छित्रः ॥ ५६ ॥ तां सत्तां पूर्णचित्स्वभावस्थिति गतः सन् उदयी निरतिशयानन्दलाभाद्युदयबान् भूला असर्व परिच्छित्रं जगत्सर्वं पूर्णस्वभावं भावय संपादय ॥ ५० ॥ ना-मासि नानाभावेन आस्ते तच्छीलः नासि अथापि तद्वाधावधि-लादसि परिशिष्यसे । तत्र सर्ववाध्यनसप्रवृत्तिनिमित्तापगमा-

चिदात्मन्संस्थिताः क्षेत्र वद ते चासनादयः॥ २ जीवोऽयं वासनादीदमिति चित्कचित स्त्रतः। इतरोत्त्यर्थयोरत्र कः प्रसङ्गोऽङ्ग कथ्यताम्॥ ३

योसि सोति । तर्हि किमल्यन्तपरोक्षो नेलाह—नेति । न सः परोक्षोऽसीव यतः स्वभाः स्वप्रकाशः ॥ ५८॥ सदस्यसदसीत्यंशं विवृणोति—य इति । यः सर्वपदार्थानां विशेषो व्यावृत्तिलक्ष्रणोऽन्तः परिच्छेदः स एव अलीकलादसच्छब्दार्थः । स त्वं न भवसीति सदसीलस्यार्थः । स एव तबावृत्तसद्धमैत्वेन कल्प्यमानो व्यावहारिकैः सत्तेति व्यपदिश्यते स ते नास्त्येवेत्यसदसीलस्यार्थः इत्याशयेन सदस्यसदसीत्युक्त इत्यर्थः ॥ ५९ ॥ आधम्तविर्तितं विशालं स्कटिकशिलान्तरालमिव संपीडं निवित्रं यिद्यस्तत्स्वभावस्त्वं न दुःलादिविक्रियाभागिति मला स्वस्थो भव । आसमन्ताद्विस्तीणं लदीयचिच्छलाजठरे प्रतिविम्बितपङ्गवकोश इव किस्ताया मायाया रेखासदशवासनामेवेषु मनोलीलया स्थितान्यस्विलानि जगन्ति यस्मिस्तथानिष हे राम, ते तादशाय नम इत्यर्थः ॥ ६० ॥ इति श्री-वासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

ब्रह्मजीवमनोदेहजगतामैक्यदर्शनात् । सर्वद्वैतञ्जमे शान्ते पूर्णेकस्थितिरुच्यते ॥ १ ॥

तत्रादो सर्वकल्पनाप्रतिभासनिमित्तं चित्स्वरूपमारमेति परि-चाययति—भाषीति । अम्बुधौ भाषिनां जायमानानां भूरित-रक्तमेदकल्पनानामास्पदं पयोष्टन्दं जलसामान्यमिव या चित् अनन्तानि जगन्ति वहति सा । उ इति संभावनायां । सैवारमेति संभावयेखर्थः ॥ १ ॥ तत्संभावनोत्तरं द्वैतभावनात्यागमात्रेण निष्प्रपश्चं निर्वासनं च तत्स्वरूपमनुभावयति—भवेति ॥ २ ॥ तत्स्वरूपे परिचिते जीववासनाजगद्विभागाश्चित एव कचन-मेदकल्पना न पृथवसन्तीत्यनुमित्तं शक्यत इत्साह—जीव-

१ सदसच्छन्दकृता इति पाठ:.

महातरक्रगम्भीरभासुरात्मचिद्र्णवः। रामामिधोर्मिस्तिमितः सम सौम्योऽसि ब्योमयत् ४ यथा न मिन्नमनलादीष्ण्यं सीगन्ध्यमम्बुजात्। कार्ण्यं कञ्जलतः शौक्षयं हिमान्माधुर्यमिश्चतः॥ ५ आलोकश्च प्रकाशाङ्गाव्युभृतिस्तथा चितेः। जलाह्रीचिर्यथाऽभिषा चित्स्वभाषात्तथा जगत्॥६ चितो न मिन्नोऽनुभवो भिन्नो नानुभवादहम्। न मसो मिद्यते जीवो न जीवाद्भिद्यते मनः॥ मनसो नेन्द्रियं भिन्नं पृथग्देहश्च नेन्द्रियात्। न शरीराज्जगद्भिन्नं जगतो नान्यदस्ति हि॥ एवं प्रवर्तितमिदं महचकमिदं चिरम्। नच प्रवर्तितं किंचिन्न च शीघं च नो चिरम्॥ ९ स्ववेदनमनन्तं च सर्वमेवमखिडतम्। विद्यते व्योमनि व्योम न कसिंश्चित्र किंचन॥ १० शुन्यं शुन्ये समुच्छूनं ब्रह्म ब्रह्मणि बृंहितम्। सत्यं विजृम्भते सत्ये पूर्णे पूर्णमिव स्थितम्॥ ११ रूपालोकमनस्कारान्कुर्वश्रपि न किंचन। **ब्रः करोत्यनुपादेयान्न ब्रस्यैव हि कर्तृता ॥** १२ यदुपादेयबुद्धा च तहुःखाय सुखाय ते। भाषाभावेन नादेयमकर्तृ सुखदुःखयोः॥ १३

यथा नानाप्यनानैव खं खे खानीति वामाणः। सार्थकोऽप्यतिशुन्यात्मा तथात्मजगतोः क्रमः॥ १४ अन्तर्थ्योमामलो बाह्ये सम्यगाचारचञ्जरः। हर्षामपंविकारेषु काष्टलोष्टसमस्थितिः॥ १५ य पवातितरां शत्रुः सत्वरं मारणोद्यतः। तमेवाकृत्रिमं मित्रं यः पश्यति स पश्यति॥ १६ समुलकाषं कपति नदीतट इव द्वमम्। यः साहृदं मत्सरं च स हर्षामर्पदोषहा ॥ १७ रागद्वेषविचाराणां स्वरूपं चेन्न भाव्यते। ततः सन्तोऽप्यसद्रूपाः सेविता अप्यसेविताः॥१८ यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धियस्य न लिप्यते। हत्वापि स इमाँहोकान्न हन्ति न निबध्यते॥ १९ यद्मास्ति तस्य सङ्गावप्रतिपत्तिरुदाहृता। मायेति सा परिक्षानादेव नश्यत्यसंशयम्॥ २० निःक्षेहदीपवच्छान्तो यस्यान्तर्वासनाभरः। तेन चित्रकृतेनेच जितं श्रेनाविकारिणा॥ २१ यस्यानुपादेयभिदं समस्तं पदार्थजातं सदसद्दशासु। न दुःखदाहाय सुखाय नैव विमुक्त एवेह सजीव एव॥ २२

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये देव । मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मेक्यप्रतिपादनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

इति । इतरोक्तरिचदर्थकशब्दस्य तदर्थस्य च । अत्र एवंहपे चिद्वस्तुनि ॥ ३ ॥ 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्नित्यानन्दे चिदा-त्मनि । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्मामिधीयते ॥' इति व्युत्पादि-तान्वर्थरामाभिधानः ॥ ४ ॥ तत्र दश्यस्य दगव्यतिरेकं दग्ध-मैंस्वोपपादकदृष्टान्तैः साधयति—यथेत्यादिना ॥ ५ ५ प्रकाशा-**ङ्गारोजसः । अनुभूतिर्यृत्तिप्रतिबिम्बचैतन्यम् । तथाशब्दः पूर्व-**द्यान्तसमुख्ये । तथा अभिन्नेति च्छेदः ॥ ६ ॥ उक्तमेवार्थमः ध्यासक्रमोद्घाटनेन स्फुटं दर्शयति—चित इत्यादिना । चितो मू-लाधिष्ठानब्रह्मचितः । अनुभवो मायाशृत्त्या रूढचिदाभासः । अहं व्यष्टिसमध्यदंकारः । एवमप्रेऽपि शरीरान्ते बोध्यम् ॥ ७ ॥ न शरीरादिति । समष्टिशरीरे जगतोऽन्तर्भावादित्याशयः ॥ ८ ॥ इदं प्रस्तुतमिदं दर्यमानं जगचकं चितेव खरूपमोहादध्यास-परम्परया प्रवर्तितमित्यर्थः । परमार्थस्या तु न किंचिदपि प्रवर्तितम् ॥ ९ ॥ १० ॥ तस्य निरतिशयपूर्णतामेव भक्ति-मेदैर्वर्णयति-शून्यमिति ॥ ११ ॥ इस्य कर्तृता नैव ॥ १२ ॥ यत् उपादेयबुद्धा विषयजातमादीयते तदेव ते दुःखाय धु-खाय च भवति । भाव उपादेयताबुद्धिस्तद्भावेन तु न किंचि-दादेगं नाम भवति । अनात्तं च सुखदुःखयोरकर्तृ प्रसिद्धमिति न दुःसादिप्रसक्तिरिखर्थः । अथवा भावानां द्रयानामभावेन असरवेन नादेयं किंचिदस्तीति तत् सुखदुःखंयोरकर्त्रिव्यर्थः ॥ १३ ॥ नानारवेन प्रतीयमानानां भावानां कथमभावस्त-

त्राह-यथेति ॥ १४ ॥ काष्ठलोष्टसमस्थितिर्भवेति शेषः ॥१५॥ शतुशरीरेऽपि खस्यैवात्मलात्खशरीर इव तत्राप्यकृत्रिमप्रीति-रात्मदर्शिनो भवतीत्याह-यएवेति । मित्रं प्रियतमम् ॥ १६ ॥ तत एव हर्षामर्षदोषनियृत्तिरित्याह—समूलेति । यो नदी ख-तटे विद्यमानं द्वमिव सौहदं मत्सरं च समूलकाषं कषति समूलमुन्मूलयति स एव हर्षामर्षदीपाणां हन्ता भवतीत्वर्थः । समूलोपपदात्कवेणंमुलि कवादिषु यथाविध्यनुत्रयोगः ॥ १७॥ रागद्वेषयोस्तत्कार्यधिकाराणां च खरूपं तत्त्वं चेत्र भाव्यते न विचार्यते ततस्तर्हि सन्तः अरागद्वेषत्वेन प्रसिद्धा अपि जना असद्भूषाः। रागद्वेषतत्त्वापरिज्ञाने तन्मूलोच्छेदासंभवेन पुनस्तेषां रागद्वेषप्ररोहापरिहारात् । अतस्ते सेविता अपि वृथेखर्थः ॥ १८ ॥ कि तर्हितत्वं तयोरिति चेदहंकार एव । अत-स्तत्परित्यागे आत्यन्तिकरागद्वेषनिष्टत्तिरित्याशयेन गीताबाक्य-मुदाहरति-यस्येति ॥ १९ ॥ अहंकारस्य तु तत्त्वमकानमेव तिभवृतिस्तु स्वारमपरिक्रानादित्याशयेन तत्र मायाशब्दार्थप्र-सिद्धिं दर्शयन्नाह--यदिति ॥ २० ॥ यस्य वासनाभरः शान्तस्तेन जितम् । स कि जयः सत्यः, नेत्याह---चि-त्रकृतेनेति । यथा चित्रकृतेन राज्ञा चित्रलिखितशृत्र्वी-रिक्छन्दता जितमिव तथा नित्यनिरस्तसंसारनिरासबोधा-शिख**सिद्धा**द्वितीयपूर्णात्मना जितमिखर्यः ॥ २१ ॥ यस्य पुरुषधौरेयस्य इदं समस्तं भोस्यपदार्थजातं सद्दसह्यासु

१३

चतुर्थः सर्गः ४

श्रीवसिष्ठ उवाच।

मनो बुद्धिरहंकार इन्द्रियादि तथानघ। अचेत्यचिन्मयं सर्घे क ते जीवाद 👉 स्थिताः॥ पकेनैवात्मना दत्ता नानातेयं महात्मना। यधेकेनैव चन्द्रेण तिर्मिराप्पात्रदर्पणैः॥ 2 भोगतृष्णाविषावेशो यदेवोपशमं गतः। तदैवमस्तमशानमान्ध्यं ध्वान्तक्षयादिव॥ अध्यात्मशास्त्रमन्त्रेण तृष्णाबिपविषृचिका। क्षीयते भावितेनान्तः शरदा मिहिका यथा॥ मौर्ख्ये क्षीणे क्षतं विद्धि चित्तं राम सवान्धवम्। विलीनाम्बुधरे व्योक्ति जाड्यं शाम्यत्यविद्यतः॥ अचिसत्वं गते चिसे शीयते वासनाभ्रमः। हारमुकासमावेदादिछन्ने तन्ताविचानघ॥ દ્ रघुनाथ विघाताय शास्त्रार्थ भावयन्ति ये। क्रमिकीटत्वयोग्याय चेतसा संमिलन्ति ते॥

नवतामरसाकारकान्तलोखनलोळता।
शान्ते मौर्ख्येऽक्षता वाते चलता सरसो यथा॥ ८
स्थिरतामुपयातोऽसि भावाभावविवर्जितः।
पदे परमविस्तारे नभसीय प्रभञ्जनः॥ ९
मन्ये महचनेवाधमागतोऽसि रघूहह।
विगताज्ञाननिद्रोऽन्तर्नृपतिः पटहैरिष॥ १०
सामान्ये च लगन्त्येय जने कुलगुरोगिरः।
अत्युदारमतौ राम न लगन्ति कथं त्वयि॥ ११
यत्रोपादेयवाक्यत्यं भावितं स्थेन चेतसा।
महचोऽन्तर्विशत्युद्धैस्तमे क्षेत्रे यथा पयः॥ १२

वयमिह हि महानुभाव नित्यं कुलगुरवो भवतां रघूद्वहानाम्। मदुदितमिदमाशु धार्यमार्थ शुभवचनं हृदि हारवस्वयेति॥

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्ल्माकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पश्चमः सर्गः ५

श्रीराम उवाच। अहो अहं गतश्चित्वं भवद्वाक्यार्थभावनात्।

आविभीवतिरोभावावस्थायु वैभवदारिद्यदशासु आरोपापवा-द्दशासु वा मिध्यात्वात्तस्वत आत्मतया निस्स्रव्यखाद्वा अ-नुपावेयं सत्तद्वियोगसंयोगप्रयुक्ताय दुःखदाहाय सुखाय च न भवति किंतु इह स जीवो जीवन्नपि सुक्त एवेत्यर्थः ॥ २२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे नृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

निरस्यान्याः पराग्दष्टीर्षसिष्ठेनेह राघवः । प्रस्यग्दष्टी स्थिरीकृत्य पृष्टः संशयशान्तये ॥ १ ॥

रामस्य प्रत्यग्दिष्टमुद्धाः यिण्यन्विष्ठः प्रथममाध्यातिमकेषु
मनआदिभेदेष्वनुगतालण्डचिदैक्ष्यं द्र्शयन् जीवादिभेदवाधमनुभावयति—मन इति ॥ १ ॥ तत्रोपपत्तिमाह—एकेनेति ।
दत्ता लसत्तासंसर्गाध्यासेन प्रापिता ॥ २ ॥ मनआरानुगतप्रस्वत्त्वदर्शनादेव तत्र विश्रान्तस्य बाह्यार्थभोगतृष्णाक्षये बाह्यसर्ववस्त्वनुगतसन्मात्रस्यापि प्रत्यगमेदेन स्वतएव भानाद्वाह्याध्यासनिमित्तमप्यज्ञानं क्षीयत इत्याशयेनाह—भोगेति । एवमुक्तरीत्या प्रत्यक्तत्वदर्शनेन भोगतृष्णाविषावेशो यदैवोपशमं
गतस्तदैवाज्ञानमस्तं निरस्तमित्यर्थः । आन्ध्यं बक्षुषो विषयप्रधनासामध्यम् ॥ ३ ॥ अन्तर्भावितेन सम्यग्विचारितेन ॥ ४ ॥
मोह्यमज्ञानम् । जाष्यं शैत्यम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ एवं सर्ववेदान्तशास्तरहस्यभूतां प्रत्यग्रदृष्टि सम्यगुद्धात्य तद्विपरीतदर्शनं शा-

शान्तं जगज्जालमिदमग्रस्थमपि नाथ मे॥ परामन्तः प्रयातोऽस्मि परमात्मनि निर्वृतिम्।

स्नार्थविघातकं निन्दति--रघुनाथेति । दर्शितं शास्त्रार्थे शा-स्नरहस्यं उपेक्ष्येति शेषः । ये तद्विधातायान्यथा भावयन्ति ते कृमिकीटलयोग्याय पापाय चेतसा रागादिहेतुदुर्बुख्या मिलन्ति ॥ ७ ॥ तां दुर्वुद्धं व्यवहितसर्गे प्रपञ्चयिष्यमाणां प्रतीकेनो-दाहरन् मार्ख्यक्षयात्तत्क्षयं दर्शयति-नवेति । स्वादिपिण्डेषु दुर्बुद्धिकल्पितेति शेषः ॥ ८ ॥ इदानीं रामस्य दर्शितप्रत्यग्दष्टौ स्थिरीभावं लिक्नैहपलक्ष्याह—स्थिरतामिति । प्रभन्ननी वायुः ॥ ९ ॥ पटहैर्वैतालिकानां प्रबोधनवाद्यमेर्दः ॥ १० ॥ इदानीं खकृतस्योपदेशस्य साफल्यदरीनाद्रामं खं च प्रशंसन्नाह--सा-मान्ये इति । लगन्ति बोधजननफलेन युज्यन्ते ॥ ११ ॥ यत्र मिय लया उपादेयवाक्यलमाप्ततमत्वं भावितं चिन्तितमतो मद्द-चस्तवान्तर्हिदि विशति ॥ १२ ॥ इदानीं फलपर्यवसितखोप-दिष्टार्थस्यापि स्मरणेन धारणं खस्य कुलपूज्यखान्माननीयशा-सनलस्यापनेन विधत्ते-वयमिति । भवतां सर्वेषामिक्षाकूणां विशेषतश्च रघूदहानां वयं कुळगुरव इति हेतोस्लया मदुदित-मिदं शुभं वचनं धार्य पुनःपुनिधन्तनेन दढीकृत्येत्यर्थः ॥१३॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इह प्रबुद्धः श्रीरामो विश्वान्तः परमे सुखे । गुरोः पुरः खानुभवं वर्णयामास विश्वरात् ॥ १ ॥ विश्वं चिदेकरसपूर्णात्मभावम् ॥ १ ॥ दीर्घेण चिरकालाः दीर्घावप्रहसंतप्तं बृष्ट्येय वसुधातलम्॥ ર शाम्यामि शीतलाकारः सुखं तिष्टामि केवलम्। प्रसादमनुयातोऽहं सरो निर्वारणं यथा॥ Ę सम्यद्मप्रसन्नमिलं दिखाण्डलमिदं मुने। यथाभूतं प्रपद्यामि निर्नीहारमिबाधूना॥ 8 जातोऽस्मि गतसंदेदः शान्ताशामृगतृष्णिकः। रागनीरागनिर्मुको मृष्टजङ्गलशीतलः॥ 4 आत्मनैवान्तरानन्दं तत्प्राप्तोऽस्म्यन्तवर्जितम्। रसायनरसास्त्रादो यत्र नाथ तृणायते॥ ફ अद्याहं प्रकृतिस्थोऽसि स्वस्थोऽसि मुदितोऽसि च। लोकारामोऽस्मि रामोऽस्मि नमो मद्यं नमोस्तु ते ७ ते संशयास्ताः कलनाः सर्वमस्तं गतं मम। रात्रिवेतालसंसारः प्रभात इव भास्करे॥ निर्मले हृदि विस्तीणें संपन्ने हिमशीतले। मनो निर्वृतिमायातं सरसी शरदीव मे॥ 9 कलङ्क आत्मनः कस्मात्कथं चेत्यादिसंशयः।

नृनं निर्मुलतां यातो सृगाङ्काप्रे यथा तमः॥ १० सर्वमात्मेष सर्वत्र सर्वदा भाविताकृतिः। इदमन्यदिदं चान्यदित्यसत्कलना कुतः॥ ११ कोऽभवं प्रागहं तादक्तृष्णानिगडयम्बितः। अन्तरात्मानमेवेति विद्यामि विकासवान्॥ १२ आ इदानीं स्मृतं सम्यग्यथैप सकलोऽस्म्यसी। यस्त्वद्वागमृतापूरस्नातेनायमहं स्थितः ॥ १३ अहो नु विततां भूमिमधिरुढोऽसि पावनीम्। इहस्थ एव यत्राकों न पातालमिव स्थितः॥ १४ मद्यं सत्तामुपेताय भावाभावभवार्णवात् । नमो नित्यं नमस्याय जयाम्यात्मात्मनात्मनि ॥ १५

अनुभववशतो हृद्य्जकोशे स्फुटमलितां समुपागतेन नाथ। तव वरवचसेह वीतशोकां चिरमुदितां च दशामुपागतोऽस्मि॥ १६

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे राधवविश्रान्तियणेनं नाम पश्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

श्रीविषष्ट उवाच। भूय पव महाबाहो शृ्णु मे परमं वचः।

नुरुत्तेनावप्रहेण वृष्टिप्रतिबन्धेन संतप्तम् ॥ २ ॥ निर्वारणं नि-र्गतगजम् । निर्विक्षोभनिमित्तमितियावत् ॥३ ॥ यथाभूतं यथार्थ-भूतसन्मात्रसभावम् ॥ ४ ॥ रागैर्विषयरज्ञनैर्नारागैसाद्विरोधि-वैराग्यादिवृत्तिभिश्च निर्मुक्तः । मृष्टं निर्मृष्टनीहाररजस्कं शर-स्कालजङ्गलमिव शीतलः ॥ ५ ॥ रसायनममृतं तदसाखादोऽपि यत्र यस्मिन्नानन्दे तृणायते तृणवन्नीरसीभवति, उपेक्ष्यो भवति वा ॥ ६ ॥ प्रकृतिः पारमार्थिकस्वभावस्तत्स्थः । लोका आर-मन्ते विश्राम्यन्ति यस्मिन्सुखे तदहमस्मि । 'एतस्यैवानन्दस्या-न्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः । अतएव रमन्ते योगिनो यत्रेति प्राग्दर्शितव्युत्पत्त्या रामोऽस्मि । खनामसा-र्थक्यं ममाद्य संपन्नमित्यर्थः । तादशाय मह्यं, तत्प्रदर्शकाय ते तुभ्यं च नमः ॥ ७ ॥ कलना भ्रमाः । रात्रौ बालभ्रान्ति-कल्पितो वेतालस्य संसारः संचारः, कुटुम्बं वा ॥ ८ ॥ मनः शरदि सरसी महासर इव निर्वृतिं निर्विश्लेपविश्रान्तिमायातं प्राप्तम् ॥ ९ ॥ विदेकरसस्यात्मनोऽज्ञानादिकलङ्कः कस्मात्रि-मित्तादागतः, कथं खप्रकाशे तिष्ठति, सः असङ्गमपरिच्छिन्नं भ तं कथमाच्छादयति, कथंच कूटस्थस्य सांसारिकविकारा-नुभव इत्यादिसंशयः सर्वसंशयमृत्रभृताङ्गानापगमान्निर्मृततां यातः ॥ १० ॥ भाविताकृतिः स्फ्ररदाकारः ॥ ११ ॥ अहं सांप्रतं विकासवान्सन्नतुभूयमानमञ्जनायाद्यतीतमात्मानमन्तरा विनेव प्राक्तृष्णानिगडयित्रतः कः अभवमिति विहसामि

यत्तेऽहं श्रीयमाणाय वस्यामि हितकाम्यया॥

॥ १२ ॥ आ इति स्मरणयोतको निपातः । 'निपात एका-जनाङ्' इति प्रगृह्यलादसंधिः । लद्वागमृतापूरस्रातेन मया अयमहं यो यथा परमार्थतः स्थित एप सकलक्षास्मि तथा इदानीं स्मृतमिल्यन्वयः ॥ १३ ॥ अहमिहस्थ एव सन् कांचि-द्विततामपरिच्छिन्नां ब्रह्मलोकभूमिमधिरूढोऽस्मि । यत्र यस्पां भूमावर्कः सूर्यः पातालमास्थित इवालन्तमधोदेशस्थितोऽपि न भवति । कार्यत्रहालोकाद्धि सोऽधःस्थितो न परव्रहालोकात् । 'न तत्र सूर्यी भाति न चन्द्रतारकम्' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥ १४ ॥ भावाभावभवार्णवात् । त्यव्लोपे पघर्मा । भावाभावलक्षणं भ-वार्णवं निस्तीयं तत्पारभूतां तद्धिष्ठानसन्मात्रतामुपेतायेखर्थः । यतोऽहमात्मना आत्मनि स्त्रे महिन्नि जयामि सर्वोत्कर्पण वर्ते, अतः सर्वेनित्यं सर्वदा नमस्याय । नमस्कर्तुमहीयेत्यर्थः ॥१५॥ **हे नाथ, अहं ^{हैं}दब्जकोशे स्फुटमां**लेता अमरविस्थरता**मु**पाग-**तेन** तब वरवचसा **इ**ह अस्मिन्देशे काले च स्वानुभवव-शतो वीतशोकां चिरं सदैवोदितां मुदितां वा जीवन्मुक्तदशा-सुपागतोऽस्मीलर्थः ॥ १६ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायण-तात्पर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

देहात्मप्रविवेकोऽत्र दुःखं देहात्मदर्शनात् । मृदानामङ्गनासङ्गान्मोहचृद्धिश्च वर्ण्यते ॥ १ ॥

इत्थं श्रीरामे सम्यक् प्रवुद्धऽप्यन्येषां श्रोतृणां तथैव प्रबोध-जननाय प्रवर्तमानो भगवान्वसिष्ठो वस्यमाणदेहात्मविवेकादिश-

योग० ९९

ર

3

8

9

Q

भेदमभ्युपगम्यापि श्रुणु बुद्धिविबृद्धये। भवेदल्पप्रबुद्धानामपि नी दुःखिता यथा॥ यस्याज्ञानात्मनोऽज्ञस्य देह एवात्मभावना। उदितेति रुपैवाक्षरिपवोऽभिभवन्ति तम्॥ यस्य शानात्मनो श्रस्य सत्येवात्मनि संस्थितिः। संतुष्टेवाक्षसुद्वदो न झन्ति तमनिन्दितम्॥ पदार्थे स्फुरतो यस्य न स्तुतिर्निन्दनादते। स देहं देहदु:खार्थमादत्ते केन हेतुना॥ नात्मा शरीरसंबन्धी शरीरमि नात्मनि। मिथो विलक्षणावेती प्रकाशतमसी यथा॥ सर्वैर्भावविकारैस्तु नित्योन्मुक्तस्त्वलेपकः। नात्मास्तमेति भगवन्न चोदेति सदोदितः॥ जडस्याशस्य तुच्छस्य कृतञ्चस्य विनाशिनः। शरीरकोपलस्यास्य यद्भवत्यस्तु तत्तथा॥ आइसे तत्कथं नित्यं चिनमयत्वं सदोदितम्। ययोरेकपरिज्ञाने जडतेवाऽपरस्थिता॥

वणे राममप्यनुकूलयनाह—भूय एवेत्यादिना । श्रीयमाणाय उपदेशतात्पर्यंगोचरनिरतिशयानन्दात्मानुभवलक्षणप्रोतिभाज-नाय ते सर्वजनहितकाम्यया यद्वस्यामि तच्छ्जित्यर्थः ॥ १ ॥ नतु श्रोतृश्रावयितृश्रोतव्यादिभेदानां बाधितत्वात्वश्यं मे श्रवणे प्रवृत्तिः किंवा तत्फलं तत्राह-भेदमिति । बाधितानुवृत्त्या मेदाभ्युपगमेन अवणे प्रवृत्तिसिदिस्तव बोधामिपृद्धिरत्पप्रबुद्धो-द्धारधः तत्फलमिलर्थः ॥ २ ॥ तत्रादौ श्रोतृणामिन्द्रियजयासा-मर्थ्यात्तराकुष्यमाणस्य मनसः पूर्णात्मनि प्रतिष्ठा कथं स्यादिति जिज्ञासां लिक्नैरुपलक्ष्य 'यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा । तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्रा इव सारथेः ॥ यस्तु विज्ञा-नवान्भवति युक्तेन मनसा सदा । तस्येन्द्रियाणि वस्यानि स-दश्चा इव सारथेः' इति श्रुतिद्वयोक्तदिशेव तां क्रमेण परिहरति ---यस्येति द्वाभ्याम् । इत्येतस्मादेवासदात्मभावनापराधादति-रुषा अक्षाणि रिपवः शत्रवो भूला तमज्ञमभिभवन्ति पराभाव-यन्ति ॥ ३ ॥ संतुष्ट्या सत्यात्मदर्शनोपकारजनितसंतोषेणेव अक्षाणि सुहदी मित्राणि भूला न प्रन्ति किंतु ज्ञानाभिवृद्धानु-कुलाचरणेन पाठयन्तीखर्थः ॥ ४ ॥ स्फुरतो व्यवहरतो यस्य पुंसी भीग्यपदार्थे सर्दव दोपदर्शनाभिन्दनाहते कुत्सनं विना स्तुतिः प्रशस्तताबुद्धिनं भवत्येव स पुमान्देहसंबन्धिदुःखार्थं देहं केन हेतुना आत्मतया आदत्ते। तत्र हेतुनास्तीत्यर्थः॥ ५॥ इदानीं देहार्रमक्यभ्रमवारणाय युक्तीः प्रस्ताति - नारभेत्या-दिना । जडचित्त्वास्यां निरुद्धयोर्देहात्मनोराधाराधेयभावादिसं-बन्धोऽपि दुर्रुभस्तादात्म्यं तु दूरे निरस्तमित्याशयः ॥६॥ एवं निर्विकारत्वसविकारत्वादिकृत्विरोधादपि न तत्प्रसक्तिरित्याह -सर्वेरिति ॥ ७ ॥ आत्माधीनं स्वप्रथोपकारं प्राप्यात्मन एव

तयोः कीद्यम्बधा भूता समानसुखदुःखता। या समी समधर्माणी न कदाचन ती कथम्॥ १० यावप्यसक्तावन्योन्यं मिथः संनमितौ कथम्। कथं स्थूलोऽणुरूपः स्यादणुः स्थूलः कथं भवेत् ११ एकोदये द्वितीयस्य न सत्ता दिनराश्रयोः। श्रानं नाश्चानतामेति च्छाया नायाति तापताम्॥ १२ सद्रह्म नासद्भवति विचित्रास्त्रपि दृष्टिषु । मनागपि न संश्लेषः सर्वगस्यापि देहिनः॥ १३ देहेन देहैगस्यापि कमलस्येव वारिणा। मनागपि न संश्रेषो ब्रह्मणो देहसत्तया॥ १४ तद्गतस्याप्यतद्वश्चेरम्बरस्येव वायुतः। जरामरणमापच सुखदुःखे भवाभवी॥ १५ मनागपि न सन्तीह तस्मात्त्वं निर्वृतो भव। स्थितो देहतयाप्युधः पातोत्पातमयो भ्रमः॥ १६ दृश्यते केवलं ब्रह्मण्यप्सु वीचिचयो यथा। आत्मसत्तोपजीवित्वादात्मानुभवतीह हि॥ १७

दुःखभोजकत्वात्कृतघ्नस्य ॥ ८ ॥ ननु चिन्मयत्वमपि देहस्यैव धर्मोऽसु तथाच न कोऽपि विरोध इत्याशक्क्याह—आदले इति । जडव्यायृतं चित्खरूपमपरिचीय न देहस्य चिन्मयत्वं हातुं शक्यं तत्परिचये च जडतैव अपरस्य देहस्य स्थितेति तत्ख-भावविरुद्धं चिन्मयत्वं कथमादत्ते इखर्थः ॥ ९ ॥ नन्वात्मनो मानसदु:सभोगेन देहे कार्र्य जायमानं दर्यते देहे च ताड-नादिना आत्मनो दुःखभोग इति तयोः समानसुखदुःख-तादर्शनात्तादारम्यं कि न स्यात्तत्राह-तयोरिति । भारमदेही बहुचयःपिण्डाविव समी अविविक्ती परस्परधर्म-विनिमयात्सभधर्माणी भासेते, विविक्ती तु तौ न कदाचन तथा भासेते तयोः कीद्दग्विधा कथं च समानमुखदुःखताभूता परमार्थसत्या वक्तुं शक्येत्यर्थः ॥ १० ॥ किंच असक्रेन परमसू-क्ष्मेण आत्मना स्थूलस्य देहस्य संगम एव दुर्लभो दूरे ऐक्य-मिल्याह-यावपीति ॥ ११ ॥ परस्परोपघातिस्वभावलादपि नैक्यप्रसक्तिरित्याह—एकेति ॥ १२ ॥ सद्गृहाः असदेहादिरूपं न भवति । सत्रथ देहिनो देहाधिष्ठानप्रतीचः खाष्यस्तेन देहा-दिना मनागपि न संश्लेषः ॥ १३ ॥ उक्तमेव दृष्टान्तोपदर्शन नाय पुनराह-देहेनेति । कुतो न संश्वेषस्तत्राह-देहस-त्तयेति । देहकल्पनाधिष्ठानसन्मात्रखरूपतयेखर्थः । तथाचोक्तं भगवत्पादैः 'यत्र हि यदध्यासस्तत्कृतेन गुणेन दोषेण वा अणु-मात्रेणापि स न संबध्यते' इति ॥ १४ ॥ अतहृतेः अलेपक-लात्तद्भिलक्षणस्वभावस्याम्बरस्य वायुतो यथा शोषकम्परजोले-पादयो दोषा न रान्ति तद्वेदेहादित आत्मनो जरादयो मनागपि न सन्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥ देहतया देहात्मदृष्ट्या स्थितोऽपि मरणजन्मादिश्रमो ब्रह्मात्मदृष्ट्या ब्रह्मणि अप्सु वीचिचय

देहैयम्बं पयःसत्तामात्रादृर्मिमिव स्थितम्। आधारस्पन्दनेनाङ्ग यथा क्षोभो न वा भवः॥ १८ सूर्यादेः प्रतिबिम्बस्य तथा देहेन देहिनः। सम्यग्रष्टे यथाभृते वस्तुन्येवाभिजायते॥ १९ स्थितिर्देहमयो शानविभ्रमो लयमेति च। देहदेहबतोर्ज्ञानाचथाभूतार्थयोः स्थितिः॥ २० सत्तासत्तात्मिकोदेति दीपाद्दीपपदार्थयोः। असम्यग्दर्शिनो देहस्यावर्तपरिवर्तनैः॥ २१ अन्तःश्रूत्याः स्फुरन्तीह ते मोहार्ज्जनपादपाः। अपर्यालोचितात्मार्था अपरामृष्ट्संविदः॥ २२ स्पन्दन्ते चेतितोन्मुकास्तृणवन्मृढबुद्धयः । अनास्वादितचित्रत्वाजाडाः सर्वे खवायुमिः॥२३ यत्र तत्रोदिताकान्ता रटन्ति प्रस्फुरन्ति च। तृणकाष्ट्रादिकं सर्वमाहरन्ति त्यजन्ति च॥ २४ सशब्दस्पर्शसपाढ्यास्तरङ्गतरलाङ्गकाः। जडाः सन्तः स्फुरद्रूपा भृशं स्फाररसासवाः ॥२५ सविहारागमापाया महीघा इव दुर्धियः। सर्वेषामेव चैतेषां स्थितैवैपा चिदव्यया ॥ २६ किंत्वबोधवशादस्याः परां कृपणतां गता। श्वाससंततयो हाज्ञाहोहकारहतेर्थथा॥ २७ स्पन्दमात्रार्थमेवाश् दृश्यन्ते नार्थकारिणः।

ब्रह्ममात्रो दरयत इत्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥ यथा पयः स्वरासयैव स्थितमूर्मिलमनुभवतीव तद्वत् । यथा प्रतिबिम्बस्य आधार-स्पन्दनेन हेतुना क्षोमे सति सूर्यादेर्मनागपि क्षोमो नास्ति तथा देहेन चिदाभासक्षोमेऽपि देहिनो देहसाक्षिण इत्यर्थः ॥ १८॥ सम्यग्हष्टे तु बस्तुन्येव स्थितिरमिजायते । देहमयोऽज्ञानवि-भ्रमश्च लयमेति ॥ १९ ॥ यथाभृतार्थयोर्विमर्शे निष्कृष्टपरमार्थ-स्वभावयोर्देहतत्साक्षिणोर्ज्ञानाहेहस्यासत्तात्मिका तत्साक्षिणश्च स-त्तात्मिका स्थितिरुदेति प्रकटीभवति ॥ २० ॥ रीपेनाद्यंत प्रस्यत इति दीपात् तमः प्रदीपश्च तादशयोः । परस्परोध्यितिस्वभाव-पदार्थभूतयोरिलार्थः । इदानीमज्ञस्य जगदर्शनप्रकारं निन्दितुं प्रपश्चयति-असम्यग्दशिन इत्यादिना ॥ २१ ॥ २२ ॥ चे-तिता चेतनता तयोन्युक्ताः । भावे धत्रन्ताचितेर्मलर्थे इनि-स्ततस्तव् । नहाचेतनदेहात्मभूताश्चेतना इति वक्तुं योग्या इति भावः । यदि ते अचेतनास्तर्हि कथं वदन्ति तृणकाष्टाहर रणादिना व्यवहरन्ति च तत्राह--अनाखादितेत्यादिना । ते सर्वे जडा अपि सैर्मुखनासिकादिन्छिर्दस्तत्संचारिभिर्वायुभिश्च यत्रयत्र प्रदेशे कीचकबदुदितेन नोदनेन आकान्तास्तत्र स्टन्ति प्रस्फरन्ति संबरन्ति चेति परेणान्वयः ॥ २३ ॥ २४ ॥ शब्द-स्पर्शसहितरूपादिविषयलाभेनेव आव्याः कृतार्थमन्याः । स्मारो रसो भोगाभिनिवेश एव आसवमिवोन्मादको येषाम् ॥ २५॥

तर्जनं गर्जनं मृढा इनुर्दण्डगुणादिष ॥ २८ श्रयते मरणायेव चिद्वोधपरिवर्जिनम्। फलभोगोऽपि यो मुढात्तदरण्यतरोरिव॥ २९ तस्मिन्विश्रमणं यत्तिच्छलाफलहके यथा। तेन यत्संगमः स स्यात्स्थाणुना भुवि जङ्गले ॥ ३० तद्धं यत्कृतं किंचित्तद्योम लकुटैर्हतम्। तिसान्यद्धमे दसं तत्यकं किं न कर्दमे॥ ३१ तेन साधै कथा यत्तत्कीलेयाह्वानमम्बरे। अज्ञानमापदां निष्ठा का हि नापदजानतः॥ ३२ इयं संसारसरणिर्वहत्यश्रप्रमादतः। अश्रस्योत्राणि दुःखानि सुखान्यपि हढानि च॥ ३३ पुनः पुनर्निवर्तन्ते युगं प्रत्यचला इव । शरीरधनदारादावास्थां समनुबध्नतः॥ ३४ इदं दुर्दुःसमझस्य न कदाचन शाम्यति। अनात्मनि राठे देहे आत्मभावमुपेयुषि ॥ 34 असद्बोधमयी माया कथं नामापि नइयति । दुर्भावस्त्रञ्चित्रधियो वस्तुन्यन्थस्य दुर्मतेः॥ ३६ अवस्तुनि सनेत्रस्य लुठतश्च परेपदे। विषमुत्पद्यते चन्द्रादामोदः कुसुमादिव ॥ ₹'9 कण्टकश्चेति पयसो दुर्वाङ्कर इव स्थलात्। देहशाल्मलिभोगिन्यो मनोमातङ्गश्रह्मलाः॥ 3८

यथा नदादिमहोघा अचेतना अपि विहारागमापायादिचेष्टासहि-तास्तद्वद्वर्धियोऽपि किमेषामात्मचित्रास्त्येव न किंतु विद्यमानाप्य-बोधाद्यर्थाऽसंपन्नेत्याह-सर्वेपामिति ॥ २६ ॥ अज्ञान्मूर्खात् । निःसरन्त्य इति शेषः ॥ २७ ॥ जटराग्निस्पन्दमात्रार्थम् । एवं मुढान्निष्पद्यमानं परतर्जनं गर्जनं च न चेतनतालिकं मरणाद्यन-र्थमात्रहेतुलाद्धनुर्शुणविस्फारवदिलाह—तर्जनमिति ॥ २८॥ फलभोगः फललाभः ॥ २९ ॥ शिलाफलहकं तप्तशिलाफलके यथा तथा । स्थाणुना छिन्नतहमूलेन ॥ ३० ॥ कृतसुपकृतं खेन तत् । छकुटैर्दण्डैः । हतं ताडितम् ॥ ३१॥ कौलेयः श्रा । 'कुलकुक्षी'त्यादिना विहितस्य ढकवः कलोपरछान्दसः। इदस-इनिन्दनमज्ञानस्य हेयताप्रदर्शनार्थ दयया न लज्ञेषु देवादिल्या-शयेनाह—अज्ञानमिति ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ युगं युगोपलक्षितं लाङ्गलं रथं वा प्रति अचला इव हडानि दुरुङ्गञ्जनानि च ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ दुष्टैर्भावैः सुष्ट अश्विता व्याप्ता श्रीर्थस्य ॥ ३६ ॥ अवस्तुन्यसदुस्तुनि सनेत्रस्य पश्यत इति यावत् ॥ ३७॥ पयसः क्षीरास्कण्टकथ एति आगच्छति । उत्पद्यत इति यावत् । देहरुक्षणस्य शाल्मलेः कोटरे निवसन्लो भोगिन्यः सर्पिणीभूता आशाः प्रसूयन्ते रागलोभदैन्यादिसर्पन् । अथवा मनोमात-**ङ्गस्य श्ट**ङ्कलाभूता आशा दुःखानि प्रसूयन्ते **इति आन्तर**बाह्य-विषयमेदेनाशामेदं प्रकल्प्य रूपकद्वयं योज्यम् ॥ ३८ ॥

१ रदमर्थ पूर्वान्विति २ असम्यग्हानिन इति पाठः.

अन्नस्याशाः प्रसूयन्ते सुकृष्टादिव शालयः । नरकश्रीरिहाज्ञानं दुष्कृतव्यालवेष्टितम्॥ ३९ परिपालयति प्रीता मयूरी वारिदं यथा। नेत्रलोलालिनीलोला स्फुरिताधरपहुचा॥ So मुर्खार्थमेव विकसत्यङ्गना विषवहरी। अन्नस्य द्वदि सद्भूमावेव पेलवपल्लवा ॥ ४१ विद्यते पतगच्छायो रागविद्यमदुर्द्धमः। तरुखदलसद्भः शस्त्रजालग्दोस्पुकः॥ ઇર ज्बलति द्वेषदावाद्रिष्ट्रेन्मरी कायतापदः। अज्ञमात्सर्यमनसि परापवदनच्छदा॥ ध३ ईर्प्याकमलिनी चिन्तापट्रपदा विलसत्यलम्। प्रतिजन्मप्रमृष्टोत्रयुःखक्क्षोलविभ्रमम्॥ 88 जडमेव समभ्येति पुनर्मरणवाडवः। जन्म वाल्यं वजत्येतयीवनं युवता जराम्॥ 84 जरामरणमभ्येति मृँढस्पैव पुनःपुनः। जगजीणीरघट्टेऽसिम्नज्ज्वा संस्तिरूपया॥ ઝદ मजनोन्मजनैरहो यन्त्रे कलशतां गतः। यदेव गोष्पदापूरं इधियः पेळवं जगत्॥ 80 तदेवापारपर्यन्तमगाधममहात्मनः। धियो दश इवाशस्य दीर्घ जठरकोटरात्॥ ४८ न प्रयान्त्यपरं पारं विहङ्ग्यः पञ्जरादिच।

भविमात्रपरावृत्तवासनीभारनाभयः॥ 86 स्पष्टीकर्तुं न शक्यन्ते जन्मचक्रस्य नेमयः। अक्षेनेन्द्रियगृधार्थं रागान्मृगयुणा तनुः॥ 40 संसारारण्य आस्तीर्णा दूरादामिषपिण्डवत्। भृतरीलमयी दृष्टिमृन्मांसलवमात्रिका॥ 48 मोहात्संलक्ष्यते चित्रपदार्थानन्तरञ्जनः। जयत्यनरपसंकरपकरपनाकरपपादपः॥ 44 अज्ञानात्त्रसृता यसाज्जगत्पर्णपरम्पराः। याँसस्तिष्ठन्ति राजन्ते विद्यन्ति विलसन्ति च॥ ५३ विचित्ररचनोपेता भूरिभोगिविहङ्गमाः। यत्र जन्मानि पर्णानि कर्मजालं च कोरकम्॥ પ્છ फलानि पुण्यपापानि मञ्जर्यो विभवश्रियः। अक्षानेन्द्र्ये नैता योपिदोषधयः स्फुटम्॥ ५५ संसारवनखण्डेऽस्मिन्परां शोभामुपागताः। जन्मजालकलापूर्णस्तमःकालकृतोदयः॥ બદ शुन्योदितात्मा दोषेशो जयत्यश्वानचन्द्रमाः। अज्ञानेन्दोः प्रसादेन घासनामृतशालिना॥ 40 तर्पिताशाचकोरेण चित्तरह्मरसैषिणा। राजहंसविलासिन्यः प्रालेयशिशिराङ्गिकाः॥ भान्ति कान्ताकुमुद्रत्यो लोललोचनषट्पदाः। धिमाहतिमिरोह्यासा स्रसत्याण्डपयोधराः॥

सुक्तप्रारक्षेत्रात् । न विद्यते ज्ञानं यस्य सः अज्ञानस्तं नरकश्रीः परिपालयति प्रतीक्षते ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हृदि मनोलक्षणायां सद्भूमी ॥ ४१ ॥ तहच्छदः पक्षवस्तत्स्थानापन्नयोः स्फुरदोष्टयो-र्छसन्तो निःश्वाराधूमा यस्य । शक्कजालमिव कटकटायमाना रदा दन्ता एवोत्सुका यस्य । द्वेष एव दावामिर्यस्य । हन्मन-स्तह्रक्षणे मरी निर्जलारण्ये ज्वलति भस्मीभवतीव ॥ ४२ ॥ मारसर्यजलपूर्णे मनसि मानसे । मारसर्यमानसेऽऋरयेति पाठः साधुः ॥ ४३ ॥ प्रसृष्टा नानाप्रतीकारोपायवेलोपसर्पणेन सा-जिता उप्रदुः खकहोलविश्रमा यत्र तं जडमज्ञं जलमयं समुद्रं च मरणलक्षणो वाडवो वडवानलः ॥ ४४ ॥ जन्मादीनामु-त्तरोत्तरमनर्थप्रापकलभेवेखाइ-जन्मेति ॥ ४५ ॥ आरघहे यन्त्रे घटीयन्त्रे ॥ ४६ ॥ गोप्पदमापूरयतीति गोष्पदापूरम् । अल्पजलप्रायमित्यर्थः ॥ ४७ ॥ अमहात्मनः परिच्छिन्नदेहा-त्मदर्शिनः अपारपर्यन्तमगाधं च भवति । अतः अदशः अन्ध-स्थेव अज्ञस्य घियो जटरकोटरादुदरभरणासिक्तबन्धनवशादपरं बीर्षं संसाराव्धिपारं न प्रयान्तीत्यन्वयः ॥ ४८ ॥ कुतो न प्रथान्ति तत्राह--भावेत्यादिना । 'पराश्वि खानि व्यतृणत्स्वयं-भूरतस्मारपराङ् पश्यति नान्तरात्मन्' इति श्रुतेर्बाह्येषु विषय-मात्रेषु पराकृत्तवासनाभाराक्रान्तहृदयनाभयः सत्यो विषयपद्गेषु ममा जन्मचक्रस्य नेमयो नेमिस्थानीयेन्द्रियगणा उद्घल्य स्पष्टी-कर्तुं शोधयितुं न शक्यन्ते ॥ ४९ ॥ गृध्रपदेन मृगयोपयोगिनः

इयेना प्राह्याः । तनुः खदेहपरम्परा । दूराह्रदेशकालयोरपि सर्वदा सर्वत्रेति यावत् । रागान्मृगयाव्यसनात् ॥ ५० ॥ आमि-षपिण्डवदिति वतिप्रयोगो भ्रान्तिहशा भेदाभावे साहरयाभा-वादित्याशयेनाह—भूतेति । भूतमयी मनुष्यपश्वादिप्राणिप्र-चुरा हिमवान्विन्ध्यो मलय इत्यादिशैलप्रचुरा च दष्टिर्वस्तुतो मांसरुवमात्रिका मात्रवमात्रिका चेति विभज्य व्युत्कमेण सं-बन्धः । मोहासत्त्वापर्यालोचनादेव गौरभः पुरुषो माता श्राता हिमवान्मलय इत्यादिकल्पनया संलक्ष्यत इत्यर्थः ॥ ५१ ॥ अतएव चित्रैः पदैरर्थेश्व अनन्तानि रजनानि यस्य तथाविधी-ऽनत्यसंकत्पकलनालक्षणः कत्पपादपो जयति । अत्यन्तास-द्भिरपि पदार्थैः सर्वकामपूरणसमर्थत्वात्सर्वीत्कर्षेण इसर्थः ॥ ५२ ॥ इदानीं ताहशकल्पवृक्षकोटिव्याप्तं संसार-वनखण्डं वर्णयति-अज्ञानादित्यादिना ॥ ५३ ॥ पर्णानि पहनाः । कोरकं कलिका । छान्दसी क्रीबता ॥ ५४॥ योषि-परां शोभामुपागताः ॥ ५५ ॥ अज्ञानस्येन्दुलमुक्तमुपपाद-यति—जन्मेति । तमःकाले विवेकसूर्योस्तमयकाले । शून्ये निष्प्रपत्रे ब्रह्मणि नभसि च उदितारमा प्रकाशमानः । दोषाया रात्रेदीषाणां चेशः ॥ ५६ ॥ ५० ॥ तर्पिताः घोषिता आ-शालक्षणाथकोरा येन । चित्तलक्षणं यद्रमं द्यमणिसारीयो रसो विषयास्वादनामृतं तदेषिणा । सूर्यमण्डलान्तर्गतेनैवामृतेन

रामारजन्यो राजन्ते तन्मौक्येण विजृम्भितम् ॥६० आपातमाश्रमभुरत्वमनर्थसत्त्व-माद्यन्तवत्त्वमखिलस्थितिभङ्गरत्वम् ।

अज्ञानशाखिन इति प्रस्तानि राम नानाकृतीनि विपुलानि फलानि तानि ॥ ६१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे मोहमाहात्म्यं नाम पष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

श्रीविष्ठ उवाच । यन्मुकाविलता रह्मभूषिता भान्ति योषितः । मदेन्वाबुदिते शुन्धकामश्रीराणेवोर्भयः ॥ सौवर्णाम्भोजकोशस्थलोलालिपदलश्रियम् । धारयन्ति दशः स्त्रीणां कपोलतलदोलिताः ॥ उद्यानवनखण्डेषु भूमा कृतमदा मधी । हृद्याः सुमनसो भान्ति दासा इव मनोभुवः ॥ कृष्यादगृश्रगोमायुकालियकवलाङ्गिकाः ॥ सौवर्णकलशाम्भोजकलिकामातुलुङ्गयत् । हृद्यते स्नीस्तनश्रेणी रक्तपृतिसुगन्धिका ॥

शुक्रपक्षे चन्द्रपूर्नेरिति भावः ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ रामाळक्षणा रजन्यो रात्रयो यद्राजन्ते तद्रपूणां मोह्यंणैव विज्ञिम्सतम् । तन्छोभाकारेण परिणतं न तत्र शोभनं किंनिद्रस्तुतोऽस्तीति भावः ॥ ६० ॥ अज्ञानमेव सर्वानर्थहेतुरिति दर्शयशुपसंहरिते—आपातेति । हे राम, यद्विपयेषु प्रसिद्धमापातमात्रमधुर-स्वमर्थपर्यवसानसमायन्तवस्वं देशतः परिन्छित्रसम्बस्तिस्वतिषु भक्षरत्वं नश्चरत्वं च तत्सर्यमङ्गानळक्षणस्य शास्तिनो दक्षस्य इति एवंविधानि नानाकृतीनि फलानि बीजाङ्करपरम्परया जगदाकारेण प्रस्तानि । तस्मादङ्गानमेव तन्मूळमुच्छेयमिति भावः ॥ ६१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पष्टः सर्गः ॥ ६॥

कामादिमिरनर्थादिष्वर्थता रम्यतावहाः । विस्तरेणात्र वर्ण्यन्ते सज्जानस्य विभूतयः ॥ १ ॥

तत्र सर्वविवेकापहारिण्यः सद्योनर्थगर्तपातिन्यः प्रस्तुताः स्विय एवाझानस्य कामस्य च महाविभूतय इत्याशयेन ता एव प्रथमं वर्णयित—यदित्यादिना । अस्य यच्छन्दस्य सर्वेषु क्लोकेषु प्रति-वाक्यं संबध्यमानस्य सप्तषष्टितमंसगीपान्त्यक्लोकार्षे तदज्ञानवि-जूम्भितमित्यत्र संबन्धः । मदलक्षणे इन्दी उदिते सित योषितः क्षुष्टस्य कामसीरार्णवस्योमय इव यद्भान्ति तदज्ञानस्य विजुन्मितं विभृतिरिति प्रतिवाक्यं योज्यम् ॥ १ ॥ यद्धारयन्ति त-द्यानाविज्ञिम्भतम् ॥ २ ॥ मधी वसन्ते वनसण्डेषु तरुषु भूमी च मनोभुवो दासा आज्ञाप्या इव कृतमदाः कामिनां जनितोन्मादाः ॥ ३ ॥ कव्यादाः कव्यमात्राहारा व्याप्रादयः ।

रसायनेन्द्रनिस्यन्दमधुविम्बासचद्रवैः।
ओष्ठाभिधो मांसलवो लालाक उपमीयते॥ ६
अल्पाल्पाष्टीवदाकारा भुजाक्र्रास्थिशक्र्वः।
महाबाहुलताशब्दैर्घण्यंन्ते कविमिः ग्रुभैः॥ ७
कदलीस्तम्भसम्भारसुन्दरीमिस्तथा भृता।
कुवशोभोचितानन्दा तोरणालिर्घराजते॥ ८
आपातमन्दमधुरा मध्ये द्वन्द्वानुबन्धिनी।
शीधावसानविरला लक्ष्मीरप्यमिवाष्ट्यते॥ ९
समुपति मतिर्दुःखं सुखं च शतशाखताम्।
दुःखशाखास्तु जायन्ते नानाकर्मफलाः श्रियः॥१०
बद्धजालघनाकाराः कारार्थमिव रक्षवः।
दच्छदःसदशा वाचः प्रतानगहने स्थिताः॥ ११

गृप्रगोमाय्वादयस्तु लामे अन्नायप्यथन्तीति पुनत्रेहणम् ॥ ४ ॥ रक्तपूर्तिगन्ध एव सुगन्धो यस्यास्तथाविधा स्त्रीणां स्तनश्रेणिः सीवर्णकलशादिवद्यदृश्यते तदज्ञानविज्ञिम्भतम् ॥ ५ ॥ इन्दु-निस्पन्दोऽमृतम् ॥ ६ ॥ प्रत्येकं विभज्य दर्शने अल्पाल्पा अष्ठीवन्तः पर्वाणि तदाकाराश्र भुजाशब्दवाच्याः ऋरा अस्त्रि-शङ्कवः ॥ ७ ॥ तथा कदलीस्तम्भावेव संभार उरुसामग्री यासां कुचकलशशोभाया उचितो तथाविधामिः सुन्दरीमिर्भृता, द्रष्टृनेत्रानन्दो यस्याः सकाशास्थाविधा तोरणालिर्मन्मथागार-तोरणस्रग्भूता काश्री यद्विराजते तदप्यज्ञानविज्ञस्भितमिति प्राग्वत ॥ ८ ॥ आपाते आरम्भे मन्दानां मधुरा, आपाततो-Sल्पमधुरा वा । मध्ये व्ययकाले रागद्वेषादिद्वन्द्वानुपातिनी । शीघ्रमवसानं क्षयो यस्याः । कतिपयजनेषु दृश्यलाद्विरला, ईट्सी रुक्ष्मीरपि यदभिवाञ्ख्यते तदिति प्राग्वत् ॥ ९ ॥ यन्म-तिदुःखं समुपैति, यच सुखं शतशाखतां समुपैति, यच नाना-कर्मफलाः श्रियो दुःखान्येव शाखा यासां तथाविधा जायन्ते तदपीति प्राग्वत् ॥ १० ॥ श्रीणामज्ञानविज्ञम्भितत्वे तत्फल-ककाम्यकर्मसु प्रवर्तकानां कर्मकाण्डवचराां सुतरां तथालमित्या-शयेनाह-वदेति । प्रतानानि काम्यकर्मविस्तारास्त्रक्षणे गहने अरण्ये स्थिता लताइव बद्धेर्नानाफलकामजालैर्घनाकारा निबि-डाकारा अतएव देवादिऋणिनां कर्मिणां कारागृहरक्षणार्था रज्बब इव स्थिताः । दतां दन्तानां छदावोष्ठी तत्सदशाः। रागचापछ-प्रधानी इति यावत् । ईदशाः कर्मकाण्डवाचोप्यविद्याविज्ञानिनत-मित्यर्थः । छदशब्दस्य समासे विभक्तेरत्नुग्विसर्गेश्व च्छान्दसः । इदं च 'यामिमां पुष्पितां वाचम्' इत्यादिना भगवता गीतास्र

१ सप्तपदितमं यरसर्गोपान्त्यश्चेकार्थं तस्मिन्

संतता मोहमिहिका कार्यासारविसारिणी। यमुना प्रावृषीयैति तिमिरइयामला चिरम् ॥ १२ कट्टकृतान्तःकरणो नानासुखविशारदः। वर्धते हि गतस्रेहं जन्मप्रतिविपारसः॥ १३ व्याधूतजर्जराकीर्णजनतापर्णराजयः। स्वकर्मपद्मना वान्ति नानावकररेणवः ॥ १४ कालः कवलितानन्तजगत्पक्रफलोऽप्ययम् । घस्मराचारजठरः कल्पैरपि न तृप्यति ॥ १५ मोहमारुतमापीय त्वचा विषमचारिणः। स्फुरन्तीहाहयश्चित्राः शीतलाचलदीप्तयः॥ १६ चिन्तापिशाचोपहता विवेकेन्दृदयं विना। तमसेव निरालोका याति यौवनयामिनी ॥ १७ जिह्ना जर्जरतामेति प्राकृतानुनयज्वरैः। पद्मकोटरकोणस्थमपि सुत्रं हिमैरिव ॥ १८ दुःखशोकमहाष्टीलः कष्टकण्टकसंकटः। सहस्रशाखतां याति दारिष्यदृढशाल्मिछः॥ १९ अन्तःशुन्योष्नतिध्वस्तचित्तचैत्यकृतालयः ।

स्फुटीकृतम् ॥ ११ ॥ मोहवशात्स्वतएव काम्येषु प्रवृत्तानां प्रनः शास्त्रणापि प्रवर्तनमन्धोन्मत्तस्य स्ततः कृपे पततो वलात्पा-तनमिवानुचितमित्याशयेन मोहात्स्वतः प्रयुत्तिं दर्शयति संत-तेति । कार्याण प्रवृत्तयस्तहक्षणेरासारविंसारणी विस्तीर्णा मोह-लक्षणा मिहिका खतः स्यामला प्रावृषि रजसा च कलुषा तत्रा-पि निशि तिमिरेणात्यन्तस्यामला यमुना यथा एति प्रवहति तद्वत्खत एवेति। पुरुषमन्धीकृत्य विषयेषु प्रवर्तयतीत्यर्थः॥१२॥ भोगे प्रवृत्तस्य च विषयेषु पुत्रपीत्रादिषु च रागोऽभिवर्धत इलाह-कट्टिति । आपाततो नानासुखिवशारदः परिणामे दुःखपर्यवसानाद्वेषमात्सर्यनिन्तादिजननाच गतक्षेष्टं यथा स्यात्तथा कट्टकृतान्तः करणो जन्मलक्षणायाः प्रतिविषाया विषवह्रया रस इव पछवोपस्यप्रदो रागो वर्धते ॥ १३ ॥ ततम कमात्पुत्रादीनां मरणे तद्वियोगदुःखपरम्परा भवतीत्या-शयेनाह-व्याधृतेति । व्याधृताः पातिता व्याध्यादिजर्जरा आकीर्णजनताः पुत्रादिपरिजनसमूहा एव पर्णराजयो येस्तथा-विधा नानाविधा अवकररेणव इव विवेकद्धिहारिणो विक्षेपमेदा येषु तथाविधाः खदुष्कर्मपरिपाकलक्षणाः पवना वान्ति ॥ १४॥ ततः खखापि मृत्युरिति सदैवेवं जन्मपरम्परया मृत्युमुखे प्र-वेश इस्याह—कालइति ॥ १५ ॥ एवं परिवर्तमानानक्जीवान-हित्वेनोत्प्रेक्षते-मोहेति । शीतलस्य त्रिविधतापश्-यस्याचल-स्य च ब्रह्मणो दीप्तयः प्रकाशायमाना जीवा इह संसारे चित्रा अहयः सर्पा एव । तत्कृतः । यत एते मोहलक्षणं मारुतमापी-यान्तः पूर्याखा स्थिताः पुनर्वियुज्यमानया नानादेहलक्षणया लचा चोपलक्षिता विषमचारिणः कुटिलगतयः स्फुरन्ति । संभ-क्रन्तीखर्थः ॥ १६ ॥ तैः प्रतिजन्म प्राप्यमाणं योवनमपि मी-

मायाबहुलयामिन्यां लोभोलुको विवल्गति ॥ २० पूर्व गृहीत्वा कर्णाभ्यां स्फूरन्ती परिनिश्चयम्। जराजर्जरमार्जारी यौचनाखं निरुन्तति॥ २१ निःसारा क्रमशः क्रान्तधराधरसमुष्रतिः। डिण्डीरपिण्डिकेवेयं सृष्टिरायाति पृष्टताम्॥ २२ आभासपुष्पधवला जगत्पह्नवशालिनी। सत्तालता विकसिता धर्मार्थफलधारिणी॥ २३ सुराचलमहास्थूणं चन्द्रसूर्यगवाक्षकम्। गगनाच्छाद्नं चारु भ्रियते त्रिजगद्वहम्॥ રક संसारसरसि स्फारे चरन्ति प्राणषट्पदाः। शरीरपुष्करेष्वन्तश्चिद्रपरसपायिनः॥ રપ नभोमार्गमहानीलकुट्टिमकान्तशालिनी। भुवनीदररम्यान्तः स्फुरत्यादित्यदीपिका ॥ २६ आशातन्त्रनिबद्धाङ्गी जागती जीर्णपक्षिणी। स्ववासनाशलाकेऽन्तर्निबद्धेन्द्रियपञ्जरे ॥ २७ अनारतपतज्जालभृतपर्णपरम्परा। स्पन्दते मरुता मृष्टा संसृतिवततिश्चिरम्॥ २८

क्षसाधनेषु विवेकवेराग्यश्रवणादिष्वनुपयोजनादृथैवेत्याशयेनाह —चिन्तेति । याति तेषामिति शेषः ॥ १७ ॥ एवं तदीयजि-ह्रादीनामपि वैयर्थ्यानर्थते दर्शयति--जिह्नेत्यादिना । प्राकृ-तानां पामराणां स्त्रीपुत्रादीनामनुनयः कोपापनयनं तत्प्रयुक्त-र्ज्वरैः संतापः । जिह्वोपमानलोपपत्तये सूत्रपदेन तद्दृढावष्ट्रच्य-मन्तर्दछं छक्ष्यते । उक्तो न्यायश्रक्षराद्यक्षेष्वपि होयः ॥ १८ ॥ अष्टीला प्रन्थयः ॥ १९ ॥ सत्यवस्त्वनवलम्बनादन्तःशून्यः सकोटरश्व खोन्नतिभारेण भुप्रश्वित्तलक्षणश्रेखवृक्षन्तत्र कृतालयः मायालक्षणायां वहुलयामिन्यां कृष्णपक्षनिशायाम् ॥ २० ॥ पूर्वमारम्भकाले कर्णाभ्या कर्णसनिहितकपोलयोर्गृहीला ॥ २१ ॥ **अज्ञानादेव पुनः सृष्टिप्रसरं दर्शयति—निःसारेत्यादिना । ऋमदाः** कान्ता रचयितुमुपकान्ता धराधराणां धराधर इव च समुन्नति-र्यया । डिण्डीरस्य फेनस्य पिण्डिका तादशी प्रसिद्धा सृष्टिर्जगह-ष्टिः ॥ २२ ॥ आभासश्चिदाभासप्रकाशस्त्रह्मषणपुष्पैर्घवला उ-ज्वला सत्ता व्यावहारिकसत्यतालक्षणा लता ॥ २३ ॥ मुराचलो-परुक्षितपर्वता एव महान्तः स्थूणाः स्तम्भा यस्य । गगनमेवाः च्छादनं च्छदिर्थस्य ॥२४॥ स्फारे विस्तीर्णे संसारसरसि जातेषु शरीरपुष्करेषु अन्तःस्थचिद्रूपरसपानशीलाः प्राणषद्पदाश्वरन्ति 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' 'आनन्देन जातानि जीवन्ति' इत्यादिश्चतेरिति भावः ॥ २५ ॥ नभोमार्गेलक्ष-णे महति नीलमणिनिर्भिते कुट्टिमे कुत्रिमभूमागे एकान्तं शा-लिनी शोभमाना भुवनोदरे रमणीयतरा आदिलादीपिका स्फुर-ति रीप्यते यसद्प्यविद्याविज्मिभतमिति सर्वत्र ॥ २६ ॥ जागती जगदन्तर्गतजीवराशिलक्षणा जीर्णपक्षिणी खवासनाशकाके इ-न्द्रियमञ्जरे देहे यश्रिबद्धा तदपि ॥ २० ॥ महता प्राणेन

सृष्टेः कतिपयं कालं प्रष्टृष्टाः कुलशालिनः। अधःकृतोप्रनरकपङ्काः शङ्कोज्झिताः क्षणम् ॥ २९ भूकेन्द्रखण्डकणिकानीलनीरदशैवले। स्वर्गमार्गसरस्यन्तः स्फूरन्ति सुरसा रसाः॥ ३० नानाफलाछिमलिना वासनाजालमालिता। रुपन्दामोदमयी रुफीता क्रियाविकसिताब्जिनी ३१ वराकी सृष्टिशफरी स्फूरन्ती भवपत्वले। **फ**तान्तवृद्धगृधेण शठेन विनिगृहाते॥ ३२ तरङ्गफेनमालेव सैवान्येव च भङ्गरा। श्वःश्वो परेन्दुलेखेव समुदेति विचित्रता ॥ 33 भूरिभृतदारावाणि क्षणभङ्गानि कुर्वता। इदं कालकुलालेन चक्रं संपरिवर्त्यते॥ 38 असंख्यातानि कल्पानि संजातान्यचले पदे। जगजङ्गलजालानि दग्धानि युगवहिना ॥ 34 भाषाभावैरपर्यन्तैः सुखदुःखद्शाद्यतैः। वैपरीत्यं प्रयात्येवमजस्रं जागती स्थितिः॥ 38 क्षुब्धेर्युगपरावर्तेर्वासनाश्रृङ्खलोग्भिता । महाशनिनिपातेश्च न भग्ना बुद्धधीरता॥ श्र

आमृष्टा कम्पिता ॥ २८ ॥ अधः पाताले स्पष्टं प्रदर्शनाय धात्रा कृतोग्रनरवपद्धाः सन्तोऽपि तत्पतनशङ्कोज्ञिताः सन्तो यत्त्रहृष्टास्तदपीति त्राग्वत् । अथवा स्वात्मतादात्म्याध्यासेन अधःकृतास्तिरस्कृता उपा रक्तमांसमलमूत्रादिदेहनरकपद्भा थैस्तथाविधास्तच्छद्दोज्झिताः सन्तो वयं कुलगालिनो महा-शया इत्यादाभिमानैयंत्प्रहृष्टास्तदित्वर्थः ॥ २९ ॥ लक्षणेऽभ्रमार्गस्थसरसि सुरा देवास्तद्भूषाः सारसपक्षिणो य-त्स्फरन्ति तदपि ॥ ३० ॥ यच नानाकाम्यफललक्षणैरलिमिर्म-लिना कियालक्षणा अब्जिनी विकसिता तदपि ॥ ३१ ॥ शफरी प्रोष्ट्रवाह्या क्षुद्रमत्स्यजातिः ॥ ३२ ॥ श्वःश्वः अपरा प्रतिदिनं मित्रपरिमाणा इन्दुलेखेव ॥ ३३ ॥ क्षणभन्नानि अचिरनधरा-णि ॥ ३४ ॥ कल्पानि सर्वेव्यवहारसमर्थानि । अचले पदे ब्रह्म-णि । युगविह्नेना युगान्तामिना ॥ ३५ ॥ वेपरीत्यं विपरिणामम् ॥ ३६ ॥ एताहशानर्थपरम्परादर्शनेऽप्यज्ञानां कुतो न निवंदो-दयस्तत्राह-भुव्धेरिति । वासनाशृह्वलाभिः उम्भिता पृरिता अबुद्धानां मोर्ह्यदाक्यलक्षणा धीरता यतो न केश्विदिप भग्ने-त्यर्थः ॥ ३७ ॥ या वासना ज्ञानेनाज्ञानबाधेऽप्यधिकारप्रारब्धव-लादिन्द्रादिशरीरं मन्वन्तरकालपर्यन्तं धत्ते तस्याः केनान्येन **भक्तप्रसक्तिरित्याशयेनोदाहरति—शतश इति । स्वपराऋमेण** शतशो विद्वतानप्यरीन् पुनर्युद्धाभिकाङ्कया धारयन्ति पालय-न्तीति विद्वतारिप्रास्तथाविधेर्दनुपुत्रैरप्यमिष्ट्रतां भवे पुनर्जन्मा-दिविषये भगस्तयो वेगो यस्यास्तथाविधामपि ऐन्द्री तनुं वासना यद्वहति याबदिधकारं धारयति तदपीलर्थः ॥ ३८ ॥ भूतसर्ग एव पांसुपरम्परा यस्मां तथाविधा नियतिलक्षणा बाल्या काल- शतशो विद्युतारिधेर्द्युपुत्रेरिमष्टताम्। भवभन्नतयामैन्द्रीं तनुं बहुति वासना॥ ३८ विशत्यविरतं भूतसर्गपांसुपरम्परा। नित्यं नियतिवात्येयं कालव्यालगलान्तराम् ॥ ३९ पदार्थाम्भसि सर्वाणि फलफेनानि सर्वतः। पतन्त्यविरतापातमभाववडवामुखे ॥ Ro स्फुरन्त्याकस्मिकोद्धृता विचित्रद्वव्यशक्तयः। स्वभावमात्रसंपन्नाः स्पन्दश्चिय इवाम्भसः॥ ક્ષ भूतमोक्तिकसंपूर्णान्बृहतः सुबहुनपि। जगत्कलभकानत्ति कृतान्तोद्रिक्तकेसरी॥ ઇર कुलशैलफला मेघपश्रपुत्राः फलामृजः। जायन्ते च म्रियन्ते च स्थियन्ते च जगत्लगाः ४३ चिद्धिसौ स्पन्दशुभायां रङ्गैः पश्चभिरिन्द्रियैः। उन्मीलयति संसारचित्राणि विधिचित्रकृत्॥ अजस्रगत्वरीं सर्वेपरिवर्तविधायिनीम्। निमेपशतभागाङ्गीमसहुःसाधिताङ्कराम्॥ કહ सूक्ष्मां कालस्य कलनां स्वसमुत्थानकारिणीम् । ध्यानेनैवान्ववेध्यताः स्थिताः स्थायरजातयः॥४६

लक्षणस्य व्यालस्य गलान्तरं यद्विशति तदपि । सपीणां वायुभ-क्षकलप्रसिद्धेहरप्रेक्षा ॥ ३९ ॥ अभावो नाहास्तलक्षणे वडवाभि-मुखे यत्पतन्ति तद्यि ॥ ४० ॥ स्वभावः अधिष्ठानसत्ता ताव-न्मात्रेण संपन्ना रुज्यसम्बद्धा आकस्मिकेनातक्र्येण वासनावैचि-त्र्येणोद्धताश्वालिता यत्स्फुरन्ति प्रसर्न्ति तद्पि ॥ ४१ ॥ कल-भकान् मत्तगजान्यदत्ति तदपि ॥ ४२ ॥ कुलशेला हिमवदादय उपभोग्यत्वानमहत्त्वाच फलानि येषाम् । मेषा एव नभोगत्याः कारसाद्दयाभ्यां पक्षपुजा येषाम् । फलानि आमृजन्ति सर्वतः परिशोधयन्ति विचिन्बन्तीति फलामृजः । मृजेबीहुरुकात्कः । गच्छन्ति उत्तरायणदक्षिणायनादिमार्गेण सदा श्रमन्तीति जग-न्ति जीवास्तलक्षणाः खगाः पक्षिणो यज्जायन्ते यन्त्रियन्ते यत् वियन्ते यावन्मरणं जीवन्ति तद्प्यज्ञानविज्ञम्भितमित्यर्थः । अत्र कुलाचलानां मूलमध्याप्रभागानां नागमर्त्यदेवेषपभोग्यला-त्फलत्वोत्प्रेक्षा, मेघानां च दक्षिणायनमार्गपर्वसु धूमत्वेनाभ्रमेघ-लादिना चोर्ध्वाधोगतिनिर्वाहकलात्पक्षत्वोत्प्रेक्षा बोध्या ॥ ४३॥ दृष्टिसृष्टिपक्षमवलम्ब्याह्—चिदिति । स्पम्दैश्वाक्षुपादिश्वतिव्या-प्तिमिनिरस्तावरणसप्रलाच्छुश्रायाम् । रङ्गे रङ्गद्रव्यस्थानीयैः पश्चमिर्बाहिरिन्दियैर्विदधाति दृष्टिमात्रेण खजतीति विधिर्देश स एव नित्रकृत् ॥ ४४ ॥ तस्यां दष्टिस्ट्टाँ स्थावरजङ्गमयो-रनुभवे यो त्रिशेषस्तं प्रथमं स्थावरेषु दर्शयति-अजस्नेति द्वाभ्याम् । स्थावरजातयः स्वस्थात्मनः समुत्थानं जगदाकारेण विवर्तस्तत्कारिणीमजस्रगलरत्वादिविशेषणविशिष्ठां सूक्ष्मां का-लस्य कलनां ध्यानेनेवाम्तरेण बहिः स्फुटब्यवहाराक्षमेणानुम-वेन अन्ववेक्ष्य स्थिता इति द्वयोरर्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

२ तथानि 'तथ गती' इत्यस्य रूपम् । 'अन्नर्था' इति पाठः,

रागद्वेषसमुत्थेन भावाभावमयेन च। जरामरणरोगेण जीर्णा जङ्गमजातयः॥ 80 सुदुष्कृतोत्तमध्यानचारिण्यो धरणीतले। नियस्या नियतं कालं पीड्यन्ते कीटपङ्कयः॥ 85 क्षणेनाष्ट्रय पत्रेदं निगिरत्यखिलं सुखी। सुदुर्लक्ष्यबिलः कालव्याली विपुलभोगवान्॥ ४९ कालेन किंचिदालक्ष्य स्वशरीराकुलीकृताः । शीतवातातपत्रीढाः प्रोहसत्युष्पदीप्तयः॥ 40 फलप्रदाध्यरन्तीह शीलिनः श्वभ्रविप्रहाः। पयःपटलविश्रान्तत्रैलोक्याम्भोजकोटरे ॥ ५१ करोति घुंघुमं भूरि भूतभ्रमरपेटिका। ब्रह्माण्डमेध्यभाण्डेयं काली भगवती क्रिया ॥ 42 स्वयं दत्वैव दत्वैव भूतमिक्षां जिच्रक्षति। तिमिरालीककवरी इन्द्रकेचपलेक्षणा ॥ 43 ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिधरागिरिवरादिका । ब्रह्मतस्वैकपिटका लम्बमानपयोधरा॥ 48 चिच्छकिमातृका स्थूला तरला घनचापला। तारकाजालदशमा संध्यारुणतरा घरा॥ 44 समस्तपिद्यानीहस्ता शतऋतुपुरानना।

ततो जन्नमेषु विशेषं दर्शयति--रागेति ॥४०॥ तेष्वपि कृमिकी-टादीनां दुःखानुभवातिशयं सनिमित्तं दशयति—सुदुष्कृतेति । सुष्टु अतिशयेन दुष्कृतीनभैस्तत्फलभोगानुसारिध्यानान्येव च-रितुं शीलं यासां तथाविधाः॥४८॥ 'स यद्यदेवास्त्रजत तत्तदत्तु-मिप्रयत' इति श्रुतेः कालकवलनीयत्वं स्थावरजङ्गमानां समा-नर्मिखाइ—क्षणेनेति ॥ ४९ ॥ एवं स्थावरेषु नियतकालं **फलपुष्पादिपरिणामशालिखमनिवार्यशीतवातातपादिसहरवं** च विशेष इति दर्शयति—कालेनेति सार्धेन। श्रम्नं भूबिलं तत्र प्रविष्टो विष्रहः शरीरमूलभागो येषां तथाविधाः स्थावराः किंचिद्भोजकं खपरादष्टमालक्ष्य निमित्तीकृत्य मनुष्यपक्षिसपीदिभिः खशरीरे आकुळीकृताः पीडिता वसन्तादिकालभेदेन प्रोल्लसस्पृष्पदीप्तयः फलप्रदाश्व अतएव शीलिनस्तपःशमदमतितिक्षादार्यादिशील-वन्तइव चरन्ति कालं नयन्ति ॥ ५० ॥ इदानीं लोकत्रयमम्भो-जत्रयत्वेन कल्पयिला तत्रत्यचरप्राणिनिकायं भ्रमरसमूहत्वेनो-रप्रेक्षते—पय इत्पर्धाभ्याम् । यद्यपि पृथिव्येव पद्मपत्रवज्जले प्रतिष्टिता पुराणादिप्रसिद्धा नान्तरिक्षसुलोकी तथापि तयोरपि त्रिवृत्कृतजलकार्यलाजलभागप्रतिष्ठितलमस्त्येवेति सूचनाय पटलपदम् ॥ ५१ ॥ घुंषुमं गुजाध्वनिम् । अमरपेटिका अमरसमूहः । इदानीं फलनियतां प्राणिकियां कालीरवेन मह्माण्डं च तदीयमिक्षापात्रत्वेन चतुर्विधभूतमामं तदीयभैक्ष्यभावेनोत्प्रेक्षते---ब्रह्माण्डेति । कालस्य स्त्री काली पूर्वगृहीतां भूतमिक्षां खभत्रें कालाय दस्वैव दत्वैव पुनः पुनर्वेला अन्यामन्यां भूतभिक्षां जिघृक्षतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥ इदानीं क्रियाफलभूतां त्रिलोकी वृद्धकामिनीत्वेन वर्णयति---

सप्तान्धिमुक्तालतिका नीलाम्बरपरीवृता॥ પદ जम्बूद्वीपमहानामिर्वनश्रीरोमराजिका। भृत्वाभृत्वा विनश्यन्ती त्रिलोकीवृद्धकामिनी॥ ५७ असॅक्जायते नष्टा भूरिविभ्रमकारिणी। मग्नमन्यैरथोन्मग्नं भीमे कालमहार्णवे ॥ 46 प्रतिकल्पक्षणं श्रीणैर्ब्रह्माण्डस्फुटबुद्ध्येः। कालेऽगाधरसस्यन्दे स्थित्वास्थित्वा पुनःपुनः॥५९ कल्पमात्रनिमेषेणोड्डीनाः कारणसारसाः। उत्पत्त्योत्पत्त्य नाशिन्यः संतप्ताः सृष्टिविद्युतः ॥६० कालमेषे स्फ्ररन्त्यंताश्चित्प्रकाशवनोद्यमाः। प्रपतद्भृतविद्दगाः पतन्त्यविरतभ्रमाः॥ ६१ कालतालात्किलोत्तालाद्वह्याण्डफलपालयः। उन्मेषकृतचैरिञ्जसृष्टयो देवनायकाः॥ ६२ निमेषकृतसंहाराः सन्ति केचन कुत्रचित्। निमेषोन्मेषसंक्षीणकल्पजालाः सहस्रदाः॥ ६३ रुद्धाः केचन विद्यन्ते तिसंस्थित्यरमे पुनः। तेऽपि यस्य निमेपेण भवन्ति नभवन्ति च॥ દ્દષ્ટ तादशोऽप्यस्ति देवेशो हानन्तेयं ऋयास्थितिः। अनन्तसंकल्पमये शून्ये च ब्रह्मणः पदे॥ ६५

तिमिरेत्यादिना । अलीकपदं व्याजार्थे ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोपेन्द्रमहे-न्द्रादिका आन्तरचेतनस्वभावेन । भरागिरिवरादिका बाह्यस्थ-लदेहस्थानीयजङ्खभावेन । ब्रह्मतत्त्वमेवैकं हृदि विस्फोट इव बन्धनैः पिधाय सदा गोप्यं यस्याः ॥ ५४॥ चिच्छक्ति-श्रिदाभासः सेव मातेव पोषप्रित्री यस्या अतएव स्थूला ॥ ५५ ॥ समस्ताः पद्मिन्यो ब्रिसलता हस्ता यस्याः । नीलमम्बरं नभ-स्तदेवाम्बरमुत्तरीयं तेन परीवृता । वृत्रः क्रिपि 'नहिवृति-वृधि' इत्यादिना परेर्दीर्घः । 'आपं चैव इलन्तानाम' इति भागुरिमते टाप्॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इदानीं कालं महार्णवत्वेन वर्ण-यति—सप्रमिति । निष्ठाद्वयं भावे ॥ ५८ ॥ कल्पा एव क्षणाः। वीप्सायामव्ययीभावः । अगाधः रसस्यन्दो भ्रान्तिसद्दस्तृष्णा-जलस्यन्दो यस्मिन् ॥ ५९ ॥ कारणभूतहिरण्यगर्भसारसाः । सारससंबन्धात्कालस्य नदलकल्पना गम्यते । मेघत्वेन तं कल्पयति-उत्पत्त्योत्पत्त्येति ॥ ६० ॥ चित्प्रकाशस्य वननं वनः संभजनं तेन उद्यमः प्रकाशशक्तियासाम् । 'तस्य भासा सर्व-मिदं विभाति' इति श्रुतेः ॥ ६१ ॥ उत्तालादत्युत्रतात्कालल-क्षणात्तालमुक्षात्प्रपतन्तो भूतानि प्राणिनस्तलक्षणा विह्गाः काका येभ्यस्तथाविधाः । ब्रह्माण्डलक्षणानां फलानां पालयः पङ्मयः प्रपतन्ति । अत्रिक्तहेतुकलसूचनात्काकतालीयन्यायोऽ-त्रोत्प्रेक्षितः । देवनायका विष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवाख्याः ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ चिद्रपे परमे परमकारणे । ते हदा अपि ॥ ६४ ॥ कियास्थितिः कर्मोपासनफलभावस्थितिर-नन्ता असंस्याता । नन्त्रिदं कथं संभाव्यत इतिचेन्मायायां सर्वसंभवाभात्रासंभावना युक्तेत्याशयेनाह-अनन्तेति ॥ ६५ ॥

म संभवित का नाम शक्तयिश्वत्रपूरेकाः।
पवमश्रीणसंकल्पलन्धार्थभरभासुरा।
जागती कल्पना येथं तदज्ञानविज्ञुम्भितम्॥ ६६

याः संपदो यदुत संततमापदश्च यद्वाल्ययायनजरामरणोपतापाः। यन्मज्जनं च सुखदुःखपरम्पराप्ति-रक्षानतीव्रतिमिरस्य विभूतयस्ताः॥ ६७

इखार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये देवद्तोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे अज्ञानमाहात्म्यं नाम राप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

श्रीयसिष्ठ उवाच ।
संसारवनखण्डे ऽसिश्चित्पर्यतते स्थिता ।
कीदशी सृष्ट्यियाख्या छता विकसिता कदा ॥ १
बृहत्पर्वतपर्याख्या ब्रह्माण्डत्वक्समावृता ।
देहयविरियं यस्यास्त्रिलोकीलोककासिनी ॥ २
सुखं दुःखं भवो भावो ज्ञानमज्ञानमेव च ।
अत्रैतान्युच्चृत्तानि मूलानि च फलानि च ॥ ३
सुखादविद्योदेत्युचैस्तदेवान्ते प्रयच्छति ।
दुःखादविद्योदेत्युचैस्तदेवेषा फलत्यलम् ॥ ४
भवादविद्योदेत्येषा तमेव फलति स्फुटम् ।
भावात्सत्तामवाप्नोति तमेव फलति स्फुटम् ।
श्रानावृद्धिमायाति तदेव स्यात्फलं स्फुटम् ।
श्रानावृद्धिमायाति तदेव स्यात्फलं स्फुटम् ।

चित्रस्य आध्यंसहस्रस्य पूरकाः । अज्ञानविभूतिप्रपश्चनमुपसं-हरति—एवमिति ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उक्तमेवार्थं संक्षिप्य स्पष्ट-माह—याः संपद इति । ताः सर्वा अज्ञानस्राणस्य तीवस्य गाढस्य तिभिरस्य विभूतयः । एतद्विशेषणत्वादेव ता इति पदे 'न पुंसकमनपुंसकेन' इति नपुंसकेकशेषस्याप्रवृत्तिः । 'अद्दुन्द्वतत्पुरु-षविशेषणानामिति वाच्यम्' इति तिन्नपेथात् ॥ ६८ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे सप्तमः सर्गः ॥ ७॥

वर्णिता कारणाविद्या जगद्यस्या विभूतयः । कार्योविद्या भवारण्ये छतात्वेनेह वर्ण्यते ॥ १ ॥

तत्रादी थिषयं निर्दिश्य वर्णनप्रकारं प्रस्तीति—संसारिति । कृटस्थलाचिदेव पर्यतस्तत्रटे स्थिता । कारणाविद्याव्यादृत्यं सम्भविद्याक्ष्येति । कदा कीहशीति कालमेदेन विकासवैचित्र्यः योतनार्थम् । तद्वर्णयामः श्रूयतामिति शेषः ॥ १ ॥ वृहन्तो मेवीद्यः पर्वता एव पर्शाण काण्डसंघयस्तैराट्या । ब्रह्माण्ड- पर्देन तदावरणानि गृह्यन्ते तल्लक्षणलिमः समादृता । लोकै- जेनैः कासिनी पत्राङ्करादिविकासवती । इयं त्रिलोकी यस्या देह्यष्टिः संस्थानम् ॥ २ ॥ भवो जन्म । भावः स्थितिः । अत्र अविद्यालतायाम् । उरुष्टृतानि प्रतिदिनं वृद्धिस्यभावानि ॥ ३ ॥ मृह्यनं फल्रलं च सुखादेरुपपाद्यति—सुखादिल्यादिना ।

नानाविधोहासवती वासना मोदशालिनी। घनप्रवालतरला तनुरस्या विज्ञम्भते॥ G दिवसव्यूष्टकुसुमा यामिनीलोलपट्रपदा। अजसं स्पेन्दमानैषा प्रपतद्भृतपञ्जवा॥ 4 आगत्यागत्य पतित विवेककरिणी कचित्। विध्यते धूतरजाः प्रसक्ति पुनरेति च ॥ Q जायमानप्रवालाख्या संजाताङ्करदन्तुरा । सर्वेर्तुकुसुमोपेता समग्ररसशालिनी॥ 8o जन्मपर्वाहिनीरन्ध्रा बिनाशच्छिद्रचञ्चरा। भोगाभोगरसापूर्णा विचारैकघुणक्षता ॥ ११ विकसन्त्यः प्रतिदिनं चन्द्रार्कावलयोऽभितः। व्योम्नि वातिषळोळानि पुष्पाण्यस्याः किळ प्रहाः १२

भुज्यमानात्संपत्त्यादिमुखादत्रेऽपि मे इतोऽधिका संपद्भयादिति रागलक्षणा अविद्योदेति सा च यज्ञदानादिधर्मद्वारा सुखं फलति। दारिद्यादिदुःखाच धनतृष्णादिलक्षणा अविद्योदेति । सा च पाय-वासनया दुष्प्रतिप्रहचौर्याद्यधर्मप्रयूत्तिद्वारा पुनस्ततोऽधिकं दुःखं फलतीत्यादि सर्वत्रोह्यम् । एवकारः सर्वत्र भिश्रकमः । फल-त्येवेति योज्यम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ ज्ञानेन प्रत्यक्तरवविमर्शेन संवि-तिहत्तरोत्तरभूमिकाधिरोहेळक्षणा ज्ञानवृद्धिः । अन्ते सप्तमभू-मिकायाम् ॥ ६ ॥ प्रायक्तिकसुपपाद्य प्रस्तुतां उतामेव वर्ण-यति—नानाविधेति ॥ ७ ॥ नानाविधोहासवतीत्येतत्प्रवन्न-यति-दिवसेत्यादिना । रागादिना प्रपतन्ति प्रधावमानानि भूतानि प्राणिन एव पछता यस्याः ॥ ८ ॥ आगलागल कर्म-वायुना पुनःपुनर्भमिला कचित्कसिंभिद्धिकारिभूतपहवांशे विवेकलक्षणां करिणींप्रति पति । तया च कदाचिद्विचारशुण्डा-त्रेण तदालम्बनविषयतहविश्लेषणेन विध्यते कम्प्यते । धृत-रजाः निरस्तदुर्वासनापरागापि दैवात्तत्करा श्युता पुनर्विषयत-रुणा प्रसक्तिमेति ॥ ९ ॥ जायमानैभित्रपश्चादिप्रवाछैराट्या । संजातैः पुत्रपौत्रायद्वर्रथः दन्तुरा आनन्दस्मितास्या ॥ १० ॥ जन्मलक्षणेषु पर्वेसु दुःखरोगाद्यहिभिनीरन्त्रा निरवकाशा । विनाशा मरणानि तहक्षणेषु शाखासंधिन्छिदेषु बलाद्विवीर्थ-माणेव चश्रा व्याकुला। भोगाना विषयाणामाभोगोऽनुभव-स्तद्विषयेण रसेन रागमकरन्देनापूर्ण ॥ ११ ॥ सर्वेर्तुकुसुमोपे

१ इत्वाभावरछान्दसः.

अस्याः प्रस्फुरिताकाराः कोरकत्वमुपागताः । पूरिताकाशकोशायास्तारका रघुनन्दन ॥ £ 9 चन्द्रार्कदहनालोका यस्यास्तत्कीसुमं रजः। अनेनेयं हि गौराङ्गी स्त्रीव चेतांसि कर्पति॥ १४ मनोमातङ्गविधुता संकल्पकलकोकिला। इन्द्रियव्यालसंबाधा तृष्णात्वगुपरञ्जिता॥ १५ नीलाकाशतमालाङ्गसंश्रयेणोश्रति गता। रोदसीजानुसुस्तम्भा भुवनोद्यानभूविता॥ १६ अधोब्रह्माण्डखण्डेषु स्वालवालेन जालिता। षिधृतारोषजलधिजलक्षीरादिसेचना ॥ १७ त्रयीविलोलभ्रमरा रमणीपुष्पपुञ्जिका। चित्स्पन्दयातचलिता क्रियाविमलपुत्तिका ॥ १८ कुकर्माजगरव्याप्ता स्वर्गश्रीपुष्पमण्डपा। जीवजीवननीरन्ध्रा नानामोद्मदप्रदा॥ १९ नानोपद्यमवैचित्र्यनानाकुसुमभासिनी। नानाफलावलीव्याप्ता नानावर्षविकासिनी ॥ २० मानालवालवलया नानाविहगधारिणी। नानापरागपरुषा नानाभूधरजालिका ॥ २१ नानाकलाकुडालिनी नानाधनगणोत्थिता। नानागिरितटारूढा नानादलनिरन्तरा॥ **२२** जाता च जायमाना च च्रियमाणा तथा मृता।

अर्घव्छिमा तथाऽव्छिमा नित्यमक्छेदिनी तथा२३ अतीता वर्तमाना च सत्येवासत्यवत्सदा। नित्यमत्यन्तत्वणी नित्यं शोषमुपेयुषी॥ २४ महाविषलतैषा हि संसारविषम् चर्छनाम्। ददाति रभसान्धिष्टा परामृष्टा विनश्यति ॥ ર્ષ स्फीतेऽन्तर्गलिता तस्य अन्नेऽन्तः संस्थितान्विता। इतो जलमितः शैला इतो नागाः सुरा इतः ॥ २६ इतः पृथ्वीत्वमायाता तथेतो द्युतया स्थिता। इतअन्द्रार्कतां प्राप्ता तथेतस्तारकाकृतिः॥ ২৩ इतस्तम इतस्तेज इतः खमित उर्वरा। इतः शास्त्रमितो वेदा इतो द्वयविवर्जिता ॥ २८ कचित्खगतयोड्डीना कचिद्देवतयोत्थिता । क्रचित्स्थाणुतया रूढा क्रचित्पवनतां गता॥ कचित्ररकसंलीना कचित्स्वर्गविलासिनी। कचित्सुरपदं प्राप्ता कचित्क्रमितया स्थिता॥ कचिद्विष्णुः कचिद्रश्ला कचिद्रदः कचिद्रविः। कचिद्गिः कचिद्रायुः कचित्रन्द्रः कचिद्यमः ॥ ३१ यर्त्किचनाङ्ग भुवनेषु महामहिस्ना व्याप्तं जरत्तृणलवत्वमुपागतं वा। दृश्यं स्फुरमञ्जू हराद्यपि तामविद्यां षिक्रि क्षयाय तदतीततयात्मलाभः॥३२

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे अविद्यालताविलासोपदेशो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

तेति यदुकं तद्विष्णोति-विकसन्त्य इति । महा नवमहरूपाः चन्द्रार्कसद्विता आवलयो ज्योति:पङ्कयः ॥ १२॥ १३॥ चन्द्रार्क-दहनानामालोकाः प्रकाशा यस्यास्तत् प्रसिद्धं कीसुमं कुसुमसंब-न्धि रजः। अनेन रजसा चेतांसि कर्षति। मनोद्दरा भातीतिया-वत् ॥ १४ ॥ १५ ॥ नीलाकाशलक्षणस्य तमालकृक्षस्याङ्गसंध्र-येणोन्नति विस्तारं गता । रोदस्या दावापृथियी ते एव संकुचि-तजान्वाकाराः सुस्तम्भाः परितो मूलावष्टम्भा यस्याः ॥ १६॥ सप्तान्धिसातलक्षणेन शोभनेनालवालेन विधृताशेषजलधिजल-क्षीरादिसेचना सती अधोभुवनखण्डेषु मृळसंतानैजीलिता ॥१७॥ त्रयी काम्यकर्मकाण्डलक्षणा वेदत्रयी तया विलोला। रागि-जना एव भ्रमरा यस्याः अतएव तदुपभोग्या रमण्यः स्नियः पुष्पपुजानि यस्याः । कियाशब्देन स्वाभाविकप्रकृतिपरा जना **छक्ष्यन्ते ।** त एव विपुला बहुला मूलपत्रकाण्डादिषु भ्रमन्त्यः पुत्तिकाः सूक्ष्मकीटजातयो यस्याम् ॥ १८ ॥ कुकर्म शास्त्रनि-विद्धिकया । जीवानां जीवनैर्जीवनोपायैर्नीरन्ध्रा पूर्णा । तस्याः असिद्धलताबिलक्षणान्यपि बहुविधवैचित्र्याणि दर्शयति - नाने-

त्यादिना । नानाविधेरामोदैविषयवासनागन्धेमेदप्रदा मुढानाम ॥ १९ ॥ विवेकिनां तु नानोपशमवैचित्र्यलक्षणनानाकुसुमभा-सिनी । वर्षेण पुष्पफलमकरन्दरजोवर्षेण विकासिनी ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ नित्यं प्रवाहरूपेणांच्छेदिनी ॥ २३ ॥ निल्य-ममीक्ष्णम् । तरुणी पह्नविता ॥ २४ ॥ परामृष्टा विचारिता सती विनश्यति ॥ २५ ॥ तस्य विचारयितुः स्फीते पूर्णात्मनि अन्तर्गलिता बाधिता । अज्ञे तु अन्तः अन्विता सर्वतोऽनुवृत्तैव संस्थिता । तदनुवृत्तिमेव प्रपश्चयति—इत इत्यादिना ॥ २६॥ ॥ २७ ॥ उर्वरा सस्याक्या भूः । इतः प्रलयसुषुप्योर्द्वयविव-र्जिता ॥ २८ ॥ २९ ॥ नरकात्मना पातालकुहरे संलीना ॥ ३० ॥ ३९ ॥ महामहिम्ना प्रभावोत्कर्षेणाव्याप्तं इरादिसर्वसं-हार्यव्याकृतान्तं प्रभावाल्पतया जरत्तृणलवलमुपागतं वा यत्कि-चन दृश्यं स्फुरदस्ति तां सर्वामविद्यां तत्त्वबोधेन क्षयाय बा-**भाय विद्धि । तदतीततया तद्वाधेन आत्मनो लामो मोक्ष** इलार्थः ॥ ३२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्वर्षप्रकाशे निर्वाणप्रकरणेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

१ भूस्पिता इति पाठः.

२ अधोअुवनखण्डेषु इति पाठष्टीकानुगुणः.

नवमः सर्गः ९

श्रीराम उवाच।
आकारजातमृदितं शुद्धं हरिहराणि।
अविधैवेखहं श्रुत्वा ब्रह्मन्भ्रमिवागतः॥ १
श्रीविषष्ठ उवाच।
संवैधेनापरामृष्टं शान्तं सर्वात्मकं च यत्।
तत्सिवाभासमयमस्तीह कलनोज्झितम्॥ २
समुदेति स्वतस्तसात्कला कलनक्षिणी।
जलादावर्तलेखेव स्फुरज्जलतयोदिता॥ ३
स्क्ष्मा मध्या तथा स्थूला चेति सा कल्प्यते त्रिधा।
पश्चान्मनस्तया तेन बातैच वपुषा पुनः॥ ४
तिष्ठत्येतास्वयस्थासु भेदतः कल्प्यते त्रिधा।
सत्वं रजस्तम इति एपैव प्रकृतिः स्मृता॥ ५
अविद्यां प्रकृतिं विद्धं गुणित्रतयधर्मिणीम्।

गुणत्रयविभागोऽत्र हरादेः शुद्धसत्वता । विद्याविद्यास्त्ररूपं च तद्वतीतं च वर्ण्यते ॥ १ ॥

'दृश्यं स्फुरन्ननु हराद्यपि तामविद्यां विद्धि' इति यदुक्तं तत्र हरादिशरीरस्य 'ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् । ज-र्ध्वरेतं बिह्नपाक्षं विश्वह्नपाय वै नमोनमः' 'पृतरीतिघनीभृतस-विदानन्दविग्रह् व्यादिश्रुतिस्मृतिषु परश्रद्वालसविदानन्दरूप-लप्रसिद्धेः 'ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्' इत्यादि-श्रुतिप्रसिद्धसर्वविद्याधिपत्यविरोधाद्वासुदेवमूर्तेः पुराणेषु तुरी-यखपरब्रह्मतादिप्रसिद्धेश्वाविद्यालमसंभावयन्त्रसङ्गालद्रहस्यमपि जिज्ञासमानो रामः पृच्छति-आकारेति । उदितं लया उक्तम् । भ्रममिव मिथ्याभ्रान्तिमागतस्तमपनयेति शेषः ॥ १ ॥ तत्र निर्विकारशुद्धचितो पृतवत्खतो घनीभावस्य मूर्ताकारस्य चाघटनान्मायाधीनविवर्तप्रयुक्तत्वे सिद्धे श्रुतस्य परश्रहालस्या-विरोधाय तरप्रयोजको मार्याशः खच्छसूक्ष्मतमखरूपानावरकः कल्प्यः स एव शुद्धसत्त्वमित्युच्यते । तस्य च खच्छतमलाचि-स्प्रतिबिम्बप्राहितया सर्वविद्योद्दीपकलात्खरूपानावरकलाच न सर्वविद्याधिपत्यविरोधः । 'यत्र लस्य सर्वमात्मैवाभूतत्केन कं परयेत्'। 'भूयश्वान्ते विश्वमायानिवृत्तिः' इत्यादिश्रुत्या अस-बीयतत्त्वज्ञानबाध्यलाकाविद्यालमिति नात्रासंभावना युक्तेत्या-शयेनोत्तरं बक्तुकामो वसिष्ठस्तत्कल्पनाक्रममनुक्रमिष्यक्रधिष्ठानं प्रथमं दर्शयति—संवेधेनेति । संवेधेन जगदाकारेण परामृष्टं सर्वजगरसेस्कारसंभृतमायाशबललात्सर्वात्मकमतएव सचित्र-काशप्रवर्र सन्मात्रमस्ति सर्गात्प्रागित्यर्थः ॥ २ ॥ कलनं जग-त्संस्कारोद्बोधस्तलक्षणा कला चिदाभासस्कृतिः सर्गादिकाले समुदेति स्वसत्तया स्थितैव ईषत् पृथगिव गुणिगुणमेदव्यवहा-रयोग्यतया भाविभेषति। अतएव तदनुरूपो दृष्टाम्त आवर्तले-खेवेति ॥ ३ ॥ साच कला सूर्यात्पृथक् प्रौहातपमन्दातपच्छा-

एषैक संस्रुतिर्जन्तोरस्याः पारं परं पदम्॥ ŧ अत्र ते ये त्रयः प्रोक्ता गुणास्तेऽपि त्रिधा स्मृताः। सत्वं रजस्तम इति व्रत्येकं मिद्यते गुणः॥ नवधैवं विभक्तेयमविद्या गुणसेदतः। यावत्किचिदिदं रहयमनयेव तदाधितम्॥ 4 ऋषयो मुनयः सिद्धा नागा विद्याधराः सुराः। इति भागमविद्यायाः सात्विकं विद्धि राघव॥ सात्विकस्यास्य भागस्य नागविद्याधरास्तमः। रजस्तु मुनयः सिद्धाः सत्वं देवा हरादयः ॥ १० सत्वजाती देवयोनावविद्या प्राकृतैर्गुणैः। निर्मलं पदमायाताः सत्वं हरिहरादयः॥ ११ सात्विकः प्राकृतो भागो राम तज्ज्ञो हियो भवेत्। न समुत्पद्यते भूयस्तेनासौ मुक्त उच्यते ॥

यामेदेषु तेजोपकर्ष इव सृक्ष्मा मध्या स्थूला चेति त्रिधा कल्प्यतः इत्यर्थः । सृक्ष्मकल्पनात्पश्चात्तेन कल्पयित्रा मनस्तया हिरण्यगर्भतया मध्या ज्ञाता पुनस्तद्नन्तरं वपुषा स्थूलविरा-ढाकारेण ज्ञाता तथेव तिष्ठतीति परेणान्वयः ॥ ४ ॥ यत एषा अव्याकृतोपाधिप्रकृतिरेव त्रिधा स्थिता अतएवासु सूक्ष्माखब-स्थाखपि त्रिधा कल्प्यत इत्यन्वयः ॥ ५ ॥ प्रश्नोत्तरानुगुण्याय प्रकृतेरविद्यालमार---अविद्यामिति ॥ ६ ॥ कार्यकारणाविद्या-साधारण्येनैकैकस्य गुणस्याबान्तरत्रैविध्यमाह—अत्रेति ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ तत्र प्रथमविभागे सत्सांशमुदाहरति-ऋषय इति ॥९॥ तदवान्तरविभागे त्रीनप्युदाहरति-सालिकस्थेति ॥ १० ॥ हराबीनां सलगुणान्तर्गत्युद्धसलदेइत्वे उपपत्तिमाह-सलजा-ताविति । निर्मलं कद्दाप्यविद्यावरणशून्यं खात्मपदं खाभाविक्यैव विदाया सदैवायाता अतस्ते शुद्धसलमिल्पर्यः। एतन विधिहरयो राजसतामसशरीरत्वेन मुढजनप्रसिद्धिनिरस्ता । 'सत्वं रज-स्तम इति प्रकृतेर्गुणासीर्युक्तः परः पुरुषः एक इहास्य धते । स्थित्यादये हरिविरिश्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खल सल-तनोर्नुणां स्यः ॥'इति भागवतादिवाक्यानि । 'तथा यस्य तमः साक्षारछरीरं सालिको गुणः । पालनाय त्रिमूर्तीनां स विष्णुः स्याम चापरः ॥' इति स्कान्दवचनं च सध्याद्यपकरणे शरीर-लोपचारेण द्वाभ्यामेकस्य वरगोष्टीन्यायेन प्रशंसार्थानि नेतर-योरपक्रष्टतापराणि । सर्वञ्चलसत्यसंकल्पलत्यभक्तप्रबोधकलिः-श्रेयसहेतुलानां त्रिमृर्तिष्वपि श्रुतिस्मृतिपुराणेषु प्रसिद्धतमलात्। 'अयं परस्त्वयं नेति संरम्भामिनिवेशिनः । यातुधानाश्व जा-यन्ते पिशाचाय न संशयः ॥' इत्यपकर्षदर्शनस्य निन्दितला-त्रिमुर्तीनामीश्वरकोटित्वेनैकतया अपकर्षायोग्यत्वात्सर्वोत्कर्ष-प्रयोजकशुद्धसलकारीरत्ममेवोचितमिति भावः ॥ ११ ॥ अत-एव तदुपासकानामपि ज्ञानप्राह्या पुनर्जन्मनिवृत्तिः प्रसिद्धे-

तेन रुद्रादयो होते सत्वभागा महामते। तिष्ठन्ति मुक्ताः पुरुषा यावद्दहं जगत्स्थतौ ॥ १३ यावहेहं महात्मानी जीवनमुक्ता व्यवस्थिताः। विदेहमुक्ता देहान्ते स्थास्यन्ति परमेश्वरे॥ १४ भाग एप त्वविद्याया एवं विद्यात्वमागतः। बीजं फलत्वमायाति फलमायाति बीजताम् ॥ १५ उदेलविद्या विद्यायाः सिळलादिव बुद्धदः। षिद्यायां लीयते विद्या पयसीव हि बुद्धदः॥ १६ पयस्तरङ्गयोद्धित्वभावनादेव भिन्नता। विद्याविद्यादशोभेंदभावनादेव मिन्नता॥ १७ पयस्तरङ्गयोरिक्यं यथैव परमार्थतः। नाविद्यात्वं न विद्यात्विमह किंचन विद्यते॥ १८ विद्याविद्याहरौ त्यक्त्वा थदस्तीह तदस्ति हि। प्रतियोगिव्यवच्छेदवशावेतद्रभृद्वह ॥ २९ विद्याविद्यादशौ न स्तः शेषे वद्यपदो भव। नाविद्यास्ति न विद्यास्ति कृतं कल्पनयानया ॥ २० किंचिदस्ति निकंचिद्यश्चित्संविदिति तत्स्थितम्। तदेवाविदिताभासं सद्विधेत्यदाहृतम् ॥ २१ विदितं सत्तदेवेदमविद्याक्षयसंज्ञितम्। विद्याभावादविद्याख्या मिध्यैचोदेति कल्पना ॥ २२ मिथः स्वान्ते तयोरन्तइछायातपनयोरिव ।

त्याह-सात्विक इति । त्रिमृत्यीत्मकः प्राकृतो भागः सात्विकः । अतस्तज्ज्ञस्तदुपासकः अतएव त्रिमूर्तीनामावरणाभावादनाग-न्तुकी जीवन्युक्ततेत्याह—तेनेति । असी दृरिहरादिः ॥ १२ ॥ ॥१३॥परमेश्वरे शुद्धब्रह्मस्वभावे॥ १४॥ प्रश्नसमाधानमुपसंहस्य प्रस्तुतमेव प्रस्ताति--भाग इति । कार्याविया फर्ल तत्प्रजये बीजतां कारणाविद्यात्वमायाति ॥ १५ ॥ कार्याविद्योदयलया-धारलादपि विद्याशरीराणां तेषामविद्यालमेवेत्याह—उदे-तीति । कारणाविद्यान्तर्भतशुद्धसलभागो विद्या तस्याः सका-शात्कार्याविद्यालक्षणसृष्टिरुदेति तत्रैव प्रलये लीयते ॥ १६॥ एवंच विद्याविद्यामेदोऽपि कत्पित एवेति सिद्धमित्याह-पय इति ॥ १७ ॥ किंच विद्यादशा विद्याविद्योभयवाघे सुतरां तक्रेदप्रसक्तिनीस्तीत्याशयेनाह—नाविद्यालमिति ॥ १८ ॥ विद्याविद्याहरों। तद्भेद्धिरोधादिदशी । ननु अविद्याहरों। वाध्य-खादस्त खागः. विदाहदास्त बाधिकायाः केन त्यागस्तत्राह-प्रतियोगीति । वाधेनाविद्याया असत्त्वापत्तां तन्निरूपितवाधक-ताया असिद्धेर्व्यायतिप्रसिद्धेर्व्यावर्त्यप्रतियोगिप्रसिद्धाश्रीनलाचे-खर्थः ॥ १९ ॥ शेषे परिशिष्टचिन्मात्रे ॥ २०॥ कोऽसौ शेषस्तं दर्शयंस्तदेव प्राग्बोधादविद्येति कल्पितमित्याह—किचिदिति । नास्ति किंचित्सातिरिक्तं यत्र तन्नकिंचित् ॥ २१ ॥ २२ ॥ सान्ते मनसि मिथः अन्योन्यं छायातपनयोरिव विरुद्धयोस्त-योर्बिवाविवयोर्मध्ये अविद्यायामन्तः अन्तरे चिति बाधेन विकीनायां सत्याम् ॥ २३ ॥ अवाप्यं विद्याफलमित्यकं

अविद्यायां विलीनायां श्रीणे द्वे एव कल्पने ॥ १३ पते राघव लीयेते अवाप्यं परिशिष्यते। अविद्यासंक्षयात्क्षीणो विद्यापक्षोऽपि राघव ॥ २४ यध्छिष्टं तम्न किंचिद्वा किंचिद्वापीद्माततम्। तत्रैवं दृष्यते सर्वे न किंचन च दृश्यते ॥ २५ वदश्च वदधानायामिव पुष्पफलादिमान्। सर्वशकिहिं किंचित्वं सर्वशक्तिसमुद्रकम्॥ २६ नमसोऽप्यधिकं शन्यं नच शन्यं चिदात्मकम्। सूर्यकान्ते यथा बह्विर्यथा श्रीरे घृतं तथा॥ 20 तत्रेदं संस्थितं सर्वं देशकालक्रमोदये। यथा स्फूलिङ्गा अनलाद्यथा भासो दिवाकरात् ॥२८ तसात्तथेमा निर्यान्ति स्फ्ररन्त्याः संविद्श्चितः। यथाम्मोधिस्तरङ्गाणां यथामलमणिस्त्विषाम्॥ २९ कोशो नित्यमनन्तानां तथा तत्संविदां त्विषाम्। सवाह्याभ्यन्तरे सर्वे वस्तुन्यस्त्येव वस्तु सत् ॥ ३० सर्वदैवाविनाशात्म क्रम्भानां गगनं यथा। यथा मणेरयःस्पन्दे अयस्कान्तस्य कर्तृता ॥ ३१ अकर्तरेव हि तथा कर्तृता तस्य कथ्यते। मणिसंनिधिमात्रेण यथायः स्पन्दते जडम्। तत्सत्तया तथैवायं देहश्चेतत्यचिद्वपः॥ 32

पूर्णानन्दरूपम् । ननु विद्यापि निराबाधलात्कृतो न परिशिष्यते तत्राह्-अविद्यासंक्ष्यादिति । इन्धनसंक्ष्यादिशिरविति भावः ॥ २४ ॥ सर्ववाधात्मकलात्र किंचित्परमार्थसद्भपलात्किंचित् । अतएव तद्दर्शनमेव तत्त्वतः सर्वदर्शनं सर्वबाधदर्शनं चेलाह -- तत्रैवमिति । एवमुक्तेन तात्त्विकरूपेण । मायिकरूपेण तु न किंचिटिप दर्यते ॥ २५ ॥ अज्ञानात्रतदशायामपि तस्यैवार्कि-चित्त्वेऽपि वटबीजवद्याकृताव्याकृतावस्थयोः स्थूलसुक्ष्मीभूत-सर्वात्मकतालक्षणं किचित्वं प्रसिद्धमित्याहं-वटश्वेत्यादिना ॥ २६ ॥ २७ ॥ तत्र सत्त्वादेव देशकालकमोदये तस्मान्नि-र्यान्तीति परेणान्वयः । अत्र एवामिविस्फुलिक्वादिन्यायेन जी-वानामुपाधिभिः सह ततो निर्गमनं श्रुतिपु प्रसिद्धमिलाशये-नाह-यथेत्यादिना ॥ २८ ॥ तस्मात्तत्र स्थितलादेव ब्रह्मसं-विदः सकाशादिमाः प्रसिद्धा जीवनितो निर्यान्ति । अतएव तद्रह्म सर्वजीवसंविदां कोश इत्याह—यथेति ॥ २९ ॥ विषां भ्रमस्थानीयानाम् । निर्भमनावधित्वोक्तेमंणिप्रभादृष्टान्ताच जी-वजगतोर्वह्मणो बहिरवस्थानप्रसिक्तं वार्यश्राह-सबाह्यास्य-न्तरभिति । वस्तुन्येवासीति संबन्धः । यतो वस्तुसत् व-स्त्वधीनसंशाकम् ॥ ३० ॥ वस्तु च सर्वदेव अविनाशात्म-त्रिविधपरिच्छेदरहितमिति यावत् । तथाच जीवनिर्गमनं कुम्भौ-काशोदरे कुम्भनिर्गमनात्कुम्भाकाशनिर्गमनिषीपचारिकं सं-पन्नमित्याशयेनाह—कुम्भानामिति । एवं जीवस्य कर्तृत्वम-

१ इदं सप्तम्यन्तमधिकमिव प्रतीबते.

तत्र स्थितं जगदिदं जगदेकवीजे चिमाम्नि संधिदितकविपतकवपनेन।

लोलोमिंजालमिव वारिणि चित्रक्रं खादप्यरूपयति यत्र न किंचिदस्ति॥ ३३

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्नीकीये देवदृतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे विद्यानिराकरणं नाम नवमः रार्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०

श्रीवसिष्ट उवाच । तसाध्रकिंचिदेवेदं जगत्स्थावरजंगमम्। निकंचिद्धततां प्राप्तं यत्किचिदिति विद्धि हे॥ Ś यत्र काचित्र कलना भावाभावमयात्मिका। तिदेवं राम जीवादि सर्वं व्यर्थ किमीहसे॥ ર संबन्धोऽयमसायन्तर्हृदि यो व्यपदिश्यते । न तं लभामहे सर्प रज्जुसर्पभ्रमादिव ॥ Ę अपरिशात आत्मेव भ्रमतां समुपागतः। ब्रात आत्मत्वमायाति सीमान्तः सर्वसंविदाम् ॥४ अविद्येत्यूच्यते लोके चिश्चेत्यमलमाश्रिता। चेत्यातीतात्मतामेति सर्वोपाधिविवर्जिता॥ 4 चित्तमात्रं हि पुरुपस्तस्मिन्नप्टे च नइयति । स्थिते तिष्टति चात्मायं घटे सति घटाम्बरम् ॥ દ્ गच्छन्पदयति गच्छन्तं स्थितं तिष्ठव्छिद्युर्यथा । भ्रान्तमेवमिदं चेतः पद्यत्यात्मानमाकुलम् ॥ S कोशकारवदात्मानं वासनातनुतन्तुभिः।

प्यापनारिक मेनेत्याह—यथेति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उक्तमर्थ संक्षिप्योपसंहरति—तन्नेति । तत्र अज्ञाते ब्रह्मणि पूर्वपूर्वसंथिदितजगत्कित्पत्वासनाप्रयुक्तेनोत्तरोत्तरकत्पनेनेदं जगतिथतम् । यत्र यस्मिन् ज्ञाते खादाकाशादण्यम्पणि मूर्तामूर्तरूपशून्ये नान्यार्किचिदस्तीत्यर्थः ॥ ३३ ॥ इति श्रीयासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे नवमः सर्गः॥९॥

अविद्याबन्धविश्वान्तिः स्थावरेषु मनःस्थितिः। बुद्धिपूर्वोद्विचाराच बन्धमोक्षः प्रपद्रयते ॥ १ ॥

तसाज्जावभेदसाज्ञातत्रद्धामात्रलाज्ज्ञाते तस्मित्रदं न किचिदेवेत्यर्थः ॥ १ ॥ इदं जीवादि सर्व यत्र भावाभायम-यात्मिका काचित्कलना नास्ति तत्तादृशं ब्रह्मेव । एवंच व्यर्थं किमीह्से इच्छिस ॥ २ ॥ संबन्धो देहे वाद्यभोग्ये चाहंमम-तालक्षणः । न तं लभामहे विमर्शेनेति शेषः ॥ ३ ॥ अमतां जगद्भान्तिम् ॥ ४ ॥ चेत्यवीजभृतं मलं स्वसत्तारोपेणाश्रिता । एति विद्ययेति श्रेपः ॥ ५ ॥ एवमविद्यास्यरूपमुक्ला तत्कार्थो-पाधिना आत्मनो वन्धभ्रमं दर्शयति—चित्तमात्रमित्यादिना । चित्तमात्रं चित्ततादात्म्याध्यासाचित्तप्रायः । अतएव चित्ते नप्टे नश्यति । 'एतेम्यो भृतेभ्यः समुत्याय तान्येवानुविनस्यति विनाशमेवापीतो भवति' इत्यादिश्वतेः । घटाम्बरं यथेति श्रेपः ॥ ६ ॥ एवं गत्यादिकमपि चित्तधर्मं स्वात्मन्यारोपयतीत्याह—गच्छिति । अयमात्मा एवं भ्रान्निदं चेतिश्वत्तमेव आक्रल-

वेष्टयश्वेव चेतोऽन्तर्गालत्वाशाववुध्यते ॥ 4 श्रीराम उवाच। मार्ख्यमत्यन्तघनतामागतं समवस्थितम्। स्थावरादि तनु प्राप्तं कीरशं भवति प्रभो ॥ Ó, श्रीवसिष्ट उवाच । अमनस्त्वमसंप्राप्तं मनस्त्वादिष च च्युतम्। तटस्थं रूपमाश्रित्य स्थितैषा स्थावरेषु चित् ॥ १० तत्र दूरस्थिता मुक्तिमंन्ये वेदाविदां वर । सुप्तपूर्यप्रका यत्र चित्स्थिता द्वःखदायिनी। मुकान्धजडवत्तत्र सत्तामात्रेण तिष्ठति॥ 77 श्रीराम उवाच। सत्ताद्वेततया यत्र संस्थिता स्थावरेषु चित् । तत्रादरस्थिता मुक्तिमन्ये वेद्यविदां वर ॥ १२ श्रीवसिष्ठ उवाच । बुद्धिपूर्वं विचार्येदं यथावस्त्ववलोकनातु । सत्तासामान्यवोधो यः स मोक्षश्चेदनन्तकः॥ १३

मात्मानं परयति ॥ ७ ॥ अतएव तद्गतवासनाभिः खं बधाती-खाह—कोशेति । कोशकारः कृमिविशेषः । बाठलाद्विवेकश्-न्यलात् ॥ ८ ॥ बालपदोक्ताविवैकप्रसङ्गादविवेकपरमावर्वानां स्थावराणां चित्तस्थिति जिज्ञामुः श्रीरामः पृच्छति--मीर्एर्य-मिति । समवस्थितमवलम्बितम् ॥ ९ ॥ अमनस्लं सुप्रप्ताविन मुखदुः खसंवेदनायोग्यतापादकं मनोलयम् । पूर्वापरपरामर्श-क्षममननयोग्यतालक्षणमनस्वाद्पि च्युतम् । तटस्थं मुरधता-रुक्षणं रूपमाश्रित्व । चिन् जीवचित् ॥ १०॥ सप्तं विवेका-क्षमम् । पुर्यष्टकपदेन नदन्तर्गतं बाह्यान्तःकरणजातं लक्ष्यते । अतएव दुःखप्रतीकाराक्षमलाह्रहदुःखदायिनी । मूकपदेन कर्भे-न्द्रियश्र्न्यता । अन्धपदेन ज्ञानेन्द्रियप्रचारश्र्न्यता । जडपरेन मानसप्रसारणशुन्यतोपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ ज्ञानकर्मेन्द्रियव्यापार-शुन्यतया सत्तामात्रेण चित् स्थिता चेत्तादशस्थिती योगिनामिव शीप्रमेव वासनाक्षयमनोनाशसंभवाददूरस्थिता मुक्तिरुचितेति दूरस्थिता मुक्तिरिति वदतस्तव कोऽभित्राय इस्प्राशयेन रामः पृच्छिति—सत्तेति ॥ १२ ॥ शास्त्रविहितकर्मानुप्रानकृतचित्तञ्ज-द्विसाधनचतुष्टयसंपत्तिसहकृतश्रवणमनननिदिध्यासजन्यतत्त्व-साक्षात्कारकृतसमूलवासनाक्षयमनोनाशाभ्यां सत्तासामान्यस्थि-तिहि मोधः सचानन्तदुष्कृतदुर्व।सनाबीजसंभृतानां नारकीप्रा-याणां स्थावराणां शास्त्राधिकारिजन्मदीर्रुभ्यादुर्रुभतर इति श्रीवसिष्ठः खोक्तरिमप्रायं वर्णयति-बुद्धिपूर्वमित्यादिना ॥१३॥

परिकाय परित्यागी वासनानां य उत्तमः। सत्तासामान्यरूपत्वं तत्कैवन्यपदं विदुः॥ 88 विचार्यार्थैः सहालोक्य शास्त्राण्यध्यात्मभावनात्। १५ सत्तासामान्यनिष्ठत्वं यत्तद्रह्म परं विदुः॥ अन्तः सुप्ता स्थिता मन्दा यत्र बीज इवाहुरः। घासना तत्सुयुप्तत्वं विद्धि जन्मप्रदं पुनः॥ १६ भन्तः संलीनमननं परितः सुप्तवासनम्। सुषुप्तं जडधर्मापि जन्म दुःखशतप्रदम्॥ १७ स्थावरादय पते हि समस्ता जडधर्मिणः। सुषुप्तपदमारूढा जन्मयोग्याः पुनःपुनः॥ १८ यथा बीजेषु पुष्पादि मृदो राज्ञी घटो यथा। तथान्तः संस्थिता साधो स्थावरेषु स्ववासना॥१९ यत्रास्ति वासनावीजं तत्सुपुप्तं न सिद्धये। निर्वीजा वासना यत्र तत्तुर्यं सिद्धिदं स्मृतम् ॥ २० धासनायास्तथा चहेर्ऋणव्याधिद्विपामपि। क्षेत्रवेरविषाणां यः शेषः स्वल्पोऽपि वाधते॥ २१ **निर्देग्धवासनाबीजसत्तासामान्यरूपवान्।** सदेहो वा विदेहो वा न भूयो दुःखभाग्भवेत्॥ २२ चिच्छक्तिर्वासनाबीजरूपिणी स्वापभ्रमिणी। २३ स्थिता रसतया नित्यं स्थावरादिषु वस्तुषु ॥ बीजेपूलासरूपेण जाड्येन जडरूपियु। द्रव्येषु द्रव्यभावेन काठिन्येनेतरेषु च ॥ રઇ भस्मन्यथानित्यरूपा पांसुष्वप्यणुरूपिणी। असितेष्वसितस्थित्या सितधारतयासिषु॥ २५

परिज्ञायात्मतत्त्वमिति शेषः ॥ १४ ॥ शास्त्राणि आर्थेर्गुरुसती-र्थादिभिः सह विचार्थ अध्यात्मभावनान्मननपूर्वकनिदिध्यास-नात्तत्त्वमालोक्य ॥ १५ ॥ स्थावरेषु तद्रतरमित्युपपादयति-अन्तरिखादिना । सुपुप्तलमिव सुपुप्तलम् ॥ १६ ॥ जडधर्मापि पाषाणादिभाववद्गतिश्र्न्यमपि ॥ १७ ॥ १८ ॥ स्थावरेषु वा-सनैव नास्तीति मन्दाशक्की परिहरति-यथेति । पुष्पादीति व्युत्कमादुक्तिः । अङ्करादिपुण्पान्तमित्यर्थः ॥ १९ ॥ निर्वीजा शानाभिभर्जितबीजशक्तिः॥ २०॥ अताखाल्यापि वासना परि-शिष्टा वह गादिशेषवत्कमादिमयुद्धा महानर्थहेतुभैवतीति निःशेषं तत्क्षयः कार्य इत्याशयेनाह—वासनाया इति ॥ २१ ॥ २२ ॥ चिच्छक्तिराइतचिद्रुपा वासना बीजशक्तिः रसतया बीजे अङ्क-रवाक्तिलक्षणो भर्जननाऱ्यो रस इव ॥ २३ ॥ सैव बीजादिस-वैकारणेषु नानारूपेण स्थितेत्याह—बीजेष्वित्यादिना । उहासो भूजलयोगादुत्फुह्रता तेन लिक्केन रूप्यते अनुभूयते इत्युल्लास-रूपमञ्जरजननशक्तिस्तदातमना द्रव्येषु धनरकादिषु द्रव्यभावेन स्पृहणीयताप्रयोजकभव्यभावेन । 'द्रव्यं च भव्ये' इत्यनुशा-सनात् । इतरेषु शिलादिषु बौलेन कुलमितिनदमेदान्वयः ॥२४॥भस्मिति पांसुप्वप्यनिखरूपा पूर्वतनकाष्ट्रलोष्टादिष्वंसरूपा।

अणुरूपिण्यप्यसितेषु मिलनेष्यक्षाधारे चासितस्थित्या माहि-न्यमार्दबहंपया स्थित्या। असिषु खङ्गादिषु सितधारतया तीक्ष्ण-धारतया ॥ २५ ॥ घटपटादिषु सर्वत्र सर्ववस्तुब्वात्मैव सत्ता-सामान्यरूपं गृहीला जलाहरणशीतनिवारणादिनानाशक्तिः संस्तिष्ठतीत्वर्थः ॥ २६ ॥ घटा मेघजालमेव पट आच्छादको यस्यास्तथाविधा प्रावृष्ट् वर्षेतुः ॥ २० ॥ अस्या अज्ञानावृत-चिच्छक्तेः । असन्मयात्मकमरात्यमायाविकारतादात्म्यापन्नम् ॥ २८ ॥ २९ ॥ अस्या आत्महप्टेरदर्शनं दर्शनविरोध्यावरण-रूपम् ॥ ३० ॥ रूपरहिता खरूपग्रन्या ॥ ३१ ॥ दशान्तान्त-राण्यप्याह—यथेत्यादिना । आशयं खचित्तवृत्तान्तम् ॥ ३२ ॥ तस्वपर्यालोचने सर्पादिश्रमनिष्टत्तिरप्यत्र दष्टान्त इत्याशयेनाह —यथेति । अवस्तु सर्पादि कीटक् । किं वास्तवमुत मन्ना-न्तिकल्पितमिति यावद्विकल्प्यते विमृश्यते । अन्धता तमः-कृतदर्शनशक्तिप्रतिबन्धः ॥ ३३ ॥ अभ्येति चेदिति शेषः । यथा तमो विलीयते तथा सर्वे साविधं जगत्॥ ३४॥ तमो-रूपादर्शननिदर्शनं विश्वणोति—नचेति । **दीपे आ**नीयमाने सतीति शेषः॥ ३५ ॥ मन्दमालोक्यमाना मन्दं याति सम्यगालोक्यमाना पलायते ॥ ३६ ॥ कृतस्तस्या अवस्तुस-मिति चेत्खप्रतीतिबलादेवेखाहु—आलोक इति । आलोके

आत्मा शक्तिः पदार्थेषु तथा घटपटादिषु। सर्वत्र सत्तासामान्यरूपमाश्रित्य तिष्ठति ॥ २६ इतीयमिखला दृशयदशामापूर्य संस्थिता । यथा घटापटा प्रावृडम्बरालम्बिनी तथा ॥ २७ स्वरूपमस्याश्चेवैतत्कथितं प्रविचारितम् । असर्वे सर्वतो व्यापि सदिवासन्मयात्मकम् ॥ २८ आत्मदृष्टिरदृष्टेया संसारभ्रमदायिनी । द्या सती समग्राणां दुःखानां क्षयकारिणी ॥ २९ अम्यास्त्वदर्शनं यत्तद्विद्येत्युच्यते वुधैः । अविद्या हि जगद्धेतुस्ततः सर्वे प्रवर्तते ॥ ३० अबिद्यारूपरहिता यावदेवावलोक्यते । तावदेव गलत्याशु तुहिनाणुर्यथातपे ॥ ३१ यथा नरो गलक्षिद्रो यावत्कलनया मनाकु। विमृशत्याशयं तावित्रद्रा तस्य विलीयते ॥ ३२ यथा कीद्दगवस्त्वेतदिति याचद्विकल्प्यते। अविद्या क्षीयते तावदालोकेनान्धता यथा ॥ ३३ दीपहस्तो यथाभ्येति तमोरूपदिदृक्षया। तथा विलीयते सर्वे तमस्तापैर्घतं यथा ॥ રેક नच संलक्ष्यते दीपे तमसो रूपनिश्चयः। उदेति केवलं ध्वान्तध्वंसो विमलमूर्तिमान्॥ 34 एवमालोक्यमानैया कापि याति पलायते । असद्र्षा द्यवस्तुत्वादृदयते द्यविचारणात्॥ 38 आलोक आगते यादकमस्तद्दश्यते तथा। या वस्तुत्वे त्वविद्यायास्त्ववस्तुत्वं प्रतीयते ॥ ३७

यावजालोक्यते तावज किंचिद्पि दृश्यते ।
आलोकिते यथा विद्या तत्त्रथा प्रतिपद्यते ॥ ३८
रक्तमांसास्थियकेऽसिन्कः स्यामहमिति स्वयम् ।
यावद्विचार्यते तावत्सर्वमाद्यु विलीयते ॥ ३९
आधन्तयोरसदूपे नृनं परिहृते हृदा ।
सर्वसिकेव यः शेषस्तमविद्याक्षयं विदुः ॥ ४०
तन्न किंचिन्न किंचिद्या तत्सदृष्टीच शाश्वतम् ।
तद्वस्तु तदुपादेयं यद्विद्या निचर्तते ॥ ४१
रूपं स्वनाम्न एवास्या ज्ञायते निःस्यभावकम् ।

निह जिह्वागतस्वाधस्वादोऽन्यसात्प्रतीयते ॥ ४२ नायिधा कविद्ण्यस्ति प्रक्षेवेद्मखण्डितम् । सद्सत्कलनास्फारमशेषं येन मण्डितम् ॥ ४३ एतावदेवाविद्याया नेदं ब्रह्मेति निश्चयः । एतदेव श्रयो यस्या ब्रह्मेदमिति निश्चयः ॥ ४४ घटपटशकटावभासजालं न विभुरितीत्युदितेह् सा त्वविद्या । घटपटशकटावभासजालं विभुरिती चेद्रलितेव सा त्वविद्या ॥ ४५

इस्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे अविद्याचिकित्सानाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकाद्दाः सर्गः ११

श्रीवसिष्ठ उवाच ।
पुनःपुनरिदं राम श्रवोधार्थं मयोच्यते ।
अभ्यासेन विना साधो नाभ्युदेत्यात्मभावना ॥ १
अज्ञानमेतद्गलवद्विद्येतरनामकम् ।
जन्मान्तरसहस्रोत्थं घनं स्थितिमुपागतम् ॥ २
सवाद्याभ्यन्तरं सर्वैरिन्द्रियरनुभूयते ॥
भाषाभावेषु देहस्य तेनातिघनतां गतम् ॥ ३
आत्मज्ञानं तु सर्वेषामिन्द्रियाणामगोचरम् ।

आगते सति तत्तमो यादक् असद्रूपं दश्यते तथा या अविद्या-प्यसती दृश्यते । ननु न तमस आलोकेन वाघः । त्रैकालि-कलाप्रतीतेः । किंतु औष्ण्येन जरुशैत्यस्येत्र तिरोभावमात्रम् । आलोकापगमे पुनस्तदर्शनादिति । तमसोऽवस्तुत्वे तु अस्तु तत्त्रया । अविद्यायास्त्रवस्तुःतं त्रैकालिकबाधानुभवेन प्रतीयत एवेलार्थः ॥ ३७ ॥ किंचिच्छक्तिरज्ञवादापि वा रजतसपीदापि बा याबद्विचार्य नालोक्यते तावतत्त्वतो न दृश्यते । आलोकिते तु यथा यावत्स्वभावा अविद्या यथा च वस्तुतत्त्वं वर्तते तत्त-**थेष प्रतिपद्यत इ**स्पर्थः ॥ ३८ ॥ कथं विमृत्यालोकनं कार्य तदाह-रक्तेति ॥ ३९ ॥ एवं विचारवता हृदा मनसा आद्यन्त-योरसद्वपे सर्वस्मिन् दृश्ये परिहृते सति यः शिष्यते इति शेप-बिदातमा । अध्यस्तवाधस्याधिष्ठानाव्यतिरेकादिति भावः ॥४०॥ ॥ ४९ ॥ बाध्यस्य निःखरूपत्वे तद्वाधस्याहममात्रस्वे वा न प्रमाणान्तरं मृत्यम् । माया अविद्यादिनाम्रस्तादशस्वाप्राद्यर्थे-व्वेव रूढलादिखाइ--रूपमिति ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ एवं सित फलितं निष्कृष्टमनिद्यातत्क्षययोः सरूपमाह—एतानदिति । अविद्यायाः खरूपमिति शेषः ॥ ४४ ॥ तदेव विवृण्य त्रुपसंह-रति—घटेति । घटः पटः शकटं चेलायवभासमानं जगजालं विभुरपरिच्छिन्नसमिदातमा न किंखन्यदित्यादिरारोपितदृष्टिरेवा-**बिचा तदपवादेनापरिच्छित्रसन्मात्रदृष्टिरेव** तत्क्षय इत्यर्थः ॥४५ सत्तां केवलमायाति मनःषष्ठेन्द्रियक्षये॥ ४ प्रोल्लक्ष्येन्द्रियजां वृत्तिं यत्स्थितं तत्कथं किल। याति प्रत्यक्षतां जन्तोः प्रत्यक्षातीतवृत्तिमत्॥ ५ त्वमविद्यालतामेतां प्ररुढां हृद्यनुमे। शानाभ्यासविलासासिपातैच्छिन्धि स्वसिद्धये॥६॥ यथा विहरति शातशेयो जनकभूपतिः। आत्मश्वानाभ्यासपरस्तथा विहर राघव॥ ७

इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्थे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

> जीवन्मुक्ता यया दृष्या स्थिता हरिहराद्यः । सर्वे ब्रह्मोति सा दृष्टी रामायात्रोपदिज्यते ॥ १ ॥

उपदिष्टस्यैवार्थस्य पुनःपुनर्भक्षयन्तरेणोपदेश उपदेश्यार्थः व्युरपत्तिदार्क्यार्थः । रष्टफलाहि श्रवणादयोऽवघातादिवद्याव-त्फलोदयमावर्तनीयाः । तथा हि भगवतो बादरायणस्य सूत्रम् 'आवृत्तिरसष्टदुपदेशात्' इति । इति रहस्यं जामितादो-षपरिहारेणोत्साहजननायोद्धाटयनप्रकृतामविद्याक्षरो श्रोतुं राममभिमुखीकरोति—पुनःपुनरिति ॥ १ ॥ कुतो नाभ्युदेति तत्राह-अज्ञानमिति । सहस्रपदमानन्त्यप-रम् । तथा चानन्तकोटिजन्माभ्यस्तद्वैतवासनास्थिरीकृतलाम सक्तदुपदेशात्सूच्छेदमित्यर्थः ॥ २ ॥ चक्षुरादिप्रबलतरबाह्या-भ्यन्तरबहुप्रमाणप्राह्यद्वैतरूपलाच प्राबल्यमिलाह—सबाह्या-भ्यन्तरमिति । देहस्य भावे जीवनजागराद्यवस्थासु इन्द्रियैः । अभावे मरणप्रलयाद्यवस्थासु साक्षिणा सदानुभूयते । अतिघन-तामतिप्राबल्यम् ॥ ३ ॥ ज्ञानस्य च सामम्या दौर्रुभ्यं दर्शयति ---आत्मेति द्वाभ्याम् ॥ ४ ॥ प्रोहत्त्व्य अतिकम्य ॥५॥ अत-एव पुनःपुनरुपदेशस्य मननाद्यभ्यासस्य चाविद्यालतानाप्रता-नच्छेदनेन सार्थक्यमित्याशयेनोपसंहरति-त्वमिति ॥ ६॥ ७॥

१०

११

१२

१५

१६

8/0

१८

१९

२०

निश्चयोऽयमभूत्तस्य कार्याकार्ये बिहारिणः। जायतस्तिष्ठतो वापि तज्ज्ञानां तेन सत्यता॥ निश्चयेन हरियेंन विविधाचारकारिणा। योनिष्ववतरत्युर्व्या तत्त्वज्ञत्वमुदाहृतम् ॥ निश्चयो यिखनेत्रस्य कान्तया सह तिप्रतः। ब्रह्मणो वाप्यरागस्य स ते भवतु राघव ॥ यो निश्चयः सुरगुरोर्चाक्पतेर्भार्गवस्य च । दिचाकरस्य शशिनः पवनस्यानसस्य च ॥ नारदस्य पुलस्त्यस्य मम चाङ्गिरसस्तथा । प्रचेतसो भृगोधीव क्रतोरकेः ग्रुकस्य च॥ अन्येपामेच वित्रेन्द्र राजर्षीणां च राघव। यो निश्चयो विमुक्तानां जीवतां ते भवत्वसी॥ १३ श्रीराम उवाच ।

येनैते भगवन्धीरा निश्चयेन महाधियः। विशोकाः संस्थितास्तन्मे ब्रह्मन्प्रबृहि तत्त्वतः ॥१४

श्रीवसिष्ट उवाच । राजपुत्र महाबाहो विदिताखिलवेदा है। स्फुटं श्र्णु यथा पृष्टमयमेषां हि निश्चयः॥ यदिदं किंचिदाभोगि जगज्जालं प्रदृश्यते । तत्सर्वेममलं ब्रह्म भवत्येतद्यवस्थितम् ॥ ब्रह्म चिद्रह्म भुवनं ब्रह्म भूतपरम्पराः। ब्रह्माहं ब्रह्म मच्छत्रुब्रह्म सन्मित्रवान्धवाः॥ ब्रह्म कालत्रयं तश्च ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम्। तरङ्गमालयाम्भोधिर्यथात्मनि विवर्धते ॥ तथा पदार्थलक्ष्मयेत्थमिदं ब्रह्म विवर्धते । गृह्यते ब्रह्मणा ब्रह्म भुज्यते ब्रह्म ब्रह्मणा ॥ ब्रह्म ब्रह्मणि बृंहाभित्रेह्मशत्त्रयेव बृंहति । ब्रह्म मच्छत्रुरूपं मे ब्रह्मणोऽप्रियक्टचि ॥

अयं मदनुभवानुसारी निथयः कार्येण बहिर्व्यवहारेण अका-र्येण समाधिना च विहारिणस्तस्याभूत् । तदेवाभ्यासफलं क्षानं तेन क्रानेनेवाभिव्यक्तस्य खरूपस्य सस्यता नापातक्रानेने-त्यर्थः ॥ ८ ॥ योनिषु गर्भवासादिकृच्छ्रेष्ववतरति । अवतरन्नपि न तत्प्रयुक्तदुःस्तः स्पृश्यत इत्यर्थः । एवमुक्तरेष्वप्यूह्मम् ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ एवकारो जीवतामित्यनेन संबध्यते ॥ १३ ॥ प्रश्नः साष्टः ॥ १४ ॥ अयं वक्ष्यमाणप्रकारः ॥ १५ ॥ तमेवाह-यदिदमित्यादिना । व्यवस्थितं मायिकाव्यवस्थितह-पलागेन पारमार्थिकस्वरूपे स्थितम् ॥ १६॥ संक्षिप्योक्तमेव विस्तराद्विशिष्य दर्शयति- ब्रह्मेति ॥ १७ ॥ विवर्धते विजृ-म्मते ॥ १८ ॥ सर्विक्रयाकारकफलानां ब्रह्मतैवेलाशयेनाह-गृह्मत इति ॥ १९ ॥ ब्रह्मशक्तया मायया । बृंहामिविंवर्तैः । बृंहति वर्धत इव । अनया दशा न कचिद्वेषरागादिप्रसक्तिर-त्याशयेनाह—महोति । अप्रियकृदनिष्टकर्त् ॥ २०॥ तत्तिही ॥ २१ ॥ अत्र ब्रह्मणि । सर्वस्मिन्पूर्णे । चरणस्पन्दनं गमनं

तद्रह्मणि ब्रह्मनिष्ठं किमन्यत्कस्यचित्कृतम्। रागादीनामवस्थानं कल्पितानां खबुक्षवत्॥ २१ असंकल्पेन नष्टानां कः प्रसङ्घोऽत्र वर्धते । ब्रह्मण्येच हि सर्विसिश्चरणस्पन्दनादिकम्॥ २२ र्फुरति ब्रह्म सकलं सुखितादुःखिते कुतः। ब्रह्म ब्रह्मणि संतुनं ब्रह्म ब्रह्मणि संस्थितम् ॥ 23 स्फुरति ब्रह्मणि ब्रह्म नाहमसीतरात्मकः। घटो ब्रह्म पटो ब्रह्म ब्रह्माहमिदमाततम् ॥ २४ अतो रागविरागाणां मृषेव कलनेह का। मरणब्रह्मणि स्वैरं देहब्रह्मणि संगते॥ २५ दुःखितानाम केव स्याद्रज्जुसर्पम्रमोपमा। संभोगादौ सुसं ब्रह्मण्यास्थिते देहब्रह्मणि ॥ २६ संपन्नमेतन्म इति मुधा स्यात्कलना कुतः। वीच्यम्भसोः स्पन्द्वतोर्न त्वन्यद्म्बुनो यथा ॥२७ त्वसामसे तथा न स्तो ब्रह्मणि स्पन्दरूपिणि । यथावर्तमृते तोये न किंचिन्म्रियते कचित्॥ २८ मृतिब्रह्मत्वमायाते देहब्रह्मणि वै तथा। यथा चलाचले तोये त्वत्तामत्ते न तिष्ठतः॥ २९ तथा जडाजडे रूपे न स्थिते परमात्मनि। कटकत्वं यथा हेस्रो यथावर्ती जलस्य च ॥ ३० तदतद्भावरूपेयं तथा प्रश्नतिरात्मनः। इदं हि जीवभूतात्म जडरूपमिदं भवेतु॥ 39 इत्यशानात्मनो मोहो नच शानात्मनः कचित्। अन्नस्य दुःखौघमयं न्नस्यानन्दमयं जगत्॥ 32 अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सचक्षुपः। जगदेकात्मकं श्रस्य मूर्खस्यातीव दुःखदम्॥ 33 शिशोरिय स्फुरद्यक्षा निशा पुंसस्तु केवला। अस्मिन्ब्रह्मघटे नित्यमेकस्मिन्सर्वतः स्थिते॥ 38

तदादिकम् ॥ २२ ॥ यतः सकलं ब्रह्म सुखेकरसं स्फुरत्यतो दुःखितादि कुतः ॥ २३ ॥ २४ ॥ अनया दशा आत्यन्तिकी-मभयप्राप्तिमाइ---मरणेति ॥ २५ ॥ एवमात्यन्तिकी भोगरा-गनिवृत्तिरपि सिध्यतीत्याह—संभोगेति ॥ २६ ॥ कलना इच्छा । स्पन्दवतोः सतोरम्बुनोऽन्यद्यथा किचिदपि नास्ति तथेखर्थः ॥ २० ॥ स्पन्दो रागद्वेषादिना चलनं तद्विपिण । तत्प्रयोजके इतियावत् । आवर्तस्य मृते नाशे ॥ २८ ॥ तथा देहब्रह्मणि मृतिब्रह्मलमायातेऽपि न किंचिन्त्रियते इल्पर्यः। जडरूपापरित्यागेनैव सर्वपर्यायेषु ब्रह्मता मामाहीति तिभवे-धति-यथेति । नलानले नमले नले अनले नेति वा ॥ २९ ॥ जडरूपामाचे प्रतियोग्यप्रसिद्धावजडमिति तद्यावृत्तरूपस्याप्यप्र-सकेरिति भावः ॥ ३० ॥ तस्येव अतदिव भावो यया तथा-रूपा प्रकृतिमीयिकः खभावस्तद्वशादेव जीवजडरूपमेदकल्पमे-त्याह—इदमिति ॥ ३१ ॥ अतएव तत्त्वविदः सर्वे जगदान-न्दैकरसमेवेलाह-अञ्चलेति ॥३२॥ ३३ ॥ यथा निशा रात्रिः

म किंचिन्ध्रियते नाम नच किंचन जीवति। यथोहासविलासेषु न नदयति न जायते॥ 34 तरङ्गादिमहाम्भोधौ भृतवृन्दं तथात्मनि। इवं नास्तीदमस्तीति भ्रान्तिनीमात्मनात्मनि॥ शक्तिनिंहें तुकेवान्तः स्फुरति स्फटिकां शुवत्। जगच्छत्तयात्मनात्मेव भ्रष्ता स्वात्मनि संस्थितम् ३७ तरङ्गकणजालेन पयसीय पयो घनम्। शरीरनाशेन कथं ब्रह्मणो मृतधीर्भवेत्॥ 36 ब्रह्मणो व्यंतिरिक्तं हि न शरीरादि विद्यते। पयसो व्यतिरेकेण तरङ्गादि महार्णवे ॥ 30 यः कणो या च कणिका या वीचिर्यस्तरङ्गकः। यः फेनो या च लहरी तद्यथा वारि वारिणि ॥ ४० यो देहो या च कलना यहदयं या क्षयाक्षया । या भावरचना योऽर्थस्तया तहहा ब्रह्मणि॥ ક્ષ संस्थानरचना चित्रा ब्रह्मणः कनकादिव। नान्यरूपा विमुढानां सृषेव द्वित्वभावना ॥ ઇર मनो बुद्धिरहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च। ब्रह्मैय सर्व नानात्म सुखं दुःखं न विचते॥ ઇરૂ अयं सोऽहमिदं चित्तमित्याद्यथांत्थया गिरा। शब्दप्रतिश्रवेणाद्वावियात्मात्मनि जुम्भते॥ 88 ब्रह्मैवाद्यातमञ्जलमभ्यागतमिव स्थितम्। तथा हि दृश्यते स्वप्ने चेतसात्मात्मनात्मनः ॥ ४५ अभावितं ब्रह्मतया ब्रह्माज्ञानमलं भवेत्।

शिशोर्षालस्य दशा स्फुरन्स्वभ्रान्तिपरिकल्पितो यक्षो यस्या तथाविचा । पुंसी युवरृद्धपुरुषस्य केवला निर्यक्षा । ब्रह्मलक्ष्णे पूर्णामृतघटे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ शक्तिमीयास्फटिकस्यांशुरने-कप्रतिबिम्बप्रहणयोग्यतापादकस्वच्छता सेव यथा नानाप्रतिबि-म्बतत्तद्भणिकयादिवैचित्र्यात्मना अन्तः स्फुरति तद्वत्सा जगदा-त्मना तत्तत्पदार्थशक्त्यात्मना च स्फुरति प्रथते । सा च प्रथा आत्मैव तथ ब्रह्म स्वात्मन्येवाद्वये संस्थितम् ॥ ३७ ॥ अतएव शरीरनाशेन नात्मनाश इति दशन्तेनोपपादयति चतुःमिः ॥ ३८॥ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कलना इन्द्रियव्यापारः । दश्यं भोग्यम् । क्षयाक्षयी विपत्संपदी । भावा हर्षविषादादयस्तद्रचना । अर्थः पुरुषार्थभोगः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यथा एकएव शब्दः अदी पर्वतसंनिधी प्रतिश्रवेण प्रतिश्वन्यात्मना द्विरुक्त इव ज्रम्भते तथा देहचित्तवाह्यार्थादिरूपनाममेदेनात्मैय जूम्भत इलार्थः ॥४४॥ अञ्चरवं जीवजगद्भावम् । तत्र 'आत्मिन चैव विचित्राश्च हि' इति बादरायणोक्तं स्वप्नदृष्टान्तमाह-तथाहीति ॥ ४५ ॥ अज्ञानस्यात्यन्तविरुद्धासंभावितकारिता लोके प्रसिद्धैवेत्याह-अभाषितमिति ॥ ४६ ॥ अतएव तदश्वदशैवाञ्चानरूपं न तस्त्र-इद्देखाह—खयंत्रभुरिति ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ भात्मा खयंब्रह्म यथा जीवजगद्रपेण तास्विकवहारूपेण वा भावयति ॥ ४९ ॥ अभावितं हेमतया यथा हेम च मृद्धवेत ॥ 2% स्वयं प्रभुमेहात्मेव ब्रह्म ब्रह्मधिदो विदः। अपरिकातमञ्जानमञ्जानामिति कथ्यते ॥ ષ્ટ शातं ब्रह्मतया ब्रह्म ब्रह्मेव भवति क्षणात्। बातं हेमतया हेम हेमेव भवति क्षणात्॥ 30 ब्रह्मात्मा सर्वेशिकार्हि नद्यथा भावयत्यस्म । निहेंतुकः स्वयं शनया तत्त्रधाशु प्रपद्यति ॥ 80 अकर्मकर्तृकरणमकारणमनामयम्। स्वयं प्रभुं महात्मानं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ॥ 100 अपरिज्ञातमञ्चानामञ्चानमिति कथ्यते। :48 परिश्वातं भवेज्ञ्ञानमञ्जानपरिनादानम् ॥ बन्ध्रेवापरिकातो हाबन्ध्ररिति कथ्यते। परिकातो भवेद्वन्धुरवन्धुभ्रमनाशनात्॥ ५२ इदं त्वयक्तमिलन्तर्काते सोदेति भावना । यसाद्युकाद्वैरस्याद्यया किल विरज्यते ॥ **ં**ર્ द्वैतं त्वसत्यमित्यन्तर्ज्ञाते सोदेति भावना । तसाद्वैताच वैरस्याद्यया किल विरज्यते ॥ CS अयं नाहमिति ज्ञाते स्फूटे सोदेति भावना। मिथ्याहंकारता तसाद्यया नुनं विरज्यते ॥ 1,10 ब्रह्मैवाहमिति ज्ञाने सत्ये सोदेति भावना। तस्मिन्सत्ये निजे रूपे यथान्तः परिलीयते । सति विस्तारजे तिसन्ब्रह्मेदमिति वेदयहम् ॥ त्वमहंत्वादिबाधे तत्सदित्यादि जगद्गतम्।

अतएव तत्त्वविदो न जीवजगद्भावेन परयन्तीत्याह-अक-र्मेति । खबोधात्स्रभावे खयं प्रभवतीति खयंप्रभुक्तम् ॥ ५० ॥ ॥ ५९ ॥ ५२ ॥ तर्दि जीवजगतीर्बह्ममात्रतामावना सहरीय सर्वेषां कुतो नोदेति वैराग्यामावादिति चेत्तखेतव एव तही-च्यन्तां तत्राह—इदं त्यिखादिना । इदं जीवजगद्भामयुक्त विचारासहमिति ज्ञाने सति सा ब्रह्मभावना उदेति । अस्पादे-तोरयुक्ताच्छुक्तिरजतादेवेरस्यप्रसिद्धेयया विचारणया जगत इव भोग्यवर्गादपि विरज्यने पुरुष इत्यर्थः ॥ ५३ ॥ उक्ता दिन्हाः रणा जगद्विषये तत्पदार्थशोधनतया पर्यवस्पतीत्याशयेन जग-दंशे उक्तमेव स्फुटमाह—द्वैतमिति ॥ ५४ ॥ जीवांशेऽपि गः त्वंपदार्थशोधनतया पर्यवस्यतीत्याशयन तदंशेऽप्युक्तं स्फटयनि -अयमिति । अयं देहादिकार्यकारणसंघातो नाहमिति हाते गति ॥५५॥ पदार्थशोधकफलभूनाखण्डवाक्यार्थवोधतयापि सा पर्य-वस्यतीत्याशयेन तस्मिन् जीवजगद्भावयोर्याधरुक्षणं सर्व रफ्ट यति—ब्रह्मेवेति ॥ ५६ ॥ अखण्डाकारबोधे सति स्थितमपि जगत्सदेकरसं ब्रह्मेव न पूर्ववदुः खरूपमित्याशयेनाह-सतीति द्वाभ्याम् । तस्मित्रखण्डवाक्यार्थे विस्तारजे अपरिच्छित्रस्वभा-वेनाविभेते सति लंलमहंलमादिपदादिदंलं च तेषा बाधे सति तत् प्राक् प्रसिद्धं सत् आदिपदाद्वाति प्रियं नाम रूपमिति

सत्यं सर्वप्रकारात्यं ब्रह्मद्मिति वेदयहम्॥ 40 न में दुःखं न कमीणि न में मोहो न वाञ्छितम्। समः स्वस्थो विशोकोऽसि ब्रह्माहमिति सत्यता ५८ कलाकलङ्कमुक्तोऽस्मि सर्वमस्मि निरामयः। न खजामि न वाञ्छामि ब्रह्माहमिति सत्यता ॥५९ अहं रक्तमहं मांसमहमस्थीन्यहं वपुः। चिद्रहं चेतनं चाहं ब्रह्माहमिति सत्यता॥ द्यारहं खमहं सार्कमहमाशा भुवोऽप्यहम्। अहं घटपटाकारो ब्रह्माहमिति सत्यता ॥ ६१ अहं तृणमहं चोवीं गुल्मोऽहं काननाचहम्। शैलसागरसाथांऽहं ब्रह्मैकत्वं किल स्थितम् ॥ ६२ आदानदानसंकोचपूर्विका भूतशक्तयः। सर्वमेव चिदात्मासि ब्रह्मण्याततरूपधृक् ॥ ६३ लतागुल्मश्चारादीनामहंसंभवनेषिणाम्। चिदातमान्तर्गतं शान्तं परं ब्रह्म रसात्मकम्। દ્દપ્ર यस्मिन्सर्वे यतः सर्वे यत्सर्वे सर्वतश्च यत् । यो मतः सर्वे एकात्मा परं ब्रह्मेति निश्चयः॥ ६५ चिदातमा ब्रह्म सत्सत्यमृतं श्र इति नामभिः। प्रोच्यते सर्वगं तत्त्वं चिन्मात्रं चेत्यवर्जितम् ॥ ६६ आभासमात्रममलं सर्वभूतात्मबोधकम्। सर्वत्रायस्थितं शान्तं चिद्रह्मेत्यनुभूयते ॥ 63

पश्चरूपमिदं जगद्रतं वस्तुजातं ब्रह्मेवेति वेद्यात्यर्थः ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ तत्स्वभावस्थितमेव परमपुरुषार्थतया वर्णयति—सम इलादिना ॥ ५९ ॥ त्वंतत्पदार्थशोधनमपि परिच्छेदपारोक्ष्य-निरासायैय, तिशरासेन सार्वातम्यलामे तु रक्तमांसादिरूपदेहा-दिरप्यात्मैवेति न निरासाईमिखाशयेनाह--अहं रक्तमिखा-दिना ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ शैलाः सागराः सार्थः प्राणिसङ्ख-श्राहम् । भूतशक्तयः प्राणिधर्माः ॥ ६३ ॥ संभवनमङ्करकाण्ड-प्रतानशाखाद्याविर्भावस्तदेषिणाम् ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ॥ ६० ॥ अनुभूयते । ब्रह्मविद्धिरिति शेषः । ननु प्रतिपुरुषं मनोबुद्धीन्द्रयवृत्तिमेदेन चिति मेदानुभवात्कथं सा ब्रह्म स्वात्त-त्राह-मन इत्यादिना । समस्तामु कलनामु वृत्तिष्वन्वितमनु-गतम् ॥ ६८ ॥ खं प्रत्यक्खरूपमेव मा प्रमा तदाभासं खप्र-काशम् । शब्दादीनां तत्कारणानामाकाशादीनां तत्कृतजगित्थ-तेश्व तत्त्वावकाशकं सत्ताप्रथाखरूपम् ॥ ६९ ॥ समस्तकछना-न्वितलसुपपादयशुक्तभेव स्फुटमाइ-अनारतेति । अमिवि-रफुलिङ्गधाराबद्दन्युपाधिधाराभिरनारतं गलन्त्यो निःसरन्त्यो या-श्रिद्धारास्तासां गहनात्मकमाकरस्थानीयं प्रखगात्महृपम्॥७०॥ मुमनसां योगिनां मौनमनुभूयमानमप्यभिलपितुमशक्यम् । अमृतं परं निरतिशयानन्दरूपम् । एतदपि पूर्ववदुपपादयन्नुक्त-मेवाह्-अनारतेति । अहंकारलक्षणानि निःशेषाणि समस्तानि भोक्तचकाणि प्रति तत्तद्रोगवृत्तिधारोपाधिभर्मधुधारावदनारत-बलद्र्यं कृटस्थनित्यानुभवानन्दैकरसं चिद्रशाहमित्यन्वयः॥७९॥

मनोबुद्धीन्द्रियवातसमस्तकळनान्धितम्। मेदं त्यक्त्वा स्वमाभासं चिद्रशाहमनामयम् ॥ ६८ शब्दादीनामशेषाणां कारणानां जगत्स्थितेः। तस्वावकाराकं स्वच्छं चिद्रह्मास्मि न मे क्षयः॥ ६९ अनारतगलत्खच्छचिद्धारागहनात्मकम्। आलोकः सुमनोमौनं चिद्रह्मास्म्यमृतं परम् ॥ ७० अनारतगलदूपं नित्यं चातुभवासृतम्। अहं निःशेषचक्राणि चिद्रह्माहमलेपकम्॥ ७१ सुपुप्तसद्दशं शान्तमालोकविमलात्मकम्। संभोगोत्तममाभासं चिद्रह्यास्म्यपवासनम्॥ ७२ खण्डादिस्वाद्संवित्तिरीयन्मात्रा त तिष्ठति । चित्तादिष्वववुद्धेषु तद्धि ब्रह्माहमच्युतः॥ ७३ कान्तासंसक्तविषस्य चन्द्रे समुदिते सति। चन्द्रप्रत्ययसत्वातम चिद्रह्माहमनामयम् ॥ OS भूमिष्टनरदृष्टीनां लग्नानां खे निशाकरे। या खस्था ननु चिच्छक्तिस्ति बद्द्रह्मास्ति निर्मेलम्७५ सुखदुःखादिकलनाविकलो निर्मलस्तथा । सत्यानुभवरूपात्म चिद्रह्मात्मास्मि शाश्वतः॥ ७६ असंस्तृताध्वगालोके मनस्यन्यत्र संस्थिते। या प्रतीतिरनागस्का तिश्वद्वह्यासि सर्वगः॥ ७७ भूवार्यनिलबीजानां संवन्धेऽङ्करकर्मसु ।

निलं चानुभवामृतमिल्यतत्समाधिनिष्ठानुभवेनोपपादयन्नाह — सुषुप्तेति ॥ ७२ ॥ संभोगा मानुषानन्दादिहैरण्यगर्भान्तविषय-सुखानि तेम्योऽप्युत्तमम् । आभासं सर्वतः प्रकाशमानम् । संभोगोत्तममिति यदुकं तदुपपाद्यानुभावयति -- खण्डादीति । रसनादिभिरिन्द्रियः खण्डवार्करादिखादुसंवित्तिरीषन्मात्राखण्ड-रसस्य जिह्वातः कण्ठोपसर्पणपर्यन्ताल्पतरदेशकालपरिच्छित्रा तिष्ठति, सैव तु खपरिच्छेदहेतुषु चित्तचेखचेतयितृषु खप्रकाशा-नन्दैकरसतयावयुद्धेषु सत्सु परिच्छेदोपाधिच्युतावपि च्युति-रहितात्मा तदेव निरतिशयानन्दं ब्रह्माहमित्यन्वयः ॥ ७३ ॥ ननु ज्ञानस्य विषयोपाधिनिर्मुका स्थितिरैवाप्रसिद्धेत्याशस्य तत्प्रसिद्धिं दर्शयति कान्तेति । निशि कान्तासंसक्तियत्तस्य चन्द्रोदये सति चन्द्रकान्तोभयदर्शने अन्तराले देशे चितो विच्छेदाननुभवाश्वन्दाकारप्रखयपर्यन्तमविच्छित्रससात्मकं नि-र्विषयं चिद्रह्म प्रसिद्धं तदेवाह्मित्यर्थः ॥ ७४ ॥ भूमिष्ठेति तसीव स्फुटीकरणम् ॥ ७५ ॥ खस्था आन्तरालिकनभःप्रदे-शस्था । उदासीनानां सुखदुःखाद्या**कारपृत्यन्तरशून्यतादशायां** निर्विषयस्वात्मप्रथा प्रसिद्धेनेत्याशयेनाह—सुखेति ॥ ७६ ॥ एवमिहस्थस्य पुंसोऽन्यत्र दूरस्थे विषये न संस्तुतः संपादि-तोऽध्वगानामन्तरालमार्गस्थानां पदार्थानामालोको येन तथा-विधे मनसि संस्थिते सति अन्तराले देशे अनागस्का विषयसं-स्पर्शापराधश्च्या या प्रतीतिथिन्मात्रं तदिखर्यः ॥ ७७ ॥ संबन्धे मेलने सति अङ्कारलक्षणेषु कर्मसु कार्येषु उद्गमनीया

शक्तिरुद्रमनीयान्तस्तिश्रद्धाहमाततम् ॥ खर्जूरनिम्बबिम्बानां स्वयमात्मनि तिष्ठताम्। या स्वादसका लीनान्तस्तद्रह्म चिद्हं समः॥ ७९ खेदानन्दविमुक्तान्तःसंवित्तिर्मननोदया । लाभालाभविधौ तुल्या चिद्रह्मासि निरामयम् ८० याबद्भम्यर्कमेताबर्षाष्ट्रसूत्रं यदाततम् । तन्मध्यसद्दशं शान्तं निर्मलं चिदहं ततम्॥ ८१ जामस्यपि सुषुप्तेऽपि तत्स्वप्नेऽपि तथोदितम्। तुये रूपमनाद्यन्तं चिद्रह्माहमनामयम्॥ पुंसां क्षेत्रशतोत्थानामिक्षूणां स्त्रादुवित्स्थतम्। सर्वेपामेकरूपं तिश्वद्वह्यास्मि समः स्थितः॥ ८३ सर्वगा प्रकृता स्वच्छरूपा भानोरिव प्रभा । आलोककारिणी कान्ता चिद्रहोदमहं ततम्॥ **८**८ संभोगानन्दरुववदमृतास्वादशक्तिवत् । खानुभृत्येकमात्रं यश्चिद्धशास्मि तदव्ययम्॥ 24 मोताङ्गमपि गुप्तास्यं देहे तन्तुर्विसे यथा। छेदे मेदे स्फुरदूपं चिद्वह्याहमनामयम् ॥ आक्रान्तभुवनाप्यभ्रमालेच स्पन्दशालिनी। दुर्रुश्याणुमयाकारा चिच्छकिरहमातता ॥ ୯୬ अनुभूतिमयान्तस्थक्षेहमात्रोपलक्षिता । श्रीराद्धृतस्य सत्तेव चिद्दं क्षयवर्जिता॥ 26 **कटकाङ्गदकेयूररचना तदतन्मयी।** हेम्रीव संस्थिता देहे चिद्रह्मात्मासि सर्वगः॥ ८९ पदार्थीघरा शैलादेवीहरन्तश्च सर्वदा। सत्ता सामान्यरूपेण या चित्सोऽहमलेपकः ॥ ९०

पहिनिर्गमनानुकूला या चिच्छक्तिस्तद्रद्वोलार्थः ॥ ७८ ॥ सर्जु-रादीनां फलानामात्मनि स्वीये जडखभावे तिष्ठतां रसभेदानां खयमन्तर्लीना रासनादिवृत्त्यभिव्यक्ता प्रथारूपा या खादसता त्रदेव ब्रह्मेखर्थः ॥ ७९ ॥ किंच यैव संवित्तिरिष्टकाभालाभयोः खेदानम्दवती प्रसिद्धा सेव शास्त्रानुसारिमननोदयविशोधिता-सती खेदानन्दविनिर्भुक्ता चेत्तदेव ब्रह्मेत्याह—खेदेति ॥ ८०॥ भूमिष्ठस्यादित्यं पर्यतः पुंसो यावद्भम्यर्कं भूमिमारभ्यार्कपर्यन्तं यत् दृष्टिश्वक्षुस्तलक्षणं सूत्रमाततं विस्तीणंमस्ति तस्य यन्मध्यं नेत्रसूर्योभयासंलप्नभागस्तरसदृशं विषयप्रकाशनसमर्थमपि तद्भि-निर्मुक्तमिखर्थः ॥ ८१ ॥ एवमवस्थात्रयसाक्षिरूपमेव' तस्परि-खागे तुर्यभूतं ब्रह्मेखाह्य—जामदिति ॥ ८२ ॥ सर्वेषां पंता-मन्तः एकरूपं स्थितम् ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ तस्य आन-सामसर्वाज्ञव्याप्ति देहच्छेदादावच्छेधतां बाह्-प्रोताज्ञमपीति। विसतन्तुपक्षे स्पष्टोऽन्वयः ॥ ८६ ॥ भुवनानि लोका जलानि च । वृत्तिवायूपाधिस्पन्दास्पन्दशालिनि ॥ ८७ ॥ दुर्रुक्या **अणवः सूक्ष्मा** जीवा जलकणाध्य तन्मयः कल्पिताकारो सर्वासामनुभूतीनामादशों यो श्वकृत्रिमः। अगम्यो मललेखानां तिचत्तत्वमहं महत्॥ ९१ सर्वसंकल्पफलदं सर्वतेजःप्रकाराकम्। सर्वोपादेयसीमान्तं चिदात्मानमुपासह ॥ ९२ सर्वावयवविश्रान्तं समस्तावयवातिगम्। अनारतकचद्र्यं चिदात्मानमुपासहे ॥ 63 घटे पटे तटे कुपे स्पन्दमानं सदा तनी। जाग्रत्यपि सुषुप्तस्थं चिदात्मानमुपास्पहे ॥ ९४ उष्णमग्नौ हिमे शीतं मृष्टमन्त्र शितं श्चरे। **कृष्णं ध्वान्ते सितं चन्द्रं चिदात्मानमुपास्महे ॥ ९५** आलोकं बहिरन्तस्थं चितं च स्वात्मवस्तुनि । अदूरमपि दूरस्यं चिदातमानमुपासाहे ॥ ९६ माधुर्यादिषु माधुर्ये तीक्ष्णादिषु च तीक्ष्णताम् । गतं पदार्थजातेषु चिदात्मानमुपासाहे॥ ९७ जाव्रत्स्वप्रसुषुप्तेषु तुर्यातुर्यातिगे पदे । समं सदैव सर्वत्र चिदात्मानमुपास्महे ॥ 9.4 प्रशान्तसर्वसंकर्णं विगताखिलकौतुकम्। विगताशेषसंरम्भं चिदात्मानमुपासहे ॥ ९९ निष्कौतुकं निरारम्भं निरीहं सर्वमेव च। निरंशं निरहंकारं चिदात्मानमुपास्पहे ॥ १०० सर्वस्यान्तःस्थितं सर्वमप्यपारैकरूपिणम् । अपर्यन्तचिदारम्भं चिदात्मानमुपागतः ॥ १०१ त्रैलोक्यदेहमुक्तानां तन्तुमुन्नतमाततम् । प्रचारसंकोचकरं चिदात्मानमुपागतः ॥ १०२ लीनमन्तर्वहिःस्वाप्तान्कोडीकृत्य जगत्खगान्।

यस्याः । अनुभृतिमयोऽनुभवमात्रगम्योऽन्तस्यः सारो यस्याः । क्षेष्टशिक्कणता परप्रमा च तन्मात्रोपलक्षिता तदतन्मयी हेांत्र हेमयतेवेति शेषः ॥ ८९ ॥ ५० ॥ अनुभूतीनामनुभववृत्तिभेदानाम् ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ षामुपादेयानामुपादानस्यात्मार्थेखात्तत्सीमान्तम् ॥ ९२ घटपटादी सद्भूपेण स्थितम् । तनी चतुर्विघदेहे सम्दमानं स्फुर-द्भुपं चेष्टानिमित्तभूतं वा । जाधदवस्थायामपि सुपुप्तमित्र परमा-र्थतो निर्विशेषतया स्थितम् ॥ ९४ ॥ अम्योष्ण्यादिसत्ता-त्मनामपि चित् एव स्फरणात्परमार्थतः रेव तानीत्याशयेनाह --- उष्णमिति । मृष्टं माधुर्वम् । शितं निशितम् । तैक्ष्यमित्यर्थः ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ प्रखगात्मलाददुर्मप्यज्ञानाहुरस्थम् ॥ ९७ ॥ गतमिति पूर्वान्वयि ॥ ९८ ॥ कौतुकं कामः ॥ ९९ ॥ संरम्भः कोधः । कीतुकं भोगोत्कण्ठा । आरम्भो यत्नः । ईहा चेष्टा । सर्वं निरवशेषम् ॥ १०० ॥ १०१ ॥ अपर्यन्तानां प्रतिबिन्य-चिता आरम्भा यस्मातम् । त्रैठोत्रयस्थानां देहरुक्षणानां मुक्तानां तन्तुम् ॥ १०२ ॥ प्रचौराचारी जाप्रस्वप्री संकीचः

इन्द्रस्तेन अचारशब्दाजायस्यत्रयोठीमः। अवाचारग्रहणं चिन्त्यम्

१ अत्र प्रचारावित्येवापेक्षितम् । कृतैकद्येषद्विययनान्तप्रचारदास्ट्रेस

चित्रं बृहुजालमिव चिदात्मानमुपागतः॥ १०३ सर्घे यत्रेदमस्त्येव नास्त्येव च मनागपि। सदसद्रपमेकं तं चिदात्मानमुपागतः॥ १०४ परमञ्ज्ययं पूर्णमास्पदं सर्वसंपदाम्। १०५ सर्वाकारविहारस्यं चिदात्मानमुपागतः॥ स्रोहाधारमधोऽशान्तं जडवाताइतिस्रमः। युक्तं मुक्तं च चिद्दीपं बहिरन्तरुपास्महे ॥ १०६ हृत्सरःपद्मिनीकन्दं तन्तुं सर्वोक्ससुन्दरम् । जनताजीवनोपायं चिदात्मानमुपागतः॥ 800 अक्षीरार्णवसंभूतमशशाङ्कमुपस्थितम्। अहार्यममृतं सत्यं चिदातमानमुपासह ॥ १०८

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धेराभासमागतम् ।
तैरेव रहितं शान्तं चिदात्मानमुपागतः ॥ १०९
आकाशकोशविशदं सर्वलोकस्य रञ्जनम् ।
न रञ्जनं न चाकाशं चिदात्मानमुपागतः ॥ ११०
महामहिस्ना सहितं रहितं सर्वभूतिभिः ।
कर्तृत्वे वाप्यकर्तारं चिदात्मानमुपागतः ॥ १११
अखिलमिदमहं ममेव सर्व
त्यहमपि नाहमधेतरच नाहम् ।
इति विदित्तवतो जगत्कृतं मे
स्थरमथवास्तु गतज्वरो भवामि ॥ ११२

्रह्मापें श्रीवा रामायणे वाल्मीकीये देवदृतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तनिश्वययोगोपदेशो नाम एकादशः सर्गः॥११॥

द्वाद्दाः सर्गः १२

श्रीवसिष्ट उवाच ।

इति निश्चयवन्तस्ते महान्तो विगतेनसः ।
सत्याः सत्ये पदे शान्ते समे सुखमवस्थिताः ॥ १

इति पूर्णधियो धीराः समनीरागचेतसः ।
न निन्दन्ति न नन्दन्ति जीवितं मरणं तथा ॥ २

इत्यलक्ष्यचमत्कारा नारायणभुजा इव ।
ऋजवः स्वलिताकारा अपरा इव मेरवः ॥ ३
रेमिरे वनखण्डेषु द्वीपेषु नगरेषु च ।
देवोपवनमालासु स्वगंषु च सुरा इव ॥ ४

मुषुपिस्तत्करम् । अन्तर्थिहिश स्त्रेन आमान्त्यामान्। जगहक्ष-णान्खगान्पक्षिणः कोडीकृत्यान्तभाव्य छीनं प्रच्छन्नतया स्थितम् ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ सर्गे सर्वसत्तानिवीहकत्वात्सदूर्पे प्रकर्वे सर्वासत्तानिर्वाहकलादराद्रप्रामिति भावः । परमप्रत्ययमत्यन्त-विश्वासाहं चिदेकरसं वा । सर्वासां संपदां मुखलवानामासादं व्रतिष्ठाम् ॥ १०५ ॥ ब्रेहर्सलं निरुपाधिवेमा च तदावारम् । जडानां देहादीनां वातानां प्राणानां दृष्टिवातानां चाहतिरध्यासो-मिघातश्च तत्त्रयुक्तेश्रमेरशान्तमविनष्टम्।श्रान्तदशा तर्युक्तं तत्त्व-दशा तु मुक्तं च ॥ १०६ ॥ हृत्सरसि पश्चिनीकन्द्वन्निगृहम् । सर्वेषां हस्तपादाद्यज्ञानां सुन्दरं दृढविष्टम्भकं तन्तुं रज्ञवदाधा-रम् ॥ १०७ ॥ प्रसिद्धामृतवेलक्षण्यमाह—अक्षीरार्णवेति ॥ १०८ ॥ अहार्थं गरुडादिभिरपहर्तुमशक्यम् । आभासं अभि-व्यक्तिम् ॥ १०९ ॥ रञ्जनं सन्याप्त्या अभिव्यज्जकम् ॥ ९१० ॥ १११ ॥ तादातम्याध्यारोपदशा अखिलमहम् । संसर्गाध्या-ोपडरा तु मभेव सर्वम् । अपवाददशा तु अहंलारोपनिमित्त-मध्यारीपापवा-दास्या तत्त्वं विदितवती में मम जगत्कृतं कृत्रिमं मायामयं भ्रेमुः कुसुमपूर्णासु दोलान्दोलचलासु च।
विचित्रवनलेखासु मेरुश्क्रशिखासु च॥ ५
चक्कविंजितशत्रृणि चामरच्छत्रवन्ति च।
विचित्रार्थानि राज्यानि चित्राचारमयानि च॥ ६
अनुजग्मुरिमान्सर्वान्नाचारविचेष्टितान्।
श्रुतिस्मृत्युदितारम्भामितिकर्तव्यतामिति॥ ७
ईदशी रमणीयेषु ललनाहास्यहारिषु।
विहाराहाररम्येषु भोगाऽऽभोगेषु भूषिताः॥ ८
विविशुश्चारुचूतासु मन्दारविलतासु च।

वा अस्तु अथवा स्थिरमकृत्रिममात्मेव वास्तु उभयथाप्यहं ग-तज्बरो भवामीत्थर्यः ॥ ११२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-यणतात्पर्थप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

> बहिनींरागनिःसङ्गामन्तःस्वच्छात्मभास्वराम् । जनकादिस्थितिं रामो गुरुषोक्तामिहाब्रहीत् ॥ १ ॥

ते जनकादयो जीवन्मुक्ताः अन्तः सत्ये पदे शोधिततत्पदार्थे व्यवस्थिताः ॥ १ ॥ बहिः पूर्णा धीः शोधितत्वंपदार्थो
येपाम् । अराएवान्तर्वहिश्व समनीरागचेतसः ॥ २ ॥ अठक्ष्ये
सृक्ष्मतमेऽपि छक्ष्ये वेधननमत्कारो येपाम् । अतएव नारायणभुजा इव स्थिताः । स्थितितकारा नम्नस्भावाः अपरा मेरव
इव स्थिताः ॥ ३ ॥ तेषां समदृष्ट्या विहारं प्रपञ्चयति—रेमिरे
इत्यादिना ॥ ४ ॥ दोलानामान्दोल्जंभ्रलासु ॥ ५ ॥ विचित्रा
अर्थास्विवर्गा येषु तानि ॥ ६ ॥ नानाचारा बहुविभविएाचारास्त्रैविचिष्टिताननुष्टितान्धर्मीननुजग्मुः । स्वयमप्यनुष्ठितवन्त इत्यर्थः । इति इत्यमेव श्रुतिस्मृत्युदिता आरम्भाः
प्रयक्षा यस्यास्थाविधामितिकर्तव्यताम् । साक्षं यागादीतियावत् । अनुजग्मुः ॥ ७ ॥ ईदर्शामिष्ट्यदृष्टसाधनसंपद्भिः
रमणीयेषु भोगानामाभोगेषु कलापेषु ॥ ४ ॥ विविद्यर्तिः

१ श्रक्तिकावाचावादाव्यसः.

ર

अप्सरोगीतपूर्णासु नन्दनोद्यानभूमिषु ॥ सचराचरभृतेषु विधान्ताखिलजन्तुषु । यह्नक्रियाकलापेषु गार्हस्थ्येषु यथाक्रमम्॥ तेरुईतगजेन्द्रासु भ्रान्तभूरिशिवासु च । मेरीभांकारभीमासु संप्रामाणववीथिषु॥ तस्थुः पश्यचित्तासु हृतवित्तोद्धतासु च। संरम्भक्षोभरौद्रीषु सर्वासु द्वन्द्वरीतिषु ॥ मनस्तेषां तु नीरागमनुपाधि गतभ्रमम्। असकं मुक्तमाशान्तं परं सत्वपदं गतम्॥ न ममञ्जः क्रचिद्पि संकटेषु महत्स्वपि। महद्रप्युपयातेषु कुलशैलाः सरस्खिव ॥ नोह्नलांस विलासिन्या श्रिया परमकान्तया । परिपूर्णेन्दुलक्ष्म्येव जलराशी रघृद्वह् ॥ न मम्ली दुःखशोकेन ग्रीपोणेव वनस्थलम् । जहर्ष च न भोगं।घरवश्यायैरिवीपधिः॥ ते हि केवलमव्ययाः कुर्वन्तः काममञ्जरीः। इप्रानिप्रफलं राम नामिलेपुर्न तत्यज्ञः॥ नोद्गुः कार्यसंपत्तावाकान्ता नास्तमाययुः। जद्दपुर्न सुखप्राप्तौ मम्लुर्नैय च संकटे ॥ मुमुद्दर्न विमोहेषु न ममज्जविंपत्कमैः। न जहर्षुः द्युभैः शोकै रुरुदुर्न भवानिव ॥

प्राकृताचारसंप्रप्ति कुर्वन्तः कर्म केवलम्। स्थिता विगतसंरम्भमपरा इव मेरवः ॥ २० तां त्वं दृष्टिमवष्टभ्य राघवाऽघविनाशिनीम्। अनहंक्रत्यहंकारो विहरस्व यथाक्रमम्॥ २१ यथाभूतामिमामेव पद्यन्सर्गपरम्पराम् । मेरुस्थितोऽब्धिगम्भीरः सममास्ख गतभ्रमः ॥२२ १२ चिन्मात्रं सर्वमेवेद्मित्थमाभासतां गतम्। नेह सत्यमसत्यं वा कविदस्ति न किंचन॥ २३ १३ महत्तामलमालम्ब्य त्यक्त्वेदमवद्वेलया । असक्तवुद्धिः सर्वेत्र भव भव्य भवक्षयी ॥ રપ્ किं रोदिषि घनोद्धेगं मृदवचानुशोचसि । भ्रमस्युद्धान्तचित्तस्य सौम्यावर्ते तृणं यथा ॥ २५ દ્ધ श्रीराम उवाच। अहो न भगवध्ननं सम्यग्जातमलक्षयः । त्वत्प्रसादात्प्रबुद्धोऽसि सूर्यसङ्गादिवाम्बुजम् ॥२६ १६ भ्रान्तिरस्तं गता नृनं मिहिका दारदीव मे। संशान्ताखिलसंदेहः करिष्ये वचनं तय॥ १७ २७ व्यपगतमदमोहो मानमात्सर्यमुक्त-१८ श्चिरतरमुदितात्मा शान्तशोकश्चिरेण। पुनरसुखमगच्छन्खच्छयैकान्तवुद्ध्या यदिह वदसि साधो तत्करिष्येऽविदाङ्कं २८ 26

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तसंशयनिरूपणे नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३

Ş

श्रीराम उवाच । सम्यग्ज्ञानविलासेन वासनाविलयोदये । जीवन्मुक्तपदे ब्रह्मशूनं विश्रान्तवानहम्॥

विविद्यः ॥ ९ ॥ चराचरभूतः सहितेषु सर्वभुवनेषु । विश्रान्ताः सुखिता अखिला जन्तवो यस्तथाविषेषु यज्ञकियाक-लापेषु गार्हरभ्येषु च । 'अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः'। 'यथेव श्रुधिता बाला मातरं पर्युपासते । एवं सर्वाणि भूतान्य-मिहोत्रमुपासते' इत्यादिश्वतेरिति भावः ॥ १० ॥ तेर्ह्णनंस्तेरः ॥ ११ ॥ परवाणि कूराणि क्रेशसहानि चित्तानि यासु हत-वितः शत्रुभिरुद्धतासु परिभूतासु । द्वन्द्वरीतिषु विपरिखति या-वत् ॥ १२ ॥ १३ ॥ महदपि ऐथर्यमिति शेपः । कुलर्शला हिमवदादयः ॥ १४ ॥ जलराशिरिति व्यतिरेके दृष्टान्तः । 'दुलोपे' इति दीर्घः ॥ १५ ॥ १६ ॥ अव्यप्राः कर्तृलामिनि-वेशरहिताः । काम्यन्त इति कामा भोगास्तत्रक्षणा मजरीः कु-र्वन्तोऽनुभवन्तः ॥ १७ ॥शत्रुजयादिकार्यसंपत्तौ सत्यां न उद-गुरुत्कर्ष प्रापुः । शत्रुभिराकान्ताध अस्तमपकर्षं नाययुः॥१८॥ विमोहेषु विमोहहेतुषु कुच्छेषु । विपदां कमराकमणैः ॥ १९ ॥ प्रकृत एव प्राकृतः खखवर्णीचित आचारस्तेन संप्राप्ते विषये

प्राणस्पन्दनिरोधेन वासनाविलयोदये। जीवन्मुकपदे ब्रह्मन्वद विश्रम्यते कथम्॥

॥ २० ॥ अनहंकृती अहंकारनिष्कृष्टगुद्धचिनमात्रे अहंकार आत्मबुद्धियंस्य तथाविधः सन् ॥ २९ ॥ यथाभूतां यथास्थिनताम् । मेहरिव स्थितः स्थिरः ॥ २२ ॥ कीदशं तद्यथाभूतद्दशंनं तदाह—चिन्मात्रमिति ॥ २३ ॥ महत्तां ब्रह्मताम् ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ रामवाक्यानि स्पष्टानि ॥ २६ ॥ २० ॥ न विद्यते सुखं यस्मात्तदसुखं वद्धात्मतात्रमम् । एकान्तबुद्धा निश्चित-सुद्धा यत् इह अस्मिन्नपृर्विष्टार्थनिषयं दार्व्यसाधनं अन्यद्वा राज्यपरिपालनादिकर्तव्यतया वद्धि तत् अविशक्षं करिष्ये ॥ २८ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाण्यकरणे द्वाद्धाः सर्गः ॥ १२ ॥

वर्णितस्तरवबोधेन वासनाविलयकमः । प्राणरोधेन तं वक्तुं पीठिकात्रोपरच्यते ॥ १ ॥

उपशमप्रकरणे दक्षितयोर्वासनाक्षयहेलोर्झानयोगकमयोर्मध्ये उत्तमाधिकारिविषयेण ज्ञानविलासेन वासनाविलयफलं प्राप्य कृताथाऽपि रामो मन्दमध्यमाधिकारिणासुपकाराय योगकमे- श्रीवसिष्ठ उवाच । संसारोत्तरणे युक्तियोगदाब्देन कथ्यते । तां विद्धि ब्रिप्रकारां त्यं चित्तोपदामधर्मिणीम् ॥ ३ आत्मक्कानं प्रकारोऽस्या एकः प्रकटितो भुवि । ब्रितीयः प्राणसंरोधः श्रृणु योऽयं मयोच्यते ॥ ४

श्रीराम उद्याच । सुलभत्वाददुःखत्वात्कतरः शोभनोऽनयोः । येनावगतमात्रेण भूयः श्लोभो न बाधते ॥ ५ श्लीवसिष्ठ उद्याच ।

प्रकारी ब्राविष प्रोक्ती योगराब्देन यद्यपि।
तथापि रूढिमायातः प्राणयुक्तावसी भृशम्॥ ६
एको योगस्तथा झानं संसारोत्तरणक्रमे।
समाबुपायी ब्रावेव प्रोक्तावेकफलप्रदी॥ ७

असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः। मम त्वमिमतः साधो सुसाध्यो ज्ञाननिश्चयः॥ ८ अज्ञानं पुनरज्ञातं स्वप्नेष्यपि न तद्भवेत्। श्रानं सर्वास्ववस्थासु नित्यमेब प्रवर्तते ॥ 2 धारणासनदेशादिसाध्यत्वेन सुसाध्यताम् । नायाति योगो द्यथवा विकल्पो नैव शोभनः॥ १० द्वावेच किल शास्त्रोक्ती शानयोगी रघूद्वह । तत्रोक्तं भवते ज्ञानमन्तस्यं श्रेयनिर्मलम् ॥ ११ प्राणापानतया रूढो दृढवेहगुहाशयः। अनन्तसिद्धिदः साधो योगोऽयं युद्धिदः शृणु १२ मुखानिलस्फुरणनिरोधसंभव-स्थिति गतो गृपसुत चेतसा क्षये। समाहितस्थितिरिह योगयुक्तितः परे पदे प्रगिकतगीर्निवत्स्यसि॥ १३

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये भोधोपायेषु निर्वाणप्रकरणे ज्ञानविचारयोगोपदेशो नाम त्रयोदशः सर्गः॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४

१

श्रीवसिष्ठ उवाच । अस्ति तावदनन्तस्य तस्य कचिद्यं किछ । जगद्रुपः परिस्पन्दो मृगतृष्णा मराविव ॥

णापि वासनानाशप्रकारं जिज्ञासमानः पृच्छति-सम्यगिति द्वाभ्याम् ॥ १॥ २॥ पृष्टस्योत्तरं वर्त्तुं वसिष्टोऽपि उपशमप्रक-रणोक्तमेव राजयोगहठयोगश्रकारद्वयं स्मारयन्त्रतिजानीते---सं-सारेति द्वाभ्याम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ तत्र प्रथमं तयोः कतरस्य **सुकरलमिति विशेषं पृच्छति**—सुरुभलादिति। क्षोभो वि-क्षेपः ॥ ५ ॥ प्राणयुक्ती प्राणनिरोधे । असी योगशब्दः ॥६॥ ॥ ७ ॥ कस्यचित्युक्रमारचित्तस्य प्राणसंरोधदुःखासहिष्णोई-ठयोगोऽसाध्यः । कठोरचित्तस्य विचाराकुशलस्य ज्ञाननिश्र-योऽसाध्यः । मम शुद्धचित्तस्य विचारकुशलस्य ज्ञाननिश्वयः मुसाध्योऽभिमत इत्यर्थः ॥ ८ ॥ विचाराकुशलता हि ज्ञानाज्ञा-नखरूपविवेकासामर्थ्यं स्यात् । तत्तु प्रमाणकुशलस्य खप्रेऽप्यसं-भावितिसित्याशयेनाह्-अज्ञानमिति । प्रवर्तते स्वत एव प्रभते । तथाचाज्ञानस्य सदैव शाक्षिणा प्रसिद्धलाञ्ज्ञानस्य च स्वप्रकाश-तया स्वतःप्रसिद्धेवैधर्म्यस्य चानुभवादेव प्रसिद्धेविवेकसं-भवाज्ज्ञान सुकरं योगस्तु न तथेति दुष्कर इति भावः ॥ ९ ॥ प्रशस्तदेशकालविषयादिवाहाहेतुसापेक्षलादपि योगो दुष्कर इ-त्याह-भारणेति । भारणादेशो बाह्यो गिरिकूटचन्द्रतारा-दिर्द्देयकण्डतालुमूलभूमध्यादिश्व । आसनदेशस्तु 'समे शुनौ शर्करवहिवाळकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः। मनोनुकूले नतु चशुपीडने गुहानिरुद्धाश्रयणे प्रयोजयेत् ॥' इति श्रुति-स्मृतिशास्त्रप्रसिद्धस्तत्साध्यत्वेन योगः सुसाध्यतां नायाति । निरुत्साहानां मन्दमतीमां मुर्खाणां पुरुषापसदानामिव न धीरस्य

तत्र कारणतां यातो ब्रह्मा कमलसंभवः। स्थितः पितामहत्वेन सृष्टभूतभरभ्रमः॥ तस्याहं मानसः पुत्रो वसिष्ठः श्रेष्ठचेष्टितः।

ર

समर्थस्य यतमानस्याधिकारिणः शास्त्रीये साधने सुसाध्यलकष्टसाध्यलविकल्यचिन्ता युक्तेस्याह—अथवेति ॥ १० ॥ एवमवान्तरप्रश्नं निरस्य पूर्वप्रश्नोत्तरं वक्तुमुपकमते—द्वावित्यादिना
॥ १९ ॥ प्राणापानतया प्राणापानयोः समतासंपत्तिरूपेण
रूढः प्रसिद्धः विद्धिकामानां खेचरखाद्यनन्तसिद्धिदः । ज्ञानकामानां तु बुद्धिदः साक्षात्कारहेतुः । अतस्तं श्रिष्वसर्यः
॥ १२ ॥ तमेव समाधिमुखविधान्तिफलकीर्तनेनापि प्ररोचयमाह—मुखेति । हे नृपसुत, त्वं चेतसा उद्युक्तचित्तेन मुखानिरूस्य प्राणस्य यत्स्फुरणं संचरणं तिन्नरोधेन संभवित विद्यति
तथाविधां स्थिति प्रतिष्ठां गतः सन् इह प्रस्पपूर्वे अक्षये परे
पदे योगश्चित्ववृत्तिनिरोधस्तद्भयासयुक्तितः समाहितस्थितिः
सन् विगठितर्गावागोचरितरिह्यानन्दरूपो भूला निवतस्यति
स्थास्यति ॥१३॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाहो
निर्वाणप्रकरणे श्रयोदद्याः सर्गः ॥ १३ ॥

सुरसंसच्छुतस्यात्र अञ्चण्डस्य दिश्क्षया । वसिष्ठगमनं मेरुसच्छक्तं चात्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

प्रस्तुतं प्राणायामादियोगकमं भुशुण्डोक्तिप्रपष्टनेन विस्तराद्वर्णयिष्यन् भुशुण्डाख्यायिकामारभते—असीखादिना । तस्य
योगिविश्रान्तिस्यानत्वेन वर्णितस्य परमपदस्य क्रचिदविद्यावृतप्रदेशे 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इति श्रुतेर्जगद्गूपो ब्रह्माण्डाकारः
परिस्पन्दो विवर्तः ॥ १ ॥ तत्र ब्रह्माण्डे मनुप्रजापतिप्रयतीनां कारणतां यातः ॥ २॥ ऋक्षचके नक्षत्रचके सप्तार्षिकोके ।

ऋक्षचके भ्रुवधृते निवसामि युगं प्रति॥ सोऽहं कदाचिदास्थाने स्वर्गे तिष्ठब्छतकतोः। श्रुतवान्नारदादिभ्यः कथां सुचिरजीविनाम् ॥ कथाप्रसङ्के कसिश्चिद्ध तत्राभ्युवाच ह । शातातपो नाम मुनिर्मीनी मानी महामतिः॥ 4 मेरोरीशानकोणस्थे पद्मरागमये दिवि। अस्ति कल्पतरुः श्रीमाञ्ज्ञृङ्गे चूत इति श्रुतः॥ દ્ तस्य कल्पतरोर्मुभि दक्षिणस्कन्धकोटरे। कलधौतलताप्रोते विद्यते विद्यगालयः॥ G तसिन्निवसति श्रीमान्भुशुण्डो नाम वायसः। वीतरागो बृहत्कोशे ब्रह्मेव निजपङ्कते ॥ स यथा जगतां कोशे जीवतीह सुराश्चिरम्। चिरंजीवी तथा स्वर्गे न भूतो न भविष्यति ॥ स दीर्घायुः स नीरागः स श्रीमान्स महामतिः। स विश्रान्तमतिः शान्तः स कान्तः कालकोविदः १० स यथा जीवति खगस्तथेह यदि जीव्यते । तक्क्षेजीवितं पुण्यं दीर्घं चोदयमेघ च ॥ ११ इति तेन भुशुण्डोऽसी भूयः पृष्टेन वर्णितः। यथाबदेव देवानां सभायां सत्यमुक्तवान्॥ १२ कथावसरसंशान्तावथ याते सुरवजे । भुशुण्डं विहगं द्रष्टुमहं यातः कुत्हलात्॥ १३ भुशुण्डः संस्थितो यत्र मेरोः शृङ्गं तदुत्तमम्। संप्राप्तवान्क्षणेनाहं पद्मरागमयं बृहत्॥ १४ रक्षगैरिककान्तेन तेजसा विद्ववर्चसा।

युगशब्देन युगसमूहो वैवस्वतमन्बन्तरं लक्ष्यते ॥ ३ ॥ शत-कतोरिन्द्रस्य आस्थाने सभायाम् ॥ ४ ॥ मीनी अल्पभाषिता । मानी माननाई: प्रमाणकुशलक्ष ॥ ५ ॥ यदुवाच तदाई— मेरोरित्यादिना । पद्मरागमये शक्ते दिवि नभोदेशे चृत इति श्रुतो विश्रुतः कल्पतहरस्ति ॥ ६ ॥ कलधीने हेमरूप्ये तन्म-यीमिः कल्पलताभिः प्रोते ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ यतो विश्रान्त-मतिरत एव शान्तः ॥ १० ॥ तत्तथाविधं दीर्घं जीवितं सा-धनद्शायां पुण्यं फलदशायामुद्यं परमपुरुषार्थाभ्युद्ययुक्तं च भवेत् । संभावनायां लिङ् ॥ ११ ॥ भूयोऽपि मया पृष्टेन तेन शातातपेन इति उक्तप्रकारेणैव भुशुण्डो वर्णितः। तदुक्तेः प्रशंसामात्रलशृष्टुां वारयति—सत्यमुक्तवानिति ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ तदेव शृषं वर्णयति—रत्नेत्यादिना । रत्नेगैरिकेश्व का-न्तेन । मध्यासबप्रयुक्तन रसेन मदेनेव ककुभां दिशां गणं रखयत् कोहितीकुर्वत् । क्षीबा हि लोहितायमानाः प्रसिद्धाः ॥ १५ ॥ कल्पान्तज्वलनादुक्कतानां ज्वालानां पिण्ड एवादिः संपन्न इवे-त्युत्प्रेक्षा । संचितं शोभोपचितम् । इन्द्रनीलानां शिखा इव कप्पेत्रसताः त्रभा एव धूमा यस्येत्युरप्रेक्षायामुपपत्तिः ॥१६॥ सर्वेषां रागाणां लोहित्यानां सर्वेषां प्राणिनां रागाणां दर्शने-

मध्वासवरसेनेव रज्जयत्ककुमां गणम्॥ १५ कल्पान्तज्वलनज्वालापिण्डाद्विमिष संश्वितम् । इन्द्रनीलशिखाधूममालोकारुणिताम्बरम्॥ १६ सर्वेषामेव रागाणां राशिमद्राविव स्थितम्। सर्वसंध्याभ्रजालानां घनमेकमिवाकरम्॥ १७ उत्क्रान्ति कुर्वतो मेरोर्ब्रह्मनाड्येव निर्गतम्। मुर्थानमागतं कान्तं वाडवं जठरानलम् ॥ १८ सुमेरवनदेव्येघ नवालककरञ्जितम्। लीलया दातुमिन्दुं खे नीतं हस्तशिखाङ्गलिम् ॥१९ ज्वालाभिरिव मालाभिररुणाभिः पयोमुखम् । खं गन्तुमिव सस्पन्दं शैलस्थमिव वाडवम् ॥ २० ताराः स्प्रष्टुमिचाकाशमङ्गलीमिरिच त्रिमिः । कचदंशुनखायाभिः परिचुम्बदियोधतम् ॥ २१ गर्जजीमृतमुरजं भूभृतानां तु मण्डपम्। हसत्कुसुमगुच्छाख्यं ध्वनत्पट्पद्पेटकम् ॥ २२ व्नततालवलाव्या परिहासादिव स्फुरत्। दोलालोलाप्सरोबृन्दमुदारमदमन्मथम्॥ २३ शिलाविश्रान्तविबुधिमधुनाश्रितकन्दरम्। वराम्बराजिनं शुभ्रगङ्गायशोपवीति च ॥ 28 तापसं पिङ्गलमिव वेणुदण्डधरं स्थितम्। गङ्गानिर्झरनिर्हादि लतागृहगतामरम्॥ २५ गन्धर्वगीतसुभगमामोदमधुरानिलम् । फुल्लहेमाम्बुजोत्तंसं तारार**लविभृषितम्** ॥ व्योद्धः पारमिव प्राप्तं पिङ्कलं मैरवं शिरः॥ 25

च्छानां वा ॥ १७ ॥ ब्रह्मनाड्या सुषुप्रया उत्कान्तियोगेन ब्रह्मरन्ध्रं भिरवा निर्गमनं कुर्वतिथिकीषतो मेरोर्जेटरान्निर्गतं मूर्धानं शिर:प्रदेशमागतं वाडवं बढवाप्रिकल्पं जठरानलमिब स्थितमित्युत्प्रेक्षाः ॥ १८ ॥ सुमेरवनदेव्यालीलया कीदा-कीतुकेन इन्द्रमादातुं प्रहीतुं खे नीतं प्रसारितमङक्करसर-जितं इस्तस्य विखावत्संहतमङ्गुलिजातमिव ॥ १९ ॥ माळा-भिरिव प्रियताभिज्वीलाभिः खं गन्तुभिव सस्पन्दं चित्रमत एव शेलस्थं पर्वतमारूढं हव्यवाहकलादमिहोत्राद्याहुतिपयो मुखे यस्य तथाविधं वाडवं ब्राह्मणसंबन्धिनमध्वराग्निमिव स्थि-तम् । श्टक्रपक्षे पयो निर्झरोदकं मुखे अत्रभागे यस्य ॥ २०॥ कचद्रलांशुनखाप्राभिक्षिभिः श्वजापाङ्गुलिमिस्तारा अभिन्यादीः स्प्रष्टुं स्पृष्ट्वा गणयितुमिव आकाशं परिचुम्बत् व्याग्नवदिव उम-तम् ॥ २१ ॥ मुरजा वायभेदाः । भुवा वनभूम्या भृतानां पुष्टानां वनलक्ष्मीणां नृत्यमण्डपमिव स्थितम् । ध्वनत्यद्भपद्देषेटकं श्रमरसंमूही यस्मिन् ॥ २२ ॥ दन्तपहिबद्विकसन्त्या तालप-त्राणामावस्या पर्राचा । उदारी मदमन्मथी सर्वप्राणिनां यस्मिन् ॥ २३॥ तापसत्वेनोत्प्रेक्षते—वरेति ॥ २४ ॥ २५ ॥ पार्ट

२७

सितहरितपीतपाटल-धयछैर्वनकुसुमराशिनवरक्कैः।

दिवि विहितामलचित्रं लीलाचलममरयुवतिवर्गस्य॥

इस्वार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्र० भुशुण्डोपाख्याने मेरुशिखरवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

पश्चद्दाः सर्गः १५

ŝ

S

4

श्रीवसिष्ठ उवाच । कुसुमापूर्णकल्पाभ्रकुन्तले तस्य मूर्धनि । कल्पाङ्गमहमद्राक्षं शाखाचक्रमिय स्थितम्॥ पुष्परेण्वभ्रवितं रह्मस्तवकदन्तुरम्। उत्सेधनिर्जिताकाशं श्रङ्गे शृङ्गमिवार्पितम् ॥ ताराद्विगुणपुष्पौघं मेघद्विगुणपल्लवम् । रिमद्विगुणरेण्वभ्रं तिडिद्विगुणमञ्जरीम्॥ स्कन्धेषु किन्नरीगीतद्विगुणभ्रमरस्वनम्। दोलालोलाप्सरोलोकद्विगुणीकृतपल्लवम् ॥ सिद्धगन्धर्यसंघातद्विगुणोत्थविहंगमम्। रत्नकान्त्यच्छनीहारद्विगुणत्वग्वृतांशुकम्॥ चन्द्रबिम्बसमाश्ठेपद्विगुणाङ्गवृहत्फलम् । मूलसंलीनकल्पाभ्रद्विगुणीकृतपर्वकम्॥ सुरसंवलितस्कन्धं पत्रविधान्तकिन्नरम् । निकुअकुअजीमृतं कच्छसुप्तसुरादिकम्॥ स्वाकारविषुलं भृङ्गानुत्सार्य चलयस्वनैः । अप्सरोभ्रमरीभिश्च गृहीतकुसुमान्तरम्॥

ऊर्ध्वाविधम् ॥ २६ ॥ सितहरितादिवणैर्वनकुमुमराशिलक्षणैः प्रतिदिनं नवे रक्षे रक्षकद्रव्यदिवि व्योप्ति विहितानि लिखितानीव अमलानि चित्राणि येन तथाविधममरयुवतिवर्गस्य लीलाचलं क्रीडापर्वतभृतं मैरवं शिरः श्रक्षमहं संप्राप्तवानिति प्राक्तनच- तुर्दशस्थोकेन सर्वेषामन्वयः ॥ २७ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारा- मायणसारपर्वप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे चनुद्रशः सर्गः ॥ १४ ॥

श्को कल्पतस्थृतः पुष्पपक्ष्यादिसंपदः । स्कन्धे काककुछं तत्र भुशुण्डश्लेह वर्ण्यते ॥ १ ॥

कुसुमापूर्णानि कल्पाश्राण्येव कुन्तलाः केशा यस्मिस्तथाविधे तस्य श्वास्य मूर्धनि शिरोदेशे प्राणिनामिनलिक्तार्थपूरणाय कल्पन्त इति कल्पान्यञ्चानि शाखाद्यवयवा यस्य तथाविधं परितः समप्रसत्तशासापि लाच्छाखाचक्रमिय स्थितम् ।परं विचित्रयमागतमिखन्तद्वादशश्लोकोक्तविशेषणविशिष्टमर्थात् शासातावपोक्तं च्ततस्महमद्वाक्षमिति संबन्धः ॥ १ ॥ पुष्परेणुलक्षणरश्चेत्रीलतं व्याप्तम् । उत्सेष औनस्यम् । श्वेत्र प्राग्वणितमेहश्वेत्रं ॥ २ ॥ न केवलमुरसेषेनेव निर्जिताकाशं कितु तारश्विद्वगुणपुष्पांचा-दिनापीखाह—तारेति । तिहिद्वगुणमञ्जरीमिति 'नवृतश्व' इति कपि 'न कपि'इति हस्वनिषेधरछान्दसः कपो लोपः ॥३॥ दोल्लालेखण्यरोलोकानामोष्ठकरपदपङ्गवैद्विगुणीकृतपङ्गवम् ॥ ४ ॥

मुरकिनरगन्धर्वविद्याधरवरान्वितम्। जगज्जालिमवानन्तं दशाशाकाशपूरकम्॥ नीरन्ध्रकलिकाजालं नीरन्ध्रमृदुपल्लवम् । नीरन्ध्रविकसत्पुष्पं नीरन्ध्रवनमालितम्॥ १० नीरन्ध्रमञ्जरीपुञ्जं नीरन्ध्रमणिगुच्छकम्। नीरन्त्रांशुकरलाट्यं लताविलसनाकुलम् ॥ ११ सर्वत्र कुसुमापूरैः सर्वत्र फलपहुवैः। सर्वामोदरजःपुञ्जैः परं वैचित्र्यमागतम् ॥ १२ तस्य कक्षेषु कुञ्जेषु लतापत्रेषु पर्वसु। पुष्पेष्वालयसंलीनान्विहगान्द्रप्रवानहम्॥ १३ निशानाथकलाखण्डमृणालशकलेथितान्। अर्जुनाम्भोजिनीकन्द्कवलान्ब्रह्मसारसान्॥ १४ विरंचेरथ हंसानां पोतकान्सामगायिनः। ॐकारवेदसुहृदो ब्रह्मविद्यानुशासनान्॥ १५ उद्गीर्णमस्त्रनिचयान्स्वाहाकारनिभस्वनान्। अस्थिनैकतडित्पुञ्जनीलमेघसमोपमान्॥ १६

कामरूपलात्स्वरविद्वारार्थं कृतविद्वन्नमवेषैः सिद्धगन्धवेसंघाते-र्द्विगुणं यथा स्थात्तथा उत्था निष्पन्ना विहत्रमा यस्मिन् । रक्ष-कान्तिलक्षणया अच्छनीहारद्विगुणया लचा वृतांशुकं परिहित-वस्त्रमिव स्थितम् ॥ ५ ॥ अंत्रित्यातिशयेन चन्द्रषिम्बसमाश्ले-षादमृतरसपूर्वेव द्विगुणाङ्गानि अतएव बृहन्ति फलानि यस्य । स्कन्धमूलेषु संलीनेः कल्पाश्रीर्द्वशुशीकृतानीव पर्वाणि यस्य ॥ ६ ॥ ७ ॥ अप्सरोलक्षणभ्रमरीमिर्वलयस्वनैः कटकक्कणितै-र्भृङ्गानुत्सार्थे गृहीताः कुसुमानामान्तरा मकरन्दाः यस्य । चका-रः प्राक्तनविशेषणैरस्य समुचयार्थः ॥ ८ ॥ जगजालं ब्रह्माण्ड-मिव स्थितम् । अनन्तानामनवधीनां दशानामाशानां दिशां परिपूरकम् ॥ ९ ॥ १० ॥ अंशुकैर्दिव्यवस्त्रे रलेश्राव्यमिवा-थिंकामप्रप्रकम् । लतानां विलसनं लाखम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ कक्षेषु स्कन्धशाखासंधिषु कुञेषु लतावृतशाखाप्रेषु ॥ १३ ॥ विहरापु विशेषमाह-निशानाथेति । निशाकरकलानां खण्डा मृणालशकलानीव तैरेघितान्वर्धितान् तथा अर्जुनाः ग्रुघा अ-म्भोजिनीकन्दा अपि कवलानि प्रासा येषां तथाविधान् बहा-वाहनभूतान्सारसान् हंसान् ॥ १४ ॥ ॐकारस्य वेदानां च रहस्यार्थालोचनसद्दायलात्सुहृदो मित्रभूतान् परापरत्रहाविद्यास-नुशासनं गुरुमुखाद्विधिनाध्ययनं येषाम् ॥ १५ ॥ अप्रिवाहन-शुकांसात्र वर्णयति-उद्गीर्णेत्यादिना । अस्य शहः नैकान्यने-

देवेर्निरीक्षिताकित्यं यज्ञवेदिसतादसान् । शुकान्कार्शानवाञ्छथामाञ्छिशूञ्छिखिशिखा-

शिखान्॥ १७ गौरीरक्षितवर्हीघान्कौमारान्वरवर्हिणः। स्कन्दोपन्यस्तनिःशेषशैघविज्ञानकोविदान् ॥ ब्योक्षेव जातनशानां महतां व्योमपश्चिणाम्। बन्धूनावद्यनिलयाञ्छरदभ्रसमाकृतीन्॥ १९ विरंचिहंसजामन्यानन्यानग्निशुकोद्भवान् । कै।मारबर्हिजानन्यानन्यानम्बरपक्षिजान् ॥ २० द्वितुण्डांश्च भरहाजान्हेमचूडान्विहंगमान्। कलविङ्कबलान्यधान्कोकिलान्कीश्रकुष्टान् ॥ २१ भासचापबलाकादीन्बहूनन्यांश्च राघव । भूतीयं जगतीवाहं दृष्टवांस्तत्र पक्षिणः॥ २२ दक्षिणस्कन्धशाखायां स्थितायां वै दवीयसि। 23 अथाहं द्रष्टवान्पुष्टपत्रायामम्बरस्थितः ॥ काले काकोलवलयं मञ्जरीजालमालितम्। कोकालोकाचलेऽरण्ये कल्पाभीघमिव स्थितम्॥२४ तत्र पद्याम्यहं यावदेकान्ते स्कन्धकोटरे। विचित्रकुसुमास्तीर्णे विविधामोदशालिनि ॥ રપ पुण्यक्रद्योषितां स्वर्गे प्रियस्तवकवासिताः। इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपायेषु भुग्नुण्डोपाख्याने भुग्नुण्डदर्शनं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥

अपरिश्चमिताकाराः सभायां वायसाः स्थिताः ॥२६ विमेद्यमेघा वातेन समेनेवापसारिताः। तेषां मध्ये स्थितः श्रीमान्भुशुण्डः प्रोन्नतास्रतिः॥ २७ मध्ये च काचखण्डानामिन्द्रनील इवोन्नतः। परिपूर्णमना मानी समः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ 26 प्राणस्पन्दाचधानेन नित्यमन्तर्मुखः सुखी। चिरंजीवीति विख्यातश्चिरजीवितया तया॥ २९ जगद्विदितदीर्घायुर्भुगुण्ड इति विश्वतः। युगागमापायदशादशेनप्रौढमानसः॥ 30 प्रतिकरुपं च गणयन्खिन्नश्चक्रपरम्पराम्। जन्मनां लोकपालानां शर्वशक्रमरुत्वताम्॥ 38 संस्रती समतीतानां सुरासुरमहीभृताम्। प्रसन्नगम्भीरमनाः पेशलः स्निग्धमुग्धवाक् ॥ अव्यक्तवका विश्वाता निर्ममो निरहंकृतिः। सुद्दृद्धुस्तथा मित्रं मृत्युपुत्रो गुरुप्रभुः। सर्वदा सर्वथा सत्यं सर्व सर्वस्य संस्तवे॥ 33 सौम्यः प्रसन्नमधुरो रसवान्महात्मा हृद्यः सरोवर इवान्तरखण्डदीत्यः । हृत्पुण्डरीककुहरं व्यवहारवेत्ता गाम्भीयेमच्छमजहात्प्रकटारायश्रीः ॥ ३४

षोड्याः सर्गः १६

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथ तस्याहमपतं दीप्यमानवपुः पुरः।

कानि तडित्पुजानि नीलमेघाश्व वर्णतः समा उपमा येषाम् ॥ १६ ॥ यक्कवेदिशु आस्तीर्णानां हरितकुशलतानां दलानीव रयामान् हरितान् कृशानुरिमस्तद्वाहनभूतान् शुकानहं दृष्टवानि-ति सर्वत्रानुषज्यते । मयूरपोतान्वर्णयति-शिशूनित्यादिना । शिखिनः अपेः शिखेव भाखराः शिखा येषाम् ॥ १७ ॥ १८॥ व्योन्नेव जातानां तंत्रेव नष्टानां मरणपर्यन्तं भूमावनवतरतां अतएव बलाधिक्यान्महतामतएव व्योमपक्षिनामा प्रसिद्धानां पिक्षजातिमेदानां नित्यं कीडासहायलाद्धनधून् आबद्धनिलयान् कृतनीडान् ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ भूतीयं प्राणिजातम् । तत्र तस्मिन्दृक्षे ॥ २२ ॥ पुष्टानि घनानि पत्राणि यस्याः ॥२३॥ काले दक्षिणशाखादर्शनानन्तरकाले काकोला द्रोणका-कारूयाः काकजातिमेदास्तेषां वलयं मण्डलम् । कल्पाञ्राणि संवर्तमेघास्तदोघमिव स्थितम् ॥ २४ ॥ २५ ॥ पुण्यकृतां ज-नानां योषितां भोग्यानामप्सरसां खर्गे रतिसुखभोगयोग्ये स्क-न्धकोटरे इति पूर्वेणान्वयः । शान्त्यादिगुणशालिलादपरिक्धभि-ताकाराः ॥ २६ ॥ मेघा वातेन वायुना समेन समभागेन वि-मेद्य च्छित्वा अपसारिताः कोटरे प्रवेशिता इव ॥२७॥ मा-नी मान्यः ॥ २८॥ प्राणस्पन्दस्यावधानेन निरोधेन । तया

किंचित्रिशोभितसभः खान्नक्षत्रमिवाचले ॥ १ ॥

प्रसिद्धतमया ॥ २९ ॥ ३० ॥ लोकपालप्रायपाठात् शर्वा ई-शानाः शका इन्द्राः मरुखन्तो मरुत्यखा अग्नयस्तेषां जन्मनां चक्रपरम्परां गणयन् खिन्नो निर्विणाः ॥ ३१ ॥ पैशलश्रतुरः ॥ ३२ ॥ अव्यक्तानामस्फुटानां सृक्ष्मतमार्थानां स्फुटीकृत्य वक्ता । यतस्तेषां विश्वाता मृत्योः पुत्र इव परमप्रियः । बुद्धा गुरोबृहस्पतेरपि प्रभुः समर्थः । कुतोऽयं सर्वेषां मुहदादिस्तत्राह —सर्वदेति। यतोऽयं सर्वस्य प्राणिजातस्य सर्वारोपाविष्ठानला-त्सर्वेशा सर्वेप्रकारेणापि सर्वेदा सत्यं सर्वस्य संस्तवे वर्णनप्रसङ्गे च सर्वमत इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ पक्षद्वयेऽपि विशेषणानि स्पष्टानि । हृत्पुण्डरीकस्य कुहरं । दहराकाशरूप इत्यर्थः । तस्य भूताकाश-शक्कावारणायाह-व्यवहारवेत्तेति । सरःपक्षे हृदि मध्ये पुण्डरी-काणामाधारभूतं कुहरं। निखातं थस्य । वयः पक्षिणस्तेषामव-हारो विश्रान्तिस्तद्वेता । निर्मलतमलात्प्रकटाशयश्रीः ॥ ३४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायजतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पञ्चद्शः सर्गः ॥ ३५ ॥

पुरः प्राप्तवसिष्ठेन पूजितेनासनादिभिः । भुशुण्डजन्मकर्मादेः कृतः प्रश्लोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥ अथ अहं तस्य भुशुण्डस्य पुरः खात् अचले नक्षत्रमिव अपतं २

₹

૪

દ્દ

चुक्षोभ वायसास्थानं नीलोत्पलसरःसमम्। मत्पातमन्दवातेन भूकम्पेनेव सागरः॥ अशक्कितमपि प्राप्तं दर्शनान्मामनन्तरम्। भुगुण्डस्तु वसिष्ठोऽयं प्राप्त इत्यवबुद्धवान्॥ पत्रपुजात्समुत्तस्था मेघशाव इवाचलात्। हे मुने स्थागतमिति प्रोवाच मधुराक्षरम् ॥ संकल्पमात्रजाताभ्यां कराभ्यां कुसुमाञ्जलिम् । मह्यमाशु तदैवादान्मेघो हैममिबोत्करम्॥ इदमासनमित्युक्त्वा नवं कल्पतरुच्छदम्। उपानीतवति त्यकभृत्ये वायसनायके॥ भुशुण्ड उत्थिते स्वीयकलापक्षेषु पक्षिषु । उपविष्टं मुनि दृष्ट्रा स्वासनोन्मुखदृष्टिष्ट् ॥ समन्तात्खगवृन्देन भुशुण्डेन समं ततः। तस्मिन्करुपलतापुञ्जे ह्युपविष्टोऽहमासने ॥ अर्घ्यपाद्यादि संपाद्य भुशुण्डस्तुष्टमानसः। मामुषाच महातेजाः सीहृदान्मधुराक्षरम् ॥ भुगुण्ड उवाच ।

अहो भगवताऽसाकं प्रसादो दर्शितश्चिरात्। दर्शनामृतसेकेन यत्सिकाः सहुमा वयम्॥ १० मत्पुण्यचिरसंभारप्रेरितेन त्वयाधुना। मुने मान्यैकमान्येन कुतश्चागमनं कृतम्॥ ११ कच्चिदसिन्महामोद्दे चिरं विहरतस्तव। अखण्डितेव समता स्थिता चेतसि पावने॥ १२ किमर्थमद्यागमनक्षेशेनात्मा कदर्थितः। वचनश्रवणोत्कानामाक्षां नो वक्तमर्हसि॥ १३ त्वत्पाददर्शनादेव सर्व शातं मया मुने।
त्वदागमनपुण्येन वयमायोजितास्त्वया॥ १४
चिरंजीवितचर्चामिर्ययं वः स्मृतिमागताः।
तेनेदमास्पदं पादेस्त्वं पवित्रितवानयम्॥ १५
शातत्वदागमोऽप्येवं त्वां पृच्छामीह यन्मुने।
भवदाक्यामृतास्वादवाञ्छितं प्रविज्ञम्भते॥ १६
इत्युक्तवानसा पक्षी भुशुण्डश्चिरजीवितः।
त्रिकालामलसंवेदी तत्र प्रोक्तमिदं मया॥ १७

श्रीवसिष्ठ उवाच।

विहंगम महाराज सत्यमेतत्त्वयोच्यते।
द्रष्टुमभ्यागतोऽस्म्यद्य त्वामेव चिरजीवितम्॥ १८
आशीतलान्तःकरणो दिष्ट्या कुशलवानसि।
पतितोऽसि न बुद्धात्मा भीषणां भववागुराम्॥ १९
तदेतं संशयं छिन्धि भगवन्मम सत्यतः।
कस्मिन्कुले भवाञ्जातो ज्ञातज्ञेयः कथं भवान्॥ २०
कियदायुश्च ते साधो वृत्तं सरसि किंच वा।
केनायं वा निवासस्ते निर्दिष्टो दीर्घदर्शिनः॥ २१

भुगुण्ड उवाच ।

युनुष्ड उपाय । यत्पृच्छिस मुने सर्व तिददं वर्णयाम्यहम् । अनुद्वेगितया यहात्कथा श्राच्या महात्मना ॥ २२ युष्मद्विधास्त्रिभुवनप्रभुपूज्यरूपा आकर्णयन्ति यमुदारिधयो महान्तः । तेनाशुभं प्रकथितेन विनाशमेति मेघास्पदेन विभवेन यथार्कतापः ॥ २३

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठभुशुण्डसमायोगो नाम वोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अवातरम् ॥ १ ॥ किचिद्विक्षोभितसभ इत्येतद्वित्रणोति---चु-क्षोमेति । वायगानामास्थानं सभा ॥ २ ॥ अशक्कितमवितर्किन तासंभावितागमनमपि मां प्राप्तम् । अववुद्धवान् त्रिकालदर्शि-लादेवेति भावः ॥ ३ ॥ भेघशावः सुक्ष्मो भेघ इवेति यावत् ॥ ४ ॥ तदेव स्वागतोक्तिकाल एव । हिममेव हैमं शिशिरमा-सारोत्करमिव ॥५॥ त्यक्तगृत्ये । मृत्यद्वारा आसनानयनमञ्जला स्वयमेवासनमादरादुपानीतवतीत्यर्थः ॥ ६ ॥ उत्थितान्तं पूर्वा-न्वयि । स्वीयाः कलाः कान्तय इव प्रसरन्तः पक्षा येषां तथा-विधेषु पक्षिषु तत्सभावायसेषु ॥ ७ ॥ ततस्तदनन्तरमहं भु-शुण्डेन सममुपविष्टः ॥ ८ ॥ ९ ॥ प्रसादोऽनुप्रहः । सङ्गुमाः पुण्यवृक्षायमाणाः कल्पवृक्षसहिता वा । वयमिति निकृष्टजातितायोतनाय । 'जात्याख्यायाम्-' इति बहुवचनम् ॥ १० ॥ क्रुतः कस्मास्त्रवेशात् ॥ ११ ॥ महामोहे मूलाशानकार्ये जगति 11 93 11 आज्ञापनवचनश्रवणे

उत्कानामुन्किण्ठितानां नः । आज्ञां आज्ञाण्यमर्थम् ॥ १३ ॥ १४ ॥ सर्वं ज्ञातमिति यदुक्तं तदेव स्फुटयति—चिरमिति । चिरं जीवितं येषां तद्विषयामिधर्यामिविचारणामिरिन्द्रसभायां जाताभिः ॥ १५ ॥ यदि ज्ञातस्तर्हि किमर्थं प्रच्छित तन्नाह्—भवद्राक्येति ॥ १६ ॥ १८ ॥ १८ ॥ पतितः प्रविष्टः ॥१९॥ भगवन् 'उत्पत्तिं च विनाशं च भृतानामागतिं गतिम् । वेति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥' इत्युक्तज्ञानसंपन्न ॥ २० ॥ वृत्तमतिकान्तकल्यान्तचिरम् । अयं एतद्वस्त्रपो निवसद्यस्मिनिति निवासः ॥ २१ ॥ श्राच्या श्रोतच्या ॥२२॥ यं वृत्तान्तं युष्पद्विधा आकर्णयन्ति तेन वृत्तान्तंन प्रक्थितेन वक्षणामन्येषां च श्रोतृणामश्चमं विनाशमेति । यथा मेषास्पदेन वृष्टिच्छायावनादिविभवेनार्कतापो विनाशमेति तन्द्वत् ॥ २३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे षोद्याः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तद्दाः सर्गः १७

श्रीविसष्ठ उवाच ।
अथ राम भुशुण्डोऽसी न प्रहृष्टो न वक्रधीः ।
सर्वाङ्गसुन्दरः इयामः प्रावृषीव पयोधरः ॥ १
स्निग्धगम्भीरवचनः स्मितपूर्वामिभाषणः ।
करस्थविक्वफलवस्प्रतोलितजगन्नयः ॥ २
तृणवहृष्ट्सकलः प्रमेयीकृतसंस्तिः ।
लोकाजवं जवीमावे दृष्ट्यानपरावरः ॥ ३
धीरस्थिरमहाकारो विश्रान्ति गतमन्दरः ।
परिपूर्णमनाः शुद्धः क्षीरार्णव इवागतः ॥ ४

परिविश्वान्तधीः शान्तः परमानन्द्यूर्णितः ।
आविर्भावतिरोभावतज्ञः संसारजन्मनाम् ॥ ५
सरभसवद्नामिरामरूपः
प्रियमधुरोचितगानदृद्यवाक्यः ।
स्वयमिव नवमाश्रितः शरीरं
सकलभयापहरं प्रहर्पयुक्तः ॥ ६
इदममलगिरा समाह शुद्धममृतमनुज्ञितसंग्रमक्रमेण ।
कथितुमखिलं निजं स्वरूपं
मधुपमिय स्तनितेन मुग्धमेघः ॥ ७

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे०मो०निर्वाणप्रकरणे भुद्युण्डोपास्याने भुद्युण्डस्वरूपवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥१०॥

अष्टाद्दाः सर्गः १८

3

3

भुशुण्ड उवाच ।
अस्त्रिक्षगति श्रेष्ठः सर्वनाकनिवासिनाम् ।
देवदेवो हरो नाम देवदेवामिवन्दितः ॥
पट्पदश्रेणिनयना यस्योधस्त्रवकस्तनी ।
विल्लासिनी शरीराधें लता चूततरोरिव ॥
हिमहारसिता यस्य लहरीस्त्रवकोम्भिता ।
आवेष्टितजटाजुटा गङ्गाकुसुममालिका ॥

उपचर्ण्यं अञ्चण्डोऽत्र जीवन्सुक्तोचितैर्गुणैः । पृष्टार्थं विस्तराद्वकुं प्रवृत्त इति कथ्यते ॥ १ ॥

अथ भुशुण्ड इदमाहेति सर्गान्खकोकेन संबध्यते । हष्ट इष्टला-भप्रयुक्तहर्षवान् । वक्तघीः अनृजुवुद्धिः ॥१ ॥ प्रतोलितं तुरु-**येव इयत्त**या निश्वितं जगत्रयं येन॥२॥ तृणवदृष्टं सकलं भोगवृन्दं येन । लोकानां आजवं जवीभावे कामानुघावने विषये सम्यग्वि-चार्य प्रमेयीकृता फलत्वेन निश्चिता जन्ममरणादिसंखतिर्येन । दष्टं **ज्ञानेन परमवरं** च ब्रह्म येन ॥ ३ ॥ अमृतोत्पादनानन्तरं गतो मन्दरो यस्मात्तयाविधः क्षीरार्णव इव विश्रान्तिमागतः ॥ ४ ॥ बहिः परिविधान्तधीः अन्तः परमानन्दघूर्णितः । संसारे जन्म येषां तथाविधानां सर्ववस्तुनामाविभीवतिरोभावी तत् तन्निमित्तं मायातस्वमारमतुत्त्वं च जानातीति आविभीवतिरोभावज्ञः ॥५॥ त्रियं मधुरं च श्रवणोचितं वीणागानमिव हृद्यं वाक्यं यस्य सा-क्षात्कारमात्रात्सकलभयापहरं खयं ब्रह्मेव जगदुद्धाराय नवं श-रीरमाभितः । अतएव सहजानन्दप्रहर्षयुक्तो भुशुण्डः प्रश्नोत्तर-कथनाय सरभसेन सद्योगेन वदनेनामिरामरूपः सन्निदमाहेति परेणान्वयः ॥६॥ स भुशुण्डो मा मां प्रति शुद्धममृतमिखलं नि-जखरूपमनुज्झितसंभ्रमेणात्यक्तविनयोपचारोत्साहादिपरिष्कारे-ण कमेण कथायेतुममलगिरा इदं वक्ष्यमाणयृतान्तमाह । यथा मुग्धः सुन्दरो मेघः स्तनितेन खगर्जितरवेण मधुपं मकरन्दपा-

श्रीरसागरसंभूतः प्रसृतामृतनिर्झरः ।
प्रतिबिम्बकरः श्रीमान्यस्य चूडामणिः शशी ॥ ४
अनारतिशरश्चन्द्रप्रस्रवेणामृतीगृतः ।
यस्येन्द्रनीलवत्कालकृटः कण्ठे विभूषणम् ॥ ५
धूलिलेखामहावर्तं स्वच्छपावकसंभवम् ।
परमाणुमयं भस्र यस्य शानजलं सितम् ॥ ६

नरसिकं श्रमरं प्रति तदेवाह तद्वत् । तथाच प्रागेय प्रशुद्धवद्धाः नन्दरसिकं मयि तदुक्तिनीपदेशः किंखनुवादमात्रमिति भायः ॥ ७ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणताःपर्यप्रकाशे निर्वा-णप्रकरणे सप्तदशः सर्गः ॥ ३७ ॥

स्वजन्म वकुमत्रादी हरस्तद्रणमातृकाः ।

तासां पानोत्सवोन्मादा भुशुण्डेनात्र वर्णिताः ॥१॥
तत्र कस्मिन्कुले भवान्जात इति प्रथमप्रश्रस्थोत्तरं वक्तं भूमिकां
रचयति—अस्तीत्यादिना । सर्वेषां नाकनिवासिनां मध्ये श्रेष्ठो
ज्ञानश्ययंवलादिगुणेरत्कृष्टतमो देवानामपि देव इज्य उपास्यश्व,
देवानां देवेर्नद्यादिभिरप्यभितः सर्वतः सदा च वान्दतो नमस्कृतः सुतश्चेति त्रिभिविशेषणाः मर्वाशेऽपि तस्यैवात्कषपरमावधिखमिति दक्षितम् । अनेनार्थाद्वश्यमणबद्धाविद्यारम्मे मञ्जलमपि
कृतं बोध्यम् ॥ १ ॥ पदपदानां श्रेणिरिव नयनानि यस्याः॥२॥
हिममिव हार इव न सिता लहरीलक्षणाः स्ववेर्दमिनता पूरिता ।
गुम्फितेति यावत्॥३॥ अतिबिम्बकरो दर्पणभूतशृद्यामणिः॥४॥
अनारतं शिरश्चन्द्रस्यामृतप्रस्रवेण निरस्तविपशक्तिराहितसंजीवनशक्तिश्चेखमृतीकृतः ॥ ५ ॥ तथा यस्य त्वच्छात्साक्षिपावकाज्यग्द्रस्यमृताकृतः ।। ५ ॥ तथा यस्य त्वच्छात्साक्षिपावकाज्यगद्रस्यमृताकृतः ।। ५ ॥ तथा यस्य त्वच्छात्साक्षिपावकाज्यगद्रस्यमृतीकृतः ॥ ५ ॥ तथा यस्य त्वच्छात्साक्षिपावकाज्यगद्रस्यमृतीकृतः ॥ ५ ॥ तथा वस्य त्वच्छात्साक्षिपावकाज्यगद्रस्यम्तात्वावर्ता यस्मात्याविषं स्थूलभूतानां स्क्मसुक्षमप्रवेशक्रमेण परमस्यक्षमात्रपरिशेषात्यरमाणुमयम्

निर्मलानि जितेन्द्रनि मृष्टानि घटितानि च। यस्यास्थीन्येव रत्नानि देहकान्तमयानि च॥ 9 सुधाकरसुधार्धातं नीलनीरदपह्नवम् । तारकाबिन्दुशवलं यस्य चाम्बरमम्बरम्॥ ረ भ्रमच्छिवाङ्गनापक्रमहामांसीदनाकुलम् । बहिर्भूतं गृहं यस्य इमशानं हिमपाण्डुरम्॥ ९ कपालमालाभरणाः पीतरक्तवसासवाः । आन्त्रस्वामवलिता वन्धवो यस्य मातरः॥ १० प्रस्फुरन्मूर्धमणयश्चरन्तो मस्णाङ्गकाः। भुजगा वलया यस्य प्रकचत्कनकत्विषः॥ ११ द्यपातदग्धशैलेन्द्रं जगत्कवललालसम्। भैरवाचरितं यस्य लीलासंत्रासितासुरम्॥ १२ स्वस्थीकृतजगज्जातस्वव्यापारस्थचेतसः। यद्यच्छया करस्पन्दो यस्यासुरपुरक्षयः॥ १३ एकाप्रमूर्तयः स्नेहरागद्वेषविवर्जिताः। म्बद्दाना यस्य ते शैलाः सरसा अपि नीरसाः ॥ १४ शिरःखुराः खुरकराः करदन्तमुखोद्राः। ऋक्षोष्ट्राजाहिवकाश्च प्रमथा यस्य लालकाः ॥ १५ तस्य नेत्रत्रयोद्धासिवद्नस्यामळप्रभाः।

सितं शुभ्रम् तत्साक्षिचिन्मात्रलक्षणजलप्रावितलाज्ज्ञानजलं मा-यालक्षणं भस्म यस्य मायाशबलब्रह्मणो विभूषणमित्यनुषज्यते । 'हरः संक्षुभ्येनं भजति भसितोद्धलनविधि' इति भगवत्पादाः ॥६॥ मृष्टानि शाणोहेखनेन मणिवच्छोधितानि । अतएव माला-याकारेण घटितानि । देहेषु कान्तानि मनोरमाणि ब्रह्मादिशरी-राणि तन्मयानि तद्विकारभूतानीत्यर्थः ॥७॥ नीला नीरदा मेघा एव पहनानि दशा यस्य । अम्बरमाकाशं दिश इति यावत् । अम्बरं वस्नम् ॥ ८ ॥ भ्रमन्तीभिः शिवाङ्गनाभिः क्रोष्ट्रीभिः पकैर्महामार्सर्नरामिष्वंत्योदनैश्व आकुलम् । प्रामनगरादिभ्यो बहिर्भृतम् । अमन्तीभिः शिवाभिः कल्याणवेषाभिरक्रनाभिः पक्षै-मेंहद्रिर्मृष्टतमलात्प्रशस्यैर्मांसोदनादिभोज्येश्वाकुलं व्याप्तं सर्वदो-षेभ्यो बहिभूतमित्यपि श्वेषादारोप्यते ॥९॥ मातरो वक्ष्यमाणाः । प्रेम्णा बप्रन्तीति बन्धवः सदा फीडासहायाः ॥१०॥ चरन्तः पर्यायेण तत्तदक्रभूषणाय प्रसर्पन्तः । मस्णाक्रकाः क्रिम्धसर्वा-क्राः दीप्यमानस्वर्णकान्तयः ॥११॥ यस्य भैरवं भीषणमाचरितं चरित्रम् । तदेवावयुत्योदाहरति दक्पातेत्यादिविशेषणैः ॥१२॥ सलसंकल्पलात्कस्याणिनतनेनेव खस्थीकृतं जगजातं येन त-थाविधमतएव खब्यापारः समाधिस्तत्स्थं चेतो यस्य तथाविधस्य यस्य यहच्छया समाधिभन्ने यः करस्पन्दः सोऽप्यासुराणि पुराणि क्षिणोत्यसुरैःसह नाशयतीत्यासुरपुरक्षयस्तथाविधो भवतीति वि-शेषः ॥ १३ ॥ यस्य समाधिकाले प्रविद्धमैकार्ध्यं प्रशिवीशैल-रूपतन्मृर्तिषु प्रत्यक्षं दरयत इत्याशयेनाह-एकांप्रति । ब्रेहरा-गद्रेषादिसर्वदोषविवर्जिताः रसा पृथिवी रसो जलं च तत्सहिता

यथा गणास्तथैवान्याः परिवारो हि मातरः ॥ नृत्यन्ति मातरस्तस्य पुरो भूतगणानताः। चतुर्दशविधानन्तभूतजातैकभोजनाः॥ १७ खरोष्ट्राकारवदना रक्तमेदोवसासवाः। दिगन्तरविहारिण्यः शरीरावयवस्रजः॥ १८ वसन्तगिरिकृटेषु ब्योझि लोकान्तरेषु च। अवटेषु इमशानेषु शरीरेषु च देहिनाम्॥ १९ जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता। सिद्धा रक्तालम्बुसा च उत्पला चेति देवताः ॥ २० सर्वासामेव मातृणामष्टावेतास्तु नायिकाः। आसामनुगतास्त्वन्यास्तासामनुगताः पराः ॥ २१ तासां मध्ये महाहीणां मातृणां मुनिनायक । अलम्बुसेति विख्याता माता मानद विद्यते ॥ २२ वज्रास्थितुण्डश्चण्डाख्य इन्द्रनीलाचलोपमः। तस्यास्तु वाहनं काको वैष्णव्या गरुडो यथा॥ २३ इत्यप्टेश्वर्ययुक्तास्ता मातरो रौद्रचेष्टिताः। कदाचिन्मिलता व्योम्नि सर्वाः केनापि हेतुना ॥२५ उत्सर्वं परमं चक्रः परमार्थप्रकाशकम् । वामस्रोतोगता एतास्तुम्बुदं रुद्रमाश्रिताः॥

इति सरसा अपि खशनाः शोभनाशनतृप्ता इव नीरसा अशना-यापिपासादितृष्णाश्रून्यास्ते प्रसिद्धा मेर्हाहमवदादयः शैला यस्य हरस्य एकात्रभृता ध्यानमूर्तयः प्रसिद्धा इत्यर्थः ॥ १४ ॥ इदानी तस्य गणान्सवोङ्गेषु सर्वशक्तिमतो वर्णयति-शार इति। शिरांसि खुरा धावनखण्डनादिखुरशक्तिमन्ति येषाम् । तथा खुराश्व करा विचित्रशिल्पादिकरशक्तिमन्तो येषाम् । तथा कराश्व दन्तमुखोदरं चर्वणभक्षणावपनादिशक्तिमन्तो येषाम् । ऋक्षा भल्काः उष्ट्रा अजाः अहयः सर्पास्तेषामिव वकाणि येषां तथावि-धाः प्रमथा यस्य लालकाः कीडासहाया इत्यर्थः ॥ १५ ॥ यथा गणास्त्रथेव सर्वाङ्गेषु सर्वशक्तिमखो नानाकाराननाध्य मातरस्तस्य परिवारः ॥ १६ ॥ भुवनसंख्यया चतुर्दशविधानि स्वसंख्यया अनन्तानि भूतजातान्येकं मुख्यभोजनमत्रं यासाम् ॥ १७ ॥ रक्तमेदोवसाः आसव इव सदा पैया यासाम् । शरीरावयवाः शवहस्तपादादयः स्रजो यासाम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ तत्कस्य-स्थानां तासां नामान्याह—जया चेत्यादिना । देवता मातृ-देव्यः ॥ २० ॥ ननु 'शतकोट्यस्तु चामुण्डाः' इत्यादिबहुसं-**ख्यत्वे तासां प्रसिद्धे कथम**ष्टावित्युच्यते तन्नाह—सर्वासामे-वेति ॥ २१ ॥ तासां मध्ये सप्तमी या विद्यते तस्यास्तु वाहनं चण्डाख्यः काको विद्यत इति परेणान्वयः ॥ २२ ॥ २३ ॥ इति उक्तलक्षणा मातरः। केनापि विहारहेतुना ॥ २४॥ चित्तेकाम्यद्वारा समाधी परमार्थभूतस्वात्मतत्त्वप्रकाशकं पानी-त्सवम् । वामश्रोतो वाममार्गेण परशक्तयाराधनप्रकारस्तद्वता-सुम्बुरनामानं रुद्रमूर्तिमेदमाराध्यत्वेनाश्रिताः । तुम्बुरं रुद्रं

| पूजियत्या जगत्पूज्यो देवी तुम्बुरुभैरवी। | |
|---|----|
| विचित्रार्थाः कथाश्चकुर्मदिरामदतोषिताः॥ | २६ |
| अथेयमाययी तासां कथावसरतः कथा। | |
| असानुमापतिर्देवः किं पद्यत्यवद्देलया ॥ | २७ |
| प्रभावं दर्शयाम्रोऽस्य पुनर्नास्मास्त्वसौ यथा । | |
| दृष्टमात्रमहाशक्तिः करिष्यत्यवधीरणम्॥ | २८ |
| इति निश्चित्य ता देव्यो विवर्णवदनाङ्गिकाम्। | |
| उमामेच वशीकृत्य प्रोक्षयामासुरादताः॥ | २९ |
| माययापद्दतां भर्तुरङ्गादृङ्गमुपागताम्। | |
| तामालोलकचां देव्यः दोषुरोदनतां गताम्॥ | ३० |
| पार्वतीप्रोक्षणदिने तस्मिस्तत्र महोत्सवः। | |
| बभूव तासां सर्वासां नृत्यगेयमनोहरः॥ | ३१ |
| | |

अत्यानन्दमनुद्दामरचमेवाम्बरं बभौ । दीर्घावयवविक्षेपविकासिजघनोद्राः॥ ३२ अन्या जहसुरुद्दामतालक्ष्वेडाघनारवम् । लसदङ्गविकारं च ध्वनत्सगिरिकाननाः॥ 33 अन्या जगुर्ध्वनच्छेलगृहमापानतोपिताः । वारीव रववद्रअज्ञगन्मण्डलकोटरे ॥ રુક अन्याः पानं पपुः पुष्टचर्चिताङ्गद्दीरःखुरम् । ळीळाघुरघुरारावरणदाकाशकोटरे ॥ 34 पपुरुदगुरथोद्येः सत्वरा जग्मुरूचु-र्जहसुरपुरहोषुः पेतुरुधर्ववत्गुः । ननृतुरनिशमादुः स्वादु मांसं च देव्य-स्त्रिभुवनमपवृत्तं चक्रुरुन्मत्तवृत्ताः ॥ ३६

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्मीकीये देववृतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे मु॰मातृत्र्यवहारवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः॥१८॥

एकोनविंदाः सर्गः १९

भुगुण्ड उवाच ।

इत्युत्सवे वर्तमाने तासां वाहास्त उत्तमाः ।
तथैव मत्ता जहसुनेनृतुः पपुरप्यसृत् ॥ १
तत्रैकत्रासयोन्मत्ताः काश्चित्रनृतुरम्बरे ।
रशहंस्यः स्थिता ब्राह्यः काकश्चालम्बुसारथः ॥२
नृत्यन्तीनां च हंसीनां पियन्तीनामथासयम् ।
तहे चान्धितटानां तु रतिः सम्यगजायत ॥ ३
संजातरतयो मत्ताः सर्वा हंस्यः क्रमेण ताः ।

बामस्रोतो बामभागस्तद्भताः सत्य आश्रिता इति वा ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ कथावसरतः परस्परसंवादकथात्रयुक्तरुद्रकृतमात्रय-हेलनप्रसङ्गेन कथा वाक् आयर्था । तामेव दर्शयति--अस्मा-निति ॥ २० ॥ अथासौ उमापतिर्देष्टमात्रा महती शक्तिरस्म-त्रभावो येन तथाभूतः सन् अस्मानुद्दिश्य यथा पुनः अवधीर-णमवहेलनां न करिष्यति तथा अस्य प्रभावं दशयाम इ-व्यन्वयः ॥ २८ ॥ उमां रुद्रशक्ति वशीकृत्य स्वमूर्यन्तरत्वा-त्स्वाधीनां कृत्वा यज्ञै पशुमिव समन्त्रणाम्भसा प्रोक्षयामासुः। विवर्णवदनाक्षिकामित्यनेन वदनायद्वानां वर्णान्तरापादनेन स-इसा पत्या उमा प्रोक्षितेति परिज्ञातुमशक्यतापादनं सूच्यते ॥ २९ ॥ रफ्तं मातृमण्डलमध्यम् । ओदनतां गतां कर्नु शेपुरिव । मातृणामुमामूर्त्यन्तरत्वेन खात्मिन मुख्यशापायो-गारपरिहासकी डालाच न स्वमूर्यवहेलनादोपोऽपि । ओद-नतां ओदनादिसर्वभक्ष्यभोज्यलेखपेयात्मतां गतां कर्तुमिति होषः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तालः करतालः क्ष्वेडा सिंहनादस्ताभ्यां घनारवं यथा स्यात्तथा जहसुः॥३३॥ ध्वनन्तः शेला गृहाध यस्मिन्कर्मणि तद्यथा भवति तथा। चन्द्रोदयरागेण रञ्जत् रववत् ध्वनच समुद्रवारीव जगर्नुः ॥३४॥ बन्दनादिना रक्तवसासवादिना वा चर्चितान्यनुलिप्तानि पुष्टा-

रेमिरे सह काकेनाप्यथं मत्तास्तदा किल ॥ ४ सप्तानां कुलहंसीनां द्यितो वायसस्त्वसी । क्रमेणारमतेकत्र यावदन्योन्यमीप्सितम् ॥ ५ अथ ता गर्भधारिण्यो बभूयुरतितोषिताः । देव्यक्ष छतनृत्यास्ताः सुप्रशान्तमथाययुः ॥ ६ दहुरोदनतां यातामीश्वराय प्रियामुमाम् । भोजनाय महामायां देव्यस्ताः शुल्रपाणये ॥ ७ प्रिया मे भोजने दत्तेत्येवं च शशिशेखरः ।

न्यक्तानि शिरआदिख्रपयंग्नानि यथा स्युस्तथा पानं पपुः ॥३५॥ तासासुन्मस्तृत्तान्येव कानिन्विद्मिलपञ्चपसंहरति—पपुरिति । पपुः पेयानि । अपुः परस्परं ररखुः । परस्परसुखे अर्मा वा अहोषुः । अपवृत्तं परिवृत्तं स्वानारशिक्षया अपगतसदृत्तं वा ॥ ३६ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यमकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टावृशः सर्गः ॥ १८ ॥

बाह्या हंस्यां चण्डयोगास्स्जनम आनृतिः सह ।
बाह्याः प्रसादाञ्ज्ञानातिः पितुः स्थानातिरूयते ॥ १ ॥
तासां मातृणाम् । वाहा वाहनभृताधण्डादयः ॥ १ ॥ तश्र
तिसम्भृतसवे बाह्यो ब्रह्मणीसंवन्धिन्यो रथहंस्यः अरुम्युसाया
रथो वाहनभृतधण्डाह्यः काकश्र एकत्र स्थिता ननृतुः ॥ २ ॥
अध्यतदानां वेळानां तर्ले समभूप्रदेशे इति उद्दीपनिवभावोक्तिः । रतिरनुरागः ॥ ३ ॥ मत्तलादेवोत्कृष्टजातीनामपि
हंसीनां निकृष्टजातीयेनापि काकेन सह रतिरनुचितापि संपमेति सूचनायापिशव्दः ॥ ४ ॥ एकत्रेति वीध्सितम् । एकैकस्यां हंस्यां यावदन्योन्यमीध्सितमिच्छापृर्तिस्तावदरमतेत्यर्थः ।
अथ कृतोत्सवकृत्यास्ता देव्यो मातस्थ स्वमायाचेष्टाविमर्थातमुप्रशान्तमकुष्यन्तं रुदं ययुः ॥ ६ ॥ अतएव ओदनतां
यातासुमां तस्म ईश्वराय भोजनाय दृदुः ॥ ७ ॥ यदा शिहा-

बुद्धा बभ्व रुपितो यदा मातृगणं प्रति ॥ ८ तदा तास्तां समुत्पाद्य स्वाङ्कादानेन व पुनः । दुर्भूयो विवाहेन पार्वतीमिन्दुमालये ॥ ९ ततो देव्यो हरक्षेव परिवारस्तथतयोः । सर्वे संतुष्टमनसः स्वां स्वामुपययुर्विद्यम् ॥ १० अन्तर्वक्यो बभूवुस्ता ब्राह्मयो हंस्यो मुनीश्वर । वृक्तान्तं कथयामासुर्बाह्मया देव्या यथास्थितम् ११ ब्राह्मयुवाच ।

हे वत्स्यः सांप्रतं यत्सवत्यो मे रथकर्मणि । न समर्था भवन्त्यो हि स्थैरं चरत सांप्रतम्॥ १२ इति गर्भालसा हंसीरुक्त्वा देवी दयापरा । निर्विकरुपसमाधाने ब्राह्मी तस्थी यथासुखम् ॥१३ अजनामिसरोजान्तवैरिश्चकमलाकरे । गर्भालसा विचेहस्ता राजहंस्यो मुनीश्वर ॥ १४ पर्वं विपक्तगर्भास्ता नाभीकमलपहुवे। सुवतेस मृद्रन्यण्डान्यथ वल्लब इवाङ्करान्॥ १५ तानि कालं समासाद्य ततोऽण्डान्येकविंशतिः। गर्भाकान्त्या द्विधा जग्मुर्ब्रह्माण्डानीव सारवत् ॥१६ अण्डेभ्यस्तेभ्य एवं हि जाता वयमिमे मुने। **म्रात**रश्चण्डतनया वायसा एकविशतिः॥ १७ ते संजाता गता वृद्धि तिसन्कमलपञ्जवे । संजातपक्षाः संपन्ना गगनोड्डयने क्षमाः ॥ १८ मातृभिः सह हंसीभिर्वाह्यी भगवती ततः । चिरमाराधिता सम्यक्समाधिविरता सती॥ १९ प्रसादपरया काले भगवत्या ततः स्वयम् ।

शेखरों में प्रिया भोजने दत्तेति बुद्धा मातृगणं प्रति रूपितो बभूव तदा ता मातरस्तां पार्वतीं खाङ्गदानेन खखाङ्गैः शिर-आदेकैकावयवकल्पनेन पुनरुत्पाद्य भूयो विवाहेन पाणिप्रहण-विधिना ददुरिति द्वयोरन्वयः ॥ ८ ॥ ९ ॥ एतयोर्देवीहरयोः । मातृणां देव्यंशत्वेनैकीकारादेकशेषे द्विवचनम् ॥ १० ॥ अन्त-र्वतन्यो गर्भिण्यः ॥ ११ ॥ वत्सवस्यो गर्भिण्यः ॥ १२ ॥ इति उक्ता तद्तुप्रहाय संचारं विहाय निर्विकल्पान्ये समाधाने समार्थो ॥ १३ ॥ अजस्य विष्णोर्नामिसरोजस्यान्ते मूळे वैरि-श्रस्य कमलस्याकरे उत्पत्तिस्थाने विचेरः ॥ १४ ॥ नामिकम-लस्य पत्नवे किसलयप्रदेशे ॥ १५ ॥ गर्भाकान्त्या परिपक्षगर्भ-पादनिक्षेपेण द्विधा जग्मुः अमिदान्त । यथा सारवत् सार-बन्ति । व्यत्ययेनैकवचनम् । ब्रह्माण्डानि खर्णरजतसर्पराभ्याम-भियन्त तद्वत् ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ 'ज्ञातज्ञेयः कथं भवान्' इल्स्स प्रश्नस्योत्तरं वक्तुमुपकमते—मातृभिरिति । मातृभिः सह चिरमाराधिता अस्माभिरिति शेषः ॥ १९ ॥ तथा तादृशेन तत्त्वसाक्षात्कारफलेन अनुगृहीताः स्मः ॥ २० ॥ तिष्टामः स्थास्याम इति निश्चित्य पितुः पार्श्वे विन्ध्ययन्छे ॥ २१ ॥

१ नागजातिद्वयस्य स्था स्थितियसिश्वेनविध आत्मा स्वरूपं

तथाङ्गानुगृहीता स्मो येन मुक्ता वयं स्थिताः॥२० संशान्तमनसः शान्ता एकान्ते ध्यानसंस्थितौ। तिष्ठाम इति निश्चित्य पितुः पाश्वें वयं गताः॥२१ आलिङ्गितास्ततः पित्रा पूजितालम्बुसा वयम्। तया दृष्टाः प्रसादेन संस्थितास्तत्र संयताः॥ २२

चण्ड उवाच।

पुत्राः कश्चिद्पर्यन्तवासनातन्तुगुण्ठितात्।
भवन्तो निर्गता नूनमस्मात्संसारजालकात्॥ २३
नो चेद्वयं भगवती तदिमां भृत्यवत्सलाम्।
प्रार्थयामो यथा यूयं भवथ क्षानपारगाः॥ २४

काका ऊचुः।

तात झातमलं श्रेयं ब्राह्मया देव्याः प्रसादतः। किरवेकान्तस्थितेः स्थानमभिवाञ्छाम उत्तमम् २५

चण्ड उवाच।

सर्वरत्नगणाधारः समस्तसुरसंश्रयः ।
अस्ति श्रेव महोत्सेधो मेरुनाम महीधरः ॥ २६
लस्मन्द्रार्कदीपस्य भूतवृन्दकलित्रणः ।
ब्रह्माण्डमण्डपस्यान्तस्तम्भः कनकनिर्मितः ॥ २७
सीवर्णचन्द्रपीठात्व्यो रत्नात्व्यशिखराङ्गुलिः ।
ध्वनद्वीपाध्यिवलयो भुवेबोन्नमितो भुजः ॥ २८
वृतः कुलाद्रिसामन्तैर्जम्बृद्वीपासने स्थितः ।
राजा चन्द्रार्कनयने भ्रमयञ्जेलसंसदि ॥ २९
तारीघमालतीमाल्यो दिग्दशैकाम्बराम्बरः ।
नागजातिद्वयस्थात्मा नाकनायकभूषणः ॥ ३०

पृजिता अलम्बुसा यैः । संयता विनयादिगुणयिश्रताः ॥ २२ ॥ संसारलक्षणाज्ञालकारपक्षिवन्धनानायाम्निर्गताः किषदितीष्टप्रक्षे ॥ २३ ॥ तत्तदर्थम् । भवथ भविष्यथ ॥ २४ ॥ एकान्ते स्थितेरवस्थानस्य योग्यं स्थानं निवासमभिवाञ्छामः ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ मेरुमेव वर्णयति---लगदिलादिना । भूतवृन्दैः प्राणि-समृहैः कलत्रिणः कुटुम्बिनो ब्रह्माण्डलक्षणस्य मण्डपस्य गृहस्य अन्तःस्तम्भो मध्यस्तम्भः ॥ २७ ॥ सीवर्गेन चन्द्राकारेण पीठेन मूलबन्धाङ्गसहरोन किंपुरुषादिवर्षगणेन आद्यःसंपन्नः रक्रमयैर-ङ्गर्लीयकैराट्याःशिखराण्येत्राङ्गरूयो यस्य ध्वनन्तो द्वीपा अय्धय-श्र वलया यस्य । ईदशो भुवा उन्नमित ऊर्ध्वाकृतो भुज इव स्थितः ॥ २८ ॥ तमेव राजत्वेन वर्णयति—वृत इत्यादिभिः । जम्बुद्धी-परुक्षणे आसने सिंहासने राजा शैलानामिति शेषः । अतएव शैलसंसदि चन्द्रार्फलक्षणे नयने भ्रमयन् ॥ २९ ॥ तारीघा एव मालतीमाल्यानि यस्य । दिश एव दशा यस्य तथाविधमेक-मम्बरमाकाशमेवाम्बरं वस्त्रं यस्य । नागशब्दार्थभूतस्य सर्पगज-जातिद्वयस्य अधारः। नाकनायका इन्द्रादय एव भूषणानि

यस्येति समासे फलितोऽयमर्थः । स्था इस्यत्र भावे किप्

दिगक्तनामिरमितो रम्याभिः पुरभूषणैः। एव निस्यन्दिभिः शीतवींजितो घनचामरैः॥ 38 षोडशास्य सहस्राणि योजनानामधः क्षिती। स्थिताः पादाः प्रपूज्यन्ते नागासुरमहोरगैः ॥ ३२ अशीतिश्च सहस्राणि देहोऽस्यार्केन्दुलोचनः। पूज्यते नाकसद्ने सुरगन्धर्वकिनरैः॥ 33 चतुर्दशविधान्येनं गृहस्थमिव बान्धवाः। उपजीवन्ति भूतानि मिथो दृष्पुरास्पदम्॥ 38 अस्य त्वीशानदिग्भागे पद्मरागमयं बृहत्। विद्यते श्रुङ्गमपरो दिवाकर इवोदितः॥ રૂપ अस्यास्ति पृष्ठे भूतौघवृतः कल्पतरुर्महान्। जगतः शिखरादर्शे प्रतिविम्यमिव स्थितः॥ ३६ तस्यास्ति दक्षिणस्कन्धे शाखा कनकपछ्या। रझस्तवकनीरन्धा चन्द्रविम्योहसत्फला॥ ३७ तत्र पूर्व मया नीडं कृतमासीत्स्फुरन्मणि। देव्यां ध्याननिपण्णायां यिसन्किल रमे सुताः ॥ ३८ रह्मपुष्पदऌच्छन्नं रसायनफलान्वितम् । चिन्तामणिशलाकाभिर्विहितालिन्दसंस्थिति ॥ ३९ बुद्धिपूर्वसमाचारैः संपूर्ण काकपुत्रकैः। शीतलाभ्यन्तरं हृद्यं पूरितं कुसुमोत्करैः॥ 80 तद्गच्छत सुता नीडं दुर्ग नाकवतामपि।

भोगं मोक्षं च तत्रस्था निर्विघमलमाप्यथ ॥ इत्युक्त्वास्मान्यिता तत्र सुसुम्बाभ्यालिलिङ्ग च। ददौ देव्या यदा नीतमस्मभ्यं च तदामिषम्॥ ४२ तद्भक्त्वा चरणौ देव्याः पितुश्चेवाभिवाद्य च। विन्ध्यकच्छाद्वयं तस्मात्स्थानादालम्बुसात्प्रुताः४३ क्रमेणाकाशमुहङ्ख्य निर्गत्याम्युदकोटरैः। पवनस्कन्धमासाद्य वन्दितव्योमचारिणः॥ 88 परिद्वत्य दिनाधीशं लोकान्तरपुरं गताः। स्वर्गमुहङ्ख्य याताः स्मो ब्रह्मलोकं मुनीश्वर ॥ ४५ प्रणामपूर्वं तत्रैतद्यथावत्तत्पितुर्वेचः। मात्रे च भगवत्ये च ब्राह्ये चाशु निवेदितम्॥ ४६ ताभ्यां सस्नेहमालिङ्गा गच्छतेत्याश्रयेधिताः। वयं कृतनमस्कारा ब्रह्मलोकाद्विनिर्गताः॥ 80 उल्लङ्गय लोकपालानां पुरीस्तपनभास्वराः। आकाशगामिनो लोलाः पवनस्कन्धचारिणः ॥ ४८ इमं कल्पतरं प्राप्य निजं नीडं प्रविश्य च। दूरस्थवाधास्तिष्ठामो मुने मौनमवस्थिताः॥ जाता यथा वयमिमे स्थितिमागताश्च संप्राप्य बोधमुपशान्तश्वियो यथावत्। पतत्तदुक्तमविखण्डमलं मया ते दोषेण मां समजुदााधि महानुभाव ॥

इस्रार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्माकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्र० भुग्नुं० आखयखाभो नाम एकोनर्विशतितमः सर्गः ॥१९॥

विंदाः सर्गः २०

भुशुण्ड उवाच । आसीर्त्किचित्युरा कल्पे जगर्चाश्वरमास्थितम् ।

यस्य ॥ ३० ॥ घना भेघास्तक्ष्र्यणेनीळश्रेतादिचामरैः ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ पूज्यते सेव्यते ॥ ३३ ॥ ब्रह्मर्षयो देवर्पयो राज-र्षयो देवाः पितरो गन्धर्वाः किन्नरा अप्सरसो विद्याधरा यक्षा रक्षांति प्रमथा गुह्यका नागाश्रेति चतुर्दशविधानि भूतान्यति-विस्तीणेलानिमधो न दष्टानि पुराणि आसादानि स्थानानि च यत्र तद्यथा स्यात्तथा उपजीवन्ति ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ शिखर-लक्षणे विद्वमादर्शे जगतः प्रतिबिम्बभिव स्थितः कल्पतरुः ॥ ३६ ॥ चन्द्रविम्बानीयोक्षसन्ति फलानि यस्याम् ॥ ३७ ॥ स्फुरन्तो मणयो यस्मित्तथाविधं नीडम् ॥ ३८ ॥ चिन्तामणि-शलाकामिर्विहिता अलिन्दसंस्थितिबेहिर्द्वारप्रकोष्ठरचना यस्मिन् ॥ ३९ ॥ बुद्धिपूर्वसमाचारैविचारपूर्वव्यवद्वारशीँठः ॥ ४० ॥ नाकवतां देवानामपि दुर्गम् ॥ ४९ ॥ आमिषं मांसम् ॥४२॥ आलम्बुसादलम्बुसानिवासात् ॥ ४३ ॥ वन्दिता व्योमचारिणो देवा यै: ॥ ४४ ॥ अस्माह्मोकाह्मोकान्तरं स्वर्गस्तत्पुरममराव-तीम् १ ४५ ॥ तत्र ब्रह्मलोके ॥ ४६ ॥ गच्छतेति आइया आहारानेनाशिषा च एचिता वर्धिताः ॥ ४० ॥ तपनवद्गा-

संनिवेशेन चैतद्वदद्यापि च न दूरगम्॥ १

लराः ॥ ४८ ॥ मौनं यथा स्यात्तथा अवस्थिताः। सदा समाथिपरा इतियावत् ॥ ४९ ॥ उक्तमुपसंहरति—जाता इति ।
हे महानुभाव, वयं जाताः । यथा च यथावद्वोधं संप्राप्य
स्थितिमेतत्स्थाननिवासमागताक्षेत्येतत्प्रक्षत्रयोत्तरं सर्वमविलण्डं
यथा स्यात्तथा ते तुभ्यमुक्तम् । अतः परं शेषेणावशिष्टेन
'कियदायुश्च ते साथो वृत्तं स्मर्रात किंच वा' इति प्रश्रद्वयोत्तरेणान्येन वक्तव्यनिमित्तेन मां सम्यगनुशाधि आक्षापय तदिष
तुभ्यं वदिष्यामीत्यर्थः ॥ ५०॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतार्ष्ययक्राहो निर्वाणप्रकरणे एकोनविंशतितमः सर्गः ॥१९॥

प्रतिकल्पं जगत्साम्यं आतृणां निधनं तथा।
प्रल्येऽपि भुशुण्डोऽत्र स्वचित्तस्थेर्यमुक्तवान् ॥ १ ॥
तत्र 'वृत्तं स्मरिस किंच वा' इति प्रश्नस्य विस्तरेणोत्तरं वक्तुकामो वश्यमाणबहुकल्पस्वजीवनोक्तेः 'इमं कल्पत्रुं प्राप्य
निजनीडं प्रविश्य च' इत्याद्युक्तेश्व पूर्वोत्तरविरोधाशङ्का माभूदिति कल्पनृक्षमेवीदीनां प्रतिकल्पं संस्थानसाम्यादैक्यवाद्
इत्याश्यं दर्शयति—आसीदिलादिना । पुरा असाबन्महेती

4

तदेतहृत्तमभ्यासाह्रतंमानेन वर्णितम्।
मया मुनीन्द्र बोधाय प्राग्जन्मसाम्यद्दिं। ॥
अद्य मे फलितं पुण्येश्चिरकालोपसंभृतैः।
निर्विद्ममेय पश्यामि यद्भवन्तं मुने ततः॥
इदं नीडमिमां शाखामहं चायमयं हुमः।
अद्य पावनतां प्राप्तान्येतानि तव दर्शनात्॥
इदमर्घ्यमिदं पाद्यं गृहीत्वा विह्गापितम्।
नूनं पावनतां नीत्वा शेषणादिश चाशु भोः॥
श्रीविषय उवाच।

अवाति उपाय । इदमध्यं च पाद्यं च भूयो दत्तवति स्वयम् । भुशुण्डविहगे तस्मिन्निदं रामाहमुक्तवान् ॥

भ्रातरस्ते विद्यङ्गेश तादयसत्वा महाधियः। इह कस्मान्न दृश्यन्ते त्वमेवैको हि दृश्यसे॥

भुगुण्ड उवाच ।
तिष्ठतामिह नः कालो महानतिगतो मुने ।
युगानां पङ्कयः श्लीणा दिवसानामियानय ॥ ८
पतावताथ कालेन सर्व एव ममानुजाः ।
तन्स्तृणमिव त्यक्त्वा शिवे परिणताः पदे ॥ ९
दीर्घायुषो महान्तोऽपि सन्तोऽपि वलिनोऽपि च ।
सर्व एव निगीर्यन्ते कालेनाकलितात्मना ॥ १०

श्रीविषष्ठ उवाच ।
स्कन्धव्यूढार्कशिशु वहत्स्वविरतं जवात् ।
धातस्कन्धातिवातेषु कश्चित्तात न खिद्यसे ॥ ११
दग्धोदयास्तशैलेन्द्रयनव्यूहै रवेः करैः ।
चिरमत्यन्तमासन्नैः कश्चित्तात न खिद्यसे ॥ १२

कल्पे यत् किचिज्ञगत् पदार्थवृन्दं चिरमास्थितं तत्संनिवेशेन अवयवसंस्थानाकृत्यादिना एतद्वत् एतत्कत्नीयपदार्थवदेव आ-सीत्। अतस्तद्यापि न दूर्गं अमेदारोपात्सिनिहितमेयेति बुद्धा इमं कल्पतरुमित्यादिनिर्देश इत्यर्थः ॥ १ ॥ तत्तस्मा-द्रुत्तमतीतमपि जगङ्गान्त्यभ्यासाद्वर्तमानेन जगता ऐक्येन वर्णितम् ॥ २ ॥ तत्र दीर्धकथाप्रस्तावे पूजाविलम्बो माभू-दिति प्रथमं पूजास्वीकारं प्रार्थियतुं स्त्रत्या असिमुखीक-रोति-अवेति द्वाभ्याम् ॥ ३ ॥ इमां शास्त्रामनुगतमिदं नी-डम् । एतानीति 'नपुंसकमनपुंसकेन' इति नपुंसकैकशेषः॥४॥ शेषेणावशिष्टसेवाविषयेण निमित्तेन आदिश प्रश्नान्वक्तमि-त्यर्थः ॥ ५ ॥ भूयः द्वितीयवारम् । उक्तवान् पृष्टवान् ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥ तन्ः शरीराणि ॥ ९ ॥ अकलितात्मना अल-क्षितस्बरूपेण ॥ १० ॥ स्कन्धेषु मालेव व्यूढा अर्का द्वादशा-दिल्याः शशिनश्रं यस्तयाविधेषु वातस्कन्धप्रवहादिमहदतिका-मिषु प्रलयवायुमेदेषु ॥ ११ ॥ १२ ॥ पाषाणवद्धनीकृतानि वारीणि येस्तथाविधेरिन्दोः करैरासम्रप्रलयाम्युदकरकापातिश्र ॥ १३ ॥ इह मेरुशिखरे विश्रान्तैः परश्चनपि च्छिन्दन्ति क्षत-धारान्कुर्वन्ति शिलीभूता नीहारा येभ्यस्तैः ॥ १४ ॥ १५ ॥

इन्दोरथ करैः शीतैः पाषाणीकृतवारिभिः। आसन्नकरकापातैः कश्चित्तात न खिद्यसे॥ १३ अजस्त्रमिह विथान्तैः कल्पजीमृत्मण्ड्लैः। परशुच्छेदनीहारैः किबत्तात न खिद्यसे ॥ १४ विषमेर्जागतैः क्षोभेरुबैस्तरपदस्थितः। कथं न क्षोभमायाति कल्पवृक्षोऽयमुन्नतः ॥ १५ भुशुण्ड उवाच। निरालम्बास्पदा ब्रह्मन्सर्वलोकावहेलिता । तुच्छेयं सर्वभूतानां मध्ये विहगजीविका ॥ १६ ईरहोषु च भूतेषु निर्जरेषुं वनेषु च । कव्पितास्थास्थितिर्धात्रा शून्ये वा न्योमवरमैनि १७ कथमस्यां प्रभो जातौ जातस्य चिरजीविनः। आशापाशनिबद्धस्य विह्यस्य विशोकिता ॥ १८ वयं तु भगविश्वत्यमात्मसंतोषमास्थिताः। न कदाचन नीरूपे मुह्यामो जातविभ्रमः॥ १९ स्वभावमात्रसंतुष्टाः कष्टैर्मुक्ता विचेष्टितैः। क्षिपामः केवलं कालमस्मिन्ब्रह्मन्निजालये ॥ २० न जीवितान्न मरणात्कर्मदेहस्य रोधनम्। यथास्थितेन तिष्ठामस्तथैवास्तंगतेहिताः॥ २१ आलोकिता लोकदशा दृष्टा दृष्टान्तदृष्ट्यः। नृनं संत्यक्तमस्माकं मनसा चञ्चलं वपुः॥ २२ अनारतनिजालोके नित्यं चापरितापिनि । कल्पागस्योपरि सदा वेद्रि कालकलागतिम् ॥ २३ रत्नगुच्छप्रकाशास्त्रे ब्रह्मन्करपस्रतायृहे । प्राणापानप्रवाहेण वेद्यि कल्पमखण्डितम् ॥

कृच्छकालेषु महतामपि खेदः संभावितः कि पुनर्विहगाधमयो-निजातस्य मम तथापि विवेकप्रभावात्र खेदप्रसिकारिति वक्तं ख्रयोनिजीविकाया इतरजीविकापेक्षया फल्गुतामाह—निराल-म्बेति । निरालम्ब आकाशस्तदास्पदा ॥ १६ ॥ ईदशेषु फल्गु-व्विप भूतेषु योनिषु । धात्रा आस्थया प्रांत्या स्थितिजीविका कल्पिता तिश्वत्रमित्यर्थः । इवार्थे वाशब्दः ॥ १७ ॥ १८ ॥ नीहर्षे निःखरूपे ॥ १९ ॥ करैः क्षेशफलैः परपीडाविचेष्टि-तैर्मुक्ताः ॥ २० ॥ जीविताजीवनात् । देहस्य कर्म ऐहिकासु-ष्मिकफलार्था कियाम् । नापि मरणाद्देहस्य रोधनं नाशं वा-ञ्छामेत्युभयत्र शेषः । यथा इदानीं स्थितेन नित्यसिद्धनिरति-शयाजन्दातमस्त्रभावेन तिष्ठामस्त्रथेत्राभेऽपि तेनैवास्तंगतेहिताः पूर्णकामाः स्थास्याम इत्यर्थः ॥ २१ ॥ ठोकानां दशा जन्म-मरणाद्यनर्थदशा । मिध्यालनिर्णायिकाः खप्रादिदृष्टान्तदृष्ट्यो हृष्टाः ॥ २२ ॥ तत्र तावत्कल्पान्तपर्यन्तं कल्पवृक्षप्रभावादेव नास्माकं खेदप्रसक्तिरिलाह—अनारतेलादिना । कल्पागस्य कल्पपृक्षस्य ॥ २३ ॥ प्रकाशबद्गुललादविज्ञेयदिनरात्रिविर्मा-गेऽत्र कथं कालकलागतिं वेत्सि तत्राह्-रन्नेति । प्राणापानप्र-

१ निर्जनेषु इति पाठः.

अविद्यातिविषारात्री हासिसुद्यैः शिलोचये। जानामि निजया बुद्धा लोककालकमस्थितिम् २५ सारासारपरिच्छेदि बोधाद्विश्रान्तिमागतम्। निरस्तचापलं शान्तं सुस्थिरं मे मुने मनः॥ संसारव्यवहारोत्थेराज्ञापाज्ञैरसन्मयैः। उद्वारैरिव भूकाको न वैवद्यं त्रजाम्यहम्॥ २७ परोपशमधर्मिण्या वयमालोकशीतया। पद्यन्तो जागतीं मायां धिया धैर्यमुपागताः ॥ २८ भीमास्त्रपि महाबुद्धे दशास्त्रचलबुद्धयः। बिनिर्मलोपलाकाराः संप्राप्तासु यथाक्रमम्॥ २९ इयमारम्मसुभगा तरला जागती स्थितिः। भूयो भूयः परामृष्टा नच किंचन बाधते॥ 30 सर्वाण्येष प्रयान्त्येष समायान्ति च वा नवा। भगवन्भूतजालानि भयमस्माकमत्र किम्॥ 38 भृतजालतरङ्गिण्या विशन्त्याः कालसागरे । वयं संसारसरितस्तटस्था अप्यनादृताः॥ ३२ नोज्यामो नच गृहीमस्तिष्ठामो नेह च स्थिताः। मृतुपादा दशा करा वयमसिन्द्रमे स्थिताः॥ ३३ इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे भुद्युण्डोपारूयाने भुद्युण्डस्वरूपनिरूपणं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

वीतशोकभयायासैस्त्वादशैः पुरुषोत्तमैः। तुष्टैरनुगृहीताः सः संस्थिता विगतामयाः 🕕 ततस्ततश्च पर्यस्तं लुठितं नच वृत्तिषु । नापरामृष्टतस्वार्थमस्माकं भगवन्मनः॥ રૂપ निर्विकारे गतक्षोमे चात्मन्युपरामं गते। चित्तरङ्गाः प्रबुद्धाः साः पर्वणीव महान्धयः ॥ ३६ भवदागमनाद्वसन्त्रिदानीं मुदिताशयाः। मन्दरोद्धृतसर्वाङ्गः क्षीरोदो येन तन्यते ॥ ३७ नातः परतरं किचिन्मन्ये कुशलमात्मनः। सन्तो यद्ञुगम्यन्ते संत्यक्तसक्ष्रैषणाः॥ 34 आपातमात्ररम्येभ्यो भोगेभ्यः क्रिमवाप्यते । सत्सङ्गचिन्तामणितः सर्वसारमवाप्यते ॥ રૂલ્ क्रिन्धगम्भीरमस्णमधुरोदारधीरवाक्। त्रेलोक्यपद्मकोशेऽस्मिस्त्वमेकः पट्टपदायसे॥ अधिगतपरमात्मनोऽपि मन्ये भषदवलोकनशान्तदुष्कृतस्य । मम सफलमिहाच जन्म साधो सकलभयापहरो हि साधुसङ्गः॥

एकविंचाः सर्गः २१

भुशुण्ड उवाच । युगभोमेषु घोरेषु वाक्यासु विषमासु च। सुस्थिरः कल्पवृक्षोऽयं न कदाचन कम्पते ॥ अगम्योऽयं समग्राणां लोकान्तरविहारिणाम्।

वाहेण खरोदयशास्त्रप्रसिद्धोपायेनेत्यर्थः ॥ २४ ॥ २५ ॥ मनः-स्थेर्यबलादपि न मे खेदप्रसक्तिरिलाशयेनाह—सारेति ॥२६॥ उद्गारध्वनिप्रायैरल्पध्वनिभिः प्राकृतो भूकाक इव नाहं वैयद्यं भयं त्रजामि ॥ २७॥ धीरलादपि नास्माकं खेदप्रसक्तिरि-त्याह—परेति ॥ २८ ॥ दशाकममनुस्त्य भीमाखपि दशासु संप्राप्तासु विनिर्मलोपलः स्फटिकादिस्तदाकारास्तत्सदशाः॥२९॥ जगत्तरवस्य भूयो विमर्शबलादपि न खेदप्रसक्तिरित्याह--इय-मिति ॥३०॥ 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्ववं जन्म मृतस्य च' इति भगवद्शितदिशा सर्वसाधारणे दुःखे अपरिहार्यतानिश्वयाद्वा न भयप्रसक्तिरित्याह-सर्वाणीति। वा अथवा न वा प्रयान्ति न वा समायान्ति । परमार्थदशेखर्थः ॥३१॥ तत्त्वज्ञस्य स्वस्य तटस्थ-तया सर्वभूतसंसारद्रष्ट्रलातत्रादराभावाच न भयप्रसिक्तरि-खाइ-भूतेति ॥ ३२ ॥ व्यवहारमात्रसिद्धये सकण्टकभुवीव सावधानतया संसारे क्रमणान्मृदुपादाः। तत्त्वहशा संसारोच्छे-दिलात्कूराः ॥ ३३ ॥ महतामनुष्रहादपि न नः खेदप्रसक्ति-रिखाइ--- नीवेति ॥ ३४ ॥ व्यवहारमात्रसिद्धये ततस्ततः पर्थ-स्तमपि रागादिवृत्तिषु न छठितम् ॥ ३५ ॥ चितः सर्वतो

योग० १०३

भूतानां तेन तिष्ठाम इह साधो सुखेन वै॥ ર हिरण्याक्षो धरापीठं द्वीपसप्तकवेष्टितम् । यदा जहार तरसा नाकम्पत तदा तरः॥ ş यदा लोलायितवपुर्वभूवामरपर्वतः।

ब्रह्माकारवृत्तिचन्द्रोदयोद्रिक्तबोधा एव तरङ्गा येषां तथाविधाः सन्तः पर्वणि महान्धय इव प्रबुद्धाः स्मः ॥ ३६ ॥ तादशा वयं इदानी भवदागमनादेतोः । येनोहेशेन क्षीरोदः क्षीरसा-गरो मन्दरोद्भतसर्वाङ्गो निर्मथ्यमानस्तन्यते तेनामृतेन मुदिता-शयाः संपन्नो इत्यर्थः । 'खन्यते ' इति पाठेऽप्यवदायंते मध्यत इत्येवार्थः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सर्थसारं ज्ञानम् ॥ ३९ ॥ ४० ॥ भवदवलोकनेन शान्तं दुष्कृतं दुष्टप्रारच्यं यस्य तथाविधस्य मम जन्म अद्य सफलं निरतिशयानन्दफलयुक्तमभूदित्यर्थः ॥ ४१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वा-णप्रकरणे विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

> कल्पवृक्षस्य माहात्म्यं प्रलये धारणास्थितिः । नियतिर्भूरिषित्रार्थस्मृतिश्वात्रोपवर्ण्यते ॥ ३ ॥

स्वाश्रयकल्पवृक्षमाहात्म्योपवर्णने युगान्तोत्पातादिषु स्वस्य खेदाप्रसक्तिप्रपद्मनमुखेन 'यृतं स्मरसि किंच वे'ति प्रक्षोत्तरं वक्तुमुपक्रमते—युगक्षोमेष्वित्यादिना ॥ १ ॥ २ ॥ धरया सह कल्पनृक्षस्यापि हरणं विद्यत **दिव्यप्रभावब**ळात्राकम्पतेत्याशयः ॥ ३ ॥ सर्वतो दत्ताः

કુષ્ટ

सर्वतो दत्तसाम्याद्रिस्तदा नाकम्पत द्रुमः॥ 8 भुजावष्टम्भविनमन्मेरुनीरायणो यदा। मन्दरं प्रोद्दधाराद्रि तदा नाकम्पत द्रुमः॥ 4 यदा सुरासुरक्षोभपतश्चन्द्रार्कमण्डलम् । आसीज्जगदतिश्चर्धं तदा नाकम्पत द्रुमः॥ Ę उन्मृतिताद्रीन्द्रशिला यदोत्पातानिला बद्धः। आधृतमेरुतरयस्तदा नाकम्पत द्रुमः॥ 9 यदा क्षीरोदलोलाद्रिकन्दरानिलकम्पिताः । कल्पाभ्रपङ्कयश्चेरुस्तदा नाकम्पत दुमः॥ यदा समन्ततो मेघः कालनेमिभुजान्तरे। किंचिवुनमुलितोऽतिष्ठत्तदा नाकम्पत द्रुमः॥ पक्षीशपक्षपवना अमृताक्रान्तिसंगरे। यदा बबुः पतित्सदास्तदायं नापतद्वमः॥ ξo यदा रोपाकृति रही न समाप्तेकचेष्टिताम्। ययौ गरुत्मान्त्रह्माण्डं तदा नाकस्पत द्रुमः॥ ११ यदा कल्पानलशिखाः शैलाब्धिसकलेखिणः। शेषः फणाभिस्तत्याज तदा नाकम्पत द्वमः॥ १२ एवंसपे दुमवरे तिष्ठतामापदः कुतः। असाकं मुनिशार्वुल वौःस्थिलेन किलापदः ॥ १३

श्रीवसिष्ठ उवाच । कल्पान्तेषु महाबुद्धे वहत्सृत्पातवायुषु । प्रपतिस्थिन्दुभाकेषु कथं तिष्ठसि विज्वरः ॥

साम्याय स्तम्भोपष्टम्भशिलाबदद्रयो यस्य तथाविधोऽमर-पर्वतः । अर्थाद्वराहेण पुनर्भूमिप्रतिष्ठापनदशायामिति गम्यते ॥ ४ ॥ भुजेति । अत्रापि नतुर्भुजो द्वाभ्यां भुजाभ्यां मेहमबष्टभ्येतराभ्यां मन्दरं त्रोद्दधारेति गम्यते ॥ ५ ॥ सुरा-सुरयोः क्षोभस्तीत्रसंत्रामस्तेन पतचन्द्रार्कमण्डलम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ क्षीराच्या छोलस्य मन्दरादेः कन्दरानिर्छेरिव कम्पिताः ॥ ८ ॥ कालनेमिभुजान्तरे प्रकम्पितस्तारकामये संप्रामे प्रसिद्धः ॥९॥ अमृताकान्तिरमृताहरणं तद्थे संगरे । पतन्तः सिद्धा येभ्यः ॥ १०॥ 'गरुडस्य जातमात्रस्य सर्वे लोकाः प्रकम्पिताः। प्रकम्पिता मही सर्व। सप्तद्वीपाश्च कम्पिताः तदुत्पातात्रिम-जन्तीं भुवं नावमित्राम्भति । दधौ सहस्रैः शिरसां संक्ष्येणव-पुर्दरः ॥' इति कथामनुखलाह—यदेति । रुद्रः संकर्षणरुद्रः । अद्यापि न समाप्तं एकं भूमिधारणलक्षणं चेष्टितं चरित्रं यस्यास्तथाविधां शेषाकृतिं यदा यथी, यदा चोत्कृत्य गहतमान् ब्रह्माण्डं यया तदापि नाकस्पतेत्यर्थः ॥ ११ ॥ शैलानाम-ब्धीनां सकलानां प्राणिनां चोत्बणा दुःसहाः कल्पानलशिखाः पःणाभिर्मुखैस्तत्याज उज्जगार । संकर्षणमुखामिनैवान्ते प्रस्यस्य पुराणेषु प्रसिद्धेः ॥ १२ ॥ दीःस्थित्येन दुष्टस्थाननिवासेन ॥ १३ ॥ इन्दें। मेषु नक्षत्रेष्वकेषु च प्रपतत्स्र । तथाच तदानी प्रलये भूलोकान्तस्य दाहान्न मेरुकल्पयक्षादिभिन्नाणप्रत्याशेति भावः ॥ १४ ॥ कल्पान्ते सहस्रमहायुगपर्यन्ते ॥ १५ ॥

भुगुण्ड उवाच।

यदा पपात कल्पान्ते व्यवहारो जगत्स्थितौ। कृतघ्न इव सन्मित्रं तदा नीडं त्यजाम्यहम्॥ १५ आकारा एव तिष्टामि विगताखिलकल्पनः। स्तब्धप्रकृतिसर्वाङ्को मनो निर्वासनं यथा ॥ १६ प्रतपन्ति यदादित्याः शकलीकृतभूधराः। वारुणी धारणां बद्धा तदा तिष्ठामि घीरधीः॥१७ यदा शकलिताद्रीन्द्रा वान्ति प्रलयवायवः। पार्वती धारणां बद्धा खे तिष्ठाम्यचलं तदा॥ जगद्रलितमेर्वादि यात्येकार्णवतां यदा । वायवीं धारणां बद्दा संप्लवेऽचलघीस्तदा॥ १९ ब्रह्माण्डपारमासाच तत्त्वान्ते विमले परे। सुषुप्तावस्थया तावत्तिष्ठाम्यचलक्रपया॥ २० यावत्युनः कमलजः सृष्टिकर्मणि तिष्ठति । तत्र प्रविदय ब्रह्माण्डं तिष्ठामि विद्दगालये ॥ २१ श्रीवसिष्ठ उवाच ।

श्रावासष्ठ उपाच । यथा तिष्ठसि पक्षीन्द्र धारणाभिरखण्डितः । कल्पान्तेषु तथा कस्मान्नान्ये तिष्ठन्ति योगिनः २२ भुग्रुण्ड उवाच ।

ब्रह्मियतिरेषा हि दुर्छङ्गया पारमेश्वरी। मयेदशेन वे भाव्यं भाव्यमन्यैस्तु तादशः॥ २३ न शक्यते तोछियतुमवद्यं भवितव्यता।

स्तब्धप्रकृतीनि निश्चलस्त्रभावानि सर्वाङ्गानि यस्य ॥ १६ ॥ सामान्यत उक्तामाकाशे स्थिति धारणाभेदैविशिष्य प्रपन्नयति---प्रतपन्तीति । अस्यन्तशीतलस्वीदकाण्डलव्याप्यपरिच्छेवज-लात्मा वरुण एवाहमस्मीति चित्ते निरन्तरं धारणं वारुणीधार-णत्युच्यते । तया हि वरणमात्मानं सदा मन्यत इति । पार्वत्या-दिधारणा अप्येवमेवोह्याः । पृथिव्यादिपश्चभूतधारणाप्रकारं वसिष्टः स्वयमेवोत्तरार्थे विस्तरेण वश्यति ॥ १७ ॥ अचल-मिति कियाविशेषणम् ॥ १८ ॥ चले वायावेवातमधीर्थस्य तथाविधः सन् संहवे नमसि ॥१९॥ कियत्काठं तथा संहवसे तत्राह—ब्रह्मण्डेति । ब्रह्मण्डस्य स्थूलसूक्ष्मसमष्टेः पारं पर-मावधिभूतमव्याकृतमासाद्य तत्त्वानां चतुर्विशतीनां षाद्वेश-र्तानां षट्रत्रिंशतां वा नामादिप्राणान्तानां वा अन्ते भूमाख्ये पदे सुषुप्तवदेकरसनिर्विकल्पसमाध्यवस्थया ॥ २० ॥ किय-त्कालं तादशसमाधौ स्थितिरिति चेलत्राह्—यावदिति । तत्र पुनः सृष्टिकर्मणि विह्नगानामस्माकमालये एतत्कल्पनृक्षस्था-नापन्ने तिष्टामि ॥ २१ ॥ अन्येऽपि योगिनस्तया कस्मान्न तिष्ठन्ति किमर्थमाधिकारिकशरीरान्तरं मुर्फि वा गच्छन्ति । तेनैव शरीरेण लमिव क्रुतो न तिष्ठन्तीत्वर्थः ॥ २२ ॥ अत्र तत्तत्प्रबलप्रारच्यानुसारिणी सत्यसंकल्परूपा ईश्वरनिय-तिरेव व्यवस्थाहेतुर्नान्येत्याह—ब्रह्मनिति ॥ २३ ॥ तोछियितुं इदमित्थमेवेति बुद्धा परिच्छेत्तुम् । यथा यादशप्रारब्धोपनतं २७

यद्यथा तत्त्रथैतिद्ध स्त्रभावस्थैष निश्चयः॥ २४ मत्संकल्पवशैनैव कल्पे कल्पे पुनः पुनः। अस्तिकेव गिरेः श्रङ्गे तहरित्थं भवत्ययम्॥ २५ श्रीविसष्ठ उवाच। अत्यन्तमोक्षदीर्घायुभवाक्षिर्देशनायकः। श्रानिकानवान्धीरो योगयोग्यमनोगितः॥ २६ दृष्टानेकविश्वानल्पसर्गसङ्गगमागमः।

किं किं सारसि कल्याण चित्रमसिखगत्कमे ॥

भूशुण्ड उवाच। बृहत्तरशिलावृक्षामजाततृणवीरुधम् । अद्रौलवनवृक्षीयां सरामीमां धरामधः॥ दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। भससारभरापूर्णा संस्परामि धरामधः॥ २९ अनुत्पन्नदिवाधीशामन्नातशिमण्डलाम् । अविभक्तदिवालोकां संस्परामि धरामधः॥ 30 मेरुरत्नतलोद्योतैरर्धप्रकटकोटरम् । लोकालोकमिवाक्याद्रिभुवनं संस्पराम्यहम्॥ ३१ प्रवृद्धासुरसंप्रामे श्रीयमाणान्तरामिह। यलायमानामभितः संसारामि धरामिमाम् ॥ ३२ चतुर्युगानि चाफान्तामसुरैर्मत्तकाशिभिः। दैत्यान्तःपुरतां प्राप्तां संस्परामि धरामिमाम् ॥ ३३ अत्यन्तान्तरितां तान्तसमस्तापरमण्डलाम् । अजदेवत्रयीशेषां संसारामि जगत्कुटीम् ॥ રુક

तत्तर्थेव । खभाषस्य नियतेः ॥ २४ ॥ प्रतिकल्पमेतत्तरुनिर्माः **णेऽपि भोजकादृष्टमृत्रभूतमत्संक**त्य एव निमित्तमित्याहः मदिति ॥ २५ ॥ मोक्ष इव दीर्घमपरिच्छेद्यमायुर्घस्य । मोक्षेण जीवन्मुक्तया वा उपलक्षितं दीर्धमायुर्थस्य । अतएव चिरंत-नार्थानां निर्देशविषये नायकः श्रेष्टः ॥ २६ ॥ हष्टाः प्रत्येक-मनेकविधा अनल्या बहवः सर्गाणां सङ्गाः स्थितयो गमाः प्रख्या भागमा उत्पत्तयश्च येन । अत्रास्मिस्त्वदृष्टे जगत्क्रमे चित्रमा-र्थ्यभूतं कि कि स्मर्रास तृद्वदेखर्थः ॥ २७ ॥ हे बृहत्तर । मेरोरधः ॥ २८ ॥ २९ ॥ दिवाधीशः सूर्यः मेरुप्रभाभिरवि-भक्तः अपृथगभूतः पृथगसन्निति यावत् । दिवालोको दिनहेतुः प्रकाशः ॥ ३० ॥ अर्धे प्रकटं सप्रकाशं कोटरं यस्य अतएव लोकालोकमिव स्थितम् । आद्याः क्वचित्प्रकाशसंपन्ना अद्रयो गसिस्तथाविधं भुवनम् ॥ ३१ ॥ परायमानां रुक्षणया परा-यमानजनाकीणीम् ॥ ३२ ॥ चतुर्युगानीति कालवाचिलाद-त्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥ ३३ ॥ अत्यन्तमन्तरितानि समुद्रेणा-च्छादितान्यन्तान्तकमेण समस्तान्यपरमण्डलानि मेर्वतिरिक्त-देशा यस्याम् । मेरी च अजा अद्माविष्णुरुद्राख्या देवत्रयी शि-व्यत इति शेषो यस्याम् ॥ ३४ ॥ चतुर्धुगानामर्थं युगद्वयप-र्थन्तं न दृष्टं वृक्षेतरनिर्माणं यस्याम् ॥ ३५॥ साथं चतुर्था-शाश्रिकं चतुर्युगं नीरन्ध्रैर्निविडेरचलैः पर्वतेर्वृताम् । पृथुचक-

चतुर्युगार्धमपरं नीरन्ध्रां वनपादपैः। अद्देतरनिर्माणां संखरामि धरामिमाम्॥ 34 पवं चतुर्युगं साप्रं नीरन्ध्रेरचलेर्षृताम्। अप्रवृत्तजनाचारां संस्परामि घरामिमाम् ॥ 36 दशवर्षसहस्राणि सृतदैत्यास्थिपवेतैः। आकीणी परितः पूर्णी संस्परामि धरामिमाम् ॥३७ भयादन्तर्हितारे। पवैमानिकनभश्चराम्। धां च निर्वृक्षनिःशेषां संसारामि तमोमयीम् ॥ ३८ अनगस्त्यामगस्त्याशामेकपर्धततां गताम्। मत्ते विन्ध्यमहाराले संस्परामि जगत्कुटीम् ॥ पतांश्चान्यांश्च वृत्तान्तान्संसारामि बद्दनपि । कि तेन बहुनोक्तन सार संक्षेपतः शृणु ॥ Ro असंख्यातान्मनृत्ब्रह्मन्सरामि शतशो गतान्। सर्वान्संरम्भवद्वलांश्चतुर्युगशतानि च॥ પ્રશ एकमेव स्वयं शुद्धं पुरुषासुरवर्जितम्। आलोकनिचयं चैकं कंचित्सर्ग सराम्यहम्॥ ઇર सुरापं ब्राह्मणं मत्तं निषिद्धसुरशृद्धकम्। बहुनाथसतीकं च कंचित्सर्ग साराम्यहम्॥ 83 वृक्षनीरन्ध्रभूपीठमकल्पितमहाणवम्। स्वयं संजातपुरुषं कंचित्सर्ग सराम्यहम्॥ 88 अपर्वतमभूमि च ब्योमस्थामरमानवम्। अचन्द्रार्कप्रकाशास्त्रं कंचित्सर्ग सराम्यहम् ॥ ४५

वर्तिना हि धनुष्कोट्या पर्वतानुत्सार्य पश्चाद्भमिः समीकृतेति पुराणेषु प्रसिद्धम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यां अन्तरिक्षादिलोकान् चकाराद्धरां निर्वृक्षनिःशेषाम् । निर्ऋक्षेति पाठे दिव एव विशे-षणम् । ऋक्षाणि ताराः । तमोमयीं तमःप्रचुरामित्यःयुभयवि-मलयदर्दुरसद्याद्रिविभाजकाभावादेक-रोषणम् ॥ ३८ ॥ पर्वततां गताम् । मत्ते मेरुस्पर्धया अभिवृद्धे सति ॥ ३९ ॥ ४० ॥ संरम्भैः प्रभावातिशयैर्बहुलान् ॥ ४१ ॥ आश्चर्यान्तरमाह--एकभेवेति । यदा विराइब्रह्माण्डशरीर उत्प-श्रमात्रः खात्मतत्त्वं पर्यालोचयितुं कंचित्कालं समाहितचि-त्तोऽभूत्सावस्थात्रोच्यते । पुरुषैः मुरादिभिरस्रंश्य वर्जितम् । आलोकानां प्रकाशस्त्रभावानां तैजसानामेक निचयं समर्ष्टि च तदात्मकं ब्रह्माण्डम् ॥ ४२ ॥ कलियुगसर्गस्थिति स्मरन्नाइ---सुरापेति । सुरापा ब्राह्मणा यस्मिन् । निषिदा निन्दिताः सुरा देवा यस्तथाविधाः शृद्रका असच्छूदा यरिमन् । बहुनाथा अने-कर्मर्तुकाः सत्यः श्रियो यस्मिन् ॥ ४३ ॥ आश्रयीन्तरमाह-बृक्षेति । समुद्रनिर्मातुः प्रियत्रतस्योरपत्तेः प्रागवस्थायामिदं प्रसिद्धम् । स्नीपुंससङ्गं विना मानस्या सप्टया स्वयमेव संजाता भूग्वादिपुरुषा यस्मिन् ॥ ४४ ॥ भूवि जले ममायां जनलो-कादिप्रकाशबद्दललोकव्यवहारमात्रीपलक्षिते काले या स्थि-तिस्तां स्मरन्नाह--अपर्वतमिति । व्योमस्था अपरा

अनिन्द्रममहीपालममध्यस्थाधमोत्तमम् । सममन्धककुप्चकं कंचित्सर्गं साराम्यहम्॥ ४६ सर्गप्रारम्भकलनाविभागो भुवनत्रये । कुलपर्वतसंस्थानं जम्बूद्वीपं पृथक्स्थितम्॥ 80 वर्णधर्मधियां सृष्टिविभागो मण्डलावनेः। ऋक्षनक्रकसंस्थानं ध्रुवनिर्माणमेव च ॥ 86 जन्मेन्दुभास्करादीनामिन्द्रोपेन्द्रव्यवस्थितिम्। हिरण्याक्षापहरणं वराहोद्धरणं क्षितेः॥ ४९ कल्पनं पार्थिवानां च वेदानयनमेव च ।

मन्दरोन्मूलनं चान्धेरसृतार्थं च मन्धमम्॥ अजातपश्रो गरुडः सागराणां च संमवः। इत्यादिका याः स्मृतयः स्वस्पातीतजगक्तमाः। बार्लरिप हि तास्तात सर्यन्ते तासु को प्रहः॥ ५१ गरुडवाहनं विह्यबाहनं विहगवाहनं वृषभवाहनम्। वृषभवाहनं गरुडवाहनं ५२

कलितवानहं कलितजीवितः॥

इत्यार्थे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्र० भुजुण्डोपा० चिरजीवितवृत्तान्तकथनं नाम एकविंशः सर्गः॥२१॥

ब्राविंदाः सर्गः २२

भुशुण्ड उवाच । ततो जगति जातेषु भगवन्युष्मदादिषु। भरद्वाजपुलस्त्यात्रिनारदेन्द्रमरीचिषु॥ पुलहोद्दालकांधषु ऋतुभृग्वङ्गिरस्सु च । सनत्कुमारभृद्गीशस्कन्देभवदनादिषु ॥ गौरीसरस्वतीलक्ष्मीगायज्याद्यासु भूरिषु । मेरुमन्दरकैलासहिमवद्दर्शदिषु॥ **हयप्री**वहिरण्याक्षकाळनेमिबळादिषु । हिरण्यकशिपुकाथयित्रप्रहादकादिषु ॥ शिबिन्यङ्गपृथृलाख्यवैन्यनाभागकेलिषु ।

રૂ ន

मानवा योगसिद्धाश्च यस्मिन् ॥ ४५ ॥ न विद्यन्ते मध्यस्था अधमा उत्तमाध्व यस्मिन् । अतएव समं अन्धानि ककुभां दिशां चक्राणि यस्मिन्निति पूर्वकल्पान्त्यमन्वन्तरान्तदशोपल-क्षितजगत्स्थित्युक्तिः ॥ ४६ ॥ एतत्कल्पवृत्तान्तस्मरणं तु एत-रकल्पायुषां बहुनामस्तीति प्रपञ्चयन्नाह—सर्गप्रारम्भेत्यादिना सर्वेषां प्रथमान्तपदानां षष्ठकोकस्थे 'बालेरपि हि तास्तात स्म-र्यन्ते' इत्यत्रान्वयः । आदी सर्गप्रारम्भार्थं कलना स्रष्टुः संकल्प-स्ततो भुवनत्रये द्वीपाद्यवान्तरप्रदेशमेदानां विभजनं विभाग-स्ततः कुलपर्वतानां संस्थानं यथायोग्यप्रदेशकल्पनं ततः पृथक् स्थितं जम्बूद्वीपं प्रविर्य बाह्मणादिवणीनां तद्धभीणां धिया तत्तवोग्यविद्याभेदानां च रहिरिति यथायोगं क्रमो बोध्यः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ क्षितंत्रीराहेणोद्धरणम् ॥ ४९ ॥ देवदान-वमनुष्यादिषु प्रत्येकं पार्थिवानां कल्पनम् । मत्स्यावतारे वेदान-यनम् ॥ ५० ॥ सार्यन्त इति स्पृतयः अवश्यसार्तव्यार्थाः मदुष्टानेककल्पापेक्षया एतत्कल्पमात्रनिष्पन्नलात्खल्पा तीतजगत्कमाः । बार्छर्मदपेक्षया अत्यल्पवयस्केरेतरकल्प-भवदादिभिः स्मर्थन्त एवेत्यर्थः कत्यान्तरेषु खदशान्याधर्यान्तराष्यपि वदशुपसंहरति-गरुड-बाइनमिति । कलितं प्राप्तं जीवितं बीर्घायुर्येन तथाविधः अहं एतरकल्पे प्रसिद्धं गरुडवाइनं विद्यो विद्योत्तमो इंसस्त-

नलमान्धातृसगरदिलीपनहुषादिषु ॥ 4 आत्रेयव्यासवाल्मीकिद्युक्तवात्स्यायनादिषु । उपमन्युमणीमङ्किभगीरथशुकादिखु॥ ६ अल्पकातीतकालेषु किंचिद्दरेषु केषुचित्। तथाद्यतनसर्गेषु सरणे गणनैव का॥ 9 मुने ते ब्रह्मपुत्रस्य जन्माष्टकमिदं किल । संसाराम्यष्टमे समें तसिस्तवं मम संगतः॥ कदाचिजायसे व्योद्धः कदाचिजायसे जलात्। कदाखिद्वायुतः शैलात्कदाचिज्जायसेऽनलात्॥ ९ यादशो यादशाचारो यादक्संस्थानदिगगणः।

द्वाहनं चतुर्भुखीभूय देवदैत्यादिसर्गाधिकारं निष्पादयन्तं क-लितवान्द्रप्रवान् । तथा विहगवाहनं ब्रह्माणं वृषभवाहनं रुद्री-भूय संहाराधिकारं कुर्वाणं कल्पितवान् । एवं वृषभवाहनं रदं च गरुडवाहनं विष्णुशरीरं पृत्ना पालनाधिकारं कुर्वाणं कलितवानिति महदाश्चर्यरहस्यमेतदित्यर्थः ॥ ५२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्षे पुकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

बसिष्ठस्याष्टजन्मादिसमार्थसमसर्गकाः । क्षीरोदमयनाचाश्र भूयो दष्टा इहोदिताः ॥ ३ ॥

ततस्तदनन्तरं किंचिद्ररेष्वतीतकालेषु तथा अयतनसर्गेषु जातेषु युष्मदादिषु भगीरथशुकाद्यन्तेषु सारणे केव गणनेति सप्तमे सर्वेषां सप्तम्यन्तानां संबन्धः ॥ १ ॥ सनत्कुमारान्तेषु ब्रह्मर्षिषु । भृग्वक्रिरःप्रभृतिषु सिद्धर्षिषु । स्कन्देभवदनादिषु शिवपार्षदेषु ॥ २ ॥ गौर्यादषु तच्छक्तिषु । मेर्नादिषु गिरिषु ॥ ३ ॥ हयप्रीवादिषु दानवेषु । हिरण्याक्षादिषु दैत्येषु ॥ ४ ॥ शिबिप्रसृतिषु राजसु ॥ ५ ॥ आत्रेयादिषु मुनिषु ॥ ६ ॥ गणनैव केति न तत्र विस्मरणसंभावनाप्यस्तीति भावः॥ ७॥ अप्टमे सर्गे जन्मनि कल्पे वा गम संगती मया सह मिलितः अभूः॥ ८॥ किमप्टलिप जन्मसु ब्रह्मपुत्र एव नेलाह्-कदानिदिति ॥ ९ ॥ सर्वेषु कल्पेषु तत्तदिनकारिपुरुवाणां स- सर्गेऽयं तारशानेव त्रीन्सर्गान्संसराम्यहम् ॥ १० एक रूपाखिलाचारसंनिवेशधरामरान्। समकालान्थिरस्थैर्यान्दशसर्गान्सराम्यहम् ॥ ११ अन्तर्घानं गता धात्री वारपञ्चकमुद्ता । मुने पश्चसु सर्गेषु कुर्मेणैव पयोनिधेः॥ १२ मन्दराकर्षणावेगपर्याकुलसुरासुरम्। सारामि द्वादशं चेदममृताम्भोधिमन्थनम्॥ १३ सर्वोषधिरसोपेतां बलिग्राहस्तदा दिवः। वारत्रयहिरण्याक्षो नीतवान्वसुधामधः॥ रेणुकात्मजतां गत्वा पष्टवारमिमं हरिः। बहुसर्गान्तरेणापि चकार क्षत्रियक्षयम् ॥ 80 शतं कलियुगानां च हरेर्बुद्धद्शाशतम्। शौकराजतयैवासं सारामि मुनिनायक ॥ १६ त्रिशत्रिपुरविश्लोभान्द्वी दश्लाध्वरसंक्षयी । दशशकविघातांश्च चन्द्रमौलेः साराम्यहम्॥ १७ **बाणार्थम**ष्टी संद्रामाअवरप्रमथमन्त्रकान् । विक्षोभितसुरानीकान्सरामि हरिशर्वयोः॥ 26 युगंप्रति धियां पुंसां न्यूनाधिकतया मुने । १९ क्रियाङ्गपाठवैचित्र्ययुक्तान्वेदान्स्मराम्यहम्॥ एकार्थानि समग्राणि बहुपाठानि मेऽनघ । पुराणानि प्रवर्तन्ते प्रसृतानि युगंप्रति ॥ २० पुनस्तानेव तानेवमन्यानपि युगेयुगे। वेदादिवित्प्ररचितानितिहासान्सराम्यहम्॥ २१ इतिहासं महाश्चर्यमन्यं रामायणाभिधम्। प्रन्थलक्षप्रमाणं च ज्ञानशास्त्रं सगाम्यहम्॥ २२

माननामरूपत्वेऽपि न सर्वेषां पदार्थानां सर्वसंदिवेशाचारसाम्य-नियमः किंतु काकतालीयन्यायेन कदाचित्साम्यमित्याशयेनाह —यादश इति ॥ १०॥ समकालांस्तुत्यायुषः । स्थिराणि अमुरे-रिवचालितानि स्थर्याणि नियतकालतत्तत्पदानस्थानानि देवानां येषु॥१९॥आचारसाम्यमुक्ता तद्वैयम्यमाह—अन्तर्धानमिति। अन्तर्धानं जले निमजनेन तिरोधानम् । धात्री भूः । कूर्मेणैव न बराहेण ॥ १२ ॥ १३ ॥ दिवः सगीद्विं करं गृह्णातीति षिष्ठप्राहः । करबीकृतसर्वदेवगण इतियावत् । अधः पातालम् ॥ १४ ॥ बहुमिः परशुरामावतारश्र्न्यैः सर्गेरन्तरेण व्यवधा-नेनापि ॥ १५ ॥ शीकः कीकटदेशविशेषस्तद्राजतया । ग्रुद्धी-दनारुयतद्राजपुत्रतयेतियावत् ॥ १६ ॥ त्रिंशत्मु कल्पेषु त्रिं-शरसंख्याकांस्त्रिपुराणां विक्षोभान्दाहान् । प्रतिकरुपं खायंभु-बेडन्तरे चाक्षुषे च प्रसिद्धी द्वी दक्षाध्वरसंक्षयी । दशानां श-काणां चन्द्रमौलेः कृतापराधानां पदात्प्रच्याच्य गिरिगुहासु नि-रोषस्थानस्यञ्भुजस्तम्भलक्षणान्वा विघातान्दण्डान् ॥१७॥ ज्वराणां माहेश्वरवैष्णवास्यज्वरमेदानां प्रमथानां च मन्त्रकान् आमन्त्रियतुन् । शौर्योत्साहजननेन प्रवर्तकानिति यावत् । 'क्रु-रप्रसथमञ्जकान्' इति पाठे तु क्षरप्रान् बाणविशेषान्मप्रन्ति

रामवद्यवहर्तव्यं न रावणविलासवत्। इति यत्र धियां शानं हस्ते फलमिवार्पितम् ॥ २३ कृतं वाल्मीकिना चैतद्धुना यत्करिष्यति । अन्यद्य प्रकटं लोके स्थितं द्वास्यसि कालतः ॥ २४ याल्मीकिनाम्ना जीवेन तेनैवान्येन वा कृतम्। पतच द्वादशं वारं क्रियते विस्मृति गतम्॥ ब्रितीयमेतस्य समं भारतं नाम नामतः। सारामि प्राक्तनव्यासकृतं जगति विस्मृतम् ॥ व्यासाभिधेन जीवेन तेनैवान्येन सा कृतम्। पत्तु सप्तमं वारं क्रियते विस्सृति गतम् ॥ ₹/9 आख्यानकानि शास्त्राणि निवृत्तानि युगंप्रति । विचित्रसंनिवेशानि संसारामि मुनीश्वर ॥ ર૮ भूयस्तान्येव तान्येव तथान्यानि युगेयुगे। साधो पदार्थजालानि प्रपद्यामि सारामि वै॥ २९. राक्षसक्षतये विष्णोर्महीमवतरिष्यतः । अधुनैकाद्दां जन्म रामनास्रो भविष्यति ॥ えっ नारसिंहेन यपुषा हिरण्यकशिषुं हरिः। जघान वारत्रितयं मृगेन्द्र इव वारणम्॥ 31 वसुदेवगृहे विष्णोर्भवो भारनिवृत्तये। अधुना षोडशं जन्म भविष्यति मुनीश्वर ॥ ३२ जगन्मयी भ्रान्तिरियं न कदाचन विद्यते । विद्यते तु कदाचिश्व जलवुद्भदविस्थता ॥ 33 दृरयभ्रान्तिरनित्येयमन्तस्था संविदातमनि । जायते लीयते चाद्य लोला वीचिरिवाम्भासि ॥ ३४

छिन्दन्तीति क्षुरत्रमयास्तथाविधा मन्त्रका मन्त्रास्त्राणि येथ्वि-खर्थः ॥ १८ ॥ युगंप्रति युगेयुगे । कर्मप्रबचनीयेन प्रतिना वीप्सा बोखते । पुंसामध्येतृपुरुषाणां धियां बुद्धीनां न्यूना-धिकतया ब्रह्मचयगुरुशुश्रूपाभूमिशयनादिकियाणां क्वानां सावधानस्वरवर्णाद्युवारणलक्षणपाठानां च न्यूनाधिक-ताकृतप्रभाववैचित्र्यर्थुकान् ॥ १९ ॥ प्रतिद्वापरान्तनिर्मातृमे-दाद्वहुपाठानि ॥ २० ॥ चेदादिविद्भिर्व्यासवाल्मीकप्रश्नतिभिः प्ररचितान् पुनः पुनस्तानेव भारतरामायणादीनितिहासान् ॥ २१ ॥ महारामायणामिधं ब्रह्मणा वसिष्ठविश्वामित्रादिभ्य उन पदिष्टं ज्ञानशास्त्रम् ॥ २२ ॥ २३ ॥ यदन्यच वसिष्टरामसंबादरूपं महारामायणं द्वात्रिंशत्सहस्रमितं करिष्यति तद्पि दिध्यज्ञा-नबलादनुभूतं सारामि लमपि कालतो ज्ञास्यति ॥ २४ ॥ एतद्व-सिष्ठरामसंवादरूपं तेन पूर्वकल्पीयेनान्येन वा वाल्मीकिनाम्रा जीवेन प्राक्षतमेव विस्मृति व्यवहर्तृपरम्परोच्छेदेनोच्छेदं गतं सांत्रतं द्वादशानां पूरणं द्वादशं वारं कियते ॥ २५॥२६॥२७॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ अधुना संनिहितन्नेतायुगे ॥ ३० ॥३९ ॥ अधुना एतचतुर्युगान्तर्गतद्वापरान्ते ॥ ३२ ॥ बहिरिदं जायत इति श्रान्तिरेवेखाशयेनाह--जगन्मयीति ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

समैकसंनिवेशानि बहुनि विषमाणि च। तथार्थसमरूपाणि त्रिजगन्ति साराम्यहम्॥ 34 तान्येच तारक्षमीणि तथान्याचरणानि च। तत्कर्माणि तथान्यानि भृतानीह स्मराम्यहम् ॥ ३६ प्रतिमन्वन्तरं ब्रह्मन्विपर्यस्ते जगत्क्रमे । संनिवेशेऽन्यथाजाते प्रयाते संश्रुते जने ॥ ३७ ममान्यान्येव मित्राणि अन्य एव च बन्धवः। ३८ अन्य एव नवा भृत्या अन्य एव समाश्रयाः॥ कदाचिदहमेकान्ते विन्ध्यकच्छकृतालयः। कदाचित्सद्यनिलयः कदाचिद्वर्दरालयः॥ 39 कदाचिद्धिमवद्वासी कदाचिन्मलयाचलः। कदाचित्प्राक्तनेनैव संनिवेदोन भूधरम्॥ So चूतवृक्षे च शालायां प्राप्य नीडं करोम्यहम्। अनाचन्तेषु यातेषु युगेषु मुनिनायक ॥ धर प्राक्तनेनेष जातोऽयं संनिवेशेन पादपः। देहं त्यक्त्वा सुखं साधो नातः परिणतिं गतः॥ ४२ तदीयेनैय जातोऽयं संनिवेशेन पादपः। ताते जीवति यैवाभूच्छोभास्य सुतरोस्तथा ॥ कृतप्राक्संनिवेशोऽयमहं स्थितिमिहागतः।

प्रतिसर्ग लोकादीनां संनिवेशादिसाम्यनियमोऽप्यातसर्गिक इ-त्याह--समेति ॥ ३५ ॥ भन्वाद्यधिकारिपुरुषसंनिवेशचारि-त्र्यादिष्वपि साम्यमीत्सर्गिकमेवैत्याह—तान्येवेति ॥ ३६॥ संश्रुते प्रख्याते ॥ ३०॥ अन्य एव समाश्रया निवासाः ॥३८॥ समाश्रयमेदमेव प्रपश्चयति — कदाचिदित्यादिना ॥ ३९ ॥ म-लये अचलः स्थिरः ॥ ४०॥ प्राप्येत्यस्य प्राक्तनेन भूवरमि-त्यनेनान्वयः । अनाद्यन्तेषु असंख्येषु ॥ ४१ ॥ अतः प्राक्त-नसंनिवेशात्परिणतिं संनिवेशान्तरं न गतः । तर्हि ल्यामव पादपोऽपि किं चिरजीवी नेत्याह—देहं त्यक्लेति॥ ४२ ॥ एवंच न पादपजीवेक्येऽपि तात्पर्यं किंतु शोभासंनिवेशसाम्याद-मेदोपचार इति सूचयन्नाह -- तदीयेनेति । ताते चण्डे ॥ ४३ ॥ एवं दिरम्धरयोरंक्यप्रव्यभिकापि संनिवेशसाम्यादेवेत्याह-नेहेति ॥ ४४ ॥ पूर्व उत्तरा दिक् अन्यैवाभूदियमन्या । एवं भूषरोऽप्यन्य एवाभूदिलावृत्तिविपरिणामाभ्यामन्वयः । तर्हि तथैव लमपि प्रतिकल्पमन्यः समानसंनिवेशश्च किं न स्यास्त-त्राह-एकेति । अहं एकश्वासी एकेनैव देहसंस्थानेन वीता नदानिशागमा यस्य तथाविधः ॥ ४५ ॥ तत्कृतस्तत्राह-ध्यानान्त इति । यतः कल्पान्ते प्रागुक्तधारणापूर्वकं स्थिरीकृ-तस्य ध्यानस्य निर्विकल्पकसमाधेरन्ते अवसाने पुनर्जातमेनं सर्गमालोक्य सएवायं मेरुः सएवायं पादप इति प्रत्यभिज्ञायमाने तस्वे एव एनं सर्गं वेदि । यद्यहमन्यः स्यां तत्तावगाहिनी प्रसामिकेव न स्यादिति भावः । एवं पूर्वसंस्थानादन्यथा संस्था-

नेहाभृदुत्तरा पूर्वं ककुब्रायं च भूधरः॥ કક दिगुत्तराभृदन्येयं पूर्वमेव महीधरः। पकेकदेहसंस्थानवीतब्रह्मनिशागमः॥ ક્ષ્ય ध्यानान्ते तस्व एवैनं सर्गमालोक्य वेदयहम्। अर्कादेर्ऋक्षसंचारानमेर्वादिस्थानका दिशः॥ કદ संस्थानमन्यथा तस्मिन्स्थितं यान्ति दिशोऽन्यथा। न सम्नासञ्जगनमन्ये भ्रमयन्केवलं धियः॥ 80 आत्मस्पन्दचमत्कार्विभवोऽयं विज्ञम्भते। पुत्रः पितृत्वमायाति मित्रं यात्यरितां तथा ॥ स्त्रीत्वं च शतशो यातान्युंसध्येष सराम्यहम्। कली कृतयुगाचारान्कृते कलियुगस्थितिम् ॥ ४९ त्रेतायां द्वापरे चैव संसारामि मुनीश्वर। अदृष्टवेदवेदार्थान्स्वसंकेतविहारिणः॥ 40 सर्गान्निर्गलाचारान्कचित्कांश्चित्सराम्यहम्। ध्यातरि ब्रह्मणो ब्रह्मन्ससुरासुरमानुषम्॥ 48 चतुर्युगसहस्रान्ते जगच्छन्यं साराम्यहम्। मनो मनननिर्माणान्पार्थिवाकारवर्जितान्। व्याप्तान्वायुमयैर्भृतेर्दश सर्गान्सराम्यहम्॥ ५२

नताप्रहणादपि तद्रष्टुमेम न नाश इत्याशयगर्भी 'दिगुत्तराभूद-न्येयम्' इत्युक्तिमुपपादयति-अर्कादेरिति । दिशः प्राच्यादयः अर्कसोमादेर्ऋक्षाणां नक्षत्राणामुद्यास्तमयादिनियतसंचाराच नियतोत्तरदिविस्थतमेर्वादिस्थानकाः प्रसिद्धन्ति ॥ ४६ ॥ सः र्गान्तरे तु ता दिशस्तस्मिन्मेरावेवान्यथा प्रकारान्तरेण स्थिते सति चित्रपटलिखितमेवीदाधीना दिशस्तत्परिवर्तन इव अ-न्यथा संस्थानं व्यत्यस्तस्थिति यानतीत्यर्थः । एवं दिशामनियत-स्थित्या मिथ्यात्वे तदनुसारिनियतावयवसंनिवेशघटितस्य सर्व-स्यापि जगतोऽनिर्वचनीयतालक्षणं मिध्यात्वं प्रतिभातीत्याह— न सदित्यादिना ॥ ४७ ॥ आत्मनः स्पन्दचमत्कारी मायिक-विक्षेपशक्तिस्तद्विभवः। जागतेषु पदार्थेषु दिकृतव्यवस्थाव्य-त्यास इव कालकृतव्यवस्थाव्यत्यासोऽपि दृश्यत इत्येतस्प्रपम्बय-न्दर्शयति-पुत्र इत्यादिना ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ त्रेतायां द्वापरे च कृतयुगाचारान्कलियुगस्थिति चेत्यनुकृष्यान्वयः । कलियुग-स्थितिमंत्र संक्षिप्य विश्वणोति-अदृष्टेति ॥ ५० ॥ क्रिक्त-युगादावपि । तथाहि । कृतयुगेऽपि पुष्करेण नलस्य निकृत्या धूते जयो विनापराधमेक बस्नेण सभार्यस्य निर्वासनं च प्रसिद्धम् ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन्, चतुर्युगसहस्रस्यान्ते अवसाने वेधसि जगद्रुपसंहारक्रमेणाप्सु शयिला योगनिद्राष्ट्रछेन ब्रह्मणः परमा-त्मनो ध्यातरि सति ससुरासुरमानुषं जगच्छन्यमसलामिवापन्नं स्मरानीत्यर्थः । एवं प्रलीनेऽपि जगत्यैन्दवमनोमनननिर्माणान् प्रागुक्तान् वातमयेर्वायुप्रायेर्भृतैः प्राणिभिर्व्याप्तान् ॥ ५२ ॥

विचित्रसंस्थानविशेषदेशा-न्विचित्रकार्याकुळभूतकोशान्।

विचित्रविन्यासविलासवेषा-न्साराम्यहं ब्रह्मदिनेष्वशेषान्॥ ५३

हत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भुशुं० निरजीवितवर्णनं नाम द्वाविधः सर्गः ॥२२॥

त्रयोविंदाः सर्गः २३

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथासौ वायसश्रेष्ठो जिज्ञासार्थमिदं मया । भूयः पृष्टो महावाहो कल्पवृक्षळताश्रके ॥ चरतां जगतः कोशे व्यवहारचतामपि । कथं विहगराजेन्द्र देहं मृत्युर्न वाधते ॥

भुशुण्ड उवाच । जानन्त्रपि हि सर्वेश ब्रह्मञ्जिशासयेव माम्। प्रच्छिस प्रभवो नित्यं भृत्यं वाचालयन्ति हि ॥ तथापि यत्पृच्छसि मां तत्ते प्रकथयाम्यहम्। आज्ञाचरणमेवाहुर्मुख्यमाराधनं सताम्॥ दोषमुक्ताफलप्रोता वासनातन्तुसंततिः। हृदि न ब्रथिता यस्य मृत्युस्तं न जिघांसति ॥ निःश्वासवृक्षप्रकचाः सर्वेदेहलताघुणाः। आधयो यं न भिन्दन्ति मृत्युस्तं न जिघांसति ॥ ६ शरीरतरुसपौँघाश्चिन्तार्पितशिरःफणाः। आशा यं न दहन्त्यन्तर्मृत्युस्तं न जिघांसति ॥ रागद्वेपविषापुरःस्वमनो विलमन्दिरः। लोभव्यालो न भुङ्के यं मृत्युस्तं न जिघांसति ॥ ८ पीतादोपविवेकाम्यः दारीराम्भोधिवाडवः। न निर्देहति यं कोपस्तं मृत्युर्न जिघांसति॥ यस्रं तिलानां कठिनं राशिमुत्रमिवाकुलम्।

उक्तं सर्वं संक्षिप्योपसंहरति—विनित्रेति । अहं ब्रह्मदिनेषु कल्पेषु विनित्रस्थानविशेषयुक्ता देशा येषु तथाविधान्विन्यत्रकार्याकुळभूतानां कोशभूतान् अशेषान्सर्वान्सर्गानस्मरामीत्यर्थः ॥ ५३ ॥ इति श्रीचासिष्ठमहारामायणतात्पर्थप्रकाशे निर्वाण्यकरणे पूर्वार्घे द्वाविशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

खक्तेषु येषु दोषेषु नरं मृत्युर्न बाध्यते । यत्यरं च मनःकार्यं तत्सर्वमिह कीर्त्यते ॥ १ ॥

इदं वस्यमाणम् । प्रच्छेगींणे कर्मणि कः ॥ १ ॥ कयं कीदशदोषत्यागगुणार्जनप्रकारेण ॥ २ ॥ वाचालयन्ति मुखरान्ति । भृत्यवाक्ष्यदुतां प्रश्नमुखेन ख्यापयन्तीतियावत् ॥ ३ ॥ ४ ॥ तत्र सर्वदोषाधारवासनानाश एव मुख्यो मृत्युतरणोपाय इत्याह—दोषेति । यथा त्यक्तहारायाभरणं बोरा न जिषांसन्ति तद्भदित्यर्थाद्गम्यते ॥ ५ ॥ निःश्वास- स्क्षणा देहपृक्षच्छेदनाः ककचा येभ्यः । सर्वासां देहलतानां देहपृक्षच्छेदनाः ककचा येभ्यः । सर्वासां देहलतानां देहपृक्षच्छेदनाः व्याप्तानां धुणाः काष्ट्रकीटभूताः आधयो मृनोव्ययाः ॥ ६ ॥ शरीरतरोः कोटरस्थसपीषभूताः अतएव

यं पीडयति नानक्रस्तं मृत्युर्न जिघांसति॥ १० एकसिन्निर्मले येन पदे परमपावने। संथिता चित्तविश्रान्तिस्तं मृत्युर्नः जिघांसित ॥ ११ वपुःखण्डाभिपतितं शाखामृगमिवोदितम्। २ न चञ्चलं मनो यस्य तं मृत्युर्न जिघांसति ॥ १२ पते ब्रह्मन्महादोषाः संसारव्याधिहेतवः। सनागपि न लुम्पन्ति चित्तमेकं समाहितम् ॥ १३ आधिव्याधिसमुत्थानि चलितानि महाभ्रमैः। न विलुम्पन्ति दुःखानि चित्तमेकं समाहितम्॥ १४ नास्तमेति न चोदेति न संस्मृतिर्न विस्मृतिः। न सुप्तं न च जाप्रत्याचित्तं यस्य समाहितम्॥ १५ अम्धीकृतहृदाकाशाः कामकोपविकारजाः। चिन्ता न परिहिंसन्ति चित्तं यस्य समाहितम् ॥ १६ न ददाति न चादत्ते न जहाति न याचते। कुर्वदेव च कार्याणि चित्तं यस्य समाहितम् ॥ १७ ये दुर्र्धा दुरारम्भा दुर्गुणा दुरुदाहृताः। दुष्क्रमास्ते न कुन्तन्ति चित्तं यस्य समाहितम् ॥ १८ आभान्ति विपुलार्थानि महान्ति गुणवन्ति च। सर्वाण्येवानुधावन्ति चित्तं यस्य समाहितम् ॥ १९ यदुद्केहितं सत्यमनपायि गतभ्रमम्। दुरीहितदृशोन्मुक्तं तत्परं कारयेन्मनः॥ २०

चिन्तालक्षणा अर्पिताः शिरसि फणा यैः । न दहन्ति अर्थाः स्वविषाप्रिना ॥ ७ ॥ न भुद्रे न दशति ॥ ८ ॥ शरीराम्भो-घेर्वाडवो वडवाग्निभूतः । अतएव पीताशेषविवेकाम्बः ॥ ९ ॥ आकुलं व्यथ्रम् । तिलानां राशि कमेयत्त्रं किर्त्रव उप्रमिति कियाविशेषणम् ॥ १० ॥ ब्रह्मात्मविश्रान्तिरेवात्यन्तिकमृत्युज-योपाय इत्याशयेनाइ—एकस्पिन्निति ॥ ११ ॥ वपुर्लक्षणे पु-प्पितवनखण्डे अभिपतितः शाखामृग इव उदितम्जितम् । छान्दसं क्रीवलम् ॥ १२ ॥ दोषानुपसंहरंसाज्यहेतुगुणान्वकुं प्रथमं समाधानमेव मुख्यो गुण इत्याशयेन तं प्रशंसति-एते इत्यादिना ॥१३॥१४॥१५॥१६ ॥ कर्माणि कुर्वत् यथाशास्त्रं व्यवहरदिप ॥ १७ ॥ दुष्टा अर्था अर्जनीयधनादगः आरभ्यन्त इत्यारम्भाः कृषिगृहधनादयः । गुणा रागद्वेषादयः । उदाहता मर्मप्रकाशनोक्तयः । कमा नीतयः । न क्रन्तन्ति दुष्टफलेन न परितापयन्ति ॥ १८ ॥ आभान्ति प्रकाशमानानि विपुलार्थानि बहुलाभानि सर्वाण्येव सुस्तानीति शेषः । अनुधावन्ति अनुसरन्ति ॥ १९ ॥ उदर्क औत्तरकालिकं सुखं

यद्रष्टमञ्जूकेन चित्तवैभुर्यदायिना । अनेकत्वपिशाचेन तत्परं कारयेग्मनः॥ २१ आदौ मध्ये तथान्ते च चिराय परमोचितम्। यचारु मधुरं पथ्यं तत्परं कामयेन्मनः॥ २२ यदनन्तं मनःपथ्यं तथ्यमाद्यन्तमध्यगम् । समस्तसाधुमिर्जुष्टं तत्परं कारयेन्मनः॥ २३ यद्भुद्धेः परमालोकमाद्यं यदमृतं परम् । यद्ञुत्तमसौभाग्यं तत्परं कारयेन्मनः ॥ રક सामरासुरगन्धर्वे सविद्याधरकिन्नरे । ससुरस्रीगणे स्वर्गे न किंचित्सुस्थिरं शुभम्॥ २५ सतरी सनगधीरो सपर्वतपुरवजे। साम्बुधौ भृतले तात न किंचिच्छोभनं स्थिरम्॥२६ सनागे सासुरव्यृहे सासुरस्रीगणे तथा। समस्त एव पाताले न किंचिच्छोभनं स्थिरम्॥२७ सस्वर्गे ससुरालोके सपाताले सदिक्तटे । जगत्यसिस्तु सर्वसिन्न किंचिच्छोभनं स्थिरम्॥ २८ आधिव्याधिविलोलासु दुःखौघवलितासु च । कियासु नित्यतुच्छासु न किचित्सुस्थिरं शुभम् २९ तरलीकृतचित्तासु हृदयानन्दिनीषु च। चिन्तासु घीविकारासुन किचित्सुस्थिरं शुमम् ३० हत्शीरोदकसंस्पन्दमन्दरेषु चलेष्वपि। स्वसंकल्पविकल्पेषु न किंचित्सुस्थिरं शिवम्॥ ३१ अनारतागमापायपरास्वसिशिरास्वपि । चित्राकारासु चेष्टासु न किंचित्सुस्थिरं शुभम् ३२ न वरमेकमहीतऌराजता नच घरं विबुधामरक्षपता। नच वरं धरणीतलनागता स्थितिमुपैति हि यत्र सतां मनः॥ 33 न वरमाकुलशास्त्रविचारणं नच वरं परकार्यविवेचनम्। न वरमप्र्यकथाक्रमवर्णनं स्थितिमुपैति हि यत्र सतां मनः॥ 38 न वरमाधिमयं चिरजीवितं नच वरं मरणं दढमूढता । नच घरं नरको नच विष्टपं स्थितिमुपैति हिन कचिदारायः॥ 34 इति विविधजगत्क्रमाः समस्ताः खलु मतिमूढतया नरस्य रम्याः। चलतरकलनाहिते पदार्थे कथमुपयान्ति चिरस्थिति महान्तः॥ ३६

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये निर्वाणत्रकरणे भुद्धंडो । समाधानसंकल्पनिराकरणं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

तसौ हितम् । दुरीहितदशा भोगामिलाषदथ्या उन्मुक्तं स्वारम-लाभलक्षणं तत्परम् ॥ २० ॥ चित्तस्य वैधुर्यं पुरुषार्थविधुरता तद्दायिना । अनेकत्वं मेददृष्टिस्तह्नक्षणिशाचेन यत्सीरूयं न हष्टं तत्परम्॥२१॥आदौ चारुसुखारम्भं । मध्ये अर्धपरिपाकेऽपि मधुरम् । अन्ते पथ्यं सर्वदुःखनिवर्तकं ज्ञानं तत्परम् ॥ २२ ॥ **आद्यन्तमध्यगं** सर्वावस्थास्वनुगतमात्मसुखम् ॥ २३ ॥ न वि-**यते उत्तमं यस्मात्तथा**विधं सौभाग्यं नित्यनिरतिशयानन्द इत्यर्थः ॥ २४ ॥ अनुत्तमसौभाग्यलभेवेतरसुखानिस्रतादिप्रप-श्रनेन साधयति-सामरेत्यादिना ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ एवं लोकत्रयस्याद्यभतामुक्ला तद्विटितजगत एव तदाह—स स्वर्ग इति ॥ २८ ॥ कियाशब्देन तत्फलानि लक्ष्यन्ते ॥ २९ ॥ चिन्तापदमपि मानसिकयामात्रपरं तत्फलोपलक्षकम् ॥ ३०॥ हन्मनस्तल्लक्षणस्य क्षीरोदकस्य संस्पन्दे क्षोभणे मन्दरायमा-**जेषु । इदं मान**सिक्यामात्रोपलक्षणम् ॥ ३१ ॥ अतिन्वित्राका-रासु असद्भुतासु । अतएवासिशिरास्त्रसिधारात्रायासु इन्द्रिया-दिचेष्टासु ॥ ३२॥ एवमशाश्वतलातुच्छलात्र न जागतं किम-पि सुखं विवेकितिः स्पृहणीयमित्याह-नवरमित्यादिना । एका अनन्यराजता सर्वमहीतलराजता नवरम् । एवं विवुधा अमिक्रत-मा वे अमरा इन्द्रबृहस्यत्यादयस्तद्भुपता स्वर्गराज्यावपीति वावत्।

धरण्यास्तले पाताले सर्वधरणीधारणसमर्था शेषनागता पाताल-राज्यमपीति यावत्। यत्र सतां विवेकिनां मनः स्थितिं पूर्णकामत-या विश्रान्तिमुपैति तथाविधं किमपि न भवतीत्यर्थः ॥३३॥ एवं दुरुहलाद्विस्तृतलाचाकुलताहेतुनानाशास्त्राणां चतुर्दशविद्यास्था-नानां विचारणं निष्कर्धसामध्येलक्षणं पाण्डित्यमपि न वरम् । एवं परेषां कार्याणां बुद्धिसीष्ठवाद्विचार्यं विवेचनसामध्येलक्षणं लोकानुरजनसामर्थ्यमपि न वरम् । अय्याणां भारतादिक-थानां क्रमस्य वर्णनादिसामध्येमपि न वर्मिति पूर्वेशत् ॥ ३४॥ यदि आधिप्रचुरलाजीवितं न वरं तर्हि सर्वाधिनिवृत्तिमत्त्वान्म-रणं वरं स्यात्तत्राह-टढमूढतेति । सर्वदुःखनिदानमूढतादाद्यी-त्तदपि न वरमित्यर्थः । तर्हि भोगेन सर्वदुःखक्षयकरत्वान्नरको वरमस्त्रित चेन्नेत्याह-नचेति । नरकस्यापि पुनः पापजन्मा-वसानलाम तत्रापि सर्वदुःखक्षय इति भावः । विष्टपं सर्वभूव-नाधिपत्यम् ॥ ३५ ॥ नरस्य विवेकिनः पुरुषस्य इति अनेन प्रकारेण विचार्यमाणा विविधजगत्कमाः समस्ताः सर्वेऽपि न रम्याः। हि यसाद्धेतोस्ते जगत्क्रमाश्वस्रतरकस्रनया अशाश्वतस्र-बुद्धा भाहिते गृहीते पदार्थे महान्तः कयं चिरस्थितिमात्यन्ति-कविश्रान्ति यान्तीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामा-यणतात्पर्वप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे पू० श्रयोविंदाः सर्गः॥ २३॥

चतुर्विद्याः सर्गः २४

९

भुशुण्ड उवाच ।

एकैय केवला दिएनिरापाया गतभ्रमा। विद्यते सर्वविश्वेषु सर्वश्रेष्ठा समुन्नता ॥ 8 आत्मचिन्ता समस्तानां दुःखानामन्तकारिणी। चिरसंभृतदुःस्वप्रसंसारभ्रमहारिणी॥ २ निष्कलङ्कमनोमार्गविपुलाङ्गणचारिणी। तथा समस्तदुःखानां चिन्तानर्थविनाहीनी ॥ ज्योत्क्रायेवान्धकाराणामस्रमन्तः प्रजायते । सा स्वात्मचिन्ता भगवन्सर्वसंकल्पवर्जिता॥ युष्मदादिषु सुप्रापा दुष्प्रापैवास्मदादिषु। समस्तकलनातीतं परां कोटिमुपागतम्॥ पदमासादयन्त्येतत्कथं सामान्यवुद्धयः। आत्मचिन्ताविलासिन्यास्तस्याः सख्यो महामुनै ६ किंचित्साम्यमुपायाता विज्ञानशशिशीतलाः । आत्मचिन्तासमानानां विविधानां मुनीश्वर॥ आत्मचिन्तावयस्थानां मध्यादेकतमा मया। सर्वदुःखक्षयकरी सर्वसौभाग्यवर्धिनी ॥ ረ कारणं जीवितस्येह प्राणचिन्ता समाश्रिता।

वसिष्ठ उवाच । इत्युक्तवन्तं विहगं भुशुण्डं पुनरप्यहम् । ज्ञानन्नपीदमव्यप्रः पृष्टवान्कीडया मुनिम् ॥

देहनाडीक्रमोपेता षद्चकहृद्यान्विता। प्राणस्पन्द्विभागास्या प्राणचिन्तेह वर्ण्यते॥ १॥

यदि जगति न किंचिच्छोमनं स्थिरं तर्हि किं तच्छोमनं स्थिरं च यत्र विवेकिनश्चिशविश्रान्तिस्तदाह--एकैवेखादिना । सर्वेषु विस्वेषु ज्ञानेषु मध्ये सर्वाशे श्रेष्टा समुन्नता । सहसा दुरारोहेति यावत् ॥ १ ॥ आत्मचिन्ता साक्षात्कारपर्थन्त आत्मविचारः । चिरमनादिकालादारम्य कामकर्मवासनासंस-तस्य दुःखप्रकल्पस्य संसारभ्रमस्य हरणशीला ॥ २ ॥ निरस्त-मायादिकलङ्का प्रत्यक्प्रवर्ण मन एव मार्गी यत्र तथाविधे मन-सोऽप्यमार्गे अगम्ये वा निरतिशयभूमानन्दलक्षणे प्रत्यगात्माङ्गणे संचरणशीला । तथा उपस्थितसर्वदुःखानां भाविदुःखानुसंघान-प्रयुक्तचिन्तादिसर्वानर्थानां च विनाशिनी ॥ ३ ॥ अन्धका-राणां तत्कार्यभ्रान्तिभिः सह परिगणनाद्वहुवचनम् । अलमत्य-न्तमन्तो नाशस्तयेति शेषः ॥ ४ ॥ दुष्प्रापैवेत्यवधारणे हेतु-माह—समस्तेत्यादिना ॥ ५ ॥ सामान्यबुद्धयः अविशुद्धप्राकृ-तबुद्धयः। तर्हि सा तब कथं मुलभा जातेति चेत्तत्सखीस-माश्रयणादित्याशयेन प्राणचिन्तां वर्णयितुं पीठिकां रचयति-आत्मचिन्तेत्यादिना ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ क्रीडया कीतुकेन ॥ ९ ॥ कि कीहशी ॥ १० ॥ ११ ॥ भवतां पूज्यानां युप्म-

सर्वसंदायविच्छेदिम्नत्यन्तचिरजीवित । यथार्थ भृष्टि मे साधो प्राणचिन्ता किमुच्यते ॥ १०

भुद्राण्ड उवाच ।

सर्वेत्रेदान्तवेत्तासि सर्वसंशयनाशकः। मामेतत्परिहासार्थं मुने पृच्छिस वायसम् ॥ ११ अथवा भवतामेव भगवन्परिशिक्षेतुम्। पुनः प्रत्युत्तराणीदं का मे क्षतिरुपस्थिता ॥ १२ भुगुण्डजीवितकरं भुगुण्डस्वात्मलाभदम्। श्रुणु प्राणसमाधानं वश्यमाणमिदं मया ॥ १३ पद्मयेदं भगवन्सर्वं देहगेहं मनोरमम्। १४ त्रिप्रकारमहास्थुणं नवद्वारसमावृतम्॥ पुर्यप्रककलत्रेण तन्मात्रस्यजनेन च। अहंकारगृहस्थेन सर्वतः परिपालितम्॥ १५ अन्तः पर्यसि सत्कर्णशष्कुलीचन्द्रशालिकम्। शिरोरहाच्छादनवद्विपुलाक्षिगवाक्षकम्॥ १६ आस्यप्रधानसुद्वारं भुजपार्थ्वोपमन्दिरम्। दन्तालिकेसरस्रग्भिभूषितद्वारकोटरम्॥ १७ अनारतं रूपरसस्पर्शनद्वारपालवत्। संकुलालोकविततं तारालिन्दकृतस्थिति ॥ १८ रक्तमांसवसादिग्धं स्नायुसंततिवेष्टितम्। स्थूलास्थिकाष्टसंबद्धं सुकुड्यं सुसमाहितम्॥ १९

दादीनां संनिधी इदं प्राणदर्शनं परिशिक्षितुं विश्वेषतः परिहातुं पुनः प्रत्युत्तराणि । लत्यश्रस्य प्रत्युत्तरं वदानि । लोडुत्तमः ॥ १२ ॥ देहगेहवर्णनक्रमेण वक्ष्यमाणम् ॥ १३ ॥ वातपित्त-कफळक्षणत्रिप्रकारा महान्तः स्थूणा विष्टम्भकाष्ठानि यस्य ॥१४॥ पुर्यष्टकं प्राग्व्याख्यातम् । तत्पुर्यष्टकमात्रं खजना बान्धवाक्ष यस्य ॥ १५ ॥ अन्तः साक्षितया त्वं मया वर्ण्यमानं देहरोहं पर्यसि साक्षादनुभवित । सर्खी कर्णशब्कुठीद्वयरुक्षणे चन्द्रशा-लिके बिरोग्रहे यस्मिन् । बिरोर्ग्हः केशराच्छादनवत् ॥ १६ ॥ भुजी पार्श्वे च उपमन्दिराणि मन्दिरपक्षभागा यस्य । दन्तालि-र्दन्तपङ्किस्तहक्षणकेसरमालाभिर्भूषितं प्रधानद्वारिबलं ॥ १७ ॥ रूपरसप्रहणं सर्वयाद्यविषयोपलक्षणम् । तान् स्पर्श-यन्ति अन्तर्नियेदयन्ति यानि ज्ञानेन्द्रियाणि तहृक्षणद्वारपाल-वत् । तत्र लचः सर्वाङ्गव्यास्या सर्वद्वारपाठलमिति अधोद्वार-योरिप तद्वस्वं बोध्यम् । सर्वत्र संकुलेन लिङ्गदेहव्यापिद्वारा व्याप्तेन आत्मालोकेन वित्तं व्याप्तम् । विशेषतश्च जागरे तारे अक्ष्णोः कनीनिके तल्लक्षणयोरितन्दयोरूर्वतमद्वारप्रकोष्ठयोः कृता खामिस्थितिर्यस्मिन् । 'इन्धो ह नै नामेष योऽयं दक्षिणे-क्षन्पुरुषः' 'नेत्रस्थं जाम्रतं विद्यात्' इति श्रुतिरिति भावः ॥ १८ ॥ रक्तमांसवसाभिवीरिमृद्रोमयेरिव दिग्धमुपलेपेनोपचितम् । स्ना-

इडा च पिङ्गला चास्य देहस्य मुनिनायक । सुस्थिते कोमले मध्ये पार्श्वकोष्ठे निमीलिते ॥ 20 पद्मयुग्मत्रयं यन्त्रमस्थिमांसमयं मृदु । ऊर्ध्वाधोनालमन्योन्यमिलकोमलसङ्गलम् ॥ २१ सेकेन विकसरपत्रं सकलाकाराचारिणा। चलन्ति तस्य पत्राणि मृदु व्याप्तानि वायुना ॥ २२ चळत्सु तेषु पत्रेषु स मरुत्परिवर्धते । वाताहते लतापत्रजाले वहिरिवाभितः॥ २३ वृद्धि नीतः स नाडीषु कृत्वा स्थानमनेकधा । अर्ध्वाधोवर्तमानासु देहेऽसिन्प्रसरत्यथ ॥ રુષ્ટ प्राणापानसमानाचैस्ततः स हृद्यानिलः। संकेतैः प्रोच्यते तज्क्षेर्विचित्राचारचेष्टितैः॥ २५ इत्पद्मयत्रत्रितये समस्ताः प्राणशक्तयः । ऊर्ध्वाधः प्रसृता देहे चन्द्रविम्वादिवांशवः॥ २६ यान्त्यायाग्ति विकर्षन्ति हरन्ति विहरन्ति च । उत्पतन्ति पतन्त्याशु ता पताः प्राणशक्तयः ॥ २७ स एष हृत्पश्चगतः प्राण इत्युच्यते वुधैः। अस्य काचिन्मुने शक्तिः प्रस्पन्दयति लोचने ॥ २८

यवः शिरास्तत्संततिभिर्वेष्टितं रुद्धम् । अतएव सुकुष्यम् ॥ १९ ॥ भस्य देहस्य मध्ये इडा पिङ्गला चेति द्वे कोमले सूक्ष्मे नाड्यो वामदक्षिणपार्श्वकोष्ठे निमीलिते अनिमन्यक्ते नासापुटयोः प्राण-संचारिक्षेनामिव्यके सुस्थिते ॥ २० ॥ तत्र सर्वप्राणशकीमा-माश्रयभूतं द्वासप्ततिसहस्रसंख्याकनाडीप्रभेदमूलजालकं पुरीत-न्नामकं संपुटितसनालपद्मयुग्मत्रयाकारं हत्पद्मयन्त्रत्रयं दर्श-यति-पदायुग्मेति । अस्थिप्रहणाद्वंकिसंघिकीलप्रोतोध्वंनालता गम्यते । अन्योन्यं संपुटीमाचेन मिलत्कोमलसद्दलमतएव अन्त्रं प्रत्येकं यन्त्राकारम् ॥ २१ ॥ नासाम्रादिपादान्तसकछदेहाकाश-चारिणा चन्द्राख्यापानवाय्वसृतसेकेन विकसन्ति पत्राणि दलानि यस्य तत् । एवं प्राणसंचारेण पत्राणि ईषत्संकुचन्तीत्यशीद्र-म्यते । अतएव तस्य यन्त्रस्य पत्राणि प्राणापानवायुना व्या-प्तानि सन्ति मृदु चलन्ति प्रत्युच्छ्वासनिःश्वासमीयत्संकुचन्ति विकसन्ति चेत्यर्थः ॥ २२ ॥ किं ततस्तत्राह-—चलिखिति । परिवर्धते परितः प्रसारात्परीतत्यंबद्धसर्वनाडीच्छिद्रेषु प्रविश्य बहुलीभवतीत्यर्थः । यथा बहिररण्यादौ लतापत्रजाले वातेना-हते सति वायुः परितः श्रसरति तद्वदित्यर्थः ॥ २३ ॥ एवं वृद्धि नीतः सहदयपायुनाभिकण्ठसर्वाङ्गरुक्षणमनेकधास्थानं कृत्वा कल्पयिला प्राणादिपश्चसंज्ञः सन् ऊर्ध्वाधोवर्तमानासु द्विसप्त-तिसहस्रप्रतिशाखासु एकोत्तरशतनाडीषु प्रविश्य देहे प्रसरती-त्यर्थः ॥ २४ ॥ तदेवाह--प्राणेति ॥ २५ ॥ तैः प्राणैः सह प्राणश-कीनामपि सर्वाङ्गे प्रसरं दर्शयति—हत्पद्मेति ॥ २६ ॥ तासाम-**नरसस्य देहव्यापनाय नाडीषु व्यापारमाह—्यान्तीति ॥ २७॥** इदयमेव मुख्यस्थानं प्राणस्थेव मुख्यता अन्ये तद्वतिमेदास्तद्धा-रेण प्राणएव सर्वशरीरेन्द्रियादिचेष्टाः शक्तिमेदैः करोतीलाह्-

काचित्स्पर्शमुपादसे काचिद्वहति नासया । काचिद्यं जरयति काचिद्वक्ति वचांसि च॥ २९ बहुनात्र किमुक्तेन सर्वमेव दारीरके। करोति भगवान्वायुर्यन्त्रहामिच यान्त्रिकः॥ 30 तत्रोर्ध्वाधो हिसंकेतौ प्रसृतावनिसी मुने। प्राणापानाविति ख्याती प्रकटौ द्वौ वरानिली ॥३१ तयोरनुसरन्नित्यं मुने गतिमहं स्थितः। श्रीतोष्णवपुषोर्नित्यं नित्यमम्बरपान्थयोः॥ 32 कलेवरमहायम्बवाहयोः श्रमहीनयोः। हृदाकाशार्कशिनोस्त्वन्नीषोमस्यरूपयोः॥ 33 शरीरपुरपालस्य मनसो रथचक्रयोः। अहंकारनृपस्यास्य प्रशस्येष्टतुरङ्गयोः ॥ ३४ तयोर्ममानुसरतः प्राणापानामिधानयोः । गति शरीरमक्तोराशरीरमरुद्धयोः॥ 34 जात्रत्स्वप्रसुषुप्तेषु सदैव समरूपयोः। सुषुप्तसंस्थितस्येव ब्रह्मन् गच्छन्ति वासराः॥ ३६ सहस्रविनिकृत्ताङ्गाद्विसतन्तुलवादपि। दुर्रुश्या विद्यमानापि गतिः सूक्ष्मतराऽनयोः ॥ ३७

स एष इलादिना ॥ २८ ॥ २९ ॥ यन्त्रेहां प्रतिमादियन्त्रस्य नृत्यादिचेष्टाम् । यान्त्रिको यन्त्रसृत्रधारः ॥ ३० ॥ ऊर्ध्वगमन-मधोगमनमिति द्विविधसंकेतवन्तौ ॥ ३१ ॥ एवं सर्वमौपोद्धा-तिकमुपवर्ण्य खयं कियमाणां प्राणचिन्तां दर्शयति-तयो-रिति। तयोर्गत्यनुसरणं लाध्यात्मिकपरिच्छेदत्यागेनाथिदैविकसू-त्रात्मरूपतदात्मभावधारणया आसङ्गपाप्मद्षितसर्वेन्द्रियवतप-रित्यागेन तनमात्रव्रताचरणं । वागादीन्द्रियाणां हि वचनादिखस्त-विषयव्यसनितावतं तचासञ्जपाप्मदृषितमिति श्रमलक्षणेन मृ-त्युना भन्नम् । प्राणस्य तु मुखनासिकादिस्थानेषु संचरणमेव त्रतं तश्च न विषयासङ्गदृषितमिति न श्रमात्मना भज्यत इति प्राण एवको व्रतभङ्गश्चन्यो मृत्युना न प्रस्यते । अतस्तदात्मताधारणत-इतमात्राचरणलक्षणात्प्राणचिन्त्नात्स्वस्य जितमृत्यतेत्याशयः । इयंच प्राणचिन्ता प्राणवतधारणसंहिता बृहदारण्यके 'अथातोव-तमीमांसा' इत्यादिना'तस्मादेकमेव व्रतं चरेत्वाण्याचैवापान्याच नेत्पाप्मा मृत्युराम्बन्' इति 'यद्यचरेत्समापिपयिषेत्तेनो एतस्य देवताये सायुज्यं सलोकतां जयति' इत्यन्तेन प्रन्थेन प्रपश्चिता ततएवावगन्तव्या। तथोरुपासनीयगुणान्तराष्यप्याह-शीतोष्ण-वपुषोरित्यादिना ॥ ३२ ॥ श्रमहीनयोरिति । 'तानि मृत्युः श्रमो भूलोपयेमे अथेममेव नाप्नोद्योयं मध्यमः प्राणः' इति श्रुतेरिति भावः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ आशरीरं यावजीवमरुद्धयोरविच्छिमो-पासनयोः। तथाच प्राक्श्रुतिरुदाहृता 'यद्युचरेत्समापिपयिवेत्' इति । न विच्छिन्द्यादिति हि तदर्थः ॥ ३५ ॥ **समरू**पयो-रिति । अभ्यासातिशयेन बहिरन्तथ द्वादशषोडशाङ्गुळप्रदेशमा-त्रपरिमितसंचारयोरित्यर्थः ॥ ३६ ॥ प्राणायामाभ्यासात्त्योः

१ विनिभक्ताङ्गा इति पाठः.

अविरतगतयोगीतं विदित्वा इदि मक्तोरनुस्त्य चोदितां नाम्।

इस्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्र० भुशुण्डोपाख्याने प्राणविचारणं नाम चतुर्विशः सर्गः ॥२४॥

पश्चविंदाः सर्गः २५

3

Ĉ

9

श्रीविसष्ठ उवाच । इत्थं स कथयन्पक्षी पृष्टस्तत्र पुनर्मया । कीहशी प्राणवातस्य गतिरित्येव राघव ॥ अशुण्ड उत्सान ।

भुशुण्ड उवाच।
जानन्नपि मुने सर्व किं मां पृच्छिस लीलया।
यथापृष्टमहं विस्म श्रणु तत्रापि मद्रचः ॥
प्राणोऽयमनिशं ब्रह्मन्स्पन्दशक्तिः सदागतिः।
सवाद्याभ्यन्तरे देहे प्राणोऽयमुपिर स्थितः ॥
अपानोऽप्यनिशं ब्रह्मन्स्पन्दशक्तिः सदागतिः।
सवाद्याभ्यन्तरे देहे त्वपानोऽयमवाविस्थतः ॥
जाप्रतः स्वपतश्चेव प्राणायामोऽयमुत्तमः।
प्रवर्तते यतस्तज्ञ तत्तावच्छ्रेयसे श्रणु ॥
वाद्योन्मुखत्वं प्राणानां यदृद्म्बुजकोटरात्।
स्वरसेनास्तयलानां तं धीरा रेचकं विदुः ॥
द्वादशाङ्गुलपर्यन्तं वाद्यमाक्रमतामधः।
प्राणानामङ्गसंस्पर्शो यः स प्रक उच्यते॥

सूक्ष्मतमलापादनाच नोत्क्रमणादिप्रसक्तिरित्याशयेनाह—सहस्रेति । अथवा नाच्यन्तःसंचारोऽनयोर्मुखनासिकासंचार इव
कृतो न रुक्ष्यते तन्नाह—सहस्रेति । 'यथा केशः सहस्रधा
भिन्नस्तावताणिन्ना तिष्ठति' इति श्रुतेनांडीनामेनातिस्कृभलादुर्रुन्त्रस्ते तदन्तरनयोगितः सुतरां दुर्छक्षेत्याशयः॥३०॥वर्णितां प्राणिवन्तां वर्णयिष्यमाणप्रकारप्रश्रस्यावसरं सूचयन्नुपसंहरति—
अविरतेति । हृदि हृदयादिस्थानेष्यविरतं गतं संचारो ययोस्तयोमेक्तोः प्राणापानयोश्रोदितां नानाश्रुतिषु तत्तत्प्राणोपास्तिप्रकरणे अनेकथा विहितां निर्देशिक्षगतश्रमलाभग्नवत्तसंवर्गायनेकगुणविश्रिष्टां गतिमनुसत्य वक्ष्यमाणप्रकारेणोपास्य प्रणहम्रत्युपाशः सन् पुरुषस्तत्वज्ञानेन जीवन्मुक्तो भूला इह संसारे पुनर्ने जायत इत्यर्थः । हिशब्दः प्राणाद्यपास्तीनामपि
निष्कामानुष्ठितानां ज्ञानद्वारा मुक्तिहेतुत्वं श्रुतिषु प्रसिद्धमिति
योतनार्थः ॥ ३८ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुर्वदातितमः सर्गः ॥ २९ ॥

प्राणापानगतिष्वत्र रेचकादिप्रकल्पनम् । प्राणापानोदयलयस्थानं ब्रह्म च वर्ण्यते ॥ ३ ॥

प्रश्नावसरप्रदानसूचितश्चिन्तनीयप्राणगतिप्रकारभेदो मया
पृष्ट इत्याह—इत्थमिति ॥ १ ॥ २ ॥ एकः प्राणशब्दो हृढः अपरख्य प्रागनितीति यौगिकस्ताहक्षणपरः। हृक्षणानुसारेणैयोर्ध्वस्था-

बाह्यात्परापतत्यन्तरपाने यह्मयर्जितः। योऽयं प्रपूरणः स्पर्शो विदुस्तमपि पूरकम् ॥ अपानेऽस्तंगते प्राणो यावन्नाभ्युदितो हृदि । तावत्सा कुम्भकावस्था योगिमिर्यानुभूयते ॥ रेचकः कुम्भकश्चेव पूरकश्च त्रिधा स्थितः। अपानस्योदयस्थाने द्वादशान्ताद्धो बहिः॥ १० स्वभावाः सर्वकालस्थाः सम्यग्यत्नविवर्जिताः । ये प्रोक्ताः स्फारमतिभिस्ताञ्ख्रुणु त्वं महामते ॥११ द्वादशाङ्कलपर्यन्ताद्वाह्यादभ्युदितः प्रभो । यो वातस्तस्य तत्रैव स्वभावात्पूरकादयः॥ १२ मृदन्तरस्थानिप्पन्नघटवद्या स्थितिर्बहिः। द्वादशाङ्करुपर्यन्ते नासाग्रसमसंमुखे॥ १३ व्योम्नि नित्यमपानस्य तं विदुः कुम्भकं बुधाः। बाह्योन्मुखस्य वायोयां नासिकाम्रावधिर्गतिः॥ १४ तं बाह्यपूरकं त्वाद्यं विदुर्योगविदो जनाः। नासाम्राद्यि निर्गत्य द्वादशान्तावधिर्गतिः॥ १५

नमिनीय दर्शयति-अयमुपरि स्थित इति ॥ ३ ॥ एवम-पानपदम्पयेकं योगिकं पूर्ववत्सर्वम् ॥ ४ ॥ एवं रुक्षणतो मेदं प्रदर्श तद्भविष्वयञ्जतः सदैव प्राणायामलसिद्धिनिन्तनं दर्शयति — जाप्रत इलादिना ॥ ५ ॥ तत्र हृदयान्मूधेपर्यन्तं प्र-श्वासगल्यधमान्तररेचकत्वेन चिन्तनीयम् । मूर्थादिषहिर्द्धा-दशाङ्गलपर्यन्तं त्वर्धं वाह्यपूरकत्वेनेत्याह—नाधोति द्वाभ्याम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ एवं बाह्याद्देशादपाने अन्तः परापतित प्र-विशति यो नासाम्रादिमूर्थपर्यन्तो यश्च मूर्घादिहृद्यपर्यन्तो वायोः सर्शस्तं द्विविधमप्यन्तःपूरकं विदुरित्यर्थः ॥ ८ ॥ इदानीमन्तः कुम्भकं कल्पितार्काल्पतसाधारणीन उक्षयति-अपाने इति । अस्तंगते प्रशान्ते सति ॥ ५ ॥ बहिरपि च रेचकादीन्दर्शिवतुमुपकमते-रेचक इत्यादिना । अपान-स्योदयस्थाने नासाम्राद्वहिद्वीदशाङ्गुलपर्यन्ते ॥ १० ॥ स्वतएव भवन्तीति स्वभाव। ये रेचकादयः प्रोक्ताः ॥ ११ ॥ अभ्युदितः अभिमुखं स्थितः । तस्य वातस्य । तत्र बाह्यप्रदेश एव । बाह्य-पुरकादयश्चिन्तनीया इति शेषः ॥ १२ ॥ तत्र बाह्यवाय्वन्तर-पानस्यैकीभावेन निश्रलप्रायां स्थिति कुम्भकत्वेन कल्पयति-मृदन्तरस्थेति सार्थन ॥ १३ ॥ तस्य पूर्वप्राणभावेन हृदया-दारम्य नासाप्रपर्यन्ता या गतिस्तां बाह्यपूरकत्वेनापि कल्प-येदिलाह—बाधोन्मुखस्येति ॥ १४ ॥ ततो बहिर्गति बाह्य-

या वायोस्तं विदुर्धीरा अपरं वाह्यपूरकम्। बहिरस्तं गते प्राणे यायन्नापान उद्गतः॥ १६ तावत्पूर्ण समावस्यं वहिष्ठं कुम्भकं विदुः। यत्तद्दन्तर्भुखत्वं स्यादपानस्योदयं विना ॥ १७ तं बाह्यरेचकं विद्याधिन्त्यमानं विमुक्तिदम्। द्वादशान्ताद्यदुत्थाय रूपपीवरता परा ॥ १८ अपानस्य बहिष्ठं तमपरं पूरकं विदुः। बाह्यानाभ्यन्तरांश्चेतान्कुम्भकादीननारतम्॥ १९ प्राणापानस्वभावांस्तान्बुद्धा भूयो न जायते । अष्टावेते महाबुद्धे रात्रिदिवमनुस्मृताः॥ २० स्वभावा देहवायूनां कथिता मुक्तिदा मया। गच्छतस्तिष्ठतो बापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा॥२१ पते निरोधमायान्ति प्रकृत्याऽतिचलानिलाः। यत्करोति यदश्राति वुद्धैवालमनुसारन्॥ २२ कुम्भकादीस्नरः स्वान्तस्तत्र कर्ता न किंचन । अव्यव्रमस्मिन्वापारे वाह्यं परिजहन्मनः॥ २३ दिनैः कतिपयैरेव पदमाप्नोति केवलम्। प्तदभ्यसतः पुंसो वाह्य विषयवृत्तिषु ॥ રક न बभाति रति चेतः श्वरती ब्राह्मणो यथा। पतां रिष्टमवष्टभ्य ये स्थिताः कृतबुद्धयः॥ રપ प्राप्तप्राप्तव्यमखिलं तैरिखन्नास्त एव हि । तिष्ठता गच्छता नित्यं स्वपता जाव्रता तथा॥२६ पषा चेत्प्रेक्ष्यते दृष्टिस्तन्न यन्धनमाप्यते। प्राणापानानुसरणप्राप्तवोधवतामलम् ॥ ₹\9 संशान्तमलमोहेन स्वस्थेनान्तरिहोष्यते ।

पूरकान्तरतया कल्पयति—नासामादिति ॥ १५ ॥ बहिरित्यादिः पूर्वीकानुवादः ॥ १६॥ बाह्यरेचकद्वयकल्पनप्रकारमाह— यत्तदिति । उदयं प्रस्पन्दं विना । तथाच प्रस्पन्दपूर्वक्षणे यद-न्तर्मुखत्वं प्रस्पन्दोम्मुखत्वं तमित्यर्थः ॥ १७॥ द्वादशान्ता-द्वाह्यद्वादशाङ्कुरुचरमभागात् । नासाप्रपर्यन्तमपानस्य चलनेन खरूपाभिव्यक्तया पीवरता ॥ १८ ॥ १९ ॥ बुद्धा उपास्य भूयो न जायत इलावश्यभाविज्ञानफलेन स्तुतिः—अष्टाविति । यद्यपि बहिरन्तक्ष रेचकपूरकयोः प्रत्येकं द्वविध्यकथनात्कुम्भ-काभ्यां सह दश भवन्ति तथापि कुम्भकयोः प्राधान्यादञ्जा-ष्टकाभिप्रायेणेयमुक्तिः ॥ २० ॥ एतद्भ्यासात्प्राणनिरोघोऽपि काले भवतीत्याह—गच्छत इति ॥ २१ ॥ कर्तृत्वभोक्तृत्वाभि-मानोऽप्यनेन नश्यतीत्याशयेनाह—यत्करोतीति ॥ २२ ॥ बाह्यदृष्टिपरित्यागादन्तरात्मदर्शनीदयेन परमपद्रप्राप्तिरप्यनेन सिद्धतीलाह-अन्यमिति । अस्मिन् प्राणचिन्तनव्यापारे संसक्तमतएव वाह्यनर्थं परिजहत्त्यजत् ॥ २३ ॥ २४ ॥ श्वहतौ श्वर्मभस्त्रायां तद्भतक्षीरादाविति यावत् ॥ २५ ॥ २६ ॥ प्राणा-पानयोरनुसरणमनुसारधिन्तनं तेन प्राप्तबोधवतां पुंसां संशा-न्तमस्रमोहेन चित्तेन अन्तर्हदयस्थे इह प्रस्रगात्मनि ॥ २०॥

सर्वारम्भान्सदा स्वच्छः कुर्वन्वापि बुधो जनः॥२८ प्राणापानगति प्राप्य सुस्वस्थः सुखमेधते। प्राणस्याभ्युदयो ब्रह्मन्पन्नपत्राज्ञुदि स्थितात्॥ २९ द्वादशाङ्कलपर्यन्ते प्राणोऽस्तं यात्ययं बहिः। अपानस्योदयो बाह्याद्वादशान्तान्महामुने ॥ ३० अस्तंगतिरथाम्भोजमध्ये हृद्यसंस्थिते। प्राणो यत्र समायाति द्वादशान्ते नभःपदे ॥ 38 पदात्तस्मादपानोऽयं खादेति समनन्तरम्। बाह्याकाशोन्मुखः प्राणो वहत्यग्निशिखा यथा॥ ३२ हृदाकाशोन्मुखोऽपानो निम्ने वहति वारिवत्। अपानश्चन्द्रमा देहमाप्याययति बाह्यतः॥ 33 प्राणः सूर्योऽग्निरथवा पचत्यन्तरिदं वपुः। प्राणो हि हृदयाकाशं तापयित्वा प्रतिक्षणम् ॥३४ मुखाप्रगगनं पश्चात्तापयत्युत्तमो रविः। अपानेन्दुर्मुखाग्रं तु प्लावियत्वा हृदम्बरम्॥ पश्चादाप्याययत्येष निमेषसमनन्तरम्। अपानशशिनोऽन्तस्था कला प्राणविवस्वता ॥ ३६ यत्र प्रस्ता तदासाद्य पदं भूयो न शोच्यते। प्राणार्कस्य तथान्तस्था यत्रापानसितांद्यना॥ प्रस्ता तत्पदमासाद्य न भूयो जन्मभाङ्गरः। प्राण एवार्कतां याति सबाह्याभ्यन्तरेऽम्बरे ॥ ३८ आप्यायनकरीं पश्चाच्छशितामधितिष्ठति । प्राण प्वेन्दुतां त्यक्त्वा शरीराप्यायकारिणीम् ३९ क्षणादायाति सूर्यत्वं संशोषणकरं पदम् । अर्कतां संपरित्यज्य न याधव्यन्द्रतां गतः॥ Ro

॥ २८ ॥ प्राणस्याभ्युदय इत्यादिः पूर्वोक्तानुवादः ॥ २९ ॥ ३० ॥ हृदयसंस्थिते अम्भोजमध्ये अस्तं गतिरपानस्येति शेषः । प्राणो यत्र यस्मित्रभःपदे समायाति समाप्यते ॥ ३१ ॥ तस्मात् खात् पदात् अपान एति. उद्गच्छति । प्राणापानयो-रभीषोमात्मकत्वं यदुक्तं तदीष्ण्यशैल्योध्वीघोमुखलप्रदर्शनेनो-पपादयति—वाग्रेखादिना ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तयोः सूर्य-चन्द्रात्मकता वा चिन्स्येत्याशयेन तामप्युपपादयति-प्राण इत्यादिना ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कला चरमो भागः । यत्र यस्मि-न्हार्दे ब्रह्मणि स्थिला प्रस्ता तद्रह्मासाय ॥ ३६ यत्र यस्मि-न्द्वादशाङ्खरुपर्यन्तवाह्याकाशोपलक्षिते ब्रह्मणि विद्यमानेनापा-नेन प्रस्ता तद्रह्मपदमासाधेत्यर्थः ॥ ३७॥ एकस्थैव वायोः पर्या-येण शक्तिद्वयोदयश्विन्तनीय इत्याह—प्राण एवेत्यादिना ॥३८॥ आप्यायनमाप्यायो हादनम् ॥ ३९ ॥ तत्र बहिर्दादशाङ्करप-र्यन्ते प्रसतः प्राणो यावदर्कतामाण्यं परित्यज्य चन्द्रता शैत्यं न गतः सा प्राणापानयोः संध्यवस्था । तस्यां देहाद्वहिः प्राण-लयादात्मना निर्देहत्वनिष्क्रियत्वनिर्मनस्त्वादयो वास्तवसभावाः संभावियतुं शक्यलाद्विचार्यन्ते । तत्र बाह्यकुम्भके देहादिदेश-परिच्छेदाभावा बन्द्रसूर्यात्मकप्राणापानिकयाप्रयुक्तायुःकालपरि-

प्राणस्तावद्विचार्यन्तेऽदेशकले न शोच्यते । हृदि चन्द्रार्कयोर्जात्वा नित्यमस्तमयोदयम् ॥ પ્રશ आत्मनो निजमाधारं न भूयो जायते मनः। सोदयास्तमयं सेन्द्रं सर्रादंम सगमागमम्॥ ઇર हृदये भास्करं देवं यः पश्यति स पश्यति । न श्रीणं नापरिक्षीणं यहिष्ठं सिद्धये तमः॥ ઇરે हार्दे तु क्षपयेष्ट्रान्तं यत्क्षये सिद्धिरुत्तमा । बाह्य तमसि संक्षीणो लोकालोकः प्रजायते ॥ 88 हार्दे तु तमसि श्लीणे स्वालोको जायते मुने। हार्दान्धकारक्षयदं परिकातं विमुक्तिदम्॥ 84 सोद्यास्तमयं यतात्प्राणार्कमघलोकयेत्। अपानेन्दुः प्रयात्यस्तं यत्र हृत्यद्मकोटरे ॥ 38 पदात्तसादुदेत्यन्तः प्राणाकी बहिरुनमुखः। अपाने इस्तंगते प्रणः समुदेति हृदम्बुजात् ॥ 80 छायायां गलिताङ्गायां तत्रैवाद्य यथातपः। प्राणे त्वस्तंगते बाह्यादपानः प्रोदितः क्षणात् ॥ ४८ आतपे परितो नष्टे छायेबानुपदं तथा। प्राणजन्मावनी नष्टमपानं विद्धि सन्मते ॥ 86 अपानजन्मभूमौ च प्राणं नष्टमबेहि हि। अस्तं गतवति प्राणे त्वपाने ऽभ्युवयोन्मुखे ॥ 40 बहिः कुम्भकमालम्ब्य चिरं भूयो न शोच्यते। अपानेऽस्तं गते प्राणे किंचिदभ्युदयोन्मुखे ॥ ५१ अन्तःकुम्भकमालम्ब्य चिरं भूयो न शोच्यते।

च्छेदाभावाचादेशकाले खात्मनि प्रतिष्ठितेन योगिना न शो-च्यते इत्यर्थः ॥ ४० ॥ एवमन्तःकुम्भकेऽपि हदि प्राणापानसंघौ प्रतिष्ठितस्य मनसो निजाधिष्ठानपरमात्मतत्त्ववोघावस्यंभावान जन्मादिप्रसक्तिरित्याह — हृदीति ॥ ४१ ॥ आत्मनी मनसः **आधारमधि**ष्ठानं परमात्मानम् । अथवा हृदयस्यः स्वात्मैत्र प्रा-णसूर्यःस एवापानात्मकचन्द्रतया उदयास्तमयतद्रदिमभूतव्याना-दिशृतिभेदाद्यात्मना विवर्तते न तक्कातिरिक्तः कथिदस्तीत्युपा-सनं खात्मदर्शने हेतुरित्याह—सोदयास्तमयमिति ॥ ४२ ॥ ननु कि ह्यात्मसाक्षात्कारेण बाह्यतमसा बहिरेवापरिच्छित्रस्याः रमन आवृतलात्तरक्षयाय बाह्यज्योतिरेव कि नान्विष्यते त-श्राह—नेति ॥ ४३ ॥ हार्द त्विति । बाह्यभ्वान्तकल्पनापि हा-र्दभ्वान्तवशादेवेति तत्क्षये तत्क्षयोऽर्थासद्ध इति भावः। बाह्य-ज्योतिषा बाह्यतमःक्षपणं तु रूपादिदर्शनहेतुरेव न बहिरात्मद-र्शने हेतुरिखाशयेनाह—वाह्ये इति । छोक्यत इति छोको जगद्र-पम् ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उक्ते वाद्यान्तःकुम्भकप्रतिष्टे प्ररोचनाय प्रपश्चयिष्यन् भूमिकां रचयति --अपानेन्दुरित्वादिना ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ उदयोन्मुखतैव निरोद्धव्येखाञ्चयः ॥ ५० ॥ ५९ ॥ अपानादपानोदयस्थानाद्वादशाङ्खरस्थानाद्दर-कोटिगं, षोडशाहुलभागप्रसारिणमित्यर्थः ॥ ५२ ॥ निःशेषवा-

प्राणरेचकमालम्ब्य अपानाइरकोटिगम्॥ ५२ स्त्रच्छं कुम्भकमभ्यस्य न भूयः परितप्यते। अपाने रेचकाधारं प्राणपूरान्तरस्थितम्॥ ५३ स्वसंस्थं पूरकं हुट्टा न भूयो जायते नरः। प्राणापानावुभावन्तर्यत्रेती विलयं गती ॥ 48 तदालम्ब्य पदं शान्तमात्मानं नानुतप्यते । प्राणभक्षोत्मुखेऽपाने देशं कालं च निष्कलम् ॥५५ विचार्य बहिरन्तर्घा न भूयः परिशोच्यते । अपानभक्षणपरे प्राणे हृदि तथा वहिः॥ ५६ देशं कालं च संप्रेक्ष्य न भूयो जायते मनः। यत्र प्राणो ह्यपानेन प्राणेनापान एव च ॥ 40 निगीणों वहिरन्तश्च देशकाळी च पद्य तौ। क्षणमस्तं गतप्राणमपानोदयवर्जितम्॥ 46 अयल्लसिद्धवाद्यस्थं कुम्भकं तत्पदं विदुः। अयत्त्रसिद्धो ह्यन्तस्थकुम्भकः परमं पदम् ॥ ५९ पतत्तदात्मनो रूपं शुद्धेपा परमैव चित्। एतत्तत्तत्त्वदाभासमंतत्प्राप्य न शोच्यते॥ ξo पुष्पस्यान्तरिवामोदः प्राणस्यान्तरवस्थितम् । न स प्राणं न वापानं चिदात्मानमुपास्पहे॥ 88 जलस्यान्तरिवास्वादमपानस्यान्तरिश्वतम् । न स प्राणं न वापानं चिदात्मानमुपास्तहे॥ ६२ प्राणक्षयस्योपान्तस्थमपानक्षयकोटिगम्। अपानप्राणयोर्मध्यं चिदात्मानमुपासह ॥ ६३

युरेचनात्स्वच्छम् । नासाविवरेणान्तः प्रविशत्यपाने बाह्यरेचका-धारं प्राणस्य पूरणं प्राणपूरस्तदर्थमन्तः आस्थितं प्रविष्टं खसंस्थं देहान्तर्गतं पूरकं द्वया उपास्य ॥ ५३ ॥ यत्र हार्दे ब्रह्मणि ॥ ५४ ॥ इदानीम् 'अर्कतां संपरित्यज्य न यावचन्द्रतां गतः' इत्यत्र अदेश-काले न शोच्यते इति यदुक्तं तद्विवृण्यन् बाह्यकुम्भकोक्तस्य देश-कालबाधस्यान्तःकम्भकेऽध्यनुकर्षे दर्शयति—प्राणभक्षोन्मुख इलादिना । बहिः प्राणलयाधिष्ठानचिति अन्तः प्राणनिर्गमापादा-नचिति वा बाधेन देशं कालं चात्तदन्तर्वर्तिवस्तुजातं च निष्कर्ल चिन्मात्रमेवेति विचार्येत्वर्थः ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ देश-कालै प्राणापानाभ्यां सहैव निगीर्णाविति पर्येखर्थः । तादशा-वस्थाप्राणापानसंधिक्षणे सर्वप्राणिनामप्यस्ति योगिनस्त् तद्विद्व-र्नान्ये इत्याह--क्षणित्यादिना ॥ ५८ ॥ विदुः । योगिन इति शेषः ॥ ५९ ॥६०॥ एवं क्रियामेदभिन्नप्राणचिन्ताप्रकार**मुक्ला** तिन्नरूज्यनन्तरं प्राणापानाद्यान्तरतद्धिष्टानन्विदारमोपासनं क-र्तेत्र्यमित्याशयेनाह—पुष्पस्यान्तरित्यादिना । स किं प्राणोप**हित** एवोपास्यो, नेत्याह—न स प्राणमिति । तर्हि कि प्राण्ठयोपल-क्षितोऽपानात्मा सः, नेलाह---नवापानमिति । तथाच तत्परि-चयार्थं प्राणस्यान्तरवस्थितमित्यक्तं नतुपासनोपाधितयेति भावः ॥ ६१ ॥ आखाद्यत इलाखादो माधुर्यमिव । सप्राणं सजीवम् ।

प्राणस्य प्राणनं प्रोच्चैः परं जीवस्य जीवनम् । देहस्य धारणं धुर्यं चिदात्मानमुपासहे॥ દ્દસ मनसो मननं सत्यं बुद्धरेकावयोधनम्। अहंकतेरहंकारं चिदात्मानमुपासह ॥ यसिन्सर्वे यतः सर्वे यत्सर्वे सर्वेतश्च यत्। यश सर्वमयं नित्यं तिश्वतस्वमुपासहे ॥ દદ आलोकालोकनं पुण्यं सर्वपावनपावनम्। नच भावनमधूनं तिश्वत्तत्वमुपासहे॥ ६७ [अंपानोऽस्तं गतो यत्र प्राणो नाभ्युदितः क्षणम् । ٤] कलाकलङ्करहितं तिश्चत्तत्वमुपासहे ॥ नापानोऽभ्युदितो यत्र प्राणश्चान्तमुपागतः। नासाप्रगगनावर्तं तिश्वत्तस्वमुपासाहे॥ દ્દેટ यत्र प्राणोऽस्तमायाति यत्रापानोऽस्तमेति च। यत्र द्वावप्यनुत्पन्ना तश्चित्तत्वमुपासाहे ॥ ६९

प्राणापानोद्भवस्थाने बाह्याभ्यन्तरमास्थिते। ये दे योगिपदाधारस्तश्चित्तत्वमुपास्महे॥ 90 प्राणापानस्थारूढं प्राणापानमनाततम्। यन्छक्तिरूपं शकीनां तिश्चत्तन्वमुपासाहे॥ ७१ हृत्प्राणकुम्भकं देवं बहिश्चापानकुम्भकम्। पूरकांशविख्ष्यं यत्तिश्चित्तत्त्वमुपास्महे ॥ 65 प्राणापानपरामर्शे सत्तावोधं विरूपकम् । यत्प्राप्यं प्राणमननात्तिश्चतत्त्वमुपासाहे ॥ SO यत्र्राणपवनस्पन्दो यत्स्पन्दानन्दकारकम्। कारणं कारणानां यत्तवित्तत्त्वमुपासाहे ॥ 08 यद्खिलकलनाकलङ्कहोनं परिचलितं च सदा कलागणेन । स्यनुभवविभवं पदं तद्रश्यं सकलसुरप्रणतं परं प्रपद्ये ॥ 196

इलार्षे श्रीवा ॰ रामायणे वाल्मीकीये दे ॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डोपाख्याने समाधिवर्णनं नाम पत्रविंशः सर्गः ॥ २५॥

षड्विंदाः सर्गः २६

भुशुण्ड उवाच ।

एषा हि चित्तविथान्तिर्मया प्राणसमाधिना ।

क्रमेणानेन संप्राप्ता स्वयमात्मित निर्मले ॥

एतां दृष्टिमवप्टभ्य संस्थितोऽस्मि महामुने ।

न चलामि निर्मेषांशमिप मेहविचालतः ॥

गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।

स्वमेऽपि न चलत्वेप सुसमाधिर्ममात्मिन ॥

नित्यानित्यासु लोलासु जगत्स्थितिषु सुस्थितः ।

अप्राणं निजानम् ॥६२॥ ६३ ॥ प्राणस्येति । 'स उ प्राणस्य प्राणः' इस्यादिश्रुतेः । प्राणनादिन्यायारे निमित्तमिति सर्वपर्यायार्थः ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ आलोकालोकनं ज्योतिषो ज्योतिः । भावैमीनोबुद्धादिविकारिनीमत् नधीभवत् पूर्वस्वभावात्प्रच्यवत् । नच नुनमिति निश्चये ॥ ६७॥ नासाधोपरुक्षितद्वादशाङ्करप्रदे-शगगनं आवर्तः प्राणापानप्रवाहसंधियस्य । विरुद्धप्रवाहद्वयसंधी ह्यावर्ता भवन्ति ॥ ६८ ॥ इदानीं बाह्यान्तःप्रदेशोपाधिभेदमपः हाय 'यतथोवेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति । तं देवाश्वकिरे धर्म स एवादा स उ ध एतद्वेतत्'इतिश्रुत्यर्थं मनलकुलाह—यत्रप्राण इति ॥ ६९ ॥ ये द्वे प्राणापानोद्भवस्थाने योगिभिः पद्येते गम्येते इति पदे तदाधारस्तदधिष्ठानं यश्चित्तरवं तदिखर्थः ॥ ५० ॥ यरप्राणापानोपाविरथारूढमनाततं परिच्छित्रं सत् प्राणापानस-माहारः प्राणनापाननशक्तिर्भवति एवं करणान्तरशक्तीनामपि यच्छक्तिरूपं भवतीत्वर्थः ॥ ७१ ॥ प्राणापानकुम्भकभावेन तिह्सगरेचकादिभावेन च तदेव विवतंत इति तदेवोपास्यमि-त्याह—हृदिति ॥ ७२ ॥ प्राणापानयोः परामश्रेश्वालनं तस्मिन्नि-

अन्तर्मुखोऽस्मि तिष्टामि स्वकामेनात्मनात्मिनि ॥ ४ अपि संरुध्यते वायुरपि वा सिललं गते । नैतस्मात्सुसमाधानाद्विरुद्धं संस्पराम्यहम् ॥ ५ प्राणापानानुसरणात्परमात्मावलोकनात् । अशोकमनुजातोऽस्मि पदमाद्यं महातपः ॥ ६ आमहाप्रलयाद्वस्त्रनुन्मज्जननिमज्जनम् । अहमद्यापि भूतानां पदयश्चीवामि घीरघीः ॥ ७ न भूतं न भविष्यं च चिन्तयामि कदाचन ।

मित्तभूतं तत्सत्ताबोधरूपं चेलर्थः । एवं प्राणोपास्तिफलमपि
तदेवेत्युपास्यमिलाह—यत्प्राप्यमिति ॥ ७३ ॥ इन्द्रियाणां विषयप्रदेशोपसर्पणं स्पन्दस्तदुपभोगधानन्दस्तयोः कारणम् ॥७४॥
अखिलकलनाकलक्ष्द्रीनं परमार्थतः । आपातद्शिष्टशा तु सदा
जीवोपाधिभूतेन प्राणादिषोडदाकलागणेन परिवलितं वेष्टितम् ।
सम्यगनुभवः स्वनुभवः स एव विभवो निरतिशयैश्वर्यं यस्य
तथाविथं परमात्मपदमुक्तप्रकारेण प्रपये उपासे इत्यर्थः ॥ ७७ ॥
इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे
पञ्चविद्यात्तमः सर्गः ॥ २५ ॥

इत्थं खरात्मविज्ञानं निरूप्य प्राणिमतया । सुशुण्डेनात्र कथ्यन्ते चिरजीवित्तहेतवः ॥ १ ॥

अनेनोक्तप्रकारेण '॥ १ ॥ मेरोविंचलनं विसालसस्मादिषे ॥ २ ॥ ३ ॥ जगात्स्थितिषु इष्टानिष्टलक्षणामु मुस्थितो निर्वि-क्षेपः। स्वकामेन सच्छन्देन ॥ ४ ॥ वायुः प्रवहाख्यो ज्योति-धकाधारः । सलिलं महानदीनाम् । गतेः प्रवहणात्संख्याते संख्येतापीत्यर्थः । विरुद्धं व्युत्थापकं विषयजातम् ॥ ५ ॥ हे महातपः ॥ ६ ॥ ७ ॥ वर्तमानां नित्यवर्तमानसभावां साक्षि-

१ इदं पर्धं कचिद्धिकम्.

दृष्टिमालम्ब्य तिष्ठामि वर्तमानामिहात्मना ॥ यथा प्राप्तेषु कार्येषु परित्यक्तफलेषणः। सुबुप्तसमया बुद्ध्या परितिष्ठामि केवलम् ॥ भावाभावमयीं चिन्तामीहितानीहितान्विताम्। विम्रद्यात्मनि तिष्ठामि चिरं जीवाम्यनामयः ॥१० प्राणापानसमायोगसमयं समनुसरन्। स्ययमात्मनि तुष्यामि चिरं जीवाम्यनामयः ॥ ११ इवमद्य मया लब्धमिदं प्राप्यामि सुन्दरम्। इति चिन्ता न मे तेन चिरं जीवाम्यनामयः॥ १२ न स्तौमि नच निन्दामि कचित्किचित्कदाचन। आत्मनोऽन्यस्य वा साधो तेनाहं ग्रुभमागतः॥ १३ न तुष्यति शुभप्राप्तौ नाशुभेष्यपि खिद्यते। मनो मम समं नित्यं तेनाहं श्रममागतः ॥ १४ परमं खागमालम्ब्य सबैमेव सदैव हि। जीवितादि मया त्यक्तं तेनाहं शुभमागतः॥ १५ प्रशान्तचापलं वीतशोकं स्वस्थं समाहितम्। मनो सम मुने शान्तं तेन जीवाम्यनामयः॥ १६ काष्ट्रं विलासिनीं शैलं तृणमन्नि हिमं नमः। समं सर्वत्र पदयामि तेन जीवाम्यनामयः॥ १७ किमद्य मम संपन्नं प्रातर्वा भविता पुनः। इति चिन्ताज्वरो नास्ति तेन जीवाम्यनामयः॥ १८ जरामरणदुःखेषु राज्यलामसुखेषु च । न बिमेमि न हृष्यामि तेन जीवाम्यनामयः॥ अयं बन्धुः परश्चायं ममायमयमन्यतः। इति ब्रह्मन्न जानामि तेन जीवाम्यनामयः॥ २० सर्वे सर्वपदाभासमनाचन्तमनामयम्। अयं चिदिति जानामि तेन जीवाम्यनामयः ॥ २१

दृष्टिम्। आत्मना मनसा॥८॥निरिममानत्वेन सुषुप्तसमया॥९॥ विसृश्य हेयतया निश्चित्य। तेन निरं जीवामि॥ १०॥ समा-योगः संधिस्तत्समयं तत्र विभातं त्रद्वोति यायत्॥ ११॥ १२॥ आत्मनः खस्यान्यस्य वा। चेष्टितमिति शेषः। छुभं प्रस्ता-वाजीवनम्॥ १३॥ १४॥ परं सर्वद्वैतवाधरुक्षणं व्यागम्। जीवितं जीवनामिनिवेशस्तदादि॥ १५॥ १६॥ १०॥ सर्व निदेव। सर्वपदं नानाविस्त्ववावभासतः अन्यस्य॥ २०॥ सर्व निदेव। सर्वपदं नानाविस्त्ववावभासतः इति सर्वपदाभासम्॥ २१॥ आहरम् आददानः॥ २२॥ संसारे भवं सांसारमारम्भं का-यम्॥ २३॥ यथाकालं प्रारब्धोपस्थापितभोगकालानुसारे-णोपायातौ प्राप्तौ ॥ २४॥ खस्त्पात्र परिचलतीव्यपिचल्या मनःस्थैयशक्तया। सुदृशा सर्वभूतेष्वात्मीपम्यदृष्ट्या। ऋज् अञ्विष्ट्यम्। तथाचोकं भारते—'सर्वं जिक्कं मृत्युपदमाजेवं ब्रह्मणः पदम्। एतावान् ज्ञानविषयः प्रलापः कि करिष्यति॥' इति ॥ २५॥ २६॥ तद् तदिममानं व्यक्ता शरीरेण तद्वतोऽपि

आहरन्विहरंस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठन्नुचन्नुसन्स्वपन् । देहोऽहमिति नो वेग्नि तेनास्मि चिरजीवितः॥ २२ इमं सांसारमारम्भं सुषुप्तपदवत्स्थितः। असन्तमिव जनामि तेन जीवाम्यनामयः॥ २३ यथाकालमुपायातावर्थानथीं समी मम। हस्ताविव शरीरस्था तेन जीवाम्यनामयः॥ २४ अपरिचलया शतया सुदशा क्रिग्धमुग्धया । ऋजु परयामि सर्वत्र तेन जीवाम्यनामयः॥ २५ आपादमस्तकान्तेऽसिष देहे ममता मम। त्यक्ताहंकारपङ्कस्य तेन जीवाम्यनामयः॥ **२**६ यत्करोमि यदश्चामि तस्यक्त्वा तद्वतोऽपि मे। मनो नैष्कर्म्यमाद्त्रे तेन जीवाम्यनामयः॥ यदा यदा मुने किंचिद्विजानामि तदा तदा। मतिरायाति नौद्धत्यं तेन जीवाम्यनामयः॥ 26 करोमीशोऽपि नाक्रान्ति परितापे न खेदवान् । दरिद्रोऽपि न वाञ्छामि तेन जीघाम्यनामयः॥२९ पद्यद्वपे दारीरेऽस्मिन्भृतस्थात्मा चिदास्पदः। भृतवृत्वमहं साम्यात्तेन जीवाम्यनामयः॥ 30 आशापाशविनुन्नायाश्चित्तवृत्तेः समाहितः। संस्परी न ददाम्यन्तस्तेन जीवाम्यनामयः॥ 38 असत्तां जगतः सत्तामात्मनः करविल्ववत् । सुप्तः प्रवुद्धः पश्यामि तेनास्मि चिरजीवितः ॥ ३२ जीर्ण मिन्नं ऋथं क्षीणं श्लुब्धं श्लुण्णं क्षयं गतम् । पद्यामि नववत्सवे तेन जीवाम्यनामयः॥ सुखितोऽसि सुखापन्ने दुःखितो दुःखिते जने। सर्वस्य प्रियमित्रं च तेन जीवाम्यनामयः॥ 38 आपद्यचलधीरोऽस्मि जगन्मित्रं च संपदि। भावाभावेषु नैवास्मि तेन जीवाम्यनामयः॥

मे मनो नैष्कर्म्यमकर्तृभोक्तृस्वभावतामादत्तं स्वीकरोति ॥ २० ॥ औद्धल्यमविनीततां नायाति ॥ २० ॥ ईशः परेषामाक्रमणसम्भाष्ट्राकान्ति परिभवं न करोमि । एवं परकृते परितापे सहनशिकलात्र खेदवान् ॥ २९ ॥ परयप्रूपे चेतनप्राये अस्मिन्नशरिर भासमानेप्यहं चिदास्पदिश्वन्यात्रदर्शी । एवंच चिदात्मनः सर्वभृतेषु साम्यात्सर्वभृतस्थात्मा सन् भृतग्रन्दं स्वशरीरमिष्य परयामीत्यध्याहत्य योज्यम् ॥ ३० ॥ सर्वदा समाहितः सन् आशापाशविनुत्रायाश्चित्तवृत्तेः अन्तहिदं संस्था प्रवेशं न ददामि ॥ ३९ ॥ वाद्यदृष्टिषयये सुप्तः सन् जगतः असत्तां पर्यामीत्यन्त्रयः ॥३२॥ श्वयं शियलावयवम् । क्षणं कृशाह्मम् । श्वयं व्यापृतावयवम् । धुणं संवृ्णितावयवम् । सर्वमतीतानागतवर्तमानवस्तुनित्यनिर्विकारात्ममात्रस्वद्या नववत्पश्यामि ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भावाः कलानामिव वित्तादीनामुण्यया अन्तर्वा । ३३ ॥ ३४ ॥ भावाः कलानामिव वित्तादीनामुण्यया अन्तर्वा

नाहमस्मि नचान्यों में नाहमन्यस्य कस्पचित्। इति में भावितं चित्तं तेन जीवाम्यनामयः॥ ३६ अहं जगदहं न्योम देशकालकमावहम्। अहं कियेति में बुद्धिस्तेन जीवाम्यनामयः॥ ३७ घटश्चिचित्परक्षित्स्वं चिद्वनं शकटं च चित्। चित्सर्वमिति में भावस्तेन जीवाम्यनामयः॥ ३८ इत्यहं मुनिशार्दृत्व त्रिलोककमलालिकः। भुद्युण्डो नाम काकोत्वः कथितश्चिरजीवितः॥ ३९. ब्रह्मार्णवे विलुतितं त्रिजगत्तरङ्ग-मुत्पादनाद्यमिभवेन विभिन्नक्तपम्। आलीनमुन्नमितमाकुलदृश्यदृश्य-मालोकयन्त्रकलयंश्च चिरं स्थितोऽस्मि ४०

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भुद्धं॰ चिरजीवितहेतुकथनं नाम पर्द्धिशः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंदाः सर्गः २७

भुगुण्ड उवाच ।

पतने कथितं ब्रह्मन्यथास्मि यदिहास्मि च ।
त्वदाक्षामात्रसिद्धार्थं धार्थंन क्षानपारग ॥
विसेष्ठ उवाच ।
अहो चु चित्रं भगवन्भवता भूषणं श्रुतेः।
आत्मोदन्तः प्रकथितः परं विस्मयकारणम् ॥
धन्यास्ते ये महात्मानमत्यन्तचिरजीवनम् ।

आत्मोदन्तः प्रकथितः परं विस्मयकारणम् ॥ २ धन्यास्ते ये महात्मानमत्यन्तिचरजीवनम् । भवन्तं परिपरयन्ति द्वितीयमिव पण्मजम् ॥ ३ यावद्य दशो धन्याः स्वात्मोदन्तमखण्डितम् । यथावत्पावनं वुद्धेः सर्व कथितवानसि ॥ ४ प्रमान्तं दिश्च सर्वासु दृष्टा विवुधभूतयः । भवानिव जगत्यसम्ब महानवलोकितः ॥ ५ कथंचित्प्राप्यते कश्चिद्धान्त्वेह हि महाजनः । न भवानिव भव्यात्मा सुलभो जगति कचित् ॥ ६ वंशखण्डे हि कस्मिश्चिज्ञायते मौक्तिकं यथा । जगत्खण्डे हि कस्मिश्चिज्ञायते नौक्तिकं यथा । प्रमया तु सुमहत्कार्यमय संपादितं शुमम् ।

भावास्तरक्षयाध तेषु नैवाभिनिविष्टोऽस्मि ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ॥ ३० ॥ किं सर्वत्र जाड्यमनपोश्चैवाहंबुद्धिस्ते नेत्याह— धट इति ॥ ३८ ॥ उपसंहरति—इतीति । मेरुकणिकावासि- खात् इयामलाच त्रिलोककमलस्य अलिरेन अलिकः ॥ ३९ ॥ उत्पादनानि सर्गाः। आदिपदाहृद्धिविपरिणामापक्षयास्तल्लक्षणेना- भिमयेन परस्परप्रतिधातेन विभिन्नानि वैनिष्ट्यं प्राप्तानि रूपाणि यस्य तत् । एवंरीत्या पुनःपुनरुप्तमितमालीनं चाकुलं परिश्र- मत्साक्षिद्द्यबुद्धिमनइन्द्रियाणां द्रश्यं जगद्धुत्थानकाले आलोक्यम् समाधिकालं प्रकलयम् विलापयंथ निरं स्थितोऽस्मी- स्थां ॥ ४० ॥ इति श्रीवासिष्टमाहारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे पर्वृद्धाः सर्गः ॥ २६ ॥

अुशुण्डस्य प्रशंसात्र यियासोस्तेन पूजनम् । बसिष्ठस्य नभोगस्या स्वछोकासिश्च वर्ण्यते ॥ १ ॥ यथा येन प्रकारेण अस्मि चिरं जीवामि । परमार्थत इह कार्यकरणसंघाते यदस्मि तथ कथितमित्यर्थः । धार्ध्येन वैया-

पुण्यदेहविमुक्तात्मा यद्भवानवलोकितः॥ तदस्तु तव कल्याणं प्रविशात्मगुहां शुभात्। मध्याह्नसमयो यन्मे ब्रजामि सुरमन्दिरम् ॥ इत्याकर्ण्य भुशुण्डोऽसी जन्नाहोत्थाय पादपात् । संकल्पिताभ्यां इस्ताभ्यामुपात्तं हेमपञ्चवम् ॥ १० कल्पसृक्षलतापुष्पकेसरेण हिमत्विषा। तत्पात्रं मौक्तिकार्घ्येण पूरयामास पूर्णधीः॥ ११ तेनार्घ्यपाद्यपुष्पेण त्रिनेत्रमिव मामसौ। आपादमस्तकं भत्तया पूजयामास पूर्वजः॥ १२ अनुवज्याकदर्थेन खगेन्द्रालमिति ब्रुवन्। विष्टरादह्मुत्थाय ततः खगवदाष्ठुतः ॥ १३ क्योम्नि योजनमात्रं तु मद्गुबज्यया गतः। करं करेणावप्रभ्य वहात्संरोधितः खगः॥ १४ मिय याते क्षणेनैव गगनाध्वन्यदृश्यताम्। निवृत्तोऽसौ विहंगेन्द्रो दुस्त्यजा संगतिः सताम्१५ अन्योन्यमपि कस्मिश्चित्तरङ्गक इवाम्बुधौ । व्योमन्यदृश्यतां यातो खगस्मृत्या मुनीनहुम् ॥ १६

त्येन ॥ १ ॥ आत्मोदन्तः स्ववृत्तान्तः ॥ २ ॥ ३ ॥ ये भवन्तं प्रपश्यन्ति तेषां दशो धन्याः । यावद्येति स्वद्द्योश्विरस्थिति-सार्थक्याभिप्रायम् ॥ ४ ॥ चिनुषानां देवानां विदुषां च भूत्यो ज्ञानैश्वयंसपदो दष्टाः ॥ ५ ॥ श्रान्त्वा यक्षेन चिरमन्विष्यापम् सहांस्तात्त्वज्ञो जनः कथंचिरप्राप्यते । तत्रापि भवानिव न सुरुभः ॥ ६ ॥ वंशखण्डे वेणुवने । वेणूनामप्यष्टसु मुक्ताकन्तेषु परिगणनात् ॥ ७ ॥ ८ ॥ मध्याहपदेन माध्याहिकं कर्म रुक्ष्यते । सुरमन्दिरं सप्तिर्थिरोकं स्वयहम् ॥ ९ ॥ १० ॥ मीक्तिकरुक्षणेनाध्येण अधीर्थजरुन ॥ ११ ॥ त्रिनेत्रमिवेत्युपनानािष्ठत्यं विवपूजापरतािष तस्य गम्यते । पूर्वजिथरन्तनः ॥ १२ ॥ हे स्वगेन्द्र, अनुवज्यारुक्षणेन कद्येन श्रमेण अरुमिति सुवष्रहमासुत उद्दीनः ॥ १३ ॥ संरोधितो निवर्तितः ॥ १४ ॥ १५ ॥ आवामन्योन्यमध्यद्दश्यतां यातौ । ततः अहं स्वगस्य भुशुण्डस्य स्पृत्या अविच्छित्रस्यरणेनोपरुक्षितः सन्सार्शिमण्डलं प्राप्य मुनीन्दष्टवानिति होषः ॥ १६ ॥

सप्तिषंमण्डलं प्राप्य जायया परिप्जितः । याते कृतयुगस्यादौ पुरा वर्षशतद्वये ॥ १७ संगतोऽहं भुग्रुण्डेन मेरोः श्टक्षद्वमेऽभवम् । अद्य राम कृते श्लीणे त्रेता संप्रति वर्तते ॥ १८ मध्ये त्रेतायुगस्यास्य जातस्त्वं रिपुमर्दन । पुनरद्याष्ट्रमे वर्षे तत्रैवोपरि भूभृतः । मिलितोऽभूद्धगुण्डो मे तथैवाजररूपवान् ॥ १९

इति संकथितं चित्रं भुग्नुण्डोदन्तमुत्तमम् । श्रुत्वा विचायं चैवान्तर्यद्यकं तत्समाचर ॥ २० श्रीवाल्मीकिरवाच । इति समितभुग्नुण्डसत्कथां यो विमलमितः प्रविचारयिष्यतीह । भवभयबहुलाकुलास्थितां स प्रसममसत्सरितं तरिष्यतीति ॥ २१

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वात्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे मुशुं० समाप्तिनीम सप्तविशः सर्गः ॥ २० ॥

अष्टाविंदाः सर्गः २८

वसिष्ठ उवाच। एवं भुशुण्डवृत्तान्तः कथितस्ते मयानघ । अनया प्रश्या तीर्णो भुशुण्डो मोहसंकटात्॥ 3 पतां द्वष्टिमचद्यस्य स्वप्राणाभ्यासपूर्विकाम्। भुद्युण्डवन्महाबाहो भव तीर्णमहार्णवः॥ ર यथा ज्ञानेन योगेन संतताभ्यासजन्मना। भुशुण्डः प्राप्तवान्त्राप्यं तथासादय तत्पदम् ॥ 3 असक्तबुद्धयः सर्वे भुशुण्डवद्वस्थितिम् । प्राप्नुधन्ति परे तत्त्वे प्राणापानावळोकिनः ॥ 8 पता विचित्रा भवता श्रुता विज्ञानरप्यः। इदानीं भियमालम्ब्य यथेन्छसि तथा कुरु ॥ 4 श्रीराम उवाच । भगवन्भवता भूमिभास्वता श्रानरिंमभिः। हार्दमुद्दामदौरात्म्यं प्रमृष्टमिखलं तमः॥ प्रबुद्धाः साः प्रहृष्टाः साः प्रविष्टाः साः स्वमास्पदम्।

जायया अरुन्धत्या । उक्ताया भुशुण्डसंगतेः कालमाह—याते इति ॥ १० ॥ १८ ॥ भूशतः मेरोः ॥ १९ ॥ उपसंहरति— इतीति ॥ २० ॥ इतीति । इति इमां सुमतेर्भुशुण्डस्य सत्कथां यः प्रविचारियष्यति स इहास्मिन्नेव शरीरे भवा जन्माइयस्त-द्भूयेर्बहुला अतएवाकुला ये जीवास्तैरास्थितां इति इमां प्रसि-द्धामसरसरितं मायानदीं तरिष्यति । प्रसममिति पौरुषप्राधान्य- योतनार्थम् ॥ २१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्थ- प्रकाहो निर्वाणप्रकरणे ससर्विश्वतितसः सर्गः ॥ २७ ॥

स्थिताः स्पो ज्ञातविज्ञेया भवन्तो द्यपरा इव ॥

आक्यायिकाभिसंबन्धो देहानियतिवर्णनम् । आपातश्चान्तिमात्रस्यं देहादेश्चात्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

वर्णिताया भुशुण्डाख्यायिकायाः प्रकृतोपदेशसंबन्धं दर्श-यति—एवमित्यादिना ॥ १ ॥ प्राणाभ्यासोऽत्र प्राणस्य निरोध उपास्तिवा तत्पूर्विकाम् । महार्णव इति विपुठः संसारो निर्गार्था-ध्यवसितः ॥ २ ॥ ३ ॥ प्राणापानावलोकिन उक्तोपास्तिशीलाः ॥ ४ ॥ यथेच्छसि योगपूर्विकामुपास्तिपूर्विकां वा स्वात्मप्रतिष्ठां तथा कुरु ॥५ ॥ स्तां योगोपास्ती सदुपदेशश्रवणादेव सस्य तत्त्व- अहो भुगुण्डचरितं परं विस्मयकारकम् ।
भगवन्भवता प्रोक्तमुक्तमार्थावयोधनम् ॥ ८
भुगुण्डचरिते ब्रह्मम्नेतस्मिन्कथिते त्वया ।
यच्छरीरगृहं प्रोक्तं मांसचर्मास्थिनिर्मितम् ॥ ९
तत्केन नाम रचितं कुतो वा तत्समुत्थितम् ।
कथं वा स्थितिमायातं को वा तत्रायतिष्ठते ॥ १०

वसिष्ठ उवाच।

| परमार्थावबोधाय दोषापाकरणाय च। | |
|---|----|
| श्टणु राघव तत्त्वेन वक्ष्यमाणमिदं मया ॥ | ११ |
| अस्थिस्थूणं नवद्वारं रक्तमांसावलेपनम्। | |
| शरीरसद्नें राम न केनचिदिदं कृतम्॥ | १२ |
| आभासमात्रमेवेदमित्थमेवावभासते । | |
| द्विचन्द्रविभ्रमाकारं सदसद्य व्यवस्थितम्॥ | १३ |
| ब्रिचन्द्रदर्शनविधी चन्द्रद्वित्वं सदैव हि। | |
| वस्तुतश्चेक एवेन्दुः स्थितो देहस्तथेव हि॥ | १४ |

बोधः सिद्ध इति सूचयन् रामः कथाप्रसञ्जितदेहगेहस्वरूपमेव जिज्ञासमानः पृच्छति-भगवत्रिलादिना । भूमिभाखता भूमा-ववतीर्णेन सूर्येण । उद्दामानि दीरात्म्यानि अनात्मखात्मखद्शे-नानि तत्त्रयुक्तदुश्रेष्टितानि च यस्मात्तथाविधं हार्दे तमः ॥ ६॥ अपरा द्वितीया भवन्त इव ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ कर्तुर्निमित्तस्य स्थितिप्रकारस्य तदन्तःस्थस्य स्वामिनश्च प्रश्नाः ॥ १० ॥११ ॥ तत्राद्यस्थोत्तरमाह-अर्धाति ॥ १२ ॥ नन्वीश्वरोऽस्य देहस्य निर्माता श्रुतिपुराणाख्यायिकात्रसिद्धः, जीवस्तु खकर्मीपभी-गायास्य निर्मापकस्तौ कथमपछप्येते तत्राह—आभासमात्र-मिति । इत्थमेव । विनैव निर्मातारमिलार्थः । नहि जले चन्द्रा-भासो निर्मातारमपेक्षते नापि तैमिरिककल्पितद्वितीयचन्द्रवि-भ्रमस्तद्वदिखर्थः । ईश्वरस्य निर्मातृत्वं तु श्रीतं न सुख्यम् । पुरुषनिःश्वसितदृष्टान्तदर्शनात् । जीवस्य निर्मापयितृत्वमपि तथा । अबुद्धिपूर्वेलादनिष्टनिर्मापणायोगाचिति भावः ॥ १३ ॥ देहस्य मिथ्यात्वं तु प्रतीतिकालमात्रस्थितिकलाचन्द्रद्विलवदेव सिद्धमित्याह्—द्विचन्द्रेति । चन्द्रद्वित्वं द्विचन्द्रदर्शनस्य विधी

देहप्रखयकाले हि देहोऽयं समवस्थितः। असम्रेष च सत्तसात्रोकः सदसदात्मकः॥ 914 स्वप्ने स्वप्नाववोधः संस्त्वन्यदा स मुधेव हि । बुद्धदो बुद्धदविधौ सत्यो मिध्यैव चान्यदा ॥ १६ देहो देहविधौ सत्यो हासत्य इतरद्विधी। प्रतिभासविधौ तावज्जलं सदसद्न्यदा॥ १७ प्रतिभासविधी देहः सम्रसंश्चान्यदा स्मृतः। आभासमात्रमेवेदमित्थं संप्रति भासते ॥ 28 अयं नामाहमित्यन्तर्गृहीतमननं स्थितम्। मांसास्थिमयनिर्माणदेहोऽहमिति विभ्रमम्। स्यज संकल्पनिर्माणदेहाः सन्ति सहस्रदाः ॥ १९ सुखतस्पगतो येन स्वप्रदेहेन दिक्तटान्। परिम्रमसि है राम स देहस्ते क संस्थितः॥ २० जागरायां मनोराज्ये येन स्वर्गपुरान्तरम्। परिम्रमिस मेर्घ वा स देहस्ते क संस्थितः॥ २१ स्वप्नेष्वपि च यः स्वप्नस्तत्र येन महीतटान्। परिभ्रमित हे राम स देहस्ते क संस्थितः॥ २२ मनोराज्यं मनोराज्ये महद्विभवभूमिय । परिम्रमिस येनेह स देहस्त क संस्थितः॥ ર્ર્ गतैर्देहैर्मनोराज्ये या विचित्रा जगत्कियाः। प्रकरोषि महाबाहो ते देहास्ते क संस्थिताः॥ २४ विलासिन्यानुरागिण्या येन संकल्पकान्तया। निर्पृति यासि देहेन स देहस्ते क संस्थितः॥ २५ पते राम यथा देहा मनसः सद्सन्मयाः। तथैव तादद्याचारो देहोऽयं मनसः स्मृतः॥ २६

सत्येव भवति नान्यदा । वेहोऽपि हि यस्मात्तर्थव । वस्तुतस्तु सर्देव होक एवेन्दुरित्यन्वयः ॥ १४ ॥ उक्तमेव स्पष्टमाह--देहेति । परमार्थसद्धिष्ठानकतया उपचारात्सत् ॥ १५ ॥ असतः सर्वभ्रान्तिः क दृष्टा तन्नाह—स्वप्न इति । सुधा मिथ्यैव । बुद्भविधी बुद्धदप्रतीतिसम्बे ॥ १६ ॥ इतरद्विधी बुद्धात्मदर्श-नसत्वे । जलं मृगतृष्णिकोदकम् ॥ १७ ॥ प्रतिभासविधाविति प्रसाधितार्धनिगमनलाम पानरुत्त्यम् ॥ १८ ॥ आभासमात्र-तासुपपादयंस्तदभिमानं त्याजयति-अयमिति । प्राग्यहीतदे-हाकारं मननमेव संस्कारदार्ब्यात्पुनःपुनर्देहाकारेण स्थितम् खजेति पृश्वान्वयि ॥ १९ ॥ संकल्पनिर्माणदेहानेवोदाहृत्य **तेषामस**स्यतां दर्शयति—सुखतल्पगत इत्यादिना ॥ २० ॥ जागरायां जागरे । छान्दसं स्त्रीलम् ॥ २१ ॥ २२ ॥ मनो-राज्यान्तःकल्पिते मनोराज्यान्तरे महतीषु विभवभूमिषु । 'आ-न्महतः समानाधिकरणजातीययोः' इत्यात्वे कर्तव्ये तदभाव-रकान्दसः । महतामिन्द्रचन्द्रादीनां वा विभवभूमिषु ॥ २३ ॥ गतैः कल्पनाविलयमनु यिलीनैः ॥ २४ ॥ निर्दृति संभोगसुसं यासीति योग्यतया वर्तमानकालोक्तिः । एवं भविष्यत्स्वप्रमनो-राज्यदेहा अप्युदाहार्याः ॥ २५ ॥ तेषु मिथ्यालसांकल्पि- इदं धनमयं देहो देशोऽयमिति विश्वमः। तत्सर्वे चित्तवीर्यस्य संकल्पस्य बिजृम्भितम् ॥ २७ दीर्घस्वप्रमिमं विद्धि दीर्घे वा चित्तविभ्रमम्। दीर्घ वापि मनोराज्यं संसारं रघुनन्दन ॥ 24 प्रवोधमेष्यसि यदा परमात्मेच्छया स्वया। द्रध्यसि त्वं तदा सम्यगिदमकौदये यथा॥ ર૬ स्वप्नसंकल्पजालेन यथान्यैव जगितस्यतिः । तथैवेयं हि संकल्पकलना काचिदेव हि ॥ ३० यथा पूर्व मयोत्पत्तिः प्रोक्ता कमलजन्मनः। मनसः स्त्रयमेवान्तःसंकल्पकलनोद्भवा ॥ ३१ विचित्ररचनोपेतं मनस्तत्रात्तविभ्रमम्। संकल्पकलनामात्रं तथेद्मचभासनम्॥ ३२ यथा कव्पित आभासो मनसोऽह्वजतां गतः। देहाब्रिचिन्तितो देहः स्थितोऽन्यस्तद्वदेव हि ॥ ३३ प्राक्त्रवाहचिराभ्यस्तो वासनातिशयेन यः। तथैव दृश्यते देहस्तथाऽऽहृत्युद्येन सः॥ રુક पौरुपेण प्रयक्षेन संकल्पो ह्ययमेव चित्। अन्यथा भाव्यते राम भूयते तदिहान्यथा ॥ 34 अयं सोऽयं ममायं च संसार इति भाविते। सत्यो यो भाव्यते राम भावनादा**र्व्यसंभवः ॥** ३६ भावितं तीववेगेन यदेवाद्यु तदेव हि। सर्वत्र रहयते राम कान्तेवात्यन्तवहुभा॥ ३७ अहर्व्यावृत्तिरभ्यस्ता यथा स्वप्नेषु दश्यते। तथायं भावनाभ्यस्तः संसारोऽप्यवलोक्यते ॥ ३८ यथा स्वप्नावनौ क्षिप्रमहर्यदवभासते ।

कलादेनिश्चितलात्प्रस्तुतदेहेऽपि तथात्वं साधगति-एते इति ॥ २६ ॥ अहन्ताध्यासविषये देहे दर्शितो न्यायो ममताध्यास-गोचरे धनादाविष सम इलाशयेनाह—इदं धनमिति ॥ २० ॥ या तु देहादी खाप्नादिवैधर्म्यबुद्धिः सा चिरानुवृत्तिमात्रान्नतु सत्यलासांकित्पकलादिप्रयुक्तेत्याशयेनाह—दीर्घेति ॥ २८ ॥ अतएवास्य तत्त्वज्ञानेन बाध्यत्वमुपपन्नमित्याशयेनाह-प्रबोध-मिति । सम्यक् आत्ममात्रपरिशेषेण द्रध्यसि । यथा अकोंदये प्रबुद्धः खाप्रार्थान्पस्यति तद्वत् ॥ २९ ॥ काचिदनिर्वचनीया मिथ्यैवेत्यर्थः ॥ ३० ॥ उक्तेऽर्थे च प्रागुत्पतिप्रकरणे विस्त-रोक्तं स्मारयति--यथेति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ऐन्दबोपाह्यानो-क्तमपि स्पर्तव्यमित्याह-यथा कल्पित इति । पूर्वदेहादुरका-न्तिकाले विन्विन्तितो यो देहः ॥ ३३ ॥ तथाऽऽकृत्युद्येन ताद-शसंस्थानसंपरया ॥ ३४ ॥ पौरुषेण प्रयक्षेन मनः प्रत्यक्रासी-कृत्य खात्मदर्शने अयं देहजगदाकारः संकल्पश्चिदेवेत्यन्ययः। भाव्यते यदीति शेषः । तत्तर्हि अन्यथा भूयते इति भाविते तथेवानुभूयत इति शेषः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तदेव हि दृश्यते इति परेणान्ययः ॥ ३० ॥ अकि व्यावृत्ति-र्व्यापृतिर्थथाभ्यस्ता ॥ ३८ ॥ क्षित्रं शीघ्रप्रध्वंसी क्षणादिः अह-

तथेदमरपकालस्थमपि संलक्ष्यते स्थिरम् ॥ 39 व्योमन्येव यथा तापतमे संदृश्यते सरित । धराप्यविद्यमानापि संकल्पाइइयते तथा ॥ So दृश्यते दृष्टिवैरूप्याद्यथा व्योमनि पिच्छिका। तथैवेयं जगहुध्मीर्द्शानादयभासते॥ धर दृश्यते समया दृष्ट्या न यथा व्योम्नि पिच्छिका । सम्यग्द्रप्रया जगहृक्ष्मीस्तथेयं नावभासते॥ धर भीहरम्येति न यथा स्वसंकल्पेषु संभ्रमम्। स्वसंकर्षे हि संसारे न तथैति भयं सुधीः॥ ४३ स्व एव हि स्त्रभावोऽयमित्थं संप्रति भासते। संसारसरणिस्थित्यां कस्मात्को ऽत्र विमेति किम ४४ **स एव** किंचित्संशोध्यः शक्या विमलतां गते । तस्मिन्न दृश्यते राम मोहोऽयं जगतः स्थितः॥४५ सम्यगालोकमात्रेण स्वभावः ग्रुद्धिमृच्छति । न गृहाति मलं भूयस्ताघ्रतामिव काञ्चनम्॥ ઝદ आभासमात्रमेथेदं न सन्नासज्जगत्रयम् । इत्यन्यकलनात्यागः सम्यगालोकनं विदुः॥ SO मरणं जीवितं स्वर्गो ज्ञानमञ्जानमेव च । चिदाभासाहते नास्तीत्येकता सम्यगीक्षणम् ॥ ४८ त्वमहन्तादिसंसार इति मे न दिशो दश। सर्वे स्वाभासमेवेति सम्यगालोकनं विदः॥ કઠ सदसन्मयसंसारे यथा भूतार्थदर्शनात्।

ब्रिशद्धटिकादीर्थोऽवभासते । स्थिरं शाश्वतम् ॥ ३९ ॥ व्यो-मनि महमुम्याकाशे । सरिन्गृगतृष्णानदी । धरा मृः । अपिशब्दादन्तरिक्षं त्रिलोकी च ॥४०॥ पिव्छिका बर्ह्मुिंः । दुर्ज्ञानाद्भात् ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ भीष्ठरिप खसंकल्पेषु खमनोरा-ज्यकल्पितहस्तिव्याघ्रादिषु । संभ्रमं भयम् ॥ ४३ ॥ स्वभावः आत्मा । संप्रति वहिमुखद्शायाम् । यद्विमेति तदपि भयं किम्। न किंचित्स्वात्मव्यतिरिक्तमस्तीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ यो निमेति स एव किचित्संशोध्यो विवेचनीयः। अयं भयादिलक्षणो मोद्दः अद्वये शुद्धात्मनि न दश्यते । तथाच श्रुतिः--'यन्मद-न्यमास्ति कस्मानु विभेगीति । तत एवास्य भयं वीयाय । कस्मा-प्यमेष्यत् । द्वितीयाद्वै भयं भवति' इति ॥ ४५ ॥ केन तर्धुपाये-नात्मा शुज्यति तमाह—सम्यगिति । स्त्रभाव आत्मा । पुनरशुद्धिप्राप्तिशङ्कां वारयति-नेति । स्वभावतः काञ्चनं भ्रान्त्या ताम्रतया गृहीतं तापादिना खरूपाभिव्यक्ती पुनन्ताम्र-लमिवेलर्थः ॥ ४६ ॥ कुतोऽस्य दर्शनमात्राच्छि दिरिति चेहुस्य-मरुखाभासमात्रवादिव्याह—आभासमात्रमेवेति । इति अस्मा-द्वेतोः सम्भगालोकनमेवान्यकलनायास्त्यागो निवृत्तिरिति विदु-रिति पूर्वेणान्वयः ॥ ४७ ॥ सम्यगीक्षणं तर्हि कीदृशं तदाह-मरणमित्यादिना । चिदाभासाचित्रकाशाहत विना प्रथङ् नास्तीत्येकता चिन्मात्रपरिशेषः । फलतः राम्यगीक्षणमित्यर्थः

नास्तमेति न चोदेति सम्यगालोकनात्मनः॥ निर्णीय सर्वभावानामसत्त्वं सत्त्वमेव च। निष्कामं शान्तिमभ्येति सम्यगालोकनान्मनः ॥५१ न निन्दति नच स्ताैति न हृप्यति न शोचति। शीतलां सत्यतामेति सम्यगालोकनात्मनः॥ ५२ अवश्यमेव मर्तव्यं सर्वेरेव हि बन्धुमिः। इति बन्धुवियोगेषु किं वृथा परितप्यसे ॥ ५३ अवस्यमेव च मया मर्तव्यमिति निश्चयः। इत्यात्ममरणप्राप्ती किं मुधा परितप्यसे॥ પ્રષ્ટ अवश्यमेव जातेन किंचित्सुविभवादिकम्। प्राप्तब्यं पुरुषेणेति हर्षस्यावसरो हि कः॥ 414 सर्वस्येव हि संसारे नरस्य व्यवहारिणः। अर्थायाता भवत्यापच्छोकस्यावसरो हि कः॥ ५६ वृंहत्युदेति स्फुरति बुद्धदौध दवार्णवे। इदं हि जगतां जालं किमत्र परिदेचना ॥ ५७ सत्सदेव सदैवेतद्सदेवासदेव हि। क्रियावैचित्र्यमात्रे तु किमन्यत्परिदेव्यते ॥ مرح नाहमस्मि न चाभूवं भविष्यामि न सोऽधुना। देहोऽयं चित्रदोपोत्थः किमन्यत्परिदेव्यते ॥ ५९ देहाचेदन्य एवाहं चिदाभासस्तदङ्ग हे। को तो मे सदसद्भावी यन्निष्ठं परितप्यते ॥ 69 इति निश्चयवत्स्वान्तं सम्यग्ज्ञानात्मनो मुनेः।

॥ ४८ ॥ लन्ता खातिरिक्तचेतनता । अहन्ता खदेहमात्रपरि-च्छिन्नचेतनता । आदिपदात्त्वन्ताहन्ताभिमानविषय आध्या-रिमकः कार्थकारणकलापः संसारयत्यात्मानं लोकान्तरेषु विष-येषु च श्रमयतीति संसारो विषयकठापस्तदाधारा दशदिश-क्षेति सर्वे दृश्यजातं मे मत्संबन्धिनः पृथक् न सन्ति कित स्वाभासं स्वप्रकाशात्मस्वरूपमेवास्तीत्यन्वयः ॥ ४९ ॥ सम्य-गालोकनफलमाइ--सदसन्मयेति । सद्रग्न असती माया तदु-भयोपादानके ॥ ५० ॥ असत्त्वं वाधम् । सत्त्वमधिष्ठानसन्मात्र-परिशेषम् । निष्कामं आप्तकामलादकामम् ॥ ५९ ॥ शीत्रजा-मुपशान्ततापत्रयाम् ॥ ५२ ॥ स्वस्य मुक्तावपि वन्धुजनानां वन्धानिवृत्तेसदीयमरणादिदर्शनजस्तापो दुर्शरस्तत्राह्-अव-रयमेवेत्यादिना ॥ ५३ ॥ अञ्चतादशायां स्वमरणाराष्ट्रातापोऽप्य-नेनोपायैन परिहर्तुं शक्य इत्याशयनाह--अवश्यमेचेति ॥ ५४॥ ॥ ५५ ॥ आपत् दारिब्रदुर्दशाद्या । अर्थादेव आयाता भव-रवेव ॥ ५६ ॥ वृंहति वर्धते ॥ ५७ ॥ असदिप सदैव असदेव न कदाचित्सलमापत्रमिति मायाधिकियावैचित्र्यमात्रात्मके प्रपक्षे किमन्यद्स्ति यत्परिदेव्यते इत्यर्थः ॥ ५८ ॥ अहं अहंका-रात्मा नास्मि ॥ ५९ ॥ चित्रात्कामकर्मवासनाविद्यादोषादुत्थः चिदाभासश्चित्प्रकाशः । अङ्गेति कोमलामन्त्रणे ॥ ६० ॥ ये निष्ठे उदर्कफले निमित्तभूते यस्मिन्परितापे इति कियाविशेष-

नास्तमेति न चोदेति न चान्तं परितप्यते ॥ 88 परतामेव नाशान्तामनुत्तमपदे स्थितः। आदने तिनिरी मुद्दीं तृणकोटिमिवामलाम् ॥ ६२ पतदर्शमसत्येऽसिमास्था कार्या मनागपि । सुरक्रवेव बलीवर्दी बध्यते जन्तुरास्थया ॥ ६३ अतस्ख्या रहमिदमिति निर्णाय बुद्धितः। आस्थारहितया बुद्धा विहर्तव्यमिहानघ॥ ६४ कर्तव्यमेष कर्तव्यमकर्तव्यम्पेश्यते। आस्थानास्थे परित्यज्य लीलयैव महाधिया ॥ ६५ आभासमात्रमेवेदं यस च प्रतिभासते। सोऽन्तः शीतलतामेति दिनान्ते भुवनं यथा ॥ ६६ प्रतिभासं परित्यज्य पदार्थपटलवजे। आभासमात्रसामान्यमिदमालोकयानघ॥ 23 आभासमात्रकं राम चित्तामर्शकलक्कितम्। ततस्तदपि संत्यज्य निराभासो भवोत्तम ॥ ६८ चिदाकाशमयो नित्यं सर्वगः सर्ववर्जितः। आभासस्य परित्यागे भवस्येकान्तनिर्मलः॥ ६९ नाहमस्यि न मे भोगाः सत्या इत्यमिभाविते। नेदमाडम्बरं व्यर्थमनर्थायावभासते॥ 90 अहमेब हि वा सर्वं चिदित्येवं विभाविते। नेदमाडम्बरं व्यर्थमनर्थायावभासते॥ ७१ दर्शनद्वयमप्येतत्सत्यमत्यन्तसिद्धिदम्। यदेकमेतयोर्वेत्सि रम्यं तद्वाम संध्रय ॥ ७२ द्याभ्यामेषाथ वै ताभ्यां दर्शनाभ्यामिहानघ।

णम् ॥ ६१ ॥ अनुत्तमपदे स्थितो ब्रह्मवित् सर्वभावेषु ना-शान्तां बाधपरिशिष्टां परतां ब्रह्मतामेव आदत्ते स्वीकरोति न प्रतीतिकालिकी खरताम् । यथा तिसिरी नीडनिर्माणाय त-णानां मूलतः खरभागान्यरित्यज्य मृद्वी तृणकोटिमेवादते तद्व-दिलार्थः ॥ ६२ ॥ एतदर्थं संसारस्य खरभागपरिहारार्थम् ॥ ६३ ॥ इदमप्रभूतं ब्रह्म इति उक्तयुक्तया निर्णीय 🐧 ६४ ॥ तर्हि किमास्थां परिलज्य यथेष्टाचरणं कर्तव्यं, नेलाह-कर्तव्य-मेवेति । विहितगेबेखर्थः । छीछया अध्रमेण ॥ ६५ ॥ दिनान्ते सीरतापोपरमे ॥ ६६ ॥ सर्वानुगतसन्मात्रदर्शने उपायमाह— प्रतिभासमिति । विशेषाकारमित्यर्थः । पदार्थानां पत्रभूतानां पटलं समृहस्तदात्मके घटपटादिविषयवजे ॥ ६७ ॥ वित्तस्य आमर्शेन विशेषकल्पनेन कलङ्कितमभूदिति शेषः । तत्सन्मात्र-हपमाभासमपि संखज्य स्वात्मव्यतिरेकबुद्धा स्ववला निराभा-सिक्रपुटीशस्यः ॥ ६८ ॥ सर्वगः पूर्णः ॥ ६९ ॥ निराभासता-सिन्ध्यायभूतं चिन्तनद्वयमाह-नाहमित्यादिना । अभितो भा-विते चिन्तिते सति ॥ ७० ॥ चिति सर्ववाधचिन्तनं सर्वस्य चिदातमभावचिन्तनं वेति द्वे चिन्तने ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ऐ-च्छिकसमुचयेऽप्यनयोर्न विरोधः । फलत ऐकरूप्यादिखाश-

विहरन्कुरु कस्याण रागद्वेषपरिक्षयम् ॥ 45 यर्तिकविद्वदितं लोके यद्मभस्यथ वा दिवि। तत्सर्वे प्राप्यते राम रागद्वेषपरिक्षयात् ॥ 08 रागादिहतया बुद्धा याहप्राम विचेष्टितम्। तत्तदेव प्रयात्याशु मुढानां विपरीतताम्॥ ७५ द्वेषदोषोर्मिरदासु न गुणाश्चित्तवृत्तित् । पदं कुर्वन्ति दग्धास स्थलीय हरिणा इस ॥ 30 रागो द्वेषध्व सर्पी द्वौ न विलीनौ मनोबिले। यस्य कल्पतरोस्तस्मात्कि नामाङ्ग न सभ्यते ॥ ७७ ये हि प्राचीः स्वनियता विवन्धाः शास्त्रशालिनः। रागद्वेषमयास्ते वै जम्बुकास्ते घिगस्तु तान्॥ ७८ मञ्जनं भुक्तमन्येन धनं त्यकं मयाऽन्यतः। इति संव्यवहारेहाः के रागद्वेषयोः क्रमाः॥ ७९ धनानि बन्धवो मित्रं पुनरायान्ति यान्ति च। किमेतेषु नरः प्राज्ञो रज्यते वा विरज्यते॥ 60 भावाभावभवाभोगा मायेयं पारमेश्वरी। संसाररचना सर्वा संसक्तं पातयत्वलम् ॥ ८१ न धनं न जनो नात्मा सत्यं राघव वस्तुतः। मिथ्यैव मिथ्यावसितमितीदं परिलक्ष्यते ॥ ८२ आचन्तयोः सर्वमसन्मध्येऽप्यस्थिरमाधिमत्। क बभाति राति प्राक्ती ह्यन्यकव्पितखन्मे ॥ ૮રૂ पकेन कव्पिता खे स्त्री भुद्धे तां दूरगोऽपरः। इतीयमङ्ग संसाररचना तेन मा भ्रम ॥ **८**८ भूताजवं जवीभावमिममाततमाकुलम्।

येनाह—द्वाभ्यामिति । रागादिदोषक्षयवत्येव चिन्तनद्वयं सफलं नान्यस्मित्रिखाहु--कुर्विखादिना ॥ ७३ ॥ रागादिक्षय-मेव प्रधानफरै: स्तौति-यिकि चिदिति ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ पर्द स्थितिम् ॥ ७६ ॥ किनाम दुःखफलमिति शेषः ॥ ७७ ॥ शास्त्रशालिनोऽपिति भृत्वे शेषः । ते जनाः । ते अरण्ये प्रसिद्धा जम्बुकाः । एवार्थे वैशब्दः ॥ ७८ ॥ रागद्वेषकमं समूलमाह-मद्भनमिति । अन्यतः अन्यसादब-स्ययातां धनं प्रमादात्त्यक्तम् । इति इत्थं छञ्धनष्टधनादिवि-पये अभिनिवेशात्तद्रहणार्थं वधवन्धनादिसंव्यवहारेहालक्षणा रागद्वेषयोः कमाः के. तच्छा इत्यर्थः ॥ ७९ ॥ कृतस्तच्छासा-त्राह—धनानीत्यादिना ॥ ८० ॥ प्रियविषयभावेन अप्रियाभा-वेन च भवस्याभोगो यस्याम्। संसक्तं लम्पटम् ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इति वस्यमाणयुक्तया मिभ्येद्धवसितं मिभ्येव परिलक्ष्यते । तां युक्तिमाइ--अ।यन्तयोरिति । आयन्तयोः पूर्वोत्तरकाखयोः । अस्थिरमुत्तरोत्तरभावविकारत्रस्तम् । त्रच्छे संसारे इति बन्धयोग्यत्वे द्रष्टान्तमाह-अन्येखादिना ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

१ प्राज्ञा विनियताः इति पाठः.

Ø

ረ

۹,

गन्धवेपुरनिर्माणविलासेन समं विदुः॥ स्वप्रसंकल्पपुरवदसदेवेदमुत्थितम्। सर्वत्र संस्थमेवेदं सुपुतमिव विच्युतम्॥ परिपद्म्यसि संसारदीर्घस्वप्नपुरद्वमम्। अज्ञाननिद्रालुटनस्वभावात्मकमच्युतम्। संसारस्वप्रसंम्रान्तो भवानयभिह स्थितः॥ तदेनां विततां निद्रां घनाज्ञानमयात्मिकाम्। स्यजालक्सीमिवावाप्तनिधानः पुरुषोत्तमः॥ 26 प्रबोधमेहि पद्मयस्व मात्मानमुदितं सदा। निर्धिकरूपं चिदाभासं प्रातः पद्मं र्राव यथा ॥ ८९. प्रबुध्यस्य प्रबुध्यस्य पुनःपुनरयं मया ।

प्रवोध्यसे महाबाही पश्यात्मार्कमनामयम् ॥ मयतेनाभिवृष्टेन शीतेन शानवारिणा। सुराब्दशालिना राम ग्रानेनैवासि बोधितः॥ बोधमासादय परं प्रवोधोऽधैव राघव । सत्यमालोकयालीकं त्यक्त्वेमं जागतं भ्रमम्॥ ९२ न ते जन्म न ते दुःखं न दोषास्ते न ते भ्रमाः। सर्वे संकल्पमृतसूज्य तिष्ठातमनि सुसंस्थितः ॥९३ परिगलितविकल्पदोषजाल-

स्त्वमित सुसारसुषुप्तसौम्यदृष्टिः। अतिविततमिदं सुश्रद्धये त्वं समुपरामात्मनि तिष्ठ हे महात्मन्॥

इत्सार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नामाष्टाविदाः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंदाः सर्गः २९

श्रीवाल्मीकिरुवाच । इत्याकर्णयति स्वस्थसमचेतसि राघवे। विश्रान्ते स्वात्मनि स्वैरं परमानन्दमागते ॥ तत्रस्थेषु च सर्वेषु तेषूपरामशालिषु । राघवस्यात्मविश्रान्तेः स्थित्यर्थं वचनामृतम् ॥ २ विरराम मुनेर्वारि सस्येष्वम्बुधरादिव। अथ याते मुद्दर्तार्थे राघवे प्रतिबोधिते॥ 3 पुनराह तमेवार्थं घतिष्ठो वदतां वरः। वसिष्ठ उवाच।

राम सम्यक्प्रबुद्धोऽसि स्वात्मानमसि लब्धवान् ४ पवमेवावलम्ब्यार्थ तिष्ठ नेह पदं कृथाः। इदं संसारचक्रं हि नाभी संकल्पमात्रके॥ संरोधितायां बहनाद्रधनन्दन रुग्रते।

बिदुः प्राज्ञाः ॥ ८५ ॥ कल्पनायाः सर्वत्र संभवाद्धिष्ठानचि-त्सङ्गावाच सर्वत्र संस्थम् । विच्युतं साप्रादिभावापत्रं सुपुप्त-मिव ॥ ८६ ॥ अच्युतमजस्रानुस्यूतम् । पूर्वान्ययि । भवान् शुभवांस्तवं एनां निद्रां त्यजेत्युत्तरान्वयि ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ चिदामासं चित्रकाशम् ॥ ८९ ॥ ९० ॥ मया मेथस्थानी-येन । सुशब्दपदं श्रेपाद्गर्जनमप्याह ॥ ९१ ॥ अधैव प्रकृष्टो बोधो यस्य तथाविधः सन् सत्यं खतत्त्वमालोकय ॥ ९२ ॥ ॥ ९३ ॥ उपसंहरति—परिगलितेति । सुसारं सुप्रप्तमिव सीम्या निर्विक्षेपा दृष्टिर्यस्य तथाविधस्तवं इदं नित्यापरोक्षमति-विततं महीवासि, अतः सुशुद्धये समुपशमात्मनि तस्मिन्नेव समाहितितिष्ठेलर्थः ॥ ९४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तारपर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे अष्टाविद्याः सर्गः ॥ २८ ॥

रामस्य बोधाद्विश्रान्तिः पुनरुक्तार्थविसारः । कैकासे प्राक् शिवेनेत्थं स्वोपदेशश्र कीर्त्यते ॥ १ ॥ इत्यं सातुप्रहं श्रीवसिष्ठेनोपदेशचमत्कारैः प्रतिबोधितस्य

क्षोमितायां मनोनाभ्यामिदं संसारचककम्॥ प्रयत्नाद्रोधितमपि प्रवहत्येव वेगतः। परं पौरुषमास्थाय बलं प्रज्ञां च युक्तितः॥ नार्नि संसारचक्रस्य चित्तमेव निरोधयेत्। प्रशासीजन्ययुक्तेन शास्त्रसंविहतेन च ॥ पौरुषेण न यत्प्राप्तं न तत्कचन लभ्यते । दैवैकपरतां त्यक्त्वा बालबोधोपकल्पिताम्॥ निजं प्रयत्नमाथित्य चित्तमादौ निरोधयेत्। आविरिश्चात्प्रवृत्तेन भ्रमेणाशानरूपिणा ॥ १० असरेव सदाभासमिद्मालक्ष्यतेऽनघ। अन्नानभ्रमविस्तारमात्रकाकृतयोऽनघ ॥ ११ इमे देहा भ्रमन्तीह सर्वधर्मात्समुत्थिताः। संकल्पः पुनरस्त्रेय देहस्यार्थे कदाचन॥ १२

श्रीरामस्य अन्येषां च श्रोतृणां तत्त्वसाक्षात्कारोदयेन मुहूर्तार्थ स्त्ररूपविश्रान्तिसमाधिना निष्कम्परिधति श्रीवाल्मीकिश्वाच--इलाकणंयतीत्वादिसार्धेन ॥ १ ॥ तत्रस्थेषु स्वात्मनि विश्रान्ते-विति विभक्तिविपरिणामेन योज्यम् । मुनेर्वचनामृतं विररा-मेति परेणान्वयः ॥ २ ॥ यथा वृधितर्षितेषु सस्येषु अम्बुध-राद्वारि विरमति तद्वद्वोधिते समाधेर्न्युत्थापिते अर्थोद्वसिष्ठेनैविति गम्यते ॥ ३ ॥ पुनस्तमेवार्थं दृढीकारायाहेलार्थः ॥ ४ ॥ अर्थं परमार्थमातम्बम् । इह संसारे पदं स्थिति मा ऋषाः । तत्रोपायमाह—६दमिति ॥ ५ ॥ शोमितायां रागद्वेषादिना बि-क्षेपं प्रापितायाम् ॥६॥ पौरुषं अभ्यासवैराग्यदार्ध्वलक्षणम् ॥७॥ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ आकृतयः दृश्यजगदाकाराः ॥ ११ ॥ सर्वे धर्मा विकल्पा यसात्। सर्वधर्मा संकल्पसासात्। 'धर्मादनि-च्छेवंलात्' इत्यनिचो विषये तदभावरछान्दसः । अतएव नैत-हेहनाशमात्रेणेष्टसिद्धियतःपुनर्देहपरंपरोत्पादकः संकल्पोऽस्त्येव। तर्हि संकल्पलागे क उपाय इति चेलमाइ-देहसार्थे इला-

सुखदुःखविचारित्वं न कार्ये राम धीमता। बुःसम्लानमुखः हेदी प्रसन्नात्हेदवर्जितात्॥ १३ अपि चित्रनराद्देहनरस्तुच्छतरः स्मृतः । आधिव्याधिपरिम्लाने स्वयं क्षेदिनि नाशिनि ॥ १४ न तथा स्थिरता देहे चित्रपुंसो यथा किल। विनाज्ञितो हि चित्रस्थो देहो नश्यति नान्यथा १५ अवद्यनाद्यो मांसातमा स्त्रयं देहो विनद्यति । पालितः सुस्थिरां शोभामादते चित्रमानवः ॥ १६ देहस्तु पालितोऽप्युचैर्नश्यत्येव न वर्धते । तेन श्रेष्टश्चित्रदेहो नायं संकल्पदेहकः॥ १७ ये गुणाध्यित्रदेहे हि न ते संकल्पदेहके। चित्रदेहादपि जडाद्योऽयं तुच्छतरः किल ॥ तिसन्मांसमये देहे कैवास्था भवतोऽनघ। दीर्घसंकल्पदेहोऽयं तस्मिन्नास्था महामते॥ १९. स्वप्रसंकल्पजाहेहादपि तुच्छतरो ह्ययम्। अस्पसंकल्पजो दीर्घः सुखदुःखर्न गृहाते ॥ २० दीर्घसंकल्पजधायं दीर्घदुःखेन दुःखितः। देहो हि संकल्पमयो नायमस्ति न वास्ति नः॥ २१ किं व्यर्थमेतदर्थं हि मुढोऽयं क्रेशमाजनम्। यथा चित्रमये पुंसि भते श्रीण न तत्थ्रतिः॥ तथा संकल्पपुरुषे क्षते शीणे न तत्क्षतिः। पथा मनोराज्यमये क्षते क्षीण न तत्क्षतिः॥ २३ थथा द्वितीये शशिनि क्षते क्षीणं न तत्क्षतिः। यथा स्वप्नसमारम्मे क्षते क्षीणे न तत्क्षतिः॥ यथा बद्यातपजले क्षते क्षीणे न तत्क्षतिः। संकल्पमात्ररचिते प्रकृत्यैव च नाशिनि॥ २५ तथा शरीरयमेऽस्मिन्क्षते क्षीण न तरक्षतिः। वीर्घस्वप्रमये हासिश्चित्तसंकल्पकल्पिते ॥ २६ भृषिते दृषिते देहे न हि किंचिश्वितः क्षतम् । न चिद्रन्तमुपायाति नात्मा चलति राघव॥ २७

दिना ॥१२॥ देहसुखदुःखनिन्तापरं नरं चित्रलिखितनराद्प्यधमत्मेन निन्दति—सुखदुःखेलादिना।क्रेदी याप्पस्वेदार्दः॥१३॥
॥ १४॥ किल प्रसिद्धम् । निर्निमत्तनश्वरलमप्यस्य चित्रदेहादिनको दोष इत्याह—विनाशित इति ॥ १५॥ खयं विनेव
निमत्तमित्यर्थः॥ १६॥ संकल्पकृतो देहकः॥ १०॥ १८॥
नास्था युक्तेति शेषः॥ १९॥ इदानी स्वाप्तमानोरिथकदेहेम्योऽप्यस्य तुच्छतरतामाह—स्वप्तेत्यादिसार्धन॥ २०॥
अयं स्वयमेव नास्ति । अथवा नः अस्पदीयतया नास्ति ।
आत्मनोऽसङ्गाद्वयलादिति भावः॥ २९॥ अतिश्वत्रादिहस्वतिवि नास्यापि क्षतिः शोच्येत्याह—यथेति । तस्यात्मनः
स्वतिनं ॥ २२॥ २३॥ २४॥ २५॥ २६॥ कृतो न क्षतं
तत्राह्—न चिदिति॥ २०॥ पूर्वस्य स्वाधिष्ठितचकस्य उपमाभूतं पनितः समीपस्यं वा महचक्रमुपचकं तद्वत् । स्वकः

न ब्रह्म विकृति याति किंवा देहक्षये क्षतम्। भ्रमधकोपरिष्ठो हि पूर्वचकोपचकवत्॥ २८ यथा पश्यति दिक्कफं भ्रमदत्यन्तमोहितः। अकस्मादेच रूढेन मिथ्याज्ञानेन चलाता ॥ २९ तत्रस्थेन तथैवेदं दश्यते देहचक्रकम्। भ्रमिदं च भ्रमदूपं पतद्र्पं प्रपातितम्॥ ३० हतं च हन्यमानं च रदयते देहचक्रकम्। **धीरतामलमालम्ब्य घनभ्रममिमं त्यजेत् ॥** 38 संकल्पेन कृतो देहो मिथ्याशानेन समसन्। असत्येन कृतं यसाम्न तरसत्यं कदाचन ॥ 32 असदभ्युत्थितो देहो रज्जवामिव भुजंगघीः। असत्यामेव सत्यां च करोत्यपि जगत्कियाम्॥ ३३ जडेन राम कियते यन्न तत्कृतमुच्यते। कुर्वन्नपि तदा देहो न कर्ता कचिदेव हि ॥ निरीहो हि जडो देहो नात्मनोऽस्याभिवाञ्छितम् । कर्ता न कश्चिदेवातो द्रष्टा केवलमस्य सः॥ यथा दीपो निचातस्थः स्वात्मन्येवावतिष्ठते । साक्षिवत्सर्वभावेषु तथा तिष्ठेज्जगतिस्थती ॥ ३६ यथा दिवसकर्माणि भास्करः खंस्थ एव सन्। करोत्येविममां राम कुरु पार्थिवसंस्थितिम्॥ ३७ असिम्नसन्मये देहगृहे शून्ये समुत्थिते। सत्तामुपगते मिथ्यावालकल्पितयक्षवत् ॥ ३८ कुतोऽप्यागत्य निःसारः सर्वेसज्जनवर्जितः। अहंकारः कुवेतालः प्रविष्टश्चित्तनामकः ॥ 36 अस्य मा भृत्यतां गच्छ त्वमहंकारदुर्मतेः। अस्य भृत्यतया राम निरयः प्राप्यते फलम्॥ स्वसंकल्पविलासेन देहगेहे दुराकृतिः। उन्मत्तचित्तवेतालः परिवल्गति लीलया ॥ કર शून्यं देहगृहं प्राप्य चित्तयक्षेण तस्कृतम्। भीता येन महान्तोऽपि समाधिनियताः स्थिताः ४२

वैपरीत्येन अमिह्ककं यथा पर्यतीत्यर्थः ॥ २८ ॥ २८ ॥ तहस्थेन मिथ्याज्ञानचकस्थेन जीवेन ॥ ३० ॥ देहचककं देह-परम्पराचकम् ॥ ३९ ॥ प्रतीतितः सन्निष्प परमार्थतः असन् । असत्येनाज्ञानादिना कृतं यसाद्धेतोः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तत्कृतं नेवोच्यते यदेति शेषः । चेतनवज्जके अपराधारोपादर्शनादि-त्यर्थः ॥ ३४ ॥ इच्छातो हि कर्तृत्वं स्यात् सा तु न जहे देहे निर्धिकारे आत्मिन वा संभवतीत्याह—निरीह इति ॥ ३५ ॥ अकर्जात्मिनश्चयफछमाह—यथेति ॥ ३६ ॥ तिर्हं कथं राज्य-संस्थितिसिद्धस्तत्राह—यथेति ॥ ३७ ॥ देहसत्यतादर्शने तु तदिमानछक्षणाहंकारस्यावर्जनात्तद्भृत्यता स्यादेवेत्याह—अस्मिनत्यादिना ॥ ३८ ॥ प्रविष्टः स्यादिति शेषः ॥ ३९ ॥ ॥ ४९ ॥ । ४० ॥ सत्यहंकारे अनर्थान्तरमप्याह—स्यसंकल्पेत्यादिना

१ स्वच्छ यति पाठ:..

चित्तवेतालमुद्रास्य स्वशरीरकमन्दिरात्। संसारश्चानगरे न विभेति कदाखन ॥ 83 चित्तभूताभिभूतेऽसिन्ये शरीरगृहे रताः। चित्रमद्यापि ते कसाद्धिता आत्मवितस्थताः॥ ४४ प्रस्ते चित्तपिशाचेन देहसद्यनि ये मृताः। पिशाचस्येव या वुद्धिनीपिशाचस्य राघव॥ છપ अहंकारबृहद्यक्षगृहे दग्धशरीरके। विहरन्नास्थया साधो नतु वै तत्किल स्थिरम्॥४६ अहंकारानुचरतां त्यक्त्वा विततया धिया। अहंकारास्मृति प्राप्य स्वात्मैवाश्ववलम्ब्यताम् ४७ अहंकारपिशाचेन प्रस्ता ये निर्यथिणः। तेषां मोहमदान्धानां न मित्राणि न बान्धवाः ॥ ४८ अहंकारोपहतया बुद्धा या क्रियते क्रिया। विषयद्वया इच फलं तस्याः स्यान्मरणात्मकम्॥४९ विवेकधैर्यहीनेन स्वाहंकारमहोत्सवः। मुर्खेणालम्बितो येन नएमेवाद्य विद्धि तम्॥ ५० अहंकारपिशाचेन वराका ये वशीकृताः । त पते नरकाग्रीनां राघवेन्धनतां गताः॥ ५१ अहंकारोरगो यस्य परिस्फ्रजंति कोटरे। स्वदेहपादपोऽधीरैरचिरेण निपात्यते॥ ५२ अहंकारपिशाचोऽस्मिन्देहे तिष्ठतु यातु वा। त्वमेनमालोकय मा मनसा महतां वर ॥ 43 अवधूतो खबजातश्चेतसैव तिरस्कृतः। अहंकारपिशाचस्ते नेह किंचित्करिप्यति ॥ 48

॥ ४९ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ देहगृहे रता आसक्तारते अनन्तको-टिदेहेषु नष्टेषु अद्यापि देहेन आत्मवत्तादात्म्येन घटिताः क-स्माल्थिताः । सदैव तद्भटनदुःखे अनुभूयमानेऽपि तद्विघटने यमं न कुर्वन्ति तिवत्रमिखर्थः ॥ ४४ ॥ ये मृतास्तेषामिति शेषः ॥ ४५ ॥ सदैव तापत्रयविह्नदग्धे शरीरकं आस्थया विहरन् ना पुरुषः पिशाच एवेति विभक्तिविपरिणामेनानुष-ज्यते । तत्रास्था कृतो न युक्ता तत्राह—निलिति ॥ ४६॥ प्रथममहंकारस्यानुचरतां भृत्यतां त्यक्ता ततो योगभूमिकाभ्या-सादहंकारस्य अस्मृतिं आस्यन्तिकविस्मृतिं प्राप्य ॥ ४७ ॥ न मित्राणीति । अहंकारिणां विनयदौर्लभ्यादौद्धत्यावस्यंभावाच न किथितिक्रास्त्रतीति भावः ॥ ४८ ॥ फलं कलहजनवैरादिरूप-मत एव मरणात्मकम् ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तस्य परलोकेऽपि दुःसमेवेलाह-अहंकारेति ॥ ५१ ॥ यस्य खदेहपादपस्य कोटरे हृदि स खदेहपादपः । बहुष्वेकदचनं जात्येक्यात् । अर्घारैरिति च्छेदः ॥ ५२ ॥ मा आलोकय ॥ ५३ ॥ अनव-लोकनमात्रेण कि स्यातत्राह—अवधृत इति ॥ ५४ ॥ आतम-नसादनुसरणादेवानर्थः । उपेक्षितस्तु स स्थितोऽप्यकिंचित्कर इलाइ-देहालये इति ॥ ५५ ॥ चित्तेति प्रकृताहंकारस्यैव

देहालये स्फ्ररत्यस्मिन् राम चित्तपिशाचके। अस्यानन्तविलासस्य किमिवागतमात्मनः॥ ५५ चित्तयक्षामिभृतानां याः पुंसां विततापदः। शक्यन्ते परिसंख्यातुं न ता वर्षशतैरिष ॥ 48 हाहा मृतोऽस्मि दग्धोऽसीत्येता वे दुःखबूत्तयः। अहंकारपिशाचस्य शक्तयोऽन्यस्य नान्ध ॥ 40 सर्वगोऽपि यथाकादाः संयन्धो नेह केनचित्। सर्वगोऽपि तथैवात्मा नाहंकारेण संगतः॥ 46 यत्करोति यदादते देहयन्त्रमिदं चलम्। वातरज्ञयुतं राम तदहंकारचेष्टितम्॥ ५९ वृक्षोत्पत्तौ यथा हेत्रकर्त्रपि किलाम्बरम् । आत्मसंस्थस्तथेहात्मा चित्तचेष्टासु कारणम् ॥ ६० आत्मसंनिधिमात्रेण स्फुरत्यात्तवपुर्मनः। दीपसंनिधिमात्रेण कुड्यरूपमिवामलम्॥ १३ अपि विश्विष्टयो राम नित्यमेवात्मचित्तयोः। द्यावापृथिव्योरिव कः संबन्धः प्रकटान्धयोः ॥ ६२ चपलस्पन्दनेराभिरात्मशक्तिभिरावृतम्। चित्तमात्मेति मौरूर्येण दृश्यते रघुनन्दन ॥ ६३ आत्मा प्रकाशकरो हि नित्यः सर्वगतो विभुः। चित्तं शठमहंकारं विद्धि हार्दे बृहत्तमः॥ દ્દય आत्मासि वस्तुतस्त्वं हि सर्वन्नो न मनो भृशम् । दूरे कुछ मनोमोहं किमेतेनाभिसंगतः॥ ६५ पिशाचोऽपि मनो राम शून्यदेहगृहे स्थितः। भावयत्येष दुधातमा मानमुत्तम संस्पृशन्॥ ६६

बुश्यन्तरेऽप्यनर्थकारिताह्यानाय निर्देशः ॥ ५६ ॥ ५० ॥ अ-हमित्यात्मैवानुभूयत इति नैयाथिकादीनां भ्रान्ति वारयति— सर्वग इति । संबध्यत इति संबन्धः। संश्विष्ट इत्यर्थः॥ ५८॥ वातरजुः सूत्रातमा प्राणः ॥ ५९ ॥ यदांकार एव सर्वचेष्टानि-मित्तं नात्मा तार्हि । 'केनेषितं पत्तति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः'। 'ऊर्ध्व प्राणमुत्रयत्यपानं प्रत्यगस्यति । मध्ये वामनमासीनं विश्वदेवा उपासते' इत्यादिश्वतिविरोधसा-त्राह्—मृक्षोत्पत्ताविति । आत्मसंस्थः स्वे महिम्रि प्रतिष्ठितः । कारणं श्रुतिमिरुपचर्यत इत्यर्थः ॥ ६० ॥ उपचारे मनआ-दीनां सत्तास्फूर्तिप्रदलमेव निमित्तमिखाइ-अात्मेति । आत्त-वपुर्लब्धसत्ताकं कल्पितस्थूलदेहं च ॥ ६१ ॥ प्रकटान्धयोबिन ज्बडयोः ॥ ६२ ॥ नन्वसंबन्धे मनआदेः सत्तास्फूर्व्यसिद्धिः, संबन्धे लात्मासङ्गलासिद्धिरित्याशङ्क्याह-चपलेति । चपलस्प-न्दनानीरमन्ति प्रेरयन्तीति चलस्यन्दनेरास्तथाविधामिरात्मवः प्राणस्य शक्तिभरावृतं वशीकृतं चित्तं तादातम्याध्यासस्थानेन मौर्ख्येणाञ्चानेन दश्यने न बल्तुवृत्तेनेखर्थः । 'नामिः' इति पाठे चिलविशेषणम् ॥ ६३ ॥ असङ्गलोपपादनाय विरुद्धलमेव प्रप-श्रयति-आत्मेति । शठं वत्रकम् ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे उत्तम

भवप्रदमकल्याणं धैर्यसर्वस्वहारिणम् । मनःपिशाचमृत्युज्य योऽसि स स्वं स्थिरो भघ६७ चित्तयझद्रढाऋान्तं न शास्त्राणि न वान्धवाः। शक्कवन्ति परित्रातुं गुरवो नच मानवम् ॥ ६८ संशान्तचित्तवेतालं गुरुशास्त्रार्थवान्धवाः । शक्तुषन्ति समुद्धर्तु स्वल्पपङ्कान्मृगं यथा ॥ દ્દ असिञ्जगच्छ्रन्यपुरे सर्वमेव प्रदृषितम्। देहरोहं प्रमत्तेन चित्तयक्षेण बलाता॥ 90 चित्तवेतालवलिता समस्ता देहखण्डजा। इयं जगदरण्यानी शून्या कस्य न भीतये॥ 98 जगन्नगर्यामस्यां तु शान्तचित्तपिशाचकम्। देहगेहं कतिपयैः सेव्यते सिद्धरेव यत्॥ 95 इह संभ्रुयते याया दिक्सैव रघुनन्दन। प्रमत्तमोहवेताकैः पूर्णा देहदमशानकैः॥ ७३ अस्यां जगदरण्यान्यां मुह्यन्तं मुग्धबालवत् । स्वयमाराध्य धैर्याशमात्मनात्मानमुद्धरेत्॥ OS जगज्जरदरण्येऽसिश्चरद्वतमृगवजे। धृति तृणरसै राम मा गच्छ मृगपोतवत्॥ ७५ अस्मिन्महीतलारण्ये चरन्ति मृगपोतकाः। त्वमहानगजं भुक्त्वा सेंहीं वृत्तिमुपाश्रय॥ **૭**૬ अन्ये नरमृगा मुग्धा जम्बृद्वीपे स्वजङ्गले। विहरन्ति यथा राम तथा मा विहरानघ॥ 60 अत्यल्पकालशिशिरे कर्दमालेपदायिनि । न मञ्जूदयं बन्धुरूपे महिषेणेव परवले॥ 96 भोगाभोगा बहिष्कार्या आर्यस्यानसरेत्पदम्। प्रविचार्य महार्थे स्वमेकमात्मानमाश्रयेत्॥ ७९

मनःपिशाच आत्मानमसंस्पृशन्नपि मोनं तूष्णीमेव स्नसंस्पृष्टं भावयतीत्यन्वयः ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ संशान्तेति शुद्ध-चित्तमिति यावत् । मृगं मृगसदृशं वत्सम् ॥ ६९ ॥ ७० ॥ देहलक्षणे खण्डे परिच्छित्रभागे जाता ॥ ७१ ॥ समस्तेत्यु-स्तर्गः। क्रचिदन्यथालमपि यतो दृष्टमिखाइ-जगदिति। यत् यतः ॥ ७२ ॥ अत एवाइविहाः स्मशानतुल्या इति निन्दति---इहेति ॥ ७३ ॥ धैर्योद्यासाराध्य दृढमवलम्ब्य ॥ ७४ ॥ तृण-सद्दीरसारेविषयरसर्भृति कृतार्थताबुद्धिम् ॥ ७५ ॥ मृगपोतक-सहका अन्ये मूढा विषयतृणानि चरन्ति चेचरन्तुनाम ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ ननु बन्धुजनैः समानशीलतया सदैवावस्थानं सुखं एं तत्र को दोषस्तत्राह—अव्यल्पेति । विशेषणान्यभयत्र ग्रेज्यानि ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ न मङ्गव्यमासक्तिकर्दमे इति शेषः यतस्यन्यमा चिन्तालक्षणा चण्डी कोपना सद्राहणा राक्षसी खादतीत्यर्थः ॥ ८० ॥ अन्येन कर्मणा । यक्षेणाहंकारेण । अ-म्यस्य मनसः । अन्यो जीवः । मीर्ख्यस्य चिक्रकापरिवर्तमाना परंपरा चित्रा । आश्चर्यरूपेखर्यः ॥ ८१ ॥ सदेकघनलादपि

अपवित्रस्य तुच्छस्य तुर्भगस्य दुराकृतेः। देहस्यार्थे न मङ्कृद्यं चिन्ताचण्डी सुदारुणा ॥ ८० अन्येन रचितो देहो यक्षेणान्येन संश्रितः। दुःखमन्यस्य भोक्तान्यश्चित्रेयं मौर्ख्यचित्रका ॥ ८१ यथैकरूपा घनता दृषदोऽस्त्यात्मनस्तथा। सत्तामात्रेकसामान्यादितरस्याप्यसंभवात्॥ यथोपलस्य घनता मानसादि तथात्मनः। सत्तामात्रादमित्रत्वादभावादस्य संस्थितेः॥ **८३** यथोपलस्योपलता घटस्य घटता यथा । सत्तामात्राद्भित्रेच मानसादि तथात्मनः॥ 68 अत्रेमामपरां दृष्टि महामोहविनाशिनीम् । श्रुण या कथिता पूर्व मम कैलासकन्दरे। संसारदःखशान्त्यर्थ देवेनार्धेन्द्रमौलिना ॥ ८५ अस्तीन्द्रकरसंभारभासुरः पारगो दिवः। कैलासो नाम शैलेन्द्रो गौरीरमणमन्दिरम्॥ ૮૬ तत्रास्ते भगवान्देवो हरश्चन्द्रकलाधरः। तं पूजयनमहादेवं तसिन्नेव गिरौ पुरा ॥ 69 कदाचिदवसं गङ्गातटे विरचिताश्रमः। तपोर्थ तापसाचारे चिराय रचितस्थितिः॥ 4 सिद्धसंघातवलितः कृतशास्त्रार्थसंप्रहः। पुष्पार्थं स्यूतपुटिकः पुस्तकव्यूइसंग्रही ॥ ८९ पवंगुणविशिष्टस कैलासवनकुञ्जके। तपः प्रचरतो राम मम कालोऽत्यवर्तत ॥ 90 अथैकदा कदाचित्तु बहुलस्याष्टमे दिने । गते श्रावणपश्चस्य राज्यब्रे क्षयमागते ॥ ९१ दिश्च संशान्तरूपासु काष्ट्रमौनस्थितास्विव।

नात्मनि दुःखतद्भोगभोक्तृशरीरादिरूपान्तरावकाश इत्याश्चये-नाह—यथेत्यादित्रिमिः । इतरस्य सद्भुपेतररूपस्य सदितरस-स्यैव असदलीकादिपदैः प्रसिद्धरिति भावः ॥ ८२ ॥ यद्या उपलस्य घनता काठिन्यं नोपलात्पृथक्सती तथा मानसं सम-ष्टिव्यष्टिमनःसमूहः । आदिपदात्तत्तत्कार्यस्थूलप्रपश्चश्च तत्कृतः । सत्तामात्रसभावादभित्रसात्पृथक् अस्य मानसादेः संस्थितेर-भावादित्यर्थः ॥ ८३ ॥ अयं च न्यायः प्रत्येकं घटतन्मानस-हत्त्यादिष्वपि योज्य इति सदद्वैतमेव प्रसिद्धमित्याह-ययेति ॥ ८४ ॥ अत्रास्मित्रर्थे इमां वश्यमाणमानसशिवपूजालक्षणां दृष्टि शृषु ॥ ८५ ॥ तत्रादी कैलासवर्णनमुखेन कथां प्रस्तौति---अस्तीत्यादिना । इन्द्रकराणां संभारः संघात इव भासुरः ॥८६॥ ॥ ८७ ॥ तापसैराचर्यत इति तापसाचारः कृष्णुचान्द्रायणादि-स्तस्मित्रियता स्थितिर्यस्य तथाविधः सन्॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ॥ ९० ॥ बहुलस्य श्रावणकृष्णपक्षस्याष्टमे दिने । रात्रेरप्रे मुखे प्रदोषे पूजाजपध्यानादिना क्षयमागते सति ॥ ९१ ॥ प्राणिसंचाराद्युपरमात्संशान्तरूपासु दिक्षु करादिचेष्टयाप्ययोनि-

खद्गच्छेद्यान्धकारेषु कुञ्जेषु गहनेषु च ॥ ९२ पतिसम्भन्तरे तत्र यामार्धे प्रथमे गते। समाधि तनुतां नीत्वा स्थितोहं बाह्यमञ्जदक ॥९३ अपर्यं कानने तेजो झटित्येव समुस्थितम्। शुस्रास्रशतसंकाशं चन्द्रविम्बगणोपमम् ॥ ९४ प्रकटीकृतदिक्कु अं तदालोक्य मया सम्यात्। अन्तःप्रकाशशालिन्या बहिर्दृष्ट्यावलोकितम् ॥ ९५ यावत्परयामि तं सानुं प्राप्तश्चनद्रकलाधरः। गौरीकरार्पितकरो नन्दिप्रोत्सारिताप्रगः॥ ९६ शिष्यान्संबोध्य तत्रस्थान्गृहीत्वार्ध्ये सुसंयतः। अगमं सुमनास्तस्य दृष्टिपूतमहं पुरः ॥ 99 तत्र पुष्पाञ्जलि दस्वा दूरादेव त्रिलोचनः। दसार्धेण मया देवः संप्रणम्यामिवन्दितः॥ ९८ ततश्चन्द्रप्रभासक्या ऋज्या शीतलया तया। द्या सर्वार्तिहारिण्या चिरमस्म्यास्पदीकृतः॥९९ पुष्पसानूपविद्याय तसै त्रैलोक्यसाक्षिणे । अर्घ्ये पुष्पं तथा पाद्यमभ्युपेत्यार्पितं मया॥ १०० मन्दारपुष्पाञ्जलयो विकीर्णा बहवः पुरः। नानाविधेर्नमस्कारैः स्तोत्रेधाभ्यर्चितः शिवः॥ १०१ ततो भगवती गौरी तादृश्येव सपर्यया। संपूजिता सखीयुक्ता गणमण्डलिका तथा ॥ १०२ पूजान्ते पूर्णशीतांशुरिमशीतलया गिरा। तत्रोपविष्टं प्रोवाच मामर्थेन्द्रकलाधरः॥ १०३ ब्रह्मन्त्रशमशालिन्यः प्राप्तविश्रान्तयः परे । किश्चत्कल्याणकारिण्यः संविदस्ते स्थिताः पदे १०४ किश्वतपस्ते निर्विघ्नं कल्याणमनुवर्तते ।

वेदनं काष्टमीनव्रतं तत्र स्थितास्विव गहनेषु वनेषु ॥ ९२ ॥ तनुतां ईषद्वहिःप्रवणतामिति यावत् ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ स्म-यात् विस्मयात् । बहिर्देष्ट्या अवलोकितमन्तर्विचारितमित्यर्थः ॥ ९५ ॥ विचार्थ च यावत्तं पुरस्थं सानुं प्रस्थदेशं पइयामि तावत्तत्र प्राप्त इलार्थः ॥ ९६ ॥ सुसंयतः सावधानः ॥ ९७ ॥ सुमनाः संतुष्टमनाः । पुरः पुरोदेशम् । सम्यक् साष्टान्नं प्रण-म्याभिवन्दितः स्तुतः ॥ ९८ ॥ स्वभाग्यमहोदयं स्वस्पिस्तदः नुप्रहृदृष्टिपातं वर्णयति—तत इति । तया खानुभूतालोकिक-निरतिशयानन्दाविभीवचमत्कारकारिण्या ॥ ९९ ॥ अभ्युपेत्य अभिमुखं समीपे गला ॥ १०० ॥ १०१ ॥ तादरया शिवपु-जासदृश्या सपर्यया पूजया ॥ १०२ ॥ तदाह्मया तत्र सानावुप-बिष्टं माम् ॥१०३॥ तत्र कुशलप्रश्ने कर्तव्ये सर्वेकौशल्यपरमकाष्ट्रां परमात्मनि चित्तविश्रान्तिमेव भगवान्त्रथममनुजिपृक्षया पृ-च्छति-अद्यात्रिति । संविदश्चित्तवृत्तयः । परे परमात्मवस्तुनि ॥ १०४॥ १०५॥ अनुनयो विनयस्तच्छालिन्या ॥ १०६॥ ॥ १०७ ॥ जगत्कोरो ते प्राणिनो न सन्ति ये न प्रणमन्ति । सर्वेऽपि प्रणमन्त्येवेत्यर्थः ॥ १०८ ॥ ते देशाः प्रशस्ततमा कश्चित्प्राप्यमञ्ज्ञाप्तं कश्चिन्छाम्यन्ति भीतयः॥१०५ एवंवादिनि देवेदो सर्वलोकैककारिणि। विराजनयशालिन्या मयोकं रघुनन्दन ॥ १०६ ज्यक्षानुस्मृतिकल्याणवतामिहं महेश्वर। न किंचिदपि दुष्पापं नच काश्चन भीतयः॥ त्यद्वसारणानन्दपरिघूर्णितचेतसाम्। न ते सन्ति जगत्कोशे प्रणमन्ति न ये पुनः॥ १०८ ते देशास्ते जनपदास्ता दिशस्ते च पर्वताः। त्वद् नुसारणैकान्तिधियो यत्र स्थिता जनाः॥ १०९ फलं भूतस्य पुण्यस्य वर्तमानस्य सेचनम्। तनोति चैष्यतो बीजं त्ववनुसारणं प्रभो॥ ११० **ज्ञानामृतैककलको धृति**ज्योत्स्नानिशाकरः । अपवर्गपुरद्वारं त्वदनुसारणं प्रभो ॥ १११ त्वदनुसरणोदारचिन्तामणिमता मया। सर्वासामापदां मुर्भि दत्तं भूतपते पदम्॥ ११२ इत्युक्तवा सुप्रसन्नं तं भगवन्तं महेश्वरम्। अबोचं प्रणतो भृत्वा यद्राम तदिदं शृणु ॥ ११३ भगवंस्त्वत्त्रसादेन पूर्णा मे सकला दिशः। किंतु पृच्छामि देवेश संदेहे तत्र निर्णयम्॥ ११४ बृहि प्रसन्नया बुद्धा त्यकोद्वेगमनामयम्। सर्वपापक्षयकरं सर्वकल्याणवर्धनम्॥ ११५ देवार्चनविधानं तत्कीहरां भवति प्रभो॥ ११६ ईश्वर उवाच। श्रुणु ब्रह्मविदां श्रेष्ठ देवार्चनमनुत्तमम्। षदामि मुच्यते येन छतेन सरुदेव हि॥ ११७ किश्चेतिस महावाही देवः कः स्यादिति द्विज।

इत्यर्थः । 'अपश्वा वा अन्ये गोअश्वेन्यः पश्वो गोअश्वाः'' १०९ ॥ भूतस्य प्राक्संचितस्य इतिवल्प्राशस्यलाभः ॥ पुण्यस्य रक्षस्थानीयस्य फलं तनोति अनन्तकोटिगुणतया वि-स्तारयति । वर्तमानस्यतदेहारभ्यस्य सेचनमपृतसेकेनेवामिव-र्धनं तनोति । एष्यतः करिष्यमाणस्य दृद्ध्यर्थं बीजं तनोति ॥ १९० ॥ १९९ ॥ सर्वासां वर्तभानानामेष्यन्तीनां च ॥१९२ ॥ ॥ ११३ ॥ पूर्णा इष्टार्थेरिति शेषः ॥ ११४ ॥ उद्देगाश्चित्तक्षोमहेतवो यस्मिस्तथाविधं देवार्चनविधानं ब्रूहीति परेणान्वयः ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ पूर्णा मे सकला दिश इ-त्युत्तया वितिष्टस्य विषयभोगाभिलाषद्यन्यताद्योतनात्सर्वपाप-क्षयकरं सर्वकल्याणवर्धनमिति विशेषणाभ्यां च सर्वानर्थानेतृ-रबुपलक्षितनिरतिशयानन्दरूपमोक्षसाधनविषय एवायं प्रश्न इति निश्चितवान्सर्वज्ञः परमकारुणिक ईश्वरः सर्वभावेन प्रपन्नाय व-सिष्ठाय परमपुरुषार्थसाधनं तत्त्वज्ञानमेव सर्वदेवार्चनपरमरह-स्यभूतमुपदेष्टुकामः प्रतिजानीते—श्टिष्विति ॥ ११७ ॥ तत्र वक्ष्यमाणदेवार्चनानुरूपमळीकिकदेवखरूपमुपदेर्टु शिष्यस्य तह-भुत्सां जनयन्युच्छति-किबिदिति । महाबाही निरन्तरदेवार्ध-

न देवः पुण्डरीकाक्षो नच देवस्त्रिलोचनः ॥ ११८ न देवः कमलोद्धतो न देवस्त्रिवशेश्वरः। न देवः पवनो नाकों नामलो न निशाकरः ॥ ११९ न ब्राह्मणो नाऽवनिपो नाहं न त्वं द्विजोनम। न देवो देहरूपो हि न देवश्चित्तरूपध्व ॥ १२० न देवः कमलारूपी नापि देवो भवेन्मतिः। अकृत्रिममनाद्यन्तं देवनं देव उच्यते ॥ १२१ आकारादिपरिच्छित्रे मिते वस्त्वनि तत्कृतः। अकृत्रिममनाद्यन्तं देवनं चिच्छिवं विदुः॥ १२२ तदेश देवशब्देन कथ्यते तत्त्रपूजयेत्। तदेवास्ति यतः सर्वं सत्तासत्तात्मरूपधृक् ॥ १२३ अज्ञातशिवतस्वानामाकाराधर्चनं कृतम्। योजनाध्वन्यशक्तस्य क्रोशाध्वा परिकल्प्यते ॥ १२४ इयत्तादिपरिच्छिन्नं रुद्वादेः प्राप्यते फलम्। अकृत्रिममनाद्यन्तं फलमानन्द आत्मनः ॥ १२५ अकृत्रिमफलं त्यक्त्या यः कृत्रिमफलं ब्रजेत्।

नसफलीकृतबाहो इति बाहुसापैक्षवाह्यपूजामात्रशूरताखोतनाय संबोधनम् । ननु प्रसिद्धा एव पुण्डरीकाक्षत्रिलोचनादयो देवाः किमेतावत्यपि विषये भगवान्मामनभिज्ञं संभावयतीति मन्य-मानस्य वसिष्ठस्य परिच्छित्रेषु श्रदाजाङ्यं प्रथममपनेतुमाह-न देव इत्यादिना ॥ ११८॥ कमलोद्भतो ब्रह्मा । त्रिदशेश्वर इन्द्रः । निशाकरप्रहणं तत्कलाधीनशरीरकत्रयक्षिशत्कोटिदेव-देहोपलक्षणम् ॥ ११९ ॥ पुनर्नाहं न लमिति निषेधो स्दव-सिष्ठमोस्तत् 'यद्रोदयन्ति तस्माह्नद्दाः'। 'यदहं वसिष्ठोऽस्मि तत्त्वं वसिष्ठोऽसि' इत्यादिश्रुतिषु मुख्यसमष्टिप्राणताप्रसिद्धेः 'कतम एको देव इति प्राणः' इति प्राणस्येन सर्वदेवात्मकलश्रुतेश्व प्राणभावेन प्राप्तदेवतालनिवारणार्थम् । एवं 'नेनदेवा आमुव-पूर्वमर्शत्' इत्यादिश्रुतिषु आध्यारिमकेषु चथुरादिषु देवशब्द-दर्शनात् । 'लचे खाहा लोमभ्यः खाहा' इत्यादिमञ्जलिङ्गाच देहाबाध्यात्मिकभावानामपि प्रसक्तं देवतात्वं वारयति—देह-रूप इति ॥ १२० ॥ आध्यात्मिकप्रस्तावात्कमलात्र देहादि-शोभा । मतिप्रहणं सर्वाध्यात्मिकभावोपलक्षणार्थम् । तत्तुल्य-न्यायादाधिभौतिकेष्वपि सर्वभावेष्वदेवत्रमुक्तं बोध्यम् । क-स्तर्हि देवस्तमाह—अकृत्रिममिति । डुकुओ 'द्वितः किः' 'के-मैन्नित्यम्' इति मप् । कृत्रिमं कियासाध्यं तद्विलक्षणं परमार्थ-देवनं निरतिशयप्रमोदश्वित्प्रकाशो देव इत्यर्थः । पुण्डरीकाक्षान दिमखन्ता हि चित्रकाशाधीनसत्तारफूर्तिकलात्तस्मिन्नध्यस्ता-स्तेषां चित्रकाशात्पृथकरणे सम्पिति दिरेव दुर्छभा दूरे देवल-मिति तेष्वपि सत्ताप्रकाश एवानावृतः स्फुरन्सर्वत्रेको देवस्त-दमिव्यत्त्यतिशयादेव पुण्डरीकाक्षादयोऽपि अमिभृतजाक्यत्वा-द्वहिशब्देन ज्वलद्वारा इव देवा उच्यन्त इति न श्रुतिस्मृत्या-दिवादविरोधोऽपीति भावः ॥ १२१ ॥ आकारादिना देशतो

त्यक्त्वा स मन्दारवनं कारअं याति काननम् १२६ बोधः साम्यं द्याम इति पुष्पाण्यप्राणि तत्र च। शिवं विन्मात्रममलं पूज्यं पूज्यविदो विदुः॥ १२७ द्यामबोधादिमिः पुष्पेदेव आत्मा यद्च्यते। तत्तु देवार्चनं विद्धि नाकारार्चनमर्चनम्॥ १२८ आत्मसंविक्तिरूपं तु त्यक्त्वा देवार्चनं जनाः। कृत्रिमार्चासु ये सक्ताश्चिरं क्षेत्रां भजन्ति ते॥ १२९ ज्ञातक्षया हि ये सन्तो वालकीडोपमं च ते। आत्मध्यानादते ब्रह्म-कुर्वन्तो देवपूजनम् ॥ १३० आत्मेव देवो भगवाञ्चियः परमकारणम्। श्वानार्चनेनाविरतं पूजनीयः स सर्वदा॥ १३१ त्वमेतच्चेतनाकाशमात्मानं जीवमव्ययम्। स्वभावं विद्धि न त्वन्यः पूज्यः पूजात्मपूजनम् १३२

वसिष्ठ उवाच।

चेतनाकाशमात्रात्म यथा जगदिदं प्रभो । यथा तचेतनस्पेव जीवादित्वं तदुच्यताम् ॥ १३३

बस्तुतश्च परिच्छिन्ने मित्ने कालतः परिच्छिने तत् देवनं कुतः । अयं भावः। दिव् कीडाविजिगीषाव्यवहारद्यतिस्तुतिमोदमद-खप्नकान्तिगतिष्विति दशखर्थेषु प्रसिद्धादीव्यतेः पचाद्यचि-देवशब्दव्युत्पादनात्संकोचे मानाभावान्मायिकनिरङ्कशैश्वर्य-खच्छन्दकी डाविजिगीपाव्यवहारस्तुतीनामाविद्यकमदस्त्रप्रेच्छा-गतीनां च निर्वाहकलाइशखर्थेषु द्यतिमोदावेव मुख्यावर्थी तौ च निखनिरतिशयानन्दस्वप्रकाशे ब्रह्मण्येव संभवतो न परि-च्छित्रेषु जडेब्बिति । अतः अकृत्रिमं चिच्छिवमेव देवं तत्त्वतो विद्वरित्यर्थः ॥ १२२ ॥ यतः सर्वं जगन्नीवतत्संसाररूपं तत्स-त्त्रीव सत्तात्मरूपपृक् न खत इति तदेवास्ति नान्यदित्यर्थः ॥ १२३ ॥ तर्हि कि पुण्डरीकाक्षाद्याकारार्चनविधिर्व्थर्थ एव नेखाइ-अज्ञातेति । कृतं विहितम् ॥ १२४ ॥ आत्मनस्त-न्वतः साक्षात्कारान्तपूजनेन प्रसन्नादिखर्थः ॥ १२५ ॥ ऋत्रि-मकामभोगानात्मपूजनात्सिज्यन्तीति तद्र्थे क्रुन्निमपूजैव कार्यः तत्राह-अकृत्रिमेति ॥ १२६ ॥ अकृत्रिमपूजने तर्हि का सामग्री तामाह-बोध इति । साम्यं सर्वत्रात्मीपम्येन दर्शनम् ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ ज्ञातक्षेया ये कदाचिदात्मध्यानाः दुरियताः सन्तः साकारदेवपूजनं कुर्वन्तश्चेहृज्यन्ते तते जाल-की होपमं कुर्वन्ति न कृत्रिमभोगाहायेखर्थः ॥ १३० ॥ १३१ ॥ त्वं जीवे स्वभावमक्रत्रिमं अव्ययं चेतनाकाशं चिदाकाशं ब्रह्म विद्धि नलन्यः अनात्मा पूज्यः । यतो ज्ञानस्क्षणमात्मपूजनमेव मुख्यपूजा नान्येखर्थः । यथाहुः 'देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सदाशिवः । त्यजेदशाननिर्माल्यं सोहंभावेन पूजवेत् ॥' इति ॥ १३२ ॥ 'तदेवास्ति यतः सर्वे सत्तासत्तारमरूपपृक् ।' इति ब्रह्मण एव जगन्नीवतत्त्वंसरणसत्तात्मनावस्थानमुक्तं त-त्रोपपति जिज्ञासुर्वसिष्ठः प्रच्छति—चेतनेति ॥ १३३ ॥

ईश्वर उवाच।

चिद्योमैव किलास्तीह पारावारविवर्जितम्। सर्वेत्रासंभवबेत्यं यत्कल्पान्ते ऽविशिष्यते ॥ १३४ यद्यत्स्वयं प्रकचित तस्य स्वकचनस्य तु । स्वयं यत्स्पन्दितं नाम तेनेदं जगदित्यलम् ॥ १३५ इत्येवं स्वप्नपुरवज्जगद्भाति चिदात्मकम्। एवं चिद्योममात्रात्म जगदच्छं न भित्तिमत् ॥१३६ अत्यन्तासंभवाश्चेत्यं दृश्यं चिद्योममात्रकम्। चिरवात्कचति सर्गारौ यत्तज्जगदिति स्मृतम् १३७ तसात्स्वप्रपुराकारं यदिदं भासते जगत। तत्र चिद्योममात्रात्मन्यन्यता नाम का कुतः ॥१३८ चिन्मात्रमेष गिरयधिन्मात्रं जगदम्बरम्। चिन्मात्रमात्मा जीवश्च चिन्मात्रं भूतसंततिः १३९ चिद्योममात्रादितरत्सर्गादौ सर्ववेदने। मिन्नस्वर्गे पुरे वापि किं संभवति कथ्यताम् ॥१४० आकारां परमाकारां ब्रह्माकारां जगिकतिः। इति पर्यायनामानि तत्र पादपबृक्षवत्॥ 888 एवं द्वी स्वप्रसंकल्पमायाभिः स्वनुभूयते। तदा किल चिदाकाशमेच भाति जगत्तया ॥ १४२

तत्र चित्सत्तायाश्रेखानधीनत्वं तावत्सर्वचेखप्रलयेऽप्यनपायात्प्र-सिद्धमिति तद्धीनभानस्य चेखस्य भानान्तरमिव न सत्तान्तर-मि युक्तमित्युपपत्तिमाह—चिबोमेति । सर्वत्रेति पूर्वार्धान्वयि । यग्रसादेतोः । अथवा चिद्योम सर्वत्र सर्गकालेऽपि असंभव-चैत्यं पारादिपरिच्छेदशून्यलात्प्रलयकालवदित्यनुमानलक्षणात्रो-पपत्तिर्दर्शिता बोध्या ॥ १३४ ॥ कथं तर्हि जगद्रूपप्रतिभास-स्तत्राह-यदिति । तस्यापरिच्छिन्नतादेव मायावरणान्तः असंमानान्मायिकवासनादिमार्गेण यत्स्पन्दितं स्पन्दनमिव प्र-सिद्धं तेनेदं जगदिति अलं भाति । तथाहि-यदासूर्यचन्द्रप्र-बीपेन्द्रियमनआदि खयं प्रकचित बह्लीभूतप्रकाशं भवति तस्य खकचनस्य खबिम्बे असंमानात्त्वयं यद्विम्बाद्वहिः प्रभाकारेण स्पन्दितं स्पन्दनं नाम प्रसिद्धं तदेव नीछपीतादितद्विषयरूपं जगदिखलमत्यन्तं प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ १३५ ॥ इति उक्तरीला एवं विचित्ररूपं जगचिदातमकमेव सत्खप्रपुरवचिदिव भाति भ्रान्या । एवं मदुक्तरीखा परमार्थतो विमृष्टं तु जगन्न भिति-मत् अमूर्तमच्छं चिद्योममात्रमेवेत्यर्थः॥ १३६॥ तर्हि कि चिदेव चेखाकारेण परिणतं स्वं पस्यति नेखाह-अखन्तेति। अपरिणामिलादद्वयलाश्वात्यन्तासंभवाश्वेत्यमप्यात्रतचित्स्वभा-बायदन्यथा कचति प्रथते तदेव दृश्यं जगदिल्यर्थः ॥ १३७ ॥ ॥ १३८ ॥ अत एवारोधितरूपबाधेन चिन्मात्रस्तरूपं द्रष्टव्य-मिलाह—विन्मात्रमेवेलादिना ॥ १३९ ॥ खर्गे ऊर्वलोकेषु

यथैतत्संविदाकाशं स्वप्ने भाति जगद्वपुः। तदेदं जाग्रदाख्येऽपि स्वग्ने भाति तदेव नः ॥ १४३ यथा स्वप्नपुरे चित्रलं वर्जियत्वेतरत्कचित्। न किंचित्संभवत्येवं जाग्रत्येवं महाचितः॥ यतो न संभवत्यन्य बेत्यं किंचित्ततोऽ खिलम्। चित्तं संचेत्यमप्येतदचेत्यं सज्जगितस्थतम् ॥ १४५ परमाकाद्यकलनं त्रिजगत्स्वयमुरिथतम् । स्वप्रवद्विङ् चिद्योच्चि न त्वेतद्वेतवत्स्थितम्॥ १४६ यथा चिद्योममात्रात्म स्वप्ते घटपटादिकम्। सर्गादावेव सर्गोऽयं तथा चिद्योममात्रकम्॥१४७ शुद्धसंवित्तिमात्रत्वाहतेऽन्यत्स्वप्रपत्तने । यथा न विद्यते किंचित्तथास्मिन्भुवनत्रये॥ याः काश्चन दशो ये ये भावाभाषास्त्रिकालगाः। सदेशकालचित्तास्तत्सर्वं चिद्योममात्रकम् ॥ १४९ स एष देवः कथितो यः परः परमार्थतः। यस्त्वं सोऽहमशेषं वा जगदेव च योऽखिलः १५० सर्वस्य वस्तुजातस्य जगतोऽन्यस्य ते मम । देहो हि चेतनाकारां परमात्मैव नेतरत् ॥ १५१

पुरे खनगरे वा अपिशब्दात्पातालेषु वा चिद्धिन्नं कि संभवति तत्कथ्यतां निरूपणकुशलैः। अचितः स्वतःसत्तास्फूर्तिसस्वे अचि-स्वव्याघातात्तदभावे अलीकलादलीकस्य चिताप्युज्जीवनाद्शीना-चितोऽसङ्गत्वेनाचित्संबन्धाययोगात्साधकान्तरस्य चाप्रसिद्धेरि-ति भावः ॥ १४० ॥ ननु 'यजति ददाति जुहोति' इत्यादिश-न्दान्तरात्कर्मभेद इव चित् आकाशं जगदिखादिनामान्तराद्धे-दोऽस्लिति चेत्तत्राह—आकाशमिति । भूताकाशाव्याकृताका-शाद्यर्थत्रयपरत्वेनामित्रेतानां त्रयाणामध्याकाशब्दानां काश्ट दीप्ताविति धालर्थानुगमेन निन्मात्रवयनलसंभवाद्गमेरपि 'ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्था' इत्यनुशासनात् 'वर्तमाने पृषन्महद्वहज्जग-च्छतृवच' इति किपि द्विलादिनिपातनेऽपि झानार्थलानपाया-चित्पर्यायनामतोपपत्तेरिति भावः ॥ १४१ ॥ तदेति दर्शनाध-देखध्याहार्थम् । एवंरीखा द्वी द्वेतं खप्नादिभिः समं यदानुभू-यते तस्वदृशा तदेखर्थः ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ द्वितीय एवं-शब्दोऽपिशब्दार्थे ॥ १४४ ॥ अखिलं चित्तं संचेत्यमपि ज-गत् अचेत्यं सन्मात्रमेव स्थितम् ॥ १४५ ॥ परमाकाशस्य महाणः कलनं 'बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुतिदर्शित आद्यसंकल्प एव त्रिजगद्भुला स्वयमुल्यितं द्वेतवत् द्वेतवाद्यभिमतसत्ववस्तु-वदित्यर्थः ॥ १४६ ॥ जगत्सामान्ये उक्तं न्यायं घटपटा-दिविशेषेऽपि दर्शयति-यथेत्यादिना । सर्गो ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ स झानेन पुत्र्यो देवः प्रथमप्रश्लो-त्तरत्वेन कथितः ॥ १५० ॥ देहः पारमार्थिकस्वरूपम् ॥१५९॥

१ मायावरणासंभवादिति पाठः.

१५२

संकल्पने स्वप्नपुरे शरीरं चिद्योमतोऽन्यन्न यथास्ति किंचित्।

तथेह सर्गे प्रथमेकसर्गा-न्मुने प्रभृत्यस्ति न रूपमन्यत्॥

इत्यार्वे श्रीवासिष्टमहारामायणे बाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे जगतः परमारममयलवर्णनं नाम एकोनिर्विशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंचाः सर्गः ३०

3

9

ईश्वर उवाच । एवं सर्विमिदं विश्वं परमात्मेव केवलम् । ग्रह्मैव परमाकाशमेष देवः परः स्मृतः ॥ तदेतत्पूजनं श्रेयस्तस्मात्सर्वमवाप्यते । तदेव सर्गभूः सर्विमिदं तस्मिन्व्यवस्थितम् ॥ अकृत्रिममनाद्यन्तमित्तियमखण्डितम् । अबिहः साधनासाध्यं सुखं तस्माद्वाप्यते ॥ प्रबुद्धस्त्वं मुनिश्रेष्ठ तेनेदं तव कथ्यते । वातिदेवाचेने योग्यः पुष्पधूपचयो महान् ॥ अव्युत्पन्नधियो ये हि वालपेलवचेतसः । कृत्रिमार्चामयं तेषां देवाचेनमुदाहृतम् ॥ शमबोधाद्यभावे हि पुष्पाद्यवाचेयन्ति हि । मिथ्यव किल्पतैरेवमाकारे किल्पतात्मके ॥ स्वसंकल्पकृतैः कृत्वा क्रमर्चनमाहृताः । बालाः संतोषमायान्ति पुष्पधूपल्याचेनः ॥

उक्तमन्धोपसंहरति—संकल्पन इति । प्रथमादेकस्य हिरण्य-गर्भस्य सर्गात्प्रशृति प्रवृत्ते इहास्मिन्सर्गे तथा संकल्पनस्त्रपुर-शरीरादिवदेवान्यद्रूपं नास्ति ॥ १५२ ॥ इति श्रीवासिष्ठम-हारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्धाणप्रकरणे पुकोनित्रंशः सर्गः ॥ १९ ॥

चितः सर्वात्मता सर्वभोकृभावेन संस्थितिः । यथा जीवद्द्यां प्राप्ता चित्तचाप्यत्र वर्ण्यते ॥ ३ ॥

'चेतनाकाशमात्रात्म यथा सर्वमिदं प्रभो' इति यक्तया पृष्टं तस्येदमुत्तरं वर्णितमित्याह—एवमिति । 'किबिहेत्सि महाबाहो देवः कः स्यादिति द्विज' इति मया लत्पृष्टदेवार्चनिवधानमूलर्हस्यं यक्त्वां प्रति पृष्टं तद्य्येतदेवेत्याह—एप देव इति ॥ १ ॥ पिरिच्छिन्नपत्त्रचंतं तु सर्वकामावसान-भूमिभूमानन्दप्राप्तिफलमिति सर्वोत्कृष्टमित्याह—तदेतदिति । सर्गभः सर्वजगत्मगीरोपाधिष्टानम् ॥ २ ॥ तत्र बहुवित्तव्यया-याससाध्यताश्हां परिहरति—अबहिरिति । अबहिःसाधनं च तदसाध्यं चेति विष्रहः ॥ ३ ॥ प्रयुद्धो विवेकी मुख्याधिका-रीति यावत् । अतिशयितो देवः अतिदेवस्तद्वंने ॥ ४ ॥ मूर्व्यादिरूपदेवार्चने तर्हि केऽधिकारिणस्तानाह—अन्युत्पमेति । अत्र वास्योदना-क्रमेति । अर्चा प्रतिमा तत्प्रभुरम् ॥ ५ ॥ तत्र शास्योदना-क्रमे कोद्रवाशनमिवेत्याह—श्रमेति ॥ ६ ॥ अर्चनं कृत्वा सं-

ससंकल्पकृतेरथैंः कृत्वा देवार्चनं मुधा। यतः कुतश्चिन्मिध्यात्म फलमात्रं नयन्ति ते॥ 4 पुष्पधूपार्चनं ब्रह्मन्कल्पितं बालबुद्धिषु । यत्स्याद्भवादशां योग्यमर्चनं तद्भदाम्यहम्॥ 9 असदादिस्त्वसौ कश्चिद्देवो मतिमतांवर। देवस्त्रिभुवनाधारः परमात्मैव नेतरत्॥ १० शियः सर्वेपदातीतः सर्वसंकल्पनातिगः। सर्वसंकल्पवलितो न सर्वो न च सर्वकः॥ ११ दिकालाद्यनविद्यन्नः सर्वारम्भप्रकाशकृत्। चिन्मात्रमूर्तिरमलो देव इत्युच्यते मुने ॥ १२ संवित्सर्वेकलातीता सर्वभावान्तरस्थिता । सर्वसत्ताप्रदा देवी सर्वसत्तापहारिणी॥ १३ ब्रह्म ब्रह्मन्सद्सतोर्मध्यं तद्देष उच्यते। परमातमपराभिष्यं तत्सदोमित्युदाहृतम्॥ १४

तोषमायान्ति प्राप्तवन्ति ॥ ७ ॥ यतः कुतिश्वत्स्वप्रप्रायविमाः नाप्सरः प्रभृतिसाधनान्मिभ्यात्मकमेव खर्गादिफलमासादयन्ती-ति मुघेत्यस्योपपत्तिः॥ ८ ॥ ९ ॥ वयं आदिः कारणं यस्य सोऽस्मदादिरस्मत्कल्पितप्रपञ्चान्तर्गतः असी चक्षुरादिदृश्यमूर्ति-रूपो देवः कश्चिदनिर्वचनीयो मायामय एवेखर्यः। कस्तर्हि पारमार्थिको देवस्तमाह--देव इति ॥ १० ॥ सर्वेभ्यो अह्म-विष्णुरुद्रादिदेवे+योऽप्यतीतः संकल्पना मनोवृत्तयस्तदिगः। 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति श्रुतेः । यखु सर्वैविषयभोगसंकर्वेर्विलितो विष्टितो ब्रह्मविष्ण्वादिपदरूपः स न साधनतोऽपि सर्वो न फलतोऽपि सर्व कं भोगसुखं यस्मिस्त-थाविधः। खखकर्मीपासनतारतम्यानुसारेणैव भोगसामम्यास्त-रफलसुखलवस्य च तत्र लाभादित्यर्थः ॥ ११ ॥ आत्मदेवस्त पूजनदशायां फलदशायां च नित्यनिरतिशयपरमार्थसत्यपूर्णा-नन्दैकस्त्रभाव एवेति स एव देव इत्युक्तियोग्य इत्याह--दि-कालेति ॥ १२ ॥ १३ ॥ सदसतोर्भावाभावयोर्वर्तमानतदन्य-कालयोर्मूर्तामूर्तयोः कारणकार्ययोव्यावहारिकप्रातिभासिकयोवी आन्तरालिकसाक्षिचिन्मात्ररूपलाद्धिष्ठानलाद्वा मध्यम् । पर-मसूर्यचन्द्राप्रिकरणज्योतिभ्यं उत्कृष्ट आरमैव परा सर्वावद्योतन-क्षमा अभिरूपा प्रकाशो यस्य तत्त्रयाविधं सत् ओमिति पदेन श्रुतिषु विराडादिपादत्रयात्मकसर्वप्रपञ्चप्रविलापनेन 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आस्मा स विश्वेयः' इत्युदाहृतमित्यर्थः ॥ १४॥ महासत्तास्वभावेन सर्वत्र समतां गतम्। महाचिदिति संप्रोक्तं परमार्थ इति श्रुतम्॥ १५ स्थितं सर्वत्र सर्वे तु लतास्वन्तर्यथा रसः। सत्तासामान्यरूपेण महासत्तात्मनापि च ॥ १६ यश्चित्तस्वमरुन्धत्या यश्चित्तस्वं तवानघ। यिक्सस्यं च पार्वत्या यश्चित्तस्यं गणेषु च ॥ १७ चित्तरवं यन्ममेदं च चित्तरवं यज्जगत्रये। तहेव इति तस्वका विवुदत्तमबुद्धयः ॥ १८ पादपाण्यादिमानन्यो यो वा देवः प्रकल्पते । संविन्मात्राहते ब्रह्मान्किसारः किल कथ्यताम् १९ चिन्मात्रमेव संसारसारः सकलसारताम् । गतः स देवः सर्वोऽहं तस्मात्सर्वमवाप्यते ॥ न स दूरे स्थितो ब्रह्मन्न दुष्प्रापः स कस्यचित्। संस्थितः स सदा देहे सर्वत्रैव च से तथा॥ २१ स करोति स चाश्चाति स विभर्ति प्रयाति च। स निःश्वसिति संवेता सोऽङ्गान्यङ्गानि वेसि च २२ सोऽस्यां विचित्रचेष्टायां प्रकाशिन्यां च तहशात्। तत्स्वरूपनिवद्यायां पूर्यामास्ते मुनीश्वर ॥ 23 शरीरावसथायां च चलायां तत्प्रसादतः। सोऽस्यां गहनकोशायां हृहृहायां गुहेश्वरः ॥ २४ मनःषष्ठेन्द्रियाचारसत्तातीतामलात्मनः। तस्य संव्यवहारार्थं संज्ञा चिदिति किल्पता॥ २५

॥ १५ ॥ व्यवहारे सर्वत्रानुगमात्सत्तासामान्यरूपेण । सर्वबाघे तु महासत्तात्मना ॥ १६ ॥ तस्यैव सर्वेषां देवतारीनामात्म-लादपि मुरुयं देवलमिलाह-यदिलादिना ॥ १७ ॥ १८ ॥ तस्येव विमर्शे सर्वदेवतासारलाहेवलिमलाह--पादेति । कि-सारः स इति शेषः ॥ १९॥ स सर्वः पूर्णी देव एवाहं न परिच्छित्र इत्यर्थः ॥ २०॥ २१॥ स एव सर्वेकर्ता सर्व-भोका चेलाइ—स करोतीलादिना ॥ २२ ॥ पुर्यामास्ते । 'स एष इह प्रविष्ट आनखाप्रेभ्यः' इति श्रुतेरिति भावः ॥२३॥ शरीरमावसथो महागृहं यस्यास्तथाविधायाम् । गहना दुर्वि-वेका अभमयादिवहिःकोशा यस्यास्तथाविधायाम् । हृद्रुद्धिः सैव गृहतीति गृहा तस्याम् । आनन्दमयकोशगृहेश्वरः ॥२४॥ उपदेशसंव्यवहारार्थम् ॥ २५ ॥ भास्यारोपे करोतीव, तदप-वादे नकरोति । निखभानस्य कृतलाभावादिखर्थः ॥ २६ ॥ रज्ञयति शोभयति । मधुर्वसम्तः ॥ २७ ॥ चमत्कारा आरोप्ये सत्तास्कृर्तिप्रदानह्याः । चिति मायाशवलेन यत्स्थितं पूर्वकामक-मैवासनानुसारेण नियतं चमःकुर्वन्साविभीवयन्ति । तांश्विध-मत्कारानेव नामकल्पनया व्यपदिशति-केचिदित्यादिना । सर्गमेदेन नभोबहुलोकिः ॥ २८ ॥ २९ ॥ भावनिकारा 'जायतेऽस्तिवर्धतेविपरिणमतेऽपक्षीयतेनश्यति' इति यास्कोक्ताः आदिपदाद्वणमेदास्तेषां जात्या वैचित्र्येण औचित्येन च विचि-

स एप चिन्मयः सुक्ष्मः सर्वेद्यापी निरञ्जनः। इमं भास्त्ररमाभासं करोति नकरोति च ॥ २६ सा चिद्त्यन्तविमला जगद्धं जगित्कयाम्। इमां रञ्जयति प्रान्न रसेनेव मधुर्रुताम्॥ 50 चारवो ये चमत्काराश्चितश्चिति यथास्थितम्। चमत्कुर्वन्ति किल ते तेन केचिक्रभोभिधाः॥ २८ केचिज्जीवाभिधानाश्च केचिश्चित्ताभिधानकाः। कैचित्कलाभिधानाश्च केचिद्देशाभिधानकाः ॥ २९ केचित्रियामिधानाश्च केचिद्वव्यामिधानकाः। केचिद्भावविकारादिजात्यौचित्याभिधानकाः ॥३० प्रकाशाभिधानाः केचित्केचिष्छैलतमोभिधाः। अर्बेन्द्राद्यमिधाः केचित्केचिद्यक्षाभिधानकाः॥३१ निरिच्छस्यस्वभावेन वसन्तेन यथाङ्करः। तन्यते तद्वदेवेयं जगलक्ष्मीश्चिदात्मना ॥ 32 चिदेवासु समग्रासु सर्वदेवैकिकैव हि। त्रैलोक्याम्भोधिसंस्थासु शरीरजलजालिका ॥ ३३ शरीरपङ्काम्रान्तमनोभ्रमरसंभृताम्। आस्वादयति संकल्पमधुसत्तां चिदीश्वरी॥ 38 ससुरासुरगन्धर्वे सदौलार्णवकं जगत्। चिति स्थितं प्रवहति जलावर्ते जलं यथा॥ 34 बन्धचित्तमयाचारचारुचश्चरचित्रकम् । संसारचकं चिचके भ्राम्यति भ्रमभाजनम् ॥ 38

त्रामिधानकाः ॥३०॥ तानेव प्रपत्रयति-प्रकाशेति ॥ ३१ ॥ चितः कि खभोगेच्छया जगत्मृष्टिनेत्याह-निरिच्छेति । तथा चोक्तं श्रीमद्रौडपादाचार्यैः—'भोगार्थं सृष्टिरित्येके कीडार्थमिति चापरे । देवस्थेष खभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा ॥' इति । नचैवं 'सोऽकामयत वह स्यां प्रजायेय' इत्यादिश्रतिविरोधः । 'अस्य महतो भृतस्य निःश्वसितमेतद्यद्ययेदो यजुर्वेदः' इस्यादि-श्रुखन्तरे इच्छाप्रयक्षायनपेक्षनिःश्वसितप्रायलोकेः 'तदैक्षत बह स्यां प्रजायेय' इति समानतात्पर्यकथुत्यन्तरानुगुण्याय चा-कामयतेत्युकेरचेतनप्रधानादिकर्तृकताशङ्कावारणमात्रतात्पर्यक-लात् । तथाच भगवतो बादरायणस्य सूत्रम् 'कामाच नानुमा-नापेक्षा' इति ॥ ३२ ॥ त्रैलोक्यलक्षणानामम्भोधीनां संस्थासु तात्विकस्थितिषु विचार्यमाणासु चिदेव शरीरं वास्तवतत्त्वं त-द्रपा जलजालिका जलसमृह्स्थानीया नान्यदित्यर्थः ॥ ३३ ॥ तस्या मनःसंकल्पकृतभोकादित्रिपुटीप्रकाशकलमेव भोकविवे-काद्गोक्तुलमिति कल्प्यत इलाशयेनाह—शरीरेति । ईश्वरी खारोपितसर्वावभासनसमर्था ॥ ३४ ॥ एवं कर्तृत्वमपि तस्याः खाध्यारोपितकारकपरिश्रमणप्रथानिमित्तलमेवेत्याशयेनाह्य-स-सुरासुरेति । प्रवहति परिवर्तते ॥ ३५ ॥ बधातीति बन्धस्त-थाविषो यश्वित्तमयः कर्तृलभोक्तलरूप आचारस्तेन चारवश्वश्व-राक्षपलाक्ष व्यष्टिजीवसंसरणचिकका यसिंस्तथाविधं जीवस- चिष्यतुर्भुजरूपेण जघानासुरमण्डलम् । कालो जलदखण्डेन सायुधेन यथाऽऽतपम् ॥ ३७ चित्रिनेत्रतया ब्रह्मन्वपशीतांश्चिह्नया । गौरीकमलिनीवक्रपद्मषद्गपद्तां गता ॥ 36 विष्णोः पद्मालितामेत्य चिद्ध्यानाधीनमानसा । त्रयी नलिन्याः सरसीं धत्ते पैतामहीं स्थितिम् ३९ चितो ब्रह्मन्यिचित्राणि दारीराणीह भूरिदाः। पत्राणीय तरोहेंस्रि केयूरादिक्रियेव च ॥ 80 चित्समस्तसुरानीकपरिवन्दितपादया। त्रैलोक्यचुडामणितां धत्ते वासवलीलया ॥ 88 चित्सुमासुरतामेख त्रेलोक्योदरडम्बरे । पतत्युदेति संयाति स्वात्मन्येवान्धिवारिवत् ॥४२ चिषान्त्रिका चतुर्विश्च अवभासं वितन्यती। विकासयति निःशेषभूतसत्ताकुमुद्वतीम् ॥ 83 चिद्दर्पणमहालक्ष्मीस्त्रिजगत्प्रतिविभित्रतम् । युह्रात्यनुष्रहेणान्तः स्वगर्भमिव गर्भिणी ॥ 88 चिचतुर्दराभूतानां मण्डलानि महान्ति च। भूतीकरोति वारिश्रीः समुद्रस्वमिवाम्बुधिः॥ ४५ विचित्रालोककुसुमा घनसंकरपपल्लवा। व्योमकेदारिकारूढा ससीघर्फलशालिनी ॥ जीवजालरजःपुञ्जवासनारसरञ्जिता । संवेदनत्वग्वलिता चित्तेहाकलिकाकुला॥ 80

मष्टि संसारचर्क मायाशबले चिचके श्राम्यति ॥ ३५ ॥ वर्णि-तलक्षणं चित एव सर्वकर्तृभोक्तत्वं विशिष्य वर्णयति—चिदि-खादिना । कालो वर्षतुः सायुधेनेन्द्रधनुर्वेजयुक्तेन जलदखण्ड-**नेपेणातपमिव ॥** ३७ ॥ ३८ ॥ विष्णोर्नामिपद्मे अरितां भ्रम-रसमिव एत्य प्राप्य । त्रयी वेदास्त्रष्ठक्षणाया नितन्याः सरसीं महासरोभूतां स्थितिं मूर्तिम् ॥ ३९ ॥ केयुरादीनां कियानि-र्मितिरिव ॥ ४० ॥ चूडामणितां वन्यतामिति यावत् ॥४१ ॥ सुभासुरतां सूर्यादितेजोरूपताम् ॥ ४२ ॥ साक्षादपि तस्या आहादप्रधानिमित्ततामाह--चित्रनिद्रकेति ॥ ४३ ॥ महती **कक्ष्मीः खच्छभाखर**तालक्षणा शोभा वैष्णवी माया वा ॥४४॥ चतुर्दशभुवनस्थानां भूतानाम् । भूतीकरोति रात्तां संपादयति । यथा वारिश्रीः रसशक्तिः अम्बुधिर्जलसमूहरूपा सती समुद्रस्रं समुद्रस्टर्मसत्तां संपादयति तद्वत् ॥ ४५ ॥ इदानीं तामेव चितं ळतारवेन रूपयति-व्योमेलादिना । व्योमात्र मायाकाशस्तह-क्षणायां केदारिकायां क्षेत्रभक्ती रूढा हिरण्यगर्भात्मना अड्ड-रिता । सत्तीषाः सर्वपदार्थसत्यतास्तष्टक्षणफलदायिनी ॥ ४६ ॥ संवेदनानि सविकल्पज्ञानानि । चित्तेहाश्चित्तवृत्तयः ॥४७॥४८॥ जडाः रोहादय एव गुल्मका मूलप्ररोहा यस्याः । विष्रहाश्चतु-र्विधशरीराष्येव प्रन्थयस्तैबंलिता । आमूलाप्रं प्रशृत्तिप्रतानैः परिवर्तिता येष्टिता ॥ ४९ ॥ पेलवमित्यादिविशेषणविशिष्टं

१ अत्र फर्डदायिनीति पाठी व्याख्यानुगुणः स्यात्.

अतीतासंख्यत्रिजगत्केसरोज्ज्वलरूपिणी। अनारतस्पन्दमहाविलासोष्ट्रासहासिनी ॥ 86 सर्वर्तपर्वपरुषा जङ्गेलादिगुल्मका। विव्रह्मिन्थविता मुलाम्परिवर्तिता॥ ४९ चिल्लतेयं विकसिता पेलवं सदसद्वपुः। विचित्रं दृदयकुतुमं परामशीसहं बहु ॥ ५० अनयेह हि सर्वत्र च्छायाच्छमिव जन्यते। मन्यते तन्यते वस्तु गीयते क्रियतेऽपि च ॥ ५१ महाचितानया नित्यं भासन्ते भास्करादयः। देहाः स्वदन्ते च मिथस्तत्सिच्चज्जडिवयुमैः॥ ५२ चिता चावर्तवर्तिन्या सिद्धान्येव प्रमृत्यति । जगज्जालरजीलेखा तत्सत्ता दृश्यदेहिनी ॥ ५३ चित्सर्वे जगदारम्भमिमं प्रकटयत्यस्य । त्रैलोक्यदीपकज्ञिखादीपो वर्णाश्रयं यथा ॥ 48 चिश्चन्द्रविम्बे विमले शशवत्प्राप्य संगमम्। सर्वत्र लक्ष्यतामेति पदार्थश्रीजगद्गता ॥ 44 चिद्रसायनसेकेन पदार्थपटलावली। रूपमेति फलं चेय प्रावृद्धसिकेष सल्लता॥ 48 चिच्छाययैव सर्वस्य जाडपं सम्यगुदेति च। सर्वस्यास्य दारीरस्य गृहस्येव तमःस्विह ॥ 40 विश्वमत्कृतयो देहे न भवेयुरिमा यदि। त्रैलोक्यदेहास्त्यक्त्वैते न स्पृशेयुः किलाकृतिम् ५८

दर्यकुसुमं अनया जन्यत इति परेणान्ययः । सदसद्वपुरित्यस्य परामशीसहमित्यपपत्तिः ॥ ५० ॥ छाया चन्द्रादिकान्तिरि-बाच्छं रफ्टं दश्यकुसुमम् । मन्यते अभिमानविषयीकियते । तन्यते विस्तार्थते ॥ ५१ ॥ तस्याश्वितः सत् सत्यं चित् चेत-नम् । जटं चेत्यनिवेकप्रयुक्तिभीकृभीग्यताविभ्रमैर्दपत्योदेहा वस्तुतोऽमञ्जलह्या अपि मिथः खदनते प्रीतिविषया भवन्ति ॥ ५२ ॥ आवर्ती वात्यावर्तस्तद्वर्तिन्या चितैव सिद्धा तत्सत्त्रयैव दृश्यदेहिनी दर्शनयोग्याकारवर्ता जगजालरजोलेखा अन्या चि-द्यतिरिक्तेव भूला प्रमृत्यति ॥ ५३ ॥ त्रैलोक्यप्रकाशनदीपकशि-स्नाभता चित् । दीपः प्रसिद्धो वर्णाश्रयं रूपवद्भव्यं यथा प्रकट-यति तद्रत् ॥५४॥ चिद्धीनप्रकाशतामेव जगतः प्रपश्चयति--चिश्वन्द्रबिम्बे इत्यादिना ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ननु चिद्यदि रसा-यनमिव पदार्थपटलावली सर्वतो व्याप्य स्फुरति तर्हि तत्र जाञ्यं न स्यात् । नहि सर्वतो रसाई शुष्कतायाः प्रसिक्तर-स्तीति तत्राह-चिच्छाययवेति । यथा पश्चीकरणेन यहस्यापि सर्वतक्षेजोव्याप्तिसलात्तदन्तस्तमः प्रसत्त्यभावेऽपि तैजसभाख-रताया भूतान्तरभागरमिभवाद्वहिरमिव्यक्तसौरालोकव्याप्तौ त-त्प्रयुक्तच्छायया अन्तस्तम उदेति, तथा घटाद्यविष्ठानिद्धा-अप्यध्यस्तेनाभिभवाद्वहिधाक्षुषवृत्त्याद्यभिव्यक्ति-धाप्त्या स्फरणे तच्छायया अन्तर्जाख्यमुदेतीत्यर्थः ॥ ५७ ॥ तथाच यथा सीराद्यालोकवशादेव यृह्श्रासादाद्याकृतिवैचित्र्य- चिदाकाशमकाशेऽस्मिन्संकल्पशिशुधारिणी।
कियाकुळवधूर्देहगृहे स्फुरित चञ्चला॥ ५९
चिदालोकं विना कस्य रसनाथे स्फुरन्नपि।
कथं कदा प्रकटतामेति दृष्टः क वा रसः॥ ६०
भ्रुण्बङ्ग स्वाङ्गशास्त्रोऽपि कुन्तलालिलतोऽप्यलम्।
चिन्मज्जनं विना देहगृक्षः क इव राजते॥ ६१
वर्धते विलुठत्यत्ति चिद्यराचरकारिणी।
चिदेवास्तीतरकास्ति चिन्मात्रमिदमुरिथतम्॥ ६२

वसिष्ठ उवाच।

इत्युक्तवांस्तदा व्यक्षः सुधांगुस्वच्छया गिरा।
पुनः पृष्ठो मया राम सुधांगुस्वच्छया गिरा॥ ६३
यदि सर्वगता देव चिदस्त्येका तदात्मकः।
तदयं चावनिस्फारमयान्धेव न चेतति॥ ६४
अयं चित्वान्पुरा भूत्वा चिद्धीनः संप्रति स्थितः।
इतीयं कल्पना लोके प्रत्यक्षानुभवा कथम्॥ ६५

ईश्वर उवाच । श्रुण्वेतद्खिलं ब्रह्मन्यदा पृष्टं वदामि ते।

सिद्धिस्तथा देहान्तर्भिव्यक्तप्रमातृचिश्चमत्कृतिवशादेव गवाश्व-घटपटाबाकृतिवैचित्र्यसिद्धिनीन्यथेखाह—चित्रमत्कृतय इति । त्रे**लोक्यदे**हाक्षेलोक्यान्तर्गताः साकारपदार्थाः । एते छायाजाङ्ये त्यक्ला आकृतिमाकारमपि न स्पृशेयुः साधकान्तराभावादिध्यर्थः ॥ ५८ ॥ किया विहितनिषिदेषु प्रवृत्तिः सेव कुळवधुः ॥५९॥ उक्तमर्थमनुभावयितं व्यतिरेक्सुखेनापि प्रसिद्धोदाहरणेषु सम-र्थयति—चिदालोकमिति द्वाभ्याम् । स्फुरन् संचलन् व्यामुव-भपि प्रकटतां एति यत् हष्टः । किंबुत्तत्रयेण प्रकारकालदेशानां निरासः ॥ ६० ॥ स्वाङ्गानि शाखाः यस्य । कुन्तरुालिः केश-समुह्नो छता यस्मिन् । चिन्मजनं चिद्याप्ति विना ॥ ६१ ॥ एवंच चिद्धीनजन्मगृद्धादिसवैभावलाजगजलाधीनसवैभाव-स्तरक्षादिर्जलमिव चिदेव परमार्थत इति सिद्धमित्यपसंहरति-वर्धत इति ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ यद्येका चिदेवास्ति तत्तर्हि तदा-त्मकः अयं देहो निदामुर्च्छामरणेषु चकाराहृदयान्तरे च अव-निस्फार्मयी मृद् प्रचुरभूतविकारभूता अन्धा नेत्रादिहीना भि-सिरिय न चेतित तत्कथांमेखर्थः ॥ ६४ ॥ तदेव स्पष्टं पुन-राह-अयमिति। अयं वहादिः पुरा दश्यभावातपूर्वं जीवनदशायां च चिरवान् चेतनावान्। 'तसौ मलधें' इति भलाजश्लाभावः। भूला संप्रति दर्यमरणादिदशायां चिद्धीनः स्थित इतीयं क-ल्पना कथं चितोऽविनाशिखभावलादपरिणामिलाच कथमपि जाज्यायोगादिति प्रश्नार्थः ॥ ६५ ॥ यथा तचेतनस्यैव जीवा-दित्वं तदुष्यतामिति प्राक्तनप्रश्लोत्तरमश्रुत्वेव प्रश्नान्तरे वसिष्ठेन कृते द्वयोरप्युत्तरं सहैव वक्तुकाम ईश्वर उवाच---शृण्विति । अर्बिलप्राक्तनप्रश्लोत्तरसहितं सर्वम् ॥ ६६ ॥ वश्यमाणोपोद्धा-तेन प्रथमं विम्बप्रतिविम्बिबेविध्यं देहे दर्शयति--विदिति।

महानयं त्वया प्रश्नः ऋतो ब्रह्मविदांवर॥ દ્દફ चिद्स्ति हि शरीरेह सर्वभूतमयान्मिका। चलोन्मुखात्मिकका तु निर्विकल्पा परा स्मृता६७ संकल्पवृद्धा सैवान्तः स्वयमन्येव संस्थिता। संकल्पितेतरवरा दौःशील्यं स्त्री यथा गता॥ ६८ स एव हि पुमान्कोपाद्यथेहान्य इच क्षणात्। भवत्येवं विकल्पाङ्का चित्स्वरूपान्यतां गता ॥ ६९ विकल्पकल्पिता ब्रह्मश्चित्स्वरूपपरिच्युता। जाङ्यं क्रमाद्भावयन्ति प्रयाति कलनापदम् ॥ ७० चित्स्वयं चेत्यतामेति साकाशपरमाणुताम्। शब्दवीजात्मिकां पश्चाद्वाततनमात्रगामिनी ॥ देशकालविभागान्ता तन्मात्रवलिता क्रमात् । जीवो भृत्वा भवत्याद्य बुद्धिः पश्चादहं मनः॥ ७२ मनस्त्वं समुपायाता संसारमवलम्बते । चण्डालोऽसीति मननाचण्डालत्वमिव द्विजः॥७३ संकिएता प्रवोधेन जाड्या विश्वप्रवोधिनी। शबलं रूपमासाद्य संकल्पाद्यात्यनारतम्॥ OS

ह किल । चलायां व्यष्टिसमष्टिनुद्धी उन्सुखारिमका आसक्तख-भावा । विज्ञानमयशब्दवाच्यकर्तृभोक्तस्वभावेलर्थः । परा कृट-स्थिचित्तु निर्विकल्पा ॥ ६७॥ तस्याश्वरुखमावलमिव मेदोऽप्य-पाधिकृत एवेत्याशयंनाह—संकल्पेति । 'इन्ताहमिमास्तिक्षो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इति श्रुतिदर्शितसंकल्पेन स्वात्मानमेव जीवात्मना बुद्धा बुद्धवती । 'आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च' इति कर्तरि क्तः। यथा सुशीलैव स्त्री खंगे संकल्पित इतरो वर उपपतिर्थया तथाविधा सती दैं।:शिल्यं गता सती द्वितीयेव संपन्ना तद्वत् ॥ ६८ ॥ पुमान् मनुष्यः अन्यो राक्षस इव ऋरो भवति तद्वत् ॥ ६९ ॥ एवं-रीत्या खरूपात्परिन्युता चित् कमाजाज्यं जडतादात्म्यं भाव-यन्ती सती कलनायाः सधिकल्पसुद्धेः पदं विषयतां प्रयाति खकल्पन्यवेत्यर्थः ॥ ७० ॥ आकाशसहितानि परमाणूनि सु-क्ष्मभूतानि तद्भावरूपां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धरूपभोग्यानां बी-जात्मिकां चेखतां मायोपलक्षितचिद्रिपयतां एति पश्चाद्वातत-न्मात्रं समष्टिप्राणभावस्तद्वामिनी भवति ॥ ७१ ॥ तथाभूता-यास्तस्याः पश्चीकरणप्रयुक्तस्थूलभूतात्मकसमष्टिव्यष्टिस्थलदेह-भावं तदन्तर्लिङ्गदेहे जीवभावं तत्र बुख्यादिभावं च दर्शयति— देशेति । तन्मात्रैः सूक्ष्मभूतैः पश्चीकरणेन विलता संबिलता सती समद्वीपचतुर्दशलोकात्मकदेशविभागान्ता निमेषादिद्विप-रार्धावधिकालविभागान्ता च कमाद्भवति । ततस्तत्र प्राणधार-णार्ज्जीवो भूला बुद्धिरहंकारो मनः अर्थाचित्तं च भवतीत्वर्थः ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ब्रह्मचिदेव अप्रबोधनाज्ञानेन शबसं रूपमा-साय देहजीवाकारेण संकल्पिता सती तत्प्रयुक्तजाच्येन अवि-श्वप्रवीधिनी असर्वहा भूला पुनःपुनर्भीगसंकल्पादनारतं बाति

अनन्तसंकरपमयी जाड्यसंकरपपीवरा। चिज्जाङ्यान्मोदमायाति पयः पाषाणतामिव ॥ ७५ ततश्चित्तं मनोमोहो मायेति विहिताभिधा। जाड्यं निप्णमाधित्य संसारे जायते मुने ॥ " इर मोहमान्धमुपायाता तृष्णा निगडपीहिता। कामकोधभयोपेता भाषाभावातिपातिनी ॥ ध्यकानन्तनिजाभोगा व्यवच्छेवविकारिणी। द्वःखदावानलातप्ता शोकाशिवकशाशया ॥ ध्यमसीति भावेन शून्येन विकलीकृता। देहमात्रगृहीतास्या परं दैन्यमुपागता ॥ मग्ना मोहमहापङ्के जीर्णेच वनदन्तिनी। भावाभावलतादोला परिलोलदारीरका ॥ असारापारसंसारविकारव्यवहारिणी। तापोपनप्रद्वया रागतेजोनुरञ्जिता ॥ निजय्थपरिभ्रष्टा मृगीवावदातौ गता। आविर्मावोदिताकारा तिरोभावेऽस्तमागता॥ ८२ स्वसंकल्पोपबातासु भीता संग्रमद्रष्टिपु । पलायते वाण्यन्यासु वेतालेष्यिव वालिका ॥ उष्ट्रीव मधुरं विन्दुं वाञ्छते भावितं सुखम्। अवान्तरपरिभ्रष्टा दोषाहोषं पतत्यधः॥ 28 परं वैषम्यमायाति संकटात्संकटं गता। दुःखादुःखं निपतिता विपदो विपदि स्थिता ॥ ८५ नानानर्थगणोपेता चेष्टापरवशाशया ।

धंसरति ॥ ५४ ॥ पयो जलं पाषाणतां करकालमिव मोहं जीवताश्रममायाति ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ भावो विभवः । अमावो हारिधं तदनुपातिनी ॥ ७७ ॥ व्यवच्छेदेषु भार्यापुत्रादिवि-योगेषु शोकाविविकारिणी शोकरशिवेश्व कृशाशया कृपणा ॥ ७४ ॥ इयं प्रत्यक्षदुःसमोहादिखभावैवाहमस्मीति भावेन भ्रमेण ॥ ७९ ॥ ८० ॥ रागेण तेजसा क्रोधेन चानुरक्षिता ॥ ८९ ॥ विभवानां भूतमात्राणां वा आविर्भावे उदिताकारा इष्टा अमिव्यक्ता वा । अस्तं दैन्यं तिरोभावं वा ॥ ८२ ॥ ॥८३॥ यथा उष्ट्री कण्टकनिम्बपत्रादिषु चर्व्यमाणेषु खवास-नाभावितं बिम्दुमल्पतरं मधुरं रसं काहृते तद्ददुःखबहुलेषु विषयेषु सुखं काह्नत इलार्थः । अथवा यथा उर्धा विषमप्रांश्चव-प्रप्रहरवृक्षामसंबद्धमधुपटलप्रसृतमधुबिन्दुलेहनवाञ्ख्या वृक्ष-मारुद्धर्युगपत्पुरःपादोन्नयनमात्रात्खदेहभारेणावान्तरपरिभ्रष्ट। वाष्यधो विषमदेशे पति तद्वत्पततीत्यर्थः ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ नरकादिभूमिषु कष्टात्कष्टमनुप्राप्ता ॥ ८६ ॥ कमान्मानुष्यला-भेपि बाल्यात्प्रसृति व्यवहारकोशलाभ्यासाद्वेदम्यात्कीशलाद्वे-दग्ध्यात्रं काव्यनाटकतकीयभ्यासमुपागता सती विचित्रस्य खब-न्धस्य धनगृहक्षेत्रपरिवारादेनिर्माणे यः पराक्रमस्तरपदमेव

कष्टात्कष्टमनुप्राप्ता परितापानुतापिनी ॥ ८६ कमादाबद्धवैदग्ध्याद्वैदग्ध्याङ्गमुपागता । विचित्रवन्धनिर्माणपराक्रमपदं गता॥ ८७ सर्वतः शङ्कते भीता प्राणात्ययमुपागता । श्रीणतोयेव शफरी विवर्तनपरायणा॥ 26 बाल्ये विवशसर्वार्था यावने चिन्तया घृता। वार्धकेऽप्यतिदुःखार्ता मृता कर्मवशीकृता॥ ८९ जायते स्वर्गनगरे नागी पातालकोटरे। आसुरी दैत्यविवरे नरस्त्री वसुधातले ॥ ९० राक्षसी राक्षसाधारे वानरी वनकोटरे। सिंही गिरीन्द्रशिखरे किन्नरी कुछपर्वते॥ 98 विद्याधरी देवगिरी व्याली च वनगर्तके। लता तरी खगी नीडे वीहत्सानी वने मृगी॥ ९२ ८१ | होते नारायणोऽम्मोधौ ध्यानी ब्रह्मपुरेऽक्वजः। कान्तागतो हरः शैले स्वर्गे सुरवरो हरिः॥ ९३ दिनं करोति तीक्ष्णांशर्वर्षत्यम्बधरो जलम । करोति श्वसनं संवित्सपर्वतमहोद्धिम्॥ 98 ऋतुचकं प्रवहति सहसा कालमण्डलम्। दिनरात्रितयोपैति तेजस्तिमिरतां क्रमात्॥ 64 कचिद्वीजरसोल्लासात्कचित्पापाणमौनिनी। कचिन्नदी रसवती कचित्कुमुद्विस्तृतिः॥ ९ ह कचित्फलावलीपाकैः कचित्काष्टानलादिभिः। कचिच्छैत्यहिमद्वारि कचित्वादि न किंचन ॥ ९७

गता न मोक्षोपयोगिविवेकपदमित्यर्थः ॥ ८०॥ एवं क्रमेण वयःपारं प्राप्य प्राणात्ययस्यागतासती सवैतोभीता शहते। विवर्तनं भूमा छुठनं तत्परायणा ॥ ८८ ॥ संक्षेपोक्तं प्रपन्न-यति-बाल्ये इति । विवशाः पराधीनाः सर्वे अधी भोगा यस्याः । चिन्तया वित्तविषयादिचिन्तया । आत्रता पिहितवि-वेका ॥ ८९ ॥ कर्मगतीरेव प्रपश्चयति—जायत इत्यादिना ॥ ९० ॥ कुलपर्वते हिमवदादी ॥ ९१ ॥ देवगिरी मेरी । वीरुत् गुल्मिनी ॥ ९२ ॥ नारायणादीनामपि जीवगतिषु प्रप-थनं 'पदमेव हि तनित्यमनित्यापदिनः स्मृताः' इत्यादिशिवपु-राणातुरोधात् । नारायणादिसारूप्यमुक्तजीवविषये वा योज्यम्। अथवा इत आरभ्य न जीवगतयः प्रपश्यन्ते किंतु चितेः सर्वव्यापारकर्तृतैवेखदोषः । कान्तया गतः अर्धाक्षसंगतः ॥९३॥ श्वसनादिपर्देर्वाय्वादिव्यापारा लक्ष्यन्ते ॥९४॥ ऋतुषठितं संव-त्सरचक्रम् । कालमण्डलं युगमन्बन्तरादि ॥ ९५ ॥ कविद्व-क्षादी बीजात्मकस्तदश्चरताहेत् रसात्मकश्चोह्नासो यस्याः । पा-षाणमीनिनी निश्वला ॥ ९६ ॥ तृतीयान्तपदद्वयानन्तरमुपल-क्षितेसम्याहार्यम् । शैत्येन हिममिवाचरत् हिमत् वारि जलं यस्याः । खं आकाशं आदिपदाद्वायुध्य अन्यन्न किंचन ॥ ९०॥

कियेतु अविक्रिताकारा कियेत्कष्टा शिला कियत्।
कियेतीलाथ हरिता कियेदिनः कियेत्मही॥ ९८
सर्वात्मत्वात्स्वंगत्वात्स्वंद्राकित्वयोगतः।
सर्वात्वादेवंकपैय खाद्य्यच्छेय सा परा॥ ९९
चिक्रिनोति यथात्मानं येन यत्र यदा यदा।
तत्त्रथानुभवत्यम्बुस्पन्दाद्वीच्यादितां यथा॥ १००
हंती कौश्ची बक्री काक्री सारसी तुरगी वृक्षी।
बक्री बलाका हरिणी वानरी किसरी शुकी।
धीः श्रीहीः प्रीती रतिश्च शंवरी शवेरी शशी॥१०२
पतास्वन्यासु चान्यासु परिग्रमति योनिषु।
विवर्तमानसंसारे जलायतें तृणं यथा॥ १०३
विवर्तमानसंसारे जलायतें तृणं यथा॥ १०३

नानया सद्दगन्यास्ति मुग्धा बाला चलाऽबला१०४ एषा सा कथिता तुभ्यं जीवशक्तिर्महामने। प्राकृताचारविवशा वराकी पशुधर्मिणी ॥ १०५ कर्मात्मेत्यमिधां प्राप्ता शोच्यास्य परमात्मनः। अनन्तं दुःखबद्दुलं स्वयं विम्रममाभ्रिता॥ १०६ असदेवानयाकान्तं विनाशि सहजं मलम्। तण्डलेनेव कर्श्वकमनन्ययाऽव्यवस्थितम्॥ १०७ अनन्तविभवभ्रष्टा दौभीग्यपरितापिनी। शोचन्ती प्राप्य जीवत्वं भर्तहीनेव नायिका ॥ १०८ जडगतेरवलोकय शक्ततां निजपदस्मरणेन विनेह चित्। व्रजति कष्टमधःपतना यया यदरघट्टघटीघनपीठवत् ॥ 208

इत्यार्षे श्रीवा रामायणे बाल्मीकीये देव मीव निर्वाणप्रवरणे शिवपूजीपाड्याने चेत्योन्मुखचिद्विचारी नाम श्रिशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंदाः सर्गः ३१

ईश्वर उवाच ।
चिनोत्पलीकमेघेवं सदुःखासीति भावनात् ।
चित्स्वप्रक्षीवतामोहपतिता संम्रमे यथा ॥
अमृतापि मृतासीति विपर्यस्तमतिवेधः ।
यथा रोदित्यन्ष्टैव नष्टासीति तथैव चित् ॥
अकारणं विपर्यस्ता मतिर्म्रान्तमपि स्थिरम् ।
यथा जगत्पइयतीवं तथाहन्ता भ्रमाचिति ॥

कष्टा कुशकण्टकादिदुर्गमा ॥ ९८ ॥ सर्वशक्तित्वं माया तथो-गतः । सर्वाखादेवंरूपा जगद्रपेव । सर्वनाम्रो यृत्तिमात्रे पुंबद्धा-बर्छान्दसलाम कृतः । परमार्थतस्तु खादप्यच्छैव सा चिदि-लार्थः ॥ ९९ ॥ चित् आत्मानं स्वं येन भावेन यत्र यथा चिनोति विवर्तेनोपचयं नयति तथा तं भावमन्भवतीत्यर्थः ॥ १०० ॥ तान्भावान्पुनः प्रपश्चयति—हंसीत्यादिना । पुन-र्वकीष्रहणमतिदीर्घपादचभुजात्यन्तरसंप्रहार्थम् । एवं बलाकाप्र-हणमप्यतिधवलतूलकण्ठजातिप्रहणाय ॥ १०१ ॥ वटिकादयः पक्षिजातिभेदाः । शाली शारिका । श्रीती रतिरिति वृलोपे इति बीर्घः । शम्बरी माया ॥ १०२ ॥ योनिषु देहभेदेषु ॥ १०३ ॥ अवला दुर्वला ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ कर्मातमा कर्मानुसारख-भावा । तथाच श्रुतिः 'यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधु-कारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यो वै पुण्येन क-र्मणा भवति पापः पापेन' इति ॥ १०६ ॥ अनन्यया स्था-तिरिक्तसत्तास्कृतिंशून्यया अविद्यया अव्यवस्थितमनियतम् ॥ १०७ ॥ मर्तृहीना नायिकेवानाथा स्थितेति शेषः ॥ १०८ ॥ हे राम, त्वं जडगतेरविद्यायाः शक्ततां सामध्येत्रवलोक्तय । यदा-सादेतोयी पूर्णब्रहासभावापि चित् अरघद्रस्य घटीयश्वस्य वटीय प्रविष्टं घनपीटमाकाशस्तेन तस्यं तद्वत् निअस्य निर- चित्तं हि कारणं त्वस्याः संसारातुमवे चितेः।
न च तत्कारणं किंचिचित्त्वान्यत्यात्यसंभवात्॥ ४
एवं हि कारणाभावाचेत्यस्यासंभवादिति।
नासौ चित्तं ततश्चेत्यं यक्षतश्चेत्यते यया॥ ५
न दृश्यद्शनद्रपृक्षपं तैलमिवोपले।
न कर्तृकर्मकरणं दृशीन्दाविव कृष्णता॥ ६

तिशयानन्दपूर्णभावस्य घनसमुद्राद्विसकलजलोपलक्षितसर्वजग-दन्तर्भावनसामर्थ्यस्य च स्मरणेन विना देहमात्रपरिच्छित्राहं घटीमात्रपरिच्छित्रमहं भोगनिमित्तपुण्यव्ययं अल्पजलक्षरणे च मम रिक्ततेव संपन्नेति मन्यमाना पुनःपुनः खपतनाय अ-घोषो वजति तत्कप्रमित्यर्थः ॥ १०९ ॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे त्रि-शक्तमः सर्गः ॥ ३०॥

> जीवतादिनिषेधेन सा शुद्धा चित्रदृश्येते । मनःप्राणेन्द्रियद्वारा बहिरन्तःप्रथा यया ॥ १ ॥

एवं वर्णितप्रकारं जीवजगद्भावमलीकमसदेवाहानाश्विनोति आरोपेण संचिनोति । खप्ने क्षीवता मदिरामदस्तरकृते संमोहे पतिता ॥ १ ॥ वधूर्मप्रथा ॥२॥ भ्रान्तं कुलालचकादि यथा स्थिरं निश्चलं पर्यति तथा जगदपि स्थिरं पर्यति ॥ ३ ॥ तश्चित्तं किंचिद्वस्तु न । कृतः । चित्त्वस्य तदन्यलस्य च अल्यन्तमसंभवात् । अचित्त्वे जगदन्तःपातेन तत्कल्पनाहेनुलायोगादि-ल्याः ॥ ४ ॥ चितासत्त्वादेव तचेल्यजगतोऽप्यसत्त्वं सिद्धानिल्याः — एवमिति । यया चिता चित्तं यक्षतश्चेलते असी चित्

१ कञ्चूकमित्यत्रापी दीर्घदछन्दोत्तरीघादः,

न मातृमेयमानानि नमसीव नवाङ्करः। न चिच्चेतनचेत्यादि नन्दने खदिरों यथा ॥ नाइन्त्वत्वन्त्वतत्त्वादि पर्वतत्वमिवाम्बरे । सदेहत्वान्यदेहत्वे शह्वत्वमिव कजाले॥ नानाना न चाप्यन्तरणाविव सुमेरवः। नच शब्दार्थशब्दश्रीमेहोपरलता यथा॥ नेतिनेति न चैवार्कमण्डले रजनी यथा । न वस्तुतावस्तुते च तुपारे तु यथोष्णता ॥ १० न शून्यताशून्यते वा शिलाकोश इव द्रमः। शुन्यताशुन्यता नाम महती ख दवाखता ॥ ११ केवलं केवलीभावस्वच्छतेवावशिष्यते। न चित्तात्कस्यचिद्वोषाज्ञातयैतदवाप्यते ॥ १२ तत्सर्वभावनामात्रेणानर्थः प्रकृतः स्थितः । तज्ञेऽप्यभावनामात्रेणानर्थ उपशाम्यति ॥ १३ तज्हेऽप्यभावनामात्राहतेऽन्यत्रोपयुज्यते। न तुणं न च त्रेलोक्यमिति स्वायत्ततात्र या ॥ १५ स्वायत्त एव चैषोऽथीं दुःसाध्यो भावनास्थितः।

षेधादेव चिति चक्षुरादिप्रयुक्तदश्यदर्शनद्रष्ट्रह्पत्रिपुटीनिषेधोऽपि सिद्ध इलाइ-नेलादिना । दशि चिति ॥ ६ ॥ चित्रित्तरृति-**श्वेतनस्तदाश्रयश्वेत्यानि तद्विषयाः। आदिपदान्मन्तृमतिमन्तव्य**-बुद्धिषोधबोद्धव्या अहंकत्रेहंकाराहंकार्याणि गृह्यन्ते ॥ ७ ॥ तस्वं परोक्षवस्त्वन्तरत्वम् । आदिपदात्तदाश्रयतव्याप्यतत्संबन्धाः गृ-ह्यन्ते ॥ ८ ॥ नाना जीवनेदा अनाना प्रतिदेहमात्माभेदाध्या-साक्षापि न । अणी अन्तः सुमेरव इव । शब्दा नामानि, अर्था रूपाणि तेषां शब्दश्रीः कथापि नास्ति ॥ ९ ॥ 'अथात आ-देशो नेति नेति' इत्यादयः शास्त्रीयसर्वदृश्यनिषेषा अपि तत्त्व-प्रदर्शनपर्यन्तमेव । दृष्टे तु चित्तत्त्वे प्रतियोग्यप्रसिद्धेस्तेऽपि न संभवन्तीत्याह—नेतीति । नस्वतिरिक्ती वस्तुताऽवस्तुताख्य-धर्मावपि न स्तः ॥ १० ॥ शिलायाः कोशे गर्भे । खे यथा प्रसिद्धा महती शून्यता अशून्यता च केवलं केवलीभावलक्षणा खरूपखच्छतेव विमर्शे अवशिष्यते नाणुमात्रमपि मिन्ना तथा विखपीति परेणान्वयः ॥ ११ ॥ ननु तर्हि हिरण्यगर्भात्मकं समष्टिचित्तमेवास्याश्रितः सर्वानर्थहेतुर्दीषः । यस्मात्तत एव निमित्ता बर्जार्वधशरीरेषु जातया अनया एतत्संसारदःखमवा-व्यते । नच तदस्मामिरुच्छेत्ं शक्यमित्याशक्क्याह—न चित्ता-दिति । विद्दोषाचितो दोषभूतात् कस्य हिरण्यगर्भस्य चित्ता-श्रिमित्ताज्ञातया एतदुःखमयाप्यत इति न किंतु तेन स्टा ये देहेन्द्रियविषयास्तेषु सर्वेष्वर्हममेति सत्या इति च भावनामा-श्रेणायं प्रकृतः संसारलक्षणोऽनर्थः स्थित इत्यर्थः ॥ १२ ॥ अतएव तत्त्वहे अभावनामात्राद्रपशाम्यतीत्याह—तज्हेऽपीति ॥ १३ ॥ अतएव तृणमिवापवदितुं शक्योऽपि त्रैलोक्यपदार्थो भावनावलादेवातस्वविदां दुःसाध्यः स्थित इस्याह—नं तृण-मिति ॥ १४ ॥ नन्वतिसुरुभो भावनात्यागः खत एव कुतो

यद्यन्न साध्यते पुंसा तत्कथं केव छभ्यते ॥ निर्विकल्पाद्वितीया चिद्यासी सकलगा सती। परमेका परा साच्छा टीपिका तेजसामप्रि॥ सैपावभासनकरी सर्वगा नित्यनिर्मला। नित्योदिता निर्मनस्का निर्विकारा निरञ्जना ॥ १७ घटे पटे बटे कुड़्ये शकटे बानरे खरे। असुरे सागरे भूते नरे नागे च संस्थिता ॥ साश्रिवत्तिष्टति सती स्पन्दते नच कुत्रचित्। दीपः प्रकाशनायेव करोति न पुनः क्रियाम् ॥ मलिनाप्यमुनैषा सा विकल्पाढ्या विकल्पिनी। जडेवाप्यजडाभासा न सर्वा सर्वगैव च ॥ २० निर्विकल्पा परा सहमा चिचिनोति स्वसंविदम्। वातावाताङ्गममीदि यथा यन्त्रादिवेष्टने ॥ २१ रूपालोकमनस्काराघलिता चिद्रबोधतः। बोधतश्चेष भवति निद्रां सदसती यतः॥ २२ सा परैव चिदल्यन्छा चिन्तामायाति चेतनात्। साधुरेष यथा साधुर्भाविते दुर्जनैषणाः॥ 23

न सिद्धति तत्राह-यद्यदिति । तुणमात्रस्यापि करत्रसारण-यमंविना लाभादर्शनादिति भावः ॥ १५ ॥ भावनामात्रसागे परमपुरुषार्थरूपा परमार्थचित्सर्वत्र सुरुमेलाशयेन तां वर्ण-यति--निर्विकल्पेत्यादिना ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ यथा दीपः पदार्थप्रकाशनाय खरूपस्थिलीव प्रभवति नत् कांचन कियां करोति तद्वविद्यीत्यर्थः ॥ १९ ॥ एषा एवंप्रभावापि सा चित् अमुना देहादिभावनेनैवाऽमलिनापि मलिना संपन्ना । एवमवि-कल्पाड्यापि विकल्पिनीति सर्वत्र योज्यम् ॥ २० ॥ इदानी सर्वगतायाः सुःभतमायाश्वित एकैकस्मिन्देह एव आनखाप्रं विशेषव्यामिलक्षणे उपचये युक्तिमाह—निर्विकल्पेति । निर्वि-कल्पा विशेषाभिमानादिविकल्पार्सार्शनी परा सर्वगता सुक्ष्मा चित् वाते प्राणप्रधाने लिइदेहे आवाता प्रतिविम्बमावेनानु-गता राती अङ्गानि इस्तपादावीनि मर्माणि हृदयादिस्थानानि आदिपदाद्विसप्ततिसहस्रनाडीभेदं च व्याप्य सर्वगतां खसंविदं ताबन्मात्रे आकृष्येव चिनोति उपचयं नयति । यथा दीर्धस्-क्ष्मकौशेयादितन्तुस्तर्क्षयन्त्रादिसुचीवेष्टने अतिदीर्घमपि स्वं ता-वन्मात्रे उपसंहत्य यदराद्याकारमुपचयं नयति तद्वदिलर्थः ॥ २१ ॥ अतएव जावतः पुरुषस्य चिद्वही रूपाद्यालोकनैरन्त-र्मनस्कारेश्व विलता सती बोधतो बोधपक्षे भवति । निदां यतो गच्छतस्त खप्ने वासनामयरूपालोकमनस्कारबलिता सती अ-न्तर्बोधतो बहिस्लबोधत इति पक्षद्वयेऽपि भवति । सुषुप्तौ लक्षानमात्रसाक्षिलाम्न किंचिदवेदिषमित्युध्यितस्य परामशीव सदसती सत्यप्यसत्प्राया अबोधपक्ष एव भवतीत्वर्थः ॥ २२ ॥ सा अखच्छा ब्रह्मचिदेव देहाचात्मता चेतना तद्नुकूलप्रति-कूलप्राप्तिपरिहारचिन्तामायाति । यथा साधुरेव दुर्जनसंगला चिरं चित्ते भाविते संस्कृते सति दुर्जनैषणाः प्राप्य असाधुर्भ-

मलेन स्वर्णमाथाति ताम्रतां मलमार्जनात्। पुनः कनकतामेति यथा चित्परमा तथा ॥ રપ્ स्वारोपशान्त्या स्वादशीं यथैति प्रतिमास्थितिम्। तथा सर्गमियागम्य योधात्स्वं याति तैत्पदम् ॥२५ अभाववेदनादस्याः संसारः संप्रवर्तते । स्वभाववेदनादेप त्वसदेवोपशाम्यति॥ २६ यदा चित्त्वाचिनोत्यन्तरन्यतामसतीं तदा। अहन्तामिव संप्राप्य नदयतीवाप्यनाशिनी ॥ २७ ईषत्स्पन्दादधोयाति भृगुप्रान्तात्तरोः फलम् । यथा तथैव संवित्तरधःपातो महानिव॥ 24 रूपादीनां तु संसेषा चित एवामलेव चित्। द्वित्वेकत्वे त्वबोधोत्थे योधन विलयं गते॥ ર્ सत्तामात्रेण चित्तस्य बोधिश्वतेन्द्रियादिष् । आलोकसत्तामात्रेण व्यवहारः क्रियास्त्रिव ॥ 30 बातात्कनीनिकास्पन्दस्तद्वीप्तिर्दृष्टिरुच्यते। तद्वाद्यवति तद्रपद्भपबोधस्तु चित्परा ॥ 38 रवद्यारुतौ जडौ तुच्छौ तत्सङ्गः स्पर्श उच्यते। मननं स्पर्शसंवित्तिस्तत्संवित्तिस्तु चित्परा ॥ ३२

वति तद्वदिखर्थः ॥ २३ ॥ अतएव पुनर्शद्वात्मताभाविते चित्ते स ब्रह्मैव भवतीत्याशयेन दष्टान्तमाह—मलेनेति ॥ २४॥ यथा शोभन आदशीं दर्पणः खारोपितमलस्य मार्जनेन शान्सा प्रतिमास्थितपुनःपुनःप्रतिबिम्बामिव्यक्तियोग्यां स्थिति स्यच्छ-तामेति तद्वश्चिद्प्यज्ञानाज्जडजीवभावादिसर्गमिवागम्य । 'वा ल्यपि' इत्यन्ननासिकलोपविकत्यः । आगस्य स्थिता तत्त्ववोधात्त-रकैवस्यपदं यातील्यर्थः ॥ २५ ॥ अभावः असदज्ञानं तद्वेदनात् ॥ २६ ॥ अन्यतां मेदम् । 'उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति' इति श्रतेरिति भावः ॥ २७ ॥ ईषत्सन्दाद्वन्तवियोज-कप्रच्यतिमात्रात् । भृगुर्गिरितटं तत्प्रान्तात् । एष जीवभावः ॥ २८ ॥ चित एवेति । अध्यस्तस्याधिष्ठानव्यतिरिक्तसत्त्वाभा-वादिति भावः । द्वित्वैकत्वे भेदाभेदाध्यासौ ॥ २९ ॥ चित्तस्य चित्तसाक्षिणः ॥ ३० ॥ सामान्येनोक्तं विशिष्य चक्षुरादिषु विभज्योपपादयंश्वित एव सर्वत्र फलीभावं दर्शयति-वाता-दिलादिना । चित्रंनिधिप्रेरिताद्वातात् व्यानवायोर्निमित्ताचक्षः-कनीनिकयोः रपन्दो भवति । तस्यां स्थिता दीप्तिर्श्तेजसमिन्द्रियं दष्टिश्वक्षुरित्युच्यते । तया कुल्याद्वारा जळांभव वाद्यं बहिःप्रा-पणीयं यदन्तः करणं तद्वति तद्याप्ते घटादो तद्रूपस्य तत्समाना-कारस्य रूपस्य नीलपीतादेर्घटाचाकारस्य च थो बोभः सत्ता-प्रथा सा परा चिदेवेखर्यः ॥ ३१ ॥ एवं स्पार्शनत्रिपटीस्थ-**छेऽपि लब्धार**ती जडी तुच्छी खतःसत्तास्क्रुर्तिश्रून्यी । अतिश्व-दधीनसत्तास्फ्रर्तिबलादेव तथोः सङ्गः स्पर्शेन्द्रियकल्पनानिमि-त्तलास्पर्श उच्यते । तद्वारा तत्संयुक्तशीतोष्णादिद्रव्येषु मननं

तदाकारा मनोवृत्तिः स्पर्शसंवित्तिरित्युच्यते । तत्संवित्तिस्तदव-िल्ला विषयान्तत्रिपुटीप्रथा तु परा साक्षिचिदेवेलार्थः ॥ ३२ ॥ एवं घाणेन्द्रियातमना गन्धातमना च विभक्तस्य गन्धतन्मात्रस्य नासाप्रवेशिपवनेन कृतः संबन्धो गन्धसंविदां गन्धाकारान्तः-करणवृत्तीनां निमित्तलाद्गन्धसंविदः । आसां त्रिपुटीनां मनसा हीनं विविक्तं यत्प्रयालक्षणं वेदनं सा परमा साक्षिचिदेवेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ एवं शब्दतन्मात्रस्य श्रवणेन्द्रियस्य व्यानवातस्य च सङ्गादुत्पन्ना मनोवृत्तयः शब्दसंबित्तयस्तासु मनोंशावना विद्वाय ग्रुप्रसदद्शी निर्धिकारा या साक्षिसंवित्सा परमा चित् । एवं रासनित्रपृटीसाक्षिनिदपि विविच्य द्रष्टब्येति ॥ ३४ ॥ एवं कर्मेन्द्रियप्रयत्तिनिभित्तसंक पारमकमनोयत्तिः तन्मालिन्यसाक्षितयाध्यात्मांचद्विचेचनीये बाह्—क्रियोन्मुखः लमिति ॥ ३५ ॥ एवं चान्तविहिश्व सर्वद्वेतस्फ्रुतैः साक्षिचिन्मान त्रात्मकरवे सर्व द्वेतं तस्यामेवाध्यस्तमिति फलितमित्याह—नि-दिति । यथा स्फटिकशिला स्वान्तर्गतं वनगिरिनदादि प्रतिबिन म्बसंनिवेशं घते तद्वत् ॥ ३६॥ धिकारादिविवर्जितमिति कियाविशेषणम् । अधिष्टानतस्वात्मना विकासदिविवर्जिनमिति बा॥ ३७॥ चित् जढं जगत् नो जडमजडं वास्तवभावं भावयन्ती सती खर्य स्वरूपे स्थिता भवतीखर्यः ॥ ३८ ॥ इदानीं चितो बहिःसंसर्णे स्थवरम्परां कल्पयन्नाह—स्य इति द्वाभ्याम् ॥ ३९ ॥ स्पन्दनः कर्मेन्द्रियगणः ॥ ४० ॥ सर्वेषा-मपि रथानां संसारे स्पन्दनं भ्रमणमेव कर्म । साध्यमित्यर्थः । जरामरणोपलक्षिता देहा एव पशराणि यत्र तथाविधं जीवख-गदोलाचकं आदेर्मलकारणस्येश्वरस्य विभूत्या मार्यश्वर्येण जा-

गन्धतन्मात्रपवनसंबन्धो गन्धसंविदः। आसां तु मनसा हीनं वेदनं परमैव चितु ॥ ३३ शब्दतन्मात्रश्रवणवातसङ्गान्मनोविना । सुषुप्तसदद्शी संवित्परमा चिदुदाहृता ॥ 38 क्रियोन्मुखत्वं संकल्पात्संकल्पो मननक्रमः। मननं चित्तकालुष्यमात्मा चिन्निर्मला भवेत् ॥ ३५ चित्रकाशात्मिका नित्या स्वात्मन्येवात्र संस्थिता । इदमन्तर्जगद्धसे सन्निवेशं यथा शिला ॥ 38 अद्वितीया द्धानेदं विकारादिविवर्जितम्। नास्तमेति न चोदेति स्पन्दते नो न वर्धते ॥ 30 संकल्पाजीवतामेत्य निःसंकल्पात्मनात्मना । चिज्जं नो जडं भावं भावयन्ती स्वसंस्थिता॥ ३८ रथस्वस्याश्चितेर्जीयो जीवस्याहंकती रथः। अहं कृते रथो बुद्धिस्ततो बुद्धेर्मनो रथः॥ 39 मनसस्त रथः प्राणः प्राणस्याक्षगणो रथः। अक्षीघस्य रथो देहो देहस्य स्पन्दनो रथः॥ Ro स्पन्दनं कर्म संसारे जरामरणपञ्जरम्। एवं प्रवर्तितं चक्रमिदमादि विभृतिजम्॥ પ્રશ

प्रतिभासत एवात्मन्यसत्स्वप्न इवाततः। मनागपि न सत्यात्म मृगतुष्णाम्यवतिस्थतम् ॥४२ रथस्त्वत्र स्मृतः प्राणः कल्पनाया मुनीश्वर । यत्र प्राणमरुत्तत्र मननं परितिष्ठति ॥ કર आलोकथ्रीः स्थिता यत्र रूपं तत्रैव राजते । प्राणो बली स्थितो यत्र तदेव परिवेपति ॥ ୪୪ यत्त्रयाति वनं बात्या तदेव परिघूर्णते। मनस्याकाशसंलीने न प्राणः परिवेपति ॥ ઝહ तेजस्यसत्तामायाते न रूपमिव राजते। प्राणे प्रशान्ते महति मनोन्तर्न मनागपि ॥ 38 वाखायामुपशान्तायां रजो न परिकम्पते । यत्र प्राणो मरुद्याति मनस्तत्रेव तिष्ठति ॥ 80 यत्र यत्रानुसरति रथस्तत्रैव सारधिः। प्राणसंप्रेरितं चित्तं याति देशान्तरे क्षणात्॥ क्षेपणोन्मुक्तपापाण इव तत्रान्यथा क्षयि। यत्र पुष्पं तत्र गन्धो यत्राग्निस्तत्र सोष्णता ॥ ४९. यत्र प्राणो मरुद्याति यत्रेन्द्रस्तत्र तच्छविः।

संवित्तिः पवनस्पन्दान्नाडीसंस्पर्शनश्च सः॥ 40 संवित्तिस्फारता चित्तं मनस्तत्वाणकोटरे। सर्वत्र विद्यते संविद्योमस्बच्छा जडाजडे ॥ 48 श्चम्यन्तीच तु सा प्राणस्पन्दादित्यनुभूयते। सत्तामात्रस्वरूपेण जडेवु समवस्थिता॥ 42 प्राणसंबोधिता वेत्ति वेदनात्मतया जहे। नानास्फारसमुहासैर्यः पूर्व परिवन्गति । प्राणेतीते त्वमनसः स एवाद्य न वेपति ॥ 43 पुर्यष्टके चित्परमा स्वे मुने प्रतिबिम्बति । आदर्श एव प्रतिमा रहयते नोपलादिषु॥ '48 मनः पुर्यष्टकं विद्धि सर्वकार्यककारणम्। तदैव मेदैः कथितमन्यैः स्वादायकल्पितैः॥ 44

यसादुदेति कलनाकुलदृश्यजालं यत्तत्र च स्थितवदित्यनुभूतमुद्धेः। यसान्मनो विपरिवर्तति देहदृष्ट्या सर्वे तु तत्परमवस्त्विति विद्धि विश्वम् ५६

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे मनःप्रतिपादनं नामैकत्रिकाः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्रात्रिंदाः सर्गः ३२

ईश्वर उचाच । मुने श्रुणु कथं कार्यकारिणी स्पन्दशालिनी ।

तम् ॥ ४१ ॥ मायिकलमेबोपपादगति-प्रतिभासत इति ॥ ४२ ॥ मनसस्तु रथः प्राण इति यदुक्तं तत्र वहयमाणार्थी-पयुक्तं विशेषं वक्तुमुपपत्तिमाह—रथ इति । कल्पनाया मान-सकल्पनाया निमित्तलाविति शेषः। तदेव दर्शयति-यत्रेत्या-दिना ॥ ४३ ॥ वही सूत्ररूपलात्सर्वधारणचालनसमर्थः ॥ ४४॥ एवं मनसोऽपि प्राणिकयानिमित्तलमस्तीतिव्यतिरेकमुखेनाह— मनसीति । आकाशे हार्दाकाशे संठीने सति ॥ ४५ ॥ रूपं यथा न राजते तद्वदित्यर्थः । एवं प्राणनिरोधादिष मनो निरु-ध्यत इत्याह-प्राणे इति ॥ ४६ ॥ अतएव तस्य तद्रथलमु-क्तमिखाह—यत्रेति ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ क्षेपणं यन्त्रविशेषः । अन्यथा प्राणनिरोधे मनः क्षयि । क्षीयत इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ प्राणः समष्टित्यष्टिरूपः । इन्दुश्चन्द्रसादंशभूतं मनश्च । छविश्व-न्द्रिका मनोवृत्तयश्व । अतएव चाधुषादिसंवितिषु प्रत्येकं वा-योरपि निमित्तता प्राङ्मयोपदर्शितेत्याशयेनाह-संवित्तिरिति । सर्वाजेष्वत्ररसप्रवेशार्थं सर्वनाडीसंस्पर्शनश्र स पवनः ॥ ५० ॥ चित्तमनोघटितलिङ्गशरीरात्मके तस्मिन् प्राणकोटरे चितो बि-म्बप्रतिबिम्बभावेन द्विगणीकरणन स्फारतापि तत्तस्मादेबोपप-श्रेखाइ--संवित्तीति ॥ ५१ ॥ तत्रोपपत्तिमाह--श्च-यन्ती-विति । स्फुटाभिव्यत्तया संचलन्तीव यतो लिक्के विद्नुभ्यते १ 'प्राणसंगोधितो वेति वेदनात्मतया जहः' इति पाठस्तदन-

चरन्ती च तनुं पुंसामुपैति परमामिधाम्॥

इत्यर्थः ॥ ५२ ॥ जडेऽपि देहे प्राणसंबोधिता सती सर्गादिवे-दनात्मतया आध्यासिकचित्तादात्म्यबलेन वेलि । यो देहः पूर्व जीवनदशायां परिवल्गति व्यवहरति स एव न वेपति न कम्पते ॥ ५३ ॥ भताम्तःकरणप्राणज्ञानकर्मेन्द्रियेर्थुतम् । अ-विद्याकामकर्माट्यं लिन्नं पुर्यष्टकं विदुः॥' तस्मिन्पुर्यष्टके॥ ५४॥ नतु प्राणनिमित्तो मनसि चित्प्रतिबिम्ब उक्त इदानी तु पुर्यष्टके स उच्यते तत्कथं न विरोधस्तत्राह-मन इति । अन्यैराचार्थैः स्वाशयकत्पितैः शिष्यबोधनोपायैः ॥ ५५ ॥ इदानीं जीवतदु-पाधितद्भोग्यलक्षणस्य विश्वस्योत्पत्तिस्थितिलयेषु चिदेकरसस-न्मात्रब्रह्माधीनलात्परमार्थतो ब्रह्मैव तदिलानुभावयश्रुपसंह-रति-यस्मादिति । यस्मादेतोस्तत्र चित्येषोदेति । यद्यसाल-त्रैव स्थितवत् । चकारासत्रैव लीयते । यस्माद्धेतोर्मन एव देह-दृष्ट्या विपरिवर्तति भ्रमति । छान्दसं परस्भैपदम् । तत्तस्मा-द्विश्वं परमवस्तु ब्रह्मीव नान्यदिति विद्धीत्यर्थः ॥ ५६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणताःपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे एकत्रिकाः सर्गः ॥ ३१ ॥

विषेष्टयति देहादि यथापुर्यष्टकं गता।

यथा देहान्तरं याति तत्त्विमह वर्ण्यते ॥ १ ॥

परमा चित्प्रागुक्तरीत्या पुंसां तनुं पुर्यष्टकं चरन्ती प्रविष्टा

हपो नडोऽपि देह: प्राणसंगोधितः सक्तित्यादिन्यांस्यापाठशान्यत्र.

ર

3

ક

Ģ

Ę

S

4

प्राक्तनैस्तैनिहन्त्येव स्वमनोमननेहितैः ।
कर्मवातैर्विचित्रेहैः परिपीवरतां गतैः ॥
मनस्तया गता शिकः सज्जडेवागता चितेः ।
सा स्फुरत्यनया ब्रह्मज्जचिता शिक्तभूतया ॥
अस्याः प्रसादादिह सा चित्कलङ्कवती मुने ।
जगद्रन्थवनगरं करोति नकरोति च ॥
चित्ताद्यसत्तया हेहो मुकस्तिष्ठति कुड्यवत् ।
तत्सत्तया हि स्फुरति नभःसंप्रेरिताश्मवत् ॥
यथा स्फुरत्विजडमयोऽयस्कान्तसंनिधी ।
तथा स्फुरति जीवोऽयं सति सर्वगते परे ॥
सर्वस्थ्यात्मशत्त्येव जीव एप स्फुरत्यलम् ।
मुकुरो विम्बमादत्ते द्रव्यात्मन्यस्थितादिष ॥
प्रविस्मृतस्वभावत्वाजीवोऽयं जडतां गतः ।
मोहाद्विस्मृतभावत्वाज्वव्यक्तामिव सद्विजः ॥

सती कथं कया रील्या कार्याणि ऐहिकपारलै किककर्माणि क-रोति तच्छीला, कथं च तदनुकूलदेहादिस्पन्दशालिनी सती अमिधां चलति स्नाति भुक्के यजते बाह्मणः क्षत्रियो देवदत्त इत्यादिशब्दाभिलापयोग्यतां उपैति तत्सर्वं कथयामि श्राण्व-खर्थः ॥ १ ॥ देहस्पन्दे चित्रतिबिम्बजीव चलनं हेतुस्तबलने तद्वपाधिपुर्यष्टकरूपमनस्तया परिणता वास्तवचित्स्वभावति-रोधात्री मायाशक्तिहंतुस्तस्या मनोरूपेण परिणती पूर्वपूर्वदेहा-न्तपरिणामसंचितकर्मराशिरेव हेतुः । बृहदारण्यके । 'कमं हैवे तद्चतुः कर्मेव तत्प्रशशंसतुः' इति प्रैहातिप्रहरूपबन्धहेत्लस्य कर्मस्वेव व्यवस्थापनादिखाशयेनाह-प्राक्तनैरिखादिना । श-क्तिरनादिमायारूपा बद्धाशक्तिः । स्वावरणशक्त्या स्वाश्रयं ब्रह्म निहन्त्येव नास्ति न भातीति प्रतीतियोग्यतां नीला प्राक्तनैर-नादिकालादारभ्य संचयात्परिपीवरतामतिपृष्टतां गतैर्विचित्रे-हैंबहुविधकामवासनान्वितेर्मननैस्तर्भानसेरीहितैः कायवाके-ष्टारूपेश्व विहितनिषिद्धकर्मवातैर्निमित्तैर्मनस्तया पुर्यष्टकात्मक-मनोभावेन गता परिणता सती चितेः खाधिष्टानचित्सतातश्चि-दिव खखभावबळाजाडेव मिश्रभावमागता भूला ज्ञानकर्मव्य-वहारोचिता सती खशक्तिभृतया अनया ज्ञानकर्मेन्द्रियादिप्र-णाच्या सा मायाशक्तिरेव द्रष्ट्दर्शनदृश्यादिनवविधसंसाररूपेण स्फ़रति नृत्यति नान्यत्किन्विदिति द्वयोरर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ अस्या मायाशकेः अविचारलक्षणादिचारलक्षणाच प्रसादात्क-मारकरोति नकरोति चेति संबन्धः ॥ ४ ॥ ताई ब्रह्मचित्सं-निधानाहेह एव सर्व करोतु कि चित्तादिकल्पनया तत्राह---चित्तादीति । आदिपदान्मनोबुद्धाहंकारपरिप्रहः ॥ ५ ॥ जी-वस्य प्राणकर्मेन्द्रियव्यापारेषु ब्रह्म संनिधिमात्रेण साधारणं नि-मित्तमित्याइ--यथेति ॥ ६ ॥ बुद्धादिप्रथायां ज्ञानेन्द्रियप्रयो-

१ पदमिलात्र वपुरिति पाठो व्याख्यानुगुणः स्यातः २ इह्दार-ण्यके पञ्चमाध्याये दितीये माह्यणे. ३ तत्तत्र विचारावस्थायामेकान्ते स्थित्वा कर्म दैवाशयं पुनःपुनः कार्यकरणीपादानदेतुमुचतः । न

| प्रविस्मृतस्वभावा हि चिश्वत्तत्वमुपागता । | |
|---|----|
| मोहापहतचित्रत्वात्सुमहानिव दीनताम्॥ | ९ |
| जडयाऽवदाया देहो वातदाक्तिसमानया। | |
| संचास्यते तदनया वारीव वीचिमालया॥ | १० |
| कर्मात्मना वराकेण जीवेन मनसामुना। | |
| चाल्यन्ते देहयन्त्राणि पाषाणा इव वायुना ॥ | ११ |
| शरीरशकटानां हि कर्षणे परमात्मना । | |
| मनःप्राणोदयौ ब्रह्मन्छतौ कर्मछतौ रढौ ॥ | १२ |
| चिज्जडं त्ररीरुत्य रूपं जीवत्वमेत्य च। | |
| मनोरथमुपारुह्य वहत्र्राणतुरंगमम् ॥ | १३ |
| कचिजातपदार्थत्वं कचिन्नष्टपदार्थताम्। | |
| कचिद्रहुपदार्थत्वं कचिदेकपदार्थताम्॥ | १४ |
| गतेव् भिन्नवास्त्येवमत्यजन्ती निजं पदम्। | |
| जलतेव तरङ्गत्वं सैवासदसदोदिता॥ | १५ |

जनेषु च प्रतिबिम्बापेणेनासाधारणं निमित्तमित्याशयेनाह ---सर्वस्थरोति । आत्मरूपया निच्छक्तयैव स्फुरति स्वपरप्रधास-मर्था भवति । ननु भातिकलाङ्गव्यस्त्रभावे स्थितं जीवोपाधि-भृतं लिङ्गमद्रव्यस्यभावाद्रद्मणः सकाशात्कथं प्रतिबिम्बमादले इव्ये इव्यस्यैव प्रतिविम्बननियमदर्शनादिति चेत्तत्राह-मुकुर इति । मुकुरेण द्रव्यस्वभावे अस्थितादपि गुणकियाजात्वादेः प्रतिविम्बादानदर्शनाम द्रव्यादेव प्रतिविम्बो प्राह्य इति नियम इलार्थः ॥ ७ ॥ यदि ब्रह्मप्रतिम्बिम्बो जीवस्तर्हि कथं तस्य अज्ञाननिद्रालस्यादिजाड्यानुभवः। नहि सूर्यप्रतिबिम्बे अभा-खरतासंभव इत्याशक्क्याह-प्रविस्मृतेति ॥८ ॥ चित्तत्वं चि-त्तर्धमे जाड्यमालिन्यादि । सुमहान् गाधिलवणहारेश्वन्दादिरिव ॥ ९ ॥ वित्ततादारम्याध्यासाजित्तधर्मदैन्यादिप्राप्तिवरप्राणतादा-तम्याध्यासात्तद्वर्भदेहसंचलनहेतुलमप्यस्याः सिद्धमित्याह---ज-डयेति । वातशक्तिः प्राणस्तत्तादात्म्यापत्या तत्समानतया ॥ १० ॥ कर्मात्मना उक्तरीत्या क्रियाखभावलमापन्नेन मनसा मननशक्तिमता । उपाधिपारवर्याद्वराकेणात्यन्तदीनेन । यथा नीकास्तम्भनिबद्धर्दीर्घपटाद्यपाधिपरवशेन वायुना नीकास्थाः पाषाणा अभिमतं देशं प्रति चाल्यन्ते तद्वत् ॥ ११ ॥ मनः-प्राणोदयौ मनःप्राणशक्तिकर्मकृतौ भृत्यौ बलीवदौँ बा ॥ १२ ॥ स्वाप्रव्यवहारसाधारण्याय मनस एव रथत्वं कल्प्यं मुख्यामुख्य-प्राणानां तु तुरक्रमलमित्याशयेनाह—चिदिति ॥ १३ ॥ क-चित् जाप्रत्सप्रयोजीतपदार्थत्वमाविभृतपदार्थत्वं बहुपदार्थत्वं च । कचित्सुषुप्ते नष्टपदार्थतां तिरोभूतसर्वपदार्थतां अविधेकप-दार्थतां च गते बेति परेणान्वयः ॥ १४ ॥ किं सा दुग्धं द-धिभावेनेव जीवजगद्भावेन परिणामान्नष्टा नेत्याह-असीति । एवं परिणतापि निजं पारमार्थिकं बपुः खरूपमत्यजन्ती सती

केवलम्चतुरपि तु कालेश्वराधम्युपगतेषु यत्ती प्रशशंसतुः कर्म दैव तत्प्रशशंसतुरिति. ४ ग्रद्दाः प्राणजिह्नवाक्चश्चःश्रोत्रमनो-दस्तत्वचः । अतिग्रद्दा अपानरसनामरूपशब्दकामकर्मस्पर्शसद्धाः.

उपजीव्यात्मनो रूपं परं स्फुरति वृत्तिषु। आलोकमुपजीव्येमं रूपश्रीर्दश्यगा यथा ॥ परमात्मनि चित्तन्त्रे स्थिते सति निरामये। जीवो जीवति सालोकं दीपे सति गृहं यथा ॥१७ आधयो व्याधयश्चेव प्रयान्त्यस्य प्रपीनताम् । अपामिव तरङ्गत्वं वीचित्वस्येव फेनता ॥ आधिव्याधिभिराकीर्णशरीराम्भोजपट्पदः। जीवो वैयम्यमायाति तरङ्गरवे यथा पयः॥ 70 चिच्छक्तिः सर्वशक्तित्वामाहं चिदिति भावनात्। अत्र सेवति वैषद्यं सुर्यो दीप्तेरिवास्तुदैः॥ वैवश्याश्यवती मौढ्यान्न विन्दत्यात्मसंविदम्। घनजाड्यपराभृतः स्त्राङ्गावद्स्तनं यथा ॥ **२**१ प्राप्य चाप्यनुसंधानमस्या मोहो विनश्यति । धनमोहरतो जन्तुः स्वकार्यसरणं यथा॥ २२ यदाङ्गसंविदां वातस्पन्दशक्तिः प्रमीपतः। न करोत्यनुसंघानं कृष्टी स्पन्देपणं यथा ॥ २३ असंबित्स्पन्दतो देहे पद्मपत्रं हृदि स्थितम्। न स्फ्रारत्यपरामुष्टं दारुपात्रं यथा बहिः॥ રેટ निःस्पन्दे पद्मपत्रेऽन्तः प्राणाः शान्ति प्रयान्त्यमी तालवृन्ते यथा ऽस्पन्दे वहिः पवनशक्तयः بابت

तस्बद्धा असजामदिव व्यवहार्द्धशाध्यसत्स्वप्त इव च अः उदिता इपद्विकतित्यर्थः ॥ १५ ॥ ाण्यमन्यध्यस्तलादेवात्म-सत्तामेवोपश्रीव्य मनोवृत्तिप्रतिफालितात्म चिद्वलेनेव मनोरूपं जीवजगरपथत इस्राह—उपजीव्यति ॥ १६ ॥ चिदेन तर्रवं पारमाथिकं रूपं यस्य तथाविधे ॥ १० ॥ एवं देहचेटा-हेतुना चित उपपादिता । इदानीं तस्या देहान्तरप्राप्तिप्रकारं वक्तं बैराग्याय च देहनिमित्तदुःखानि प्रपन्नयति--आधय इत्या-दिना ॥ १८ ॥ वैषम्यं देन्यदुःखादि ॥ १९ ॥ अत्र देहे । यथा सूर्यो दीर्भः खप्रकाशितरेबाम्बुदैमेंधेसिरोधानम्छानिख-ण्डितलादिवैवश्यं दण्दछ्या एति तद्वत् ॥ २०॥ च्यवती ज्ञा-नानथिकृतयोनिष्ववतरन्ती । 'शप्रयनो'रिति नुमोऽभावरछा-न्दसः । यथा धनेन मदिरादिमदजाञ्चेन पराभृतः पुरुषः खङ्गा-दिना खाङ्गाबदलनं न विन्दति नानुसंघत्ते तद्भव ॥ २५ ॥ कदा तर्हि चितो मोहो नश्यति तदाह-प्राप्येति । यथा मदा-दिघनमोहरतो जन्तुः कालेन स्वकर्मस्मरण प्राप्य निर्माहो भवति तद्वत् ॥ २२ ॥ इदानीं देहत्यागप्रकारं वक्तुमुपकमत्— यदेति । यदा वातस्य प्राणस्य सान्दर्शाक्तः अजसंबिदां आन-खामाहिक्षीपाधिद्वारा प्रावष्टजीवसंविदां हृदि हिजस्योपसंहारेण प्रमोपतो निमित्ताद्धस्तपादादरनुसंधानं न करोति । यथा कुष्टी गलितानामञ्जल्यादीनां स्पर्न्देषणं न करोति तद्वत् । तदा हरि स्थितं भुशुण्डोपारुयाने वर्णितं पद्मपत्रं प्राणसंचारानुकृततया न स्फुरति न कम्पत इति परेणान्वयः ॥ २३ ॥ यथा यहे ऋिंबग्निरपरामृष्टं दारुपात्रं न स्पन्दते तद्वत् ॥ २४ ॥

प्राणे शान्तेतरस्पशे जीवो निष्पूर्णमुकताम्। याति शान्ते नभोवायां न इत्यत्वं यथा रजः॥ २६ विरजं विगताधारं मनो हि शिष्यते मुने। तिष्टत्यात्मपदं लब्ध्वा जलादितस्वीजवत्॥ २७ इति वैकल्यमायातेः कारणौष्ठैः समन्ततः। पर्यप्रके शमं याते देहः पतति निश्चलः॥ २८ चिश्वेत्यचेतनान्मोहात्स्पन्दमायान्ति वासनाः। तदीरिना सारत्यन्तरन्यद्विसारति स्वयम्॥ २९ हत्पन्नपत्रस्फुरणात्स्फुटं पुर्यप्रकं भवेत्। हत्पद्मयम्बे वहनातुद्धे पुर्यप्रकं क्षयि॥ ३० देहे पुर्यप्रकं यावदस्ति तावत्स जीवति। शान्ते पुर्यप्रके देही मृत इत्युच्यते द्विज ॥ 38 विरुद्धमलसंबोधाच्छेद्भेदद्शावशात्। न प्रस्फुरति हृत्पदायन्त्रमभ्यन्तरे यदा ॥ ३२ तदा पुर्यप्रकं शान्तिम्पति गगने शनैः। संरोधिते वातयन्त्र यथा पत्रनसंततिः॥ ३३ स्यसंवित्तिवशाजीयो वैवश्यमुपगच्छति । पश्चयम्बं दारीरस्थं प्रवाहं याति नित्यदा ॥ 33 वासना विमला येपां हृदयान्नापसपिति। स्थिरेकरूपजीवास्ते जीवन्मुकाश्चिरायुपः॥ ЯH

शान्ति तेजसि विलयम् । 'मनः प्राणे प्राणसेजिति' इति श्रुतेः ॥ २५ ॥ रूपोपाधिविख्यात्रिर्गछं पूर्णाः नामोपाधिविख्यान्मु-कथ यः कारणात्मा तद्भावं याति ॥ २६ ॥ रजीगुणप्रधानस्था-धारप्राणोपरमादेव विरुजं विगतावारं च मनोपि सहैव प्राणेन कारणात्मपदं रुज्ञ्या तद्भावेनैव शिष्यते । सहि कि सर्वथा गतं नेखाह—तिष्टतीति । जलादिभृतमात्रीपप्रव्यपार्थिवतहवीः जनत्पनर्देहाविभोवोन्सुखं तिष्टतीत्वर्थः ॥ २७ ॥ रा एवास्या देहत्याग इत्याह—इतीति ॥ २८ ॥ पुर्वशकस्य तर्हि केन हेतुनोद्भव इतिचेद्धत्पद्मस्यन्दःसत्त्यन्द्धः पूर्वपूर्वभोत्रादिभाव-रमृतेः । साच वासनान्यन्दाद्वायनात्पन्दं च स्वरूपाज्ञानकृतं चित्रंबसाकारचेतनं हेतुरिति तत्त्वोन्मुगस्याय चित्रंधसाका-रता प्रतिपत्तिलक्षणा बहिमुखतेव प्रथमं पारुपयक्षेन निरोद्ध-व्येखाशयेनाह—चिचेलाचेतनादिति ॥ २९ ॥ वहनाचलना-**डढें। निश्चले सर्ताति यायत् ॥ ३० ॥ ३**९ ॥ **परस्परविरुद्धानां** वातिपत्तकफाख्यानां मलानां रागद्वेपादिवासनामलानां च सं-योधात् प्रकोषात् , अस्त्रादिकृतदेहच्छेदमेदादिवशाच । अभ्य-न्तरं देहमध्ये ॥ ३२ ॥ वातयश्चे व्यजनादी ॥ ३३ ॥ स्वस्य संवित्तिः संकल्पस्तद्वशात् वेवश्यं मरणादिद्वःखसहस्रम् । 'सर्वेका-न्यकियत्तदः काले दा'इति दाप्रस्पर्यावधानानिस्यदेति च्छान्दसम् ॥ ३४ ॥ अतएव भोगवासनाश्च्येषु तत्संकल्पाभावात्र मृत्यव-श्यतेत्याह—वासनेति । विमला रागादिमलरहिता ॥ ३५ ॥

१ शान्तेञ्तरस्पर्शादित्यपि पाठ:.

३६

30

34

રૂ ૧

80

88

ઇર

83

88

संरुद्धे पद्मयन्त्रे हि प्राणे शान्तिमुपागते। देहः पतत्यधैयाँऽयं काष्टलोष्टसमः क्षितौ ॥ यथैव न्योम महति लीनं पुर्यप्रकं भवेत्। तथव तत्रैय तदा लयमेति मनो मुने ॥ सुचिराभ्यस्तभावं तु वासनाखिचतं मनः। यत्र तत्र भ्रमत्स्यर्गनरकादि प्रपद्यति ॥ शरीरं शवतामेति मनोमास्तवजितम्। गते गृहजने दूरं गृहं संशुन्यतामिव॥ सर्वगा चिचेतनतो जीवीभूय मनःस्थिता। पुर्यप्रकथपुर्भूत्वा साऽऽतिवाहिकदेहिनी॥ तन्मात्रपञ्चकं चित्तं कोडीहत्य व्यवस्थिता। स्वप्रभ्रमवदाकारं भावात्स्थृलं प्रपद्यति॥ दृढभावनया पश्चात्तत्रैव रसशालिनी । आतिवाहिकदेहत्वं विसारस्यखिलं क्षणात् ॥ असत्येव शरीरेऽसिन्हतकृत्रिमभावना । नयत्यसत्यं सत्यत्यं सत्यं चासत्यतामपि ॥ सर्वगा हि चिद्ंशेन जीवीभूयाभवन्मनः। मनः पुर्यप्रकरथमाऋामति ततो जगत्॥ पुर्यष्टकं वातमयं देहमुत्थापयत्वलम् ।

हत्स्पन्दिवेताल इव जीवतीत्युच्यते तदा ॥ 84 क्षीणे पुर्यष्टके चित्तं यदा ब्योमनि लीयते। तदा स्पुरति देहोऽयं मृत इत्युच्यतेऽपि च॥ ४६ स्वभाववदातो जीवो विस्मृत्या दाक्तिमृच्छति। वैवस्यात्कालयशतः पर्णे जर्जरतामिय ॥ 80 जीवशक्तया परामृष्टे निरुद्धे पद्मयम्बर्धः। प्राणे संरोधमायाते म्रियते मानवो मुने ॥ 86 यथा जातानि जातानि चान्यान्यन्यानि कारुतः । वृक्षात्पर्णानि शीर्यन्ते शरीराणि तथा नृणाम्॥४९ जायन्ते च भ्रियन्ते च शरीराणि शरीरिणाम्। पादपानां च पर्णानि का तत्र परिदेवना ॥ 40 चिदम्बुधौ स्फुरन्त्येता देहबुद्धदपङ्कयः। इतश्चान्या इतश्चान्या पतास्वास्था न घीमतः ॥५१ सर्वगापि चिदेतस्मिश्चेतसि प्रतिबिम्बति। पदार्थमन्तरादत्ते नान्यो हि मुकुराहते ॥ **પ**ર चिदमलनभसि प्रयह्नरूपाः परिवितते तदतनमयाः स्फुरन्ति। कलकलमुखराः स्फुटामिरामा विविधशरीरविमोहतापनाय ॥ 43

इत्यापें श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे देहपातविचारो नाम द्वात्रिशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयित्रंशः सर्गः ३३

वसिष्ठ उवाच । चन्द्रार्घशेखरधर चित्तत्त्वस्य महात्मनः।

॥ ३६॥ व्योममरुति हधोमवायो प्राणे ॥ ३७ ॥ एवं छीनस्य मनसः पुनः खर्गनरकादिभोजकादृष्टप्रयोधितस्य हार्दाकाशे एव चक्षष्टो वा मुन्नों वा अन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यो निर्गमनयम-ठोकादिगमनखर्गनरकभोगादिकं खकल्पनैय नतु बहिः स्तर्गा-दयो नामान्ये सन्तीखाशयेनाह—सुचिरेति । सुचिरमनादि-कालादभ्यस्तस्तत्तद्भोगयोग्यशरीरादिभावो येन । यत्र तत्रेति स्वर्गादेनियतदेशसत्त्वनिराकरणार्थम् ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तस्या देहान्तरब्रहणक्रममाह--सर्वगेति । सर्वगा ब्रह्मचिदेव 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इति श्रुत्युक्तचेत्या-कारानुप्रवेशचेतनतः ॥ ४० ॥ तन्मात्राणि सृक्ष्मभूतानि तेषां पश्चानां संघातात्मकं चित्तमातिवाहिकदेहाएवं पुर्यष्टकम् । भावारसंकल्पनात् ॥ ४१ ॥ रसशालिनी अहन्ताशक्तिमती ॥ ४२ ॥ अस्मिन् उक्तलक्षणे स्थूलदेहे । असत्यं जगत्सत्यत्वं नयति आरोपेण प्रापयति । सत्यं स्त्रीयब्रह्मभावम् । असत्यतां नास्ति न भातीति खत्रतीतियोग्यताम् ॥ ४३ ॥ चित्तसंसरणे ऋममाह--सर्वगेति । अंशेन बुद्धिप्रतिनिम्वतांशेन ॥ ४४ ॥ वातमयं सूत्रभूतप्राणप्रचुरम् । यदा उत्थापयति तदा हृदि प्रविश्य सम्दी स्पन्दनशीलो वैतालो यस्य तथाविधः शव इव जीवतीत्युच्यते जनैरित्यर्थः ॥ ४५ ॥ व्योमनि हार्दाकाशे 🗍

अनन्तस्येकरूपस्य द्वित्वं कथमुपागतम्॥

त्रह्मणि । स्पुरित काष्ट्रलेष्टादिवद्चेतनः स्पुटो भवति ॥ ४६॥ खस्याऽअरामरत्रह्मस्पतां विस्मृत्य जरठदेहगतामशक्ति खयं ऋच्छति प्राप्नोति ॥ ४०॥ ततः पूर्वविन्त्रियतं इत्याह्—जीवश्वस्यति । जीवसंविन्यस्या प्रायुक्तस्मृतिशक्तया अपरामृष्टे अत्य चलनानिरुद्धे सित ॥ ४८॥ पुनःपुनर्गानाशरिरप्रहणं तत्र संसरणं जरामरणान्तमेव बोध्यमित्याशयेनाह—यथेति । नृणां जीवानाम् ॥ ४९॥ ५०॥ ५९॥ उक्तमेवोपसंहर्तुमनुबद्दित—सर्वगिति ॥ ५२॥ परित्तो वितते पूर्णे चिदमलनभांस प्रयत्नस्ताय पुर्वतनस्तीयग्रुभाग्रुमप्रसत्नपरिणतिरूपाः । अतएव सुख्दुःखफलभांगे हास्यरोदनादिकलक्तैः कोलाहर्लर्मुखराः । तद्दतन्मयाधिदचिरप्रचुरजीवजगद्भूषाः कल्पनाः स्फुटामिरामा आपात्रमणीया विविधः शरीरंजननमरणादिश्रान्त्या आत्मविमोहतापनाय स्फुरिन्त । प्रतिभासन्त इत्यर्थः ॥ ५३ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे द्वान्त्रिशः सर्गः ॥ ३२ ॥

यथा जीवजगद्भेदा मोहसंकरपकरिपताः । विचारेणेव संभाव्यास्तथा तर्केरिहोच्यते ॥ १ ॥ सर्वगापि चिदेतस्मिश्चेतसि प्रतिबिम्बतीति यदुक्तं यत्र दढ-भावनया पश्चात्तर्भेव रसशालिनीसाधुक्तं तशोभयत्राप्यजुपपत्ति ર

कथं च तन्महादेव रूढं पर्यायसंकुलम् । भवेदुःखोपघाताय प्रक्षया विनिवारितम् ॥ ईश्वर उवाच ।

सर्वशक्ति हि तक्कस सदेकं विचते यदा। तदा निर्मूल एवायं द्वित्वैकत्वकलोदयः॥ सति द्वित्वे किलेकं स्यात्सत्येकत्वे द्विरूपता।

वितष्ठः शक्कते—चन्द्रार्घेति द्वाभ्याम् । घरतीति घर चन्द्रार्घस्य शेखरे धर चर्न्याथशेखर्धर । अर्धशब्दस्य षोडशतमभागनि-ष्टरवेन समांशवाचित्वाभावेनानपुंसकतात् 'अर्ध नपुंसकम्'इत्य-स्याप्रवृत्तेः षष्टीतत्पुरुषः । अनन्तस्य दिकालवस्तुकृतपरिच्छेद-श्रान्यस्य एकरूपस्य सजातीयविजातीयस्वगतमेदश्रान्यस्य चित्र-क्षणस्य तत्त्वस्य सजातीयजीवरूपं विजातीयजडजगद्रुपं च द्वित्वं कथमुपागतम् कि स्वत उत परतः । नाद्यः । अविका-रखादनवयवलाश्व । नापि द्वितीयः । द्वितीयस्यैवाप्रसिद्धेरिति भावः ॥ १ ॥ यदि तु निर्निमित्तमेव तदा गतमिति ब्रूषे तिह संकोचे मानाभावादनन्तकोटिमिस्तत्पर्यायैर्बन्धनैः संकुलं व्याप्तं विराजुबुत्या रूढं तत् प्रह्मया तत्त्वबोधेनैकलागन्तुकलाभ्यां दुर्वलतमेन कथं विनिवारितं सत् आत्यन्तिकदुःखोपघाताय भवेत् । निर्निमित्तस्यकस्याप्युच्छेदाप्रसिद्धेः, कथंचिदेकस्यो-च्छेदेऽप्यन्येषामनन्तानां तादशबन्धानां परिशेषात्पुनःपुनरन्य-निर्निमित्तवन्धोत्पत्तेर्द्ववारत्वा**च** न प्रागुक्तबहाशकिमाया-निमित्तं मिथ्याभूतमेव तदिति न कथिहोष इति युक्तम् । साह्यागन्तुकी वा स्यात्सहजा वा, आवेऽपि खत उत्पन्ना उत परसंबन्धाधेयेति विमर्शे अनिर्मीक्षानवस्थादिदोषापत्तेः । सह-जाया अम्योष्ण्यशक्तिवत्सति ब्रह्मण्यपनेतुमशत्तया अनिर्मो-क्षतादवस्थ्यात् , ऐकरस्यश्रुतिवैरस्यप्रसङ्गाच । किंच भायाश-केमिध्यात्वे अत्यन्तासलादसतः कार्योत्पादकलायोगात्स एव समुत्थितो निर्हेतुकद्वैतोत्पादवादः । सखत्वे ज्ञानेन निवृत्त्ययो-गादनिर्मोक्षदोषानिर्मोक्ष इत्युभयतस्याशारजः । नच निष्कर्षे सत्त्वासत्त्वातिरिक्ता तृतीया विधा केनचिद्यवस्थापयितुं शक्या। तयैव विधया ज्ञानोत्तरमपि द्वेतस्यानिवार्यत्वात्। नहि तृतीया सा ज्ञेन प्रथमा द्वितीया वा कर्त् शक्या । ज्ञानस्याकारकत्वाद-न्यस्यान्यात्मतायोगात्स्वरूपपरिवृत्त्यदर्शनात् कृतस्य नश्वरत्वा-पत्तेः पुनर्बन्धानिवारणादिति ॥ २ ॥ न वयं जीवजगदादिद्वेतं प्रमाणेरुपपादयितुं प्रवृत्ताः किंतु मोहादनादिकालादारभ्य प्रसक्तं तद्ध्यारोपापवादन्यायमाश्रिखापवदितुम् । तत्राध्यारोपे सर्गादौ यत्कामकर्मवासनादिनिमित्तकारणानां ब्र-ब्राविद्याद्यपादानकारणानां वियदादिकमस्य व्यष्टिसमप्टिस्धृलस्-क्मादिविभागकोशमेदादीनां कल्पनं तत् सर्वे स्वययसत्यमपि सलवसुपरिचयोपायतया श्रुत्या कल्पितं परमार्थसत्यप्रयोज-नाविसंवादितया इतरवादिकल्पनापेक्षया उन्ह्यप्रमिति श्रोतृणां विश्वासजननाय छोकदशैवोपपत्तिसिः शास्त्रेषु समर्थ्यते । परि- कले हे अपि चित्रूपे चित्रूपत्वात्तद्प्यसत्॥ एकाभावादभाषोऽत्र एकत्वहित्वयोर्ह्योः। एकं विना न हितीयं न हितीयं विनैकता॥ ५ कार्यकारणयोरेकसारत्वादेककपता। फलान्तस्यापि वीजादेविकारादिह कल्पना॥ ६ चित्तवं चेत्यविकल्पेन स्थयं स्फुरित तन्मयम्। विकारादि तदेवान्तस्तत्सारत्वात्र भिद्यते॥ ७

चिते तु सर्वात्मके सर्वेत्रतीचि तस्याद्वितीयताबोधनाय परमा-र्धहिश्मेवावलम्ब्यापोद्यत एवेति तस्मिनेकलमभ्युपेल तिद्व-रुद्धदिलासंभवोद्धावनं तव स्वाभ्युपगतविरुद्धं सिद्धान्तविरुद्धं चेति कथं न परयसीत्याशयेन श्रीभगवानसमाधत्ते—सर्वशकी-त्यादिना । यदा ब्रह्म व्यवहारदृशा सर्वशक्ति परमार्थदृशा तु एकं सदेव विद्युत इति व्यवस्थितं दृष्टिद्वयमश्रीकृतं तदा द्वित्वैकल-**उक्षणायाः कठायाः सर्वशक्तयेकदेशा**दुदयो यस्य तथाविधस्त-दाक्षेपो निर्मूल एव । हि यस्माद्यवहारदशा अध्यारोपः परमा-त्मदृशाऽपवादो न तावद्यवहारदृष्ट्या । 'यः सर्वेज्ञः सर्वेवि-यस्य ज्ञानमयं तपः' इति श्रुत्योपपादितात्सर्वज्ञात्सर्वशक्तिमतो जीवजगद्भैतागमोऽनुपपन्नः। धर्भिम्राहकमानेन तस्य तत्स्वभाव-स्येव निर्णयात् । 'तदेतद्वद्वापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्' । 'यत्र नान्यत्पर्यति नान्यच्छुणोति नान्यद्विजानाति स भूमा' इति श्र-तिदर्शितपरमार्थदृष्टिगम्ये तु न कदाचिदपि द्वित्वं तद्विरोध्येकत्वं वा प्रसक्तमिति तत्र तदनुपपन्युद्भावनं निर्मूछमेवेत्यर्थः ॥ ३॥ नजु 'नेह नानास्ति किंचन' 'नतु तिक्कतीयमस्ति ततोऽन्यद्विभ-क्तम्' 'विभं चिदानन्दमरूपमद्भतम्' इत्यादिश्रतिभिद्धिलमेव निषिष्यते नैकलमिलविरद्धमेकत्वं कथं द्विलतुल्यकक्षतया निषिध्यते तत्राह—सतीति । सति प्रसिद्धे द्वित्वे तद्यावृत्तये एकत्वं कल्प्यते । सति चैकत्वे तदेवैकलान्तरसहितं द्विलमिति कल्प्यत इति परस्परसापेक्षकल्पनलात्तुत्यकक्षे एव ते । तत्रै-कललक्षणधर्मस्यापि तदतिरिक्तस्य कल्पने चिदेकरस्यव्याचात-प्रसङ्गालदप्यसदेवेत्यर्थः ॥ ४ ॥ ५ ॥ इदानीं व्यवहारपरमार्थ-दृष्ट्योरुपदेशादिव्यवहाराय मिश्रणेऽपि सत्ताद्वैविष्यकल्पनान्न पर-मार्थसित व्यावहारिकसत्तया जीवजगद्वैतविरोध इत्याह—का-र्येति । बीजादेः पुनः फलान्तस्य यथा स एवायमिति प्रत्यभि-ज्ञायमानैकखभावे अनुगतद्रव्ये विकारात्रानात्वकल्पना तद्बदुप-पत्तेरित्यर्थः ॥ ६ ॥ यदि तु सर्वविकाराणां परमार्थसत्ताव्यति-रिक्ता व्यावहारिकसत्ता नाभ्यपेयते तदा सुतरा द्वेतं चिद्विकल्प एव फलित इति राहित्रीरोद्वैतविरोधोद्भावनतत्त्वस्त्वदाक्षेप इलाशयेनाह—चित्त्वामेति । अन्तः सएव सारः परमार्थौ यस्य तत्त्वात् । एवंच मायातःकायीणां पृथवसत्त्वपक्षः अपृथक्स-व्यपक्षः असलपक्षरतृतीयविधापक्षो वा नानावादिकल्पितप्रधा-नपरमाणुक्षणिकाक्षणिकविज्ञानशून्यतादिपक्षो या यः कवित्व-यास्यपगम्यतां तथाप्यसङ्गाद्वयचिन्मात्रास्पर्शा स सर्वेडिप चि-दर्धीनसिद्धिकल्पमात्रमिति चितः कदापि बन्धप्रसिक्तरेव यत्र

विकारादिविकल्पोऽयं तत उत्थाय वस्तुषु । याति सार्थकतां नानाकार्यकारणतादिमिः॥ तरकाः सिछछे येऽपि तोये शेलस्य ते समाः। शशश्रद्भसमः सोऽपि यस्य सत्यः शशाहरः॥ वस्तुबोधोऽत्र संधत्ते तत्रालं वाग्विकल्पनैः। व्यवच्छेदादि दुइछेद्यं बच्चो बाच्यात्किल द्विज ॥१० ब्रह्मणः सर्वेशिकत्वं तत्त्वतो न विभिद्यते। तरङ्गकणकलोलजलोघ इव वारिणः॥ 88 पुष्पपह्नबपत्रादि लताया नेतरद्यथा। द्वित्वैकत्वजगस्वादि त्वन्त्वाहस्त्वं तथा चितेः १२ देशकालविकारादिः कृतो भेदश्चितस्तु यः। तिश्वदेतदसत्प्रोक्तं न प्रश्लोऽत्र तबोचितः॥ १३ देशकालकियासत्तानियत्याद्याश्च शक्तयः । चिदारिमका एव चितः सत्वात्संपतिताः स्वतः १४ वित्तत्वं वित्तचेत्येहं चिद्रह्माद्यभिधा स्मृता। यथा वीच्याद्यभिधार्हे स्थितमस्युतरङ्गकम्॥ १५ असंभवत्तरङ्गस्य चिद्विलासमहाम्बधेः।

दुर्छभा तत्राऽनिर्मोक्षोद्भावनं द्रनिरस्तमेवेति भावः ॥ ७ ॥ तत्सारत्मेवोपपादयति — विकारादीति। यतोऽयं पह्नाविका-रतक्षणस्तदाश्रयघटादिलक्षणश्च विकल्पस्ततः सद्वस्तुनः सका-शादेवोत्थाय आविभूय जलाहरणादार्थिकियाकारणत्वादिभिः सा-र्थकतां भोगपर्भवसानं याति । भोगश्च चिदवसानतैवेति तन्मा-त्रसारतेत्वर्थः ॥ ८ ॥ एवं जगतो विकल्पनामात्रत्वे केचिज-कतरङ्कादयो व्यावहारिकाः, मरमरीचिकातोयतरज्ञाः प्रातिभा-सिकाः, बन्ध्यापुत्रश्रशादयस्त्रत्यन्तासन्त इत्यवान्तरवैल-क्षण्यविकल्पोऽप्यज्ञस्यैवेत्याह--तरङ्गा इति । यस्य तत्त्वविदः शशादुद्भिनो बीहियवायङ्करोऽपि बहीवेदि सत्यसास्य ये सिठछे प्रसिद्धास्तरकास्ते शैलस्य मुधि कल्पित तीये ये तरकास्तैः समाः । स शैलोऽपि शक्षशृङ्खसमः । खतोऽसत्त्वस्य ब्रह्मसत्त्रया सत्त्वकल्पनस्य च त्रिष्वपि साम्यादित्यर्थः ॥ ९ ॥ यस्त्वत्र जगत्यबोधकृतः सर्वपदार्थानां परस्परव्यायृत्तिलक्षणो व्यवच्छे-दस्तं बस्तुबोधस्तत्त्वसाक्षात्कार एव संधते स्फुटितशकलानि संधानेनेवैकतां नयति । तत्र ईटरो विषये वाग्विकल्पनैर्युत्त्यु-पन्यासैः अरुं साध्यं नास्ति । यतः अनपगते अज्ञाने वचीवा-च्याद्यक्तिसहस्रादि अपरोक्षश्रमसिद्धं व्यवच्छदादिद्वैतं दुरुच्छे-रामिलार्थः ॥ १० ॥ तत्त्वदशा दर्शने तु ब्रह्मणः सर्वशक्तित्वं सर्वजगदाकारमायिकरूपं तन्मात्रं तत्त्वतो न विभिद्यते। तत्रैव तिरोभवतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ तथाच 'अपागादंप्रेरप्रित्वं बाचार-म्मणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीरवेव सत्यम्' इति श्रुति-दर्शितन्यायेन लतायैक्यदर्शने तर्दायपुष्पपष्टवादिमेदानामिव तरवदर्शने जगद्भेदानामध्यनृतत्वे खत्प्रश्लो निरालम्बन इ-खाह-पुष्पेखादिना ॥ १२ ॥ यो भेदः इतः तत्सः चित् चिदेव चिद्रिलमेव नास्ति तत्र द्वित्वं कथमुपागतमित्येतत्त्वया

तरङ्गितत्वमिय यत्तत्तायचेत्यसङ्गिता॥ १६ तदेतत्परमं ब्रह्म सत्येश्वरशिवादिभिः। शुस्यैकपरमात्मादिनामभिः परिगीयते ॥ १७ एवं रूपपदातीतं यद्वपं परमात्मनः। यत्त नामाहममलं विषयो न गिरां च तत्॥ 20 यदिदं दृश्यते तस्यास्तल्लताया महाचितेः। फलपल्लबपुष्पादि न भिन्नं तन्मयं यतः॥ 90 महाविद्योपनयनाश्चिद्भवत्यभिधा सती। सा जीवत्वेन बाह्यत्वं तदा द्वीन्द्विच पश्यति ॥ २० स्त्रयमन्यैवमस्मीति भावयित्वा स्त्रभावतः । अन्यतामिव संयाति स्वविकल्पात्मिकां स्वतः २१ अकलक्केन रूपेण रूपं यत्सकलक्कवत् । संसारसरितं प्राप्य चेतनेनैव चेतति ॥ २२ चिद्वपुः स्वयमेतेन होकतामेति जीवताम्। चित्तत्त्वस्यावभासेन जीवो जीवति तन्मयः॥ २३ आतिवाहिकदेहोऽपि जीवतां समुपागतः। भावनापञ्चकं भृत्वा द्रव्यमसीति वैत्यलम् ॥ २४

असत्त्रोक्तम् । अत्र असद्विषये तव प्रश्नो नोचित इत्यर्थः ॥ १३ ॥ यत्रिक्षतः सस्वादेव संपतिताः संपन्नसत्ताका अत्रिधः दारिमका एव ॥ १४ ॥ चित्तं चेत्यं तदीहाश्च वेषां समाहारी रूपप्रपश्चधित्तस्वमेव । एवं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता अभिधा नाम प्रपश्चोऽपि चिदेव स्मृता । अम्बुतरङ्गकं अम्बुतरङ्गानुगतरगरा। मान्यं यथा वीच्यायभिधाई स्थितं तद्वत् ॥ १५ ॥ तर्शिदलः मिव यद्विवर्तनं तदेव चेल्यसंबन्ध इल्पर्थः ॥ १६ ॥ शुन्यप-देन 'असद्वा इदमप्र आसीत्' इति श्रुतिस्थमसत्पदं उश्यते ॥ १७ ॥ मत्तन्वं परमार्थतस्तदेवेत्याह-एवमिति । स्वाणि पदानि नामानि च तदतीतं यत् अहम् । तुशब्दः पुरोहश्यमा-नसाकाररूपव्यावृत्यर्थः । तत् गिरां वाचां चान्मनसां च न विषयः ॥१८॥ यदिदं दरयते जगत् तन् तस्याधितेश्विष्ठक्षणायाः लतायाः फलपह्रवयुष्पादीत्यन्वयः ॥ १९ ॥ यदि तु अनुतमेव जीवजगद्भावं विवेकाय प्रच्छिस तदा शृणु । सा चित् महती अविद्या उपनयनं विचित्रवर्णरिक्षतोपनेत्रं यस्यासाथाविधा यदा भवति तदा जीवत्वेन अभिधीयत इत्यभिधा तथाविधा सती द्वीन्द्रिव खबाह्यरवं बाह्यजीवजगद्भावं पर्यतीखर्थः ॥२०॥ अन्या अब्रह्माचिद्रपास्मि ॥ २१ ॥ अकलङ्केनेव रूपेण स्थितापि सकलक्ष्ववात्प्रवृष्टकरूपं कल्पितं तेन संसारसरितं प्राप्य औषा-थिकचेतनेनेव चेतति न निष्कलङ्कचेतनेनेत्यर्थः ॥ २२ ॥ एतेन पुर्यष्टकेन एकतां तादातम्याध्यासलक्षणां जीवतां एति । तन्मयश्चित्प्रचुरः सन् जीवति प्राणनादिकियां लगते ॥ २३ ॥ इत्यं सर्वगापि चिदेतस्मिश्रेतसि प्रतिबिम्बर्तात्येतदाक्षेपांशं समाधाय हदभावनया पश्चात्तत्रैव रसशालिनीत्येतदाक्षेपांशं समाधातं तस्य स्थूलदेहप्राप्तिकममाह-आतिवाहिकेति । भावनापमकं पात्रभौतिकस्थूलदेहसंस्कारात्मकं भूला देहला-

तद्रव्यं प्राणिना भुक्तमाशु गच्छति वीर्यताम्। ततोऽहं प्राणवाञ्चातो वेत्तीत्यन्भवात्मकम् ॥ २५ अहरतादिकमेणाशु पञ्चकानुमवस्रमात्। स्थायरं जंगमं सर्वे वेत्ति तत्तद्भवखलम् ॥ રદ काकतालीययोगेन दढाभ्यासक्षयेण च । वासनान्तरसंश्लेपात्सृध्माकारमुज्झति ॥ २७ द्वित्वस्वसंविदा द्वित्वमेकसीव प्रवर्तते । पुंसो वेतालसंकल्पाद्वेताल इय भासुरः ॥ 26 अद्वित्ववेदनाद्वित्वभात्मनोऽपि निवर्तते । न करोमीति संकल्पात्पुरुपस्पेव कर्तृता॥ २९ द्वित्वसंकल्पतो द्वित्वमेकस्यैव प्रवर्तते। अद्वित्वसंविदा द्वित्वमनेकस्यापि नदयति ॥ परमात्मतया ब्रित्वं न किलात्मनि विद्यते । अविकारादिमस्वेन सर्वगत्वेन सर्वदा॥ 38 यत्स्वसंकल्परचितमसंकल्पक्षयं हि तत्। यथा मुने मनोराज्यं गन्धर्वनगरं यथा ॥ 32 तथा संकल्पने हेशो न संकल्पविनाशने। संकल्पयक्षो गन्धर्वपुर्याः सृष्टी नतु क्षये ॥ 33 पृष्टसंकरपमात्रेण यदिदं दःखमागतम्। तदसंकल्पमात्रेण क्षयि कात्र कदर्थना ॥ 38 यत्किचिदपि संकल्प्य नरो दुःखे निमज्जति। न किंचिदपि संकल्प सुखमव्ययमभूते॥ 34 संकल्पव्यालनिर्मुका न यदा तव चेतना।

भाग त्रीहियवतिलमाषादिद्रव्यमहं संपन्नमस्भीति वेति । 'त इह बीहियवास्तिलमाषा इति जायन्ते' इति श्रुतेरित्यर्थः। श्रुती इतिशब्दो भाविदेहानुकूलद्रव्यमात्रोपलक्षणार्थः । तेन स्थावरस्वेरजादिदेहप्राप्तिस्थले तत्तद्वीजानुकूलजलादिद्रव्यभावो-ऽप्यस्य भवतीति द्योतनाय द्रव्यमस्थीति वेत्तीति सामान्योक्तिः ॥ २४ ॥ वीर्थतां रेतस्लम् । बृक्षादी तु बीजभावम् । ततः स्त्रियां निषेकक्रमेणाई प्राणवान् स्थलदेही जातोऽस्मीति वेसीखर्थः ॥ २५ ॥ अनुभवातमकं ब्रह्मैव उक्तेनाहुन्तादिक्रमेण पद्यानां सङ्घः पत्रकं स्थूलदेहरतदनुभवश्रमात्रक्षरादिद्वारा बाह्यं स्थावरं जंगमं च वेत्ति पुनस्तद्वासनया खयमपि तत्तद्भवतीत्यर्थः ॥२६॥ ननु पूर्वभशकादिदेहलागे तदेहाकारवासनात्मना सूक्ष्मतया स्थितस्य पुर्यष्टकस्य दृढाभ्यस्तमशकाकारस्य सीक्ष्म्यस्य व कथं निवृतिर्हस्याकारस्य स्थात्यस्य चानभ्यस्तस्य कथं छाभस्त-ब्राह-काकतालीयेति । यथा आकस्मिके काकतालसंबन्धे काकमरणप्रयोजकं कर्मैव निमित्तं नान्यसथा दृढाभ्यस्तवासना-भिभवे चिरव्यवहितहस्त्याद्यहंभाववासनोद्भवे च कर्मैव निम-सम् । उद्भवहस्तिवासनान्तरसंश्लेषात्तु चिराभ्यस्तमपि सुक्ष्मम-शकाकारमुज्झतीत्यर्थः ॥ २० ॥ विरोधिवासनोद्भवेन पूर्ववा-सनोपमर्दे उत्तरस्यान्यासेन दार्क्ये च दृष्टान्तानाह-दित्वेत्या-दिना ॥ २८ ॥ २९ ॥ अनेकस्य जगतोऽपि ॥ ३० ॥ ३१ ॥

न तदा नन्दनोद्याने त्वमुद्धैः परिराजसे ॥ 38 स्वविवेकानिकैः कृत्वा संकरपजलद्श्यम् । परां निर्मलतामेहि शरदीय नभोन्तरम् ॥ SO संकल्पसरितं मत्तां मणिमम्बेण शोषय। तत्रोह्यमानमात्मानं समाध्वास्य भवामनाः ॥ संकल्पानिलनिर्धृतं ग्रान्तं पर्णतृणांशवत् । भूताकारो चिदात्मानमवलम्ब्य विलोकय ॥ **३९** स्वसंकल्पनकालुष्यं विनिवार्यात्मनात्मनः। परं प्रसादमासाद्य परमानन्द्रधान्भव ॥ 80 सर्वशक्तिमयो ह्यात्मा यद्यथा भावयत्यस्यम् । तत्तथा पश्यति तदा स्वसंकल्पविज्ञम्भितम्॥ ४१ संकल्पमात्रमेवेदं जगन्मिण्यात्वमुत्थितम्। असंकल्पनमात्रेण ब्रह्मन्कापि विलीयते ॥ ४२ संकल्पवातवछितं जन्मजालकदम्बकम् । असंकल्पानिलस्पर्शाद्विश्राम्यति परे परे ॥ 83 तृष्णाकरञ्जलतिकामिमां रूढिमुपागताम् । संकल्पमूलोद्धरणात्परिशोषवतीं कुरु ॥ ଧ୍ୟ प्रतिभाससमृत्थानं प्रतिभासपरिक्षयम् । यथा गन्धवेनगरं तथा संस्तिविभ्रमः॥ છહ प्रभुरसीति विस्मृत्य तावच्छोचति भूमिपः। भूमिपोऽसीति संजाता यावषास्य हृदि स्मृतिः ४६ नास्य तज्जातया ब्रह्मन्त्राक्स्मृतिवैर्तमानया । शरदेवोपगतया प्रावृह्जाड्यापवारिणी॥ 80

असंकल्पात् क्षयो यस्य तथाविधम् । हि प्रसिद्धम् ॥ ३२ ॥ किंचेलार्थे तथाशब्दः । संकल्पने मानसप्रयक्षेन रचने क्रेशः श्रमोऽस्ति नतु संकल्पस्य विनाशने । औदासीन्यमात्रेण स्वत एव तिसिद्धेः । प्रसिद्धश्वायमर्थं इत्याह--संकल्पयक्ष इति । गन्धवींऽत्र मनस्तत्युर्या मनोरथरचितपुर्याः सष्टी संकल्प एवासं-भावितरचनासमर्थलाद्यक्षो दिव्यशिल्पी प्रसिद्धो नतु तत्क्षये इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ कदर्यना क्षेत्रः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उत्तैः सर्व-गुणोत्कृष्टे नन्दनोद्याने स्थितोऽपीति शेषः । न परिक्षीणहेशो राजसे ॥ ३६ ॥ संकल्पनाशने तर्हि क उपायस्तमाह—स्वर्षि-वेकेति ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पर्णतृणस्य अंशाः खण्डास्तद्वद्धाः-न्तम् । भूताकाशे सर्वभूतहृदाकाशे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ यद्वस्त ब्रह्माकारेण भोग्याकारेण वा यथा भावयति तथा पश्यति ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ संकल्पलक्षणेन पुरोवातेन वलितं कन्दलितं जनमरुक्षणानां जास्नानां जरुधराणां कदम्बकं असंकल्परुक्ष-णस्य पाश्वात्वानिलस्य स्पर्शात्परे पदे ब्रह्माकाशे विश्राम्यति । विलीयस इति यावत् ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अविद्याकामसंकल्पना-शेऽपि यदि जगद्भासेत तर्हि तत्प्रतिभासमात्रमिति जीवन्युका-नुभवसिद्धो दृष्टसृष्टिपक्षः परिशिष्यत इत्याशयेनाह--प्रतिभा-सेति ॥ ४५ ॥ यावदज्ञानं तावदेव जगत्प्रतिभासः शोकहेतुर्न तदुत्तरकालमिलाशयेनाह-प्रभुरिति ॥ ४६ ॥ तत्त्वविदोऽपि घनप्रवाहयाऽकस्माचित्तेहा सैव वर्धते। य प्वोचैःस्वरस्तन्याः स प्रवाकामति श्रुतिम्॥४८ अहमेकोऽहमात्मासीत्येकां भावय भावनाम्। तया भावनया युक्तः स एव त्वं भवस्यलम्॥ ४९

पवं ह्यसंभवदिदं त्वविरागभास्त-त्तत्तस्त्वमुत्तमपदं परमेकदेवः। पूजासुपूजकसुपूजनपूज्यरूपं किंचिक किंचिदिव चित्तपदेकमूर्तिः॥ ५०

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे॰ मो॰ निर्वाणप्रकरणे द्वैतैक्यप्रतिपादनं नाम श्रयस्त्रिशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुर्सिकाः सर्गः ३४

ईश्वर उवाच ।

इस्यं स्थितिमिदं विश्वं सदसद्देवरूपि च ।

हैतेक्यपदिनिर्मुकं युक्तं हैतेक्यमप्यतः ॥ १
चितेः कलक्क्वेरूप्यमिति संसारतां गतम् ।
अकलक्क्रमसंसारि तचामिकाद्वयात्मकम् ॥ २
इयमसीति संजातकलक्का चिक्विक्थ्यते ।
पतामेव कलां बुद्दा स्वकाभिक्षां विमुच्यते ॥ ३
चिव्र्थाकारताभाषाद्वित्वात्सत्त्वं समुज्यति ।
सुखादिमिलितां घत्ते न सत्यां सदिति क्षणात् ॥४

प्राक्तनचिराभ्यस्तसंसारस्यृतिपरम्परया वर्तमाना ब्रह्मास्मीति स्मृतिराच्छायेत तथाच पुनः संसारशोकप्रसङ्ग इत्याशक्याह-नास्येति । अस्य भूमिपस्य तत्त्वविदश्व तस्मादाप्तोपदेशाज्ञातया वर्तमानया भूपोऽस्मि ब्रह्मास्मीति स्मृत्या बाधिता प्राक्तनदुःख-स्मृतिः खजाड्येन अपवारिणी शाच्छादनसमर्था न । यथा उप-गतया शरदा निरस्ता प्रावृद्ध मेघजाड्येनापवारणसमर्था न भवति तद्वदिखर्थः ॥ ४७ ॥ कोऽस्याः प्राबल्ये हेतुरिति चेन्मनननिदि-ध्यारानाभ्यासरुक्षणपीरुषप्रयक्षकृतघनप्रवाहतैवेखाशयेनाइ— भनेति । द्वयोश्विलेहयोर्मध्ये या चित्तेहा चित्तवृत्तिरकस्माद्धन-प्रवाहा सैव वर्धते इतरामिभवसमर्था भवति । यथा तारमन्द्रत-श्रीखरयोमंध्ये य एव उचैः खरः स एवान्यमभिभूय श्रुति श्रोत्रं आक्रामति । अयत इत्यर्थः ॥४८॥ सेयमहं ब्रह्मास्मीति स्पृति-रेवाविच्छेदेन संतता मुख्या मम मानसपूजा न बाह्यत्याशये-नाह-अइमिति । एकः अद्वितीय एवाहं शिवो देवः स च अहं खदहंकारोपलक्षित आत्मा नित्यापरोक्षचिदेकरसोऽस्मीरयेकाम-विच्छिनां भावनां स्मृतिधारां भावय । तया एवंरूपया देवपूजा-भाषनया युक्तः स शिव त्वं अलं नितरां भवसि नान्यया पूजवेखर्यः ॥ ४९ ॥ एवमुक्तरीत्या इदं बाह्यपूजनं लादशाना-मसंभवदेव । हि यस्मादविरागेषु तुच्छफलरागिष्वेव भाखत्प्र-काशमानम् । त्वद्योग्यस्तु उत्तमपदं तत्परमार्थसस्वं परंबद्येव एको देवः । यत्पूजासु पूजकः पूजाद्रव्यस्वामी सुप्न वोडशोप-चौरः पूजनं पूज्यं प्रतिमालिङ्गादि च किंचिम्न किंचित्तुच्छमिव भवति । यतः सा सामग्री चित्तस्य पदानि संकल्पास्तदेकमूर्ति-मैनःकल्पनामात्रमिखर्थः ॥ ५० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-बणतास्पर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे पु० त्रयक्षिषाः सर्गः॥३३॥

शुद्धा निरंशा सत्या वाऽसत्या वेत्येवमादिभिः।
विमुक्ता नामशब्दार्थः सर्वैः सर्वात्मिकापि खम्॥५
सर्वे निरुपमं शान्तं मनसैति क्रिमार्गगम्।
ब्रह्मेदं षृंहितं ब्रह्म शक्त्याऽऽकाशिकासया॥ ६
मनसा मनसि चिछन्ने स्वेन्द्रियावयवात्मिन।
सत्यालोकाज्जगज्जाले प्रच्छन्ने विलयं गते॥ ७
छिद्यते शीर्णसंसारकलना कल्पनात्मिका।
भृष्टवीजोपमा सत्ता जीवस्य इतिनामिका॥ ८

सीषुप्तमिह तुर्वं च तुर्यातीतपदं तथा । उपदिश्वेश्वरोऽन्त्वेत्र विश्रान्त इति वर्ण्यते ॥ १ ॥

इत्थमनया देवपूजया पूज्यमानं विश्वं वाधदशा असत् अधिष्ठानदृशा सत् देवरूपि च युक्तम् । तत्त्वतो द्वृतैक्यपदनि-र्भुक्तं व्यवहारे द्वेतेक्यरूपं च युक्तमिति सर्वविरोधपरिहार इलार्थः ॥ १ ॥ कुतो वा द्वेतिक्यरूपि कुतो या तन्निर्मक्तं तदाह—चितेरिति । कलङ्को मोहसतकृतं वैरुप्यं जडभाव इति कल्पनादित्यर्थः । असंसारि इति दर्शनादिति शेषः ॥ २ ॥ तदेव सप्टमाह—इयमिति । इयं दृश्यदेहादिरूपा । एतां दृश्य-प्रथासमर्थो चित्कलाम् ॥ ३ ॥ अर्थाकारताया अर्थाकारस्य भावाद्भावनानिमित्ताद्वित्वं प्राप्य स्वमसण्डसत्त्वं समुज्ज्ञति विस्परति । देहसुखदुःखादिभिर्मिलितां न सत्यामसत्यामेव खस्थिति सदिति धत्ते सेयं सकलङ्कस्थितिः ॥ ४ ॥ अकलङ्कर स्थितिमाह--शुद्धेति । सत्या वा असत्या वा इत्येवमादिभि-विकल्पनामशब्दार्थैः सर्वैर्विमुक्ता व्यवहारे सर्वनामरूपारिम-कापि खं शून्यस्वभावा सेत्यर्थः ॥ ५ ॥ उक्तनिष्कल्ह्रस्थिति-प्रतिष्ठार्थं सुषुत्यादिभूमिका भेदान्दर्शीयतुमुपक्रमते --सर्विमिति। सर्व पूर्ण निरुपमं ब्रह्मेव आकाशमिव प्रथमं विकसतीत्याकाश-विकासा तथाविषया स्वमायाशक्तया जाप्रतस्वप्रमुपुप्तिलक्षणः स्टिस्थितिसंहारलक्षणैरध्यात्माधिभूताधिदेवलक्षणैर्वा र्मार्गैः प्रशृतं जगन्मनसैव जृम्भितम् ॥ ६ ॥ अतो मनइछेदे-नैवास्य च्छेद इत्याह—मनसेति । सत्यस्यालोकात्साक्षात्का-रात् ॥ ७ ॥ एवं तत्त्वबोधेन कल्पनाभिः सह मनसि च्छिन्ने प्रथमं यस्यां भूमिकायां जीवन्मुक्तस्य स्थितिर्भवति तां लक्षणै-नीम्रा च दर्शयति-भृष्टभीजोपमेत्यादिना । इतिनामिका 'जुटं

पर्यन्ती नाम कलितोत्सृजन्ती चेत्यचर्यणाम्। मनोमोहाभ्रनिर्मुका दारदाकादाकोदावत्॥ 9 गुद्धा चिद्धावमात्रस्था चेत्यचिषापलं गता। समस्तसामान्यवती भवतीर्णभवार्णवा ॥ 80 अपनर्भवसीषुप्तपदपाण्डित्यपीवरी। परमासाद्य विश्वान्ता विश्वान्ता वितते परे ॥ ११ एतत्ते मनसि क्षीणे प्रथमं कथितं पदम् । द्वितीयं शृणु विप्रेन्द्र शक्तेरस्याः सुपावनम् ॥ १२ एपैय मनसोन्मुका चिष्छक्तिः शान्तिशास्तिनी । सर्वज्योतिस्तमोमुका वितताकाशसुन्दरी ॥ १३ धनसौषुप्रलेखाविच्छलान्तःसम्निवेशवत् । सैन्धवान्तस्थरसबद्वातान्तःस्पन्दशक्तिवत् ॥ १४ कालेन यत्र तत्रैष परां परिणर्ति यदा । शुन्यशक्तिरिवाकाशे परमाकाशगा तदा ॥ 813 चेत्यांशोन्मुखतां नूनं त्यजत्यम्बिव चापलम् ।

यदा पर्यखन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः' इति श्वेता-श्रतरकाटकश्रुत्योरछान्दोग्ये खपितिनामनिर्वचने खं इतीति विभागे च इतिपदेन व्यवहृतलादितिनामिकेलर्थः। यदाप्यश्वसुप्रप्राविप खपितिनामास्ति तथापि तत्त्वबोधेनाज्ञान-लिकादिबाधारास्योपाधेर्यस्यामविद्यायां लयस्तयोरभावाद्प्ययबो-धकस्यापिशब्दस्य निवृत्ती खरूपप्राप्त्यर्थक इतिशब्द एवावशिष्ट-स्तन्नाम संपद्यत इति भावः ॥ ८ ॥ एवं सर्वदृश्यवाधेनापरो-क्षद्रब्यात्रपरिशेषात्पर्यन्ती इत्यपि तस्या नामान्तरमित्याह-परयन्तीति । चेत्यस्य चित्तविषयस्य चर्वणां पुनःपुनः प्रीत्यानु-सारणं उत्युजन्ती त्यजन्ती ॥ ९ ॥ प्राकेलिबापलं गतापि सांप्रतं चित्खभावमात्रस्था समस्तस्य सामान्यं सत्ता तद्वती तन्मात्रेण परिशिष्टति यावत् । भवे जीवद्शायामेव तीणीं भवा-र्णवो यस्याम् ॥ १० ॥ साषुप्तमिति पदस्य सुष्ठ् निरतिशया-नन्दात्मकं सुप्तं खलाभरूपमिति छान्दोग्यकृतव्युत्पत्त्यसुरूपं यत्पाण्डित्यं पण्डा शास्त्रजन्यं ज्ञानं तां इतः प्राप्तः पण्डित-स्तस्य भावः पाण्डित्यं 'यथ श्रोत्रियोऽगृजिनांऽकामहतः' इति श्रुत्युपद्शितलक्षणविद्वदनुभवसिद्धं 'स यो मनुष्याणां राद्धः' इत्यादिना मानुषानन्दादिहैरण्यगर्भानन्दान्तशतशतगुणोत्तरोत्त-रोत्कृष्टविषयानन्दशीकरमहार्णवायितत्वेन श्रुतिद्शितं निरतिश-यानन्दरूपं तेन पीवरी अतिमहती । अथवा सौषुप्तपदस्य सी-पुप्तस्थानस्य यत्पाण्डित्यं निरस्तस्याविद्यामीर्र्ध्यचिदेकघनपूर्णा-नन्दस्वप्रकाशस्वरूपं तेन पीवरी । अतएव क्षणया महासुप्तपदनामिकापि सेति भावः 99 वर्णीयध्यन्वर्णितं स्थानं प्रथमं उत्तरं स्थानसुपसंह-रति-एतदिति । शक्तेश्रिच्छक्तेईढीकाराद्वा ॥ ज्योतिर्भिः सूर्यचन्द्रामिवाकारणरूपैस्तमोमिरन्धकाराज्ञानतत्का-र्वेथ मुक्ता ॥ १३ ॥ तस्याः पूर्व।पेक्षया ये विशेषास्तानाह---

वातलेखेव चलनं पुष्पलेखेव सौरभम्॥ १६ कालताकाशते त्यक्ता सकले सकलाकला। न जडा नाजडा स्फारा धत्ते सत्तामनामिकाम्१७ दिकालायनयिष्णामहासत्तापदं गताम्। तुर्यतुर्योशकलितामकलङ्कामनामयाम् ॥ १८ कांचिदेव विशालाक्ष साक्षिवत्समवस्थिताम्। सर्वतः सर्वदा सर्वप्रकाशस्त्रादुतत्वराम्॥ १९ एषा द्वितीया पदता कथिता तव सुव्रत । तृतीयं शूणु बक्ष्यामि पदं पद्दिदां बर ॥ २० एषा दक्षेत्यवलनादनामार्थापदं गता। ब्रह्मात्मेत्यादिशय्दार्थादतीतोदेति केवला ॥ २१ स्पैर्येण कालतः स्वस्था निष्कलङ्का परात्मना । तुर्यातीतादिनामत्वाद्पि याति परं पद्म ॥ **२२** ' सा परा परमा काष्ट्रा प्रधानं शिवभावतः। चित्येका निरवच्छेदा तृतीया पावनी स्थितिः ॥२३

घनेति । सर्वेषां परां परिणतिमित्युत्तरत्रोपमानतया संबन्धः ॥ १४॥ यदा पूर्वभूमिकेबाभ्यासवशाद्धनसौंचुप्तादिवरपरां परि-णतिं याति तदा आकाशे विद्यमाना शून्यशक्तिः परमाकाशं चिदेक्यनब्रह्माकाशभावमागतेव भूला चेलांशोन्मुखतां लज-तीति परेणान्वयः । खतो व्युत्थानशून्यता भवतीत्ययं पूर्वा-पेक्षया फलतोऽपि विशेष इति भावः ॥ १५ ॥ १६ ॥ किया हि कालस्य कला । परिच्छित्रमवकाशसापेक्षं वस्लाकाशस्य कला ताभ्यां सकले कालताकाशते तरपरिखागादेव व्यक्ता सक्लं दृश्यमात्रं न कल्यतीति सकलाकला । व्यावर्तनीयजडा-भावामाजडा । अनामिकां शब्दाभिलापायोग्यां वस्यमाणवि-शेषणां सत्तां धते ॥ १७ ॥ जाप्रत्खप्रसुप्रतिभयस्त्यों यो बिन राइहिरण्यगर्भाव्याकृतेभ्यस्त्योंऽशस्तेन कलितां प्रथमानाम् ॥१८॥ अतएव सर्वनिमित्तकसार्वकालिकसर्ववस्तुगोचरेभ्यः प्र-काशेभ्यः प्रधाभ्यः खादुभ्यश्चानन्देभ्यश्च तत्परां तादशोत्कर्ष-वर्ती स्पृहणीयतरां च ॥ १९ ॥ उक्तां तुर्याख्यां द्वितीयभूमि-कामुपसंहत्य तृतीयामवतारयति-एषेति । पदं भूमिकाम् ॥ २० ॥ तस्यां पूर्वापेक्षया ये विशेषास्तानाह-एषेत्यादिना । दक् ब्रह्माकारा अखण्डयृत्तिश्चेत्यं तद्याप्तं ब्रह्म तयोवैलनात् क्षीरोदकवदेकीभावात्रमयति गोचरयतीति नामप्राहकांशः अ-र्ध्यते गम्यते इत्यर्थो प्राह्मांशस्तदुभयश्चन्यतापदं गता । अतएव ब्रह्मात्मेखादिपद्वाक्यार्थादतीता। तथाच संप्रज्ञातसमाधिगर्म्थेव पूर्वा मूमिका इयं लसंप्रज्ञातसमाधिप्रतिष्ठागम्येति विशेष इति भावः ॥ २९ ॥ स्थैर्येण षड्भावविकार्राहित्येन काळतोऽपि खस्था स्थिरा । तमसोऽपि परेण आत्मना स्थेनैव निरस्तक-रुद्धा । या अतिशयितं परं पदं परमपुरुषार्थं इस्वर्धः ॥ २२ ॥ सर्वेषां पराणां परा परमा काष्टा अवधिः शिवभावतः परम-मङ्गललात्सर्वेभ्यो मङ्गलेभ्यः प्रधानम्। एका मुख्या निरवच्छेदा विरमस्यां प्रतिष्ठायां सर्वाध्वाध्वगद्रगा।
सा ममाप्यक्त वचसां न समायाति गोचरम्॥२४
विमार्गकलनातीतमिति ते कथितं मुने।
तिष्ठ तस्मिन्पदे निस्मिति देवः सनातनः॥ २५
एतन्मयमिदं विश्वं मुने तन्मयवेदनात्।
सत्यसंवेदनान्नेदं नच नेदं मुनीश्वर॥ २६
नेदं प्रवर्तते किंचिन्नेदं किंचिन्नियतंते।
शान्तं समसमाभासं प्रथते स्वस्य कोशवत्॥ २०
अद्वैतेक्यादसंक्षोभाद्यनचेतनया तया।
अविकारादिमत्त्वाध नित्यानित्यतया चिरम्॥ २८

चिद्धनत्वाच्छिशुशिलाकोशानां जगतामपि।
मनागपि न भेदोऽस्ति सतामप्यसतामपि॥ २९
समस्तं सुशिवं शान्तमतीतं वाग्विलासतः।
ओमित्यस्य च तन्मात्रा तुर्यां सा परमा गतिः॥३०

श्रीबाल्मीकिरुवाच ।
इत्युक्तवानमल्डस्परिणामतोऽस्मिन्
पारे पदे समुपशान्तरबाभिधाने ।
तृष्णीमतिष्ठदमुना मुनिना च सार्ध
विश्रान्तवृत्तिरथ तत्र मुहुर्तमीशः॥ ३१

इस्पार्थ श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपात्रेषु निर्वाणप्रकरणे परमेश्वरोपदेशो नाम चतुक्किसः सर्गः ॥ ३४ ॥

पश्चत्रिंदाः सर्गः ३५

वसिष्ठ उवाच । ततो मुद्दतेंन हरो गौरीकमिटनीसरः । मद्दिकासोन्मुखः स्वैरं विकासं बहिराददे ॥ रक्कयो द्योतयामास मुखाकादातलोदितः ।

विन्छित्तरहिता चिति स्थितिस्तृतीयेखर्थः ॥ २३ ॥ अस्यां प्रतिष्ठायां भूमिकायां स्थितिः सा सर्वेभ्यः श्विशास्त्रप्रसिद्धपड-ध्वभ्यः श्रुतिप्रसिद्धभूमार्चिराद्यध्वभ्यस्तद्धवरोभ्यस्तर्ध्वभिरुपा-िलफलमूर्वलोकमेदं प्राप्तम्यध दूरगा । अतो हे अज्ञ, ममापि वचसां गोचरं पिषयतां न समायाति किंतु ख्रयमेवानुभूयत इत्यर्थः ॥ २४ ॥ त्रिभ्यो जाग्रदादिमार्गेभ्यः कलनायास्तरसा-पेक्षतुर्यलसंख्यायाश्वातीत इति एवंरूपो देवः सनातनो नित्यो नान्यः । 'अतोऽन्यदार्तं' इति श्रुतेरिति भावः ॥ २५ ॥ तन्म-यवेदनासदुपादानकलदर्शनात् एतन्मयम् । उपादानातीता-द्वितीयसत्यसंवेदनात्तु इदं नेदं च । द्विविधविकल्वातीतमित्वर्थः ॥ २६ ॥ तदेव स्पष्टमाह — नेदामिति । स्वस्य कोश उदरं तद्वत् ॥ २७ ॥ कुतस्तत्समेभ्योऽपि समाभासं तत्र हेतुमाह ---अद्वेतैक्यादिति द्वाभ्याम् । प्रलयान्धिवद्वैतेकयाभावेऽपि स्वात्मनि संक्षोभः स्यान्नेत्याह—असंक्षोभादिति । कुतो न **संक्षोभस्तत्राह—धनचेतनयेति । धनेऽपि** सन्धवखण्डं द्रवला-दिविकारसद्भ एव दृष्टसद्विक्विन स्यात्तत्राह-अविकारादि-मत्त्वादिति । आदिपदाद्विवर्तपरिप्रहः । चिरं निल्या अपि का-लाकाशादयो निला यस्मात्तादशतया ॥ २८ ॥ सतामसतामपि विश्वकल्पितनभः विलाकोशानां जगतामपि चिद्वनलात्र मना-गपि मेदोऽस्तीति समसमाभासमिति सुष्रुक्तमिति भावः ॥२९॥ उक्तमेव तुर्यातीतलमुपपादयशुपसंहरति—समस्तमिति । ओ-मिलस्याक्षरस्य विराजादिभिरकारादिमात्राभेदेन कल्पितेश्रतुर्भिः पादैः प्रविभक्तस्य या नादविन्दुशक्तिशान्ताख्यास्तस्या अर्धमान त्रायो मात्रास्तासु तुर्या शान्ताख्या सा परमा गतिः । तस्यां हि ओतानुकात्रनुकाऽविकल्पास्यास स्थितिष अविकल्पास्या तुरी- बोधं समुद्रकादकं अंशुराशिरिवोद्गतः॥ २ ईश्वर उवाच । मुने मननमाद्वय स्वसत्तेवाशु नीयताम् । त्वमर्थं माहरानर्थं पवनः स्पन्दतामिव ॥ ३

यतुरीया नापनीयशुरो परमा गतिर्व्युत्पादितेति भावः ॥ ३०॥ इशः शिव इति वर्णितप्रकारेणोक्तवानुपदिष्टवान्सम् अथ अन् मुना वरिष्टेन मुनिना चादन्यः स्कन्दनन्यादिभिश्व सार्ध सम्य- गुपशान्तो रवः प्रणवार्धमात्रान्तरमभागो यत्रेति व्युत्पत्त्या शान्तरवाभिधाने अस्मिन् सर्वसंसारपारे तुरीयनुरीयपदे अमला या द्रम् भूमानन्दचित् तदेशरस्येन परिणामतो विश्रान्ता मृत्तियस्य तथाविषः संसत्त्र यसिष्ठाश्रमे मुद्दुर्तं तूर्णी निश्चेष्ट एवातिष्ठत् । मनसः परमपद्विश्वान्तो तदर्धानसर्वेन्द्रयचेष्टानां कुरुशीभावादिति भावः ॥ ३१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामा- यणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चनुखिदाः सर्गः ॥ ३४ ॥

श्रह्मविष्णुहरादीनामत्र यः परमः पिता । महादेवः परात्मासी पृज्यसीमान्त ईयेते ॥ ३ ॥

भक्तवारसंख्यातिशयान्मम विकासे प्रवोधन उन्मुखो मद्भाग्योदयेन प्रेरितः सन् बहिविकासं नेत्रोन्गीलनं आददे खीचकार ॥ १ ॥ हरस्य मुखलक्षणं निर्मललाित्रपुण्ड्शरद्भरेखािद्धतला-बाकाशनले उदितो हशां चन्द्रसूर्याधिलक्षणनेत्राणां चयो वोधं समाधेः प्रबुद्धतां द्योतयामास । यथा समुद्रकान्मेघसंपुटकाद् धावाभूमिसंपुटाद्वा उद्गतः अंक्र्नां राशिरकेंऽहवींतयति तद्व-दिखर्थः । अर्क अंशुरािशिरत्युलविषये यत्वं छान्दसम् ॥ २ ॥ तत्र भगवांस्तत्त्ववोधोपयोगितया उपायोपेयसारी प्रयममाह—मुने इति । हे मुने, लया प्रथमं मननं विचारमाहृय संनिधाय खस्य प्रतीचः सत्ता पारमाियंकस्पमेवाशु मीयतां प्रमाणैनिर्घार्थताम् । तत्र प्रतीचि अनर्थं वहिमुखलापादनेन सर्वान्वमृहं लमर्थं युष्मत्प्रखययोग्यमचिदंशं मा आहर । यथा अचलमेवाकाशं पवनः स्पन्दतां नयंस्तापरजोजाक्यादिभाजं

द्रष्टव्यमिह यर्तिकचित्तदृष्टं किं समं भ्रमैः। नहि हेयमुपादेयं चेह पश्यामि तद्विदः॥ **शान्त्यशान्तिमयानेतान्धिक**ल्पान्दऌयन्नसिः । घीरोसि नान्यथा स्थित्वा त्यमेव भव चात्मदकु ५ इमां दृश्यदृशामाह्य बाह्यबोधाय वा पुनः। समाश्रित्य मदुक्तं त्वं शृणु तूष्णीं स्थितेन किम् ॥६ इत्युक्त्वा बाह्यबोधस्त्वं माभवेति त्रिशुळधूक् । प्राणेनेदं देहगेहं परिस्फुरति यन्त्रवत्॥ 19 प्राणहीनं परिस्पन्दं त्यक्त्वा तिष्ठति सुक्रवत् । चालनी पावनी शक्तिः शक्तिः संवेदनी चितिः॥८ सा मूर्ता खादपि स्वच्छा सत्सर्तवात्र कारणम्। विनद्यतः प्राणदेही वियोगान्मरुदेव च ॥ चिदात्मा खादपि स्वच्छो न विनइयति किं भ्रमैः। मनःप्राणमये देहे चित्तस्वं परिजायते ॥ 80 मुक्करे ह्यमलाभासे प्रतिविम्बं प्रवर्तते । सदप्यप्रगतं वस्तु प्रतिबिम्बिभयां विना ॥ ११

करोति तादशमिति लमथीपमा ॥ ३ ॥ ननु लमर्थेप्वपि द-**ष्टव्यं हेयमुपादेयं च बह्व**स्ति तत्कुतो नादर्तव्यं तत्राह—द्रष्ट-व्यमिति । 'येनाश्रुतं श्रुतं मबत्यमतं मनमविज्ञातं विज्ञातं भवति' इत्यादिश्वतेरात्मदर्शनेनैव सर्वद्रप्रव्यानां तत्त्वतो दष्ट-साद्वृष्टेरदर्ष्टेर्वा अभैः समं सद्द कि प्रयोजनम् । तद्विदस्तत्त्वविदः । इह भ्रान्तिविषये ॥ ४ ॥ उपात्ता इष्टार्थाः प्रहीणा अनिष्टाश्व चित्ताश्वासनहेतुलाच्छान्तिमयास्त एव विपरीता विक्षेपहेतुलाद-शान्तिमयास्तानेतान्विकल्पान् दळयंस्लमेव धीरः असिरसि । अम्यया तुन घीरोऽसि । अतः आस्थिला आस्थां विधाय आत्मरक चादीरश्च भव । तथाच दश्याकारानास्कन्दितचिदा-समस्त्रभावावस्थितिरेव मुख्यः कल्प इति भावः ॥ ५ ॥ तत्र चेत्वमसमर्यस्तिहि तत्प्राप्तये कंचित्कालं श्रवणायनुकूलां कतिप-यामेष बाह्यदृष्टिमवलम्ब्य निरन्तरं तत्त्वप्राप्तये यतस्य न क-दाचिदपि प्रमादादुपरमस्वेखाह—इमामिति । बाह्यबोधाय । 'सूर्यो यथा सर्वेद्धोकस्य चक्षुनं लिप्यते चाक्षुपैर्वाह्यदोषः । एक-स्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः' इति श्रुतौ अस्रेपकलसमर्थनाय सर्वप्रपञ्चबाह्यत्वेन दर्शितस्यातमनो बोधाय तूष्णीमात्मलाभप्रयक्षं विना स्थितेनावस्थितेन कि । कः पुरुषार्थं इलार्थः ॥ ६ ॥ बाह्याकारदर्शनानां मध्ये देहातमतादर्शनमेव महाननर्थः सर्वानर्थनीजं चेति तदेव मम ल्याजयितुं भगवान् प्रकृत इति वसिष्ठ आह—इत्युक्लेति । त्रिशूलधुक् इति प्रागु-क्तकल्पान्तरमुक्ता त्वं बाह्यदेहादावात्मबोघो यस्य तथाविघो मा भवेत्याशयेन वश्यमाणदेहात्मताश्रमनिरासोपायमाहेति पुरविला व्याख्येयम् । त्रुटितो वा प्रन्थोऽत्रान्वेष्यः । तत्र देहस्य क्रियाशक्तिरिव चेतनशक्तिरपि परायसेनि नात्मप्रसक्ति-रिलाशयेन प्राणाधीना देह बंधेल्याह—प्राणेनेति ॥ ७ ॥ देहस्य बासनी बलनानुकूला कियाशक्तिः पावनी पवनप्रयुक्ता संबे-

यथा नास्ति मलोपेते मुक्करे मुनिनायक । तथा नास्ति गतप्राणो विद्यमानेऽपि देहके॥ १२ सर्वगापि चिद्रच्छनबोधान्स्पन्दादिकं प्रति। बोधात्कळङ्कविमला चिदेव परमं शिवम् ॥ १३ विदुर्देवं तदाभासं सर्वसत्तार्थदं तथा। स हरिः स शिवः सोऽजः स ब्रह्मा ससुरेश्वरः१४ अनिलानलचन्द्रार्कवपुः स परमेश्वरः । स एष सर्वेगो ह्यात्मा चित्खनिश्चेतनः स्मृतः १५ देवेशो देवभृद्धाता देवदेवो दिवः पतिः। महाचितः समुहासं मुद्यन्तीव न केचन ॥ १६ ये नाम ते जगत्येते ब्रह्मविष्णुहरादयः। परसात्परिनिर्याता ब्रह्मविष्णुहरादयः॥ १७ कणास्तप्तायस इव वारिधेरिव विन्दवः। सेष्विव भ्रमभूतेषु जातेष्विव परात्पदात्॥ १८ स्थितेषु भ्रमबीजेषु कल्पनाजालकर्तृषु । सहस्रशतशाखेयमविद्योदेति पीवरी ॥ १९

दनी राक्तिस्तु आत्मचितिरेवेत्यर्थः ॥ ८ ॥ तत्र क्रियाशके-र्मूलमाश्रयथ विनश्यतः । चिच्छक्तिस्तु न विनश्यतीत्याह — विनश्यत इति ॥ ९ ॥ कुतो न विनश्यति तन्त्रोपपत्तिमाह— मनः प्राणमये इति । छिङ्कदेहसंबिहिते इति यावत् । परिजायते निरावरणममित्र्यज्यते ॥ १० ॥ स्थूलदेहमात्रस्य तु न चिद-मित्र्यक्तिसमर्थता मलिनलादिति दृष्टान्तेनोपपादयति—सदपी-त्यादिसार्धेन ॥ १९ ॥ १२ ॥ अतएव सर्वगतापि चिन्माया-कलद्दानृतलाहिङ्गदेहादन्यत्र बाह्यकियासु खतत्त्वबोधे चास-मर्था लिङ्गदेहे अनादतलात्तद्भतिद्वारा तदुभयसमर्थेखाह—सर्व-गेति । बाह्याकारेणोच्छूनाद्वोधाद्वदिवृत्तेर्निमित्ताहेहघटस्पन्दादिकं प्रति समर्था । ब्रह्माकारबोधात्तु मायार्क्ने**डइविमला खयमेव परमं** बिवं परमकल्याणं र्कवल्याख्यं व्यवतिष्ठत इत्यर्थः ॥ १३ ॥ अत एवामित्रका चिदेव सर्वसत्तास्पूर्तिनिमत्तलाहीव्यति बोतत इति व्युत्पत्त्या देव इति विद्वरपक्ष इत्याह्-विद्वरिति। तस्या आ-भासमभिव्यक्तं रूपम् , तदभिव्यक्तयुरक्तपादेव हरिहरादिदेवाना-मप्युत्कृष्टदेवलमित्याशयेनाह—स हरिरिति। अजो हिरण्यगर्भः। ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥ १४ ॥ चित्खनिः सर्वचैतन्याकरः ॥ १५ ॥ ये नाम केचन महाचितः समुद्धासं निर्तिशयामित्यक्ति प्राप्य न मुह्यन्तीव मिथ्यामोहपरवशा न भवन्ति त एते जगति ब्रह्म-विष्णुहरादयः परमदेवाः प्रसिद्धा इत्यर्थः ॥ १६॥ यस्तु परब्रह्म-देवस्तदृष्ट्या गुणकदेशामिमानिन एते सुख्यादिकार्यार्थमामिर्भूता विस्फुलिङ्गप्राया लक्ष्यन्त इत्याशयेनाह---परस्मादिति ॥ १७ ॥ उपाध्यपहितप्राधान्याभ्यां कमादृष्टान्तौ । इदं चाशासीयव्यवहा-रहशोक्तं, विमर्शहशा तु ब्रह्मादीनामप्याविभीवसर्गादिचेष्टानुप्रहो-पदेशब्रह्माण्डाथिपत्यतिरोभावान्ता अपि व्यवहारा अविद्याञ्चत-भ्रान्तिरेष न वास्तवीत्याह—तेष्विवेत्यादिना ॥ १८ ॥ १९ ॥

१ कल्ड्स विहास विमलेखर्भः.

२८

वेदवेदार्थवेदादिजीवजालजटावली। ततस्तस्या अनन्तायाः प्रसृतायाः पुनःपुनः ॥ २० संपन्नदेशकालायाः क्रमः स्याहर्णनासु कः। ब्रह्मविष्णुहरादीनामतोऽयं परमः पिता ॥ २१ मूलबीजं महादेवः पल्लवानामिव द्रुमः। सर्वसत्वाभिधः सर्वः सर्वसंवेदनैकछत्॥ २२ सर्वसत्ताप्रदो भास्वान्वन्दोऽभ्यर्च्यश्च तद्विदः। प्रत्यक्षवस्तुविषयः सर्वत्रैव सदोदितः॥ રરૂ **संवेदनात्मक**तया गतया सर्वगोचरम्। न तस्याह्वानमन्त्रादि किंचिदेवोपयुज्यते ॥ રઇ नित्याद्वतः स सर्वस्थो लभ्यते सर्वतः स्वचित् ।

यां यां वस्तुद्दशां याति तत एव मुने शिषम्॥२५
स्वरूपं समवाप्नोति रूपालोकमनोद्दशाम्।
आद्यं पूज्यं नमस्कार्यं स्तुत्यमध्यं सुरेश्वरम्॥ २६
एनं तं विद्धि त्रेद्यानां सीमान्तं महतामपि।
एतमातमानमालोक्य जराशोकभयापहम्।
संभृष्टवीजवज्ञन्तुनं भूयः परिरोहति॥ २७
सक्ळजन्तुषु यस्वभयप्रदं
विदितमाद्यमुपास्यमयस्नतः।
त्यमजमातमगतं परमं पदं

भवसि किं परिमुद्यसि दृष्टिषु ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे महादेवस्य प्उयसीमान्तत्वकथनं नाम पश्चित्रशःसर्गः ॥३५॥

षट्त्रिंदाः सर्गः ३६

ईश्वर उवाच । ततश्चिद्र्यमेवैकं सर्वसत्तान्तरास्थितम् । स्वानुभूतिमयं शुद्धं देवं रुद्देश्वरं विदुः ॥ १ बीजं समस्तवीजानां सारं संसारसंस्तेः। कर्मणां परमं कर्म चिद्धातुं विद्धि निर्मलम् ॥ २

वेदा वेदार्थाः सर्गादिमकमाः साङ्गोपाङ्गकियाकलापा उपासन-भेदा ब्रह्मतत्त्वव्युत्पादनोपायभेदाश्च तद्धिकारिणो जीवास्तेषां **कामकर्मवा**सनाजननमरणायनर्थजटाश्चेत्येतेषामावली पश्चि-**रूपा अविदोति पूर्वत्रान्वयः । अविद्याविरासमेदास्लानन्त्या-**द्वकुमशक्या इत्याह-तत इति ॥ २० ॥ वर्णनासु कः पुरुषः कमत इति कमः समर्थः स्यात् । न कश्चिदित्यर्थः । अथवा क्रम्यत इति कमः प्रयोजनम् । कि प्रयोजनं स्यात्र किंचिदित्यर्थः । यतो ब्रह्मविष्ण्वादयोऽपि तदधीनशरीरोपाधिपरिप्रहे। अयं चिदात्मा महादेवस्तेषामपि पितत्यर्थः । तथात्राथर्वशिरः-श्रुतिः 'ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम् । सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुदे-न्द्रास्ते संप्रस्यन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सहभूतैः न कारणं कार-णानां धाता ध्याता कारणं तु ध्येयः सर्वेश्वर्येण संपन्नः सर्वेश-रक्ष शंभुराकाशमध्ये' इति । पुराणेध्यप्यक्तम् 'त्रयस्ते कारणा-त्मानो जाताः साक्षान्महेश्वरात् । तपसा तोषयिला तं पितरं परमेश्वरम् । परस्परसाजायन्ते परस्परजयेषिणः ॥' इति ॥ २१ ॥ महत्यपरिच्छित्रे आत्मज्ञानयोगैश्वर्ये महीयते पूजाते सर्वोत्कर्षेण वर्तत इति महादेवः । तथाच श्रुतिः 'यः सर्वान्भा-वान्परित्यज्यात्मश्चानयोगैश्वर्ये महति महीयते तत्मादुच्यते महा-देवः' इति । सर्वेषां सत्त्वानां बळानि अमिधाथ यस्य ॥ २२ ॥ तद्विदस्तं परिचितवतः पुंसः प्रत्यक्षं प्रतीन्द्रियं प्रतिवस्तु च स्फुरद्भपत्वात्स एव विषयो नान्यः ॥ २३ ॥ संनिधानार्थमा-हानं प्रकाशनार्थं च मन्त्रा उपयुज्यन्ते । सर्वगते सदा स्फूर्ति-रूपे तु तस्मिन्नाह्वानमन्त्रयोः प्रयोजनमस्तीति भावः । आदिप- कारणं कारणौधानामकारणमनाविलम् । भावनं भावनौधानामभाव्यमभवात्मकम् ॥ ३ चेतनं चेतनौधानां चेतनात्मनि चेतनम् । स्वं चेत्यचेतनं चेत्यपरमं भूरिभावनम् ॥ ४

दास्त्रितिष्ठापनावशुण्डनावरोधनादिपरिष्यहः ॥ २४ ॥ तत एव छभ्यते ॥ २५ ॥ रूपाणां तदालोकनानां तन्मननलक्षणानां मनसां तत्साक्षिदश्य खरूपं खयमेव आप्रोति धत्ते नान्यदिख्यैः । अतस्तमेव सर्वपूजादिव्यवहाराणामाधं पुरःस्फूर्तिकं देवं पूजादियोग्यं विद्धि ॥ २६ ॥ एवं वेद्यानामप्ययमेव सीमेन्त्याह—एनमिति ॥ २० ॥ यत्सकलजन्तुषु विदितं सत् अभय-प्रदं यत्सवंस्मादायं यत् अयक्षत उपास्यं तद्वं पदं लमेव भ-विसे अतः कि बाह्यदिष्टु परिमुद्यसीत्ययः ॥ २० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे प-

सर्वविश्वोद्भवात्तस्य सर्वोकारेण च स्थितेः। सर्वास्पर्गाद्विशुद्धेश्व सर्वेश्वर्यं प्रपञ्चयते॥ १॥

यत एतमात्मानमालोक्य न भूयः परिरोहित ततो हेतोर्हष्टमात्रः संसारहजं द्रावयतीति छदः स नासौ ईष्टे सर्वस्य
जगत इतीश्वरः खामां तं विदुर्वद्याविदः । तथाच श्रुतिः 'स
रष्टो मृडयाति नः' । 'ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्वात' इति ॥ १ ॥
विद्वातुं चित्सारम् ॥ २ ॥ क्रियाशक्तयाः कारणम् । स्वसक्तया
सर्वभावानां भावनं सत्ताप्रदम् । परमार्थतस्तु अकारणमभाव्यमभवात्मकं च ॥ ३ ॥ चितनौधानां सर्वेषुद्धिकृतीनां चेतनं
प्रकाशकम् । चेतनात्मिन जीवेऽध्यन्तःसारभृतं चेतनं चिद्रूपम् ।
स्वं प्रस्यम्भृतं चेत्यानां बाह्यवद्यानामि चेतनं बुद्धिकृतिव्याप्तिकृतामिव्यक्तया प्रथयितारम् । चेत्यानां परममिष्ठिष्ठानतस्वभूतम् । भूरिभावनं आस्मानमेव मायया बहुत्वेन भावितवन्तम्

आलोकालोकममलमनालोक्यमलोकजम्। आलोकं बीजबीजीघं चिद्धनं विमलं विद्यः॥ असत्यं सन्मयं शान्तं सत्यासत्यविवर्जितम् । महासत्तादिसत्तान्ते चिन्मात्रं विद्धि नेतरत्॥ स्वयं भवति रागात्मा रञ्जको रञ्जनं रजः। स्वयमाकाशमण्याशु कुड्यं भवति मण्डितम् ॥ ७ असिश्चित्रेत्रेत्रे जगन्मरुमरीचयः। स्फूरिताः प्रस्फुरिष्यन्ति प्रस्फुरन्ति च कोटयः॥८ स्वसन्तामात्रसंपन्नं पदमिसन्स्वतेजिति । न किंचन च संपन्नमन्यदौष्ण्यादिवानले॥ गर्भाकृतमहामेरं परमाणुसमं विदुः। आच्छादितमहामेरुं परमाणुसमं विदुः॥ गर्भाकृतमहाकल्पो निमेपोऽसावदाहृतः। आक्रान्तकल्पेनानेन न संत्यका निमेपता ॥ ११ वालाग्रकाद्प्यणुना व्याप्तानेनाखिला मही। सप्ताब्धिवसैनाप्युर्धी नास्यान्तमधिगच्छति ॥ १२

अकुर्वश्रेष संसाररचनां कर्तृतां गतः। कुर्वन्नेव महाकर्म न करोत्येय किंचन ॥ १३ द्रव्यमप्येष निर्द्रब्यो निर्द्रब्योऽपि हि द्रव्यचान्। अकायोऽपि महाकायो महाकायोऽप्यकायवान् १४ अद्याप्येष सदा प्रातः प्रातरप्यचतां गतः। न वाद्यमद्य न प्रातस्त्वद्य प्रातक्ष्य वा सदा ॥ १५ भिडि भिडि खिले मत्ता पुरुपिच्छिलिसालघम्। विविचलित्सदालोका लासो गुलुगुलुः शिली ॥१६ इत्याद्यनर्थकं वाक्यं तथा सत्यं स एव च। न तदस्ति न यत्सत्यं न तदस्ति न यैश्वसौ ॥ यस्मिन्सर्वे यतः सर्वे यः सर्वे सर्वेतश्च यः। यश्च सर्वमयो नित्यं तसी सर्वातमने नमः॥ १८ यत्रान्तरालगहनेन विलासवत्या हेलाविलोलघनसर्जितयामलेन। महेन पहुचद्छाम्हमाहितानां लक्ष्मीलताविरलिता वलितेव मुष्टिः॥१९

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे परमेश्वरवर्णनं नाम पद्भिन्नाः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंदाः सर्गः ३७

ईश्वर उद्याच । इत्यादिकानां राव्दानामर्थश्रीः सत्यरूपिणी ।

॥ ४ ॥ आलोकानां चक्षुरादीनामादित्यादीनां चालोकं प्रका-शकम् । 'तच्छुक्तं ज्योतिषां ज्योतिः' इति श्रुतेः । अनालांक्यं चक्षःसर्याद्यप्रकार्यम् । अलोकजमलीकिकम् । आलोकं प्रका-शम्। एकमेव बीजं बीजाधारमना स्थितम् ॥ ५ ॥ न विद्यते सत् प्रशिब्यमेजस्यद्वाय्वाकाशं च यत्र । सत्येन व्यावहारिके-णासत्येन प्रातिभासिकेन चावस्थात्रयेण विवर्तितम् । महासत्ता जगत्सत्ता आदिसत्ता कारणाव्याकृतसत्ता तयोरन्ते बाधे त-त्साक्षि यश्चिनमात्रं तदेव विद्धीलर्थः ॥ ६ ॥ रञनवीजाव-स्थायां रागात्मा विषयस्यतौ चित्तक्षोभकलाद्वजकः । विषयसं-बन्धे रजनम् । तद्वियोगे चित्तमालिन्यहेतुलादजः । आकाश अमृतंहपोऽपि कुड्यं मृतं चित्रादिरिक्षतं भवति ॥ ७ ॥ ८ ॥ अस्मिन्खतेजसि खप्रकाशे खसत्तामात्रेण जगत्पदं संपन्नमपि किंचन न संपन्नं वस्त्वन्तराभावाद्यथा अनले ज्वालाङ्गारविस्फु-किङ्गप्रभादिवैचित्रयं संपन्नमपि औष्ण्यैकखभावाद्वहेरन्यन तद्व-दिखर्थः ॥ ९ ॥ अतएव 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' इति श्रुतिः सर्वविरुद्धधर्माणां तत्र समावेशं दर्शयतीत्याशयेनाह-गर्भाकृतेति । गर्भाकरणं गीणमिति शङ्कावारणायाच्छादितेत्य-र्धेन तद्याख्यानम् ॥ १० ॥ कालतोऽप्यस्मिन्दैर्ध्यसीक्ष्म्यमवि-रुद्धमित्याह- गर्भाकृतेति । आकान्तः सर्वतोव्याप्तः कल्पो द्विपरार्धान्तकालो येन । अत्रापि-प्राग्वदपीनरुत्तयम् ॥ १९ ॥

तिसन्सर्वेश्वरे सर्वसत्तामणिसमुद्रके॥

उक्तं प्रपन्नयति—वालाप्रेत्यादिना ॥ 92 11 महाकायो ब्रह्माण्डशरीरः ॥ १४ ॥ अद्यश**न्दवाच्यषष्टिघटिका**-रमकोऽपि प्रातः आधित्रमुहूर्तमात्रात्मा परमार्थतस्तु नवा आदं मुहूर्त नवा अद्य नापि प्रातः । अद्यप्रातरादिशस्दानां यदि तत्तद्धिष्टानचिति लक्षणा तदा सदैव स तत्तच्छन्दयोग्य इत्यर्थः ॥ १५ ॥ एवमुन्मस्रवालादिप्रलपितनिरर्थकापशब्दजाल-मपि स एवेति तेषु कांश्विदनुकुल दर्शयति—मिण्डिमिति ॥१६॥ तथा सत्यं सार्थकं वेदशास्त्रादिशब्दजालमपि स एव । उक्तं सर्व पिण्डीकृत्य व्यतिरेकमुखेनाप्याह—न तदस्तीति ॥ १७ ॥ अयमेव प्रहादेनापि प्राग्टब्बा प्रणत इति स्मारयञ्जपसंहरति-यस्मित्रिति ॥ १८ ॥ यत्रारोपादसतोपि सत्ता भवतीति यदुक्तं सत्संभावनाय यथा यत्रानर्थका अपि श्लोकाः सार्थका भव-न्तीति दशान्तप्रदर्शनमभिप्रेखानर्थकं श्लोकसुदारति-यत्रेति । यत्र इत्यादिकानां शब्दानामर्थश्रीः सत्यरूपिणीति उत्तरसर्गाधे नान्वयस्तर्त्रतद्याख्यास्यामः ॥ १९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारा-मायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे पट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

संयोगादसतां सत्ता शिवस्थानन्तशक्तयः । प्रधानशकेर्नियतेर्नृत्यं चात्रोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

यस्मित्रीश्वरे इत्यादिकानां सर्गान्तोदाहृतश्चोकप्रशृतीनां शब्दानामर्थश्रीः सत्यरूपिणी सत्यप्राया भवति तस्मिन्सर्व-

१ बलनापीति पाठः.

२ न यन्मृषा इति पाठः.

का नाम विमलाभासास्तस्मिन्परमचिन्मणो ।
न कचन्ति विचिन्वन्ति विचित्राणि जगन्ति याः २
एषा बीजकणान्तस्था चित्सत्ता स्ववपुर्मयम् ।
लब्धा मृत्कालवार्यादि करोत्यङ्करमोदनम् ॥ ३
फेनावर्तविवर्तान्तर्वितिनी रसक्रिपणी ।

जगरसत्तालक्षणस्य मणेः समुद्रके संप्रप्राये मायागवले सर्वेश्वरे का विमुखानासाः शक्तको न कवन्तीति परेणान्वयः। तस्य श्लोकस्य लोकतः परमार्थतश्च यथा सत्यार्थता तथा यर्ण्यते । तत्र ठोकतस्तायत्कश्चिद्वशोऽनेन वर्ण्यते । पष्टवैः किसलयेर्द्देरितपत्रेथामलैरम्लानमालितानां लतानां महेन कान्तेन । सर्वतो छतामिराछिङ्गितेनेति यावत् । अत-एवान्तरालेषु स्कन्धकोटरशाखान्तरालेषु करालेषु गहनेन दुष्प्र-वेशेन । दुरारोहेणेतियावत् । खयं चामछेन अम्लानेनानेन तरुणा पुष्पफलपहर्वभ्रमरखगादिसमृद्धा विलासवत्या हेलया अव-हेळनेन विलोलानि तरलितानि घनानां मेघानां विद्युत्सं-वलनक्षिग्धशित्रिर्दयामनासीन्दर्यातिशयविञ्जमसर्जितानि यया। गर्जितयेति पाठे सीन्दर्यातिशयाभिमानप्रयुक्तगर्जनानि ययेति थोज्यम् । तथाविधया खलक्षम्या वृक्षान्तरेषु वनान्तरेषु रार्वजगति वा प्रसिद्धा लक्ष्मीलता खात्मन्येबोपसंग्रहाद्वलिता संकोचिता मुष्टिरिवाऽविरित्तता धनीकृत्वेत्यर्थः । अथवा भग-वान् विष्णुरत्र वर्ण्यते । पहवैद्लैधामलया वनमालया मालि-तानां पुरुषाणां मध्ये महेन श्रेष्टेनामलेन परमार्थतो वसनभूष-णादिना च निर्मलेन । अन्तराले जठरे चतुर्दशभुवनभरितला-द्रहनेन विष्णुना जगनमोहनसीन्दर्थविलासवत्या प्राग्वदेव हेला-विलोलघनगर्जितया खदेहलक्ष्म्या खमालिङ्गनती लक्ष्मीलक्षणा ललनापि वलिता मुधिरिवाविरलिता अपृथक्तेत्वर्थः । पर-मार्थतोऽप्यन्तराले विचित्रकामकर्मवासनागहनेनाज्ञानलक्षणेन मलेन पहनप्रायः सूक्ष्मभूतेसात्कार्येईलप्रायः स्थलभूतेर्भ्वनमन देश मालितानां जगतां या लक्ष्मीलता सा हेळया लीलया नभिं विलोलानां धनानां गार्जितमिव गार्जितं यस्यास्तथावि-थया महावाक्यश्रुत्या विलसनं विलासस्तद्वत्या ब्रह्मविद्याकरिण्या महेन प्रतिमहताडनाय विलता मुर्हिरव अविरिलता चिदेक-घनीकृता । एवमर्थान्तराष्यप्यस्य श्लोकस्य सुर्धानिहृशानि । इलादिकानामिल्यत्र आदिपदादनर्थकरवेन प्रसिद्धतमानि जरद्र-वदशदाडिमादिवाक्यानि एहान्ते । 'जरद्भवः कम्बलपादकाभ्यां द्वारि स्थितो गायति मदकाणि । तं ब्राह्मणी पृच्छति पुत्रकामा राजन् रमायां लग्जनस्य कोऽषेः ॥' अस्यापि लैक्किः पारमा-थिको वार्थो ब्रह्मससँयव कल्पयितुं शक्यते । तथाहि । छाकि-कस्तावत्-कश्चिन्मद्रदेशजः **कम्ब**ळपादुकाभ्यामुपळक्षितो जरद्रवसाद्दयाजरद्भदो वाहीकः खगृहद्वारि स्थितः सन्मद्रकाणि

किनेन्द्रियसंबन्धे करोति स्पन्दमम्भसाम् ॥ ४ एपा कुसुमगुच्छेषु रसरूपेण संस्थिता । कचित ब्राणरन्ध्रेषु करोति परिफुलताम् ॥ ५ शिलाङ्गस्था शिलाङ्गाभामसतीं सत्यतापदम् । सर्गाधारदशां धत्ते गिरीन्द्रः स्थितिलीलया ॥ ६

मद्रदेशप्रसिद्धगीतानि गायति । तं कानिहर्शुनचिकित्स्यरोगयुक्तन पुत्रेण सह उवणाकरं प्रति केनचिदावस्यकेन कार्येण गामि-ष्यस्ती तत्र पुत्रजीवनकामा बाह्मणी खबणाकराद्यमायत इति लोकेभ्यः श्रुला हे राजिति सबहुमानं संबोध्य हमायां हव-णाकरे लशुनस्य कोऽर्घः कि समर्थं लशुनस्त महर्घासिति ष्ट्रच्छतीत्यर्थः । पारमार्थिकोऽपि-कम्बलसहस्या अविद्या पादकाप्रायेण लिक्नदेहेन च चक्षरादिद्वारि विषयभोगार्थ खिली जरद्वसदशी जीवो वैषयिकाण्येव मदकाणि खोलुबादिमङ्गलगी-तानि बहिर्मुखो गायति न मनागपि खतत्त्वं दिद्धते तमेता-दशमपुरुभ्य पुनामः संसारनरकात्रायत इति पुत्रो ब्रह्मात्मना-बोधस्तत्कामा बाद्यणीय बाद्यणी श्रुतिः पृष्ठिति—हे राजन् . ख्रयं ज्योतिष्ट्रेन विराजमान, ख्रुचनन्येन सर्व जगद्रखबंध हे आरमन् , रुमायां सर्वाविद्याकामकर्मवीजविनाशकलाह्नणाक-रोवरप्राये व्यत्यरूपे परमश्के अत्यन्तापवित्रलाहाह्यणामोग्य-रुशनतुल्यस्य भोग्यस्य कोऽधीं मील्यविचारसाव । तस्मात्यरि-व्यज्य बाह्यदृष्टि खात्मारामो भवेत्याशयेन कोऽयमारमेति वय-मपासहै। कतरः स आत्मा, 'कि कारणं ब्रह्म कृतः स्म जाताः' इलादि पृच्छतीत्यर्थः । एवं दशदाडिमादिवावयंध्यः यर्थसता <mark>ऊह्या । भिंडि भिंडिमिति लोकस्य तु बाउमत्तायव्यक्तजिश-</mark> तानुकरणस्यानुकार्यैरेवार्थेरर्भवता । अनुवार्थस्य व्यवक्तान देव न बाक्यतेति ॥ १ ॥ या वीजशक्ताः जगन्ति विचिन स्वन्ति आरोपयन्ति ताः शक्तयः का नाम धिमलाभासाः स्फटा सत्ता न कचन्ति नाविभवन्ति ॥ २ ॥ ताः शक्तरिव यक्तयोदाहरात -एपेलादिना । बीग्रादिबीजकणान्तस्या एपा एश्वरी चित्सत्ता क्षेत्रे परिष्कृतमृत्कालवायीदिसहकारिकारणानि उद्भवा प्रथममङ्करं करोति क्रमेण तण्डुलाभूय साक्षात्पुरुषनी-ज्यमोदनं करोतीलार्थः ॥ ३ ॥ फेना आवर्ताः विपताश्च अन्तर्वर्तिनो यस्याः । तेष्वन्तर्वर्तिनी अनुगतः वा रमसामान्य-हृषिणी ऐश्वरशक्तिः कठिनशिठातलादिसंबन्धे निस्नदेशोपसर्प-णलक्षणे जिह्नेन्द्रियसंयोगे तृद्रोपमर्पणरूपं स्पन्दं करोति ॥ ४॥ रसहरोण मकरन्दसवितगन्धरूपेण नासापुटयोः परिकार-ताम् ॥ ५ ॥ बिछाङ्का प्रतिमा तदाभाम् । शिछाव्यतिरेकेण प्रथासतीम् । व्यावहारिकसत्यनापदम् । छज्यत इति सर्गः कार्यं तदाघारः शिलेति भेदविकत्पदशःमविकृतेव धत्ते । यथा अविकृतो गिरीन्द्रस्तृणवृक्षलतादिकार्याणि धने तद्वदित्वर्थः

१ चित्सत्ता तु झिलाङ्गागामिति पाठ:. मूलस्थपाठे तु (चत्स-त्रेति विदेष्यमुपक्रमलक्षं बोध्यम् .

२ भुवनामोदैग्विष पाठः । इदं पाठान्तरं मृठाननुगुणमवः

१७

२३

पवनस्पन्दकोशात्मरूपिणीव त्वगिन्द्रियम्। संसाधयत्यात्मसतं पितेवात्मतया तया ॥ O अशेषसारसंपिण्डमध्यात्मानं स्वलिङ्ये। भावयित्वा न किंचिरविभव खत्वं करोत्यलम् ॥ ८ स्यसत्ताप्रतिविम्याभमाकाशमुकुरोद्ररे । धत्ते कल्पनिमेपाङ्कं कालाख्यममलं चपुः॥ 9 आमहापञ्चमेशानं परिणाममया इमे। इदमित्थमिदं नेति नियतिभवति स्वयम्॥ १० साक्षिणि स्फार आभासे गृहे दीप इव क्रियाः। सत्ये तस्मिन्प्रकाशन्ते जगिश्वत्रपरम्पराः॥ ११ परमाकाशनगरनाट्यमण्डपभूमिषु। स्वराक्तिवृत्तं संसारं पश्यन्ती साक्षिवतिस्थता॥ १२

शिवस्यास्य जगन्नाथ शक्तयः काः कथं स्थिताः। साक्षिता का च किं तासां वृत्तं स्पात्कियदेव तत्र१३ ईश्वर उवाच ।

अप्रमेयस्य शान्तस्य शिवस्य परमात्मनः । सीम्य चिन्मात्ररूपस्य सर्वस्थानाकृतेरपि॥ १४ इच्छासत्ता व्योमसत्ता कालसत्ता तथैव च ।

॥ ६ ॥ एवं पवनलक्षणो यः सम्दानां सर्वेकियाणां को-शस्तदारमखरूपा लगिन्द्रियं स्पर्धप्रहणाय संसाधयत्यनुकूछ-यति । यथा पिता आत्ममुतं स्वकार्ये प्रवर्तयति तद्वत् । अनया रीत्या इन्द्रियान्तरेष्वपि प्रयुत्तिशक्तयो बोध्या इत्यर्थः ॥ ७ ॥ यथा प्रवृत्तिशक्तया संसरति तथा निवृत्तिशक्तया अशेषस्य जगतः साराणां सत्तानां संपिण्डं एकघनमात्मानमधिकृत्य श्र-वणमननाद्यपायैः खसिद्धरे भोक्षाय भावयिला नेतिनेतीति सर्वप्रतिषेधेन नर्किचिश्वं शून्यत्वमिव सर्वस्य करोति ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ सर्वशक्तिभेदानेकीकृत्य तत्कार्थयत्तामवधारयति-आ-महेति । 'बद्या विष्णुश्च रुद्रथ ईश्वरथ सदाशिवः' इत्युत्कर्षपर-म्परायां पश्चममीशानं सदाशिवमभिन्याप्य नियतिः सर्वकार्य-व्यवस्थापिका मूलशक्तिः ॥ १० ॥ कयं तनियतिः स्वयं भ-वतीति चेत्रियमेन तरप्रथाहेतुलादिलाह-साक्षिणीति । स्पा-रेडपरिच्छित्रे । आभासे ज्योतिषि ॥ ११ ॥ आकाशनगरं गन्धवीपुरं तत्रलानाव्यमण्डयम्मित्रायजायदादिषु ॥ १२ ॥ का इति सामान्यविषयभागप्रथः । कथभिति प्रातिखिकप्रकारमे-दप्रधः ॥ १३ ॥ १४ ॥ 'सोऽकामयग बहु स्याम्' इति श्रुतेः प्रथमिन्छासत्तामिव्यक्ता, ततो व्योमामिव्यकौ तत्सत्ता. तत्र कालात्मनः सूत्रस्थाभिव्यक्ती कालसत्ता, सतो नियतसंस्था-नभूतभौतिकाविभावे नियतिसत्ताभिव्यज्यते तासु सर्वास्वनुगता महासत्तेति भावः ॥ १५ ॥ ऐश्वरानसाधारणशक्तिभेदानुक्ला जीवसाधारणांसानाह--ज्ञानसक्तिरिति । कर्तृता प्रवृत्तिशक्ति-रकर्तृता निरुत्तिशक्तिश्च कियाशक्तेरवान्तरभेदी । यद्यपीच्छाश-

तथा नियतिसत्ता च महासत्ता च सुव्रत ॥ शानशक्तिः क्रियाशक्तिः कर्तृताऽकर्तृतापि च। इत्यादिकानां शक्तीनामन्तो नास्ति शिषात्मनः १६

वसिष्ठ उवाच।

शक्तयः कुत एवैता बहुत्वं कथमासु च। उदयश्च कथं देव मेदामेदश्च कीहराः॥

र्द्रश्वर उचाच ।

विवस्यानन्तरूपस्य सेषा चिन्मात्रतात्मनः। एषा हि शक्तिरित्युक्ता तस्माद्धिमा मनागपि॥ १८ श्रत्यकर्तृत्वभोकृत्वसाक्षित्वादिविभावनात् । शक्तयो विविधं रूपं धारयन्ति बहुदकम् ॥ १९ पवं जगति नृत्यन्ति ब्रह्माण्डे नृत्यमण्डपे। कालेन नर्तकेनेच क्रमेण परिशिक्षिताः॥ २० थेषा परपराभासा सैपा नियतिरुच्यते। कियाथ कृतिरिच्छा वा कालेत्यादिकृता मिधा २१ आमहारुद्वपर्यन्तमिवमित्थमिति स्थितेः। आतृणापद्मजस्पन्दं नियमान्नियतिः स्मृता ॥ नियतिर्नित्यमुद्धेगवर्जिता परिमार्जिता। एषा जुलाति वे जुत्यं जगजालकनाटकम् ॥

क्तिरपि जीवेऽस्ति तथापि ज्ञानेश्वरविक्रयां विना खविषयं साध-यतीति कियाशक्तिपरवशा तत्रैवान्तर्भूतेति भावः । इति सा-मान्येन परिगणिता अपि प्रातिस्विकरूपेण गणयितुमशक्या इलाह—इलादिकानामिति । एतेन चतुर्धप्रश्रस्याप्युत्तरमुक्तमेव ॥ १६ ॥ अद्वितीये शक्तिशक्तिमत्त्वमेदे एव निमित्तं दुर्वेचं दूरे शक्खवान्तरभेदवैचित्रयादीति मन्यमानी वसिष्ट आक्षि-पति-शक्तय इति ।शक्तितद्वतोभदोऽमेदश्च विरुद्धः कीदशः । किमुपपत्तिक इत्यर्थः ॥ १७ ॥ मायिकविकल्पककल्पनाप्रयुक्तिच-द्धिदा एव शक्तय इत्युच्यन्ते ते वस्त्रतः शिवादभिन्ना एवेति न कश्चिद्विरोध इत्याशयेनेश्वरः समाधत्ते—शिवस्येति । अन• न्तरूपस्येति । मात्रा हि खरूपतोऽनन्तं शिवं गुणतः शक्तितः कार्यतश्चानन्तं कुर्वाणा तस्यानन्त्यं वर्धयतीव नतु विहन्तीति भावः । मनागपि विकल्पनाद्भिन्ना न यस्तुत इत्यर्थः ॥ १८ ॥ ॥१९॥विभावनाद्विकल्पनात्। तरङ्गादिभेदविकल्पैर्वहु उदकमिव बहुदकम् ॥ २० ॥ ऋतुमासादिकालनियतिक्रमेण परिशिक्षिता नटा इब ॥ २१॥ पराभिधाना परार्धद्वयकाला । अपराभिधाना अवान्तरकल्पतद्वयवरूपा । सा ईश्वरस्य कियेति कृतिर्य-त्रेति. अथवा इच्छेति कामं वादिनः कल्पयन्तु अस्माभिः क-लनामात्रलात्कालः कल्पनात्कल्प इति विकल्पपर्यायनाम-मिरेव कृताभिषेत्यर्थः ॥ २२ ॥ तस्यां कालशकौ नियति-पदं व्युत्पादयति-आमहेति । द्विविधो हि नियमः । इदिमत्थं संस्थानमित्याकारनियमो विकारनियमथ । तत्रा**य आतृणं** भामहारुद्दपर्यन्तं, द्वितीयस्त्वातृणमापद्मजस्पन्दमित्युभयथा नि-

| नानारसविलासाव्यं विवर्तामिनयान्वितम |
|---|
| कल्पक्षणहतानेक्पुष्करावर्तघर्घरम्॥ |
| सर्वेतुकुसुमाकीण धारागोलक्मन्दिरम्। |
| भूयोभूयः पत्र्वर्षभूतिस्वदजलोत्करम्॥ |
| पयोद्पञ्चवालोल्नीलाम्बरकृतभ्रमम्। |
| पूर्णसंशुद्रसप्तान्धिरक्षीयवल्याकुलम्॥ |
| यामपुक्षदिनप्रेक्षाकटाक्षोद्धासिताम्बरम्। |
| मजनोन्मजनव्ययकुलादिकुलशेखरम्॥ |
| भ्रमच्छिमणिप्रोतगङ्गामुक्ताफलत्रयम् । |
| संद्रष्टादृष्टसंप्याभ्रविलोलकरपहायम्॥ |
| अनारतरणहोल्लोकालंकारकोमलम् । |

| | भृरिभृतलपातालनभस्तलपदक्रमम् ॥ | ર્જ્ |
|----|---|-------|
| રધ | | |
| | चन्द्रार्ककुण्डलस्पन्दस्मितस्फुटनभोमुखम्॥ | ३० |
| २५ | किएतानेकब्रह्माण्डकपाटकवितानकम्। | |
| २६ | ्लुठल्लोकान्तरव्यृहध्वनन्मुकाङ्कपल्लवम् । | |
| | सुखदुःखद्शादोषभावाभावरसान्तरम्॥ | રૂર |
| રહ | असिक्सिकारकारिके विवानेशिकाले | |
| | संसारनाम्नि चिरनाटकनाट्यसारे। | |
| २८ | साक्षी सदोदितवपुः परमेश्वरोऽय- | |
| | नेक्ट किन्दों व व तमा तन हेत मिखः | 11 32 |

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे नियतिनृत्यं नाम राप्तित्रिशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टित्रंशः सर्गः ३८

3

ईश्वर उवाच !

एप देवः स परमः पूज्य एव सदा सताम्। चिन्मात्रमनुभृत्यात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः॥ घटे पटे वटे कुड्ये शकटे वानरे स्थितः। शिवो हरो हरिब्रह्मा शको वश्रवणो चमः॥ षहिरन्तश्च सर्वात्मा सदा स्वात्मासुबुद्धिभिः। विविधेन क्रमेणेय भगवान्परिपूज्यते॥

यमनाश्रियतिशब्दवाच्येत्यर्थः । यावसस्वबोधेनाऽपरिमाजिता तावशृखतीत्वर्थः ॥ २३ ॥ तन्नृत्ये नाटकलक्षणानि दर्श-यति—नानेखादिना । कल्पः प्रखयस्तत्रक्षणे नाट्योपरम-**क्षणे इता विद्युदाघातवादिता अनेके पुष्करावर्ताख्या मेघा** एव घर्घरा बाबभेदा यत्र ॥ २४ ॥ धारा वर्षधारास्तद्युक्तं ब्रह्माण्डगोलकमेव महानाट्यमन्दिरं यस्य ॥ २५ ॥ पयोदा मेषा एव पञ्चवा दशाप्रान्तास्तैरालोलं यत्नीलमम्बरमाकाशं तु-देव श्लेषात्रीलवस्त्रं तेन कृता दिनराष्ट्यादिनानावेषग्रमा यत्र । सप्ताब्धिलक्ष्यैः संशुद्धिनिणि केः रक्षीघचितवर्ख्यराकुरुम् ॥ २६ ॥ मजनं बलयेस्तिरोधानम्, उन्मजनमुद्धाटनं ताभ्यां व्यषाणि कुलादिकुलान्येव शेखराणि शिरोत्राणि यत्र ॥ २७ ॥ मुक्ताफलत्रयपदेन हारत्रयं ठक्ष्यते ॥ २८ ॥ लोका जना भुवनानि वा तल्लक्षणैरळंकारैः कोमलं मञ्जलम् । परैः क-म्यन्त इति पदक्रमा नटीपादविन्यासस्थानादिभेदाः ॥ २९ ॥ मना असामिता उन्मना उदिताश्व महत्यो भाखरास्तारा एव **धर्मक**णोत्कराः स्वेद**बि**न्दुसमूहा यत्र । चन्द्रार्ककुण्डलयोः स्पन्दैः स्पितिराषदास्यैः स्फुटं व्यक्तीकृतं नभोलक्षणं नटीमुखं यत्र ॥ ३०॥ ब्रह्माण्डपदेन तद्भित्तयो लक्ष्यन्ते । ता एव कपा-टकानीव वितानकानि तिरस्करिण्यो यत्र । छठन्तः असुरव्याकु-लीकृता ऊर्घ्वाघोलोकान्तरभ्यूहा एव ध्वनन्तः मुक्तागुम्फित-दशा उत्तरीयान्तरीयपटपल्लवा यत्र । सुखदुःखयोराविभीवादि-

बहिस्तावन्महायुद्धे क्रमण परिपृज्यते । येन तच्छृणु तत्त्वक्ष श्रोप्यस्पन्तःक्रमं ततः ॥ ४ पूजाक्रमेषु सर्वेषु देहरोहं पवित्रकम् । त्याज्यं देहावबोधात्म परं यत्नात्पवित्रकम् ॥ ५ पूजनं ध्यानमेवान्तर्नान्यद्रस्यस्य पूजनम् । तस्मात्रिभुवनाधारं नित्यं ध्यानेन पूजयेत् ॥ ६

दशास्तिन्निमित्तदोषाश्व भावाः स्थायिभावा अभावास्तद्भिवा विभावाः संवारिभावा रसान्तराणि श्वन्नारादिरसभेदाश्व यत्र । स्थायिभावानामेव विभावादिमिर्व्यव्यमानानां रसत्वमित्यालं कारिकसिद्धान्तादिति भावः ॥ ३९ ॥ एवं नाटकं वर्णयित्वा तह्रष्टारं विमर्शे स्वमात्रपरिशेषं परमात्मानं दर्शयति—अस्मिनिति । विकारः प्रसिद्धनीत्यकास्त्रप्रसिद्धस्तदस्यभरोमाश्वादिविकारेश्व विलते नियतेनित्वा अस्मिनसंसारनान्नि विरनाटकनात्यस्तरे विलासे साक्षी साक्षाहृष्टा प्रमुख्यानीयः अयं प्रत्यक्षपः परमेश्वर एक एव स्थितः, स न तथा नव्या तेन गाव्येन च न परमार्थतो मित्र इद्ययः ॥ ३२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-वणसात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे सप्तित्रिशः सर्गः ॥ ३७ ॥

शिवस्यानन्तचिन्मृर्वेबेहिध्यानेन पूजनम्। ज्ञानेन च सहापुण्यं विमुक्तिफलमीयंते ॥ १॥

स एष नियतिनाटकसाक्षी चिदारमेव परमो देवः ॥ १ ॥ तस्य वश्यमाणप्रकारेण पूजने सर्वदेवपूजनमन्त्रभेवतीत्याशयेन तस्य सर्वात्मतामाह—घटे इति ॥ २ ॥ विविधेन वश्यमाण-बाह्याभ्यन्तरभेदेन क्रमेण ॥ ३ ॥ ४ ॥ शास्त्रोक्तसंस्कारैः स्नानाचमनादिमिश्च पवित्रकमि देहगेहं यस्नात्थाज्यम् । देह-स्यावयोधः साक्षिचित्प्रकाशस्तद्भूषं परं पवित्रकं यस्नात्परिशोध्य प्राह्मिति शेषः ॥ ५ ॥ पूजनसाधनं किया च ध्यानमेव

चिद्रपं सूर्यलक्षाभं समस्ताभासभासनम्। अन्तस्थचित्प्रकाशं स्वमहन्तासारमाश्रयेत्॥ 9 अपारपरमाकाद्यविष्ठलाभोगकन्धरम् । अनन्ताधस्तनाकाशकोशपादसरोहहम्॥ ረ अनन्तदिक्तराभोगभुजमण्डसमण्डितम् । नानाविधमहालोकगृहीतपरमायुधम् ॥ 9 हृत्कोशकोणविश्रान्तब्रह्माण्डोघपरम्परम् । प्रकाशपरमाकाशपारगापारविष्रहम् ॥ 80 अध ऊर्ध्व चतुर्दिश्च विदिश्च च निरन्तरम्। ब्रह्मेन्द्रहरिरुद्रेशप्रमुखामरमण्डितम् ॥ 23 हमां भूतश्रियं तस्य रोमालि प्रविचिन्तयेत्। विविधारम्भकारिण्यस्त्रिजगद्यस्ररज्जवः॥ १२ इच्छाद्याः शक्तयस्तस्य चिन्तनीयाः शरीरगाः । एष देवः स परमः पूज्य एष सदा सताम्॥ १३ चिन्मात्रमनुभूत्यात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः। घटे पटे वटे कुड़वे शकटे वानरे स्थितः॥ १४ शिवो हरो हरिर्वसा शको वैश्रवणो यमः। अनन्तेकपदाधारसत्तामात्रैकवित्रहः ॥ १५ विवर्तितजगञ्जालः कालोऽस्य द्वारपालकः। सरीलभुवनाभोगमिदं ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥ १६ देहकोणोऽस्य कस्मिश्चित्स्वाङ्गावयवतां गतम्। विचिन्तयेन्महादेवं सहस्रश्रवणेक्षणम् ॥ १७ सहस्रशिरसं शान्तं सहस्रभुजभूषणम्। सर्वत्रक्षणदात्त्याढ्यं सर्वतो ब्राणदाक्तिकम् ॥ १८

॥ ६ ॥ रामस्तानामाभासानां सूर्यंदितेजसां बुद्धिवृत्तीनां च भासनम् । अहन्तायाः सारं शोधितमन्तस्थचित्प्रकाशम् ॥ ७॥ आकाशादपि विपुलाभोगा कन्धरा कण्ठादूर्ध्वभागो यस्य । अनन्तो योऽधस्तनाकाशकोशः स पादसरोहहे यस्य ॥ ८ ॥ नानाविधेषु परितो ब्रह्माण्डेषु ये सल्यादयो महान्तो लोकास्ते दिग्भुजगृहीतानि गरमायुषानि यस्य ॥ ९ ॥ तर्हि ते किं बद्धाण्डाद्वाह्याः, नेत्याह—हत्कोशेति । प्रकाशरूपः परमाका-शातमसः पारगः खयमपारो विग्रहः खरूपं यस्य ॥ १०॥ इदमप्यधस्तनादित्रह्माण्डभेदेन ब्रह्मेन्द्रादिमेदादुपपाद्यम् ॥११॥ भूतश्रियं चतुर्विधभूतशोभाम् । त्रिजगद्गतसर्वेपदार्थचेप्रनाय रचिता यन्त्ररज्ञव इव इच्छाद्याः शक्तयस्तस्य शरीरगा नाड्य-श्चिन्तनीयाः ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ रूपमेदेरनन्तानां पदा-नामाधारो वाच्यस्तद्भेदपरिखागे एकपदस्याधारो उक्ष्या या सत्ता तन्मार्त्रकविष्महः ॥ १५ ॥ द्वारपालकः अविश्वद्धिकाले मनसोन्तः प्रवेशनिरोधको । विश्वद्धी तु प्रवेशानुकूल इति ॥ १६ ॥ खाने मायाशवलस्ये । अवयवतामेकदेशताम् । अ-थनः सर्वप्राणिनां भ्रवणेक्षणशिरःपाण्यायवयवास्तर्सेवेति विश्व-रूपं चिन्तनीयमिखाह—विचिन्तयेदिखादिना ॥ १७ ॥१८॥ ॥१९॥ तथा चिम्तनेऽप्यसङ्गाद्वयता वस्तुतस्तस्य न विस्मर्तेन्ये-

| सर्वतः स्पर्शनमयं सर्वतो रसनान्वितम्। | |
|--|------|
| सर्वत्र अवणाकीर्ण सर्वत्र मननान्वितम् ॥ | १९ |
| सर्वतो मननातीतं सर्वतः परमं शिवम्। | |
| सर्वदा सर्वकर्तारं सर्वसंकरिपतार्थदम्॥ | २० |
| सर्वभृतान्तरावस्थं सर्वे सर्वेकसाधनम्। | |
| इति संचिन्त्य देवेशमर्चयेद्विधिवस्ताः॥ | २१ |
| विधानमर्चनस्येदं शृणु ब्रह्मविदां वर । | |
| स्वसंविदातमा देवोऽयं नोपहारेण पुज्यते ॥ | २२ |
| न दीपेन न धूपेन न पुष्पविभवार्पणैः। | |
| नामदानादिदानेन न चन्दनविलेपनैः॥ | २३ |
| न च कुङ्कुमकर्पूरभोगैश्चित्रैर्न चेतरेः। | |
| नित्यमञ्ज्ञशलभ्येन शांतलेनाऽविनाशिना॥ | રઇ |
| पकेनवाऽसृतेनेष बोधेन स्वेन पूज्यते। | |
| पतदेव परं ध्यानं पूजेषैव परा स्मृता ॥ | २५ |
| यदनारतमन्तस्थद्युद्धचिन्मात्रवेदनम् । | |
| पद्यञ्ञराज्वन्सपृशिक्षचन्नश्चन्त्रयुग्न्थसन् | २६ |
| प्रलपन्विस्जनगृह्णनशुद्धसंविन्मयो भूवेत्। | |
| ध्यानामृतेन संपूज्य स्वयमात्मान्मीश्वरम्॥ | २७ |
| परमास्त्रादयुक्तेन मुक्तेन कुसुमेहितैः। | |
| ध्यानोपहार पवात्मा ध्यानं ह्यस्य समीहितम् | ।।२८ |
| भ्यानमध्यं च पाद्यं च शुद्धसंवेदनातमकम्। | |
| ध्यानसंवेदनं पुष्पं सर्वे ध्यानपरं विदुः॥ | २९ |
| विना तेनेतरेणायमात्मा लभ्यत एव नो। | |
| ध्यानात्त्रसादमायाति सर्वभोगसुखश्रियः। | |

लाह—सर्वत इति ॥२०॥ सर्वस्य एकं साधनं सत्तास्फूर्तिपदम् । इति उक्तप्रकारेण ॥२१॥ उपहियत इत्युपहारो गन्धपुष्पादिस्तेन ॥२२॥तदेव प्रपञ्चयति-नेति ॥२३॥ इतरैर्छत्रचामरदर्पणाद्य-र्पणैः ॥ २४ ॥ अखण्डसाक्षात्कारवृत्तिधारारूढेन खेन स्वाहम-केन बोधेन । पूर्वोक्तचिन्तनमप्येतदङ्गमितीयमेव सर्वपूजाभ्यः प्रधानेत्याशयेनाह—एतदेवेति ॥ २५ ॥ अस्याः कालनिय-मोऽपि नास्तीति सदैव कार्येत्याह—पश्यभिति ॥ २६ ॥ उक्त-ज्ञानधारात्मना ध्यानामृतेन ॥ २७ ॥ परमास्वादयुक्तेनेति । अयं भावः--पुष्पादिविषयार्पणं हि देवस्य न साक्षादिविच्छि-भसुखार्पणं किंतु परम्पर्याऽल्पतरतदीयसुखाभिव्यज्ञनं क्षुघि-तस्य वीहिमुख्यर्पणमिव न तथा प्रीतये भवति । इदं तु प्रतीचः खयमेव शोधनेन निरतिशयानन्दरूपतामाविर्माव्य तस्य निस्र-निरतिशयस्यात्वन्तैकरस्येन शिवायार्पणरूपं पूजनं परमास्वाद-नयुक्तमिति तदेव तादशदेवस्यानुरूपं पूजनं समीहितं न पुष्पा-दीत्यर्थः ॥ २८ ॥ अतएवोक्तलक्षणध्यानेनैव सर्वोपचारसिद्धि-रिलाइ-ध्यानमिति । ध्यानाभिव्यक्तं संवेदनं चैतन्यं पुष्पप्र-योजनरूपत्वात्पुष्पम् । एवं सर्वमुपचारं संवेदनमेव विदुः । असंविदितोपचारभोगाप्रसिद्धेरिति ॥ २९ ॥ प्रसादं खरूपा-मिव्यक्तिम । कि ततस्तत्राह—सर्वेति । सर्वेषां मनुष्यादिहि 3?

३२

33

अयमात्मा मुने भुद्धे देहरूवो गृहे यथा॥ ध्यानेनानेन सुमते निमेपांस्तु त्रयोदश। मुढोऽपि पूजियत्वेशं गोप्रदानफलं लभेत्॥ पुजयित्वा निमेपाणां शतमेकमिति प्रभुम्। अश्वमेधस्य यश्वस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ पुजयित्वा स्वमातमानं घटिकार्घमिति प्रभूम्। अभ्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ध्यानबस्युपहारेण स्वयमात्मानमात्मना। घटिकां पूजयेदास्तु राजसूयं लभेत सः॥

मध्याह्नपुजनादित्थं राजसूर्येकलक्षभाक्। दिवसं पूजयित्वैयं परे धाम्नि वसेन्नरः॥ 34 एवोऽसौ परमो योग एवा सा परमा किया। बाह्यसंपूजनं श्रोक्तमेतद्वसममात्मनः॥ ३६ पतत्पवित्रमंखिला घविघानहेतं यस्त्वाचरिष्यति नरः क्षणमप्यखिन्नः। तं वन्दयिष्यति सुरासुरहोकपूगः प्राप्तास्पदं जगति माभिव मुक्तमात्मन् ॥ ३७ રેઇ

इस्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदुतीको मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे बाह्यपूजनं नामाष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंदाः सर्गः ३९

ईश्वर उवाच। पावनं पावनानां यद्यत्सवेतमसां क्षयः। तदिदानीं प्रवक्ष्येऽहमन्तःपूजनमात्मनः॥ गच्छतस्तिष्ठतश्चेव जाव्रतः स्वपतोऽपि च। सर्वाचारगता पूजा नित्यं ध्यानात्मिका त्वियम् ॥२

रण्यगर्भान्तानां भोगमुखश्चित्रः अयं प्रसन्न आत्मा भुद्गे इति परेणान्वयः । 'यो वंद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । सो-Sश्रुते सर्वान्कामान्सह' इति श्रुते: ॥३०॥ यथा देहरूपो देहा-मिमानी खग्रहे भोगान्भुद्धे तद्भत् । तेनापि विषयसंस्पर्शजन्य-वृत्त्यभिव्यक्तात्मसुखस्यैवानुभवात् । ब्रह्मात्मसुखे सर्वसुखाना-मन्तर्भावादिति भावः । इदानीं तत्त्वसाक्षात्काराभावेऽपि यथो-क्तध्यानमात्रेणापि तदुत्कर्पानुसारिफलोत्कर्षमाह-ध्यानेनेत्या-दिना ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ नतु घटिकार्धध्याने अभमेधसहस्रफलं चेद्धिकाध्याने ततोऽप्यधिकं फलं वाच्यम्। तत्कथमेकराजस्यफलकीर्तनम् । नहाश्वमेधादाजस्यस्य फलम-धिकम् । बृहदारण्यके भुज्युप्रश्ने 'कन्वश्वभेधयाजिनो गच्छ-न्तीति द्वात्रिंशतं वै देवरथाह्यान्ययं लोकः' इल्यादिना पृथिवी-समुद्रादिपरिमाणमुक्ता 'ततः परतस्तद्यावती क्षुरस्य धारा या-बद्रा मिक्कायाः पत्रं ताबानन्तरेणाकाशः' इति ब्रह्माण्डख-परद्वयसंधिमुक्ला 'तानिन्दः सुपणी भूला वायवे प्रायच्छता-न्वायुरात्मनि स्थिला तत्रागमयद्यत्राऽश्वमेधयाजिनोऽभवन्' इस्यश्रमेधयाजिनां ब्रह्माण्डस्वर्परसंधिद्वारा वायुना बहिनिःसाय सर्वकर्मफलोरकर्षस्थानप्रापणश्रवणविरोधात् । 'ब्रह्महत्याश्वमे-धाभ्यां न परं पुष्यपापयोः' इति प्रसिद्धेः । पूर्वरामायणे इलोपा-ख्याने 'नाश्वमेधात्परो यज्ञः प्रियश्चेव महात्मनः' इति श्रीराम-बचनविरोधाच्छारीरके इतरकर्मिणां धूमादिमार्गेण चन्द्रमण्डल-प्राप्तिरैवाश्वमेषयाजिन एकस्य लर्चिरादिमार्गेण ब्रह्मलोकावा-तिरिति सिद्धान्ताधिकरणा बाश्यमेधस्य राजसूयापेक्षया फला-**धिक्यस्य** सिद्धलादिति चेत् । नेष दोषः । परस्य पूर्वाविरोधे-नाबाधकलादेवोपपत्तेः । यत्र घटिकार्धपूजनेनाश्वमेधराहस्रफलं

नित्यमेव शरीरस्थमिमं ध्यायेत्परं शिवम् । सर्वेप्रत्ययकर्तारं स्वयमात्मानमात्मना ॥ 3 शयानमुत्थितं चैव वजनतमथवा स्थितम्। स्पृशन्तमभितः स्पृद्यं त्यजन्तमथवाऽभितः॥ भुआनं संव्यजन्तं च भोगानाभोगपीवरान्।

तत्र घटिकामात्रपूजनेन तस्य द्वेगुण्यं प्राप्तमेव तत्र राजसूय-फलं खाराज्यलक्षणं श्रूयमाणमितरेषामश्वमेधयाजिनां खाराज्ये पर्यवस्पतीति प्रजाभ्यो राज्ञ इव महान् भोगोत्कर्षी घटिकापूज-कस्य सिद्धाति । नचात्र तक्रकाण्डिन्यन्यायाश्रयणं युक्तम् । वाक्यवेयध्येत्रसङ्गातः । तथा चेहरो विषये महाभाष्ये उक्तम् । असति खल्वपि संभवे बाधनं भवति अस्तिच संभवो यदुभयं स्यादिति । नाप्यत्रापच्छेदाधिकरणन्यायावसरः । अदक्षिणल-सर्ववेदसद्क्षिणलयोरिव ब्रह्मलोकतत्स्वाराज्यफलयोर्विरोधाभा-वादिति विशेषवीतनाय तुशब्दः दिवसमिति । चिरकाच्ये **ज्ञानोदयावरयंभावादिति भावः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उक्तां बाह्य-**पूजां प्रशंसमुपसंहरति—एतदिति । हे आत्मन् , इति प्रेमाति-शयेन वसिष्ठसंबोधनम् । एतदुक्तलक्षणं पूजनं यस्तु नरः अखिन्नो विक्षेपखेदशून्यः सन् क्षणमप्याचरिष्यति तं क्रमात्स-र्वबन्धमुक्तमत एव प्राप्तास्पदं सुरासुरहोकपूर्गो जगति मामिव वन्दियप्यति । अभिवादनस्तुत्यादिना पूर्जावन्यतीत्वर्यः ॥३०॥ द्वति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकारी निर्वाणप्रकरणे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

> शब्दादिविषयः प्राप्तेरङ्गप्रत्यङ्गभासितः। प्रत्यगारमशिवस्थात्र हान्तःपूजोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

सर्वेषां तमसामज्ञानानां क्षयहेतुः लात्क्षयः ॥ १ ॥ स-र्वेष्ट्राचारेषु व्यवहारेषु गता अनुगता ॥ २ ॥ सर्वेषां प्रत्य-यानां कर्तारं संनिधिमात्रेण जनयितारं बोधयितारं च ॥ ३ ॥ स्पृत्यं स्पर्शादिविषयं स्पृतान्तं मुझानम्, अथवा उद्वेगात्त्य-जन्तम् ॥ ४ ॥ तदेव स्पष्टमाइ--- भुजानमिति । बाह्यार्थानां जामदादिविषयाणां परिकर्तारं खाध्यारोपेण निर्मातारम् । स-

बाह्यार्थपरिकर्तारं सर्वकार्यस्वरूपदम् ॥ देहलिङ्गेषु शान्तस्थं त्यक्तलिङ्गान्तरादिकम्। यथाप्राप्तार्थसंवित्या बोधलिङ्गं प्रपृजयेत्॥ प्रवाहपतितार्थस्थः स्वबोधस्नानश्चिमान्। नित्यावबोधाईणया बोधिलङ्गं प्रपुजयेत् ॥ आदित्यभावनाभोगभाविताम्बरभास्त्ररम्। शशाङ्कभावनाभोगभावितेन्द्रतयोदितम्॥ प्रतिभासपदार्थीघनित्यावगतसंविदम्। द्वारैर्वहन्तं शारीरैर्मुखे प्राणस्वरूपिणम् ॥ रसीकृत्य रसं प्राणस्वान्तोदात्ततुरङ्गमम्। प्राणापानस्थारुढं गृदमन्तर्गुहाशयम् ॥ 90 बातारं बेयद्देशनां कर्तारं सर्वकर्मणाम्। भोकारं सर्वभोज्यानां सर्तारं सर्वसंविदाम्॥ सम्यक्संविदिताङ्गीघं भावाभावनभावितम्। आभासभास्यरं भूरि सर्वगं चिन्तयेच्छिवम् ॥ १२ निष्कलं सकलं चैव देहस्यं व्योमचारिणम्। अरञ्जितं रञ्जितं च नित्यमङ्गङ्गसंविदम् ॥ १३ मनोमननशक्तिस्थं प्राणापानान्तरोदितम् । इत्कण्डताल्रमध्यस्यं भूनासापुरपीडगम् ॥ १४ षद्रत्रिशत्पदकोटिस्थमुन्मन्यन्तदशातिगम् । कुर्वन्तमन्तःशब्दादींश्चोदयन्तं मनःखगम्॥ 96

वैषां कार्याणां खरूपदं खसत्ताप्रदम् ॥ ५ ॥ खदेहलक्षणेषु लिक्षेषु । तथाहि पद्मायासनस्यः पुरः प्रसारितपाणिबैदाजलि-देंहः शिवलिशाकारो भवतीति प्रतिद्वम् । अतएव त्यक्तं मृहा-रुशिलादि लिङ्गान्तरं आदिपदाः प्रतिमान्तरं च यत्र । शान्ते निर्विक्षेपस्वभावे स्थितं बोधलिङ्गम् ॥ ६ ॥ प्रारब्धप्रवाहपति-तेष्वर्थेषु भोगेषु स्थितः । प्रसक्ताशुद्धिरपि पुनःपुनरसङ्गविशु-दात्मबोधलक्षणेन स्नानेन सदा शुद्धिमान् ॥ ७ ॥ तादशपुजने यदि मनस्तमति मज्जिति तदान्तर्बहिश्च सर्वनभः परिपूर्णमखिष्ड-तमद्वयमादित्यमण्डलं खं भावयेत्, यदि तु परितापे निमजति तदा तादशचन्द्रमण्डलतया उदितं खं भावयेदित्याह---आदि-त्येति । आदिल्यातमना भावनात्कत्पितेनाभोगेन विस्तृतस्वसं-स्थानेन भाविते पूर्णे हार्दवाह्याम्बरे भाखरम् ॥ ८ ॥ बाह्या-म्तरबुद्धिवृत्तिप्रतिभारोषु तद्भागितपदार्थीघेषु चानुस्यूता या निस्यावंगतरूपा संवित्तद्रुपम् । वहन्तं खाभासान् बहिविषय-देशे प्रापयन्तम् ॥ ९ ॥ रस्यत् इति रसः शब्दादिविषयस्तं खानन्दरसेनैव रसीकृत्य मधुरीकृत्य आखादयन्तमिवंति शेषः। प्राणस्वान्तलक्षणी उदासी उत्कृष्टी तुरङ्गमी यस्य ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ 'यथा प्रकाशयत्येकः कृत्न्नं लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्वं प्रकाशति' इति भगवदुक्तरीत्या सम्यक्संबि-दितसर्वाङ्गीयम् । भावैविषयभावनैरभावनैश्व भावितं लिखतम् ।

विकल्पिन्यविकल्पं च द्विविधे वाक्पथे स्थितम्। तिले तैलमियाङ्गेषु सर्वेष्वेवान्तरं स्थितम्॥ ३६ कलाकलङ्करहितं कठिनं च कलागणैः। एकदेशे सहत्पन्ने सर्वदेहे च संस्थितम् ॥ १७ चिन्मात्रममलाभासं कलाकलनकल्पनम्। प्रत्यक्षदृश्यं सर्वेत्र स्वानुभृतिमयात्मकम् ॥ 36 प्रत्यक्रेतनमात्मीयमधित्वेन पुनः स्थितम्। पदार्थानाम्पेत्याश् क्षणाद्धित्वमिवागतम् ॥ १९ सहस्तपादावयवः सकेशनखद्न्तकः। स्वदेहसंविद्यासासो देवोऽयसिति भावयेत्॥ विचित्राः शक्तयो वहयो नानाचारा मनोद्दशाम् । उपासने मामनिशं पद्धयः कान्तमिवोत्तमम्॥ मनो में द्वारपालोऽयं निवेदितजगञ्जयः। चिन्तेयं मे प्रतीहारी द्वारस्था गुडरूपिणी ॥ २२ शक्तिमेमात्मिका बुद्धिः क्रिया चैय वराङ्गना। ज्ञानानि च विचित्राणि भूपणान्यङ्गगानि मे ॥ कमेंन्द्रियाणि द्वाराणि वृद्धीन्द्रियगणैः सह। अयं सोऽहमनन्तातमा व्यवच्छेदोज्झिताकृतिः तिष्ठामि भरितकात्मा पूर्णः सर्वावपुरकः। इति दैवीमपाश्चित्य स्वच्छामात्मचमत्कृतिम् ॥ २५ देवत्वपरिपूर्णोऽन्तरदीनात्मावतिष्ठते। नास्तमेति न चोदेति न नृष्यति न कुप्यति ॥ २६

आभासेभ्यः सर्वप्रकाशेभ्योऽपि भूरि भास्तरम् । विशेष्यस्य सापेक्षत्वे सामर्थ्याविधातात्समासः ॥ १२ ॥ निष्कर्षे निष्कल-मन्यथा सकलम् । व्योन्नि हृदयाकारो चरणशीलम् । अङ्गाङ्गसं-विदं प्रसङ्ख्यापि वोधरूपम् ॥ १३ ॥ तदेव विवृणोति—मनो-मननेति ॥ १४ ॥ षटत्रिंशत्पदानि शैवशास्त्रप्रसिद्धषदत्रिंशत्त-च्वानि तेषां चरमस्यानस्थम् । कालीरौद्रीकलविकरणीत्यादिश-क्तिविभागे उन्मन्या मनोन्मन्या अन्तदशामप्यतिगतम् । शि-वयोगप्रसिद्धाः वः उन्मन्यन्तद्शाः सबीजसमाधिरूपाः तदतिग-तम । चोदयन्तं प्रेरयन्तम् ॥ १५ ॥ व्यवहारे विकल्पिनि नि-बीजसमाधिमोक्षयोरविकल्पे च वाच्यलक्षपरूपे वाक्सथे ॥१६॥ कलागर्गभ्तिमात्राभिः स्थलंदहात्मना परिणतेः कठिनं मूर्ते च ॥ १७ ॥ कलाकलनानामध्यासविकल्पानां कल्पनमधिष्ठा-नम् । अधिकरणे ल्युद् ॥ १८ ॥ पुनः स्वखरूपविस्मरणाद्री-गार्थित्वेन स्थितम् । खातिरिक्तपदार्थानां वेषं खयमेनोपेख आशु क्षणात्खसंकेतादेव द्विलमागतमिव स्थितम् ॥ १९ ॥ खदेहसंविद आभासः परिचायिका यस्य ॥ २० ॥ २१ ॥ सन्मात्रगोचरलाच्छद्धरूपिणी ॥ २२ ॥ आत्मिका आत्मवरप-रप्रीतिविषयीकृता बुद्धिई।नशक्तिः। किया प्राणशक्तिः । वि-चित्राणि शास्त्रीयाणि होकिकानि च ज्ञानानि भूषणानि ॥२३॥ ॥ २४ ॥ दैवीमलैकिकीमात्मचमकृति प्रत्यक्तलपरिचयम् ॥ २५ ॥ तादशपूजापरिपाकफलान्याह-नास्तमेतीस्यादिना ।

न तृप्ति न क्षुधं याति नामिवाञ्छति नोज्झति । समः समसमाचारः समाभासः समाकृतिः॥ २७ सीम्यतामलमायातः समन्तात्सुन्दराशयः। आदेहमेक एवासावव्युव्छित्रमहामतिः॥ 26 देवार्चनं करोत्येव दीर्घदीर्घमहर्निशम्। चित्तस्यचितो देहो देवोऽस्य समुदाहृतः॥ ર્લ यथाप्राप्तेन सर्वेण तमर्चयति वस्तुना । समया सर्वया वुद्ध्या चिन्मात्रं देवचित्परम् ॥ यथाप्राप्तक्रमोत्थेन सर्वोधेन समर्चयेत्। मनागपि न कर्तव्यो यलोऽत्रापूर्वेवस्तुनि ॥ ३१ प्राप्तदेहतया नित्यं तथार्थकिययाऽनया। कामसंसेवनेनाऽथ पूजयेच्छोभनं विभुम्॥ 32 भक्ष्यभोज्यान्नपानेन नानाविभवशालिना । शयनासनयानेन यथाप्तनाचयेच्छिवम्॥ ३३ कान्ताश्रपानसंभोगसंभागदिविलासिना । सुसेन सर्वरूपेण संबुद्धाऽऽत्मानमर्चयेत्॥ ३४ आधिव्याधिपरीतेन मोहसंरम्भशालिना । सर्वोपद्रवदुःखेन प्राप्तनात्मानमर्चयेत्॥ 34 समस्तेश्च समस्तानां चेष्टानां जगतः स्थितेः। मृतिजीवितस्वप्राद्यैः प्राप्तरात्मानमर्चयेत् ॥ 36 दारिधेणाथ राज्येन प्रवाहपतितात्मना। विचित्रचेष्टापुष्पेण शुक्रात्मानं समर्चयेत्॥ 30 नानाकलहकहोलललनोहासशालिना। रागद्वेषविलासेन सीम्यमात्मानमचेयेत्॥ ३८ सतां इदयगामिन्या रूढया दाशिशीतया। मैज्या माधुर्यधर्मिण्या हृत्स्थमात्मानमर्चयेत् ॥३९

॥ २६ ॥ अन्तः समः बहिश्व समैर्जीवन्मुक्तः सम आचारो यस्य ॥ २७॥ २८॥ कोऽस्य देवः कथमादेहमर्भयतीति तत्राह्—चित्तत्त्वेत्यादिना ॥ २९ ॥ वस्तुना त्रिपुटीरूपेण । देविक्य ऐन्द्रियकवृत्तिप्रतिबिम्बचित्र्यः परं तद्भिम्बभुतम् ॥ ३० ॥ सर्वेणार्थेन बाह्याभ्यन्तरवस्तुना । अपूर्ववस्तुनि गन्धन पुष्पाद्यपनारवस्तुनि ॥ ३१ ॥ प्राप्तदेहतया प्राप्तबाह्मणक्षत्रि-यादिखशरीरोचितया यथाशास्त्रमर्थिक्रयया व्यवहारेण । का-म्यन्त इति कामा देहधारणमात्रनिमित्तान्नपानादयस्तेषां संसे-वनेन ॥ ३२ ॥ तदेव स्पष्टमाह-भक्ष्येति ॥ ३३ ॥ संयुद्ध तस्वतो ज्ञात्वा । तथान्य यावत्तद्ज्ञानं तावद्विषयसुखोपभोगेन प्रसंजितव्यमिति भावः ॥ ३४ ॥ एवं यथाप्राप्ततुःखभोगेऽपि पूजाबुद्धिरेव कार्या नोद्वेग इत्याह--आधीति॥ ३५॥ जगतः स्थितेः संबन्धिनां समस्तानां चेष्टानां फलैरिति शेषः ॥ ३६॥ ॥ ३०॥ ३८॥ तर्हि किं कलहादिपरेणापि भाव्यं नेखाह— सतामिति ॥ ३९ ॥ कलहाद्यप्रसक्ताबुपायमाह—उपेक्षयेति । शक्तिः क्रोधादिनिधहसामर्थ्यं तत्पद्धत्वा ॥ ४० ॥ एवं भोग-हम्पटेनापि न भाव्यमिलाशयेनाह—आकस्मिकेति । भोगाः

उपेक्षया करुणया सदा मुदिनया इदि । गुद्धया शक्तिपद्धत्या घोधेनात्मानमर्चयेत्॥ 80 आकस्मिकोपयातेन स्थितेनानियतेन च। भोगाभोगैकभोगैन प्राप्तनात्मानमर्चयेत् ॥ કર भोगानामनिषिद्धानां निषिद्धानां च सर्वदा । त्यागेन वातिरागेण स्वात्मानं शुद्धमचेयेत्॥ ४२ ईहितानीहितोचेन युक्तायुक्तमयात्मना । त्यकेनासेन चार्थेन हार्थानामीशमचेयेत्॥ ઇરૂ नष्टं नष्टमुपेक्षेत प्राप्तं प्राप्तमुपाहरेत्। निर्विकारतयैतद्धि परमार्चनमात्मनः॥ કક सर्वदैव समग्रासु चेष्टानिष्टासु दृष्टिषु । परमं साम्यमाधाय नित्यात्मार्चावतं चरेत्॥ 84 सर्वे विन्देत सुशुभं सर्व विद्याच्छुभाशुभम्। सर्वमात्ममयं कुर्यान्नित्यात्मार्चात्रतं चरेत्॥ ૪૬ आपातरमणीयं यद्यशापातसुदुःसहम्। तत्सर्वे सुसमं बुद्धा नित्यात्मार्चावतं चरेत्॥ अयं सोहमयं नाहं विभागमिति संत्यजेत्। सर्वे ब्रह्मेति निश्चित्य नित्यात्माचावतं चरेत् ॥ ४८ सर्वदा सर्वेरूपेण सर्वाकारविकारिणा। सर्वे सर्वप्रकारेण प्राप्तनात्मानमर्चेयेत्॥ છ૧ अनीहितं परित्यज्य परित्यज्य तथेहितम्। उभयाश्रयणेनापि नित्यमात्मानमचेयेत् ॥ 40 न बाञ्छता न त्यजता देवप्राप्ताः स्वभावतः । सरितः सागरेणेव भोक्तव्या भागभूमयः॥ 48 उद्वेगो नानुगन्तव्यस्तुच्छातुच्छासु दृष्टिषु । ब्योम्ना चित्रपदार्थेषु पतितो ह्यानतेष्विव ॥ 43

भागेषु भागसमृहेच्वेकस्य कस्यचित्कदानिद्धांगन ॥ ४१ ॥ अनिषिद्धानां निषिद्धानां च सर्वदा त्यागेनेति मुख्यः कल्पः । अथवा क्वचिदनिषिद्धानां रागेणेति गें।णः ॥ ४२ ॥ अयुक्त-मयात्मना त्यक्तेन युक्तमयात्मना आत्तेनेति व्युत्कमेणान्वयः। अर्थानामीशं भोकारम् ॥ ४३॥ इदानीं मुख्याचैनसारमाह— नष्टमित्यादिना । उपेक्षेत नानुशोचेत् ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ मही-वेति दृष्ट्या सर्वे शुभमेवेति विन्देत गृहीयात् । ब्रह्मसंवलितमा-यामयलदृष्या तु सर्वे शुभाशुभं संमिश्रमिति विद्यात् । उभय-थापि साम्येन वैषम्यदर्शननिमित्तामावादात्मैवात्ममयमिति वा आत्मप्रचुरमात्ममयमिति वा कुर्यात्पर्येत् ॥ ४६ ॥ उक्तरीत्या मुसमं बुद्धा ॥ ४७ ॥ इति विभागं मेदम् ॥ ४८ ॥ सर्वदा प्राप्तेन सर्वोकारियकारिया सर्वेप्रकारेण सर्वेरूपेण नाम्ना च सर्वे सर्वात्मकमात्मानमर्चयेत् ॥ ४९ ॥ मिध्यात्वयुद्धाः परित्यज्य स्वारममात्रताबुद्धा उभयोराश्रयणेन स्वीकारेणापि ॥ ५० ॥ भोगभूमयः मुखदुःखहेतवो विषयाः ॥ ५१ ॥ तुच्छासु अप-मानादिद्धिषु अतुच्छामु वधबन्धसर्वस्वनाशादिद्धिषु पतित आपतितः प्रसक्त उद्वेगो नानुगन्तव्यः । 'पतितेषु' इति पाठे

देशकालकियायोगाद्यदुपैति शुभाशुभम्। अविकारं गृहीतेन तेनेवात्मानमर्चयेत्॥ 43 आत्मार्चनविधानेऽस्मिन्त्रोका द्रव्यश्रियस्त याः। एकेनैव समेनेता रसेन परिभाविताः॥ 48 नाम्लानकद्यों नो तिका न कपायाश्च काश्चन। चित्रैरपि रसैदिंग्धा मधुरा एव ताः किल ॥ समता मधुरा रस्या रसंशक्तिरतीन्द्रिया। तया यद्भावितं चेत्यममृतं तत्क्षणाद्भवेत् ॥ 39 समतामृतरूपेण यद्यन्नाम विभाव्यते । तत्तवायाति माधुर्यं परमिन्दोरिव च्युतम्॥ 46 समताकाशवद्भत्वा यसु स्याङ्घीनमानसम्। अविकारमनायासं तदेवार्चनमुच्यते ॥ 200 पूर्णेन्द्रनेव पूर्णेन भाव्यं समसमित्वपा।

स्वच्छेन चिद्धनैकेन भ्रनाप्युपलरूपिणा ॥ 48 अन्तराकाशविशदो बहिःप्रकृतकार्यकृत् । रअनामिहिकामुकः संपूर्णो श उपासकः॥ ६० स्वप्नेऽप्यदृष्टहुलुखमज्ञानाभूपरिक्षये । शान्ताहन्तादिमिहिकं शः शरुद्योम राजते ॥ 87 सोमार्कमस्तमितमानसमात्रमेयं सद्यः प्रसृतशिशुवेदनवद्वितानम् । पश्यन्प्रशान्तमतिचेतनचित्तवीजं जीवश्रनुत्तमपदस्थित एव तिष्ठ॥ ६२ देशकालकरणक्रमोदिनैः सर्ववस्तुसुखद्वः खविभ्रमः। नित्यमच्य शरीरनायकं तिष्ठ शान्तसकलेहया धिया ॥ €3

इत्यार्पे श्रीवासिष्ठमहारामायणे बाल्मीकीय दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे देवाचेनविधिर्नाम एकोनचत्वारिकाः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंदाः सर्गः ४०

ईश्वर उवाच । यथाकालं यथारम्भं न करोपि करोपि यत् । चिन्मात्रस्य शिवस्थान्तस्तदेवार्चनमात्मनः ॥ तेनेवाहादमायाति याति प्रकटतां तथा । तथा स्थितेन रूपेण स्वेनैय स्वयमीश्वरः ॥

आपतितेषु चिरमाततेष्वनुवृतेषु ऋजुवक्रशीतदाहादिचित्रपदा-र्थेषु ब्योभ्रेवेति दशन्ते योज्यम् ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ननु विचिन श्रदु:खरागद्वेषादिविकारहेतवः शुद्धाशुद्धिकरृतिकादिविषमरसा भोरयद्वव्यश्रियः कथमविकारं प्रहीतुं शक्या इति चंदेकेन सम-रसेन सर्वेषां वैषम्यनिरासेन मधुरीकरणादित्याशयेनाह---आ-त्माचेनेति । परिभाविता आहाविताः सत्यो न अम्छानकद्व्यः किंतु मधुरैकरसा भवन्तीति परेणान्वयः ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ आनन्देकरसविवर्तत्वेन समतादर्शनाद्वा तासामविकारेण अहण-सिक्किरित्याशयेनाह-समतेति । रसर्शाक्तः 'रसो व सः' इति श्रतिदर्शित आत्मा ॥ ५६ ॥ इन्दोध्युतमपृतमिव ॥ ५७ ॥ ब्रह्मेक्यद्शनलक्षणया समतया खयमाकाशवद्भला जीनमानसं यथा स्यात्तथा यदवस्थानं तदेव मुख्यमर्चनमित्यर्थः ॥ ५८ ॥ उपल्रह्मिणा स्फटिकशिलावित्रमेलहढेन ॥ ५९ ॥ ईरशो ज्ञस्त-रबविदेव उपासको मुख्यो मत्पूजक इत्यर्थः ॥ ६० ॥ न दशो हृदयं लिखतीति हृहेखः कामो विद्युदादिश्व यस्मिन् । इस्तत्त्व-विदेव शरब्योम ॥ ६१ ॥ आनन्दामृतपरिपूर्णलारसोम एव सन्निष्कलङ्करमप्रकाशातिशयादर्कस्तथाविधम् । अस्तमितानि मा-नसं मनोवृत्तिर्माता मेथं च यत्र तथाभूतम् । सदः प्रसूतस्य विशोवेंदनबद्वितानं विगतविकल्पविस्तारं चतनस्य चिदानासस्य

रागद्वेपादिशब्दार्थानातमन्यन्यतयामले । संभवन्ति पृथमृपा वहाँ वहिकणा इव ॥ ३ यद्यद्वाजत्यदीनत्वसुखदुःखादिवेदनम् । आत्मीयं परकीयं च तत्तदर्वनमात्मनः ॥ ४ विश्वसंवित्तिरेवार्चा नित्यस्यात्मन एव च ।

चित्तस्य च वीजं मूलभूतं स्वात्मित्रितं प्रशान्तमित यथा स्या-तथा परयन्सन् लमनुत्तमे जीवन्मुक्तपदे स्थितस्तद्भावनैव तिष्ठ । सैव परा पूजेत्यर्थः ॥ ६२ ॥ विस्तरोक्तं संक्षिप्योपसंह-रति—देशेति । शान्ता सकला ईहा मनोरथा अस्यास्तथावि-धया धिया स्वात्मित तिष्ठ । सैव मुख्या शिवपूजेल्यर्थः ॥६३॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारप्यंत्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पृकोनचरवारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

> पुज्यपुजकपुजादिविकस्परहितः शिवः । परिशुद्धचिदान्मेव देवतातस्वमीर्यते ॥ १ ॥

आतमिवदः कृताकृतं सर्वमिष कमं शिवार्चनमेवेत्याह्—
यथाकालमिति । यथारम्भं यथाशिक ॥ १ ॥ तत्कृतस्तत्राह्—
तेनेवेति । तेन तादशप्जनेभेव तथा स्थितेन पारमार्थिकेन
सक्ष्येण आहादं निरितशयानन्दस्वरूपामिन्यिक्तम् । प्रकटतामावरणभक्षमायाति ॥ २ ॥ ननु स्वामाविकचेष्टा सर्वापि रागद्वेषमूलतयानथेहेतुः सा कथं पूजनं स्यादिति चेतस्वातमन्यितरेकेण रागद्वेषांवकल्याद्शनादेवेत्याह—रागिति ॥ ३ ॥ राजत्वं
संपत् । दीनत्वं दारिद्यम् । आदिपदादशनायापिपासादयो
गृह्यान्ते । तेषां चदनमध्यारोपणम् । देवे पुष्पपन्नाद्यारोपणस्यैव
पूजालप्रसिद्धेरिति भावः ॥ ४ ॥ तथाच नित्यस्य शिवस्य
आतमनः प्रतीवश्च वियदादिरुक्षणस्य जामदादिरुक्षणस्य च

१ सम्बेति पाठः.

Q

घटाचात्मतया ब्रह्म स्वयमात्मा तथैव च ॥ शिवं शान्तमनाभासमेकं भास्त्ररमागतम्। जगत्प्रत्ययचत्सर्वमात्मरूपमिदं स्थितम् ॥ अहो नु चित्रमात्मैव घटाद्यन्यद्यवस्थितम्। जीवादिस्यस्यभाषोऽन्तर्जुनं विस्सृतिमानिव॥ सर्वात्मकस्यानन्तस्य शिवस्यान्तः किलात्मनः । पुज्यपुजकपुजाख्यो विभ्रमः प्रोदितः कुतः॥ नियताकारताशान्ते न च संभवतीश्वरे। यत्र संकल्पते ब्रह्मन्पूज्यपूजामयः क्रमः॥ पुज्यपुजाद्यविद्धन्नो देवो नित्यामलात्मनः। संबेशकेरनन्तस्य नेश्वरत्वस्य भाजनम् ॥ त्रिजगत्प्रस्ताच्छाच्छसंबिद्र्पस्य चात्मनः।

नेश्वरसाकृतेर्वहान्वयपदेशो हि युज्यते ॥ ११ देशकालपरिच्छिन्नो येपां स्यात्परमेश्वरः । असाकम्पदेश्यास्ते न विपश्चिष्ठिपश्चिताम्॥ तदीयां इष्टिमृतसृज्य तथेमामवलम्ब्य च। समः स्वच्छमनाः शान्तो वीतरागो निरामयः॥१३ कामोपहारैरभितो यथाप्राप्तरिखक्रधीः। आत्मानमर्चयंस्तिष्ठ सुखदुःखशुभाशुभैः॥ १४ अधिगतवति साधी चक्रमेवानुरूपं ९ त्विय तरिलतजीवे जन्मदुःखादि किंचित्। न लगति परिशृत्ये सर्वतः स्फाटिकाक्के १० नवसदन इवाङ्के निष्कलङ्के कलङ्कः ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे देवतातत्त्वविचारो नाम चलारिशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंदाः सर्गः ४१

वितप्र उवाच । शिवः किमुच्यते देव परं ब्रह्म किमुच्यते । आत्मा किमुच्यते नाथ परमात्मा किमुच्यते ॥ १ तत्सर्तिकचित्र किंचिश्व शून्यं विज्ञानमेव च ।

विश्वस्य संवितिरारोप एवाची । यथा वियदादिक्रमेण ब्रह्म घ-टाद्यात्मतयालंकियते, खयं प्रत्यगात्मा च तथेव जाप्रदादिक-मेण घटाद्यात्मत्रयेवालंकियत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ एवंचैकं शिव-रूपं प्रखगात्मरूपं वा जगत्प्रखयवदागतिमदं सर्व तद्भासा भा-खरं तिस्थाता स्थितमित्यर्थः ॥ ६ ॥ एवं विमर्शे प्रत्यगारमैव स्वान्तर्विस्मृतिमानिव भूला जीवादिस्वस्वभावः अन्यद्धटादिज-गद्रुपं च स्थितं नान्यत्किचिदित्यर्थः ॥ ७ ॥ एवं तत्त्वतो दर्शने पुज्यपुजकादित्रिपटी सर्वापि बाधिता भवतीत्याह-सर्वात्मकस्येति । अन्तःपरिच्छेदरूपस्त्रिपुटीविभ्रमः कुतः । अस-श्रेवेत्यर्थः ॥ ८ ॥ यत्र यस्यां नियताकारतायां पूज्यपूजादिमयः कमः संकल्प्यते सा नियताकारता परिच्छित्रसंस्थानता न संभवति ॥ ९ ॥ नित्यामलात्मन इति हेतुगर्भमीश्वरत्नविशेष-णम् ॥ १० ॥ ईश्वरस्य आकृतेरिति व्यधिकरणे पत्न्यो । व्यप-देशो वाचाभिलापोऽपि न युज्यते ॥ ११ ॥ हे विपिष्वदिति संबोधनम् । निपश्चित्रयोऽपि विपश्चितामिति वा ॥ १२ ॥ इमां मतुकामपरिच्छिन्नदृष्टिमवलम्ब्य कामोपभोगैरर्वयं खिष्ठेति परे-णान्वयः ॥ १३ ॥ १४ ॥ तरिलतः शोधनेन देहातपृथक्कतो जीवो येन तथाविधे साधौ अमानिलादिगुणवति, अतएवानुरूप-मेकं खतत्त्वमुक्तपूज्यपूजकादितत्त्वविमर्शेनाधिगतवति । अत-एव निरस्तमायाकलक्षे परितस्तत्कार्यप्रपत्रशून्ये च लिय जन्म-दु:खादि किंचित्र लगति । यथा स्फाटिकविला सर्वावयवके अहे समीपे परितो नीलरकादिवस्तन्तरशून्ये नवसदने लेपतः

१ प्रसतात्यच्छेति पाठः।

इत्यादिसेदो भगवंस्त्रिलोकेश किमुच्यते ॥ ર र्दृश्वर उवाच। अनाद्यन्तमनाभासं सर्त्किचिदिह विद्यते । इन्द्रियाणामगम्यत्वाद्यन्न किंचिदिव स्थितम् ॥ ३ प्रतिविम्बतो वा नेल्यादिरञ्जनकङ्को न छगति तद्वदित्यर्थः॥१५॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चरवारिंश: सर्ग: ॥ ४० ॥

शास्त्राचार्यादिसाफल्यं नामभेदप्रकल्पनम् । अध्यारोपक्रमः पश्चाद्पवादः प्रदर्श्ते ॥ १ ॥

यदुक्तं 'नेश्वरस्याकृतेर्षद्वान्व्यपदेशो हि युज्यते' इत्यादिना पुज्यतत्त्वमहूपकमव्यपदेश्यं तस्य शिवादिशब्दैरपि कथं व्यप-देश इत्याशयेन पृच्छति-शिव इति । यदि शिवादिशस्त्रन वृत्तिनिमित्तकं कंचिदपि धर्म तन्न स्पृशति तर्हि शिव इति किनिमित्तमुच्यते । एवं परंत्रह्मेत्यायपि किनिमित्तमुच्यत इत्यर्थः ॥ १ ॥ 'ओंतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणिकविधः स्मृतः' इलादिव्यपदेशेषु मिनत्तीति भेदः परस्परव्यावर्तकप्रवृत्तिनिमन त्तकनामविशेषः किनिमित्तमुच्यत इत्यर्थः ॥ २ ॥ पृष्टेषु नामसु सदिति नाम्रस्तावत्प्रवृत्तिनिमित्तमन्यम् बाच्यम् । तद्र्थे व्याव-र्थस्याप्रसिद्धीय व्यायुत्त्यनपेक्षणात् । खत एवासद्यावृत्तरवेन प्रयु-तिनिमित्तताकृततव्यावृत्तिकलाभावाच । अन्यथा तत्प्रवृत्तिनि-मित्तस्याप्यसतः सध्यावर्तकलायोगात्सरवेऽवश्यं वक्तत्र्ये तुल्य-न्यायेन तत्रापि सच्छब्दप्रकृतिनिमित्तमन्यदेव वाच्यमेवं तत्र तत्रापीत्यनवस्थापातात् । एवं किंन्तिप्रकिंनिच्छन्दयोरपि इन्द्रियावेवत्वेन तद्वेवधर्मेनिर्देष्ट्रमशक्यत्वाद्यावृतिनिरपेक्षत्वेव तत्र प्रवृत्तिसंभवः । नह्यव्यावृत्तं व्यावर्तकधर्मशून्यं वा शब्दाः न बोधयन्त्येवेति शक्यं वक्तम् । अव्यावृत्तिविर्धमंकादिशब्दानां बोधकलस्य सर्वानुभवसिद्धत्वात् । नहि निर्धर्मकरवं धर्मः.

वसिष्ठ उवाच । यदिन्द्रियाणां बुद्धादियुक्तानामप्यदृश्यताम् । गतं तत्कथमीशान त्वशङ्कनोपगम्यते ॥

ईश्वर उदाच।

यो मुमुश्चरिवधांद्राः केवलो नाम सात्विकः । सात्विकरेव सोऽविद्याभागैः शास्त्रादिनामिः ॥५ अविद्यां श्रेष्ठया श्रेष्ठां शालयिक् तिष्ठति । मलं मलेनापहरन्युक्तिको रजको यथा ॥ ६ काकतालीयवत्पश्चादविद्याक्षय आगते । प्रपश्यत्यात्मनैवात्मा स्वभावस्थेष निश्चयः ॥ ७ यथाकथंचिदक्रारे निघृष्य शालयिक्छगुः । करनैर्मस्यमामोति कार्ण्याक्रारक्षये यथा ॥ ८ यथाकथंचिच्छासाधैर्भागैर्भागं विचारयेत् । सात्विकस्तामसो भागो द्वयोरात्मोदयस्तथा ॥ ९ पश्यत्यात्मानमात्मेव विचारयति चात्मना । आत्मेवहास्ति नाविद्या इत्यविद्याक्षयं विदः ॥ १०

अव्यावृत्तं च व्यावृत्तेभयो व्यावृत्तमिति वक्तं शक्यम् । खमाता वन्ध्येतियद्याहतलात् । एवंच त्रिवादिशब्दानामपि निर्दोषनि-रतिशयानन्दखरूपमात्रे निमित्तनिरपेक्षेत्र प्रवृत्तिखल्यन्याया-दुपपन्ना । तत्स्वरूपप्रयुक्तिव वा शिवे दुःसादिव्यावृत्तिरपीति न नामभेदानुपपत्तिरित्याशयेनोत्तरमाह-अनायन्तिमिति । अ-नाद्यन्तमाद्यन्तपरिच्छेदाभ्यां खतां व्यावृत्तम् । अनाभासमाभा सान्तरनिरपेक्षं स्वयंज्योतिः। ईदशं सद्वसु इह स्ने महिन्नि खतएव विद्यते न देशकालधर्मज्योतिरादिपरापेक्षसत्तया परा-धीनव्यायुरया चेलार्थः । इवकारस्तत्र किंचित्त्वादेरपि मिथ्या-लद्योतनार्थः ॥ ३ ॥ मनोबुद्धहंकारचित्तानामिन्द्रियगृहीतार्थ-मात्रगोचरसंकल्पविकल्पाध्यवसायामिमानस्मरणहेतुलादिन्दि-यागम्यत्वोत्तया बुद्धाद्यगम्यत्वमप्यर्थादुक्तमेव । नच बुद्धा-व्यगम्यस्य बोधे कश्चिद्रपायः संभवतीति सतोऽपि तस्य बोधो-पायासंभवात् अशक्षेत उपायासंभवशक्कारहितेनाधिकारिणा तद्भा कथमुपगम्यते अधिगम्यते । साक्षात्कियत इत्यर्थः ॥४॥ प्रमाणजन्यया शुद्धसात्विकभागपरिणामहृपया ब्रह्माकारवृत्त्या अविद्यावरणम्पनीयते । शावरणापगमे तु ब्रह्म स्वप्रकाशलादेव तस्वतो भाति । स एवास्य साक्षात्कारो न बुद्धिवृत्त्यभिव्यक्त-विद्याप्तिरूपो मुमुक्षमाञ्चेन्द्धर्मनोलक्षणः शमदमादिसाधनपरि-श्रद्धत्वात्केवलः सान्त्विकोऽविद्यांशः स सच्छास्त्रसद्भुहसत्सङ्गादि-नामभिः सात्त्विकेरेवाविद्याभागः संपादितया श्रष्टया श्रवणमन-ननिहिध्यासनसाक्षात्कारान्तस्तवृत्तिपरम्परया बहुतरजन्मसंचि-तयज्ञदानादिसुकृतसंभृतलाच्छेष्टां स्वकायीमविद्यां क्षालयन्नेव चिरं तिष्टति ॥ ५॥६ ॥ किं ततस्तत्राह—काकेति । ततिश्वरा-अ्यासात्काकतालीयन्यायेन भाग्यपरिपाकाद्वत्थितया पूर्णक्रह्मा-कारमुत्त्या अविद्यायाः क्षये निःशेषोच्छेदे भागते सति अनाव-

यावित्किचिदिदं वस्तु नाना नात्मावगम्यताम्। क्रमा गुरूपदेशाचा नात्मक्षानस्य कारणम्॥ गुरुहीन्द्रियवृत्त्यात्मा ब्रह्म सर्वेन्द्रियक्षयात् । यद्वस्तु यत्क्षये प्राप्यं तत्त्वस्थिन्सति नाप्यते ॥ अकारणान्यपि प्राप्ता भृशं कारणतां द्विज । क्रमा गुरूपदेशाचा आत्महानस्य सिद्धये ॥ १३ क्रमे गुरूपदेशानां प्रवृत्ते शिष्यबोधतः। अनिर्देश्योप्यदृश्योऽपि स्वयमात्मा प्रसीदृति ॥ शास्त्रार्थेर्बुध्यते नात्मा गुरोर्वचनतो नच । बुध्यते स्वयमेवैष स्वबोधवशतस्ततः॥ १५ गुरूपदेशशास्त्रार्थैयिंना चात्मा न बुध्यते । पतत्संयोगसत्तेव स्वात्मज्ञानप्रकाशिनी ॥ १६ गुरुशास्त्रार्थशिष्याणां चिरसंयोगसत्तया। अहनीय जनाचार आत्मक्रानं प्रवर्तते ॥ १७ कर्मबुद्धीन्द्रियाद्यन्तसुखदुःखादिसंक्षये। शिव आत्मेति कथितस्तत्सदित्यादिनामिः॥ १८

रण आत्मा आत्मनैवात्मानं प्रपर्यति । वास्तवखप्रथाखभाव-एवावतिष्ठत इत्यर्थः । आत्मस्वभावस्य एष उक्तस्वप्रकाशस्वरूप-परिशेष एव निश्चयः असंदिग्धाविपर्यस्तसाक्षात्कारो नान्या-दश इत्यर्थः । अथवा अविद्याखभावस्येव उक्तप्रकार एव क्षय-निश्चयो नान्यादश इत्यर्थः ॥ ७ ॥ अविद्यांशेनैवाविद्याक्षये आत्मनैवात्मनेर्मस्यमिद्धौ च दृष्टान्तमाह-यथेति । विद्युर्वालो द्वे अन्नारे गृहीला परस्परनिघर्षणकीडाव्यसनी अन्नारयोः क्षया-त्प्रक्षालितेऽपि हस्ते पुनःपुनस्तन्निघर्षणेन करनेर्मल्यं नाप्रोति । निषर्षणोपजनितरेणुपरम्परालक्षणकार्ष्यनाकारयोः क्षये तु क्षालयनपुनरकारालाभारकरस्य स्वतःसिद्धमेव नैर्मल्यं सीन्दर्य खतएव प्राप्नोति यथा, तथा सात्विकस्तामसश्चाविद्याभागः शा-स्नाचैः स्वभागान्तरैः सहायैर्ययाकशंचिदात्मानं विचारयेचेद्वयो-रपि भागयोर्नाशो निर्मलात्मोदयश्व सिज्यतीत्वर्थः ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ननु बुद्धा आत्मा विचार्य निर्धार्यते तत्कुतो न बुद्धिदृश्यतात्मन इति चेत्र । बुद्धेर्जडाया विचारादी स्नातस्त्रयं किलात्मेव बुद्धाधुपार्यविचारादिनाऽविद्यां वाधिला खयं प्रथत इलाह-पर्यतीति ॥ १० ॥ अतएव गुरुशासादिनानाभेदा न आत्मा नाप्यातमञ्चानहेतवः आत्मखरूपस्य तज्ज्ञानस्य साध-नानपेक्षलादित्याशयेनाह-यानदिति ॥ ११ ॥ तत्रोपपत्य-न्तरमाह-गुरुरिति । इन्द्रियेर्न्ने घटितं यत्पुर्यष्टकं तदारमा ॥ १९ ॥ तर्हि कि गुर्वादयो व्यर्था नेत्याह - अकारणानीति । सिद्धवे विस्मृतकण्टचामीकरवल्लाभाय ॥ १३ ॥ अमिव्यक्तो भवति ॥ १४ ॥ एवमावस्यकत्वे कथमकारणत्वो-किस्तत्राह—शासार्थेरिति ॥ १५ ॥ प्रकाशिनी क्षिका ॥ १६ ॥ १७ ॥ अतएव बोधनिरस्तसर्वामङ्गलः परमा-नन्दारमा खतएव शिवशब्दाहीं न प्रवृत्तिनिमित्तसापेक्ष इत्यु-

यत्रेदमिखलं नास्ति तद्र्पेणैव चास्ति वा । तदाकाशाद्खतरमनन्तं सदिवास्ति हि॥ १९ अविभान्ततया यत्र तनुविधैर्मुमुभ्रुभिः। विचित्रशुद्धमननकलङ्ककलितात्मभिः॥ अदूर एव तिष्ठद्भिजीवन्मुक्तस्य दक्पथे। मोक्षोपासकषोधाय शास्त्रार्थरचनाय च ॥ 28 अक्षेन्द्रबद्रप्रमुखैर्लीकपार्लेः सुपण्डितेः । पुराणवेवसिद्धान्तसिद्धये भावितात्मभिः॥ २२ चिद्रह्म शिव आत्मेशपरमात्मेश्वरादिका। एतसिम्किट्पता संज्ञा निःसंद्रे पृथगीश्वरे॥ २३ प्यमेतज्ञगत्तस्यं स्यं तत्त्वं शिवनामकम्। सर्वथा सर्वदा सर्व सर्व यत्सुखमास्व भो॥ शिव आत्मा परं ब्रह्मत्यादिशम्दैस्तु भिन्नता। पुरातनैविरचिता तस्य मेदो न घस्तुतः॥ २५ एवं देवार्चनं नित्यं श्रः कुर्वन्मुनिनायक। यत्रास्मदादयो भृत्यास्तत्त्रयान्ति परं पदम् ॥ २६ वसिष्ठ उचाच । अविद्यमानमेवेदं विद्यमानमिव स्थितम्। यथा तन्मे समासेन भगवन्वकुमईसि॥ २७ ईश्वर उवाच । योऽसी ब्रह्मादिशब्दार्थः संविदं विद्धि केवलम् । स्वैच्छमाकाशमप्यस्य स्थूलं मेहरणोरिव ॥

क्तमित्याह—कर्मेति ॥ १८ ॥ इदं जगत् वाधे नास्ति । आ-रोपे चास्ति । तद्धिष्टानतत्त्वं अस्ति हि अस्त्येव । व्यावहारि-कसद्वेलक्षण्यात्सदिव ॥ १९ ॥ शिवव्रह्मसदादिनामकल्पनापि जीवन्मुक्तानामधिकारिप्रबोधनायैवेत्याह-अविधान्तेत्यादिना । मुमुक्षुभिरधिकारिमोचनेच्छुभिविचित्रस्य जगतः शुद्धस्य त-रवस्य च मननं तल्रक्षणो यः शुद्धातमनि कलङ्करतद्युक्त आत्मा मनो येषाम् ॥ २० ॥ परमार्थस्य अद्रे संनिद्धिते जीवन्म-फस्य दक्पथे तिष्ठद्भिः । मोक्षाय खोपासका ये भक्तास्तेषां बोधाय शास्त्रार्थस्य तत्त्वतज्ज्ञानतदुपायानां रचनाय सम्यगुप-पादनाय ॥ २१ ॥ पुराणानां वेदानां सिद्धान्तानां बादरायण-सूत्रादीनां सिद्धये सार्थक्याय ॥ २२ ॥ पृथक्संज्ञा कल्पिता ॥ २३ ॥ भो वसिष्ठ, वियदादिजगदारोपाधिष्ठानलाजगत्त-रचम्, अवस्थात्रयारोपाधिष्ठानलात्स्वं तत्त्वं च यत्सर्वदा सर्व-प्रकारैः सर्ववस्तुनां सर्वभावनिर्वाहकं तत्केवलं ब्रह्मसुखमेव नाणुमात्रमप्यन्यदस्तीति निश्चिल लमाख ॥ २४॥ २५॥ एवमुक्तस्थितिरूपं देवार्चनम् । यत्र यस्मिन्परमशिवपदे अस्म-दादय एकैकगुणामिमानिनो मृत्या इव सृष्ट्यादिकमीनियताः ॥ २६ ॥ इदानीं वसिष्ठः शुद्धविति जीवभावतत्संसरणारोप-कमं जिज्ञासः प्रच्छति-अविद्यमानमिति ॥ २७ ॥ उत्तरोत्त-

सुबेद्यमिह गच्छन्ती याति चिन्नामयोग्यताम्। अप्यवेद्यवती जूनमुन्मन्यन्तपदस्थिता ॥ २९ क्षणान्द्रावितवेद्यत्वादहन्तामनुगच्छति । पुरुषत्वात्पुमान्स्वप्ने धनवारणतामिव ॥ ३० अस्याहन्तादिरूपाया देशतां कालतां गताः। संपद्यन्ते ततः शुन्यरूपिण्यः सख्य एव ताः ॥ ३१ ताभिः संवलिता सैव सत्ता जीवाभिधानिका। भवति स्पन्दविश्वाना पवनस्येव छेखिका ॥ 32 जीवशक्तिस्तथाभूता निश्चयैकविलासिनी। बुद्धितामनुयाता सा भवत्यश्वपदे स्थिता ॥ 33 शब्दशक्तया कियाशक्तया ज्ञानशक्त्यानुगम्यते। प्रत्येकं प्रस्कुरत्यन्तरप्रदर्शितरूपया ॥ 38 मिलित्वैष गणः क्षिप्रं स्मृति समनुकूलयन्। मनो भवति भूतात्मबीजं संकल्पशाखिनः॥ રૂપ आतिवाहिकदेहोक्तिभाजनं तद्विदुर्वधाः। अन्तस्थया ब्रह्मशक्तया ब्रह्मपं स्वात्मनात्मदक्॥३६ संपद्यमाना पवासिश्चेतसीमा हि शक्तयः। पश्चादिह बहिष्ठास्ता उद्यन्त्यनुदिता अपि ॥ 30 वातसत्ता स्पन्दसत्ता स्पर्शसत्ता तथैव च। त्वक्सत्ता तेजसां सत्ता तथा सत्ता प्रकाशिनी ३८ रूपसत्ता जलसत्ता स्वादुसत्ता तथैव च। तथैव रससत्ता च गन्धसत्ता तथैव च ॥ રૂષ

रारोपे स्थाल्योपचयं वक्तुं परमसुक्ष्मरूपं मूलं दर्शयति—योसा-विति । मेहरणोरिवेति चित्सीक्ष्म्यस्य जडसीक्ष्म्यस्य च स्पष्ट-मेवान्तरमिति भावः ॥ २८ ॥ सा चिद्वेद्यगोचरसंस्कारोद्वोधा-द्वेद्यकल्पनोन्मुखी यदा भवति तदा चेतनाचिदिति किया नाम-योग्या भवतीत्यर्थः । उन्मन्यन्तपदे निर्विकल्पसमाधिप्रसिद्ध-चिदानन्दैकरसस्यभावे स्थितापि ॥ २९ ॥ ३० ॥ इयत्तापौर्वा-पर्यावगाहनादेशतां कालतां च गताः कल्पमाः संपद्यन्ते ताश्चा-हन्तायाः सख्य इत्युत्प्रेक्षा ॥ ३१ ॥ तामिर्देशकालकल्पनामिः संवितिता सा अहन्तास्पदगोचरसंस्कारोद्वोधातस्पन्दविज्ञाना सती पवनस्य लेखिकेवान्तः प्राणस्पन्दा सती जीवाभिधानिका भ-वति । 'जीव प्राणधारणे' इति धात्वर्थानुगमादित्यर्थः ॥ ३२ ॥ एवं निश्चयसंस्कारोद्वोधाद्वज्यादिशब्दवाच्यापि भवतीत्याह-र्जावेति ॥ ३३ ॥ ततः कायिकवान्विकमानसिकव्यवद्वारसंस्का-रोद्बोधाच्छब्दादिशक्तया अहन्तानुगम्यते । न प्रदर्शितमखन्तपि-हितं तास्विकमात्मरूपं यया ॥ ३४॥ ३५॥ अन्तस्थया अनावृतसाक्षिरूपया ब्रह्मशक्त्या व्याप्तं जानातीति इ इति प्रमातृरूपं संपद्यते । तत्रात्मनः स्त्रप्रकाशतावलादेवेखाह-आत्मद्दगिति ॥ ३६ ॥ एवमन्तःकल्पना बाह्यदृश्यसत्ताकल्प-नायां हेतुरित्याह--संपद्यमाना इति । ताः वक्ष्यमाणीः ॥३०॥ तेजःसत्तायाः प्रकाशिनी चश्चःसत्ता ॥ ३८ ॥ रसयतीति रसो भूसत्ता हेमसत्ता च पिण्डसत्ता च पीवरी। देशसत्ता कालसत्ता सर्वाढ्याकारवर्जिता ॥ 80 सर्वसत्तागणं चैतत्कोडीकृत्य स्वरूपवत् । स्फुरत्याश्रित्य पत्रादि बीजं बीजादितां गतम्॥ ४१ एतत्पुर्यप्रकं विद्धि देहोऽयं चातिवाहिकः। अपारबोधमेतत्त स्फुरत्यङ्ग विभागवत् ॥ धर एवमाद्यक्रसंपद्यं संपन्नं न च किंचन। न ज्ञानं न च तद्र्पं न विदाचितचेतनम्॥ 83 परं परे प्रस्फूरितं केवलं केवलात्म सत्। जलपीठस्य जठरे जलद्रवविलासवत् ॥ 88 संबित्संबेदनैकात्म पृथगेतद्चेतनम्। संपद्यते परिश्वातं संकल्पनगरोपमम् ॥ છુહ संवेदनात्परिक्षानाच्छिवतामेव गच्छति। अज्ञातमेव वा यत्तत्कथं गच्छति वस्तुताम्॥ કદ अथैतद्विन्दते स्वान्तःसंकल्पादंशतां स्वतः। तन्मात्रसत्ता तस्याणोरेतां पश्यति देहके ॥ 80 सर्वे स्थूलत्वमापन्नं तदेवाशु प्रपश्यति। तस्य तन्मात्ररन्धाणि यथादेशं प्रपश्यति ॥ ८८ ततः पुरुषरूपैकभावनात्पुरुषाद्यतिम्। काकतालीयवहृष्ट्वा तुष्टं पुष्टं भवत्यलम्॥ ४९ जीवदेतद्वस्थाकं स्थितं पदयति देहकम्। असन्तमेव गन्धर्षपुरं स्वप्ननरं यथा ॥ 40 इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे प्र० जगन्मिश्यालप्रतिपादनं नामैकचलारिंशः सर्गः ॥४९॥

वसिष्ठ उवाच। गन्धवेनगराकारमपि स्वप्ननरोपमम्। जगहःखाय दःखस्य कात्र युक्तिः परिश्रये ॥ 48 ईश्वर उवाच । वासनावरातो दुःखं विचमाने च सा भवेत्। अविद्यमानं च जगन्मृगतृष्णाम्बुभङ्गवत् ॥ ५२ अतः किं वास्पते केन कस्य वा वासना कुतः। कथं स्वप्ननरेणाङ्ग मृगतृष्णाम्बु पीयते ॥ ५३ सद्रष्टरि तु साहन्ते समनोमननादिके। अविद्यमाने जगति यत्सस्तत्परिदृश्यते ॥ 48 यत्र नो वासना नैव वासको नैव वास्यता। केवलं केवलीभावः संशान्तकलनम्रमः॥ ५५ यस्य सत्योऽप्यसत्यो घा शून्य एव हि यक्षकः । विलीनस्तस्य कैवल्यात्किमन्यदवशिष्यते ॥ ५६ शून्य एव हि वेताल इवेत्थं चित्तवासना । उदितेयं जगन्नाम्नी तच्छान्तौ शान्तिरक्षता॥ 60 अहन्तायां जगति च मृगतृष्णाजले च यः। सास्यस्तं धिग्घतनरं नोपदेश्यस्त्वसाविति॥ 46 जीवं विवेकिनमिष्ठोपदिशन्ति तज्हा नो बालमुद्भममसन्मयमार्थमुक्तम्। अबं प्रशास्ति किल यः कनकावदातां स स्वप्रदृष्टुच्याय सुतां ददाति ॥ ५९

रसनेन्द्रियं तत्सत्ता ॥ ३९ ॥ हेमशब्देन रजतस्वर्णमये ब्रह्मा-ण्डस्तर्परे प्रात्ये । पीवरी अतिमहती ब्रह्माण्डपिण्डसत्ता ॥४०॥ खरूपवत्तादातम्येन कोडीकृत्य संगृहा । यथा वीजमुत्तरोत्तरप-रिणामेन बीजादितां गतमङ्करकाण्डशासापत्रादिकोडीकृत्य स्फु-रित तद्वत् । बीजाद्वीजादितामिति पाटे बीजन्ति उत्तरोत्तरबी-जानि येभ्यस्तादशानामङ्गरकाण्डादिपरम्पराणामादितां निदा-नतां गतम् ॥ ४१ ॥ एतदुक्तं सर्वसत्ताकोडीकृतस्वरूपं पुर्यष्टकं स्थूलादिदेहत्रयातमकम् । अयमेव वासनात्मना आतिवाहिको हेहः । अपारोऽपरिच्छिन्नो योघश्चित्सक्षं यस्य तथाविधं **ब्रह्मेच** एतत् उक्तविभागवत्स्फुरति नान्यदिखर्थः ॥ ४२ ॥ एवमारोपकमं प्रपञ्च्यापवादं दर्शयति-एवमादीति । संपन्नम-इदशा। तत्त्वदशातु न किंचन संपन्नम्। तत्पुर्यष्टकरूपम्। विदा तत्रतत्र चिदाभासेनाचितं चेतनमपि न ॥ ४३ ॥ जल-पीठस्य जलाधारस्य । समुद्रस्येति यावत् ॥ ४४ ॥ कथमिदं विज्ञातं तत्राह-संविदिति । यतो दश्यजातं संविदेवेति संवे-दने एकात्मकम् । संविदः पृथकृतं तु अचेतनं भासकश्चन्यमि-त्यभयथापि न जीवतीत्यथैः ॥ ४५ ॥ किचेदं ज्ञातं सद्वास्तवं स्यादज्ञातं वा नोभययापीत्याह--संवेदनादिति । संवेदनादि-त्यस्य व्याख्या परिज्ञानादिति ॥ ४६ ॥ अध यदि कथिह्रयात्स्व-तश्चिनमात्रस्वभावमपि एतद्वस्तु बहु स्यां प्रजायेयेति संकल्पा-

त्खान्तरेव दश्यांशतां विन्दते इति तर्हि संकल्पकल्पितस्य मि-थ्यात्वात्तस्याणोः परमसूक्ष्मस्यात्मनस्तन्मात्रस्वभावेन सत्ता प्रथ-मकल्पिते देहके सुक्ष्मदेहे एव चिराभ्यासात्स्थूलतां पश्यति ॥ ४७ ॥ स्यूलदेहसंबन्धाश्व सर्वमान्तरं कोशचतुष्टयं बाह्यवि-षयजातं च स्थूललमापत्रं तद्रहोब खकल्पनया पश्यति । बाह्यरूपादिदर्शने च तस्य देहस्य चक्षुरादिलक्षणानि तन्मात्र-द्वाराणि यथाविषयं व्यवस्थितानि प्रपश्यति ॥ ४८॥ ततो हस्तपादाधवयवसंघाते आन्तरकोशेषु च पुरुपाकारेणैकलभाव-नात्प्रकाकृति पश्यति । तेन चाकस्माद्यवहारक्षमतां दृष्ट्वा तुर्व पुष्टं च भवति ॥ ४९ ॥ ५० ॥ मिथ्येति ज्ञातमपि जगहुःसं जनयत्येव, अतो दुःखचिकित्सा मिथ्यालज्ञानादन्येव याच्येति मन्यमानो वसिष्ठः पृच्छति--गन्धर्वति ॥ ५१ ॥ वासनाक्षयः पर्यन्तं दृढतरमिथ्यात्वनिश्चय एव दुःखनिष्टुरयुपायो नापातत इत्याशयेनोत्तरमाह—वासनेति ॥ ५२ ॥ अत्यन्तासत्त्वदढनि-श्रये आश्रयविषयाद्यभावादेव वासनानुदयसिद्धिरिखाह—अत इति ॥ ५३ ॥ द्रष्ट्रादिसहिते जगत्यविद्यमाने सति यहुन्धात्रं सत्तदेव वा शिष्यते ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ सत्यो व्यावहारिकः अ-सत्यः प्रातिभासिको वा यक्षको यस्य प्रीढस्य दशा श्रन्यखानि-त्यविलीनः ॥ ५६॥ ५०॥ ५८॥ कृतो नोपदेश्यस्तत्राह-जीवमिति। तज्ज्ञा आत्मक्षा विवेकिनं प्राप्ताधिकारिविशेषस-

ब्रिचत्वारिंदाः सर्गः ४२

वसिष्ठ उवाच। ततः स जीवो भगवन्द्दएवान्देहसंभ्रमम्। आदिसर्गे नभःसंस्थः कामचस्थामुपैति हि॥ ईश्वर उवाच । परसात्परमे ब्योम्नि पूर्वोक्तक्रमतो वपुः। जीवः पश्यति संपन्नं स च स्वप्ननरो यथा॥ सर्वगत्वाश्विद्धनस्य कार्यं स्वप्ननरोऽपि हि। यथा करोत्याद्य तथा जीवोऽद्यापि शरीरध्रक ॥ ३ सनातनोऽहमव्यकः पुमानित्यभिधां ततः। करोत्यात्मनि तेनाशु प्रथमः प्रथितः पुमान्॥ एवं स समें किस्मिश्चित्प्रथमोऽथ सदाशिवः। कसिंधिद्विष्णुरित्युको नाभ्युत्पन्नः पितामहः ॥ ५ पितामहः स कस्मिश्चित्कांसम्बिदपि चेतरः। स च संकल्पपुरुषः संकल्पान्मृतिमास्थितः॥ पुष्टः प्रथमसंकल्पस्तां मनोमृतिमास्थितः । यद्यथा कल्पयत्याञ्च तत्त्रथानुभवत्यलम् ॥ G

पदिशन्ति नलप्राप्ताधिकारलादुन्तमं बहुतरश्रान्तिशालिनमार्थेर्मु-क्तमुपेक्षितमसद्देहाद्यमिमानिलादसन्मयं बालं यः अइं प्रशास्ति उपदिशति स कनकवदवदातां सुन्दरीं खसुतां स्त्रप्रष्टप्रुरुपाय ददाति । सोऽपि मूर्खं एवेति यावत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीवासि-ष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे एकचत्वारिशः सर्गः ॥ ४१ ॥

समष्टिव्यष्टिसंसारक्रृप्तिरीशादिपूर्विका । मायैवेत्युपदिस्यात्र शंभुः स्वतिलयं ययो ॥ १ ॥

'जीवदेतदवस्थाकं स्थितं पश्यति देहकम्' इत्यन्ते गोऽध्या-रोप उक्तस्तच्छेषं जिज्ञासुर्वेसिष्टः प्रच्छति—तत इति । आदि-सर्गे कल्पायध्यासकमे । उक्तानुवादः पूर्वानुसंधानार्थः ॥ १ ॥ सच जीवः खप्रनरो यथा सूक्ष्मतमनाटीषु विस्तृततमं ब्रह्माण्डं परयति तद्वत्परमसुक्ष्मे चिदाकाशेऽपि पर्यतीत्वर्थः ॥ २ ॥ उक्तमेव दृष्टान्ताश्यं वित्रुणोति—सर्वगलादिति । नाडीछिद्रान्तः **प्रवेशेऽपि सर्वशक्तिम**तः सलादिति भावः। कार्यं ब्रह्माण्डं यथा करोति तथा अद्यापि सर्वेषां प्रसिद्धमित्यर्थः ॥३॥ स एवादिसर्गे समझ्याधिको हिरण्यगर्भाख्यः स्वात्मनि बाह्यवस्तुपु च नाम-मेदमि कथयतीत्याह—सनातन इति ॥ ४ ॥ तस्यैव सा-त्विकराजसतामसकल्पेषु सदाशिवादिमूर्तिप्राथम्येनेतरकल्पकत्वं नियतमिखाइ-एवमिति ॥ ५ ॥ 'आकाशप्रभवो ब्रह्मे'ति पूर्व-रामायणोक्तेनीभ्युत्पतिनियमः पितामहस्य नास्तीत्याशयेनाह-पितामह इति । इतरो दुर्गाभैरवविनायकादिः । तेषामपि तत्त-न्माहारम्यप्रतिपादकपुराणादिभागेषु ब्रह्माद्यद्भवहेतुलप्रसिद्धेः । स उक्तः सदाशिवादिपुरुषः संकल्पमयः । 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रृत्युक्तमायिकसंकल्परूपः ॥ ६॥ प्रथम-

तत्त्वसद्गुपमिखळं शून्यवेतालको यथा। भ्रमदृष्ट्या तु सद्रूपमित्यह्नता जगद्रतिः॥ ረ द्रप्रादिपुरुषस्त्वेवं स्वयं संपद्यते हि यः। स निमेषं प्रति व्योम समुदेखथ नीयते॥ ९ निमेष एव कल्पो यो महाकल्पपरम्पराम । प्रतिभासविपर्यासमात्रेणानुभवत्यलम् ॥ १० परमाणौ परमाणौ न्योस्नि न्योस्नि क्षणे क्षणे। सर्गकल्पमहाकल्पभावाभावा भवन्ति ते ॥ ११ दृइयन्ते केचिदन्योन्यं साधम्याद्वासनागतेः। मिथः केचित्र दृश्यन्ते दृष्टेनाथ सदात्मना ॥ १२ सर्गाः सर्गेण सर्वत्र संभवन्ति न ते जिवे। भवन्ति परमे व्योम्नि व्योमरूपा इति स्वयम् ॥ १३ स्वयं च सदसद्रूपा लीयन्ते स्वप्नदौलवत्। सर्गर्न देश आकान्तो न च कालो न कर्तता ॥ १४ न चेते सत्स्वरूपा वा न कल्प्यं नापि च क्षणः। न चेदं जायते किंचित्र च किंचन नश्यति॥

संकल्प एव सूक्ष्मभूतसर्गद्वारा पुष्टः संस्तत्कालसमष्टिव्यष्टिमनो-रूपमास्थितो हिरण्यगर्भादिरूपः सन् यद्भवनप्रजासर्गादि यथा करपयति तत्त्रथा व्यवहारक्षममनुभवतीत्वर्थः॥७॥ तत्त्वहृष्ट्या असदूपं भ्रमदृष्या तु सदृपं सत्यमिव भाति ॥८॥ एवमुक्तरीत्य। य आदिपुरुषः खरुष्टस्य द्रष्टा संपद्यते स निमेषंत्रति निमे-षलक्ष्यकालेऽपि खरूपपर्यालोचनमात्रेण व्योम चिदाकाशमात्रं समुदेति । अथ खरूपविस्मर्णे निमेषमात्रेणेव अनन्तमपारं च संसारं प्रति नीयते ॥ ९ ॥ कल्पः कल्पनासमर्थः । प्रतिभा-सस्य विपर्यासः पराक्त्रवणता तन्मात्रेण ॥ १० ॥ व्योन्नि सूचीछिदाद्याकाशेऽपि ॥ ११ ॥ तेच सर्गमेदा यावतां जीवानां तुल्यकाळं तुल्यगोचरवासनोद्भवस्तावतां मिथो दर्शनादिव्यव-हारसंवादिनः । अन्येषां तच्छन्या इत्यैन्दवोपाख्यानन्यायमान श्रित्याह-दश्यनत इति । अदर्शनं च कल्पितरूपांशे । अधि-ष्ठानांशे तु सर्वेषां नित्यापरोक्षतैवेत्याह—हप्टेनेति ॥ १२ ॥ तत्र युक्तिमाह—सर्गा इति । यतः सर्गेण सर्गात्मना स्थितेन जीवेन संभाव्यमानाः सन्त एव सर्गाः संभवन्ति नतु ते शिवं परमार्थस्वभावे परमे व्योम्नि । तत्र तेषां व्योमरूपसस्यैव पर्यवसानादित्यर्थः ॥ १३ ॥ ननु सर्गा ब्रह्मसत्तानिरपेक्षाः खसत्तया वा देशकालसंबन्धबललब्धसत्तया वा सन्त तन्ना-ह-स्वयं चेति । सदसद्रूपा नैकतरनियतस्वभावाः । एवं देशः कालथ सर्गैः प्राङ् नाकान्तः । तयोरपि सर्गान्तर्ग-तलात्सर्गसापेक्षरूपत्वेन सर्गाधानकल्पनलाचेल्यरः । तर्हि सर्ग एव खत्य कालादिसंबन्धरूपमन्यादशं वा सत्वं करोतु तत्राह-न कर्तृतेति । सर्गाणामिति विपरिणामेनानुषद्धः ॥ १४ ॥ तर्हि सर्गाः स्वयमेव यावतप्ररूपं सत्सरूपाः सन्त तत्राह्—नचैते

38

सर्व संकल्परूपेण चिश्वमत्कुरुते चिति। स्वप्रपत्तननिर्माणपातोत्पातनवज्जगत्॥ १६ न वेशकालक्रमणं करोति च मनागपि। यथा संकल्परीलेन देशकालाद्यनन्तकम् ॥ १७ आक्रान्तमपि नाक्रान्तं तथैव जगता सता। अंध नाकान्तमकान्तमिव संकल्पमेरुणा ॥ १८ यथोश्चेर्दशकालादि तथेव जगता सता। संपद्यते यथा योऽसौ पुरुषः सर्वकारकः॥ १९ अनेनैव ऋमेणेष्ट कीटः संपद्यते क्षणात्। तस्थ्यामेवमेबेह जातयो हि चतुर्विधाः॥ २० रुद्राद्यास्त्रणपर्यन्ताः संपद्यन्ते क्षणं प्रति । परमाणुपमाः सन्ति तथा केचिदणुपमाः॥ 23 एष एव क्रमस्तेषां सति वाऽसति सर्गके। अस्याः संसारमायाया एवं भूतार्थभावनात् ॥२२ भेदोपशान्तावभ्यासाद्भवत्युपगतः शिवः। निमेषशतभागार्धमात्रमेव परा चितिः॥ રરૂ स्वरूपतश्चेल्लिता सैपोदेत्यनवस्थितिः। सा क्षरूपा शिलाकाश इच चित्स्वात्मनि स्थिता २४

इति । सर्गसत्पदयोः पर्यायलापत्तेनीशानापत्तेः । 'नाभावो विद्यते सतः' इति भगवत्सिद्धान्तादिति भावः । तर्हि संगं सत्त्व-मध्यस्तमेवास्त तत्राह-न कल्प्यामिति । असतः सत्त्वाध्या-साधिष्ठानलासंभवादिति भावः । तर्हि वैनाशिकमतवत्तत्स-णरूपमेव सत्त्वं धारयानुगतमस्त तत्राह-नापीति । क्षणरूपस्य सत्त्वस्य प्रतीतिकालपर्यन्तमनवस्थितेरत्यन्ताप्रतीतस्य सत्त्वं अलीकस्यापि तदापत्तेरिति भावः । एतेन आग्रन्तक्षणसंबन्ध-**लक्षणौ जन्मनाशाविप संगस्य निरस्तावित्याशयेनाह—नचेद**-मिति ॥ १५ ॥ एवं चास्मित्सिद्धान्त एव शरणमित्याशयेन प्रा-गुक्तं स्मारयति—सर्वमिति ॥ १६ ॥ कथं तर्हि देशकाला-कान्तताप्रखयस्तत्राह-यथेखादिना ॥ १७ ॥ यथा उच्चेः स्थितेन संकल्पमेरणा नाकान्तमेव अथापि संकल्पकाले आ-कान्तमिव प्रतिभासते तद्वदिति परेणान्वयः॥ १८ ॥ अतएव संकल्पानुसारेणैव पुरुषकीटस्थावरादिजन्मवैनित्र्यमित्याह— संपद्यत इति । सर्वकारकः ऐहिकामुप्मिकसर्विकियासमर्थः॥ १९॥ तस्थ्रषां स्थावराणां योनिरपि संपयते । एवमेव अण्डजादि-चतुर्विधजातयः संपद्यन्त इत्यर्थः ॥ २० ॥ क्षणं प्रति माया-धिष्टातः संकल्पक्षणे एव । वासनासीक्ष्म्यात्परमाणूपमा ईप-द्विकासे त्रसरेणूपमाः सर्गाः सांप्रतं सन्ति ॥ २१ ॥ वर्तमान-सर्गवदेवातीतानागतानामपि कमो बोध्य इत्याह—एष एवेति। तेषां रदादितृणान्तानाम् । कथं तर्हि सर्गीपरमस्तत्राह-अस्या इति । एवंभूतस्य परमार्थतत्त्वस्य भावनात्साक्षात्कारात् ॥ २२ ॥

तदनाचवभासात्म ब्रह्मशब्देन गीयते । अस्मिन्प्रौढिं गते संगं महाचिद्दघोतनं नच ॥ 24 संगतासत्यदिग्देशकालांशपरमाणुता । जीवतामागता भृततन्मात्रवलनाक्रमात्॥ २६ भवत्यङ्ग मृगीवीरुकीटदेवासुरादिकम्। यसिमित्ये ततेऽनन्ते दृढे स्त्रगिव तिष्ठति ॥ २७ सदसद्वथितं विश्वं विश्वगे विश्वकर्मणि। न तहरे न निकटे नोध्वें नाधो न तेन मे। न पूर्व नाद्य न प्रातर्न सन्नासन्न मध्यमम् ॥ २८ अनुभवकलनामृतेऽस्य माता भवति न सर्वविकल्पनेष्वसत्सु । फलदुरुविभवा प्रमाणमाला स्थितिमुपयाति न वारिणीव वहिः॥ २९ यथा पृष्टं मुने प्रोक्तं त्विय कल्याणमस्तु ते। दिशं प्रयामोऽभिमतामागच्छोत्तिष्ठ पार्वति ॥ ३० वसिष्र उद्याच। इत्युक्त्वा नीलकण्ठोऽसौ त्यक्तपूष्पाञ्जलौ मयि ।

ततार परिवारेण सममम्यरकोटरम् ॥

क्षणलेशमात्रमपि चिदातमनो बहिर्मुखत्वे कल्पकोटिविस्तृता-नथोंदय इलाह—निमेषेति ॥ २३ ॥ छठिता प्रच्युता । चितः स्वरूपप्रतिष्ठव ब्रह्मतेत्याह्—सेति । इस्तन्ववितेन रूप्यते अनु-भूयत इति इह्पा ॥ २४ ॥ अभिमानवृद्धा यथायथा सर्गः प्रौढिं गच्छति तथातथा चिदात्मविद्योतनहासः परिच्छेदाधि-क्यप्रयुक्ता आत्मनः शुद्रता चेलाह—अस्मित्रिति ॥ २५ ॥ संगतैरसत्यैर्दिग्देशकालकृतैरंशैः परिच्छेदैः परमा मशकप्रति-काधन्ता अणुता क्षद्रता च । आत्मन इति शेषः । परमाणुनेति पाठे तु परमेणाणुना लिक्षोपाधिना ब्रह्मचिजीवतामागता सती भूततन्मात्रशब्दितदेहेन्द्रियादिवलनाकमात् हे अङ्ग. मृगी वीह-ल्लता वा कीटदेवासुरादिकं वा भवतीति परेणान्वयः ॥ २६ ॥ अतएव दढसूत्रे स्निय विश्वं सदसद्वियतं तिष्ठतीस्वाह-यसिक्षिति ॥ २७ ॥ विवेके तु तत्सर्वदिकालादिपरिच्छेदनि-र्भुक्तमेवेत्याह—न तदिति । ते लदीयं न । मे मदीयं च न । मध्यमं सदसरपक्षान्तरालिकमनिर्वचनीयम् ॥ २८ ॥ अतएव खानभवमात्रमेव तत्र मानं नत् हैं। किकं मात्रमानादि तत्र कमत इत्याह-अनुभवेति । एवं सर्वविकल्पनेष्वसत्सु अस्य खातुभवरूपां कलनां खप्रकाशचैतन्यमृते विना अन्यो माता अनुभविता न भवति । यातु लौकिकी फलन्युरवो व्यवहारविभवा ग्रस्थाः सकाशात्तथाविधा प्रमाणमाला सा बारिणि विक्रेरिव तत्र स्थितिं नोपयाति । तत्र त्रिपुर्टीमात्रस्य बाधादिखर्थः ॥ २९ ॥ उपचेश्यान्तरापरिशेषं दर्शयशीश्वरः स्वोपदिष्टार्थमाशिषापि वसि-ष्टमन्युद्धोपदेशम्परंह्लोत्तस्थाविखाह-यथेति ॥३०॥ ततार

१ अप्यनाकान्तमिति पाठः.

तसिन्गते त्रिभुवनाधिपताषुमेशे स्थित्वा क्षणं तदनु संस्मृतिपूर्वमेव।

अङ्गीकृतं नवपवित्रधिया मयात्म देवार्चनं रामवतेव जिहासितं तत्॥ ३२

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे परमात्माभिधानं नाम द्विचलारिशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंदाः सर्गः ४३

वसिष्ठ उवाच। पत्रक्तं परं तेन स्वयमेव च वेदयहम्। राम त्वमपि जानीषे यथेदं समवस्थितम्॥ यत्राहीकमहीकेन किलाहीके विलोक्यते। तस्यां संसारमायायां किं सत्यं किमसन्मयम् ॥ यथा येन विकल्पेन यहिकल्पेन कथ्यते। तथा तेनात्मकल्पेन नगताप्यनुभूयते ॥ यथा द्वत्वं पयसि यथा स्पन्दो नभस्यति। यथा नभसि शुन्यत्वं तथा सर्गत्वमात्मनि ॥ ततः प्रभृति तेनैव ऋमेणार्चनमात्मनः। अद्य यावद्गतव्ययः कुर्वन्नहमवस्थितः॥ Ų अनेनार्चाविधानेन मयेमे राम वासराः। अखिन्नेनातिचाहान्ते व्यवहारपरा अपि॥ यथाप्राप्तः क्रियाचारकुसुमैरात्मनोऽर्घनम् । व्युच्छिन्नमपि व्युच्छिन्नं न कदाचिदहर्निशम्॥ ७ **ब्राह्मप्राहकसंबन्धे सामान्ये सर्वदेहिनाम्** । योगिनः सावधानत्वं यत्तदर्चनमात्मनः॥ 6

पुष्ठवे ॥ ३१ ॥ पूर्वमेव शमवता मया तस्य श्रीगुरोरीश्वरस्यानुस्मृतिपूर्वकमेव तदुपदिष्टं नित्यापरोक्षदेवार्चनं नवया
परिष्कृतया श्रद्धादिपवित्रया च घिया मयानुष्ठेयत्वेनार्ज्ञाकृतं
तत्प्राक्तनं जडदेवार्चनं जिहासितं चेत्यर्थः ॥ ३२ ॥ इति
श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे हिचरवारिंगः सर्गः ॥ ४२ ॥

इह श्रुरवा सवैराग्यं रामः स्वात्मशिवार्चनम् । प्रबुद्धः कृतकृत्यं स्वं तत्प्रतिष्टमवर्णयत् ॥ १ ॥

ईश्वरोपदिष्टं तत्त्वदर्शनपर्यविति स्वात्मशिवार्चनं श्रीरामस्य श्रद्धातिशयसिद्धये प्रशंसन्स्वयमपि तदेव पुनरपदिशति—एत-दिखादिना। परं सर्वोत्कृष्टम् । इदं जगत्तत्त्वम् ॥ १ ॥ यत्र मायायां अर्छाके श्रमे अर्छीकोपाधिषटितलादर्छीकेन जीवेन अर्छीकमसदेव जगद्विर्छोक्यते ॥ २ ॥ तत्र कविकल्पितेन मेरुत्वेन राजादेवर्णने तथानुभवो दृष्टान्त इत्याह—यथेति । विविधं कल्पयतीति विकल्पेन येन कविना यस्मिन् राजादी मेर्चादिविविधभावकल्पनं यद्विकल्पस्तेन काव्यरचनया यथायथा कथ्यते तथातथा श्रुला आत्मानं कल्पयतीत्यात्मकल्पो राजादिस्तेन खिस्मम्यता मेरुता कल्पबृक्षता वाप्यनुभूयते । कथमन्यथा काव्यायोनुभवसमस्काराखादस्य बहुवित्तलाभमानादिकं स्व

दृष्ट्यानया रघुपते सङ्गमुक्तेन चेतसा । संसारविरळारण्ये विहरासिन्न खिद्यसे ॥ दुःखे महति संप्राप्ते धनवन्ध्रवियोगजे । एतां दृष्टिमवप्टभ्य विचारं कुरु सुवत ॥ 80 सुखदुःखे न कर्तव्ये धनवन्ध्रदयक्षये। एवंशाया एव सर्वा नित्यं संसारदृष्यः ॥ 88 जानास्येव गति चित्रां विषयाणां प्रमाथिनीम्। यथायान्ति यथा यान्ति यथा परिभवन्तिच ॥ १२ एवमेव प्रवर्तन्ते प्रेमाणि च धनानि च । एवमेवावहीयन्ते निमित्तरिवचारितः॥ १३ न तास्तव न तासां त्वं निर्मलान्तर्जगत्कियाः। इदमित्थं जगत्किचित्कि मुधा परितप्यसे॥ 83 त्वमिहासि जगद्रपं चिन्मात्रविनताकृते । निजावयवकायृत्तौ कः क्रमो हर्पशोकयोः॥ १५ तात चिन्मात्ररूपोऽसि न ते भिन्नमिदं जगत्। अतस्तव कथं कुत्र हेयोपादेयकल्पना ॥ १६ इति चिश्वकचाञ्चरये चिन्मये जगदम्बुधी। तरङ्गजाले चाम्भोधौ कः क्रमो हर्पशोकयोः॥ १७

कवेः स्यादिति भावः ॥ ३ ॥ विविधकल्पना चान्नातस्यात्मनः स्वभाव एवेत्यारायेन द्रष्टान्तान्तराण्याह—यथेति ॥ ४ ॥ एवं स्वाभाविकस्यैव विकल्पाध्यारोपस्यार्चन**लचिन्तनं तदाप्र**शृद्धद्य-पर्यन्तं कुर्वन्नेव स्थित इत्याह—नत इति ॥ ५ ॥ ६ ॥ सुषुप्ति-काले व्युच्छिन्नमपि कदापि न व्युच्छिन्नम् । तदापि सुलमह-मखाप्सं न किंचिदवेदिषमित्युरियतप्रतिसंधानहेलविद्यावृत्ति-पुष्पत्रयार्चनसद्भावादिति भावः ॥ ७ ॥ तर्धज्ञानामि तादश-विवार्चनं सर्देवास्तीति कस्तव तेभ्यो विशेषस्तत्राह--प्राह्मेति। सावधानत्वं विशेष इत्यर्थः ॥ ८ ॥ साच सावधानता आसङ्ग-त्यागे एवेति दर्शयन्नर्चने दष्टफलबाहुत्यकीर्तनेन रामं प्रवर्त-यति—दृष्ट्येति ॥ ९ ॥ त्यक्तस्यासङ्गस्य पुनरनुत्पादे विचार-दार्क्य हेतुरित्याह—दुःखे इति ॥ १० ॥ सुखदुःखे हर्षवि-षादौ । एवंप्राया ईरशा नश्वरा एव ॥ ११ ॥ प्रथममायान्ति ततो यान्ति । खव्यसनासक्षेन पुरुषं परिभवन्ति च ॥ १२ ॥ अविचारितैरतर्कितैः ॥ १३ ॥ हे निर्मेल, ता जगत्कियास्तवा-न्तर्न तासां खमन्तर्न किंचित्तुच्छमेव ॥ १४ ॥ यदि तु जग-तस्त्रच्छतां नेच्छिसि तर्ग्यात्मैव जगदिति परय । तथादर्शनेऽपि तव बन्धादिवियोगे खावयवपरिवर्तन इव न हर्पशोकप्रसिक्त-रिखाह—लिमति॥ १५॥ १६॥ इति उक्तरीला चिद्वपे १८

२०

चिदेकतानतामेल्य साषुप्तीमागतः स्थितिम्। अद्यप्रभृति राम त्वं तुर्यावस्थात्मको भव॥ समः समसमाभासो भास्त्रद्वपुरुदारधीः। तिष्ठात्मार्चारतो नित्यं परिपूर्ण इवार्णवः॥ १९ एतस्वं श्रुतवान्सर्वं स्थितस्त्वं परिपूर्णधीः। यदिच्छसीतरत्प्रष्टं तत्पृच्छ रघुनन्दन । यत्पृष्टं प्रथमे कल्पे तद्द्य परिचोद्य ॥ श्रीराम उवाच।

इदानीं संशयो ब्रह्मन्यिनवृत्तो विशेषतः। श्चातं शातव्यमखिलं जाता तृप्तिरकृत्रिमा ॥ २१ न मुनेऽस्ति मलं द्वित्वं न चेत्यं न च कल्पनम्। २२ तवा ममाभूदशानं प्रशान्तमधुना तु तत्॥ कलक आत्मनोऽस्तीति तद्शानवशेन या। भ्रान्तिरासीदिदानीं सा निवृत्ता त्वत्प्रसादतः २३ न जायते न म्रियते न चैवात्मा कलङ्कितः। सर्वे च खिवदं ब्रह्ममयमित्युदितोऽस्म्यलम् ॥२४ प्रश्लेभ्यः संशयेभ्यश्च वाञ्छितेभ्यश्च सर्वतः। शुद्धं मे निर्मलं चेतस्त्वष्टा यन्त्रभ्रमादिव ॥ રૂપ सर्वाचारोपदेशेषु प्राप्तप्रोक्तेषु साधुभिः। निराकाङ्की स्थितोस्म्यन्तः सुमेरुः कनकेष्यिय २६ न तदस्यस्ति यत्राशा न तदस्ति यदीव्सितम्।

न तदस्ति यदादेयं हेयं मध्यं चराचरे॥ २७ इदं हेयमुपादेयमिदं सदिदमप्यसत्। इति चिन्ताभ्रमः शान्तो निपुणं परमो मुने ॥ न स्वर्गमभिवाञ्छामि द्वेषिम वापि न रारवम्। आत्मन्येव हि तिष्टामि मन्दराद्विरिवाभ्रमः॥ २९ कणशः कीर्णत्रिजगत्क्षीरसागरसंस्रतिः। विश्रान्तश्चिरसंभ्रान्तो निर्भ्रमो राम मन्दरः ॥ ३० अवस्त्वदमिदं वस्तु पश्येति कलनास्त्यलम्। हृदि तस्य कुरांदेहजालेन ज्वलिताधिकम्॥ 38 इदमित्थं जगदिति शातं येन मुनीश्वर। स यत्र याति कार्पण्यं जगतस्तन्न लभ्यते ॥ 32 विचित्राकुलकल्लोलाज्जडाहृसिवियर्जितात्। त्वत्प्रसादेन भगवंस्तीर्णाः स्रो भवसागरात्॥ ३३ संपदामवधिर्कातो दृष्टः सीमान्त आपदाम्। सर्वसारेऽप्यदीनाः साः पूर्णाः साः परमेश्वर ॥ ३४ ययावभेद्यामपरेर्वलिताशामतङ्गजम्। संसारसागरे सम्यग्वीरतामागतं मनः॥ રૂપ परिगलितविकल्पतामुपेतं व्रगलितवाञ्छमदीनसारसत्त्वम् । त्रिजगति यदतिप्रसन्नरूपं प्रमुद्तिमन्तरनुत्तमं मनो मे ॥ 36

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे विश्रान्तिवर्णनं नाम त्रिचलारिशः सर्गः ॥ ४३ ॥

जगबकचाश्रत्ये ॥ १७ ॥ उक्तार्चनस्य परमकाष्टायां रामे स्थापयति--विदेकतानतामिति ॥ १८ ॥ स्त्रयं समः सर्व-वैषम्यनिर्मुकः । समेन ब्रह्मणा समा ऐकरस्यापना जगदाभासा यस्य ॥ १९ ॥ प्रथमे कल्पं विचारारम्भे वैराग्यप्रकरणे लया यत्पृष्टं ये प्रश्नाः कृतास्तेषु अद्य किंचिदवशिष्टं चेदस्ति तर्हि तत्परिचोदय प्रच्छ ॥ २० ॥ मलमज्ञानम् । द्वित्वं जीव-ब्रह्मभेदः । कल्प्यते येन तत्कल्पनं मनः ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ ब्रह्मैव ब्रह्ममयं ब्रह्मविवर्ती वा ॥ २४ ॥ वाञ्छिते-भ्यश्व नियुत्तमिति शेषः । लष्ट्रा यन्त्रे आरोप्य श्रमणं श्रम-स्तह्नक्षितं तक्षणं तस्मात्सूर्यविम्बमिव शुद्धं भाखरम् ॥ २५ ॥ साधुमिः प्राप्तेभ्य उपगतेभ्यः शिष्येभ्यः प्रोक्तेषु सर्वे-बामानाराणां साधनानामुपदेशेषु निराकाश्ची ॥ २६ विरलभ्ये आशा । अनुपदलभ्ये ईप्सेति भेदः । मध्यमुपे-ध्यम् ॥ २७ ॥ रीरवं नरकविशेषं चापि न देखिम ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ कणशः परमाणुशो विभज्य कीर्णानि विक्षिप्तानि विनाशितानीतियावत् त्रिजगन्ति येन तथाविधस्य क्षीरसा-गरस्य संस्तुतिः सर्वतो व्याप्तिरिव व्याप्तिर्थस्य । औरप्रेक्षिक-मेतत् । अथवा कणशः प्रस्तैर्यशःक्षीरलवैः कीर्णानि सिक्तानि त्रिजगन्ति यया तथाविधामन्वंशक्षीरसागरे संग्रुतिर्व्यवहारो बस्य तथाविधश्चिरसंत्रान्तो रामलक्षणो मन्दराचलो बोधामु-

तीत्परया कृतार्थः । सांप्रतं विश्रान्त उपरतश्रमो युत्त इति परे-णान्वयः ॥ ३० ॥ इदं जगत् इत्थं यथा दृष्टप्रकारमेव नान्य-त्तत्त्वमस्तीति येन मूढेन ज्ञातं तस्य हृदि कुसंदेहजाछेन ज्वलि-तेव अधिकं संतापिनी ददं वस्तु इदमवस्तु इति कलना अल-मस्ति हे मुनीश्वर, लिमति मदुक्तार्थ सानुभवसंवादाय पश्येति परेणान्वयः ॥ ३१ ॥ स तादशमूडपुरुषो यत्र यस्मिन् धना-दिविषये कार्पण्यं याति जगतः संवन्धि तद्वस्तु तस्वदशा न लभ्यतेऽस्माभिरिति शेषः ॥३२॥ यतो वयं वि**चित्रा अश**नाया-दिलक्षणा आकुलाः कछोलाः षड्मयो यस्मिस्तथाविधाच्छ्काचि-दाकारवृत्तिविवर्जिताञ्जडाद्भवसागरात्त्वत्प्रसादेन तीर्णाः स्प इति परेणान्वयः ॥ ३३ ॥ सर्वसारे भूमानन्दविषयेऽपि निखल-ब्धलाददीनाः साः ॥ ३४ ॥ असान्मनःसंसारलक्षणेन समरे दिलतः आशामतङ्गजो येन तथाविधं सत् परैरमेवां सम्यग्वीरतां ययी ॥ ३५ ॥ पूर्णी मनःस्थितिमेव वर्णयश्रुपसंहरति-परि-गलितेति । अदीनसारमकार्पण्यदढं सत्त्वं स्थैर्यं यस्य । त्रिजगति प्रसिद्धानि पूर्णचन्द्रक्षीरसागरशरदाकाशादीनि यानि प्रसन्नरू-पाणि तान्यतिकान्तमतिप्रसन्नरूपम् । सापेक्षसमासश्चान्दसः । थन्तःप्रमुदितमतएवानुत्तमं मे मनः स्थितमित्यर्थः ॥ ३६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंदाः सर्गः ४४

वसिष्ठ उवाच। केवलेनेन्द्रियैः सार्धे वर्तमानार्थवर्तिना । असंगमेन मनसा यत्करोषि न तत्कृतम्॥ यथा प्राप्तिक्षणे वस्तु प्रथमे तुष्टये तथा। न प्राध्येकक्षणादृष्वीमिति को नानुभृतवान्॥ बाञ्छाकाले यथा वस्तु तुएये नान्यदा तथा। तसात्क्षणसुखे सक्ति वाली बधाति नेतरः॥ वाञ्छाकाले तुष्टये यसत्र वाञ्छेव कारणम्। तुष्टिस्त्वतुष्टिपर्यन्ता तस्माद्वाञ्छां परित्यज्ञ ॥ यदि तत्पदमाप्तोऽसि कदाचित्कालपर्ययात् । तद्दंभावनारूपे न मञ्जूव्यं त्वया पुनः ॥ आत्मशानाचलस्यात्रे राम विश्वान्तवानसि। अहंभावमहाश्वभ्रे न पुनः पातमहंसि ॥ દ્દ यत्स्मृतानन्तसदृष्टेर्भत्वमेरुहारस्थितेः । पुनर्गभानुकारान्तःपाताले पतनं कुतः॥ હ दृश्यते ते स्वभावोऽयं समतासत्यतामयः। मन्ये क्षीणविकल्पोऽसि जातोऽसि हतकालिकः स्वभावे संस्थितो राम इत्यावेदयतीव मे। सौम्य पूर्णार्णवप्रख्या समता निर्मला तव ॥

इहासङ्गक्षयोपाया वाञ्छात्यागादयः पुनः । सनःक्षयान्ता गुरुणा ज्ञानदार्ख्यार्थमीरिताः ॥ १ ॥

रामेण खस्य तत्त्वबोधविश्रान्तौ वर्णितायामपि तत्परिपा-कारप्राक् प्रच्यतिर्माभूदिति शिलानिखातस्थ्णादार्व्याय संधिकी-लपरम्परामिव जीवनमुक्तलक्षणभूतां त्रागुक्तसाधनपरम्परामेव प्रतिष्ठापियष्यन् श्रीवसिष्ठः प्रागुक्ते यथाप्राप्तव्यवहारोपभोगा-दिलक्षणे शिवार्चनेऽपि 'सर्वारम्मा हि दोषण भूमेनाभिरि-वावृताः' इति न्यायेन प्रमादाद्धिसापरानिष्टादिप्रसक्तरवर्जना-द्भोगस्यानथेहेतुत्वाच स्यादेव पुनर्जननाद्यनथे इत्याशङ्कां वार-यनाह-केवलेनेति । केवलेन रागादिरहितेन, अतएव असं-गमेन कर्त्रलामिमानलक्षणिकयासंगमश्र्रत्येन ॥ १ ॥ ननु विषयाणां त्रष्टिजनकलनियमात्कथं तेषु रागस्यक्तं शक्य इत्या-श्राह्माह—यथेति । प्राप्तिक्षणातिरिक्तपूर्वीत्तरकालयोस्तेषु तुष्टि-हेतुलव्यभिचारात्रायं नियम इति भावः ॥ २ ॥ अतएव विरानर्थे क्षणिकसुखे आसङ्गोऽपि न युक्त इत्याह—वाञ्छेति। बाञ्छापदेन लाभो लक्ष्यते ॥ ३ ॥ यदा बस्तुलाभकृतः क्षणि-कोऽपि वाञ्छानिरोधः मुखहेतुस्तदा आत्यन्तिकवाञ्छो-च्छेदो निरतिशयानन्दहेतुरित्यर्थादागतम्, तथाच वाञ्छेवा-नर्थं इत्याशयेनाइ—नाञ्छाकाल इति । तुष्टिरानन्दः । अतुष्टि-सुष्टिविरोधिवाञ्छैब पर्यन्तो विच्छेदो यस्यास्तथाविधा ॥ ४ ॥ नतु पूर्णानन्दं पदं प्राप्तोऽहं तस्म मधं पुनर्विपयबाञ्छालागी-

आशा यातु निराशत्वमभावं यातु भावनम् । अमनस्त्वं मनो यातु तवासङ्गेन जीवतः॥ यांयां बस्तुहरां यासि तस्यां तस्यामवस्थितम्। सत्तासामान्यरूपेण ब्रह्म बृंहितचिद्धनम्॥ अज्ञातात्मा नियद्धोऽसि विज्ञातात्मा न यध्यसे । रामं त्वं स्वात्मनात्मानं बोधयस्व बलादतः॥ १२ यत्र न स्वदते वस्तु स्वदते च यथागतम्। अवासनत्वं तद्विद्धि साम्यमाकाशकोमलम् ॥ १३ वासनारहितैरन्तरिन्द्रियेराहर कियाः। न विकियामवाप्रोषि खवत्क्षोभशतेरपि॥ १४ शाता शानं तथा श्रेयं त्रयमेकतयात्मनि । शान्तात्मानुभवाऽभव्यं न भूयो भवभागंसि ॥ १५ चित्तोन्मेषनिमेपाभ्यां संसारप्रद्धयोदयौ। वासनाप्राणसंरोधादनिमेपं मनः कुरु॥ १६ प्राणोन्मेपनिमेपाभ्यां संसृतेः प्रलयोदयौ । तमभ्यासप्रयोगाभ्यामुन्मेषरहितं कुरु॥ १७ मौर्ष्यान्मेयनिमेषाभ्यां कर्मणां प्रलयोदयौ। तद्विलीनं कुरु बलाहुरुशास्त्रार्थसंयमैः॥ १८ यथा वातरजःसङ्गरूपन्दात्लं भाववेदनम् । तथा चितश्चेत्यतया स्पन्दादिद्मुपस्थितम्॥

पदेशस्ते किमर्थस्तत्राह—यदीति । पुनः कालान्तरेऽप्यहंभाव-पद्गे निमजनं मा भृदिति तत्यदस्थितिदाद्यीर्थः पुनरुपदेश इलार्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ सलापि दार्ल्य पुनर्मजनं कि नाशकाते तत्राह—यदिति । यदासादेतोः । गर्भी मातृकुक्षिगतः पिण्ड-स्तमनुख्ल करोति जन्मायनर्थमिति गर्भानुकारोऽहंभावस्त-ह्रक्षणेऽन्तःपाताखे । द्वीभृतज्ञानस्यावश्यमविद्यान**र्थवीजोच्छे**-दिलादिति भावः॥ ७॥ अन्येषामुपकाराय वा भयेदमुक्तं तव लज्ञानं नष्टमिति मया समतादिलिङ्गर्छक्षितभेवेखाश-येनाइ---दर्यत इति । कालिका अविद्या ॥ ८ ॥ ९ ॥ न संजनमसङ्गस्तेन जीवतः । अनुमोदने आशिषि वा लोट् ॥ १० ॥ न मनोरथभङ्गात्रिराशखाद्याशास् किंत्र, सर्वतो निरतिशयानन्दब्रह्मलाभादित्याशयेनाह---यां यामिति ॥ ११॥ बठान्मननादिदार्ख्यात् ॥ १२ ॥ इदानीं निर्यासनलस्य स्नानु-भवगम्यं रुक्षणमाह-यत्रेति । वस्तु भोगसुखम् । यथागतं प्रारच्योपनीतं दुःखमपि ॥ १३ ॥ खवत् आकाशवत् ॥ १४॥ अभन्यं दुःखाद्यपि त्रिपुट्येकीकारेणात्मतया अनुभव । तेन तस्य प्रतिकृलता शाम्यतीति भावः ॥ १५ ॥ दुःखादी प्राति-कूल्यविकल्पनं मनःकृतमिति तदेव वा भुशुण्डोक्तयुक्तया निरो-द्धयमिलाशयेनाह—चितेति ॥ १६ ॥ १७ ॥ अज्ञानमेव वा प्रशृतिद्वारानथेनिदानमिति तदेव ज्ञानदार्ट्येन निरसनीयमि-त्याह—मीर्ख्येति ॥ १८ ॥ चित्तोन्मेषनिमेषाभ्यामिति यद्कं

योग० १११

दृष्यदर्शनसंबन्धस्पन्देनेयं जगद्गतिः। स्फूरत्यालोककुड्यादिसंगजा वर्णधीरिय ॥ २० दृश्यदर्शनसंबन्धस्पन्दाभावे न जायते । वेदना भवदाभासा चित्रपुंसामिवाशये॥ २१ चित्तस्पन्दोत्थिता माया तदभावे विलीयते। पयस्रपन्दोरिधता वीचिस्तदभावे विनश्यति ॥ २२ त्यानेन वासनांशस्य बोधाद्वा प्राणरोधनात। चित्ते निस्पन्दतां याते कुतः स्पन्दस्य संभवः २३ असंवित्स्पन्दमात्रेण याति चित्तमचित्तताम्। प्राणानां वा निरोधेन तदेव च परं पदम्॥ રપ્ર दृइयदर्शनसंबन्धे यत्सुखं पारमार्थिकम् । तदन्तेकान्तसंवित्या ब्रह्मदृष्ट्या मनःक्षयः॥ રૂપ यत्र नाभ्यदितं चित्तं तत्तत्तुखमक्तिमम्। न स्वर्गादी संभवति मरी हिमगृहं यथा॥ २६ चित्तोपशमजं स्फारमवाच्यं यचसा सुखम् । क्षयातिशयनिर्मुकं नोदेति न च शाम्यति॥ २७

बोधाक्रवति चित्तान्तो दुर्बोधाश्चित्तवेदिता। बालवेतालवसेन मोहश्रीधनतां गता ॥ 26 विद्यमानमपि होतिश्वतं बोधाविलीयते। सद्प्यसदिवाभाति ताम्नं हेमीकृतं यथा ॥ २९ श्रस्य चित्तं न चित्ताख्यं श्वचित्तं सत्त्वमुच्यते । नामार्थान्यत्वभाषिचत्तं बोधात्ताम्रसुवर्णवत् ॥ ३० न संभवति चित्तरयं तेन तत्त्रविहीयते। भ्रमः शास्यति बोधेन नाऽभावो विद्यते सतः ३१ अवस्त्वेव विकल्पात्म चित्तादि शशश्चकत्। सर्वे तदात्मनस्तसात्तक्ति बोधाद्विलीयते ॥ 32 चित्तं सत्त्वं समायातं किंचित्कालं जगित्स्वतौ। विद्वत्य तुर्यावस्थायां तुर्यातीतं भवत्यतः॥ 33 ब्रह्मेव भरिभवनभ्रमविभ्रमीचे-रित्थं स्थितं सममनेकत्यैकमेव। सर्वातम संभवति नेतरदङ्क किंचि-श्वित्तादिकं च न हृदीव हि संनिवेशः॥ ३४

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे चित्तसत्तासूचनं नाम चतुथलारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

तदृष्टान्तेन र्फुटयति-यथेखादिना । यथा खमाकाशं वा-तस्य रजसां च सङ्गात्सान्दाच मिळनचळनादिस्वभावनेदनं संपन्नं तथा चितिश्रसलक्षणात्स्यन्दाचेलतया इदमनर्यजातम्-पस्थितमित्यर्थः ॥ १९ ॥ उक्तेर्थे अन्वयव्यतिरेकी दर्शयति-दृरयेति द्वाभ्याम् । नानाच्छिदप्रविष्टसीरालोककुड्यसंबन्धजा चित्रवर्णधीरिव ॥ २० ॥ भवतीति भवजगत्तदाभासा । यथा चित्रिहिखितपुंसामाशये हृदि भावनैव न जायते तद्वत् ॥ २१ ॥ २२ ॥ स्पन्दस्य काँटस्थ्यच्यतिरूपस्य ॥ २३ ॥ हार्थे चशब्दः ॥ २४ ॥ बोधाद्वा इति मध्यमोपायमुक्तं वित्रुणोति-दृश्येति । विषयेन्द्रियसंबन्धे यत्सुखं प्रसिद्धं तत्परमार्थतो ब्रह्म-सुखमेव । 'एतस्येवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रासुपजीवन्ति' **इति श्रुतेः।** अतस्त्रस्यान्तःपरमावधिर्मानुषानन्दमारभ्योत्तरोत्तरं शतगुणोत्कर्षेण श्रुत्या दक्षितः 'यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान त्रिमेति कदाचन' इति । तदेकान्तं तनमात्रपूर्णतातत्संवित्तिस्पया बढाद्या मनःक्षयः सिद्धातीत्यर्थः ॥ २५ ॥ तत्तत्मुखं ब्रह्मसुखं तच स्वर्गादिभो-गभूमा न संभवति । तत्र चित्तस्य कामास्यादिकछपलादिस्यर्थः। हिमं शिशिरजलं तस्य गृहं सरः ॥ २६ ॥ न वाच्यं वक्तमश-क्यम । खानभवेकगम्यमित्यर्थः॥ २०॥ चित्तस्यान्तो नाराः । यतो दुर्बोधाद्यान्तिवशादेव चित्तवदिता चित्तसद्भावप्रतीतिः, बोधेन तु आन्तिर्नश्यतीति युक्तिश्रतनाश इति भावः । बाछ-कल्पित्वेतालवत् । तेन दुवैधिन ॥ २८ ॥ ननु ज्ञानिनामपि

व्यवहारदर्शन। विश्वमस्त्येव तत्कथं शानेन नष्टम्, सत्त्वनष्टल-योर्युगपदेकत्र विरोधातत्राह-विद्यमानमगीति ॥ २९ ॥ नामतोऽर्थतश्वान्यत्वं भजत इत्यन्यसभाक् ॥ ३०॥ भ्रान्ति-बीजलमेव चित्तस्य चित्तता सा बोधेन प्रविश्रीयत इत्यर्थः । घटादिनाशेऽपि कपालाचातमना परिशेषदर्शनात्सतः खरूपेण नाशः काप्यप्रसिद्ध एत्रेत्याह-नाभाव इति ॥ ३१ ॥ वस्तु-बोधस्यावस्तुकत्पितांशमात्रबाधकलप्रसिद्धेरपि न सलांशवाध-कखप्रसिक्तिरित्याह-अवस्त्वेवेति । चित्तादि सर्वे तत् पारमा-थिंकस्यात्मनो विवर्त इति शेषः ॥ ३२ ॥ तर्हि कि जीवन्मु-क्तचित्तस्य व्यवहारक्षमावस्था वास्तव्येव, नेत्याह्—चित्तमिति। विहारसमाधिसाक्षात्कारपर्यन्ता तदवस्था न वास्तवी किंत्र प्रारच्धप्रतिबद्धाविद्यालेशकृतवाधितानुवृत्तिः । विदेहकैवस्यावि-र्भतत्वर्यातीतावस्थेव तस्य वास्तवीति भावः ॥ ३३ ॥ तत्त्वर्या-तीतं ब्रह्म यावम् ज्ञातं ताविचत्तजगदादि मिध्यावेषेण स्थितं सर्वात्मकं भवति न चित्तादिकं नाम किंचिदितरद्वस्खन्तरम-स्तीति ज्ञानमात्रेण तन्मात्रस्वभावपरिशेषश्चित्तादेर्युक्त एवेत्या-शयेनाह्-विवेति। यथा हृदि मनोरथपरिकल्पितप्रासादोपव-नवाप्यादिसंनिवेशस्तत्रासमावेशादेव नास्ति तद्वतपरमसूक्ष्मे अध्छिद्रचिदेकरसघने ब्रह्मण्यपि जगदसमावेशादेव नास्तीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणसार्ययप्रकाशे निर्वा-णप्रकरणे चतुःश्वरवारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पश्चक्तवारिंदाः सर्गः ४५

वसिष्ठ उवाच । अत्रेमामवबोधाय विस्तयोहासकारिणीम्। अपूर्वी चैव संक्षेपाद्राम रम्यां कथां श्रृणु ॥ योजनानां सहस्राणि विपुलं विमलं स्फुटम् । युगैरप्यजरद्रपमस्ति विस्वफलं महत्॥ अविनाशरसाधारं सुधामधुरसारवत्। पुराणमपि बालेन्दुदलमार्दवसुन्दरम्॥ ब्युहमध्यमहामेरुं मन्दराद्रिरिवाचलम्। महाकल्पान्तवात्याया अपि वेगैरचालितम्॥ ક योजनायुतकोटीनां कोटिलक्षशतैरपि। वैषुल्येनापरिच्छेद्यं मूलमाद्यं जगत्स्थितेः॥ यस्य बिल्वफलस्योचैर्ब्रह्माण्डानि समीपतः। हरन्ति लीलां शैलाधो राजिकाकणपद्धतेः॥ Ę स्यन्द्रमानरसापूरां स्वाद्वीं रसचमत्कृतिम्। यस्यातिशेते नो कश्चिदपि राघव षड्सः ॥ છ न कदाचन पाकेन पातं तेन समेति यत्। सदैव पक्रमप्यङ्ग जरसा यन्न वाध्यते॥ ब्रह्मविष्ण्यिन्द्ररुष्ट्राद्या जरठाः केचिदेव न। यस्योत्पत्ति विजानन्ति मूळं वा घृन्तमेव च ॥ अदद्यक्करवृक्षस्य त्वदद्युसुमारुतेः।

स्वानन्दरससंपूर्णं त्रिजगत्कस्पनास्पदम् । इह बिस्वफलत्वेन परं ब्रह्मोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

कथां त्रिल्वाख्यानाख्याम् ॥ १ ॥ न जीर्यत इखजरद्रूपं स्वभावो यस्य ॥ २ ॥ सुधेव सुधापेक्षया वा अतिमधुरसार-बत् । बालेन्दोरङ्करप्रायात्प्रतिदिनमुपचीयमानानि दलानीव याः कलास्तानीव मार्दवेन लड्नयनसुखस्पर्शतया सुन्दरम्॥३॥ भुवनव्यूहमध्यगतमहामेरुरिव मेडीभूतम् । मन्दरादिरिवाचलं हढम् ॥ ४ ॥ प्रागुक्तं सहस्रपदमसंख्यपरमिति व्याचष्टे-यो-जनेति । जगतः स्थितेर्विधारणस्य नियमनस्य च मूलम् ॥५॥ हरन्ति बहन्ति । राजिका सूक्ष्मसर्वपास्तत्कणानां पद्धतेः पहेः ॥ ६ ॥ षड्सः पडिन्दियभोग्यब्रह्मलोकान्तसुखलवः प्रसिद्धो बा ॥ ७ ॥ तेन तादशरसयुक्तनापि पाकेन यत् पातं पतनं न समेति। तर्हि किं खस्थान एव जीर्यति, नेत्याह—सर्देवेति ॥ ८॥ जरठाश्विरायुषः ॥ ९॥ १० ॥ विततमतिविस्तीर्णे यरस्थील्यं बृहत्ता तच्छालिनः ॥ ११ ॥ समस्तेषु फलेषु पुरुषा-र्थेषु च सारस्य श्रेष्ठस्य । अष्ठि बीजं नास्ति ॥ १२ ॥ शिलाया अन्तःप्रदेश इव नीरन्ध्रो घनः । 'विज्ञानघन एव' इति श्रुतेः। स्यन्दमानेन्दुविम्बवत् खसंविदामृतमिवास्त्रायं निर्तिशयानन्द-रसं स्वन्दमानः ॥ १३ ॥ कोश इति । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीबन्ति' इति श्रुतेः । आत्मनो मानुषान-न्दादिहैरण्यगर्भानन्दान्तकर्मफलस्थितेर्मञ्चा सारः॥ १४॥ त- अस्तम्भमूलशाखस्य फलस्यास्य महाकृतेः॥ १० पक्षपिण्डघनाकारविततस्यौल्यशास्त्रिनः । यस्योत्पत्तिविकारादिपरिणामो न दृइयते ॥ ११ समस्तफलसारस्य फलस्यास्य महाऋतेः। न मजा नाष्ट्रि विततो निर्विकारो निरञ्जनः॥ १२ शिलान्तरिव नीरन्ध्रः स्यन्दमानेन्दुविम्यवत् । रसं स्वसंविदास्वाघं स्यन्दमान इवामृतम्॥ १३ कोद्यः सकलसाँख्यानां शीतलालोककारकः । **शैलाभोऽमृतपिण्डामो मज्जा आत्मफलस्थितेः १**४ तस्मात्परममज्जा तु यासी स्वात्मचमत्कृतिः। अनन्तरक्षितो नित्यमनन्यः श्रीफलं गतः॥ 814 स्वसंनिवेरावैचित्र्यमन्यत्वफलतां गताम् । अत्यजन्त्या तया तन्त्र्या स्धूलयाप्यतिबालया १६ इयमस्रीति कलनादसद्प्यन्यतामलम् । मेदाद्यसंभवदिदं स्वयमुत्पाद्य भावितम्॥ १७ अहंकलासमुद्यसमनन्तरमेव सा । विताकादाशब्दाङ्गत्रेलोक्यपरमाणुमिः ॥ १८ इत्यनुक्रमतो याता संविच्छक्तिस्वरूपताम्। मजा प्राक् संनिवेशं स्वं तमेवाप्य समुज्झती

स्माद्भरण्यगर्भानन्दफलादपि परमस्याव्यक्तस्य मजा । अनन्तेन त्रिविधपरिच्छेदशुन्यखभावेनैव रक्षितः । खारमक्रमेव श्रीफलं बिल्वं गतः स चानन्यः । अद्भय एवेत्यर्थः ॥१५॥ अनन्यल-मेबोपपादयितुं चमत्कृतिपदस्तारस्यं प्रकटयति-स्वसंनिवेदो-खादिना । यतस्त्रया स्वात्मचमत्कृत्या स्वाध्यस्तस्यान्यलस्य मेदजातस्य फलतां परमप्रयोजनतां गतं चिदेकरसमजारूपं पारमार्थिकं खसंनिवेशवैलक्षण्यमत्यजन्त्यैव इदं भेदादि खय-मुत्पाद्य भावित्रांमिति परेणान्वयः । प्रकारान्तरेरपि तस्याध्यमः त्कृतिस्रोपपादनाय तन्थ्येत्यादिविरुद्ध्वियोषणानि । अणोरणी-यस्त्रात्तन्त्रा। महतो महीयस्त्रात्स्थलया। चिरंतनत्वेऽपि बृद्धादिविकाराभाव।दतिवालया ॥१६॥ असतोऽपि भेदस्योत्पा-दने को हेतुस्तमाह-इयमिति । इयमहमस्मीति अनिदमि इद-न्ताध्यास एव तद्भेतुरित्यर्थः । अन्यना पृथक्तवं तदापादकमलम-विद्यामेवंभूतभुवनमेदादिरूपेणोत्पाद्येखर्थः । असंभवदिखनेन खप्रकाशचिदेकरसे मलस्थेव संभवो नास्ति सुतरां तत्कार्थभे-दस्येति योखते ॥ १७ ॥ स्तोत्पादितैर्भृतभुवनादिभेदैरहंतो-त्यादनद्वारा आभिमानिकं संवलनं सा छभत इत्याह—अह-मिति । अहंकला अहंकारस्तस्याः समुद्यो व्यष्टिसमष्टिरूपेणो-द्भवस्तत्समनन्तरम् । आकाशसाद्भुणः शब्दश्राङ्गे द्रव्यगुणैकदेशी तथाविधेक्षेठोक्योपलक्षितव्यष्टिसमप्टिशरीरपरमाणुमिः ॥ १८ ॥ खखरूपापरित्यागेनेवंरूपापत्तिरेवास्या महती आतम-

संविच्डक्या तया तत्र ततस्तररुरूपया । निज एव समे रूपे हिनत्यं संवसारिता ॥ 20 इवं क्योम महानन्तमियं कालमयी कला। इयं नियतिरित्युक्ता क्रियेयं स्पन्दरूपिणी ॥ २१ अयं संकल्पविस्तारस्त्वयमाशान्तरभ्रमः । रागद्वेषस्थितिरियं हेयोपादेयधीरियम् ॥ २२ इयं त्वता त्वियं मत्ता तत्तेयं संस्थिता स्वयम्। ब्रह्माण्डोघोऽयमुर्ध्वस्थः स्वयमङ्गोध्वेमप्यधः ॥ २३ अयं पुरः पार्श्वनोऽयं पश्चादाराद्दवीयसी । इदं भूतं वर्तमानं भविष्यस्विदमित्यपि ॥ રપ્ર इदमन्तःस्थितानल्पकल्पनाम्भोमहालयम् । ब्रह्माण्डमण्डपापीइक्रीडामण्डपमण्डलम् ॥ २५ अनन्तकलनातत्त्वपरिपह्नविता हरेः । हृदञ्जकर्णिका चेयं लोकपद्माक्षमालिका ॥ २६ इयं कीर्णमहारुद्रगणापूरितकोटरा। दीघांग्रसरणिर्ग्रान्तिध्वंसनेभ्यः प्रभाविनी ॥ २७ इयं मेरुः ककुभ्यत्र जगत्पङ्कजकर्णिका । स्फुरदिन्दुमधूलासलम्पटामग्पट्पदा ॥ २८

इयमुद्दामसीगन्ध्यस्वर्गश्रीपुष्पमञ्जरी । जगजरठवृक्षस्य रजोनरकमूलिनः॥ २९ इयं च ताराकिंजल्का ब्रह्मार्णवतटस्थिता । अपारापारपर्यन्ता व्योमलीलासरोजिनी ॥ OF इयं कियापरिम्राहा तरङ्गतरलावली। सर्गावर्तविधानस्थभूरिभृतपरम्परा ॥ 38 इयसया प्रसरिणी क्षणकल्पादिपञ्चवा। तेजःकेसरिणी कालनलिनी व्योमपङ्कजा ॥ 32 इमा भावविकाराख्या जरामृतिविवृचिकाः। विद्याविद्याविलासाढ्या इमाः शास्त्रार्थष्टप्रयः॥ ३३ इति सा तस्य बिल्यस्य निजमज्जाचमत्कृतिः। संकल्पसंनिवेशान्तरेवैव कृतसंस्थितिः॥ રેક शान्ता स्वस्था निराबाधा सोम्या भावनयोज्जिता कर्तृत्वमप्यकर्तृत्वं कृत्वाऽकृत्वेव संस्थिता॥ एपैकिकैव विविधेव विभाव्यमाना नैकात्मिका न विविधा ननु सैव सैघ। सत्यास्थिता सकलशान्तिसमैकरूपा सर्वात्मिकातिमहती चितिरूपशक्तिः॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्सीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे बिल्वोपाख्याने पश्चचलारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षद्चत्वारिंदाः सर्गः ४६

श्रीराम उवाच । भगवन्सर्थसारक त्वयैषा बिल्वरूपिणी ।

वमत्कृतिरित्थं मया वर्णितेत्युपसंहरति-इतीति । शक्तिव्यं-वहारसमर्थता तत्स्वरूपताम् ॥ १९ ॥ समे निर्विकारे निजे हरी एव इत्थं जगदाकारा हक संप्रसारिता ॥ २० ॥ इत्थं च वियदादिसवीमयभेव नान्यदस्याः किंचिदिति द्रष्टव्यमित्याह-इदमिलादिना ॥ २१ ॥ अध्यात्मिकार्था अपीयमेवेलाह— अयमिति ॥ २२ ॥ २३ ॥ लिङ्गमैदः आत्मा ब्रह्मेलादिबि-शेष्यपदमध्याहृत्य योज्यः । दवीयसी दूरतरा ॥ २४ ॥ अन्तःस्थिता अनन्ताः कल्पनाम्भोरहाणामालया जीवा यस्मि-स्तथाविधम् ॥ २५ ॥ अनन्तैः कलनातत्त्वैः रचनरहस्यैः परितः पक्रविता ॥ २६ ॥ कीर्णैः सर्वतोव्याप्तैर्महारुद्रगणैः पूरितकोटराः। अभ्रसरणिराकाशपदवी । 'अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्त-रिक्षे भवा अधि । नीलग्रीवाः शितिकण्टाः शर्वाः' इति श्रते-रिति भावः । भ्रान्ता विषयलम्पटाः खर्गिणस्तेषां ध्वंसनेभ्यः अधःपतनेभ्यो निमित्तेभ्यः प्रभाविनी प्रतापवती, प्रकाशवती वा । नक्षत्रपाते नभःपथे प्रभानुवृत्तिदर्शनादित्यर्थः ॥ २७ ॥ अत्र अस्यामुत्तरस्यां ककुमि दिशि । इन्दुलक्षणस्य मधुन उल्लासे अमृतमकरन्दे लम्पटाः अमरलक्षणाः षद्पदा यस्याम् ॥ २८ ॥ रजोगुणकार्यरागादिना नरकैर्दुःखेश्व मूलिनो मूलवतो जगजरठवृक्षस्य उद्दामसीगन्ध्या खर्गश्रीलक्षणा पुष्पमञ्जरी इय-मेवेत्यर्थः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वमपारा परितश्चापारपर्यन्ता । व्योम-

महाचिद्धनसत्तेह कथितेति मतिर्मम ॥

लीला व्योमाकारा सरोजिनी कमलिनी सरसी वा इयमेवेखर्थः ॥ ३० ॥ कियाः कर्माण्येव परितो प्राहा यस्याम् । तरङ्गा इव तरला मासर्लावली यस्याम् । सगैः प्रजोत्पादनं तहृशणे आव-तोनां विधाने कार्ये तिष्ठतीति तत्स्था भूरिभूतपरम्परा यस्याम ॥ ३१ ॥ इयत्तया प्राण्यायुःपरिमाणेन प्रसरिणी विस्तृता । तेजोमिरम्यादित्यचन्द्रादिभिः केसरिणी । व्योमैव पङ्कजं यस्या-स्तथाविधा कालनिजनी इयमेव ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इति वर्णित-प्रकाराः सर्वे सा निजमज्जानमत्कृतिरेव । एवंप्रकारैर्व्यष्टिसम-ष्टिसंकल्पसंनिवेशस्यान्तःकृतसंस्थितिः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वि-ल्वाख्यायिकां समाप्य खरूपेणैव चितं वर्णयन्नुपसंहरति-ए-षेति । एकलसंख्याया अपि द्वैतापादकलान्नेकात्मिका नापि विविधा किंतु सेव एकत्वं सेवेका । वीप्सया सजातीयविजातीय-निवृत्तिर्वा । सकलस्य द्वैतविकल्पस्य शान्त्या समैकरूपा। अनेन खगतमेदस्यापि व्यावृत्तिः । अतिमहती ब्रह्मशब्दलक्ष्या चितिरूपा शक्तिरेवेत्थं व्युत्पादितेत्यर्थः ॥ ३६ ॥ इति श्री-वासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पञ्चचत्वा-रिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इह शिल्पिमनोदष्टपश्चिनीखण्डमण्डितम् । शिलोदरमिव वद्य प्रपद्माभासमीयंते ॥ १ ॥ श्रीरामः खस्य बिल्वास्यानतात्पर्शबोधं दर्शयति—अगव- चिन्मजारूपमिखलमहन्तादीदमाततम् । न मनायपि भेदोऽस्ति द्वेतैक्यकलनात्मकः॥

वसिष्ठ उवाच।

यथा ब्रह्माण्डकृश्माण्डमज्जामेर्वादिसंस्थितिः। तथा चिद्विल्वमञ्जेयं ब्रह्माण्डादिजगत्स्थितिः॥ ३ सृष्टिचिद्विस्वमञ्जा स्यात्म्वाधारान्यत्वसंभवे। विनाशः सर्वगस्यास्य न चैतत्संभवत्यलम् ॥ चितेर्मरीचबीजस्य जगदाख्या चमत्कृतिः। स्थिता सौषुप्तसौम्यान्तः शिलान्तःसंनिवेशवत् ५ अत्रेमामिन्द्वदन चित्रां विस्पयकारिणीम्। वर्ण्यमानां मया रम्यामन्यामाख्यायिकां श्रृणु ॥ ६ किग्धा स्पष्टा मृद्रस्पर्शा महाविस्तारशालिनी। निविडा नित्यमञ्जूब्धा कचिवस्ति महाशिला ॥ ७ तस्यामन्तः प्रफुल्लानि पद्मानि सुबह्नन्यपि। सरस्यामिव रम्याणि तान्यनन्तानि सन्ति वै॥ अन्योन्यप्रोतपत्राणि मिथो विघटितानि च। मिथश्चोपनिगृहानि गृहानि प्रकटानि च॥ ९ अधोमुखान्यूर्धमुखान्यपि तिर्यक्षुखानि च। मिथोमिलितमूलानि मिथःप्रोतमुखान्यपि॥ १० कर्णिकाजालमुलानि मुलान्तःकर्णिकानि च । ऊर्ध्वमुलान्यधोमुलान्यमुलानीतराणि च ॥ ११

निति द्वास्याम् ॥ १ ॥ २ ॥ नाहन्तादिमात्रं चिद्विल्वमजा किंतु ब्रह्माण्डादिसर्वमपीति निःसंक्षीचं बोध्यमित्याशयेन वसिष्ठ उवाच-यथेत्यादिना ॥ ३ ॥ चिद्धित्वस्य मजेत्युक्ते अन्तः-प्रदेशस्थावयवानां रसघनः परिणामविशेष इति कस्यचिद्धान्ति वारयति—सृष्टिरिति । यथा बिल्वखर्परं मजाया आधारस्तभा सृष्टिलक्षणमञ्जाया आधियायाः खाधारस्य खर्परस्थानीयस्यान्य-लसंभवे तदन्तःपरिणामरूपा मजा स्यात् । तत्र सर्वगसास्य चिदारमनः कारुधेनैकदेशेन वा परिणामित्वे विनाशो दुर्वारः । न चैतन्निरवयचे मुख्योऽन्तःप्रदेशः परिणामो वा संभवतीति न मजाशब्दः परिणामपर इत्यर्थः ॥ ४ ॥ तर्हि किंपर इति चे-द्विवर्तलक्षणचमत्कारपर इत्यादायेनाह—चितेरिति । शिलान्तः शिल्पिमनःकल्पितपद्मवनसंनिवेशवदित्यर्थः ॥ ५ ॥ दृष्टान्तं विवरीतं ब्रह्मशिलाख्यायिकां प्रस्तीति-अत्रेति ॥ ६ ॥ ७ ॥ मनःकल्पनानामानन्त्यादनन्तानि ॥ ८ ॥ उपनिगढानि संश्वि-ष्टानि ॥ ९ ॥ १० ॥ दष्टवैपरीत्येनापि मनःकल्पनसंभवा-दाइ-कर्णिकेति । कर्णिकाजालेषु मूळानि येषाम् । इतराणि कानिचिदमूछानि च ॥ ११ ॥ शङ्काः पद्ममुकुलवरसंनिवे-शिनः । क्कीषास्य विकसितपद्मवत्संनिवेशिन इलार्थाद्गम्यते ॥ १२ ॥ खर्य तीर्ययात्रायां शालप्रामक्षेत्रे दृष्टां शिलां गुरु-वाक्यात्स्वरन् रामः सेवात्र भगवता जगत्कल्पनासहितब्रह्मद्या-

तेषां च निकटे सन्ति शङ्काः शतसहस्रशः। चक्रीघाश्च महाकाराः पद्मवत्संनिवेशिनः॥ १२ श्रीराम उवाच । सत्यमेतन्मया रष्टा तारशी सा महाजिला। शालग्रामे हरेर्धाम्नि विद्यते परिवारिणी॥ 83 वसिष्ठ उवाच। प्वमेतद्विजानासि दृष्ट्वानसि तां शिलाम् । यो यश्च तत्र वै प्राणः समस्तारगनन्तरः॥ १४ मया त्वियमपूर्वेव शिलेह कथिता तव। यस्यामन्तर्महाकुक्षौ सर्घमस्ति च नास्ति च॥ १५ चिच्छिलैपा मयोका ते यस्यामन्तर्जगन्ति वै। धनत्वैकात्मकत्वादिवशादेषा शिलेव चित् ॥ अप्यत्यन्तघनाङ्गायाः सुनीरन्ध्राकृतेरपि। विद्यतेऽन्तर्जगहन्दं व्योद्गीव विपुलानिलः॥ १७ द्याैः क्षमा वायुराकाशं पर्यताः सरितो दिशः। सन्ति तस्यां शिलायां च सुषिरं न मनागपि॥ १८ अस्यामेव घनाङ्गातम जगत्पद्मं विज्ञम्भते। एतसाह्यस्तृतो नान्यदन्यच्छुद्धात्मकं च वा ॥ १९ शङ्खपद्मादिकं लोकं पाषाणे लिख्यते यथा। भृतं भवद्भविष्यच शिलायां शालभिक्षका॥ तथास्ति तत्र तरसर्वे संस्थानं वस्तुतो यथा । उपलास्तः संनिवेशो नानात्माप्येकपिण्डताम् ॥ २१

न्तत्वेनोदाहृतेति मन्यमान आह—सल्यमेतदिति । परिवारि-णी पद्मवनलाञ्छनपरिवृता ॥ १३ ॥ दष्टान्तदार्ष्टोन्तिकसंबन्ध-स्त्वया सम्यग्बद्ध इत्यनुमोदमानो वसिष्ठ आह—एवमेतदिति। तां दष्टान्तभूतां शिलां दष्टवानसीति विजानासि । यश्व तादग्-दार्ष्टीन्तिकभूतश्चिदातमा यो यादशस्यभावः । अनन्तरो निरय-काशचिद्धनः । समः प्राणस्यापि प्राणो निरतिशयानन्दरूपस्तत्र तस्मित्रपि विषये दृष्टवानसीति विजानासि ॥ १४ ॥ मया त न लहुप्रशिला दष्टान्तरवेनामित्रेता किलपूर्वा ब्रह्मैव बिलात्वेन परिकल्य बिल्वांमेवोपन्यस्तेति उपाये तात्पर्यविसंवादेऽपि नो-पेये विसंवाद इत्याशयेनाह—मया लिति ॥ १५॥ विदा-रमनि गौण्या शिलाशब्दप्रयोगनिमित्तान्गुणान्दर्शयति—धन-त्वेति । आदिपदादमेयत्वैकरसलकूटस्थलादिपरिग्रहः ॥ १६ ॥ अपिशब्दाभ्यां सूचितो विरोधो मायया परिहर्तव्यः ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ जगदेव मया तत्र पद्मवनत्वेनोत्प्रेक्षितमित्याह-अस्यामेवेति । तत्र जगदन्यदिष भातमपि बस्तुतो नान्यतः शुद्धचिदारमकं च वा न किंत्र मायैवेत्यर्थः ॥ १९ ॥ 'तेषां च निकटे सन्ति शङ्खाः शतसहस्रशः' इति यदुक्तं तत्तात्पर्य-माह—ंशक्वेति । लोक्यत इति लोकं चित्रं लिख्यते श्विल्पि-मनःकल्पनया यथा तथाभूतं भव्यं सर्वे जगत् । तत्र शास्त्रभ-जिका बस्ततो यथा वास्तवीव अस्तीति परेणान्वयः ॥२०॥२१॥

यथादत्ते तथैषा चित्पिण्डाकारैकिकां घनाम्। यथा पद्मः शिलाकोशाद्मिश्रस्तद्वपुर्मयः॥ 22 तथा सर्गश्चितो रूपादभिषोऽपि वपुर्मयः। सुषुप्तावस्थया चऋपग्रलेखाः शिलोदरे ॥ २३ यथा स्थिताश्चितेरन्तस्तथेयं जगदावली। **बिलान्तः पद्मलेखाली मरिचान्तश्रमत्कृतिः ॥ २४** नोदेति नास्तमायाति यथा सर्गस्तथा चिता । यथा पुरन्ध्यां मर्त्योन्तर्मज्ञा वा विख्वगा यथा २५ तथाऽनन्तविकाराख्या चितौ ब्रह्माण्डमण्डली। विकारादि तदेवेति मुधेवोक्तिरनर्थिका॥ २६ तत्तां समुपयात्याद्यु जलबिन्दुरिवाम्भसि । अनन्तत्वाभितेरेतद्विकारादि चितेरिति॥ २७ उत्तया संपद्यते यच तह्नयेन विलीयते । ब्रह्मैचेदं विकारादि विकाराद्यर्थवर्जितम्॥ २८ वर्जनावर्जनेऽर्थस्य ब्रह्मैचानन्ततावशात्। ब्रह्म स्थितं विकारादि ब्रह्मैबोत्पादितं क्रमात् ॥ २९ अत्रान्यार्थमिदं विद्धि मृगतृष्णाम्भसा समम्। बीजं पुष्पफलान्तस्यं वीजान्तर्नान्यदात्मकम् ॥ ३० यादशी वीजसन्ता सा भवन्ती यात्यधोत्तरम्। चिद्धने चिद्धनत्वं यत्स एव त्रिजगत्त्रमः॥ 38 एकत्वमेतयोर्द्धित्वमेकाभावे द्वयोः क्षतिः। जगदन्यभयोद्धतिर्न कदाचित्तदीहशम्॥ **३२**

चिद्चित्र कदाचित्र द्वयमन्तर्मिथोऽद्वयम्। महाशिलान्तरे मेदो लेखात्मास्ति यथा बहु। तुद्वानन्यमजादि चिद्धने त्रिजगत्तथा॥ 33 रेंखोपरेखाविता यथैका पीवरी शिला। तथा त्रैलोक्यचलितं ब्रह्मैकमिति दृश्यते ॥ 38 पतच्छिलान्तरकादि यथा नित्यं सुषुप्तकम्। नास्तमेति न चोदेति तथाऽहन्ता जगद्गतिः॥ ३५ यथा शिलान्तर्लेखादि भिद्यते न शिलान्तरात् । तत्सारत्वाज्जगत्कर्तृ कर्तृत्वादिजगश्चितिः॥ 38 यथा शिलान्तरस्नानां स्पन्दास्पन्दभवाभवाः । विषयत्वं न गच्छन्ति कर्तारो जगतस्तथा ॥ २७ नेदं कदाचित्रियते न कदाचन नइयति। अद्रिषत्प्रभवोह्यासविलासावेदनात्मकम्॥ 34 यथा यत्र यदाकारं तथा तत्र तदेव हि। ब्रह्मसत्तात्मकं सर्वे सुपुप्तस्थमिव स्थितम् ॥ **३**९, भूरिभावयिकाराख्यो योऽयं जगदुरुभ्रमः। सुपुप्तमेव नद्विद्धि शिलान्तः पङ्कजादिवत् ॥ नित्यं सुषुप्तपदमेव जगहिलासः सम्यक्प्रशान्तसमचिद्धनखात्मकत्वात् । पद्माः शिलान्तरिव सर्गदशास्त्वसारा दृष्टा न देहमुपयान्ति कदाचिदेव॥

इत्यापे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे शिलाकोशोपदेशो नाम षदचलारिशः सर्गः ॥ ४६ ॥

आदत्त खीकरोति तथा एषा चिदपि घनां एकिकां एक-पिण्डतां स्वीकरोतीखर्थः ॥ २२ ॥ तत्स्वरूपादभिन्नोऽपि वपुर्भयः परिच्छित्राकार इव भातीत्यर्थः । सुषुप्तावस्थया टङ्क-च्छेदात्प्रागनभिव्यक्तयेखर्थः ॥ २३ ॥ २४ ॥ सतोः शिलाम-रिचयोर्नेदिति नास्तमायाति तथेल्यर्थः । पुरन्ध्यां सुचरित्रायां क्रियामन्तर्मनसि मार्यस्तत्कान्तः सदैवास्ति ॥ २५ ॥ यदा विकारिणां ब्रह्माण्डानां चिन्मात्रत्वं तदा तद्विकारभुवनशरीरा-दिमेदानां चिन्मात्रलमशैसिद्धमिति तदुक्तिरर्थशून्यलान्सुधा निष्फलेव ॥ २६ ॥ कुतोऽर्थश्चन्या तत्राह—तत्तामिति । यत एतदिकारादि आद्य ब्रह्माण्डानां चिन्मात्रतादर्शनक्षण एव तत्तां विन्मात्रतां समुपयाति न पृथगणुमात्रमप्यवशिष्यत इति हेतोः ॥ २७॥ कविवर्णितगन्धर्वनगरवैचित्र्यवदुक्तिमात्रसिद्धलादपि तस्य प्रत्येतृचिन्मात्रलमिलाइ—उत्तयेति । 'स भूरिति व्याह-रत् भुवमस्रजत । एत इति वै प्रजापतिर्देवानस्रजत अस्-प्रमिति मनुष्यानिन्दव इति पितृन्' इत्यादिश्रुत्या भुवनादि-सर्गस्य नामपूर्वकलोक्तरेव नामल्येन लयोऽन्यूहाः ॥ २८॥ विकाराद्यर्थवर्जनमपि न वस्त्तन्तरमित्याह-वर्जनेति ॥२९॥ पुष्पफलपर्यन्ते खकार्ये बीजवत्सवैत्र चित्सत्तानुवृत्तिवृशेमाद्िष सर्वे चिदेवेलाह्—बीजेलादिना ॥ ३० ॥ अङ्करादिपूर्वपूर्ववि-

कारेषु भवन्ती विद्यमानैव, अथ उत्तरकालं काण्डशाखापस्रवादि याति ॥ ३१ ॥ द्वतस्यैकलकल्पनाधीनकल्पनलादप्यकल्पित-चिन्मात्रं तत्त्वमित्याह-एकलमिति । एतयोवीजतत्कार्ययोः अन्यभवश्रिद्यतिरिक्तजाड्यकल्पना तद्धीनोद्भृतिः । तश्चिद्भृपं तु कदाचिदपि ईदर्श जाड्यस्वभावं न संभवतीस्वर्थः ॥ ३२ ॥ तदेव स्फुटयन् प्रकृते योजयति—चिदिति । मजादिबिल्वे इति शेषः ॥ ३३ ॥ एकं ब्रह्म इति प्रसिद्धजगद्वपेण दश्यते ॥ ३४ ॥ सुपुप्तकं शिल्पित्रासनामात्रम् ॥ ३५ ॥ 🛊६ ॥ जग-रकर्तृ जीवेश्वररूपं तदीयं कर्तृलादिजगच चितिश्विदेव । भवा-भवा आविर्भावतिरोभावाः ॥ ३७ ॥ शिला यथा तत्त्वदर्शने विषयत्वं न गच्छन्ति तथा आत्मतत्त्वद्शेनेऽपि कतीर इखर्थः ॥ ३८ ॥ अद्रिवद्विरिकृटवद्विकारिलादित्यर्थः । अतएव शिला नानाशिल्पिनां विरुद्धमानसकल्पनामेद इव ब्रह्मापि नानाजीवविरुद्धकल्पनाभेदेऽपि तत्तद्भुपमेवावतिष्ठत इत्याह-यथेति । यदाकारं कल्प्यत इति शेषः ॥ ३९ ॥ सुषुप्तस्थं यथा प्रतिजीवं विचित्रस्वाप्रार्थंकल्पनामेदमविरोधेन सहते तद्वदि-त्यर्थः । सुषुप्तमनुन्मिषितवासनामात्रमेव ॥ ४० ॥ आख्यायि-कातात्पर्यं संक्षिप्योपसंहरति--नित्यमिति । चिद्धनं यह्य सं

२ यतो बहु इति पाठः.

सप्तचत्वारिंदाः सर्गः ४७

वसिष्ठ उवाच।

विसत्त्वस्य फलस्येव चितः स्वापापरक्रमात्। स्वस्तासंनिवेशेन यः स सर्ग इति स्थितः॥ १ देशकालिकयादीनामपि तन्मयरूपतः। इत्मन्यदिदं चान्यदिति नात्रोपपद्यते॥ २ समस्तशब्दशब्दार्थवासनाकलनाविदः। एकात्मत्वादसच्चेदमिति संकथ्यते कथम्॥ ३ फलस्यान्तःसंनिवेशो नामानुक्रमतो यथा। चितः स्वसत्ताघनताऽनाना नाना स्थिता तथा ४ अनानेवापि नानव क्षुच्धेवाश्चमितेव च। यथा फलान्तः स्वासक्ता चिदन्तः तिद्धयस्तथा ५ जगन्नगरमादशें चितः स्वं प्रतिविम्बतम्। कचतीवाऽकचदपि शिलान्तः संनिवेशवत्॥ ६ परमे चिन्मणौ सन्ति जगत्कोटिशतान्यपि। चिन्तामणावनन्तानि फलानीवार्षितान्यलम्॥ ७

तदात्मकलात् । असारास्तुच्छाः शिलान्तः पद्मा इव सर्गादि-दशा आत्मिन दृष्टा अपि कदाचिदपि देई खरूपस्थिति नोप-यान्त्येवेखर्थः ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणता-रपर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे षद्चस्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

इह बिल्वशिलाख्यानतात्पर्यमुपवर्ण्यते । मयूराण्डरसे बहेवर्णसंस्थानभेदवत् ॥ १ ॥

बिल्बद्दष्टान्तवशादचिद्रपमेव तदन्तर्वीजमजादीनामिव स्त-गतमेदेन तत्र तत्समसत्ताकसर्गोद्भवश्वात्रोक्त इति तात्पर्यश्रमो माभूदिति तत्तारपर्यं वर्णयति - चित्तत्त्वस्येति । चिद्रूपं तत्त्वं यावत्खखरूपप्रतिसंधानश्चन्यं तावदेव सर्गगर्भमिति द्योतना-याचेतनफलदृष्टान्तः । सर्गश्च चितः प्रसिद्धस्वापादपरः स्वापः खप्न एव युगवत्सरादिकमात्खसत्ताकल्पितसंनिवेशेन प्रवृत्तो न चित्समसत्ताकः खगतभेद इत्यर्थः ॥ १ ॥ तर्हि कि चित्तला-दन्य एव सर्गः, एतदपि दुर्वचमिलाह—देशेति ॥ २ ॥ तर्हि किमसदेवेदं सर्गादि, तदि दुवेचिमत्याह-समस्तेति । सम-स्तानां शब्दानां तद्धीनां तद्वासनानां तत्प्रयुक्तसंकल्पविकल्पा-दिकलनानां च वेदितुरवस्थात्रयेऽप्येकात्मलात्सल्यत्वे अत्यन्ता-सतस्तेन वेदनादर्शनादित्यर्थः ॥ ३ ॥ तस्माचिदधीनप्राति-भासिकातुक्रमवैचित्रयाशयेनैव फलत्वेनोत्प्रेक्षणमिखाह--फल-स्येति । अनाना तथा नाना च भूला स्थिता ॥ ४ ॥ तत्राऽना-नालार्वश एव प्राथम्याद्वास्तव इत्याह-अनानैविति । क्षुब्धा विकृतेव । सिद्धयः संनिवेशनिष्यत्तयः ॥ ५ ॥ शिलाख्यानस्य तात्पर्ये दर्शयति--जगिदति । शिलान्तःसंनिवेशवजागदिति यदुकं तस्याप्यादरीं प्रतिबिध्वितं नगर्मिव चितः खं खं रूप-मेव अकचदपि कचतीलार्थे तात्पर्यमिलार्थः ॥ ६ ॥ मायिका-

चित्समृद्रक एवेदं तदङ्गोत्कीर्णमाततम्। जगन्मोक्तिकमाभाति तदंशमयमन्यवत्॥ 4 अहोरात्रं विकरयन्वेदनावेदनान्यलम्। चिदादित्यः स्थितो भास्वाञ्जगद्वव्याणि दर्शयन् ॥९. समुद्रकोटरावर्तपयस्यन्दविलासवत् । अनानेव च नाना चिच्छिलान्तःसंनिवेशवत्॥ १० यदस्ति तश्चिति शिलाशरीरे शालभिका। यन्नास्ति तिचिति ज्ञिलादारीरे द्यालभिक्ता ॥ ११ भावाभावेष यत्सत्यं चिन्मजाकल्पमेव तत् । मजासारा पदार्थश्रीस्तन्मयं स्यात्तदेव हि॥ १२ पद्मनानादिशब्दार्थस्यकत्वा यहच्छिलोद्रम्। नाना तद्वदिदं नाना तदेतन्मयमद्वयम् ॥ 83 नानाप्येकतयाऽनाना पद्मधिम्यं शिलोदरम्। यथा तद्विभागात्म तथेदं चिद्धनान्तरम् ॥ यथाऽमलपयःकोशः स्थलधियां तु भानुभाः।

नन्तशक्तिमत्त्वाद्वा चिन्तामणी चिन्तकमनोरथकलानीव चिति सर्वं जगदस्तीति तत्तात्पर्यं वर्णनीयमिलाह-परमे इति । अर्पितानीति श्रुतियु अरनामिनिदर्शनोपन्यासादिति भावः ॥ ७ ॥ कल्पितविकारांशांशिभावेन मुक्ताशुक्तिसंपुटके मुक्ता-नामित्र वा चिति जगत्स्थितौ तात्पर्यमित्याह-चित्समुद्गक इति । तदक्षे तद्वर्भे उत्कीर्णमिव तदश्लोत्कीर्णम् । तदेवाह--तदंशमयमिति ॥ ८ ॥ आदिखः खखरूपाविभीवतिरोभावा-त्मकमहोराञ्जविभागमिव चिन्मणिशिलापि खनेदनावेदनात्म-कजगद्भव्यप्रकाशनाप्रकाशने स्वात्मनि करोतीत्यर्थे वा तत्तारवर्य-मिल्याह—अहोरात्रमिति । विकरयन्विकलयन् । विकुर्विनिति यावत् ॥ ९ ॥ समुद्रस्य कोटरे गर्भे आवर्ततरङ्गादिस्पन्दमे-दानां समुद्रभात्रलवजगद्भदानां चिन्मात्ररूपत्वे वा तत्तात्पर्य-मिलाह—समुदेति ॥ १० ॥ वर्तमानसर्गस्यातीतानागतसर्गस्य च तुल्यतया चिन्मात्रस्यरूपताप्रदर्शने वा तत्तात्पर्यमिखाइ---यदस्तीति । शालभभिका उल्हीणी अनुस्कीणी वा प्रतिमा ॥ ११ ॥ बिल्वाख्यानस्यापि जगतश्चित्सारत्वे तात्पर्यमिस्याश-येनाइ---भावेति । यत्सत्यं तत्त्वं तत् चिद्रुपमजाकल्पमेव । पदार्थश्रीबिल्वादिफलपदार्थश्रीमंजीव सारो यस्यास्तथाविधा प्र-सिदेल्यर्थः ॥ १२ ॥ शिलोदरात्पृथक्षरणे पद्मनानादिशब्दार्था-सत्त्वविश्वतः पृथक्षरणे जगदसत्त्वे वा तत्तात्पर्यमित्याह-पद्मेति ॥ १३ ॥ तदेतन्मयमद्वयमित्यंशं स्फ्रटयति—नानेति । यदि चितो न पृथक् कियते तर्हि नानापि जगिवदारमैकतया अनानैव भवति यथा ताहशं शिलोदरमित्यर्थः ॥ १४ ॥ यथा महमरीच्यादिर्मृगदशा अमलः पयःकोशो जलराशिः । स्थल-घियां स्थलमेवेदामिति बुद्धिमताम् । विदुषां दृष्ट्या तु भानुभाः

सक्षेवासिक्षेवं चिक्रैव त्वं सदसद्वपुः॥ Py यथा सम्यक् पयोराशिः कोटरे कलनोन्मुखम्। द्रवात्वात्स्पन्दतेऽस्पन्दं तथेदं चिद्धनान्तरम् ॥ १६ चिच्छिलाशङ्कपद्माघस्तन्मयत्वेऽप्यतन्मयः । जगद्विद्धि सपद्मादिपदार्थे चिच्छिलान्तरम् । महाशिलाघनोऽप्येष चिद्धनस्थं शिलोदरम् ॥ १७ अरन्ध्रो निर्ह्वयोऽच्छोऽजः संशान्तः संनिवेशवत्। तपतीदं जगद्रह्म शरत्काल इवामलम्॥ 28 स्फुरतीवं जगद्रह्म सौम्यः सोम इव द्रमः। ब्रह्मणीवं सुबुप्ताभं नास्त्यनाशं शिलाह्मवत् ॥ ब्रह्मत्वं ब्रह्मणि यथा तथैवेदं जगितस्थतम् । नानयोर्विद्यते भेदस्तरुपादपयोरिव ॥ २० यानीमानि जगन्तीह नान्यसानि चिदाकृतेः। भावाभावादि नास्त्येषां तस्या इव कदाचन ॥ २१ ब्रह्मैय जगदाभासं महतापो यथा जलम् । ब्रह्मैबालोकनाच्छु इं भवत्यम्ब यथातपः॥ २२ मेर्वादेस्तृणगुल्मादेश्चित्तादेर्जगतोऽपि च।

सूर्यातप एव । तत्र सन्नेव आतपादिरसज्जलादिरिवेति सदसद्व-वपुर्यथा भाति एवं चित्खभावस्त्वमपि भानि । वस्तुतस्तु त्वं नैव सदसद्वपुरित्यर्थः ॥ १५ ॥ यथा पयोराज्ञिः कोटरे मध्ये दवलात्स्पन्दते तथा अस्पन्दमपि चिद्धनस्य आन्तरं स्पन्दत इवेलार्थः 🛪 १६ ॥ तर्हि तत्र पद्मादेः शिलामयलिमव जागत-शक्रपद्मादेश्विन्मयता कुतो न विभाव्यते तत्राह--चिच्छिलेति। अतन्मयस्तद्वोधादिति शेषः । अतएव त्वं तथा वुद्धस्ये-स्याह-जगदिति ॥ १७ ॥ दष्टान्तीकृतशिलाघनोऽपि परमा-र्थरच्या चिच्छिलोदरमेव संपन्नमित्यार—महाशिलेति । अत-एव तत्र बिल्पियमसहस्रेणापि रन्ध्रादिसंभावनापि नास्तीत्या-शयेन विधिनष्टि-अरन्ध इति । संनिवेशवन्मिश्यासंनिवेशेन भासत इत्यर्थः ॥ १८ ॥ यथा शरत्कालस्तपति अमृतद्वतः सोमः स्फुरतीति कालात्मकयोरेव सूर्यसोमयोरवान्तरभेदकल्य-नया कियाकारकभावेन व्यपदेशस्तथा ब्रह्म जगहप्रकाशयति जगदात्मना स्फरतीति च व्यपदेश इत्याह—तपतीति । सोम्यो नयनानन्दः ॥ १९ ॥ एवंच ब्रह्मात्मना जगन्नित्यनष्टं निखस्थितमिति व। उत्प्रेक्षितुं शक्यमित्याशयेनाह—ऋद्य-णीति । वासनामात्ररूपलात्सुषुप्ताभम् । यथा विलाब्जमव्जा-त्मना नित्यमसच्छिलात्मना नित्यं सत्तद्वदित्यर्थः ॥ २० ॥ चिदात्मना सत्त्वे जगद्रह्मशब्दार्थयोभेंदो नास्तीत्याह-नानयो-रिति ॥ २१ ॥ एषां जगताम् । तस्याधिदाकृतेरिव ॥ २२ ॥ मेर्वादिस्थूलतमोपि पदार्थस्वस्वदशा आलोकनाञ्जदमस्यात्या-दिधमैकं ब्रह्मेन भवति । यथा करकाद्यम्य केवलं पयो भवति तद्वत् । अतो बहिस्तृणगुल्मादेर्षद्वाण्डान्तस्य अन्तिश्वत्तादेर्हिन रण्यगर्भान्तस्यापि च जगतः परमं यदम्विबोत्तरोत्तरं सुक्ष्मतमं

परमाम्बुविभागेन यद्वपं तत्परं बिद्धः॥ २३ तत्समृहस्तदेवोधेश्चित्तं मेरुतृणादिकम्। यत्नीक्ष्मयेऽपि हि सारात्म स्थोब्ये सारतरं हि तत् यथा रसात्मिका शक्तिः परमाणुतयाऽनद्य । स्थिता जगत्पदार्थेषु पायसी ब्रह्मता तथा ॥ 24 रसराक्तिर्यथा नानातृणगुल्मलताम्भसाम् । तथा नानातयोदेति सैवासैवेव ब्रह्मता ॥ २६ यैषा रूपविलासानामालोकपरमाणुता । गुणगुण्यर्थसत्तात्मरूपिण्यासां परात्मता ॥ २७ चिति चित्तंऽस्ति मेर्वादि तद्भिचञ्जनात्मनि। विच्छपक्षोधकाठिन्यं मयुराण्डरसे यथा ॥ 26 चिति तस्त्रेऽस्ति नानाता तद्मिव्यञ्जनात्मनि। विचित्रपिच्छिकापुञ्जो मयूराण्डरसे यथा॥ २९ यथा नानात्मिके ह्येव बर्ह्यण्डरसवर्हिते । विवेकरप्रया रष्टे ते तथा ब्रह्म जगित्स्थतम् ॥ ३० सनानातोऽप्यनानातो यथाऽण्डरसवर्हिणः। अद्वेतद्वेतसत्तातमा तथा ब्रह्मजगद्धमः॥ ३१ यथा सदसतोः सत्ता समतायामवस्थितिः।

भूतसक्ष्माव्याकृताक्षरान्तं तद्विभागेनान्ते यद्भुपं परिशिष्यते तदेव परं विदुर्बद्वाविद इति परेणान्वयः ॥ २३ ॥ स्थूलस्य विमर्शे मुक्षममात्रत्वे युक्तिमाह्-तत्समूह् इति । पश्चीकृतं ह्मपश्चीकृतसमृहः ॥ २४ ॥ अपश्चीकृतभृतानि तु चित्तमेवेखेवं कमेण बोध्यामस्यर्थः । साक्ष्म्ये सत्सारत्वादेव तत्स्थील्येऽपि सत्यतरत्वछक्षणसारतरतात्रपश्चे पामरेरनुभूयतः इत्याह-यत्सी-क्ष्म्येऽपीति । अतएवाप्परमाणुगतरसशक्तः स्थूलजले इन्द्रिय-गोचरतेव घटादाँ ब्रह्मसत्तायास्तद्वोचरतेत्याह्—यथेति । पायसी स्थूलजलनिष्ठा सती योग्येति शेषः ॥२५॥ स्थूलवैचित्र्येण स-त्तावान्तरसामान्यारमना सत्तावैविज्येत्येतादशा दष्टान्ताः कल्प्या इत्याद्ययेनाह—रसदाक्तिरित्यादिना ॥ २६ ॥ रूपविलासानां नीळपीतादिरूपवैचित्र्याणामालोकपरमाणुता सुक्ष्मतमरूपं सा-मान्यं यथा तथेखनुषज्यते ॥ २७ ॥ परातमता ब्रह्मसत्तापि आसां पटादिव्यक्तीनां गुणिगुणरूपावान्तरवैजाखार्थं सत्तात्म-रूपिणी भवतीति शेषः । आविभीवदशायां कार्यात्मना कारण-मेवास्तीतिवत्तिरोभावदशायामपि कारणात्मना कार्यमप्यस्त्येवे• त्येतदपि इप्टान्तेनोपपादयति—चितीति । सर्वथा तिरोभावे मायाशबलचिति अर्धतिरोभावे चित्ते मेर्वादिस्थूलकार्यजात-मस्ति । यथा पिच्छानि पक्षीघाः काठिन्यं च मयूरोपादानभूते तदण्डरसे सन्ति तद्वदित्यर्थः ॥ २८ ॥ २९ ॥ विवेकदृष्ट्या भेददृष्ट्या ॥ ३०॥ तथाच तत्र कल्पितभेदो यथा न वास्तवामे-दविरोधी तद्वदत्रापीखाह-सनानात इति । अण्डे रसरूपो बर्हिणो मयूरः ॥ ३१ ॥ तर्हि कि द्वैताद्वैतात्मकमेव नदा अलु यथा ब्रह्म वास्तवं जगदिति च अमस्तथा द्वैताद्वेतात्मकम् । नेतावता वैषम्यप्रसक्तिः । यथा सदसतोः सत्तासमतायामव-

यतः सदसतो रूपं भावस्यं विज्ञि तं परम् ॥ ३२ नानाऽनानात्मकमिदं त्वनुभूतं नसंसवम् । चिज्ञगद्वस्रनं पश्य वर्द्यण्डे रसवर्द्वणम् ॥ ३३ यथा जगति चिसस्यं चिसस्ये यज्ञगसथा । नानाऽनानात्मकैकं च मयूराण्डरसो यथा ॥ ३४

नानापदार्थभ्रमिष्क्षपूर्णां जगन्मयूराण्डरसिश्चदाद्याः। मयूररूपं त्वमयूरमन्तः सत्तापदं विद्धि कुतोऽस्ति भेदः॥ ३५

इस्रार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देव॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चिद्धनोपदेशो नाम सप्तचलारिशः सर्गः ॥ ४०॥

अष्टचत्वारिशः सर्गः ४८

वसिष्ठ उवास्र।

यत्राजुदितरूपात्म सर्वमस्तीदमाततम्।
मयूर इव बीजेऽन्तस्तदहन्तादिगादि च॥ १
यत्र नाम्युदितं किंचित्तत्र सर्वं च विद्यते।
तद्त्राप्यक्तिराः स्वर्गसुखसारेण विम्वति॥ २
तथा च मुनयो देवा गणाः सिद्धा महर्षयः।
आस्वादयन्तः स्वं रूपं सदा तुर्यपदे स्थिताः॥ ३
एते ये स्तष्धनयनदृष्यो निर्निमेषिणः।

स्थितिस्तथा तन्निरूपाणादित्यर्थः । ननु नैषम्यपरिहाराय सत्ता-समतागामेवावस्थानमिति कृतः। अभावमात्रतापलिलक्षण-श्चरवेऽपि वेषम्यपरिहारादित्याशङ्क्याह-यत इति । रूपं तश्वं भावस्थं सद्वस्तु पर्यवसन्नं न शून्यनिष्ठम् । अभावस्यापि सद-धीननिरूपणलात्। तं भावं च परं ब्रह्मेव विद्धि॥ ३२॥ तस्य चाह्रयलात्रानाऽनानात्मकं मित्राभित्रस्वभावमिदं जगद्र्यं न संभवो यस्य तन्नसंभवमनुपपन्नम् । नत्रर्थस्य ननान्दस्य बहुब्रीहिः ॥ ३३ ॥ एवमनुपपन्नस्यापि बर्ह्यण्डरसदृष्टान्तेनेवै-करस्यं नेयमित्याशयेनाह--चिजागदिति । यथा जगति चिदा-त्मकं तस्वमनुगतं तथा बर्हिणि रसोऽनुगतः । यथा चित्तस्वे जगदन्तर्लीनं तथा रसे बहाति पश्येत्यर्थः ॥ ३४ ॥ उपमोक्त-मर्थ रूपकेणकीकृत्य दर्शयनमेदं निरस्यति — नानेति । नाना-विधपदार्थभ्रमलक्षणः पिच्छैः पूर्णा आद्या ब्रह्मचिदेव जगह-क्षणमयूराण्डस्य रसः। तत्र भासमानं जगन्मयूरह्यं तु अम-युररूपं सत्तालक्षणं पदं परमार्थवस्तु विद्धि। तत्रच भेदः कुतोऽस्तीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्प-र्थप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे सप्तचत्वारिंदाः सर्गः ॥ ४७ ॥

> यस्तत्तास्फूर्तिसीख्यानि प्रतिबिम्बन्ति करिपते । तस्तिबद्दानन्द्घनं ब्रह्म निष्कृष्य वर्ण्यते ॥ ३ ॥

मयूररसदृष्टान्तात्तिरोभूतजगद्वैचित्र्यगर्भ चिद्वित्संबलितं बीजशक्तिमद्व्याकृतमेव तत्त्वं न ततः परं शुद्धमस्तीति व्यामोहो माभूदिति तद्बिष्ठानं निर्विशेषभूमानन्दरूपं निष्कृष्य परिचाय-यितुं श्रीवसिष्ठ जवाच—यत्रेति । बीजे अण्डे अन्तमंयूर इव वर्णितमन्तरहृन्तादि बहिर्दिगादि बियदादि च सर्व जगदात्र शुद्धे काळत्रवेऽप्यनुदितरूपात्म अनुत्पग्रस्क्रूपमेवास्ति तदेशोक्त-

ते रहयदर्शनासङ्गस्पन्दत्यागे व्यवस्थिताः॥ ४ नास्थिता भावना येषां स्थितानामपि कर्मसु । संवित्संवेद्यसंबन्धस्पन्दत्यागे च ये स्थिताः॥ ५ प्राणो न स्पन्दते येषां चित्रस्थवपुषामिव । भनो न स्पन्दते येषां चित्रस्थवपुषामिव ॥ ६ चित्तचेत्यसमासङ्गत्यागे ते स्वपदे स्थिताः । स्पन्दात्संसाधयन्त्यर्थं तेनांशोनेश्वरो यथा॥ ७ तथेव चित्तचेत्यादिस्पन्दात्कुर्वन्ति संस्थितिम् ।

द्रष्टान्ततात्पर्यविषयो न शबलमित्यर्थः ॥ १ ॥ यत्र परमार्थतः किंचित्राभ्यदितं तत्रेव सर्वे जगदविद्यया विद्यते तदेवात्रास्मि-न्देहेऽपि अक्षराः अक्षानां रसभूतः प्राणः सन् सर्गादिवषयि-कसुखसारेण चित्तवृत्तिभेदेन विचित्रभोगाकारतया स्फटिकसुकु-रादौ चन्द्रद्व विम्बति । तथाच विषयसुखानुभवषरातिद्वम्ब-भूतनिरतिशयानग्दसद्भावोऽनुमेय इत्यर्थः ॥ २ ॥ सर्वसाधार-ण्येन तत्सद्भावे अनुमानप्रमाणमुक्ला विदुषामनुभवप्रमाणम-प्याह—तथाचेति । खं रूपं खात्मभूतभूमानन्दम् ॥ ३ ॥ स-वैरपि कुतो नानुभूयत इति चेदुश्यदर्शनासप्तारप्राणसम्दकृत-विश्लेपाचिति गृहाण । अतएव तदुभयपरिहाराय नासाम्रनिरुद्धह-ष्टयः प्राणनिरोधपराश्च योगिनो दश्यन्त इलाह—एतं इति । स्तब्धे नयमें गोलके दर्श तद्गतिहर्य न येवाम् ॥ ४॥ इदं लनारुडपष्टादिभूमिकानाम् । आरुडपष्टसप्तमभूमिकास्त् व्यवहरन्तोऽपि समाहितैः पूर्वभूमिकागतैम्तुत्यमारमसुरतं सदैवा-खादयन्तीलाह-नास्थिता इति । कर्ममु व्यवहारेषु स्थिता-नामपि येषां पष्टादिभूमिकागतानां बाह्यार्थरात्यताभावना न आस्थिता ईषदपि स्थिता । ये च पूर्वभूमिकागताः संवित्संवेदा-संबन्धत्यागलक्षणसमाधी स्थिताः। येषां प्राणी मनश्च न सम्दते ते च चित्तचेत्यसमासङ्गयोस्त्यागो यस्मिस्तथाविधे भ्-मानन्दपदे तुल्यतया स्थिता इति सार्धद्वयस्यार्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ षष्टादिभूमिकागता अन्तर्बद्धाकाराखण्डवृत्तिधारास्पन्दात्तेनांशेन निरतिशयानन्दास्वादनलक्षणं परमपुरुषार्थं यथा संसाधयन्ति तथैव वहिश्वित्तचेत्यादिसान्दाधवहारमंस्थितिमपि कुर्वन्ति । यथा जगरीश्वरोऽन्तः सदेव खरूपानन्दप्रतिष्ठोऽपि बहिर्मायया जगद्यवस्थां पालयति तद्रदिल्यर्थः ॥ ७ ॥ तेषां व्यवहारे

यथाह्यदयति स्वच्छेः पल्लवं रश्मिरैन्दवः॥ तथात्मा हादयत्यन्तर्द्वचयदर्शनसंगमे। बिम्बाइरं प्रयातस्य मित्तावपतितस्य च ॥ Q यदिन्दोस्तेजसो रूपं तद्र्पं शुद्धसंबिदः। न दृइयं नोपदेशाई नात्यासमं न दूरगम्॥ केषलानुभवपाप्यं चिद्र्पं शुद्धमात्मनः। न देही नेन्द्रियप्राणी न चित्तं न च वासना ॥ न जीवो नापि च स्पन्दो न संवित्तिर्न वै जगत्। न सन्नासन्न मध्यं च शून्याशून्यं न चैव हि ॥ न देशकालवस्त्वादि तदेवास्ति न चेतरत्। पतैः सर्वेविनिर्मुकं हृदि कोशशतेन च॥ १३ यत्रैतत्स्पन्दते रह्यं तत्तवात्मपदं भवेत्। या नार्यं न कल्पान्तं न वस्त्वाद्यनिलादिमिः १४ इह चामुत्र सद्रुपादम्यया भवति कचित्।

जायन्ते च ब्रियन्ते च देहकुम्माः सहस्रशः ॥ १५
सवाद्याभ्यन्तरस्यास्य नात्माकाशस्य खण्डना ।
तच देहादि सकलमात्मेषात्मविदां चर ॥ १६
केवलं बोधवैक्ष्यादीषत्पृथगिव स्थितम् ।
विष्यगात्ममयं विश्वं हातं बुद्ध्या सुसिद्ध्या ॥ १७
प्रज्वलन्नपि कार्येषु निर्वाणो निर्ममो भव ।
यदिदं दृश्यते किंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ १८
तत्सर्वे ब्रह्म निर्धमं निर्गुणं निर्मलात्मकम् ॥ १८
तत्सर्वे ब्रह्म निर्धमं निर्गुणं निर्मलात्मकम् ॥ १९
कालकियाकरणकर्तृनिदानकार्यजन्मस्थितिप्रलयसंस्यरणादि सर्वम् ।
ब्रह्मेति दृष्ट्यत एव तवात्मदृष्ट्या
भूयोऽपि किं स्रमणमङ्ग समङ्ग एव ॥ २०

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकात्मप्रतिपादनं नाम अष्टचलारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपश्चाद्यः सर्गः ४९

Ş

श्रीराम उचाच । यदि नास्ति विकारादि ब्रह्मन्ब्रह्मणि चृंहिते । तदिदं कथमामाति भावाभावमयं जगत्॥

दृश्येषु बाह्यविषयेषु दर्शनानां बुद्धिवृत्तीनां संगमे त्रिपुट्यामप्य-मिव्यको निरतिशयानन्दात्मान्तर्हादयत्येयेति सर्वोपि व्यवहारः सुस्रहरूप एव । यथा ऐन्दवी रहिमस्तरुपह्नवमन्तः प्रविश्य हाद-यति तद्वदिखर्थः ॥ ८ ॥ अन्तःस्वरूपसुसं तु तेषां सुतरां निर्विश्रेपमित्यत्रापि दृष्टान्तमाह-विम्बादिति । विम्बनित्याम्त-रालिकस्य ग्रद्धनभःस्थस्येन्दोस्तेजसधन्दिकाया यद्भपं तदेव पर-मात्मनो निर्विभेपाहादरूपं तैरनुभूयत इत्यर्थः ॥ ९ ॥ १० ॥ तदेव देहादिसर्वोपाधिनिर्भक्तमात्मनस्तत्त्वमित्याह-न देह इ-त्यादिना ॥ ११ ॥ १२ ॥ देशकालवस्तुनिरूप्यत्रिविधपरिच्छे-दादिना ब्रह्मेवास्ति । एतेर्देहादिभिः । शतशब्द आनन्खपरः । भ्तभाषिवेहकोशानां हृदि पासनात्मना स्थितानामानन्त्यात् ॥ १३ ॥ एवं कोशशतेन हृदि चित्ते यत्र यस्मिन्सति एतद्द-श्यमाविभीवतिरोभावादिना स्पन्दते तत्सन्मात्रमेवात्मपदं भ-वेत् संभावितामेलार्थः । एवं कार्यकारणविलक्षणं तत्संभावनीयः मिल्याह-यनेति । यद्गता आर्थं महाकल्पादिकाले भवमच्या-कृतास्यं कारणम् । तथा कल्पान्तं प्राकृतादिप्रलयस्पं च न । सर्गकालेऽपि इह एतस्मिन् लोके अमुत्र परलोके वा अनिला-दिमिः शोषणदहनक्रेदनमेदनादिविकारः क्रचित्सद्भूपादन्यथा न भवतीति सविकारवस्तु आदिपदात्तद्विकाराश्व यद्य भवतीत्वर्थः ॥ १४ ॥ ननु देहादिविकारैस्तदनुगतसदूपस्यापि विकारः कि न स्यातत्राह—जायन्ते चेति ॥ १५ ॥ तर्हि कि देहादि वसिष्ठ उवाच । अपुनः प्रागवस्थानं यत्स्वरूपविपर्ययः । तद्विकारादिकं तात यत्स्रीरादिषु वर्तते ॥

पृथगस्ति, नेत्याह—तचेति ॥ १६ ॥ विष्वक् सर्वतः स्रुसिद्धमा भवणासुपायपरिष्कृतया ॥ १७ ॥ अतएव व्यवहरमपि निर्विकारात्मदर्शनाभित्यमुक्तात्मत्वरूपसिष्ठेत्याह—प्रज्वलमपीति । प्रज्वलन् त्वराज्ययोग्यव्यवहारेषु दीपमानः ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे अङ्ग, कालादि सर्व जगद्दश्रेत्यात्मदृष्ट्या दृष्टवतस्त्व कि भूयोपि भ्रमणं संभवति नेवं संभवतीत्यर्थः । यतस्त्वं वस्तुतः सममिव्यमं स्वरूपं गच्छिति संदेव प्राप्तवानसीति समङ्ग एव । 'बह्येव सन् ब्रह्माप्येति' इति श्रुतेरिति भावः ॥ २० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतांत्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टाचरवारिकाः सर्गः ॥ ४८ ॥

बिकारेश्यो विवर्तस्य वैस्रक्षण्यमिहोच्यते । अप्रबोधादविद्यास्ति प्रबोधे नास्ति सेति च ॥ १ ॥

विकारारम्भाभ्यां विवर्तस्य लक्षणतो मेदं जिज्ञासमानो रामः पुच्छति—यदीति । आदिपदादारम्भपिष्महः । बृंहितं नित्यनिरितशयवृद्धिमिति त्रिविधपिष्छेदश्रन्ये इतियावत् ॥१॥ तत्र कारणे कार्योद्भवः पद्यथा अतिरोहितप्रागवस्थः १प्रतिबद्ध-प्रागवस्थः २प्रच्छन्नप्रागवस्थः १प्रतिबद्ध-प्रागवस्थः २प्रच्छन्नप्रागवस्थः १विनष्टप्राग-वस्थ प्थेति । आद्यो मृदादेर्घटादिमावः । द्वितीयो जलस्य हिम-करकाभावः । तृतीयो रक्ष्वाः सर्पभावः । चतुर्यो जलस्य तरन्नभावः । पद्यमो बुग्धस्य द्विभावः । तत्राग्स्य एव जन्मादि-भावविकारः परिणामश्य इतरे तु विवर्तमेदा एवेत्याद्ययेन प्रभ्यमं विषष्ठो विकारलक्षणमाद्ध—अपुनिति । यरक्षीरत्रीक्षादिष्ठ

पयस्तां पुनरम्बेति दिवत्वाच पुनः पयः। बुद्धमाचन्तमध्येषु ब्रह्म ब्रह्मैव निर्मलम् ॥ 3 शीरादेरिय तेनास्ति ब्रह्मणो न विकारिता। अनाचन्त्रविभागस्य म चैषोऽवयविक्रमः॥ 8 समस्याद्यन्तयोर्थेयं दश्यते विकृतिः क्षणात्। संविदः संभ्रमं विक्रि नाविकारेऽस्ति विक्रिया॥ ५ न संवेद्यं न संवित्तिस्तत्र ब्रह्मणि विद्यते । तद्रह्मराज्यकथितं निःसंबन्धचिदात्मवत्॥ É यादगाचन्तयोर्षस्तु तादगेव तत्र्च्यते। मध्ये यस्य यद्न्यत्वं तद्बोधाहिज्मितम्॥ 9 आत्मा त्वाचन्तमध्येषु समः सर्वत्र सर्वदा । स्वमप्यन्यत्वमायाति नात्मतस्वं फदास्वन ॥ 6 अक्रपत्वात्त्रयेकत्वाश्वित्यत्वाद्यमीश्वरः । वदां भावविकाराणां न कदाचन गच्छति॥ ९

श्रीराम उवाच।

विद्यमाने सदैकसिन्ब्रह्मण्येकान्तनिर्मले। संविद्धमस्वरूपाया अविद्यायाः क आगमः॥ १०

वसिष्ठ उवाच। ब्रह्मतस्वमिदं सर्वमासीद्स्ति भविष्यति । निर्विकारमनाद्यन्तं नाविद्यास्तीति निश्चयः॥ ११ यस्तु ब्रह्मेति दाब्देन वाच्यवाचकयोः क्रमः। तत्रापि नान्यताभावमुपदेष्टं क्रमो हासौ॥ १२ त्यमहं जगवाशाश्च धौर्भृश्चाप्यनलादि वा।

द्धिवैतुष्यादिलक्षणं कार्ये पुनः प्राक्तनक्षीरादिभावावस्थान-श्रून्यं क्षीरादिखरूपविपर्ययरूपं विद्यते तदेव विकारसंस्कारपरि-**णामादिशब्दवाच्यमि**खर्थः ॥ २ ॥ **ब्रह्मणि जग**ल्रक्षणं कार्ये तु न तथा तद्वैधर्म्यादित्याह-अबुद्धमिति ॥ ३ ॥ अस्तु तर्हि परमाणुभिर्धाणुकादीनामिवावयव्यारम्भक्रमस्तत्राह--अनाद्य-न्तेति । आद्यन्तरुक्षणदेश्विकपरिच्छेदवत्यु कियासंयोगादिवि-भागवत्सु चावयवेष्ववयव्यारम्भक्रमः स्थान्न तद्विरुक्षणस्य बद्धाणः स इत्यर्थः । एतेन बहुनां संयुक्तानां समवेतानां वा खेबु साध्यसमबेते वा समवाये नैककार्यजनकलमारम्भक-लम् । यथा तन्तूनां पटं प्रति । यथावा कारणगुणानां कार्यगुणं प्रतीति वैशेविकावभिमतलक्षणं स्चितम्। तथाय कणादसूत्रम् 'द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्व गुणान्तरम्' इति ॥ ४ ॥ बद्याण जगतस्तु परिशेषाद्विवर्तत्वमेव सिद्धमिति तह्रक्षणेन दर्शवति—समस्येति । विकृतिरन्यथाभावः । संभ्रमं विवर्तम् । तबाबाबन्तयोः समे तदसंस्पर्शिवेषम्यप्रतिभासो विवर्त इति तह्रक्षणमिति भावः ॥ ५ ॥ तद्संस्पर्शे दर्शयति—न संवेदा-मिति ॥ ६ ॥ मध्ये विकारासंस्पर्शः कथं ज्ञायत इति चेदाय-न्तयोत्तरसंस्पर्शसभावावधारणादेय छिङ्गादिखाइ-यादगिति ॥ ७ ॥ आत्मनस्त प्रकाशस्त्राभाव्येन समता सर्वानुभवसिद्धा ।

ब्रह्ममात्रमनाचन्तं नाविचास्ति मनागपि ॥ १३ नामैबेदमविधेति भ्रममात्रमसद्भिदः। न विद्यते या सा सत्या कीदग्राम भवेत्किल ॥ १४

श्रीराम उवाच।

उपरामप्रकरणे हास्तने तु त्वयेरितम्। अविदेयं तथेत्थं च विचार्यत इति प्रभो॥ ૧્ષ

वसिष्ठ उचाच। पताधन्तमबुद्धस्त्धमभूः कालं रघृद्वह । कल्पितामिः किलेतामिर्वोधितोसि स्वयुक्तिभिः १६ अविदेयमयं जीव इत्यादिकलनाक्रमः। अप्रबुद्धप्रबोधाय कल्पितो वाग्विदां वरैः॥ १७ अप्रबुद्धं मनो याषसायदेव भ्रमं विना । न प्रबोधमुपायाति तदाकोशशतैरपि॥ १८ युक्तयैष बोधयित्वैष जीव आत्मनि योज्यते । यद्यस्यासाद्यते कार्ये न तद्यक्षरातैरपि॥ १९ सर्वे ब्रह्मेति यो ब्र्याद्मबुद्धस्य दुर्मतेः। स करोति सुदृदृत्या स्थाणोर्दुःखनिवेदनम् ॥ युक्तया प्रबोध्यते मृदः प्राक्रस्तस्वेन बोध्यते । मुढः प्राव्यवमायाति न युक्त्या बोधनं विना ॥ २१ पतावन्तमबुद्धस्त्वं कालं युत्तया प्रवोधितः। इदानीं संप्रबुद्धस्त्वं मया येनावबोध्यसे॥ **२२** ब्रह्माहं त्रिजगद्रहा त्वं ब्रह्म खलु रहयभूः। ब्रितीया कलना नास्ति यथेच्छिति तथा कुरु ॥ २३

अनात्मभावयः तस्यात्यन्तासंभाव्य इत्याह—आत्माविति ॥ ८॥ ॥ ९ ॥ चित्रकाशैकरसे ब्रह्मणि तद्विरुद्धस्वभावाया अविद्यायाः कथं प्रसक्तिर्मेन तत्र जगद्विवर्तः स्यादिति प्रवुद्धदशा रामः शहते-विद्यमाने इति ॥ १० ॥ न प्रबुद्धरशा अविदासद्भावं ब्रमः, किलबुद्धव्युत्पादनाय कल्पनयेखाशयेनीत्तरमाह--- ब्रह्म-तत्त्वमिति । सर्वे पूर्णम् ॥ ११ ॥ न अन्यताया भावं सद्भावं वदामः कित्पदेष्ट्रमसा कमः कल्पित इत्यर्थः ॥ १२॥ १३॥ ॥१४॥ यद्यविद्या नास्त्येव तह्युपशमप्रकरणे 'यथा भ्रान्तिरवि-धेयं तथेत्यं च विचार्यत' इति लयैवाविद्यासङ्गावमश्रीकृत्योक-मिति रामः शक्कते - उपशमेति ॥ १५ ॥ तत्तु तवाबोधद-शायां लहुज्यनुसारिकल्पनयोक्तमिदानीं तु लं प्रबुद्ध इति न तस्कल्पनावसर इलाविरोध इत्याह-एतावन्तमिति ॥ १६॥ ॥ १७ ॥ असमविदादिशाक्षीयव्यवहारकत्यनाम् । तत् मनः ॥ १८ ॥ युक्तीनामसंभावनादिपुरुषदोषनिरासकत्वादिति भावः ॥ १९ ॥ सत्सु तु दोवेषु तत्त्वोपदेशो व्यर्थ इत्याशयेमाह-सर्वमिति ॥ २० ॥ २१ ॥ येन याहशोपदेशेनावबोध्यसे तं श्विति शेषः ॥ २२ ॥ तमेवाह—ऋदोति । यथेच्छसीति । ऐच्छिकेन व्यवहारेण न वास्तवब्रह्मत्वहानिरिति भावः ॥२३॥

१ ब्रह्मत्वं ब्रह्मदृश्यभूरित्यपि पाठः.

असंवेद्यमहासंवित्कोटिमात्रं जगन्नयम् । एकप्रस्ययवानन्तः कुर्वन्नपि न लिप्यसे ॥ २४ भारूपश्चेतनो व्यापी परमात्माहमित्ययम् । राघवानुभवान्तस्त्यं तिष्ठन्गच्छञ्ज्ञसन्स्यपन्॥ સ્પ निर्ममो निरहंकारो बुद्धिमानसि साधु चेत्। तद्वसावेदनं शान्तं सर्वभूतस्थितं भव ॥ २६ तदनाचन्तमाभासं सस्वमेव परं पदम्। स्थितोऽसि सर्वगैकात्मशुद्धसंविन्मयात्मकः॥ २७ यहसात्मापि तुर्यश्च या विद्या प्रशृतिश्च या। तदमिन्नसर्वेकात्म यथा कुम्भशतेषु सृत्॥ २८ नात्मनः प्रकृतिर्भिषा घटान्मृन्मयता यथा। सम्मृत्मात्रं यथा चान्तरात्मेषं प्रकृतिः स्थिता २९ आवर्तः सलिलस्येव यः स्पन्दस्त्वयमात्मनः। प्रोक्तः प्रकृतिशब्देन तेनैबेह स एव हि ॥ 30

यथैकः स्पन्दपवनी माम्ना मिन्नी न सत्तवा । तथैकमात्मप्रकृति नास्ना मिन्ने न सत्त्रया ॥ 38 अबोधादेतयोभेंदो बोधेनैच विलीयते। अषोघात्सम्मयो याति रज्ज्वां सर्पभ्रमो यथा॥ ३२ चित्क्षेत्रे कलनाबीजं यदेतत्पतति स्फुरन्। चित्ताङ्करं तदेतसाद्भाविसंसारखण्डकः ॥ 33 पतदेवात्मविज्ञानाइग्धं सद्वासनाजलैः। संसिक्तमपि यक्नेन न भवत्यक्करक्षमम्॥ 38 नोचेत्पतति चित्क्षेत्रे फलनाबीजकं ततः। चित्ताङ्करा न जायन्ते सुखदुःखलबद्धमाः ॥ 34 वित्वं जगत्यसदुपासमबोधजातं बोधक्षयं जहिहि बोधमुपागतोऽसि । आत्मेकभावविभवेन भवाभयात्मा नास्त्येय दुःखमिति नः परमार्थसारः ॥ ३६

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे संस्रतिविचारयोगो नाम एकोनपश्चाद्याः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाद्याः सर्गः ५०

२

श्रीराम उचाच । क्वातं क्वातच्यमिक्कलं दृष्टं द्रष्टव्यमक्षतम् । परेण परिपूर्णाः स्पो ब्रह्मक्वानामृतेन ते ॥ पूर्णात्पूर्णमिदं पूर्ण पूर्णात्पूर्ण प्रसूयते । पूर्णेनापूरितं पूर्ण स्थिता पूर्णे च पूर्णता ॥

कोटिः सर्वत्रान्तिवाधावधिस्तन्मात्रम् । एकेति । 'तत्र को मोहः कः शोक एकलमनुपरयतः' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥ २४ ॥ हे राघव, त्वं तिष्ठन् गच्छन् श्रसन् खपंश्व अन्तः अहंभावहप आत्मेत्यनुभव ॥ २५ ॥ वेदनं चिदेकरसं ब्रह्म भव ॥ २६ ॥ सर्वरीकात्मशुद्धसंविन्मयात्मकः स स्वमेव । तच्छुतिप्रसिद्धमनायन्तं परं पदं सन् स्थितोऽसि ॥ २७ ॥ यह्रद्वेति । आत्मेति तुर्य इत्यपि च प्रसिद्धम् । याच अविद्या प्रकृतिथकाराजगदिति च प्रसिद्धा तत्सर्वमभित्रसन्मात्रैकारम-कमित्यर्थः ॥ २८ ॥ यथा घटस्य मृन्मयता सद्वास्तवं मृन्मात्रं तथा प्रकृतिरित्यर्थः ॥ २९ ॥ स्पन्दो विवर्तनम् । तेन सन्मात्र-खभावेनेह खविवर्ते म आर्तमवास्ति नाणुमात्रमप्यन्यदिलार्थः ॥ ३० ॥ सत्तया वस्तुवृत्तेन ॥ ३९ ॥ सन्मयः सन्मात्रः । याति । रूपान्तरमिति शेषः ॥ ३२ ॥ तदेव चित्ताऋरं तस्मा-रम्फुरन् भाविसंसारवनखण्डकः संपद्यत इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ एतत्कलनाबीजमेव ॥ ३४ ॥ नो पतित चेत् सुखदुःखफलाः शरीरद्वमा येभ्यस्तथाविधाश्चित्ताक्करा न जायन्ते ॥ ३५ ॥ उपकान्तमुपदेशरहस्यमुपसंहरति—दित्वमिति । हे राम, ज-गति असत् भ्रान्त्युपालं द्वित्वं जिहहि त्यज । 'आ च हौ' इति चकाराज्ञहातेरिः । यतस्यं वोधमुषागतोऽसि । आरमैकभावल-क्षणेन निरतिशयानन्दविभवेन अभयात्मा मन । दःखं त लीलयेदं तु पृच्छामि भूयो बोधामिवृद्धये। बालस्येव पिता ब्रह्मन्न कोपं कर्तुमईसि॥ श्रोत्रं चश्चः स्पर्शनं च रसनं ब्राणमेव च। विद्यमानमपि ब्रह्मन्द्दयमानमपि स्फुटम्॥

3

काळत्रयेऽपि नास्त्येनेति नः परमार्थसार उपवेश इत्यर्थः ॥३६॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

> इह कल्पनया जीवे लिङ्गपुर्यष्टकोद्भवः। वर्णितोऽश्रेस्तथा तस्य बाह्यार्थमङ्गकमः॥ १ ॥

'भिद्यते हृदयप्रन्थिरिछद्यन्ते सर्वसंशयाः' इति श्रुतेस्वत्त्वसा-क्षात्कारेण स्वयं छिप्रसर्वसंशयोऽपि रामः परेषामुपकाराय तरसंशयपदं प्रष्टुकामः प्रथमं स्वानुभवममिल्प्य दर्शयति— ज्ञातिमत्यादिना । वयं ते रवरसंबन्धिना ब्रह्मज्ञानामृतेन परि-पूर्णाः स्मः ॥ १ ॥ स्वानुभवेन 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमु-दच्यते । पूर्णस्य पूर्णमवाविष्यते' इति श्रुति संवा-दयति—पूर्णादिति । पूर्णाद्रह्मणः सकाशातुपाधी प्रविश्य आन-स्वाप्रात्पूर्णमिदं जीवरूपं परमार्थतः पूर्ण ब्रह्मेव । यतः पूर्णाद्य-द्वियदादिकमेण प्रसूयते व्यष्टिसमञ्ज्यपाधिरूपं तदिष पूर्णमेव प्रसूयते । तद्यदा महावाक्योत्थिनाहं ब्रह्मास्मिति ज्ञानेन समूलो-पाधिपरिच्छेदापनयनात्पूर्णेन ब्रह्मणा पूर्णमेव जीवतस्वमखण्डे-क्येनापूरितं तदा कल्पितापूर्णता अमस्यापगमात्पूर्णस्य पूर्णतेव प्राविस्थतिवावस्थितेत्यर्थः ॥ २ ॥ भूयसां जनानां बोधामिवृद्यये बालस्य लीलाप्रश्ने पितेव कोषं कर्तु नाईसि॥३॥ सर्वेषां प्राणिनां हृद्येवार्थानुभवोक्नेखदर्शनात्प्रियाप्रियदर्शनजन्मसुखदुःखयोईखनु- कथं मृतस्य वे जन्तोविषयं स्वं न पश्यति । जीवतस्य कथं सर्व विषयं स्वं प्रपश्यति ॥ कथं घटादिबाह्यत्विमिन्द्रियाणि जज्ञान्यपि । शरीरेऽनुभवन्त्यन्तः पुनर्नानुभवन्त्यपि ॥ अयःशलाकोपमयोर्घटादीन्द्रिययोः किल । अत्रिष्टयोरन्तरसी कथं तन्नोदिता मिथः ॥ जानकपि यदेतान्वे विशेषाञ्छतथा पुनः । पृच्छामि तदशेषेण कथयस्वानुकम्पया ॥

भवाचिरानुभूतानामपि बाह्यार्थानां हृधेय स्मृतिदर्शनाच हृधेव बाह्यार्थानामप्यनुभवो वाच्यः। तत्र श्रोत्रचक्षुरादीन्द्रियाणां वा-ह्यार्थान् हृद्यानेतुमशक्तरचेतनत्वेन च स्वयं वहिर्गलानुभूयाग-ष्याख्यातुमशकेथ श्रोत्रादिगोलकातिरिकेन्द्रियाभ्युपगमो व्यर्थः। नवान्तःकरणाविष्ठकं जीवचतन्यमेवेन्द्रियप्रणाख्या बाह्यघटादिच्याप्य तदनुभवतीति कल्पनापि युक्ता । तथा सति बहिरेवानुभवोहेखापतेः । प्रियाप्रियदर्शनप्रयुक्तमुखदुःखाना-मपि बहिरुदयापत्तेः । कालान्तरेऽन्तःस्मृत्यनापत्तेश्च । अन्त-र्विषयप्रवेशमन्तरेणान्तरत्भवायोगात् । नच बहिरन्तःकरणग्र-त्तिर्त्रिषयात्रिङ्गनेन तदाकारलाञ्छनं संस्काराख्यं गृहीलान्तः प्रविदय नट इव तदाकारं विडम्बयन्ती तदनुभावयति स्मार-यति वेत्युच्यत इति कल्पनापि युक्ता । घटाद्याकारानुभवानां तहाउछनविषयत्वकल्पने भ्रमप्रमयोर्विशेषापत्तेः सर्वत्रैवानाश्चा-सप्रसङ्गात् । घटादेबीह्यलानुभवानापत्तेश्व । इत्थं चानुभव आन्तरो घटादिश्र बाह्य इत्यनयोरसंबन्धान कथंचिदिप बा. ह्यार्थस्यातुभवारोहणमुपपादयितुं शक्यम् । अतएव नैयायिका-दयोऽनुभवस्य विषयैः सह विषयविषयिभावस्थाः स्वरूपसं-बन्ध एव न संश्लेषादिलक्षण इत्याचक्षते - नच सोऽपि युक्तः। असंबद्धरूपस्य सर्वान्विषयान्त्रत्यविशिष्टरवेन विषयव्यव-स्थाऽयोगात् । नचात्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेणेन्द्रियम-र्थेनेति क्रमेण खाश्रयसंयुक्तसंयुक्तसंयोगादिपरम्परासंबन्धव्यव-स्थया व्यवस्था । अननुगतस्य परम्परासंबन्धस्य स्मृत्यनुमित्या-श्रवुगततत्तिद्विषयव्यवस्थापकलायोगात् । परम्परासंबन्धेन बा-ह्मार्थापरोक्ष्यानिर्वाहासस्यैव व्यवस्थापकरवे स्वरूपसंबन्धकल्पन-वैयर्थाच । एतेन संनिकर्षद्वारा योर्था यज्ज्ञानव्यक्तिजनकः स तद्विषय इति व्यवस्थापि प्रत्यक्ता । इन्द्रियादीनामपि तद्वि-षयलप्रसङ्गात् । तस्माद्यटितयटनासमर्थमायाशिकवलादेवा-न्तर्वाद्धार्थानुभवो वाच्यस्तया सति कि कर्णादिगोलकातिरिक्ते-न्त्रियाभ्युपगमेनेति यथानुभवं तद्वारेव चिदारमा बाह्यार्थमनुभ-वतीति स्यात् । तथासति मृतशरीरेऽपि कर्णादीनां सर्वगतस्य सदारमनथ सत्त्वातत्रापि बाह्यार्थान्कतो नातभवतीति रामः शक्ते-श्रोत्रमिलादिना । श्रोत्रादिशब्दा गोलकपराः । अत-एव स्फुटं दृश्यमानमपीति विशेषणम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ यदि

किबद्भावश्चरावीन्द्रियाणि स्वयं बहिर्निर्गस घटावीनां बाह्यस-

वसिष्ठ उवाच ।

इन्द्रियाद्यपि वित्तादि घटाद्यपि न किंत्रन ।
पृथक् संभवतीहाक् निर्मलाकेतनाहते ॥ ९
गगनादिप याऽच्छा चित्तया रूपं स्वमात्मना ।
चित्त्वात्पुर्यप्रकत्वेन भावबृत्येव भावितम् ॥ १०
तदेव च प्रकृतिनां गतं जगदवस्थितेः ।
तस्या अवयवाज्ञातमिन्द्रियादि घटादि च ॥ ११
पुर्यष्टकत्वमायातं यक्कित्तं स्वस्वभावतः ।
स्व प्वावयवस्तसिन्घटादि प्रतिविम्बति ॥ १२

मनुभ्यान्तः प्रविश्य कथयन्तीति तत्राह-जडामीति । न तेषां पृथकेतनस्वं कथनसामर्थं वा अस्तीति भावः । यदि कश्चिद्र-यादिन्द्रियाणि बाह्यार्थं हृदि नीला स्थापयन्तीति तत्राप्याह पुनरिति । ह्यर्थस्थापने पुनःपुनर्हदि तदन्भवः स्याद्धटादेर्हर-याद्वहिर्निःसारणाद्रशनादिति भावः ॥ ६ ॥ ननु घटादिविषय-जानं कर्नृ प्रथमं चक्षुरादीन्द्रियजातं खदेशमाकर्षति । तचा-कृष्टमिन्दियं विषयं संवैष्ट्यान्तर्हृदिस्थाय भोके केनचिदंशेनान्त-नेयति प्राणमिव गन्धमिति कत्पनामाशक्क्याह-अय इति । विषयाः संकिष्येन्द्रियाण्याकषयेयुनीसंकिष्य । असंकिष्टर्ज्ञवा-दीनां घटाद्याकर्षकलादर्शनात् । नच गोलकप्रदेशानुपसर्पिणां घटादीनां तत्संक्षेत्रः संभवति । नापीन्द्रियाणां रज्ञवद्घटसंक्षे-षस्तदाक्ष्यक्रवं वा प्रसिद्धम् । भिन्नप्रदेशनिखातायःशलाकाद्वय-वद्भिदेशलादित्याह-अश्विष्टयोरिति । अश्विष्टयोर्घटादीन्द्रि-ययोमियः असी लद्भ्यमाना तन्नोदिता परस्पराकर्षणशीलता तत्रापि नेत्रायल्पविवरान्तर्धटादिस्थूलप्रवेशकता कथं सर्वानु-भवविरुद्धेत्यर्थः ॥ ७॥ नतु तत्त्वबोधेन च्छित्रमर्वसंशयस्य तव कथं मायामये सर्वानुपपत्तिभाजनेऽस्मिन्व्यवहारे ईदशः संशयस्तत्राह-जानन्नपीति शतथा बहुधा पुनः पृच्छामि । अज्ञानप्रहार्थमित्यर्थः ॥ ८ ॥ अत्यल्पमिदमुच्यते यद्गोलकाति-रिकानीन्द्रयाणि न सन्तीति । यतः सम्यग्विमर्शे चिद्यतिरे-केण प्रमातप्रमाणप्रमेयविभागाः केडपि न निरूपयितं केनापि वादिना शक्यन्त इत्याशयेन वसिष्ठः प्रथमं समाधते--इन्द्रि-यादीति ॥ ९ ॥ यदि तु कल्पनया द्रष्ट्रद्यस्य चोपपत्ति मन्यसे तर्हि इन्द्रियादिघटितपुर्थष्टकरवेनापि पूर्वपूर्ववासनानुसारेण क-ल्पनोपपरोर्न किचिदनुपपन्नमित्याशयेनाह्-गगनादपीति । तया चिता आत्मना मायाशवलसभावेन पुर्यष्टकत्वेन खं रूपं भाववृत्या पूर्वपूर्ववासनानुसारेण भावितं कल्पितमित्यर्थः ॥ १० ॥ उक्ते ऽर्थे 'मायां तु प्रकृति विद्यानमायिनं तु महेश्व-रम् । अस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्' इति श्रुति प्रमाणयति—तदेव चेति॥ ११ ॥ एवं चेन्द्रियद्वारा बहिर्नि-र्गतेन पुर्यष्टकघटकेन चिलेन घटादिव्याप्त्या व्यावृत्तिप्रतिनिम्बि-तघटादेवीह्यसाकारेणैय हृदये नीखा प्रदर्शनं तथैव कालान्तरे स्मृतिः खप्ने चान्तर्गतस्येव बाह्यत्वेनानुभवश्वेति सर्वमुपपन्नमि-त्यारायेनाह-पूर्वष्टकलामिति । एवंरीत्या पुर्वष्टकलमायातं

श्रीराम उवाच। जगत्सहस्रविमीणमहिस्रो वर्पणस्य च। पूर्वष्टकस्य भगवन्द्रपं कथय कीहराम् ॥ £ § वसिष्ठ उवाच। अनाचन्तं जगद्वीजं यद्गसास्ति निरामयम्। भारूपं श्रद्धचिन्मात्रं कलाकलनवर्जितम्॥ १४ कलनोन्मुखतां यातमन्तर्जीव इति स्मृतः। स जीवः खलु देहेऽसिधिनोति स्पन्दते स्फुटम्१५ अहंभावादहंकारो मननान्मन उच्यते। बोधनिश्चयतो बुद्धिरिन्द्रदृष्टेस्तथेन्द्रियम्॥ १६ देहभावनया देहो घटभावनया घटः। एव एव स्वभावातमा जनैः पूर्यप्टकं स्मृतः ॥ 80 इत्वकर्तृत्वभोकृत्वसाक्षित्वाचभिपातिनि । या संविज्ञीव इत्युक्ता तदि पुर्यष्टकं विदुः॥ १८ कालेकाले ततो जीवस्त्वन्योन्यो भवति स्वतः। भाविताकारयानन्तवासनाकणिकोदयम्॥ १९ पूर्यप्रकारमावेन कालेगाकारमुख्यति । ययावासनतः सेकाद्वीजं पल्लवतामिव ॥ 20

विद्वपं तत्त्वमेव पुर्यष्टकस्य वित्तादिघटितस्वभावतः स्वयमेव खः चित्तवस्याख्योऽवयवो भवति । तस्मित्रवयवे घटादि बाह्यं बाह्याकारेणैव प्रतिबिम्बति । मृतदेहे तु पुर्यष्टकघटि-तस्य लिक्नात्मनो जीवस्य खकल्पनयैव कीलोपाख्यानोपदर्शित-रीखा निर्गमनाम दर्शनादिसामध्यमिति सर्वदोषपरिहार इति भावः॥ १२ ॥ यथेवं तर्हि पश्चीकृतभूतभागेन जगदाकारेण परिणमतोऽपधीकृतभूतकार्यलिकभागेन तत्प्रतिबिम्बप्रहदर्पण-भतस्य च पर्यष्टकस्यैव किं रूपं तदेव कथयेति रामः प्रच्छति-जगिदिति ॥ १३ ॥ तत्खरूपं वक्तुं विषष्ठस्तन्मूलमञ्चातं वद्य-तस्यं निर्दिशति-अनायन्तमिति ॥ १४ ॥ तहता वियदादि-भूतस्थमं सङ्घा तेनापधीकृतेन लिङ्गं पधीकृतेन ब्रह्माण्डं च सद्दा तदन्तःप्रतिनिम्बलक्षणकलनोन्मुखतां यातं सत् सूत्र-प्राणानामिमानेन धारणाजीव इति स्मृतोऽभूदित्यर्थः । चि-नोति बासनोपचयनाङ्गोपचयेन चोपचितो भवति । उपचित्रध बाह्यान्तव्योपारारमना स्पन्दते चेत्यर्थः ॥ १५ ॥ तस्यैवामि-मानादिव्यापार मेदेन नाममेदानाह-अहंभावादिखादिना ॥ १६ ॥ सर्वेन्यापारसाधारणस्यभावात्मा पुर्थप्रकमिति नाम्ना स्मृतः ॥ १७ ॥ श्रानेन्द्रियव्यापारेण इलं, कर्मेन्द्रियव्यापारेण कर्तत्वं, तत्फछपुखदुःखाश्रयत्वेन भोक्तरवं, सर्वस्यौदासीन्येन प्रकाशेन साक्षिलम् । आदिपदाद्वीगकरणलायतनलादिपरि-प्रदः । एतदमिपातिनी अध्यासेनैतद्धिका या संवित्सेव चि-त्प्राधान्येन जीव इत्युक्ता, जडांशप्राधान्येन तदेव पुर्यष्टकं विदुरित्यर्थः ॥१८॥ अतएव स्रतादात्म्यभावित्रबुद्धाकाराणां कालमेदेन भेदाजीवोऽपि कामकोधहर्षविवादादात्र कितो ना-नेव भवतीत्याह-काळेकाळे इति । अनन्तवासनाकणिकोदय-

आकारोऽहं शरीरादि स्थावरादि चरादि च। नाहमाद्यश्चिदात्मेति मिथ्या श्वानेन चेतति॥ २१ भ्रमत्येव जगजीयो वासनावलितश्चिरम्। ऊर्ध्वाघोगमनैरुधौ काष्ट्रं वीचिह्तं यथा॥ 22 कश्चिद्विशुद्धजातित्वाद्भववन्धाद्नन्तरम्। बुद्भात्मानं समभ्येति पदमाधन्तवर्जितम् ॥ २३ कश्चित्कालेन बहुना भुक्तयोनिगणातुरः । आत्मज्ञानवशादेति परमं पदमारमनः॥ રય पवंरूपश्च सुमते जीवो यातः शरीरताम्। नेत्रादिना घटाचन्तर्यथा वेसि तथा श्रृणु ॥ २५ चित्त्वस्य कलनान्तस्य संप्रयातस्य जीवताम् । मनःषष्ठेन्द्रियंत्रामो देहोऽयमवतिष्ठते ॥ २६ यदान्यः सर्वदेहेभ्यः खे पतत्यक्षरूपिणा। तदा तज्जीवसंस्पर्शाजीवात्मैकत्वमृच्छति॥ २७ बाह्यार्थवेवने नित्यं संबन्धोऽश्रस्य कारकः। समन्वितस्य चित्तेन न मुक्तस्य कदाचन ॥ २८ यद्यद्यकतरं तसिन्नभःस्य प्रतिबिम्बति । जीवेन भवति किर्छो बहिर्जीवोऽप्यजीवति॥ २९

माकारमृच्छतीति परेणान्वयः॥ १९॥ तस्यैव समष्टिव्यष्टि-जीवस्य बीजस्याद्वरकाण्डपह्नवादीव सर्व जगदाकार इत्याशये-नाह-यथेति ॥ २० ॥ अतएबायश्विदात्मा नाहं किंतु शरी-रायाकार एवाइमिति मिथ्याज्ञाने चेतति पश्यति ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ कश्चित्सनकादित्तस्यः कल्पादावेव प्राक्कल्पीयभवब-न्धादनन्तरमाधे जन्मन्येवेत्यर्थः । अयंच सर्वो विभागः सा-लिकराजसादिजीवभेदवर्णने उत्पत्तिप्रकरणे व्याख्यातः ॥२३॥ ॥ २४ ॥ कथं घटादिबाह्यलमिन्द्रियाणि जडान्यपीति यत्पृष्टं तत्सामान्यतः समाहितमपि विशेषेण समाधश्ले-एवंह्रप इत्यादिना ॥ २५ ॥ विस्वस्य चैतन्यस्य कलनान्तस्य पुर्यष्टके प्रतिबिम्बतया परिच्छेशस्यानसाग्रेभ्यो व्यासी परिमातृतयाद-तिष्ठते । तेन सदा जीवनैतन्यं देहपरिमितं देहान्तर्गतमेव सुखदुःसादिसंबन्धादनुभवति न बाह्यम् ॥ २६ ॥ यदा तु अन्यो बाह्यघटादिईष्टव्यो भवति तदा तडागादुद्विकं जलं कुल्याद्वारेणेव सर्वदेहेभ्य उद्रिक्तं चक्षराद्यक्षरूपिणा द्वारेण बाह्ये घटादिपर्यन्ते खे बाह्याकाशे पतित निर्गच्छतीलर्थः । कि ततस्तत्राह-तदेति । तदा तद्धटादिनयनादिद्वारनिर्गतजी-वेन खाकारवृत्तिव्याप्तिद्वारा संस्पर्शाधापनाअविचैतन्येन सहै-कलमाध्यासिकवित्तादारम्यलक्षणं विषयलमृच्छति गच्छति ॥ २७ ॥ स चाक्षस्य संबन्धिक्षेतेन समन्वितस्य जीवत एव बाह्यार्थनेदने कारको भवति न मृतस्य मुक्तस्य नेसार्थः ॥२८॥ अस्तु बहिरेवं तथापि कथमन्तस्तदनुभवस्तत्राह---यद्यदिस्ना-दिना । यद्यदन्तः करणवृत्तिरूपं नयनरश्मिरूपं वा खच्छतरं वस्त तस्मिन्वाह्मनभःस्थं घटादि प्रतिविम्बति सच प्रतिविम्बो ब्रुपन्तर्गतेन जीवेन श्रिष्टो भवति । तर्हि बहिष्ठ एवाई घट

80

निघृष्टनघरकामे यदा नयनतारके। तदा तयोर्वाद्यगतः पदार्थः प्रतिविम्बति॥ 30 जीवेन भवति श्रिष्टः प्रतिबिम्बतया ततः। जीवज्ञेयत्वमायाति बाह्यं वस्त्विति राघव ॥ 38 यत्संश्लेषमुपादाति तद्वालोऽपि हि विन्दति। पशुर्वा स्थावरो वापि जीवः कसान्न वेत्स्यति 32 अच्छस्य नयनस्याथो रहमयो जीववेष्टिताः। क्रोडीक्रवन्त्यलं दृश्यं जीवस्तत्त्वेन विन्दति॥ 33 एव एव कमः स्पर्शे संबन्धः प्रत्ययोद्भवः। रसे गन्धे च कथितो जीवसंस्पर्शसंभवः॥ 38 शस्टरस्वाकाशनिष्ठत्वात्कर्णाकाशगतः भूणात् । जीवाकाशं विशत्यन्तरित्थमिन्द्रियसंविदः॥ 34 श्रीराम उद्याच ।

इच्यते मानसाव्दाँ यज्जवार्वीदरेषु तत् ।
प्रतिबिम्बितमेतन्मे बृहि ब्रह्मन्किमात्मकम् ॥ ३६
विसष्ठ उवाच ।
अत्यन्तजङ्योरेष जीवयोरिष तिन्मधः ।
प्रतिबिम्बं इशो श्रान्ति विद्धि वेद्यविदां घर ॥ ३७
तावन्मात्रं जगत्वेतिहश्वासो मा तवास्त्विह ।
अहमित्यादिस्तरक्षो वर्तमानं सदा जलम् ॥ ३८
पराम्भोशौ तु नास्त्येष देशकालिकयादिकम् ।
तन्मयैकतया नित्यमात्मा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३९
नित्यमसक्तमतिर्मुदितात्मा
शान्तमृषासुखदुःखविदन्तः ।

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे अक्षसंवेदनविचारयोगोपदेशो नाम पञ्चाशः सर्गः ॥ ५०॥

एकपश्चाद्यः सर्गः ५१

वसिष्ठ उवाच । न पुनर्भवतः पूर्वं संपन्नाश्चश्चरादयः।

मनुमवामीति । कतो नानुभूयते तत्राह—बहिरिति । यद्यपि बहिजीबोऽस्ति तथाप्यसौ बहिः अजीवति प्राणात्र धारयति । नमो नलोपरछान्दसः । अनुव्यचलदितिवतिङम्तोत्तरपदः समासो वा । यत्र प्राणव्याप्तिस्तत्रैवाहन्तावमशों न बहिरित्यर्थः ॥ २९ ॥ अस्त्वेवं तर्हि घटे प्रथाफलोपपत्तिस्तथापि कथमन्त-र्ह्रदि घटाकारानुप्रवेशस्तत्राह—निघृष्टेति । यदा नयनतारके पटलादिदोषराहित्याच्छाणनिष्टष्टनूतनेन्द्रनीलामे अवतस्तदा त-योस्तारकयोर्घटप्रतिविम्बसहिता चित्तपृत्तिः प्रविशतीति बाह्य-गतो षटादिपदार्थः प्रतिबिम्बतीत्युच्यते ॥ ३०॥ स चैवं नयनतारकानुप्रविष्टः पदार्थो हार्देनाहमिमानवता जीवेन हृदि प्रतिबिम्बतया श्रिष्टो भवतीत्यर्थः । इति अनया रीत्या घटादि बाह्यं बहुत् बहिरवभासमानमेवान्तर्हदि अहंकारसंवलि-तजीवहेयलमायातीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ चेतनस्यार्थसंस्पर्धे वेदन-नियमो बालपश्वादिष्वपि प्रसिद्ध इत्याह--यदिति । स्थानरे-ष्वपि गुल्मविशेषे स्पर्शमाश्रेण पत्रसंप्रटीकरणदर्शनासद्वेदनं सर्वत्रानुमीयत इति भावः ॥ ३२ ॥ दूरस्थविषयस्य कथं गो-लकसंस्पर्श इति पामरशङ्कामपाकुर्वन्नाह--अन्छस्येति । गोलकातिरिकस्य सञ्छतमस्येन्द्रियस्य रदमयः प्रागुक्तरीत्या जी-वबेष्टिताः सन्तः पुरोवतिविषयं कोडीकुर्वन्खाळिङ्गन्ति ॥३३॥ चक्षु-युक्तं कमं स्पर्शादावप्यतिदिशति—एष एवेति ॥ ३४॥ शब्दे विशेषमाह--शब्दस्खिति । शब्दस्य वृत्तिप्रतिविम्बनं विनापि साक्षाच्छ्रोत्रद्वारान्तःप्रवेशोऽपि संभवतीति भावः । इत्यं गन्धस्यापि पवनद्वारान्तःप्रवेशसंभवोऽस्त् नामेत्याशयेन ।

यथा कमलजस्पैतत्सर्वमेष खया श्रुतम्॥

तिष्ठ निविष्टमतिः समताया-

मस्तसमस्तभवामयमायः॥

यथासंभवमुक्तन्यायमुपसंहरति—ईत्थमिति ॥ ३५ ॥ इदानी रामः प्रसङ्गात्सर्वेषां प्रतिबिम्बानां खरूपं जिज्ञायुः प्रच्छति--दृश्यत इति । यत् मानसानि च आदर्शाक्ष तस्समाहारे । काचकांस्यमणिजलादियश्रदारूणामीदरेषु उदरान्निर्गतेषु नवप-ह्नवादिषु यस्प्रतिविभिवतघटमुखप्रभादि एतत् किमारमकं तम्मे ब्रूहीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ यत्र बिम्बस्य सत्यत्वेऽपि चित्रतिबिम्बभू-तयोर्ब्येष्ठिसमष्टिजीवयोर्बिम्बातिरिक्तं रूपं भ्रान्तिमात्रसिद्धं न निर्वेक्तं शक्यं, तत्रात्यन्तजडयोर्भुखदर्पणयोर्घटचित्तवृत्योर्वा प-रस्परसापेक्षं प्रतिबिम्बखरूपं दुर्वचमिति कि बाच्यमित्याशये-नोत्तरमाह—अत्यन्तेति । दशश्चैतन्यात्मनो भ्रान्ति विद्यि ॥ ३७ ॥ न केवलं प्रतिबिम्बमात्रं भ्रान्तिरपि तु जगदपी-त्याह—ताबदिति । अप्यर्थे तुशब्दः । तावनमात्रं भ्रान्तिमा-त्रम् । अतएव तव इह जगति विश्वासी मास्त । अहमिस्यादिः प्रपन्नस्तरङ्गस्थानीयश्चिन्नलात्प्रथगसन्नित्यर्थः । वर्तमानं तु सदा चिज्जलमेनेखर्यः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे राम, त्वं निसमसक्तमितः सन् शान्ता मृषाभूतसुखदुःखे वेत्तीतिमृषासुखदुःखविद्वि-र्यस्य तथाविधश्च भूला अस्ता समस्ता भवलक्षणामयरूपा माया यस्य तथाविधः सन् समतायां ब्रह्मस्वभावे निविष्टमति-स्तिष्ठेलर्थः ॥ ४० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणताल्पर्य-प्रकाहो निर्वाणप्रकरणे पञ्चादात्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

जीवः खानि मनो देहः पुर्यष्टकमिति भ्रमः । अवोधादेव बोधे तु ब्रह्मैबेकमितीर्यते ॥ ३ ॥ कलनोन्मुखतां यातमित्यादिना वर्णितमहंकारदेहेन्द्रिया-

ब्रह्मपूर्यप्रकस्यादावर्थसंविद्यथोदिता। पुर्यष्टकस्य सर्वस्य तथैबोदेति सर्वदा ॥ ર विद्धि पूर्यप्रकं जीवो यो गर्भस्थेन्द्रियोदयः। यद्यथा भावयत्याद्य तत्तथा परिपश्यति॥ इन्द्रियाणीन्द्रयार्थाख्यं विद्धि संवेदनं स्वकम्। संपन्नं च यथा तत्ते प्रोक्तमाद्यमनःस्थिती ॥ शुद्धा संवित्संभवन्ती संवेदनमनिन्दितम्। ततोऽहंबेदनानन्तजीवपुर्यष्टकान्विता ॥ 4 न त्वेकत्वादमन्तत्वाद्वेद्यत्वादनामये। अभावत्वादनेकस्वादशून्यत्वात्परा स्थिता ॥ દ્ चेत्यादिवुद्धा तर्तिकचिन्न मनस्तां च गच्छति। न च जीवत्वमायाति न च पुर्यष्टकात्मिका ॥ 9 न विद्यादिविलासोऽस्ति सोस्ति नास्तीव यः सदा। परमात्मेति कथितो मनःषष्ठेन्द्रयातिगः॥ ረ तसात्संपद्यते जीवश्चिनमूर्तिर्मननात्मकः। भ्रमः केषस्रमित्याद्य उपदेशाय गीयते ॥ ९ यतः कुतश्चित्संपन्ने त्वविद्यामय आमये। उपदेश्योपदेशेन प्रविलीने विचारणात्॥ १०

दीनां प्रागसतां कल्पनं जीवसमष्टेः पद्मजस्मेव व्यष्टेस्तवापि तस्यमिति तात्पर्यं खया ज्ञातमेवेति वक्ष्यमाणोपोद्धाताय प्रथ-ममनुबदति--- प्नरिति । अप्यर्थे पुनःशब्दः । कमलजस्येव भवतोऽपि सृष्टेः पूर्वमनाद्यन्तमिखादिवर्णितब्रह्मस्वभावे स्थि-तस्य बक्षरादयो न संपन्ना इत्येतत्सर्वमेत्र खया मद्भनता-त्पर्ये भ्रुतम् । अवधारितमित्यर्थः ॥ १ ॥ एवं पुर्यष्टककल्पनोत्तरं व्यवहार्यार्थकल्पनमपि समष्टिवदेव व्यष्टीनामित्याह-नहाति । ब्रह्मा हिरण्यगभेः समष्टिपुर्यष्टकं तस्य यथा सर्गादी व्यवहर्त-व्यार्थसंविदुदिता तथा सर्वस्य व्यष्टिपुर्यष्टकस्याप्युदेति ॥ २ ॥ तदेव गर्भस्थितिमारभ्य दर्शयति—विद्धीति । यो व्यष्टिजीवो गर्भस्थ एव चक्षरादीन्द्रियोदयविशिष्टः पुर्यष्टकात्मा पष्टे मासि संपद्यते स तदारभ्य यदाशा व्यवहर्तव्यं वस्त भावयति तथा तत्स्वनासनया परिपद्यतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ एवंच आद्यमनः-स्थिती हिरण्यगर्भमनोव्यापारे यथा खर्क संवेदनं इन्द्रियाणि इन्द्रियाधील्यं च संपन्नं तथा तते तवापि व्यष्टेः संपन्नमिति मया प्रोक्तं फलतीत्यर्थः ॥ ४ ॥ सर्गात्पूर्वं संभवन्ती व्यष्टिसम-ह्योरेकेंव शद्धा संवित ततस्तदनन्तरं अहंवेदनालक्षणानन्तजी-वपूर्वष्टकान्विता सास्त तथापि संवेदनखरूपमनिन्दितमेवे-त्यर्थः ॥ ५॥ वेद्यदोषात्सेवेदनं तत् कृतो न निन्द्यते इति चेदेशस्य परमार्थतोऽसस्वादित्याह—नित्तति । एकलादिहेतु-भिरनामये संवेदने परस्य तदन्यस्यास्तिता राखता न लिख-म्बयः । नास्तित्वे च अभावलादयस्रयो हेतवः । अभावलाहे-शकालकृतपरिच्छेदवस्वादनेकलाद्वस्तुकृतपरिच्छेदवस्वादश्र्न्य-लास्थललाश्रेत्यर्थः ॥ ६ ॥ नतु संवेदनमेव मनस्तादिभावं

प्रशान्तसकलाकारं शानं तत्रावशिष्यते । यत्राकाशमपि स्थूलमणाविव महाचलः॥ ११ यत्रोद्यदाचारमपि सद्प्यसदिव स्थितम्। जगज्जान्धिपयांस्त्यकत्वा कार्ये त्वं तिष्ठ निर्मले १२ असम्मयमविद्याया रूपमेव तरेव हि। यद्यीक्षितासती नृनं नदयत्येव न ददयते॥ १३ आलोकितं नाम कथमवस्तु किल लभ्यते। प्रयत्नेनापि संप्राप्तं मृगतृष्णाम्बुकैरिव ॥ १४ असदेव सदेवासद्ज्ञानादस्य सत्यता । ब्रानाद्यथास्थितं वस्तु दृइयते नइयति भ्रमः॥ १५ अविद्याया विचारोऽयं जीवपूर्यप्रकादिका। अप्यत्यन्तमसत्यायाः कल्पनाकित्पतात्मनः ॥ १६ तस्यास्त उपदेशाय सेयं जीवादिकल्पना। कृता शास्त्रैः प्रबोधाय तां त्वमेकमनाः श्रृण ॥ १७ जीवत्वमिव संप्राप्ता पुर्यष्टकपदस्थिता। कला कलङ्ककलिता चितिराबोधनोन्मुखी॥ १८ यद्यथा भावयत्याद्य तत्त्रधानुभवत्यलम् । सत्यो भवत्वसत्यो वा बालेन निहा यक्षकः॥ १९

गच्छतीत्युक्ते तत्र मनस्तादीनामसत्यत्वे संवेदनमेवासत्यं कि न स्यात्तत्राह-चेत्यादीति । चेत्यमन्तव्यादिगोचरबुद्धिशृह्य-ध्यारोपमात्रं तन्न वास्तवमनस्ताप्राप्तिः सेत्यर्थः ॥ ७ ॥ तर्हि विद्याविलासाविभूतस्वरूपलात्पूर्वं तदप्यमत्ति न स्यात्तत्राह-नेति । आदिपदाचरमप्रमाणमननादिपरिग्रहः । यो मूर्ढेर्नास्त्ये-विति करूप्यते स परमात्मा सदास्ति ॥ ८ ॥ यदाद्वितीय एव सः तर्हि 'तस्मात्मर्व एत आत्मानो व्यूचरन्ति' इति श्रुत्मा अ-मिविस्फुलिङ्गन्यायेन जीवसंपत्तिः कथमुक्ताति चेदुपदेशाय कल्पनयेत्याह—तस्मादिति ॥ ९ ॥ अतएवाविद्यारोगस्य न मूलं चिन्त्यं किंतु चिकिर्सेव चिन्तनीयेति मूलकस्पनादिधि-कित्सोपाय एव न वास्तव इत्याह-यत इति । प्रविलीने सति खरूपज्ञानमेवायशिष्यत इति परेणान्वयः ॥ १० ॥ ११ ॥ उद्यदाचारं निष्पद्यमानव्यवहारार्थं क्रियाशालीति सद्याव**हारिक**• सत्यमप्यसच्छन्यमिव यत्र स्थितं तत्र त्वं जगजान् विषयां-स्खक्ला निर्मले जीवन्मुक्तः काये सत्येऽवतिष्ठ ॥ १२ ॥ इदानीमविद्यायाः खरूपमाह-असन्मयमिति ॥ १३ ॥ मृग-तृष्णाम्बुकैरिव संप्राप्तं दृष्टान्तोऽप्यप्रसिद्ध इत्यर्थः ॥१४॥ अस-देव सद्भाति यतः असद्ज्ञानादेवास्य सत्यतेत्यन्ययः ॥ १५॥ सत्यात्मनः संनिधानादत्यन्तमसत्याया अप्यविद्यायाः कल्पना कल्पितेखर्थः ॥ १६ ॥ तस्य ते जीवस्योपदेशाय तस्याः अवि-वाया हेतोर्जीवादिकल्पना कृता ॥ १०॥ आबोधनोन्मुखी बाह्यार्थदर्शनोत्सुका सती यद्यथा भावयतीति परेणान्ययः ॥ १८ ॥ बालेन संभावितो यक्षक इव सत्यः असत्यो वा भवत्। अयं तु पश्चतन्मात्रस्य पश्चीकरणात्मिका देहकलनां

पश्चतन्मात्रकलनां संभावयति सत्तया । तत्रात्मनि तथा रन्ध्रान्प्रपश्यति तथोदितान् ॥ २० एभ्य एव समुत्पन्नं वहिःस्थं भूतपञ्चकम्। पश्यन्त्यनन्यदन्याभं शाखाशतमिवाङ्करः॥ २१ इदमन्तरिदं बाह्यमिति निश्चयवांस्तर्तः। जीवो भाषं यथादत्ते तत्तथा द्रढयत्यथ ॥ २२ रिमजालमिवेन्दोर्यदात्मनः प्रतिभासनम्। बाह्यस्पर्शतया तेन तदेवाशूररीकृतम्॥ २३ मरिचरंगव यत्तैक्ष्यं शुन्यत्वमिव खस्य यत्। आत्मनो वेदनं यश्व तदेवान्यदिव स्थितम्॥ રક अजैव निश्चयं बद्धा नियमः सुदृढीकृतः। अनेनेत्थमनेनेत्थं भाव्यमित्यवखण्डितम्॥ २५ स्वभावेतरनामासी स्वसंकल्पमयात्मकः। कश्चित्कदाचिद्धवति स्वभावेनैव नान्यथा॥ २६ आत्मनेवेदमखिलं संपन्नं हैतमह्यम्। खण्डो मधुरसेनेव मृदेव च महाघटः॥ २७ संनिवेशविकारादिदेशकालादिसंभवात्। संभवत्यत्र नत्वीशे देशकालाद्यसंभवात्॥ 26

सत्तया सत्यतया संभावयतीत्युत्तरेणान्त्रयः ॥ १९ ॥ तत्रा-त्मनि देहात्मनि रन्ध्रान् इन्द्रियद्वाराणि । छान्दसं पुंस्लम् ॥ २० ॥ एभ्यः पश्चतन्मात्रेभ्यः परमार्थतोऽन्यदेवान्याभमि-न्द्रियद्वारेः पर्यति ॥ २१ ॥ तत्र इदमिन्द्रियमनः प्राणादि अन्तः । इदं घटादि बाह्यम् । भावं वासनाम् ॥ २२ ॥ तत्र विषयेन्द्रियसंयोगामिव्यक्तं स्वात्ममुखमेव विषयमुखतया संभा-वयतीलाइ—रिक्मिजालमिति ॥ २३ ॥ एवं स्वाभाविकं खबे-दनमेव विषयसंनिकर्षाज्ञातमहंकारात्मनी धर्म इति संभावय-तीखाइ-मारेचस्पेति ॥ २४ ॥ अत्र सांसारिकविषयभोगे-ष्वेव पुरुषार्थपर्यवसानानेश्वयं बद्धा ऐहलैंकिकपारलैंकिकटामी-चरणनियमः सुदृढीकृतः । अनेन ठाँकिककर्मणा । अनेन वेदि-ककर्मणा । अवखण्डितं नश्वरं सुखसुद्दिरयेखर्थः ॥ २५ ॥ तर्प्रकः प्रवृत्तिनियमः खाभाविकरागादिकृत इतरम्त् शास्त्रकृतः। द्विविधोऽप्ययं संकत्युमयात्मकस्तयोः कदाचित्कविदेव स्वाभा-विकपुरुषयक्षेनेवेतर जिला भवति नान्यथेल्यर्थः ॥ २६ ॥ तत्रोभयत्राप्यञ्च आत्मव खभावशास्त्रान्यतरानुसारी तत्तव्यापा-रसाधनफलात्मना विवर्तत इलाह—आत्मनैवेति । खण्डः मधुसारशर्कराविशेषः ॥ २७ ॥ यद्यपि खण्डघटा पूर्वतनद्रव-पिण्डावस्थयोविनाशाद्विकारा तथापि माधुर्यमृत्खरूपाविनाशा-सदंशे विवर्तदृष्टान्तौ । नहि तद्वद्वद्वाणि विकारः संभवति तद्वैध-र्म्यादिलाह—संनिवेशेति । अत्र मधुमृदादी । ईशे ब्रह्मणि॥२८॥ अथवा खण्डो मधुरसेनेवेति वाक्ये खण्डो वनखण्डः, मधुर-सेन वसन्तद्रवेणेवेत्यर्थस्तथा चाविकार एव वृक्षविकारहेतुर्जन लभागो द्यानत इत्याशयेनाह—इत इति । यथा वृक्षप्रविष्टो रसो जलमितः पत्रमितः पुष्पमहिमिति वैनिष्येणोदितः सन्

योग० १९३

इतः पुष्पमितः पत्रमहमित्युदितो यथा । खण्डे स्वात्मनि नः सत्तारसोऽद्वित्वे द्वितां वहन् २९ इतः पट इतः कुड्यमहमित्यादितस्तथा। सर्वात्मनात्मनि ब्रह्म विद्धि त्वं द्वित्वमाहरत्॥ ३० अद्याङ्करोऽहमद्यार्करगहं त्वद्य वारिदः। यथेति तिष्ठत्यम्भोदस्तथात्मा सदसद्वपुः॥ ३१ इति भाव्यमनेनेदमित्थं सर्वेश्वरे ततम्। क्रमं खण्डयितं छोके कस्य नामास्ति शक्तता॥३२ आदर्शस्वच्छ आकाशे नेव स्वः प्रतिविम्यति । व्यतिरेकासंभवतः कचत्येव हि केवलम्॥ 33 ब्रह्मणि त्वात्मनात्मेव स्थितः कचति विम्वति । हैतीभवत्यदेहोऽपि चिन्मयत्वात्स्वभावतः॥ 38 यद्यथैवात्मकचनं वेत्ति तं भवतात्मना । असत्यमपि तन्नेह व्यभिचारी कदाचन ॥ 34 हेमत्वकटकत्वे द्वे सत्यासत्यस्वरूपिण । हेम्रि भाण्डगते यहश्चित्वाचित्त्वे तथात्मनि ॥ ३६ सर्वगत्वाश्चिनेश्चित्त्वं नित्यं मनसि विद्यते । हेमत्वं कटकस्पेव जडमावः स्थितोऽन्यदा ॥ ३७

अद्वित्वेऽपि द्वितां वहन् दृष्टस्तथा नः स्वात्मनि प्रमिद्धयत्तारः। ब्रह्मापि इतः पट इतः कुज्यमहामित्यादितो भेदात् सर्वजगदा-त्मना आत्मनि द्विलमाहरद्विद्वीति परेणान्वयः ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ यथावा अम्मोदो मेघः अद्य ग्रीष्मे अर्कहनेवाहांमति ताबूप्येण तिष्टति । तत आयवर्षारम्भे वारिदानावसरे वारिदो-Sहमिदि तिष्ठति । ततो भूमिप्रवेशेनाङ्करान्तर्जलात्मना प्रवेशे अधाइरोहमिति तिष्ठति । तथा आत्मापि कालभेदेन भावाभा-वाकारी भूत्वा तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ अयं च जगदिवर्तनिय-मक्रमः कल्पितोऽपि न केनचिदन्यथा कर्तु शक्य इत्याह---इनीति । सर्वेश्वरे ब्रह्मणि । ततं प्रसिद्धम् ॥ ३२ ॥ एवं वस्तु-खभावनियतिरपि वस्तुभेद्भिना नान्यथा कर्तु शक्येत्याशये-नाकाशादिखभावस्याज्ञातत्रद्यस्यभावस्य च वैउक्षण्यमाह---आ-दर्शेति द्वास्याम् । आदर्शवरखच्छे आकाशे स्वः स्वीयो भागः कार्यं वा नेव प्रतिबिम्बति । कुतः । व्यतिरेकासंभवतः आ-काई। आकाशकार्यं भृतान्तरे वा आकाशभेदाभावात् । किंतु केवलमाकाशं निष्प्रतिबिम्बदर्पणोदग्वत्स्वच्छतया कचति । दी-प्यत एवेलार्थः ॥ ३३ ॥ साविद्यं अद्य तु न तथेलाह-- नहा-णीति । कचति सर्ववस्तुशक्तयादिरूपेण दीप्यते । जीवरूपेण प्रतिविम्बति । भेदकल्पनया च द्वैतीभवति ॥ ३४ ॥ अम्लेवं कि ततस्तत्राह-यदिति । तत्र सगीदी यद्वस्तु खभावेनात्म-कचनं वृत्तं तं स्वभावमसत्यमपि भवता सत्येनात्मना सत्यं वेति स च नियमो न कदाचन व्यभिचारीति सर्वापि नियतिः सिद्धेखर्थः ॥ ३५ ॥ सलानृतामधुनीभावे वाचारम्भणश्रुतिद-शितन्यायेन द्रष्टान्तमाह—हेमलेति ॥ ३६ ॥ अतएन प्रथम-कार्ये मनसि चिज्जडोभयरूपता दश्यते तत्र यशिखं तत्सल्यमि-

चिन्वजाड्यात्मकं चिनं दृढं भावयति स्वयम्। यथा यदैच यद्धावं तथा भवति तत्तदा ॥ काले काले चिता जीवस्त्वन्योन्यो भवति स्वयम्। भाविताकारवानन्तर्वासनाकलिकोदयात् ॥ 36. स्वप्ने हृष्टो यथा यामो याति सत्तान्यतेक्षणात्। देहादेष्टं तथा याति देहोऽयं प्रतिभात्मकः ॥ 80 प्रतिभासो यथा स्वप्ने नरः कुड्यं पटो भवेत्। भवत्यसत्यमेवेदं देहान्तरमिदं स्वतः॥ 38 असत्यमेव भ्रियते त्वसत्यं जायते पुनः। जीवः स्वप्रतिभासेन स्वप्नयत्स्वान्यरूपवत् ॥ પ્રર कालेनेतादशं रूपमिदं नान्यत्वमेति व । प्रकृतं निश्चयारुढं भ्रमन्त्येने भवः स्वतः॥ કર वस्तु दृष्टमदृष्टं च स्वप्ने सम्मुभुयते। जीवस्वप्रे जगद्वपं विद्धि वेद्यविद्यंवर ॥ જજ

ल्याह--सर्वगलादिति । अन्यदा कदाचिदिल्यर्थः ॥ ३७ ॥ चित्तजाक्ष्मेति पाठे चित्तस्य जाड्यं जडदंहविषयाकारस्तदा-रमकं चित्तं दृढभावनया यदेव यथा दंबनरस्थावरादिना येन प्रकारेण यदा यद्धावं भवति तदा तथव तद्धावं भवति। अनु-भवतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ अतएव कालभेदेन जीवस्याहमाकार-भेदानुभव इलाह—काल इति । चिता अन्तर्वासनाकलिका-नासुदयाद्विकासाद्वैचित्रयेण भाविताकारवान्सन् अन्योऽन्यो भन वति ॥ ३९ ॥ यथा स्वप्ने दश्ने ग्रामो वनादिसत्तान्यतेक्षणादु-नादिभावं याति तथा देहभूतोऽयं जीवोऽपि देहाहेहान्तरभावं याति । यतः स्त्रप्रचंदव प्रतिभासात्मकः इत्यर्थः ॥ ४० ॥ यथा खप्ने प्रतिभासत इति प्रतिभासी इस्यमानी नरी झटिति कुड्यं भृत्वा पटो भवेत्तथा मरणमून्छीयामपि प्रतिभासमानमिदं देहा-न्तरं भवतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥ नन्वयं दहः प्रलक्षं म्रियते दहाते च स कथं देहान्तरं भवेत्तत्राह—असत्यमेवेति । मरणजनना-दिकमपि मर्तुः प्रातिभासिकभेव । जीवतां तु तदेहस्य दाहादि-दर्शनं स्वाविद्याकत्यतस्यैव न तद्वासनामयस्येति भावः । स्व-स्यान्यरूपवदेहान्तरवदिखर्थः ॥ ४२ ॥ तर्हि कि योवनवार्ध-वयवदेहान्तरमध्येतदेहस्य कालिकः परिणामः, नेखाह्-काले-नेति । एतादशमेतदेहरूपं कालेन अन्यत्वं देहान्तरभावं एतीति न । यतः प्रकृतमिदं शरीरं बाल्याखवस्थाभेदेपि तदेवे-दमिति प्रत्यभिज्ञानिधयामुहम् । एते भूतभाविदेहास्तु न । प्रत्यमिक्कानाभावादन्येनान्ये सन्ति न सन्तीत्यादिम्रान्ति गन च्छन्ति अतस्तेषां खतो जीवतएव भवः, वासनया समुद्भव इलार्थः ॥ ४३ ॥ ननु कदापि प्रागदृष्टे देवादिशरीरभावे कास्य वासना तत्राह-वास्ति । इदं तु जगद्रूपं जीवस्त्रप्रेऽन्तर्गतं विदि । 'तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वपाः' इति श्रुतेरित्यर्थः । इदं तु खप्ने अननुभूतस्यापि दर्शनमिह जन्मन्यननुभूताभिप्रा-येण । 'दर्ष्ट चादर्ष्ट च श्रुतं चाश्रुतं चासुभूतं चाननुभूतं च सर्व परयति' इति श्रुतिमयलम्ब्योक्तम् । वस्तुतस्त्वनादौ संसारे

अजाप्रदृष्टिदृष्टो यः स्वाभिधानादिनेरितः। न स्वप्नो विद्यते तस्मादच्छात्मा चितिमात्रकम् ४५ अद्यापूर्वामिधं स्वप्नं यथा पश्यति नान्यथा। अग्रद्धं तथैवार्थं चेतनं चित्रपश्यति ॥ ક્રફ प्राक्तनी वासनाद्यापि पौरुषेणावजीयते। शः कुकर्माद्य यह्नेन प्रयाति हि सुकर्मताम्॥ 80 मोक्षाहते न शाम्यन्ति जीवतां चक्षुरादयः। उन्मजनित निमर्जनित केवलं देशकालतः॥ 82 चितः स्वकलनात्तस्य देहोत्र इव तिष्ठति। पञ्चात्माभावितोऽसत्यो महायक्षः शिशोरिष ४९ मनोबुद्धिरहंकारस्तथा तन्मात्रपञ्चकम्। इति पुर्यष्टकं प्रोक्तं देहोऽसावातिवाहिकः॥ 40 अमूर्त एव चित्तात्मा खत्वमस्यातिपीनता । वाततास्य महागुल्मो देहतास्य सुमेरता ॥ 48

नाननुभूतं किचिदस्तीति मरणकाले भाविदेहारम्भककमोद्वीध-तवासनानुसारेणव देहान्तरोद्भव इति बोध्यम् ॥ ४४ ॥ तर्हि वाक्यजन्यब्रह्मसाक्षात्कारकभ्यब्रह्मभावोषि देहान्तरवद्वासना-मयः स्वप्न एव कि न स्यात्तत्राह--अजाबदिति । यः 'शिव-मद्रैतं चतुर्थं मन्यन्ते इति स्तामियानादिना ईरितः अजाध-दृष्ट्या तुरीयया दृष्टः परमात्मा तस्य उक्तलक्षणिविधः स्वप्न एव न विद्यते जामति कदापि तदनुभवाभावेन तद्वासनाऽप्रसि-देखस्य वासनामयत्वायोगात्तस्मादसावच्छात्मा चैतन्यमात्रमि-सर्थः ॥ ४५ ॥ स एव चिदात्मा चेतनं जीवो भूता अद्य अपूर्वाभिधमिनवं वर्तमानमर्थं यथा चित्खभावादेव पश्यति नान्यथा तथैवामे दृष्टमप्यर्थ प्रपश्यतीत्यर्थः ॥ ४६ ॥ अत एवारप्रविषयेऽपि भावनाप्रचयेन रहीकृतवासना पूर्वरप्रविषयां बारानां जयतीति पुरुषप्रयक्षप्राबल्यं प्रदर्शितमित्याह-प्राक्त-नीति ॥ ४७ ॥ एवं जीवस्य वासनापरिणतिलक्षणो देहादि-बन्धो वर्णितः । इदानीं कदा तच्छान्तिरिति वाञ्छायामाह-मोक्षादिति ॥ ४८ ॥ मोक्षं चिनैव देहादिनिवृत्तिः किं न स्यातत्रह-चित इति । यत्रधितो यावन्मोक्षं देहाकारकलना वासना तिष्ठत्येव । खक्ळनेवैतस्य जीवस्य पश्चात्मा देहोऽप्रे तिष्ठतीव । यथा शिक्षोर्मावितो महायक्षोऽप्रे तिष्ठति तह्रदुर्नि-वार इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ इदानीं कथंन्वित् स्थूलदेहनिवारणपि मोक्षं विना लिङ्गदेहलक्षणं पुर्यष्टकं दुर्निवारमित्याशयेन तद्श-यति-मन इति ॥५०॥ नत्र शास्त्रे ज्ञानेन्द्रियं कर्मेन्द्रियं प्राणां भूतानि अन्तःकरणमविद्याकामकर्माणि पुर्यष्टकमित्युक्तं तत्तु प-श्रीकृताकाशवाय्वादिलिङ्गघटितस्थूलान्तं मूर्तरूपमपि स्यात्तत्क-थममूर्तमनोबुद्ध्याद्यष्टकमेव पुर्यष्टकमुक्तं तत्राह्-अमूर्तएवेति। लदुक्तं मूर्तपुर्यष्टकं तदा स्याद्यदि पत्रीकरणेनामूर्तानां तन्मा-त्राणां स्थील्यं स्यात् । अयं तु तन्मात्ररूपो लिक्नातमा अमूर्त-एव । अस्य खत्वं पश्चीकृताकाशस्वमति पीनतानिरवधिकं स्थील्यं तच न संभवति । नहामुर्तवासनाकोटीनामपि मेछने

विरजस्त्वक्रमेणैव निरवस्थस्तु मुक्तिभाक्। सुपुप्ततेकावस्थास्य जडाः कोडीकृता यया ॥ ५२ स्वप्रनाम्नी तथावस्था देहप्रत्ययशालिनी। आमोक्षं भ्रमतीहायमिति स्थावरजंगमः॥ ५३ कदाचिदि सुषुप्तस्थः कदाचित्स्वप्रवित्स्थितः। आतिवाहिकदेहोऽयं सर्वस्यवावतिष्ठते ॥ ५४ यदा सुषुप्रभावस्थो भाषिदुःस्त्रप्रवेधितः। तदा कालानलसमस्तिष्ठत्यनुदिताकृतिः॥ ५५ स्थावराद्यास्ववस्थासु कल्पत्रृक्षदशासु च । भवत्येव सुपुप्तस्थो घनमोहशिलाघनः॥ 45 सुषुप्ततास्य जडता स्वप्नोत्थेयं हि संसृतिः। यः प्रबोधोऽस्य सा मुक्तिस्तज्ञात्रद्या तु तुर्यता ५७ जीवप्रवोधान्मुक्तिहिं प्रबोधात्परमात्मताम्। सोऽभ्येति श्राहितमलं ताम्रं कनकतामिय ॥ 46 जीवप्रवोधान्मुक्तियां सा चेह द्विविधोच्यते। पका जीवन्मुक्ततेति द्वितीया देहमुक्तता ॥ ५९ जीवनमुक्तिहिं तुर्यत्वं तुर्यातीतं पदं ततः।

स्थील्यं दृष्टं यदास्य खलमेव दुर्छमं तदा स्थूडवातता महान् गुल्मो गृक्ष इवात्यन्तमसंभाविता । एवं स्थूलतेजोजलपृथ्वी-तापि । एवंच स्थूलभूतानामेवासंभवे अस्य परमाणोरप्यतिस्-क्ष्मस्य देहता सुभेरुतेवात्यन्तासंभावितेति न भीतिकदेहान्तं पु-र्यष्टकं वर्ण्यत इत्यर्थः ॥ ५१ ॥ गुक्तयनुपयोगादपि न मोक्षशा-खेऽत्र स्थूलसद्भावकल्पना युक्तेत्याशयेनाह—विरजस्त्वेति । मनोमात्रमेव दहादिप्रपद्यक्षेन्मनसो वैराग्यायभ्यासेन विर-जस्त्वे रामादिसाधनसंपत्ती वाक्याज्ज्ञानोदयक्रमेण मनःकरिपः तस्त्रप्रायप्रपश्चस्य तन्मूलाज्ञानस्य च बाधे स्वकार्यकारणावस्था-नन्धद्वयश्चन्यस्य मुक्तिरुपपद्यते । स्थूलभूतभौतिकमूर्तप्रपञ्चाभ्यु-पगमे तु तादशस्य ज्ञानेन बाधादर्शनात्र मुक्तिरुपपद्मत इत्यर्थः। एवंच निष्कर्षे खप्रसुषुप्ती द्वे एवावस्थे न जामनामी स्थूलवि-षया अन्या अवस्था केनन्विदुपपाद्यितुं शक्येत्याशयेन ते वि-भज्य दर्शयति-सुषुप्ततेति सार्धन। यया जडाः सर्वदेहादि-प्रपन्ना वासनात्मनोपसंहत्य कोडीकृताः ॥ ५२ ॥ इति एवं परिदर्यमानप्रकारेण स्थावरजंगमराकाररातिवाहिकदेह एव आमोक्षान्त्रमतीत्यर्थः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ भाविभिर्दुःस्वप्रैर्वासना-रमनान्तःप्रविष्टेवेंधितो विद इव गतस्मृतिरत एवानुदिताकृति-श्वित्प्रतिबिम्बखचितल।दुपसंहतजगस्वाच काळानलसमो दीप्त-स्तिष्टति । अनेनान्तज्ञानशून्यनेयायिकादिसुषुप्तिः प्रत्युका ॥ ५५ ॥ तत्र स्थावरादिनिकृष्टावस्थासु जाड्याधिक्यात्सुषुप्ति-प्राचुर्थमित्याह —स्थावराद्यास्त्रिति । अप्यर्थे चशब्दः । तथाच क-ल्पष्टकाणां पुण्याधिक्यात्कृमिकीटक्षुत्तृषादिदुःखाभावादानन्दा-भिक्येपि न मनुष्यादिवत्प्रबोधोऽस्तीति तमस्तितेवेखर्थः ॥५६॥ तथान नित्तजान्यप्रकर्वे एव युप्तिश्चित्रभगमेव संस्तिश्चि-

बोधो जीवः प्रबोधोऽयं सच वृद्धिप्रयत्नतः॥ ફિંગ शातप्रमाणो जीवोन्तयों जानातीह तन्मयः। पश्यतीमं भयं चैव सुदीर्घस्वप्रविभ्रमम्॥ ६१ मिध्योदितः स्वहृदये स्वस्थ एव शिलीकृते । जीवानामन्तरे त्वन्यन्न किंन्निचित्कलां विना ॥ ६२ तामेवान्यतया पश्यन्मुघेव परिशोचति । जीवाणोरन्तरे त्वन्यन्न किंचित्परमादते ॥ ६३ यत्र तत्र जगदृष्टमहो मायाविजृम्भितम्। स्थाल्यन्तः कथदम्त्रनां यथा नाना भ्रमोदयः દ્દેષ્ઠ जीवाणृनां तथेवान्तर्मिथ्यासंसरणोदयः। वन्धोस्य वासनावन्धो मोक्षः स्याद्वासनाळयः ६५ वासनान्तोऽस्य सापुत्री स्वप्ने विस्फुरति स्थितिः। घनवासनमोहोऽयं जीवः स्थावरतादिभाक् ॥ ६६ मध्यस्थवासनस्तिर्यकुपुरुषस्तनुवासनः। यदान्तर्जीवितेनान्तो वहिर्जाता घटादयः॥ जीवेक्यादुभयोः सत्ता ब्राह्मब्राहकयोस्तदा । आत्मानात्मसमालीढो बहुरन्तर्यदा चिता ॥ ६८

त्तस्य तत्त्वबोधएव बन्धमुक्तिस्तुर्यतेवास्य जात्रदिति पर्यवसन्न-मिल्याह—सुप्रप्ततेत्यादिना ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ प्रबोध उत्कृष्टचिन्मात्रब्रह्मरूपो भवति । सच वोधो वुद्धः पुरुषप्रयत्नतः ॥ ६० ॥ तत्त्वतो यावान्यश्रेति ज्ञातप्रमाणो जीवः सर्वान्तयाँ जानाति भासयति साधी तन्मय एव भवतीत्वर्थः । यस्त्रज्ञा-तप्रमाणः सोऽपि परमार्थतः स्वस्थ एवाज्ञानाच्छिटाबर्ह्हाकृते खहृदये सदीर्घसप्रविश्रमं तीत्रं भयं पर्यतीति परेणान्वयः ॥ ६९ ॥ तर्हि कि जीवानां हृदये वास्तवं भयमस्ति, नेखाह-जीवानामित्यादिना ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अस्य जी-वाणीः सामुप्ती स्थितिर्वासनानामन्तोऽवधिः । तुर्यतुर्यातीतयोः निर्वासनलात् । सच खप्ने स्फुरति वैचित्र्येण स्फुर्टाभवती खर्थः । कथं स्फुटीभवति तदाह—धनेति ॥ ६६ ॥ तस्य वासनाक्षुघोत्कर्षादुत्तरोत्तरं शुभयोनित्राप्तिरित्याह-मध्यस्थेति। पुरुषो मनुष्यगन्धवंदेवगन्धर्वादिः वासनानां क्षयतारतम्येन वैचित्र्यस्फुटीभाषमुक्ला प्राह्यप्रहणादिवंचित्र्येणापि तमाह— यदेखादिना । यदा यस्मिन् मुपुप्तिविच्युतिकाले देहान्तः आन-खाम्रव्याप्तप्राणाहंभावरुक्षणेन जीवितन एतावान् देहपरिमित एवाहमिल्यन्तःपरिच्छेदो भवति तदा पटादयः पदार्थ। बहि-र्जाताः संपन्नाः ॥ ६७ ॥ सन्तु बहिः किं ततस्तत्राह—जीवै॰ क्यादिति । तदा चशुरादिद्वारनिर्गतान्तःकरणद्वारा निर्गतेन वृत्त्यविच्छन्नजीवेन घटादीनां न्याप्ती घटमहं जानामीति प्राह्य-ब्राहकयोर्वासनात्मका सत्ता तत्तद्वैचित्र्येण स्फुर्टाभवतीत्यर्थः। एतदेव सप्टमाह--आत्मेति । अन्तःश्थित आत्मा जीवो यदा बहिरनात्मसमालीढो भवति तदा चिता प्राह्यप्राहकवासना मृगतृष्णेबाध्यस्तविभागेन सोदया उदेनीत्यर्थः

तदा प्राह्मप्रहणधीर्मगतुष्णेव सोदया। नेह संत्यज्यते किंचिश्नह किंचिश्न गृहाते॥ ६९ बाह्यान्तरकलाकारश्चिदात्मैकः प्रकाशते । त्रिजगिश्चमत्कारस्त्वलं भेदविकल्पनैः। जोभिताः साश्चिति चिरात्सर्वोद्यायं न विद्यते ७० अब्धिर्यथा जलमपास्तसमस्तमेदः खादच्छमेव सकलं द्रवमेकश्रद्धम्। सर्वे तथेदमपहस्तितमेदजात-माद्यं परं पदमनामयमेव बुद्धम् ॥

इत्यार्वे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे इन्द्रियार्थोपलम्भविचारो नामैकपद्याद्याः सर्गः ॥५१॥

ब्रिपञ्जाद्याः सर्गः ५२

3

वसिष्ठ उवाच ।

यो जीवस्पादितः स्वप्नो नानाकलनकोमलः । तमिमं विद्धि संसारं न सत्यं नाप्यसन्मयम् ॥ नपुंस इव जीवस्य स्वप्नः संभवति कचित्। तेनैते जाप्रतो भावा जाग्रत्स्यप्रकृतोऽत्र हि॥ जीवस्वप्रमिमं दीर्घं क्षिप्रताप्रतिभासतः। असत्यमप्यवस्तृत्वाद्विद्धि वेद्यविदां वर्॥ स्वप्नात्स्वप्नान्तरमिव गच्छन्तो जीवजीवकाः। असत्यमेच पश्यन्ति घनसत्यतयानघ ॥ अजडे जडता तात जडे चाजडतोटिता। असत्ये सत्यता जीवजीवानुभवमोहतः॥ भानोरप्यन्तरखिलं पश्यन्तस्त्रिजगद्धमम्। भ्रमन्ति स्वप्तसंभ्रान्ता इव जीवा मिदालिमिः॥६

एवं हेथोपादेयविच्यमपि वारानाध्यस्तमेव न वास्तवमित्याह-नेहेति ॥ ६९ ॥ शोभितास्तत्त्वबोधेन विराजमानाः । सबाह्या-भ्यन्तरं जगिचवतिरिक्तं न विवते कालत्रयेऽपीखर्थः ॥७०॥ यथा अब्धिः समुद्रस्तत्त्वतो विमृष्टः अपास्तसमस्ततरङ्गवद्भदा-दिभेदः खादाकाशादण्यच्छं सकलमेकं शुद्धं जलमेव तथा इदं सर्वे जगत्तत्त्वतो बुद्धं सत् अपहस्तितं निरस्तं वासनावस्थावै-चित्र्यमेदजातं यस्य तथाविधमनामयं परं पदमेवेलार्थः॥७१॥ ष्ट्रति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

जीवस्वमो जगत्तत्रासंसत्तया तत्परिधयः। तर्धमर्जुनाख्यानं वसिष्टेनावतार्यते ॥ १ ॥

ननु स्वप्नः सर्वेषां जीवानां प्रत्येकं भिन्नः, जाप्रत्प्रपञ्चस्त सर्वेषां साधारणः सर्वैः स्त्रप्रवेधम्येणानुभूयमानः कथं स्त्रप्रः स्यात्तत्राह-य इति । आदितः प्रथमं जीवस्य सर्वेजीवसम-छ्यातमनो यः स्वप्रस्तमेयमस्माकं जामदिति कल्पितं संसारं बिद्धि ॥ १ ॥ किमर्थमेवं कल्प्यत इति चेद्यष्टीनामिव सम्रेष्टेः सप्तान्तराप्रसिद्धेरिलाह्—नेति । तेनास्माकं जाप्रत्प्रसिद्धाः भू-तभुवनादिभावास्तस्य जाप्रस्वप्रोभयस्थानकृतोदया न स्वप्नतो मिद्यन्त इत्यर्थः ॥ २ ॥ असत्यत्यावस्तुत्वाभ्यामपि तस्य सर्वगत्वादनन्तत्वात्स्यस्य जीवस्य जीवतः। यद्भावयन्ति चेतन्ति तदेवाश्विति सत्यवत्॥ पुण्डरीकाक्षनिर्दिष्टामसंसक्तिगति शुभाम्। यामालिक्य महाबाहो जीवन्यको महामुनिः॥ पाण्डोः पुत्रोऽर्जुनो नाम सुखं शीवितमात्मनः। क्षिपयिष्यति निर्दे:खं तथा क्षेपय जीवितम ॥ श्रीराम उवाच।

भविष्यति कदा ब्रह्मन्सोऽर्ज्जनः पाण्डुनन्दनः। कीदशीं च हरिस्तस्य कथयिष्यत्यसक्तताम्॥ वसिष्ट उवाच ।

अस्ति सन्मात्रमात्मेति परिकल्पितनामकम्। स्थितमात्मन्यनाद्यन्ते नभसीव महानभः॥ ११ दृश्यते विमले तस्मिन्नयं संसारविश्वमः। कटकादि यथा हेस्रि तरङ्गादि यथाम्भसि॥ १२

खप्रतां साधयन्वैधम्यीनुभवे निभित्तं दर्शयति—जीवखप्र-मिति । अस्मदीयस्वप्रविश्वप्रवाध्यताया अप्रतिभासतो हेतो-दीर्घम् । तथाच देर्घमेव वैधर्म्यभ्रमहेत्रिति भावः ॥ ३॥ ॥ ४ ॥ वस्तुम्बभाववैपरीखदर्शनादप्यस्य स्वप्नतेत्याह्-अ-जडे इति । अजडे ब्रह्मणि भूतभूवनादिजडता तथा जडे चाहंकारादिदेहान्ते आत्मलामिमानादजहता उदिता । जीवस्य सम्हेरेकदेशभता ये व्यष्टिजीवास्तदन्भवलक्षणान्मोहतो भ्रान्तेः ॥ ५ ॥ जीवाः **मि**दालिभिर्भेदकल्पनपरम्परामिर्भ-मन्ति ॥ ६ ॥ कल्पितभेदेषु सद्यलारोपे कारणमाह-सर्वग-लादिति । व्यष्टिलादेव जीवतोऽप्यखन्तजीवभृतस्य स्वस्य पर-मार्थतः सर्वगलादनन्तलादपरिच्छेदेन सल्यलाश्व यदाद्वाव-यन्ति तदेव आग्न तत्संसत्त्या खसत्तारोपेण सत्यवचेतन्ति । तथाच तत्संसिकत्यागात्तत्सत्यताश्रमनिवृत्ता बुद्धतत्त्वस्य जीव-न्मुक्तिः सिद्धातीति भावः ॥ ७ ॥ अयमेवार्थी भगवद्गीतायां भगवताप्यर्जुनायोपदिष्ट इत्याह-पुण्डरीकाक्षेति । ग्रुमां श्ट-ण्विति शेषः ॥ ८ ॥ तदर्थमर्जुनास्यायिकामवतारयति-पा-ण्डोरिति । सुखं जीवन्सक्तिसुखविशिष्टम् । जीवितमाश्च क्षिप-यिष्यति क्षेप्स्यति । खार्थे णिचि गुणाभावश्छान्दसः ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ अर्जुनावतारे कारणं वक्तं सर्वमूलमनुकामति-अ-सीत्यादिना । स्थितमिति । 'स्थे महित्रि प्रतिष्टितः' इति

१ सवाधान्तर्नेति पाठ:.

चतुर्दशविधा भूतजातयः प्रस्फुरन्खलम् । तस्मिन्संसारजालेऽसिजाले शकुनयो यथा ॥ १३ तत्रेते यमचन्द्रार्कशकाद्याः शंसितक्रमाः । भूतपञ्चकसंसारलोकपालत्वमागताः॥ १४ इदं पुण्यमुपादेयं हेयं पापमिदं व्विति । तैः स्त्रसंकल्पघटिताद्वेदनात्स्थापिता स्थितिः ॥१५ तस्याच यावद्नघ प्रवाहपतिते निजे। कर्मण्यचलसंकादास्थिरं चित्तमवस्थितम्॥ १% भगवान्स यमः किंचिद्रते प्रतिचतुर्युगे । तपः प्रकुरुने भूतद्रलनात्पापराङ्कया ॥ ي ۽ कदाचिद्धौ वर्षाण दश द्वादश वापि च। कदाचित्पञ्चसप्तादि कदाचित्पोडशापि च ॥ १८ उदासीनवदासीने तस्मिन्नियमसंस्थिती । न हिनस्ति जगजाले मृत्यभूतानि कानिचित् ॥ १९ तेन नीरन्ध्रभूतीयनिःसंचारं महीतलम् । भवति प्रावृषि स्वेदी कुञ्जरो मशकैरिव ॥ अर्थतानि विचित्राणि भूतानि बहुयुक्तिभिः। क्षिपयन्ति सुरा राम भुवो भारतिवृत्तये॥ एवं युगसहस्राणि व्यवहारशतानि च। समतीतान्यनन्तानि भृतानि च जगन्ति च॥ २२ वेवस्वतोऽद्य तु यमो य एप पितृनायकः। अनेन त्वधूना साधो परिक्षीणेषु केषुचित् ॥ २३ युगेष्वघविताघाय वर्षाणि द्वादशात्मना । वतचर्येह कर्तव्या दृरास्तजनकर्पणा॥ રપ્ટ तेनेयमुर्वी नीरन्धा भूतर्मत्येरमृत्यभिः।

श्रुतेः ॥ ११ ॥ १२ ॥ तस्मिन्दस्यमाने संसारजाले । शकु-नयः पक्षिणः ॥ १३ ॥ तत्र तासु भूतजातिषु मध्ये शंसितः श्रुतिस्मुलादिवर्णितः कमधारेत्रं येपाम् । भूतपायकं पाचीकृत-तन्मात्रपत्रकं तहक्षणे संसारे । ठोकपाछत्वं तत्तलोकाघिपत्यम् ॥ १४ ॥ इदं श्रुतिस्मृतिसमानारविहिनं पुण्यमुपादेयम् , इदं तिनिषिदं पापं हेयमिति स्वाधिकारानुरूपसंकत्पघटिताद्वेदना-ल्थितिर्मर्यादा स्थापिता ॥ १५ ॥ अस्त्येवं किं ततस्तत्राह— तस्येति । तस्य वश्यमाणयमस्य अद्ययावदेतावरकालं स्वीये अधिकारकर्मणि अचलविस्थरं चित्तं मनः अवस्थितम् ॥१६॥ प्रतिचतुर्युगम् । वीष्सायामव्ययीभावः । कदाचिकिचित्तपः प्रकुरुते । प्रतिचतुर्युगं किंचिद्गते द्वापरान्ते इति वा ॥ १७ ॥ तत्र कालनियमो नास्तीत्याह-कदाचिदिति ॥ १८ ॥ तस्मिन् यमे नियमसंस्थितौ तपांत आसीने सति मृत्युः कानिचिदपि भूतानि न हिनस्ति ॥ १९ ॥ तेनाहिंसनेन हेतुना महीतलं नीरन्प्रेबहुभिभूतौषैनिःसंचारं संचारायोग्यं भवति । स्वेदी स्वेद-बान् ॥ २० ॥ सुरा विष्ण्वादिदेवाः युक्तिभिः अंशावता-रभारतयुद्धाद्यपार्थैः क्षिपयन्ति हिंसनेन विरलीकुर्वन्तीति यावत् ॥ २१ ॥ अयं च भारावतारादिव्यवहारो बहशो अस दीना प्रपन्ना गुल्मेव भारभूतैर्भविष्यति ॥ भूभारपरिभूताङ्गी हार्रे शरणमेष्यति । कान्ता दस्युपराभूता दीना पतिमिव प्रिया॥ २६ हरिदें हद्वयेनाथ महीमवतरिष्यति। देवांशैरखिलैः सार्धे नरनारायणं गतैः ॥ २७ वसुदेवसुनस्त्वेको वासुदेव इति श्रुतः । देहो भविष्यति हरेर्द्वितीयः पाण्डवोऽर्जुनः॥ युधिष्ठिर इति ख्यातो धर्मपुत्रो भविष्यति । अम्भोधिमेखलाभूषः पाण्डोः पुत्रः स धर्मवित् २९ दुर्योधन इति ख्यातस्तस्य भ्राता पितृव्यज्ञः । भविष्यति इडब्रन्द्रो भीमो बभुरहेरिव ॥ 30 अन्योन्यं हरतोर्ह्वां तयोः संप्रामलोलयोः। अप्रादशात्राक्षीहिण्यो घटिष्यन्त्यत्र भीषणाः ॥ ३१ तत्क्षयेण विभारत्वं भुवो विष्णुः करिष्यति । राघ्रवाऽर्ज्जनदेहेन बृहद्राण्डीवधन्वना॥ ३२ विष्णोरर्ज्जननामादौ प्राकृतं भावमास्थितः। हर्पामर्पान्वितो देहो नरधर्मा भविष्यति॥ ३३ सेनाद्वयगतान्द्रष्ट्वा स्वजनान्मरणोन्मुखान्। विषादमेष्यत्युद्योगं युद्धाय न करिष्यति ॥ રૂપ્ટ तमर्जुनाभिधं देहं प्राप्तकार्यैकसिद्धये। हरिर्वुद्धेन देहेन योधयिष्यति राघव ॥ 34 न जायते म्रियते वा कदाचि-न्नायं भृत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ ३६

इत्याह—एनमिति ॥ २२ ॥ २३ ॥ अघानां पापानां विघा-ताय । कर्तव्या भविष्यतीति शेषः । दूरेऽस्तं जनानां कर्षणं पीडनं यस्याम् । अस्माद्विशेषणाइतचर्यः आहंसादिघटितनिर्वि-कल्पसमाधिरूपेति गम्यते ॥ २४ ॥ प्रपन्नगुल्माः वनगुल्मसं-कीर्णेति यावत् ॥ २५ ॥ २६ ॥ नरं नारायणं च गतैरन्गतैः। साहाय्यार्थमवतीर्णेरिति यावत् ॥ २७ ॥ २८ ॥ अम्भोधिमेख-लाया भूमेर्भूपो राजा । अम्भोविमेखलां भुवं पातीति वा । आतोऽनुपसर्गे कः ॥ २९ ॥ तस्य पितृत्यजो श्राता भवि-ध्यति । तस्य द्रन्द्वः प्रतियोदा भीमो भवष्यतीति योज्यम् । बर्भुनेकुछः । अहेः सर्पस्येव ॥ ३० ॥ आसमन्तात् त्रायत इति आत्रा सेना तदक्षीहिण्यः । अत्र भारतयुद्धे कुरुक्षेत्रे वा घटिष्यन्ति ॥ ३१ ॥ हे राधव, बृहद्वाण्डीवं धनुर्यस्य । 'धनु-षश्च' इखनड । तथाधिधेनार्जुनदेहेन विभारत्वं भारावतरणं करिष्यतीति पूर्वत्रान्वयः ॥ ३२ ॥ नरधर्मा अन्नप्राय इतिया-वत् ॥ ३३ ॥ खजनान्वन्धून् ॥ ३४ ॥ बुद्धेन खतःसिद्धात्म-बोधेन कृष्णदेहेन ॥३५॥ बोधनप्रकारमेव विस्तराद्वर्णयति---न जायत इत्यादिना । आद्यन्तविकारयोर्निषेधे मध्यत्नविकार-चतुष्ट्यं प्रसक्तं वारयति-नायमिति । भाविजनमादिप्रतिषेघो य एनं वेति हन्तारं यश्चेनं मन्यते हतम्। उभौ तौ न विज्ञानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ ३७ अनन्तस्यैकरूपस्य सतः स्कास्य खादपि। आत्मनः परमेशस्य किं कथं केन नश्यति॥ ३८

अनन्तमव्यक्तमनादिमध्य-मात्मानमालोकय संविदात्मन्। संविद्वपुः स्फारमलन्ध्रदोष-मजोऽसि नित्योऽसि निरामयोऽसि॥ ३९

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्ल्माकियि मोक्षो० निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाष्ट्याने नरनारायणावतारकथनं नाम द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

त्रिपश्चादाः सर्गः ५३

ş

२

3

8

श्रीभगवानुवाच ।
अर्जुन त्वं न हन्ता त्वमिभमानमळं त्यज ।
जरामरणिनिर्मुक्तः स्वयमात्मासि शाश्वतः ॥
यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँ होकान्न हन्ति न निवध्यते ॥
येव संजायते संविदन्तः सैवानुभूयते ।
अयं सोऽहमिदं तन्म इत्यन्तः संविदं त्यज ॥
अनयेव च युक्तोऽस्मि नद्योऽस्मीति च भारत ।
अभितः सुखदुः खाभ्यामवद्याः परितप्यसे ॥
स्वात्मादौः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि भागदाः ।

वा ॥ ३६ ॥ एनमुक्तस्थभावमात्मानं यो हन्तारं वित्ति यथ इतं मन्यते तायुमां नात्मानं तत्त्वतो विजानीतः । अज्ञानमेव इन्तृहन्तव्यताश्रान्तिनिमित्तमिति यावत् ॥ ३७ ॥ त्रिभिः किष्टतेनीद्यनाशप्रकारनाशहृत्नां प्रतिक्षेपः ॥ ३८ ॥ स्फारम-परिच्छित्रमत एवाल्य्यदोपं संविद्वपुश्चतन्यसरूपमेवाति । अ-तएवाओसि । नित्योसि निरस्ताज्ञानतत्कार्यकल्ड्राजनश्रासीति न बन्धुसंसक्तितन्मरणादिसंभावनाप्रयुक्तं दुःसं तवोचितमिति भावः ॥ ३९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

> वर्ण्यतेऽहंकृतेस्त्यागः सङ्गत्यागादिरुक्षणम् । उपास्यक्षेयक्षे च द्शाभेदस्यवस्थिते ॥ १ ॥

तत्रादी खबन्धुहन्ताहमिलादिस्पोऽहन्तानिमानः, एते मदीया बान्धवा इत्यादिममतानिमानश्च तव सर्वेदुःखनिदानभिति स एव त्याज्य इत्याह—अर्जुनति । हे अर्जुन, त्वं जरामरणादिषङ्गिनिर्मुक्तः अतएव शाश्वतः खबन्ध्वादीनां सर्वभूतानां खयं साक्षादात्मासि । अतस्त्वं कस्यापि न हन्ता ।
अहं हन्तेत्यिममानपठमलान्तं त्यजेत्यर्थः ॥ १ ॥ अमिमानत्यागफरुमाह—यस्यति । यस्य वधादिप्रवृक्तिकारे अहममुं
भात्मामीत्यहंकृतो भावो नास्ति उत्तरकारं च यस्य वुद्धिसकरुह्षविषादादिना न लिप्यते स पुरुष इमान्सर्वान् लोक्यन्त
हित छोकाश्वतुर्विभभूतजातयस्तान्हला प्राणिवियोज्यापि कमपि
न हन्ति । सर्वत्र शाश्वतेकारमतत्त्वस्य वधादिविकारासार्थिनत्यथेव सलात्, देहादीनां च मायामात्रत्वेन नित्यमसलादेव
बन्ध्यापुत्रस्येव वधाप्रसक्तिरित भावः । अतस्तरप्रयुक्तपापफरुनापि न निवध्यते यथेश्वर इत्यर्थः ॥ २ ॥ हन्तुलादिधमंक्दं-

अहंकारविमृदातमा कर्ताहमिति मन्यते॥ चक्षुः परयतु कर्णश्च भ्रुणोतु त्वक्स्प्रशत्विदम् । रसना च रसं यातु कात्र कोऽहमिति स्थितिः कलनाकर्मणि रते मनस्यपि महात्मनः। न कश्चिदत्राहमिति क्षेदाभागेक एव ते॥ 9 बहुमिः समवायेन यत्कृतं तत्र भारत। पकोऽभिमानदःखेन हासायेव हि गृह्यते॥ 4 कायेन मनसा बुद्ध्या केवलेरिान्द्रयरिप। योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥ हादितादातम्यभ्रान्तिसंवेदनवशादेव तद्धमेहन्तृलादेरात्माने प्र-तिभासो न खतः, अतस्तदेव प्रथमं व्यजल्याह—यैवेति । अन्तर्शर्दे आत्मान यैव संविद्वादिवृत्तिदेशायभिमानह्या अन्या-हशी वा । अयं कार्यकरणसंघातः । स हन्ता अहं । इदमेतहे-हादिसंबन्धि तद्वरव्वादि मे मम । इत्येवं संविदं श्रान्तिवृत्ति खजेखर्यः ॥ ३ ॥ अनया उक्तछक्षणया संविदा हन्तृलादिः भिर्युक्कोस्मि । तत्प्रयुक्तपापेश्च नष्टः । वन्धुनाशाद्यहिकानर्थेर्न-रकपाताद्यामुप्मिकानर्थेश्व युक्तोऽस्मीति च भ्रान्ला सुख-दुःखाभ्यां परितप्यसे ॥ ४ ॥ खात्मनः अंशवत्परिच्छेदकत्वे-नांशास्तः सलादिगुणविकारिदेहेन्द्रियादिनिः कियमाणानि क-मोणि ॥ ५ ॥ विमर्शे तु नक्षुरादीनामेव रूपादिविषये प्रवृत्ति-र्नात्मन इति न तत्कृतैरस्य कर्तृत्वप्रसिक्तिरसाशयेनाह—बक्ध-रिति । अत्रास्मिश्रशुरादिकरणकार्यसंघाते अहं कः न कश्चि-दिति । अहमिति स्थितिः का । न युक्तेखर्थः ॥ ६ ॥ कलना संकल्पादिस्तहक्षणं खकर्मणि रते प्रसक्ते सत्यपि अत्रास्मिन्म-नआयन्तःकरणसंघातेऽप्यहं न कथिदिति पस्यतस्ते कः पदार्थः क्रेशभागे प्रविष्टो यदर्थ शोचित स नास्त्येवत्यर्थः ॥ ७ ॥ यत्र संघातकृते कार्ये तदन्तर्गतस्याप्येकंकस्य संघाताभिमान-दुःखेन शोके उपहास्यता तत्र कि वाच्यं तद्वहिर्भूतस्य तदनुशो-चने इलाशयेनाइ-वृहुनिरिति । गृह्यते चंत् हासायैव भव-तीलार्थः । तथाचाहुः 'न सामवायिकं दुःखमेकः शोचितुमहिति' इति ॥ ८ ॥ किंच निरहंकारस्य फलासङ्गरहितं कायिकादित्रि-विश्वं शास्त्रीयं कमे चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानोद्दीपकलात्परमपुरुषार्था-येव भवतीति न ते स्वधमाद्यद्वादुः सप्रसक्तिरित्याद् --काये-

१ अन्तर्देशे इति पाठः.

अहन्त्वविषच्चूर्णेन येषां कायो न मारितः। कुर्वन्तोऽपि हेरन्तोऽपि नच ते निर्विषृचिकाः ॥१० न कचिद्राजते कायो ममतामध्यद्वितः। प्राक्षोऽप्यतिबहुक्षोऽपि दुःशील इय मानवः ॥ ११ निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः भ्रमी। यः स कार्यमकार्ये वा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ १२ इदं च ते पाण्डुसुत स्वकर्म क्षात्रमुत्तमम्। अपि फूरमतिश्रयः सुखायैबोदयाय च॥ १३ अपि कुन्सितमप्यन्यद्प्यधर्ममयक्रमम्। श्रेष्ठं ते स्वं यथा कर्म तथेहामृतवान्भव ॥ १८ मुर्लस्यापि स्वकर्मेव श्रेयसे किमु सन्मतेः। मतिर्गलदहंकारा पतितापि न लिप्यते॥ १५ योगस्यः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय । निःसङ्गस्त्वं यथाप्राप्तकर्मवास्र निवध्यते ॥ १६ शान्तव्रह्मवपुर्भृत्वा कर्म ब्रह्ममयं कुरु। ब्रह्मार्पणसमाचारो ब्रह्मव भवसि क्षणात्॥ .१७ ईश्वरार्पितसर्वार्थ ईश्वरात्मा निरामयः। ईश्वरः सर्वभृतात्मा भव भूपितभूतलः॥ १८

नेति । योगिनोऽत्रीहरुक्षवः ॥ ५ ॥ न मारितो मारणाय व्यापारितः । पुनःपुनर्भृत्यहेतुभोगलाम्पञ्चेन प्रवर्तित इस्पर्थः । निर्विषुचिकाः निरस्तरागाद्यामयाः । ठोकिकं वास्त्रीयं कर्म क्रवेन्तोऽप्यातुषिकं तत्फलं हरन्त उपभुष्ताना अपि न च त कुर्वन्तो हरन्तक्षेत्यर्थः ॥ १० ॥ कविक्रांकिके शास्त्रीये वा व्य-वहारे न राजते । अनर्थानास्कन्दितपुरुषार्थाय न कल्पत इति यावत् ॥ ११ ॥ कार्यमवस्यकर्तव्यं शास्त्रीयं कर्म । अकार्यम-नावस्यकं छोकिकम् । नतु निषिद्धमप्रसक्तः ॥ १२ ॥ क्षात्रं क्षत्रियाणां विहितं संप्रामेष्वपछायनं बन्धुवधरूपलात् क्रूरमपि चित्तशुद्धिद्वारा बह्मज्ञानादिसुखाँयव । तथा धर्मयशोराज्यस्वर्गा-दाभ्यद्याय चेत्यतिश्रेय एवेत्यर्थः ॥ १३ ॥ तर्हि यद्वन्युवधा-दन्यद्वोणभीष्मकृषादिगुरुवधरूपं कुत्सितं कर्म तन्मया कथं कार्यमित्यर्जुनस्य तत्राधमंत्रदाद्वां सत्यशपथाशिषा निवारय-न्नाह--अपीति । पूजार्हेषु तद्विपरीतशस्त्रोद्यमनप्रकरणाद्यधर्मव-हुलक्रममपि ते स्त्रं युद्धकर्म यथा येन सत्येन शास्त्रप्रामाण्येन श्रेष्ठं तथा तेन सत्येन इहास्मिन्युदे अमृतवान् अमरणघर्मा विजयी भवेत्यर्थः ॥ १४ ॥ यत्र अज्ञस्यापि स्वधर्मः श्रेयसे तत्र तत्त्वज्ञस्य तस्मात्ररकादिप्रसिक्तर्यरापास्तेव । पातित्यावहै-र्महापातकादिकोटिभिरपि **ीनरहं कारमतेर्छेपाभावादित्याशये**-नाह—मूर्खस्यापीति ॥ १५ ॥ किंच राज्यलाभादिलोभप्रयुक्ते युद्धे 'लोभमूलानि पापानि रसमूलास्तथाऽऽमयाः' इति न्या-येन कदाचिद्धमंत्रसक्तिः स्यात्फलात्सक्वत्यागेन सिद्धारिदिस-मतालक्षणयोगस्थस्य त तत्प्रसक्तिरपि नार्स्वाति तां योगस्थि-

| संन्यस्तसर्थसंकल्पः समः शान्तमना मुनिः। | |
|--|------|
| | 20 |
| संन्यासयोगयुक्तात्मा कुर्यन्मुक्तमतिर्भव॥ | १९ |
| अर्जुन उवाच । | |
| सङ्गत्यागस्य भगवंस्तथा ब्रह्मार्पणस्य च । | |
| ईश्वरार्पणरूपस्य संन्यासस्य च सर्वशः॥ | २० |
| तथा ज्ञानस्य योगस्य विभागः कीददाः प्रभो । | |
| क्रमेण कथयैतन्मे महामोहनिवृत्तये ॥ | २१ |
| श्रीमगवानुवाच । | |
| सर्वसंकल्पसंशान्ती प्रशान्तघनवासनम्। | |
| न किंचिद्धावनाकारं यत्तद्वह्म परं विदुः ॥ | २२ |
| तद्योगं विदुर्शानं योगं च कृतवुद्धयः। | |
| ब्रह्म सर्व जगदहं चेति ब्रह्मार्पणं विदः॥ | २३ |
| अन्तःशुन्यं वहिःशुन्यं पापाणहृद्योपमम् । | |
| शान्तमाकाशकोशाच्छं न दृश्यं न दृशः परम्॥२४ | |
| | 1170 |
| तत ईपद्यदुत्थानमीपदन्यतयोदितम्। | |
| स जगन्त्रतिभासोऽयमाकाशमिव शून्यता॥ | २५ |
| भावोऽहमिति कोप्येय प्रत्येकमुदितश्चितेः। | |
| कोटिकोट्यंशकलितः क इवैनं प्रतिप्रहः॥ | २६ |
| | |

तिमुपदिशति-योगस्य इति ॥ १६ ॥ अथवा वक्ष्यमाणलक्ष-णब्रह्मार्पणयुद्धाः कृतं शास्त्रीयमिदं कर्म न ते बन्धायेत्याह-शान्तेति ॥ १७ ॥ निविशेषबद्धतत्त्वज्ञानेन तदसामध्ये सगु-णेश्वरापणबुज्या वा कर्म कुरु ततोषि न कर्मबन्ध इलाह—ई-श्ररेति ॥ १८ ॥ अथवा सर्वसंकल्पत्यागलक्षणसंन्यासयोगय-त्तयापि न ते कमेबन्धप्रशक्तिरित्याह—संन्यस्तेति ॥ १९॥ एवसुपदिष्टोऽर्जुनः सङ्गत्यागादीनां तष्टक्षणैविभागं जिज्ञासः प्र-च्छति---सङ्गत्यागस्येति द्वाभ्याम् ॥ २० ॥ २१ ॥ आत्यन्ति-कसङ्गखागस्य तत्त्वपरिज्ञानमन्तरेणायोगाङ्ग्रात्मतत्त्वमेव भग-वान प्रथमं लक्षणेन निर्दिशति—सर्वेति । तथाच निर्विकल्प-समाधिपरिपाकसाक्षात्कारानुभवसिद्धं निष्प्रपश्चं प्रत्यगातमस्प-मेव ब्रह्मेखर्थः ॥ २२ ॥ तदुद्योगं तदाकारावहितचित्तवृत्तिम-ज्ञाननिष्टतिफलोपहितां ज्ञानमाहुस्तदनुकूलधारामात्रक्षां तु यो-गमित्यर्थः । वद्मण्यनिमन्तव्यस्य जगतस्तद्भिमन्तुरहंकारस्य च बाधो मुख्यं ब्रह्मार्पणमित्याह—ब्रह्मेति ॥ २३ ॥ ब्रह्मण जगदहंकारयोवीधोपपत्तये तत्राध्यस्तत्वं वक्तुं ब्रह्मस्वरूपमाह-अन्तःश्रन्यमित्यादिना । न दृश्यमिति । सर्वदृश्यनिषेधे दृशोऽपि दृश्यलात्रिपेधः किं न स्यादित्याशक्क्याह—न दृश्यः परमिति । दशो दश्यतानिषेघो वा तदा स्यादादि दशः परं दगन्तरं स्यात नतु तदस्तील्यर्थः ॥ २४ ॥ ततस्तादशस्त्रभावादीषदन्यत-योदितं यत्समुत्थानं सोयं जगत्त्रतिभासः स गन्धर्वनगराकाश-मिव । जून्यतेवेखर्थः ॥२५॥ संन्यासोपवर्णनोपपन्यर्थ ब्रह्मणि जगदारोपवदेव तदंशेषु जीवेषु प्रत्येकमहंभावाध्यास इति न तत्रात्रहो युक्त इत्याह-भाव इति द्वाभ्याम् ॥ २६ ॥

१ अत्र मुमुक्षव इति पाठः.

अपृथग्भृत एवैष पृथग्भृत इव स्थितः। पृथक्त्वं हि न पर्यन्तो नाहमित्यवगच्छति॥ २७ यथेहाहं तथेहास्ति घटादीहापि मर्कटः। स्वर्माहेवं तथाम्भोधिः किमहन्तां प्रति ग्रहः॥ २८ विकल्पभेदे स्फूरिते संवित्सारमयात्मनि । वैचित्र्येण विचित्रेपि किमेकत्वेऽपि नो प्रहः॥ २९ इति ज्ञातविभागस्य वृद्धां तस्य परिक्षयः। कर्मणां यः फलत्यागस्तं संन्यासं विदुर्वेधाः ॥ ३० त्यागः संकल्पजालानामसंसङ्गः स कथ्यते । समस्तकलनाजालस्येभ्यरत्वेकभावना ॥ 38 गलितद्वतिर्मासमेतदेवेश्वरार्पणम् । अयोधवशतो भेदो नाम्नेवैपां चिदात्मनि ॥ ३२ बोधातमा किल शब्दार्थों जगदेकं न संशयः। अहमाशा जगदहं स्वमहं कर्म चाप्यहम्॥ 33 कालोहमहमद्वेतं द्वतं चाहमहं जगत्। मन्मना भव मञ्जको मदाजी मां नमस्कुरु। मामेवेप्यसि युक्त्वेवमात्मानं मत्परायणः॥ 38 अज्ञन उवाच । द्वे रूपे तच देवेश परं चापरमंव च । कीदशं तत्कदारूपं तिष्ठाम्याश्रित्य सिद्धये ॥

एषः अहमिति भावः स्वाधिष्ठानादपृथग्भृत एव । हि य-स्माद्वेतोः पृथक्वं पर्यन्तः परिच्छंदः सच ब्रह्मणि न । असंश नाहमिति कथिदवगच्छति । तथाचावगन्तत्वेन प्रथक्त्वोपपत्तिः पृथक्त्वेन वावगन्तृत्वोपपत्तिरित्यवश्यमन्यतरिसम् हेये निह-पपिक पृथवलमेव हेयांमति भावः ॥२७॥ अहन्तायामुक्तो न्यायो घटादिममतहायामपि योज्य इति दर्शयंस्तनमुलाहन्ता-प्रहत्यागमेव द्रवयति-यथेति । यथा अहमीहा अहंभावो न पृथगस्ति तथा इह प्रतीचि घटादिममतेहालक्षणो मर्कटोपि पृथङ् नास्तीति नञनुषद्वेण योज्यम् । तथाच द्विविधापीहा अम्भोधिरिव पूर्ण स्वमात्भेवति नाहंताप्रहो युक्त इलर्थः॥२८॥ किचाहंममतादिसर्वविकल्पभेदं तत्तद्विपयविचित्र्येण विचित्रे स्फू-रितेपि तत्सत्तास्फूर्तिनिमित्ते अवस्थात्रयानुगते संवित्सारमात्र-स्रभावे सर्वविकल्पागमापायसाक्षिणि प्रत्यगातमन्यकत्यमपि स्फुरखेव । एवं सति तत्राप्यात्रहो युक्तः स कुतो ना न कियत इसर्थः ॥ २९ ॥ इति उक्तरीत्या विमृद्य ज्ञातसारासारविभा-गस्य पुरुषस्य बुद्धां तस्याहंममताश्रहस्य यः परिक्षयम्तेन चार्थ-सिद्धः सर्वेकमंफलेष्वस्पृहालक्षणस्त्यागः ॥ ३० ॥ तेन च सर्वसंकल्पलागलक्षणः असंसंगः सिद्धातीति प्रथमप्रश्लोप्यतरित इत्याह—त्याग इति । चतुर्थप्रश्रस्योत्तरमाह—समस्तेति । सर्वस्य द्वेतजारुस्य वाचारम्भणश्रुत्युक्तन्यायेन तदुपादानेश्वर-मात्रलभावनेत्यर्थः ॥ ३१ ॥ तत्रोपपत्तिमाह—अबोधवशत इति ॥ ३२ ॥ तद्दृढीकाराय भगवान् खस्य सार्वातम्यलक्षाणां विभृतिमाइ-अइमाशा इलादिना । गच्छतीति जगत् चरम् ।

श्रीभगवानुवाच । सामान्यं परमं चैव हे रूपे विद्धि मेऽनध । पाण्यादियुक्तं सामान्यं राह्वचक्रगदाधरम् ॥ રૂદ્ परं रूपमनाद्यन्तं यन्ममैकमनामयम्। ब्रह्मात्मपरमात्मादिशब्देनैतदुदीर्यते ॥ ३७ यायद्रप्रतियुद्धस्त्वमनात्मज्ञतया स्थितः। तावचतुर्भुजाकारदेवपुजापरो भव ॥ ३८ तत्क्रमात्संप्रवुद्धस्त्वं ततो ब्रास्यित तत्परम्। मम रूपमनाद्यन्तं येन भूयो न जायते॥ 36 यदि वा वेद्यविज्ञातो भावस्तदरिमर्दन। तन्ममात्मानमात्मानमात्मनश्चाश्च संश्रय ॥ 80 इदं चाहमिदं चाहमिति यत्प्रवदाम्यहम् । तदेतदात्मतत्त्वं तु तुभ्यं द्यपदिशाम्यहम् ॥ ક્ષ मन्ये साध्विवुद्धोसि पदे विश्रान्तवानसि । संकर्पेरवमुक्तोऽसि सत्येकात्ममयो भव॥ ધર सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभृतानि चात्मनि। पश्य त्वं योगयुक्तात्मा सधेत्र समद्दीनः॥ ઇરે सर्वभूतस्थमात्मानं भजत्येकत्वमात्मनः। सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ ४४ एकत्वं सर्वशब्दार्थ एकशब्दार्थ आत्मनः।

स्वं कर्माश्रयः ॥ ३३ ॥ अर्देतं परं द्वेतमपरं रूपं तक्षियम्यं जगचाहमेवेलर्थः । एवं द्विरूपे मधि अधिकारतारतम्बेन मनो यस्य स मन्मनाः भव । तादशे मयि तथैव भक्तः अवणकीर्न-नादिनवविधभक्तिमान्भव । तादशस्य मे ज्ञानयज्ञेन कर्मयज्ञेन वा यजनशीलो भवेलार्थः । एवमुक्तप्रकारद्वयेनापि युक्ला मयि चित्तं निवेश्य मामेबात्मानं खात्मभूतमेष्यति साक्षात्वरम्परया च प्राप्यसीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ एवमुक्तोऽर्जुनस्ते द्वे रूपे तद्यक्ति-योग्यमधिकारं कालविभागं च जिज्ञासमानः प्रच्छति—द्वे इति ॥३५ ॥ सामात्यं सर्वजनसाधारणं सुबोधमित्यर्थः ॥३६॥ परं अग्रुद्धचित्तर्रिधगमम् ॥ ३० ॥ ३८ ॥ ततश्चित्तशुद्धि-क्रमात् ॥ ३९ ॥ नुशस्दार्थे वाशस्दः । इदं च सगुणभजनं मया तुम्यं चित्तशुख्यभावं संभाव्योक्तं यदि तु तव भाविधत्तं वेदां वेदनाई विज्ञातम् । भावे क्तः । विज्ञानेकस्त्रभावं ब्रह्म यस्य तथाविधः गुद्ध इति मन्यसे तत्तर्हि मम ईश्वरस्य आत्मानं पारमार्थिकस्वरूपभूतं शोधिततत्पदार्थं आत्मनः स्वस्य च आ-त्मानं शोधितलंपदार्थरूपं चैकरसीकृत्याखण्डपरिपूर्णात्मानं सं-श्रय । बुद्धा तनिष्ठो भवेत्यर्थः ॥ ४० ॥ अहमाशा जगदहर्मि-लादिविभृत्युपदेशस्यापि तत्तद्यिष्ठानस्वतत्त्वपरिशोधन एव ता-त्पर्यमित्याह-इदं चाहमिति ॥ ४९ ॥ महुपदेशाववोधेन तव सद्य एव खरूपे विश्रान्तिः सेत्स्यतीत्यत्साहजननाय सिद्धवत्क-व्याह-मन्ये इति ॥ ४२ ॥ आत्मानमधिष्ठानत्वेनानुगतम् । आत्मन्यध्यस्तानि ॥ ४३ ॥ सर्वथा सर्वप्रकारेण समाधिवृत्त्या व्यवद्दारवृत्त्या वा वर्तमानीऽपि ॥ ४४ ॥ सर्वभूतस्थमात्मानम् आत्मापि च न सम्नासद्वतो यस्याशु तस्य तत् ४५ त्रैलोक्यचेतसामन्तरालोको यः प्रकाशकः । अनुभृतिमुपारूढः सोऽहमात्मेति निश्चयः ॥ કદ त्रैलोक्यपयसामन्तयों रसानुभवः स्थितः । गब्यानामध्यिजानां च सोऽयमात्मेति भारत ४७ अन्तः सर्वशरीराणां यः सृक्ष्मोऽनुभवः स्थितः। मुक्तोऽनुभवनीयेन सोऽयमात्मास्ति सर्वगः॥ ४८ समप्रपयसामन्तर्यथा घृतमिव स्थितम्। तथा सर्वपदार्थानां देहानां संस्थितः परः॥ પ્રવ सर्वाम्भोनिधिरह्नानां सबाह्याभ्यन्तरे यथा। तेजस्तथासि देहानामसंस्थित इव स्थितः॥ 40 यथा कुम्भसहस्राणां सवाह्याभ्यन्तरे नभः। जगन्नयशरीराणां तथात्माहमवस्थितः॥ **५**१ मुक्ताफलशतौघानां तन्तुः प्रोतवपुर्यथा। तथायं देहलक्षाणां स्थित आत्मास्त्यलक्षितः ५२ ब्रह्मादी तृणपर्यन्ते पदार्थनिकुरम्बके । सत्तासामान्यमेतद्यत्तमात्मानमजं विदुः॥ ५३ तदीषत्स्फ्ररिताकारं ब्रह्म ब्रह्मेय तिष्ठति । अहन्तादि जगत्तादि क्रमेण भ्रमकारिणा॥ 48 आत्मैवेदं जगद्रपं हन्यते हन्ति वात्र किम्। शुभाशुमैर्जगहुः खैः किमस्यार्जुन लिप्यते ॥ ५५

इति क्लोकस्य तात्पर्यं स्वयमेव वर्णयति-एकलमिति । सर्व-भूतेष्विधानतया स्थितमात्मानं पश्यति तदा स सर्वशब्द-स्यार्थोऽभिष्ठानव्यतिरिक्तस्यालाभादेकत्वं भजते सच एकशब्दार्थ आत्मनः प्रतीचः खभावे पर्यवसन्नः स आत्मापि च न सत मूर्तभूतत्रयस्वभावः, नाप्यसत् सूक्ष्मभूतद्वयस्वभावः किंतु भू-मानन्दचिदेवस्वभावो यस्यानुभवं गतस्तस्याञ्च तदवगमसम-कालमेव तजन्मादि सर्वविकियारहितं भूमानन्दात्मकं कै-वर्षं पर्यवस्यतीति तत्तात्पर्यमिखर्यः ॥ ४५ ॥ तस्य के-नाप्यननुभवादखन्तपरोक्षतां प्रसक्तां वारयति—त्रेछोक्येखान दिना ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्यस्थानां पयसां जलानाम् । गोर्विकारा गव्यानि तेषां दुग्धादीनाम् । अध्यिजानां छव-णादीनां चकारादिक्षमध्वादीनां च जिह्नाप्रसंतिक्रष्टानां यो रसानुभवः सोयमात्मैवेति न पारोक्ष्यप्रसक्तिरित्यर्थः ॥ ४० ॥ अनुभवनीयेन विषयजातेन मुक्तो रहितः, अतएव दुर्लक्ष्यला-त्सूक्ष्मः ॥ ४८॥ सर्वेपदार्थानामन्तर्धिष्ठानतया देहानाम-न्तखु प्रकाशकतया च संस्थितः ॥ ४९ ॥ देहान्तःस्थिति दृष्टान्तेन विशदयति—सर्वेति । यथा सर्वरस्नानामन्तर्गतं तेजो बहिरपि प्रकाशयति तद्वदिखर्थः ॥ ५० ॥ असंस्थित इवेत्यु-कितात्पर्यविषयमलेपकत्वं दृष्टान्तान्तरेण विशद्यति —यथेति ॥ ५१ ॥ सर्वदेहेष्वन्तःस्थिलान्तर्यामितया विधारकत्वेऽप्यल-

प्रतिविम्बेष्विवादर्शसमं साक्षिवदास्थितम्। नश्यत्मु न विनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ५६ इदं चाहमिदं नेति इतीदं कथ्यते मया। पवमात्मास्मि सर्वातमा मामेवं विद्धि पाण्डव ५७ इमाः सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः । आत्मन्यहन्ता चित्तस्थाः पयःस्पन्दा इवाम्बुधौ ५८ यथोपलत्वं शैलानां दाहत्वं च महीहहाम् । तरङ्गाणां जलत्वं च पदार्थानां तथात्मता ॥ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। यः पद्दयति तथात्मानमकर्तारं स पद्दयति ॥ ξo नानाकारविकारेषु तरङ्गेषु यथा पयः। कटकादिषु वा हेम भूतेप्वात्मा तथार्ज्जन ॥ ६१ नानातरङ्गवृन्दानि यथा लोलानि चारिणि । कटकादीनि वा हेस्रि भूतान्येवं परात्मनि ॥ ६२ पदार्थजातं भूतानि बृहद्रह्म च भारत। एकमेवाखिलं विद्धि पृथक्त्वं न मनागपि॥ ६३ किं तद्भावविकाराणां गम्यमस्ति जगत्रये । क ते वापि जगरिंक वा किं मुधा परिमुद्यसि ॥६४ इति श्रत्वाऽभयं त्वन्तर्भावयित्वा सुनिश्चितम्। जीवन्युक्ताश्चरन्तीह सन्तः समरसारायाः॥

क्ष्यत्वे दृष्टान्तमाह—मुक्ताफलेति ॥ ५२ ॥ तत्राघिष्टानात्मना निर्विकारस्थितिश्रह्मता सैय वास्तवी । या तु मुक्तासु तन्तुवद-न्तर्यामितया स्थितिया च रक्षेष प्रभावत्प्रकटजीवतया स्थि-तिस्ते उमे अध्यस्तसापेक्षे जगद्यवहारार्थे कल्पिते इति न वास्तवं हन्तव्यं हन्ता तत्त्रयुक्तपापं तत्फलप्रदो वा खात्माति-रिक्त इत्याशयेनाह—ब्रह्मादाविति त्रिभिः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ अध्यस्तैर्वधादिदोषैरहेपै दृष्टान्तान्तरमाह—प्रति-बिम्बेबिति ॥ ५६ ॥ सर्वेदेहेषु अहमहमिति प्रथमानश्चिदंश एवाई जडदेहेन्द्रियविषयांशी नाहमिति विभागीकिरपि दर्पण-प्रतिबिम्बितेष्वनेकदर्पणान्तरेषु घटादिषु च व्याष्ट्रतदर्पणखरूप-परिचयाय दर्पणादर्पणविभागोक्तिवदेवेखाह—इदं चाहमिति । इतिशब्द आद्योऽर्थविभागप्रकारपरो द्वितीयस्तृत्किविभागप्रकार-पर इल्पपौनहत्त्यम् । एवं दर्पणवदेवालेपकोऽद्वय एवात्मा सन्नहं सर्वात्मास्मि ॥ ५७ ॥ अहन्ता अभिमानवृत्तिस्तद्वति चित्ते तिष्ठन्तीति तत्स्थाः ॥ ५८ ॥ आत्मता पारमार्थिकीत्यर्थः ॥ ५९ ॥ अकर्तारं प्रतिबिम्धचेष्टासु दर्पणवदेवाव्यापृतमिखर्थः ॥ ६०॥ ६९ ॥ ६२ ॥ दर्पणतत्प्रतिविम्बवदेकमेव ॥ ६३ ॥ यदा निर्विकारं ब्रह्मीवैकं तदा जन्मादिभावविकाराणां गम्य-मात्माश्रयभूतं किमन्यदस्ति । ते बन्धुवदादिभावविकारा वा का सन्ति । जगदपि किंवान्यदस्ति । न किंचिदित्यर्थः ॥ ६४ ॥ अन्तः अभयं ब्रह्म भावयिला सम्यगनुभूय ॥ ६५॥

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।

द्रन्द्वेर्विमुक्ताः सुखदुःखसंश्च-

गंच्छन्त्यमृढाः पदमव्ययं तत्॥ ६६

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्गीकीये मोक्षो । निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनोपदेशो नाम त्रिपत्राशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपश्चाद्याः सर्गः ५४

श्रीभगवानुवाच ।
भूय पव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यसेऽहं श्रीयमाणाय वध्यामि हितकाम्यया ॥ १
मात्रास्पर्शा हि कौन्तेय शितोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिशस्त्र भारत ॥ २
ते तु नैकात्मनश्चान्ये काऽतो दुःखं क वा सुखम् ।
अनाद्यन्तेऽनवयवे कुतः पूरणखण्डने ॥ ३
संस्थिता स्पर्शमात्राख्या मात्रास्पर्शभ्रमात्मकः ।
समदुःखसुखो धीरः सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ ४
सर्वत्वादात्मनश्चेते सुमेदाः संस्थिता इव ।

तेषामेबोक्तलक्षणांवशिष्टानां विदेहकैवल्यावाप्तिरपीत्याशयेनाह — निर्मानमोहा इति ॥६६॥ इति श्रीयासिष्टमहारामायणता-रपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे त्रिपञ्चाशक्तमः सर्गः॥ ५३॥

सुखदुः खादिसंबन्धे हेतुर्हानक्रमस्तथा । यदास्त्रस्य च तद्धानं सरसर्वेमिह कीर्यते ॥ ३ ॥

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैस्तत्पदं गच्छन्तीत्युक्तं तत्र द्वन्द्व-संबन्धे को हेतुः कश्च तद्विमोक्षोपायः किमालम्बय चेत्याशङ्का-परिहारद्वारेणात्मतत्त्वमुपदेष्ट्रकामो भगवानुवाच-भूय एवेति। श्रीयमाणाय श्रीत्या श्रोतुकामाय उपदिश्यमानार्थप्रहणेन संतुष्यते 🕶 ॥ १ ॥ तत्रादौ विषया एव सुखदुःसरूपा इत्यमेदश्रमं बारयन्नाह-मात्रास्पर्शा इति । मीयन्ते विषया एभिरिति मात्रा इन्द्रियाणि तेषां विषयसंस्पर्शास्ते शीतोष्णाद्यनुभावनप्र-युक्तमुखदुःखहेतवः । अथवा स्पृश्यन्त इति स्पर्शाः शब्दादयः । शीतोष्णप्रहणमुदाहरणार्थम् । यथा शीतं प्रीप्मे मुखद्मुष्णं दुःखदं ते पुनः शिशिरे विपरीते इति न विषयाः सुखदुःखरूपा इल्पर्यः । एवं दुःखहेतूनप्रदर्श्यं तन्निवारणोपायमाइ--तांस्तिति-क्षखेति । तितिक्षोक्तिवैराग्यस्य।प्युपलक्षणम् । तथाच प्रियेषु निरन्यस्व अप्रियेषु तितिक्षखेत्यर्थः ॥ २ ॥ यया बुद्धा तद्वि-रागतितिको सिध्यतस्तामाह—तेलिति । ते मात्राः स्पर्शाश्च ते युखदुःखे वा। चकारादन्यदपि । एकात्मनः अद्वयपूर्णानन्दख-भावात्खात्मनोन्ये न अतः। एवंबोधादिल्यर्थः । किंच प्रियतम-धनपुत्रादिसंपदा पूर्णोऽहमिति भ्रान्ला आभिमानिकं सुखं तद्वि-योगाद्यप्रियसंपत्त्याखिष्डतोऽहमिति दुःखं च स्याते अपि निरव-यवे पूरणखण्डनासंभवदर्शने निवर्तेते इत्याह अनावन्तेइति॥३॥ यस्य स्पर्शानां विषयाणां मात्राणामिन्द्रियाणां चाल्यानमाख्या स्वाप्रतीतिः संस्थिता उपशान्ता भवति स मात्रास्परीश्रमा-रमको जीवो धीरस्यासीति धीरस्तत्त्वदशी समदुःखसुस्रो असत्यास्त्वसद्यं कथं सोदुं न शक्यते॥ ५
मनागिप न विधन्ते सुखदुःखे तु सर्वशः।
सर्वत्वादात्मतत्त्वस्य सत्ता कथमनात्मनः॥ ६
नासतो विधते भावो नाभावो विधते सतः।
नास्त्येव सुखदुःखादि परमात्मास्ति सर्वगः॥ ७
सत्वासत्वमती त्यक्त्वा चैतयोर्जगदात्मनोः।
त्यक्त्वा न किंचिन्मध्ये च शेषे बद्धपदो भव॥ ८
न हृष्यति सुखैरात्मा दुःखैर्ग्यायति नाऽर्जुन।
दृश्यदक्वेतनात्मापि शरीतान्तर्गतोऽपि सन्॥ ९

भूला अमृतलाय कल्पन इलार्यः ॥ ४ ॥ नन्वप्रिया दुःखा-दयः वर्थं स्वं प्रतिकृतवेदनीयतास्वभावं जहार्येन ते सहााः स्यस्तत्राह—सर्वतादिति । निरतिश्वयानन्दैकरसस्यात्मन एव सर्वलादेते दुःलादिभेदाः शोभना भेदाः सुभेदाः प्रियतम-धनपुत्रादिभेदा इव संस्थिता । न प्रतिकूलवेदनीयतां भजन्ते । प्राक्तनेन तु प्रातिकृल्यस्वभावेनासद्भूषा इत्यर्थः ॥ ५ ॥ तदेव स्फुटीकृत्य समर्थयति-मनागपीति ॥ ६ ॥ नन्वसदपि दुःसा-द्यात्मन्यरपद्यते । असत एव खकारणसमवायः खसत्तासंबन्ध आग्रक्षणसंबन्धो वा उत्पत्तिारिति कणभक्षाक्षचरणाद्यक्ति प्रति-क्षिपति - नासत इति । असतो दुःखादेशीयः सत्ता न विद्यते । सतः अभावः असत्ता च न विद्यते । स्वभाववैपरीत्यायोगात् वाचारम्भणादिश्रुत्या विकारमात्रस्यासस्यनिश्वयात् । ननु सर्व-विकाराणामसत्वे पिण्डाचन्यतमविकारानाछिक्कितप्रकृतिसदाद्य-दर्शनात्तस्याप्यसत्वे शन्यतापरिशेषः किं न स्यादितिचेन्न। रिशेषानापत्तेः । यदि तदप्यसदेव स्यात्तर्हि घटः असन् पटः असम्निखेवान्ववर्त्यत्। सत्सदित्येव चानुवर्तते अतरान्मात्रमेव परिशिष्यते । यस्त् विकारेषु सदिदमित्यमिमानः सोऽधिष्ठान-सत्तानुवेधादेव न खत इति सुखदुःखादि नास्त्येवेखर्थः जगतः सत्त्वमतिं निरतिशयानन्दात्मनः अस-लमति च त्यक्वा तयोजगदात्मनोर्मध्ये अन्तराछे उम-यसंघटनानिमित्तं मनस्तमश्चातित्रच्छमिति स्वक्ला शिष्यत इति शेषश्विदातमा तस्मिन् बद्धपदः प्रतिष्ठितो भव ॥ ८॥ हर्यानि हर्षग्लान्यादीनि साक्षितया पर्यतीति हर्यहक् । नहि द्रयास्ते दम्धर्मा भवितुमईन्तीति भावः

१ संधिरार्थः.

जडं चित्तादिदुःखस्य भाजनं देहतां गतम्। न चैतिसन्धते भ्रीणे किंचिदेवात्मनः क्षतम् ॥ १० जडं देहादि दुःखादेर्यदिदं भोक् संस्थितम्। तन्मायाभ्रममेवाङ्ग विक्यबोधवरोोत्थितम्॥ ११ न किंचिदेव देहादि न च दुःखादि विद्यते। आत्मनो यत्पृथग्भृतं किं केनातोऽनुभूयते ॥ १२ यदिदं कथयाम्यत्र तेनेवातो विनदयति । भ्रान्तिर्दुःखमबोघोत्था सम्यग्वोधेन भारत ॥ १३ यथा रज्ज्वामहिभयं वोधान्नइयत्यवोधजम् । तथा देहादिदुःखादि बोधान्नश्यत्यबोधजम् ॥ १४ विष्यग्विश्वमजं ब्रह्म न नद्दयति न जायते। इति सत्यं परं विद्धि बोधः परम एष सः॥ १५ ब्रह्माम्बुधौ तरङ्गत्वं किंचिद्धत्वा विलीयते । ब्रह्मावर्ते स्फुरस्यच ब्रह्मवासि निरामयम्॥ १६ यावत्कालिकयादेशास्त्वमहंसनिका इव। ब्रह्मणीय परिस्पन्दा नात्र स्तः सदसद्भमी ॥ १७ जहि मानं मदं शोकं भयमीहां सुखासुखे। ब्रैतमेतदसद्रूपमेकः सद्रूपवान्भव ॥ १८ पुरुषाक्षीहिणीनां च क्षयेणानुभवात्मना । ब्रह्मणा बृहितं शुद्धं ब्रह्म ब्रह्ममयं कुरु ॥ 16 असंविदन्सुखं दुःखं लाभालाभी जयाजयौ । र्युद्धं ब्रह्मेकतां गच्छ ब्रह्माब्धिस्त्वं हि भारत ॥ २० लाभालाभसमो भूत्वा भूत्वा नूनं न किंचन । खण्डवात इवास्पन्दि प्रकृतं कार्यमाचर ॥ २१ यत्करोषि यदश्वासि यज्जहोषि ददासि यत्। यत्करिष्यसि कौन्तेय तद्यात्मेति स्थिरो भव ॥ २२

कि तहिं दु:खहर्षादिभाजनं तत्राह—जडमिति। एतस्मिन् नितादौ ॥१०॥ इदं चित्तादिघटितं जीवरूपम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ यदिदं दुःखं तदबोधोत्थभ्रान्तिरतस्तेन सम्यग्बोधेनैव विन-**२यति । अत्र दृष्टान्तं** कथयामीत्यन्वयः ॥ १३ ॥ १४ ॥ की-दशः स बोधस्तमाह—विष्वगिति । विश्रं विष्वक् पूर्ण ब्रह्मेव ॥ १५॥ अध बोघोदयकाले ॥१६॥ कृत्स्रवाची यावच्छव्दः । कालादीनां द्वन्द्वसमासः । सदसद्धमी भावाभावविकल्पी ॥ १७ ॥ १८ ॥ स्वत्करिष्यमाणपुरुषाक्षौहिणीक्षयात्मनापि ब्रह्मणेव बृंहितं अतः अनुभवात्मना शुद्धं ब्रह्मैव ब्रह्ममयं कुर्वित्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥ नूनं तत्त्वनिश्चयेन न किंचन जागतं देहादिरूपं भूला । खण्डवातो गुहापरिच्छिन्नो वायुरिव ॥ २१ ॥ सर्वेकियाणां ब्रह्मेवेति निश्वयस्थैर्यमेव मदर्पणमित्या-शयेनाह—यदिति ॥ २२ ॥ यन्मयः ॥ २३ ॥ अपेक्षाया अभावः अनपेक्षम् । अर्थाभावेऽव्य-यीभावः । सर्वकामोपरमस्तद्भपं फलं परमपुरुषार्थः स्वयं भूला

यन्मयो यो भचत्यन्तः स तदाप्नोत्यसंशयम् । ब्रह्मसत्यमवापुं त्वं ब्रह्मसत्यमयो भव॥ 23 अनपेशं फलं ब्रह्म भूत्वा ब्रह्मेति भावितम्। क्रियते केवलं कर्म ब्रह्मक्षेन यथागतम्॥ २४ कर्मण्यकर्म यः पद्यत्यकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान्मनुष्येषु स चोक्तः कृत्क्रकर्मकृत् ॥२५ मा कर्मफलहेतुर्भूमां ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि। योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ॥ २६ -कर्मासिकमनाश्रित्य तथा नाश्रित्य मृहताम्। नैष्कर्म्यमप्यनाश्रित्य समस्तिष्ठ यथास्थितम् ॥ २७ त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मण्यभित्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥ २८ आसक्तिमाद्यः कर्तृत्वमकर्तुरपि तद्भवेत् । मौख्यें स्थिते हि मनसि तस्मान्मीर्ष्यं परिखजेत २९ परं तत्त्वश्रमाश्रित्य निरासकेर्महात्मनः। सर्वकर्मरतस्यापि कर्तृतोदेति न कचित्॥ 30 अकर्तृत्वादभोकृत्वमभोकृत्वात्समैकता । समैकत्वाद्नन्तत्वं ततो ब्रह्मत्वमातेतम्॥ 38 नानातामलमुरसृज्य परमात्मेकतां गतः । कुवैन्कार्यमकार्यं च नैय कर्ता त्यमर्जुन ॥ 32 यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः। क्षानाग्निद्ग्धकर्माणं तमाद्वः पण्डितं बुधाः ॥ ३३ समः सौम्यः स्थिरः स्वस्थः शान्तः सर्वार्थनिस्पृहः। यस्तिष्ठति स स व्यब्रोऽप्यलमव्यव्रतां गतः ॥ ३४ निर्द्धन्द्रो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् । यथाप्राप्तानुवर्ती त्वं भव भूषितभूतलः॥ રૂપ

केवलं वृथा चेष्टारूपं ब्रह्मोति भावनावाधितं कर्म कियते॥२४॥
यः पुमान्कर्मण्युक्तरीत्या अकर्म निष्कियं ब्रह्म पश्यत्यक्रमीण ब्रह्मणि चाविच्युतप्रतिष्टारूपं कर्म अवश्यं कर्तव्यं पश्यति
स बुद्धिमान्विवेकी स एव च स्वरूपतः फल्तथ्य कृत्सं पूर्णं कर्म
करोतीति कृत्स्वकर्मकृदुक्तो विद्वद्भिरित्यर्थः ॥ २५ ॥ कमीफलानि लाभादीनि हेतवः प्रश्वतिनिमित्तानि यस्य तथाविघो माभूः। अकर्मणि प्राप्तकर्माकरणेऽपि ते सङ्ग आसक्रिमाभूत्।थोगस्थः प्रागुक्तिस्द्रासिद्धिसमदृष्टिप्रतिष्ठितः ॥२६॥
मूद्धतां तत्त्वदृष्टी प्रमादम् ॥ २० ॥ २० ॥ माह्ये उक्तप्रमादे स्थिते सल्यवद्यमासिक्तभेवेदेव ततोऽनर्थपरम्परेत्यर्थः
॥ २९ ॥ तत्त्वदर्शनाप्रमादे तु निरासक्तः स्वत एवाकर्नृता
सिद्धतीत्याह—परमिति ॥ ३० ॥ तेन च भूमिकाकमाद्विदेद्वकेवत्यान्तं सिद्धतीत्याह—अकर्नृतादिति ॥ ३१ ॥ अकार्यः
प्रमादात्रिषिदं च कुर्वन् ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सन्यप्रः सिक्रयोऽपि
सः । अध्यप्रतामिक्रयताम् ॥ ३४ ॥ अलब्धस्य लाभो योगः,

१ युष्पनमधीकतां गच्छ मह्माब्धि स्पन्द भारत इति पाठान्तरम्.

२ अझत्वमागतम् इति पाठः.

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् । इन्द्रियार्थान्वमृदात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ३६ यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारमतेऽर्ज्जन । कर्मेन्द्रियः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ३७ आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् । तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमामोति न कामकामी॥ ३८

इलापें श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे०मो० निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपास्याने आत्मज्ञानोपदेशो नाम चतुष्पश्वाकः सर्गः ५४

पश्चपश्चाद्याः सर्गः ५५

श्रीभगवानुवाच ।
न कुर्याद्गोगसंत्यागं न कुर्याद्गोगभावनम् ।
स्थातव्यं सुसमेनैय यथाप्राप्तानुवर्तिना ॥ १ अनात्मन्यात्मतां देहे मा भावय भवात्मनि ।
आत्मन्येवात्मतां सत्ये भावयाभवऽरूपिणि ॥ २ देहनाशे महाबाहो न किंचिदपि नश्यति ।
आत्मनाशो हि नाशः स्यान्न चात्मा नश्यति ध्रुवः ३ निह शीर्यत्यचित्तात्मा त्यकसर्यपरिप्रहः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैय किंचित्करोति सः ॥ ४ आसक्तिमाद्वः कर्तृत्वमकर्तुरपि तद्भवेत् ।
मौर्ष्यस्थिते हि मनसि तस्मान्मौर्ष्यं परित्यजेत् ५ परं तत्त्वक्रमाशित्य निरासकर्महात्मनः ।
सर्वकर्मरतस्यापि कर्तृतोदेति न कचित् ॥ ६ अविनाशमनाद्यन्तमात्मानमजरं विदः ।

स्वयस्य पाछनं क्षेमस्तदुभयचिन्ताश्च्यः ॥ ३५ ॥ त्यक्तसर्वकःमंणो मानसविषयासङ्गरात्वे दाम्भिक एव स संन्यास इत्याह—कर्मेन्द्रियाणीति ॥ ३६ ॥ समनस्केन्द्रियनिमह्वतो यथाशास्त्रं व्यवहरतोऽपि फठासङ्गत्यागात्संन्यासफठमस्त्येवेत्याशयेन तं प्रशंसन्नाह—यस्त्वित ॥ ३७ ॥ तस्मान्निगृहीतसर्वेन्द्रियस्य संन्यासिन एव सर्वकामोपरमात्परमपुरुषार्थो नान्यस्तेत्युगसंहर्ति—आपूर्यमाणमिति । यद्वत् आपो नद्य आपूर्यमाणं समुद्रं प्रविशन्त तद्भावमापन्ना विद्ययन्ते तद्भवचे नद्भाणि प्रतिष्ठा यस्य तं संन्यासिनं सर्वे कामा मिथ्यालबुद्धिवाधितविषयाः सन्तः प्रविशन्त्यात्मन्येव विद्यीयात्ममात्रतामापदान्ते स एव सर्वानयंशान्तिवस्यां मोक्षमाप्नोति न तु काम्यन्त इति कामा विषयास्तत्कामनाशील इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ इति श्रीवासि- इमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुष्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

देहनारोऽप्यनाशात्मा मृदतत्त्वज्ञयोः समः ।
मृदो जन्मादिभाक् भ्रान्त्या ज्ञस्तु नेत्यत्र वर्ण्यते ॥१॥
भुज्यन्त इति भोगा देहधारणहेतवोऽन्नपानादयस्तेषां संत्यागं न कुर्यात् । हितमितमेष्याशनाद्यपदित्यर्थः । भोगानां भावनं चिन्तां तत्सीष्टवसंपादनव्यसनितां च न कुर्यात् ।
तक्षाभालाभादिषु सुसमेनव स्थातव्यमित्यर्थः ॥१॥ एवं देहातमभावनापि न कार्यसाह—अनात्मनीति । भवातमनि जन्मा-

नदयत्यात्मेति दुर्वोधो मा तर्वास्त्विह दुःखदः ७ न तथा परिपदयन्ति विदितात्मान उत्तमाः। पद्मयन्त्यनात्मनाद्मान् स्वमात्मन्यात्ममानिनः॥ ८

े अर्जुन उवाच ।

एवं चेन्निजगन्नाथ मृहानामिप मानद् । देहनारो समुत्पन्ने इष्टं नष्टं न किंचन ॥ ९ श्रीभगवानुवाच ।

एवमेतन्महावाहो न किंचिश्वहयति कचित् । आत्मैवास्त्यविनाशात्मा किं तस्य क विनश्यति १० इवं नष्टमिदं युक्तमिति मोहभ्रमाहते । अन्यक्तथा न पश्यामि वन्ध्यास्त्रीतनयं यथा ॥ ११ नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः । उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तस्वद्शिमिः ॥ १२ अविनाशि तु तिहृद्धि येन सर्वमितं ततम् ।

दिविकियास्त्रभावे ॥ २ ॥ ३ ॥ उक्तेर्थे 'अशीर्थो नहि शी-येते' इति श्रुति प्रमाणयन्नाभिमानिकपरिष्रह एव शीर्णतादि-देहधर्माणामात्मनि प्रसंजकस्तत्त्यागे तु न शीर्णतादिप्रसक्तिरि-लाइ—नहीति । अचितातमा देहादिपरिग्रहनिमित्ताचिताद्वि-यिक्त दृष्ट इत्यर्थः । कर्मणि युद्धादौ ॥ ४ ॥ मौर्स्यस्थिते अज्ञतापन्ने ॥ ५ ॥ तत्रोपायमाह—परमिति ॥ ६ ॥ ७ ॥ तथा आत्मा नर्यतीत्येवंत्रकारेण न परिपर्यन्ति । कुतो न पर्यन्ति । यतस्ते आत्मन्येव आत्ममानिनः खमात्मानमना-त्मदेहादिरूपं न पश्यन्तीलार्थः ॥ ८ ॥ नन्वेवं सति मूढा देहा-वात्मबुद्धा पर्यन्तु नाम तथापि तेषां तमाशे आत्मनाशो नास्त्येवेति मरणादिनीनर्थः स्यादिलार्जुनः शहते-एवं चे-दिति । इष्टं त्रियतमं वस्तु न किंचन नष्टम् । दष्टमिति पाठे यथार्थदिष्टिगम्यम् ॥ ९ ॥ इष्टापत्या भगवान्परिहरति-एवमेतिदिलादिना ॥ १० ॥ कथं तिह देहनाशपुत्रलामादेरन-थंलमर्थलं वा तेषां तत्राह-इदमिति। युक्तं सञ्धम्। खप्रेपि पुत्रमरणजन्मभ्रमादनधीदिव्यवहारदर्शनादिति भावः ॥ १९ ॥ अतएव सतोऽसस्वविरोधात्र देहादेः सरविमिति प्रागुक्तमित्याह—नासत इति । उभयोः सदसतोः । सत्सदेव असदसदेव न स्वभावविषर्थय इति अन्तो निर्णयस्तरवदर्शिमि-र्देष्टो न मूर्टेरित्यर्थः ॥ १२ ॥ एवं यत्सत्तदविनाधि यद्विनाधि

१ तवास्त्वतिदु:खद इति पाठः.

विनाशमध्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमईति ॥ १३ अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योकाः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्यद्धस्य भारत॥ १४ आत्मा चैकोऽस्ति न ध्रित्वमसतः संभवः कुतः। अविनाशस्त्वनुन्तोऽसी सतो नाशो न विद्यते क्रित्वैकत्वपरित्यागे शेपं येतपरिशिष्यते। शान्तं सदसतोर्मध्यं तदस्तीह परं पदम् ॥ १६ अर्जुन उवाच । तन्मृतोऽस्रीति भगवन्त्रिकृता तु नृणां स्थितिः। कथं स्थितौ च लोकानां ती स्वर्गनरकी प्रभो ॥१७ श्रीभगवानुवाच । भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । पतत्तनमात्रजालात्मा जीवो देहेषु तिष्ठति ॥ १८ स कृष्यते वासनया रज्ज्वेव पशुपोतकः। स तिष्ठति दारीरान्तः पञ्जरे विह्नो यथा ॥ १९ स कालदेशतो देहाक्षर्जरत्वमुपागतात्। षासनावशतो याति प्रश्लपणादसो यथा॥ श्रोत्रं चक्षः स्पर्शनं च रसनं ब्राणमेव च। गृहीत्वैतानि संयाति घायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ २१ वासनावस्वमेवास्य देहो नेतर्युक्तिजः।

तदसदेवेति नासतो बन्धुदेहादेर्युद्ध नाशे कश्चिदनर्थ इत्याशये-नाह—अविनाशीति द्वाभ्याम् ॥ १३ ॥ १४ ॥ अद्वयत्नाद्वि-नाशकाप्रसिद्धेरपि नात्मनाशप्रसिक्तिरित्याह् — आत्मेति ॥१५॥ एकत्वं कारणं सच्छव्दवाच्यं द्वित्वं कार्यमसद्दृतं तयोमेध्य-मान्तरमधिष्ठानसन्मात्रम् ॥ १६ ॥ एवमपरिच्छित्रस्यात्मनो मरणादिपरिच्छेददुःखादिश्रमे को हेत्ररिखर्जुनः प्रच्छति---त-दिति । तत्तर्हि । किकृता केन हेतुना प्राप्ता । स्थितिर्नियतिः । तस्यां च स्थिती स्वर्गः सुखं नरको दुःखं च किंकृती ॥ १७ ॥ 'एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति' इति श्रुति-तात्पर्येण भगवान्समाधरा-भूमिरिति । पञ्चभूतमात्रानिर्मित-मनोबुद्धादिघटितव्यष्टिसमिष्टस्थूलसूक्ष्मदेहतादातम्यापत्तिरेव परस्य जीवभावः स एव जन्ममरणसुखदुःखादिश्रमनियतिनि-मित्तमित्यर्थः ॥ १८ ॥ तस्य विचित्रदेहपरित्रहे तत्तदनुरूपचे-श्रविचित्रये च निमित्तमाह--स इति ॥ १९ ॥ पूर्वदेहादेहान्त-रगमनेऽपि वासनैव निमित्तमिलाह—स इति ॥ २० ॥ आशेते असिन्निखाशयः पूर्वशरीरं पुष्पादि च तस्मात् ॥२१॥ अतएवास्य स्थूलदेहोऽपि वासनात्मक एव चिरानुवृत्त्या स्थी-स्यश्रम इत्याशयेनाह—वासनेति । क्षीणे लिक्ने तत्परमपदं खयमेव भवति ॥ २२ ॥ परेणात्मभूतेनैव। त्रपानादिना आ-पुष्टः अथवा बासनावाँ हिन्न देहः परेण परमात्मना अवच्छेदप्र-तिबिम्बाभावाभ्यां द्वैगुण्येन प्रवेशादापुष्टः । अभिव्यक्तो भूत्वे-खर्थः । मायया ऐन्द्रजालिकपुरुषो यथा खे भ्राम्यति तद्वत् ।

१ यदवशिष्यते इति पाठः.

श्रीयते वासनात्यागे श्रीणे भवति तत्पदम् ॥ २२ वासनावान्परापुष्टो भूत्वा भ्राम्यति योनिषु । जीवो भ्रमभराभारो मायापुरुपको यथा॥ २३ अक्षस्यभावानखिळाञ्छरीराद्वासनावदाः । जीवो गृहीत्वा संयाति पुष्पाद्गन्धमिवानिलः રક देहो निस्पन्दतामेति जीवे कौन्तेय निर्गते। निस्पन्दावयवाभोगः शान्तवात इव द्रमः ॥ २५ अचेष्टं छेदमेदादि दोपैरायात्यदृश्यताम्। मृत इत्युच्यते तेन देहो विगतजीवितः॥ २६ स जीवः प्राणमूर्तिः खे यत्रयत्रावतिष्ठते । तं तं स्ववासनाभ्यासात्पद्दयत्याकारमाततम् अयं देहो हि जीवेन त्वसन्नेवावलोकितः। अस्य नादो त्वमप्येवं पदय मा वा सुषुप्तवत् ॥२८ यथैव पश्यत्याकारांस्तेषां नाशांस्तथैव सः। आदिसर्गे भाघनया किलैप्वेयं विभावतः॥ २९ झटित्युद्भघकाले हि यदाथा दृदयते पुरः। आनिपातं तदेवास्या अविनाभाविसंविदः॥ ३० प्राक्तनं वासनामुळं पुरुवार्थेन जीयते। यत्नेनाद्यतनेनाद्यं हास्तनायतनं यथा ॥ ३१

अमभरमाविभतीति कर्मण्यण् ॥ २३ ॥ श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं चेति यदुक्तं तद्विष्रुणोति-अक्षस्त्रभावानिति । स्त्रभावान् शब्दादिमहणशक्तीः ॥ २४ ॥ तदेव लोके मरणं प्रसिद्धमि-त्याह—देह इति ॥ २५ ॥ २६ ॥ स्वे चिदाकाशे भूताकाशे वा यत्र यत्र यस्मिन्यस्मिन् देहदेशकालभोग्याद्याकारे अवति-ष्ठते भोजकादशेद्धावितवासनो भवति तं तमाकारं पश्यति ॥ २७ ॥ अस्य देहस्य नाशेऽभ्येवनसत्त्वं पश्य । अथवा सुषु-प्तवदेहं तन्नाशं तदसत्त्वं च मा पश्य । यथा सुषुप्तो न किचि-त्पश्यति तद्वदित्यर्थः ॥ २८ ॥ प्रतियोगिनां वासनाकत्पितत्वे तन्नाशानामपि तादशलमेवादिसगीदारभ्य क्रुप्तमित्याह-यभै-वेति । आदिसमें हि चतुर्भुग्वेन एषु सर्गेषु गवाश्वाद्याकारेषु भावनया पूर्वसर्गासम्बद्धासन्यैव विभावतो विभावनाया वशा-देवंरूपं कल्पितं नतु भृद्दण्डाद्यादाय कुलालबल्किचित्रिर्मितम् । किलेति श्रुतिपुराणप्रसिद्धा ॥ २९ ॥ ननु उत्पत्तिकाले जगद्वा-सनामयं मिध्याभूतमस्तु स्थितिकाछे लर्थिकियासमर्थलात्सर्वे-जनीनसत्यतानुभवाच वास्तवभेवेत्याशक्काह—सटितीति । उ-त्पत्तिकाले झटिति प्रथमक्षणे यदाथा देहघटादिरूपं मिथ्या-भूतं सत्यं वा परो दश्यते आधिनाशं तदेव तथास्वभावमेव भवति न स्वभावान्तरं भजते । अस्यास्तद्धिष्ठानभूतायास्तद्-विनाभाविसंविदो । यथोरपम्ररूपस्थितिहेतुलात्संबिद्धिनाभावेन तेषां सत्ताया अदर्शनाचेति भावः ॥ ३०॥ देहाद्याकाराणां वासनामयलमस्तु किं ततस्तत्राह-पाक्तनमिति । अशुभवास-नाकल्पितदेहाद्याकारस्य ग्रभवासनाभ्यासप्रसृतवद्याकारवृत्या

य एव पुरुषार्थेन हुष्टो बलवता क्षणात्। पूर्वीसरविशेषांदाः स एव जयति स्फूटम् ॥ 32 अपि स्फटित विन्ध्यादौ वाति वा प्रलयानिले। पौरुषं हि यथा शास्त्रमतस्त्याज्यं न धीमता ॥ ३३ नरकस्वर्गसर्गादिवासनावशतोऽभितः। प्रपश्यति चिराभ्यस्तं जीवो जरठमोहधीः॥ 38

अर्जुन उवाच ।

नरकस्वर्गसर्गादिसंभ्रमेषु जगत्पते। किमस्य कारणं बृहि जीवस्य जगतः स्थितेः ॥ ३५ श्रीभगवानुवाच ।

स्वप्रोपमाना तेनेह श्रेयसे वासनाश्चयः। चिराभ्यासवशात्यौढा संसारभ्रमकारिणी॥ 36 अर्जन उवाच ।

किम्त्था देवदेवेश श्रीयते वासना कथम्। श्रीभगवानुवाच ।

मौर्ख्यमोहसमुत्थाना त्वनात्मन्यात्मभावना । आत्मज्ञानान्महायोधाद्विलयं याति वासना ॥ ३७

समूलनाशस्तरफलमिति भावः। पुरुषार्थेन श्रवणमननादिपुरुपप्र-यक्षजनितेनाखण्डाकारज्ञानेन जीयतेबाध्यते।अधातनेन प्रायश्चि-त्तादियक्षेन हास्तनमायतनमधर्मानुष्ठानं यथा जीयते तद्वत्।अध-तनेन दाहयबेन हास्तनमायतनं तृणगृहं यथानास्यते तद्वदिति वा ॥३१॥ नन् बहनां ज्ञानाय यतमानानां प्रयक्षः प्रवलानिः पूर्वत-नकामकोधादिवासनाभिविनाश्यमानो दश्यत इति नोत्तरत्वं प्रा-बस्ये हेतुरिति चेत्तत्राह-यएवेति । धर्मार्थकाममोञ्जेषु मध्ये य एव ममायं पुरुषार्थं आवश्यक इत्यभिनिवेशेन दृष्टः स एव पूर्वीत्तरप्रयक्षयोर्विशेषांशो जये प्रयोजकः । तथाच तेषां मो-क्षाभिनिवेशमान्याद्धोगाभिनिवेशदार्ख्याच पराभव इति भावः ॥ ३२ ॥ अतएव शास्त्रीये प्रयक्ते दढामिनियेशः कार्य इस्याह-अपीति ॥ ३३ ॥ तन्मान्धे पूर्ववासनावैनिष्या-त्मुखदुःखानर्थपरम्परा सर्वतो दुर्वारेवेत्याशयेनाह-नरकेति । जरठमोहधीः अनावज्ञानमृढवुद्धिः ॥ ३४ ॥ तमेवाशयं 'अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छे-त्स्वर्गं वा नरकं तु वा ॥' इति व्यासवाक्यादिप्रसिद्धकारणान्तर-संदेहनिराधेन स्फूटं जिज्ञासुरर्जुनः पृच्छति—नरकेति । जगतः स्थितेः स्थितिनिमित्तस्यास्य जीवस्य ॥ ३५ ॥ न हेलन्तरं सं-भावनीयमीश्वरकामकर्मादीनामपि वासनानुसारेणैव सुखदुःख-प्रापकत्वाद्वासनैवासाधारणी चिराभ्यासनिरूढा संस्रतिहेत्तरित तत्क्षय एव परमपुरुवार्थार्थना सर्वेप्रयक्षः कार्य इत्यादायं स्फुटीकुर्वन्भगवानाह्—स्वप्नेति । शास्त्रीयप्रयस्नं विना चि-राभ्यासवशात्र्रीढा खप्नोपमाना वासनेव येन हेतुना संसा-रभ्रमदायिनी तेन हेतुना तश्वज्ञानाभ्यासेन समूखवासनाक्षयः श्रेयस इत्यन्वयः ॥ ३६ ॥ बासनाम् अं ब्राह्मकामोऽर्जुनः भावितात्मासि कौन्तेय सत्यं विज्ञातवानसि। अयं सोहं जना एते मयेति त्यज वासनाम् ॥ ३८

अर्जुन उचाच ।

वासनाविलये जीवो विलीनो भवति स्वयम्। यो हि यत्सत्तयोच्छनस्तन्नाशात्स विलीयते ॥ ३९ जीवे विलयमायाते देशकालान्यथाकृती। कोसी भाजनतामेति जन्मनो मरणस्य च ॥ 80

श्रीभगवानुवाच ।

स्वयं कल्पितसंकल्पमात्मरूपं यदाविलम् । तदेव वासनाकारं जीवं विद्धि महामते॥ ક્ષ अनायत्तमसंकल्पमातमु पं यदव्ययम् । प्रवोधाद्वासनामुक्तं तन्मोक्षं विद्धि भारत॥ ४२ जीवन्नेव महावाहो तत्त्वं प्रेक्ष यथास्थितम्। वासनावागुरोन्मुको मुक्त इत्यभिधीयते॥ 83 यो न निर्वासनो नूनं सर्वधर्मपरोऽपि सः। सर्वेशोऽप्यमितो यद्धः पञ्जरस्थो यथा खगः॥ ४४

पृच्छति-किमृत्थेति । अज्ञानमेव तन्मूलं ज्ञानादेव समूल-तन्नाश इति भगवानाह-भौष्ट्येंति ॥ ३० ॥ तत्र विचारा-दात्मस्वरूपपरिचयस्ते वृत्तस्तद्दार्क्येन देहतत्संबन्धिवन्ध्वादि-ष्वहंममेति वासनाक्षयमात्रं कर्तव्यं परिशिष्यत इत्याह-भावितेति ॥ ३८ ॥ नन् वासनामयमेव छिन्नं तत्प्रति-बिम्बो जीवस्तदुरथस्तस्य वासनाक्षये क्षय एव स्यादित्य-नर्थायैव तत्त्वज्ञानं वासनाक्षयश्रेत्याशयेनार्जुनः शङ्कते— वासनाविलये इति । विलीयते विनश्यति ॥ ३९ ॥ जन्मनः परमानन्दाविभीवलक्षणपरमपुरुषार्थस्य मरणस्य आ-व्यन्तिकानर्थनाशस्य च को भाजनतामेति, न कश्चिदिति रुक्ष-णया व्याख्येयम् । प्रसिद्धजन्ममर्गे तु न प्राह्ये । तत्त्वश्रस्य समु-लवासनानाशे तरप्रसत्तयभावारपूर्वापरप्रन्थाननुगुणलाश्व॥४०॥ भवेदर्य दोषो यदि प्रतिबिम्बमात्रसंसारी जीवः सच बि-म्बादन्यो भूतमात्राधीनजनमादिदेशकालमेदभिन्न इत्यम्युपगतं स्यात् । नत्वेवं किंतु ब्रह्मेव परमार्थतः शुद्धमनृतया स्वावि-द्यया पिहितं खतत्त्वमजानत् खात्मन्येत्र जीवजगद्भेदकल्प-नया संसरतीव तदेव शास्त्रीयश्रवणादिप्रयक्षेन स्वतत्त्वं बुद्धा सवासनामविद्यां विध्रय खखभावेऽवतिष्ठते सैवास्य मुक्तिरिवेति श्रीतः सिद्धान्तः तत्र तु न कश्चित्त्वदुद्धावितो दोष इत्याशयेन भगवान्समाधत्ते-स्वयमित्यादिना ॥ ४१ ॥ अनायत्तमन-न्याधीनम् ॥ ४२ ॥ साच समूलवासनामुक्तियीवदेहभारणं जीवन्मुक्तिरिति प्रसिद्धा इहैव लयाप्यनुभवितं शक्येति न मुक्तिफलभाजि संशयः कार्य इत्याशयेनाह—जीवनेवेति ॥ ४३ ॥ सन्व मोक्षो न कर्मभिनं बाह्यविषयगोचरपाण्डित्यैर्वा लभ्यः कि लात्मज्ञानेनेवेत्याशयेनाह—य इति ॥ ४४ ॥

दुर्दर्शनस्य गगने शिखिपिन्छिकेव स्क्ष्मा परिस्फुरति यस्य तु वासनान्तः।

मुक्तः स एव भवतीह हि वासनैव वन्धो न यस्य ननु तत्क्षय एव मोक्षः ॥४५

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपारोषु निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने जीवतत्त्वर्तिर्णयो नाम पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

षट्पश्चादाः सर्गः ५६

श्रीमगवानुवाच ।
इति निर्वासनत्वेन जीवन्मुकतयार्जुन ।
अन्तः शीतलतामेस्य बन्धुदुःखमलं त्यज ॥ १
जरामरणिनःशङ्क आकाशविशदाशयः ।
स्यकेष्टानिष्टसंकल्पो वीतरागो भवानघ ॥ २
प्रवाहपतितं कार्यमिदं किंचिचथागतम् ।
कुरु कार्याणि कर्माणि न किंचिदिह नश्यति ॥ ३
प्रवाहपतितं कर्म स्वमेव क्रियते नु यत् ।
जीवन्मुकस्वभावोऽयं सा जीवन्मुकता तथा ॥ ४
इदं कर्म त्यजामीदमाश्रयामीति निर्णयः ।
मृदस्य मनसो क्ष्यं ज्ञानिनस्तु समा स्थितिः ॥ ५
प्रवाहपतितं कर्म कुर्यन्तः शान्तचेतसः ।
जीवन्मुकाः सुषुप्रस्थाः स्फुरन्त्यत्र सुषुप्रवत् ॥ ६

उक्तसमाधानं संक्षिप्योपसंहरति—दुर्दर्शनस्येति । स्माया-पिहितलादुर्दर्शनस्य अनयस्य अप्राप्तवेदान्तप्रमाणस्य यस्य पर-मारमनो गगने ऐन्द्रजालिकशिखिपिन्छिकेव नाना भ्रमदायिनी सूक्ष्मवासना अन्तः परिस्फुरति जीवजगदाकारेण प्रथते स एव तु अधिकारिशरीरे वेदान्तनयं प्राप्योत्पन्नतत्त्वज्ञानः सम्-ठवासनाबन्धान्मुको भवति। इद्यास्मिन्परमात्मनि। नंतु यतः समूला वासनेव बन्धस्तस्थ्य एव मोक्षश्चेखर्थः ॥ ४५॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पञ्चपञ्चाशस्त्रमः सर्गः॥ ५५॥

> जीवन्मुक्तिप्रतिष्ठाऽस्मित्तर्जुनायोपदिश्यते । चिस्सत्तर्थं जगद्र्णं मनश्चित्रं च विस्तरात् ॥ १ ॥

बन्धुदुःखं बन्धुवधदुःखम् ॥ १ ॥ २ ॥ प्रवाहपतितं विष्टव्यवहारपरम्परागतं कार्यमवश्यकतं व्यमिदं युद्धमन्यानि चावश्यकानि यागदानावीनि कर्माणि कुरु न
काचितेन तत्त्वबोधस्य क्षतिरिव्यर्थः ॥ ३ ॥ स्वं स्वधमैरूपमेव । सा प्रसिद्धा जीवन्मुक्तता तथा ताहश्येव न
देहचेष्टामात्रत्यागरूपेव्यर्थः ॥ ४ ॥ ५ ॥ सुषुप्ताः इव स्वातमि निःसंकल्पास्तिष्टन्तीति सुपुप्तस्थाः सुषुप्तात्मवित्रिशेषस्वयंण्योतिरात्ममात्रावशेषाः स्फुरन्ति ॥ ६ ॥ अन्यद्पि सुषुपिसाम्यं जीवन्मुकस्य स्क्षणेस्तीत्याह—स्थरामिति । ज्ञानवाचितलाक्तुच्छेभ्य इन्द्रियार्थेभ्यो विषयेभ्यः स्वतः प्रयत्रं विनेव
बाद्यतानीन्द्रियाणि यस्य इति इत्स्थे परमात्मिन मनसा सह
स्थरां निक्षकां संस्थितिमैकरस्थेन स्थैर्यमायान्ति । यथा कृ-

स्थिरां संस्थितिमायान्ति कूर्माङ्गानीय सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो हृदि यस स्वभावतः॥ ७
विश्वातमनि तथा विश्वं कालश्रयमयोदितम्।
अभित्ति त्रिजगिश्वतं कुरुते चित्तचित्रकृत्॥ ८
व्योम्नि व्योमात्मकमि प्रस्फुटं वृत्तिवर्तिमः।
चित्रचित्रकरेणादौ चित्रं चित्रं वितानितम्॥ ९
पश्चाद्भित्तिः कृता व्योमकृपा चासावहो भ्रमः।
अपूर्वेवातिमायेयं तृणकुङ्यमयी ग्रुमा॥ १०
न मनागि भेदोऽस्ति स्फुटमप्युपलब्धयोः।
इमा या उपलक्ष्यन्ते भित्तयश्चित्तचित्रजाः॥ ११
व्योम्नः शून्यतमा विद्धि तास्तामरसलोचन।
क्षणेन चेतिस यथा भ्रान्तौ लोकक्षयोदयौ॥ १२

मेख शिरःपादाखङ्गानि अल्पेऽपि विक्षेपे झटित्येवान्तः प्रवि-शन्ति तद्वत् । स तथाविधो जीवन्मुक्त इत्यर्थः ॥ ७ ॥ कथं तर्हि जीवनमुक्ता व्यवहारकाले जगत पश्यन्तीति चेन्मनोरा-ज्यपरिकल्पितनिर्भित्तिकचित्रवैचित्र्यवदेवेति प्रदर्शनाय जगरस-र्वमासगान्तं मनोरचितचित्ररूपेण वर्णयितुसुपक्रमते—विश्वा-त्मनीति । चित्तलक्षणश्चित्रकृत् शिल्पी विश्वाधिष्ठाने आत्मनि तथा तेन तेन सर्वेजनप्रसिद्धानन्त्वैचित्र्येण विश्वं ऋत्नं अ-मित्ति मित्तिरहितं त्रिजगिबत्रं कुहते इखन्वयः ॥ ८॥ व्योप्ति अज्ञानाकारो व्योमात्मकमज्ञानमात्रसहरपलात्प्रचितुम-योग्यमपि साभासान्तःकरणवृत्तिलक्षणवृतिकामिः प्रस्फुटम-भिव्यक्तं चित्रमद्भतं चित्रं वितानितं विस्तारितम् ॥ ९॥ अद्भुतलमेव प्रसिद्धचित्रवैधम्येण दर्शयति—पश्चादिति । समष्टिमनसा सत्यसंकल्पलात्संकल्पसमकालमेव जगिवत्रं कृतं ततः पथाद्भित्तिस्तदाधारः कृता व्योमरूपा अमूर्ताकाशरूपा चित्रधारणे अयोग्यैवेलाश्चर्यं, अतएवायं श्रम इलार्थः । अहो-भ्रम इति पदयोरर्थ कमात्प्रपद्मयति-अपूर्वेवेखादिना । इयं विरचना अपूर्वेत्र अतिशयिता भाया अतिमाया । तणकुष्य-मिवात्यन्तमसारापि भ्रान्तदशा ग्रुभा ॥ १० ॥ आधर्यान्तरं दर्शयति—न मनागपीति । प्रसिद्धेषु चित्रेषु चित्रेभ्यो मिन्ना मित्तयो मवन्ति । इमास्त्र याधित्तचित्रजा व्योमादिभित्तय उपलक्ष्यन्ते तासां स्फुटमप्युपलब्धयोराधाराधेययोधितत्वावि-शेषान्मनागपि मेदो नासान्यस्थिमित्यर्थः ॥ १९ ॥ अही भ्रम इलात्राहो इत्यंशं प्रपश्चय श्रम इत्यंशं प्रपश्चयति - व्योग्न इत्या-दिना । ता मनश्रित्ररचनाः व्योत्रः शून्यतमाः । अत्यन्तासत्य

आतमा जगस्यैवेदं सवाह्याभ्यन्तरं नभः। चिरंतनमनोराज्यं यत्तसात्किल सत्यता ॥ १३ किरवनालोकितेऽपि स्यात्सत्यं नास्त्येच विभ्रमे। क्रमेणाळोकतः सत्यमाळोकेन विळीयते ॥ १४ रद्यमानमपि क्षामं शरदीवाभ्रमण्डलम्। निसचित्रकृतिधित्रे संस्थिताधित्रपुत्रिकाः॥ १५ भिरयभावादनाकारा बहिस्त्रभुवनादिकाः। न ताः सन्ति न वासि त्वं किं केन परिरोध्यते १६ रोध्यरोधकसंमोहं त्यक्त्या खे विमलो भव। प्रवृत्तिरेव न ब्योद्भः प्रवृत्तिश्चेव खात्मिका ॥ १७ अतः कालकियाकुड्यकलादिविमलं नभः। चित्तसंस्थं यथा चित्रं सरूपमखिलात्मकम् ॥ १८ ब्योम्नः शन्यतमं विद्धि तथेदमखिलं जगत्। वित्तमित्ती कृतं चित्रं यशिशित्रकरेण तत्॥ १९ सबैशून्यतया व्योस्रो मनागपि न मिद्यते। यथा प्रकचतश्चित्ते जगन्निर्माणसंक्षयौ ॥ २० क्षणेनैव तथैवेमी भुविस्थाविति विद्धि है। अद्य क्षीणा मनोराज्ये नानानुभवनात्मनि ॥ २१ क्षणभावितमोहेन कल्पना परिकल्पिता।

तत्र क्षांणेकस्वप्रजगत्रयं इति यावत् । हे तामरसलोचन, दृष्टान्तमाह-क्षणेनेति । घटिकायाः पृष्ठो भागः क्षणः ॥१२॥ आत्मा मनस्तत्कार्यं जगन्य तथा खप्रवदेव नभः शून्यमसदेवे-त्यर्थः। कुतस्तर्हि जनानां सत्यताप्रतीतिस्तत्राह-निरंतनेति । चिरान्यूत्तलादिलर्थः।किलेति नेदं तत्त्वमिति सूचनाय ॥ १३॥ कि तर्हि तस्वं तदाह-किलिति । विश्रमे श्रान्तिकल्पितपदा-र्यजाते यत सत्यसंकल्पत्वं कालत्रयेऽपि नास्त्येव तत् अनाली-किते तत्त्वतः अदृष्टे तत्त्वज्ञानात्प्राक् कि स्यादिष । न स्यादेवे-त्यर्थः । यत्त वसन्तादिकालक्रमेण बाल्याद्यवस्थाक्रमेण पद्भाव-विकारक्रमेण वा आलोकनादर्शकियासामध्येलक्षणमन्यद्वा व्या-वहारिकसत्यत्वं प्रसिद्धं तत्तत्त्वदर्शनलक्षणेनालोकेन विलीयते । यथा सौरालोकेन द्रयमानं शरदभ्रमण्डलं तेनैव शोध्यमाणं विलीयते तद्वदिति परेणान्वयः ॥ १४ ॥ एवं मनश्चित्रस्य भ्रान्तिमात्रत्वेन बन्धुवधादिक्षेशमालिन्यं युक्तमित्याह—चित्ते-त्यादिना ॥ १५ ॥ परिरोध्यते हन्यते ॥ १६ ॥ रोध्यरोधक-संमोहं भध्यघातकश्रमं तत्प्रयुक्तशोकमालिन्यमिति यावत्। खे ब्रह्माकारी । यतो व्योम्नश्चिदाकाशस्य वधादिप्रवृत्तिरेव नास्ति । यातु प्रातिभासिकी प्रवृत्तिः साच स्वात्मिका ब्रह्माकाशरूपैव ॥ १७॥ कला चित्ररचनाकौशलं आदिपदासद्वैचित्र्यमेदाच विमलं नमो ब्रह्मैय । यथा चित्तसंस्थं मनोराज्यचित्रमखिलप्र-पश्चास्मकमपि श्रन्यलाभभः खरूपं तथा परिदृश्यमानमपि जग-चोन्नः शून्यतममित्युत्तरेणान्वयः ॥ १८ ॥ इदानीमज्ञाता चि-देव वित्रकरिधतं तु तिद्धितिरित्युत्प्रेक्षणेऽपि शून्यलमेव पर्धव-स्यतीत्याह्—चित्तेति ॥ १९ ॥ तत्रापि मनोराज्यक्षणिकजग-

असदेव मनोराज्यं कर्त् शक्तं यथा मनः॥ **२२** क्षणस्य कल्पीकरणे तथैव बलवन्मनः । क्षणं कल्पीकरोत्येतसञ्चाल्पं कुरुते बहु॥ 23 असत्सत्कुरुते श्लिप्रमितीयं भ्रान्तिरुतिया । क्षणेनेच मनोराज्यं प्रतिभातं स्वभावतः॥ २४ यहिचित्रात्म तदिवं जगजालमिति स्थितम्। सर्गे निर्वाणनिष्ठत्वान्निमेषमयमुरियतम् ॥ २५ प्रतिभामात्रतोऽत्रैय कल्पिता वज्रसारता। प्रतिभासविपर्यासमात्रं द्यविदिताकृतेः॥ २६ प्रवृत्ती वा निवृत्ती वा कैव सा वज्रसारता। चित्तचित्रकृतश्चित्स्यं जगिश्चत्रं कदा स्थितम् २७ अकुड्यमप्यरङ्गात्व्यमिदं स्फारमिवाव्रतः। अहो तु चित्रं निर्मित्ति चित्रमुद्भवलमुरिथतम्॥ २८ सुरञ्जनं जगदिति स्फूटं दृष्टिविलोभनम्। नानातमोमपीलेखं नानातेजोंशरञ्जनम्॥ २९ नानाकल्पाङ्गावयवं नानारागानुरञ्जितम्। नानादृष्टिषिलासाद्धं नानानुभवलोचनम् ॥ ३० नानात्रहोत्रकचनं नानाकारात्रपश्चिमम्। व्योमनीलसरः फुलुताराचन्द्रार्कपङ्कजम्॥ 38

देव दृष्टान्त इत्याह—यथेति ॥ २०॥ तव नानानुभवना-त्मनि मनोराज्ये क्षणभावितमोहेन परिकल्पिता वध्यघातकभा-वादिकल्पना अद्य मदुपदेशात्क्षीणा ॥ २१ ॥ ननु क्षणभावि-तमोहेन कथमनायनन्तकल्पविस्तीर्णसंसारलक्षणं मनोराज्यं कृतं तत्राह-असदेवेति। यथा असतोऽपि जन्मादिकरणे मनः शक्त तथा क्षणस्य कल्पीकरणेपि वलवत् समर्थमिखर्थः ॥२२॥ क्षणं कल्पीकरोत्येतत् तत् असदुत्पादयतीत्येतचाश्चर्यमल्पमेव । यस्मात्ततोपि बहु आधर्यं यदसदपि जगत्सत्कृष्ते इतीदशमनः-सामर्थादेवेयं जगद्भान्तिरुत्थितेखन्वयः ॥ २३ ॥ तदेवाह--क्षणेनैवेति ॥ २४ ॥ एवं निर्वाणे नित्यमुक्ते आत्मन्यध्यस्तत्वा-त्प्रतिभामात्रतो जातलात्तुच्छं निमेषमयं क्षणिकमप्यत्यितं जगदजानद्भिः अत्र ईदश एव सर्गे भ्रान्तेर्वभ्रसारता दुरुच्छे-दता कल्पिता ॥ २५ ॥ साच न युक्तेत्याह-प्रतिभासेति । अविदिताकृतेः अज्ञाततत्त्वस्यात्मनः इदं जगत्प्रतिभासविपर्या-सोऽन्यथात्रतिभासस्तावन्मात्रम् । ईदृशस्यास्य प्रवृत्तावध्यारो**पे** निष्टती बाधे वा का वज्रसारता । न काचिदित्यर्थः ॥ २६ ॥ स्थितस्य हि निरासे प्रयत्नापेक्षा इदं तु कदापि न स्थितमेवे-त्याह—चित्तचित्रकृत इति ॥ २७ ॥ विनाखकारणसामग्रीतः सतश्चासदप्ययतः स्फ्ररतीत्याश्चर्यमित्याह् - अकुष्यमिति । र-द्वाधित्रलेखनसाधननीलपीतादिरङ्गद्रव्याणि ॥ २८ ॥ कथं पुरःस्थितं तदाइ-सुरजनमित्यादिना । सुष्ठु रजयत्यासंजय-तीति सुरञ्जनम् । दृष्टिप्रहृणमिन्द्रियमनआद्युपलक्षणम् ॥ २९ ॥ कल्पास्तदञ्जयुगादीनि चावयवा यस्य ॥ ३० ॥ सूर्योदयास्तादि-कालेषु नानाकारे अप्रपश्चिमे प्राचीप्रतीच्यौ यस्मिन् । तत्र

32

त्रिचित्ररचनोयुक्तमेघालीपत्रमञ्जरि । प्रकोष्ठकामिलिखितसुरासुरनृपुत्रिकम् । परमालोकमङ्कोलयुवताकाशकुरूपकम् ॥ आकाश एव रचिता प्रतिमैकरङ्गा

आकाश एवं रचिता प्रतिभेकरङ्गा मुग्धा जगज्ञयमनोहरपुत्रिकेयम्। चिन्मात्रचक्रपरिरक्षितसर्वलोका लीलाकुला चपलचित्तकचित्रकर्ता॥ ३३ हेमाचलाङ्गलतिका धनकेशपाशा

चन्द्रार्फलोचनविचालनदृष्टलोका । धर्मार्थकामविनियन्त्रितशास्त्रवस्ता पातालजालचरणोक्षतभूनितम्बा॥ ब्रह्मेन्द्रह्दहिरवाहुचतुष्टयोप्रा सत्त्वावृतोष्गतकुचस्फुरदङ्गयष्टिः। सुव्यालवेष्टितमहीतलपश्चपीठा पत्रीकृताचलमहाभुवनोदरी च ॥ ३५ राज्यन्थ्रकारचपलत्वहराक्षिचेष्टा ताराकरालपुलका पविदन्तपङ्किः। चञ्चचतुर्दशविधातुलभूतजात-रोमाञ्चना प्रलयवादकद्म्वपुष्पा॥ ३६ जीवान्विता गगन एव कृता विचित्रा व्योमात्मिका चिरविलक्षणचित्रकर्ता। चित्तेन चित्रपरिकर्मविदा त्रिलोकी नानाविलासचलिता वरपत्रिकेति॥ ३७

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने चित्तवर्णनं नाम षद्रपद्याशः सर्गः ॥ ५६॥

38

सप्तपश्चाद्याः सर्गः ५७

श्रीभगवानुषाच । इदं विद्धि महाश्चर्यमर्जुनेह हि यत्किल ।

चित्रपद्मवनादि वर्णयति--व्योमेखादिना ॥ ३१ ॥ शरदादि-कालभेदेन विचित्ररचनामिः उत् ऊर्ध्वं युक्ता मेघालीलक्षणाः पत्राणि मर्जयंथ यस्मिन् । लोकत्रयलक्षणेषु प्रकोष्टकेषु चित्र-कोष्ठमेदेषु अभितो लिखिताः सुरासुरमनुष्यलक्षणाः पुत्रिका यस्मिन् । परम उत्कृष्टो यथन्द्रसूर्याद्यालोकस्तलक्षणेन मङ्गोलेन सुधालेपेन युवतेव विराजमानता यस्य तथाविधमाकाशलक्षणं कुष्यं भित्तिर्यस्मिन् ॥ ३२ ॥ इदानीं त्रिलोकीमेव देवनटी-रूपां चित्रपुत्रिकां परिकल्प्य वर्णयति-आकाश एवेत्यादि-पश्वभिः । चपलेन कामुकेन चित्तकलक्षणेन चित्रकर्त्रा खाधि-ष्ठानबद्धाकाशे एव इयं वर्ण्यमाना जगत्रयलक्षणा मनोहरा नटी पुत्रिका रिचता । प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धिरेव एको मुख्यो रक्षो नृत्यशाला यस्याः । नृत्यशालाप्रदीपस्थानी-यस्य साक्षिचैतन्यस्य चकैरिव स्फुरत् प्रतिबिम्बप्राहिभिर्बुद्धि-कृत्याभरणैः परितो रिजताः प्रकाशिता लोका यया । नृत्यहा-वभावविकासादिळीलामिराकुळा ॥ ३३ ॥ पुनस्तामेव विश्वि-नष्टि-हेमेति । 'तदण्डमभवद्भेमं सहस्रार्कसमप्रभम्' इति पराणोधेर्हेममयं ब्रह्माण्डमेवाचला हढा अङ्गलतिका यस्याः। वना मेघा एव केशपाशा यस्याः । धर्मार्थकामार्थाने विनिय-न्त्रितानि व्यावर्तनानि ययोस्तथायिषे प्रवृत्तिनिवृत्तिशास्त्रे हे वके यस्याः । पातालजालानि सप्तपातालानि करूजानुजङ्गागुः ल्फपादपार्क्यक्किल्ससप्तावयवकी चरणी यस्याः । उन्नता भू-नितम्बो यस्याः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मादिषाहुचतुष्टयेन उम्रा समर्था । सलगुणछक्षणकषुकावृताभ्यामुत्रताभ्यां विवेकवैराग्यकुचाभ्यां स्फरन्ती अन्नयष्टिर्यस्याम् । सुव्यालैः शेषादिभिर्वेष्टितं महीत्रलभेव

पूर्व संजायते चित्रं पश्चाद्धित्तिहदेति हि॥

पद्माकारं पीठमासनं यस्याः । गोरोचना कम्तूर्यादिनानावर्ण-पन्नरचनास्थानीयाः कृता अचला भेर्वधनहिमवदादिनानावणं-पर्वता यस्मिस्तथाविधं महाभूवनं मध्यलोक एव उदरं यस्याः ॥ ३५ ॥ राज्यन्धकारस्य मेरुप्रदक्षिणीकरणलक्षणं यश्चपललं तद्धरति अनुहरत्यपनयति च चन्द्रार्केळक्षणाक्षिचेष्टा यस्याः । पविविद्यदेव दन्तपिक्क्षयंस्याः । भुवनभेदाचतुर्दराविधमतुर्छ परस्परं विसद्दर्श भूतजातमेवाविभवदोमाननं यस्याः । तेप भूतेषु प्रतिद्धा भृतभुवनादिप्रलयवादा एव सर्वतः प्रसारितस-द्बद्धिकेसरलाच्छोतुणां वैराग्यसद्वासनामागन्याधायकलाचापा-दलम्बिकदम्बमालापुष्पाणि यस्याः ॥ ३६ ॥ जीयेन व्यष्टि-समध्यात्मना अन्विता । चित्रस्य परिकर्माणे उपकरणभूनानि विचित्रवासनाकामकर्माणि विन्दति प्राप्नोति तथाविधेन अत-एवाचिरादेव विरुक्षणानां चित्राणां कर्त्रा निर्माणयमधेन चि-त्तेन इति एवं वर्णितरूपा त्रिलोकीलक्षणा वरपुत्रिका स्वाधि-ष्टानचिद्गगन एव कृतेत्युपसंहारः ॥ ३० ॥ इति श्रीवासि-ष्टमहाराम।यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे त्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

> जायतेऽत्र यया दृष्या सद्यो निर्वासनं मनः । सुखाद्वयात्मशेषश्च सा दृष्टिरुपदिश्यते ॥ ५ ॥

तत्र प्राग्दर्शितां जगलाश्चर्यतादृष्टिमेव प्रथमं वारानाशैथि-ल्योपयोगितया वर्णयति—इदमिति । अभित्तां निराश्यय एव मनसा जगदाकारकलनात्पूर्व जगित्रत्रं जायने पश्चात्तदन्तर्गता भूतभुवनात्मकविराङ्कितिस्तद्वाधारतया कल्प्यमाना उदेति । व्यष्टिसमृहस्य समप्टेविराजो व्यष्ट्यधीनकल्पनलाद्वा पश्चादुदयः

अमित्ताबुत्थिते चित्रे दृश्यते मित्तिरातता। अहो विचित्रा मायेयं मग्नं तुम्बं शिला प्रता॥ २ चित्तस्यचित्रसहरो घ्योमात्मनि जगन्नये। व्योमात्मनस्ते किमियमहन्ताव्योमतोदिता ॥ सर्घ ब्योमकृतं ब्योमा ब्योमि ब्योम विलीयते। भुज्यते ब्योमनि व्योम ब्योम व्योमनि चाततम् ॥४ वेष्टितं वासनारज्ञवा दीर्घसंसृतिदामवत्। वासनोद्वेष्टनेनैव तदिहोद्वेष्ट्यतेऽर्जुन ॥ 4 प्रतिबिम्बं यथाद्दां तथेदं ब्रह्मणि स्वयम्। अगम्यं छेद्मेदादेराधारानन्यतावशात्॥ Ę अनन्यच्छेद्मेदादि ब्रह्मणि ब्रह्मणाम्बरम् । किं कथं कस्य केनैव चिछचते वा क मिचते ॥ O तेनेह वासनाभावो बोधार्त्सपत्र एव ते।

यो न निर्वासनो नृनं सर्वधर्मपरोऽपि सन् ॥ ८ सर्वन्नोऽप्यतिबद्धारमा पत्ररस्थो यथा हरिः । यस्यास्ति वासनाबीजमस्यर्णं चितिभूमिगम् ॥ ९ वृहत्संजायते तस्य पुनः संस्तिकाननम् । अभ्यासादृति रूढेन सत्यसंबोधविहना । निर्वग्धं वासनाबीजं न भूयः परिरोहति ॥ १० द्र्यं तु वासनाबीजं न निमज्जति वस्तुषु । सुखदुःखादिषु स्वच्छं पत्रपत्रमिवाम्भसि ॥ ११ शान्तात्मा विगतमयोज्यितामिताशो निर्वाणो गलितमहामनोविमोहः । सम्यक्त्वं शुतमवगम्य पावनं त- तिष्ठारमन्यपहतिरेकशान्तिह्यः ॥ १२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे०मो० निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनविधान्तिवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशः सर्गः५७

अष्टपश्चाद्याः सर्गः ५८

अर्जुन उवाच । नष्टो मोद्दः स्मृतिर्रूष्धा त्वत्त्रसादान्मयाच्युत । स्थितोऽस्मि गतसंदेदः करिष्ये वचनं तथ॥

॥ १ ॥ अत्यन्तमसंभावितरूपतादियं माया असंभावितलं च विरुद्धलादित्याशयेन प्रसिद्धां तादशमायामुदाहरति-मम-मिति । तुम्ब्याः फलं तुम्बम् । फले लुक् । तत्किल जले मग्नं शिला त हता इति यथा खप्रेन्द्रजालादावेवोपपचते तद्वदिखर्थः ॥ २ ॥ अस्तां जगिवत्रस्याधर्यता । तस्मिन् शून्यात्मनि विद्योमातमनस्तवाहन्तोदयस्ततोऽप्याधर्यभूत इत्याह--चित्त-स्थेति ॥ ३ ॥ यदि तु जगल्यपि चिद्योमतामेव पश्यिस तर्हि सा दृष्टिरेवं पर्यवसन्नेत्याध्वर्यमेवेत्याह—सर्वमिति ॥ ४ ॥ बीर्घ संस्तिश्रमणं यत्र तथाविधं तज्जगित्रत्रं दामवत् प्रस्तया वास-नारज्ञना बेष्टितं तिच्छोमापीह जगति वासनोद्वेष्टनादेवोद्वेष्ट्यत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ अस्य ज्ञानातिरिक्तोपायद्वरुच्छेद्यताप्यिष्ठान-दार्क्यवलादेव न खत इलाह-प्रतिविम्बमिति ॥ ६ ॥ अत-एव ब्रह्मानन्यतादर्शनबलादेव जगतः सर्वच्छेदमेदादिव्यवहारा-योग्यतादर्शनेन सर्ववासनाः समूलमुच्छेदा इत्याशयेनाह---अ-नन्यदिति । यदा ब्रह्मणि प्रतिभातं छेदमेदादिन्यवहारजातं तद्विषयीभूतं जगन्न ब्रह्मणा अनन्यत्सन्निदम्बरमेव तदा केन कर्त्रा करणेन वा केन प्रकारेण कस्य फलस्यार्थे क देशे काले बा कि छिराते सिराते वा । छेदादिव्यवहारवादानां ब्रह्मातिरि-क्तविषयदर्शनादित्यर्थः ॥ ७ ॥ तेनानेनोपायेन बोधासे नास-नानामपि ब्रह्मातिरेकेणाभावः संपन्न एव । ईहरकानाभावे त बासनाबन्धो दुरुच्छेद एवेति प्रायुक्तं स्मारयति—यहति ॥८॥ हरिः सिंहो हरितवर्णः शुको दा । अणुमात्रमपि बासना न स्थाप्या । अनर्थसहस्रवीजत्वादित्याशयेनाह-यस्येति ॥ ९ ॥

श्रीमगवातुवाच । वृत्तयो यदि बोधेन संशान्ता हृदये स्फुटम् । तिश्वत्तं शान्तमेवान्तर्विद्धि सत्त्वमुपागतम् ॥ व

निःशेषं दग्धम् ॥ ५० ॥ निर्देग्धानि वासनावीजानि यस्य तथाविथं मनः ॥ ९९ ॥ उक्तोपदेशकममुपसंहरक्तर्जुनं निर्वा-सनस्थितौ प्रतिष्ठापयति—शान्तात्मेति । हे अर्जुन, खं उ-जिन्नताः अमिता आशा येन तथाविधः सन् पावनं तत् प्रसिद्धं भगवद्गीतारूपं श्रुतं मदुपदेशं सम्यगवगम्य गलितमहामनोवि-मोहः सन् अपहतिरपगतवन्धुवधादिक्ठेशो भूखा निर्वासना-त्मनि शान्तात्मा गलितचित एकः शान्तब्रह्मरूपः अतएव विगतभयो निर्वाणः परमनिर्वतिस्तिष्ठेत्यर्थः ॥ १२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे सस-पश्चाशक्तमः सर्गः ॥ ५०॥

> तत्त्वबोधेन साविचवासनाक्षयसंभवः । इहोपपाचते तेनाप्यर्जुनस्य कृतार्थता ॥ १ ॥

दे अच्युत, लत्रसादात् अनुमह्मयुक्तलदुपदेशान्मोद्दः सवासनाह्मानं नष्टः । विस्मृतकण्ठवामीकरस्येव खतःसिद्धात्मत-त्वस्य स्मृतिरिव स्मृतिः साक्षात्कारो छन्ना तया च सवैसंदे-हबीजनाशाद्गतवन्धुनभादिकर्तृतासंदेहः स्थितोस्मि, अतस्तत्त्वावस्थितिविषयं यथाप्राप्तव्यवहारकर्तव्यताविषयं च तव ववनं करिष्ये पाळिष्यामीखर्यः॥ १॥ एवमर्जनेन कृतार्थले द्रशितेषि खोपदिष्टतत्त्वबोधेन समूलसर्ववासनाक्षयमुपपतिमिक्षे-ढियध्यन् श्रीमगवानुवाच—हत्तय इत्यादिना । तत्त्वबोधेन हृदये रागादिवृत्तयो यदि सर्वारमना शान्तास्तर्ति स्वासना-रमकं चित्तं शान्तं सत् सत्त्वं निर्वासनलमुपगतमिति विदि ।

१ व्याख्यानुसारादत्र निर्देग्धवासनाथीजमिति पाठोऽपेक्षितः.

अत्र तचेत्यरहितं प्रत्यकेतननामकम्। यस्वशेषविनिर्भुक्तं यत्सर्वे सर्वतश्च यत्॥ Ę न केचन विदन्त्येते तत्पदं जागतादयः। भृतलाद्गगनोड्डीनं विदंगममिवोश्नतम् ॥ 8 प्रस्यकेतनमाभासं शुद्धं संकल्पवर्जितम्। अगम्यमेनमात्मानं विद्धि दूरं दशामिव ॥ ų सर्वातीतं यदत्यच्छं विना शुद्धं स्ववासना । न शक्कोति पदं द्रष्टुं जनदृष्टिरणूनिव ॥ Ę यत्प्राप्तौ सर्व पवेमे श्लीणा घटपटाद्यः। वराकी बासना तत्र किं करोतु परे पदे॥ ও यथाऽनलगिरि प्राप्य हिमलेशो विलीयते। श्रद्धमासाद्य चित्तस्वमविद्या लीयते तथा ॥ 4 क घराकी रजस्तुच्छा वासना भोगवन्धनम्। क पूरितजगजालिश्चत्तत्वविपुलानिलः॥ ९ तावत्स्फुरत्यविद्येयं नानाकारविकारिणी । यावन्न संपरिकातः शुद्धः स्वात्माऽयमात्मना ॥१० सर्वा दृश्यद्याः क्षीणाः स्वच्छतैवोदिता तथा। नभसीव पदे तिसन्स्वात्मन्यविलपूरणे॥ ११ समग्राकारक्षं तत्समग्राकारवर्जितम्। वागतीतं परं बस्तु केन नामोपमीयते॥ १२

विषयविषविषुचिकामतस्त्वं निपुणमद्दंस्थितिवासनामपास्य। अ**सिमतपरिहारमञ्जय्या** भव विभवो भगवान्भियामभूमिः॥ 13 श्रीवसिष्ठ उवाच। इति गदितवति त्रिलोकनाथे क्षणमिय मौनमुपस्थिते पुरस्तात्। अथ मधुप इवाऽसिताक्सखण्डे वचनमुपैष्यति तत्र पाण्डुपुत्रः॥ १४ अर्जन उवाच । परिगलितसमस्तशोकभारा परमुद्यं भगवन्मतिर्गतेयम्। मम तव वचनेन लोकभर्तुः र्दिनपतिना परिबोधितासिनीध ॥ १५ इत्युक्त्वोत्थाय गाण्डीवधन्या स हरिसार्बिः। अर्जुनो गतसंदेहो रणलीलां करिष्यति॥ १६ करिष्यति क्षतगजवाजिसारथि-व्रतक्षरव्रधिरमहानदीं भुवम्। शरोत्करप्रसरमहारजःस्थली तिरोहितसुमणिविलोचनां दिसम्॥

इत्सार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो । निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपाख्याने अर्जुनकृतार्थतानामाष्टपश्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

अर्जुनोपाख्यानं समाप्तम् ।

एकोनपष्टितमः सर्गः ५९

श्रीवलिष्ठ उवाच । **पतां ररिमवर**भ्य राघवाऽघविनाशिनीम् ।

तथाच श्रुतिः—'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्खोऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्रुते' इति ॥ २ ॥ अत्र अस्यां सलावस्थायां प्रत्यकेतनात्मकं यद्यवहारे सर्वे तत्त्वतस्त्व-शेषविनिर्मुक्तं तद्रह्म चेल्परहितं भवतीति शेषः ॥ ३ ॥ जाग-ताथक्षरादयोऽक्रजनाथ केचन तत्पदं न विदन्ति । उन्नतम्ध्नै-देशगतम् ॥ ४ ॥ आभासं महाभूतादित्रयोदशविधक्षेत्रावभा-सकम् । अगम्यमविषयम् । दशां दूरमसंनिकृष्टमिव ॥ ५ ॥ तर्शने च अवणाद्यवञ्चततद्भावनास्त्रभ्यस्ता निदिध्यासनाख्या आवश्यकीत्याह--सर्वातीतमिति । चित्खभावादत्यच्छम् । अ-सङ्गलाच्छुदम् ॥ ६॥ यत्र घटादिस्थूलानामपि बाधस्तत्र परमस्यमवासनानां स्थितिरसंभावितैवेत्याह—यत्प्राप्ताविति ॥ ७॥ ८॥ रजो रेणुरिव तुच्छा क्षुद्रा ॥ ९॥ १०॥ स्ता-स्मनि खोदरे अखिलं पूर्यति प्रसति तथाविधे ॥ ११ ॥ समप्राकारः पूर्णता तद्भूपम् । समस्तेर्जगदाकारैविर्जितम् ॥१२॥ हे अर्जुन, लमतः पूर्णात्मदर्शनादेवामिमतानां कामानां परिहारो निवृत्तिस्तल्लक्षणया मन्त्रयुक्तया विषयविषप्रयुक्तविषूचिकारूपां

१ अयमादिशब्दार्थः.

तिष्ठ निःसङ्गसंन्यासब्रह्मार्पणमयात्मकः॥

सदाप्रशृतिहेतुमहं स्थितिमन्तःकरणस्थां वासनां निपुणमपास्य विभवः विगतसंसारबन्धो भियां सर्वानर्थानामभूमिरभवस-भाषो भगवानहमेन भवेति सर्वभगवद्गीतार्थस्यान्ते संप्रहेणोप-देशः ॥ १३ ॥ मौनमुपगम्य पुरस्तास्थिते सति ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ गण्डीवं धनुर्थस्य सोऽर्जुनः । 'गाण्ड्यजगात्संद्वायाम्' इति मलर्थे वः । 'धनुषथ' इत्यनङ् ॥ १६ ॥ सोऽर्जुनो भुवं क्षताः गजवाजिसारथयो हताः शीघ्रं प्रवाहिता यास्र तथा-विभाः क्षरह्मिरमहानद्यो यस्यां तथाविधां करिष्यति । दिवं च धरोत्करप्रसंरेर्महारजोनिर्मितस्थस्या च तिरोहितं सुमणिः सूर्यस्त्रक्षम्यं विलोचनं यस्यास्तथाविधां करिष्यतीत्यर्थः ॥१०॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्यर्थप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे षष्ट्रपञ्चाद्याः सर्गः ॥ ५८ ॥

जीवन्युक्तपदेऽस्पन्दा चेखयुक्ता चितः स्थितिः ।
सुस्थिरा स्याच्या दृष्ट्या सा दृष्टिरिह वन्वेते ॥ १ ॥
अधिवनाशिनीं सर्वेपापक्षयकरीम् । निःसङ्गतालक्षणो यः संन्यासः सर्वत्यागस्तंपदार्थशोधः सर्वजगतो ब्रह्मणि वाधल-क्षणं यद्वद्वार्पणं तत्पदार्थशोधस्तद्वभयपरिश्रिष्टास्वण्डमहावाक्या-

यस्मिन्सर्वे यतः सर्वे यः सर्वे सर्वतश्च यः। यश्च सर्वमयो नित्यमात्मानं विद्धि तं परम्॥ २ दूरस्यमप्यदूरस्यं सर्वगं तत्स्थमेव च। तत्स्थः सत्तामवाप्तोषि तदेवास्यस्तसंदायः॥ 3 यत्संवेद्यविनिर्भुक्तं संवेदनमनिर्मितम्। चेत्यमुक्तं चिदाभासं तद्विद्धि परमं पदम्॥ सा परा परमा काष्टा सा हशां हगनुसमा। सा महिस्रां च महिमा गुरूणां सा तथा गुरुः॥ ५ स आत्मा तश्च विज्ञानं स शून्यं व्रह्म तत्परम्। तच्छ्रेयः स शिवः शान्तः सा विद्या सा परा स्थितिः योऽयमन्तश्चितेरात्मा सर्वानुभवरूपकः। यत्र स्वदन्ते सर्वाणि स्वात्मद्रव्याणि सत्तया॥ स जगत्तिलतेलात्मा स जगहृहदीपकः। स जगत्पाद्परसः स जगत्पशुपालकः॥ स तन्तुर्भृतमुकानां परिप्रोतहृद्भवरः। स भूतमरिचौघानां परमा तीक्ष्णता तथा॥ स पदार्थे पदार्थत्वं स तत्त्वं यद्जुत्तमम्। स सतो वस्तुनः सत्त्वमसत्त्वं वा सतः स्वतः 80 यः स्ववित्तिविचित्रेण स्वयमात्मैव लभ्यते। सर्घ एव जगद्भावा अविचारेण चारवः॥ ११

र्थसिबदानन्दैकरसभूमात्मा तिष्ठेखर्थः ॥ १ ॥ यस्मिन् सर्व स्थितौ । यतः सर्वे मृष्टी । यः सर्व संहारे । सर्वतश्र यः कालत्रयेपि। एवं सर्वानित्यप्रपश्चमयोऽपि यो नित्यः परस्तमेवा-त्मानं विद्धि न परिच्छित्रखभावमित्यर्थः ॥ २ ॥ सर्वेप्रपद्य-बहिभावाद्रस्थमपि सर्वान्तरत्वात्सर्वस्थाद्रस्थम् । एवमाकाश-वत्सर्वगमपि तत्स्थं जातिवत्तत्तद्वस्तुपर्याप्तमेत्र । इत्थं सर्वप्रका-रेणापि तदेवैकमस्ति नान्यदिति सिद्धे त्वं परिच्छिन्नरूपेणापि तिस्मिस्तिष्टसीति तत्स्यस्तत्सत्तयैव सत्तामवाप्नोषि न स्वात ऋयेण। एवं सित कि तब परिच्छेदाभिमानेन स एवापरिच्छिन्नसन्मा-त्रस्तमसि । अतोस्तपरिच्छेदसंशयो भवेत्यर्थः ॥३॥ द्विविघं हि चिदात्मनो रूपं विवेकिमिरनुभूयते । एकं चिसतद्वर्ति प्रतिबि-भ्वितं चेत्वार्थप्रधारूपं चित्तनिर्मितम् । अपरं च चित्ततङ्गतित-द्विषयाणामागमापायादिसर्वावस्थासाक्षिसंविद्वपमनिर्मितं नित्य-सिद्धम् । तदुभयमपि चेल्येन संवेदं त्रिपुट्या च विनिर्मुकं चेत्तत्परमं पदं ब्रह्मेव संपन्नमिति विद्धीत्पर्थः ॥ ४ ॥ सा चेत्य-संवेद्यविनिर्मुक्तसंवित्स्थितिः । 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इलादि-श्रुतिप्रोक्ता आनन्दोत्कर्षपरम्परायाः परमा काष्टा । महिन्नां महरवानाम् । गुरूणां मान्यानां परमा गुरुः । नातः परमस्ती-त्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ सैव सर्वजगत्सार इत्याह—स इलादिना ॥ ८ ॥ ९ ॥ स एव सर्वपदार्थानामसाधारणं खरू-पमिखाह-स इति। सत्त्वं सम्यक्लम् ॥१०॥ स कः। यः खस्य विसिस्तास्विकरूपेण वोधस्तद्रूपेण विचित्रेणालौकिकेनोपायेन सर्वे खयमात्मेव नान्यदिति लभ्यत इत्यर्थः ॥ ११ ॥ सतः

अविद्यमानाः सङ्गावा विचारविदारारवः। अहमादी जगजाले मिथ्याग्रमभरात्मनि ॥ १२ कोनु भृत्याऽनुबध्नामि वृत्ति कथमवाप धीः। आद्यमध्यान्तमानानि संकल्पकलनान्यहम् ॥ १३ ब्रह्माकाशमनाधन्तं कैवेयला ममात्मनः। इति निश्चयवानन्तः सम्यग्व्यवद्वतिर्विहः॥ १४ उद्यास्तमयोग्मुक्तस्थितिरन्तः स सर्वदा। नास्तमेति न चोदेति मनः समसमस्थितम्॥ १५ यस्य स्वस्थेव शून्यत्वं स महात्मेह तद्वपुः। भाषाद्वैतपदारूढः सुबुप्तपरया धिया॥ १६ व्यवहार्यपि संक्षोमं नैत्यावर्शनरो यथा। आदर्शपुरुषस्येष व्यवहारवतोऽपि च॥ १७ न यस्य हृदयोष्ट्रेखो मनागपि स मुक्तिमाक । अविभागमिषादर्शे चिन्मणौ प्रतिबिम्बति ॥ १८ चितेः परमनैर्मस्याद्यवहारो यथा गतः। चित्रमत्कृतिरेवेयं जगदित्यवभासते॥ १९ नेहास्त्यैक्यं न च ब्रित्वं ममादेशोऽपि तन्मयः। वाष्यवाचकशिष्येहागुरुवाक्यैश्चमत्कृतैः॥ आत्मनात्मनि शान्तैव चिश्वमत्क्रवते चिति। चित्प्रस्पन्दो हि संसारस्तदस्पन्दः परं पदम्॥ २१

परमात्मनो भावा विकल्पा विचारविशराख इत्युक्तं तत्र कीहरोन विचारेण जगद्भावा विशोर्यन्ते तं दर्शयति-अहमि-त्यादिना ॥ १२ ॥ वृत्तिमास्थाम् । ननु धीरेव ग्रुद्धस्यापि तव आस्थावन्ये निमित्तं भविष्यति तत्राह—कथमिति । धीर्बुद्धि-रप्यसङ्गाद्वयं मां कथमवाप । तत्त्राप्तौ नास्ति हेत्ररिखर्यः। प्राप्नोत् वा सा तथापि तत्कृता आदिमध्यान्तादिपरिच्छेदाः संकल्पकलनानि चाहमेव न मद्यतिरेकेण सन्तीति विचारे ब्रह्मणो मे नेयसाप्रसिक्तिरित्याशयेनाह—आयेति ॥ १३॥ एवं विचारवतो लोकशासाविरुद्धव्यवहारकालेऽपि सा स्थितिनी-पैतीत्याशयेनाह—सम्यगिति ॥ १४ ॥ यस्य मनः समेभ्योपि समे ब्रह्मणि स्थितं स महातमा सर्वदा अन्तरदयास्तमयोन्सक-स्थितिरिति परेणान्वयः ॥ १५ ॥ व्यवहारकाले तादशस्थिख-प्रच्युताञ्जपपत्तिमाह-भावेति । यतोयं भावनयैवाद्वयपदारुहो न व्यवहारत इत्यर्थः । तथाचाहुः 'भावाद्वैतं सदा कुर्यात्रिया-द्वैतं न कर्हिचित्। अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह ॥' इति ॥ १६ ॥ १७ ॥ हृद्योहेखो मानापमानादिदःखम् । कथं तर्सिधिनमणी जीवनमुक्ते व्यवहारः प्रसरति तत्रादर्श एव दृष्टान्त इत्याह-अविभागमिति । इवकारो मिन्नकमः । यथा आदर्शे हर्यमानो जनव्यवहारः अविभागमादर्शस्य वैविष्यवि-भागविकारमङ्गलैव प्रतिबिम्बति तद्वविन्मणावपीखर्यः ॥१८॥ ॥ १९ ॥ बाच्यवाचकशिष्यतरीहागुरुतद्वाकयाद्याख्यानकस्पना-चमत्कारेर्मम आवेशस्लुदुपवेशोऽपि तन्मयधिन्मय एव ॥२०॥ चमक्करते विवर्तते । प्रसन्दो विवर्त एव ॥ २९ ॥

चित्स्पन्दशमनेनेयं परिशास्यति संस्रुतिः। महाचित्ते न तेऽथींशभाषा यो भाषनाक्षयः॥ २२ असन्नपि स्त्रभावं तत्संवित्स्पन्द उदाहृतम्। शुम्यत्वमजडं यत्तत्परमाहुश्चितेर्षपुः॥ २३ तखेन भावनायत्ता संसृतिः सानुभूयते। अभावनामात्रलयात्सा च निःसारक्रिपणी ॥ રક केवलं केवलीभावासद्रुपा सैव शिप्यते । चित्स्पन्द्मेव संसारचन्नप्रवहणं विदुः॥ **ર** () मातृमानप्रमेयादि कटकादीव हेमनि। पृथगस्ति न च स्पन्दक्षितेर्या संस्तिभेवेत्॥ चित्तमेव चितिस्पन्दस्तदबोधो हि संसृतिः। अबोधमात्रे चित्स्पन्दः कटकत्वमिवोत्धितम् ॥२७ बोधमात्रविलीनेऽसिञ्छुद्धा चिद्राम शिष्यते। स्वभावबोधमात्रेण क्षीयते भोगवासना ॥ २८ भोगाभावनमेबेह परमं इत्वलक्षणम्। इतो नामिमताः सर्वे ब्रस्य भोगाः स्वभावतः ॥२९ भवन्ति कोऽतितृप्तो हि दुरश्नं किल बाब्छति।

ते तब महति अपरिच्छिन्ने ब्रह्माकारे चित्ते नते परिणते सति यः अंशभावस्य जीवजगञ्जक्षणैकदेशभावस्य योऽपगमः सोऽधंः पर-मपुरुषार्थः स एव भावनाक्षयो वासनाक्षयश्रेव्यर्थः ॥ २२ ॥ यदासादितोः असम्रपि संवित्सान्द उदाहतं जडस्थभावमापाद-यति तत्तस्माद्वेतोः स्पन्दश्रून्यलभेव अज्ञडं तत्परमं नितेर्वपुः खरूपमित्यनुभवनिष्टा आहुः ॥ २३ ॥ अनात्मदर्शनरूपा या संस्रतिः सा अनात्मजगदाकारस्य तत्त्वेन याधार्थ्येन या भा-षना तदायत्ता तथैवानुभूयते । तदभावनामात्रेण भावनाल-यात्सा जीवन्सुक्तसंस्रतिदंग्धपटवित्रःसारहृषिणी न बन्धक्षमे-खर्थः ॥ २४ ॥ कथं तर्हि जीवन्मुकौ सा शिष्यते तदाह-केवछमिति । केवलीभावाभिःसम्दिचन्मात्रीभावात्सा संस्ति-स्तद्रपा चिद्रपैव शिष्यते अतश्वित्सन्दमेव मातृमानादिरूपं संसारमाहुरिखर्यः ॥ २५ ॥ सच न चितः पृथगस्तीखबोध एव संस्रतिः पर्यवस्यति ॥ २६ ॥ २० ॥ स्वभावः स्वात्मतत्त्वं तद्वोधमात्रेण ॥ २८ ॥ भोगवासनाक्षयात्सहजसिद्धभोगानाम-चिन्तनमेव इखस्य जीवन्मुकताया छक्षणम् । कृतोऽसी भो-गाम भावयति तत्राह—इत इति ॥ २९ ॥ भवन्तीति पूर्वा-न्वयि । कोनु भूत्वेत्यादिना वर्णितेभ्यो विवेकादिलक्षणेभ्यः अपरं छक्षणम् ॥ ३० ॥ इदानीं लक्षणान्तरमाइ---चिदिति । मधीयातमिबदेव तेन भोक्तभोग्यभोगाकारेण सन्दते इति तत्स्पन्दा भूला सर्वात्मरूपिणी अस्तीति योन्तर्निश्वयः खभ्यासः सन् प्रहरूः स एव इत्लब्धणमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ या तु तस्य सर्वजनवर्देहधारणनिमिले भोगे प्रवृत्तिः सा वृथा चेष्टेवेत्याह-य इति । यो लोकानुरोधसिज्धर्थं भुज्यमानानपि भोगान् पर-मार्थतो न भुद्गे स बुद्धिमांस्तत्त्ववित् भ्रान्त्या नुभोहननप्रसक्त-लोकानरोपितज्यर्थं सममपि छन्दर्नमो हन्ति तदस्य द्या

एतरेव परं विद्धि शत्वस्थापरलक्षणम् ॥ स्वभावेनैव भोगानां यत्किलानमिवाञ्छनम्। चित्तत्स्पन्दैव सर्वात्मरूपिण्यस्तीति निश्चयः ॥ ३१ योन्तःप्ररूढः स्वभ्यासो इत्वदान्देन स स्मृतः। यो न भुक्के भुज्यमानानपि भोगान्स युद्धिमान्॥३२ लंकानरोधसिद्धार्थं स हन्ति लगुडैर्नभः। विनाकृत्रिमया बुद्धा न सिद्धिरवगम्यते ॥ 33 कचिदातमावलोकं च स्वाङ्गावदलनरपि। चिश्वेत्यं चेत्यकोटिस्था तावत्पइयति विभ्रमम्॥३४ इदं यावदबोधातमा स्पन्दते स्पन्दरूपिणी। सम्यग्बोधोदयोन्तः स्यात्स्पन्दास्पन्ददशाक्रमः ३५ कापि याति च संशान्तदीपवत्साभिधानकः। चितः प्रशान्तरूपाया दीपिकायाः स्वभावतः ॥३६ स्पन्दास्पन्दमयी नेह कथवास्ति मनागपि। यदस्पन्दस्य महतो न सन्नासन्न मध्यगम्॥ 30 रूपं तदेवासंवित्तिस्पन्दायाः प्रशमं चितेः। अमिन्नः स्याचितः स्पन्दः शुद्धचित्स्फारकपभूक्३८

चेष्टेव सेत्यर्थः ॥ ३२ ॥ ननु सा यदि वृथा चेष्टा तर्हि सर्वज-नभोक्तभोग्यभोगाकारपरिणतात्मचिदेव सर्वात्मरूपेतिप्रागुक्तयु-दिर्पि सर्वजननभोजगुडहननं मरीयमेत्रेतिवस्नान्तिबुदिखात्कः-त्रिमेवेति सा ऋथं उक्षणत्वेनोक्ता तत्राह-विनेति । सिदि-र्निरतिशयानन्दमात्मतस्वम् । तथाच कृत्रिममपि सर्वात्मभाव-दर्शनं परिच्छिन्नात्मदृष्टिनिरासद्वारा तत्त्वावगमोपयुक्तमिति त-क्रक्षणमुक्तमिखर्थः ॥ ३३ ॥ तर्हि देहात्मश्रुद्धिनिरासद्वारा त-न्वदर्शनोपयोगिलाद्धस्तपादादि खाङ्गानामवदलनादिसाहसिक-यापि तल्रक्षणं किं न स्यात्तत्राह—किचिदिति । यदि किच-च्छास्न निद्वदनुभवे वा खान्नानामवदलनादिसाइसैरपि सर्वा-त्मतादर्शनवत्स्वात्मावलोके उपयोगः प्रसिद्धः स्यात्तदा तदिप लक्षणं स्यात्रत् तदस्तीत्यर्थः । अथवा अकृत्रिमयेति च्छंदः । आत्मावलोके खरूपाविभावे अकृत्रिमयाऽपरिच्छिनाकारग्र-म्यया अखण्डबद्धाकारबुद्धा विना खाङ्गावद्छनैः खाङ्गावद्छ-नसदशसाहसकोटिमिराप सिद्धिरूपयोगो नावगम्यत इत्यर्थः । तत्कुतस्तत्राह-चिदिति त्रिभिः । इयं चित् यावदबोधात्मा अज्ञानन्छन्ना भवति तावश्रेलकोटिस्था खप्रकाश्यवुद्धादिकोव्य-नुप्रविष्टा सती खयमपि स्पन्दरूपिणीव भूला चेरयं बाह्यविषयं प्रतिस्पन्दते तेन विश्रमं पश्यति ॥ ३४ ॥ यदा भन्तः सम्य-ग्बोघोदयः स्यालदा स्पदास्पन्ददशाक्रमः सामिधानकः ख-नाम्ना सह कापि याति बाध्यत इत्यर्थः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ आखन्तिकप्राणचेष्टोपरमोऽपि स एवेत्याह-यदिति । मध्य-गमनिर्वचनीयमपि रूपं यम्र ॥ ३०॥ न विद्यते असंवित्ति-रज्ञानं रंपन्दश्च यसाश्चितेः । प्रश्नमं मोक्षारूयं विद्वरित्यर्थः । यदा चित्तात्मा चितः स्पन्दः शुद्धचितः स्फाररूपं ब्रह्माकार-स्तस्य प्रभवति तदा प बन्धाय न मोक्षाय ॥ ३८ ॥

न बन्धाय न मोक्षाय स्थित आत्मिन केवलम् ।
चिकेश्विरर्वसंवित्तिनिर्वाणेन च विन्दते ॥ ३९
ठक्वन्धमोक्षपक्षादेनीमापीह न विद्यते ।
मोक्षोऽस्त्रियत्येव बोऽधोन्तः पूर्णता श्वयकारणम् ४०
समास्त्रियत्येव बोऽधोन्तः पूर्णता श्वयकारणम् ४०
समास्त्रियत्यि बन्धस्ते श्रेयोऽसंवेदनं परम् ।
थदनाभासमज्ञं तिद्विद्व परमं पदम् ॥ ४१
चितः स्वरूपं संस्थानमचेत्योन्मुखतात्मकम् ।
थः संकल्पनशब्दार्यरूपः स्पन्दो महाचितः॥ ४२
बन्धमोक्षादिकाहींऽसी प्रेश्यमाणः प्रणश्यति ।
प्रेक्षणादेव संशान्ते त्वहंभावं निरास्पदे ॥ ४३
न विद्यः केन किं कस्य बध्यते वाथ मुच्यते ।
संकल्प प्रव रचिते बुधश्चेद्विभागवान्॥ ४४

तदसंकल्पमस्पन्दं सर्वे जातमवारितम्।
स्पन्दे स्पन्दमये वाते तन्मयत्वात्सदा जिता ॥४५ ।
संक्षीणेन च संसारो निस्पन्दे चिद्धने स्थिते।
चित्तेज पव चित्स्पन्द इति बुद्धे निरन्तरम्॥ ४६
व्यतिरिक्तक्षितः स्पन्दो न किचिद्विद्दिष्यते।
अस्मिन्दद्यमये दीर्घस्वप्रे स्वप्नान्तरं वजन्।
न क्षो मोहमुपाद्से सर्वगत्वात्स्वसंविदः॥ ४७
यत्रोदेति प्रसभमनिशं सर्गसंवित्तिसत्ता
यस्मिन्नेते सकलकलनाकारपङ्का गलन्ति।
उद्यन्त्येते स्वद्दनसुभगं यत्र सर्वोपलम्भा
ध्यानेनैवं तमवगमय प्रत्यगात्मानमन्तः॥४८

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे प्रत्यगारमावबोधो नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०

विसष्ट उवाच ।

प्रवमार्ध परं तस्वं चिद्धनं मरमं पर्दम् ।
तत्स्था पते महारूपा ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ १
विभूतिमिः स्फुरन्त्युचैर्जनास्तुष्टा नृपा इव ।
आकाशगमनाद्यामिः कीडामिः कीड्यते चिरम् २
तस्स्थेनैव जनेनेह स्वर्गे स्वर्गीकसो यथा ।
तत्माप्याक्क न ब्रियते तत्माप्याक्क न शोच्यते ॥ ३

चित् निर्धे व्यर्थे संवित्तिश्चित्ताकारो निर्वाणं तद्वपरमञ्ज ते द्वे दशे न विन्दते चेत् ॥ ३९ ॥ तत्तर्हि ॥ ४० ॥ स मोक्षो मास्त समा निर्विक्षेपा चिदस्खिति वा इच्छापि बन्धः । कि तर्हि श्रेयस्तदाह-श्रेय इति सपादेनार्धद्वयेन ॥ ४१ ॥ कस्तर्हि बन्धमोक्षादिकव्यवहाराईः पदार्थस्तमाह-य इति ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ कस्तर्हि चितः संकत्यस्पन्दत्यागे उपायस्तमाह--सं-कल्प एवेति । बुधो बिवेकी खरचिते संकल्प एव चेदिदं मया संकरिपतिमिदं नेति पूर्वापरविमर्शेन विभागं जहाति तत्ति जातोपि संकल्पो बहिःस्पन्दजननाक्षमो वृथा नश्यतीत्यर्थादेव सर्वमवारितमसंकल्पमस्पन्दं च जातमेवेल्यर्थः ॥ ४४ ॥ एवं चिता प्रबुद्धचैतन्ये स्पन्दे संक्षीणे स्पन्दमये बाते च संक्षीणे सति तन्मूळः संसारोऽपि क्षीण एवेत्याह—सन्दे इति ॥४५॥ अयवा चित्प्रकाशव्यतिरेकेण स्पन्दोऽन्यो नास्तीति दर्शना-दपि तित्रवृत्तिरित्याह—चिदिति ॥ ४६ ॥ मोहं खचलनादि-अमम् ॥ ४७ ॥ अनिशं यस्मिन् प्रसमं नार्थमाणा अपि बढात् सर्वजगदाकारोपलम्भाः खदनं तत्त्रयुक्तानन्दाखादस्तेन सुभगं यथा स्यात्तया उचिन्त उत्पचन्ते । तथा उक्कसर्वसंवि-त्तीनां सत्तास्थितिरपि यत्रोदेति । एते उक्तसंवित्तिरूपाः सक-**छक्कमाकारपट्टा** यस्मिन्गलन्ति लीयन्ते च तं प्रत्यगात्मान- तत्प्राप्य जीव्यते नाङ्ग तत्प्राप्याङ्ग न रुघ्यते ।
अपारपरमाकाशरूपिणः परमात्मनः ॥ ४
सत्तासामान्यरूपं चेन्मनागिप विभाव्यते ।
तत्त्वं निमेषमात्रेण जन्तुर्मुक्तमना मुनिः ।
कुर्वन्संसारकर्माणि न भूयः परितप्यसे ॥ ५
श्रीराम उवाच ।
मनो बुद्धिरहंकारश्चिषं यत्र क्षयं गतम् ।

मेनमुक्तप्रकारेण ध्यानेन विचारेणावगमय पर्येत्यर्थः ॥४८॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे एकोनपष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

अद्वितीयस्य शुद्धस्य परस्य निजमायया । सर्वोकारैः स्थितिरिष्ठ विभूतिरुपदिश्यते ॥ ९ ॥

वर्णितम्हाणो विभृतीः प्रपन्नियध्यंस्तत्र सुख्यान्प्रथमं निदिशति—एवमिति । तत्स्थास्तिभ्रष्टाः। तथाच तत्प्रतिष्ठोत्कर्षादेव विभृतिषूत्कर्षो मानुषादिहरान्तेष्वित भावः॥ १ ॥ मृपा
मानुषानन्दविभवपूर्णो इवेति तैसिरीयश्रुतिदर्शितानप्दोत्कर्षक्षमप्रथमभूमिकानिर्देशः । तदुक्तभूमिकासु सुखोत्कर्षमाह—
आकाशेति । क्रीक्वते तत्स्थेनैव जनेनेति परेणान्वयः॥ २ ॥
तिस्मन्मद्वाणि आनन्दस्भूतिविरोधिमाछिन्यक्षयतारतम्येव तिछतीति तत्स्थो मनुष्यगन्धविर्जनस्तेन । खर्गोक्सो यवेति
तदुत्तरगन्धवीयुत्तरभूमिकोदाहरणार्थम् । तत्सर्वानन्दोत्कर्षावप्रिभृतं मक्ष तत्त्ववोधेन प्राप्य । अक्रेति संबोधने ॥ ३ ॥ व
जीव्यते प्राणधारणनिमित्तरशनायादिभिनं पीक्यते । न रुष्यते
कुष्यादिभिः॥ ४ ॥ तत्तर्यनं जन्दुः साधारणजन्दुशरीरोऽपि
यदि स्यात्रवापि न परितप्यते कि पुनरुत्तमशरीर इस्युत्तरेणानवयः ॥ ५ ॥ यद्विभावनाक्षन्तुनं परितप्यते त्रसत्ताक्षामा-

सत्तासामान्यमाभातं मनस्वी स किम्च्यते ॥ वसिष्ठ उवाच। यद्वा सर्वदेहस्यं भुद्धे पिवति वलाति। आवसे विनिद्दन्यन्तः संवित्संवेद्यवर्जितम्॥ तत्सर्वगतमाद्यन्तरहितं स्थितमर्जितम्। सत्तासामान्यमिखलं वस्तुतत्त्वमिहोच्यते ॥ तिस्थतं खतया व्योम्नि शब्दे शब्दतया स्थितम्। स्पर्शे स्थितं स्पर्शतया त्यचि तत्त्वक्तया स्थितम् रसे लीनं रसतया रसनायां तु तसया। क्षे क्षपतया दृष्टं नेत्रे लीनं च दक्तया ॥ 80 ब्राणे ब्राणतया दृष्टं गन्धे गन्धतयोदितम् । पुष्टं कायतया काये भूमाविप च भूतया ॥ ११ पयस्तया च पयसि वायौ वायुतया स्थितम्। तेजस्तया तेजसि च बुद्धी बुद्धितया गतम्॥ १२ मनस्तया मनस्यन्तरहंकृत्याप्यहंकृती। कढं संविदि संवित्या चित्ते चित्ततयोत्धितम् ॥१३ वृक्षे बृक्षतया छग्नं पटे पटतयोदितम्। घटे घटतया रूढं वटे चटतयोश्यितम्॥ १४ स्थावरे स्थावरत्वेन जंगमत्वेन जंगमे । पाषाणत्वेन पाषाणे चेतनत्वेन चेतने ॥ १५ अमरेष्वमरत्वेन नरत्वेन नरेषु च। तिर्यक्त्वेन च तिर्यक्ष क्रिमित्वेन क्रिमिस्थिती ॥१६

कालक्रमे कालतया ऋतावृतुतया तथा। त्रदिक्षणनिमेषादौ संस्थितस्तत्तया विभुः॥ १७ शक्के शक्कतया जातं कृष्णे कृष्णतया स्थितम्। क्रियास स्पन्दरूपेण नियती नियमेन च॥ 36 संस्थितः संस्थितौ स्थित्या नारो नारातया स्थितः। उत्पत्तिरूपेणोत्पत्तावास्थितः परमेश्वरः ॥ बाल्येन बाल्ये विश्वान्तो यौषने यौषनेन च। जरसा च जरारूपे मरणे मरणेन.च॥ २० इति सर्वपदार्थानामभिषः परमेश्वरः। कल्लोलसीकरोर्मीणामब्धाविच पयोधरः ॥ २१ नानातैषां त्वसत्यैव सत्येनानेन चैव हि। कविपता चित्स्वभावेन वेतालः शिशुना यथा २२ सर्वत्र संस्थितिमता विगतामयेन व्याप्तं मयेदमखिलं विविधैर्विलासैः। चिद्रपिणैव कलनाकलितात्मनेति मत्वोपशान्तमतिरास्य सुसं महातमन् २३ श्रीवाल्मीकिरवाच । इत्युक्तवत्यथ मुनौ दिवसो जगाम सायंतनाय विधयेऽस्तमिनो जगाम । बातं सभा कृतनमस्करणा जगाम श्यामाक्षये रविकरेश्च सहाजगाम ॥ २४

इखार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्नीकीये दे॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे विभूतियोगोपदेशो नाम षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

षोड्यो दिवसः ॥ १६ ॥

न्यस्पं कि निर्निशेषमुत सिनशेषम् । आये तस्य विभूतिवर्णनमसंगतम् । द्वितीये तत्प्राप्य जन्तुनं परितप्यते इंखाखन्तिकपरितापोच्छेदवर्णनमयुक्तमिखाशयेन रामः प्रच्छति—मन
इति । मनोबुद्ध्यादि सर्वद्वैतं यत्र क्षयं गतं तिक्षविशेषमाभानं
पूर्णिकन्मात्रमेव सत्तासामान्यमिति लयोच्यते उत मनत्वा मनआदिसर्वविशेषवान् सर्वात्मा ईश्वर इत्यर्थः ॥ ६ ॥ नात्र प्रपखवाषोत्तरपरिशिष्टनिर्विशेषमिति वा तत्पूर्वकालिकं सिथशेषमिति वा विभज्य सत्तासामान्यमुक्तं किंतु सर्वजीवभावेष्वीश्वरमावे मुक्ती च यदमुत्यमखण्डदण्डायमानं सन्मात्रं तदेवोक्तं
तदेव जगतस्तरम् । तत्र तु लदमित्रेतो न किंतिद्वरोध इत्याशयेन विश्वष्टः समाधत्ते—यदिति । आदत्तेऽन्तर्जाप्रत्वप्रसर्गकाले । विनिद्दन्ति सुषुतिप्रलययोः । संवित्संवेयवर्जितं तुरीयतायाम् ॥ ७ ॥ स्थितमेव कण्ठनामीकरबद्वोधेनार्जितम् ॥ ८ ॥
तदेव वियदादिकार्योनुत्यूतं तद्विभृतितयोपवर्ण्यते सार्वात्म्यप्रवर्शनावेसाह—तदित्यादिना ॥ ९ ॥ तत्तया रसनेन्द्रियतया ।

नेन्ने नक्षुरिन्दिये ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ अहंकृत्या अहंकारतया । संविदि बुद्धै । संवित्त्या बुद्धितया ॥ १३ ॥ १४ ॥
नेतने नतुर्विधभूतेषु ॥ १५ ॥ तत्र विशेषाकारससापि तदेवेत्याह—अमरेष्वित ॥ १६ ॥ कालस्य कमे युगसंवत्सरलादिमेदे । ऋतावित्यादिस्तत्प्रपद्यः ॥ १० ॥ नियमेन नियतितया
॥ १८ ॥ १९ ॥ बाल्येनेत्यादयो भावप्रधाननिर्देशाः ॥ २० ॥
पयोभरो जलसामान्यमिव ॥ २१ ॥ कथमयमेवैको नानात्वेन
स्थित इति चेत्स्वाहानआन्तिकत्पनयैव न वस्तुत इत्याह—नानातेति ॥ २२ ॥ हे महात्मन्, सर्वत्र संस्थितमता विद्वपिणा
मया आत्मना स्वेनेवेयं जगत्कलना कलिता कल्पिता । इह्मखिलं मयैव विविधिविलासैन्यांसं ममेवेयं विभूतिनं मद्यतिरिक्तं
किचिदस्तीति मला उपशान्ता मतिर्यस्य तथाभृत आस्स्व । स्वमहिन्नि तिष्ठेत्यर्थः ॥ २३ ॥ २४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्वप्रकाशे निर्वाणमकरणे विद्वतमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितभः सर्गः ६१

श्रीराम उवाच । यथासाकं मुने स्वप्नपुरपत्तनमण्डलम् । तथैष पद्मजादीनां यदि देहपरिप्रहः॥ तथैवेदं च संजातं यदि सर्वमसन्मयम्। तदसाकं धढतरः प्रत्ययः कथमुत्थितः॥ वसिष्ठ उवाच। अस्रत्सर्गबदाभाति पूर्वसर्गः प्रजापतेः। आजीवप्रतिभासात्मा विद्यते नतु वास्तवः॥ सर्वगत्वाचितेः सर्वे जीवः सर्वत्र संसृतिः। सा चासम्यग्दर्शनोत्था सम्यग्दर्शननाशिनी ॥ स्वप्नामः प्रतिभासोऽस्य य एप समुपस्थितः । अह्न्ताप्रस्ययेकात्मा स एवातिहर्दे स्थितः॥ स्वप्ने श्रिप्रविनाशित्वं यथा पुंसा न इदयते। सर्वस्वप्ने तथैवैतद्वह्मणामिह उध्यते ॥ स्वप्रोऽयं पुरुषस्यास्य प्रतिभासस्य यो भवेत् । रामाऽसदादिसदीत्मा भवेत्तादश एव च ॥ 9

इह प्रसाध्यते युक्तया स्वप्नमायासमं जगत् । सर्वत्र चाविरोधेन श्राम्या सर्वस्य संभवः ॥ १ ॥

यदि सर्वे जगत्यरमात्मनः खप्रसद्दर्शाः श्रान्तिकल्पितविभ्-तिस्तर्हि बद्यादिदशा खप्तवद्यान्तिरित्येव भासते । अस्पदादि-हशा त न स्वप्नतुल्यः किंतु दहतरः सत्य इत्येव भासत इति **वैषम्ये को हेतुः । नच दी**र्घकालानुवृत्त्यास्माकं तथा भातीति तत्समाधानं युक्तम् । ब्रह्मादीनां परार्धद्वयायुषां ततोपि निर-कार्छ संसारानवृत्त्या सत्यतादार्व्याधिकवापत्तेरित्याद्ययेन रामः पृच्छति-यथेति द्वाभ्याम् ॥ १ ॥ अस्माकं अस्माकमेव प्र-पश्चे रहतरः सत्यताप्रत्ययः कथमुख्यितो न पद्मजादीनःमित्यर्थः ॥ २ ॥ अबाधितचिरानुवृत्तिरेव सत्यताश्रमदार्ध्यहेतुने बाधि-तिबरानुवृत्तिरित्याशयेन वसिष्ठः समाधत्ते—अस्मदिति । यदायं पद्मजः पूर्वमुपासकावस्थोऽभूतदा तत्त्वज्ञानाभावादस्य प्रजाप-तेस्तदानीतनः पूर्वसर्ग इदानीमस्मदनुभूयमानसर्गवदेव आस-मन्तायत्वविधभृतत्रामलक्षणजीवप्रतिभामातमा सत्य एवाभाति तथापि सांप्रतं तस्य तत्त्वज्ञानबाधितत्वाद्वास्तवो न विद्यते ॥३॥ यावदशानं ताविवतेः सर्वगलात्सर्व जीवो भवति । सर्वत्र च संस्तिः सत्येव भवति । साच सम्यग्दर्शनविरोध्यज्ञानोत्था सम्यग्दर्शनेन नंष्टुं शीलमस्यास्तथाविधेत्यर्थः ॥ ४ ॥ अत-एवास्य प्रजापतेस्तत्त्वज्ञानगाधितः स्वप्नाभः पेलवः प्रपश्यप्रति-भासो यः समुपस्थितः सः अज्ञास्मदाद्यहन्ताप्रख्ययेनैकात्मा एकीभूतः सन् अतिदृढं स्थितः ॥ ५ ॥ तर्हि प्रजापतिभिः सकल्पतप्रपद्यस्य तत्त्वनोधेन क्षिप्रविनाधिता कृतो नानुभूयत इति चेद्रोजकाष्ट्रपेन प्रतिबन्धादित्याशयेनाह-त्वप्रे इति । यथा अप्तपंसा खाप्रभोगप्रदक्षमंत्रतिरुद्धलात्खप्ने विद्यमानमपि

यत्स्वप्रपुरुषाज्ञातं तत्स्वप्रपुरुषात्मकम् । भवनीत्यनुभूतं हि यद्दीजं तत्कलं यथा॥ 4 असत्यमेव तद्विद्धि यदसत्येन साध्यते। असत्येऽथे समर्थेऽपि न युक्तं भावनं घनम्॥ Q, येन तेन परिल्याज्यमसद्भावनमायनम्। द्दप्रत्ययितं स्वप्नपुरुषाचत्समुत्थितम् ॥ १० भवत्यात्मनि सर्गादि इदप्रत्ययमेव तत्। निमेषमात्रः पौरोऽयं सर्गस्वप्तः पुरः स्थितः ॥ ११ तिसिन्निमेप एवासिन्कल्पना परिकल्प्यते। सुदीर्घस्त्रमखण्डोयं यथोदेति प्रजापतेः॥ १२ सर्गाख्यः सर्गभूतानां त्रत्येकमुदितस्तथा । चित्तत्वस्येच भावेन सर्गवर्गपरम्परा॥ १३ स्फ्रारत्यम्भो द्रवत्वेन यथावर्तविवर्तनैः। यथा स्वप्नात्मिकैवेयं सर्गलक्ष्मीने वास्तवी॥ १४ तदा संभवतीदं वै तत्पदं प्रलयं गतम्। यद्यथा यादशं दृष्टं तत्तादृग्विद्यते तथा ॥ १५

क्षिप्रविनाशित्वं न दर्यते तथा समष्टिखप्ते जगत्यपि वद्याणां पद्मजानामिह विनाशिलवीधे प्रतिबन्धी लक्ष्यत इलार्थः ॥ ६ ॥ हे राम, अस्य सप्तपुरुषस्य प्रतिभासस्य प्रतीतेरयं प्रसिद्धः खप्रः असादादिसर्वजीवजगदातमा यादशोऽनाधनन्तप्रवाहरूप इत्येव भवेत्प्रजापतेरपि तादश एव भवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥ अस्त तादशः किं ततस्तत्राह-यदिति । यथा तस्याम्रादेशीजमेव तजन्यश्रक्षफलात्मना परिणतं न वस्लन्तरं तद्वदिखर्थः ॥ ८ ॥ अस्त्वेवं ततोऽपि कि तत्राह-असत्यमेवेति । असत्येन मनः-पुरुषेण यत्साध्यते तदसल्यमेवेति सिद्धम् , अतो जन्मान्तरस्वर्ग-नरकादार्थिकियासमर्थेति घनं सत्यलभावनं न युक्तमित्यर्थः ॥९॥ येन हेतुना युक्तं रोन हेतुना टढप्रव्ययितमपि परित्याज्यम् ॥ १० ॥ किंचास्पदादीनामपि स्वाप्रसर्गादि यद्भासते तत्त-दानी दृहप्रत्ययमेव भवति न मिथ्यावृद्धिस्तदा दृश्यते नैताब-तास्य सलतेलर्थः । अन्युपेल प्राजापलस्य सर्गस्य दीर्घकाळ-स्थायिलमिदं सर्वमुक्तम् । वस्तुतस्तु तस्य दैर्घ्यमपि इरिश्व-न्दसम्बद्धियवद्व्यकालेऽपि संभवतीत्याह—निमेषमात्र इति । वार्षिकः पूर इव प्रशृद्धः पौरः अयं प्राजापत्यः सर्गस्त्रप्रः ॥१९॥ प्रजापतेरिव सर्वेषामपि खखप्रेषु तदानी दीर्घप्रपचताप्रख-योऽस्येवेत्याह—सुदीर्घेति ॥ १२ ॥ चिद्धीनप्रसिद्धिकल-रूपं दश्यत्वं मिथ्यात्वै प्रयोजकं तचोभयत्रापि समानमिखाश-येनाह—चित्तत्त्वस्येति ॥ १३ ॥ १४ ॥ तत्प्राजापत्यं पदं सर्गादिसहितं प्रक्यं गतमत्यन्तासदेवेति 'न निरोधो न चोरप-तिर्न बढो न च साधकः । न मुमुक्कुर्न वै मुक्तिरित्येषा परमा-र्थता॥' इतीदं प्रसिद्धं श्रुतिवचनं संभवतीखर्यः । नन्वसन्तासदे-वेदं चेत्कथं व्यवहाराईमिति चेल्या दृष्टलादेव नात्र पर्यनुयोज्य-

निह पर्यमुयोक्तव्याः स्वप्नविभ्रमरीतयः। म तद्क्ति जगत्यसिन्यन संभवति भूमे ॥ ३१ विचित्रास्त्रिषु लोकेषु दरयन्ते वस्तुदृष्ट्यः। जलमध्ये ज्वलत्यप्रियेथाच्यौ वडवानलः॥ १७ नगराण्यम्बरे सन्ति यथा वैमानिकाश्रयाः। शिलाखडानि जायन्ते हेमाद्राविव पाद्पाः॥१८ एकान्ते सर्वपुण्यानि सन्ति कल्पतरी यथा। **बि**लाः फलन्ति फलिवचथा रत्नगुलुच्छकाः ॥१९ शिलान्तः प्राणिनः सन्ति मेका इय शिलान्तरे। दृषदो बारि निर्याति चन्द्रकान्तोपलादिव ॥ निमेषेण घटो याति पटतां स्वापसंविदि। असत्यमपि बुध्येत स्वप्ने स्वमरणं यथा॥ २१ आकस्मिकं जलं ब्योम्नि ध्रियते भूतगं यथा। षितानमिव खे वारि तिष्ठति स्वर्णदी यथा॥ उड्डीयन्ते शिलाः स्यूलाः पक्षवन्तो यथाद्रयः । शिलान्तः प्राप्यते सर्वे ननु चिन्तामणेरिय ॥ २३ चिन्तितानि फलन्त्याद्यु देवोद्यानान्तरेष्विव। तान्येव न फलन्त्याद्य मोक्षादीनां च राघव ॥ २४

अचेतनोऽपि कुरुते कर्म यन्त्रपुमानिव। एवमाद्यास्तथान्ये च विचित्रारम्भविभ्रमाः॥ २५ दृष्टाः शम्बरगन्धवैविलासेरप्यसंभवाः। देशकालकियाद्वव्यरत्तसंचरणीयजाः॥ २६ अर्था गन्धवेजनिता अनन्ताः सत्यसंभवाः। असंभवः संभवोऽयमपि भाव्युपपद्यते॥ २७ संभवोऽसंभवः सम्यक् सिद्धये स्वप्नविभ्रमः। न तदस्ति न यत्सत्यं न तदस्ति न यन्म्रषा ॥ सर्वे सर्वेण सर्वत्र खप्ने सर्गामिधानके। स्वप्ने निमग्नधीर्जन्तुः पश्यति स्थिरतां यथा ॥ २९ सर्गस्वप्रे मग्नवुद्धिः पद्यति स्थिरतां तथा। भ्रमाद्भमान्तरं गच्छन्स्वप्रात्स्वप्रान्तरं वजन्। अतिस्थिरप्रत्ययभागिह जीवो विमुहाति ॥ ३० श्वभान्तरं श्वभनिपातदोषात संप्रायुवन्मुग्धमृगः प्रयाति । मोहं यथा पातमयैकरूपं जीवस्तथा संसृतिपातमृदः॥ 38

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे जगत्खप्रकथनं नाम एकपछितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

बिषष्टितमः सर्गः ६२

१

श्रीषसिष्ठ उवाच । अत्र राघव वक्ष्येऽहमितिहासमिमं शृणु । यदृत्तं कस्यचिद्धिक्षोः किंचिन्मननशालिनः ॥

मस्तीत्याह-यद्ययेति ॥ १५ ॥ अज्ञानस्याघटितघटनासाम-र्थादिप न पर्यनुयोज्यतेत्याह—न तदिति ॥ १६ ॥ असंभा-वितानां बहुनां जगति दर्शनमुदाहरति-विचित्रा इत्यादिना ॥ १७ ॥ हेमादी निर्श्तिके ॥ १८ ॥ एकान्ते एकदेशे सर्वाणि पुण्यानि पुण्यफलभूतान्यभिलिपतवस्तूनि । 'पण्यानि' इति पाठे पणनं व्यवहारस्तवोग्यवस्तृनि । 'पुष्पाणि' इति पाठे तु सप्टम् । यथाशब्दाः सर्वत्रोदाहरणार्थाः । फलिबद्धक्षवत् । रत्नगुलुन्छकाश्विन्तामणिगुन्छाः ॥ १९ ॥ २० ॥ स्त्रावसंवि-दि खप्रे॥ २१॥ खर्णंदी मन्दाकिनी॥ २२॥ २३॥ न फलन्ति नोत्पद्यन्ते । यथा मोक्ष उत्पद्यतां, ब्रह्म नश्यतु, प्रपद्मः सलोख्त, भोगाः शाश्वताः सन्तु, नियतिर्भज्यतां, वेदा अप्रमाणीभवन्तु, इत्यादीनां विषये सत्यसंकल्पानां चिन्तिता-न्यपि न फलन्तीलर्थः ॥ २४ ॥ असंभवाः असंभाविता अन्ये च विचित्रारम्भविभ्रमाः शम्बरगन्धर्वोदिमायाविलास-र्देष्टा इत्यन्वयः ॥ २५ ॥ देशे दुरुलादौ चन्द्रप्रादेशिकलादयः काले औत्पातिकनभःकवन्धादयो मन्त्रप्रयोगादिकियया औष-धारिद्रव्ये रत्नेमीणिमिः संचरणीयैः पिशाचमदायनुप्रवेशैध जातास्ते ते विचित्रारम्भविश्रमा दृष्टा इसर्थः ॥ २६ ॥ थोग० ११६

आसीत्कश्चिन्महामिश्चः समाध्यभ्यासतत्परः । नित्यं स्वव्यवहारेण क्षपयत्यक्तिलं दिनम् ॥

सत्येभ्य इवार्थिकयासंभवी येभ्यस्थायिधा दृष्टा पूर्वेणा-न्वयः । इदानीमसंभवोऽप्ययं ब्रह्मण्डनाशादिभीवी संभवतीति संभव उपपद्यते ॥ २० ॥ एविमदानी संभवोऽपि सगेरूपः सप्तविश्रमः प्रत्ये तत्त्ववोधे चासंभवः सन् सिद्धयं स्वरूपविश्रमः प्रत्ये तत्त्ववोधे चासंभवः सन् सिद्धयं स्वरूपविश्रमः प्रत्ये तत्त्ववोधे चासंभवः सन् सिद्धयं स्वरूपविश्रमत्ये भवतीत्ययः । एवंच ब्रह्मातमा दर्शने नासत्यं किंचि-दिस्त जगदात्मना दर्शने तु न सत्यं किंचिदस्तिति फलितिमिल्याह—न तदिति ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ यथा मुग्यो सृगः श्रेष्ठेषु निपातयतीति श्रश्रनिपातस्वथाविधात्स्वमोहदोषाच्ख्रुश्राच्छ्रभानतरं प्रयाति तथा संस्ती पातयन्तीति संस्तिपाता रागा-दयस्तान् मूडो जीवः पातमयतया एकरूपं न सृगवन्मध्ये निर्गम्मस्ति यत्र तथाविधं मोहं देहादिगर्तप्रवंशश्रमं प्रयातीत्वर्थः ॥ ३१ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाण्यकरणे एकपष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

विचित्रवासनायोगास्नानादेहासिविश्रमम् । वर्ण्यते जीवटास्याने भिक्षमानसचेष्टितम् ॥ १ ॥

अत्र अस्मिन् अमाद्रमान्तरं गच्छत्रिति वर्णितेऽथं उदाहर-णभूतमितिहासं पुरावृत्तम् । यहृतं संपन्नम् ॥ १ ॥ महान् शान्तिदान्तिवैराग्यादिसंपन्नो मिश्चः परित्राद् । स्वयवहारेण

समाध्यभ्यासगुद्धं तत्तस्य चित्तं क्षणेन यत्। चिन्तयत्याशु तद्भाषं गच्छत्यम्बिव वीचिताम् ३ कदाचित्स समाधानविरतोऽतिष्टदेकधीः। किंचित्संचिन्तयामास स्वासनस्थः क्रियाक्रमम् ४ तस्य चिन्तयतो जाता प्रतिमेयमिति स्वतः। भाषयाम्याञ्च लीलार्थ सामान्यजनवृत्तिताम्॥ ५ इति संचिन्त्य चेतोऽस्य स्थितं किंचिन्नरान्तरम्। स्पन्यसंस्थानसंत्यागमात्रणायर्तनेऽभ्विषय ॥ तेन चित्तनरेणाथ कृतं नामात्मवाञ्छया । जीवटोऽस्रीति सहसा काकतालीयवित्स्थितम् ७ जीवटो विजहाराथ स स्वप्नपुरुषश्चिरम्। स्वप्ननिर्माणनगरे कस्मिश्चित्पुरवीथिषु॥ तत्र पानं पपौ मत्तो भृद्धः पद्मरसं यथा । लीलयैव रढं हृष्टः सुष्वाप घननिद्रया ॥ स्वप्ने दद्शे विप्रत्यं पाठानुष्टानतुष्टिमत्। प्रतिभामात्रसंपन्नां चित्ते देशान्तराप्तिवत् ॥ १० कदाचित्स द्विजश्रेष्ठस्त्वहृद्यांपारनिष्ठया। सुष्वापान्तर्व्यवहृतिर्वीजतायामिव दुमः॥ ११ द्विजोऽपद्दयत्स्वयं स्वप्ने सामन्तत्वमथात्मनि । स सामन्तः कृताहारः कदाचिद्धननिद्रया ॥ १२ अपर्यद्वाजनां स्वप्ने ककुष्यलयपालिनीम्। लालितां भोगपूरोन पुष्पौषेण लतामिव ॥ १३ स कदाचित्रुपः स्वस्थः सुष्वापास्तमितेहितः। पुरोभाविनिजाचारः स्वकार्यमिव कारणे॥ १४ अपर्यत्स्वात्मनि स्वप्ने सुरस्रीत्वमनिन्दितम्।

स्वाश्रमोचितश्रवणमननादिव्यवहारेण ॥ २ ॥ समाधिश्वतस्य ध्येयाकारदाटीन पूर्वखरूपशून्यलापादनं 'तदेवार्थमात्रनिभीसं खरूपशून्यमिव समाथि'रिति पतञ्जलिवचनात् । तदभ्यासेन शुद्धं पूर्ववासनात्यागक्षमम् । अम्बु जलं वीचितामिव ॥ ३ ॥ एकधीरेकाग्रचित्तः ॥ ४ ॥ सामान्यजनाः शास्त्रसंस्कारहीना-स्तद्वतितां चित्तचेष्टानुसारिताम् ॥ ५ ॥ नरान्तरं यतिधर्मानि-यित्रतपामरपुरुषान्तरह्मम् । यथा अम्बु आवर्तने कृते प्राक्त-नप्रवाहस्यन्दस्य समसंस्थानस्य च संत्यागमात्रेण नाभ्याकार-मावर्तास्यरूपान्तरेण तिष्ठति तद्वत् ॥ ६ ॥ तत्र नान्तरीयकी नामकल्पनामाह—तेनेति ॥ ७ ॥ ८ ॥ हष्टो मलः ॥ ९ ॥ पाठैरध्ययनैः सत्कर्मानुष्टानैथ तृष्टिमत् संतुष्टं न पृथग्जनच-रित्रेण ॥ १० ॥ अहव्योपारनिष्ठया श्रान्त इति शेषः । अन्तः संस्कारात्मना लीना व्यवहृतिर्यस्य । यथा बीजतायां हुमोऽन्त-र्गतविटपादिसंस्कार आस्ते तद्वत् ॥ ११ ॥ सामन्तलं माण्ड-क्रिकराजताम् ॥ १२ ॥ कृताहारी भुक्तवान् सन् सुप्तो धननि-इया राजतां साम्राज्यम् । ककुमां दिशां वलयानि पालयितं शीलं यस्यास्तथाविधाम् ॥ १३ ॥ पुरोभावी फलदानायोप-स्थितो निजः खीयः स्यासक्तिरूप आचारो यस्य । सकार्य

बृक्षकोशरसोल्लासे मञ्जरीत्वमिवोदितम्॥ सा सुरस्री रतिश्रान्ता निद्रां गाढामुपागता । मृगीत्वमात्मनि स्वैरमावर्तत्वमिवाम्बुता ॥ १६ सा मृगी लोलनयना कदाचित्रिद्रया हुता। स्वप्ने ददर्श वहीत्वं स्वाभ्यासादृढमात्मनि ॥ १७ तिर्यञ्जोऽपि प्रपद्यन्ति स्वप्नं चित्तस्वभावतः। दृष्टानां च श्रुतानां च चेतःस्मरणमक्षतम् ॥ १८ सा बभूच लतापुष्पफलपहुचशालिनी। वनदेषी वनोद्यानलतागृहविलासिनी । १९ बीजान्तस्थाङ्कराकाररूपयेहाधिरूढया । सापश्यदन्तःसंवित्त्या स्फुटं लवनमात्मनः॥ २० कंचित्कालं सुयुप्तस्थं कलया जडतां घनाम्। अनुभूय ददर्शाथ स्वात्मानं भ्रमरं स्थिरम्॥ २१ षद्पदो विजहाराथ वने वनलतास्वसौ। पश्चिनीषु च फुल्लासु तरुणीष्विव वल्लभः॥ २२ प्रियाबिम्बाधरस्वादुरसवत्कौसुमं मधु। भ्रमत्कुसुमसंघासु मुक्तावल्लीविलासिषु ॥ २३ स वभूव सरोजिन्यां व्यसनी बिसनालगः। कचिदेव रति होति चेतो जडमतेरपि॥ २४ तामाजगाम निलनीं परिलोलयितं गजः। रम्यवस्तुक्षयायैव मुढानां जुम्भते पद्म्॥ २५ मिलनी मर्विता सैच समं तेन स षट्पदः। गतो दन्तान्तरं बीहिरिच चूर्णत्वमाययौ॥ २६ भ्रमरो वारणालोकाद्वारणालोकभावनात्। द्दर्शात्मानमामोदमत्तहस्तितयोदितम्॥ २७

वृक्षादि । कारणे बीजे ॥ १४ ॥ बहुपुरुषसंभोगेऽप्यनिन्दितं सुरस्त्रीलमप्सरस्त्रम् । रसोक्षासे चेतनलकल्पनयोक्तिरुक्षणया वृक्षजीवोक्तिवी ॥ १५ ॥ मृगीनयनसान्दर्यामिलाषवासनया मृ-गीलमपर्यदित्यनुकृष्यते । अम्बुता अम्बुसाम्यावस्था ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ तिरश्वां स्तप्नदर्शनमस्ति नवेति संदिहानान्प्रत्याह-तिर्थम इति । चित्तस्य दृष्टश्चतसंस्कारप्राहित्वात्सति संस्कारे स्मृतिवत्खप्रस्याप्यवर्जनादित्याशयः ॥ १८ ॥ छतापल्लवासक्ति-वशाहता बभव । वनदेवीनां वने प्रसिद्धलतागृहमिव विलसन-शीला ॥ १९ ॥ सा लता कंचित्कालमन्तःसंविस्या साक्षिचै-तन्येन निद्राजडतां सुषुप्तिमनुभूय बीजान्तस्थाया भाव्यक्करा-काराया वियो रूपमिव खरूपं यस्यास्तथाविधया खप्रोन्मुख्या थिया अमराकारोद्धद्धसंस्कारया आत्मानं अमरमपश्यदित्य-स्वयः ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ कौसुमं मधु मकरम्दं पपौ इति शेषः ॥ २३ ॥ व्यसनी अत्यासक्तः सन् विसस्य नालगो नालसंलग्नः ॥ २४ ॥ पदं व्यवसितम् । जुम्भते वर्धते ॥२५॥ तेन गजेन सा भ्रमराभिता नलिनी मर्दितैव । तेन नालेन समं स षद्यदो गजस्य दन्तान्तरं गतः सस्यसंख्यकृष्णबीहिरिव चर्यमाणख्णेलमायया ॥ २६ ॥ वारणस्यालोकादवलोकनाद्वा-

3

शुष्कसागरगम्भीरे गजः खाते पपातह ।
तमोघनघने शून्ये संसार इव जीवकः ॥ २८
बभूव वहुमो राक्षो महापरबलान्तकः ।
सदा मदबलक्षीबो घूणोतीव निशाचरः ॥ २९
कदाचिदसिनिस्त्रिशिच्छकः सोऽस्तमुपाययो ।
विवेकानिलन्त्र्नक्षो जीव इवात्मनि ॥ ३०
पद्यन्गजघटाकुम्भस्थलायो बलितावलीन् ।
गण्डस्थभ्रमराभ्यासाद्रजो भूयोऽप्यभृदलः ॥ ३१
सेवमानो वनलतां पुनरायात्स पिक्षनीम् ।
दुस्यजो हि दुरभ्यासो वासनानामबोधिनः ॥ ३२
तत्र हिस्तिखुराक्रान्तः पुनः संचूर्णतां यया ।

पार्श्वस्थहंससंवित्त्या बभूव कलहंसकः ॥ ३३ कलहंसिश्चरतरं योनिष्वन्यासु संहुटन् । कदाचिद्रहुभिर्हसैः संगतो विज्ञहार ह ॥ ३४ ब्राह्महंसात्मिका संवित्सशब्दार्थवती मनाक् । तत्र पुष्टास्य तस्थान्तः प्रागण्डरसवर्हिवत् ॥ ३५ स तिबन्तां चरन्मृतो दृढं व्याधिघुणाहतः । तत्संवित्त्यनुसंधानाज्ञातः पद्मजसारसः ॥ ३६ तत्रातिसंततविवेकवतो विलासैः संबोधितो विगतलाकिकवस्तुदृष्टिः । मुक्तः स्थितो ननु युगान्तविधी विदेह- मुक्तेन तेन किमु भावि विभाव्यमेतत् ॥ ३७

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा॰दे॰मो॰निर्वा॰ जीवटोपाख्याने स्वप्रशतरुद्रीये भिक्षुसंसारोदाहरणं नाम द्विषष्टितमः सर्गः॥६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

१

श्रीविसष्ट उवाच । स कदाचिद्ददर्शाथ रुद्रं रुद्रपुरे खगः । वैरिञ्चनिजनाललीलालामेन लीलया ॥

रणस्यालोक्यत इत्यालोक आकारस्तद्भावनादात्मानं मत्तहस्ति-तया उदितं संपन्नं दद्शे ॥ २७ ॥ स गजः खाते हस्तिपक-निर्मितगर्ते । घनेभ्यः शृक्कलादिबन्धेभ्योऽपि घने कठोरे संसारे जीवक इव पारवश्यदुःखान्यनुभवन् ॥ २८ ॥ निशाचर इत्युत्तरान्विय ॥ २९ ॥ स कदान्विद्वपिथते निशायुद्धे चर-तीति निशाचरः समसिभिद्धिं खर्त्ते निर्गता विशास्यो ऽङ्गलिभ्यो निर विशाः कृपाणिकस्वामिधः च्छित्रः सन्नस्तं मृत्युमुपापयौ । जीवो जीवोपाधिर्देहायमिमान इव ॥ ३० ॥ गजघटानां हस्ति-समृहानां कुम्भस्थलायेभ्य उच्चलितानुङ्गीनान् । अभ्यासाचि-रपरिशीलनसंस्कारात् । अल्युड्डयनदर्शनसंस्कारोद्वोधितादित्या-शयः ॥ ३१ ॥ पुनः पूर्ववासनयेत्यर्थः । अबोधिनः अङ्गस्य । शेषे षष्ठी नद्भ कर्तरि । 'नलोके'ति निषेधात् ॥ ३२ ॥ सं-विरया दर्शनेन । तदुद्वोघितवासनयेति यावत् ॥ ३३ ॥ योनि-ष्यन्यासु संहठत्रित्युक्तया । 'हंसः पदावने भूला विध्यकच्छे च बारणः । हरिणो देह्यम्ब्रादी' इत्यादिवक्ष्यमाणदिशा अन्त-राहे पश्चाशीतिजन्मानि जातानीति गम्यते । तथाचात्रीकहं-सजन्मद्वयानन्तरं रुद्रतां गतः 'संसारशतपर्यन्ते रुद्रः सोहं व्यव-स्थितः' इति वक्ष्यति । स कदाचित्पुनईसजन्मप्राप्तोऽन्येईसेः संगतो विजहारेखर्थः ॥ ३४ ॥ तत्र हंससंसदि ब्रह्महंसगुणा-कारादिवर्णनश्रवणात् सशब्दात्तश्रामसहिता तदाकारार्थवती चेति द्वेधापि बाह्यहंसारिमका संवित्, अहमपीदशो बाह्यहंसः स्यामिति वासना तत्र तस्मिन् जन्मनि तस्य हंसभूतस्यास्य भिश्चमनसः प्राग् वर्णिताण्डरसस्थबर्हिवत् पुष्टा । घनीभूतेत्यर्थः ॥ ३५ ॥ सतां ब्राह्महंसचिन्तामेव दढं चरस्रावर्तयन् व्याधि-प्रणामिहतो मृतः पद्मजस्य सारसो रुक्षणया हंसो बाहनमिखर्थः ।

तत्र बुद्धिरभूत्तस्य रुद्रोऽहमिति निश्चिता। प्रतिबिम्बवदादरी द्रागित्येव हि विम्बिता॥

॥ ३६॥ तत्र तस्मिन् जन्मिन ब्रह्मलोके च अतिशयेन संततैर्विवेकवतः प्रजापतेविवेकवैराग्यतस्वज्ञानाष्टुपदेशिवलासेः सम्यग्बोधितः । अतएव विगता लौकिकवस्तुषु भोग्यवर्गेषु
सारतादृष्टियस्य तथाविधः सन् मुक्तो जीवन्मुक्तो भूला
स्थितः । एवं जीवतैव निरतिशयानन्दमोक्षसुखे छन्धे सति ।
'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यान्ते कृतात्मानः
प्रविशन्ति परं पदम् ॥' इति अतेर्युगान्तविधौ द्विपराधौवसाने
ब्रह्मणा सह विदेहमुक्तेन तेन हंसेन किमधिकं भावि साध्यम् ।
एतत् सुधीभिभीव्यं चिन्त्यम् । उ इति वितर्के । क्षानेनेहैव
सम्रानर्थनिवृत्तेनिरतिशयानन्दावाप्तेश्व संपादितलाक्तदिरिकपुरुषार्थभावाष्टास्य कृतकृत्यलादित्यर्थः ॥ ३० ॥ इति श्रीचासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे द्विषटितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

रुद्रभूतेन तेनात्र प्वंदेहप्रबोधनम् । तेषां च शतरुद्रावमैकारम्यं चेह वर्ण्यते ॥ १ ॥

स इंसो ठीळया अनायासेनेव वैरिघासननितनीनाले लीळाः कीडास्तलामेन । पद्मजसामीप्यमुक्तिपदप्राप्तिवटेनेति यावत् । कदाचित्पद्मजेन सह रुद्रपुरं गतो रुद्रं दद्रशं ॥ १ ॥ तत्र रुद्रस्य ज्ञानयोगैश्वर्यादिसर्वगुणोत्कर्षदर्शनात्तस्य इंसस्याहमपि रुद्राहंभावनया रुद्रः स्थामिति निश्चिता बुद्धिरभूत् । ननु जीवन्मुक्तस्य निर्वासनस्य इंसस्य कथं रुद्रलस्पृहा । तद्भावनाभ्यासेन देहत्यागेन पुना रुद्रशरीरधारणं च । यदि तु 'भरत्स्य त्रिजन्मिसः' इति न्यायेन तस्य नानादेहभोग्यप्रारुष्यशेष्याहेहान्तरधारणं तर्हि रुद्राहंभावधारणवर्णनस्यानुपयोगप्रसक्तात् । रुद्रस्थेश्वरत्या तद्भावस्य कर्मफलखायोगावेति चेत्त-

रुद्रभूतवपुस्तत्र तनुं तत्याज तामसी। गन्धः पवनतां गच्छन्कुसुमस्तवकं यथा ॥ 3 स रुद्रो रुद्रभवने विजहार यथेच्छया। तैस्तः शिवपुराचारैर्गणकोटिगरिष्ठया ॥ 8 रुद्रस्वनुत्तमशानविलासैकतया तया । स्वमदोषं च वृत्तान्तमपदयत्प्राक्तनं धिया ॥ ų निरावरणविशानवपुः स भगवांस्तदा। उवाच स्वयमेकान्ते स्वस्वप्रशतविस्मितः॥ દ્દ अहो न चित्रा मायेयं तता विश्वविमोहिनी। असत्यैवापि सदूपा मरुभूमिषु वारिवत् ॥ 9 इति प्रथममाज्ञातं चिद्योऽहं चित्ततां गतः। सर्वसंपन्नसर्वेद्वगगनादिविभावनात्॥ 4 यदृच्छया स्थितो जीवो भूततन्मात्ररञ्जितः। कस्मिश्चिद्भवत्सर्गे मिश्चरश्चमितोऽमितः॥ ९ तेनाधयवबन्धेन वहिः स्त्रैरविहारिणी। लीला विलुलिताकारा यदा रम्येति भावतः॥ १० सर्वभावोपमर्देन तदभ्यासवशात्तदा । तामेव सोऽन्वभृद्धिश्चस्त्यक्त्वान्यं मननोदयम् ११ चमत्कृतिश्चेतसि या रूढा सैव विज्ञम्भते। बल्ली त्यजति नैदाघी पीतमप्यम्य माधवम् ॥ १२ स भिधुर्जीवटो भूत्वा जन्तुर्जरठवासनः।

त्राह--प्रतिबिम्बवदिति । नायं मुख्यो रहभावः किंतु प्रति-बिम्बवत्सारूप्यमुक्तिः साच कर्मोपास्तिफलं भवत्येव—'देवो भूला देवानप्येति' इति श्रुतेरिति भावः ॥ २ ॥ नाप्येतज्जन्मा-न्तरं किंतु प्रारम्थशेषोपनीतयेच्छया योगिवन्मानसदेहान्तरक-ल्पनेन पूर्वदेहत्यागमात्रमित्याशयेनाह—हदभूतवपुरिति ॥३॥ गणकोटिषु गरिष्ठया श्रेष्ठया । गाणपत्यपदव्येति यावत् ॥ ४ ॥ सारूप्यमुक्ती जगत्संहारादिव्यापाराधिकाराभावेऽपि ज्ञानेश्वर्या-दिना प्रसिद्धरुद्धसाम्यमस्त्येनेत्याशयेनाह—कद्दस्त्रित । अनु-तमज्ञानैरेश्वर्यविलासेश्व प्रसिद्धरहेणेकतया साम्येन ॥ ५॥ खयमेकान्ते खमनस्येवोवाच ॥ ६ ॥ ७ ॥ आ इति स्मरण-बोतको निपातः । अहं प्रथमं प्राक्तनपारमार्थिकस्थित्या चि-देव । ततो मायया चित्ततां 'बहुस्यां प्रजायेय' इति सर्गसंकल्प-कुलितां गत इत्यादीदमाज्ञातं स्मृतमित्यर्थः । तादशसंकल्पादे-बाहं सर्वसंपन्नः संक्षिदंशे सर्वज्ञो जडांशे गगनादिविमागवांध जात इत्यर्थः ॥ ८ ॥ ततो यरच्छया व्यष्टिसमष्टिलिङ्गस्थूलदेहे चिदाभासात्मनानुप्रवेशे भूतैः स्थूलेखन्मात्रैः सूक्ष्मैश्व तैर्देहैस्ता-दातम्यसंसर्गाध्यासेन तद्गतवासनावैचित्र्येश्वित्रपट इव रक्षितः सन् जीवो भूलाहं स्थित इत्यर्थः । सच जीवः अनादिकाला-व्यन्मपरम्परामनुभवन्कस्मिश्रित्सर्गे वैराग्यसमाधिपाटवादिमतो विषयैरक्षमितो सिक्षुः परिवाडभवत् ॥ ९ ॥ आत्मज्ञानशू-न्यस्य तस्य रम्ये बाह्यवस्तुनीदं महेणाहं महेण वा चित्तनिरो-धाभ्यासपाटवेन पूर्वदेहादेराखन्तिकविस्मरणशक्तयद्भवं दर्श-

तेषु देहेषु बभ्राम रम्भ्रेष्विध पिपीलिका ॥ १३ आत्मनि द्विजभक्तत्वात्सोऽपश्यद्विजतामथ । भावाभाषविपर्यासे बलवानेव वर्धते ॥ १४ सामन्ततामवापासौ विष्रः संततचिन्तिताम्। सातत्येन रसः पीतः फलतामेति पाद्ये॥ १५ राज्यार्थे धर्मकार्याणां कर्तृत्वात्सोऽभवश्रुपः। स कामुकतया राजा सुरस्रीत्वमवापह ॥ १६ **छो**ला होचनहोमेन सा मृगी रसशाहिनी। यभूष वासनामोहश्चाहो दुःखाय जन्तुषु ॥ १७ मृगी सा बत चित्तस्था बभूव विपिने छता। अवस्यंभावि लवनं लतिकाऽनुबभूव ह ॥ १८ अन्तःसंज्ञाचिराभ्यस्तं भ्रमरत्वमधात्मनि । सापश्यत्सावमर्वेन सदा तद्भावभाविता ॥ १९ सवारणखरक्षोदमनुभूयाथ भाषितम्। भूयोभूयः प्रवस्नाम महासंस्रतिसंभ्रमान्॥ २० संसारदातपर्यन्ते रुद्रः सोऽहमहं स्थितः । अस्मिन्संसारसंरम्भे स्वमनोमात्रसंभ्रमे ॥ २१ पवमत्यन्तचित्रासु संसारारण्यभूमिषु । बह्वीप्बहमति भ्रान्तस्त्वशून्यास्त्रिव भूरिशः॥ २२ कसिश्चिदभयं सर्गे त्वहं जीवटनामकः । कसिश्चिद्वाद्यणश्चेष्ठः कसिश्चिद्वसुधाषिपः॥

यति—तेनेत्यादिना । तेन मिक्षुणा बद्धपद्मासनस्थेर्येण स्थूलदे-हावयवानां इस्तपादादीनां लिङ्गदेहावयवानां प्राणेन्द्रियादीनां च मन्धेन निरोधेन बहिर्देवतादिविषये चित्तस्य यदा यैव मानसपूजादिलीला रम्येति भावतः अविञ्जलिताकारा आरभ्यते तदा स तदभ्यासवशात्तामेव छीलां तत्तिहरुद्धसर्वभावोपमर्दे-नान्वभूदिति परेणान्वयः ॥ १० ॥ १९ ॥ रूढया उत्तरचम-त्कृत्या रूढाया अपि पूर्वचमत्कृतेरूपमर्दे दृष्टान्तमाह—नन्नीति । नैदाघी निदाघोष्णचमत्कृतिव्याप्ता वही माधवं वसन्तकालिकं पीतमप्यम्ब हरितभावचमत्कारं त्यंजति शुप्यतीतियावत्॥१२॥ तस्यैव सिद्धस्याप्यशास्त्रीयमानसखेलनप्रवृत्तावनर्थपरम्परोदयो-ऽभृदिलाह - स इलादिना । तेषु देहेषु योनिषु । जरठनासन इस्रनेन शास्त्रीयवासनाशियिल्ये अनाधनर्थवासनोद्भवोऽवर्य-भावीति सूच्यते ॥ १३ ॥ तानेव सनिमित्तं प्रपचयति--आ-रमनीलादिना । भावस्योद्भृतस्य अभावस्यानुद्भृतस्य च विप-र्यासे वैपरीत्ये साध्ये अभ्यासपाटवादिबलवानेव वासनाचयो वर्धते उद्भवति अन्यस्तिरोभवतीखर्यः॥ १४ ॥ १५ ॥ धर्म-प्रकास हितया कामुकतया॥ १६॥ लोचनपदेन मृगलोचनसी न्दर्य रुक्ष्यते तह्नोमेन सोसा। रसशालिनी रिकता ॥ १७ ॥ लवनं छेदनम् ॥ १८॥ साबमर्देन छेदनावमर्दसहितछतादे हेन ॥ १९ ॥ भूयोभूय इत्यनेनान्तरालिकानि वारणालिहंसा दीनि नवतिजन्मानि स्मृतान्युच्यन्ते ॥ २० ॥ स मिश्चरहं सन्नेव हद्दोऽहमिति स्थितः ॥ २१ ॥ अभून्यासु सलालिय

हंसः पद्मवने भूत्वा विन्ध्यकच्छे च वारणः। हरिणो देहयन्त्रादौ दशामहमिमां गतः॥ ર૪ अत्र वर्षसहस्राणि चतुर्युगशतानि च । समतीतान्यनन्तानि दिनर्तुचरितानि च॥ 24 मम प्रथममेष प्राक्चितिस्य परात्पदात्। तत्त्वकानितया रूढो मिश्चत्वे योग्यताक्रमः॥ २६ भूयोभूयोऽप्यतिकम्य गतश्च ब्रह्महंसताम्। स एव प्राक्तनोऽभ्यासः फलितः संगमोदयात् २७ ष्टबाभ्यासो य प्वास्य जीवस्रोदेत्यविद्यतः । सोऽत्यन्तमरसेनापि तमेवाश्वनुधावति ॥ २८ काकतालीययोगेन कदाचित्साधुसंगमात्। अञ्जभो भावनाभ्यासो जीवस्य विनिवर्तते ॥ २९ संगत्यधिगतं चैष केवछं स्वोदयं प्रति। प्राक्तनो वासनाभ्यासो हातुरुद्यममीक्षते॥ ३० यबेहाभ्यस्यतेऽजस्रं यश्च देहान्तरेऽपि च। जाप्रत्स्वप्नेष्वसद्िष तत्सदित्यनुभूयते ॥ 38 तसर्विकियाकारि दुःखाय च सुखाय च।

उदेति भावनं तसाद्भावनाभावनं जयः॥ 32 भावनैव स्वमात्मानं देहोऽयमिति पद्दयति। असत्तामात्रविस्तारं गुल्मकत्वमिवाङ्करः॥ 33 भावना प्रेश्यमाणैया न किंचिदिह शिप्यते । नच विद्यत एवेति तद्भमेणालमस्तु नः॥ ३४ भ्रमस्य जागतस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत् । असंवेदनमात्रैकं मार्जनायालमस्तु नः॥ ३'५ असन्मयीस्वरूपेषा परं ससैव लालनी। वर्तते चेद्विनोदाय किंचित्सा न करिप्यति॥ 36 तत्तान्सर्वान्स्वसंसारानुत्थायालोकयाम्यहम् । सम्यगालोकदानेन तेभ्य एकीकरोम्यहम्॥ રેહ इति संचिन्त्य रद्रोऽसौ तं सर्गं प्रजगाम ह । यत्र भिश्चविंहारस्थः सुप्तः शव इव स्थितः ॥ ३८ बोधयित्वाथ तं भिश्चं चेतसा चेतनेन च। योजयामास सस्रार भिश्चरप्यात्मनो भ्रमम् ॥ ३९ रुद्रमात्मानमालोक्य जीवटादिमयं तथा। बोधादविसायाहोंऽपि स भिक्षविसायं ययौ ॥ ४०

भातासु ॥ २२ ॥ २३ ॥ विन्ध्यकच्छे वारणो हरिणश्राभवम् । इत्थं देहयन्त्रं आदिपदान्मनीयन्त्रं नाहमिमा वर्णितरूपां दशां गतः ॥ २४ ॥ सम प्रथमसर्गकालादारभ्य परात्पदाश्चिकेन रसरूपाचितस्य प्रच्युतस्यात्रास्मिन्संसारे वर्षसहसाणि चतुर्यु-गशतानि च अनन्तानि समतीतान्यनन्तानि दिनर्तुचरितानि च ॥ २५ ॥ मम मिश्चत्वे तत्त्वज्ञानितया भवितुं यो योग्यता-कमः श्रवणमननाद्यभ्यासरूपो रुढोऽपि प्रमादादतिकस्य भूयो-भूयश्च जन्मपरंपरया ब्रह्महंसतां गतः स एव प्राक्तनोऽभ्यस्यत इलभ्यासकमी मृद्धंगमोदयाहुद्रत्वे तत्त्वज्ञानफलेन फलित इति द्वयोरन्वयः ॥ २६ ॥ २७ ॥ अतएव शास्त्रीयसाधना-भ्यासो ज्यायान् यो विरुद्धैरनेकजन्ममिन्यंवहितोऽपि पुनरुद्भ्य पुरुषार्थं साधयत्येवेत्याह-हडाभ्यास इति । सः अत्यन्तमर-सेन जन्मसहस्रेण व्यवहितोऽपीति शेषः ॥ २८॥ तर्श्वश्चमोऽपि भावनाभ्याससुस्ययुक्तया शुभाभ्याराव्यवहितोपि पुनरुद्भवेत-त्राह—काकतालीयेति ॥ २९ ॥ तर्शशुभवारानावच्छुभवा-सनाभ्यासोऽपि खयमेव प्राक्तनसंस्कारादुद्भविष्यति तद्वलादे-बायं पुरुषः अशुभवासनां हास्यति चेति पुरुषप्रयत्नविधानं व्यर्थेमिलाशंक्याह—संगतीति । हातुर्दुर्वासनाजालं जिहासतः पुंस एव प्राक्तनः सद्वासनाभ्यासः कालान्तरे खोदयंप्रति सत्पुरुषप्रयक्षमीक्षते प्रतीक्षते न तं विनोद्भवतीत्यर्थः ॥ ३० ॥ सच यहाँ इनेकजन्माभ्यसाएव सद्वासनादार्व्यन दुर्वासनाक्षयस-मर्थी भवति न सहसवित्याशयेनाह-यश्वेति । असदपीत्यनेन मिध्यार्थविषयदेवतोपास्त्यादिश्रयकोऽपि यत्र जामत्स्रप्रकालस-स्यतानुभवयोग्यदेवताभावादिफलसमर्था भवति तत्र कि वाच्यं परमार्थवस्तुगोचरः श्रवणादिप्रयतः प्रमाणगम्यपरमार्थसस्यस-

भावलाभाय भवतीति सुच्यते ॥ ३१ ॥ अतएवानात्मधिषयः शास्त्रीयोऽपि भावनाभ्यासो दुःखमिश्रितसुखार्यवेति सर्वभाव-नोच्छेद एवासार्खान्तकानर्थजयो नान्तराठिकदेवलादिप्राप्तिरि-त्याशयेनाह—ात्तदिति । तां तां देवताशरीरतद्ग्रोगाद्यर्थिकयां करोति तच्छीलं भावनमनात्मचिन्तनम् ॥ ३२ ॥ किंचानात्म-भावनाकृत एवायमनर्थः स कथं तद्भीरुणा सेव्य इत्यादाये-नाह—भावनेवेति ॥ ३३ ॥ सा तत्त्वदर्शनमात्रेण सूच्छेदै-त्याह-भावनेति । न वा तदुच्छेदः साध्योऽस्ति नित्योच्छिम-लादसत इलाह—नचेति ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अथवा मास्लसं-वेदनं तत्त्वज्ञानबाधितस्य संवेदनेऽपि वाधिताहेरिय मयजनना-सामर्थ्येनानर्थलामाबात्प्रत्युतः लीळाहेतुलाबेल्याहः—असन्म-यीति-वाधितलादसनमयी अधिष्ठानसत्ताखरूपेषा जगदाका-रभावना ठाठनी कीतुकहेतुरेव परं इति प्रातिभासिकसत्तया वर्तते चेत्तर्हि विनोदार्यव । किचिदणुमात्रमप्यनर्थं सा न करि-ष्यतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ तत्तस्मात्कीतुकवशादेवोत्थाय गत्वा स-म्यगालोकस्य प्रवीधस्य दानेन तेम्य उपाधिम्यो विविक्तं खात्मानमेकीकरोमि ॥ ३० ॥ ३८ ॥ बोधयिला जागरूकं कुला चेतसा खचित्तांशेन चित्तेन चेतनेन खांशचिदाभासल-क्षणेन तत्त्वज्ञजीवेन च योजयामास । अतएव भिक्षोजीगरणेन नास्मदादिस्वापप्रपद्मस्येव जीवटादिरुद्दान्तशरीराणां तत्प्रपद्मानां च निरनवृत्तिबाधप्रसङ्गी निरस्तः । सर्वत्र रुद्रांशजीवप्रवेशक-ल्पनेन तदीयसत्यसंकल्पबलेन विचित्रभोजकादष्टशेषबलेन च बाधितानामि सर्वेषामाकल्पान्तमनुकृतिसंभवादिति ॥ ३९ ॥ बोधात्तत्त्वदर्शनात् । अल्पकाले चिरकालानेकजन्मानुभवलक्ष-णस्य स्वाप्तरहदशरीरायनुकृतिलक्षणस्य चाध्ययंस्य दर्शनाद्विस्मयं

अथ रुद्रस्तथा भिश्चक्रविवोत्थाय जग्मतः। कापि जीवटसंसारं चिदाकाशैककोणगम्॥ ४१ तत्र तद्भवनं गत्वा तद्वीपं तत्र मण्डलम्। विषयं तत्प्रं तश्च तं च पाणावसित्रहम्॥ ઇર सुप्तं दहरातुर्नेष्टसंशं जीवटकं रावम् । स्थापयित्वा वपुर्भावं प्रभान्तं भवभूमिषु ॥ પ્રર तं प्रबोध्य नियोज्याश्च चेतसा चेतनेन च । एकरूपास्त्रिरूपास्ते रुद्रजीवटभिश्चकाः॥ 88 बोधवन्तोऽप्यबुद्धाभा विस्निता अप्यविस्निताः। यभुस्तुर्णीस्थिताश्चित्रकृताकारा इव क्षणम् ॥ ४५ अथ जग्मुख ते सर्वे कचिद्योमनि संस्थितम्। विप्रसंसारमारब्धं परिभूतसद्यंद्यमम्॥ કદ ते तत्र भुवनं गत्वा तद्वीपं तश्व मण्डलम् । विषयं तच तं प्रामं प्रापुक्तं ब्राह्मणालयम् ॥ 80 वित्रं ते दृह्युः सुप्तं कलत्रवलितं गृहे। कण्ठे गृहीतं ब्राह्मण्या बहिजीवमिव स्थितम् ॥४८ तं प्रबोध्य नियोज्याश चेतसा चेतनेन च। तत्स्थास्ते बहुघोऽप्यन्ये सविस्तयविविसायाः ॥४९. अथ जग्मुश्चिदाकाराकचितं चेति तं चितेः। सामन्तं नृपसंसारं भ्रमणाभोगसुन्दरम् ॥ 40 ततस्ते भुवनं प्राप्तास्तद्वीपं तद्य मण्डलम् । सामन्तं दहशुर्मसं सुप्तं पर्यङ्कपङ्कते ॥ ५१ हेमाचदातं हेमाङ्ग्या निहितं कुचकोटरे। भ्रमर्थेवान्वितं पद्मकोशसुप्तं मधुव्रतम् ॥ ५२

ययो ॥ ४० ॥ जीवटसंसारं ब्रह्माण्डान्तरम् ॥ ४१ ॥ तत्र छीछोपाख्यानवर्णितरीला प्रविश्य भुवनं भूछोकं गला तत्रापि तब्बीवटास्पदं द्वीपम् । विषयं मण्डलान्तर्गतदेशम् । तश्र गृहम् । तत्र गृहे पाणी असेर्प्रहणं प्रहो यस्य तथाविधं तं जीवरं च दहशतुः ॥ ४२ ॥ शवमिष सुप्तम् । तत्रखजनानां खदर्शनायोग्यलाद्वद्रमिक्षुवपुषो भावो जीवटबोधनाभिप्राय-स्तम् । रुद्रस्य या कोटिसूर्याभा प्रभा तदन्तं च सर्वे खप्रभावं स्थापयित्वा अन्तर्धानशक्तया गोपयित्वा । भवभूमिषु जीवटसं-स्तिप्रदेशेषु ॥ ४३ ॥ चेतसेत्यादिपूर्ववत् । अन्तरेकरूपाः । बहिक्षिरूपाः ॥ ४४ ॥ चित्रकृताकाराश्चित्रलिखिता इव ॥४५॥ म्योमनि चिदाकाशे संस्थितमध्यस्तम् । आरब्धं जीवटचित्तप-रिणामरूपम् । परितो भूतैः प्राणिभिः सघुंघुमं सशब्दम् ॥४६॥ ते तत्रेत्यादिपूर्ववत् ॥ ४७॥ कलत्रं पोष्यवर्गस्तद्वलितम्। बहिर्गतं जीवमिव प्रियतमम् ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ चितेथिसाकार-विवृत्तायाश्वेतितं परिणतिरूपम् ॥ ५० ॥ पर्यष्ट्ररुक्षणे पद्धजे ॥५१॥५२॥५३॥ तत्स्थास्तत्र स्थिताः सन्तः ॥ ५४ ॥ चेतसा आतिवाहिकशरीरेणैव । अन्नान्तराले सुप्तानां संबोधनमान्नं मृतानां तु संजीवनमपि बोध्यम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्महंसरूपां ईहां

कान्ताभिरभ्यावलितं मञ्जरीभिरिव द्वमम्। दीपजालकमध्यस्थं रह्नौध इव काञ्चनम्॥ ५३ तं प्रयोध्य नियोज्याश्च चेतसा चेतनेन च। तत्स्थास्ते बहवोऽप्येके सविस्मयविविस्मयाः॥ ५४ अथ ते राजसंसारं जम्मुस्तत्र विबोध्य तम्। चेतसैवमथान्यासु भ्रेमुः संसारभूभिषु ॥ 44 प्राप्य तां ब्रह्महंसेहां रुद्रतां सर्व एव ते । समाजग्मुविरेजुश्च रुद्राणामुत्तमं शतम्॥ ५६ एकसंविद्धिन्नतनु चित्रचेष्टितवेष्टितम्। एकरूपमनेकाभं रूपं तत्पारमेश्वरम् ॥ 40 रुद्राणां तच्छतमथ निरावरणचिन्मयम् । सर्वसंसारसंबन्धि स्थितं सर्वजगित्थतम्॥ 46 शंतरुद्रशतानीह सन्ति राम महान्ति हि। पतदेकाद्दां विद्धि संसारं प्रतिसंस्थितम्॥ ५९ यो योऽभितः स जीवस्य संसारः समुदेति हि। तत्राप्रबुद्धा जीवीघाः पश्यन्ति न परस्परम् ॥ ६० मिलन्ति हि मनोबुद्धास्तरङ्गा इव वारिधौ। अप्रबुद्धास्तु तन्मात्रनिष्ठा लोष्ठवदास्थिताः ॥ ६१ यथा द्रवत्वाद्वीच्यम्बु त्वन्योन्यं संमिलखलम् । तथा प्रबुद्धा जीवीया मिथश्चिरवान्मिलन्खलम् ६२ प्रत्येकमुद्ति चैते संसारे जीवरादायः । चिद्धातोः सर्वगत्वेन त्वसत्याः सत्यवत्स्थिताः ६३ यद्यवाखन्यते भूमेस्तत्तन्नाम यथा नभः। सर्वगायाश्चितेर्यद्यद्वहाते तत्त्रथैव चित् ॥ દ્દપ્ર

चित्तपरिणतिम् । रद्वचित्तचेतनांशैरेव चित्तचेतनवत्त्वाज्ज्ञानै-श्र्यसंपन्नलाचीत्रमम् । ते सर्वे देहा रुद्राणां शतम् ॥ ५६ ॥ तदेवाह—एकेति ॥ ५० ॥ प्रातिभाषिकसर्वसंसारस्य संबन्धि आधारभूतम् । सर्वजगदन्तश्च खयमन्तर्यामितया स्थितम् ॥ ५८ ॥ ईटरयेव 'सहस्राणि सहस्रशो ये रहा अधि भूम्याम्' इत्यादिश्रतिप्रसिद्धानां रुद्राणां स्थितिरित्याशयेनाह—शतेति । भिश्वरुद्रकल्पितरातजगतां मध्ये एतत्त्वां मां च प्रति अनुभय-मानतया संस्थितं जगत् एकादशं श्रामररुद्रसंसारं विद्धि ॥५९॥ ननु भिक्षुस्वप्रसंसाराः सर्वेषि सर्वेः कुतो नानुभूयन्ते तत्राह-यो य इति । स उक्तलक्षणो जीवस्य यो यः संसारः अभितः समुदेति । तत्र तेषु संसारेषु ॥ ६० ॥ मनसा बुद्धास्तत्त्ववि-दस्तु तैर्जीवैः सह मिलन्तीति सर्वे पश्यन्तीत्याशयः ॥ ६१ ॥ मेलने च हेतुः स्थास्यापगम इत्याशयेनाह—यथेति ॥ ६२ ॥ सर्वजीवतत्त्वभूतब्रद्धीक्यलाभ एव सर्वेस्तदीयकल्पितह्रपात्मक-जीवैर्मिलनमित्याशयेनाह-प्रत्येकमिति । चिद्धातोश्चित्सारस्य ब्रह्मणः ॥ ६३ ॥ उद्यते अपोह्मते तत्त्वदर्शनेन सत्यता-दपनीयते तत्तथा नभोवदेव चिरपरिशिष्यते ॥ ६४ ॥

१ दशरद्रशतानीति पाठष्टीकानुक्रः.

सर्वप्रपञ्चभूतानि यथानुभवसीह हि। तथेह सर्वभूतात्म चित्त्वं सर्वत्र विद्यते॥ ફ્ષ यच्छालभिका वृक्षे शैले श्वम्रे गतेऽन्तकम्। प्रेक्ष्यते तद्वदेकात्मा तथा चिति जगत्स्थितम् अवेदने परे घुद्धे वेदनं यज्जगतिस्थतम्। अकारणमचैतन्यं शून्यत्वेन यथा नभः॥ र ७ विद्यते वेदनं दृश्ययन्थो मोक्षस्त्ववेदनम्। यदेव रुचिरं ते स्यात्तदेवाश रढीकुर ॥ 66 सर्गासर्गी बन्धमोक्षी वेदनावेदनात्मकी। अमिन्नी बोधनाश्चोभी यथेच्छिस तथा कुर ॥ असंवित्तेस्तु यन्नास्ति तन्नारो का कदर्थना। तूष्णीभावेन यत्प्राप्यं प्राप्तमेवाद्य विद्धि तत् ॥ ७० यहै वेदनमात्रात्म तद्कावेदनक्षयम्।

तब्रेदनं वेदनाया यदिष्टं तत्समाचरेत्॥ ७१ वीचिर्यथाम्भसः स्पन्दो जगश्चेष तथा चितौ । पताचन्मात्र प्यात्र मेदो यद्ग्युनन्दन ॥ ७२ देशकालस्वरूपेषु सत्सु वीच्यादिताम्भसि । जगदादौ तु देशाद्या असन्तो जगतीक्षिताः ॥७३ आभास्त्ररं त्रिजगदित्यतिभाति भास्त-त्स्त्रं वेदनं विदनम्य चितेः स्वरूपम् । वाचि स्थितं भवति चेतदुपोहभेद-क्रिप्टं प्रशान्तवचनस्तु शिवः परात्मा ७४ संवेदनं सर्व इतीह शका-

संवेदनं सर्व इतीह शब्दा-दर्थादभिन्नो न कदाचिदेतौ। वीच्यम्भसी हे इति नोचितोक्ति-र्यस्थाकतायां त्विदमेय युक्तम्॥

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे जीवटोपाख्याने खप्रशतरुद्रीयकथनं नाम त्रिपष्टितमः सर्गः॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

१

श्रीराम उवाच । जीवटब्राह्मणादीनां हंसादीनां मुनीश्वर । मिश्चस्वप्रदारीराणां संपन्नं किमतः परम् ॥

नभस इब चितः सर्वेत्र सलमनुभावयति-सर्वेति । सर्वे प्रपञा विशेषविभागास्तयुक्तानि पद्यभूतानि यथा सर्वत्रानुभवसि तथा सर्वभूतात्मभूतसत्तारूपं चित्त्वमिप सर्वत्र विद्यते तदनुभवेत्यर्थः ॥ ६५ ॥ तस्य सर्वगतत्वे तत्र च सर्वकल्पने दष्टान्तमाह-यदिति । यदाथा वृक्षे काष्ठे शैले शिलास्तम्मे वा टङ्कच्छेदेन शिल्पिमस्तत्तदाकारप्रतिमानुकूलश्रभे कृते अन्तकं पुरुषहस्ति-द्वरगादाकारपरिच्छेदं गते सति तदेव पुरुषादिविचित्रह्या शास्त्रभिका प्रेक्ष्यते तद्वदेकात्मा सद्भूपः सर्वाकारः प्रेक्ष्यते, चिद्रपे तस्मिश्र जगत्तथा स्थितं प्रेक्ष्यत इत्यर्थः ॥६६॥ वृक्षादौ टहुश्वभ्रकृतः परिच्छेद इह तु किंकृतः स तत्राह—अवेदने इति । अवेदने अविषये परे शुद्धे यद्वेदनं विषयतापादनमन्यथाज्ञानं तदेव जगदिति परिच्छेदनिमित्तं स्थितमित्यर्थः । चिदेकरसे ब्रह्मणि यज्जगदाकारमचैतन्यं जाड्यं तदकारणं निर्निमित्तमेवेति नभ इव श्रुत्यत्वेन स्थितम् ॥ ६० ॥ तथाच तादशवेदनमेवास्य दश्यबन्धस्तन्निवृत्तिरेव मोक्ष इति फलितमिलाह—विद्यत इति ॥ ६८ ॥ बोधनाशदुभयसाक्षिणः ॥ ६९ ॥ असंवित्तरदर्शन-मात्रायन्नास्ति तस्य अनर्थस्य नाशे का कदर्थना आयासः। यच सुखं तूष्णीभावेन प्राप्यं तदाशु प्राप्तमेव । तत्राप्यायासा-पेक्षा नास्तीत्यर्थः ॥ ७० ॥ यज्जगद्रूपं वेदनमात्रात्म तत् अवे-दनमदर्शनमेव क्षयो यस्य तथाविधम् । तत्तस्या जगद्वेद-नाया यहेदनं साक्षिचैतन्यं तत्प्राप्तमेवेखनुषज्जते-यदिष्टमिति पूर्ववत् ॥ ७९ ॥ दशन्तादार्धान्तिके यद्वैलक्षण्यं तद्श्यति-

वसिष्ट उवाच । रुद्रेण सह संभूय प्रबुद्धाः सर्थ एव ते । भिथम्थ रुएसंसारा रुद्रांशाः सुखिनः स्थिताः ॥ २

एतावन्मात्र इति । भेदो वैलक्षण्यम् ॥ ७२ ॥ तदेवाह---दे-शेति । जगत आदौ विवर्तीपादाने ब्रह्मणि देशाद्याः पूर्वमसन्तः पश्चादारोप्यमाणाः कार्यभूतजगत्कोटावेवेक्षिताः॥ ७३ ॥ आ-खत्खप्रकाशं यत्खमात्मरूपं नेदनं चतन्यं तदेवाविद्यावरणाहा-भाखरमीषत् प्रकाशमिव संपन्नं त्रिजगदित्यतिकम्य खरूपम-न्यथा भाति । चितेश्विद्रूपस्य तस्य पारमार्थिकं खरूपं वेदनं ज्ञानमेव न जडम् । एतद्भेदक्षिष्टं त्रिजगत् । 'अन्नेन सोम्य शुंगेनाऽपोमूलमन्विच्छ' इलादिश्रुतिदर्शितोपायैरुपोह उपसंहर । तथोपसंहतं तु तत् 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' इति श्रुति-दर्शितदिशा वाचि वाब्यात्रे स्थितं भवति । प्रशान्तं वचनं **वाद्यात्रमपि** यत्र तथाविधस्तु परः विवः परमात्मेखर्थः ॥ ७४ ॥ एवं संवेदनमात्मचैतन्यं सर्वो जगदिति चशब्दादर्था-बामित्रौ संपन्नो न कदाचिदेतौ द्वौ स्तः । यस्योक्तरूपस्यात्मनः अञ्जतायामिदमेव युक्तं नतु ज्ञतायामित्यर्थः ॥ ७५ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे न्निप-ष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

तैस्तैर्देहै: पुनस्तेषां शेषभोगोऽत्र वर्ण्यते ।
ततो शृद्रगणस्वाप्तिः संकल्पस्थिरताक्रमः ॥ १ ॥
मिक्ष्वादिश्द्रान्तदेहेन्वान्तरालिकाष्टनवतिदेहेनु भोजकप्रारव्यशेषाः सन्ति नवेति संदेहात्तदृत्तान्तं रामः प्रच्छति—जीवटेति । किं संपन्नं स्वाप्रशरीरबद्धाध उताभे व्यवहारोऽपि संपन्न
इत्यर्थः ॥ १ ॥ ते रद्वांशा मिथश्च दृष्टपूर्वोत्तरसंसाराः सन्तः

तेन रुद्रेण तां मायामवलोक्य यथोदिताम्। स्वांशास्तामेव संसारस्थिति ते प्रेषिताः पुनः ॥ ३ श्रीरुद्र उवाच । गच्छताशु निजं स्थानं तत्र भुक्त्वा कलत्रकैः। कंचित्कालं समं भोगान्मत्सकाशमुपैष्यथ ॥ भविष्यथ मदंशा ये गणा मत्पुरभूषणाः। ततो महाप्रलयतो यास्यामस्तत्वरं पदम्॥ वसिष्ठ उघाच। इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तेषां सोऽन्तरधीयत । अन्त्यसंसारसंख्यानं रुद्राणां मध्यमाययौ ॥ प्रययुः स्वास्पदं तेऽपि जीवटब्राह्मणादयः । स्वकलंत्रेः समं देहं भ्रपयित्वाथ कालतः॥ रुद्रलोकं समासाद्य भविष्यन्ति गणोत्तमाः। कदाचिद्योम्नि दृदयन्ते तारकाकारकारिणः॥ श्रीराम उवाच। मिक्षुसंकल्परूपास्ते जीवटब्राह्मणादयः। कथं सत्यत्वमायाताः संकल्पार्थे क सत्यता ॥ ९ वसिष्ठ उवाच। संकल्पसत्यता त्वंशे त्यज संकल्पसत्यताम्। तत्र यन्नास्ति तन्नास्ति यतः सर्वात्म तत्पद्म् ॥ १० यत्स्वप्न दृश्यते यश्च संकल्पैरवलोक्यते । तस्था विद्यते तत्र सर्वकालं तदात्मकम् ॥ ११

कृतकृत्यलात्मुखिनः स्थिताः ॥ २ ॥ तेन कीतुकदर्शनाय प्रथमं प्रश्नेन रुद्रेण । तां जीवटादिसंसारिश्यतिमेव ॥ ३ ॥ ॥ ४॥ महाप्रलयतो द्विपराधीवसानतः प्रारब्धसये भोजकावि-द्यालेशेन सह । जगत्प्रतिभासक्षयतो वा ॥ ५ ॥ तेषां सर्वेषां रुद्राणां तदानीमन्त्यरुद्रसंसारस्य यत्संख्यानं दर्शनं यत्साक्षिचै-तन्यमभूतन्मध्यमान्तरालिकं जीवटादिसंसारं प्रत्येकमायया खप्रसाक्षीव जागरमित्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ भविष्यन्तीर्युक्तेर्यः सिष्टरामसंवादकाले ते खखसंसारे एव स्थिता इति गम्यते ॥ ८ ॥ प्राग्बहुशः पृष्टार्थस्यैव विशेषजिज्ञासया प्रश्नः स्पष्टः ॥ ९ ॥ अंशे अथिष्ठानचिदंश एव । अध्यस्तांशे तु संकल्पस्य सखतां विवेकेन व्यज । तत्र सदसत्संविकतासांकित्पकार्थे यत्सदतिरिक्तरूपं पूर्वोत्तरकालयोर्नास्ति तदेव नास्ति तस्पदम-विष्ठानं तु यतः सर्वात्म ततोस्त्येवेति तत्सत्तयैव भोजकाहष्टो-द्वोधितयांकल्पिकार्थस्यार्थिकयासामर्थ्यमित्यर्थः ॥ १० ॥ सर्व-कालं यताद्धिष्ठानं तदात्मकं भूला तद्देशकालात्मतया तत्र सदा विद्यते ॥ ११ ॥ गला देशान्तरं यथेत्येतद्विकृणोति--देशादिति । यथा मथुरादिदेशादेशान्तरं पाटलिपुत्रादि तत्र विद्यमानमपि गतिर्गमनमात्मा खर्खं मनः आदिपदाश्वश्चरादि-पाटवमहरादिकालस्तद्विवेकोपदेष्टा पुरुष इत्यादिकं कारणकलापं विना न रुभ्यते तथा खप्रोऽपि तत्र जाप्रत्मुषुह्योः खप्रान्तरे वा न सम्यत इति परेणान्वयः ॥ १२ ॥ चितः कोशे कोशस-

तदेशकालात्मतया गत्वा देशाम्तरं यथा। देशाहेशान्तरं यद्वश्व गत्यात्मादिकं विना ॥ १२ न लभ्यते तथा स्वप्नो विना तत्र न लभ्यते । सर्वमस्ति चितः कोशे यद्यथालोकयत्यसौ ॥ १३ चित्तथा तद्वाभोति सर्वात्मत्वादविक्षतम्। संकल्पः स्वप्रकस्त्वङ्ग यया च दशयाप्यते ॥ १४ परमभ्यासयोगाभ्यां विना त्वेतन्न लभ्यते। येषां तु योगविज्ञानदृष्टयः फलिताः स्थिताः॥ \$14 सर्वं सर्वत्र पदयन्ति ते यतः शंकरादयः। इदमप्रगतं वस्तु तथा संकल्पितं मया ॥ १६ नाप्यं यतोभयभ्रंशं स प्राप्तोत्युभयाथयात्। सर्वे हाभिमतं कार्यमेकनिष्ठस्य सिद्ध्यति॥ १७ दक्षिणां ककुमं गच्छन्कः प्राप्तोत्युत्तरां दिशम् । संकल्पार्थपैररेव संकल्पार्थोऽवगम्यते ॥ १८ अग्रस्थार्थपरैरम्रे संस्थितोर्थोऽवगम्यते । अन्नस्थे बुद्धिसंस्थे यः संकल्पं प्राप्तुमिच्छति ॥ १९ तदासावेकनिष्ठत्वाभावासम्नाशयेद्वयम् । तसादेकार्थनिष्ठत्वाद्भिश्चजीवेन रुद्रताम्॥ 20 प्राप्य सर्वात्मना लब्धं तथा सर्वे तथास्थितेः। भिश्रसंकल्पजीवास्ते प्रत्येकं तज्जगत्पृथकु ॥ पश्यन्ति चैतेनान्योन्यं रुद्रशानाद्दते ततः। अप्रबुद्धाः प्रजायन्ते जीवा जीवान्तबोधिनः ॥ २२

हशे सर्ववासनाकरे अज्ञाने यथा यथा आलोकयति भोजकाह-ष्टोद्वोधितवासनाभिः पर्यालोचयति तथा तथा चित् अविक्षतं समग्रं तद्विषयरूपं दश्यतया आप्रोति ॥ १३ ॥ सर्वस्य स्वप्न-संकल्पादेर्युगपदर्शने तार्हे क उपायस्तमाह—संकल्प इति । आप्यते तां दशां श्रुण्यिति शेषः ॥ १४ ॥ परमिति । अ-भ्यासयोगपरिपाकदशैव सेत्यर्थः । तत्रेश्वराणां विनाप्यभ्यासं स्वत एव योगसिद्धिफलमसीति विशेषमाह—येषां स्विति ॥ १५ ॥ अभ्यासयोगयोः संकत्पितार्थलामे तदैकाम्यसेपाद-करवेनैवोपयोगः । ऐकाप्याभावे तः चित्तमनेकार्थव्यासक्तमेक-मपि खसांकल्पिकमर्थं न छभत इखसल्यसंकल्पतास्य संपन्ने-त्याशयेनाह—इदमित्यादिना । मया ऐकाम्यशून्येन न आप्यं प्राप्तं शक्यं यतिश्वतं संकल्पिततदन्योभयाश्रयादुभयश्रंशं प्रा-प्रोति नैकन्न स्थिरीभवतीत्युत्तरेणान्वयः ॥ १६ ॥ यत इत्यन्न यलोपस्यासिद्धसारसंधिरार्षः । उक्तमेवार्थे सामान्योक्तिभिः समर्थयति—सर्वमित्यादिना ॥ १७ ॥ ककुभं दिशम् ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ प्रकृते योजयति—तस्मादिति ॥ २० ॥ प्रसिद्धरुद्धबदेव सार्धश्येन सर्वे लब्धम् । अस्यापि तथा स्थितेः । ते आन्तरालिका जीवटादयोऽष्टनवतिभिक्षसंकल्पजीवाः प्रत्येकं यतः स्थितास्तज्जगम पृथक्षृथक् ततोऽन्योन्यं न पर्यन्ति ॥ २१ ॥ तर्हि ते रुद्रसंनिधी कथमन्योन्यं दृष्टवन्तस्तत्राह-भप्रवुद्धा इति । जीवानामन्ताः संसारमेदासाद्वीधिनसास्य रद-

तदिच्छयाशु तद्रूपा बहुरूपाश्च ते इह। इह विद्याधरोऽयं स्यामहं स्यामिह पण्डितः ॥ २३ इत्येकध्यानसाफल्यं दृष्टान्तोऽस्यां क्रियास्थितौ। एकत्वं च बहुत्वं च मौर्ख्य पाण्डित्यमेय वा ॥ २४ देवत्यं मानुषत्यं च देशकालक्रियाक्रमैः। तुल्यकालमलंकर्त्ते धारणाध्यानयज्ञतः॥ सर्वशेत्यः स्वरूपत्वाजीवस्यास्त्येकशक्तिता। अनन्त्रश्चान्तपुँकश्च स्वभावोऽस्य स्वभावतः॥ २६ सविकासः ससंकोचोऽहिंस्रस्तेन चिदात्मनः। यदिच्छति तदस्याङ्ग जन्तुः संपद्यते स्वयम् ॥ २७ स्वयं संपादितैरेमिर्देशकालिकयाक्रमैः। योगिन्यो योगिनश्चेष्ठ तिष्टन्खन्यत्र यत्र च ॥ २८ इह वामुत्र भोगेन दृष्टमेतदनेकशः। कार्तवीयों गृहे तिष्ठन्सर्वेषां भयदोऽभवत् ॥ २९ विष्णुः क्षीरोदधौ तिष्ठन्जायते पुरुषो भुवि।

पश्चर्य यान्ति तिष्ठन्त्यो योगिन्यो योगिनीगणे ३० शकः स्वर्गासने तिष्ठन्याति यज्ञार्थमुर्विकाम् । सहस्रमेकं भवति तथा चास्मिजनार्दनः ॥ ३१ मृणां शतानि भक्तानां मानुष्यं याति तन्नतेः । एकः सहस्रं भवति तथा चप जनार्दनः ॥ ३२ अंशावतारतीलाभिः कुरुते जागतीं स्थितिम् । एकः कान्तासहस्राणि तुल्यकालं निमेपवत् ॥३३ एवं ते मिश्चसंकल्पा जीवटब्राह्मणाद्यः । रद्विज्ञानवशतः स्वसंकल्पपुरीं गताः ॥ ३४ तत्र भुक्त्वा चिरं भोगान्त्राप्य रुद्वपुरं ततः । गणतामावसन्तस्तं स्थास्यन्ति सपरिच्छद्वाः ॥३५ नित्यं प्रफुलनवकल्पलतालयेषु

नित्य प्रफुलनवकस्पलतालयपु स्द्रेण साकमुरुरत्नगुलुच्छकेषु । नानाजगत्सु च तदा शिवपत्तनेषु विद्याधरीष्वमरमौलिधराश्च रेजुः॥ ३६

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे गणलप्राप्तिनीम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

खप्तशतरुद्रीयं समाप्तम् ।

स्येच्छया प्रजायन्ते ॥ २२ ॥ तथा तद्रूपा बहुरूपाश्च ते तिबन्छयैव जायम्ते इलार्थः । प्रातिखिकसंसारदर्शने तु तेषा-मेवेच्छा हेतुरिलाह—इहेति ॥ २३ ॥ अन्येषामपि जीवाना-मस्यां प्रसिद्धायां कियास्थितौ तत्तव्यवहारव्यवस्थायामयं मिश्च-संकल्पसर्व एव द्रष्टान्तः । अयं जीवो धारणाध्यानयलानुसारेण यद्यदिष्टं तत्तत्सर्वे क्रमेण युगपच यथेच्छं कर्तुं समर्थ इत्याह--एकलमिलादिना ॥ २४ ॥ देशकालिकयाकमैस्तुल्यकालं वा कर्तुमलं समर्थः ॥ २५ ॥ तत्र हेतुमाह—सर्वेति । यतोऽयं जीवः परमार्थतोऽनन्तः अतोऽस्य सर्वदाक्तयः सन्ति यतश्चाय-मेकेकदेहाभिमान् उक्षणेनान्तेन परिच्छेदेन पृक्तः अतोऽस्यैक-कार्यमात्रशक्तितास्ति । शक्तिस्वभावानुसारतथः तत्तत्कार्यस्वभा-बोऽस्य व्यवस्थित इत्यर्थः ॥ २६ ॥ अतएव प्राणिकमीनुसा-रेण स्वर्गनरकाद्यनर्थसहस्रसर्गात्मना सविकासः सर्वप्राणिसंहा-रेण प्रस्यात्मना च ससंकोचो जगदीश्वरः अहिंसो हिंसाप्रयुक्त-वैषम्यनैर्षृष्यदोषशून्यः, यतोऽयं जन्तुर्जावसङ्घः खयं यदिच्छति तदेव खेच्छानुसारादस्य चिदात्मन ईश्वरस्य संकल्पात्संपधते न तेन किचित्कस्यचिदनिष्टं क्रियत इलायः। तथाच भगवतो बादरायणस्य सूत्रम् 'वैषम्यनैषृण्ये न सापेक्षलात्' इति ॥२०॥ इदानी धारणाध्यानयक्षफलमेच्छिकीमेकधानेकधावस्थितिसुदा-हरणेन प्रपन्नयति—स्वयं संपादितैरित्यादिना । तत्तदेशकाला-नुसारिप्राण्यनुप्रहृनिग्रहुश्रीडायाधिकारिकिशयाकमैः । इह ख-एहे अन्यत्र यत्रेच्छन्ति तत्र च नानादेहादिकल्पनया तिष्ठन्ति ॥ २८ ॥ इह लोके अमुत्र स्वर्गादिषु वा योगिनो युगपत्प्रार-व्यभोगेन तिष्ठन्तीति पूर्वेणान्वयः । एतदेवंविधं योगिनां चरि-त्रम् । सर्वेषां चोरादीनां तत्र तत्र संनिधानेन भयदः शास्ता अभवत् । तच भगवतो दत्तात्रेयस्य प्रसादाहरूथं योगसामर्थ्य तस्य मार्कण्डेयपुराणादी प्रसिद्धम् ॥ २९ ॥ जायते जन्मा-दिना व्यवहरति । स्वर्लोकं योगिनीगणमध्ये तिष्ठन्त्य एव भूळोके पशुपेयाद्यपहारप्रहणार्थ यान्ति ॥ ३० ॥ अस्मिन्रामा-वतारे जनार्दनो जनस्थाने चतुर्दशसहस्रराक्षसवधाय सहस्र संपन्नः पनरेको भवति ॥ ३१ ॥ तेषां भक्तानां नर्तर्नमस्कारा-दिना प्रार्थनैः । भक्तानां नृणां शतानि अनुप्रहीतुं पुनर्यदुकुछे मानुष्यं याति । तत्र च कुरुसभायां दुर्योधनादित्रामोहनायकः सहस्रं भवति ॥ ३२ ॥ कान्तानां सहस्राणि पोडशसहस्रं तुल्यकालमुपभुद्गे इति शेषः । तत्र दशन्तो निमेषवदिति । यथा निमी राजपिनिदेहतामापनः सबैप्राणिनां नेत्रेषु वसन् व्यगपत्रिमेषणानि करोति तद्वत् ॥ ३३ ॥ वर्णिनरीत्या प्रक्र-तेऽपि बोध्यमित्याह—एवमिति । रहस्य विज्ञानमभ्यगुज्ञा तदशतः । तत्संकल्पानुसारिण्येव रहस्याभ्यनुज्ञा तद्क्लादिल्यर्थः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तेषामपि तदा स्वयृहे सर्वभुवनेषु च वहु-देहकल्पनेनैच्छिकविहारो युगपत्प्रवृत्त इस्याह—निस्पर्मिति । ते गणा उहरक्षगुलुच्छकेषु बहुरुक्रस्तवकेषु प्रभुत्वनवकल्पलता-गृहेषु रुद्रेण सार्क तथा नानाविषेषु जगत्सु भुवनेषु तथा शिवेष कैलासवैकण्टबहालोकादिपत्तनेषु नगरेषु च बिहरन्ती गीतवादित्रनाव्यादिकुशलासु विद्याधरीषु मध्ये अर्मरमीलिषु ध्रियन्ते सर्वत्र प्रणम्यन्त इत्यमरमौठीधराः । अमरं मरणनिवा-रकममृतपूर्ण चन्द्रं मौली धारयन्तीति वा अमरमौलिधराः सन्तो रेजुर्वभुः ॥ ३६ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणता-स्पर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे चतुःपष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

१ वहादित्वान्डीव् शक्तियदृशोरीकगिति स्त्रस्यभाष्यस्यकैयटोक्तेः.

२ युक्तश्च इति पाठः.

पश्चषष्टितमः सर्गः ६५

3

4

Ę

0

९

वसिष्ठ उवाच।

ईषदृष्टो यथा तेन मिश्रुणा चेतसि भ्रमः। भृतं प्रयक्तमेवैष पृथक्तवा सुपश्यति ॥ सर्वस्याभासजीवस्य मृतिजन्ममयी स्थितिः। भवत्येव चिदाकाशरूपिण्येवाकृति गता॥ पृथक्कत्यैक्यमभ्येति स्वात्मा संसारखण्डकम् । सर्व एव मृतो जन्तुः पृथक्खप्रनिभात्मकम्॥ एवं ततस्वरूपोऽपि देही चामोक्षमाकुलः। जीवयुधं मया तुभ्यं कथितं कथयाऽनया॥ परात्प्रस्पन्दितात्मेति न भिश्च राम केवलम्। मोहान्मोहान्तरं याति जीवोऽहरहरेव नः॥ पर्वतात्रपरिभ्रष्टो ह्यधोध उपलो यथा । परमात्मपरिम्नष्टो जीवः स्वप्नमिमं रहम् ॥ पद्मयत्यस्मादपि स्वप्नाद्याति स्वप्नान्तरं पुनः। स्वप्रात्स्वप्ने विनिपतन्मृषैवेदं दृढं किल् ॥ परिपद्म्यति जीवोऽन्तर्मायया जर्जरीकृतः। कचित्केनचिदेवेह कदाचिदपि या स्वयम्॥ देहनास्रोऽहमित्यन्तो मुच्यते स्वं प्रपद्यते ।

श्रीराम उवाच । अहो नु विषमो मोहो जीवस्यास्योपजायते ॥ षथा सुप्तस्य स्तोकेन नानाकारविकारया ।

> भिश्चन्यायोऽत्र सर्वेषु जीवेषु सम उच्यते । रात्रावन्वेष्यता भिक्षोः सभोस्थानं च वर्ण्यते ॥ ९ ॥

यथा वर्णितप्रकारस्तेन भिक्षणा खचेतिस यो श्रम ईष-दृष्टः आपाततश्विन्तितः एष भिक्षुस्तं श्रमं स्त्रं भूतं प्राक्तनं शुभाशुभकर्मलक्षणं प्रयक्षमेव फलावस्थायां पृथक् स्वात्मनो व्यतिरिक्तमिष कृष्णा सुष्ठु स्पष्टं प्रपश्यति । नाणुमात्रमृप्यन्यद-स्तीत्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥ एवमेव सर्वेषामपि जीवानां मरणका-लोह्रदं सकर्भेव स्वप्न इव जगदात्मना आमोक्षं भातीति बो-ध्यमित्याह- सर्व एवेति ॥ ३ ॥ एवं भिक्ष्वात्मेव ततमपरि-च्छित्रं खरूपं यस्य तथाविधोऽपि देही देहपरिच्छित्र इव आमोक्षमाकुलस्तिष्ठतीत्यर्थः । अनया मिक्षुकथया ॥ ४ ॥ परा-त्पूर्णस्यरूपात्प्रस्पन्दितातमा सर्वोऽपि जीव इति एवंप्रकार एव न केवलं भिक्षरित्यर्थः । अहरहः प्रतिदिनं खप्ने नः अनुभव-सिद्धमेवेत्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ इदं जन्मादिदुःखं कवित्केनचि-त्रिमित्तेन परिपर्यतीति परेणान्वयः ॥ ७ ॥ ८ ॥ इदानीं वन्धमोक्षतत्त्वं संक्षिप्याह्-देहेति । देहनाम्रोऽहमिखाभिमान एवान्तो बन्धः खात्मलाभ एव मोक्ष इति निष्कर्षे इत्यर्थः। किंचित्त्रष्टुकामो रामो वर्णितार्यप्रबोधमाश्वर्याभिनयेन व्यनक्ति-

मिथ्याज्ञानोप्रयामिन्या मायया निपतत्यलम् ॥ १० अहो तु खलु वैषम्यं भीमं निजवतुच्यते ।
भगवन्सर्वदा सर्वं सर्वदैव जगितस्यतौ ॥ ११
त्वया संभानीत्युक्तं यथा तचानुभूयते ।
एवं गुणविशिष्टात्मा तन्मोहात्मा स भिक्षुकः ॥ १२
कचिदस्ति न वास्त्यन्तरालोक्य कथयाशु मे ।

वसिष्ठ उवाच।

अद्य रात्री समाधिस्यस्त्रिलोकीमिटकामिमाम् १३ भिश्चरेकोऽस्ति नास्तीति प्रेक्ष्य प्रातर्षदाम्यहम्।

वाल्मीकिरवाच।

मुनौ चैवं कथयति बहिर्मध्याह्नडिण्डिमः॥ १४ उद्भूत्मलयश्चन्धघनगर्जितमांसलः। तस्यज्ञः पादयोस्तस्य पुष्पाञ्जलिपरम्पराः ॥ १५ मृपाः पौरा विटपिनः पुष्पं वातधुता इव। पूजयित्वा मुनिश्रेष्ठानुदतिष्ठन्स्वविष्टरात्॥ १६ सभा तव् सोत्तस्थौ सप्रणामपरम्परा। क्रमेण हास्तनेनैय जग्मुः खेचरभूचराः ॥ १७ स्वास्पदेषु यथाशास्त्रमहर्ब्यापारमाहताः। सर्वे संपादयामासुर्निजधर्म क्रमोचितम्॥ १८ चिन्तयन्तो मुनिप्रोक्तं महीचरनभश्चराः। ज्ञानं क्षपां क्षणिमव निन्यः कल्पमिवापि च ॥ १९

अहो इलादिना ॥ ९ ॥ स्तोकेनाल्पेनापि मदश्रमादिनिमित्तेन सुप्तस्य मनः खाप्रमायया यथा अलमस्यन्तं भीमं वैषम्यं दुःख-संकटं निपतति तत्र निजवत्सत्यवत्स्वीयवद्गा उच्यते तद्वदहो आश्चर्यमिति परेणान्वयः ॥ १० ॥ सर्वं सर्वत्र सर्वदा संभव-तीति च लया यदुक्तं तदप्यनुभवारु ममाभूदिखाइ-भगव-न्निति ॥ ११ ॥ एवमुपदिष्टार्थामिनन्दनेन गुरुं प्रतोष्य लयायं मिक्षमंद्रोधाय कल्पयिलोक्त उत कचिदस्तीति संदेहेन कौत-कात्प्रच्छति-एवंगुणविशिष्ट इति । तम्मोहात्मा ताहराजीव-दादिमोहातमा ॥ १२ ॥ अन्तर्योगेन आलोक्य लद्बोधाय यद्यपि कल्पयिला मया मिश्चरक्तरतथापि तद्वाक्यस्यानृतलायोगातक-चित्संभावित एव सः । तस्य च योगेनाधुना दर्शने उत्थाने विलम्बः स्यादित्याशयेन विसष्टसत्कालोचितमुवाच-अधेति ॥ १३ ॥ उत्थानयोग्यमध्याह्रबोधको डिण्डिमो वाद्यमेदस्तकु-निरिति यावत् ॥ १४ ॥ घनगर्जितमिव मांसलः पुष्टः । तस्य वसिष्टस्य ॥ १५ ॥ वातेन भ्रता कम्पिता विटपिन इव ॥१६॥ ह्यस्तनेन पूर्वेद्यर्भवेन ॥ १० ॥ अहर्व्यापारमाहिकं निजधर्म संपादयामासुः ॥ १८ ॥ मुनित्रोक्तं ज्ञानं शास्त्रं चिन्तयन्तः अभ्यस्यन्तः । उपदिष्टार्थानुसंधानसुस्रेन क्षणमिन पुना राम-

प्रातः पुनः प्रसृतकार्यपरम्परेऽसि-क्षाते जने खचरभूचरभूतसङ्घः।

आख्यानलोकरचनेन तथैव तस्या-वन्योन्यसंवदनपूजितपूज्यलोकः॥ २

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे विद्योत्तरविस्मयं नाम पञ्चपष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षद्षष्टितमः सर्गः ६६

ų

G

वाल्मीकिववाच । विश्वपुनिसंयुक्ता विश्वामित्रादिसंयुताः । स्थिताः खेचरसिद्धौघा विश्वान्ता नृपनायकाः॥१ सरामलक्ष्मणा सैव तथेवाथ सभा वभौ ।

सरामलक्ष्मणा सैव तथेवाथ सभा बभौ। सौम्या समसमाभोगा शान्तवातेव पश्चिनी॥ अनवेक्ष्य वचः प्रश्चमुवाचाथ मुनीश्वरः। बोधयन्ति बलादेव साजुकम्पा हि साधवः॥

वसिष्ठ उवाच।

राजन् रघुकुलाकाशशशाङ्क रघुनन्दन ।
ह्यो मया झाननेत्रेण स भिश्रः प्रेक्षितश्चिरम् ॥
ध्यानेनाहं चिरं भ्रान्तस्ताहिनभश्चदिदक्षया ।
द्वीपानि सप्त विपुलां कुलशैलसपर्वताम् ॥
याचत्कुतश्चिदप्येचं भिश्चलंद्यो न ताहशः ।
कथं किल मनोराज्यं यहिरप्युपलभ्यते ॥
ततिक्षभागशेपायां राज्यां पुनरहं धिया ।
उत्तराशान्तरं यातो वेलावात इवाण्यम् ॥
जिननामेष तत्रास्ति श्रीमान् जनपदो महान् ।
वस्मीकोपरि तत्रास्ति विहारो जनसंश्रयः ॥
तिस्निवहारे स्वकुटीकोशे कपिलमूर्धजः ।

पृष्ठार्थश्रवणेच्छोत्कण्येन निद्राभावात्कल्पमिव च ॥ १९ ॥ खनरभूनरभूतसङ्को रात्रिमतिवाद्य प्रातंजने प्रसतस्वस्वकार्य-परंपरे जाते सति दशरथसभामागत्य तथा पूर्वेद्युर्वदेव पुनः आख्यानलोकरचनेन व्याख्यानश्रवणोचितसभासंनिवेशक्रमरच-नेन तस्था ॥ २० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्र-काशे निर्वाणप्रकरणे पञ्चपष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

> अन्विष्टस्यात्र यत्नेन भिक्षोर्दर्शनमुख्यते । तादशानां तथान्येषां मुनीनां भृतभाविनाम् ॥ १ ॥

स्थिता उपविष्टाः । ततो नृपास्ततो नायकाः सामन्तादयथ विश्रान्ता उपविष्टाः ॥ १ ॥ पद्मिनी पद्मवती सरसी ॥ २ ॥ प्रश्नमनवेक्ष्य अप्रतीक्ष्य वच उवाच । प्रातर्वदाम्यहमिति खर्य प्रतिश्चातलादिति भावः ॥ ३ ॥ चिरं प्रेक्षितोऽन्विष्टः । चिर-मन्बिष्य प्रेक्षित इति वा ॥ ४ ॥ ५ ॥ यावत्र लब्धस्तावदर्दं विरं आन्त इति पूर्वेणान्वयः ॥ ६ ॥ उत्तरस्या आशाया दिश धान्तरं देशं यातो मनसा पर्यालोचितवानिति यावत् ॥ ७ ॥ वल्मीकाख्याज्ञनपदादुपरि परतो जिननामा एष प्रसिद्धो जन- भिश्चर्दार्घहरो। नाम स्थित एव समाध्ये॥ Q एकविश्वतिरात्रं च तस्यैवं स्थितिशालिनः। रदार्गलं गृहं ध्यानभक्तभीता विशन्ति नो ॥ १० भृत्याः प्रियाः किल तथा संतिष्ठति स भिध्नकः । अधैव तस्य संवेत्तुं नियतेरीहशी स्थितिः॥ ११ रात्रयो ध्याननिष्ठस्य गतास्तस्यैकविशतिः । स तु वर्षसहस्राणि तथा चित्तेन भूतवान्॥ कस्मिश्चित्प्राक्तने कल्पे भिश्चरेवं पुराऽभवत् । अद्य त्विह द्वितीयोऽसिंस्तृतीयो नोपलभ्यते ॥ १३ मया तु पुनरन्विष्य चेतसा चतुरात्मना। ताहम् भिक्षस्तृतीयोऽन्यो जगत्पद्मोदरालिना १४ अस्मात्सर्गात्ततो लब्धस्तृतीयस्तादशाशयः। अथान्ये लीलया सर्गा मया संप्रेक्षितास्ततः ॥ १५ यावसिसिधिदाकाशकोशशायिनि सर्गके। तृतीयो विद्यते भिक्षुर्बाह्यश्च सददाक्रमः॥ १६ एवं तेनैव तेनैव संनिवेशेन भूरिशः। भविष्यन्त्यभवन्सर्वे पदार्थाः सर्गसंततौ ॥ १७ अस्यां सभायामपि ये मुनयो ब्राह्मणास्तथा। भाव्यमेवं समाचारैस्तरन्येरप्यनेकशः॥ १८

पदोऽस्ति तत्र जनपदे विहाराष्ट्यो जनसंश्रयो बहुजनाश्रयो देशोऽस्ति ॥ ८ ॥ टक्शन्दाद्भागुरिमतेन हलन्ताष्टापि दीर्घे 'हरो यस्ये'ति व्युत्पाद्यम् ॥ ९ ॥ तस्य गृहं कुटी ध्यानभङ्ग-भीताः प्रिया अपि भृत्या नो विशन्ति किछ ॥ १० ॥ तस्य भिक्षोः । संवेत्तं विदेहकैवस्याय चरमसाक्षात्कारं प्राप्तुम् । तत्कृतः । यतो नियतेस्तदायुर्नियन्तुर्विधानुः ॥ ११ ॥ तथा प्राग्वर्णितप्रकारेण ॥ १२ ॥ एवं एवंविधः । अयास्मिन्कत्ये । अयं द्वितीयः । तृतीयो नोपलभ्यते तदानी मयेत्यर्थः ॥ १३ ॥ जगत्पद्मे अलिना अलिबद्धमता मय। अस्मिन् सर्गे तृतीयो नोपलभ्यत इति पूर्वेण परेण वा अन्वयः ॥ १४ ॥ अध मया ठीळया अस्मात्सगोदन्ये सर्गाः संप्रेक्षितास्तत्र तृतीयस्ता-हगाशयो रुच्ध इत्यन्वयः ॥ १५ ॥ तदेवाह—यावदिति । ब्राह्मस्तत्रत्यब्रह्मणा निर्मित एतत्सदश एव भूवनकमी विद्यते ॥ १६ ॥ एवं ब्रह्माण्डमेदेन सदशे पदार्थक्रमे तादशमिक्ष-वोऽप्यनन्ताः संभवन्तीत्याशयेनाह—एत्रमिति ॥ १०॥ अ-स्मिन्नर्थे मुमुक्षुव्यवद्दारोक्तमेवार्थ पुनः प्रपष्यकाह-अस्या-मिलादिना । तैरप्येवं भिक्षसदशसमाचारैः खसदशसमाचारैश्व भाव्यम् । अन्यैरपि एतन्मुनिसमाचौरीभेक्षुसमाचौरश्व भाव्य-

नारदेनामुना भाव्यं पुनरन्येन चामुना। प्यं कलनकर्मभ्यां युक्तेनान्येन भूरिवाः॥ १९ एवं जन्मादिना भाव्यं व्यासेनापि शुकेन च। शीनकेन पुनर्भाव्यं ऋतुना पुलहेन च ॥ २० अगम्त्येन पुरुस्त्येन भृगुणाऽङ्गिरसापि च। एत एव तथान्ये च एवं रूपिक्रयास्पद्म् ॥ २१ चिराचिराञ्जविष्यन्ति मायेयं वितता यतः। सहशाचारजन्मानम्त एवान्ये च भूरिशः॥ २२ भूयोभूयो विवर्तन्ते सर्गेप्विष्वव वीचयः। अत्यन्तसद्याः केचित्केचिदर्शसमक्रमाः॥ 23 केचिदीपत्समाः केचित्र कदाचित्पुनस्तथा। एवमेषातिवितता महतामपि मोहिनी॥ રક क्षणेनेहास्ति नो कर्म प्रतिपत्तिर्हि जुम्मते ।
केकविशत्यहोरात्रा अनन्ताकृतयोऽनघ ॥ २५
क तासामुपलम्भोऽलमहो भीमा मनोगतिः ।
प्रतिभामात्रमेवेद्मित्थं विकसितं स्थितम् ॥ २६
नानाकलहकल्लोलं जले प्रातिवाम्बुजम् ।
जातं संवेदनावेच गुद्धादिदमगुद्धिमत् ।
संसारजालमस्लिलं सार्चिर्वहिकणादिव ॥ २७
प्रत्येकमेवमुदितः प्रतिभासखण्डः
खण्डान्तरेष्यपि च तस्य विचित्रखण्डः ।
सर्वे स्वयं नजु च तेऽपि मिथो न मिथ्या
सर्वात्मनि स्फुरति कारणकारणेऽसिन् ॥२८

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्माकीये दे०मो० निर्वाणप्र० जीवटोपाख्याने मिक्षुसंस्रतिकथनं नाम षद्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

द्शरथ उद्याच ।
मुनिनायक तं भिक्षुं गत्वा संबोधयम्त्वमी ।
नरा मत्प्रहिताः शीव्रं चानयन्तु कुटीगतम् ॥ १
विसष्ठ उद्याच ।
राजंस्तस्य महाभिक्षोः स देहः प्राणवर्जितः ।
केदो वैवर्ण्यमायातो नासौ जीवितभाजनम् ॥ २
तस्य भिक्षोस्तु जीवोऽसौ भृत्वा पश्चज सारसः ।

मिल्यर्थः ॥ १८ ॥ कलनं ज्ञानं कमं चरित्रं ताभ्यां युक्तेन ॥ १९ ॥ २० ॥ एवंविधस्य रूपस्य संस्थानस्य कियाणां चा-स्पदं भविष्यन्तीत्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ क्षणे निरवयवकालात्मनि ईहा मानसचेष्टापि नास्ति । देहादिचेष्टा-**उक्षणं कमें च दूरानिरस्तालादेव नास्ति । किं तर्हि प्रतिपत्ति-**र्भ्रान्तिरेव केवलं जुम्भते । तदेवेह भिक्षचरित्रे सप्टमिखाइ— केति । अनन्ता जीवटादिसर्गाकृतयस्तासामलं सम्यगुपलम्भश्र क ॥ २५ ॥ २६ ॥ प्रातरम्युजमिव विकसितम् । तत्पक्षे भ्रमरादीनां नानाकलहा जलकहोलाश्र पर्येति योज्यम् । अर्चिभिः सहवर्तमानः साचिमेद्दानिप्रविद्विकणादिव श्रद्धात्सेवे-दनादेवेदमञ्जिदमज्जगजातम् ॥ २७ ॥ एवं भिश्चमनसीव सर्व-जीवमनःस्वपि प्रत्येकं जगद्रुपः प्रतिभासखण्ड उदितस्तस्य तस्यान्तर्जीवखण्डान्तरेष्वपि च विचित्रः सर्गखण्ड उदित इत्यन-वस्थेव मायादशेत्यर्थः । ते प्राथमिकखण्डाः खयं तेपि च तदन्त-र्गतजगत्खण्डा मिश्रः खखव्यवहारहशा न मिथ्या सत्या एव । किं खतो नेत्याह-सर्वात्मनीति । सर्वात्मन्यसिश्वितसत्तैकरसे परमात्मनि तादारम्येन स्फुरति सति । तेन खतस्वबोधेन त्या-वखागे तु न किंचित्सलामित्यर्थः ॥२८॥ इति श्रीवासिष्ठमहारा-मायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे परूपष्टितमः सर्गः ॥६६॥ जीवन्मुकः स्थितो भूयो नासौ संस्तिभाजनम् ॥ ३ तहृहे मासपर्यन्ते बलाजिष्कासितार्गलाः । अन्तराले तु तिष्ठन्ति भृत्या भिक्षुदिद्दस्वः ॥ ४ ततो नष्टाङ्गसंधानं कायं निष्काल्यते जले। त्यस्यन्त्यन्यं करिष्यन्ति भिक्षुमक्षुण्णमानसम् ॥ ५ अनेनैवं स देहेन भिक्षुर्मुको व्यवस्थितः । कथं प्रवोध्यते नष्टं तिहहारे शरीरकम् ॥ ६

भिक्षोः समाधौ मुक्तस्य देहनाशोऽत्र वर्ण्यते । भिक्षञ्चान्तिवदम्येषां बन्धो मोक्षश्र बोधतः ॥ १ ॥ संबोधयन्तु समाधेर्व्युत्थापयन्तु । अमी मतप्रहिता मया प्रे-षिता नरा मिन्त्रणो भवदाज्ञया आनयन्तु ॥ १ ॥ 'अयैव तस्य संवेलं नियतेरेव निश्रयः' इति मदुक्तं विस्मृत्य लयेदं पृष्टमिति सूचयन्वसिष्ठ उवाच-राजिन्नति । क्रेदः प्राणोपष्टम्भकान्नरस-भागः शोषेण वैवर्ण्यमायातः ॥ २ ॥ स तर्हि खदीयसत्यसंक-ल्पेन प्रजीवत् तत्राह--तस्येति । सत्येव तहेहभोग्यप्रारम्ध-शेषे मत्संकल्पः प्रवर्तते नान्यथेति भावः ॥ ३ ॥ मासपर्थन्तं गृहार्गलं न निष्कासनीयमिति मिक्षुणा आह्नपैरन्तरालवासि-भिस्तद्भृत्येर्गुप्तलादपि लन्मिश्रभस्तत्प्रबोधनं कर्तुमशक्यमि-त्याह—तद्गृहे इति । मासस्य पर्यन्ते चरमदिने बलानिष्कासि-तार्गलाः सन्तो मिश्चदेहदिदक्षयो मृत्या बहिर्द्वारान्तराछे तिष्ठन्ति। बलाद्विक्ष्वाद्वाबलादिति वा ॥ ४ ॥ ततो मासान्ते कायं भिक्ष-शरीरं निष्काल्य निःसार्थ जले सक्यन्ति मज्जयिष्यन्ति । तस्यां कुट्यामन्यं तत्कायाकारशिलाप्रतिमारूपं भिक्षं पूजाभ-त्त्यादिव्यवहारप्रवर्तनाय करिष्यन्ति । दहलादशुण्णं मानसं भक्तमनःकल्पितदेवतारूपम् । कर्मधारयः ॥ ५ ॥ एवमुक्त-रीत्या मुक्तः । विहारे प्राणचेष्टादिव्यापारविषये नष्टं मृतम् एवो गुणमयी माया दुर्बोधेन दुरस्यया। नित्यं सत्यावबोधेन सुखेनैवातिवाहाते॥ 9 असत्येव कृतारम्भा हेस्नः करकता यथा। प्रतिभासविपर्यासमात्रकारणकोद्या ॥ परमात्मनि वाचेयमित्थं मायानुमीयते । तरक्रालीव पयसि प्रेक्षामात्रविनाहिानी ॥ Q श्रो हि इष्ट्यतया दीर्घस्वप्रात्स्वप्रान्तरं वजेत्। एवं जीवत्वमायाति विवेकात्सर्वमात्मरक् ॥ १० यो यस्य प्रतिभासः स्यादात्मैव स स्वयोधतः। स एवोदेति संसारः करञ्जवनगुरुमदक् ॥ ११ प्रत्येकं भूतमुदितं कृतं संसारमण्डलम्। भिक्षोः स्वप्नान्तर इव परां भिक्कमिवाम्भसः॥ १२ प्रस्तुतः पद्मजादेव जगत्स्वप्नो यथोदितः। तथैवास्वन्छचिसोत्थो रूढः सर्वजनं प्रति॥ १३ पितामहबदाभाति सर्गः स्वप्नविलासवत्। प्रत्येकमुदितस्तेन ब्रह्माण्डानीव कोटिशः॥ ક્ષ્સ

॥ ६ ॥ प्रश्नं प्रासन्निकमुक्ला प्रस्तुतमेवावरुम्बते-एषेखा-दिना । दुर्नोधेन भ्रान्तिपरम्पराहेतुविक्षेपशक्तया । अतिवाह्यते निरस्यते ॥ ७ ॥ असती अविद्यमानैव कृतजगदारम्भा । हेम्रः कटकतयेव प्रतिभासस्य यो विपर्यासोऽन्यथाभावस्तन्मात्रकार-णको विश्वमोदयो यस्याः ॥ ८ ॥ 'वाचारम्भणं विकारो नाम-धेयं मृत्तिकेत्येव सलम्' इलादिदृष्टान्तश्रुतिवाचा दार्ष्टान्तिक-मायापि इत्थमनृतस्त्रभावैवानुमीयते ॥ ९ ॥ इः परमात्मा एवं अविवेकाजीवलमायाति । स च खविवेकात्सर्वमात्मेति पदयतीत्यात्महक् चिन्मात्रः परिशिष्यत इत्यर्थः ॥ १० ॥ सः स्त्रबोधत आत्मैव । अबोधतस्तु सएव संसारात्मना उदेति॥१९॥ भूतं प्राणिनिकायं प्रति प्रत्येकं संसारमण्डलं भ्रान्खा उदितं कृतम् । यथा मिक्षोः खप्रान्तरे अम्भसो भक्ति आवर्ततरका-दिविभागमिव विद्धीलर्थः ॥ १२ ॥ समर्रेहिरण्यगर्भस्य मनो-मान्ननिर्माणलादयं सर्गः स्वप्न एव चेद्यष्टेरपि तथैव भवितुम-र्हति । अखच्छचित्तादुत्थित इति परः स्थिर दव भासत इलाइ-प्रस्तुत इति ॥ १३ ॥ चित्तशुद्धौ तु पितामहस्येव पितामहवत खप्रविलासबदसत्य आभाति तेन तादशभानेन ब्रायते । प्रत्येकमयं ब्रह्माण्डानीव कोटिश उदित इति निश्रीयत इत्यर्थः ॥ १४ ॥ अयं जीवो व्यष्टिप्रपञ्चरूपेण समष्टिप्रपञ्च-रूपेण वा साधारणप्रपञ्चरूपेण प्रत्येकमसाधारणप्रपञ्चरूपेण वा यथातथा वा स्फुरत्रस्तु तथापि हृद्ये प्रतिभानसमर्थे दीर्घ विभ्रमं पर्यतीति स खप्रविनाश्येवेत्यर्थः ॥ १५ ॥ दीर्धसप्र-दर्शने निमित्तमाह—चित्सत्तामात्रमिति । तत्त्वतः प्रतीतेथ्यु-तमावृतं तावन्मात्रतिश्रत्सत्तामात्रमासाय आश्रिस कचित्क-सिधिदेवनरतिर्थगादिदेहे ॥ १६ ॥ तत्तत्र खप्ने विचित्रयुक्त-

स्फुरन्यथा तथा वास्मिक्षीवः पद्दयति विभ्रमम् । हृद्येऽयं समर्थे च स्वमवहीर्घमान्तरम्॥ **?'**• चित्सत्तामात्रमासाद्य प्रतीतिच्युतमात्रतः। जरामरणदुःखानां कचिद्धाजनतां गतः॥ १६ पातालं ब्रह्मलोकं वा चित्तत्सुरुतशालिनी। वित्तांशस्यन्दमात्रेण कृत्वा कृत्वेव संस्थिता ॥ १७ चित्स्पन्दरूपिणी जीवनामरूपं गतात्मनि। अन्यत्र च विछुठति गत्वा संभ्रमहारिणी ॥ १८ चित्तेति परमात्मा न परमात्मा न वा न किम्। जीवदेहादिनास्रोऽस्य प्रतिबिम्बादिवार्हता ॥ ब्रह्मण्येय परं ब्रह्म जगहृष्ट्येय संस्थितम्। गुद्धाकाशमिवाकाशे जले जलमिवामलम् ॥ लोको ब्रह्मण एवायं जगद्र्षेषु तिष्ठति। विभेत्यन्यतया बोधात्प्रतिविम्बादिवार्भकः॥ स्पन्दे स्पन्दीकृते चेह स्वतः संज्ञा विलीयते। साप्यलं परिणामेन लीयतेऽग्री घृतं यथा ॥ રર

तशालिनी जीवचित समित्तांशसन्दमात्रेणाधः पातालं वा ऊर्ध्वं ब्रह्मलोकं वा कुला कुला भुजाना संस्थितेत्यर्थः ॥ १७॥ परमात्मचिदेव प्राणकल्पनया तदधीनस्पन्दरूपिणी भूला तद्धा-रेण जीवनामकं रूपं गता सती आत्मनि देहाकारसंश्रमहा-रिणी अन्यत्र बहिश्व गला विषयाकारसंश्रमहारिणी भूला विक्वठति ॥ १८ ॥ अस्त्वेवमस्य भ्रान्त्या जीवादिनामरूपमे-दस्तथापि परमात्मेवैषः। अध्याससहस्ररप्यधिष्ठानस्यान्यलायो-गादिति परमपुरुषार्थफलं जीवब्रह्मैक्यं दढीकरोति--चित्ते-तीति । प्रखगात्मा चित्तेत्युपाध्याकारश्रान्तिमात्रापराधार्तिक परमातमा ब्रह्म न परं वा ब्रह्म कि आत्मा प्रत्यगातमा न कि-मस्य ब्रह्मणो मुखस्य दर्पणे प्रतिनिम्बनादिवौपाधिकजीवनाम्रो देवदत्तयङ्गदत्तादेर्देहनाम्न आदिपदात्प्राणवाक्चक्षुरादिनाम्रधा-हुर्ता न किंतु अभेदेऽप्युपाधिवशात्सर्व संभवत्येव। तथाच श्रुतिः 'स एव इह प्रविष्ट आनखाप्रेभ्यः' 'प्राणनेव प्राणो नाम भवति वदन्वाक् पर्यंश्वक्षः श्रुण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मन इति तान्येतस्य कर्मनामान्येव' इति ॥ १९ ॥ एवमैक्यदर्शने जग-हुछ्या व्यवहारदृष्टेव परं ब्रद्धा ब्रह्मण्येव संस्थितं कि पुनः प्रमार्थहच्या समुलोपाधिबाधे तद्वाच्यमिति भावः॥ २०॥ किंच दर्पणादौ मुखादलन्तभिन्ने मुखस्य स्थितावन्ययाश्रान्ति-संभावनापि स्यात् । अयं जीवलोकस्तु स्वारमभूतस्याभयस्य ब्रह्मण एव मूर्तामूर्तात्मकेषु जगद्रूपेषु विष्ठतीति न तत्संभाव-नापि तथापि अन्यतया आत्मन्यतिरिक्तमन्यन्मम भयहेतुर-स्तीति बोधाद्विमेतीत्याश्वर्यमित्यर्थः ॥ २१ ॥ अन्यताबोधे च बुद्धिसन्दो हेतुरिति बुद्धिसन्दे समाध्यभ्यासेन असन्दी-कृते मेदबुद्धिलक्षणा संज्ञा खतएव बुद्धी विलीयते सा बुद्धि-रप्यलं पूर्णब्रह्माकारेण चरमसाक्षातकारलक्षणपरिणामेनामी हुतं

१ एवातिवितता मायेति पाठः । २ गुल्मधुगिति पाठः।

चित्स्पन्द एव चित्स्पन्दे सर्वात्मनि विजुम्भितः। स्पन्दास्पन्दी ज्ञम्भणादि कल्पितं नात्र वास्तवम् २३ न स्पन्दोऽस्तीह नास्पन्दो नैकता घापि न द्विता। शुद्धं चिन्मात्रसर्वस्वं यथैवास्ति तथा स्थितम् ॥ २४ सारेण तु विचारेण सर्वशब्दार्थयोः समे । चिन्मात्रमेष शातेऽयं नास्तीत्यपि न विद्यते॥ २५ मेदवेदनयोदेति मेदः प्रस्ततिलाञ्छनम् । अभेदबोधादखिले गलिते शिष्यते परम्॥ २६ नानातैषास्य बोधेन स बोधस्त्वनवेक्षणात्। पृच्छकं चैवमस्येव तसान्निःशङ्कता परा ॥ २७ ततः स्वप्नो न जागर्तिनं सुषुप्तिनं तुर्यता । न बन्धोस्ति न मोक्षोस्ति नान्यथाकल्पनात्मकम् २८ शान्तिरेका जगन्नाम्नी शान्तिरेवमवस्थिता। अयोधोऽसत्य एवातः क द्रपृष्टश्यदर्शनम् ॥ रुपन्दोऽप्यरुपन्द एव स्यान्निःसंकल्पतया च ते।

न स्पन्दास्पन्दयोर्भिषा संकल्परहितैव चित् ॥ ३० द्वैतैक्यविकैला रूपसंकल्पश्चिदभावनात्। स च भावनमात्रेण गतो ब्रह्मैव शिष्यते॥ 38 चिचन्द्रविम्बे संकल्पकलङ्कः स्फुरतीव यः। नासौ कलङ्करतद्विदि चिद्रनस्य घनं घपुः॥ ३२ चिद्धनस्य न सम्रासन्स्थीयतां यसते पदे। इत्यदोषमहाबोधसारसंग्रहणं कृतम्॥ 33 चिश्चन्द्रविम्वासंकल्पकलङ्कामृतविप्रहः। त्वया भव्येन संस्पृष्टो भावाभावक्षयात्मना ॥ ३४ भावाभावादिकलनां नीत्वा चिन्मयतां चितः। समोहासविलासान्तः समाश्वस यथासुखम् ३५ स्पन्दास्पन्दी कल्पनाकल्पना वा चित्ताद्वायो विद्धि नामाव्धिनाद्मा । सर्वाकारा निर्वृतिः शान्तिसत्ता पूर्णापूर्णे होकमेवास्थितेति॥ 36

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणत्रकरणे ब्रह्मैक्यप्रतिपादनं नाम सप्तपष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

पसिष्ठ उवाच। सुबुप्तमौनवान्भूत्वा त्यक्त्वा चित्तविलासिताम्।

धृतमिव तदि दे ब्रह्मणि विलीयत इत्यर्थः ॥ २२ ॥ बोधमा-त्रात् कथं कुद्दालकोटिदुर्भेदं जगद्विकीयत इति चेदवास्तवचि-त्सन्दमात्रलादिलाह—चित्सन्द एवेति ॥ २३ ॥ कल्पित-मिति कथं ज्ञातमिति चेत्तत्त्वदशा तददर्शनादिखाइ—नेति ॥ २४ ॥ सर्वशब्दस्य तदर्थस्य च समे एकरसे खभावे ज्ञाते सति चिन्मात्रमेव परमार्थसत्यम् । नास्तीति अभावभूतोऽप्ययं प्रपद्यों न विद्यते दूरे भाव इत्यर्थः ॥ २५॥ २६ ॥ यथोक्तव बद्धस्थितिनं केनचिदन्यथा कर्तुं शक्येति वसिष्टः प्रतिजा-नीते-नानातेति । एवकारौ भिन्नक्रमौ । हे राम, लं अबोधे-नैव नानातासि । स लमबोधरूपाया नानाताया अनवेक्षणात्तु बोधः पूर्णविद्रूप एवासि । अस्मिन्नर्थे यं कंच पृच्छ । एवमेवास्ति परमार्थः । तसादेव तव मम अन्यस्य च परा निःशङ्कता प्रतिष्ठितेखर्थः ॥ २७ ॥ ततस्तादशनिःशङ्कताबलादेव जाप्र-दादिसर्वावस्थाद्वेतापलापः प्रवृत्त इत्याह—तत इति ॥ २८ ॥ अबोधवद्यादेव द्रष्ट्रहर्यादित्रिपुटीजगत् । यदा लबोधः अ-सत्य एव तदा शुद्धात्मरूपा तच्छान्तिरेवैदा जगनाश्री । यतः सा शान्तिरेव गच्छति सर्वतो व्याप्रोतीति व्युत्पस्या एवं जगनामयोग्यतया व्यवस्थिता । द्रष्टृदर्यदर्शनात्मका त्रिपुटी तु अत्यन्ताप्रसिद्धेति नासी तदा जगनात्रीत्यर्थः ॥ २९ नतु चित्तप्राणादिस्पन्दस्य बोधमात्रेण कथं निष्टतिरिति चेत-देवसंडल्पक्षयादेवेलाइ-स्पन्द इति ॥ ३० ॥ वितः अभा-

कलनामलनिर्मुकस्तिष्टावष्टम्घतत्पदः॥

॥३१॥तद्दर्शनप्रकारमाह्-चिचन्द्रयिम्बे इति॥३२॥ नार्सी कलक्क

इलार्थे युक्तिमाह—चिद्धनस्येति । लया चिद्धनस्य तते पदे स्थीयताम् । यद्यसातपूर्णभावावस्थानात्संकल्पादिस्त्वदेकरस्यमा-पन्नः पृथङ् न सन् स्रदात्मना च सन् भवति इति अनयैव युक्तया सर्ववस्तुनामात्मैकरस्यसंपादकनिदेषिकोधसारस्य संप्रहणं सम्यगवलम्बनं कुरु ॥ ३३ ॥ हे चिश्वन्द्रविम्ब, हे असंकल्प-कलङ्क । भावाभावक्षयात्मना भव्येन लया संस्पृष्टः सर्वीपि पदार्थः अमृतवित्रहः संपद्यते । अहो ते माहात्म्यमित्यर्थः ॥ ३४ ॥ चितः समोहासविलासस्यान्तः सम्यगाश्वस विश्रान्ति भज ॥ ३५ ॥ हे राम, त्वं अव्धिनाम्ना आनन्दसमुदाख्येन खरूपेण स्थितः सन् स्पन्दास्पन्दौ कल्पना संकल्पः अकल्पना विकल्पो वेति यावांश्रिताम्रायश्चित्तभ्रान्तिमेदः स सर्वोपि सर्वा-कारा निर्वृतिः सुरीकरसा शान्तिसत्तीव तथा तथा आस्थिता । इमे च पूर्णपूर्णे दशे एकमेव मे खरूपमिति विदि ॥ ३६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यभकाशे निर्वाणप्रकरणे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

वनाददर्शनार्द्वतेक्यादिरूपसंकल्प उदितः सच भावनमात्रेण दर्श-

नमात्रेण गत इति द्वेतैक्यरहिता चिद्रह्मेव शिष्यत इत्यन्वयः

मौनं चतुर्विधं स्वत्र सक्षणेरुपवर्ण्यते । सुबुप्तमीनं तत्रापि नुर्यातीतप्रतिष्ठितम् ॥ 🤉 ॥ चित्तविछासितां चित्तस्य खाभाविकप्रवृत्त्यनुसारितम् ॥ १ ॥

३ विकसद्रप दित पाठः. २ कुरु दित पाठक्षेद्याख्यानुगुणःस्यात्.

श्रीराम उवाच । वास्मौतमक्षमौनं च काष्टमौनं च वेदयहम् । सुबुप्तमौनं मोनेश ब्रह्मन्बृहि किमुच्यते ॥ वसिष्ठ उवाच ।

द्विविधः प्रोच्यते राम मुनिर्मुनिवरैरिह । एकः काष्ट्रतपस्त्री स्याज्जीवन्युक्तस्तथेतरः॥ अभावितायां शुष्कायां क्रियायां वद्धनिश्चयः। हठाजितेन्द्रियप्रामो मुनिः स्यात्काष्ठतापसः॥ यथाभूतिमदं बुद्धा भावितात्मात्मनि स्थितः। लोकोपमोपि तृप्तोऽन्तर्यः स मुक्तमुनिः स्मृतः ॥ ५ एतयोयी भवेद्धावः शान्तयोर्भनिनाथयोः। विश्वनिश्चयरूपातमा मौनशब्देन स स्मृतः॥ चतुष्प्रकारमाहुस्तं मीनं मौनविदो जनाः। वाड्यौनमक्षमीनं च काष्टं सीवुप्तमेव च ॥ वास्त्रीनं वचसां रोधो बलादिन्द्रियनिप्रहः। अक्षमौनं परित्यागश्चेष्टानां काष्ट्रसंशकम् ॥ मनोमीनं पञ्चमं च तन्मृती काष्ट्रतापसे। भावे सुषुप्रमौनाख्यं जीवन्मुकोऽनुजीवति॥ त्रिषु मौनविशेषेषु विषयः काष्ट्रतापसः। सुषुप्तमीनावस्थायां सा तुर्या सेव मुक्तधीः॥ वाड्योनं मौनमित्येतित्सदं तथ मनः किल। मलिनं जीवबन्धाय तत्रस्थः काष्रतापसः ॥ ११

बागादीनां मौनं संयमः । काष्टमिव मौनं काष्टमीनम् । सर्वेषु मौनेषु ईशिषे समर्थो भवसीति मौनेश ॥ २ ॥ द्विविधा इति । लद्विदितानां त्रयाणां काष्ठतपस्त्रिनां तारतम्यमेदानामनात्मज्ञ-तया एककोटितैवेति भावः॥ ३॥ तमेव प्रकटयति-अभा-वितायामिति । भावितमात्मतत्त्वपर्यालोचनं तच्छून्यायां शु-ष्कार्या तदनुभवरसञ्जून्यायां कृच्छ्चान्द्रायणादिकियायाम्॥४॥ व्यवहारे इतरतपस्त्रिलोकोपमोऽत्यन्तर्निरतिशयानन्दास्त्रादत्रः ॥ ५ ॥ प्रकृत्यर्थं व्युत्पाद्य प्रत्ययार्थं व्युत्पादयति—एतयो-रिति ॥ ६ ॥ तत्रायं त्रेधा विभज्य चतुष्प्रकारं मीनं मुनय आहुरित्यर्थः ॥ ७ ॥ तेषां प्रत्येकं रुक्षणान्याह-नाझौनमि-त्यादिना । इन्द्रियनिप्रहोऽक्षमीनम् ॥ ८ ॥ एवं विभागपर्या-लोचने मनोमौनमपि पश्चमं यद्यपि संभवति तथापि तत् काष्ट्रतापसे मृतौ मूर्च्छासुषुह्योरेव संभवति नान्यदेति तत्तर्न परिगणितमित्यर्थः । वर्धे चः। भावे आत्मतत्त्वानुभवे ॥ ९॥ विषयः अधिकृतः। तुर्या चतुर्था । मुक्तेषु जीवन्मुकेषु धीयत इति मुक्तधीः ॥ १० ॥ यद्यपि त्रिषु मौनेषु मौनत्वं सिद्धं तथापि तानि मिलनमनोद्दहिनश्चयरूपाण्येवेति जीवस्य बन्धायैवेत्याह-बांगिति ॥ ११ ॥ तर्हि तद्वान्काष्ट्रतापसः समाधी कथं तिष्ठति तदाह-अस्पदिति । बलान्मनोनिप्रहेणान्तरस्पदोऽहंभावस्य संस्मरणमनुसंधानमस्पृशन् बहिरपि दृश्यं रूपप्रपश्चं वाष्प्रयं चारप्रशासक्षानावृतमात्मानमपश्यभेष सुप्राविष

असात्संसारणं वापि रदयं वाद्यायमस्पृदान्। अपर्यन्नेव पर्यन्हि काष्ट्रमौनी तु तिष्ठति ॥ १२ प्रस्फरिश्चलकलनमेतन्मौनत्रयं स्मृतम्। भवन्ति मौनिनस्तत्र न तज्हास्तत्स्थलीलया ॥ १३ नात्रोपादेयताज्ञानमेतन्मौनत्रये किल । **ळीळया कथितं तेन तज्ज्ञाः कुप्यन्त् वा नवा ॥ १४** इदं सुपुत्रमोनं तु जीवनमुक्तमिति स्थितम्। अपुनर्जनमनो जन्तोः शृणु श्रद्यणभूषणम् ॥ १५ नात्र संयम्यते प्राणिखिविधो नापि योज्यते। नोह्यस्ते न ग्लायन्ते समस्तेन्द्रयसंविदः॥ १६ नानाताकलनेयं च न चलाति न शाम्यति । चेतो न चेतो नाचेतो न सन्नासन्न चेतरत्॥ १७ अविभागमनभ्यासं यदनाद्यन्तमास्थितम्। ध्यायतोऽध्यायतश्चेतत्सोषुतं मौनमुख्यते ॥ १८ यथाभूतमिदं वुङ्गा जगन्नानात्वविभ्रमम्। यथास्थितमसंदेहं सीपुप्तं मीनमेव तत्॥ अनेकसंविद्र्पात्म शिवेनेवेदमाततम्। इत्यास्थितमनन्तं यत्सीषुप्तं मीनमुच्यते॥ २० आकारां नैव चाकारां सर्वमस्ति च नास्ति च। इति चित्तं समं शान्तं यत्तन्मीनं सुपुप्तवत् ॥ सर्वशृत्यं निरालम्यं शान्तिविव्यक्तिमात्रकम्। न सन्नासदिति यस्यामासितं मौनमुत्तमम्॥

नित्यात्मद्दग्विलोपाभावाद्भस्मच्छन्नान्निवत्साक्षिमात्रज्योतिषा प॰ र्यस्तिष्ठतीखर्थः ॥ १२ ॥ व्युत्धानकाछे त्वेतन्मौनश्रयं प्र**ए**फ्-रचित्तचलनमेत्र । तत्र प्राक्तनासयो मानिनो भवन्ति त-ज्यास्तु नित्तवाधात्र तत्स्थनिरोधन्युत्थानादिलीलया तत्र भव-न्तीत्यर्थः ॥ १३ ॥ अथवा तत्स्थलीलयेत्यस्य पूर्णात्मस्थितिली-लया । तज्ज्ञास्तुच्छप्राक्तनमानत्रये बन्धरूपमेवेदं निरस्यमिति तु कुप्यन्तु, चिदानन्दविलास एवेति बुद्धा नवा कुप्यन्तु. तथापि तेषामत्रोपादेयहानमेव नास्तीत्यर्थे तात्पर्यमिलाह-नात्रेति ॥ १४ ॥ जीवन्मुक्तानां मितिरनुभवस्तत्र स्थितम् । जन्तोर्भवतीति शेषः । अतस्त्वमपि शृण् ॥ १५ ॥ तत्त्वद-र्शने सिद्धे अयलेनेव तिसम्बतीति न पूर्वमीनहेशसापेक्षते-लाह—नात्रेति । ऊर्ध्वाधोमध्यसंचारमेदेन त्रिविधः । विष• यलाभहर्षेण नोष्ठस्यन्ते, निरोधक्केशेन न ग्लायन्ते ॥ १६ ॥ तस्य शानवाधितं चित्तं कथमवतिष्ठते तदाह—चेत इति ॥ १७ ॥ विभाजकविकल्पक्षयात्तारतम्यविभागाभावाचाविभा-गम् । अतएवानभ्यासमभ्यासनिरपेक्षम् । अपरिच्छिनात्मरू-पलादनायन्तम् ॥ १८ ॥ जगदिति नानालविभ्रमो यस्मि-स्तत् इदं आत्मतलं यथास्थितं बुद्धा ॥ १९ ॥ अमेकघा संविद्रुपाणामात्मा यः शिवस्तेनैवाततं पूर्णं आस्थितमव-स्थानं यत्तिदिखर्यः ॥ २०॥ शून्यरूपलाभावाभैव चाकाशे ॥ २१ ॥ यस्यां जीवन्युक्तदशायामासितमवस्थानम् ॥ २२ ॥ भावाभावद्शादेशविशेषेविततोत्यितैः। संविदो यदनाभासस्तन्मौनं परमं बिदुः॥ २३ अत्यन्तसमतैवान्तश्चेतसाऽवृत्तिरूपिणा। यदनाचर्तनं संविद्यत्तेस्तन्मौनमक्षयम्॥ २४ नाहमसि न चान्योऽस्ति न मनो न च मानसम्। इति संविदसंवित्तिरविच्छिन्नातिमौनिता ॥ २५ अहमसि जगत्यसिन्खित्त शब्दार्थमात्रकम्। सत्तासामान्यमेवेति सीषुप्तं मीनमुख्यते ॥ २६ यसात्संविदमेव स्थात्स्वान्यादिकलना कुतः। अनन्तमेष सौषुप्तं सर्वं मीनमतस्ततम्॥ २७ सुषुप्तमौनमेवेदमनन्तत्वात्त्रबोधवत् ।

तुर्यमेवामलं विदि तुर्यातीतमथापि च ॥ २८
सौषुप्तैकसमाधानस्तथा तुर्यसमाधिकः।
तुर्यातीतसमाधिवां जाम्रत्यपि भवन्ति व ॥ २९
तुर्यस्थ एव सकलामलशान्तिवृत्तिः
जाम्रत्यपि व्यवहरित्रपुणं समन्तात्।
नित्यं सदेह उत वापि विदेह एव
व्यक्षभाभे भवत एव किलास्ति साधो॥ ३०
अभित्युदस्तभववासनमेकमास्स्व
न त्वं न चाहमपि नान्यदिहास्ति सत्यम्।
सर्वे च विद्यत इतीह किलान्तराभं
व्यस्तिष्ठ चिद्रगनकोशकलकनिष्ठः॥ ३१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे महामीनयत्रोपदेशो नामाष्ट्रपष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

श्रीराम उवाच । कुतः शतत्वमायातं रुद्राणां मुनिनायक । ये गणास्ते तु ये रुद्रा उत नेति वदाशु मे ॥ यसिष्ठ उवाच । स्वप्रानां भिश्रुणा दृष्टं शतं शतशरीरकम् ।

भावाभावादिविशेषैः संविदोऽनाभासः अविवर्तः ॥ २३ ॥ बाधितलादत्यन्तमसतेव ॥ २४ ॥ मानसं विकल्पनम् । इति बाधितस्य संविदा असंवित्तिरप्रतिभासः ॥२५॥ स्वस्ति अनामयं शब्दार्थमात्रकं सर्व सत्तासामान्यमेव ॥ २६ ॥ यस्माद्वेतोः अमा सर्वेवाधकखाकारचरमवृत्तिप्रमाश्रून्या तामपि प्रसन्तीव स्यात्तस्यात्स्वस्य अन्यस्य आदिपदाद्भेदस्य च ॥ २७ ॥ अवि-द्याबाधात्तुर्यं तद्वाधकयृत्तीनामपि बाधात्तुर्यातीतम् ॥ २८ ॥ प्रागुक्तसप्तविधज्ञानभूमिकानां मध्ये पञ्चम्यादय एतास्तिस्रो भूमिकाः समाधिमेदरूपाः जाप्रति अपिशब्दात्स्वप्रस्थेपि तत्त्व-विदि पर्यायेण भवन्तीत्याह—साषुप्तैकेति । समाधानः समा-धिकश्व समाधिः एते समाधयो जाग्रह्मपि भवन्ति ॥ २९ ॥ हे बहान् ब्रह्मभूत हे साधो, जायति समन्तान्निपुणं व्यवहरन्स-देहोऽपि उत वा त्यक्तव्यवहारः समाधिस्थोऽपि जीवनमुक्तः सकलामलशान्तियत्तिर्निलं तुर्यस्थ एव तथा विदेह एव। इयं च स्थितिः स्थूलसूक्ष्माकारद्वयबाधात्रमो भवतीति नभो-भवन् यस्तस्यैवास्ति नान्यस्येखर्थः । अथवा नभ इखपि संबो-धनमेव । इयं स्थितिस्तथा भवत एवास्ति नान्यस्येत्यर्थः । अथवा भवतस्तर्वेवास्तीति रामं प्रति सिद्धवत्कारोक्तिः ॥ ३०॥ हे राम, लं अभिति माण्डूक्योपनिषदुक्तरीला विराडादिपाद-मात्राप्रविलापनेनोदस्तभववासनमेकं तुर्यरूपमास्ख । सर्व च विद्यत इतीह किस यत्प्रसिद्धं तत् आन्तरी नाड्यन्तरनुभूय-मानः खप्रस्तदाभं बुद्धा हो जीवन्युक्तस्त्वं चिद्गगनकोपाकरैं-कनिष्ठस्तिष्ठेत्वर्थः ॥ ३१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणता-त्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

सर्वमुद्देशतो क्षातं तत उक्तं न तन्मया ॥ २ य आकाराश्च ते स्वप्ने तत्तद्रणशतं स्मृतम्। तदेतद्रुद्रशतकं रुद्रा अपि गणा विधी ॥ ३ श्रीराम उवाच। एकसाद्भगवंश्चित्तात्कथं चित्तशतं कृतम्।

गणामामपि रुद्धस्वं मुक्तानामैच्छिकी स्थितिः। योगारप्राणस्य विरुयो मृतेस्तुद्धृतिरुच्यते ॥ १ ॥ 'प्राप्य तां ब्रह्महंसेहां रुद्धतां सर्व एव ते । समाजग्मुर्विरे-

जुश्र रहाणामुत्तमं शतम् ॥' इति शतानामप्युत्तमरद्रत। प्रा-गुका तदुत्तरसर्गे च रुद्राज्ञया तेषुतेषु देहेषु प्रारव्यशेषं भुक्त-वतां तेषाम् । 'तत्र भुक्ला चिरं भोगान्प्राप्य इद्रपुरं ततः । गणतामावसंतस्ते स्थास्यन्ति सपरिच्छदाः' इत्युक्तं तत्र रुद्दे-च्छया शतसद्दम्तीनां गणलमेकेव स्द्रमूर्तिरिति संदिहानो रामः पृच्छति-कृत इति । रदाणां शतत्वं कृत आगतम् । कि गणैः सह परिगणनादुत तद्यतिरिक्तस्द्राणामेव परिगणनात्। एवार्थे तुशब्दः । ये गणास्त्ययोक्तास्त एव ये रुद्रा उक्तास्ते उत न । अन्ये एव रदा इत्यर्थः ॥ १ ॥ तत्र प्रथमकल्पमेवा-वलम्ब्य वसिष्ठ उत्तरमाह—स्वप्नानामिति । उद्देशतः प्राग्व-र्णिततत्त्रज्ञन्मादिप्रस्तावतस्त्वया ज्ञातमेव ततस्तन्मया ध्द्रशत-संख्याने नामतो विज्ञिष्य नोक्तम् ॥ २ ॥ भिक्षुखप्ने ये जीव-टाद्याकारास्तदाकारमेवोत्सर्गतो गणशतामिति स्मृतम् । तदेवै-तद्वदशतकमपि भोगैश्वर्यसाम्याद्वद्वांशलाच भवति । ननु गणा इति रुद्रस्य सेवकाः पार्षदा उच्चन्ते ते कथं मुख्यरुद्राः स्युः । खामिभृत्यभावयोविंदद्योरेकत्रासंभवात् । किंच शततमस्य मुख्यरुद्रलाद्गणलाभावाद्गणशतमित्युक्तिश्चानुपपन्नेनेति त्राह—रदा अपीति । ते शतं स्वयं रदा अपि पूर्वसिद्धस्येश्वर-कोटिभूतरहस्य परिचर्यादिविधा गणा एव भवन्ति । तेषां कर्मफलभोगैश्वर्यप्राप्तेस्तद्धीनलादिखर्थः ॥ ३ ॥ 'बोषयिखा त तं भिक्षं चेतसा चेतनेन च' इलादिना भिक्षस्रकृतेन शतत-

९

१०

११

१२

तस्खमस्त्रतरुद्रेण दीपाद्दीपरातं यथा॥ वसिष्ठ उद्याच।

निरावरणसद्भावा यद्यथा कल्पयन्ति हि। तत्त्रथानुभवन्त्येव रसावरणसंविदः॥ सर्वात्मनः सर्वगत्वाद्यद्यथा यत्र भाव्यते। तथानुभूयते तत्र तत्त्रथा इतया धिया॥ श्रीराम उवाच।

कपालमालाभरणो भस्मशाली दिगम्बरः। इमशाननिलयो ब्रह्मन्कामुकश्च किमीश्वरः॥ वसिष्ठ उवाच।

महेश्वराणां सिद्धानां जीवन्मुक्तशरीरिणाम् ।
न क्रियानियमोऽस्तीह स द्यब्रस्येय किएतः ॥
अबस्तुदितचित्तत्याक्तियानियमनं विना ।
गच्छव्यायेन मात्स्येन परं दुःखं प्रयाति हि ॥
सुब्रास्त्विष्टेप्वनिष्टेषु न निमज्जन्ति वस्तुषु ।
यतेन्द्रियत्वादुद्धत्वाक्षिर्वासनत्या तथा ॥
काकतालीयवद्द्धां क्रियां कुर्वन्ति ते सदा ।
न कुर्वन्त्यपि वे किंचिश्रेषां क्रचिद्पि ग्रहः ॥
काकतालीयतो विष्णुरेवंकमांदितः पुरा ।
एवंकमां त्रिनयन एवंकमाम्बुजोद्धवः ॥

मेन रुद्रेण खन्तिस्यतन्यदानेन मिक्ष्वादीनां बोधनं यत्प्रागुक्तं तदन्यत्रादर्शनादसंभावयन् रामः पृच्छति-एकस्मादिति ॥४॥ भनीश्वरेष्यक्षेषु तददर्शनेऽपि ईश्वरेषु मुक्तेषु न तदसंभावना युक्तिति परिहरति---निरावरणेति । ज्ञानैश्वर्येण निरावरणा योगै-श्वर्येण सद्भावाः रात्यसंकल्पाः। 'रमो वै सः रसं क्षेवायं रुष्धवा-नन्दी भवति' इति श्रुतेः । रसो भूमानन्दस्तं आसमन्तात्सांक-ल्पिकार्थसत्तालाभाय कृणोति खीकरोति तथाविधा या माया प्रतिबिम्बसंवित् सार्वस्थसर्वशक्तलाख्या तद्वलादिखर्थः॥ ५॥ सार्वातम्यबलादपि तेषां सर्वभावितार्थसिद्धिरित्वाह—सर्वातमन इति ॥ ६ ॥ एवमैश्वर्ये सति हरिहरादयः किमर्थ मानुषयो-न्याद्यवतारसम्भानवासादिकदर्थनां खस्य कल्पयन्ति शुभमेव कतो न कल्पयन्तीत्याशयेन रामः प्रच्छति--कपालेति । भ-स्मना शालते शोभते तच्छीलः । ईश्वरः सर्वशक्तिसंपन्नोऽपि सन् कि किमर्थमेवास्ते इत्यर्थः ॥ ७ ॥ कियाः शासीया एव मङ्गलहरा एव सुखभोगफला एव कार्या इति न नियमसोषां विधिकिंकरलाभावात् । अज्ञदक्प्रसिद्धमङ्गलानामपि तरवहवा अमन्तरुतमसाविशेषात् । अशुभकर्माभावेन दःख-सामध्यापि तेषां दुखभोगानुद्यात्सर्वस्य सुस्ररूपताविशेषा-बेति भावः ॥ ८ ॥ दितचित्तलात् रागद्वेषलोभादिदोषसहस्र-खण्डितनिस्त्वान्मात्स्येन मत्स्येषु प्रसिद्धेन दुर्बलखपरजाति-प्रसनन्यायेन गच्छन् कियानियमनं विना परं जन्म परंपरान-रकादिद्ः खं प्रयाति । हि इति शास्त्रप्रसिद्धौ ॥ ९ ॥ १० ॥ रुष्टां अकस्मात्प्राहुर्भुताम् । प्रद्वः आसङ्गः ॥ ११ ॥ एवंकर्मा

न निन्द्यमस्ति नानिन्द्यं नोपादेयं न हेयता। न चात्मीयं न च परं कर्म शविपयं कचित ॥ अझ्यादीनां यथोष्ण्यादि सर्गादौ रूदिमागतम्। हरादीनां तथा कर्म द्विजातीनां च जातयः ॥ १४ सर्गे प्रहृदिमायाते संकेतवरातः पृथक् । अनुभूतिफलाश्चर्याः करिपताः करिपताः स्वयम्१५ विदेहमुक्तविषयं तुर्थमौनमतो मथा। नोक्तं तब परं मौनं सदेहस्य रघुद्वह ॥ १६ खादप्यतितरामच्छमात्माकाशं चिदात्मकम्। तत्ताप्राप्तिः परं श्रेयः सा कथं प्राप्यते शृण ॥ १७ सम्यग्नानाववोधेन नित्यमेकसमाधिना । संख्ययैवावबुद्धा ये ते स्मृताः सांख्ययोगिनः प्राणाद्यनिलसंशान्तौ युत्तया ये पदमागताः। अनामयमनाचन्तं ते स्मृता योगयोगिनः॥ १९ उपादेयं त सर्वेषां शान्तं पदमक्तिमम्। तत्केचित्संख्यया प्राप्ताः केचिद्योगेन देहतः ॥ २० एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति । यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं परं योगैस्तदेव हि ॥ २१ यत्र प्राणमनोवृत्तिरत्यन्तं नोपलभ्यते । वासनावागुरोत्कान्ता तद्विद्धि परमं पदम् ॥ २२

मानुष्यादिजन्मकर्मा ॥ १२ ॥ न हेयता कस्यचिदिति शेषः । आत्मीयं खवर्णाश्रमोचितम् । परं तदन्यत् । ज्ञाः सिद्धास्ता-न्विषणोति बधातीति विषयस्तथाविधं न किचिदिसर्थः ॥ १३ ॥ तर्हि कथं हरस्य प्रसिद्धहरचरित्रवेपिकयानियमो हरेर्वा तचरि-त्रवेषादिनियमो भवदाषीनां च ब्राह्मणोत्तमचर्यानियमः । का-कतालीयन्याये तद्घटनादित्याशङ्क्याह—अम्यादीनामिति जातयस्त्राज्ञात्यचितकर्मनियमः । मुख्येश्वरेच्छाह्यानादिनि-यतिरेव तद्यवस्थापिकेत्यर्थः ॥ १४ ॥ अज्ञानां तु चर्या ना-प्रयादिकियावित्रयताः सर्गादावभिव्यक्ताः किंतु सर्गे रुढिमा-याते सति तत्तद्वर्णादिविभागसंकेतवशतः पृथक् ऐहिकपार-ठोकिकसुखदुःसानुभूतिफलाः शास्त्रीयाः स्वाभावितयश्च रागा-दिवशात्स्वर्थं कल्पिता इति वैषम्यमिलर्थः ॥ १५ ॥ एवं प्रश्नं समाधाय प्रस्तुतेषु भीनेषु वक्तव्यशेषं दर्शयति-विदे-हेति । सदेहस्य प्रसिद्धाचनुविधमीनात्परं तव नोक्तं तच्छ-ण्विति परेणान्वयः ॥ १६ ॥ तत्तायास्तद्भावस्य प्राप्तिः परं श्रेयो मोक्षः ॥ १० ॥ तत्त्राप्तां सांख्ययोगाञ्जपाय इति वर्ण-यिष्यन्सांख्ययोगिनो लक्षयति सम्यगिति । संख्यया विवे-कविचारप्रयुक्तराजयोगेन ॥ १८ ॥ कर्मयोगिनो लक्षयाति-प्राणिति । युक्तया प्राग्वर्णितहठयोगेन ॥ १९ ॥ उपादेयं फठी-भूततत्त्वसाक्षात्कारेण प्राप्तव्यम् । सर्वेषां द्विविधानामपि यो-गिनाम् । देहतः अनेनैव देहेन ॥ २० ॥ फलत एतदेव स्फुटयति-यदिति ॥ २१ ॥ ननु विभिन्नरूपयोस्तयोः कृत एकं फलं तत्राह-यत्रेति । प्राणमनीयृहस्योहभयोरायात्यन्ति.

वासनां चित्तमेवादः कारणं तद्धि संस्तेः। तदकारणतामेति विलीयोभयकर्मस्य ॥ २३ मनः पश्यति वै देहं बालो बेतालकं यथा। स्वात्मानं विलयं नीत्वा न भूयस्तं प्रपश्यति ॥ २४ मनो मुधैवाभ्यदितमसदेवानवेक्षणात्। स्वप्ने स्वमरणाकारं प्रेक्ष्यमाणं न विद्यते ॥ ર્ષ मनोभवस्तु संसारः क ममाहं क संतीतिः। उपदेश्योपदेशादिबन्धमोक्षौ च तत्कुतः॥ २६ एकतत्त्वघनाभ्यासः प्राणानां विलयस्तथा । मनोविनिग्रहश्चेति मोक्षराव्वार्थसंत्रहः॥ २७ श्रीराम उवाच। यदि हि पाणविलयो मुने मोक्षस्य कारणम्। मृता एव विमुच्यन्ते तन्मन्ये सर्वजन्तवः॥ 26 वसिष्ठ उवाच। त्रिष्वेतेषु प्रयोगेषु मनःप्रशमनं वरम् । साध्यं विद्धि तदेवाश यथा भवति तच्छिवं ॥ २९ यदा निर्वाणनं प्राणास्त्यजन्तीदं शरीरकम्।

कविरुयोपरुक्षितलादुभयवासनावागुरोत्कान्ता स्थितिरेव तत्प-रमं पदं तत इत्यर्थः ॥ २२ ॥ एकफलले ओदनसिद्धी बह्रि-जलयोरिन सांख्ययोगयोः समुखयो युक्तो न विकल्प इति चेत्तत्राह-वासनामिति । संस्तेर्बाह्यान्तः करणप्राणादिचेष्टा-यास्तद्वासनापुजात्मकं मन एव कारणं तच सांख्येन योगेन वा एकेनैव विलीय तत्त्वज्ञानात्मना परिणतसुभयोः करणप्राण-योरपि कर्मसु व्यापारेषु अकारणतामेतीत्येकैकेनोभयफलसि-देर्न समुचय इसर्थः ॥ २३ ॥ देहाहन्तादर्शनपूर्विकैव सर्वा संस्रतिसानमूलं मनसाच्छान्तौ सर्वसंस्रविशान्तिरूपपन्ने खाइ-मन इति ॥ २४ ॥ आत्मदर्शनेन तर्हि कथं मनसो नाश इति चेत्तदर्शनजन्यलादिखाइ—मन इति ॥ २५ ॥ ज्ञानेन मनोबाधे तत्कार्थाहंममतादिबन्धमोक्षान्ताः सर्वाः कल्पना बाध्यन्त इलाह-मनोभव इति । क कत इल्पनयोः प्रतिपद-मन्वयः ॥ २६ ॥ इदानीमुत्तमाधममध्यमाधिकारिकमेण मो-क्षसाधनत्रयं सर्वशास्त्रार्थतात्पर्यसंप्रहेण दर्शयति-एकेति 11 २० ॥ तेषु मध्यमं राम भाक्षिपति—यदीति । मरणे सर्वेषां प्राणविलयप्रसिद्धेरिति भावः ॥ २८ ॥ त्रयोऽप्युपाया मनोनाश्चद्वारेव मोक्षद्वेतवो मरणे च न मनोनाशः प्राणनाशो वा किंतु मूर्च्छाकाले विलीनसैन्धववदविद्यायां वासनात्मना-वस्थानसुरक्रमणकाले पुनराविर्भावः । सविक्वानो भवति सवि-शानमेवान्ववकामतीति श्रुतेस्तृणजलायुकादशन्तप्रसिद्धेर्वि**छी**-नानां प्राणानां विधुरादिद्वारेणोत्क्रमणासंभवाच । नच स्यूल-देहरूपाधारामाबाद्वहिर्निर्गतानां विख्यः । बाह्याकाशे सहोत्का-न्तामिर्भतमात्रामिस्तात्कालिकव्यवहारयोग्यदेहकत्यनसंभवादि-त्याशयेन वसिष्ठः समाधते--त्रिष्वेतेष्वत्यादिना । मनःप्रश-

तदानुभूय तन्मात्रैर्यान्ति ब्योमनि संगमम्॥ वासनासात्मकान्येव विद्धि तन्मात्रकाणि वै। तदारमकैर्मनोचद्भिः प्राणैः श्रिष्यन्ति नेतरैः ॥ ३१ सवासनास्तृत्पद्यते प्राणा मुश्चन्ति देहकम्। तद्योमवायुसंश्लेषं यान्ति दुःखाय गन्धवत् ॥ ३२ मनः साम्बरिवाम्भोधौ न शाम्यति सवासनम्। नामनस्काः संभवन्ति प्राणाः सूर्य इव त्विषः ॥ ३३ न जहाति मनः प्राणान्विना ज्ञानेन कर्हिचित । तृणान्तरेणैय विना तृणाङ्गमिव तिसिरिः॥ श्वानाद्वासनीभावं खनाशं प्राप्र्यान्मनः। प्राणात्स्पन्दं च नाद्ये ततः शान्तिहिं शिष्यते ३५ ज्ञानात्सवैपदार्थानामसत्वं समुदेखलम् । ततोऽङ्ग वासनानाशाद्वियोगः प्राणचेतसोः॥ ३६ ततो न पश्यति मनः प्रशान्तं देहतां पुनः। स्वनाशेन पदं प्राप्तं वासनैव मनो बिदुः॥ श्र चेतो हि षासनामात्रं तदमावे परं पदम्। तत्त्वं संपद्यते ज्ञानं ज्ञानमाहुर्विचारणम् ॥ 34

मनमेव वरं श्रेष्ठं साध्यं विद्धि॥ २९॥ यदा प्राणा निर्वाणनम् । वण शब्दे । उपशान्तपुर्धुरारावमिदं शरीरकं त्यजन्ति तदा वासनाकामकर्भीपस्थापितं भाविदेहाकारमनुभूय बाह्यव्योमनि तादृशदेद्वारम्भानुकुलैस्तन्मात्रभृतमात्रामिः संगमं यान्ति । तथाच श्रुतिः 'सविश्वानो भवति सविज्ञानमेवान्ववकामित' इति । 'तयथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादायान्यश्रवतरं क-ल्याणतरं रूपं तनुते एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमथिलाऽन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं क्रवते पित्र्यं वा गान्धर्व वा दैवं वा प्राजापत्यं वा बाह्यं वान्येषां वा भूतानाम्' इति च। श्रुती पेशस्कारी खर्णकारः पेशसः खर्णस्य मात्रां शकलान्युपा-दायेखर्यः ॥ ३० ॥ तर्हि ता भूतमात्रा बहिर्जीवान्तरप्राणैः सद्दापि कृतो न श्रिष्यन्ति तन्नाह-नासनेति । तत्तन्नीववा-सनामात्रात्मकानि तानि तादश्वासनावन्मनोविशिष्टप्राणैरेव संश्विष्यन्ति नेतरैरिति व्यवस्थितमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ प्राणा देहान्तरे तदेहवासनासहिता एवोत्पद्यन्ते । यतः पूर्वदेहमपि भाविदेहवासनासहिता एव मुश्रन्ति । देहान्तरे च तदीयहार्द-ब्योम्रा तदन्तर्गतबायुमिश्व संश्लेषं यान्ति । यथा कुषुमगन्ध-स्तिलेष प्रतिविशंस्तद्वततैलेन संश्लेषं यातीति यम्मनिष्पीडना-दिदुःखाय भवति तद्वत् ॥ ३२ ॥ अतएव मरणमात्रेण न मनोनाहा इति । न प्राणनाशोऽपीत्याह-मन इति । यथा साम्बर्धटः अम्भोधी मन्नो बाह्यजनैरहरयमानोऽपि न शाम्यति न मस्यति । मनःप्राणयोः समनियतलं व्यतिरेकमुखेनान्वय-मुक्तेन च दर्शयति-नामनस्का इति सार्थेन ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अतएव ज्ञानाद्वासनाक्षये उभयनाश इत्याह—ज्ञानादिति ॥३५॥ क्यं ज्ञानेन वासनानाश इतिचेत्तदेत्द्वेतवाधादित्याह--ज्ञाना-दिति ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तद्पि झानं सवासनं सर्व वाधिका

इत्यस्याः संसृते राम पर्यन्तः संप्रवर्तते । स्वयं विवेकमात्रेण रज्जसर्पम्रमाकृतेः॥ 39 एकार्थाभ्यसनप्राणरोधचेतःपरिक्षयाः। एकसिषेष संसिद्धे संसिद्ध्यन्ति परस्परम्॥ तालवृन्तस्य संस्पन्दे शान्ते शान्तो यथानिलः। प्राणानिलपरिस्पन्दे शान्ते शान्तं तथा मनः ॥ ४१ प्राणः शरीरविलये प्रयाति व्योम वायुताम् । यथा वासितमेवेदं सर्वे पश्यति तत्र वा ॥ 83 यथा विदेहाः पश्यन्ति प्राणा व्योमनि देहकम् । समनस्कास्तथाचारं सर्वे चानुभवन्ति ते॥ ४३ शान्ते वातपरिस्पन्दे यथा गन्धः प्रशास्यति । तथा शान्ते मनःस्पन्दे शाम्यन्ति प्राणवायवः ४४ अविनाभाविनी नित्यं जन्तनां प्राणचेतसी। कुसुमामोदवन्मिश्रे तिलतैले इव स्थिते ॥ પ્રષ मनसः स्पन्दनं प्राणः प्राणस्य स्पन्दनं मनः। पतौ विहरतो नित्यमन्योन्यं रथसारधी॥ ઝદ आधाराधेयवश्चैतावेकाभावे विनद्दयतः। कुरुतश्च स्वनारोन कार्य मोक्षाख्यमुत्तमम्॥ 80 एकतत्त्वघनाभ्यासाच्छान्तं शाम्यत्यलं मनः। तल्लीनत्वात्स्वभावस्य तेन प्राणोऽपि शास्यति॥४८ विचार्य यदनन्तात्मतत्त्वं तन्मयतां नय । मनस्ततस्तल्लयेन तदेव भवति स्थिरम्॥ ઝર

भारमतत्त्वमेव संपद्यते तच तत्त्वं विचारणं रलयोरभेदाद्विग-तचालनमचलं ज्ञानमेन शिष्यत इत्यनुभवनिष्ठा आहुः ॥३८॥ ॥ ३९ ॥ प्रस्तुतमुपादसे-एकेति । एकोथें।ऽद्वयं तत्त्वं तद-भ्यसनं श्रवणायावर्तनम् ॥ ४० ॥ ४१ ॥ सति शरीरे प्राणी-रकमणे अस्लयं कमः, यत्र शरीरस्यैव शापच्छेदादिना नाश-स्तत्र कः क्रमस्तमाह-प्राण इति । व्योम वायुतां बाह्याकाश-स्थवायुमिलनात्तद्भावम् । तत्र बाह्यादाशे ॥ ४२ ॥ यथा यादशं कर्मोद्भावितवासनामयं सुरनरपश्चादिदेहकं पश्यन्ति तथा तक्ष्तुरूपमेव आचारं व्यवहारमनुभवन्ति ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तिलतैले संकान्तकुसुमामोदवन्मिश्रे ॥ ४५ ॥ रथसारथी इव अम्योन्यसम्दर्भ विहरतः संपादयतः ॥ ४६॥ आधाराधेय-वत् अभ्योष्ण्यवत् ॥ ४७ ॥ शान्तं वाधितद्वैतवासनम् । प्राण-सभावस्य तस्मिन्मनसि लीनखादेकीभृतसात् ॥ ४८ ॥ तस्मि-**प्रात्मतरचे लयेन तदात्मलमेव स्थिरं भवति ॥ ४९ ॥ अन्र-**पलम्भोऽज्ञानम् । उपलम्भस्तद्वाधिका ब्रह्माकारा वृत्तिस्तयोई-योरप्यसतोर्नियसयोर्थः शिष्यत इति शेषस्तत्र चिन्मात्रे प्राण-धारणया वा स्थिरो मवेत्यर्थः॥ ५०॥ कियत्कालमेकतत्त्रभा-वना धार्यो तत्राह-एकस्मिन्निति । भावं तदाकारवृत्तिधा-राम् । याबद्भावः सा शृतिधारापि चरमसाक्षातकारष्ठश सती अभावलमायाति ताबदिलर्थः ॥ ५१ ॥ भोग्यक्षयादाहारक्षा-यात्स्वयं देह इव विलीयते ॥ ५२ ॥ भारणान्तैः पञ्चभिररी-

यदेवातितरां श्रेयोऽज्ञपलम्भोपलम्भयोः। व्योरप्यसतोस्तत्र शेषे वापि स्थिरो भव॥ 40 एकसिम्स्टिहे तस्वे तावद्भावं विभावयेत्। भावो भावत्वमायाति स्वभ्यासाघावदाततम् प्रत्याहारवतां चेतः स्वयं भोग्यक्षयादिव । विलीयते सह प्राणः परमेवावशिष्यते॥ ५२ यदेकतानं भवति चेतस्तद्भवति क्षणात्। शान्तारोषविरोषौघं चिराभ्यासस्वभावतः ॥ પર अविद्येयं तु नास्तीति बुद्गा युक्तियुतं धिया । श्रानादेव परावाप्तिस्तद्भ्यासस्ततः परम्॥ ષ્ષ્ चित्ते शान्ते शाम्यतीयं संसारसृगत्रज्जिका । जरामपगते मेघे मिहिका तन्मयी यथा॥ ५५ चिसमात्रमविद्यति कुरुते नैव तत्श्रयम्। तद्वपं राम चित्तात्मा नाभावो हि परं पदम्॥ ५६ महर्तमेव निर्वाणं यदि चेतः परे पदे। तत्तत्परिणतं विद्धि तत्रैवास्वादमागतम् ॥ 40 यदि सांख्येन विश्रान्तं चेतो योगेन वापि ते। क्षणं तत्सत्वतां यातं न भूय इह जायते ॥ 46 चेतोविगितताविद्य सत्वराष्ट्रेन कथ्यते । दग्धसंसारवीजं तम्र ददात्यन्तरं पुनः॥ कश्चिद्विगलिताविद्यः सत्वस्थः शान्तवासनः। परं शुन्योपमं सद्यो ज्योतिः पश्यति शाम्यति

मंनसो बाह्याकारक्षये सति धारणादिभिक्षिभिर्वहाँकतानतासं-पत्त्या निर्विकल्पसमाधिपरिपाकेन ब्रह्मभावः सिच्यतीत्याह--य-देकतानमिति ॥ ५३ ॥ अश्रुते अमते च ध्यानधारणाद्यभ्या-सायोगाच्छवणमननाभ्यां द्वैतजातमविधैन, सा च नाम्स्येन, तत्त्वज्ञानादेव परावाप्तिरिति प्रमाणप्रभेयासंभावनादौषनिरास-पर्यन्तं बुद्धा ततः परं ध्यानधारणादिना ज्ञानाभ्यासः कार्य इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ मेधे जरामपक्षयं शरदि उपगते सति ततो हेतोरागता तन्मया। तत आगत इत्यर्थे 'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यत-रस्याम्' इत्यनुवर्तमाने 'मयदच' इति मयद् ॥ ५५ ॥ त्रह्माका-रपरिणतेन तेन चितेनैव तस्य चित्तस्य क्षयं कुछ । तस्य चित्तक्षयस्य रूपं तु चित्ताधिष्टानमात्मैव न शुन्यता । हि यस्मात्तदभावः परं पदं परमपुरुषार्थो न भवतीखर्थः ॥ ५६ ॥ अप्यर्थे एवकारः । निर्वाणं विश्रान्तम् । तत्ति तद्वर्द्धेव परि-णतं विदि नत्यध्यस्तस्याधिष्ठानव्यतिरिक्तं सहत्यमस्तीति तत्रैव निरतिशयखप्रकाशानन्दाखादमागतं सन्न न्युत्थानमिच्छती-खर्थः । तथाचोक्तं शिवधमीत्तरे 'ज्ञानामृतरसो येन सकृदाखा-दितो भवेत् । विहाय सर्वकार्याणि मनस्तत्रैव धावति ॥' इति ॥ ५७ ॥ इदमेव प्रसातयोः सांख्ययोगयोरेकं फलमिलाह— यदिति ॥ ५८ ॥ सलशन्दार्थ स्वयमेवाह—चेत इति । अन्तरं ब्रह्मभावविच्छेदम् ॥ ५९ ॥ तहर्शनोन्सुखजना वि-रहा एवेलाह-कश्चिरिति । अज्ञह्शा असंभावनाच्छन्योप-

६१

Q

विगलितात्मपदं विगलन्मनः सुभग सत्वमितीह हि कथ्यते।

न पुनरेति कलामिलनं पदं कनकताभिष ताम्रमुपागतम्॥

इत्यापें श्रीवासिष्टमहारामायणे वा॰ दे॰ मो॰ निर्वा॰ श्राणमनःसंयोगविचारणं नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

वसिष्ठ उवाच।

जीवोऽजीवो भवत्याशु याति चित्तमचित्तताम्। विचारादित्यविद्यान्तों मोक्ष इत्यभिषीयते॥ मृगतृष्णाजलमिव मनोऽहन्तादि दृश्यते । असदेव मनागेष तद्विचारात्प्रलीयते॥ 2 संस्रतिस्वप्रविभान्तौ वेतालोदाहृतानिमान्। प्रश्नानाकर्णय शुभान्त्रसङ्गात्स्मृतिमागतान्॥ अस्ति विन्ध्यमहाटव्यां वेतालो विपुलाकृतिः। स किंचिन्मण्डलं गर्वादाजगम जिघांसया॥ स वेतालोऽवसत्पूर्वं कस्मिश्चित्सज्जनास्पदे। बहुबल्यपहारेण नित्यतृप्ततया सुखी॥ निर्निमित्तं निरागस्कं पुरोऽप्यभ्यागतं न सः। क्षुधितोऽपि नरं हन्ति सन्तो हि न्यायदर्शकाः॥ ६ स कालेनाटवीगेहो जगाम नगरान्तरम्। न्याययुत्तया जनं भोकुं श्लुधा समभिचोदितः॥ ७ तत्र प्राप स भूपालं रात्रिचर्याविनिर्गतम्। तमाह घनघोरेण शब्देनोग्रनिशाचरः॥ 4

मम् । इहशा तु परं ज्योतिः ॥ ६० ॥ उक्तमेवार्धमनुवदशुप-संहरति—विगिलतेति । हे सुभग, उक्तिप्रविधोपायाभ्यासैर्वि-गिलतान्यात्मनो जामस्वप्रसुष्ठप्तिलक्षणानि आन्तितद्वीजदशैन-पदानि यस्य तथाविधं स्वयं चाविद्याक्षयाद्विगलद्वाधितं दग्धप-दवत् प्रतिभासमात्रविष्टं मन इह जीवन्मुत्तयवस्थायां सल-मिति कथ्यते । तच वासनाबीजशिक्तदाहात् पुना रागद्वेषाभि-मानादिकलाभिमिलनं संसारपदं न एति । यथा स्पर्शमणिस-जात्कनकतासुपागतं ताम्रं पुनः कलङ्कलनामिलनं तामपदं निति तद्वदित्यर्थः ॥ ६१ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणता-रप्यमकाशे निर्वाणमकरणे पुकोनसस्तितमः सगैः ॥ ६९ ॥

मायाभान्त्यनवस्थाने चिदात्मपरिशुद्धये । वेतालराजसंवादकथोदाहियते शुभा ॥ १ ॥

'चित्ते शान्ते शाम्यतीयं संसारमृगतृष्णिके'त्युक्तं, चित्तशा-न्तां च विचार एव झानोदयपर्यन्त उपाय इत्याह—जीव इति । इति अनेनोपायेन संपन्नो यः कार्यकारणाविद्ययोरन्तो नाशः स मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ १ ॥ उक्तार्थाऽसंभावनाहेतुं प्रपन्ने दार्व्यभमं नारयति—मृगतृष्णिति ॥ २ ॥ असदेव. मनागेवे-रयुक्तार्थस्य समर्थनायास्यायिकामवतारयति—संस्तीति ॥३॥

वेताल उवाच । राजॅल्लब्घोऽसि भीमेन वेतालेन मयाधुना । क गच्छसि विनष्टोऽसि भव भोजनमद्य मे ॥

राजोषाच । हे रात्रिचर निर्न्याय्यं मां चेदित्स बलादिह । तत्ते सहस्रधा मुर्धा स्फूटिप्यति न संदायः ॥ १०

वेताल उवाच।

न त्वामक्यहमन्यायं न्यायोऽयं हि मयोच्यते । राजासि सकलाशाश्च पूरणीयास्त्वयार्थिनाम् ११ ममतामर्थितां राजन्संभवार्थां प्रपूर्य । प्रश्नानिमान्मयोक्तांस्त्वं सम्यगाल्यातुमहिसि ॥ १२ कस्य सूर्यस्य रदमीनां ब्रह्माण्डान्यणवः कृशाः । कस्मिन्पुरन्ति पवने महागगनरेणवः ॥ १३ स्वमात्स्वमान्तरं गच्छञ्छतशोऽथ सहस्रशः । त्यजन्न त्यजति स्वच्छं कः स्वरूपं प्रभास्तरम् ॥ १४ रम्भास्तम्भो यथा पत्रमात्रमेवं पुनःपुनः । अन्तरन्तस्तथान्तस्र तथा कोऽणुः स पव हि ॥ १५

गर्वाद्वधयोग्येष्वधजनेष्वनादरात् ॥ ४ ॥ संक्षिप्योक्तं विस्ता-रथितुं पुनरादित आरभ्याह-स इति। सज्जनस्य राज्ञ आस्पदे देशे किरातराज्ये कर्कटीय राजकृतेन बहुवध्यजनबस्युपहारेण निखतृप्ततया निर्विश्वेपसमाधिष्ठुखी ॥ ५ ॥ ६ ॥ काल्वेन तत्र बध्यजनालाभकालेन । अटवीं गेहं यस्य ॥ ७ ॥ रात्रिनशी निशि नगरे दुष्टजनपरिज्ञानाय चोरादिवधाय च संचारस्तदर्थ विनिर्गतम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ निर्न्याय्यं न्यायापेतकमेणात्स चेत् ॥ १० ॥ सकलाः आशास्पन्त इत्याशा अभिरुषितार्थाः । किलेति धर्मशास्त्रप्रसिद्धौ ॥ ११ ॥ अञ्चर्धदपराधसद्दर्भ सलभं सुक्कश्रेत्रापराध्यत्येव । सच सत्यप्यपराधसहस्रे पालनीय इति परीक्षणाय प्रश्नपरिपूरणमेव प्रार्थयते -- ममैतामिति । संभवा-र्थामबाधितार्थाम् । अनेनासंभावितार्थप्रश्नच्छलेन परवधप्रवृत्तिः खस्य नास्तीति दर्शितम् ॥ १२ ॥ सर्वेषां प्रश्नानामापाततोऽर्थः सप्टः । तात्पर्यतस्तूत्तरसर्गे स्फुटीकरिष्यते ॥ १३ ॥ उत्तरोत्त-रखप्रे पूर्वपूर्वसत्यतां त्यजन्नपि तत् प्रकाशकं खच्छं सत्यात्मख-रूपं न त्यजति ॥ १४ ॥ यथा रम्भायाः कदस्याः स्तम्भः अन्तरन्तस्या तदन्तश्च पत्रमात्रं बल्कछमात्रम् । दृष्टान्ते तत्सदशवल्कळान्तरं दार्शन्तिके स एवेति विशेष इति भाषः ब्रह्माण्डाकाशभूतौघसूर्यमण्डलमेरवः। अपरित्यज्ञतोऽणुत्वं कस्याणोः परमाणवः॥ १६ कस्यानवयवस्यैव परमाणुमहागिरेः। शिलान्तर्निविद्धैकान्तक्रपमज्ञा जगन्नथी॥ १७

इति कथयसि चेन्न मे दुरात्मं-स्तदिष्ट् निगीर्य भवन्तमात्मघातिन्। फलमिव तव मण्डलं प्रसेयं प्रसभमुपेत्य जगद्यथा कृतान्तः॥ १८

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये देव मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे वेतालप्रश्लो नाम सप्ततितमः रार्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

वसिष्ठ उवाच। इत्युक्तवति वेताले वक्तं प्रश्नान्विहस्य सः। उवाच यचनं राजा दन्तांशुधवलाम्बरः॥ राजोघाच । आस्ते कदाचिचेदं हि ब्रह्माण्डमजरं फलम्। उत्तरोत्तरं दशगुणभूतत्वक्परिवेष्टितम्॥ ताहदाानां सहस्राणि फलानि यत्र सन्ति हि। अत्युचैस्तादशी शाखा विपुलाचलपल्लया ॥ ताहदाानां सहस्राणि शाखानां यत्र संत्यथ । ताहशोऽस्ति महावृक्षो दुर्लक्ष्यो विपुलाकृतिः ॥ ताह्यानां सहस्राणि यत्र सन्ति महीरहाम्। तादशं वनमत्युचैरनन्ततस्युस्मकम्॥ तारद्यानां सहस्राणि वनानां यत्र सन्त्यथ। तादगस्ति वृहच्छुङ्गमत्युचैर्भरितारुति ॥ ताहशानां सहस्राणि शृङ्गाणां यत्र सन्त्यथ । ताहशोऽस्त्यतिविस्तीर्णो देशो विपुलकोटरः॥ ताहद्यानां सहस्राणि देशानां यत्र सन्त्यथ ।

॥ १५ ॥ भूतीवपदेन तदाघारभुवनानि छक्ष्यन्ते । अतिमहक्वेन प्रसिद्धा ये ब्रह्माण्डाकाशादयोऽपि यस्याणोरपेक्षया परमा
अणवः अल्पन्तश्रुद्धाः ॥ १६ ॥ परमाणोः सूक्ष्मस्येव सतो
महतो गिरेः । निविद्धं धनतरं यत् सत्तकान्तरूपं तदेव मज्जा
सारो यस्याः ॥ १० ॥ इति पद् प्रश्नान् मे कथयति चेहुष्ठो
वेद्दादिरेव आत्मा यस्य तथाविध, अतएवापरिच्छिनमात्मानं
परिच्छेदेन घातितवानसीत्यात्मघातिन्, तत्तस्मादकथनापराभादेव भवन्तं फलमिव निर्गायं प्रसमं बलात्तव मण्डलं मण्डल्म्थजनान् प्रसेयम् । प्रसेहमिति पाठं विकरणपदव्यत्ययस्थाक्दसः ॥ १८ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे
निर्वाणप्रकरणे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

भाचप्रभसमाधानं विस्तरेणात्र वर्ण्यते । अमनतकोदिमहाण्डफरुवृक्षादिकस्पनैः ॥ १ ॥

प्रसिद्ध मधाण्डानां त्रसरेणुलमिखल्प हथ्या लयोक्तं वश्यमा-णकस्पनया कोटिकोटिगर्भ नद्याण्डानामि तत्र त्रसरेणुल संभ-बादिखाशयेन विहस्य दन्तानामं श्रुमिः प्रभाभिषेवलान्यम्बराणि वक्षाण्याकाशं च यस्य तथाविषः सन् ॥ १ ॥ तत्रादौ 'कस्य पूर्यरमीनां नद्याण्डास्तरेणवः' इति प्रथमप्रश्रस्थोत्तरं नक्तम-

तादगस्ति बृहद्वीपं महाहदनदीयुतम्॥ 6 ताहशानां सहस्राणि द्वीपानां यत्र सन्त्यथ । तारगस्ति महीपीइं विचित्ररचनान्वितम्॥ ताहशानां सहस्राणि पृथ्वीनां यत्र सन्त्यथ । तादगस्ति महास्फारं महाभुवनडम्बरम्॥ १० तारशानां सहस्राणि जगतां यत्र सन्त्यथ। ताहगस्ति महचाण्डं चण्डमम्यरपीठवत्॥ ११ ताहशानां सहस्राणि यत्राण्डानि करण्डकाः। तारद्योऽस्ति गतस्पन्दो विपुलाब्धिश्च सागरः ॥ १२ तादृक्सागरलक्षाणि तरङ्गो यत्र पेलवः। तादृशः स्वविलासात्मा निर्मलोऽस्ति महार्णघः १३ ताहगव्धिसहस्राणि यस्योद्रजलान्यथ । तादशोऽस्ति पुमान्कश्चिदत्युश्चेर्भरिताकृतिः ॥ १४ तादशानां नृणां लक्षेर्यस्य मालोरसि स्थिता । प्रधानं सर्वसत्तानां ताइशोस्ति परः पुमान्॥ ताहशानां सहस्राणि पुरुषाणां महातमनाम्। स्फ्ररन्ति मण्डले यस्य स्वतनुरहजालवत्॥ १६

भिज्ञतमलाभिमानं वेतालस्य तिरस्कुर्वन्कंचित्कल्पनाचमत्कारं राजा दर्शयति—आस्ते इलादिना । इदं लया मया चाश्रितं ब्रह्माण्डमङ्गडच्या अजरमुत्तरोत्तरं दशगुणाभिर्भूतलग्भिर्भूजला-द्यावरणैः परिवेष्टितम् ॥ २ ॥ इदं ब्रह्माण्डं १ ईटशब्रह्माण्डस-इस्रगर्भाण पत्रीकृतमहाभुतानि २ तद्गर्भा गन्धतन्मात्रा ३ उत्तरोत्तरं तद्वभाषि रसादितन्मात्राणि ७ तद्वर्भ हैरण्यगर्भ मनः ८ अतीतानागतानन्ततद्वभी भूतमात्राराशयः ९ तद्वभीः कल्पकालाः १० तद्भां उत्तरोत्तरस्य दिनभूता बद्मविष्णुरुद्रा-णामायुःकालास्तदात्मानस्त एव १३ अनन्तकोटीनां तेषां सत्तास्फूर्तिव्यवहारप्रवर्तकं मायाशबलं ब्रह्म १४ इस्पेतांश्रतु-र्दशपदार्थं।निह क्रमात्फलशाखादिचतुर्दशकल्पनामिर्निदर्श-यति—तादशानामित्यादिना । चलानि पछवानीव भुवनानि यस्याम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ श्टङ्गपदेनात्र तत्प्रधानो गिरिरेवो-च्यते । विपुलतमलात्सर्वतो भरिताकृतिः ॥ ६ ॥ ७ ॥ मद्दाहुद्-नरीवदाविभूतानाविभूतप्रवहणप्राणादिवायुचेष्टामिर्युतम् ॥ ८ ॥ बिचित्राभिनीमादिरचनामिरन्वितम् ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ पुमान् विष्णुः ॥ १४ ॥ परः पुमान् रुद्रः ॥ १५ ॥ तनूरहाः केशलोमानि तजालवत् । तथाच श्रुतिः ।

ताहशोऽस्ति महादित्यः शतमन्यासु दृष्टिषु । या पताः कलनाः सर्वास्ता पतास्तस्य दीप्तयः॥१७ अस्यादित्यस्य दीप्तीनां ब्रह्माण्डास्त्रसरेणयः। मया चित्सूर्यं इत्युक्तः सर्वमेतत्तपत्यसौ ॥ १८ विज्ञानात्मैव परमो भास्करो भाविताशयः। इमे ये भुवनाभोगास्तस्यव त्रसरेणवः॥ १९

विज्ञानपरमार्कस्य भासा भान्ति भवन्ति च ।
इमा जगदहर्लक्ष्म्यः क्विल्लक्ष्म्यो रवेरिव ॥ २०
विज्ञानमात्रकचितात्मनि जन्तुजाते
त्रेलोक्यमण्डपमणेरविकासभाजि ।
चिज्जन्मनोर्भवनसंभ्रमतावलेखाः
सन्तीह रेनहिमनागपि शान्तमास्स्य ॥२१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देव ॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे वेतालप्रथमप्रश्लोत्तरवर्णनं नामकसप्ततितमः सर्गः ७१

ब्रिसप्ततितमः सर्गः ७२

राजोवाच । कालसत्ता नभःसत्ता स्पन्दसत्ता च चिन्मयी । शुज्रचेतनसत्ता च सर्वमित्यादि पावनम् ॥ १ परमात्ममहावायौ रजः स्फुरित चञ्चलम् । कुसुमाङ्ग इवामोदस्तद्तदूपकं स्वतः ॥ २ जगदास्ये महास्वप्ने स्वप्नात्स्वप्नान्तरं वजत् । कर्षं त्यजति नो शान्तं ब्रह्मशान्तत्व्यृंहणम् ॥ ३

'यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात्संभवतीह विश्वम्' इति ॥ १६ ॥ प्रत्यग्दष्टेरन्यासु पराग्दष्टिपु या एता हदादि-**ब्रह्माण्डा**न्ताः शतमसंख्याः कछनाः प्रतिभासास्ता एताः सर्व-प्राणिप्रत्यक्षास्तस्यादित्यस्य दीप्तयो रहमयः ॥ १७ ॥ मया चिदारमा इति एवंप्रभावः सूर्य इति खत्प्रश्रोत्तरत्वेनोक्त एत-त्सर्वे जगदसौ तपति प्रकाशयति ॥ १८ ॥ भुवनाभोगा ब-ह्माण्डाः ॥ १९ ॥ भान्ति स्फूर्ति लभन्ते । भवन्ति सत्तां च लभन्ते ॥ २० ॥ रे वेताल, वर्णितशबलब्रह्मलक्षणस्य श्रैलो-क्यमण्डपमणेः सूर्यस्य पारमार्थिकतत्त्वभूते मुख्याधिकारिष विज्ञानं शास्त्रजन्याखण्डाकारसाक्षात्कारस्तन्मात्रेण रमनि खात्मत्या प्रथमाने, अनिषकारिजन्तुमात्रे तु अविकास-भाजि अस्फुटे, इह प्रत्यगात्मनि अभिविस्फुलिङ्गविज्ञन्म-नोर्जीवजगतोभवनस्य पृथक्सत्तायाः कर्तृत्वभोकृत्वाद्यनन्तसं-भ्रमतानां चानलेखा उहेखाः सन्ति । परमार्थदशा तु मनागपि न सन्ति । अतस्त्वं शान्तप्रश्नाडम्बरमास्खेखर्थः ॥ २१ ॥ इति श्रीषासिष्ठमहारामायणतात्पर्थप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

इहावशिष्टप्रभानां पञ्चानामुत्तरं क्रमात् । वेतालायाप्रमत्ताय राजा सम्यगुर्दायते ॥ ९ ॥

एवं प्रथमं प्रश्नं समाधाय 'कस्मिन् स्फुरन्ति पवने महा-गगनरेणवः' इति द्वितीयप्रश्नं राजा समाधते—कालसत्तेला-दिना । तथ्न गगनपदेन प्रसिद्धगगनस्थेव प्रहणं विवक्षितसुत महत्पदविशेषितलाद्गीण्या महाकालस्पिक्षत्संवलितमायाकाश उत स्पन्दशक्तिप्रधानः सूत्रात्माकाशः उत ततो निष्कृष्टः शुद्ध-षिदामासलक्षणो जीवाकाशः अन्यो वास्त सर्वेष्विप कर्योष

रम्भास्तम्भो यथा पत्रमात्रमेवान्तरान्तरम् । अन्तरन्तस्तथेदं हि विश्वं ब्रह्म विचर्त्यपि ॥ ४ सद्ग्रह्मात्मादिमिः दार्व्ययेदेताभिर्विगीयते । द्यान्यमव्यपदेशं ते न तर्त्तिचिच्च किंचन ॥ ५ या या विभाव्यते सत्ता सा सानुभवनिर्मितान् । रम्भास्तम्भवदेताविचन्मात्रममछं ततम् ॥ ६ स्कृत्मत्वाद्य्यङभ्यत्वात्परमात्मा परोऽणुकः ।

तत्तत्सत्ता एव सूक्ष्मतमलात्तेषां रेणवस्त्वयोक्ता इत्याह— कालसत्तेति । स्पन्दः कियाशक्तिप्रधानः सृत्रात्मा तत्सत्ता । शुद्धचेतनस्ततो निष्कृष्टश्चिदाभासस्तत्सत्ता चेखादिसर्व सूक्ष्म-लात्पावनं निर्दीषं रजः परमात्ममहावाया कल्पितानेकवि-कारचधरं स्फुरतीति परेणान्वयः ॥ १ ॥ नतु परमास्मन एव सर्वानुगतसत्तारूपलात्तत्र कालादिसत्ता स्फुरतीलाघाराधेय-भावेन व्यपदेशः कथं तत्राह—कुसुमान्न इति । यथा कुसुम-मेव खाक्षे आमोदाख्यं नेदं खतएव परिकल्प्य कुसुमे आमो-दरूपकमिव तदाघेयतया स्थितं तद्वत्परमार्थसंतेव काळादिस-त्ताभेदारमतां खात्मनि परिकरप्य स्थितेखर्थः ॥ २ ॥ स्वप्ना-गच्छित्रत्यादितृतीयप्रश्रस्योत्तरमाह-जगदाह्ये इति । शान्तं प्रशान्ततत्तत्त्त्वप्रदोषमसञ्जयोतीरूपम् । अतएव तथा बोधमात्राद्वद्य शान्तलयंहणम् ॥ ३ ॥ रम्भास्तम्भो यथा पत्रनात्रभिति चतुर्थं प्रश्नं समाधत्ते-रम्भास्तम्भ इति । अन्तःअन्तः ब्रह्मणि विवर्ति विवर्तनशीलम् । अपिशब्दादवा-न्तरकारणेषु परिणामशीलं च । अतः सोऽणुस्ततोऽप्यन्तरन्त-रिलार्थः ॥ ४ ॥ विवर्तजगद्वंहणादिनिमित्तादेव तत्तद्रशारमादि-शब्दगोचरता नतु वस्तुतः सर्वधर्मशून्यलादित्याह- त्रहोति ॥ ५ ॥ अतएव पटसत्ता तन्तुसत्तायां पर्यवस्यति तन्तुसत्ता कार्पाससत्तायां सा च तत्फलसत्तायां सा गुल्मसत्तायां सा बीजमृज्जरुर्विसत्तायामित्यादिक्रमेण या या सत्ता विभाव्यते सा सा तत्तदनुभवनिर्मितानाकारान्विद्याय रम्भास्तम्भवदेव तत्तदनुभवरूपे चिन्मात्रे पर्यवस्यतीत्यतस्तदेवामलं जगदाका-रेण ततं विस्तृतमित्यर्थः ॥ ६ ॥ तत्राणुपद्प्रवृत्तौ निमित्त-

१ कुसुमरूपकमिवेति पाठ:.

अनन्तत्वादसावेव प्राप्तो मेर्वादिम् छताम् ॥ अणोरप्यत्यनन्तस्य पुंसोऽस्य जगदाद्यपि । परमाणुवदाभाति प्रतीतत्वादरूपवत् ॥ परोणुरेषोऽलभ्यत्वात्पूरकत्वान्महागिरिः । सर्वावयवरूपोऽपि निरस्तावयवः पुमान् ॥ अस्य व क्षतिमात्रस्य मज्जामात्रं जगन्नयी ।

विज्ञानमात्रमध्यं हि साधो विद्धि जगन्नयम् ॥ १० विज्ञानमात्रकलनाकलितं जगन्ति शान्तस्यभावसुकुमारमनन्तरूपम् । वेतालवालक पदं तदलङ्कनीय-मेवं स्वयं समनुभावय शान्तमास्स्व॥ ११

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे वेतालप्रश्नमेदो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

4

Q

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

वसिष्ठ उवाच।

इति राजमुखाच्छुत्वा वेतालः शान्तिमाययौ । भावितात्मतया तत्र विचारोचितया विया ॥ १ उपशान्तमना भूत्वा मत्वैकान्तमनिन्दितम् । बभूवाविचलध्यानी विस्मृत्य विषमां श्रुधाम् ॥ २ एतद्राम मयोक्तं ते वेतालप्रश्नजालकम् । एवंक्रमेण चिदणौ तेनेदं संस्थितं जगत् ॥ ३ चिद्रणोः कोशगं विश्वं विचारेण विलीयते । कायो वेतालकस्थेव शिष्यते यत्पदं तु तत् ॥ ४ संहत्य सर्वतिश्चित्तं स्तिमितेनान्तरात्मना ।
स्वभावापिततं कुर्वित्तिरिच्छं तिष्ठ शान्तधीः॥ ५
आकाशिवशदं ग्रत्वा मनस्य मनो मुने ।
तिष्ठेकशमशान्तात्मा सर्वेत्र समदर्शनः॥ ६
स्थिरवुद्धिरसंमृढो यथाप्राप्तानुवर्तिनः।
राज्ञो भगीरथस्यव दुःसाध्यमपि सिक्यति॥ ७
संपूर्णशान्तमनसः परितृप्तवृत्तेरित्यं समे सुखमयात्मिन तिष्ठतोन्तः।
सिक्यन्ति दुर्लभतरा अपि वाञ्छितार्था
गङ्गावतार इव सागरखातवस्तु॥ ८

इस्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पू॰वेतालाख्यानं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

माह-सश्मलादिति । एवं सीक्ष्म्येऽपि न पूर्णताहानिरिति ब्रह्माण्डाद्योऽपि तदृष्ट्या अतिपरिच्छित्रलात्परमाणुत्राया इति ब्रह्माण्डाकाशभूतीयेलादिपञ्चमप्रश्लोऽपि दत्तोत्तरः संवृत्त इत्या-शयेनाह-अनन्तलादिति । मेर्वादिपदेन प्रश्लोका मेर्वन्ताः पद्म व्युत्क्रमेण गृह्यन्ते तेषां मूलतामाधारताम् ॥ ७ ॥ जग-टादिब्रह्माण्डादिपञ्चकं प्रतीतलादणतरतत्तदाकारवृत्तिपरिच्छित्र-वित्कणपरिच्छेदालादरूपविभःखरूपं खाप्रवद्याण्डादिवत् । त-दिप सूक्ष्मतमनाडीच्छिद्रेषु भासमानं परमाणुवदेवेति ॥ ८ ॥ 'कस्यानवयवस्यैव परमाणुमहागिरेः' इति पष्ठप्रश्नं समाधत्ते-परोऽणुरिति । अलभ्यलाच्धुरादिकरणरप्राह्मलात् । एष प-रोणुः पूरकलात् सर्वतो व्याप्तो महागिरिः । अध्यारोपदशा सर्वे मृत्रीमृत् अवयवरूपं यस्य तथा । नेतिनेत्यपवादेन निर-स्तावयवः ॥ ९ ॥ तत्र शिलान्तर्निष्ठैकान्तरूपमजाजगत्र-गीलंबां प्रकटयति-अस्मेति । हि यसाजगत्रयं 'वावापृथवी अन्तरेव समाहिते' इत्यादिश्रतिषु हार्दाकाशरूपविश्वानमात्रस्य मन्यमान्तरं मजावत्त्रसिद्धमिति विद्धीलर्थः ॥ १० ॥ सर्वप्र-श्रानां निरासेन प्रौद्या वेतालं परिभवित्रवोक्तार्थसंक्षेपेणोपसं-हरति—विज्ञानेति । हे वेतालबालक, जगन्ति विज्ञानमाश्रस्य कछनानां खकीशलानां किलतं प्रकटनं तचात्मविज्ञानरूपं भवा-इद्देवितालबाटमटेरलङ्गनीयमनास्कन्दनीयमेव, अतो मदत्त्या खभेवंखभावपारमानमञ्जभावय खानुमवमारोह्य । शान्तदर्ध- मास्खेलर्थः ॥ ११ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतास्पर्य-प्रकाशे निर्वाणप्रकरणे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

उपिंदश्यात्र वेतालप्रश्ननिर्णयसंस्थितिस् । भगीरथस्य वृत्तान्तस्तत्राम्योऽप्यत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

तत्र तस्मिन् राजनि विचारोचितया श्रिया अनुमितया भावितात्मतया तश्वज्ञतया निमित्तेन । वेतालपक्षे वा सर्व योज्यम् ॥ १ ॥ अविचलध्यानी । समाधिस्य इति यावतः ॥२॥ एवंक्रमेण राजवर्णितक्रमेण ॥ ३ ॥ बालभ्रान्तिकल्पितवेता-छकस्य काय इव विलीयते ॥ ४ ॥ चित्तं सर्वत उपसंहत्य खो भावः परमारमा तदापतितं तत्प्रतिष्ठितं कुर्वन् ॥ ५ ॥ हे मुने मननशील राम, एकस्मिन् बस्तुनि शमः सर्वयृत्तिल-यस्तेन शान्तात्मोपरतिचत्तः, अतएव सर्वत्र समं ब्रह्म पश्य-तीति समदर्शनः ॥ ६ ॥ असंमूढान्तं पूर्वान्विय । नन्वेवं स्थितस्य मे कथं देहयात्रासिद्धिस्तत्राह-यथेति । दुःसाध्य-मन्येषां कष्टसाध्यमपि कार्यं यस्यानायासेनैव सिद्धाति ॥ ७ ॥ यथा सगरांश्चमिह्लीपादिदुर्लभतरोऽपि सागराणां सगरपुत्राणां तत्खातसमुद्रस्य च वसुसंजीवनमणिप्रायो गङ्गावतारः शान्ति-तृप्तिसमदर्शिलादिगुणसंपन्नस्य भगीरथस्यानायासेन सिद्धसद्ध-दिल्पर्यः ॥ ८ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःससतितमः सर्गः ७४

3

श्रीराम उवाच । षथा चित्तचमत्कृत्या राक्षो गङ्गावतारणम् । भगीरथस्य संपन्नं तन्मे कथय भो प्रभो ॥

वसिष्ठ उवाच।

आसीद्भगिरथो नाम राजा परमधार्मिकः।
भुवः समुद्रयुक्ताया मण्डलीतिलकोपमः॥
संकल्पानन्तरं प्राप्ता यथाभिमतमर्थिनः।
चन्द्रप्रसम्भवदनादसाम्बन्तामणेरिव ॥
साधूनां यो व्यवस्थार्थ धनान्यविरतं ददौ।
रुणमात्रमुपादके कचिश्चिन्तामणिर्यथा॥
वज्रसारमिव प्रोतमुज्ज्वलन्नेमि योऽभिनत्।
अधोमणिरयोयकं सर्वदुर्जनचेष्टितम्॥
अध्मवहिदेहश्रीः श्रान्तोऽपि दैन्यमप्यलम्।
तसो हरसृणां नैशं ग्रुमणिर्यश्मनामिव ॥
किरम्रग्निकणासारमितः स्वप्रतापजम्।
मध्याहृस्र्यकान्ताग्निरिव ज्वलति योऽरिषु॥
मृदुशीतलसंस्पशी यः समाह्यादयन्मनः।
सुन्नानां द्रवति स्निग्धस्येन्दोरिन्दुमणिर्यथा॥

भगीरथस्यात्र गुणाश्चिन्ता चाथ विचारजा । त्रितलेन च संवादो जिहासातोऽत्र वर्ण्यते ॥ ९ ॥

चित्तस्य पूर्णतादिलक्षणया चमत्कृत्या ॥ १ ॥ समुद्रयु-काया भवो राजा स्वीयकोसलमण्डल्यास्त्र तिलकोपमः ॥ २ ॥ तस्य दानशीण्डतां वर्णयति—संकल्यानन्तरमिति । याचका अस्पाद्धगीरथादाञ्जासंकल्पानन्तरमेव समीपगमनवा-क्प्रयोगादिश्रमं विनेव यथामिल्षितमर्थं प्राप्ताः प्राप्तवन्तः । 'गत्यर्थाकर्मक-' इति कर्तरि कः। चन्द्रप्रसन्नवदनादित्यनेन दानोत्साहान्मुखे प्रसादातिशय एव न लस्य धनव्ययदुःखा-न्म्लानिरिति द्योत्यते ॥ ३ ॥ अपात्रेषु दानं वारयति—साधु-नामिति । एवं व्ययशीलस्य कथं धनप्राप्तिस्तत्राह-तणमात्र-मिति । क्रचित् आयस्थाने स्वधर्मतः त्राप्तं तृणमात्रमप्युपादत्ते । **पै।नरुन्यानुणोपादानाप्रसिद्धेश्व चिन्तामणिपदेन कामधेनुर्ल-**ध्यते ॥ ४ ॥ यथा वज्रवेधनमणिः अधः अधोभागे अयसा य क्यते बध्यते इल्ययोयन्त्रं बज्जसारं रहतरं बजान्तरं परिश्र-मन्त्या खकान्त्या उज्ज्वलन्ती प्रकाशमाना यन्त्रचक्रनेसिर्यस्म-न्कर्मणि तद्यथाभवति तथा भित्त्वा खप्रोतं तं गुणयोग्यं क-रोति तथा यो भगीरथो बलवत्तरमपि सर्व दुर्जनं तन्नेष्टितं च तहेशास्कन्दनेन खप्रतापेनोज्बलन्ति रथनेम्यक्कितानि च मण्ड-ळानि यस्मिन्कर्मणि तद्यथा भवति तथा शास्त्रस्रशेतं निगृह्य अधः पाददेशे निगडाद्ययोमिर्यष्ठयते इत्ययोयत्रं कृता अभि-नत् भित्त्वेव गुणपूर्णे चकारेखर्थः । 'वजसारमपि' इति पाटेपि

जगद्यश्रोपत्रीतस्य स्वर्गपातास्रवाहिनः। गङ्गावाहस्य येनास्यां तृतीयः पूरितो गुणः॥ अगस्त्वशोषितोऽस्भोधिर्गङ्गापूरेण पूरितः। येन दुष्पूरभूतोऽपि महासाधोंऽधिनामिव ॥ १० गङ्गासोपानपद्धत्या येन पाताळवासिनः। योजिता ब्रह्मणो लोके बान्धवा लोकबन्धुना ॥ ११ ब्रह्माणं शंकरं जहं तपसाराधयंश्च यः। भूयोभूयो ययौ खेदमशून्याध्यवसायिनः॥ १२ यौवने वर्तमानस्य तस्य भूमिपतेरपि। प्रविचारयतो लोकयात्रां पर्याकुलामिमाम्॥ १३ सुविरागचमत्कारविचारकणिकोदभूत्। वयस्यपि च तारुण्ये दैवाद्वही मराविव ॥ १४ एकान्ते चिन्तयामास महीपतिरसाविति। जगद्यात्रामिमां नित्यमसमञ्जसमाकुलम् ॥ 8,6 पुनर्दिनं पुनः श्यामा दानादानशतं पुनः। तदेव भुक्तविरसं लक्ष्यते कर्म कुर्वताम्॥ १६ येन प्राप्तेन लोकेऽस्मिन्न प्राप्यमयशिष्यते। तत्कृतं सुकृतं मन्ये शेपं कर्म विषृचिका ॥ १७

रूपकेणायमेय तात्पर्यार्थः ॥ ५ ॥ दिवानिशं प्रजापालनाय सर्वतः परिश्रमणात्खयं धान्तोऽपि नृणामधर्मप्रवृत्तिहेतं तमो-गेहान्धकारं दैन्यं दारिद्यमप्यहरत् । यथा द्यमणिवेंश्मनां नैशं तमो व्यवहारदेन्यं च हरति तद्वत् । विशेषणे उभयत्र योज्ये ॥ ६ ॥ खस्य प्रतापः पराक्रमः अतितप्तता च । तसाजात-मिक्रकणानामासारं धारां किरन्सन् योऽरिषु मध्याह्रकाले उद्भतः सूर्यकान्तशिलामिरिव ज्वलति । अमिपक्षे अराः अत्राण्येषां सन्तीति अरिणस्त्रणादयस्तेषु ॥ ७ ॥ स्रज्ञा बद्यात-त्त्वविदस्तेषां संनिधा । इन्द्रमणिश्चन्द्रकान्तः ॥ ८ ॥ येन गञ्जावाहस्य गञ्जाप्रवाहरुक्षणस्य जगदाशोपवीतस्य तृतीयो गुण-स्तन्तः अस्यां पृथिव्यां गङ्गावतारणेन पूरितः ॥ ९ ॥ सर्वदि-गन्तवर्तिनामर्थिनां महान् सार्थः संघो घनेनेव ॥ १० ॥ भृतद्रोहिलाद्रहादण्डनिर्दग्धलाच पातालवासिनः अधोगति प्राप्ता बान्धवाः सगरपुत्रा येन गङ्गारुक्षणया सोपानपद्धला ब्रह्मणो होके योजिता आरोपिताः ॥११॥ अशून्याध्यवसायिनः अविच्छिन्नदढनिश्चयात् खमनसः सकाशात्॥१२॥ अपिशब्दा-त्तवेवेति गम्यते ॥ १३ ॥ योवने विचारवैराग्योदयोऽतिदुर्लभ इति द्योतनाय मराविवेति ॥ १४ ॥ **इ**ति वक्ष्यमाणप्रकारेण इमां जगद्यात्रां चिन्तयामास । चिन्ताप्रकारमेवाह-निलमि-त्यादिना ॥ १५ ॥ इयामा रात्रिः । बहुशो भुकं विरसं च फलं यस्य तत्तथाविधमेव सर्वेषां कुर्वतां कर्म लक्ष्यते नलपूर्व पर-मपुरुषार्थफलं चेलर्थः ॥ १६ ॥ तत्तत्त्राप्तिसाधनं कृतं कर्म

રુક

पुनःपुनः पर्युषितं कर्म कुषेश्व लज्जते । मृद्धवृद्धिरवृद्धिरतु कः कुर्यात्किल वालवत् ॥ १८ अथैकदोद्विग्नमनाः कदाचित्रितलं गुरुम् । एकान्तं संस्तेर्भातः समपृच्छद्गगीरथः ॥ १९.

भगीरथ उवाच।

अन्तःश्रून्यासु सुचिरं भ्रमत्संसारवृत्तिषु । अरण्यानीषु चेतासु भृशं खिन्ना वयं विभो ॥ २० जरामरणमोहादिरूपाणां भवकारिणाम् । भगवन्सर्वदुःखानां कथमन्तः प्रजायते ॥ २१

त्रितल उवाच।

निरसाम्यात्मनोत्थेन निर्विभागविलासिना।
राजन् क्षेयावबोधेन पूर्णेन भरितात्मना॥ २२
श्रीयन्ते सर्वदुःखानि त्रुट्यन्ति त्रन्थयोऽभितः।
संशयाः समतां यान्ति सर्वकर्माणि चानघ॥ २३
क्षेयं विदुर्थात्मानं संशुद्धं क्षप्तिक्रपिणम्।
स च सर्वगतो नित्यं नास्तमेति न चोदयम्॥ २४

भगीरथ उवाच।

विन्मात्रं निर्गुणं शान्तमस्ति निर्मलमच्युतम्। देहादि नेतर्रात्कचिदिति वेद्मि मुनीश्वर॥ २५ किं तत्र प्रतिपत्तिमें स्फुटतामेति नेतरा।

विष्विकेवाशुद्धिदुःखफलमेवेत्वर्थः ॥ १७ ॥ १८ ॥ उक्तचिन्तानन्तरं संखतेः सकाशादेकान्तमत्यन्तं भीतः सन् ॥ १९ ॥ भ्रमतां जीवानां रागद्वेषादिसंसारग्रत्तिपु तत्फलभूता-स्वेतासु स्वर्गनरकमानुष्याद्यरण्यानीषु च ॥ २० ॥ २१ ॥ साधनचतुष्टयश्रवणमननाद्युपायैश्विराम्यस्तं यत्साम्यविश्लेपवैष-म्यशुन्यः समाधिस्तदात्मना अनादिसिद्धबद्धाकारेण च उत्थे-नाविभूतेन होयस्य प्रत्यक्तत्त्वस्याववोधेन सर्वदुःखानि क्षीयन्ते इति परेणान्वयः ॥ २२ ॥ २३ ॥ उदयं च नैति ॥ २४ ॥ एवमुपदिष्टो भगीरथो विवेकेन खयमेवात्मतत्त्वमन्तः पर्याः ळोच्यापाततो निश्चित्य तत्र विश्लेपबाहुल्याचित्तस्य प्रतिष्टामल-भमानः खावगतांशं गुरवे निवेदगंस्तत्सुदीभावे विक्षेपीपशमे चोपायं प्रच्छति-चिन्मात्रमिति । अस्तीत्यनेन असत्त्वोपपा-दकोऽज्ञानांशो मे नष्ट इति सूचितम् । देहेन्द्रियप्राणमनोवुध्य-विद्यान्तिमितरिकिचिदातमा नेखपि लद्भचनविश्वासात्स्वोपपत्त्या च वेशि ॥ २५ ॥ तत्राभानापादकोऽज्ञानांश इतरावभासहेतु-विश्वेपांशब खस्य न नष्ट इति दर्शयति-किमिति । अत्र अनयोः सदसद्विवेकबोधयोर्मध्ये इतरा आद्या सदात्मबोधहत्पा प्रतिपत्तिः स्फुटतां करतलामलकवत्स्पष्टतां नैति तत्र किं कारणम् । अहं सर्वविक्षेपशान्त्या एतावन्मात्रसंवितिश्व कथं केनोपायेन स्वामिल्यर्थः ॥ २६ ॥ तत्र भगीरथस्य राज्याद्यसि-मानादेव तत्तद्विषयेषु चित्तधावनादिक्षेपस्तत्प्राबस्यादेव न

| पतायन्मात्रसंवित्तिः स्थामहं भगवन्कथम्॥ | २६ |
|--|------------|
| त्रितल उवाच । | |
| ज्ञानेन ज्ञेयनिष्टत्वमेति चेतो हृदम्यरे। | |
| ततः सर्ववपुर्भूत्वा भूयो जीवो न जायते ॥ | २७ |
| असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु । | |
| नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ | २८ |
| आत्मनोऽनन्ययोगेन तद्भावनमनारतम्। | |
| विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ | २९ |
| अध्यात्मक्षाननित्यत्वं तत्त्वक्षानार्थदर्शनम्। | |
| पतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं तदतोऽन्यथा॥ | ३० |
| रागद्वेपक्षयाकारं संसारव्याधिभेषज्ञम्। | |
| अहंभावोपशान्तो तु राजन् श्रानमवाप्यते॥ | 38 |
| भगीरथ उवाच । | |
| शरीरेऽसिक्षिरारुढो गिरौ तरुरिव स्वके। | |
| अदंभावो महाभाग वद मे त्यज्यते कथम्॥ | ३ २ |
| त्रितल उवाच । | |
| पौरुषेण प्रयक्षेन त्यक्त्वा भोगीयभावनाम्। | |
| गत्वा विकसितां सत्तामहंकारो विलीयते॥ | 33 |
| यम्रणापञ्जरं यावद्भग्नं छज्जादिनाखिलम्। | • • |

अकिंचनत्वशेषेण स्फुटा तावदहंकतिः॥

रफुटात्मत्रतिपत्तिरिति निश्चित्य त्रितलखत्परित्याजनाय प्रथमं गीतोक्तामानिलादिसाधनान्युपदिशति—ज्ञानेनेति । ज्ञायते अ-नेनेति ज्ञानममानिलादि तेन 'ज्ञेयं यत्तत्प्रवश्यामि' इत्यादिभ-गवद्दशिते होये निष्ठत्वं स्थेयंम् । रायेवपुः पूर्णस्त्रभावः । न जायते । पूर्णस्यभावाम प्रच्यवत इत्यर्थः ॥ २७ ॥ अमानित्वा-दिषु कानिचिदवगुत्यानुवादव्याख्याभ्यां प्रपचयति - असक्ति-रिलादिना ॥ २८ ॥ 'मयि चानन्यथोगेन भक्तिरव्यमिचा-रिणी' इत्यस्य तात्पर्यार्थं दर्शयति —आत्मन इति । निष्कृष्टा-त्मचिन्तनमेवात्र भगवद्धिक्तं गुणचरित्रश्रवणकीर्तनादिर्भगव-दिसिप्रेतेलार्थः ॥ २९ ॥ ३० ॥ अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं श्रवणम-नननिदिध्यासनाभ्यासः । तत्त्वज्ञानेनार्थस्य परमात्मतत्त्वस्य दर्शनं स्फुटाभिव्यक्तियी लया पृष्टा सा सर्वसाधनफलीभूता । सर्वेषामेव साधनानामनहंकारलक्षणं साधनं मूलम् । अहंका**रे** अमानिलादेर्द्रःसंपादलादिखाशयेनाह-अहंभावेति ॥ ३१ ॥ तर्हि तत्परित्यागोपायमेव मे वदेति प्रच्छति-श-रीर इति ॥ ३२ ॥ विकसितामकामोपहतत्वेन स्फुटीभूतां सत्तां शुद्धारमाकारतां गला स्थितस्येति शेषः ॥ ३३ ॥ व्यक्त-राज्यं मां जना न बहुमन्यन्ते, शत्रवश्वोपहसिष्यन्ति सर्वाभि-लिषतपूरणसमर्थोऽहं कथं भिक्षामटिष्यामि, कथं कदन्नपाना-दिना जीविष्यामीत्यादिचिन्ताप्रयुक्तलजाभिमानादिना कृतं गृहे पूर्ववदेव नियन्त्रणालक्षणं पजरं यावदकिचनखशेषेण सर्वमेतिकिया त्यक्त्वा यदि तिष्ठसि निश्चलः । तद्हंकारविलये त्वमेव परमं पदम् ॥ ३५ शान्ताशेषविशेषणो विगतभीः संत्यक्तसर्वेषणो गत्वा नुनमिकंचनत्वमरिषु त्यक्त्वा समग्रां श्रियम् ।

शान्ताइंकृतिरस्तदेहकलनसेष्वैव मिक्समट-न्मामण्युज्झितदानलं यदि भवस्युचैस्त्वमुचैरसि३६

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पश्चसप्ततितमः सर्गः ७५

वसिष्ट उघाच। अथ तस्य गुरोर्वक्रादित्याकर्ण्य भगीरथः। मनस्याहितकर्तव्यः स्वव्यापारपरोऽभवत् ॥ ततः कतिपयेष्वेच वासरेषु गतेषु सः। अग्निष्टोममखं चके सर्वत्यागैकसिद्धये॥ २ गोभुम्यश्वहिरण्यादि ददौ धनमशेषतः। द्विजेभ्यो निजवन्युभ्यो गुण्यगुण्यविचारयन्॥ 3 दिवसत्रयमात्रेण सर्वमेव परित्यजन्। असुमात्रावदेषोऽसावासीद्वाजा भगीरथः॥ 8 अथ सर्वार्थरिकं तिस्वन्नप्रकृतिपारकम्। सीमान्तिने तृणमिव राज्यं स्वमरये ददी ॥ 4 आकान्ते द्विषता राज्ये मुनिः सदानि मण्डले । अधोवासोवशेषोऽसौ निर्जगाम स्वमण्डलात् ॥ ६ यत्र न शायते नाम्ना यत्र न शायते मुखात्। तत्र प्रामेप्वरण्येषु दृरेपूवास धैर्यवान्॥ 9 इत्यर्पेनैय कालेन प्रशान्तसकलैपणः। परमेण शमेनासायाप विश्वान्तिमात्मनि ॥ 4 भ्रमन्द्वीपानि भूपीठे कदाचित्कालयोगतः। अवदाः रात्रुणाक्रान्तं स्वमेव प्राप तत्पुरम् ॥ ٩

सर्वेत्यागेन न भगं तावदहंकृतिः स्फुटा अत्यन्तविकसिता नृत्यतीत्यर्थः ॥ ३४॥ तत्ति ॥ ३५॥ सर्वेत्यागमेवावदय-कर्तव्यतया प्रपन्धयति—शान्तेति । शान्तान्यनन्तानि च्छत्र-वामरादीनि राजविशेषणानि यस्य तथाविधः सन्नूनमत्यन्तम-किंचनः सन् समग्रां श्रियमरिषु त्यक्ता अस्तदेहाभिमानस्तेष्व-रिष्वेव मिक्षामटन्सन् मां गुरुमपि अरुं पूर्णः सन् प्रष्टव्यार्थप-रिशेषाभावादुज्झितवान्नतु ग्रुश्रूपणेन । 'यावदायुद्धयो वन्या यदान्तो गुरुर्गश्ररः' इत्यादिशास्त्रामाण्यप्रसाङ्गादीदशलक्षणसं-पन्नो यदि भवसि ति स्वसुमुक्षुगुणेहन्नैभूतस्त्रमुन्नैः सर्वो-त्कृष्टं ब्रह्मवासि न ते संसारसंभावनापीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुः-समितत्तमः सर्गः ॥ ७४ ॥

मन्त्रव्याजेन सर्वस्वत्यागो राज्ञोऽत्र वर्ण्यते । भैक्षचर्या कचिच्छेलं त्रितलेन समं स्थितिः ॥ १ ॥ मनसि आहितं निधितं वश्यमाणं कर्तव्यं येन तयाविधः सन् ॥ १ ॥ अभिष्टोमंप्रहणं विश्वजित्पर्यन्तानां सोमसंस्था-

नानागारांश्च तत्रासौ प्रवाहपतितांश्च तान्। पौरांश्च मिल्रणश्चेष शमी मिल्रामयाचत ॥ १० विविदुस्ते नृपं पौरा मन्त्रिणश्च मगीरथम्। पुजयामासुरथ तं सविषादाः सपर्यया ॥ ११ प्रभो राज्यं गृहाणेति प्रार्थितोऽप्यरिणा मुनिः। नावसेऽनादताशेषस्तृणमप्यशनादते॥ १२ कतिचिद्वियसांस्तत्र नीत्वाऽन्यत्र जगाम सः। भगीरथोऽयं हा कष्टमिति लोकेन शोचितः॥ अधान्यत्रोपशान्तात्मा परिविश्रान्तधीः सुस्ती। आत्मारामं कदाचित्रु स प्राप त्रितलं गुरुम् ॥ १४ स्वमेव स्वागतं कृत्वा तेन सार्ध भगीरथः। कंचित्कालमुवासादौ वने प्राप्ते पुरे जने ॥ १५ समतामुपयाती ती गुरुशिष्यी समी स्थिती। कलयामासतुः स्वस्थौ विनोदं देहधारणम् ॥ १६ किमयं धार्यते देहः किंवानेनोज्झितेन नः। यथाक्रमं यथाचारं तिष्ठत्वेष यथास्थितम् ॥ १७ इति निश्चित्य तिष्ठन्तौ तौ वनाद्वनगामिनौ । अनानन्दं परानन्दं नासुखं नच मध्यमम्॥ १८

नामुपलक्षणम् ॥ २ ॥ अगुणि श्रुताष्ययनादिविकलमपि अ-विचारयन् । तद्विचारे विलम्बापत्तेः ॥ ३ ॥ असवः प्राणा-स्तन्मात्रावशेषः ॥ ४ ॥ सीमान्तिने सीमान्ते संनिहिताय ॥ ५ ॥ अधोबासः कौपीनाच्छादनं तदवशेषः ॥ ६ ॥ अन्र ख्यं दृष्टोऽपि जनैर्भगीरथनाम्रा न ज्ञायते । यत्र च जनमुखा-त्खनामापि न ज्ञायते न श्रयते तत्र तादृशेषु ॥ ७ ॥ इति अनया रीत्या वर्तमानः ॥ ८ ॥ द्वीपानि नद्यन्तरितानि मण्ड-लानि । अवशः सन् दर्शनाधीनचित्तः ॥ ९ ॥ प्रवाहपति-तान् कमप्राप्तान् नानागारान् । छान्दसं पुंस्लम् । प्राप्येति शेषः ॥ १० ॥ विविदुः परिचिक्युः ॥ ११ ॥ अनाहतमशेषं राज्यं येन ॥ १२ ॥ शोनितः शोकविषयीकृतः ॥ १३ ॥ १४ ॥ खमेव गुरुमिति पूर्वान्वयि । खागतप्रहणं वन्दनाद्युपरुक्षणम् ॥ १५ ॥ विनोदं कुतृहलभूतं देहधारणम् ॥ १६ ॥ यथाकमं यथाशास्त्रोक्तकमम् । यथाचारं युद्धाचारमनुखन्य च तिष्ठतुः ॥ १७ ॥ न विद्यन्ते विषयानन्दा यत्र तथाविधं परानन्दं प्रापतुरिति शेषः । तदेव विशिनष्टि—नामुखमिति । अमुसं

धनानि वाजिविभवाधैश्वर्यं चाष्ट्रधोदितम्। सिद्धेरप्यर्पितं तुष्टैमॅनाते जर्जरं तृणम्॥ १९ स्वकर्मणैच देहोऽयं यावत्सत्वमनिच्छया । धारणीय इति स्वेन कर्मणैवाथ तस्यतः॥ २० अभिननन्दतुरागतमुत्तमी निजसमाचरणकमजं मुनी। **सुखमसीख्यमभी**प्सितवर्जितौ समसमेति समी शमिनी स्वतः॥ २१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पू॰ भगीरथनिर्वाणं नाम पश्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षद्सप्ततितमः सर्गः ७६

वसिष्ठ उवाच। अधैकदा पुरे श्रेष्ठे किस्मिश्चिन्मण्डलान्तरे। अनपत्यं नृपं मृत्युरहन्मत्स्य इवामिषम् ॥ 8 तत्र प्रकृतयः खिन्ना नष्टदेशक्रमा नृपम्। अन्विष्यन्ति सा संयुक्तं गुणलक्ष्म्या विशालया ॥ २ तं भगीरथमासाद्य स्थिरं भिक्षाचरं मुनिम्। परिश्राय समानीय सैन्ये चकुर्महीपतिम्॥ 3 भगीरथः क्षणेनेव प्रावृषीवाम्बुना सरः। वितः सेनया गुर्व्या झटित्याशिश्रये गजम् ॥ भगीरथो जगन्नाथो जयतीति जनारवैः। नीरन्ध्रतामुपाजग्मुर्गिरीन्द्राणां महागुहाः॥ तत्र तं पालयन्तं तद्वाज्यं राजानमादृताः। आजग्मुः प्राक्प्रकृतयः प्राह्यरित्थं नृपाधिपम् ॥ દ્ प्रकृतय ऊच्चः।

राजश्रसाकमधिपो यस्त्वया स पुरस्कृतः। मृत्युना विनिगीणींऽसी मत्स्येनेवामिषं मृद् ॥

दुःखं तद्रहितम् । मध्यमं सुखतुःखोभयशून्यान्तरालावस्था तिक्रिम् ॥ १८ ॥ तयोमीनुषभोगेष्वित्र दिव्यभोगेष्वपि वैरा-ग्यदार्ट्यं दर्शयति-धनानीति । तचरितसंतुष्टेः सिद्धैर्वद्वादि-मिरपितं दत्तमणिमादिमेदेनाष्ट्रधा उदितं प्रसिद्धमैथर्यं च जर्जरं जीर्णतमं तृणमिव मेनाते ॥ १९ ॥ खारम्भकेण प्रार्-•धकर्मणैव यावत्सत्वं यावदायुर्घारणीय इति निश्चित्य तस्धतुः ॥ २० ॥ तौ मुनी निजेन पूर्वसमाचरणक्रमेण जातं सुखम-सीख्यं दुःखमपि अभिननन्दतुः । यतस्तौ समेभ्योऽपि समे **बद्यणि अतिसमी एकरसीभूती सन्ती स्वतस्तस्वभावादेव** श-मिनौ परमशान्तिमन्तौ ॥ २९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहा-निर्वाणप्रकरणे रामायणतात्पर्यप्रकाहो पञ्चसप्रतितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

पुनर्भगीरयस्येह राज्यमाप्तिक्दीर्यते । आराध्य बहारज्ञादीन् गङ्गायास्रावतारणम् ॥ ३ ॥ कोसलमण्डलाद्भगीरथास्पदमण्डलाच मण्डलान्तरे । अहन् हतवान्। आमिषं क्षुद्रमत्स्यादि ॥ १ ॥ नधो देशस्य कमः पालनमर्यादा येषां तथाविधाः सन्तः पालनसमर्थया गुण-कक्ष्म्या संयुक्तं त्रुपमन्त्रिषन्तिस्म ॥ २ ॥ सर्वगुणलक्ष्मीसमन्त्रि- तत्तरपालयितुं राज्यं प्रसादं कर्तुमईसि । अप्रार्थितोपयातानां त्यागोऽर्थानां च नोचितः॥ ८

वसिष्ठ उघाच ।

इति संप्रार्थितो राजा तदङ्गीरुख तद्वचः। सप्तसागरचिद्वायाः स वभूव भुवः पतिः॥ ९ समः शान्तमना मानी वीतरागो विमत्सरः। प्राप्तकार्येककरणः स तिरोहितविसायः ॥ १० पातालतलनप्रानां सागराकारकारिणाम् । पितामहानां गङ्गाम्बु द्युश्रुवे तारणक्षमम्॥ 38 तदा किल स्वर्गनदी वहति स्म न भूतले। पितृणां भूतविख्योऽभूत्तन गङ्गाजळाञ्जलिः॥ १२ भगीरथेन च महीमवतारियतुं दिवः। गङ्गां गृहीतो नियमस्ततःप्रभृति भूभृता ॥ १३ ततो राज्यं परित्यज्य मित्रणां भूपतिः शमी। तपसे कार्यकार्यहो जगाम विजनं वनम्॥ 88

तोयमिति परिज्ञाय प्रत्यभिज्ञाय तत्रागते सैन्येऽभिषिच्य मही-पति चक्रः ॥ ३ ॥ झटिति गर्ज आत्रिश्रिये आहरोह ॥ ४ ॥ नीरन्ध्रतां पूर्णताम् ॥ ५ ॥ तस्मित्रेव काले देवात्कीसलराज्य-हारिणोऽपि मरणादयोध्यास्था अपि प्रकृतयो भगीरथमागल प्रार्थयामासुरित्याह—तत्रेति । भगीरथस्येव प्राक्तना मन्त्रिपु-रोहितादिप्रकृतयः ॥ ६ ॥ राज्यं त्यजता लया यः सीमान्त-वासी आरेः राज्यदानेन पुरस्कृतः अर्था ॥ ७ ॥ तत्तस्मादेतो-स्तत्प्राक्तनं राज्यम् ॥ ८॥ ९ ॥ मौनी मितहितसखवाक् । तिरोहितस्तत्त्वज्ञानेन बाधितो विस्मयो महत्यपि काँतुके आ-श्चर्यताबुद्धियस्य ॥ १० ॥ अश्वान्वेषणायः भूमेः खननात्साग-राकारं गर्तं कर्तुं शीलं येषाम् । कपिलकोधाप्रिना पातालतले नष्टानां भस्तीभूतानां स्वपितामहानां गङ्गाम्बुह्यवनेन जलाञ्ज-लिदानेन च तारणक्षमं न प्राकृतं जलमिति तार्ध्यवचनं जन-परम्पर्या तेन शुश्रुवे इत्यर्थः ॥ ११ ॥ तदानीं भूतले गङ्गा स्थितैय तत्रेव जलाजलिः कृतो न दत्त इत्याशक्काह्—तदेति । तेन भगीरथेनैबान्येषामपि पितृणां गङ्गाजलाञ्चलिर्भूता संजाता विख्या प्रख्यातिर्थस्य तथाविघोऽभृदित्वर्थः ॥ १२ ॥ ततस्त-च्छ्वणदिनातप्रभृति ॥ १३ ॥ गङ्गावतरणकार्यार्थं यत्तपआदि

وبر

१६

तत्र वर्षसहस्रेश्च समाराध्य पुनःपुनः।
ब्रह्माणं शंकरं जहुं भुवि गङ्गामयोजयत्॥
ततः प्रभृत्यमलतरङ्गभिङ्गनी
जगत्पतेः शशिविभृदङ्गसङ्गिनी।
नभस्तलान्निपति गां त्रिमार्गगा
महात्मनामिव वहुपुण्यसंततिः॥

स्फुरत्तरङ्गभिङ्गनी स्वफेनपुअहासिनी प्रसन्नपुण्यमअरी युतेव धर्मसंततिः। भगीरथे महीपता यशःप्रचारवीथिका तदा हि सा त्रिमार्गगा महीतले बभूव ह॥ १७

इखार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पू॰ गन्नावतरणं नाम पदसप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७

वसिष्ठ उद्याच । पतामचष्टभ्य दशं भगीरथधिया धृताम्। समः स्वस्थो यथाप्राप्तं कार्यमाहर शान्तधीः ॥ १ इवं पूर्वे परित्यज्य क्रोडीकृत्य मनःखगम्। शान्तमात्मनि तिष्ठ त्वं शिखिध्वज र्वाचलः॥ २ श्रीराम उवाच। कोऽसौ शिखिष्वजो नाम कथं वा लब्धवान्पदम्। पतन्मे कथय ब्रह्मन्भूयो बोधविषृद्धये॥ वसिष्ठ उवाच। द्वापारे भवतां पूर्वमिदानीं च भविष्यतः। तेनैव संनिवेशन दंपती किम्धतां गतौ॥ R श्रीराम उवाच। यत्पूर्वमासीज्ञगयंस्तदिदानीं तथैव हि। भविष्यति किमर्थे वै वद् मे वदतां वर ॥ 4 वसिष्ठ उवाच । जगन्निर्माणनियतेरस्या ब्रह्मादिसंविदः। **ईरइयवस्थितिर्नित्यमनिवार्यस्वभावजा** ॥ यदन्यद्वहुद्दो भूत्या पुनर्भवति भूरिदाः।

कार्यं तद्यां इंहा चेष्टा यस्य ॥ १४ ॥ अयोजयत् अवतार्यं संयोजितवान् ॥ १५ ॥ जगरपतेः शशिविधतः शिवस्याङ्गसंगिनी शिरिस संगता । सापेक्षखादसमर्थत्वेऽिष समासरछान्दसः । जगत्पतेर्वद्वाणो वा नियोगादिति शेषः । नभस्तलाद्वां
भूमिं निपतित । महात्मनां स्वर्गिणां बह्वी पुण्यसन्ततिरिवेत्युरेप्रेक्षा ॥ १६ ॥ भगीरथे महीपतौ संजातस्य शाश्वतस्य
यशस आसमुद्रं प्रचारार्थं वीयिका इति रूपकोरप्रेक्षा ॥ १७ ॥
इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे
षटसप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

चूडालाख्यानमुक्तार्थद्रिक्षेत्रावतार्थते ।
शिख्ध्वजस्य माहात्म्यं विवाहकीडनक्रमाः ॥ १ ॥
भगीरथेन पश्चादाज्यकाले थिया धृताम् ॥ १ ॥ इदं विभनजातं परिल्जय । मनःस्वगं कोडीकृत्य हृदि निरुद्ध ॥ २ ॥
॥ ३ ॥ दंपती जायापती पूर्वकल्पे द्वापरे अभूताम् । इदानीमधाविशे चतुर्थुगेऽभिमद्वापरे तेनैव संनिवेशेन भविष्यतः

अभूत्वैव अवत्यन्यः पुनश्च न भवत्यरूम् ॥ 9 अन्यत्प्राष्ट्यंनिवेशाद्यं सादृश्येन विवलाति । सदशा विषमाश्चेव यथा सरसि वीचयः॥ 4 ता एवान्याश्च दृश्यन्ते व्यवस्थाः संसृतौ तथा । तसाद्राजेव भूयोऽपि वश्यमाणकथेश्वरः॥ ९ भविष्यति महातेजास्तहत्तान्तमिमं श्रुणु । द्वापरे पूर्वमभवदतीते सप्तमे मनौ॥ १७ चतुर्युगे चतुर्थे तु सगेंऽस्मिन्कुरुणां कुले। जम्बुद्वीपे प्रसिद्धस्य विन्ध्यस्याद्रस्रांस्थिते ॥ ११ मालवानां पुरे श्रीमाञ्छिखिध्वज इतीश्वरः। धैर्यौदार्यदशायुक्तः क्षमाशमदमान्धितः॥ १२ शूरः शुभसमाचारो मौनी गुणगणाकरः। आहर्ता सर्वयक्वानां जेता सर्वधनुष्मताम्॥ १३ कर्ता सकलकार्याणां भर्ता पूर्ववपुर्भुवः। पेशलक्षिग्धमधुरो विवग्धः प्रीतिसागरः॥ १४ सुन्दरः शान्तसुभगः प्रतापी धर्मवत्सलः । वदिता विनयार्थानां दाता सकलसंपदाम्॥ १५ भोक्ता सत्सङ्गसहितः सुश्रोता सकलश्रुतेः।

॥ ४॥ भूतभविष्यतोः साहर्ये को हेतुरिति रामप्रश्नार्थः ॥ ५॥ जगिन्नर्भाणे नियतिरूपाया नद्मादीनां सत्यसंकल्पसंविदः। अनिवार्यस्मभाव एव तद्भेतुरित्यर्थः॥ ६॥ ईहशीत्युक्तं प्रपश्चयति—यदिति। यथा एकस्मिन्नान्नतरो अन्यदन्यत्फलं बहुशो भूता पुनःपुनस्ताहशमेव भूरिशो भवति। स्कन्धवटस्तु अभूत्वेव भवति स च च्छिनः पुनस्तस्मिन्न भवति ॥७॥
॥ ८॥ संस्तौ शिखिष्वजादिसंसारेऽपि तयेत्यर्थः। राजा
अतीतशिखिष्वजद्दव वश्यमाणकथायां वर्ण्यत्वेन ईश्वरो नायकः
॥ ९॥ १०॥ कृष्ट्णां कृष्देशाधिपतीनां कृषेपत्यानां च कृष्टे
वंशे। तद्वाजप्रत्ययस्य बहुषु लुक् । नामि दीर्घाभावरस्नान्दसः
॥ १९॥ मालवानां पुरे उज्जयिन्यामिति यावत् ॥ १२ ॥
॥१३॥ सकलानां वापीकृपतहागारामादिकार्याणाम् । विदग्धो
लेकशास्त्रनिष्णातः ॥ १४॥ शान्तव्यासौ सुभगः सौभाग्यलक्षणयुक्तश्च विनयार्थानां परेषामिप विनयविक्षाहेत्नां वाँक्यानां वदिता वक्ता ॥ १५॥ सर्व वेद जानाति तथाणै

| वेदासौ माननाशून्यः स्त्रेणं तृणवदस्पृशन्॥ | १६ |
|---|------------|
| पितरि स्वर्गमापभे बाल एवोत्तमौजसा। | |
| कृत्वा पोडरावर्षाणि स्वयं दिग्विज्यं वशी॥ | १७ |
| नूनं साम्राज्यसंपत्त्या भूमण्डलमयोजयत्। | |
| अतिष्ठद्विगताशङ्कं पालयन्धर्मतः प्रजाः ॥ | १८ |
| स धीमान्मित्रिभिः साधि यशसा शुक्कयन्दिशः | ŀ |
| अथ गच्छत्सु वर्षेषु वसन्ते प्रोह्नसत्यसम् ॥ 🥏 | १९ |
| पुष्पेषु ज्ञुम्भमाणेषु स्फुरत्सु शशिरविमषु। | |
| मञ्जरीजालदोलासु विटपान्तःपुरान्तरे ॥ | २० |
| रजःकर्पूरधवले वलद्दलकपाटके । | |
| आमोद्विलसत्पुष्पगुलुच्छकवितानके॥ | २१ |
| गायत्सु गहनेषु बैर्मिथुनेष्वलिनां मिथः। | |
| आवाति मधुरे वायौ शशिशीकरशीतले॥ | २ २ |
| कद्लीकन्दलीकच्छतलपहुचलासिनि । | |
| कान्तां प्रति बभूवास्य वसचेतः समुत्सुकम्॥ | २३ |
| क्षीवं कुसुमसंभारसौगन्ध्यमधुरासवैः। | |
| मनो नान्यास्पदं चक्रे स वसन्तमिबोदितम्॥ | રઇ |
| उद्यानवनदोलासु लीलाकमलिनीयु च । | |
| कदा प्रणयिनीं मुग्धां हेमाब्समुकुलस्तनीम्॥ | २५ |
| करिष्ये कामिनीसङ्के पर्यङ्के कुङ्कुमाहिताम्। | |
| कदा कमलवहीनां दोलास्वलिरिवालिनीम्॥ | २६ |
| आलोलां तां निवेक्यामि बालां भुजलतानुगाम | ŢΙ |
| मुणाळहारकुन्देन्दुवृन्दवल्यमिलापिणी ॥ | २७ |
| मत्कृते मदनात्सा कदा स्यादिन्दुसुन्दरी। | _ |
| रति जिल्लापरो भत्वा कसमावस्योत्मवः ॥ | 2/ |

मानना अभिन्नतासिमानस्तच्छन्यः। स्त्रणं स्त्रीव्यसनादि ॥१६॥ उत्तमेन ओजसा खबाहुवीर्यंण । अनेन पिता माण्डलिक एवासीदसौ खबाहुवीयेंगेव सम्राट संपन्न इति गम्यते ॥१०॥ सामाज्यप्रयुक्तया संपर्या । तदाहि कापि दस्यूनामभावात्प्र-जानां धनं वर्धत इति विगतजेतव्यशत्रुसद्भावाशङ्कप् ॥ १८ ॥ वर्षेषु गच्छरस्र । यौवने प्राप्ते सतीति यावत् । अथास्य चेतः कान्तां प्रति समुत्सुकं बभूवेति पश्चमेन संबम्धः ॥ १९ ॥ षिटपः शाखा तह्नक्षणे अन्तःपुरान्तरे मञ्जरीजालदोलामु अलिनां मिधुनेषु गायत्स्वित व्यवहितेनाम्वयः ॥ २० ॥ तदेवान्तः पूरं तत्सामग्रीकल्पनेन वर्णयति-रज इति ॥ २१ ॥ शिका शीकरैश्व शीतले ॥ २२ ॥ कदली प्रसिद्धा । कन्दल्यो गुल्ममेदास्तेषां कच्छप्रायेषु तलेषु पत्नवेषु च लासिनि सास्य-शीले इति शैलमान्योपपादकं वायोविशेषणम् । वसदित्युत्तया पूर्वमेव गुणसौन्दर्यादिश्रवणाचडालायामनुरक्तमिति गम्यते ॥ २३ ॥ कुमुमसंभाराणां सौगन्ध्यलक्षणेर्मधुरैरासवैः क्षीनं मतं सत् सवसन्तं वनमिव उदितं रागपत्नवितं मनः अन्यास्पर्द काम्तासिरिक्वविषयावलम्बनं न चन्ने ॥ २४ ॥ तदौत्मक्य-प्रकारं प्रपश्चयति-उद्यानेखादिना ॥ २५ ॥ २६ ॥ निवे-

| विजहार वनान्तेषु कुसुमोपवनेषु च। | |
|---|--------------|
| वनोपवनलेखासु लीलाकमलिनीषु स ॥ | २९ |
| वहीवलयगेहेषु विविधोद्यानभूमिषु। | |
| वनोपवनविन्यासवर्णनावितासु च ॥ | ३० |
| श्रङ्गाररसगर्भासु कथास्त्ररमतोन्मनाः। | |
| हृदि हारलसत्कायविलोलालकवल्लरीः॥ | 38 |
| कुमारीः पूजयामास सुवर्णकलशस्तनीः। | |
| एतन्मन्ये विदुर्भव्या मिश्रणो नृपनिश्चयम् ॥ | ३२ |
| इङ्गिताकारवेदित्वमेव मिश्रपदं परम्। | |
| अध तस्य विवाहाय मिश्रवर्गो विचारयन्॥ | ३३ |
| सुराष्ट्राधिपतेः कन्यां यथाचे यौवतान्विताम् | |
| नवयाचनसंपन्नां भार्यात्वे विधिनोत्तमाम्॥ | ર ક્ષ |
| • | 40 |
| उपयेभे स तामात्मसहशीं प्रतिमामिष । | |
| चूडालेति भुवि ख्याता नाम्ना नृपतिसुन्दरी। | ३५ |
| सो तं भर्तारमासाद्य रेजे फुह्नेव पश्चिनी। | |
| नीलनीरजनेत्रां तां चूडालां स शिखिष्यजः॥ | 38 |
| स्नेहाद्विकासयामास सूर्यो देवो यथान्जिनीम् | |
| अवर्धत तयोः प्रीतिरन्योन्यार्पितचेतसोः॥ | 30 |
| द्दावभावविलासात्व्यैरङ्गेर्नवलतेव सा । | |
| सुमन्यर्पितसर्वार्थः स सुखी सुस्थितप्रजाः॥ | ३८ |
| राजहंस इवाब्जिन्या रेमे दियतया तया। | |
| अन्तःपुरेषु दोलासु लीलाकमलिनीषु च ॥ | રૂ ૧, |
| उद्यानेषु विहारेषु लतापुष्पप्रहेषु च । | |
| कदम्बवनलेखास चन्दनागुरुवीथिषु॥ | Ro |

श्यामि परिणेष्यामि । ममेव तस्या अपि स्वामिलापप्रयुक्तसं-तापः कदा स्यायेन शीघ्रं घटना स्यादित्याशयेनाह--मुणा-लेति । वृन्दवल्लयः पुष्पितलतागृहात्मना वृन्धीभूता वल्लयस्तद्-मिलाषिणी ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ वनानामुपवनानां च गुणानुवर्णने आविततासु कथासु चारमतेति सप्तमीनां संबन्धः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कुमारीः हदि पूजयामास बहुमेने, सांक-ल्पिकभूषणेरलंचके वा । मन्ये इत्यवितर्के । वितर्कवचनं वसि-ष्ठस्य वाक्यालंकारार्थम् ॥ ३२ ॥ मिश्रणां पदं लक्षणम् । परस्परानुरागगुणशीलकुलादिसंपत्तिं विचारयन् ॥ ३३ ॥ युवतीनां समूहो योवतम् । 'भस्याढे तिद्धते' इति पुंवद्भावः । तेनान्विताम्। नवेन यौवनेन वयसा च संपन्नाम्॥ ३४॥ प्रतिमां प्रतिच्छायामिव सदृशीमनुरूपाम् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ विकासयामास प्रसादयामास ॥ ३० ॥ हावभावादयः श्टना-रचेष्टामेदास्तदाब्यंरक्नैनेवलतेव सा शुग्रुभ इति शेषः । शो-भने राजिलानुवर्तिमिरनुरक्तेमीश्रमिर्धिताः सर्वे उपभो-ग्यार्थं। यस्म । अयवा श्रोभनेर्धार्मिकमेन्त्रिभिः सर्वेभ्योऽर्थिम्यः अर्पिताः सर्वे अभिरुपितार्था यस्य । अतएव सुस्थितप्रजास्त-त्पालनविश्वेषरहितः सन् रेमे ॥ ३८ ॥ ३५ ॥ वन्दनानुस्य-

मन्दारदामखोसासु कदलीकन्दलीयु च। पुरान्तेषु बनान्तेषु दिगन्तेषु सरस्छ च ॥ जंगलेषु जनान्तेषु जम्बूजम्बीरजातिषु । बभुवाहादकं सर्वे तयोरन्योन्यचेष्टितम्॥ કર सद्वर्षयोधुरवरैर्धुभूम्योरिव कान्तयोः। निस्पमेव वियुक्तत्वारिप्रयत्वाबेष्टितस्य च ॥ ध३ मियः कलाकलापस्य कोविदौ ती बभूवतुः। स्वरूपमेकमेवैती द्यतुर्मित्रतां गती॥ 88 अन्योन्यद्वयस्थत्वादिव संक्रान्तमक्षतम्। सर्वशास्त्रार्थवैदग्ध्यं चित्राचि मुखात्प्रभोः ॥ ४५ बालः कालाद्रिवागृह्य साऽसीत्सर्वार्थपण्डिता । नृत्यवाद्यादि यावश्व चुडालावदनादसौ ॥ 86 अशिक्षत बभूबाथ कलोनामतिकोविदः। अमावास्यामिबेन्द्वर्काषन्योन्यविलसत्कली ॥ છછ

मिथो दृदयसंस्थी तौ द्वाचप्येक्यमुपागती। तौ संस्थितावेकरसाचन्योन्यं द्यातानुभौ॥ 86 पुष्पामोदाविवाभिन्नो भूतलस्थौ शिवाविव। वैदग्ध्यसुन्दरमती सर्वज्ञास्त्रार्थपण्डितौ॥ ક્ષ कार्यार्थं च भुवं प्राप्ती कमलाकमलाभवी। क्रोहात्प्रसम्भमभुरौ समविशातवादिनौ ॥ 40 अनुवृत्तिपरावास्तां लोकवृत्तान्ततद्विदी । कलाकलापसंपन्नौ लसद्वसरसायनौ । शीतलिकाधमुग्धाक्षी शशाक्षी द्वाविवोदिती ॥ ५१ रेजे लसम्ब रतिभोगविलासकान्त-मन्तःपुरेषु मिथुनं तद्युत्तमि । ब्रह्माण्डखण्डकुहरेष्विव राजहंस-युग्मं विकासिमदमन्मथमन्द्वारि॥

इत्यार्षे श्रीनासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो • निर्वाण • चूडालोपाख्याने शिखिष्यजविलासकथनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः॥७७॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८

3

विसष्ठ उवाच ।

एवं बहुनि वर्षाणि मिथुनं निर्भरस्पृहम् ।
रेमे यौवनलीलाभिरमन्दाभिर्दिनेदिने ॥
अथ यातेषु बहुषु वर्षेष्वावृत्तिशालिषु ।
शनैगंलिततारुण्ये मिम्नकुम्मादियाम्मसि ॥
तरङ्गदिकराकारमङ्गुरव्यवहारिणि ।
पातः पक्कफलस्येव मरणं दुर्निवारणम् ॥
हिमाशनिरिवाम्भोजे जरा निपतनोनमुखी ।

गन्धितासु वीथिषु चन्दनागुरुबृक्षाणां पङ्किषु च ॥४०॥४९॥ ॥ ४२ ॥ धुरवरैर्वलीवर्देः कृष्टेषु क्षेत्रेषु सत् रमणीयं वर्ष वृष्टिर्ययोख्याविधयोर्भेषसस्यसंपत्कान्तयोर्जुभूम्योरिव ॥ ४३ ॥ मियः अन्योन्यसाध्विक्षणादन्योन्यसाम्यार्थिताच प्राह्नतरी अतएव सर्वगुणसाम्यादनुरागेण जीवेक्यमिक संपन्नमित्याह—स्वरूपमिति ॥ ४४ ॥ अन्यो-न्यहृद्यस्थलारेहृद्यसंकान्तमेकमेव जीवस्वरूपम् । चित्रादि-शिल्पवेदग्ध्यमपि तत्तिच्छल्पकुशलानां मुखादागृह्य अभ्यस्य ॥४५॥ यथा बल्जे बद्धः 'द्वादशवर्ष वेदब्रह्मचर्य'मिति शास्त्रनि-यतकालाद्देदविद्यां गृह्वाति तद्वत् । सा चूडाला । असौ शिखि-व्यवः ॥ ४६ ॥ अमावास्यां प्राप्येति शेषः । इन्द्रकीविव मियो हृद्यसंस्थी सन्ती ऐक्यमुपागती ॥ ४०॥ मित्रितक्षी-रोदकवदेकरसी ॥ ४८ ॥ भूतलस्वी भूमाववतीणी शिनी गौरीशंकराविव ॥ ४९ ॥ सह प्रत्येकं वा पृष्टं संदेहपदं लोक-शासरहस्यं समं तुस्यकालं तुस्यविषयं च विज्ञातं वक्तं शीलं यशोस्ती ॥ ५० ॥ परस्परगुरुद्विजाभिक्षारीनां चानुवृत्तिः प्रिय-क्रितमिन्यायाचारस्तरारी । छोडवतान्तस्य सस्य धाक्षेकपम्य-

आयुर्गलस्पविरतं जलं करतलादिव ॥ ४ प्रावृषीय लतातुम्बी तृष्णेका दीर्घतां गता । देशलनद्या रय इव संप्रयात्येव यौवनम् ॥ ५ इन्द्रजालमिवासस्यं जीवनं जीर्णसंस्थिति । सुखानि प्रपलायन्ते शरा इव धनुश्च्युताः ॥ ६ पतन्ति चेतोदुःखानि तृष्णा गृश्च इवामिषम् । बुद्धुदः प्रावृषीवाष्सु शरीरं क्षणभङ्गरम् ॥ ७

धर्मरहस्यस्य च विदी । लसन्ति श्वन्नारादिनवरसलक्षणानि रसायनानि ययोस्ता ॥ ५९ ॥ ब्रह्माण्डस्य ब्रह्माण्डावय-वस्य सत्यलोकस्य कुहरेषु गम्भीरसरस्सु राजहंसयोर्युग्मं मिथु-नमिव ॥ ५२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्वप्रकारो निर्वाणप्रकरणे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

> तयोः क्रमेण वैराग्यं सच्छासाभ्यासनिष्ठता । चुडालाया विवेकोऽत्र ज्ञानलामश्च वर्ण्यते ॥ ३ ॥

निर्भरस्पृहं रहप्रेम । मिथुनं तत्स्त्रीपुंसद्गन्द्रम् ॥ १ ॥ अथ शनेस्तारुण्ये गलति सति तत्युग्मं इति निर्णाय अध्यात्म-संमतं शास्नं विचारयामासेति दशमे एकादशे च संबन्धः ॥ २ ॥ निर्णयहेतुं प्रथमं तत्कृतं विचारं प्रपष्ययति—तरङ्गे-त्यादिना । तरङ्गिनकरोकारेण भङ्गरेण देहेन व्यवहरणशीले देहिनि । मरणं देहवियोगः ॥ ३ ॥ कृतो दुर्निवारणं तत्राह—हिमाशनिरिति ॥ ४ ॥ तृष्णाभोगतत्साधनतृष्णाप्राष्ट्रिव कटुतु-म्बीलतेव दीर्घतां गता वर्धते इति यावत् । रयोऽत्र वार्षिकपूरः ॥ ५ ॥ जीव्यते अस्मिभिति जीवनं देहादि ॥ ६ ॥ दुःखान्याम्यात्मिकादीनि तृष्णा च चेतः पतन्ति निपक्ष द्वदन्वीति

रम्भागर्भ इवासारो व्यवहारो विचारगः। सत्वरं युवता याति कान्तेवात्रियकामिनः॥ बलादरतिरायाता वैरस्यमिव पाद्पम्। तदिह स्याच्छुभाकारं स्थिरं किमतिशोभनम्॥ ९ यदासाय पुनश्चेतो दशासु न विद्यते। इति निर्णीय युग्मं तत्संसारच्याधिभेषजम् ॥ चिरं विचारयामास शास्त्रमध्यात्मसंमतम्। आत्मश्रानैकमात्रेण संस्तृत्याख्या विषु सिका ॥ ११ संशाम्यतीति निश्चित्य ताचास्तां तत्परायणा । तिश्वली तद्वतप्राणी तिष्ठेष्ठी तद्विदाश्रयी ॥ १२ तदा तदर्खनपरी तदीही ती विरेजतः। तत्रैवातिघनाभ्यासौ बोधयन्तौ परस्परम् ॥ **23** तत्त्रीती तत्समारम्भाषन्योग्यं ती बभूषतः। अथ साविरतं राम रमणीयपदक्रमान्॥ 88 श्रुत्वाभ्यात्मविदां वकाच्छात्स्राथीस्तारणक्षमान्। इत्थं विचारयामास स्वमात्मानमहर्निशम्॥ अव्यापृता व्यापृता वा धिया धवलयेद्धया । प्रेक्षे तावत्स्वमात्मानं किमहं स्यामिति स्वयम् ॥ १६ कस्यायमागतो मोहः कथमभ्युत्थितः क वा । देहस्तावज्जडो मृढो नाहमित्येव निश्चयः॥ १७

यावत् ॥ ७ ॥ अप्रियां सपन्नी कामयते यस्तस्य कान्ता प्रिय-तमेष ॥ ८ ॥ अरतिरिष्टविषयालाभनिमित्तं दीर्मनस्यम् । वैरस्यं रसशोषः । इहास्मिन् संसारे ॥ ९ ॥ दशासु जन्मम-रणादिदुर्दशासु । तद्युगमं मिथुनं इति विचार्थ तत्र अध्यात्म-शास्त्रमेव संसारव्याधिमेषजं निर्णाय तदेव विचारयामासेत्य-न्वयः ॥ १० ॥ ११ ॥ तद्विदा अध्यात्मशास्त्रविद एवाश्रयः शरणं ययोस्ती ॥ १२ ॥ १३ ॥ तस्मिन्नध्यात्मशास्त्र एव सम्यक् 'तिश्वन्तनं तच्छवणमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्' इत्यादिः समारम्भो ययोस्तै। सा चुडाला ॥ १४ ॥ इत्थं वस्यमाणप्र-कारेण ॥ १५ ॥ अव्यापृता त्यक्तशारीरव्यापारा । प्रेक्षे वि-विच्य पर्येयम् । अस्मिन् कार्यकारणसंघाते अहं चेतनधातुः कि स्यात् ॥ १६ ॥ अयं संसारलक्षणो मोहो श्रमः कस्यागतः । यस्य हि भ्रान्तिरागता स तिभवारण स्वस्थः स्यात्स एव क इत्यर्थः । कैथं वेति निमित्तजिज्ञासा । केति तन्मूलजिज्ञासा । मूले हि परिज्ञाते तदुच्छेदेनोच्छेत्तुं स शक्यः ॥ १७ ॥ मतौ स्यूलोहं गौरोहमित्यादिबुद्धियुत्तो सत्यामेवानुभूयते न खत इति तस्य जडलमित्यर्थः । अस्मोद्दहादभिन्नद्दस्तपादायवयवात्मकः ॥१८॥बद्धीन्द्रियगणोपि एवं शरीराष्यवात्मक एव । यदाप्यणव-बेति सूत्रे इन्द्रियप्राणादयः सुक्ष्मा लिङ्गदेहावयवा एव न स्थूल-वेहाबयबा इति बादरायणेन सिद्धान्तितं तथापि तेषां देहाब-

आबालमेतत्संसिद्धं मती चैवानुमूयते। कर्मेन्द्रियगणश्चास्माद्भिन्नावयवात्मकः॥ १८ अवयवावयविनोर्न मेदो जड एव च। बुद्धान्द्रियगणोऽप्येषं जड एवेति दृश्यते ॥ १९ प्रेयंते मनसा यसाद्यष्टयेव भुवि लोएकः । मनधेवं जडं मन्ये संकल्पात्मकरांकि यत्॥ २० क्षेपणैरिव पाषाणः प्रेयंते बुद्धिनिश्चर्यः । बुद्धिर्निश्चयरूपैवं जडा ससैध निश्चयः ॥ २१ खातेनेच सरिश्रनं साहंकारेण वाह्यते । अहंकारोऽपि निःसारो जड पव शवात्मकः॥ २२ जीवेन जन्यते यक्षो बालेनेच भ्रमात्मकः। जीवश्च चेतनाकाशो वातात्मा हृदये स्थितः ॥ २३ सुकुमारोऽन्तरन्येन केनापि परिजीवति । अहो नु शातमेतेन चेत्योहेखकलक्रिना ॥ રક जीवो जीवति जीणंन चिद्वपंणात्मरूपिणा। चेत्यभ्रमवता जीवश्चिद्र्पेणैव जीवति॥ સંષ आमोदः पवनेनेच खातेनेच सरिद्रयः। असत्यजडचेत्यांशचयनाचिद्रपुर्जडम् ॥ २६ महाजलगतो हान्निरिव रूपं स्वमुज्यति। सद्वासद्वा यदाभाति चित्समाधी सति स्वतः २७

यवत्वेनैवापण्डितपामरमनुभवादवयववदेहसंयुक्तलाच तदव-यववज्रडलमेवेत्याशयः ॥ १९ ॥ मनआदेरपि जडदेहादिप्रे-रकलात्तरसंयोगयोग्यद्रव्यतया यध्यादिवज्जडत्वं त्याह—प्रेयेत इत्यादिना ॥ २०॥ जडा सत्ता जाज्यस्वभाषे-वेति निथ्वयः । क्षेपणै रज्ञुयर्क्तेः ॥ २१ ॥ खातेन वप्रद्वयान्त-रालिकनिम्नदेशेन । सा बुद्धिर्वाह्यते प्रेर्यते ॥ २२ ॥ जीवेन प्राणाविच्छमचिदाभासेन जन्यते अध्यस्यते । तथाच यक्षदे-हवत्तस्याध्यस्तलादेव जडलमित्यर्थः । वातात्मा प्राणोपाधिः ॥ २३ ॥ अन्तरन्येन स्वान्तर्यामिबिम्बचैतन्येन परिपूर्णी जीवति । चेलोहेखः साक्षिभावेन विषयप्रकाशनं तेन कल-हिना दृषितप्रायेण ॥ २४ ॥ जीर्णेन चिरंतनेन चेल्योहेसक-छ**ड्डिनेति ॥ २५ ॥ तत्रोपपत्तिमार्-अ**सखेति । वयनात्तादा-तम्यसंसर्गाध्यासाचिद्वपश्चित्स्वभावमपि तज्जडिमव संपन्नमित्यर्थः ॥ २६ । महाजलं तप्तजलं सामुदं वा तद्वतोऽप्रिरिव खं भाखररूपमुज्यति मुश्रति । अतएव सत्तांशे चिद्वैरुक्षण्य-मिव छन्धा घटः सन्पटः सन्निति सत्ता घटपटादाचिदाकारस-मरसानुभूयते । घटाद्याकारस्य मृदादौ लये घटो नास्ति पटो सत्ताकारमप्युज्ज्ञन्ती अभावतामप्यापद्यत इति भावः । चिरसमाघौ चेरयैकाम्ये सद्भूपमसद्भूपं वा यदेव वासनो-पगीतं स्रत आभाति तरेव क्षणादछं पूर्ण स्रह्पमुल्छज्य

१ शक्तिमदिति पाठः. २ अत्राप्तियं सपत्नीसंग्रहणं कामयत इति स्याक्यानं शुक्तं । यथास्थितन्याख्यायां पुंबद्धावानुपपितः.

३ कथं कैनिमित्तीरिति पाठः.

स्वरूपमलमुत्युज्य तदेव भवति क्षणात् । पवं चित्रपमप्येतचेत्योनमुखतया स्वयम् ॥ २८ जडं शुन्यमसत्कर्णं चैतन्येन प्रबोध्यते । इति संचिन्त्य चुडाला केनैपा चित्र्यचेतनी ॥ २९ इति संचिन्तयामास चिरायेत्थं व्यबुध्यत । अहो नु चिरकालेन शातं श्रेयमनामयम्॥ 30 यहै विशेयतां कृत्वा न कश्चिद्धीयते पुनः। पते हि चिद्विलासान्ता मनोबुद्धीन्द्रियादयः 🛭 ३१ असम्तः सर्व पैवाहो क्रितीयेन्द्रपदस्थिताः। महाचिदेकैवास्तीह महाससेति योच्यते ॥ 32 निष्कलक्का समा शुद्धा निरहंकाररूपिणी। श्रदसंवेदनाकारा शिवं सन्मात्रमच्युतम्॥ 33 सक्तृद्विभाता विमला नित्योदयवती सदा । सा ब्रह्मपरमात्मादिनामभिः परिगीयते ॥ 38 चेरवचेतनचित्तादि नास्या भिन्नं न मानतः। तयेषा चेत्यते चिच्छीः सैषाद्या चिदिति स्मृता ३५ अचेत्यं यदिवं चिश्वं तत्तस्या रूपमक्षतम ।

तस्स्रणात्स्वयं भवतीति परेणान्वयः ॥ २७ ॥ एवमुक्तरीत्या परमार्वतिधिद्वपमपि अविद्यानरणादध्यासपरंपरया जडं शन्य-मसत्कर्षं च संपन्नं जगद्रूपं बुद्धावनावृतस्वभावेन चैतन्येनेव तत्तदाकारकृत्तिव्यास्या मूलाविद्यावरणभन्नद्वारा प्रबोध्यत इति परेषान्ययः ॥ २८ ॥ तर्हि मूलाविद्यावरणभन्नेनेषा ब्रह्मचि-किनोपायेन दरयस्तप्रं विहाय प्रबोधवती स्वादिति चिन्तितव-तीत्याह—इतीति ॥ २९ ॥ इत्थं वर्ण्यमानप्रकारेण व्यवुष्यत । भारमतस्वमित्यर्थः ॥ ३० ॥ कश्चिदपि पुरुषो न हीयते परम-पुरुषार्थात्प्रच्यतो न भवतीत्यर्थः । अथवा कथिदपि का-म्योऽर्थो न हीयते न हानि प्राप्यते । तत्प्राप्त्येव सर्वकामावा-सेरिलर्थः । अथवा किचिद्वस्त दुःलसाधनमिति बुद्धा न हीयते न खज्यते । सर्वस्याप्यानर्न्दकरसत्वसंपत्तेरित्यर्थः । हानासंभवोक्तिरुपादानस्याप्युपलक्षणम् । चिद्विलासस्य अन्ताः परिच्छेदहेतवः ॥ ३१ ॥ द्वितीयस्य तेमिरिकदृष्टिपरिकल्पित्-स्येन्दोः पदे स्थाने स्थिता। श्रान्तिकल्पिता इति यावत् ॥३२॥ छढं सेवेदनमेव आकारः खरूपं यस्याः । श्विवं भूमानन्दरूप-सात्परममञ्जलं तादशस्यभावात्कदाप्यप्रच्युतमित्यच्युतम्॥३३॥ सक्टन्म्डाविद्यावरणभन्नेन विभाता न पुनः केनाप्यावियत इति सक्तृद्विभाता । अतएव निखोद्यवती परिगीयते वेदान्ता-यथ्यात्मशास्त्रेषु उक्षणया ॥ ३४ ॥ चेलादित्रिपुटीजालमस्याः सकाशाद्भिभं वस्तु न। यत एषा त्रिपुटी तया साक्षिभूतया चेखते नद्व मानतः सिद्धा सैषा साक्षिनित् त्रिपुटी प्रकृतेः प्रागेव खतः विद्वलादाया ॥ ३५ ॥ विज्ञम्भते विवर्तते॥३६॥ मनोबुद्धादिविवर्तैविदारमनि मातरि प्रमातृभावापने सति तत्र तरक्रादिकलनाप्राया जगद्रूपभूतमौतिकपदार्थानः सत्ता अस्ति-ता स्फरति ॥ ३७ ॥ यदिदं जगत्सत्तारूमं प्रसिद्धं तत्तस्य। मनोवुद्धीन्त्रियाद्यर्थरूपैः सैव विज्ञस्भते॥ 36 तरक्रकणकल्लोलकलनेयं चिदात्मनि । जगद्रुपपदार्थानां सत्ता स्फ्रुरति मातरि॥ 30 यदिदं तत्परं रूपं तस्याः खलु महाचितेः। श्रद्धचिन्मणिवत्सा हि सेयं समसमोदिता ॥ 3८ अनन्ययैव या शक्तया जगज्जम्भिकया स्थिता। सत्ता मायातिरेकेण नान्या संभवतीह हि॥ 38 विचित्रतेव भाण्डामां नतु हेमतया यथा। सा तथोदेति तद्रपमात्मानं खेतति स्वयम्॥ 80 स्वचित्तेन द्रवत्वेन तरङ्गादित्वमम्बुषु। महाचितौ जगिषसादुदेतीवानुदेखपि॥ ક્ષ तदात्मैव यथा यातो रूपवान् जलधौ द्रवात्। एवं चिन्मात्रमेवाहमनहंभावमाततम्॥ ધર न तस्य जन्ममरणे न तस्य सदसद्वती। न नाशः संभवत्यस्य चिन्मात्रनभसः कचित्॥ ४३ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयं चिदादित्योऽतिनिर्मलः। आहो न चिरकालेन शान्तासि परिनिर्वृता ॥ ४४

अधिष्ठानभूताया महाचितेरेक परं रूपं रूपान्तरम् । खल्न-शब्दो 'द्वे नाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त चैवामूर्त च' इत्यादिश्रीतप्रसि-दियोतनार्थः । यतः सा हि चित्स्फटिकमणिवज्जगतप्रतिबिम्ब-मसक्रैव धत्ते । सेयं जगत्सत्ता च व्यावहारिकेषु प्रातिभासि-केषु च समसमा खखाधिष्ठानानुसारिणी उदिता ॥ ३८ ॥ अतएव जगत्सत्ताया अधिष्ठानसत्तान्यत्वनिरूपणायोगान्याया-मात्रलमित्याह—अनन्ययैवेति ॥ ३९ ॥ अतएव नामरूपवि-शेषप्रस्थे जगत्सत्ता मायाशवस्त्रहासत्तात्मनैव परिशिष्यते । मायाबाधे तु आनन्दैकरससन्मात्ररूपमात्मानं खयमनुभवती-खाह-विचित्रतेवेति । भाण्डानामलंकारजातानां विचित्रता यथा प्रविलये हेमतया हेमसत्तात्मनैवोदेति तथेखर्थः ॥४०॥ सत्तायां दर्शितन्यायेनैव जगद्वैचित्र्यस्फुरणरूपचिद्भेदानामपि विषयाकारभेदे मिथ्यालपर्यालोचने अपरिच्छित्रपरब्रह्मचिन्मा-त्रता पर्यवस्मतीत्याशयेनाह—स्वचित्तेनेति द्वाभ्याम् । यथा खप्रेन्द्रजालादी द्रवरवेन परिणतेन खचित्तेन सिद्धेषु समुद्राध-म्बुषु तरङ्गादि अनुद्यदप्युदेतीव तथा महाचितौ ब्रह्मण्यपि समष्टिवित्ताजगदनुद्यदप्युदेतीत्यर्थः। अनुदेतीति नश्रस्तिहन्तेन सहेति योगविभागात्समासरछान्दसो वा ॥ ४१ ॥ अस्त्वेवं किं ततस्तत्राह—तदिति । तत्तत्र खप्ने चिद्रूप आसीव चित्त-कल्पितजलहर्पेण रूपवान् संस्तरक्षादिव्यभेदान्ययायातस्तत्रा-त्मव्यतिरिक्तं नाणुमात्रमि किंचिदस्ति । एवं चिन्मात्रनेवाई-जगद्वानविशेषमेदैः संपन्नो न परमार्थतः पूर्णेचिदात्मनो व्यतिरिक्तमणुमात्रमप्यस्तीत्यहंभावस्याप्यपरिशेषादनहं भावं चिन्मात्रमेवाततं विस्तीर्णमिखर्यः ॥ ४२ ॥ मरणं देह-वियोगो नाशो ध्वंस इति मेदः । सदसद्भती खर्गनरकौ ॥४३॥ तत्र प्रस्तुतविचारस्यावधी विश्रान्ति दर्शयति अच्छेय इति

4

દ્દ

O

C

निर्वामि ग्रमिन्धुक्तमासे निर्मन्दराब्धिवत्।
असदामासमत्यच्छमनन्तमजमञ्चुतम्॥ ४५
आत्माकाशमनाबाधममलं परमं चिरम्।
अनन्तमिद्माकाशं फलौधाश्चाफलादिकाः॥ ४६
सुरासुरयुतं विश्वमेतन्मयमक्तत्रिमम्।
पुंस्त्वकर्ममयी सेना सर्वं मृन्मात्रकं यथा॥ ४७
द्रष्टृहश्यमयी सत्ता चिन्मात्रैक्यमयी तथा।
इदमैक्यमिदं द्वित्वमहं नाहमितीति च॥ ४८
क इव ग्रमसंमोहः कथं कस्य कुतः क वा।
स्वमनन्तमनायासमुपशान्तास्सि संस्थिता॥ ४९

निर्वाणपरिनिर्वाणा गतमासे गतज्वरम् ।
अचेतनं चेतनं वा योऽयमाभाति चेतति ॥ ५०
भासमानात्म तद्र्पं खं महाचिति संस्थितम् ।
नेदं नाहं न चान्यच न भावाभावसंभवः ।
शान्तं सर्वं निरालम्बं केवलं संस्थितं परम् ॥ ५१
हत्थं विचारणपरापरमप्रबोधाद्रुष्ट्रा यथास्थितमिदं परमात्मतस्वम् ।
संशान्तरागभयमोहतमोविलासा
शान्ता वभूव शरदम्बरलेखिकेव ॥ ५२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ दे॰ मो॰ निर्वा॰ चुडालाप्रबोधो नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९

3

विसष्ट उवाच ।
दिनानुदिनमित्येषा स्वात्मारामतया तया ।
नित्यमन्तर्मुखतया वभूच प्रकृतिस्थिता ॥
नीरागा निरुपासङ्गा निर्द्रन्द्वा निःसमीहिता ।
न जहाति न चादत्ते प्रकृताचारचारिणी ॥
परितीर्णभवाम्भोधिः शान्तसंदेहजालिका ।
परमात्ममहालाभपरिपूर्णान्तरात्मना ॥
विधान्ता सुचिरं श्रान्ता घनलन्धपदान्तरे ।
सर्वोपमातीततया जगामाव्यपदेश्यताम् ॥

॥ ४४ ॥ आसे 'तासस्योः' इति सलोपः । असन् दश्याभासो यस्मिन् ॥ ४५ ॥ चिरं कालिकपरिच्छेदरहितम् । अनन्तं देशवस्तुकृतपरिच्छेदरहितम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तप्राणिकर्म-फलोषाश्रकारात्तस्याधनव्यापाराः अफलादिका निष्फलसाधना वृथा चेष्टाश्व इदमाकाशमेव नान्यत् ॥ ४६ ॥ पुंस्लं कुला-लादिपुरुषजातिस्तरकर्ममयी तित्रिर्मिता । अथवा पुंस्तं प्रति-मायां कल्पिता पुरुषजातिः। कर्म तदनुरूपचलनादि । तन्मयी तत्त्रचुरा बाछनिर्मितमृत्सेना ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ किंदृत्तचतुष्टयं प्रकारभोक्तिनिमित्ताधिकरणसंभावनाप्रतिवेधार्थम् । स्वं पारमा-र्थिकं रूपं प्राप्येति शेषः ॥ ४९ ॥ निर्वाणे मोक्षयुखे परितो निर्वाणा निर्वता । गतभवज्वरं गतं कण्ठचामीकरवत्प्राप्तं खरू-पमेबाहमासे । यदचेतनं चेतनं वा आभाति । योयं तद्भोक्ता चेतति तदुभयं भासमानात्माभिनं यद्वश्च तद्वपं खं चिदाकाश-मेवेति परेणान्वयः ॥ ५० ॥ कि इदन्ताहन्तान्यतादिजगत्ख-भावमत्यक्लैव ब्रह्म नेत्याह—नेदमिति ॥ ५९ ॥ उक्तमेव संक्षिप्योपसंहरति---इत्यमिति । परमप्रबोधादाखन्तिकमोह-निद्रापगमात् संशान्ता रागादयस्तमोविलासा अवस्थात्रयस्वप्रा यसाः ॥ ५२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतालर्थप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

इति सा भामिनी तस्य चूडाला वरवर्णिनी। स्वलंपनैव हि कालेन यथा विदितवेद्यताम्॥ यथायमागतः कश्चिज्ञागतः स्पन्दविभ्रमः। तथा विलीयते सर्वं तत्त्वज्ञानवति स्वयम्॥ अदृष्टसकले शान्ते पदं विश्वान्तिमेत्य सा। रराज शरद्काभ्रमालेव गतसंभ्रमा॥ अनाकुला समालोकमसंबन्धात्मनात्मिन। जरद्ववीय शैलामं सतृणं प्राप्य संस्थिता॥

> अपूर्वश्रीमती दृष्ट्वा प्रष्टया घरणीशृता । चृदालया स्वशोभाया हेतुबीघोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

एवं विचारेणोत्पन्नस्य तत्त्वज्ञानस्याभ्यासाद्दिनकमेणोत्तरो-शरभमिकाप्रतिष्ठामाह--दिनानुदिनमिति । दिनानुदिनं दिन-क्रमेण । नित्यमभीक्ष्णं प्रकृतिः खाभाविकं रूपं तस्मिन् स्थिता प्रतिष्ठिता ॥ ३ ॥ तस्यास्तत्प्रतिष्ठालक्षणान्याह्— नीरा-गेत्यादिना ॥ २ ॥ परिपूर्णो देहादान्तरान्मनसोऽप्यान्तरः प्रस्मातमा यस्याः ॥ ३ ॥ सुचिरं प्राक्संसारश्रान्ता निरतिशयानन्दधने ज्ञानलब्धे पदान्तरे परमपदे विश्रान्ता ॥ ४ ॥ ५ ॥ कथमल्पकालिकेन बोधेनानादेर्महरामस्य भ्रमस्य निष्टत्तिस्तत्राह-यथेति । कश्चिदनिर्वचनीयखरूपः सम्द्विश्रमः अविदुपि अक्रस्मादेवागतस्तथा तत्त्वज्ञानयति सर्वे निःशेषमकस्मादेव विलीयत इत्यर्थः । दीर्घपाठे यथा विलीयते तथा तत्त्वज्ञानवति बभूवेति कथंचिद्याख्येयम् ॥६॥ न दृष्टं सकलद्वेतं यत्र तथाविधे पदे ॥ ७ ॥ यथा जरद्भवी वृद्धागोदुरारोहतमं सैतृणोदकं समालोकं तुस्यातपचन्द्रिकोपभो-गरीलाप्रं देवात्प्राप्य भनाकुला संस्थिता भवति तद्वत्सापि समालोकं जात्रदादिसर्वावस्थास्वेकरूपप्रकाशं प्रत्यगारमानं जा-

१ मूलस्यं तृणपद्मुदकस्याप्युपलक्षणमित्यर्थः.

स्वविवेकघनाभ्यासवशादात्मोदयेन सा। भूगुभे शोभना पुष्पलतेवाभिनवोद्गता॥ ९ अथ तामनवद्याङ्गी कदाचित्स शिखिष्वजः। १० अपूर्वशोभामालोक्य स्मयमान उवाच ह ॥ भूयो योवनयुक्तेव मण्डितेव पुनःपुनः। ११ अधिकं राजसे तन्वि जगद्राजवती यथा॥ प्रपीतासृतसारेव लब्धा लभ्यपदेव च । आनन्दापूरपूर्णेव राजसे नितरां प्रिये॥ १२ उपशान्तं च कान्तं च दधाना सुन्दरं वपुः। अभिभूयेन्द्रमायासि श्रियं कामपि कामिनि ॥ १३ अभोगकृपणं शान्तमृजितं समतां गतम्। गम्भीरं च प्रशान्तं च चेतः पश्यामि ते प्रिये॥ १४ तणीक्रत्य त्रिभवनं पीताखिलजगद्गसम्। अनन्तोड्डामरं सौम्यं मनः पदयामि ते प्रिये ॥ १५ न केनचिन्महाभागे विभवानन्दवस्तुना। चेतस्तव तुलामेति मरुक्षीरान्धिसुन्दरम्॥ १६ तैरेव वालकद्लीमृणालाङ्करकोमकैः। अक्रैः स्थितिमनुप्राप्तेर्वृद्धि यातेव लक्ष्यसे ॥ १७ तथा तेनैव तेनैव संनिवेशेन संस्थिता। अन्यतामुपयातासि लतेव ऋतुपर्यये॥ १८ किं त्वया पीतममृतं प्राप्तं साम्राज्यमेव वा । अमृत्युमेव संप्राप्ता प्रयोगायोगयुक्तितः॥ १९

प्रदाह्यसंबन्धातम्ना स्वभावेन प्राप्य तस्मिन्नेवातमन्यनाकुला संस्थितेत्यर्थः ॥ ८ ॥ आत्मनस्तत्त्वदर्शनप्रयुक्तेनोदयेन पूर्णा-नन्दखस्याविर्मावेण ॥ ९ ॥ स्मयमानो विस्मयस्मेरास्यः ॥ १० ॥ जगत् जगती । 'वर्तमाने प्रपन्महद्गृहज्जगच्छतृवच' इति शतृबद्भावातिदेशात् 'उगितश्व' इति ख्रियां डीप् छान्दस-लात्र कृतः । राजवती राजन्वती पूर्णचन्द्रवती वा यथा राजते तद्वद्वानसे ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ कर्जितं विवेको-जितम् । शान्तं शमादिगुणवत् । प्रशान्तमुपरतचापलम्॥१४॥ ॥ १५ ॥ महरिव निजेलजाज्यतया क्षीरान्धिरिव पूर्णतया च सुन्दरम् ॥ १६ ॥ स्थितिमचापल्यमुपायातैस्तेः प्राक्तनैरेवाक्नै-रवयवैस्तेजोतिशयेन वृद्धि यातेव ॥ १७ ॥ ऋतपर्यये शिशि-राख्ये ॥ १८ ॥ प्रयोगो रसायनादिप्रयोगः । आयोगो मन्त्रा-दिसिद्धिर्क्षक्यो राजयोगदृठयोगोपायास्ताभ्य इति ततः ॥१९॥ ॥ २० ॥ एवं राज्ञा पृष्टा चुडाला खशोभातिशयनिमित्तं परि-च्छिन्नदेहारमतात्यागः पूर्णाद्वितीयब्रह्मात्मलामश्रेति गूढोत्तया प्रथममुत्तरमाह-नाकिचिदिति । अहमिदं सर्वे मुढजनप्रसि-द्धमिदं शरीरातमत्वं त्यक्ता न विद्यन्ते अकिचित् अशेषाः । किंचित्रामरूपाकारा यस्मिस्तयाविधं ब्रह्मात्मलं तत्त्वबोधेन आगता नतु मन्त्ररसायनादिसाधनमात्रेण । किचित्किचिद्दर्पं तुच्छं च तत्तिसिद्धाकारं तेनेत्यर्थः । अथवा अहं किंबिरिक-चिदाकारं जामत्खप्रावस्थाद्वयं नागता नाप्यकिचिदाकारं

राज्याधिन्तामणेर्वापि त्रैलोक्याद्वा स्वयाधिकम्। अप्राप्तं किमनुप्राप्तं नीलोत्पलविलोचने॥ २०

चुडालोवाच ।

नाकिचित्किचिदाकारमिदं त्यक्त्वाहमागता। न किंचित्किचिदाकारं तेनासि श्रीमती स्थिता २१ इदं सर्व परित्यज्य सर्वमन्यन्मयाश्रितम्। यत्तत्त्वत्यमसत्यं च तेनासि श्रीमती स्थिता ॥ २२ यर्तिकचिद्यन्न किंचित्र तज्जानामि यथास्थितम्। यथोदयं यथानादां तेनासि श्रीमती स्थिता ॥ २३ भोगैरभुकेस्तुष्यामि भुकैरिव सुदूरगैः। न हृप्यामि न कुप्यामि तेनासि श्रीमती स्थिता २४ एकैवाकाशसंकाशे केवले हृद्ये रमे। न रमे राजलीलासु तेनासि श्रीमती स्थिता॥ २५ आत्मन्येव हि तिष्ठामि ह्यासनोद्यानसम्बस् । न भोगेषु न लजासु तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥ २६ जगतां प्रभुरेवासि न किंचिन्मात्ररूपिणी। इस्रात्मन्येच तुष्यामि तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥ २७ इदं चाहमिदं नाहं सत्या चाहं न चाप्यहम्। सर्वमस्मि न किंचिश्व तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥ २८ न सखं प्रार्थये नार्थ नानर्थ नेतरां स्थितिम्। यथाप्राप्तेन इप्यामि तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥

सुपुप्तरूपं किंतु इदमवस्थात्रयमपि लक्ला तुरीयस्वभावमागता तेन हेत्रनेत्यर्थः। अथवा अहं कर्मोपासनादिना किचित्किचिदा-कारं इन्द्रचन्द्रादिहिरण्यगर्भान्तं पदं भावनाकृततादातम्यसिष्ट्या नागता। नाप्यकिचित्किचिदाकारमव्यक्तरूपं किलिदं सर्वे त्यक्ला खस्त्ररूप एवावस्थिता तेन हेतुनेत्वर्यः । अथवा अहमिदं लिक्नदेहपरिच्छित्रं जीवाकारं त्यक्ला यन्नाकिषितिकिषित्सर्वाः त्मक आकारो यस्य तथाविधं परमार्थतो न किंचित्किचिदा-कारं च ब्रह्म तदागता प्राप्तवती तेन हेतुनेखर्थः ॥ २१ ॥ उक्तमेवार्थं भक्न्यन्तरेण पुनराह—इदमिति । इदं परिच्छिन्नं सर्वं परित्यज्य सर्वमपरिच्छिनमन्यन्मया आश्रितम् । किं तत् । यत्तत् सलमगाधितं न विद्यते सन्मृते लदम्ते च प्रपश्चरूपं यत्रेत्यसत्यं च । तेनेति प्राग्वत् ॥ २२ ॥ न किंचिर्तिकविदा-कारमिति खोक्ति भक्त्यन्तरेण वर्णयति-यदिति । यद्वस्तु उदयः सर्गस्तमनतिक्रम्येति यथोदयं सृष्टिहशा दश्यमानं कि-चित्परिच्छिन्नं यदेव च यथानाशं प्रक्यहत्ता दश्यमानं न किविच भवति तद्यया येन कृटस्थभूमानन्दस्वभावेन स्थितं जानामी-लार्थः ॥२३॥२४॥ हृदयपदेन हार्दे मह्म लक्ष्यते ॥२५॥ आसनो-द्यानादिषु देहे स्थितेऽप्यहं पूर्णात्मन्येव तिष्ठामा नतु भूषणस-न्मानादिशारीरमानसभोगेषु तदलाभप्रयुक्तलबासु वा ॥ २६ ॥ ॥ २७॥ इदं देहादि चालद्वपभोग्यमधिष्ठानदशा, आरोपित-दशा तु नाहम् ॥ २८ ॥ नानर्थ जिहासामीति शेषः ॥ २९ ॥

तज्ञविद्वेषराजामिः प्रहामिः शास्त्रदृष्टिमिः। रमें सह बयस्यामिस्तेनाहं श्रीमती स्थिता॥ ३० पश्यामि यञ्जयनरिहमभिरिन्द्रियर्वा चित्तेन चेह हि तदङ्ग न किंचिदेघ।

पश्यामि तद्विरहितं तु न किंचिदन्तः पश्यामि सम्यगिति नाथ चिरोदयासि ३१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चुडालारमलामो नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०

8

O

वसिष्ठ उघाच । पवमात्मनि विश्रान्तां वदन्तीं तां वराननाम्। अबुद्धा तद्विरामर्थं विहस्योवाच भूपतिः॥

शिखिध्वज उवाच । असंबद्धप्रलापासि वालासि वरवर्णिनि । रमसे राजलीलाभी रमस्वावनिपात्मजे॥ ર किंचिस्यक्त्वा न किंचियो गतो प्रत्यक्षसंस्थितम्। त्यक्तप्रसम्बद्धाः स कथं किल शोभते॥ भोगैरभुकैस्तुष्टोऽहमिति भोगान्जहाति यः। रुषेवासनशय्यादीन्स कथं किल शोभते॥ 8 भोगाभोगे परित्यज्य खे शून्ये रमते तु यः। एक एवाखिलं त्यक्त्वा स कथं किल शोभते ॥ वसनाशनशय्यादीन्सर्वान्संत्यज्य धीरधीः। यस्तिष्ठत्यात्मनैवैकः स कथं किल शोभते॥ नाहं देहोऽन्यथा चाहं न किंचित्सर्वमेव च। पवं प्रसापो यस्यास्ति स कथं किल शोभते ॥

वयस्याभिः सखीभूताभिः । तनुः क्रशीभूतो विद्वेषो रागश्र यामिस्तथाविधामिः खप्रज्ञाभिः शास्त्रदृष्टिभिश्च सह सो । अथवा शाख्रदृष्टिभिः करणस्तनुरत्न्पीभूतो विद्वेपो रागध यासां तथाविधाभिवैयस्याभिः सस्त्रीभिः सह रमे ॥ ३०॥ अङ्ग हे नाथ, इह जगति अहं नयनरिमिमिरन्यैर्वा इन्द्रियेश्वित्तन च यत्पश्यामि तत्र किंचिदनृतमेव । तेनेन्द्रियमनोदर्येन विरहितं तु न किचित्रिष्प्रपर्ध वस्तु अन्तः पश्यामि । यतो हेतोरिति वर्णितरीत्या अन्तर्वहिश्व सम्यगबाधितरूपं पर्यामि । तेन हेतुना चिरं संततमुदिता परमाभ्युदयश्रीमती अस्मीलर्थः॥३१॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पुकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अज्ञेन राज्ञा तद्वाक्यस्यासंबद्धत्ववर्णनम् । सेचरस्वादिसिद्धीनां बीजं चात्र निरूप्यते ॥ १ ॥ एवं वर्णितप्रकारेण खशोभातिशये निमित्तानि वदन्तीम् ॥ १ ॥ बाला अप्रौदसुद्धिरसि । परबोधानुकूलवाक्योचारण अकुशलेति यानत् ॥ २ ॥ असंबद्धप्रलापतामेव नाकिचित्कि-विवित्याद्यकेर्दर्शयति-किविदिति । साकारस्यैव शोभा प्र-सिद्धा । यस्त्वाकारसामान्यं त्यक्ता निराकारतां गतः स शन्य- यत्पश्यामि न पश्यामि तत्पश्याम्यन्यदेव यत् । प्रलाप इत्यसंन्यस्य स कथं किल शोभते॥ तस्माद्वालासि मुग्धासि चपलासि विलासिनि । नानालापविलासेन कीडामि कीड सुन्दरि॥ प्रविद्यादृहासेन शिखिध्वज इति प्रियाम्। मध्याहे स्नातुमुत्थाय निर्जगामाङ्गनागृहात् ॥ १० कष्टं नात्मनि विश्वान्तो महचांसि न बुद्धवान्। राजेति खिन्ना चूडाला स्वव्यापारपराभवत्॥ ११ तदा तथाङ्क तत्राथ तारगाराययोस्तयोः। ताभिः पार्थिवळीलाभिः कालो बहुतिथो ययौ १२ एकदा नित्यतृप्ताया निरिच्छाया अपि स्वयम् । चूडालाया बभूवेच्छा लीलया खगमागमे॥ १३ खंगमागमसिद्धार्थमथ सा नृपकन्यका। सर्वभोगाननादृत्य समागम्य च निर्जनम्॥ १४ एकैवैकान्तनिरता स्वासनावस्थिताङ्किका। अध्वेगप्राणपवनचिराभ्यासं चकार ह ॥ 866

प्रायः कथं शोभेतेत्यर्थः ॥ ३ ॥ भोगरभुक्तस्तुष्यामीति यस्त्व-योक्तं तदप्यसंबद्धामत्याह-भोगैरिति । हवा कोधेनेव ॥ ४ ॥ एकैवाकाशसंकारो केवले हृदये रमे इति यत्त्वयोक्तं तद्य्य-संगतमित्याह—भोगाभोगे इति । खयं साक्षाद्धोगो मित्रग्-**खादीनामाभोजनमाभोगश्चेखनयोः समाहारं परिखञ्च** तत्मा-थनं वित्ताद्यखिलं च त्यक्ता य एक एव शुन्ये खे पिशाचवद्र-मते स किल शोभते इति कथं संगच्छतामित्यर्थः ॥ ५ ॥ धीरधीः अतिकोधादिव धेर्यमात्रबलेन शीतोणशुत्तुषादिदुः-खानि सहमान इलार्थः ॥ ६ ॥ इदं चाहमिदं नाहमिति यदुक्तं तदप्यसंबद्धमित्याह—नाहमिति ॥ ७ ॥ पर्यामि यप्र-यनरिममिरिन्दियेवें लन्ते यदुक्तं तत्तु सुतरामसंगतिमिति नैते शोभाहेतव इत्युपसंहरति--यदिति ॥८॥९॥१०॥ कष्टमिति । 'न चेदिहावेदीन्महती विनिष्टः' इत्यादिश्रुतिरिति भावः ॥ १९ ॥ अङ्गेति रामसंबोधने ॥ १२ ॥ खे गमागमो देववत्संचारस्तद्विषये इच्छा सभूव । तादशप्रारव्धशेषमलादिति भावः ॥ १३ ॥ १४ ॥ एकैवेति । अर्थादाङ्गः शतुजयाय द्वित्रिहायनं प्रवासकाले इति गम्यते । अन्यथा तत्पराधीना-यासास्या एकान्तनिरतलाययोगात् । अर्ध्वगस्य प्राणपवनस्य

श्रीराम उवाच। यदिदं इदयते किचिज्जगतस्थावरजंगमम्। स्पन्दच्युतं क्रियानाम्नः कथमित्यनुभूयते ॥ १६ कस्य स्पन्दविलासस्य घनाभ्यासस्य मे वद । **ब्रह्मन्बग**मनाद्यतत्फलं यह्नैकशालिनः॥ १७ आत्मन्नो वाप्यनात्मन्नः सिद्ध्यर्थे कीलयाथवा । कथं संसाधयत्येतद्यथा तद्वद् मे प्रभो॥ १८ वसिष्ठ उवाच। त्रिविधं संभवत्वद्धः साध्यं वस्तिवह सर्वतः। उपादेयं च हेयं च तथोपेश्यं च राघव॥ १९ आत्मभूतं प्रयत्नेन उपादेयं च साध्यते। ष्टेयं संखज्यते शात्वा उपेक्ष्यं मध्यमेतयोः॥ 20 यद्यवाह्यदनकरमादेयं यद्य सन्मते। तब्रिरुद्धमनादेयमुपेश्यं मध्यमं विदः॥ २१

निरं खेचरसिद्धनुकूढं भ्रमध्यादिदेशे निरोधाभ्यासम्॥ १५ ॥ खेचरसिद्धिप्रयोजकिनाप्रसंगन रामः कियासामान्ये निमित्तं जिज्ञासुराक्षिपति—यदिर्यामति । यदिदं स्थावरं जंगमं च जगत्तत्तर्व सन्दच्युतं क्रियया निष्पादितं दृश्यते । विना कर्त्रादिकारकस्पन्दं कस्याप्युत्पत्तेरदर्शनात् । तत्रैवं सति क्रिया-नाम्नः स्पन्दस्य कथं निष्पत्तिः । किं सक्रियादुतं कूटस्थात् । आदो आत्माश्रयोऽनयस्था वा । दितीये व्याघातः अविरामः फलानवस्था चेति कथं कियानाभ्रो वस्तुन उत्पत्तिरनुभूयते अनुभवपथमारोहति तद्वदेखर्थः ॥ १६ ॥ एवमाक्षिप्य प्रस्तुतं **पृच्छति**—कस्येति । एतत्खगमनादितिद्विजातं कस्य स्पन्द-विलासस्य फलं तद्दपि वदेखर्थः ॥ १७ ॥ अनात्मज्ञः सिद्ध्यर्थ आतम्बो लीलया वा एतित्सिद्धिजातं कथं केन क्रमेण संसाध-यति तदपि वदेत्यर्थः ॥ १८ ॥ भवदयमात्माश्रयानवस्था-**रिको दोषो यदि क्रियास्त्ररूपमात्रसिद्धये कार्**कापेक्षा स्यात । नतु तथा किंतु कियासाध्यस्य फलस्य । फलनिष्पत्तये हि प्रवृत्तानि कारकाणि नान्तरीयकतया कियामवलम्बन्ते । तया हि फलस्य साध्यता कारकाणां साधनतां च व्यवदेष्टं शक्यते। तथाच साध्यसाधनीभयविलक्षणा किया न साध्यापेक्षितसा-धनेभ्यः साबनान्तरमपेक्षत इति तस्यां सिक्क्यं कूटस्थं वा कारणमिति विकल्पा निरवकाश एवेत्याशयेन वसिष्ट उत्तरप्र-श्रसमाधानातुकूलं गीणमुख्यसाधारणं क्रियासाध्यं विभज्य द्श-यति—त्रिविधमिति । उपादानवृद्धिवपशीभृतं वस्त उपादेयं प्रकृतिविषयः । हानबुद्धिवेद्यं हेर्यं नियृत्तिविषयः । उपेक्षाबु-दिगम्यमुपेक्ष्यं तश्रीदासीन्येऽपि क्रियोपनारादनेनोपेक्षयायमः नर्यः कृत इति लोकं व्यवदारदर्शनाद्वीणं साध्यम् ॥ १९ ॥ तेषु फलवैलक्षण्यं दर्शयति—आत्मभृतमिति । आत्मनः खस्य भूतमनुकूलम् । एतयोईयोपादेययोर्मध्यमान्तरालिकम् ॥ २०॥ आहादनकरं साक्षात्परम्परया वा सुस्नानुकृत्या ।

सन्मतेर्विदुयो शस्य सर्वमात्ममयं यदा । त्रय एते तदा पक्षाः संभवन्ति न केचन ॥ २२ केवलं सर्वमेवेदं कदाचिहीलया तया। उपेक्षापक्षनिश्चित्तमालोकयति वा नवा॥ રરૂ श्रस्योपेक्षात्मकं नाम मुढस्यादेयतां गतम्। हेयं स्फारविरागस्य शृणु सिद्धिक्रमः कथम् ॥ २४ देशकालक्रियाद्वव्यसाधनाः सर्वसिद्धयः। जीवमाहादयन्तीह वसन्त इव भूतलम् ॥ २५ मध्ये चतुर्णामेवैषां क्रियाप्राधान्यकस्पना । सिद्ध्यादिसाधने साधो तन्मयास्ते यतः क्रमाः २६ गुटिकाञ्जनखङ्गादिकियाक्रमनिरूपणम्। तत्रासतां च दोयोऽत्र विस्तारः प्रद्यतार्थहा॥ २७ रत्नौपधितपोमन्त्रक्रियाक्रमनिरूपणम् । आस्तामेय किलेपोऽपि विस्तारः प्रकृतार्थहा ॥ २८

दुःखनिवारणसाधनस्यापि सुखानुकूळलादेव तत्साधनोपादान-सिद्धेरिति भावः । तद्विरुद्धं सुखविधाति । दुःखस्यापि स्वास्थ्य-मुखविधातिलादेव द्वेष्यलादिति भावः ॥ २९ ॥ त्रय एते साध्यभेदा अज्ञानामेवेखाह—सन्मतेरिति ॥ २२ ॥ विदुध-स्तृतीयकल्पाभ्यूपगमेऽपि न कश्चिहोष इल्याशयेनाह—केवल-मिति ॥ २३ ॥ एकभेय वस्तु एकस्थैव पुरुपस्य बोधरांगवरा-ग्यानस्थामेदेन त्रेघा संपदात इत्याशयेनाह—जस्येति । एवं सिद्धार्थं छीलयाथवा इति प्रश्नांशयोरूपपत्तिमुक्ता कथं संसाध-यखेतदित्यंशरामाधानं श्रावयति—श्वाण्वत्यादिना ॥ २४ ॥ तत्र सिद्धितारतम्ये चिराचिरयक्षापेक्षायां च निर्मित्तान्याह-देशेति ॥ २५ ॥ एषां देशादीनां चतुर्णा मध्ये श्रीशैलाद्युत्तम-देशादिचतुष्टयमेलने शीघ्रं सिद्धिलाभा**योगमञ्ज**जपादिकियाया इतरदेशाद्यनुष्टितक्रियापेक्षया प्राधान्यस्योत्कर्षस्य कल्पना भ-वति । फलोत्कपोंऽपि तदनुसार्येवेत्याह—सिद्धादीति । य-तस्ते सिद्धाद्यः फलोत्कर्षकमा अपि तन्मयास्तादशिकयो-त्कर्षानुसारिण इत्यर्थः ॥ २६ ॥ अस्तेवं किं ततस्तत्राह—गु-टिकेति । तत्र खगमनादिसाधनानि सिद्युटिकासिद्धाञ्जनसिद्ध-खङ्ग सिद्धपादुकादीन्यपि उज्जामरतः श्रयोगिनीकल्पादिविस्तृतव-हुप्रन्थप्रसिद्धानि सन्ति । 'कथं संसाधयन्त्येतद्यथानद्दद मे प्रभो' इति खदीयप्रश्रस्य तिकयाकमनिरूपणं कर्तव्यमिति चंदिमप्रायस्तर्धावस्तृतोत्तया तदसंभवात्तद्विस्तारः कार्यः । तेन तत्र तासु सिद्धिषु विषये असतामजिज्ञासूनामतत्त्वविदां च लदांतरिकश्रोतुणां देवादमिलाघोदये तत्रैव प्रवृत्त्या महान्दोषः स्यात्तवापि स विस्तारः अकृतस्यात्मतत्त्वश्रवणार्थस्य विघ्ररूप-त्वाद्विघातक इति न तनिरूपणमत्रोचितमित्यर्थः ॥ २७ ॥ एध न्यायो मणिमन्त्रादिसाध्यसिद्धिक्रमनिरूपणे श्रीशैलादिसि-द्धदेशनिवाससाध्यसिद्धिक्रमनिरूपणे च योज्य इत्याह—रन्नेति

१ मूदविरागावस्थेति पाठः.

श्रीशैले सिखदेशे च मेर्वादी वा निवासतः। सिद्धिरित्यपि विस्तारः कृतार्थप्रकृतार्थहा ॥ २९ तसाच्छिखिध्वजकथाप्रसङ्गपतिनामिमाम्। प्राणादिपवनाभ्यासिक्रयां सिद्धिफलां शुणु ॥ ३० अन्तस्था द्याखिळास्यक्त्वा साध्यार्थेतरवासनाः। गुदादिद्वारसंकोचान्स्थानकादिकियाक्रमः॥ भोजनासनशुद्धा च साधुशास्त्रार्थभावनात्। स्वाचारात्युजनासङ्गात्सवेत्यागात्युखासनात् ३२ प्राणायामधनाभ्यासाद्राम कालेन केनचित्। कोपलोभादिसंत्यागाङ्गोगत्यागाश्च सुवत ॥ त्यागादाननिरोधेषु भृशं यान्ति विधेयताम्। प्राणाः प्रभुत्वात्तऋस्य पुंसोभृत्या इवाखिलाः ३४ राज्यादिमोक्षपर्यन्ताः समस्ता एव संपदः। देहानिळविधेयत्वात्साध्याः सर्वस्य राघव ॥ परिमण्डलिताकारा मर्मस्थानं समाथिता।

द्वाभ्याम् ॥ २८ ॥ हे कृतार्येति रामसंबोधनं तालां सिद्धीनां बाददादृष्ट्या तुच्छतेति योतनार्थम् ॥ २९ ॥ वर्हि मध्यश्लो व्यर्थः संपन्न इति रामस्य विषादी माभूदिति प्रस्तुतज्ञानदाढ्यी-पयोग्यानुषश्चिक्षखगमादिसिद्धिसाधनं वर्ण्यमानकथासंबद्धनवि-स्तारं प्राणायामक्रमं श्रावयति—तस्मादिति ॥ ३० ॥ तत्रादी यमनियमप्रतिष्ठे तद्वीजप्रदर्शनेन संक्षिप्याह-अन्तस्था इति साध्यार्था इतराः साधनार्थीश्र वासनास्त्रक्ता स्थानकानि सि-द्धाधासनानि आदिपदारसमकायशिरोधीवतानिश्वरुतानासाम्रसं-प्रेक्षणमित्यादियोगशास्त्रोक्तकियाकमपरिप्रहः ॥ ३१ ॥ तमेव कियाकममनयुत्य प्रपञ्चयति-सोजनति । साधु सम्यग्योग-बाषार्थस्य भावनात्परिशीलनात् ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ त्यागे रंचनं आदाने पूरके निरोधे क्रम्मके च भुशमभ्यसेषु तज्ज्ञस्य योगिनः । प्रभुलात्प्राणस्वामित्वसंपत्तेर्लेकिकस्य पुंसः प्रभोर्नुस्या इव अखिलाः प्राणा विधेयतां स्वाधीनतां यान्तीत्यर्थः ॥३४॥ प्राणानां स्वाधीनत्वं तत्संबद्धसिद्धीनामपि स्वाधीनता मिछ्यती-त्याह—राज्येति । सर्वस्याधिकारिणः ॥ ३५ ॥ इदानीं सर्व-सिद्धीनां देहानिरुविधेयत्वमुक्तमुपपाद्यितुं सर्वदेहप्रस्तद्वास-सतिसद्द्वशाखप्रधाननाधीशताथिता मृलाधारादारभ्य आत्र-ह्मरन्ध्रं सप्तसु चकेष्वनुप्रविश्य निर्गतां मूलाधारे साधित्रिवलय-वेष्टनान्तः सप्तकुण्डालिनोशक्तिमभी सुषुप्रानाशी वर्णयति---परि-मण्डलिताकारेत्यादिना । परितः प्रमृतशाखामः परिवेष्टित-लात्परिमण्डलिताकारा अतएवान्त्राणामपि नाडीमिर्वेष्टनादान्त्र-बेप्टनिका नाम ॥ ३६॥ तां भूळाधारे स्वान्तर्गतकुण्डांळनी-संस्थानानुकूल्येन वर्णयति—वीणेति । वीणादण्डस्यापे मूल-भागे प्रसिद्धो रेखात्मकस्तन्त्रीमुखपरिवर्तनरूपः सिळलपरिवर्त-नरूपो वा य आवर्तस्तत्सदर्शा । लिप्या लेखनेन प्रदर्शने तु ॐकारस्यार्धमधींकारसास्य संस्थानमिव संस्थानं यस्याः । द्रविडाक्षरे पूर्वार्थमिव नागराक्षरे उत्तरार्थमिव वा तत्संस्थानं

आस्त्रवेष्टनिका नाम नाडी नाडीशताश्रिता॥ ३६ वीणाग्रावर्तसद्शी सलिलावर्तसंनिभा। **लिप्याधौकारसंस्थाना कुण्डलावर्तसंस्थिता ॥३७** देवासुरमनुष्येषु मृगनक्रखगादिषु । कीटादिष्वद्धजान्तेषु सर्वेषु प्राणिषृदिता ॥ 36 शीतार्तसुप्रभोगीन्द्रभोगचद्गसमण्डला । सिता कल्पाग्निविगलदिन्द्वद्वद्वकुण्डली ॥ ३९ उरोर्भुमध्यरन्धाणि स्पृशन्ती वृत्तिचञ्चला। अनारतं च सस्पन्दा पवमानेच तिष्ठति ॥ 80 तस्यास्त्वभ्यन्तरे तस्मिन्कद्रलीकोशकोमले। या परा शक्तिः स्फूरति वीणावेगळसद्गतिः॥ ४१ सा चोक्ता कुण्डलीनाम्ना कुण्डलाकारवाहिनी। प्राणिनां परमा दाकिः सर्वदाक्तिजवप्रदा ॥ अनिदां निःश्वसदृपा रुपितेव भुजंगमी। संस्थितोध्वींकृतमुखी स्पन्दनाहेतुतां गता ॥

छेध्यमित्यर्थः । 'अर्थ नर्पसकम्' इत्येकदेशिना समासः । 'ओमाडोब' इति परहपम् ॥ ३७ ॥ इयं च न मनुष्येष्वेव किंतु सर्ववाणिशरीरे विखाह—देवेति ॥ ३८ ॥ शीतेनार्तः शीतात्तिनवारणाय रहबद्धमण्डल इति यावत् । तथाविधस्य सप्तस्य भोगीन्द्रस्य भोगः कायस्तद्वद्वद्धं मण्डलं यथा । खिता शुत्रा । कल्पामिना विगलता अन्तर्यलयाकाररेखास्फुटितेने-न्द्रमा तुल्यं बदा कुण्डलीवलयाकृतिर्यया । अथवा कल्पते जरणसमर्था मवतीति कल्पोऽभिजाठसमिस्तेन विगलन् यो मुर्धि योगशास्त्रपिद्धश्रन्द्रः स एव विलीय मुलाधारे प्रसतो धनीभ्य तत्र बद्धकण्डलाङ्गतिस्तद्विस्थितेत्युत्प्रेक्षा ॥ ३९ ॥ करुपदेन करुमूलसंधिर्धुदं उक्षणयोच्यते । तत आरभ्य श्रमध्य-पर्यन्तं यानि रन्ध्राणि तानि स्पृशन्ती तेष्वनुस्यूता मनोवृत्ति-मिरन्तश्रमला बहिश्च पवमानेन प्राणादिना सस्पन्दा ॥ ४० ॥ तस्या मुळेऽन्तःसाधिविवलयाकारां कुण्डलिनीसंज्ञां चिच्छिक्ति दर्शयति—तस्या इति । तस्मिन्मुलाधारे वीणामूले दुर्वक्षेण तन्त्रीवेगेनेव उसन्ती परमसूक्ष्मा पराख्या सर्वशब्दमूलभूता गतिः शब्दब्रह्मात्मिका स्फूर्तिः सेव प्राणसङ्गानाभिहृद्यकण्ठ-देशेषूत्तरोत्तरं व्यक्ततरा पर्यन्ती मध्यमा वैखरीत्यादिभेदान् भजते इति । तथाचीक्तं मन्त्रशाक्षे 'चैतन्यं सर्वभूतानां शब्द-ब्रद्धेति यद्भिदुः । सत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम् । वर्णात्मनाविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः' इति । सार्वनाप्युक्तम् 'या सा मित्रावरुणसदनादुचरन्ती त्रिषष्टि वर्णानत्र प्रकटकरणैः प्राणसङ्घात्प्रसने । तां पदयन्तीं प्रथमसुदितां सध्यमां बुद्धि-संस्थां वाचं वके करणविशदां वेखरी च प्रयये ॥' इति ॥४५॥ सर्वासां प्राणेन्द्रियबुद्धादिशक्तीनामपि सत्तास्फूर्निप्रवृत्तिनिर्वा-हकलाजवप्रदा ॥ ४२ ॥ तत्र कथं प्राणशक्तिर्जवप्रदा तदाह-अनिशमिति । रेव समुखातप्राणमूर्थ्व अपानं चाघ आकर्षतीत्मनिशं निःश्वसद्भूपेत्पर्यः ॥ ४३ ॥

यदा प्राणानिलो याति हृदि कुण्डलिनीपदम् । तदा संविद्देखन्तभूततन्मात्रवीजभूः॥ 88 यथा कुण्डलिनी देहे स्फूरत्यक्ष इवालिनी। तथा संविद्देखन्तर्मृदस्पर्शवशोदया ॥ 84 स्पर्शनं सृद्नान्योन्यालिङ्गिका तत्र यस्त्रयोः । यथा संविद्वहेत्यश्चस्तथा कुण्डितनी जवात्॥ ४६ तस्यां समस्ताः संबद्धा नाड्यो हृदयकोशगाः। उत्पद्यन्ते विलीयन्ते महार्णव इवापगाः॥ 80 नित्यं पातोत्सुकतया प्रवेशोन्मुखया तया। सा सर्वसंविदां बीजं होका सामान्यदाहृता ॥ ४८ श्रीराम उवाच । आकल्पादनवच्छिन्ना चित्संवित्सर्वमस्ति हि । तस्मात्कण्डलिनीकोशात्केनार्थनोदयः स्फुटः ॥ ४९

वसिष्ठ उवाच ।

सर्वत्र सर्वदा सर्वं चित्संविद्विद्यतेऽनध।

कर्थ बुद्धिशक्तिजवप्रदा तदाह—यदेति । यदा हृदि स्थितः धाणः कुण्डलिन्या आकृष्टः रान् अपानवृत्त्या कुण्डलिनीपदं याति तदा भूततस्मात्राण्यपत्रीकृतनतान्येव वीजगपादानं यस्य तथाविधे अन्तःकरणे भवतीति भूजीवसंधित् रसृतिसंकल्पाध्य-वसायाभिमानरागदिवृत्तिभेदैरन्तरुदेतीत्वर्यः ॥ ४४ ॥ वर्ष चेन्द्रियशक्तिजवपदा तदाह—यथेति । एवं प्राणबुद्धोराहित-ब्रानिकयास्वशास्तः कुण्डलिनी देहे सृदः स्पर्धा विषयसंनि-कर्षी येषां तेषां चधुरादीनां वशोदया सती देहे यथायथा यादशभोजकारप्रदृष्टसामश्रीवैचित्र्येण स्फरति तथातथा तत्त-दिन्द्रियर्थेविशेषस्फूर्तितरफलभोगादिलक्षणा संविद्वदेतीत्पर्थः ॥ ४५ ॥ कथं मृदुसर्शवशानुगा तदाह—सर्शनमिति । कुण्डलिनी जवात्तथा स्फुरति यथा सृदना चक्षुरादिना विषय-सर्शनं प्रथममुदेति । तथाच तत्र यन्त्रं कार्यकरणसंघातं युनक्तांते यन्त्रयुः प्रमात। तस्य वृत्तिद्वारा बहिनिर्गतस्य बाह्य-विषयेण सह अन्योन्यमालिङ्गनमन्योन्यालिङ्गिहा । भावे श्वल । वृत्तिव्याप्तिप्रयुक्ता व्याप्तिहृदेति । तथाच यथा विषयावरण-भक्ने उचैः स्फुटतरा संधिद्धटादिप्रथा उदेति तथा तेनतेन त्रकारेणेखर्थः ॥ ४६ ॥ तत्र मुलाधारस्थायाः कुण्डलिन्याध-क्षरादिप्रवर्तने नाड्यो द्वारमित्याशयेनाह--तस्यामिति । उत्प-चन्ते प्रतायन्ते । विलीयन्ते संक्रनन्ति ॥ ४७ ॥ कथमत्प-द्यन्ते विलीयन्ते च तदाह—निल्यमिति । प्राणात्मना ऊर्ध्व-पातोत्सुकत्या अपानात्मना अधःप्रवेशोन्सुखया तया। उक्त-मुपसंहरति - सेति । सामानी साधारणी । समानशब्दाद्वाव स्वार्थे वा व्यञ्जि डीपि 'हलस्तद्धितस्य' इति यलोपः ॥ ४८ ॥ अपरिच्छित्रायाश्चितो मुलाधारे नाडीमूळ परिच्छित्रकुण्डलि-न्यास्यस्वांशादुद्भयः कथं किमर्थं चेति रामः पृच्छति-आक-ल्पादिति कारुतः सर्वेमिति वस्तुतश्चापरिच्छित्रः । देशकृतप-रिच्छेदाभावस्थापि वस्तुकृतपरिच्छेदाभावेन्तर्भाव इत्याशयेनो-

कित्वस्या भूततन्मात्रवशादभ्यदयः कचित्॥ सर्वत्र विद्यमानापि देहेषु तरहायते। सर्वगोऽप्यातपः सौरो भित्त्यादौ वै विज्ञस्भते॥ ५१ कविष्ठष्टं कवित्स्पष्टं कविद्विञ्जनतां गतम्। यस्त वस्तुनि दृष्टं तत्तत्सद्भावैर्विजृम्भितम् ॥ ५२ पतद्भयः ऋमेणाहं शुणु वश्यामि तेऽनघ। देहे स्वे च यथोदेति भृशं संविन्मयक्रमः॥ 43 चेतनाचेतनं भूतजातं व्योम तथाखिलम् । सर्वे चिन्मात्रसन्मात्रं शुन्यमात्रं यथा नभः ॥ વ્ય तदि चिन्मात्रसन्मात्रमयिकारं स्वनामयम्। कचित्स्थितं संविदेव भृततन्मात्रपञ्जकम् ॥ ५५ तत्पञ्चधा गतं द्वित्वं लक्ष्यसे त्वं स्वसंविदम्। अन्तर्भूतविकारादि दीपाद्दीपशतं यथा॥ 46

भयोरेवोपादानम् ॥ ४९ ॥ वसिष्ठस्त् तर्हि कालकृतपरिच्छे-दामाबोऽपि तत्रान्तर्भृत एवेति पृथगुपादानं व्यर्थम् , यदि स्पष्टीकरणाय तस्य प्रथगुपादानं तहिं देशकृतपरिच्छेदाभावेऽपि तत्समानमिति त्रितयानुवादन्याजेन दर्शयक्षिराकाराया निर्वि-षयायाध चितो जीवाकारेण घटादिगोचरतया वामित्यक्तयर्थ तदा संबिद्धदेखन्तर्भुततन्मात्रबीजभूरित्युक्तार्थं विस्तराद्विवरि-ष्यन् स्थृलसुस्मदेहद्वयाकारपरिणतभूतसापेक्षेत्र चितो विशेषा-भिव्यक्तिरित्याह—सर्वत्रेत्यादिना ॥ ५० ॥ ननु देशकृतपरि-च्छेदाभावे संवित्सर्वत्र भासतेत्वाशक्क्षोपाधिवशादेव तस्याः स्फ्रटीभाव इति सद्दशन्तमाच्छे—सर्वत्रेति । तरलायते बुद्धै। अवच्छेदप्रतिबिम्बनाभ्यां द्विगुर्णाकुल प्रवेशाद्वहलोभूता जल-सर्यकबद्धदिनाचल्याच्याश्येभवर्ताखर्यः । तत्रोपाधिकृतविहः भावेन रफुटीनाचे इष्टान्तमाह—सर्वेग इति ॥ ५९ ॥ तत्रा-प्युपाधिमालिन्यतारतम्येन चिद्मिव्यक्तितारतम्यविद्याह— क्रचिदिति । मृच्छिठादिवसुनि तन्द्रिस्तु आंवधाजाङ्येनाभि-भवात्तप्तवारिस्यशेखांभव नष्टमदर्शनं गतम् । देवमनुष्यादिलिङ्गे तु सप्टमिन्यक्तम् । इक्षादिलिङ्गेषुत्कृष्टां छत्रतां वहिः संवे-दनविवेकाक्षमतां गतं दृष्टम् । चिदंश इव न सत्तांशे तारतम्य-मिलाह—तदिति । तेषां त्रिविधोषाधीनां सर्वानुभवसिद्धैः राद्भावरेव लिङ्गेस्तत्सर्वत्र विज्ञम्भितमन्भिभत्तामित्यर्थः ॥५२॥ उक्तमेवाभिव्यक्तितारतम्यं कमादासगैसमाप्तेर्निरूपयितुं प्रति-जानीते—एतदिति । सं मनुष्यादिदेहे चात्पशस्थावरादिदेहे यथा यादशतारतम्येन॥५३॥तदुपोद्धातेन मुक्सस्यूलभृताध्यास-प्रपद्मनाय सर्वाधिष्ठानसिंदेक्ररसं सर्वप्रपद्मत**द्धमंशू**न्यमात्मत-स्वमार्दे। निर्दिशति—चेतनेति । नभो नभोवदसङ्गं विभु सुक्ष्मं च ॥५४॥ तासिस्त्रथेव स्थिते मायाकल्पितेकदेशे आकाशादिसुक्म-भूतानां कमाद्ध्यासासदेव भूतमात्रात्मरूपकं स्थितमिखाह— तदीति॥५५॥ तत् तन्मात्रपत्रकं प्राणो मनोबुद्धिश्लीनेन्द्रियं कर्मे- स्वसत्तामात्रकेणैव संकल्पलयक्षिणा।
पञ्चकानि वजन्तीह देहत्वं नानि कानिचित् ॥ ५०
कानिचित्त्यंगादित्वं हेमादित्वं च कानिचित् ।
कानिचिदेशनादित्वं द्वयादित्वं च कानिचित् ।
कानिचिदेशनादित्वं द्वयादित्वं च कानिचित् ।
एवं हि पञ्चकस्पन्दमात्रं जगदिति स्थितम् ।
चित्संविदत्र सर्थत्र विद्यते रघुनन्दन ॥ ५९
केवलं पञ्चकवशादेहादी चेतनामिधा ।
जडस्पन्दामिधा कापि स्थावरादी जडामिधा ६०
यथा स्तन्धः स्थितो वीचिरिव स्थलमिवास्थितः ।
पञ्चकेषु तथैतिबालोलक्ष्मा जडान्विता ॥ ६१
दतः सीम्य इतो लोलः किमव्धिरिति नो यथा ।
विकलपदी तथैवैतत्पञ्चकं हि जडाजडम् ॥ ६२
देहादिपञ्चकं जीवः स्पन्दः शैलादिकं जडम् ।

न्द्रियमिति पश्चया गर्त लिक्कशरीरं प्रतिबिम्बनया प्रविद्य दी-षाद्दीपदातामेत्र संपन्नम्लं स्वसंबिदगन्तरेता जनमादिविकारा आदिपदान्नाप्रदायवस्थाभेदाश्च यसिस्तथाविषं द्विलं जीव-भावभिति यावतः। एक्षनं एक्षयति । छान्दसः उपग्रहस्यख्यः ॥ ५६ ॥ कानिचिहिक्षारम्भपरिशिष्टाने पनकानि जीवस्य वेवसनुष्याद्याकारवासनानुसारिसंकरपलवरूपिणा खसत्तामात्र-केणेव पञ्चीकरणद्वारा स्थलदेहत्वं जजन्ति ॥ ५७ ॥ देहप्रकर-णाढेमादिलं घनुरादिखावरदारीरताम् । अथवः तियंगादिखन मिलादिपद।देव स्थावरदेहपरिष्ठहः । हेमादिलभिल्यनेन स्वर्ण-रजतम्बर्धरोपलक्षितब्रह्माण्डत्वं तदन्तर्गतभुवनादिभोग्यतां चे-स्पर्थः ॥ ५८ ॥ अस्त्येयं किं ततस्तत्राह—एवं हीति । स्थितं सिद्धम् । तार्ध्वविष्ठानचतन्त्रं सर्वत्रास्तीति घटायपि चेतनं कि न स्पात्तत्राह—-चिदिति ॥ ५९ ॥ पञ्चकवशासैतन्यामिव्यञ्ज-कप्राणादिवशकघटितलिङ्गदेहप्राधान्यादेव मनुष्यदेहादी सुख्या चेतनामिया । कापि तिर्यक्षु लिङ्गस्थूलदेहयोः समग्राधान्याजड-सन्दामिया जडचेतुनामिया। स्थावरादौ त्र लिङ्गस्यान्तः संवेदन-मात्रत्वेन बहिर्जनेश्वेतनलाधिभावनाज्ञडाभिधा प्रसिद्धेत्यर्थः ६० त्रिष्वपि चित्कथं तारतम्येन स्थितेत्वत्र इष्टान्तमाह—यथेति । यथा दिवा विलीनो पृतसमुद्रः सायं शिशिरपवनसंपर्काद्वेलातटे कमाद्वनीभावात् स्तव्यो निश्वलः स्थितः सन् द्रवप्रदेशे वीचि-रिष चलः । इंपद्धनप्रदेशे ईषचलः । अल्पन्तघनप्रदेशे स्थल-मिबाचलध स्थितस्तर्थवेषा चित्ररतिर्वक्स्थावरदेहरूपेषु पद्य-केषु ठोरुरूपा इपहोला अल्पन्तजाड्यान्विता च स्थितेत्यर्थः ॥ ६१ ॥ यथा क्वाचिद्धर्नाभावेन लोललाभावेऽपि तस्य ना-विधलव्याधातस्तथा स्थावरादिभावेऽपि न चिद्रपताक्षतिरि-त्याह-इत इति । नो इति काकुः । किमन्धिरिति व्यपदेशो न भवति किंतु भवत्येव यथा तथैवैतत्सुरनरतिर्थिग्वकल्पादौ चैतन्यमधतमित्यर्थः । अथवा यं जडाजडविकल्पोऽध्यस्तपश्च-कथर्म एव न चिद्धर्मसास्यानिर्धर्मकलादित्याशयेनाह-पश्चकं हीति ॥ ६२ ॥ पश्चके स्वमाववशत ईटशा बहुवी विकल्पा

स्थावराद्यनिलस्पन्दि स्वभाववदातोऽनघ ॥ 63 वानः पर्यनुयोक्तव्या स्वभावाद्रधुनन्दन । शीतोष्णाडि हिमाइयाडि बाक्केति परिदृश्यते ॥ ६४ गृहीतवासनांशानां पुष्टाभावविकारिणाम्। स्थितयः पञ्चकानां हि योज्याः पर्यनुयोजने ॥ ६५ वासनास्त् विपर्यस्ता इतो नेत्र्भितश्च ताः। पुंसा प्राक्षेन शक्यन्ते सुखं पूर्यनुयोजित्म् ॥ हह अशुमे वा शुमे वापि तेन पर्यसुयोज्यते। प्रबुद्धवासनं चान्यत्पञ्चकं सुप्रवासनम् ॥ 815 यत्र पर्यनुयोगस्य फलं समनुभूयते। तत्र तं संप्रयुक्षीत नाकाशं मुष्टिभिः श्लिपेत् ॥ तृणात्रनिष्ठा मेर्याद्याः पञ्चकानां हि रादायः। विवेकनिष्टाः कीटाद्या एते स्थावरजंगमाः ॥

दश इलाह-देशदोनि । वेहायाकारपरिणनं पत्रकं प्राणधार-णावीनसम्दर्भतन्याभ्यो जीवधेतनसत्प्रयोजकः सान्दः शहान दिकं जटमेव । स्थायरादिसरीरं तु वाद्यानिलाधीनसान्दि अ-न्तश्रेतनमित्यादिव्यवस्थितविकस्पाः स्वभाववशतो दष्टा इत्यर्थः ॥६३॥ नत् स्वः स्वात्मको भावः स्वभावः स वर्थं विरुद्धविकल्याः त्मकः स्थात् । विरोधो हि परसापेक्षः । स्थो भावरत्वनन्यापेक्षः । यदि स्त्रीयो भावः स्वभावस्ययात्र्यसं स्वमात्रसायेक्षो न परसायेक्ष इति क्यं परनापेक्षस्य विकल्पस्य स्वरूपं निर्मित्तं ना स्यादिति यदि पर्यनुयुज्यते तर्हि लया सामावं विहाय वाचः पर्यनुशोक्त-व्याः। ता एव हि चिज्ञादिशब्दम्याः। स्वाःपुनरुकताये सार्ध न्यावर्तयन्त्यश्रेतन्यजाङ्ये विरुद्धे गमयतः। एवं शीतीणादि-धर्मपरा हिमाप्र्यादिश्रनिपरा वाक सर्वापि इति एवंप्रकारैव सर्वत्र परिहर्यत इत्यर्थः । खभावादिति स्वक्लोपं कर्मणि पद्ममी ॥ ६४ ॥ अथवा वागपि न पर्यनुयोज्या तस्या वास-नाकस्पितविकल्पवस्प नवाथीनुवर्गदत्वेन तत्पराधीनलात् । कित् यहीतवासनांशानां उत्तद्विरुद्धविकलप्रभावन विकारिणां लिका-त्मनां पत्रकानां स्थितय एव पर्यनुयोजने थोज्या इत्याह— ग्रहीतेति । ताभिरविकल्पने विरोधमात्रीच्छेदादिति भावः ॥६५॥ अथवा न तासामप्यपराधः । पूर्वपूर्वविरुद्धविकल्पसहस्रवास-नानुसारिलात् । अतः प्राह्मेन विरुद्धविकत्यकत्यनामूलमन्त्रि ष्यता पुंसा चित्तमित इतश्च विरुद्धविकल्पसहस्रेषु नेतुं विपर्यस्ता विक्षिप्ता वासना एव पर्वनुयोजितुं शक्यन्ते न स्वभावादय इत्याह—नासना इति ॥ ६६ ॥ पुंसामञ्जूभे तिर्यक्त्यावराहिभावे शुमे देवादिभावे वा प्रबुद्धवासनं च सप्तवासनं पत्रकं ति-ष्ठति । तेन बासनैव तदेतुः पर्यनुयोज्यत इत्यन्वयः ॥ ६७ ॥ किंच वासनापर्यनुयोगस्य तत्क्षयोपाये प्रवर्तकरवेन सफलता । स्रभावादिपर्यनुयोगस्य न किंचित्फलमस्तीलाह—यत्रेति॥६८॥ अतएव बासनाक्षये पूर्णात्मलाभानमेवीद्याः स्वर्णराद्ययेऽपि तृणामस्य निष्ठंब निष्ठा तुच्छता येषां ते तृणात्रनिष्ठाः संपद्यन्ते । विवेकितिष्ठा देवादिभोगशालिबेहा अपि कीटाबा इव तुम्छ-

प्रसुप्तवासनाः केचिद्यथा स्थावरजातयः। प्रवृद्धवासनाः केचिद्यथा नरसुरादयः ॥ 30 सवासनाविलाः केचिद्यर्थते तिर्यगादयः। प्रक्षिप्रवासनाः केचिद्यधेते मोक्षगामिनः॥ ७१ अथ स्वास्वेव संवित्सु मनोबुद्ध्यादिकाः कृताः। हस्तपादादिसंयुक्तैः संज्ञाः पञ्चकराशिमिः ॥ ७२ तिर्यगादिभिरप्यन्यैरन्याः संज्ञाः प्रकरिपताः । स्थावरादिभिरप्यन्यैरन्यान्याः संविदः कृताः इति साधो स्फूरन्तीमे चित्राः पञ्चकराशयः । रूपेराद्यन्तमध्येषु चलाचलजडाजडेः॥ ७४ ष्यामेकोऽभिसंकल्पः परमाणुर्महीपते । बीजमाकाशबृक्षाणां सगीणां तेष्विमानि तु ॥ ७५ इन्द्रियाणि च पुष्पादि विषयामोदवर्ति हि। इच्छाभ्रमर्यो राजन्त्यो मञ्जर्यश्रञ्जलियाः॥ फर् लोकान्तराणि स्वच्छानि गुल्मा मूलं समेरवः।
पहावा नीलजलदा लतालोला दिशो दश॥ ७७
वर्तमानानि भूतानि भविष्यन्ति च यानि तत्।
जयन्ति तान्यसंख्यानि फलानि रघुनन्दन॥ ७८
पञ्चवीजास्त पते हि राम पञ्चकपादपाः।
स्वयं स्वभावाज्ञायन्ते स्वयं नश्यन्ति कालतः ७९
स्वयं नानात्वमायान्ति चिरं जाङ्यात्स्फुरन्ति च।
स्वविविकाः शमं यान्ति तरङ्गा इव वारिधौ॥ ८०
इतो यान्ति समुत्सेधिमतो यान्ति शमं स्वयम्।
पते जाङ्यविवेकाभ्यां तरङ्गा इव तोयधौ॥ ८१

ये विवेकवशमालयं गता राम पञ्चकविलासराशयः। तेन भूय इह यान्ति संस्थिति प्रभ्रमन्ति जगतीतरे मुद्दः॥ ८२

इत्यार्षे श्रीवागिष्ठमहारामायणे वार्ल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु तिर्वाणप्रकरणे पश्चकविलासो नामार्शातितितमः सर्गः॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१

वसिष्ठ उवाच । पतत्पञ्चकषीजं तु कुण्डलिन्यां तदन्तरे ।

तराः संपद्यन्त इत्याह---तृणाप्रेति॥६९॥ अतएव वासनाम्वाप-प्रमोधतारतम्यादेव पश्चकेषु स्थावरादिवैचित्र्यामेत्युदाहृत्य दर्श-यति—प्रमुप्तेति द्वाभ्याम्॥७०॥वासनाभिराविलेनास्यच्छेन चि-त्तेन सहिताः सवासनाविलाः । प्रक्षिप्तवासनास्त्यक्तवासनाः ७५॥ वासनावैचित्र्यादेव देवनरादिपञ्चकराशिराकाशभूमिगमनादिवि-चित्रव्यवहारक्षमहस्तपादादिस्तत्कल्पितकर्मेन्द्रियसंयुक्तदेवनरा-दिपञ्चकराशिभिः स्वासु स्वासु संवित्स्वेव नरादियोग्यव्यव-ं मनोतुद्ध्यहंकारचित्तचक्षःश्रोत्रप्राणरसनस्पर्शादिका अन्तर्बाह्यकरणकृषाः संज्ञाः संकेताः कृताः अतएव ताः प्रतिप्राणि विचित्रस्त्रभावा दश्यन्त इति भावः ॥ ७२ ॥ तिथेग्भिः पश्चादिभिस्तु चलारः पादाः शक्ते पुच्छं चेति । पक्षिभिक्षु चश्चः पक्षौ पुच्छं पादी चेति । सर्वेस्तु फणा भोगः पुच्छमिति । कृमिकीटेर्दशमशकादिनिश्च खखवासनानुरूपव्यव-हारयोग्या अवयनादिसंकेताः कल्पिता इत्वर्थः ॥ ७३ ॥ भाद्यन्तमध्येषु चलैर्विकारिभिजेडेश्व । अधिष्ठानसद्भवेण तु अचलरजर्दश्च ॥ ७४ ॥ एवं पञ्चकास्यतिक्वभेदाननन्तानुप-वर्ण्य तेष्वेकतमस्य कर्स्याचित्वभीपासनसमुख्यानुष्ठानफलसम-ष्ट्यहंभावं प्राप्तस्य कश्चिदेकः संकल्यपरमाणुरस्य संसारनभोतृ-क्षस्य बीजमित्याह--एयामिति । समष्टिगोचरत्वादमिव्याप्तः संकल्पोऽभिसंकल्पस्तलक्षणः परमाणुः सर्गरूपाणामाकारात्रु-क्षाणां बीजं तेषु च सर्गाकाशत्रुक्षेषु इमानि पत्रकानीत्यहो मायेत्यर्थः ॥ ७५ ॥ सगीणामाकाशवृक्षत्वं यदुक्तं तत्पुष्पत-दामोदादिकल्पनयोपपादयति-इन्द्रियाणीत्यादिना । आदिप-

प्राणमास्तरूपेण तस्यां स्फुरित सर्वेदा॥ १ सान्तः कुण्डलिनीस्पन्दस्पर्शसंवित्कलामला।

दादिन्द्रियावयवेषु पुष्पावयवता यथोचितं योज्या । विषयछक्षणेष्वामोदेषु वर्तनशीलं तत् प्रधानमिति यावत् ।
चधलानां कर्मेन्द्रियाणां क्रियाः ॥ ७६ ॥ खच्छानि
स्वर्गादिलोकान्तराणि गुल्मा विद्याः । समेरवो मेरसहिताः
सर्वे पर्वता मूलम् ॥ ७७ ॥ मृताांन चतुर्विधश्वर्गराणि । तत्तस्य
गृक्षस्य ॥ ७८ ॥ स्वभावात्स्वविधेकश्च्यादात्मनः ॥ ७९ ॥
स्वस्माद्रिविक्ता विवेक्द्रध्या दृष्टाः ॥ ८० ॥ श्लोकद्वयोक्तमेव
संग्रह्माद्ध-द्वतं विवेक्द्रध्या दृष्टाः ॥ ८० ॥ श्लोकद्वयोक्तमेव
संग्रह्माद्ध-द्वतं इति । इतः पराग्देष्टेः । इतः प्रत्यग्देष्टेः ॥८१॥
हे रामः ये पश्चकविलासराशयः आलयं निर्वासननाशपर्यन्तं
विवेक्ववं गतास्ते इद संसारे भूयो जन्ममरणदेहधारणादिसंस्थिति न थान्ति । इतरे तु जगति यथापूर्वं प्रश्नमन्त्येवेत्सर्थः
॥ ८२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्यर्थप्रकादो निर्वाणप्रकरणे अशीतितमः सर्यः ॥ ८० ॥

कुण्डलिन्याः प्रसङ्गेन रोगोद्भवशमक्रमाः। सिद्धिसिद्धेक्षणोपायाद्यशेषमिष्ट वर्ण्यते ॥ १ ॥

'यदा प्राणानिको याति इदि कुण्डिलनीपदम् । तदा संवि-दुदेत्यन्तर्भृततन्मात्रबीजभूः' इति वुद्धिशक्तिजवप्रद्रलोपपादने भूततन्मात्रबीजभूरिक्षंशस्य रफुटीकरणाय कृतं रथूळसूक्ष्मपत्र-कविचारं संगमयन् खेचरादिसिद्धिबीजप्राणाभ्यासोपयुक्तं प्रस्तु-तकुण्डिलन्यां प्राणाद्यद्भवप्रकारं प्रदर्शयति—एतदिति । तस्य रथूळदेहात्मकस्य पत्रकस्यान्तरे भूलाधारे तस्यां प्राग्विगितायां कुण्डिलन्यामेतस्य लिङ्कात्मकपत्रकस्य बीजमुपादानं भूतसूक्ष्मं प्रथमं प्राणपत्रकरूपेण रफुरतीस्यर्थः ॥ १॥ सा प्राणक्षे-

कछोक्ता कलनेनाशु कथिता चेतनेन चित् ॥ जीवनाजीवतां याता मननाच मनःस्थिता। संकल्पाचैव संकल्पा योधाद्वद्विरिति स्मृता ॥ ३ अहंकारात्मतां याता सैपा पुर्यप्रकाभिधा। स्थिता कुण्डलिनी देहे जीवशक्तिरनुत्तमा ॥ સ अपानतामुपागत्य सततं प्रवहत्यधः। समाना नामिमध्यस्था उदानाख्योपरि स्थिता अधस्त्वपानरूपैव मध्ये सीम्यैव सर्वदा। पुष्टाप्युदासरूपेय पुंसः स्वस्थैव तिष्ठति ॥ ર્વ सर्वेयतमधो याति यदि यतान धार्यते। तत्पुमान्मृतिमायाति तया निर्गतया वलात् ॥ ७ समस्तैघोर्ध्वमायाति यदि युत्तया न धार्यते। तत्प्रमान्मृतिमाथाति तथा निर्गतया बलात् ॥ सर्वेथात्मनि तिष्टंचेत्यक्त्वोध्वीधो गमागमौ । तज्जन्तोर्हीयते व्याधिरन्तर्माहतरोधतः॥ ۹, सामान्यनाडीवैधुर्यात्सामान्यव्याधिसंभवः। प्रधाननाडीवैधुयोत्प्रधानव्याधिसंभवः ॥ 80 श्रीराम उवाच । किंविनाद्याः किमुत्पादाः दारीरेऽस्मिन्मुनीश्वर । आधयो व्याधयश्चेच यथावत्कथयाशु मे ॥ 88 वसिष्ठ उवाच। आधयो व्याधयश्चेव द्वयं दुःखस्य कारणम् ।

णान्तःस्फुरिता अण्डितनी मास्तवर्मेण च खधर्मण च स्पन्दः स्पर्शः संविदिति त्रिरूपवृत्पना भूला कला चिजीबो मनः संकल्पो बुद्धिरहंकारः पुर्यष्टकं लिङ्गमित्यादिनामानि कलना-दिव्यापारोपाधिभिर्नुभत इत्याह—सान्तरिति त्रिभिः ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ तत्र सम्दशक्तः प्रधानवृत्तितस्थानविविव्यं दर्शयति-अपानतामिति ॥ ५ ॥ तृत्तिभेदप्रयोजनान्याह-अध इति । अपानननायेव प्रयोजनमिल्यर्थः । अपानोदाना-भ्यामाकृष्यमाणापि सार्य साम्या निर्वार्रम । तद्यप्रध्यलादेव पुष्टा बरुवत्यप्यूर्प्ववृत्तिरुदानरूपेव सती खस्थेव तिष्टति न **छिन्नं बहिरु**त्कामयतीत्यर्थः ॥ ६ ॥ एवमधोवृत्तेरपि सा विष्ट-म्भिकेलाह—सर्वेप्रयक्तमिति । यदि सामान्यवृत्त्या न धार्यते तर्हि सा जीवसंविद्पानवृत्त्या रावेयत्रं यथा स्वात्तथा आकृष्य-माणा अधोमार्गेण बहियाति । किं ततस्तदाद्-तदिति ॥७॥ **प्रागुक्तं सप्टमाह—सम**सेविति ॥ ८ ॥ अतएव प्राणापान-गतिनिरोधाभ्यासेन सर्वाक्षे समानवृत्त्येतर्वृत्तिजये सर्वव्याधि-क्षयमृत्युजयसिद्धिरित्याह—सर्वथेति । आत्मनि देहे ॥ ९ ॥ एकशतं प्रधाननाष्यस्तच्छाखास्त् सामान्यनाव्यस्ताखन्नरस्या-पिकायाः समानवृत्तेर्वेत्रेव कफपित्ताद्यपचयाद्वेधुर्वमव्यापारस्त्रीत-वेतरवायुभिवैषम्येणात्ररसाकर्षणादल्परोगाणां महारोगाणां न संभव इलाह-सामान्येति ॥ १०॥ कस्माद्विनाशो येषां ते किविनाशाः । एवं किमुत्पादाः ॥ ११ ॥ तेषां नियुत्तिरी-योग० १२१

तिन्नवृत्तिः सुखं विद्यात्तत्क्षयो मोक्ष उच्यते ॥ १२ मिथः कदाचिजायेते कदाचित्सममेव च। पर्यायेण कदाचिश्व आधिव्याधी शरीरके॥ १३ देहदुःखं विदुर्व्याधिमाध्याख्यं वासनामयम् । मार्ष्यमुले हि ते विद्यात्तत्वज्ञाने परिक्षयः॥ 83 अतत्त्वशानवदातः स्वेन्द्रियात्रमणं विना । हृदि तानवमुत्स्ज्य रागहेषेष्वनारतम्॥ १५ इदं प्राप्तमिदं नेति जाड्याद्वा घनमोहदाः। आधयः संप्रवर्तन्ते वर्षासु मिहिका इव ॥ १६ भृशं रफुरन्तीष्विच्छासु मौख्यें चेतस्यनिर्जिते । दुरमाभ्यवहारेण दुईशाक्रमणेन च॥ 5,0 दुष्काखव्यवहारेण दुष्क्रियास्फ्ररणेन च। दुर्जनासङ्गदोषेण दुर्भावोद्धावनेन च ॥ १८ क्षीणत्वाद्वा प्रपूर्णत्वान्नाजीनां रन्ध्रसंतती । प्राण विभुग्तां याते काये तु विकलीकृते॥ १९ दीस्थित्यकारणं दोपाद्याधिदेंहे प्रवर्तते। नद्याः प्रावृण्निद्यायाभ्यामिवाकारविपर्ययः॥ प्राक्तनी चेहिकी वापि शुभा वाप्यद्युभा मतिः। यैवाधिका सेव तथा तिसन्योजयति कमे ॥ आधयो व्याधयश्चैवं जायन्ते भूतपञ्चके। कथं शृणु विनइयन्ति राघवाणां कुलोद्वह ॥ २२ द्विविधो व्याधिरस्तीह सामान्यः सार एव च।

षधातुनवस्तात्काछिकोपशमः । युखरूपस्यात्मनः परिशेषातुमु-खम्। तेषां मूलतो इत्तेन नाशो मोक्ष इत्वर्थः ॥ १२॥ मिथः अन्योन्यनिमित्तकलाकमसंठप्ने। कदानित्युगपदुत्पन्नाद्वा-ह्यानिमित्तारसमं युगपत् । कदान्वित्मुखान्तरितं पर्यायेण ॥१३॥ मीर्ख्यमज्ञानं तन्मुळे ॥ १४ ॥ तद्यः आव्युद्भवनिमित्ता-न्याह—अतत्त्वज्ञानेति । आक्रमणं निब्रहस्तं विना। तदभावा-दिन्यर्थः । हृदि चित्ते तानवं स्थिमितवायुप्रायां स्वास्थ्यहेतुं सुक्ष्मतासुत्सच्य रागदेषेषु व्रसकेरिति शेषः ॥ १५ ॥ इदं प्राप्तामिदं न प्राप्तामिति चिन्ताया इति शेषः । भयशोकनिमिन त्तप्राप्ती उत्प्रतीकारीपायापरिज्ञानस्टक्षणे घर्ग मोहं द्दतीति घनमोहदाः ॥ १६ ॥ इदानीं शारीरत्याध्युद्भवहेत्नाह—-५-शमित्यादिना । इच्छामीरुथै आन्तरे तद्वेत् । दुरन्नादयसु बाह्याः । दुर्देशाः रमशानादयः ॥ १०॥ दुष्टेषु निशीधप्रदी-पादिकारेष्वशनन्यवायादिव्यवहारेण । दुर्गावा विषसर्पव्याघ्र-तस्करादिशङ्कास्तेषां मनस्युद्धायनेन ॥ १८ ॥ नाडीनामन्नरः साप्रवेशेन क्षीणत्याद्विगुगरसवातादिप्रवेशेन प्रपूर्णलाद्वा विधु-रतां कफपितादिप्रकापेन व्याकुछताम् । आघातादिना विकली-कृते ॥ १९ ॥ दीस्थिखमखास्थ्यं तत्कारणं व्याधिः स देह-स्याकारविषर्थयः ॥ २० ॥ सा चाधिव्याधिसामया प्राक्तनेहि-ककर्मानुसारेण मिछतीत्याह—प्राक्तनीति ॥ २१ ॥ २२ ॥ सामान्यः पेछवः सारो दृढतस्थ । व्यवहियत इति व्यवहारः

व्यवहारस्तु सामान्यः सारो जन्ममयः स्मृतः २३ प्राप्तेनाभिमतेनैव नदयन्ति व्यावहारिकाः। आधिक्षयेणाधिभचाः श्रीयन्ते व्याधयोऽप्यत्म् २४ आत्मकानं विना सारो नाधिनंदयति राधव। भूयो रज्ज्ववयोधेन रज्ज्सपों हि नश्यति॥ 20 आधिव्याधिविद्यासानां राम साराधिसंक्षयः। सर्वेषां मूलहा प्रावृण्नदीव तदवीरुधाम्॥ २६ अनाधिजा व्याधयस्तु द्रव्यमन्त्रद्युभक्षमः। चिकित्सकादिशास्त्रोक्तेन्द्यन्त्यन्येरिहाथवा ॥ २७ कानमर्जापधोपाया वक्तश्चाधिगतानि च। त्वया चिकित्साशास्त्राणि किमन्यदुपदिस्यते ॥ २८ श्रीराम उवाच । आधेः कथं भवेद्याधिः कथं च स विनश्यति। द्रव्यादितरया युक्तया मन्त्रपुण्यादिरूपया ॥ २९ वसिष्ठ उवाच । चित्ते विधुरिते देहः संक्षोभमनुयात्यत्रम् । तथाहि रुषितो जन्तुरयमेव न पश्यति॥ 30 अनवेश्य पुरो मार्गममार्गमनुधावति । प्रकृतं मार्गमुत्सुज्य शरातीं हरिणो यथा ॥ 38 संक्षोभात्साम्यमुत्सुज्य वहन्ति प्राणवायवः। देहे गजप्रविष्टेन पर्यासीव सरिस्टे ॥ 32 असमं वहति प्राणे नाड्यो यान्ति विसंस्थितिम्।

क्षुत्रवास्त्रीपुत्रलालसादिस्तरसंभवधः । जन्ममयो जन्मादिविकि-यामुळम् ॥ २३ ॥ अभिमतेन।त्रपानर्स्नापुत्रादिना ॥ २४ ॥ आधिव्याधिः भूयो भूयसा लोकपरिशालनाद्रज्ञतन्त्रप्रवयप-र्यन्तेन(वर्वाधेन ॥ २५ ॥ प्रायुष्नदी सर्वेषां तटवीर्घामिव सर्वेषामाधिव्याधिविलासानां सारव्याधिमंक्षयो मुलहा मुलो-च्छंदीखन्वयः ॥ २६ ॥ सामान्यव्याविष्यनाविजव्यावयः सुचिकित्स्या इत्याशयेनाह्—अनाविजा इति । अन्येबृद्धपरम्प-रोपदिष्टैत्रिकित्सनैः ॥ २७ ॥ छोलाकंदितीर्थेषु स्नानम् । मन्त्रा औषधानीत्याद्युपायाः । वक्तुत्रः वृद्धजनाद्धिगतान्यीष-धानि चिकित्साशास्त्राणि च लया ज्ञायन्त एवेति शेषः ॥२८॥ आधिभ्यो व्याधिजनमप्रकारं तिचिकित्सोपायं च रामः पृ-च्छति--आधेरिति । द्रव्यादीषधादितस्या मन्त्रपुण्यादिरूप-येति स्वसंभावनयोक्तिः॥ २९॥ तत्र प्रथमं तद्वद्ववप्रकार-माइ--चित्ते इखादिना । विधुरितं आधिनिः क्षुच्धे । उत्त-मर्थ दशान्तेनोपपादयति--तथाहीति सार्धेन। अत्रं पुरोमार्गम् ॥ ३० ॥ ३१ ॥ दार्शन्तिकेऽपि तथैव आधिकृतात्संक्षोभात्प्रा-णवायवः साम्यमुतसञ्चामार्गेण वहन्ति । यथा गजस्य प्रविष्टेन प्रवेशेन क्षुय्धानि पर्याक्ष सरितस्तदे अमार्गे बहन्ति तद्वत् ॥ ३२ ॥ असमे विषमम् । विसंस्थिति कपापितादिपूर्णतात्र-

असम्यक्संस्थिते भूपे यथा वर्णाश्रमऋमाः ॥ ३३

काश्चिमाड्यः प्रपूर्णत्वं यान्ति काश्चिम रिकताम्।

प्राणा विधुरिते देहे सर्वतः सरितो यथा॥ 38 कुजीर्णत्वमजीर्णत्वमतिजीर्णत्वमेव चा। दोषायेव प्रयात्यक्षे प्राणसंचारद्ष्क्रमात्॥ 34 यथा काष्ट्रानि नयति प्राचीदेशं सरिद्रयः । तथाश्रानि नयत्यन्तः प्राणवातः स्वमाश्रयम् ॥ ३६ यान्यन्नानि निरोधेन तिष्ठन्त्यन्तःशरीरके। तान्येव व्याधितां यान्ति परिणामस्वभावतः ३৩ एवमाधेभवेद्याधिस्तस्याभावाच नश्यति। यथा मर्ऋविनदयन्ति व्याधयस्तत्क्रमं शृणु ॥ ३८ यथा विरेकं कुर्वन्ति हरीतक्यः स्वभावतः। भावनावदातः काये तथा यरखवादयः॥ ३९ शुद्धया पुण्यया साधो क्रियया साधुसेवया । भनः प्रयाति नर्मेल्यं निक्षेणेय काञ्चनम् ॥ 80 आनन्दो वर्धते देहे गुद्धे चेतसि राघव । पूर्णेन्दावृदिने द्यत्र नेर्मरूयं भूवने यथा ॥ ४१ सत्वद्युद्ध्या चहुन्त्येते ऋमेण प्राणवायवः। जरयन्ति तथाम्नानि व्याधिस्तेन विनदयति ॥ धर आधिव्याध्योरिति प्रोक्तां नाद्योत्पत्तिकर्मा त्वयि । कुण्डलिन्याः कथायोगादधुना प्रकृतं श्टणु ॥ पूर्यप्रकपराख्यस्य जीवस्य प्राणनामिकाम्। विद्धि कुण्डिलिनीमन्तरामोदस्येव मञ्जरीम्॥ 83 तां यदा पूरकाभ्यासादापूर्य स्थीयते समम्। तदैति मैरवं स्थेर्य कायसापीनता तथा॥ ध्रप यदा पूरकपूर्णान्तरायतप्राणमास्तम्।

युक्तविषमसंस्थाननाम् ॥ ३३ ॥ तदेवाह—काश्वि**दिति ।** प्राणिराविष्ठारिते सर्वतो बिह्न्यीकृते देहै । सरितो ताड्यः स्रो-तांसीव ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ समानाख्यः प्राणवातः स्तमाश्रयं सर्व शरीरं भुक्तान्यन्नानि रशीकृत्व नयति । भध्ये तु समान एव होतजुतमन्नं समं नयती'ति श्रुतेरिति भावः ॥३६॥ धातु-वैषम्यपरिणामस्त्रभावतः ॥ ३७ ॥ उपसंहरति —एत्रमिति । अभावाद्यारात् ॥ ३८ ॥ इरीतक्याः फलानि हरीतक्यः । फले छुकि 'हरीतक्यादिषु व्यक्तिः' इति नियमात्र वचने युक्त-यद्भावः । तथा यर**्वाद्यो वायुवहिम्**जलादिवीजारमका म-न्त्रवर्णा मान्त्रिकभावनावशतो नाडीषु व्याध्याकारपरिणतान-रसानामुत्सारणपाचनादिकायं कुर्वन्तीखर्थः ॥ ३९ ॥ आप्यु-पश्चमोपायानाह--शुद्धवेत्यादिना ॥ ४०॥४९॥ ४२ ॥ प्रासन्निकप्रश्लोत्तरमुपसंहत्य प्रकृतं सिद्धिहेतुनिरूपणं प्रस्तीति— आधीति ॥ ४३ ॥ पुर्यप्रकाष्ट्यस्य ळिक्नात्मनी जीवस्याधारभू-ताम् ॥ ४४ ॥ आपूर्वं कूमंनाष्ट्यां प्राणमवष्टभ्येखर्थः । तथाच पतजले: सुत्रम् 'कूर्मनाज्यां स्थेर्यम्' इति । **'कण्टकूपादघ उरसि** कूर्माकारा नाडी तस्यां कृतसंयमः स्थैर्य स्मते यथा सर्पो गोधा वेति' तद्भाष्यम् । कायस्यापीनता गरिमाख्या सिद्धिरपि तथा ताहशी भरवी सिद्धातीत्यर्थः ॥ ४५ ॥ केन तक्षेप्ये

नीयते संविदेवोर्ध्वं सोद्धं घर्मक्रमं श्रमम्॥ ક્રફ सर्पीय त्वरितैवोध्वं याति वण्डोपमां गता। नाडीः सर्वाः समादाय देहबद्धा छतोपमाः ॥ ४७ तदा समस्तमेवेदमृत्यावयति देहकम्। नीरन्त्रं पवनापूर्ण भस्त्रेवाम्बुततान्तरम् ॥ 84 इत्यभ्यासविलासेन योगेन व्योमगामिना। योगिनः प्राप्नवन्त्युश्चेर्दीना इन्द्रदशामिव ॥ છર ब्रह्मनाडीप्रवाहेण शक्तिः कुण्डलिनी यदा । बहिरूर्धं कपाटम्य द्वादशाङ्गलमूर्धनि॥ 40 रेचकेन प्रयोगेण नाड्यन्तरनिरोधिना। महर्ते स्थितिमाप्नोति तदा व्योमगदर्शनम् ॥ ५१

श्रीराम उवाच । दर्शनं कीदशं ब्रह्मघ्रयनांगुगणं विना । अदिव्यानामिन्द्रियाणां तत्त्वमधं कथं भवेत् । ५२ वसिष्ठ उवाच । न केचन महाबाहो भूत्ररेण नभस्यतः । अदिव्येनाश्चिता ज्ञानंहदयन्ते पुरुषेन्द्रियेः ॥ ५३

नभोगतिसिद्धिस्तदाह-यदेत्यादिना । यदा पुरकेण पूर्णे देहा-न्तरायतो मुलाधारादारभय ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं दीपाकुखौष्येमा-कृष्टः प्राणमार्तो यस्मिन्कभीषे तथ्या स्यात्या संवित् कुण्ड-छिनी प्राणनिरोधोद्भतम्भाणं तत्प्रयुक्तं शारीरं क्रमं मानसं धमं चाभ्यासपाटवेनायुनाग्रायनेन च सीढं एखं कर्तुमुर्वे नीयते ॥ ४६ ॥ नीयमाना च सा आकर्षणाहण्डोपमां दीर्घतां गता सती सपीव : लिर्तिबोर्घ्वेमस्यासपाटवाद्याति । कर्ष याति तदाइ--नाडीरिति ॥ ४७ ॥ तदा नार्डाद्वारा नीरन्त्रं निरव-कार्श यथा स्यात्तथा पवनेनापूर्ण लघुलमापत्रं समस्त्रमापादम-स्तकमिदं देहकं कूपाद्ध्वमाकृष्यमाणा चर्मभस्रा ततं व्याप्तमा-न्तरमन्तः प्रदेशो येन तथाविधमम्ब्यिव उत् ऊर्ध ॥वयति उद्दीनं करोति तदेवास्याकाशगमनमिखर्थः ॥ ४८ ॥ इति एवं-विधेनाभ्यासविलासेन योगेन कायाकाशसंबन्धसंयमलक्षणेन । तथाच भगवतः पतज्ञलेः सूत्रम् 'कायाकाशयोः संबन्धसंयमा-ह्युत्लसमापत्तेश्वाकाशगमनम्' इति, तद्भाष्यं च 'यत्र काय-स्तत्राकार्शं कायस्य तेन संबन्धः प्राप्तिस्तत्र कृतसंयमी योगी जिल्ला तत्संबन्धं लघुतुलादिषु आपरमाणुम्यः समापत्ति लब्ध्वा जितसंबन्धो लघुर्लघुलाच जले पादाम्यां विहरति ततस्तूर्ण-नाभितन्तुमात्रे विद्वस्य रिमष्ट विदरति ततो यथेष्टमाकाशग-तिरस्य नवती'ति ॥ ४९ ॥ इदानीं सिद्धदर्शनोपायमाह- ब्रह्म-नाढीत्यादिना । यदा रेचकेन प्रयोगेणोध्वैमाकृष्टा कुण्डांलनी शक्तिक्रहानाडी सुषुष्रा तदन्तः प्राणप्रवाहेण शीर्षकपा-लद्भयसंधिलक्षणस्य कपाटस्य बहिद्रादशाङ्गलमिते मूर्धनि यो-डशान्ताख्ये स्थाने मुहुर्तमात्रं स्थितिमाप्रोति तदा व्योमगानां सिद्धानां दर्शनं भवतीति परेणान्वयः । तथाच भगवतः पत-अबेः सूत्रम् 'मूर्थेज्योतिषि सिद्धदर्शनम्' इति । तद्वाष्यं च

विज्ञानाद्द्रसंस्थेन वृद्धिनेत्रण राघव। दृश्यन्ते न्योमगाः सिद्धाः स्वप्नवत्स्वार्थदा अपि ५४ स्वप्नावलोकनं यद्वत्तद्वत्सिद्धावलोकनम्। केवलोऽथ विशेषोऽयं सिद्धप्राप्तां स्थिरार्थता॥५५ मुखाद्वदिद्वादशान्ते रेचकान्यासयुक्तितः। प्राणे चिरं स्थितिं नीते प्रविशत्यपरां पुरीम्॥ ५६

श्रीराम उवाच।

वद स्वभावस्य कथं ब्रह्मस्रचलसंस्थितिः। वकारः सानुकम्पा हि दुष्पश्चेऽपि न सेदिनः ५७

विषष्ठ उवाच।

शक्तियां तु स्वभायाख्या यथा स्फुरित चात्मनः ।
सर्गादिषु तथैवासा स्थिति यातीति निश्चयः ५८
अवस्तुत्वाद्विद्याया वस्तुशक्तिरिष कचित् ।
भिद्यते दृश्यते हाङ्ग वसन्ते शारदं फलम् ॥ ५९
सर्वमेविमदं ब्रह्म नानाऽनानातया स्थितम् ।
जुम्भते व्यवहारार्थं केवलं कथितस्थिति ॥ ६०

'शिर:कपाले अन्तरिछदं प्रभाग्वरत्नाज्योतिसाध संयमात्सि-द्धानां द्यावाष्ट्रथिव्योरन्तरालचारिणां दर्शनिति ॥५०॥५१॥ अदिच्यानामिन्द्रयाणामिति भावलक्षणे 'पष्टी चानादरे' इति षष्ट्यी । यदास्मदादीनामिन्दियाणामदिव्यानां सतां सत्यपि तत्संनिक्षं सिद्धानां तत्त्वं तद्वोचरत्वं दर्लमं तदा नयनांश्चरणं चाञ्चपप्रभासीनकर्ष विना पोडशान्ते प्राणधारणमात्रेण सि-द्वानां दर्शनं कथं भवेत्वच कीइशमिखर्यः ॥ ५२ ॥ तत्र कर्ष भवेदिएवंशमिष्टापत्त्या यसिष्टः परिहरति—न केचनेति। नभखतो नभस्त्रन्तो वायुभुताः । सिद्धा आश्रिता ज्ञानमंत्रिनैः पुरुषेन्द्रियेर-दिग्येनोपायान्तरेण वा न दरयन्त इति सत्यमेय खयोक्तामित्यर्थः ॥ ५३ ॥ केन तर्हि दरयन्ते तदाह-विज्ञानादिति । विज्ञाना-धोगाभ्याससंस्कृतमनसः ॥ ५४ ॥ कीटशमिति प्रश्नांशस्थोत्त-रमाह—स्वप्नावलोकनमिति । स्थिरार्थतासंवादवरदानफलावा-स्यादिव्यवहारक्षमार्थता सन्नापेक्षया विशेष इत्यर्थः ॥ ५५ ॥ इदानीं परकायप्रवेशो येनोपायेन सिज्यति तमाह-सुखादिति । द्वादशान्ते द्वादशाङ्गलिपांरमितप्रान्ते ॥ ५६ ॥ विशेषोऽयं सिन द्धप्राप्ती स्थिरार्थता' इति यदुक्तं तत्र स्वभाव एव हेतुवीच्यः सर्वस्य जगतो मायामयलादनियतस्थितित्वं प्राग्बहशस्त्रयैव 'घटस्य पटता दृष्टा' इत्यादिना व्युत्पादितं, तत्र स्वभावस्यकस्य नियतस्थितिः कथमिति रामः प्रच्छति-वदेति ॥ ५७ ॥ संसमंकल्पस्येश्वरस्य सर्गादिकाळसंकल्पप्रयुक्ताः वस्तुस्वभावनि-यतिरपि यावरसर्गकालमेव न प्रलये सास्तीति न सर्वानेयति-भन्नवादविरोध इलाशयेन प्रागुक्तमेव स्मारयन् वसिष्ठसादत्तर-माह—शक्तिरिति ॥ ५८ ॥ कालमेदेनेव देशमेदेनापि वस्त-शक्तरनियतता दृष्टेखाह—अवस्तुलादिति । क्रचिरकामरूपदे-शादी । शारदं वीत्यादिफलम् ॥ ५९ ॥ नानाऽनानातया अ

श्रीराम उवाच । सूक्ष्मिक्छद्रादिगत्यर्थ पूरणार्थ च खस्य वा । अणुतां स्थलतां वापि कायोऽयं नीयते कथम् ६१ यसिष्ठ उवाच ।

काप्रशक्तवयोः श्रेपाद्यथा छेदः प्रवर्तते । द्वयोः संघर्षणाद्विः स्वभावाज्ञायते तथा ॥ ६२ मांसं क्यमाजठरे स्थितं श्विष्टमुखं मिथः। ऊर्ध्वाधःसंमिलस्थलद्व्यम्भःस्थैरिव वैतसम् ॥ ६३ तस्य कुण्डलिनी लक्ष्मीर्निलीनान्तर्निजास्पदे । पद्मरागसमुद्रस्य कोदो मुकावली यथा ॥ 63 आवर्तफलमालेव नित्यं सलसलायते। दण्डाहतेव भूजगी समुत्रतिविवर्तिनी ॥ 64 द्यावाप्रशिद्योर्मध्यस्था क्रियेव स्पन्दधर्मिणी। संविन्मधुविबोधाकौं हत्पद्मपुटपर्पर्।।। દ્રદ્ तत्सर्वे शक्तिपद्मादि वाह्यनाभ्यन्तरेस्तया । हृदि व्याध्यते वातः पत्रवृन्दमिवाभितः॥ द्

नियतस्वभावतया स्थितं सर्वभेवेतं ब्रह्म । ब्रह्म म्बभावेनेव निय-तैकरूपं नान्येनेत्यर्थः । कथं तर्हि बहेरूप्यंज्यलनादिनियतिस्त-त्राह—जुम्भने इति । प्राणिकर्मतःफलोपभोगव्यवहारार्थमज्ञातं **बह्रीय कंचित्का**लं तथातथा नियतस्थिति भूला जुम्भत इत्यर्थः ॥ ६० ॥ इदानीमणिमाख्या महिमाख्या च लिद्धिः केनोपा-येन सिद्धातीति रामः प्रच्छति —सृक्ष्मेति । नीयते योगिनेति शेषः ॥ ६१ ॥ अस्य प्रश्नस्योत्तरमुत्तरसर्गे विस्तराद्वणयिष्यं-स्तदुषोद्धातत्या देहे अग्नीयोमव्यापि निरूपियण्यन् प्राणापा-नयोः संधर्षाद्रन्तराखे जाठराभिनिष्यत्ते। इष्टान्तमाह--का-ष्ट्रेति । छेदो द्वैधीभावः । द्वर्याः प्राणापानयोः । अग्निजीटरः ॥६२ ॥ प्राणापानयोः संघर्षणोपपत्तये अन्योन्याकपंकत्वे कारणमाह—मांसमित्यादिन। । कृत्यितस्य देहयस्त्रस्य जटरे उदरप्रदेशे नाभेरूर्वमध्य संमिछत् अतएव मिथः व्यष्टमुख-मामाश्चयकाशयमस्त्राद्वयरूपं स्थुलं मासं दिविस्थेरूविमाका-शसंब्धरम्भःस्वर्या जले निमप्तिश्व मागः परसारव्हिरेशपठक्षि-तमघोऽम्मसा अर्ध्व वायुना च विरुद्धदेशयोः कृष्यमाणं वितसं क्रजमिव कम्पमानं स्थितं वर्ततः इत्यर्थः ॥ ६३ ॥ असु तिक ततस्त्रभाह-तस्येति। तस्य मांसस्याधस्तनभन्नामागस्य मुळभागहुपै निजे आस्पदे मुळाघारे प्रामुक्ता कुण्डलिनी सर्वस्य कार्यकारणसंघातस्य प्राणप्रदलाहर्भाः ॥ ६४ ॥ जप-काले आवर्यमाना रद्राक्षादिफलमालेव नित्यमभीक्ष्णं प्राणा-पानोदिरणनिगिरणाभ्यां सलसलायते कम्पेनाव्यक्तरवं जन-यति । अध्यक्तानुकरणाङ्गाचि बहुलग्रहणात् करोत्यर्थे क्यह् । सम्प्रतिरूष्वेमुखता तथा विवर्तिनी परिवर्तनशीला ॥ ६५ ॥ द्यावापृथिन्योर्मध्ये प्राणिनामुध्वीधौगतिहेतुर्विहितनिषिद्धकियेव ब्राणापानयोह्धवीधोर्गातहेतुलात्स्पन्दधर्भणी । चाक्षुपादिसंवि-इक्षणानां मधनां सपादिविषयास्वादानां विवोधे अर्क इव यहस्रोम स्फुरत्यङ्ग स्वभावात्तत्र वायवः। बलवन्मृद् यतिकचिद्धशं कवलयन्ति तत्॥ ६८ वातराहन्यमानं तत्पद्मादि तरलायते । हृद्यन्यान्येति कार्येण पहुवादि यथा तरोः॥ દ્દ देहेप्वाजरणं सर्वरसानां पवनोऽन्वहम्। जनयत्यग्रिमन्योन्यसंघर्षाद्वनवेणवत् ॥ 90 स्वभावशीतवातातमा देहस्तेनीप्ण्यमेत्यथ । उदितेन स सर्वाङ्गे भूवनं भानुना यथा ॥ ७१ सर्वतो विचरेदस्मिस्तनेजस्तारकाकृति। हत्पद्महेमभूमगो योगिनां चिन्त्यतां गतम् ॥ ওই तत्प्रकाशमयं शानं चिन्तितं सत्प्रयच्छति। येन योजनलक्षस्थं वस्तु नित्यं हि दृदयते ॥ **७३** तसाग्नेवीडवस्पेव जलं संग्रन्कमिन्धनम्। मांसपङ्कञाखण्डाढ्यं हृत्सरःकोशयासिनः ॥ 6.3 यद्च्छं शीतलत्वं च तदस्यात्मेन्द्ररूच्यते । इतीन्दोरुत्थितः सोऽग्निरश्लीपोमा हि देहकः॥ ७५

स्थित। ॥ ६६ ॥ शक्तयो ज्ञानकर्मेन्द्रियादिशक्तयः । प्रायुक्तं हृत्पद्ममादिपदात्राडीजालं च हृदि आभ्यन्तर्गतेस्तथा व्याधु-यते कम्प्यते । यथा बाह्यन बातेन तरुपत्रवृत्दं व्याधृयते तद्वदिखर्थः ॥ ५७ ॥ वाह्यं व्योमः यद्वद्विशालं स्फरति तत्र च स्वभावादेव वायवो बलवत्काष्ट्रपाषाणादिसृद्पर्णतृणादि च कवलयन्तीव कालेन जरयन्ति तदुदन्तर्थोक्र्यपि प्राणवायवी भुक्तमनादि जरवन्तीत्वर्थः ॥ ६८ ॥ जरणप्रकारमेवाह-वा-तैरिति । तत्प्रागुक्तं हत्पद्मनाडीमखादि प्राणवातराहन्यमानं ध्मायमानं लोहकारभक्षेव तरलायते । तरलायमानस्य तस्य हृदि अन्तःप्रविष्टस्यात्रस्य प्रथमं रसो रसाद्रक्तं रक्तान्मांस मांसात्वक लागे मेदो मेदसो अजा मजाम्योऽस्थीन्यस्थिभ्यः ग्रकमिति विचित्रकार्येणान्यस्या अन्या परिणतिरेति । यथा वसन्ते तरोरन्तःप्रविष्टनीमरसस्य पढवा सञ्जर्यः पुष्पाणि फ-लानीत्यादि एति तद्वदिखर्थः ॥ ६९ ॥ तत्र सप्तस्वपि धातु-स्थानेपृत्तरोत्तरपरिणामसिद्धये परस्परसंघर्षाज्ञाठराग्नेरमिव्यक्ति-रस्तीत्यारायेनाह—देहेप्विति । आजरणं जरणपरम्परया चर-मधातुपरिणामपर्यन्तिमित्यर्थः ॥ ७० ॥ स देहः सर्वाने उदितेन प्रदीप्तेन तेन जाटराभिना जाष्ण्यमेति ॥ ७१ ॥ तस्यव सर्वदेहव्यापिनो जाठराप्रेईत्पदे। तार्काकारेण योगिसि-रुपासनं कियत इत्याह-सर्वत इति । अस्मिन् देहे ॥ ७२ ॥ तदेव चिद्रूपेण चिन्लमानं व्यवहित्रविप्रकृष्टसवैपदार्थदर्शनसि-द्धि जनयतीत्याह—तदिति ॥ ७३ ॥ तस्यामेरिन्धनमाह— तस्यति । वाडवस्याभेः सामुद्रं जलमिव मांसलक्ष्णैः पञ्चजस-^०डराब्बं यद्भृत्सरस्तत्कोशशायिनसास्य जाठरस्यामेरपि शारीर-मत्ररसरूपं जलं संशुष्कं जवलनयोग्यमिन्धनमित्यर्थः॥ ७४॥ देहे इन्धनभूतमिन्द्रंशं उक्षणेन विभज्य देहसामीषोमात्म-

सर्वे तृष्णात्मकं किंचित्तेजोऽकीस्यभिषं विदः। शीतात्मकं तु सोमाख्यमाभ्यामेव कृतं जगत् ७६ विद्याविद्यास्त्ररूपेण सर्वे सदसदात्मना । जगद्वा येन निर्वत्तं तदेयेवं विभज्यते ॥ 19.9 i संवित्प्रकाशं विद्यादि सूर्यमधि विद्र्यप्राः। असजाङ्यं तमो विद्यादाहः सोप्तं मनीपिणः 50 श्रीराम उचात्त । बहिर्वाय्वात्मनः सोमाद्रदेतीति मुनीश्वर । सोमस्योत्पत्तिमधुना वद मे बदतांवर॥ :99. वसिष्ठ उवाच। अग्नीपोमी मिथः कार्यकारणं च व्यवस्थिते। पर्यायेण समं चैतौ प्रजीपेते परस्परम् ॥ 60 जन्माङ्गबीजाङ्करवत्तथा दिवसगत्रिवत । स्थितिदछायातपसमा केवला सनयोमेवेत्॥ 28

कलमाह—यदिति ॥ ७५ ॥ व्यंतरपि जगन्प्रकार्शाण्यान्यां र्शेखनास्थास्यां चार्रापामात्मकं जेयमिलाह—नर्शमिति॥७६॥ **अथवा चिल्ल**ोभगपटियं सद्भवारमञ्ज्यांच्याश्वरुं ब्रह्मेद्र जग-दाकारेण निवृत्तांमिति तदेवेयं अकाराजाच्यात्मना अभीपोसरूपेण विभक्तांमध्यहः—विवेति ॥ ७० ॥ ते विभागमेव एक्टमाह— संविदिति । विद्यां जान्मतन्त्रसृतिम् । आविषदापूर्यार्थवया च ६ ७८ ॥ दिहेष्वाजरणं सर्वरहानां पवनीऽन्यहम् । जनय-स्विमन्योग्यसंघर्षद्वनचेणुवत्' इति लहुक्तया देहे बहिश्र प्रसन **क्षेणाम्यादित्यादेवीय्वधीनोद्भवोदयादिदशेनाद्व**िर्वारकातमनः सीमादुदेतीखरामधी मना तुद्ध इति शेषः । शेषः स्वद्यात्यक्ष परसारं पर्यायेण प्रजीवेते जिगीवेते । जिः सांने द्विलकुलयो-रमावरछान्दसः । 'अज्झनगमाम्' इति रीधेः । प्रजीवेते इति षाठे तु परस्परमुपजीवत इह्मर्थः ॥ ८० ॥ अनयोर्जन्मबीजा-द्भरवत्परसरोपादानकं दिवसरात्रिवत्परसारनिमित्तकं च । स्थि-तिस्तु छायातपरामाः परस्परोपधातिनीत्यर्थः ॥ ८१ ॥ दश्च-न्तमेदोपन्यासस्य तारपर्यान्तरमाह—दुल्येति । युगपदुलम्भे छायातपस्थितिः पर्यायेणोपलम्मे दिनरात्रिस्थितिर्देष्टान्त इलार्यः ॥ ८२ ॥ दशन्तयोः कार्यकारणभावद्वयपरत्वपक्षेऽध्यवान्तरमे-दान्तरद्वयेऽपि तारपर्वमस्तीत्याह—कार्यकारणभावकेति ॥८३॥ तथोराद्यमुपपादयति—एकस्मादिति ॥ ८४ ॥ द्वितीयमुपपा-दयति—-एकेति । भाष उत्पत्तिः ॥ ८५ ॥ आधे कार्यदशायां कारणसत्वे मृदात्मकोऽयं घट इलादि प्रलक्षं प्रमाणमिलाह— सद्र्पेति । यदाप्यनुमानादीनामपि संभवीऽस्ति तथापि प्रस्यक्ष-सिद्धेऽर्थे न ते मृग्यन्ते इत्यनुपयोगोक्तिः । तदुर्का न्यायवाचन स्पत्ये 'निह करिणि दृष्टे चीत्कारेण तमनुमिमते भिमातारः' इति । सिद्धिसत्वेन पक्षतारूपकारणाभावादित्याशयः ॥८६॥ एवं द्वितीयेऽपि कार्थदशायां कारणासत्वे दिवारात्रिं नोपलभासहे इलाउपेलिधः प्रमाणमिलाह्—विनाशेति । एकपस्तुस्थः एक-

१ उपलब्धेरभावोऽनुपल्धिः.

त्ज्यकालोपलम्भासावित्यं छायातपस्थितिः । केवर्रेकोपरस्माख्या स्थितिदिवसगविवत् ॥ ८२ कार्यकारणभावश्च द्विविधः कथितोऽनयोः। भद्रपपरिणामीत्थो विनाशपरिणामजः ॥ 63 एकसायद्वितीयस्य संभवोऽङ्कर्याजवत् । कार्यकारणभावोऽसी सङ्गपपरिणामजः॥ 2% एकनाशे द्वितीयस्य यद्भावी दिनगत्रिवत्। कार्यकारणभानोऽसी विनादापरिणामजः ॥ 62 सद्रपपरिणामस्य मुद्धदत्रमसंस्थितेः। अक्षोपलभ्यादितरस्माणं नोपपुज्यते ॥ 68 विनाशपरिणामस्य हिन्सात्रित्रसम्बितेः। अभावोऽप्यक्षकत्स्ताः गते। मुख्यप्रमाणताम् ८७ अनास्था नास्ति कर्नृत्यमित्याचा युक्तियादिनः। अवज्ञया वहिष्कायाः स्वानुभूत्यपत्रापिनः ॥

वसुमात्रमाहिमलक्षांकर ३०॥ ४० व नमु कार्य क्षेत्र कार्य-णमुच्यते । सञ्चतित्वं प कारणस्य तद्भिनिवेशारुधाराधाः मास्यायो उपम् । यथ प्रवासनमाधीपर्धाणस्य दिनमा सांच-निर्माण आस्थास्तीति नाम्ति कर्तुलम् । एवं राजरपि विजय-र्धरवं नाम्बोल्यभाषपरिणांभेन कार्यवारणमाजी निर्माखः । एव-भवित्रस्य मुद्राहेन पटाधिजनते अत्रया संनयति । तसाधिन तमयभेखान । किचानुष्मविधानभी भ्यात्र पूर्व किष्यपूर्व । उपमेदें तु मृतिग्वो नर्यत्येयेति कि सद्वोग परिणमेव । नच पिण्डघटव्यतिरिक्ता उभयात्मता युनाम काचित्तत्र तृतीयास्ति। किय बीजादिस्थितं निर्नेक्ष नश्यक्षष्टं या अङ्गरं जनयेन । नादाः। कुमुलादे। तरप्रसङ्गात् । न द्वितीयतृतीर्थः। तदा स्वत्राणेऽध्य-समर्थं परमुत्याद्यितुं रामशॅभिति का वाचीवृक्तिः । चतुर्थस्त करपः सर्वोनुभववायित इति न कम्मानिस्कम्यनिद्द्यतिर्वन नाशों वा किंतु स्त्रभावत एवं सर्वसुरु(श्वेत विनर्यति च तत्र पौर्वापर्ययुद्धेनाद्धवितेकां कार्यवास्थमात्र्विकृत्या इत्यादिकृतै-क्तिनादिनः स्थानुभवविरोधोद्धावनेनन निरमनीयः इत्याह—-अनास्थेति । इत्यादिरायुक्तिहेर्नुक्तिसाद्वादिनः । अयज्ञया अव-मानेन । स्वानुस्ट्रपटःपिता च तेपःभितः वर्णनीक्षा । अना-स्यादियक्तिबुद्धिरकोलाविबुद्धिः जनयति चलयोरेय कार्यकार-णभावसायानुभवसिद् इति कथं तस्सामान्यःपठापः । यदि न जनयति तर्हि तथा स्वानुभववतस्तव परतुबोधविषया युक्य-पन्यासः स्तानुभवविष्ठद्वः प्रलाप इति । एवं नावरपि चरमन भावविकारातमना अभावपरिणामेन दिनस्य कारणमिति स्वान्-भवसिद्धमेव । तच नाशो न भावविकारः । उत्पत्त्यादेशिव तस्यापि भावधमेलानुभवात् । एवं बीजाङ्कराययस्यास्वनुगतं द्रव्यमप्यवाधितप्रस्यभिज्ञानुभवसिद्धं नापलापाईम् । तदेव स्थितं निनंक्ष नरवन्नष्टमित्वाद्यवस्थामेदं खात्मन्यनुभवदङ्करादेः कारणं नावस्थामेदेषु भिरात इति तत्र द्रव्यनेदास्तेषां निर्देत-कोत्पत्त्यादीनिष्प्रमाणकानतिगारवप्रसाध प्रलपन्तो मुर्खा अव- प्रत्यक्षवदभाषोऽपि प्रमैव रघुनन्दन। अस्यभावोऽपि शीतस्य प्रमाणं सर्वजन्तुषु ॥ ८९ अग्निर्धूमतया भागाचां प्रयाति पयोदताम्। सद्रुपपरिणामेन तद्शिः सोमकारणम् ॥ 9,0 **अंग्रिनंद्रतया दौत्यादसावेय प्रयाति यत् ।** विनादापरिणामेन तद्क्षिः सोमकारणम्॥ ९१ सप्ताम्बुधिपयः पीत्वा धूमोद्वारेण वाडवः। पयोदतां प्रयातेन तदेव जनयत्यसम् ॥ ९२ अर्कः पीत्वा निशानाथमामावास्यं पुनःपुनः। उद्गिरत्यमले पक्षे मृणालमिय सारसः॥ ९३ पीत्वासृतोपमं शीतं प्राणः सोममुखागमे । अम्रागमात्पूरयति शरीरं पीनतां गतः॥ ९४

इयैव बहिष्कार्यो इत्यर्थः ॥ ८८ ॥ अनुपलब्धेः प्रामाण्यसंदेहं बारयति-प्रत्यक्षवदिति । प्रमेव प्रमाणमेव । नचाभावे प्रमा-करणलमन्यत्र न दृष्टमिति श्रमितव्यम् । तेजोभावस्य शीतानु-मितौ लिज्जविधया करणलप्रसिद्धेरित्याह-अग्यभाव इति ॥ ८९ ॥ बहिरग्नेः सद्भूपपरिणामेन सोमकारणलमुदाहरति-अप्रिरिति । तत्तत्र ॥ ९० ॥ अभावपरिणामेनापि तदुदाइ-रित-अग्निरिति । असी अग्नियद्वायुभावं प्राप्नोति । 'यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति' इति श्रुतेः ॥ ९१ ॥ सद्रूपपरि-णामेनाप्रीषोमयोः परस्परकारणलमेनेकत्रोदाहरति-राप्तेत्या-हिना । वाडवो वडवानलः पयोदतां प्रयातेन स्वेनैव तत्सप्ता-म्बुधिपय एव जनयति । क्षीरदिधिष्टतादीनामपि रसात्मकसी-महत्वतात्सर्वत्र पयोवादः ॥ ९२ ॥ आअमावास्यामित्यामा-बास्यम् । 'आङ् मयीदाभिविध्योः' इलाब्ययीभावे नपुंसक-इ.स. । कृष्णपक्षे अमावास्यापर्यन्तमित्यर्थः । अमले शुक्रे पश्चे ॥ ९३ ॥ सोमो मुखमिव शोममानो यत्र तथाविधवस-न्तप्रीष्मागमे प्राणः सोष्मा वायुर्भीमं पयः पीला वर्षतीवश्रा-गमालद्वेषेण पीनतां गतः सन् बृष्ट्या पुनर्जगच्छरीरं पूरयति । अथवा आध्यात्मिक एव प्राणः सोमस्यापानस्य मुखादन्नपाना-देरदरे आगमने सति अमृतोपमं तद्रसं पीला पीनतां गतः समभवद्याप्तसर्वनाडीजालागमनाच्छरीरं पूरयत्याप्याययति । स एवास्य पुनः सोमपरिणाम इत्यर्थः । 'तदपानेनाजियक्षत्त-दावयरसेषोऽप्रस्य प्रदः' इति श्रुतेरिति भावः । सोमं सुखागमं इति पाटे तु प्राणोऽग्निभूतो यजमानप्राणोऽध्वरे अमृतोपमं श्रीतं सोमरसं पीलान्ते धूमादिमार्गेण सुखस्य खर्गस्यागमे अभ्रस्य चन्द्रसन्निहिताकारालक्षणमार्गपर्वण आगमनाचन्द्रं प्राप्य तद्भावं प्राप्तः कछामिः स्वश्रारं पूरयति स एवास्य पार्ण-मास्यां पीनतां गतः पुनः सोमपरिणाम इत्यर्थः । धूमादिमा-र्शक्षम्ब्रभावश्च श्रुलैव दर्शितः। अथ यत्रेमे प्रातरिष्टापूर्ते दल-मित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमादात्रिं रात्रेरपरपक्षमपर-

जलमप्युद्धपां भोगे प्रयात्यर्कस्य रिमताम्। सदूपपरिणामेन तज्जलं वहिकारणम्॥ ९५ नाशात्मकतया तोयमौणयत्वादेति हामिताम्। विनाशपरिणामेन तत्तोयं वहिकारणम्॥ ९६ अग्नेर्विनाशे सद्रूपपरिणामो निशाकरः। इन्दोर्विनाशे सदूपपरिणामो हुताशनः॥ ९७ हुताज्ञो नाज्ञमागत्य सोमो भवति वै तथा। दिवसो नारामागत्य रात्रिर्भवति ये यथा॥ 96 तमःप्रकाशयोदछायातपयोर्दिनरात्रयोः। मध्ये विलक्षणं रूपं प्राधिरपि न लभ्यते॥ ९९ संधिरप्यविलोपः स्यादेतयोरेव तद्वपुः। भावाभावैर्यथेकास्थानिष्ठावेती तथैव हि॥ १००

पक्षाचान् पददक्षिणाति मासांस्तानिते संवत्सरमित्राप्रवन्ति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाचन्द्रमसमेष सोमो राजा तहेवानामन्नम्'इति । 'तस्मिनेतस्मिन्नमें देवाः श्रदां जुह्नति तस्या आहुतेः सोमो राजा संभवति' इति च पद्याप्तिविद्या-याम् ॥ ९४ ॥ यदि मन्यसे न वायुर्भीमं रसं शोषयति किं लकररमय एव तं पिबन्ति रात्रावप्यूष्मरूपेण तेषां सत्त्वादिति तदा त एवोदाहरणमिलाशयेनाह—जलमपीति । उत् ऊर्घ्व-मादित्यरिमभिरपां भोगे पाने कल्प्यमानेऽपि जलमर्कस्य रिस्ततां सद्भूपपरिणामेन याति । शुक्ररूपेण तत्रापामनुगमद-र्शनात् । 'यदादिखस्य लोहितं रूपं तेजसस्तद्वूपं यच्छ्रकं तदः पाम्' इति श्रुतेरिति भावः ॥ ९५ ॥ यस्तु तत्र शैल्यद्रवलयो-र्नाश औष्ण्यरीक्ष्ययोधोद्धवस्तदंशे विनाशपरिणामिताप्यस्तीति संकीर्णीदाहरणमिदमित्याह—नाशात्मकतयेति ॥ ९६ ॥ सर्वन त्रामीषोमात्मके परिणामे उभयरूपसंकीर्णतापि सुक्ष्मदशा लक्ष-यितुं शक्येत्याशयेनाह-अभेरिति द्वाभ्याम् ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ तर्हि तमः प्रकाशयोरछायातपादी च किमनुगतं रूपं येन सद्भुपरिणामता तत्र स्यादिति चेत्तद्वह्यैव तत्राभिज्ञतभैरि शक्तप्राहिकया न रुभ्यत इलाह-तम इति। मध्ये अनुगतं व्यावृत्ततमः प्रकाशविलक्षणं सन्माध्रहणम् । अथवा मध्ये संधौ उभयविलक्षणम् । दिनरात्रयोरिति समासान्तर्छान्दसः॥९९॥ ननु तमःप्रकाशयोः संधिरुभयविद्योपातमा शुन्यस्पस्तत्र नो-भयविलक्षणं किंचिद्र्पमस्तीत्याशक्याह—संधिरिति । अनयोः संघिरपि अवलोपः अशून्यहपः स्यात् । यतस्तत्संधिरूपमेत-योरेव वपुः परस्परसंलन्नं स्वरूपम् । नहि श्रून्ययोः संधिनीम भवति । नवा निर्निमत्ता सतोः शुन्यता कथं तर्हि तौ संधौ वर्तेते इति चेत् । यथा पूर्वोत्तरकालयोगीवाभावैः । उदाह-रणबाहुस्याद्वहुवचनम् । परस्परनिरपेक्षनिरूपणेन भावरूपेण सापेक्षनिरूपणेनाभावरूपेण च तम इदं प्रकाशाभावरूपमेकमेव वस्तु प्रकाशधायं तमोऽभावरूपमेकमेव वह्तिति सर्वानुभवादे-

१ असी नष्टतया शैल्यादायुतामेव बाति यद् इति पाठः.

अग्निन्द्रतया इति मूलपाठे तु बायुभाविमस्यध्याद्वारकम्थं श्रेयम् ।

द्वाभ्यां वैतन्यजाड्याभ्यां भृतानि प्रस्फुरन्ति हि । यथा तमःप्रकाशाभ्यामहोरात्रा महीतले॥ चिद्रपजडरूपाभ्यामारब्धेयं जगत्स्थितिः । जलामृताभ्यां मिश्राभ्यां शीता तनुरिवैन्दवी १०२ प्रकाशमनलं सुर्ये चिद्रपं विद्धि राघव। जडात्मकं तमोरूपं विद्य सोमशरीरकम्॥ १०३ चित्सुर्ये निर्मले दृष्टे नाम नइयेद्भवोदयम्। व्योमसूर्ये बहिर्दछे यथा रुष्णनिशातमः॥ १०४ सोमदेहे जडे दृष्टे चिन्निजे सत्यबद्भवेत् । निशीथे विलसत्यक्षे यथा सौरप्रभाभरः॥ १०५ सोमं प्रकटयत्यग्निश्चिद्देहस्य चिरं प्रभाम्। स्वसंविन्मयमिन्दुश्चिद्दहस्यं रूपमर्कजम्॥ १०६ चिन्निष्कियात्वनामा सा केवला नोपलभ्यते । आलोक इव दीपेन देहेनेवावगम्यते॥ १०७ चितश्चेत्योन्मुखत्वेन लाभः सैव च संसृतिः।

तावेकास्थानिष्ठी स्थिती तथेव हि संधाविप वर्तेते । नाणु-मात्रमप्यन्यथाभृतावित्यर्थः ॥ १०० ॥ १०१ ॥ यथा विरु-द्धाविरुद्धतमः प्रकाशघटिता अहोरात्रास्तथा चिज्जडोभयघटिताः सर्वव्यवहारा इलाह—चिद्रूपेति । जलमये बिम्बे सूर्यकरद्वारा सूर्यविम्बस्थितामृतात्मककलाभिः ऋमेण पूरणादुभयारच्या ऐन्दर्वी तनुरिव ॥ १०२ ॥ चिज्जडोभयांशाभ्यामेव प्रकाशाप्र-काशतया आविर्भूताभ्यां जगतोऽप्रीषोमात्मकतेत्याह--प्रका-शमिति ॥ १०३ ॥ बहिः सूर्योदयात्तम इवान्तश्वरमवृत्त्या चिदादिलोदयाजगन्मुलतमोनिवृत्तिरिलाह्—चित्सर्ये इति। भ-वस्योदयो यस्मात्तद्भवोदयं तमः ॥ १०४ ॥ निजे प्रखगात्मनि जडे सोमदेहे दृष्टे सति तत्तादात्म्येन स्फरन्सपि चित्तद्गणल-मिवापन्ना गुणान्तरवत्तत्सत्तयेव सती भूला ससत्तया असत्यव-द्भवेत् । यथा निशीथे अर्घरात्रेऽब्जे चन्द्रे विरुसति तदनुत्रवे-शेन स्फुरन् सौरप्रभाभरश्चन्द्रधर्मचन्द्रिकात्वेन संपन्नश्चन्द्रस-त्तया सनिव भूवा खसत्तया असत्यवद्भवति तदानीं सौरप्रभा-भरो नास्तीति सर्वजनानुभवादिति भावः ॥ १०५ ॥ दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोरुपपत्तिं फलं चाह्-सोममिति । चन्द्रमण्डले प्रविष्टः सूर्यप्रभारूपोप्तिः सोमं जलमयं चन्द्रविम्बं प्रकटयति **रफुरद्र्**पं करोति । देहे तु जीवभावेनानुत्रविष्टा विदेहस्य चिरं यावदायुःप्रभामहंभावादिना प्रथां करोति 'यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्रं लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्रं प्रका-शयति भारत ॥' इति भगवद्वचनात् । एवमन्योन्यमे-लने तादारम्याध्यासादर्कजं रूपं प्रभामण्डलमिन्दुर्भवति । विष संसंविन्मयं मनुष्योऽहं चेतन इत्यादिस्यानुभवानुसारिदे-हर्स्थं रूपं भवतीत्यन्वयः ॥ १०६ ॥ इतोऽपि तत्या देहधर्म-लभ्रम इलाइ-चिदिति । नमयति संकोचयतीति नाम **उपाधिस्त**च्छुन्या ॥ १०७ ॥ अज्ञानानृतायाश्चितश्चेलोपाध्यु-न्मुसप्रधानियमादेवानर्थप्राप्तिरिलाह—चित इति ॥ १०८॥

निश्चेत्यायाः शुभो लाभो निर्वाणं वा तदेव हि १०८ अन्योन्यलम्धसद्धाक्यावेवं कुड्यप्रकादावत्। अग्रीपोमाविमी शेया संपृक्ती देहदेहिनी॥ अतिशायिनि निर्वाणे जाड्ये चैवातिशाबिनि । अग्रीपोमस्य चैवाङ्ग स्थितिभवति केवला॥ प्राणोऽग्निरुणप्रकृतिरपानः शीतलः शशी । छायातपषदित्येती संस्थिती मुखमार्गगी॥ अपाने शीतले सत्तामेत्युष्णः प्राणपाचकः। प्रतिबिम्बमिवादर्शे स च तस्मिस्तथैव हि॥ चिवग्निः पद्मपत्रस्यं सोमं वाचात्मकं त्विपा। जनयत्यनुभृत्येह कुड्यालोकं यथा बहिः॥ संस्त्यादी यथा काचित्संविच्छीतोष्णरूपिणी। अग्नीपोमाभिधां प्राप्ता सैव सर्गे नृणामिह ॥ ११४ यत्र सोमकला प्रस्ता क्षणं सूर्येण षोडशी। मुखाद्वितस्तिमात्रं स्यात्तत्र बद्धपदो भव ॥ ११५

एवमुक्तरीत्या कुञ्चसीरप्रकाशघदन्योन्यसंवलनाधीनसद्भूपेण वा-ग्व्यवहारविषयत्वादिमी देहदेहिनावप्यमीषोमात्मकौ ॥ १०९ ॥ तयोरसंविकता प्रत्येकं स्थितिः हः प्रसिद्धा त-दाह--अतिशायिनीति । निर्वाणमुपाधिनिवृत्त्या आनन्दाबि-र्भावस्तरिमन्नतिशायिनि आत्यन्तिके सिद्धेः अग्नेः केवला स्थि-तिभवति । जाज्ये लतिशायिनि जलशिलादिभावे सोमस्य केवला स्थितिभवतीत्यर्थः ॥ १९० ॥ प्राणापानयोरप्यभीषोमा-त्मकत्वं प्रायुक्तं प्रकृतोपयोगाय स्मारयति—प्राण इति॥१११॥ तयोः कुष्यालोकवदन्योन्यतादात्म्यस्थिति दर्शयति अपाने इति ॥ ११२ ॥ मूलप्राणकुण्डलिनीरूपश्चिदमिराधारादिकच्छा-न्तचतुर्दछादिपद्मपत्रस्थं परादिवैखरीपर्यन्तवाचात्मकम् । लिखा अर्थप्रकाशनशक्तया अनुभूत्या । विवक्षापक्षे लर्थप्रधारूपया स्फूर्ला । यथा बहिः सूर्य इति शेषः ॥ ११३ ॥ यथा सर्गाहौ मायारावलं ब्रह्म संविच्छीतोष्णस्विणी ब्रह्माण्डाकारेणामीबो-मामिषां प्राप्ता तथा नृणां व्यष्टिदेहानां सर्गेऽपीखर्थः॥११४॥ अस्तवेवं ब्रह्माण्डमिव शरीरमप्यग्नीपोमात्मकं कि ततः कार्य तत्राह-यत्रेति । यथा दिवि कृष्णपक्षे अम्यात्मा सूर्यः सो-मस्य शीताः पश्चदशकलाः प्रतिपदादितिशिषु कमेण प्रसति एकां धुवास्यां चिद्र्पां परिशेषयति । ततः गुह्नपक्षे कमे-णोष्णा उद्गिरति । ताभिः क्रमेण पूर्यमाणा ध्रवा कला पूर्णः सोमो जायते।तथा हृदि स्थितः प्राणसूर्योऽपानहृपस्य सोमस्य मुखनासि-काद्वारा प्रविष्टाः शीताः पषदशकला प्रसिला मुखाद्वहिर्भुवास्या-मेकां कलां परिशेष्य पुनस्ता उष्णा उद्गिरति । तामिः सा पूर्य-माणा बहिरपानास्यः सोमो जायते । तत्र बहिःप्राणापानसंधि-कालः पूर्णमासी हृदि लमावास्या । अन्तरालदेशे इडापिङ्गक्रमोः प्रत्येकुमूर्वाधोभागप्रतिशाखानाडीषद्के प्राणसूर्यस्य प्रवाहाहे अयने। मेषादयो द्वादश मासास्तदन्तराठे संकान्तयः। अपान-सोमस्य प्रवाहाभैत्रादयो मासा विष्कम्भादवो योगा अव्याम

नूनं स्र्यपदं प्राप्तो यत्र सोमो हृदम्बरे ।
नूनं केवलया स्थित्या तत्र बद्धपदो भव ॥ ११६
उण्णमग्निश्चिदादित्यः शैत्यं सोम उदाहृतम् ।
यत्रेतौ प्रतिबिम्बस्या तत्र बद्धपदो भव ॥ ११७
शारीरे सोमसूर्योग्निसंकान्तिको भवानघ ।

तत्र संक्रान्तिकाला हि वाह्यास्तृणसमाः स्मृताः॥ संक्रान्तिमुत्तरमथायनमङ्ग सम्य-कालं तथा विषुवतौ यदि देहवातैः। अन्तर्वहिष्टमिव वेत्सि यथानुभूतं तच्छोभसेऽत्र न पुनः परमभ्युपेतः ११९

इत्यापें श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्ल्माकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे अप्रीवोमविचारणं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्यशीतितमः सर्गः ८२

वसिष्ठ उवाच । अणुतां स्थूलतां वापि यथा गच्छति योगिनाम् । देहो नाम तथा सम्यग्वस्यमाणिमदं श्रृणु ॥ १ इद्यक्षचक्रकोशोर्ध्वं प्रस्फुरत्यानलः कणः । हेमभ्रमस्वत्सान्ध्यविद्युद्धव इवाम्बुदे ॥ २ स प्रवर्धनसंविस्या वात्ययेवाग्रु वर्धते ।

च पर्वाणि निष्पद्यन्ते इति योगिनां प्रलक्षम् । अन्यस्त्र स्व-रोदयादिशास्त्रतो ज्ञेयम् । एवं स्थिते वश्यमाणदेहाणुतास्थी-ह्याद्युवयोगिधारणाभेदाः प्रथमं त्रिनिः क्षोकैरुपदिश्यन्ते । यत्र मुखाद्वहिर्देशे सूर्यणात्रस्ता ध्रवाध्या सोमस्यापानस्य षोड-बीक्टा प्राणेनोद्गीर्णामिः कलामिः पृत्रमाणा क्षणं प्राच्यां पूर्णमासीचन्द्र इव वितक्तिमात्रं स्थात्तत्र भुशुण्डोपास्थानोक्तवा-ह्यक्रमकेम मनोघारणया बद्धपदः स्थिरो भवेखर्थः ॥११५॥ तथा यत्र हृदम्बरे कलाग्रासेन कमाइस्यमानोऽपानाख्यः सो-मोऽमावास्यायामिव केवलया शुद्धचिद्रपञ्चवाह्यकलात्मिकया स्थित्या तिप्रति तत्रान्तः कुम्भकेन बद्धपदो भव ॥ ११६ ॥ इदानीमधरेचकेनार्धपुरकेण वा अन्तराछे प्राणस्वीभयतो नि-रोधेन बिम्बप्रतिविम्बवत्तस्यरूपतामापाद्य धारणामाह—उष्ण-मिति ॥ ११० ॥ यथा वसन्तर्भाष्मवर्षाशरत्भु क्रमेण शीत-स्वीष्येन प्रासात्सोमस्यामसंक्रान्तिः । शरद्वेमन्तशिशिरेषु क-मादीष्ण्यस्य शैरयेन प्रासाद्गेः सोमसंकान्तिसायोः विषुवती सूर्यस्य च मेपादिषु संक्रान्तिस्तथा शरीरेऽपि अपा-नशैत्यस्य जठरामिना प्रासे सोमस्याप्तिसंकान्तिः । प्राणीण्यस्य बहिःशैत्येन प्रासादमेः सोमसंकान्तिः । सूर्यस्य संकान्तयस्तु **प्रामुक्तास्ता जानातीति तज्हो भवेति पूर्वोक्तधारणान्नं विधिः ।** प्रासन्तिकं तज्ज्ञानस्य प्रसिद्धसंकान्तिस्नानदानादिफलेभ्य उत्कृष्ट-तमफलकीर्तनं प्रधानफलेन स्त्रतिर्वा ॥ ११८ ॥ उक्ताङ्गज्ञान-मन्द्य तत्राधिकारिप्रशृत्तये प्ररोचयति—संकान्तिमिति । कालं अयनद्रयात्मकं संवत्सरं देहवातः । प्राणापानयोद्वीदशनाडीशा-सानुसारिगतिमेदाद्वहुषचनम् । बहिः प्रसिद्धे संवत्सरे स्थितमिवा-न्तरपि योगाभ्यासाद्यथानुभूतं घटादीन प्रत्यक्षमनुभूतं स्फूटं यदि वेत्सि तत्तर्हि अत्र योगिकयासु शोमसे । परं मदुपदिष्टादम्यद-भ्युपेतो व्यासङ्गान्तरे प्रशृतासु न शोभसे इति तदेकप्रवण-

संविद्धपतया नृनमकंवद्याति चोदयम् ॥ ३ संध्याभ्रथमार्काभो वृद्धिमभ्यागतः क्षणात्। गालयत्यखिलं साङ्गं देहं हेम यथानलः ॥ ४ जलस्पर्शासहो युक्त्या गलयेत्प्रपदादपि। वाह्य प्यानलस्पर्शात्स्यान्ते वस्तुविरोषतः॥ ५

ताबिधिः ॥ ११९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्य-प्रकाशे निर्वाणमकरणे प्रकाशितितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ अणुतास्यूलतोपाया ज्ञानसाध्यं च योगिनः । परकायासिभोगाश्च वर्ण्यन्त इह युक्तिभिः ॥ १ ॥

एवमप्तीवीमात्मकत्वं देहादेः परिज्ञाय धारणात्रयाभ्यासप-रिष्कृतप्राणमनः शरीरस्य सोमसूर्याप्रिसंक्रमादिदर्शिनो योगिनो देहस्याणिमादिनिद्धिप्राप्तिप्रकारान् वक्तं प्रतिजानीते-अणु-तामिति ॥ १ ॥ तत्रादावणुखप्राप्तये देहस्य विळापनाय ना-भ्युपरिदेशे ज्वलतो जाटरानलस्य हृत्यद्मनालस्य स्वारमाञ्चद्रद्वारा प्रविश्य हृदयाकाशं हृत्पश्चकर्णिकायां परमात्मन आसनभूतां शिखां दर्शयति—हदीति । अन्जकोशस्योध्वेकर्णिकोपरि । तथाच तेत्तिरीयाणामुपनिषदि 'तस्य मध्ये महानमित्रिश्वार्च-विश्वतोमुखः' इति । जाटरानलं प्रस्तुत्य श्रूयते 'तस्य मध्ये वक्रि-शिखा अणीयोध्वा व्यवस्थिता । नीलतोयदमध्यस्थाद्विद्यहेखेव भाखरा । नीवारश्कवत्तन्वी पीता भाखलाणुपमा । तस्याः बि-खाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः' इति । विद्युद्धवस्य साध्य इति विशेषणं पीतादप्रकर्षबोधनार्थम् ॥ २ ॥ स आनलः कणः प्रवर्धनस्य संवित्त्या सर्वे देहं व्याप्य यथा ज्वलति तथा वर्ध-नोपायज्ञानेन । सच संवर्धितो नामिवदेहं दहति दिंतु संवि-द्रुपतया अर्कवदुद्यं प्रकाशातिशयं याति ॥ ३ ॥ संध्यायां प्रत्यूषे अभे आकाशे प्रथममुदितो योऽर्कस्तदाभः । गालयति गलितं करोति । साङ्गं इस्तपादायङ्गसहितं देहम् । पार्थिवं गन्ध-भागं काठिन्यं च तदुपादानजलभागे उपसंहरतीलयः ॥ ४ ॥ एवं प्रपदात्पादाप्रपर्यन्तमपि गलयेह्वीकुर्यात् । ततः शोषण-युक्तया वस्तुविशेषतः अग्रिखभावविशेषाञ्चलस्य स्पर्श शैरयं न सहते इति जलस्पर्शासद्दः सोऽनलः स्पर्शात्सीण्यवलाष्ट्रवलो-पसंहारयुक्तया जलमपि गरुवेत् शोषयेत् । एवंरीत्या देहा-

स रारीरद्वयं पश्चाद्विध्रय कापि लीयते । विश्लोमितेन प्राणेन नीहारो वात्यया यथा॥ आधारनाडीनिहींना व्योमस्थैवावशिष्यते। शक्तिः कुण्डलिनी बहेर्धमलेखेव निर्गता ॥ कोडीकृतमनोबुद्धिमयजीवाद्यहंकृतिः। अन्तःस्फुरचमत्कारा धूमलेखेव नागरी॥ बिसे शैले तृणे मित्तावुपले दिवि भूतले। सा यथा योज्यते यत्र तेन निर्यात्यलं तथा ॥ संवित्तिः सैव यात्यङ्ग रसाद्यन्तं यथाक्रमम्। रसेनापूर्णतामेति तन्त्रीभार इवाम्बुना ॥ १० रसापूर्णा यमाकारं भावयत्याद्य तत्तथा । धरो चित्रकृतो बुद्धो रेखा राम यथा कृतिम्॥ ११ दृढभाषवशादन्तरस्थीन्याभोति सा ततः। मातृगर्भनिषण्णेषु सुसृक्ष्मेवाङ्करस्थितिः॥ यथाभिमतमाकारं प्रमाणं वेत्ति राघव । जीवशक्तिरवाप्नोति सुमेर्वादि तृणादि च॥ श्रुतं त्वया योगसाध्यमणिमाद्यर्थसाधनम् । ज्ञानसाध्यमिदानीं त्वं शृणु श्रवणभूषणम् ॥ १४ । एकं चिन्मात्रमस्तीह शुद्धं सीम्यमलक्षितम्। सुक्ष्मात्सुक्ष्मतरं शान्तं न जगन्न जगितन्नया ॥ तिश्वनोत्यात्मनात्मानं संकल्पोन्मुखतां गतम्। यदा तदा जीय इति प्रोक्तमाविलतां गतम् ॥ १६ असत्यमेव संकल्पभ्रमेणेदं रारीरकम्।

द्वाह्यः सन् स्वान्ते मनोरूपे आतिवाहिकदेहमात्रेऽवतिष्ठते इति शेषः ॥ ५ ॥ एवं पार्थिवमाप्यं च शरीरद्वयं थिधृय स्थितः सोऽप्तिर्विक्षोमितेन प्राणेनोपसंहतः कापि 'यदा वा अमिरुद्वायति वायुमेवाप्येति' इति श्रुतेरित्यर्थः ॥ ६ ॥ तदानीं कुण्डलिनीशक्तिरपि मूलाधारस्थसुषुप्रानाडी-हीना तत्संस्कारशास्यातिवाहिकदेहाकाशेऽवतिष्ठत —-आधा**रेति । वहे**र्निर्गता धूमछेखेव ॥ ७ ॥ तत्र स्थिता च सा कोडीकृता संकलिता मनोबुद्धिमये जीवा-दिघटितलिङ्गारीरे अहंकृतिर्थया तथाविधा । अन्तः स्पूरन् चित्रकाशचमत्कारः खेच्छाविहारशक्तिचमत्कारश्च यस्यास्तथा-विधा सती सुक्ष्मतमे विसनालिन्छद्रे शैलादी च यत्रव प्रविदय निर्गन्तं युज्यते तत्र प्रविश्य निर्यातीर्लाह-नोडीकृतेति द्वयोरयैः ॥ ८ ॥ ९ ॥ एवं सूक्ष्मीभावप्रकारमुक्खा स्थूलीभा-वेनैच्छिकनानाशरीरकल्पनाप्रकारमाह—रसेनेत्यादिना । सा कुण्डलिनी योगिनो जीवशक्तिर्वही प्रागुपसंहतं जलभागं यदा मुचति तदा रसेन सर्वतः आपूर्णतामेति । यथा तन्त्री चर्मरज्ञुं विभर्ताति तन्त्रीभारो भस्नारूपथर्मविशेषः कूपे क्षिप्तोऽम्बुना आपूर्णतामेति तद्दत् ॥ १० ॥ एवं रसापूर्णा सती प्रागुपसंहतं पार्थिवभागं यमाकारं कर्त्रं भावयति तद्योगशक्तया तथा कला

जीवः पश्यति मृढात्मा बालो यक्षमिवोद्धतम् १७ यदा तु शानदींपन सम्यगालोक आगतः। संकल्पमोहो जीवस्य श्रीयते दारदभ्रवत् ॥ १८ शान्तिमायान्ति देहोऽयं सर्वसंकल्पसंक्षयात् । तदा राघव निःशेषं दीपस्तैलक्षये यथा॥ निद्राव्यपगमे जन्तुर्यथा स्वप्नं न पद्यति। जीवो हि भाविते सत्ये तथा देहं न पदयति ॥ २० अतत्त्वे तत्त्वभावेन जीवो देहावृतः स्थितः। निर्देहो भवति श्रीमान् सुखी तस्वैकभावनात् २१ अनात्मनि रारीरादावात्मभावनमङ्ग यत्। सूर्याचालोकदुर्भेदं हार्दे तहारुणं तमः॥ २२ आत्मन्येवात्मभावेन सर्वव्यापि निरञ्जनम्। चिन्मात्रममलोऽस्मीति श्वानादित्येन नइयति ॥ २३ अन्ये च विदितात्मानो भावयन्ति यथैव यत । तत्त्रथेवाद्य पदयन्ति दृढभावनया तया ॥ રક रदभावानुसंधानाद्विमुदा अपि राघव। विषं नयन्त्यमृतताममृतं विषतामि ॥ २५ एवं यथा यदेवेह भाव्यते रहभावनात्। भूयते हि तदेवाशु तदित्यालोकितं मुद्रः॥ २६ सत्यभावनदृष्टोऽयं देहो देहो भवत्यलम् । दृष्टस्त्वसत्यभावेन व्योमतां याति देहकः॥ २७ अणिमादिपद्माप्ती झानयुक्तिरिति श्रुता । भवता साधुना राम युक्तिमन्यामिमां शृजु ॥ २८

धत्ते इत्यर्थः ॥ ११ ॥ तत्रास्थ्यादिकल्पनात्रकारमाह—हडेति । मातृगर्भनिषण्णेषु कललेषु सुसुध्मा बीजशक्तिरस्थिहस्तपादा-द्यङ्करस्थितिरिव ॥ १२ ॥ यथाभिमतं म्वेच्छानुसारि सुमे-र्वादि महत् नृणाद्यत्पं वा आकारमवाप्नोति ॥ १३ ॥ योग-सिद्धनुसारे**ण** स्थृलसूक्ष्मभावप्राप्तिकमुक्तमुपसंहत्य सिद्धा तद्विलक्षणं तं वक्तुं परमप्रकृतं श्रावयति—श्रुतमिति ॥ १४ ॥ १५ ॥ चिनोत्यध्यासेनोपचिनोति ॥ १६ ॥ जीवः पर्यति स एवास्य स्थूलभाव इति भावः ॥ १७ ॥ सीक्ष्म्य-प्राप्तिक्रममाह—यदा लिखादिना ॥ १८ ॥ शान्ति बाधम ॥ १९ ॥ भाविते साक्षात्कृते ॥ २० ॥ २१ ॥ लीकिकसूर्या-द्यालोकेर्दुर्भदं नाशयितुमशक्यम् ॥ २२ ॥ केन तर्ह्यादित्येन तन्नाशस्तमाह--आत्मन्यवेति ॥ २३ ॥ अस्यां ज्ञानसिद्धा-वपि दढायां जीवन्मुक्तानामैच्छिकं विनोदाय स्थूलसूक्ष्मप्राति-भासिकदेहकल्पनं सिद्धातीत्याह-अन्ये चेति ॥ २४ ॥ बि-मूढा विषकीटादयः । अमृताममृतवदाहारताम् । अमृतं पयोत्रादिविषमिश्रितमिदमिति हढन्रान्त्या विषताम् ॥ २५ ॥ इति ईर्श तदुदाहरणं मुहुर्बहुशो लोके आलोकितमिलार्थः ॥ २६ ॥ व्योमतां ब्रह्माकाशताम् ॥ २७ ॥ सैवास्य निरति-शया अणिमादिसर्वसिद्धय इत्याशयेनोपसंहरति-अणिमा-दीति । अन्यां परकायं प्रविश्य भोगप्राप्तिलक्षणाम् ॥ २८ ॥

१ निर्यातीतिकोडीकृतेति द्योरर्थ इत्यपेक्षितम्।

रेचकाभ्यासयोगेन जीवः कुण्डलिनीगृहात्। उद्भृत्य योज्यते यावदामोदः पवनादिव॥ २९ त्यज्यने विरतम्पन्दो देहोऽयं काष्टलोष्टवत्। देहेऽपि जीवेऽपि मनावासेचक द्वाद्रः॥ ३० स्थावरे जंगमे वापि यथामिमतयेच्छया। भोकुं नन्संपदं सम्यग्जीवोऽन्तर्यिनिवेदयते॥ ३१ इति सिज्जिथियं भुक्त्वा स्थितं चेत्तहपुः पुनः। प्रविद्यते स्वमन्यद्वा यद्यत्तात विरोचते ॥ ३२ देहाद्यस्तथा विम्बान्व्याप्तवत्याखिलानथ । संविदा जगदापूर्य संपूर्ण स्थायतेऽथवा ॥ ३३ ज्ञात्वा सदाम्युदितमुज्झितदोषमीशो यद्यद्यथा समिनवाञ्छति चित्प्रकाशः । प्राप्नोति तत्तद्चिरेण तथेव राम सम्यक्पदं विदुरनावरणत्वमेष ॥ ३४

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वारमाक्षीये देवमोक्षीपायेषु निर्वाणप्रकरणे अणिमादिलाभयोगोपदेशोनाम यशीतितमः सर्गः॥८२॥

व्यशीतितमः सर्गः ८३

ď

वसिष्ठ उचाच ।
अणिमादिगुणेश्वयंयुक्ता सा नृपमामिनी ।
एवं वभूव चूडाला घनाभ्यासवती सती ॥
जगामाकाशमागेण विवेशाम्बुधिकोटरम् ।
चचार वसुधापीठं गक्केवामलशीतला ॥
क्षणमप्यगता भर्तृवंश्वसश्चेतसस्त्रथा ।
सवेंपूवास राज्येषु लक्ष्मीरिव जगत्मु च ॥
आकाशगामिनी द्यामा विद्युत्पारम्भभूपणा ।
वश्चाम मेचमालेव गिरिमाला महीतले ॥
काष्ठं तृणोपलं भूतं खं वातमनलं जलम् ।
निविध्नमविशत्सवं तन्तुर्मुकाफलं यथा ॥
मेगेरुपरि शृङ्काणि लोकपालपुराणि च ।
दिख्योमोदररम्भ्राणि विजहार यथासुखम् ॥

तत्रादा पूर्वदेहपरित्यागोपायमाह—रेचकेति । उद्घृत्य बहिर्निः-सार्थ परदेहे यावधोज्यते ताबदयं देहस्खज्यत इति परेणा-न्वयः । यथा याद्यप्रवनसंक्रान्तः पुष्पामोदः प्रवनादाकृष्य घाणे योज्यते तद्वत् ॥ २९ ॥ विस्तस्यन्द उपरतचेष्टः काष्ट-लोप्रवद्भवति । परेषां देहे जीवे मत्तावपि तत्संपदं भोक्तमयं खुजीयो विनिवेदयते । यथा आसेचकः पुरुषः करस्थकुम्मो-दंबन यमेव तर्र छतां वा आसेकुमिन्छति तमेवासिबति तद्व-दत्रापि यथाभिमतयेच्छया आदर इखन्वयः ॥ ३० ॥ ३९ ॥ इति उक्तरीत्या परदेहें मिद्धिश्रयं भुक्ला स्थितेन योगिना तत् पूर्वतनं स्तं वतुः स्थितं चेत्पुनस्तत्प्रविद्यते नोचेदन्यद्वा यदाः दाबद्विरोचने तत्तत्तावत्कालं प्रविश्यत इत्वर्थः ॥ ३२ ॥ अ-थवा योगिना अथ परकायभोगानन्तरं स्वान्तःकरणवेषुल्यापा-दनेन जगदापूर्व देहाद्यः। व्यत्ययेन द्वितीयार्थे प्रथमा । स्थावरजंगमसर्वदेहादिप्रतिविम्बोपाधीस्तत्प्रतिविम्बजीवांस्तथा तद्भिम्बोपाधिसत्वादिगुणांस्तद्वच्छिप्रचिह्नक्षणान्विम्बांश्वेद्यस्नि-छानपि व्याप्तवत्या स्वात्मसंविदा संपूर्ण यथा स्वा**त्तथा** स्थीयत इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ उपसंहरति—क्वात्वेति । ईक्षो योगैश्वर्यसं-पन्नो जीवचित्प्रकाशः सदाभ्यदितं निखस्तप्रकाशमुज्यितसर्व-दोषं स्वतत्त्वं ज्ञाला यदाया समित्राञ्छति तत्तदिचरेण तिर्यग्भूतिपशाचाँ सहनागामरासुरः।
विद्याधराप्सरः सिद्धैर्व्यवहारं चकार सा॥ ७
यक्तेन तं च भर्तारमात्मक्षानामृतं प्रति।
यहुशो वोधयामास चूडाला न विवेद सः॥ ८
कलाविदग्धा मुग्धा च वालेयं गृहिणी मम।
इत्येवं केवलं राजा स चूडालां विवेद ताम्॥ ९
एतावतापि कालेन तामेवं गुणशालिनीम्।
यालो विद्यामिच नृपश्चडालां न विवेद सः॥ १०
साप्यलम्धात्मविधान्तेस्तां सिद्धिश्चयमात्मनः।
दर्शयामास नो राज्ञः शूद्रस्येव मखिकयाम्॥ ११
श्रीराम उदाच।
महत्याः सिद्धयोगिन्यास्तस्या अपि शिखिष्वजः।
यक्तेन प्राप नो बोधं वृध्यतेऽन्यः कथं प्रभो॥ १२

तथैव प्राप्नोति । एवं सति तत्त्वविदो नास्पसिद्धीर्वहुमन्यन्ते किं-स्वनावरणसमेव निरतिशयानन्दं सम्यक्पदं विदुरित्यथंः ॥३४॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे स्वशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

> चृडाला सिद्धिविभवा अप्रबोधश्व भूपतेः । गुरूपदेशसाफस्य किराटास्यानमीयते ॥ १ ॥

च्हाला एवं प्रागुक्तरीत्या प्राणधारणादिघनाभ्यासवती सती अणिमादिगुणश्चर्ययुक्ता वभूव ॥१॥ तदेशश्मेमेवावयुत्य प्रपश्च-यति—जगामेत्यादिना । मोहकालुध्यस्य तापत्रयस्य चीपश्चमादमला शीतला च ॥२॥ तस्याः कायव्यूहादिकल्पनेश्वर्यमाह— क्षणमपीति । अगता अवियुक्ता । राज्येषु राष्ट्रेषु जगत्सु भुवनेषु चोवास ॥ ३ ॥ विद्युतां प्रारम्भा उन्मेषा इव द्योतमानि भूषणानि यस्याः ॥ ४ ॥ ५ ॥ दिशां व्योत्रश्चोदरे यावन्ति भुवनरन्ध्राणि प्रसिद्धानि तानि सर्वाणीत्यर्थः ॥ ६ ॥ सर्वभूतरतञ्चतया संभाषणादिव्यवहारम् ॥ ७ ॥ वहुशः प्रति-बोधयामासेति व्यवहितेन संबन्धरलान्दसः ॥ ८ ॥ ९ ॥ यथा वेदाध्ययनकाले वालो वेदविद्यां सर्वपुरुषाधीतुक्लार्थप्रकाशनादिगुणशालिनीं न वेद तद्वत् ॥ १० ॥ १९ ॥ सर्वसि-दिशालिन्यास्तस्याश्चेद्वतंवोधने अशक्तिसर्त्त्रान्येषां सिद्धिश्च-

| वसिष्ठ उवाच । | |
|--|-----|
| उपदेशकमो राम व्यवस्थामात्रपालनम्। | |
| अप्तेस्तु कारणं शुद्धा शिष्यप्रज्ञेव राघव ॥ | १३ |
| न श्रुतेन न पुण्येन ज्ञायते श्रेयमात्मनः। | |
| जानात्यात्मानमात्मेव सर्पः सर्पपदानिव ॥ | १४ |
| श्रीराम उवाच । | |
| पवंस्थिते वाथ मुने कथमेतज्जगित्थिता। | |
| क्रमो गुरूपदेशाख्यः स्वात्मक्षानस्य कारणम्॥ | १५ |
| यसिष्ठ उवाच । | |
| अत्यन्तकृपणः कश्चित्किगटो धनधान्यवान् । | |
| अस्ति विन्ध्यादवीकक्षे कुटुम्बी ब्राह्मणी यथा॥ | રેદ |
| तस्यैकदा निपतिना गच्छतो विन्ध्यजङ्गले। | |
| पका वराटिका राम तृणजालकसंवृते ॥ | १७ |
| कार्पण्यात्स प्रयुक्तन सर्व तृणतुपादिकम्। | |
| कपर्वकार्थमभितो दुधाच दिवसत्रयम्॥ | 36 |
| कपर्दकाः स्युर्भवता चत्वारोऽष्टा च कालतः। | |
| ततः शतं सहस्रं च सहस्रे चेति चेतसा ॥ | १० |
| कलयञ्जक्रले दीनो रात्रिदिवमतन्द्रितः। | |
| जन्हाससहस्राणि युवुधे न परं तु सः॥ | २० |
| ततो दिनत्रयस्यान्ते तेन तसाध जङ्गलात्। | |

पूर्णेन्द्विम्बप्रतिमो लब्धिश्चन्तामणिर्महान्॥ સ્શ तं प्राप्य तुष्रहृदयः समागम्य गृहं सुखम्। प्राप्ताखिळजगद्भतिशान्तसर्वतया स्थितः॥ ર્ર एवं यथा किराटेन कपर्दान्वेपणेन तत्। रत्तं लब्धं जगन्मृल्यमहोरात्रमखेदिना ॥ २३ तथा श्रुतोपदेशेन स्वात्मशानमवाप्यते। अन्यदन्विष्यते चान्यहभ्यते हि गुरुक्रमात्॥ રઝ ब्रह्म सर्वेन्द्रियातीतं श्रुतादीन्द्रियसंविदः। तेनोपदेशादनघ नात्मतस्वमवाष्यते॥ ર્'• गुरूपदेशं च विना नात्मतस्वागमो भवेत्। केन चिन्तामणिर्लब्धः कपदान्त्रेपणं विना ॥ રફ तत्त्वस्यास्य महार्थस्य गुरूपकथनं गतम्। अकारणं कारणतां मणेरिच कपर्दकः ॥ २७ पश्य राधव मायेयं मोहिनी महतामपि। अन्यद्विष्यते यत्नाद्यदासाद्यते फलम्॥ 24 अन्यत्करोति पुरुषः फलमन्यदेव प्राप्नोति यत्रिपु जगत्स्यवलोक्यते च। तसादनन्तरभवस्य जगद्भमस्य श्रेयोतिवाहनमसङ्गमनिच्छयेव॥

दलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे किराटोपाख्यानं नाम व्यक्षीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

न्यानां गुरूणां शिष्यवोधने शक्तिर्दरापाखेति रामः शङ्कते--महत्या इति । तस्या अपि यञ्जेन उपदेशप्रयासेन ॥ १२ ॥ 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवामिगच्छेत्' इत्यादिशास्त्रोक्तमर्थादा व्य-वस्था तन्मात्रपालनं गुरुकृत उपदेशकमो न लसावनधि-कारिण्यपि ज्ञानं बलाजनयितुं शकोतीत्सर्थः । प्रज्ञाप्रहणं साध-नचतुष्टयसहितप्रज्ञापरम् ॥१३॥ श्रुतेन अनात्मशास्त्रप्रावीण्येन । पुण्येन चित्तशुख्यक्षेन काम्यकर्मवर्गेण । अथवा श्रुतेन शा-ब्देन परोक्षज्ञानेन । आत्मनसान्वभूतं ज्ञेयं ब्रह्म न ज्ञायते इतरबस्तुवन्न विषयीकियते । पुण्येनापि स्वर्गभोगवन्न विनव विचार शानं जन्यते किंतु ताभ्यां विचारे जीनते चरमसाक्षा-रकारवृत्त्या रूढेनात्मनैवात्मा आत्मानं जानातीत्वर्थः । सर्पन पदानि सर्पद्व । इवार्थं वशब्दः ॥ १४ ॥ तर्हि गुरूपदेशास्यः क्रमः कथं केन द्वारेण ॥ १५ ॥ स्थूलाइन्धतीनिद्र्शनन्यायन शिष्यबुद्धेः प्रत्यवप्रवणताव्यसनापादनद्वारा गुरूपदेशादेशीनका-रणतेति वक्तुं विषष्टः किराटोपाल्यानमाह—अलन्तेलादिना । किराटः खंटवणिक् ॥ १६ ॥ १७ ॥ कार्पण्यात् स्वीयकृगण-तास्त्रभावात् । दुधाव शोधयामास ॥ १८ ॥ तस्यान्वेपणो-योगहेतुमभित्रायमाह--कपर्दका इति । लाभे सति मम हम्ते भवता अनेन कपर्दकेन किंचित्कीला तदिकयात्रलारः कप-र्दकाः स्युस्ततोऽष्टी ततः शतं ततः सहसं ततो द्वे सहसे चेति

चेतसा कलयंधिन्तयन्सन् ॥ १९ ॥ अल्पार्थमप्यारट्यो हहो-योगो मृहजनहासदशनादिविद्यरखण्डितंत्रन्महाफलो भवतीति सुचयन्नाह—जनेति ॥ २०॥ २१॥ प्राप्ता अखिला जगद्भ-तथः सांसारिकभोगा येन । शान्ताः सर्वे दारिब्बायनथा यस्य ताहशतया स्थितः ॥ २२ ॥ जगदेव मृत्यं थस्य तथाविधं तदत्रम् ॥ २३ ॥ तथा गुरूपदेशकमादन्यच्छाव्दं परोक्षप्राय-मन्बिष्यते । अन्वन्निखापरीधं ठभ्यते ॥ २४ ॥ कथम-न्यत्तदाह - ब्रह्मेति । श्रुतादिशब्दश्रयणतच्छाब्दबोधादि । इन्द्रि-यप्रयोज्याः संविद्धित्तप्रतयः । गुरुपंदेशासः साब्दग्रत्तयः एव जन्यन्ते । तासां मध्ये अत्यन्तस्यच्छतमायां चरमवृत्ते। तित्या-वरोक्षत्रहास्परणं त् शिष्यबुद्धिस्यच्छतात्रह्मस्यभावोगयप्रयुक्तमेव नोपदेशस्तरकारणमिल्यर्थः॥२५॥तथापि 'आचानवानपुरुषो वेद' इलादिश्रतेर्गुरुषदेश आवस्यक इलाह—मुरूपदेशेति ॥ २६॥ अन्वेषणद्वारा कपर्दकद्व मननद्वारा। सुरूपकथनमकारणमप्यव-इयफ्छदर्शनात्कारणतां गत्नभित्यर्थः॥२०॥२८॥ एवमकारणमेव गुरूपदेशाद्यात्मलाभस्य कारणं । छट्वे लात्मनि प्रारव्यशेषोप-नीतस्य जगद्धमस्योपेक्षयेव क्षयः सिध्यतीति न यत्रापेक्षेसाद् — अन्यदिति । त्रिषु जगत्मु यद्यसादितौरेवमवलोत्त्यते श्रूयते च तस्मादात्मलाभादनन्तरं भवस्य प्रारम्पदेषोपनीतस्य जगद्ध-मस्य तु असङ्गं यथा स्यात्तथा अनिच्छया उपेक्षणेनातिवा-हनमेय श्रेय इल्पयेः॥ २९ ॥ **इ**ति श्रीवासिष्टमहारामायण-ताःवर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ।

चतुरशीतितमः सर्गः ८४

वसिष्ट उवाच । ततः शिखिध्यजो राजा तस्वक्षानपदं विना। आजगाम परं मोहं तमोऽन्धत्वमिवाप्रजाः॥ दुःखाद्मिदीपितमना मनागपि विभूतिषु। तास्वभीष्टोपनीतासु न रेमेऽग्निशिखास्त्रिव॥ एकान्तेषु दिगन्तेषु निर्धरेषु गुहासु च। आजगाम र्रात जन्त्रमुक्तेषुर्ध्याधतो यथा॥ राघव त्वमियाशेषाः सान्त्वानुनयबोधनेः। प्रार्थितः कार्यते भृत्यैर्महीपो दिवसिकयाः॥ नित्यमुद्दामवैराग्यः परिवाडिव शान्तधीः। खिद्यंत च महाभोगान्स भोकुं च श्रियं स्थितः ददावतितरां दानं गोभूमिकनकादिकम् । देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च स्वजनेभ्यश्च मानद ॥ चचार च तपः कर्तुं कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम्। परिवभ्राम तीर्थानि वनान्यायतनानि च ॥ स तथापि विशोकत्वं न मनागपि छब्धवान्। अनिधानां खनन्भृपि निधानार्थी निधि यथा ॥ ८ रात्रिदिवं महानेप द्युप्यत्येव कृशानुना। चिन्तया चिन्तयामास संसारव्याधिभेषजम्॥ चिन्तापरवशो दीनो राज्यं स्त्रस्य वियोपमम्। महाविभवमप्यप्रे नापश्यतिखन्नया धिया ॥ 80 अर्थकदैकान्तगतां चूडालामङ्कमागताम् । इदं मधुरया वाचा समुवाच शिक्षिध्वजः ॥ ११

शिखिध्वज उवाच । भुक्तं राज्यं चिरं कालं भुक्ता विभवभूमयः । अधुनास्मि विरागेण युक्तो गच्छामि काननम् ॥ १२

> शिखिष्वजस्य वैराग्यं चूडालाश्वासनं वने । निशि चकस्य निर्याणं मन्दरे स्थितिरीर्यते ॥ १ ॥

तस्वज्ञानस्पं पदं विश्वान्तिस्थानं विना । अप्रजाः नष्टसंतितः पुमान् शोकादितमसा अन्धलमिव ॥ १ ॥ अभिष्टिः
सामन्तादिभिरुपनीतासु रल्लादिविभूतिषु ॥ २ ॥ सुक्त इषुर्यस्मै
तथाविथो देवादविद्धो जन्तुर्मृगादिव्याधतो भीतो यथा एकान्तादिषु रतिमेति तद्वत् ॥ ३ ॥ अशेषा दिवसिकयाः कार्यते
'हकोरन्यतरस्याम्' इत्यणी कर्तुणीं कर्मत्वे कर्मणि लः ॥४॥ परिवाडिव स्थितः स महाभोगान् श्रियं च भोक्तं खिदाते । चः
पूर्ववाक्यार्थेन सहास्य समुचयार्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ देहमनःशोधनं
कर्तु कृष्ट्यान्दायणादिकं तपश्रकार ॥ ७ ॥ ८ ॥ चिन्तया
चिन्तालक्षणेन कृशानुना ॥ ९ ॥ ९० ॥ ९९ ॥ विभवभूमयो
चैभवपदानि ॥ १२ ॥ कोशंकुर्वन्ति श्रिष्यन्ति ॥ १३ ॥
सुसाधिकये हेतून्दर्शयति—न देशेति ॥ १४ ॥ इदानीं बनरा-

न सुखानि न दुःखानि नापदो न च संपदः। क्रोडीकुर्वन्ति तन्विक् मुनि वननिवासिनम् ॥ न देशभङ्गसंमोहो न संग्रामे जनक्षयः। राज्यादप्यधिकं मन्ये सुखं वननिवासिनाम् ॥ १४ स्तवकस्तनधारिण्यो रक्तपहुवपाणयः। मञ्जरीजालहारिण्यो लोलग्रुभ्राम्बुदांशुकाः॥ स्वपरागाङ्गरागिण्यः कृतकौसुममण्डनाः। आसेव्य काञ्चनशिलानितम्बतटशोमिताः॥ १६ तरङ्गमौक्तिकप्रोतसरिन्मुकालतावृताः। लतावयस्यावलिता मुग्धमुग्धमृगात्मजाः॥ १७ स्वभावोद्दामसौगन्ध्या वितीर्णफलभोजनाः। षट्पदश्रेणिनयनाः पुष्पापूरलताङ्गिकाः॥ १८ आस्वाद्य स्यन्दतां याताः शीतलामलगात्रिकाः। रमयन्ति त्वमिव मां वनवीथ्यो वरारने ॥ १९ यथा विविक्तमेकान्ते मनो भवति निर्वतम्। न तथा राशिविम्बेषु न च ब्रह्मेन्द्रसद्यसु ॥ २० अस्मिन्सन्मन्त्रणे तन्वि न विघ्नं कर्तुमईसि । भर्तुर्विघटयन्तीच्छां न स्वप्नेऽपि कुलक्षियः ॥ २१ चुडालोवाच। प्राप्तकालं कृतं कार्यं राजते नाथ नेतरत्। वसन्ते राजते पुष्पं फलं शरदि राजते ॥ २२ जराजरठदेहानां युक्तो वनसमाश्रयः। न युनां त्वादशामेव तेनैतन्मे न रोचते ॥ २३ यीवनेन महाराज न यावद्वयमुज्झिताः। पुष्पीधेणेव तरवस्तावच्छोभामहे गृहे ॥ રક पुष्पधाना पुष्पमितजरसा सह काननम्।

जीबृडालोपमात्वेन सीकृत्य वर्णयति—स्तबकेत्यादिपश्वभिः। प्रायेण सर्वत्र रूपकाणि ॥१५॥ कृतानि कुसुमान्येन कीसुमानि मण्डनानि यामिः। आसेन्याः काबनिश्चला एव नितम्बत्दास्तैः शोभिताः ॥ १६ ॥ तरङ्गलक्षणमीक्तिकैः प्रोताभिः सरिन्मुक्तान् लतामिरावृताः । सुरधामुग्धा मृगा एवात्मजाः शिश्वो यासाम् ॥१०॥ क्षुधितेभ्यो वितीणीनि दत्तानि फलभोजनानि याभिः। पुण्पराप्येन्त इति पुष्पाप्रा लता एव बाह्यावङ्गानि यासाम् ॥१८॥ लद्धर इव आखाद्यः स्यन्दस्तरङ्गप्रसावो यागां तद्भावं याताः। वनवीध्यो वनराज्यः ॥१९॥२०॥ अस्मिन्वनगमनिव्यये सन्मक्षणे उत्तमविचारे ॥ २९॥ तस्य वराग्यदार्क्यं जिज्ञानसमाना प्राक्तनीं कामासिक्तमेव वयोगुरूपतावर्णनेनानुमन्यमानेव स्थूणाविचालनन्यायेन विचालयन्ती चूडालोवाच—प्राप्तेत्वादिना ॥२२॥२३॥ गृहे शोभामहे । बसाविति यावत् । 'अस्यदो द्वयोक्ष' इति बहुवचनम् ॥ २४॥ पुष्पाणि धीवन्ते 'अस्तदो द्वयोक्ष' इति बहुवचनम् ॥ २४॥ पुष्पाणि धीवन्ते

समं गृहाद्गमिष्यामो हंसा इव सरोवरात्॥ २५ अन्नाप्तकालं नृपतेः प्रजापालनमुज्यतः। राजन्यस्यव रन्धस्य महदेनो भविष्यति॥ २६ अन्नाप्तकारिणं भूपं रोधयन्ति च व प्रजाः। रोधयन्ति द्यकार्यभ्यः प्रभुं भृत्याः परस्परम्॥२७। शिखिष्यज उवाच।

अलमुत्पलपत्राक्षि विद्येनाभिमतस्य मे । विद्धि मां गतमेवेतो दूरमेकान्तकाननम् ॥ बाला त्वमनवद्याङ्गि नागन्तस्यं वनं त्वया । पुंसामपि हि सृहङ्गि दुर्विगाह्यो यनाश्रयः ॥ समर्था न बनावासे योषितः कठिना अपि । कानने पुष्पमञ्जर्यः सोदुं शस्त्रालिमक्षमाः ॥ भवत्या पालयन्त्येह राज्ये स्थातव्यमुत्तमे । कुदुम्बभारोद्वहनं पत्यौ याते व्रतं स्त्रियः ॥ विद्यु उवाच ।

इत्युक्त्वा दियतां राजा तामिन्दुवदनां वशी।
उत्तरणां स्नातुमिखलं दिनकार्यं चकार च ॥ ३२
अथोज्झितप्रजाचेष्टो रिवरस्ताचलं यया।
शिखिष्वजो वनमिष समस्तजनदुर्गमम् ॥ ३३
संहत्य विततं रूपं तमेवानुयया प्रभा।
नार्यं भवननिष्कान्तं चूडालेवानुरागिणी॥ ३४
आययो यामिनी श्यामा भुवनं भस्पधूसरम्।
धृतव्योमापगं शर्वं संश्लेषा यमुनेव सा॥ ३५
दिश्च संध्यां व्यदन्तासु स्थितासु इतमण्डलम्।

धार्यन्ते यासु लतासु तदीयशिरोगतपुर्ध्वमितया तुलितया जरसा सह पुष्पमिताभिर्कतामिमेत्री तत्साम्यदशायामेव यु-फेति भावः ॥ २५ ॥ रन्ध्रस्य राज्यन्छिदस्य निमित्तमिति शेषः । एनः पापम् ॥ २६ ॥ रोधयन्ति निवारयन्ति ॥२०॥ एवं विचालितोऽप्यविचलवैराग्यः विखिध्वजस्तामनुनयति---अलमित्यादिना ॥ २८ ॥ वनाश्रयो वनप्रदेशो दुःखेन वि-गाह्यः प्रवेष्ट्रं शक्यः ॥ २९ ॥ कठिनाः कठोराक्र्योऽपि । यथा कानने जाता उपवनजाताभ्यः कठोरा अपि पुष्पमञ्जर्यः शस्त्रािं सोद्धमक्षमास्तद्वदिलर्थः । 'शक्तालिम्' इति पाठे शक्तानां बल-वतां पक्षिणामार्लि पश्चिमिति व्याख्येयम् ॥ ३० ॥ यत्त्व-योजमत्राप्तकाल नृपतेरिति तस्यापि दोषस्य परिहारस्त-यैव कार्य इत्याशयेनाह—भवत्येति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उपमेययोर्विशेषणं उपमानयोरपि योज्ये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ **धृता व्योमापगा सास**सी गङ्गा येन तथाविषं शर्वे संश्विप्यति स्वयमपि कामादालिङ्गतीति संश्लेषा तथाविधा यमुनेवेत्यु-रप्रेक्षा । 'इयाद्यभा'इति क्षिषः कर्तरि णः ॥ ३५ ॥ तमाललक्ष-णबालका अहे यासां तासु दिक्षु यमुनाचरित्रदर्शनादिव ज्यो-त्जाहासोदयाद्वितं परितः कृतमण्डलं च यथा स्थात्तथा स्थि-

तमालबालकाङ्कासु ज्योत्काहासोदयाङ्कितम् गच्छतोरपरं पारं दंपत्योमेंरवं पदम्। देवोद्यानमयं रन्तुं दिनश्रीदिननाथयोः॥ ३७ आगच्छतोरिदं पारं श्वघतीक्ष्णकरोज्झितम्। निशानिशानायकयोदंपत्योर्मेरवं पुनः॥ 36 तारागणोऽथ दहरो विकीणीं व्योमकुद्दिमे । मुक्तो मङ्गललाजानां दिग्वधूभिरिवाञ्जलिः॥ ३९ चन्द्रानना तमः इयामा श्रान्ता कुसुमहासिनी। यामिनी यावनं प्राप सरोजमुकुलस्तनी॥ 80 कृतसंध्यासमाचारः सहचूडालयेष्टया। सुष्वाप शयने भूयो मैनाक इव सागरे॥ ४१ अथार्धरात्रसमये देशे निःशब्दतां गते। घननिद्राशिलाकोशनिलीने सकले जने॥ કર स तस्यां संप्रमुप्तायां शयने कोमलांशुके। भृशं निदाविमृदायां भ्रमर्यामिव पङ्कतं ॥ 83 तत्याज दयितां सुप्तामङ्काद्वाजा शिखिध्वजः। स्त्रैरं स्त्रैरं मुखं राहोर्दिशं चान्द्रप्रभामिव ॥ 88 उत्तस्थौ रायनालीनवधूकार्घाञ्चलांगुकात्। सलक्ष्मीकान्तिलोलोर्मेईरिः श्वीरार्णवादिव॥ 84 वीरक्रमार्थे यामीति तत्रैवानुचर वजन्। योजयित्वा जगामासी पुरान्निर्गत्य पूर्णधीः॥ ४६ राज्यलक्ष्मि नमस्तुभ्यमित्युक्त्वा मण्डलाद्गतः। विवेशोग्रामरण्यानीमेको नद इवार्णवम् ॥ 80

तासु । इतःप्रशति सर्वेषां सप्तम्यन्तानां तारागणो दहशे इत्यत्र संबम्धः ॥ ३६ ॥ दिनश्रीथ दिननाथथ तद्गुपयोर्दपत्यो-र्देवोद्यानप्रचुरं मैरवं मेरसंबन्धि अपरं पारं उत्तरार्ध रन्तुं गच्छतोः सतोः ॥ ३७ ॥ तथा अधैर्घमीपतापभोजकैः पाप-स्तन्निमित्तैस्तीक्षणकरैश्वण्डातपैश्रोज्ञितं मैरवमिदं पारं निद्या-निशानायकलक्षणयोर्दपत्योः रन्तुमागच्छतोः सतोः ॥ ३८॥ दिग्वधूभिर्मुक्त उत्सरो मङ्गललाजानामञ्जलिरिव व्योमलक्षणे कुट्टिमे सीधतले तारागणी दहरो ॥ ३९ ॥ स्वनाथान्वेषणेन तदुदयप्रतीक्षया च धान्ता कुमदादिकुछुमेहासवती । योवनं स्त्रयौवनफरुमिति यावत् ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ संप्रसुप्ता-यां तस्यां चुडाळायां वशं निद्रया विमुढायां सत्याम् ॥ ४३ ॥ यथा राहोर्मुखं चन्द्रमोक्षकाले खैरं खैरं शनैः शनैधान्द्रप्रभां प्राची दिशं प्रति खजति तद्वत् ॥ ४४ ॥ लीना वधूर्थस्मिस्त-ह्रीनवधूकं तथाविधमधीयलमधेभागो यस्य तथाविधमंशुकं प्रावरणवस्त्रं यस्मित्तथाविधाच्छयनात्पर्यद्वात् । लक्ष्म्याः का-न्तिभिः सहिताः सरुक्ष्मीकान्त्यो लोलाश्रोर्मयो यस्मिसाथावि-धारक्षीराणवादिव ॥ ४५ ॥ वीरक्रमश्रीरद्वष्टनिप्रहार्था निशा-चर्या तत्र वीरकम एवानुचरमजं योजयिला नियुज्य । पूर्णधी-र्निस्पृहः ॥ ४६ ॥ उप्रां भीषणाम् । अरप्यानी महदरण्यम् ।

धनान्धकारगुल्मात्या श्रद्धभूतोघककेशा । सारण्यानीनिशा सार्ध समं तेनातियाहिता॥ ४८ प्रातः शुन्यामरण्यानीं स नीत्वा विवतं दिनम्। सममर्केण कम्यांचिद्धिश्राथाम वनावनी ॥ भानावदृश्यतां याते तत्र स्नानादिषुवेकम्। किंचित्फलादिकं भुक्त्वा तां निनाय तमस्विनीम् ५० पुनः प्रातः पुराण्युचैर्मण्डलानि गिरीन्नदीः । जवादुहङ्खयामास राजा द्वादशशयेरीः॥ ८१ ततो मन्दरशैलस्य तदस्यं जनदुर्गमम्। प्राप काननमत्यन्तद्ररस्थजनतापुरम् ॥ 42 रटत्प्रणाळसलिळवापीचलितपादपम् । शीर्णवेद्यालयक्षातभृतपूर्वद्विजाश्रमम् ॥ 6.5 श्चद्रप्राणिविनिर्मुक्तसिद्धसेव्यलतालयम् । आपूर्णपादपछतं प्राणवृत्तिकरैः फलैः॥ 63 तंत्रकस्मिन्समे शुद्ध स्थले सलिलमालिते। शीतले शाद्वलक्यामे स्निग्धे सफलपादपे ॥ 414 स मजरीमिवेहीमिः स चकारोटजालयम्। प्रावृद्कालः सविद्युद्धिर्नीलाभ्रेरिय पञ्जरम् ॥ **પદ્દ** मसुणं वेणवं दण्डं फलभोजनभाजनम्। अर्घपात्रं पुष्पभाष्डमक्षमाळां कमण्डलुम् ॥ 60 कन्थां द्यातापनोदाय वृत्तीं चैव मृगाजिनम्। आनीयायोजयत्तस्मिन्मठिकामन्दिरे नृपः॥ 44 यर्तिकचिद्ग्यद्वा वस्तु योग्यं तापसकर्मणि । तत्तत्र स्थापयामास जगतीव ऋमं विधिः॥ ५९ संध्यापूर्वं जपं प्रातः प्रहरे स तदाकरोत्। पुष्पोश्चयं द्वितीये तु स्नानं देवार्चनं ततः ॥ દ્વ पश्चाहनफलं किंचिहनकरदं विसादि च । भुक्त्वा जप्यपरो भृत्वा निनायको निशां वशी ६१ इति दिवसमखेदं मन्दरोपान्तकच्छे विराचित उटजंऽन्तर्मालवेशो निनाय। नवनृपतिविलासं तं न सस्मार कं बा स्फुरति हृदि विवेके राज्यलक्ष्म्यो हरन्ति ६२

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्गीकीय दे० मीक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे बिल्लिब्बजशब्द्या नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पश्चाशीतितमः सर्गः ८५

वसिष्ठ उवाच ।

पवं शिखिध्वजः पूर्णमिठिकायां वने स्थितः । इदानीं श्रेणु चूडाला सा कि कतवती गृहे ॥ तत्रार्थरात्रसमये दृरं याते शिखिध्वजे । हरिणी बामसुसेव चूडाला बुतुधे भयात् ॥ अपश्यत्पतिनिर्हीना शयनं शून्यतां गतम् । अभास्करमपूर्णेन्दु शान्तशोभिमवाम्वरम् ॥

'हिमारण्योमेहर्त्व' इलानुक् ॥ ४० ॥ वंनरन्धकारसहर्शरस्थकारलक्ष्णेश्र गुल्मेरात्या सा अरण्यानी निशा च तेनातिबाहिता उत्ताणी ॥ ४८ ॥ अकेण समं विद्याश्रामेन्युक्या
आसार्य जगामेयेति गम्यते ॥ ४९ ॥ तमस्विनी राजिम्
॥ ५० ॥ ५१ ॥ अत्यन्तद्रस्था जनता जनसमृहाः । जनपदा
इति यावत् । पुराणि च यस्मात् ॥ ५२ ॥ रटन्ति सशब्दं
प्रवहन्ति वंशप्रणालद्वारा सिल्लानि याभ्यस्थाधिधासियापीभिर्वलिता बलवत्तराः कृताः पाद्पा यस्मिन् । पूर्वभृता भृतपूर्वा द्विजाश्रमा यस्मिन् ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ शाद्वल्हंदितत्तृणवत्यद्भालयम् ॥ ५६ ॥ ५० ॥ ५८ ॥ विधिधीता जगति
स्वरृष्ट्यद्भाण्डे कमं व्यवहारसाधनजातमिव ॥ ५९ ॥ पुष्पाणामुच्यं संचयम् । फलमूलकुश्वकाष्टादीनामप्युपलक्षणमेतत् ।
ततस्तृतीये इत्यर्थः ॥ ६० ॥ ६१ ॥ उक्तमनृद्योपसंहरति—
इताति । मालवेशः शिक्षिष्वज इति वर्णितप्रकारेण मन्दर्गपा-

उत्तस्था किंचिदाम्लानवदना खेदशालिनी।
कुसिकेव महावही निरुत्साहाङ्गपळ्ळवा॥
न प्रसन्ना न विमला वभूवाकुलतां गता।
दिनश्रीरिव नीहारधूसरा सा व्यतिष्ठत॥
क्षणं शय्योपविष्व चिन्तयामास चिन्तया।
कष्टं राज्यं प्रमुस्त्यक्त्वा वनं यातो गृहादिति॥
तन्मयेहाच किं कार्यं तत्समीपं वजाम्यहम्।
भतेंव गतिरुद्दिण विधिना प्रकृता स्त्रियः॥

न्तकच्छे विरचिते उटजे अन्तरिश्वतः सन्नखेदं दिवसं बहुन् दिवसान्निनाय । तं प्रागनुभूतं नवं नृपतिबिलासं न सस्मार । तरकुतस्तन्नाह—कंत्रेति । विशेके हदि स्फुरति सति राज्य-लक्ष्म्यः कंबा दरिद्रमपि हरन्ति याञ्छाजननेन वशीकर्तुं शक्कु-वन्ति । न कंचिदपीत्यर्थः ॥ ६२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामा-यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥

> राज्या प्रबुद्धया राज्ञोऽन्वेषणं पथि दर्शनम् । भाव्यर्थदर्शनं काले योधनं चोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

उक्तमन् वस्थमाणकथया संगमयति—एवमिति ॥ १ ॥ प्रामसुप्तेवेति राज्ञियोगर्भास्या सदा जाप्रस्यपि देवान्निद्रया हतेति योतनाथम् ॥२॥ पत्या निर्हीना स्वक्ता ॥३॥ कुल्सितेन क्षारकर्दमादिज्ञस्तेन सिक्ता । विशेषणं साधारणं योज्यम् ॥४॥ ॥ ५॥ इति चिन्तया वक्ष्यमाणं चिन्तयामासेस्वर्थः ॥ ६ ॥ तदेवाह—तदिति । विधिना शाक्षेण भनैव प्रकृता प्रथमा गतिः शरणं उदिष्टा विहिता । असति हि भतिर पुत्रादयो 50

१९

સર

इति संचिन्त्य भर्तारमनुगन्तुं समुव्धिता। चुडाला वातरन्ध्रेण निर्गत्याम्बरमायया ॥ बभ्रामाम्बरमागण यातस्कन्धेन योगिनी। कुर्वती सिद्धसार्थस्य मुखेनान्येन्द्विभ्रमम्॥ ददर्शाथ यथायातं रात्री खङ्गधरं पतिम्। भ्रमन्तमेकमेकान्ते वेतालसमयोदितम्॥ तादशं पतिमालोका स्थित्वा गगनकोटरे । भविष्यचिन्तयामास सर्व भर्तुरखण्डितम् ॥ यथा येन यदा यत्र यावत्कार्य यथोदयम्। यथा च निर्वृतिः स्फारा गन्तव्या तेन राधव अवद्यं भवितव्यं तद्धर्तुदंष्ट्रा पुरः स्थितम्। तदेव संवाद्यितुं गमनात्सा न्यवर्तत ॥ आस्तां ममाद्य गमनं कास्ठे नातिचिरेण हि । मयास्य पार्श्वं गन्तव्यं नियतेरेप निश्चयः ॥ इति संचिन्त्य चुडाला प्रविश्यान्तःपुरं पुनः। सुष्वाप शयने शंभोः शिरसीवैन्द्यी कला ॥ केनचित्कारणेनासा गनः संप्रति भूपतिः। इति पौरं जनं सर्घमाध्वास्यातिष्टदङ्गना ॥ राज्यं ररक्ष भर्तुस्तत्क्रमेण समदर्शनात्। यथा कालेन केदारं पकं कलमगोपिका ॥ तयोस्तदाबहत्कालो दंपत्योः स्थितयोस्तथा । अद्दर्शान्योन्यमुखयो राज्यकाननपाळयोः॥ जगामाथ दिनं पक्षो मासोऽथ ऋतुवत्सरः । शिखिष्वजस्य विपिने चुडाळायाः स्वमन्दिरे बद्दनात्र किमुक्तेन चर्षाण्यप्रादशाङ्गना । चुडालोवास सदने वनगुच्छे शिखिध्वजः॥ अथ यातेषु बहुपु वर्षेषु जरसा वृते। शिखिध्वजे महाशैलतटकोटरवासिनि ॥

गतिरिति भावः॥ ७॥ वातरन्ध्रं वातायनं तेन ॥ ८ ॥ अन्येन्द्रविश्रमं द्वितीयचन्द्रश्रान्तिम् ॥ ९ ॥ वेतालयोग्ये समये निशि उदितं प्रकाशमानम् ॥ १० ॥ भतुभविष्यद्भाविषदार्थ-जातम् ॥ ११ ॥ भावष्यदेवप्रकारनिमित्तकालदेशिकयेयत्ताभ्यु-दयनिःश्रेयसपर्यन्तिर्विभज्य चिन्तितवतीखाह—यथैति रकारा निर्दे**तिभूमानन्द्**विश्रान्तिः ॥ १२ ॥ पुरः स्थितमिव योगब-लादपरोक्षं हड्डा संवादियतुम् । तदनुरूपमाचितिति यावत् ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ कलमगोपिका शालिपालिका ॥ १७ ॥ अवहत् अगमत् ॥ १८ ॥ कथमगमत्तदाह्--ज-गामेति । ऋतुसहितो वत्सरः ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ कपा-याणां रागादिवासनानां पाकमालक्ष्य तत्तावत्कालं तया पालितं प्रतीक्षितमिति यावत् । तदेत्यादिरकानुवादो वक्ष्यमाणार्थः ॥ २२ ॥ आत्मकायस्य स्वभर्तृबोधस्य तथा वक्ष्यमाणप्रकारेण

भर्तुः कपायपाकं तदालक्ष्य पालितं चिरात्। तदा तस्याथ यातेषु वर्षेषु जरसा वने ॥ २२ तदा तस्यात्मकार्यस्य भवितव्यतया तथा। भतुः समीपगमने यम कालोऽयमित्यथ ॥ २३ संचिन्त्य मन्दरोपान्तं गन्तुं युद्धि चकार सा । चचारान्तःपुराद्रात्रां ततार नभसः पथम्॥ રપ્ર जगाम वातस्कन्धेन गच्छन्ती खे दृद्र्श सा। कल्पबृक्षांगुकच्छन्नग्बस्तवकमृषिनाः॥ 44 नन्दनाद्याननिलया रक्ताः सिद्धाभिसारिकाः । १२ । परासृष्टेन्दुशकलान्प्रालेयकणवर्षिणः ॥ २६ सिद्धोत्तमात्तसंगन्ध्यान्स्परीयामास माहतान्। चन्द्रविम्बामृताम्भोधेर्महावीचिपरम्पराम्॥ अपस्यक्रिमेलज्योतसामस्यगन्तरतां गता । मेघान्तरेण गच्छन्ती सेघळग्नाश्च विद्यतः॥ 7. अवियुक्ताः स्वभर्वा सा भूयो भृयो व्यलोकयत् । उवाच चारमनेवाही यावर्जीवं शरीरिणाम्॥ न स्त्रभावः शमं याति ममाप्युत्कण्डितं मनः। कदा मृगेन्द्रस्कन्धं तं प्रणयप्रवणं पुनः ॥ ३० पदयामि कान्तमित्युक्तं ममाप्युत्कण्ठते मनः। मञ्जरीजालविकतास्तरं वहयः स्वकं पतिम्॥ न मुञ्चन्ति क्षणमिति ममाप्यत्कण्डते मनः। यथयमत्रजा कान्तमेति सिद्धामिसारिका॥ तथा कदाहमण्यामि ममापीति मनः स्थितम्। इमे मन्दाश्च मरुत एने च राशिनः कराः॥ वनराजय एताश्च ममाप्युत्कण्डयन्त्यहो। हे चित्तज्ञ मुधैवान्तः कि त्वं ताण्डवितं स्थितम् ३४ सा व्योमनिर्मला साधो क्ष ते याता विवेकिता । अथवा चित्त भर्तांगं स्वं प्रत्युत्कण्ठसे सखे॥

स्रोपदेशेनेव भवितव्यतया ॥ २३ ॥ ततार पुरुषे ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ रक्ताः कान्तेष्वनुरक्ताः । परामृष्टानीन्दोः शकळानि कठा यैः ॥ २६ ॥ सिद्धोत्तमेभ्यः आत्तानि गृहीतानि मन्दा-रमालाहरिचन्दनकस्तूर्यादिसीनन्ध्यानि "यस्तथाविधानमास्तान् स्परीयामास परपरी । चन्द्रबिम्बलक्षणस्यामृताम्मोधेर्महावी-चिपरंपराभ्तां निमेलज्योत्स्नाम् ॥ २७ ॥ अम्बरस्य आन्त-रतामन्तर्वितितां गता सन्ति ददर्श ॥ २८ ॥ स्वभन्नी भेषेन अवियुक्ता विद्युतो व्यलोकयत् । आत्मना मनरावोवाच । कि-मुवाच तदाह-अहो इत्यादिना ॥ २९ ॥ ३० ॥ मम मनः उक्तं विवेकवेष्यमानमपि इति उत्कण्टते ॥ ३१ ॥ अप्रे श्रेष्ठे देवयोनी जाता अग्रजा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अज्ञ जङ । मुधा व्यर्थमेव ताण्डवितं सिंकं स्थितमसीलर्थः ॥ ३४ ॥ अथवा नायं दोष इति शेषः । कुतस्तत्राह-भतारमिति ॥ ३५ ॥

सर्वमेति इया त्यक्त्वा यदि तिष्ठिति निश्वलः । तद्दंकारविलये त्वमेव परमं पदम् ॥ ३५ शान्ताशेषविशेषणो विगतभीः संत्यक्तसर्वेषणो गत्वा नृतमर्किचनत्वमरिषु त्यक्त्वा समग्रां श्रियम् ।

शान्ताहं कृतिरस्तदेहकलनसेष्वेव मिक्सामट-न्मामण्युज्जितवानलं यदि भवस्यु वैस्त्वमुवैरसि३६

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे भगीरधोपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पश्चसप्ततितमः सर्गः ७५

वसिष्ठ उवाच। अथ तस्य गुरोर्वक्रादित्याकर्ण्य भगीरथः। मनस्याहितकर्तव्यः स्वव्यापारपरोऽभवत् ॥ ततः कतिपयेष्वेच वासरेषु गतेषु सः। अग्निप्रोममखं चक्रे सर्घत्यागैकसिद्धये॥ 2 गोभूम्यश्वहिरण्यादि ददौ धनमशेषतः। द्विजेभ्यो निजवन्धुभ्यो गुण्यगुण्यविचारयन्॥ 3 दिवसत्रयमात्रेण सर्वमेव परित्यजन्। असुमात्रावदोषोऽसावासीद्राजा भगीरथः॥ ક अथ सर्वार्थरिकं तत्स्वन्नप्रकृतिपारकम्। सीमान्तिने तृणमिव राज्यं स्वमरये ददी ॥ 4 आक्रान्ते द्विपता राज्ये मुनिः सम्रानि मण्डले । अधोवासोषशेषोऽसी निर्जगाम स्वमण्डलात् ॥ ६ यत्र न झायते नाम्ना यत्र न झायते मुखात्। तत्र प्रामेष्वरण्येषु दुरेषुवास धैर्यवान्॥ Ø इत्यल्पेनैय कालेन प्रशान्तसकलेपणः। परमेण दामेनासाचाप विश्वान्तिमात्मनि ॥ 6 भ्रमन्द्रीपानि भूपीठे कदाचित्कालयोगतः। अवशः शत्रुणाक्रान्तं स्वमेव प्राप तत्पुरम् ॥ 9

सर्वत्यागेन न भमं तावदहंकृतिः स्फुटा अखन्तविकतिता कृत्यतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ तल्ति ॥ ३५ ॥ सर्वत्यागमेवावदय-कर्तव्यतया प्रपश्चयति—शान्तेति । शान्तान्यनन्तानि च्छत्र-वामरादीनि राजविशेषणानि यस्य तथाविधः सन्नूनमत्यन्तम-किंचनः सन् समप्रां श्रियमरिषु त्यक्वा अस्तदेहाभिमानस्तेष्व-रिष्वेष मिक्षामटन्सन् मां गुरुमपि अर्छ पूर्णः सन् प्रष्टव्यार्थप-रिशेषाभावादुज्झितवात्रतु शुश्रूपणेन । 'यावदायुक्षयो वन्या वेदान्तो गुरुरिश्वरः' इत्यादिशाक्षाप्रामाण्यप्रसाङ्गादीदशरुष्ठ्यापंपप्रो यदि भवसि तहिं सर्वमुमुक्षुगुणैरुषैभूतस्त्यमुष्ठैः सर्वो-त्रुष्टं ब्रह्मवासि न ते संसारसंभावनापीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ इति भीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुः-समितसमः सर्गः ॥ ७४ ॥

मखब्बाजेन सर्वस्वत्यागो राज्ञोऽत्र वर्ण्यते । भैक्षचर्या कचिच्छैले त्रितलेन समं स्थितिः ॥ १ ॥ मनसि आहितं निश्चितं वस्यमाणं कर्तव्यं येन तथाविधः सन् ॥ १ ॥ अप्रिष्टोमप्रहणं विश्वजित्पर्यन्तानां सोमसंस्था-

नानागारांश्च तत्रासी प्रवाहपतितांश्च तान्। पौरांश्च मित्रणश्चेष शमी मिक्षामयाचत ॥ १० विविदुस्ते नृपं पौरा मिश्रणश्च भगीरथम्। पूजयामासुरथ तं सविषादाः सपर्यया ॥ 88 प्रभो राज्यं गृहाणेति प्राधितोऽप्यरिणा मुनिः। नाद्तेऽनाद्यताशेषस्तृणमप्यशनादते ॥ १२ कतिचिहिवसांस्तत्र नीत्वाऽन्यत्र जगाम सः। भगीरथोऽयं हा कष्टमिति लोकेन द्योचितः॥ १३ अधान्यत्रोपशान्तात्मा परिविश्रान्तधीः सुखी। आत्मारामं कदाचित्तु स प्राप त्रितलं गुरुम् ॥ १४ स्वमेव स्वागतं कृत्वा तेन सार्ध भगीरथः। कंचित्कालमुवासाद्री वने प्रामे पुरे जने ॥ १५ समतामुपयातौ तौ गुरुशिष्यौ समी स्थितौ। कलयामासतुः स्वस्थौ विनोदं देहधारणम् ॥ १६ किमयं धार्यते देहः किंवानेनोज्झितेन नः। यथाऋमं यथाचारं तिष्ठत्वेप यथास्थितम् ॥ १७ इति निश्चित्य तिष्ठन्तौ तौ वनाद्वनगामिनौ । अमानन्दं परानन्दं नासुखं नच मध्यमम्॥ १८

नामुपलक्षणम् ॥ २ ॥ अगुणि श्रुताध्ययनादिविकल्पमपि अ-विचारयन् । तद्विचारे विखम्बापत्तेः ॥ ३ ॥ असवः प्राणा-स्तन्मात्रावशेषः ॥ ४ ॥ सीमान्तिने सीमान्ते संनिहिताय ॥ ५ ॥ अधोबासः कौपीनाच्छादनं तदवशेषः ॥ ६ ॥ यत्र खयं रष्टोऽपि जनैर्भगीरयनाम्रा न ज्ञायते । यत्र च जनसुखा-रखनामापि न ज्ञायते न भ्रूयते तत्र तादृशेषु ॥ 👂 ॥ इति अनया रीत्या वर्तमानः ॥ ८ ॥ द्वीपानि नद्यन्तरितानि मण्ड-लानि । अवदाः सन् दर्शनाधीनचित्तः ॥ ९ ॥ प्रवाहपति-तान् क्रमप्राप्तान् नानागारान् । छान्दसं पुंस्लम् । प्राप्येति क्षेषः ॥ १० ॥ विविदुः परिचिक्युः ॥ ११ ॥ अनाहतमधेषं राज्यं येन ॥ १२॥ शोचितः शोकविषयीकृतः ॥ १३ ॥ १४ ॥ खमेव गुरुमिति पूर्वान्वयि । खागतप्रहणं वन्दनाद्युपरुक्षणम् ॥ १५ ॥ विनोदं कुतृहृळभूतं देहभारणम् ॥ १६ ॥ यथाकमं यथाशास्त्रोक्तकमम् । यथाचारं यृद्धाचारमनुखस्य च तिष्ठतः ॥ १७ ॥ न विद्यन्ते विषयानन्दा यत्र तथाविधं परामन्दं प्रापत्तरिति शेषः । तदेव विशिनष्टि—नासुसमिति । असुसं

धनानि वाजिविभवादैश्वर्यं चाष्ट्रधोदितम्। सिद्धैरप्यपितं तुष्टैर्मेनाते जर्जरं तृणम्॥ १९ स्वकर्मणैव देहोऽयं यावत्सत्वमनिच्छया। धारणीय इति स्वेन कर्मणैवाय तस्यतुः॥ २० अभिननन्दतुरागतमुत्तमौ
निजसमाचरणक्रमजं मुनी ।
सुखमसौख्यमभीप्सितवर्जितौ
समसमेति समो शमिनौ स्वतः॥ २१

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर् भगीरथनिर्वाणं नाम पश्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षद्सप्ततितमः सर्गः ७६

वसिष्ठ उवाच। अधैकदा पुरे श्रेष्ठे किसिक्षन्मण्डलान्तरे। अनपत्यं नृपं मृत्युरहन्मत्स्य इवामिषम्॥ 8 तत्र प्रकृतयः खिन्ना नष्टदेशकमा नृपम्। अन्विष्यन्ति सा संयुक्तं गुणलक्ष्म्या विशालया ॥ २ तं भगीरथमासाद्य स्थिरं मिक्षाचरं मुनिम्। परिशाय समानीय सैन्ये चकुर्महीपतिम्॥ 3 भगीरथः क्षणेनेव प्रावृषीवाम्बुना सरः। वितः सेनया गुर्व्या झटित्याशिश्रिये गजम् ॥ ४ भगीरथो जगन्नाथो जयतीति जनारवैः। नीरन्ध्रतामुपाजग्मुर्गिरीन्द्राणां महागुहाः॥ तत्र तं पालयन्तं तद्वाज्यं राजानमाइताः। आजग्मुः प्राक्प्रकृतयः प्राहुरित्थं नृपाधिपम् ॥ प्रकृतय ऊच्चः। राजश्रसाकमधियो यस्त्वया स पुरस्कृतः। मृत्युना विनिगीणीं ऽसी मत्स्येनेवामिषं मृद् ॥ ७

दुःखं तब्रहितम् । मध्यमं सुखदुःखोभयश्च्यान्तराळावस्था तद्भिष्ठम् ॥ १८ ॥ तयोमानुषभोगेष्विव दिव्यभोगेष्वपि वैरान्यदार्व्यं दर्शयति—धनानीति । तश्चरितसंतुष्टेः सिद्धेश्रंझादि-मिरपितं दत्तमणिमादिमेदेनाष्ट्रधा उदितं प्रसिद्धमैश्वर्यं च जर्जरं जीर्णतमं तृणमिव मेनाते ॥ १९ ॥ स्वारम्भकेण प्रार-ध्यकमंणेव यावत्सत्वं यावदायुर्धारणीय इति निश्चित्य तस्थतुः ॥ २० ॥ तौ मुनी निजेन पूर्वसमाचरणक्रमेण जातं सुखम-सौस्यं दुःसमपि अमिननन्दतुः । यतस्ता समेम्योऽपि समे बद्दाणि अतिसमी एकरसीभूती सन्ता स्वतस्त्रस्वभावादेव श-मिनी परमशान्तिमन्तौ ॥ २१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहा-रामावणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पञ्चसद्वातितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

पुनर्भगीरयस्येह राज्यमासिक्दीचेते । आराज्य महारुद्रादीन् गङ्गाणाझावतारणम् ॥ १ ॥ कोसळमण्डलाङ्कगीरयास्पदमण्डलाच मण्डलान्तरे । अहन् हतवान् । आमिषं क्षुद्रमत्स्यादि ॥ १ ॥ नधे देशस्य कमः पालनमर्यादा येषां तथाविधाः सन्तः पालनसमर्थया गुण-स्थम्या संयुक्तं नुपमन्तिषन्तिस्य ॥ २ ॥ सर्वगुणलक्ष्मीसमन्ति- तत्तत्पाळियतुं राज्यं त्रसादं कर्तुमईसि । अत्रार्थितोपयातानां त्यागोऽर्थानां च नोचितः॥८

वसिष्ठ उवाच।

इति संप्रार्थितो राजा तदङ्गीरुत्य तद्वचः। सप्तसागरचिद्वायाः स वभूव भुवः पतिः॥ Q समः शान्तमना मौनी वीतरागो विमत्सरः। प्राप्तकार्यंककरणः स तिरोहितविस्मयः॥ १० पातालतलनष्टानां सागराकारकारिणाम् । पितामहानां गङ्गाम्बु शुश्रुवे तारणक्षमम्॥ 46 तदा किल स्वर्गनदी वहति सान भूतले। पितृणां भूतविख्योऽभूतेन गङ्गाजलाञ्जलिः॥ १२ भगीरथेन च महीमवतारयितुं दिवः। गङ्गां गृहीतो नियमस्ततः प्रभृति भूभृता ॥ १३ ततो राज्यं परित्यज्य मिश्रणां भूपतिः शमी। तपसे कार्यकार्येहो जगाम विजनं वनम् ॥ १४

तोयमिति परिज्ञाय प्रत्यभिज्ञाय तत्रागते सन्येऽभिषिच्य मही-पति चक्कः ॥ ३ ॥ झटिति गर्ज आशिश्रिये आरुरोह ॥ ४ ॥ नीरन्ध्रतां पूर्णताम् ॥ ५ ॥ तस्मिनेव काले देवारकोसलराज्य-हारिणोऽपि मरणादयोध्यास्था अपि प्रकृतयो भगीरथमागत्य प्रार्थयामासुरिखाह--तंत्रति । भगोरथस्यैव प्राक्तना मन्त्रिपु-रोहितादिप्रकृतयः ॥ ६ ॥ राज्यं त्यजता त्वया यः सीमान्त-वासी आरेः राज्यदानेन पुरस्कृतः असी ॥ ७ ॥ तत्तस्मादेती-स्तत्प्राक्तनं राज्यम् ॥ ८॥ ९॥ मौनी मितहितसत्यवाक् । तिरोहितस्तत्त्वज्ञानेन बाधितो विस्मयो महत्वपि कांतुके आ-श्वर्यताबुद्धिर्थस्य ॥ १० ॥ अश्वान्वेषणाय भूमेः खननात्साग-राकारं गर्तं कर्तुं शीलं येषाम् । कपिलकोधापिना पातालतले नष्टानां भस्भीभूतानां स्विपतामहानां गङ्गाम्बुह्मवनेन जलाब-लिदानेन च तारणक्षमं न प्राकृतं जलमिति तार्क्षवचनं जन-परम्परमा तेन शुश्रुवे इलार्थः ॥ ११ ॥ तदानीं भूतले गङ्गा स्थितैव तत्रेव जलाजलिः कृतो न दत्त इत्यादाक्काइ—तदेति । तेन भगीरथेनैवान्येषामपि पितृणां गङ्गाजलाञ्जलिर्भूता संजाता विख्या प्रख्यातिर्थस्य तथाविधोऽभूदिलार्थः ॥ १२ ॥ ततस्त-च्छवणदिनात्त्रभृति ॥ १३ ॥ गङ्गावतरणकार्यार्थं यत्तपआदि

तत्र वर्षसहस्रेश्च समाराध्य पुनःपुनः।
ब्रह्माणं शंकरं जहुं भुवि गङ्गामयोजयत्॥ १५
ततः प्रभृत्यमलतरङ्गभिङ्गनी
जगत्पतेः शशिविभृदङ्गसङ्गिनी।
नभस्तलाग्निपति गां त्रिमार्गगा
महात्मनामिच बहुपुण्यसंततिः॥ १६

स्फुरत्तरङ्गभिङ्गनी स्वफेनपुञ्जहासिनी प्रसम्बपुण्यमञ्जरी युतेव धर्मसंततिः। भगीरथे महीपतौ यशःप्रचारवीथिका तदा हि सा त्रिमार्गगा महीतले बभूव ह॥ १७

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पू॰ गङ्गावतरणं नाम पदसप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्तितमः सर्गः ७७

चसिष्ठ उवाच। पतामवष्टभ्य दशं भगीरथिया धृताम्। समः स्वस्थो यथाप्राप्तं कार्यमाहर शान्तधीः ॥ १ इदं पूर्वं परित्यज्य कोडीकृत्य मनःखगम्। शान्तमात्मनि तिष्ठ त्वं शिखिध्वज इवाचलः॥ २ श्रीराम उवाच। कोऽसौ शिखिष्वजो नाम कथं वा लन्धवान्पदम्। पतन्मे कथय ब्रह्मन्भूयो बोधविवृद्धये॥ वसिष्ठ उवाच। द्वापारे भवतां पूर्वमिदानीं च भविष्यतः। तेनैव संनिवेशन दंपती सिग्धतां गती॥ श्रीराम उवाच। यत्पूर्वमासीद्भगवंस्तदिदानीं तथैव हि। भविष्यति किमर्थं वै वद मे वदतां वर ॥ वसिष्ठ उवाच । जगन्निर्माणनियतेरस्या ब्रह्मादिसंविदः। ईष्ट्यवस्थितिर्नित्यमनिवार्यस्वभावजा ॥ यदन्यद्वहुशो भूत्वा पुनर्भवति भूरिशः।

कार्य तदर्था ईहा चेष्टा यस्य ॥ १४ ॥ अयोजयत् अवतार्य संयोजितवान् ॥ १५ ॥ जगत्पतेः शशिविस्तः शिवस्याङ्गसं-गिनी शिरिस संगता । सापेक्षलादसमर्थत्वेऽपि समासरछा-न्दसः । जगत्पतेर्वद्याणो वा नियोगादिति शेषः । नभस्तलाद्रां भूमिं निपतित । महात्मनां स्वर्गिणां बह्वी पुष्पसन्ततिरिवेत्यु-रप्रेक्षा ॥ १६ ॥ भगीरथे महीपतौ संजातस्य शाश्वतस्य यशस आसमुद्रं प्रचारार्थं वीथिका इति रूपकोत्प्रेक्षा ॥ १० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे षटसप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

चृडालाख्यानमुक्तार्थद्रदिश्लेत्रावतार्थते ।

शिखिष्वजस्य माहात्म्यं विवाहकी इनक्षमाः ॥ १ ॥ भगीरथेन पश्चादाज्यकाले थिया धृताम् ॥ १ ॥ इदं विभ-वजातं परिल्यज्य । मनःस्वगं कोंडीकृत्य हृदि निरुद्ध ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ दंपती जायापती पूर्वकल्पे द्वापरं अभूताम् । इदानी-मधाविशे चतुर्थुगेऽभिमद्वापरे तेनैव संनिवशेन भविष्यतः

अभूत्वैव अवस्यन्यः पुनश्च न भवत्युरुम् ॥ 9 अन्यत्प्राष्ट्रसंनिवेशाळ्यं साहश्येन विवलगति । सदशा विषमाश्चेव यथा सरसि वीचयः॥ ረ ता एवान्याश्च दृश्यन्ते व्यवस्थाः संस्तृती तथा। तसाद्राजेव भूयोऽपि वश्यमाणकथेश्वरः॥ भविष्यति महातेजास्तृहत्तान्तमिमं शृणु। द्वापरे पूर्वमभवदतीते सप्तमे मनी ॥ ξc चतुर्युगे चतुर्थे तु सर्गेऽस्मिन्कुरुणां कुले। जम्बुद्वीपे प्रसिद्धस्य विन्ध्यस्यादूरसंस्थिते ॥ ११ मालवानां पुरे श्रीमाञ्छिखिध्वज इतीश्वरः। धैर्यौदार्यदशायुक्तः क्षमाशमदमान्वितः॥ १२ शूरः शुभसमाचारो मौनी गुणगणाकरः। आहर्ता सर्वयशानां जेता सर्वधनुष्मताम्॥ १३ कर्ता सकलकार्याणां भर्ता पूर्वेषपुर्भुवः। पेशलिकाग्धमधुरो विदग्धः प्रीतिसागरः॥ १४ सुन्दरः शान्तसुभगः प्रतापी धर्मवत्सरुः। वदिता विनयार्थानां दाता सकलसंपदाम्॥ १५ भोका सत्सङ्गसहितः सुश्रोता सकलश्रुतेः।

॥ ४॥ भूतभविष्यतोः सादश्ये को हेतुरिति रामप्रश्नार्थः ॥ ५॥ जगिन्नमीणे नियतिरूपाया ब्रह्मादीनां सत्यसंकल्पसं- विदः । अनिवार्यसभाव एव तद्धेतुरित्यर्थः ॥ ६॥ ईद्द्रशीन्त्युक्तं प्रपन्नयति—यदिति । यथा एकस्मिन्नाम्नतरौ अन्यदन्य- त्फलं बहुशो भूला पुनःपुनस्तादशमेव भूरिशो भवति । स्कन्धव्यस्तु अभूत्वेव भवति स च च्छिन्नः पुनस्तस्मिन्न भवति ॥०॥ ॥ ८॥ संस्तौ शिखिष्वजादिसंसारेऽपि तथेत्यर्थः । राजा अतीतिश्विष्यजद्दव वक्ष्यमाणकथायां वर्ण्यत्वेन ईश्वरो नायकः ॥ ९॥ १०॥ कुरूणां कुरुदेशाधिपतीनां कुर्वपत्यानां च कुळे वंशे । तदाजप्रत्यसस्य बहुषु छक् । नामि दीर्घाभावर्छान्दसः ॥ १९॥ माळवानां पुरे उच्चियन्यामिति यावत् ॥ १२ ॥ ॥१३॥ सकलानां वापीकृपतदानारामोदिकार्याणाम् । विद्रभ्यो लेकशास्त्रनिष्णातः ॥ १४॥ शान्तश्वासौ सुभगः सौभाग्य- लक्षणयुक्तश्च विनयार्थानां परेषामपि विनयश्विशाहेत्नी वान्त्यानां वदिता वक्षा ॥ १५॥ सर्व वेद जानाति तथाण्य

वेदासौ माननाशून्यः स्त्रेणं तृणवदस्पृशन् ॥ १६ पितरि स्वर्गमापन्ने बाल एवोसमौजसा । कृत्वा षोडदावर्षाणि स्वयं दिग्विजयं वशी ॥ १७ नुनं साम्राज्यसंपस्या भूमण्डलमयोजयत्। अतिष्ठद्विगताराङ्कं पालयन्धमेतः प्रजाः॥ १८ स धीमान्मित्रिमः सार्धे यशसा शुक्कयन्दिशः। अथ गच्छत्सु वर्षेषु वसन्ते प्रोह्मस्यलम् ॥ पुष्पेषु जूम्भमाणेषु स्फुरत्सु शशिरदिमषु। मञ्जरीजालदोलासु विटपान्तःपुरान्तरे॥ २० रजःकर्पूरधवले वलइलकपाटके । आमोद्विलसत्पुष्पगुलुच्छकवितानके ॥ २१ गायत्सु गहनेषुश्वैमिंधुनेष्वितनां मिथः। आवाति मधुरे वायो शशिशीकरशीतले॥ द२ कदलीकन्दलीकच्छतलपञ्चवलासिनि । कान्तां प्रति वभूवास्य वसश्चेतः समुत्युकम् ॥ २३ क्षीवं कुसुमसंभारसौगन्ध्यमधुरासवैः। मनो नान्यास्पदं चन्ने स वसन्तमिवोदितम्॥ २४ उद्यानवनदोलासु लीलाकमलिनीषु च। कदा प्रणयिनीं मुग्धां हेमाजमुकुलस्तनीम्॥ करिष्ये कामिनीमङ्के पर्यङ्के कुङ्कमाङ्किताम्। कदा कमलवल्लीनां दोलास्वलिरिवालिनीम् ॥ आलोलां तां निवेश्यामि बालां भूजलतानुगाम्। **मृ**णास्रहारकुन्देन्दुवृन्दवल्यमिलांषिणी॥ मत्कृते मदनातप्ता कदा स्यादिन्दुसुन्दरी। इति चिन्तापरो भृत्वा कुसुमावचयोत्मुखः ॥

मानना अभिज्ञतामिमानस्तच्छून्यः। खैणं स्रीव्यसनादि ॥१६॥ उत्तमेन ओजसा खबाहुवीर्येण । अनेन पिता माण्डलिक एवासीदसौ खबाहुवीयेंणेव सम्राट् संपन्न इति गम्यते ॥१०॥ सामाज्यप्रयुक्तया संपर्या । तदाहि कापि दस्यूनामभावात्प्र-जानां धनं वर्धत इति विगतजेतव्यशत्रुसद्भावाशङ्गम् ॥ १८॥ वर्षेषु गच्छरसु । यौवने प्राप्ते सतीति यावत् । अधास्य चेतः कान्तां प्रति समुत्सुकं बभूवेति पश्चमेन संबम्धः ॥ १९ ॥ बिटपः शास्त्रा तब्रक्षणे अन्तःपुरान्तरे मञ्जरीजालदोलासु अलिनां मिधुनेषु गायत्खिति व्यवहितेनाम्वयः ॥ २० ॥ तदेवान्तः पुरं तत्सामग्रीकल्पनेन वर्णयति—रज इति ॥ २१ ॥ शियाना शीकरैश्व शीतले ॥ २२ ॥ कदली प्रसिद्धा । कन्दल्यो गुल्ममेदास्तेषां कच्छप्रायेषु तलेषु पक्षवेषु च लासिनि लास्य-शीले इति शैलमान्दोपपादकं वायोर्विशेषणम् । वसदित्युत्तया पूर्वमेव गुणसौन्दर्शदिश्रवणाच्डालायामनुरक्तमिति गम्यते ॥ २३ ॥ कुसुमसंभाराणां सौगन्ध्यलक्षणेर्मधुरेरासवैः क्षीवं मत्तं सत् सवसन्तं वनमिव उदितं रागपह्नवितं मनः अन्यासार्द कान्तातिरिक्तविषयावस्त्रम्बनं न चक्रे ॥ २४ ॥ तदौरसुक्य-प्रकारं प्रपचयति-उद्यानेत्यादिना ॥ २५ ॥ २६ ॥ निवे- विजहार वनान्तेषु कुसुमोपवनेषु स। वनोपवनलेखासु लीलाकमिनीषु च ॥ 28 वहीवलयगेहेषु विविधोद्यानभूमिषु । वनोपवनविन्यासवर्णनावितासु च॥ Зo श्रङ्काररसगर्भासु कथास्वरमतोन्मनाः। हृदि हारलसत्कायविलोलालकवल्लरीः॥ 38 कुमारीः पूजयामास सुवर्णकलशस्तनीः । एतनमन्ये विदुर्भव्या मिष्णो नृपनिश्चयम् ॥ ३२ इङ्गिताकारवेदित्वमेव मन्त्रिपदं परम्। अथ तस्य विवाहाय मिश्रवर्गी विचारयन ॥ 33 सुराष्ट्राधिपतेः कन्यां ययाचे यौषतान्विताम्। नवयौबनसंपन्नां भार्यात्वे विधिनोसमाम्॥ રેષ્ઠ उपयेभे स तामात्मसदृशीं प्रतिमामिष । चुडालेति भुवि ख्याता नाम्ना नृपतिसुन्दरी ॥ ३५ सो तं भर्तारमासाद्य रेजे फुहेब पश्चिनी। नीलनीरजनेत्रां तां चूडालां स शिखिष्वजः॥ ३६ स्नेहाद्विकासयामास सुर्यो देवो यथान्जिनीम्। अवर्धत तयोः प्रीतिरन्योन्यार्पितचेतसोः॥ हाबभावविलासात्येरङ्गेर्नवलतेव सा । सुमन्यर्पितसर्वार्थः स सुस्त्री सुस्थितप्रजाः॥ ३८ राजहंस इवाञ्जिन्या रेमे दियतया तया। अन्तःपुरेषु दोलासु लीलाकमलिनीषु च ॥ ३९ उद्यानेषु विहारेषु लतापुष्पप्रहेषु च। कदम्बवनलेखासु चन्दनागुरुवीिषयु॥ Ro

क्यामि परिणेष्यामि । ममेव तस्या अपि स्वामिलाषप्रयुक्तसं-तापः कदा स्याचेन शीघ्रं घठना स्यादित्याशयेनाह--गुणा-लेति । बृन्दबह्नयः पुष्पितलतागृहात्मना धृन्दीभूता बह्नयस्तद-मिलाषिणी ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ वनानामुपवनानां च गुणानुवर्णने आवलितासु कथासु चारमतेति सप्तमीनां संबन्धः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कुमारीः हृदि पूजयामास बहुमेने, सांक-ल्पिकभूषणेरलंबके वा । मन्ये इत्यवितर्के । वितर्कवबनं वसि-ष्ठस्य वाक्यालंकारार्थम् ॥ ३२ ॥ मिश्रणां पदं लक्षणम् । परसरानुरागगुणशीलकुलादिसंपत्तिं विचारयन् ॥ ३३ ॥ युवतीनां समूहो यौवतम् । 'भस्याढे तद्धिते' इति पुंवद्भावः । तेनान्विताम् । नवेन योवनेन वयसा च संपन्नाम् ॥ ३४ ॥ प्रतिमां प्रतिच्छायामिव सदशीमनुरूपाम् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ विकासयामास प्रसादयामास ॥ ३७ ॥ हावभावादयः श्रङ्गा-रचेष्टामेदास्तदाव्यैरन्नैनेषठतेव सा शुग्रुभ इति शेषः । शो-भनै राजितानुवर्तिभिरनुरकैर्मिश्विभरिर्वताः सर्वे उपभो-ग्यार्थ। यस्म । अयवा शोमनर्थार्मिकेमिश्राभः सर्वेम्योऽधिम्यः अर्पिताः सर्वे अभिरुवितार्था यस्य । भतएव सुस्थितप्रजासा-त्पालनविशेषरहितः सन् रेमे ॥ ३८ ॥ ३८ ॥ चन्दवायुख्य-

मन्दारदामसोसासु कदसीकन्दसीचु च। पुरान्तेषु बनान्तेषु दिगन्तेषु सरस्यु च ॥ जंगलेषु जनान्तेषु जम्बूजम्बीरजातिषु । बभूबाहादकं सर्वं तयोरन्योन्यचेष्टितम्॥ ધર सद्वर्षयोर्धुरवरैर्धुभूम्योरिव कान्तयोः। **जित्यमेव वियुक्तत्वा**त्प्रियत्वाचेष्टितस्य च ॥ ઇર मिथः कलाकलापस्य कोविदी ती वभूवतुः। स्वरूपमेकमेवैती दधतुर्मित्रतां गती॥ 88 अन्योन्यष्टदयस्थत्वादिव संज्ञान्तमक्षतम्। सर्वशास्त्रार्थवैदग्ध्यं चित्राद्यपि मुझात्प्रभोः ॥ ४५ बालः कालादिवागृह्य साऽसीत्सर्वार्थपण्डिता। नृत्यवाद्यादि यावच चुडालावदनादसौ ॥ ଧ୍ୟ अशिक्षत बभूवाथ कलानामतिकोविदः । अमावास्यामिवेन्द्वर्कावन्योन्यविलसत्कलौ ॥ 80 मिथो हृदयसंस्थी तौ ह्यावप्येक्यमुपागती। तौ संस्थितावेकरसावन्योन्यं दयितावुभौ॥ 86 पुष्पामोदाविवाभिन्नो भूतलस्यौ शिवाविव। षेदग्ध्यसुन्दरमती सर्वशास्त्रार्थपण्डितौ ॥ પ્રશ कार्यार्थं च भुवं प्राप्ती कमलाकमलाधवी। क्रोहात्त्रसम्बम्धुरी समविज्ञातवादिनी ॥ 40 अनुवृत्तिपरावास्तां लोकवृत्तान्ततद्विदी । कलाकलापसंपन्नी लसद्वसरसायनी । शीतलिकाधमुग्धाङ्गी शशाङ्की द्वाविवोदितौ ॥ ५१ रेजे लसम्ब रतिभोगविलासकान्त-मन्तःपुरेषु मिथुनं तद्युत्तमिथ । ब्रह्माण्डखण्डकुहरेष्विव राजहंस-युग्मं विकासिमदमन्मथमन्द्वारि ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो • निर्वाण • चूडालोपास्थाने शिखिष्वजविलासकथनं नाम सप्तसप्तितमः सर्गः॥७७॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८

ર

3

वसिष्ठ उचात्र ।

एवं बहूनि वर्षाणि मिथुनं निर्भरस्पृह्म् ।

रेमे यौवनलीलामिरमन्दाभिदिंनेदिने ॥
अथ यातेषु बहुषु वर्षेष्वावृत्तिशालिषु ।
शनैर्गलिततारुण्ये मिश्रकुम्भादिवास्मसि ॥
तरङ्गविकराकारमङ्गुरव्यवहारिणि ।

पातः पक्रफलस्येव मरणं दुर्निवारणम् ॥
हिमाशनिरिवास्भोजे जरा निपतनोन्मुखी ।

गन्धितासु वीथिषु चन्दनागुरुषृक्षाणां पङ्किषु च ॥४०॥४९॥ ॥ ४२ ॥ धुरवरैर्बलीवर्देः कृष्टेषु क्षेत्रेषु सत् रमणीयं वर्ष षृष्टिर्ययोक्तथाविधयोर्भेधसस्यसंपत्कान्तयोर्द्धभूम्योरिव ॥ ४३ ॥ मिषः अन्योन्यस्मारिछक्षणादन्योन्यसाम्यार्थिलाच प्राइतरी अतएव सर्वगुणसाम्यादनुरागेण **जीवेक्यमिव संपन्नमि**लाह—स्वरूपमिति ॥ ४४ ॥ अन्यो-न्यहृद्यस्थलाहेहद्वयसंकान्तमेकमेव जीवखरूपम् । चित्रादि-**शिल्पवेदम्ध्यमपि तत्तिरिछल्पकुशलानां मुखादागृह्य अभ्यस्य** ॥४५॥ यथा बालो बट्टः 'द्वादशवर्ष वेदब्रह्मचर्य'मिति शास्त्रनि-यतकालाद्वेदविद्यां गृहाति तद्वत् । सा चूडाला । असी शिखि-ष्ट्याः ॥ ४६ ॥ अमावास्यां प्राप्येति शेषः । इन्द्रकीविव मिथो इदयसंस्थी सन्तै। ऐक्यमुपागती ॥ ४०॥ मित्रितक्षी-रोदकवदेकरसी ॥ ४८ ॥ भूतलस्थी भूमावबतीर्णो शिबी गौरीशंकराविव ॥ ४९ ॥ सह प्रत्येकं वा पृष्टं संदेहपदं छोक-शासरहस्यं समं तुस्यकार्छ तुस्यविषयं च विकातं बक्तं शीलं यगोस्ती ॥ ५० ॥ परस्परगुरुद्विजाभिद्यारीनां चानुवृत्तिः प्रिय-हितविन्यायाचारस्तत्परी । छोडवत्तान्तस्य तस्य शाक्षकभम्य-

आयुर्गलस्पविरतं जलं करतलादिव ॥ ४ प्रावृणीय लतातुम्यी तृष्णेका दीर्घतां गता । शैलनद्या रय इव संप्रयात्येव यौवनम् ॥ ५ इन्द्रजालमिवासत्यं जीवनं जीर्णसंस्थिति । सुखानि प्रपलायन्ते शरा इव धनुश्च्युताः ॥ ६ पतन्ति चेतोदुःखानि तृष्णा गृध्र इवामिषम् । सुद्भुदः प्रावृणीवाष्सु शरीरं क्षणभङ्गरम् ॥ ७

धर्मरहस्यस्य च विदो । लसन्ति श्वःशारादिनवरसलक्षणानि रसायनानि यथोस्ते ॥ ५९ ॥ ब्रह्माण्डखण्डस्य ब्रह्माण्डावय-वस्य सत्यलोकस्य कुहरेषु गम्भीरसरस्य राजहंसयोर्युग्मं मिथु-नमिव ॥ ५२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यमकाहो निर्वाणप्रकरणे सप्तसासतितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

> तयोः क्रमेण वैराग्यं सच्छास्नाभ्यासनिष्ठता । चुडालाया विवेकोऽत्र ज्ञानलाभश्च वर्ण्यते ॥ १ ॥

निर्भरस्पृहं हहप्रेम । मिथुनं तत्स्त्रीपुंसद्दन्द्रम् ॥ १ ॥ अथ शनेस्तारुण्ये गलति सति तद्युग्मं इति निर्णीय अध्यारम-संमतं शास्तं विचारयामासेति दशमे एकादशे च संबन्धः ॥ २ ॥ निर्णयहेतुं प्रथमं तत्कृतं विचारं प्रपचयति—तरक्ने-स्वादिना । तरक्रनिकराकारेण भक्करेण देहेन व्यवहरणशीले देहिन । मरणं देहवियोगः ॥ ३ ॥ कृतो हुनिबारणं तत्राह—हिमाशनिरिति ॥ ४ ॥ तृष्णाभोगतत्साधनतृष्णाप्रावृत्वि कदुतु-म्बीलतेव दीर्घतां गता वर्धते इति यावत् । रयोऽत्र वार्षिकपूरः ॥ ५ ॥ जीव्यते अस्मिश्रित जीवनं देहादि ॥ ६ ॥ दुःखा-न्याम्याक्षिकाषीन तृष्णा च चेतः पतन्ति निपस् दुद्दन्तिति

रम्भागर्भ इवासारो व्यवहारो विचारगः। सत्वरं युवता याति कान्तेवाप्रियकामिनः॥ बलादरतिरायाता वैरस्यमिव पादपम्। तदिह स्याच्छुभाकारं स्थिरं किमतिशोभनम्॥ ९ यदासाद्य पुनश्चेतो दशासु न विदृयते । इति निर्णीय युग्मं तत्संसारव्याधिभेषजम्॥ चिरं विचारयामास शास्त्रमध्यात्मसंमतम्। आत्मज्ञानैकमात्रेण संसुत्याख्या विषुचिका ॥ ११ संशाम्यतीति निश्चित्य तावास्तां तत्परायणौ । तिश्वेती तद्गतप्राणी तिष्ठेष्ठी तिव्रदाश्रयी ॥ १२ तदा तदर्चनपरौ तदीहौ तौ विरेजतुः। तत्रैवातिघनाभ्यासौ बोधयन्तौ परस्परम् ॥ तत्त्रीतौ तत्समारम्भाघन्योन्यं तौ बभूचतुः। अथ साबिरतं राम रमणीयपदक्रमान्॥ १४ श्रुत्वाध्यात्मविदां वकाच्छास्त्राधीस्तारणक्षमान्। इत्थं विचारयामास स्वमात्मानमहर्निशम्॥ अव्यापृता व्यापृता वा घिया घवलयेद्धया । प्रेक्षे तावत्स्वमात्मानं किमहं स्यामिति स्वयम् ॥ १६ कस्यायमागतो मोहः कथमभ्युत्थितः क वा । देहस्तावजाडो मुढो नाहमित्येघ निश्चयः॥ १७

यावत् ॥ ७ ॥ अप्रियां सपन्नी कामयते यस्तस्य कान्ता प्रिय-तमेष ॥ ८ ॥ अरतिरिष्टविषयालाभनिमित्तं दीर्मनस्यम् । वैरस्यं रसशोषः । इहास्मिन् संसारे ॥ ९ ॥ दशासु जन्मम-रणादिदुर्दशास्त्र । तद्युगमं मिथुनं इति विचार्थ तत्र अध्यात्म-शास्त्रमेव संसारव्याधिभेषजं निर्णीय तदेव विचारयामासेत्य-न्वयः ॥ १० ॥ ११ ॥ तद्विदा अध्यात्मशास्त्रविद एवाश्रयः शरणं ययोस्तौ ॥ १२ ॥ १३ ॥ तस्मिन्नध्यात्मशास्त्र एव सम्यक् 'तिश्वन्तनं तच्छवणमन्योन्यं तत्त्रबोधनम्' इत्यादिः समारम्भो ययोस्तै। सा चृडाला ॥ १४ ॥ इत्थं वक्ष्यमाणप्र-कारेण ॥ १५ ॥ अव्यापृता त्यक्तशारीरव्यापारा । प्रेक्षे वि-विच्य पर्येयम् । अस्मिन् कार्यकारणसंघाते अहं चेतनधातुः कि स्यात् ॥ १६ ॥ अयं संसारलक्षणो मोहो भ्रमः कस्यागतः । यस्य हि भ्रान्तिरागता स तिभवारणे खस्थः स्यात्स एव क इसर्थः । कैथं वेति निमित्तजिज्ञासा । केति तन्मूलजिज्ञासा । मूळे हि परिज्ञाते तदुच्छंदेनोच्छेत्तुं स शक्यः ॥ १७ ॥ मती स्यूलोई गौरोइमिखादिबुदियुक्ती सलामेवानुभूयते न खत इति तस्य जडलमित्यर्थः । अस्मोद्दादभिष्ठदस्तपादाद्यवयवात्मकः ॥१८॥बुद्धीन्द्रयगणोपि एवं शरीराचयवात्मक एव । यद्यप्यणव-बेति सूत्रे इन्द्रियप्राणादयः सूक्ष्मा लिन्नदेहावयवा एव न स्यूल-वेहावयवा इति बादरायणेन सिद्धान्तितं तथापि तेषां वेहाब- आबालमेतत्संसिद्धं मतौ चैवानुभृयते। कर्मेन्द्रियगणश्चास्माव्भिन्नावयवात्मकः॥ १८ अवयवावयविनोर्न मेदो जड एव च। बुद्धीन्द्रियगणोऽप्येवं जड एवेति रुख्यते ॥ १९ प्रेर्यते मनसा यसाद्यष्ट्येब भुवि लोष्टकः । मनधेवं जडं मन्ये संकल्पात्मकशंकि यत्॥ २० क्षेपणैरिव पाषाणः प्रेयेते बुद्धिनिश्चयैः । बुद्धिर्निश्चयरूपैवं जडा सत्तैव निश्चयः॥ २१ खातेनेव सरित्रुनं साहंकारेण वाह्यते। अहंकारोऽपि निःसारो जड एव शवात्मकः॥ २२ जीवेन जन्यते यक्षो बालेनेव भ्रमात्मकः। जीवश्र चेतनाकाशो वातात्मा द्ववये स्थितः ॥ २३ सुकुमारोऽन्तरन्येन केनापि परिजीवति । अहो नु झातमेतेन चेत्योल्लेखकलङ्किना ॥ २४ जीवो जीवति जीर्णेन चित्रूपेणात्मरूपिणा । चेत्यभ्रमवता जीवश्चिद्र्पेणव जीवति॥ 34 आमोदः पद्यनेनेव खातेनेव सरिद्रयः। असत्यजङ्चेत्यांशचयनाचिद्वपुर्जडम् ॥ २६ महाजलगतो श्वग्निरिय रूपं स्वमुज्यति। सद्वासद्वा यदाभाति चित्समाधी सतिस्वतः २७

यवत्वेनैबापण्डितपामरमनुभवादवयववद्दसंयुक्तलाच तदव-यववज्जडलमेवेलाशयः ॥ १९ ॥ मनआदेरपि जडदेहादिप्रे-रकलात्तरसंयोगयोग्यद्रव्यतया यध्यादिवजाडत्वं त्याह--- प्रेर्यत इत्यादिना ॥ २० ॥ जडा सत्ता जा**ज्यत्वभावे-**वेति निश्वयः । क्षेपणे रज्ज्यक्षैः ॥ २१ ॥ स्वातेन वप्रद्वयान्त-रालिकनिम्नदेशेन । सा धुद्धिर्वाह्मते प्रेर्यते ॥ २२ ॥ जीवेन प्राणाविच्छम्मिदाभासेन जन्यते अध्यस्यते । तथाच यक्षदे-हवत्तस्याध्यस्तलादेव जडलमित्यर्थः । वातात्मा प्राणोपाधिः ॥ २३ ॥ अन्तरन्येन खान्तर्यामिनिम्बचैतन्येन परिपूर्णी जीवति । चेखोहेखः साक्षिभावेन विषयप्रकाशनं तेन कल-ड्रिना द्षितप्रायेण ॥ २४ ॥ जीर्णेन चिरंतनेन चेल्योहेसक-लिइनेति ॥ २५ ॥ तत्रोपपत्तिमाह--असलेति । स्यनात्तादा-तम्यसंसर्गाध्यासाचिद्वपुश्चित्लभावमपि तच्चडमिव संपन्नमित्यर्थः ॥ २६ । महाजलं तप्तजलं सामुद्रं वा तद्वतोऽभिरिव खं भाखररूपमुज्झति मुद्यति । अतएव सत्तांशे चिद्वेरुक्षण्य-मिव उन्धा घटः सन्पटः समिति सन्ता घटपटाद्यविदाकारस-मरसानुभूयते । घटाचाकारस्य मृदादी स्ये घटो नास्ति पटो सत्ताकारमप्युज्यन्ती अभावतामप्यापद्यत इति भावः । चित्समाधी चेत्यैकाम्ये सद्भूपमसद्भूपं वा यदेव वासनो-पगीतं स्वत आभाति तदेव क्षणादरुं पूर्वं स्वरूपमुख्ज्य

१ शक्तिमदिति पाठः. २ अत्राप्तियं सपत्नीसंप्रदणं कामयत इति म्यास्यानं युक्तं। यथास्थितन्यास्यायां पुंतन्तावानुपपितः.

१ कथं केनिमित्रीरिति पाठः.

स्वरूपमञ्जुतस्जय तरेव भवति क्षणात्। यवं चिद्र्पमप्येतचेत्योन्मुसतया स्वयम्॥ २८ जडं शुन्यमसत्करपं चैतन्येन प्रबोध्यते । इति संचिन्त्य चुडाला केनैया चित्प्रचेतनी ॥ २९ इति संचिन्तयामास चिरायेत्थं व्यबुध्यत। अहो नु चिरकालेन ज्ञातं श्रेयमनामयम्॥ 30 यद्वै विश्वेयतां कृत्वा न कश्चिद्धीयते पुनः। पते हि चिद्विलासान्ता मनोबुद्धीन्द्रियादयः ॥ ३१ असन्तः सर्व पंवाहो ब्रितीयेन्दुपदस्थिताः। महाचिदेकैवास्तीह महाससेति योच्यते॥ 32 निष्कलक्का समा शुद्धा निरहंकारक्षपिणी। शुद्धसंवेदनाकारा शिवं सन्मात्रमञ्जूतम्॥ 33 सक्तिभाता विमला नित्योदयवती सदा। सा ब्रह्मपरमात्मादिनामभिः परिगीयते ॥ 38 वेखवेतनवित्तादि नास्या भिन्नं न मानतः। तयेषा चेत्यते चिच्छीः सैषाद्या चिदिति स्मृता ३५ अचेत्यं यदिदं चित्त्वं तत्त्रस्या रूपमक्षतम्।

तत्क्षणात्वयं भवतीति परेणान्वयः ॥ २० ॥ एवमुक्तरीत्या परमार्थतिबद्भपमपि अविद्यावरणादध्यासपरंपरया जडं शून्य-मसत्कल्पं च संपन्नं जगद्रूपं बुद्धावनावृतस्वभावेन चैतन्येनैव तत्तदाकारकृत्तिव्यास्या मुलाविद्यावरणभञ्जद्वारा प्रवोध्यत इति परेषान्वयः ॥ २८ ॥ तर्हि मूलाविद्यावरणभन्नेनेषा ब्रह्मचि-त्केनोपायेन दश्यखप्रं विहाय प्रबोधवती स्यादिति चिन्तितव-वीखाइ--इतीति ॥ २९ ॥ इत्यं वर्ण्यमानप्रकारेण व्यबुध्यत । भारमतस्वमित्यर्थः ॥ ३० ॥ कथिदपि पुरुषो न हीयते परम-पुरुषार्थात्प्रच्युतो न भवतीत्वर्थः । अथवा कश्चिदपि का-म्योऽयों न हीयते न हानिं प्राप्यते । तत्प्राप्येव सर्वकामावा-सेरिलर्थः । अथवा किंचिद्रस्तु दुःखसाधनमिति बुद्धा न डीयते न खज्यते । सर्वस्याप्यानन्दंकरसलसंपत्तेरित्यर्थः । हानासंभवोक्तिरुपादानस्याप्युपलक्षणम् । चिद्विलासस्य अन्ताः परिच्छेदहेतदः ॥ ३१ ॥ द्वितीयस्य तैमिरिकदृष्टिपरिकल्पित-स्येन्दोः पदे स्थाने स्थिता। भ्रान्तिकल्पिता इति यावत् ॥३२॥ **घढं संवेदनमेव आकारः खरू**पं यस्याः । श्विवं भूमानन्दरूप-बात्परममञ्जलं तादशसभावात्कदाप्यप्रच्युतमित्यच्युतम्॥३३॥ सक्रुन्मूटाविद्यावरणभन्नेन विभाता न पुनः केनाप्यावियत इति सकृद्विभाता । अतएव निस्रोद्यवती परिगीयते वेदान्ता-यप्यारमशासेषु रुक्षणया ॥ ३४ ॥ चेत्यादित्रिपुरीजालमस्याः सकाशाद्भिषं वस्तु न। यत एषा त्रिपुटी तया साक्षिभूतया चेलाते नतु मानतः सिद्धा सैषा साक्षिनित् त्रिपुटी प्रवृत्तेः प्रागेव खतःसिद्धलादाद्या ॥ ३५ ॥ विज्ञम्भते विवर्तते॥३६॥ मनोबुज्यादिविवतैं विदारमनि मातरि प्रमातृभावापने सति तत्र तरशादिकलनाप्राया जगद्रूपभूतशैतिकपदार्थानः सत्ता अस्ति-ता स्फरति ॥ ३७ ॥ यदिदं जगत्सत्तारूमं प्रसिद्धं तत्तरया

मनोबुद्धीन्द्रियाद्यर्थरूपैः सैव विज्ञम्भते॥ 38 तरङ्गकणकञ्चोलकलनेयं चिदात्मनि । जगदूपपदार्थानां सत्ता स्फुरति मातरि॥ ३७ यदिदं तत्परं रूपं तस्याः खलु महाचितेः। शुद्धचिन्मणिवत्सा हि सेयं समसमोदिता॥ 36 अनन्ययैव या शक्या जगज्जम्भिकया स्थिता। सत्ता मायातिरेकेण नान्या संभवतीह हि॥ 38 विचित्रतेव भाण्डानां ननु हेमतया यथा। सा तथोरेति तद्रपमात्मानं चेतति स्वयम्॥ 80 स्वचित्तेन द्रवत्वेन तरङ्गादित्वमम्बुष् । महाचितौ जगश्चित्तादुदेतीवानुदेखपि॥ કર तदात्मैव यथा यातो रूपवान् जलधौ द्रवात्। एवं चिन्मात्रमेवाहमनहंभावमाततम्॥ પ્ટર न तस्य जन्ममरणे न तस्य सदसङ्गती। न नाशः संभवत्यस्य चिन्मात्रनभसः कचित्॥ ४३ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयं चिदादित्योऽतिनिर्मतः। आहो नु चिरकालेन शान्तासि परिनिर्वृता ॥ ४४

अधिष्ठानभूताया महाचितेरेव परं रूपं रूपान्तरम् । खलु-शब्दो 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त चैवामूर्त च' इत्यादिश्रौतप्रसि-दियोतनार्थः । यतः सा हि चित्स्फटिकमणिवज्जगत्प्रतिविम्ब-मसक्रैव धत्ते । सेयं जगत्सत्ता च व्यावहारिकेषु प्रातिभासि-केषु च समसमा खखाधिष्ठानानुसारिणी उदिता ॥ ३८ ॥ अतएव जगत्सत्ताया अधिष्ठानसत्तान्यलनिरूपणायोगान्माया-मात्रसमित्याह—अनन्ययेवेति ॥ ३९ ॥ अतएव नामरूपवि-शेषप्रलये जगत्सत्ता मायाशबलबद्धासत्तारमनेव परिशिष्यते । मायाबाधे त आनन्दैकरससन्मात्ररूपमात्मानं खयमनुभवती-व्याह—विचित्रतेवेति । भाण्डानामलंकारजातानां विचित्रता यथा प्रविलये हेमतया हेमसत्तात्मनैवोदेति तथेखर्थः ॥४०॥ सत्तायां दर्शितन्यायेनेव जगद्वीचत्र्यस्फुरणरूपचिद्धेदानामपि विषयाकारमेदे मिथ्यालपर्यालोचने अपरिच्छिन्नपरनद्वाचिन्मा-त्रता पर्यवस्यतीत्याशयेनाह—स्वित्तेनेति द्वाभ्याम् । यथा स्रोन्द्रजालादी द्रवत्वेन परिणतेन स्वचित्तेन सिद्धेषु समुद्राद्य-म्बुषु तरकादि अनुयदप्युदेतीव तथा महाचितौ वद्याण्यपि समष्टिनिताजगदनुधद्पुदेतीत्यर्थः। अनुदेतीति नशस्तिबन्तेन सहेति योगधिभागात्समासरछान्दसो वा ॥ ४१ ॥ अस्त्वेवं किं ततस्तत्राह—तदिति । तत्तत्र खप्ने चिद्रप आसीव चित्र-कल्पितजलरूपेण रूपवान् संस्तरक्वादिद्रव्यमेदान्यधायातस्तत्रा-त्मन्यतिरिकं नाणुमात्रमपि किंचिदिस्त । एवं चिन्मात्रजेवाहं-जगद्भानविशेषमेर्दैः संपन्नो न परमार्थतः पूर्णविदात्मनो व्यतिरिक्तमणुमात्रमप्यस्तीत्यहंभावस्याप्यपरिशेषादनहं भावं चिन्मात्रमेवाततं विस्तीर्णमित्यर्थः ॥ ४२ ॥ मरणं देह-वियोगी नाशो ध्वंस इति मेदः । सदसद्भती स्वर्गनरकी ॥४३॥ तत्र प्रख्यतिवारस्थावधी विश्वानित दर्शयति अच्छेश इति

ષ

દ્દ

O

4

निर्वामि भ्रमनिर्मुक्तमासे निर्मन्दराब्धिवत् । असदामासमत्यक्तमनन्तमजमच्युतम् ॥ ४५ आत्माकाशमनाबाधममलं परमं चिरम् । अनन्तमिदमाकाशं फलीयाश्चाफलादिकाः ॥ ४६ सुरासुरयुतं विश्वमेतन्मयमक्तिमम् । पुंस्त्वकर्ममयी सेना सर्वे मृन्मात्रकं यथा ॥ ४७ द्रष्टृहृहृष्ट्यमयी सत्ता चिन्मात्रकंयमयी तथा । ६५ सम्मामेव हित्वमहं नाहमितीति च ॥ ४८ क इव भ्रमसंमोहः कथं कस्य कुतः क वा । स्वमनन्तमनायासमुपशान्तासि संस्थिता ॥ ४९

निर्धाणपरिनिर्धाणा गतमासे गतज्वरम् ।
असेतनं चेतनं वा योऽयमाभाति चेतति ॥ ५०
भासमानात्म तद्र्पं खं महाचिति संस्थितम् ।
नेदं नाहं न चान्यच न भावाभावसंभवः ।
शान्तं सर्वं निरालम्बं केवलं संस्थितं परम् ॥ ५१
१८थं विचारणपरापरमप्रबोधाहुद्वा यथास्थितमिदं परमात्मतस्वम् ।
संशान्तरागभयमोहतमोविलासा
शान्ता वभूव शरदम्बरलेखिकेव ॥ ५२

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ दे॰ मो॰ निर्वा॰ चूडालाप्रबोधो नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९

3

8

विसष्ठ उवाच ।
दिनानुदिनमित्येषा स्वात्मारामतया तया ।
नित्यमन्तर्मुखतया बभूच मकृतिस्थिता ॥
नीरागा निरुपासङ्गा निर्द्धन्द्वा निःसमीहिता ।
न जहाति न चादत्ते प्रकृताचारचारिणी ॥
परितीर्णभवाम्भोधिः शान्तसंदेहजालिका ।
परमात्ममहालाभपरिपूर्णान्तरात्मना ॥
विभान्ता सुचिरं भ्रान्ता घनलष्धपदान्तरे ।
सर्वोपमातीततया जगामाव्यपदेश्यताम् ॥

॥ ४४ ॥ आसे 'तासस्त्योः' इति सलोपः । असन् दश्याभासो यसिन् ॥ ४५ ॥ चिरं कालिकपरिच्छेदरहितम् । अनन्तं देशवसुकृतपरिच्छेदरहितम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तप्राणिकर्म-फलौषाश्वकारात्तस्साधनव्यापाराः अफलादिका निष्फलसाधना वृथा चेष्टाथ इदमाकाशमेव नान्यत् ॥ ४६ ॥ पुंस्लं कुछा-लादिपुरुपजातिस्तत्कर्ममयी तन्निर्मिता । अथवा पुंस्तं प्रति-मायां कल्पिता प्रकृषजातिः। कर्म तदनुरूपचलनादि । तन्मयी तत्त्रचुरा बालनिर्मितमृत्सेना ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ किंतृत्वतुष्टयं प्रकारभोक्तनिमित्ताधिकरणसंभावनाप्रतिषेधार्थम् । स्वं पारमा-र्थिकं रूपं प्राप्येति शेषः ॥ ४९ ॥ निर्वाणे मोक्षयुखे परितो निर्वाणा निर्वता । गतभवज्यरं गतं कण्ठवामीकरवत्प्राप्तं खरू-पमेवाहमासे । यदचेतनं चेतनं वा आभाति । योयं तद्भोक्ता चेतति तदुभयं भासमानात्माभिन्नं यद्गद्धा तद्भूपं खं चिदाकाश-मेवेति परेणान्वयः ॥ ५० ॥ किं इदन्ताहन्तान्यतादिजगत्ख-भावमत्यक्लैव बद्धा नेत्याह्—नेदमिति ॥ ५१ ॥ उक्तमेव संक्षिप्योपसंहरति—इत्यमिति । परमत्रनोधादात्यन्तिकमोह-निदापगमात् संशान्ता रागादयस्तमोविलासा अवस्थात्रयसंप्रा यस्याः ॥ ५२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्वर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

इति सा भामिनी तस्य चूडाला वरवर्णिनी। स्वरंपेनैव हि कालेन यया विदितवेद्यताम्॥ यथायमागतः कश्चिज्ञागतः स्पन्दविभ्रमः। तथा विलीयते सर्व तत्त्वज्ञानवति स्वयम्॥ अदृष्टसकले शान्ते पदे विभ्रान्तिमेत्य सा। रराज शरद्काभ्रमालेव गतसंभ्रमा॥ अनाकुला समालोकमसंबन्धात्मनात्मनि। जर्जवीव शैलाग्रं सतृणं प्राप्य संस्थिता॥

अपूर्वश्रीमती दृष्ट्वा पृष्टया धरणीभृता । चुडालया स्वज्ञोभाया हेतुर्बोधोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

एवं विचारेणोत्पन्नस्य तत्त्वज्ञानस्याभ्यासाद्दिनक्रमेणोत्तरो-त्तरभूमिकाप्रतिष्ठामाह--दिनानुदिनमिति । दिनानुदिनं दिन-कमेण । निल्यमभीक्ष्णं प्रकृतिः स्वाभाविकं रूपं तस्मिन् स्थिता प्रतिष्ठिता ॥ १ ॥ तस्यास्तत्प्रतिष्ठालक्षणान्याह् — नीरा-गेल्यादिना ॥ २ ॥ परिपृणी देहादान्तरान्मनसोऽप्यान्तरः प्रस्पगारमा यस्याः ॥ ३ ॥ सुचिरं प्राक्संसारश्रान्ता तदा निरतिशयानन्दघने ज्ञानलच्छे पदान्तरे परमपदे विश्रान्ता ॥ ४ ॥ ५ ॥ कथमल्पकालिकेन बोघेनानादेर्महत्तमस्य च भ्रमस्य निवृत्तिस्तत्राह-यधेति । कश्चिदनिर्वचनीयसह्यः सम्द्विभ्रमः अविदुषि अकस्मादेवागतस्तथा तस्वज्ञानवति मर्व निःशेषमकस्मादेव विलीयत इत्यर्थः । रीर्घपाठे यथा विलीयते तथा तत्त्वज्ञानवति बभूवेति कथं विद्याख्येयम् ॥६॥ न दृष्टं सकलद्वैतं यत्र तथाविधे पदे ॥ ७ ॥ यथा जरद्भवी वृद्धागीर्दुरारोहतमं सैतृणोदकं समालोकं तुल्यातपचन्द्रिकोपभो-गंशेलामं दैवात्प्राप्य अनाकुला संस्थिता भवति तद्वत्सापि समालोकं जाप्रदादिसर्वावस्थास्वेकरूपप्रकाशं प्रत्यगातमानं जा-

१ मूलसं तृणपद्मुदकस्याप्युपलक्षणमित्यर्थः.

स्वविवेकघनाभ्यासवशादात्मोदयेन सा। शशमे शोभना पुष्पलतेबामिनबोद्रता॥ 9 अथ ताममबद्याङ्गी कदाचित्स शिक्षिभ्वजः। अपूर्वशोभामालोक्य सायमान उवाच ह ॥ १० भूयो यौवनयुक्तेव मण्डितेव पुनःपुनः। अधिकं राजसे तन्वि जगद्राजवती यथा ॥ ११ प्रपीतामृतसारेव लब्धा लभ्यपदेव च। आनन्दापूरपूर्णेव राजसे नितरां प्रिये॥ १२ उपशान्तं च कान्तं च दधाना सुन्दरं घषुः । आंग्रेभूयेन्द्रमायासि श्रियं कामपि कामिनि ॥ 83 अभोगरूपणं शान्तमूर्जितं समतां गतम्। गम्भीरं च प्रशान्तं च चेतः पद्यामि ते विवे॥ १४ तृणीकृत्य त्रिभुवनं पीताखिलजगद्रसम्। अनन्तोड्डामरं सौम्यं मनः पद्यामि ते प्रिये॥ १५ न केनचिन्महाभागे विभवानन्दवस्तुना। चेतस्तव तुलामेति मरुक्षीरान्धिसुन्दरम् ॥ १६ तैरेच बालकदलीमृणालाङ्करकोमलैः । अङ्गैः स्थितिमनुप्राप्तेर्वृद्धि यातेव लक्ष्यसे॥ १७ तथा तेनैय तेनैय संनिवेशेन संस्थिता। अन्यतामुपयातासि छतेष ऋतुपर्यये ॥ १८ किं त्वया पीतमसृतं प्राप्तं साम्राज्यमेव वा। अमृत्युमेव संप्राप्ता प्रयोगायोगयक्तितः॥ १९

प्रदायसंबन्धात्मना स्वभावेन प्राप्य तस्मिन्नेवात्मन्यनाकुला संस्थितेत्यर्थः ॥ ८.॥ आत्मनस्तत्त्वदर्शनप्रयुक्तेनोदयेन पूर्णा-नन्दखरूपाविर्भावेण ॥ ९ ॥ स्मयमानो विस्मयस्मेरास्यः ॥ १० ॥ जगत् जगती । 'वर्तमाने पृषन्महद्भृहज्जगच्छतृवच्च' इति शतृबद्भावातिदेशात् 'उगितश्व' इति स्त्रियां डीप् छान्दस-लान्न कृतः । राजवती राजन्वती पूर्णचन्द्रवती वा यथा राजते तद्वदानसे ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ऊर्जितं विवेको-जितम् । शान्तं शमादिगुणवत् । प्रशान्तमुपरतचापलम्॥१४॥ ॥ १५ ॥ मरुरिव निर्जलजाब्यतया श्लीराब्धिरिव पूर्णतया च खुन्दरम् ॥ १६ ॥ स्थितिमचापस्यमुपायातस्तैः प्राक्तनैरेवाङ्गै-रवयवैस्तेजोतिशयेन मृद्धिं यातेव ॥ १७ ॥ ऋतुपर्यये शिशि-राखये ॥ १८ n प्रयोगो रसायनादिप्रयोगः । आयोगो मन्त्रा-दिसिद्धियुक्तयो राजयोगहठयोगोपायास्ताभ्य इति ततः ॥१९॥ ॥ २० ॥ एवं राज्ञा पृष्टा चुडाला खशोभातिशयनिमित्तं परि-च्छिप्रदेहात्मतात्यागः पूर्णाद्वितीयब्रह्मात्मलाभथेति गृढोत्तया प्रथमगुत्तरमाह---नाकिचिदिति । अहमिदं सर्वं मूढजनप्रसि-द्धमिदं शरीरात्मत्वं खक्खा न विधन्ते अकिंचित् अशेषाः। किंचिन्नामरूपाकारा यस्मिस्तयाविधं ब्रह्मात्मलं तत्त्वबोधेन आगता नतु मन्त्ररसायनादिसाधनमात्रेण । किंचित्किचिद्दर्पं तुच्छं च तत्तत्सिद्धाकारं तेनेत्यर्थः । अथवा अहं किचित्कि-चिदाकारं जामत्स्वप्रावस्थाद्वयं नागता नाप्यकिचिदाकारं

राज्याचिन्तामणेर्वापि त्रेलोक्याद्वा त्वयाचिकम्। अप्राप्तं किमनुप्राप्तं नीलोत्पलविलोचने॥ २०

चूडालोवाच ।

नाकिंचिर्तिकचिदाकारमिदं त्यक्तवाहमागता। न किंचिर्दिकचिवाकारं तेनासि श्रीमती स्थिता २१ इदं सर्वे परित्यज्य सर्वमन्यन्मयाश्रितम्। यत्तत्सत्यमसत्यं च तेनासि श्रीमती स्थिता ॥ २२ यर्तिकचिद्यन्न किंचित्र तज्जानामि यथास्थितम्। यधोदयं यथानाशं तेनासि श्रीमती स्थिता ॥ २३ भोगैरभुकेस्तुष्यामि भुकैरिव सुदूरगैः। न हृष्यामि न कुप्यामि तेनासि श्रीमती स्थिता २४ एकैवाकाशसंकाशे केवले हृदये रमे। न रमे राजलीलास तेनासि श्रीमती स्थिता॥ २५ आत्मन्येव हि तिष्ठामि ह्यासनोद्यानसद्मस् । न भोगेषु न लजासु तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥ २६ जगतां प्रभुरेवासि न किंचिनमात्रक्रिणी। श्यात्मन्येव तुष्यामि तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥ २७ इदं चाहमिदं नाहं सत्या चाहं न चाप्यहम्। सर्वमिस न किंचिश्व तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥ २८ न सुखं प्रार्थये नार्थं नानर्थं नेतरां स्थितिम । यथाप्राप्तेन हृज्यामि तेनाहं श्रीमती स्थिता॥

सुपुप्तरूपं किंतु इदमवस्थात्रयमपि त्यक्ला तुरीयस्वभावमागता तेन हेतुनेत्यर्थः। अथवा अहं कर्मोपासनादिना किंचित्किचिदा-कारं इन्द्रचन्द्रादिहिरण्यगर्भान्तं पदं भावनाकृततादारम्यसिच्या नागता। नाप्यकिचिरिकचिदाकारमव्यक्तरूपं किलिदं सर्व व्यक्ता खखरूप एवावस्थिता तेन हेतुनेखर्यः । अथवा अहमिदं तिन्नदेहपरिच्छिनं जीवाकारं त्यक्ला यन्नाकिश्विकिश्वत्सर्वाः त्मक आकारो यस्य तथाविधं परमार्थतो न किचित्किचिदा-कारं च त्रहा तदागता प्राप्तवती तेन हेतुनेखर्थः ॥ २१ ॥ उक्तमेवार्थे भक्त्यन्तरेण पुनराह—इदमिति । इदं परिच्छनं सर्वे परित्यज्य सर्वमपरिच्छिन्नमन्यन्मया आश्रितम् । किं तत् । यत्तत् सत्यमगाधितं न विद्यते सन्मूर्त त्यदमूर्तं च प्रपन्नरूपं यत्रेत्यसत्यं च । तेनेति प्राग्वत् ॥ २२ ॥ न किचित्किचिदा-कारमिति स्त्रोक्तिं भक्न्यन्तरेण वर्णयति—यदिति । यदस्त उदयः सर्गस्तमनतिक्रम्येति यथोदयं सृष्टिदशा दृश्यमानं कि-चित्परिच्छित्रं गदेव च यथानाशं प्रलयहशा दर्यमानं न किचित्र भवति तद्यथा येन कृटस्थभूमानन्दस्वभावेन स्थितं जानामी-त्यर्थः ॥२३॥२४॥ **इदयपदेन हार्द ब्रह्म** लक्ष्यते ॥२५॥ आसनो-वानाविषु देहे स्थितेऽप्यहं पूर्णात्मन्येव तिष्ठामि नत् भूषणस-न्मानादिशारीरमानसभोगेषु तदलाभप्रयुक्तलबासु वा ॥ २६ ॥ ॥ २०॥ इदं देहादि चालद्वपभोग्यमिष्ठानदशा, आरोपित-दशा 🗷 नाहम् ॥ २८ ॥ नानर्थे जिहासामीति शेषः ॥ २९ ॥

तनुविद्वेषराजामिः प्रकामिः शास्त्रदृष्टिमिः । रमे सह वयस्यामिस्तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥ ३० पद्यामि यस्त्रयनरिहममिरिन्द्रियर्घा चिसेन चेह हि तदङ्ग न किंचिदेव ।

पश्यामि तद्विरहितं तु न किंचिदन्तः पश्यामि सम्यगिति नाथ चिरोदयासि ३१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे बाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चूडालात्मलाभो नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०

9

वितष्ठ उवाच । एवमात्मनि विश्रान्तां वदन्तीं तां वराननाम् । अबुद्दा तद्गिरामर्थं विहस्योवाच भूपतिः॥

शिखिष्यज उवाच ।
असंबद्धमलापासि बालासि वरवर्णिनि ।
रमसे राजलीलाभी रमस्वाधनिपात्मजे ॥ २
किंचित्त्यक्त्वा न किंचिद्योगतो प्रत्यक्षसंस्थितम् ।
त्यक्तप्रस्थसद्द्रपः स कथं किल शोभते ॥ ३
भोगरभुकैस्तुष्टोऽहमिति भोगान्जहाति यः ।
हषेवासनशय्यादीन्स कथं किल शोभते ॥ ४
भोगामोगे परित्यज्य खे शून्थे रमते तु यः ।
पक पवाखिलं त्यक्त्वा स कथं किल शोभते ॥ ५
वसनाशनशय्यादीन्सर्यान्संत्यज्य धीरधीः ।
यस्तिष्ठत्यात्मनैवैकः स कथं किल शोभते ॥ ६
नाहं देहोऽन्यथा चाहं न किंचित्सर्थमेव च ।

पवं प्रलापो यस्यास्ति स कथं किल शोभते॥

वयस्याभिः सस्रीभृताभिः । तनुः कृशीभृतो विद्वेषो रागध्य यामिस्तथाविधाभिः स्वप्रशाभिः शास्त्रदृष्टिभिश्च सह रमे । अथवा शास्त्रदृष्टिभिः करणेस्तनुरत्वीभूतो विद्वेषो रागध्य यासां तथाविधाभिर्वयस्याभिः सस्त्रीभिः सह रमे ॥ ३०॥ अश्व हे नाथ, इह जगति अहं नयनरिमिभरन्येवा इन्द्रियेश्वित्तेन न यत्पर्यामि तन्न किंचिद्युतमेव । तेनेन्द्रियमनोहरयेन विरहितं तु न किंचिन्निष्प्रपश्चं वस्तु अन्तः पश्यामि । यतो हेतोरिति वर्णितरीत्या अन्तर्वहिश्च सम्यगमाधितरूपं पश्यामि । तेन हेतुना चिरं संततसुदिता परमाभ्युद्यश्रीमती अस्मीत्यर्थः॥३९॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यश्चकाशे निर्वाणप्रकरणे पकोनाशीतितसः सर्यः ॥ ७९ ॥

अज्ञेन राज्ञा तद्वावयस्यासंबद्धरववर्णनम् । सेचरत्वादिसिद्धीनां बीजं चात्र निरूप्यते ॥ १ ॥ एवं वर्णितप्रकारेण खशोभाविशये निर्मित्तानि वदन्तीम् ॥ १ ॥ बाला अप्रीढबुद्धिरसि । परबोधानुकूलवाक्योश्वारणे अकुशकेति यावत् ॥ २ ॥ असंबद्धप्रलापतामेव नाकिचित्कि-विदिसायुकेर्द्शेमति—किचिदिति । साकारस्यव शोभा प्र-सिद्धा । यस्साकारसामान्यं सक्ता निराकारतां गतः स श्रन्य-

यत्पञ्चामि न पञ्चामि तत्पञ्चाम्यन्यदेव यत्। प्रलाप इत्यसंन्यस्य स कथं किल शोभते ॥ तसाद्वालासि मुग्धासि चपलासि विलासिनि । नानालापविलासेन कीडामि कीड सुन्दरि॥ प्रविहस्यादृहासेन शिलिध्वज इति प्रियाम्। मध्याह्ने स्नातुम्त्थाय निर्जगामाङ्गनागृहात् ॥ १० कष्टं नात्मनि विधान्तो महत्त्वांसि न बुद्धवान्। राजेति खिन्ना चुडाला खव्यापारपराभवत्॥ ११ तदा तथाङ्क तत्राथ तारगाशययोस्तयोः। ताभिः पार्थिवछीलाभिः कालो बहुतिथो ययौ १२ पकदा नित्यतृप्ताया निरिच्छाया अपि स्वयम् । चुडालाया बभूवेच्छा लीलया खगमागमे॥ १३ खंगमागमसिक्यंथमथ सा नृपकन्यका। सर्वभोगाननादृत्य समागम्य च निर्जनम् ॥ १४ पकेषकान्तनिरता स्वासनावस्थिताङ्किका। ऊर्ध्वगप्राणपवनचिराभ्यासं चकार ह ॥ १५

प्रायः कथं शोभेतेत्यर्थः ॥ ३ ॥ भोगरभुक्तसुष्यामीति यस्त्र-योकं तदप्यसंबद्धमित्याह-भोगैरिति । हवा कोधेनेव ॥ ४ ॥ एकैवाकाशसंकाशे केवले हृदये रमे इति यत्वयोक्तं तदाय-संगतमित्याह—भोगाभोगे इति । स्वयं साक्षाद्वोगो मित्रस्-त्यादीनामाभोजनमाभोगश्रेत्वनयोः समाहारं परित्यज्य तत्सा-धनं वित्ताद्यस्तिलं च त्यक्ता य एक एव शून्ये से पिशाचवद-मते स किल शोभते इति कथं संगच्छतामिलार्थः ॥ ५॥ धीरधीः अतिकोधादिव धर्यमात्रबलेन शीलोणश्चल्यादिदुः-खानि सहमान इत्यर्थः ॥ ६ ॥ इदं चाहमिदं नाहाँमति यदुक्तं तदप्यसंबद्धमिलाह—नाहमिति ॥ ७ ॥ पर्यामि यत्र-यनरिमिमिरिन्दियेर्वेल्यन्ते यदुकं तत्त् मुतरामसंगतमिति नैत शोभाहेतव इत्युपसंहरति-यदिति ॥८॥९॥ १०॥ कष्टमिति । 'न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः' इत्यादिश्रतिरित भावः ॥ १९ ॥ अङ्गेति रामसंबोधने ॥ १२ ॥ खे गमागमो देववत्संचारस्तद्विषये इच्छा बभूव । तादशप्रारन्धशेषबलादिति भावः ॥ १३ ॥ १४ ॥ एकैवेति : अर्थाद्राज्ञः शत्रुजयाय दित्रिहायनं प्रवासकाले इति गम्यते । अध्यथा तत्पराधीना-गारास्या एकान्तनिरतलाययोगात । ऊर्ध्वगमा प्राणपवनस्य

२१

श्रीराम उवाच। यदिदं दृश्यते किचिजागतस्थावरजंगमम्। स्पन्दच्युतं कियानाम्नः कथमित्यनुभूयते ॥ १६ कस्य स्पन्द्विलासस्य धनाभ्यासस्य मे वद् । **ब्रह्मन्खग**मनाचेतत्फलं यत्नैकशालिनः॥ १७ आत्मन्नो वाप्यनात्मन्नः सिद्ध्यर्थे लीलयाथवा । कथं संसाधयत्येतद्यथा तद्वद् मे प्रभो॥ १८ वसिष्ठ उवाच। त्रिविधं संभवस्यङ्ग साध्यं घस्त्विष्ट सर्वतः। उपादेयं च हेयं च तथोपेक्ष्यं च राघव॥ १९ आत्मभूतं प्रयक्तेन उपादेयं च साध्यते। हेयं संस्यज्यते ज्ञात्वा उपेक्ष्यं मध्यमेतयोः॥ २० यद्यदाह्यादनकरमादेयं यश्व सन्मते।

तद्विरुद्धमनादेयमुपेक्ष्यं मध्यमं विदः॥

विरं खेचरसिद्धनुकूलं भूमध्यादिदेशे निरोधाभ्यासम्॥ १५ ॥ खेचरसिद्धिप्रयोजकिकयाप्रसंगन रामः क्रियासामान्ये निमित्तं जिज्ञासुराक्षिपति---यदिदमिति । यदिदं स्थावरं जंगमं च जगत्तत्तर्वं स्पन्दच्युतं क्रियया निष्पादितं दृश्यते । विना कत्रीदिकारकस्पन्दं कस्याप्युत्पत्तेरदर्शनात् । तत्रैवं सति किया-नाम्नः सन्दस्य कथं निष्पत्तिः । किं सिकयादुत कूटस्थात् । आधे आत्माथयोऽनवस्था वा । द्वितीये व्याघातः अविरामः **फछानवस्था चेति कथं कियानाभ्रो वस्तुन उत्पत्तिरनुभूयते** अनुभवपथमारोहित तद्वदेखर्थः ॥ १६ ॥ एवमाक्षिप्य प्रस्तुतं **प्टन्डति-**कस्येति । एतत्खगमनादिसिद्धिजातं कस्य स्पन्द-विढासस्य फलं तदपि वदेत्यर्थः ॥ १७ ॥ अनात्मन्नः सिद्धार्थ आत्महो लीलया वा एतत्सिद्धिजातं कथं केन क्रमेण संसाध-यति तदपि वदेल्यर्थः ॥ १८ ॥ भवेदयमात्माश्रयानवस्था-विको दोषो यदि क्रियाखरूपमात्रसिद्धये कारकापेक्षा स्यात् । नतु तथा किंतु कियासाध्यस्य फलस्य । फलनिष्यत्तये हि प्र**वृत्तानि कारकाणि नान्तरीयक**तया कियामवलम्बन्ते । तया हि फलस्य साध्यता कारकाणां साधनतां च व्यपदेष्टं शक्यते। तयाच साध्यसाधनोभयविरुक्षणा क्रिया न साध्यापेक्षितसा-भनेभ्यः साधनान्तरमपेक्षत इति तस्यां सिक्यं कूटस्थं वा कारणमिति विकल्पो निरवकाश एवेत्याशयेन वसिष्ठ उत्तरप्र-श्रसमाधानानुकूलं गाणमुख्यसाधारणं ऋयासाध्यं विभज्य दर्श-यति—त्रिविधमिति । उपादानबुद्धिविषयीभूतं वस्तु उपादेयं प्रशृतिविषयः । हानबुद्धिवेयं हेयं निशृत्तिविषयः । उपेक्षाबु-दिगम्यमुपेक्यं तचीदासीन्येऽपि क्रियोपचारादनेनोपेक्षयायम-नर्थः कृत इति लोके व्यवद्वारदर्शनाद्गीणं साध्यम् ॥ १९ ॥ तेष फलवैलक्षण्यं दर्शयति—आत्मभूतमिति खस्य भूतमनुकूलम् । एतयोहैयोपादययोर्मध्यमान्तरालिकम् ॥ २०॥ आहादनकरं साक्षात्परम्परया वा सुसानुकूळम्।

सन्मतेर्विदुषो श्रस्य सर्वमात्ममयं यदा । त्रय एते तदा पक्षाः संभवन्ति न केचन ॥ २२ केवलं सर्वमेवेदं कदाचिल्लीलया तया । उपेक्षापक्षनिश्चिप्तमालोकयति वा नवा ॥ २३ इस्योपेक्षात्मकं नाम मुढस्यादेयतां गतम्। हेयं स्फारविरागस्य शृणु सिद्धिक्रमः कथम्॥ २४ देशकालिक्रयाद्वव्यसाधनाः सर्वसिद्धयः । जीवमाहादयन्तीह वसन्त इव भूतलम् ॥ २५ मध्ये चतुर्णामेवैषां क्रियाप्राधान्यकल्पना । सिद्ध्यादिसाधने साधो तन्मयास्ते यतः क्रमाः २६ गुटिकाञ्जनखङ्गादिकियाऋमनिरूपणम् । तत्रासतां च दोषोऽत्र विस्तारः प्रकृतार्थहा॥ २७ रत्नौषधितपोमश्रक्रियाक्रमनिरूपणम् । आस्तामेव किलैपोऽपि विस्तारः प्रकृतार्थहा ॥ २८

दुःखनिवारणसाधनस्यापि सुखानुकूलखादेव तत्साधनोपादान-सिद्धेरिति भावः । तद्विरुद्धं सुखविघाति । दुःखस्यापि खास्थ्य-मुखविघातिलादेव द्वेष्यलादिति भावः ॥ २१ ॥ त्रय एते साध्यभेदा अज्ञानामेवेत्याह-सन्मतेरिति ॥ २२ ॥ विदुष-स्तृतीयकल्पाभ्यूपगमेऽपि न कश्चिद्दोष इत्याशयेनाह—केवल-मिति ॥ २३ ॥ एकमेव वस्तु एकस्यैव पुरुषस्य बोधरांगवैरा-ग्यावस्थामेदेन त्रेघा संपद्यत इत्याशयेनाह—शस्येति । एवं सिद्धर्थं लीलयाथवा इति प्रश्नांशयोहपपत्तिमुक्ला कथं संसाध-यत्येतदिलंशसमाधानं श्रावयति-- १२ णिवत्यादिना ॥ २४ ॥ तत्र सिद्धितारतम्ये चिराचिरयहापेक्षायां च निमित्तान्याह-देशेति ॥ २५ ॥ एषां देशादीनां चतुर्णो मध्ये श्रीशैलाद्युत्तम-देशादिचतुष्ट्यमेलने शीघ्रं सिद्धिलाभाद्योगमञ्जूजपादिकियाया इतरदेशाद्यनुष्टितिकयापेक्षया प्राधान्यस्योत्कर्षस्य कल्पना भ-वति । फलोत्कर्षोऽपि तदनुसार्येवेत्याह्—सिद्धादीति । य-तस्ते सिद्धादयः फलोरकर्षकमा अपि तन्मयास्तादशकियो-त्कर्षानुसारिण इत्यर्थः ॥ २६ ॥ अस्त्वेवं किं ततस्तत्राह—गु-टिकेति । तत्र खगमनादिसाधनानि सिद्युटिकासिद्धाञ्जनसिद्ध-खन्नसिद्धपादुकादीन्यपि उड्डामरताश्रयोगिनीकल्पादिविस्तृतय-हुप्रन्थप्रसिद्धानि सन्ति । 'कथं संसाधयन्त्येतद्यथाषद्वद मे प्रभो' इति खदीयप्रश्नस्य तिकयाक्रमनिरूपणं कर्तव्यमिति चेदमिप्रायस्तर्ध्ववस्तृतोत्तया तदसंभवात्तद्विस्तारः कार्यः । तेन तत्र तासु सिद्धिषु विषये असतामजिज्ञासूनामतस्वविदां च लदतिरिक्तश्रोतृणां दैवादमिलाषोदये तन्नैव प्रवृत्त्या महान्दोषः स्यालवापि स विस्तारः प्रकृतस्यात्मतत्त्वश्रवणार्यस्य विद्रहरूप-**लाद्विघातक इति न तन्निरूपणमत्रोचितमित्ययंः ॥ २७ ॥** एष न्यामो मणिमञ्जादिसाध्यसिद्धिकमनिरूपणे श्रीशैठादिसि-द्देशनिवाससाध्यसिद्धिक्रमनिरूपणे च योज्य इत्याइ--रनेति

१ भूदविरागावस्थेति पाठः.

श्रीशैले सिम्रदेशे च मेर्वादी या निवासतः। सिद्धिरित्यपि विस्तारः कृतार्थप्रकृतार्थहा॥ २९ तसाच्छिखिध्वजकथाप्रसङ्गपतितामिमाम्। प्राणादिपवनाभ्यासिकयां सिद्धिफलां शूणु ॥ ३० अन्तस्था श्वाखिलास्त्यक्त्वा साध्यार्थेतरवासनाः। गुदादिद्वारसंकोचान्स्थानकादिकियाक्रमैः॥ भोजनासनशुद्धा च साधुशास्त्रार्थभावनात्। स्वाचारात्सुजनासङ्गात्सर्वत्यागात्सुखासनात् ३२ प्राणायामघनाभ्यासाद्राम कालेन केनचित्। कोपलोभादिसंत्यागाञ्जोगत्यागाच सुवत ॥ 33 त्यागादाननिरोधेषु भृशं यान्ति विधेयताम्। प्राणाः प्रभुत्वात्तज्ञस्य पुंसोभृत्या इवाखिलाः ३४ राज्यादिमोक्षपर्यन्ताः समस्ता एव संपदः। देहानिलविधेयत्वात्साध्याः सर्वस्य राघव ॥ ३५ परिमण्डलिताकारा मर्मस्थानं समाधिता ।

द्वाभ्याम् ॥ २८ ॥ हे कृतार्थेति रामसंबोधनं तासां सिद्धीनां लादशदृष्ट्या तुच्छतेति द्योतनार्थम् ॥ २९ ॥ तर्हि मतप्रश्रो व्यर्थः संपन्न इति रामस्य विषादो माभूदिति प्रस्तुतज्ञानदार्व्यो-पयोग्यान्यक्रिकखगमादिसिद्धिसाधनं वर्ण्यमानकथासंबद्धमधि-स्तारं प्राणायामकमं श्रावयति—तस्मादिति ॥ ३० ॥ तत्रादी यमनियमप्रतिष्ठे तद्वीजप्रदर्शनेन संक्षिप्याह—अन्तस्था इति साध्यार्थो इतराः साधनार्थोश्व वासनास्त्यक्ला स्थानकानि सि-द्वाधासनानि आदिपदात्समकायशिरोधीवतानिश्रलतानासामसं-प्रेक्षणमित्यादियोगशास्त्रोक्तिकयाक्रमपरिग्रहः ॥ ३१ ॥ तमेव कियाक्रममवयुख प्रपश्चयति—भोजनेति । साधु सम्यग्योग-शास्त्रार्थस्य भावनात्परिशीलनात् ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ त्यागे रेचने आदाने पूरके निरोधे कुम्भके च मृशमभ्यस्तेषु तज्ज्ञस्य योगिनः । प्रभुलात्प्राणस्यामिलसंपत्तर्शैकिकस्य पुंसः प्रभोर्भृत्या इव अखिलाः प्राणा विधेयतां स्वाधीनतां यान्तीत्यर्थः ॥३४॥ प्राणानां खाधीनत्वे तत्संबद्धसिद्धीनामपि खाधीनता सिद्धती-त्याह—राज्येति । सर्वस्याधिकारिणः ॥ ३५ ॥ इदानीं सर्व-सिद्धीनां देहानिलविधेयलमुक्तमुपपाद्यितुं सर्वदेहप्रसृतद्वास-प्रतिसहस्रशाखप्रधाननाडीशताश्रितां मूलाधारादारभ्य आत्र-द्मरन्ध्रं सप्तसु चकेष्वनुप्रविद्य निर्गतां मूलाधारे सार्धत्रिवलय-वेष्टनान्तः सप्तकुण्डलिनीशक्तिगर्भा सुषुम्नानाडीं वर्णयति—परि-मण्डलिताकारेत्यादिना । परितः प्रसृतशाखाभिः परिवेष्टित-खात्परिमण्डलिताकारा अतएवान्त्राणामपि नाडीमिर्वेष्टनादान्त्र-वेष्टनिका नाम ॥ ३६ ॥ तां मूलाधारे खान्तर्गतकुण्डलिनी-संस्थानानुकूल्येन वर्णयति-वीणेति । वीणादण्डस्याघे मूल-भागे प्रसिद्धो रेखात्मकस्तन्त्रीमुलपरिवर्तनरूपः सलिलपरिवर्तन नरूपो वा य आवर्तस्तत्सदृशी । छिप्या लेखनेन प्रदर्शने तु ॐकारस्यार्धमधौंकारसास्य संस्थानमिव संस्थानं यस्याः । द्रविडाक्षरे पूर्वार्थमिव नागराक्षरे उत्तरार्थमिव वा तत्संस्थानं

आस्रवेष्टनिका नाम नाडी नाडीशताश्रिता॥ ३६ वीणाष्ट्रावर्तसद्शी सलिलावर्तसंनिभा। **ळिप्यार्थीकारसंस्थाना कुण्डळावर्तसंस्थिता ॥**३७ देवासुरमनुष्येषु मृगनक्रखगादिषु । कीटादिष्वक्वजान्तेषु सर्वेषु प्राणिपृदिता ॥ 34 शीतार्तसुप्तभोगीन्द्रभोगवद्वसमण्डला । सिता कल्पाग्निविगलदिन्द्वद्वकुण्डली॥ ३९ ऊरोर्भ्रमध्यरन्ध्राणि स्पृशन्ती वृत्तिचञ्चला। अनारतं च सस्पन्दा पवमानेव तिष्ठति ॥ 80 तस्यास्त्वभ्यन्तरे तस्मिन्कदलीकोशकोमले । या परा शक्तिः स्फ्ररति वीणावेगलसङ्गतिः॥ ४१ सा चोक्ता कुण्डलीनाम्ना कुण्डलाकारवाहिनी। प्राणिनां परमा शक्तिः सर्वशक्तिजवप्रदा ॥ अनिशं निःश्वसद्र्पा रुषितेव भुजंगमी। संस्थितोध्वींकृतमुखी स्पन्दनाहेतुतां गता॥

छेख्यमित्यर्थः । 'अर्धं नपुंसकम्' इत्येकदेशिना समासः । 'ओमाडोश्च' इति पररूपम् ॥ ३७ ॥ इयं च न मनुष्येष्वेव किंतु सर्वप्राणिशरीरेप्वित्याह—देवेति ॥ ३८ ॥ शीतेनार्तः शीतार्तिनिवारणाय दढबद्धमण्डल इति यावत् । तथाविधस्य सुप्तस्य भोगीन्द्रस्य भोगः कायस्तद्वद्वद्धं मण्डलं यया । सिता श्रुमा । कल्पामिना विगलता अन्तर्वलयाकाररेखास्फटितेने-न्द्रना तुल्यं यद्धा क्रण्डलीवलयाकृतिर्यया । अथवा कल्पते जरणसमर्थी भवतीति कल्पोऽभिर्जाठराम्निस्तेन विगलन् यो मुर्घि योगशास्त्रप्रसिद्धश्चन्द्रः स एव विलीय मुलाधारे प्रसृतो धनीभूय तत्र बद्धकुण्डलाकृतिस्तद्वतिश्वतेत्युरप्रेक्षा ॥ ३९ ॥ ऊरुपदेन ऊरुमूलसंघिगुंदं लक्षणयोच्यते । तत आरभ्य भूमध्य-पर्यन्तं यानि रन्धाणि तानि स्पृशन्ती तेष्वनुस्यूता मनोवृत्ति-मिरन्तश्रम्भा बहिध पवमानेन प्राणादिना सस्पन्दा ॥ ४० ॥ तस्या मूलेऽन्तःसार्धत्रिवलयाकारां कुण्डलिनीसंज्ञां चिच्छक्ति दर्शयति—तस्या इति । तस्मिन्मूलाधारे वीणामूले दुर्लक्षेण तन्त्रीवेगेनेव लसन्ती परमसुक्ष्मा पराख्या सर्वशब्दमूलभूता गतिः शब्दब्रद्यात्मिका स्फूर्तिः सैव प्राणसङ्गान्नाभिहृद्यकण्ट-देशेषूत्तरोत्तरं व्यक्ततरा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीत्यादिमेदान् भजते इति । तथाचोक्तं मम्ब्रशास्त्रे 'चैतन्यं सर्वभूतानां शब्द-ब्रह्मेति यद्विदुः । तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम् । वर्णात्मनाविभेवति गद्यपद्यादिमेदतः' इति । गांबेनाप्युक्तम् 'या सा मित्रावरुणसद्नादुचरन्ती त्रिषष्टि वर्णानत्र प्रकटकरणैः प्राणसङ्गात्प्रसूते । तां पर्यन्तीं प्रथमसुदितां मध्यमां बुद्धिः संस्थां वाचं वके करणविशदां वैखरीं च प्रपर्धे ॥' इति ॥४१॥ सर्वासां प्राणेन्द्रियबुद्धादिशकीनामपि सत्तास्फूर्तिप्रवृत्तिनिर्वा-हकलाज्यवप्रदा ॥ ४२ ॥ तत्र कथं प्राणशक्तिर्वेषप्रदा तदाइ--अनिशमिति । सैव समुखातप्राणमूर्थं क्षिपति भपानं नाध आकर्षतीत्यनिशं निःश्वसद्वपेत्यर्थः ॥ ४३ ॥

यदा प्राणामिलो याति इदि कुण्डलिनीपदम्। तदा संबिद्ददेखन्तभूततन्मात्रवीजभूः॥ 88 यथा कुण्डलिनी देहे स्पुरत्यक्व इवालिनी। तथा संविद्देखन्तर्भृदुस्परीवशोदया॥ છપ स्पर्शनं मृदुनान्योन्यालिङ्गिका तत्र यन्त्रयोः । यथा संविद्देत्युचैस्तथा कुण्डलिनी जवात्॥ ४६ तस्यां समस्ताः संबद्धा नाड्यो हृदयकोशगाः। उत्पद्यन्ते विलीयन्ते महार्णव इवापगाः॥ 8/9 नित्यं पातोत्सुकतया प्रवेशोनमुखया तया। सा सर्वसंविदां बीजं होका सामान्यदाहृता ॥ ४८ श्रीराम उवाच । आकल्पादनविष्डिमा चित्संवित्सर्वमस्ति हि। तसात्कुण्डलिनीकोशात्केनार्थेनोदयः स्फ्रटः ॥ ४९ वसिष्ठ उवाच । सर्वत्र सर्वदा सर्व चित्संविद्विद्यतेऽनद्य।

कथं बुद्धिशक्षिजवप्रदा तदाह - यदेति । यदा हृदि स्थितः प्राणः कुण्डलिन्या आकृष्टः सन् अपानवृत्त्या कुण्डलिनीपदं याति तदा भूततन्मात्राण्यपत्रीकृतभूतान्येव वीजमुपादानं यस्य तथायिथे अन्तःकरणे भवतीति भूजीवसंवित् स्पृतिसंकल्पाध्य-वसायामिमानरागादिवृत्तिभेदरन्तरुदेतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ कथं चेन्द्रियशक्तिजवप्रदा तदाह्—यथेति । एवं प्राणबुद्धोराहित-ज्ञानिकयास्वराक्तिः कुण्डलिनी देहे सृदः स्पर्शी विषयसंनि-कर्षी येषां तेषां चक्षुरादीनां वशोदया सती देहे यथायथा यादशभोजकादष्टदृष्टसामग्रीवैचित्र्येण स्फुरति तथातथा तत्त-दिन्द्रियेर्यविशेषस्फर्तितत्फलभोगादिलक्षणा संविद्ददेतीत्यर्थः ॥ ४५॥ कथं मृदुस्पर्शवशानुगा तदाह—स्पर्शनमिति । कुण्डलिनी जवात्तथा रफ़रति यथा मृदुना चक्षुरादिना विषय-सर्शनं प्रथममुदेति । तथाच तत्र यन्त्रं कार्यकरणसंघातं युनक्तीति यन्त्रयुः प्रमाता तस्य वृत्तिद्वारा बहिर्निगेतस्य बाह्य-विषयेण सह अन्योन्यमालिङ्गनमन्योन्यालिङ्गिका । भावे ण्वुल् । वृत्तिव्याप्तिप्रयुक्ता व्याप्तिहृदेति । तयाच यथा विषयावरण-भक्ते उसेः स्फुटतरा संविद्धटादिप्रथा उदिति तथा तेनतेन प्रकारेणेल्यर्थः ॥ ४६ ॥ तत्र मूलाधारस्थायाः कुण्डलिन्याश्व-क्षरादिप्रवर्तने नाड्यो द्वारमिखाशयेनाह—तस्यामिति । उत्प-द्यन्ते प्रतायन्ते । विलीयन्ते संकुचन्ति ॥ ४७ ॥ कशमुत्प-बन्ते विलीयन्ते च तदाह—नित्यमिति । प्राणात्मना ऊर्ध्व-पातोत्सुकतया अपानात्मना अधः प्रवेशोन्मुखया तया । उक्त-मुपसंहरति-सेति । सामानी साधारणी । समानशब्दाद्वावे स्वार्थे वा व्यन्ति डीपि 'हलस्तदितस्य' इति यलोपः ॥ ४८ ॥ अपरिच्छिन्नायाश्रितो मूलाधारे नाडीमूले परिच्छिनकुण्डलि-न्यास्यस्वांशादुद्भवः कथं किमर्थं चेति रामः प्रच्छति-आक-ल्पादिति कारुतः सर्वमिति वस्तुतथापरिच्छित्रः । देशकृतप-रिच्छेदाभावस्यापि वृद्धकृतपरिच्छेदाभावेन्तर्भाव इत्याशयेनो-

कित्वस्या भृततन्मात्रवशादभ्युद्यः क्रचित्॥ सर्वत्र विद्यमानापि देहेषु तरलायते। सर्वगोऽप्यातपः सौरो मिस्यादौ वै विज्ञम्भते॥ ५१ कचिष्ठष्टं कचित्स्पष्टं कचितुव्छिष्ठतां गतम्। घस्त वस्तुनि दृष्टं तत्तत्सद्भावैर्विज्ञिमतम् ॥ ५२ पतद्भयः ऋमेणाहं शूणु वश्यामि तेऽनघ। देहे स्वे च यथोदेति भृदां संविन्मयक्रमः॥ ५३ चेतनाचेतनं भूतजातं घ्योम तथाखिलम् । सर्वे चिन्मात्रसन्मात्रं शुन्यमात्रं यथा नमः॥ ५४ तद्धि चिन्मात्रसन्मात्रमविकारं स्वनामयम्। कचित्स्थतं संविदेव भृततन्मात्रपञ्चकम्॥ ५५ तत्पश्चधा गतं द्वित्वं लक्ष्यसे त्वं स्वसंविदम्। अन्तर्भृतविकारादि दीपाद्दीपदातं यथा॥ 46

भयोरेबोपादानम् ॥ ४९ ॥ वसिष्ठस्त तर्हि कालकृतपरिच्छे-दाभावोऽपि तत्रान्तभूत एवेति पृथगुपादानं व्यर्थम् . यदि स्पष्टीकरणाय तस्य पृथगुपादानं तर्हि देशकृतपरिच्छेदाभावेऽपि तत्समानमिति त्रितयानुवादव्याजेन दर्शयितराकाराया निर्वि-षयायाश्व चितो जीवाकारेण घटादिगोचरतया वामिव्यक्त्यर्थ तदा संविदुदेखन्तभृततन्मात्रवीजभूरित्युकार्थं विस्तराद्विवरि-ष्यन् स्थूलस्स्मदेहद्वयाकारपरिणतभूतसापेक्षेत्र चितो विशेषा-मिर्व्याकिरित्याह-सर्वत्रेत्यादिना ॥ ५० ॥ ननु देशकृतपरि-च्छेदाभावे संवित्सर्वत्र भासेतेलाशङ्क्योपाधिवशादेव तस्याः स्फटीभाव इति सदद्यान्तमाचष्टे—सर्वत्रेति । तरलायते बद्धौ अवच्छेदप्रतिबिम्बनाभ्यां द्विगुणीकृत्य प्रवेशाह्नहलीभूता जल-सर्यकवहृद्धिचाग्रस्याचन्नरोभवतीत्वर्थः । तत्रोपाधिकृतवरि-भावेन स्फुटीभावे दष्टान्तमाह—सर्वग इति ॥ ५१ ॥ तत्रा-प्युपाधिमालिन्यतारतम्यंन चिदमिव्यक्तितारतम्यमिखाह्— क्रचिदिति । मृच्छिलादिवस्तुनि तिधद्वस्तु अविद्याजाञ्चेनामि-भवात्तप्तवारिस्थशैत्यमिव नष्टमदर्शनं गतम् । देवमनुष्यादिलिङ्गे तु सप्टमभिव्यक्तम् । दृक्षादिलिङ्गेष्ट्रकृष्टां छन्नतां बहिः संवे-दनविवेकाक्षमतां गतं दृष्टम् । चिदंश इव न सत्तांशे तारतम्य-मिलाह—तदिति । तेषां त्रिविधोपाधीनां सर्वानुभवसिद्धैः सद्भावेरेव लिङ्गेस्तत्सर्वत्र विजृम्भितमनभिभूतमित्यर्थः ॥५२॥ उक्तमेवाभिव्यक्तितारतम्यं कमादासर्गसमाप्तेर्निरूपयितुं प्रति-जानीते-एतदिति । खे मनुष्यादिदेहे चात्पश्चस्थावरादिदेहे यथा यादशतारतम्येन॥५३॥तदुपोद्धातेन सुक्ष्मस्थूलभूताध्यास-प्रपश्चनाय सर्वाधिष्ठानसचिदेकरसं सर्वप्रपञ्चतद्धमैशू-यमात्मत-क्षमादौ निर्दिशति—चेतनेति । नभो नभोवदसङ्गं विभु सुक्ष्मं च ॥५४॥ तासिस्तर्थेव स्थिते मायाकल्पितैकदेशे आकाशादिसुक्स-भूतानां कमाद्ध्यासात्तदेव भूतमात्रासम्हपकं श्वितमिलाह-तदीति॥५५॥ तत् तन्मात्रपश्चकं प्राणो मनोबुद्धिक्षांनेन्द्रियं कर्मे- स्वसत्तामात्रकेणैव संकल्पलवरूपिणा।
पञ्चकानि वजन्तीह देहत्वं तानि कानिचित्॥ ५७
कानिचित्तिर्यगादित्वं हेमादित्वं च कानिचित्।
कानिचिहेशतादित्वं द्रव्यादित्वं च कानिचित्।
कानिचिहेशतादित्वं द्रव्यादित्वं च कानिचित्।
प्रवं हि पञ्चकस्पन्दमात्रं जगदिति स्थितम्।
चित्संविदत्र सर्वत्र विद्यते रघुनन्दन॥ ५९
केचळं पञ्चकचशादेहादौ चेतनाभिधा।
जडस्पन्दामिधा कापि स्थावरादौ जडामिधा ६०
यथा स्तब्धः स्थितो वीचिरिव स्थलमिवास्थितः।
पञ्चकेषु तथैतिचिल्लोळक्षण जडान्विता॥ ६१
इतः सौम्य इतो लोलः किमब्धिरिति नो यथा।
विकल्पादौ तथैवैतत्पञ्चकं हि जडाजडम्॥ ६२
देहादिपञ्चकं जीवः स्पन्दः शैलादिकं जडम्।

न्द्रियमिति पश्चधा गतं लिङ्गशरीरं प्रतिबिम्बतया प्रविश्य दी-पादीपश्वतामेव संपन्नस्तं खसंविदमन्तर्भृता जन्मादिविकारा आदिपदाजाप्रदाद्यवस्थाभेदाश्च यस्मिस्तथाविषं द्विलं जीव-भावभिति यावत् । लक्षसे लक्षयति । छान्दस उपष्रहृव्यत्ययः ॥ ५६ ॥ कानिचिहिङ्कारम्भपरिशिष्टानि पञ्चकानि जीवस्य देवमगुष्याद्याकारवासनानुसारिसंकल्पळवरूपिणा खसत्तामात्र-केणेव पत्नीकरणद्वारा स्थूलदेहलं जजन्ति ॥ ५७ ॥ देहप्रकर-णाद्धमादिलं घतुरादिस्थावरशरीरताम् । अथवा तिर्थगादिल-मिलादिपदादेव स्थावरदेहपरित्रहः । हेमादिलमिल्यनेन स्वर्ण-रजतसर्परोपलक्षितब्रह्माण्डत्वं तदन्तर्गतभवनादिभोग्यतां चे-खर्थः ॥ ५८ ॥ अस्त्वेवं कि ततस्तत्राह—एवं हीति । स्थितं सिद्धम् । तह्यधिष्ठानचतन्यं सर्वत्रास्तीति घटादापि चेतनं कि न स्यात्तश्राह-निदिति ॥ ५९ ॥ पश्चकवशाधितन्याभिव्यज्ञ-कप्राणादिपश्वकघटितलिङ्गदेहप्राधान्यादेव मनुष्यदेहादी मुख्या चेतनामिधा। कापि तिर्यक्ष लिङ्गस्थलदेहयोः समप्राधान्याज्ञह-स्पन्दाभिधा जडचेतनामिधा। स्थावरादौ तु लिङ्गस्यान्तःसंवेदन-मात्रत्वेन बहिर्जनेश्वेतनलाविभावनाज्जडाभिधा प्रसिद्धेत्यर्थः ६० त्रिष्वपि चित्कथं तारतम्येन स्थितेत्यत्र दृष्टान्तमाह—यथेति । यया दिवा विलीनो पृतसमुद्रः सायं विशिरपवनसंपर्काद्वेलातटे कमाद्धनीभावात् स्तच्धो निश्वलः स्थितः सन् द्रवप्रदेशे वीचि-रिव चलः। ईषद्धनप्रदेशे ईषचलः। अत्यन्तघनप्रदेशे स्थल-मिबाचलक्ष स्थितस्त्रंथेवैषा चित्ररतिर्यक्स्थावरदेहरूपेषु पञ्च-केषु लोलक्या ईषहोला अत्यन्तजाच्यान्विता च स्थितेत्यर्थः ॥ ६९ ॥ यथा क्राचिद्धनीभावेन लोललाभावेऽपि तस्य ना-व्यिलव्याघातस्तथा स्थावरादिभावेऽपि न चिद्रपताक्षतिरि-त्याह-इत इति । नो इति काकुः । किमब्धिरिति व्यपदेशो न भवति किंतु भवत्येव यथा तथैवैततसुरनरतिर्यग्विकल्पादौ वैतन्यमक्षतमित्यर्थः । अथवा यं जडाजडविकल्पोऽध्यस्तपश्च-कथमें एव न चिद्धमैसास्यानिर्धमैकलादित्याशयेनाइ-पश्चकं हीति ॥ ६२ ॥ पञ्चके स्वभाववदात ईट्हा बहवी विकल्पा स्थावराद्यनिलस्पन्दि स्वभाववदातोऽनय॥ ६३ वाचः पर्यनुयोक्तव्या स्वभावाद्यनुनन्दन । द्रातोष्णादि हिमाइयादि वाक्रेति परिट्रयते ॥६४ गृहीतवासनांद्यानां पुष्टाभावविकारिणाम् । स्थितयः पञ्चकानां हि योज्याः पर्यनुयोजने ॥६५ वासनास्तु विपर्यस्ता इतो नेतुमितश्च ताः । पुंसा प्राक्षेन शक्यन्ते सुखं पर्यनुयोजितुम् ॥६६ अशुमे वा शुमे वापि तेन पर्यनुयोज्यते । प्रबुद्धवासनं चान्यत्पञ्चकं सुप्तवासनम् ॥६७ यत्र पर्यनुयोगस्य फलं समनुभूयते । तत्र तं संप्रयुक्षीत नाकाशं मुष्टिभिः क्षिपेत् ॥६८ तृणाप्रनिष्ठा मेर्वाद्याः पष्टकानां हि राद्ययः । विवेकनिष्ठाः कीटाद्या एते स्थावरजंगमाः ॥६९

दृष्टा इत्याह — देहादीति । देहादाकारपरिणतं पश्चकं प्राणधार-णाधीनस्पन्दचैतन्याभ्यां जीवश्वेतनस्तत्प्रयोजकः स्पन्दः शैला-दिकं जडमेव । स्थावरादिशरीरं तु वाद्यानिलाधीनस्पन्दि अन न्तश्चेतनमिखादिव्यवस्थितविकल्पाः खभाववशतो दृष्टा इल्पर्थः ॥६३॥ नतु खः खारमको भावः खभावः रा कथं विरुद्धविकल्पा-त्मकः स्यात् । विरोधो हि परसापेक्षः । स्वो भावस्त्वनन्यापेक्षः । यदि खीयो भावः स्त्रभावस्तयाप्यसां स्त्रमात्रसापेक्षो न परसापेक्ष इति कथं परसापेक्षस्य विकल्पस्य खरूपं निमित्तं वा स्यादिति यदि पर्यनुयुज्यते तर्हि त्वया खभावं विहाय वाचः पर्यनुयोक्त-व्याः।ता एव हि चिजाडादशन्दरूपाः। खाःपुनरुकताये खार्थ व्यावर्तयन्त्यधैतन्यजाक्ये विरुद्धे गमयतः । एवं शीतोणादि-धर्मपरा हिमाम्यादिधर्मिपरा वाक सर्वापि इति एवंप्रकारैव सर्वत्र परिदृश्यत इत्यर्थः । स्त्रभातादिति स्यब्ह्योपे कर्मणि पश्चमी ॥ ६४ ॥ अथवा वागपि न पर्यनुयोज्या तस्या वास-नाकल्पितविकल्पवत्पश्चकार्थानुवादित्वेन तत्पराधीनलात् । किंतु गृहीतवासनांशानां तत्तद्विरुद्धविकल्पभावेन विकारिणां लिका-त्मनां पत्रकानां स्थितय एव पर्यनुयोजने योज्या इत्याह-यहीतेति । ताभिरविकल्पने विरोधमात्रोच्छेदादिति भावः ॥६५॥ अथवा न तासामप्यपराधः । पूर्वपूर्वविरुद्धविकल्पसहस्रवास-नानुसारिलात् । अतः प्राक्षेन विरुद्धविकल्पकल्पनाम्लमन्वि-ष्यता पुंसा चित्तमित इतश्च विरुद्धविकल्पसहस्रेषु नेतुं विपर्यस्ता विक्षिप्ता बासना एव पर्यनुयोजितुं शक्यन्ते न खभाबाह्य इत्याह-नासना इति ॥ ६६ ॥ पुंसामशुमे तिर्थक्त्थावरादिभावे शुमे देवादिभावे वा प्रबुद्धवासनं च सप्तवासनं पश्चकं ति-ष्ठति । तेन वासनैव तदेतुः पर्यनुयोज्यत इत्यन्वयः ॥ ६० ॥ किंच वासनापर्यनुयोगस्य तत्क्षयोपाये प्रवर्तकत्वेन सफलता । खभावादिपर्यनुयोगस्य न किंचित्फलमस्तीत्याह—यत्रेति॥६८॥ अतएव वासनाक्षये पूर्णात्मलाभान्मेर्नाधाः खर्णराशयोऽपि तृणामस्य निष्टेव निष्ठा तुच्छता येषां ते तृणामनिष्ठाः संपद्यन्ते । विवेकनिष्ठा देवादिभोगकालिबेहा अपि कीटाबा इव तच्छ-

प्रसुप्तवासनाः केचिद्यथा स्थावरजातयः। प्रवृद्धवासनाः केचिद्यथा नरसुरादयः॥ 90 सवासनाविलाः केचिद्ययैते तिर्यगादयः। प्रश्निप्तवासनाः केचिवधैते मोक्षगामिनः॥ ૭શ अथ स्वास्वेव संवित्सु मनोवुद्धादिकाः कृताः। हस्तपादादिसंयुक्तैः संद्याः पञ्चकराशिभिः॥ तिर्यगादिभिरप्यन्यैरन्याः संद्राः प्रकृत्पिताः । स्थावरादिभिरप्यन्यैरन्यान्याः संविदः कृताः ७३ इति साधो स्फुरन्तीमे चित्राः पश्चकरादायः। रूपैराद्यन्तमध्येषु चलाचलजडाजडैः॥ છર प्षामेकोऽभिसंकल्पः परमाणुर्महीपते। बीजमाकाशबृक्षाणां सर्गाणां तेष्विमानि तु॥ ७५ इन्द्रियाणि च पुष्पादि विषयामोदवर्ति हि। इच्छाम्रमर्यो राजन्त्यो मञ्जर्यश्रञ्जलियाः॥ इंश

लोकान्तराणि स्वच्छानि गुल्मा मूलं समेरवः।
पह्नवा नीलजलदा लतालोला दिशो दश॥ ७७
वर्तमानानि भूतानि भविष्यन्ति च यानि तत्।
जयन्ति तान्यसंख्यानि फलानि रघुनन्दन॥ ७८
पञ्चवीजास्त पते हि राम पञ्चकपादपाः।
स्वयं स्वभावाजायन्ते स्वयं नश्यन्ति कालतः ७९
स्वयं नानात्वमायान्ति चिरं जाड्यात्स्फुरन्ति च।
स्वविविकाः शमं यान्ति तरङ्गा इव वारिधौ॥ ८०
इतो यान्ति समुत्सेधिमतो यान्ति शमं स्वयम्।
पते जाड्यविवेकाभ्यां तरङ्गा इव तोयधौ॥ ८१

ये विवेकवशमालयं गता
राम पञ्चकविलासराशयः।
तेन भूय इह यान्ति संस्थिति
प्रभ्रमन्ति जगतीतरे मुहुः॥ ८२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमद्वारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निवाणप्रकरणे पश्चकविलासो नामाशीतितितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१

वसिष्ठ उवाच । एतत्पञ्चकवीजं तु कुण्डलिन्यां तदन्तरे ।

तराः संपद्यन्त इलाह--सृणावेति॥६९॥ अतएव वासनास्वाप-प्रबोधतारतम्यादेव पश्चकेषु स्थावरादिवैचित्र्यमित्युदाहृत्य दर्श-यति-प्रसुप्तेति द्वाभ्याम्॥७०॥वासनामिराविलेनाखच्छेन चि-<mark>त्तेन सहिताः</mark> सवासनाविलाः । प्रक्षिप्तवासनास्त्यक्तवासनाः ७१॥ वासनावैचित्र्यादेव देवनरादिपश्वकराशिराकाशभूमिगमनादिवि-**चित्रव्यवहारक्षमहरूत्पादादिस्तत्क**ल्पितकमैन्द्रियसंयुक्तदेवनरा-दिपश्वकराधिभिः खासु खासु संवित्स्वेव नरादियोग्यव्यव-मनोबुद्धहंकारचित्तचक्षुःश्रोत्रप्राणरसनसर्शादिका अन्तर्भाद्यकरणरूपाः संज्ञाः संकेताः कृताः अतएव ताः प्रतिप्राणि विचित्रस्वभावा दर्यन्त इति भावः ॥ ७२ ॥ तिर्थिभः पश्चादिभिम्त चलारः पादाः श्रक्ते पुच्छं चेति । पक्षिभिद्ध वश्वः पक्षी पुच्छं पादी चेति । सर्पेस्त फणा भोगः पुन्छमिति । कृमिकंटिदेशमशकादिभिश्र खखवासनानुरूपव्यव-हारयोग्या अवयवादिसंकेताः कल्पिता इत्यर्थः ॥ ७३ ॥ आधन्तमध्येषु चलैर्विकारिभिजेडेश्व । अधिष्ठानसद्भूपेण तु अवलेरजर्देश ॥ ७४ ॥ एवं प्रमुकास्यलिङ्गभेदाननन्तानुप-वर्ष्य तेष्वेकतमस्य कस्यचित्कर्मीपासनसमुखयानुष्टानफलसम-ष्ट्राहंभावं प्राप्तस्य कश्चिदेकः संकल्पपरमाणुरस्य संसारनभोवृ-क्षस्य बीजमित्याह-एषामिति । समष्टिगोचरत्वादिनव्याप्तः संकल्पोऽभिसंकल्पस्तक्षक्षणः परमाणुः सर्गरूपाणामाकाशवृ-क्षाणां बीजं तेषु च सर्गाकाशवृक्षेषु इमानि पश्चकांनीत्यहो मायेखर्यः ॥ ७५ ॥ सर्गाणामाकाशत्रक्षत्वं यदुक्तं तत्पुष्पत-दामोदादिकल्पनयोपपादयति--इन्द्रियाणीखादिना । आदिप-

प्राणमास्तरूपेण तस्यां स्फुरति सर्वदा॥ सान्तः कुण्डलिनीस्पन्दस्पर्शसंवित्कलामला।

दादिन्द्रियावयवेषु पुष्पावयवता यथोचितं योज्या । धिपय-रुक्षणेष्वामोदेषु वर्तनशीलं तत् प्रधानमिति यावत् । नश्रलानां कर्मेन्द्रियाणां कियाः 11 98 11 खर्गादिलोकान्तराणि गुल्मा विटपाः । समेरवो मेरसहिताः सर्वे पर्वता मूलम् ॥ ७७ ॥ भूतानि चतुर्विधशरीराणि । तत्तस्य **दक्षस्य ॥ ७८ ॥ स्त्रभावात्स्त्रविवेकश्**न्यादात्मनः खस्माद्विविक्ता विवेकहथ्या दृष्टाः ॥ ८० ॥ श्लोकद्वयोक्तमेव संग्रह्माह—इत इति । इतः पराग्दष्टेः । इतः प्रत्यग्दष्टेः ॥८९॥ हे राम, ये पश्चकविलासराशयः आलयं निर्वासननाशपर्यन्तं विवेकवशं गतास्ते इह संसारे भूयो जन्ममरणदेहधारणादिसं-स्थिति न यान्ति । इतरे तु जगति यथापूर्वं प्रश्रमन्त्येवेखर्थः ॥ ८२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतालप्येप्रकाशे निर्वा-णप्रकरणे अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

कुण्डलिन्याः प्रसङ्गेन रोगोद्भवशमक्रमाः। सिद्धिसिद्धेक्षणोपायाद्यशेषमिष्ट् वर्ण्यते ॥ १ ॥

'यदा प्राणानिलो याति इदि कुण्डलिनीपदम् । तदा संवि-दुदेखन्तभूततन्मात्रवीजभूः' इति बुद्धिशक्तिजवप्रदत्वोपपादने भूततन्मात्रवीजभूरित्यंशस्य स्फुटीकरणाय कृतं स्थूलसूक्ष्मपद्य-कविचारं संगमयन् खेनरादिसिद्धिवाजप्राणाभ्यासोपयुक्तं प्रसु-तकुण्डलिन्यां प्राणासुद्भवप्रकारं प्रदर्शयति—एतदिति । तस्य स्थूलदेहात्मकस्य पष्टकस्यान्तरे मूलाधारे तस्यां प्राग्वर्णितायां कुण्डलिन्यामेतस्य लिङ्गात्मकप्रकस्य वीजमुपादानं भूतसूक्षमं प्रथमं प्राणपष्टकक्ष्मेण स्फुरतील्यर्थः ॥ १॥ सा प्राणक्ये-

कलोका कलनेनाशु कथिता चेतनेन चित्॥ जीवनाजीवतां याता मननाच मनःस्थिता। संकल्पाचैव संकल्पा बोधाद्वदिरिति स्मृता ॥ ३ अहंकारात्मतां याता सेपा पुर्यप्रकाभिधा। स्थिता कुण्डलिनी देहे जीवराकिर जुत्तमा॥ अपानतामुपागत्य सततं प्रवहत्यधः। समाना नामिमध्यस्था उदानाख्योपरि स्थिता अधस्त्वपानरूपैव मध्ये सीम्यैव सर्वदा। पुष्टाप्युदावरूपैव पुंसः स्वस्थैव तिष्ठति ॥ सर्वयत्मधो याति यदि यत्नाम धार्यते। तत्प्रमान्मृतिमायाति तया निर्गतया बलात्॥ समस्तैवोर्ध्वमायाति यदि युत्तया न धार्यते। तत्पुमान्मृतिमायाति तया निर्गतया बलात ॥ सर्वथात्मनि तिष्ठेश्वत्यक्त्योध्वीधो गमागमौ । तज्जन्तोर्हीयते व्याधिरन्तर्माहतरोधतः॥ सामान्यनाडीवैधुर्यात्सामान्यव्याधिसंभवः। प्रधाननाडीवैधुर्यात्प्रधानव्याधिसंभवः॥ १० श्रीराम उवाच । किंविनाशाः किमुत्पादाः शरीरेऽस्मिन्मुनीश्वर । आधयो व्याधयश्चैव यधावत्कथयाशु मे ॥ ११ वसिष्ठ उवाच । आधयो व्याधयश्चेव द्वयं दुःखस्य कारणम्।

णान्तःस्फुरिता कुण्डलिनी माहतधर्मेण च स्वधर्मेण च स्पन्दः स्पर्शः संविदिति त्रिरूपकल्पना भूला कला चिज्जीवो मनः संकल्पो बुद्धिरहंकारः पुर्यष्टकं लिक्नमित्यादिनामानि कलना-दिव्यापारोपाधिभिरुंभत इत्याह—सान्तरिति त्रिभिः ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ तत्र सम्दश्काः प्रधानवृत्तितत्स्थानत्रैविध्यं दर्शयति-अपानतामिति ॥ ५ ॥ वृत्तिभेदप्रयोजनान्याह-अध इति । अपागननाधेव प्रयोजनिमत्यर्थः । अपानोदाना-भ्यामाकृष्यमाणापि खर्य साम्या निश्वछैव । तदवष्टब्धलादेव प्रष्टा बलवत्यप्यूष्वेद्वतिरुदानरूपैव सती खस्थैव तिष्ठति न लिन्नं बहिरुत्कामयतीत्वर्थः ॥ ६ ॥ एवमधोत्रतेरपि सा विष्ट-मिनकेखाह—सर्वेप्रयक्तमिति । यदि सामान्यवृत्त्या न धार्यते तर्हि सा जीवसंविद्पानवृत्त्या सर्वयन्नं यथा स्यात्तथा आकृष्य-माणा अधोमार्गेण बहिर्याति । किं ततस्तदाह—तदिति ॥७॥ प्रायुक्तं स्पष्टमाह समस्तैवेति ॥ ८ ॥ अतएव प्राणापान-गतिनिरोधाभ्यासेन सर्वान्ने समानवृत्त्येतरवृत्तिजये सर्वव्याधि-क्षयमृत्युजयसिद्धिरिखाह—सर्वयंति । आत्मनि देहे ॥ ९ ॥ एकशतं प्रधाननाष्यस्तच्छाखास्तु सामान्यनाड्यस्ताखन्नरसप्रा-पिकायाः समानश्लेयेत्रैव कफपिलाद्युपचयाद्वेधुर्यमव्यापारस्त्रेत्र-वेतरवायुभिर्वेषम्येणान्नरसाकर्षणादल्परोगाणां महारोगाणां च संभव इत्याह-सामान्येति ॥ १० ॥ कस्माद्विनाशो येषां ते किनिनाशाः । एवं किसुत्पादाः ॥ ११ ॥ तेषां निवृत्तिरी-योग० १२१

तिश्ववृत्तिः सुखं विद्यात्तत्क्षयो मोक्ष उच्यते ॥ १२ मिथः कदाचिजायेते कदाचित्सममेव च। पर्यायेण कदाचिश्व आधिव्याधी शरीरके ॥ १३ देहदुःखं विदुर्ध्याधिमाध्याख्यं वासनामयम्। मार्ज्यमुले हि ते विद्यानत्त्वज्ञाने परिक्षयः॥ १प्र अतत्त्वज्ञानवशतः स्वेन्द्रियाक्रमणं विना । हृदि तानवमुत्सुज्य रागद्वेषेष्वनारतम्॥ १५ इदं प्राप्तमिदं नेति जाड्याद्वा घनमोहदाः। आधयः संप्रवर्तन्ते वर्षासु मिहिका इव॥ १६ भृशं स्फुरन्तीष्यिच्छासु मौख्यें चेतस्यनिर्जिते। दुरमाभ्यवहारेण दुर्दशाक्रमणेन च॥ 80 दुप्कालव्यवहारेण दुष्क्रियास्फुरणेन च। दुर्जनासङ्गदोषेण दुर्भाषोद्धावनेन च ॥ १८ क्षीणत्याद्वा प्रपूर्णत्वामाडीनां रन्ध्रसंतती । प्राण विधुरतां याते काये तु विकलीकृते॥ १९ दौस्खित्यकारणं दोपाद्याधिर्देहे प्रवर्तते। नद्याः प्रावृण्निदाघाभ्यामिवाकारविपर्ययः॥ २० प्राक्तनी चेहिकी वापि शुभा वाप्यशुभा मतिः। यवाधिका सेव तथा तिसन्योजयति क्रमे॥ आधयो व्याधयश्चेवं जायन्ते भृतपञ्चके। कथं शृणु विनदयन्ति राघवाणां कुलोद्वह ॥ द्विविधो व्याधिरस्तीह सामान्यः सार एव च।

षधानुनर्थस्तात्कालिकोपशमः । सुखह्पस्यात्मनः परिशेपात्सु-खम्। तेषां मूळतो ज्ञानेन नाशो मोक्ष इत्यर्थः ॥ १२॥ मिथः अन्योन्यनिमित्तकलात्कमसंटग्ने। कदाचिद्यगपदृत्पन्नाद्वा-ह्यानिमित्तात्समं युगपत् । कदाचित्युखान्तरिते पर्यायेण ॥१३॥ मीर्ख्यमज्ञानं तन्मुछे ॥ १४ ॥ तत्र आध्युद्भवनिमित्ता-न्याह-अतत्त्वज्ञानेति । आक्रमणं नित्रहस्तं विना। तदभावा-दिलार्थः । हृदि चित्ते तानवं सिमितवायुप्रायां स्वास्थ्यहेतुं सूक्ष्मतामुत्स्रज्य रागद्वेषेषु प्रसक्तिरिति शेषः ॥ १५ ॥ इदं प्राप्तमिदं न प्राप्तमिति चिन्ताया इति शेषः । भयशोकनिमि-त्तप्राप्ती तत्प्रतीकारोपायापरिज्ञानरुक्षणं घनं मोहं ददतीति घनमोहदाः ॥ १६ ॥ इदानीं शारीरव्याध्युद्भवहेत्नुनाह—नः शमित्यादिना । इच्छामार्ह्ये आन्तरे तद्वेत् । दुरन्नादयस्त बाह्याः । दुर्देशाः रमशानादयः ॥ १० ॥ दुष्टेषु विशीधप्रदो-पादिकालेष्वशनव्यवायादिव्यवहारेण । दुर्मावा विषसर्पव्याघ्र-तस्करादिशङ्कास्तेषां मनस्युद्भावनेन ॥ १८ ॥ नाडीनामन्नर-साप्रवेशेन क्षीणलाद्विगुणरसवातादिप्रवेशेन प्रपूर्णलाद्वा विध्-रतां कफपित्तादिप्रकोपेन व्याकुलताम् । आघातादिना विकली-कृते ॥ १९ ॥ दौस्थित्यमस्तास्थ्यं तत्कारणं व्याधिः स देह-स्याकारविपर्थयः ॥ २० ॥ सा चाधिव्याधिसामग्री प्राक्तनैहि-ककर्मानुसारेण मिलतीलाह—प्राक्तनीति ॥ २१ ॥ २२ ॥ सामान्यः पेलवः सारो दढतरश्च । व्यवह्रियत इति व्यवहारः

व्यवहारस्तु सामान्यः सारो जन्ममयः स्मृतः २३ प्राप्तेनाभिमतेनैव नश्यन्ति व्यावहारिकाः। आधिक्षयेणाधिभवाः श्रीयन्ते व्याधयोऽप्यलम् २४ आत्मज्ञानं विना सारो नाधिर्नदयति राघव। भूयो रज्ज्ववयोधेन रज्जुसपों हि नश्यति॥ २५ आधिव्याधिविलासानां राम साराधिसंक्षयः। सर्वेषां मूलहा प्रावृण्नदीव तदवीरुधाम् ॥ अनाधिजा व्याधयस्तु द्रव्यमञ्जशुभक्रमैः। चिकित्सकादिशास्त्रोक्तेनंदयन्त्यन्यैरिहाथवा ॥ २७ स्नानमन्त्रीषधोपाया वक्तुश्चाधिगतानि च। त्वया चिकित्साशास्त्राणि किमन्यद्पदिश्यते ॥ २८ श्रीराम उवाच। आधेः कथं भन्नेद्याधिः कथं च स विनश्यति। द्रव्यादितरया युत्तया मन्त्रपुण्यादिरूपया ॥ २९ वसिष्ठ उवाच। चित्ते विधुरिते देहः संक्षोभमनुयात्यलम्। तथाहि रुषितो जन्त्रप्रमेव न पश्यति॥ 30 अनवेश्य पुरो मार्गममार्गमनुधावति । प्रकृतं मार्गमृत्सुज्य दाराती हरिणो यथा ॥ 38 संक्षोभात्साम्यमुत्स्ज्य वहन्ति प्राणवायवः। देहे गजप्रविष्टेन पयांसीव सरित्तदे॥ 32 असमं वहति प्राणे नाड्यो यान्ति विसंस्थितिम्। असम्यक्संस्थिते भूपे यथा वर्णाश्रमक्रमाः ॥ ३३ काश्चिमाड्यः प्रपूर्णत्वं यान्ति काश्चिम रिकताम्।

श्चुत्त्वास्त्रीपुत्रलालसादिस्तत्संभवथ । जन्ममयो जन्मादिविकि-यामूलम् ॥ २३ ॥ अभिमतेनात्रपानस्रीपुत्रादिना ॥ २४ ॥ आधिर्व्याधिः भूयो भूयसा लोकपरिशीलनादज्जतत्त्वप्रखयप-र्यन्तेनाववोधेन ॥ २५ ॥ प्रायुग्नदी सर्वेषां तटवीरुधामिय सर्वेषामाधिव्याधिविलासानां सारव्याधिसंक्षयो मूळहा मूलो-च्छेदीत्यन्त्रयः ॥ २६ ॥ सामान्यव्याधिष्यनाधिजव्याधयः सुचिकित्स्या इत्याशयेनाइ-अनाधिजा इति । अन्येर्यद्वपरम्प-रोपदिष्टेंश्विकित्सनैः ॥ २० ॥ लोलाकादितीर्थेषु स्नानम् । मन्त्रा औषधानीत्याद्युपायाः । वक्तश्च यृद्धजनाद्धिगतान्यौष-धानि चिकिःसाशास्त्राणि च लया ज्ञायन्त एवेति शेषः ॥२८॥ आधिभ्यो व्याधिजनमप्रकारं ति विकित्सोपायं च रामः पृ-च्छति-आधेरिति । द्रव्यादीषधादितरया मन्त्रप्रण्यादिह्य-येति खसंभावनयोक्तिः॥ २९॥ तत्र प्रथमं तदुद्भवप्रकार-माह—चित्ते इलादिना । विधुरिते आधिभिः क्षुड्धे । उत्त-मर्थे दृष्टान्तेनोपपादयति-तथाहीति सार्धेन। अत्रं पुरोमार्गम् ॥ ३० ॥ ३१ ॥ दार्शन्तिकेऽपि तथैव आधिकृतात्संक्षोभात्प्रा-णवायवः साम्यमुत्सञ्यामार्गेण वहन्ति । यथा गजस्य प्रविष्टेन प्रवेशेन क्षुच्धानि पयांसि सरितस्तटे अमार्गे बहन्ति तहत् ३२ ॥ असमं विषमम् । विसंस्थितिं कफपितादिप्र्णताप्र-

प्राणा विधुरिते देहे सर्वतः सरितो यथा ॥ इ४ कुजीर्णत्यमजीर्णत्वमतिजीर्णत्वमेय वा । दोषायैव प्रयात्यन्नं प्राणसंचारदुष्क्रमात्॥ 34 यथा काष्टानि नयति प्राचीदेशं सरिद्रयः। तथान्नानि नयत्यन्तः प्राणवातः स्वमाश्रयम् ॥ ३६ यान्यन्नानि निरोधेन तिष्ठन्त्यन्तःशरीरके। तान्येष व्याधितां यान्ति परिणामस्वभाषतः 30 एवमाधेर्भवेद्याधिस्तस्याभावाच नश्यति। यथा मन्त्रविनश्यन्ति व्याधयस्तत्क्रमं शृषु ॥ 36 यथा विरेकं कुर्वन्ति हरीतक्यः स्वभावतः। भावनावरातः कार्ये तथा यरखवादयः॥ ३९ शुद्धया पुण्यया साधो क्रियया साधुसेवया। मनः प्रयाति नेर्मस्यं निक्षेणेव काञ्चनम् ॥ 80 आनन्दो वर्धते देहे शुद्धे चेतसि राघव । पूर्णेन्दाष्ट्रदिते हात्र नैर्मरूयं भुवने यथा ॥ ४१ सत्वशुद्ध्या वहन्त्येते ऋमेण प्राणवायवः। जरयन्ति तथाम्नानि व्याधिस्तेन विनद्दयति॥ ४२ आधिव्याध्योरिति प्रोक्तां नाद्योत्पत्तिक्रमा त्वयि । कुण्डलिन्याः कथायोगाद्धना प्रस्तं शृणु ॥ पुर्यप्रकपराख्यस्य जीवस्य प्राणनामिकाम्। विद्धि कुण्डलिनीमन्तरामोदस्येव मञ्जरीम्॥ तां यदा पूरकाभ्यासादापूर्य स्थीयते समम्। तदैति मैरवं स्थेर्य कायस्यापीनता तथा॥ ४५ यदा पूरकपूर्णान्तरायतप्राणमाहतम्।

युक्तविषमसंस्थानताम् ॥ ३३ ॥ तदेवाह—काश्विदिति । प्राणराविधारिते सर्वतो विद्वर्टाकृते दहे । सरितो ताज्यः स्रो-तांसीव ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ समानाख्यः प्राणवातः स्वमाश्रयं सर्व शरीरं भुक्तान्यन्नानि रसीकृत्य नयति । 'मध्ये तु समान एव होतद्भतमन्नं समं नयती'ति श्रतेरिति भावः ॥३६॥ धातु-वैषम्यपरिणामस्त्रभावतः ॥ ३७ ॥ उपसंहरति—एवमिति । अभावात्राशात् ॥ ३८ ॥ हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः । फले छुकि 'हरीतक्यादिषु व्यक्तिः' इति नियमात्र वचने युक्त-वद्भावः । तथा यरलबादयो वायुविह्मभूजलादिवीजात्मका म-स्त्रवर्णा मास्त्रिकभावनावशतो नाडीषु व्याध्याकारपरिणताल-रसानामुत्सारणपाचनादिकार्यं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ३९ ॥ आध्यु-पशमोपायानाह—गुद्धयेत्यादिना ॥ ४०॥४९॥ ४२ ॥ प्रासिकप्रश्रोत्तरमुपसंहत्य प्रकृतं सिद्धिहेतुनिरूपणं प्रस्तौति-आधीति ॥ ४३ ॥ पुर्यष्टकाख्यस्य लिक्नात्मनी जीवस्याधारभू-ताम् ॥ ४४ ॥ आपूर्व कूर्मनाज्यां प्राणमवष्टभ्येखर्यः । तथाच पतज्ञले: सूत्रम् 'कूर्मनाष्यां स्थेथेम्' इति । 'कण्डकूपादघ उरसि कूर्माकारा नाडी तस्यां कृतसंयमः स्थेर्ये लभते यथा सर्वी गोधा वेति' तद्भाष्यम् । कायस्यापीनता गरिमाख्या सिबिरिप तथा ताहशी भैरवी सिष्यतीत्यर्थः ॥ ४५ ॥ केन तक्ष्में

नीयते संविदेवोध्वं सोदं घर्मक्रमं श्रमम्॥ सर्पीच त्वरितैवोध्वं याति दण्डोपमां गता। नाडीः सर्वाः समादाय देहबद्धा लतोपमाः ॥ ४७ तदा समस्तमेवेदमुत्श्रावयति देहकम्। नीरन्धं पवनापूर्णं भस्त्रेवाम्बुततान्तरम् ॥ 86 इत्यभ्यासविलासेन योगेन व्योमगामिना। योगिनः प्राप्तवन्त्युधैर्दीना इन्द्रदशामिव ॥ કર ब्रह्मनाडीप्रवाहेण राक्तिः कुण्डलिनी यदा। बहिरुर्ध्वं कपाटस्य द्वादशाङ्गुलमूर्धनि ॥ 40 रेचकेन प्रयोगेण नाड्यन्तरनिरोधिना। मुहूर्ते स्थितिमामोति तदा व्योमगदर्शनम् ॥ ५१ श्रीराम उदाच। दर्शनं कीदशं ब्रह्मस्रयनांशुगणं विना। अदिव्यानामिन्द्रियाणां तत्त्वमेवं कथं भवेत्। ५३ वसिष्ट उवाच। न केचन महाबाहो भूचरेण नभस्यतः। अदिव्येनाश्रिता ज्ञानर्रदयन्ते पुरुषेन्द्रियैः॥ 43

नभोगतिसिद्धिस्तदाह—यदेलादिना । यदा पूरकेण पूर्णे देहा-न्तरायतो मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं दीर्घाकृत्वोर्धमा-कृष्टः प्राणमारुतो यस्मिन्दर्मणि तद्यथा स्यात्तथा संवित् कुण्ड-लिनी प्राणनिरोधोद्भृतमृष्माणं तत्प्रयुक्तं शारीरं क्रमं मानसं श्रमं चाभ्यासपाटवेनामृताहावनेन च सोढुं सद्यं कर्तुमूर्धं नीयते ॥ ४६ ॥ नीयमाना च सा आकर्षणादृण्डोपमां दीर्धतां गता सती सर्पाव लिर्रेतवोर्ध्वमभ्यासपाटवाद्याति । कथं याति तदाइ---नाडीरिति ॥ ४७ ॥ तदा नाडीद्वारा नीरन्ध्रं निरव-कार्श यथा स्यात्तथा पवनेनापूर्ण लघुलमापन्नं समस्तमापादम-स्तकमिदं देहकं कृपाद्ध्वमाकृष्यमाणा चर्मभन्ना ततं व्याप्तमा-न्तरमन्तःप्रदेशो येन तथाविधमम्ब्विव उत् अर्ध्व हावयति उद्दीनं करोति तदेवास्याकाशगमनामेखर्थः ॥ ४८ ॥ इति एवं-विधेनाभ्यासविलासेन योगेन कायाकाशसंबन्धसंयमलक्षणेन। तथाच भगवतः पतज्जलेः सूत्रम् 'कायाकाशयोः संबन्धसंयमा-ह्युत्लसमापतेथाकाशगमनम्' इति, तद्भाष्यं च 'यत्र काय-स्तत्राकाशं कायस्य तेन संबन्धः प्राप्तिस्तत्र कृतसंयमो योगी जिला तत्संबन्धं लघुतुलादिषु आपरमाणुम्यः समापत्ति लब्ध्वा जितसंबन्धो लघुर्लघुलाच जले पादाभ्यां विहरति ततस्तूण-नाभितन्तुमात्रे विह्रत्य रिमपु विहरति ततो यथेष्टमाकाशग-तिरस्य भवती'ति ॥ ४९ ॥ इदानीं सिद्धदर्शनोपायमाइ--- ब्रह्म-नाडीत्यादिना । यदा रेचकेन प्रयोगेणोध्वमाकृष्टा कुण्डलिनी शक्तित्रंद्यनाडी सुबुम्ना तदन्तः प्राणप्रवाहेण शीर्षकपा-रुद्रयसंधिलक्षणस्य कपाटस्य बहिद्रीदशाङ्कलमिते मूर्धनि वो-डशान्तास्ये स्थाने मुहुर्तमात्रं स्थितिमाप्रोति तदा व्योमगानां सिद्धानां दर्शनं भवतीति परेणान्वयः । तथाच भगवतः पत-बढेः सूत्रम् 'मूर्थज्योतिषि सिद्धदर्शनम्' इति । तद्भाष्यं च

विक्रानाह्रस्संस्थेन बुद्धिनेत्रेण राघव।
हरयन्ते ज्योमगाः सिद्धाः स्वप्नवत्स्वार्थदा अपि ५४
स्वप्नावलोकनं यद्वसद्वत्सिद्धावलोकनम्।
केवलोऽथ विरोपोऽयं सिद्धप्राप्तौ स्थिरार्थता॥५५
मुखाद्वहिर्द्धादशान्ते रेचकाभ्यासयुक्तितः।
प्राणे चिरं स्थितिं नीते प्रविशस्यपरां पुरीम्॥ ५६

श्रीराम उषाच।

बद स्त्रभावस्य कथं ब्रह्मन्नचलसंस्थितिः। वक्तारः सानुकम्पा हि दुष्पश्चेऽपि न खेदिनः ५७

वसिष्ठ उवाच।

शक्तियां तु स्वभावाख्या यथा स्पुरति चातमनः । सर्गादिषु तथैवासी स्थिति यातीति निश्चयः ५८ अवस्तुत्वादविद्याया वस्तुशक्तिरि कचित् । भिद्यते दृश्यते हाङ्ग वसन्ते शारदं फलम् ॥ ५९ सर्वमेविमदं ब्रह्म नानाऽनानातया स्थितम् । सृम्भते व्यवहारार्थं केवलं कथितस्थिति ॥ ६०

'बिरःकपाले अन्तरिछदं प्रभास्तरलाज्योतिस्तत्र संयमात्सि-द्धानां धावापृथिव्योरन्तरालचारिणां दर्शनमिति ॥ ५०॥ ५१ ॥ अदिव्यानामिन्दियाणामिति भावलक्षणे 'षष्ठी चानादरे' इति षष्ट्यौ । यदास्मदादीनामिन्द्रियाणामदिन्यानां सतां सत्यपि तत्संनिक्षे सिद्धानां तत्त्वं तद्गोचरत्यं दुर्लभं तदा नयनांशुगणं चाक्षपत्रभासंनिकर्षे विना षोडशान्ते प्राणधारणमात्रेण सि-द्धानां दर्शनं कथं भवेत्तच कीदशमिखर्यः ॥ ५२ ॥ तत्र कथं भवेदित्यंशमिष्टापत्त्या वसिष्ठः परिहरति - न केचनेति। नभखतो नभखन्तो षायुभूताः । सिद्धा आधिता ज्ञानमिलिनैः पुरुषेन्द्रियेर-दिन्येनोपायान्तरेण वा न हर्यन्त इति सत्यमेव लयोक्तमित्यर्थः ॥ ५३ ॥ केन तर्हि दरयन्ते तदाह-विज्ञानादिति । विज्ञाना-धोगाभ्याससंस्कृतमनसः ॥ ५४ ॥ कीदशमिति प्रश्नांशस्योत्त-रमाह—खप्रावलोकनमिति । स्थिरार्थतासंवादवरदानफलावा-स्यादिव्यवद्वारक्षमार्थता स्वप्नापेक्षया विशेष इत्यर्थः ॥ ५५ ॥ इदानीं परकायप्रवेशो येनोपायेन सिज्यति तमाह-मुखादिति । द्वादशान्ते द्वादशाङ्कलिपरिमितप्रान्ते ॥ ५६ ॥ 'विशेषोऽयं सिन द्धप्राप्ती स्थिरार्थता' इति यदुक्तं तत्र स्वभाव एव हेतुर्वाच्यः सर्वस्य जगतो मायामयलादानियतस्थितित्वं प्राग्बहुशस्लयैव 'घटस्य पटता दृष्टा' इत्यादिना न्युत्पादितं, तत्र स्वभावस्येकस्य नियतस्थितिः कथमिति रामः प्रन्छति-वदेति ॥ ५७ ॥ सत्यसंकल्पस्थेश्वरस्य सर्गादिकालसंकल्पप्रयुक्ता वस्तुस्वभावनि-यतिरपि यावत्सर्गकालमेव न प्रलये सास्तीति न सर्वनियति-भन्नवादविरोध इल्याशयेन प्रागुक्तमेव स्मारयन् वसिष्टसादुत्तर-माह-शिक्तिरिति ॥ ५८ ॥ कालमेदेनेव देशभेदेनापि वस्तु-शक्तरनियतता द्रग्रेत्याह-अवस्तुत्वादिति । कचित्कामरूपदे-शादी । शारदं त्रीह्यादिफलम् ॥ ५९ ॥ नानाऽनानातया अ

श्रीराम उवाच । सूक्ष्मिडिछद्रादिगत्यर्थ पूरणार्थ च खस्य वा । अणुतां स्थूलतां वापि कायोऽयं नीयते कथम् ६१ वसिष्ठ उवाच ।

काप्रक्रकचयोः श्लेषाद्यथा छेदः प्रवर्तते । द्वयोः संघर्षणाद्धाः स्वभावाज्जायते तथा ॥ मांसं क्यम्बज्जठरे स्थितं श्विष्टमुखं मिथः। ऊर्घ्वाधःसंमिलत्स्थलद्व्यम्भःस्थैरिव वेतसम् ॥ ६३ तस्य कुण्डलिनी लक्ष्मीर्निलीनान्तर्निजास्परे। पद्मरागसमुद्रस्य कोशे मुक्तावली यथा॥ દ્રપ્ર आवर्तफलमालेव नित्यं सलसलायते। दण्डाहतेच भुजगी समुघतिविवर्तिनी ॥ 84 धावाप्रशिब्योर्मध्यस्या क्रियेव स्पन्दधर्मिणी। संविन्मध्विबोधाकौ हत्पद्मपुटपद्पदी॥ ६६ तत्सर्व शक्तिपद्माटि वाह्यनाभ्यन्तरैस्तया । हृदि व्याध्यते वातः पत्रवृन्दमिवाभितः॥ ६७

नियतस्वभावतया स्थितं सर्वमेवेदं ब्रह्म । ब्रह्म स्वभावेनेव निय-तैकरूपं नान्येनेखर्यः । कथं तर्हि बहेरूर्ध्वज्वलगादिनियतिस्त-श्राह—जम्भते इति । प्राणिकर्मतत्फलोपभोगव्यवहारार्थमञ्जातं ब्रह्मेंब कंचित्कालं तथातथा नियतस्थिति भूला जुम्भत इलर्थः ॥ ६० ॥ इदानीमणिमाख्या महिमाख्या च सिद्धिः केनोपा-येन सिज्यतीति रामः पृच्छति--सूक्ष्मेति । नीयते थोगिनेति शेषः ॥ ६१ ॥ अस्य प्रश्नस्थोत्तरमुत्तरसर्गे विस्तराद्वणंत्रिष्यं-स्तदपोद्धाततया देहे अभीषोमव्याप्ति निरूपियध्यन् प्राणापा-नयोः संघषीदन्तराले जाठरामिनिष्पत्ती दशान्तमाह-का-ष्ट्रेति । छेदो द्वैधीभावः । द्वयोः प्राणापानयोः । अभिजीटरः ॥६२॥ प्राणापानयोः संघर्षणोपपत्तये अन्योन्याकर्षकत्वे कारणमाह—मांसमित्यादिना । कुत्सितस्य देहयम्त्रस्य जठरे उदरप्रदेशे नामेरूर्धमध्य संमिठत् अतएव मिथः श्विष्टमुख-मामाशयपकाशयभस्नाद्वयरूपं स्थ्लं मासं दिविस्थेरू विमाका-शसंस्थेरम्भःस्थरधो जले निमप्तेश्व भागः परसर्विष्टेश्पलक्षि-तमधोऽम्भसा ऊर्ध्व वायुना च विरुद्धदेशयोः कृष्यमाणं वैतसं कुजमिव कम्पमानं स्थितं वर्तत इत्यर्थः ॥ ६३ ॥ अस्त तत्कि ततस्त्रग्रह—तस्येति। तस्य मांसस्याधस्तनभन्नाभागस्य मुलभागरूपे निजे आस्पदे मूलाधारे प्रायुक्ता कुण्डलिनी सर्वस्य कार्यकारणसंघातस्य प्राणप्रदत्वाहर्भाः ॥ ६४ ॥ जप-काले आवर्यमाना रहाक्षादिफलमालेव नित्यमभीक्ष्णं प्राणा-षानोद्धिरणनिगिरणाभ्यां सलसलायते कम्पेनाव्यक्तरवं जन-बति । अध्यक्तानुकरणाङ्गाचि बहुतमहणात् करोल्यें क्यङ् । समुत्रतिरूथ्वेमुखता तया विवार्तनी परिवर्तनशीला ॥ ६५ ॥ बावापृथिन्योर्मध्ये प्राणिनामुध्यीयोगतिहेतुविहितनिषिद्धिकयेव प्राणापानयोरूर्ध्वाधोगतिहेतुलात्स्पन्दर्धार्भणी । चाक्षुषादिसंवि-हक्षणानां मधूनां स्यादिविषयास्यादानां विवोधे अर्क इव यहद्योम स्फुरत्यङ्ग स्वभावासत्र वायवः। बलवन्मृद् यतिकचिद्धशं कबलयन्ति तत्॥ ६८ वातैराह्यमानं तत्पद्मादि तरलायते। हृद्यन्यान्येति कार्येण पलुवादि यथा तरोः॥ ६९ देहेप्याजरणं सर्वरसानां पवनोऽन्वहम्। जनयत्यग्निमन्योन्यसंघर्षाद्वनवेण्वत् ॥ 90 स्वभावशीतवातात्मा देहस्तेनौज्यमंत्यथ । उदितेन स सर्वाङ्गे भुवनं भानुना यथा॥ ७१ सर्वतो विचरेदक्षिस्तत्तेजस्तारकाकृति। हत्पद्महेमभूमरो योगिनां चिन्त्यतां गतम्॥ ७२ तत्प्रकाशमयं झानं चिन्तितं सत्प्रयच्छति। येन योजनलक्षस्यं चस्तु नित्यं हि दृदयते ॥ ७३ तस्याग्नेवीडवस्येव जलं संग्रुष्कमिन्धनम्। मांसपङ्कजखण्डाढ्यं इत्सरःकोशवासिनः ॥ 1013 यदच्छं शीतलत्वं च तदस्यात्मेन्द्ररूच्यते । इतीन्दोरुत्थितः सोऽप्रिरभीषोमो हि देहकः॥ ७५

स्थिता ॥ ६६ ॥ शक्तयो ज्ञानकर्मेन्द्रियादिशक्तयः । प्रागुक्तं हृत्पद्ममादिपदात्राजीजालं च हृदि आभ्यन्तरैर्वातैस्तथा व्याधू-यते कम्प्यते । यथा बाह्येन वातेन तरुपत्रवृन्दं व्याध्यते तद्वदिखर्थः ॥ ६० ॥ बाह्यं व्योम यद्वद्विशालं स्फुरति तत्र च स्वभावादेव वायवी बलवत्काष्ट्रपाषाणादिमृदुपर्णतृणादि च कवलयन्तीव काछेन जरयन्ति तद्वदन्तर्व्योप्रयपि प्राणवायवो भुक्तमन्नादि जरयन्तीत्यर्थः ॥ ६८ ॥ जरणप्रकारमेवाह—वा-तैरिति । तत्त्रागुक्तं हृत्यद्मनाडीभस्रादि प्राणवातिराहन्यमानं ध्मायमानं लोहकारभस्नेव तरलायते । तरलायमानस्य तस्य हदि अन्तःप्रविष्टस्यात्रस्य प्रथमं रसो रसाइकं रक्तान्मांसं मांसात्त्वक् लचो मेदो भेदसो गजा मजाभ्योऽस्थीन्यस्थिभ्यः शुक्रमिति विचित्रकार्येणान्यस्या अन्या परिणतिरेति । यथा वसन्ते तरोरन्तःप्रविष्टभीमरसस्य पृक्षवा सञ्जर्यः पृष्पाणि फ-लानीत्यादि एति तद्वदित्यर्थः ॥ ६९ ॥ तत्र सप्तस्विप भातु-स्थानेपृत्तरोत्तरपरिणामसिद्धये परस्परसंघर्षाज्ञाठराग्नेरमिव्यक्ति-रसीत्याशयेनाह—देहेव्विति । आजरणं जरणपरम्परया चर-मधातुपरिणामपर्यन्तमित्यर्थः ॥ ७० ॥ स देहः सर्वाङ्गे उदितेन प्रवीतेन तेन जाटरामिना आष्ण्यमेति ॥ ७१ ॥ तर्स्यव सर्वदेहव्यापिनो जाठराप्रेईत्पद्मे तारकाकारेण योगिनि-रपासनं कियत इत्याह—सर्वत इति । अस्मिन् देहे ॥ ७२ ॥ तदेव चिद्रपेण चिन्त्यमानं व्यवहितविष्रकृष्टसर्वेपदार्थदर्शनसि-द्धिं जनयतीत्याह—तदिति ॥ ७३ ॥ तस्यामेरिन्थनमाह— तस्येति । वाडवस्याप्रेः सामुद्रं जलमिव मांसलक्षणैः पञ्चजख-ण्डेराक्यं यद्धः सरस्तत्कोशशायिनस्तस्य जाठरस्यामेरपि शारीर-मत्ररसरूपं जलं संशुष्कं ज्वलनयोग्यमिन्धनमित्यर्थः॥ ७४॥ देहे इन्घनभूतमिन्द्रंशं लक्षणन विभज्य देहसामीबोमात्म-

सर्वे तृष्णात्मकं किंचित्तेजोऽकीश्यभित्रं विदुः। शीतात्मकं तु सोमाख्यमाभ्यामेव कृतं जगत् ७६ विद्याविद्यास्त्ररूपेण सर्व सदसदात्मना। जगद्वा येन निर्वृत्तं तदेवैवं विभज्यते ॥ 60 संवित्यकारां विद्यादि सूर्यमन्ति विदुर्वधाः। असज्जाड्यं तमो विद्याद्याद्यः सोमं मनीपिणः 136 श्रीराम उवाच । बहिर्वाय्वात्मनः सोमादुदेनीति मुनीश्वर । सोमस्योत्पत्तिमधुना वद मे वद्तांवर॥ 190 वसिष्ठ उवाच । अग्नीपोमी मिथः कार्यकारणे च व्यवस्थिते। पर्यायेण समं चंती प्रजीपेते परस्परम् ॥ 60 जन्माङ्गवीजाङ्करवत्तथा दिवसरात्रिवत् ! स्थितिदछायातपसमा केवला सैतयोभवेत्॥ ८१

कलमाह-यदिति ॥ ७५ ॥ बहिरपि जगतप्रकार्शाण्याभ्यां रीत्यजाच्यास्यां चार्घाषोमात्मकं ज्ञेयमित्याह —सर्वमिति॥७६॥ अथवा चिज्ञडोभयघटितं सदसदात्मकमविद्यादाबरुं ब्रह्मेव जग-दाकारेण निवृत्तामिति तदेवेवं प्रकाशजाञ्चातमना अशीषीमरूपेण विभक्तमिलाह—विधेति ॥ ७७ ॥ तं विभागमेव स्फुटमाह— संविदिति । विद्यां आत्मतत्त्वस्फृतिम् । आदिपदाद्वाद्यार्थप्रथां च ॥ ७८ ॥ 'देहेष्वाजरणं सर्वरसानां पवनोऽन्वहम् । जनय-खिप्तमन्योन्यसंघर्षाद्वनवेणुवत्' इति लदुत्तया देहे बहिश्व प्रख-**क्षेणाम्यादिलादेवी**य्वधीनोञ्जवोदयादिद्शनाद्वक्षियीय्यात्मनः सोमादुदेतीखयमधीं मथा शुद्ध इति शेवः । शेवः सार्थः॥७९॥ परस्परं पर्यायेण प्रजीषेते जिगीषेते । जेः सनि द्विलकुलयो-रभावरछान्दसः । 'अज्झनगमाम्' इति दीर्घः । प्रजीवेते इति पाठे तु परस्परमुपजीवत इत्यर्थः ॥ ८० ॥ अनयोर्जन्मबीजा-क्रुरवत्परस्परोपादानकं दिवसरात्रिवत्परस्परनिमित्तकं च । स्थि-तिस्तु छायातपसमा परस्परोपघातिनीत्यर्थः ॥ ८३ ॥ दष्टा-न्तमेदोपन्यासस्य तात्पर्यान्तरमाह—नुल्येति । युगपदुलम्भे छायातपस्थितिः पर्यायेणोपलम्मे दिनरात्रिस्थितिर्दृष्टान्त इत्यर्थः ॥ ८२ ॥ दष्टान्तयोः कार्यकारणभावद्वयपरत्वपक्षेऽप्यवान्तरभे-दान्तरद्वयेSपि तात्पर्थमस्तीत्याह—कार्यकारणभावश्रेति ॥८३॥ तयोराद्यमुपपादयति—एकस्मादिति ॥ ८४ ॥ द्वितीयमुपपा-दयति--एकेति । भाष उत्पत्तिः ॥ ८५ ॥ आदे कार्यदशायां कारणसत्वे मुदातमकोऽयं घट इत्यादि प्रत्यक्षं प्रमाणमित्याह— सद्भेति । यद्यप्यनुमानादीनामपि संभवोऽस्ति तथापि प्रत्यक्ष-सिदेऽधें न ते मृग्यन्ते इत्यनुपयोगोक्तिः। तदुक्तं न्यायवाच-स्पत्ये 'निह करिणि दृष्टे चीत्कारेण तमनुमिमते मिमातारः' **इति । सिद्धिसत्वेन पक्षतारूपकारणाभावादित्याशयः ॥८६॥ एवं** द्वितीयेऽपि कार्यदशायां कारणासत्वे दिवारात्रिं नोपलभामहे इलानुपैलब्धिः प्रमाणमिलाह्—विनाशेति । एकवस्तुस्थः एक- तुल्यकालोपलम्भासावित्थं छायातपस्थितिः। केवलैकोपलम्भाक्या स्थितिर्दिवसरात्रिवत्॥ ८२ कार्यकारणभावश्च द्विविधः कथितोऽनयोः। सद्रपपरिणामोत्थो विनाशपरिणामजः॥ 13 एकसाद्यद्वितीयस्य संभवोऽङ्करवीजवत्। कार्यकारणभावोऽसा सद्व्यपरिणामजः॥ ८४ एकनाही द्वितीयस्य यद्भावी दिनरात्रिवत् । कार्यकारणभानोऽसा विनादापरिणामजः॥ ८५ सङ्गपरिणामस्य मृद्धदक्रमसंस्थितेः। अक्षोपलम्भादितरत्प्रमाणं नोपयुज्यते॥ 4 विनाशपरिणामसा दिनरात्रिक्रमस्थितेः। अभावोऽप्येकवस्तस्यो गतो मुख्यप्रमाणताम् ८७ अनास्था नास्ति कर्तृत्वमित्याद्या युक्तिवादिनः । अवज्ञया वहिष्कार्याः स्वानुभूत्यपतापिनः॥

बस्तुमात्रप्राहिप्रसक्षाचिरद्धः ॥ ४० ॥ ननु कार्यं कुर्वेत् कार-णसुच्यते । तत्कर्तृत्वं च कारणस्य तदनिनिवेशलक्षणाया-मास्यायां रष्टम् । नच प्रकाशनमात्रीपक्षीणस्य दिनस्य राजि-निर्माणे आस्थास्तीति नास्ति कर्तृत्वम् । एवं रात्रेरपि दिनक-र्ट्ट्यं नास्तीत्यभावपरिणामेन कार्यकारणभावो निर्मृतः । एव-मचेत्रस्य मृदादेनं घटादिजनने आस्या संमवति । तस्याधे-तन्धमेखात् । किचानुधमदितान्यृत्यिण्डात्र घटो निष्यद्यते । जपमदं तु मृत्पिण्डो नश्यत्येत्रेति कि सद्भूपेण परिणमेत । नच पिण्डघटव्यतिरिक्ता उभयानुगता मृत्राम काचित्तत्र तृतीयास्ति। किच बीजादिस्थितं निनंक्षु नश्यत्रष्टं वा अङ्करं जनयेत्। नाद्यः। कुसुलादै। तत्त्रसङ्गात् । न द्वितीयतृतीर्यः। तदा स्वत्राणेऽप्य-समर्थ परमुत्पादयितुं समर्थभिति का वाचोयुक्तिः । चतुर्थस्त कल्पः सर्वानुभववाधित इति न कस्माशिकस्यचिद्रत्पत्तिर्वि-नाशो वा किंतु स्वभावत एव सर्वमुरपद्यते विनर्यति च तत्र पीर्वापर्यदर्शनाद्विवेकिनां कार्यकारणभावविकल्पा इत्यादिदुर्यु-क्तिवादिनः खानुमवविरोधोद्भावनेनेव निरसनीया इलाह— अनास्थेति । इत्यादिरायुक्तिर्द्युक्तिसाद्वादिनः । अवज्ञया अव-मानेन । स्वानुभूखपरापिता च तेषामित्यं वर्णनीया । अना-स्थादियुक्तिबुद्धिरवर्तृत्वादिशुद्धि जनयति चेत्तयोरेव कार्यकार-णभावस्तवानुभवसिद्ध इति कथं तत्सामान्यापलापः । यदि न जनयति तर्हि तथा खानुभववतस्तव परतुबोधियया युत्तयु-पन्यासः खानुभवविरुद्धः प्रलाप इति । एवं रात्रिरपि चरम-भावविकारात्मना अभावपरिणामेन दिनस्य कारणमिति खान-भवसिद्धमेव । नच नाशो न भावविकारः । उत्पत्त्यादेरिव तस्यापि भावधर्मलानुभवात् । एवं बीजाङ्करायवस्थास्वनुगतं इव्यमप्यवाधितप्रत्यमिज्ञानुभवसिद्धं नापलापार्हम् । तदेव स्थितं निनंक्षु नर्यत्रष्टमित्यायवस्थाभेदं खात्मन्यनुभवदह्यरादेः कारणं नावस्थामेदेषु भिद्यत इति तत्र द्रव्यमेदास्तेषां निर्देतु-कोत्पत्त्यादीशिष्प्रमाणकानतिगीरवप्रस्तांश्च प्रलपन्तो मूर्का अव- प्रत्यक्षवद्भाषोऽपि प्रमैव रघुनन्दन । अझ्यमाबोऽपि शीतस्य प्रमाणं सर्वजन्तुषु ॥ ८९ अग्निर्धमतया भागाद्यां प्रयाति पयोदताम्। सद्रूपपरिणामेन तद्क्षिः सोमकारणम्॥ 90 अंग्निनंद्रतया शैत्यादसावेव प्रयाति यत्। विनाशपरिणामेन तद्गिः सोमकारणम्॥ ९१ सप्ताम्बुधिपयः पीत्वा धूमोद्रारेण वाडवः। पयोदतां प्रयातेन तदेव जनयस्यलम् ॥ ९२ अर्कः पीत्वा निशानाथमामावास्यं पुनःपुनः। उद्विरत्यमले पक्षे मृणालमिव सारसः॥ ९३ पीत्वामृतोपमं शीतं प्राणः सोममुखागमे । अञ्चागमात्पुरयति शरीरं पीनतां गतः॥ 68

क्षयैव बहिष्कार्या इत्यर्थः ॥ ८८ ॥ अनुपलब्धेः प्रामाण्यसंदेहं बारयति-प्रत्यक्षवदिति । प्रभैव प्रमाणमेव । नचाभावे प्रमा-**फरणलमन्यत्र न दप्टमिति भ्रमितव्यम् । तेजोभावस्य शीतानु-**मितौ लिङ्गविधया करणलप्रसिद्धेरित्याह—अम्यभाव ॥ ८८ ॥ बहिरमेः सद्भूपपरिणामेन सोमकारणलमुदाहरति-अभिरिति । तत्तत्र ॥ ९० ॥ अभावपरिणामेनापि तदुदाइ-रति-अप्रिरिति । असी अप्तियद्वायुभावं प्राप्नोति । 'यदा वा अप्रिरुद्वायति वायुमेवाप्येति' इति श्रुतेः ॥ ९१ ॥ सद्रूपपरि-गामेनाप्रीपोमयोः परस्परकारणलमेकैकत्रोदाहरति—सप्तेत्या-विना । बाडवो घडवानलः पयोदतां प्रयातेन स्वेनैव तत्सप्ता-म्बुबिपय एव जनयति । क्षीरद्यिष्टतादीनामपि रसात्मकसो-मह्यसारसर्वत्र पयोवादः ॥ ९२ ॥ आअमावास्यामित्यामा-बास्यम् । 'आङ् मयीदाभिविध्योः' इत्यव्ययीभावे नपुंसक-इस्तः। कृष्णपक्षे अमावास्यापर्यन्तमित्यर्थः । अमले शुक्ले पक्षे ॥ ९३ ॥ सोमो मुखमिव शोममानो यत्र तथाविधवस-न्तप्रीष्मागमे प्राणः सोष्मा वायुर्भोमं पयः पीला वर्षर्तावश्रा-गमालद्वेषेण पीनतां गतः सन् बृष्ट्या पुनर्जगच्छरीरं पूरयति । अथवा आध्यात्मिक एव प्राणः सोमस्यापानस्य मुखादन्नपाना-देरदरे आगमने सति अमृतोपमं तद्रसं पीला पीनतां गतः सम्मन्यामसर्वनाडी जालागमनाच्छरीरं पूर्यत्याप्याययति । स एवास्य पुनः सोमपरिणाम इत्यर्थः । 'तदपानेनाजिवृक्षत्त-दावयत्सेषोऽत्रस्य प्रदः' इति श्रुतेरिति भावः । सोमं सुखागमे इति पाटे तु प्राणोऽप्रिभृतो यजमानप्राणोऽध्वरे अमृतोपमं बीतं सोमरसं पीलान्ते धूमादिमार्गेण सुलस्य सर्गस्यागमे अभ्रस चन्द्रसन्निहिताकाशरूक्षणमार्गपर्वण आगमनाचन्द्रं प्राप्य तद्भावं प्राप्तः कलामिः स्वशरीरं पूरयति स एवास्य पार्ण-मास्यां पीनतां गतः पुनः सोमपरिणाम इत्यर्थः । धूमादिमा-र्शबन्द्रभावध श्रुलैव दर्शितः। अय यत्रेमे प्रातरिष्टापूर्ते दत्त-मित्यपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाहात्रिं रात्रेरपरपक्षमपर-

जलमञ्जूद्रपां भोगे प्रयात्यर्कस्य रिमताम्। सद्रुपपरिणामेन तज्जलं विह्नकारणम्॥ ९५ नाशात्मकतया तोयमीष्ण्यत्वादेति हानिताम् । विनाशपरिणामेन तसोयं घहिकारणम्॥ ९६ अग्नेविंनारो सद्रुपपरिणामो निशाकरः। इन्दोर्धिनारो सद्रुपपरिणामो इतारानः॥ ९७ हुताशो नाशमागत्य सोमो भवति वै तथा। दिवसो नारामागत्य रात्रिभवति यै यथा॥ 96 तमःप्रकाशयोदछायातपयोर्दिनरात्रयोः । मध्ये विलक्षणं रूपं प्राज्ञैरपि न लभ्यते ॥ ९९ संधिरप्यविलोपः स्यादेतयोरेव तद्वपुः । भावाभावैर्यथैकास्थानिष्ठावेती तथैव हि॥ १००

पक्षायान् षददक्षिणेति मासांस्तानेते संवत्सरमभिप्राप्नवन्ति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाचन्द्रमसमेष सोमो राजा तहेवानामन्नम्'इति । 'तस्मिन्नेतस्मिन्नमाँ देवाः श्रद्धां जुह्नति तस्या आहुतेः सोमो राजा संभवति' इति च पत्राप्तिविद्या-याम् ॥ ९४ ॥ यदि मन्यसे न वायुर्भों मं रसं शोषयति किं लर्करश्मय एव तं पिबन्ति रात्रावप्यूष्मरूपेण तेषां सत्त्वादिति तदा त एवोदाहरणमिल्याशयेनाह—जलमपीति । उत् ऊर्घ्व-मादिल्यरिमिनरपां भोगे पाने कल्प्यमानेऽपि जलमर्कस्य रहिमतां सद्रुपपरिणामेन याति । शुक्रुरूपेण तत्रापामनुगमद-र्शनात् । 'यदादिखस्य लोहितं रूपं तेजसस्तद्भूपं यच्छुक्नं तद-पाम्' इति श्रुतेरिति भावः ॥ ९५ ॥ यस्तु तत्र शैल्पद्रवलयो-नीश औष्ण्यरीक्ष्ययोश्रोद्भवन्तदंशे विनाशपरिणामिताप्यस्तीति संकीर्णीदाहरणमिदमित्याह--नाशात्मकतयेति ॥ ९६ ॥ सर्व-त्राप्नीवोमात्मके परिणामे उभयहपसंकीर्णतापि सुक्ष्मदशा लक्ष-यितुं शक्येत्याशयेनाह-अभेरिति द्वाभ्याम् ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ तर्हि तमःप्रकाशयोरछायातपादी च किमनुगतं रूपं येन सद्रुपपरिणामता तत्र स्यादिति चेसद्रद्धीव तवाभिन्नतमैरिप श्वाद्याहिकया न लभ्यत इलाह—तम इति। मध्ये अनुगतं व्यावृत्ततमःप्रकाशविलक्षणं सन्मात्ररूपम् । अथवा मध्ये संधौ उभयविरुक्षणम् । दिनरात्रयोरिति समासान्तरछान्दसः॥९९॥ ननु तमःप्रकाशयोः संधिष्भयविलोपातमा शुन्यहपस्तत्र नी-भयविलक्षणं किंचिद्रपमस्तीत्याशक्क्याह—संधिरिति । अनयोः संघिरपि अवलोपः अश्रून्यरूपः स्यात् । यतस्तत्संधिरूपमेत-योरेव वपुः परस्परसंलुनं स्वरूपम् । नहि शून्ययोः संधिनीम भवति । नवा निर्निमित्ता सतोः शून्यता कथं तर्हि तौ संधी वर्तेते इति चेत् । यथा पूर्वोत्तरकालयोभीवाभावैः । उदाइ-रणबाहुल्याद्वहुवचनम् । परस्परनिरपेक्षनिरूपणेन भावरूपेण सापेक्षनिरूपणेनाभावरूपेण च तम इदं प्रकाशाभावरूपमेकमेव वस्तु प्रकाशक्षायं तमोऽभावरूपमेकमेव वस्त्वित सर्वानुभवादे-

६ असी नष्टतया शैरवाद्वायुत्तामेन याति यत् इति पाठः.

अभिनेष्ठतया इति मूलपाठे तु नायुभावमित्यध्याद्वारलक्यं क्षेयम् ।

द्वाभ्यां चैतन्यजाड्याभ्यां भूतानि प्रस्फुरन्ति हि । यथा तमःप्रकाशाभ्यामहोरात्रा महीतले॥ १०१ चिद्रपजडरूपाभ्यामारब्धेयं जगत्स्थितः। जलामृताभ्यां मिश्राभ्यां शीता तनुरिवेन्दवी १०२ प्रकाशमनलं सूर्यं चिद्रपं विद्धि राघव। जडात्मकं तमोरूपं विद्धि सोमशरीरकम्॥ १०३ चित्सूर्ये निर्मले ष्टि नाम नश्येद्धयोदयम्। ब्योमसूर्ये बहिर्हेष्टे यथा रूष्णनिशातमः॥ १०४ सोमदेहे जडे दृष्टे चित्रिजे सत्यवद्भवेत्। निशीथे विलसत्यक्षे यथा सौरप्रभाभरः॥ १०५ सोमं प्रकटयत्यग्निश्चिदेहस्य चिरं प्रभाम्। स्वसंविनमयमिन्द्रश्चिद्दहस्यं रूपमर्कजम् ॥ १०६ चिन्निष्कियात्वनामा सा केवला नोपलभ्यते । आलोक इव दीपेन देहेनैवावगम्यते॥ १०७ चितश्चेत्योन्मुखत्वेन लाभः सैव च संसृतिः।

तावेकास्थानिष्टी स्थिती तथैव हि संधावपि वर्तेते । नाणु-मात्रमप्यन्यथाभूतावित्यर्थः ॥ १०० ॥ १०९ ॥ यथा विरु-द्धाविरुद्धतमः प्रकाशघटिता अहोरात्रास्तथा चिज्जडोभयघटिताः सर्वव्यवद्वारा इत्याह—चिद्रुपेति । जलमये बिम्बे सूर्यकरद्वारा सूर्वविम्बस्थितामृतात्मककलामिः क्रमेण पूरणादुभयारच्या ऐन्दर्वी तनुरिव ॥ १०२ ॥ चिजडोभयांशाभ्यामेव प्रकाशाप्र-काशतया आविर्भताभ्यां जगतोऽप्रीषोमात्मकतेत्याह-प्रका-शमिति ॥ १०३ ॥ बहिः सूर्योदयात्तम इवान्तश्वरमवृत्त्या चिदादित्योदयाजगन्मुलतमोनिवृत्तिरित्याह-चित्स्यें इति। भ-वस्योदयो यस्मात्तद्भवोदयं तमः ॥ १०४ ॥ निजे प्रखगात्मनि जडे सोमदेहे दृष्टे सति तत्तादातम्येन स्फुरन्यपि चित्तद्भणल-मिवापना गुणान्तरवत्तत्सत्तयैव सती भूला खसत्तया असत्यव-द्भवेत् । यथा निशीथे अर्धरात्रेऽन्जे चन्द्रे विलसति तदनुप्रवे-शेन स्फरन् सौरप्रभाभरश्वन्द्रधर्मचन्द्रिकात्वेन संपन्नधन्द्रस-त्तया सन्निव भूला खसत्तया असत्यवद्भवति तदानीं सौरप्रभा-भरो नास्तीति सर्वजनानुभवादिति भावः ॥ १०५ ॥ दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोरुपपत्ति फलं चाह्-सोममिति । चन्द्रमण्डले प्रविष्टः सूर्यप्रभारूपोप्तिः सोमं जलमयं चन्द्रबिम्बं प्रकटयति स्फ़रद्र्पं करोति । देहे तु जीवभावेनानुप्रविष्टा चिहेहस्य चिरं यावदायुःप्रभामहंभावादिना प्रथां करोति 'यथा प्रकाशयत्येकः कृतकां लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृतकां प्रका-शयति भारत ॥' इति भगवद्वचनात् । एवमन्योन्यमे-लने तादारम्याध्यासादर्कजं रूपं प्रभामण्डलमिन्दुर्भवति । विष स्तरंबिन्मयं मनुष्योऽहं चेतन इत्यादिस्वानुभवानुसारिदे-इस्थं रूपं भवतीत्यन्वयः ॥ १०६ ॥ इतोऽपि तस्या देहधर्म-क्षभ्रम इत्याह—चिदिति । नमयति संकोचयतीति नाम उपाधिस्तच्छुन्या ॥ १०७ ॥ अङ्गानावृतायाश्वितश्रेत्योपाध्यु-न्मुखप्रथानियमादेवानर्थप्राप्तिरित्याह—चित इति ॥ १०८ ॥

निश्चेत्यायाः शुभो लाभो निर्वाणं वा तदेव हि १०८ अन्योन्यलम्धसद्वाक्यावेवं कुड्यप्रकाशवत्। अग्नीषोमाविमी श्रेयौ संपृक्ती देहदेहिनौ ॥ अतिशायिनि निर्वाणे जाड्ये चैवातिशायिनि । अग्नीपोमस्य चैवाङ्ग स्थितिर्भवति केवला ॥ प्राणोऽग्निरुष्णप्रकृतिरपानः शीतलः शशी। छायातपष्रदित्येती संस्थिती मुखमार्गगी॥ अपाने शीतले सत्तामेत्युष्णः प्राणपावकः। प्रतिबिम्बमिवादर्शे स च तस्मिस्त्थैव हि॥ चिद्ग्निः पद्मपत्रस्थं सोमं वाचात्मकं त्विपा। जनयत्यनुभूत्येह कुड्यालोकं यथा बहिः॥ संस्त्यादौ यथा काचित्संविच्छीतोष्णरूपिणी। अग्नीपोमाभिधां प्राप्ता सैव सर्गे नृणामिह ॥ ११४ यत्र सोमकला प्रस्ता क्षणं सुर्येण षोडशी। मुखाद्वितस्तिमात्रं स्यात्तत्र बद्धपदो भव॥ ११५

एवमुक्तरीत्या कुञ्चसीरप्रकाशवदन्योन्यसंवलनाधीनस**द्रपेण वा**-ग्व्यवहारविषयलादिमी देहदेहिनावप्यमीषोमात्मकौ ॥ १०९ ॥ तयोरसंविता प्रत्येकं स्थितिः क प्रसिद्धा त-दाह-अतिशायिनीति । निर्वाणमुपाधिनिवृत्त्या आनन्दावि-भीवस्तसिम्नतिशायिनि आत्यन्तिके सिद्धेः अरोः केवला स्थि-तिर्भवति । जाड्ये खतिशायिनि जलशिलादिभावे सोमस्य केवला स्थितिर्भवतीत्यर्थः ॥ ११० ॥ प्राणापानयोरप्यभीषोमा-त्मकत्वं प्रागुक्तं प्रकृतोपयोगाय स्मारयति—प्राण इति॥१९१॥ तयोः कुष्यालोकवदन्योन्यतादात्म्यस्थिति दर्शयति—अपाने इति ॥ ११२ ॥ मूलप्राणकुण्डलिनीरूपश्चिदमिरा**धारादिकप्**ठा-न्तचतुर्देलादिपद्मपत्रस्थं परादिवैखरीपर्थन्तवाचात्मकम् । क्षिषा अर्थप्रकारानशक्त्या अनुभूत्या । विवक्षापक्षे **लर्थप्रधारूपया** स्फूर्खा । यथा बहिः सूर्य इति शेषः ॥ ११३ ॥ यथा सर्गाही मायाशबलं ब्रह्म संविच्छीतोष्णरूपिणी ब्रह्माण्डाकारेणामीबो-मामिधां प्राप्ता तथा नृणां व्यष्टिदेहानां सर्गेऽपीत्यर्थः ॥११४॥ अस्त्वेवं ब्रह्माण्डमिव शरीरमप्यमीषोमात्मकं कि ततः कार्ये तत्राह्—यत्रेति । यथा दिवि कृष्णपक्षे अप्रयात्मा सुर्यः सो-मस्य शीताः पश्चदशकलाः प्रतिपदादितिथिषु क्रमेण प्रसति एकां श्रवास्यां चिद्रपां परिशेषयति । ततः शुक्रपक्षे कमे-णोष्णा उद्गिरति । ताभिः क्रमेण पूर्यमाणा धुना कला पूर्णः सोमो जायते।तथा हृदि स्थितःप्राणसूर्योऽपानरूपस्य सोमस्य मुखनासि-काद्वारा प्रविष्टाः शीताः पश्चदशकला प्रसिखा मुखाद्वहिर्श्रवास्या-मेकां कलां परिशेष्य पुनस्ता उष्णा उद्गिरति । तामिः सा पूर्य-माणा बहिरपानाख्यः सोमो जायते । तत्र बहिःप्राणापानसंबि-कालः पूर्णमासी इदि त्यमावास्या । अन्तरालदेशे इदापिक्रस्योः प्रत्येकुमूर्ध्वाधीभागप्रतिशास्त्रानाडीषद्के प्राणसूर्यस्य प्रवाहाद्वे अयने। मेषादयो द्वादश मासास्तदन्तराले संक्रान्तयः। अपान-सोमस्य प्रवाहाबैत्रादयो मासा विष्कम्भादवी योगा अव्याति

नृनं सूर्यपदं प्राप्तो यत्र सोमो हृदम्बरे।
नृनं केवलया स्थित्या तत्र बद्धपदो भव॥ ११६
उष्णमग्निश्चिदादित्यः रोत्यं सोम उदाहृतम्।
यत्रैतौ प्रतिबिम्बस्यो तत्र बद्धपदो भव॥ ११७
द्वारीरे सोमसूर्याग्निसंकान्तिको भवानघ।

तत्र संफ्रान्तिकाला हि वाह्यास्तृणसमाः स्मृताः॥ संक्रान्तिमुत्तरमथायनमङ्ग सम्य-क्रालं नथा विषुषतौ यदि देहवातैः। अन्तर्वहिष्ठमिव वेत्सि यथानुभूतं तच्छोभसेऽत्र न पुनः परमभ्युपेतः ११९

इल्यापें श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्माकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे अमीषोमविचारणं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

द्यशीतितमः सर्गः ८२

वसिष्ठ उवाच ।
अणुतां स्थूलतां वापि यथा गच्छति योगिनाम् ।
देहो नाम तथा सम्यग्वक्ष्यमाणिमदं श्रृणु ॥ १
इद्यक्तचन्नकोशोर्ध्वं प्रस्फुरत्यानलः कणः ।
हेमभ्रमरवत्सान्ध्यविद्युल्लव इवाम्बुदे ॥ २
स प्रवर्धनसंवित्या वात्ययेवाशु वर्धते ।

च पर्वाणि निष्पयन्ते इति योगिनां प्रसक्षम् । अन्यस्तु ख-रोदयादिशास्त्रतो होयम् । एवं स्थिते वश्यमाणदेहाणुतास्थी-ल्याद्यपयोगिधारणामेदाः प्रथमं त्रिमिः क्लोकैरपदिश्यन्ते । यत्र मुखाद्रहिर्देशे स्वेंगाप्रस्ता ध्रुवाख्या सोमस्यापानस्य षोड-शीकला प्राणेनोद्वीर्णामिः कलामिः पूर्वमाणा क्षणं प्राच्यां पूर्णमासीचन्द्र इव वितस्तिमात्रं स्यात्तत्र भुग्रुण्डोपाख्यानोक्तवा-ह्यक्रमाकेम मनोधारणया बद्धपदः स्थिरो भवेत्यर्थः ॥११५॥ तथा यत्र हदम्बरे कलात्रासेन कमाइस्यमानोऽपानाख्यः सो-मोऽमावास्यायामिव केवलया शुद्धचिद्रुपशुवाख्यकलात्मिकया स्थित्या तिष्टति तत्रान्तः कुम्भकेन बद्धपदो भव ॥ ११६ ॥ इदानीमधेरेचकेनार्धपुरकेण वा अन्तराखे प्राणस्रोभयतो नि-रोधेन विम्बप्रतिविम्बवन्तुत्यरूपतामापाद्य धारणामाह—उष्ण-मिति ॥ १९७ ॥ यथा वसन्तर्पाष्मवर्षाशरस्य क्रमण शीत-स्याष्येन प्रासारमोमस्यःप्रिसंकान्तिः । शरद्वेमन्तशिशिरेषु क-मादीण्यस्य शैत्येन प्रासादमेः सोमसंकान्तिस्तयोः बिषुवती सूर्यस्य च भेषादिषु संक्रान्तिस्तथा शरीरेऽपि अपा-नशैलस्य जटरामिना प्राप्ते सोमस्याप्तिसंकान्तिः । प्राणीण्यस्य बहिःशत्येन प्रासादमेः सोमसंकान्तिः । सूर्यस्य संकान्तयसु **प्रायुक्ता**स्ता जानातीति तज्हो भवेति पूर्वोक्तधारणार्श्व विधिः । त्रासङ्गिकं तज्ज्ञानस्य प्रसिद्धसंक्रान्तिस्नानदानादिफलेभ्य उत्कृष्ट-तमफलकीर्तनं प्रधानफलेन स्तुतिर्वा ॥ ११८ ॥ उक्ताङ्गज्ञान-मन्य तत्राधिकारिप्रवृत्तये प्ररोचयति—संक्रान्तिमिति । कालं अयनद्वयात्मकं संवत्सरं देहवातः । प्राणापानयोर्द्वादशनाङीशा-सानुसारिगतिमेदाद्वहुवचनम् ।बहिः प्रसिद्धे संवत्सरे स्थितमिवा-न्तरपि योगाभ्यासाययानुभूतं घटादीन प्रसक्षमनुभूतं रफुटं यदि वेत्सि तत्तर्हि अत्र योगिकथासु शोभसे । परं मदुपदिष्टादम्यद-अबुपेतो व्यासङ्गान्तरे प्रवृत्तस्तु न शोभसे इति तदेकप्रवण-

संविद्र्यतया नृत्मकंषद्याति चोदयम् ॥ ३ संध्यास्त्रप्रभाकांभो वृद्धिमभ्यागतः क्षणात्। गालयत्यिखलं साङ्गं देहं हेम यथानलः ॥ ४ जलस्पर्शासहो युक्त्या गलयेत्प्रपदादपि। बाह्य प्यानलस्पर्शात्स्वान्ते वस्त्विदोषतः॥ ५

ताविधिः ॥ १९९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्य-प्रकारो निर्वाणप्रकरणे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ अणुतास्थूछतोपाया ज्ञानसाध्यं च योगिनः । परकायाप्तिभोगाश्च वर्ण्यन्त इह युक्तिभिः ॥ १ ॥

एवमशीषोमात्मकत्वं देहादेः परिज्ञाय धारणात्रयाभ्यासप-रिष्कृतप्राणमनःशरीरस्य सोमसूर्याप्रिसंक्रमादिदर्शिनो योगिनो देहस्याणिमादिसिद्धिप्राप्तिप्रकारान् वक्तुं प्रतिजानीते—अणु-तामिति ॥ १ ॥ तत्रादावणुलप्राप्तये देहस्य विलापनाय ना-भ्युपरिदेशे ज्वलती जाठरानलस्य हत्पद्मनालसुक्ष्मच्छिद्रद्वारा प्रविदय हृद्याकाशं हृत्पद्मकर्णिकायां परमात्मन आसनभूतां शिखां दर्शयति—हदीति । अज्जकोशस्योध्वेकर्णिकोपरि । तथाच तेतिरीयाणामुपनिषदि 'तस्य मध्ये महानप्रिविश्वार्थि-र्विश्वतोमुखः' इति । जाटरानलं प्रम्तुख श्रूयते 'तस्य मध्ये विक्व-शिखा अणीयोध्वा व्यवस्थिता । नीलतोयदमध्यस्थाद्विद्युहेखेव भाखरा । नीवारश्कवत्तन्वी पीता भाखत्यणूपमा । तस्याः शि-खाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः' इति । विद्युष्ठवस्य सांध्य इति विशेषणं पीतादप्रकर्षबोधनार्थम् ॥ २ ॥ स आनलः कणः प्रवर्धनस्य संवित्त्या सर्वे देहं व्याप्य यथा ज्वलति तथा वर्ध-नोपायहानेन । सच संवर्धितो नामिवहेहं दहति किंतु संवि-द्रुपतया अर्कनदुदयं प्रकाशातिशयं याति ॥ ३ ॥ संध्यायां प्रत्यूषे अन्ने आकाशे प्रथमसुदितो योऽर्कस्तदाभः । गालयति गलितं करोति । साङ्गं इस्तपादायङ्गसहितं वेहम् । पार्थिवं गन्ध-भागं काठिन्यं च तदुपादानजलभागे उपसंहरतीखर्यः ॥ ४ ॥ एवं प्रपदात्पादाव्रपर्यन्तमपि गलयेष्ट्रवीकुर्यात् । ततः शोषण-युत्तया बह्यविशेषतः अग्निखभावविशेषाञ्चलस्य स्पर्शे शैत्यं न सहते इति जलस्पर्शासद्यः सोऽनलः स्पर्शात्खीण्यवलाइवलो-पसंहारयुक्तमा जलमपि गलयेत् शोषयेत् । एवंरीखा देहा-

स दारीरद्वयं पश्चाद्विध्रय कापि लीयते। विश्वोभितेन प्राणेन नीहारो वात्यया यथा ॥ आधारनाडीनिर्हाना न्योमस्थैवावशिष्यते । शक्तिः कुण्डलिनी घहेर्धमलेखेव निर्गता ॥ कोडीकृतमनोबुद्धिमयजीवाधहंकृतिः। अन्तःस्फुरचमत्कारा धूमलेखेव नागरी॥ बिसे शैले तृणे मित्ताबुपले दिवि भूतले। सा यथा योज्यते यत्र तेन निर्यात्यलं तथा ॥ संवित्तिः सैव यात्यङ्ग रसाचन्तं यथाक्रमम्। रसेनापूर्णतामेति तन्त्रीभार इवाम्बुना ॥ १० रसापूर्णा यमाकारं भावयत्याद्यु तत्तथा । धत्ते चित्रकृतो बुद्धी रेखा राम यथा कृतिम् ॥ ११ दृढभाववशादन्तरस्थीन्याप्रोति सा ततः। मातृगर्भनिषण्णेषु सुसूक्ष्मेवाङ्करस्थितिः॥ यथामिमतमाकारं प्रमाणं वेत्ति राघव। जीवशक्तिरवाप्रोति सुमेर्वादि तृणादि च ॥ श्रुतं त्वया योगसाध्यमणिमाद्यर्थसाधनम्। शानसाध्यमिदानीं त्वं शृणु श्रवणभूषणम् ॥ १४ एकं चिन्मात्रमस्तीह शुद्धं सौम्यमलक्षितम्। सुक्ष्मात्सुक्ष्मतरं शान्तं न जगन्न जगितन्नया ॥ तिश्वनोत्यात्मनात्मानं संकल्पोन्मुखतां गतम्। यदा तदा जीय इति प्रोक्तमाविस्तां गतम्॥ असत्यमेव संकल्पभ्रमेणेदं रारीरकम्।

द्वाह्यः सन् खान्ते मनोरूपे आतिवाहिकदेहमात्रेऽवतिष्ठते इति शेषः ॥ ५ ॥ एवं पार्थिवमाप्यं च शरीरद्वयं विध्य स्थितः सोऽप्रिर्विक्षोमितेन प्राणेनोपसंहतः कापि 'यदा वा अभिरुद्वायति वायुमेवाप्येति' इति श्रुतेरित्यर्थः ॥ ६ ॥ तदानीं कुण्डलिनीशक्तिरपि मूलाधारस्थसुषुप्रानाडी-हीना तत्संस्कारशाल्यातिवाहिकदेहाकाशेऽवतिष्ठत ---आधारेति । वहेर्निर्गता धूमछेखेव ॥ ७ ॥ तत्र स्थिता च सा कोडीकृता संकलिता मनोबुद्धिमये जीवा-दिघटितलिङ्गशरीरे अहंकृतिर्थया तथाविधा । अन्तः स्फ्रस्त् चित्रकाशचमतकारः खेच्छाविहारशक्तिचमत्कारश्च यस्यास्तथा-विधा सती सूक्ष्मतमे बिसनालन्छिद्रे शैलादौ च यत्रेव प्रविदय निर्गन्तुं युज्यते तत्र प्रविदय निर्यातीत्याह--कोडीकृतेति द्वयोरर्यः ॥ ८ ॥ ९ ॥ एवं सूक्ष्मीभावप्रकारमुक्ला स्थूलीभा-वेनेच्छिकनानाशरीरकल्पनाप्रकारमाइ—रसेनेत्यादिना । सा कुण्डलिनी योगिनो जीवशक्तिर्वही प्रागुपसंहतं जलभागं यदा मुखति तदा रसेन सर्वतः आपूर्णतामेति । यथा तन्त्रीं चर्मरज् विभर्ताति तन्त्रीभारो भन्नारूपश्चर्मविशेषः कूपे क्षिप्तोऽम्बुना आपूर्णतामेति तद्वत् ॥ १० ॥ एवं रसापूर्णा सती प्रागुपसंहतं पार्थिवभागं यमाकारं कर्तुं भावयति तद्योगशक्तया तथा कृता

१ निर्यातीतिकोडीकृतेति द्योरर्थ इत्यपेक्षितम्।

जीवः पश्यति मृदात्मा बालो यक्षमिवोद्धतम् १७ यदा तु ज्ञानदीपेन सम्यगालोक आगतः। संकल्पमोहो जीवस्य क्षीयते दारदभ्रवत्॥ १८ शान्तिमायान्ति देहोऽयं सर्वसंकल्पसंक्षयात्। तदा राघव निःशेषं दीपस्तैलक्षये यथा॥ १९ निद्राव्यपगमे जन्तुर्यथा स्वप्नं न पश्यति । जीवो हि भाविते सत्ये तथा देहं न पर्यति ॥ २० अतस्वे तस्वभावेन जीवो देहावृतः स्थितः। निर्देहो भवति श्रीमान् सुखी तत्त्वकभावनात् २१ अनात्मनि शरीरादावात्मभावनमङ्ग यत्। सूर्याद्यालोकदुर्भेदं हार्दं तद्दारुणं तमः॥ २२ आत्मन्येवात्मभावेन सर्वव्यापि निरञ्जनम्। चिन्मात्रममलोऽसीति शानादित्येन नद्यति ॥ २३ अन्ये च विदितात्मानो भावयन्ति यथैष यत्। तत्त्रथेवाद्य परयन्ति दृढभावनया तया ॥ રક १३ | दढभावानुसंधानाद्विमृढा अपि राघव । विषं नयन्त्यमृतताममृतं विषतामपि॥ २५ पवं यथा यदेवेह भाव्यते रहभावनात्। भूयते हि तदेवाद्य तदित्यालोकितं मुद्दः॥ २६ सत्यभावनहप्रोऽयं देहो देहो भवत्यलम् । दृष्टस्त्वसत्यभावेन व्योमतां याति देहकः॥ २७ अणिमादिपदप्राप्ती शानयुक्तिरिति श्रुता। भवता साधुना राम युक्तिमन्यामिमां ऋणु॥ २८

धत्ते इत्यर्थः ॥ ११ ॥ तत्रास्थ्यादिकल्पनाप्रकारमाह — इढेति । मातृगर्भनिपण्णेषु कललेषु सुसूक्ष्मा वीजशक्तिरस्थिहस्तपादा-दाङ्करस्थितिरिव ॥ १२ ॥ यथाभिमतं खेच्छानुसारि सुमे-र्वादि महत् तणाद्यत्पं वा आकारमवाप्नोति ॥ १३ ॥ योग-स्थृलसृक्षमभावप्राप्तिकमुक्तमुपमहत्य सिद्धा तद्विरुक्षणं तं वक्तुं परमप्रकृतं श्रावयति—श्रुतमिति ॥ १४ ॥ १५ ॥ चिनोत्यध्यासेनोपचिनोति ॥ १६ ॥ जीवः परयति स एवास्य स्थूलभाव इति भावः ॥ १७ ॥ सीक्ष्म्य-प्राप्तिक्रममाह—यदा लिखादिना ॥ १८ ॥ शान्ति बाधम् ॥ १९ ॥ भाविते साक्षात्कृते ॥ २० ॥ २९ ॥ छीकिकसूर्या-द्यालोकेर्दुर्भेदं नाशयितुमशक्यम् ॥ २२ ॥ केन तर्ह्यादित्येन तन्नाशस्तमाह--आत्मन्येवेति ॥ २३ ॥ अस्यां ज्ञानसिद्धा-वपि दढायां जीवन्मुक्तानामैच्छिकं विनोदाय स्थूलसूक्ष्मप्राति-भासिकदेहकल्पनं सिज्यतीत्याह-अन्ये चेति ॥ २४ ॥ बि-मूढा विषकीटादयः । अमृताममृतवदाहारताम् । अमृतं पयोत्रादिविषमिश्रितमिदमिति रढञ्रान्ला विषताम् ॥ २५ ॥ इति ईटरां तदुदाहरणं मुहुर्बहुशो लोके आलोकितमित्यर्थः ॥ २६ ॥ व्योमतां ब्रह्माकाशताम् ॥ २७ ॥ सेवास्य निरति-शया अणिमादिसर्वसिद्धय इत्याशयेनोपसंहरति--अणिमा-दीति । अन्यां परकायं प्रविश्य भोगप्राप्तिरुक्षणाम् ॥ २८ ॥

रेचकाभ्यासयोगेन जीवः कुण्डिल्नीगृहात्। उकृत्य योज्यते यावदामोदः पवनादिव॥ २९ त्यज्यने विगतस्पन्दो देहोऽयं काष्ट्रलोएवत्। देहेऽपि जीवेऽपि मतावासेचक द्वादरः॥ ३० स्थावरे जंगमे वापि यथामिमतयेच्छया। भोकुं तत्संपदं सम्यग्जीवोऽन्तर्विनिवेदयते॥ ३१ इति सिद्धिश्रयं भुक्त्वा स्थितं चेत्तहपुः पुनः। प्रविद्यते स्वमन्यद्वा ययत्तात विरोचते ॥ ३२ देहाद्यस्तथा विम्वान्व्याप्तवत्याखिलानथ । संविदा जगदापूर्य संपूर्ण स्वीयतेऽथवा ॥ ३३ ज्ञात्वा सदाभ्युदितमुन्झितदोषमीशो यद्यद्यथा समभिवाञ्छति चित्प्रकाशः । प्राप्नोति तत्त्वद्यिण तथैव राम सम्यक्पदं विदुरनावरणत्वमेव ॥ ३४

इत्याव श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्माकीये देवमोक्षीपायेषु निर्वाणप्रकरणे अणिमादिलाभयोगोपदेशोनाम बशीतितमः सर्गः॥८२॥

व्यशीतितमः सर्गः ८३

3

4

विसेष्ठ उवाच।
अणिमादिगुणेश्वर्ययुक्ता सा नृपभामिनी।
एवं यभूव चूडाला घनाभ्यासवती सती॥
जगामाकाशमागेण विवेशाम्बुधिकोटरम्।
चचार वसुधापीठं गङ्गवामलशीतला॥
ध्रणमप्यगता भर्नुवेश्वसक्षेतसस्तथा।
सर्वेष्वास राज्येषु लक्ष्मीरिव जगत्सु च॥
आकाशगामिनी द्यामा विद्युत्प्रारम्भभूपणा।
वश्वाम मेत्रमालेव गिरिमाला महीतले॥
काष्ठं तृणोपलं भूतं खं वातमनलं जलम्।
निर्वेद्यमविशत्सर्वं तन्तुर्मुकाफलं यथा॥
मेरोक्परि श्रङ्गाणि लोकपालपुराणि च।
दिख्योमोदग्रन्थाणि विज्ञहार यथासुखम्॥

तत्रादी पृथंदेहपरित्यागोपायमाइ—रेचकेति । उद्धृत्य बहिर्निः-सार्थ परदेहे यावधोज्यते ताबद्यं देहस्खज्यत इति परेणा-न्वयः । यथा बाह्यपवनमंकान्तः पुष्पामोदः पवनादाकृष्य घ्राणे योज्यते तद्वत् ॥ २९ ॥ विस्तस्पन्द उपस्तचेष्टः काष्ट-लोप्रबद्भवति । परेषां देहे जीवे मत्ताविप तत्संपदं भोक्तमयं स्वजीवो विनिवैश्यते । यथा आसेचकः पुरुषः करस्यकुम्भो-दकेन यमेव तर्र लतां वा आसेक्तमिच्छति तमेवासिश्चति तद्व-दत्रापि यथानिमतयेच्छया आदर इख़न्वयः ॥ ३० ॥ ३९॥ इति उक्तरीत्या परदेहे सिद्धिश्रियं भुक्ला स्थितेन योगिना तत् पूर्वतनं स्त्रं वपुः स्थितं चेत्पुनस्तत्प्रविश्यते नोचेदन्यद्वा यद्य-द्याबद्विरोचते तत्ततायत्कालं प्रविश्यत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ अ-थया योगिना अथ परकायभोगानन्तरं स्वान्तःकरणवेषुत्यापा-दनेन जगदापूर्व देहादयः। व्यत्ययेन द्वितीयार्थे प्रथमा । स्थावरजंगमसर्वदेहादिप्रतिबिम्बोपाधीस्तत्प्रतिबिम्बजीवास्तथा तद्विम्बोपाधिसत्वादिगुणांस्तदविच्छन्नचिन्नक्षणान्विम्बांश्वेत्यखि-ठानपि व्याप्तवत्या स्वात्मसंविदा संपूर्ण यथा स्वात्तथा स्थीयत इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ उपसंहरति---क्रात्वेति । ईशो योगैश्वर्यसं-पन्नो जीवचित्प्रकाशः सदाभ्युदितं नित्यस्वप्रकाशमुज्यातसर्वन दोषं स्वतत्त्वं ज्ञाला यदाथा सममिवाञ्छति तत्तदिवरेण

तिर्यग्भूतिपशाचाधैः सहनागामरासुरैः ।
विद्याधराष्सरःसिक्षैत्र्यवहारं चकार सा ॥ ७
यक्षेन तं च भर्तारमात्मक्षानामृतं प्रति ।
वहुशो वोधयामास चूडाळा न विवेद सः ॥ ८
कळाविदग्धा मुग्धा च वालेयं गृहिणी मम ।
इत्यवं केवळं राजा स चूडाळां विवेद ताम् ॥ ९
एतावतापि कालेन तामेवं गुणशालिनीम् ।
यालो विद्यामिय नृपश्च्हाळां न विवेद सः ॥ १०
साप्यळच्धात्मविश्चान्तेस्तां सिद्धिश्चयमात्मनः ।
दर्शयामास नो राज्ञः शुद्धस्येष मखित्रयाम् ॥ ११
श्वीराम उदाच ।
महत्याः सिद्धयोगिन्यास्तस्या अपि शिखिष्वजः ।
यक्षेन प्राप नो बोधं बुध्यतेऽन्यः कथं प्रमो ॥ १२

तथेव प्राप्नोति । एवं सति तत्त्वविदो नान्यसिद्धीर्बहुमन्यन्ते किं-स्रनावरणसभेव निरतिशयानन्दं सम्यक्पदं विदुरित्यर्थः ॥३४॥ इति श्रीयासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे बाशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

चुडाला सिद्धिविभवा अप्रबोधश्च भूपतेः । गुरूपदेशसाफल्ये किराटाल्यानमीर्यते ॥ १ ॥

चूडाला एवं प्रागुक्तरीत्या प्राणधारणादिघनाभ्यासवती सती अणिमादिगुणश्र्यंयुक्ता वभूव ॥१॥ तदंश्यंभेवावयुत्य प्रपश्चयति—जगामेत्यादिना । मोहकालुध्यस्य तापत्रयस्य चोपशमादमला शीतला च ॥२॥ तस्याः कायध्युहादिकल्पनैश्वयंमाह—
क्षणमपीति । अगता अवियुक्ता । राज्येषु राष्ट्रेषु जगत्सु
भुवनेषु चोवास ॥ ३ ॥ विद्युतां प्रारम्भा उन्मेषा इव द्योतमानानि भूषणानि यस्याः ॥ ४ ॥ ५ ॥ दिशां व्योप्तश्चोदरे
यावन्ति भुवनरन्त्राणि प्रसिद्धानि तानि सर्वाणीलर्थः ॥ ६ ॥
सर्वभूतरुतक्षत्या संभाषणादिव्यवहारम् ॥ ७ ॥ बहुशः प्रतिबोधयामासेति व्यवहितेन संबन्धरछान्दसः ॥ ८ ॥ ९ ॥
यथा वेदाध्ययनकाले वालो वेदविद्यां सर्वपुरुषाधीनुकूलार्थप्रकाशनादिगुणशालिनीं न वेद तद्वत् ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्वसिदिशालिन्यासास्याश्चेद्वतृवोधने अशक्तिस्तर्थन्येषां सिदिश्च-

वसिष्ठ उवाच। उपदेशकमो राम व्यवस्थामात्रपाछनम्। क्षप्रेस्तु कारणं शुद्धा शिष्यप्रक्षेत्र राघव ॥ १३ न श्रुतेन न पुण्येन ज्ञायते ज्ञयमात्मनः। जानात्यात्मानमात्मेच सर्पः सर्पपदानिव ॥ કંસ श्रीराम उवाच। पवंस्थिते वाथ मुने कथमेतज्ञगितस्थता। क्रमो गुरूपदेशाख्यः स्वात्मज्ञानस्य कारणम् ॥ १५ यसिष्ठ उवाच। अत्यन्तकृपणः कश्चित्किराटो धनधान्यवान् । अस्ति विन्ध्यादवीकक्षे कुदुम्बी बाह्यणो यथा॥१६ तस्येकदा निपतिता गच्छतो विन्ध्यजङ्गले। एका वराटिका राम तृणजालकसंवृते॥ १७ कार्पण्यात्स प्रयत्नेन सर्व तृणतुपादिकम्। कपर्दकार्थमभितो दुधाव दिवसवयम् ॥ 34 कपर्दकाः स्युभेवता चत्वारोऽष्टां च कालतः। ततः शतं सहस्रं च सहस्रे चेति चेतसा ॥ १० कलयअङ्गले दीनो रात्रिदिवमतन्द्रितः। जनहाससहस्राणि बुबुधे न परं तु सः॥ २० ततो दिनत्रयस्यान्ते तेन तसाश्च जङ्गलात्।

पूर्णेन्द्रबिम्यप्रतिमा लब्धिश्चन्तामणिमेहान्॥ **२१** तं प्राप्य तुष्टहृद्यः समागम्य गृहं सुखम्। प्राप्ताखिलजगद्भतिशान्तसर्वतया स्थितः॥ २२ एवं यथा किराटेन कपदीन्वेपणेन तत्। रत्नं लब्धं जगन्मृत्यमहोरात्रमखेदिना ॥ રરૂ तथा श्रुतोपदेशेन स्वात्मज्ञानमवाप्यते। अन्यदन्विप्यते चान्यहभ्यते हि गुरुक्रमात्॥ 23 ब्रह्म सर्वेन्द्रियातीतं श्रुतादीन्द्रियसंविदः। तेनोपदेशादनघ नात्मतस्वमवाप्यते॥ **સ્પ** गुरूपदेशं च विना नात्मतस्वागमो भवेत्। केन चिन्तामणिर्लब्धः कपर्दान्वेपणं विना ॥ २६ तत्त्वस्यास्य महार्थस्य गुरूपकथनं गतम्। अकारणं कारणतां मणेरिय कपर्दकः ॥ २७ पश्य राघव मायेयं मोहिनी महतामपि। अन्यद्नियप्यते यह्नाद्रन्यदासाद्यते फलम्॥ 24 अन्यत्करोति पुरुषः फलमन्यदेव प्राप्नोति यत्रिप् जगत्स्ववलोक्यते च। तसादनन्तरभवस्य जगन्नमस्य श्रेयोतिवाहनमसङ्गमनिच्छयेव ॥ ર્ષ

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीयं देव० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे किराटोपाख्यानं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

न्यानां गुरूणां विध्यवोधने शक्तिर्दृगपास्तेति रामः शङ्कते-महत्या इति । तस्या अपि यन्नेन उपदेशप्रयासेन ॥ १२ ॥ 'तद्विज्ञानार्थ स गुरुमेवामिगच्छेत्' इत्यादिशास्त्रोक्तमर्थादा व्य-बस्था तन्मात्रपालनं गुरकृत उपदेशक्रमो न लसावनधि-कारिण्यपि ज्ञानं बलाजनियतुं शकोतीत्यर्थः । प्रज्ञाप्रहणं साध-नचतुष्टयसहितप्रज्ञापरम् ॥१३॥ श्रुतेन अनात्मशास्त्रप्रावीण्येन । पुण्येन चित्तशुष्यक्षेन काम्यकमंवर्गण। अथवा श्रुतेन शा-ब्देन परोक्षज्ञानेन । आत्मनस्तत्त्वभूतं ज्ञेयं ब्रह्म न ज्ञायते इतरवस्तुवन्न विषयीकियते । पुण्येनापि स्वर्गभोगवन्न धिनैव विचारं शानं जन्यते किंतु ताभ्यां विचारे जनिते चरमसाक्षा-रकारवृत्त्या रुढेनात्मनेवातमा आत्मानं जानातीत्वर्थः । रार्प-पदानि सर्पेइन । इनार्थे नशन्दः ॥ १४ ॥ तर्हि गुरूपदेशास्त्रः कमः कथं केन द्वारेण ॥ १५ ॥ स्थूलारुन्धतीनिदर्शनन्यायेन शिष्यबुद्धेः प्रत्यवप्रवणताव्यसनापादनद्वारा गुरूपदेशादेर्जानकान रणतेति वक्तं विषष्टः किराटोपास्थानमाह—अव्यन्तेव्यादिना । किराटः खेटवणिक् ॥ १६ ॥ १७ ॥ कार्पण्यात् स्वीयकृपण-तास्त्रभावात् । दुधाव शोधयामास ॥ १८ ॥ तस्यान्वेपणो-योगहेतुमभित्रायमाह—कपर्दका इति । लाभे सति मम हस्ते भवता अनेन कपर्दकेन किंचित्कीला तद्विकयाचलारः कप-र्दकाः स्युस्ततोऽधी ततः शतं ततः सहस्रं ततो द्वे सहस्रे चिति

चेतसा कलयंधिन्तयन्तन् ॥ १९ ॥ अल्पायमप्यारच्धो हहो-योगो मृहजनहासदर्शनादिविद्गरखण्डितश्चन्महाफलो भवतीति सूचयन्नाह--जनेति ॥ २०॥ २१॥ त्राप्ता अखिला जगद्भ-तयः सांगारिकभोगा येन । शान्ताः सर्वे दारिब्रायनर्था यस्य ताहरातया स्थितः ॥ २२ ॥ जगदेव मुल्यं यस्य तथाविधं तद्रलम् ॥ २३ ॥ तथा गुरूपदेशकमादन्यच्छान्दं परोक्षप्राय-मन्त्रिष्यते । अन्यन्निल्यापरीक्षं रुप्यते ॥ २४ ॥ कथम-न्यत्तदाह ---श्रकेति । श्रुतादिशब्दश्रवणतच्छा**न्द**शेधादि । इन्द्रि-यत्रयोज्याः संविद्धित्तवृत्तयः । गुरुषदेशास भाव्दवृत्तय एव जन्यन्ते । तासां मध्ये अत्यन्तस्वच्छतमायां चरमवृत्ते। नित्या-परोक्षत्रहारूपणं तु शिष्यबुद्धिन्यच्छतात्रह्मस्वभावोभयप्रयुक्तभेव नोवदेशस्तरमारणमित्यर्थः॥२५॥तथापि 'आचार्यवान्यरुपो वेद' इत्यादिश्रुतेर्गुरूपदेश आवस्यक इत्याह—मुरूपदेशेति ॥ २६ ॥ अन्वपणदारा कपदंकइव मननदारा गुरुपकथनमकारणमध्यव-इयफलदर्शनात्कारणतां गतमिल्यथैः॥२०॥२८॥ एवमकारणभेव गुरूवदेशाद्यात्मलामस्य कारणं । लब्बे लात्मनि प्रारच्यशेषीप-नीतस्य जगञ्जमस्योपेक्षयेव क्षयः सिध्यतीति न यत्नापेक्षेत्याह— अन्यदिति । त्रिषु जगत्सु यद्यसाद्धेतीरेवमवलोक्यते श्रूयते च तस्मादात्मलाभादनन्तरं भवस्य प्रारव्धशेषोधनीतस्य जगद्ध-मस्य तु असङ्गं यथा स्यात्तथा अनिच्छया उपेक्षणेनातिवा-हनमेव थेय इलायैः॥ २९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ।

चतुरशीतितमः सर्गः ८४

वसिष्ठ उवाच। ततः जिखिध्वजो राजा तत्त्वज्ञानपदं विना। आजगाम परं मोहं तमोऽन्धत्वमिवाप्रजाः॥ दुःखाद्मिदीपितमना मनागपि विभूतिषु। तास्वभीष्टोपनीतासु न रेमेऽग्निदीखास्विव ॥ एकान्तेषु दिगन्तेषु निर्हारेषु गुहासु च। आजगाम रति जन्तुर्मुकेषुर्घ्याधतो यथा॥ राघव त्वभिवादाषाः सान्त्वानुनयबोधनैः। प्रार्थितः कार्यते भृत्यैमेहीपो दिवसक्रियाः॥ नित्यमुद्दामवैराग्यः परिवाडिव शान्तधीः। खिद्यंत च महाभोगान्स भोकुं च श्रियं स्थितः ददायतितरां दानं गोभूमिकनकादिकम्। देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च स्वजनेभ्यश्च मानद् ॥ चचार च तपः कर्तुं कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम्। परिबभ्राम तीर्थानि वनान्यायतनानि च ॥ स तथापि विशोकत्वं न मनागपि लब्धवान् । अनिधानां खनन्भूमि निधानार्थी निधि यथा ॥ ८ रात्रिदिवं महानेष शुप्यत्येव रुशानुना। चिन्तया चिन्तयामास संसारव्याधिमेपजम् ॥ ९ चिन्तापरवद्यो दीनो राज्यं स्वस्य विषोपमम्। महाविभवमप्यप्रे नापद्यत्विद्यया धिया ॥ १० अधैकदैकान्तगतां चूडालामङ्कमागताम्। इदं मधुरया वाचा संमुवाच शिविध्वजः ॥ ११

हिाखिष्वज उवाच । भुक्तं राज्यं चिरं कालं भुका विभवभूमयः । अभुनास्मि विरागेण युक्तो गच्छामि काननम् ॥ १२

> शिखिष्वजस्य वैराग्यं सृडालाश्वासनं वने । निशि चेकस्य निर्याणं मम्ब्रे स्थितिरीर्यते ॥ ९ ॥

तत्त्वज्ञानरूपं पदं विधान्तिस्थानं विना । अप्रजाः नष्टसंतितः पुमान् शोकादितमसा अन्धलमिव ॥ १ ॥ अभीष्टंः
सामन्तादिभिरुपनीतासु रल्लादिविभूतिषु ॥ २ ॥ मुक्त इपुर्यस्मे
तथाविधो देवादविद्धो जन्तुर्मृगादिन्याधनो भीतो यथा एकान्तादिषु रतिमेति तद्वत् ॥ ३ ॥ अशेषा दिवसिकयाः कार्यते
'हकोरन्यतरस्याम्' इत्यणा कर्तुर्णी कर्मवे कर्मणि लः ॥४॥ परिवाडिव स्थितः स महाभोगान् श्रियं च भोक्तं खिवते । चः
पूर्ववाक्यार्थेन सहास्य समुचयार्थः ॥ ५॥ ६॥ देहमनःशोधनं
कर्तु कृच्ल्यान्द्रायणादिकं तपथकार ॥ ७॥ ८ ॥ विन्तया
चिन्तालक्षणेन कृशानुना ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ विभवभूमयो
वैभवपदानि ॥ १२ ॥ कोडीकुर्वन्ति स्लिष्यन्ति ॥ १३ ॥
सुस्वाधिकये हेतुन्दर्शयति—न देशेति ॥ १४ ॥ इदानी बनरा-

न सुखानि न दुःखानि नापदो न च संपदः। क्रोडीकुर्वेन्ति तन्विक्त मुनि वननिवासिनम्॥ न देशभङ्गसंमोहो न संग्रामे जनक्षयः। राज्यादप्यधिकं मन्ये सुखं वननिवासिनाम् ॥ १४ स्तवकस्तनधारिण्यो रक्तपल्लवपाणयः। मञ्जरीजालहारिण्यो लोलगुम्राम्बुदांशुकाः॥ स्यपरागाङ्गरागिण्यः कृतकीसुममण्डनाः। आसेव्य काञ्चनशिलानितम्बतटशोमिताः ॥ १६ तरङ्गमौकिकपोतसरिन्मुकालतावृताः। लतावयस्यावलिता मुग्धमुग्धमृगात्मजाः॥ १७ स्वभायोद्दामसीगन्ध्या वितीर्णफलभोजनाः। षट्रपदश्रेणिनयनाः पुष्पापुरलताङ्गिकाः ॥ १८ आस्त्राच स्यन्दतां याताः शीतलामलगात्रिकाः । रमयन्ति त्वमिव मां वनवीथ्यो वरारने॥ १९ यथा विविक्तमेकान्ते मनो भवति निर्वृतम्। न तथा राशिविम्बेषु न च ब्रह्मेन्द्रसद्मसु॥ २० अस्मिन्सन्मन्त्रणे तन्चि न विघ्नं कर्तुमहस्ति। भर्तुर्विघटयन्तीच्छां न स्वप्नेऽपि कुलक्षियः ॥ २१ चूडालोवाच । प्राप्तकालं कृतं कार्यं राजते नाथ नेतरत्। वसन्ते राजते पुष्पं फलं शरदि राजते ॥ २२ जराजरठदेहानां युक्तो वनसमाश्रयः। न यूनां त्वादशामेव तेनैतन्मे न रोचते ॥ २३ यौवनेन महाराज न यावद्वयमुज्झिताः। पुष्पीचेणेव तरवस्तावच्छोभामहे गृहे ॥ રક पुष्पधाना पुष्पमितजरसा सह काननम्।

निश्वालोपमात्वेन स्वीकृत्य वर्णयति—स्वकेत्यादिपश्वभिः। प्रायेण सर्वत्र रूपकाणि ॥१५॥ कृतानि कुसुमान्येव कौसुमानि मण्डनानि यामिः। आसेव्याः काश्वनशिला एव नितम्बतदात्तैः शोनिताः ॥ १६ ॥ तरङ्गलक्षणमीक्तिकैः प्रोताभिः सरिन्सुकाः लतामिरागृताः । मुग्धामुग्धा मृगा एवात्मजाः शिशवो यासाम् ॥१०॥ क्षुधितेभ्यो वितीणीनि दत्तानि फलभोजनानि यामिः । पुष्परापूर्यन्त इति पुष्पापूरा लता एव बाह्यद्यक्तिनि यासाम् ॥१८॥ सद्धर इव आस्वाद्यः स्वन्दस्तरङ्गप्रसावो यासां तद्भावं याताः । वनवीथ्यो वनराज्यः ॥१९॥२०॥ अस्मिन्वनगमनिवध्यये सन्मश्वणे उत्तमविचारे ॥ २१ ॥ तस्य वराग्यदार्थ्यं जिज्ञासमाना प्राक्तनीं कामासिक्तमेव वयोत्यस्पतावर्णनेनानुमन्यमानेव स्थूणाविचालनन्यायेन विचालयन्ती चूडालोवाच—प्राप्तेत्यादिना ॥२२॥२३॥ गृहे शोभामहे । वसावेति यावत् । 'असादो द्वयोश्व' इति बहुवचनम् ॥ २४ ॥ पुष्पाणि धीवन्ते रंभवन्ते

समं गृहाद्गमिष्यामो हंसा इव सरोवरात्॥ २५ अप्राप्तकालं नृपतेः प्रजापालनमुज्यतः। राजन्यस्यैव रन्ध्रस्य महदेनो भविष्यति॥ २६ अप्राप्तकारिणं भूपं रोधयन्ति च व प्रजाः। रोधयन्ति द्यकार्येभ्यः प्रमुं भृत्याः परस्परम्॥२७ शिखिष्यज उवाच।

अलमुत्पलपत्राक्षि विभेनाभिमतस्य मे ! विद्धि मां गतमेवेतो दूरमेकान्तकाननम् ॥ बाला त्वमनवद्याङ्गि नागन्तव्यं वनं त्वया । पुंसामपि हि मृद्धङ्गि दुर्विगाह्यो वनाश्रयः ॥ समर्था न वनावासे योषितः कठिना अपि । कानने पुष्पमञ्जर्यः सोदुं रास्त्रालिमश्रमाः ॥ भवत्या पालयन्त्येह राज्ये स्थातव्यमुत्तमे । कुदुम्बभारोद्वहनं पत्यो याते व्रतं स्त्रियः ॥ विस्तृ उवाच ।

इत्युक्तवा दियतां राजा तामिन्दुवदनां वशी।
उत्तस्थां स्नातुमस्तिलं दिनकार्यं चकार च ॥ ३२
अथोज्झितप्रजाचेष्टो रिवरस्ताचलं ययो।
शिखिष्वजो वनिषव समस्तजनदुर्गमम् ॥ ३३
संद्वस्य विततं रूपं तमेवानुययौ प्रभा।
नाथं भवननिष्कान्तं चूडालेवानुरागिणी॥ ३४
आययौ यामिनी श्यामा भुवनं मस्प्र्यूसरम्।
धृतव्योमापगं शर्वं संश्लेषा यमुनेव सा॥ ३५
दिश्च संध्योष्ट्रदन्तासु स्थितासु कृतमण्डलम्।

भार्यन्ते यासु लतासु तदीयशिरोगतपुष्पेर्मितया तुलितया जरसा सह पुष्पमितामिर्छतामिमैत्री तत्साम्यद्शायामेव यु-फेति भावः ॥ २५ ॥ रन्ध्रस्य राज्यच्छिरस्य निमित्तमिति शेषः । एनः पापम् ॥ २६ ॥ रोधयन्ति निवारयन्ति ॥२०॥ एवं विचालितोऽप्यविचलवैराग्यः शिखिध्वजस्तामनुनयति--अलमिलादिना ॥ २८ ॥ वनाश्रयो वनप्रदेशो दुःखेन वि-गाह्यः प्रवेष्टुं शक्यः ॥ २९ ॥ कठिनाः कठोराक्न्योऽपि । यथा कानने जाता उपवनजाताभ्यः कठोरा अपि पुष्पमञ्जर्यः शस्त्रालि सोद्रमक्षमास्तद्वदित्यर्थः । 'शक्तालिम्' इति पाठे शक्तानां बल-वतां पक्षिणामालिं पिक्सिमिति व्याख्येयम् ॥ ३० ॥ यत्त्व-योजमप्राप्तकाल नृपतेरिति तस्यापि दोषस्य परिहारस्त-यैव कार्य इत्याशयेनाह—भवत्येति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उपमेययोविंशेषणे उपमानयोरपि योज्ये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ धृता न्योमापगा स्वसस्त्री गङ्गा येन तथाविधं शर्वे संश्विष्यति खयमपि कामादालिङ्गतीति संश्लेषा तथाविधा यमुनेवेत्यु-रप्रेक्षा । 'इयाद्यधा'इति न्डिषः कर्तरि णः ॥ ३५ ॥ तमारुरुक्ष-णवालका अहे यासां तासु दिक्षु यमुनाचरित्रदर्शनादिव ज्यो-रकाहासोदयाद्वितं परितः कृतमण्डलं च यथा स्यात्तथा स्थि-

तमालबालकाङ्कासु ज्योत्स्नाहासोदयाङ्कितम् गच्छतोरपरं पारं दंपत्योमैरवं पदम्। देवोद्यानमयं रन्तुं दिनश्रीदिननाथयोः॥ ३७ आगच्छतोरिदं पारं द्यघतीश्णकरोज्झितम्। निशानिशानायकयोर्दंपत्योर्मेरवं पुनः॥ ३८ तारागणोऽथ दहरो विकीणों व्योमकुट्टिमे। मुक्तो मङ्गललाजानां दिग्वधूभिरिवाञ्जलिः॥ ३९ चन्द्रानना तमः स्यामा श्रान्ता कुसुमहासिनी। यामिनी यौवनं प्राप सरोजमुकुछस्तनी ॥ So कृतसंध्यासमाचारः सहचुडालयेष्ट्या। सुष्वाप शयने भूयो मैनाक इव सागरे॥ ४१ अथार्घरात्रसमये देशे निःशब्दतां गते। घननिद्वाशिलाकोशनिलीने सकले जने॥ 83 स तस्यां संप्रसुप्तायां शयने कोमलांशके। भृशं निद्राविमुढायां भ्रमर्यामिव पङ्कतं ॥ ઇરે तत्याज दयितां सुप्तामङ्काद्वाजा शिखिध्वजः। स्वैरं स्वैरं मुखं राहोदिंशं चान्द्रप्रभामिव ॥ 88 उत्तस्थी शयनाहीनवधूकाधीञ्चलांशकात् । सलक्ष्मीकान्तिलोलोर्मेर्हरिः क्षीरार्णवादिव॥ 84 वीरफ्रमार्थे यामीति तत्रैवानुचर वजन्। योजयित्वा जगामासौ पुरान्निर्गत्य पूर्णधीः ॥ ४६ राज्यलक्ष्मि नमस्तुभ्यमित्युक्त्वा मण्डलाद्गतः। विवेशोग्रामरण्यानीमेको नद इवार्णवम् ॥ 80

तासु । इतःप्रसृति सर्वेषां सप्तम्यन्तानां तारागणो दृहशे इत्यत्र संबन्धः ॥ ३६ ॥ दिनश्रीश्व दिननाथश्व तद्रुपयोर्दपत्यो-र्देवोद्यानप्रचुरं भैरवं मेरसंबन्धि अपरं पारं उत्तरार्धं रन्तुं गच्छतोः सतोः ॥ ३७ ॥ तथा अधैर्घमीपतापभोजकैः पाप-स्तन्निमत्तीक्ष्णकरेश्वण्डातपेश्वीज्ञितं मेरविमदं पारं निधा-निशानायकलक्षणयोर्देपत्योः रन्तुमागच्छतोः सतोः ॥ ३८॥ दिग्वधूमिर्भुक्त उरस्रष्टो मङ्गललाजानामञ्जलिरिव व्योमलक्षणे कुट्टिमे सौधतले तारागणी दहरो ॥ ३९ ॥ खनायान्वेषणेन तदुदयप्रतीक्षया च श्रान्ता कुमदादिकुमुमैर्हासवती । योवनं स्वयोवनफलमिति यावत् ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ संप्रसुप्ता-यां तस्यां चूडालायां गृशं निद्रया विमुदायां सत्याम् ॥ ४३ ॥ यथा राहोर्मुखं चन्द्रमोक्षकाले खेरं खेरं शनैः शनिश्रान्द्रप्रभां प्राची दिशं प्रति त्यजति तद्वत् ॥ ४४ ॥ ठीना वधूर्थस्मिस्त-ह्रीनवधूकं तथाविधमधीश्रलमधेमागी यस्य तथाविधमंश्रकं प्रावरणवस्त्रं यस्मिस्तथाविधाच्छयनात्पर्यद्वात् । उक्ष्म्याः का-न्तिभिः सहिताः सलक्ष्मीकान्त्यो छोलाश्रोमयो यस्मिस्तथावि-धात्क्षीराणेबादिव ॥ ४५ ॥ बीरकमश्चीरदुष्टनिप्रहार्था निशा-चर्या तत्र वीरक्रम एवानुचरमजं योजयित्वा नियुज्य । पूर्णधी-र्निस्पृहः ॥ ४६ ॥ उत्रां भीषणाम् । अरण्यानीं महदरण्यम् ।

१ संख्याभदन्तासु इति पाठः.

घनान्धकारगुल्माढ्या श्रुद्रभूतोघकर्कशा । सारण्यानीनिशा सार्ध समं तेनातिवाहिता ॥ ४८ प्रातः शुन्यामरण्यानीं स नीत्वा विनतं दिनम्। सममर्केण कम्यांचिद्धिशश्राम बनावनी ॥ 46 भानावद्यतां याते तत्र स्नानादिपूर्वेकम्। किंचित्फलादिकं भुक्त्वा तां निनाय तमस्विनीम् ५० पुनः प्रातः पुराष्युश्चर्मण्डलानि निरीन्नदीः। जवादुहङ्खयामास राजा द्वाद्शशर्वरीः॥ ५१ ततो मन्दरशैलस्य तदस्यं जनदुर्गमम्। प्राप काननमत्यन्तदूरस्थजनतापुरम्॥ ५२ रदृत्यणालसलिलवापीयलितपादपम् । शीर्णवेद्यालयक्षातभूतपूर्वद्विजाश्रमम् ॥ ५३ शुद्रप्राणिविनिर्मुक्तसिङ्सेव्यलतालयम् । आपूर्णपादपलतं प्राणवृत्तिकरः फलैः॥ 68 तत्रैकस्मिन्समे शुद्ध स्थले सलिलमालिते। शीतले शाद्वलस्यामे सिग्धे सफलपाद्ये ॥ 46

स मञ्जरीभिवेलीभिः स चकारोटजालयम्। प्रावृद्धकालः सविद्युद्धिर्नीलाभ्रेरिय पञ्जरम् ॥ ५६ मसृणं वेणवं दण्डं फलभोजनभाजनम् । अर्घपात्रं पुष्पभाण्डमक्षमालां कमण्डलुम् ॥ 60 कन्थां शीतापनोदाय वृसीं चैव मृगाजिनम्। आनीयायोजयत्तस्मिन्मठिकामन्दिरे नृपः॥ 46 यरिकचिदन्यद्वा यस्तु योग्यं तापसकर्मणि। तत्तत्र स्थापयामास जगतीव ऋमं विधिः॥ 40 संध्यापूर्वे जपं प्रातः प्रहरे स तदाकरोत्। पुष्पोद्ययं द्वितीये तु स्नानं देवार्चनं नतः ॥ ६० पश्चाहनफलं किचिहनकन्दं विसादि च। भुक्त्वा जप्यपरो भृत्वा निनायको निशां वशी ६१ इति दिवसमखंदं मन्दरोपान्तकच्छे विरचित उटजेऽन्तर्मालवेशो निनाय। नवनुपतिविलासं तं न ससार कं वा स्फ़रित हृदि विवेके राज्यलक्ष्म्यो हरन्ति ६२

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये दे० मोक्षीपायेषु निर्वाणप्रकरणे शिक्षिष्वजप्रप्रच्या नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पश्चाशीतितमः सर्गः ८५

ξ

वसिष्ट उवाच।

पवं शिखिध्वजः पूर्णमिठिकायां वने स्थितः। इदानीं श्रेणु चूडाळा सा किं कृतवती गृहे॥ तत्रार्थरात्रसमये दूरं याते शिखिध्वजे। हरिणी ग्रामसुनेव चूडाला बुतुधे भयात्॥ अपद्यत्पतिनिहींना शयनं शून्यतां गतम्। अभास्करमपूर्णेन्दु शान्तशोभिमवाम्बरम्॥

'हिमारण्ययोमेहन्वे' इत्यानुक् ॥ ४० ॥ घनेरन्धकारसहरेरस्थकारळक्षणेश्र गुल्मेराङ्मा सा अरण्यानी निशा च तेनातिबाहिता उत्तार्णा ॥ ४८ ॥ अक्षण समं विश्वश्रामेत्युत्तया
आसायं जगामेविति गम्यते ॥ ४९ ॥ तमस्विनी रात्रिम्
॥ ५० ॥ ५९ ॥ अत्यन्तदृरस्था जनता जनसमूहाः । जनपदा
इति यावत् । पुराणि च यस्मात् ॥ ५२ ॥ रटन्ति सशब्दं
प्रवहन्ति वंशप्रणाळद्वारा सिळ्छानि याम्यस्थाविधाभियोपीभिवेळिता बळवत्तराः कृताः पादपा यस्मिन् । पूर्वमृता भूतपूर्वा द्विज्ञाश्रमा यम्मिन् ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ शाद्वळ्देरिततृणवत्प्रदेशैः स्यामे । 'नडशादाङ्मळन्' ॥ ५४ ॥ शाद्वळ्देरिततृणवत्प्रदेशैः स्यामे ॥ ५६ ॥ ५० ॥ ५८ ॥ विधिधीता जगति
स्वस्टब्रह्माण्डे कमं व्यवहारसाधनजातिम्य ॥ ५९ ॥ पुष्पाणामुच्यं संचयम् । फळमूळकुशकाष्टादीनामप्युपळक्षणमेतत् ।
ततस्तृतीये इत्यर्थः ॥ ६० ॥ ६१ ॥ उक्तमन्शोपसंहरति—
इताति । माळवेशः विस्थित्वज इति वर्णितप्रकारेण मन्दरोपा-

उत्तस्था किंचिदाम्हानवद्ना खेद्द्याहिनी।
कुलिकेव महावृद्धी निरुत्साहाङ्गपृष्ठवा॥ ६
न प्रसन्ना न विमहा वभूवाकुरुतां गता।
दिनश्रीरिव नीहारधूसरा सा व्यतिष्ठत॥ ५
क्षणं श्रण्योपविष्य चिन्तयामास चिन्तया।
कष्टं राज्यं प्रभुस्त्यक्त्वा वनं यातो गृहादिति॥६
तन्मयेहाद्य किं कार्यं तत्समीपं वजाम्यहम्।
भर्तेव गतिरुद्दिए। विधिना प्रकृता स्त्रियः॥ ७

न्तकच्छे विरचिते उठजं अन्तस्थितः रात्रखेदं दिवसं बहुन् दिवसाश्रिनाय । तं प्रागनुभृतं नवं तृपतिक्षित्रासं न सस्सार । तत्कृतस्तत्राह—कंवेति । विवेके हृदि स्फुरति सति राज्य-लक्ष्म्यः कंवा दरिद्रमपि हरन्ति वाञ्छाजननेन वशीकर्तुं शक्कु-वन्ति । न कंचिदपात्यथः ॥ ६२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामा-यणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुरशीतितमः सगैः ॥८४॥

राज्ञ्या प्रबुद्धया राज्ञोऽन्वेषणं पथि दर्शनम् । भाव्यर्थदर्शनं काले बोधनं चोपवर्षते ॥ १ ॥

उक्तमन्य वश्यमाणकथया संगमयति—एविमिति ॥ १ ॥ यामगुप्तेषेति राजवियोगभीत्या सदा जाप्रस्वपि देवाश्रिद्रया हतेति योतनार्थम् ॥२॥ पत्या निर्होना त्यक्ता ॥३॥ कुत्सितेन क्षारकर्दमादिजलेन सिक्ता । विशेषणं साधारणं योज्यम् ॥४॥ ॥ ५॥ इति चिन्तया वश्यमाणं चिन्तयामासेत्यर्थः ॥ ६ ॥ तदेवाह—तदिति । विधिना शाक्षेण भतेव प्रकृता प्रथमा गतिः शरणं उद्दिष्टा विहिता । असति हि भतेरि पुत्रादयो

इति संचिन्त्य भर्तारमनुगन्तुं समुत्थिता। चुडाला वातरन्ध्रेण निर्गत्याम्बरमाययाँ ॥ षम्रामाम्बरमार्गेण वातस्कन्धेन योगिनी। कुर्वती सिद्धसार्थस्य मुखेनान्येन्द्वविभ्रमम्॥ द्दशोध यथायातं रात्री खङ्गधरं पतिम्। <mark>भ्रमन्तमेकमेकान्ते वे</mark>तालसमयादितम्॥ तादृशं पतिमालोका स्थित्वा गगनकोटरे । भविष्यचिन्तयामास सबै भर्तुरखण्डितम् ॥ यथा येन यदा यत्र यात्रत्काय यथोदयम्। यथा च निर्वृतिः स्फारा गन्तव्या तेन राघव अवद्दयं भवितव्यं तद्धर्तुर्देष्ट्रा पुरः स्थितम् । तदेव संवादयिनुं गमनात्सा न्यवनंत ॥ आस्तां समाद्य गमनं काल्डे नातिचिरेण हि । मयास्य पार्श्वं गन्तव्यं नियतेरेप निश्चयः॥ इति संचिन्त्य चूडाला प्रविद्यान्तःपुरं पुनः। सुष्वाप शयने शंभोः शिरसीवन्द्वी कला ॥ केनचित्कारणेनासी गतः संप्रति भूपतिः । इति पीरं जनं सर्वमाश्वास्यातिष्टदङ्गना ॥ राज्यं ररक्ष भर्तुस्तत्क्रमेण समदर्शनात्। यथा कालेन केदारं पकं कलमगोपिका ॥ तयोस्तदाबहत्कालो देपत्योः स्थितयोस्तथा । अदृष्टान्योन्यमुखयो राज्यकाननपालयोः ॥ जगामाथ दिनं पश्लो मासोऽथ ऋतुवत्सरः । शिखिध्वजस्य विपिने चुडालायाः स्त्रमन्दिरे १९ बहुनात्र किमुक्तेन चर्पाण्यप्रदिशाङ्गना । चुडालोवास सदने वनगुच्छे शिखिध्वजः॥ २० अथ यातेषु बहुपु वर्षेषु जरसा वृते । शिक्षिभ्वजे महाशैस्तरकोटरवासिनि॥ २१

गतिरिति भावः ॥ ७ ॥ वातरन्त्रं वातायनं तेन ॥ ८ ॥ अन्येन्द्रविश्रमं द्वितीयचन्द्रश्लान्तिम् ॥ ९ ॥ वेतास्योग्यं समये निशि उदितं प्रकाशमानम् ॥ १० ॥ भर्तुर्भावण्यद्भाविषयद्भि जातम् ॥ १९ ॥ भविष्यदेवप्रकारनिमित्तकालदेशिकयेयत्ताभ्यु-द्यनिःश्रेयसपर्यन्तैर्विभज्य चिन्तितवर्तासाह—यथेति रूकारा निश्चित्रभूमानन्द्विश्लान्तः ॥ १२ ॥ पुरः स्थितमिव योगव-स्वद्यास्तं हृष्ट्या संवाद्यितुम् । तदनुरूपमाचरितुमिति यावत् ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ कल्पमोपिका शालिपालिका ॥ १० ॥ अषदत् अगमत् ॥ १८ ॥ कथमगमत्तदाह—जगमिति । ऋतुसहितो वत्सरः ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ कथान्याणां रागादिवासनानां पाकमालक्ष्य तत्तावरकालं तया पालितं प्रतीक्षितमिति यावत् । तदेस्यादिरकानुवादो वक्ष्यमाणार्थः ॥ २२ ॥ आत्मकार्यस्य स्वभर्तृबोधस्य तथा वक्ष्यमाणात्रकारेण

भर्तुः कपायपाकं तदालक्ष्य पालितं चिरात्। ८ : तदा तस्याथ थातेषु वर्षेषु जरसा वेने ॥ २२ तदा तस्यात्मकार्यस्य भवितव्यतया तथा। ९ । सतुः समीपगमने मम कालोऽयमित्यथ ॥ २३ संचिन्त्य मन्दरोपान्तं गन्तुं तुद्धि चकार सा। १० | चचारान्तःपुराद्वात्री ततार नभसः पथम् ॥ રેઇ । जगाम वातस्कन्धेन गच्छन्ती खे दद्शे सा। कल्पवृक्षांशुकच्छन्नरत्नस्तवकभूषिताः ॥ ₹'• नन्दनोद्याननिलया रक्ताः सिद्धाभिसारिकाः । १२ | परामृष्टेन्दुशकळान्प्राहेयकणवर्षिणः ॥ રંદ सिद्धोत्तमात्तसागनध्यानस्पर्धयामास मास्तान् । चन्द्रविम्वासृताम्भोधेर्महार्वाचिपरम्पराम् ॥ अपर्यक्षिर्मेलज्योन्सामम्बरान्तरतां गता। मेघान्तरेण गच्छन्ती संघलद्वाश्च विद्यतः॥ 36 अवियुक्ताः स्वभवो सा भूयो भूयो व्यहोकयत् । उवाच चात्मनवाहो यावजीवं शरीरिणाम्॥ न स्वभावः शमं याति ममाप्युत्कण्ठितं मनः। १६ | कदा सुगेन्द्रस्कन्धं तं प्रणयप्रवर्णं पुनः ॥ ३० पश्यामि कान्तमित्युक्तं ममाप्युत्कण्ठते मनः। मजरीजालबलिनास्तरं बहुयः स्वकं पतिम्॥ न मुञ्जन्ति क्षणमिति ममाप्यत्कण्डते मनः। यथयमत्रजा कान्तमेति सिद्धाभिसारिका॥ ३२ नथा कदाहमेप्यामि ममापीति मनः स्थितम् । इमे मन्दाश्च मस्त एते च राशिनः कराः॥ वनराजय एताश्च ममाप्युत्कण्ठयन्त्यहो। हे चित्तक्ष मुधेवान्तः कि त्वं ताण्डवितं स्थितम् ३४ सा व्योमनिर्मला साधो क ते याता विवेकिता। अथवा चित्त भतीरं स्वं प्रत्युत्कण्ठसे सखे॥

स्वीपदेशेनेव भवितव्यतया ॥ २३ ॥ ततार पुष्ठवे ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ रक्ताः कान्तेष्वनुरक्ताः । परामृष्टानीन्दोः शकलानि कला येः ॥ २६ ॥ सिद्धोक्तमेभ्यः आत्तानि गृहीतानि मन्दारमालाहरिचन्दनकस्तूर्यदिसीमन्ध्यानि यस्त्रयाविधानमाहतान् स्पर्शयामास पर्थशे । चन्द्रविम्बलक्षणस्यामृताम्भोषेमीदावीन्विपरंपराभृतां निर्मलज्योत्क्राम् ॥ २७ ॥ अम्बरस्य आन्तरतामन्तर्वितितां गता सनी दद्शे ॥ २८ ॥ स्वभन्नी भेषेन अवियुक्ता विद्युतो व्यलोक्यत् । आत्मना मनसेवोवाच । किमुवाच तदाह—अहो इस्वादिना ॥ २९ ॥ ३० ॥ मम मनः एकं विवेक्वीध्यमानमपि इति उत्कण्टते ॥ ३० ॥ अम्र श्रेष्ठे देवयोनी जाता अप्रजा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अञ्च जड । मुषा व्यर्थमेव ताण्डवितं सिक्त स्थितमसीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ अथवा नायं दोष इति शेषः । कृतस्तन्नाह—भर्तारमिति ॥ ३५ ॥

जरसा वृते इति पाठः । वने इति पाठे जरसोपलक्षितस्येति ।

वृते इति पाठे शिखिध्यजे जरसा वृतेसतीति चान्वयः.

तिष्ठोत्कण्ठाभिषलितं किं समुत्कण्डितेन मे । किं व्योत्कण्ठसे वामे भर्ता यातो जरां भवेत ३६ तपस्वी कृशगात्रश्च भवेत्रिर्धासनस्तथा। मनोराज्याद्यभोगेभ्यो मन्येऽस्यामुलतां गतम् ३७ 🗄 वासनालतिका प्रावृण्नदी नद्दगता यथा। पकान्तरत पकात्मा नीरसः शान्तवासनः ॥ मन्ये भवति मे भर्ता शुष्कवृक्षसमस्थितिः। तथापि विस्तकोत्कण्ठा भवतोत्कण्ठयान्वितम् ३९ , मतिमुद्दोध्य योगेन श्रेषयिष्याम्यहं पतिम्। प्रमृष्टकलनं भर्तुः समीकृत्य मनो मुनैः॥ 80 राज्य एव नियोध्यामि निवत्स्यावः सुखं चिरम्। अहो जु चिरकालेन मनोरथमिमं शुभम्॥ अहमासाव्यिष्यामि यद्भर्ता शमचिन्तितः। समग्रानन्दवृन्दानामेतदेवोपरि स्थितम्॥ यत्समानमनोवृत्तिसङ्गमास्वादने सुखम्। इति चिन्तयती व्योद्मा चूडालोलङ्कय पर्वतान् ४३ देशानब्दान्दिगन्ताश्च प्राप मन्दरकन्दरम्। अदृद्येव नभःस्थैष प्रविवेश वनान्तरम् ॥ કક वात्येच पादपलता स्पन्दवेद्यगमागमा । वनैकदेशे कस्मिश्चित्कृतपर्णीटजे पतिम् ॥ हृष्ट्रा योगेन बुबुधे देहान्तरिमवास्थितम्। हारकेयूरकटककुण्डलादिविभूषितः॥ ટ્રક अभवन्मेरुकान्तिर्यस्तमेयात्र दद्शे सा । कुशाङ्कं कृष्णवर्णे च जीर्णपर्णमिव स्थितम् ॥ 80 कज्जलाम्ब्रभरस्नातं भृक्षीशमिव निस्पृहम्। चीराम्बरधरं शान्तमेकािकनमवस्थितम्॥ 36

इदानीं देहं प्रत्याह-किमिति । वामे हे स्त्रीशरीर, यदालिङ्गना-वर्थ समुत्कण्ठसे स ते भर्ता जरां यातस्खित्ररपेक्ष एव भवेत् संभाव्यत इत्यर्थः ॥३६॥ राज्याबीनामभोगेभ्यः अभोगार्थं अस्य मनः अमूलतां निर्मूलतां गतं मन्ये संभावये ॥ ३७ ॥ तथा अस्य बासनालतिका यथा प्रावृण्नदी क्षुद्रा महाननगता सती न पृथगविष्यित तथा संपन्नेति शेषः । एकान्ते रतः आसक्तः अतएव एकात्मा । नीरसो निरिच्छः ॥ ३८ ॥ एवं नैरा-स्यप्रदर्शनाभिरुत्साहं मनः पुनरुजीवयन्तीवाह-तथापीति । अस्त्वेवंविधः सः तथापि हे चित्त, का तवीत्कण्ठा। अहं योगेन वस्यमाणोपायेन भर्तुर्मतिमुद्बोध्य तत्त्वशीकृत्य प्रारब्धशेषभोगो-त्कण्ठया युतं पति भवता सह श्हेषयिष्यामि न लयोत्कण्ठा का-र्वेति परेणान्वयः ॥ ३९ ॥ तदेव सप्टमाह—प्रमृष्टेति ॥४०॥ ॥ ४१ ॥ यद्यसाद्धेतोर्भर्ता तत्त्वबोधान्मया समं तुल्यहूपम-न्तर्बाह्यार्थिचिन्तितं यस्य तथाविधः संपत्स्यत इति शेषः। तदेव प्रशंसन्साह—सममेति ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अस्दान्मे-षान् । बनान्तरं वनमध्यम् ॥ ४४ ॥ पादपानां छतानां च सन्देन वेदात्रतुमेयी गमागमी यस्याः ॥ ४५ ॥ योगेन ।

स्यलीनिषण्णं पुष्पाणि प्रथयन्तं जटाङ्कितम् । तमालोक्यानबद्याङ्गी चुडाला पीवरस्तनी॥ किचिजातविषादैवमुबाचात्मनि चेतसा। अहो ज विषमं मौर्क्य तदनात्मक्षतात्मकम् ॥ एवंविधाः समायान्ति दशा मौर्ख्यप्रसादतः। अयं स राजा लक्ष्मीवान्यतो मेऽतित्रियः पतिः ५१ हृदि मोहघनश्चण्णामिमामभ्यागतो द्द्याम् । तद्वस्यमिहाधैव नाथं विदितवेद्यताम् ॥ ५२ नयाम्यत्र न संदेहो भोगमोक्षश्रियं तथा। इवं रूपं परित्यज्य रूपेणान्येन केनचित् ॥ ५३ सकाशमस्य गच्छामि बोधं दातुमनुत्तमम्। बालेयं मम कान्तेति मदुक्तं न करोत्यलम् ॥ વક तसात्तापसरूपेण बोधयामि पति भ्रणात्। भर्ता कषायपाकेन परिपक्तमतिः स्थितः॥ 44 चेतस्यस्याद्य विमले स्वं तत्त्वं प्रतिबिम्बति । इति संचिन्त्य चूडाला बभूव द्विजदारकः॥ બદ ईषद्रयानाद्वतान्यत्वं क्षणादम्बुतरङ्गवत्। पपात विपिने तिसनिव्यजपुत्रकरूपिणी ॥ ५७ मर्तुरध्याजगामाप्रं मन्दस्मितलसन्सुखी। ददर्श द्विजपुत्रं तं पुरो यातं शिखिध्यजः॥ ५८ वनान्तरादुपायातं तपोमूर्तिमिवास्थितम्। द्रवत्कनकगौराङ्गं मुक्ताहारविभूषितम्॥ 49 शुक्कयक्षोपवीताङ्गं शुक्काम्बरयुगानृतम् । कमण्डलुधरं कान्तं पुरो यातं शिखिध्वजः॥ ६० व्याप्तप्रकोष्टद्विगुणेनाक्षसूत्रेण चारुणा । भूमाचलग्रगात्रेण किप्कुमात्रेण च स्थितम्॥ ६१

समाहितचित्तेनेति यावत् । यो हारकेयूरादिभृषितः सन् मेरु-कान्तिरभवसमेव अत्र मन्दरोटजे कृशाङ्गलादिलक्षणं ददर्शेति परेण संबन्धः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ अङ्गीशं प्रसिद्धं रुद्रद्वारपाल-मिव ॥ ४८ ॥ देवातिथिसमर्चनाय पुष्पाणि मालां प्रथयन्तम् । जटाभिरक्षितं चिह्नितम् ॥ ४९ ॥ अनात्मन्नता अज्ञानं तदा-त्मकम् ॥ ५० ॥ यतो यस्मादेतोर्भे अतिप्रियः पतिर्मोहघनेन हृदि क्षुणामभिहतामिमां दशामभ्यागतस्तत्तसादेतोरिहास्मि-भुटजे अधैव अवर्यं नायं पतिं विदितवेदातां तथा भोगमो-क्षश्रियं नयामि प्रापयामीति परेणान्वयः ॥५९॥५२॥५३॥ किमर्थमिदं रूपं परित्याज्यं तत्राहु—बालेति ॥ ५४ ॥ प्रागेव कुतस्तपितविषेण स न बोधितस्तत्राह---भर्तेति ॥ ५५ ॥ द्विजदारको ब्राह्मणपुत्रः ॥ ५६ ॥ कथं बभूव तदाह—ईष-दिति । प्रायुक्तामीयोमधारणान्वितादीषज्यानात । अन्यत्वं पुंस्लम् ॥ ५० ॥ अत्रं पुरोदेशम् ॥ ५८ ॥ मूर्तिमास्थितं तप इव प्रवत्कनकमिव गौराणि पीतस्वच्छान्यक्वानि यस्य ॥ ५९ ॥ ॥ ६० ॥ व्याप्तः प्रकोष्ठान्मणिबन्धाद्विगुणो बहिर्देशो येन । अतएब किष्कुमात्रेण हस्तमात्रेण द्वेगुण्ये वितस्तिमात्रेण वा ६२

६३

६४

६५

६६

6/9

६८

कुन्तल्यातमुर्थानं सालिमालिमाम्युजम् ।
भासयन्तं प्रदेशं तं शारीरदीतिमण्डलेः ॥
कुण्डलाभूषितमुखं नयमकिमियोदितम् ।
दिखासंप्रोतमन्दारं शृद्धस्येन्दुमियायलम् ॥
कान्तोपशान्तवपुषम् जितं विजितेन्द्रियम् ।
दिमाममस्मतिलकं भूषितालोकसुन्दरम् ॥
मेरुद्देमतटीलीनपूर्णेन्दुमिय यञ्चलम् ।
तमालोक्य द्विजसुतं समुत्तस्यो शिखिष्यजः
देवपुत्रागमधिया संपरित्यक्तपादुकः ।
देवपुत्र नमस्कार इदमासनमास्यताम् ॥
इत्यत्य द्रशयामास पाणिना पत्रविष्टरम् ।
देवी य द्विजपुत्रस्य पुष्पमुद्धि करोत्करे ॥
चन्द्रः कुमुदलण्डस्य प्रालेयमिय पलुत्रे ।
दे राजवे नमस्तुभ्यमिति द्विजसुतोऽयदत् ॥
गृदीत्या कुसुमान्यसाद्विदेश पत्रविष्टरे ।

शिखिध्यज उवाच।

देवपुत्र महाभाग कुत आगमनं कृतम्।
दिवसः सफलो मन्ये यस्वामद्यास्मि दृष्यान् ६९
इदमर्घ्यमिदं पाद्यं पुष्पाणीमानि मानद्।
इमा प्रम्थिता माला गृह्यन्तां भद्रमस्तु ते॥ ७०

षसिष्ठ उवाच । इत्युक्त्वा पाद्यमर्घ्ये च मालां पुष्पाणि चानव । शिखिष्वजस्तदिष्टाये ददी देव्ये यथाखिलम् ७१

चुडालोघाच ।

खुबङ्गनि परिभ्रान्तो भूतलायतनान्यहम् । त्वत्तः पूजा यथा प्राप्ता मयेयं न तथान्यतः ॥ ७२ पेदालेनानुरूपेण प्रश्चयेणामुनानघ ।

अतएवानितिदेर्धां द्भूमावलमगात्रेणाऽक्षसूत्रेणाक्षमालया स्थितमुपलितम् ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ १८ इस्थः १८ इसेलमप्राय इन्दुयेख तथाविधमचलं पर्वतिमिव स्थितम् ॥ ६३ ॥ ६४ ॥
मेक्ट्रेमतटीपदेन तत्रस्थो गङ्गाप्रवाहो लक्ष्यते । तत्र लीनः
प्रतिविम्बितः पूर्णेन्दुस्तिमित चयलम् ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ पत्रनिर्मितं विष्टरमासनम् । करोत्करे करतले ॥ ६० ॥ कुमुदखण्डस्य पत्नवे प्रालेखं हिमकणजालमिव ॥ ६० ॥ यद्यस्मात्त्वामद्यास्मिन्दिवसे दृष्टवानस्मि ॥ ६९ ॥ ०० ॥ अखिलं कास्नोकमनिकम्येति यथाखिलम् । पदार्थानितृत्तौ यथाधेऽव्ययीभावः ॥ ०१ ॥ न तयान्यतः प्राप्तेस्तृष्ठ्यते ॥ ०२ ॥
प्रश्रयेण विनयेन । एतेर्हि लक्षणम् जाक्षरजीविनो भवन्तीति
भावः ॥ ०३ ॥ भारात् दूरे उन्मुक्ताः कल्पनाः फलसंकल्पा
मस्मिन् । अत एषोदारं निर्वाणार्थं तपः संभतवान् संचितवानिर्वति । किषिति दृष्टपश्चे निपातः ॥ ०४ ॥ शान्दानामकोधनानां यतिवनस्थानां वतमूत्तिष्टं महावननिषेवणसिधारा-

मन्येऽहं नूनमत्यन्तिचांजीची भविष्यसि॥ ७३ शान्तेन मनसोदारमारादुन्मुक्तकरपनम्। निर्वाणार्थे तपः साधो कवित्संभृतवानसि॥ ७४ असिधारासमं सौम्य शान्तवतमिदं तव। स्फीतं यद्राज्यमुत्स्ज्य महायननिवेषणम्॥ ७५

शिकिध्वज उवाच।

जानासि भगधन्सर्वे देवस्त्वं कोऽत्र विस्मयः। धियैव छोकोत्तरया श्रायसे चिह्नकपया॥ ७६ पतान्यज्ञानि ते चन्द्राद्धितानीति मे मतिः। अथवा किं समालोकादमृतेनेच सिश्वसि॥ 60 अस्ति मे व्यिता कान्ता पाति मद्राज्यमद्य तत्। तवेष तस्या दशानि तान्यङ्गानीह सुन्दर॥ 90 उपशान्तं च कान्तं च चपुरापादमस्तकम्। श्वनं श्रुम्राम्बुवेनेच पुष्पेणाच्छादयामुना ॥ ७९ निष्कलक्षेत्रुसंकाशमङ्गमादित्यतेजसा । मन्ये ते ग्लानिमायाति सुमनःपत्रपेलवम् ॥ 60 देवार्चनायोपचितमिदमित्थं सितं मया। अङ्ग त्ववङ्गसङ्गेन तत्प्रयातु इतार्थताम् ॥ ८१ जीबितं याति साफल्यं स्वमभ्यागतपूजया। देवादप्यधिकं पूज्यः सतामभ्यागतो जनः॥ ८२ तत्कस्यं कस्य पुत्रस्त्यं किमायातोऽस्यनुप्रहात्। पतन्मे संशयं क्रिन्धि विमलेन्द्रसमानन ॥ ८३

ब्राह्मण उवाच।

राजन्मे भूणु वश्यामि यथापृष्टमखण्डितम्। को नाम परिपृच्छन्तं विनीतं वश्चयेत्पुमान्॥ ८४ अस्त्यसिञ्जगतीकोशे शुद्धात्मा नारदो मुनिः। पुण्यलस्म्या मुखे कान्ते कर्पूरतिलकोपमः॥ ८५

समं कूरमत्यन्तावधानिर्वाद्यं चेत्यर्थः ॥ ०५ ॥ राज्यत्यागनिर्वाणार्थंतपथरणयोरहातयोः प्रशंसनायोगासस्य तपसा सर्वहतां संभावयन् राजा द्विजसुतं रूपादिसंपदा प्रशंसति—जानासीत्यादिना । हायसे महाप्रभावमिति शेषः ॥ ०६ ॥
अथवा किंगहुना सम्यगालोकाद्वीक्षणाईहकान्तित्यवामृतेन तिह्यसीव ॥ ७० ॥ ७८ ॥ श्रृष्ट्रं मेहशिखरम् । असुना महत्तमालारूपेण ॥ ०९ ॥ सुमनसां पुष्पाणां पत्रं दलमिव पेलवं
सुकुमारं ते अङ्गम् ॥ ८० ॥ इदं पुष्पजातमित्यं दश्यमानवेविश्वेण सितं प्रथितम् । 'विश्व बन्धने' कमैणि कः । अङ्गिति
संबोधने । तत्तस्माहेवस्य तवार्चनादित्यर्थः ॥ ८९ ॥ देवार्चनादप्यतिथिपूजनमधिकमिति तदेकमि जन्मसाफ्यहेतुः,
तत्युजने तु मे द्वयमि युगपरसंपन्नमिति स्रतरां जीवितसाफस्वमित्याद्यमाह—जीवितमिति ॥ ८२ ॥ तत्तसान्मान्यद्वप्युजाप्रहणादनन्तरमिति शेषः ॥ ८३ ॥ पृष्टमनतिकम्य यथाप्टहम् ॥ ८४ ॥ पुष्पकक्षम्याः कान्ते रम्ये मुखे सुरमितरं

स कदाचित्मुनिर्देवो गुहायां ध्यानमास्थितः। तत्र हेमतटे गङ्गा वहत्युरुतरङ्गिणी ॥ ८६ मेरलक्ष्म्या स्फ्ररद्वपा भानित हारलता यथा। एकदा नारद्युनिध्यानान्ते स सरिश्तटे ॥ 29 ध्वनद्वलयमश्रोषीहीलाकलकलारयम् । किमेतदित्यसा किंचिजातप्रायकुत्रहलः॥ 25 हेलयालोकयश्रद्यामपश्यल्ललनागणम् । रम्भातिलोत्तमाप्रायं निर्यातं जललीलया ॥ ८९ क्रीडन्तं त्यकवसनं देशे पुरुषवर्जिते। काञ्चनाम्भोजमुकुलसंकाद्यैः स्तनमण्डलैः॥ ९० परिवेहितमन्योन्यं फलकान्तं हुमं यथा। ब्रुतहेमरसापूरनिर्भराभोगभासुरैः ॥ ९१ कुर्वन्तमुरुभिः काममन्दिरस्तम्भसंचयम्। निर्मलीकृतचन्द्रेण व्याप्तां व्योमविलासिनीम् ९२ लावण्यरसपूरेण तर्जयन्तमिवापगाम् । प्राकारैरमरोद्यानरथचक्रमनोभुवः॥ ९३ उत्पथार्पितगङ्गाम्बनितम्बतदसेत्रभिः। सर्वत्र दृएसर्वाङ्गं विश्वरूपमिव स्थितम् ॥ ९४

यत्कर्पूरतिङकं तदुपमा यस्य । अनेन नारदो गौराङ्ग इति गम्यते ॥ ८५ ॥ गुहायां मेरोरिति शेषः ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ध्वनन्ति वलयानि यस्मिस्तथाविधं लीलाकलकलारवं जलकी-हाकोलाहलध्वनिम् । संभावनाप्राचुर्याद्यर्थः प्रायशब्दोऽप्यद-न्तोस्ति । 'तदस्मित्रनं प्राये संज्ञायाम्' 'प्रायभवः' 'रूपात्प्रा-या'दिति पाणिनिजैमिनिप्रभृतिप्रयोगात् ॥ ८८ ॥ निर्यातं जलात्रिगतम् । जलजीलया जलसेचनादिकीहया ॥ ८९ ॥ ॥ ९० ॥ अन्योन्यं परिवेष्ठितं वेष्टितम् । संघद्दितमिति यावत् । इतस्य हेमरसस्य य आपूरिनर्भरः प्रवाहातिशयस्तादशेन आभो-गेन कान्तिसंस्थानेन भार्युरेरूक्तिः खात्मकस्य काममन्दिरस्य स्तम्भसंचयं कुवंन्तमिति परेणान्वयः ॥ ९१ ॥ खजलनैर्म-स्यान्निमंठीकृतेन प्रतिबिम्बचन्द्रेण सर्वतो व्याप्तां व्योमविलासि-नीमापगां मन्दाकिनीं देहलावण्यरसप्रवाहेण तर्जयन्तं न्यरभा-बयन्तिमिवेत्युरप्रेक्षा ॥ ९२ ॥ मनोभुवः कामस्य अमरोद्याने नन्दनवने क्रीडायां रथनकभूतैनितम्बतटलक्षणः सेतुमिनिरो-धादुत्वये अपितं गङ्गाम्बु येन ॥ ९३ ॥ यतः खच्छतमला-दन्योन्यादर्शतां गतं अतः सर्वतः प्रतिविभिवतसर्वाङ्गं सर्वत्र दृष्टसर्वा कं सत् 'सर्नतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम्' इति प्रसिद्धकालात्मनः कल्पतरोर्भगवतः सकाशादुत्थितं विश्व-रूममिव स्थितमित्यर्थः ॥ ९४ ॥ विश्वरूपं दर्शयितुर्भगवतः कालात्मकत्वं च विश्वह्मभीतेनार्जुनेन 'को भवानुग्रह्म' इति प्रप्रेन भगवता 'कालोऽस्मि लोकसयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तु-मिह प्रशृतः' इति खनचनेनेव दर्शितम् । अतस्तमेव काळा-रमानं सर्वकल्पनाफलदातृखात्कल्पत्कत्वेन क्पयति—वर्षनिः

प्रतिबिम्बितसर्वाङ्गमन्योन्यादर्शतां गतम्। कालकस्पतरोर्घर्षविटपात्पश्चपह्नवात्॥ ९५ विविधर्तुलताजालादिनश्रीकलिकाकुलात् । आलोकपुष्परजसो जाताद्वगनकानने ॥ ९६ स्फ़रजालखगप्रोतात्सप्ताब्ध्येकालबाडकात्। स्तनस्तवकवृत्देषु स्पर्धयातिरसान्वितम् ॥ 20 उद्धत्योद्धत्य संपूर्णदिलताम्भोजपल्लवम्। आलोलालककेशाक्षितारकादिमध्वतम्॥ 96 अमृतापद्विघाताय कोशसंचयकारिभिः। दुष्पापे भूतसंघानां विकसत्कनकाम्बुजे ॥ ९९ पिमनीपल्लवाच्छन्ने गुप्ते मेरोर्गुहान्तरे। शीतले स्वर्धुनीतीरे तोयोन्मृष्टमले सुरै:॥ १०० चन्द्रबिम्बकलापूरमेकत्रैवोपसंद्रतम्। स्त्रणमालोक्य तत्कान्तं सहसैव मनो मुनेः॥ १०१ अनाश्रितविवेकांशं वभूवानन्दितं स्फुरत्। आनन्दवित चित्ते धुव्धे प्राणानिले स्थिते॥ १०२ बभूव तस्य दृष्टस्य मदनस्वलितं तदा । फलं रसापूर्णमिव श्रीभाग्त इव तोयदः॥ १०३

टपादिखादिना । वर्षाणि प्रभवादयः षष्टिसंवत्सरा विटपाः स्कन्धा यस्य । एतेनायनद्वयस्य मासानां च शाखालमर्था-दुक्तमेव ॥ ९५ ॥ विविधा मिन्नलक्षणा ऋतवो लताजालानि अवान्तरशाखासमूहा यस्य । गगनमव्यक्ताकाशस्त्रव्रक्षणे का-नने नन्दने जातात् ॥ ९६ ॥ स्फुरद्भिज्ञलमय बन्द्रपरिणामश-रीरलाज्जळखगैदेंवैः प्रोताधाप्तात् । सप्ताप्यब्धय एकमालवाड-कमालवालकं डलयोरमेदादावालं यस्य तथाविधात्कालकल्पत-रोविंब्लोरुद्भतं विश्वह्यमिव स्थितमिति पूर्वत्रान्वयः । पुनर्छ-लनागणमेव विशिनष्टि—स्तनेति । परसरस्तनस्तबकवृत्देषु अम्भोजमुकुलेषु च सौन्दर्यसाम्यदर्शनप्रयुक्तसर्थया नालादु-द्धारोद्धारफालनात्संपूर्णं दलितान्यम्भोजमुकुलपह्नवानि ये-नेति परेणान्वयः ॥ ५७ ॥ अर्थान्मुखपद्मेषु आलोला अलका-खूर्णकुन्तलाः केशा दीर्घकुन्तला अक्षितारका आदिपदाह्राला-. टिकाखचितगारुत्मतेन्द्रनीलमणयश्च मधुवता भ्रमरा यस्मिन् ॥ ९८ ॥ पुनः कीदशं ठलनागणं तदाह—अमृतेलादिना । अमृतकलाकोशसंप्रहकारिभिः गुरैर्देवैरमृतस्य राहुगरुडाद्यपहु-र्तृप्रयुक्तानामापदां विघाताय गुप्ते एकान्तभूते मेरोर्गुहान्तरे एकत्रीपसंहतं चन्द्रविम्बकलापूरमिव स्थितम् । तत्र गुप्ते इति यदुक्तं तदुपपत्तये विशिनष्टि-दुष्प्रापे इति । अन्यानि विशे-षणानि अमृतनिधानयोग्यस्थानतात्रदर्शनार्थानि ॥ ९९ ॥ ॥ १०० ॥ ईटशं कान्तं स्त्रैणं खीसमृहमालोक्य मुनेर्मनस्तद्-नन्तरमानन्दितं प्रमत्तं सत् न आश्रितो विवेकांशो येन यथा-विधं बभ्वेति परेणान्वयः ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ चिते विका-रात्सर्वाक्षे प्राणक्षोमस्तेन सर्वाक्षसारस्य रेतसः स्खछनं इत-

प्रसम्पादपिच्छन्नस्रतावृन्त इवोत्तम । अवद्यायकणस्पन्दी शशाङ्क दव वा मुनिः ॥ १०४ विसं द्विधापातमिय गस्तत्साररसोऽभवत् । शिक्षिध्यज उवाच ।

तारशोऽपि बहुकोपि जीवन्मुकोऽप्यसौ मुनिः१०५ निरिच्छोऽपि निरागोपि न किंचिदुपमोऽप्यलम् । सवाद्याभ्यन्तरं नित्यमाकाशविशदोपि च ॥ १०६ नारदोपि कथं ब्रह्मन् मदनस्खलितोऽभवत् ।

चुडालोवाच। सर्वस्या एव राजपे भृतजातेर्जगत्रये॥ १०७ देवादेरपि देहोयं द्वयात्मैव स्वभावतः। अज्ञमस्त्वथ तज्ज्ञं घा यावत्स्वान्तं शरीरकम् १०८ सर्वमेव जगत्यङ्ग सुखतुःखमयं स्मृतम्। तृत्यादिना पदार्थेन केनचिद्वर्थते सुखम्॥ १०९ आलोक इव दीपेन महाम्बुधिरिवेन्द्रना। श्चुधादिना पदार्थेन दुःखं केनचिदेव हि॥ ११० तमो मेघपटेनेव स्वभावो हात्र कारणम्। स्वरूपे निर्मले सत्ये निमेषमपि विस्मृते ॥ १११ दश्यमुहासमाप्त्रोति प्रावृषीव पयोधरः। अनारतानुसंधानाद्युन्मेषमविस्मृते॥ ११२ स्वरूपे नोहुसत्येष चित्ते दृश्यपिशाचकः। यथा तमःप्रकाशाभ्यामहोरात्री स्थिति गतौ ११३

मिलाह-वभूतेति । तत्र दृष्टान्तानाह-फलमिलादिना ॥ १०३ ॥ छिन्नं शतं छतावृन्तं शाखामूलस्थानं यस्य तथा-विधः प्रत्यप्रसारणः पादपो वटादिरिव । उत्तमेति राजसंबो-धनम् ॥ १०४ ॥ द्विधापातं सद्योद्विधाखण्डितं विसं मृणाल-मिन वा गलन् सारभूतो रसः छुकं यस्य । राजप्रश्नः स्पष्टः ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ तत्त्वज्ञानामपि प्रबलतरप्रारब्धेन विवेकां-शनिरोधात्कदाचिद्देहधर्मानुवर्तनमस्त्येवेत्युत्तरमाह—सर्वस्या एवेत्यादिना ॥१०७॥ यावत्स्वान्तं स्वनाशपर्यन्तम् ॥ १०८ ॥ सुखदुःखमयलमेव दृष्टान्तेर्दर्शयति-तृह्यादिनेति ॥ १०९ ॥ दुःखं वर्षत इस्रनुकृष्यते ॥ ११० ॥ यथा मेघलक्षणेन पटेन उपचितेन निशि तमी वर्धते तद्वत् । यत्र तत्त्वज्ञानामपि क्षणं स्वरूपविसारणे ईदशानथीस्तत्राज्ञानां किं वाच्यमित्याशयेनाह-खरूपे इति ॥ १११ ॥ अतएव सदैव दर्यानुक्रासाय सदैव समाधिना खरूपाविस्मरणशीलेन भाव्यमित्याशयेनाह-अना-रतेति । उन्मेषो निमेषद्वयान्तरालकालम्यावनमात्रमपि ॥११२॥ ॥ ११३ ॥ एवं ज्ञाज्ञयोः प्रारब्धफलभोगसाम्येपि रजनारजन-कृतो विशेषोऽस्त्येवेति दृष्टान्ताभ्यामुपपाद्यति-एविभत्या-दिना । जन्मकारणस्य देहाद्यात्मभावस्य दर्शनात् ॥ १९४ ॥ तज्ज्ञस्य तु तद्वशातत्त्वज्ञानवशात् । मनागपि न लगतः ॥ ११५॥ यथा मणेः स्फटिकस्यान्तः रागेण तादात्म्यानु-रजनेन । आदिपदात्तत्प्रयुक्तेन्द्रनीलपद्मरागावध्यासेन आका-

तथैव सुखदुःखाभ्यां शरीरं स्थितिमागतम्। पर्व हि सुखदुःखे द्व जन्मकारणदर्शनात्॥ अन्नस्य गाढतां याते पटे कुङ्कमबद्दुदम् । तज्ज्ञस्य त्वङ्ग लगतो मनागपि न तद्वशात्॥ ११५ यथा शुभाशुभौ रागादिनाक्रान्ततरौ मणेः। पुरःस्थवस्तुभावेन रञ्जनां स्फटिको यथा॥ ११६ तंज्यस्तथा नैति बोधाजीवन्मुक्तमतिर्मुनिः। वस्तुनः श्ठेषमात्रेण घनरञ्जितमेति धीः॥ ११७ गतेऽपि वस्तुनि रढं वुद्धियां परितापिता । गतेऽपि कुङ्कमे वस्त्रं तदीयमनुरञ्जनम् ॥ ११८ न जहाति यथा मृदस्तथा विपयरञ्जनम्। अनेनैय क्रमेणेतो बन्धमोक्षी व्यवस्थिती ॥ ११९ भावनातानवं मोश्रो बन्धो हि रदभावना। शिखिध्वज उवाच । स्वोत्पत्तिकारणप्राप्ती कथं दुःखं सुखं च वा १२० अभ्युदेतीति वद मे दूरस्थानामपि प्रभो। अत्युदारमतीवाच्छं बह्वर्थं वचनं तव॥ १२१ श्रोतुं तृप्ति न गच्छामि मयूरोऽभ्ररवेष्विव ।

चूडालोवाच । स्वोत्पत्तिकारणं हृद्यं लब्ब्वा कायाक्षिपाणिभिः १२२ सुखसंविदियं बाला नूनमुहसति स्वतः । हृद्रता क्षोभमायाता जीवं कुण्डलिनीगतम् १२३

न्ततरी अतिशयेन संक्रान्ताविप शुभाशुभी कुहूमनीस्यादिवणी पटस्येव रागेण रक्षनया आदिपदाच्छुउयशुज्यादिना च यथा मणेर्ने लगतस्तद्वदित्यर्थः । इदानीं स्फटिकादपि तस्य खच्छ-तरलाद्विशेषमाह-पुरःस्थेति । स्फटिकः पुरःस्थजपाकुसुमादि-बस्तुभावेन तात्कालिकी रजनामपि यायात् । तज्ज्ञस्त तामपि नैतीत्पर्थः ॥११६॥ 'अञ्चस्य गाढतां याते' इति यदुक्तं तद्वि-वृणोति-वस्तुन इत्यादिना । धनं रित्रतं रसनम् । धीः अज्ञस्येति शेपः ॥ ११७ ॥ तत्कृतस्तत्राह्—गतेऽपीति । यद्यसाद्धेतोः परितापिता भवतीत्वर्थः ॥ ११८ ॥ विषयर-**अनं न** जहाति । तथाच वृक्षी विषयरज्ञनवासनीपचय एव बन्धसात्क्षय एव मोक्ष इति फलितमिलाइ—अनेनेति ॥ ११९ ॥ दूरम्थानां पुत्रराज्यादीनाम्। अपिपदारसंनिहितानां च लाभनाशादिखोत्पत्तिकारणप्राप्ती तयभिमानिनः सुखं दुःखं च केन कमेण जायते तद्वदेति राजा पृच्छति—स्वोत्पत्तीति ॥ १२० ॥ १२१ ॥ तत्रादी सुखोत्पत्तिप्रकारं वर्णयति—स्वेति । संनिहित्विषये कायाक्षिपाणिमिर्दूरस्थविषये शब्दानुसानादिना च **उच्चा उप**रुभ्य ॥ १२२ ॥ अपरिच्छित्रखतत्त्वान**भिन्न**-लाहाला इयं हद्गता बुद्धिस्था आत्मसुखसंबिद्धदेः क्षोभात् क्षोभमायाता सती प्राग्वर्णितरीत्या कुण्डलिनीमुखप्रभवप्राणवि-धारकलात्कुण्डलिनीयतं जीवं भोक्तारं प्रति स्वतः प्रत्यगारम-तत्त्वादेवामिविस्फूलिङ्गवदुछसत्याविभैवति । 'एतस्यवानन्द-

जीवस्य नियता नाड्यः पृथग्वेहे स्थिति गताः। प्राणावपरिता नाडीजींव आकामति स्फूरन् १२४ संस्पर्धकर्षेषुद्धात्मा रस्ते हुमलता रव । स्रखप्रबोधसंचारे दःखबोधागमे तथा॥ १२५ जीवस्य नियता नाड्यः प्रथग्देहस्थिति गताः। सुक्रिनः प्रस्फुरत्येषा धीरताशु न तुःखिनः॥ १२६ ये हि मार्गाः सुवेषस्य कुवेषस्य न ते शुभाः। याबत्प्रमाणं जीषोऽयं संशाम्यस्यपरिस्फुरन्॥१२७ तावत्प्रमाणमेवैनं मुक्तं मुक्तमवेहि व । यावत्प्रमाणमधिकं स्फुरति भ्रम्धमाहतम् ॥ १२८ तावत्त्रमाणमेषेनं बद्धं बद्धमवेहि मे । सुंखदुःखकलास्पन्दो बन्धो जीवस्य नेतरः ॥ १२९ तवभावे हि मोक्षः स्यादिति द्वेधा व्यवस्थितिः। सुखंदुःखदरी यावदानीते नेन्द्रियः शहैः॥ ताबत्तुखसमः सौम्यो जीवस्तिप्रति शान्तवत् । सुखमालोका वा दुःखमक्षातीतश्चलद्वपुः॥ समुह्नसति जीवोऽन्तर्देष्टेन्द्रमिव तोयधिः। जीवः श्रुभ्यति दृष्टेन संविदाङ्ग सुखादिना ॥ १३२ आमिषेणेव माजीरो मौर्ख्यमेवात्र कारणम्। शुद्धेन बोध्यबोधेन स्वात्मज्ञानमयात्मना ॥ £ £ \$

स्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति इति श्रुतेरिति भावः ॥ १२३ ॥ इत्स्थस्य भोक्तुर्नयनरसनश्रोत्रादिप्रतिनियतभोग-स्थानागमने मार्गमेदमाइ—जीवस्येति ॥ १२४ ॥ तत्तदिषय-संसर्शेन तदेकामप्रवाहात्मा सन्निति पूर्वत्रान्वयः । जीवस्य नाडीद्वारा सर्वेदेहप्रवेशे दृष्टान्तमाह—रस इति । यथा मुले सिको रसो जलं नाडीद्वारा हुमलताः सर्वप्रदेशेष्वनुप्रवि-शति तद्वदिखर्थः ॥१२५॥ पृथङ्नियता नैकरूपा इत्यर्थः । कृत एतज्ज्ञानं तत्राह-सुखिन इति । सुखिनः सुखानुभवे प्रश्न-त्तस्य जीवस्य घीरता खस्थता प्रस्फुरति नतु दुःखिनो दुःखा-नुभवे प्रश्तस्य । स हि अखस्थं तरलं दंदग्रमानमिवात्मान-मनुभवतीत्यतस्य पित्तोष्मादिसंतापकरसपूर्णस्तरस्थ नाडी-मार्गोऽनुमीयते इत्यर्थः ॥ १२६ ॥ अतएव लोकेऽपि सुवेषस्य भोगे प्रकृतस्य राजादेः संगृष्टाः कर्पूरचन्दनोदकतिकाः कीर्णन क्रमा भूपकस्तूर्यदिसुरमिणो मार्गाः प्रशिद्धाः कुवेषस्य नी-नस त तद्विपरीता इत्याह- मेहीति । एवं चायं जीवो याव-रकालं तरखतरनाढीमार्गाननुप्रवेदोन अपरिस्फुरन् खर्य तरख-ताञ्चन्यो भवति तावदस्य न दुःखप्रसक्तिः । तदास्य स्रकन्द-नाद्याकारकृत्याल्पं खात्मगुखमिन्यज्यते । ब्रह्माकारकृत्या त पूर्णमित्यवान्तस्बैलक्षण्येपि विश्लेपाभावात्संशाम्यत्येवेति खस्था-वस्थमेनं ताबत्कालं मुक्तमेवावेहि । आविर्भृतसुखा स्वस्थतेव भुक्तिरिति तक्रक्षणसलादिति भावः ॥ १२७॥ १२८॥ तर्हि विषयमुखानुभवकाले कृतो जीवस्य न मुक्ततानुभवस्तत्राह

सुखदुःखादि नास्तीति तेनासी याति सीम्यताम्। न तत्सुलादि नो तन्मे मुधा चायमहं स्थितः १३४ इति जीवः प्रबुद्धो हि निर्वाणं याति शाम्यति। स्रकाचधस्त्वतद्र्पमित्यन्तवींधसंविदा ॥ १३५ न तदुम्मुखतां याति जीवः शाम्यति केवलम् । सर्वमेष चिवाकादां ब्रह्मेति घननिश्चये॥ ३इ१ स्थिति याते शमं याति जीवो निः छहदीपवत् । दीपवच्छममायाति सुखादिकोहसंक्षये॥ १३७ सर्वमेवमिति बानाजीवोऽद्वित्वविभावनात्। सबैमाकाशमेबेति बुद्धा शोमं न गच्छति॥ जीवस्थानेन शून्यस्य कः किल क्षोभविभ्रमः। जीवेनेद्दियधेनैव यथा प्रथमसर्गतः॥ १३९ स्वयं संविदितो मार्गस्तेनैवाद्यापि गच्छति । शिखिध्वज उवाच।

सुखसंचारयोग्यासु जीवे सरित नाडिषु ॥ १४० रेषपुत्र भवस्येव तद्वीर्यच्यवनं कथम् । चुडालोवाच ।

जीवः श्रोमयति शुन्धः प्राणादिपवनावितम् १४१ संविदा शांशमात्रेण सेनामिव महीपतिः। बातरपन्वेन मेदोऽन्तर्मज्ञासारश्च संस्थितः १४२

युक्तेति । दुःखप्रहणं दष्टान्तार्थम् । दुःखस्येव विषयसुस्रस्यापि कलनं कलानुभवस्तदर्थ रागायश्चित्तस्य बहिःसन्दो यथ सुख-विच्छित्ती तरलीभावस्तदुपायार्जनायानर्थसद्हे स्यन्दः स एव जीवस्य बन्धो न लितरः सुखविश्रान्लंशोऽपीति क्षणमात्रमपि सुखिबशान्त्या तदभावे मोक्षः स्यादेवेति संसरणासंसरणाभ्यां बन्धमोक्षयोर्द्वेधा व्यवस्थितिर्मयोक्तेति परेणान्वयः ॥ १२९ ॥ उक्तमेवार्थं प्रपञ्चयति—सुखदुःखेत्यादिना ॥ १३० ॥ अक्षा-तीत इन्द्रियागम्यः खप्रकाश इति यावत् ॥ १३१ ॥ दष्टेन मुखादिना सुखतत्साधनविषयतदुपायधनादिना तद्रागसंविदा श्चभ्यति । अङ्गेति संबोधने ॥ १३२ ॥ मौर्स्य निरतिशया-नन्दस्वतत्त्वाज्ञानमेवात्र क्षोमे कारणम् । केन तर्हि तनिवृत्त्या विश्रान्तिस्तदाह—शुद्धेनेत्यादिना । बोध्योऽवश्यबोद्धव्यः स्वातमा तद्वोधेन ॥ १३३ ॥ साँम्यतां विश्रान्तिम् ॥ १३४ ॥ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ सुखादिषु स्नेहो रागस्तत्त्रंक्षये ॥ १३७ ॥ सर्व जगत् एवं चिन्मात्रमेवेति ज्ञानात् । अद्वित्वमैक्यं तद्विभा-बनात्। आकाशं भून्यम् ॥ १३८ ॥ अनेन ब्रह्मेक्यविभाव-नेन हेतुना पृथकाशून्यस्य वन्धशून्यस्य वा । कथं तहास्य क्षोमविश्रम आगतस्तत्राह-जीवेनेति । ईदिग्विधेन कल्पिते-नैव आद्यजीवेन हिरण्यगर्भेण एवं सर्वजीवात्मनाहं संसरि-ध्याम्येवं खतत्त्वबोधादहं क्रमेण मुक्तो भविष्यामीति खक-रपनयेव बन्धमोक्षमार्गी कल्पथिला स एवानुवर्त्यत इल्पर्यः ॥ १३९ ॥ प्रश्नः स्पष्टः ॥ १४० ॥ स्त्रीपिण्डदर्शनाद्रागवास-नोद्वोधेन धुन्धः सन् ॥१४१॥ कथं क्षोभयति तत्राह-संबि-

१ प्रवादातमा इति पाठधीकान्यणः.

स्वजत्याञ्च प्रसौगन्थ्यं रजः पत्रफलादिकम् । चित्रं तस्वधी याति गर्जादिव घनादि से ॥१४३ देहनाडीप्रणालेन याति शुक्रं बहिः स्वतः। शिकिध्वज उवाच। देवपुत्र महाक्षोऽसि बेरिस पूर्वी च तरिस्थतिम् १४४ श्रायसे बचनादेव स्वभावो हि किमुच्यते। चुडालोवाच ।

आद्य सर्गे यथा सद्यः स्फुरितं ब्रह्म ब्रह्मणि॥ १४५ |

घटावटपटाद्यात्म तथैवाच व्यवस्थितम्। काकतालीययद्वारिबुद्धदोत्पत्तिनादावत् । घुणाक्षरवदुच्छनं तं स्वभावं विदुर्ब्धाः॥ १४६ अस्मिन्स्वभाववदातो जगति प्रसृद्धे वेष्टा भ्रमन्ति परितो विविधा विकाराः। प्रक्षीणवासनतया नभवन्ति केचि-

द्भूयो भवन्ति च पुनस्तिवतरे घनास्थाः १४७ इखार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे सुखविचारयोगोपदेशो नाम पद्माशीतितमः सर्गः ॥८५॥

षडशीतितमः सर्गः ८६

चुडालोवाच । आत्मस्वभाववदातो जातं जगदिदं महत्। स्थिति वासनयाभ्येत्य धर्माधर्मवशे स्थितम् ॥ १ वासनाहासमानीय धर्माधर्मेनं गृह्यते। ततो न जायते जन्तुरिति नो दर्शनं मुने ॥ शिखिध्वज उवाच। अत्युदारं महार्थे च विश्व त्वं वदतां वर। अनुभूतिमुपाक्दं गूदं च परमार्थवत्॥ 3

दाज्ञांशमात्रेणेति । प्रवृत्तिस्वभावानां प्राणादीनामधिष्ठात्र्या जीवसंविदः अङ्कुरितरागादिशृत्यनुरोध एवाभ्यनुज्ञारूपा आज्ञा तदंशमात्रेणेखर्थः । मेदोस्थ्याचन्तःसंचारिणो व्यानवातस्य स-न्देन प्रेरणेन सर्वाज्ञसंस्थितो मेदोन्तर्गतः सारो मजासारश्र आशु प्रकृष्टसौगन्ध्यमियानुगतं रजः स्वं सूक्ष्मांशं त्यजित । यथा छिन्नयुन्तं पत्रफलादिकं खान्तर्गतजलांशमन्तर्गतस्पन्देन स्रजति तद्वदित्यर्थः ॥ १४२ ॥ तत्तु त्यक्तं रजः सर्वे क्रेभ्यध-लितं सन्नाडीद्वारा अधो मूलाधारस्थानं याति । यथा सर्वतः खे प्रसृतं जलं गर्जयतीति गर्जः पुरोवातस्तस्माभिमित्तादेकीभूय घनमञ्जं आदिपदान्मेघाद्यवस्थं भूला वर्षणोनमुखं सदधोऽस-**ब्रिहितदेशं** याति तद्वदिखर्थः ॥ १४३ ॥ स्वतः स्वभावतः । 'देवादेरपि देहोऽयं द्वयात्मैव स्वभावतः' इति यत्त्वयोक्तं तत्र स्रभावशब्दार्थः क इति राजा प्रच्छति—देवपुत्रेति । महां-थासौ इथ महाइः आत्मतत्त्वविद्सि । आत्मज्ञानात् पूर्वे सांसारिकपदार्थसंस्थिति च तर्कादिकौशल्येन वेत्सि ॥ १४४ ॥ कथमहमीरक्तया ज्ञातस्तत्राह—ज्ञायसे इति । सर्गादिकाले सर्गोन्मुखं ब्रह्म प्राप्तनप्राणिकमीनुसारेण याद्ययाद्यधर्मकं मद्यत्पदार्थातमना स्वात्मनि स्फ्रारितं तस्य पदार्थस्य आप्रलयं तारम्भमेकलिनयतिः स्वभावश्यार्थं इत्याह-आवसर्गे इति ॥ १४५ ॥ सांप्रतिकघटादिखभाववैचित्र्यं दृष्टसामप्रीवैचित्र्या-दिप संभाव्येत । सर्गादौ तु तिश्रह्मणासंभवात्काकागमनक्षणे दैवात्तन्छिरसि तालपतनमिव तेन तस्य मरणमिव चादष्टमात्र-प्रयुक्तमिति बोधनायाद्यसर्गानुधावनमित्याशयं दर्शयति-का-

त्वद्वाक्यविभवेनाच श्रुतेनानेन सुन्दर। पीतेनेवासृतेनाहमन्तर्यातोऽस्मि शीतताम् ॥ 8 तत्समासेन तां ताबदात्मोत्पर्त्ति बदाशु मे । ततः श्रोष्यामि यत्नेन ज्ञानगर्भी गिरं तव ॥ ų तेन पद्मजपुत्रेण मुनिना नारदेन तत्। क कृतं वीर्यमार्येण कथयाच यथास्थितम्॥ દ્દ चूडालोवाच । ततो निबधता तेन मनोमत्तमतङ्गजम्।

केति । 'समासाच तद्विषयात्' इतीवार्थद्वयविषयात्समासा-त्त्रीये इवार्थे च्छप्रत्ययः। सांप्रतिकेऽपि प्रतिवस्तुदेशकालनि-यते स्वभाववैचित्रये न दष्टसामग्रीयता निरूपियतुं शक्येत्या-शयेन दृष्टान्तान्तरमाह-वारियुद्धदेति । मायामात्रलादाक-स्मिको वासोऽस्लित्याशयेन दशन्तान्तरमाह—धुणाक्षरवदिति ॥ १४६ ॥ उक्तलक्षणस्वभाववशतः प्ररूढे अस्मिन् जगति विविधविकारात्मका अण्डजादिचतुर्विधा देहा अमन्ति । तेषु केचिज्ज्ञानदेहास्ते प्रक्षीणवासनतया भूयो जन्मने न भवन्ति । इतरे अज्ञानदेहास्तु भूयो जन्मने भवन्ति । यतस्ते भोगेष्वेव धनास्था इलार्थः ॥ १४७ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

कुम्भ कुम्भस्य जन्मात्र वृद्धिवससमागमः। तदा शिष्यस्य सार्वेश्यमित्यादिरिह वर्ण्यते ॥ १॥

यथावर्णितलक्षणः खभावः सर्ववस्तुषु आप्रलयं प्रसिद्ध-स्तथा मायाशबलस्यात्मनः सर्गादिस्तभावः श्रुत्यादिप्रसिद्धस्तद्व-शत इत्यर्थः । 'भोगार्थं स्षष्टिरिलेके कीडार्थमिति चापरे । देवस्यैष स्वभावोऽयगाप्तकामस्य का स्पृहा' इतिभगवद्गी इपादाः ॥ १ ॥ नासनानां हासं ज्ञानाभ्यासेनापक्षयम् । नः दर्शनमनुभव इत्यर्थः ॥ २ ॥ इत्यमनुभवचमत्कारे कीर्तिते तत्प्रकारं श्रोतु-कामी राजा तां प्रशंसमानः प्रस्तुतकथाशेषं संक्षिप्य समाप-येखाह—अत्युदारमिखादिना ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ क कस्मि-नाधारे कृतं स्थापितम् ॥ ६ ॥ आलाने गजनन्यस्तम्मे ।

विवेकविपुलालाने शुद्धया धीवरत्रया ॥ तद्वीर्यं कल्पकालाग्निगलितेन्द्रव्वोपमम्। रसानां पारदादीनां दिव्यानामनुरञ्जनम् ॥ मुनिना पार्श्वगे कुम्मे स्फाटिके विलसद्भवी। अद्भुते विद्वताकारं चन्द्रे चन्द्र इवार्पितम्॥ ९ तत्र रीले बृहत्कान्ते स्थूलः पार्श्वेषु चामितः। गम्भीरकुक्षि सुदृढश्चोपलाइननक्षमः॥ १० संकरिपतेन श्रीरेण स कुम्भस्तेन पूरितः। अमृतापुरमिन्नेन विधिनेवामृतार्णवः॥ ११ तत्र मासाद्रतो वृद्धि मुनिमन्दाहुतिकमः। असृताब्धी शुभो गर्भ इन्दोरिन्दुरिवानुजः॥ १२ इन्दुं मास इवापूर्ण कालेन सुषुवे घटः। गर्भे कमलपत्राक्षं प्रसुनमिव माधवः॥ १३ परिपूर्णसमस्ताङ्गः कुम्भाद्गर्भो विनिर्ययौ । इन्दुः सुक्ष्मादिबाम्भोधेरपरः श्लयवर्जितः॥ १८ दिनैः कतिपयैरेव वृद्धिमभ्याजगाम सः। अप्रमेयाङ्गसीन्दर्यः गुरूपक्षे दाशी यथा ॥ १५ सर्वसंस्कारसंपन्ने स तसिन्नारदो मुनिः। भाण्डाद्भाण्ड इवारोषं विद्याधनमयोऽजयत्॥ १६ दिनैः कतिपयैरेष विज्ञातारोपवाद्यायम्। घकारैनं मुनिषरः प्रतिबिम्बमिवात्मनः॥ १७

भीलक्षणया वरत्रया चर्मरऋवा ॥ ७ ॥ कल्पकालसंबन्धिना अमिना गलितस्थेन्दोईव उपमा यस्य । पारदकाञ्चनरूप्यादीनां रसानां शंभुवीर्थाणामनुरजनमनुकारि सदशमिति यावत् ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ तत्र शैले मेरी । पार्श्वजामितश्च स्थूलो विपुलः अत-एव गम्भीरकुक्षिः । उपलेष्वाहननमास्फालनं तत्र क्षमः । **आस्फाल्यमानोऽ**प्यस्फुटमिति सुरुढले उपपत्तिः । ईरशः स कुम्भस्तेन नारदेन संकल्पजेन धीरेण पूरित इति परेणान्वयः ॥ १० ॥ खसंकल्पसृष्टामृतापूरात्मना मित्रेन विभक्तेन वि-धिना सष्ट्रा अरथ प्यथार्णवाधिति ब्रह्मलोके श्रुतिप्रसिद्धोऽस-तार्णवो यथा पूरितस्तद्वदिखर्थः ॥ ११ ॥ तत्र क्षीरे स्नेहो-त्युकं मुनि मन्दं अप्रिकार्याहृतियु कमयति प्रवर्तयतीति मुनिमन्दाहुतिक्रमः अमृताब्धा इन्दोरनुजः प्रतिबिम्बेन्दुरिव बबुधे ॥ १२ ॥ मासः अपूर्णमिन्दुमिव ॥ १३ ॥ सुक्माद्धट-परिच्छिन्नादम्मोधेः क्षीरार्णवात्क्षयवर्जितोऽपर इन्दुरिव ॥१४॥ ॥ १५ ॥ सर्वेर्जातकर्माद्यपनयनान्तैः संस्कारैः संपन्ने तस्मि-न्युत्रे ॥ १६ ॥ विश्वातान्यशेषाणि वाकायानि विद्यास्थानानि येन तथानिधम् ॥ १७ ॥ रहाद्री स्फटिकाचछे । संघ्योदितः पूर्ण इति यावत् ॥ १८ ॥ १९ ॥ प्रहणधारणसाप्रवपरिज्ञानाय अभिमुखं वादितं वादियला परीक्षितं वेदादिसर्वविद्यास्थानं यस्य तथाविधं श्रीलाहे न्यवेशयेत् ॥ २० ॥ ज्ञानानां पारं

तेनाराजत पुत्रेण मुनिना मुनिनायकः। रलादौ प्रतिविम्बेन संघ्योदित इवोडुराट् ॥ 26 अधेनं पुत्रमादाय ब्रह्मलोकं स नारदः। जगामाथ स्वपितरं ब्रह्माणं चाभ्यवादयत्॥ १९ कृताभिवन्दनं ब्रह्मा पौत्रमादाय तं तदा। अमिवादितवेदादिं स्वयमङ्के न्यवेशयत्॥ २० अथाशीर्वादमात्रेण सर्वेशं शानपारगम्। पौत्रं तं कुम्भनामानं चकार कमलोद्भवः॥ २१ साधो सोऽहमयं कुम्भः पौत्रोऽहं पग्नजन्मनः। पुत्रोऽहं नारद्मुनेः कुम्भनामास्यि कुम्भजः ॥ २२ निवसाम्यक्रजपुरे पित्रा सह यथासुखम्। चत्वारः सुद्धदो वेदा मम लीलाविलासिनः॥ २३ मातृष्वसा मे गायत्री मम माता सरस्वती। ब्रह्मलोके मम गृहं पौत्रस्तत्रास्मि सुस्थितः॥ २४ यथाकाममशेषेण जगन्ति विहराम्यहम्। लीलया परिपूर्णत्वाम तु कार्येण केनचित्॥ धरां पतित मे पादौ पततो न महीतले। रजः स्प्रशन्ति नाङ्गानि ग्लानि नायाति मे वपुः२६ अद्याकारापथा गच्छन्द्रष्टवांस्त्वामहं पुरः। इह तेनागतोऽस्म्यक्र सर्वे कथितवानिति॥

परमावधिभूतं तत्त्वज्ञानं तत्र विश्रान्तं चकार ॥ २१ ॥ हे साधो, स कुम्भः अयं खत्पुरस्थोऽहम्। ननु स्त्रीणां परदेवतस्य खर्मतुः समक्षं धर्मह्या वैदर्भ्या चूडालया कथमिदमनृतमु-च्यते । 'शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते । आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषाष्ट्रते ॥' इति हि पूर्वरामायणे श्रीराम-वखनम् । 'योऽन्यया सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपादयेत् । किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा' इति महाभारते भरतंत्रति शकुन्तलावचनं चेत्यं कुप्येतेति चेत् । नैष दोषः । उपदेश्य-माणब्रह्मविद्याप्ररोचनार्थस्य तद्वाक्यस्य तात्पर्थविषयार्थावाधेना-नृतत्वाभावात् 'बबरः प्रवाहणिरकामयत । स्तेनं मनोऽनृतवा-दिनी बाक् । प्रावाणः छवन्ते' इत्यादिनेदिकार्थवादवाक्यबत्प्रा-माण्योपपत्तेः । तत्त्वज्ञानबस्टेन सार्वात्म्यप्राप्तेर्वा 'अहं मनुर-भवं सूर्यक्ष' इत्यादिवामदेवोक्तिवत्सोऽहमयं कुम्भ इत्याद्यक्तिनी-तृता । नच भत्वश्वनादोषः । 'कर्मणा मनसा बाचा सदा भर्तु-हिंतं चरेत्' इतिवचनाद्भर्तुविद्याविश्वासजननेन परमहितस्यास्य बाक्यस्य वश्वनात्वाभावादिति ॥ २२ ॥ २३ ॥ साक्षान्मातुरभा-बारिपतुर्मात्रादय एव स्वस्य मात्रादय इत्याशयेनाह--मातृष्व-सेति । पौत्रो ब्रह्मण इति शेषः ॥ २४ ॥ २५ ॥ उकार्थविश्वा-सार्थ खस्यां देवलिङ्गानि दर्शयति-धरामिति। मयि धरां पति भूलोके संचरति सति मे पार्द। महीत्रकेन पततः ॥२६॥ प्रवोऽहमित्यिखिलमेष यथानुमूतं ते वर्णितं ननु मया वनवासतज्ज्ञः । सन्तो हि संकथनमार्यजनोत्तमेषु निर्मान्त्यलं सुभग संव्यवहारदक्षाः ॥ २८ श्रीवाल्मीकरुवाच । इत्युक्तवत्थय मुनौ दिवसो जगाम सायंतनाय विधयेऽस्तमिनो जगाम । स्नातुं सभा कृतनमस्करणा जगाम इयामाक्षये रविकरेश्च सहाजगाम ॥ २

इस्रार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे कुम्मजननकथनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

॥ अष्टादशो दिवसः ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७

शिखिध्वज उवाच । सर्गे स्फ्ररिइर्मत्युण्यैर्मन्ये संप्रेषितो भवान्। अलक्ष्येः संभृतेरद्री बृहद्वातैरिवाम्बुदः॥ अद्य तिष्टाम्यहं साधो धन्यानां धुरि धर्मतः। अमृतस्यन्दिवचसा यत्त्वयासि समागतः॥ न केचन तथा भावाश्चेतः शीतलयन्ति मे । राज्यलाभादयोऽप्येते यथा साधुसमागमः॥ 3 निर्गलरसो यत्र सामान्येन विज्ञम्भते। मुक्तरागादिमननं तत्कल्पनसुखावहम्॥ वसिष्ठ उवाच। एवंवादिनि सैवास्य वाक्यमाक्षिण्य भूपतेः। भूयः प्रोवाच चुडाला मुनिदारकरूपिणी ॥ चूडालोवाच । आस्तामेषा कथा तोवत्सर्वे ते वर्णितं मया। त्वं मे कथय हे साधो कस्त्वमद्रौ करोषि किम् ६ क्रियत्पर्यवसानेयं भवतो वनवासिता।

॥ २७॥ उक्तिमुपसंहरति—एष इति । हे वनवासतज्ज्ञ वन-वासगुणांस्तत्फलं चिक्तशुद्धं च जानन् अहमेष उक्तप्रकारज-नमादिमानित्यखिलमेव लत्षृष्टं ते यथानुभूतं मया वर्णितम् । पादादो ते इत्यादेशश्खान्दसः । आर्यजनोक्तमेषु पृच्छत्सु सन्तः संकथनं निर्मान्ति कुर्वन्त्येव । यतस्त सुमगैः सद्भिः सह प्रश्लोक्तरकथनसंव्यवहारे दक्षा अतस्त्वं ययदभीप्सितं तक्तत्कामं पृच्छ अहं तद्वक्तं दक्षास्त्रीति भावः ॥ २८ ॥ २९ ॥ इति भीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणमकरणे यहशी-वित्तमः सर्गः ॥ ८६ ॥

> कुम्भप्रशंसा राज्ञोऽत्र निजदुःखनिवेदनम् । शिष्यत्वसुपदेश्यार्थे विश्वासश्चोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

स्रों जन्मपरंपरालक्षणे संसारे । संभृतेः संचितेर्देवाद्युगप-त्परिपाकेन फलदानाय स्फुरद्भिमंत्पुण्यैभेवानद्रावस्मिन् मन्द-राचले संप्रेषित इति मन्ये संभावयामि । मृहद्वातेः पुरोवातेः ॥ १ ॥ लवुपदेशान्ममावद्यंभाविनी कृतार्यतेति सूचनाय सिद्धवत्कृत्याद्द् अधेति ॥ २ ॥ ३ ॥ राज्यलाभाषपेक्षया साधुसमागमे उत्कर्ष द्रशेयति निर्गलेकेति । यत्र मस्मिन्द्या- सत्यं कार्यं च नो सत्यं वकुं जानन्ति तापसाः ७ शिखिध्वज उवाच । देवपुत्रोऽसि जानासि सर्वमेव यथास्थितम्। लोकवृत्तान्ततज्होऽसि किमन्यत्कथयाम्यहम्॥ ८ संसारभयभीतत्वान्निवसामि वनान्तरे। जानतोपि हि मामार्थ कथयाम्येय ते मनाकु॥ ९ शिखिध्वजोऽहं भूपालस्त्यक्त्वा राज्यमिहास्थितः। भृशं भीतोसि तस्वत्र संस्तौ जन्मतः पुतः॥ १० सुखं पुनः पुनर्दुःसं पुनर्मरणजन्मनी। भवतत्तेन तप्येऽहं तत्त्वज्ञ वनवीथिषु॥ ११ भ्रमन्नपि दिगन्तेषु चरन्नपि परंतपः। नासादयामि विश्रान्तिमेकां निधिमिबाधनः॥ १२ अयकोऽप्यफलोऽप्येको स्वपूर्णोऽप्यस्तसंगतिः। शुष्याम्यत्र वने साधो घुणधुण्ण इव द्रमः॥ १३ इमामखिण्डतां सम्यक् कियां संपादयन्नपि। दुःखाद्रच्छामि दुःखौधममृतं मे विषं स्थितम् १४

धुसमागमे निरर्गलरसः अपरिच्छिन्नो ब्रह्मानन्दो सुकारागादि-मननं यथा स्यात्तया सामान्येन दरिद्वादिसर्वजनसाधारण्येन विज्म्भवे । तद्राज्यलाभादिकं तु कल्पनमात्रेण तुच्छसुसावहं न निरर्गेलसुखावहं साधारणं चेत्यर्थः ॥ ४ ॥ आक्रिप्य नि-रुध्य । विवक्षितार्थसमाप्तेः पूर्वमेवेति यावत् ॥ ५॥ एषा मत्त्र-शंसाकथा आस्ताम् । सर्वं लत्पृष्टमिति शेषः ॥ ६॥ किया-न्कालः पर्यवसानमवधिर्यस्याः सा कियत्पर्यवसाना । कार्य वनवाससाध्यं प्रयोजनं च सत्यं वद न प्रच्छादय । यतस्ताप-सास्त्राद्या असत्यं वक्तुं नो जानन्ति न जानन्ति ॥ 😼 ॥ ॥ ८ ॥ मनाक् ईषत् । संक्षेपेणेलार्यः ॥ ९ ॥ आस्थितस्तप इति शेषः । हे तत्त्वज्ञ, पुनर्जन्मनो भीतः ॥ १०॥ भवतः जायेते । तप्ये संतप्तोऽस्मि तपश्चरामि च ॥ ११ ॥ १२ ॥ अयतः कुण्टितप्रयतः । अफलः अप्राप्तफलः । एकोऽसहायः । अस्ता राज्यकालप्रसिद्धा साधुसंगतिर्रुतादिसंगतिश्व येन । षुणैः काष्ट्रकीटैः क्षुण्णः क्षतः ॥ १३ ॥ इमामुपनासदेनाति-थिपूजादिरूपाम् । असण्डितां नियतकालाविरुष्ठमाम् । 'विश्वी चानियां च यसाद्वेदोभयं सह । अविद्या मृत्युं तीत्वी विष-

१५

चूडाछोबाच ।

पितामहमहं पूर्वं कवाचित्पृष्टवानिदम्। यत्कियाज्ञानयोरेकं श्रेयस्तद्गृहि मे प्रभो॥ ब्रह्मोवाच।

बानं हि परमं श्रेयः कैवल्यं तेन वेस्यलम् । कालातिबाह्नायैच विनोदायोदिता क्रिया॥ १६ अलब्धज्ञानदृष्टीनां किया पुत्र परायणम् । यस्य नास्त्यम्बरं पट्टं कम्बलं कि त्यजत्यसी॥ १७ वासनामात्रसारत्वादद्वस्य सफलाः क्रियाः । सर्वा प्रवाफला इस्य वासनामात्रसंक्षयात् ॥ १८ सर्वा हि वासमाभावे प्रयाग्यफलतां क्रियाः। अद्यभाः फलवन्खोषि सेकाभावे लता इव ॥ ऋत्वन्तरे यथा याति विखयं पूर्वमार्तवम् । तथैव वासनानारो नारामेति कियाफलम्॥ २० न स्वभावेन फलति यथा शरलता फलम्। किया निर्वासना पुत्र फलं फलति नो तथा॥ २१ सयक्षवासनो बालो यक्षं पश्यति नान्यथा। सतुःखवासनो मुदो तुःसं पश्यति नान्यथा॥ २२ आकारभासुराष्युधैर्न ददाति फलं किया। द्यभाद्यभा वा तज्ज्ञस्य फुह्या शरलता यथा॥ २३

यामृतम्भूते' इलादिश्रुतेरमृतं अमृतलहेतुरिति विश्रान्तये परिवृहीतमपि कर्मसमुचितसुपासनं मे विश्रान्सजननाद्विषमिव स्थितं तत्कस्य हेतोस्तद्वदेति भावः ॥ १४॥ कर्मसमुक्तिो-पासनान्मकिरिति राहो अमो यावन निवार्यते ताबदयमुपदि-ष्टमप्यात्मतत्त्वं न प्रतिपत्स्यत इति तिश्रवारणाय खस्य पिता-महोपदिष्टं क्रमं श्रावयति-पितामहमिति । क्रियाज्ञानयोर्मध्ये यदेकं मुक्तिकारणं तद्र्दीत्यर्थः ॥ १५ ॥ वेति प्रत्यक्षमनुभ-वति । किया तु खर्गादिभोगविनोदाय प्रवृत्तापि तस्य फल्यु-लादपरुषार्थतया अनर्थानुपार्जनेनायुःकालापनोदनार्थेव श्रुत्या उदिता उक्तेलार्यः । तथाच श्रुतिः 'कुर्वभेवेह कर्माण जिजी-विषेच्छतं समाः । एवं लिय नान्ययेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे' इति ॥ १६ ॥ अतएवेयं श्रुतिर्विद्यां चाविद्यां चेति श्रुतिश्व ब्रानानिधकारिविषया । तत्र मृत्युतरणं खाभाविकदुश्वेष्टाव्या-वृत्तिरमृतत्वं चापेक्षिकमिप्रेतमित्याशयेनाइ-अलब्घेति । पीत्रस्याप्यपत्यसात्पुत्रेत्युक्तिः ॥१७॥ ननु ज्ञानिनोपि खवणीश्र-मोचितकर्मक्रवाणा दश्यनते तत्कथमलब्धज्ञानदृष्टीनामेव किया-शरणं तत्राह-वासनेति । श्रद्धानो रागी वा विहितनिषिद्धकर्म-फलं भुद्धे । नच कर्तृत्वभोक्तृत्ववासनानाक्षे श्रद्धा रागो वा संभव-तीति भावः । मात्रशब्दः कात्स्न्येपरः ॥ १८ ॥ किमशुभा अपि क्रियास्तथैव । अभित्याह—सर्वाहीति । न्त्योऽपीति । यत्रारब्धफडा अपि किया बाधितानुवृत्तिमात्रेण सफलशुष्कलतात्राया भवन्ति तत्रानारव्यफला कि वाच्यम् । 'तरवो यत्र दखन्ते तृणावां तत्र का कथा' इति वासना चेह नास्त्येष साहंकारादिकपिणी।
असत्येषोदिता मौर्क्यान्मरुभूमाविषाम्बुधिः॥ २४
यस्य मौर्क्यं क्षयं यातं सर्वं ब्रह्मेति भावनात्।
नोदेति वासना तस्य प्राप्तस्येषाम्बुधिमंरौ॥ २५
वासनामात्रसंत्यागाज्यरामरणवर्जितम्।
पदं भवति जीवोऽन्तर्भूयो जन्मविषर्जितम्॥ २६
सवासनं मनो क्षेयं हानं निर्वासनं मनः।
हानेन क्षेयमभ्येत्य पुनर्जीवो न जायते॥ २७
स्थुडालोवाषा।

शानमेव परं श्रेय इति ब्रह्माद्योऽपि ते।
प्राहुर्महान्तो राजर्षे त्वं किमज्ञानवान्स्यतः॥ २८
इतः कमण्डलुरितो दण्डकाष्ट्रमितो इसी।
इत्यनर्थविलासेऽसिष्ठमसे किं महीपते॥ २९
कोऽहं कथमिदं जातं कथं शाम्यति चेति भोः।
राजन्नावेशसे कसात्किमज्ञ इव तिष्ठति॥ ३०
कथं बन्धः कथं मोक्ष इति प्रश्नानुदाहरन्।
पाराचारविदां पादान्कसाद्राजन्न सेवसे॥ ३१
दुःस्पन्दसंविदा शैलकोटरे किययानया।
जीवितं क्षिपयन्कि त्वं शिलाकीटबदास्थितः ३२
साधूनां समद्यीनां परिप्रश्नेन सेवया।

न्यायादिति भावः ॥ १९ ॥ ऋलन्तरे प्रीष्मशरदादौ । पूर्व-मार्तवमृतुलिङ्गं नीहारजलभरादि ॥ २० ॥ निर्वासनापि किया कुतो न फलतीति चेत्काशस्त्रतावस्त्वभावादेवेत्याइ-नेति ॥२९॥ मुखदुः सभोगयोग्योहमिति वासनैव वा तत्तदुद्भववीजं यक्षञ्रा-न्तिफले बालयक्षवासनाषदित्याशयेनाह्-सयक्षेति ॥२२॥२३॥ अज्ञदशायामधीकयासमर्थलात्सत्याया वासनायाः कथं ज्ञानेन बाधस्तत्राह-नासनेति । इह अज्ञद्शायामपि ॥ २४ ॥ प्राक्तनवासनानाशेऽपि ज्ञानोदयोत्तरमुत्पत्रया तया किया फलतु तत्राह-यस्यति । प्राज्ञस्य मरुदेशोऽयमिति प्रबोधवतः ॥२५॥ पदं परमपुरुषार्थवस्तु ॥ २६ ॥ पितामहोक्तिमुपसंहरति--ज्ञानेनेति ॥ २० ॥ अज्ञानवान् ज्ञानं विहाय तप एव मोक्ष**हे**-तुरिति निश्चित्य किं स्थित इत्यर्थः ॥ २८ ॥ विवेकहीनस्य बहिर्मुखस्य दण्डकमण्डल्वाद्यल्पमपि ममतादिविषयतया अ-नर्यायालमित्याशयेनाइ—इत इति ॥ २९ ॥ यदि तपोऽप्य-नर्थो हेयस्तर्हि क उपादेगत्तमाह—कोहमिति । नावेक्षसे न विचारयसि ॥ ३०॥ विचार इब गुर्वभिगमनसेवनपरि-प्रश्नादयोऽप्युपादेया इति दर्शयति—कथमिति । संसार-समुद्रस्य पारं परतीरं सन्मात्ररूपः शोधिततत्पदार्थः। अवा-रमपरतीरं चिन्मात्ररूपः शोधितत्वंपदार्थसादखण्डेक्यछक्षण-वाक्यार्यविदामित्यर्थः । अथवा पारावारः परमानन्दसमुद्रस्त-द्विदामिखर्यः ॥ ३१ ॥ दुःस्पन्दा त्रतोपवासशीतोष्णाविदुःखद्-प्रवृत्युन्युक्ती आत्मसंविद्यस्यां तथाविधया अनया तपःकियया जीविवसायुः क्षिपयन् ॥ ३२ ॥ सा खद्भिरुषितविश्रान्तियुः

संगमेन च सा युक्तिर्छभ्यते मुच्यते यया॥ \$3 साधुनैव समं प्रासं भुजानो वनकोटरे। तिष्ठावप्टब्युक्रेष्टो धराविवरकीटवत्॥ 38 वसिष्ठ उवाच। कान्तया देवरूपिण्या तयैवं प्रतिबोधितः। अश्रुपूर्णमुको वाक्यं शिक्षिध्वज उवासह ॥ 34 शिखिध्वज उवाच। अहो जु बोधितोऽस्म्यद्य चिरात्सुरसुत त्वया। मौर्क्यादार्यसमासङ्गं मुक्त्वाहमवसं वने ॥ 38 अहो नु मे क्षयं यातं मन्ये पापमशेषतः। यत्त्रमेव समागत्य संप्रबोधयसीह माम्॥ रुष गुरुस्त्वं मे पिता त्वं मे मित्रं त्वं मे वरानन। शिष्यो नमस्करोम्यद्य पादौ तब कृपां कुरु ॥ ३८ यदुदारतमं वेत्सि यसिन् काते न शोच्यते। भवामि निर्वृतो येन तद्रह्मोपदिशाशु मे ॥ 39 घटहानादयो हाने विभागाः सन्खनेकशः। शानानां परमं शानं कतरत्तारकं भवेत्॥ 80

चुडालोवाच । यशुपादेयवाक्योऽहं राजर्षे तद्वदामि ते। यथाज्ञानमिदं किंचिष वस्ये स्थाणुकाकवत्॥ ४१ अनुपादेयवास्यस्य वक्तः पृष्टस्य लीलया । वजन्त्यफलतां वाचस्तमसीवाक्षसंविदः॥ ४२ शिखिभ्वज उवाच। यद्वक्षि तदुपादेयं मया विधिरिव श्रुतेः। अविचारितमेवाशु सत्यमेतद्वचो मम ॥ કરે चुडालोघाच । यथा बालः पितुर्वाक्यं मुक्तहेतूपपादनम्। आद्ते हि तथव त्वं गृहाणैतद्वचो मम ॥ उड श्रवणानन्तरं बुद्ध्या शुभमित्येष भावयन्। शुण गीतमिव त्यक्त्वा हेत्विधित्वं वची मम ॥ ४५ स्वचरितसदृशं तथोदयन्त्या-श्चिरसमयेन विवोधनं च बुद्धेः। भवभयसुतरं महामतीनां शृणु कथयामि कथाकमं मनोक्सम् ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे शिखिष्वजावबोधो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८

श्रृहालोषाच ।
अस्ति कश्चित्पुमान् श्रीमान् स्थानं नित्यविरुद्धयोः ।
गुणलक्ष्म्योरशेषेण यथाध्धिर्वाडवाम्बुनोः ॥ १
कलावानस्रकुशलो व्यवहारविश्वस्रणः ।
सर्वसंकल्पसीमान्तो नतु जानाति तत्पदम् ॥ २

खप्रदा ज्ञानयुक्तिः ॥ ३३ ॥ तर्हि मयेदानीं कथं स्थेयं त॰ दाह-साधुनैवेति । अवष्टब्धा निरुद्धास्तपःक्रेशादिबहिर्मुख-दुश्रेष्टा येन तथाविधः सन् साधुना गुरुणा सममेव प्रासमाहार भुजानस्तत्सेवापरस्तदुपदिष्टार्थे घराविवरकीटवन्निश्वलस्तिष्ठेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ निर्वृतः सुखविश्रान्तः ॥ ३९ ॥ ज्ञानमेव परं श्रेय इति यस्वया परमं ज्ञानं तारक-मुक्तं तदेतेषां ज्ञानानां मध्ये कतरद्भवत् । किमीदशं तटस्थ-विषयमेव तज्ज्ञानमुतान्यादशमिति भावः ॥ ४० ॥ श्रद्धस सोम्येति श्रुतेरश्रद्धानेषु कृतोष्युपदेशः स्थाणोरश्रे काककृतव-बर्थो निन्दाश्वेति प्रथमं श्रद्दधानो मवेत्याह—यदीति । तत्तर्हि इदं लत्प्रष्टं ज्ञानं यथा यादशं तद्वदामि वक्ष्यामि ॥ ४१ ॥ जीलया अनास्थया पृष्टस्य वक्तुर्वाचः । अक्षसंविदश्रक्षुःसनि-कर्षाः ॥ ४२ ॥ श्रुतेः 'सर्गकामो यजेते'त्यादिविधिर्निर्दोषप्रा-माण्येन निश्वितः शिष्टेर्भुक्तसंशयमुपादीयते तद्वतुपादेयमित्यर्थः। अविचारितं प्रामाण्यसंशयेनादिकल्पितम् ॥ ४३ ॥ मुक्तं हेतु-भिरुपपादनं यस्य तथाविधमपि प्रमाणबुद्धा यथा आदत्ते ॥ ४४ ॥ शुभं खहितमिल्येव भावयन् । कर्णसुखावहं गीतं अनन्तयस्रसंसाध्ये स चिन्तामणिसाधने । प्रवृत्तो वाडवो वहिर्राध्यसंशोषणे यथा ॥ ३ तस्य यहेन महता कालेनाध्यवसायिनः । सिद्धश्चिन्तामणिः किंवा न सिद्धात्युचतात्मनाम् ४

गानमिव प्रीत्या श्रणु ॥ ४५ ॥ तत्रादी देहायभिमानत्याजनाश दुःखनिदानोपदर्शनाय च मणिकाचोपाल्यानं हस्ति-काल्यानं च श्रावयितुमवतारयति—खचरितेति । सस्य तय च-रितेन सदर्श तथा मन्दगतीनामि बुद्धेश्वरसमयेन विचारी-दयद्वारा उदयन्त्या बुद्धेश्विधेमं महामतीनां च सद्य एव भय-भयं सुतरं यस्मात्तथाविधम् । विशेषणपरनिपातद्द्यान्द्रसः । ईद्शं कथाक्रमं कथयामि श्रण्वित्यर्थः ॥ ४६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्यर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे सप्ता-श्रीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

में।खर्याचिन्तामणि प्राप्तमुपेश्य तपसा चिरात् । कार्च कश्चिन्मणिश्चान्त्या जग्नाहेति कथोच्यते ॥ ३ ॥

निसं परस्परिकद्योः औदार्थवैराग्यसर्वस्वत्यागादिगुणस्य लक्ष्म्याः संपद्ध स्थानमाषासभूतः । यथा अव्धिवंदवानलस्य अम्बुनश्च विरुद्धयोः स्थानं तद्वत् ॥ १ ॥ तत्परमास्मपदं तु न जानाति ॥ २ ॥ स किं चकार तदाह—अनन्तेति । अनन्तेस्तपोजपदेवताप्रार्थनान्वेषणादिगोचरेथेकः संसाध्ये चिन्तामणेः साधने तपआदौ प्रवृत्तः॥ ३ ॥ अध्यवसायिनो द्वति

प्रवृत्तिमुद्यमं प्रशां प्रयुद्धे चेद्खेद्वान्। अकिंचनोऽपि शकत्वं समवाप्नोत्यविद्यतः॥ मणिमग्रे स्थितप्रायं हस्तप्राप्यं ददर्श सः। मेराबुदयश्टङ्गस्थो मुनिरिन्दुमिवोदितम्॥ बभुव मणिराजेन्द्रे नतु निश्चयवानसा । राज्ये द्वागिति संप्राप्ते सुदीन इव पामरः ॥ इदं संचिन्तयामास मनसा सायशालिना। संप्राप्तोपेक्षया दीर्घवःखसंभ्रमशालिना ॥ अयं मणिर्मणिर्नायं मणिश्चेसञ्ज्ञवेष्ट्र सः। स्पृशामि न स्पृशाम्येनं कदाचित्स्पर्शतो वजेत् ९ नैतावतेव कालेन मणीन्द्रः किल सिज्यति। यहोन जीवितान्तेन सिद्ध्यतीत्यागमक्रमः॥ 80 क्रपणः कृणितेनाक्ष्णा छोळाळातळतोपमम्। रहालोकं प्रपद्यामि ब्रिचन्द्रत्वमिव भ्रमात्॥ ११ कृत एतावती स्फीता भाग्यसंपन्ममागता। अधुनेव यदाशोमि मणीन्द्रं सर्वसिद्धिदम्॥ १२ केचिदेव महान्तस्ते महाभाग्या भवन्ति हि। येपामरुपेन कालेन भवन्यभिमुखाः श्रियः॥ अहमल्पतपाः साधुवराको मानुषः किल । सिद्धयः कथमायान्ति मामभाग्येकभाजनम् ॥ १४ एवं विकल्पसंकल्पेश्चिरमञ्चः परासृशन्। न मणित्रहणे यस्नमकार्चीन्मीर्ख्यमोहितः॥ १५

श्रयवतसास्य महता तीत्रायासेन यहानास्पदालेनेव चिन्तामणिः सिद्धोऽप्रे स्थितः । दृढोद्योगं फलावश्यंभावनियम इति दर्श-यति—किंचेति ॥ ४ ॥ प्रज्ञामिति । आश्रिलेति शेषः ॥ ५ ॥ यथा कश्चिदुदयाचलश्यास्थो मुनिस्तत्रैवोदितमिन्दुं हस्तप्राप्यमपि भ्रान्ता मेराब्रहितं दूरतरस्थमिव दुष्प्रापं पश्यति तद्रहदर्शेत्यर्थः ॥ ६ ॥ अतएव मणिराजानां इन्द्रे ईश्वरे तस्मि-धिन्तामणी निधयवान्स न बभव । सुदीनो दरिद्रतमः॥ ७॥ स्मयो विस्मयस्तन्छालिना । संश्रमशालिना श्रान्तेन मनसा । इदं वध्यमाणप्रकारम् ॥ ८ ॥ अयं मणिरित्यापातज्ञानम् । नायं मांपोरिति भ्रमः । मणिश्रेरस्यात्तत्तर्हि स मदत्रस्यक्षो न भवेत् , तत्तर्हि परीक्षणाय स्प्रशामि स्पृशेयमितीच्छाभिलापः । न स्प्रशामि न स्पृशेयम् । यतः कदाचिन्मणिश्वेदभाग्यस्य मम स्पर्शतोऽन्तर्थानं अजेत् ॥९॥ इति शङ्कायां बीजमाह—नेता-वतेति । आगमोऽत्रैतिसं तत्कमः ॥ १० ॥ कथं तर्हि प्रत्यक्षं रक्रास्त्रोकदर्शनं तत्राह-कृपण इति । कृपणोऽहं स्वकार्पण्यवशा-क्रणितेन भ्रान्तिसंक्रचितंनाक्ष्णा छोलालातकल्पित्वलोपमं रक्रालोकं भ्रमारप्रपद्यामि ॥ ११ ॥ भाग्यं पुण्यं तरसंपत् ॥१२॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ कतो नाकार्षीसत्राह-न यदेवि । लब्धव्यं यदिति शेषः ॥ १६ ॥ किमर्यमुद्रीय गतस्तत्राह—

न यदा येन लम्धन्यं न तत्प्राप्नोत्यसौ तदा। चिन्तामणिरवाप्तोऽपि दुर्धिया हेलयोज्झितः॥१६ इति तस्मिन्स्थिते यातो मणिरुडीय सिद्धयः। त्यजन्ति हावमन्तारं शरो गुणमिवोज्ज्ञितः॥ हत्वा प्राञ्जपदं पुंसः संयान्ति किल सिद्धयः। आगताः संप्रयच्छन्ति सर्वे यान्त्यसहस्यलम् ॥ १८ पुमान्भूयः कियायलं चक्रे रहेन्द्रसाधने । नोद्विजन्ते स्वकार्येषु जना अध्यवसायिनः॥ ददर्शाथ कचद्रपं काचखण्डमखण्डितम्। हसद्भिवेञ्जकैः सिद्धैः प्रस्कृतमलक्षितैः॥ २० अयं चिन्तामणिरिति मृहस्तस्मिन्सवस्तुताम्। बुबुधे मोहितो हाको सृदं हेमेति पश्यति ॥ २१ अप्री षष्टं द्विपं मित्रं रज्जं सर्पं स्थलं जलम्। चन्द्रों हो कुरुते चित्तगतो मोहोऽसृतं विषम् २२ तं दग्धमणिमादाय प्राक्तनी च श्रियं जही। सर्व चितामणेरसात्त्राप्यते किं धनैरिह ॥ 23 देशोऽयमसुखो रूक्षो जनः पापिमिरावृतः। किं तद्वेष्टं गतप्रायं किं नाम मम वन्धवः ॥ રપ્ટ दूरं गत्वा यथाकामं सुखं तिष्टामि संपदा। इत्यादाय मणि मृढः शून्यकाननमाययौ ॥ ર્પ तत्र काचकणेनासी तेन तामापदं यथी। कजालाद्वेरिव निभा मैर्ल्यस्येवाङ्ग या समा॥ २६

सिद्धयस्त्यजन्ति हीति । यथा मौर्व्या उज्झितः शरो गुणं मीबी त्यजति तद्वत् ॥ १७ ॥ ननु लया स पुरुषो व्यवहार-विचक्षण इति कथोपक्रमे उक्तं तस्य सा विचक्षणता मणिल-द्विकाले क गता तत्राह—हवेति । सिद्धय आगताः सत्यः पंसः प्राज्ञपदं विचक्षणतां संप्रयच्छन्ति । असहति असहमाने उपेक्षके त पंति अलं यान्ति । अपगच्छन्त्यश्च । सर्वे तस्य प्राक्तनमपि प्राज्ञपदं विनक्षणलं हला विनार्य संयान्ति किले-खर्थः । यथाहुः 'न देवा दण्डमादाय दण्डयन्खपराधिनम् । बद्धिं तस्यापकपैन्ति तेनासौ दण्ड्यते खतः' इति ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ इसद्भिः परिहासपरेरतएव वस्रकेः सिद्धैः पुरस्कृत-मध्रे स्थापितम् ॥ २० ॥ वस्तुतां उपादेयताम् ॥ २१ ॥ मोहस्यान्ययाकारितां प्रसिद्धामुदाहरति-अष्टाविति । अष्टी पदार्थान्कदाचित्संख्याच्यामोहात् पष्टं षद कुरुते । एवं द्विषं मित्रं कुरुते इत्यादि योज्यम् ॥ २२ ॥ दग्धशब्दो निन्दापरः। श्रियं धनधान्यादिसंपदम् ॥ २३ ॥ एवं देशगृहवन्धावीनपि भ्रमात्स जहावित्याह—देश इति । रूक्षः क्रिग्धजनशून्यः । गतप्रायं जीर्णमिति यावत् ॥ २४ ॥ मणि काचलण्डम् । ॥ २५ ॥ या भापत् कष्मलादेनिंमा कान्तिरिय गादनीला । मैं।हर्यस्पेव या समा अनुक्ष्या । मृत्युक्ष्येति मावत् ॥ २६ ॥

दुःसानि मौर्ख्यविभवेन भवन्ति यानि नैवापदो न च जरामरणेन तानि।

सर्वापदां शिरिस तिष्ठति मोर्ख्यमेकं हुग्णं जनस्य वपुषामिव केशजालम्॥ २७

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चूडा० मणिकाचोपाख्यानं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥८८॥

एकोननवित्तमः सर्गः ८९

चुडालोवाच । अधेममपरं रम्यं बृत्तान्तं शुणु भूमिप। परं प्रबोधनं बुद्धेः साधो सददामात्मनः ॥ अस्ति बिन्ध्यवने हस्ती महायृथपयूथपः। आगस्या शुद्धया बुद्ध्या विन्ध्येनेवोदितः स्वतः २ वजार्विविषमी दीवी तस्यास्तां दशनो सिनी। कल्पानलशिखातुल्यौ सुमेरूनमूलनक्षमौ ॥ स बद्धो लोहजालेन हस्तिपेन किलाभितः। मुनीन्द्रेणेव विन्ध्याद्विरुपेन्द्रेणेव वा बलिः॥ निबद्धो यत्रणामाप शस्त्रकुम्भार्दितो गजः। तां जगाम व्यथां घीरो नवाझौ पुरमेति याम्॥ ५ रिपौ हस्तिपके दूरादपदयति स वारणः। अयःसमुद्रके यसिष्टिनाय दिवसत्रयम्॥ खेदान्निगडनिभंदे यह्नवान्स मतंगजः। चकार किंकिणिकाणं मुखोद्धातैरथान्यदा ॥ दन्ताभ्यां यह्नतस्ताभ्यां मुहूर्तद्वितयेन सः। बभञ्ज शृह्खलाजालं स्वर्गार्गलमियासुरः॥ तं तस्य निगडच्छेद्मपद्यद्दरतो रिपुः। बलेः स्वर्गावदलनं हरिमेंहतलादिव ॥ तस्य विच्छिन्नपाशस्य मूर्फि तालतरो रिपुः। पपात क्रमतः स्वर्गे हरिमेरोर्बलेरिव ॥ 80

तस्मान्मीर्ख्यमेव दुःखहेतुषु पराकाष्ट्रत्युपसंहरति—दुःखानिति। मौर्ख्यविभवेन यानि दुःखानि प्रसिद्धानि तानि सर्वखन्नाषादेरापदः सकाषान्नापि जरया मरणेन वा भवन्ति मौर्छ्यान्पामे तत्त्वविदामापदादिसहस्नेभ्योऽपि दुःखादर्शनात् हेमपर्यक्षे शयानस्यापि सति मौर्छ्यां दुःखसहस्रदर्शनाच । अतः सर्वापदां शिरसि मौर्छ्यमेवैकं तिष्ठति । यथा जनस्य सर्वस्य शिरसि कृष्णं केषाजां तिष्ठति तद्वदिस्यर्थः ॥ २७ ॥ इति श्रीवासिष्ठम-हारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टादीतिसमः सर्गः॥ ८८॥

बद्धविन्ध्यगजेन्द्रस्य यक्षाच्छित्वापि बन्धनम् । अतिक्रतो रिपुं प्राप्तं खाते पातोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥ अत्र हस्तिकाख्यानमपि निदर्शनमतस्तदपि श्टिष्वत्याह— अयेति । इलान्तमाख्यानम् । आत्मनस्तव सदशम् ॥ १ ॥ अगस्त्यस्येयमागस्ती तया । 'सूर्यतिष्य-' इति यठोपः । चिर-स्याज्ञापरिपाठनाच्छुद्धया प्रसन्नया अनुप्रहसुद्ध्या विंभ्येन स्वतः

१ विन्ध्यात्मना स्वेन प्राक्तनोत्रतरूपेणेत्यर्थः.

स पतन्पादपद्माभ्यामप्राप्य करिणः ज्ञिरः। पपातोर्क्यो फलं पकं बाताहतमिवाकुलः॥ ११ तं पुरः पतितं दृष्टा महेभः करुणां ययो। स्फूरत्स्फारगुणाः सन्तः सन्ति तिर्यगातावि १२ पतितं दलयामीति किं नाम मम पौरुपम्। वारणोऽपीति कलयन्न जन्नान स तं रिपुम्॥ १३ केवलं निगडन्युहं विदार्याभिजगाम ह । विततं सेतुमुत्सार्य विपुलीय इयाम्भसः॥ १४ दयामाश्रित्य मातङ्गो भङ्कत्वा जालं जगामह। विदार्य मेघसंघातं नभसीव दिवाकरः॥ १५ गते गजे समुत्तस्थी हस्तिपः स्वस्थदेहधीः। गजेनैव समं तस्य व्यथा दूरतरं गता ॥ १६ प्रोचलत्तालशिखरात्स तथा पतितोऽपि सन्। न मेदमाप दुर्भेदा मन्ये देहा दुरात्मनाम्॥ १७ वर्धते प्रावृषीवाभ्रं कुकार्येष्वसतां बलम्। आसीद्धिकमुत्साही स च चंक्रमणे तदा ॥ १८ वारणारिरसिद्धाङ्गो गतेभो दुःखमाययौ। आगत्योपगतेऽन्तर्धिं निधान इव वर्धनः॥ १९ सोऽन्वियेष गजं यल्लाह्रस्मकान्तरितं वने । पयोदपिण्डितं भोक्तं राह्यरिन्द्रमिवास्यरे॥ चिरेणालभतेभेन्द्रं कस्मिश्चित्कानने स्थितम्।

प्रक्तनोन्नतरूपेणोदितः प्राहुर्भूत इवेत्युप्त्रेक्षा ॥ २ ॥ वन्नस्याविषी ज्वाले इव विषमो तीक्णो ॥ ३ ॥ लोहमयेन जालेन ।
मुनीन्द्रेण अगस्त्येन ॥ ४ ॥ यन्त्रणां नियम्त्रणाम् । कदाप्यसंभावितत्वादलाँकिकलाच नवे अपूर्वे हरशरामा दृश्यमानं
त्रिपुरं यां व्यथामेति ताम् ॥ ५ ॥ समुद्गके जालसंपुटे ॥ ६ ॥
किंकिणीनामिव काणं ध्वनिम् ॥ ५॥ सगस्यामरावत्या अगेलं कवाटविष्कम्भम् । असुरो विलिखा । ।।। रिपुर्हस्तिपकः ॥ तालतरोस्तालतरुमारुख ततस्त्रस्य हन्तिनो मृधि पपात । यथा विलयक्षे
पदत्रयमितां भुवं प्रतिगृद्ध प्रथमेन पदेन भुवं द्वितीयेन स्वर्गमिति
कमतस्तृतीयपादपूर्तये मेरोः सकाशाद्धलेमूधि पपात तद्वदित्यर्थः
॥ १० ॥ ११ ॥ करुणां दयाम् ॥ १२ ॥ इति कल्यंधिनतयन्सन्
॥ १३ ॥निगडव्यूहं श्रृङ्कलालालम् ॥१४ ॥१५॥स्वस्थो देहो घीध्व
यस्य तथाविधः सन् ॥१६ ॥ मेदं शिरःपादादिभङ्गम् ॥ १० ॥
चंक्रमणे पद्धां चलने ॥ १८ ॥ न सिद्धे अङ्गे स्वप्रयुक्तोपासी
यस्य । अत एव गतेभः ॥ १९ ॥ पयोदेः पिण्डितं लक्नम्

विभान्तं तं तरुतले समरादिव निर्गतम्॥ २१ अथ यत्र स्थितो नागस्तत्र तद्दन्धनक्षमम्। परवा राजसामप्रवा गजलम्पटभूमया ॥ २२ स खातवलयं चके हस्तिपः काननेऽमितः। सर्वदिकं विधिर्भूमी समुद्रवलयं यथा ॥ 23 उपर्यस्थगयद्वाललतीधेन स तं शठः। शून्यतातन्तुजालेन शरत्काल इवाम्बरम् ॥ २४ दिनैः कतिपयरेष वारणो विहरन्यने। तस्मिन्निपतितः खाते ग्रुष्काब्धाविव पर्वतः॥ २५ व्रजन्पर्याकृती कृपे पातालतलभीषणे। खातशुष्काञ्यधोभागे गजरससमुद्रके ॥ २६ इति भूयो दृढं बद्धस्तेन हस्तिपकेन सः।

तिष्ठत्यचापि दुःखेन मूसमिन यथा बिलः ॥ २७ अहनिष्यतुरेवासौ यथमे पतितं रिपुम् । तम्रालप्यसतो दुःखं गजः खातनिबन्धनम् ॥ २८ मौर्ख्यादागामिनं कालं वर्तमानिकयाक्रमैः । अशोधयमरो दुःखं याति विन्ध्यगजो यथा ॥ २९ मुक्तोऽस्मि शस्मिनगडादिति तुष्टो हि वारणः । दूरस्थोऽपि पुनर्धद्यो मौर्ख्यं क च न वाधते ॥ ३० मौर्ख्यं हि बन्धनमवेहि परं महात्म-न्बद्यो न बद्ध इति चेतसि तहिमुत्त्ये । आत्मोद्यं त्रिजगदात्ममयं समस्तं मौर्ख्यं स्थितस्य सहसा नवु सर्वभूमिः ३१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू० हस्तिकोपाख्यानं नाम एकोननवितिमः सर्गः ॥८९॥

नवतितमः सर्गः ९०

दिखिश्वज उदाच ।

मणिसाधकविन्ध्येभवन्धनाद्यमरात्मज ।
सूचितं यत्कथाजालं पुनमें प्रकटीकुरु ॥
स्यूडालोवाच ।
बाक्यार्थरष्टेनिंग्पत्या हृहृहे चिसमिसिषु ।
प्रणु स्वयं कथां चित्रां चित्रमुन्मीलयामि ते ॥
थोसी शास्त्रार्थकुशलसत्त्वज्ञाने त्वपण्डितः ।
रक्षसंसाधकः प्रोक्तः स त्वमेव महीपते ॥

॥ २०॥ २१ ॥ तत्र सन्निधौ । गजे रुम्पटानामासक्तजनानां भूमा बाहुल्यं यस्पां तथाविधया राजप्रयुक्तया खातसामम्या ॥ २२ ॥ विधिः स्रष्टा ॥ २३ ॥ शठो वश्वकः । शून्यतापि-धायकतन्त्रजालप्रायेण शुभाभ्रपटलेन शरत्कालोऽम्बरमिव तं स्रातमुपरि बाळळताजाळेनास्थगयत् आच्छादितवान् ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ पर्योक्कतौ वलयाकारे तस्मिन् कृपे खातशुष्काब्ध्यधो-भागे वजनपि स गजः इति अनया रीत्या गजरमसमुद्रके भयो दढं बद्धः समधापि तिष्ठतीति परेणान्वयः ॥ २६ ॥ ॥ २० ॥ यद्यहनिष्यत् ततस्तदा स्नातनिबन्धनं दुःसं नाल-क्यत ॥ २८ ॥ अतएव बुद्धिमानागामिकालमिदानीभेव शा-क्षीयपुरुषप्रयत्नेर्दुःखबीजसंमार्जनेन शोधयेदित्याह-मीर्ह्या-दिति ॥२९॥ यावत्सर्वदुःखनिदानमज्ञानं नोच्छत्रं तावत्प्रयहा-सहस्रेः इतोऽपि दुःखोपशमो व्यर्थ एवेत्याशयेनाह—मुक्तो-सीति । किलार्थे चशन्दः ॥ ३० ॥ तस्माद्शारमेव मूलबन्ध-स्त्रिमृतिरद्वितीयात्मतस्यज्ञानादेवेति दर्शयमुपसंहरति-मी-र्स्थमिति । हे महात्मन् , न बदः सदा बन्धशून्यः खयं बद इति चेतिस यन्मीस्यं तदेव परं बन्धनमतस्त्वं तद्विमुक्तये आध्यात्मिकाथिदंविकाथिभौतिकत्रिविधपरिच्छेदारमना आत्म-बन्धनभूतं त्रिजगदारमनः सकाशादेवोदयो जन्म यस्य तथा- तज्ह्वो भवति शास्त्रेषु रिवर्मेरुतरेष्यिष ।
तत्त्वह्वाने तु विभ्रान्तो न त्वं दृषदिवाम्मसि ॥ ४
विद्धि चिन्तामणि साधो सर्वत्यागमकृत्रिमम् ।
तमन्तं सर्वदुःखानां त्वं साध्यसि शुद्धधीः ॥ ५
सर्वत्यागेन शुद्धेन सर्वमासाद्यतेऽनघ ।
सर्वत्यागो हि साम्राज्यं किं चिन्तामणितो भवेत् ६
सिद्धः सर्वपरित्यागः साधो संसाध्यतस्तव ।
सर्वीकृतजगद्गृतिर्विद्यास्यात्मोव्यस्तथा ॥ ७

विधं समस्तमातममयं विद्धि । तथा वेदने आत्मव्यतिरिकापदिशेषादातमा निस्यमुक्त एव भवति । ईदृशवेदनामावे तु
मौहर्ये स्थितस्य पुंस आत्मैव सहसा सर्ववन्धादिदुःस्ववीजानां
भूमिः प्ररोहसेत्रं भवतीस्थयः ॥ ३९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणताल्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे एकोननवतितमः
सर्गः ॥ ८९ ॥

मणिकाचशुभाक्यानतात्वर्वसिष्ठ विकारात् । विवृणोति पुरो राज्ञश्रृषाका कुम्भरूपिणी ॥ १ ॥

हे अमरात्मज देवपुत्र, लया यत् मणिसाधककथाजालं स्वादित्रसमित्युक्तया मत्प्रतिबोधनोपाय इति सूचितं तत्प्रकटीकुरु ॥ १ ॥ हृद्ध्यं तलक्षणे गृहे चित्तलक्षणासु मितिषु चित्रां कथामेवोन्मीलितं रेखामात्रेण कृतं चित्रं व्याख्यावणंवे-चित्र्येणोन्मील्यामील्यंः ॥ २ ॥ तत्रादाविति कथित् पुमान् श्रीमानित्यादेनोक्तो मणिसाधकः स लमेवेत्याह—योऽसाविति ॥ ३ ॥ लिय कलावान् शासकुशल इत्यासुक्तलक्षणमस्तिलाह—तज्म इति ॥ ४ ॥ कोऽसो चिन्तामणिर्यत्साधनेऽदं प्रवृक्तसमाह—विदीति ॥ ५ ॥ तस्य चिन्तामणिर्वाप्रपाद्वयति—सर्वत्यागेनिति । साम्राज्यमात्यन्तिकी पूर्णकामता ॥ ६ ॥ खर्यकृता तुन्लीकृता हैरण्यगर्भपदान्ता जगरप्रसिद्धा मृतिरै-

संत्यक्तं भवता राज्यं सदारधनबान्धवम् । ब्रह्मणेव जगत्सर्गव्यापारः स्वनिशागमे ॥ 4 स्बदेशस्यातिदृरस्थमागतोऽसि ममाथमम्। भवोऽन्तमिव विश्रान्त्ये वैनतेयः सकच्छपः॥ ९ केवलं सर्वसंत्यागे दोपिताहंमतिस्त्वया। मृष्टाखिलकलड्डेन स्वसत्तेवानिलेन खे॥ १० मनोमात्रे हृदस्त्यके जगदायाति पूर्णताम्। त्यागात्यागविकस्पैस्तवं खमम्भोदैरिवावृतः ॥ 88 नार्ये स परमानन्दः सर्वत्यागो महोदयः। कोऽप्युचैरन्य पवासौ चिरसाध्यो महानिति १२ चिन्तयेति गते वृद्धि संकल्पग्रहणे शनैः। वात्ययेव वनस्पन्दे त्यागः प्रोड्डीय ते गतः॥ १३ स्यागिता स्यात्कुतस्तस्य चिन्तामप्यावृणोति यः । पवनस्पन्दयुक्तस्य निःस्पन्दत्वं कुतस्तरोः॥ १४ चिन्तैव चित्तमित्याद्वः संकल्पेतरनामकम्। तस्यामेव स्फूरन्यां तु चित्तं त्यक्तं कथं भवेत १५ चित्ते चिन्तागृहीते तु त्रिजगज्जालके क्षणात्। कथमासाद्यते साधो सर्वत्यागो निरञ्जनः॥ १६ संकल्पप्रहणेनान्तस्त्यागः प्रोड्डीय ते गतः । शब्दसंश्रवणेनाङ्ग यथा प्रामविहंगमः॥ १७ निश्चिन्तत्वं परं सर्वे त्याग आदाय ते गतः।

आमध्यापृजितो जन्तुः स दुःखं न करोति किम् १८ सर्घत्यागमणावेषं गते कमळळोचन । तपःकाचमणिर्दष्टस्त्वया संकल्पचश्चषा ॥ १९ त्वया तस्मिस्तपस्येव दुःखे दृष्टिभ्रमोदिते। प्राह्मेकभावना वद्धा जलेन्द्री शशिनो यथा॥ २० अवासनमनासत्त्या कृतानन्ता सवासना। आद्यन्तमध्यविषमा दुःखायैव तपःक्रिया॥ ર્શ अमितानन्दमुत्सुज्य सुसाध्यं यः प्रवर्तते । मिते वस्तुनि दुःसाध्ये स्वात्महा स शटः स्मृतः२२ सर्वत्यागं समारभ्य न चैप साधितस्त्वया। तथा दुःखैकताश्चानवद्भेन वनसद्मनि॥ २ राज्यबन्धाद्विनिष्प्रम्य प्रसरदुःखपूरितात्। वनवासाभिधेः साधो बद्धोऽसि दृष्टवन्धनैः॥ २४ द्विगुणा एव ते चिन्ताः शीतवातातपादयः। बन्धनादधिकं मन्ये वनवासमजानताम्॥ રપ चिन्तामणिर्मया प्राप्त इत्यलं बुद्धवानसि । न लब्धवान्भवान्साधो स्फटिकस्यापि खण्डिकाम इत्येतदङ्ग मणियसकथासमानं सम्यङ्खाया प्रकथितं तव पद्मनेत्र । तद्बोध्यमेवममळं स्वयमेव बुद्धा यद्वेत्सि तरपरिणति नय चित्तकोशे ॥ २७

इस्पार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चिन्तामणिसाधकवृत्तान्तविवरणं नाम नवतितमः सर्गः॥९०॥

श्वरंपरम्परा येन तथानिधो विद्यालक्षणः स्वात्मोदयो निरतिश-यानन्दाभ्युदयो यस्मात्तथाविधश्च सर्वपरित्यागः । चार्थे तथा-शब्दः । ७ ॥ कथं सिद्धस्तदाह-संत्यक्तमिति । ब्रह्मणा वे-धसा ॥ ८ ॥ कच्छपप्रहणं गजन्यप्रोधशाखयोर्ष्यपसक्षणम् । वैनतेयस्येयं कथा भारतादी प्रसिद्धा ॥ ९ ॥ अहंमतिरभिमा-नस्पा अविद्या । मृष्टा अन्तिला अभ्रनीहारादिकलङ्का येन शारदानिलेन ॥ १० ॥ अहंमतिपरित्यागे परिशिष्टः पूर्णान-न्दातमा परमपुरुषार्थः स्वतएव हृदि साक्षात्स्फरतीति सर्वत्याग एव मोक्षः पर्यवसितः परमानन्दश्चिन्तामणिनं तल्लामे तद्ये-क्यान्यदन्वेषितव्यमित्याशयेनाह-मनोमात्रे इति । लं तु ल-कुलाभिमानपरिशेषास्यागात्यागविकल्पैरावृत इति न पूर्णतां प्राप्त **इ**त्याह—त्यागात्यागविकल्पेरिति ॥ ११ ॥ विकल्पवशा-देव प्राप्तेऽपि सर्वत्याने अविश्वासत्तवाभूदित्याह—नायमिति ॥ १२ ॥ इति चिन्तया संकल्पप्रहणे चिरं शृद्धि गते सति स ते सर्वत्यागः प्रोड्डीय गतः ॥ १३ ॥ यश्चिन्तामपि आ इंपदपि वृणोति स्वीकरोति ॥ १४ ॥ चित्तत्याग एव मुख्यः सर्वेखागः, चिन्तायां तु सत्यां चित्तं दुस्खनं, चित्तेन तु मंक-ल्पद्वारा जगदेव संगृहीतमिति न कस्यापि त्यागस्ते प्रतिष्ठित इलाशयेनाह-चिन्तैवेति द्वाभ्याम् ॥ १५ ॥ १६ ॥ प्राय-**बिहंगमः कपो**तादिः ॥ १७ ॥ सर्वेत्यागस्य फलं निधिन्तलं त्यागेनापगच्छता नीतमिनेत्युत्प्रेक्षते-निश्चन्तलमिति । पू-ज्यस्यानिमन्त्रितस्याथ पूजने दक्षाध्वरादावनर्थः प्रसिद्धः कि पुनः प्रार्थनासहस्रेरागतस्यापूजने इलाशयेनाह—आमङ्येति ॥ १८ ॥ ततः कोसी काचखण्डो यो मया मणियुद्धा गृहीत-स्तमाइ—तप इति ॥ १९ ॥ दुःखहेतुलादुःखे प्राह्ममिलेव भावना रढनिश्वयः । जलेन्दी प्रतिबिम्बचन्द्रे सत्यशश्चिनो भावनेय बद्धेखर्थः ॥ २० ॥ पूर्वमवासनं यथा स्यास्था अना• सक्त्या सर्वत्यागमुपकम्य पश्चादनन्ता सवासना तपःक्रिया कृता सा च वृथा । गृहधनदारादित्यागादादौ विषमा अन्ते फलासं-**ङ्ग**विषमा मध्ये वनवासशीतवातादिसहनाद्विषमेति दुःखायैवे-व्यर्थः ॥ २१ ॥ अमितात्मानन्दं सुसाध्यं च सर्वव्यागमुत्स्रज्य मिते दुःसाध्ये च तपभादिवस्तुनि यः प्रवर्तते स शठः अमि-तात्मखरूपविषातिलात्खात्महेत्यर्थः ॥ २२ ॥ वनसदानि तथा वर्णितप्रकारतपोदुःखैस्तदेकताप्रयोजकाज्ञानेन च बद्धेन त्वया एप प्राकृ समारब्धः सर्वत्यागो न साधितः ॥ २३ ॥ २४ ॥ वनवासमजानतां प्रागननुभूतवतां सुदुमाराणां वनवासं बन्ध-नादिष्टकं दुःखं मन्ये ॥ २५ ॥ खण्डिकां शकलमपि ॥ २६ ॥ उपपादितमणिसाभकचरित्रसाम्यमुपसंहरति-इत्यमिति । अङ्ग हे पद्मनेत्र, मया इत्येवं तब चरित्रं मणिप्रयक्षकथया समानं सम्यक् प्रकटितं स्फुटीकृतम् । तन्मणिकाचदार्शन्तिकमेवं सद-

एकनवतितमः सर्गः ९१

चुडालोवाच । इदानीं राजशार्वृत्व वस्तुसंप्रतिपत्तये। शृजु विन्ध्येभवृत्तान्तविवृति सायकारिणीम् ॥ योऽसा विन्ध्यवने हस्ती सोस्मिन्भूमितले भवान्। यी वैराग्यविवेकी ती ही तस्य दशनी सिती॥ यश्चासी वारणाकान्तितत्परो हस्तिपः स्थितः। तदज्ञानं तवाक्रान्तितत्परं तव दुःखदम् ॥ अतिशक्तोऽप्यशकेन दुःखादुःखं भयाद्भयम्। हस्ती हस्तिपकेनेच राजनमार्खण नीयसे॥ यह्रोहबज्रसारेण वारणः परियम्त्रितः । तदाशापाराजालेन भवानापदमावृतः ॥ आशा हि लोहरज्जभ्यो विषमा विषुला द्दा । कालेन क्षीयते लोहं तृष्णा तु परिवर्धते ॥ દ્ यद्बन्द्वेऽपेक्षते वैरी गजमारादलक्षितः। प्रेक्षते त्वां तदशानं क्रीडार्थे यसमेककम् ॥ O यदभञ्ज गजः शत्रोः श्टब्स्टाजालबन्धनम् । तत्तत्याज भवान्भोगभूमि राज्यमकण्टकम्॥ 4 कदाचित्सुकरं शस्त्रशृह्वलायन्धभेदनम्। नत्वस्य मनसः साधो भोगाशाविनिवारणम् ॥ Q यदिमे पाटयत्युचैर्बन्धं हस्तिपकोऽपतत्। त्वयि त्यजति तदाज्यमशानं पतितं कृतम्॥ १० यदा विरक्तः पुरुषो भोगाशां त्यकुमिच्छति।

करीत्या लं खयमेव विचार्य तत्त्वतो बुद्धा सर्वत्यामं तपो वा यदेव चिन्तामणिवदमछं निर्दोपं वेत्सि तदेव खचित्तकोशे निधाय फलप्राप्तिपर्यन्तां परिणतिं नयेत्यर्थः ॥ २० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे नव-तितमः सर्गः ॥ ९० ॥

इह विन्ध्येभवृत्तान्तदार्धान्तिकमुदीर्थते । कुम्भेन राज्ञश्चरितं बोधान्तत्यागसिद्धये ॥ १ ॥

वस्तुनस्तस्वस्य सम्यक् प्रतिपत्तये बोधाय । स्मयो विस्मय-स्ताकारिणीम् ॥ १ ॥ यो तस्य द्वौ दशनो तो वराग्यविवेका-ख्याविव्यन्वयः ॥ २ ॥ ३ ॥ अतिशक्तो बळवानिप स्वमश-केन तुर्वेछेनािप मार्क्येण दुःखादुःखं भयाद्भयं नीयसे ॥ ४ ॥ स बद्धो लोहजाछेनेत्युक्ति प्रकटयति—यदिति । परितो यित्रतो बद्ध इति यत् । भवान् पादाविभव्याप्येखापदमावृतः । राज्यपालनकाछे तदिखर्यः ॥ ५ ॥ ६ ॥ रिपो हस्तिपके दूरा-दपस्यतीखनेत स्चितं तद्दर्शनसुदाहरति—यदिति । दन्दे र-हस्ये । अज्ञानस्य चेतनसमारोप्य वादोयम् ॥ ७ ॥ दन्ताभ्यां यक्तत्ताभ्यामिरयुक्तेस्तात्पर्यमाह—यदिति ॥ ८ ॥ ९ ॥ स पतन्पादपद्माभ्यामप्राप्य करिणः चिरः । पपातोव्यामिति य-दुक्तं तदप्यक्ताने दशेयि—यदिमे इति । पतितं यथा भवति

तदा प्रकम्पतेऽज्ञानं छेद्ये वृक्षे पिशाचवत् ॥ ११ यदा विवेकी पुरुषो भोगान्संत्यज्य तिष्ठति। तदा पलायतेऽक्षानं छिन्ने वृक्षे पिशाचवत्॥ १२ भोगौषे नूनमुन्मुक्ते पतत्यश्वानसंस्थितिः । पाव्पे ऋकचिन्छन्ने कुलायस्तद्वतो यथा ॥ १३ यदा वनं प्रयातस्त्वं तदाऽहानं क्षतं त्वया। पतितं सम्न निहतं मनस्यागमहासिना ॥ 38 तेन भृयः समृत्थाय स्मृत्वा परिभवं रुतम् । तपःप्रपञ्जखातेऽस्मिनाहने त्वं नियोजितः॥ १५ तदैवाघातयिष्यस्त्वं यद्यश्चानं तथागतम्। राज्यत्यागविधा तत्त्वां नाहनिष्यत्क्षयं गतम् ॥ १६ यत्वातवलयस्तेन वैरिणा हस्तिनः कृतः । तत्त्रपोदुःखमखिलमशानेन तवार्पितम्॥ १७ या तस्य राजराजश्रीर्गजारेर्नपसस्म । सा त्ववशाननृपतेश्चिन्ताभ्यन्तरचारिणी॥ १८ त्वं गजेन्द्रस्त्वयं साधो दीर्घे वनेऽगजोपि सन्। अज्ञानवैरिणा तेन निश्चिप्तस्तरसाभितः॥ १९ यत्खातवलयो बाललताभिरवगुण्डितः। आवृतं तत्तपोदुःखमीपत्सज्जनवृत्तिमिः॥ २० इत्यद्यापि तपःखाते दुःखे ह्यस्मिन्सुदारुणे । स्थितोऽसि पातालतले नृप बद्धो यथा बलिः २१

तथा कृतं लया पातितमिव जर्जरीकृतमिल्यर्थः ॥ १० ॥ तदेव सप्टयति—यदेति ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ क्षतं शिषिली-भूतमपि मनस्यागस्तत्त्वज्ञानेन निर्मनस्कता तलक्षणेन महा-सिना न निष्टतं तदानीमेव ते चूडालोक्तिश्रवणात्तत्त्वबोधाव-सरोऽभूदिति भावः ॥ १४ ॥ तेन लदुपेक्षिताज्ञानेन ॥ १५ ॥ राज्यत्यागविधौ तदैव तथागतं पतितमज्ञानं यद्यघात्रयिष्यस्त-सदैव क्षयं गतं सत्त्वां तपःखातपातेन नाहनिष्यदित्यर्थः ॥१६॥ सखातवलयं चके इत्युक्तेस्तात्पर्यमाह—यदिति ॥ १७ ॥ 'परया राजसामम्या गजलम्पटभूमये'खत्रोक्तां राजसामधी स्फटयति—या तस्येति । तस्य गजारेईस्तिपकस्य राजप्रयुक्ता श्रीः खातसामग्री संपद्या उक्ता सा तु अवज्ञानं विचारानादर-स्तल्रक्षणस्य हस्तिपकनृपतेः अभ्यन्तरचारिणी अन्तरक्षेश्वर्यभूता । चित्रैव ह्यविवेकस्य सर्वस्वमिति भावः ॥ १८ ॥ हे साधो, लमगजोपि सन्नयमुक्तविवेकसंपन्नो गजेन्द्रः अनेनाह्नानरुक्षणेन वैरिणा अभितः खाते तरसा निक्षिप्तः ॥ १९ ॥ 'उपर्यस्थगय-द्वाललतीचेन स तं शठः' इत्यस्य तात्पर्ये स्फूटयति—यदिति । सजनवृत्तिभिः शान्तिक्षान्त्यादिगुणैः साधुजनसमागमैश्व 🛊 🕶 -दावृतम् ॥ २० ॥ 'इति भूयो हढं बद्धस्तेन हस्तिपकेन सः। तिष्ठत्यद्यापि दःखेन भूसद्मनि यथा बलिः' इत्यपसंहारस्य

गजस्त्वमाशा निगडानि वैरी मोहो निखातः पुनस्प्रबन्धः। महीतलं विन्ध्य उदन्त इत्थं त्वदीय उक्तः कुरु यत्करोषि ॥

२२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे बार्ल्माकीये मो० निर्वाणप्रकरणे पू० हस्तिकाख्यानतात्पर्यविवरणं नामेकनवतितमः सर्गः ॥९१॥

ब्रिनवतितमः सर्गः ९२

3

श्वूडालोवाच ।
यदुकं नयशालिन्या तया विदितवेद्यया ।
तदा चूडालया ज्ञानं तत्कसान्नोररीकृतम् ॥
सा द्वि तत्त्वविदां मुख्या यद्यद्वक्ति करोति च ।
तत्सवे सत्यमेवाङ्ग तद्युष्ठेयमादरात् ॥
अथ चेद्वचनं तस्यास्त्वया नानुष्ठितं नृप ।
तत्सवेसंपरित्यागः कसान्न निपुणीकृतः ॥
शिक्षिध्यज उषाच ।

राज्यं त्यकं गृहं त्यकं देशस्त्यकस्तथाविधः । दारास्त्यकास्तथाप्यङ्ग सर्वत्यागो न किं इतः ॥ ४ प्युडालोवाच ।

धनं दारा गृहं राज्ये भूमिश्छत्रं च बान्धवाः। इति सर्वे न ते राजन्सर्वत्यागो हि कस्तव॥ तवास्त्येवापरित्यक्तः सर्वेसाद्भाग उत्तमः। तं परित्यज्य निःशेषमायास्यति विशोकताम्॥

शिखिध्वज उवाच । राज्यं चेन्मम नो सर्वं सत्सर्वं वनमेव मे ।

तालर्यं वर्णयमुपसंहरति—इख्यापीति ॥ २१ ॥ उक्तमनुक्तं चिण्डीकृत्याह—गज इति । लंगजः । आशास्त्रय निग-डानि । मोहो वैरी हस्तिपकः । उन्ने तपित निर्वन्ध एव नि-खातः । महीतलं विन्ध्यः । इत्थं लदीय उदन्तो मृतान्तो मया हस्तिकाख्यानेनोक्तः । एवं परिष्ठाय तपःखातादुद्गस्य तस्य रिपोर्नाशाय यत्करोषि तत्कुरु मा विस्म्बिखर्यः ॥ २२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणताल्प्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे एकनवितिसः सर्गः ॥ ९१ ॥

> इह कुम्भवचः श्रुत्वा सर्वत्यागपरो नृपः। त्यक्ता वनादिवद्वी स्वं सर्वं भाण्डमदीदहत्॥ १॥

यदा लं वनं प्रस्थितस्तदेवाज्ञानं पतितं सम निहतमिति स्योकं तत्र तदानीं मम मनस्त्यागोपायः केनोपदिष्टो यो मयोपेक्षित इति राजशङ्कां वितर्कयन्ती चूडालोवाच—यदु-कमिति ॥ १ ॥ तस्या अतस्वित्तवानृतवादिनीलादिशङ्कां बारयति—सा हीति । अनुष्ठेयमभूदिति शेषः ॥ २ ॥ यदि 'आत्मबुद्धा चिरं जीवेद्धुरुषुद्धा विशेषतः । परबुद्धिविनाशाय स्तिबुद्धः प्रलयंकरी' इति वचनात्स्रीबुद्धिमुपेक्ष्यात्मबुद्धिनिक्षां सर्वस्थागमेव बहुमंस्यास्तर्हि स एव लया कृतो न स्थिराङ्गत इलाह—अय चेदिति ॥ ३ ॥ राज्यादिपरिल्यागमात्रेण । 'सिद्धः सर्वपरिल्यागः साधो संसाध्यतस्तव । सर्वोङ्गतजगद्भित-विद्यास्तर्वाद्धाः सांभोदयस्त्रया' इति लयेवोक्षम्।नच मयास्रकं राज्यादि

शैलवक्षादिग्रस्मात्यं तदप्येतस्यजाम्यहम् ॥ वसिष्ठ उवाच। इति राम घदन्नेव कुम्भवाक्यप्रणोदितः। निमेपान्तरमात्रेण यशी वीरः शिखिध्वजः॥ 4 प्रममाजे वनास्थां तां कृतः सुद्रदिनश्चयः। प्राष्ट्रडोघस्तटगतां रजोलेखामिवात्मना ॥ ď शिखिध्वज उवाच । सबुक्षाद्वियनश्वभाद्विपिनावपि वासना । परित्यक्ता मया नुनं परित्यागः स्थितो मम ॥ १० कुम्भ उवाच। अदेस्तरं वनं श्वम्नं सिललं पादपस्थलम् । इत्यादि तव नो सर्वे सर्वत्यागः कथं तव ॥ ११ तवास्त्येवापरित्यकः सर्वसाद्भाग उत्तमः । तं परिखज्य निःशेषं परामायास्यशोकताम् ॥ शिखिध्वज उवाच । एतश्चेन्मम नो सर्वे तत्सर्वे स्वाथमो मम। वापीस्थलोटजयुतस्तमेवाशु त्यजाम्यहम्॥ १३

पुनः स्वीकृतम् । तत्कथं मया सर्वत्यागो न निपुणीकृत इति शिखिष्वजः प्रच्छति--राज्यमिति ॥ ४ ॥ 'केवलं सर्वसं-त्यागे शेषिताहंमतिस्त्वया'इति मया प्रागुक्तमेवास्पोत्तरम् । विवे-काभावास्वसी न प्रतिपन्नस्तद्यं वनाधमकुटीकमण्डल्वादिपरि-प्रहरोषेपि निःशेषं त्याजिते कथंचिद्विवेकं प्राप्याहंकारप्रन्थि परिखज्य पूर्णो भविष्यतीति मन्यमाना शनैस्तद्वद्धि विचार-मबतारयन्ती गृढामिसन्धिनेव चूडालोवाच-धनमिति । य-त्खसंबन्धि सर्वे च तत्त्यागे सर्वत्यागः सिद्धोत् । नच राज्याद-यस्ते खसंबन्धिनः सर्वं वा । अहंकारो हि राज्यादिकं ममेति कल्पयंस्तत्खामितां मन्यते नलारमेति प्राप्त्यभावात्र सर्वेखाग-स्तव सिद्ध इति भावः ॥ ५ ॥ यद्यदंकारे तादात्म्यारोपादात्मा राज्यादिस्तामितां प्रतिपन्न इत्युच्येत तर्हि तत्त्यागादेव राज्यादि-त्यागः सिद्धोन्नान्यथा । सच त्वया न त्यक्त इत्याशयेनाह—त-वेति ॥ ६ ॥ उक्ताशयमप्रतिपद्यमानः पूर्व परित्यक्तत्वादेव राज्यादै। तवेदानीं राज्यादिसंबन्धी नास्तीति न त्यागाईता । र्वेळबृक्षादीनां त्विदानीं परिघहात्र तत्त्यागमन्तरेण तव सर्व-त्यागसिद्धिरित्यस्याशय इति मन्यमानः शिलिष्वज उवाच-रा-ज्यमिति । एवममेऽपि राज्ञस्तात्पर्यमेदभ्रम ऊह्यः ॥ ७॥ ८॥ प्रादृढोघो वर्षाप्रवाहः । रजोलेखां पांसुराजिमिव ॥ ९ ॥ वासना ममता परिवक्ता तेन मम खागः स्थितः संपन्नः॥१०॥ कुम्भाष्टयः पूर्ववत् ॥ १९ ॥ १२ ॥ त्यागाद्वनादि तव मो

वसिष्ठ उवाच । इति राम वदन्नेय कुम्भयाक्यप्रबोधितः। निमेषध्यानमात्रेण वद्यी वीरः शिखिध्वजः॥ १४ प्रममाजीश्रमास्थां तां संविदा ग्रद्धया हृदि। स्फूरन्तीं स्फूरणेनव रजोलेखामिवानिलः॥ १५ शिक्षिभ्वज उवाच । स वृक्षोद्रजवीहत्काद्वासना स्वाथमाद्यि। परित्यका मया नूनं सर्वत्यागः स्थितो मम ॥ १६ कुम्भ उवाच। वृक्षो वापी स्थलं गुल्ममुटजं वततीवृतिः। इति किंचिन्न ते सर्वे सर्वत्यागः कुतस्तव ॥ १७ तवास्त्यन्योऽपरित्यकः सर्वसाद्धाग उत्तमः। तं परित्यज्य निःशेषं परामायास्यशोकताम् ॥ १८ जिल्धिवज उवाच । पतचेन्मम नो सर्व तत्सर्व भाजनादि मे । १९ चर्मकुड्यकुटीरादि तत्तावत्संत्यजाम्यहम् ॥ वसिष्ठ उवाच । इत्युक्त्वा स समुत्तस्थात्रविधुन्धमतिः शमी। विष्टरादवदातातमा श्रद्धादिव शरद्धनः॥ २० कुम्भस्त्वालोकयन्नेच तत्कियाः सस्मितः स्वयम् । आसने लोककार्येषु स्वस्यन्दन दवांशुमान्॥ २१ यत्करोति करोत्वेतदस्यैतत्पावनं परम्।

सर्वमित्यस्त नाम तथापि तवाश्रमसद्भावात्कथं सर्वत्यागः सिद्ध इति मामाहेति मन्यमानः शिखिध्वज उवाच-एतचे-दिति । अप्यर्थक एवकारः ॥ १३ ॥ १४ ॥ आश्रमे आस्थां ममतां प्रममार्ज ॥ १५ ॥ १६ ॥ कुम्भाशयो राजाशयथ प्राग्वत् ॥ १७ ॥ १८ ॥ कुष्यानि मित्तयः । अल्पा कुटी कटीरः ॥ १९ ॥ विष्टरादासनात् । 'बृक्षासनयोर्विष्टरः' इति षत्नम् । अवदातातमा शुद्धचित्तः ॥ २०॥ अंशुमान् सूर्यः ख्य स्पन्दने रथे इवासने आलोकयन्नेव स्थित इति शेषः ॥ २१ ॥ २२ ॥ अब्धिभूः समुद्रोदरनिम्नभूमिरुन्नतभुवो वृष्टि-नदादिवारि यथा एकत्रानयति तद्वत् ॥ २३ ॥ करैः किरणैः संचारवान् संकान्तोऽकों यथा सूर्यकान्तशिलास्थानपावकं ज्वा-लयति तद्वत् । अणा ज्वलेरकर्मकलाण्णा कर्तुः पावकस्य कर्मता । भाण्डोपस्करस्यापि तत्फलभस्मीभावाश्रयस्नात्कर्मता विवक्षिता । उवलेर्मित्त्वविकल्पादुपधाहस्वाभावः ॥ २४ ॥ विवेश बस्यामिति शेषः । ध्वंसिका मन्वन्तरसंधिप्रलयस्तत्र यथा रविः खप्रदीपितेऽमी जगदुला मेरुशने उपविश्वति तद्वत् ॥ २५ ॥ इदानीमक्षमालां त्यक्तकामः कृतोपकारविस्मरण-दोषं परिहरंस्तामाह-एतानन्तामिति द्वाभ्याम् । हे पतिप्रिये खामिभके. न जातः परक्रेशेन सार्थसाधनबुद्धेर्भेद उच्छेदो यस्य तथाविधेन मया त्वं यत् एतावन्तं कालं बत्ता परिवर्तन-

इति तुष्णीं स्थितः कुम्भः शिखिध्वजमवैक्षत २२

दिालिध्वजस्तु तत्सर्वं भाण्डोपस्करमाश्रमात्। एकत्रैवानयामास भुवो वार्यन्धिभूरिव ॥ २३ तत्संस्थाप्येन्धनैः शुष्कैउर्वालयामास पावकम् । करैः संचारवानर्कः सूर्यकान्तपदं यथा ॥ २४ भाण्डोपस्करजालं तदग्नौ त्यक्त्वा विवेश सः। ध्वंसिकायां जगद्धत्वा मेरुष्टक्के यथा रविः॥ पतावन्तं मया कालं बृत्ता यत्त्वं पतिप्रिये। अजातबुद्धिमेदेन तेनैव कृतमस्तु ते ॥ २६ भ्रान्तौ तु विनिवर्तिन्यां नाधुनोपकरोपि माम्। मन्त्राटव्यां चिरं भ्रान्तं विहृतं कार्यवर्त्मसु ॥ दृष्टानि धर्मस्थानानि विश्राम्याम्यधुना सिल । इत्यक्षमालां ज्वलने चिक्षेपोक्त्वा शिखिध्वजः २८ कल्पान्ताग्नाविव ब्योम ताराली पवनोऽमलाम्। मया नरमृगेण त्वं चिरं वनमृगाच्युतम्॥ अबोधेन धृतं बृस्यामिदमेव मृगाजिनम्। इदानीं गच्छ तुच्छाय पन्थानः सन्तु ते शिवाः ३० बह्निना ज्योमतां गच्छ सतारं ज्योम ते समम्। तद्वस्यङ्गात्कराभ्यां स धृत्वा चर्माजहादिति ॥ ३१ नृपोऽग्नावम्बुधेर्वातो दववह्नाविवाचलात् । महावृत्तेन भवता त्वया वारि धृतं मम ॥ ३२ साधो कमण्डलो सम्यङ् न ते प्रतिकृतं कृतम्। सौद्वदस्य मनोबस्य सौजन्यस्यास्थिरस्य च ॥

श्रमं प्रापिता तेर्नेव ते तव मत्सेवनं कृतं पर्याप्तमस्तु ॥ २६ ॥ तपोजपादिकर्तव्यताभ्रान्तौ विनिवर्तिन्यामपग-तायां सत्यां मां नोपकरोषि अतो न लां श्रमेण योजयामीति विधाम्येखर्यः । अहमपि खया सह जपभ्रमेण नानामन्त्राट-वीषु भ्रान्तः संप्रति विश्रमिष्यामीलाह—मन्त्राटव्यामिति । कार्यवरमेसु कियासाध्यक्षद्रसिद्धिमार्गेषु विहृतं आन्तम् ॥२०॥ धर्मस्थानानि तपोवनसिद्धक्षेत्रादीनि ॥ २८ ॥ यथा पवनः कल्पान्ताप्री व्योप्रस्तारालीं नक्षत्रमालां क्षिपति तद्वत् । अने-नाक्षमाला स्फाटिकीति गम्यते । मृगाजिनं प्रखाइ—मयेति ॥ २९ ॥ अस्यां कुशासने । इदमेव तवीपकृतमस्लिति शेषः । तुच्छाय मूलकारणमायाखभावाय । पन्थानः अवान्तरकारण-प्रविलयलक्षणा मार्गाः ॥ ३०॥ सतारं व्योम ते सममि-त्युक्तया पृषतस्य तचर्म शुक्रविन्दुचित्रमिति गम्यते । तस्य हि सतारव्योमताप्राप्तिरनुरूपैवेति ॥ ३१ ॥ नृप इत्युक्ला वृ-स्यक्षाञ्चर्माकुष्य कराभ्यामग्री जहाविति पूर्वत्रान्वयः । यथा प्रलयवातः अचलानम्बुघेराकृष्य दववही त्यजति तद्वत् । इदानीं कमण्डलं लक्कुकामः ऋतज्ञताख्यापनाय प्रशंसति-म-हावृत्तेनेखादिना । सुष्ठ वृत्तेन वर्तुलेन सुचरित्रेण च भवता सता । शतुप्रत्ययान्तीयं भवच्छन्दः ॥ ३२ ॥ प्रतिकृत प्रत्यु-पकरणं न कृतम् । साहदादिपदान्यपि यथासंभवं क्षेत्रेण यो-

साधुरवस्य च सर्वस्य त्वमेव परमास्पदम्।
येनैव विह्ना देहं संशोध्याभ्यागतोऽसिमाम् ३४
तेनैव गच्छ हे मित्र पन्थानः सन्तु ते शिवाः।
इत्युक्त्वा श्रोत्रियायेव कमण्डलुमदासदा॥ ३५
अग्नये महते वापि दातव्यं साधु यद्भवेत्।
मूर्खस्येव मतिगुते नित्यमेव पतस्यशः॥ ३६
उचिता ते गितः सैव वृसीके मस्तां व्रजः।
इत्युक्त्वादाय वृसीकामग्रावेव स मृद्धिकाम् ३७
शुद्धार्थमासनार्थं वे चिति तत्याज भासुरे।
यत्त्याज्यमचिरेणव त्यक्तव्यं किल तत्सदा॥ ३८

विस्तरः क्रियते सद्भिरुपादेय इति स्थितिः।
शीघ्रमग्नाविदं सर्वं भाण्डजातं त्यजाम्यहम्॥ ३९
एकवारं दहत्यग्निर्दाह्यं भवति तुष्टये।
साधो क्रियोपकरणं निष्कियाय त्यजाम्यहम्।
न खेदस्तत्र कर्तव्यो नन्थयोग्यं विभर्ति कः॥ ४०
हत्युक्तवान्झटिति भोजनभाजनाद्यं
सर्वं जुहाव वनवासविलासयोग्यम्।
तद्भाण्डजालमनले सममेव राजा
कल्पान्ततेजसि जगङ्गवलतीय कालः ४१

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकाये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू॰ सर्वत्यागकरणं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३

वसिष्ठ उवाच ।
अथोत्थाय ददाहासाँ ग्रुष्कं तत्तृणमन्दिरम् ।
अक्षेन स्वेन मनसा वृथा संकल्पकल्पितम् ॥
शिष्टं यर्तिकचिदभवत्तत्सवं स शिखिष्यजः ।
असंरब्धमना मीनी क्रमेण समया धिया ॥
ददाह च स चिक्षेप तत्याज च बभज वा ।
भाण्डजातं स्ववसनं भोजनाद्यपि तृष्टवत् ॥
स बभूवाश्रमस्तस्य दृष्टनप्रजनस्थितिः ।
वीरभद्रबलध्यस्तदक्षयक्षाश्रमोपमः ॥

ज्यानि ॥ ३३ ॥ येनेवेति । अनेन स कमण्डलुः पूर्व कस्मा-विच्छोत्रियाच्छुद्धर्थं वहिदाहेन संशोध्य खयं गृहीतः स्थितः स पुनर्दाहेन संशोध्यान्यस्मै श्रोत्रियाय दत्त इति गम्यते ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ यदुपकरणं साधुप्रतिपत्त्यहं भवेत्तद्मये महते वापि वात्वं दानेन प्रतिपाद्यमिति नियमादित्यर्थः। बुसी धक्ष्यंसारमां तदुचितं दोषमाह—मूर्खस्येवति । यथा मूर्खस्य मतिरधोगितहेती गुप्ते प्रच्छने पापे पतित तथा ल-मपि सदा खप्रच्छन्ने अधोदेशे पतिस ॥ ३६ ॥ अतो हे बृ-सीके, मूर्खमतेरिव ते सेव दाहसंतापगतिरुचिता अतो भ-स्मतां वजेल्यर्थः । इत्युक्ला मृद्विकां मृदुतमां वृसीं भासुरे अमावेव तत्याजेति परेणान्वयः ॥ ३० ॥ किमर्थ सर्वे तत्याज तदाह—गुज्यर्थमिति । चित्तगुद्धर्थं चिति बद्धचैतन्ये । आ-सनार्थम् । विश्वान्सर्थं चेखर्थः । कुम्भं प्रसाह—यदिसादि । हे साधो, यस्याज्यं भाण्डजातं तदिचरेण शीघ्रमेव त्यक्तव्यं न विलम्बतव्यमित्यर्थः ॥ ३८ ॥ तत्कृतस्तत्राह—विस्तर इति । यतः सद्भिविषमानैस्तैर्भाण्डेश्पादेये संप्रहयोग्ये उपकरणान्त-रेपि बिस्तरः क्रियते इति लोके बस्तुस्थितिः प्रतिदा। अतोऽ-हमिदं सर्वे भाण्डजातं शीघ्रमेवामौ त्यजामि ॥ ३९ ॥ यतः सर्वे दाह्यं भाण्डमेकवारं युगपदेव दहति चेन्मम तुष्टये सर्व-त्यागसंतोषाय भवतीत्यर्थः । नतु हे कुम्म, तत्र मत्कृतसर्वत्या-

आश्रमात्ते मृगगणास्त्यक्तरोमन्थमुद्ययुः।
सामिदाहात्पुरवराद्गीतभीतजना इव॥ ५
भाण्डजातं दहत्यम्भो सहगुष्केन्धनेन तत्।
केवलाकृतिरक्षेहस्तुष्टिमानाह भूपतिः॥ ६
शिक्षिथ्वज उवाच।
वासनां तत्र संत्यज्य सर्वत्यागी स्थितो हाहम्।
अहो नु चिरकालेन देवपुत्र प्रवेशितः॥ ७
संपन्नः केवलः गुद्धः सुखेनोद्धोधवानहम्।
किंनाम किल वस्त्वेतद्भवेत्सांकल्पिकक्रमम्॥ ८

गविषये लया खेदो न कर्तव्यः । यतो लोकेपि अयोग्यं को बिभितिं धारयति । तथाचाकियस्य मम क्रियोपकरणमयोग्यभे-वेति न धारणयोग्यमिति भावः ॥ ४० ॥ राजा शिक्षिष्वज इति उक्तवा-सन्सर्वं भोजनभाजनमायं प्रधानं यस्य तथाविधं तत्मर्वं वनवासविलासयोग्यं भाण्डजालं समं युगपदेव अनले झिटिति जुहाव । यथा कालो ज्वलति कल्पान्ततेजसि जगद्यगपदेव जुहोति तद्वदिलायंः ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ट-महारामायणतालपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे द्विनवित्तमः सर्गः ॥ ९२ ॥

द्रस्थोपकरणं देहं त्यक्तकामः शिखिण्वजः । विनिवायांत्र कुम्भेन चित्तत्यागाय बोध्यते ॥ १ ॥ स्थेन मनसा तथा मनसा संकल्पेन किल्पिनं समर्थितं तत् कुटीरूपं तृणमन्दिरम् ॥ १ ॥ पिठरशरावकुशकाष्ट्रसंचयादि यस्किचिदभवत्तत्सर्वं ददाहेत्यादिपरेणान्वयः ॥२॥ स्वस्य वसनं वल्कलम् । भुज्यते यस्मिस्तद्रोजनं पत्रपुटकाद्यपि ॥ ३॥ पूर्वं दृष्टा पश्चात्रष्टा अदर्शनं प्राप्ता जनस्थितिर्यत्र । 'पूर्वंकाल' इति समासः॥४॥ तदेवोपपादयति—आश्रमादित॥५॥कंवलाकृति-देंहमात्रावशिष्टः ॥ ६ ॥ वासनां ममताम् । तत्र सर्वोपकरणे । प्रवोधितस्त्वयेति शेषः ॥ ७ ॥ सांकित्पक्षो ममतासंकल्पप्र-युक्तः संग्रहक्रमो यस्य तथाविधमेतदुपकरणजातं कि नाम न १३

यावद्यावत्प्रहीयन्ते विविधा बन्धहेतयः।
तावत्तावत्समायाति परमां निर्वृति मनः॥ ९
शाम्यामि परिनिर्वामि सुखितोऽस्मि जयाम्यहम्।
विवन्धाः प्रक्षयं याताः सर्वत्यागो मया इतः ॥१०
दिगम्बरो दिक्सद्नो दिक्समोऽयमहं स्थितः।
देवपुत्र महात्यागात्किमन्यद्वशिष्यते॥ ११

कुम्भ उवाच ।

सर्वमेव न संत्यक्तं त्वया राजन् शिक्षिध्वज । सर्वत्यागपरानन्दे मा मुधाभिनयं कुरु ॥ तवास्त्येवापरित्यकः सर्वस्माद्धाग उत्तमः । यं परित्यज्य निःशेषं परामायास्यशोकताम्॥

वसिष्ठ उवाच । इति श्रुतवता तेन किंचित्संचिन्त्य भूभृता । इदमुक्तं महावाहो राम राजीवलोचन ॥

शिलिध्यज उवाच । इन्द्रियव्यालसंघानो रक्तमांसमयाकृतिः । शिष्यते सर्वसंत्यागं देहो मे देवतात्मज ॥ १५ | तदुत्थाय पुनर्देहं भृगुपाताद्विध्नतः । विनाशात्मकतां नीत्वा सर्वत्यागी भवाम्यहम् १६

वसिष्ठ उवाच । इत्युक्त्वा देहमग्रस्थे श्वभ्रे त्यक्तमसौ जवात् । करोति यायदुत्थानं तावत्कुम्मोऽप्युवाचह ॥ १७ कुम्म उवाच ।

राजन्किमिति देहं त्वं निरागस्कं महावटे।
त्यजस्यक्षो हि वृपभः कुपितो हन्ति तर्णकम्॥ १८
जडो वराको मुकात्मा तपस्वी देहको ह्ययम्।
न कश्चन तवतिस्मिन्मा मुधेव तनुं त्यज॥ १९
आत्मन्येवैष मृकात्मा ध्यानवानवतिष्ठते।

किं बिरसारभूत मुपादानाई मिखर्थः ॥ ८॥ तत्त्या ग सुखमिनयन्नाह—यावदाविति ॥ ९॥ विविधा वन्न्या बन्ध हेतवो
विषयाः ॥ १०॥ १९॥ बाह्योपकरण ल्यागमात्रेण भ्रान्त्या
बालस्येव तस्य सर्वत्याग सुखाभिनयमसहमानः कुम्म उवाच—
सर्वमेविति । अभिनयं व्यक्तक चेष्टाविशेषम् ॥१२॥ तवत्यादिप्रागवत् ॥ १३॥ १४॥ १५॥ १६॥ अश्रे स्र्गां ॥ १०॥
निरागस्कं निरपराधम् । महावटे स्गो । तर्णकं स्ववत्सम्
॥ १८॥ निरागस्कतामेव दर्शयति—लड इति । तव अपराध इति शेषः ॥ १९॥ २०॥ यस्यापराधसामन्यं दर्शयति—क्षोभयतीति । स एव निम्रहार्ही दण्ड्यः ॥ २१॥
ननु सुखदुः स्वोद्भवस्थान लात्कृतः शरीरं नापराधि तन्नाह—
सुखेति । भूत्या उत्पत्तिस्थान तामान्नेण । तत्र दृष्टान्तमाह—नेति ।
यथा प्रस्वांस्त्र ह्यांस्त्र क्यांस्तर्य आत्मस्यन्ये फलादिपाते सति न तद-

संचाल्यते परेणेव तरङ्गेणेव काष्ट्रकम्॥ क्षोभयत्यन्य एवेनं नित्रहाहीं मुहुर्वलात्। तपस्विनं यथैकान्तं संस्थितं मन्ततस्करः॥ २१ सुखदुःखादिभृत्या हि नापराधि शरीरकम् । नात्मनः फलवानात्मस्पन्दे बृक्षोऽपराधवान् ॥२२ वातः फलशिरःषुष्पपातनं कुरुते स्फुरन्। तरुणा साधुना साधोरपराद्धं किमात्मनः॥ २३ त्यकेनापि दारीरेण किल तामरसेक्षण। सर्वत्यागो न ते याति निष्पत्ति विषमो हि सः २४ भूगो केवलमेतस्यं निरागस्कं शरीरकम्। मुधा क्षिपसि नो देहत्यांगे तत्त्यागिता भवेत् २५ येनायं श्लोभ्यते देहो मत्तेभेनेच पादपः। तत्संत्यज्ञसि चेत्पापं तन्महात्यागचान्भवान्॥ २६ तस्मिस्त्यके भवेत्यकं सबै देहादि भूपते। नोचेन्निमन्नमप्येतद्भयोभृयः प्ररोहति॥ २७ शिखिध्वज उवाच । केनायं चाल्यते देहः किं वीजं जन्मकर्मणाम्। कस्पिस्त्यके परित्यकं सर्व भवति सुन्दर॥ 26 कुम्भ उवाच । साधो न देहत्यागेन न राज्यत्यजनेन च। न चोटजादिशोषेण सर्वत्यागो भवेन्नृप ॥ ર્ यत्सर्वे सर्वतो यद्य तस्मिन्सर्वेककारणे। सर्वसिन्संपरित्यके सर्वत्यागः कृतो भवेत् ॥ शिखिध्वज उवाच। सर्वे सर्वगतं सर्वहेयं त्याज्यं च सर्वदा । सर्व किमुच्यते बृहि सर्वतस्वविदांवर ॥ ३१

कुम्भ उवाच । साधो सर्वगताकारं जीवप्राणादिनामकम् ।

भिमान्यातमा अपराधवानभवति ॥ २२ ॥ यतः स्कुरन्वात एव फलानां शिरःपह्नवानां पुष्पाणां च बलात्पातनं कुरुतं इति स एवापराधां । तरुणा साधुना किमपराद्धं तद्वदेहेनापि साधुनातम् किमपराद्धं त्वदेहेनापि साधुन्यत्वातम् द्वर्थाः ॥ २४ ॥ तस्य देहक्षोभकस्याहंकारस्य त्यानिता ने भवेत्र सिद्धेदित्यर्थः ॥ २५ ॥ २६ ॥ एतदेहादिनिममं जलमजनादिना नाशितमपि तस्माहेहचालकादेव जनमक्मंबीजभूतात्प्ररोहति ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ सर्ववासनास्य-द्वात्सर्वम् । सर्वविषयेषु प्रस्तत्वात्सर्वतः । संकल्पेन सर्वजनक्वात्सर्वेककार्णे ॥ ३० ॥ सर्वत्र हेयं सर्वदा च त्याज्यं त्यक्तं योग्यं यत्सर्वं व्योच्यते तत्किमित्यर्थः ॥ ३९ ॥ वि-त्याधान्येन जीवनामकं कियाप्राधान्येन प्राणादिनामकं

२ भवेश्यक्तं सर्व देहादियुन्दर इति पाठः.

न जर्ड नाजर्ड भ्रान्तं चित्तं सर्वमिति स्मृतम ३२ चित्तमेय भ्रमं विद्धि विद्धि चेतो नरं नृप। चित्तं विद्धि जगजालं चित्तं सर्वमिति स्मृतम् ३३ राज्यादेरथ देहादेराश्रमादेर्महीपते। सर्वस्यैव मनो बीजं तस्वीजं तरोरिय ॥ 38 सर्वस्य बीजे संत्यके सर्वे त्यक्तं भवत्यत्वम् । संभवासंभवाद्भप सर्वत्यागो भवेदिति ॥ ३५ सर्वधर्मा अधर्मा वा राज्यादि विपिनादि वा। सचित्तस्य परं दुःखं निश्चित्तस्य परं सुखम्॥ ३६ इदं विवर्ततं सर्वं चित्तमेव जगत्तया। देहाद्याकारजालेन बीजं वृक्षतया यथा॥ ३७ पादपः पवनेनेव भूकम्पेनेव पर्वतः। भसा भस्राभरेणायं देहश्चित्तेन चाल्यते ॥ ३८ सर्वभृतोपभोगानां जरामरणजन्मनाम्। महामुनीनां सुदृढं चित्तं विद्धि समुद्रकम्॥ ३९ इदं प्रवर्तते सर्वं चित्तमेव जगत्तया । देहाद्याकारजालेन चिन्तं जीवो मनोमयम्॥ 80 बुद्धिर्महदहंकारः प्राणाश्चेत्यादिभिर्मुने । कियानुरूपेरभिधाव्यापारः शान्तमृष्यते ॥ સર चित्तं सर्वमिति प्राहुस्तस्मिस्यक्ते महीपते। सर्वाधिव्याधिसीमान्तः सर्वत्यागः कृतो भवेत् ४२ चित्तत्यागं विदुः सर्घत्यागं त्यागविदां वर । तिसिन्सिद्धे महावाही सत्यं कि नानुभूयते ॥ चित्तं त्यके छयं याति द्वेतमैक्यं च सर्वेतः।

चित्तं छिक्षम् ॥ ३२ ॥ नरं व्यवहर्तृपुरुषम् ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ तत्त्यागे सर्वत्यागसंभवात्तहत्वागे सर्वत्यागासंभवात् ॥ ३५ ॥ सर्वे धर्मादयः अधर्मा वा राज्यादितत्फलभोगस्था-नानि वा सचित्तस्य परं दुःखंमव ॥ ३६ ॥ विवर्तते परिण-मते ॥ ३७ ॥ भक्राध्मानदृतिः । भक्षाभरेण कर्मारेण ॥३८॥ सर्वभूतप्रसिद्धानामुपभोगानां जरामरणादीनां देहधर्माणाम् । महामुनिपदेन तद्धर्माः शमद्माद्यो लक्ष्यन्ते । तेषां च तत्रतत्र निरूढवासनं चित्तमेवाश्रय इलार्थः ॥ ३९ ॥ अशान्तं चित्त-मेव मननान्मनोमयमन्तः प्राणचेष्ट्या जीवश्व भूला बहिः स्थूल-**बेहतबबहाराबा**कारजालेन भवतीत्वर्थः ॥ ४० ॥ तदेवान्तः शान्तं महदहंकारः प्राणः प्राज्ञातमा चेत्यादिमिः कियानुरूपेर-मिधाव्यापरिहच्यत इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ सत्यं परमार्थभू-तभूमानन्दरूपं कि नानुभूयते । अनुभूयत एवेत्यर्थः ॥ ४३ ॥ द्वैतं कार्यविभागाविभीवपरम्परा । ऐक्यं कारणे तिरोभावकः मध्य लयं वाधं याति ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अर्थभावेन पदार्था-कारेण ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सचायं सर्वत्यागो न परिच्छिन्नातम-महणे सिज्यतीत्याशयेनाह—सर्वेति । हे त्यागिन् नृप, परिच्छि-नस्य तन यथा अन्यः सर्वत्यागस्य विषयोऽस्ति तथा लमप्य-म्यस्य ल्ल्यागिनस्यागविषयो भवसि । तथाच त्याज्यमेवात्म-

शिष्यते परमं शान्तमच्छमेकमनामयम् ॥ 83 अस्पाधित्तं विदुः क्षेत्रं संस्तेः सस्यसंततेः। क्षेत्रे त्वक्षेत्रतां याते शास्त्रेः क द्व संभवः॥ ક્ષ્ય चित्तमेव विचित्रहं भावाभावविलासिना। विवततेऽर्थभावेन जलमूर्मितया यथा॥ કેંદ્ર चित्तोत्सादनरूपेण सर्वत्यागेन भूपते। सर्वमासाद्यते सम्यक्साम्राज्येनेव सर्वदा ॥ 80 सर्वत्यागस्य विषयो यथैवान्योऽस्ति ते तथा। त्वमप्यन्यस्य भवसि त्यागिनगृह्वासि व नृप ॥ 86 सुत्रं मुक्ताफलेनेव जगज्जालं त्रिकालकम् । सर्वमन्तः कृतं तेन येन सर्व समुज्झितम् ॥ પ્રવ येन सर्व परित्यक्तं तिसाञ्छन्येऽपि संस्थितम्। जगत्सर्वे त्रिकालस्यं तन्तै। मुक्तावली यथा ॥ ५० अस्रोहेनेच दीपेन येन सर्व समृज्झितम्। सम्बेहेनेय दीपेन तेन सर्व प्रकाशितम्॥ ५१ स्थितं सर्वे परित्यज्य यः शेतेऽस्नेहदीपवत्। स राजते प्रकाशात्मा समः सस्नेहदीपवत् ॥ ५२ समस्तवस्त्रनिष्कासे यथा त्वमवशिष्यसे। सर्वत्याने कृते ताहिन्वज्ञानमविशिष्यते॥ 43 समस्तवस्तुदाहेऽपि यथा त्वं नेतरो नृप। सर्वत्यागत एवाङ्ग तथा निर्वाणमुख्यते ॥ 48 सर्वत्यागो हि द्रान्यात्मा आश्रयः सर्वसंविदाम् । अनन्तानामुदाराणां खमिवेदं दिवाकसाम्॥ सर्वत्यागरसापाने जरामरणभीतयः।

तया गृह्यासीति न ते सर्वछागः सिध्यतीखर्थः ॥ ४८॥ अपरि-िछन्नात्मग्रहण तु लमेव सर्वस्थात्मेति तवान्यन त्यागायोगा-त्त्याज्यकोट्यनिविष्टेन लया सर्वत्यागे सर्व खायसीकृत्य राज्य-मित्याह—सूत्रमिति ॥४९ ॥ ननु सर्वे लजता सर्वेशुन्यतैव।वर्छ-बिता तत्कश्रं सर्वे खायत्तं लब्धं स्यात्तत्राह्—येनेति । यद्यपि सर्वे त्यक्ता स सर्वश्रम्यतामापन्नस्तथापि तेन त्यक्तं जगदाश्रयान्तरा-लाभात्तमेवाश्रिख यावध्यवहारं सत्तास्फूर्ती लभत इति सएव व्य-वहर्तुहशा त्रिकालस्थसर्वलब्धेत्युच्यत इति भावः ॥५०॥ अतएव सर्वत्यागे सर्ववाधादव्यवहार्यदशा आत्यन्तिकस्रेहक्ष्यानिर्वाणदी-पहुष्टान्तं सर्वगतस्वरूपज्योतिषव सर्वत्र्यवहारप्रकाशनाध्यवहारह-शा सम्बद्धीपद्यान्तं चाह-अम्रेहिनेति॥५१॥ तदेव एफुटयति-स्थितमिति ॥५२॥ सर्वेत्यागे शृत्यतापत्ति वारयति—समस्तेति । समस्तानां वस्तूनां राज्यारण्योपकरणानां निष्कासे त्यागे ॥५३॥ परिशिष्टचितः स्वातिरिक्तलात्स्वस्य ततः कः पुरुषार्थस्तत्राह-स-मस्तेति । तथानिर्वाणं परमपुरुषार्थोपि स्नत्तो नेतरदित्यर्थः ॥५४॥ तसा त्यक्तसर्वप्रपश्चश्चन्यत्वापे सर्वसंविदां तदन्तर्भावोहत्येवेति न जाज्यप्रसक्तिरित्याह-सर्वत्यागेहीति । दिवौकसां सूर्यचन्द्रनक्ष-त्रादीनाम् ॥ ५५ ॥ सर्वत्यागरसस्य आपाने ईपदप्याम्बादने कृते यथा असन्नोदासीनस्य खस्य व्योमलेखिकादिखकारिकाष्ट-

દ્દસ

न काश्चन प्रवाधन्ते खस्येव व्योमलेखिकाः॥ ५६ सर्वत्यागो महत्त्वस्य कारणं निर्मलग्रुतेः। सर्व त्यजिस चेद्यसाद्वृद्धिस्थैर्य बृहस्तमम्॥ ५७ सर्वत्यागः परानन्दो दुःखमन्यत्सुदारुणम्। इत्योमित्युररीकृत्य यदिच्छिस तदाचर॥ ५८ सर्व त्यजित यस्तस्य सर्वमेवोपतिष्ठते। यथवाम्बु विदात्यक्षा तथवायाति वारिधौ॥ ५९ सर्वत्यागान्तरेवास्ति ज्ञानमात्मप्रसादकम्। यच्छून्यं किल भाण्डस्य तत्र रज्ञादि तिष्ठति॥६० सर्वत्यागवशादेष हतकाले कलावपि। शाक्येन विगताशङ्कं मुनिना मेरुविस्थितम् ॥ ६१ सर्वत्यागो महाराज सर्वसंपत्समाश्रयः । न गृङ्काति हि यित्किचित्सर्वं तस्मै प्रदीयते ॥ ६२ इत्वा सर्वपरित्यागं शान्तः स्त्रस्थो वियत्समः । सौम्यो भवति यद्रपस्तद्रपो भव भूपते ॥ ६३ सर्वं परित्यज्य महास्त्रभाव त्यजस्यथो येन च तिद्वहाय । त्यागामिमानं च मलं विमुख्य

विमुक्तरूपो भष भूमिपाल॥

इत्याषं श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्मीकीये मोक्षोपाये निर्वाणप्रकरणे चू० शिखिष्वजावबोधनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४

Ş

२

3

૪

वसिष्ठ उवाच।

पवं वदति वे कुम्भे चित्तत्यागं मुहुर्मुहुः। अन्तर्विचारयन्सीम्यो राजा वचनमब्रवीत्॥

शिखिध्वज उवाच ।

हृदयाकाद्यविहगो हृदयद्वममर्कटः । भूयोभूयो निरस्तं हि समभ्येत्येच मे मनः ॥ जानामि चैतदादानुं मत्स्यं जाल दवाकुलम् । खागमस्य न जानामि चित्तं द्रव्य द्वोत्तम ॥ चित्तस्यादा स्वरूपं मे यथावद्भगवन्वद् । ततिश्चित्तपरित्यागं यथावद्भद् मे प्रभो ॥

किकाः काश्चिदपि न प्रयाधन्ते तद्वत् ॥ ५६ ॥ निर्मला द्यतिः खरूपरफूर्तियस्मात्तथाविधस्य महत्त्वस्य । तत्कुतस्तत्राह—सर्व-मिति ॥ ५७ ॥ इति विमृद्येति शेषः । अभित्यस्य विवरण-मुररीकृत्येति ॥ ५८ ॥ सर्वत्यागे वैभवहानि वारयति--सर्व-मिति । सर्व विभवजातं प्रारब्धोपनीतमुपतिष्ठते । वारिधी अम्बु यथायथा वडवामी विशति तथातथा नदीम्य आयाखेव तद्वदिखर्थः ॥ ५९ ॥ सर्वस्याज्ञानतत्कार्यस्य यस्त्यागस्तदन्तरे-बात्मप्रसादकं ज्ञानमवश्यमस्ति । भाण्डस्य मध्ये यद्रलादि-शून्यं स्थलं तत्रेव रसादि तिष्ठतीति किल प्रसिद्धमित्यर्थः ॥६०॥ असी पापिष्ठतमेऽपि काले वेदबाह्यलादतिनीचेनापि शावयेन सर्वत्यागवशान्मेरविस्थतं यदा तदा पुण्ये द्वापरकाले वेदमार्गान बलम्बना पुण्यतमेन लया विगताशक्षं व्योमवरश्येयमिति कि बाष्यमिति योतनाय हतेति ॥ ६१ ॥ सर्वासां संपदां समा-श्रयो निवासस्थानम् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ हे महास्वभाव भूमि-पाल, लं प्रथमं त्याज्यं सर्वं मनसा परिलज्य अथो अनन्तरं येन खजित तन्मनश्च विहाय तदनन्तरं खागामिमानलक्षणम-हंकारमलं च विमुच्य जीवन्मुक्तरूपो भवेत्यर्थः ॥ ६४ ॥

कुम्भ उवाच।

वासनेव महाराज स्वरूपं विद्धि चेतसः।
चित्तराद्धस्तु पर्यायो वासनाया उदाहृतः॥ ५
त्यागस्तस्यातिसुकरः सुसाध्यः स्पन्दनादपि।
राज्यादप्यधिकानन्दः कुसुमादपि सुन्दरः॥ ६
मूर्षस्य तु मनस्त्यागो नूनं दुःसाध्यतां गतः।
पामरस्येव साम्राज्यं तृणस्येव सुमेहता॥ ७

शिखिध्वज उद्याच।

स्यरूपं वेदिः चित्तस्य वासनामयमाकुलम्। त्यागः स मन्ये दुःसाध्यो वज्रनिर्गिलनादपि ॥ ८

इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

इह चित्तं परित्यकुं तस्मुळपरिशोधने । देहादिवेद्यबाधेन पूर्णचिच्छेष ईर्यते ॥ १ ॥

चित्तत्यागं चित्तत्यागोपायम् ॥ १ ॥ निरस्तं न ममेति त्यक्तमपि । अप्यथीं हिशब्दः ॥ २ ॥ एतिबत्तमादादुं ममतया खीकर्तुं जानामि द्रव्यमिवास्मिन्मृतंखाभावादस्य त्यागं तु न जानामि । हे उत्तम ॥ ३ ॥ स्वरूपं त्यागार्हे पिण्डीकृतं सामान्यरूपम् ॥ ४ ॥ कुम्भस्तदेवाह—वासनेवेति । रागवासनेत्यर्थः । उदाहतो त्योकं । तथाच लीकिका आहुरप्पेषु मम वासनास्ति मण्डकेष्वस्य चित्तमिति ॥ ५ ॥ सुकर इति । औदासीन्यमात्रेण तिसिद्धिरिति भावः । राज्यादपीति । तथाचाहुः 'यच कामसुखं लोके यच दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाधन्यसुखंत्येते नाह्तः षोडशीं कलाम् ॥' इति । सुन्दरी ह्यः॥६॥ कृतस्ति हं स सर्वेने कियते तन्नाह—मूर्खस्येति ॥ ७ ॥ वेदि खद्वचसेत्यर्थः । वक्रस्य निर्गलनािकिणादपि दुःसाच्यः । सति माह्यें औदासीन्यस्यैव दुष्करखादिति भावः ॥ ८ ॥

१६

संमुखामोदपुष्पस्य दुःखदाहानलस्य च। जगद्रममृणालस्य मोहमारुतखस्य च ॥ शरीरयन्त्रवाहस्य हृत्वश्वभ्रमरस्य च। अयलाखेतसस्यागो यथा भवति तद्वद ॥ कुम्भ उवाच। सर्वनाशोऽस्य यः साधो चेतसः संसृतिश्चयः। स एव चिन्तसंत्याग इत्युक्तं दीर्घदर्शिभिः॥ शिखिध्वज उवाच। चित्तत्यागादहं मन्ये चित्तनाशः सुसिद्धये। अभावः रातशो व्याधेः कथमस्यानुभूयते ॥ कुम्भ उवाच। अहंबीजश्चित्तद्वमः सद्याखाफलपह्नवः। उन्मूलय समूलं तमाकाशहृदयो भव॥ १३ शिखिध्वज उवाच । चेतसः किं मुने मूलं कोऽङ्करः कोऽस्य संभवः। काः शाखाः केच वा स्कन्धाः कथमुनमृल्यते च सः। कुम्भ उवाच। अहमर्थीदयो योऽयं स चित्तावेदनात्मकः। एतचित्रद्रमस्यास्य विदि बीजं महामते॥ परमात्मपदं क्षेत्रं क्षेत्रं मायामयस्य तत्। एतस्मात्त्रथमोद्भिन्नादङ्करोऽनुभवाकृतिः॥

जगहक्षणं यदद्यं तन्सृणालस्य । जारेति पाठेऽपि जरे भवं जालमिति ब्युत्पत्त्या अञ्जमेवार्थः । सर्वपर्यार्थः कारणमेवी-परुक्ष्यते ॥ ९ ॥ शरीरयस्त्रं वहति प्रवर्तयतीति कर्मण्यण् । यथा येनोपायेन भवति ॥ ५० ॥ सर्वस्य वङ्यमाणमूलाङ्कर-शाखायळवादेनीशः स एव संस्तेरपि क्षयः स एव चित्तस्य संत्यागो नतु बाह्यार्थत्यागयन्ममतानिवर्तनमिखर्थः । दीर्घदर्शि-मिरपरिच्छित्रात्मदर्शिभिः ॥ ११ ॥ उक्तमर्थ विमृश्यानुवादे-नानुमोदमानः शिखिष्वजस्तत्रोपर्पातमाह—चितेति । चित्तं हि व्याधिः । नहि व्याधेः शतशोषि ममतावर्जनस्क्षणेन व्यागे-नामानोऽनुभूयते किंतु चिकित्सयोच्छेदेनैव । अतस्तदुच्छेदाय तन्मूलशाखापहवादि वदेखथैः ॥ १२ ॥ अहमज्ञातातमा बीजं यस्य । सशाखाफलपलवस्य द्वमस्योनमूलने तत्स्थानाकाशमिव निरावरणविक्षेपं हृद्यं यस्य तथाविधो भव ॥ १३ ॥ संभव-खस्मिन्निति संभवः क्षेत्रम् ॥ १४ ॥ अहमर्थादज्ञातात्मनः उदयो यस्य तथाविधो योयं स चित्तावेदनात्मकोऽभिमानी प्रसिद्धः । एतदेवेति बीजलिक्षेन निर्देशः । बीजं मूलम् ॥१५॥ कोऽस्य संभव इति प्रश्नस्योत्तरमाह-परमात्मपदिमिति । परमात्मनः पदं नीडं माया सेव क्षेत्रम्। यतस्तत्सर्वस्येव मायामयप्रपन्नस्य क्षेत्रमतश्चेतसोपि तदेव क्षेत्रमित्वर्थः । कोऽ-इर इसस्योत्तरमाद--एतस्मादिति । एतस्मात्प्रथमोत्पन्नान्मृला-त्परिच्छिन्नोऽहमिति निश्वयातमा चिदाभासव्याप्तलादनुभवातमः कोऽहरो जायत इलर्थः ॥१६॥ तत्येवोपचयेन चित्तह्रमात्मना

निश्चयात्मा निराकारो बुद्धिरित्येव सोच्यते। ९ । अस्य बुद्ध्यमिधानस्य याङ्करस्य प्रपीनता ॥ संकल्परूपिणी तस्याधित्तनाम मनोमिधा। जीवो मिथ्योपलम्भात्मा शून्यात्मा ह्युपलोपमः १८ स्तम्भः कायोऽयमेतस्य स्नाय्वस्थिरसरिश्वतः। देशान्तरेऽङ्करोद्देशे कालस्पन्दोऽस्य वासना ॥ १९ दााखायाश्चित्तवृक्षस्य दीर्घा दूरगतास्तताः। इन्द्रियाण्यस्पभोगाश्च भावाभावात्मयोनयः॥ २० विटपौघा महान्तोऽस्य शुभाशुभफलाकुलाः । १२ | ईहरास्यास्य चित्तस्य दुर्वृक्षस्य प्रतिक्षणम् ॥ २१ शाखाविलवनं कुर्वनमूलकाषे भरं कुरु। शिखिध्वज उषाच ।

चित्तद्रमस्य शाखादेः कुर्वाणोऽहं विकर्तनम् ॥ २२ कथं करोमि मुलस्य निःशेषकपणं मुने। कुम्भ उवाच।

वासना विविधाः शाखाः फलस्पन्दादिनान्विताः॥ अभाविता भवन्यन्तर्जुनाः संविद्वलेन ते । असंसक्तमना मौनी शान्तवादविचारणः॥ રઇ संप्राप्तकारी यः सोऽन्तर्वृनश्चित्तलतो भन्नेत्। चित्तद्रमलताजालं पौरुषेण विकर्तयन्॥ २'५ यस्तिष्ठति स मूलस्य योग्यो निकपणे भवेत्।

परिणतिरिखाह —अस्पेति । देहाबाकृतिसमरणावित्तनाम तन्म-ननाच मन इस्यमिधा यस्यास्त्रथाविधा पीनता जायत इति परेणान्त्रयः ॥ १७ ॥ तस्य बृक्षस्य जीवमाह—जीव इति । परमार्थतो निर्निकारलात्मर्चविकारश्च्यातमा अतएबोपलोपमो मिथ्याभूनचित्ततद्भमंसंबन्धोपलम्भात्मा साक्षात्यर्थः ॥ १८ ॥ स्तमभो मुलाच्छाम्बापर्यन्तो मध्यप्रदेशः। अयं कायः शरीरभेव । मुलसाम्भदेशाहेशान्तरे अप्रदेशे स्कन्धशाखादिप्ररोहार्थमङ्करो-इंशेऽक्करारम्भे चिकीर्थिते वसन्तादिकाल इव तत्तद्भोगप्रदक्मप-रिपाककाले रागद्वेपप्रवृत्त्याबह्नरपत्नवाद्याकारेण स्पन्दते रसः सोऽस्य वासनैवेखर्थः ॥ १९ ॥ अस्य चित्तवृक्षस्य या दीर्घा दूरगतास्तता विस्तृताश्च शाखास्ता इन्द्रियाणि भावाभावा जन्ममरणानि तदात्मनोऽनर्थसहस्रस्य योनयः कारणीभूत-भोगाश्व अस्य महान्तो बिटपीया अवान्तरशाखासमूहा इति परेणान्वयः ॥ २० ॥ २१ ॥ विषयभोगासंगच्छेदनस्रक्षणं शाखाविलवनं कुर्वन्नरङ्गाद्वितीयात्मदर्शनलक्षणे मूलकाणे भरं यन्नातिशयं कुर्वित्यर्थः । तत्र शाखालवने मूलकाषे चोपायं राजा पृच्छति-चित्तेति ॥ २२ ॥ ततः शाखालवनोपायं कुम्भ आह्-वासना इति ॥ २३ ॥ अभाविता आसक्तित्या-गेनानुद्भाविता अन्तर्विचारसंविद्धलेन छना भवन्ति । उक्तमे-वार्थं जीवनमुक्तेषु लक्षणतया दर्शयति-असंसक्तेति ॥ २४ ॥ शाखालवनाभ्यासे हढे सति मूलकाषे योग्यो भवतीत्याह—चि-त्तह्रमेति । लताजालं शाखासमूहम् ॥ २५ ॥ गाणमन्नम् ।

२६

२७

गाणं शासाबिलवनं मुख्यं मूलविकर्तनम् ॥ चित्तवृक्षस्य तेन त्वं मूलकाषपरो भय । मुख्यत्वेन महायुद्धे मूलदाहमलं कुरु ॥ चित्तकण्टकखण्डस्य भवत्येवमन्त्रित्तता ।

शिखिध्वज उवाच।

अहंभावात्मनश्चित्तद्वमधीजस्य हे मुने । कोऽनलो दहनाख्येऽस्मिन्कर्मण्यर्थकरो भवेत् २८ कुम्भ उचाच ।

राजन्स्वात्मविचारोयं कोऽहं स्यामिति रूपधृक्। चित्तदुर्दुमवीजस्य दहने दहनः स्मृतः॥ २९.

शिखिध्वज उवास्त्र।

मुने मया स्वया बुद्धा यहुद्दाः प्रविचारितम्।
यावश्वाहं जगन्नोर्वावनमण्डलमण्डितम्॥ ३०
नाद्रेस्तरं न विपिनं न पर्णस्पन्दनादि च।
जडत्वान्न च देहादि न मांसास्थ्यस्गादि च ३१
कर्मेन्द्रियाण्यपि न च न च बुद्धीन्द्रियाणि च।
न मनो नापि च मतिनाहंकारश्च जाड्यतः॥ ३२
करकत्वं यथा हेस्नि तथाहंत्वं चिदात्मनि।
जडं त्वसदूपतया तेन तन्नास्ति हे मुने॥ ३३
संनिवेदानिवासात्मा सर्वार्थादिः परे पदे।

मुख्यं प्रधानम् ॥ २६ ॥ मुख्यत्वेन प्राधान्येन । प्रधानासंपा-दने यमप्रसाधितस्याप्यक्तस्य वैफल्यप्रसङ्घादिति भावः ॥ २७ ॥ लं चित्तलक्षणस्य कण्टकखण्डस्य करजवनस्य अलं निरप्रशेषं मूलदाहं कुबिति पूर्वज्ञान्तयः । एवं कृते अचित्तता भवति । तहाहस्य प्रसिद्धनानछेनासिद्धरनछान्तरं जिज्ञामुः पुन्छति-—अ-हंभावात्मन इति । अर्थकरः समर्थः ॥ २८ ॥ कोऽहं स्था-मिति विचारादिसाक्षात्कारान्तकृषपृक् ॥ २९ ॥ मत्रा खयु-र्वेष बाह्यार्थ। देहादाहंकारान्ता आध्यात्मिकार्थाश्व अनात्मनाः अनृताभेति ज्ञातास्तथाप्यन्तरात्मतत्त्वापरिचयाज्ञडेऽप्यहंकारे पुनःपुनरात्मता ब्रान्तिनं निवर्तत एवेति न विश्राम्यामीत्याह-मुने इत्यादिपहािनः । यावदिति साकत्ये । सर्वं जगद्वहुशः प्रवि-मारितमित्यर्थः । तदंव विदिष्याह—नाहमित्यादि । उर्व्या तदन्तर्गतवनमण्डलादिमिश्र मण्डितं जगन्नाहमिति संक्षिप्योक्तिः ॥ ३० ॥ तदंव विस्तरेणाह—नादेरित्यादि । जडलादिति सर्वत्र हेतुः ॥ ३९ ॥ ३२ ॥ अहंकारे जडलं नास्तीति शङ्कां विवर्तसहेतुना वारयन् जडस्य खतः सेद्धमशक्तया चित्रध्या-सात्सिद्धे। मिभ्यात्वं पर्यवस्यतीत्वाह—कटकत्वमिति । तथा अहंत्वं विवर्त इति शेषः । जडं तु शुक्तिरजतमृगतृष्णादि असद्भुपतया प्रसिद्धमिति शेषः । तेन जडलहेतुना तदहंलादि नास्ति मिश्येवेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ ब्रह्माण्डावेहक्तज्जडवर्गस्याधिष्ठा-नसद्भादन्यलादपि असलमित्याह-सन्निवंशति । खतः सत-श्वताचात्परस्परं चान्यदन्यलाद्भिष्ठलात् परे पदे चिति न

विद्यते नान्यदन्यत्वाम्नभसीव महाद्रुमः ॥ ३४ जानम्नपीति भगवमहत्वमलमार्जनम् । अन्तर्यञ्जं न जानामि तेन तप्ये चिरं मुने ॥ ३५

कुम्भ उवाच।

एतावन्मात्रकं वृन्दं यदि न त्वं महीपते। जडन्वात्तनमहाबुद्धे योऽसि तद्वद मेऽनघ॥ ३६

शिखिध्वज उवाच।

चिन्मात्रभहमच्छात्मवेदनं विदुषां वर।
यत्र भावाः स्वद्नते ते निर्णायन्ते च येन वा॥३७
एवं रूपस्य मे लग्नं नृनं मलमकारणम्।
सकारणं वाहमिति यत्पदं च न वेदयहम्॥ ३८
असदेतदनात्मीयं प्रमाष्ट्रं मलमात्मनः।
मुने यदा न शक्तोमि तेन तप्ये सुदारणम्॥ ३९

कुम्भ उन्नाच ।

बूहि किं तन्महाबाहो लग्नं तच मलं महत्। स्थितोऽसि येन संसारी सता वाप्यथवाऽसता ४० शिखिष्वज उवाच।

चित्तद्वमस्य यद्वीजमहंभावश्च मे मूलम्। तच्च त्यक्तं न जानामि त्यकं त्यक्तमुपति माम् ४१

विद्यते । तथात्वं कुत इति चेद्यतो ब्रह्माण्डादिजडवर्गश्चनुर्दश-भुवनादिसंनियेशानां निवासातमा आधारः सर्वेषामधीनां श-व्दादिविषयाणामादिः कारणभूतः । नच चिदातमा विभक्तम्ब-भावो निर्विभागसत्तासामान्यरूपलादिल्थर्थः ॥ ३४ ॥ इति अनया रीत्या अहंत्वलधुगस्य मटस्य मार्जनं जानवृषि अन्तः प्रस्रगेकरसं यत् इं साक्षिचतन्यं तत्र जानामि ॥ ३५ ॥ इदानीं परिशेषादेव साक्षिचैतन्यं परिचायविष्यन्कुम्भ उवाच— एतावदिति । एतावन्मात्रकमहंकारपर्यन्तं दृश्यवृन्दम् ॥ ३६॥ अज्ञातृभोक्तृत्वादिना प्रसिद्धान्तरान्तरकोशपरम्परावधी यत्रा-नर्देकरसे चिन्मात्रे सति अनानन्दा जडहूपाश्च भावाः शब्दा-दिविषयाः खदन्ते । येन वा बुद्धिवृत्त्युपारुढेन इष्टानिष्टविभा-गेन निर्णायन्ते ॥ ३७ ॥ विवेकदशा पर्यालोचने एवंहपस्य में मम देहादिकोशगणे अहमिति तादातम्याभिमानलक्षणं मलं लमं इदं सकारणमकारणं वेति अहं न वेदि यत्पदं ब्रह्म तच न वेदीलर्थः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सता सलेन असता मिभ्या-भूतेन वा येन मलेन हेतुना संसारी स्थितोऽसि ॥ ४० ॥ तत्सत्यं मिथ्येति वा न जानामि किंतु चित्तह्रमस्य सर्वानर्थफ-लस्य मूलमिति सामान्यतोऽहंभावश्वान्ममभावश्वेति विशेष-तोपि जानामि । तब एक्तुं निरसितुमुपायं न जानामि । ननु नाहं न ममेति बुद्धिरेव तत्त्वागोपायः प्रसिद्धः प्राक्लयैव बना-दिषु दर्शितः स कथमपळप्यते तत्राह—लक्षं लक्कमिति । तथा पुनः पुनस्त्यक्तमपि मूलोच्छेदाभावात्पुनःपुनर्मामुपति । ૪ર

88

ઝપ

कुम्भ उवाच।

कारणाजायते कार्यं यत्तत्सर्वत्र संभवेत्। अन्यस्वसद्विचन्द्राभं दृष्टमेतस्र विद्यते॥ कारणाजायते कार्यमहंभावाद्भवाङ्करः। इति कारणमन्विष्य कथयस्त्र ममाधुना॥

शिखिध्वज उवाच ।
मुनेऽहमिति दोषस्य वेदनं वेधि कारणम् ।
तद्यथोपदामं याति तन्मे वद मुनीश्वर ॥
चितश्चेत्योन्मुखत्वेन दुःखायायमहं स्थितः ।
चेत्योपदामनं बृहि मुने तदुपद्यान्तये ॥

कुम्भ उवाच।

कारणं कारणकोऽसि वेदनस्य वदाशु मे । ततस्त्वां वोधयिष्यामि कारणाकारणक्रमम् ॥ ४६ वेद्यवेदनरूपस्य चेत्यसंचेतनस्य मे । अकारणं कारणतां यद्यातं तव तद्वद ॥ ॥ ४७

शिखिध्वज उवाच ।

चेत्यचेतनरूपस्य वेद्यसंवेदनाहतेः । इयं पदार्थसत्तेह देहादिः कारणं मुने ॥ ४८ शरीरादितयोदेति वेदनं वस्तुसत्तया । असत्याभासया स्पन्दो यथा पवनलेखया ॥ ४९ असत्तां वस्तुसत्ताया नावगच्छाम्यहं यथा ।

अतस्तन्मूलं ततुच्छेदोपायं च वदेखाशयः ॥ ४१ ॥ तत्र सलस्य कृटस्थलात्कारणता न संभवत्येव । असलस्य तु कार-वतीकिरसत्येव कारणे कार्यमुख्यमिखर्थ पर्यवसिता सती कार्यसासलामेवापादयतीलात्मैक्यपर्यवसितेति रहस्यं तद्व-द्धानुसारणेव बोधयिष्यन् कुम्भो लोकप्रसिद्धानुरूपमहंकारणं लं खबुद्धीवान्विष्य कथयेलाह्—कारणादिति द्वाभ्याम् । अ-न्यन्त कारणं विनेव जातं कार्य द्विचन्द्राभमसदेव । यत एत-त्सम्यगृद्धं चेन्न विदात इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ यथा अहंभावात्का-रणान्मनआदिलक्षणो भवाङ्करः कार्य जायते इति एवंविधमे-बाहंभावस्थापि कारण स्वबुद्धाऽन्विष्य मम कथयस्वेत्यर्थः ॥ ४३ ॥ एवं पृष्टो राजा चिरं खबुद्धान्विष्यासति देहादा-कारवेदने तत्राहंताभिमानायोगात्तद्वेदनमेव तत्कारणामिति नि-श्रिस प्रत्युवाच-मुने इति ॥ ४४ ॥ चितश्रेत्योनमुखत्वेन हेतुना अयं देहादिरहंभावेन स्थितः सन् दुःखाय संपन्नोऽतश्चे-त्यदेहादिरेव चितस्तद्वेदनाभावेपि हेतुरित्यमिश्रेख तदुपशान्तये चेलोपशमनोपायं मूहीत्याह—चेत्येति ॥ ४५ ॥ यदि वेदनस्य वेद्योन्मुखत्वे वेद्यमेव कारणमिति कारणज्ञोसि तर्हि तत्खाभिप्रे-तमाद्य बद । ततस्खदुक्त्यनन्तरं खदभिश्रेतं कारणमकारणमेव येन क्रमेण संपद्यते तं क्रमं खां बोधयिष्यामीत्यर्थः ॥ ४६ ॥ पृष्टमेवार्थं स्फुटीकर्तुं पुनरनुबद्ति--वेद्येति । सामान्यतो वेद्य-बेदनरूपस्य विशेषतश्चेत्यसंचेतनस्य मिध्यालादकारणं कारण- अहंत्ववेदनं चित्तवीजं समुपशाम्यति ॥ ५० कुम्म उवाच । विद्यते यदि देहादिवस्तुसत्ता तदस्ति ते । अभावादेहसत्तादेः किनिष्ठं तघ वेदनम् ॥ ५१ शिखिश्वज उवाच । यस्योपरुभ्यते किचित्स्वरूपं कलनात्मकम् । असद्ग्पं कथं तत्स्यात्मकादाः स्यात्कथं तमः ॥ ५२ हस्तपादादिसंयुक्तः कियाफलिवलासवान् । सदानुभूयमानोऽयं देहो नास्ति कथं मुने ॥ ५३ कुम्भ उवाच ।

कारणं यस्य कार्यस्य भूभिपाल न विद्यते । विद्यते नेह तत्कार्यं तत्संवित्तिम्तु विभ्रमः ॥ ५४ कारणेन विना कार्यं धारीरं न कदाचन । विद्यते यस्य नो वीजं तद्भव्यं केव जायते ॥ ५५ अकारणं तु यत्कार्यं सिदवान्नेऽनुभूयते । तद्भष्टविश्रमाहिद्धि सृगतृष्णाजलोपमम् ॥ ५६ अविद्यमानमेव त्वं विद्धि मिध्याभ्रमोदितम् । नातियस्ववतोऽप्येतन्सृगतृष्णाम्बु लभ्यते ॥ ५७

शिखिध्वज उवाच । असतो द्वीन्दुविम्बादेन युक्तं कारणेक्षणम् । वन्ध्यातनयसर्वाङ्गमण्डनं कस्य राजते ॥ ५८

लाक्षममेक वेद्यं कारणतां यातमिति यत्तवाभिप्रेतं तद्वदेखर्थः ॥ ४७ ॥ शिखिध्वजः पृष्टे स्वामित्रेतं स्फुटमाह—चेत्येति । देहादिर्बोह्याध्यात्मिकपदार्थसत्ता ॥ ४८ ॥ वेदनस्य देहादि-सत्ता कथं कारणं तत्राह---शरीरेति । यतो वेदनं शरीरादि-वस्तुसत्तया निमित्तभूतया स्वयमपि मूपानिषिक्तधातुद्दव इव शरीराद्याक।रेणोदेति । अमूर्ते वेदने मूर्तदेहाद्याकारताया बास्त-वलायोगाद्विशिनष्टि-असलाभासयेति ॥ ४९ ॥ यथा चित्त-बीजमहंलवेदनं समुपशाम्यति तथा देहादिवस्तुसत्ताया असत्वं नावगच्छामि । अतस्तदसत्वं यथावगम्यते तथोपदिशेति भावः ॥ ५० ॥ एवं पृष्टः कुम्मो वेदनस्य विषयाकारेणोत्पत्तिश्रम-बारणाय देहादिदृश्यासत्वं प्रतिजानीते—विद्यतं इति । देहादि-वस्त्रसत्ता यदि विद्यते तत्तिहिं ते तवामिमतं वेदनस्य तनि-मित्तं तदाकारत्वं स्यात् तदेव दुर्लभमिति वेदनं किनिष्ठं किवि-षयं । निर्विषयमेवेलार्थः ॥५१॥ प्रत्यक्षमुपलभ्यमानस्य देहादेः कथमपलाव इति राजा पुच्छति-सस्येति । सत्त्वेनोपलभ्यमा-नस्यासत्त्वप्रतिज्ञा विरुद्धेति दृष्टान्तेनाप्याह—प्रकाश इति॥५२॥ ॥ ५३ ॥ नोपलम्भनमात्रेण दश्यसत्तानिर्णयः । श्रान्तोपल-म्मेषु व्यक्तिचारात् । किंतु सत्यु कारणेषु यस्य कार्यस्योपलम्भ-स्तस्य सस्त्रम् । तानि चास्य न सन्तीत्याह-कारणमिति चतुर्भिः ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तर्हि किमसौ देहा-दिवन्ध्यापुत्रदेहादिवदत्यन्तासन्नेष स्मादिति राजा शक्कते-अ- ५९

कुम्भ उवाच ।
कारणेन विना कार्य शरीराद्यस्थिपञ्जरम् ।
अविद्यमानमेवेदं विद्यसंभवतो नृप ॥
शिखिध्वज उवाच ।

इस्तपादादियुक्तस्य शरीरस्य मुनिश्वर । नित्यमालक्ष्यमाणस्य पिता कस्यान्न कारणम् ॥ ६०

कुम्भ उवाच।

कारणाभावतो राजन्पिता नाम न विद्यते ।
असतो यसु संजातमसदेव तदुच्यते ॥ ६१
परार्थानां च कार्याणां कारणं बीजमुच्यते ।
संभवत्यङ्ग जगित न बीजेन विनाङ्करः ॥ ६२
तसान्न कारणं यस्य कार्यस्येहोपपद्यते ।
बीजाभावे हि तन्नास्ति नत्संवित्तिस्तु विभ्रमः ६३
अवश्यं खलु यन्नास्ति निर्वाजं तन्मतिभ्रमः ।
द्वीन्दुत्वमरुभूस्यस्तुवन्ध्यापुत्रदशासमम् ॥ ६४

शिक्षिभ्वज उवाच । पितामहानां पुत्राणां पितृणां च जगब्रये । आद्यः पितामहः कस्मात्पूर्वोत्पत्तौ न कारणम् ६५ कुम्भ उवाच ।

आधः पितामहो यः स्यात्सोपि नास्त्येव भूपते।
कारणाभावतो नित्यं यदा भावो न कस्यचित् ६६
कारणस्य स्ववीजस्य नित्याभावात्पितामहः।
अन्यः स दृष्ट्यमानोपि भ्रमादन्यो न विद्यते॥ ६७
मृगतृष्णाम्बुवद्भान्तिरूप प्यावभासते।
पितामहार्थकारित्वमपि तस्य भ्रमात्मकम्॥ ६८
पितामहोदरे तस्य मिथ्याप्रत्ययतः स्थितिः।
घना तव निवृत्तेव मार्जयिष्याम्यथेतरत्॥ ६९
तस्माश्चिद्दात्मकत्यात्मनि चिन्नतोऽयं

तिसा बदारमजतपारमान । चनता उप नित्यं स्वयं कचित भूमिप देवदेवः । तेनैव पद्मज इति स्वयमात्मनात्मा प्रोक्तः स्वरूप इति शान्तमिदं समस्तम् ७०

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकाये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे शिखिष्वज्ञावयोधनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पश्चनवतितमः सर्गः ९५

शिखिध्वज उवाच । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यद्ययं भासते भ्रमः ।

सत इति ॥ ५८ ॥ 'अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्' इत्यादिश्रतेस्रयैव विद्वदनुभवात्कारणानिरूपणाचेष्टापत्तिरेवेय-मिति कुम्भ आह्--कारणेनिति ॥ ५९ ॥ ऐतिह्यानुमाना-भोक्तयनगतसंस्थानसाम्याळिङ्गादिना पितास्य कारणं निर्झातः स क्यमपलप्यत इति राजा श्रृहते—हस्तेति ॥ ६० ॥ तस्याप्य-सत्त्वे तुल्यो न्याय इति गृढाभिसंधिसादेवोत्तरं पुनर्वर्णयति-कारणाभावत इत्यादिना ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ गुढामिसंधिमजानानो राजा शङ्कते-पितामहानामिति । आदः पितामहो हिरण्यगर्भः। स हि सृक्ष्मभूतलिङ्गसमध्यात्मा पुत्रपित्पितामहादिसवैव्यष्टिसमष्टिस्थूलानामुत्पत्ती कारणे कि न स्यादिखर्थः । पूर्वेषां प्रजासृष्टृणां मनुमरीचिद्धादीनां, पूर्वस्य स्वकार्येभ्यः पूर्वस्य ब्रह्माण्डस्य वा उत्पत्ता ॥ ६५ ॥ तस्यापि कारणं दुवेचमित्यसत्वे तुल्यो न्याय इति गृद्धाभिसंधिरेवोत्तर-माइ-आद इत्यादिना । यदा कारणाभाव कस्यचिदपि भावो नेति निखं नियमस्तदा सोपि नास्खेवेत्यर्थः ॥ ६६ ॥ ननु 'यो देवानां प्रभवश्रोद्भवश्च विश्वाधिको रहो महर्षिः । हिरण्यगर्भ पश्यत जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनिक' इला-दिमञ्जवर्णेषु तहत्पादको जायमानं तं कृपादृष्ट्या पश्यश्रीश्वरस्त-त्कारणं प्रसिद्ध एव स कथमपलप्यत इत्याशक्षां परिद्वरन गृढा-मिसंधिमुद्वाटयति—कारणस्येति । सल्यमस्तिश्वरः परमात्मा तथापि तेन मायया खात्मनि भेदकत्यनया भ्रमान्माययान्यो हरयमानोऽपि स पितामहस्त्रस्मादन्यो न विद्यते । तस्कृतस्तत्र

अर्थिकयासमर्थश्च तत्कथं दुःखकारणम्॥

सत्यस्य चिदंशस्यापरिणामितया अकारणलस्य वक्ष्यमाणलात् परिशेषान्मायांश एव जडस्तत्कारणं वाष्यस्तस्य चाविद्यारूपस्य बीजस्य कारणस्य निलोदितविद्याबाधितत्वेनेश्वरे निल्यमेवाभा-वादित्यर्थः ॥ ६७ ॥ एतेन पितामहस्य भुवनादिसगीर्थेकिया-कारिताप्रतिभासोऽपि व्याख्यात इत्याह—मृगतृष्णेति ॥ ६८ ॥ इत्यं मृदुक्तयुक्तया तव पितामहादेः खशरीरान्तस्यतस्य कार्थ-परम्पराप्रबन्धस्य मिथ्येति याक्तिकप्रखयतो घना सल्यत्वेनाख-न्तदृढीकृता स्थितिर्निवृत्तेव । अथ इतरत्प्रतिभासमात्रावशिष्टां-शमपि तत्त्वसाक्षाःकारपर्यन्तेनोपदेशेन मार्जयिष्यामीलर्थः ॥ ६९ ॥ उक्तमेवार्थं संगृह्योपसंहरति—तस्मादिति । हे भूमिप, तसाचिद्यतिरिक्तस्योक्तयुक्तया असलाचिदेवायंदेवदेवः प्रागुक्त इंश्वरो हिरण्यगर्भादिस्तम्बपर्यन्तसर्गपरम्परात्मना निखं यत्कचति तदात्मा चिदात्मकतया आत्मन्येव कचति नान्यद-णमात्रमपि संपादयति संपद्यते वा । तेन स्वयमारमना आ-र्तमव खरूपः पद्मज इत्यादिनामरूपकल्पनेन प्रोक्तः 'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन्यदास्ते' इत्यादि-श्रुतिभिः इति एवं पर्यालीयने इदं समस्त द्वैतं शान्तं नद्वाये-व्यर्थः ॥ ७० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

धनतातानवेनात्राविद्योपकामनकमः । शिखिप्वजस्य बोधेन विधान्तिश्चोपवर्ण्यते ॥ १ ॥ 'मृगतृष्णाम्बुयद्वान्तिरूप एवावभासते' इति यदुक्तं तत्र Q

कुम्भ उवाच।

एवं जगञ्जमस्यास्य भावनं तावदाततम् । शिलीभृतस्य शीतेन सलिलस्येव रूक्षता ॥ ર अज्ञानं शिथिलीभृतमेवं नष्टं विदुर्ब्धाः। न नारोन विनोदेति पूर्वसंस्थानविच्यतिः॥ 3 तनुत्वं सर्वबोधस्य यसदेव हि कारणम्। सर्गोपशमसंपत्ती प्रतिपन्ने परे पदे ॥ R तानवं दृश्यते यस्य तस्यानुक्रमतः स्वयम्। पूर्वसंस्थानविगमात्प्रदामोऽप्युपपद्यते ॥ अनेनैव ऋगेणैवं त्वमादिप्रुवो नृपः। भ्रमाकारोदयं विक्रि मृगतृष्णाम्बुवित्स्थतम्॥ एषा पितामहाभावेऽप्यसती भृतसंततिः। न कदाचन तत्सिद्धं यद्सिद्धेन साध्यते॥ अयं भूतोपलम्भो हि मृगतृष्णाम्बिवोदितः। विचाराद्विलयं याति शुक्तौ रजतधीरिव ॥ कारणाभावतः कार्यमभूत्वा भवतीति यत्। मिथ्याशानाहते तस्य न रूपमुपपद्यते ॥

मृगतृष्णादेः स्नानपानायर्थिकयासामर्थ्यायददर्शनान्मज्जनमर-णादिदु:खकारणलादर्शनाच विषमो दृष्टान्त इति राजा श-इते-आब्रह्मेति । तत्तर्हि अर्थिकयासमर्थे। दुःसकारणं चायं कथमित्यन्वयः ॥ १ ॥ सत्यसंकल्पभावनादृढीकृतस्य मिथ्यार्थ-स्यार्थिकयासामर्थ्य दुःखकारणत्वं च दैवासुरमायानिर्मितशस्त्रा-स्नहस्त्यश्वसेनादेः प्रसिद्धमेव किं वाच्यं जगदीश्वरमायानिर्मि-तस्य प्रपञ्चस्येत्याशयेनोत्तरमाह—एवमिति । अस्य सर्गात्म-कस्य जगद्भमस्य प्राणिकर्मोपभोगार्थलात् एवं लदुक्तप्रकार-मर्थिकयासामध्ये दुःखादिकारणलं चास्ति । सत्यसंकल्पस्येश्व-रस्य भावनमेव तत्तदर्थिकियाद्यात्मना आततम् । यथा शीतेन बिलीभृतस्य सलिलस्य चिरकालेन स्फटिकादिभावेन परिणा-माद्रक्षता पीठपात्राद्यर्थिकयासामर्थ्यमाततं तद्वदिलर्थः॥ २॥ अतएव मूलाज्ञानस्य ज्ञानाभ्यासपरिपाकक्रमेण शिथिलीभावे जगतः सूक्ष्मतापत्तिक्रमादेव सहाज्ञानेन नाश इत्याह--अज्ञा-निमिति । अज्ञाननाशं विना जगत्संस्थानबाधी नास्तीत्याह-नेति ॥ ३ ॥ अज्ञानशियिलीभावे च निरोधाभ्यासेन बाह्यधी-वृतितानवं कारणमित्याह—तनुखमिति । तच ज्ञानोत्पत्तिकमे-णात्यन्तिकसर्गोपशमसंपत्ती कारणमित्याह-सर्गिति। प्रति-पन्ने साक्षात्कृते सति ॥ ४ ॥ अतएव लोकेऽपि अपक्षयापर-वर्यायतानवपूर्वक एव स्थूलभावानां विनाशः प्रसिद्ध इत्याह--तानवमिति । यस्य देहादेः । प्रशमो नाशः ॥ ५ ॥ एवं दर्शितप्रकारेण अज्ञानशैयिल्यक्रमेण जगद्वाधादेव तव नित्यसि-द्धपूर्णतालक्षणपुरुषसभावस्थितिसिदिरित्याह-अनेनेति । मृ-गत्ष्णाम्बुबद्भान्तिरूप एवावतिष्ठते इति प्रागुक्तजगत्स्थितिरप्ये-वंरीत्यैव बोद्धव्येलाह-अमाकारोदयमिति ॥ ६॥ शहोत्तर-

मिथ्यादृष्टिप्रेक्षितं तु न कदाचन विद्यते। मृगत्ष्णाम्भसा केन घटकाः परिपृरिताः॥ १० शिखिध्वज उवाच । स्रष्ट्रराद्यस्य परमं ब्रह्म कस्मान्न कारणम्। अनन्तमजमव्यक्तमम्बरं शान्तमच्युतम्॥ ११ क्रम्भ उवाच। हेतुत्वाभावतो ब्रह्म कार्यत्वाभावतस्तथा। अद्वैतेनातिगन्तात्मा न च कार्य न कारणम् ॥ १२ अकर्तृकर्मकरणमकारणमयीजकम्। अप्रतक्यमविशेयं ब्रह्म कर्तृ कथं भवेत्॥ १३ अकारणत्वात्कार्यत्वरहितं तज्जगद्भवेत्। अद्वैतेष्यमनाद्यम्तं तदाद्यमुपलम्भनम् ॥ १४ अप्रतक्र्यमविश्वेयं यच्छिषं शान्तमव्ययम् । तत्कथं कस्य केनैच कर्तृ भोकु कदा भवेतु ॥ 2.4 अतो नेदं कृतं किंचिज्ञगदादि न विद्यते।

न कर्तासि न भोकासि सर्वे शान्तमजं शिवम् ॥१६

मुपसंहत्य प्रसुतमेव निगमयन्नाह—एवेति ॥ ७ ॥ फलं दर्शयति-अयमिति ॥ ८ ॥ अतएव जगतो भ्रान्ति-रेव खरूपं नान्यदित्याह-नारणेति ॥ ९ ॥ अतएव मिध्येति दृष्टं सहाधिक्रियया निःखरूपतामेवापवत इत्याह-मिथ्याद-ष्टीति ॥ १० ॥ तर्हि पितामहस्य निर्विशेषं ब्रह्मेव कृतो न कारणं । नच परिणामित्वेन तस्यानित्यलापत्तिः । क्रमिकसर्वप-रिणामानुवृत्तिनलादेव जातिवत्तस्य निखःवोपपत्तेरिति राजा शङ्कते-सष्टुरिति ॥ ११ ॥ कुम्भः श्रुतियुक्तयनुभवविरोधान्मै-विमलाह-हेतुत्वेति । 'तदेतद्रह्मापूर्वमनपरम्' इति श्रूला पूर्वेललक्षणहेतुलस्यापरललक्षणकार्थलस्य च निषेधात्, 'नेह नानास्ति किंचन' इति श्रुत्या द्वैतमात्रनिषेधात् 'असन्नो स्पयं पुरुषः' इत्यादिश्रतेश्वानुवृत्त्याचघटनात् , कृटस्थस्य परिणामायो-गाच सर्वप्रपद्मातिगन्ता आत्मा शुद्धं ब्रह्म न कार्य नापि कार-णमित्यर्थः ॥ १२ ॥ कारकान्तराप्रसिद्धेस्तत्प्रयुक्तस्वातस्यवक्षणं कर्तृत्वं लस्य दूरनिरस्तमित्याह—अकर्त्रिति । प्रयोज्यकर्तुरप्र-सिद्धाः प्रयोजककर्तृताप्यस्य दुर्छमेति द्योतनायाकर्त्रिति । अका-रणं निमित्तशून्यमबीजकसुपादानशून्यम् ॥ १३ ॥ निर्धर्मक-लादेव तद्रहा अकारणलात्कार्यललक्षणधर्नाभ्यामपि रहितं भवेदिति हेतोः कार्यकारणात्मकं जगत्संपन्नमिति यदि संभाव-यसि तर्हि तज्जगत् द्वेतैक्यलक्षणेन बस्तुकृतपरिच्छेदेन आध-न्तलक्षणैर्देशकालकृतपरिच्छेदैश्व रहितं सदायमुपलम्भनं चिदे-करसं महीव संपन्नमिखपि संभावय । तदा क जगद्भावः कार्य-कारणता वेति भावः ॥ १४ ॥ इत्यमेव तस्य जीवभावश्रान्तिः प्रसञ्जिते कर्तृलभोक्तरवे अपि निरसनीये इत्याह—अप्रतक्य-मिति । चतुर्भिः किंवृत्तेः प्रकारकर्मकरणकालानामप्रसिद्धिः सुच्यते ॥ १५ ॥ फलितमाइ-अत इस्यादिमा ॥ १६ ॥

योग० १२६

कारणाभावतः कार्यं न कस्यचिदिदं जगत् ।
अकारणत्वात्कार्यत्वं भ्रमाद्विद्धि त्विदं जगत् १७
अकार्यत्वाच नास्त्येतत्सर्ग १त्थं न विद्यते ।
यदा न कस्यचित्कार्यं कारणस्य जगत्तदा ॥ १८
पदार्थाभावसंसिद्धिस्तत्तिः हो कस्य वेदनम् ।
एवं तु वेदनाभावे नास्त्यहंत्वस्य कारणम् ॥ १९
अतः शुद्धो विमुकोऽसि कैवोक्तिर्वन्धमोक्षयोः ।
शिक्षिच्वज उवाच ।
वृद्धोऽस्मि भगवन्युक्तियुक्तमृक्तं त्वयोत्तमम् ॥ २०

ग्रास्थिक उपाच । बुद्धोऽस्मि भगवन्युक्तियुक्तमुक्तं त्वयोक्तमम् ॥ २० कारणाभाषतः कर्तृ नेदं ब्रह्मेति वेदयहम् । कर्त्रमावाज्जगन्नास्ति तेन नास्ति पदार्थदक् ॥ २१ नातश्चिक्तादि तद्वीजं नातोऽहन्तादि किंचन ।

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू० शिखिष्वजविश्रान्तिनीम पश्चनवितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

पवंस्थित विशुद्धोऽसि विबुद्धोसि शिवोसि बारर नमो मह्यं परं चेत्यं न किंचिदिति बोधितः। पदार्थवेदनादित्थमसदेवायमासते। अहमाद्यन्तमेतेन शान्तमासे खकोशवत्॥ २३ जगत्पदार्थप्रविभागदृष्टिः सदेशदिकालकलाकियोघा। अहो चु कालेन चिरेण शान्ता ब्रह्मैव शान्तं स्थितमव्ययातम॥ २४ शाम्यामि निर्वामि परिस्थितोऽसि न यामि नोदेमि न चास्तमेमि। तिष्ठामि तिष्ठ स्थेयथास्थितात्मा हीवं शुमं पावनमानमसि॥ २५

षण्णवतितमः सर्गः ९६

ş

ર

3

वसिष्ठ उचाच ।

इति ब्रह्मणि विश्रान्तिमवाण्य स शिक्षिध्वजः ।

मुद्दुर्तमासीत्संशान्तमना निर्वातदीपवत् ॥

निर्विकल्पसमाधानपरेणाशु विविक्षितम् ।

स्वलीलयेति कुम्मेन झटित्यव प्रवोधितः ॥

कुम्म उवाच ।

राजन्नहाननिद्दातः प्रबुद्धोऽसि शिवः स्थितः ।

कार्य नास्तमयेनैव न चानस्तमयेन ते ॥

॥ १७॥ उपकान्तं प्रस्तुतोपयोगितया स्मारयति—यदेति ॥ १८ ॥ प्रसुतं निगमयति—एवं त्विति ॥ १९ ॥ एवमह-न्तानिरासोपायमुपदिश्य परिशिष्टमात्मतत्त्वमनुभावयति-अत इति । उपदिष्टार्थं खानुभवेनानुमोदमानो राजा युक्ततमं लयो-पदिष्टमिखनुबदति--बुद्धोऽसीखादिना ॥ २०॥ पदार्थहक् नामरूपदृष्टिः ॥ २९ ॥ २२ ॥ चित्खरूपात्परमन्यचेत्यं न किंचिदिति लयाहं बोधितः । इत्थं लदुपदिष्टयुक्तया सर्वेपदा-र्यानां विमर्शेन वेदनादध्यारोपे अहमादिविवेकेनापवादे अह-मन्तं दृश्यजातमसम्रास्त्येवेत्यवभासते इति परेणान्वयः । एतेन सर्वद्वेतवाधेन खकोशवत् शान्तं निर्विक्षेपमासे ॥ २३ ॥ तामेव स्थितिमन्मिनयभुपसंहरति--जगदिति द्वाभ्याम् । देशदिकाल-कलाकियोधेः सहिता जगत्पदार्थप्रविभागद्यध्रमम चिरेण का-लेन शान्ता । अहो इत्याधर्ये । तथाच शान्तमव्ययातम निर्वि-कारं ब्रह्मेव स्थितं पारंशिष्टांमेल्यर्थः ॥ २४ ॥ परितः पूर्णभा-नेन स्थितोऽस्मि । अहमेवं तिष्ठामि लमपि खःप्रत्यगेकरसो यशास्थितारमा तिष्ठेति 'अभयं ला गच्छतादाज्ञवल्कय यो नो भगवशभयं वेदयसे' इति जनकोक्तिवत्कुम्भं प्रति राजोक्तिः । एवं स्थिती लदात्मैवाहं शुभं परमपुरुषार्थरूपं पावनं शुद्धं मीनं बागगम्यं शिवं निरतिशयसुखमेव सदास्भीतार्थः ॥ २५ ॥ सकृदेव विभातात्मा नष्टानिष्टपदात्मकः ।
कलाकलनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तोऽङ्ग सांप्रतम् ॥ ४
विसष्ट उवाच ।
कुम्मेन बोधितस्त्वेवं स बभूवावबोधवान् ।
विनिर्गतो रराजोचैर्महामोहसमुद्रकात् ॥ ५
विश्वान्तधीः क्षणेनैव पश्यन्दश्यस्य वस्तुनः ।
असत्तामेव मुकात्मा लीलया समुवाच ह ॥ ६

इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पञ्चनवंतितमः सर्गः॥ ९५॥

त्रतिबुद्धस्य राञ्चोऽत्र दृश्यसत्तावमार्जनम्। यया भवति निःशेषं तथा कुम्मेन वर्ण्यते ॥ १ ॥

अखण्डबद्धाकारहृत्युदयेन सम्यक् शान्तं वाह्यवृत्तिप्रशमनोपलक्षितं मनो यस तथाविधः सिन्नन्नित्तिपत्रिश्वल आसीदिखर्थः ॥ १ ॥ अथ यदा तेन राज्ञा अखण्डाकारहृत्तिलक्षणं
विकल्पमप्यवध्य क्षाराव्धिपतितोदकविन्दुवन्मनसो ब्रह्मीभावमेवापाद्य ब्रह्मण्येकरस्येन विविक्षितं प्रवेष्टुमभिमुखीभृतं तदा
तस्य इति एवंरूपामवस्थामाशु उपलक्ष्य कुम्भेन वश्यमाणद्दयमार्जनोपायादिविबक्षया स श्रटित्येव प्रबोधित इत्यर्थः ॥ २ ॥
नतु सर्वदश्यानामखण्डाकारवृत्तेरप्यस्तमयेन निरितशयानन्दसमुद्रे विविश्वरहं किमिति लया ब्युत्थापनेन विद्यतः पुनस्तन्मम
दुर्लभिति राज्ञो विवक्षाममिलक्ष्य कुम्भ उवाच—राजिति ।
सति अङ्गाने तद्दुर्लभं। नष्टे लङ्गाने सर्वदश्यास्तमयोद्धुमा वा ।
सक्रद्विभातं तत्सदैवानावृतं सुलभमेवेति भावः ॥ ३ ॥ ४ ॥
॥ ५ ॥ ब्युत्थानकालेऽपि दश्यस्यासत्तामेव पश्यन् लीख्या
अभिनवस्य स्ववोधस्य विरपरिपक्षकुम्भवोधसंवादपरीक्षाली-

१ स्वयथास्थितात्मेत्यादिः कर्मभारयः.

Q

१०

88

१२

83

१४

१५

शिखिष्वज उवाच । भातप्रायमपीदं तु यत्पृच्छामि तदुच्यताम् । भृयो निपुणबोधाय मम मानद मोदद ॥ शिवे शान्ते निरामासे पदेऽनुह्नसितात्मनि । द्रष्टृदर्शनदृष्ट्याच्यो विश्वातमा प्रस्ययः कुतः ॥ कुम्भ उवास्र ।

साधु पृष्टं महाराज राजसे वाथ भास्तरः।
पतदेव हि ते शिष्टं क्षातुं यत्तदिदं श्रणु ॥
यदिदं दृश्यते किंचिज्जगत्स्थावरजंगमम्।
सर्वे सर्वप्रकाराद्ध्यं कल्पान्ते तद्विनश्यति ॥
ततः स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम्।
महाकल्पविलासान्ते सत्सारमविश्च्यते ॥
चिन्मात्रममलं शान्तमाभातं परमं नभः।
समस्तकलनोन्मुकं युक्तं परमया धिया ॥
यदेकोदितमत्यच्छं शान्तमाततमुज्जवलम्।
परमात्मात्मकं तेजस्तिमितं इतिमात्रकम् ॥
अप्रतक्यमविश्चयं समं शिवमनिन्दितम्।
ब्रह्मनिर्वाणमापूर्णमापूर्णोदितसंविदा ॥
अजीयसामणीयश्च स्थविष्ठं च स्थवीयसाम्।
गरीयसां गरिष्ठं च श्रेष्ठं च श्रयसामपि॥

लया ॥ ६॥ ७ ॥ न उष्ठसितस्तस्वतः प्रकटीभूत आत्मा खह्मं यस्य तथाविधे । अविद्यात्रते इतियावत् । प्रतीयत इति प्रत्ययोऽर्थः प्रतीतिः प्रत्ययो बोधश्च कुतः । कस्मान्निमित्तादा-ळम्बनाचेखर्थः । किं सत उतासतः । आद्ये विकारबाधयो-रथोगः । द्वितीये सत्त्वेन प्रतिभासानुपपत्तिरिति भावः ॥ ८॥ एवं पृष्टः कुम्भस्तदुभयमध्यासेनोपपादयिष्यन् प्रश्नमुपपन्नत्वेन प्रष्टारं च वध्यमाणार्थप्रहणसामध्येन प्रशंसति—साध्विति । प्रागुपदिष्टमात्मतस्वमवाप्य निरस्ताज्ञानावरणलाङ्गास्वरः सन् राजसे शोभसे। 'राजसे वाथ भास्करः' इति पाठे तु इवार्थे वाशब्दः । अथ तत्प्रवोधानन्तरं राहुनिर्मुक्तभास्कर इव राजसे इलार्थः ॥ ९ ॥ तत्राध्याससामग्रीं दर्शायतुमारोप्य संस्कार-सहकृताज्ञानशबलमधिष्ठानं दशियप्यन् पूर्वसर्गप्रलयं दर्श-यति-यदिदमिति ॥ १० ॥ तत्परिशिष्टमिष्टानं दर्शयति-तत इत्यादिना ॥ ११ ॥ यत्परमया स्वतत्त्वसाक्षात्कारिया युक्तं सदेकोदितमत्यच्छं भवतीति परेणान्वयः ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ आसमन्तात्पूर्णीदितया संविदा स्वबोधेन आपूर्णम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ अणीयसामणीय इत्येतदृष्टान्तेन स्फुटयति-ईरशमिति । पृथिव्यपेक्षया उत्तरोत्तरं सूक्ष्मतरत्वेन प्रसिद्धे-भ्योऽपि परमस्हमत्वेन प्रसिद्धमपीदं नभः ॥ १६ ॥ स्थिविष्ठं च स्थवीयसामित्येतदपि तथा स्फुटयति—ईंदशमिति ॥१७॥ ईटरो मायाशबले पदे अधिष्ठाने प्राक्तनजगत्संस्कारोद्वोधादुद्ध-ततत्तरप्राणिकमीनुसारि यदध्यासेन विश्वात्मकचनं तदेव । अः वासुदेवस्तस्मात्संभवो यस्य तथाविधस्य वेधसो हिरण्य-

ईहरां तत्परं सुक्ष्मं तस्याघ्रे यदिदं नभः। अणोः पार्धे महामेरुरिव स्थूलात्म लक्ष्यते ॥ ईंदरां तत्परं स्थूलं यस्यात्रे यदिदं जगत्। परमाणुवदाभाति कचिदेव न भाति च॥ १७ विश्वात्मकचनं नाम पदेऽसंभववेधसः। तदहंबेदनं विद्धि विराडात्मा जगत्स्थितम्॥ १८ वातस्य वातस्पन्दस्य यथा भेदो न विद्यते। शुन्यत्वखत्वोपमयोश्चिन्मात्राहंत्वयोस्तथा ॥ १९ जलेऽस्ति देशकालान्ते तथा जगदकारणम्। परेऽस्तिदेशकालान्ते तथा जगदकारणम् ॥ २० हेइयस्ति देशकालान्ते कटकादि सकारणम् । ब्रह्मण्यदेशकालान्ते तथा जगदकारणम्॥ २१ ईरशं तद्वरिष्ठं च जगद्राज्यं तदक्षतम्। न द्वैतममलं शान्तं जगचणलवायते॥ २२ ईर्ह्या तत्परं श्रेयस्तस्मिन्सति यदीश्वरे । जगत्पदार्थसार्थश्रीः सा सत्तामेति वेदनात्॥ २३ तत्सारमेकमेबेह विद्यते भूपते ततम्। एकमेकान्तचित्कान्तं नैकमप्यद्वितावशात्॥ २४ तसाद्वितीया कलना काचित्राम न विद्यंत । आत्मतस्वमलं भातं तदेवापूर्णमक्षयम् ॥ રપ

गर्भस्य अहंवेदनमहंभावलक्षणं ज्ञानाध्यासं विद्धि । तत्र विष-यत्वेन जगित्थितं तदेव विराडातमा विषयाध्यास इत्यर्थः ॥ १८ ॥ अध्यासपक्षे चाधिष्टानसत्त्रयैव कार्यकारणोभयसत्त-निर्वाहासयोः सत्त्वेन प्रतीतेर्ज्ञानेन वाधस्य सत्कीटस्थ्यस्य च नानुपपत्तिरिलभिप्रेलाध्यस्तस्याधिष्ठानादपृथक्तं माह-वातस्येति । आद्यः संसर्गाध्यासे द्वितीयस्तादात्म्या-ध्यासे दृष्टान्तः । वातः खत्वं च निरपेक्षलाद्रधिष्ठानदृष्टान्ती । स्पन्दः ग्रन्यत्वं च देशप्रतियोगिसापेक्षलादध्यस्तदृष्टान्तौ॥१९॥ असरकार्यवादिमतानुप्रवेशी माभुदित्यधिष्टानसत्त्रथेव कार्यस्य ब्रह्मणि भैकालिकसत्त्वमपि दृष्टान्तेन दर्शयन् विशेषमाह— जरु इति । देशकालाभ्यामन्तौ परिच्छेदौ यस्मिन् । जलस्या-न्तराहिककारणत्वाज्ञछकारणनेव सकारणम् । ब्रह्मणो मूलकार-णलादकारणम् ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठं च श्रेयसावीत्येतदम्य-ध्यासेनैव स्फुटयति-—ईदशमिति । जगदेव राज्यं यस्य तज्जग-द्राज्यं महाराजभूतं तद्रद्वीतं वरिष्ठं श्रेष्ठमिखर्थः। यतो जगद-ध्यस्तलात्तृणलवनतुच्छमतो न द्वैतमद्वैतं तदिखर्थः ॥ २२ ॥ तस्यैव सर्वाधिष्ठानलात्तरसत्तयेव जगतः सत्तालाभ इत्याह-ईटशमिति ॥ २३ ॥ एकान्तचिचिन्मात्रखरूपम् । कान्तं निरुपाधिक्त्रेमपदम् । अद्विता द्वितीयासहिष्णुता तद्वशा-द्यावत्यीभावादेकलसंख्याया एव द्वितीयलापतेश्व एकमेक-त्वसंख्यावदपि न ॥ २४ ॥ आसमन्तात्पूर्णम् ॥ २५ ॥

१ परेऽस्टादेशकालान्ते इति पाठः.

संस्थितं सर्वदा सर्वं सर्वाकारमिवोदितम्। अदृश्यत्वाद्रलभ्यत्वाच तत्कार्यं न कारणम् ॥ २६ प्रत्यक्षादेरगम्यत्वात्किमप्येव तदुत्तमम्। सर्वं सर्वात्मकं सूक्ष्ममञ्जानुभवमात्रकम्॥ २७ आख्यानाख्यास्वरूपस्य निराभासप्रभादद्याः। सतो वाप्यसतो वाथ कथं कारणता भवेत्॥ २८ यद्वै न कस्यचिद्वीजमनाख्यत्वाच कारणम्। न किंचिजायते तस्मात्प्रमाणादि ततात्मनः॥ २९ अकर्तृकर्मकरणं सत्यं चिद्धनमक्षतम्। आत्मरूपमनाभासं स्वयंबेदनमक्षतम् ॥ 30 तसाम जायते किंचित्परसाद्रह्मणो मुने। कथं किं छभ्यते केन यथोर्म्यादि सकारणम् ॥ ३१ परेऽस्तदेशकालान्ते तथा जगदकारणम्। शिलिध्यज उवाच। जलायौ यत्तरङ्गादि तत्सकारणमस्ति हि॥ 32 परे जगदहस्तादि नाकारणमधैम्यहम्। कुम्भ उवाच। इदानीं तत्त्वतो ज्ञातमेतत्सत्यं महीपते ॥ 33 इदं जगदहन्तादि नेह किंचिम्न विद्यते।

चक्षुरादिमिरदृश्यलारकरादिभिरलभ्यलाच न कार्य ज्ञानकर्म-प्रयुक्तातिशयानामास्पदं नापि कारणं ज्ञानकर्मनिर्वर्तकमित्यर्थः ॥२६॥ किमपि प्रत्यक्षादिलौकिकमानसिद्धार्थविलक्षणमेव स्वा-नुभवैकगम्यं तदुत्तमं निरतिशयानन्दस्त्रह्मं स्वयमेव सर्वे सर्व-स्यात्मा सर्वे चास्यात्मान इति सर्वात्मकम् ॥२०॥ व्यवहारदृष्टौ आस्यानास्याखरूपस्य शब्दतदर्थसर्ववस्तुखरूपस्य व्यक्ताव्यकः खरूपस्य वा खस्य खंत्रत्येव कथं कारणता भवेत् । परमार्थदृष्टी तु निराभासप्रभादशः निराभासप्रभामिष्रदश्चात्रखभावस्याद्वयस्य कथं कारणता भवेत् । किंच व्यवहारे अद्वयमसत् द्वैतं सत् । परमार्थे लद्वयं सत् द्वैतमसत् । नहि सदसतोरपि केनचित्पर-स्परं कार्यकारणता वक्तं शक्येत्यर्थः ॥ २८ ॥ प्रमाणादिमान-मेयमिसात्मकं जगन्न जायते व्यवहारे आत्मन एव तदात्म-लात्। नह्यात्मा आत्मनो जायत इत्यर्थः ॥ २९ ॥ ३० ॥ तथाचाध्यारापक्षे न कस्यचिजनमादिविकियेति कौटस्थ्यमेव सिद्धमित्युपसंहरति -तसादिति । यत्सकारणमूर्म्योदि मयोक्तं तद्पि विमर्शे जलातिरिक्तं कथं लभ्यते किंवा लभ्यते। न किंचित्र कथंचिदित्यर्थः ॥ ३९ ॥ एवं सत्यपि कारणे यदा कार्यकारणता नास्ति तदा अद्वयलादस्तदेशकालपरिच्छेदलाद-कारण ब्रह्मणि सा नास्तीति किं वाच्यमित्याह-परे इति । 'जिंडिस्त देशकालान्ते यथोर्म्यादि सकारणम् । परेऽस्तिदेश-कालान्ते तथा जगदकारणम्' इति यत्त्रागुक्तं तदेव लयोपसंह-तम् । तत्र वैषम्योत्तयंशे कोऽभिप्राय इति राजा प्रच्छति--जलादाविति ॥ ३२ ॥ समुद्रस्य पश्चीकृतजलकार्यलास्तकारणै-र्भृतैर्वाय्वादिवाद्यानिमित्तेश्च तरन्नादेः पयःपरिणामस्य सकारण- जगच्छव्दार्थरहितं जगदस्ति शिवात्मकम् ॥ 38 ब्योइयेष निर्मितं शान्तं ब्योद्मा सुक्ष्मतरेण च। यथा नभसि शून्यत्वं तथेदं जगदीश्वरे॥ 34 सददां स्वस्वद्धपेण न वा ऊंपेण केनचित्। एवं रूपं जगदिदं सम्यकातं शिवं भवेत् ॥ 36 सम्यन्हानप्रभावेण विषमप्यमृतायते । असम्यक्तातमशिवं जगदुःखप्रदं परम् ॥ \$O विषक्षामृतमपि भुकं विषरसायते। ईटराश्च यथा वेसि यद्यदेष सिदीश्वरः॥ 34 तत्त्रयैवाद्य भवति ताद्दप्रपतया शिवः। यथा ज्वालाम्रमाज्ञाता विचित्राकारविभ्रमैः ॥३९ तिष्ठत्वनम्यद्भपेव ब्रह्मसत्ता तथैव हि । यत्परं चित्स्वरूपेण स्थितमात्मनि मन्थरम्॥ तत्तेन देहदेशादिर्जगदादीय लक्ष्यते। केवलं परमेवेत्थं परमं भासते शिवम् ॥ ४१ अतो जगदहन्तादि प्रश्न पद्मात्र नोचितः। यद्वस्तु विद्यमानं सत्प्रश्नस्तत्र विराजते ॥ ४२ प्रेक्षितं यत्तु नास्त्येव प्रेक्षाप्रश्नेन तत्र किम्। संनिवेशं विना सत्ता यथा हेम्रो न विद्यते ॥ 85

लम् । ब्रह्मणः कारणात्रसिद्धेरद्वयतया सहकारिकारणाभावाच तद्विवर्तस्याकारणकलमिति वैषम्यं मदमित्रेतम् । तच तत्त्व-ज्ञानात्प्रागद्वयवस्तुसंभावनाया एवानुदयादश्रेबीद्धमशक्यम् । लया लद्दैतं बख्तु सर्वद्वैतवाधेन तत्त्वतः परिचितमिति तत्यु-बोधमित्याशयेन कुम्भ उत्तरमाह—इदानीमित्यादिना ॥ ३३ ॥ यदि सर्वद्वैतवाधादकारणं तर्हि तत्र जगदस्तीत्युक्तेः कोऽभि-प्रायस्तमाह-जगच्छच्दार्थरहितमिति । बद्धसत्तैव प्राग्जगति त्रतीता जगत्सत्ताभृत् । सा तु जगद्वाधेऽप्यस्त्येवेखभित्राय इलार्थः ॥ ३४ ॥ यथा व्योम्येव व्योम्नोऽपि सूक्ष्मतरेण माया-व्योम्ना निर्मितं गन्धर्वनगरं मिथ्यालान्निसशान्तं व्योमसत्त्रयै-वास्ति । यथाऽद्यान्येऽपि नमसि तद्विरुद्धं शून्यत्वं तत्सत्त्यै-वास्ति तथा ईश्वरे मायाशवले ब्रह्मणि जगदिलार्थः ॥ ३५ ॥ खखरूपेण चैतन्यैकरसेन सदशं चिद्र्यमेव सम्यकातम्। अथवा केनचित्रपेण जहरूपेण वा न सहशं श्रून्यमेवेति शातं सत् शिवं बहीव भवेत् ॥ ३६ ॥ नन्वशिवं कथं शिवं भवेत-त्राह—सम्यगिति ॥ ३७ ॥ ईट्सः विद्यासहायोऽविद्यासहायो वा ॥३८॥ यथा ज्वालातिमिरादिनेत्रदोषविभ्रमैः केशोण्ड्का-दिरूपेण विचित्रा जाताप्यनन्यरूपेणैव तिष्ठति ॥ ३९ ॥ यश्चित्स्वरूपेण स्थितं परं ब्रह्म तदेवात्मनि मन्यरं मन्दप्रवोधं सत्तेनैवात्रबोधेन निमित्तेन ॥ ४० ॥ ४९ ॥ बोधदार्को तु शिवे शान्ते इत्यादि लत्कृतप्रश्रसानवकाश एवेलाइ—अद इति । इति 'द्रष्टदर्शनदृश्याक्यो विश्वारमा प्रत्ययः कृतः' इति प्रश्ने एव नोचितः ॥ ४२ ॥ यदि जगन्नास्त्येव तर्हि कयं तद प्रेक्षा सप्टमनुभूयत इति प्रश्नोऽपि न कार्य इलाह—प्रेक्षित-

तथा जगदहंभाषं विना नेशस्य संस्थितिः। अकारणत्वाचास्तीदं ब्रह्मैवेत्थं विज्ञम्भते ॥ કક अजुम्भमाणमेवेदं जगत्वेनेच संस्थितम्। यन्मया पव तेनैय मिथः संप्रेरिताशयम्॥ 84 चमत्कुर्वन्त्यमी भावाः पञ्चके मिथुनौघवत् । चिन्मात्र एव चिन्मात्रं चिन्मात्रेणावधीयते ॥ કદ नानात्मनेय नानेय स्वात्मश्चानात्मनात्मवत्। पूर्णात्पूर्णान्युद्धरन्ति पूर्णात्पूर्णानि चिकारे ॥ 80 भवन्ति पूर्णीत्पूर्णानि पूर्णमेवावशिष्यते । चिन्मात्रमेव कचित यश्चिन्मात्रमयात्मनि ॥ 85 अकचित्वैव तन्नाम कचितं सर्ववेदनम्।

अहं चिता चिदेवादौ भवतीय स्वयं ततः॥ ४९
अभवन्त्येय रूपं स्वमत्यजन्ती निरामयम्।
तेजोमयमनाद्यन्तं मनोरूपमनन्तकम्॥ ५०
सम्राद्संसारमाभासि भवतीय स्वयं वपुः।
पद्यत्यथ सदेवेदं स्वरूपत्वात्सदेय वा।
भावनाद्भृततामेति दृद्यं भवति च श्लणात्॥ ५१
शान्तं जगत्प्रसरहपतया स्वभावशब्दार्थमुक्तमिद्मव्यपदेद्यमेकम्।
वस्तृ स्थितं निजचमत्करणायलोक-

क्षं जगत्स्वरहितानुभवात्मतस्वम् ॥ ५२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीय मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चूडा० श्रिखिध्वजावबोधनं नाम वण्णवतितमः सर्गः ॥९६॥

सप्तनचिततमः सर्गः ९७

कुम्भ उवाच । हेद्दयस्ति देशकालान्ते इत्थं जन्यजनिकमः। न किंचिज्ञायते शान्तान्न किंचित्प्रविलीयते॥

मिति । तादशप्रेक्षाया निर्विषयत्वे कथमिति प्रष्टव्यप्रकारस्यैवा-भावादिखर्यः ॥ ४३ ॥ संस्थितिः प्रश्नार्हेति शेषः ॥ ४४ ॥ नन यदि पृथिव्यादयो न सन्त्येव तर्हि कथं 'यः पृथिव्यां तिव्रन्प्रधिच्या अन्तरो यं प्रधिवी न वेद यस्य प्रथिवी शरीरं यः प्रिषिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः' इत्यादि-श्रुतेरन्तर्यामिणेश्वरेण प्रेर्यमाणा एव सर्वे भावाः खखकार्ये चमत्कुर्वन्तीति वैदिकसिद्धान्तस्तत्राह-यन्मया एवेति । मा-पाशवलेश्वरमयाः सर्वे भावास्तेन मायाशवलेश्वरेणेव माययैव मिथः सामप्यात्मना मेलनाय संप्रेरिताः सन्तः पश्चभूतात्मके पिण्डे मायिकमेव तत्तत्कार्यचमत्कारं कुर्वन्ति । यथा मिधु-नानि ब्रीपंसयुग्मानि यौवने काममयानि कामेन प्रेरितानि परस्परं संभोगेन पुत्राद्युत्वादनेन चमत्कुर्वन्ति । यथावा बी-जानि भ्रस्थानि वर्षीदकेन प्रेरितान्यक्करोदयाचमत्कुर्वन्ति तद्व-दिति परेणान्वयः ॥ ४५ ॥ तथा आवृतचिन्मात्रमेव चिन्मा-त्रेण मायिकेन नानात्मनेव नानेव भूला अवधीयते तत्तकार्य-रूपेण परिच्छिद्यते ॥ ४६ ॥ यथा तदेव चिन्मात्रं स्वात्मज्ञा-नारमना स्वेनैव व्याप्तं पारमार्थिकात्मना चमत्क्रवते तद्वत् **ब्रह्मण एव ब्रह्मभू**तसर्गात्मना माथिकचमत्कारे तस्यैव तत्त्वज्ञानेन पारमार्थिकखरूपावाप्तिचमत्कारे च । 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णा-त्पूर्णसुद्च्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' इति श्रुति-मर्यत उदाहरति-पूर्णोदिति । प्रलये बासनामात्रशेषेण सर्वो-पाधिप्रलये मायाशबले ब्रह्मण्यप्ययं प्राप्ता जीवाः कल्पादी भोज-कारप्रपरिपाके पुनः खखव्यष्टिसमध्यपाधीन्सर्गेण यदुद्धरन्ति तत्पूर्णोदपरिच्छिन्नाइझणःकारणात्पूर्णान्यपरिच्छिन्नवझरूपाण्येव कार्याणि माययोद्धरन्ति। स्थितिकाले च यदवान्तरकार्यजातमैहि- स्वसत्तायां स्थितं ब्रह्म न बीजं न च कारणम्। शुद्धानुभवमात्रं तत्तस्मादम्यन्न विद्यते॥ द किंचिज्जगदहन्तादि तदेवानन्तमस्ति हि।

कामुध्मिकभोगमोक्षसाधनानि चिकरे तदपि पूर्णादेव पूर्णान्येव च मायया चिकरे ॥ ४७ ॥ ततो यत्तत्वज्ञानान्युक्ता भवन्ति तदपि पूर्णादेव मायापगमात्पूर्णानि भवन्ति । सह भेदभ्रमेण मायापगमे पूर्णमेवावशिष्यत इति श्रुतेस्तात्पर्यार्थ इति भावः। यिनमात्रमयात्मनि सर्गवेदनं कचितं तिबन्मात्रे चिन्मात्रमेवा-कचित्वेव कचितं नामेखत्रान्वयः ॥ ४८ ॥ अद्वंप्रखगातम्हपा चिदेव सर्गादौ खं रूपमत्यजन्त्येवाभवन्त्येव खतश्चिता खयमे-वानन्तकं मनोरूपं भवतीव ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ततः स्थील्यक-ल्पनेनाभासिसत्स्वयंभुवः सम्राद् संसारं विराइभावेन संसरण-रूपं भवतीव । अथ व्यष्टिजीवभावेनेदं जगद्भान्ला सदेव पश्यति परमार्थतोऽधिष्ठानसदेव वा जगति पश्यति तदंशे न भ्रान्तिरित्थर्थः । भूततां चतुर्विधभूतमामताम् ॥ ५१ ॥ उक्तमुपसंहरति-शान्तमिति । एवमकरीत्या शान्तं खभा-वतः शब्दार्थाभ्यां नामरूपाभ्यां मुक्तमत एवाव्यपदेश्यं खप्र-काशो योऽनुभवस्तदात्मतत्त्वमेकं वस्तु निजनमस्करणं माया-तदवलोकरूपं सत् जगत् प्रसररूपतया जगदिव भूला स्थित-मिल्यर्थः ॥ ५२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्य-प्रकाही निर्वाणप्रकरणे पण्णविततमः सर्गः ॥ ९६ ॥

पूर्वत्राकारणं दृश्यं न जातमिति मार्जितम् । विमार्ज्यतेश्त्र यक्षेन दृश्यवेदनता वितः ॥ १ ॥

इत्थं विश्वतितमक्षेकोकः समुद्रतरङ्गदृष्टान्तस्वद्वान्तरवै-षम्यं च दृश्यमार्जनोपयोगितयोपपादितम् । द्दानीमेकविश्वति-तमकोकोकं हेमकटकदृष्टान्तं तद्वान्तरवैषम्यं च तथैवोपपा-दनीयमिति वक्तं कुम्भोऽजुबद्ति—हेम्रीति ॥ १ ॥ २ ॥ असु दृश्यासत्वं तदसत्वे शुद्धचितस्तद्वेदनस्रहृपताप्रतीतिः 3

हिाखिध्यज उवाच। शिवे जगदहन्तादि मुने नास्तीति वेदयहम्॥ सर्गवेदनमाभाति कथमेतद्वदाशु मे।

कुम्भ उवाच ।
विस्तारं तद्नाद्यन्तं तत्संविद्वं तिष्ठति ॥ ४ तत्तद्भुवनमत्यच्छं तत्तन्मात्रं जगद्भपुः ।
न विक्रानमयोऽथांऽस्ति न बाद्यो नापि शून्यता ५ वेदनामात्रसारत्वाद्यथा चित्सार उच्यतं ।
द्रवत्वं सिळलस्येव चिद्वित्त्वमकारणम् ॥ ६ स्वात्मनीशमनन्तं तद्यथास्थितमवस्थितम् ।
प्रात्तेयोगिव्यवच्छेदाभावतः सत्वभावयोः ॥ ७ असत्यात्तेन परमे स्वच्छभावव्यवस्थता ।
यदि कारणतापत्तियोग्यं शान्तं पदं भवेत् ॥ ८

कथमिति राजा प्रच्छति--शिवे इत्यादिना ॥ ३ ॥ नभोवि-स्तृतसौरालोकस्य तदध्यस्तगन्धर्वनगरादिप्रकाशस्त्रहपताप्रती-तिवत्तदिखाशयेन कुम्भ उत्तरमाह—विस्तारमिति । विस्ता-र्यत इति विस्तारं तद्यिष्ठानसन्मात्रमेव तस्य खाध्यस्तस्य संवेदनं संवित् प्रथेव तिष्ठति । अतएव तदध्यस्तं भुवनं तन्मा-त्रमधिष्टानसन्मात्रमेवेति तदेव जगद्वपूर्व्यपदिश्यत इत्यर्थः ॥ ४॥ अत्र विज्ञानवादी भुवनादिरूपोऽर्थ आन्तरो विज्ञान-परिणाम एव संवृत्त्या बाह्यार्थवदगम्यत इति मन्यते । गौतमकणादकपिलपतञ्जलिप्रभृतयो बाह्यार्थः पृथिव्यादिपसभ्-तमयः परमार्थभूतोऽस्तीति । माध्यमिकस्त श्रून्यमेव बाह्याभ्य-न्तरप्राह्मपाहकभावेन संवृत्या प्रयते न वस्तुभूतं किंचिदस्तीति। तन्मतान्यपाकुर्वश्राह---न विज्ञानमय इति ॥ ५ ॥ तत्कृतस्त-त्राष्ट-वेदनेति । सर्वेषां वादिनां कल्पनाः सत्यां वेदनाया-मुपपद्यन्ते नासत्यामिति न तस्याः श्रून्यता क्षणिकता जन्यता विनाशिता परिणतिनी केनचित्कचिद्वक्तुं शक्यत इति सैव सार इखर्थः । यथा चिदेव सारस्तया उच्यते उपपाद्यते शृण दृष्टा-न्तम् । यथा इवत्वं सिळेलस्य रसस्तद्वत्सर्ववस्तूनां चेतन्यं सारः। यदि चैतन्यं नाम वस्तु न स्यात्तर्हि साधकाभावात्सर्वे जग-दारेत नास्तीति व्यपदेशानई किं स्यादिति विभाव्यतामिति भावः । एवं रसभूतायाश्चितः अचित्त्वमकारणं न कारणैर्निह-पियतं शक्यम् ॥ ६ ॥ लया वा तस्या जगत्त्रलयता कथमु-पपादनीयेति चेत्तत्राह—खात्मनीति । तिचद्रपं खात्मनि जगदाकारेण प्रथने परमार्थचिन्मात्ररूपेण वा प्रथने ईशं खन मायया समर्थमतस्तद्यथा साविद्यं निरविद्यं वा यथा स्थितं तथैव प्रतीखाप्यवस्थितमिखर्थः । यदि तत्खच्छाखच्छोभय-भावस्थितिसमर्थे तर्हि तस्य खच्छभावैकव्यवस्थता कृतस्त-त्राह-प्रतियोगीति । सलमात्रस्य स्वभावो हि स्वच्छ-भावः । अखच्छभावस्तु तद्विरुद्धभावः । स यदि खविरोधिनः सत्त्वस्य व्यपच्छेदं कुर्यात्र कुर्याद्वा । द्वेधापि खयं न सिद्ध-तीति सलतद्विरुद्धभावयोः प्रतियोगिव्यवच्छेदाभावादखच्छ-

अनिङ्गितमनाभासमप्रतक्यं कथं भवेत्। अतो न कारणं नैच बीजं ब्रह्म कदाचन ॥ 9 कार्यस्य कस्यचिन्नाम तेन सर्गो न विद्यते। न चान्यथोपपत्तिहिं सर्गस्यास्योपपद्यते॥ १० चिन्मात्रकादते तसाज्जडसर्गो न विद्यते। यदिदं दृश्यते किंचित्ति बद्धनिमवोत्थितम् ॥ ११ अहंभावजगच्छद्धराद्यार्थरसरञ्जनम् ॥ कार्ये न कारणाभावात्पदार्थे तूपपद्यते ॥ १२ द्वित्वैक्याद्यात्मकं व्योम पुष्पवत्त्वानुभृतितः। वस्तुनादीकनिष्ठत्वाभ्र वा ब्रमुपपद्यते ॥ १३ उपलम्भकरो नाशो जन्मनस्तस्य वा कुतः। अथ चैनं सदा सन्तं नित्यं नष्टं च वेत्सि वा॥ १४ पदार्थीघं तदेवेत्थमेकरूपेऽपि किं व्यथा।

ताया असलात्परमे सद्वस्तुनि खच्छभावैकव्यवस्थता सिद्धे-लयेः ॥ ७ ॥ ननु अखच्छभावस्यात्यन्तापठापः किमर्थे कि-यते । खच्छचिद्रूपमेवाखच्छजगद्भावकारणतापत्तियोग्यमिति कुतो न कल्प्यते तत्राह--यदीति । चित्कीटस्थ्याद्वयत्वादिपर-श्रुतिविद्वदनुभवविरोधात्तथा न कल्प्यत इति भावः ॥ ८॥ ९ ॥ चिदभ्यासपक्षं विना सर्गस्योपायान्तरेणोपपत्तिरेव नास्तीत्याह-नचेति ॥ १० ॥ उत्थितमिव ॥ ११ ॥ तर्श्वस्त्वकारणकमेवेदं जगदिति यदच्छावादिपक्षं निरस्यति-कार्यमिति ॥१२॥ यदि सन्मात्रेकरसं ताई कथं जगिबजडरूपेण सदूपेण च द्वित्वैक्याद्या-रमकं प्रतीयते तहाह-व्योमपुष्पवदिति । खपुष्पवज्ञडांशो विकल्पमात्रमिखर्थः। अस्तु तहिं चिद्रुपमेव जगत् । तस्य चि-द्रुपमेव ब्रह्म कारणम् । नच चिद्रुपेक्ये इदं कार्यमिदं कारण-मिति विभाजकाभावः । जन्मनाशयोरेव विभाजकस्वोपपसे-स्तत्राह---वस्तिति । नवा घटपटादिजागतं वस्तु हां चिद्रपमुप-पद्यते । कुतः । नाशैकनिष्ठलानाशनियतलात् । चितो हि नाशो न चिता सिष्यति । नाशकाले चितः सत्वे नाशोक्तेर्निविषय-लात् । नापि जडेन । तस्य सिद्धावप्यसमर्थलादित्यर्थः ॥१३॥ यदि तु चितो नाशो चिद्रूप एव खपरप्रथायामन्यनिरपेक्ष इति कश्चिह्रयात्तत्राप्याह-उपलम्मकर इति । चिद्रूपः संवि-न्नाशः खजन्मनस्तस्य खप्रतियोगिनो वा उपलम्भकरः प्रकान शकः । कुतः । नहि खोत्पत्तिस्तत्पूर्वकालिकप्रतियोगिचिद्वा नारो-नोपलब्धुं शक्यते । नच तदुभयानुपलम्भे तस्य नाशः स्वय-मुत्पत्र इत्यनुभवितुं शक्यम् । नच साक्षिणा तदुभयानुभविश्व-तश्चिद्विषयत्वायोगादतस्तद्वेद्योत्पत्तिनाशयोर्जगतश्च आञ्चमेवेति भावः । एवं जगती जाड्ये सिद्धे कारणानिस्पणादकारकोत्पत्ती सदैव जन्म स्यान्नित्यं च नाशः स्याद्वमयोरपि निवारकाभा-बात् । हे स्वभाववादिन् , यदि निष्प्रमाणकमनुभवविरुद्धमपी-त्थमेव निल्गेत्पत्तिनाशस्त्रभाविमदं जगदिति वेत्सि अभ्युपग-च्छरि ॥ १४ ॥ तर्हि श्रुतिनिद्वदनुभवसिद्धे अखण्डचिदेकहपे तिसिन्नभ्युपगम्यमाने तव कि व्यथा किमर्थ पीडेखर्थः । नतु

उपलम्भस्तु यधायमेषा चित्तचमत्कृतिः॥ १५ चित्तस्यमाञ्चसत्तास्ति द्वित्वमैक्यं च नास्त्यलम्। अतः पदार्थसत्ताया अभावे सति भूपते॥ १६ असंभवाद्भावनस्य नाहन्ताभावनास्ति ते। अहंभावासंभवतश्चित्तमन्यत्कमुच्यते॥ १७ इति चित्तमहंरूपं नास्त्यतो न च भिन्नता। निर्वासनः शान्तमना मानी परनभोमयः॥ १८ सदेहो वा विदेहो वा भावस्थोऽप्यचलोपमः। संवन्धाच्छुद्धचिद्वृष्टेः पदार्थामावसिद्धितः॥ १९ भावनाभावतिश्चन्ते नास्त्येवाहमिति स्वयम्। एवं ब्रह्मेति वेदार्थभावनादनुभूतितः। चेतितार्थेकसत्यत्वाश्चिन्ता नाम क विद्यते॥ २० तेनासि निर्मलमकारणमादिमुक्तं तद्गृह्म शाश्वतमशेषमनेकमेकम्। शून्यं निरामयमसत्सदनगृद्मिष्यं सर्वं जगश्चिद्पि ब्रह्म यथास्थितं तत्॥ २१

इलार्षे श्रीनासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे चू० शिखिष्वजप्रबोधनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अप्टनवतितमः सर्गः ९८

हिस्थिष्वज उवाच।
चित्तं नास्तीति मे बोधो यथा गुत्तया स्फुटं भवेत्।
तामन्यामथवा बूहि बुद्धं न निपुणं मया॥ १
कुम्भ उवाच।
चित्तं नास्त्येव हे राजन्कदाचित्किचन क्रचित्।

यदि सर्वं चिदेकरसं तर्हि कथं चिदचिद्विविधोपलम्भस्तत्राह-उपलम्भस्लिति ॥ १५ ॥ तर्हि चिदन्यश्वित्तमेव द्वितीयं स्या-त्तत्राह-अत इत्यादिना ॥ १६ ॥ १७ ॥ मित्रता जीवब्रह्म-मेदधिदचिद्भेदिधतो दृश्यवेदनतारूपभेदश्च नास्ति ॥ १८ ॥ शुद्धचिह्नष्टेः संबन्धालाभात् कदापि जडपदार्थानामसिद्धस्तद्भाव-नाप्रयुक्तमहमिति जीवरूपमपि नास्त्येवेति खयमात्मैव परिशि-ष्यत इत्यर्थः ॥ १९ ॥ तादशास्मैव 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' । 'निस्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' । 'ब्रह्मेवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्' इलादिसर्ववेदार्थसाद्भावनादेव तदनुभवादिलार्थः । तर्हि तचि-न्तनतदनुभवाभिका अखण्डाकारपूत्तिः सर्वे बाधिला खयं परिशिष्येतेत्याशंक्याह—चंतितेति । ब्रह्मचिन्तनया चेति तद्रश्रार्थेकसत्यत्वाचिन्तादिवसिरपि खोबोधेन बाध्यत इति न ब्रह्मातिरिक्तपरिशेषप्रसक्तिरित्यर्थः ॥ २० ॥ उक्तमर्थं फलेनोः पसंहरति-तेनेति । तेन सर्वद्वतवाधेन त्वं ब्रह्मवासि । तद्रह्म अशेषमनेकमेकमेव संपर्भ सर्व जगचासच्छन्यमेव । तत्प्र-तिभासरूपा चिदपि यथास्थितमविकृतं ब्रह्मेपेति निरामयं तदेवावशिष्टमित्यर्थः ॥ २१ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायण-तात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

वित्तं नासीति बोधस्य दृढीकाराय विस्तरात् । चेत्यासत्वाद्चित्तं तत्सब्रह्मवैति वर्ण्यते ॥ १ ॥

ननु आलोके सति रूपादेरिय सत्येव निसे नितस्तदन्यस्य वा प्रथा दृश्यते नासित । तद्यदि चित्तं अद्याकारपृत्तिकं बाध्येत तिर्दे दीपनाश इव पुनरान्ध्यं प्राप्तम् । किंच सचित्ता एव सचेतना अचित्तास्त्वचेतना लोके प्रसिद्धास्त्यदि जीवन्मुका नष्टिचतास्ति मृदादिवदचेनाः संपद्यरम् । नच तथा द्रस्यन्ते । किंच सति चित्ते निरतिशयानन्दलक्षणः परमपुरुषार्थः साक्षफळमनुभविद्यं शक्यं नासित । नचाननुभूयमानः कथिन

यश्चदं चित्तवद्भाति तद्रह्माभिश्रमव्ययम् ॥ २ अतोऽक्षानात्मकं यत्तज्जगदेव न विद्यते । तत्राहं त्वं तदित्यादि कल्पिताः कलनाः कुतः ॥ ३ नास्त्येव जगदेवेदं यश्चेदं किंचनोदितम् । ब्रह्मवास्तीह सकलं केन तद्वध्यते कथम् ॥ ४

त्पृह्वार्थी नाम भवति । किंच ब्रह्माकारं चित्तमेव चित्तं बाधते अन्यद्वा । नादाः । स्वात्मनि कियाविरोधात् । नहि दाद्यं दद्द-न्नप्तिः खात्मानं दग्धुं शक्तोति । न द्वितीयः । तद्वाध्यस्य जग-तस्तद्वाधकलायोगात् । चित्तवृत्त्यतिरिक्तस्य छोके वाधकला-प्रसिद्धेः सुन्दोपसुन्दन्यायानवतारात् । ब्रह्मणस्त्रनादेः सर्वसान धकलमेव न बाधकलमिति चित्तबाधी निरर्थकी दुष्करः सर्वा-नुभवपराहतश्रेलादाशङ्कानिरासेन बोधदार्श्वकामो राजा प्र-च्छति—चित्तमिति । तां प्रागुक्तामेव युक्ति विशदीकृत्य ब्रुहि । अथवा तदन्यां तदुपयुक्तां मदीयसवीशङ्कानिवारणस-मर्था च युक्ति ब्रहीत्यर्थः । निपुणं रढम् ॥ १ ॥ तत्र सर्वदो-पपरिहारेण चित्तबाधोपपादिकां युक्ति वक्तुं कुम्भश्चित्तासत्वं तद्घिष्ठानब्रह्ममात्रसत्वं च प्रतिजानीते--चित्तमिति । कदा-चित्काले कचिद्देशे किंचिद्वस्लातमना च चिलं नास्ति ॥ २ ॥ तां युक्तिमाइ-अत इति । यतः सर्वे चित्तादि जगद्शानात्मकं ज्ञानेज्ञानवाधेन हेतुना न विद्यते अतो हेतोरित्यर्थः । अयं भावः । भवेदयं स्वात्मनि कियाविरोधो यदाज्ञानबाधाश्वितादि-बाधोऽन्यः स्यात् । अज्ञानबाध एव तु सर्वतस्कार्यतस्यंबन्धाव-रणविक्षेपादिसर्वनिवृत्तिरूपस्तस्मिन्सति चित्तं नास्त्येवेति प्रति-ज्ञातार्थोऽर्थसिद्ध एव । अतएव न पुनरान्ध्यादिदोपप्रसिक्तर-ज्ञानस्रीव सर्वान्ध्यप्रयोजकस्यापगमात् । खप्रकाशपूर्णानन्दपरि-शेषेण निरतिशयपुरुषार्थसिदेश । नच चित्ताधीना चेतनता किं-लमिव्यक्तचिद्यीना। साच जीवन्मुकेषु चित्तनाशेऽप्यस्त्येवेति नाचेतनलप्रसङ्गः । नच चित्तनाशे तत्कृता चिद्रभिव्यक्तिरपैति । अनभिव्यक्तरज्ञानावरणकृतत्वेन तदपगमे चितोऽमिव्यक्तेः खा-भाविकरवेनानपायात् । नहि वायुना घनापसारणेन कृता सूर्या-भिव्यक्तिः शरदि वायुपरमे अपैतीति सर्वदोपपरिहार इति ॥ ३ ॥ प्रथमप्रतिक्षां समर्थितां निगमय्य द्वितीयामुपादते-

महाप्रलयसर्गादावेवेदं नोदितं जगत्। निर्देशस्त्ववमित्यत्र त्वद्वोधाय मया कृतः॥ ų उपादानात्मकादीनां कारणानामभावतः । अकारणं च भावानामशेषाणां त्वसंभवात्॥ Ę एवमहानवुद्धातम जगससाघ विद्यते। तसाचिदियमाभाति भासनं ब्रह्म नेतरत्॥ 9 अमाख्येऽनाकृती देवे करोतीदमिति त्वसत्। भाषितं नोपपस्यात्म न सत्यं नानुभूयते ॥ अनास्योऽप्रतिघः स्वात्मा निराकारो य ईभ्बरः। स करोति जगदिति हासायैव वचोऽधियाम् ॥ ९ अनेनैष प्रयोगेण राजंश्चित्तं न विद्यते। जगरेव न सत्साधो कुतश्चित्तादि तद्वतम्॥ १० चेतो हि बासनामात्रं वास्ये तु सति वासना । षास्यं जगत्तदेवासदतश्चित्तास्तिता कुतः ॥ ११ यदिषं कचति ब्रह्म स्वयमात्मात्मनात्मनि । कृतं तस्यैव तेनैब चित्तमित्यादिनामकम्॥ १२ जगदूरयमिदं बास्यं तदेवोत्पन्नमेव नो। कारणामावतः पूर्वमेवातश्चित्तता कुतः ॥ १३ अतश्चिद्योममात्रात्म परमाकाशनामकम्। स्फारं वेदनमेवेदं कचत्यस्ति कुतो जगत्॥ १४

नास्त्येवेति । तत्समयंनाय 'यत्र लस्य सर्वमारमैवाभूतत्केन कं पश्येत्' इति श्रुतिं प्रमाणयति-केनेति ॥ ४ ॥ 'न नि-रोधो न चोत्पत्तिने बद्धो न च साधकः' इति श्रुतिरपि तत्र माममिखाशयेनाह-महाप्ररुयेति । महाप्ररुयः प्राकृतस्तद्-शरे पुराणादिप्रसिद्धे सगीदी यदि नोदितमेव तर्हि चित्तं ना-स्त्येवेति प्रतिज्ञावाक्ये लया कथं यश्वदं चित्तवद्भातीति निर्दे-शः इतस्तत्राह-निर्देशस्त्रिति ॥ ५ ॥ पूर्वोक्तयुक्तिरप्येत-स्साधनसमर्थेत्याशयेनाह-उपादानेति ॥ ६ ॥ द्वितीयप्रतिज्ञां निगमयति-तस्मादिति ॥ ७ ॥ नन् यदि सर्गादि नास्त्येव तर्हि 'तदात्मान" खयमकुरुत' 'एको बशी सर्वभूतान्तरात्मा' 'एकं बीजं बहुधा यः करोति' 'कर्ता भोक्ता महेश्वरः' इत्यादि-श्रुतिस्मृतिवादानां का गतिरितिचेत्रेह्नानेतिश्रुखपेक्षितनिषे-ध्यसमर्पणेनाद्वेतव्युत्पादनार्थवादतेव गतिर्न तत्त्वार्थतेत्याशये-नाह-अनास्ये इति । अनास्ये नामरहिते अनाकृतौ रूपर-हिते युक्तिशून्यत्वाम्रोपपत्यास्म निष्कलं निष्कियमित्यादिता-रिवक्श्रुतिबिद्वदनुभववाधितलाम सत्यं लीकिकैरपि नानुभू-यते ॥ ८ ॥ शीतवातादिप्रतिघातवारणाय गृहादिनिर्माणं प्रसिद्धम् । ईश्वरस्वप्रतिषः करोतीति अधियां तात्पर्यग्रन्याना-मधैबादानां सर्वज्ञस्य षृया चेशोक्तिर्हासार्थवेत्यर्थः ॥ ९ ॥ एवं जगत्सगासिद्धी प्रतिज्ञातार्थसिद्धिरित्याह्-अनेनैवेति । यदा जगदेव न सत्तदा तदन्तर्गतं चित्तादि कुतः सदिव्यर्थः॥१०॥जग-इसरवे विषयासस्वादपि विलासस्वसिद्धिरित्याह-चेतो हीति।

यर्तिकचित्परमाकाश ईपत्कचकचायते। चिदादरीन जातत्वाश चित्तं नो जगत्किया॥ १५ अहं त्यं जगदित्येषा प्रतिपत्तिनं वास्तवी। मिथ्या स्वम इवाभाति नूनं में ऽशेषकारिणी ॥ १६ वास्यस्य जगतोऽभावाद्यतो नास्त्येव वासना । अतस्तदात्मकं चित्तं कीहशं क कुतः कथम् ॥ १७ अप्रबुद्धेरवगतं चित्तं दृश्यमिदं जगत्। असिबतं निराकारं पूर्वमुत्पन्नमेव नो ॥ १८ नोत्पन्नं कारणाभावात्सर्गादावेव सर्वदा। लोकशास्त्रानुभवतो न च रश्यस्य वस्तुनः॥ १९ अनादित्यमज्ञत्वं वा स्थैर्य वाप्युपपद्यते। साकारस्यास्य जगतः स्थूलस्य प्रतिघाकृतेः॥ २० समस्तकारणामावाह्योकशास्त्रानुभृतिमिः। युज्यन्ते च निराकर्तु न महाप्रलयादयः॥ २१ शास्त्रानुभववेदार्थसिद्धान्तैस्ते त्रयोऽपि घा । प्रलयाश्च न सन्तीति वत्तयुन्मत्तक एव च ॥ २२ लोकः शास्त्राणि वेदाश्च प्रमाणं यस्य नो मतेः। असङ्ग्रो द्यतिमृदः स सज्जनस्तं न संश्रयेत् ॥ २३ नच सप्रतिघस्यास्य दृदयस्याप्रतिघं कचित्। कारणं भवितं शक्तं साकारस्य निराकृति ॥ २४

बास्ये वासनाकर्मणि विषये ॥ ११ ॥ तर्हि चित्तादिव्यवहारस्य को विषय इति चेन्मायोपहितं ब्रह्मवेत्याह-यदिदमिति । नाम्नां संघो नामकम् ॥ १२ ॥ चेतो हि वासनामात्रमिति श्लोकं व्याचष्टे--जगदिति । दश्यं वास्यमिति दर्शनानुसारिणी वासनेति द्योतनार्थम् । कारणाभावत इति विषयवाधे निर्विष-यवासनास्थित्ययोगादिति भावः ॥ १३ ॥ यदिदं कचतीति श्लोकमपि परमार्थदशा तत्फलवर्णनपरतया व्याचष्टे—अत इति ॥ १४ ॥ मायातस्वदशापीति व्याचष्टे-यत्किचिदिति । परमाकाशरूपे चिदादर्शे यार्किचिदनिर्वचनीयमायारूपम् ईषद-खल्पम् ॥ १५ ॥ अशेषानर्थकारिणी अहं जगदित्येषा प्रति-पतिमें तत्साक्षिणो मम खप्रवन्मिध्यैवाभाति । नूनं निश्चयेने-त्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ यदि नोत्पन्नं तर्हि जगदनादि-नित्यमेव किं न स्यातत्राह—कोकेति । दृश्यस्य वस्तुनः अना-दित्वं जन्मादिविकियारहितत्वं वा कौटस्थ्यं वा लोकतो वा शास्त्रतो वा खानुभवतोऽपि वा नोपपद्यत इति परेणान्वयः ॥ १९ ॥ साकारस्य स्थलस्य प्रतिधातयोग्याकृतेखास्य जगतो लोकशास्त्रानुभूतिमिः सिद्धा महाप्रख्यादयो व्युत्क्रमेणाप्रख-यान्ता विकारा न निराकर्तुं युज्यन्ते निराकरणोपपादकसमस्त-कारणाभावादित्यन्वयः ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ लोकवेद-मर्यादोल्लक् शिष्टैर्बहिष्कार्यतैव स्यादिस्याह - होक इति । असन्यः केवछछोकमात्राश्रयेभ्यश्वार्वाकेभ्योऽप्यतिमृदः ॥२३॥ तर्हि श्रुत्युक्तवद्यकारणतापक्ष एवाभ्युपगम्यतां

इत्थमालक्ष्यमाणं तत्तदेवं सततं मुने ।
नव नार्थिक्रियाकारि भवेश्वेत्थिमिदं जगत् ॥ २५
तस्मादिदं निरंशस्य चिद्योद्मोऽप्रतिघाइतेः ।
निराक्तरेरनन्तस्य पूर्वात्पूर्वनिरंशतः ॥ २६
ब्रह्मणः सर्वेद्वपस्य शान्तस्यात्तस्य यत्समम् ।
स्वत प्वात्मक्चनं सर्गप्रलयक्षपधृक् ॥ २७
स्वकं वपुश्च तेनेव क्षातं जगदिव क्षणात् ।

क्षणान्तरानुबुद्धं सद्ग्रह्मैवास्तं निरात्मनि ॥ २८ ब्रह्मेवेदमतः सर्वं कवित्र जगदादिधीः । काचित्तादि कवित्तादि क व्रतक्यादिकल्पना ॥२९ सर्वं निरालम्बमजं प्रशान्तः मनादिरित्यात्म यथास्थितं सत् । इदं तु नानेच न चाप्यनाना यथास्थितं तिष्ठ सुकाष्ठमानम् ॥ ३०

इसार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू० शिखिष्वजाववोधनं नाम अष्टनवतित्तमः सर्गः॥९८॥

एकोनशततमः सर्गः ९९

शिखिष्वज उवाच ।
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्यसादान्महामुने ।
स्थितोऽस्मि गत्संदेहो विश्रान्तमितरात्मवान् ॥ १
ज्ञातक्षेयो महामानी तीर्णमायामहार्णवः ।
शान्तोऽहमनहं रूपो ज्ञः स्थितोऽस्मि निरामयः ॥ २
अहो चु सुचिरं कालं प्रभ्रान्तोऽहं भवाम्युधा ।
स्थानमक्षयमधुष्धमधुना प्राप्तवानहम् ॥ ३
एवं स्थिते मुने नास्ति साहन्तादिजगञ्चयम् ।
मूर्खंबुद्धमिदं भाति यत्तद्वह्मोति वेदयहम् ॥ ४
कुम्भ उवाच ।
जगदेव न यत्रास्ते तत्राहंत्वंविभासनम् ।

तदनन्यलमारम्भणशब्दादिभ्यः इत्यादिवादरायणन्यायेन जन्मतो ब्रह्मतात्त्विकस्वभावतायाभेव तात्पर्यमिति प्रामुक्तमेव । इत्यं ब्रह्ममात्रतया आलक्ष्यमाणं जगव्यवहारे मृतिलानपगमा-दर्थिकयासमर्थ भवत्येवेति न लोकविरोधः । परमार्थतो ब्रह्मी-भूतमेवेति न मूर्खदिष्टप्रसिद्धरूपमतो न विद्धिरोधोऽपोल्याशयेनाह—इत्यमिति । इत्यमप्रसिद्धरूपम् ॥ २५ ॥ इदानीं मर्व-स्मृश्चतीनां नेतिनेतील्यादितिशराकरणश्चतींनां च तात्पर्य पि-ण्डीकृत्योपसंहरति—तस्मादिल्यादित्रिमिः । पूर्वात्पूर्व च तिक्रिरां च तस्येति पूर्वात्पूर्वनिरंशतः । पष्ट्यन्तात्सार्यधिभक्तिक-

नचेति ॥ २४ ॥ निराकारब्रह्मकारणलवादिन्यासु श्रुतेः

नैव शास्त्रं यदात्मकचनं तत्त्वकं वपुः स्वरूपमेव सर्गप्रस्यस्य-पृक् जगदिव क्षणं यावदज्ञानकालं ज्ञातमिति सर्वम्यष्टिश्रुतीना-मर्थः । तदेव स्वरूपं क्षणान्तरे तत्त्वमस्यादिशास्त्रमनुख्य बुद्धं सद्ग्रीव निर्गतद्वेतात्मनि स्वभावे आस्त्रे इति नेतिनेतीत्यादिद्वै-

स्ततिः ॥ २६ ॥ सर्वरूपस्य पूर्णस्वभावस्य ब्रह्मणः स्वतो वि-

तनिषेधश्रुतेस्तात्पर्यार्थ इति योज्यम् ॥ २० ॥ २८ ॥ अतः शास्त्रीयबोधात् ॥ २९ ॥ एवं ज्ञातं सर्वे जगतप्रशान्तं सन्नि-राजस्वं निराधारमञ्ज्ञं यशास्त्रितं सन्दरीतः । इतमन्त्रप्रमां सन्न

रालम्बं निराधारमजं यथास्थितं सद्गत्नैव । इदमझदष्टरूपं तु अ-स्यन्तासत्वामाना अनानापि च न । अतो यथास्थितं व्यवह-

 अनादिरित्यत्रार्थं पुंग्त्वम्. २ पूर्वोदित्यस्यैकदेशान्त्रये नित्य-योग० १२७

इत्थमम्बरसंसारः क कुतः कीदशः कथम्॥ 4 यथास्थितव्यवद्वतिमानी शान्तमना मुनिः। सौम्यार्णवोदरावर्तपरिस्पन्दवदास्स्व भो॥ દ્દ ब्रह्मरूपमिदं शान्तमित्थमस्ति यथास्थितम्। अहं जगदिदं चेति शब्दार्थात्म नभोमयम्॥ O इदमाद्यन्तरहितं सर्वं संसारनामकम्। चिचमत्कृतिनामात्म नभः कचकचायते॥ 4 संनिवेशदशः शान्तौ तद्स्ति कनकं यथा। जगदाद्यर्थसंशान्ता ब्रह्मेदं विद्यते तथा ॥ Q तथा स्वयंभूः संकल्पः स्वयं नाम तथैव हि । पती खवेदनायसी वन्धमोक्षी व्यवस्थिती॥

रंस्तत्त्वतः सुकाष्टमौनो वागादिव्यापारश्च्यस्तिष्टेखर्थः ॥ ३० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकादो निर्वाणप्रकरणे अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

प्रबुद्धोऽपि नरेन्द्रोऽत्र भूयः कुम्भेन बोध्यते । स्थृणानिखननन्यायाद्योघोऽस्य सुदृदोऽस्त्वित ॥ १ ॥ एवं बोधितो राजा उपदेशजन्यज्ञानेन सर्वसंदेहादिबीजं खाज्ञानं नष्टमित्यभिलप्य दर्शयति—नष्ट इत्यादिना । विस्मृता-त्मनः साक्षात्कार एव स्मृतिरित्युच्यते ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ मूर्बयुद्धमिदं साहन्ताविजगत्रत्रं नास्ति ॥ ४ ॥ कुम्मस्तदुक्तमे-वानुमोदमान उवाच—जगदेवेलादि । अम्बरसंसारी गन्धर्वन-गरव्यवद्दारः । किंवृत्तान्यधिकरणनिमित्तदृशान्तप्रकारप्रतिक्षेपा-र्थानि ॥५॥ सौम्यार्णवोदरे प्रशान्तो य आवर्तपरिस्पन्दस्तद्व-दास्य तिष्ट ॥ ६ ॥ शब्दार्थात्म शब्दार्थस्त्ररूपं तु नभोमयं शू-न्यमेव ॥ ७ ॥ चिचमत्कृतिनामकं यदात्मरूपं नभस्तदेव कच-कचायते खचाकचवयेन दीव्यते ॥ ८ ॥ यथा नमसि अवाड्-मुखीकृतेन्त्रनीलकटाहाकारसंनिवेशहष्ट्रविवेकहशा शान्ती तद्या-प्रसीरालोककचनमस्त्येव तथैवेत्यर्थः ॥ ९ ॥ यथा सम्रष्ट्यहं-कारात्मा खर्यभूः संकल्पमात्रं तथा स्वयं व्यष्ट्यहंकारोऽपि । एती सम्प्रिव्यप्रिवन्धस्तन्मोक्षश्चेत्वेती तदभिमानतत्वरिखागवे-

सावेक्षत्वात्समासः । अथया पञ्चम्यकुक् छान्दसः.

अहमित्येव संकल्पो बन्धायातिविनाशिने। नाइमित्येव संकल्पो मोक्षाय विमलात्मने॥ ११ यद्वन्ध्रमोक्षसंकल्पशब्दार्थानां सदा सताम्। स्वरूपवेदनं तत्सत्केवलत्वं च कथ्यते ॥ १२ अनहंबेदनं सिद्धिरहंबेदनमापदः। सोहमेघानहमिति शृद्धबोधो भवात्मवान्॥ १३ असंकल्पनमात्रेण सम्यन्द्वानोदयात्मना । संकल्पः क्षीयते सिद्धै स्वयमेवासदात्मकः॥ १४ अप्रतक्यें स्वरूपे हि नास्ति कारणता शिवे। कारणाभावतः कार्यपदार्थोऽपि न विद्यते ॥ १५ पदार्थाभावसंसिद्धी वेदनं नोपपद्यते। कारणाभावतो नित्यमहंभावस्य नोदयः॥ १६ अहंभाषानुद्यतः संसारः कस्य कीहराः। संसाराभावतः सर्वे परमेवावशिष्यते ॥ १७ यदिदं भासते तत्सत्यरमेवात्मनि स्थितम्। परं परे परापूर्ण सममेव विज्ञम्भते॥ १८ तेन निस्तिमितं सर्वे शिलाकीर्णमिवाचलम्। विक्रि रिश्ममयाकारमिय ब्रह्म जगितस्थतम् ॥ १९ पुरः संकल्पके नप्टे संकल्पनगरस्य यत्।

दनायसौ ॥ १० ॥ सदेव स्पष्टमाह—अहमित्येवेति ॥ १९ ॥ कोऽसौ मोक्षरामाह-यदिति । सदा पर्यायेण सतां बन्धमो-क्षसंकल्पानां साक्षिभृतं सारूपवेदनं तदेव सद्ग्रह्म केवलत्वं कै-वस्यं च कथ्यत इत्यर्थः ॥ १२ ॥ सिद्धिमीक्षः । आपदो बन्धः । सलमहमेवानहमिति शुद्धकैवल्यात्मयोधवानभव॥१३॥ शुद्धबोधश्व संकल्पक्षयात्सिध्यतीत्वाह-असंकल्पनेति ॥५४॥ शुद्धस्य कारणलासंभवादृश्यपदार्थाभावस्तद्भावनिश्वयात्संकल्प-क्षयः संवत्पनाशादहंभावक्षयस्तरक्षयाज्ञीवभावादिसंसारक्षय-स्ततथ ब्रह्ममात्रावशेष इति क्रममाह-अत्रतक्यं इति विमिः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ प्रागपि यदिदं जगदाकारेण भासते तत्परमार्थतो बद्दीव तथास्थितं तत्त्वबोधेन च नापूर्वं किंतु परे खभावे स्थितं परमेव परेणापूर्वं समं खह्ममेव विज्ञम्भते प्रकटीभवति ॥ १८ ॥ तेन सदैकरूपत्वेन हेतुना । वज्रविलया कीर्ण निबिडितं वज्रिशिलोदरमिवाचछं दृढम् । तत्र च यज्जग-त्थितं तद्वज्ञमणिरिहममयप्रतिनिम्बाकारसहस्रमिव ॥ १९॥ मुक्ती तर्हि कथं स्थितं तदाह-पुर इति । सदेव सददर्शना-दसन्मयम् ॥ २० ॥ कथं तर्ह्यच्छे जगत्सान्दप्रव्यवस्तत्राह-छायेति । यथा वज्रशिलोदरे प्रतिविम्बपुरुषोऽस्पन्दमान एव सन्दते तद्वत्सन्दि ॥ २१ ॥ सम्यग्हानप्रवोधस्योदये बाह्या रूपालोका आन्तरा मनस्काराश्व नीरसा निःसारा इत्यागमप्र-माणजा स्थिरभावना भवति तामेव निर्वाणहेतुलानिर्वाणं बिदुः रूपं तद्विद्धि जगतः खाद्द्छं सद्सन्मयम्॥ छायापुरुषवत्स्पन्दि शान्तं निर्मननं जगत्। जगच्छव्दार्थरहितं यः पदयति स पदयति॥ २१ रूपालोकमनस्कारा नीरसागमभावना। सम्यग्हानावबोधस्य निर्वाणं वै विदुर्वधाः॥ २२ यथास्ति वातो निःस्पन्दो यथास्ति खगतोपि बा। यथा हेमासंनिवेशमस्ति ब्रह्म जगस्या॥ 23 नीरसा असदाभासा जगत्त्रत्ययकारिणः। रूपालोकमनस्काराः सन्तीमे ब्रह्मरूपिणः॥ २४ ऊर्मिशब्दार्थरहितं यादगम्ब बहुन्यपि। सर्गशब्दार्थरहितं तारुग्रह्म निसर्गवत् ॥ २५ सर्ग एव परं ब्रह्म परं ब्रह्मेव सर्गहक। सर्गशब्दार्थरहितो वाक्यार्थस्त्वेष शाभ्वतः॥ २६ ब्रह्मशब्दार्थसंपत्ती सर्गशब्दार्थधीः कृता । सर्गराष्ट्रार्थसंसिद्धी ब्रह्मराद्धार्थधीः कृता ॥ २७ समस्तराब्दराब्दार्थभावनाभावनोदयम् । शुद्धं तिष्ठति चिद्योम ब्रह्मशब्देन कथ्यते ॥ २८ सम्यग्दर्शनसंसिद्धाव्यभयोरप्यवेदने। यच्छिष्टमजरं शान्तं ततो वाग्विनिवर्तते ॥ २९

॥ २२ ॥ 'जगच्छब्दार्थरहितं यः पश्यति स पश्यती'ति यदुः तदृष्टान्तैविंवृणोति--यथेति । खगतः प्रकाशो यथा दीपाद्या-कारसंनिवेशं विनास्ति यथावा कटकादिसंनिवेशनिर्मुक्तं है-मास्ति तथा जगदप्यसंनिवेशं ब्रह्मास्तीति संभावनीयमित्यर्थः ॥ २३ ॥ 'रूपालोकमनस्कारा' इत्येतदपि विवृणोति---नीरसा इति । ब्रह्मरूपिणो बोधाद्रह्मभूतस्य जगतो जगत्प्रत्ययकारिणो रूपालोकमनस्कारा नीरसाः । कोर्थः असदाभासा भवन्तीत्यर्थः ॥ २४ ॥ यथा बहुन्यपि तरङ्गादीनि ससुदे कर्मिशब्दार्थरहित-मम्बुमात्रं भवन्ति तथा बहुन्यपि वस्तुनि ज्ञानोवये निसर्गब-इद्रोकमेव भवन्तीलर्थः ॥ २५ ॥ सर्गशब्दार्थमेदवाधे सर्ग-परव्रह्मणोरैक्यमेवेति व्यतिहारेण द्रढयति—सर्गएवेति । हि यस्मात् एष एव 'सर्व खल्विदं त्रह्म' इत्यादिश्रीतवाक्यार्थः ॥ २६ ॥ बृंहणाद्रद्वेति ब्रह्मशब्दस्यार्थसंपत्तावेव सर्गशब्दार्थ-धीर्लीके कृता । एवं सर्गी नामरूपयोधिसर्गस्याग इति सर्ग-शब्दार्थसंपत्ती त्रिविधपरिच्छेदनिवृत्तेर्बृहधालयीनुसारिवद्यश-न्दार्थता कृतेत्यनयोरेकार्थतैवेत्यर्थः ॥ २० ॥ **महाराज्यस** तह्यशब्दे वस्तुनि कथं प्रकृतिसत्तत्राह-समस्तेति । अस्पसापि परिच्छेदस्याभ्यपगमे बृहभालर्थसंकोचापत्तरशब्दशब्देनेव ता-दशमेव ब्रह्मशब्देन कथ्यत इत्यर्थः ॥ २८ ॥ अथवा जगच्छ-न्दस्येव ब्रह्मशब्दस्यापि वाच्यार्थवेदनोत्तरं लक्षणया अखण्डार्थ-सम्मग्दर्शनसंखिद्धी मस्क्रिष्टं बद्धा तती वद्याशस्यादिवायपि

संशान्तसर्वात्मकवेदनोध-मस्तीदमेकात्मकस्वस्वरूपम्।

यथास्थितं सर्वजगत्स्वरूपं पाषाणरूपं च परं ब्रह्मपम ॥

_

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू॰ शिक्षिष्वजावबोधनं नाम एकोनशततमः सर्गः॥९९॥

चाततमः सर्गः १००

शिलिध्वज उवाच । एवं चेत्रन्महाबुद्धे याददां कारणं परम् । कार्यं ताददामेवेदं जगदित्येव वेदयहम् ॥ कुम्भ उवाच ।

यत्र कारणता तस्य कार्यं तदुपपद्यते ।
यत्त कारणमेवादौ तस्मात्कार्यं कुतो भवेत् ॥
नेहास्ति कारणं किंस्मिन्न च कार्यं कदाचन ।
विद्यमानमिदं सर्वं सर्वं शान्तमजं जगत् ॥
जायते कारणात्कार्यं यत्तत्कारणवद्भवेत् ।
यत्त जायत पवेह तस्मिन्सदशता कुतः ॥
नीजमेव न यस्यास्ति तत्कथं वद जायते ।
अप्रतक्यमनाख्यं च यत्तस्य केव वीजता ॥
देशकास्त्रवशात्स्यवें हेतुमन्तः प्रमाणगाः ।
अकर्तृब्रह्मविषयः प्रमा कारणयोः कथम् ॥

निवर्तत इस्पर्थः ॥ २९ ॥ हे राजन्, इदं सर्व जगत्स्वरूपं यथास्थितं यदस्ति तदप्यतिरहत्वाद्वजपाषाणरूपं परं ब्रह्मस्वरूपमस्त्येव । यदापीदं जगदश्चानेन संशान्तसर्वात्मकवेदनीधं संपन्नं तदापि एकात्मकस्वस्वरूपं सदस्त्येवेति ब्रह्मजगतीरेकैव
सत्तेति न कस्याप्यसत्त्वमित्यर्थः ॥ ३० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यश्रकाहो निर्वाणश्रकरणे एकोनशतत्मः
सर्गः ॥ ९९ ॥

वार्यते वद्मवस्तरवं जगतो बद्धसत्तया। जन्मादिविकियाऽस्त्रृष्टं बद्धेव सदितीर्यते ॥ ९ ॥

यदि ब्रह्मजगतीरेकैव सला तर्हि तया सलया ब्रह्मव जगदिप परमार्थसत्यं किं न स्मात् । सिन्यावस्तुनो हि कारणं
दुनिंस्पम् । सत्यस्य तु सत्यं ब्रह्मैव कारणं संभवति नुस्यत्वादिति राजा शक्कते—एवंचेदिति ॥ ९ ॥ सत्यं मायाशबछं
शुद्धस्य सल्येव जगत्समसलाकं जगतः कारणं भवेत् । यन्तु
निर्णुणं परसलानुपजीवि अद्भयत्वात्पूर्वकाळाभावेन पूर्वदृत्तित्वश्वस्यं निर्विकारं च तस्मात् कार्यं कृतो भवेयेन तत्समसलाकं
स्यादिस्ययंः ॥ २ ॥ अस्तु तर्हि तत्र स्थितं मायाशबळमेव
जगतः कारणमिति चेलत्राप्याह—नेहेति । इह निर्विशेषे
मायाशबळं कारणं तत्कार्यं अगव नास्ति । मायादस्येव मायातष्कवळतत्कार्याणां सद्भावोपगमात् । परमार्थहत्या तु सर्वविदे अगच्छान्तमञ्जनेवेत्यर्यः । तथाचोक्तं वार्तिके 'अविधाक्रीस्यविद्यायायोवासिसा प्रकल्प्यते । ब्रह्मद्व्या त्विदेयं न कर्य-

अकर्तृकर्मकरणे नास्ति कारणता शिवे। तसात्तरकारणं नास्ति जगच्छव्दार्थत्रेदनम् ॥ ब्रह्मेव त्वं स्वरूपं सद्यत्स्थितं धारयस्य तत्। असम्यग्दर्शिविषयं तदेव जगदाचितम्॥ 4 चिन्मात्रमजरं शान्तं यदेकं तत्प्रमीयते। तेनैवायं जगद्रहा सच्छान्तं बुद्ध्यते वपुः॥ Ō. अन्ययैव च यो भावश्चेतसः पृथिवीपते । स एव नाद्यः कथितः स्वानुभृतश्च पण्डितैः॥ १० चित्तं नाशस्वभावं तिहृद्धि नाशात्मकं नृप। क्षणनाशो यतः कल्पचित्तशब्देन कथ्यते ॥ ११ असंकरपनमात्रेण सम्यग्ज्ञानोदयात्मना । संकरपः श्रीयते सिक्यै स्वयमेवासदात्मकः॥ १२ नाम्नेयाङ्गीकृताभावं यदि विश्वं हि कथ्यते। विद्यमानं कथं तत्स्यात्रमु तामरसेक्षण ॥ १३

चन युज्यते' इति ॥३॥ अजातेन च सादस्यप्रसक्तिरिलाह-जायत इति ॥ ४ ॥ कुतो न जायते तन्नाह-वीजमेवेति । तत्र यीजाभावेऽपि तदेव बीजं किं न स्यासत्राह—अप्रतकर्य-मिति ॥ ५ ॥ कृतस्तत्र बीजादिहेलभाव इति चेत्रमाणसिद्ध-तदुचितदेशकालाभावादिलाह--देशेति । तर्हि ब्रह्मगोचरप्रभैव तत्र हेत्पादानकारणगोधरास्त न विरोधादिलाह-अक्तिति। यस प्रमाणस्याकतृंकर्जा दिकारकमात्रविरोधि त्रहा विषयस्तेन हेतूपादानकारणयोः प्रमा जायत इति कथं वक्तं शक्यमित्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ अत एव स्वरूपं शुद्धाकाशकरुपं यन्निविशेषं बस्तु तदेवाइमिति तत्त्वहशा हृदि धारयस्व नान्यादशम् । अज्ञद्दशा च तदेव जगद्रूपेणाचितमित्यर्थः ॥ ८ ॥ चिम्मान्नप्र-मरीब जगद्रह्मभावेन संपद्यते । अतत्त्वाकारमनोश्रान्त्या च बहा जगदाकारेणेखाह—चिन्मात्रमिति द्वाभ्याम् ॥ ९ ॥ नाशो ब्रह्मखरूपद्दानिः ॥ १० ॥ तदेव स्फूटमाह-नित्त-मिति । सः क्षणमात्रमपि खरूपविस्मरणरूपो नाशः कल्पकाल-विस्मृतचित्तशब्देनोच्यत इत्यर्थः ॥ ११ ॥ तच चित्तमसंकः-ल्पनपर्यवसितलज्ञानेन नस्यतीत्याह—असंकल्पनेति ॥ १२ ॥ अस्त संकल्पनादास्तथापि विश्वं कथं निवर्तत इति चेन्मिथ्या-लादेवेति विशति परमात्मन्येकीभवति न वस्लन्तरतयावति-ष्ठत इति विश्वमिति तन्नामनिर्वचनममित्रेत्याह—नाम्नविति । यः खाधिष्ठाने बाधे न बिश्चति तद्वियमानं कथं स्यादिलर्थः

१ पर्यवसिततस्वशानेन शत पाठः.

हस्तावस्थिप्य यो बते हाद्रोऽस्थीति भ्रशं गिरा। कथं स विप्रो भवति विप्रत्वं त्वस्य कीहराम्॥ १४ विवृत्तधात्रत्य्वैर्मृतोऽसीति विराति यः। मृतिमेवागतं विद्धि जीवनं तस्य संभ्रमः॥ 2.4 भ्रमाकृति यदस्तीह दृश्यतेऽलातचक्रवत् । मृगतृष्णाद्विचन्द्रादिवालवेतालकादिवत् ॥ १६ तत्कथं किल नाम स्यात्मत्यं श्रमभरात्मकम्। अज्ञानभ्रान्तिरेवान्तश्चित्तमित्येव कथ्यते॥ १७ अज्ञानम्च्यते चित्तमसत्सदिव संस्थितम्। असंवेदनमज्ञानं ज्ञानं संवेदनं भवेत् ॥ १८ अज्ञानसत्वसंवित्तर्ज्ञानात्संवेदनात्स्रयः। जलकानं मुधा भ्रान्तिः साधो मरुमरीचिषु ॥ १९ नैतज्जलमिति ब्रानात्संवित्तेः प्रविलीयते । इदं चित्तमिति प्रौढं यदझानमलं हृदि॥ २० नास्ति चित्तमिति शानात्तत्समूलं विनद्यति। यथा रज्ज्वां भुजङ्गत्वमन्नानभ्रमसंभवम् ॥ २१ न सपॉऽयमिति ज्ञानाइटि रूढात्प्रणद्यति। तथात्मनि मनोभूतमञ्चानभ्रमसंभवम्॥ २२ चित्तं नास्तीति विश्वानाद्धदि रूढाद्विनश्यति । चित्रं मनोऽहमित्यन्तर्यावदश्वानसंभवम्॥ 23 न चित्तमस्ति नो चैचमहंकारादिसंयतम। किंचिदेव जगत्यसिन्संविदेकान्तनिर्मेळा॥ २४ तया संकल्पचित्तादि कृतमासीद्विमुदया।

अद्यासंकरपतः सर्वे परित्यक्तं प्रवृद्धया ॥ २५ संकल्पेन यदा याति त्वसंकल्पेन गच्छति। पचनेन महाबाहो ज्वालाजालमिवानले॥ २६ आत्मतस्वैकघनया ततया ब्रह्मसत्तया। जगत्सर्वमिति चाप्तं समुद्र इव चारिणा ॥ २७ नाहमस्मि न चान्योस्ति न त्वं नेते न चित्तकम्। नेन्डियाणि न चाकाशमात्मा त्वेकोऽस्ति निर्मेखः२८ घटाद्याकाररूपेण स एवायं विलोक्यते। इदं चित्तमयं चाहमिति कैव कुकल्पना ॥ २९ न जायते न म्रियते किंचिदसिञ्जगत्रये। केवलोऽयं चिद्रहासः सदसद्भावनात्मना ॥ 30 सर्वमात्मा परंब्रह्म सकृत्प्रकटमाततम्। ब्रित्वैकत्वे न विद्येते न भ्रान्तिर्न च संभ्रमः॥ 38 सर्वेन्द्रियगणाकारे सन्नेवासि सखे ततः। न दहासे महाबुद्धे न च कचन लिप्यसे ॥ ३२ न ते विनश्यति सखे न च किंचिद्विवर्धते। निर्मलाकाशरूपस्य कैवल्याननगरूपिणः॥ 33 इच्छानिच्छात्मिके शक्ती येतरापि त्वमेव च। नहांश्रुव्यतिरेकेण शशाङ्क उपलभ्यते ॥ 38 अजमजरमनाराजस्वभावं सकृदमलं विलसत्सदैकरूपम्। विगलितकलनं कलाख्यलीलं सद्दितमाद्यमजं तदात्मतस्वम् ॥ 34

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू० शिलिष्वजपरमावबोधनं नाम शततमः सर्गः॥१००॥

एकाधिकदाततमः सर्गः १०१

वसिष्ठ उचाच । इति कुम्भवचो राजा भावयंस्तदकृत्रिमम्।

स्वयमात्मपदे तस्मिन्क्षणं परिणतोऽभवत् ॥ १ वभूवामीलितमनोलोचनः शान्तवास्युनिः ।

याकारेण किमवलोक्यते तत्राह्— घटादीति ॥ २९ ॥ ३० ॥ संज्ञमो मरणादिभयम् ॥ ३९ ॥ सर्वस्मिलिन्द्रियगणे तह्नात्रव- ह्याद्याकारे च सन्नेव सन्मात्रखरूपस्लमित । अतो दाहहेतु- भिराध्यात्मकादिभावेर्न द्यासे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इतरा किया- शिक्तरि लमेव । अतस्तवेष्टमनिष्टं कर्तव्यं च नास्तीत्यर्थयोतना- य चकारः । अंशवः कलास्त्यतिरेकेण ॥३४॥ त्रिभरजपदेर्ज- नमन्नद्विविपरिणामा निरस्यन्ते । सदैकरूपमित्यनेनान्ये वि- काराः । सन्नद्विलस्तसन्नद्रप्रभातम् । कलाप्रमाणेन खलरूपपरि-चयस्तदाख्या लीला यस्य तथाविधं सत् सन्मात्रतया उदितम् । आयं सर्वव्यवहारेभ्यः प्राक्तिसंद्वं यद्वस्तु तदेवात्मतत्त्वमित्यर्थः ॥ ३५ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाण्यकरणे शतत्मः सर्गः ॥ १०० ॥

ज्ञानदाक्येंन राज्ञोऽत्र वर्ण्यते कृतकृत्यता । जीवन्युक्ताविक्तस्वं स्थितिस्तत्वस्य वेर्षते ॥ ३ ॥ परिणतः पूर्वभावं तद्भावं विहाय प्राप्तः ॥ १ ॥ बिस्रात-

१ मृतमिति पाठेपि सप्यार्थ:.

O

ረ

शिलातलादिवोत्कीणां निस्पन्दावयवाकृतिः॥ २ ततो मुहूर्तमात्रेण प्रवुद्धं स्फुरितेक्षणम्। तमुवाच महाबाहो चूडाला कुम्भरूपिणी॥ ३ कुम्भ उवाच। किष्वदिस्मन्पदे स्फारे शुद्धे विततनिर्मले। सुतस्पे निर्विकल्पानां सुखं विश्रान्तवानसि॥ ४ किष्वदन्तः प्रवुद्धोसि किष्यद्भान्तिस्त्वयोजिहाता। किष्वज्ञेयं परिक्षातं दृष्टं दृष्ट्यमेव वा॥ ५ शिखिष्वज उवाच।

भगवंस्त्वत्प्रसादेन महाविभवभूमिका।
महती पदवी दृष्टा सर्थस्योध्वं स्थिता मया॥
सतां विदितवेद्यानामहो वत महात्मनाम्।
अपूर्वेकामृतमयः सङ्गः सारफलप्रदः॥
जन्मनापि मया लब्धं यन्नाम न महामृतम्।
तद्य त्वत्समासङ्गात्तेनैयासादितं स्वयम्॥
अनन्तमाद्यममृतं चैतत्कमललोचन।
कथं नासादितमभूत्पूर्वमात्मपदं मया॥
कुम्भ उवाच।

मनस्युपशमं याते त्यक्तभोगपणे स्थिते।
कपायपाके निर्वृत्ते सर्वेन्द्रियगणस्य च॥ १०
यान्ति चेतसि विश्वान्ति विमला देशिकोक्तयः।
यथा सितांशुके शुद्धे विन्द्वः कुङ्कमाम्भसः॥११
कषायाणामनन्तानां संभृतानां शरीरकेः।
स्वधासनास्वरूपाणामद्य पाकस्तवोदितः॥ १२
देहान्मलानि सर्वाणि कालेन कमलेक्षण।
साधो वृक्षात्फलानीव पाकेन विगलन्त्यधः॥१३
धासनात्मसु यातेषु मलेषु विमलं सखे।
यद्विक गुरुरन्तस्तिद्वशतीषुर्यथा विसे॥ १४

ठादुत्कीणंः प्रतिमादिरिव ॥ २ ॥ ३ ॥ निर्विकत्पानां योगिनां शोभनतत्पभूते निरितशयानन्दपदे ॥ ४ ॥ ५ ॥ महाविभवो निरितशयानन्दपदे ॥ ४ ॥ ५ ॥ महाविभवो निरितशयानन्दस्तलक्षणा भूमिका । सर्वस्य हैरण्यगर्भानन्दान्तस्य विषयानन्दजातस्योध्वंमुत्कर्षकाष्ठायां स्थिता ॥ ६ ॥ बतेति हर्षे । अपूर्वमनादौ संसारे कदाप्यननुभूनं यदेकामृतं निरितशयानन्दस्तत्प्रचुरः अतएव सारफलप्रदः ॥ ७ ॥ सामान्योक्तं विशिष्य विष्युणीति—जन्मनेति । तेन महामृतस्वरूप-भूतेनेव मया अनादाश्चानात्र लब्धं तद्य व्यत्समासङ्गात्स्वयमेवानायासेनासादितम् ॥ ८ ॥ ९ ॥ पूर्व चित्तकपायपाकाभावान्नासादितमिदानीं तु तपसा तत्परिपाकादासादितमिद्याशयेन कुम्भ उत्तरमाह—मनसीत्यादिना । सर्वेन्दियगणस्य चान्मनस्य भोगलक्षणकषायाणां पाके निर्वेत्तं सति तथाच स्मृतिः 'कषायपिकः कर्माणि श्वानं तु परमा गतिः । कषाये कर्मिनः पके ततो शानं प्रजायते' इति ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ देहा-

कपायपाके संपंत्रे त्वं मयाद्य विवोधितः। तेनाध्यव तवाज्ञानक्षयो जातो महामते॥ १५ अद्य पक्रकपायस्त्वमद्येव ज्ञानसंकथाम्। अधेह सोपदेशस्वमधैवासि प्रबुद्धवान्॥ १६ शुभाशभानां सर्वेषां कर्मणामद्य संक्षयः। सत्सङ्गव्यपरेदोन तव निष्पत्तिमागतः॥ १७ यावदस्य दिनस्येष पूर्वभागो महीपते। तावश्वेतोहंममेति तवाज्ञानं वभृव ह ॥ १८ इदानीं मद्वचोबोधाश्चेतसि क्षयमागते। हृदयात्संपरित्यके संप्रवृद्धोऽसि भूपते॥ १९ इदि यावन्मनःसत्ता तावदशानसंस्थितिः। चित्ते चित्ततया त्यके ज्ञानस्याभ्यद्यो भवेत् ॥ २० ब्रित्वैकत्वदशौ चित्तं तदेवाज्ञानमुच्यते । पतयोर्यो लयो इप्रेस्तज्ज्ञानं सा परा गतिः॥ २१ प्रवृद्धोऽसि विमुक्तोऽसि त्यकं चित्तं त्वया नृप। सदसत्तामयत्वं हि त्वया त्यक्तमसत्पदम्॥ २२ वीतशोको निरायासो निःसङ्गोऽनन्य आत्मवान् । महोदयो मुनिर्मीनी स्वरूपे तिष्ठ निर्मले ॥ २३ शिखिष्वज उवाच ।

शास्त्रका उवाच ।
पवं हि भगवन् जन्तोमूर्वस्यवास्ति चित्तभूः ।
प्रवुद्धस्य न तज्बस्य चित्तं नाम किल प्रभो ॥ २४
जीवन्मुकास्तदेते हि विहरन्ति कथं वद ।
अविद्यमानमनसो युष्मदाद्यास्तथा नराः ॥ २५
इति मे कथयारोषमन्यैः स्वचचनांद्युभिः ।
हार्द तमो मे निपुणमेवंप्रायैः प्रमार्जय ॥ २६

कुम्भ उवाच । यथा बदसि तत्त्वज्ञ तत्त्रथेव हि नान्यथा। चित्तं हि जीवन्मुकानां नास्त्यक्कर इवाइमनाम् २७

बिसे मृणालह्ये धानुष्कपरिकित्यते लक्ष्ये ॥ १४ ॥ १५ ॥ १५ ॥ श्रानार्था संकथामुपदेशं तात्ययंणानधारितवानसीति शेषः । उपदिष्टार्थानां हृदि धारणात्सोपदेशः । प्रबुद्धवांस्तरफलसाक्षा-त्कारज्ञानवान् जातोऽसीत्यर्थः ॥ १६ ॥ १० ॥ तवाज्ञानमय मध्याह्वकाले क्षीणमिति मया ज्ञातमित्याह—यावदिति ॥१८॥ इदानीमद्यतनदिनस्योत्तरभागे हृद्यात्संपरित्यक्ते चंतसि क्षय-मागते सति ॥ १९ ॥ अचित्ततया निःस्तरूपताबुद्ध्या ॥२०॥ हृष्टेः परमात्माभिव्यक्तेः ॥ २१ ॥ आतमन्यन्योन्याध्यासात्स-दसत्तामयत्यमेव हि चित्तं नाम तदेव असतो जगतः पदं कल्पनास्थानम् ॥ २२ ॥ २३ ॥ चित्ते त्यक्ते जीवन्मुक्तानां केनान्तःकरणेन व्यवहारसिद्धिति प्रष्टुं राजा पीठिकां रचय-ति—एवंहीति । यदीत्यर्थे किलशब्दः ॥२४॥ प्रष्टव्यांशं दर्शय-ति—जीवन्मुक्ता इति । तत्तिहि ॥२५॥ अन्येर्दुर्वचिमिति शेषः । अन्येः प्रसिद्धत्त्र्यांशुविलक्षणेः स्वयनाशुभिः प्रसिद्धत्मानस्यत्मे अन्येः प्रसिद्धत्यांशुविलक्षणेः स्वयनाशुभिः प्रसिद्धत्मम् भोविलक्षणं हार्दं तमः प्रमाजेयेति वा ॥ २६ ॥ २०॥

पुनर्जननयोग्या या बासना घनवासना ! सा प्रोक्ता चित्तराव्देन न सा तज्बस्य विद्यते ॥२८ थया वासनया तज्ज्ञा विद्यरन्तीह कर्मसु । तां त्वं सत्वामिधां विद्धि पुनर्जननवर्जिताम् ॥ २९ जीवन्मका महात्मानः सत्वस्थाः संयतेन्द्रियाः। विहरन्ति गतासङ्गं न चित्तस्थाः कदाचन ॥ मृढं चित्तं चित्तमाडुः प्रबुद्धं सत्वमुच्यते। अप्रवुद्धा हि चित्तस्थाः सत्वस्थास्तु महाधियः ३१ भृयः प्रजायते चित्तं सत्यं भूयो न जायते। अप्रबुद्धस्य बन्धोस्ति न प्रबुद्धस्य भूपते ॥ 32 सन्ववानसि संजातो महात्यागी स्थितो भवान्। अशेषेण त्वया चित्तं त्यक्तमधेति वेदयहम्॥ समस्तवासनोन्मुको राजन्नदैव राजसे। आकाशसास्यमायातं मन्ये तव मुने मनः॥ રુષ્ટ शमं प्राप्तोऽसि परमं सिद्धः समसमस्थितिः। अयं हि स महात्यागः सर्वे यत्तत्सम्ज्यितम् ॥३५ स्वर्गापवर्गवित्तादि तपोदानफलाद्यपि। प्रबुद्धमेधया साधो धिया परमबोधया ॥ ३६

२८॥ यथा भर्जिता वितेषाश्च लाजा न ब्रीह्यादिश**न्द**वाच्या नाप्य-इरादिजननक्षमास्तद्वत्तत्त्वज्ञानभर्जिनं निरावरणं सलं न मनः-शब्दवाच्यं नापि पुनर्जन्मसमर्थमित्यर्थः ॥२९॥ जीवनमुक्तव्यव-हाराभासे तदेव करणाभास इत्याह—जीवनमुक्ता इति ॥३०॥ ३१॥३६ ॥ तवापि सलबलादेव यावजीवं व्यवहारः सेरस्यती-व्याशयेनाह्—सलबानसीति ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वया प्राक्रि-कीषितो यो महात्यागः स सर्वरूपं चित्तं यत्समुज्झितमयमेवे-त्यर्थः ॥ ३५ ॥ चित्तत्यागे तपोदानादिसर्वकर्माण्यन्तभूतानि वित्तखर्गापवर्गादितरफलान्यन्तर्भृतानीत्यादाये-नाह-स्वर्गति । प्रबुद्धा मेघा उपदिष्टार्थधारणा यस्यास्तथावि-थया अतएव परमबोधवत्या घिया कृतश्चित्तत्याग एव स्वर्गा-पर्वगवित्तादिरिखर्थः ॥ ३६ ॥ तपभादिफले तु न ज्ञानफलम-न्तर्भवतीत्याशयेनाह-त्यांनामेति । यद्यतो मनस्त्यागरूपस-मतायाः सकाशादागतं यत् ज्ञानफलं मोक्षमुखं क्षयातिशय-निर्मुक्तमित्यर्थः । 'तत आगतः' इत्यर्थे 'मयद्चे'ति मयद् ॥३०॥ नग्रसत्ये अनित्ये च सत्यस्य शाश्वतस्य चान्तर्भावसंभावनापी-व्याशयेनाह्--तदिति । तत् शानफलं सत् सत्यम् । वसतीति बस्तु शाक्षतं च । तत्स्वर्गादि किचित्तु नतु सत्यं भद्गरं च । भावाभावराविभावतिरोभावैषपारूढमाकान्तं पूर्वोत्तरकालयो-र दृष्टं स्थितं वर्तमानमेवाधिगत्वेदनं प्राप्तदर्शनं स्वप्नविद्वयेः ॥ ३८ ॥ तुन्छं बहायासरुभ्यं च स्वर्गादितुन्छसुखमज्ञानामेव बहुमतं न तत्त्वविदामित्याशयेनाह-स्वर्गइति । स्वर्गे ना-मेति किमानन्दसुच्छसुसम् । 'कि क्षेपे' इति समासः । अवर्ज-नीयभर्मकीरीनाचल्यावराधसहस्रवाश्यसारसंदेहसंस्थितः॥३९॥

तपो नाम कियन्मात्रदुः खश्चयकरं भवेत्। क्षयातिशयनिर्मुकं यत्सुखं समतामयम्॥ ३७ तत्सत्तहस्तु तत्किचित्र तु स्वर्गादि अङ्गुरम्। मावाभाषेरपारूढं स्थिताधिगतवेदनम्॥ 34 स्वर्गी नाम किमानन्दः सोपि संदेहसंस्थितः। अप्राप्तस्वात्मसंसिद्धः क्रियाकाण्डः ग्रुभो भवेत् ३९ येन नासादितं हेम रीति किं स परित्यजेत्। चूडालादिसमासङ्गाद्धवेद्यत्वं सुखेन ते ॥ 80 तत्किमर्थमनर्थेऽसिश्चिमग्नस्त्वं तपोमये। आश्रमादिविकल्पांशसाध्यस्याद्य कुकर्मणः॥ કર आद्यन्तावस्य सुमते मध्य एव सुखं सा भोः। यतस्ते समयो जातो यस्मिन्परिणमन्ति च ॥ तपोरूपा विकल्पांशास्तत्र यद्धपदो भव । चिद्योस्रो नभसोत्यच्छात्सर्वे भावाः समुत्थिताः ४३ तथैध परिष्टइयन्ते तत्रैय विलयं गताः। इदं कार्यमिदं नेति संकल्पा ब्रह्मबिन्दवः॥ 88 बन्ध्यं शिखिध्वज त्यक्त्वा पूर्णमेव समाश्रय। इष्टं मे प्रार्थयस्वेति यथैव प्रार्थ्यते सखे॥ 84

ज्ञानदीर्कभ्याद्यानां युक्त एव तुच्छखर्ग।दिपरित्रह इत्याशये-नाह—येनेति । रीति पित्तलम् । तव तु ज्ञानं प्राङ्क दुर्लभ-मभूत्रथापि त्वं वृथेव तपःक्रेशे निमप्त इलाह—चूडालेति ॥ ४० ॥ आश्रमो वानप्रस्थाश्रमः । भादिपदात्तद्योग्यं वयस्त-दुचितकर्माधिकारनिर्वाहकविशेषणान्तराणि च । तद्भिमान-तत्साधनचिन्तादिविकल्पविक्षेपांशसहस्रसाध्यस्य बन्धकलात्क-लतोऽपि कृत्सितस्य कर्मणः संबन्धिनि कृच्छ्चान्द्रायणादि-तपःक्रेशप्रज्ञरे अनर्थे त्वमद्यपर्यन्तं किमर्थं निमन्नः ॥ ४९ ॥ खर्गादिमहासुखहेतोस्तपसः कथमनर्थत्वं तत्राह--आबन्ता-विति । भो सुमते, यतोऽस्य तपस आदिभाग आचरणावस्था अन्तभागः फलक्षयावस्था च दुःखह्यावेव । मध्ये खर्गादे-भोगावस्थायामेव सुखं स्म किछ। तहिं कि मया कृतं तपो व्यर्थमेव नेत्याह - यत इति । यतस्तपसैव ते चित्तकषायपा-कारसांत्रतं तत्त्वबोधसमयो जातः। अतो हेतोः सर्वे तपोरूपा विकल्पांशा यास्मिन्नविकल्पे तत्त्वज्ञाने परिणमन्ति तत्फलेनैव फलवन्तोऽपि च भवन्ति ॥ ४२ ॥ तत्र ज्ञाने वद्भपदः स्थिरो भव। 'विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा' इत्यादिश्रुतेस्तत्फर्छनेव ते तपसः साफल्यमिति भावः। ज्ञानफल्विद्योमलाभेन सर्वमेव लच्धम् । सर्वस्य जगतस्तत एवोद्भवस्थितिलयश्चतेरित्याशये-नाह--चिद्योम्न इति ॥ ४३ ॥ यद्यपि कार्यमिष्टमकार्यमनिष्टं च सर्वमपि ब्रह्मसमुद्रबिन्दव एव तथापि तुच्छलात्तरसर्व बन्ध्यं निष्फलमेबातस्तस्यक्ला पूर्ण समुद्रस्थानीयं निर्विश्लेषमेब समाध्यवेलाह—इदमिति ॥ ४४ ॥ परमत्रेमास्यद्वानिरतिश-यानन्दरूपसा खसा इष्टान्तरप्रार्थनापेक्षया ताहरासकाभप्रार्थ-नमेव बरमिखाशयेनाइ---इष्टमिति । यथाऽस्रव्यद्यितया

१ बितुषा बांते पाढ:.

स्त्रिया तथैब स कथं द्यितः प्रार्थ्यते स्वयम् । संकल्परचितानेतान्भावानापतभासुरान्॥ ક્રફ **गृह्मन्ति न महात्मानः प्राज्ञा जलर**वीनिव । स्वर्गमोक्षादिफलदं यत्किचित्सर्वमेव तत्॥ 80 त्यक्त्वा समसमाभासो योऽस्यसावेव वै भव । सत्त्वं सत्त्वेन नाशेन नाश्यं हि विगतस्पृहः॥ पदार्थीधमिमं गृहंस्तिष्ठास्पन्दितचित्तभूः। अपरिस्पन्दचित्तस्य संसृतिनेंह् धावति ॥ ૪૬ पौरुषप्रभवा साधो विपत्तिर्हि मतौ यथा। यानि यानीह दुःखानि प्रस्फुरन्ति जगन्नये॥ 40 चेतश्चापळजान्येव तानि तानि महीपते। स्थिरं शान्तं गतस्पन्दं यस्य चित्तमचापलम् । सदैव स महानन्दी साम्राज्यस्य स भाजनम्॥५१ अथ चेतसि तस्यश स्पन्दास्पन्दौ त्वमंकताम्। नीत्वा तिष्ठ यथाकाममैक्यमागत्य शाश्वतम् ॥५२ शिखिध्वज उवाच । कथमैक्यं विभो यातः स्पन्दास्पन्दाविमाधुभौ। सर्वसंशयविच्छेदकारिकेतद्वदाशु मे ॥ 43 कुम्भ उवाच ।

एकं वस्तु जगत्सर्वे चित्मात्रं वारिवास्त्रधिः।

तदेव स्पन्दते धीमिः शृद्धवारिव वीचिभिः॥ ५४ ब्रह्म चिन्मात्रममलं सत्यमित्यादिनामकम् । यद्गीतं तदिदं मृढाः पश्यन्खङ्ग जगस्या ॥ ५५ चित्स्पन्द एव सर्वस्वं सर्गे तसाद्धि संसृतिः। परिस्पन्दो हि विनध्यादिशब्दस्पन्दसमं परम् ॥ ५६ चितः स एव चेत्स्यन्दस्तथास्यन्दश्च भावितः। पकरूपतया नाम तत्रेद्ममछं शिवम्॥ 43 सर्गश्चित्स्पन्दमात्रातमा सम्यग्दशौ विलीयते। उदेखसम्यग्दष्टीनां रक्ष्यां सर्पम्रमो यथा॥ 46 सस्पन्दा चित्तद्मिधा निःस्पन्दा त्वियमातता । तुर्यातीतपदारूढा बाचा वकुं न पार्यते॥ 40 शास्त्रसञ्जनसंपर्कसंतताभ्यासयोगतः । कालेनामलतां याते चेतसीन्दायिबोहिता ॥ î,o एतत्केवलमाभातं स्वानुभृतिभिगानतम्। कथ्यते स्वानुभूतेषु स्वयं स्वं रूपमात्मना ॥ દ્ધ

> प्राप्तोऽसि सारं स्वमनादिमध्य-मत्रैष तिष्ठ स्वपेषे निविष्टः। नो रूपनिर्भेदमहाचिदात्मा जातोऽसि साधो खलु वीतशोकः॥ ६२

इत्सार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे बाल्मीकीय भो० निवालप्रधारणे शिखिष्यज्ञानेधनं नाम नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

क्रिया लब्धव्यद्यितं प्रति मे इष्टं प्रार्थयस्वेत्यग्यत्प्रार्थ्यते तथैव खयं दियत एवं कथं न प्रार्थिते । तिस्मिन्खाधीनतया एउधे तद्धीनलब्धव्यान्तराणां स्वतएव लामादिति भावः ॥ ४५ ॥ अक्रीकृत्यातमातिरिक्तेष्टानां पुरुषार्थत्वं स्टब्धलादेवात्रार्थनीय-लमुक्तम् । बहुतस्तु तेषां तत्त्वद्वशा तुन्छलादमाण्यलभेष-त्याह--संकल्पेति । आपद इव अमामुरानरमणीयान् ॥४६॥ जलरबीन् रविप्रतिबिम्बानिव । ज्ञानलाभानन्तरं स्वर्गादिसाधना-नीवापवर्गसाधनान्याप हेयान्येवेल्याशयेनाह-अर्गेति ॥४०॥ सर्वेपदार्थेषु सदंशः सरवेनैव प्राह्मः असदंशस्तु निल्पनष्टत्वेनेव प्राह्मश्चित्तचात्रह्यं विनेत्याह—सत्वमिति ॥ ४८ ॥ अस्पन्दि-तिचत्तभूरित्युक्तेः प्रयोजनमाह्-अपरिस्पन्देति । न धावति न प्राप्नोति । यथा स्वाभाविकप्रवृत्तिलक्षणपुरुषापराधप्रभवा विपत्तिर्मतौ विवेकक्षानीदये सति न प्राप्नोति तद्वदिखर्थः॥४९॥ ॥ ५० ॥ सम्यग्भभावरणतया राजत इति सम्राद साक्षात्कृत भारमा तक्कावस्य भाजनमित्यर्थः ॥ ५१ ॥ स्पन्दास्पन्दौ तत्साक्षिमात्रतादर्शनेनैकतां नीखा साक्षिणमपि ब्रह्मात्मैवयमा-गख प्रापट्य भूमानन्दभावेन यथाकामं पूर्णकामतया तिष्ठेलार्थः ॥ ५२ ॥ विरुद्धयोः स्पन्दास्पन्दयोरेकतानयनं कथमिति राजा प्रकृति-कथमिति ॥ ५३ ॥ तयोः खरूपेगैक्यविरोधेऽप्य-बिद्यानसाक्षिचिनमात्ररूपेण न तद्विरोध इति खाशयप्रकटनेन क्रम्भ उत्तरमाह—एकमिति । नाः इव स्पन्दते स्पन्दात्मना

विवर्तते ॥ ५४ ॥ 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादिश्रतिमिर्य-द्वीतम् । अष्रेत्यामन्त्रणं ॥ ५५ ॥ सन्दास्पन्दयोरैक्यमुपपाद-यति--चित्स्पन्द इति । सर्गे यत्सर्वस्तं तचित्स्पन्द एव । सत्र विन्ध्यादिरूपपरिरुप्तदः परं द्वितीयं शब्दस्यन्दसमम् । इत्रार्थे समग्रदी भिष्यालयीतनार्थः । नामपरिस्पन्द इखर्थः ॥५६॥ अस्तवेवं तथापि कथं स्पन्दास्पन्देक्यं तन्नाह-चित् इति । स तत्तत्साक्ष्यात्मैव चितः स्पन्दां ऽस्पन्दश्चैकरूपतथा भावितश्चेत्तत्र इदमात्मरूपमेव विवं परिशिष्यत इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ सर्गस्तदा क गच्छति तत्राह---सर्ग इति । यतः सः असम्यग्हशीनां ञ्रान्त्या उदेति ॥ ५८ ॥ तदमिधा सर्गाभिधा । निस्पन्दा त त्र्यातीतपदारुढा ॥ ५९ ॥ कदा तथोदिता भवति तदाह-शास्त्रेति । यथा चक्षुषि तिमिरदोषक्षयेणामलतां यातं निःस-सिद्धैव चन्द्रैकता उदिता तद्वत् ॥ ६० ॥ यदि वाचा वक्तं न पार्यते तर्हि कथं लया माहशेषु कथ्यते तन्नाह-एतदिति । खमनुभूतं यैसाधाविषेषु खानुभूतिमिरेष खयं कथ्यते ठीकदृथे-त्यर्थः॥६१॥ त्यमपि खानुभूति प्राप्तोस्येव तत्र महूचसा स्थैर्यमात्रं कुर्वित्याह्--प्राप्तोसीति । मेदकदेहादिरूपाणामभावादेव सर्वदे-हेषु निर्भेदः। अतएव महांश्विदारमा जातस्तत्त्ववोधारप्रादुर्भूतोसि ततएव बीतकोकः 'तत्र को मोहः कः शोक एकलमनुपश्यतः' इति श्रुतेरिति भाषः ॥६२॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणता-त्पर्यम्बाह्ये शिर्वाणनकरणे एकाश्विकशततमः सर्गः ॥१०१॥

द्यधिकशततमः सर्गः १०२

कुम्भ उवाच। इति ते कथितं सर्वे शिखिध्वज महीपते। यथेदमुत्थितं सर्वं यथा च प्रविलीयते ॥ एतच्छ्रत्या च बुद्धा च मत्वा च मुनिनायक । यथेच्छिसि तथा तिष्ठ हुए स्पर्ध परे पदे ॥ स्वर्ग गच्छाभ्यहं पर्वकालेऽस्मिन्नारदो मुनिः। ब्रह्मलोकात्समायातो भवत्यमरसंसदि ॥ न मां पदयति चेत्तत्र तत्कोपमुपगच्छति । नोद्वेजनीया भव्येन गुरवो हि कदाचन ॥ त्यक्तसंकल्पलेखेन न किंचिद्रभिवाञ्छता । त्वया सदैव वस्तव्यं दृष्टिरेपेव पावनी ॥

वसिष्ठ उवाच । इति यावत्प्रतिवचः पुष्पहस्तः दिाखिध्वजः। प्रणामाय ददात्येप ताबद्दन्तर्थिमाययो ॥ प्रतिभानगतं वस्तु यथेवान्ते न दृश्यते। न रप्टवांस्तथा कुम्भमन्ने राजा शिखिध्वजः॥ गते कुम्मे महीपाछः परं विस्मयमाययो। तमेव चिन्तयंश्चित्रं चित्रार्पित इवाभवत्॥ इदं संचिन्तयामास चित्रं विलसितं विधेः।

यत्कुम्भव्यपदेशेन बोधितोऽस्मि चिरोदयम्॥ क नारदसुतः कुम्भः काहं नाम शिखिध्वजः। केवलं कालयुत्त्यैव सोऽहं संपरिवोधितः॥ अहो नु सम्यक्षथितं देवपुत्रेण युक्तिमत्। अहो न संप्रवद्धोऽस्मि मोहनिद्राकुलिधरात् ॥ ११ काहमासं विनिर्मग्नः क्रियाजालकुकर्दमे । इदं कार्यमिदं नेति मिथ्या विभ्रमचक्रके॥ १२ अहो जु शीतला शुद्धा शान्तेयं पदवी निजा। रसायनोद्भवाकारा सत्वं शीतयतीह मे ॥ १३ शाम्यामि परिनिर्धामि सुखमासे च केवलम्। तृणात्रमपि नेच्छामि संस्थितोऽसि यथास्थितम १४ एवं संचिन्तयन्राजा नूनं निर्वासनादायः। शैळादिव समुत्कीणीं मीनमेवावतस्थिवान्॥ १५ तिसम्भेव ततो माने निःसंकल्पे निराश्रये। प्रतिष्टां निश्चलां प्राप्य स तस्थां गिरिश्वङ्गवतः १६ स तत्र संशान्तभयोऽचिरेण चिरेण विश्रान्तमतिः समात्मा । चिरेण संप्राप्तनिजामलात्मा योगेन सुम्वाप ततोऽदितात्मा॥ 813 इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्याणप्रकरणे बिलिध्यत्रसमाधाने नाम ब्रधिकशततमः सर्गः॥ १०२ ॥

व्यधिकशततमः सर्गः १०३

ও

ረ

वसिष्ट उवाच । निर्विकल्पसमाधानात्काष्ठकुड्योपमस्थितिः। एवं शिखिध्वजो राजा चूडालामधुना शृणु ॥

> आमङ्यान्तर्हिने कुम्मे बिस्मितस्य महीपतेः। चिरं विमृश्य विश्वान्तिः समाधाविद्य वर्ण्यते ॥ १ ॥

यथेदं सर्वमुत्यितमित्वध्यारोपेण यथाच प्रविकीयत इत्यप-बादेन च सर्व पूर्ण ब्रह्मतस्य ते मया कथितम् ॥ १ ॥ गुरु-शास्त्रास्यां श्रुला स्वीयविचारेण मला च सम्यग् बुद्धा साक्षा-हुष्टे आवरणभक्षात्स्पष्टे परे पदे कदाचित्समाधिप्राधान्येन कदाचिद्यवहारेण च यथेच्छित तथा तिष्ठ ॥ २ ॥ स्वर्गाम-न्द्रसभाम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ एषा मदुपदिर्धेव ॥ ५ ॥ सप्रणामप्र-तिव चनातपूर्वमन्तर्धानम् । साध्वीमिर्भतृकृतनमस्कारस्याप्राद्य-लात् ॥ ६ ॥ स्वप्नादिप्रतिभानगतं धानादिवस्त । अन्ते जागरे ॥ ७॥ चित्रमाध्यम् ॥ ८॥ चिरोद्यं सदाप्रभातं शाश्वता-भ्युद्यं वा ब्रह्म ॥ ९ ॥ कालयुत्तया भाग्योदयसमययोगेन ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ इयं साक्षात्कृतात्मरूपा साम्राज्यपः दवी । सत्वं निर्वासनं मनः ॥ १३ ॥ तेनैव खस्म पूर्णकामः

शिखिध्वजं तं भर्तारं क्रम्भवेषेण तेन सा। प्रबोध्यान्तर्धिमागत्य ततार तरसा नभः॥ ર देवपुत्राकृतिं व्योम्नि जहां मायाविनिर्मिताम् ।

तामाह—शाम्यामीति ॥ १४ ॥ शैलात्समुत्कीर्णः प्रतिमादि-रिव में।नं वागादिचेष्टारहितं यथा स्थात्तथा समाहितोऽवतस्थि-वान् । छान्दसलाहिटः कसुः ॥ १५ ॥ मैं।ने मुनिकर्मणि समाधी ॥ १६ ॥ स राजा तत्र समाधी संप्राप्तनिजामरात्मा सन् समात्मा समरसः सन् चिरेण विश्रान्तमतिर्भूला अचिरेण सद्य एव संशान्तभयः रान् चिरकाळाजुवृत्तेन योगेन अदि-तात्मा अखण्डितस्यभावः सुष्वाप । सुषुप्त इव विश्वश्रामेखर्थः ॥ १७ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाही नि-र्वाणप्रकरणे खुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

> चुढालायाः परं गत्वा त्र्यहेण पुनरागमः। यबाद्यस्थापनं राज्ञसत्त्वाळापश्च वर्ण्यते ॥ ३ ॥

एवमुक्तरीत्या शिखिध्वजो राजा निर्विकल्पसमाधानात काष्ट्रकृथ्योपमस्थितिरभूदिति शेषः । बृहालां तहुत्तान्तमिति यावत् ॥ १ ॥ ततार पुरुवे ॥ २ ॥ देवपुत्राकृति कम्भवेषम् ।

विदग्धमुग्धमाकारं स्त्रेणं जप्राह सुन्दरम् ॥ नभसा स्वपुरं प्राप विवेशान्तःपुरं भणात्। दृश्या बभूव लोकस्य नृपकर्म चकार च ॥ 8 वासरत्रितयेनाथ पुनरम्बरमेत्य सा। बभृष कुम्भो योगेन शिक्षिष्वजवनं यया ॥ 4 तथा तत्रैव तं भूपमपश्यद्वनभूमिगा। निर्विकश्पसमाधिस्यं समुत्कीर्णमिव दुमम्॥ ६ अहो नु खलु मो दिख्या विश्वान्तोऽयमिहात्मनि । स्थितः स्वस्थः समः शान्त इत्युवात्र पुनःपुनः ७ तदेनं तावदेतस्याद्वोधयामि परात्पदात् । इदानीमेव किं देहत्यागमेष करोति वै॥ ረ किंचित्कालं स्फुरत्वेष राज्येन विपिनेन वा। सममेष गमिष्यावस्त्यकदेहाविमी समी॥ 9 तस्योपदेशो विषमः परिणामं न गच्छति । अनेनाम्यासयोगेन ताबदाबोधयाम्यहम् ॥ १० इति संचिन्त्य चुडाला सिहनादं चकार सा। भूयोभूयः प्रभोरम्ने वनैचरभयप्रदम् ॥ ११ न चचाल शिलेवादी यदा नादेन तेन सः। भूयोभूयः इतेनापि तदा सा तं व्यचालयत् ॥ १२ चालितः पातितोऽप्येष यदा न बुबुधे नृपः। तदा संचिन्तयामास चुडाला कुम्मरूपिणी॥ १३ अहो परिणतः साधुः स्वेपदे भगवानयम्। तदेनं हि कया युत्तया सांप्रतं बोधयाम्यहम्॥ १४ अथवैनं महात्मानं किमर्थं बोधयाम्यहम्। बिदेहं बोधमासाच तिष्ठत्वेष यथासुलम्॥ १५ अहमप्यक्रनादेहमिमं त्यक्त्वा परं पदम् ।

लैणं स्वीशरीररूपमाकारं जम्राहः॥ ३ ॥ तृपकर्म राजकार्य प्रजानुरजनमित्यर्थः ॥ ४ ॥ कुम्भो नारदपुत्रः ॥ ५ ॥ समु-स्कीर्ण प्रतिमाकारनिर्मितं हुमं काष्ट्रमिष निश्वसम् ॥ ६ ॥ अयं राजा ॥ ७ ॥ इदानीं प्रारब्धकर्मशेषकाले देहत्यागं कि किमर्थं करोति न करोलिखाशयः ॥ ८॥ विपिनभोग्यकर्म-क्षयपर्यम्तं विपिनेन वा । समं तुल्यकालमेन समौ तुल्यख-भावो गमिष्यावः । कैवस्यमिति शेषः ॥ ९॥ उपदेशः प्रा-ष्पया फूतः परिणामं सप्तमभूमिकावस्थितिपर्यन्तं परिपाकं न गच्छति इदानीमेव देहलागे तथाच जीवन्युक्तिसुखानुभवा-र्थमप्ययं प्रबोध्य इति भावः ॥ १० ॥ प्रभोर्भर्तः ॥ ११ ॥ पाणिसंपेबेणाचालयत् ॥ १२ ॥ १३ ॥ सप्तमभूमिकानुप्रवेश-पर्यन्तं परिणतः । अहो इत्यासर्ये । तथाच तत्योपदेशो विषमः परिणामं न गच्छतीति मदीयसंभावना दूधेवेति भावः ॥१४॥ अत एवाइ--अथनेति । विदेहं तिष्ठतु ॥ १५ ॥ समं सहैव गच्छामि । इद् जीवने किमधिकं सुस्तमिति होषः ॥ १६ ॥ महामतिरिखनेनावश्यभोक्तव्यं तदीयप्रारव्धकर्मशेषमपि सा समसा रहा पुनः संचिन्तयामासेति सूचनाय ॥ १७ ॥ सत्वं । योग• १२८

अपुनर्जननायैव गच्छामीह हि कि समम्॥ १६ इति संचिन्त्य देहं स्वं त्यक्रमभ्युचता सती। पुनः संचिन्तयामास चूडाला सा महामतिः आलोकयामि चैताबदेनं देहं महीपतेः। यद्यस्य सत्त्वशेषोऽस्ति बोधबीजं हृद्ग्तरे ॥ १८ तत्कालेनेष भगवान्संप्रबोधमुपैष्यति । मूलकोशरसालीनं पुष्पजालमिय दुमे ॥ १९ तदेवं विरहञ्जीवन्मुक्त एव भवत्यलम्। मुक्तो भवत्यथ यदि मन्ये गच्छामि तत्समम्॥ २० इति संचिन्त्य चुडाला स्पर्शनेन नयेन च। पतिमालोक्य सांशङ्कमुवाच वरवर्णिनी ॥ २१ अस्त्येष सत्वशेषोऽस्य हृदि संबोधकारणम्। संबोधहेतृदयेन सत्वशेषं व्यबुध्यत ॥ २२ श्रीराम उवाच। भृदां संद्यान्तिचित्तस्य काष्ट्रलोष्ट्समस्थितेः। सत्वदोषः कथं ब्रह्मन्त्रायते ध्यानदाालिनः ॥ 23 वसिष्ठ उवाच। प्रबोधकारणं यस्य दुर्लक्ष्याणुवपुर्द्धदि । विद्यते सत्वशेषोऽन्तर्वीजे पुष्पफलं यथा ॥ રષ્ઠ चित्तरपन्दवियुक्तस्य तस्यारपन्दितसम्बतः। ब्रित्वैकत्वविद्वीनस्य समस्याचलसंस्थितेः॥ २५ कायः समसमाभोगो न ग्लायति न हृष्यति । नास्तमेति न चोदेति सममेवावतिष्ठते ॥ २६ ब्रित्वैकत्वादियुक्तस्य यस्य प्रस्पन्दते मनः। तस्य देहोऽन्यतामेति नास्पन्दस्य कदाचन ॥ २७ चित्तस्पन्दो हि सर्वेषां कारणं जगतः स्थितेः।

निर्वासनं मनस्तस्य संस्कारलेशात्मना शेषो यदि हृद्म्यरे प्रारब्धावशेषितमायालेशोपहिते हार्दे ब्रह्मण्यस्ति ॥ १८॥ कालेन तदुद्भवसमयेन । यथा वसन्तारम्भे द्वमे मूलकोशे मूलप्रदेशे यो भौमो रसस्तस्मिन्सूक्ष्प्रभावेनालीनं भाविपुष्पजा-लमिव सलहोषो यदास्तीति पूर्वेणान्वयः ॥ १९ ॥ तर्हि मत्प्र-बोधितोऽयं जीवन्मुक्तः सन् एवमहमिव विहरन् भवत्येव । अथ यदि सलशेषस्यापि बाधान्मुक्ती भवति तर्व्वश्चहमपि स-ममनेन साकमेव मुक्तिं गच्छामि ॥ २०॥ स्पर्शेन देहोच्म-लिक्नेन वक्ष्यमाणलिक्नेन पति जीवतीति साशक्रमालोक्य संबो-भहेतूदयेन सलशेषं व्यबुध्यत । अस्य हृदि सलशेषोस्लेवेत्य-वाच चेति परेण सहान्वयः ॥ २९ ॥ २२ ॥ स्पर्शनेन नयेन चेति यदुक्तं तत्र नयशब्दार्थं जिज्ञास रामः पृच्छति-भृश-मिति ॥ २३ ॥ देहे वृद्धिविपरिणामापक्षयादिविकारानुदयः सलरोपे लिक्समित्युत्तरं वक्तं लिक्स्यमनुवदति—प्रबोधेति द्वा-भ्याम् ॥ २४ ॥ द्वित्वैकलविहीनस्य निर्विकल्पस्य ॥ २५ ॥ ग्लायति ग्लानिं गच्छति ॥ २६ ॥ अन्यस्य तु तद्वैपरीत्यमि-त्याह-दित्वेकलादीति ॥ २७ ॥ तत्कृतस्तत्राह-चित्त-

राम भाषविकाराणां कुसुमानां यथा मधुः॥ २८ असिन्प्रयास्यतो देहे चेतसो हि मुहुर्मुहुः। हर्षः कोपो न संमोहो वदामेति रघुद्वह ॥ २९ चित्ते प्रशाममायाते कायो यः सत्ववर्जितः। बाधते नाम्बरस्येव तस्य भावविकारभुः॥ of वीच्यादि न यथोदेति समाया अलुसंततेः। तथा न दृश्यते दोषः समायाः सत्वसंततेः॥ ३१ सत्त्वस्यानुपलम्भोऽस्ति न तस्योपशमादते । याचद्भाति समं तस्वं कालाच्छाम्यति केवलम् ३२ देहे याँसस्तु नो चित्तं नापि सत्त्वं च विद्यते। स तापे हिमवद्राम पञ्चत्वेन बिलीयते ॥ 33 शिखिष्वजस्य देहोऽसी निश्चित्तस्तेजसोर्जितः। सत्त्वांरोन च संयुक्तसेन न ग्लानिभाजनम् ॥ ३४ तं तथाभूतमालोका भर्तुर्देहं वराङ्गना । अनुज्यितवती देहं चिन्तयामास सत्वरम् ॥ चित्तत्वं सर्वगं शुद्धं प्रविद्याबोधयाम्यहम्। भविष्यद्वोधनं कान्तमथ तत्र हि संस्थिता ॥ 3E न बोधयामि यद्येनं चिरासद्ग्रध्यते स्वयम्। किमेकैवावतिष्ठेऽहमित्येवं बोधयाम्यहम्॥ ३७ इति संचिन्त्य चुडाला देहं करणपञ्जरम्। संखज्य प्राप चित्तत्वे स्थितिमाधन्तवर्जिते ॥ ३८

स्पन्द इति । जगतः स्थितेर्न्यबहारस्य हेतुभूतानां सर्वेषां भावविकाराणां कारणम् ॥ २८ ॥ अतएव पुनर्जन्मबीजसत्वे-ऽसाहेहाहेहान्तरं प्रयास्यतक्षेतसो महर्महर्यक्रेन निगृह्यमाणोऽपि हर्षः कोपः संमोहस्य न बशमेति न निप्रहीतुं शक्यते । तदेव पनर्जन्मावरयंभावे लिङ्गमिखर्यः ॥ २९ ॥ चित्ते हर्षादिवि-कारशान्ती तु कायेऽपि विकारा निवर्तन्त इलाइ-नित्त इति । सस्वेन निर्वासनियतेन वर्जितः अप्रतिसंघानेन व्यक्तः । तथाच चित्तेनाइन्तया परिप्रह एव देहे वृष्टादिविकारहेतुरिति भावः ॥ ३० ॥ देहजरापिलतादिर्दोषो रागादिदोषश्च न दृश्यते ॥ ३९ ॥ कियत्कालं जीवन्सुकैः सत्त्वसुपलभ्यत इति चेत्प्रा-रव्यशेषक्षयेण तत्प्रशमपर्यन्तमित्याह-सत्त्वस्येति । समं प्रातिभासिकवैषम्येणापि शून्यम् । कालात्प्रारब्धशेषक्षयका-लात् ॥ ३२ ॥ सलस्यापि क्षये तु मृतो देहो बिलीयत इलाह—दंहे इति । नो चित्तमिल्यहमरणामिप्रायम् । नापि सत्त्वमिति ज्ञमरणामित्रायम् । पखत्वेन मर्णेन ॥ ३३ ॥ शिखिध्वजदेहे तु जीवनलिङ्गानि तया दष्टानीत्याह-शिखि-ध्वजस्येति । तेजसा ऊष्मणा ॥ ३४ ॥ प्रश्नं समाधाय प्रसुत-मनुसंधत्ते—तं तथेत्यादिना । खदेहमनुज्झितवती ॥ ३५ ॥ चित्तत्वं प्रायुक्तं तदार्दे बद्या तदीयकायप्रवेशेन प्रविश्य तत्र तत्खभावे संस्थिता सती चिरकालेन भविष्यद्वो-घेन कान्तमधुनैव संबोधयामीति ॥ ३६ ॥ नन्न चिरेण स

तत्र सा चेतनास्पन्दं कृत्वा सत्ववतः प्रभोः। स्वं विवेदा पुनर्देहं स्वं नीडमिव पश्चिणी॥ 39 कुम्भाकृतिरथोत्थाय निविष्टा कुसुमस्थले। साम गातुं प्रवृत्ता सा भ्रमरीवृन्दनिःस्वना ॥ 80 तं सामस्वनमाकर्ण्य चित्सत्वगुणशालिनी। बुबुधे भूपतेर्देहे वसन्त इव पद्मिनी ॥ ४१ दृशं विकासयामास तां तदार्क इद्याक्तिनीम् । गृहीतसत्त्वसंपन्तिः शिखिध्वजमहीपतिः॥ ઇર अपश्यत्क्रम्भमप्रस्थं सामगायनतत्परम् । परेण वपुषा युक्तं सामवेदमिवापरम्॥ કે ઇ अहो बत वयं धन्याः पुनः प्राप्तो मुनिः स्वतः। इत्येवोदाहरचाजा कुम्भाय कुसुमं ददी ॥ दिष्ट्योदिताः स्रो भगवंस्तव चेतसि पावने। के नाम वा महासत्वाः प्रसादेष्वङ्ग नो स्थिताः४५ असात्पवित्रीकरणमेवागमनकारणम्। न चेतिक चागमे बृहि द्वितीयं कारणं भवेत्॥ ४६

> कुम्भ उवाच । तेरका सम्बद्धानार

यतः प्रभृति यातोऽस्मि त्वत्सकाशादनिन्दितः। ततः प्रभृति चेतो मे त्वयैवेद्द समं स्थितम्॥ ४७ रम्ये स्वर्गे न तिष्ठामि समीपे तव सांप्रतम्। अमीष्टमुद्यदेवाङ्ग रम्याणां तत्पुरः स्थितम्॥ ४८

लयमेव बुध्यतां कि बोधनलरया तत्राह—नेति । राज्यपाछने नियुक्ताहं न भतेंव समाधी स्थातं शका व्युत्थिता च कथंचि-त्तमेकाकिन्यवस्थातुं शक्रोमीति भावः ॥ ३७ ॥ स्तं देहं संखज्य तहेई प्रविश्य तदीये हार्दब्रह्मजक्षणे चित्तरवे स्थिति प्रापेत्यर्थः ॥ ३८ ॥ तत्र निर्विकल्पसमाधिना क्षीरोदकवदेकर-सीभतायाश्वेतनायास्तदीयचिदाभाससंविकतबुद्धेः पृथम्भवनातु-कूलं सम्दम् ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वित् विदाभासखिता राज-बुद्धिः बिखिष्वजाहंभावसंस्कारोद्वीधेव आनखाप्राहेहेऽहंभाव-व्याप्त्या बुबुधे ॥ ४९ ॥ तां समाधिनिमीलिताम् ॥ ४२ ॥ गायनमित्यशित्यालाभावरछान्दसः । परेण दिव्येन वपुषा युक्तः मपरं सामवेदमिवेत्युत्प्रेक्षा ॥ ४३ ॥ कुसुमं पुष्पाजलिम् । अनेन तपःप्रभावात्प्राक्संचितपुष्पाणामम्लानता गम्यते ॥४४॥ दिछ्या स्वभाग्योदयेन उदिताः पुनर्दर्शनाभ्युदयफलस्यृतिगो-चरतां गताः। अथवा किं मद्भाग्यचिन्तया महान्तः खतएव परातुष्रहोद्यता इत्याशयेनाह-के नामेति ॥ ४५ ॥ मदुकं कारणं नचेदिह।गमने द्वितीयं किं कारणं भवेत् संभावितं तद्रहीत्यर्थः ॥ ४६॥ त्ययेव समं साकम् । स्थानं लामेव सरदिति यावत् ॥ ४७ ॥ अतएव रम्येपि खर्गे सांप्रतं न तिष्टामि किंतु तब समीपे तिष्टामि । हे अङ्ग, यतो बहुनामपि रम्याणां मध्ये चित्तस्य यदेवामीष्टं भवति तत् उद्यत् उद्योग-प्राप्यमेव सत् पुरः स्थितं भवति नोषोगं विनेति लद्शनोषो-

५६

त्वादशो बन्धुराप्तश्च सुद्धन्मित्रं तथा सखा। विश्वास्यो वापि शिष्यश्च मन्ये जगति नास्ति मे ४९ शिक्षिध्वज उवास्त्र।

शहो नु फिलतं पुण्यपादपैनः कुलाचले ।
यसाद्भवानसङ्गोऽपि वाञ्छल्यसत्समागमम् ॥ ५०
इदं वनमिमे वृक्षा भृत्योऽयमहमादतः ।
रोचते ते न चेत्स्वर्गस्तदिह स्थीयतां प्रमो ॥ ५१
भवद्वितीर्णया योगयुक्त्या विश्वान्तवानहम् ।
यथा साधो तथा मन्ये स्वर्गे विश्वमणं कुतः ॥ ५२
तामेव संस्थिति स्वच्छामयलम्ब्य प्रकाशिनीम् ।
विहरेह यथाकामं स्वर्गे भूमितले तथा ॥ ५३

कुम्भ उवाच ।
परे परे महानन्दे किचछिश्रान्तवानसि ।
इदं मेदमयं दुःखं किचत्संत्यक्तवानसि ॥ ५४
किच्चदापातरम्येभ्यः संकल्पेभ्यो रतिर्भृदाम् ।
निर्मूलतां गता राजन्भोगनीरसमेव ते ॥ ५५

हेयादेयदशातीतं शान्तं शमसमस्थिति । यथाशातेष्वतुद्वेगं कचित्तव मनःस्थितम् ॥

शिखिध्यज उवाच।

त्वत्यसादेन भगवन्दष्टा दश्यातिगा गतिः।
प्राप्तः संसारसीमान्तो छन्धो छन्धव्यनिश्चयः ५७
चिरादतिचिरेणैव विश्वान्तोऽस्मि निरामयः।
छन्धं छन्धव्यमस्विलं तृप्तः संश्चिरसंस्थितः॥ ५८
नोपदेष्टव्यमसाकं किंचिद्प्युपयुज्यते।
सर्वत्रेवातितृप्तोऽस्मि संस्थितोऽस्मि गतज्वरः ५९
बातमद्यातमप्राप्तं त्यक्तं त्यक्तव्यमाश्चितम्।
तत्त्वं परत्यं सत्वं मे स्वस्यैवास्ति न किंचन॥ ६०

निःसंस्रतिर्विगतमोहभयो विरागो नित्योदितः समसमाशयसर्वसौम्यः। सर्वात्मकः सकलसंकलनावियुक्त आकाशकोशविशदः सममास्थितोऽस्मि ६१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे चू० कुम्भपुनरागमनं नाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकदाततमः सर्गः १०४

१

ર

वसिष्ठ उवाच ।
इत्यच्यात्मविचित्रामिः कथाभिस्तौ परस्परम् ।
आंसाते वेद्यवेत्तारौ मुद्दुर्तत्रितयं वने ॥
तत उत्थाय कांसिश्चित्सानौ सरससारसे ।
सरोवरे वने चैव विद्दतौ नन्दने वने ॥
तेनाचारेण ताभिश्च कथाभिस्तौ वने ततः ।
नीतवन्तौ दिनान्यणै तासु काननवीथिषु ॥
अथ कुम्भ उवाचान्यद्वनं यावो गिराविति ।
तदोमिति नृपो मत्वा ताबुभौ प्रविचेरतुः ॥

गवशादेव ममागमनिम्लर्थः ॥ ४८ ॥ मथि को ता ते त्रीतिहेतुरतिशयस्त्रशह—लाहश इति ॥ ४९ ॥ कुछाचले अस्मिन्मन्दरे ॥ ५० ॥ मरप्रीत्या ते खर्गो न रोचते चेत्तत्ति इह मत्संनिर्घा ॥ ५२ ॥ ममापि लिह्तिणिममाथिमुखतृप्तस्य खर्गे वाञ्छा नास्तीत्याह—भविद्वितीणियति । वितीणिया दत्त्या ॥ ५२ ॥ तां मह्ममुपदिष्टामेव भूमानन्दसंस्थितिमव-छम्च्य । प्रकाशिनीं खप्रकाशाम् ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ भ५ ॥ शमेन समस्थिति ॥ ५६ ॥ ५० ॥ चिराहृहुकालोत्तरम् । अतिचिरेण दिनत्रयपर्यन्तम् ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ अप्राप्तं प्राप्त-मिति शेषः । तथा मे सत्वं निर्वासनं मनस्त्यात्मन एव परत्माश्रितम् ॥ ६० ॥ यदि लदन्यित्कचन नैवास्ति तर्हि त्वं कीदशोऽवशिष्टस्तत्राह—निःसंस्तिरिति । स्पष्टम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे न्यिकशत्तसमः सर्गः ॥ १०३ ॥

वनात्यनेकरूपाणि जङ्गलानि तटानि च।
सरांसि गुल्मजालानि शृङ्गाणि गहनानि च॥ ५
नदीर्देशांस्तथा ग्रामान्नगराणि वनानि च।
मञ्जयोपान्गिरीन्कुः आंस्तीर्थान्यायतनानि च॥ ६
सममेव समस्नेही समवेती स्थितानुभी।
समसत्वी समोत्साही शंसन्ती तस्थतुः सदा॥ ७
आनर्चतुः पितृन्देवान्बुभुजाते च राघष।
समं तते च सिकं च समबुद्धी बभूवतुः॥ ८

कुम्भन्य रमतो राज्ञा संभोगेच्छात्र वर्ण्यते । स्वर्गापदेशाल्पूर्यानं विषण्णपुनरागमः ॥ १ ॥

इत्युक्तप्रकाराभिरात्मनीलध्यात्मिविचित्राभिः कथानिः पर-स्परं संवदन्ताथिति शेषः॥ १॥ सरसानि श्लिम्धानि सारसानि पद्मानि पक्षिमिश्रनानि च यस्मिन् । नन्दने आनन्ददायिनि । फलमूलादिना अवने रक्षके च । प्रसिद्धे ऐन्द्रे नन्दने वने इवेति वा शेषः॥ २॥ तेन जीवन्मुक्तप्रसिद्धेनाचारेण । चने महा-रण्ये। काननवीथिषु अयान्तरपवनपक्किमेदेषु । तेन दिनाष्टकमपि नैकत्र वास इत्यनिकेतता सूच्यते ॥ ३॥ ओमिलमिमतौ । नृपस्यव कुम्भस्याप्यर्थसिद्धा कर्तृतास्त्येवेत्युभयकर्नृकचरितस-मानकर्तृकतामाश्रिल्य मत्येति क्लाप्रत्ययनिर्दशः॥४॥ ५॥६॥ समयेतौ समुदिता सन्तौ चित्तवृत्त्यापि सममेव स्थिता शंसन्तौ परस्परानुमवं कथयन्तौ ॥ ७॥ सिक्त जलाई शीतलप्रदेशे

१ आसातां इति पाटः.

तमालवनखण्डेषु मन्दारगहनेषु च। दंपती किम्धहदयी सहदी तो विरेजतः॥ ९ इदं गेहमिदं नेति विकल्पकलना मनः। न जहार तयो राम वात्येव विबुधाचलम्॥ १० विचेरतुस्तौ सुदृदौ कचिद्धलिविधूसरौ। कविषम्दनदिग्धाक्षा कचिद्रसानुरिक्षती ॥ ११ कचिद्विव्याम्बरधरी चित्राम्बरधरी कचित्। कचित्पल्लवसंख्यो कचित्कुसुममण्डितौ ॥ १२ दिनैः कतिपयैरेष समचित्ततया तया। सत्वोदात्ततया चैव राजा कुम्भवदावभी ॥ १३ अथ तं सुरगर्भामं चुडाला सा शिखिष्वजम्। दृष्ट्रा शोभामुपगतं चिन्तयामास मानिनी ॥ १४ अयं पतिरदीनात्मा रम्याश्च वनभूमयः। इयं स्थितिरनायासा या न कामेन घञ्चिता ॥ १५ जीवन्मुक्तियां भोगं यथाप्राप्तमतिष्ठताम्। एकात्रहात्मिका तुच्छा मुढतैवोदिता भवेत्॥ १६ निजः पतिरुदारात्मा निराधिश्च नवं वयः। गृहाणि पुष्पजालानि सा हता या न कामिनी १७ वनपुष्पळतागेहे स्वायत्ते भर्तरि प्रिया। रमते या न निर्दुःखा सा हतैव दुरङ्गना ॥ 26 रम्यं विवाहितं कान्तं पतिमासाद्य निर्जने । की सती या न रमते तां धिगस्तु दुरङ्गनाम् १९ समुज्यता यथाप्राप्तमपि वेद्यविदा सदा। अनिन्धं समुदारार्थं किं तज्ज्ञेन कृतं भवेत्॥ २० त्रतिकचिद्रचयाम्याशु प्रपञ्जं प्रेक्षया वने । येनायं भूपतिर्भर्ता रमते मयि मानदः॥ २१ इति संचिन्त्य चूडाला कुम्भवेषधरा पतिम्।

चेति यावत् ॥ ८॥ ९॥ अनिकेतस्थितिरुक्षणमाह---इद-मिति । विकल्पकलना तयोर्मनो न जहार ॥ १० ॥ प्रियाप्रि-यविकल्पोऽपि तयोर्नाभृदित्याह-विचेरत्रिरत्यादिना ॥ ११ ॥ ॥१२॥ सत्वेन निर्वासनिचत्तेनोदात्ततया उत्कृष्टतया ॥ १३ ॥ अय केवलमित्रभावेन परस्परोपभोजकप्रारच्धभोगोत्तरकालं दंपतिभावोपभोजकप्रारच्धोद्भवकाले ॥ १४ ॥ कामेन अक्षध-मैंग रागेण न वश्चिता ॥ १५ ॥ यथाप्राप्तं भोगं प्रति अति-ष्टतां अनिवृत्तगतीनाम् । एकस्यां भोगनिवृत्तावेवाप्रहो निर्व-न्धस्तदात्मिका या वृत्तिः सा मूडतैव ॥ १६ ॥ अधर्मरोगश्र-मादिहेतुभ्यो भोगेभ्यो छोकसंप्रहाय निवर्तितव्यमेव अत्र तु न तत्त्रसिक्तिरित्याशयनाह-निज इति । एवं सर्वसामग्रीसत्वेऽपि या समतीर न कामवती सा अजीवन्युका चेद्र्र्त्रुपभोगविधा-तपापेन इता । जीवन्युका चेह्नोकसंप्रहभन्नप्रयुक्तनिन्दादिना हतेल्यर्थः ॥ १० ॥ उक्तमेव स्पष्टमाह—वनेति ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ अनिन्दां खं उदारार्थं भोगं समुज्यता किकिमिकं फर्ल कृतं भवेत् । न किचिदिस्थयंः ॥ २० ॥ प्रेक्षया सप्रज्ञया

प्राह काननगुल्मस्था कोकिलं कोकिलायथा॥२२ कुम्भ उवाच ।

चैत्रमासस्य शुक्रोऽयं प्रतिपहिवस्रो महान् । अद्यास्थानं महारम्भं स्वर्गे भवति वै हरेः॥ 23 संनिधानं मया तत्र कर्तव्यं पितुरप्रतः। यथास्थिता हि नियतिर्न संत्याज्या कदाचन ॥२४ प्रतिपालयितव्यं मे त्वयेष्ठ च वनावनी। क्रीडता नवपुष्पायां समुद्रेगमगच्छता ॥ २५ आगच्छामि दिनान्तेऽच निर्विकरूपं नभस्तलात्। सर्गाद्तितरामेव त्वत्सङ्गो मम तुष्ट्ये॥ इत्युक्त्वा मञ्जरीं कुम्भो ददौ मित्राय कौसुमीम्। प्रीतये स्वामिव प्रीतीं कान्तां नन्दनवृक्षजाम् २७ आगन्तध्यं त्वया शीव्रमेवं वद्ति भूपती। पुष्ठुवेऽथ वनाद्ध्योम शरन्मुखपयोदवत्॥ २८ पुष्पाञ्जलि जहाँ ब्योम वजन्कुसुमदामजम्। विसारिवनवातेन हिमं हैम इवाम्बुदः॥ २९ शिखिध्वजो वजन्तं तं ददर्शादर्शनं तदा। उन्निद्रोऽग्दं यथा बहीं घीमत्प्रीतिहिं दुस्त्वजा ३० शिलिध्वजदशामन्ते न्योक्ति कुम्भवपुर्जही । शान्तावर्तेव वारिश्रीर्मुग्धा स्वं रूपमाययौ ॥ 38 प्राप मञ्जरिताकारकल्पचृक्षोपमं पुरम्। स्फुरत्पताकमात्मीयं स्वर्गरम्यं दिवः पथा ॥ ३२ अन्तःपुरमदृष्येव विवेश ललनाकुलम् । मधुमासमहालक्ष्मीर्लसञ्जतमिव द्वमम्॥ 33 राजकार्याणि सर्वाणि तत्र संपाद्य सत्वरम्। दिा**खि**ष्वजस्य पुरतः पपात फलपु**ष्पवत्** ॥ રૂપ્ટ

मिय रमते रतिसुखं लभते ॥ २१ ॥ २२ ॥ आस्थानं देवविस्तामेलनम्—हरेन्द्रस्य ॥ २३ ॥ पितुर्नारदस्य ॥ २४ ॥
प्रतिपालियतव्यं मे आगमनमासार्यं प्रतीक्षितव्यम् ॥ २५ ॥
निर्विकल्पं आगमनपाक्षिकलरिहतं । नियतमिति यावत् ॥२६॥
कान्तां मनोहराम् । नन्दनवृक्षः कल्पतरुक्षःचां मन्नरीम् ॥२५॥
शरन्मुखपयोदो निर्जलमेषस्तद्वत् ॥ २८ ॥ वनवातेन विसारि
प्रसरणशीलं पुष्पान्नलिम् । पदसंस्कारपक्षे नपुंसकलिनं सर्वनामेति प्रागेव प्रवृत्तमन्तरनं नपुंसकलिनं पुंविशेषसंबन्धेऽपि न
निवर्तते । तथाचोदाहृतं महाभाष्ये 'शक्यं चानेन श्रमांसादिमिरिप कुत्प्रतिहृन्तुं तत्र नियमः कियते पन्न पन्ननकाः भक्षाः'
इतीति । हिमकाले भवो हैमः॥२९॥ आदर्शनं दृष्टिप्रसरयोग्यप्रदेशावि । अन्दं मेषम् ॥ ३० ॥ सं चूढालाक्ष्पम् । आययौ
प्राप ॥ ३१ ॥ स्फुरत्पताकमत एव मन्नरितः संजातमन्नरीक आकारः संस्थानं यस्य तथाविभकल्पवृक्षोपमम् ॥३२॥
॥ ३३ ॥ यथा वृक्षारकलं पुष्पं वा पतिति तद्वत्॥३४॥

तत्र कीलयुतिमुखं यकाराश्चित्रमानसा।
इन्दुं सनीहारमिव स्थामा खिन्नमिवाम्बुजम् ३५
तं दृष्ट्वा तादशाकारं समुत्तस्या शिखिष्वजः।
बभूव खिन्नचेताश्च समुवाचेव्मादतः॥ ३६
देवपुत्र नमस्तेस्तु विमना इव लक्ष्यसे।
कुम्भस्त्वं त्यज संरम्भमिद्मासनमास्यताम्॥३७
सन्तो विदितवेद्या ये ते हि हर्षविषादजाम्।
नाभ्रयन्ति स्थिति स्वस्थाः पद्मा इव जलाईताम्३८
विसिष्ठ उवाच।

तेन क्ष्मापतिनेत्युक्ते कुम्भ आहासने विशन् ।

गिरा विषण्णया शीर्णवंशस्वनसमानया ॥ ३९
याचदेहमवस्थासु समिचक्तत्यैव ये ।
कर्मेन्द्रियेर्न तिष्ठन्ति न ते तस्वविदः शठाः ॥ ४०
ये हातस्वविदो मृढा राजन्बालत्यैव ते ।
अवस्थाभ्यः पलायन्ते गृहीताभ्यः स्वभावतः ४१
याचित्रलं यथा तेलं याचदेहं तथा दशा ।
यो न देहदशामेति स च्छिनस्यसिनाम्बरम् ॥ ४२
इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वालमीकीये मोवनिर्वाण चव्नी

एव देइदशादुःखपरित्यागो ह्यनुत्तमः। यत्साम्यं चेतसो योगाम तु कर्मेन्द्रियस्थितेः यावहेहं यथाचारं दशास्त्रङ्ग विजानता । कर्मेन्द्रियहिं स्थातव्यं नतु बुद्धीन्द्रियैः कवित् ४४ परमेष्टिप्रभृतयः सर्व प्योदिताशयाः। देहावस्थास तिष्ठन्ति नियतेरेष निश्चयः॥ ४५ अञ्चतस्वद्यभूतानि दश्यजातमिवं हि यत्। तत्सर्वमेव नियति धावत्यम्बु यथाम्बुधिम्॥ 38 तज्ज्ञा बुद्धादिसाम्येन पाण्यादिचलनेन घ। नियति यापयन्तीमां याचहेहमखण्डिताम्॥ 80 अज्ञास्तु सर्वक्षोमेण सुखदुःखद्शाहताः। नियति यापयन्त्यक् देहलक्षीर्विखण्डिताम्॥ 86 इत्थं सुखेषु ननु दुःखदशासु चेत्थं

इत्थं सुखेषु ननु बुःखदशासु चेत्थं स्थातव्यमित्यिधगतं यदिहाङ्ग जीवैः। अज्ञज्ञभूतनिवहस्फुरितस्तदेवं वुर्लङ्कथ एष नियतो नियतेर्विलासः॥

इत्सार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो०निर्वाण चू०जीवन्सुकत्यवहारप्रतिपादमनं नाम चतुरधिकशततमः सर्गः॥१०४॥

पश्चाधिकज्ञाततमः सर्गः १०५

शिखिष्यज उवाच । एवं स्थिते महाभाग कथमुद्वेगमीदशम् ।

तत्र भर्तृसंनिधी मुखं श्यामद्यति चकार । श्यामा यौवनमध्यस्था चुडाला ॥ ३५ ॥ आहतः सादरः ॥ ३६ ॥ विमना खिन्नमना इव रुक्ष्यसे । मुखम्लानिलिक्षेनेत्यर्थः । संरम्भं रुक्षणया मन-स्तापम् ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ बाष्परुद्धकण्डजलाच्छीर्णवंशस्त्रन-समानया ॥ ३९ ॥ विदितवेद्याः पुरुषा हर्षविषोदजां स्थिति नाश्रयन्तीति यदुक्तं तत्र कंचिद्विशेषं विवक्ष्यन्कुम्भ उवाच-यावदेहमिति । शानप्रयुक्तसमचित्ततानान्तरीयकर्मेन्द्रियचेष्टानि-वृत्तिरेव ज्ञानिनो लक्षणमिति तच्छन्या इव तत्त्वविदो न सम-चित्तत्वेऽपि प्रारब्धकर्मप्रयुक्तकर्भेन्द्रियचेष्टोद्भवमात्रापराधेनेत्या-शयः ॥ ४० ॥ अतत्त्वक्षेषु तु न तथेत्याह-येहीति । बाल-तया समित्तत्वाभावेनैव हठाद्वृहीताभ्यस्तत्तत्कर्मेन्द्रियनिप्र-हाबस्थाभ्यः पलायन्ते च्यवन्ते अज्ञानस्वभावादेवेति वैषम्य-मिखर्थः ॥ ४१ ॥ प्रारब्धप्रयुक्ता त कर्मेन्द्रियहर्षग्लानिदशा याबहेहगाविनी ज्ञान्यज्ञानिनोर्खुल्यैवेत्याशयेन सदद्यान्तमाह-याबदिति । दशा कर्मेन्द्रियहर्षग्ळान्यादिदशा भवत्येवेति शेषः। तदेव व्यतिरेकमुखेन द्रढयति—य इति । तथाच ज्ञानिनोऽपि देहदशानतिलङ्कनमेवेति ममापि तदनुवर्तनं न दोषायेति भावः ॥४२॥ तथाच चित्तसाम्येन देहदशादुःखानां समाधि-वशाद्दर्शनमेव तत्परित्यागो न हठात्कर्मेन्द्रियनिष्रहेण सहन-मिति निष्कर्ष इत्याइ—एष इति ॥ ४३ ॥ विजानता तश्व-

लन्धवानसि देवोऽपि वद वेद्यविदांवर॥

विदा यानहें कर्मेन्द्रियेः सर्वासु दशासु यथासदाचारमेव स्थातव्यं नतु सदाचारं उलक्ष्य इत्येतावानेव नियमः । बुद्धीन्द्र-थैर्मनआदिभिस्तु सदा साम्येनैव भाव्यं नतु कदाचिदपि वैषम्ये-णेखर्यः ॥ ४४ ॥ कर्मेन्द्रियैरनिषिद्धदेहावस्थानुवर्तनं ब्रह्मादि-सर्वजीवन्युक्तेषु प्रसिद्धमेवेखाह-परमेष्ठीति । नियतेः प्रारब्ध-कर्मनियतेः। अन्यथा तद्भोगासिद्धेरिति भावः॥४५॥ प्रारद्धकर्म-नियतिलक्षनं तत्त्वक्रैरक्षेत्रं केश्विदपि कर्तुं न शक्यमित्याह— अह्रेति ॥ ४६ ॥ तर्हि किं तज्ह्याङ्मयोः साम्यमेव नेत्याह— तज्ज्ञा इति । यावदेहसुपात्तैकदेहपातपर्यन्तम् ॥ ४७ ॥ अज्ञास्त न तथेखाह-अज्ञास्तिति ॥ ४८ ॥ प्रारव्धनियतिखरूपमिन नीय दर्शयंस्तस्याः सर्वेर्दुर्लक्ष्यतामुक्तामन् योपसंहरति-इत्य-मिति । नन्वन्न इति राजसंबोधने । अनेन प्राणिना अस्मिन जन्मनि इत्थं सुखेषु स्थातव्यं दुःसदशासु चेत्थं स्थातव्यमिति जीवैः खखकर्मानुसारेण यद्यादृशं छलाटाक्षरमधिगतं प्राप्तं तलद्विषये अबेषु बेषु वा भृतिनिवहेषु तथैव स्फ्ररितो नियत एष नियतेः प्रारम्धकर्मणो विलास एवं प्रायुक्तरीत्या दुरुलक्ष इलार्थः ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्वर्वप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे चतुरिकशततमः सर्गः ॥ १०४॥

कुम्मेन निष्धे दुर्वासःशापात्कीत्वासिक्ष्यते । परस्परं समाधानैः प्रीतबोध तथा स्थितिः ॥ १ ॥ एवं नियत्वद्वसारेण स्थिते जीवकदम्बे त्वं देवोऽपि समीदसं

१ म्लानगुतीत्यपि कन्तित्पाठः.

कुम्भ उषाच । श्रृणु कार्यमिदं चित्तं मदीयं वसुधाधिप। कथयामि तवारोषं सर्गे यह समद्य मे ॥ सुहृद्यावेदितं दुःखं परमायाति तानवम्। घनं जडं कृष्णमपि मुक्तवृष्टिरिवाम्बदः॥ सुहृदा पृच्छता साधु चेतो याति प्रसन्नताम्। स्वच्छतोपगतेनाशु कतकेन जलं यथा॥ 8 अहं तावदितो यातो भवते पुष्पमञ्जरीम्। दस्वा गगनमूलुङ्गय संप्राप्तश्च त्रिविष्टपम्॥ ततः पित्रा महेन्द्रस्य सभास्थाने यथाक्रमम्। स्थित्वोत्थाय तथोत्थानकाले पित्रा विवर्जितः इहागन्तुमहं खक्त्वा स्वर्ग संप्राप्तवास्रभः। विधाकरहयैः सार्धे वहाम्यनिलवर्त्मनि ॥ ও अधैकत्र गतो भाजुरेकेनान्येन वर्त्मना। आगच्छाम्यहमाकाशं सागरापतिताकृतिः॥ अथाप्रे वारिपूर्णानां मेघानां मध्यवत्र्मना । अपर्यं मुनिमाहान्तमहं दुर्वाससं जवात्॥ ९ पयोधरपटच्छन्नं विद्युद्धलयभूषितम्। अमिसारिकया तुल्यं धाराधीताङ्कचन्दनम्॥ १० स्थितां सुतरुसुच्छायामापगां वसुधातले। वेगेनामिसरन्तं तां तपोलक्मीमिव प्रियाम् ॥ ११ तस्य कृत्वा नमस्कारमुक्तं खे वहता मया। मुने नीलाम्रवस्त्रस्त्वमिसारिकया समः॥ १२ इत्याकण्यं मुमोचासौ मयि मानद् शापकम्। स्तनकेदावती कान्ता हावभावविलासिनी॥ १३ गच्छानेन दुरुक्तेन रात्री योषा भविष्यसि।

विषादनिमित्तमुद्रेगं कथं रुज्धवांस्तद्वदेखर्थः ॥ १ ॥ २ ॥ धनं जहं कृष्णमिति विशेषणनपुंसकत्वं प्राग्वत् । ईदशोऽप्यम्बुदो मुक्तवृष्टिः सन् यथा तानवमायाति तद्वत् ॥ ३ ॥ पृच्छता सहदा निभित्तेन । खच्छतार्थमुपगतेनेति सुहदोऽपि विशेषणम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ पित्रा सहेति शेपः ॥ ६ ॥ वहामि प्रवाहास्य-स्यानिलस्य स्वानुकुले वर्तमीन तत्प्रवाहेणेव वहामि यावदिन-मतदेशमिल्पर्थः ॥ ७ ॥ अथ मदिभमतदेशप्राप्त्यनन्तरं तेन महताप्रे उद्यमानी भानुरेकेन वर्त्मना एकत्र गतः। अहं खन्येन वर्तमेना आगच्छामि । सागरापतिताकृतिः । समुद्रे प्रवमान इवेलार्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥ शीकरधारा-भिर्धीतं क्षालितमङ्गचन्दनमङ्गरागो यस्य तम् ॥ १० ॥ वसधातले स्थितामत एव शोभना तीररुहतरुपुच्छाया यस्या-स्तथाविधाम् । स्वस्य प्रियां तपोलक्ष्मीमिव स्थितामापगां गङ्गां प्रति संध्यावन्दनकालात्ययो माभूदिति वेगेनाभिसरन्तम् । आप यामिति पाठे तु यां तपोलक्ष्मीलक्षणां त्रियां भार्यो वसु-घातले आप प्राप तामभिमुखीकृत्य सरन्तमिवेत्युरप्रेक्षा ॥११॥ अभिसारिकया तमिस्नाभिसारिकया त्वं समो दृश्यसे इति मया इति श्रुत्वाऽद्युमं वाक्यमुत्थितं जर्जरिक्रजात् १४ विमृशामि मनाग्यावसावदन्ति मुनिः। इत्युद्धेगमनाः साधो संप्राप्तोऽहं नमस्तलात्॥ १५ एतत्ते कथितं सर्वं संपन्नोऽस्मि निशाङ्गना। अतिवाह्यं दिनान्तेषु स्नीत्यमेतन्मया कथम्॥ १६ योषित्स्तनवती रात्रा वक्तव्यं किं मया पितुः। संस्तौ मवितव्यानामहो जु विषमा गतिः॥ १७ अहमप्यद्य यद्देवाद्युनामामिषतां गतः। कष्टं मद्पहारेण कलहो जायतेऽधुना॥ १८ दिवि देवकुमाराणां कामाकुलिधयामिह। गुरुदेविद्वजातीनां लज्जापरवशात्मना॥ १९ कथमग्ने मया सम्यग्वस्तव्यं यामिनीस्त्रिया।

वसिष्ठ उवाच।

इत्युक्त्वा क्षणमेकं सा तूर्णी स्थित्वा मुनिस्थितौ धैर्यमाश्रित्य कुम्भोऽत्र पुनराह रघूद्रह । किमझ इव शोचामि कि मम क्षतमात्मनः ॥ २१ यथागतमयं देहो मचोऽन्योऽनुभविष्यति ।

शिक्षिष्वज उवाच ।

परिदेवनया कोऽथां देवपुत्र तथैतया ॥ २२
यदायाति तदायानु देहस्यात्मा न लिप्यते ।
कानि चिद्यानि दुःखानि सुखानि विहितानि च २३
तानि सर्वाणि देहस्य देहिनो ननु कानिचित् ।
यदि त्वमपि कार्याणामखेदाहोंऽपि खिद्यसे ॥ २४
तदन्येषामुपायः स्यात्क इवागमभूषणः ।
खेहे खेदोचितं वाच्यमिति किंचित्त्वमुक्तवान् २५

उक्तम् ॥ १२ ॥ १३ ॥ अशुभमिति च्छेदः । जर्जरादृद्धाद्धि-जादुर्वाससः ॥ १४ ॥ इत्युक्तनिमित्त उद्वेगो यस्य तथाविधं मनो यस्य ॥ १५ ॥ कथमतिवाद्यं यापयितुं शक्यम् ॥ १६ ॥ पितुः अप्रे इति शेषः ॥ १७ ॥ यूनामामिषतां गृध्रामिषन्या-येन कलहविषयताम् । तमेव न्यायं प्रसक्तं स्पष्टयति—कष्ट-मिति । अधुनेति श्वःपरश्वस्तनसंनिहितकालोक्तिः । मदप-हारेण मम अपहरणाय । अध्ययनेन वसतीतिवत् फलस्यापि हेतुलविवक्षया तृतीया ॥ १८ ॥ १९ ॥ मुनिस्थितौ चित्तस-माधाने ॥ २० ॥ २१ ॥ यथात्रारव्धमागतं स्नीत्वं मत्तोन्योऽयं देह एवानुभविष्यति तेनासङ्गचिन्मात्रात्मनो मम का क्षतिरि-त्यर्थः । राजापि तदुक्तमनुमोदमान आह --परिदेवनयेलादिना ॥ २२ ॥ २३ ॥ देहिनो देहोपलक्षितचिदात्मनः कार्याणाम-वस्यसंपाद्यानां प्रारच्धफलानां विषये अखेदाईस्लमपि यदि खिद्यसे तत्तर्हि अन्येषामविवेकप्रयुक्तखेदिषिकत्सायां लाभव आगमभूषणः शास्त्रतत्त्वानुभावनकुशलः उपायश्विकित्सकः क इव शरणं स्याभ कश्चिदित्युत्तरेणान्वयः ॥ २४ ॥ नायं तव खेदः किंतु खेदोचितोक्तिमात्रं लोकाचारानुवर्णनायेत्याह—खेदे

40

इदानीं समतामेख तिष्ठाखिन्नो यथास्थितम्। वसिष्ठ उवाच ।

तावेषमादिमिर्वाक्यैरन्योन्याश्वासनं स्थयम् ॥ २६ कृत्वा स्थितौ वनस्मिग्धौ सुदृदौ खेदिनौ मिथः। अथाकोऽप्यस्य कुम्भस्य स्नीत्वमुत्पादयन्निव ॥२७ जगामास्तं जगद्दीपो दीपः छहस्रयादिव । व्यवहारभरेः साधे पद्माः संकोचमाययुः॥ मार्गाश्च पथिकैः सार्घे पान्थस्त्रीष्ट्रदयानि च। वाशबद्धिष्ठगान्सर्वान्क्रवेदेकत्र संचितान्॥ २९ तारकारक्रजालाक्यं भुवनं साम्यतां ययौ। खं इसदिव ताराव्यं विकासिकुमुदाकरम्॥ 30 ययाबुद्धादचकाद्वभ्रमग्रमरपेटकम्। सुद्भवै तावधोत्थाय संध्यामुद्यन्निशाकराम् ॥ ३१ वन्दियत्वा तथा कृत्वा जप्यं गुल्मान्तरे स्थिती। तुतः कुम्भः शनैस्तत्र खेणमभ्याहरन्वपुः॥ 32 शिखिष्वज पुरःसंस्थं प्रोवाच गलदक्षरम् । 33 पतामीव स्फुरामीव द्रवामीवाङ्गयष्टिंभेः॥ लज्जयैव च ते राजन्मन्ये स्त्रीत्वं वजाम्यहम्। पश्येमे परिवर्धन्ते राजनमम शिरोरुहाः॥ 38 प्रस्फुरत्तारकामाला दिनान्ततिमिरा इव । पश्येमा मम जायेते प्रोन्मुखाबुरसि स्तनौ ॥ 34 कोरकाविव पद्मिन्या वसन्ते गगनोन्मुखौ । आगुल्फमेव लम्बानि संपद्यन्तेऽम्बराणि मे ॥ ३६ देहादेव सखे पदय स्त्रिया इव हानैः हानैः। भूष्णान्युत रत्नानि माल्यानि विविधानि च ॥ ३७ परेयेमान्यङ्ग जायन्ते स्वाङ्गेभ्यो वृक्षपुष्पवत्। पश्यायं स्वयमेवाद्य चन्द्रांशुकरशोभनः॥ 36 मुर्फ्रि पट्टांग्रको जातो नीहारोऽद्राधिवाङ्ग मे ।

सर्वाणि कान्तालिङ्गानि जातानि मम मानद् ॥ २९ हा धिकष्टं विषादो मे किंकरोम्यङ्गनास्म्यहम् । हा धिकष्टमहो साधो स्थित प्वाहमङ्गना ॥ ४० संविदानुभवाम्यन्तर्नितम्बज्जघने त्विमे । विपिने कुम्म इत्युक्त्वा तूष्णीं खिको बमूच ह ४१ राजापि च तमालोक्य तथवासीद्विषण्णधीः । मुद्दुर्तमात्रेणोवाच शिखिष्वज इदं वचः ॥ ४२ कष्टं सोयं महासन्वः संपन्ना वरवर्णिनी । साधो विदितवेद्यस्त्वं जानासि नियतेर्गतिम् ॥४३ अवस्यभाविन्यर्थेऽस्मिन्मा खिन्नद्वत्यो भव । आपतन्ति दशास्तास्ताः सुधियां देहमात्रके ॥ ४४ न चेतस्यधियां त्वेताश्चित्तं यान्ति न देहकम् ।

कुम्भ उवाच ।

एवमस्वनुतिष्ठामि यामिनी स्नीत्वमात्मनः ॥ ४५
न खेदमनुगच्छामि नियतिः केन लङ्घयते ।
इति निर्णीय तौ खेदं तं नीत्वा तनुतामिव ॥ ४६
एकतस्ये निशां तृष्णीं नीतवन्तौ चिरेण ताम् ।
अथ प्रभाते तत्स्वणं वपुरुत्सुज्य यौवनम् ॥ ४७
वभूव कुम्भः कुम्भाभः कुचप्रोज्झितमृतिमान् ।
इति सा राजमहिषी चूडाला वरवर्णिनी ॥ ४८
कुम्भत्वमास्थिता भर्तुः पश्चात्स्वीत्वमुपागता ।
विजहार वनान्तेषु कुमारीधर्मिणी निशि ।
कुम्भक्षपधरा चाह्नि भर्त्रा मित्रेण संयुता ॥ ४९
केलासमन्दरमहेन्द्रसुमेरुसहा-

सानुष्वविस्त्वलितयोगगमागमा सा । साकं प्रियेण सुद्धदा भवता यथेच्छं स्नग्दामहारवलिता विजहार नारी ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू • कुम्भस्य श्लीललाभोनाम पश्चाधिकशततमः सर्गः॥ १०५॥

इति ॥ २५ ॥ २६ ॥ अथ मिथ आश्वासनानन्तरम् ॥ २० ॥ २८ ॥ मार्गास्तमोमिः संकोचमस्फुटतामाययुः । पान्यलीहृद्यानि पथिकाश्व वियोगशोकतमोमिरिल्यथः । दाशाः समुद्रद्वीपन्थकेवर्ताः । ते हि पक्षिणोऽपि जालैकंप्रन्ति मत्स्यानपि रक्षान्यपि संचिन्वन्ति तद्वद्वियमानमूर्ध्वाधो भुवनद्वयं पक्षिसंप्रहेण तारकारक्षजालाक्यतया च परस्परं साम्यतां सममेव साम्यं खार्थे ध्यम् । समतां ययाविल्यथः ॥ २९ ॥ उन्नादं चकाह्वानां अमञ्जयराणां च पेटकं वृन्दं कर्तृ विकासिकुमुदाकरं हसदिव स्थितं तारात्यं खं कर्म ययो ॥३०॥३९॥ वन्दिथला वन्दिला । स्थार्थे णिष् । क्रिया इदं क्रेणं वपुः अभ्याहरन् आविष्कुर्वन् ॥ ३२ ॥ गलदक्षरं सगद्भविति यावत् ॥ ३३ ॥ ते पुर इति शेषः ॥ ३४ ॥ प्रस्फुरसारकामाला इत्युपमानविशेषणादुपंन्येयाः बिरोक्हा अपि मुक्तादिमाकासहिता इति गम्यते ॥३५॥ अम्बराणि वक्षाणि ॥ ३६ ॥ माल्यानि विविधानि देहादेव

जायन्ते इत्युक्तरत्रान्वयः ॥ ३० ॥ खाक्नेभ्यः शाखादिभ्यः ॥ ३८ ॥ पट्टांशुकः पद्मवस्त्रम् । एवमाच्छादितप्रदेशेष्विपि लिक्कविनिमयः संपन्न इति क्षेत्रमित्याशयेनाह—सर्वाणीति ॥ ३९ ॥ स्थितः सिद्धः ॥ ४० ॥ इत्युक्त्वा कुम्भो विपिने तृष्णीवभूव ह किछ ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ स्थियां तक्त्वविदां देहमात्रके आपतन्ति चेतसि न ॥ ४४ ॥ अधियामझानां तु एता दशाधिक्तमिप वासनात्मना यान्ति न देहमात्रकमित्यर्थः । अनुतिष्टामि अनुवर्ते ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ राजा कुम्भविपित्विन्त्या राज्ञी तु नृपसंगमोत्कण्ठया निद्राभावाच्चिरेण निशानीतवन्तो । युवत्या इदं योवनं वपुरुत्यज्य । 'भस्यादे तिद्वते' इति पुंवद्भावे अन्नित्यणि प्रकृतिभावाम् टिलोपः ॥ ४० ॥ पूर्वेन् युक्तनकुम्भाभः ॥४८॥ कुमारीधर्मिणी अनूदाचारा ॥४९॥ क्ष कथं कथं विज्ञहार तदाह—कैछासेति । केलासादीनां सानुष्ठ

१ तातेति पाठः.

षदुत्तरशततमः सुधीः १०६

यसिष्ठ उवाच । ततः कतिपयेष्वेय दिवसेषु गतेषु सा । द्दं प्रोवाच भर्तारं कुम्भरूपधरा सती॥ राजन्राजीवपत्राक्ष ममेवं वचनं शृणु । निशायां प्रत्यहं तावत्स्थित पवाहमञ्जना ॥ तदिच्छाम्यङ्गनाधर्मे निपुणीकर्तुमीदशम् । भर्त्रे कसैचिवात्मानं विवाहेन ददाम्यहम्॥ तद्भवानेव में भर्ता रोचते भुवनत्रये। गृहाण मां विचाहेन भायोत्वे निशि सर्वदा ॥ आयक्रोपनतं साधो प्रियेण सुद्ददा सह। स्त्रीसुखं भोकुमिच्छामि मा मे विद्यकरो भव॥ क्रमप्रवृत्तमासृष्टेः सुखं साध्यं मनोरमम्। प्रकृतं कुवेतः कार्ये दोषः क इव जायते ॥ इच्छानिच्छे फले त्यक्त्वा समन्तात्सर्ववस्तुषु । वयं न सेच्छा भानिच्छाः कुर्मस्तेनेदमीप्सितम् ॥ ७ शिक्षिध्वज उवाच । कृतेनानेन कार्येण न शुभं नाशुभं सखे। पश्यामि तन्महाबुद्धे यथेच्छिसि तथा कुरु॥ समतां संप्रयातेन चेतसेदं जगत्रयम्। स्वरूपमेष पश्यामि यथेष्ट्यसि तदाचर ॥ कुम्भ उवाच। यचेषं तन्महीपाल लग्नमधैव शोभनम्। राकेयं भाषणस्यास्य हाः सर्वे गणितं मया ॥ रात्रावद्योदिते चन्द्रे परिपूर्णकलामले । जन्यत्रो नौ महाबाही द्वयोरेव भविष्यति ॥ ११ महेन्द्राद्रिशिरःश्टङ्गसामावद्य मनोरमे। रबादीपप्रकाशास्ये मणिकन्दरमन्दिरे॥ १२

प्रस्थेषु अविस्विलितो योगबलेन गमागमः कान्तयोगेन गमागम् स्थ यस्यास्तयाविधा सा चूडाला यथेच्छं स्वाभिमतानुसारेण भवता वर्तनशीलेन प्रियेण साधं स्नग्दामहारविलिता सती यथेच्छं विजहारेति पुनरप्याकाङ्गयान्वयः ॥ ५० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणसार्व्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पञ्चोन्तरक्षतमः सर्गः ॥ १०५ ॥

बर्ब्यतेऽत्र महेन्द्राङ्गै। विवाहोऽग्निपुरस्कृतः । त्रवोर्गुहायां सीवर्क्यां पुष्पतस्ये च संगमः॥ १ ॥

सा चूढाला ॥ १ ॥ २ ॥ निपुणीकर्तुं सफलीकर्तुम् । ददामि अचिरादेव दास्मामि ॥ ३ ॥४॥ प्रलाख्यामेन विष्नकरो मा भव ॥ ५ ॥ आसष्टेः सृष्टिकालमारभ्य देवन्यादिषु अव-यावत्कमप्रवृत्तं सुखमनायासमेव साध्यं प्रकृतं प्रस्तुतं विवाहकार्यं इच्छानिच्छे तत्फले च ल्यक्ता कुर्वतस्ते क इव दोषो जायत इल्लान्यः । वयं आवाम् । 'अस्मदो द्वयोष' इति बहुवचनम्

पुष्पभारानतोत्तुङ्गवृक्षराजिविराजिते । वनपुष्पलतालास्यनारीचृत्यमनोहरे॥ १३ निशि व्योमगतास्तारा भर्त्रा पूर्णेन्दुना सह। आवयोः परिपद्यन्तु कर्णान्तायतलोचन ॥ १४ उत्तिष्ठात्मविवाहार्थे कुर्यः काननकोटरात् । राजंभ्यन्दनपुष्पादिसंभारं रह्नसंयुतम् ॥ १५ इत्युक्त्वा कुम्भ उत्थाय सह तेन महीभृता। कुसुमावचयं चके तथा रत्नादिसंचयम्॥ १६ ततो मुद्दर्तमात्रेण रक्तसानी समे शुमे। समालम्भनपुष्पाणां ताभ्यां वै राद्ययः कृताः १७ हाराम्बरमजीन्द्रादिराशयस्त्वपरेऽजिरे। सौभाग्यस्येव कामेन कोशाः कालेन संभृताः १८ तथा जन्यत्रसंभारं कृत्या काञ्चनकन्दरे। ययतुस्तौ महामित्रे स्नातुं मन्दाकिनी नदीम् ॥ १९. तत्रैनं सापयामास महाराजं महादरात्। गजकुम्भोपमस्कन्धं कुम्भो मङ्गलपूर्वकम्॥ भविष्यइयितारूपां भविष्यइयितोऽङ्गनाम्। चुडालां स्नापयामास कुम्भरूपधरां प्रियाम् ॥ २१ पूजयामासतुः स्नातौ तत्र देवपितृन्मुनीन्। यथा कियाफलेऽनिच्छी क्रियात्वाने तथैव ती २२ निखद्मानरसातृप्ती व्यवस्थायां जगत्स्थतेः। चकाते भोजनं भव्यं तायन्योन्यसमीहितम्॥ २३ कल्पषृक्षदुकुलानि परिधाय सितानि तौ। फलानि भुक्त्वा जन्यत्रस्थानमाययतुः ऋमात् २४ पतावताथ कालेन तयोर्जन्यत्रसोत्कयोः। प्रियं कर्तुमिवास्ताद्रिं द्वागित्येवाविश्रद्रविः॥ २५

॥ ६ ॥ तत्तसाद्वेतोः ॥ ८ ॥ खरूपं खातमभूतमेवानुपरयामि
॥ ९ ॥ द्याः पूर्वेद्यरेव मया विवाहलमादि सर्वं गणितम् ॥१०॥
जन्यत्रो विवाहः । द्वयोरेव गान्धर्वविधिनेति भावः ॥ १९ ॥
मणिमयकम्दरलक्षणे मन्दिरे ॥ १२ ॥ विवाहोत्सवोचितनरनारीगणस्थानीयतया वृक्षलंतादिसंपति द्यायति—पुष्पभारेति
॥ १३ ॥ परिपरयन्तु विवाहोत्सवमिति शेषः ॥ १४ ॥ १५ ॥
॥ १६ ॥ रमसंयते साना समे शुमे अजिरे इति शेषः ।
समालम्भनं देवताप्रिमदनादिपूजनं तदर्थानां पुष्पाणाम्॥१०॥
अपरे अजिरे इति वचनात्पूर्वमप्यजिरे इति गम्यते । कालेन
भोजकसुकृतपरिपाककालेन ॥ १८ ॥ १९ ॥ मङ्गलं दिधवृत्वीक्षतिद्वार्थादि तत्पूर्वकम् ॥२०॥२१॥ क्रियाकानिच्छ्वोस्तयोः
कयं पूजाप्रवृत्तिसात्राह—ययेति । तथैव क्रियात्यागेऽन्यनिच्छी
अन्योन्यसमीहितं सिद्धिषलकिपतामादेर्भाजनम् ॥२२॥२३॥
फळानि कस्पवृक्षफलानि । जन्यत्रस्थानं वेदिसूकम् । कमाद्

अथ संध्याक्रमे बुत्ते कृते जप्याघमर्पणे । विवाहदर्शनायैव ताराजाले खमागते॥ રફ मिथुनैकसखीयामा कुमुदोत्करहासिनी। प्राहेयजालप्रकरं विकिरन्ती समायया ॥ २७ रत्नदीपाम्बद्धन्सानी कुम्भः सम्यगयोजयत् । ज्योतीषीन्द्रक्युकानि पद्मोद्भय इवाम्बरे ॥ २८ भूषयामास राजानं स्त्रीत्वं गच्छित्रशागमे। सन्दनागुरुकर्पूरपूरेर्मृगजकुङ्कमैः ॥ २९ हारकेयूरकटकैस्तथा कल्पलतांशुकैः। श्रगुहामावतंसैश्च माल्यैश्च विविधोचितैः॥ ३० तथा कल्पलतागुच्छैर्मन्दारैः पारिजातकैः। संतानेबंद्ररतेख मौलिना चेन्द्ररूपिणा ॥ 38 पतावताथ कालेन वधृत्वं कुम्म आययो। घनस्तनभराक्रान्तो वभूवाशु विलासवान्॥ ३२ इदं संचिन्तयामास संपन्नोऽयमहं वधुः। कामायात्मा मया देयः कार्ये काळोचितं किल ३३ इयमस्मि वधुः कान्ता भर्ता त्वं मे पुरःस्थितः। गृहाण काम मामेहि कालोऽयं तब द्वन्छयः॥ ३४ इति संचिन्त्य भर्तारमग्रस्थगहनस्थितम्। उदयन्तमिवादित्यं रतिः काममिवाभ्यगात्॥ ३५ अहं मदनिका नाम भार्यास्मि तव मानद्। पादयोस्ते प्रणामोऽयं सस्रोहं क्रियते मया ॥ ३६ इत्युक्त्वा सानवद्याङ्गी रुज्जावनमितानना । **छोलालकेन शिरसा प्रणनाम लसत्पतिम्**॥ ३७ उवाचेदं च हे नाथ त्वं मां भूषय भूषणैः। क्रमेणाप्ति च संज्वाल्य मत्पाणित्रहणं कुरु ॥ 3८ राजसेऽतितरां राजन्मां करोषि सरातुराम्। रतेर्विवाहे मदनममिभूयाधितिष्टसि॥ ३९

शास्त्रोक्तकमात् ॥ २४ ॥ २५ ॥ संध्याक्रमे संध्यायन्दनविधी ॥ २६ ॥ मिश्रुनानां प्रीतिकरत्वाक्षेकसस्वीयामा त्रियामा॥२०॥ पद्मोद्भवो बद्धा ॥ २८ ॥ मृग्जैः कस्त्रीपौष्कलकादिमिः । कुकुमैः काश्मीरैंः ॥ २९ ॥ कल्पलतोद्भृतंरशुकैवंक्षेः । सम्मिक्ह्मिक्त्रकृष्ट्रशोभेरवतंसैः रत्नगुच्छाद्युत्तंसैः । माल्यैः कण्ठादिमाल्यैविधिभूषणोचितैः ॥ ३० ॥ मौलिपदेन चूडामण्किक्ष्यते । इन्दुक्षिणा चन्द्रसद्देन ॥ ३९ ॥ वधृचितविलास-वान् ॥ ३२ ॥ कामाय कामरूपाय वराय ॥ ३३ ॥ अतएव कामत्वेनैव भर्तार् कल्पयिला मनस्याह—इयमिति ॥ ३४ ॥ कामस्य गहने वनवेदिदेशे स्थितम् ॥ ३५ ॥ सकेहं सानुरागम् ॥ ३६ ॥ लसन्तं शोभमानं पतिम् ॥ ३० ॥ संज्वास्य हुला-भ्यन्यं च ॥ ३८ ॥ रतेविवाहे प्रसिदं मदनं स्वशोभयाभिभूये-स्वयंः ॥ ३९ ॥ तां शोमाभेव वर्णयति—इन्दोरिस्वादिना । तवोरिस स्थितो हारो मेरी प्रसिद्धस्य गङ्गाप्रवाहस्य कामां शोमां तवोरिस स्थितो हारो मेरी प्रसिद्धस्य गङ्गाप्रवाहस्य कामां शोमां

इन्दोरिवांशुजालानि राजन्माल्यानि तानि ते। मेरुगङ्गाप्रवाहाभां धत्ते हारस्तवोरसि॥ 80 मन्दारकुसुमप्रोतैः कुन्तर्रुनृप राजसे। कनका समिवोहोछैर्भृङ्गैः खचितकेसरैः॥ ક્ષ रतांद्यजालैः कुसुमैः श्रिया स्थैर्पेण तेजसा । रत्नस्थानं विभो मेरुममिभूयावतिष्ठसे ॥ કર एवमादि वदन्ती तौ भविष्यन्नवदम्पती। प्रच्छन्नपूर्वदाम्पत्या मिथस्तुष्टी यभूवतुः॥ धर् महाराश्चीं मदनिकां महाराजः शिखिष्यजः। काञ्चनोपलपर्यद्वे निविष्टो भूषयत्स्वयम् ॥ 88 अवतंसेस्तथा मार्च्यमंणिरत्नविभूषणेः। वस्त्रीविलेपनैः पृष्पे रुचिरस्थानकार्पितैः॥ ४५ सा बभी भूषिता तन्वी मदनी मददायिनी। गिरिजेव विवाहोत्का कामकान्तेव कामिनी॥ ४६ महाराजो महाराश्चीं भूषयित्वेदमाह ताम्। राजसे मगशावाश्चि लक्ष्मीरिव नवोदिता॥ 80 शक्रेण सह यच्छच्या यहध्म्या हरिणा सह। यद्गीर्थाः शंभुना सार्धे तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ 85 पद्मकोशाङ्करहृदा छोलनीलोत्पलेक्षणा। आमोदशुमें झांकारा स्वास्थिता पश्चिनीय सा ४९ सुरक्तपल्लवकरा स्तनस्तवकधारिणी। त्वमनेकफला मन्ये कामकल्पतरोर्लता॥ 40 हिमशीतावदाताङ्गी ज्योत्क्राप्रसरहासिनी। पूर्णेन्दुश्रीरिवोद्युक्ता हृष्टेघाह्नादयस्यलम् ॥ ५१ तदुत्तिष्ठ वरारोहे वेदी वैवाहिकी स्वयम्।

वसिष्ठ उवाच । तत्र पुष्पळताजाळैः काण्डंप्रति शिळाङ्कितैः ॥ ५२

धते ॥ ४० ॥ खचितकेसँरधंटितिक अल्कैः ॥४१॥ रहां ग्रुजाकेरित्यादीनि राजमेरुनाधारण्येन योज्यानि ॥४२॥ वदन्तौ तौ
इत्युक्त्या राज्ञापि तत्याः शोभा वर्णितेति गम्यते ॥ ४३ ॥
काश्वनोपळळक्षणे पर्यक्षे निविष्ट उपविष्टः ॥ ४४ ॥ तत्तद्भूषणोचितस्थानके अर्थितैः ॥ ४५ ॥ कामकानता रितिरंव च
॥ ४६ ॥ नवोदितेत्यनेन प्रवेळक्ष्म्या जरतीत्वेन शोभापकर्षो
व्यज्यते ॥ ४० ॥ तत्ते मङ्गळम् । मया सहेति शेषः ॥४८ ॥
स्तनसहक्षः पद्मकोशः, अनुरागसहन्ना अङ्कुराश्च हृदि यस्याः ।
'आपं चैव हळन्तानाम्' इति भागुरिमतेन टाप् । लोलानि
नीलोत्यळानीक्षणानीव यस्याः । आमोदः शुभा अमरज्ञांकारा
यस्यास्थाविषा पद्मिनीव सा त्वं स्थितेत्यर्थः ॥ ४९ ॥ इदानी
तां कल्पळतात्वेन रूपयति—मुरकेति ॥ ५० ॥ हमशीतेत्यादीनि पूर्णेन्दुश्चियो मदनिकायाश्च साधारणानि योज्यानि॥५९॥
स्वयमळंकुर्वित शेषः । तत्र वेद्याम् । काण्डं प्रति प्रतिकाण्डं

मुक्ताकुसुमजालानां प्रकरैः स्तवकोपमैः। चतुर्दिकं चतुर्भिश्च नालिकेरमहाफलैः॥ 43 पूर्णकुम्भैस्तथा गङ्गावारिपूर्णः प्रकल्पितैः । ज्वालयामासतुस्तस्या मध्ये चन्दनदारुभिः॥ ५४ ज्वलनं ज्वालितज्वालं दक्षिणस्यं प्रदक्षिणम् । पूर्वामिमुखमेवाग्नेरत्रे पहुचविष्टरे ॥ ५५ नियोज्य दंपती कान्तौ तयोर्विषिशतुः स्वयम् । स द्वत्वा तिललाँजानि पावकाय शिखिभ्वजः ५६ उत्थायोत्थाय कान्तां स पाणिभ्यां खयमाददे । अन्योन्यं शोभमानौ तौ भवाविव वने शिवी॥५७ चक्रतुदेपती तस्य पावकस्य प्रदक्षिणम्। स्वदायं ज्ञानसर्वस्वं हृद्यं प्रेम चापलम्॥ 46 ददतुस्ती मिथोऽन्योन्यस्मितकान्तमुखश्रियौ। प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा लाजांस्त्यक्त्वाथ वह्नये ॥ ५९ भार्यावरी समं तुष्टां करी तत्यजतुः कमात्। सायमानमुखी कान्तौ चन्द्राविव नवोदितौ॥ ६० पूर्वीपरचिते पुष्पतस्पे विविशतुर्नवे । पतसिष्ठन्तरे चन्द्रश्चतुर्भागं नभस्तलात् ॥ ६१ शनैराक्रमयामास शोभां द्रष्टुमिवानयोः। तसिश्च ललनाछिद्रं द्रष्टुं दृष्टिरिवामितः॥ ६२

लोलः संचरयामास करानिन्दुर्कतागृहे । तैस्तैर्नवकथालापैरिन्दावभ्युदिते त्वथ ॥ ६३ तावासांचकतुः कान्तौ दंपती सुमुद्दर्वकम् । अथोत्थाय ज्वलद्रलदीपां काञ्चनकन्दराम्॥ દ્દષ્ટ स्वयं पूर्वोपरचितां गुप्तां विविशतुः प्रियौ । ददर्शतुर्नेयं तत्र तरुपं कुसुमकरिपतम्॥ ६५ परितो व्याप्तमुत्कीर्णेर्हेमपङ्कजराशिमिः। मन्दारादिमिरन्येश्च पुष्पैग्लानिविवर्जितैः॥ ६६ उचकैः सुप्रमाणेन निर्मितैः कुसुमैः समैः। दीर्घेन्दुबिम्बप्रतिमैस्तुषारस्थलशीतलैः॥ ६७ श्रीरोदजलधाराभं ज्योत्स्नासंपिण्डसुन्दरम्। प्रतिबिम्बर्मनङ्गस्य नतं मित्ताविव स्थितम् ॥ ६८ सुगन्धमुन्नतं कान्तं चिरादन्यतयोत्थितम्। मिथुनं पुष्पराशौ तन्त्यवीदत्परितोऽमले। तिसन्समसमाभोगे क्षीरोदे मन्दरो यथा॥ ६९

तैस्तैर्मिथः प्रणयपेशलवाग्विलासै-स्तत्कालकार्यसुमगैः प्रणयोपचारैः। सत्कान्तयोर्नवनवेन तयोः सुखेन दीर्घा मुद्दर्त इव सा रजनी जगाम॥ ७०

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू॰ लीलाविवाहो नाम पद्धत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः १०७

विसिष्ठ उवाच । अध सूर्याख्यरङ्गेण रिञ्जते भुवनोद्रे । शिखिश्वजाङ्गना प्रातर्मदनी कुम्भतां ययौ ॥

क**ळगुच्छसमाकारनवरश्रशिलाभिर**क्कितैश्विहितैः ॥ ५२ ॥ ५३॥ प्रकल्पितैस्तत्र वेद्यामलंचऋतुरिति शेषः । तस्या वेद्या मध्ये वैवाहिकं ज्वलनं प्रतिष्ठाप्य चन्दनदारुभिज्वीलयामासतुः॥५४॥ तं ज्वालितज्वालं दक्षिणावर्तशिखलाइक्षिणस्थं ज्वलनं नियोज्य प्रदक्षिणं कृत्वा तस्यामेरप्रे पष्लवविष्टरे विविशतुरिति परेणान्वयः ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ भवध भवानी च भवौ । 'पुमान् स्निया' इति पुंदोषः । शिवौ मञ्जलखरूपौ ॥ ५७ ॥ परस्परमातमदाने किं दायं परस्परं ददनुस्तमाह—खदायमिति ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ संभोगकालसां निध्यस्पृतेः समयमानमुखी ॥ ६० ॥ विवाहव्या-पारेणायः प्रहरोऽतिकान्त इति सूचयत्राह—एतस्मिन्निति । चतुर्भागं चतुर्थभागम् ॥ ६१ ॥ तस्मिस्तरपे करान् संचारया-मास । यथा कामुकस्य दिष्टिललनाछिदं द्रष्ट्रमितः करान् खिकरणान् प्रसारयति तद्वत् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ संगमसुमुद्दतंकं प्रतीक्षमाणाविति शेषः । काश्वनमयीं कन्दरां गुहां विविशतुः ॥ ६४ ॥ चन्द्रस्याप्यदृश्यलाहुसा । तत्र तल्पं दद्शेतुः । तदेव वर्णयति-कल्पितमित्यादिसार्धत्रयेण । ददर्शत्रिति

१ तथोर्दपत्योर्भध्ये स शिखिध्वज **इत्यन्वयः. २** लाजानीति

पवं महेन्द्रदर्यो ताबुभा कुम्भशिखिष्वजा । स्वयं विवाहिताविष्टी संपन्नी देवदंपती ॥

किल्यतुसि गुणर्छान्दसः ॥६५॥ ग्लानिवर्जितैरम्लानैः ॥६६॥ शोमनेन शय्याप्रमाणेनोषकैरुत्रतैः । मदनिका सल्यसंकल्पेन समैः कुसुमैर्निर्मितैर्दार्वक्षय्याकारेण दीर्घाभूतेन्दुविम्बप्रतिमैः पुष्पैः परितो व्याप्तमिति पूर्वत्रान्वयः ॥६०॥ पुनस्तल्पमेव विश्वनिष्ट— क्षीरोदेलादिना । नतं संकान्तम् ॥६८॥ चिरात् राज्यत्यागकालादारभ्य अन्यत्या अदंपतित्वेन भ्रान्त्या उदितं तन्मिथुनं खीपुंसद्दन्द्वं पुष्पराशौ तस्मिस्तल्पे न्यवीदत् । उपभोगेन तल्योपमर्दकलान्मन्दरदृष्टान्तः ॥६९॥ तयोः सत्कान्तयोसौरौलोकोत्तरः प्रणयपेशलवाग्वलासैस्तत्कालोचितपरिरम्भणादिकार्यसुमगैर्गन्थमाल्यताम्बूलार्पणादिप्रणयोपचारैर्नवन्वन संभोगसुखेन दीर्घा सारजनी मुद्दुर्तमिव जगाम ॥ ००॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पद्वत्तरशस्तमः सर्गः ॥ १०६॥

नानागिरिबिहारादि तथा मायेग्द्रदर्शनम् । असंसक्तिपरीक्षार्थं स्वर्गोद्धानादि वर्ण्यते ॥ १॥ रत्रेण रक्तक्रव्येण ॥ १ ॥ देवसदशभोगाव्यस्तादेवदंपती

नपुंसकत्वमार्थम्. ३ अनन्तस्येति पाठः.

3

8

ų

દ્

विलेसतुर्विचित्रासु प्रत्यहं वनराजिषु । प्रपक्षफलभारासु पुष्पपहविनीपु च ॥ दिवा प्रीततरौ मित्रे यामिन्यामिष्टदंपती। प्रभादीपाविव श्रिष्टी न वियुक्ती बभूवतुः॥ रेमाते वनकुञ्जेषु गुहासु च महीभृताम्। तमालजालखण्डेषु मन्दारगहनेषु च ॥ सह्यदर्दुरकैलासमहेन्द्रमलयेषु च। गन्धमादनविन्ध्यादिलोकालोकतटेषु च ॥ दिनैक्षिमिस्त्रिभिर्गत्वा निद्रां गतवति प्रिये। चुडाला राजकार्याणि कृत्वा स्वभ्याययौ पुनः ॥७ ती दिवा सुहदी मित्रे दंपती कुम्भभूमिपी। नानाकुसुमसंवीतौ तस्यनुर्मुदितौ मिथः॥ मासमेकं महेन्द्राद्रौ रम्ये सरळसंकुले। रत्नकुड्ये गुहागेहे पूजितौ सुरकिंनरैः॥ हस्तरुभ्योदितामोघमन्दारवनमालिते । एवं शुक्तिमतः पृष्ठे पक्षं कल्पलतागृहे ॥ १० मासद्वयं पक्षवतो गिरेर्दक्षिणदिक्तदे। पारिजातवने देव पुष्पस्तबकमण्डपे॥ ११ जम्बूखण्डतले मेरोः पादे जम्बृनदीतटे। जाम्बूनदमये मासं जम्बूफलरसासवैः॥ १२ दशोसरकुरूणां च मण्डले दिवसानि तौ। कोसलेषुत्तरस्थेषु सप्तविंशतिवासरान्॥ १३ एवमन्येषु देशेषु विचित्रेषु महीभृताम्। स्थितवन्ती महाभागी सुहृदी निशि दंपती॥ १४ ततो यातेषु मासेषु शनैः कतिपयेषु सा । चुडाला चिन्तयामास देवपुत्रकरूपिणी ॥ १५ स्रेक्षपभोगभारेण परीक्षेऽहं शिखिध्वजम्।

॥ २ ॥ ३ ॥ यामिन्यां रात्री । ऋष्टी युक्तो ॥ ४ ॥ ५ ॥ सहाादयः सप्त पर्वताः ॥ ६ ॥ प्रिये निद्रां गतवति स्वनगरं गत्वेति शेषः ॥ ७ ॥ ८ ॥ कक् कियत्कियत्काछं तस्थतुस्तत्रा-इ-मासमित्यादिना । पृजितौ प्रशस्तौ ॥ ९ ॥ हस्तळभ्यान्यु-दितानि उद्भुतानि धुंत्रुपारोगजरावपहारिलादमोघानि फलकु-सुमिक्सलयादीनि येषां तथाविधर्मन्दौर्यनमालिते संजातव-नमाळे । शुक्तिमतः पर्वतविशेषस्य पृष्ठे ॥ १० ॥ पक्षवतो गिरे-मैंनाकस्य । देवभोग्ये पुष्पस्तवकमण्डपे ॥१९॥ मेरोर्दक्षिणपादे जम्बूद्वीपकेतुर्जम्बृदृक्षः प्रसिद्धस्तत्संततिजे जम्बूवनखण्डतले त-स्थतुरिति सर्वत्रानुषद्गः। जम्बूफलानां गजप्रमाणानां रसलक्ष-गैरासवैः पेयैः खेददौर्गन्ध्यजरामयादिनिर्मुक्कस्थिरयौवनाविति पुराणप्रसिद्धनुसारेणाध्याहार्थम् ॥ १२ ॥ उत्तरकुरूणां मण्डले दश दिवसानि तौ तस्थतुः॥१३॥१४॥१५॥ परीक्षे परीक्षिष्ये । वर्तमानसामीप्यालद् । रतिमासिकम् । परीक्षया दढीकृताना-सक्तिरयं कदाचिदपि भोगेषु रतिं मा एष्यति नैवेलर्थः ॥१६॥

मा कदाचन चेतोऽस्य भोगेष् रतिमेष्यति ॥ १६ इति संचिन्त्य चुडाला मायया विपिनावनौ। आगतं दर्शयामास ससुराप्सरसं हरिम्॥ १७ इन्द्रमभ्यागतं दृष्ट्रा परिवारसमन्वितम्। यथावत्पूजयामास यनसंस्थः शिखिष्वजः॥ १८

शिखिध्वज उवाच।

आत्मना किं फता दूरादभ्यागमकदर्थना। देवराज यथा तन्मे प्रसादाद्वक्रमहंसि॥ १९ इन्द्र उवाच।

इमे वयमिहायातास्त्वहुणातिशयेन खात्। हृदि लग्नेन सुत्रेण खगा वनगता इव ॥ २० उत्तिष्ठ स्वर्गमागच्छ तत्र सर्वे त्वदुनमुखाः। त्वहुणश्रवणाश्चर्याः स्थिता देवाङ्गनागणाः ॥ 38 पादुकागुटिकाखङ्गरसादीदमथापि च। गृहीत्वा सिद्धमार्गेण स्वीकुरु स्वर्गमण्डलम् ॥ २२ आगत्य विविधा भोगास्त्वया विश्वधसद्मनि । जीवन्मुकेन भोक्तव्यास्तेन त्वामहमागतः॥ २३ विमानयन्ति संप्राप्तां न तिरस्करणैः श्रियम् । नामिवाञ्छन्ति न प्राप्तां त्वाहशाः साधु साधवः२४ अविघ्रमागतेनाद्य सुखं विहरता त्वया । स्वर्गः पवित्रतां यातु हरिणेव जगत्रयम् ॥ २५

शिखिध्वज उवाच।

सर्वे स्वर्गसमाचारं वेद्यि देवाधिनायक। किंतु सर्वत्र मे स्वर्गो नियतो नतु कुत्रचित्॥ सर्वत्रैव हि तुष्यामि सर्वत्रैव रमे प्रभो। अवाञ्छनत्वान्मनसः सर्वत्रानन्दवानहम् ॥ २७

सुररप्सरोमिश्र सहवर्तमानं हरिमिन्द्रम् ॥ १७ ॥ यथावत् यथाशास्त्रमर्ध्वपाद्याद्यपचारैः ॥ १८ ॥ अभ्यागमलक्षणा कद-र्थना श्रमः किं किमर्थ कृता यथा यत्प्रकारेण प्रयोजनेन तत् प्रयोजनं वक्तुमर्हसीत्यर्थः ॥ १९ ॥ स्वात् स्वर्गात् ॥ २० ॥ लद्भुणश्रवणश्रयुक्तमाश्चर्य विस्मयो येषा यासा च देवाश्च तदन्ननागपाश्च देवान्ननागणाः ॥ २१ ॥ गगनगमनशक्तिशू-न्यस्य मे कथं खर्गे आगमनं तत्राह---गादुकेति । अथ सिद्ध-न्तरविमानदिव्याश्वाद्यपि च ॥ २२ ॥ तेन लदाह्वानप्रयोजनेन ॥ २३ ॥ प्रखाख्यानं हृदिस्थमालक्ष्याह्—विमानयन्तीति ॥ २४ ॥ बिलद्वारपालनाय षद्मभीहरणाय च पातालेऽपि हरे-र्विहारप्रसिद्धेजंगत्रयमिति ॥ २५ ॥ खगसम आचारः सुख-विहरणं यस्मिस्तथाविषम् । खर्गेण समं सुखमाचरतीत्यणन्तं वा । सर्वे देशं । तथा वेदने हेतुस्लिय को विशेष इति चेत-माह—किलिति । मदिमतः खर्गो भूमार्त्भव । सब सर्वश्रे-वेति भावः । नियतः परिच्छित्रः ॥ २६ ॥ पूर्णकामलादपि

नियतं किंचिदेकत्र स्थितं स्वर्गकमीद्यम् । शक्र गन्तुं न जानामि त्यदाशां न करोम्यहम् २८ शक्र उवाच । साधो विदितवेद्यानां परिपूर्णधियां समम् । सज्जनाचरितं युक्तं मन्ये भोगोपसेवनम् ॥ २९ देवेशे प्रोक्तवत्येयं तृष्णीमेव स्थिते नृषे । किमितो नापयास्येष त्यमिति प्रोक्तवान् हरिः ३० नाहमधैय कालेन यदतीति शिखिध्यजे।
कल्याणं तेऽस्तु कुम्मेति वदम्नन्तिधैमाययौ॥ ३१
तद्देववृन्दमिखलं त्रिद्शेशयुक्तं
तत्र क्षणायलमदद्यमभृद्धितीयम्।
कल्लोलराशिरिय वारिनिधौ प्रशान्ते
वाते स्फुरन्मकरफेनफणीन्द्रवृन्दम्॥ ३२

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे शक्रगमनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः १०८

बसिष्ठ उवाच ।
तां मायां शममानीय चूडाला समचिन्तयत् ।
दिष्ट्या भोगेच्छया नायं हियते वसुधाधिप ॥
शौन्तः समसमाभोग एवं शक्रसमागमे ।
असंरम्भमहेलं च कृतवान्त्यावहारिकम् ॥
भूय एव प्रपञ्चेन विमृशाम्येव सादरम् ।
रागद्वेषप्रधानेन केनचिद्वदिहारिणा ॥
इति संचिन्त्य सा रात्राविन्दावभ्युदिते वने ।
यहीतमङ्गनाक्षपं कान्ता मदनिका सती ॥
वाते वहति फुल्लाक्ये मधुरामोदमांसले ।

मे सर्वत्र मुखमित्याह—सर्वत्रेति ॥ २७ ॥ तुन्छं खर्ग स्व-र्गकं गन्तुं न जानामि न संभावयामि । तथान्वासंभाव्यविषये आज्ञापनं तवेवानुचितं नतु मम तदकरणमपराध इति भावः ॥ २८ ॥ पूर्णिययां भोगोपसेवनं भोगानुपसेवनं च समम् । तत्रापि भोगोपसेवनं सज्जनैः प्रारच्धक्षयायाचरितमतस्तद्युक्तं मन्ये इत्यर्थः ॥ २९ ॥ देवेशे एवं पुनः प्रोक्तवत्यपि खर्ग गन्तुमनिच्छया नृपे तूष्णी स्थिते सति एष एवंविधो निरपे-क्षस्तं यदि तहीहमितः किं नापयामि । असंपन्नागमनप्रयोज-नस्य ममापयानमेव युक्तमिति हरिरिन्द्रः खेदं सूचयन् प्रोक्त-बान् ॥ ३० ॥ अहमर्यव न स्वर्गमागच्छामि किंतु पुना राज्ये प्रतिष्ठितः कालेन प्रागिव लदरिनिवर्हणादिप्रयोजनार्थमागमि-ष्यामीत्याद्ययेनाधीत्तया शिखिष्वजे वदति सति हे कुम्भ, ते राजामिप्रेत पुना राज्यप्राप्तिलक्षणं कल्याणमस्लिति कुम्भं प्रति वदमन्तर्धिमन्तर्धानमायया हरिः ॥ ३१ ॥ इन्द्रे अन्त-धिमागते तेन त्रिदशेशेन युक्तं तद्वितीयं देवयुन्दमपि क्षणाद-हर्यभूत्। यथा बारिनियी वाते प्रशान्ते सति स्फुरन्ति व्याकुलानि सकरफेनफणीन्द्रशृन्दानि यस्मिस्तयाविधः कल्लोल-राशिरप्यदृश्यो भवति तद्वदित्यर्थः ॥ ३२ ॥ इति श्रीवासिष्ठ-महारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

१ कंचित् रति पाठः. २ शातः रति पाठः.

संध्याजप्यपरे नद्यास्तीरसंस्थे शिक्षिण्यजे ॥ ५ संतानकलतागेहं नीरन्ध्रेः पुष्पगुच्छकैः । शुद्धान्तं चनदेवीनां प्रविवेश मदान्विता ॥ ६ तत्र संकल्पिते पुष्पशयने माल्यमालिता । कण्ठे संकल्पितं कान्तं खिङ्गमादाय संस्थिता ७ आगत्यान्विष्य कुञ्जात्स प्रदद्शं शिक्षिष्वजः । लतागेहे मदनिकां कण्ठे खिङ्गं मनोहरम् ॥ ८ कुन्तलावलितस्कन्धं समालब्धं च चन्दनैः । श्रायनावृतिनिक्षंपपर्याकुलितशेखरम् ॥ ९ हेमामे द्विगुणाकारवालाबाह्यधानके ।

ष्ट्रं कोधपरीक्षार्थं पिङ्गसङ्गश्र मायया । राज्या प्रदर्श्यते राज्ञे निजरूपं च पाकतः ॥ १ ॥

तामिन्दागमनरूपां मायां शममानीय उपसंहत्य । हियते वशीकियते ॥ १ ॥ सदा विकियाश्चर्यालात् समेन आकाशाः दिना सम आमोगो मुखाद्यवयवस्थितिर्यस्य । असंरम्भमसाध्व· समहेलं च व्यावहारिकमर्थिपादादिना पूजनमु**चि**तोतयादिः व कृतवान् ॥ २ ॥ अप्यर्थे एवकारः । केनचिद्रागद्वेषप्रवान-प्रपत्रेन वृद्धिहारिणा वृद्धिक्षोभकेण ॥ ३ ॥ गृहीतमञ्जनारूप-मिति पदयोः कण्टे संकल्पितं कान्तमिति चतुर्थे संबन्धः ॥४॥ फुहाब्ये पुष्पिततरुलतासंपन्ने वाते मलयानिले बहति सति नीरन्ध्रेः पुष्पगुरुछकैहपलक्षितं वनदेवीनां शुद्धान्तं संतानकल-तागेहं प्रविवेशेति परेणान्वयः ॥ ५ ॥ ६ ॥ तत्र मास्येर्मान लिता अलंकृता सती मायया संकल्पित**मनुरूपं युवानमङ्गनारू**-पमक्रनानामिवानुदूत्रस्मश्वादिव्यजनं बोडशवर्षाकृतिरूपं यस्य रमश्रुलाच्छि सिध्वजात्कान्तं तथाविधमतएव खिन्नं विटं कण्ठे गृहीतमादाय संस्थितेत्यन्वयः ॥ ७ ॥ जप्यान्ते शिखिष्वजः संध्याजप्यस्थानात् कुजादागत्य मदनि-कामन्विष्य कल्यलतागेहे मदनिकां तत्कण्ठे मनोरमं खिन्नं च ददर्श ॥ ८ ॥ खिन्नं विशिनष्टि--कुन्तलेखादिना । मदनिका-कुन्तलेः सकुन्तलेथावलितस्कन्धम्। समालब्धं लिप्तम्। शयेन भावृत्या परिवर्तनेन निष्पेषेण च पर्याकुलितः शेखरचूडाबन्धो यस तम् ॥ ९ ॥ आकुन्ननाद्विगुणाकारे बालाबाहुरुक्षणे

संसक्तश्रवणापाङ्गकपोछतलकुन्तलम् ॥ १० मिथुनं तह्दर्शाथ मिथः प्रहसिताननम्। अन्योन्यवद्गासक्तं छन्नं कल्पलतांशुकैः॥ ११ आलोलमान्यशयनं मदनातुरमाकुलम्। अङ्गलब्रच्छलेनात्मरागमन्योन्यमर्पयत्॥ १२ अभ्युन्मुखं समानन्दमुद्दाममद्मन्थरम्। परस्पराहतं पुष्पैर्वक्षोभ्यां पीडितस्तनम् ॥ १३ तदालोक्याविकारेण चेतसालं तुतोष सः। अहो सुसं स्थितौ सिङ्गावित्याह स शिखिष्वजः१४ तिष्ठताङ्क यथाकामं सुखं खिङ्गी यथास्थितम् । विश्रं माकरवं भीतावित्युक्तवा निर्जगाम सः॥ १५ ततो मुहूर्तमात्रेण प्रपञ्चं तमुपेश्य सा। निर्ययौ दर्शयन्ती स्वं रतिफुल्लाकुलं वपुः॥ १६ उपविष्टं ददर्शैनं नृपं हेमशिलातले। समाधिसंस्थमेकान्ते मनाग्विकसितेक्षणम्॥ १७ तं प्रदेशमुपागम्य लजावनमितानना । तूष्णीमासीत्क्षणं खिन्ना म्लाना मदनिकाङ्गना १८ क्षणाच्छि विध्वजो ध्यानाद्विरतस्तामुया चह। अत्यन्तमधुरं वाक्यमिद्मश्चन्धया विया ॥ १९ तन्वि किं शीघ्रमेव त्वं विधितानन्दमागता। आनन्दायेव भूतानि यतन्ते यानि कानिचित् 30 भूयस्तोपय तं गच्छ कान्तं प्रणयवृत्तिभिः॥ परस्परेप्सितक्षेहो दुर्लभो हि जगन्नये॥ २१ अहमेतेन चार्थन नोद्वेगं यामि मानिनि। यद्यदिष्टतमं लोके तत्तदेवं विजानता ॥ २२ अहं कुम्मश्च तन्वङ्गि वीतरागाविहेतरा।

उपधानके उपवर्हे संसक्तं श्रवणादिचतुष्टयं यस्य ॥१०॥ मिथुनं बीपुंसद्वन्द्वम् ॥ ११ ॥ अङ्गानां लग्नं संश्वेषस्तच्छलेन । अर्पयत् भासंजयत् ॥ १२ ॥ परस्पराभ्युन्मुखम् ॥ १३ ॥ अविकारेण कोधविकाररहितेन ॥ १४ ॥ खदर्शनाद्गीतौ ता प्रति हे अन्न, यथाकामं तिष्ठत तिष्ठतम् । अहं विद्रं माकरवं इत्युक्ला निर्ज-गाम ॥ १५ ॥ तं मायाप्रपञ्चमुपेक्ष्य उपसंहत्येतियावत् । रखा विटसंभोगेन फुल्लं विकसितमाकुलं च ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ यानि कानिचित् सर्वाणीत्यर्थः ॥ २० ॥ परस्परमीप्सितः अकृत्रिम इति यावत् ॥ २१ ॥ विजानता पुंसा यद्यदिष्टतमं तत्तदेवं लाहशमेव परोपभोग्यमिति श्लेयमिति शेषः ॥ २२ ॥ नच लदपराधेन मम कुम्मे अविस्नम्भ इलाशयेनाइ—अहमिति । त्वं क्रम्भादितरेवेति शेषः । अतो यदिष्कित तित्रःशद्धं क्रुष् ॥ २३ ॥ २४ ॥ अनेन असि प्रार्थितेति शेषः ॥ २५॥ अवला पत्या ऊढा तत्पारतद्वयात्खा-त्रक्यवस्त्रीना। कुमारी अनुहा वा तरुणी एकान्ते जारं प्राप्य रतेः रोधनं प्रतिबन्धं न करोत्येव । अयं स्त्रीस्त्रभाव इत्यर्थः । दुर्वासःशापजा बाला त्वं यदिच्छसि तत्कुरु ॥ २३ मदनिकोवाच ।

एवमेष महाभाग स्त्रीस्वभावो हि चश्चलः।
कामो हाष्ट्रगुणः स्त्रीणां न कोषं कर्तुमर्हसि॥ २४
अवलाहमनेनास्मि रात्रों गहनकानने।
त्विय संध्याजपपरे किं करोमि वराकिका॥ २५
अवला वा कुमारी वा जारं न रितरोधनम्।
करोति परिखिद्रेन नाङ्गे स्त्रे विनिवेदीतम्॥ २६
स्त्रियः सुन्दरतां याताः पुरःपुंसामसङ्गमे।
मन्युर्निषेध आकन्दः सतीत्वं किं करिष्यति॥ २७
अवला स्त्री तथा बाला मृदाहमपराधिनी।
सन्तुमर्हसि नाथ त्वं श्रमावन्तो हि साधवः॥ २८

शिखिध्वज उवाच।

मन्युर्मम न वालेऽन्तर्विद्यते ख इव द्रुमः। केवलं साधुनिन्दात्वाक्षेच्छामि त्वामहं वधूम्॥२९ सुद्दत्वेन वनान्तेषु पूर्ववत्सुखमङ्गने। वीतरागतया नित्यं सममेव रमावहे॥ ३०

वसिष्ठ उचाच।

पवं समतया तत्र स्थिते तस्मिन्छिसिध्वजे।
चूडाला चिन्तयामास तत्सत्वेनोदिताशया॥ ३१
अहो वत परं साम्यं भगवानयमागतः।
वीतरागतयाऽकोधो जीवन्मुकोऽवितष्ठते॥ ३२
नैवं हरन्ति ते भोगा न महत्योऽपि सिद्धयः।
न सुखानि न दुःखानि नापदो नच संपदः॥ ३३
चिन्तिताः सकला एकं प्रयान्त्येनमनिन्दिताः।
मन्ये महर्द्धयः कान्ता नारायणमिवापरम्॥ ३४

परिखिन्नेन परिहृतजारेण तु दैवात्संपन्नरतिविधेन स्व अङ्गे देहे मनःप्राणादीनां विनिवेशितम् । भावे क्तः । स्थैर्यं न करोति । तरलतरमनः प्राणा भूला संतप्यत इत्यर्थः ॥ २६ ॥ स्त्रीणां हि पुंबशीकारसमर्थसीन्दर्यालाभ एवेकः पुंसामसमागमे हेतुर्नान्यः। यदि स्त्रियः पुंवशीकारसमर्था सुन्दरतां याताः प्राप्ता एकान्ते च पुंसां पुरो भवन्ति तदा तासामसंगमे न कश्चिद्वेतुः । नन्वभि-साक्षिकतया विवाहितस्य भर्तुमन्युः शास्त्रीयः परपुरुषसंगमनि-षेधो जनापवादलक्षण आकन्दः खपातित्रत्यभक्षश्च विवेषहशा पर्यालोच्यमाना जारासंगमे हेतवः किं न स्युस्तत्राह -- मन्यु-रिति । प्रबलतररितरायबाधितास्ते न जारसः निरोद्धं समर्था इति भावः ॥ २० ॥ अतएव क्षमापयामीत्याशयेनाह-अब-लेति ॥ २८ ॥ खे आकाशे हम इव । वधूं भार्यो नेच्छाम ॥ २९ ॥ ३० ॥ तस्य सत्वेन रागद्वेषवासनाश्चन्यतया परी-क्षितचित्तेन । उदिताशया हृष्टा ॥ ३१ ॥ अक्रोध इति च्छेदः ॥ ३२ ॥ ते इन्द्रप्रार्थिता भोगाः सिद्धयश्च ॥ ३३ ॥ चिन्तिता मद्भिप्रताः सकला जीवन्युक्तलक्षणभूताः शान्ति-

आत्मवृत्तान्तमिस्तं तमेनं सारयाम्यहम्।
कुम्मरूपिमदं त्यक्त्या चूडालैव भवाम्यहम्॥ ३५
हति संचिन्त्य चूडाला चूडालावपुरक्षता।
दर्शयामास तत्राशु त्यक्त्वा मदनिकावपुः॥ ३६
तसान्मदनिकादेहाचूडाला निर्गतेव सा।
बभाषस्य पुरो युक्ता निर्गतेव समुद्रकात्॥ ३७

तां दद्शीनवद्याङ्गी पुनः प्रणयपेशलाम् । कान्ता मदनिकामेव चूडालां द्यितां स्थिताम् ३८ समुदितामिव माधवपिश्वनी-मुपगतामिव भूमितलाच्छ्रियम् । प्रकटितामिव रक्तसमुद्रका-त्परिददर्श् निजां द्यितां नृपः ॥ ३९

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चू० चूडाळाखरूपदर्शनं नाम अग्रोत्तरशततमः सर्गः॥१०८

नवाधिकदाततमः सर्गः १०९

₹

R

4

દ્

૭

विसप्त उवाच।
अथ तां दियतां दृष्ट्वा विस्मयोत्फुललोचनः।
दिखिष्वज उवाचेदमाश्चर्याकुलया गिरा॥
का त्वमुत्पलपत्राक्षि कृतः प्राप्तासि सुन्दरि।
किमिहासि कियत्कालं किमर्थमिह तिप्तसि॥
अङ्गेन व्यवहारेण सितेनानुनयेन च।
मम जाया विलासेन तत्कलेवोपलक्ष्यसे॥
च्युडालोवाच।
प्रवमेव प्रभो विदि च्युडालासि न संदायः।
अक्षियेण हेरेन क्रायोऽस्यद्य गया स्वयप्त॥

प्यमेष प्रभो विदि चूडालासि न संशयः।
अकृत्रिमेण देहेन लब्धोऽस्यद्य मया स्वयम्॥
कुम्भादिदेहनिर्माणैस्त्वां बोधयितुमेव मे।
प्रपञ्चः शतशास्त्वमिह यातो वनान्तरे॥
यदा राज्यं परिस्वज्य मोहेन तपसे वनम्।
स्वमागास्त्रसमृखेव त्वद्वोधायाहमुद्यता॥
अनेन कुम्भदेहेन मयैव त्वं विबोधितः।
कुम्भादिदेहनिर्माणं त्वां बोधयितुमेव मे॥
मायया नतु कुम्भादि किंचित्सस्यं महीपते।

क्षमार्धर्यतृस्यादिरूपा अनिन्दिता महर्द्वय एकमेनं प्रयानित प्रामुवन्ति । आश्रयन्तीतियावत् ॥ ३४ ॥ तमेवंगुणविशिष्टला-त्खरृत्तान्तस्मारणयोग्यभूतमेनं प्रति स्मारयामि ॥ ३५॥३६ ॥ युक्ता योगधारणावती समुद्रकारसंपुटकान्निगेतेव ॥ ३७ ॥ प्रणये भर्तृचित्तानुरक्षने पेशलां चतुराम् । दियतां पूर्वदयि-ताम् ॥ ३८ ॥ माधवे वसन्ते समुदितां पिद्मानीं कमिलनी-मिव । अथवा समुदितां समृद्धामाविर्भूतां वा माधवस्य विष्णोः पिद्मानीं पद्मदस्तां श्रियमिव । रामावतारावसाने रामस्य विष्णु-भावे प्राक्सीतात्वेन भूमितलप्रविष्टां ततो भूमितलात्पुनरुपगतां श्रियमिव रत्नसंपुटकात्प्रकटितां रत्नश्रियमिव च नृपो निजां दियतां चूडालां परिदद्शे । पुरो द्वर्शेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणसात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टो-सर्काततमः सर्गः ॥ १०८॥

रङ्का रङ्का मुपो ध्यानाहुङ्का सर्व सुविक्तितः। तुरः प्रशस्य खुडाकामालिक्रपात्रानयश्चिशाम् ॥ १ ॥ इदं वस्यमाणम् ॥ १ ॥ कुम्भादिरूपेण लमेव किमिहासि। कियरकालं किमर्थं वा इह मत्संनिधौ तिष्ठसि। यदापि कुम्मः

अथो विदितवेद्यस्त्वं ध्यानेनैतदस्त्रण्डितम्॥ 4 सवे पश्यसि तत्त्वज्ञ ध्यानेनाश्ववलोकय । अथ चुडालयेत्युक्तो बद्दा परिकरं नृपः॥ 9 आत्मोदन्तं विदेषेण ध्यानेनामस्रमेक्षत । अंभिराज्यपरित्यागाचुडाळाद्दर्शनावधि ॥ १० सर्वे मुहूर्तेध्यानेन चात्मोदन्तं ददर्श सः। आराज्यसंपरित्यागाद्वर्तमानक्षणक्रमम् ॥ ११ सर्वमारोक्य भूपालो विरराम समाधितः। समाधिविरतौ हर्षविकासिनयनाम्बुजः ॥ १२ विसार्ये तरसा बाह्न पुलकोज्ज्वलतां गतो । गलदङ्गं घनकेहं मुञ्जद्वाष्पं स्फुरत्स्पृहम्॥ १३ आलिलिङ्ग चिरं कान्तां नकुलो नकुलीमिव। तयोरालिङ्गने तरिंसस्तत्र भावो बभूव यः॥ १४ न स वासुकिजिह्वामिर्वकुं हर्षेण शक्यते। दिविस्थाविव पङ्केन रुताविव मिलत्तन् ॥ १५ दौळाविव समुत्कीर्णौ श्रिष्टावास्तां चिरं प्रियौ। मुहूर्तेन गलद्धर्मजली पुलक्षपीवरी ॥ १६

स्थितिकालप्रमाणं जानात्येव तथाप्यस्या वेषान्तरेण कुम्भाग-मनात्प्रागपि स्थितिसंभावनात्कियत्कारुमिति प्रश्नः ॥ २ ॥ अङ्गेन अवयवसंस्थानेन तचेष्टालक्षणव्यवहारेण अनुनयेन प्रेम-वाक्प्रबन्धरीत्या मम जायायाश्रृहालायाः प्रसिद्धेन विलासेन तस्याः कला मूर्तिरिव उपलक्ष्यसे दृश्यसे ॥ ३ ॥ अकृत्रिमेण सहजेन ॥ ४ ॥ ५ ॥ तत्त्रभृति तदात्रभृत्येव ॥ ६ ॥ ७ ॥ सत्यमकाल्पनिकम् । ध्यानेन प्रागुक्तयोगधारणया ॥८॥ परमसि द्रक्ष्यसि । परिकरं तादशधारणानुकूलासनादि ॥ ९ ॥ अभि उपरि ॥ १० ॥ आवर्तमानक्षणक्रममिति अत्राप्याङनु-कृष्यते ॥ ११ ॥ १२ ॥ पुलकोज्बलतां गतौ बाह्न विसार्ये प्रसार्य आलिलिश्रेति परेणान्वयः ॥ मलद्त्रं छिन्नावयवम् । चलारि कियाविशेषणानि ॥ १३ ॥ भावशब्दैनात्राभिव्यक्तः परस्परानुरागलक्षणः स्थायिभावः । यो यादशो वाचामगोचरः परमानन्दरूपः श्रुकाररसो बभूव स वासुकिजिह्नाभिरपि वक्तुं न शक्यत इलम्बयः ॥ १४ ॥ दिविस्थी चन्द्रसूर्योदमायाः मिव मिलत्तन् पद्देनार्द्रग्रदा कृताविष ॥ १५ ॥ शैली एक-

१ आस्त्व राज्य इति पाठः

बाह्न विश्वथतामीषश्चिन्यतस्तौ शनैः प्रियौ । अमृतापूर्णहृदयौ संशुन्यहृदयोपमौ ॥ 80 उन्मुक्तभुजमास्तां तावलक्षस्थितलोचनम् । घनानन्दक्षणं स्थित्वा तृष्णीं प्रणयपेशलम् ॥ कान्तां चिवुकसंलग्नकरः प्रोवाच भूपतिः । अस्पन्तमधुरस्निग्धः कान्तः स्वकुलयोषिताम् १९ पुण्यश्चरति निष्पन्दः स्वादुर्नामामृतादपि। कियत्प्रमाणस्तन्वक्या त्वया बालेन्दुमुग्धया ॥ २० अनुभूतिध्यरं क्लेशो भर्तुरर्धेन दारुणः। पर्व दुरुत्तरात्तसात्संसारकुहरादहम् ॥ २१ उत्तारितो यया बुद्ध्या सा हि केनोपमीयते। अरुन्धती राची गौरी गायत्री श्रीः सरस्वती ॥ २२ समस्ताः पेऌवायन्ते तव तन्त्र्या गुणश्रिया । **धीःश्रीः कान्तिः क्षमा मैत्री करुणाद्यास्तु सुन्दरि**२३ कान्तास्वाकारकान्तासु प्रथमेवाभिलक्ष्यसे । परेणाध्यवसायेन त्वयाहमवबोधितः॥ 28 केन प्रत्युपकारेण परितुष्यति ते मनः। मोहादनादिगहनादनन्तगहनादपि॥ 24 पतितं व्यवसायिन्यस्तारयन्ति कुलस्त्रियः । शास्त्रार्थगुरुमन्त्रादि तथा नोत्तारणक्षमम्॥ રદ यथैताः स्नेहशालिन्यो भर्तृणां कुलयोषितः । सखा ञ्राता सुद्दञ्जृत्यो गुरुमित्रं धनं सुखम् ॥ २७ शास्त्रमायतनं दासः सर्चे भर्तुः कुलाङ्गनाः। सर्वदा सर्वयत्नेन पूजनीयाः कुळाङ्गनाः॥ २८ लोकद्वयसुखं सम्यक्सर्वं यासु प्रतिष्ठितम्। निरिच्छायाः प्रयातायाः पारं संसारवारिधेः ॥२९ कथमस्योपकारस्य करिष्ये ते प्रतिकियाः। मन्ये कुलाङ्गनां लोके लोके सर्वास्त्वयाधुना॥ ३०

चिलासचरकीर्णपरस्परालिङ्गितमूर्ता इव श्लिष्टी मिलिती निर-मास्ताम् ॥ १६ ॥ आनन्दातिशयेन मनसो जडीभावेन तत्स-द्भावव्यञ्जकलिङ्गादर्शनात्संग्र्न्यहृदयोपमी ॥ १७ ॥ लक्ष्ये लो-वनस्थेर्यहेतोर्मनसो जडीभावादेवालक्षस्थितलोचनं यथा स्या-तथा आस्ताम् । प्रणयपेशलं यथा स्यात्तथा कान्तां प्रति उवा-चेति परेणान्वयः ॥ १८ ॥ १९ ॥ रतिनिष्पन्दोऽनुरागर-सोऽत्यन्तमाधुर्यदिविशेषणचतुष्टयविशिष्टः कियत्प्रमाणो वि-स्तीर्ण इति यावत् ॥ २० ॥ भर्तुरर्थेन पुरुवार्थसिद्धिप्रयोजनेन **हेतुना ॥ २१ ॥ यथा भर्तृक्षेहबुद्धा । सा बुद्धिः ॥ २२ ॥** धीः श्रीरिलाचा दक्षकन्या आकारेण सौन्दर्येण कान्तासु स्त्रीषु श्रेष्ठाः प्रसिद्धास्ताखपि त्वं प्रथमा श्रेष्ठा सतीवाभिरुक्ष्यसे इति परेणान्वयः ॥ २३ ॥ २४ ॥ कृतार्थायास्ते मनः केन प्रत्यु-पकारेण परितुष्यति । येन तुष्यति तादशः प्रत्युपकारो दुर्लभ इति भावः॥२५॥ शासार्थेत्यादिरतिशयोक्तिः प्रशंसार्था ॥२६॥ ॥ २०॥ २८॥ निरिच्छायाः कृतकृत्यायास्ते प्रत्यपकारेऽह- नारीसौजन्यचर्चासु व्यपदेश्या भविष्यसि । त्वां निर्मितवतो धातुर्गुणजालातिशायिनीम् ॥३१ मन्ये प्रकुपिता नूनमरुम्धत्यादिकाः स्थियः। सती त्वं रूपसीजन्यगुणरत्नसमृद्धिके॥ ३२ पहि मे त्वहुणोत्कस्य पुनरालिङ्गनं कुरु। वसिष्ठ उवाच। इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीं चुडालां तां शिखिष्वजः३३

आलिलिङ्क पुनर्गाढं नकुलो नकुलीमिव। खुडालोवाच।

देव शुष्कित्रयाजालपरे त्वय्याकुलात्मनि ॥ 58 भूयोभूयो भृशमहं त्वदर्थ दुःखिताभवम्। तेन त्यद्वबोधात्मा स्वार्थ एवोपपादितः॥ 34 मया तदत्र किं देव करोषि मम गौरवम्। शिखिध्वज उवाच।

त्वया यथा वरारोहे स्वार्थः संपाद्यते शुभः ॥ ३६ तमिदानीं तथा सर्वाः साधयन्तु कुलाङ्गनाः। चुडालोवाच ।

बुध्यसे कान्त विश्रान्तो जगजालतटे विभो॥ ३७ अद्य तं प्राक्तनं किंचिन्मोहं समनुपद्यसि। इदं करोमि नेदं तु प्राप्नोमीदमिति स्थितिम् ॥ ३८ अन्तर्हससि तां किश्वदृशापेलवतां धियः। तास्तुच्छतृष्णाकलनास्ताः संकल्पकुकल्पनाः ॥३९ त्ययि नाद्यायलोक्चन्ते देव व्योद्गीव पर्वताः। किं त्वमद्याङ्ग संपन्नः किंनिष्टोसि किमीहसे॥ ४० कथं परयसि पाश्चात्यं देहचेष्टाक्रमं विभो।

शिखिष्यज उवाच। सुमनःपूर्णनीलाह्ममालासारविलोचने ॥ प्रश त्वमेव यस्य यस्यान्तत्तत्त्तस्याहमुपास्थितः ।

मसमर्थं इत्याह—निरिच्छाया इति ॥ २९ ॥ कुलाइनां मन्ये **लामिति शेषः । लोके प्रसिद्धाः सर्वाः कुलान्ननास्लयाऽधुना** जिता इति शेषः ॥ ३० ॥ नारीणां सौजन्यादिगुणोत्कर्षच चीस प्रयमव्यपदेश्या भविष्यसि ॥ ३१ ॥ खापेक्षया गुणजानैरति-शायिनी लां निर्मितवतो धातुर्विषये प्रकुपिता इल्पन्वयः । लमेव सती पतिवता ॥३२॥३३॥३४॥३५॥३६॥ साधय-न्त्रित्याशीः काकुर्वा । साधियतुं न शक्तुवन्तीत्यर्थः । जगक्र-क्षणस्य जालस्य तटे परावधी विश्रान्तः संस्तरवतो बुध्यसे किषदिति व्यवहितेनान्वयः ॥ ३७ ॥ तं प्राक्तनं पयोव्रतोपवा-सादिमोहं किंचित्तुच्छं समनुपश्यसि किंचत् ॥ ३८॥ वियः अपक्रदशया पेलवतां कोमलताम् ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कथं कीदशं कि सत्यमुत तुच्छमित्यर्थः । सुमनोमिः पूर्णो नीछान्ज-मालां सरतः साद्यादनुसरतस्त्रभाविधे विलोचने यस्यास्त्रया-विषे हे चुंबाछे ॥ ४९ ॥ मम प्रखगात्मभूता लमेव सा स्वं

१ मन्ये कुळाज्ञना कोके जिताः सर्वा रति पाठः.

निरीहोऽस्मि निरंशोऽस्मि नभःखच्छोऽस्मि निस्पृहः शान्तोऽहमर्थरूपोऽस्मि चिरायाहमहं स्थितः। तां दशामुपयातोऽस्यि यतश्चित्तैकवर्त्मनि ॥ 83 प्रतिषेधन्ति सहसा न यां हरिहराद्यः। न किचिन्मात्रचिन्मात्रनिष्ठोऽस्मि स्वस्थ आस्थितः भ्रमेणाहं विमुकोऽसि संसारेणालिलोचने। न त्रष्टोसि न सिन्नोऽसि नायमसि न चेतर्त् ४५ न स्थूलोऽसि न सुध्मोऽसि सत्यमसि च सुन्दरि। तेजोबिम्बात्प्रयातेन मित्तावपतितेन च ॥ કદ क्षयातिरायमुक्तेन प्रकारोनासि वै समः। शान्तोसि साम्यनेतासि स्वस्थोसि विगताशयः परिनिर्वाण प्रवास्मि सहजोस्मि प्रतिव्रते । यत्तदस्मि तदेवास्मि बक्तं राक्षोमि नेतरत्॥ 86 तरङ्गतरलापाङ्गे गुरुस्त्वं मे नमोस्त् ते । प्रसादेन विशालाक्ष्यास्तीर्णोऽस्मि भवसागरात् ४९ पुनर्मलं न गृहामि शतभातसुवर्णवत् । शान्तः स्वस्थो मृदुर्यत्तो वीतरागो निरंशधीः ५० सर्वातीतः सर्वगश्च खमिवायमहं स्थितः।

चूडालोवाच ।

पवं स्थिते महासत्त्व प्राणेश हृद्यप्रिय॥ ५१ किमिदानीं प्रभो बूहि रोचते ते महामते।

मोहस्य विवेकस्य तत्त्वदर्शनस्य वा यस्य यस्यान्तःप्रकाशकतया स्थिमा तत्तस्य तस्यान्तः अद्दमपि उप परमसमीपभृतप्रस्यगात्म-तया आस्थितः । तथाचेदानी त्वं यथा पर्यसि तथैवाहं परयामीति खानुभवेनैव ममापि स्थितिर्ज्ञातव्येखर्थः । तामेव प्रपश्य दर्शयति—निरीह इत्यादिना ॥ ४२ ॥ अर्थरूपः परमार्थसत्स्वरूपः अनद्दमि देहादौ अहंभ्रमं त्यवला चिराय बहुकालोत्तरं वस्तुतो योहं स एवाहं भूला स्थित इत्यर्थः । अहं प्रत्यक्त्रवणिचत्तेकवर्तमन्यधिष्ठितस्तां निरतिशयानन्ददशा-मुपयातोऽस्मि यां प्रयक्षसहस्रेरपि प्रतिषेद्धं प्रवृत्ता हरिहरादयो महाप्रभावा अपि न प्रतिषेधन्ति न निरसितुं शकुवन्ति । 'तस्य ह न देवाध नाभूत्या ईशते आत्मा क्षेषां स भवति' इति श्रतेः । अहेयस्यात्मनो हापनाघटनाचेति भावः ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ अयं द्दयः कार्यवर्गः । इतरत् कारणम् ॥ ४५ ॥ सरसम्बाधितवस्तु । तेजोबिम्बात्सूर्यादिमण्डलाद्वहिः प्रयातेन मित्तावपतितेन च नभोमात्रविसारिणा प्रकाशेनालोकेन ॥४६॥ जगतः सर्वे वैषम्यं निरस्य साम्यं नेतास्मि विगताशयो निर्मे-नस्कः ॥ ४७ ॥ है पतित्रते । 'सतीवते' इति पाठे सतीनां वतिमव वर्ते यस्या इति व्युत्पत्त्या पतिवते इत्येवार्थः । अ-थवा सत्यासाव खरूपनिष्ठालक्षणे वते सहशस्तुत्यशीलो भर्ता-सीखर्यः ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ शतवारं ध्मातममी शोबितं यत्यु-वर्षे तद्वत् । यत्तः खरूपनिष्टायामत्यन्तोषुक्तः । निरंशा निर्वा-

शिखिष्वज उवाय ।
प्रतिषेधं न जानामि न जानाम्यभिवाञ्छितम् ५२
यदाचरित तन्वि त्वं कदाचिहेषि तत्त्रथा ।
यद्यन्मतं ते सकछं तथास्त्वविकछं प्रिये ॥ ५३
न किंचिदनुसंधानुं जानाम्यम्बरसुन्दरः ।
यदेव किंचिज्ञानासि तदेव कुरु सुन्दरि ॥ ५४
तदेव धारयिष्यामि प्रतिविम्बं यथा मणिः ।
चेतसा गिरुतेष्टेन यथाप्राप्तमनिन्दितम् ॥ ५५
न स्तामि न च निन्दामि यदिच्छित तदाचर ।

चुडालोवाच । यद्येवं तन्महाबाहो समाकर्णय मन्मतम् ॥ ५६ आकर्ण्य जीवन्मुक्तात्मंस्तदेवाहर्तुमईसि । सर्वत्रैक्यावबोधेन मौर्ष्यक्षयभुवान्विताः॥ 419 निरिच्छास्तावदाकाशविशदाः संस्थिता वयम् । यारगेपणमस्माकं ताहरां तदनेपणम् ॥ 46 यत्र्याणानैषणे कोऽत्र चिन्मात्रोऽभ्यसते हि कः। तसादाद्यन्तमध्येषु ये वयं पुरुषोत्तम ॥ 48 शेषमेकं परित्यज्य त प्रवेमे स्थिता वयम् । राज्येन सांप्रतेनेमं कालं नीत्वा क्रमेण यै ॥ 69 विदेहतां प्रयास्यामः प्रभो कालेन केनचित्।

शिखिष्वज उवाच । वयमाचन्तमध्येषु कीदशास्तरले वद्॥ ६१

सना धीर्यस्य ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इदं न रोचत इति प्रतिविध्यत इति प्रतिषेधः । कर्मणि घत्र । तं न जानामि ॥५२॥ कदाचित् व्युत्थानकाले । मतमभिमतम् ॥ ५३ ॥ अम्बरमाकाशमिव निर्छेपौदासीन्यपूर्णतासुन्दरः। जानासि कर्तव्यतयेति शेषः॥५४॥ धारियण्यामि हृदि संमतास्मीति यावत् । गलितमिष्टं इच्छा-तद्विषयजातं यस्मात्त्रथाविधेन । इष्टप्रहणमनिष्टस्याप्युपछक्षणम् ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ आहर्तुमाचरितुम् ॥ ५७ ॥ एषणं राज्य-भोगाद्यपेक्षणम् ॥ ५८ ॥ तत्रोपपत्तिमाह-यदिति । यदा-स्मात्कारणात्प्राणानां चक्षुरादीनां मुख्यप्राणस्य च स्वस्थोन्वित-विषयानेषणे सत्यत्र परमात्मनि कोऽतिशयः । न चाज्ञाना-मिव तत्त्वविदोऽन्तःकरणदेहेन्द्रियादितादात्म्याध्यासोस्ति येने-न्द्रियाणां विषयभोगाभ्यासेन मालिन्ये आत्मनोऽपि मालिन्य-प्रसक्तिः । निष्कियासङ्गन्विन्मात्रभूतो हि तत्त्ववित् को भो-गानभ्यसते । न कश्चिदित्यर्थः । अस्यतेर्विकरणपदव्यत्ययञ्चा-न्दसः । तस्मात्त्रारच्यभोगमात्रेण तदभ्यासव्यसनमालिन्यात्रस-फेस्तद्भोगादौ तद्भोगान्ते मध्ये तदन्तराले च वयं ये यत्स्वभा-वास्ते तत्स्वभावा एव प्रारब्धशेषमेकं भोगेन परिखज्य क्षप-यिला स्थिता नतु किंचिदन्यशाभूता अन्ये वा भविष्याम इत्यर्थः ॥ ५९ ॥ इममायुःशेषरूपं कालम् ॥ ६० ॥ तसा-दाचन्तमध्येष्वत्यस्यार्थान्तरमपि संभावयंस्तं जिज्ञासमानो

शेषमेकं परित्यज्य तिष्टामः कथमेव वा।
च्यूडालोवाच।
वयमाद्यस्तमध्येषु राजानो राजसत्तम॥ ६२
मोहमेकं परित्यज्य भवामः पुनरेष ते।
स्व पव नगरे राजा भव त्यं स्वासने स्थितः ॥६३
ललामो ननु कान्तानां महिषी ते भवाम्यहम्।
सन्या मत्तवास्तव्या नृत्यश्रवनवाङ्गना॥ ६४
सपताकाध्वनत्त्र्यां पुष्पप्रकरिणी पुरी।
लसदृष्या समञ्जयां रणत्युष्पालिमालया।
मधुमासलतालक्ष्म्या चिराद्रवतु सा समा॥६५
वसिष्ट उवाच।

दासह उपाय ।

इति चूडालया प्रोक्तो विहस्य स शिविध्वजः ।

प्रोवाच मधुरं वाक्यमञ्जुष्धं विगतज्वरः ॥ ६६

एवं चेत्तद्विशालाक्षि स्वायत्ता निक्षविष्टपे ।

सिद्धभोगश्रियस्तासु निवसामि न किं प्रिये ॥ ६७

चूडालोवाच ।

न राजन्मम भोगेषु वाञ्छा नापि विभूतिषु। स्वभावस्य वशादेव यथाप्राप्तेन मे स्थितिः॥ ६८ न सुखाय मम स्वगों न राज्यं नापि च क्रिया।

इदं सुखमिदं नेति मिथुने क्षयमागते ।
सममेव परे शान्ते तिष्ठामीह यथासुखम् ॥ ७०
शिखिध्वज उवाच ।
युक्तमुक्तं विशालाक्षि त्वयैतत्समया घिया ।
को वार्थः किल राज्यस्य ग्रहे त्यागेऽपि वा भवेत् ७१
सुखदुःखदशाचिन्तां त्यक्त्वा विगतमत्सरम् ।
यथासंस्थानमेवेमा तिष्ठावः स्वस्थतां गतो ॥ ७२

यथास्थितमविश्वरूधं तिष्ठामि स्वस्थचेष्टिता ॥ ६९

यथासंस्थानमेवेमा तिष्ठावः स्वस्थतां गती ॥ ७२ इति तत्र कथालापकथनेन तयोर्द्धयोः । कान्तयोश्चिरदंपत्योवीसरस्तनुतां ययो ॥ ७३ अथोत्थाय दिनाचारं यथाप्राप्तमनिन्दिता । सोत्कण्ठावप्यनुत्कण्ठी चक्रतुः कार्यकोविदा ॥७४ स्वर्गसिद्धिमनादत्य तस्थतुः पूर्णचेतसो ।

एकसिश्रेव शयने तैस्तैः प्रणयचेष्टितैः ॥ सा व्यतीयाय रजनी तयोर्जीवद्विमुक्तयोः ॥ ७५ तद्भोगमोक्षसुखमुक्तमयोः स्वयं स-माशंसतोः प्रणयवाष्यविलासगर्भम् । उत्कण्ठतां प्रणयिनोधियमानयन्ती दीर्घा मुद्दुर्तवदसौ रजनी जगाम ॥ ७६

इर्सार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे चूडालाप्रकटोकरणं नाम नवाभिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

द्शाधिकशततमः सर्गः ११०

२

3

बसिष्ठ उवाच ।
ततः समुदिते सूर्ये वितमस्यम्बरे स्थिते ।
समुद्रकादिव जगन्मणी तिस्मिन्विनिर्गते ॥
विकसत्यरूणोपान्ते चक्षुपीवाम्बुजाकरे ।
आचारेष्विव लोकेषु प्रसतेष्वकरिषम् ॥
दंपती तौ समुत्थाय कृतसंध्याक्रमी स्थिता ।
पत्रासने मृतुस्तिग्धे कान्ती काञ्चनकन्दरे ॥

राजा पृच्छति—वयमिति ॥ ६१ ॥ तद्दिभप्रायानुसारेणैव चूडालापि तद्धं वर्णयति—वयमिति ॥ ६२ ॥ तत्र शेषश-ब्दस्यार्थान्तरमाह—मोहमिति ॥ ६३ ॥ कान्तानामन्तःपुर-बीणां छलामो भूषणभूतो भवामि भविष्यामि । मत्ता हृष्टा वास्तव्याः पुरवासिनो यस्याम् । एतदादीनि पुरीविशेषणानि मधुमासछतालक्ष्मीसाम्योपपादकानि ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ यदि ते मया सह भोगेच्छास्ति ति इन्द्रेण प्रार्थिता दिव्य-भोगा एव भुज्यन्तां किं मानुवैदिति राजाह—एवं चेदिति ॥ ६० ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ मिधुने द्वन्द्वे ॥ ७० ॥ ७९ ॥ यथा-संस्थानं यथास्थितम् ॥ ७२ ॥ विरदंपत्योः प्राचीनजायापत्योः ॥७३॥ दिनाचारं सायंसंध्याम् । 'सायंसंध्यां सभास्करा'मित्यु-केदिनाचारता । परस्परेप्सितसंभोगाय सोत्कण्ठावपि निर्वास-नलादनुत्कण्ठौ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ तत्परस्यरानुभवसिद्धभोगमो- अधोत्थायात्र चूडाला रक्षकुम्मं पुरःस्थितम्। कान्ता संकल्पयामास पूर्ण सप्तान्धिवारिमिः॥ ४ तेन मङ्गलकुम्भेन तं पूर्वाभिमुखं स्थितम्। भार्या भर्तारमेकान्ते स्वराज्येऽभिषिषेच सा॥ ५ संकल्पोपगते हैमे स्वभिषिकं स्वविष्टरे। स्थितं प्रोवाच तन्वी सा चूडाला देवक्पिणी॥६ केवलं मौनमुत्सुज्य तेजः शान्तिमदं प्रभो।

क्षमुतं खयं प्रणयवाक्यविलासमर्भ यथा स्यात्तथा आशंसतोः कथयतोस्तयोधियमुरकण्ठतां सोत्कण्ठतामानयन्ती प्रापयन्ती रजनी दीर्घापि मुहुर्तवज्जगामेस्ययैः॥ ५६॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणतान्त्ययेप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे नवोत्तरशत-तमः सर्गः॥ १०९॥

सहसंकल्पसन्येन गजेन खपुरं गतौ।
तो कृत्वा सुचिरं राज्यं विसुक्ताचिति वर्ण्यते ॥ १ ॥
समुद्रकात्समुद्रते जगत्प्रकाशकमणाविव समुदिते सूर्ये वितमस्यम्बरे स्थिते सति ॥ १ ॥ जनानामरुणोपान्ते चक्षुपीवाम्बुजाकरे विकसति सति ॥२॥३॥ सप्ताब्धिवारिमिः पूर्ण पुरःस्थितं
रक्षकुम्मं राज्यामिषेकाय संकल्पयामास ॥४॥ तं राजानम्॥५॥
संकल्पमाश्रेणोपगते खयोग्यविष्टरे सिंहासने ॥ ६ ॥ मौनं
मुनियोग्यमिदं शान्तं तेज उत्सुज्य शासनयोग्यमिन्दादीनां तेजो

| अष्टानां लोकपालानां तेजस्त्वं भर्तुमईसि॥ | G |
|--|-----|
| चृडालयेति संप्रोक्तो वने राजा शिखिष्वजः। | |
| यदेशेवं करोमीति महाराजत्वमायया ॥ | < |
| अथ प्रतीहारपदे तिष्ठन्तीमाह मानिनीम्। | |
| अद्य देवीपदे गुर्झी त्वां करोम्यभिवेकिनीम्॥ | 9 |
| इत्युक्तवा सरसि स्नाप्य महादेवीपदे तथा। | |
| अमिषिकां नृपः कृत्वा स तामाह निजां त्रियाम | ११० |
| प्रिये कमलपत्राक्षि क्षणात्संकरपसंभवम्। | |
| महाविभवमुद्दाम सैन्यमाहर्तुमर्हसि ॥ | ११ |
| इति कान्तवचः श्रुत्वा चूडाला चरवर्णिनी । | 95 |
| सैन्यं संकल्पयामास प्रावृद्घनमिवोद्भटम्॥ सैन्यं ददशतुस्तत्तौ वाजिवारणसंकुलम्। | १२ |
| पताकापृरिताकाशं नीरन्ध्रीकृतकाननम् ॥ | १३ |
| तूर्यारबध्वनव्छेलगुहागहनकोटरम्। | 24 |
| मालिरक्षमहोद्योतविच्छुर्णिततमःपटम् ॥ | 912 |
| तत्र गन्धद्विपचरे कृतपार्थिवमण्डले । | १४ |
| रक्षिते हृष्टसामन्तैरारुढी नृपदंपती॥ | १५ |
| ततः शिखिष्वजो राजा महिष्या सममिष्टया । | 10 |
| पदातिरथसंबाधं कर्षक्रतिबलो बलम् ॥ | १६ |
| चुचालाचलचालिन्या सेनया स ततो वनात्। | • |
| मिन्दिश्रव रसारीलं वात्ययेवाशु भौमया॥ | १७ |
| तसान्महेन्द्रशैलेन्द्राचलितः स महीपतिः। | |
| पथि पश्यन्गिरीन्देशान्नदीर्श्रामान्सजङ्गलान्॥ | १८ |
| दशयन्स्वप्रियायास्तमात्मवृत्तान्त्संचयम्। | |
| प्रागल्पेनैव कालेन स्वां पुरी स्वर्गशोभनाम्॥ | १९ |
| तत्र ते तस्य सामन्तास्तदागमनमादताः। | |
| | |

| विविदुर्जयशब्देन निर्जग्मुश्चोदिताशयाः॥ | २० |
|--|------|
| एकतां संप्रयातेन तारतूर्यनिनादिना। | |
| बलद्वयेन तेनासौ विवेशो नगरं नृपः ॥ | २१ |
| लाजपुष्पाअलिबातैरावृष्टः पौरयोषिताम्। | |
| वणिद्धार्गमसौ पद्यन्परंपरमनुत्तमम्॥ | २२ |
| पताकाध्वजस्वाधं मुकाजालम्नोरमम्। | |
| नृत्यगेयपरस्रीकं स्वभूमावचलस्थितम्॥ | २३ |
| प्रविद्याथ गृहं तैस्तैः संयुतं नृपमङ्गलैः। | |
| सम्यक्संमानयामास प्रणतं प्रकृतिवजम्॥ | રક |
| पुरोत्सवं भृशं कृत्वा दिन्सप्तकमुत्तम्म्। | |
| अंकरोद्राजकार्याणि स्वानि स्वान्तःपुरे नृपः॥ | २५ |
| द्रावर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा महीतले। | |
| सहस्रूडालया राम विरतो देहधारणात्॥ | २६ |
| देहमुत्सुज्य निर्वाणमस्त्रेह इव दीपकः। | |
| अपुनर्जन्मने राम जगामेति महामतिः॥ | २७ |
| द्शवर्षसहस्राणि समद्दष्टितया तया। | |
| राज्यं तया रमय्यापि निर्वाणं पदमाप्तवान्॥ | २८ |
| बिगतभयविषादो मानमात्सर्यमुक्तः | |
| प्रकृतसहजकर्मा मुक्तनीरागबुद्धिः। | |
| इति समस्मदृष्टिर्मृत्युमार्योऽथ जित्वा | |
| दशिशिरसहस्राण्येकराज्यं चकार | 129 |
| भुक्त्या भोगाननेकान्भुवि सकलमहीपालचूर | |
| | गरबे |
| स्थित्वावै दीर्घकालं परममृतपदं प्राप्तवान्सत्व | शेषः |
| एवं रामागतं त्वं प्रकृतमनुसरन्कार्यजातं विश | ोक- |
| स्तिष्ठोत्तिष्ठ स्वयं वा प्रसममनुभवन्भोगमोक्ष | ादि- |
| ला | भीः |
| | - |

इत्यार्षे श्रीनासिष्टमहारामायणे वार्त्माकीये मो० निर्वाणप्रकरणे चू० श्रीखिध्वजनिर्वाणं नाम दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

चुँडालोपाख्यानं समाप्तम् ।

भर्तुमहेसि ॥ ७ ॥ ८ ॥ पद्यामिषेकामावाद्यतीहारपदं द्वारपालस्थानं तत्र विनयासिष्ठन्तीम् । देवीपदे कृतामिषेकास्थाने
॥ ९ ॥ १० ॥ योगसिख्या तव सत्यसंकल्पात्संभवम् । भूषणाछंकारशकाकादिमिमंहाविभवं बह्नक्षीहिणीपरिमाणेरुद्दामम्
॥ १९ ॥ १२ ॥ नीरन्ध्रीकृतं निरवकाशीकृतं काननं येन
॥ १३ ॥ तूर्यारवैः प्रतिष्वनन्तः शैलगुहागह्नकोटरा यस्य
॥१४॥ यन्मदगन्धमन्ये द्विपा न सहन्ते स गन्धद्विपः ॥१५॥
बलं सैन्यम् ॥ १६ ॥ भीमया भूर्थया ॥ १० ॥ १८ ॥ तं
प्राक्तनमात्मनः खस्य प्राङ्कगराभिगतस्य मार्गे जानपदैः सह
कृतं कृतान्तसंचयम् ॥ १९ ॥ सामन्तास्तत्तहेशाधिपत्ये निरूपिता मित्र्यणः । उदिताशयाः सोत्कण्याः ॥ २० ॥ २१ ॥
लाजाञ्जलीनां पुष्पाञ्जलीनां च वातः । परंपरमुक्तरोत्तरम् ॥२२ ॥
स्वभूमें। सस्थाने अवलं केलासिमवोच्छ्तं स्थितम् ॥ २३ ॥

तैस्तैलोंकशास्त्रप्तिद्वंधिद्वांक्षतशक्क्ववीणाछत्रचामरादिसिर्नृपयोग्येमंक्कलैः संयुतम् ॥ २४ ॥ अन्तःपुरे खानि खामिमतसमाधिभोगादीनि ॥ २५ ॥ देहधारणाद्विरतो विदेहकैवल्यसुखे प्रतिष्ठितोऽभूदिल्यर्थः ॥२६॥ तदेव स्पष्टमाह—देहिमिति ।
इति अनया प्रागुक्तरील्या ॥ २० ॥ राज्यं कृत्वा तया च्ढालया
सह आरमय्य आसमन्तात् कीडियलापि ॥२८॥ भुक्तेषु मोगेषु
नीरागा बुद्धियस्य । समेभ्योपि समा दृष्टिर्यस्य । स आर्यः शिखिध्वज इति वर्णितप्रकारेण बोधेन कामलक्षणं मृत्युं जिला द्वाधिशिर्त्यपलक्षितवर्षसहस्राणि जम्बूद्दीपे एकराजस्य भाव ऐकराज्यं चकार ॥ २९ ॥ पूर्वाधेन शिखिध्वजस्थितमन्द्व तां
रामाय कर्तव्यतयोक्तरार्थेनोपदिशति—भुक्लेति । स शिखिध्वजो दीर्थकालं भुवि सकलमहीपालानां चूडामणित्वे स्थिला

१ अस शिक्षिध्वजास्यानत्वेनापि व्यवहारः.

एकाद्शाधिकशततमः सर्गः १११

| वसिष्ठ उवाच । | |
|---|-----|
| पतत्ते सर्वमाख्यातं शिखिध्वजकथानकम्। | |
| अनेन गच्छन्मागंण न कदाचन खिद्यसे॥ | Ą |
| पतां दृष्टिमवष्टभ्य रागद्वेषविनाशिनीम्। | |
| नित्यं नीरागया बुद्धा तिष्ठावष्टध्धतत्पदः॥ | ર |
| यथा शिलिध्वजो राज्यं कृतवानेवमीदशम्। | |
| राम व्यवहरन्राज्ये भोगमोक्षमयो भव॥ | 3 |
| शिखिध्यजक्रमेणैय यथा बोधमवाप्तवान्। | |
| कचो वृहस्पतेः पुत्रस्तथा बुध्यस्य राघव ॥ | ક |
| श्रीराम उवाच । | |
| षृहस्पतेर्भगवतः पुत्रोऽसौ भगवान्कचः। | |
| यथा प्रबुद्धो भगवन्समासेन तथा वद ॥ | ધ્ય |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| श्रुणु राजम्कथां श्रीमाञ्ज्ञिखिध्वजवदेव सः। | l |
| प्रबोधं परमं यातो देवदेशिकजः कचः॥ | દ્ |
| बालभावात्समुत्तीर्णः संसारोत्तरणोत्मुखः। | |
| कचः पदपदार्थेश्रो वृहस्पतिमभाषत ॥ | G |
| कच उदाच। | |
| भगवन्सवेधर्मन्न कथं संस्तिपञ्जरात्। | |
| असाम्निर्गम्यते बृहि जन्तुना जीवतन्तुना॥ | 4 |
| बृहस्पतिरुवाच । | |
| अनथेभकरागारावसारसंसारसागरात्। | |
| उड़ीयते निरुद्धेगं सर्वत्यागेन पुत्रक ॥ | ९ |
| वसिष्ट उवाचे । | |
| इत्याकण्यं कचो वाक्यं पितुः परमपावनम्। | |
| सर्वमेव परित्यज्य जगामैकान्तकाननम् ॥ | १० |

अनेकान्भोगान्भुक्ला अमृतमजरं परं पदं सत्त्वं सन्मात्रं तन् च्छेषः सन् प्राप्तवान् । हे राम, लमपि आगतं प्रारच्धप्राप्तं प्रकृतं कार्यजातमनुसरन् विशोकः समाधौ तिष्ठ । अथवा खयं प्रसभं भोगमोक्षद्भानलक्ष्मीरनुसरभुत्तिष्ठ व्युत्थितस्तिष्ठ । तव समाधिव्युत्थानयोर्ने फलमेदोऽस्तीखर्थः ॥ ३० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे दृशो-त्ररशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

> राष्ट्रया राजेव पित्रात्र सर्वस्वं स्वाजितः कथः। अन्तेऽहंकारसंस्थागात्पूर्णोऽभृदिति वर्ण्यते ॥ १ ॥

अनेन मार्गेण गरछम खिद्यसे निवृत्तसर्वखेदो भविष्यसि॥१॥ बुद्धा अवष्टव्यं परमार्थतया दृष्टमनलम्बितं तत्पूर्णानस्दपदं येन। भोगमोक्षमयस्त्रप्रबुरः ॥२॥३॥ शिलिष्वजस्य प्रसिद्धेन सर्व-स्यागकमेणैव कनोऽपि यथा बोधमनाप्तवांस्तया लमपि बुध्यस्व ॥४॥ समासेन साकल्येन ॥५॥६॥ बालमाबात्समु-त्रीणीं निर्गतः। सौबनं प्राप्तमात्र इति गावतः। पदपदार्थकः सर्व-

बृहस्पतेस्तद्गमनं नोद्वेगाय बभूबह । संयोगे च वियोगे च महान्तो हि महाशयाः॥ ११ अथ वर्षेषु जातेषु त्रिषु पश्चसु सोऽनघ। पुनः प्राप महार्ण्ये कासिश्चित्पितरं कचः॥ परिपूज्याभिवाद्येनं समालिङ्गितपुत्रकम्। अपृच्छद्वाक्पतिं भूयः स कचः कान्तया गिरा १३ कच उवाच। अदोदमप्टमं वर्षं सर्वत्यागः कृतो मया। तथापि तात विश्रान्ति नाधिगच्छाम्यनिन्दिताम् १४ वसिष्ठ उदाच। पवमार्तवचस्तस्मिन्कचे वदति कानने। सर्वमेव त्यजेरयुक्तवा वाक्पतिर्दिवमुचयौ॥ १५ गते तिसन्कचो देहाद्वल्कलाद्यप्यथात्यजत्। गतेन्द्रभ्रार्फतारेण शरद्योम्रा समोऽभवत्॥ १६ पुनर्वर्षत्रयेणैष कस्मिश्चित्काननान्तरे। तत्याजाम्बुद्धपीदि शरदीय नभक्तलम् ॥ १७ उपासैको दिगन्तेषु शान्तशून्यवपुः श्वसन्। दूयमानमनाः प्राप तमेव पितरं गुरुम्॥ १८ कृतपूजाक्रमी भत्तया समालिङ्गितपुत्रकम्। अपृच्छत्स कचो भूयः खेदगद्गया गिरा॥ १९ कच उवाच। तात सर्वे परित्यक्तं कन्थां वेणुलताद्यपि। तथापि नास्ति विश्वान्तिः स्वपदे किंकरोम्यहम् २० बृहस्पतिरुवाच । चित्तं सर्वमिति प्राहुस्तस्यक्त्वा पुत्र राजसे। चित्तत्यागं विदुः सर्वत्यागं सर्वविदो जनाः॥ २१

विद्यास्थानेषु निष्णातसत्त्वमसिवाक्यगोचरपदपदार्थक्कथ ॥०॥ जीव एव तन्तुरिव स्ववन्धसहस्रकरो यस्य तथाविधेन जन्तुना माहशेन ॥ ८ ॥ उद्दीयते शीघं निर्गम्यत इतियावत् । अति-वैराग्यदाद्यांत्त्यक्तविषये पश्चात्तापोद्वेगरिहतं यथा स्थात्तथा कृतेन सर्वत्यागेन ॥ ९ ॥ १० ॥ महाशयाः मेरवित्थराश्चाः ॥ ११ ॥ त्रिपु पश्चसु च वर्षेषु । अष्टस्तित्यर्थः । तिवन्तपिपाकतारतम्यं विज्ञाय शेषं त्याजयितुमागतं पितरं प्राप्तथां ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ दिवमाकाशम् ॥ १५ ॥ गतेनिद्वति । सिन्नहितस्योदयकालिकशरद्योन्नति यावत् ॥१६॥ प्रतिदेशहित । सिन्नहितस्योदयकालिकशरद्योन्नति यावत् ॥१६॥ प्रतिदेशहित । सिन्नहितस्योदयकालिकशरद्योन्नति यावत् ॥१६॥ प्रतिदेशहान् स्रत्यां प्रमोऽभवत्तत्राह—तत्याजिति । किचिद्विरिगुहान्थ्योणाम्बुदवर्षादि तत्याज परिजहार ॥ १० ॥ शरदादी तु किचिद्विगनतेष्वास । एवं द्यमानमना एवं प्रवविश्वयेण किस्मिश्वरक्तानान्तरे तमेन पितरं ग्रुरमागतं प्राप ॥ १८ ॥ १९ ॥ विगुलता दण्डः । नादिपदारकमण्ड छन्नस्यिन्नवापि॥२०॥२०॥

वसिष्ठ उवाच। इत्युक्त्वा वाक्पतिः पुत्रं पुष्ठवे तरसा नभः। अन्वियेष कचश्चित्तं परित्यकुमखिन्नधीः॥ २२ चिन्तयम्बप्यसा चित्तं न यदा वेद कानने। तदा संचिन्तयामास धियैव पितरं यया ॥ રરૂ पदार्थवृन्दं देहादि न चित्तमिति कथ्यते। तदेतरिक क वा व्यर्थ निरागस्कं त्यजाम्यहम् २४ पितुः सकाशं गच्छामि ज्ञातुं चित्तं महारिपुम्। शाखा तत्संत्यजाम्याशु ततस्तिष्ठामि यिज्वरः २५ वसिष्ठ उवाच । इति संचिन्त्य स कच उज्जगाम त्रिविष्टपम्। वाक्पति प्राप्य सस्नेहं ववन्दे प्रणनाम च॥ २६ अप्रच्छचैनमेकान्ते किंचित्तं भगवन्वद । स्वरूपं बृहि चित्तस्य येन तत्संत्यजाम्यहम्॥ २७ बृहस्पतिरुवाच । चित्तं निजमहंकारं विदुश्चित्तविदो जनाः। अन्तर्योऽयमहंभावो जन्तोस्तश्चित्तमृच्यते ॥ २८ कच उवाच। त्रयस्त्रिशन्महाकोटिप्रमाणस्य महामते। गुरो गीर्वाणवृन्दस्य कथमेतद्वदेति मे ॥ २९ मन्येऽस्य दुष्करस्त्यागो न सिद्धिमुपगच्छति । कथमेप किल लक्कं शक्यते योगिनां वर ॥ ३० वृहस्पतिरुवाच । अपि पुष्पाबद्दलनाद्दिप लोचनमीलनात्।

सुकरोऽहंकृतेस्त्यागो न क्लेश्तेऽत्र मनागपि॥ ३१ यथैतदेवं तनय तथा श्रुणु वदामि ते। अज्ञानमात्रसंसिद्धं वस्तु ज्ञानेन नदयति॥ ३२ वस्तुतो नास्त्यहंकारः पुत्र मिष्याभ्रमो यथा । असन्सन्निच संपन्नो बालवेतालवत्स्थितः॥ 33 यथा रज्ज्वां भुजंगत्वं मरावम्बुमतिर्यथा। मिथ्यावभासः स्फुरति तथा मिथ्याप्यहंकृतिः ३४ असदेव यथा द्वित्वं मोहादिन्दौ विलोक्यते। तथा स्फुरत्यहंकारो न सत्यो घाष्यसन्न च॥ 34 एकमाद्यन्तरहितं चिन्मात्रममलान्तरम् । खाद्प्यतितरामच्छं विद्यते सर्ववेदनम्॥ 36 सर्वत्र सर्वदा सर्वेप्रकाशं सर्वजन्तुषु। तदेवैकं कचत्यम्ब विलोलास्वव्धिवीचिषु॥ ३७ अत्र कोऽयमहंभावः कुतो वा कथमुत्थितः। काप्स जातो रजोराशिः कानलादृत्थितं जलम्३८ अयं सोऽहमिति व्यर्थे प्रत्ययं त्यज पुत्रक। तुच्छं परिभिनाकारं दिकालविवशीकृतम्॥ 36 दिकालाद्यमचिछन्नं स्वच्छं नित्योदितं ततम्। सर्वार्थमयमेकार्थचिन्मात्रममळं भवान्॥ 80 फलकुसुमदलानां सर्वदिक्संस्थितानां रस इव जगतां त्वं संस्थितः सर्वदैव। विमलतरचिदातमा नित्यमेवास्यनन्तः क इय कच तवाहं निश्चयो भावमूर्तेः॥ ४१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो ॰ निर्वाणप्रकरणे कचोपाख्याने कचप्रवीधो नामैकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

अन्वियेष अन्विष्टवान् ॥ २२ ॥ यदा न वेद न दृष्टवान् । चित्तम्य स्वान्वेपणविशरारुतायाः प्राक् चित्तास्याने प्रपन्नना-दिति भावः । पितरं थिया यथौ । चिन्तितवानिति यावत् ॥ २३ ॥ नन् त्रिपुरदाहादमुराणामिव देहेन्द्रियविषयत्यागा-देव चित्तत्वागः सेटस्यति तन्नाह—पदार्धेति । तदेतत्पदार्थवृत्दं देहादि कि जिल्लास क वा चित्तं स्यादिव्यनिर्णयादनागस्कं चित्तनिलयनापराधश्चन्यदेहादि व्यर्थ कि लजामि । लागोऽस्य नोचित इलार्थः ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ चित्तविदः साक्षिणा चिलं पृथकत्य जानन्तो जीवन्मुक्तजनाः ॥ २८ ॥ हे त्रयस्त्रिशन्महाकोटिप्रमाणस्य गोर्वाणवृन्दस्य गुरो, हे महामत बृहस्पते, अहंभाव एव चित्तमित्येतत्कथं तन्मे वद । अहंकारस्य क्षेके आत्मत्रयेव प्रसिद्धस्तरयागे आत्मलागापरया नरात्म्यापन त्तेरिति भावः ॥ २९ ॥ नाष्यात्मनस्त्यागो वा संभवत्यहेयस्व-भावलादिलाशयेनाह -- मन्ये इति ॥ ३० ॥ सत्यं तत्साक्ष्यप-रिचये तत्त्यागो दुष्करः, परिचिते तु साक्षिणि पुष्पाबदल-इत्याशयेन बृहस्पतिरुत्तरमाह-अपीति

द्धमहंकारादिवस्तु । तच ज्ञानेन तत्परिचयमात्रेण ॥ ३२ ॥ बालकरिपतवेतालवद्वम्तु असन्नेव मन्निव संपन्नोऽज्ञदृष्ट्या स्थितः ॥ ३३ ॥ तथाहंकृतिरिप मिथ्या स्फुरतीत्यन्वयः ॥ ३४ ॥ नच सदसनिति शेषः ॥ ३५ ॥ सर्वप्रपमिभ्यात्वे कि वि-दाते तदाह-एकमिति । सर्वमिथ्यात्वेऽि तद्वेदनं विवते । तद्विद्यमानतायाः साधकाभावादेवासिद्धेरिति भावः ॥ ३६ ॥ तदसत्वे जगरप्रथानुपपत्तेरिं तदस्तीत्याह—सर्वनेति । अम्ब्ब-विति शेषः ॥ ३७ ॥ तत्र दग्दश्ययोर्मध्ये अयमहंकारः कः कुती निमित्तारकथं टरदृश्यमेलनारप्रकारान्तरेण वा उत्थितः, उभयविलक्षणस्वभावस्यास्योद्भव एव तुर्वच इत्याह—केति । रजोराशिः शुष्कपांसुनिचयः ॥ ३८ ॥ अयं देहादिः स पि॰ त्रादितो जातोहम् । दिकालाभ्यां विवशीकृतं वृज्यपक्षयादिना परिणमितम् ॥ ३९ ॥ तर्श्वहं कस्तत्राह-दिगिति । मयं सर्वपदार्थविकारात्मना भासमानं बस्तुतस्त्वपाराध्योदद्वय-लाबेकार्थम् ॥ ४० ॥ सर्वार्थमयमित्यस्य सर्वेपदार्थसारभूतमि-त्यर्थान्तरं सद्दशन्तं दर्शयनप्रकृतं निगमयति-फरेति । सर्व-

॥ ३१ ॥ अज्ञानं शुद्धसाध्यपरिचयलक्षणो मोहस्तन्मात्रसंसि-

१ साक्षिपश्चित्तं पृथक्तयेत्यवेश्वितम्.

बादशाधिकशततमः सर्गः ११२

यसिष्ठ उवाच ।

इति प्राप्य परं योगमुपदेशमनुत्तमम्। जीवन्मुको बभूवासी ततो देवगुरोः मुतः॥ निर्ममो निरहंकारदिछन्नग्रन्थिः प्रशान्तधीः। कचो यथा स्थितो राम तथा तिष्ठाऽविकारवान् २ अहंकारमसद्विद्धि मैनमाथममा त्यज्ञ। असतः शशयङ्गस्य किल त्यागब्रही कुतः॥ ą असंभवत्यहंकारे क ते मरणजन्मनी। नभःक्षेत्रे तथा व्युतं केन संगृह्यते फलम्॥ 8 निरंशं शान्तसंकर्षं सर्वभावात्मकं ततम्। परमाद्यणोः सूक्ष्मं चिन्मात्रं त्वमनोमयम्॥ ų यथाम्भसस्तरङ्गादि यथा हेम्रोऽङ्गदादि च। तदेचातदिवाभासं तथाहंभावभावितः॥ દ્ अबोधेन जगत्सर्वे मायामयमिव स्थितम्। बोधेन सकलं ब्रह्मरूपं संपद्यतेऽनद्य ॥ હ द्वित्वैकत्वमती त्यक्त्वा शेषस्थः सुखितो भव । मा दुःखितो भव व्यर्थ त्वं मिथ्यापुरुषो यथा ॥ ८ मायेयमतिदुष्पारा सांसारी गाढतां गता। शरदा मिहिकेवाध्य बोधेनायाति तानवम् ॥ ९

दिश्च संस्थितानां फलानां कुसुमानां दलानां पणीनां च कार-णीभूतः सारभूतथ तरोरन्तगेतो रस इव त्वं सर्वजगतां कार-णीभूतः सारभूतथान्तः सर्वदेव संस्थितो विमलतरोऽनन्तिध-दास्मैव नित्यमसि । हे कच, भावमूर्नेरखण्डाद्वयसन्मात्रखरू-पस्य तवायं परिच्छित्रोऽहं निथ्यः क इव । न कश्चिदित्यर्थः । अथवा सर्वदिक्संस्थितानां फलकुसुमार्दानांभकरस्यमापत्रो रसो मध्विव सर्वजगतां सारभूतिनरितशयानन्दरूपः संस्थित इ-त्यर्थः । अतः सर्वदेव लमनन्तो विगतमायामलश्चिदारभवासी-त्यादिप्राग्वत् ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्यर्थ-प्रकाहो निर्वाणप्रकरणे एकादशोत्तरशततमः सर्गः॥ १९९॥

कचारुयानप्रशुद्धस्य रामस्य प्रश्नतोऽत्र हि । मिथ्यापुरुषकाष्यानं सरक्षणमुद्दायते ॥ १ ॥

युज्यते अखण्डेक्येनावधार्यते प्रत्यगातमा परमातमना येन स योगस्तं तथाविधमुपदेशम् ॥ १ ॥ तथा लमपि तिष्ठ ॥२॥ मैनमिति । मिथ्यालबुज्ञा उपेक्षणमेव तत्त्यागो न स्वलिन्वर्तकयन्नसापेक्ष इति भावः ॥ ३ ॥ थन्नेन तदनिवारणे कथं मरणजन्मभयनिमीक्षस्तत्राह—असंभवतीति । शत्रन्तेन नज्ञ-समासे सम्मी। ननु कामकर्मवासनास्पवीजवलान्मरणजन्मनी कृतो न स्यातां तत्राह—नभ इति । अहङ्कारक्षेत्रे सत्यंव तानि बीजानि प्ररोहन्ति नतु तद्वाधे सतीति भावः ॥ ४ ॥ अहङ्कारे वावितेऽवशिष्टः कीटशोऽहं तत्राह—निरंश-

श्रीराम उघाच । परमामागतोऽस्म्यन्तस्तृप्तिं शानासृतेन ते। अवब्रहभयाकान्तः स्वासारेणेव चातकः ॥ १० अमृतेनेच सिकोऽहमन्तर्गच्छामि शीतताम्। उपर्यपि समस्तानां तिष्ठाम्यतुलसंपदाम् ॥ ११ न तृप्तिमनुगच्छामि वचांसि वदतस्तव। पेन्दवीनां मरीचीनां चकोरस्तृषितो यथा॥ १२ तृप्तोऽपि भूयः पृच्छामि त्वां प्रश्नमिममीश्वर । को नाम तृतोऽप्यत्रस्तं न पिवत्यमृतासवम् ॥ १३ किमुच्यते मुनिश्रेष्ट मिथ्यापुरुषनामकम्। वस्त्ववस्तुकृतं जगद्वस्तुजातं वदाध्य मे ॥ १४ वसिष्ठ उवाच। मिथ्यापुरुषवोधाय शृणु राधव शोभनाम्। इमामाख्यायिकां हासजननीं मदुदीरिताम्॥ अस्ति कश्चिन्महावाहो मायायस्त्रमयः पुमान्। बालपेलवधीमृढो गुढो मौख्येण केवलम् ॥ १६

स एकान्ते कचिज्ञातः शून्ये तत्रैय तिष्ठति।

केशोण्ड्रकमिव व्योम्नि मृगतृष्णेव वा मरौ॥

तस्मादन्यन्न तत्रास्ति यदस्ति च स एव तत्।

यश्चान्यत्तत्तदाभासं न च पश्यति दुर्मतिः॥

मिति ॥ ५ ॥ इंद्रशोऽहं ऋथमहंभावभावितोऽभूदं तन्नाह—य-थेति । तथा अहंभावभावितोऽप्यन्य दवाभात इलर्थः ॥ ६ ॥ तत्र को हेतुस्तमाह-अयोधेनेति । तन्निरासंपि हेतुमाह-बो-घेनेति ॥ ७ ॥ द्विलमतिः कार्यदर्शनम् । एकलमतिः कारण-दर्शनम् । ते द्वे सक्ता उभयानुस्यूतसन्मात्रं परिशेष्य तस्त्रति• ष्टितः सुस्तितो भवेत्यर्थः। अतद्दर्शने तु वश्यमाणपुरुषस्येव दुःखप्राप्तिस्तव दुर्वारेखाहु-भेति ॥ ८ ॥ तानवमपक्षयम् ॥ ९ ॥ अवप्रहो वर्षप्रतिबन्धसाद्भवेनाकान्तश्चातको दैवादाग-तवृष्ट्यासारेणव ॥ १० ॥ अपीति पूर्ववाक्यार्थसमुख्ये । हैर-ण्यगर्भसंपदन्तानामनुखसंपदामुपरि निरतिशयानन्दलक्षणे ति-ष्टामि ॥ १९ ॥ तत्र उक्तीनामाखादनैनेति शेषः ॥ १२ ॥ इतित्यतत्त्वस्य सम्यगनुभवात्तृपोऽपि । अमृतरूपमासवं पेयम् ॥ १३ ॥ एवं प्रशंसयोन्मुखीकृतं गुरुं प्रति 'मा दुःखितो भव व्यर्थ त्वं मिध्यापुरुषो यथे'ति प्राक्तमुचितं मिध्यापुरुषा-स्यानं कीतुकादामः पुच्छति-किमुच्यत इति । येन मिथ्या-पुरुपेण वस्तु अवस्तु कृतम्, अवस्तु जगन्न वस्तुजानं कृतं तं बदेखर्थः ॥ १४ ॥ तत्त्वदशां हासजननीम् ॥ १५ ॥ बाल इव पेलवया भिया मुढो विक्षिप्तः । मौरूर्येणाङ्गानेन च गृढः संवृतः ॥ १६ ॥ एकान्ते जनदृष्ट्यगोचरे स्थाने तस्य खरूपेणापि मिथ्यालमाह—केशोण्ड्कमिवेति ॥ १७ ॥ तत्र तदाश्रयस्थाने तस्मान्मिभ्यापुरुषादन्यत्किमपि नास्ति । यदिन-

संकल्पस्तस्य संजातस्तत्र वृद्धिमुपेयुषः। खस्याहं खमहं खं में खं रक्षामीति निश्चलः॥ १९ खं स्थापयित्वा रक्षामि वस्त्विष्टं स्वयमादरात्। इति संचिन्तयन्व्योमरक्षार्थं सोऽकरोहृहम्॥ तस्य कोशे ववन्धास्थां रक्षितं खं मयेत्यसी। २१ मृहाकारीन संतुष्टस्ततः स रघुनन्दन् ॥ अथ कालेन तत्तस्य गृहं नाशमुपाययी। २२ ऋत्वन्तरेणाब्द इव वातेनेच तरङ्गकः॥ हा गृहाकाश नएं त्वं हा क यातमसि क्षणात्। हाहा भग्नमसि स्वच्छमित्येवैतच्छुशोच सः॥ २३ इति शोकशतं कृत्या पुनस्तत्रेय दुर्मतिः। कूपं चक्रे खरक्षार्थे कूपाकाशपरोऽभवत्॥ ततो नादां स कालेन नीतः कृपोऽपि तस्य यै। कृपाकाशे गते शोकनिमग्नोऽसी ततोऽभवत् ॥२५ कृपाकादाप्रलापान्ते कुम्भं शीघ्रमथाकरोत्। कुम्भाकाशपरो भूत्वा स्वयं निर्वृतिमाययौ ॥ कुम्भोऽपि तस्य कालेन नाशं नीता रघृद्वह । यामेव दिशमाद्ते दुर्भगः सा हि नश्यति ॥ २७ इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा०मो०निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषोपाख्याने आकाशरक्षणं नाम द्वादशोत्तरशततमः सर्गः॥१९२॥

कुम्भाकाशत्रलापान्ते खरक्षार्थं चकार सः। कुण्डं तथैव तेनासी कुण्डाकाशपरोऽभवत्॥ २८ कुण्डमप्यस्य कालेन केनचिन्नाशमाययौ। तेजसेव तमस्तेन कुण्डाकाशं शुशोच सः॥ कुण्डाकाशस्य शोकान्ते खरक्षाधे चकार सः। चतुःशालं महाशालं तदाकाशमयोऽभवत्॥ तद्प्यस्य जहाराद्यु कालः कवलितप्रजः। जीर्णपर्णे यथा वातस्ततः शोकपरोऽभवत् ॥ ३१ स चतुःशालशोकान्ते खरक्षार्थं चकार ह । कुस्लमम्बुदाकारं तदाकाशपरः स्थितः॥ ३२ तद्प्यस्य जहाराशु कालो वात इवाम्बुदम्। कुस्लनाशशोकेन तेनासौ पर्यतप्यत ॥ 33 एवं गृहचतुःशालकुम्भकुण्डकुसूलकैः । तस्यापर्यवसानात्मा कालोऽयमतिवर्तते ॥ ३४ पवं स्थितः स विवशो गगनं गुहायां गृक्षनगृहेण गहनेन किलात्मबुद्धा । दुःखान्तराद्धनतराद्धनदुःखजात-मायाति याति च गतागतिसङ्गमुढः॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ११३

श्रीराम उवाच। मिध्यानरप्रसङ्गेन किं मायापुरुषः प्रभो। कचितोऽयं त्वया व्योमरक्षणं च किमुच्यते ॥ वसिष्ठ उषाच। शृशु राम यथाभूतमेतत्प्रकटयामि ते। मिथ्यापुरुषवृत्तान्तं कथा या कथिताभुना ॥

चिदस्तीति प्रतीयते तत्स एव न तद्यतिरिक्तम्। यचान्यत्स पदयति तत्तर्सेव भ्रान्साभासमिति स एवेत्युक्तिरिसार्थः। अहमेवेदमद्दयं सर्वमिति स न पर्यति । यतो दुर्मतिरिखर्भः ॥ १८ ॥ खस्याहमुपजीवकः । खं मे उपजीव्यम् । अतः स्रमेवाहं ईंहरां च खमावृत्य रक्षामि ॥ १९ ॥ स्वस्य इष्टं वस्तु सं तत्स्वयं कस्मिश्चदुपाधी स्थापयित्वा खयमादराद्रक्षामि ॥ २०॥ तस्य गृहस्य कोशे अन्तर्भागे । आस्थां मदीयमिद-मेताबत् समिलमिमानम्। संतुष्टः अभूदिति शेषः ॥ २१ ॥ ऋलन्तरेण शरदा ॥ २२ ॥ एतदाकाशम् ॥ २३ ॥ कूपा-काशे परो ममतया आसक्तः॥ २४॥ नाशं पांसुमृत्तिकादि-पूरणेन तिरोमावम् ॥ २५ ॥ निर्देति तदमिमानसुखम् ॥२६॥ यामेवेति सामान्योत्त्या तदुपपत्तिः ॥ २०॥ २८॥ केनचि-द्वनगजमहिषास्कन्दनादिनिमित्तेन ॥ २९ ॥ चतुःशालं च-तुर्दिक्षु शाला गस्य तथाविधम्। मध्ये महाशार्ल सभाकारं गृहम् । तदाकाशासस्या तदाकाशमयः । स्रीमयो जाल्म इति-वत् ॥ ३० ॥ ३९ ॥ कुसूलं धान्यावपनम् ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मायायस्त्रमयः प्रोक्तो यः पुमान्रघुनन्दन । एनं त्वं तमहंकारं विद्धि शुन्याम्बरोत्थितम्॥ यसिम्नाकाशकोशऽस्मिन्साधो जगदिदं स्थितम्। तदनन्तमसच्छून्यं सर्गादी भवति स्वयम् ॥ अन्तःस्थितसुदुर्रुश्यव्रह्मन्योम्रोऽथ शब्दवत्। तसादुदेत्यहंकारः पूर्व स्पन्द इवानिलात् ॥

तस्य मिथ्यापुरुषस्य ॥३४॥ उपसंहरति—एयमिति । हे राम, स मिध्यापुरुष एवंरीत्या गृहेण गहनेन दुष्प्रवेशेन कूपकुम्भाधुपा-थिना च गगनं गुहायां तत्तद्वर्शे गृह्णन् स्थितस्तद्वतागतिसंग-मूढस्तत्तद्भिमानात्तत्त्रिमीणरक्षणविनाशेषु घनतराष्टुःखान्तरा-दपि घर्न दुःखजातमायाति ततो याति निर्गच्छति चेल्यर्थः ॥ ३५ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्धप्रकाशे निर्वा-णप्रकरणे द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ५१२ ॥

> मिथ्यापुरुपशब्दादेरथींऽत्र स्फुटमीर्यते। यथैवाख्यायिकायाश्च तात्पर्ये साम्यवर्णनात् ॥ १ ॥

उत्तानार्थस्योन्मत्तचेष्टात्रायस्य त्रेक्षावरस्वसंभवं मन्यमानी मिथ्यापुरुषाह्यायिकाया अन्यापदेशवाक्यवदन्यार्थे मिति निश्चिल रामस्तं पृच्छति—मिध्येति । मिध्यानरप्रसङ्गेन खया यो मायापुरुषः कथितः अयं किममित्रेत्य तत्कृतं **व्योम-**रक्षणं च किममित्रेखोच्यत इत्यर्थः ॥ १ ॥ यथाभूतं यथास्य-तम् ॥ २ ॥ शून्याम्बरं मायाकाशस्तदुत्यितम् ॥ ३ ॥ स-र्गादी सप्टेः प्राक् ॥ ४ ॥ कि निरिष्ठणनान्मायाकाशादुत्यितं

वृद्धि यातः स गगने कल्पयत्यात्मतां गतः। अनात्मात्मामिधानेन तेनासौ यतते ततः॥ ક अनात्मात्मैकरक्षार्थं देहाजानाविधानसी । भूयोभूयो विनाशेऽपि सृजत्याकुलतां गतः॥ S स एव मायापुरुषो मिध्यापुरुष एव सः। असदेवोदितो व्यर्थोऽप्यहंकारो हि मायया ॥ क्रूपकुण्डचतुःशालकुम्भादीन्देहकानसी । **कृत्वा रक्षित आत्मेति याति तद्योन्नि भावनम्** ९ अहंकारस्य तस्यास्य नामानीमानि राघव । श्रुणु येजगदाकारविभ्रममाहियत्यसा ॥ १० जीवो बुद्धिर्मनश्चित्तं माया प्रकृतिरित्यपि। संकल्पः कलना कालः कला चेत्यपि विश्वतैः॥ ११ पत्रमाधिस्तथान्येश्च नामभिर्वद्वतां गतैः। सहस्ररूपोऽहंकारः कल्पितार्थैर्विज्ञम्भते॥ १२ भूताकाशे तते शुन्ये जगिन्निर्भित्ति निश्चितम्। सुखदुःखान्यनुभवन्मिध्यैव पुरुषः स्थितः॥ १३ यथैव मिथ्यापुरुषो रक्षन्वयोमात्मशङ्कया।

घटाकाशादिषु क्लिष्ट एवं मा क्लेशवान्भव ॥ आकाशादपि विस्तीर्णः शुद्धः सूक्ष्मः शिवः शुभः। य आत्मा स कथं केन गृद्यते रक्ष्यतेऽथवा ॥ हृदयाकाशमात्रस्य शरीरक्षयसंक्षये । व्यर्थ भूतानि शोचन्ति नष्ट आत्मेति शङ्कया॥ १६ घटादिषु प्रणप्रेषु यथाकाशाद्यखण्डितम्। तथा देहेषु नष्टेषु देही नित्यमलेपकः॥ 80 शुद्धश्चिन्मात्र आत्मायमाकाशाद्वव्यणोरणुः । स्वानुभृत्यंशमात्रं हि खवद्राम न नश्यति ॥ १८ न जायते न म्रियते क्षचित्किचित्कदाचन। जगद्वियर्तरूपेण केवलं ब्रह्म जुम्भते ॥ १९ सत्यमेकं पर्व शान्तमादिमध्यान्तवर्जितम्। भावाभावविनिर्मुक्तमिति मत्वा सुखी भव ॥ २० सर्वापदां निलयमध्रवमस्वतन्त्र-मासत्रपातमविवेकमनार्थमक्षम्। बोधादहं इतिपदं सकलं त्रिमुच्य राषे सुबद्धपदमुत्तमतां प्रयासि ॥ 21

इत्यार्षे श्रीवात्तिष्टमहारामायणे वात्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषोपाख्यानं नाम त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

तत्र स्थितं च नेत्याह-अन्तरिति । न तिभरिधष्टानं किं ल-न्तरिधानतया स्थितं सुदुर्छक्ष्यं ब्रह्म यस्य तथाविधम् । नन्व-तीन्द्रियात्कथमहंकारादि जगदुत्थितं तत्र दृष्टान्तमाह-व्योम्नः **शब्दवदिति ।** अहंकारो लिङ्गात्मा स च मायात्मेवेखिमेप्रेख तत्र दृष्टान्तान्तरमाह—स्पन्द इवंति ॥ ५ ॥ अनात्मैव भ्रान्सा आत्मतां गतः सन् खकारणं गगने वृद्धिं यातः कल्प-नासहस्रेरिदं मे इष्टमिदमनिष्टमित्यादिकल्पयति । तेन कल्पिते-नैवाहमित्यारमामिधानेन असौ इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहाराय यतते ॥ ६ ॥ तस्यानात्मभूतस्यात्मनो रक्षार्थं प्रवृत्तः पूर्वपूर्वदेहनाशे उत्तरोत्तरं नानाविधान्दंहान्कामकर्मवासनानुसारेण छजति॥०॥ सः अहहार एव ॥ ८ ॥ कूपकुम्भादिशब्दैरप्युचावचदेहा एव **रुक्षणयोक्ता इ**त्याह-कृषेति । तद्योप्ति तद्विक्छेने मयामया-रमनि आत्मभावनां याति ॥ ९ ॥ क्रियोपाधिभेदनिमित्तयौगि-कनामानि । वैर्थैः क्रियोपाधिमिर्जगदाकारविश्रमेरयमहद्वार आत्मानं मोहयतीत्यर्थः ॥ १० ॥ प्राणधारणाज्जीवो बाह्यार्था-ध्यवसायाद्वद्धिःस्तन्मननान्मनस्तविन्तनावित्तमसत्कल्पनान्मा-या परिणामिखभावलात्प्रकृतिः संकल्पनात् संकल्पः संकल्पिता-र्थस्याकलनारकलना तस्य विपरिणामादिनिमित्तलारकालसञ्जेक-देशमेदकत्पनात्कला चेत्यपि विश्वतैः प्रसिद्धैः ॥ ११ ॥ आदि-पदादुत्पत्तिप्रकरणोक्तमनोनामानि सर्वीण्यपि गृह्यन्ते । अन्यैः 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धाष्ट्रतिष्ट्रतिहींधींमीः' इत्या-विश्वतिस्पृत्यादिप्रसिद्धवृत्तिभेदनामभिथ वृत्तिबाहुल्येन बहुतां गतैः ॥१२॥ तस्मादन्यम् 'तत्रास्ति यदस्ति च स एव तदि'ति

यदुक्तं तदनुभवमारोपयति-भूतेति । पूर्णे ब्रह्मणि स्वेन प्रथमं श्रन्यरूपे भूताकाशे तते विस्तृते सति तत्र वाप्वादिक-ल्पनाक्रमेण कल्पितं जगद्भन्धर्वनगरमिव निर्भित्तिकु अयाधावर-णशून्यमेव युक्तया विमर्शे निश्चितम् । नद्याच्छिदेण ब्रह्मणि च्छिद आकाशः प्रथममुपपद्यते । सन शून्यात्मा अतिविस्तृतोऽचल-थलनात्मा वायुः कथं संपद्यते । सच वायुर्नारूपोऽनुष्णस्तद्विह-दस्त्रभावं तेजः कथं संपद्यते । तत्रोष्णं दाहस्त्रभावं कथं तदि-रुद्धशैत्याप्यायनस्वभावं वारि संपद्यते । तश्व द्रवशोषाकाठिन्यस्व-भावं कथं तद्विरुद्धस्त्रभावं पृथिवीभावमापद्यते । अतो निर्भिस्येव जगदिति निश्चितं । तत्र च स पुरुषो मिध्येव मुखदुःखान्य-नुभवन् स्थित इत्यर्थः ॥१३॥ 'नच पश्यति दुर्मति'रिति वर्णिता-ज्ञमिध्यापुरुषो यथा मिध्याक्रेशमनुभूय स्थितस्तया त्वं माभूरि-त्याह—यथैवेति ॥ १४ ॥ १५ ॥ शरीरलक्षणस्य क्षयस्य निवासस्य संक्ष्ये ॥ १६ ॥ १७ ॥ स्वानुभूत्यंशः अहंकारः निष्कृष्टस्वप्रकाशचित् तावन्मात्रं हि ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ वर्णितमिथ्यापुरुषरूपमहंकारं स्याजयन् परिविष्टशिष्टचिन्मात्रे र्थंथापदेशेनोपसंहरति-सर्वापदामिति । अखातह्रयापादक-लादखतन्त्रम् । आसन्नो नरकादिपातो यस्मात्तथाविधं सर्ववि-वेकविरोधि । अनार्यं निन्धमहं कृतिपदम् । सकलमभिमन्तव्य-देहेन्द्रियविषयलक्षणकलासहितं बोधान्मूलोच्छेदेन विमुच्य हो-षे निष्कृष्टचिन्मात्रे सुबद्धपदं हढं स्थितवेत् सर्वोत्तमतां प्रयासी-त्यर्थः ॥ २१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्वर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ११४

वसिष्ठ उवाच। परसाद्वस्थाः पूर्वं मनः प्रथममुत्थितम्। मननात्मकमाभोगि तत्स्थमेव स्थिति गतम्॥ पूष्पकोश इवामोदो महोमिरिव सागरे। रिश्मजालमिवादित्ये मनो ब्रह्मणि राघच ॥ तस्यादद्यात्मतस्यस्य विस्मृत्येव गतं स्थितिम्। 3 नान्यसादागतं राम जगद्रज्ञभुजङ्गवत्॥ आदित्यव्यतिरेकेण यो भावयति राघव। रिमजालमिदं होतत्तस्यान्यदिव भास्वतः॥ कनकव्यतिरेकेण केयुरं येन भावितम्। केयूरमेव तत्तस्य न तस्य कनकं हि तत्॥ Ģ आदित्याव्यतिरेकेण रदमयो येन भाविताः। आदित्य एव ते तस्य निर्विकल्पः स उच्यते ॥ દ્દ सलिलव्यतिरेकेण तरङ्गो येन भावितः। तरक्रवृद्धिरेवैका स्थिता तस्य न वारिधीः॥ O सलिलाव्यतिरेकेण तरङ्गो येन भाव्यते । अम्बुसामान्यताबुद्धिर्निर्विकल्पः स उच्यते ॥ 4 कनकाव्यतिरेकेण केयुरं येन भाव्यते। कनकैकमहाबुद्धिर्निर्विकल्पः स उच्यते॥ Q पावकव्यतिरेकेण ज्वालाली येन भाविता। तस्याग्निबुद्धिगंलित ज्वालाधीरेव तिष्ठति॥ 80 ज्वालाजालाभूलेखेव रक्षिता सा तथा स्थितिः।

> विविष्य सदसद्ये दृष्टान्तेरिह भूरिकाः। असद्रुपनिरासेन सद्ये स्थैर्यमीर्यते॥ १॥

जगतः सर्वस्य मनोविकल्पमात्रलाद्विकल्पवस्तुप्रदर्शनेन मुकरो निरास इति व्युत्पादियतुं प्रथमं परे ब्रह्मणि मनः-कल्पनामाह—परसादिति । पूर्वं सर्गादिकाले प्रथमं सर्वेकस्प-नाभ्यः पूर्वं तच मनस्तत्र परे ब्रह्मणि अपृथक्सत्तया स्थितमेव संस्कल्पनान्तरनिमित्ततया अद्ययावित्थिति गतमित्यर्थः ॥ १ ॥ अपृथक्सत्तथा स्थिनौ द्रष्टान्तानाह-पुष्पकोशे इति ॥ २ ॥ तत्स्थमेवेलंशं दशन्तैर्विशदीकृत्य स्थिति गतमिलंशं विश्र-णोति—तस्थिति । विस्मृत्या अप्रतिसंधानात्मकेनाज्ञानेनैव सर्वेजगरकल्पनामूळतया स्थितिं गतम् ॥ ३ ॥ तथाच जगरस-न्मात्रादन्यतया भावने अन्यत् सन्मात्रतया विभावने तु स-द्वपं ब्रह्मेंवति दष्टान्तेरुपपादयति-आदित्येखादिना । इदं रिमजालं य आदिलाव्यतिरेकेण भावयति तस्य होतद्भास्तत भादिखादन्यदिव स्यादिखन्वयः ॥ ४ ॥ न तस्येति । वस्त्वै-क्यबुद्धेः केयूरेणेवावरोधादिति भावः ॥ ५ ॥ आदित्याव्यति-रेकेण निर्विकल्पो रिक्नभेदनिकल्पश्रन्यः ॥ ६ ॥ कल्पिताक-हिएतरूपाभ्यामधे इव कल्पनाकल्पनबुद्धिभ्यां पुरुषोऽपि भवतीत्याह-सिल्लेखादिना सविकल्पो निविकल्पथ

तामेवास्थां समादत्ते तद्वतान्याकुला मतिः॥ ११ पावकाव्यतिरेकेण ज्वालाली येन भाव्यते। तस्याधिबुद्धिरेकास्ति निर्विकल्पः स उच्यते ॥ १२ यो निर्विकल्पः स महान्सोऽसंक्षीणमहामतिः। प्राप्तव्यं तेन संप्राप्तं नासी वस्तुषु मज्जति॥ नानातामखिलां त्यक्त्वा शुद्धचिन्मात्रकोटरे । संवेद्यन विनिर्मुक्ते संवित्तरवे स्थितो भय॥ १४ स्वयमेवात्मनैवात्मा शक्ति संकल्पनामिकाम्। यदा करोति स्फूरता स्पन्दशक्तिमिवानिछः॥ १५ तदा पृथगिवाभासं संकल्पकलनामयम्। मनो भवति विश्वात्मा भावयन्स्वाकृति स्वयम् १६ तत्संकल्पात्मकं चेतो यथेदमखिलं जगत्। संकल्पयति संकल्पस्तयेव भवति क्षणात्॥ १७ कीटत्वमक्कजत्वं च मेरुत्वं मरुतां तथा। मनो जीवमहंकारबुद्धिचित्तादिनामकम्॥ १८ संकल्पतो द्वितैकत्वमेत्य चेतो जगत्स्थितिम्। तनोति तस्यां तद्यु नानातां गच्छति स्वयम् ॥१९ संकल्पमयमेवेदं जगदाभोगि दृश्यते । न सत्यं न च मिथ्येव स्वप्नजालमिवोत्थितम् जन्तोर्यथा मनोराज्यं विविधारम्भभासुरम् । ब्राह्मं तथेदं विततं मनोराज्यं विराजते ॥ २१ यथा भूतार्थभावित्वात्तदेतत्प्रविहीयते।

॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ गरुति नोद्भवति ॥ १० ॥ कल्पि-ताकारानुविद्धा बुद्धिस्तंत्रवास्थां बद्धा तन्मूलानि कल्पना-न्तराणि च करोतीत्याह—ज्वालेति । अञ्चलेखेव ज्वालाजालं ज्वालाजालाम्रलेखा सेव रिजता । तदाकारतापन्नेतियावत् । स्थितिवृद्धियत्तः तद्भतानि ज्वालाजालगतानि चलनोध्वेगमन-ऋजुवऋतादीनि च आदत्ते कल्पयति ॥ ११ ॥ १२ ॥ नि-र्विकल्पः उक्तप्राह्मप्राह्कद्विविधविकल्परहितः । वस्तुषु वैकल्पि-कपदार्थेषु । मजति सत्यबुद्धा आसजते ॥ १३ ॥ दष्टान्ते उपपादितविकल्पल्यागप्रकारं दार्शन्तिके उप<mark>दिशति---नानाता</mark>-मिति । कोटरशब्द आन्तरप्रत्यम्बस्तुपरः ॥ १४ ॥ स्फ्रस्ता खप्रकाशेनात्मनेव संकल्पनामिकां शाक्तिं यदा करोति तदा मनो भवतीति परेणान्वयः ॥ १५ ॥ विश्वाकारां खाकृति भावयन् विश्वातमा समष्टिमनो भवति ॥ १६ ॥ तद्विश्वाकार-संकल्पात्मकं समष्टिचेतो हिरण्यगर्भात्मकम् ॥ १७ ॥ **यथायथा** भावयति तदवयुत्य प्रपश्चयति—कीटलमिति ॥ १८ ॥ १९ ॥ मिभ्याशब्दोऽलीकपरः । खप्रजालमिवानिवेचनीयमिल्यर्थः ॥ २० ॥ त्रहाणो हिरण्यगर्भस्येदं त्राह्मम् ॥ २१ ॥ मिध्या-लादेव तत्त्वज्ञानेन यथा स्थितब्रह्मात्मनैव भाविलान्मायिकह-पेण प्रविलीयत इत्याह-यथाभूतेति। तथाच श्रुतिः 'मनसैवे-

परमाधेन रष्टं चेत्तदिदं नैय किंचन ॥ १२ रघं स्वपरमाधेन प्रयाति शतशाखताम्। जलमूर्मितरङ्गादिकलनाई परिस्फुरन्॥ १३ यथाम्बुधिवेपुधंत्ते स्वभावेन तथा चितः। कुवंन्कर्मसहस्राणि हाणुचित्स्पन्दनाहते॥ १४ नापूर्वं कुरते किंचितिकचिद्धेदमतस्यजन्। गच्छन्ष्रण्यन्स्पृशन्जिन्नन्वदन्व्यवहरन्स्वपन् १५ नापूर्वं विद्यते किंचित्सस्यमित्येव भावयन्। यद्यत्करोषि तिन्निक्ति चिन्मात्रममलं ततम्॥ १६ महा प्रबृद्धिताकारं तस्मादन्यन्न विद्यते।

पदार्थजाते सर्वसिन्संवित्सारमये स्थिते ॥ २७ संविदेवेदमिललं जगन्नान्यास्ति कल्पना । संवित्स्फुरणमात्रेऽस्मिजगज्जालकनामनि ॥ २८ इदमन्यदिदं चान्यदिति मिथ्याग्रहः कुतः । संभवादिललाकारेष्वेकस्या पव संविदः । संवेद्यमिप नास्त्येव बन्धमोक्षावतः कथम् ॥ २९ मोक्षोऽयमेष ललु बन्ध इति प्रसद्य विन्तां निरस्य सकलां विफलामिमानाम् । मोनी वशी विगतमानमदो महात्मा कुर्वन्स्वकार्यमनहंक्रतिरेव तिष्ठ ॥ ३०

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशो नाम चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पश्चद्वाधिकवाततमः सर्गः ११५

विसष्ठ उवाच ।

महाकर्ता महाभोका महात्यागी भवानघ ।
सर्वाः शङ्काः परित्यज्य धर्यमालम्ब्य शाश्वतम् १
श्रीराम उघाच ।
किमुच्यते महाकर्ता महात्यागी किमुच्यते ।
किमुच्यते महाभोका सम्यक्षथ्य मे प्रभो ॥ २
विसष्ठ उवाच ।
पतहर्तत्रयं राम पुरा चन्द्रार्धमौलिना ।
भृष्ठीशाय तु संप्रोक्तं येनासौ विज्वरः स्थितः ॥ ३
सुमेरावुत्तरे शृङ्गे पूर्व शशिकलाधरः ।
अतिष्ठदग्निसंकाशे समप्रपरिवारवान् ॥ ४
तमपृच्छन्महातेजास्तनुविद्यानवान्स्थितः ।
भृष्ठीशः प्रणतो राम बद्याञ्जलिक्मापतिम् ॥ ५

दमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन' इति ॥ २२ ॥ तत्त्वदर्शनाभावे तिर्ह किं भवति तदाह—हर्यमिति । तदा अङ्गातपरमार्थबलेनैव शतशाखतां प्रयाति । यथा अम्बुधिर्जलमेव सन्
फर्मितरङ्गादिकलनाई ह्मं परिगृह्य स्फुरन् अम्बुधिवपुर्धते
तथा कमेसहसाणि कुर्वन् जनोऽपि अणुचितिध्वदाभासयुक्तस्य
मनसः सम्दनाहते कूटस्थचितोऽपूर्वं किंचिदपि विकारादि न
कुरते । अतस्तमपि किंचित्तुच्छतरं मेदं राजन् सन् गमनादि
सर्वव्यवहारं कुर्वश्रप्यूर्वमिनवं जगद्रूपं किंचिद्रैतरूपं सलं
न विद्यते किंतु पूर्वसिद्धं बह्नीव परमार्थसलं विद्यत इति भावयेति चतुर्थार्थपर्यन्तमन्वयः ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥
प्रशृंहिताकारं विवर्तविज्ञम्भिताकारं तद्वाधविज्ञम्भिताकारं वा ।
मह्म स्थावसुक्तं प्रतीचि पर्यवसाययति—पदार्थलादिना
॥ २० ॥ २८ ॥ संवेद्य अपिशब्दाक्तिश्वानमपि ॥ २९ ॥
हे राम, अयं मोक्ष एव वन्ध इलादिकां विफलाभिमानां सकलो
चिन्तां प्रसद्य सर्वयक्षेन निरस्य वागादिसर्वेन्द्रियजयान्मीनी

भृङ्गीश उवाच । भगवन्देवदेवेश सर्वज्ञ परमेश्वर। यदहं परिष्ट्रच्छामि रूपया तहदाशु मे ॥ દ્દ संसाररचनां नाथ तरङ्गतरलामिमाम्। अवलोक्य विमुद्यामि तत्त्वविश्रान्तिवर्जितः॥ 9 कमन्तर्निश्चयं कान्तमुररीकृत्य सुस्थितम्। अस्मिञ्जगज्जीर्णगृहे तिष्ठामि विगतज्वरम्॥ ረ ईश्वर उवाच । सर्वाः शङ्काः परित्यज्य धैर्यमालम्ब्य शाश्वतम् । महाभोका महाकर्ता महात्यागी भवानघ॥ भृङ्गीश उवाच । किमुच्यते महाकर्ता महाभोका किमुच्यते। किम्च्यते महात्यागी सम्यक्तथय मे प्रभो॥

वशी विगतमानमद्ध सन् खोनितं राज्यादिकार्यं कुर्वत्रनहं-कृतिर्महारभेव भूला तिष्ठेखर्थः ॥ ३० ॥ इति श्रीवासिष्टम-हारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे चतुर्देशोत्तरशत-तमः सर्गः ॥ ११४ ॥

थोग० १३१

ईश्वर उघाच।

धर्माधर्मी महाभाग शङ्काविरहिताक्षयः। यः करोति यथात्राप्ती महाकर्ता स उच्यते ॥ ११ रागद्वेषी सुखं दुःखं धर्माधर्मी फलाफले। यः करोत्यनपेक्षेण महाकर्ता स उच्यते॥ १२ मीनविश्वरहंभावो निर्मलो मुक्तमत्सरः॥ यः करोति गतोद्वेगं महाकर्ता स उच्यते ॥ १३ श्वमाश्रमेषु कार्येषु धर्माधर्मेः कुशङ्कया । मतिर्न छिप्यते यस्य महाकर्ता स उच्यते ॥ १४ सर्वत्र विगतस्रेहो यः साक्षियद्यस्थितः। निरिच्छं वर्तते कार्ये महाकर्ता स उच्यते ॥ १५ उद्वेगानन्दरहितः समया स्वच्छया धिया। न शोचते यो नोदेति महाकर्ता स उच्यते॥ ४६ यथार्थकाले मतिमानसंसक्तमना मुनिः। कार्यानुरूपवृत्तस्थो महाकर्ता स उच्यते ॥ १७ उदासीनः कर्तृतां च कर्माकर्माचरंश्च यः। समं यात्यन्तरत्यन्तं महाकर्ता स उच्यते ॥ १८ स्वभावेनैव यः शान्तः समतां न जहाति वै। शभाशमं ह्याचरन्यो महाकर्ता स उच्यते॥ १९ जन्मस्थितिबिनाशेषु सोद्यास्तमयेषु च। सममेव मनो यस्य महाकर्ता स उच्यते ॥ 20 न किंचन द्वेष्टि तथा न किंचिदिसकाङ्कृति। अङ्के च प्रकृतं सर्वे महाभोक्ता स उच्यते ॥ २१ नाद्रचेऽप्याद्दानश्च नाचरत्याचरन्नपि। भुजानोऽपि न यो भुक्के महाभोक्ता स उच्यते॥२२

तत्र सर्वाः शहाः परित्यज्येत्यंशं वित्रुणोति-धर्माधर्माविति । अकर्त्रभोकात्मनिश्वयात् कर्तृलादिशक्काविरहिताकृतिः। 'हलापि स इमां होकान्' इतिवज्ज्ञानप्रभावोक्तिरियं नतु यथेष्टाचरणा-भ्यनुकेति बोध्यम् ॥११॥ रागद्वेषादिपदैस्तदाजकचेष्टा उच्यन्ते । फलफले इष्टानिष्टे योऽनपेक्षेण निष्कामेन मनसा लोकसंप्रहमा-अप्रयोजनेन करोति॥१२॥ मीनं मुनिकर्म मननयोगावि। गत उद्वेगः फलासिद्धान्यथालप्रयुक्त उद्वेगो यस्मिन्कर्मणि ॥ १३ ॥ दैवात्संपन्नेष्वश्रमेशकसम्भाषादिकार्येषु धार्मिकोऽहं पापोऽह-मिति वा कुशह्रया कल्पितिर्धर्माधर्मैः ॥ १४ ॥ १५ ॥ शोक-निमित्तेषु न शोवति उदयनिमित्तेषु च नोदेति ॥ १६॥ प्रार-ब्धोपनीतयथोचितप्रयोजनकाले कार्यानुरूपवृत्तस्यस्तत्प्रयोजना-नुकूलचेष्टावान् ॥ १७ ॥ कर्मोकर्म विहितनिषिद्धकर्मणी स्वयं दैवाचरंस्तत्कर्तृतामन्यप्रेरणेन हेतुकर्तृतामापद्यमानश्चान्तर्भन-स्यक्त्रीत्मद्दवनिश्वयेनोभयत्र यः समं भावं याति ॥ १८ ॥ यो मित्रेषु शुभममित्रेष्यशुभमाचरत्रपि समतां न जहाति । हि यसादितोर्यः स्वभावेनैव शान्तः । नहास्य चन्द्राहाद्कतासद्याः स्वभावोऽन्यथाभवतीत्वर्थः ॥ १९ ॥ जन्मादिषु पद्मस्य भाव-विकारेषु उदयो वृद्धिरस्तमयोऽपक्षयस्त्रत्सहितेषु शरीरेषु निर्धि-

साक्षिवत्सकलं लोकव्यवहारमिकक्षिणधीः। पद्मयत्यपगतेष्छं यो महाभोका स उष्यते ॥ सुर्क्षर्दुः कैः कियायोगैर्भावाभावेर्भ्रमप्रदेः। यस्य नोत्कामति मतिर्महाभोका स उच्यते ॥ २४ जरामरणमापच राज्यं वारिष्यमेव च। रम्यमित्येष यो बेक्ति महाभोका स उच्यते ॥ २५ महान्ति सुखदुःसानि यः पर्यासीय सागरः। समं समुपगृहाति महाभोका स उष्यते ॥ २६ अहिंसा समता तुष्टिश्चन्द्रविम्बादिबांशवः। नोप यसाबोपयाता महाभोका स उच्यते॥ २७ कट्टम्ललवणं तिक्तममृष्टं मृष्ट्युत्तमम्। अधमं योऽत्ति साम्येन महाभोका स उच्यते २८ सरसं नीरसं चैव सुरतं विरतं तथा। यः पश्यति समं सौम्यो महाभोका स उच्यते २९ क्षारे खण्डप्रकारे च शुमे बाप्यशुमे तथा। समता सुस्थिरा यस्य महाभोका स उड्यते॥ ३० इदं भोज्यमभोज्यं चेत्येषं त्यक्त्वा विकल्पितम्। गतामिलाषं यो भुक्के महाभोका स उच्यते॥ ३१ आपदं संपदं मोहमानन्दमपरं परम्। यो भुद्धे समया बुद्धा महाभोका स उच्यते॥ ३२ धर्माधर्मी सुबं दुःसं तथा मरणजन्मनी। षिया येनेति संत्यकं महात्यागी स उच्यते ॥ ३३ सर्वेच्छाः सकलाः शङ्काः सर्वेहाः सर्वेनिश्चयाः । थिया येन परित्यका महात्यागी स उच्यते ॥ ३४

कारसन्मात्रात्मदर्शनात्सममेव मनो यस्य ॥ २० ॥ महास्रो-कुर्रुक्षणान्याह—न किंचिदित्यादिना । प्रकृतं प्रस्तुतं प्रारम्भो पनीतम् ॥ २१ ॥ इन्द्रियैर्विषयानाददानोप्यद्वमासङ्गपूर्णात्मप्रति-ष्ठलामादले । **इस्त**पादादिना आदानगमनाद्याचरम्रपि निष्कि-यात्मबुद्धाः नाचरति । एवमशनायाद्यतीतनित्यतृप्तात्मद्रशनान्न भक्ते ॥ २२ ॥ उदासीनः साक्षाष्ट्रधा साक्षी तद्वत् ॥ २३ ॥ जयापजयादिकियायोगैः । भावाभावैर्छाभव्ययैः । असा विक्षे-पास्तत्प्रदैः । नोत्कामति न विक्षिपति ॥ २४ ॥ रम्यं प्रदा-दृष्या रम्यम् । यथा सर्गमयो व्याघो रम्यसर्गरद्या रम्यसा-येति भावः ॥ २५ ॥ सम तुस्यवृत्त्या भोगाय समुपगृहाति ॥ २६ ॥ यस्मादुपयाता नोपयाता । चकारः प्रागुक्तगुणकद-म्बसमुश्रमार्थः ॥ २७ ॥ अधमं अखादु निष्कृष्टमप्यन्नम् ॥ २८ ॥ विरतं रतिविषातम् ॥ २९ ॥ खण्डप्रकारे शर्कराप-रिष्कृतभस्यमेदे ॥ ३० ॥ अभोज्यं भोक्तुमशक्यम् । असाद् तिकादि । विकल्पितं विकल्पनम् ॥ ३१ ॥ अपरमसृष्टं कोद्र-वाभसदाच्छादनादि । परं उत्कृष्टं दिव्याभाच्छादनादि ॥ ३२ ॥ इति प्रागुक्तलक्षणया । विया निरतिशयानन्दपूर्णाद्वयारमविवा । मिथ्येति संवाकामिति वा ॥ ३३ ॥ सर्वा ईहा वाक्यमःकाय-

देहस्य मनसो दुःखैरिन्द्रियाणां मनःस्थितेः। नृनं येनोज्झिता सत्ता महात्यागी स उच्यते॥ ३५ न मे देहो न जन्मापि युक्तायुक्ते न कर्मणी। इति निश्चयवानन्तर्महात्यागी स उच्यते॥ 3E येन धर्ममधर्मे च मनोमननमीहितम्। सर्वमन्तः परित्यक्तं महात्यागी स उच्यते॥ OF यावती दश्यकलना सकलेयं विलोक्यते। सा येन सुष्टु संत्यका महात्यागी स उच्यते ॥ ३८ इत्युक्तं देवदेवेन भृक्षीशाय पुरानघ । पतां दृष्टिमवष्टभ्य तिष्ठ राम गतज्वरः॥ 36 निस्पोदितं विमस्रह्मपमनन्तमाद्यं ब्रह्मास्ति नेतरकलाकलनं हि किंचित्। इत्येष भाषय निरञ्जनतामुपेतो निर्वाणमेहि सकलामलशान्तवृत्तिः॥ 80

अनामयं ब्रह्म समस्तकत्पकार्येकबीजं परमात्मरूपम् ।
बृहच्च तद्वंहितसर्थभावं
खमस्ति भातीह यद्क् किंचित्॥ ४१
अन्यत्कचित्तिचिदिदं कदाचिश्व संभवत्येव सद्य्यस्य ।
१८ त्येव साधो हदनिश्चयोऽन्तः
स्थित्वा गताशङ्कविलासमास्स्य ॥ ४२
अन्तर्भुखः सन्सततं समस्तं
कुर्वन्यहिष्ठं खलु कार्यजातम् ।
न खेदमायासि कदाचिदेव
निराक्ताहंकतितामुपैपि॥ ४३

इत्यार्पे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे व्रतत्रयनिरूपणं नाम पञ्चदशाधिकशतत्तमः सर्गः॥११५॥

षोडशाधिकशततमः सर्गः ११६

श्रीराम उवाच । भगवन्सर्वधमंत्र चित्तेऽहंकारनामनि । गिलिते वा गलदूपे लिङ्गं सत्वस्य कि भवेत् ॥ १ वसिष्ठ उवाच । बलादपि हि संजाता न लिम्पन्स्यादायं सितम् । लोभमोहादयो दोषाः पर्यासीय सरोहहम् ॥ २

चेष्टाः । विया विषयबाधादेव परितस्त्यकाः ॥ ३४ ॥ देहा-धीनां सत्ता तत्तदुःखैः सह येन मिध्यालबुद्धा उज्जिता व्यक्ता ॥ ३५ ॥ युक्तायुक्ते विहितनिषिद्धे इष्टानिष्टाचरणरूपे वा ॥ ३६ ॥ धर्ममधर्मं च शारीरम् । मनोमननं मानसम् । इंहितं वागादि चेष्टितम् ॥ ३७ ॥ सुष्टु सम्यग्दर्शनेन बाधा-रखंखका ॥ ३८ ॥ उपसंहरति—इतीति ॥ ३९ ॥ यया भावनया महाकर्ता महाभोक्ता महात्यागी वानायासेन भवति तां भावनां रामायोपदिशति--निखोदितमिति । हे राम, रवं देहादिपश्वकोशानामवस्थात्रयस्य च निरमनतामुपेतः सन् परिशिष्टं नित्योदितं मधीवास्ति किचित्तदितरकल्पनाकलनं नास्तीखेव एवं सदा भावयंसाद्भावाभिव्यक्तया कलनामलेभ्यः शान्ता रतयो यस्य तथाविधः सन्निर्वाणमेहि प्राप्नदीसर्थः ॥ ४० ॥ **हे अज्ञ, इह संसारे** यत्किचिद्भाति तत्समक्षेषु कल्पेषु द्विपरार्था-बिकालावयवेषु प्रसिद्धानां सर्वकार्याणामेकवीजं मूलकारणभू-तमनामयं खयं जन्मादिविकारामयशून्यं परमात्मरूपं वृद्धीव । ता बृहत्सर्गमेदैर्वृद्धितसर्वभावविकल्पमपि समाकाशमेवास्ति । सर्वविकल्पश्चमेवेत्यर्थः ॥ ४९ ॥ यतः क्रवित्विविदपि सत् स्यूलमसत् सुक्षमं अपिशब्दात्कारणं य सदेकरसाद्रहाणोऽन्यन्न

मुदिताद्याः श्रियो वक्तं न मुञ्चन्ति कदाचन ।
गलत्यहंकारमये चित्ते गलति दुष्कृते ॥ ३
बासनाग्रन्थयदिख्या ६व तुट्यन्त्यलं दानैः ।
कोपस्तानवमायाति मोहो मान्यं हि गच्छति ॥ ४
कामः क्रमं गच्छति च लोभः कापि पलायते ।
नोह्यसन्तीन्द्रियाण्युष्यः खेदः स्फुरति नोषकैः ॥५

संभवत्येव । सतः पृथवले असत्त्वापत्तेः, अपृथवत्वे सदैकर-स्यापत्तेः, प्रकारान्तरस्य च संभावनायोगादिति भावः । हे साधो, अतस्त्वं सद्रक्षेवाहमित्येवान्तर्देढनिश्चयः सन् प्रथमं समा-ध्यभ्यासबलेन स्थिला सप्तमभूमिकां क्रमेणाधिरुह्य गताशङ्क-विलासं तथैवास्स्वेत्यर्थः ॥ ४२ ॥ हे साथो, लं यदि अन्त-मुंखः सिन्नराकृताहंकृतितामुपपि तदा बलिष्ठं समस्तं कार्य-जातं कुर्वन्नपि कदाचिदपि खेदं नायास्यव्यन्वयः ॥ ४३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १३५ ॥

> चित्तस्य गळतो निस्यं चतुर्थादिषु भूमिषु । गलितस्य च लक्ष्माणि वर्ण्यन्तेऽत्र पुमाश्रयात्॥ १॥

सलस्य क्षीणवासनस्य मनसो लिक्नं लक्षणम् ॥ १ ॥ एवं पृष्टो वसिष्ठः प्रथमं लोममोहादिदोषस्य एव मुख्यं तल्रक्षण-मिलाइ—वलादिति । संजाताः संजनिताः । परीक्षाद्यर्थं परेण बलादित संपादिता इल्प्यः । सितं ग्रुदं ग्रुप्रं न ॥ २ ॥ सदा मुखप्रसन्नतादिरि तल्रक्षणमिलाह—मुदितादा इति । दुष्कृते विषादहेतौ पापे ज्ञानाभिना गलति सति ॥ ३ ॥ उक्तं प्रपश्च-यन् लक्षणान्तराण्यप्याह—वासनेलादिना ॥ ४ ॥ ५ ॥

Ę

ረ

९

न दुःखान्युपर्वहन्ति न वलान्ति सुखानि च। सर्वत्र समतोदेति हृदि रोत्यप्रदायिनी ॥ सुखदुःखादयस्त्वेते दृश्यन्ते यदि वा मुखे। हृश्यन्त एय तुच्छत्याचानुलिम्पन्ति ते मनः॥ चित्ते गलति गीर्वाणगणस्य स्पृहणीयताम्। साधुर्गच्छत्युदेत्यस्य समता शीतचन्द्रिका॥ उपशान्तं च कान्तं च सेव्यमप्रतिरोधि च। निभृतं चोर्जितं स्वच्छं वहतीत्थं महत्रपुः॥ भावाभावविरुद्धोऽपि विचिन्नोऽपि महानपि ।
नानन्दाय न खेदाय सतां संस्तिविग्नमः ॥ १०
युद्ध्यालोकेन साध्येऽस्मिन्चस्तुन्यस्तमितापदि ।
प्रवर्तते न यो मोहात्तं धिगस्तु नराधमम् ॥ ११
विश्वान्तिमाप्तमुचितां चिरमङ्ग दुःखरक्ताकरं जननसागरमुत्तितीर्षाः ।
कोऽहं कथं जगदिदं च परं च कि स्थाक्तिभोगकेरिति मतिः परमोऽभ्युपायः १२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे गलितचित्तलक्षणकथनं नाम षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥११६॥

सप्तद्शाधिकशततमः सर्गः ११७

वसिष्ठ उवाच।

भवतामादिपुरुष इश्वाकुर्नाम भूपतिः।
इश्वाकुर्वशप्रभव यथा मुक्तस्था शृणु ॥ १
इश्वाकुर्नाम भूपालः स्वराज्यं परिपालयन्।
कदाचिदेकान्तगतो मनसा समचिन्तयत् ॥ २
जरामरणसंक्षोभमुखदुःखभ्रमस्थितेः।
अस्य दृश्यप्रश्चस्य को हेतुः स्यादिति स्वयम् ॥ ३
जगतो न विवेदासौ कारणं चिन्तयन्नपि।
अधेकदा पृच्छदसौ ब्रह्मलोकागतं मनुम् ॥ ४
पूजितं स्वसभासंस्थं भगवन्तं प्रजापतिम्।

शैर्यं तापनिवृत्तिसारप्रदायिनी ॥ ६ ॥ ननु ज्ञानिनामपि कदा-चिन्सुखे सुखदुःखादिलिङ्गानि प्रसादमालिन्यादीनि दश्यन्ते यथा प्राक्षुम्भस्य दुर्वासःशापश्रवणे शिक्षिष्वजस्य,यथा वा विश्वामित्रेण हरिश्चन्द्रच्छलने पुत्रघातेन च वसिष्ठस्य । तत्कथं मुदिताचाः श्रियो वर्षं न मुखन्तीति रुक्षणं घटते तत्राह-सुखदुःखादय इति । भोजकप्रारब्धप्रायल्येन दुःखतिहज्जमाछि-न्याभासयोः कदाचिद्वदयेऽप्युत्तरक्षणे भिश्यालवुद्धिवाधितलात्र तयोस्तिश्वत्तछेपकलमिति न स्वाभाविकमुखादिप्रसादविधात इत्यर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ अप्रतिरोधि परेष्टाविषाति । निमृतं विनीतम् ॥ ९ ॥ भावैविभवैरभावैदीरिद्यविरुद्धो विषमोऽपि । सत्तां गलिताहं काराणाभ् ॥ १० ॥ इदानीमात्मलाभस्यातिसुळ-भता दर्शयंस्तदर्थमप्रवृत्ताक्षिन्दत्रुपसंहरति—वुद्ध्यालोकेनेति । बुद्धिलक्षणेनालोकेन प्रकाशेन । अथवा प्रत्यवप्रवणया बुद्धा आलोकनमालोकस्तावन्मात्रेण साध्ये छम्ये अस्तमिता आपदो यस्मिन् लब्धे सति तथाविधे परमात्मवस्तुनि यो न प्रवर्नते तं चिगस्त्वलार्थः ॥ ११ ॥ तस्त्रयुत्ते। तर्हि कः प्रथमसुपाय इति चेद्रिवेदवैराग्ये एवेत्याह—विश्रान्तिमिति । हे अङ्ग, दुःखरक्षानामाकरभूतं जननमरणोपलक्षितं संसारसागरमुति-तीवीहत्तरितुमिन्छीः पुरुषस्य तत्पारे निरतिशयानन्दात्मनि चित्यचिता विश्रान्ति प्राप्तमहं क इदं जगन कि परमात्मतत्त्वं इक्ष्याकुरुवाच ।

मां योजयित धार्खेन भगवन्करुणानिधे ॥ ५
भवत्प्रसाद एवायं भवन्तं प्रष्टुमञ्जसा ।
कुतः सगोंऽयमायातः स्त्ररूपं चास्य कीरदाम् ॥ ६
कियदेतज्जगत्कस्य कदा केनेति कथ्यते ।
अहं कथं च विषमादसात्संस्तिविभ्रमात्॥ ७
विमुच्येय धनास्तीर्णाज्जालादिव विद्यंगमः ।

मनुरुवाच।
अहो नु चिरकालेन विवेके सुविकासिनि॥ ८
वितथानर्थविष्छेत्ता सारः प्रश्नस्त्वया कृतः।
यदिदं दृदयते किंचित्तन्नास्ति नृप किंचन॥ ९

च किं कीहरां स्यात् भोगकैसुच्छेश्च कि स्यादिति निरन्तराभ्यस्ता विचारवराग्यात्मिका मतिरेव प्रथमोऽभिमत उपायोऽभ्युपायः । तस्मात्तमेवाध्रयेदित्यर्थः ॥ १२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

कोऽहं कथं जगदिति विचारेऽत्र निदर्शनम् । इश्वाकोर्मनुना प्रोक्तो विवेकः संप्रकीर्स्यते ॥ १ ॥

आदिपुरुषो मूलपुरुषो यथा । याहराविचारेण मुक्तः प्रागुक्तपदे विधानतस्तथा तं विचारं शृण्विखर्यः ॥१॥२॥ इति स्वयं
समिनिन्तयदिति पूर्वेणान्वयः ॥ ३ ॥ न विवेद विवेकेन वेद ।
ब्रह्मलोकादागतं मनुं खपितरम् ॥४॥ तत्र प्रथमं मनुं प्रार्थनयाभिमुखीकरोति—मामिति ॥ ५ ॥ प्रष्टव्यांशं दशेयति—कृत
इखादिना ॥ ६ ॥ संख्यया परिमाणतश्च कियत् । कस्य भोक्तः
स्वामिनश्च । कदा केन रचितमिति शुखादिभिः कथ्यते ।
अनेन शुखादिप्रमाणमूलमुपदेशपरंपरासंप्रदायागतमेव खया
वाच्यं नतु तर्केण किचित्कल्पयित्वेति सूचितम् ॥ ० ॥ विमुच्येयेति कमंकर्तरि यक्तडो ॥ ८ ॥ तत्र 'तत्त्वोपदेशयोगिखास्वरूपं चास्य कीदशंमिति प्रश्नस्य प्रथममुक्तरमाह—यदिदमिति । तथाच मिथ्या जगतः असत्स्वरूपमसदेवेति मानः॥९॥

यथा गन्धर्षनगरं यथा बारि महस्थले। यतु नो दृदयते किंचित्रन्न किंचिदिव स्थितम् १० मनःषष्ठेन्द्रियातीतं यस्यादपि न किंचन। अविनारां तदस्तीह तत्सदात्मेति कथ्यते ॥ ११ इयं तु सर्वेडस्याक्या राजन्सर्गपरंपरा। तिसन्नेव महाद्रीं प्रतिविम्बमुपागता ॥ १२ भाः स्वभावसमुत्पन्ना ब्रह्मस्फुरणशक्तयः। काश्चिद्रह्माण्डतां यान्ति काश्चिद्रच्छन्ति भूतताम् ॥

अन्यास्त्वन्यत्वमायान्ति भयत्येवं जगितस्यतिः। न वन्धोऽस्ति न मोक्षोऽस्ति ब्रह्मेवास्ति निरामयम् ॥ नैक्यमस्ति न च द्वित्वं संवित्सारं विज्ञम्भते ॥ १४

एकं यथा स्फ़रति वारि तरङ्गभङ्गे-रेवं परिस्फ्ररति चिन्न च किंचिदेव। त्वं वन्धमोक्षकलने प्रविमुच्य दुरे

स्वस्थो भवाऽभवभयोऽभवसार एव॥ इस्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे पाल्मीकीये दे०मो० निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुमनुसंवादी नाम सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥११७॥

अष्टादशाधिकशततमः सर्गः ११८

१

मनुख्याच । संकल्पोन्मुखतां याताः सत्यश्चिन्मात्रसंविदः। आपस्तरङ्गत्वमिव यान्ति भूमिप जीवताम् ॥ ते जीवाः संसरन्तीह संसारे पूर्वमुत्थिते । सुखदुःखदशामोहो मनसेवास्ति नात्मनि॥ अदृश्यो रुद्यते राहुर्गृहीतेन यथेन्दुना । तथानुभवमात्रात्मा दृश्येनात्मावलोक्यते ॥ न शास्त्रेनीपि गुरुणा रदयते परमेश्वरः। दृश्यते स्वात्मनैवात्मा स्वया सत्वस्थया धिया ४ पथिकाः पथि दृदयन्ते रागद्वेपविमुक्तया । यथा धिया तथैवैते द्रष्टव्याः स्वेन्द्रियादयः ॥

पतेषु नादरः कार्यः सता नैवावधीरणम्। पदार्थमात्रताविष्टास्तिष्टन्त्वेते यधासुखम् ॥ ફ पदार्थमात्रं देहादि धिया संत्यज्य दूरतः। आशीतलान्तःकरणो नित्यमात्ममयो भव॥ 9 देहोऽहमिति या बुद्धिः सा संसारनिषम्धनी। न कदाचिदियं बुद्धिरादेया हि मुमुश्रुभिः॥ 4 न किंचिन्मात्रचिन्मात्ररूपोऽस्मि गगनादणुः। इति या शाश्वती वुद्धिः सा न संसारबन्धनी ॥ ९ यथा विमलतोयानां बहिर्न्तश्च भावतम्। तेजिस्तष्टति सर्वत्र तथात्मा सर्ववस्तुषु ॥ १०

मनु सांख्या उपादाने परमसुक्ष्मतया स्थितमेव कार्य निमित्त-राविभीन्यते इत्याहुः । वेदान्तिनस्तु सहक्षेत्र जगदात्मना सर्गे संपद्यत इति । तत्कथं तन्नास्तीत्युच्यते, तत्रायं प्रत्याह—य-रिवति । साक्षिणा इन्द्रियर्वा यन्नो दश्यते तर्तिकविदपि स्रोपा-दाने न स्थितं प्रमाणाभावादिखर्थः ॥१०॥ स्यादपि न । संभा-**पनाप्यस्य** यतो नास्तीलयः । द्वितीयं प्रत्याह—अविनाश-मिति ॥ ११ ॥ प्रतिबिम्बमिति । तथाचादर्शसत्तायाः प्रति-विम्बेष्विव संसर्गाध्यासाहह्मसत्तानुविदं जगदस्तु नाम, तथापि खतः सत्त्वं तस्य नास्त्येयेति तन्नास्तीत्युक्तियुक्तियेति भावः ॥ १२ ॥ कस्तर्हि 'बहुस्यां प्रजायेय' इति संकल्प्य ब्रह्मण एव जगजीवभावश्रुतेरादायसात्राह्—माः खमावेति । स्पुरणश-क्षयश्चिदाभासाः । ब्रह्माण्डतां स्थूलसमध्यभिमानेन तद्रूपताम् । भूततां पृथिष्याद्यभिमानेन तद्गुपताम् ॥ १३ ॥ अन्यत्वं चतु-विधभूतप्रामताम् । तथा मिथ्योपाधिषु भ्रान्त्या चिदाभासानां बन्धादिकरपना न बस्तुतस्तरप्रसिक्तारित्याह-न बन्धोऽस्तीति ॥ १४ ॥ उक्तं द्वितीयप्रश्नोत्तरमुपसंहरति-एकमिति । यथा एकं वारि तरक्षमेदैः परिस्फुरति एवं चिदपि जगद्भेदैः परिस्फुरति मायामात्रलात्तव न किंचिदेव, अतस्तवं वन्धमो-क्षत्रमी दूरे प्रविमुच्य न विद्युते भवभयं यस्य तथाविधः सन्नभयबद्धासार एव भवेखर्थः ॥ १५॥ इति श्रीवासिष्ठ- महारामायणतास्पर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे सप्तदशोत्तरशत-तमः सर्गः ॥ ११७ ॥

कुतः सर्गः कदा कस्य केनेत्येषामिहोत्तरम् । तथाष्मदर्शनोपाया मनुनात्र प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

तत्रादी शुद्धसंविदो जीवभावे नियत्तमाह—संकल्पेति । शुद्धचतन्यस्याविद्यायां तत्तत्संस्कारविचित्रायां प्रतिबिम्बरूषाः संविदः संस्काराणामन्तः करणतया परिणामे तदबन्धिन्नतया जीवतां यान्ति ॥ १ ॥ पूर्वमुत्थिते उपाधि-तया आविर्भृते संसारे सर्माष्टव्यष्टिमनसः कार्ये । एवं सति यत्फलितं तदाह—सुखदुःखेति ॥ २ ॥ नन्वदृश्य आहमा कथं दृश्ये मर्नात संसारदुःखी तद्विमुक्ती वा अविवेके विवेके वा दृश्यते तत्राह—अदृश्य इति । दृश्येनान्तः करणेन चर्मसा-क्षात्काररूपतत्परिणामेन च निमित्तेन ॥ ३ ॥ सलस्थया नि-रहंममतावस्थया ॥ ४ ॥ निरहंममता देहेन्द्रियादिषु कथं द्रष्टब्येति दष्टान्तेन सप्टयति—पथिका इति ॥ ५ ॥ अवधी-रणमुपवासादिना पीडनम् ॥ ६ ॥ पदार्थमात्रं उदासीनपदा-र्थसाधारणं संवाज्य आत्ममयः शुद्धात्मदृष्या तद्भावप्रचुरः ॥ ७ ॥ ८ ॥ न विद्यते किंचिन्मात्रमपि यत्र तथाविधं यश्वि-न्मात्रं तद्रूपो गगनादप्यणुः सूक्ष्मः । संसारबन्धनी न मुक्तिहे-तुरिति यावत् ॥ ५ ॥ जङजगतोऽन्तर्वहिधासङ्गवित्प्रवेशेन संनिवेशांशवैचित्र्यं यथा हेस्रोऽङ्गवादिता । अरमनस्तद्तवूपा तथेष जगवादिता ॥ ११ विनाशषाज्याकाम्तं भीमं काममहाणेषम् । जगजालतरङ्गिण्यो यान्ति भृततरङ्गिकाः ॥ १२ तथाण्यद्याप्यपूर्णस्य यः पाता कालवारिषेः । तमात्मानं महागस्त्यं राजन्भाषय सर्वदा ॥ १३ जनात्मन्यात्मतामस्मिन्देहादौ दश्यजालके। स्वस्त्वा सत्वमुपाढ्ढो गूढस्तिष्ठ यथासुखम् ॥१४ कुचकोटरसंसुमं विस्मृत्य जननी सुतम् ।

यथा रोदिति पुत्रार्थं तथात्मार्थमयं जनः॥ १५ अजरामरमात्मानमवुषा परिरोदिति। ह्या हतोऽहमनाथोऽहं नष्टोऽस्मीति वपुव्यये॥ १६ यथा वारि परिस्पन्दाषानाकारं विलोक्यते। तथा संकल्पवरातश्चिद्धश्च परिशृंहति॥ १७ संस्थाप्य संकल्पकलक्कमुक्तं चित्तं त्यमात्मन्युपशान्तकल्प। स्पन्देऽप्यसंस्पन्दमिवेह तिष्ठ स्वस्थः सुखी राज्यमिदं प्रशाधि॥ १८

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे बाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुमनुसंवादे अष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ११९

मजुरुवास ।
सर्गात्मिर्मिर्वेभुः स्पन्दैः कीडते बास्रवत्स्वयम् ।
संहारात्मकशक्स्याय संह्रत्यात्मिनि तिष्ठति ॥ १
स्वयमस्य तथा शक्तिरुदेत्याबभ्यते यथा ।
स्वयमस्य तथा शक्तिरुदेत्याबभ्यते यथा ॥ २
चन्द्राकंबहितसायोरकादीनां यथार्चिषः ।
यथा पत्रादिवृक्षाणां निर्मराणां यथा कणाः ॥ ३
तथेदं ब्रह्मणि स्कारे जगहुष्यादिकल्पितम् ।
दुःसमद्मतज्क्षानां तदेवातदिव स्थितम् ॥ ४

स्फुरणे ऽनुरूपं दष्टान्तमाइ--ययेति ॥ १० ॥ यथा अन्नदा-याकारता हेम्र एव सभिवेशाषयवविन्यासवैचित्र्यं तद्वदात्म-नोऽपि जगत्तन्मूलमाबारूपे इत्यर्थः ॥ ११ ॥ आत्मनः काला-र्णेषागस्यतां रूपयितुं कालस्य जगन्नद्युपसंद्वारस्थानसमुद्रता-माइ—विनाशेति । विनाश एव वाडवो वडवामिस्तेनाकान्तं विशिष्टम् । भूतानि प्राणिनिकायास्तरङ्गा यासाम् ॥ १२ ॥ यथा सर्वजगज्जालभक्षकेऽप्यद्याप्यपूर्णस्यातृप्तस्य कालवारिधेर्यः पाता पानकर्ता ॥ १३ ॥ सत्वं निर्वासनीभावम् ॥ १४ ॥ **निल्लरुधे**प्यात्मन्यलब्धताश्रान्त्वा शोक इलाह—कुचको-टरेति ॥ १५ ॥ वपुर्व्यये देहनाशे ॥ १६ ॥ परितो बंहति कार्यपरम्परया वर्धते ॥ १७ ॥ हे पुत्र, त्वं संकल्पकलक्कें भुक्तं वित्तमात्मनि संस्थाप्य समूलसर्वसंसारोपशमे प्रारच्यभोगोपयो-गितत्प्रतिभासावशेषादुपशान्तकल्पः सन् व्यवहाराय देहेन्द्रिया-दिस्यन्देऽपि तस्याभासमात्रलादसंस्यन्दं त्रह्मवेह व्यवहारभूमौ स्वस्थः सुस्ती तिष्ठ । इदं राज्यं च शाघि पालय । शासः शादेशस्याभीयत्वेनासिद्धलादेधिः॥ १८॥ इति श्रीवासिष्ठ-महारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टादशोत्तरदात-तमः सर्गः ॥ ११८ ॥

वर्णते पुरुषसात्र सातस्यं मोक्षवण्यवोः। विद्यानिवारमक्तित्र्यां सत्तासस्यातमित्रवात् ॥ १ ॥ 'सन्देऽप्यसंसम्बमिनेह तिष्ठे'स्तुकं तत्र महा किमर्थं मायना अहो बु चित्रा मायेयं तात विश्वविमोहिनी।
सर्वाङ्गपोतमप्यातमा यदातमानं न पश्यति॥ ५
चिदाद्शमयं सर्वं जगितृत्येव भावयन्।
यस्तिष्ठत्युपशान्तेच्छं स प्रह्मकवचः सुखी॥ ६
अहमर्थविमुक्तेन भावेनाभायक्षिणा।
सर्वे शून्यं निरालम्बं चित्रूपमिति भावयेत्॥ ७
१वं रम्यमिदं नेति बीजं ते दुःखसंततेः।
तस्मिन्साम्याग्निना दग्धे दुःखस्यावसरः कुतः॥८
राजस्रभावनास्रेण रम्यारम्यविभागिता।

स्पन्दते कथं चासंस्पन्दं तिष्ठतीतीक्ष्वाकोर्जिज्ञासां छिक्कैरपरुक्ष्य मनुराह—सर्गात्मभिरिति । विभुरयं परमात्मा प्रसवधर्मिण्या अविद्याशक्तया अविदुषः प्रतिसर्गात्मकैः स्पन्देः क्रीडते । वि-दुषः प्रति तु तत्संहारात्मिकया विद्याशक्तया समूलं सर्ग संह्रस बाधितलात्कूटस्थाद्वये आत्मनि सदेव तिष्ठतीस्वर्थः ॥ १ ॥ तत्र रागात्त्रवृत्तस्य सर्गशक्तयुद्य इव वैराग्यानिवृत्तस्य संहारशक्त्युदयोऽपि स्वरसतएव भवतीत्याह—स्वयमिति ॥२॥ तत्र ज्ञातात्मनि जीवजगत्साधारणसत्तासामान्यात्मना विभाव्य-माने तद्विशेषात्मकबाह्याध्यात्मिकपदार्थजालकल्पने द्यान्ता-नाह—चन्द्रेति । आर्चेषः प्रभा ज्वालाप्रभेदा यथा कल्पिता-स्तथा जगद्वैचित्र्यं तहाहकबुद्धादिवैचित्र्यं कत्पितमिखन्बयः। तप्तायोग्रहणं मायाशबलदृष्टान्तार्थम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ सर्वगतस्त-प्रकाशस्यात्मनोऽदर्शनमरातोऽप्रकाशस्यापि जगतः स्फुटं दर्शनं चाश्चर्यमघटितघटनासमधंमायाबलादेवेत्याह्—अहो इति । सर्वेष्वक्षेष्ववयवप्रायेषु बाह्याध्यात्मिकभावेषु प्रोतमन्तर्वहिश्व व्याप्तमप्यात्मानं यद्यस्मात्र पर्याते ॥ ५ ॥ कया तर्हि भाव-नमा आत्मानं रष्ट्रा सुस्री स्यात्तामाह—चिदादर्शमयमित्या-दिना । आदर्शे नगरादिरिव अद्याण जगत्त्रातिभासिकं न बाखविमिति भावयभित्यर्थः । मोहशरैरमेधं ब्रह्मेव कवचं यस्य सः ॥ ६ ॥ ७ ॥ इति वैषम्यकस्पनमिति शेषः ॥ ८ ॥ अभावना समाध्यभ्यासेन सर्वदृश्यविस्यतिस्त्रक्षभोनाकेण रम्यारम्ययोः यौरुषातिशयेनाशु स्त्रेनैयान्तर्बिलूयताम् ॥ अभावनेन भावनं विल्य कर्मकाननम् । परं समेस्य तानवं विशोक एव तिष्ठ भोः॥ ९ भरितभुवनाभोगो भृत्वा विभागवहिष्कृतो । गलितकलनाभासोहासो विवेकविलासवान् । अधिगतपरानम्दस्पन्दश्चिराय निरामयः शमसमसितस्वन्द्वाभोगो भवाभयचिद्रपुः॥ ११

इलार्षे वासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे०मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुमनुसंवादे एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः॥११९॥

विंशाधिकशततमः सर्गः १२०

मनुरवाच।

शास्त्रसञ्जनसंपर्कैः प्रज्ञामादी विवर्धयेत्।
प्रथमा भूमिकैयोक्ता योगस्यव च योगिनः॥ १
विचारणा द्वितीया स्यानृतीयाऽसङ्गभावना।
विलापनी चतुर्थी स्याद्वासनाविलयात्मिका॥ २
गुद्धसंविन्मयानन्द्रस्पा भवति पश्चमी।
अर्धसुप्तप्रबुद्धाभो जीवन्मुकोऽत्र तिष्ठति॥ ३
स्वसंवेदनस्पा च पष्ठी भयति भूमिका।
आनन्दैकयनाकारा सुबुप्तसदशस्थितिः॥ ४
तुर्यावस्थोपशान्ताथ मुक्तिरेवेह केवलम्।
समता स्वच्छता साम्या सप्तमी भूमिका भवेत् ५
तुर्यातीता तु यायस्था परा निर्वाणस्तिणी।

पदार्थयोविभाविता प्रियाप्रियतावैषम्यकल्पना । सा हि रागद्वे-षहेतुः समद्धिदार्व्यवक्षणपुरुषप्रयन्नातिशयेन विद्ययतां छिच-ताम् ॥ ९ ॥ समाघिलक्षणेनाभावनेन बाह्यार्धभावनं तत्प्रयो-जर्क धर्माधर्मलक्षणं कर्मकाननं च विलुय परमाकाशादप्यथिकं तानवं सीक्ष्म्यं समेत्य तद्वलेन शोकहत्वलेपे विशोक एव ति-ब्रेखर्थः ॥ ९० ॥ हे पुत्र, त्वं प्रथमं विवेकविलासवान्सन्समा-घिना गलितबाह्यकलनाभासः पूर्णात्मना भरितभुवनाभोगव भूला अधिगतः परानन्दस्याऽपरिच्छित्रब्रह्मसुखस्य सर्वत आविभीवो यस्य तथाविधस्तद्विभागवहिष्कृतस्तदसण्डै-कतापन्नोऽतएव निरस्तसंसारामयः पन्नमषष्ठभूमिकासु चिराय स्थिलान्ते सप्तमभूमिकायामात्यन्तिकविश्वेपवेषम्यशमेन सम-थन्द्रिकापूर्णलात्सितः शुभ्र आत्यन्तिकवासनाज्ञानकालुष्यक्षया-रखन्छ आभोग आकारो यस्य तथाविधोऽभयन्विद्वपुर्भवेत्यर्थः। अथवा चतुर्भिः पादैश्चतुर्थावाश्वतस्रो भूमिकाः क्रमेण दर्शिता बोध्याः ॥ १९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमद्दारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

मुसुधुभूमिकासिको मुण्यमानस त्तरा ।
मुक्तस परतसिको भूमिकाः सस दर्शिताः ॥ १ ॥
'परं समेख तानव'मिति यद्योगभूमिकाभ्यासफलमुक्तं तदुपावभूतान्भूमिकामेदान्वर्णयति—काकेखादिना । तथाव साधनवतुष्टयसंपादनसहितं गुरसतीभ्योदिसहायकं अवणं प्रयमा
भूमिकेसादिनिष्कर्ण उत्पत्तिप्रकरणे दर्शिता एवात्र बोष्याः ।

सप्तमी सा परिप्रौढा विषयः स्याम जीवताम् ॥ ६ पूर्वावस्थात्रयं त्वत्र जामदित्येव संस्थितम् । चतुर्थी स्वप्त इत्युक्ता स्वप्तामं यत्र वे जगत् ॥ ७ आनन्दैकघनीभाषात्सुषुप्तास्या तु पश्चमी । असंवेदनरूपाथ पष्टी तुर्यपदाभिधा ॥ ८ तुर्यातीतपदाषस्या सप्तमी भूमिकोत्तमा । मनोवचोमिरप्राद्या स्वप्रकाशपदात्मिका ॥ ९ अन्तः प्रस्याद्वतिवशाचेत्यं चेत्र विभावितम् । मुक्त प्वास्य संदेहो महासमतया तया ॥ १० यन्नोगसुखदुः खांशैरपरामृष्टपूर्णधीः । सशरीरोऽशरीरो वा भवत्येवंमितः पुमान् ॥ ११ न म्रिये न च जीवामि नाहं सन्नाप्यसन्नयम् ।

॥ १ ॥ विचारणा मननम् । असक्तस्याद्वितीयान्मनोभावना निदिध्यासनम् । विलापनी तत्त्वसाक्षात्कारेणाक्षानादिप्रपश्चस्य बाधस्तत्साधिनी । बासनापदेन तदाश्रयाविचा गृह्यते ॥ २ ॥ शुद्धः संवित्मयः समाधिपरिपाकादतः प्रथाप्रचुरो य आनन्द-स्तद्र्या । तां दशां दष्टान्तेनानुभवमारोहयति-अर्थेति । यथा निहाशेषेणार्ध सुप्तोऽर्थ च प्रबुद्धः पुरुषो बाह्यशब्दादीनाकर्ण-यम्रप्यन्तः खापसुसासको न प्रतिवचनादिव्यवद्दारमिच्छति तद्व झृत्यानकालेऽप्यस्यां भूमिकायां योगी तिष्ठतीलर्थः ॥ ३ ॥ खसंवेदनं खरसत एवाक्षीयमाणा ब्रह्माकारानुभवदृतिस्तद्रूपा । तदेवाह-आनन्देति ॥ ४ ॥ अथ यदा सा कृतिरपि सीवते तदाविष्कृतं ब्रह्मेव पूर्णस्वप्रकाशमविषयते तथा जीवतः स्थितिः सप्तमी भूमिका सैव मया 'शमसमसितस्व च्छमोगः' इति प्रागुक्तेत्यर्थः। आद्यभूमिकात्रयस्य वश्यमाणरीत्येकीकारात् षष्ठी तुर्यो ॥ ५ ॥ सप्तम्या अष्टम्याश्च योगिजीवनाजीवनमात्रं विशेषो नान्य इत्यमेद एवेत्याशयेनाइ-तुर्यातीतेति । सप्त-मीभूमिकैव तुर्यातीतास्या परितः प्रीढासती विदेहमुकिः संप-द्यते साच जीवतां योगिनां विषयो न स्यादित्यर्थः ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥ तामेव प्रशंसति—मनोवचोमिरित्यादिना ॥९॥ तस्यामेव सर्वेदद्यानां प्रत्यगात्मनि सम्यग्विखयादात्यन्तिकी जीवन्मुकतेलाइ-अन्तरित । तया सत्तमभूमिकाप्रसिद्धया ॥ १० ॥ ११ ॥ तस्यां तु जीवन्युक्तस्य कीहकोऽन्रभवस्त-

<mark>आत्मारामो नरस्तिष्ठेत्त</mark>न्मुकृत्वमुद्गृहृतम् ॥ १२ व्यवहार्युपशान्तो वा गृहस्थो वाथवैककः। अहं न किंचिचिदिति मत्वा जीवो न शोचति १३ अस्त्रेपकोऽहमजरो नीरागः शान्तवासनः। निर्मलोऽस्मि चिवाकाश इति मत्वा न शोचति १४ अहमन्तादिरहितः शुद्धो बुद्धोऽजरामरः। शान्तः समासमाभास इति मत्वा न शोचति १५ मुणात्रेष्वम्बरे भानी नरनागामरेषु च। यत्तदस्ति तदेवेति मत्वा भूयो न शोचति ॥ १६ तिर्यगुर्ध्वमधस्तानमे व्यापको महिमा चितः। तस्यानन्तविलासस्य शात्वेति क इव क्षयी ॥ १७ बद्धवासनमधीं यः सेव्यते सुखयत्यसी। यत्सुखाय तदेवाशु वस्तु दुःखाय नाशतः ॥ १८ अविनाभावनिष्ठत्वं प्रसिद्धं सुखदुःखयोः। तनुवासनमधीं यः सेव्यते वा विवासनम्॥ १९ नासी सुखायते नासी नाशकाले न दुखदः। इत्यार्षे वासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे०मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे सप्तभूमिकाविभागो नाम विशल्यधिकशततमः सर्यः॥१२०॥

क्षीणवासनया बुद्धा यत्कर्म क्रियतेऽनघ ॥ २० तद्दग्धवीजवद्भयो नाङ्करं प्रतिमुश्चति । देहेन्द्रियादिनां कर्म करणौधेन कल्पते॥ २१ एकः कर्ता च भोका च क इवाङ्गोपपद्यते। भावनां सर्वभावेभ्यः समुत्स्रज्य समुत्थितः ॥ २२ शशाङ्करीतलः पूर्णो माति भासेव मास्करः। क्रियमाणा कृता कर्मतृलश्रीर्देहशाल्मलेः॥ **२३** श्वानानिलसमुद्धता प्रोड्डीय कापि गच्छति। सर्वैव हि कला जन्तोरनभ्यासेन नइयति॥ २४ एषा भानकला त्वन्तः सक्तजाता दिनेदिने । वृक्तिमेति बलादेव सुक्षेत्रव्युप्तशालिवत् ॥ २५ पकः स्फुरत्यखिलवस्तुषु विश्वरूप आत्मा सरस्य जलधिष्विव तोयम्ब्हम् । संशान्तसंकलनभूरिकलापमेकं सत्तांदामात्रमिखलं जगदङ्ग विद्धि॥ २६

एकविंदात्यधिकदाततमः सर्गः १२१

ર

मनुरुवाच ।

यावद्विषयभोगाशा जीवाख्या तावदात्मनः। अविवेकेन संपन्ना साप्याशा हि न वस्तुतः॥ विवेकवरातो याता क्षयमाशा यदा तदा। आत्मा जीवत्वमुत्सुज्य ब्रह्मतामेत्यनामयः॥

माइ- न भिये इति ॥ १२ ॥ एककः एकचरो यतिः ॥१३॥ ॥ १४ ॥ १५ ॥ अतिश्वदेषु तृणात्रेषु । अतिमहत्यम्बरे । **अतिप्रकारो भाना यत्त**त्प्रसिद्धतरं सन्मात्रं तदेव प्रत्यक्षिन्मा-त्रमहमस्मीत्यखण्डमहावाक्यार्थं मत्वेत्यर्थः ॥ १६ ॥ चितो में महिमा व्यापक इति तस्य परमात्मनो महिमानं ज्ञाला कः क्षयी मरणादिदुःखभागित्यर्थः । तथाच श्रुतिः 'एप नित्यो महिमा बाह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान् । तस्यैव स्यात्पद्वित्तं विदिला न लिप्यते कर्मणा पापकेन' इति ॥१७॥ जीवन्यकानामपि जीवनस्य विषयभोगाधीनत्वाद्विषयनारोऽज्ञ-वदेव दुःखप्राप्तिमाशक्का विशेषं वक्तुमज्ञस्य विषयनाशे दुःखो-त्पत्तिप्रकारमाइ-वद्भवासनमिति सार्धेन ॥ १८ ॥ अविना-भावनिष्टत्वं सहावस्थितिनियमः । जीवनमुक्तानां तद्वैलक्षण्य-माह—तनुवासनमिति । चतुर्थादिभूमिकासु तनुवासनं सप्तम-भूमी तु विवासनम् ॥ १९ ॥ एवं कर्मापि तेषामलेपकमि-ह्याह—क्षीणेति ॥ २० ॥ देहेन्द्रियादिषु भिन्नेष्वेकात्मतादा-त्म्याध्यासेन तत्कृतकर्मखहमेवैकः कर्तेत्यमिमाने हि कर्मिन-र्हेपः स्पात् । नच मुक्तानां सोऽस्तीत्याशयेनाह—देहेन्द्रियादि-नेति ॥ २१ ॥ भावनामहन्तावध्यासम् । सर्वेभ्यो देहेन्द्रिया- ऊर्ध्वाद्थस्तथाधस्तात्पुनरूर्ध्वं व्रजंश्चिरम्। मा संसारारघट्टस्य चिन्तारज्ज्वां घटीभव ॥ 3 इदं ममाहमस्येति व्यवहारघनभ्रमम्। ये मोहात्परिसेवन्तं अधस्ताद्यान्त्यधः शठाः॥

दिभावेभ्यः सम्यगुत्स्ज्य सम्यगुत्थितो निर्गतः ॥ २२ ॥ कृता संचितरूपा ॥ २३ ॥ कर्मेव ज्ञानकलापि कालेन नर्येदि-त्याशक्काह—सर्वेवेति ॥ २४ ॥ २५ ॥ यथा सरस्यु जल-धिषु समुद्रेषु चाच्छं तोयगेकमेव स्फुरति तथाखिलेषु माथिक-तत्तदमेदाध्यासाद्विश्वरूपः खतस्तु सन्मात्रखभाव आत्मा एकएव स्फुरति । अतः हे अङ्ग, अखिलं जगत् तत्त्व-बोधेन संशान्तभ्रान्तिसंकलनप्रयुक्तभूरिवैचित्र्यकलापं परिश्विष्ट-सत्तांशमात्रमेवाहमिति विद्धीत्यर्थः ॥ २६ ॥ इति श्रीवा-**सिष्टमहारामायणतात्पर्थप्रकाहो** निर्वाणप्रकरणे विशत्यु-त्ररशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

यया प्रकृष्यते जीवो यया चोत्कृष्य मुख्यते । अत्र ते भावने सम्यग्विभज्य मनुनेरिते ॥ १ ॥ यद्यातमा निरतिशयानन्दं ब्रह्मेव तर्ह्यस्य कियत्कालमहानानी-वाख्या तत्राह-यावदिति । सा कि सत्या नेत्याह-अविवेके-नेति ॥ १ ॥ अज्ञानक्षयात्क्षयं वाधम् ॥ २ ॥ भौगारीय स्वर्ग-नरकादौ कर्वतीति तां व्यजेव्याह-- अर्ध्वादिति । भोगिनन्ता-रूपायां घटकण्ठरच्वां मा घटीभव **घटबद्धदो माभूरिखर्यः** ॥ ३ ॥ तस्या विषयैः सह बन्धनमन्योन्यकण्यसञ्जनस्रक्षणं अस्याहमेष मे सोऽयमहमेषं तु यैः किल । मोहो बुद्धा परित्यक्त ऊर्ध्वाकुर्ध्व प्रयानित ते॥ ५ स्वप्रकारां स्वमात्मानमबलम्ब्याविलम्बितम् । आस्ख्र संपूरिताकादां जगन्ति नृप पदय हे ॥ यदेवैषं चितो रूपं ततं बुद्धमखण्डितम्। तदैव तीर्णः संसारः परमेश्वरतां गतः॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुवरुणा यद्यत्कर्तु समुद्यताः। तदहं चिद्वपुः सर्घे करोमीत्येव भावयेत्॥ येषु येषु यदा यद्यहर्शनेषु निगद्यते । सर्वमेवाङ्ग तत्सत्यं चिद्विलासो श्वनङ्कराः॥ चिन्मात्रत्वं प्रयातस्य तीर्णमृत्योरचेतसः।

यो भवेत्परमानन्दः केनासाबुपमीयते॥ नाप्यशून्यं न शून्यं च नाचित्र्यं न चिन्मयम्। नात्मरूपं नान्यरूपं भूवनं भाषयम्भव ॥ ११ एतत्स्वंरूपमासाद्य प्रकृतिः परिशाम्यति । न देशो मोक्षनामास्ति न कालो नेतरा स्थितिः १२ अहंकृतेविंमोहस्य क्षयेणेयं विलीयते। प्रकृतिर्भावनानान्नी मोक्षः स्यादेष एव सः ॥ १३ प्रशान्तशास्त्रार्थविचारचापलो

निवृत्तनानारसकाव्यकोतुकः । निरस्तनिःशेषविकल्पविश्ववः

समः सुखं तिष्ठति शाश्वतात्मकः ॥ १४ इत्यार्षे श्रीजासिष्टमहारामायणे बाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे इश्वाकुमनुसंवादो नाम एकविशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

ब्राविंशत्यधिकशततमः सर्गः १२२

8

२

6

9

मनुरुवाच । येन केनचिदाच्छको येनकेनचिदाशितः। यत्रकचनशायी च स सम्राहिष राजते॥ वर्णधर्माश्रमाचारशास्त्रयश्रणयोज्झितः। निर्गच्छति जगजालात्पञ्जरादिव केसरी॥ वाचामतीतविषयो विषयाशादशोजिसतः।

द्श्यति-इदमिति ॥ ४ ॥ तदेवान् तन्मूलं तादारम्याध्या-समपि ल्याजयंस्तत्फलं सर्वोत्कर्षमाह—अस्यति ॥ ५ ॥ ज-गन्ति संपूरितं सर्वतोऽप्यव्यवधानेन भरितं चिदाकाशमेव पश्य ॥ ६ ॥ ततं पूर्णम् ॥७॥ ननु जगत्कर्तृत्वायस्य नास्ति स कथं परमेश्वरतां गतस्तत्राह-न्बह्मेन्द्रेति ॥ ८ ॥ नन्वसत्याः सर्वाः क्रियास्तर्त्वावत्तासु कथभात्मनः कर्तृतां भावयेदिति चेन्नायं दोषः, आत्मसत्त्रयेव सर्वकल्पनानां सत्यत्वसंभवादित्याशये-नाह-येष्विति । दर्शनेषु शास्त्रेषु ॥ ९ ॥ ननु संसारतरणेन को लाभस्तत्राह-चिन्मात्रलमिति । निरुपमस्त्रप्रकाशानन्द-प्राप्तिरेव लाभ इत्यर्थः ॥ १० ॥ यदि ब्रह्मसत्तया जगदश्रन्यं तर्हि द्वेतापत्तिः । यदि नेतिनेतीति निषेधाच्छ्नयं तर्हि सर्वक-र्ततालक्षणेश्वरताव्याघातः । तथा यदि जगदचिद्र्पमेव तर्हि चितोपि भानासंभविष्णगृत्करणेन तेजसरूपानुविद्धमेव हि भा-सकेन तेजसा भास्यते न नीरूपम् । यदि तु चिदनुवेधाय तस्य चिद्विकारताभ्युपेयते तर्हि चितः सविकारतापत्तिः । एवमना-हमरूपत्वेपि जगतोऽसङ्गेनात्मना संबन्धाभावात्ततः सत्तास्फूर्य-लाभः । आत्महत्रत्वे त न ज्ञानेन बाध इत्यादिदोषाननिर्वच-नीयतालम्बनेन परिहरति--नापीति ॥ ११॥ कथं तर्हि तच्छाम्यति तत्राह-एतदिति । एतस्यात्मनः सं पारमार्थिकं रूपमासाद्य साक्षात्कृत्य ॥१२॥ प्रकृतिः खाभाविकात्मरूपम् । भावना अनादिविस्मृतखरूपप्रतिसंघानं चरमसाक्षात्कारवृत्ति-स्तदनप्रवेशासत्रामी साक्षात्कारामिधा यदा भवति तदा एव

कामप्यपगतः शोभां शरदीव नभस्तलम् ॥ 3 गम्भीरश्च प्रसन्नश्च गिराविव महाहदः। परानन्दरसाक्षम्धो रमते स्वात्मनात्मनि॥ 8 सर्वकर्मफलस्यागी नित्यतृप्तो निराधयः। न पुण्येन न पापेन लिप्यते नेतरेण च॥ ų स्फटिकः प्रतिविम्बेन यथा याति न रञ्जनम् ।

प्रसिद्धः प्रखगारमैव स शास्त्रप्रसिद्धो मोक्षः स्यादिखर्थः ॥१३॥ ताहशसाक्षात्कारेण जीवनमुक्तः कथं तिष्टति तदाह-प्रशा-न्तेति । शास्त्रार्थजिज्ञासा काव्यनाटकाद्यर्थजिज्ञासा छीकिक-प्रियाप्रियादिविकल्पविक्षेपाश्च निवर्तन्ते इति समः॥१४॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे एक-विंशस्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

निरूढसारमयोधस्य तुर्यातीतपदस्थितेः। मुक्तस्येह यतेश्वर्या लक्षणमनुनेर्यते ॥ १ ॥

'निरस्तानिःशेषविकल्पविष्ठवः समः सुखं तिष्ठति' इति या यो-गिनः स्थितिरक्ता तामेव प्रपश्यति - येनकेनचिदित्यादिना । आच्छन्नो वर्ष्ट्रराच्छादितः। आशितो भोजितः। स योगी सम्राद मानुषानन्दपरावधि प्राप्तो राजेवेति पामरदृशेयमुपमा । तत्त्वदशा तु न तदानन्दस्योपमास्ति । 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इलादिश्रुला हैरण्यगर्भानन्दान्तविषयानन्दसीकरमहार्णवतया निरविधलप्रतिपादनात् ॥ १ ॥ तस्यार्थसिदं विद्वत्संन्यास-माह—वर्णेति । शास्त्रेण यश्वणा किंकरवित्रयमनं तथा व-र्जितः । जगति जालबद्धन्धहेतोरैहिकामुप्मिकिकयातत्फलकर्त-लभोक्तलादिषासनासङ्घादित्यर्थः ॥ २ ॥ वाचामतीतस्य निर-तिशयानन्दस्यानुभवस्येव विषयः। अतएव विषयाशादशो-जिसतः ॥ ३ । परस्यानन्दस्य रसनं रसी निरन्तरमास्वादनं तसादधुच्धोऽप्रच्युतः ॥ ४ ॥ इतरेण हपविषादादिना च ॥ ५ ॥ कमंफलेन प्रारच्धोपनीतमुखदुःखादिना । रञ्जनं स्त्पा-

तज्ज्ञः कर्मफलेनान्तस्तथा नायाति रञ्जनम् ॥ Ę विहरञ्जनतावृन्दे देहकर्तनपूजनैः। खेदाहादौ न जानाति प्रतिबिम्बगतैरिव ॥ निःस्तोत्रो निर्विकारश्च पूज्यपूजाविवर्जितः। संयुक्तश्च वियुक्तश्च सर्वाचारनयक्रमैः॥ तसाबोद्विजते लोको लोकाबोद्विजते च सः। रागद्वेषभयानन्दैस्त्यज्यतेऽपि च युज्यते॥ 9 प्रमेये कस्यचिद्पि न रोहति महादायः। प्रमेयीकियते चापि बालेनाप्यदुराज्ञयः॥ \$0 तनं त्यजत वा तीर्थं श्वपचस्य गृहेऽपि वा। मा कदाचन वा राजन्वर्तमानेऽपि वा क्षणे ॥ ११ । इक्ष्वाकुरपि तां दृष्टिमवप्रभ्य स्थिरोऽभवत् ॥

श्चानसंप्राप्तिसमये मुक्तोऽसी विगतादायः। अहंभ्रान्तिर्हि बन्धाय मोक्षो ज्ञानेन तत्क्षयः ॥ १२ स पूजनीयः स स्तुत्यो नमस्कार्यः स यक्षतः। स निरीक्योऽभिघाद्यश्च विभृतिविभवैषिणा॥ १३ न यञ्चतीर्थेन तपःप्रदानै-रासाद्यते तरपरमं पवित्रम् । आसाचते श्लीणभवामयानां भक्त्या सतामात्मविदां यदङ्ग ॥ १४ बसिष्ठ उवाच। एवमुक्त्वा स भगवानमनुष्रेह्यगृहं ययो।

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰मो॰निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुमनुसंवादे इक्ष्वाकुप्रबोधनं नाम द्वाविद्यात्यधिकशततमः सर्गः॥१२२॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमः सर्गः १२३

श्रीराम उवाच। एवं स्थिते हि भगवञ्जीवन्मुक्तस्य सन्मतेः। अपूर्वीऽतिशयः कोऽसौ भवत्यात्मविदांवर॥ वसिष्ठ उवाच। ब्रस्य कसिंक्षिदेवांशे भवत्यतिशयेन धीः।

न्तरापत्तिम् ॥ ६ ॥ तदेव सप्टमाह—विहरत्रिति । देहस्य कर्तनैरछेदनैः पूजनैश्व देहप्रतिबिम्बमिव मिश्येति पर्यतीति प्रतिबिम्बगतिरिवेत्युच्यते ॥ ७ ॥ पूज्यः पूजितोऽपि निःस्तोत्रः अप्रशंसमानः । पूजाविवर्जितोऽपि निर्विकार इति कर्मधारये क्रमेण विशेषणान्वयः । संयुक्तश्चेत्यादिरस्येव प्रपद्मः ॥ ८ ॥ उद्विजते बिर्मात । रागद्वेषादिपदैस्तन्निमित्तविषया उक्ष्यन्ते । कदाचित्रारव्धवलाद्यज्यते त्यज्यते च ॥ ९ ॥ कस्यचित्कश-कमतेरपि प्रमेये प्रमितिविषये खयं तत्त्वतो नारोहति नान्तर्भ-बति । तत्त्वतस्तं कुशलमतयोऽपि न परिच्छेतुं शक्कवन्तीत्यर्थः। व्यवद्वारतस्तु बालेनापि प्रमेयीकियते अल्पेनाप्यनुवर्तनेन व-शीकियते । यतोऽयमदुराशयः शुद्धवित्तलादजुरिखर्थः ॥१०॥ तस्य ज्ञानसमकालमेव मुत्तया देहादिवाधेन च पुनर्मुक्तिनिमि-त्ततीर्थादेर्देहत्यागस्य वा चिन्तैव नास्तीत्याह—तनुमिति । कदाचन कदाचिदपि तनुं मा वा खजतु वर्तमानक्षणे इदानी-मपि वा तनं त्यज्ञ । तथाप्यसी ज्ञानसंप्राप्तिसमये प्रागेव मुक्तो विदेहश्वेति परेण संबन्धः ॥ ११ ॥ तदुपपादनाय बन न्धमोक्षरूपमाइ--अहंत्रान्तिरिति ॥ १२ ॥ स पूजनीय इति । तथाच श्रुतिः 'यं यं लोकं मनसा संविभाति विद्युद्ध-सत्तः कामयते यांथ कामान्। तं तं लोकं लभतं तांश्व कामां-स्तरसादात्मकं हार्चयेद्भृतिकामः' इति ॥ १३ ॥ तत्पूजनमेव परमपुरुषार्थप्रापकज्ञानहेतुरपीत्याह-नित । हे अङ्ग, क्षीणो भवामयो येषां तथाविधानां जीवन्युक्तानां भक्तया भजनेन यत्परमं पदं ज्ञानद्वारा आसायते तयज्ञादिमिनीसायत इत्य-

नित्यतृप्तः प्रशान्तात्मा स आत्मन्येव तिष्ठति ॥ २ मन्त्रसिद्धस्तपःसिद्धैस्तन्त्रसिद्धैश्च भूरिशः। कृतमाकाशयानादि का तत्र स्यादपूर्वता॥ £ अणिमाद्यपि संप्राप्तं ताहरौरेव भूरिशः। यह्नेन साधितत्वासैर्नेतरेणात्मदर्शिना॥

न्वयः ॥ १४ ॥ ब्रह्मगृहं मेरुशिखरस्तम् ॥ १५ ॥ इति श्री-वासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे द्वाविश-त्यधिकशततमः सर्गः॥ १२२॥

> ज्ञस्याज्ञेभ्योऽन्यसिद्धेभ्यः खेचरत्वाणिमादिषु । अनिच्छैव हि पूर्णस्वाद्विशेषोऽत्राभिधीयते ॥ १ ॥

वर्णितलक्षणस्य जीवन्मुक्तस्य मणिमन्त्रादिसिद्धानामिव खे-चरादिसिद्धिरूपोऽपि कश्चिदपूर्वोऽतिशयोऽस्ति नवेति संदिहानो रामः प्रच्छति-एवमिति । एवं खद्वणितह्रपे छक्षणजाते स्थिते सति ॥ १ ॥ तस्यान्यसिद्धागोचरनिरतिश्चयानन्दास्मगो-चरोऽतुभव एव विशेष इत्याशयेनोत्तरमाह—क्रस्येति । इत्य कस्मिश्विदितरसिद्धागम्ये परमात्मतत्त्वांशे भीरे वातिशयेन भवतीति योजना । अथवा अप्यर्थे एवकारः । इस्य सांसारिकः सिद्धंशे कसिंधिदप्यतिशयेऽतिशयधीर्न भवतीति योजना । तत्कृतस्तत्राह्—निव्यतृप्त इति ॥ २ ॥ मन्त्रसिद्धादिरूपेणाप्य-हमेव स्थित इति सर्वात्मशुद्धा तैः प्राप्तानां खेचरादिसिद्धीनां तेन प्राप्तलात्तासु तस्य नापूर्वतापीत्याह्—मन्त्रसिद्धीरेति । अथवा अपूर्वशब्दो न विद्यते पूर्व कारणं यस्यति व्युत्पत्त्या तत्त्वित्प्राप्तनित्यनिरतिशयानन्द एव मुख्यः । आकाशयाना-दिसिद्धिजातं तु मन्त्रसिद्धादिभिः कृतं खयन्नेनोत्पादितमिति तत्र सपूर्वतेव नापूर्वतेत्यर्थः ॥ ३ ॥ यद्यपूर्वशब्दस्यानन्यप्राप्त-बहुमिर्मश्रिसद्धादिभिरणिमादिसिद्धिजातं लमप्यर्थस्तथापि प्राप्तमेवेति न तेष्वपूर्वतेत्याह—अणिमाद्यपीति । सर्वारमभू-तस्य इस्य सर्वसांसारिकसिद्धीनां तत्त्वक्षेन तैरेव साधितला-

एष एव विशेषोऽस्य न समो मृदबुद्धिमिः। सर्वत्रास्थापरित्यागानीरागममलं मनः। मवेत्तस्य महाबुद्धेर्नासी वस्तुषु मजति॥

पतावदेव खलु लिक्समलिक्समूर्तेः संशान्तसंस्तिचिरम्रमनिर्वृतस्य। तज्ज्ञस्य यन्मदनकोपविषादमोह-लोभापदामनुदिनं निपुणं तनुत्वम्॥ ६

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो॰ निर्वाण॰ अज्ञादेर्जस्य विशेषकथनं नाम त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२३॥

4

चतुर्विद्यात्यधिकदाततमः सर्गः १२४

वसिष्ठ उघाच ।
यथासस्यमुपेस्य स्वं शनैर्विप्रो दुरीह्या ।
अङ्गीकरोति शूद्रत्वं तथा जीवत्वमीश्वरः ॥ १
भूतानि द्विविधान्येव प्रतिसर्ग स्फुरन्ति वै ।
आधिवस्पन्दजातानि तानि निष्कारणानि वै ॥ २
ईश्वरात्समुपागत्य पुनर्जन्मान्तराणि च ।
भूतान्यनुभवत्यङ्ग स्वकृतैरेव कर्ममिः ॥ ३
कार्यकारणभावोऽयमीदृशो जन्मकर्मणोः ।

दिप न खेन पुनः साधने प्रयोजनमस्तीत्याशयेनाह—यंत्रेनेति ॥ ४ ॥ तिर्हे तत्त्वविदस्तेभ्यः कोऽतिशयस्त्रत्राह—एष
एवेति । तत्त्वझानमेवातिशय इत्यर्थः । अतिशयान्तरमाह—
सर्वत्रेति । वस्तुषु भोग्येषु ॥ ५ ॥ नीरागलफलान्येव तत्त्वझळक्षणत्या वर्णयञ्जपसंहरति—एतावदिति । तत्त्वबोधे संशानेन चिरंतनभ्रमेण निर्शृतस्य विभानतस्य अलिङ्गा सर्वधर्मभ्रत्या बद्मचिदेव मूर्तिः सैन्धवधनवदेकरसं स्रह्मं यस्य तथाविधस्य एतावदेव खलु लिङ्गं लक्षणम्, यन्मदनादीनामापदामनुदिनं निपुणमत्यन्तं तनुलमपक्षय इत्यर्थः ॥ ६ ॥ इति
भीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यभकाशे निर्वाणप्रकरणे श्रयोविकारपुत्तरकात्तमः सर्गः ॥ १२३ ॥

निष्कारणस्यं जीवामां श्राधारागेण यद्भता । रूपाण्यवस्थास्तुर्ये च सृगव्याधीयमीर्थते ॥ १ ॥

इतरसिद्धपेक्षया आत्मज्ञानस्गोत्कवीं नित्यनिरितशयानन्दान्तुभवलादेव, प्रत्यगात्मनश्च नित्यनिरितशयानन्दस्यता ब्रह्मस्यस्यलादेवेत्यर्थस्योपपत्तये ब्रह्मण एव स्वस्थभावोपेक्षावशाजीवभावप्राप्तिमाह—यथेत्यादिना । यथा कश्चिद्विप्रः श्रद्धां
कामयमानस्तत्संभोगसहवासादिदुरीह्या सं स्नोन्तितं सत्वं
सासिकं ब्राह्मणधर्म शनैरुपेक्ष्य चिरकालेन श्रद्धत्वमङ्गीकरोति
तथा ईश्वरो बुद्धादिसंगत्या तत्प्रयुक्तभोगाशया सं नित्यग्रद्धपूर्णानन्दसभावसुपेक्ष्य जीवसमङ्गीकरोतीत्यर्थः ॥ १ ॥ उपाविप्राधान्येव भोग्यान्युपहितप्राधान्येन भोक्षणीति द्विविधानि
मायागतानादिद्विविधसंस्कारपरंपरानुसारिणो हिरण्यगर्भात्मकावाद्यविस्यन्दाज्ञातानि मायागन्धर्वनगरवदाविर्मूतानि।अतो मिक्यासानिक्षारणानि बास्तवसामग्रीनिरपेक्षाणि । निह स्वाग्य-

अकारणमुपायान्ति सर्वे जीवाः परात्पदात्॥ ४ पश्चात्तेषां स्वकर्माणि कारणं सुखदुःखयोः। आत्मशानात्समृत्पन्नः संकरणः कर्मकारणम्॥ ५ संकर्षित्वं हि बन्धस्य कारणं तत्परित्यज्ञ। मोक्षरतु निःसंकर्षित्वं तद्भ्यासपरो भव॥ ६ सावधानो भव त्वं च प्राह्मप्राह्कसंग्रमे। अजस्रमेव संकर्पद्शाः परिहरुद्धनैः॥ ७ मा भव ग्राह्मभावात्मा ग्राह्मकात्मा च मा भव।

टादिः स्रोत्पत्ती दण्डचकादिसामग्रीसापेक्ष इत्यर्थः ॥ २ ॥ नन 'साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' 'तस्माह्रोकात्पुनरेलान्यसै हो-काय कर्मणे' इत्यादिश्रतिषु जन्मकर्मणोर्बीजाङ्करबदनादिः पर-स्परकार्यकारणभावोऽवगम्यते तत्कथमीश्वरस्य कर्मश्चन्यस्य जी-वभावेनावसर्थे जन्मोच्यते तत्राह-ईश्वरादिति । खक्ततैरुप-हितकृतैः । नेश्वरस्य जीवभावे कर्मापेक्षा किंतु जीवभावापत्य-न्तरं देहादिजन्मनि पूर्वपूर्वदेहादिकृतकर्मापेक्षा । यथा सवि-तुर्जले प्रतिनिम्बनेन चलनादिकियापेक्षा प्रतिनिम्बस्य तरङ्ग-भेदेषु संक्रमे तत्तद्भविकियानुभवे चोपाधिकियापेक्षा तद्भदिति भावः ॥ ३ ॥ तदेव सप्रमाह—कार्यकारणभाव इति । तथा-चोक्तं वार्तिके 'वियद्क्तुस्त्रभावानुरोधादेव न कारकात् । वि-यत्संपूर्णतोत्पत्ती कुम्भसीवं दशाधियाम्' इति ॥४॥ पश्चात्तेषां कर्माणीति कृतो शायते तत्राह-आत्मशानादिति । यादश-मातमानं यो जानाति स तदनुरूपं संकल्पयति संकल्पानुरूपं च करोति । नहि मनुष्यादिदेहात्मताबुद्धिं विना पुण्यपापे संकल्पयति करोति वा । तथा चोक्तं भगवद्भिर्भाष्यकृद्धिः 'नहानध्यस्तात्मभावेन देहेन कश्चिद्यात्रियते' इति । देहाध्या-सोऽपि संकल्पद्वारेव पुण्यपापप्रवृत्तिहेतुरित्याह—संकल्प इति ॥ ५ ॥ संकल्पोऽस्यास्तीति संकल्पी तथाविधत्वं पुण्यापुण्यप्र-वृत्तिभोगवासनादिसंतानेन बन्धस्य कारणम् ॥ ६ ॥ संकल्प-त्यागे उपायमाह—सावधान इति । माह्यमाहकमेदभ्रमे हि सति ब्राहकस्य ब्राह्म अनुकुलताव्रतिकृलतायनुसंधानाद्वानोपा-दानानुकुलप्रवृत्तिसंकल्पो भवति । प्राह्मप्राहकविश्रमत्यागेन तत्साक्षिण्येकाप्यलक्षणसावधानलाभ्यासे तु संकल्पमूछमेवा-च्छिदात इति भावः ॥ ७॥ अमुमेवार्थं कप्टोक्त्याह-मा

भावनामखिलां त्यवत्वा यच्छिएं तन्मयो भव॥ ८ अजसं यंयमेवार्थं पतत्यक्षगणोऽनघ। बध्यते तत्र रागेण तत्रारागेण मुख्यते ॥ किंचियद्रोचते तुभ्यं तद्वजोऽसि भवस्थितौ। न किंचिद्रोचते चित्ते तन्मुकोऽसि भवस्थिता १० तसात्पदार्थनिचयात्सह स्थावरजंगमात् । तृणादेर्वेवकायान्तान्मा किंचित्तव रोचताम् ॥ ११ यत्करोषि यदश्रासि यज्जहोषि ददासि यत्। न कर्तासि न भोकासि तत्र भुक्तमतिः शमी ॥ १२ सन्तोऽतीतं न शोचन्ति भविष्यचिन्तयन्ति नो । वर्तमानं च गृह्वन्ति कर्म प्राप्तमखण्डितम् ॥ १३ मनसि प्रथिता भावास्तृष्णामोहमदादयः। मनसैव मनो राम च्छेदनीयं विजानता ॥ १४ विवेकेनातितीक्ष्णेन बलावय इवायसा । मनसैष मनदिछन्धि सबैग्रमस्य शान्तये ॥ १५ क्षालयन्ति मलेनैव मलं क्षालनकोविदाः। वारयन्त्यसमस्रोण विषं प्रतिविषेण च ॥ १६ जीवस्य त्रीणि रूपाणि स्थूलसृक्ष्मपराणि च। तत्रास्य यत्परं रूपं तद्भज हे परित्यज ॥ १७ पाणिपादमयो योऽयं देहो भोगाय बलाति। भोगार्थमेतज्जीवस्य रूपं स्थूलमिहास्थितम्॥ १८ म्बसंकल्पमयाकारं यायत्संसारभावि यत्। चित्तं तद्विक्रि जीवस्य रूपं रामातिवाहिकम्॥ १९

मवेति । यत् शिष्टं साक्षिखरूपं तन्मयस्तदेकरसः ॥ ८ ॥ असावधानत्वे तु प्राह्मेऽनुकुले रागोऽवर्जनीय इति दर्शयन्वेरा-ग्याभ्यासस्याप्यावश्यकतां दर्शयति-अजस्रमिति॥९॥ रागर्वे-राग्ययोः खरूपं विविच्य दर्शयंस्तयोर्बन्धमोक्षलिङ्गतां दर्शन यति---किंचिदिति । यत् यदि । तत् तर्हि ॥ १० ॥ अप-कर्षावधी तणशरीरादेख्तकर्षावधी देवो हिरण्यगर्भस्तत्कायान्ता-त्रद्भोग्यविषयरूपाच पदार्थनिचयात्रिधीरितं किंचिदपि तव न रोचताम् ॥ १९ ॥ नन्वेवं परवैराग्येण भोकृताबन्धजयेऽपि जीवता स्नानभोजनादिकियाणां दुस्त्यजलाश्तरकृतो स्यादेवेत्याशक्काइ-यदिति । तत्र तासु कियासु मुक्त-मतिः कृदस्थात्मनिविष्टमतिः । तथाचोक्तं भगवता किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्' इति ॥ १२ ॥ इष्टवियोगानिष्टसंभावनादिप्रयुक्तशोकेन बन्धप्रसक्तिमाश-**इ**याह—सन्त इति ॥ १३ ॥ सर्वबन्धजये मनोजय एवो-पायः सच मनसैव नान्येनेखाइ—मनसीति ॥ १४ ॥ यद्वपायेन मनसा मनोजयस्तमाइ-विवेकेनेति ॥ १५ ॥ मनसा मनोजये आत्माश्रयदोषं परिहरति-क्षालयन्तीति मळेन क्षारादिना ॥ १६ ॥ मनःसंबक्तितो जीवस्त्रत्र कियानंशः आधन्तरहितं सत्यं चिन्मात्रं निर्विकल्पकम् ।

यस्तिद्धि परं रूपं तृतीयं विश्वकपकम् ॥

एतसुर्यपदं शुद्धमत्र बद्धपदो भव ।
संपरित्यज्य पूर्वे हे मा तत्रात्ममितर्भव ॥

श्रीराम उवाच ।

जाम्रत्स्वमसुषुत्रेषु स्थितं त्रिष्वप्यलक्षितम् ।
तुयं बृहि विशेषेण विविच्य मुनिनायक ॥

२२

अहंभावानहंभाषौ त्यक्त्वा सदसती तथा। यद्सक्तं समं स्त्रच्छं स्थितं तत्तुर्यमुच्यते ॥ 23 या स्वच्छा समता शान्ता जीवन्मुक्तव्यवस्थितिः। सास्यवस्था व्यवद्वतौ सा तुर्यकलनोच्यते ॥ २४ नैतज्जाग्रम च स्वप्नं संकल्पानामसंभवात्। सुषुप्तभावो नाप्येतदभावाज्जडता स्थितेः॥ २५ शान्तं सम्यद्मप्रबुद्धानां यथास्थितमिदं जगत्। विलीनं तुर्यमेवाहुरवुद्धानां स्थिरं स्थितम्॥ २६ अहंकारकलात्यागे समतायाः समुद्भवे। विशरारी कृते चित्ते तुर्यावस्थोपतिष्ठते ॥ २७ अधेमं ऋणु रहान्तं कथ्यमानं मयाधुना । प्रबुद्धोऽपि यथा बोधमुपैषि विबुधोपम ॥ २८ कसिम्बित्काननाभोगे महामौनं व्यवस्थितम् । दृष्टाद्भतमिवं किंचिन्मुनि पत्रच्छ लुब्धकः॥ २९

पृथकृत्य मनसा च्छेदनीय इति दर्शयितुं जीवरूपाणि विभजते---जीवस्येति । परित्यज मनसा छिन्धि ॥१७॥ तानि दर्शयति--पाणीत्यादिना ॥ १८ ॥ १९ ॥ विश्वस्य रूपकं निरूपकं । स-त्तास्फुर्तिप्रदमित्यर्थः ॥ २० ॥ २१ ॥ स्थूलसूक्ष्मरूपे जीवस्य जाप्रत्खप्रयोः प्रसिद्धे । ताबन्मात्रपरिखागेऽपि न सम्यक्तस्य परिश्चिद्धिरित्यवस्थात्रयातीतं जिज्ञासमानो रामः प्रच्छति-जामदिति । स्थितं संकीर्णमत एव स्पष्टमरुक्षितम् । विशेषेण तत्संकरव्यावर्तनेन ॥ २२ ॥ अहंभावो जाग्रत्खप्रयोविंक्षेपः । अनहंभावः सुपुर्ता तन्मूलमावरणं तावुभी व्यष्टिरूपौ जीबोपाधा समष्टिरूपी तु 'असद्वा इदमप्र आसीत्ततो वे सदजायत' इत्यादि-श्रुतिप्रसिद्धे सदसती ते च त्यक्ता ॥ २३ ॥ जीवन्युकेषु व्यव-स्थितिर्निकृष्टस्थितिर्यस्याः । व्यवहृतौ व्यवहृारकाले साक्ष्य-वस्थेति प्रसिद्धा ॥ २४ ॥ तस्या जाप्रदादिसंकरं वारयति--नैतदिति । जडता आवरणं तत्स्थितेरज्ञानस्य ॥ २५ ॥ नन्य-द्वितीनं तुरीयं जाप्रदादि द्वैतकाले जीवन्मुक्तानामपि कथं स्यातत्राह-शान्तमिति । विलीनं ज्ञानवाधितम् ॥ २६ ॥ जलविलीनसैन्धवबद्विशरारी कृते सति ॥ २७ ॥ जाप्रतो व्यवहरतः क्यं चित्तं विशराह स्यादिलसंभावनां मृगव्याधी-योदाहरणेन वार्यति—अथेममित्यादिना ॥ २८ ॥ महामौनं ज्ञानवाधितवागादिचेष्टम् । इदं वश्यमाणं पत्रच्छ ॥ २९ ॥

पश्चातुपगतो बाणमिश्चं सृगममिद्वतम्। मुने मदीयबाणेन विद्धो सृग इहागतः॥ 30 क प्रयातो मृग इति प्रत्युवाच स तं मुनिः। समशीला वयं साधो मुनयो वनवासिनः॥ ३१ नास्माकमस्त्रहंकारो व्यवहारेषु यः क्षमः। सर्वाणीन्द्रियकर्माणि करोति हि सखे मनः॥ ३२ अहंकारमयं तन्मे नुनं प्रगलितं चिरम्। जाग्रत्स्वप्रसुषुप्तारुया दशा वेदि न काश्चन ॥ ३३ तुर्य एव हि तिष्ठेऽहं तत्र दृश्यं न विद्यते। इति तस्य वचः श्रुत्वा मुनिनाथस्य राघव॥ लुम्धकोऽर्थमविशाय जगामाभिमतां दिशम्। अतो विचम महाबाहो नास्ति तुर्यतरा दशा ॥ ३५ इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे मृगव्याधीयं नाम चतुर्विशत्यधिकशततमः सर्गः ॥१२४॥

निर्विकस्पा हि चित्तुर्यं तदेवास्तीह नेतरत्। जाप्रत्स्वप्रसुषुप्ताख्यं त्रयं रूपं हि चेतसः॥ 38. घोरं शान्तं च मृढं च आत्मचित्तमिहास्थितम्। घोरं जावन्मयं चित्तं शान्तं स्वप्नमयं स्थितम् मृढं सुषुप्तभावस्थं त्रिभिर्हीनं मृतं भवेत्। यब चित्तं मृतं तत्र सत्त्वमेकं स्थितं समम्। तदेव योगिनः सर्वे यहात्संपादयन्ति हि॥ 34

समस्तसंकल्पविलासमुकं तुर्वे पदे तिष्ठ निरामयात्मा। यत्र स्थिताः साधु सदैव मुक्ताः प्रशान्तमेदा मुनयो महान्तः॥ રૂડ્

पश्चिवंदात्यधिकदाततमः सर्गः १२५

२

वसिष्ठ उवाचा।

सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्मय एव हि। नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मदमक्रमम्॥ शान्त एव चिदाभासे स्वच्छे समसमात्मिन। समप्रशक्तिखचिते ब्रह्मेति कलिताभिधे॥ निणीय केचिच्छून्यत्वं केचिदिज्ञानमात्रताम्। केचिवीश्वरकपत्वं विधवन्ते परस्परम्॥ 3

बाणमित्रममिद्वतं पलायितं मृगं पश्चाद्भागे उपगतो लुब्धक इति पूर्वान्वयि । किं पप्रच्छ तदाह—मुने इत्यादिना ॥ ३०॥ पुनर्पृग इत्युक्तिः संभ्रमात् ॥ ३१ ॥ व्यवहारेष्वनभ्यस्तेब्विति शेषः ॥ ३२ ॥ अर्द्दकारमयमभिमानप्रचुरम् । चिरं सदैव ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अतस्तादशमुन्यनुभवश्रुत्यादिबाध्यलासुर्येतर-जाप्रदादिदशा स्थूलादिदशा च नास्ति ॥ ३५ ॥ गुणत्रयात्मक-मायामयचित्तकार्येलातिसृणामवस्थानां मायाबाधे चित्तस्य **मृतलादिप तदुपादेयावस्थानामसत्त्व**मित्याह—जामदित्यादिना ॥ ३६ ॥ तिस्रोऽवस्था रजशादिगुणप्राधान्येन त्रिधा विभज्य दर्शयति—घोरमिति।खर्गनरकपुनर्जन्मादिहेतुपुण्यपापोत्पादना-द्धनीभावाधिक्याच जाप्रन्मयं जाप्रदवस्थं चित्तं घोरमित्याद्युद्यम् ॥ ३७ ॥ गुणत्रयात्मकमायोच्छेदात्रिमिह्यनम् । मृते चित्ते योगिनां प्रारब्धशेषभोगाय भस्मनि शोक्क्ष्यमिव सलांश एवानु-वर्तते न रजस्तमोंशलेश इत्याह--यश्रेति । रजसा अक्षोभ्य-माणलात्समम् । तादशे चित्ते नैर्मल्यातिशयेन खात्मसुखस्य सदैवाविभीवात्सर्वव्यापारोपरमेण समाध्यभ्यासं यक्षात्संपादय-न्तीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ अतस्त्वमपि तादृशं चित्तं संपाद्य तुर्ये पदे विश्रान्तिस्तिष्ठेत्याह—समस्तेति । सप्टम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे चतु-**िश्चित्युत्तरशततमः** सर्गः ॥ १२४ ॥

सर्थमेव परित्यज्य महामौनी भवानघ। निर्वाणवाश्रिमेननः श्रीणचित्तः प्रशान्तधीः॥ आत्मन्येवास्स्व शान्तात्मा मुकान्धविधरोपमः। नित्यमन्तर्भुखो भृत्वा स्त्रात्मनान्तः प्रपूर्णधीः॥ ५ जाग्रत्येव सुपुप्तस्थः कुरु कर्माणि राघव। अन्तः सर्वेपरित्यागी बहिः कुरु यथागतम् ॥ દ્

> सर्वापह्नवसिद्धान्ते वादिनां यत्र विश्वमाः। तुर्वे तथाविधे स्थैर्य सोपायमुपदिश्यते ॥ १ ॥

अविद्यया सहजैव स्वावस्थात्रयप्रपन्नस्य मायया ऐश्वरस्य वियदादिप्रपन्नस्य वंति सर्वस्य द्वैतजातस्यापहृव आत्मानम्बन कृत्य प्रश्तानां श्रुतिस्पृतीतिहासपुराणादिशास्त्राणां परमसि-द्धान्तो न वस्तुप्रकाशनम् । खप्रकाशस्यात्मवस्तुनः स्वतःसिद्ध-तया तित्तर्दे। प्रमाणाप्रसरादित्याह—सिद्धान्त इति । शान्तं सर्वे।पप्रवरहितमिदं निलापरोक्षं ब्रह्म शास्त्रेनं कम्यत इलाकम-मवगादुमशक्यमित्यर्थः । तथाच श्रुतिः 'यतौ वाची निव-र्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति । तथाच द्रविडाचार्यैरप्यु-क्तम् 'यद्यप्रमेयं ब्रह्म किमर्थं शास्त्रमिति चेत्सिद्धं तु निवर्तक-लात्' इति ॥ १ ॥ श्रुत्यादिसिद्धान्तापरिक्कानादेव स्त्रबुद्धिवै-भवेन जगन्मूळान्वेषिणां वादिनां ब्रह्मशब्दवाच्ये सर्वशक्त्या-त्मकमायाशबळे ब्रह्मणि बुद्धिदोषवैचित्र्यान्नानाविधाः कल्पनाः प्रशृता इत्याह—शान्त इति द्वाभ्याम् ॥२॥ निर्णीय खखबुद्धानु-सारेण सिद्धान्तमेदान्कल्पयिला ॥ ३ ॥ सर्वं मायान्तं हर्य-जातं परिलज्य । समनस्कसर्वेन्द्रियव्यापारोपरमान्महामीनी । पूर्णानन्दिचहात्मनि निर्वाणवान्सन् आत्मन्येवास्त्वेति परेणा-न्वयः ॥ ४ ॥ ५ ॥ पश्रमादिभूमिकाजयाज्ञाप्रदवस्थोपि सुद्रप्त चित्तसत्ता परं दुःखं चित्तासत्ता परं सुखम्।
अतिधत्तं चिदेकात्मा नय श्रयमवेदनात्॥
हृष्ट्रा रम्यमरम्यं वा स्थेयं पाषाणवत्समम्।
पतावतात्मयक्षेन जिता भवति संसृतिः॥
सवेदनीयं न सुखं नासुखं न च मध्यमम्।

पतावतात्मयक्षेन वुःखान्तोऽनन्त आण्यते ॥ ९ आपीनमण्डलदाशाङ्कवदन्तरेव श्रीमद्रसायनमयः सुखमेति तज्जः। विज्ञातसर्वभुवनत्रयवस्तुसारः कुर्वन्न नाम कुहते परमभ्युपेतः॥ १०

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे तुर्ये स्थैर्यीपायकथनं नाम पम्नविश्रत्युत्तरराततमः सर्गः ॥१२५॥

Ø

4

पर्डिदात्यधिकदाततमः सर्गः १२६

श्रीराम उवाच । सप्तानां योगभूमीनामभ्यासः कियते कथम् । कीदशानि च चिह्नानि भूमिकां प्रति योगिनः ॥ १ वसिष्ठ उवाच । प्रवृक्तभ्र निवृक्तभ्र भवति हिविधः पुमान् ।

इव स्थितः ॥ ६ ॥ अवेदनात्प्रयद्वेष्यलाननुषंधानात् ॥ ७ ॥ अवेदनादित्येतदेव स्पष्टयति—हिष्टेति ॥ ८ ॥ संवेदनीयं चिन्तनीयम् । अमुखं दुःखम् । मध्यमं तदुभयसाधनम् ॥ ९ ॥ विज्ञातः सर्वेषां भुवनत्रयवस्तूनां सारो येन । अतएव श्रीमत् खतः सर्वतः प्रकाशेन शोभमानं यद्रसायनं निरतिशयस्रखम्मृतं च तन्मयः । अतएव च आसमन्तात्पीनं पुष्टं मण्डलं यस्य तादशो यः शशाङ्कः पूर्णचन्द्रस्तत्कल्पः परं परमात्मानम-भ्युपेतस्तज्ज्ञो जीवन्मुक्तिसुखमेति । कुर्वन्नपि प्रारच्धोपनीतं व्यवहारं न कुरुते । प्रतिविम्बचेष्टायामिव न खस्य कर्तृत्वं पर्यतीस्यर्थः ॥ १० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यन्त्रकाशे निर्वाणप्रकरणे पञ्चविंदास्युक्तरशतसमः सर्गः॥ १२ ॥

उच्येते योगभूमीनामभ्यासकमलक्षणे । अन्तराले मृती भोगासतो जन्मान्तरे जयः ॥१॥

'जाप्रलेव सुषुप्तस्थः कुरु कमीण राघव' इति चतुर्थभूमि-कारूढं रामं प्रति पश्चमादिभूमिकास्थितिः संपायेत्युक्तम् । तत्संपादनकामो रामः खजितजेतव्यभूमिकाविभागज्ञानाय तहः-क्षणानि तद्भ्यासकमं च पृच्छति-सप्तानामिति । भूमिकां प्रति प्रतिभूमिकं योगिनः कीहशानि चिहानि भवन्ति । वी-प्सायां प्रतेः कर्मप्रवयनीयसंज्ञायां द्विवेचनस्याव्ययीभावस्य वा आवर्यकलासद्करणं छान्दसम् ॥ १ ॥ पृष्टं भूमिकाभ्यास-कमं कथविष्यन्वसिष्ठसाद्यिकारिणं प्रवृत्तिशास्त्राधिकारिव्यावृत्तं दर्शियतुं तौ विभज्य तयोर्लक्षणभेदोक्ति प्रतिजानीते-प्रकृत-श्रेति । पुमान् वेदमार्गस्थः पुरुषः ॥ २ ॥ तत्रादौ रागादिदो-वैविंपरीतबुद्धेः प्रकृतस्य लक्षणमाह—कियदिति । तत् सर्व-विषयश्चन्यत्वेन प्रसिद्धं निर्वाणं कियन्नाम । न भोगरागिणां बहुमतमिल्यर्थः । उत्रावचभोगसंपन्ना संस्तिरेव मे वरम् । यथाहुः 'अपि वृन्दावने शून्ये श्रुगालत्वं स नाञ्छति । नतु निर्विषयं मोक्षं कदाचिदपि गौतम ॥' इति । एवंप्रकारेण निविष्य कर्तव्यस्य निल्नेमित्तिककाम्यकर्मजातस्य यः कर्ता स्वर्गापवर्गोन्मुखयोः शृणु लक्षणमेतयोः॥ २ कियत्तन्त्राम निर्वाणं वरं संस्तिरेव मे। इतिकर्तव्यकर्ता यः स प्रवृत्त इति स्मृतः॥ ३ चलाणवयुगच्छिद्रकूर्मेत्रीवाप्रवेशवत्। अनेकजन्मनामन्ते विवेकी जायते पुमान्॥ ४

॥ ३ ॥ निवृत्तं रुक्षयिष्यन् निवृत्तिहेतुं विवेकं वर्णयितुं तही-र्रुभ्यमाह—चलेति । यथा यादोगणकोटिभिः प्रचण्डपवनैवेड-वान लक्कथनादिभिश्वात्यन्त चश्वलपूर्वापरार्णवद्वयोदरे कूर्माणां श्रीवाणामल्पतरेऽपि तरंगचलनादिप्रयुक्तभये झटित्येः वान्तः प्रवेशाः पुनर्निर्गमाधासंख्येयास्तद्वदसंख्येयानां मृत्युसुख-प्रवेशपुनर्निर्गमनलक्षणानां जन्मनामन्ते कश्चिदेव पुमान् वि-वेकी जायत इत्यर्थः । अथवा क्षारार्णवस्थमहाकूर्मधीवा यथा अनेकशः कण्टच्छिरे प्रविश्य निर्गतापि क्षाराणंवरसमेवासादः यन्ती तमेव बहमन्यमाना आप्रलयं न क्षीराणंवरसं जानाति। अन्ते कल्पान्ते तु चलयोः क्षारक्षीराणैवयोर्मिलनावसरे तदु-भयोदरलक्षणच्छिद्रे प्रीवाप्रवेशे क्षीररसमाखाख क्षाररसात्सी-ररसस्य विवेकिनी भूत्वा तदासक्ता जायते तद्वजीवोऽपि प्राग्वि-षयरसानेव बहुमन्यमानोऽनंकजन्मनामन्ते भाग्योदयाद्या-त्मशास्त्ररसमाखाद्य विवेकी तदासक्तो जायत इलर्थः । अथवा अमृतोत्पादनाय देवासुरैः समुद्रमथने कियमाणे यथा मन्याच-लाधारस्य कूमेभूतस्य भगवतः समस्तभुवनाधारोदरलादन्तर्व-हिश्व मध्यमानचलार्णवयुगस्य च्छिद्रे क्क प्रथमममृतमुत्पवते इ-लाखादनेन परीक्षार्थं प्रवृत्ता प्रीवा अनेकेषामन्तः प्रवेशबहिर्नि-र्गमनजन्मनामन्ते अन्तर्वहिर्वा यत्रैव प्रथममृमृतमुत्पनं तत्रैव तदाखाद्य श्रीरामृतविवेकिनी जायते तद्वद्यं मुमुश्चरपि श्रवणो-पायेन बहिर्मनननिदिध्यासनाभ्यामन्तश्च ब्रह्मात्मतत्त्वविवेकाय प्रवृत्तः पुमाननेकजन्माभ्यासवशादन्ते अन्तरेव **वहिः श्रवणाव-**सरे वा साक्षाद्विवेकेन निरतिशयानन्दमास्वादयतीत्यर्थः । अय-वा चलयोरर्णवयोर्युगस्य युग्मस्य च्लिद्रे मध्यवर्तितीरविवरे कू मंख्य प्रीवया साधनभूतया प्रवेशे सति यथा पुरतो निर्गमने प-श्वाभिवर्तने तथैव च्छिद्रावस्थाने वा न कापि विश्रान्तिस्तथा प्राक्तनं भवसागरं परिखज्य भवान्तरं प्रति विविक्षोर्जीवस्य न कापि विभान्तिः। तथाहि। प्राक्तने जन्मनि जरामरणादिदुःख-परम्पराभाविनि बाल्यादिषु:स्तसन्ततिमध्यवर्तिनि यातनादेहे

असारा बत संसारव्यवस्थालं ममेतया । किं कर्मिमः पर्युषितैर्दिनं तैरेव नीयते॥ कियातिशयनिर्मुक्तं किंस्याद्विश्रमणं परम्। इति निश्चयवान्योऽन्तः स निवृत्त इति स्मृतः॥ ६ कथं विरागवान्भृत्वा संसाराध्धि तराम्यहम्। पवं विचारणपरो यदा भवति सन्मतिः॥ **विरागमुपयात्यन्तर्भावनास्वनुवासरम्** । कियासुदाररूपासु क्रमते मोदतेऽन्वहम् ॥ **प्राम्यासु जडचे**ष्टासु सततं विचिकित्सति। नोदाहरति मर्माणि पुण्यकर्माणि सेवते ॥ मनोनुद्वेगकारीणि मृतुकमोणि सेवते । पापाद्विमेति सततं न च भोगमपेक्षते ॥ 80 क्रेहप्रणयगर्भाणि पेशलान्युचितानि च । देशकालोपपन्नानि वचनान्यभिभाषते ॥ ११ तदासौ प्रथमामेकां प्राप्तो भवति भूमिकाम्। मनसा कर्मणा वाचा सज्जनानुपसेवते॥ १२ यतः कुतश्चिदानीय भानशास्त्राण्यवेक्षते । एवं विचारवान्यः स्यात्संसारोत्तारणं प्रति॥ १३ स भूमिकावानित्युक्तः शेषः स्वार्थ इति स्मृतः।

गर्भवासे वा महद्वःखमिति । इत्थं दुःखमयानामनेकेषां जन्म-नामन्ते पुमान्कुत्वित्पुण्यपरिपाकाद्विवेकी जायते ॥ ४ ॥ की-हशो विवेकोऽस्य जायते तमाह-असारेखादिना । विविधा विरुद्धा चावस्थितिर्व्यवस्था असारा विश्वान्तिसुखहीना । पर्यु-षितैरेनुचितपरिणामैः ॥ ५ ॥ कियाप्रयुक्तरितशयेरुत्पत्त्या-प्तिबिकृतिसंस्कारेनिमुक्तं कूटस्थमित्यर्थः तदवर्यं संपादनीयमिति निश्वयवान् ॥ ६ ॥ तस्य प्रथ-मभूमिकाप्राप्तिकममाह—कथमिलादिना ॥ ७ ॥ भाव-नासु भोगतस्साधनचिन्तासु । विरागं वैरस्यम् । उदाररूपासु चित्तशुद्धानुकूलासु शीचसत्सन्नेश्वरोपासनजपादिरूपासु यासु क्रमते सज्जते । तेन चान्वहचित्तशुद्धपचयेन तृष्णाक्ष-यान्मोदते ॥ ८ ॥ विचिकित्सति जुगुप्सते । मर्माणि परेषां रहस्यदोषाश्रोदाहरवि न भाषते ॥९॥ परेषां स्वस्य च मनसः अनुद्वेगकराणि सृदून्यल्पायासमहाफलानि यमनियमादिकमाणि सेवते । भोगे च पापावश्यंभावात्तं नापेक्षते ॥ १० ॥ पेशला-न्यनुद्देगकराणि । उचितानि सत्यप्रियहितादिरूपाणि ॥ ११ ॥ एवंगुणविधिष्ठपुरुषस्य सच्छास्त्रश्रवणाधिकारलक्षणायां प्रथम-भूमिकायामवतार इत्याह-तदेति । सज्जनान् शान्तिदान्ति-क्कानविक्कानसंपन्नान् ॥ १२ ॥ यतः कुतिश्वत्तत्सेवानुकृठं धना-दिसाधनमानीय तान्सेवमानस्तन्मुखाज्ज्ञानशास्त्राणि पुराणमो-क्षधर्माध्यात्मसंहितादीन्यवेक्षते शृणोतीत्वर्थः ॥ १३ ॥ भूमि-कावान्त्रथमभूमिकाप्रविष्ट इत्युक्तः । शेषः उक्तसाधनचतुष्टया-दिसंपतिहीनस्वध्यात्मप्रन्थासकोऽपि रागादिना अनिधकारि- जनप्रतारणेनाजैनादिना उदरभरणशीलखात्स्वार्थे। वश्वक इ-त्यर्थः । सेयं शुभेच्छाख्या प्रथमा भूमिका । तस्य क्रमेण द्विती-यभूमिकाप्रवेशकममाह-विचारेति । भूमिकामागतः अधि-कारप्राप्त्याऽवतीर्णः ॥ १४ ॥ स तत्र किं करोति तदाह—श्रु-तीति । श्रुतीनां स्मृतीनां सदाचाराणां धारणाध्यानकर्मणां सा-ध्येन समाधिना साधनेश्व यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारैः त्रतिपारं यस्य योगशास्त्रस्य तस्य च मुख्यया अनुष्ठानानुष्ठाप-नफलोपहितया व्याख्यया व्याख्यानेन ख्यातान् । आत्मतत्त्वा-नुभवोपदेशकुशललाच्छ्रेष्ठान्पण्डितान् गुरून् श्रयते श्रवणमन-नादिविचाराय शरणं गच्छतीत्यर्थः । तथाचश्रुतिः 'तद्विज्ञानार्थ स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इति॥१५॥ खयं व्याकरणायङ्गामिज्ञलात्पदानां तदर्थानां च वाच्यलक्ष्या-दिरूपाणां लक्षणादिप्रविभागञ्चः शिष्यो गुरुमुखाद्धिगतश्रन्यः सन् कार्थं साध्यं कर्मकाण्डार्थस्तद्विलक्षणमकार्थं सिद्धं ब्रह्मका-ण्डार्थस्तयोविंनिर्णयं गृहपतिः खगृहकोष्ठविभागमिव सप्टं जा-नाति ॥ १६ ॥ बहिर्छोकमर्यादानुसारेणेषदाश्रितामपि । अनेन प्रथमभूमिकायामेव तेषामन्तर्निष्टतता दर्शिता ॥ १७ ॥ शा-स्त्ररहस्यं परमतात्पर्ये प्रमाणासंभावनानिरासेनाधिगच्छति । गुरुसज्जनाभिमतमात्मरहस्यं प्रमेयासंभावनानिरासेनाधिगच्छति ॥ १८ ॥ एवं द्वितीयभूमिकां जितवतस्तृतीयभूमिकाप्रवेश-माह-असंसङ्गति । ततस्तृतीयां भूमिकां पतित प्रविशति ॥ १९ ॥ यथावदिति क्लोकद्वयं यथायोगं पूर्वभूमिकाद्वयानु-वादः ॥ २० ॥ २१ ॥ प्रामवासे विश्लेपबाहुत्येन समाध्यभ्या-सानिर्वाहाद्वनव।सविद्वारेण ॥ २२ ॥ तत्र चित्तप्रसादे व्युत्था-

विचारनाम्नीमितरामागतो योगभूमिकाम्॥ १४ श्रुतिस्मृतिसदाचारधारणाध्यानकर्मणाम्। मुख्यया व्याख्यया ख्याताञ्श्रयते श्रेष्ठपण्डितान् १५ पदार्थप्रविभागद्यः कार्याकार्यविनिर्णयम् । जानात्यधिगतश्रव्यो गृहं गृहपतियंथा ॥ १६ मदाभिमानमात्सर्यमोहलोभातिशायिताम्। यहिरप्याश्रितामीपस्यजत्यहिरिव त्वचम् ॥ १७ इत्थंभृतमतिः शास्त्रगुरुसज्जनसेवनात्। सरहस्यमशेषेण यथावद्धिगच्छति॥ १८ असंसङ्गामिश्रामन्यां तृतीयां योगभूमिकाम्। ततः पतत्यसौ कान्तः पुष्पशय्यामिवामलाम् यथावच्छास्रवाक्यार्थे मतिमाधाय निश्चलम् । तापसाश्रमविश्रामैरध्यात्मकथनक्रमैः॥ 20 संसारनिन्दकैस्तद्वद्वराग्यकरणक्रमेः। शिलाशय्यासमासीनो जरयत्यायुराततम् ॥ २१ वनवासविहारेण चित्तोपरामशोभिना। असङ्गसुखसौम्येन कालं नयति नीतिमान्॥ अभ्यासात्साधुशास्त्राणां करणात्पुण्यकर्मणाम् । जन्तोर्यथावदेवेयं वस्तृदृष्टिः प्रसीदृति ॥

तृतीयां भूमिकां प्राप्य बुघोऽनुभवति स्वयम्। विःप्रकारमसंसङ्गं तस्य भेदमिमं शृणु ॥ २४ **द्विविधोऽयमसंसङ्गः सामान्यः श्रेष्ठ एव च**। नाहं कर्ता न भोका च न बाध्यो न च बाधकः २५ इस्यसंजनमर्थेषु सामान्यासङ्गनामकम्। प्राक्कर्मनिर्मितं सबेमीश्वराधीनमेव च॥ સદ सुखं वा यदि बा दुःखं कैवात्र मम कर्तृता। भोगाभोगा महारोगाः संपदः परमापदः॥ २७ वियोगायेव संयोगा आधयो व्याधयो धियः। कालः कवलनोद्यक्तः सर्वभावाननारतम् ॥ २८ अनास्ययेति भाषानां यद्भावनमान्तरम्। वाक्यार्थलयमगसः सामान्योऽसावसंगमः॥ २९ अनेकक्रमयोगेन संयोगेन महात्मनाम्। वियोगेनासतामन्तः प्रयोगेणात्मसंविदाम् ॥ 30 पौरुषेण प्रयक्षेन संतताभ्यासयोगतः। करामलक्षवद्वस्तन्यागते स्फ्रटतां रहम् ॥ 38 संसाराम्बुनिधेः पारे सारे परमकारणे। नाहं कर्तेश्वरः कर्ता कर्म वा प्राहृतं मम ॥ 32

नकाले पूर्वभूमिकाद्वयधर्मानुवृत्तिरप्यावश्यकीति दर्शयति--अ-भ्यासादिति ॥ २३ ॥ असङ्गमुखसीम्येनेत्युक्तिं विभज्य व्या-च्छे-तृतीयामिति ॥ २४ ॥ सामान्यः पृवेभूमिकासाधारणः। खदेहकियाफलयोर्न कर्ता न भोक्ता चेत्यदासीनः । परिक्रया-फलानां चन बाध्यो बाधकश्वेत्यसङ्गः ॥ २५ ॥ दृति निध-येन । अर्थेषु दृश्येष्यसंजनमनभिष्वन्नः । सामान्यासंसङ्गमेव हडीकर्तुं प्रपश्चयति-प्राक्तमेति सार्धत्रिभिः । सुखं वा प्राप्य-माणं यदि वा दुःखं प्राप्यमाणं सर्वं प्राक्कमंनिर्मितं कर्मस्यात-न्ध्यपक्षे । ईश्वरखात्रहवपक्षे लीश्वराधीनमेव । वाशब्द उत्तर-पक्षस्य प्रामाणिकलयोतनार्थः ॥ २६ ॥ पक्षद्वयेऽपि ममास्वा-तक्यात्स्वतन्त्रः कर्तेत्यानुशासनिकी कर्तृता केव न काचिदपी-त्यर्थः । असंसङ्गोपयुक्तानन्यानप्यनास्थाहेतून्भावेषु दर्शयति-भोगा इति ॥ २७ ॥ २८ ॥ इयमनास्थापि श्रवणादिसाहाय्येन बाक्यार्थज्ञानासक्तस्यैवासंसङ्गसुखाय नान्यस्यत्याह-वाक्या-वैति ॥ २९ ॥ अयं चासंसङ्गः पूर्वभूमिकयोरेव सत्सङ्गाद्यपायैः सम्यगभ्यसनीय इत्याह-अनेनेति । श्रवणमननात्मकानामा-त्मसंविदां प्रयोगेण आवर्तनेन । तथाच भगवतो बादरायणस्य सूत्रं 'आवृत्तिरसकृतुपदेशात्' इति ॥ ३० ॥ आत्मवस्तुनि प्रमाणप्रमेयासंभावनाद्वयनिरासेन स्फुटतां इत्थमेवात्मवस्लिति विश्वासगोचरतामागते सति ॥ ३१ ॥ सप्तम्यन्तत्रयं पूर्वा-न्वयि वस्त्नीत्यस्य विशेषणम् । श्रेष्ठासंसद्गं दर्शयति-नाह-मिल्यादिना । नाहं कर्ता किलीश्वर एव कर्ता । मम प्राक्कत-मिदानीं कियमाणं वा कर्म नास्तीत्यादिनिरासतत्प्रतियोग्यादि-विकल्पशब्दार्थवेदनामपि दूरतरे कुला यन्मीनमासनमिति

कृत्वा दूरतरे नृनमिति शब्दार्थभावनम्। यन्मौनमासनं शान्तं तच्छेष्टासङ्ग उच्यते॥ \$3 यन्नान्तर्न बहिर्नाधो नोर्ध्व नाशासु नाम्बरे। न पदार्थे नापदार्थे न जड़े न च चेतने ॥ 38 आसितं भासनं शान्तमभासं नभसा समम्। अनाचन्तमजं कान्तं तच्छ्रेष्टासङ्ग उच्यते ॥ રૂપ संतोषामोदमधुरः सत्कार्यामलपल्लघः । चित्तनालाग्रसंलीनो विघ्नकण्टकसंकटः॥ ३६ विवेकपद्मो रूढोऽन्तर्विचारार्कविकासितः। फलं फलखसंसङ्गां तृतीयां भूमिकामिमाम् ॥ ३७ समवायाद्विद्युद्धानां संचयात्युण्यकर्मणाम्। काकतालीययोगेन प्रथमोदेति भूमिका ॥ ३८ भूभिः प्रोदितमात्रा तैरसृताङ्करिकेष सा । विवेकेनाम्बुसेकेन रक्ष्या पाल्या प्रयक्ततः॥ **36** येनांशेनोल्लसत्येषा विचारेणोद्यं नयेत्। तमेवानुदिनं यतात्कृषीवल दवाङ्करम्॥ 40 पषा हि परिसृष्टान्तरन्यासां प्रसवैकभूः। द्वितीयां भूमिकां यहात्त्वतीयां प्राप्नयात्ततः॥ ध१

परेणान्वयः ॥ ३२ ॥ मीनं वाद्यनश्रक्षतिचेष्टाशून्यं निदि-ध्यासनपरिपाकफलनिर्विकल्पसमाधिना यत् आसन**मवस्थानम्** ॥३३॥ यहहाँकरस्यविलीनचित्तवृत्त्यात्मकमासितम् । अन्तर्बा-ह्यादिसर्ववस्त्वालम्बनशून्यमित्यर्थः । चेतने चिदाभासे । सर्वा विषयसप्तम्यः ॥३४॥ यत आसितं भासनं खप्रकाशचिद्रुपम् । अभासं प्रकाशकान्तरशून्यम् ॥ ३५ ॥ सचायं समाधिः सदा-चारोपवृहितविवेकस्य फलमिति वक्तुं विवेकं पद्मत्वेन रूप-यति—संतोषेति । सत्कार्याणि निष्कामकर्माणि उपासनगुरु-शुश्रुषाश्रवणादीन्येव पह्नवा यस्य । चित्तलक्षणनालाग्रे संलीनै रागादिवासनाप्रभवविद्वतरविद्यकण्टकैः संकटो निविडितः॥३६॥ सोयमसंसन्न एव तृतीया भूमिकेल्याह—फलमिति ॥ ३७॥ प्रथमभूमिकेवानेकजन्मसंचितसुकृतपरिपाकेरैहिकपुण्यसंचयेख दैवादक्करिता चेत्सैव सत्संगमादिना महता यक्नेन रक्षणीया सा चेदक्षिता अनायासेनैव द्वितीयादिभूमिकाः सेत्स्यन्तीति तन्नैव यक्राधिक्यमुपदिशति—समवायादिति । विशुद्धानां तरविदां समवायाद्दानमानभजनाद्युपायैर्मेछनात् ॥ ३८ ॥ समवेतैस्तैः किं कार्यं तदाह--भूमिरिति । यतसैविंशुद्धैः सा शुमेच्छाल-क्षणा भूमिरीषच्छुभप्रयृत्युन्मुखतया प्रोदिता मेषेरङ्करिता भू-मिरिव प्रतिदिनं विवेकोपदेशलक्षणेनाम्बुसेकेन यथा अमृता अम्लाना भवति तथा रक्ष्या वर्धनीया दुष्प्रवृत्त्यादिविन्ननिवार-णयक्रेन पालनीया चेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ एषा शुभेच्छा साधन-चतुष्टयमध्ये वैराग्यलक्षणेन शान्सादिलक्षणेन **वा येनैवां**शेन प्रथममञ्जूरितोलसति तमेवांशं विचारेणोद्यमभिष्टिं नयेत् ॥ ४० ॥ एकोंशोऽभिवधितोऽन्या उत्तरभूमिकाश्व खयमेव सा- કર

કર

88

श्रेष्ठासंसङ्गता होषा तृतीया भूमिकात्र हि । भवति शोज्झिताशेषसंकल्पकलनः पुमान्॥ श्रीराम उवाच ।

मृढस्यासत्कुलोत्थस्य प्रवृत्तस्याधमस्य च। अप्राप्तयोगिसङ्गस्य कथमुत्तरणं भवेत्॥ एकामथ द्वितीयां वा तृतीयां चेतरां च वा। आह्रदस्य मृतस्याथ् कीदशी भगवन्गतिः॥

वसिष्ठ उवाच। मृढसारुढदोषस्य तावत्संसृतिरातता । थावज्जन्मान्तरशतैः काकतालीययोगतः॥ હેલ अथवा साधुसंगत्या वैराग्यं नाभ्युदेति हि। वैराग्येऽभ्युदिते जन्तोरयद्यं भूमिकोदयः॥ કદ ततो नइयति संसार इति शास्त्रार्थसंप्रहः। योगभूमिकयोत्कान्तजीवितस्य शरीरिणः॥ 80 भूमिकांशानुसारेण श्लीयते पूर्वदुष्कृतम्। ततः सुरविमानेषु लोकपालपुरेषु च। 86 मेरूपवनकुञ्जेषु रमते रमणीसखः। ततः सुरुतसंभारे दुष्टते च पुरा ठूते ॥ કર भोगजाले परिक्षीणे जायन्ते योगिनो भुवि। शुचीनां श्रीमतां गेहे गुप्ते गुणवतां सताम् ॥

घयिष्यतीत्याह-एपेति ॥ ४१ ॥ सोपायं वर्णितां तृतीयभू-मिकां सफलामुपसंहरति--श्रेष्टेति ॥ ४२ ॥ प्रसङ्घादन्तराले मुदेषु दयया रामः पृच्छति-मृहस्येति । आमिजात्याद्यधि-कारिविशेषणहीनस्याध्यात्मकथाविमुखस्य कामभोगार्थमेव प्रवृ-सस्याधमस्य चोपायान्तरेण मोक्षोऽस्ति वा न वेति प्रथमप्र-श्रार्थः ॥ ४३ ॥ आद्यभूमिकात्रये अपरोक्षज्ञानोदयाभावादेक-द्विच्यादिरूढदशायां मृतस्य कीदशी गतिरिति द्वितीयस्य॥४४॥ आग्रप्रश्रस्मोत्तरमाह—मृबस्येत्यादिसाधद्वयेन । काकतालीय-योगतः खविचारत एव वा साधुसंगत्या वा वैराग्यं यावनाभ्य-देतीति परेणान्वयः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ द्वितीयस्योत्तरमाह----योगभूमिकयेत्यादिना ॥४७॥४८॥ दुष्कृतक्षयानुसारेण रमते इल्यर्शद्गम्यते । दुष्कृते चेति प्राक्तनानुवादः । नहि तस्य नर-कादिभोगोऽस्ति 'नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति' इति भगवद्वचनात् । आनुषङ्गिकं दुःखभोगामिप्रायं वा । खर्गिणामपि शारीरमानसादिदुःखसहस्रसलात् ॥ ४९ ॥ भो-गजाले भुज्यमाने सुकृतसंभारे दुष्कृते च परिक्षीणे सतीत्य-न्वयः । योगिन इति 'जालाख्यायां' इति वहुवचनम् ॥५०॥ योगमेवेति। 'पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते ह्यवशोपि सः' इति भ-गवद्वचनात्। तदेवाह्-योगवासिता इति । परिपतन्त्यारोहन्ति ॥ ५१ ॥ प्रश्नगोरत्तरमुक्ला प्रकृतमनुसरति-भूमिकात्रितय-

जनित्वा योगमेवैते सेवन्ते योगवासिताः। तत्र प्राग्भावनाभ्यस्तयोगभूमिकमं बुधाः। स्मृत्वा परिपतन्त्युचैरुत्तरं भूभिकाक्रमम्॥ ५१ भूमिकात्रितयं त्वेतद्राम जात्रदिति स्मृतम्। यथायद्भेदयुद्ध्येदं तज्जाप्रदिति दृश्यते ॥ ५२ उदेति योगयुकानामत्र केवलमार्यता । यां रघ्टा मृदबुद्धीनामभ्युदेति मुमुक्षुता ॥ ५३ कर्तव्यमाचरन्काममकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य इति स्मृतः 48 यथाचारं यथाशास्त्रं यथाचित्तं यथास्थितम्। व्यवहारमुपादत्ते यः स आर्य इति स्मृतः॥ 44 प्रथमायामङ्करितं द्वितीयायां विकासितम्। फलीभूतं तृतीयायामार्यत्वं योगिनो भवेत्॥ ५६ आर्यतायां मृतो योगी शुभसंकल्पसंभृतान्। भोगान्भुक्त्वा चिरं कालं योगवाञ्जयते पुनः ॥ ५७ भूमिकात्रितयाभ्यासादश्चाने श्रयमागते। सम्यन्हानोद्ये चित्ते पूर्णचन्द्रोद्योपमे ॥ 46 निर्विभागमनाद्यन्तं योगिनो युक्तचेतसः। समं सर्व प्रपद्दयन्ति चतुर्थीं भूमिकामिताः॥

मिखादिना । आद्यभूमिकात्रये जाप्रच्छब्दप्रकृतिनिमित्तमाह-मेददर्शनगुणेन प्रसिद्धजाप्रत्साम्यादित्यर्थः यथावदिति । ॥ ५२ ॥ निमित्तान्तरमप्याह—उदेतीति । आर्यता पूज्यता प्रयोजकसदुणोत्कर्षः । यां दृष्ट्वेति । 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः' इति न्यायादित्यर्थः ॥ ५३ ॥ तामेवार्यतामनार्यजनव्यावृत्तां प्रथमं लक्षयति—कर्तव्यमिति । कानं पर्याप्तम् । सर्वे नित्यनैमिन त्तिकं कर्मेलार्थः ॥ ५४ ॥ यथाचारं बृद्धाचारानुसारि । तत्रापि यथाशास्त्रम् । तत्रापि यथाचित्तं खचित्तं यत्कृला प्रसीदति न पश्चात्तप्यते तादशमेव । व्यवहारं लेकिकमपि ॥ ५५ ॥ तदेवार्यत्वं प्रथमभूमिकायां शुमेच्छायामङ्करितम् । द्वितीयभू-मिकायां श्रवणादिप्रवृत्त्या विकासितम् । तृतीयभूमिकायां चि-त्तिकाम्यफ्रङेन फलितमित्यर्थः ॥ ५६ ॥ तत्रान्तरास्रे मृतानां निष्कामकर्मानुष्टानक्षीणपापानां 'कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धो देवलोकादिभोगोऽपि शुभसंक-ल्पाहितसद्वासनासंभृतलात्र काम्यकमीनुष्ठायिनामिव रागा-दिदुर्वासनासंभरणेनाधःपातहेतुरित्याशयेनाह्-आर्यतायामिति ॥ ५७ ॥ अज्ञाने ज्ञानविरोधिदैतवासनाजाले असंभावनावि-परीतभावनादोषे च क्षयमागते सति निष्प्रत्यूहान्महावाक्याद-परोक्षाखण्डाकारज्ञानोद्ये साति मूलाज्ञानक्षयाद्योगिनश्चतुर्याभू-मिकामिता गताः सन्तः सर्व जगत्सममानन्दैकरसं पश्यन्तीति ययोगतः । संसारस्य परामशिद्दैराग्यं नाभ्युदेति हि ॥ २ ॥ वै-राग्येऽभ्युदिते जन्तोरवद्यं भूमिकोदयः' इति ।

१ मृद्धेत्वारभ्य संग्रह इत्यन्तसार्धक्षेकद्वयस्थानेऽयं पाठ उपल-भ्यते 'मृदस्थारूढदोषस्य तावत्संस्रतिरातता । यावजन्मान्तरश-तैनादिता प्रथमात्र भृः ॥ १॥ अथवा साधुसंगरया काकताकी-

अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वेते प्रशममागते। पश्यन्ति स्वप्रवहोकांश्चतुर्थां भूमिकामिताः॥ ६० भूमिकात्रितयं जाप्रशतुर्थी स्वा उच्यते। विच्छिन्नरारवभ्रांराविलयं प्रविलीयते॥ ६१ सत्तावरोप एवास्ते पश्चमीं भूमिकां गतः। पश्चर्मी भूमिकामेत्य सुषुप्तपदनामिकाम्॥ ६२ शान्तारोषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमात्रके। गलितद्वैतनिर्भासमुदितोऽन्तः प्रबुद्धवान् ॥ ६३ सुषुप्तधन पवास्ते पञ्चमी भूमिकामितः। अन्तर्भुखतया तिष्टन्बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन्॥ દ્દપ્ત परिशान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते। कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूमिकायां विवासनः॥ દ્ધ षष्टीं तुर्यामिधामन्यां क्रमात्क्रमति भूमिकाम्। यत्र नासम्र सद्रुपो नाहं नाप्यनहंरुतिः॥ 33 केवलं क्षीणमननमास्ते हैतेक्यनिर्गतः। निर्प्रनियः शान्तसंदेहो जीवन्युक्तो विभावनः ॥६७ अनिर्वाणोऽपि निर्वाणश्चित्रदीप १व स्थितः ।

परेणान्वयः ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ व्यावहारिकसत्तया जग-द्भानसाम्याज्ञात्रत् । प्रातिभासिकसत्तया तद्भानसाम्यातस्त्रप्र उ-च्यते । पश्चम्यां भूमिकायां सुषुप्तिपदप्रवृत्तिनिमित्तं तत्साम्यं दर्शयति-विच्छित्रेति । 'सुष्पिकाले सक्छे विलीने तमोमि-भूनः सुखरूपमेति' इति श्रुतौ सुषुप्ती सर्वविलयप्रसिद्धेरत्रापि प्रातिभासिकत्रिपुटीपरिशेषस्यापि विलयेन तत्साम्यादिति भावः। विच्छित्रस्य शरदभ्रखण्डस्य केवठाकाशमात्रपरिशेषरुक्षणं वि-लयमिव ग्रद्धचिन्मात्रपरिशेषलक्षणं स्वभावं प्रविलीयते प्रवि-लयेन प्राप्नोतीत्वर्थः । लिङ्थंफलव्यापारांशयोर्मध्ये फलांशस्य विरुवशब्देन निष्कृष्यानुवादात्तस्य च व्यापारांशं प्रति कर्मला-न्मृद् पचतीति कियाविशेषणेष्विवात्रापि द्वितीया । अविशेष्ट-व्यापारांशमात्रं प्रविलीयते इति तिबन्तप्रकृत्योच्यते उदपेषं विनष्टीत्यत्रेव ॥ ६१ ॥ सत्ता चित्सत्ता तदवशेषः । सुषुप्तमिति पदं गीणं गःम यस्यास्ताम् ॥ ६२ ॥ उदित आविर्भृतस्वरूपः ॥ ६३ ॥ 'सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवे'ति श्रुत्युक्तप्र-ज्ञानघनतासाम्याद्वा तस्यां सुपुप्तपदनामतेत्याशयेनाह---सुपु-मेति। आनन्दमयो ह्यानान्द्रभुगितिश्रुतिप्रसिद्धान्तर्भुखस्यानन्दा-खादनसाम्यादपि तन्नामतेत्याशयेनाह-अन्तर्भुखतयेति ॥६४॥ विवासनः अत्यन्तोच्छित्रखतोच्युत्थानवासनः सन्नित्यर्थः॥६५॥ उक्तसुषुप्तमपेक्य तुर्यामिधानाम् । तत्रक्षणान्याह्—यत्रेत्या-दिना ॥ ६६ ॥ द्वैतवदेक्यस्यापि संख्यान्तरव्यावर्तकसंख्याला-लदुभयवर्जितः । तत्रात्यन्तिकहृदयमन्यसर्वसंदेहभेदमाह-निर्प्रन्थिरित । 'भियते हृदयप्रन्थिरिछयन्ते सर्वसंशयाः' इति अतेरिति भावः ॥ ६७ ॥ अनिर्वाणः प्रारब्धभृतशरीरोऽपि नि- अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यः कुम्भ श्वाम्बरे ६८ अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे । किंचिदेवैष संपन्नस्त्वय वैष न किंचन ॥ ६९ षष्ट्यां भूम्यामसौ स्थित्वा सप्तमीं भूमिमाष्ट्रयात्। विदेहमुकता तुका सप्तमी योगभूमिका॥ 90 अगम्या वचसां शान्ता सा सीमा भवभूमिषु। कैश्चित्सा दिावमित्युक्ता कैश्चिद्रह्मेत्युदाइता ॥ ७१ कैश्चित्प्रकृतिपुंभावविवेक इति भाविता। अन्यैरप्यन्यया नानामेवैरात्मविकत्पितैः॥ ७२ नित्यमव्यपदेश्यापि कथंचितुपदिश्यते। सप्तेता भूमिकाः प्रोक्ता सया तव रघूद्रह ॥ ₽0 आसामभ्यासयोगेन न दुःखमनुभूयते। अस्त्यत्यन्तमदोन्मत्ता सृदुमन्थरचारिणी॥ AR. करिणीविष्रहव्यष्रा महादशनशंसिनी । सा चेन्निहन्यते नृनमनन्तानर्थकारिणी॥ ७५ तदेतासु समग्रासु भूमिकासु नरो जयी। करिणी मदमत्ता सा यावन्न विजितौजसा॥ 30

र्वाणो मुक्तः । यथा चित्रदीपः अनुपक्षीणोऽपि न उबलतीति निर्वाणः जडजगत्स्त्रभावेनान्तर्वहिश्व शून्यः ॥ ६८ ॥ अना-यृतानन्दस्त्रभावेन स्नन्तर्वहिश्व पूर्णः । तस्याद्वितीयरूपस्य सं-सारदशायां कदाप्यप्रसिद्धत्वेन किचिदपूर्वेण परमाध्यं रूपेण संपनः। वास्तवदृष्ट्या नित्यसिद्धलान्न किंचन संपन्नः॥ ६९ ॥ सप्तमीभूमिका परित्रीढा चेत्सैव मुक्ततेति 'सप्तमी सा परित्रीढा विषयः स्यात्र ाीवताम्' इति प्रागुक्तेत्वर्थः ॥ ७० ॥ वचसाम-गम्या । योगिमानसानुभवैकगम्यंखर्यः । नच जीवतः सप्तमी भूमिकैव नास्तीति योगिमानसानुभवगम्यतापि तस्या नास्तीति भ्रमितव्यम् । सा सीमा । भवभूमिष्विति तस्या भवभूमिमध्य-पातसीमालोक्तिविरोधापत्तेः । आसामभ्यासयोगेनेत्युत्तरत्राभ्य-सनीयलोक्तिविरोधाम । शिवमिति शैवैरुक्ता । 'शिवमद्वैतं चतुर्थ मन्यन्ते' इति श्रुत्सनुरोधादिति भावः । ब्रह्मेति वेदा-न्तिमिः ॥ ७१ ॥ प्रकृतिपुंसोर्भावः अविविकावस्थितिस्तस्य विवेक इति सांख्ययोगिमिः । अन्यैर्जैमिनिसालतमाहेश्वरबुद्धा-र्हदादिमिः खर्गे। बासुदेवः सहेश्वरोऽनुपष्ठवं विज्ञानमनुपष्ठवसुस-मिलादिखख्बुद्धनुसारिविकल्पितेनीनामेदैरन्यथान्यया भाव-तेत्यर्थः ॥७२॥ यदि वचसागम्यं तर्हि कथमुपदिश्यते तत्राह---निस्मिति। क्यंचिद्भागस्यागस्यागान्युपायेरिस्पर्यः॥७३॥परवै-राग्यदाक्ष्ये सत्येव भूमिकासु प्रवेशो भवति नान्यथेति । मत्तकरि-ण्याख्यायिकाच्छलेन वर्णयितुमारभते--अस्तीखादिना ॥७४॥ विप्रहव्यपा सदा समरोद्युका महत्र्या दहनाभ्या शंसनं शंसः प्रस्यातिसाद्वती। असु सा किं ततस्तत्राह—साचेदिति ॥०५॥ त्येता भूमिका निरुद्धा अतस्तद्वधं विना नैकापि भूमिका खेद्रं को नाम सुमदस्तावर्त्सपत्समरभूमिषु। श्रीराम उवाच । कासी प्रमत्ता करिणी काश्च ता रणभूमयः॥ ७७ कथं निहन्यते चैषा क चैषा रमते चिरम्। वसिष्ठ उवाच । रामेच्छा नाम करिणी हदं मेऽस्त्वितिकपिणी ॥७८ शरीरकानने मत्ता विविधोल्लासकारिणी। मसेन्द्रियोप्रकलभा रसनाकलभाविणी॥ 90 मनोगहनसंलीना कर्मवृन्तद्वयान्विता । मदोऽस्या वासनाव्यृहः सर्वतः प्रसरद्वपुः॥ 60 संसारदृष्टयो राम तस्याः समरभूमयः। भूयो यत्रानुभवति नरो जयपराजयौ ॥ ८१ रकानागी निहन्त्येषा कृपणाञ्जीवसंचयान्। बासनेहा मनश्चित्तं संकल्पो भावनं स्पृहा ॥ ८२ इत्यादिनिवहो नाम्नामस्यास्त्वादायकोदागः। धैर्यनाम्ना वरास्रेण प्रसृतामवहेलया ॥ **८३** नागी सर्वात्मिकामेतामिच्छां सर्वात्मना जयेत्। याबद्वस्त्वद्मित्येवभियमन्तर्विज्ञम्भते ॥ ताबदुमा कुसंसारमहाविषविषृचिका।

शक्येत्यर्थः ॥ ७६ ॥ सा यावन्न विजिता तावत्तदान्नान्तासु धुद्रसांसारिकसंपद्रपाखिप समरभूमिषु प्रवेष्ट्रमिप को नाम सुभटः समर्थो योद्धेत्यर्थः।प्रश्नः स्पष्टः ॥७७॥७८॥क वैषा रमते इंलस्योत्तरमाह--शरीरकानने इति । विविधदैन्यधावनशोकमो-हाद्युक्षासकरणशीला । मत्तानीन्द्रियाण्येवोघाः कोपनाः कलभाः शावका यस्याः । रसनाकलभाषिणी मधुरबंहितसाधनं यस्याः ॥७९॥प्रख्यातौ दन्तौ दर्शयति—कर्मेति। कर्म शुभाशुभरूपम्। मदमत्तेखत्रोक्तं मदं दर्शयति-मद इति । एवमप्रेऽपि योज्यम् ॥ ८०॥ ८९ ॥ नागी करिणी। जीवसंचयान्प्राणिनिकायान् ॥ ८२ ॥ आशयकोशमश्चित्तकोशगतः । वृत्तिवैचित्र्यप्रयुक्त इति यावत् । कथं निहन्यते चैषेति प्रश्नस्योत्तरमाह---धेर्येति ॥८३॥ सर्वारिमकां ब्रह्मलोकान्तसर्वभोग्यगोचराम् । सर्वात्मना सर्वथा सर्वमहमेवेति भावितेनात्मना वा । नहि नित्यरुज्धात्मरूपतया भाविते तृष्णा भवति किलिदमिललब्धतया दष्टे इलाइ--याबदिति ॥ ८४ ॥ संसारमहाविषविषुचिकारूपा तृष्णा ताबदेव विज्ञम्भत इखनुकृष्यते ॥ ८५ ॥ तृष्णेव संसारस्तरक्षय एव मोक्षभूमिकोदयहेतुलान्मोक्षः। कथं वैराग्यस्य भूमिकोदयहेतुता तर्शयति-प्रसादेति ॥ ८६ ॥ रागादिपुरुषापराधमलिने चित्ते श्रुस्माचार्याद्यपदेशवाक् पद्मपत्रे जलबिन्दुरिव न संश्विष्यते । **बैराग्यादिसाधनसंपन्ने तु आदर्शे** तैलविन्दुरिव संश्लिष्टा सती अविद्यामलमार्जनेन प्रसादी ब्रह्माकारप्रथनानुकूला खच्छता तत्कारिणी पर्यवस्थतीत्वर्थः । रागादेरनुदये उदितस्य च्छेदने श्रोपायमाह—असंवेदनेति । इच्छारूपो भवाङ्करः संवेदनं विषयसरणं तत्परिलागमात्रेण नोदेति ॥ ८७ ॥ मनागभ्य- पतावानेव संसार इदमस्तिवति यन्मनः॥ ८५ अस्य तुपरामो मोक्ष इत्येवं ज्ञानसंप्रहः। प्रसादकारिणी स्वच्छा निरिच्छे विमलाकृतौ॥ ८६ तैलबिन्दुरिवादर्शे विश्राम्यत्युपदेशवाक् । असंवेदनमात्रेण नोदेतीच्छाभवाहुरः॥ ८७ मनागभ्युदितेवेच्छा छेत्तव्यानर्थकारिणी। असंवेदनरास्रेण विषस्येवाङ्करावली ॥ 46 इच्छाविच्छुरितो जीवो विजहाति न दीनताम्। स्वसंवेदनयहरतु तूष्णीमेवान्तरासनम्॥ ८९ अयधानविनिर्मुक्तं सुप्तं रावरातं यथा। तां प्रत्याहारबहिशेने च्छामरसीं नियच्छत ॥ ९० इदं मेऽस्त्वित संवेगमाहुः कल्पनमुत्तमाः। अर्थस्याभावनं यत्तत्कल्पनात्याग उच्यते ॥ ९१ सारणं विद्धि संकल्पं शिवमसारणं विदुः। तत्र प्रागनुभूतं च नानुभूतं च भाव्यते ॥ ९२ अनुभूतां नानुभूतां स्मृति विस्मृत्य काष्ठ्रवत् । सर्वमेषाशु विस्मृत्य गुदस्तिष्ठ महामतिः॥ 63 अर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छणोति तत्। असंकल्पः परं श्रेयः स किमन्तर्न भाव्यते ॥

दिताप्यसंवेदनशस्त्रेणैव च्छेत्तव्या ॥ ८८ ॥ विच्खुरितो व्याप्तः । दीनतां भोगकार्पण्यम् । असंवेदनखरूपं व्युत्पादयति - खसं-वेदनेति । सुष्टु असंवेदनं खसंवेदनं तदनुकूलो निरोधयकः प्रसाहारयमध्य चित्तस्यान्तस्तूष्णी निर्व्यापारतया आसनम् ॥ ८९ ॥ तन्नाभ्यासकाले सावधानतारूपं परिपाककाले लव-धानविनिर्मुक्तं सुषुप्तिमरणावस्थयोरिव स्वतएव संपद्यत इत्या-शयेनाह-अवधानेति । तामनर्थकारिणीमिच्छामत्सी प्रखा-हारलक्षणेन बिडिशेनाकृष्य नियच्छत बधीतेति सर्वान् श्रोतु-न्त्रत्युक्तिः ॥ ९० ॥ ननु प्राक्तत्यनात्यागादेव मुक्तिरिति बहु-शस्त्रयोक्तमिदानीमिच्छात्यागादिति कथमुच्यते तत्राह—इदं मेऽस्लिति । संवेगं चित्तघावनं विषयानुसंघानलक्षणकल्पना-फलावस्थेयमिति कल्पनमाहुरित्यर्थः । भावनं स्परणम् ॥९१॥ संकल्प एव सर्वानर्थमूलमिति प्राक्तनोक्तीनामप्ययमेवाभिप्राय इलाशयेनाह-सरणमिति । कथं तर्हि स्मृतिसंकल्पपद्योर-पर्यायता तत्राह—तत्रेति ॥९२॥ संकल्पे अननुभूतमपि भाव्यत इति विशेषादपर्यायत्वेऽपि भूमिकारुरुक्षुभिहेयत्वेन कश्चिद्विशेष इसमेदोऽत्र विवक्षित इसाशयेनाइ—अनुभूतामिति ॥ ९३ ॥ इदानीं परमकारुणिको वसिष्ठः सर्वजनानां विषयसंकल्पत्यागं विना मोक्षो न सिध्यतीति तत्त्याग एवावश्यं कार्य इति सम-प्रवासिष्ठोपदेशरहस्यमाकोशेनापि दढीकरिष्यन्नाह--- ऊर्ध्वबाहु-रिति । विरोमि उचैःखरेण पुनःपुनराकोशामि । एवं किय-माणमप्याकोशं बधिर इव सुप्तप्रमत्त इव च कथिदपि जनो न श्रणोति । श्रण्वत्खपि च श्रवणफलादर्शनादुकिः । अन्तर्हृदि किमर्थ न भाव्यते न विमृश्य कृतकृत्यतापर्यवसितः कियते ।

किल तूर्णी स्थितेनैव तत्पदं प्राप्यते परम्।
परमं यत्र साम्राज्यमपि राम तृणायते ॥ ९५
गम्यदेशैकनिष्ठस्य यथा पान्थस्य पादयोः।
स्पन्दो विगतसंकल्पस्तथा स्पन्दः स्वक्तमंसु॥ ९६
बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपादिदमुच्यते।
संकल्पनं परो बन्धस्तदभावो विमुक्तता॥ ९७
सर्वमेवमजं शान्तमनन्तं भ्रुवमव्ययम्।
पश्यन्भूतार्थनिद्रूपं शान्तमास्स्व यथासुखम्॥९८
अवेदनं विदुर्योगं शान्तमासीनमक्षयम्।

योगस्थः कुरु कर्माणि निर्वासनोऽथ मा कुरु ॥९९ अवेदनं विदुर्योगं चित्तक्षयमकृत्रिमम् । अत्यन्तं तन्मयो भूत्वा तथा तिष्ठ यथासि भो १०० शिवं सर्वगतं शान्तं वोधात्मकमजं शुभम् । तदेकभायनं राम सर्वत्याग इति स्मृतः । भावयञ्छश्वदन्तः स्वं कार्यं कर्म समाचर ॥ १०१ अहंममेति संविद्ध दुःखतो विमुच्यते । असंविदन्वमुच्यते यदीप्सितं समाचर ॥ १०२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे परमार्थस्वरूपवर्णनं नाम षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

सप्तविंदात्यधिकदाततमः सर्गः १२७

भरद्वाज उवाच ।

इति वरमुनिनोक्तं क्षानसारं पुराणं
सकलमनुनिशम्य श्रीरघूणां कुलाध्यः ।
विमलमतिरपृच्छत्किचिदन्यत्स्वयं वा
समसुखपरिपूणः पूर्णबोधस्थितोऽसां ॥ १
स खलु परमयोगी विश्वचन्द्यः सुरेशो
जननमरणहीनः शुद्धवोधस्वभावः ।

नहि मन्दमध्यमाधिकारिणां सम्यद्यननमन्तरेणार्थसिद्धिरित्यर्थः ॥ ९४ ॥ तूष्णीं सर्वव्यापारोपरमेण स्थितेन पुंसा तत्तादृशं परमं पदं प्राप्यते । किलेति श्रीतप्रसिद्धी । तथाच श्रुतिः 'यदा पषावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टति ता-माहुः परमां गतिम्' इति । परमं हैरण्यगर्भान्तमपि साम्राज्य-सुर्खे यत्र भूमानन्दे तृणवत्तुच्छतामापद्यत इत्यर्थः ॥ ९५ ॥ ननु सर्वया संकल्पत्यागे देहस्पन्दाद्यसिद्धव्यवहारलोपे कथं जी-वनं तत्राह--गम्येति । यथा गन्तव्ये खगृहादिदेश एवेकनिष्ठा अविच्छिन्नचित्तवृत्तिधारा यस्य तथाविधस्य पान्थस्य पादयोर्वि-गतसंकल्प एव प्रतिक्षणं स्पन्दो जायते तथा योगिनोऽपि वि-संकल्पं पूर्वीभ्यासजीवनादृष्टवशादेवानिषद्भखकर्मस् स्पन्दो भविष्यतीत्यर्थः ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ कया दृष्ट्या 'असंक-स्पनं भवेत्तामाह—सर्वमिति । भूतार्यनिद्रूपं निखसिद्धपरमा-र्थनिद्रुपम् ॥ ९८ ॥ अवेदनं ताहशद्धिपरिणत्या अहंममेत्य-ध्यस्तसर्वभेदविसारणमेव जीवबह्यैक्यलक्षणं योगं विदुर्बह्य-विदः । 'तं विद्यादुः खसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्' इति भगवता तथा व्याख्यातलादिति भावः । 'योगस्थः कुरु कर्माणि' इति तद्वाक्यं तु लोकसंप्रहेच्छं प्रसंच्छिकविहितानुष्ठापनार्थं न निय-मार्थमित्याशयेनाह-योगस्य इति । अथ समाधिपरथेनमाकुरु ॥ ९९ ॥ यथासि भो इति । यथास्थितखरूपावामा यथास्थित-स्थितरेवोचितलादिति भावः ॥ १०० ॥ सा स्थितिरेव सर्व-प्रपञ्जनिष्टतिरूपला बुडालोपदर्शितः सर्वत्यागोऽपीत्याह—वि-विभिति ॥ १०१ ॥ विस्तरोक्तमनर्थतत्त्वं पुरुषार्थवत्त्वं च नि-ष्कृष्य करतलामलकवद्दर्शयनुपसंहरति—अहंममेति ॥१०२॥ सकलगुणनिधानं संनिधानं रमाया-स्त्रिजगदुदयरक्षानुप्रहाणामधीदाः॥ २ वार्ल्माकिष्वाच। इति श्रुत्वा वसिष्ठस्य वाक्यं वेदान्तसंप्रहम्। विदिताखिलविक्षानो रामः कमललोचनः॥ ३ शक्तिपातवशोन्मेपप्रकटामलचिद्धनः। मुद्दर्तमासीदुद्धस्थेतन्यानन्दसागरः॥ ४

इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे षष्ट्रिशस्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

इइ रामस्य विश्रान्तिभरद्वाजोत्सुकोक्तयः। रुक्षणं जाग्रदादीनां तुरीयं चोपवर्ण्यते॥ १॥

एतावत्पर्यन्तं श्रीवसिष्ठरामसंवादं श्रावथिला रामविश्रान्ति-स्मरणसंनिधापिते निरतिशयानन्दपूर्णात्मनि विश्रान्तं तूर्णी-भूतं गुरुं श्रीवाल्मीकिं दृष्ट्वाद्यापि खयं तत्र विश्रान्त्यलाभादभेऽपि श्रवणोत्सुको भरद्वाजः पृच्छति—इतीत्यादि । हे गुरो, विमल-मतिः श्रीरघूणां कुळाग्योऽसौ श्रीरामः वरमुनिना श्रीवसिष्टेन इति वर्णितैर्वहुभिः प्रकारेरुक्तमुपदिष्टं पुराणं चिरंतनं ब्रह्मादिम-हर्षिसंप्रदायागतं ज्ञानसारं निशम्य श्रुला अमेऽपि जिज्ञासुः किंचिदप्रच्छत् । अथवा एतावतैवोपदेशेन शान्तसर्वसंदेहमोहः खयं समेन विषयवैचित्रयप्रयुक्ततारतम्यरहितेन साक्षात्कृतेना-त्मसुखेन परिपूर्णः सन् पूर्णबोधात्मैव भूला स्थितस्तद्वदेति शेषः ॥ १ ॥ ननु समाने प्रन्थश्रवणे लया खसंदेहमोहन्छित्यनि-वृत्तिभ्यामेव रामस्यापि ते कुतो नावधार्येते इति तु न शक्कम्। यतो मम रामस्य च महदन्तरमस्तीत्याह—न खिल्वित । स नित्यसिद्धशानयोगैश्वयांनावृतचिरस्वभावः 'सर्वस्य वशी सर्वस्य-शानः' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्ध ईश्वरो जगत्पालनायावतीणी जगद्ग-रुरि सर्वलोकानुमहाय ज्ञानशास्त्रप्रवृत्त्यर्थं खेच्छया खस्याज्ञा-नमिव परिकल्प्य श्रोतं प्रवृत्तः । अहं लनायज्ञ एव सुमुखुर-ल्पतरसाधनसंपन इति महदन्तरमिति भावः ॥ २ ॥ पृष्टो बाल्मीकिः प्रश्नद्वितीयकोटिमेव कथाशेषेण समर्थयमुत्तर-माह—इति श्रुत्वेत्यादिना ॥ ३ ॥ शकिपातः अखण्डाकार- प्रश्नोत्तरविभागादिपरिपाटीविवर्जितः । आनन्दोमृतपूर्णास् रोमकण्टकिताङ्गकः ॥ महासामान्यरूपत्वाचिद्यापकतया स्थितः । नित्यमष्टगुणैश्वर्यतृणप्रायमनोरथः ॥ न किंचिद्चे संपन्नः शिवे परिणतः पदे ।

भरद्वाज उवाच।
अहो खलु ममाश्चर्य रामः प्राप्तो महत्पदम्॥ ७
कथमेताहशी प्राप्तिरस्माकं मुनिनायक।
मूर्खाः स्तब्धाश्च किंचिज्ज्ञा माहशाः क च पापिनः
क च ब्रह्मादिमिः प्रार्थ्या दुर्लभा रामसंस्थितिः ८
अहो मुनीश्वरगुरो कथं विश्राम्यते मया।
दुष्पारस्य भवाम्भोधेस्तीर्यते तद्वदाशु मे॥ ९

वाल्मीकिश्वाच । श्रीरामवृत्तान्तमशेषमादितो वसिष्ठवाक्यानुगतं निरूपितम् । विया विचार्यानु परामृशः प्रभो मयापि ताइक्रथनीयमत्र ते ॥

वाक्यजन्यचित्तवृत्ते। नित्यनिरतिशयानन्दात्मतत्त्वाविभीवस्त-द्रशादविद्यासंप्रटोद्धाटनलक्षणोन्मेषेण प्रकटामलचिद्धनः कुण्ड-लिम्याः सुषुम्रामार्गे षद्चकाणि मित्त्वा ब्रह्मरन्ध्रप्रवेशेन शिव-शक्तिसंयोगलक्षणो योगशास्त्रप्रसिद्धो वा । यस्तु मन्त्रशास्त्रप्र-सिद्धो गुरोः शिष्यानुप्रहातिशयेन खदेहं खक्ला शिष्यदेहे प्र-विर्य तदीयनाडीपरिशोधनद्वारा तत्कुण्डलिन्याः सप्तचकेषु संचारणेन सर्वभवनसमाचारापरोक्षप्रदर्शनरूपः शक्तिपातः स नेह विवक्षितः । श्रीरामस्य खयमीश्वरस्य सार्वराश्यादेः खतः-सिद्धतया तदनपेक्षणात्तेन लोकोपकारासिदेश्वेति । उद्घदः खखरूपे जागरितो विकसितश्च ॥ ४ ॥ विभाग उक्तानुकां-शविवेचनम् । आदिपदाद्वासार्थपर्यालोचनमात्रं गृह्यते । तद-र्थामिः परिपाटीभिर्मनोष्टद्धीन्द्रयादिव्यापारैर्विवर्जितः । आन-न्दामृतेन पूर्णा असवः प्राणा यस्य ॥ ५ ॥ महासामान्यं सर्वािष्ठानसन्मात्रम् । प्रलक्तितस्तद्भूपलसंपत्तेः । सर्वतिश्रद्धा-पकतया पूर्णः स्थितः । स एवास्य निरातिशयानन्दाविभीव इत्याशयेनाह—नित्यमिति । अष्टगुणानामष्टसंख्यानामणिमायै-श्वर्याणां तृणप्राया मनोरथा लिप्सा यस्य ॥ ६ ॥ श्रिवे पदे नि-रतिशयानन्दवस्तुनि परिणत एकरसभूतः संपन्नः । इत्यमुत्त-माधिकारिणो रामस्य श्रवणादेर्बद्धात्राप्तिमुपवर्ण्य मन्दमध्यमा-धिकारिणां चित्तद्राद्ध्यर्थभुपासनाविशेषमवस्थात्रयविवेकदर्यप्र-विछापनादिमननोपायांश्व वक्तुं तदवतारहेत्न् भरद्वाजीत्सुक्या-दीनरिष्टनेमये भगवान् वाल्मी किर्वर्णयति --- भरद्वाज उवाचेखा-दिना ॥ ७ ॥ ८ ॥ दुष्पारस्य भवाम्भोधेर्मोह्वारि इति शेषः ॥ ९ ॥ एवं पृष्टे वाल्मीकिः श्रुतप्रन्यचिन्तनावर्तनमेव प्रथमं 'आवृत्तिरसञ्चदपदेशात'इति न्यायसिद्धमपरिशति-शीरामेति।

अविद्यायाः प्रपञ्जोऽयं नास्ति सत्यमिहाण्यपि । विवेचयन्ति विबुधा विवदन्त्यविवेकिनः॥ ११ नास्ति भिन्नं चितः किंचितिक प्रपञ्जेन रुध्यसे। अभ्यासेन रहस्यानां वयस्य विशवो भव॥ १२ प्रपञ्जविषया वृत्तिजीव्रक्षिद्वति कीर्तिता । संप्रवृद्धस्तु यस्यान्तश्चित्प्रदीपो निरञ्जनः॥ १३ शून्यमुलः प्रपञ्चोऽयं शून्यताशिखरः सखे। सारशुन्यतया मध्येऽप्यनास्था सन्मनीषिणाम् १४ अनादिवासनादोषादसम्रेवायमीर्ध्यते । गन्धर्वनगराकारः संसारो बहुविभ्रमः ।। १५ त्वमनभ्यस्य कस्याणीं चैतन्यामृतकन्दलीम्। संमुद्यास किमध्यास्य वासनाविषवीरुधः॥ १६ जाप्रदेतन्न पतितं ज्ञानालम्बग्रहाद्धः। न सन्त्यूपरि सर्वेषां ये निरालम्बसंविदः॥ १७ तावद्रुढा सुधाकाररसा संविन्महानदी। न यावदात्मरूपेण निपुणरवगाह्यते ॥ १८ प्राङ्गास्ति चरमे नास्ति वस्तु सर्वमिदं सखे। विद्धि मध्येऽपि तम्नास्ति स्वप्नवृत्तमिदं जगत् ॥१९

ताहक् लद्नुभवानुकूलमवस्थात्रयविवेचनादिकथनीयं कथ्यते श्रुणिवल्यर्थः ॥ १० ॥ मि॰याभूताविद्याकार्यत्वादेव प्रपञ्चस्या-सत्त्वं चिदद्वैतसाम्राज्यं च बुद्धिमता बोद्धं शक्यमिखाह-अ-विद्याया इत्यादिना । नतु प्रपत्रस्याविद्याकार्थत्वं चेतु किमर्थ बादिनां विवादस्तत्राह-विवदन्तीति ॥ ११ ॥ मिथ्याद्वैतेन च वास्तवाद्वैतहानिरित्याह—नास्तीति । हे वयस्य ससे इति प्रीत्या संबोधनम् । रहस्यानां प्रणवमहावाक्याद्यर्थानां वक्ष्यमा-णोपासनानां च । विशदो विशुद्धचित्तो भव ॥ १२ ॥ तत्रादौ प्रणवप्रथममात्रार्थं जामरप्रपन्नं स्फूटं तरसाक्षिविवेकाय मिथ्या-त्वेनोपपादयति-प्रपश्चेत्यादिना । 'तस्य त्रय अवस्थास्रयः खप्राः' इति श्रुता जामद्पि निद्देवेति कीर्तिता ॥ १३ ॥ श्रूत्य-मूलो मिथ्याभूताज्ञाननिदानः । शून्यतारूपमञ्चानमेव शिखरम-प्रमन्तो यस्य तथाविधः मध्येऽपि त्रिशृतकरणपृथक्कियाद्यपा-येन पर्यालोचने सारः सत्ता तच्छुन्यतया प्रातिभासिकमात्रः प्रथते । अतस्तत्रानास्थैव युक्तेति शेषः ॥ १४ ॥ असतोऽपि सवासनाविद्यया दर्शनं गन्धर्वनगरादेः प्रसिद्धमिखाह—अना-दीति ॥ १५ ॥ वासनाविषवीरुधो विषवहीरध्यास्य आश्रिख किं संमुह्यसि ॥ १६ ॥ तत्त्वदर्शनेन निरालम्बज्ञानरूपस्याल-म्बस्य चित्तस्थैर्थहेतोरवष्टम्भस्य परिप्रहादधः पूर्वमञ्चावस्थायामे॰ व 'एतजामनिपतितम्' उपरि तुर्थदशायां तु तिस्रोऽप्यवस्था न सन्ति । ये योगिनो निरालम्बसंबिदस्तेषां सर्वेषामनुभवसिद्ध-मिल्यर्थः ॥ १७ ॥ यावदज्ञानं तावत्कालमेव चित्रद्या जगहस्त-रङ्गविक्षेपप्ररोह इलाह—ताबदिति । रूढा दुस्तरङ्गपादुर्भाव-वती ॥ १८ ॥ आद्यन्तकाल।सत्वेन मध्येऽध्यसत्वमेव स्वभाव-वैपरीत्याघटनात्स्वप्रवदन्तमेयमित्याह—प्राणिति । स्वप्रस्य इत-

अविद्यायोनयो मेदाः सर्वेऽमी बुद्धुवा इव । क्षणमुद्भूय गच्छन्ति शानैकजलधौ लयम्॥ २० सुशीतलीदकनदीं विदित्वाथ विगास ताम्। बहिर्म्नान्तिनिदाघास्ते निर्यान्तु कलितासुखम् ॥२१ एकश्चाकानजलधिजगदाष्ट्राव्य तिष्ठति । ज्येष्ठोऽयमहभित्यूर्मिरविद्यावातसंभवः॥ २२ चित्तस्खलनमेदाली रागाद्याश्च प्रकल्पिताः। ममतोत्कलितावर्तः स्वतः स्वैरं प्रवर्तते ॥ 23 रागद्वेषाचतिष्राही गृहीतसमनन्तरः। ततस्रानर्थपातालप्रवेशः केन वार्यते ॥ રક प्रशान्तामृतकलोले केवलामृतवारिधौ। मज मजासि कि दैतप्रहक्षारान्धिवीचिषु ॥ २५ कस्तिष्ठति गतः को वा कस्य केन किमागतम्। किं नु मजासि मायायां पत मा त्यमतन्द्रितः ॥ २६ तस्यमेकं यदारमेति जगदेतरप्रचक्षते। ततोऽन्यः कस्तवातीतो यस्तात विषयः श्रचाम् २७ बालान्त्रति विवर्तीऽयं ब्रह्मणः सकलं जगत्।

मिव दृतं यस्य तत् ॥ १९ ॥ २० ॥ कलितमसुखं दुःखं य-स्थिन्कर्मणि तत्तथा निर्यान्तु । अचेतनेष्यपि निदाघेषु चेत-नसमारोप्योक्तिः ॥ २१ ॥ इदानीं भगवान्शिष्यस्य मजनं नि-वारियध्यश्रद्धानं क्षारसमुद्रत्वेन वर्णयति-एकश्रेत्यादिना। स्वविकारभूतं जगदाहाव्य अमिव्याप्य । तस्य महोर्मिप्रथमजं दर्शयति- ज्येष्ठ इति । अविद्याप्रवाहोऽनादिश्रान्तिवासना स एव वातस्तत्संभवः ॥ २२ ॥ अल्पतरङ्गान्दर्शयति—चित्तेति । निसंख तत्तद्विषयेषु ये स्खलनमेदास्तेषामालिः पिक्किसंदेतयो रागाबाश्व प्रकल्पिताः श्चद्रतरङ्गा इति शेषः । तस्यावर्ते दर्श-यति—ममतेति ॥ २३ ॥ प्राही प्रवर्तेते इति विपरिणामेना-नुषज्यते । ताभ्यां गृहीतस्य तव समनन्तरः सन्निहितः अन-र्यपाताले मृत्युमुखे प्रवेशः केन वार्यते । गृहीतपदस्यासमर्थस्य समासञ्छान्दसः ॥ २४ ॥ यदि तु समुद्रमञ्जनं तवावश्यकं तर्ह्यानन्द्रसमुद्रे मजेल्याह--प्रशान्तेति ॥ २५ ॥ संसारस्ति-ष्ठति सच रामस्य तत्त्वबोधाद्भतो मम तु न गत इति शोकहेतुं मोहं बारयति-किसाप्रतीति । अतन्दिती विवेकी त्वं मा पत ॥ २६ ॥ यदा प्रचक्षते व्यक्तं प्रतिपादयन्ति 'इदं सर्वे यदयमात्मा' इत्यादि वेदान्ता इत्यर्थः ॥ २०॥ येषामज्ञान-मस्ति तान्यालान्प्रति ब्रह्मणो जगदाकारविवर्तः ॥ २८ अधिविकाः अविवेकी । ननु तत्त्वविदामपि कदाचिद्यामोहः कथं दश्यते तत्राह—तस्यति । विडम्बनमञ्ज्येष्टानुकरणमात्रम् ॥ २९ ॥ अन्येषां तु न तथा । तेषामविद्याच्छादितात्मनां बकेषु स्थल्बुद्धिवदनात्मस्वात्मताश्रान्तेरित्याह्—तत्रेति । यथा अञ्चलोकानां जलेषु स्थलमिति संशयो मरस्थलेषु च जलमिति संवायस्तथा कल्पितमेदेष्वात्मस्वपि संशयो अम इत्यर्थः॥३०॥ बद्दा परमाण्यादिमयजगद्वादिरीत्यापि विवेकेऽपि शोकप्रसक्ति-

अधिवर्तितमानन्यमास्थिताः कृतिनः सदा॥ अविविको जनः शोचत्यकस्माच प्रहृष्यति । तत्त्ववित्तु हसन्नास्त तस्य मोहो विडम्बनम् ॥ २९ तच सुक्ष्ममिदं तत्त्वं तिरोहितमविद्यया। यथा स्थलेषु लोकानां जलेष्वात्मसु संशयः॥ ३० पृथिव्यादिमहाभूतपरमाणुमयं जगत्। स्थितं यदा तदापीह को गतो योऽनुशोक्यते ॥३१ असतः संभवो नास्ति नास्त्यभावः सतः सस्ते। आविर्भावतिरोभावाः संस्थानानाममी परम् ३२ किंत्यनेकपुरोत्साहा द्विपतामुपगच्छति। भज संभरिताभोगं परमेशं जगहुरुम्॥ 33 दुरितानि समस्तानि पच्यन्ते ऽद्यापि न श्रुवम्। कृतमेवास्य देवस्य पाशा विश्रवतां गताः॥ 38 साकारं भज तावस्वं यावत्सत्वं प्रसीदति। निराकारे परे तस्त्रे ततः स्थितिरकृत्रिमा॥ 34 श्मामुद्दामतमसो जित्वा सत्ववलाबूबम्। यमस्यानुसराध्वानं विश्वस्तेनान्तरात्मना ॥ ३६

नीस्ति तदा मायामयजगद्वादे दूरापास्तैव सेत्याशयेनाह--पृ-थिव्यादीति । को गतो नष्टः । तन्मतं ऽपि देहादेरनात्मत्वेन तन्नाशे आत्मनाशाभावादित्यर्थः ॥ ३१ ॥ प्रियनाशाद्धि शो-कप्रसिक्तः। स प्रियो यदि संस्तदा न नश्यत्येव यद्यसंस्तर्हि न स्थित एवेत्युभययापि तन्नाशासिद्धेन शोकहेतुरस्तीखाशये-नाइ-असत इति । संस्थानानां मायिकसंनिवेशविशेषाणाम् ॥ ३२ ॥ ननु यदि माथिकमेव देहादिसंस्थानं तहिं तदैन्द्रजा-लिकोपद्शितमायाबदुदासीनं तटस्यं भासतां शोकमोहदुःखा-धनर्यसङ्खदाने लख को हेतुस्तत्राह—किंलिति। सलम्। आधुनिको न कथिदेतुरस्ति किंलनेकः पुरा संचितः पुण्यपापप्र-वृत्तिलक्षण उत्साहः पुरुषप्रयक्षः पुण्यपापाख्यस्तदेतुरस्ति । त-स्मादेवायं माथिको देहादिस्तद्भोगाय विषतां विषवनमरणमुच्छी-दानर्थसङ्खहेतुतामुपगच्छति, अध्यात्मझानशास्त्रार्थेश्व शत-शोऽप्यपदिष्टः पापवशादेव हृदि नारोहति, अतस्तरपापक्षयाय सगुणेश्वरोपासनं कुर्वित्याह-भजेति । भक्तानुप्रहाय संभितः सम्यग्धृत आभोगो वक्ष्यमाणार्धनारीश्वरादिवेषो येन ॥ ३३ ॥ अद्यापि न पच्यन्ते न क्षीणानि तवेति शेषः । ध्रव-मिति वितर्के । प्राणिकृतं पुष्यपापात्मकं कमैवास्य पशुपतेर्दे-वस्य प्राणिपशुबन्धनपाशाः विश्ववतां विविधश्रुत्यादिप्रमाणप्र-सिद्धताम् ॥३४॥ सरवं चित्तं प्रसीदति विशुख्यति । ततस्तस्माः द्भजनादकृत्रिमा विधिरेबाध्यलात्सहजा भविष्यतीति शेषः। तथाच श्रुतिः 'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्याला मुनिर्गच्छति भूतयोनि समस्तसाक्षि तमसः परस्तात्' इति ॥ ३५ ॥ ईश्वरोपासनगुद्धसलवलायामोहसह-कैरहामस्य तमस इमां प्रसिद्धां व्यामोहशक्ति जिला गुरशा-कार्पदेशविश्वासनता मनसा यमस्य सेन्द्रियमनोनियमनात्मकस्य

समाधाय क्षणं पद्य प्रत्यगारमानमारमना । इयं विभातु सा व्यक्तं प्राग्बुद्धिरजनी तव ॥ ३७ कृतं पुरुषकारेण केवलेन च कर्मणा। महेशानुप्रहादेच प्राप्तव्यं प्राप्यते नरैः॥ 34 मामिजात्यं न चारिज्यं न नयो न च बिक्रमः। बलबन्ति पुराणानि सखे कर्माणि केवलम् ॥ ३९ अप्रतक्यीत्प्रतीकारात्किमेवमवसीदसि । न लुम्पति ललाटस्थामीभ्यरोऽप्यक्षरावलिम् क चिद्वका क वैदम्भ्यं क चेयं मोहवल्लरी। अचिन्तनीया नियतिर्यदियं द्वन्द्वमोहिता ॥ ઇશ हे भरद्वाज मोहं त्वं विवेकेन जहि स्फूटम्। असामान्यभिदानीं त्वं ज्ञानं प्राप्यस्यसंशयम् ४२ दूरमुत्सहते राजा महासत्त्वो महापदि। अस्पसत्वो जनः शोचत्यस्पेऽपि हि परिश्वते ॥ ४३ बोधः पुण्यपराधीनः प्रथते बहुजनमिः । अनुमीयेत धीरेषु जीवन्मुकेषु कार्यतः॥ 88

योगस्याध्वानमनुसर ॥ ३६ ॥ ततः क्षणं मुहूर्तद्वादशतमभाग-भि समाधाय समाधिमाश्रिल तेनात्मदर्शनेन तव प्राक्तमो-वृता बुद्धिह्या रजनी रात्रिर्विभातु प्रभातभावं गच्छतु ॥३०॥ ननु सत्कर्मानुष्ठानैरेव चित्तश्चिद्धिसद्धेः किमर्थगीश्वरोपासनं तत्राह—महेशेति ॥ ३८ ॥ नन्यामिजात्यसदाचारतपःकर्मा-द्यदातनपुरुषप्रयक्षानां प्राक्तनकर्मापेक्षया प्रावल्यं प्राक्ताधितं तत्क्यमिदानीभीश्वरानुप्रहापेक्षोच्यते तत्राह-नामिजास-भिति । प्रातनकर्मणामनन्तलादिदानीतनपुरुषप्रयक्नानामल्य-तरलानेश्वरानुप्रहमन्तरेण तज्जयसिद्धिः। ईश्वरानुप्रहसाहाय्यं हृदि कृत्वेव प्रागैहिकप्रयक्षप्रावल्यं साधितं न तदिहायेति भावः ॥ ३९ ॥ तहीश्वरोपास्तिरेव कार्या कि यमनियमज्ञानादिमि-स्तत्राह-अप्रतक्यादिति । एवमीश्वरप्रपन्नोऽपि लमप्रतक्या-रपौरषतकीगम्याष्ट्रस्येकसमधिगम्यादर्मादिसहितज्ञानलक्षणा-त्प्रतीकारात्समूळसर्वकर्मनिरासोपायात्किमवसीदसि किमर्थमुद्धि-जिले । यत उपासनाप्रसादित ईश्वरोऽपि ललाटस्थामक्षरावर्लि न साक्षात्स्वकरेण मार्जयति किंतु ज्ञानकृतमूलोच्छेदोपायेनैवे-खर्यः ॥ ४० ॥ गुरुशास्त्रयोः चिष्यबोधनशक्तिः, विष्यस्य च वित्तशुख्या ऊहापोइकुशलतया बोद्धृताशक्तिः, रागावीनां च स-मूलोच्छेदयोग्यताप्राप्तिलक्षणपरिपाक इति सर्वसामधीमिलनम-पीश्वरेच्छालक्षणनियतिवशादेवेत्याह—केति । वाद्यनसागम्या-या अखण्डब्रह्मात्मचितो वक्ता गुरुः क, शिष्यस्य च तद्वोधयो-ग्यतालक्षणं वैदग्ध्यं कौशलं क, इयमेवं शमद्मादिक्रमेण सविनाशाय परिणता मोहवहरी क । यदास्याः सकाशादियं सर्वा सामग्री द्वन्द्वं परस्परमिलनमागता सा नियतिरीश्वरेच्छा भिनतनीया प्रभावेयत्तापरिच्छेदेन चिन्तयितुमशक्येखर्थः४१ अतएवेटशसामग्रीप्राप्ती मोहजयोत्साह एव युक्ती न खन्तराले

द्विपद्भतेन येमैच कर्मणा बन्ध ईटशः। सुहद्भतेन तेनैव मोक्षमाप्यसि पुत्रक ॥ ४५ सतां सत्कर्मसंवेगः पुराणं प्रणुदेशयम्। वर्षीघ इव भूतानां द्वानलमसेचयत्॥ 86 सक्ते संन्यस्य कर्माणि ब्रह्मणः प्रणयी भव । नेष्यसे यदि संसारचकावर्तभ्रमः शमम्॥ 80 ताचदेतद्विकस्पोत्थमिदं याचद्वहिश्रेहः। प्रतिकुलोऽध्धिरुल्लोले केवलं निश्चले जले ॥ 86 अयं किमन्धकरणस्त्वया शोकोऽचलम्ब्यते। निर्वाहयत् सैव त्वां प्रज्ञा यष्टिरभङ्गरा ॥ પ્રશ न जातु ते विगण्यन्ते गणनासु गरीयसाम्। ये तरङ्गेस्तृणानीव हियन्ते हर्षशोकयोः॥ 40 समारूढं दशादोलामहोरात्रमिदं जगत्। क्रीड्यते पड्डियेः प्रेह्नैः सखे किमिति खिद्यते ॥ ५१ सूते संहरति क्षिप्रं पुनः सुजति हन्ति च। जगन्ति बहुपर्यायैः काल पव कुत्रहली ॥ 42

शोक इलाह—हे भरद्वाजेति । असामान्यमसाधारणम् ॥४२॥ किंच महत्यपि कार्ये शोकः सामग्रीहीनस्य युक्तो नतु महाराज-स्यव सर्वसामधीसंपन्नस्य तवेत्याशयेनाह--दूरमिति । महासली राजा युद्धादिमहापदि निमग्नोऽपि धनभृत्यादिसामग्रीसंपन्नलाद-न्येषां मनोरथदूरमपि पृथ्वीपरिपालनदुष्टनिप्रहृशिष्टपरिपालना-दिकार्यमाश्वामात्रेण कर्तुमुत्सहते । परिक्षते धनादिक्षतिरूपाया-मापदि तदुसरणे हेतुधैर्थादिसामग्रीविरहादिखर्थः ॥ ४३ ॥ जीवन्मुक्तान्निदर्शनीकृत्य पुण्यसामध्यां सत्यां मम बोघो भवि-ष्यत्येवेत्यनुमाय सोत्साहः पुण्यसामम्यर्जने प्रथमं प्रवर्तेतेत्याश-येनाह-वोध इति ॥४४॥ ननु पापवत्युष्यस्यापि बन्धकला-द्विषवद्भृतं पुण्यं कथमर्जनीयं तत्राह—द्विषद्भृतेनेति । सति रागे पुण्यं बन्धनं भवेत्तदभावे तु सुहृद्भूतं मोक्षोपयुक्तमेवेति भावः ॥ ४५ ॥ पुण्यातिशयेन प्राक्तनपापनाशे शमदमाय-मृताप्यायितानां त्रिविधतापशान्तिभवतीत्याह-सतामिति । असेचयदिति भूतकालो न विवक्षितः ॥ ४६ ॥ पुण्यार्जनोत्तरं वैराग्यदार्को यत्कार्य तदुपदिशति—सखे इति । अद्याणः प्रणयी श्रवणाद्युपायैत्रेह्मण्यासक्तः ॥ ४७ ॥ यावद्वहिर्भहोऽ-ब्रह्मप्रणयिता । उल्लेखे जले पयसि अब्धिः प्रतिकृतः कृलोप-सर्पा विक्षिप्तः निथले तु पयसि केवलं पय एव यथेत्यर्थः ॥४८॥ भन्धकरणो विवेकदृष्टिपिधायकः । एवं शोकान्धं लां याव-द्विवेकदृष्ट्यद्वाटनं तावत्प्रज्ञायष्टिरेकैव निर्वाहयत् ॥ ४९ ॥ हर्षशोकयोस्तरक्षेः ग्रुभोत्साहभक्षः ॥ ५० ॥ हर्षविषादादिद-शालक्षणां दोलाम्। इदं जगत् जीयजातम्। षद्दर्भिमेदात्यइ-तुमेदारकामाधरिषद्वभेदाद्वा षड्डिधेः प्रेह्वेर्दोलायन्त्रेः क्रीव्यते कालेन १ कीड तेरकर्मकादेतुमण्णिच 'गतिबुद्धि-' इत्यादिना कर्तुः कर्मरवे कर्मणि लः । नहि कीडाकौतुककल्पितेषु पदार्थ-संयोगवियोगेषु खेदो युक्त इत्यर्थः ॥ ५१ ॥ कुतूहती कीडा-

१ इन्ह्रमागता रति पाठश्रेत् व्याख्यानुगुणः स्यात्.

न विशेषप्रहः कश्चिम च कश्चिम कश्चन। जनतुष्वभ्यवहार्येषु प्राप्तम्य कालभोगिनः॥ ५३ का कथा मर्त्यपिण्डानां निमेपान्तरवासिनाम्। अपि देवनिकाया ये तेऽपि दुष्कालगोचराः॥ ५४ स्वयं जुत्यसि किं प्रीतो विपत्तौ विकलेन्द्रियः। भ्रणं निश्चलमासीनः पश्य संसारनाटकम् ॥ 44 अस्यानेकतरङ्गस्य जगतः क्षणभङ्गिनः। न विषीदति मनस्वी भरद्वाज मनागपि ॥ 46 त्यज शोकममङ्गल्यं मङ्गलानि विचिन्तय। चिदानन्द्घनं स्वच्छमात्मानं च विभावय॥ ५७ देवद्विजगुरुश्रद्धाभरबन्धुरचेतसाम्। सदागमप्रमाणानां महेशानुष्रहो भवेत्॥ ५८ भरद्वाज उवाच। **न्नातं तव प्रसादेन सर्वमेतद्दीपतः** । न वैराग्यात्परो बन्धुर्न संसारात्परो रिपुः ॥ इलार्पे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे भरद्वाजानुशासनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमः सर्गः॥१२७॥

इदानीं श्रोतमिच्छामि वसिष्टेनोपपादितम्। श्रानसारमशेषेण प्रन्थेनोक्तं पदात्मना ॥ Ęo थाल्मीकिरुवाच । भरद्वाज शृणुष्वेदं महाज्ञानं विमुक्तिदम्। यस्य श्रवणमात्रण भवान्धी न निमक्कासि॥ ६१ संहतिस्थितिसंभृतिमेदैयों ऽनेकथा स्थितः। एकोऽपि सम्रमस्तसं सम्बदानन्दमूर्तये॥ ६२ कृते प्रपञ्चविलये यथा तस्वं प्रकाशते । तवोपायं प्रवस्यामि संक्षेपाच्छुतिशासनात्॥ ६३ पूर्वापरविचाराही कथं नष्टा तव स्पृतिः। तयैव क्रायते सर्वे करामलकवत्स्वयम् ॥ દ્દપ્ત स्वयं विचार्य स्वयमेव चेतसा तत्प्राप्यते येन न शोचते पुनः। सत्सङ्गसच्छास्त्रविवेकतः पुन-वैराग्ययुक्तेन विभाव्यमेतत्॥ ६५

अष्टाविंदात्यधिकदाततमः सर्गः १२८

वाल्मीकिरुवाच । शान्तो दान्तश्चोपग्तो निषिद्धाकाम्यकर्मणः। विषयेन्द्रियसंश्लेपसुखाच श्रद्धयान्वितः॥

कोतुकी ॥ ५२ ॥ स्वशरीरादेः सर्वेत्राणिशरीरादिवत्कालाश-नलादावदीयमप्तं तेन तदवश्यं भोक्तव्यमेवेति निश्विख तत्राह-न्ताबामिमानलागेन शोकप्रसक्तिरिलाशयेनाह--न विशेषेति । प्रहो दर्शनम् । न कक्षित्तद्विषयो विशेषधर्मः न कश्चन धर्मी च न प्रसिद्ध इसर्थः । काळलक्षणस्य भोगिनः सर्पस्य प्राकम्य बलादाकम्याऽभ्यवहारी भक्षणं तत्कर्मभूतेषु जन्तुषु मध्ये ॥ ५३ ॥ दुष्टस्य कालस्य गोचराः । अन्नभूता इति यावत् ॥ ५४ ॥ अपिच साक्षिणस्तव संसारनर्तनकौतुकद-श्रीनमेव युक्तं नतु शोकमोहादिविकारेः खयं नर्तनिमित्याह-खयमिति । विपत्ती धनचित्तादिनाशे विकलानि विवेकदर्शना-समर्थान रोदनादिविकृतानि च इन्द्रियाणि चक्षरादीनि यस्य तथाविधः सन् ॥ ५५ ॥ क्षणभक्तिनो दर्शनादिति शेषः । मनस्वी विवेकी ॥ ५६॥ अमङ्गल्यममङ्गलाईम् ॥ ५७ ॥ कानि मङ्गलानि तान्याह—देवेति। देवद्विजादिश्रद्धाप्रशतय ईश्व-रानुप्रहसाधनलान्मक्तलानि । ईश्वरानुप्रहस्तु साक्षाज्ज्ञानसाध-नलात्परममक्रलमिति भावः । तथाचोक्तम् — 'ईश्वरानुत्रहादेव पंसामद्वेतवासना । महाभयपरित्राणाद्वित्राणामेव जायते ॥' इति ॥ ५८ ॥ इदानीं भरद्वाजः सर्वसाधनरहस्यं मया पिण्डी-कृत्य ज्ञातम् । दर्यप्रपन्नप्रविलापनोपायरहस्यमीश्वरानुस्रहसाध-नरहस्यं च वसिष्टस्य विस्तरोक्तिषु विशक्तितं तत्र तत्रोक्तं पिण्डीकृत्य न ज्ञातमिति कण्टोत्तयार्थाच दर्शयंसाजिज्ञासः

मुद्रासने समासीनो जितचित्तेन्द्रियक्रियः। ओमित्युचारयेत्तावन्मनो यावत्प्रसीदति॥

पृच्छति—ज्ञातमित्यादिना ॥ ५९ ॥ अनेकवाक्यात्मना अज्ञे-षेण प्रन्थेनोक्तं रहस्यभेकपदात्मना पिण्डीकृतं निष्कृष्टं श्रोतु-मिच्छामीत्यर्थः । 'यदारमना' इति पाठं यत्तात्पर्यक्रेणेति प्रन्थ-विशेषणम् ॥ ६० ॥ ६९ ॥ प्रविलापनोपायमपवादं वक्तम-ध्यारोपेणैकमेवानेकघास्थितं देवं मङ्गलार्थं नमस्यति—संह-तीति ॥ ६२ ॥ प्रश्नाभित्रायानुरूपमुत्तरं वक्तं प्रतिजानीते-कृते इति । श्रुतिशासनात् माण्ड्ययोपनिषदादिश्रुत्युक्तकमात् ॥ ६३ ॥ विशक्तितोक्तं सूक्ष्ममितिभः स्त्रयमेव पूर्वापरवि-चारेण निष्कृष्य ज्ञातुं शक्यं तत्ते सीबुद्धं प्राक् प्रख्यातमिदानीं कथं नष्टमिति वश्यमाणप्रहणावधानार्थमिधिक्षपति-पूर्वाप-रेति ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्र-कारो निर्वाणप्रकरणे पूर्वीर्घे सप्तविशत्यधिकशतत्त्रमः सर्गः ॥ १२७ ॥

प्रविकापनयुक्तात्र भरद्वाजकृतार्थता । वर्ण्यन्ते ज्ञानिकर्तव्यरामध्युरथापनक्रमाः ॥ १ ॥

तत्र सान्नं साक्षात्कारान्तं प्रपन्नप्रविलापनप्रकारं 'शान्तो दान्त उपरतस्तितिश्चः श्रद्धावित्तः समाहितो भूलात्मन्येवात्मानं परयति' इति श्रुतितात्पर्यवर्णनमुखेनैव वक्तमारभते—शान्त इलादिना । तत्रोपरतपदं विषयविभागेन व्याचष्टे--निषिद्धा-दिति॥१॥तत्र समाहितपदार्थतया आसनावशक्तयोगं वर्णयंस्ति-

१ काचित्कमिदं पथम्.

प्राणायामं ततः कुर्यादन्तःकरणशुद्धये । इन्द्रियाण्याहरेत्पश्चाद्विषयेभ्यः रानैःशनैः॥ ફ देहेन्द्रियमनोबुद्धिक्षेत्रज्ञानां च संभवः। यसाद्भवति तज्ज्ञात्वा तेषु पश्चाद्विलापयेत् ॥ विराजि प्रथमं स्थित्वा तत्रात्मनि ततः परम्। अव्याकृते स्थितः पश्चात्स्थितः परमकारणे ॥ मांसादिपार्थिवं भागं पृथिव्यां प्रविलापयेत्। आप्यं रक्तादिकं चाप्सु तैजसं तेजसि क्षिपेत्॥ ६ वायन्यं च महावाया नाभसं नभसि क्षिपेत्। पृथिव्यादिषु विन्यस्य चेन्द्रियाण्यात्मयोनिषु ॥ ७ भोत्रादिलक्षणोपेतां कर्तुर्भोगप्रसिद्धये । दिश्च न्यस्यात्मनः श्रोत्रं त्वचं विद्युति निश्चिपेत् ८ चक्षुरादित्यविम्बे च जिह्नामप्सु विनिक्षिपेत्। प्राणं वायौ याचमग्नौ पाणिमिन्द्रे विनिश्चिपेत् ॥ ९ विष्णौ तथात्मनः पादौ पायुं मित्रे तथैव च। उपस्थं कर्यपे न्यस्य मनश्चन्द्रे निवेशयेत् ॥ बुद्धि ब्रह्मणि संयच्छेदेताः करणदेवताः।

तिशुपदमर्थाद्याचरे--मृद्वासने इलादिना । उचारमेहीर्ध जपेत् । भुशुण्डोपास्यानोक्तरीत्या इततमं वा ॥ २ ॥ ३ ॥ यस्माद्य-साचस यस संभवो जन्म भवति तत्तज्ज्ञाला श्रुत्यादिना स्मृला तेषु तेषु भूतेषु देवेषु च विलापयेत् । वाचारम्भणश्रु-त्युक्तरीत्या तत्तव्यतिरेकेण नास्तीति स्मरेदित्यर्थः॥ ४॥ एव-माध्यात्मिकदेहेन्द्रियादिभावं त्यका तत्कारणभूतदेवतासम-ष्ट्यात्मा अकारार्थां विराडेवाहमस्मीति भावनया प्रथमं विराजि स्थिला ततः परं तत्कारणे उकारार्थे सूक्ष्मभूतलिङ्गसमध्यात्मनि हिरण्यगर्भे विराजं प्रविछाप्य स्थिला ततस्तत्कारणे त्रिगुणे मायोपहिते मकारार्थे अन्याकृते स्थितः संस्ततः पश्चात्सर्वजग-न्मूलकारणलोपलक्षिते साव्याकृतसर्वाधिष्ठाने अर्धमात्रालक्षिते **गुद्धे ब्रह्मणि अव्याकृतमपि विलाप्य स्थितो** भवेदित्यर्थः ॥५॥ देहेन्द्रियादिषु यस्य यस्मात्संभवस्तत्र तत्प्रविलापनं यदुक्तं तद्वि-शिष्य पुनर्विष्णोति-मांसादीखादिना। क्षिपेत् तन्मात्रताचि-न्तनेन प्रविळापयेत् ॥ ६ ॥ नाभसं शारीराकाशम् । एवं घ्राणादीन्द्रियाण्यप्यातमयोनिषु स्वारम्भकेष पाधिभूतसृक्ष्मपृथिव्यादिषु निक्षिप्य विलाप्य 'दिशः श्रोत्रं भूला कर्णो प्राविशत्' इत्यादिश्रतेः कर्तुजीवस्य शब्दादिभोगप्रसिद्धये कर्णादिगोलकानुप्रवेशेन श्रोत्रादिलक्षणे-नेन्द्रियभावेनोपेतां दिगादिदेवतां यथाक्रमं देवतास्वेव निक्षि-पेदिति शेषः । तमेव कमं दर्शयति—दिक्ष्वित्यादिना ॥ ८॥ अप्तु वरणदेवतायाम् ॥ ९॥ १०॥ ब्रह्मणि चतुर्भुखे । बुदिप्रहणमुपलक्षणम् । एवं मनोहंकारचित्तान्यपि चन्द्रहद्रा-च्युतेषु प्रविलापयेदित्युपसंहरति-एता इति । 'अग्निर्वा-ग्भूला सुखं प्राविशत्' इत्यादिश्रुतिवाक्यप्रमाणमनुस्मृत्य दे-बता एवेन्द्रियव्यपदेशेन स्थिता न लिन्द्रियाणि नाम वस्लन्त- इन्द्रियव्यपदेशेन व्यादिइयन्ते च देवताः॥ ११ श्रुतिवाक्यमनुस्मृत्य न स्वतः प्रकटीकृताः। पवं न्यस्यात्मनो देहं विराइसीति चिन्तयेत्॥ १२ ब्रह्माण्डान्तः स्थितो योऽसावर्धनारीश्वरः प्रभुः । आधारः सर्वभूतानां कारणं तदुदाहृतम्॥ स यहस्टिहरोऽसी जगहसी व्यवस्थितः। ब्रिगुणाण्डाद्वहिः पृथ्वी पृथिच्या ब्रिगुणं जलम् १४ सलिलाद्विगुणं तेजस्तेजसो द्विगुणोऽनिलः। वायोद्धिगुणमाकाशमुर्ध्वमेकैकशः क्रमात्॥ व्यस्तेन च समस्तेन व्यापिना प्रथितं जगत्। क्षिति चाप्सु समावेश्य सिललं चानले क्षिपेत् १६ अग्नि बायौ समाबेश्य वायुं च नमसि क्षिपेत्। नभश्च महदाकारो समस्तोत्पत्तिकारणे॥ १७ स्थित्वा तस्मिन्क्षणं योगी लिङ्गमात्रशरीरधृक्। वासना भूतसूक्ष्माध्य कर्माविद्ये तथैव च ॥ द्शेन्द्रियमनोबुद्धिरेतिहिङ्गं विदुर्बुधाः। ततोऽधौण्डाद्वहिर्यातस्तत्रात्मासीति चिन्तयेत्र१९

राणि सन्तीति तत्त्वोपदेशेन प्रविलापनाय मया व्यादिश्यन्ते न खतः खकपोलकल्पनया एतेऽर्थाः प्रकटीकृता इत्युत्तरेणान्वयः ॥ ११ ॥ एवं देहेन्द्रियादिप्रबिलापनसंप्रहक्षीकं विराजि प्रथमं स्थित्वेत्येतद्विशदयति-एवमिति ॥ १२ ॥ अव्याकृते स्थितः पश्चादित्येतद्विवरणप्रसन्नेन मायाशबलस्य सर्वजगदमिन्ननिमित्तोपादानस्य ब्रह्मणो ब्रह्मविद्यार्थिभिः प्राग्-पास्यत्वेनोक्तां ब्रह्माण्डात्मनो विराजो हृत्पद्मे सदा स्थितां ब्रह्म-विद्यापटितार्धशरीरां मूर्ति दर्शयन्स एव सर्वप्राणिनां मातापि-तृरूपेण कारणमित्याह-नह्याण्डान्तरिति ॥ १३ ॥ सोऽसी पि-तलादेव लएष्टस्य देवमनुष्यादिजगती वृत्तावत्रपानादिजीवनी-पाये व्यवस्थितः सन् हविर्वृष्ट्यादिना सर्वपोषकश्रौतस्मार्तयक्रसः ष्टिरूपो ब्रह्माण्डान्तः स्थितः । प्रासङ्गिकमुका प्रस्तुतं प्रविला-पनं वक्तं ब्रह्माण्डावरणान्याह-द्विगुणेति । यद्यपि 'एभिराव-रणैरण्डं व्यामं दशगुणोत्तरः' इति पुराणेषु दशगुणोत्तरत्वं श्रुयते तथापि द्विगुणमेव परितो वेष्टने पचकोशप्रदक्षिणे पश्च-विंशतिकोशवदेकगुणस्य पचगुणत्वे द्विगुणस्य दशगुणलमिल-भिप्रायेण तद्बोध्यम् । अथवा तदपर्जाकृतभूतावरणाभिप्रायमिदं तु पश्चीकृताभित्रायमिखविरोधः ॥ १४ ॥ एकैकश एकैकस्मा-दूर्वमुत्तरोत्तरम् ॥ १५ ॥ व्यस्तेन अपश्रीकृतेन । समस्तेन पश्चीकृतेन । अतएवान्तरमान्तरं बाह्ये प्रविलापयेदित्याह— क्षितिमिति ॥ १६ ॥ समावेर्य प्रविठाप्य । समस्तस्थूरुप्रप-श्रोत्पत्तिकारणे महदाकाशे हिरण्यगर्भाकाशे ॥ १७ ॥ कि तिहन्नशरीरं तदाह--वासना इति ॥ १८ ॥ लिनं लिन्नशरी-रम् । एवं स्थूलोपाधिप्रविलापनेनार्ध इव संपन्नो ब्रह्माण्डात्म-तामिधानलागात्ततो बहिर्भुतः संस्तत्र सूक्ष्मभूतात्मकलिङ्गसम-ष्टिदेहे अहमारमाधिष्ठाता हिरण्यगर्भ एवास्मीति चिन्तयदि-

चतुर्मुखोप्रके चायं भृतसूक्ष्मव्यवस्थितः। लिङ्गमव्याकृते सुक्ष्मे न्यस्याव्यके च बुद्धिमान् २० नामरूपविनिर्मुक्तं यस्मिन्संतिष्ठते जगत्। तमाद्वः प्रकृति केचिन्मायामेके परे त्वणून्॥ २१ अविद्यामपरे प्राहुस्तर्कविभ्रान्तचेतसः। तत्र सर्वे छयं गत्वा तिष्ठन्त्यव्यक्तरूपिणः॥ 22 निःसंबन्धा निरास्वादाः संभवन्ति ततः पुनः । तत्स्यरूपा हि तिष्ठन्ति यायत्सृष्टिः प्रवर्तते ॥ आजुलोम्यात्समृता सृष्टिः प्रातिलोम्येन संहतिः। अतः स्थानत्रयं त्यक्त्वा तुरीयं पदमव्ययम् ॥ ध्यायेत्तत्प्राप्तये लिक्नं प्रविलाप्य परं विद्येत्। भूतेन्द्रियमनोबुद्धिर्वासनाकर्मवायवः॥ 24 अज्ञानं च प्रतिष्ठाः स्युर्लिक्रमव्याकृते सति।

खर्थः ॥ १९ ॥ ननु चतुर्भुखः पद्मसंभवो देहो लोके हिरण्य-गर्भ इति प्रसिद्धः । अयं तु भूतसूक्ष्मसमध्यात्मा न चतुर्भुख इति कथं हिरण्यगर्भस्तत्राह—चतुर्भुख इति । भूतस्क्षे अभिमानितया व्यवस्थितोऽयभेव अप्रके ब्रह्माण्डप्रविलापना-त्पूर्व ब्रह्माण्डेश्वर्यभोगार्थ पद्मोद्भवदेहं कल्पयिला चतुर्भुख आसीदित्यर्थः । ईदशहिरण्यगर्भातमभावनानन्तरं यत्कर्तव्य तदाह-लिक्नमिति । अपखीकृतभूतेभ्योऽपि सूक्ष्मे उपाध्या-कारेणाव्याकृते मायांशे उपहितनिदाकारेणाव्यके न। जडां-शस्य जडे चिदाभासांशस्य चिति प्रविलापनमिति सूचनाय द्विधाकृलोक्तिः ॥ २० ॥ अथवा व्याकरणफलमभिव्यक्तिरिति कियाफलरूपप्रवृत्तिनिमित्तमेदकल्पनया एकत्रैव व्यपदेशमेट इलाशयेनाह-नामेति । प्रकृतिं सांख्याः । मायां वेदान्तिनः ॥ २९ ॥ अपरे बौद्धाः संवृतिरूपामविद्याम् । तत्र तस्मिन्नव्या-कृते प्रख्यकाले सर्वे पदार्था लयं षष्ट्रभावविकारं गला अन-भिव्यक्तरूपिणः संतस्तत्सत्त्येव तिष्ठन्ति ॥ २२ ॥ कथं ति-ष्टन्ति तदाइ-निःसंबन्धा इति । परस्परसंसर्गश्चन्याश्चिद्धोग्य-तालक्षणाखादग्रन्याश्रेत्यर्थः । कुतः । प्रलयानन्तरं सर्गकाले ततः अव्याकृतादेव प्रकृतिभूताच ॥ २३ ॥ आनुलोम्यादाका-शादिकमात्। प्रातिलोम्येन सृष्टिविपरीतक्रमेण 'पश्चात्स्थितः परमकारणे' इत्येतद्विष्टणोति-अत इति । स्थानत्रयं विराष्ट्रि-रण्यगर्भाव्याकृतास्यं स्थूलसूक्ष्मकारणस्यं समष्टिजाप्रदाद्यवस्था-श्रयं 'नान्तः प्रक्तं न बहिः प्रक्तं नोभयतः प्रक्तं न प्रक्तं नाप्रक्तं न प्रज्ञानचनम्' इतिश्रुत्युपदर्शितदिशा खन्ता तद्विष्टानं परिमि-ष्टिनमात्रेकरसं 'अदर्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्समव्य-पदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' इतिश्रुत्युपदर्शितं तस्य प्राप्तये साक्षाह्मभाविध च्या-येत् ॥ २४ ॥ ध्यानेद्धया चरमसाक्षात्कारवृत्त्या ध्यानकर्तृकर-णर्षं लिजमपि मुलाज्ञाननाधेन प्रविलाप्य घटभन्ने घटाकाशो

भरद्वाज उवाच।

इदानीं लिङ्गनिगडान्मुकोऽहं सर्वया यतः॥ २६ चिदंशत्वात्प्रविष्टोऽहं चैतन्यानम्दसागरे। अभेदात्परमात्मासि सर्वोपाधिविवर्जितः॥ 30 कृटस्यः केवलो व्यापी चिव्चिच्छक्तिमानह्म्। घटामावे घटाकाराकलशाकाशयोर्यथा ॥ २८ तमादः श्रुतयो बहुय एवमेवैकामादरात्। यथान्निरमी संक्षिप्तः समानरवमनुवजेत् ॥ २९ तदाख्यस्तन्मयो भृत्वा गृह्यते न विशेषतः। यथा तृणादिकं क्षिप्तं रुमायां लवणं भवेत्॥ 30 अचेतनं जगद्यस्तं चैतन्ये चेतनीभवेत्। यथा वे स्वजाप्रनिधः समुद्रे सैन्धवो यथा ॥ 38 नामक्रपाद्विनिर्मुक्तः प्रविद्यैति समुद्रताम्। यथा जले जलं न्यस्तं श्रीरे श्रीरं घृते घृतम् ॥ 32

महाकाशमिव परं निरतिशयानन्दं ब्रह्म विशेत्सैवास्य लिक्ननि-गडमुत्त्या कृतार्थतेत्यर्थः । ननु 'नान्तःप्रक्रम्' इत्यादिश्रुतौ लिक्नवाधी न दश्यते तत्कथं तिमृत्तिरितिचेत् स्थानत्रयवाधे लिजनाधोऽर्थसिद्धः । स्थूलस्थमभूतेन्द्रियादिष्वेव लिजस्य प्रति-ष्ट्रितलादिति दर्शयति-भूतेन्द्रियति ॥ २५ ॥ नन्वज्ञानं कथं प्रतिष्ठा तत्राह-लिक्नमिति । शुद्धे बद्धाण्यज्ञानावरणे नाच्या-कृते हि सति सुक्षमभूतद्वारा लिक्समुत्पद्यते नाज्ञानं विनेति त-देव लिक्सस मूलप्रतिष्टेति तिन्नवृत्ती लिक्ननिगडभक्त सिद्धिरिति भावः । एवं वाल्मीकिना प्रणवार्थप्रपश्चनोपायेन प्रतिबोधितः प्रबुद्धो भरद्वाजः खानुभवं गुर्वनुभवसंवादेन परीक्षणाय प्रकट-यश्रवाज—इदानीमित्यादिना ॥ २६ ॥ २७ ॥ चिदहं नतु चिच्छक्तिमान् । कीद्दशादमेदात्परमात्मासि तत्राह-चटा-भावे इति । घटमङ्गे सतीत्यर्थः । यथा एकस्पेव घटस्य घट-कलशनाममेदकल्पना तदुपहिते आकाशे च घटाकाशः कल-शाकाश इति व्यपदेशमेदकल्पना तद्वदेकस्यैवाज्ञानस्य जगनाम-भेदकल्पना तदुपहिते च मिय जीव ईश्वरी देवो नरः कुजर इत्यादिव्यपदेशमेदकल्पना चासीत् । तत्रैकेन घटमन्नेन यथा उभयनिवृत्त्या ग्रह्माकाशुरुक्षणैक्यं तद्वदेकस्याज्ञानस्य निवृत्त्या सर्वनामादिभेदनिवृत्त्या चिदैक्यसाम्राज्यमित्यर्थः एवमैक्यमभित्रेल तं ब्रह्मभूतं मां 'यत्र नान्यत्पर्यति नान्य-च्छणोति नान्यद्विजानाति स भूमा यत्र खस्य सर्वमात्मेवाभू-त्तरकेन कं पश्येत्'। 'एकात्मप्रव्ययसारं ज्ञिनं शान्तमद्वैतं च-तुर्थ मन्यन्ते.' 'नेह नानास्ति किचन' इत्यादयो बहुधः श्रुतय आहुरिखर्थः । एवं 'यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरं क्षीरं घृते घृतम् । अविशेषो भवेलद्वजीवात्मा परमात्मनि' इत्यादिश्रुतिभिरीदश-मेवैक्यं दर्शितमित्याशयेनोदाहरति-यथेति । समानलभैक्यम् ॥ २९ ॥ एवमचेतनप्रपश्चस्यापि चिति विलापनेन तद्भावापत्ती दृष्टान्तमाह-यथेति ॥३०॥ न्यस्तं प्रविलापितम् ॥३९॥३२॥

अविनष्टा भवन्त्येते गृह्यन्ते न विशेषतः। तथाहं सर्वभावेन प्रविष्टश्चेतने सति॥ 33 नित्यानन्दे समस्तक्षे परे परमकारणे। नित्यं सर्वगतं शान्तं निरवधं निरञ्जनम् ॥ 38 निष्कलं निष्कियं शुद्धं तद्रशासि परं परम् । हेयोपादेयनिर्भुक्तं सत्यरूपं निरिन्द्रियम्॥ રૂપ केवलं सत्यसंकर्णं शुद्धं ब्रह्मास्म्यहं परम्। पुण्यपापविनिर्भुकं कारणं जगतः परम्॥ 38 अद्वितीयं परं ज्योतिर्वह्यास्म्यानन्दमव्ययम्। पवमादिगुणेर्युकं सत्वादिगुणवर्जितम्॥ રુંહ प्रविष्टं सकलं ब्रह्म सदा ध्यायेत्स्वकर्मकृत्। पवमभ्यसतः पुंसो मनोऽस्तं याति तत्र वै॥ 36 मनस्यस्तं गते तस्य स्वयमात्मा प्रकाशते । मकादो सर्ववुःखानां हानिः स्यात्स्खमात्मनि॥३९ स्वयमेषारमनात्मानमानन्दं प्रतिपद्यते ।

उपाधिनाशे उपहितजीवनाशशङ्कापि मे गतेत्याशयेनाह— अविनष्टा इति । चेतने चिदेकरसे सति ब्रह्मणि ॥ ३३ ॥ 'निष्कलं निष्कियं शान्तं निरवदं निरजनम्' इलादिश्रलापि खाद्यभवं संवादयति—नित्यमित्यादिना ॥ ३४॥ ३५॥ सल्यसंकर्षं संकल्पमात्रेणासतोऽपि जगतः सत्तासंपादन-समर्थसद्भूपम् ॥ ३६ ॥ सत्त्वादिभिर्मायागुर्णविजितम् ॥ ३७ ॥ अभ्यासकालेऽपि लया अस्यैव ध्यानं मह्ममुपदिष्टमित्या-शयेनाह-प्रविष्टमित्यादिना । त्वकर्मकृच्छ्वणगुरुशुभूषादिपरः खबर्णाश्रमधर्मनिष्ठश्च ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ कथं प्रतिपद्यते तत्राह-न मत्त इति ॥ ४० ॥ प्रतिपत्तिशब्दार्थमाह-इत्या-स्मेति । एवं भरद्वाजोक्तमनुभवं निशम्य संतुष्टी वाल्मीकिन्तदु-फानुभवस्थेर्याय 'सजतेव हि तज्ज्ञेयं स्वक्तः प्रस्वक्परं पदम्' इलादिश्रुतिसिदं संन्यासमवश्यकर्तव्यतयोपदिशति—सखे इति ॥ ४१ ॥ संसारचकावर्तेषु अमतीति अमस्त्वं यदि शमं विश्रा-न्तिसुखं गार्हरथ्ये नेष्यसे न प्राप्नोषि तर्हि कर्माणि संन्यस्य बहाणः प्रणयी बहाण्येव निर्विक्षेपसमासको भव । 'ब्रह्मसंस्थोऽ-मृतलमेति' इति श्रुतेरनन्यव्यापारतया ब्रह्मण्यासक्तस्य संन्या-सिन एव सबीजञ्जान्तिशान्तिसंभवादिल्यशः । सर्वे समप्रं सा-क्रमिति यावत् ॥ ४२ ॥ न विलम्बनेन चिरं स्थास्यति । 'तस्य ताबदेव चिरं यावन विमोक्ष्ये अथ संपत्स्ये' इति श्रुतेरिति भावः । ज्ञानिनो जीवन्मुक्तस्य कर्म कर्तव्यं न वेति प्रथमः प्रश्नः । यदा कर्तव्यं तदा प्रशृतिरूपं निखनैमित्तिककाम्यकर्म सर्वमेव यथापूर्व कर्तव्यमथवा कामनाभ्यो निवृत्तं खखाश्रमो-चितकर्ममात्रं कर्तव्यमिति द्वितीयः प्रश्नः । पाठकमादार्थकमस्य बलीयस्लाद्वोध्यः । ननु 'सखे संन्यस्य कर्माण ब्रह्मणः प्रणयी भव' इति सर्वकर्मसंन्यासं श्रुतवतो भरद्वाजस्य द्वावपि प्रश्राव-नुपपन्नी । सत्यम् । तथापि 'यावजीवममिहोत्रं जुहोति' 'कुर्व-भेवेह कर्माण जिजीविषेच्छतं समाः' इत्यादिश्रतिभियीवजीवं

न मत्तोस्त्यपरः कश्चिश्चिदानन्दमयः प्रभुः॥ अहमेकः परं ब्रह्म इत्यात्मान्तः प्रकाशते । वाल्मीकिरुवाच। सखे संन्यस्य कर्माणि ब्रह्मणः प्रणयी भव ॥ ४१ नेष्यसे यदि संसारचकावर्तभ्रमः शमम्। भरद्वाज उवाच । त्वयोक्तं सर्वमेवेदं शानं वुद्धं मया गुरो॥ પ્રર बुद्धिश्च निर्मला जाता संसारो न विलम्बते। इदानीं ज्ञातुमिच्छामि ज्ञानिनः कर्म की हराम्॥ ४३ प्रवृत्तं वा निवृत्तं वा कर्तव्यं च न वा प्रभो। वाल्मीकिरुवाच। तसाद्यम् इते दोषस्तत्कर्तव्यं मुमुश्चिमः॥ काम्यं कर्म निषिद्धं च न कर्तव्यं विशेषतः। यदा ब्रह्मगुणैजीवो युक्तस्त्यक्त्वा मनोगुणान् ॥४५ संशान्तकरणत्रामस्तदा स्यात्सर्वगः प्रभुः।

कर्तव्यतया निबद्धानां 'दीक्षितो न ददाति न जुहोति' इत्यादि-वाक्यैदीक्षाकाले त्यक्तानामपि दोक्षापगमे पुनः परिप्रहवत् । 'खजतैव हि तज्ह्वेयं' 'एतमेव प्रवाजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव-जन्ति' इत्यादिश्रुतिमिर्वद्याजिज्ञासानिमित्तेन त्यक्तानां ज्ञान-सिद्धा निमित्तापगमे पुनः परिप्रहो न्यायसिद्धः। नच विद्वत्सं-न्यासविधानात्पुनरपरिष्रहः । तस्य जन्मान्तरानुष्ठितविविदिषा-संन्यासवशाद्वहस्थाद्याश्रमेष्वेव तत्त्वज्ञानोदयेन कृतार्थान्पुरुष-विशेषान्त्रति अप्राप्तसंन्यासान्तर्रावधानपरस्य प्राप्तविविदेषा-संन्यासपरिपालनविधानाशक्तेरित्याशयेन प्रश्रावुपपन्नौ बोध्यौ ॥ ४३॥ एवं पृष्टी वाहमीकिस्त्वया प्रथमं काम्यानिविद्धकर्मणां ज्ञानविरोधिविक्षेपादिद्येषहेतुभूतकर्मणां च त्यागेन ज्ञानित्वं शा-स्नाम्यासेन संपादनीयम्। तदुत्तरं तस्य कर्म कीदशमिति खत्प्र-श्रोत्तरं त्वं खयभेव ज्ञास्यसि । तत्तद्भृमिकापरिपाककमेण तत्त-त्कर्मीपरमस्य तदा तदेव खयानुभिवतुं शक्यलाज्ज्ञानिनां च प्रारब्धवेषिक्येणेकरूपस्थित्यदर्शनेन तत्कर्मणां प्रवृत्तमेव निवृ-त्तमेव वेति नियम्तुमशक्यलादित्वाशयनोत्तरमाह्—तस्मा-दिति। तस्मात्सर्वकर्मसंन्याससहितब्रह्मप्रणयिखमेव संसारअम-निवर्तकज्ञानोपाय इति मदुपदिष्टार्थस्य युद्धलास्वादशैर्मुमुर्खान-र्थयस्मिन्कर्मणि कृते सति श्रवणादिधिप्रदोषधित्तविश्लेपमालि-न्यपातकादिदोषध न भवति तदेव कर्तत्र्यम् । काम्यं निषिद्धं चकारादृष्टविक्षेपसाधनं च कर्म न कर्तव्यमिखर्थः । विविदिषा-संन्यासपरिपालनं तु विधिना खक्तस्य पुनविधि विना परिप्रहा-संभवात 'आहडो नैष्टिकं धर्म यस्त प्रच्यवते पुनः । प्राय-श्चित्तं न पश्यामि येन शुद्धीत्स आत्महा ॥' इत्यादिपरावृत्तौ दोष-श्रवणात्पुनः परिप्रहे प्रयोजनाभावान्छिष्टविगर्हितलाच सेत्स्य-तीति भावः ॥ ४४ ॥ ज्ञानित्वं लस्य सर्वमनोगुणत्यागेन पूर्णा-नन्दद्वयविशुद्धासङ्गचिदंकरसलादिवद्वागुणप्राप्तावेव स्यान्नान्यथे-साह-यदेत्यादिना ॥४५॥ देहादिकोशच्याष्ट्रमातपर आनन्द-

देहेन्द्रियमनोबुद्धेः परस्तस्माध्य यः परः॥ ઝદ सोऽहमस्मि यदा ध्यायेत्तदा जीवो विमुख्यते। कर्तृओक्रादिनिर्मृकः सर्वोपाधिविवर्जितः॥ 80 सुखदुःखविनिर्मुक्तस्तदानीं विप्रमुच्यते। सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ८८ यदा पद्यत्यभेदेन तदा जीवो विमुख्यते। जाप्रतस्वप्रसुषुप्राख्यं हित्वा स्थानत्रयं यदा ॥ ४९ विशेसुरीयमानन्दं तदा जीवो विमुच्यते। जीवस्य च तुरीयाख्या स्थितिया परमात्मनि ॥ ५० अवस्थाबीजनिद्रादिनिर्मुक्ता चित्सुखात्मिका। योगस्य सेयं वा निष्ठा सुखं संबेदनं महत्॥ 48 मनस्यस्तं गते पुंसां तदन्यन्नोषस्ययते। प्रशान्तामृतकल्लोले केवलामृतवारिधौ ॥ ५२ मज मजासि कि द्वैतप्रहक्षाराब्धिवीचिष् । भज संभरिताभोगं परमेशं जगहुरुम्॥ ५३ इति ते वर्णितं सर्वे वसिष्टस्योपदेशनम्। अनेन ज्ञानमार्गेण योगमार्गेण पुत्रक ॥ 68 भरद्वाज महाप्राज्ञ सर्वे शास्यसि निश्चितम्। परामर्रोन शास्त्रस्य गुरुवाक्यार्थबोधनात् ॥ 44 अभ्यासात्सर्वसिद्धिः स्यादिति वेदानुशासनम्। तसास्वं सर्वमुत्सुज्य कुर्वभ्यासे स्थिरं मनः॥ ५६

भरद्वाज उवाच । रामः प्राप्तः परं योगं स्वात्मनात्मनि हे मुने ।

मयकोशातमा तस्मात्परस्तद्धिष्ठानं ब्रह्म ॥४६॥ आदिपदास्कर्ता कार्यं करणं भोग्यं भोक्ता भोगो ज्ञाता ज्ञानं ज्ञेयमिति तिस्रोऽपि त्रिपुट्यः परिगृह्यन्ते । तत्प्रयोजकः सर्वेदेंहाद्युपाधिभिस्तत्फ-काभ्यां सुखदुःसाभ्यां च विनिर्भुक्तो यदा भविष्यपि तदानीम् ॥ ४७॥ ४८॥ ४९॥ ५०॥ जाम्रत्स्वप्रावस्थयोवींजं जी-वस्य स्थितियोंगस्य निदिध्यासनपरिपाकजन्यनिर्विकल्पसमाधे-र्वाशब्दान्सुख्याधिकारिणी विचारमात्रजन्यसाक्षात्कारज्ञानस्य षा निष्ठा परिसमाप्तिः ॥५१॥ तस्मिन्विश्रान्तस्य तव द्वेतदर्शन-प्रसक्तिरेव नास्ति दूरे कर्मक्षाराध्धिवीचिमजनप्रसक्तिरिखाश-थेनाह-प्रशान्तेति ॥ ५२ ॥ प्रागुक्तमीथर्मुपास्य तत्प्रसा-देन ते वसिष्ठोक्तज्ञानमार्गेण योगमार्गेण वा तत्त्वज्ञाने सत्येक-विद्वानेन सर्वविद्वानात्सर्वसंशयमूलाज्ञाननाशाच सर्वसंशयोच्छे-इम विश्रान्तिर्भविष्यतीत्युपसंहरति-भजेत्यादिना ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ तत्र शास्त्राचार्योपदेशस्त्रानुभवानाभेकार्थनिष्ठतानिध-यायार्थिचिन्तनावृत्तिलक्षणः परामर्शः शब्दघोषणावृत्तिलक्ष-णोऽभ्यासश्चावर्यं कार्य इत्याह्--परामर्शेनेति ॥ ५५ ॥ ५६॥ योगमपाधित्यागेनैक्यम् । स्वात्मना शोधितप्रतीचा । आत्मनि ब्रह्मणि ॥ ५०॥ ५८ ॥ महामना अपरिन्ठित्रबद्धाकार् विस्रो ॥

कथं वसिष्ठदेवेन व्यवहारः परः कृतः॥ 40 इति शात्वाहमप्येयमभ्यासार्थं यते यथा। तथैष व्यवहारोऽपि ब्युत्थाने मे भविष्यति॥ वाल्मीकिरुवाच । यदा परिणतः साधुः स्वस्वरूपे महामनाः। विश्वामित्रस्तदोवाचं वसिष्ठमृपिसत्तमम्॥ 48 विश्वामित्र उवाच। हे वितिष्ठ महाभाग ब्रह्मपुत्र महानति। गुरुत्वं शक्तिपातेन तत्क्षणादेव दर्शितम्॥ Ęo दर्शनात्स्पर्शनाच्छब्दात्कृपया शिष्यदेहके। जनयेद्यः समावेदां शांभवं स हि देशिकः॥ ६१ रामोऽप्ययं विशुद्धात्मा विरक्तः स्वात्मनैव हि । विश्रान्तिमात्राकाङ्की च संवादात्प्राप्तवान्यदम् ६२ शिष्यप्रक्षेत्र वोधस्य कारणं गुरुवाक्यतः। मलत्रयमपकं चेत्कथं बुद्ध्यति पक्वत्॥ ६३ श्वानं प्रत्यक्षमेवेदं गुरुशिष्यप्रयोजनम्। उभाषपि यतो योग्यो सर्वेषामीदशामपि॥ દ્દય इदानीं कृपया रामव्युत्थानं कर्तुमईसि । पदे परिणतस्त्वं हि कार्याविद्या वयं यतः॥ ६५ सारन्कार्ये मम विभो यद्दिइयाहमागतः। प्रार्थितश्चातिकप्टेन राजा दशरथः स्वयम्॥ ६६ तहथा मा रुथाः सर्वे शुद्धेन मनसा मने। देवकार्यं चरामान्यदवतारप्रयोजनम्॥ ६७

रामः ॥ ५९ ॥ अनुब्रह्दष्टिमात्रप्रयुक्तेन प्रागुक्तहाकिपातेन लया शिष्यस्य ब्रह्मीकरणात्स्वस्य गुरुत्वं शिष्योद्धारसामध्यंल-क्षणं तत्क्षणात्सय एव दर्शितमस्मभ्यमित्यर्थः ॥६०॥ ननु सया खशरीरं त्यक्ला रामदेहं प्रविश्य कुण्डलिनीसंचारादिकं न कृतमेव तत्कथं लया शक्तिपातो ज्ञातस्तत्राह-दर्शनादिति । सत्यसंकल्पानां लादशां कृपादृष्ट्यापि सन्च्छिष्यस्य कुण्डलिन्याः षद्चक्रभेदेन ब्रह्मरन्ध्रस्थितपरशिवसमावेशलक्षणो जीवस्यो-पाधिपरित्यागेन शुद्धमञ्चसमावेशलक्षणश्च शक्तिपातः सिद्धा-तीति भावः । देशिको गुरुः ॥ ६९ ॥ तत्र रामस्य सन्छिष्यतां दर्शयति--राम इति ॥ ६२॥ मलत्रयं शैवशास्त्रप्रसिद्धमाणवा-दिकामकर्मवासनालक्षणं वा । कथं बुद्यति शिष्य इति शेषः ॥ ६३ ॥ सच्छिष्येषु शास्त्रस्य दृष्टफलतैवेत्याह—ज्ञानमिति । यत उभें। गुरुशिष्यो योग्यो चेत्सर्वेषां पुरुपार्थानामीदशां कैवल्बरुक्षणानामपि भाजनं स्तामित्यर्थः ॥ ६४ ॥ इत्थं वितष्ठं प्रशस्य प्रस्तुतं कर्तव्यमाह—इदानीमिति । अस्म-दादिषु कृपया । त्वंपदे परिणतः। कृतकृत्य इतियावत् ॥६५॥ मम कार्य निर्विधयइसिद्धि त्वं स्परन्सन् रामन्युत्थानं कर्तुम-ईसीति पूर्वत्र, वृथा मा कृषा इत्युत्तरत्र वा संबन्धः ॥ ६६ ॥ किंचान्यदेवकार्थमपि रामन्युत्थापनेन चराम संपादयामो समम्

सिद्धाश्रमं मया नीतो रामो राक्षसमर्दनम्। करिष्यति ततोऽहल्यामुक्तिं च जनकात्मजाम् ६८ परिणेष्यति कोदण्डभञ्जेन कृतनिश्चयः। रामस्य जामदस्यस्य कर्ता नष्टां गर्ति भ्रवम् ॥ ६९ पितृपैतामहं राज्यं विगतोभयनिस्पृहः। षनवासच्छलेनेह दण्डकारण्यवासिनः॥ 90 उद्धरिष्यति तीर्थानि प्राणिनो विविधानि हि। सीताहरणदौर्गत्यच्छलेन भुवि शोच्यताम्॥ ७१ द्शियिष्यति सर्वेषां रावणादिवधादपि। स्त्रीसङ्गिनामथास्त्रास्थ्यं वानरादेः परावृतिम् ७२ सीताबिशुद्धिमन्विच्छँह्योकानुमतिमात्मनः। जीवन्युक्तो निस्पृहोपि क्रियाकाण्डपरायणः ॥ ७३ भविष्यति गति द्रष्टुं ज्ञानकर्मसमुखयौ। यैर्देष्टो यैः स्मृतो वापि यैः श्रुतो बोधितस्तु यैः ७४ सर्वावस्थागतानां तु जीवन्मुर्क्ति प्रदास्यति । इति कार्यमशेषेण त्रेलोक्यस्य ममापि हि॥ ७५ अनेन रामचन्द्रेण पुरुषेण महात्मना । नमोऽसै जितमेवैते कोऽप्येवं चिरमेधताम्॥ ७६ वाल्मीकिरुवाच। इति श्रुत्वा च ते सर्वे विश्वामित्रेण भाषितम्।

॥ ६७ ॥ कार्योन्तराष्यपि दर्शयन्देवकाये विशदयति-सिद्धा-अमेखादिना । अहत्याया मुक्ति शापमोक्षं च करिष्यतीखनु-षकः ॥ ६८ ॥ निश्वयो वाभिश्वयः । गति परलोकमार्गम् ॥ ६९ ॥ राज्यं विमुच्य गतो विगतः । जीवन्मुक्तलादेवा-भयो निस्पृह्ध । दण्डकारण्यवासिनो मुनीन् राक्षसवधेन भया-दुद्धरिष्यतीति परेणान्वयः ॥ ७० ॥ विविधानि तीर्थानि प्रा-णिनश्च उद्धरिष्यति पावयिष्यतीत्यर्थः । सीताहरणप्रयुक्तं यहौ-र्गत्यं शोकमोहादिविडम्बनं तच्छलेन रावणादीनां वधादपि सर्वेषां स्त्रीसिक्तनां भुवि शोच्यतामस्वास्थ्यं च दर्शयिष्यतीति परेणान्वयः ॥ ७१ ॥ अथ इन्द्रवरदानेन युद्धे मृतस्य वानर-क्षोदेः पराकृति परावर्तनं पुनः संजीवनं दर्शथिष्यति ॥ ७२ ॥ भिमप्रवेशेन सीताविशुद्धिमन्विच्छन्सनात्मनः खस्य लोकानु-मर्ति शिष्टजनमाननीयचरित्रतां दर्शयिष्यति । ततो राज्येऽमि-पिकः खयं जीवन्युक्तो निस्पृहोऽपि सन् कर्माथिकृतजनानां कर्मानुष्ठानेनेव गति द्रष्टुं द्शियतुं कियाकाण्डपरायणो भविष्य-तीति परेणान्वयः ॥ ७३ ॥ ज्ञानकर्मसमुख्याधिकारिणां ब्रह्म-लोकादिगतिं दर्शयितुं ज्ञानकर्मसमुखयी च करिष्यतीति शेषः। ज्ञानमत्रोपासनम् । न केवलं कर्ममार्गप्रवर्तनेन वर्तमानजनमा-त्रोपकारी किंतूत्तरकालमपि स्मरणकीर्तनस्वचरित्रप्रवोधनादिना खातुगतानां भक्तानां जीवन्मुक्तिसुखप्रद इत्याह—यैरिति ॥ ७४ ॥ सर्वावस्थासु गतानां भक्तया अनुगतानाम् ॥ ७५ ॥ अनेन महात्मना रामचन्द्रेण इति वर्णितप्रकारेण श्रेलोक्यस्य ममापि हितं कार्यमिति पूर्वत्रान्वयः । इदानीं श्रीविश्वामित्रः सा-

सिद्धाश्च वरयोगीन्द्रा वसिष्ठप्रमुखाः पुनः॥ ७७
रामाङ्किपन्नरजसामाद्रस्थरणस्थिताः।
दूरश्चतोत्तरकथाः कथया मैबिलीपतेः॥ ७८
न संतुतोष भगवान्वसिष्ठोऽन्ये महर्षयः।
गुणान्गुणनिधेस्तस्य ब्रुवन्नाकर्णयञ्ज्ञुतम्॥ ७९
विश्वामित्रमुनि प्राह वसिष्ठो भगवानृपिः।

वासिष्र उवाच।

बूहि विश्वामित्र मुने रामो राजीवलोचनः। कोऽयमभूद्वुधः किं वा मनुष्यो वाथ राघवः॥८०

विश्वामित्र उवाच।

अत्रैव कुरु विश्वासमयं स पुरुषः परः ।
विश्वार्थमथिताम्भोधिर्गम्भीरागमगोचरः ॥ ८१
परिपूर्णपरानन्दः समः श्रीधत्सलाञ्छनः ।
सर्वेषां प्राणिनां रामः प्रदाता सुप्रसादितः ॥ ८२
अयं निहन्ति कुपितः सुजस्ययमस्त्रसकान् ।
विश्वादिर्विश्वजनको धाता भर्ता महासखः ॥ ८३
अयं ब्युत्कान्तनिःसारमृदुसंसारधूर्तकैः ।
आनन्दसिन्धुर्विततो वीतरागैर्विगाद्यते ॥ ८४

माजिकानां रामभक्तिं वर्धयन्नाह-नम इति । हे जनाः, एते यूयमस्मै रामाय नमस्कुरुत । तन्नमस्कारमात्रेण भवद्भिः सर्व जेतन्यं जितमेव न साधनान्तरमपेक्षणीयमित्यर्थः । युष्माकं मध्ये कोऽपि पुरुषधोरेय एवं श्रीराम इव जीवन्मुकाक्षिरं नि-विंकल्पसमाधिविश्रान्ति त्राप्तः । सुखमेधतां वर्धताम् ॥७६॥ ॥ ७७ ॥ दूरादुर्तमा श्रुता उत्तरचरित्ररूपा रामकथा यैस्तथा-विधाः सन्तो रामाङ्किपद्मरजसामादरे । नमस्कारे इतियावत्। सदा रामस्परणे च आस्थिता आस्थावन्तो बभुवुरिति शेषः । वसिष्ठो मैथिलीपतेः कथया श्रुतया न संतुतीप न तृप्तो बभूव ॥ ७८ ॥ एवमन्ये महर्षयश्च न संतुतुतुः । भूयः श्रोतुमुत्क-ण्ठिताः सर्वे बभूबुरित्यर्थः। अतएव ते तस्य गुणान्परोक्तानाक-र्णयन् खयं श्रुतं चान्यान्प्रति श्रुवन्नश्रुवन् । लञ्चडभावरछा-न्दसः ॥ ७९ ॥ ब्रूहि श्रोतृजनंप्रति व्यक्तं वद । अयं रामो जन्मनः प्राक्षोऽभूत् किं वा बुधो देवः अथवा मनुष्य इलाइज-नामिप्रायानुसारी प्रथः ॥ ८० ॥ विश्वामित्रोऽप्यक्कजनानुसारे-णोत्तरमाह-अत्रैवेति । हे जन, लमत्रास्मिन् राम एव सा-क्षाद्भगवान्वासुदेव इति विश्वासं कुरु । स पुराणः परः पुरुषः। स कः । विश्वार्थं मियतोऽम्मोघिः क्षीरार्णवो येन सः । गम्मी-राणां गूढाशयानामागमानामुपनिषदां तत्त्वगोचरो नान्यप्रमान णस्पेत्यर्थः ॥ ८१ ॥ प्रदाता सर्वपुरुषार्थानामिति शेषः । सुष्ट भत्तया प्रसादितः ॥ ८२ ॥ असत्सकाः कार्थन्ते कीर्खन्त इस्व-सत्सका मिध्यार्थास्तान् ॥ ८३ ॥ व्युत्कान्ता विचारवाश्रिता

१ छान्दसः प्रयोदरादिनीयं प्रयोगः.

कचिन्मुक्त इवात्मस्थः कचित्तुर्यपदामिधः। कचित्रणीतप्रकृतिः कचित्तत्स्यः पुमानयम् ॥ 64 अयं त्रयीमयो देवस्त्रेगुण्यगहनातिगः। जयत्यक्षेरयं पड्मिवेदातमा पुरुषोऽद्भतः॥ 25 अयं चतुर्वाहुरयं विश्वस्नष्टा चतुर्भुखः। अयमेव महादेवः संहती च त्रिलोचनः॥ अजोऽयं जायते योगाज्ञागरूकः सदा महान्। बिभार्ति भगवानेतद्विरूपो विश्वरूपवान् ॥ चिजयो विक्रमेणेच प्रकाश इच तेजसा। प्रकोत्कर्पः श्रुतेनेय सुपर्णेनायमुहाते ॥ ८९ अयं दशरथो धन्यः सुतो यस्य परः पुमान्। धन्यः स दशकण्ठोऽपि चिन्त्यश्चित्तेन योमना 80 हा स्वर्गममुना शून्यं हा पातालादिहागतः। तस्यागमाद्यं लोको मध्यमः श्रेष्ठतां गतः॥ ९ १ राम इत्यवतीणींऽयमणेवान्तिशयः पुमान्। चिदानन्द्घनो रामः परमात्मायमव्ययः ॥ ९२ निगृहीतेन्द्रियद्यामा रामं जानन्ति योगिनः। थयं त्ववरमेवास्य रूपं रूपयितुं क्षमाः॥ 63 रघोरघोच्छेदकारो भगवानिति शुश्रुम। वसिष्र कृपया त्वं हि व्यवहारपरं कुरु ॥ ९४

निःसारा मृदवश्च संसाराः कार्यकारणबन्धा यैस्तथाविधैर्धृर्तकै-र्भगद्वषकेवीतरागैर्यतिभिरानन्दतिन्धुविगात्वते प्रविद्यते॥८४॥ अयमेव शानमुक्ती नित्यमुक्ती मायानियन्ता मायान्तर्वद्धेति चतुर्धास्थित इत्याह-किचिदिति ॥ ८५ ॥ त्रयीमयो येदश-रीरः । अङ्गः शिक्षाकल्पादिभिः । वेदानामातमा पारमार्थिक-स्वरूपभूतः ॥ ८६ ॥ चतुर्बाहुः पालको विष्णुः ॥ ८७ ॥ योगान्मायाशक्तिसंबन्धात् । मोहनिद्रानाष्ट्रतलात्सदा जाग-रूकः ॥ ८८ ॥ यथाविक्रमेण पराक्रमेणावदयभावी विजय उत्पते प्राप्यते, तेजसा यथा प्रकाशो भाखररूपं उत्पते धि-यते. यथा श्रुतेन शास्त्रेण प्रज्ञोत्कर्ष उह्यते प्राप्यते, तद्ददयं मुपर्णेन गरडेनेत्यर्थः ॥ ८९ ॥ अमुना रामेण यश्चितन ममायं **अतियोदं**ति निन्त्यश्चिन्तनार्हः संपन्नः ॥ ९० ॥ विष्णुदेहेना-मना शुन्यं स्वर्गं हा स्वर्गस्य शोच्यतेत्वर्थः । 'अभितःपरितः• समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति बख्यर्थे द्वितीया । एवं शेष-मृतिरयं पातालाहक्ष्मणात्मना इहागतः । तथाच पातालस्यापि शोच्यतेत्यर्थः ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ रूपयितुं निरूपयितुं द्रष्टुं च ॥९३॥ वंशोऽनतारेण रघुरप्यनेन पानित इत्याह—रघोरिति । शुश्रम इति कादिनियमान्नेद । लिटि मसो मादेशाभावरछान्दसः ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ अधिकारनिष्पादनलक्षणो लोकानां परामशी यावन्न निरूढो न निष्पन्नः न भवति युक्तमिति शेषः ॥ ९७ ॥ पर्यालोक्य कंत्रितकालमनुभूय देवकार्यादीनिध-

वाल्मीकिरुवाच।

इत्युक्त्यावस्थितस्त्र्णीं विश्वामित्रो महामुनिः। वसिष्ठस्तु महातेजा रामचन्द्रमभाषत॥ ९५

वसिष्ठ उवाच ।

रामराम महाबाहो महापुरुष चिन्मय।
नायं विश्वान्तिकालो हि लोकानन्दकरो भव॥९६
यावलोकपरामशों निरूढो नास्ति योगिनः।
तावदूढसमाधित्वं न भवत्येव निर्मलम्॥ ९७
तस्माद्राज्यादिविषयान्पर्यालोक्य विनश्वरान्।
देवकार्यादिभारांश्च भज पुत्र सुखी भव॥ ९८

वाल्मीकिरवाच।

इत्युक्तोऽपि यदा रामः किंचिन्नोचे छयं गतः।
तदा सुषुन्नया सोऽपि विवेश हृद्यं शनैः॥ ९९
शक्तिप्राणमनःप्रसक्तिकरणो जीवः प्रकाशात्मको
नाडीरन्ध्रसुपुष्टसर्वकरणः प्रोन्मील्य नेत्रे शनैः।
दृष्ट्वोत्कृष्ट्वसिष्ठमुख्यविदुषो निर्मुक्तसर्वेषणः [१००
कृत्याकृत्यविचारणादिरहितः सर्वान्प्रतीक्ष्य स्थितः
थुत्वा यसिष्ठवचनं गुरुवाक्यमिति स्वयम्।
थुत्वा प्रोवाच भगवान्नामचन्द्रः समाहितः॥१०१

कारभारांश्व पर्यालोक्य पश्चात्समाधि भजेलार्थः ॥ ९८ ॥ यदा राम इति गुरुणा उक्तोपि लयं ब्रह्मेक्यं गतो बाह्यार्थश्रवणाभा-वाद्वागादिकरणचेष्टोपरमाच न किचिद्चे तदा रा वसिष्ठस्तच्छ-रीरं संकल्पेन प्रविश्य तदीयसुषुप्रानाख्या शनैहृदयपुण्डरीकं विवेश । प्रविश्य तदीयं विठीनं जीयोपाधि लिक्नं घनीकृत्य बीजान्तः प्रविधी वायुस्तदन्तर्गतमङ्करमिव बहिराचकर्षेति या-वत् ॥ ९९ ॥ तस्य बहिराकर्षणं तदाविभीवक्रमेण तत्र चिदा-भासाभिव्यत्तया तरकृतं क्षेत्रप्रकाशबाखार्थदर्शनादिकममाह-शक्तीति । प्रथमं प्राणादिबीजभूतायामाधारशक्ती ततः प्राणा-विभीवे तेषु ततो मनस आधिर्भावे तस्मिश्च प्रसक्तिचिदाभा-सभावेनातप्रवेशस्तं करोतीति शक्तिप्राणमनःप्रसक्तिकरणः। अतएव तत्प्रकाशात्मकस्तद्वपाधिको जीवः प्राणद्वारा सर्वनाडी-रन्ध्रेष्वनुप्रविदय सुपुष्टान्याविष्कृतानि सर्वाणि ज्ञानकर्मेन्द्रियल-क्षणानि करणानि येन तथाविधः सन् शनैनेत्रे प्रोन्मील्य बहि-रत्कृष्टान् पुज्यान् वसिष्ठमुख्यान् विद्वे। दृष्टा स्वयं कृतकृत्य-लानिर्मुक्तसर्वेषणः अतएव कृत्यस्यावस्यकर्तव्यस्य अकृत्यस्य त्याज्यस्य च व्यवहारस्य विचारणया गुणदोपचिन्तया आदिप-दात्तत्त्रयुक्तहानोपादानादिवृत्त्या च रहितः सन्नीटशं मामेते किं वस्यन्तीति सर्वानप्रतीक्ष्य स्थित इत्यर्थः ॥ १०० ॥ तदनन्तरं इति प्रायुक्तं रामराम महाबाहो इत्यादिवसिष्ठवचनं पुनस्तेनैव शानितं श्रुला इदं गुरुनाक्यमगुल्लक्यमिति पितृन्नातृनम्बादि-

श्रीराम उवाच । न विधेर्न निषेधस्य त्वत्त्रसादादयं प्रभुः। तथायि तब वाक्यं तु करणीयं हि सर्वदा ॥ १०२ वेदागमपुराणेषु स्मृतिष्वपि महामुने । गुरुवाक्यं विधिः प्रोक्तो निषेधस्तद्विपर्ययः ॥ १०३ इत्युक्त्वा चरणौ तस्य वसिष्टस्य महात्मनः। शिरसा धार्य सर्वात्मा सर्वान्त्राह घृणानिधिः १०४ श्रीराम उवाच। सर्वे शृणुत भद्रं वो निश्चयं नः सुनिश्चितम्। आत्मज्ञानात्परं नास्ति गुरोरपि च तद्विदः॥ १०५ सिद्धादय ऊच्चः। रामैषमेव सर्वेषां मनसि स्थितिमागतम्। १०६ | सर्वावस्थोऽपि श्रवणान्मुच्यते ब्रह्म गच्छति ॥ १११ त्वत्प्रसादाच सकलं संवादेन रदीकृतम्॥

सुखी भव महाराज रामबन्द्र नमोस्तु ते। वसिष्ठेनाप्यनुशाता गच्छामोऽद्य यथागतम् ॥ १०७ वाल्मीकिरुवाच । पवमुक्त्वा गताः सर्वे रामसंस्तवने रताः। रामचन्द्रस्य शिरसि पौष्पी वृष्टिः पपात ह ॥ १०८ एतत्ते सर्वमाख्यातं रामचन्द्रकथानकम्। अनेन फ्रमयोगेन भरद्वाज सुखी भव ॥ १०९ इति रघुपतिसिद्धिः प्रोदिता या मया ते वरमुनिवचनालीरत्नमालाविचित्रा। निखिलकविकुलानां योगिनां सेव्यक्ष्पा परमगुरुकटाक्षान्मुक्तिमार्गं ददाति ॥ य इमं श्रृणुयाश्चित्यं विधि रामचसिष्ठयोः।

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदुतोके द्वात्रिकात्साहरूयां संहितायां वालकाण्डे मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे रामव्युत्थानं नाम अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२८ ॥

प्रार्थनामपि थुला भगवान्सर्वज्ञः।स्वावतारप्रयोजनज्ञ इतियावत्। तदभ्युपगमेन समाहितः सन् प्रोवाचेखर्थः ॥१०१॥ १०२ ॥ विधिरवर्यानुष्टेयोऽर्थः । तद्विपर्ययस्तदतिश्रमणं तु निषेधः । **अवश्यहेय इत्यर्थः ॥ १०३ ॥ इदानी श्रीरामः परमपुरुषार्थ-**दानरूपस्य गुरुकृतोपकारस्य निष्कृतिमन्यामपश्यन् खशिरसि तचरणधारणव्याजेन स्वं गुरवे समर्प्य सर्वजनेभ्यः सर्वोत्ऋष्टं ज्ञानमाहारम्यं गुरुमाहातम्यं च खयं प्रत्यक्षमनुभृतं विश्वासदा-र्द्यायोपदिष्टवानित्याह—इत्युक्तवेति ॥ १०४ ॥ तद्विद आत्म-विद इति गुरुविशेषणम् । तदात्मतत्त्वं गुरूपदेशाद्वेत्तीति त-द्विदः शिष्यस्य गुरोः परं नास्तीति वा ॥ १०५ ॥ स्थिति निश्चयम्। संवादेन एतद्रन्थलक्षणेन लदुक्तिसंवादेन च॥१०६॥ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ रामचन्द्रस्य जीवन्मुक्तिविश्रान्तिपर्यन्त-

संवादकथालक्षणमानकं संजीवनममृतमिति यावत् ॥ १०९ ॥ उपसंहरति—इतीति । वरमुनेविसिष्टस्य वचनपहिलक्षणया रक्षमालया विचित्रा भृषिता इति उक्तरूपा रघुपतेर्जावन्मुक्ति-सिद्धिया मया तुभ्यं प्रोदिता प्रोक्ता निश्विलानां कविकुलानां योगिनां च सेव्यह्मा सा परमगुरकटाक्षाच्छ्वणादिना सेविता सती मुक्तिमार्गं प्रागुक्तभूमिकाकमं ददात्यारोपयतीलर्थः॥११० विधि संवादप्रकारम् । मोहमालिन्यरागद्वेपमहापातकोपपातका-दिसर्वदोपावस्थायुक्तोऽपि पुरुषः श्रवणादेव सर्वेदींपैर्मुच्यते शान्त्यादिगुणप्राप्तिकमेण बह्म गच्छति प्राप्नोति किं पुनरिवकारी-त्यर्थः ॥ १९९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्थप्रकारो निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धे अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२८॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिवाजकाचार्यवर्यश्रीमत्सर्वज्ञसरस्वतीपूज्यपादिशय्यश्रीरामचन्द्रसरस्वतीपूज्यपादिशय्य-श्रीगङ्गाधरेन्द्रसरस्वत्याख्यभिक्षोः शिष्येण श्रीमदानन्द्बोधेन्द्रसरस्वत्याख्यभिश्चणा विरिषते श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्थप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धं संपूर्णम् ॥

॥ निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्ध संपूर्णम् ॥

| | • | |
|--|---|--|

श्री: ।

योगवासिष्ठः।

श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशाख्यव्याख्यासंवितः ।

निर्वाणप्रकरणं उत्तरार्धम् ६। प्रथमः सर्गः १

8

ર

E

સ

श्रीराम उवाच।

नैष्कर्म्यात्करपनात्यागासनुः पतित देहिनः। कथमेतदतो ब्रह्मन्संभवत्याशु जीवतः॥ वसिष्ठ उवाच।

जीवतः कल्पनात्यागो युज्यते न त्वजीवतः । क्ष्पमस्य यथातस्वं श्रुण श्रवणभूषणम् ॥ अहंभावनमेवाद्युः कल्पनं कल्पनाविदः । नभोर्थभावनं तस्य संकल्पत्याग उच्यते ॥ पदार्थरसमेवाद्युः कल्पनं कल्पनाविदः । नभोर्थभावनं तस्य संकल्पत्याग उच्यते ॥ गभोर्थभावनं तस्य संकल्पत्याग उच्यते ॥

शिवमभयमनन्तसौस्यसिन्धुं हदि निहितं हितमस्तमोहजालम्। जगदुद्यनयक्षयप्रवीणं निरुपमबोधघनात्मदेवमीडे ॥ १ ॥

निर्ममा निरहंकारा निःसंकल्पविकल्पनाः । यथा जीवन्ति चेष्टन्ते मुक्ता युक्तिस्तथोच्यते ॥ २ ॥

पूर्वाधें श्रीरामसमाधिप्रदर्शनव्याजेनोत्तमाधिकारिणः श्रवणावृत्तिपरिपाकादेव साक्षात्कारक्षानोद्देन परमपदे सकृद्विश्रानितर्भवतीति दिशंतम्। तस्य दैवात्पुनर्व्यानेऽपि यथा अविरतं
तत्रैव विश्रान्तिरनायासेन सिध्यति तथोत्तरोत्तरभूमिकारोपणायोत्तरार्धमिदमारभ्यते। अत्रादौ रामः 'अहंममेति संविदत्र दुःखतो
विमुच्यते।असंविदन्विमुच्यते यदीप्तितं तदा चर॥'इत्यन्ते यदुः
कं तत्र सर्वकल्पनात्यागे कल्पनाधीनदेहधारणादिव्यवहारासिद्धिः
शक्कते—नैष्कर्म्योदिति । देहप्राणादिव्यवहन्तादिकल्पनात्यागाद्धेतोनेष्कर्म्योत्सर्विकियोपरमादेहधारकप्राणादित्यवहारासिद्धिः
शक्कते—नैष्कर्म्योदिति । देहप्राणादित्यहन्तादिकल्पनात्यागाद्धेतोनेष्कर्म्योत्सर्विकियोपरमादेहधारकप्राणादित्यद्येपरमे देहिनत्तनुराद्ध पति अत एत्रस्वदुक्तं तस्य जीवतो व्यवहारादि कथं
संभवतीत्यधः॥ १॥ न कल्पनाधीनं जीवनं येन तत्त्यागात्तनुपातः स्यात् किंतु भोजकप्रारक्षाधीनम् , कल्पनात्या एव
प्रत्युत जीवनाधीनजन्मति नोपजीवनं नाधत इत्यविरुद्धं किंत्वजीवनमेष विरुध्यत इत्याश्रयेन भगवान्वसिष्टः समाधते—जीवत हति । अस्य कल्पनात्यागस्य स्वरूपं यथा जीवनविरुद्धं न

योगः १३५

इदं विस्त्वित संवेगमाडुः कल्पनमुत्तमाः।
नभोर्थभावनं तस्य संकल्पत्याग उच्यते॥ ५
स्मरणं विद्धि संकल्पं शिवमस्मरणं विदुः।
तष्य प्रागनुभूतं च नानुभूतं च भाव्यते॥ ६
अनुभूतां नानुभूतां स्मृति विस्मृत्य काष्ट्यत्।
सर्थभेवाशु विस्मृत्य गृढस्तिष्ठ महामते॥ ७
सर्वास्मरणमात्रात्मा तिष्ठायातेषु कमसु ।
अर्थसुप्तशिशुरुपन्द इवाभ्यस्तोपपत्तिषु॥ ८
निःसंकल्पप्रवाहेण चक्रं प्रस्पन्दते यथा।
स्पन्दस्वक्रमस्यन्वध्यावसंस्कारवद्यात्तथा॥ ९

भवति तथा मया यथातत्त्वं वर्ण्यमानं शर्णवत्यर्थः ॥ २ ॥ अहंभावनं देहादिपरिच्छेदाध्यासम् । नमः अपरिच्छित्तत्रज्ञा-काशस्तद्रपस्यार्थस्य स्वपारमार्थिकस्त्रभावस्य भावनं प्रतिलंघानं **परिच्छेदा**ध्यासोच्छेदिलात्संकल्पसागर्स्तकृच्यते ॥ ३ ॥ ४ ॥ इदं देहादि सर्वे दर्थ वस्तु परमार्थसत्यमिति संनेगमिमा-नम् । तस्य नमःकार्यभूतचतुष्टयविकारलात्तत्वतो नमोर्ध ए-वैकः स्फरतीत्यर्थस्य भावनं पर्याखेचनं । इदं द्वयमपि भ्रान्ता-नुभवविरुद्धत्वेऽपि न जीवनविरुद्धम् । जीवत एव श्रान्तिनितृ-त्तिदर्शनादिति भावः ॥ ५ ॥ एवं स्मर्णात्मकाध्यासियरोधिन-स्त्रक्षिरोधस्यापि न जीवनविरोधितेत्याशयेनाह —स्मरणमिति । भूतविषयमनुभूतम्। भाविविषयमननुभूतम् । स्परणत्रहणं परोक्ष-वृत्तिमात्रीपलक्षणम् ॥ ६ ॥ स्मृतिं सारणं सर्वमन्त्रीमत्यादिवः-त्त्यन्तरं च विस्मृत्य, अपरिन्धिननह्याकारनिलीनः काष्ट्रवद्दहो निश्वलक्ष तिष्ठ चिरं जीव । तथाच ब्रह्मारमभावेन चित्तवृत्ति-निरोधो योगिनामायुर्वच्या प्रत्युत जीवनहेतुरेवेति गावः ॥०॥ व्यवहारकाले तु स्मृतिमात्रनिरोधः कार्य इलाह—सर्वेति । **रढाभ्यस्तव्यवहारे न पू**र्वापरस्मृतिप्रय**ना**द्यपेक्षास्तीत्याशये-नाह्-अर्थेत्यादिना । अभ्यस्तोपपत्तिषु पूर्वाभ्यासमात्रेणोपपः-द्यमानेष्वत्यर्थः ॥ ८ ॥ विनाप्रयोजनोर्देशं पूर्वसंस्कारमात्रेण

अविद्यमानचित्तस्त्वं सस्वसंस्कारमागतः। प्रवाहपतितेष्त्रेव स्पन्दस्व स्वेषु कर्मसु ॥ १० अर्घ्यवाहुर्विरौम्येप न च कश्चिच्खुणोति मे । असंकल्पः परं श्रेयः स किमन्तर्न भाव्यते ॥ ११ अहो मोहस्य माहात्म्यं यदयं सर्वेदुःखहा । चिन्तामणिर्विचाराख्यो हृत्स्थोऽपि त्यज्यते जनैः१२ अवेदनमसंकरपस्तन्मयेनैव भूयताम्। एतावत्परमं श्रेयः स्वयमेवानुभूयताम् ॥ १३ किल तुर्णी स्थितेनैव तत्पदं प्राप्यते परम्। परमं यत्र साम्राज्यमपि राम तृणायते ॥ १४ गम्यदेशैकनिष्ठस्य यथा पान्थस्य पादयोः। रपन्दो विगतसंकल्पस्तथा स्पन्दस्य कर्मसु ॥ १५ सर्वेकर्मफलाभोगमलं विस्मृत्य सुप्तवत् । प्रवाहपतिते कार्ये स्पन्दस्व गतवेदनम् ॥ १६ स्पन्दस्वारुतसंकर्षे सुखदुःखान्यभावयन्। प्रवाहपतिते कार्ये चेष्टितोन्मुक्तदाष्पवत्॥ १७ रसभावनमन्तस्ते मालं भवत् कर्मसु । दारुयन्त्रमयस्यव परार्थमिव कुर्वतः॥ १८ नीरसा एव ते सन्त् समस्तेन्द्रियसंविदः। आकारमात्रसंलक्ष्या हेमन्तर्ती लता इव ॥ १९ बोधार्कपीतरसया स्पन्दषङ्गगंसत्तया। यम्बस्पन्दोपमस्तिष्ठ वहृयेव दिशिरे द्वमः॥ २० चिदान्तररसान्येव प्रवृत्तान्यपि धारय।

कृतकार्यं कुलालचकं यथा यावद्वेगक्षयं प्रस्पन्दते श्रमति तथे-त्यर्थः ॥ ९ ॥ सत्वं निर्वासनं मनस्तदीयं संस्कारवेगमागतोऽनु-गतः सन् रागादिदोषक्षयात्रोच्छुङ्खलप्रवृत्तिप्रसक्तिरित्याशये-नाह-प्रवाहेति ॥ १० ॥ एवं प्रश्नं समाधाय बहुकुलोऽपि पथ्यं बदितव्यमिति न्यायेन प्रागुक्तमेव संकल्पत्यागादि श्रेयः-साधनमित्युद्धोषयन्पुनःपुनराह—कर्ध्वबाहुरित्यादिना ॥११॥ ॥ १२ ॥ अवेदनं दृश्यदर्शननिर्भुक्तमात्मतत्त्वं तवेव मु-ख्योऽसंकल्पः ॥ १३ ॥ तृष्णीं संकल्पचेष्टां विना ॥ १४ ॥ प्राक्तनसंकल्पप्रयुक्तित्रयावेगवशादेव यावत्तरक्षयं व्यवहारसिद्धी प्रागुक्तं द्रष्टान्तान्तरं पुनराह—गम्येति ॥ १५ ॥ अवेदनम-संकल्प इति यदुक्तं तद्यवहारकालेऽप्युपपादयति—सर्वेति ॥ १६ ॥ यथा खतक्षेष्ठितोनमुक्तं शष्पं बालतृणं बाय्वादिप्रवा-इपतिते तृणान्तरसंयोगवियोगादिकार्ये स्पन्दते तद्वत् ॥ १०॥ यथा परेषां कीतुकार्थ नृत्यादिकुर्वत इव स्थितस्य दाहपुत्रिका-यश्रस्य नटवच्छुङ्गारादिरसभावनं नास्ति तद्वसवापि कुर्वतो विषयसुखे मूर्खस्येव रसभावनं कातुकबुद्धिर्माभूदिखर्थः ॥१८॥ ॥ १९ ॥ पद्भर्गः पश्चकोशसंबलितचिदाभासः । संमनस्कः प्राणवर्गी ज्ञानेन्द्रियवर्गः कर्मेन्द्रियवर्गी ज्ञानकर्मेन्द्रियसहि-्तान्तः करणचतुष्टयम् । षाद्वकौषिकं शरीरं चेति षद्षव्यर्गा- स्वयक्षेनेन्द्रियाण्याद्य हेमन्तर्तुस्तरूनिय ॥ २१ सरसेन्द्रियवृत्तेस्ते कुर्यतोऽकुर्वतस्तथा। संसारानर्थसार्थोऽयं न कदाचन शाम्यति ॥ २२ निःसंकल्पमरुज्याला यस्त्राम्बुरूपन्दवद्यदि। स्पन्दसे तदनन्ताय श्रेयसे परिकल्पसे॥ २३ पतनेव परं धैर्य जनमञ्बरनिवारणम्। यदवासनमभ्यस्ता निजकर्मसु कर्तृता ॥ २४ अवासनमसंकर्षं यथाप्राप्तानुवृत्तिमान् । शनैश्रकभ्रमाभोग इव स्पन्दस्व कर्मसु ॥ २५ मा कर्मफलबुद्धिभूमी ते सङ्गोस्त्वकर्मणि। उभयं वा त्यजैतत्त्वमुभयं वा समाश्रय॥ २६ बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपादिदमुच्यते। संकल्पनं मनोबन्धस्तदभाषो विमुक्तता ॥ २७ नेह कार्यं न वा कार्यमस्ति किंचित्र कुत्रचित्। सबे शिवमजं शान्तमनन्तं प्राग्वदास्यताम्॥ पद्यन्कर्मण्यकर्मत्वमकर्मणि च कर्मताम्। यथा भूतार्थचिद्रपः शान्तमास्त्व यथासुखम् २९ अवेदनं विदुर्योगं चित्तक्षयमकृत्रिमम्। अखन्तं तन्मयो भूत्वा तथा तिष्ठ यथासि भोः ३० समे शान्ते शिवे सूक्ष्मे द्वैतैक्यपरिवर्जिते। ततेऽनन्ते परे शुद्धे किं केन किल खिद्यते ॥ 38 नोदेतु त्वयि संकल्पो मध्भूमाविवाङ्करः। इच्छा नोदेत भवति लतिकेवोपलोदरे ॥ 32

स्तेषां सत्तया । वह्नया वेष्टितः शिशिरे हुम इव नीरसः ॥२०॥ ननु नीरसस्य षद्भगस्य कथं जीवनं तत्राह-चिदिति । अना-वरणभूमानन्दरूपा चिदेवान्तरो जीवनपुष्ट्यादिहेतू रसो येषां तानि प्रवृत्तानि खभावाद्वाह्यरसाखादे प्रवृत्तान्यपि खयकेन निवार्य चिदान्तररसान्येष कृत्वा धारयेलार्थः । इन्द्रियप्रहणं पद्वर्गोपलक्षणम् । यथा हेमन्तर्नुस्तरून् बाह्यजलाभावेऽप्या-न्तरेणैव रसेन जीवयति तद्वदित्यर्थः ॥ २१ ॥ इन्द्रियवृत्तीना-मनिवारणे सरसत्वे च किं स्यात्तत्राह—सरसेति ॥ २२ ॥ निःसंकल्पमेव महतो ज्वालाया यन्त्रस्याम्बनश्च यथा स्पन्द-स्तथा यदि स्पन्दसे । परिकल्पसे समर्थः स्याः ॥ २३ ॥ २४ ॥ चके भ्रमतीति भ्रम आमोगः संनिवेश इव शनैरुत्तरोत्तरमुपश-मशीलः स्पन्दस्व ॥ २५ ॥ कर्मफले आसिफबुद्धिर्यस्य तथा-विधो माभः । अकर्मणि कर्मत्यागेऽपि तत्फलासक्तिलक्षणः सङ्गो मास्त । फलासङ्गाभावे कमंकरणे तत्त्यागे च न विशेष इत्या-शयेनाह-उभयमिति ॥ २६ ॥ २० ॥ अकार्य त्याज्यम् । प्राग्वद्यथास्थितमेव आस्पतां स्थीयताम् ॥ २८ ॥ अकर्मत्वं निकियम्बात्मताम् । अकर्मणि तादशम्बाभावस्थितौ कर्मता-मवश्यकर्तव्यताम् ॥ २९ ॥ अवेदनं प्राग्व्याख्यातम् ॥ ३० ॥ निसान्दं तूष्णीमवस्थानमामवातजडीकृतसर्वोक्ससेव खेदायैवेति अवेदनस्य शान्तस्य जीवतो वाप्यजीवतः।
नेह किंचित्कृतेनार्यां नाकृतेनापि कश्चन॥ ३३
यत्कर्माकर्म शान्तेऽन्तः शाश्वताभेदकपिणि।
न कर्मणि च कर्माणि न कर्तर्यपि कर्तृता॥ ३४
अहंममेति संविद्घ दुःखतो विमुच्यसे।
असंविद्विमुच्यसे यहीप्सितं तदाचर॥ ३५

अहं ममेति नास्त्यलं यदस्ति तच्छिवं परम्।
परात्परं त्यिदं शिवादशब्दमर्थरूपकम्॥ ३६
यहृदयते जगदिदं खलु किंचिदेतदेखोऽङ्गदत्वमिव भाति न विद्यमानम्।
अस्य क्षयं विदुरवेदनमेव पश्चात्सत्यं तदेव परमार्थमथावशिष्टम्॥ ३७

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे इच्छादिचिकित्सायोगोपदेशो नाम प्रथमः सर्गः॥१॥

ब्रितीयः सर्गः २

8

२

वसिष्ठ उवाच।
अभ्रेतेक्यं विमननं शान्तमात्मन्यवस्थितम्।
यथा पङ्कमयं सन्यं तथा शिवमयं जगत्॥
मनोहंकारबुद्ध्यादिचित्तमेव च तन्मयम्।
कालाकारिकयाशब्दशिकसंदर्भसंयुतम्॥
शिवपङ्कमया पव रूपालोकमनःक्रमाः।
तन्मयत्वादनन्तत्वादतः किं केन चेत्यते॥

शक्कां वारयति-समे इति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कृतेन अकृतेन वा लौकिकवैदिककर्मणा जीवत ऐहिकोऽजीवत आसुध्मि-कोऽप्यर्थः पुरुषार्थो ास्ति ॥ ३३ ॥ कुतो नास्ति तत्राह---यदिति । यद्यस्मात्कारणात्कर्माकर्मोभयबाधावधी तदुभयात्म-भूते च शाश्वतामेदरूपिण लयि प्रातिभासिककर्मात्मना विवर्त-मानेऽपि वस्ततः कर्मता नास्ति तादशकर्त्रात्मना विवर्तमानेऽपि कर्तृता नास्ति । यस कर्मकर्तृतादै। सत्यताबुद्धिस्तस्यव कर्मफ-लमिति श्रद्धादिवद्धिकारिविशेषणविधायकशास्त्रेण बोधनादिति भाषः ॥ ३४ ॥ अतएव देहादावहंममेति संवेदनवत एव वि-धिनिषेधशास्त्राधिकारात्कर्मकृतो बन्धो नेतरस्येति प्रागुक्तमि-त्याह--अहंममेति ॥ ३५ ॥ पराद्भमानन्दाख्याच्छिनात्परम-न्यदिदं दृश्यमर्थेरूपमिवार्थेरूपकं प्रातिभासिकं जगदशब्दमनिर्व-चनीयमवस्त्वेवेत्यर्थः ॥ ३६ ॥ एतदेव सप्टमाह—यदिति । किंचित् इत्थमीदृशं चेति निर्वचनशब्दश्रून्यम् । एतद्वाधायि-ष्टानं तु अथ तदबोधबाधानन्तरं पथादवशिष्टमवेदनं वेद-नाविषयमेवानुभवनिष्ठाः सत्यैकरूपं परमपुरुषार्थरूपं विदुरि-त्यर्थः ॥ ३७ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे प्रथमः सर्गः॥ १ ॥

निरूप्यतेऽत्र प्रथमं सर्वे शिवसयं जगत्। कर्मवीजं तथान्विष्य समूखं विनिवार्यते ॥ १ ॥

'सर्व शिवमयं शान्तमनन्तं प्राग्वदास्यताम्' इति यदुक्तं तदत्र प्रथममुपपादिवतुं प्रतिजानीते—शद्वेतैक्यमिति । आ-स्मनि पारमार्थिकस्वभावे तत्त्वहद्याः श्रवस्थितम् ॥ १ ॥ मातृमेयप्रमाणादिदेशकालौ दिगादि च।
भाषाभावविषतीदिशिवपङ्कमयात्मकम् ॥ ४
अहंममेत्यतः साराक्षेतरत्परमेश्वरात्।
असंसक्तमतिस्तिष्ठ हा शिलोदरमौनवत्॥ ५
श्रीराम उवाच।
अहंममेत्यसदृषं अस्याभावयतः प्रभो।
अञ्चभं कर्मणां त्यागादनुष्ठानाम्च किं शुभम्॥ ६

यग्रद्धि चिद्वास्यं तत्ति बिद्विवर्तला श्रिन्मय मिलन्तः करणचतुष्टये करेण दर्शयति—मन इति । प्रथमं हि चितश्चेत्योन्मुखलल-क्षणं मननं चिद्याप्तमेव ततस्तद्मिमानाध्यवसायस्मरणकामसं-कल्पादिश्त्तयस्तथैव चिद्याप्ताः सर्वानुभवसिद्धाः। तथा चित्रेत्य-संबन्धलक्षणः कालश्रेत्याकारस्तकियाणामसंस्थानसहितं सर्वे-मन्तःकरणसंसरणं साक्षात्साक्षिवेद्यलाच्छिषमयमिति बोर्ड् श-क्यमित्यर्थः ॥ २ ॥ एवं बहिरिन्दियतद्वारकवाह्यदर्शनतद्विषये-ष्वपि चिद्याप्तिप्रयुक्तैवापरोक्षप्रयेति तञापि शिवमयलमेव विवेकिभिद्रेष्टं शक्यमित्याशयेनाह—शिलित । रूपालोकप्रहणं शब्दाद्यालोचनानामप्युपलक्षणम् । मनःक्रमा याह्यसविकल्पक-हानोपादानादिबुद्धयस्तद्विषयाथ । एवं शिवमयखदर्शने शिव एव सर्वत्रिपुटीरूपेण प्रथते न ततो वस्त्वन्तरमस्तीत्याह-त-न्मयलादिति ॥ ३ ॥ तदेव विशदयति—मात्रिति ॥ ४ ॥ सर्वविवर्तानहं ममेति द्वैरूप्येणैव संगृह्य तत्र चिद्याप्तलपर्यालो-चने तत्सारतन्मात्रखपरिशेषात्तत्र स्थितिः सुरुभैत्याशयेनाह---अहमिति । त्रिलोदरे यस्त्रसिद्धं वागादिचेष्टाश्रून्यललक्षणं मौनं तद्वत् । नामरूपकर्मात्मके प्रपश्चे नामरूपयोरपरोक्षचिद्यास्यैव स्फरणाच्छिवमयत्वं निर्णाय तत्र बाधेन तत्स्वरूपेऽवरथानं सु-करम् ॥५॥ कर्मणां तु पुण्यपापलक्षणानामनन्तकोटिजन्मसंचि-तानामपरोक्षतया भानादर्शनाश्र शिवमयलदर्शनेन बाधिसिद्धि-रिति तन्निवारणे परिशेषादामरणं निश्वेष्टावस्थानलक्षणस्तत्त्याग एबोपायः । नहि शानिनः कर्मकरणेन किंचित् फलमपेक्षितं नवा नित्यनैमित्तिकत्यागे प्रत्यवायप्रसिक्तरित येन तुष्णीमव-

१ अवमर्थी मूलस्थकर्मणीत्यस्य. २ अयमर्थी मूलस्यकर्मणी-

त्यस्य भावप्रधाननिर्देशात्.

वसिष्ठ उद्याच। पृच्छामि यदहं तत्त्वं कथयाशु ममानघ। यदि जानासि तस्त्रेन कर्म तावत्किमुख्यते ॥ S विस्तारः कर्मणः कीरङ् मृलं तस्य च किं भन्नेत्। नारानीयं च निपूणं कथं कथय नार्यते॥ श्रीराम उवाच। यद्मारानीयं निपुणं तन्नृनं च विनाइयते। मूलकापेण भगवन्न शाखादिविकर्तनैः॥ द्युभाद्युभं नादानीयं स्वकर्म खलु घीमता। मुलकापविनारान तश्च नष्टं भवत्यलम् ॥ 80 कर्मधृक्षस्य वस्यामि ब्रह्मन्मूलानि मे शृणु। यन्निकापेण निर्मूलो न स भूयः प्ररोहति॥ 8 8 देहस्ताचद्यं ब्रह्मन्कर्मवृक्षः समुरिथतः। **रूढसंसारविपिने विचित्राङ्गलताञ्चितः** ॥ १२ कर्मबीजं तरोरस्य सुखदुःखफलावलेः। क्षणतारुण्यकान्तस्य जराकुसुमहासिनः॥ १३ मुहुर्तं प्रतिकालोप्रमर्कटध्यंसिताकृतेः। निद्रा हेमन्तजठरलीनस्वप्रदलोद्गतेः॥ १४ स्ववार्घकशरच्छान्तशीर्णेहापर्णसंततेः । जगजङ्गलजातस्य कलत्रोपतृणावलेः॥ १५

स्थानं न सिद्धोदिति संभावनया रामः प्रच्छति-अहमिति ॥ ६ ॥ सत्यमेव तव नैष्कम्ये सिख्येद्यदि मूलेन सह त्वया तत्त्यकुं शक्यते । मूछं तु तथा तव दुस्त्यजमेवेति दर्शयितुं वसिष्टो रामेण कर्मणां कि मुलमिति निश्चित्येत्थं पृच्छचते इति परीक्षार्थ राम लया कर्मणः खरूपं तस्य फलात्मको वि-स्तारस्तन्मुलं तत्र नाशयोग्यांशस्तदुपायश्व कीदशो निश्चित इति पृच्छति--पृच्छामीति द्वाभ्याम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ मूलकाषेण मूलोच्छेदेन ॥ ९ ॥ तत्र खरूपं तन्नाशत्रकारं च रामः खा-भित्रेतमाह—शुभाश्चभमिति । पुण्यपापरूपमित्यर्थः ॥ १०॥ तृतीयप्रश्रस्योत्तरमाह—कर्मवृक्षस्येति । तत्रादी 'अथ कर्मणा-मारमेरयेतदेषामुक्यमतो हि कर्माण्युत्तिष्ठन्ति' इति श्रुचा नि-ष्कृष्य दर्शितं मूलं प्रथमं दर्शयति---ब्रह्मश्रिति । यस्य निका-षेण । अनशनादिना मरणेनेति यावत् ॥ ११ ॥ ऐहिककर्ममूळं देहं प्राक्तनकर्मणो विस्तारोऽपि भवतीति द्वितीयप्रश्नमपि तस्य कर्मनृक्षतया वर्णनेन समाधत्ते—देहस्तावदिखादिना । विचि-त्राभिर्हस्तायन्न उक्षणामिर्लताभिः शाखाभिरिष्वतो विराजमानः ॥ १२ ॥ तस्य प्राक्तनं कर्मवीजम् ॥ १३ ॥ मुहूर्ते प्रति प्रति-मुहूर्त कालरूपेणोप्रमर्कटेन हर्षयिषादरोगजरादिविकारचेष्टाभि-ध्वंसिताकृतेर्निद्रालक्षणे हेमन्तजठरे लीनाः संकुचिताः खप्नल-क्षणा दलोद्गतयः पर्णनिर्ममा यस्य ॥ १४ ॥ स्वस्य वर्षिकल-क्षणे शरदीव शरदि शिशिरान्ते शान्ता उपरताः शीणीध ईहाश्रेष्टास्तहक्षणाः पर्णसंततयो यस्य । कलत्रं भार्यादिपोष्यव-र्गस्तद्रूपा उप समीपप्रहृढा तृणावलिः कक्षो यस्य ॥ १५ ॥

पल्लवावयवा हस्तपादपृष्ठादयोऽरुणाः । पत्राणि तजुवृत्तानि सुरेखाणि चलानि च ॥ १६ अरुणाः पवनालोला मृद्यो मस्णमूर्तयः। स्नाय्वस्थिदिग्धसरसा अङ्गल्यो बाळपल्लबाः १७ मृद्यो मस्णतीक्ष्णामा वृत्ता रुढाः युनः पुनः। द्वितीयेन्द्रकलाकाराः कलिकानखपद्भयः॥ १८ कर्मणः परिफुलस्य देहरूपतयेति हि । कर्मेन्द्रियाणि मुलानि दुष्टानि व्रन्थिमन्ति च ॥ १९ स्थिरास्थिग्रन्थिनद्धानि पङ्कमग्नात्मकानि च । वासनारसपीतानि निजरक्तरसानि च॥ २० गुल्फवन्ति रढाङ्गानि सुत्विश्च मस्णानि च। तेपामपि च मुलानि विद्धि बुद्धीन्द्रियाणि हि ॥ २१ सुदूरमपि जातानि पञ्चस्तम्बानि तानि तु । वासनापङ्कमग्नानि रसवन्ति महान्ति च॥ २२ तेषां भूलं वृहत्स्तम्भं मनो व्याप्तजगञ्जयम्। पश्चस्रोतःशिराकृष्ट्युक्तानन्तरसद्रवम् ॥ 53 तस्य मूलं विदुर्जीवं चेत्योन्मुखचिदात्मकम्। चेत्यस्य चेतनं मूलं सर्वमूलैककारणम्॥ 28 चितेस्तु ब्रह्म मूलं यत्तस्य मूलं न विचते। अनाष्यत्वादनन्तत्वाच्छुद्धत्वात्सस्यरूपिणः ॥ २५

हम्तयोः पादयोश्व पृष्ठानि सृद्नि आदिपदादोष्ठी कर्णी जि-द्वेत्यादयस्तस्य अरुणास्तामवर्णाः पत्नवरूपा भवयवाः । अल्पा-रणानि तु तनुश्तानि सुरेखाणि च हस्तपादतळानि ईषरकठो-रलात्पत्राणि ॥ १६ ॥ अन्तःस्नाय्वस्थिदिग्धलात्सरसा रम्या अङ्गल्यस्तस्य पवनालोठा बालपह्नवाः ॥ १७ ॥ छिन्ना अपि पुनःपुना रूढाः प्रादुर्भूता नखपङ्कयस्तस्य कलिकाः कोरकाः ॥ १८ ॥ इति देहवृक्षरूपतया परिफुलस्य प्ररूढस्य प्राक्तनक-र्मणः कर्मेन्द्रियाणि मूलानि । तेषु तहमूलधर्मान्दर्शयति—दु-ष्टानीति । तेषु यानि सच्छिदाणि तान्यासङ्गकामादिसपंदुष्टानि यान्यन्छिद्राणि तानि प्रन्थिमन्ति ॥ १९ ॥ तानि पुनर्यथा-योगं विशिनष्टि-स्थिरेति । पङ्को नाडीषु पूर्णोऽत्ररसन्तन्ममा-त्मकानि ॥ २० ॥ तत्र पादेन्द्रियाणि गुल्फवन्ति । सुलिश्व शोभनलक्संवृतानि अतएव मस्णानि । तेषां मुलान्तरा-ण्याइ—तेषामपीति ॥ २१ ॥ सुदूरस्थविषयं प्रस्पपि जातानि प्रातुर्भूतानि । देहाद्वहिर्विषयदेशं गलापि प्रहीतुं समर्थानीलयैः। पश्चस्तम्बानि नेत्रगोलकादिपश्चविधस्थानाश्रितानि । कर्मेन्द्रिय-वदेव स्वस्वविषयवासनापद्वभमानि । अतएव तत्र रसवन्ति । महान्ति निप्रहीतुमशक्यानि ॥ २२ ॥ पश्चेन्द्रियस्रोतोरूपाभिः शिराभिरन्तराकृष्टा उपभोगोत्तरं मुक्ताक्ष अनन्ता रूपादिरस-इवा येन ॥ २३ ॥ तस्य मनसोपि मूर्ल चेत्योन्सुखी चिदाभा-सभावेन चेत्यप्रवणा या तेजोबनप्रविष्टा वित्तदात्मकम् । तत्र चेलांशस्य चेतनमविद्याशबला चिन्मूलम् ॥ २४ ॥ चितिबदा-भासांशस्य तु विम्बभूतं बद्धा चैतन्यमेव मूलम् ॥ २५ ॥ २६

२७

२९

सर्वेषां कर्मणामेवं वेदनं बीजमुत्तमम् । स्वक्षं चेतयित्वान्तस्ततः स्पन्दः प्रवर्तते ॥ मुने चेतनमेवाद्यं कर्मणां बीजमुच्यते । तस्मिन्सति महाशाखो जायते देहशाल्मिलः पत्तचेतनशब्दार्थमावनावितं यहि । तत्कर्म बीजतामेति नोचेत्सत्परमं पदम् ॥ चितिश्चेतनशब्दार्थमायनावित्ता यदि । तत्कर्म बीजतामेति नोचेदाद्यं परं पदम् ॥ तस्माद्वेदनमेवेह कर्म कारणमास्त्रतेः । यदेतत्कर्मणां प्रोक्तं त्वयेवोक्तं मुनीश्वर ॥ वितिष्ठ उवाच ।

वासप्र उवाचा अस्य राघव स्हमस्य कर्मणो वेदनात्मनः। कस्त्यागः किमनुष्टानं यायदेहमिति स्थितम्॥३१ यचेत्यते नु तेनाशु वहिरन्तश्च भूयते। सत्याकारमसत्यं वा भवत्वाहितविश्रमम्॥ ३२ न चेत्यते चेत्तव्रं भ्रमादसाहिमुख्यते। भ्रमः सत्योस्त्वसत्यो वा कि विचारणयानया ३३ एतचेतनमेवान्तर्विकसत्युद्धवभ्रमः। वासनेच्छामनःकर्मसंकल्पाद्यमिधात्मभिः॥ ३४

वंदनं चेत्योन्मुखचित् । तचाहद्वारादितादातम्यापन्नं कर्तृखरूप-महिमिति चेतियत्वा कियात्मकस्पन्दः संस्तत्फलाय प्रवर्तते ॥ २३ ॥ चेतनं जीवचिदेव ॥ २७ ॥ एतजीवचैतन्यमहङ्गा-रादिसंवलनेन कर्नचेतनोऽहांमेति शब्दार्थभावनयोद्बद्या यदि संबक्तितं तत्तदेवेत्यर्थः । कर्मणां बीजतां मूलताम् ॥ २८ ॥ तदेव सप्टमाह—चितिरिति । विलता विष्टिता । तत् भावना-रांबलितस्यम् ॥ २९ ॥ उक्तार्थस्य प्रामाणिकतासिद्धये गुरुवा-क्यसंवादिलोक्तयोपसंहरति—तस्मादिति । आकृतेर्देहाद्यहंभा-वाकारस्य स्वस्य वेदनभेव कर्मणां कारणम् । मया यदेतत्क-मेंगां मूलं प्रोक्तं तत्प्राक्लयेवोक्तं लद्वजनमालम्ब्यवेदं मया प्रोक्तमित्यर्थः ॥३०॥ एवं लया वर्णितं कर्ममूळं न तूल्णीमव-स्थानेन देहत्यागेन वा त्यक्तं शक्यमिति नखदुत्प्रेक्षितरीत्या कर्मनिवृत्तिः संभवतीत्याशयेन वृत्तिष्ठ उवाच-अस्येति। याव-देहं याबदुपाधि ॥ ३१ ॥ तस्मिन् सति बाह्यान्तरदृश्याध्यासो दुर्निवार इत्याह—यदिति । यदातेन बाह्यमाभ्यन्तरं वा चे-त्यते तेन तेन दर्येन भूयते उद्भवः प्राप्यते । नु इति संभावने ॥ ३२ ॥ भुषुत्यादिकाले न चेल्यते चेत् । 'तीर्णी हि तदा सर्वाञ्छोकान् हृदयस्य भवति' इति श्रुतेस्तथैवानुभवाशेति भावः । नन्दसत्यभ्रमेणास्य का क्षतिस्तत्राह—श्रम इति । बाधाभावे असल्बदुःखस्याप्यनुभवे सल्बविशेषादिति भावः ॥ ३३ ॥ एतजीवचेतनमेवापाथिकैर्वासनादिनाममिरुद्भवश्रमेः संसारात्मना विकसति ॥ ३४ ॥ नतु तर्हि प्रबोधेन सप्रतिनि-म्बहेत्वितोपाधिर्निरसनीयस्तत्राह-प्रबुद्धस्येति ॥ ३५ ॥ तासाम तृष्णीमावेन देहत्यागेन वा कर्मीपरमः कर्मत्यागः

प्रबुद्धस्याप्रबुद्धस्य देहिनो देहगेहके। आदेहं विद्यते चित्तं त्यागस्तस्य न विद्यते ॥ ३५ जीवतां तस्य संत्यागः कथं नामोपपद्यते । केषलं कर्मशब्दार्थभावनाभावने सति॥ 38 कर्माकर्मत्वमुत्स्ज्य स्वयमेष भवत्यजम्। असंभवति संत्यागे कर्मणी यः करोति हि॥ 30 इदं कर्तव्यतात्यागं न किंचित्तेन तत्कृतम्। बोधादिदन्तासंत्रित्तेः स्त्रयं निर्लयनानु यत् ॥ ३८ जगतस्तं विदुस्यागमसङ्गं मोक्षमेव च। वेदनं सति संवेधे सर्गादावेच वेधहक ॥ 39 नोत्पन्ना विद्यते नेव तस्मार्तिक केव वेदनम्। वेद्योन्मुखत्वं संत्यज्य रूपं यद्वेदनस्य वै॥ 80 न वेदनं तन्नो कर्म तच्छान्तं ब्रह्म कथ्यते । चेतनं प्रोच्यते कर्म संस्रुत्याभ्रविकासितम् ॥ ૪શ अचेतनं विदुमोंक्षं क्षं प्रत्येवोपदेशगीः। त्यागो हि कर्मणां तस्मादादेहं नोपपद्यते ॥ કર यस्तु संपूज्यते कर्म तन्मूलं तैर्न मुच्यते । मूलं स्वकर्मणः संविन्मनसो वासनात्मनः॥ 83 सा चादेहं समुच्छेनुमृते बोधान्न शक्यते।

किंतु यथाप्राप्तव्यवहारकालेऽप्यसङ्गाद्वितीयकृटस्थविन्मात्रोऽहं नेव किंचित्करोमीति निष्कियात्मस्यभावस्थित्या कर्मशब्दार्थ-भावनाया अभावने अनुद्भवे सति विनापि यम्नं कर्माकर्मलवि-कल्पमृत्सञ्च केवलं खयमेव भवतीत्वर्थः ॥ ३६ ॥ इ-तोऽन्यथा तु कर्मत्यागो तुष्कर इत्याह-असंभवतीति ॥३०॥ वोधात्सर्वदैतवाधेन कर्मणोऽपि बायलक्षणस्त्यागस्त् कुर्वतोऽप्य-विरुद्ध इत्याशयेनाह—योपादिति । इदंतासंवित्तदृश्यप्रतिभासस्य स्वयमेव विलयनाद्वाधात्त यदत्यन्तासत्त्वं तं जगतस्त्यागम् ॥ ३८ ॥ नन् बोधाद्वेद्यमेव बाध्यते न वेदनं तत्कथं तद्वाध उच्यते तत्राह—वेदनमिति ॥ ३९ ॥ साच वेद्यहक् तत्त्व-दशा नोत्पन्ना नेव विद्यते । उपाधिनाधे चिदाभासस्य पृथगन-वस्थानादिति भावः । यत्तु चिदाभासलरूपं वेद्योन्मुखत्वं सं-त्यज्य शुद्धचिदात्मकं रूपं शिष्टं तम्न द्वैतवेदनं यतस्तरकर्म-क्रिया नो । येन भावल्युडन्तविद्धालर्थः स्यादित्यर्थः । किंतु ब्रह्मेवेलाह्—वेद्योन्मुखलमिति ॥ ४० ॥ यत्तु सात्मकं चेतनं तत्कर्म क्रियारूपमेव प्रोच्यते यतस्तत्सं-बुद्धाद्यपाधिकारकव्यापारेण जलादी म्बितमश्रमाकाशमिव विकासितम् ॥ ४१ ॥ अतएव मोक्षम-चेतनं चिदाभासशून्यमेव विदुरनुभवनिष्ठाः । तेषां इं विवे-किनं शिष्यं प्रति उपदेशगीरुपदेशवाणी च इति एवंरूपैव श्रूयत इलार्थः । इत्थं च यावहेहं सुखेन व्यवहारः सिद्ध इलाशये-नाह-खाग इति ॥ ४२ ॥ वासनात्मनो मनसः संबन्धिनी चिदाभाससंवित् ॥ ४३ ॥ कर्ममूलान्यन्यान्यपि कामवासना-

१ पिकलनादिति पाठः.

राम केवलमेषान्तः कर्ममूलकरा परा॥ ४४ सूक्ष्मसंविदसंविस्या स्वयक्षेन निकन्स्यते। येन संविदसंविस्या स्वयक्षेन विचार्यते॥ ४५ तेन संस्तिवृक्षस्य मूलकायो वितन्यते॥ ४६

अचेतनाकाशमनन्यदेकं तदेवमस्ति त्विदमथेहीनम्। तद्योमरूपं यत पतदेवं निरामयं चेतनसारमाद्यः॥

ઇ૭

इस्रार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे कर्मबीजदाहयोगोपदेशो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

श्रीराम उचाच ।
अवेदनं वेदनस्य मुनीन्द्र कियते कथम् ।
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥ १
वासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
यदा तदैव सुकरं वेदनावेदनं स्वयम् ॥ २
पतौ वेदनदाद्यों रञ्जुसपेभ्रमोपमा ।
असस्याद्यदितौ विद्धि मृगतृष्णाम्भसा समा ॥ ३
अबोधस्त्वनयोः श्रेयान्बोधो दुःखाय चैतयोः ।
तस्नात्सदेव वुद्धस्य माऽसद्बुद्धस्य राघव ॥ ४
जन्तोवेदनदाद्यार्थबोधो दुःखकरः परः ।

दीनि करोतीति कर्ममूलकरा । परा कर्नृलात्तरकारिषु श्रेष्ठा च ॥ ४४ ॥ तस्मान्मदुक्त एव कर्मलागोपाय इत्याशयेनोपसंह-रित—सूक्ष्मेति । येन चिदाभासरूपा संवित् असंवित्या मूला-क्रानेन सह स्वयनेन तत्त्वं बुद्धा विचार्यते रलयोरमेदाद्विचा-स्यते सर्कपात्प्रच्याच्यते । तेन तन्मूला तत्त्वहुश्यदर्शनरूपा वृत्त्य-विश्वन्नचिदाभासात्मिकापि मूलबाधकस्वयलेनेन असंवित्या अप्रतिसंधानेन निकृन्त्यते । न तिन्नकृत्नने पृथकप्रयत्नापेक्षा-स्तिति भावः । कवित्युस्तके येनेत्याद्युत्तरार्धं न पत्यत एव तदा तेन संस्तिवृक्षस्य तत्त्वज्ञानेन सर्ववाधलक्षणो मूलकाषो वितन्यते येन निकृन्त्यत इति परेण योज्यम् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ न विद्यते चेतनं चिदाभासो यत्र तथाविधमाकाशमेकमनन्य-त्सजातीयमेदेरिदमंथेईश्यहानं तद्रसंविवमुक्तरशा अस्ति तदेव सर्वेषामस्मदादिचेतनानां सारं पारमार्थिकं रूपमाहुर्वद्वाविद इत्यदंः ॥ ४७ ॥ इति श्रीवातिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अत्यन्तं मार्जिते वेधे यथातत्त्वमवेदनम् ।
निष्क्रियं चापि बिदुषां तथापाय इहाच्यते ॥ १ ॥
'अवेदनं विदुर्गोक्षं चित्तक्षयमकृत्रिमम्' इति यदुक्तं तत्र
रामः शहते—अवेदनमिति । यदापि 'वेद्योन्मुखत्वं संखज्य
हपं यद्वेदनस्य वे । न वेदनं तन्नो कमं तच्छान्तं ब्रह्म कथ्यते॥'
इति प्रागुक्तलानास्याः शहाया उत्थानं संभवति । तथाप्यन्ते
संविद्संवित्त्या निकृत्स्यते इत्युक्त्या तन्नाद्य एयोक्तः सच तच्छान्तं ब्रह्म कथ्यत इति प्रागुक्त्या सह विदृद्धः सतोऽसलायोगादिति संभवत्येव प्रश्नः । 'एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तप्न्येवानुविवद्यति न त्रेल्य संक्षाली'त्युक्ते 'अत्रैव मामगवानमृसुद्दत्

निष्कृत्य श्रमिशब्दार्थबोधं तिष्ठ यथास्थितम्॥ 4 सर्वावबोधावसरे बन्निशब्दार्थयोरिह । निर्वाणोदय इत्येव परमोमिति शास्यताम् ॥ દ્દ शुभाशभात्मकर्म स्वं नाशनीयं विवेकिना । तश्रास्तीत्यवयोधेन तत्त्वश्रानेन सिध्यति ॥ 9 कमेमूलनिकाषेण संसारः परिशाम्यति । सुविचारितमन्विष्टं यावत्कर्म न विद्यते ॥ ረ चिद्रपो विल्वमज्जान्तश्चित्तसंशां यदात्मनि । करोति तद्यथा विल्वान्न स्वल्पमपि भिद्यते ॥ Q न यथा संनिवेशान्तः संनिवेशस्ततः पृथक् । तथा नशोर्थादि पृथङ्ग न परस्मान्मनागपि ॥ १०

न प्रेल संज्ञास्ति' इति भेत्रयीप्रभवदिति ॥ १ ॥ अतएव 'नवा अरे मोहं व्रवीम्यविनाशी वारेऽयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मा मा-त्रासंस्पर्शस्त्वस्य भवति' इति याज्ञवल्कयवद्वसिष्ठोऽपि समा-धते—नासत इति ॥ २ ॥ कथं सुकरं तदाह—एताविति । एती संसारदशाप्रसिद्धा । 'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति''यत्र खस्य सर्वमार्त्मवाभूत्तरंकेन कं पश्येत' 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छुणोति नान्यद्विजानाति स भूमा' इत्यादि-श्रुतिषु एतयोर्निषिद्धलाँदिति भावः ॥ ३ ॥ अतएव वेदनध-टितत्रिपुटीसाक्षिणस्त्रिपुटीनिवृत्तिरेव मोक्ष इत्याशयेनाह—अ-बोधस्त्रिति । सदविनाशिकृटस्थात्मरूपमेव बुध्यस्य । असत् त्रिपुट्यन्तर्गतवृत्त्याद्यपहितचिदाभासं मा आत्मेति बुध्यस्य ॥ ४ ॥ परिच्छित्रे तस्मित्रात्मताबुद्धिरेव सर्वेषामनथहेत्ररि-त्याह—जन्तोरिति । निष्कृत्व समूलं छित्वा ॥ ५ ॥ व्यवहार-काले तस्य कथमुच्छेदः कार्यस्तत्राह—सर्वेति । सर्वत्रिपुटीबो-धरुक्षणव्यवहारावसरेऽपि व्यावहारिकज्ञप्तिशब्दार्थयोः परम-न्यत् तत्र यथायोगं सर्वार्थपरं कृटस्थचिन्मात्रं सर्वशब्दपरेण ओमित्यनेन उक्षयिला स एवात्मा निर्वाणोदय इत्येव शास्यतां निर्विक्षेपं व्यवहियतामिलार्थः ॥ ६ ॥ ईरशबोधव्यवहारादेवो-त्तरपूर्वयोः शुभाशुभयोरश्लेषविनाशी सिज्यत इत्याह—शुमेति ॥ ७॥ कृटस्थात्मदर्शनमेव सर्वकर्ममूलवंदनोच्छेदेन सर्वकर्म-बाध इत्याह--कर्मेति । यावत्समूलं सफलं स्वााखोपशास्त्रपत्र-पुष्पं च सर्वे कर्म न विद्यते ॥८॥ यथा निल्वमजा खान्तर्य-द्वीजादि करोति तदिल्वाद्यथा न भिद्यते तथा चिद्रपोऽप्यात्म-नि यश्विलसंज्ञां कियाकारकादित्रिपुटीं करोति तत्स्वरूपं मनागपि न भिषत इत्यन्वयः ॥ ९ ॥ भूलोकसंनिवेशास्तर्गतो जम्बद्धी~

यदेवाम्भस्तदेवान्तर्द्रवत्वमपृथग्यथा । चित्त्वमेबं तथा चित्तं तद्रपत्वासदर्थयोः॥ यथा द्रवत्वं पयसि यथाऽऽलोकश्च तेजसि । तथा ब्रह्मण्यतद्भावं चित्त्वं चित्तं च विद्यते ॥ १२ चेतनं कर्मतत्स्यान्तर्श्विमृंहं भ्रमयक्षवत्। उदेखहेतुकं तश्रेश्रोदितं तम्र विद्यते ॥ १३ चेतनं कर्म तश्चेतद्भावि स्पन्द इवानिछः। अहेतुकं यदात्मैतद्वहिरन्तश्च सार्थधीः॥ विस्तारः कर्मणां देहः सोहंतात्मा ससंसृतिः। अचेतनानहन्त्वेन शाम्यत्यस्पन्दवातवत्॥ १५ अचेतनादनन्तात्मा भूत्वा क्षोऽप्युपलोपमः। संसारमूलकपणं कुरु क्रोडमुखात्रवत्॥ १६ कर्मबीजकलाकोशत्याग एवं कृतो भवेत्। नान्यथा राघवान्तस्ते शान्तमस्तु सदास्थितम् १७ कर्मबीजकलात्यागे त्वेतस्मादितरात्मनि। अविद्यमाने जीवस्य तज्ज्ञेविदितवस्तुांभेः॥ १८ शान्तेने गृह्यते किंचित्र च संत्यज्यतेऽपि च। त्यागादानेन जानन्ति ततस्तैः शान्तमानसम् १९ आकाराश्चन्यहृदयेहीर्यथास्थितमास्यते । कियते च यथाप्राप्तं नाप्येतैः कियतेपि च ॥ २० प्रवाहपतितं सर्वे स्पन्दते शान्तमानसम्।

पादिसंनिवेशो यथा भुवो न पृथक् । नभो व्योम तदन्तगेतभूत-भुषनार्थादि च परसात्सन्मात्रात्र पृथक् ॥१०॥ तदर्थयोश्वित्व-वित्तशब्दार्थयोस्तदर्थलाबिन्मात्रार्थकचितिधालर्थलात् ॥११॥ अतद्भावं प्राहकलस्मर्शृलधमेद्वयश्च्यम् ॥ १२ ॥ कृतस्त-च्छुन्यं तदाह-चेतनमिति । चेतयतीति चिदिति व्युत्पत्त्या हि चेतनमर्थप्रकाशनं चितः कर्मिकयेत्यवगम्यते । तम कूट-स्थायाधितो निर्मूलं भ्रमयक्षवन्मिश्यैव यदहेतुकं मिथ्यारूपमु-देति तन्नोदितमेव । अतो न कियारूपमन्यत्तत्र विद्यत इति वि-कल्पमात्रं तथा व्युत्पादनमित्यर्थः ॥ १३ ॥ एवं चेतनक्रियाया अपूर्यक्ते तद्विषयाणामपि तत्सिद्धमित्याह—चेतनमिति। यदा चेतनं कमं अहेतुकमिति अनिलतत्सन्दवदृष्यक्तदा बहिजी-प्रति अन्तःस्वप्रसुषुप्रयोश्च सेवार्थधीरित्यथो अप्यात्मैव न पृध-गित्यर्थः ॥ १४ ॥ सर्वकर्मविस्तारो देह एव । 'अथ कर्मणा-मात्मेत्येत'दिति श्रुतेः । स एव मूलतः अइन्तात्मा शाखातः संस्तिः अचेतनं चिदाभासात्मकित्रयाबाधस्तब्रक्षणेनानहंत्वेन मूलोच्छेदेन सशाखः स शाम्यतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ चिदाभासो-च्छेदेन जीवस्यात्मनाशो यृत्त इति न मन्तव्यं किंतु स ब्रह्म-भावेनानन्तातमा भूला स्वानर्थसंसारमूलोच्छेदं परमपुरुषाथे संपादितवानित्याह-अचेतनादिति । क्रोडो वराहरतन्मुखाप्रं यथा मुस्तादिमूलकषणं करोति तद्वत् ॥ १६ ॥ नान्यया हे राषय, अतः कारणाते अन्तः सदा स्थितं नेदनात्मकं कर्ममूलं ।

तेषां कर्मेन्द्रियाण्येवमर्धसंसुप्तबालवत्॥ २१ रसे निर्वासने लब्धे रसा अप्यतिनीरसाः। नान्तस्तिष्ठन्ति न बहिरज्ञाननिपुणा इव ॥ २२ कर्मणो वेदनं त्यागः स च सिद्धः प्रबोधतः। अवस्तु नेतरेणार्थः किं कृतेनाकृतेन वा ॥ २३ अवेदनमसंवेद्यं यदवासनमासितम् । शान्तं सममनुहेखं स कर्मत्याग उच्यते ॥ રષ્ઠ अपुनःसारणं सम्यक् चिरविस्मृतकर्म तत्। स्थितं स्तम्भोदरसमं स कर्मत्याग उच्यते ॥ २५ अत्यागं त्यागमिति ये कुर्वते व्यर्थबोधिनः। सा भुङ्के तान्पशूनज्ञान्कर्मस्यागपिशाचिका॥ રદ समूलकर्मसंत्यागेनैव ये शान्तिमास्थिताः। नैय तेपां कृतेनाथीं नाकृतेनेह कश्चन॥ २७ समूलमलमुद्धत्य कर्मबीजकलामिति । नित्यमेकसमाधानास्तज्ज्ञास्तिष्ठन्त्यतः सुखम् २८ प्रवाहपतिते कार्ये ईपत्स्पन्वा अतन्मयाः। घूर्णमाना इच श्रीवा यन्त्रसंचारिता इव ॥ २९ मोक्षलक्ष्म्या विलासिन्या व्यसनोपहता इव। अर्धसुप्तप्रबुद्धाभाः कामप्यवनिमागताः ॥ дo यत्समूलं परित्यक्तं तस्यक्तमिति कथ्यते। अमूलकाषस्त्यागो यः स शाखालवनोपमः ॥ ३१

शान्तमस्त ॥ १७ ॥ एतस्मिन्कर्मबीजकलात्यागे कृते जीवस्य इतरात्मनि ब्रह्मात्मलातिरिक्ते चिदाभासात्मनि तहृश्यप्रपञ्चा-रमनि च अविद्यमाने जाते तज्ज्ञैः शान्तैः किचित्र गृह्यते न त्यज्यते चेति परेणान्वयः । 'यत्र लस्य सर्वमात्मेवाभूतत्केन कं पर्येत्' इति श्रुतेरिति भावः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ **यथा** नदीप्रवाहपतितं तृणकाष्ठादि सर्वे स्पन्दते एवं तेषां कर्मेन्द्रि-याणि शान्तमानसं विनापि मनोविकारं सान्दते इति विपरिण-म्यते ॥ २१ ॥ निर्वासने निर्विषये रसे निरतिशयानन्दे । रसा भोगप्रवणाः करणवृत्तयो नीरसा रागशन्याः सन्तोऽज्ञान-निपुणाः खखविषयप्रकाशे असमर्था इव भूला ॥ २२ ॥ प्रा-गुक्तवेदनमेव कर्मणस्त्यागः । इतरेण जीवनादृष्टाक्षिप्तदेहादि-सन्दरूपेण कर्मणा ॥ २३ ॥ अनुहेखं कृताकृतप्रतिसंघानशू-न्यम् ॥ २४ ॥ २५ ॥ अत्यागं मूळत्यागरहितं कर्मेन्द्रियसंय-ममात्ररूपम् । तथा चोक्तं भगवता 'कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्परन् । इन्द्रियार्थान्विमुढातमा मिथ्याचारः स उच्यते ॥' इति ॥ २६ ॥ २७ ॥ **इ**ति प्रागुक्तरीला स**मूलमु-**त्युज्य ॥ २८ ॥ अतन्मयास्तद्मिमानलक्षणविकारश्चन्याः । क्षीना मदिरोन्मत्ता इव । यन्त्रेण संचारिताः काष्ठादिप्रतिमा इव च.॥ २९ ॥ व्यसनेन आसक्तयतिशयेन उपहृताः स्व**देहा**-र्यप्रतिसंघानं प्राप्ता इवेत्युत्प्रेक्षा । कामप्यवनि पश्चम्यादिभूमि-

१ कर्मविदिति पाठः.

अरुष्टमुलशास्त्राग्रलवनः कर्मपादपः। पुनः शास्त्रासहस्रेण दुःस्ताय परिवर्धते ॥ ३२ अवेदनात्मना तेन कर्मत्यागोऽङ्ग सिध्यति । क्रमेण नेतरेणात एतदेवाहरन्भव॥ 33 ये त्वेव कर्मसंत्यागमकृत्वान्यत्प्रकुर्वते । अस्यागं त्यागरूपात्म गगनं मारयन्ति ते ॥ 38 बोधात्मकतया कर्मत्यागः संपद्यते स्वयम् । दग्धबीजा निरिच्छोचैरिक्रयेव भवेतिक्रया ॥ 34 बुद्धीन्द्रियेहितं कर्म सफलं रसभावनात्। बेष्टितव्यं कुदास्रेष स्पन्दान्यो निष्फलोऽङ्गजः ३६ कर्मत्यागे स्थिते बोधाजीवन्युको बिवासनः। गृहे तिष्ठत्वरण्ये वा शाम्यत्वभ्येत् वादयम् ॥ ३७ गेहमेवोपशान्तस्य विजनं दूरकाननम्।

अशान्तस्याप्यरण्यानि विजना सजना पुरी ॥ ३८ परिशान्तमतेर्श्वस्य स्वप्नेऽप्यप्राप्तमानवा। निर्मला वितता हुचा हुचेव वनभूमिका ॥ 38 श्रस्य निर्वाणहृदयस्य निस्पन्दार्था नभोमयी। शान्ताशेषविशेषार्था जगदेव महादवी ॥ So अनन्तसंकरपवतो हृदयस्थजगत्स्थतेः। हृयंबावर्तते भूमिरश्रस्याखिलसागरा ॥ ४१ जयत्याद्यस्य दीनस्य विविधद्वन्द्वसंकदा। सारम्भा विविधाकारा हृद्येव ग्राममण्डली ॥ ४२ विविधकार्यविकारदशामयी सपुरपत्तनमण्डलपर्वता । मुकुरकोश इव प्रतिविभ्विता हृदि भवत्यमला मलिने मही॥ ઇરે

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे दश्योपश्रमयोगोपदेशो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

वसिष्ठ उवाच ।
साहन्तादिजगच्छान्ता योधे संवित्कलात्मिन ।
संशान्तदीपसंकाशस्त्यागः सिद्धित नान्यथा ॥ १
न त्यागः कर्मसंत्यागो बोधस्त्याग इति स्मृतः ।
अजगत्प्रतिमेकात्मा योऽनहन्तादिरव्ययः ॥ २
अयं सोहमिदं तन्म इति निःस्नेहदीपवत् ।
शान्ते परमनिर्वाणे प्रयोधात्मेति शिष्यते ॥ ३

काम् ॥ ३० ॥ ३९ ॥ न कृष्टसुन्मूलितं मूर्लं यत्र तथाविधं शाखाप्रहवनं यस्य ॥ ३२ ॥ तेन प्रायुक्तेन क्रमेणाहरम्भय-स्यन्भव तिष्ठ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ निरिच्छा जीवन्मुक्तिया उत्रमंहारम्भापि दग्धवीजेलाकियेव । नहि महानपि दग्ध-तन्तुः पटाभासः पटो भवतीति भावः ॥ ३५ ॥ दुद्धिसहिर्त-रिन्द्रियेभीगासिकरसभावनादीहितं निष्पादितम् । यथा कु-दाम्ना वेष्टितव्यं कृपकाष्ठं रसभावनाजलोद्धरणसेचनादिरूपात्स-स्पसंपरया सफलं नतु वृथा चेष्टामात्रात्तद्वदन्योऽङ्गजः कायचे-ष्टामात्रास्पः स्पन्दो निष्फलः ॥ ३६ ॥ शाम्यतु धनादिसंपद-पचयेन दरिदोऽसु । उदयं तदुपचयमभ्येतु वा । स सम ए-बेति शेषः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ गहमेवत्येतत् श्लोकस्य पूर्वार्थे वर्णयति-परिशान्तिति द्वाभ्याम् ॥ ३९ ॥ निर्वाणं ज्ञानामिना सहोपरतं दर्यं यस्य ॥ ४० ॥ तदुत्तरार्धं वर्णयति --अनन्तेति त्रिभिः ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ विविधैः कार्येरवश्यकर्तव्येरर्जनव्यय-प्रवासकछहादिभिः सदैव लोभमोहशोकभयासत्त्यादिविकारद-शामगी । पुरं शास्त्रानगरम् । पत्तनं महानगरम्। मण्डलान्यवा-न्तरदेशाः । मिलने हृदि ईरशी अमला स्फूटा सर्वा मही सुकु-रकोशे इब प्रतिबिध्विता भवत्येवेखस्य नारण्येऽपि विश्रान्तिसु- अयं सोहमिदं तन्मे शान्तमित्येव यस्य नो ।
न ज्ञानं तस्य नो शान्तिनं त्यागो न च निर्वृतिः ४
ममेदमयमेवाहमित्येतावति यः क्षयः ।
बोधात्मा शिवमाशान्तं तस्मादन्यन्न विद्यते ॥ ५
अहमंशे विदा क्षीणे सर्वमेव क्षयं गतम् ।
न किंचिश्व कचित्क्षीणं निर्वाणकष्मनं स्थितम् ॥ ६
अहंविदनहंविस्वादेव शाम्यत्यविद्यतः ।

समित्यर्थः ॥ ४३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्य-प्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ईहाइतैव संसारमूलमित्युपवर्ण्यते । तथ्यागश्चानहंभावभावनादात्मबोधतः ॥ ३ ॥

हगारमनः सर्वदृदयत्यागो हि मोधः सच क्रेह्सये वीपनिर्वाणवलस्वबोधेन सर्वदृद्यमूलाज्ञानवाधे सिख्यति नान्यवेखाह—
साहंतादीति ॥ १ ॥ न विद्यते जगत्यतिभा यस्मिस्तथाविध
एकात्मैय परिशिधो मुख्यः सर्वत्यागळक्षणो मोक्ष इत्यर्थः॥२॥
स पामरप्रसिद्धोऽयं देहादिर्धद्यस्पा एवाहं तदेहादिस्वदं भोग्यं
जगनमे इति एतिस्सिस्तादात्म्यसंसगीध्यासळक्षणे द्विविधे बन्धे
निःक्रेहदीपवत्समूलं शान्ते सित प्रकृष्टो बोधवैतन्यमेनात्मा
इति परिशिष्यते स एव निर्वाणमोक्ष इत्यर्थः ॥ ३ ॥ उक्तमर्थ व्यतिरेकमुखेनापि द्रवयति—अयमिति ॥ ४ ॥ एतावित
एतावतो यः क्षयः । षष्ट्रयं सप्तमी । स बोधात्मैय । अध्यत्ववाधस्याविष्टानमात्रत्वादिति भावः ॥ ५ ॥ विदा तत्त्ववोधेन ।
सर्व ममतास्पन्दं अगत् । सर्वनाशे सर्वस्वनाश्मीरं समाधते—
न किंचिदिति । पारमार्थिकरूपेण सर्व स्थितमेव ॥ ६ ॥ अहंस्रुद्धिनाशे स्रुठभ उपायमाह—अहंबिदिति । अनहंबित्यादनहंभावभावनात् । अविद्यत इति । नेदं रजतमिति स्था रजता-

पतावनमात्रसाध्येयं किमित्रेयं कदर्थना ॥ अहंनादमिति भ्रान्तिनच चित्त्वाहतेऽस्ति सा। चित्त्वं चाकाशविशदमतः केषा भ्रमस्थितिः॥ न भ्रमो भ्रमणं नैव न भान्तिर्भामकोऽस्ति वा। अनालोकनमेवेदमालोकाक्षेदमस्ति ते ॥ Q विद्धि चिन्मात्रमेवेदमसद्रुपोपमं ततम्। तेनालं मौनमास्यैवं सर्वं निर्वाणमात्रकम्॥ 80 येनैवाश निमेषेण त्वहमित्येव चेतति। तैनेव नाहमित्येव चेतित्वाद्य न शोच्यते॥ ११ अहंभावनभोर्थेन निर्वाच्यारूढबाणवत्। अजस्त्रमाद्य वा क्षीणं तिष्ठावष्टम्धतत्पदः॥ १२ सनभोर्थामहन्तां त्वं चेतन्नवमनारतम्। सर्वभावरनारुढो भव तीर्णभवार्णवः॥ १३ स्वभावमात्रविजये स्वयं यस्य न वीरता । तस्योत्तमपदप्राप्तौ पशोर्बृहि कथैव का ॥ १४ पद्गगों निर्जितः पूर्व येनोत्तमविदा स्वतः। भाजनं स महाथीनां नेतरो नरगदेभः॥ १५ यस्य स्वान्तर्मनोवृत्तिर्जीयमाना जिताथवा । विषयः स विवेकानां स प्रमानिति कथ्यते ॥ १६

ध्यासबाधने विद्यादर्शनादिति भावः । इयं मुक्तिः । इयमियती कदर्यना बहुसाधनसंपादनश्रान्तिः किमिव किमर्थमिखर्थः ॥ ७ ॥ नन्वनहंबुद्धिरपि द्वैतलादहंबुद्धिवदध्यास एव । सा केन शाम्यतीति चेत्पद्वेन सह कतकरेणुरिव अहंबुख्या सह खत एव चिदात्मनि सा शाम्यतीति सोपपत्तिकमाह-अहमिति। चित्त्वात्परमार्थचित्स्वभावात । ऋते थिना ॥ ८ ॥ श्रमतत्सा-धनतत्फलतदाथ्रयाणामज्ञानमात्रविलासलादञ्चाननिवृत्तौ न पृ-थगवस्थानमस्तीत्याह-निति । अनालोकनमज्ञानम् ॥ ९ ॥ ॥ १०॥ यदायदा अहंभावोदयप्रसक्तिस्तदातदा तुल्यकालमेव तद्विरुद्धा अनहंभावबुद्धिरुत्पायेत्याहु—येनैवेति ॥ ११ ॥ एव-मजसं सावधानमुपस्थापितेनानहंभावेन अहंभावमाशु नभोर्थेन खपुष्पादिना तुल्यं निर्वाच्य निर्वचनाईतां नीला रणे शरासना-रूढोऽर्जुनबाण इव अपराश्चाखः अवष्टव्धं दृढमालम्बितं तद्रह्म-पदं येन तथाविधः सन्नक्षीणं शाश्वतं तिष्ठ ॥ १२ ॥ नभीर्थैः समानां सनभोषीम् । 'समानस्य च्छन्दस्यमूर्धप्रऋत्युदर्नेषु' इति सः ॥१३॥ खभावः खाभाविकाज्ञानप्रयुक्तोऽहंभावस्तन्मा-त्रविजये ॥ १४ ॥ कामाद्यरिषद्भर्गः ॥ १५ ॥ मध्यमाधिका-रिणो जीयमाना । उत्तमाधिकारिणो जिता । पुमान् पुरुषार्थ-साधनेन सफलीकृतपुंजनमा ॥ १६ ॥ अम्भोधौ प्रक्षिप्ता दष-दिवेति नाहमिखसङ्गात्मभावनया तदसंस्पर्श एवात्र परायनम् ॥ १७ ॥ सोपपतिकं इप्तिरूपं कं सुखं जानानः अनुभवन्नपि कि मुद्यसि । न मुद्यस्येवेत्यर्थः ॥ १८ ॥ अर्थत उपपत्तितस्ते हैयं नास्ति वाचारम्भणन्यायाद्यपपत्तीनां लया ज्ञातलादिलर्थः अर्था हपदिवाम्भोधा यो य आपत्तति त्वयि। तस्मादेव पलायस्य नाहमित्येव भावयन् ॥ १७ नाहमस्तीति बुद्धापि सोपपत्तिकमप्यलम्। जानानो अप्तिमात्रं च किमश इय मुहासि ॥ १८ न श्रेयमर्थतोऽस्तीह हेस्रीव कटकादिता। भ्रान्तिमात्राहते सा च शाम्यत्यसारणेन ते ॥ १९ योयो भाव उदेत्यन्तस्त्वयि स्पन्द इवानिले। नाहमसीति चिद्वत्या तमनाधारतां नय ॥ २० लोभो लजा मदो मोहो येनादाविति नो जिताः। निरर्थकमनथीं ऽस्मिन्स किमर्थ प्रवर्तते ॥ २१ अहं त्वं पवने स्पन्द इव यस्वयि संस्थितम्। परमात्मनि तन्नान्यदेतत्स्पन्व इवानिले ॥ २२ असर्गसंविदा सर्गः परेऽस्तोऽतिविराजते । संनिवेशविशेषेण दुरथींऽपि हि शोभते॥ 23 परमात्मा तु नोदेति नास्तं याति कदाचन। न चासादन्यदस्तीति को भावोऽभाव एव वा २४ परं परे पूर्ण पूर्ण शान्तं शान्ते शिवं शिवे। इत्येवमात्रं विततं नाहं न च जगन्न धीः॥ २५ अनिर्वाणे विनिर्वाणं शान्तं शान्ते शिवे शिवम । निर्वाणमप्यनिर्वाणं सनभोधं न वापि तत्॥

॥ १९ ॥ अथवा किमुपपत्तिसहस्त्रेनीहमिति दर्शनमेकमेवा-भ्यस्तं सर्वभ्रान्ति परिहरिष्यतीत्याह-यो य इति ॥ २० ॥ इति एवंरूपेणानहंभावेन येन न जिताः। निरर्थंकं निष्फलं अनर्थे नास्तिक्ययथेष्टाचरणाद्यापादके अस्मिन्नध्यात्मशास्त्रे अन-धिकारी स किमर्थ प्रवर्तते ॥ २१ ॥ खयि परमात्मनि सति तदेतन्त्रान्यत् ॥ २२ ॥ असर्गः कृटस्थाद्वयनिन्मात्रस्वभावस्त. त्संविदा परे परमात्मनि अस्तो विलीनस्तद्भावं प्राप्तः सन वि-राजते । यथा सजि कल्पितः सर्पादिवरर्थोऽपि बोधात्स्रजि विलीनः सक्संनिवेशविशेषेण कण्ठधृतः शोभते तद्वत् ॥ २३ ॥ बोधेन जगतो जीवस्य च परमात्मरूपसेनिवेशविशेषोत्पत्तिर-भ्युपगता चेतदुत्तरे भावविकारा अपि स्युरिति तैजीवजगद्धा-वध्वंसादिभिश्व द्वैतापत्तिस्तत्राह--परमात्मा लिति । कल्पितस्य बाधेनाधिष्ठानात्मतापत्तिर्नोत्पत्तिर्न वा ध्वंसः किंत नित्यसिद्ध-तत्स्वभाव एव । किथैव हि विकारादिहेतुर्न ज्ञानमिति न है-तापत्तिरिति भावः ॥ २४ ॥ अहमादित्रिपुटीबाधे तत्परिच्छे-दप्रयुक्तजीवभावापगमात्पूर्णं शान्तं शिवं च खंपदलक्ष्यं पर-मेव। तच पूर्णे शान्ते शिवं च तत्पदलक्ष्ये परे खभावे स्थितमित्येतावनमात्रं यथास्थितं तत्त्वबोधेन विततं नापूर्व किंचिद्वत्पादितमित्यर्थः ॥ २५ ॥ ननु प्रदीपनिर्वाणवत्साभासा-विद्यानिर्वाणं ज्ञानफरुं निष्पन्नमिखन्दयं वाच्यम् । अन्यथा **ज्ञानस्य नैष्फत्यप्रसङ्गात्तत्राह—अनिर्वाणे इति । सत्यं निर्वाणं** ज्ञानफरुं तथापि तदत्यन्ताप्रसिद्धमनिशे सर्थे निशानिश्रतिवद-निर्वाणे एव ब्रह्मणि निर्वाणं नित्यशान्ते शान्तमिति नानर्थनि-

शस्त्राघाताः प्रसद्यन्ते सद्यन्ते व्याधिवेदनाः । नाहमित्येषमात्रस्य सहने का कदर्थना ॥ २७ जगत्पदार्थसार्थानामहमित्यक्षयोऽह्ररः। तिसिन्निर्मुलतां याते जगन्निर्मुलतां गतम् ॥ २८ बाष्पेणेवाहमर्थेन निःसारेणापि सारवत्। व्यामलः परमाद्दीस्तन्छान्तौ संप्रसीदति ॥ २९ अहमर्थः परे वायौ स्पन्दस्तत्प्रशमे तु तत्। अनिर्देश्यमनाभासमनन्तमजमव्ययम् ॥ go. अहमर्थः पुरो द्रव्यप्रतिबिम्यप्रविश्वति । तच्छान्ती सा निराभासमनन्तमजमव्ययम्॥ 38 अहमधीम्बुदे क्षीणे परमार्थशरत्रभः। परयानन्तया लक्ष्म्या स्वष्ळयाच्छं विराजते ॥ ३२ अहमर्थमलोन्मुक्तमव्यकं ताम्रमङ्ग चेत्। तत्परं परमाभासं संपन्नं हेम कान्तिमत्॥ ३३ यथा निरमिधार्थश्रीभेजत्यव्यपदेश्यताम्। तथानहन्ताहन्तेयं ब्रह्मत्वमधिगच्छति ॥ રૂપ્ટ अस्त्यहन्त्वे स्थितं ब्रह्म सनामेव पदार्थवत् । शान्तवत्सदियाभासं तद्वत्सव्यपदेशवान् ॥ રૂપ अहमधीं जगद्वीजं यदि दग्धमभावनात्। तदहन्त्वं जगद्बन्ध इत्यादेः कलनेव का ॥ 36

वृत्तिरूपं ज्ञानफलमपूर्वम् । एवं बिवे निलसिद्धनिरतिशयानन्दे श्चिवमानन्दावाप्तिलक्षणं फलमपि नापूर्वमिति न ज्ञानफलेन द्वैतापत्तिः । यदि प्रतीचि बन्धो ब्रह्मणि वियदादिपदार्थश्व सत्यः स्यासदा तिश्ववीणं प्रदीपनिवीणवदपूर्वे स्यात् । इदं तु रज्ञ्स-पैनिर्वाणवत्त्रतीचो बन्धनिर्वाणमनिर्वाणमेव । तद्भद्धापि वा स-नभोर्थ वियदादिसत्यार्थस्रहितं वस्तुतो न भवत्येवेति तन्निवृत्ति-रपि न द्वैतापादिकेत्यर्थः ॥ २६ ॥ अनदंभावनाया असहातां बारयति-शस्त्रेति ॥ २७ ॥ २८ ॥ परमात्मलक्षण आद-र्शोऽहमर्थेनाहंकारेण मुखबाष्पेण प्रसिद्धादर्श इव व्यामलो व्याप्तमलो मलिनो भातीत्वर्थः ॥ २९ ॥ अनन्तमद्वयमाकाश-मात्रं च ॥ ३० ॥ बाह्यानर्थदर्शनेऽप्यहंकार एव हेत्ररित्याह— अहमर्थ इति । सा चित् ॥३१ ॥३२ ॥ हे अङ्ग, अव्यक्तम-नाविभूतसभावं चिरमहमर्थताम्रमलसंपर्काजीवताम्रतामापन्नं बद्धा हैम अवणाद्यपायनिष्टममहमर्थमलोन्मुक्तं चेत्तदेव परं पर-माभासमतिभाखरमत एव कान्तिमत् ब्रह्म हेम संपन्नम्। 'परं ज्योतिदपसंपद्य खेन रूपेणामिनिष्यदाते' इति श्रुतेरिखर्थः ॥ ३३ ॥ अहन्तानिवृत्ती मम केन शब्देन व्यपदेश इति चे-द्या समुद्रे विलीनायाः सैन्धवकरकाद्यर्थश्रियः करकाद्यमिधा-निवृत्त्या अव्यपदेश्यता तद्वत्तवापीत्याह-यथेति ॥ ३४॥ तस्य ब्रह्मादिनाम्ना व्यपदेशोऽपि इतरपदार्थवत् अहन्त्वलक्षणा-स्पतास्ययस्पबृहत्त्वस्थाणं प्रयृत्तिनिमितं परिकल्प्य प्रवृत्तो न बस्तवतेनेत्याह-अस्तीति । यथा शान्ततरङ्गादेजलं खभावन स्थितं प्राक्तनसमुद्रतरङ्गाहिरूपेणान्तः सदिवावभासमानं तरङ्ग-

सद्ग्रा शिवमात्मेति परे नाम करुङ्किता । उदेखहुन्ता कुम्भत्वादिव मृद्धातुविस्मृतिः ॥ ३७ अहमधीदियं बीजात्सत्ता विम्बलतोत्थिता। यस्यां जगन्त्यनम्तानि फलान्यायाम्ति यान्ति 🔏 ३८ साद्यष्युर्वी नदी सेयं रूपालोकेषणादिका। अहमर्थस्य मरिचबीजस्यान्तश्चमत्कृतिः॥ ३९ द्योः क्षमा वायुराकाशं पर्वताः सरितो दिशः । इत्यामोदोऽहमर्थोप्रकुसुमस्य विकासिनः॥ 80 अहमर्थः प्रविसृतः प्रकटीकुरुते जगत्। सद्रुपालोकमननं प्रवृत्त इव वासरः॥ ४१ प्रकृतेन दिनेनार्थः प्रकटीक्रियते यथा। असज्जगदहन्त्वेन क्षणान्निर्मीयते तथा ॥ ४२ अहमित्पर्धदस्तैललवो ब्रह्मणि बारिणि। प्रसृतो यसदाश्वेतिश्चितगद्यक्षकं स्थितम्॥ 83 उन्मेषमात्रेणाहन्ता जगन्त्यनुभवत्यहो। न निमेषेण दृगिव सत्यानीत्यप्यसन्त्यसम् ॥ 88 अहमर्थे प्रविसृते संसारो ह्युनुभूयते। नान्तर्भूय परिक्षीणे लोचनस्येव तारके॥ 84 अहमंशे निरंशत्वं नीते शाश्वतसंविदा । शाम्यतीयमशेषेण संसारमृगतृष्णिका ॥ ୪६

समुद्रादिव्यपदेशभाक् जलस्वभावेनाव्यपदेश्यमेत्र तद्वदित्यर्थः ॥ ३५ ॥ अभावनाद्भावनामुलाज्ञाननाशात् । तत्तर्हि ॥ ३६ ॥ अहमर्थस्य जगद्वीजतामुपपादयितुं तदुद्भवप्रकारमाह—सदिति। सत् कालत्रयाबाध्यम् । ब्रह्म अपरिच्छित्रम् । श्रिवं निरतिश-यानन्दम् । आत्मा अपरोक्षचिदेकरसमित्येवं स्वभावे परे न-मनं नामश्रवणीमपि खभावानां संकोचस्तेन कलक्किता संजा-तमालिन्या अतएव मृदः कुम्भाकारपरिच्छेदानमृतस्वभाववि-स्मृतिरिव स्वभावचतुष्टयप्रतिसंधानशून्या समध्यहन्ता उदेति ॥ ३७ ॥ तस्मादहमर्थाद्वीजादियं दश्यसत्तालक्षणा विम्बलता उत्थिता । व्यष्टिभावेनानन्तान्यसंख्यानि ॥ ३८॥ तदेव प्रपद्मयति—सादीत्यादिना । अदिमिरव्धिमिरुर्वामिर्नदीभिध सहिता साद्यब्ध्युवीनदी । बहिरिन्दिशैरथीलोचनं रूपालोको मनस्तद्गोचरकामसंकल्पादिशृत्तय एषणास्तदादिका ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ मेरोः परमागे सद्गुप एव वासरः प्रविस्तः सन् सत एव रूपस्यालोकं मननं च यथा निमित्तभावेन करोति तद्वत् ॥ ४९ ॥ अर्थो रूपादिः । निर्मीयत इति मिथ्यार्थस्य भानमेव निर्माणमिलाशयः ॥ ४२ ॥ तैलख ठवो बिन्दः । चक्रकं चक्राकाराभासः ॥ ४३ ॥ इक् दुष्टचक्षुरिव असन्ति असलान्यपि जगन्ति सलानीलनुभवति । निमेषेण तिरोभा-वेन तु नानुभवति ॥ ४४ ॥ तदेव हढीकर्तुं पुनराह-अहमर्थे इति । सुपुत्तिमरणमूच्छोसु तिरोभूय स्थिते मोक्ने मूलतः परि-क्षीणे च सति नानुभूयते । समाधी अन्तर्भूय साम्रात्कारेण परिक्षणि इति वा । तारके कनीनिकायाम् ॥ ४५ ॥ निरंशस्यं

પ્રશ

स्वसंविद्धावनामात्रसाध्येऽसिन्वरवस्तुनि । तिद्धमात्रात्मनि स्वैरं मा खेदं गच्छ मा भ्रमीम् ४७ त्वयक्षमात्रसंसाध्यादसहायादिसाधनात् । अनहंवेदनाषान्यच्छ्रेयः पद्दयामि तेऽनघ ॥ ४८ विस्मृत्याहंत्वमास्स्व प्रविद्यतदिभवः पूरितादोषविश्यो

विष्वक्देशलान्तरिक्षक्षितिजलिषमयनमार्गक्षोऽमलात्मा ।
स्वस्थः शान्तो विशोकः करणमलकलावर्जितो निष्पपञ्चो
निःसंचारश्चरात्मा सकलमसकलं
चेति सिद्धान्तसारः॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अहन्तानिरासो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पश्चमः सर्गः ५

वसिष्ठ उवाच ।

स्वभावं स्वं विजित्यादाविन्द्रियाणां सचेतसाम् ।
प्रवर्तते विवेके यः सर्वं तस्याग्रु सिध्यति ॥ १
स्वभावमात्रं येनान्तर्न जितं दग्धवुद्धिना ।
तस्योत्तमपदप्राप्तिः सिकतातैलदुर्लभा ॥ २
ग्रुद्धेऽल्पोऽण्युपदेशो हि निर्मले तैलविन्दुवत् ।
लगत्युत्तानचित्तेषु नादर्श इव मौक्तिकम् ॥ ३
अत्रेवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मम पूर्वं भुगुण्डेन कथितं मेरमूर्थनि ॥ ४
पुरा भुगुण्डः कस्मिश्चित्पृष्ट आसीत्कथान्तरे ।
मया कदाचिदेकान्ते मेरोः शिखरकोटरे ॥ ५

निःशेषताम् ॥ ४६ ॥ साधनफलयोरतिसलभतां दर्शयति---सर्सविदिति । ससंवित् स्वप्नकाशनिदातमा तस्य भावना तदा-कारश्वतिमात्रसिद्धिस्तावनमात्रसाध्ये नतु जहेव्विव तत्फलव्या-**प्रित्रयलापेक्षा**स्तीति साधने अतिसुलभता । सिद्धमात्रात्मनीति फलेऽप्युत्पादनप्रयत्नानपेक्षलादतिमुलभता सुचिता । श्रमीमहं-भावादिश्रान्तिम् । 'कृदिकारादक्तिनः' इति डीप् ॥४७॥ पुरु-षान्तरादिबाह्यसाधनानपेक्षलादप्यतिसुलभतामाह—स्त्रेति४८ इदानीं सर्वोपदेशसिद्धान्तसारं संक्षिप्य दर्शयन्नुपसंहरति-वि-स्मृत्येति । हे राम, त्वं प्रथमं व्यष्ट्यहंभावं विस्मृत्व विष्वक् स-र्वतः प्रतिदः शैळान्तरिक्षक्षितिजलधयथः महद्वायुधः तन्मार्गः आकाशश्रेत्येवंरूपः पूरिताशेषविश्वः परिसृतविभवः सन् सम्हि-भावेनास्स । तदनन्तरं निःसंचारः स्थावरथरात्मा चेति सकलं निष्प्रपन्नं बहीवेति नामिला निष्प्रपद्यः करणैर्मर्छः कलामिश्र वर्जितः सन् खस्थः शान्तो विशोकोऽमलातमा आस्स्वेलध्यारो-पापवादाभ्यां निष्प्रपन्नारमपरिशेष एव सर्ववेदान्तसिद्धान्तसार इलर्यः ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्याणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

मुग्धबुद्धिमनात्मक्षं कं त्वं सुचिरजीवितम्।
स्राप्तीति मया पृष्टेनोकं तेनेदमङ्ग मे॥ ६
भुगुण्ड उवाच ।
आसीद्विद्याधरः पूर्वमनात्मकः सुक्षेदितः ।
लोकालोकान्तरश्दे गुष्क आयों विचारवान्॥ ७
तपसा बहुक्रपेण यमेन नियमेन च ।
अक्षीणायुरतिष्ठत्स पुरा कल्पचतुष्ट्यम्॥ ८
ततस्रतुर्थे कल्पान्ते विवेकस्तस्य चोदभूत् ।
विदूरस्येच वैदूर्यमोचित्याज्ञलदोदयात्॥ ९
पुनर्मृतिः पुनर्जन्म जरा मेति विभावयन् ।
लज्जेऽहं तिकमेकं स्पारिस्थरमित्यवमृदय सः १०

शास्त्रं जितेन्द्रियेष्वेव सफलं नेतरेष्विति । वसिष्ठेन सुशुण्डोक्ता विद्याधरकथोष्यते ॥ १ ॥

सचेतसां समनस्कानामिन्द्रियाणां स्वं विषयानुधावनलक्षणं स्वभावमादौ विजित्य पथायो नित्यानित्यवस्तुविवेकादिसाधने प्रवर्तते तस्यव सर्व शास्त्राचार्योपदेशफलं प्रसिद्धाति नान्यसंन्त्र्यः ॥ १ ॥ सिकतानिष्पीडनश्रम इव चिराभ्यस्तोऽपि श्रव-णादिनिष्फल इत्यर्थः ॥ २ ॥ निर्मले वस्त्रादौ संलबिन्दुवल्लगति अन्तिनिवशते । उत्तानमगम्भीरं साधनचतुष्ट्यरिक्तं चित्रं येषां तेषु ॥ ३ ॥ ४ ॥ कथान्तरे अध्यात्मकथाप्रसावे ॥ ५ ॥ मुग्धवुद्धिरहोऽवर्यमजितेन्द्रियो वृथाश्रमध्य भविष्यतीति ताद्दश्येव प्रश्नः ॥ ६ ॥ सुष्टु खेदितः अजितिरिन्द्रियैः खेदं प्राप्तिः । अत्रण्य द्युष्को विश्वान्तिरसहीनः । तपसा नियमेन यमेन च शुष्क इति परेणान्वयो वा । आर्थः आयुर्वृद्धिहेतुसन्दाचारसंपन्नः ॥ ७ ॥ ८ ॥ औचित्याविराभ्यस्ततपोनियमादेविकोदयावस्यंभावात् । यथा विद्रस्थिरोपस्य जलदोदयाद्वै-द्यं रलमुद्भवति तद्वत् ॥ ९ ॥ विवेकस्वस्पमेव दर्शयति—पुन्तरिति । जरा मा माभूत् इति विभावयन् लेले । निर्विण इति-

मामाजगाम संप्रष्टमष्टादशमयीं पुरीम् । स्वामुपोग्च विरक्तात्मा संसारारसतां गतः ॥ ११ स मत्समीपमागत्य कृतोदारनमस्कृतिः । मत्पूजितोऽवसरत उवाचेदमनिन्दतम् ॥ १२ विद्याधर उवाच । मृद्नि परितापीनि दषहृढयळानि च । छेदे भेदे च दक्षाणि स्वशस्त्राणीन्द्रयाणि च॥ १३ पर्याकुळानि मिळनानि विपत्प्रदानि दुःखोर्मिमन्ति गुणकाननपावकत्वात् । हार्दान्धकारगहनानि तमोमयानि जित्वेन्द्रियाणि सुखमेति च किं ममार्थैः १४

इखार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० विद्याधरोपाख्याने विद्याधरप्रश्रो नाम पश्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्टः सर्गः ६

विद्याधर उवाच ।
यदुदारमनायासं श्रयातिशयवर्जितम् ।
यदं पावनमाद्यन्तरिहतं तहदागु मे ॥
पतावन्तमहं कालं सुम आसं जडात्मकः ।
द्वानीं संप्रवृद्धोऽस्मि प्रसादादात्मनो मुने ॥
मनो महामयोत्तप्तं श्रुष्धमङ्गानवृत्तिषु ।
मामुद्धर दुरन्तेहं मोहादहमिति स्थितात् ॥
श्रीमस्यपि पतन्त्यागु शातनाः कातराद्यः ।
गुणवत्युग्रपंत्रऽपि तुहिनानीव पङ्कले ॥

यावत् ॥ १० ॥ पत्र प्राणा दशेन्द्रियाणि मनोबुद्धी द्वे स्थूल-देहश्वेखष्टादशमयी स्वां पुरीम् । उपोद्य चिरं वोड्डा श्रान्तः वि-रक्त आत्मा मनो यस्य ॥ ११ ॥ अवसरतः । प्रश्नावसरं प्राप्ये-त्यर्थः ॥ १२ ॥ तत्र स्वखेदहेतूनिन्द्रियादिदोषान्विस्तरेणोत्तरत्र वर्णयिष्यन्तपन्नमते - मृद्नीति द्वास्याम् । खखविषयेषु शीघा-नुप्रवेशिलान्मृद्नि प्रवेशोत्तरकालं परितापीनि ततश्वालथितुम-शक्यलाद्यक्योऽपि दढवलानि खरारीरानुप्रविष्टशरादिशस्त्रा-णीन्द्रियाणि च तुल्यानीत्यर्थः ॥ १३ ॥ इमानीन्द्रियाणि हा-र्दोनि हृदि रुद्धान्यन्धकारगहनानि सान्धकारारण्यानि । कामा-दिमर्कटैः पर्याकुलानि । प्राणमनोदेहहृद्येष्वशनायादिपहार्मै-मन्ति । देवात्कचिदद्वरितस्य शमदमादिगुणकाननस्य पावक-लाहाहकलाद्मिंगरवेपि न शीतलानि । ईदशानीन्द्रियाणि च-कारात्तदुपाश्रयं मनश्र जिला सुखमेति न भोगैः। अतो मम वैदाधरभोगलक्षणैरथैं: किं प्रयोजनम् । तद्विरक्तो जिज्ञामुः शरणागतोऽस्मीत्यर्थः ॥ १४॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पञ्चमः सर्गः॥५॥

दिव्यभोगप्रसक्तेन चिरं स्वेन परिक्षिताः ।

इह विद्याधरेणोक्ता विषयेन्द्रियदुर्नयाः ॥ १ ॥
अतः साधनचतुष्ट्रयसंपन्नाय ब्रह्मजिज्ञासने मद्यं ब्रह्मोपदिशैत्याह—यदिति । सर्वकार्पण्यनिवर्तकनिर्दुःखनिरतिशयानन्दहपलादुदारम् । आशु शीष्टं नद् । प्रदीन्नशिरस इव जलराशि

विविक्षोिक्षविधतापसंतप्तस्य मम विलम्बसहनाशकोरिति भावः ॥ १ ॥ तर्हि प्रागेव कृतो नागमस्तत्राह—एतावन्तमिति । आस्मनो मनसस्तीवतर्वशायलक्षणात्रसादात् ॥ २ ॥ मनो

जायन्ते च म्रियन्ते च केवलं जीर्णजन्तवः।
न धर्माय न मोक्षाय महाका इव पङ्क्ते॥ ५
भावस्तरेव तैरेव नुष्छालम्भविडम्बनः।
चिरेण परिखिन्नाः स्मो विप्रलम्भाः पुनः पुनः॥ ६
नान्तोस्त्यस्य न च स्थर्यावस्थाऽविश्रान्तमानसम्।
भ्रमन्तो भोगभङ्गेषु मरुभूमिष्ववाध्वनः॥ ७
आपातमधुरारम्भा भङ्गुरा भवहेतवः।
अचिरेण विकारिण्यो भीरणा भोगभूमयः॥ ८
मानावमानपरया दुरहंकारकान्तया।

महामयेन कामेनोत्तप्तम् । अज्ञानवृत्तिषु दुर्वासनासु क्षुन्धम् । दुरन्ता दुरुन्छेदा ईहाः कर्माणि यस्य तम् । तत्र कारणमाह---मोहादिति । अहमिल्यनात्मन्यात्मामिमानाकारेण स्थितान्मो-हात्खतत्त्वापरिज्ञानानिमित्तादित्यर्थः । मोहादुद्धरेति वृद्धिकृता-पादाने वा पञ्चमी ॥ ३ ॥ नतु विद्याधराः सर्वविद्याश्रयत्वाद्वि-बाबलादेव सर्वदुःखनिराससमर्था मणिमस्त्ररसायनादिनिद्धिभि-रणिमाधैश्वरैश्व युक्ताः श्रुयन्ते तिक्रमेषं श्रीमति लिथ कामादिन दुःखशातनाः कातरताकार्पण्यादिदोषाध्य निपतिताः । येन देव-योनिश्रेष्ठत्वान्मान्वतभोषि त्वं निक्रष्टकाकयोनिमपि मां शरणा-गतोऽसि पृच्छिस च तत्राह--श्रीमत्यपीति । सर्वेविदासिद्धादि-श्रीमखप्यात्मविद्याशुन्ये कामकोधेर्ष्यासूयादिदुःखशातनाः का-तर्यादिदोषाश्च पतन्तयेव । अजितेन्द्रियलादिति भावः।पञ्चज-पक्षे श्रीमति लक्ष्मयाधारे गुणवति बिसतन्तुभति खाश्रयसक्षे-हजलविमुखलात्तरकणरलेप्यलामोग्राणि स्नेहनिष्ट्रराणि पत्राणि यस्य तादशेऽपि ॥ ४ ॥ ज्ञानाभावे देवयोनीनां मशकादियोनि-साम्यमेव धर्माधिकाराभावादिति सूचयन्खवैराग्यहेतुं सर्वत्र दोषदर्शनं प्रपद्मयति—जायन्ते इत्यादिना ॥ ५ ॥ भावैः शब्दादिविषयं से सं: सहस्रशः पूर्वभुक्तरेव तुच्छतमसुखल-वार्थं य आलम्भो विषयेन्द्रियस्पर्शस्त्रहक्षणैर्विडम्बनैर्वञ्चनोपायै-विप्रलम्भाः । वर्मणि घषु । विप्रलब्धा बश्चिताः सन्तः । 'तुच्छात्रैः'इति पाठे तुच्छानां क्षुद्रजन्तूनामप्यत्रैरुपमोग्यभूतैरि-व्यर्थः ॥ ६ ॥ अविश्रान्तमानसं यथा स्यात्तथा भोगभङ्गेषु भक्करेषु भोगेषु भ्रमतो ममास्य संसाराध्वनोऽन्तो नास्ति. स्थैर्ये-णानस्थानं स्थैयीवस्था च नास्ति ॥ ७ ॥ ८ ॥ नन् बहुतरपु-

न रमे वामया तात हतविद्याधरिश्रया॥ दृष्टाश्चेत्ररथोद्यानभूवः कुसुमकोमलाः । **फल्पबृक्ष**लतादत्तसमस्तविभवश्रियः॥ १० विद्यतं मेरुकुञ्जेषु विद्याधरपुरेषु च। विमानवरमालासु वातस्कन्धस्थलीयु च ॥ ₹**१** विश्रान्तं सुरसेनासु कान्ताभुजलतासु च। हारिहारविलासासु लोकपालपुरीषु च॥ १२ न किंचिद्वचितं साधु सर्वमाधिविपोप्मणा। दग्धं भस्मायते तात विकातमधुना मया ॥ १३ रूपालोकनलोलेन चनिताननगृधना । साबभासेन दोपाय दुःखं नीतोस्मि चश्चषा ॥ १४ इदं गुणावहं नेदमिति मुक्त्या विकल्पनम्। रूपमात्रानुसारित्वादवस्तुन्यपि धावति ॥ १५ तावदायाति विरति न वशं यावदापदाम्। नानावन्ध्रपरं चेतः परानर्थेहितोन्मुखम् ॥ १६ व्राणमेतदनर्थाय धावश्वेवामितः स्फुटम्। न निवारियतं तात शक्तोमीह हयं यथा॥ १७ गन्धोदकप्रणालेन मुख्यासानुपातिना। वैरिणेवातिदोषेण घाणेनास्मि नियोजितः॥ १८ चिरं रसनया चाहमनया नयहीनया। गजगोमायुगुप्तेषु दुःखादिष्वलमाहतः॥ १९

ण्याजितया विद्याधरसंपदेव तब कृतो न विधान्तिसात्राह---मानेति । मानः स्रोत्कर्षापादनाभिमानः, अपमानः पराप-कर्षापादनम्, तदेव परं श्रेष्ठं यस्याम् । दुष्टः अहंकारो येषां तेषां कान्तया रम्यया । अतएव वामया विवेकिनां प्रतिकृ-लया क्रिया च । तत्पक्षेऽपि विशेषणे योज्ये ॥ ९ ॥ सर्वत्र भुक्तभोगतया वरस्यं प्रकटयति—दृष्टा इत्यादिना ॥ १० ॥ ११ ॥ हारादिभूषितानां हारा विलासा विहारचमत्कारा यासु ॥ १२ ॥ आधयो मानसदुःखानि तद्विषाष्मणा दम्धम्। अभूना विवेकोदयकाले विज्ञातं न प्राक्॥१३॥र्थादशेन विवेकेन कि कि कथं कथं ज्ञातं तत्प्रथमं चक्षुरादिषु दर्शयति—ह-पेखादिना । गृधना अभिकाह्ममाणेन । गृधेः 'त्रसिगृधि' इत्या-दिना कः। सावभासेन बाह्यान्तरप्रकाशसहकृतेन । दोषाय खविषयासक्षेत्र मनोद्षणाय ॥ १४ ॥ वनितापिण्डे इदं वस्ना-भरणानुलेपनादिकमेव गुणावहं शोभाकल्पकम् , इदं रक्तमां-सास्थिकेशादि न, इति विकल्पनं विवेचनं मुक्ला विना धावति चक्करिति शेषः ॥ १५ ॥ तद्विषयासङ्गद्वपितं रागान्धं चेतः प्रदीपरूपरागान्धपतक्षवत् परसी उत्कृष्टाय मरणाद्यनशीय बानि ईहितानि दुर्व्यसनानि तदुन्मुखं सत् नानाविधानां बन न्धानां वधवन्धनरकाद्यापदां वशं यावदायाति तावद्विरतिसुपर-मं नायातीखर्थः ॥ १६ ॥ चशुष्युक्तं दोषं घ्राणादिष्यपि दर्श-यति—घाणमिति ॥ १० ॥ यथा कश्चिदतिदोषेण वैरिणा

निरोद्धं न च शक्तोमि स्पर्शेलम्पटतां त्वचः। श्रीष्मकालसमिद्धस्य तापमंद्रामतो यथा॥ २० शुभराद्धरसार्थिन्यो मुनेः श्रवणशक्तयः। मां योजयन्ति विषमे तुणेच्छा हरिणं यथा ॥ २१ प्रणताः प्रियकारिण्यः प्रह्नभृत्यसमीरिताः। वाद्यगेयरवोन्मिश्राः शुभशद्धश्रियः श्रुताः ॥ २२ श्रियः स्त्रियो दिशश्चेच तटाश्चाम्भोधिभूभृताम्। दृष्टा विभवहारिण्यः प्रक्षणन्मणिभूषणाः ॥ 23 चिरमास्त्रादिताः स्वादु चमत्कारमनोरमाः । प्रह्नकान्ताजनानीताः पडुसा गुणशालिनः॥ २४ कौरोयकामिनीहारकुसुमास्तरणानिलाः । निर्विद्यमभितः स्पृष्टा भृदामाभौगभूमिषु ॥ २५ वधूमुखोपधीपुष्पसमालम्भनभूमयः । अनुभूता मुने गन्धा मन्दानिलसमीरिताः॥ २६ श्रुतं स्पृष्टं तथा दृष्टं भुक्तं ब्रातं पुनः पुनः । संशुष्कविरसं भूयः किं भजामि वदाश मे ॥ २७ भुक्त्वा वर्षसहस्राणि दुर्भोगपटलीमिमाम् । आब्रह्मस्तम्बपयेन्तं न तृप्तिरूपजायते ॥ २८ साम्राज्यं सुचिरं रुत्वा तथा भुक्त्वा वधूगणम्। भंकत्वा परवलान्युचैः किमपूर्वमवाष्यते ॥ येषां विनादानं नासीयैर्भुक्तं भुवनत्रयम्। तेऽपि तेऽप्यचिरेणव समं भसपदं गताः॥

बढाद्वशीकृतो दुर्गन्धोदकवहे नगरप्रणाले सदा संचरेति नियो-जिलो भवति तद्बदहमपि श्लेण्मादिदुर्गन्धोदकप्रणाले नासाबिले नियोजित इखर्थः ॥ १८ ॥ नयो मङ्यामङ्यविभागपरं शास्त्रं तद्भीनया । कृमिकीटपश्वादियोनिलक्षणेषु दुःखादिषु । 'सुरापाः कुमयो भवन्त्यभक्ष्यभक्षिणश्र'हत्यादिसमृतिरिति भावः। यत्र बल-वतां गजो बुद्धिमतां गोमायुश्र श्रेष्ट इति तथोरेव गोप्तताप्रस-क्तिनीन्यस्पेति तथोक्तिः ॥ १९ ॥ २० ॥ शब्दरसः शब्दा-स्वादनम् । हरिणपक्षे विषमे तृणावृतकृषे ॥ २१ ॥ तर्हि कि तव रूपाद्यः शब्दान्ता विषया दुर्लभा येन तद्र्थमनर्थः प्राप्तो नेलाह - प्रणना इत्यादिना । प्रह्ममृत्यजनेरितलादेव प्रणतप्रायाः ॥ २२ ॥ विशेषणे श्यादिचतुष्टये साधारणे योज्ये ॥ २३ ॥ षड्ससीगन्ध्यानां यथायोग्यं मेलनपाकचातुरीगुण-शालिनः ॥ २४ ॥ कें।शेयादयः षद् लग्विषयाः ॥ २५ ॥ वधूमुखानि ओषध्यश्चन्दनोशीरागुवादयः पुष्पाणि समारुम्भनं कर्पूरकस्तूरीपोष्कलकादीनां मेलनं तद्भमयस्तत्प्रभवाः ॥२६॥ भूयोभूयः सेव्यमानं संशुष्कं काष्ट्रमिव विरसं संपन्नं तत्र वान्ता-शनप्राये जाते किं भजामि ॥२०॥ वैरस्येनैव तजिहासा नतु तृश्येत्याह्—भुवत्येति ॥२८॥ किमवाप्यते । न किविदित्यर्थः ॥ २९ ॥ येषां हिरण्यकशिष्त्रभृतीनां विनाशनं विनाशसा-धनं नासीत् प्राग्जगलप्रसिद्धम् । न शुष्केण न चार्देणेलादिवर-प्रार्थने सर्वप्रसिद्धवधसाधनप्रतिषेघादिति भाषः ॥ ३० ॥

प्राप्तेन येन नो भूयः प्राप्तव्यमवशिष्यते। तत्याप्तौ यसमातिष्ठेत्कष्टयापि हि चेष्टया ॥ 32 येन कान्ताश्चिरं भुक्ता भोगास्तस्येह जन्तुमिः। रष्टो न कस्यचिन्मुर्भि तरुव्यामग्रवश्च वा ॥ 32 चिरमाशु दुरन्तासु विषयारण्यराजिषु । इन्द्रियैर्विप्रलब्धोऽस्मि धूर्तवालैरिवार्भकः॥ 33 अद्य त्वेते परिज्ञाता मया स्वविषयारयः। कष्टा इन्द्रियनामानो बञ्जयित्वा तु मां पुनः ॥ ३४ संसारजङ्गले शुन्ये दग्धं नरमृगं शठाः। आश्वास्याश्वास्य निघ्नन्ति विषयेन्द्रियलुब्धकाः३५ विषमाशीविषैरेभिर्विषयेन्द्रियपन्नगैः। येन दग्धा न रुष्टास्ते द्वित्रा एव जगत्यपि ॥ ३६ भोगभीमेभवितां तृष्णातरस्रवागुराम्। लोभोप्रकरवालाढ्यां कोपकुन्तकुलाङ्किताम् ॥ ३७ द्वन्द्वजालस्थव्याप्तामहंकारानुपालिताम् । चेष्टात्रंगमाकीर्णो कामकोलाहलाकुलाम् ॥ 3८ शरीरसीमान्तगतां दुरिन्द्रियपताकिनीम्। ये जेतुमुत्थितास्तात त एवेह हि सद्भटाः॥ ३९ सुसाध्यः करटोद्भेदो मत्तैरावणदन्तिनः। नोत्पथप्रतिपन्नानां स्वेन्द्रियाणां विनिग्रहः॥ 80 पौरुषस्य महत्त्वस्य सत्यस्य महतः श्रियः। इन्द्रियाक्रमणं साधो सीमान्तो महतामपि॥ ક્ષ तावदुत्तमतामेति पुमानपि दिवौकसाम्। कृपणैरिन्द्रियेयीवसुणवन्नापकृष्यते ॥ કર

इत्यं सति किं कार्यं तदाह-प्राप्तेनेति । कष्टया इन्द्रियप्राण-मनःसंयमादिश्रमसाध्ययापि चेष्टया ॥ ३१ ॥ चिर्भुक्तमहा-भोगानामपि पुंसां भोगकाले अपगते अभुक्तभोगेभ्यः पुरुषा-म्तरेभ्यो न कश्चिद्विशेषो दश्यत इत्याह-येनेति । येन येन विरं कान्ता रम्यतरा भोगाधिरं भुक्तास्तादशस्य पुंसी मध्ये कस्यचिद्धि मूर्धि संजातः कल्पतरः कैबिद्धि जन्तुमिर्न दश्रो येन स तच्छायायां सदैव पूर्णकामो विधाम्येत् । नापि तस्य ग्रदे व्योमह्रवो विमानादिः संजातो दृष्टो येन स सदैव सर्वत्र विहरेदिखर्थः ॥ ३२ ॥ अर्भकः । साधुरिति शेषः ॥ ३३ ॥ शब्दादिविषयात्मकानां भूतानामेव मनसो वहिराकपेणेन ख-स्वभोगाय श्रोत्रादीन्द्रियभावेनावस्थानादिन्द्रियनामानः खविन षयारयो मया अदा परिज्ञाता इत्यन्वयः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ आशीविषदृष्टिविधैः। येन दष्टा न दम्धाश्र ते तथाविधाः पुरुषाः सर्वेजगत्यपि द्वित्रा एव संभाव्यन्त इति शेषः ॥३६॥ अवस्यजेतव्यताप्रदर्शनायेन्द्रियाण्येव शत्रुसेनात्वेन रूपयति--भोगेखादित्रिमिः । भोगा एव भीमा इभा गजास्तैर्विलेताम् ॥ ३७ ॥ द्वन्द्वानि शीतोष्णादीनि । अहंकारेण सेनापतिना अनुपालिताम् ॥ ३८ ॥ शरीररुक्षणस्य नगरस्य सीमान्तेषु जितेन्द्रिया महासत्वा ये त एव नरा भूवि। दोपानहमिमान्मन्ये मांसयस्त्रगणांश्वलान्॥ કર मनःसेनापतेः सेनामिमामिन्द्रियपञ्चकम्। जेतुं चेदस्ति मे यत्नो जयामि तदलं मुने ॥ 88 इन्द्रियोत्तमरोगाणां भोगाशावर्जनाहते। नौपधानि न तीर्थानि न च मन्त्राश्च शान्तये ॥ ४५ नीतोऽस्मि परमं खेदमभिधावद्भिरिन्द्रियैः। एक एव महारण्ये तस्करेः पथिको यथा ॥ કદ पङ्क्यन्त्यप्रसमानि महादौर्भाग्यवन्ति च। गन्धिरीवलतुच्छानि पत्वलानीन्द्रियाणि च ॥ ४७ दुरतिक्रमणीयानि नीहारगहनानि च। जनितातङ्कजालानि जङ्गलानीन्द्रियाणि च ॥ पङ्कजानि सरन्ध्राणि सुदुर्छक्ष्यगुणानि च। प्रनिथमन्ति जडाङ्गानि मृणालानीन्द्रियाणि च ४९ रूक्षाणि रह्मलुब्धानि कल्लोलवलितानि च। दुर्प्रहम्राहघोराणि श्वाराम्यूनीन्द्रियाणि च ॥ बान्धवोद्वेगदायीनि देहान्तरकराणि च। करुणाक्रन्दकारीणि मरणानीन्द्रियाणि च ॥ ५१ अविवेकिष्वमित्राणि मित्राणि च विवेकिषु। गहनान्तरशून्यानि काननानीन्द्रियाणि च॥ घनास्फोटान्यसाराणि मिलनानि जडानि च। बिद्यत्यकाशान्येतानि भीमाभ्राणीन्द्रयाणि च ५३ श्चद्रप्राणिगृहीतानि वर्जितानि कृतात्मिः। रजस्तमोमिभूतानि स्वेन्द्रियाण्यवटानि च ॥ 48

गतामाक्रम्य स्थिताम् ॥ ३९ ॥ मत्तस्यरावणदन्तिन ऐराव-तस्य । करटस्य कुम्भस्योद्भेदो विदारणम् ॥ ४० ॥ सक्षस्य धैर्यस्य । श्रियो विश्रान्तिसंपदः । इन्द्रियाणामाक्रमणं जयः । सीमान्तोऽवधिः । पराकाष्टेतियावत् । महतां तत्त्वविदामपि ॥ ४९ ॥ उत्तमतां मान्यताम् ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यहा उपाय-श्रेदिस्त तत्तर्हि जयामि ॥ ४४ ॥ एक एवोपायो मया ज्ञा-तोऽस्तीलाह—इन्द्रियेति ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इतः प्रभृति तुल्यै-र्विशेषणैः पत्वछादिसाम्येनेन्द्रियाणि वर्णयति-पद्भवन्तीत्या-दिना । गन्धिभः शैवलतुर्त्यमालिन्येस्तुन्छानि कुत्सितानि ॥ ४७ ॥ नीहारैर्जाब्येहिंमैश्व गहनानि । आत**हो भयम्** ॥ ४८ ॥ पश्चान्मलाजातानि । गुणा वासनास्तन्तवश्च सृक्षम-तमलात्सुदुर्रुक्याः । जडाङ्गानि जडदेहात्रयवप्रायाणि । लडयो-रमेदाजलाङ्गानि च ॥ ४९ ॥ निष्ठरलादमुखसर्शलाच रू-क्षाणि । कह्नोलैः षद्वर्मिभिरूर्मिभिश्च । श्वाराम्बूनि समुद्रज-लानि ॥ ५० ॥ ५१ ॥ गहनानि दुरवगाहानि । अनन्तानि निरवधीनि । जनविश्रान्तिश्चन्यानि च ॥ ५२ ॥ घना आ-स्फोटा भुजास्फालनगर्जनशब्दा येभ्यः । विद्यदिव क्षणसुखप्र-काशानि । पक्षान्तरे स्पष्टम् ॥ ५३ ॥ ध्रदेखुच्छयुखासकैः

पातनैकान्तद्क्षाणि दोषाशीविषवन्ति च । कक्षकण्टकलक्षाणि श्वभाष्ट्राणीन्द्रयाणि च ॥ ५५ आत्मंभरीण्यनार्याणि साहसैकरतानि च । अन्धकारविहारीणि रक्षांसि स्वेन्द्रियाणि च ॥ ५६ अन्तःशून्यान्यसाराणि वक्षाणि प्रन्थिमन्ति च । दहनैकार्थयोग्यानि दुर्वाक्षणीन्द्रयाणि च ॥ ५७ घनमोहप्रवन्धीनि दुष्कूपगहनानि च । महावकरतुख्डानि कुपुराणीन्द्रियाणि च ॥ ५८ अनन्तेषु पदार्थेषु कारणानि घटादिषु । संभ्रमाणि सपङ्कानि चक्रकाणीन्द्रियाणि च ॥ ५९ आपन्निमग्रमिममेवमिकंचन त्यं मामुद्धरोद्धरणशील द्योदयेन । ये नाम केचन जगत्सु जयन्ति सन्त-स्तत्संगमं परमशोकहरं वदन्ति ॥ ६०

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमद्दारामायणे वाल्मीकाये मोक्षो० निर्वाणप्रकरणे उ० विद्याधरोपात्याने वैराग्यवर्णनं नाम षष्टः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

भुगुण्ड उवाच ।

ततस्तस्य मया ब्रह्मंस्तच्छुत्वा पावनं वचः।
इदमुक्तं यथा पृष्टं मुस्पष्टपदया गिरा॥ १
साधु विद्याधराधीश दिख्या बुद्धोऽसि भृतये।
भवानधक्षपकुहराश्चिरेणोत्थानमिच्छिसि॥ २
पावनीयं तव मती राजते धनरूपिणी।
विवेकेनानलेनेव कनकद्रवसंततिः॥ ३
उपदेशगिरामर्थमादत्ते हारिहेल्या।
मुकुरे निर्मले द्रव्यमयसैनैव विम्वति॥ ४
यदिदं विच्म तत्सर्वमोमित्यादानुमर्हसि।
असामिश्चिरमन्विष्टं नात्र कार्या विचारणा॥ ५

कीटादिभिश्च पांरगृहीतानि । अवटानि गर्तोत्करस्थलानि॥५४॥
अश्राप्राणि जीर्णश्चमुखानि ॥५५॥ ५६॥ दुर्दोरूणि जीर्णवंशादिकाष्टानि ॥५०॥ धनेमीहेश्वीर्यकल्ह्यूतादिदुर्व्यसनप्रबन्धनशिलानि । कुपुराणि असज्जननगराणि ॥५८॥ चककाणि कुलालचकाणि ॥५९॥ हे आपन्नोद्धरणशील, एवं वर्णितप्रकारेन्द्रियप्रयुक्तापत्सामरनिमममकिंचनं त्यक्तमधिलामं शरणागतं मां द्योदयेन कृपोत्थेन तत्त्वोपदेशेनोद्धर । यतः
कारणाज्ञगति येये प्रसिद्धास्त्वादशाः केचन सन्तस्तत्त्वज्ञा
दयालवो जयन्ति सर्वेतिकर्षेण वर्तन्ते तेषां संगमं शरणागितं
परमशोकहरं वदन्ति सर्वशास्त्राणि सर्वजनाश्चल्यर्थः ॥६०॥
इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे
सन्तर्शे षष्ठः सर्गः ॥६॥

ब्रह्मेव न जगहुःसमज्ञानं जगदाततम् । अहंबीजाव्यरूखो हि जगहुक्षोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

तस्य विद्याधरस्य । इदं वक्ष्यमाणमुत्तरम् ॥ १ ॥ दिष्ट्या भाग्योदयात् ॥ २ ॥ विवेकेन घनरूपिणी निविडं व्याप्ता । स्था अनलेन व्याप्ता कनकद्रवसन्ततिः कान्स्यतिशयेन विरा-अते तद्रदिखर्यः ॥३॥ अतएव ते मतिर्मदुपदेशगिरामर्थमादत्ते अवश्यमादास्यति । हेल्या अप्रयन्नेन॥४॥ओमिस्यन्नीकारसुद्धा ॥ ५॥ तत्रादौ सर्वदश्यवियेके साक्षिस्रूपमेन शुद्धं ब्रह्मोति यरिंकचित्स्वदतेऽन्तस्तं वुध्यस्वाबोधमुत्सृजन्। नासि त्वं चिरमप्यन्तः प्रेक्षितोऽपि न लभ्यसे ॥६ नाइंत्वमस्ति न जगदिति निश्चयिनस्तव। सर्वमस्ति शिवं तश्च न दुःखाय सुखाय ते॥ O किमश्रत्वाज्जगज्जातं जगतोऽथ किमश्रता। विचार्यापीति नो विद्य एकत्वादस्रमेतयोः॥ 6 मृगतृष्णाम्बुवद्विश्वमवस्तुत्वात्सद्द्यसत्। यचेदं भाति तद्रह्म न किंचित्किचिदेय वा॥ ९ मृगत्ष्णाम्युवद्विश्वं नास्ति त्वमथवास्ति च। प्रतिभासोऽपि नास्त्यत्र तदभावादतः शिवम् १० विश्ववीजमहंत्वं त्वं विद्धि तसाद्धि जायते। साद्यव्ध्युर्वीनदीशादिजगज्जरठपादपः ॥ ११

सर्ववेदान्तरहस्यं संक्षिप्योपदिशति --यत्विनिदिति।यत्विचिद-हंकारादि ते अन्तर्हदि खदते दश्यतया प्रथते तत्सर्वं त्वं नासि। दृश्यवर्गेष्वेव कश्चिदातमास्ति स मयान्विष्य अवध्य इति चि-रमप्यन्तः प्रेक्षितोऽन्विष्टस्लमातमा न लम्यसे । अतो द्रयमात्र-लक्षणमबोधमुतसूजन् संस्तत्साक्षिणमात्मानं वुद्धास्त्रेखर्थः ॥६॥ नहि द्रष्ट्रस्यलक्षणसर्वद्रस्यत्यागे शून्यतापत्तिः, किंतु सुखदुः-खनैषम्यप्रयोजककत्पितदोषांशनिवृत्त्या बास्तवपरमकस्याणब्र-ह्मभावेन पूर्णतया सर्वमस्त्येवेत्याशयेनाह--नाहमिति ॥ ७ ॥ दर्यमात्रस्य अबोधरूपलमुक्तमुपपादयति-किमिति । कि सुपुप्ती प्रसिद्धादशानादहंकारादिभावेन धनीभूताज्ञाप्रतस्वप्तल-क्षणं जगजातमथवा जतुकाठिन्यादिव विलीनाजाप्रदादिलक्षणा-जगतः सीपुप्ती अज्ञता जाता इति विचार्यापि विनिगमकाभा-वात्कार्यकारणभावव्यवस्थां नो विद्यः । अतः काठिन्यद्रवावस्थ-योघंतस्येवैकलात्सर्वस्याशानमात्रलमित्यर्थः ॥ ८ ॥ तस्य विव-र्ततादर्शनमेव त्यागः बाधितस्य जगतस्तुच्छताविभावेन न किंचिद्रहा, अधिष्ठानरूपतापत्तिविभावने तु सर्वमेव ब्रह्मे-त्याह—मृगतृष्णेति ॥ ९ ॥ उक्तमाशयं विशदयंस्तत्प्रतिभास-मपि निराचष्टे-स्गतृष्णेति । तदभावात्प्रतिभास्याभावात् । नहि घटाभावे प्रकाशसत्वेऽपि घटप्रकाशशब्दार्थोऽस्तीति भावः ॥ १० ॥ अनन्तरूपस्य जगतः प्रातिस्विकरूपेण निरसितुमश- अहन्त्वधीजादणुतो जायतेऽसौ जगद्भमः।
तस्येन्द्रियरसाद्ध्यानि मूलानि भुवनानि हि ॥ १२
तारकाजालकलिका ऋक्षीयः कोरकोत्करः।
वासनागुच्छविसराः पूर्णचन्द्रः फलालयः॥ १३
स्वर्गादयो बृहद्वर्गा महाविटपकोटराः।
मेश्मन्दरसद्यादिगिरयः पत्रराजयः॥ १४
सप्ताब्धयोऽप्रसुतयः पातालं मूलकोटरम्।
युगानि घुणवृन्दानि पर्वाणि गुणपङ्कयः॥ १५
अज्ञानमृत्पत्तिमही नरा विहगकोटयः।
उपलम्भो बृहत्स्तम्भो द्वो निर्वाणनिर्वृतिः॥ १६

रूपालोकमनस्कारा विविधा मोदवृत्तयः। वनं विपुलमाकारां शुक्तिजालं मुख्त्वयः॥ १७ विचित्रशाखा ऋतय उपशाखा दिशो दश। संविद्रसमहापूरो वातस्पन्दो निवर्तनः॥ १८ चन्द्रार्करुचयो लोला मज्जनोन्मज्जाः। रम्याः कुसुममञ्जर्यस्तिमिरं भ्रमरभ्रमः॥ १९ पातालमाशागणमन्तिरक्ष-मापूर्य तिष्ठत्यसदेव सद्वत्। तस्यानहन्ताग्निहतेहमर्थ-वीज पुनर्नास्ति सतोपि रोहः॥ २०

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा॰ मो॰ निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विद्याधरोपाख्याने जगदृक्षबीजवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

भुगुण्ड उवाच ।
विद्याधरधराधारो गिरिकन्दरमन्दिरः ।
दिगन्तराम्बराचारचारसंचारचञ्चरः ॥
ईंद्योऽयं जगहुक्षो जायतेऽहंत्वबीजतः ।
बीजे ज्ञानाग्निनिर्देग्धे नेव किंचन जायते ॥
प्रेक्षमाणं च तन्नास्ति किळाहंत्वं कदाचन ।
पताबदेव तज्ज्ञानमनेनैव प्रदह्यते ॥

क्यलाद्वीजदाहेनैव निरास इति वक्तुमहंकारं बीजत्वेन जगत्त-त्प्रभवतरुखेन वर्णयति-विश्वेखादिना ॥ ११ ॥ इन्द्रियरसो विषयासङ्गस्तदाद्यानि अधोभुवनानि तस्य द्वमस्य भूलानि ॥ १२ ॥ अश्विन्यादिसप्तर्विंशतितारकाजालं तस्य प्रधानक-लिका । तदन्यऋक्षीघः सूक्ष्मकोरकोत्करः । प्राणिनां धर्मादि-बासनाः पुष्पगुच्छसमूहाः । फलालयः फलगुच्छाः ॥ १३ ॥ सर्गादयः स्वर्भहर्जनतपः सत्यलेकास्या बृहतां लोकानां वर्गा महान्तो विटपकोटराः शाखावलयगर्भदेशाः ॥ १४ ॥ अप्र-मुतयः आलवालपरिखाः । युगानि कृतादीन्युत्तरोत्तरं धर्मपि-ष्टक्षरणाद्भणवृन्दानि । तत्तद्युगवरसरायनर्तुमासादिगुणपङ्गयो वृ-क्षस्य शाखामूळाधुद्भवपर्वाणि ॥ १५॥ नरा जीवाः । उपलम्भो भ्रान्तिज्ञानमेव वृहत्स्तम्भः सर्वविटपाधारमध्यभागः। तस्य तत्त्वबोधान्निर्वाणं निर्दृतिरेव दवो वनहुताशनः ॥ १६ ॥ इ-व्हिबैरथीपळम्भा इतालोकाः मनसा तद्वोचरसंकल्पविकल्पा मनस्काराध तस्य दुमस्य विविधा आनोदनृत्तयः सुगन्ध-प्रसराः । आकाशमन्याकृताकाशं तस्य विपुछं वनम् । मुख-लची नेत्रपटानि उत्तराधरोष्टाश्व नेत्रहास्यमुक्तोद्भेदशुक्ति-जालमिव पुष्पोद्भेदनम् । प्रसवबन्धनमिति यावत् ॥ १७ ॥ तस्यात्मसंविदेव जीवनहेत् रसप्रवाहः। सूर्यचन्द्राम्यादीनां संव-र्गेण निवर्तनः सुत्रात्मैव तस्य वातस्पन्दः ॥ १८ ॥ मजनो-न्मजने प्रखह्मुद्यास्तमया तदुन्मुखाधन्दार्करुचयस्तस्य रम्याः

अहंत्वभावाद्याहंत्वमित्त संसारवीजकम्।
नाहंत्वभावात्राहंत्वमस्तीति ज्ञानमुत्तमम्॥ ४
सर्गादावेव सर्गस्य किलास्याभावयोगतः।
कुतोहंत्वं कुतस्त्वंत्वं कुतो द्वित्वैक्यविभ्रमः॥ ५
समाकण्यं गुरोर्वाक्यं यतन्ते ये स्वयत्ततः।
संकल्पत्यागमामूलं पद्याप्तौ जयन्ति ते॥ ६

कुसुममजर्थः । सूर्थेण सह अमितिमिरमन्धकार एव अमराणां अमणं अमरश्रमः । अमन्तो अमरा इति यावत् ॥१९॥
ईहशोऽयं संसारयक्षः पातालं मूलतो मध्यत आशागणं दिक्समूद्रमप्रतोन्तरिक्षं चाप्यं वस्तुतोऽसदेव आन्तिरूपं सद्वत्तिष्ठति ।
तस्य अहमर्थरूपे बीजे अनहंतालक्षणेनामिना हते मितिते
सित जीवन्मुक्तिभोगाय यावत्तदेहपातं प्रतिभासमात्रेण सतोप्यस्य संसारयक्षस्य पुनर्जन्मादिना रोहः प्ररोहो नास्तील्यधः
॥ २०॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणे तास्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सप्तमः सर्गः ॥ ७॥

इह संसारवृक्षस्य ज्ञानादुच्छेद् ईयते । संकल्पमण्डपप्रायः संसार उपवर्ण्यते ॥ १ ॥

वर्णितं संसारवृक्षमनुबदति—विद्याधरेति । हे विद्याधर, अधस्तनसम्रलोकसहिता धरा आधारो मूलदेशो यस्य । लोका-लोकान्तिगरीणां कन्दराणि अन्तरालभागा मन्दिरं सालवाला वेदिर्यस्य । दशदिगन्तरे अम्बरे च आचारेण तिर्विग्वटपवि-स्तारेण चारेण कर्ष्वविटपप्रसारेण तत्रतत्र प्राणिसंचारेण च चश्चरोऽतिचञ्चलः ॥ १ ॥ २ ॥ प्रेक्ष्यमाणं तत्त्वतः किमिदं स्वादिति रलपरीक्षावद्विमृश्य नद्यमात्रतयावधार्यप्राणम् । तदहंलम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ उत्पत्तिरेव यस्यासतः सतो वा न संभवति तस्य स्थितिर्दूरनिरस्तेत्वाह—सर्गादावेवेति ॥ ५ ॥ संसारः कालत्रयेऽपि नास्त्येवेत्युकार्यस्य दबीकरणाय संकल्प-द्यूतमण्डपं वर्णविष्यन् भूमिकां रचयति—समाकर्ण्येत्वादिना ।

१ उद्भेदपर्वाणि शति पाठः.

रन्धनाज्यमामोति स्वशासे स्पन्नत्कते। विवेकी स्वधिवेकित्वं यतनादेव नान्यथा॥ चित्रमत्कारमात्रं त्वं जगद्विद्धीह नेतरत्। नाशासु न बहिर्नान्तरेतत्कचन विद्यते ॥ संकल्पोन्मेपमात्रेण जगिबत्रं विलोक्यते। तद्तुन्मेषविलयि चित्रकृष्टित्तचित्रवत्॥ मण्डपोऽस्ति महास्तम्भो मुक्तामणिबिनिर्मितः। बहुयोजनलक्षाणि कान्तकाञ्चनचित्रितः॥ 90 मणिस्तम्भसहस्रेण बृतोऽग्रे प्रोतमेरुणा। रन्द्रायुधसहस्रात्यकल्पसंध्याभ्रसुन्दरः॥ ११ स्रीबालपुरुषादीनां वास्तव्यानामितस्ततः। क्रीडार्थे स्थापिता यत्र नानारचनयान्तरे॥ १२ भृतबीजपरा पूर्णास्तमोरिषुसर्घुंघुमाः। तमःप्रकाशचित्राख्या लोकान्तरसमुद्रकाः॥ १३ आमोदसुभगा लोलजलदावलिपल्लवाः। लीलापबाकरे स्त्रीणां विल्वनाः कल्पपादपाः ॥ १४ बालनिःश्वासचलिताः कन्द्रकानि कुलाचलाः।

वस्यमाणं प्राम्बहुशो वर्णितं च आमूलं समूलं संकल्पत्यागं कर्तुं गुरोस्तदुपायकमवेदकं वाक्यं समाकर्ण्य तदुक्तकमेण स्वप्र-यक्षतो ये यतन्ते ते तत्त्वबोधप्राप्तौ सल्यामसंकल्पं तत्पदं कैब-त्यास्यं जयन्ति ॥ ६ ॥ यथा सूपकृतसूपकारः सकान्ने सूप-कारविद्याविशेषे कृते सम्यगभ्यस्ते तदुक्तप्रकारेणैव नानाभक्य-भोज्यनानारसायनानां रन्धनात्पाकेन निष्पादनात् क्षुत्तुडाम-यजरादिजयं राजसन्मानाचुत्कर्षं चाप्रोति तद्वद्विवेकी अधिकारी गुरुशास्त्रोक्तमार्गेण यतनादेव खविवेकित्वं कैवल्यपर्यन्तं जयति नाम्यथेखर्थः ॥ ७ ॥ यतोऽयं संसारः खप्नेन्द्रजालादिवद्शात-विवासकारमात्रमतो न वितो बहिरस्तीत्याह-चिदिति ॥८॥ चिचमत्कारमात्रतामुपपादयति—संकल्पेति । चित्रकृतश्चित्र-कारस्य चित्ते कल्पितं यश्चित्रं तद्वत् ॥ ९ ॥ जगतः संकल्प-मात्रतां द्रदयितुं संकल्पद्युतमण्डपाकारतां कल्पयति --मण्डप इसादिना ॥ १० ॥ अप्रे अधोमुखं प्रोतो मेहरिबोर्ध्वगुरगु-द्धर्यस्य तथाविधेन मणिस्तम्भसहस्रेण वृतः । अतएव कचि-दिन्द्रायुधसहस्राट्य इव क्रचित्कल्पसंध्याश्राणीव सुन्दरः॥११॥ यत्र यस्मिन्मण्डपे वास्तव्यानां निवसतां स्त्रीबालपुरुवादीनां की-डार्थं लोकान्तराणि पातालखर्गादीनि तदाकाराः समुद्रकाः संपु-टकासात्र तत्र स्थापिताः।कीदशास्ते। अन्तरे नानानदीपर्वतवन-इस्लश्वदेवतिर्थं हुरादिनानारचनया युक्ताः॥ १२॥ भूतानि प्राणि-नसाहक्षणेवीजैः परैसादुपभोग्येश आपूर्णाः । तमसां रिपुमि-र्षातकैर्मणिप्रदीपसूर्येचन्द्रादिभिर्व्यवहारप्रवृत्या सबुंबुमाः स-शब्दाः । क्रियतमोभिः क्रियत्प्रकाशैश्व चित्रा आस्या अ-

संध्याम्बुदाः कर्णपूराध्यामराः शरदम्बुदाः ॥ १५ कल्पान्तकालजलदास्तालवृन्तपदंगताः । भूतलं चूतफलकं वितानं तारकाम्बरम्॥ १६ भूतशारपरावर्ते धृतेऽक्षाः शशिभानवः। ब्योमाजिरे जगद्भासपणे गृहनिवासिनाम्॥ १७ इति संकल्प प्वान्तश्चिरभावनया यथा। अप्रस्थदृत्रयोपमया सत्यतामिव गच्छति ॥ 3.5 तथैवायं जगद्रपः संकल्पैः सुसमुव्धितः। चित्रमत्कारमात्रात्मा चित्रहित्रचित्रधत्॥ १९ असल्पमेय स्फुरति सर्वमस्ति च नास्ति च। असद्रियत प्यायं कुतोपीह समुत्थितः॥ २० हेम्रीव कटकादित्वं संसारोदरकोटरः। चिद्यमत्कार एवायमविकल्पनसंक्षयः॥ २१ अत्यन्तमेव स्वायत्तो यथेच्छित तथा कुरु। यश्चाऽन्नपानादानदावनादरमुपेयिवान्। तस्येदं पश्चिमं जन्म न स कर्म समुज्झति ॥ २२

मिल्या येषाम् ॥ १३ ॥ लीलापद्मायाः कीडालक्ष्म्या आकरे यसिम्मण्डपे स्रीणां मण्डनाय विल्वना ठवनेन गृहीता आ-कल्पाः कर्णपूराद्यलंकारा येभ्यस्तथा विधाः कल्पपाद्पाः कृता ॥ १४ ॥ बाळानां निःश्वासेनापि चिलताः अतिलघीयांस इति यावत् । ईदशाः कुछाचला यत्र अर्थाद्वालानामेन कीडाक-न्दुकानि कृताः । संध्याम्बुदा दिग्वधूनां कर्णपूराः कृताः । शरदम्बदाश्च तासां इस्ते चामराः कृताः ॥ १५ ॥ यत्र मण्डपे भूनलं संपूर्ण यूतफलकं कृतम् । तारकासहितमम्बरं वितानं कृतम् ॥ १६ ॥ यम्त्रमण्डपे व्योमन्धणे अजिरे नलरे जगतां भास आविर्भावतिरोभावादिप्रत्यय एव पणो यस्मिन श्रुते कीडतां गृहनिवासिनां मण्डपस्वामिनां ब्रह्मादीनां तत्र भूतसाराणां चतुर्विधभूतमामाणां शारिफलानां पुनःपुनर्जनम-मरणादिना श्रमणं परावर्तस्तलक्षणे सूते शशिभान्वादिनव-प्रहा अक्षाः कृताः ॥१७॥ इति ईरशो मण्डपोऽस्तीति संकल्प-यिष्तः संकल्प एव अग्रस्थदस्योपमया यथा सत्यतामिव गच्छति तथैवायं धातुः संकल्पैः मुसमुंत्थितो जगद्रपो मण्डपोऽपीति परेणान्वयः ॥ १८ ॥ १९ ॥ प्रतिभा-सतोऽस्ति परमार्थतो नास्ति च । कुतोऽपि समुध्यितो मायाहस्त्यादिरिव ॥ २० ॥ संसार उदरकोटरे यस्य तथावि-धिश्रमारकार एव ॥ २१ ॥ तथा चैच्छिकैर्विकल्पनरविकल्प-नैखाविभावितुं तिरोभावितुं च तत्त्वविदामलान्तमेव खा-यस इति यथेच्छसि तथा कुर्वित्यर्थः। अभ्रपानादिरेहिकभोगसा-मत्रीदानयशादिरामुध्यिकभोगसामत्री उभयत्राप्यनादरं फळा-

प्राप्तो विवेकपद्वीमसि पावनात्म-न्युण्यां पवित्रितजगन्नितयां द्वितीयाम्।

नाधःपतिष्यसि पुनर्मनसामुनेति जानामि मौनममलं पदमुत्स्ज त्वम् ॥ २३

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाण उत्तरार्धे विद्याधरो मायामण्डपवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥८॥

नवमः सर्गः ९

3

3

भुगुण्ड उवाच ।
अबुद्ध्यमानश्चेत्यादिचिद्र्पमपि चानघ ।
शान्तचिद्धन एवास्व निर्मलाण्स्वन्तरंशुवत् ॥
अचेतनं चेतनान्तश्चेतनादेव विद्यते ।
स्वंऽसादृश्चेऽपि सदृशं पयोगशो यथानलः ॥
सचेतनाचेतनयोहें तृश्चित्त्वात्तथेव चित् ।
विनाशोत्पाद्योवेद्विज्वालायाः पवनो यथा ॥
नाह्मस्तीति चिद्र्पं चिति विश्वान्तिरस्तु ते ।
ततो यथा यादृशेन भूयते तादृशो भव ॥
चिद्र्पः सर्वभावानामन्त्रवृहिरसि स्थितः ।
प्रसन्नाम्यभरस्यान्त्रवृहिश्चेव यथा पयः ॥

निमसंधिम् ॥२२॥ विवेकप्रास्येय ते मुक्तिरवर्यभाविन्यनु-मीयत इति पुनर्जन्मादिसंभावनाभीतं तमाश्वासयति—प्राप्त इति । हे पावनात्मन् छुद्धनुद्धे, त्वं पातहेल्विवेकपद्व्यपेक्षया द्वितीयां पवित्रितजगन्नितयां विवेकपदवीं प्राप्तोसि । अतोऽमुना मनसा न अधः पतिष्यमीति जानामि अनुमिनोमि । अतस्त्वं मौनं वाद्यनसच्छाश्च्यममछं चिन्मात्रपदमवरुम्ब्य मनआदि-हद्यजातमुल्गुजेल्यर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तार्त्ययकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टमः सर्गः ॥ ८॥

> चिद्धीनोद्यध्यंससत्तास्फृतिविदतेनम् । इह चिक्कचनं विश्वं चिक्माश्रमिति वर्ण्यते ॥ १ ॥

'हेश्रीव कटकादित्वं संसारोदरकोटरः । चिश्वमत्कार एवायमिवकल्पनसंक्षयः॥'इति यदुक्तं तदुभयमनुभाविषण्यश्रविकल्पनत्रकारं प्रथममुपदिशति—अवुध्यमान इति । चेत्यं, तद्गतिक्रयागुणदोषादि तद्याष्ट्रतं तद्वयभासकम् । चिद्रूपमि विभाजकविकल्पकमनसो बाधादवुध्यमानो निमंलासु अप्सु प्रविष्टा
अंशवः सूर्यकरणा इव प्रशान्ततापः प्रकाशमात्रावशेष आस्त्र।
सेयमि कल्पस्थितिजगिद्विकल्पक्षयहेतुतित्वर्थः ॥ ९ ॥ संसारोदरकोटर्थित्वमत्कार एवायमित्येतदिष सोपपत्तिकमनुभावयति—अचेतनमित्वादिना । अचेतनं दृश्यं स्वे स्त्रीये जाख्यदुःखपरिणामित्यादिलक्षणं चिद्मादृश्ये सत्यपि चेतनायाश्रितोनतरे विद्यते नान्यत्र । तत्कृतः । चेतनादेव । नद्यन्यत्र विद्यमानं तदसंबद्धया चेतनया चेतिनुं शक्यम् । नचाचेत्यमानं
किचित्सिज्यति । नापि चेतना सिक्तया येन गला चेतयेत् ।
सा यदि सर्वगता तिर्हं सिद्धैत प्रतिक्रेत्यर्थः ॥ २ ॥ एवं देशतः
सर्वदश्यस्य चिदन्तःस्थिति प्रसाध्य कालतोपि तां सूच्यंश्रितका-

नाहमस्तीति चिद्र्पं चितौ चेह्नग्रमङ्ग ते।
न चान्यचेतितं ब्रह्मरूपं केनोपमीयते॥ ६
ससुरासुरपातालभूविष्टपमिचोषितम्।
नानाभावाजवीभाविष्ठयाकालमिवाकुलम्॥ ७
यथा रङ्गमयं कुक्ये जगन्मौनमिव स्थितम्।
तथा चिच्चित्रकचितं खे कुक्ये चात्मसंस्थितम् ८
तेनैव भूयते भूरि यिच्चतं कचितं स्वतः।
अचेतनं चेतनं वा यथेच्लित तथा कुद्य॥ ९
चिच्चमत्कृतयो व्योग्नि स्फुरन्त्येता जगन्तया।
अर्कागुवदरोधिन्यः स्वच्ला विदितवेदिनाम्॥ १०

र्यतां साधयति—सचेतनेति । सचेतना अहंबृत्तिविषयाः । अचेतना इदंकारविषयाः । तथा पूर्ववदेव कारणं विवर्तीपा-दानम् । चिद्विवर्ततेव चित्रमत्कार इति भावः ॥ ३ ॥ तत्रा-हमिति सचेतनांशनिरासेनैवोभयिराससिद्धा चिन्मात्रावस्थि-तिसिद्धिरित्याह्—नाहमिति । नाहमस्तीत्यहंकारास्पदांशवा-धेन प्रत्यकिद्र्पं परिशेष्य विकल्पहेतुक्ष्यादेवेदं विकल्पनिर्मुक्त-पूर्णिचिति विश्रान्तिरहिलल्पर्थः । एवं विश्रान्तेन लया । ततः प्रारब्धशेषक्षयोत्तरम् ॥४॥ अम्बुव्यापिनः क्षीरस्याम्बुक्षयेऽपि परिशेषवद्गहारूपमेवानुपमं ते परिशिष्यत इत्याह-विद्रुप इति द्वाभ्याम् ॥ ५ ॥ प्रत्यकिद्र्पं ब्रह्म चितौ रुप्तमखण्डैक्यं प्राप्तं चेत् ॥ ६ ॥ यथा सुरासुरैः सहवर्तमानं पातालभूत्रिविष्टपमिव स्थितम् । प्रीतिहर्षकोधयुद्धजयपराजयादिनानाभावैः पछाय-नानुधावनाद्याजवीभावैस्तत्तद्रनुरूपिकयाकालमिव आकुलमपि रक्षमयं चित्रछिखितं जगत् कुड्यं कुड्यात्मना मौनं सुनिः शरीरभित्र निर्व्यापारमेव स्थितं तथा मायाशकलिविश्रक चितं जगदपि शुद्धचिदाकाशलक्षणे कुड्ये निर्विकाराद्वयतदातम नैव संस्थितं न जगद्भावेनेत्यर्थः ॥७॥८॥ अचेतनमृतुजग-द्रपम् । चेतनं परमार्थसद्रह्मरूपं वा यदेव चिति खतः खरसतः कचितं तेनैव भूयते । एवं खायत्तयोहभयोर्व्युत्यानेन समा-धिना वा यदेवेच्छित तत्कुर्वित्यर्थः ॥ ९ ॥ एतावांस्त्वक्रेभ्य-स्तत्त्वविदां विशेषः । यथा मरुभूमी महानदात्मना दर्यमाना अर्काशवो मञ्जनमरणादिभयजननात्तरणोपायादर्शना बाजाना-मर्वोक्कले निरोधका न मरुभूमितत्त्वज्ञानाम्, तद्वदेकविज्ञानेन तत्त्वतः सर्वविज्ञानाद्विदितवेदिनां तत्त्वविदां जगद्गुपाधिषम-

१ इदं मूलस्यसचेतनेत्यादेः फलितार्थकथनम्.

तिमिराक्रान्तरधीनां यथा केशोण्ड्रकादि खे। स्फुरत्येषं जगद्र्यमनात्मन्येच तिष्ठताम्॥ ११ एषं जगत्त्वमहमित्यवबोधक्रप-माभासमात्रमुदितं नच नोदितं च।

अर्कोशुजालरचनानगराममत्र कुड्यादिसत्यमिदमस्ति न खे लनेव॥ १२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे०मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० वि० चित्कचनयोगोपदेशो नाम नवमः सर्गः ॥९॥

द्शमः सर्गः १०

ર

4

भुशुण्ड उवाच ।
विद्धि त्वं चेतनादेव चेतनेतरचेतनम् ।
जलेऽग्निरिव चिज्जाङ्ये नातो मिन्ने मनागिष ॥
तक्षेदनावेदनयोरमेदात्स्वस्थमास्यताम् ।
नियन्त्रमेव चित्रस्थन्नतिवद्योममध्यवत् ॥
ब्रह्मण्यदेश्वरत्तित्वादचित्वं विद्यते तथा ।
अक्षुच्धे विमले तोये भाविफेनलवो यथा ॥
न कारणं विनोदेति जलात्फेनलवो यथा ॥
न कारणं विनोदेति सर्गादि ब्रह्मणस्तथा ॥
नच कारणमस्त्यत्र सर्गवृत्तावकारणे ।
नातः संजायते किंचिज्जगदादिनं नद्यति ॥
अत्यन्तं कारणाभावान्न किंचिज्जायते जगत् ॥
अत्यन्तं कारणाभावान्न देष्टमप्यत्रतो जगत् ॥
ब्रह्मानन्तमजं शान्तमतोऽस्तीदं न सर्गधीः ।

त्कृतयोऽप्यांनिरोधिन्य इत्यर्थः । उपपादितं चेदं लीलोपाख्याने विस्तरेण ॥ १० ॥ अज्ञानां तु निरोधिन्य एवेत्याशयेनाह— तिमिरेति । अनात्मनि संसारे एव तिष्ठतामज्ञानाम् ॥ १९ ॥ अर्काश्चवदिति दृष्टान्तं प्रकारान्तरेणापि वर्णयन्नुपसंहरति—एव-मिति । आभासमात्रं वर्णितिचिष्मात्कारमात्रमतोऽज्ञहशोदितं तत्त्वदृशा नोदितम् । चकारी विकारान्तराणामिष समुष्यप्रतिष्धार्थौ । अर्काश्चलांलरेव रचना निर्माणं यस्य तथाविधं यद्गन्धवनगरं तदाभमत्र व्यवहारभूमी कुड्यादि जगत् । तथ जगद्गपेण खे छतेव सत्यं नास्ति । अतो न चित्रिरोधकमित्य-परिच्छेदिश्वतः सिद्ध इत्यर्थः ॥ १२ ॥ इति श्रीवासिष्टम-हारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यथाभूतं स्थितं श्रह्म निर्विकारमकारणस् । नासीदेव जगरकापि कदापीखुपवर्ण्यते ॥ १ ॥

श्रद्धणि जगर्पलापिद्धये तजाच्यमपलिपतुं जडत्वेनासि-मतस्य चिद्भावमनुभावयति—विद्धीत्यादिना । हे विद्याधर, त्वं चेतनेतरत्वेनासिमतस्य जगतश्रेतनादेव चेतनं स्फुरणं विद्धि । स्फुरद्रप्रस्वमेव हि चेतनलम् । तद्यदि जगद्र्यं स्फुरति तर्हि चेतनमेव न चेतनेतरदिति । जले प्रतिविभ्वितोऽभिरिव ज-काभ चेतनाद्वस्त्वन्तरमस्ति । अतो जलक्षेत्यादितिरिक्तं प्रति- कारणाभावतस्तेन ब्रह्मेवेदमखण्डितम्॥ अतः शिलोदराभोऽसि व्योमकोशोपमोपि च। ब्रह्मेकघनरूपत्वादजोऽनवयवोऽसि च॥ ८ ह्योसि किंचिन्न किंचिन्ना निःशङ्कमलमास्यताम्। अचेत्रना चिदाभासे शाम्यतामात्मनात्मनि॥ ९ नित्यानन्दतयाऽजस्य कारणं नास्ति कार्यकृत्। सर्गाद्यसंभवे तस्माद्यदस्ति तद्यं शिवम्॥ १० अजो येषां तु चिद्रूपो नास्ति मार्स्यविलासिनाम्। सर्गनाशे समुत्पन्नं किंतेपां प्रविचार्यते॥ ११ यत्र यत्र परं ब्रह्म तत्र सन्ति जगन्ति हि। जगच्छब्दार्थरूपेण मुक्तान्येवंविधानि च॥ १२ तृणे काष्टे जले कुट्ये सर्वत्रेव परं स्थितम्। सर्वत्रेव च सर्गाधः परिप्रोतः स्थितो मिथः॥ १३

विम्बवहुरीप्ण्यमिव न वेतन्याजाब्यं नामान्यदस्तीखर्थः ॥१॥ जाञ्यमात्रापलापेनैव जगदपलापसिज्या निर्विक्षेपं स्थीयतामि-त्याह-तदिति । यात्रणं यात्रं परिच्छेदस्तद्रहितं यथा स्या-त्तथा । चित्रकृत्रित्तचित्रस्थतः ज्ञप्तिवत् । गन्धर्वनगराधिष्ठान-व्योममध्यवच ॥ २ ॥ ये त् प्रलयेऽपि ब्रह्मणि अचिद्धपं जगत् सुक्ष्मरूपेणाऽस्त्येचेति श्रुतिरमृतियादास्ते मायाशवलस्य सर्वश-किलादसत्खपि ब्रह्मसत्तारोपदृष्ट्या भाविफेनलवे सांप्रतिकज-लसत्तया सत्ताव्यवहारवदित्याशयेनाह—ब्रह्मणीदि ॥ ३॥ वास्तवदृष्ट्या तु मायाया एवामत्वादद्वितीये निर्विकारे क्षोभत-द्धेरवोरेवासंभवाज्ञ इसर्गादेरुदय एव न संभवतीत्याह—नेत्या-दिना ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ अनवधारितविशेषसर्वा-नुगतसत्तासामान्यरूपलास्किचित् । विशेषवाधे तदनुगतस्य सामान्यरूपताया अपि निवृत्तेरैकरूप्यावधारणाच न किचित् । चेतना युद्धिस्तिचिदाभासश्च न विधेते यत्र ॥९॥ प्रयोजनापे-क्षाभावादपि सर्गो नाम्तीत्याह—नित्यानन्दतयेति । कारणं कियानिमित्तं फलम् ॥ १० ॥ एवं तत्र दशा निलमुक्तता-सिद्धिमुपपाद्य तदनभ्युपगभे नित्यबद्धतात्रसक्तिभूखाणां स्यादि-लाह—अज इति । तेषामनिर्मोक्षदोषानियुत्तेः कि प्रविचा-र्थते । निष्फला मोक्षोपायचिन्तेत्वर्थः ॥ ११ ॥ अर्धप्रवृद्ध-दृष्ट्या गारकी स्थितिस्तामाह-यत्रयत्रेति ॥ १२ ॥ १३ ॥

१ दृइयं इति पाठः.

२ स्थिर इति पाठः.

ब्रह्मणः कः स्वभावोऽसाविति वक्तं न युज्यते।
अनन्ते परमे तत्त्वे स्वत्वास्वत्वास्यसंभवात्॥ १४
अभावसव्यपेक्षस्य भावस्यासंभवादिप।
पदं बभ्रन्ति नानन्ते स्वभावाद्या दुक्तयः॥ १५
अस्वत्वाभावयोनित्येऽनन्तेऽस्यन्तमसंभवात्।
स्वत्वभावेषु सिद्धेषु स्वभावोक्तिनं तिष्ठति॥ १६
नाहन्त्वं लभ्यते साधो बुद्धालोके निरीक्षितम्।

असदेष कुतोऽप्येतद्वालयक्ष इवोदितम् ॥ १७ मुक्तं त्वहन्त्वशब्दार्थेर्लम्यते यच तत्परम् । युक्तं त्वहन्त्वशब्दार्थः प्रेश्यमाणं विलीयते ॥ १८ मेदो जगद्रह्मदशोरमेदः पर्यायशब्दार्थविलासतस्यः ।

पर्यायशस्यार्थविलासतुस्यः। संकल्पमात्रं कथितो न सत्यो यथानयोर्वे कटकत्वहेस्रोः॥

नाहरत्वं लभ्यते साधो **बुद्धालोके निरीक्षितम्। यथानयवि कटकत्वहेद्धोः॥ १९** इस्रार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० वि० सर्गापवर्गप्रतिपत्तियोगोपदेशो नाम दशमः सर्गः॥१०॥

एकाद्दाः सर्गः ११

भुशुण्ड उवाच ।

शास्त्राणि दियताङ्गानि लग्नान्यङ्गे निरम्बरे ।

यो बुद्धमानः सुसमः स परिसन्पदे स्थितः ॥ १
तावत्पुरुषयक्षेन धैर्यणाभ्यासमाहरेत् ।
यावत्सुयुप्ततोदेति पदार्थोदयनं प्रति ॥ २
यथा भूतार्थतत्त्वद्गमाधयोऽप्रगता अपि ।
न मनागपि लिम्पन्ति पयांसीव सरोरुहम् ॥ ३
शस्त्राङ्गनानभांस्यङ्ग लग्नान्यलमसंविदम् ।
अलग्नानीव शान्तात्मा यः पद्म्यति स पद्म्यति ४

तर्हि मिध्यासर्गस्यभावमेवास्तु ब्रह्म नेत्याह- ब्रह्मण इति । सः स्थीयो भावो व्यावर्तकथर्मी हि स्वभावस्तस्य च धर्मता असमावन्यावर्तकतया वाच्या, अद्भये तु ब्रह्मणि खलाख-लयोरखन्तासंभवात्र स्वभावोऽन्यो निरूपियुतं शक्य इल्पर्थः ॥ १४॥ व्यावर्तके खशन्दासंघटनमुक्ता भावशन्दासंघटन-मपि दर्शयति-अभावेति ॥ १५ ॥ व्यावर्खाप्रसिद्धेरपि पद-द्वयस्यापि तत्राघटनमित्याह्—अस्तरवेति । कालान्तरे देशान्तरे वा तत्प्रसिद्धिशङ्कावारणाय विशिनष्टि-नित्येऽनन्ते इति । खतः सिद्धेष्वव्यावर्तकेषु खत्वेषु भावेषु च लोके खभावोक्तिः स्रभावशब्दप्रयोगो न तिष्ठति । अप्रसिद्धः इत्यर्थः ॥ १६॥ यथा ब्रह्मणि सर्गादिन सिद्धातीत्यद्वयता एवं प्रतीच्यप्यहन्तादि-रपीत्युभयशोधे अखण्डता सिद्धत्याशयेनाह—नाहन्त्रमिति ॥ १० ॥ प्रेक्ष्यमाणं रत्नतत्त्ववच्छास्त्राचार्यानुभवैः परीक्ष्य तत्त्वद्दशः दरयमानम् ॥ १८ ॥ अनया दशा जाड्यं चिरखः भावतामिव जीवजगद्भेदोप्यभेदात्मतामेवापन्न इति प्रदर्शनाय प्रक्तिना हेमकटकामेद्दछान्ताः पर्यवसन्ना इत्याशयेनोपसंह-रति-भेद इति । संकल्पो राष्ट्रोः शिर इति व्यपदेशबद्धिकल्प-मात्रं विद्वद्भिः कथितः । कटकलं कटकाकारः इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारी निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे दशमः सर्गः ॥ १०॥

इहेन्द्रियजयात्पूर्णे निर्विकारमनःस्थितिः । देहादिदश्यादृष्टिश्च दढीकार्येति वर्ण्यते ॥ १ ॥ निरम्बरे वस्नायनागृते अङ्गे स्पेदेहे छम्नाः शस्त्राणि दयि- विषं यथा स्वान्तरेव दुर्घुणीभवति स्वयम्।
नच दुर्घुणता नाम विषादन्यास्ति काचन॥ ५
स्वरूपमजहत्त्वेवं जीवनामधितिष्ठति।
तथात्मा तत्परिक्षानमात्रकप्रविलापिनीम्॥ ६
जीवो भवति दुर्घूणोऽमृत्यात्मैव यथा तथा।
अत्यजन्ती निजं रूपं चिज्जंडं रूपमृच्छति॥ ७
म्रह्मण्यनन्योऽप्यन्याभो दुर्घूणः कचिदुत्थितः।
तत्स्थः स प्वास इवाप्यतत्स्थ इव सर्गकः॥ ८
विषं विषत्वमजहद्यथा स्वान्तः कृमिः कमात्।
न जायते न म्रियते म्रियतेऽपि च जायते॥ ९

तायास्तरुण्याः स्तनाद्यङ्गानि च बुध्यमानः साक्षादनुभवन्नपि का-महुःखभयादिविकारानुद्याद्यः सुसमः स्यात् स परस्पिन्पदे स्थितः । ताद्दशस्थितिसिद्धिपर्यन्तमिन्द्रियजयात्मनिष्टे दृढीकार्यं इसर्थः ॥ १ ॥ अमुमेवार्थं सप्टमाह—तावदिति । शस्त्रका-न्तादिबाह्यपदार्थेभ्यो विकारोदयनं मिथ्यालबुद्धा प्रतिक्षिप्य खात्मसुखमात्रविश्रान्तिरुक्षणा सुष्प्रता यावदुदेति तावत् ॥ २ ॥ तत्त्वज्ञानप्रतिष्ठाया आध्यसंस्पर्श एव रुक्षणमिखाह— यथेति । नहि शुक्तिबाधे तद्रजतलाभापहारबोराधिर्दश्यत इति भावः ॥ ३ ॥ नभोत्रहणं दृष्टान्तार्थम् । स पर्यति स साक्षात्कारज्ञानवानिति लक्षणेन बोध्यमित्यर्थः ॥ ४ ॥ न भ्रान्तिकत्पितेन जीवभावेनास्य वासावनिर्विकारस्वभावोऽपगत इति तद्वाधमात्रेण तल्लाभो युक्त एवेत्येतवुपपादनाय हष्टान्तमाइ-नचेति । यथा विषं विषस्तभावादश्रच्युतमेव युणकीटादिविकारं गतमिति, युणता विषादन्या न. तथा आत्मा ब्रह्मापि स्वतत्त्वपरिज्ञानमात्रैकवाध्यां जीवतां जीवा-कारविवर्तनमधितिष्ठतीति जीवता नान्येति योज्यम् ॥ ५ ॥६॥ अमरणसभावमेव जडं विषं स्वसभावमत्यजदेव यथा मरण-स्वभावकीटजीवो भवति तथा ब्रह्मचिदपि मरणस्वभावं जडं रूपमुच्छतीति वैपरीत्यांशेऽपि दष्टान्त इत्सर्थः ॥ ७ ॥ जीव-बजगदपि घुणवदेवोत्थितमित्याह—बद्याणीति ॥ ८ ॥ कृभी विषस्त्रभावदृष्ट्या यथा जन्ममर्गे न स्तो देहिस्त्रभावदृष्ट्या

१ दीर्धत्वमापम्.

स्वेनैव संविदर्थेन पदार्थामग्ररूपिणा। तीर्यते गोष्पदमिव न त दैवाद्भवार्णवः॥ सर्वभावान्तरावस्था सर्वभावातिशायिनी। अन्तःशीतलता यसिस्तिसिन्किमिव हेलनम् ॥ ११ जगत्पदार्थसत्तान्तः सामान्येनाशु भाविते। मनोहंकारयुज्यादि कः कलङ्कोऽमलात्मनि॥ १२ यथा घटपटाचर्थान्पश्यस्थेवं शरीरकम्। इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो ० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे विद्याधरो ० यथाभृतार्थवेदनं नार्मकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

तथाहरूवमनोषुद्धिवेदनाद्यपि पदय हो॥ १३ १० जगत्पदार्थसार्थीघमनोबुद्धादिसंस्थितम्। श पवासंबिदंस्तिष्ठ परिनिष्ठितनिष्ठया ॥ १४ न केनचित्कश्यचिवेव कश्चिः दोषो न चैबेह गुणः कदाचित्। सुबेन दुःखेन भवाभवेन नचास्ति भोका न च कर्तृता च॥ १५

बाद्दाः सर्गः १२

भुशुण्ड उवाच । ख एव ब्योम संपन्नमिति संकल्पनं यथा। भ्रान्तिमात्रमसदूपं तथाहंभावभावनम्॥ से सं जातमिति भ्रान्तेरहं कल्पयिता यथा। तथा निर्व्यपदेश्यात्म सदस्त्यसदिवाततम्॥ स्वे स्वास्मैवास्ति चिद्र्पं तत्स्वकं वुध्यते वपुः। भासते यदिदन्त्वेन नाहमस्मि न चानहम्॥ ततिश्चद्रुपमस्तीहम्यत्र स्थूलं खमप्यलम् ।

तु स्तर्त्वा जीवेऽपि ब्रह्मस्वभावदृष्ट्या न स्तो जीवस्वभाव-**दृष्ट्या तु स्त इ**त्याह—विषमिति द्वाभ्याम् ॥ ९ ॥ देहेन्द्रिय-विषयपदार्थेष्यहंममतासक्त्या अमन्नरूपिणा अतिरोहितखरूपेण श्रवणादिप्रयज्ञनिष्पादितस्वसाक्षात्कारसंविष्प्रयोजनभूतेन स्त्रे-नैव तीर्यते न तु देवं मां तारयिष्यतीति प्रयक्षोपेक्षयेत्यर्थः ॥ १० ॥ सर्वेदर्यभावबाधपरिशिष्टे एकात्मस्वभावे परमद्दिरे न विश्रान्तिसंभावनेति प्रसक्तामवहेलनां वारयति—सर्वेति । सर्वेषां त्रियतमभावानामान्तरी सारम्रसह्या अवस्था सर्वता-पनिवृत्त्वा अन्तःशीतलता यस्मिन् पूर्णात्मस्वभावे ॥ ११ ॥ जीवस्य मनोहंकारादिकलङ्कनिवृत्तावुपायमाह---जगदिति । सा-मान्येन सन्मात्रबद्धारूपेण ॥ १२ ॥ यथा घटपटावर्थास्तटस्थ-तया पश्यसि तथा प्रथमं तटस्थतया शरीरं पश्य नाहन्ता-यभिमानेनेखर्थः ॥ १३॥ तदनन्तरं ज्ञः सर्वसाक्षिरूप एव बहिर्जगत्पदार्थसार्थीघमन्तर्मनोबुद्धादि च असंविदन् इप्तिमा-त्रह्यः परिनिष्ठितनिष्ठया स्वाभाविकस्थित्या तिष्ठ ॥ १४ ॥ तस्यां स्थितौ सर्वगुणदोषादिविक्षेपहेतूपरमसिद्धिरित्याह—न केनचिदिति । तस्यां स्थितौ भवाभवेन संपदा विपदा तत्प्रयु-क्तमुखेन दुःखेन च केनचिद्धेतुना कस्यचित्कदाचिदपि दोषो गुणथ नास्ति । यतः कर्तृता नास्त्यतो भोक्ता च नास्ति । 'यत्र लस्य सर्वमात्भैवाभूतत्केन कं पर्येत्' इत्यादिश्रुतेरि-व्यर्थः ॥ १५ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणे तात्पर्यप्रकादो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकाद्दाः सर्गः ॥ ११ ॥

भान्तिमात्रमहंभावश्रिद्विवर्ती जगन्त्रमः । तस्य मूकमविद्येति तक्ष्मयकम ईर्यते ॥ १ ॥ वक्ष्यमाणकमेण सहोच्छेदसिद्धये अविद्याया एवाहंभावल- अणाविव महामेरुस्तत्संबित्तिर्हि खादिता ॥ R घनस्ततोऽचिदाभासः खादप्यतितरामगुः। जानाति यत्स्वभावं तदेतत्सर्गतया स्थितम् ॥ ५ अहन्ताखादिताद्यात्मिवदः प्रसरणं जगत्। अम्भोद्रवप्रसरणं यथावर्तादिवेष्ट्रनम् ॥ દ્ अचित्प्रसरणं शान्तमरूपन्दीय जलद्रवः। निःस्पन्द्पवनाकारमाकाशहृद्योपमम्॥ न देशकालादिजगत्प्रसरेषु च युज्यते।

क्षणसूक्ष्मप्रपञ्चभावस्तस्येव स्थूलप्रपञ्चरूपतेति सर्वकल्पनानां चिद्विवर्तमात्रतयैकतां दर्शयति—ख एथेत्यादिना । यथा से व्योप्न्येवापरं व्योम संपन्नमुत्पन्नमिति मनसा संकल्पनमेकस्पैव व्योम्रो भेदश्रान्तिमात्रं तथा अज्ञाते आत्मनि सूक्ष्मप्रपद्मा-त्मनोऽहंभावस्य भावनं कल्पनमिखर्यः॥ १ ॥ ननु रष्टान्ते कल्पयिता पुरुषस्तृतीयोऽस्ति तत्र कस्तृतीयसामाह—से स-मिति । निर्व्यपदेशि अविद्यापिहितलादसदिवाततमत एव शन्दादिना अन्ववहार्यमात्मरूपं सद्वरुलस्ति तृतीयं कल्पकमि-त्यर्थः ॥ २ ॥ दष्टान्ते यथा खे अद्भयः खात्मैवास्ति द्वितीयं तु खं कल्पकपुरुषस्य संकल्पावच्छिमचिद्रूपं खकं संकल्पात्मकं वपुरेव यथा कल्पयिला बुष्यते, तथा यवस्मादवियोपहितचि-दात्मा अकं वपुरविद्यामेनाहमिद्मिखमिमन्त्रमिमन्तव्यरूपेण कल्पयिला भासते, ततो नाहं नामाज्ञानादन्यदस्ति नाप्यनहं-प्रपञ्चरूपमित्यर्थः ॥ ३ ॥ अतएव तत्परमसूक्नं सर्वस्थूलक-ल्पनाथिष्ठानं ब्रह्मास्तीति परिचेयमित्याह--तत इति । तस्य सं-वित्तिः कल्पना । खादिता आकाशादिजगद्रपता ॥ ४ ॥ पर-मसौक्ष्म्यं तस्योक्तमुपपादयति--वन इति । खादाकाज्ञादप्यति-तरामणुरचिदाभासोऽज्ञानलक्षणोऽनाविविवर्तस्तत आत्मचितेः सकाशात् घनः स्थूल एव तत्तादशं परमसुक्षमं चैतन्यमना-यहमिदमाकारवासनयोत्तरोत्तरस्यूलसभावकल्पनया जानाति । एतदेव सर्गतया आभातानिरूढमिखर्थः ॥ ५ ॥ आस्म-विद आत्मचैतन्यस्याऽध्यात्ममहन्ताद्यविलोकं तु साहितापय-भूतता तदादि प्रसरणं विवर्तविस्तारो जगत्सर्गः ॥ ६ ॥ बिरप्र-सरणस्याभावः अचित्त्रसरणं शान्तं जगदुपरमः प्रस्रय इति यावत् ॥ ७ ॥ एवं सिद्धस्य देशकालादिजगतोऽबान्तरकार्य-

घनाच्छ्रन्याश्विराभासाश्चिन्मात्रविसराहते॥ चिन्मात्रे प्रसते काले व्योम्नि नावि जले स्यले। निद्वायां जात्रति स्वप्ने भवेजगदिवोदितम् ॥ 9 प्रसरणाप्रसर्णे न च संभवतो विदः। खादप्यत्यन्तस्यक्तत्वादशोभादेः सदैव हि॥ १० श्रश्चेतति न भोगादि नचवात्मन्यसायहम्। दवत्वमस्भसीवान्तरिवतीयः परे स्थितः॥ ११ घीईाः श्रीमाः स्मृतिः कीर्तिः कान्तिरित्यादिकं गणे। न पश्यति विसंकल्पस्तमसीय पदान्यहेः॥ १२ ब्रह्मेन्द्रविम्बस्फरितचिजयोत्स्रांशासृतद्ववः। दिकालासंभवात्सर्गी नेश्वरादतिरिच्यते॥ १३ आधिमान्यः स्फूरत्येवं परे स्फूरति भासुरम् । जरदाद्यात्मकं चित्तं चक्रीघत्वमिवाम्भसि॥ १४ मजनोन्मजनारावैवियर्गावर्तत्रेष्ट्रनैः। अच्छिन्नानुपदं श्रीणा भाति सर्गसरिचिरम् ॥ १५ यधावतैः पयो भाति धमो भाति यधा घनः। तथा जडात्मकतया तृतीयः सर्ग एतयोः॥ 33

सहस्र**ठक्षणेषु प्रसरे**प्वपि निन्मात्रप्रसराहते अन्यत्वारमार्थिकं रूपं न युज्यते नोपपद्यते ॥ ८ ॥ तत्रोपपत्ति दर्शयति-चि-मात्रे इति । निद्रायां प्रसिद्धस्त्रप्ते जाप्रति प्रसिद्धे मनोरा-क्यादिखप्रे च ॥ ९ ॥ चितो जगदाकारपरिणामलक्षणो वा-स्तवः प्रसर् एव कि न स्यात्तत्राह—प्रसरणेति । क्षोभः संचलनं सदादिसर्वविकारशून्यलादित्यर्थः ॥ १०॥ ननु सुखदुःख-भोगाद्यनुभवरूपा देहादाहं गावरूपाध्व विकाराध्विदात्मनि दश्यन्ते तत्राह—इ इति । परे कृदस्यसभावे । तथाच चिदाभासस्यैव भोगादिविभ्रमा न कटस्थात्मन इति भावः॥ ११ ॥ उक्तेऽर्थ संकल्पादिमनोग्रत्यन्वयव्यतिरेकदर्शनं प्रमाणमित्याह-धीरिति। घीधिन्तात्मकमनोवृत्तिः । श्रीः संपदमिमानलक्षणा हर्पात्म-कमनोष्ट्रतिः कीर्तिः । खगुणस्यातिश्रवणजन्या तादशवृत्तिः । कान्तिरिच्छा । सर्वत्र मनोवृत्तिबोधकः पर्देखदेतवो बाह्य-विषया छक्ष्यन्ते ॥ १२ ॥ ब्रह्मलक्षणादिन्द्विम्बारस्फुरिता या जीवचिदाभासलक्षणज्योत्स्रा तदंशचाक्षुपादिज्ञानरूपं यदमृतं तदभीनसिद्धिकलात्तद्वप्रायः सर्ग ईश्वराद्धद्वाणी नातिरिच्यते । कतः । तदाधारयोदिकालयोर्निरवयने निष्क्रिये च ब्रह्मण्यसं-भवात् । सत्यां हि दिशि मृतद्वयस्य कियया सर्गकालः क-स्प्येत । नय सा प्रागस्ति । एवं सति कास्टे दिगाद्यत्पत्तिः कल्पेत।नन प्ररूपे सोस्ति।कियातिरिक्तस्य तत्साधकस्याभावात। पूर्णे कृटस्थे कियाऽयोगात् । नच तयोरसतोः कस्यचिदन्यस्या-वकाशोऽस्तीति न ब्रह्म व्यतिरिक्तिसिखर्थः ॥ १३ ॥ परे परमेश्वरे एवं वर्णितदिशा स्वाभित्रजगदाकारे भासूरं यथा स्यात्तवा सर्वसाधारणसिबदानन्दात्मना स्करति स्रात कचि-वेष देहादी विशेषामिमानेन तदनुकूळप्रतिकृलेषु हेयोपादे-

दारुणि क्रकचच्छेदे यथावर्तादिकं तथा। अदिगादौ परे सर्गस्तदतद्रुपवानयम्॥ १७ संसारकद्लीस्तम्भाद्विना संकल्पपृत्वम् । मृदुनोपि रुपत्कृरात्र किंखिल्लभतेऽन्तरम्॥ १८ सहस्रखुरमुर्थाक्षिकरवक्रेहितोहितम्। नानादितनुदिग्देशसरित्प्रादेशमात्रकम्॥ १९ अन्तःशून्यमसारात्म बहुरागोपरञ्जितम्। स्फ्ररद्विरागविहितमार्जनामात्रतर्जनम्॥ २० ससुरासुरगन्धर्वविद्याधरमहोरगम् । जडात्मपवनस्पन्दि परचेतनचेतितम्॥ २१ पटे चित्रमहाराज्यमिव भासुरसुन्दरम्। परामशीसहं चारु विकल्पस्फूर्जितं जगत्॥ २२ स्पन्दात्मनि विकल्पांशे पतिताऽसत्यद्धपिणि । संवित्यसरति भ्रान्तौ तैल्बिन्दरिवाम्मसि॥ २३ हृहेखाजालविसरैः सर्वावर्तविवर्तनैः। विसरत्स्रेहसंमिश्रजडानुदयचर्यणैः॥ રહ

यतादिकल्पनेन आधिम।न्थोऽहंकारात्मा अन्य इव स्फरति तत्सर्वजगर्जावबन्धमोक्षादिकल्पनारमक्रमम्भसि चकावतींच इव कल्पितं भ्रान्तं चित्तमेव नाणमात्रमप्यन्यदस्तीखर्थः ॥ १४ ॥ दृष्टान्तदार्धान्तिके रूपकेणैकीकृत्योपपादयति—मज्जनेति। अत-पदं सद्यसत्त्वसाक्षारकारात् क्षीणा सर्गलक्षणा मरीचिसरित् ॥ १५ ॥ दुरादमराशिर्यथा घनी निविडी मेथी वा भाति । एतयोर्बह्ममनसास्त्रतीयः सर्गो विषयत्वाज्ञादमकतया सत्य-तया स्फरणादजडात्मकतया च भातीति शेषः ॥ १६ ॥ तद-तद्रुपवान् जडाजडरूपवान् ॥ १७ ॥ खतो मिथ्याखानमृ-दुनोप्यधिष्ठानसत्त्रया दषदिव क्रराइडात्स्फटिकशिलाप्रतिबि-म्बितकदलीस्तमभादन्तरमसाम्यं न किचिद्विवेकदशा लभ्यते।सं-कल्पकल्पितपहनवैलक्षण्यकृतमेव वैसादृश्यं नान्यदिखर्यः ॥१४ इदानीं जगत्पटलिखितचित्रराज्यसाहश्येन वर्णयति-सहस्रेखा-दिचतुर्भिः। सद्द्यसंख्यानि करादिवकान्तानि तदीहितानि तदि-क्रितानि च कहितानि वितर्कितानि यत्र । नानाविधा **अद्रय**-स्तनवश्रतुर्विधशरीराणि दिशो देशाः सरितश्र प्रा**देशमात्रमिव** परिन्छिमा यत्र॥१९॥अन्तःशून्यमवस्तु आन्तरावयवश्चन्यं च। बहुभिः रागैः कामै रज्जकद्रव्यैश्वोपरजितम् । विरागो वैराग्यं विरुद्धवर्णं मार्जनद्रव्यं च तद्विहितमार्जनामात्रमेव तर्जनं नि-रासो यस्य ॥ २० ॥ ज्डात्मना पवनेन सूत्रात्मना प्रसिद्ध-वायना च स्पन्दनशीलम् । परेण ब्रह्मचेतनेन द्रष्ट्रचेतनेन च चेतितम् ॥ २१ ॥ परामशौ विचारः परेण आमर्श उपमर्दव तदसहम् ॥ २२ ॥ विकल्पांशे विकल्पवृत्ती मनसि प्रतिविम्ब-भावेन पतिता अर्थश्चन्यलाद्वाध्यलाचासत्यरूपिण ॥ २३॥ कथं प्रसरति तदाइ-हाहेखेति । इदयं मनो लिखन्ति सोभव-न्तीति हानेबाः कामवासनासाहक्षणस्य जालस्यानायसः वितरैः

३'५

३६

अहमित्वादिचिद्र्पे विकल्पेनोन्मुखी सती। न पराद्यतिरिक्षेषा जलत्वादियं तीयता ॥ ર્ષ चिदादित्यः स्व आत्मैव सर्ग इत्यभिषीयते। भूत्वाहमिति तेनान्यो न सर्गोऽस्ति न सर्जकः २६ म्पन्दात्मिकायां सत्तायां यथा स्पन्दो जलद्रवः। तथा चिदातमा ग्योमत्वे न न्योमत्वादि वेत्ति हि २७ देशकालादिनिर्माणपूर्वकं वेदनं विदः। सर्गात्मकत्वात्तेनाम्बुद्रवसाम्यं न दूरगम्॥ २८ मनोहंभाषवद्भादि यर्तिकचित्राम वेदनम्। अबिद्यां विद्धि यहान पौरुषेणाशु नद्यति ॥ २९ अर्घ मिथःसंकथया भागः शास्त्रविचारणैः। आत्मप्रत्ययतः शिष्टमविद्याया निवर्तते ॥ οĘ चतुर्भागातमनि कृते इत्यविद्याक्षये कमात्।

समृहैनिबद्धा । पुत्रकलत्रादिषु विसरता स्नेहेन संमिश्रं यथान स्यात्तथा जडा मिथ्यात्वादनुदया अनुत्पन्ना एव ये भन्दस्पर्शा-दयोऽधीस्तेषां चर्वणराखादनैः प्रसरति स एव चित्रमहारा-ज्यत्वेन वर्णितः संसार इत्यर्थः ॥ २४ ॥ एवंरीत्या एषा आ-दिनित् अहमिति निकल्पेनान्मुखी बहिर्मुखी जीवभावमि-वापश्चा सल्यपि न पराहपरमाहमनो व्यतिरिक्ता । मेदकोपाधीनां विकल्पमात्रस्वे जीवपरशब्दयोजेळलीयशब्दबदेकार्थपर्यवसाना-दिति भावः ॥ २५ ॥ उपाध्यनुप्रवेशेन नामरूपव्याकर्तुरह-मर्थजीवस्य ब्रह्ममात्रत्वे तद्धोग्यसर्गशब्दार्थोऽपि ब्रह्ममात्रं संपन्न इलाइ—चिदादिल इति ॥ २६ ॥ जगतो राहशिरोवचिद्विक-स्पमात्रतामविद्यामात्रतापर्यवसानाय दृष्टान्तेनोपपादयति-स्पन्दारिमकायामिति । जलं स्पन्दते इखन्न विचार्यताम् । कि जलमेव स्पन्दारमना आस्ते उतान्यत् । न द्वितीयः । अन्य-स्यानुपर्कमभात् । अन्य एव स्पन्दत इति हि तदा स्यात्स्पन्दस्य जलापेक्षानियमाभावप्रसङ्गाच । नच समवायात्तियमस्तस्य संबन्धानवस्थया असिद्धेः । आदो तु कल्पे जलस्य स्पन्दकर्तुः **लानुपपत्तिः । नहि** स्पन्दात्मा स्पन्दं करोति स्पन्दस्यापि कर्नृ-लापतेः । तस्माज्जलद्रयो यथा स्पन्दात्मिकायां स्वसत्तायाम-स्पन्द एवेति स्पन्दप्रत्ययो विकल्पमात्रं तथा चिदारमा व्योमादि-प्रपद्मनिर्माणेपि न व्योमत्वे स्थितो न व्योमकर्तेति न स्वस्यान्यस्य बा व्योमभाबादिकं येदितं शक्षोतीति जलदवभेदविकल्पवद्विक-ल्पमात्रमेव तदिखर्थः ॥२०॥ननु जलद्रवभेदविकल्पे देशकाल-मेदो नियामकोऽस्ति । पूर्वकाले पूर्वदेशे स्थित जलमुत्तरकाले परदेशे उपलभ्यते । उत्तरदेशप्राप्तिस्तत्कियापूर्विकेव शरादौ क्रुप्तेति जरूपि द्रवणिकयामेदः कल्प्यते।ब्रह्मणि खदूये न देशका-रुमेदोस्तीति न वियदादिमेदविकल्पे निमित्तमस्तीत्यम्बुद्रवसाम्यं ब्रापास्तमिति शक्कां समाधत्ते—देशेति । किमयं वियदादि-सर्गविकल्पासंभवः सर्गात्मकलदशायामाक्षिप्यते उत अद्यद-शायाम् । द्वितीये इष्टापत्तिः । नहि वयं ब्रह्मभावे कंचिद्विकल्प-

समकाला यिन्छ रं तदनामार्थसन्मयम् ॥ ३१ श्रीराम उवाच । अर्थ मिथःसंकथया भागः शास्त्रविचारणैः । आत्मप्रस्ययतो भागः कथं तस्या निवर्तते ॥ ३२ समकाले प्रमाश्चेति मुनिनाथ किमुच्यते । तदनामार्थसञ्चति सश्चासञ्चेति किं वद ॥ ३३ विसष्ठ उवाच । सुजनेन विरक्तेन संसारोत्तरणार्थिना । सह वाष्यात्मविदुषां संस्तृति प्रविचारयेत् ॥ ३४ यतः कुतिश्चवृत्विय्य सविरागममत्सरम् ।

जनं सज्जनमात्मश्चं यक्षेनाराध्येद्वधः॥

संपन्ने संगमे साधोरविद्यार्थे क्षयं गतम्।

विद्धि वेद्यविदां श्रेष्ठ ज्येष्टश्रेष्ठदशोदयात्॥

मजीकुमें: । सर्गात्मकलदशायां तु अयं सर्गकालः प्राक् प्रचय-काल इति कार्लावमार्ग संसारासंसारदेशमेदं च कल्पनया निर्मीय तत्र विद्धिदात्मनी वियदादिविकल्पवेदनं वर्णयाम इति नाम्बद्रवसाम्यं दूरगमिखर्थः । तथाचौकं 'अविद्यासीत्यविद्यायामेवासित्वा प्रकल्यते अहारख्या लिबिबेयं न कथंचन युज्यते ॥ इति ॥ ६८ ॥ देशका-अभेदनिर्माणस्यापि देशकालान्तरसापेक्षत्वादनवस्था । ए**वं** मनोहंभाववुच्यादिसाध्यलाद्वियदादिसगैभेदवि-विकल्यानां करवकाले तेषामतिद्धलारकथं विकल्पनेलाबाशहा अपि अन-पपत्त्यादिदोषसहस्रमाजना विद्यामात्रलाम्युपगमादेव परिहन तीव्या इत्याशयेनाइ—मन इति ॥ २९ ॥ केनकेन पौरुषेण कियती सा नदयति तदाह-अर्थामति । विनयप्रणतिदानसः नमानादिवशीकृतैस्तत्त्वविद्धिः सह संकथनात्त्रथमभूभिकाप्रति-ष्ट्रापर्यन्तमभ्यस्तयोत्कटवैराग्यादिसाधनचतुष्ट्यसिद्धाः पुत्रदार्-धनादिषु मभताध्यासहेतुभृतमर्थं नर्यतीत्यर्थः।शास्त्रविचार्णः श्रवणादिभिः प्रमाणप्रमेयासंभावनादिरूपो देहादिष्वहंतारूप-श्वाविद्याया विक्षेपशक्तिरूपो मागश्रतुर्थाशो नर्यति । आत्मप्र-व्ययतो ब्रह्मात्मभावसाक्षात्काराचतुर्थभूमिकामारभ्योत्तरोत्तरमु-पचीयमानात् शिष्ट आवरणशक्तिरूपश्चत्रर्थभागश्चारुणोदयोत्तरं तम इव क्रमानियर्तत इत्यर्थः ॥ ३० ॥ इति प्राग्दशितप्रका-राद्भमिकाभ्याससमकालात्क्रमादविधाक्षये कृते राति यन्छिष्टं तत्रामरूपरहितं सन्मात्रमेव परमपुरुषार्थं इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ संक्षेपोक्तं विस्तरेण जिज्ञासू रामः पृच्छति — अर्धमित्यादिना ॥ ३२ ॥ अनामार्थसन्मयमिखत्र मयटा असर्दशस्यापि क्रोडी-कारात्सच।सबेत्युक्तम् । तत्रासदंशः कि तद्वदेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ प्रश्नकमाद्वसिष्ठ उत्तरमाइ---धुजनेनेति । आत्मविदुषा सह चशब्दादपिशब्दाचान्येनापि मुमुक्षुणा सह खबुड्या च संस्रतिः केयं किंपर्यवसाना किंमूला किंसारा कथमुत्तरणीयेति च प्रवि-

चारयेत् ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इतरभूमिकाभ्यो ज्येष्ठा साधनचत्र-

अर्धे सजानसंपर्कादविद्याया विनद्यति । चतुर्भागस्तु शास्त्रार्थेश्चतुर्भागः स्वयन्नतः ॥ ३७ एकोऽमिलाच उत्पन्नो भोगेभ्यश्च निर्घायते । तत्क्षये यास्यविद्यायाश्चतुर्थोशः स्वयन्नतः ॥ ३८ साधुसङ्गमशास्त्रार्थस्वयनः क्षीयते मलम् । एकेकेनाथ सर्वेश्च तुल्यकालं क्रमाद्यि॥ ३९

यदिवधाक्षयैकात्म न किंचित्किचिदेव च।
शिष्यते तत्परं प्राहुरनामार्थमसम् सत्॥ ४०
प्रक्षेत्रं घनमजराधनन्तमेकं
संकल्पस्फुरणमविद्यमानमेव।
सुर्देवं व्यपगतमानमेयमोहो
निर्वाणं परिविहरन्विशोकमास्स्व॥ ४१

इलार्षे श्रीवातिष्ठमहारामावणे बाल्मीकीये दे॰ मो॰ निर्वाणप्रकरणे उ०वि०संकल्पसर्गयोरैक्यप्रतिपत्तिनीम द्वाद्शः सर्गः॥१२॥

त्रयोद्दाः सर्गः १३

भुगुण्ड उवाच।

जगत्प्रसरक्षपस्य न देश उपयुज्यते ।
न कालो धारणे स्तम्भ आलोकस्याम्बरे यथा ॥१
मनोमनननिर्माणमात्रमेतज्जगत्र्यम् ।
शान्तं तनु लघु स्वच्छं वातान्तः सौरभादिष ॥२
चित्रमत्कृतिमात्रस्य साधो जगदणोः किल ।
वातान्तः सौरमं मेदरन्यानुभवयोगतः ॥ ३
यं प्रत्युदेति सर्गोयं स एवनं हि चेतति ।
पदार्थः संनिवेशं स्वमिव स्वप्नं पुमानिव ॥ ४

द्रवसंपरया च श्रेष्ठा या प्रथमभूमिकाप्रतिष्ठा दशा तदुदयादित्यर्थः ॥ ३६ ॥ चतुर्भागं चतुर्यभागम् । स्वयन्नतो नाशयेदिति शेषः ॥ ३७ ॥ तत्राग्यमुपपादयति—एक इति । एक
उत्कटमुमुक्षालक्षणोऽभिलाष उत्पन्नश्चेदयं पुरुषो वैराग्यादिसंपदा भोगेभ्यस्तत्साधनेभ्यश्च निवायते । भवश्यं निमैमः संन्यस्वतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ युगपत्प्राप्तौ तुस्यकालम् । कमात्प्राप्तौ
कमादपि ॥ ३९ ॥ पद्ममप्रश्रस्याप्युत्तरमाह—यदिति । अर्थकियाव्यवहारानर्देलादसत्, अवाध्यपरमपुरुषार्यलात्सक्तियर्थः
॥४०॥ हे राम, इदं परिशिष्टवस्तु आनन्दैकघनं जरादिविकारश्न्यं ब्रद्धीव । जीवजगद्भ्षं तु संकल्पो विकल्पस्तत्स्पुरणमात्रमित्यविद्यमानमेव । लमेवमात्मानात्मतत्त्वं बुद्धाः व्यपगतमानादित्रिपुटीमोहः सन् निर्वाणं ब्रद्धीव भूत्याः निरतिशयगृहस्थादेव परितो व्यास्याः विहरन् सन् विशोकमास्य तिष्ठेल्पर्थः
॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणसात्यर्थप्रकाशे निर्वावाम्यरणे वसराधे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

माचाकार्षे न देशादेरपेक्षेत्यत्र वर्ण्यते । इन्द्रस्वाणूदरे राज्यकस्पनावयानविस्तरः ॥ १ ॥

दिशकाळादिनिर्माणपूर्वकं वेदनं विदुः । सर्गात्मकलात्' इति यदुकं तस्योपपादनायेन्द्रत्रसरेण्यास्यानं वक्तुं भूमिकां रचयति—जगदिलादिना । देशकालादिनिर्माणपूर्वकं वेदनिम-लाक्षीकृत्यवादः । बस्तुतस्तु दृष्टस्टस्या युगपदेव सह देशका-छाभ्यां जगत्प्रसरकपस्य मायिकसर्गस्य धारणेन प्राविसदो देश अत्रैषोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यहृतं देषराजस्य त्रसरेण्द्ररे पुरा॥ ५
काचित्कदाचित्कांसिक्षित्किचित्करपद्वमेऽभवत्।
कस्यांचिद्यगशाखायां फलं जगदुदुम्बरम्॥ ६
ससुरासुरभूतौषमशकाहितघुंघुमम्।
शैलमांसलपातालसुभूम्युप्रकपाटकम्॥ ७
चिश्वमत्कृतिचाक्क्षेषांसनारसपीषरम्।
विविधानुभवामोदं चित्तास्वादमनोहरम्॥ ८
वृहद्गस्तत्वभौदसत्तावतिकोटिगम्।

उपयुज्यते । यथा अम्बरे युगपत्प्रसृतस्यालोकस्य धारणे स्तम्भो नोपयुज्यते तद्वदिखर्थः ॥ १ ॥ बातान्तः प्रस्तमति-सुक्मलाद्वातेनापि धारयितुं कम्पयितुं चाशक्यं यत्सीरभं ज्योतिः सौरभं सौगन्ध्यं च तस्मादिष शान्तं तिरोभूतं तनु सुक्ष्मं लघु अगुरु खच्छं चेखर्थः ॥ २ ॥ हे साघो, चित्रमत्कु-तिमात्रत्वेन दृष्टस्य जगदणोरपेक्षया वातान्तर्गतसौरभमपि मेरुरिव स्थूलं किल । अन्यानुभवयोगतः अन्यैरिप चक्षुर्घा-णादिसंयोगेनानुभूयमानलादित्यर्थः ॥ ३ ॥ दष्टसृष्टिरूपस्य प्रप-षस्य तु न स्वकल्पकदगन्यगोचरतेत्त्रसाधारणलात्परमसीक्म्य-मिलाइ--यं प्रतीति । यथा मानोरचिकपदार्थः खसंनिवेशं स्त्र-साक्षिणा खयमेव चेतित । यथा पुमान् खखप्नं खयमेब चे-तित तद्वदिखर्थः ॥ ४ ॥ अत्र अस्मिन्प्रविसद्धदेशकाळानपेक्षा-रूपे अनन्यानुभवगोचरतया परमसौक्ष्म्यरूपे चार्थे उपपादकम् ॥५॥ कश्चिचासो कल्पद्वमश्च किन्तित्कल्पद्वमस्तस्मिन् । सर्वक-ल्पनाफलाधारे मायाशबले ब्रह्मणीति यावत् । युगशाखायां शाखाद्वयसंधौ। जगद्रह्माण्डसाद्रूपमुदुम्बरं फलम् ॥ ६ ॥ तद्वर्णयति—ससुरासुरेत्यादिना । शेलेः कीलस्थानीयैमीस-लानि दढानि पातालादिलोकत्रयलक्षणानि उमाणि दुराधर्षाणि कपाटानि यत्र । यदाप्युदुम्बररूपकेन्तःकपाटवर्णनमनुपयुक्तं तथापि कल्पवृक्षफलोतुम्बरफलकल्पकमनोवृत्त्यनुसारित्वेन प्र-तिद्ववैलक्षण्यकल्पनया कथंचिद्योज्यम् ॥ ७ ॥ चितश्वमत्कृत्या रचनाशक्तिवैचित्र्येण चारु । नमेर्नृहत् ॥ ८ ॥ बृहन् प्रारद-

अहंकारमहावृन्तं समालोकसमुज्ज्वलम् ॥ मोभद्वारविकास्यास्यं सरिदिधिशिरावृतम्। मात्रापञ्चककोशस्यं तरत्तारकसीकरम् ॥ १० कल्पावसानजरठं काककोकिलगाम्यथ । पतितं शान्तिमायातं काप्यन्तावासनं गतम् ॥ ११ तत्राभृदमराधीशः शक्तिभुवनेश्वरः। क्षोद्रकुम्भनिषण्णानां क्षुद्राणामिव नायकः॥ १२ गुरूपदेशस्वाभ्यासात्स क्षीणावरणोऽभवत्। महात्मा भावितान्तात्मा पूर्वापरविदां वरः॥ १३ नारायणादिषु ततः कदाचिद्वीर्यशालिषु । कविदेव निलीनेषु सत्स्वेकः ससुराधिपः॥ १४ शक्षज्वालानलोद्धारैरयुष्यत महासुरैः। विजितस्तैर्महावीर्यरतो व्यववाद्यतम्॥ १५ दिशो दश सुवेगेन दुदावाभिद्वतोऽरिभिः। न विश्रामास्पदं प्राप परलोक इवाधमः॥ १६ तद्भान्तरप्रिष्वरिषु मनाकु छिद्रमवाप्य सः। प्रशमं कायसंकर्षं नीत्वा स्वं स्वान्तरे बहिः १७ कमप्यकीशुकोशस्यं त्रसरेणुं विवेश सः। संविद्र्पतया पश्चकोशं मधुकरो यथा ॥ १८ स तत्राशु विशश्राम चिरादाश्वासमाययौ । अय विस्मृतसंप्रामो निवृत्ति समुपागमत्॥ १९ कल्पितं सद्म तत्राथ स क्षणाव्तुभृतवान् । तस्मिन्सवानि पद्मान्ते रेमे स्व इव विष्टरे ॥ २०

गृहस्थः स ददर्शाथ कल्पितं नगरं हरिः। मणिमुकात्रवालादिकृतप्राकारमन्दिरम्॥ २१ नगरान्तर्गतोऽपश्यसतो जनपदं हरिः। नानाद्विष्रामगोवादपत्तनारण्यराजितम् ॥ २२ तारप्रतिश्चेतितवान्सशको भुषनं ततः। साम्राब्ध्यवीनदीशान्तं सिक्रयाकालकरूपनम् રરૂ तादप्रतिश्चेतितवान्स शक्रक्रिजगत्ततः। सपातालमहीव्योमबिष्टपार्कादिपर्वतम्॥ २४ तत्रातिष्ठत्सुरेशत्वे स भोगभरभृषितः। पुत्रो बभूव तस्याथ कुन्दो नामाथ वीर्यवान् ॥ २५ ततो जीवितपर्यन्ते त्यक्त्वा देहमनिन्दितः। निर्घाणमाययौ राक्रो निःह्येह इय दीपकः॥ २६ कुन्दस्रेलोकाराजोऽभूजनयित्या सुतं निजम्। कालेन जीवितस्थान्ते जगाम परमं पदम्॥ २७ तत्पुत्रोऽपि तथैवाथ कृत्वा राज्ये सुतं निजम्। जगाम जीवितस्थान्ते पावनं परमं पदम्॥ २८ पवं पौत्रसहस्राणि समतीतानि सुन्दर। तत्राद्यापि सुरेशस्य येषां राज्ये स्थितोऽशकः २९ इत्यद्ययाचवमरेश्वरवंश एव

इत्यद्ययायदमरेश्वरवंश एव संकल्पिते जगति शक्रपदं विधत्ते। तस्मिन्क्षतेऽपि गिलतेऽपि हतेऽपि नष्टे काप्यम्बरे दिनकरातपपावनाणौ॥ ३०

इलार्षे श्रीवा ॰ वा ॰ मो ॰ वि ॰ उ ॰ विद्याधरोपाख्यानान्तर्गतेन्द्रोपाख्याने त्रसरेण्वन्तरसर्गसंघवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

र्णितो यो ब्रह्मतरुरुदुम्बरस्तस्मिन्त्रौढा आविर्भूता याः सूक्ष्मज-गत्सत्तावतिकोटयस्तदन्तर्गतम् । सम आलोकः साक्षिचित् तेन समुज्वलम् ॥ ९ ॥ मोक्षद्वारं ज्ञानमेव विकासि आस्यं मुखं यस्य । मात्रास्तन्मात्राणि । तरन्ति ऊर्ध्व प्रवमानानि तारकाण्येव सीकरा रसकणा नीहारकणा वा यत्र ॥ १० ॥ महाकल्पावसाने जरठं पक्षं पातीनमुखम् । अथ तदनन्तरं काकगामि कोकिलगामि वा । यथा प्रसिद्धोद्धम्बरमन्ते काकैः कोकिलैर्वा भक्ष्यते तद्भदसन्छास्रकदुरबानुसारिण्या अविद्या-काक्या शास्त्रमधुररवानुसारिण्या विद्याकोकिलया वा प्रस्यमानं कापि अन्तं वासनामात्रशेषलक्षणं नाशमवासनं ब्रह्मभावं वा आगतं भविष्यतीसर्थः ॥ ११ ॥ तत्र तसिष्ठदुम्बरे । शुद्राणां मधुमशकानाम्॥१२॥भावितः अन्तः सर्वकल्पनावधिरात्मा येन ॥१३॥१४॥शक्षञ्वालानलानुद्विश्रतीतिशक्षज्वालानलोद्भाराः । कर्मण्यण् । कृद्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि अहणादुपपदसमासः। आसमन्ताद्वतं शीघ्रम् ॥ १५ ॥ सुवेगेन अतिजवेन । अधमः पापकृत् ॥ १६ ॥ अरिषु मनाग् भ्रान्तदृष्टिषु सत्सु । तत्तदा । छिदं निलयनावसरम् । कायाकारं स्यूलाकारसंकल्पं खान्तरे भूतसूक्ष्मे प्रशमं नीला विलाप्याणुतरो भूला बहिः कमपि त्रसरेणुं विवेशेति परेणान्वयः ॥ १७ ॥ तदन्तः प्रवेशसंकल्प-संबिद्धपतया ॥ १८ ॥ नियृत्तिं बहिर्गमनाभावम् । अनियृत्ति-मिति वा छेदः ॥ १९ ॥ पद्मान्ते पद्मासनमध्ये । खे स्वलो-कप्रसिद्धे विष्टरे सिंहासन इव ॥ २० ॥ २१ ॥ गोवाटा त्रजाः ॥ २२ ॥ तादप्रतिस्तादशसंकल्पोपहितः । भुवनं भूलोकम् । नयः ईशा राजानः अन्तास्तत्तंद्शसीमासैः सहवर्तमानम्॥२३ अथ तत्र सुरेशस्वे अतिष्ठदित्यपकृष्यान्वयः ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ तस्य सुरेशस्य पीत्रसहसाणि येषां राज्ये अद्याप्यंशको नाम राजा स्थितः ॥ २९ ॥ इति वर्णित-दिशा अद्ययावत् अद्यतनकालपर्यन्तं तत्संकल्पिते त्रसरेण्यन्तरे जगति तद्वंश एव अमरेशपदं शकराज्यं विधत्ते पालयति । काप्यम्बरप्रदेशे तस्मिन् दिनकरातपपावने अणी त्रसरेणी क्षते अपितो गलिते नष्टेऽपि हि तद्राज्यं न गलितमित्यर्थः॥३०॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४

भुश्रण्ड उवाच। तस्य शक्रस्य कुलजः कश्चिदासीत्सुराधिपः। तत्रोत्तमगुणः श्रीमान्पाश्चात्या यस्य सा तन्नः॥ १ अथेन्द्रकुलपुत्रस्य तस्य तत्र बभूव ह । प्रतिभाग्नानसंप्राप्तिर्बृहस्पतिगिरोदिता ॥ ततो विदितवेद्योऽसी यथाप्राप्तानुवृत्तिमान्। चकार जगतां राज्यमाज्यपानामधीश्वरः ॥ युप्धे दानमेः साधमजयत्सर्वशात्रवान् । शतं चकार यद्वानामद्वानोत्तीर्णमानसः॥ 8 उवास कार्यवशतो बिसबालान्तरे चिरम्। अन्यान्यपि च वृत्तान्तरातान्यनुबभूव ह ॥ ધ कदाचिदासीसस्येच्छा प्रबोधबळशालिनः। ब्रह्मतत्त्वमवेक्षेऽहं यथावद्ध्यानवानिति॥ सोऽपश्यत्प्रणिधानेन तत एकान्तसंस्थितः। सवाद्याभ्यन्तरेऽशेषकारणत्यागशान्तधीः॥ O सर्वशक्तिपरं ब्रह्म सर्ववस्तुमयं ततम्। सर्वथा सर्वदा सर्वं सर्वेः सर्वत्र सर्वगम्॥ सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम् । सर्वतःश्रुतिमङ्घोके सर्वमावृत्य संस्थितम् ॥ सर्वेन्द्रियगुणेर्भुकं सर्वेन्द्रियगुणान्वितम्। असकं सर्वभृष्टैव निर्गुणं गुणभोक् च ॥ १० बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च । सुक्ष्मत्वात्तद्विक्षेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ ११

तत्कुकोत्पश्चशकस्य विसतन्तौ जगत्त्रथा । तत्रोच्यते महादशै सर्वदम्या सशकता ॥ ९ ॥

तस्य प्रायुक्तस्य शक्षस्य कुळजो वंशोद्भवः ॥ १ ॥ तस्य तत्र बृहस्पतेः खगुरोरुपदेशगिरा उदिता प्रतिभानं प्रतिभा आत्मतत्त्वसाक्षात्कारस्तद्रपञ्चानसंत्राप्तिवभूवेति शेषः ॥ २ ॥ आज्यपानां देवानाम् ॥ ३ ॥ यज्ञानामश्रमेधानाम् । तस्य हि फलं तस्य वस्यमाणिबसतन्ताचेतद्वद्वाण्डे च शकता-प्राप्तिरिति भावः ॥ ४ ॥ विसस्य पद्मनालस्य बालतन्तुस्तद्-न्तरे । तत्र विसन्तर्तां कल्पिते ब्रह्माण्डे राज्ययुद्धजयपराज-यादीन्यन्यान्यपि वृत्तान्तशतान्यनुबभूव ह किल ॥ ५ ॥ ब्रह्म-तस्वं मायाशबळबद्धाखभावम् ॥ ६ ॥ प्रणिघानेन समाधिना । अद्योषाणां विक्षेपकारणानां त्यागेन शान्तथीः ॥ ७ ॥ ८ ॥ श्रुतिमत् श्रोत्रेन्द्रियवत् ॥ ९ ॥ सर्वेन्द्रियाणां गुणैः रूपादि-**प्रहणशक्तिमिर**न्वितम् । परमार्थतः असक्तं व्यवहारतस्तु सर्वशृत् । एवमप्रेऽपि ॥ १० ॥ ११ ॥ प्राचुर्ये मयद् ॥१२॥ भ्रमप्राधान्येन संस्रतिभीवविकारप्राधान्येन जगदिति मेदव्य-पदेशः ॥ १३ ॥ १४ ॥ धान्नि तेजसि गृहे च । सः त्रिज-गन्ति ददरींति परेणान्त्रयः ॥ १५ ॥ नानाविधाः प्राणिना-

सर्वत्र चन्द्रार्फमयं सर्वत्रेव धरामयम्। सर्वत्र पर्वतमयं सर्वत्राव्धिमयं तथा॥ १२ सर्वत्र सारगुरुकं सर्वत्रेव नभोमयम्। सर्वत्र संसृतिमयं सर्वत्रेष जगन्मयम् ॥ १३ सर्वत्रैय च मोक्षात्म सर्वत्रैवाद्यचिन्मयम्। सर्वत्र सर्वार्थमयं सर्वतः सर्ववर्जितम्॥ १४ घटे पटे बटे कुड्ये शकटे वानरे तथा। थाम्नि व्योम्नि तरावद्रावनिस्ने सलिसेऽनसे ॥ १५ नानाचारविचाराणि विविधावृत्तिमन्ति च। परमाण्वंशमात्रेऽपि त्रिजगन्ति दद्शं सः॥ १६ मरीचस्यान्तरे तैक्ष्ण्यं शुन्यत्वमिव चाम्बरे। त्रिजगत्सत्यसति च विद्यते चिन्मयात्मनि ॥ १७ इत्येवं भावयन्मुक्तभावया शुद्धसंविदा । शकः क्रमेण तेनैव तथैव ध्यानवानभृत्॥ १८ ध्यानेन सर्वमेकत्र पद्यंश्चिरमुदारधीः। दद्शीममसौ सर्गमस्दियं महामतिः॥ १९ ततोऽस्मिन्विचरन्सर्गे शक्रान्ते शक्रतां गतः। चकार जगतां राज्यं वृत्तान्तरातशोमितम् ॥ विद्याधरकुलाधीश इत्यधैव स देवराट्ट । तस्येन्द्रस्य कुळोत्पन्न इति विद्धि यथास्थितम् २१ ततो हृदयबीजस्थप्राङ्ग्रख्याभ्यासयोगतः। बिसबालनिवासादिवृत्तान्तमनुभूतवान् ॥

माचाराः शारीरा विचारा मानसाक्ष क्रियामेदा येषु । आवृ-त्तयः खर्गनरकादेः पुनरागमनानि । परमाणोरंशा कर्ष्वाधोम-ध्यादिभागास्तन्मात्रेऽपि ॥१६॥ सति आविभीवकालात्मनि । असति तिरोभावकास्नात्मांन च ॥ १७ ॥ भावयन्परयन् । मुक्तो भावो जीवो जीवभावो यया । तेन प्राग्वासनाकल्पिते-नैव शक्तदेहेन शको नतु समाध्यनुभूयमानसर्वात्मभावेनेखर्यः ॥ १८ ॥ एकत्र मायाशबलबद्दाणि । इममस्मरीयं लया मया चानुभूयमानं सर्गे ब्रह्माण्डम् ॥ १९ ॥ ततस्तदनन्तरमस्मि-न्सर्गे पातालभूम्यादिलोकदर्शनक्रमेण शक्कलोकान्ते मनसा वि-चरन्संस्तत्र शकदर्शनेन शकाहंभावसंस्कारोद्वोधारप्राक्तनाश्वमे-धशतादष्टफलावरयंभावाच शकतां गतः । राजतां प्रजारज्ञक-ताम् । राज्यं राजकर्म कदा दानपरिपालनादि चकार ॥२०॥ हे विद्याधर्कुलाधीश, इति अनया रीत्या तस्य त्रसरेण्वन्तगै-तस्यन्द्रस्य कुळे उत्पन्नः सोऽयास्मिन्नद्वाण्डेऽपि देवराद्द्रभूला तिष्ठतीति विद्धि ॥ २१ ॥ तत एतदिन्द्रभावानन्तरं हृदये यीज-मिव संस्काररूपेण स्थितस्य प्रांक्तनस्य मुख्यस्य श्वानयोगाभ्या-सस्य योगतो यथास्थितं प्राक्तनं विसतन्तुनिवासादिखवृत्तान्त-

१ नरे इति पाठः.

यथैष शकः कथितस्यसरेण्दरास्पदः।
विसवालास्पदक्षेतत्कुलजः कान्तिमानय॥ २३
तथा शतसहस्राणि तत्रेतश्चान्यतक्ष स्ते।
तादशब्यवहाराणि समतीतानि सन्ति च॥ २४
वहतीयमविष्ण्यिक्षा चिरायैवं तरिक्रणी।
तावहृश्यसरित्मौढा कढाकढे च तत्पदे॥ २५
इति मायेयमादीर्घा प्रस्ता प्रत्ययोन्मुखी।
सत्यावलोकमात्रातिविलयकविलासिनी॥ २६

यतः कुतश्चित्मायेयं यत्र कचन वानघ ।
यथाकथंचित्संपन्नमात्रेय परिदृश्यते ॥ २७
अहंभायचमत्कारमात्राहृष्टिरियाम्बुदात् ।
जायते मिहिकेवाशु प्रेक्षामात्रविनाशिनी ॥ २८
येनायतामिमतदर्शनद्रष्टृष्टश्यगुक्तस्यभावमयभासनमात्मतस्यम् ।
सर्वार्थशून्यमत एव च शून्यक्पमेकं खमात्रमिव मात्रविकल्पमेव ॥ २९

इत्यार्षे श्रीवा० वा० मो० उ० विद्याधरोपास्थानान्तर्गतेन्द्राण्वास्थाने सर्गसंकल्पयोरैक्यप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

पश्चद्दाः सर्गः १५

१

२

₹

૪

भुगुण्ड उवाच ।
यत्राहत्त्वं जगसत्र पूर्वयागस्य तिष्ठति ।
पराण्वन्तरपीन्द्रस्य त्रसरेणूद्ररे यथा ॥
भ्रमस्य जागतस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत् ।
अहंभावोऽभिमन्तात्मा मूलमाद्यमुदाहृतम् ॥
वासनारससंसिकादहंथीजकणाद्यम् ।
म्रह्माद्री व्योमविपिने जायते त्रिजगहुमः ॥
तारकापुण्पनिकरो विलीनाचलपृष्ठवः ।
सरित्सारशिरापूरो वासनासारतत्फलः ॥
अहंत्वसलिलस्येदं जगत्स्पन्द उदाहृतः ।

मनुभूतवान् । सस्मारेत्यर्थः ॥ २२ ॥ सर्वशकौ ब्रह्मणि सर्वत्र सर्वसद्भावादीदशशकसहस्राण्यपि सर्वत्र सन्तीति संभावये-त्याह—यथेति द्वाभ्याम् । अप्यर्थेऽयशब्दः ॥ २३ ॥ २४ ॥ चतुर्थादिषष्ठ्यन्तभूमिकास्वर्धं रूढे अर्धमरूढे च तस्मिन् ब्रह्म-पदे सति इयं माया इति प्रखयोऽनुभवस्तदुन्मुखी भवतीति परेणान्वयः ॥ २५ ॥ २६ ॥ मायालादेव न वैचित्र्ये हेतु-विशेषाश्चिन्त्या इत्याह—यतः कुतश्चिदिति । त्रिभिर्यद्वृत्तैः किं-कृतैश्च हेतुकालदेशकियाप्रकारनियमानावश्यकता सूच्यते॥२०॥ अथवा एक एवाहंकाराध्यास एतद्वैचित्र्ये नियतो हेतुरित्याह — अहंभावेति । मिहिकानीहारधूम इत्रेति नाशे दृष्टान्तः ॥२८॥ येन हेतुना मातृसर्वसाक्षित्रह्मरूपमविकल्पं सर्वविकल्परहितमेत्र परमार्थतः । अतएव अहंकारवशादायतानि विस्तीर्णानि यानि अमिमतानि मानसविकल्पाः दर्शनानि त्रिपुटीलक्षणेन्द्रियकवि-कल्पाश्च तैर्मुक्तस्वभावं । जाप्रदवस्थाशून्यमिति यावत् । अतएव वासनामयस्वाप्रसर्वार्थशून्यमतएव च प्रतियोग्यप्रसिष्टा सर्वशू-न्यतालक्षणेन सीषुप्ताज्ञानेन च शून्यं खमात्रमिव पूर्णमवभासनं चिद्रपमात्मतत्त्वं परिशिष्टमित्यर्थः॥२९॥ इति श्रीवासिष्टमहा-रामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उ० चतुर्द्दाः सर्गः १४

अहंभावो जगद्धान्तेवींजं रूपं च वर्षते । तन्मार्जनाजगम्मृष्ट्या शुद्धशेषास्कृतार्थता ॥ १ ॥ 'अहंभावचमत्कारमात्राद्वष्टिरिवाम्बदात् । जायते दृश्यस- चित्रमत्करणस्वादुर्वासनाविसरद्रवः॥ 4 तारकासीकरासारो नभोनन्तनिखातवान्। भावाभावमहावर्तां नानागिरितरङ्गकः ॥ त्रिलोकीविलिखहेस्रो विलोलालोकफेनिलः। ब्रह्माण्डबुद्धुदोद्भेदः कवाटापीडपीवरः॥ છ भूपीठदृढपिण्डीरपिण्डश्चिद्धनमहुमान्। चित्राजवं जवीभावमञ्जनोन्मञ्जनात्मकः॥ 4 जरामरणमोहादिवीचीचयचमत्कृतिः। उत्पन्नध्वंसिदेहादिषिन्दुवृन्दैकबन्धुरः ॥ 9 अहेत्वपवनस्पन्दो जगदित्यवगम्यताम् । अहंत्वपद्मसीगन्ध्यं जगदित्यववुध्यताम् ॥ १०

रित्'इति यदुक्तं तदुपपादकतया इन्द्राण्वाख्यायिकां योजयति-यत्रेति । अमिनवेऽपि स्वप्नप्रपञ्चे पूर्वसिद्धमेव जगत्पदया-मीति सर्वानुभवातपूर्वमागत्य तिष्ठतीत्युक्तिः ॥ १ ॥ २ ॥ व्योम अव्याकृताकाशस्तहक्षणे विपिनेऽरण्ये ॥ ३ ॥ विलीना मेधमिहिका वनप्रच्छन्ना अचलाः पर्वताः पहना यस्य । सरि-त्सारा गङ्गाद्याः । वासना एव सारा बीजांशा येषु तथावि-धास्ते मोगाः फलानि यस्य ॥ ४ ॥ इदानीमहंकारं महाजल-तया जगव तत्कार्यतरङ्गादितया वर्णयति अईत्वेत्यादिप-श्वभिः । इदं जगत् अहंत्रसलिलस्य स्पन्दो विलासः । चितश्व-मत्करणं वैपयिकसुखं स्वादु माधुर्यं यत्र ॥ ५ ॥ नभसा आ-काशेन अनन्तनिखातवान् अपरिच्छेचकुक्षिकुहरवान् । भावाः संपदः अभावा विपदश्र महान्त आवर्ता यत्र ॥ ६ ॥ त्रिलो-कीपदेन तद्गतजना लक्ष्यन्ते । त एव विलिखन्सिश्वलेख्यव-दाविर्भवन्त्यो लेखा रेखा यत्र । विलोलैः सूर्यचन्द्राद्यालोकैः फेनिलः फेनवान् । ब्रह्माण्डा एव बुद्धदोद्भेदा यत्र । कपाट-मिव आपीडयति निरुणिद्ध मोक्षप्रवेशमिति कपाटापीडो मोह-हेतुस्तेन पीवरोऽभिनृद्धः ॥७॥ भूपीठमेव घनो डिण्डीरपिण्डो यत्र । चिद्धनैश्विदाभासेर्जीवैर्मद्भमान् जलकाकवान् । तेषां चि-त्रैराजवं जवीभावैरुष्वीधस्तिर्थग्रमणैर्मजनीन्मजनात्मकः॥८॥ ॥ ९ ॥ प्रकारान्तराभ्यां जगद्वर्णयति-अहंत्वेति ॥ १० ॥

नाहत्त्वजगती मिन्ने पवनस्पन्दवत्सदा।
पयो द्रवत्वमिव च विह्नरोष्ण्यमिवापि च ॥ ११
जगदस्त्रहमर्थेऽन्तरहमस्ति जगद्धृदि।
अन्योन्यभाविनी त्वेतं आधाराध्यवित्स्थते ॥ १२
जगद्वीजमहन्त्वं यो मार्ष्टि बोधाद्वेदनात्।
अलं चित्रं जलेनेव तेन धौतं जगन्मलम् ॥ १३
अहन्त्वं नाम तर्त्तिचिद्विद्याधर न विद्यते।
अकारणमवस्तुत्वाच्छ्याश्यक्तमिवोदितम् ॥ १४
ब्रह्मण्यतिततेऽनन्ते संकल्पोल्लेखवर्जिते।
अहन्त्वकारणाभावाश्य कदाचन सम्मयम् ॥ १५
अवस्तुन्येति सर्गादौ न संभवति कारणम्।

अतोहन्त्यादि नास्त्येव वन्ध्यासुत इव कचित् १६ तद्भावाज्जगन्नास्ति चित्त्वं जगद्भावतः । शिष्टं निर्वाणमेवातः शान्तमास्त्व यथासुस्तम् १७ अभावादुपपत्तिस्थादेवं जगद्दहन्त्वयोः । रूपालोकमनस्काराः शान्तास्तव न चेतरत् ॥ १८ यन्नास्ति तत्तु नास्त्येव शेषं शान्तमसि ध्रुवम् । संप्रबुद्धोऽसि मा भूयो निर्मृलां भ्रान्तिमाहर ॥१९

व्यपगतकलनाकलङ्कशुद्धः शिवमसि शान्तमसीश्वरोऽसि नित्यः। समिप भवति पर्यतोपमानं जगदिष वा परमाणुक्रपमेव॥ २०

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो॰ निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे वि॰ विद्याधरनिर्वाणं नाम पश्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६

भुशुण्ड उवाच ।
कथयत्येवमप्येवं स विद्याधरनायकः ।
आसीत्संशान्तसंवित्तिः समाधिपरिणामवान् ॥ १
प्रवोध्यमानोऽपि मया भूयोभूयस्ततस्ततः ।
न पपात पुरो दृश्ये परं निर्घाणमागतः ॥ २
स प्राप परमं स्थानं तावन्मात्रप्रवोधवान् ।
केनचिष्ठाधिकेनाङ्गे यसेनातिशयैषिणा ॥ ३
अत उक्तं मया राम यदि शुद्धे हि चेतसि ।
उपदेशः प्रसर्ति तेलविन्दुरिवाम्भसि ॥ ४

इत्थं वर्णने फलितमाइ—नेति ॥११॥ परस्परवीजतामाइ— जगदिति । अन्योन्यसमद्भाविनी आविभीवशीले अन्योन्याधीन-स्थितिके च ॥ १२ ॥ अतएवाहंकारमार्जनाज्ञगन्मार्जनसिद्धि-रिलाइ—जगदिति ॥ १३ ॥ अहंलस्य तत्त्वदृष्ट्या असत्त्व-दर्शनमेव मार्जनमित्याह-अइंलमिति ॥ १४ ॥ तत्कृतस्त-त्राह—ब्रह्मणीति ॥ १५ ॥ संभवदपि कारणं लोके अवस्तुनि नैति न व्याप्रियते । प्रकृते तु सर्गादी कारणं न संभवति तरसंभवोऽपि नास्तीत्वर्थः ॥ १६ ॥ निर्वाणं कैवल्यलक्षणं चित्त्वं चिन्मात्रं शिष्टम् ॥ १० ॥ एवसुपपत्तिप्रतिष्ठिताज्जगद-इंलयोरभावात् । बाह्या रूपालोकादयः संसारा आन्तरा मन-स्कारलक्षणाः संसाराश्च शान्ताः । नच इतरत्तदुभयव्यतिरिक्तं ष्ट्रेयं दुःखयस्ति अतः शान्तमास्खेत्यर्थः ॥ १८ ॥ शान्तं निर्दुः खविक्षेपम् ॥ १९ ॥ व्यपगतो बाह्याभ्यन्तरदृश्यकलनाल-क्षगः कलक्को यस्य अतएव शुद्धः । अध्यारोपे खं शून्यमपि पर्वतोपमानं भवति, अपबादे तु जगद्रशाण्डमपि वा परमाणु-रूपमाकाशतुल्यमेव भवतीत्यर्थः ॥ २०॥ इति श्रीवासिष्ठ-महारामायणतात्वर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे प्रम-दशः सर्गः ॥ १५॥

१ संसारवृक्षस्येत्यादि मूलस्यदुःखास्येत्यादेरर्थः.

नाहमित्यस्ति तेनान्तमैंनं भावय शान्तये।
पताबदुपदेशोकिः परमा नेतरास्ति हि॥ ५
प्षेवाभव्यमनसि पतिता प्रविवीयते।
उत्ताने मस्णादर्शे मुकाफलभिवामलम्॥ ६
भव्ये तु शान्तमनसि लगत्यभ्येत्य विच्युतिम्।
प्रविश्यान्तर्विचाराख्यामर्चिर्फमणौ यथा॥ ७
अहंभावनमेवोश्चर्यांजं दुःखाख्यशाल्मलेः।
ममेदं तद्वदादीति शाखाप्रसरकारणम्॥ ८
अहमादौ ममेत्यन्तस्तत इच्छा प्रवर्तते।

श्रुत्वा विद्याधरस्यात्र समाधिरुपवर्ण्यते । कथारोषोपसंहारोऽनहंभावप्रशंसया ॥ १ ॥

संशान्ता दश्यसंवित्तिर्थस्य समाधिलक्षणो यश्वितस्य क्षीरी-दकविवेकरस्थेन परिणामस्तद्वान् ॥ १ ॥ पुरोगते दृश्ये शब्दादिविषये न पपात ॥ २ ॥ मुख्याधिकारिलात्तावन्मा-त्रेण मदुपदेशेन प्रवोधवान् । श्रवणावृत्तिमनननिदिध्यासना-द्यतिशयैषिणा न । अङ्गेति वसिष्ठसंबोधनम् ॥ ३ ॥ इदानी वसिष्ठः प्राक् खोक्तर्थे विद्याधरचित्तमुदाहरणमिति वर्णनख-रया भुग्नुग्डोक्तिमुत्कम्य रामं प्रखाइ--अत इलादि ॥ ४ ॥ कोसाञ्चपदेशस्तमाइ—नाहमिति । ते अन्तः प्रत्यगात्मनि चि-देकरसे अहमित्यंशो नास्ति । अतोऽसन्तमेनं मा भावय इत्ये-तावत् एतावत्येवोपदेशोक्तिः परमा सारसंप्रहभूता ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ अविच्युतिं अभ्येति । अन्तःप्रविश्य विचाराख्यां सर्व-मोहारण्यदाहक्षमामित्रिक्षां च जनयतीति शेषः । यथा अ-र्कमणी सूर्यकान्ते प्रविष्टं सूर्याचिरप्रिश्चिखां जनयति तद्वत्॥ ॥ तद्भदहंभावनवदेव ममेदं भावनं संसारवृक्षस्य मैलादिशरीरं यतो रागादिशासात्रसरस्य कारणमित्यर्थः ॥ ८ ॥ तदेवाह--**अहमिति । आदौ बीजावस्थास्थाने । अन्तः तत्कार्यवृक्ष-**

२ मूलादिश्वरीरमिति तृत्तरार्थस्यादीत्यस्यार्थः.

इदमर्थशतानर्थकारिणी भवभारिणी॥ एवंविधा भुनिश्रेष्ठ मृढा अपि चिरायुपः। भवन्त्यनियमो श्रङ्ग दीर्घायुष्यस्य कारणम्॥ अन्तःशुद्धमनस्का ये सुचिरायाभयप्रदम्। मनागप्युपदिष्टास्ते प्राप्नवन्ति परं पदम्॥ वसिष्ठ उवाच।

मैरुमूर्धनि मामेयमुक्त्वा स विह्गाधिपः।

तूष्णीं बभूव मुक्तात्मा ऋष्यमूक इवाम्बुदः॥ १२ अहमापृच्छय तं सिद्धं विद्याधरमधो पुनः। प्राप्त आत्मास्पदं राम मुनिमण्डलमण्डितम् ॥ १३ पतत्तवाद्य कथितं बलिभुक्कथोक्तं विद्याधरोपरामनं लघुबोधनोत्थम्। अस्मिन्भुशुण्डविह्गेन्द्रसमागमे मे चैकादशेह हि गतानि महायुगानि ॥ १४

इस्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्माकोये मो ० निर्वाणप्रकरणे उ० विद्याधरीपाढ्याने विद्याधरनिर्वाणं नाम पोडशः सर्गः ॥१६॥

सप्तद्दाः सर्गः १७

ર

3

११

वसिष्ठ उवाच । अनहंबेदनादेवं शुभाशुभफलप्रदा । संसारफलिनी नृनमिच्छान्तरुपशाम्यति॥ अनहंबेदनाभ्यासात्समलोष्टाइमकाञ्चनः। भृत्वा शान्तभवापीडो न नरः परिताम्यति ॥ अहन्तापुटकोड्डीनपरबोधवलेरितः । अहमित्पर्थपापाणो न जाने काशु गच्छति॥ अहन्तापुरकोङ्गीनब्रह्मवीरबलेरितः । अहमित्यर्थपाषाणो न जाने काछु गच्छति ॥ अहन्तापुटकोङ्गीनो ब्रह्मवीरवलेरितः ।

स्थाने । इच्छा शाखास्थाने प्रवर्तते ॥ ९ ॥ एवं प्रागुक्तं प्रकृतसंमत्या समर्थ्य विराष्टः पुनर्भुशुण्डोक्तिकथामेवानुसरन्वि-याधरकथामुपसंहरति-एवंविधा इति । रीर्घायुष्यस्य कारणं तत्त्वज्ञानमेवेतीति शेषः ॥ १० ॥ अन्तःधद्भेस्त चिराभ्यास एव ज्ञानकारणमिति नियमोऽस्त्येवेत्याशयेन। ह--अन्तरिति । सुनिरायाभ्यासेनान्तःशुद्धमनस्का ये ते। परं पदं श्लानम् ॥ ११ ॥ विहगाधिपो भुशुण्डः । ऋष्यमुके गिरी मतंगाश्रमे मतंगशापभयानमूका मेघा न गर्जन्तीति प्रसिद्धिः ॥ १२ ॥ प्रथमं तं सिद्धं भुशुण्डमापृच्छच अथो विद्याधरं गला तदुक्ति-संवादाय पुनस्तमप्याष्ट्रच्छच निश्चितार्थोहम् । आस्पदं स्वाध-मम् ॥ १३ ॥ हे राम, मया लघु शांघ्रमेव बोधनेनोत्थमुत्पन्नं विद्याधरस्योपशमनं बलिभुजः काकस्य भुशुण्डस्य कथया उक्तं तवाद्य कथितम् । अस्मिन् वार्णते भुशुष्डविह्गेन्द्रसमागमे मे जाते तदनन्तरमिद्द अस्मिन् कल्पे एकादशमहायुगानि दिव्य-युगानि गतानीत्यर्थः ॥ १४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे घोडशः सर्गः ॥१६॥

अत्राहंबीजनिर्दाहादनहंभाववक्किना । देहादिसंसृतेः सम्यग्याधेऽलीकस्वमीर्यते ॥ १ ॥

सर्वसंस्तेः काममूखलादनहंभावेन प्रथमं तन्निवृत्ति-माइ-अनहमिति ॥ १ ॥ कामोपरमे लोभादिदोषक्षयाद्वै-राग्यादिसंपदा सर्वमानसदुःखक्षय इत्याह—अनहमिति ॥२॥ साधननतोऽवस्यश्रवणादिना ज्ञानोदये अध्यव्यतिरिकाहमर्थस्य शरीरयन्त्रपाषाणो न जाने काश्र गच्छति ॥ 4 अहमर्थहिमं त्वन्तरनहन्ता चिदर्चिषा । उड़ीयेव विलीनं सम्र जाने काशु गच्छति॥ દ્દ अहंरसो विलीनोन्तरनहन्ताचिदर्चिषा । शरीरपर्णादुद्वर्णाम्र जाने काश्र गच्छति॥ 9 शरीरपर्णान्निष्पीतस्त्वहंभावरसासवः । अनहन्तार्कमार्गेण परतामधिगच्छति ॥ 4 शयने कर्दमे शैले गृष्टे व्योम्नि स्थले जले। स्थूला सुक्ष्मा निराकारा रूपान्तरगतापि च ॥ ९ यत्र तत्र स्थिता सुप्ता प्रवुद्धा भस्पतां गता।

बाधेनालीकलमेव पर्यवस्यतीत्वाशयेनाह-अहन्तेति । अ-वणादिना ज्ञाननिर्मथनाभ्यासेन अहन्तालक्षणारप्रमात्यन्त्र-पुरकादेव विहुज्वालावदुर्शन आधिर्भृतो यः परब्रह्मसाक्षा-स्कारलक्षणो बोधस्तद्वलेन ईरितः क्षिप्तः। निरस्त इतियावत् । अहमादिहरयार्थपाषाणोऽभियन्त्रक्षिप्तपाषाण इवाशु क गच्छति न जाने । तुच्छलमेवापयत इति भावः॥३॥ चरमसाक्षात्कार-कृत्या रूढं ब्रह्मवाज्ञानाहंकारादिनिराससमर्थमित्याशयेनाह-अइन्तेति । अज्ञानाहंकारयोरिव स्थ्लदेहस्यापि व्यष्टिसमष्टि-रूपस्य तादशं ब्रह्मेव निवर्तकमित्याशयेनाह्—अहन्तेति ॥४॥ ब्रह्मैव वीरो विकान्तस्तद्वलेरितः । 'पूर्वापरप्रथमचरमजघ-न्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च' इति समानाधिकरणसमासे वीर-शब्दपरनिपातरुछान्दसः ॥ ५ ॥ अनद्दन्ताभावनावृत्तिप्रति-फलितचितेवाहन्तानाश इति पक्षो वाहिलत्याशयेनाह--अह-मर्थेति द्वाभ्याम् ॥ ६ ॥ उद्वर्णात् ब्रह्मविद्याधिकारिवाह्मणाद्यु-रकृष्टवर्णात्परिपाकपाण्डुराच ॥७॥ अथवा न बाधिताह्न्तादेः श्च्यता किंतु ब्रह्मतैवंत्याशयेनाह--शरीरेति । अनहन्तालक्षणे-नार्करिममार्गेण परतां बद्धातां खकारणसूक्ष्मजलात्मतां च॥८॥ तत्त्वज्ञानं विना तु न कापि कदापि कस्यान्त्रिदवस्थायां देहस्या-हंकारस्य वा आत्यन्तिकोच्छेदस्तयोः परस्परवीजतया परस्प-रान्तःसरवेन जगद्भावेन सर्वत्रोद्भवावर्जनादित्याह्-शयने इत्यादिना । शयने शय्यायां स्थूलादिद्वादशावस्थाप्राप्ता शय-नादिस्थानसप्तके यत्र तत्र स्थितापि शरीररुक्षणा वटधाना भृता नीता निमग्ना च दूरस्था निकटा सती ॥ १० शरीरबटधानान्तःस्थिताहन्त्वनथाङ्करा । शाखाजालं तनोत्पाशु संसाराख्यमिदं क्षणात् ११ अहंत्वबटधानान्तःस्थितदेहबृहहुमः । संसारशाखानिवहं यत्र तत्र तनोत्यलम् ॥ १२ शाखाशतेद्धदलपुष्पफलदुमोऽस्ति बीजोदरे ननु दशा परिदृश्यतेऽसौ । देहोस्त्यहन्त्वकणिकान्तरशेषद्दयः संवित्परीत इति बुद्धिदशैष दृष्टम् ॥ १३ देहादहन्त्वमनवाप्तवतो विचारै-श्चिद्योममात्रवपुषो वपुषोऽथ वोचैः। नाहन्त्वबीजजठरादसतोऽभ्युदेति संसारवृक्ष इह बोधमहाग्निदग्धात्॥ १४

इलार्वे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० अहंलासत्तायोगोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

अष्टादशः सर्गः १८

यसिष्ठ उवाच ।

मरणं सर्वनाशात्म न कदाचन विद्यते ।
स्वसंकल्पान्तरस्थेर्यं मृतिरित्यभिधीयते ॥ १
पश्येमे पुर उद्यन्त इव मन्दरमेरवः ।
आरूढा अपि दिग्वातैः सरिद्विम्बितशैलवत् ॥ २
उपर्युपर्यन्तरन्तः कदलीदलपीठवत् ।
रिरुष्टाश्रिष्टस्यरूपाः से मिथः संस्त्रयः स्थिताः ३
श्रीराम उवाच ।
पश्य मे पुर उद्यन्त इति वाक्यार्थमक्षतम् ।

अन्तःस्थित उद्भृतोऽहन्त्वनवाद्भरो यस्यास्तथाविधा सती क्षणा-दिदं संसाराख्यमाशु सर्वदिग्व्यापनशीलं शाखाजालं तनोतीति तृतीयेनान्वयः ॥ ९ ॥ ५० ॥ ११ ॥ एवमहन्ललक्षणवट-धानान्तः स्थितो देहमहाद्वमोऽपि बोध्य इलाह—अहन्त्वेति ॥१२॥ उक्तमर्थं वटादिशीजहष्टान्तेनैवानुभावयति—शाखेति। यथा बीजोदरे शास्त्राशते इद्धानि विराजमानानि दलानि पुष्पाणि फलानि च यस्य तथाविधो हुमोऽस्ति, यतोऽसौ सलादेव वीजपुटं भित्त्वाङ्करादिक्रमेण निर्गच्छन्त्रत्यक्षं सर्वजनैः परिदृश्यते । नन्विति प्रसिद्धी । तथा अहन्ललक्षणा या कणिका सूक्ष्मबीजं तदन्तरशेषदृश्यसंवीतो देहोऽस्तीति सूक्ष्मबुद्धिलक्ष-णया दशैव विद्वद्विदृष्टिमित्यर्थः ॥१३॥ एवमविचारफलं सर्वत्रा-निर्मोक्षमुक्ला विचारफलं मोक्षमाह—देहादिति । विचारै: श्रव-णादिभिस्तत्त्वबोधाचिद्योममात्रं वपुःखहुपं यस्य तथाविधस्य जीवन्युक्तस्य विद्यमानादपि देहादहन्तवं तत्तादारम्याभिमानम-नवाप्तवतः अथवा अदेहवतो विदेहमुक्तस्योचैनिरतिशयानन्दे प्रतिष्ठितस्य पुंसो बोधमहाभिदग्धाहन्त्वबीजजटरात् संसारवृक्षो नाभ्यदेति ॥ १४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्र-काहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सप्तद्शः सर्गः ॥ १७॥

उद्यमानान्यनन्तानि पवनैः सर्वतोम्बरे ।
मृतजीवमनःस्थानि वर्ण्यन्तेऽत्र जगन्ति हि ॥ १ ॥
'देहोस्खद्दन्तकणिकान्तरशेषद्दयसंवित्परीत इति बुद्धिदरीव
दृष्टम्' इति यदुक्तं तत्र कथमस्ति कीदशी सा बुद्धिदिगिति

न किंचिद्यगच्छामि यथावन्मुनिनायक ॥ यसिष्ठ उद्याच ।
प्राणस्याभ्यन्तरे चित्तं चित्तस्याभ्यन्तरे जगत् ।
विद्यते विविधाकारं वीजस्यान्तरिय द्रुमः ॥ ५
मृते पुंसि नभोवातिर्मिलन्ति प्राणवायवः ।
सरिज्ञलैरिवाम्भोधिजलान्यात्मद्रुतानि हि ॥ ६
इतश्चेतश्च यान्तीव तेषामन्तर्जगन्त्यलम् ।
व्योमवातविनुन्नानां संकल्पेकात्मकान्यपि ॥ ७
सप्राणवातैः पवनैः स्फुरत्संकल्पगर्भितैः ।

तदुभयं मृतजीववासनामयानन्तजगद्युत्पादनेन समर्थयितुं भू-मिकां रचयति--मरणमिति । मनोबुद्ध्यहंकारादिसर्वनाशात्मकं मरणमिति पामरा मन्यन्ते । तथा त कदाचिदपि न विचते । कृतहानादिदोषप्रसङ्गात् । किंतु मनुष्यादिशरीरात्मभावभोजक-प्रारब्धक्षये तदनुरूपसंकल्पतिरोमावे देवादिशरीराहंभावादिभो-जककर्मीद्भवे तदनुरूपखसंकल्पान्तरस्य तद्भोजकादष्टक्षयपर्यन्तं स्थैर्य पूर्वभावविस्मृतिमपेहः मृतिरित्यमिधीयत इत्यर्थः ॥१॥ अस्त्वेवं किं ततस्तत्राह-पश्येति । एवंच तत्तजीवसंकल्पक-विपतजगतस्था मन्दरमेरप्रशत्यो दिक्ष वातैः सर्वत्र उद्यन्ते प्रवाह्यन्त इव मया दश्यन्ते लमपि पश्येत्यर्थः ॥ २ ॥ उपर्यु-परि बहिर्बहिः यावतां जीवानां भोजकादष्टसाम्यं तावतां श्विष्टा एकीभावेन मिलिताः । अन्येषामश्विष्टखरूपाः ॥ ३ ॥ उक्तमर्थमसंभावयन् रामः पृच्छति-पश्येति । यथावत्कथ-येति शेषः ॥ ४ ॥ मृतानां पुरुषाणां प्राणास्तावन्नभस्यत्काम-न्तीति लोकवेदप्रसिद्धम् । तद्यदि प्राणाः सन्ति तर्हि प्राणस्या-भ्यन्तरे चित्तं चित्तस्याभ्यन्तरे जगदपि विद्यते इति संभावये-खर्थः ॥ ५ ॥ सन्तुनाम तथापि दिग्वातैः कथं प्रवाह्यन्ते तत्राह-मृते इति । पुंसि मृते सति तत उत्कान्ताः प्राण-वायवो बाह्यनभसि पूर्वैर्वातैः सह मिलन्ति । यतस्तान्यप्या-त्मनि हतानि द्रवस्त्रभावानि । अतः समस्त्रभावानां मेलने एकतैव भवतीत्वर्थः ॥६॥ अतो व्योमवातैर्विशेषेण नुषाना-माकृष्टानां तेषां प्राणानामन्तर्गतानि जगन्खपि इतथेतथ या-

सर्वा एव दिशः पूर्णाः पश्यामीमाः समंततः॥ ८ अन्नते पश्य पश्यामि संकल्पजगताक्रणे ! बुद्धिष्टका समुह्यन्ते पुरो मन्दरमेरवः॥ खवातेन्तर्भृतप्राणाः प्राणानामन्तरे मनः। मनसोन्तर्जगद्विद्धि तिले तैलमिव स्थितम् ॥ १० खवातः खसमाः प्राणा यथोद्यन्ते मनोमयाः। उद्यन्ते वै तथैतानि तदङ्गानि जगन्यपि ॥ ११ सभूतान्यम्बरोर्व्यादिवृन्दानि त्रिजगन्त्यपि । उद्यन्ते चाप्यरूढानि पुरः सर्वत्र गन्धवत् ॥ १२ तानि बुद्धीघ दृश्यन्ते न दृष्ट्या रघुनन्दन । पुरः संकल्परूपाणि स्वस्वप्रपुरपूरवत्॥ १३ सर्वत्र सर्वदा सन्ति सुसुक्ष्माण्येव खादपि। करपनामात्रसारत्वात्र चोह्यन्ते मनागपि ॥ १४ तान्येव रढभावत्वात्स्वेषु ठोकेषु तेप्वलम्। सत्यान्येव चिदंशस्य सर्वगत्याद्भवानिव ॥ १५ प्रतिबिम्बं पुराणीव पुरःप्राणसरिद्रये। अस्दान्यपि चोह्यन्ते स्टान्यपि च नैव च॥ १६

न्तीवेत्युह्यन्त इवेत्युक्तिरिखर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ अहं पश्यामि लमपि बुद्धिदृष्ट्या पश्य ॥ ९ ॥ खे विद्यमाने वातेऽन्तर्मृताना प्राणाः ॥१०॥ ननु गुरूणि जगन्ति कथं वातैरुखन्ते तत्राह---सवातीरिति । तथा प्राणवदेव तदशानि जगन्यपि ससमानि लघूनीत्युह्मन्त इत्यर्थः ॥ ११ ॥ सभूतानि चतुर्विधप्राणिसहि-तानि । अरूढानि अद्दृढानि । अप्रतिष्टितानीति यावत् ॥१२॥ दृष्ट्या चक्षुरादिना खीयस्वप्रदृष्टपुरवत्तादशपुरवद्वा तादशपुरान्त-र्गतनदीपूरवद्वा ॥ १३ ॥ उह्यन्त इवेति यदुक्तं तत्र इवकारार्थ-समर्थनायाह-कल्पनामात्रसारलादिति ॥१४॥ यखपि तानि कल्पनामात्रलाश्र सत्येवेति नोग्धन्ते तथापि तान्येव तेषु त-त्तजीवभोग्येषु स्येषु सर्गनरकभूम्यादिलोकेषु तेषां दृढभाव-लासुखदुःखभोगार्थकियासमर्थतया सत्यान्येव तत्सत्यतासंपा-दकस्याधिष्ठानचिदंशस्य सर्वगलात् । यथा भवानसम्हष्ट्या श्रवणधारणाद्यर्थिकयासमर्थः पुरोवर्ती सत्यस्तद्वदेवेत्यर्थः॥१५॥ अहरानि वासनामात्रलादनाविभूतानि हरान्याविभूतानि चेत्थ-मुद्यन्ते नैव चोह्यन्ते ॥१६॥ सीक्ष्म्ये वहने च सीरभसाम्यं प्रागुक्तमित्याह—सारभाणीति ॥ १७ ॥ अतएव त्रिजगद्भ-मात्मना चित्तस्य सम्दर्भदयोरपि नात्मनस्तावित्याह--कुम्मे इति । तथैवात्माने नान्यतेति शेषः ॥ १८ ॥ यथा मृतानां जगरसंकल्पमात्रलादसदित्यं ते तवापि जगदसत् । भ्रान्तिरेव केवलमुदितेव । सा भ्रान्तिरपि परमार्थतो न विनश्यति नोदे-तीति तत्त्वरच्या ब्रह्मरूपिण्येवत्यर्थः ॥ १९ ॥ ननु यदि व्यव-हारदशा जगत्तद्भान्ती वाय्वन्तःप्रवहमाने उदिते तर्हि वयं पृथिवी निधलतया कथं पश्यामस्तत्राह-यदि वेति । नोदिते

सौरभाणि समुहान्ते वाताङ्गस्थानि राघव। जगन्ति प्राणसंस्थानि व्योमात्मकमयानि तु ॥ १७ कुम्मे देशान्तरं नीते यथान्तव्यां सि नान्यता । स्पन्दनादिमये चित्ते तथैव त्रिजगद्भमे ॥ १८ इत्थं न सज्जगद्भान्तिरसत्यैबोदितेष ते । न विनश्यति नोदेति केबलं ब्रह्मरूपिणी ॥ १९ यदि वाप्यदिते वातस्तत्तदस्या न रुश्यते। तदन्तःसंस्थितैः स्पन्दो नावि कोशगतिरिष ॥ यथा स्पन्दोऽङ्गलग्नायां नाव्यन्तःसंस्थितैरपि। न लक्ष्यते तथा पृथ्यां तत्संस्थेस्तन्मयैरपि॥ २१ यथा योजनविस्तीर्ण ठघा सद्यानुभूयते । यत्तस्य पादपस्तम्मे परमाणी यथा जगत्॥ २२ वस्त्वरूपमप्यतिवृह्लघुसत्वो हि मन्यते। मृषिकाः स्वाञ्जलिद्रव्यं नवपङ्कमिवार्भकाः॥ २३ असत्येव स्वरूपेऽसिञ्जगदाख्ये विदो भ्रमे। लोकान्तराधर्ममयी सा बृहंगस्य भावना ॥ २४

एव । यदि वा उदिते इति पक्षस्तथापि वातैः कृतं तत्तज्जमण-परिवर्तनादिकमस्याः पृथिव्यास्तदन्तःसंस्थितरस्मामिनं छ-क्ष्यते । यथा नावि जायमानः स्पन्दस्तदन्तःकोशगतैर्नर्रन लक्ष्यते तद्वदित्यर्थः ॥ २० ॥ तदेव सप्टमाह—यथेति । यथा नावि अन्तः संस्थितरपिशब्दात्तन्मयैरपि कीलाद्येनी-स्पन्दो न लक्ष्यते तद्वत्वृथिवीसंस्थः पार्थिवदेहादिम्यरप्यस्मान मिरित्यर्थः ॥ २१ ॥ इत्थं 'पर्यमे पुर उह्यन्त इव मन्दर्मे-रवः'इति खोक्ति रामायोपपाय उपर्युपर्यन्तरन्तःकदलीद्रलपीठ-वदित्युक्तावप्यत्पे बृद्दतः समावेशं प्रथमं बृद्दतोऽल्पलकल्पनया दर्शयति-यर्थिति । यथा योजनविस्तीर्णमपि सद्म लघी पाद-पस्तम्मे चित्रनिर्व्यूहरचनादिना रचितुं यत्तस्य यतमानस्य शिल्पिनो बुद्धा अल्पलकल्पनया तत्रानुभूयते तथा अन्तरन्तः-सूक्ष्मतमेऽपि परमाणी जगद्धुद्धिकल्पनयाऽनुभूयत इत्यर्थः॥२२ परमाण्यादेवृहत्तमत्वकल्पया नवा तत्र बृहतो जगतः समावे-शोऽनुमनितव्य इत्याशयेनाह—वस्त्रिति। तद्यथा रव्यकोशागारे प्रविष्टा अस्ता धनसंबन्धशून्या मृषिका न रक्षानि बहुमन्यन्ते किल्डालिमात्रमितमपि धान्यदव्यमेव तत्र दैवाह्नब्धं बहु म-न्यन्ते, यथा वा अर्भका बहुमूल्यान्यपि खाभरणानि निखमनुभू-यमानानि न बहुमन्यन्ते किंतु नवमपूर्वं मृगपक्ष्याकारं वर्णकादि-परिष्कृतं पद्धं मृत्पिण्डमेव कीडनाय बहु मन्यन्ते, येन तद्दानेन वश्चिताः खाभरणान्यपि विनिमयेन प्रयच्छन्तीत्यर्थः॥२३॥किंच वास्तवोऽल्पे बृहतः समावेशो न संभवत् नाम, ब्रान्खा त संभ-वत्येवेत्याशयेन।इ--असत्येवेति । विदः अज्ञानावृतचितो जग-दाख्ये भ्रमे असत्येवार्थे केवलं जीवतोऽयं लोको मृतस्य लो-

र यथि 'तथा महास्तरसंसै:' इति पाठो दृश्यते तथापि महा-विति संबोधनस्य रामंत्रस्योग्यत्वात्र संजीचिनः.

२ अत्राधभेषद्भुपलक्षणं धर्मस्वेत्यपीति धर्माधर्मफलानीति व्याख्यातम्.

इदं हेयमुपादेयमिदमित्यन्तरक्रता। यस्य तस्य भवायास्ति सर्वज्ञस्यापि मृढता॥ २५ सचेतनो श्ववयवी चेतत्यवयवान्यथा। स्वान्तरेच ततं जीवस्त्रिजगद्वध्यते तथा ॥ २६ संविदात्मपराकाशमनन्तमजमव्ययम्। **ब्योम्रो**ऽवयवस्पाणि तस्येमानि जगन्ति भोः २७ सचेतनोऽयःपिण्डोऽन्तः श्चरसृच्यादिकं यथा । बुद्ध्यते बुद्ध्यते तद्वजीवोऽइस्त्रिजगद्भमम् ॥ अविश्विद्वापि मृत्पिण्डः शरावोदञ्चनादिकम्। यथाङ्ग मनुते जीवस्तथाङ्ग मनुते जगत्॥ २९ चिद्विद्वाङ्करो देहे वृक्षत्वं मन्यते यथा। षुक्षराब्दार्थरहितं ब्रह्मेदं त्रिजगत्तथा ॥ 30 चिद्वाचिद्वा यथादशों विम्वितं वाप्यविम्वितम्। नगरं बेसि नो घापि तथा ब्रह्म जगत्रयम् ॥ 38 देशकालिकयाद्रव्यमात्रमेव जगत्र्रयम्। अहंत्वजगतोस्तेन मेदो नास्त्येतदात्मनोः॥ ३२ कल्पितेनोपमानेन यदेतद्पदिश्यते।

काम्तराणि तत्र च धर्माधर्मफलानीखादिमयी बृहंगस्य बंहणं गच्छतश्चित्तस्य सा संकल्परूपा भावनैव । नच भावनां व-स्लन्यथाभावो निरुणदीत्यर्थः । बृंहधातोः घयर्थे कविधान इति भावे कः । ततः 'अन्येष्वपि दश्यन्ते' इति गमेर्डः । बाहु-छकाश्रम् ॥ २४ ॥ ननु मूढानामस्त्रन्तरन्तर्जगद्भमभावना सर्वज्ञानां भवदादीनां कथमन्तरन्तर्जगदन्तरमस्तीति भ्रान्ति-स्तत्राह-इदमिति । सर्वज्ञस्यापि भवाय व्यवहारसंभवाय या-षरप्रारम्धक्षयं लेशतोऽनुवर्तमाना मृढताऽस्त्येवेखर्यः ॥ २५ ॥ अतएव सर्वे इस्यापि समष्टिजीवस्य हिरण्यगर्भस्यावयववत्स्वान्त-रेब त्रिजगहर्शनमिल्याह—सचेतन इति । अवयवी देहात्मा छौकिकपुरुषः । जीवः समष्टिजीवः ॥ २६ ॥ मायोपहित इश्वरस्त्वंवं पश्यतीत्याह—संविदात्मेति । भो इति संबोध-नेम रामस्य तत्सार्यते ॥ २७ ॥ ईश्वरः प्रलयकाले कथं स्ता-न्तर्गतं जगत्पश्यति तत्राह-सचेतन इति चतुर्भिः । अयः-**पिण्डो यदि सचेतनः स्यात्तर्हि यया स्वान्तः सूक्ष्मरूपेण** स्थितं क्षरसच्यादि भाविखविकारं पश्येसद्वदिखर्थः । जीवः खलीन-सर्वसंस्कारोपहितः सन् ॥ २८ ॥ अधिष्ठानसद्रूपप्राधान्येन चित् आरोपितमृदादिरूपप्राधान्यविवक्षया अचिद्वा । तात्पर्य पूर्ववदेव ॥ २९ ॥ उपहितप्राधान्येन चित् आरोपितमृदादि-रूपप्राधान्येनासिद्वाद्वरः । एतांवास्तु विशेषः । जीवसंस्कारो-पहितरूपेण बृक्षशब्दार्थसहितं बुध्यते तदनुपहितेश्वररूपेण तु तद्रहितमनादिखिद्या विद्यया वा बाधितरूपमिति यावत् । शेषं प्राग्वत् ॥ ३० ॥ परिणामदशा जीवेश्वरयोः सर्गासर्गकाले जगदर्शने दष्टान्तमुक्ला विवर्तदशाप्याह—चिद्वेति । जीवे-श्वरोपाष्युपहितदशा वेलि अनुपहितशुद्धदशा तु नो वेलि । 'मत्र नान्यत्पस्यति' इत्यादिश्चतेरिति भावः ॥ ३१ ॥ एवं ।

तत्रोपमैकदेशेन उपमेयसधर्मता॥ 33 यदिवं दृश्यते किंचिज्ञगत्स्थावरजङ्गमम्। अमुञ्जतः पराणुत्वं जीवस्पैतत्स्मृतं वपुः॥ 38 सर्वसंवेदनत्यागे शृद्धसंस्पन्ददे पदे। न मनागपि मेदोऽस्ति निःसङ्गोपलकोशवत्॥ ३५ यो यो नाम विकल्पांशो यत्र यत्र यथा यथा। यदा यदा येन येन दीयते स तथैव चित्॥ अचित्त्वाश्वास्ति मनसि संकल्पः ख इवाङ्करः। चिरवासु चेतसो विद्धि चितिरेवेह कल्पनम्॥ ३७ या योदेति विकल्पश्रीरप्रबुद्धाशयं प्रति। सर्वगत्वादनन्तत्वाधिद्ध्योद्भः सा न सन्मयी ॥३८ यथोदेति विकल्पश्रीः प्रबुद्धेनोदितैव सा । सर्वगत्वादनन्तत्वाशिद्योद्यः सा न सन्मयी॥ ३९ सर्वसंकरपकलना सत्येत्याबालमक्षतम् । स्वप्नादावनुभूतोन्तरर्थः केनापि स्रभ्यते ॥ संकल्पो वासना जीवस्त्रयोऽर्था लिखिताश्चिता। सोतुभूतोऽप्यसस्यः स्यादसत्वस्यैव नो सतः ॥४१

रामप्रश्नान्समाधाय प्रासिक्कं च सर्वं समाप्य 'नाहन्खजगती मिन्ने पवनस्पन्दने यथा।' इतिप्राक्प्रस्तुतार्थं प्रकारान्तरेण समर्थ-यित्रमन्संधत्ते-देशेति । अहन्सम्बि देशकालिकयाद्रव्यता-दात्म्यसंसर्गाभिमानात्मकलात्तदूपमेवेत्येतदात्मनोः समानखः भावलादिप भेदो नास्तीलर्थः ॥ ३२ ॥ एतदनुभावयितुमेव श्रुत्या मया च मृह्रोह्पिण्डादिदृष्टान्ता अचेतना अपि चेत-नलमारोप्येकदेशसाम्येनोपन्यस्ता इत्याह-सहिपतेनेति॥३३॥ यास्तवब्रह्मभावलक्षणं परमणुत्वं सौक्ष्म्यममुखत एव विवर्त-रूपं स्थूलं जगद्रुपमित्यर्थः ॥ ३४ ॥ अत एवायिष्ठानदृष्ट्या सर्वविवर्तसंवेदनबाधे निष्प्रत्यृहं सर्वतः शुद्धात्मत्रसरप्रदे पूर्ण-पदे न मनागपि जीवजगद्भेदोऽस्तीत्याह—सर्वेति ॥ ३५ ॥ अवाधे तु सदा सर्वत्र सर्वविकल्पात्मनैय चिद्विवर्तत इत्याह— योय इति । दीयते मुटेनेति शेषः । चित् तथैव तद्विकल्पा-नुसारेणैव सविवर्ता भवतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥ मनसोऽपि **चिद**-नुप्रवेशादेव विचित्रसंकल्पसामर्थ्यं न स्वत इति चित एव सर्वविवर्तस्वातम्ब्यमित्याह्—अचित्त्वादिति ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ एवमप्रबुद्धे उदितापि प्रबुद्धे तत्त्वे नोदितैव अनन्तलात्का-लवस्तुकृतपरिच्छेदशून्यलाच ॥ ३९ ॥ यद्यसन्मयी तर्हि कथमाबालगोपालं सत्येव भाति तत्राह—सर्वेति । न जाप्र-रसंकल्पकलनेव सत्येति भाति किंत्र स्वप्नादिसाधारण्येन स-र्वापि । नच स्वप्रश्रान्खादाञ्चपरूब्धो गजरजतादिरर्थः केनापि **अभ्यते इति काका योज्यम् ॥ ४०॥ नन् सत्यः संसारः** कथमसत्यः स्वात्तत्राह--संकल्प इति । जात्रत्खप्री संकल्पः सुषुप्तिस्तु वासनामात्रं तदुभयत्रतिविम्बितचिद्रपुरत्तदुभयभोका जीवधेति त्रयः पदार्थाः सत्यकृटस्थनिता खात्मनि चित्रवहिः खिताः सोयं चित्रसंसारकल्पः संसारोऽधिष्ठानसत्तया सत्य

असत्यताभिधं सत्यं मुक्त एव भवेच्छिषः।
सातिषाहिकदेहैकपरिश्वयविकासवान्॥ ४२
जगन्ति वातैरुह्यन्ते व्योम्नि शाल्मिलितूलवत्।
नोह्यन्ते चोपलानीय नच सन्त्येव कल्पनात्॥४३
इत्यस्मिन्नखिलपदार्थसार्थकोशे
व्योमन्यप्यतिवितते जगन्ति सन्ति।
अन्योन्यं परिमिलितानि कानिचिश्व
नान्योन्यं परिमिलितानि कानिचिश्व॥४४
सर्वत्यात्परमचितेरनम्तरूपाण्यारममञ्जुरदिगन्तसंभृतानि।

लोलाम्बृदरपुरिबम्बमङ्गराणि
स्वान्तःस्थाविरलमहापुरोपमानि॥ ४५
सस्थैर्याण्यपि सततं क्षणक्षयाणि
व्यक्ताक्षाण्यपि सततं निमीलितानि।
सालोकान्यपि परितस्तमोवृतानि
चिद्रूपाणवलहरीविवर्तनानि॥ ४६
पृथिकस्थतानि व्यतिमिश्रितानि
जलानि चैवाम्बुनिधा नदीनाम्।
तारार्कचन्द्रग्रहमण्डलानां
समोदितानां नमसीव भासः॥ ४७

इस्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्नीकीये मो०निर्वाणप्रकरणे उ०वि०जगज्ञालकोशसाधर्म्थयोगोपदेशो नामाष्टादशः सर्गः ॥१८॥

एकोनविंशतिः सर्गः १९

श्रीराम उवाच । मुने जीवस्य यदूपमाकृतिग्रहणं तथा । यथा च परमात्मत्वं स्थानं यचास्य तद्वद् ॥ वसिष्ठ उवाच । स्वसंकल्पेन चेत्योकं चिदित्यपरनामकम्।

इत्यनुभूतोऽप्यसत्यस्य जीवस्यैवेत्यसत्यः स्यात्र त्वधिष्ठानसतः। तेन तदसंस्पर्शादिल्यर्थः । यथा चित्रप्रतिबिम्बखप्नाश्वा-श्चित्रप्रतिबिम्बखप्रपुरुषाणामसत्यानामेव वाहनं न पुरुषस्य तद्वदिति भावः ॥ ४१ ॥ 'ब्रह्म वा इदमप्र इलादिश्रुतेरस्तु वा सत्यस्यैव स्वाबोधात्संसा-रस्तथापि तन्नित्यमुक्तमेव । यथा हि तत्सत्यं ब्रह्म प्राक्त-रवबोभारसस्यतां जगति संकामयसत्सत्यतामिथं भवति । तथा तत्त्वबोधोत्तरं बाधिताज्वगतः खसत्तां खात्मन्यु-पसंहरत्तदसत्यताभिधमपि भवति । नहि प्रपश्चस्याधिष्ठानमात्रप-रिशेषादन्या असत्यता कानित्सुवचा । यत आतिवाहिकदेहस-हितस्यैकस्य खाज्ञानस्य परिक्षयेऽपि पूर्णतालक्षणविकासवा-न्मुक्तः प्रखगात्मैव दिवो भवेदिखर्थः ॥ ४२ ॥ अतएवाज्ञान-दृष्ट्येव जगन्त्युह्यन्ते न तत्त्वदशेत्युक्तमित्युपसंद्वरति--जग-न्तीति ॥ ४३ ॥ इति वर्णितरीत्या अस्मित्रखिळपदार्थसमूहानां कोशभूते अज्ञाते प्रतीचि परमार्थतोऽतिवितते व्योमनि शून्या-काशकल्पेऽप्यविद्यया अनन्तानि जगन्ति सन्ति । तानि च क्रतिपयानां जीवानां भोजकादृष्टसाम्ये जागरे ब्रह्माण्डेक्ये च अन्योन्यं परिमिलितानि । तद्वैषम्ये त्र ब्रह्माण्डभेदे खप्ने च नान्योन्यं परिमितानीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ तान्येव विशिनष्टि-सर्व-लादिखादित्रिभिः। परमचितेष्रेद्मणः सर्वलात्सर्वशक्तिलादिय-त्तासंकोचकाभावाद्वणतो वस्तुतः-कियाजात्यादितश्चानन्तरूपाणि बहुविधकार्यारम्भप्रचुरैर्दिगन्तसंक्षितजनैः संभृतानि । लोले अ-म्बूदरे प्रतिबिम्बितं पुरविम्बमिव भङ्गराणि।अतएव खान्तःस्था-न्यविरकानि सर्वसंभारसंभृतानि यानि देवगन्धर्वादिमहापुराणि अनम्तं चेतनाकाशं जीवशब्देन कथ्यते ॥ २ न पराणुर्ने च स्थूळं न शून्यं न च किंचन । चिन्मात्रं स्वानुभूत्यात्म सर्वगं जीव उच्यते ॥ ३ अणीयसामणीयांसं स्थाविष्ठं च स्थावीयसाम् । न किंचिन्मात्रकं चेव सर्वं जीवं विदुर्ब्धाः ॥ ४

तान्यवोपमा येषां तानि ॥ ४५ ॥ अनुष्टलबस्लात्मना सर्थैर्याण्यपि स्याष्ट्रलभाषिकारिः क्षणक्षयाणि । एवं जागरे व्यक्ताक्षाण्यपि त्रस्यतो व्यक्त्यभावात्रिमीिलतानि । आत्मज्योतिषा सालोकान्यपि तस्याज्ञानतमोवृतलात्तमोवृतानि ॥ ४६ ॥ पृथक्
स्थितानां व्यतिमिश्रितत्वं व्यतिमिश्रितानां पृथिकस्थतत्वे
व कमादृष्टान्तद्वयमाद्द—पृथिगिते । नदीपात्रे पृथिकस्थतान्यप्यम्बुनिधौ व्यतिमिश्रितानि । नभसि समकालमुदितानां तारादीनां भासस्तु इयमस्य भा इति विवेत्तुमशक्यलाद्यतिमिश्रिता अपि एकचलने अपरचलनाभावात् पृथक्तियतस्तानीव
ता इव च ॥ ४७ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निद्याप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

जीवस्वरूपतत्तत्त्वं समष्टिव्यष्टिदेहयोः । कल्पनं स्थानकरणभेदाद्योगश्च वर्ण्यते ॥ १ ॥

यत् रूपं शास्त्रीयव्यवहारोपयुक्तं पारमार्थिकरूपं च।आकृतिः स्थूळशरीरं तस्य प्रहणं कल्पनम् । स्थानं बाह्यव्यवहारद्वारम् ॥ १ ॥ तत्र समष्टिजीनं मोक्षशास्त्रप्रसिद्धं शोधने बद्धाभेद्योग्यं प्रथमं दर्शयति—स्वेति । अनन्तं यन्नेतनाकाशं बद्धा तदेव 'हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इति श्रुतिदर्शितस्त्रसंकल्पेन स्वचेत्यसृक्षमम्भूतोपाधिप्रवेशासिद्धप्टमभक्षप्राणधारणात् 'जीव प्राणधारणे' इतिधालधीनुगमाचेत्येन प्राणेनोक्तं जीव इति व्यपदिष्टम् । चक्षुरादिद्वारा चेतयतीति चित् चेतनः इत्यपरं नाम यस्य तथाविधं सज्जीवशब्देन कथ्यत इत्यर्थः ॥ २ ॥ तस्य पारमा-धिकं रूपमाह्—नेति । श्रुत्यभाकाशं तदन्तर्गतं वा किंचन न

यस्य यस्य पदार्थस्य यो भावस्तेन तत्र तम्। स्थितं विद्धि तदाभासं तदात्मैकान्तवेदनात्॥ دو स चेतति यथा यत्र यद्यदाश् तदेव हि। तथा तत्र तदा राम भवत्यनुभवात्मकम्॥ पवनस्य यथा स्पन्दश्चेत्यं जीवस्य वै तथा। स्वसंविन्मात्रनिर्णयं नोपरेशाम यक्षवत्॥ यथैवारपन्दनाद्वातः सन्नेवैत्य सदात्मताम् । तथैवाचेतनाज्जीवो जीवश्रेति परां गतिम्॥ जीवश्चिद्धनरूपत्वादहमित्येव चेतनात्। देशकालकियाद्रव्यशक्तीर्निर्माय तिष्ठति ॥ देशकालिकयाद्रव्यचर्चिताचर्चितां स्वयम्। असत्यां सत्यवत्स्फारां तावन्मात्रशरीरिकाम् १० चेतसा हासदाकारां वालेयपरमाणुताम्। पदयस्यात्मन्यथात्मत्वे स्वप्ने स्वमरणोपमाम् ॥ ११ स्वप्रस्थावयवान्यत्वसदृशीं तां विभावयन् । विस्मृत्य चेतनां सत्तां तत्तामेवाशु गच्छति ॥ १२ एवंरूपो बुध्यमानः प्रोच्छ्रनत्वमधात्मनि । पश्यत्याशु स्वमात्मानं चन्द्रविम्बमिव द्वतम् १३

॥ ३ ॥ ४ ॥ तस्य सर्वगलमनुभावयति—यस्य यस्येति । यो भावो जातिगुणसंस्थानाधसाधारणरूपं तेन तेन भावेन संस्थितमतएव तत्तदिव आभासमानम् । तत्कुतः। तदेकान्तवेद-नात्पुनः पुनस्तद्र्शने तत्तदाकारेणैव भाननियमाद्धटचक्षुःसंयोगे हि चक्षुर्द्वारा निर्गतमन्तःकरणं स्तवृत्तिव्याप्तघटाविच्छत्रं जीव-चित्स्फुरणं घटोयं स्फुरति घटोयं स्फुरतीति घटखभावतादा-रम्येनैव यतो नियमेनानुभावयतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अतएव सम-ष्टिजीवो यत्र यथा चेतति तत्र तथा भवति सत्यसंकल्पलात्। व्यष्टिजीवस्त स यत्र यथा भवति तत्र तथा चेतित ॥ ६ ॥ तथाच समष्टिजीवस्य पवनस्य स्पन्द इव सर्ववस्तुवैचित्र्यचेत-नात्मकः सर्गः पवनस्पन्दवत्खानुभवसिद्धः स्वभावो नतु बा-रुख यक्षश्रान्तिवदुपदेशाभ्यासष्टत इलाह--पवनस्वेति । नचोपदेशाम उपदेशेन न साधयाम । दिशतेर्विकरणव्यत्यय-इछान्द्सः ॥०॥ अतएवास्य मुक्तिसुपुप्तिप्रखयेषु बाह्याभ्यन्त-रार्था चेतने जीवतापि शाम्यतीलाह--यथैवेति। परां गर्ति ब्रह्म-भावम् ॥ ८ ॥ तस्याकृतिष्रहणप्रकारं वर्णयितं सर्वकल्पनामूल-स्तम्भमाधिर्भृतसर्वशक्तिकं समध्यहंकाराध्यासं प्रथमं दर्श-यति--जीव इति । निर्माय आविर्माव्य । सेवास्य सार्वेज्ञसर्व-शक्तिसंपत्तिलक्षणा रुद्रता ॥ ९ ॥ ततः सूक्ष्मभूतसंस्काराविर्भाः वलक्षणसमष्टिचित्तकल्पनामाह—देशेति सार्धाभ्याम् । संस्का-रात्मना ईषदाविभीवाचर्चितां स्थूलतया सम्यगनाविभीवादच-र्चितां च ॥ १० ॥ चेतसा समिटिचित्तभावेन सूक्ष्मतमाप्संबल-नात्प्रालेयपरमाणुप्रायाम् ॥ ११ ॥ स्वप्ने व्याप्राचातमतादर्शन-प्रतीतं यत्सावयवानां इस्तपादादीनामन्यादशलं तत्सदशीं तां आत्मन्यथेन्दुषिम्बात्मन्यसौ संवित्तिपञ्चकम्। काकतालीयबद्धित्रमुदितं चेतति स्वयम् ॥ 88 पञ्चानां संविदां पञ्च भिन्नान्यङ्गान्यसावथ । बुध्यते तानि तद्र्परन्ध्राण्यनुभवत्यपि॥ १५ स पञ्चावयवः पश्चाद्राजते पुरुषो विराट् । अनन्ताकारसंवित्तिरव्यकात्मा निरामयः॥ १६ मनोमयोऽसाबुदितः परसात्त्रथमोत्थितः। आकाराविरादः शान्तो नित्यानन्दविभामयः ॥ १७ स चाप्यपञ्चभूतात्मा पञ्चभूतात्मकोपमः। विराडात्मैकपुरुषः परमः परमेश्वरः॥ १८ स्वयमेवाश भवति स्वयमेव विलीयते। स्वयमेव प्रसरित स्वयं संकोचमेति च॥ १९ स्वसंकल्पकृतेनासी कल्पीयेन क्षणेन च। यहच्छयोदेति पुनः पुनर्भृत्वोपशाम्यति ॥ २० मनोमात्रैकरूपातमा प्रकृतेर्देह एव सः। एव पुर्यष्टकं प्रोक्तः सर्वस्यैवातिवाहिकः॥ २१ सुक्ष्मः स्थूलोऽम्बरात्मैष व्यक्तोऽव्यक्तोन्तवर्जितः। सर्वस्य बहिरन्तश्च न किंचिर्तिकचिवेच च ॥

समष्टिचित्तरूपां विष्णुताम् । तस्येव पूर्णब्रह्मभावविस्मरणे मनः-समख्यात्मक चन्द्रभावोपलक्षितस्थलभावकल्पनया ब्रह्माण्डरूपा विराडाकृतिराविर्भवर्तीत्याह-विस्मृत्येत्यादिना। चेतनां चिदे-करतां ब्रह्मसत्तां विस्मृत्य परिन्छित्रजडसत्तामेवाहमिति पद्यं-स्तद्भावमेवाञ्च गच्छति ॥१२॥ पश्चीकरणेन स्थील्यापादनात्स्थू-लसमप्रिविराडात्मना प्रोच्छनलम् । तत्र मनः समध्यात्मकं कालोपचयातमना हुनं इवस्वभावं चन्द्रविम्बसिष पश्यति सै-वास्य बुद्धिरामधिभावलक्षणाः विरश्वितेत्यर्थः ॥ १३ ॥ तस्य विराइदेहे भोगोपपत्तये मनःसमष्टेरेव सकाशादादित्यादिरूपे-न्द्रियपश्चकं तत्स्थानमेदकल्पनां चाह-आत्मनीति । संवित्ति-विषयभेदेनैनेन्द्रियमेद्यिभावनात्संवितिपञ्चकमित्युक्तिः ॥१४॥ तद्भवाणि स्थानमेदरूपाणि रूपादिभोगद्वाराणि॥ १५॥ आदि-त्यदिग्वारिवायुर्धिव्याख्यपंत्रन्द्रियस्थानावयवैः पञ्चविषयानुः पभुजानो राजते तद्विषयेषु मनोविकल्परनन्ताकारकल्पना-दनन्ताकारसंवित्तिः । स चार्यं कार्यभावस्यानृतलात्स्वका-रणव्यक्तात्मेव । अतएव निरामयः ॥ १६ ॥ तस्य मनोमय-भावेऽपि स्ततःसिद्धश्चानैश्वर्यसर्वशक्तिसंपत्रलाजीवलमीश्वरत्वं चास्तीत्याशयेनाह-मनोमयोऽसाविति द्वाभ्याम् ॥ १७॥ सर्वपुरुषसमष्टिरूपैकपुरुषः ॥ १८ ॥ तस्येश्वरभावेन खाविर्भाः वतिरोभावेऽपि स्नातन्त्र्यमस्तीत्याह--स्वयमेवेति ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ प्रकृतेः सर्वेषादानेश्वरस्य स एष देहः । एष एव व्यष्टिभावेन सर्वस्य जीवजातस्य । पुर्यष्टकं प्राग्व्याख्यातम् २१ सच सुक्ष्मेषु पिपीलिकादिदेहेषु सूक्ष्मः। 'समः श्रुषिणा रामो नागेन' इत्यादिश्रुतेः । परमार्थतातु न किंचित्

अङ्गानि राम तस्याष्टी मनःषष्टानि पञ्च च। साहंभावानीन्द्रियाणि भावाभावमयानि च ॥ २३ तेन गीता रमे बेदाः सहशब्दार्थकल्पनाः। नियतिः स्थापिता तेन तथाद्यापि यथास्थिता २४ अनन्तमुर्ध्वं मुधीस्य तथाधः पादयोस्तलम् । अपराकाशमुद्रमिदं ब्रह्माण्डमण्डपम् ॥ स्रोकान्तराण्यनन्तानि पार्श्वकाः क्षतजं पयः। मांसपेक्यः क्षितिधराः सरितः संतताः शिराः २६ रकाधारा जलधयो द्वीपान्येवाश्ववेष्टनम्। बाहवः ककुभः स्फारास्तारका रोमसंततिः॥ २७ पश्चादादनिलस्कन्धा एकोनाः प्राणवाययः। मार्तण्डमण्डलं चण्डं पित्तं जठरपावकः॥ 26 शशाङ्कमण्डलं जीवः श्लेष्मा शुक्रं सितं बलम् । मनःसंकल्पकोशात्मा सारात्मा परमामृतम् ॥२९ मुलं शरीरवृक्षस्य वीजं कर्मव्रमस्य च। प्रसद्यात्सर्वभावानामिन्द्ररानन्दकारणम् ॥ ३० यदिन्द्रमण्डलं नाम स सम्राद्द्र जीव उच्यते। शरीरकर्ममनसां बीजं मूळं च कारणम्॥

असादिन्दुविराइजीवात्प्रसरन्ति जगन्नये। जीवा मनांसि कर्माणि सुखान्यत्रामृतानि च ॥ ३२ विराज एते संकल्पा ब्रह्मविष्णुहरादयः। तस्य चित्तचमत्काराः सुरासुरनभश्चराः॥ 33 चित्स्वभावो बुध्यमानः प्रालेयपरमाणुताम्। यदादी भावयत्याद्य तदा तत्रेव तिष्ठति ॥ 38 तेनैतदेव जीवस्य स्थानं विद्य रघूद्रह । 34 पञ्चावयवमेतराच्छरीरमनुभूयते ॥ विराइजीवाचन्द्रमसो जीवभूतानि देहिनाम्। प्रसरन्त्यन्नजातानि प्रालेयविसरात्मना ॥ 38 तान्येव देहिदेहेषु जीवा जीवन्ति जीविषु। मनो भूत्वा विचेष्टन्ते कर्म जन्मसु कारणम् ॥ ३७ एवं विरादसहस्राणि महाकल्पशतानि च। गतान्यथ भविष्यन्ति नानाचाराणि सन्ति च ३८ सर्वतोऽनुभवरूपयानया सत्तयोत्तमपदादमिष्रया । अन्तवाजितमहाङ्गसङ्गया तिष्ठतीति पुरुषः परो विराद् ॥ 34

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विराडात्मवर्णने नामकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

व्यवहारतस्तु किंचिश्परिच्छिन्न एव च ॥ २२ ॥ पश्रज्ञाने-न्द्रियाणि चकारात्कर्मेन्द्रियसहितः प्राणो मनोऽहंकार इत्यष्टा-वज्ञानि । भावाभावसयानि मूर्तामूर्तरसङ्पाणि ॥ २३ ॥ तेन वतुर्मुसीभूयेमे चलारो वेदा गीताः । नियतिः शाधीयसदा-नारादिमर्थादा ॥ २४ ॥ ऊर्ध्व दौरस्य मूर्धा शिरः । अधः पृ-थिवी पादयोस्तबम् । अपरमान्तराहिकमुद्रम् । 'तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव मुतेजाश्रक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृषग्वतमी संदेहो बहुलो बस्तिरेव रियः पृथिव्येव पादी' इत्यादिश्रुतेरिति भावः । ब्रह्माण्डमण्डपं शरीरामिति शेषः ॥ २५ ॥ पार्श्वकाः पार्श्वाद्यवयवाः । पयो वारि झतजं रक्तम्। मूत्रस्याप्युपन्नक्षणमेतत् । क्षितिधराः पर्वता मांसपेश्यः । सरितः विरानाच्यः ॥ २६ ॥ रक्ताधारा रक्तसंचयपेरयः । वैष्टनं षद्गोश्चवेष्टनम् । ककुभो दिशो बाहवः । यद्यपि छान्दो-ग्यादी 'लोमानि वर्हि'रित्युक्तं तथापि श्रुत्यन्तरानुरोधेन ता-रका इत्युक्तिः ॥ २७ ॥ एकोनाः पश्चाशत् आवत्प्रवहाद्यनि-उस्कन्धाः प्राणवायवः । चण्डं ऋरं चक्षुरिति शेषः । जठरपा-बक भौवानकः पित्तम् ॥ २८ ॥ जीवादिषद्वं तुं शशाहमण्ड-अमेव । सितं वपाभागः । संकल्पकोशात्मेति मनोविशेषणम् । परामृतं बद्दीव सारात्मा ॥ २९ ॥ बीजादिभावोऽपि मनस एवेलाइ- मुलमिलादिना । अन्नादिभावेनाप्यायनादानन्द-कारणम् ॥ ३० ॥ स एव विराद्शरीरे जीवः अन्नात्मकेन तेन समष्टिप्राणधारणादित्याशयेनाह—यदिति । व्यप्तिशरी-राणामनमयानां सधीजं प्राणहेतुकानां सर्वकर्मणां मूलं व्य-ष्टिमनसां च कारणम् । 'चन्द्रमा मनो भूला हृद्यं प्राविशत्'

इत्यादिश्रुतेरित्यर्थः ॥ ३१ ॥ तदेव स्पष्टमाह्--अस्मादिति । सुखानि भोगा अमृतानि मोक्षाश्च ॥ ३२ ॥ विराजी विरा-इजीवस्य । चतुर्भुसादिशरीराणामपि चान्द्रामृतपरिणामकपत्नात् 'सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनितामेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः' **इति** श्रुतेरिति भावः । नभवराः पक्षिणः । सर्वेत्राण्युपलक्षणमेतत् ॥३३॥चित्तचमत्कारतां चित्तोपहितचिद्विवर्ततया प्रकटयति--चित्खभाव इति । प्राकेयपरमाणुनां सुसूक्ष्मामृतकलात्मतां साक्षितया चन्द्रे बुध्यमानो यदा देवतादिशरीराकारं सगीदौ भावयति संकल्पयति विरादात्मा प्रजापतिस्तदा तत्र तादशच-तुर्भुखादिशरीरभावे एव खयं सिद्धवत्तिष्ठति सत्यसंकल्पलादि-व्यर्थः ॥ ३४ ॥ एतचन्द्रमण्डलमेव सर्वजीवसमष्टिविराह्नजीव-स्यापश्चीकृतपश्चभृतान्यवगवा यस्य तथाविधं तस्य विराजः श-रीरम् । एतजामदिति सर्वैरनुभूयते ॥ ३५ ॥ इन्दुविराङ्जीवा-बाष्टिजीवप्रसरं प्रागुक्तसुपपादयति—विराहिति । जीवभूतानि जीवनसाधनानि । प्राकेयविसरधन्द्र%लानामोपधीषु प्रसरस्तदा-त्मना ॥ ३६ ॥ जीवाः जीवोपाधयः ॥ ३७ ॥ सहस्रशतश-ब्दावसंस्थपरौ । संप्रति सन्ति च ॥ ३८ ॥ उत्तमपदाद्रद्वाणः । अभित्रया अतएवान्तवर्जितो निरवधिर्महांश्राह्मसहो व्यष्टिसम-ष्टिदेहसंबन्धो यस्यास्तथाविधया अधिष्ठानसत्त्रयेव 'तद्विवर्तो विराद्पुरुप' इति वर्णितरीत्या सर्वतः सर्वदेशकालेषु इह माया-ष्टते त्रद्धाणि तिष्ठतीत्युपसंहारः ॥ ३९ ॥ द्दति श्रीवासिष्ट• महारामायणताःपर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे एको. नविंचतितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

विंशतिः सर्गः २०

૭

वसिष्ठ उवाच।

संकल्पपुरुषस्त्वेप यद्यात्कल्पयति स्वयम् ।
तत्त्रथा तादृशं पश्चमूतात्मा भवतीव खम् ॥
सर्वे राम जगज्जातं तत्संकल्पं विदुर्वुधाः ।
तादृश्ं पश्चकात्म विपयोन्मुखमाततम् ॥
जगत्पदार्थसार्थस्य विराट् सर्वस्य कारणम् ।
कारणेन समान्येष कार्याणि च भवन्त्यतः ॥
यथय स विराद्धेष विराट् प्रत्येकमात्मनि ।
स्वसंविदि प्रसर्तते बोधवाच्च त्वबोधवान् ॥
आसरीस्प्रमाद्धमेयमभ्युदितो भ्रमः ।
अणावन्यद्विविस्तारो बीजकोश इव दुमः ॥
आसरीस्प्रमाद्धं विराट् प्रत्येकमात्मनि ।
पराणावप्यनन्तात्मबोधतो न त्वबोधतः ॥
याद्योष विराद्धात्मन्येष विस्तार आगतः ।
ताद्योवेद्द सर्वसिश्वणुमानेऽपि भूतके ॥

षासनाकर्मकामानुरूपसंकरुपसंजेनैः । समष्टिसाभ्यं व्यष्टीनां जीवानामिह वर्ण्यते ॥ १ ॥

विरादपुरुषसत्यसंकल्पानुसारिधिवर्तं ब्रह्म धत्ते इत्याह-धंकरपेति । पत्रभूतात्मा विराद्पुरुषो यद्यवधायधा भवलिति संकल्पयति तत्तत्तया खं ब्रह्माकाशमपि भवति ॥ १ ॥ यतो तारप्रूपं **बद्यपूर्वीपा**सनाहितवासनया पश्चभूतात्मविराड्पं सगादौ भूला उपासनाफलपश्चमहाभूतात्मकविषयसमाहभोगो-न्मुखतां गतमित्यर्थः ॥ २ ॥ कारणेन मृदादिना कार्थाण घटारीनि समस्बभावान्येव यतो भवन्खतो हेतोरित्यत्तरत्रा-न्वयः ॥३॥ प्रत्येकं व्यष्टिजीवोऽप्यात्मनि खस्मिन्विराद् सर्व-सर्गसमर्थं इत्यर्थः । यतो मनोवृश्यनुसारेण स्वसंविदि बाह्या-म्तरनिषयाकारेण प्रसर्ति सति विराडिवायमपि तत्तदर्थबोध-षानेव तत्त्वबोधवानिति साम्यमिखर्थः ॥ ४ ॥ अपकर्षावधा-षासरीसपमुत्कपीवधावारुद्रमेवं जगदाकारी भ्रमोऽभ्युदितः स एव सर्गः । अणावपीति भ्रमत्वे उपपत्तिः ॥ ५ ॥ अस्त्वेवं कि ततस्तत्राह-भासरीस्प्रमिति । विराद स्रष्टा । तथाच साम्यं सिद्धमित्यर्थः ॥ ६ ॥ अणुमात्रे मशकशुष्यादिदेहपरिच्छिः षेऽपि भूतके जीवे ॥ ७ ॥ विततं भ्रान्त्या विस्तारितम् ॥ ८ ॥ मनु विराजो व्यष्टिमनस्तदुपहितजीवीभयकारणस्वेन वैषम्य-मिति कथं साम्यं तत्राह-मन इति । अथवा समष्टिव्यक्षीरे-कैवैषा सत्तेति भेद एव नास्ति कृतः कारणता तत्रेत्यविशेष इत्यर्थः ॥ ९ ॥ एवमुपाधिमनःकारणतां निरस्योपहितजीवं प्रति कारणतां निरसितुमुपाधिस्यरूपमाह—शुक्रसारमिति । प्रथमं शुक्रं रेत एव सार उपाधिर्यस्य तम् । ततः शुक्रोपहिस-जीवादेव मातापित्रोमेधुनकाले अचलस्य पूर्णानन्दब्रह्मणो भोन

परमार्थेन न स्थूलं न सुक्ष्मं किंचन कचित्। यद्यथा विततं यत्र तत्त्रथाश्वनुभूयते ॥ ረ मनश्चन्द्रमसो जातं मनसञ्चन्द्र उत्थितः। जीवाज्जीवोऽथवैकेषा सत्ता द्रवजलाङ्गवत् ॥ शुकसारं विदुर्जीवं प्रालेयकणसंनिभम्। आनन्दोऽचलसंदोहस्तत एव प्रवर्तते ॥ १० तं चेतति तदाभासं पूर्णमात्मस्थमात्मना । तत्र तन्मयतां धत्ते तेन तन्मयरूपिणी ॥ ११ जीवसंविद्येषान्तर्यदुपायाति पञ्चताम्। न तत्र कारणं किंचिविद्यते न च कार्यता ॥ १२ प्रतियोगिव्यवच्छित्तरभावात्स्वस्वभावयोः। स्वभावोक्तिनं चैवात्र भवत्यर्थानुसारिणी॥ १३ जीवो जीवत्वमेव स्वजीवत्वादेव च स्वतः। अन्तरत्वेन बहिष्टेन दृष्यते न च घायुवत्॥ १४ नीहारेणेव संवीतश्चेत्यवस्तुपरायणः।

गाकारवृत्ती प्रतिबिम्बनेन संदोहः प्रपूर्तिलक्षण आनन्दः प्रव-र्तते । 'एतस्येवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेरित्यर्थः ॥ १० ॥ तं तस्य ब्रह्मण आभासलक्षणमानन्दं रेतोवच्छित्रजीवचिदात्मस्थमात्मना रेतोभूतस्वभावेनैव चेतत्स-नुभवति । चेतयन्तीव रेतोरूपमेवानन्दः प्रियतमोहमिति बी-जमारभ्य तत्र तादात्म्याध्यासलक्षणां तन्भयतां घते । 'आ-नन्दाच्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते' इति श्रुतेः ॥ ११ ॥ अथानन्तरमेषा जीवसंवितदन्तर्गतपञ्चतां देहरूपां तादातम्ये-नैवोपायाति । सेवास्यास्तदुपहितता तत्र च न विराजोऽन्यस्य वा कारणतेलाइ--न तत्रेति ॥ १२ ॥ यद्यपहितरूपे न किं-चित्कारणं तर्हि तदनागन्तुकं जीवानां स्वभावः स्यात् । न च कस्यचित्स्वभावोपैतीत्सनिर्मोक्षप्रसङ्ग इत्याशक्काह—प्रतियो-गीति । अत्रोपहितरूपे स्वभावोक्तिरर्थानुसारिणी अर्थवती न भवति । खशब्दार्थविशिष्टो हि भावशब्दार्थः खभावस्तत्र खशब्दो यदि शद्धपरस्तर्हि तस्या द्वयलान्न प्रतियोगि तद्यबच्छेदो वान्योस्तीलव्यावर्तकात्तस्मादन्यो भावशब्दार्थोपि न निरूपियतुं शक्यत इति तद्विशिष्टार्थसिद्धेर्तुनिरस्तलादिलर्थः ॥ १३ ॥ यदि वा उपहितपरः खशब्दस्तदाप्यसी न खबहिर्भृतं भावशः ब्दार्थं रुभते यः खार्थेन विशिष्यादिलाह—जीव इति । उप-हितरूपो जीवोऽपि खतः खस्य जीवलादुपहितरूपलादेव जीवलमुपहितरूपमेव खयं न तद्यतिरिक्तं रूपान्तरमन्तस्त्वेन बहिष्टेन वा भावशब्दार्थभूतं विशेष्यतायोग्यं तत्र दश्यते । सच वायुर्वातीलात्र कियारीव वायुर्वथा विकल्पवुद्धा मेदं परिकल्प्य बाताति व्यपदिश्यते तद्वजीवो जीवलमिति धर्मधर्मिभावेनेत्यर्थः॥ १४ ॥ यदि न जन्यं न नित्यं

१८

जास्यन्ध इष पन्थानं मारुतात्मा न पश्यति ॥ १५ जगज्ञृम्मिकया जीवः स्वमैक्यं द्वित्वमास्थितः । स्पन्दशत्त्येव पवन आवृतात्मा न पश्यति ॥ १६ अज्ञानस्य महाग्रन्थेर्मिथ्यावेद्यात्मनोऽसतः । अहमित्यर्थरूपस्य मेदो मोक्ष इति स्मृतः ॥ १७

व्यपगतधनचेतनः समन्ता-दहमिति नूनमबुध्यमान आस्स्व। अनमिधधनचेतनैकरूपः क्षितसदसत्सदसत्सदोदितश्च॥

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे जीवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम विंशः सर्गः ॥२०॥

एकविंशतिः सर्गः २१

वसिष्ठ उवाच ।

ज्ञानिनैय सदा भाव्यं राम न ज्ञानयन्धुना ।
अज्ञातारं वरं मन्ये न पुनर्ज्ञानयन्धुताम् ॥ १
श्रीराम उवाच ।

किमुच्यते ज्ञानबन्धुर्ज्ञानी चैव किमुच्यते ।
किं फलं ज्ञानबन्धुर्त्व ज्ञानित्वेऽपि च किं फलम् २
वसिष्ठ उयाच ।
व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत् ।
यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानयन्धुः स उच्यते ॥ ३

स्वभावभूतं वा तर्हि किं तज्जीवरूपं यत्संसरतीति चेदनिर्वचनी-याज्ञानावृतब्रह्मेव तत्स्वातमन एवान्यथा दर्शनं तस्य संसार इलाइ-नीहारेणेलादिना । मारुतात्मा प्राणेन्द्रियादिजडता-दातम्यापन्नः अतएव खरूपं न पश्यति । 'न तं विदाध य इसा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं वभूव । नीहारेण प्रावृता जल्या चायुतृष उक्थशासश्चरन्ति' इत्यादिश्चतेरिति भावः ॥ १५ ॥ जगदाकारया जृम्भिकया वृंहिकया आविद्याशक्तया संवीतः अत-एव खर्मक्यमेव द्रष्टहरयमिति द्वित्वं कल्पयिला तत्रास्थि-तोऽभिनिबिष्टः ॥ १६ ॥ अतएव विद्यया अविद्यानाशसंभ-वान्नानिमीक्षदोष इलाह—अज्ञानस्यति । अहमित्यर्थरूपस्य महाप्रन्थेभेदो विदारणम् ॥ १७ ॥ अतएव हे राम, त्वं व्यप-घनोऽज्ञानमघो यसात्तथाविधक्षेतनश्चित्प्रकाशमात्रः सम्हमित्यहंकारोपाधिपरिच्छेदमबुध्यमानः शोघितत्वंपदार्थः सन् क्षितं वाधितं सत् मूर्तं असदमूर्तं सदसत्तन्मूलाज्ञानं च यत्र तथाविधो रूपवाधादेवानभिधो नामशून्यः सन्धवधन-वदानन्दैकरसघनो यश्चेतनः शोधिततत्पदार्थस्तदेकरूपः सन् समन्तात्पूर्ण आस्ख ॥ १८ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे विंशतितमः सर्गः ॥ २०॥

अञ्चमा च शुमा चात्र द्विविधा ज्ञानवम्धुता ।
हेया प्राह्मा च यक्षेन रूक्षणैरुपवर्ण्यते ॥ ९ ॥
तत्रादौ हेयां वर्णियतुं पीठिकां रचयित—ज्ञानिनैचेति ।
ज्ञानी उत्तरसर्गवस्यमाणरुक्षणस्तथाविधेनैव सदा मार्च्यं भवितव्यं ज्ञानव्याजेन सरकर्मश्रद्धानाधनाद्धोगरुम्पद्धोन स्वं परं

कर्मस्पन्देषु नो योधः फलितो यस्य दृश्यते । बोधिहाल्पोपजीवित्वाज्ञ्ञानवन्धुः स उच्यते ॥ ४ यसनाद्दानमात्रेण तुष्टाः शास्त्रफलानि ये । जानन्ति ज्ञानवन्धृंस्तान्विद्याच्छात्त्रार्थिहाल्पिनः ५ प्रवृत्तित्वक्षणे धर्मे वर्तते यः श्रुतोचिते । अदूरवर्तिज्ञानत्वाज्ज्ञानवन्धुः स उच्यते ॥ ६ आत्मज्ञानं विदुर्जानं ज्ञानान्यन्यानि यानि तु । तानि ज्ञानावभासानि सारस्याऽनववोधनात् ॥ ७ आत्मज्ञानमनासाद्य ज्ञानान्तरस्रवेन ये ।

चानर्थेवभातीति ज्ञानबन्धुस्तथाविधेन न भाव्यमित्यर्थः ॥ १ ॥ किलक्षणं प्राप्य ज्ञानवन्धुरुच्यते किलक्षणं प्राप्य ज्ञानी उच्यते पुरुषस्ते लक्षणे तत्कले च बदेति प्रश्नार्थः ॥ २ ॥ अनुष्ठाने साधनचतुष्टयसंपादने मननादौ च ज्ञानोपाये यो न यतते ॥ ३ ॥ यस्य शास्त्राभ्यासलब्धः शाब्दो बोधः कर्मस्यन्देषु भोगव्यवहारेषु दर्यमानेषु वराग्योपरमादिफलैः फलितो न दृश्यते । तत्त्वकथाभिः परवज्रनचातुरीबोधिक्तिरुपं तदुपजीवि-लात् ॥ ४ ॥ अर्थाद्वसनारानलाभादय एव शास्त्रफलानीति ये जानन्तितान्शास्त्रार्थकथानाटनात्रटादिशिल्पिन इव विद्यात् ॥ ५ ॥ द्वितीयां शुभां ज्ञानबन्धुतां रुक्षणेन द्वीयति--प्रवृत्तिलक्षणे इति । प्रवृत्तिलक्षणे निष्कामाप्रिहोत्रादिलक्षणे धर्ने श्रुतस्य शास्त्रार्थज्ञानस्योचिते अनुहृषे श्रुतस्य करिष्यमाण-वेदान्तभ्रवणस्योचितं चित्तशुद्धिद्वारा अनुकूले श्रुते श्रुतियो-धिते उचिते खाधिकारे कुलाचाराद्यचिते च । 'विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा' इत्यादिश्रुतेः। सत्कमीनुष्ठाने वित्त-शुद्धिकमेणावस्यं ज्ञानेन बध्यते इति व्युपस्या अवूर्वार्तज्ञान-लावगमादित्यर्थः ॥ ६ ॥ अनात्मशास्त्राभ्यासपरा अपि तत्त-दर्थज्ञानैः संबध्यमाना दृश्यन्ते तत्सदृशीयं माभूदिखात्मज्ञाने विशेषं दर्शयति-अत्मज्ञानमिति । तानि ज्ञानमिवावभासन्ते नतु ज्ञानानि । कुतः । रसेन सारभूतेनाबाध्येन निरतिशया-नन्दारमना सह वर्तेते इति सरसै। तद्ध्यस्तै। जगजावौ तथो-भीवः 'सारस्यं तद्धिष्टानब्रह्मरस एव तदनवयोधनादध्यस्तबा-ध्यार्थमात्रवोधनाञ्जान्तिमात्रतया अज्ञानतरङ्गमात्रलादिल्यर्थः ॥ ७ ॥ अतएव तहाभमात्रत्रष्टानामञ्जभज्ञानबन्धुतैवेत्याह---

4

संतुष्टाः कष्टचेष्टं ते ते स्मृता ज्ञानयन्थवः ॥ ज्ञानादि तज्जेयविकासशान्त्या विना न संतुष्टिधेयेह भाव्यम् । त्वं ज्ञानयन्धुत्वमुपत्य राम रमस्य मा भोगभवामयेषु ॥ अत्राहारार्थं कर्म कुर्यादिनन्दं कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम् । प्राणाः संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम् ॥ १०

इत्यावें श्रीवासिष्ठमहारामायणे वात्मीकीयें दे० मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ज्ञानविचारो नाम एकविंशतितमः सर्वः ॥ २१ ॥

डांबिंदातिः सर्गः २२

3

वसिष्ठ उवाच ।

कानेन श्रेयनिष्ठत्वाचोऽचित्तं चित्तमेव च ।

न वृध्यते कर्मफलं स क्वानीत्यभिधीयते ॥

क्वात्वा सम्यगनुक्वानं दश्यते येन कर्मसु ।

निर्वासनात्मकं श्रस्य स क्वानीत्यभिधीयते ॥
अन्तःशीतलतेहासु प्राक्वियस्याचलोक्यते ।
अकृत्रिमेकशान्तस्य स क्वानीत्यभिधीयते ॥
अपुनर्जन्मने यः स्याद्वोधः स क्वानश्रद्यभाक् ।

आत्मज्ञानमिति । अभ्यासश्रमेण दुरमिमानादिदोषाधानेन पारलौकिकानर्थफलेन च कप्टाश्रेष्टा यस्मिन्कर्मणि तद्यथा म-वित तथा ते संतुष्टा इति हेतोस्तेषि अशुभन्नानवन्धवः स्मृता इत्यर्थः ॥ ८ ॥ अतएव न सप्तमभूमिकास्धेर्यपर्यन्तं मुमुक्षुणा तौधिकेन भवितव्यमित्याह—ज्ञानादीति । ज्ञानं वाह्याभ्यन्तर-गोचरकृत्यः आदिपदात्तस्कारणानि तदाश्रयः प्रमाता च तेषां **दे**याः शब्दादयस्तेषां विकासाः प्रथाश्चेत्येषामात्यन्तिकशान्त्या पूर्णनन्देकरसस्वप्रकाशबद्धात्मेक्यप्रतिष्ठां विना मुमुक्षणाऽवा-न्तरभूमिलाभमात्रेण कृतार्थोऽस्मीति संतुष्टिया उत्तरोत्तर-भूमित्रापकत्रयक्षशिथिलेन कदाचिदपि न भाव्यम् । हे राम, त्वं सर्वेनिचास्थानकुरालोऽप्यनात्मशास्त्रपाटनासक्तयाः ज्ञानोपेक्षण-नानधिकारिषु हानोपदेशकीशलख्यापनेन या ज्ञानवन्धुत्वमुपेत्व तरस्यातिलाभादिप्रयुक्तभोगलक्षणेषु भवामयेषु मा रमखेलर्थः ॥ ९ ॥ कथं तर्हि सुसुक्षुणा स्थातव्यं तदाह—अत्रेति । आहारी हितमितमध्याशनं तद्र्यं तदुपायप्राप्तये श्रुतिस्मृति-शिष्टरनिन्यं खवर्णश्रमोचितोपायेनाहाराजनादिकमं कुर्यात् । शिष्टं सप्टम् ॥ १० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्य-प्रकारी निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकविंदातितमः सर्गः॥२९॥

> ह्यानिनो कक्षणान्यादौ कीर्त्यन्तेऽत्रोपपत्तिभः। तथा जीवजगद्रहातस्वादीनि प्रसङ्गतः॥ १॥

श्नानबन्धुतां तत्फलं चोपवण्यं 'ज्ञानी चेंव किमुच्यते' 'ज्ञा-नित्वेऽिप च किं फलं मिति प्रश्लोयोरुतरं वक्तुं प्रथमं ज्ञानिल-क्षणान्याह—ज्ञानेनेति । यः पुमान् भूमिकारोहणकमपरिपक्षेन ज्ञानेन हेयब्रह्ममान्ने टढप्रतिष्टलात्प्रारच्यकमंफलं भुष्णानोऽप्य-चिलं चित्तमिनं शब्दादिविषयजानं तत्तदाकारपारणतं काम-संकल्पादिवृत्तिमेदैः परिणतं च चित्तमेवेति तच बाधितानु -

वसनाशनदाशेषा व्यवस्था शिल्पजीविका ॥ ४ प्रवाहपतिते कार्ये कामसंकल्पवर्जितः । तिष्ठत्याकाशहृद्यो यः स पण्डित उच्यते ॥ ५ अकारणं प्रवर्तन्त इच भावा अकारणात् । अविद्यमाना अप्येते विद्यमाना इव स्थिताः ॥ ६ आविभावतिरोभावभावभावभवाभवैः । पश्चात्कारणतां यान्ति मिथः कारणकर्मभिः ॥ ७ असतः शराश्वारकारण्डां येथा ।

रृत्तिमात्रलात्र वस्तुसद्भुध्यते स ज्ञानीति तहक्षणक्षेरमिधीयत इ-त्यर्थः ॥१॥ तथा इस्य सञ्दादिविषयभोक्तः प्रमातुरन्तःकरणस्य कर्मसु भोग्यभूतेषु विषयेषु येन पुरुषेण ज्ञानेज्ञाने इत्यनुज्ञा-नम् । वीष्तायामव्ययीभावः । सर्वेषु चाक्षुपादिवृत्तिमेदेषु सा-क्षितया स्थितं चिन्मात्रं सम्यक् तत्त्वतो ज्ञाला बाधितं दृश्यं निर्वासनात्मकं वासनामात्रेणाप्यपरिशिष्टं दृश्यते स ज्ञानी-त्यर्थः । अथवा येन तत्त्वेन जातेन चित्तं निर्वासनं भवति तत्तत्त्वं सम्यक् ज्ञाला स्थितस्य तस्य ज्ञस्य सर्वेषां प्राणिनां कर्मसु यथेच्छव्यवह।रेषु स्वरं व्यवहरन्तिवत्यगुज्ञानमेव दृश्यते । स्वधनापहारवधवन्धादिप्रवृत्तिमपि दस्युनां स ज्ञानीत्यर्थः । इदं तु जडभरतादौ प्रसिद्धम् ॥ २ ॥ अकृत्रिमेणेकेन म्वात्मठाभेन शान्तस्य यस्य ईहासु व्यवहारेषु ॥ ३ ॥ पुनर्जन्ममृलाज्ञानोच्छेदिलात्तत्त्वज्ञानमेव ज्ञानं नेतर-दिलाह-अपुनर्जन्मने इति । शेषा तदन्या शाब्दशानचातुरी तु वसनाशने ददातीति वसनाशनदा इतरशिल्पतृत्या जीविकेव न ज्ञानशब्दवाच्येखर्थः ॥ ४ ॥ शरदाकाशमिव निरावरणप्र-काशं हृद्यं यस्य ॥ ५ ॥ उक्तलक्षणोपपत्तये तत्त्वज्ञानस्य सर्व-द्वैतवासनोच्छेदकरवं समर्थयितं जगतः असद्विद्यामात्रखपरि-शेषादकारणत्वासत्वे दशयति--अकारणमित्यादिना । यतोऽवि-यमानाः अतः अकारणं विनेव कारणं प्रवर्तन्ते उत्पद्यन्त इव नतु बस्तुत उत्पद्यन्ते । एवं चाविद्यमाना एव स्थिता इव ॥ ६ ॥ उत्तरभावविकारेष्वप्यकारणलादेवासत्वं बोध्यमित्याद्या-येनाह--आविभीवेति । ननु बीजाद् ह्ररोत्पत्तेः प्रत्यक्षं दर्श-नात्कथमकारणं प्रवर्तन्त इत्युच्यते तत्राह-पश्चादिति । नेदं सर्गादी संभवति, प्ररुपं बीजाङ्करयोहभयोरप्यभावादिति भावः । कारणकर्मभिः कारणव्यापारैः ॥ ७ ॥ सांत्रतं दृश्यमा- आलोकनादलभ्यस्य कीटकु स्यात्किल कारणम् ८ असतः ह्याश्यक्षादेः कारणं मार्गयन्ति ये। वन्ध्यापुत्रस्य पौत्रस्य स्कन्धमासाद्यन्ति ते॥ ९ असत्यप्रतिभासानामेतदेवाशु कारणम्। यदनालोकनं नाम समालोकक्षणक्षयम् ॥ परमात्मायते जीवो बुध्यमानस्त्वचेतनम्। चेतनं बुध्यमानस्तु जीव प्वावतिष्ठते ॥ ११ परमात्मैव जीवोऽयं बुध्यमानस्त्वचेतनम्। आम्र एव रसापत्तेः प्रयाति सहकारताम् ॥ १२ चेतनं बुध्यमानस्तु जीव एवावतिष्ठते। जीवो जीवितजीर्णेषु जातिजन्मसु जर्जरः॥ १३ ये परां दृष्टिमायाता विद्धि तेषामपामिव। अस्पालोकमननं स्पन्दमस्पन्दनं सदा॥ १४ ये परां दृष्टिमायाता दृश्यश्रीपारदर्शिनः।

नमपि बीजं सतोद्वरस्य कारणमसतो वा । नादाः । सतःकारणा-पेक्षाभावात् । नद्वितीय इत्याह—अरात इति द्वाभ्याम् ॥८॥ आसादयन्त्यारोहन्ति । असत्तत्कारणतन्मार्गणानां पुत्रपीत्रत-त्स्कन्धारोहणानि कमादृष्टान्ताः ॥ ९ ॥ यदाकारणद्वेतभावा-भ्यपगमे अनिर्मोक्षप्रसङ्गवारणाय मोक्षशास्त्रप्रामाण्याय च कारणमवर्यं कल्प्यं तर्हि ज्ञानमात्रनिवर्यं मिध्याभूतमज्ञानमेव तरकारणं कल्पनीयं नान्यत्सद्भपं तस्य ज्ञानेन निवर्तयितुम-शक्तया अनिर्मोक्षतादवस्थ्यप्रसङ्गादिलाशयेनाह्—असलेति । अनाकोकनमज्ञानम् ॥ १० ॥ बन्धस्याज्ञानकार्यत्वं समालोक-क्षणक्षयत्वं चानुभावयति-पर्गाति । अयं जीवः परं खाति-रिक्तमचेतनं जडमहंकारदेहादिवुध्यमानस्तत्क्षणमेव तत्तादा-त्म्याध्याससंस्कारोद्रोधादात्मायते आत्मेवाचरति स एव त्वस्य बन्धः । चेतनं निष्कृष्टचिन्मात्रमारमानं बुध्यमानस्तु जीव एव 'येन जातानि जीवन्ति' इति श्रुतिदर्शित्तदिशा सर्वजगदुजीवन-हेतुनिष्कृष्टनिरतिशयानन्दाद्वय एवावतिष्ठते सोऽस्य मोक्ष इ-खर्यः । अथवा जीवः चेखते अनेनेति चेतनं बुद्धिः । चेखते असिमिति चेतनं स्थलदेहः । चितिकिया चेतनं चिदाभासः। तन्नितयरहितं कूटस्थाद्वयचिन्मात्रमात्मानं बुध्यमानः सन् पर-मात्मा ब्रह्मेवाचरति परमात्मायते । अद्वितीयपूर्णानन्दैकस्व-भावोऽवतिष्ठते । चेतनं बुद्धादिकमारभेति बुध्यमानस्त जीव एव भूखावतिष्टते न पूर्णभावं लभत इत्यर्थः । अथवा अयं नीवश्चेतनं विषयेषु चाध्यपादिवृत्तिफ्छैर्व्यापनं तद्रहितमचेतनं यथा स्यात्तथा वृत्तिव्यात्यैव नतु फलव्यात्येखर्थः । एवमात्मानं स्वप्रकाशचिद्रपतया वृध्यमानः परमारमैव नह्यनारमा अणुमात्र-मपि फलव्याप्तिं विना तुष्यते । चेतनं वृत्तिव्यापनं यथा स्या-त्तया अणुमात्रमपि बुध्यमानो जीय एवावतिष्ठते न ब्रह्मख-भावं स्वं प्राप्नोतीलर्थः । तथाच श्रुतिः--'यस्यामतं तस्य मतं मसं यस्य न वेद सः । अविज्ञातं विज्ञानतां विज्ञातमनिज्ञान- न विद्यमानमप्यस्ति तेषां वेदनमाततम् ॥ 24 ये परां दृष्टिमायाता विद्धि तेषामपामिव । स्पन्दमस्पन्दनं सर्वमवेदनवशादिह ॥ १६ अरूपालोकमननवेषिता मुक्तदामचत्। बुधाः कर्मसु चेष्टन्ते वृक्षपत्रेष्विवानिलः॥ १७ ये परां दृष्टिमायाताः संस्तेः पारदर्शिनः। न ते कर्म प्रशंसन्ति कृपं नद्यां वसन्निव ॥ १८ ये बद्धवासना मुदाः कर्म शंसन्ति तेऽनघ। श्रुतिस्मृत्युचितं तेन विना बोधं प्रयान्ति ते ॥ १९ इन्द्रियाणि पतन्त्यर्थे भ्रष्टं गुध्न इवामिषम् । तानि संयम्य मनसा युक्त आसीत तत्परः॥ नासन्निवेशं हेमास्ति नासर्गं ब्रह्म विद्यते। किंतु सर्गादिशब्दार्थमुकं युक्तमतेः शिवम्॥ पकान्धकारे संपन्ने व्यवहारी युगक्षये।

ताम्' इति ॥ ११ ॥ पूर्वार्धं विष्टणोति-परमात्मैवेति । अयं जीवो यथोक्तरीत्या अचेतनमजागरणमेव स्वात्मनि बुध्य-मानो जागरूकः परमात्मरसावेशात्परमात्मैव भवति । यथा आम्र एव हेमन्ते सप्तप्रायो वसन्ते रसावेशात्पहवितः पुष्पि-तश्च प्रवृद्धप्रायः सहकारशब्दवाच्यतां प्रयाति तद्वदित्यर्थः । उत्तरार्धमपि विष्रुणीति—चेतनमिति । जातिजन्मस् नानायोनि-जन्मस् ॥१२॥१३॥ अतएव तत्त्वविदां चेष्टास्तदिममानाभा-वादस्यन्दरूपा एवेलाह-ये इति । रूपालोकमननाभिमान-श्रन्यम् । अयां निम्नानुसरणमित्र प्रारन्धमात्रानुसरणमित्यर्थः ॥ १४ ॥ यथा दम्धपटदर्शनं पटदर्शनमेव न भवति कित भसादर्शनं तथा यापितदृश्यश्रीदर्शनं तदतीतब्रह्मदर्शनमेवेति न द्वैतवेदनं तेषामस्तीत्याशयेनाह--ये इति ॥१५॥ अतोऽपि तेषां स्पन्दस्यास्पन्दत्वं रूपदर्शनाभावेष्यापो दृष्टान्ता इत्यादा-येनाह-ये इति ॥१६॥ अतएव च तेषां कर्मछेपबन्धनाभाव इलाइ-अहपेति । यतो स्पालोकमननवेष्टिता न भवन्त्यतो मुक्तदामा उत्स्रष्टो वृषभस्तद्वद्वन्धनश्चन्या इत्यर्थः ॥ १७ ॥ पारलीकिककर्मापेक्षा तु दूरनिरस्तेत्याशयेनाह—ये इति॥१८॥ अज्ञानां तु कर्मैव शरणमित्याह-ये इति । विनाबोधं तत्त्व-ज्ञानाभावात् तेन कर्मणैव ते प्रयान्ति तत्फलभोग**मिति** शेषः ॥ १९ ॥ कुतस्तेषां कर्मैव शरणं तत्राह—इन्द्रियाणीति । अष्टमथःपतितम् । अधःपातहेतुमिति यावत् । सःकर्मानालम्बने तेषामधःपात एवेन्द्रियः कार्य इति भावः । तथाच श्रुतिः 'कुर्वभेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं स्वयि नान्यथे-तोस्ति न कर्म लिप्यते नरे' इति । अतएव विदुषोपीन्द्रियनि-प्रहे सत्येव स्वरूपप्रतिष्टा सिज्यति नान्यथेत्याह—तानीति ॥ २० ॥ अद्ग्धे दः वे च पटे संनिवेशसाम्यवज्ञगत्संनिवेश-साम्यभानमधिदुषासिव विदुषामध्यस्त नाम तथापि तद्विदुषां ब्रह्में वेलाशयेनाह-नासंनिवेशमिति ॥ २१ ॥ सर्गशब्दार्थ-

निर्घिभागो निराभासो यथा ब्रह्मघने तथा॥ २२ अभ्रोदरे भ्रमाङ्गानां स्पन्दास्पन्दमयी यथा। स्वसंविदातिमका सत्ता भूतानामीश्वरी तथा २३ जलस्यान्तर्जलांशानां द्वेताद्वेतमयो यथा। स्वसंविदातमा सुरूपन्दस्तथा ब्रह्मणि भूतद्दव् ॥२४ यथाम्थरे ८म्बरांशानां द्वेताद्वेतस्रतात्मनि । अनन्या सृष्टिराभाति तथानवयवे शिवे ॥ ३५ जगतोऽन्तरहंक्रपमहंक्रपान्तरे जगत्। स्थितमन्योन्यवलितं कदलीद्रलपीठवत् ॥ २६ रूपालोकमनस्कारैरन्धेर्बहिरिव स्थितम् । सृष्टि पश्यति जीवोऽन्तः सरसीमिव पर्वतः ॥ २७ जीयो जगत्तयात्मानं पश्यत्ययमकारणम् । हेमेव कटकादित्वं तद्यइयद्य पदयति॥ २८ जीवन्तोऽपि न जीवन्ति घ्रियन्ते न मृता अपि। सन्तोषि च न सन्तीव पारावारविदः शुभाः २९ प्रयुद्धः सर्वेषमीणि कुर्वेश्वपि न पर्यति। गृहकर्माणि गेहस्थो गोप्रभाण्डमना इच ॥ विराइ हृदि यथा चन्द्रः प्रतिदेहं यथा स्थितः।

मुक्तत्वे प्रलयो दृष्टान्त इत्याह-एकेति । तथा असन्नपि स-न्निति शेषः ॥ २२ ॥ प्रलये स्पन्दसत्तामसंभावयन्तं प्रति दृष्टान्तमाह-अभ्रोदरे इति । यथा चढदभ्रोदरे तदवयवाना-मञ्जादविभागादस्पन्दमयी दिग्विभागात्तु स्पन्दमयीति स्वानुभ-षसंविदारिमकैव विरुद्धधर्मथौगपद्येन सत्ता संभाव्यते तद्वाप्र-लगेऽपीश्वरी स्पन्दसत्ता भूतानां संभावनीयेत्यर्थः ॥ २३ ॥ तत्र चिदाभासस्पन्दसद्भावंऽपि दृष्टान्तमाह्—जलखेति । ज-लख स्तिमितत्रहागादिजलख द्वैताद्वैतमयस्तैमित्याद्वेदामेदाभ्यां दुर्वचः खसंविदातमा ब्रह्मसंविदातमा भूतदक् तत्तजीवाभासः ॥२४॥निरवयवे सावयवजगत्सद्भावेऽपि दष्टान्तमाह--यथेति। अम्बरांशानां दिग्मेद्रूपाणामाकाशावयवानाम् ॥२५॥ अनथैव रीखाप्रागुक्तमहंकारजगतोरन्योन्यान्तर्गतलमपि संभावनीयमि-त्याह-जगत इति ॥२६॥अहंकारात्मनो जीवस्य स्वान्तर्गतज-गतो बहिर्दर्शनेऽपि दष्टान्तमाह—रूपेति । यथा पर्वतो हिमव-दादिः खरन्धैर्निर्गतं खान्तर्गतजलमेव मानसादिमहासरस्तया पत्रयति तद्वत् ॥ २० ॥ यथा हेमपिण्डे भृतभाविकटकाद्या-काराः पर्यालोचने दृश्यन्ते कनकमात्रदृष्टी तु न दृश्यन्ते तद्वजीवे जगद्यीत्याह--जीव इति । अकारणं निर्निमित्तं भ्रान्त्यैवेत्यर्थः ॥२८॥ अतएव तद्दर्शिनां जीवन्मुक्तानां जन्म-मरणसंसारस्थितयोऽन्यदशा सलोऽपि न सन्त्येवेत्याह—जी-वन्त इति ॥ २९ ॥ ब्रह्मासक्तमनसो देहयात्राकर्मण न कर्ने-ताबुद्धिः यथा गोष्ठभाण्डेष्वासक्तमनसो गृहकर्मणीत्याह-प्रबुद्ध इति ॥ ३० ॥ प्रासन्तिकं समाप्य प्रस्तुतमञ्जूषंघते-विराडिति । यथा ब्रह्माण्डहृदि विराङ्जीवश्वन्द्रः स्थित प्रवं प्र-तिव्यष्टिदेहं रेतोहिमकणाकारी जीवी हृदि स्थित इत्यर्थः ।३१॥

जीवो हिमकणाकारः स्थूले स्थूलो लघौ लघुः ३१ अहमात्मा त्रिकोणत्वमुपगच्छति कष्पनम्। असदेव सदाभासं मन्यते चेतनाद्वपुः॥ 32 कर्मकोद्दो त्रिकोणे च शुक्रसारेऽवतिष्ठते । देहे जीवोहमित्यात्मा स्वामोदः कुसुमे यथा ॥ ३३ अहमित्येव शुक्रस्था संविदापादमस्तकम्। विसरत्यविले ज्योत्का यथा ब्रह्माण्डमण्डपे॥ ३४ अक्षरन्ध्रप्रणालेन विसृतं वेदनोदकम् । व्याप्रोति त्रिजगद्धमो वियन्मेघतया यथा॥ 34 देहे यद्यप्यदोषेऽस्मिन्बहिरन्तश्च वेदनम्। विद्यते तत्त्रथाप्यत्र शुक्रेऽस्ति घनवासना ॥ 38 जीवः संकल्पमात्रात्मा यत्संकल्पोऽवतिष्ठते । हृदि भृत्वा स एवाद्य बहिः प्रसरति स्फूटम् ३७ यथास्थितां च निश्चित्तां वर्जयित्वा स्थिरोपमाम्। न कयाचिदपि स्थित्या शाम्यत्यहमिति भ्रमः चिन्तानुचिन्त्यमानापि भावनीयाम्बरोपमा । अहंभावोपदामने दामनेन ऋमेण ते॥ 39 तज्ज्ञा व्यवहरम्तीह भाव्यभावनवर्जितम्।

तस्य देहमहणप्रकारमाह-अहमात्मेति । स पितृहृदि रेतो-रूपेण स्थितोऽहंकारात्मा जीवः पित्रा मातुस्त्रिकोणयोनौ निषि-क्तस्रिकोणपरिच्छित्रलरूपं कल्पनमुपगच्छति । तत्रखरक्तमि-श्रितः कललबुद्धदपिण्डाद्याकारक्रमेणाविर्भृतमसदेव वपः शरीरं सदाकारमहमिति चेतनान्मन्यते ॥ ३२ ॥ एवं त्रिकोणोपल-क्षिते मातृगर्भे शुक्रमेव सारः अस्थिम्नाय्वादिकठिनांशो यत्र तथाविधे स्वकर्मनिर्मितकोशे देहे कोशकारकृमिरिव बद्धोऽवति-ष्ठते । स्त्रामोदः सुगन्धः ॥ ३३ ॥ तत्रापि चन्द्रकलानां चन्द्र-विम्ब इव हृदयस्थशुक्रकणेऽहंभावस्फूर्तीनां विशेषव्याप्तिस्तद्वारा सर्वदेहसामान्याहंभावत्रयेति खानुभवादेव प्रसिद्धमिखाह्-अहमिति ॥ ३४ ॥ तस्य बाह्यार्थदर्शने द्वाराण्याह-अक्षेति । विसृतं बहिर्निःसृतं साभासान्तःकरणलक्षणं वेदनोदकम् । त्रि-जगत् त्रैलोक्यस्थान् संनिष्कृष्टवाह्यार्थान् । यथा धूमो मेघतया वियद्याप्रोति तद्भत् ॥ ३५ ॥ सर्वदेहापेक्षया हृद्यस्थे शुक्रे विशेषामिमानोऽनुभवसिद्ध इत्याह-देहे इति । धनवासना विशेषाभिमानः ॥ ३६ ॥ अतएव हि हार्दसंकल्पपूर्वकमेव बाह्यार्थव्यवहाराः प्रवर्तन्त इत्याह्-जीव इति ॥ ३० ॥ अत-एव च तदहंभावश्चित्तस्य ब्रह्माकारस्थिति विना नोपायसहस्ने-रिष शाम्यतीत्याह-यथास्थितामिति । समाधिपरिपाके स्थिर-ब्रह्मेकरस्यात्स्थिरोपमोम् ॥ ३८ ॥ अतएव हे राम, ते तब मनननिदिध्यासनादिना अनुचिन्त्यमानापि ब्रह्मचिन्ता आत्य-न्तिकाहंभावोपशमने साध्ये उत्तरोत्तरभूमिकासु निर्विकल्पसमा-धिपरिपाचनक्रमेण चरमभूमिकायामम्बरोपमा भावनीया सं-पाद्या । नैतावतेव खयोपरन्तव्यमिखर्थः ॥ ३९ ॥ तर्हि कि भवदायीनामपि तथा सा भावनीया, नेखाइ-तज्ज्ञा इति ।

अरूपालोकमननं मौनं दाहनरा इव ॥ 80 अकिंचिद्भावनो यः स्यात्स मुक्त इति कथ्यते। जीवकाकाराविशको बन्धशून्य इव स्फूटम् ॥ 88 अहमित्येव शक्तस्था संविदापादमस्तकम्। विसरत्यसिलें देहे ब्रह्माण्डे ऽर्कप्रभा यथा॥ ઇર रकेत्रं स्वदनं जिह्ना श्रुतिः श्रोत्रं भवत्यसी। इत्याद्या वासनाः पञ्च बद्दा तासु निमज्जति ॥४३ चिद्रावोऽक्षतयोदेति मनो भृत्वैकदेशतः। सर्वगोऽपि रसो भूमौ यथाङ्करतया मधौ॥ 88 यो भावयति भावेषु नेह रूढेप्वभावताम्। तस्यायक्षयतो दुःखमनन्तं नोपशाम्यति॥ છપ येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाज्ञितः। यत्र कचनशायीह स सम्राडिव राजते ॥ 38 बासनाभिरुपेतोऽपि समग्राभिरवासनः। अन्तःशुस्योऽप्यशुन्यात्मा खप्तिव श्वसनान्वितः४७ आसने शयने याने स्थितो यक्षेने बोध्यते। निद्रालुरिव निर्वाणमनोमनननिर्वृतः॥ 84 संविन्मात्रं हि पुरुषः सर्वगोऽपि स तिष्ठति। स्फुटसारे शरीरस्य यथा गन्धोऽक्वकेसरे॥ ઇર

अरूपालोकमननं बाह्यमानसदृश्यदृश्चनाभिमानरहितं यथा स्था-त्तथा । मौनं कर्मेन्द्रियव्यापारश्चन्यं च ॥ ४० ॥ बन्धशुन्यः श्वकादिनिर्मुक्त इव ॥ ४९ ॥ सर्वशरीरेऽहंभावव्याप्तिरिप ग्रुक्षांशव्याप्तिवशादेवेत्याह-अहमिति ॥ ४२ ॥ चक्षुरादी-न्द्रियभावेन तत्तत्स्थानसंबन्धोऽपि शुकात्मभृतस्थैव जीवस्थे-त्याह—हगिति । हगिन्दियं नेत्रं तद्गोलकम् । एवमग्रेऽपि । अतएव हि रूयादिदर्शनसर्शनश्रवणादी सर्वेन्द्रियरपि कामी-दीपनात्रिमज्जतीत्यर्थः ॥४३॥ अज्ञानावृतचितो विपरीतभावनैव प्रथमं मनो भूला रेतोऽहंभावेनैकदेशतोऽक्षतया तत्तदिन्द्रियभा-वेनोदेतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ अतएव तत्प्रतिकृत्ययार्थभावनां विना न तदुः खोपरम इत्याह-य इति । यः पुरुष इह संसारे रूढेषु मनोहंकारदेहादिजगद्रपेषु 'वाचारम्भणं विकारो नाम-घेयम् ,नेह नानास्ति किंचन, अथात आदेशो नेति नेति' इला-दिश्रुतिदर्शितानामभावनां न भावयति । तस्य मोक्षानुक्लय-**अरहितस्य पुंगर्दमस्यानन्तं जन्मादिदुःखं नोपशाम्यत्येवे**त्यर्थः ॥ ४५ ॥ तथा भावयतस्तु बाह्यसर्वस्वत्यागेऽपि प्रारब्धाकृष्ट-जनैः संपाद्यमानवसनाशनादिभिरान्तरस्वानन्दामृततृह्या वैराजपदान्तसाम्राज्यसुखमस्त्येवेत्याह—येनकेनचिदिति ॥४६ वासनामित्रंद्वाकारवासनामिर्दग्धपटतन्लाकारसदशजगद्वास-मामिर्वा ॥ ४७ ॥ न बोध्यते षष्टादिभूमिकाप्रविष्टलादिति भावः ॥ ४८ ॥ स्फुटसारे रेतसि ॥ ४९ ॥ एवं व्यष्टिसमष्टि-जीवभावादिवर्णनं परमप्रस्तुते योजयन्नपदेशसर्वस्वं संक्षि-माह—संबिन्मात्रमिति । इति परमा रहस्यभूता उपदेशभूर-

संविन्मात्रं विदुर्जन्तं तस्य प्रसरणं जगत्। आत्मनिष्ठत्वमजगत्परमेत्युपदेशभूः॥ 40 नीरसो भव भावेषु सर्वेषु विभवादिषु। पाषाणं हृदयं कृत्वा यथा भवसि भृतये ॥ ५१ साधो इदयसीषियंमसीषियंभिवास्त ते। अचित्तवपुषोऽचित्तवादुपलस्येघ राघष ॥ ५२ तज्ज्ञाज्ञयोरशेषेषु भावाभावेषु कर्मसु। ऋते निर्वासनत्वासु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ ५३ सत्तेवेषा विदो यत्सा भवत्युन्मिषिता जगत्। परं तस्वं निमिषता दृगिवानामकं ततम्॥ 48 दृश्यं विनद्यत्यखिलं विनष्टं जायते पुनः। यन्न नष्टं न चोत्पन्नं यत्सद्भवति तद्भवान् ॥ 44 भावक्षतिर्हि निर्मूला भावितापि न विद्यते। सिललं मृगतृष्णेव न ददाति भवाद्वरम् ॥ ५६ यथा भूतार्थसंदर्शिच्छन्नाऽहमिति मावना । द्यापि न करोत्यन्तर्दग्धं बीजमिवाहरम्॥ 40 कर्म कुर्वेधकुर्यन्वा वीतरागो निरामयः। निर्मना नित्यनिर्वाणः पुमानात्मनि तिष्ठति ॥ चित्तोपज्ञान्तौ संज्ञान्ताः ज्ञान्ता ये भोगबन्धवः।

पदेशस्थितिः ॥ ५० ॥ तत्र वैराग्यदाद्यमेव साधनरहस्यमि-त्याह-नीरस इति ॥ ५१ ॥ पाषाणहृदयं कृत्वेत्युक्तस्तात्पर्य विशदयति-साधो इति । यथा अचित्ववपुष उपलस्य हृदय-सौषिर्यमचित्वादेव चिन्निवेशानवकाशमसौषिर्य प्रसिद्धं तथा चिन्मात्रवपषस्तव दहराकाशरूपं हृदयसीषियं चिरवादेवाचि-न्निवेशनिरवकाशं चिन्निविडितमसायियमिवास्लिति तदाश्य इत्यर्थः । अथवा इयन्तं कालमनिदातमाभिमानादिनत्ववपुष-स्तव अचिरवादज्ञानारस्फिटकोपलस्यान्तःकित्पतमाकाशिमव भोगसामधी धनादिलाभकोटिभिरप्यपूर्यमाणं कामलक्षणं हृदय-सौषियं मनश्छितं सांप्रतं निखनिरतिशयानन्दपूर्णात्मलामा-त्पूर्णकामत्वेन बाधितं वास्तवं स्फटिकोपलसापिर्यमिवानन्दै-क्षानमस्त्रित तदाशय इल्पर्यः ॥ ५२ ॥ अतएव स्फटिको-पलप्रतिबिम्बितजनव्यवद्वारकर्मेखिव तज्ज्ञानयोः प्रतीतिसा-म्येऽपि सत्यलवासनामावकृत एव विशेष इत्याह—तज्ज्ञेति ॥ ५३ ॥ एतं च स्फटिकोपले द्रष्ट्युस्यद्धिरिव विदर्श्वतन्यस्य सत्तेव वासनाभिरुन्मिषिता जगद्भवति निर्वासनत्वेन निर्मन षिता ततमपरिच्छित्रतस्वं मोक्षास्यं भवतीति फलितमित्यर्थः ॥ ५४ ॥ अनएव चित्सत्तैव नित्यत्वमित्वाह—दृश्यमिति ॥ ५५ ॥ ईदृशबोधेन मूलाज्ञाननाशे सल्यन्वेषणेऽपि जगद्भान न्तिनं लभ्येखाह—भावेति । भावश्वतिजंगद्वान्तिः । निर्मूला-वाधितम्ला । भाविता अन्विष्टापि ॥ ५६ ॥ ५० ॥ अतएब विहितकर्मकरणाकरणयोविंदुषामविशेष इत्याह --कर्मेति॥५८॥ समनसोपि योगिनः शान्त्यादिवशादात्मनि कृतो न तिप्रन्ति

योग• १४०

48

६०

६१

न स्वभावपरिक्षीणाश्चित्तमेषां किलाकरः॥ अघनः केवलालोको बुधो जीवः परायते । स एवान्योऽप्यनन्योऽन्तरपराह इवातपः॥ पकदेशस्थितात्वुंसो दूरायातस्य चेतमः। यद्र्षं सकलं मध्ये तद्र्षं परमात्मनः॥ वारुचिद्योमकर्पूरं यश्वमत्कुरुते स्वयम्।

अनन्तमन्तरव्यक्तं जगदित्येव वेत्ति तत् ॥ गतभवभ्रमभासुरमक्षयं शममुपेतमुपेक्षितदीपवत्। स्थितमपीह जनं जगदीश्वरा-दनुगतं ननु भाति मुदा च से ॥ 83

इस्पार्वे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सुखयोगोपदेशो नाम द्वाविशः सर्गः॥ २२ ॥

त्रयोविंशतिः सर्गः २३

वसिष्ठ उवाच। विरागवासनापास्तसमस्तभववासनः। उत्थाय गच्छ प्रकृतेरस्या मङ्किरिवाङ्कितः ॥ मङ्किर्नामाभवत्पूर्वे ब्राह्मणः संशितव्रतः । स कथं श्रुण निर्वाणमाप्तवानमहिषोधितः॥ अहं कदाचिदाकाशकोशादवनिमागतः। भवत्पितामहार्थन केनाप्यपनिमन्त्रितः॥ 3 विहरनभूतलं गच्छंस्त्वत्पितामहपत्तनम्। प्राप्तोऽस्मि कामप्यादीर्घामरण्यानीं महातपाम् ४ पांसप्रतर्दनहतां प्रकचत्तप्तसैकताम्। अद्दष्टापारपर्यन्तां कचिद्राम किलाद्विताम् ॥

तत्राह-वितेति । ये हठाच्छान्ता योगिनस्तेऽपि वित्तोप-शास्तौ सल्यामेव सम्यक् शास्ता भवन्ति नान्यथा । यतस्तेषां भोगेन बध्नन्तीति भोगबन्धवी भोगवासना न खभावपरि-क्षीणा मूलतिहेखन्नाः । हि यस्मादेषामाकरः खनीभूतं चित्तम-स्त्येबेखर्थः ॥ ५९ ॥ चित्तदेहादिरूपेण घनीभाव एव जीवस्य मेदकस्तापकथ, तदभावे लयं ब्रह्माभित्रो निस्ताप एवे-लाह-अधन इति । अधनो मूर्तिशून्यो जीवः केवलचिदा-छोकमात्रः शोधितलंपदार्थः परायते । परामेदयोग्यो भवती-त्यर्थः । आतपपक्षे अघनो मेघावरणनिमुक्तः अखरश्र ॥६०॥ तदेवाधनं केवलियदालोकसम्पमात्मनोऽनुभावयति-एकदे-शेति । पुंसो देहात् दूरं दूरस्थादिखचन्द्रादिविषयं चक्षरादि-द्वारा या तस्य चेतसश्चित्तवृत्तेर्मध्ये विच्छेदाभावाहेहमार्भ्य चन्द्रमण्डलपर्यन्तमविच्छिन्ना अपरोक्षचिद्भिव्यक्तास्त्येव।तस्या बेहप्रदेशे चन्द्रप्रदेशे च सविषयत्वेऽप्यन्तराले निर्विषयं यद्वपं प्रसिद्धं तद्रुपमेव सकलं पूर्ण परमात्मनः परिचेयमित्यर्थः । त-बाच श्रुतिः 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा परयन्ति सूरयः । दिवीय चक्षराततम् इति ॥ ६९ ॥ निविषयचित एवार्यं मा-याचमत्कारो जगदिलाह-चार्विति । अव्यक्तमनभिव्यक्तम् ॥ ६२ ॥ एवमिदं जगत्तत्त्वज्ञजनं प्रति गतभवश्रमभासुरमुपे-क्षितरीपनत् शमं निर्वाणमुपेतमक्षयं ब्रह्मेन भाति । अञ्चजनं श्रति त नियन्तुरीश्वरात्सकाशात्सर्वनियतिव्यवस्थामिर्मुदा भो-गप्रीखा चानगतं खे आकाशांदरे परमार्थतः स्थितमपि आ-तीति दृष्टिमेदमात्रमिखर्यः ॥ ६३ ॥ इति भीवासिष्टम- अक्षुन्धखानिलालोकजलभूशान्तिशालिनीम् । ततां शून्यां महारम्भां ब्रह्मसत्तामिवामलाम् ॥ अविद्यामिष संमोहसृगतृष्णां गतां भ्रमात्। जडतामाततां शून्यां दिक्कोहमिहिकाकुलाम् ॥ अथ तस्यामरण्यान्यां यावत्प्रविहराम्यहम् । तावत्पदयामि पुरतो वदन्तं पथिकं श्रमात्॥ पान्थ उवाच। अहो जु परिखेदाय प्रौढप्रायातपो रविः। परितापाय पापोऽयं दुर्जनेनेव संगमः॥ Q

सुगलन्तीव मर्माणि स्फूरतीवाग्निरातपे। संकुचत्पल्लवापीडास्ताप्यन्ते वनराजयः ॥ १०

हारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्वाविंदाति-तमः सर्गः ॥ २२ ॥

मक्किनो मरुकान्तारे वसिष्ठेनात्र संगमः। निर्वेदात्तस्वजिज्ञासोरुपदेशश्च वर्ण्यते ॥ १ ॥

'नीरसो भव भावेषु सर्वेषु विभवादिषु' इति यद्वैराग्यदार्ट्य-स्यावस्यकलमुक्तं तत्प्रतिष्ठापनाय मञ्जूषाख्यानमारभते---विरागेत्यादिना । अस्याः परिदृश्यमानायाः प्रकृतेः स्वाभाविका-ज्ञानादिरूपायाः संस्तेस्तत्त्ववोधेनोत्थाय निर्वाणात्मपदं गच्छे-त्यर्थः । अद्वितस्तहक्षणैश्रिहितः ॥१॥ मया विशेषित उपदिष्टः ॥२॥केनापि यज्ञादिरूपेण भवत्पितामहस्याऽजस्यार्थेन प्रयोजनेन प्रागुपनिमित्रितः सन् ॥ ३ ॥ खित्पतामहस्य पत्तनं नगर-मयोध्यां प्रति गच्छन्गमिष्यन्सप्तर्षिलोकाद्भतलं प्राप्य । विहरन् संचरन् । अरण्यानीं महारण्यम् । 'हिमारण्ययोमेहस्वे' । 'इन्द्रवरुण' इत्यादिना आनुक् ॥ ४ ॥ पांसूनां प्रतर्दनेना-विच्छित्रप्रसरेण इतां ध्वस्ताम् । धूसरामिति यावत् । अक्कितां कुमाभैरिति शेषः ॥ ५ ॥ अविद्यमानपांखादिनाऽक्षज्यस्य खस्याकाशस्यानिलस्य झंझापवनस्य आलोकस्याऽऽतपस्य मृगतृ-ष्णाजलस्य तप्तभुवस्य शान्सा शालिनी शोभमानाम्।दुर्गमला-द्गन्तृणां महान्त आरम्भाः प्रयक्षा यत्र । अमलां निष्पद्वाम् । वदासत्तापक्षे सपष्टम् ॥ ६ ॥ जडतां गतामिखनुषज्यते ॥७॥ वदन्तं व्यक्तं भाषमाणम् ॥ ८ ॥ यथा पापो दुर्जनेन संगनः परितापाय सथा प्रांढप्रायातपोयं रविःपरिखेदायेत्वर्थः॥ १॥१०॥

तत्तावदेवमग्रस्थं प्रामकं प्रविशाम्यहम् । असमत्रापनीयाञ् बहाम्यध्वानमाञ्जाः॥ ११ इति संचिन्स सोऽप्रस्थं किरातप्रामकं यदा। प्रवेष्ट्रमिच्छति तदा मया प्रोक्तमिदं वचः॥ १२ अपरिश्वातनीरागमार्गमित्र शुभाकृते। महमार्गमहारण्यपान्थ स्वागतमस्तु ते ॥ १३ चिरं मनुष्यदेशेऽसिषिर्जनग्राममध्वनि । अधराध्वगविश्रान्ति विश्रान्तोपि न लप्स्यसे ॥ १४ श्रामे विश्रमणं नैव वर्तते पामरास्पदे । तृहै लघणपानेन भूय प्वामिवर्घते॥ १५ एते प्रामेकदारणाः पह्नवाः स्पन्दभीरघः । अयथापथसंचारा हरिणा इव जन्तवः॥ ३६ न स्फूरन्ति विचारेषु प्रज्वलन्त्यनुभृतिषु । न त्रस्यन्ति दुराचाराद्दमयश्रमया ६व ॥ १७ कामार्थरागसद्वेषपरिनिष्टितपौरुषाः । कर्मण्यापातमधुरे रमन्ते दग्धबुद्धयः॥ 28 आमिजात्याततोदारा शीतला रसशालिनी। नेष्ठ विश्वसिति प्रज्ञा मेघमाला मराविव ॥ १९ वरमन्धगुहाहित्वं शिलान्तःकीटता वरम्। वरं मरी पङ्गमृगो न प्राम्यजनसंगमः॥ २०

तत्तसाद्धेतोः ॥ ११ ॥ मया तद्भाग्योदयकालं ज्ञाला तदीयसर्वश्रममूलोच्छेदायेदं तत्त्वबुभुत्सोत्पादकं साभिप्रायं बक्ष्यमाणवाक्यमुक्तमित्यर्थः ॥ १२ ॥ न परिज्ञातो नी-रागाणामकिवनानां संचारयोग्य आतिथेयजनसंभृतो मार्गा येनेत्युत्तानार्थः । अतएव मरुमार्गमहारण्यपान्य । अभिप्रे-ताथीन्तारं तु स्पष्टम् । हे मित्र, तेऽत्रागमनं मद्दर्शनेन सर्वदुःख-मुरुक्षयात्खागतमस्तु ॥१३॥ तस्याधराध्वगेति संबोधनात्स्वस्य तदा नभोध्वगमनं सुच्यते । निर्जनप्राममातिथेयजनशून्यप्रामं यथा स्यात्तथा स्थित इति शेषः । प्राक्तनप्राभेष्त्रभपानप्रति-श्रयादिलाभाद्विश्रान्तोप्यभ्रे विश्रान्ति न लप्यसे इस्युत्तानार्थः । आशयार्थे त हे अधरकर्माध्वम, अस्मिन् कर्मीपासनलभ्य-दक्षिणोत्तरायणमार्गलक्षणेऽध्वनि स्वर्गादिभूमियु किंचितिकचि-द्विश्रान्तोऽपि निर्जनप्रामं जननं जतो निर्गतजन्मसमूहं यथा स्यात्रथा मोक्षविवरं विश्रान्ति न छप्ससे इति योज्यम् ॥१४॥ नैव वर्तते पामराणां दुर्वाक्यादिना प्रत्युत क्षोभकारिलादित्यु-त्तानी भावः । आशयार्थस्तु प्रामे कर्तृकरणसंघातालये देवम-नुष्यादिदेहे पामराणां कामद्वेषवीनामालये । यदि मन्यस विषयोपभोगैर्विश्रान्तिरिति तत्राह्-तृडिति । तथाचोक्तं ययातिना--'न जातु कामः कामानामुपभोगेन म्यति । हविषा कृष्णवत्मैव भूय एवामिवर्धतं ॥' इति ॥१५॥ पष्टवाः पुलिन्दजातिमेदाः । आरण्यकलाज्जनपदस्पन्दाद्वीरव-स्तमसहमाना इत्युत्तानार्थः । आशयार्थे त्वेते कामादयः पक्षवन्त्रहरागादियुक्ता विवेकस्पन्दभीरवः अयथापभसंचाराः स्थितमिति

निमेषास्वादमधुराः क्षणान्तरिवरागिणः।
मारणैकान्तनिरता प्राम्या विषकणा इव ॥ २१
वान्ति भस्मकणाकीर्णा जीर्णाः संशीर्णसम्म ।
तृणपंजीवनव्यत्रा त्राम्या धार्मिकवायवः॥ २२
पवमुक्तेन तेनाहमिदमुकस्ततोऽनघ।
मद्याक्येन समाश्वास्य क्षातेनेवामृताम्भसा॥ २३
पान्थ उवाच।

भगवन्कोऽसि पूर्णात्मा महात्मा कथमात्मवान् ।
पश्यस्यनाकुलो लोकं त्रामयात्रामिवाध्वगः ॥ २४
किं त्वया पीतममृतं किं त्वं सम्नाद्विराड्य ।
सर्वार्थरिकोऽपि चिरं संपूर्ण इव राजसे ॥ २५
शूम्योऽसि परिपूर्णोऽसि घूर्णोऽसीव स्थिरोऽसि च ।
न सर्वमिप सर्वं च न किंचिंत्किचिदेघ च ॥ २६
उपशान्तं च कान्तं च दीप्तमप्रतिघाति च ।
निवृत्तं चोर्जितं तादृष्णं किमिति ते मुने ॥ २७
भूसंस्थोऽपि समस्तानां लोकानामुपरीव खे ।
संस्थितोऽसि निरास्थोऽसि घनास्थोऽसीव लक्ष्यसे॥
प्रस्तं न पदार्थेषु न पदार्थात्मनास्ति वै ।
तवेन्दोरिव गुद्धस्य मनोऽमृतमयं स्थितम् ॥ २९

अशास्त्रीयमार्गप्रवणाः ॥ १६ ॥ न स्फुरन्तीत्याद्यमयतः स्पर्धं योज्यम् । अरमयन्त्रमयाः प्रतिमादय इव ॥ १७ ॥१८॥ आभिजात्यं विद्युद्धोभयकुलता तेनातता प्रज्ञा इह जनेषु न विश्वसिति ॥ १९ ॥ अन्धयतीत्यन्धा अन्धकारावृता गुहा तस्यामहित्यमजगरता ॥ २० ॥ विषकणा मधुमिश्रविषकणाः ॥ २१ ॥ भस्मकणाकीणी धृलिधुमरा प्रामे भवा प्राम्या ये अधार्मिका जनास्तहक्षणा वायवधण्डपवना वान्ति संचरन्ति ॥ २२ ॥ एवं मया उक्ति संभाषितेन तेन महिना मदा-शयबोधादयं मामुद्धरिष्यतीति सम्यगाश्वासं प्राप्याऽहमिदं व-क्ष्यमाणमुक्तः ॥ २३ ॥ पूर्णात्मा लमिति शेषः ॥ २४ ॥ पूर्णात्मतामेव हेर्तुवितर्कः प्रकटयति—कि लगेति । सम्राद सर्वलोकेश्वरः संपूर्णश्चन्द्र इव राजसे ॥ २५ ॥ सांसारिक-दोषदुःसैः शून्योऽसि । निरतिशयानन्देन जीवन्मुक्तगुणैश्व परिपूर्गोऽसि । देह। धप्रतिसंधानान्मदघूर्गोऽसीव । परमार्थे स्थिरोऽसीव । न सर्वामिति समध्यपबादाध्यारोपदृष्टिभ्याम । न किचिदिति व्यष्ट्यपवादाध्यारोपरष्टिभ्याम् ॥ २६ ॥ ईर-शोऽहं कथं लया ज्ञात इति चेत्वद्रुपदर्शनादिति सूचयमाह-उपशान्तमिति । तयाच श्रुतिः 'रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्या-चष्टे' इति ॥ २७ ॥ माहशानामुद्धारे घनास्थोऽसीव लक्ष्यसे ॥ २८ ॥ इन्दोरिव शुद्धस्य तवासृतमयं मनः इन्दुकरवत् पदार्थेषु न प्रसतं नाप्यौषधिवनस्यतिसोमाज्यपयोत्रादिपदार्था-त्मना उपभोगाईमस्ति येन क्षीयेत । अतः सदैव पूर्ण तब चन्द्रादतिशय

कलावानकलङ्कोऽन्तःशीतलो भास्वरः समः । रसायनमरापूर्णः पूर्णेन्दुरिव राजसे॥ 30 त्वदिच्छायां तु सदसद्भावं परयामि ते चिति। संसारमण्डलमिदं स्थितं फलमिवाङ्करे ॥ 38 अहं तावदयं विप्र शाण्डिल्यकुलसंभवः। मिक्किनाम महाभाग तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ ३२ गत्वा सुद्रमध्वानं दृष्टा तीर्थानि संप्रति। चिरकालेन सदनमात्मीयं गन्तुमुद्यतः॥ 33 नच मे गम्तुमुद्योगो विरक्तमनसो गृहम् । दृष्ट्रा तडित्सकाशानि भृतानि भुवनोद्रे ॥ ३४ भगवन्सत्यमात्मानं कथयेहानुकम्पया । गम्भीराणि प्रसन्नानि साधुचेतःसरांसि हि ॥ दर्शनादेव मित्रत्वं कुर्वतां महतां पुरः। कमलानीय भूतानि विकसन्त्याश्वसन्ति च ॥ ३६ ममेदं च मनो मोहात्संसारग्रमसंभवम्। मन्ये हातुं न समर्थे स त्वं वोधानुकम्पितैः ॥ ३७ :

वसिष्ठ उवाच । वसिष्ठोऽसि महाबुद्धे मुनिरसि नभोगृहः। केनाप्यर्थेन राजपेरिमं मार्गम्पस्थितः॥ 36 मागा विषादं पत्थानमागतोसि मनीषिणाम्। प्रायः प्राप्तोसि संसारसागरस्य परं तदम् ॥ 36 वैराग्यविभवोदारा मतिरुक्तिरपीडशी। आकृतिः शान्तरूपा च न भवत्यमहात्मनः॥ 80 मणिर्मधुरकाषेण यथैति विमलात्मताम्। तथा कषायपाकेन चित्तमेति विवेकिताम्॥ કર किं बातुमिन्छिसि कथं संसारं हातुमिन्छिसि। उपदिष्टमहं मन्ये संपादयति कर्मामेः॥ પ્રર विमलवासन उत्तममानसः परिविविकमतिर्जनतेजसा । पदमशोकमलं खलु युज्यते जनितितीर्षुमतेरिदम्ब्यते ॥ ઇરૂ

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो॰ निर्वाणप्रकरणे उ॰ मह्रयुपाख्याने मिक्किनिर्वाणं नाम श्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विश्वतिः सर्गः २४

वसिष्ठ उचाच । ममेत्युक्तवतो मङ्किविनिपत्य स पादयोः ।

अन्यदपि तत्साम्यं विशेषं चाह—कलावानिति ॥ ३०॥ एवं हिरण्यगर्भसाम्यं ततो विशेषश्च तेऽसीत्याह--विदिच्छा-यामिति । सार्वरयसर्वशक्तयादिसंपन्नस्य ते चिति आत्माने अऋरे काण्डादिफलान्तं बृक्षरूपमिवेदं संसारमण्डलं सर्गयोग्य-तया स्थितं पर्यामि संभावयामि । तत्सर्गार्थं लदिच्छायां तु सदसद्भावं पश्यामि संवेशि । यदीच्छांस तर्हि लमपि जगत्स्रहं शकोष्येव परंतु नेच्छसीत्ययं ततो विशेष इति भावः ॥ ३१ ॥ एवं प्रशंसयाभिमुखीकृताय वसिष्ठाय स्ववैराग्यादिसाधनसंप-त्योपदेशाईतां दर्शयितुं खगोत्रनामादि कीर्तयति-अहमि-स्यादिना ॥३२॥३३॥ तडित्सकाशानि क्षणभन्नताणि ॥ ३४ ॥ भात्मानं नामगोत्रादिना कथयेत्युत्तानार्थः । सत्यमिति । वि-श्रेषणसारस्यात्परमात्मानमुपदिशंखाशयार्यः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तमेबाशयं स्फुटमाइ--ममेति । अप्यर्थे चकारः । ममेवमीष-द्विवेकशास्यनि मनो मोहादज्ञानसंशयप्राबल्यात्संसारश्रमसंभवं द्रःखं हातुं निःशेषमुच्छेत्तं विना गुरूपदेशं खविमशेकीशरूमा-त्रेण न समर्थमिति मन्ये पुनःपुनर्मननेन निश्चितवानस्मि । अतः स प्राग्वर्णितमदुद्धरणसामध्येस्त्वं रहस्यबोधानुकुलैहपदे-शानुकम्पितैभीइसंशयोच्छेदेन दुःखक्ष्यसमर्थे कुर्विति होपः ॥ ३०॥ राजर्षेरजस्य । केनापि याजनादिक्षपेणार्थेन ॥३८॥ परं तटं परतीरम् ॥ ३९ ॥ मनीषिणां पन्थानमहं त्राप्त इत्यत्र

उवाचानन्दपूर्णाक्षमिदं मार्गे वहन्वचः॥

कि छिन्नं तदाह-वैराग्येति । अमहात्मनो ज्ञानाधिकारभाग्य-हीनस्य ॥ ४० ॥ विवेकोदयोऽपि चित्तकषायपाके तन लिस-मिल्याह--मणिरिति । मधुरेण मृदुना काषेण शाणघषेणेन ॥ ४१ ॥ शिष्यो गुरुणोपदिष्टमर्थं पुनःपुनः स्वपरिशालनाज्ज्ञा-तांशं पुनः प्रश्नावधारणादिकमंभिर्यतः फलपर्यवसितं संपाद-यति. अतस्वं स्वाज्ञातजिज्ञासितांशं वदेखर्थः ॥ ४२ ॥ खळ यसाद्धेतोर्यः शिष्यो विमला रागादिमलशून्या वासना यस्य । अतएबोत्तमवैराग्यादिसाधनत्रयसंपत्रमानसो भवति परिविविका नित्यानित्यसारासारादिविवेकशालिनी मतिर्थस्य तथाविधधास एव गुरुजनस्योपदेशतेजसा अशोकमात्मतत्त्व-पदं प्राप्तं युज्यते योग्यो भवति नेतरः । अतः कारणाज्ञ-निभ्यो जन्म।दिसर्वदुःखेभ्यस्तितीर्पृहत्तरणेच्छुर्मतिर्थस्य तथा-विभस्य संभाषणपरीक्षणेन ज्ञाताधिकारस्येव तव मयेदमुच्यते नान्यादशस्य । अतः खपूर्वोत्तरवृत्तान्तं वदेखर्थः ॥४३ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे त्रवोदिशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

देहेन्द्रियमनोबुद्धिदोपायैः सह विसारात् । सांसारिकं स्वदुःसीघं मिक्किनेहोपवर्ण्यते ॥ १ ॥ स मिक्कः इति एवमुक्तवतो मम पादयोविनिपस आनन्द-

बाष्पपरिपूर्णाक्षं यथा स्थात्तथा मार्गे मां बहुन् सन्नानन्दपूर्णम-

मङ्किखाच।

भगवन्भूरिशो भ्रान्ता दिशो दश दशो यथा।

मया न तु पुनः साधु लन्धः संशयनाशहत् ॥ २

समस्तदेहसाराणां सारस्याद्य फलं मया।

स्विन्नोस्मि भगधन्पश्यन्दशाः संसारदोषदाः ॥ ३

पुनर्जातं पुनर्नष्टं सुखदुःखम्रमः सदा।
अवश्यं भाविपर्यन्तदुःखत्वात्सकलान्यपि ॥ ४

सुखान्येवातिदुःखानि वरं दुःखान्यतो मुने।
दृददुःखवदन्तत्वाहुःखयन्ति सुखानि माम् ॥ ५

तथा राम यथा दुःखमेव मे सुखतां गतम्।
वयोदशनलोमान्धः सह जर्जरतां गतम् ॥ ६

उन्धःपदे पातपरा वृद्धिर्नाध्यवसायिनी।
सुप्रवालं कुसंकल्पाहहनं न प्रकाशते॥ ७

मनः पिष्पलपल्यूलैरिव कुग्रामकोटरम्।
वासनाङ्गवहैर्गुर्धनित्यं पापीयसी स्थितिः॥ ८

क्षमिन्द्रियकलापं बहन्निति वा इदं वक्ष्यमाणमुवाच ॥ १ ॥ हे भगवन्, स्वसंशयविच्छेदायोपदेशकुशल, साध्वन्वेषणपरेण मया दशो दृष्टयो यथा दिशु भूरिशो श्रमन्ति तथा दिशो भ्रान्ताः ॥ २ ॥ अद्य मया लहाभात्समस्तेषु देवासुरतिर्यगा-दिदेहेषु साराणां ब्राह्मणदेहानां सध्ये ज्ञानाधिकारसंपन्या सारस्य खदेहस्य फलं लब्धमिति शेषः ॥३॥ खेदमेव हेतुमिः सह प्रवश्चयति-पुनरित्यादिना । जातं जन्म । नष्टं मरणम् । ननु सदा दुःखन्रम इति कुतः, सुखानामपि संसारेऽनुभूयमान-लात्तत्राह-अवस्यमिति । सकलान्यपि सुखान्यवस्यं भावि-पर्यन्तदुःखलादतिदुःखान्यत्यन्तदुःसहानि दुःखान्येवेति परे-णान्वयः ॥ ४ ॥ अत एभ्यः सुखेभ्यो दुःखान्येव वरम् । अविच्छिन्ना दुःखपरम्परा हि जलचरिस्तच्छीततेवाभ्यासात्स-ह्यापि स्यात्मुखविच्छित्राभ्यासात्तु सा दुःसहेति भावः । प्रबल-तरदःखानुबन्धिलाद्वा कांद्रवात्रजीवने दुःखापेक्षया विषसंपृ-क्तमोदकाखादमुखेष्विव क्षुद्रदुःखपरंपरापेक्षया भोगमुखेषु द्वे-ध्यताधिक्यमुचितमित्याह-- दढेति ॥ ५ ॥ हे राम हे सा-म्येति विसष्टसंबोधनम् । मुखानि मां तथा दुःखयन्ति यथा मे दुःखमेव सुखतां गतं भवतीखन्वयः । इदानीं तत्त्वज्ञाना-नुपयुक्तानां वयः प्रसृतीनां यृथा जीर्णतामनर्थपरम्पराची जतां च दर्शयति—वय इत्यादिना । जर्जरतां शिथिलताम् ॥ ६ ॥ उत्तरोत्तरभोगोत्कर्षस्थाने पातोऽभिलाषस्तत्परा बुद्धिन परमपुरुषार्थसाधनाध्यवसायिनी । मनस्तूत्तरोत्तरं वर्धमानै रागपहर्वः सुप्रवाछं पहवितमतीतमोग्यकोटिगोचर-शोकमोहादिकसंकल्पाच गहनं दुर्विवेकमतएव खखदोषा-दिसाक्षिविवेकेन न प्रकाशते ॥ ७ ॥ तत्र दृष्टान्त-माह-पिप्पलेति । पिप्पलानामश्रत्थादीनां पत्यूतेः प्रव-शुष्कपणीदिसंचयैर्गहनं कुत्रामान्तरालामिव स्थिति- कण्टकद्वमवल्लीव करालकुटिला मतिः। आयुरायासशालिन्या यामिन्येव तमोन्धया॥ अक्षीवानागतालोकं क्षीणं संततचिन्तया। न किंचिद्रसमाद्ते नष्टैवापि न नश्यति ॥ 80 न पुष्पिता न फलिता तृष्णा शुष्कलतेव नः । कर्म कर्मणि निर्मग्नं वासनाख्यमकर्मणे॥ ११ जीवितं च जने जीर्णं नेवोसीर्णां भवार्णवः। दिनानुदिनमुच्छना भोगाशा भयदायिनी ॥ १२ पूर्णापूर्णात्मनि श्लीणाः श्वभ्रकण्डकबृक्षवत् । चिन्ताज्वरविकारिण्यो लक्ष्म्याः खलु महापदः १३ संपन्नमक्षतं सापि विप्रलम्मेन जम्भते। अन्तः स्फुरितरत्नेहं भास्यरं वान्धकोटरम् ॥ कल्लोलकलिलं शून्यं चेतः शुष्काव्धिदर्भगम्। मामिन्द्रियार्थैकपरं न स्पृशन्ति विवेकिनः॥ सकण्टकममेध्यस्थं श्रेष्मातकमिव द्रमम्।

जीविकापि नाना भोगवासनापृतिगन्धानको बहुन्तीति बा-सनाङ्गवहैरतएव गुर्बेग्ध्रप्रायेरिन्द्रियेः कुष्रामस्थितिरिव नित्यं पापीयसी ॥ ८ ॥ मतिथ करआदिकण्टकवद्यीव करासा कुटिला च । आयुथ आयासशालिन्या तमोन्धया संतत-विषया चिन्तया अनागतालोकमप्राप्तदीपादिप्रकाशमक्षि चक्षु-स्तमोन्यया यामिन्येवाप्राप्तबद्धादर्शनालोकं वृथा क्षीणमिति परेणान्वयः ॥ ९ ॥ तृष्णा शुष्कलतेव न किंचिद्विवेकरसमा-दत्ते पुनःपुनर्मोधीभावात्रष्टापि न नश्यति ॥ १० ॥ ननु कर्मभिरेव तबोदारः कि न स्यातत्राह-—कर्मेति । यक्तिचि-भिल्यनैमित्तिकं कर्म कृतं तत् प्राक्तनदुष्कमेराशी कतिपथ-भागक्षपणेन निमन्नम् उपक्षीणमितियावत् । भोगवासनाद्धं तु वीजमुत्तरोत्तरानर्थहेतवे अकर्मणे काम्यानेषिद्धकर्मणि प्रवर्त-यतीति शेषः ॥ ११ ॥ जने पुत्रकलत्रबान्धवसृत्यादावासत्तया जीर्णम् ॥ १२ ॥ लक्ष्म्यां आर्जनार्था महापदस्त् श्रम्भोत्पन्नकः ण्टकतृक्षवत्पुत्रमित्रपशुधनादिभिः कदाचित्पूर्णे कदाचिदपूर्णा-त्मनि च गृहे चिन्ताज्वरीर्विकारिण्यः श्रीणाः श्रपिताः ॥५३॥ लक्ष्मीबंहुतरधनादिभिः संपन्नं शस्त्रादिभिरक्षतम्पि पुरुषं भू-योभूयः प्रहोभ्य दूरमाकृष्य शत्रुदस्युवश्यतापादनेन सर्वेसपन्ना-शसम्बद्यातादिदःखपर्यवसायिनी विश्वसम्मेन सम्भते । यथा सर्पत्रिरोमणिना भाखरमन्धकोटरं सान्धकारश्वभ्रमन्तरहष्ट-सर्प स्फुरितरब्रहं पुरुषं स्वान्तः प्रवेश्य सर्पदंशादिविवल-म्मेन जुम्भते तद्वत् । इवार्थे वाशब्दः । रम्मेह्रमिति पाठे अन्तःप्रहरूसफलकदलीकं तादशक्षभ्रं द्रष्टान्तः ॥ १४ ॥ चेत-श्चित्तमप्याशासहस्रकहोरीः कलिलमम्बच्छं सर्वतः प्रधावनेप्य-थेश्चन्यमत एव शुष्काविवरिव दुष्पूरलाहुर्भगमतएव चित्तप-रवशमिन्द्रियार्थैकपरं मां चित्रेकिनो न स्पृशन्ति उपेक्षन्ते ॥ १५ ॥ तत्र दशन्तमाह—सकण्टकमिति । मनोऽपि बि-

१६

28

१९

असदेव महारम्भं चलदर्जनवातवत्॥ मनो मरणमप्राप्तं शुन्यं दुःखाय वल्गति। शास्त्रसञ्जनसंपर्कचन्द्रतारकधारिणी ॥ अहंभावोल्लसद्यक्षा श्रीणा नाम्नानयामिनी। अज्ञानध्वान्तमसर्भासहः कर्मतृणानलः॥ उदितो न विकाराकों वासनारजनीक्षयः । अवस्तु वस्तुवद्भुद्धं मत्तश्चित्तमतंगजः॥ इन्द्रियाणि निक्रन्तन्ति न जाने किं भविष्यति।

शास्त्रदृष्टिरपि प्राप्तेर्नाभिता तरणाय या॥ २० साप्यदृष्टिरिवान्ध्याय वासनावेशकारिणी। १७ तवेषमतिसंमोहे यत्कार्यमिष्ठ दारुणे। उदर्कश्रयसे तात तन्मे कथय पृच्छते॥ २१ शाम्यन्ति मोहमिहिकाः शरदीव साधौ प्राप्ते भवन्ति विमलाश्च तथाखिलाशाः । सत्येतिवाग्भवतु साधुजनोपगीता मद्रोधनेन भवता भवशान्तिदेन॥ २२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मक्का० मिक्केवराग्यं नाम चतुर्विशः सर्गः ॥ २४ ॥

पश्चविंदातिः सर्गः २५

8

₹

3

वसिष्ट उवाच। संवेदनं भावनं च वासना कलनेति च। अनर्थायेह शब्दार्थे विगतार्थो विज्ञम्भते॥ वेदनं भावनं विद्धि सर्वदोपसमाश्रयम्। तिसिन्नेवापदः सन्ति लता मधुरसे यथा ॥ संसारमार्गे गहने वासनावेशवाहिनः। उपयाति विचित्रौधैर्वत्तवत्तान्तसंततिः॥ विवेकिनो वासनया सहसंसारसंभ्रमः।

मर्शे असदेव महान्तः कर्मारम्भा यस्मात्तयाविधम् । अर्जुन-वातो वातरोगविशेषः सदैव श्रमणकार्ग यथा देहे चरुति तद्वत् ॥ १६ ॥ बहुशो मृतेऽपि मयि मरणमप्राप्तमभिरुषि-तार्थश्चन्यं दःखायैव वल्गति धावति । नन् शास्त्रसञ्जनसंपर्कान द्युपार्थर्मनो निगृद्यतामिति चेद्यावञ्ज्ञानफलविवेकाकीद्येना-ज्ञानयामिनी न शीगा ताव न्छ।स्नसञ्जनसंपकीदयश्चनद्रतारक-वन्नात्यन्तिकमनोभ्रमविनाशाय क्षमन्त इत्याशयेनाह--शास्त्रेति द्वाभ्याम् ॥ १७ ॥ अहंभाव एव उन्नयन् बालकत्पितयक्षो यस्याम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ सेवादिना वशीकृर्तः प्राज्जै-रुपायैवी नाश्रिता सापि में अदृष्टिशिष्टविद्यात इवान्ध्याय संपन्ने-त्यन्वयः । एवं वर्णित्ररीत्या सर्वतोऽप्यनर्थप्रसत्त्या अतिसंमोहे ममस्य मम तदुत्तरणाय उदर्के श्रेयसे मोक्षाय च यत्कार्य तत्कथयेति संबन्धः ॥ २१ ॥ हे भगवन्, शरदि शरत्काले इव निर्मलस्वच्छन्नानविवेकादिज्योतिर्गणमण्डिते साधी गुरी त्राप्ते सति आकाशस्येव शिष्यस्य मोद्दलक्षणा मिहिकाः म्यन्ति । अखिला आशा दिश इव मनोर्थाश्व विमला निर-स्तरागादिरजोगला भवन्ति इति लोके प्रसिद्धा साधुजनैरपगीता वाकू भवता कृतेन मदीयभवशान्तिदेन महोधनेन सत्या अबाधितार्था भवलिति प्रार्थना ॥ २२ ॥ इति श्रीवासिष्ठ-महारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतु-विश्वतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

क्षीयते माधवस्थान्ते शनैरिव धरारसः॥ अस्याः संसारसहृषया वासनोत्सेधकारिणी। कदल्या वनजालिन्या रसलेखेच माधवी॥ ų संसारान्ध्यतयोदेति वासनात्मा रसश्चितौ। यथा वनतया तस्था मधुमासरसः श्वितौ॥ चिन्मात्रादमलाच्छन्याहते किंचिन्न विद्यते । नान्यर्तिकचिदपर्यन्ते खे शून्यत्वेतरद्यथा ॥

> संवेदनाद्यविद्योत्थं बन्धबीजचतुष्टयम् । परमात्मनि विद्या च तन्निहरूयत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

દ

एवं मिद्धना खसंसारानर्थमुपवर्ण्य तिवरासोपाये पृष्टे तद्धी-जान्यपरिशाय तन्निरसनोपाया न संपादियतं शक्या इति तदी-जचतुष्टयमुपपादयितुमुपदिशति—संवेदनमिति । प्रथममिन्दि-यैर्विषयोपभोगलक्षणं संवेदनमपगते विषये तद्रणानुसंघानेन पुनःपुनर्भावनं तेन तदाकारलाञ्छनरूपा चित्ते दृढवासना तया च मरणादिकाछेऽपि भाविदेहाचारमभानुकूला कलना तास्मृतिरिति चतुर्विध इह संसारे अनर्थाय सर्वानर्थबीजभूतो मिध्याभूतार्थगो वरलात्खयं मिध्याभूतलाच विगतार्थः शब्दार्थः पदार्थोऽविद्यया विज्नम्भत इत्यर्थः ॥ १ ॥ तत्राययोरत्यन्त-मनर्थता अन्त्ययोस्त तत्पृष्रभावेनेत्याशयेनाह—वेदनमिति । तत्रापि भावनं महाननर्थं इत्याशयेनाह-तस्मित्रिति । यथा पुष्पप्रवादिसमुद्धा लता मधुमासप्रवातिते तहसे सन्ति तत्प-रिणामलाहतासर्वसम्य तद्वदिखर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ अतएव विवे-किनो विषयदोषभावनया ब्रह्मभावनया च तत्क्षये वासनया सह सर्वोपि संसारः क्षीयत इत्याह--विवेकिन इति ॥ ४ ॥ उत्तरसंसारस्य तु वासनैव प्रवर्तिकेलाह-अस्या इति । स-लकी सकण्टकगुल्मविशेषः ॥ ५ ॥ चितौ अज्ञानाश्रयजीवचै-तन्ये ॥ ६ ॥ परमार्थीपलापहेतुं तदावरणमञ्जानं दर्शयितुं परमार्थे प्रथममाह-चिन्मात्रादिति । शून्यादद्वयाचिन्मात्राहते वेदनात्मा न सोस्खन्य इति या प्रतिभा स्थिरा। एषाऽविद्या भ्रमस्त्वेष स च संसार आततः॥ ८ अनालोकनसंसिद्ध आलोकेनैव नइयति। असदात्मा सदाभासो बालवेतालवत्क्षणात्॥ ९ सर्वदश्यदशो बाधे बोधसारतयैकताम्। यान्त्यशेषमहीपीठसरित्पूरा इवार्णवे ॥ 80 मृन्मयं तु यथा भाण्डं मृच्छून्यं नोपलभ्यते। चिन्मयादितया चेत्यं चिच्छन्यं नोपलभ्यते ॥ ११ बोधावबुद्धं यद्वस्तु बोध एवं तदुच्यते। नाबोधं बुध्यते बोधो वैरूप्यात्तेन नान्यता ॥ १२ द्रष्ट्रदर्शनदृरयेषु पत्येकं बोधमात्रता। सारस्तम तदन्यत्वं नास्ति किंचित्खपुष्पवत्॥ १३ सजातीयः सजातीयेनैकतामनुगच्छति । अन्योन्यानुभवस्तेन भवत्वेकत्वनिश्चयः॥ 88 यदि काष्ट्रोपलादीनां न भवेद्वोधरूपता । तत्सदानुपलम्भः स्यादेतेषामसतामिव ॥ 26 यदा त्वेषा ज दृइयश्रीबीधमात्रैकरूपिणी। तदान्येवाप्यनन्यैव सप्ती बोधेन बोध्यते ॥ १६

चित्सत्तास्फूर्तिभ्यामेव जगत्सत्तास्फूर्त्योः सर्वानुभवसिद्धलादि-खर्षः । स्वतः सत्ताम्फूर्त्या तु नान्यत्किचित्प्रसिद्धम् । यथा खे श्रून्यत्वेतरदप्रसिद्धं तद्वदित्यर्थः ॥ ७ ॥ एवं सर्वतः सर्वदा स्फुरन्नपि स चिन्मात्ररूपो वेदनात्मा देहेन्द्रियादिभ्योऽन्यो नास्ति न भाति चेत्यसत्वाभानापादिका या स्थिरा अनादिः प्रतिभा आन्तिरेपैवावरणशक्तिप्राधान्येनाविद्याविक्षेपशक्तिप्रा-भान्येन भ्रमस्तदुभयफलरूपेण संसार इत्यर्थः ॥८॥ अविद्यामूल-प्रसाधनफलं दर्शयति-अनालोकनेति ॥ ९ ॥ भेदकदृश्यो-पाधिबाधे सर्वेदधीनामैक्यं दर्शयति-सर्वेति ॥ १० ॥ 'चि-न्मात्रादमलाच्छुन्याहते किंचित्र विद्यते' इति यदुक्तं तदृष्टा-न्तैषपपादयति—मृन्भयमिलादिना । चिन्मयतया आदिपदान रसन्मयतया च ॥ ११ ॥ चिन्मयतया स्फुरतो विमर्शे चिदै-करस्यमेव पर्यवस्यतीत्याशयेनाह्-वोधित । वेरूप्याद्विरद्ध-पलात् । बोधामेदं विना स्फुरणासिद्धरबोधस्य च बोधामेदा-बोगादिल्यर्थः ॥ १२ ॥ यदि द्रष्ट्रादित्रिपुट्या बोघेनाध्यासिक-तस्यानृतत्वाद्घिष्टानबोधसारैकरस्यमेव **ब्र्**यास्तर्हि सिद्धनित्याशयेनाह—द्रष्ट्रिति ॥ १३ ॥ परस्परमिळनेनाभेदा-पतिखु जलस्य जलेनेव सजातीयानामेव भवतीति जगतस्त-दनुभवमात्रत्वे अनुभवानामेकत्वे चिदेकलसिद्धान्त एव पर्थ-वसम इत्याह-सजातीय इति ॥ १४ ॥ काष्टादीनां दरयानां स्प्ररणामेदानभ्युपगमे शशश्वावदत्यन्ताभावमेव स्यादित्याह--यदीति ॥ १५ ॥ सिद्धान्तं तु नायं दोष इत्याह-यदेति ॥ १६ ॥ तथा जगद्वोधमात्रं बोधानतिरिक्तस्फूर्तिकलाययद-नतिरिक्तस्फ्रितिकं तत्तन्मात्रं यथा वायोः स्पन्द इत्यतुमानं दर्शयति—सर्वमिति ॥ १७ ॥ नजु द्रष्टान्ते कियाफियावती-

सर्वे जगद्वतं रह्यं बोधमात्रमिदं ततम्। स्पन्दमात्रं यथा वायुर्जलमात्रं यथार्णवः॥ १७ मिश्रीभूता अपि हाते जनुकाष्ट्रादयो यथा। मिथोऽनज्ञभवे मिश्रा ऐक्यं हाजुभवे मिथः॥ १८ अन्योन्यानुभवो ह्यैक्यमैक्यं त्वन्योन्यवेदनम् । यथाम्भसोः श्रीरयोर्चा न काष्ठजतुनोरिव ॥ १९ अहमित्येव बन्धाय नाहमित्येव मुक्तये । पतावन्मात्रके बन्धे स्वायत्ते किमराकता॥ २० चन्द्रह्रयप्रत्ययवन्मृगतृष्णाम्बुबुद्धिवत् । किमनुत्थित प्वायमसदेवाह्मुत्थितः॥ २१ ममेदमिति बन्धाय नाहमित्येव मुक्तये। पतावन्मात्रके वस्तुन्यात्मायत्ते किमक्षता ॥ २२ यः कुण्डबद्रन्यायो या घटाकाशयोः स्थितिः। स संबन्धोऽपि नवान्यमैपयं ह्यन्योन्यवेदनम् २३ अन्योन्यावेदनं त्यैक्यं भागशो गतमप्यसम् । अजडं वा जडं वापि नैकं रूपं विमुश्चति ॥ २४ नाजडं जडतामेति स्वभावा ह्यनपायिनः। यशाजडं जडं दृष्टं द्वेति तत्रास्ति नैकता ॥ २५

रवयवावयविनोश्च समवायेन मिश्रीभावमात्रं नखद्धन्तैक्यमि-त्याशक्का अनुकाष्ठयोवंहिर्मिश्रणेऽपि विवेकानुभवे मिश्रणादर्श-नादिह सनुभवेऽपि तहरानेन वैषम्यात्समवायासिद्धरिखाशये-नाह—मिश्रीभूता इति ॥ १८ ॥ अम्भसोः क्षीरयोर्वा अन्यो-न्यात्मतानुभवो क्षेक्यम् । स्टस्यपदार्थयोरपि तु तास्शमन्यो-न्यवेदनात्मकमैक्यमस्त्येव नतु जतुकाष्ठवत्संयोगमात्रमित्यर्थः ॥ १९ ॥ एवं सर्वदृश्यानां चिन्मात्रत्वेन तत्पदार्थचितोऽपरि-च्छिन्नतया नित्यमुक्तत्वे सिद्धे त्वंपदार्थस्याहमिति परिच्छिन्न-बुद्धिरेव बन्धाय तत्त्यागमात्रं मुक्तये इति फलितमिलाह-अहमित्येवेति ॥ २० ॥ तदेवोपपादयति—चन्द्रेति । असवहं किमुरिथतः । अनुरिथत एवंति योज्यम् ॥ २१ ॥ अहन्तात्यागे ममताबन्धः स्वत एवापैतीत्याशयेनाह-ममेति । आत्मायते स्त्राधीने ॥ २२ ॥ असता अहंकारेण सत्यस्पातमनः कुण्डबद-रन्यायेनान्तः प्रवेशेन तिरोधानं वा घटाकाशन्यायेन परिच्छेदो वा न संभाव्य एवेत्याह--य इति । येन संबन्धेन तिरोधानम-च्छेदो वा सिद्धेत्स संबन्धोऽप्यन्यमत्यन्तभिन्नमहंकारं कल्पयतो नास्ति । तस्माद्वास्तवैत्रयमेव चन्द्रद्विखबद्धेदेनाविद्यया विक-हिपत्रमेद्रहप्रस्थात्मनः स्त्रप्रकाशबळात्रमुरणमन्योन्यवेदनमिव भवतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ ये तु जैमिनीया वास्तवमेव जडवोधयो-रैक्यं तदेवारमरूपमिति मन्यन्ते तेषां तदेक्यं जाख्यांशगतं जड-मेव बोधांशगतमपजडमेवेत्येकमपि न मुखतीति जडांशे न स्फरेदेव चिदंशे स्फरदपि निर्विषयमेयेखन्योन्य।वेदनमेव त-दैक्यं स्यादिस्यर्थः ॥२४॥ कुतो न मुञ्जति तत्राह—नेति । हि स्मात्कारणादनपा मिन एव धर्माः खभावा इत्युच्यते । यच त्वया अजडमेवात्मरूपं जडमित्यंशान्तरतया दृष्टं तत् द्वैतिभिन्न- वासनावेशविक्षताः कुविकारशतात्मभिः। वजनत्यघोधो धावन्तं शिलाः शैलच्युता इव २६ व्युद्धानां वासनावातेर्नृतृणानामितस्ततः। तान्यापतन्ति दुःखानि तत्र वक्तं न पार्यते॥ २७

भ्राम्स्या भृद्रों करतलाहतकन्दुकार्भ लोकाः पतन्ति निरयेषु रसेन रक्ताः। क्केदोन तत्र परिजर्जरतां प्रयाताः कालान्तरेण पुनरन्यनिभा भवन्ति॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्नीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० मं० मङ्किबोधनं नाम पश्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षिंद्विशतिः सर्गः २६

विसष्ठ उवाच ।
संसारमार्गगहने पतितस्यापतित हि ।
धूलवृत्तान्तलक्षाणि कीटा इय घनागमे ॥
सर्व पव त्यिमे भावाः परस्परमसङ्गिनः ।
अटव्यामुपलानीय भावनेतेषु श्रृह्वला ॥
चित्तमान्ध्याय वृत्तान्तहुमेर्गहनविस्थितम् ।
रस्रजनया लोके यसन्त इव काननम् ॥
अहो बत विचित्राणि वासनावदातोऽवद्याः ।
भूतकेरनुभूयन्ते सुखदुःखानि जन्मसु ॥
अहो बतातिविषमा वासना यह्नद्याज्ञनः ।
अविद्यमानरेवायं भ्रमोऽन्तरनुभूयते ॥
आहादिनो मृतवतः गुद्धस्यालोककारिणः ।
द्यीतलस्याखिलायेषु क्रस्यन्दोश्च किमन्तरम् ॥
पूर्वापरमनालोच्य यिकचिद्यमिवाञ्चतः ।
निर्मर्यादस्य मृदस्य वालस्य च किमन्तरम् ॥

मेष। तत्र अजर्डेकता नास्त्येवेति न जडवोधेक्यात्मसिद्धिरित्यर्थः ॥ २५ ॥ एवं चेत्कथमात्मत्ववादिनो नानाविष्यं परस्परविरुद्धं वदिन्त तत्राह्—वासनावेशेति । कुविकारशतात्मिनः खस्व-षासनामिरावेशेरिममानेश्व बिलता विष्टताः पराग्द्रष्ट्यं तत्त्यं परीक्षमाणा अघोधो व्रजन्तीत्यर्थः ॥ २६ ॥ अतएव श्रौतह-ष्टिपरिश्रष्टानां खखवासनावातैर्व्यूहानामितस्ततो नीतानां नृतृ-णानां तानि नानायोनिजन्ममरणनरकादित्योकशास्त्रप्रसिद्धानि दुःखान्यापतिन्त ॥ २० ॥ तदेव वर्णयस्त्रपसंहरति—श्रान्त्वेति । वासनाभिमानानुसारिरागादिरसेन रक्तालोका जना नारीकरतलाहतकन्दुकमिव ध्यं श्रान्ला निरयेषु पतन्ति । तत्र विरं यातनाः क्रेशेन परितो जर्जरता प्रयाताः कालान्तरेष्ठि स्थावरकृभिकीटादिजन्मभिरन्यनिभा अन्यसद्या एव भवन्ति पुनर्मानुष्यं दुर्श्वभित्यर्थः ॥ २८ ॥ इति श्रीवासिष्ट-महारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे पञ्चविद्यान्तिसमः सर्गः ॥ २४ ॥

इह प्रषद्भयतेऽनर्थो भावनाद्गसरञ्जनात् । इच्छान्स्यानर्थसंशान्तिर्विवेकात्तरवदर्शनात् ॥ १ ॥ एवं स्थावरादियोनिरुक्षणे संसारमार्गे पतितस्य जीवस्याना-दिसंसारे बहुशो युत्तानि च्छेदनमेदनदहनक्षुतृहजराभयमरणा- लब्धमात्राणपर्यन्तं शुभाशुभमनुज्यतोः। आमिषं को विशेषोऽस्ति वद माकरमुढयोः॥ सर्वे एव त्विमे भावा देहदारधनादयः। क्षिप्रमाशुष्कलिकताशराविधशरारवः॥ 9 आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तमपि योनिशतेषु ते। आकर्ष्यं भ्रमतश्चित्तशान्तिनीस्ति शमा**रते**॥ १० पर्यालोचनमात्रेण बन्धगन्धो न बाधते । गच्छतो मार्गवैषम्यमिवालोकनकारिणः॥ ११ तघ नावहितं चित्तं कामः कवलयिष्यति। सावधानस्य बुद्धस्य पिशाचः किं करिष्यति ॥ १२ यथेक्षणप्रसरणं रूपालोकनमात्रकम्। संवित्यस्तिमात्रात्म तथा साहं जगत्स्थितम् १३ यथाक्षिसंवृतिः सर्वरूपालोकशमोऽरिहन्। संवित्संचरणं नाम सर्घदृश्यशमस्तथा॥ १४

दिरूपाणि वृत्तान्तलक्षाणि पुनरप्यापतन्ति हि ॥ १ ॥ तत्र च भावनैव मूलमित्याशयेनाह—सर्वे इति । श्रङ्खलावत्परस्पर-प्रन्थनहेतुः ॥ २ ॥ तस्याश्व मूलं विवेकान्धं रागद्वेषादिरसर-जितं पूर्वेवृत्तान्तवासनानिबिडितं चित्तमित्याशयेनाह—चित्त-मिति। रसो रागादिभौमध ॥ ३ ॥ ४ ॥ अविद्यमानैर्मिथ्या-भूतरेव त्रिपुटीरूपरथैंः ॥ ५ ॥ अतएव तीर्णभ्रमास्तत्त्वविदः मुखिन इति तान्प्रशंसति-आहादिन इति । विशेषणान्यत्रा-विमश्चोक्रयोश्चोभयत्र तुल्यानि योज्यानि ॥ ६॥ अविवेकि-नम्तु निन्दति-पूर्वापरमिति ॥ ७ ॥ आमिषं विषयं बिड-शामिषं च प्राणानां पर्यन्तो मरणं तदवधि अनुज्झतोरत्यजतोः। मकर एव माकरः, मत्स्यजात्युपलक्षणमेतत् ॥ ८ ॥ आञ्चष्क-सिकतानिर्मितशराव इव विशरारवी नश्वराः ॥ ९ ॥ इदानीं श्रोतृचित्तमेव संबोध्याह---आब्रह्मेति ॥ १० ॥ पर्याकोचनं विवेकसानमात्रेण । आलोकनं स्वपादन्यासप्रदेशावलोकनं त-स्कारिणः ॥१९॥ अवहितं सविवेकावधानम् । बुद्धस्य जा-गरूकस्य ॥ १२ ॥ साहंकारं जगत् निर्विवेकावधानसंवित्प्रसर्-मात्रमिखाह-यथेति । यथा रूपालोकनमात्रकमेवेक्षणस्य चक्षुषः प्रसरणं न तद्भित्रं किंचित्प्रसिद्धं तद्वत् ॥ १३ ॥ हे कामाधरिपदुर्भहृत्, यहिर्भुखसंविदः प्रत्यक्प्रवणवृष्ट्या संवरणं

असदेव जगत्साहं शुद्धा संवित्तनोति खे। ईषत्यसरणेनाश स्पन्दनं पचनो यथा॥ १५ सदिवासत्यमेबेदमकुर्वत्यन्यमेधते । मृदा हेस्रेच कुम्भत्वमपृथग्लभ्यमातमगम्॥ १६ शुन्यमात्रं यथा व्योम स्पन्दमात्रं यथानिलः। जलमात्रं यथोम्योदि संविन्मात्रं तथा जगत्॥ १७ अव्यष्टिछन्ननिर्भागसंविन्मात्रं जगन्नयम् । विद्धि शान्तं तथा ब्योम यथा वारिणि पर्वतम् १८ निर्वाणस्योपशान्तस्य श्रस्य सोदेति शीतता । अन्तर्यत्रेन्द्रचोऽप्येते दीप्तज्बलनबिन्दवः॥ १९ किं केन कथमेकान्तशान्ताततशिवात्मनि । निरालोको परालोकः शून्ये जगति जन्यते ॥ २० या सत्ता ब्रह्मराब्दाख्या रूपं सर्वस्य तन्निजम्। न यत्र काचिद्वाधास्ति सर्वे तन्मयमव्ययम्॥ यदिदं तु पदार्थत्वं यत्र वाधानुभूयते । यद्यम बाधनं प्रेक्ष्य तन्न विद्या खपुष्पवत् ॥ २२ **ब्र एवापगतस्वान्तं शान्तमारस्व महाइमवत् ।** असी न मननं मानमनन्तमजमव्ययम्॥ २३ आकाशकल्पे स्वे भावे तिष्ठतोऽङ्गानिवेदनम्। भवत्यभ्यासदार्ळ्यन विना स्वप्नविकारवत्॥

स्वात्मन्यूपरमः ॥ १४ ॥ साहमहंकारसहितं जगत् शुद्धा सं-बिदेव अविवेकप्रयुक्तिनेषत्प्रसरणेन खे आवृतखखहपाकाशे तनोति ॥ १५ ॥ ब्रह्मसंचित्परमार्थतोऽन्यमकुर्वत्येवासत्यमेव सदिवेदं जगद्रपमेधते जुम्भते । कथमसत्यमिति ज्ञायते तत्राह-मृदेति। यथा मृदा हेम्रा वा आत्मगं खात्मनि कल्पितं कुम्भल-मपृथालभ्यं पृथकृत्य लब्धुमशक्यं तथेदं जगदपि चितः पृथकृत्य लन्धुमशक्यम्।यदि सत्यं स्यात् पृथक् लभ्येतेति भावः ॥१६॥ यग्रदपृथग्लभ्यं तत्तत्पृथक्सताश्रुन्यमिति हेमादा व्याप्ति दर्शय-ति-शून्यमात्रमिति ॥ १७ ॥ अव्यवन्छिनेति सजातीयभेद-निरासः । निर्भागेति खगतमेदनिरासः । वारिणि प्रतिबिध्वतं पर्वतं पर्वतसद्दं बृहत्तरक्षं वा ॥१८॥ इत्थं जगत्तत्वं जानतो न सांसारिकतापप्रसिक्तरित्यादायेनाह—निर्वाणस्येति। सा सर्वी-रकृष्टा शीतता सर्वतापोपशान्त्युपलक्षिताऽऽह्वादता यत्र।यदृष्ट्ये-ति यावत् ॥१९॥ तत्र प्रकाशान्तरप्रसक्तिरपि नास्तीत्याह-किमिति । जगति शिवे शून्ये सति अपरालोकः किस्वरूपः केन साधनेन कया च कियया जन्यत इल्पर्यः ॥२०॥ तदेव सर्ववस्तूनामबाध्यं स्त्ररूपमित्याह-येति ॥ २१ ॥ बाध्यं ख-रूपं तर्हि कि तत्राह्—यदिति । पदार्थत्वं नामरूपभावः । तम तस्य बाधनं चादाम तस्योत्पत्त्यादिविकार्षद्वं तत्सर्वं प्रेक्ष्य सम्यग्विमृश्यापि न विद्यः । यतस्तत्खपुष्पवत्तुच्छमेवेत्यर्थः ॥ २२ ॥ तश्व रूपं मनोविकल्पितं मनोपगमेऽपैतीति शान्त-मास्खेलाइ-इ एवेति।सान्तापगमेन होप्यपगमिष्यतेवेति कथं इ एवास्खेत्युच्यते तत्राह-असाविति।मनोपगमे हि नामरूपा- निरुपादानसंभारमभित्तावेव चेतति। ब्राह्मं कर्त जगिश्चत्रं न कश्चिता न किंचन ॥ तनोति यत्तदात्मैव तस्य तत्र तथा स्थितम्। दृश्याभावादसदृश्यं तेन कः क करोति किम् २६ अहं सुखीति सुखिता अहं दुःखीति दुःखिता। सर्व पव स्वरूपस्था व्योमात्मानोऽपि पार्थिवाः२७ सर्वेषामेव भावानां चिदाकाशात्मनामपि। मिथ्यैव स्वप्नशीलानामिव पार्थिवता स्थिता ॥२८ अहंत्वोल्लेखतः सत्ता भ्रमभावविकारिणी। तदभावात्स्वभावेकनिष्ठता शमशालिनी॥ २९, हेम्नः फटकशब्दार्थी व्यतिरिक्तो यथास्ति ते। व्यतिरिक्ता तथा सत्या नाहन्तास्ति शमात्मनः ३० निर्वाणो निर्मेना मानी कर्ताऽकर्ता च शीतलः। इत एव शान्त एवास्ते शुन्य एवाभिपूरितः॥ निर्वासनास्पन्दपरो यन्त्रपुत्रकगात्रवत् । स यथास्थितमेवास्ते शः संव्यवहरन्नपि ॥ 32 यथा मञ्जकसंस्थस्य स्पन्दते नेव वा शिशोः। अङ्गानि स्वानुसंधानं विनेवंविदितात्मनः॥ 33 निःसंबोधैकबोधस्य निराशेहैषणाशिषः। शान्तानन्तात्मरूपत्वादनुसंधानता कुतः॥ ३४

त्मकमननं विकल्पनं तन्मानचक्षुरादिचाऽपगच्छेत् असौ इस्त तथा न किलनन्तमजमव्ययं ब्रह्मवेति नापगच्छतीलर्थः ॥२३॥ हे अङ्ग, आकाशकल्पे स्वं आत्मभावे मनीवाधेन तिष्ठतो इस्य नामरूपयोरनिवेदनमप्रतीतिरेव भवति, यतस्तत्स्वरू-पावस्थित्यभ्यासदार्व्याभावादेव सप्तविकारवन्मनस्युदेतीत्यर्थः ॥२४॥मनोविकल्पमात्रं जगदिति कथं ज्ञायते तत्राह-निरुपा-दानेति। यतो बाद्धं हैरण्यगर्भ मन एव जगतः कर्तृ निर्मात तच निरुपादानसंभारं निरस्तरअकद्रव्यत्लिकाकूर्वादिसामग्रीकमेव जगित्रमिती निराश्रय एव संकल्पमात्रेण चेतति परयति । न कथिद्वा मनोतिरिक्तः कर्ता न किंचन कार्यं च मानसे खप्नादौ टप्टमित्यर्थः ॥ २५ ॥ तम मनो यत्तनोति विस्तारयति तत्र सर्वत्र मनोराज्यादाविय आत्मा खयमेव तथा तत्तद्वस्लाभासा-त्मना स्थितम् । इत्थं स्वातिरिक्तदश्याभावात्केन कः कि क करोति, न कश्चित्केनचित्कचित्किचिदित्वर्थः ॥ २६ ॥ इत्थं च सुखदुःखे तत्साधनीभूताः पार्थिवादिविषयाश्च कल्पनीपरमे शूचहूपा आत्महूपा वा संपन्ना इत्याह—अहामिति ॥ २७ ॥ पार्थिवानामप्यपार्थिवता स्वप्नशैलवत्संभावनायेत्याह—सर्वपा-मिति ॥ २८ ॥ एवंच सित यत्फिळितं तदाह—अइंत्योहेखत इलादिना ॥ २९ ॥ २० ॥ ३९ ॥ निर्वासनलादेव असम्ब-परः सन्दामिमानशून्यः। यश्त्रनिर्मितशिळादिप्रतिमाशरीर-वत् ॥ ३२ ॥ देहस्पन्ददशाय।मेच तदस्पन्दसंभावनाय दृष्टा-न्तमाह—यथेति । स्पन्दमानदोलामधके सप्तस्य शिशोरङ्गानि नैव स्पन्दन्ते तद्वरसंभावनीयमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ ननु तस्य अद्गष्टरपटश्यस्याद्यप्रस्थापक्रिपणः।
कुतः किलानुसंधानमनपेक्षस्य पश्यतः॥ ३५
अपेक्षेव घनो वन्ध उपेक्षेव विमुक्तता।
सर्वशब्दान्विता तस्यां विश्रान्तेन किमीक्ष्यते॥३६
पार्थियत्वे शरीरेऽस्मिन्स्वस्वप्राङ्ग श्वासति।
अममाश्रात्मनि कुतः क कस्य किमपेक्षणम्॥ ३७
उपशान्तसमस्तद्दं विगताखिलकौतुकम्।
निरस्तवेदनं क्षेन विदा केवलमास्यते॥ ३८
मिद्विनेति श्रुतवता ततो मोहो महानपि।

अशेषेण परित्यक्तक्षेत्र त्विश्वाहिना ॥ ३९ प्रवाहापतितं कार्यं कुर्वतापास्तवासनम् । तेन वर्षशतस्यान्ते स्थितमद्रौ समाधिना ॥ ४० तत्राध्यावत्पाषाणसमधर्मा स तिष्ठति । स शान्तकरणो योगी बोध्यमानः प्रबुध्यते ॥ ४१ एतेन राघव विवेकपदेन शान्ति-मासादयोदयवता मनसा विहर्तुम् । मा दीनतां वजतु रागमयी मतिस्ते श्रीणा श्रणादसिछेलेव शरद्धनाली ॥ ४२

इलापें श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० मक्सपा० निर्वाणसैमाप्तिनीम पश्चिशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंदातिः सर्गः २७

वसिष्ठ उवाच ।

निर्वाणो भय शान्तातमा यथाप्राप्तानुवृत्तिमान् ।
सम्नेवासत्समः सौम्य स्फिटिकादिव निर्मितः ॥ १
एकस्मिन्नेव सर्वस्मिन्संस्थिते विततात्मनि ।
नैकस्मिन्न च सर्वस्मिन्नानाताकलना कुतः ॥ २
आधन्तरिहतं सर्वं व्योम चित्तत्वनिर्भरम् ।
शारीरोत्पत्तिनाशेषु का चित्तत्वविर्भरम् ॥ ३
स्फुरन्ति हि जडकीडाश्चित्रमत्कारचापलात् ।
अचापलात्प्रतीयन्ते तरङ्गा इव वारिणि ॥ ४
यथा श्रभ्राम्बदे वस्त्रशङ्का न फलभागिनी ।

खरूपक्षानमेव देहायनुसंघानं किं न स्यातवाह—निःसंबोः धेति । निःसंबोघो बहिर्मुखचित्तपृत्तिस्तच्छुन्याखण्डवोधरूपस्य। चिर्वाप्ये विषये आशा।प्राप्तविषये स्नृह एपणा। मनोरथैराशास-नमाशीरिति भेदः ॥ ३४ ॥ द्रष्ट्रादित्रिपुटीबाधादपि तस्य ना-नुसंधानतेत्वाह-अद्रष्टुरिति । खयं चापरूपिणो निराकारस्य ॥ ३५ ॥ सर्वशब्दान्विता उपेक्षा सर्वोपेक्षेत्र विमुक्ततेत्यर्थः । तस्यां पूर्णकामतायां विश्वान्तेन किमीक्यते अपेक्यते । 'ईप्स्यते' इति पाठः साधुः ॥३६॥ शरीरार्थं हि सर्वेष्यपेक्षते । तस्य स्वा-प्रशरीरादिवद्वाधे सति न कस्यचिदपेक्षाप्रसक्तिरित्यर्थः ॥३०॥ उपसंहरति--उपशान्तेति ॥ ३८ ॥ मुख्याधिकारिलान्मह्निनः सकुच्छवणमात्रेण मोहनियुत्तिमाह—मिद्रनेति ॥३९॥ ४०॥ ॥ ४१ ॥ हे राघव, लमेतेन महिपरिगृहीतोपायेन ज्ञानेऽभ्यद-यवता मनसा विवेकपदेन खात्मानन्दे विहर्तुं शान्तिमासादय। ते मतिः रागमयी सती असिंछला शरद्धनावलीव क्षणात क्षी-णविवेका भूला दीनतां मा वर्जालल्यर्थः ॥ ४२ ॥ इति श्री-वासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पर्डिंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

चित्तस्यन्दे चितः स्पन्दभ्रमाहिश्वविभूतयः। चित्तशान्त्रयेव तच्छान्त्या स्वरूपस्थितिरीयंते॥ १॥ स्फटिकान्निर्मितः प्रतिमापुरुषो यथा सन्नपि दष्टिप्रसरानिरोधि- देहोऽयमहमित्येषा तथा शङ्का न वास्तवी॥ ५
मा वस्तुनि निमग्नस्त्वं भव भूरिभवप्रदे ।
वस्त्वनन्तसुखायाद्यं भव्यं भावय भूतये॥ ६
चिद्योमानन्तमेवासिक्षेयत्तास्ति समात्मनः।
इत्येव परमं वस्तु वस्तु तत्परमस्तु ते॥ ७
एवं निश्चयवान्नाम त्वमेवासि निरञ्जनः।
ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं सत्यं चापि न किंचन ८
द्रष्टा दृश्यं दृश्नं च चित एव विभूतयः।
अतत्तत्संविदो नान्यद्ध्यानं ध्येयमस्ति च॥ ९

लादसःसमस्तद्वरस्वारमाद्वैतदष्टिप्रसरानिरो**धिलादसःसमः** ॥१॥ प्रबोधात्प्रागेकस्मिन्नव सर्वात्मतया स्थिते प्रबोधे तु नैकस्मिन्न च सर्वस्मिन् । व्यष्टिसमष्टिभावबाधादिति भावः ॥ २ ॥ ननु प्रतिशरीरमुत्पत्तिनाशाभ्यां सप्तवितस्तिपरिमाणेन च परिच्छे-दानुभवामानेवास्त नेत्याह-आधन्तेति ॥ ३॥ जडसर्गा-दिरूपाः क्रीडाः । चिचमरकारो मनस्तचापलात् ॥ ४ ॥ वस्न-शहा वस्रलोत्प्रेक्षा न परमार्थावधारणफलभागिनी तद्वत । शक्का भ्रान्तिः ॥ ५ ॥ अवस्तुनि मिध्याभूते देहादावहंभाव-निममो मा भव । भूतये मुक्तये ॥ ६ ॥ कि तद्वस्तु यद्भावनं कार्य तदाह-िच्योमेति । तादशवस्त तत्परं ते मनोस्त्व-व्यर्थः ॥ ७ ॥ तस्य किं फलं तदाह—एवमिति । न चायं नि-श्रयोऽनिश्रयो ध्यानध्यात्रादित्रिपुटीबाधकखादित्याश्रञ्ज तस्या-बाध्यलमेव युक्तमिलाशयेनाह—ध्यातेति । कुतस्तस्याबाध्यत्वं तत्राह-सत्यं चेति । यतो ध्यात्रादित्रये किंचिदपि सत्यं ने त्यर्थः ॥ ८ ॥ तर्हि दर्शनादित्रिपुट्या अपि तत्सामान्यात्कथं तद्वाधकलमित्याशक्का विशेषमाह—इप्रेति । दर्शनं हि प्रमा-णजन्यं वस्तुतस्त्रमेव न पुरुषतस्त्रमिति पृत्यमिव्यक्तपरमार्थ-चित्रप्राधान्य।दशाननिवर्तकलाच परमार्थचित एव विभ्रतयो द्रष्ट्रादयः । ध्यानं तु न प्रमाणजं नापि वस्तुतन्त्रं पुरुषेच्छानु-

१ सम्बगाप्तिः समाप्तिः.

3

उद्यति प्रतिपचन्द्रे वहति प्रलयानिले।
आत्मतस्वं समं सौम्यं न क्षुभ्यति न शाम्यति १०
यथा नौयायिनः स्थाणुत्तरुशैलादिवेपनम्।
यथा शुक्तो रजतधीस्तथा देहादि चेतसः॥ ११
यथा देहादि चित्तस्य तथा देहस्य चित्तकम्।
तथैव जीवः परमे पदे द्वैतमतः कुतः॥ १२
सर्वमेकमिदं शान्तं ब्रह्म बृहितवेदनात्।
न किंचिज्जगदाद्यस्ति भ्रान्तिरन्या न विद्यते॥ १३
न विद्यते यथा व्योम्नि वनं स्नेह्म सैकते।
विद्युच्छशाङ्कविम्बं च तथा देहादि चेतसि॥ १४
अविद्यमान प्वास्मिन्मा विभीहि जगद्भमे।
पतदेव परं सत्यं विद्वि सत्यविदांवर॥ १५

जगदस्त न सत्तेति यासी झान्तिस्तवाद्य सा।
शान्ता मदुपदेशेन किमन्यद्वन्धकारणम् ॥ १६
स्थाल्युदञ्चनकुम्भादि यथा मृन्मात्रकं तथा।
चित्तमात्रं जगदिदं क्षीणं तद्य विचारणात् ॥ १७
आपत्सु संपत्सु भवाभवेषु
शान्तेषणा हर्षविषादसंवित्।
सौम्यादहंभावविदा विमुक्तो
यथास्थितं तिष्ठ विळीयमास्त्व ॥ १८
यथास्थितं वस्त्विधगम्य राम
स्थितोऽसि चेद्रा स्वकुळाम्बरेन्दो।
तद्यपंशोकैपणदूपणादि
विमुच्य वा तिष्ठ यथेच्छमास्स्व ॥ १९

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ॰ मुख्ययोगोपदेशो नाम राप्तविंशतिः सर्गः॥२०॥

अष्टाविंदातिः सर्गः २८

8

श्रीराम उवाच । बीजाङ्कराणां पुरुषकर्मणां जन्मकारिणाम् । दैवशब्दार्थयुक्तानां तत्त्वं वद विभो पुनः ॥

सारि चेति कियाविशेषमात्रलादविद्याविभूतय एव ध्यात्रादय इति बाध्या इत्यर्थः । विशेषान्तरमप्याह—अतदिति । अतत् असंवित् जडवस्तु सर्वं तत्संविदोऽन्यत् पृथम्भूतं न दष्टमतो दृश्यं दर्शनानुसार्येव । ध्येयं तु ध्यानं विनापि ध्यानं अस्ति स्फरित चेति न वस्तुनो ध्यानानुसारितेति विश्लेष इत्यर्थः ॥ ९ ॥ संविदस्त निर्विकारत्वं सर्वतो विशेष इत्याह—उद्य-तीति । तथा समुद्रः प्रतिपचन्द्रे उद्यति सति क्षुम्यति प्रलया-निले बहुति शुष्यति च न तथा आत्मतत्त्वमित्यर्थः ॥ १० ॥ तर्हि तस्या द्रष्ट्रादित्रिपुटी कथं विभृतिरिति चेद्विवर्ततयैवेत्याशये-नाह-यथेति । चिति चेतसो दृष्या भ्रम इत्यर्थः ॥ ११ ॥ एवं देहरूमा चित्तमपि कल्पितम्। तदुभयदृष्ट्या जीवः कल्पित-स्तदृष्ट्या तदुभयं किएतिमिति शुद्धचिति विवर्ताः सर्वे इत्याह-यथेति॥१२॥ ब्रह्मदृष्या तु तदेवैकमित्याह—सर्वमिति ॥१३॥ चेतसि तत्त्वदर्धौ ॥ १४ ॥ विभीहि भयं प्राप्नुहि ॥ १५ ॥ जगदेवास्ति अद्वितीयब्रह्मसत्ता नास्तीति या श्रान्तिस्तवा-सीत्सा ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे राम, त्वं सौम्यान्मदुपदेशादहं-भावरूपया विदा विमुक्तः सन् संपत्सु शान्तंपणाहर्षसंवित् आपत्सु च शान्तविषादसंवित् सन् भवाभवेषु विभवानामुत्क-र्यापकर्षेषु यथास्थितं समं तिष्ठ । मदुपदेशविस्मरणेन विलीय खरूपस्थितिदाद्यं विद्वाय मा आस्स्य ॥ १८ ॥ तत्कि तत्त्व-**ज्ञानोत्तरं** प्रमादात्प्रारब्धप्रावस्याद्वा हुपैशोकानुवृत्त्यपराधेन पु-नर्बन्धो भविष्यति नेत्याह—यथास्थितमिति । हे खक्छाम्ब-

वसिष्ठ उवाच । दैवकर्मादिपर्यायं घटादि घटतावधि । संवित्स्पन्दनमेवेदं लोके पुरुपतां गतम्॥

रेन्दो राम, त्वं यथास्थितं ब्रह्मात्मैक्यवसु अपरोक्षतया सम्यगिधनम्य स्थितोसि चेत्तत्ताहिं हपंशोकेपणालक्षणानि दूषणानि
चित्तसंतापकानि विमुच्य वा तिष्ठ, यथेच्छं वा तान्यनुवर्तमान आस्स्वेति प्राक्तनवाशन्दस्यात्रान्वयः । तव दृष्टसुखार्थः
मया विलीयमास्स्वेत्युक्तं नतु तावता मुक्तौ संदेह इति भावः
॥ १९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणे तात्पर्यप्रकाशे
निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे सप्तविंदातिनमः सर्गः ॥ २० ॥

बीजाक्कराणां पुरुषकर्मणां जन्मकारिणाम् । दैवशब्दार्थयुक्तानां तत्त्वं भूयोऽत्र वण्येते ॥ १ ॥

बीजानासुपादानानामङ्कराणासुपादेयानां पुरुषाणां कर्नृणां कर्मणां तदीयविहितनिपिद्धोदासीनिकियाणामिति दृष्टसामधीणां देवशब्दार्थेनाद्धेन निमित्तेन युक्तानां सर्वेषां जन्मपरंपरालक्षण-संसारानर्थकारिणां तत्त्वं प्राग्विशकितीक्तमपि पुनः पिण्डी-कृत्व कथयेत्यर्थः ॥ १ ॥ तत्रादी दैवस्य तत्त्वं कर्म कर्मण-स्तत्त्वं पुरुषस्तत्त्वं मनोश्पिथितस्पन्दसस्य तु निदातमेव तत्त्वं यिश्वदातमेव प्रथमं वहु स्यां प्रजायेथेति प्राथमिकसंकल्पलक्ष-णेन नित्त्पन्दनेन सम्प्रिव्याप्टिमनो भवति ततो देहाकाराध्यासेन पुरुषस्ततः कर्माण कुर्वन्तुण्यपापाद्धक्षपदेवतां नाष्य तद्भोगाय घटादिद्वयात्मना तद्भतगुणिकयावात्मना च घटला-दिसामान्यं तेन जगद्भूपेण विवर्तत इति देवकर्मादिकारणद्याद्द-रुपं घटादि घटताविध कार्यसन्दर्भं च तत्त्वतिश्वरस्पन्दपर्या-

संवित्रपनदाहते पुंस्तवं कर्म वा कीहशं भवेत्। घटावटपटाचात्मा ह्येतेनैव जगत्कृतम् ॥ प्रयर्तते जगह्नक्ष्मीः संवित्स्पन्दात्सवासनात् । निवर्तते हि संसारः संवित्स्पन्दाद्वासनात्॥ ४ अवासनं हि संवित्तेः स्पन्दमस्पन्दनं विदुः। सस्पन्दोऽप्यस्फ्ररत्स्पन्दो येनावर्तादिनोह्यते ॥ मनागपि न भेदोऽस्ति संवित्स्पन्दमयात्मनोः। कल्पनांशादते राम सृष्टी पुरुषकर्मणोः॥ जलवीच्योर्यथा द्वित्वं संकल्पोत्थं न वास्तवम् । तथेह चित्परिस्पन्दरूपयोर्जन्तुकर्मणोः॥ कर्मेत्र पुरुषो राम पुरुषस्यैव कर्मता। पते हाभिन्ने विद्धि त्वं यथा तुहिनशीतते ॥ हिमं यत्तद्यथा शैत्यं यच्छैत्यं तद्यथा हिमम्। यत्कर्मासौ तथा जन्तुर्यो जन्तुः कर्म तत्तथा॥ ९ संवित्स्पन्दरसस्यैच देवकर्मनरादयः। पर्यायशब्दा ने पुनः पृथक्षमीद्यः स्थिताः॥ स्पन्दात्संविज्ञगद्वीजमस्पन्दाद्यात्यवीजताम् । अङ्करश्च तदेवान्तः स्थितत्वादङ्करश्चियः॥ ११ चिरवं च क्षचिदस्पन्दं कचित्स्पन्दं स्वभावतः। अनन्तमेकाणेवयदिकालकमसंस्थितम्॥ १२ संवित्स्पन्दो वासनावानिह वीजमकारणम्। भूत्वा कारणतामेति देहादेरङ्करावलेः॥ १३ तृणवहीलतागुल्मबीजान्तरगतरपि।

यमित्याशयेनोत्तरमाह—देवेति ॥२॥ अतएव हि पुरुष-कर्माद घटावटादि च संविद्धीनसत्तास्कृतिकं सर्वेरनुभूयते संविद्विवर्तत्वानभ्यपगमे तु सत्तास्फूर्तिश्चन्यं तत् कीदशं भ-बेत् । अलीकमेव स्यादित्यर्थः ॥ ३ ॥ सर्वस्य संवित्स्पन्दमा-त्रत्वे वैचित्र्येणोद्भवे च तन्नियुत्ती निमित्तमाह-प्रवर्तत इति ॥ ४ ॥ येन हेतुना आवर्तादिना स्वान्तःप्रवेश्यमानस्तरङ्गः सस्पन्दोऽप्यन्तःसमुद्रमात्रतामापर्यमानः अस्फुरत्स्पन्दः एवो-ह्यते वितर्क्यते इत्यर्थः ॥५॥ अतएव चितः स्पन्द एव प्रधा-द्याकारता तनिवृत्तिरेव निराकारतेति स्पन्दपुरुपयोः परस्परं विमर्शेन भेद इस्याह—मनागिति ॥ ६ ॥ अधिष्ठानाद्धेदस्त सुतरां नास्तीत्याह—जलेति । जन्तुः पुरुषः ॥ ७ ॥ अभिन्ने इति । तथाच श्रुतिः 'अथ वर्मणामारभेरगेतदेषामुक्थमतो हि कर्माण्युत्तिष्टन्ति दिति ॥ ८ ॥ तथाच कियमाणे पुण्यपापे भाविदेहस्य तद्भोग्यस्य च पूर्वावस्थे इसर्थः ॥ ८ ॥ एवं च यदुक्तं देवक्रमीदि पर्यायमिति तत्सिद्धमित्याह—संविदिति ॥ १० ॥ बीजाङ्कराणामिति प्रशस्योत्तरमाह-स्पन्दादिति । तद्वीजमेवान्तःसृक्ष्मावयवरूपं निगतमध्यञ्चर इत्यर्थः ॥ १९॥ चित्त्वं चिरस्वभाव ईटशो यहिकालकमसंस्थितं स्पन्दं कचित-

जते क्रचिवेद्यर्थः ॥ १२ ॥ वासनावासवान्भूत्वा अकारणमपि कारणतामेति ॥ १३ ॥ अवान्तरबीजवेषेऽवस्थितः स एव सर्वत्र बीजमवान्तरवेषास्त्र तस्य कार्यवेषविशेषव्यवस्थार्थमि-त्याशयेनाह-तृणेति । बीजान्तराणां गते व्यवस्थितकार्यप्र-वृतेः । नन्वेवं तदन्तरप्यनुगतं बीजान्तरं स्यादिखनवस्थामा-शङ्गाह-तस्येति ॥ १४ ॥ यदि बीजान्तर्गता शक्तिरेवाहर इति मन्यसे तदापि न शक्तितद्वतोर्भेद इत्याशयेनाह—नेति ॥१५॥स्थावराणां वटादीनामक्करम् । नक्ररान्कठिनान् । तथाच स्मरन्ति 'भूजलादिखरूपेण बीजमाविश्य सर्वकृत् । खयं काल-खरूपेण विद्ध्यादञ्करोदयम्॥'इति॥१६॥ वञ्जसारानितिः हढा-न्प्रवालादीनमृदुतरादङ्करात्क उल्लासयितुं निःसारयितुम् ॥१७॥ शुक्रशोणिताम्यां देहनिष्पादनेऽप्ययमेव न्याय इखाह-प्राणीति ॥१८॥१९॥ संविदो विस्फुरणा स्वन्दाः ॥ २० ॥ कर्म दैवम् । परस्परमपि मेदो नास्ति वस्तुन्यथिष्टानेपि मेदो नास्ति ॥२१॥ इत्थं श्रीतमभेदं यो न पश्यति तं निन्दति—द्विलमिति । द्वित्वं भेदम् । तयोबीजाङ्करयोरपि । महते पशवे तद्रपशु-त्वेन स्थिताय, महते ब्रह्मणे नम इल्य्यों वा ॥ २२ ॥ वासना-संगप्रयुक्ता अस्य वीजता वासनाद।हेऽपेतीत्वाह—संवित्तेरिति ॥ २३ ॥ २४ ॥ यदि तु बासनैव सङ्गस्तदुच्छेद एवाङ्गतेति

बीजं संवित्स्पन्द एव तस्य बीजं न विद्यते ॥ न बीजाङ्करयोर्भेदो विद्यतेऽदृयौष्ण्ययोरिव। बीजमेचाङ्करं विद्धि विद्धि कर्मैव मानवम् ॥ १५ चित्स्फुरन्ती भूमिकोशे करोति स्थावराङ्करम्। स्थूलान्स्क्ष्मान्सृदुकृरान्पयोबुद्धदुकानिव ॥ १६ चिता विना धराकोशादखन्तपरिपेलवात् । अङ्करान्वज्रसारांश्च क उल्लासचितुं क्षमः॥ १७ प्राणिवीर्यरसान्तस्था संविज्ञंगममाततम्। तनोति लतिकान्तस्थो रसः पुष्पफलं यथा॥ १८ यदि सर्वगता संविद्धवेत्रातिवलीयसी। तत्क उल्लासने शक्तः स्याद्देवासुरभूभृताम्॥ १९ जंगमानां स्थावराणामेतदाद्यं च वीजकम्। संविद्धिस्फुरणमात्रमस्य वीजं न विद्यते॥ 20 वीजाङ्करविकल्पानां क्रियापुरुपकर्मणाम्। ऊर्मिवीचितरङ्गाणां नास्ति भेदो न वस्तुनि ॥ २१ द्वित्वं नृकर्मणोर्यस्य बीजाङ्करतया तयोः। विपश्चित्परावे तसी महतेऽस्त सदा नमः॥ २२ संवित्तेर्जनमबीजस्य योऽन्तस्थो वासनारसः। स करोत्यञ्जरोल्लासं तमसङ्गाग्निना दह ॥ २३ कुवैतोऽकुर्वतश्चेव मनसा यदमज्जगम्। द्यभाद्यमेषु कार्येषु तदसङ्गं विदुर्बधाः॥ રય अथवा वासनोत्साद एवासङ्ग इति स्मृतः। यया कयाचिद्यनयान्तः संपादय तमेव हि॥ २५

ययैव बेत्सि ततया युक्तया पुरुषयत्नतः। बासनाङ्करनिर्मूलमेतदेव परं शिवम् ॥ २६ पौरुषेण प्रयक्षेन यथा जानासि वा तथा। निवारयाहंभावांशमेपोऽसौ वासनाक्षयः॥ ₹0 नास्त्येव पौरुषादन्या संसारोत्तरणे गतिः। निरहंभावरूपेऽस्मिन्वासनाक्षयनामनि ॥ 26 आधैव संविदस्तीह सोऽङ्करो बीजमस्ति तत्। तत्कर्म तथ पुरुषस्तद्दैवं तच्छुभाशुभम्॥ ર્ न वीजमादावस्त्यन्यन्नाङ्करो न च वा नरः। न कर्म न च दैवादि केवलं चिदुदेति हि॥ 30 नो बीजमस्ति न किलाङ्करकोपि वास्ति नाप्यस्ति कर्म पुरुषश्च न वास्ति साधो।

पकं तु चिस्वमुदितं द्यनयामिधानलक्ष्म्या नटः सुरनरासुरशोभयेव॥ ३१
दत्येव निश्चयमनामय भावयित्वा
त्यक्त्वा भृशं पुरुषकर्मविचारशङ्काम् ।
निर्वासनः सकलसंकलनाविमुकः
संविद्वपुर्नेनु यथाभिमतेच्छमास्स्व॥ ३२
प्रशान्तसर्वेच्छमशङ्कमच्छचिन्मात्रसंस्थोऽखिलकार्यकारी।
आत्मैकरामः परिपूर्णकामो
भवाभयो राम शमाभिरामः॥ ३३

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो०निर्वाण० उत्तरार्धे शक्कातत्त्वसिद्धान्तप्रतिपादनं नामाष्टाविंशतिः सर्गः ॥२८॥

एकोनत्रिंदाः सर्गः २९

वसिष्ठ उवाच।

नित्यमन्तर्मुखस्तिष्ठ वीतरागो विवासनः।
चिन्मात्रममलं शान्तं कर्म सर्वत्र भावयन्॥ ?
आकाशविशदः प्राक्षश्चिन्मात्रैकघनस्थितिः।
समः सौम्यः समानन्दः स ब्रह्मा वृंहिताशयः॥२
शोकेष्वापत्सु घोरेषु संकटेप्ववटेषु च।
यथाप्राप्तेषु सर्वेषु खर्वेषूत्रतिमत्सु च॥ ३
यथात्रमं यथादेशं कुरु दुःखमदुःखितः।
वाष्पकन्दादिपर्यन्तं द्वन्द्रयुक्तसुखानि च॥ ४
समागमेषु कान्तानामुत्सवेषुदयेषु च।

यन्यसे तर्हि तत्त्वज्ञानाभ्यासेनैव वासनां दहेलाह-अथवेति । तं वासनोत्सादमेव ॥ २५ ॥ प्रागुक्तराजयोगलक्षणया हठयो-गरुक्षणया वा यथैव पुरुषयञ्चतस्ततया चिराभ्यस्तया युक्तया वासनाक्षयं सुकरं वेत्सि तथैव संपादयेखनुपज्यते । एतत्प्रस-गात्मरूपमेव ॥ २६ ॥ सर्ववासनानां चिद्रन्थिरहंभाव एव मूलमतस्तमेव निवारयेत्याह---पोष्ठपेणेति ॥२७॥ वासनाक्ष-यनामनि संसारोत्तरणे ॥ २८ ॥ अनाद्यनन्तप्रत्यगात्मसंवित्स-त्तर्येवाङ्करबीजादीनां सत्ता न स्वत इत्याह-आयोति ॥ २९ ॥ नरः पुरुषः ॥ ३० ॥ बीजादेः स्त्रतः सत्ताश्चन्यत्वे एकश्चिदा-सैवानृतैर्वाजादिवेषेर्वगद्भवा नृखतीति फलितमिलाह—नो बीजमिति । चित्त्वं चित्सक्षम् । अभिधानग्रहणं वाचारम्भ-णश्रुतिस्मारणार्थम् ॥ ३१ ॥ ननु हे अनामय राम, त्वं इति एवं रूपमेव निश्चयसदिग्धं भावियला पुरुषकर्मादानृतिबचार-शहां त्यक्ता निर्वासनः सन् यथामिमतेच्छं समाहितो व्यवह-रन्वा आस्खेत्वर्थः ॥३२॥ एतदेव स्पष्टयन्नुपसंहरति—प्रशा-न्तेति ॥ ३३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्थप्रकाशे आनन्दं भज सौम्यात्मा वासनाक्षान्तमृद्धवत् ५ भूतानि मृत्युकार्येषु संग्रामादिषु निर्देह । दावानलस्तृणानीव वासनाक्षान्तमृद्धवत् ॥ ६ क्षमागमेष्विखन्नोऽर्थं वकविष्यन्तयार्जय । अर्थोपार्जनकार्येषु वासनाक्षान्तमृद्धवत् ॥ ७ बलाद्धिदलयारोपानरीनिरिनेषूदन । वातो रिक्तानियाम्भोदान्वासनाक्षान्तमृद्धवत् ॥ ८ जनेषु करुणाहेषु धर्यं कुरु महात्मसु । आत्माराममना मीनी वासनाक्षान्तमृद्धवत् ॥ ९ मुदितो भव हर्षेषु दुःखेषु भव दुःखितः । करुणां कुरु दीनेषु भव वीरेषु वीर्यवान्॥ १०

निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥ व्यवहारे यथा प्राप्तलोकचर्यानुवर्तनम् । स्वरूपे तु सदा स्थैर्य रामायात्रोपदिश्यते ॥ १ ॥

यथाप्राप्तं कर्म सर्वत्र शत्रुमित्रोदाशीनपुरुषेषु यथायोग्यं भावयित्रणादयन् ॥ १ ॥ स ब्रह्मा ब्रह्मसमरस आबृहितो विस्तारित आश्रयो यस्य तथाविधो भव ॥ २ ॥ यथाप्राप्तेषु खर्वेष्वल्पेषु उन्नतिमत्सु महत्सु च शोकादिषु अन्तरदुःखितः सन् यथादेशं तत्तदेशधर्ममनुस्रस्य यथाक्रमं नाष्पकन्दनादिपर्यन्तं दुःखं दुःखविडम्बनं शीतोष्णादिद्वन्द्वयुक्तानि वस्रसकन्दन्नादिभोगसुखानि च कुर्विति द्वयोरन्वयः ॥ ३ ॥ ४ ॥ संक्षेपोक्तार्थमेव प्रपश्चयति—समागमेष्विल्यादिना । भोगवासनामिराक्षान्ता ये मूढाः कर्मठजनास्तद्वत् ॥ ५ ॥ भूतान्यधामिनकाणि दण्ड्यानि ॥६॥ भोविकद्वक्तमागतेष्वर्थोपार्जनकार्येषु । अर्थ धनम् ॥ ७ ॥ अरीन् शत्रून् ॥ ८ ॥ धेर्यमोदार्थधीरन्ताम् । मौनी अकत्थनः सन् ॥९॥ हर्षेषु हर्षस्थानेषु ॥ १० ॥

अन्तर्भुखः सदानन्दः स्वात्मारामतयान्वितः। यः करोति शमोदारस्तत्र कर्तासि नानघ॥ ११ आत्मभावनया साधो नित्यमन्तर्मुखस्थितेः। वज्रधारापि ते राम पतिता याति कुण्डताम् संकल्पकलनोन्मुके स्वसंविन्मात्रकोटरे। यस्तिष्ठत्यात्मनि स्वैरमात्मारामो महेश्वरः ॥ न तं भिन्दन्ति शस्त्राणि न दहन्ति हुताशनाः । न क्रेदयन्ति वारीणि शोपयन्ति न मारुताः॥ १४ सुस्तम्भमजमालिङ्गा स्वात्मानमजरामरम् । तिष्ठावष्टभ्य घीरात्मा सुस्तम्भभिव मन्दिरम् १५ जगहृक्षपदार्थीघपुष्पामोदश्चियं पराम्। संविदं संविदः स्वस्थामास्स्वान्तर्मुखमच्युतम् १६ अन्तर्मुखतया नित्यं कार्यमाहरतां वहिः। जीवतामपि नोदेति वासना रुपदामिव ॥ १७ पुनः प्रसरणोन्मुक्तमन्तःसुप्तं मनः कुरु। कुर्वन्सर्वाणि कर्माणि कुर्माङ्गचदवृत्तिमान्॥ 86 अन्तर्वृत्तिविहीनेन बहिर्वृत्तिमतेव च। सुप्तप्रबुद्धप्रायेण कार्यमाचर चेतसा ॥ १९ बालमुकादिविद्यानवदन्तस्त्यक्तवासनम् । भवतः कुर्वतः कार्ये खवश्चित्तं न लिप्यते ॥ 20 वृत्तित्यागविलीनेन किंचित्प्रसरता वहिः। अन्तरत्यन्तसुप्तेन चेतसा तिष्ट विज्वरः॥ २१ असंकल्पकलङ्कायां ज्ञानाश्चित्तक्षयोदये। शुद्धायां संविदि स्थित्वा कुरु मा कुरु वानघ २२ सुषुप्तसमया वृत्त्या जाप्रद्यवहरन्त्रजन् । गृहाण मा किंचिदपि मा वा किंचित्परित्यज ॥ २३ जाप्रत्यपि सुषुप्तश्चेज्ञागर्पि च सुषुप्तके।

तत्र मूदबत्कर्नृताप्रयुक्तदोषप्रसिक्तं वारयति-अन्तर्मुख इति। स्वमिति रोपः ॥ १५ ॥ इन्द्रप्रयुक्तव ज्ञस्य धारापि । कुण्टतां मोघताम् । 'तस्य इ न देवाध नाभूत्या ईशते' इति श्रुतेरिति भावः ॥१२॥ स्वसंविन्मात्रकोटरे हार्दाकाशे ॥ १३ ॥ १४ ॥ वित्तं खिस्मन् सुप्रु भावीति सुस्तम्भं निलनिरतिशयानन्दं स्नारमानम् । युस्तम्भं दढस्तम्भं मन्दिरमिव धीरात्माऽचल-स्तिष्ठ ॥ १५ ॥ जगस्रक्षणवृक्षस्य पदार्थोघटक्षणपुष्पाणामा-मोद्धियमिव सारभूतां परां त्रह्मसंविदमाश्रिख सर्व। वाह्य-संविदः अच्युतमन्तर्मुखं यथा स्यात्तथा कृला आस्त्र ॥१६॥ कार्ये व्यवहारम्। दपदां पापाणानामिवेति वासनानुद्ये दप्रान्तः ॥ १७ ॥ कूर्माङ्गवद्यतिमानन्तर्वहिश्व यृत्तिश्चन्यः ॥ १८ ॥ तदेवाह—अन्तरिति । सुप्तप्रयुद्धोऽर्धजागरूकः ॥ १९ ॥२०॥ वृत्तित्यागः सर्दवः निर्विकल्पसमाधिज्ञानाभ्यासस्तेनः विलीनेन बाधितेन । किन्दिरथपटाकारवः प्रतिभागमात्रेण प्रसुरता। अखन्तसुप्तेन मृतेन ॥ २१ ॥ २२ ॥ जाप्रत् मन् व्यवहरन् बजनपि त्वं सुपुप्तसमया वृत्त्या मा किचिदिष्टं वृद्दाण, अनिष्टं जात्रत्सुषुप्तयोरैक्यात्तदस्त्यसि निरामयः॥ २४ पवमाद्यन्तरहितमभ्यासेन दानैःदानैः। पदमासादयाद्वन्द्वमतीतं सर्ववस्तुतः॥ २५ नच द्वैतं नचेवक्यं जगदित्येव निश्चयी। परमामेहि विश्रान्तिमाकाशविशदाशयः॥ २६

श्रीराम उवाच ।

यद्येयं मुनिशार्द्छ तदहंप्रत्ययात्मकः। भवानेवेह किं तावद्वसिष्ठाख्यः स्थितो वद् ॥

वाल्मीकिरुवाच ।

राधवे गदति त्वेवं चसिष्ठो वदतां वरः। तृष्णीमेव मुहूर्तार्धमतिष्ठत्स्पष्टचेष्टितः॥ २८ तस्मिस्तूर्णी स्थिते किं स्यादिति सभ्ये महाजने। पतिते संदायाम्भोधौ रामः पुनरुवाच ह ॥ किम्र्यं भगवंस्तूष्णीं भवानहमिव स्थितः। न सोऽस्ति जगतांन्यायः सतां यो नोत्तरक्षमः ३०

वसिष्ठ उवाच।

न मे वकुमशकत्वायुक्तिक्षय उपस्थितः। किंतु प्रश्नस्य कोट्यास्य तृष्णीमेवानघोत्तरम् ॥ ३१ द्विविधो भवति प्रष्टा तस्वज्ञोऽज्ञोऽथवापि च । अन्नस्यान्नतया देयो न्नस्य तु न्नतयोत्तरः॥ 32 पताचन्तमभूत्कालं भवानशातत्रत्यदः। भाजनं सविकल्पानामुत्तराणां महामते ॥ 33 तत्त्वश्वस्त्वधुना जातो विश्रान्तः परमे पदे । योग्यो न सविकल्पानामुत्तराणामसि स्फुटम् ३४ यावान्कश्चित्किलोहेस्रो वाद्ययो वदतांवर। सुक्ष्मार्थः परमार्थो वा बहुरस्पतरोऽपि वा ॥ ३५

वा त्यज ॥२३॥ जाब्रदवस्थायामपि स्थूळसूक्ष्मोपाध्यप्ययात्सु-ष्ठुप्तस्त्वं चेद्भवसि तदा सुषुप्तकेऽप्यज्ञानावरणाभावाज्ञागर्षि । जाप्रत्मुपुत्थोमंदकाऽज्ञानतत्कार्थयोवधिनेक्ये सति तत्परिशिष्टं यदस्ति सन्मात्रं तदांत ॥२४॥ २५ ॥ २६ ॥ सर्वर्द्वतापठापै तव वासिष्टाहंभावादेरप्यपरिशेषात्कथं वक्तृत्वादिव्यवहार इत्या-शयेन रामः पृच्छति--यदोवमिति ॥२०॥ नास्त्येव वर्सिष्ठाई-भावादिर्मम श्रोतृणामज्ञानदर्ध्यंत्र सोवर्लाम्यतसेत्पां तत्त्व**द्यत्वे सं**-पत्रे तु मानमेवोत्तरमित्यादायेन तुःशीभावमाह—राघवे इति ॥२८॥ मुख्याधिकारिणां केषांचिज्ज्ञाने जातेऽपि स**र्वेषामज्ञा**-नानुच्छेदात्संशयाम्भोधा पतिते सति ॥ २९॥ गुरोर्थुकि-क्षयादेव निरुत्तरतां मन्यमानो राम आह--किमर्थमिति। जगतां मध्ये स तादशो न्यायः शिर्ध्यरुद्धाव्यस्तर्को नास्ति यः सतां विदुषां गुरूणाम् ॥ ३० ॥ अस्य प्रश्रस्य कोट्या परमा-वधिस्वन हेतुना तृष्णीमवस्थानमेत्रोत्तरम् ॥ ३१ ॥ कोटिल-मेव दर्शयितुं भूमिकां रचयति—द्विविध इत्यादिना ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ बाद्यय उहेंखोऽभिलापः ॥ ३५ ॥

प्रतियोगिव्यषच्छेदसंख्यातीताहिभिभ्रंमैः। सच सर्वोऽन्वितः साधो मा इव बसरेणुमिः ३६ उत्तरं सकळडूं च तज्हो नाईति सुन्दर। नाकलङ्का च वागस्ति त्वं च तज्ज्ञतरः स्थितः ३७ यथाभूतं च वक्तव्यं क्रस्यान्तेवासिनो मया । यथाभूतं विदुः काष्ट्रमीनमन्तविवर्जितम्॥ ३८ अविचारात्ससंकर्षं मौनमाहः परं पदम्। ३९ तदेव तव तज्ज्ञस्य दत्तः सुन्दर उत्तरः ॥ यन्मयो हि भवत्यङ्ग पुरुषो वक्ति तादशम्। ब्रेयमात्रमयश्चाहं वागतीते पदे स्थितः॥ ૪૦ वागतीतपदस्थो हि कथं गृहाति वाङ्गलम्। अवाच्यं विच्या नो तेन वाग्यि संकल्पनाङ्किता ४१ श्रीराम उवाच।

वाचि ये ये प्रवर्तन्ते ताननादत्य दोषकान्। प्रतियोगिव्यवच्छेदिपूर्वकान्वद् को भवान्॥ ४२ वसिष्ठ उवाच।

पवं स्थिते राधव हे यथाभूतमिदं शृणु। कस्त्वं कोऽहं जगद्वा किमिति तत्त्वविदांवर ॥ ४३ अहं तावद्यं तात चिदाकाशो निरामयः। चेत्यसंवेचरहितः सर्वसंकल्पनातिगः॥ ४४

प्रतियोगी निरूपको व्यवच्छेदो व्यावृत्तिः । संख्या गणना अतीतस्तत्सर्यमतिकान्तः परमार्थः । आदिपदात्तरसाधनं तदि-तरबाधकं तद्बोधसादुपाया वाध्यबोधकप्रमाणादयो गृह्यन्ते । तेषां विश्रमः कल्पनाकरुष्ट्ररन्वितः । माः जारान्तरातपः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अन्तेवासिनः शिष्यस्य । अन्तविवर्जितं सर्व-परिच्छेदकलङ्करान्यम् ॥ ३८॥ अधिचारासत्त्वज्ञानोदयारप्राग-**ज्ञानादुपदेशवा**वप्रवृत्तियोग्यताकल्पनया संसंकल्पं वाग्व्यवहार-संकल्पविषयमाहुः । विचारेण परिज्ञातं तु मीनं वागगोचर-मे**वाहुः** 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इत्यादि-श्रुतयो विद्वांसथ । तन्मीनमेव ॥ ३९ ॥ पुरुषो वक्ता । होयं तस्वसाक्षारकारगम्यं निर्विकल्पवस्तु तन्मात्रमयः । स्वार्थे मयद ॥ ४० ॥ हि यस्मात्सर्वा वाक् प्रतियोगिव्यवच्छेदादिसंकल्प-नाहिता ॥ ४९ ॥ अनाहत्य तात्पर्याविषयीकृत्य भागत्यागल-क्षणोपायेन वद । व्यवच्छेदी व्यावृत्तः । प्रतियोगी तनिरूपकः ॥ ४२ ॥ यथाभूतं यथास्थितम् ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ खान्यत् प्रत्यगातमव्यतिरिक्तमणुमात्रमपि वक्तुं न वेद्यि न विष-क्षामि । तथाच यत्परः शब्दः स एव शब्दार्थ इति न्यायमा-श्रित्याखण्डं निर्विकरुपं वाक्यार्थं प्रतिपद्यस्वेति भावः ॥४६॥ कथं तर्राज्ञबोधनाय प्रतिवादिविजयाय च विदुषां निरहंका-राणासुदोगसिद्धिस्तत्राह — स्वपक्षेति । शिष्याणां मोक्षार्थं तेषां संदेहवारणाय प्रतिवादिविजयार्थमपि उद्यमिनो श्रुतियुक्तयादिप्रमाणेः खपक्षोद्भावनपराः सन्तो बाधितस्या- स्वच्छं चिदाकाशमहं भवानाकाशमेष च। जगबाकारामखिलं सर्वमाकारामात्रकम्॥ 84 शुक्रकात्रैकरूपातमा शुक्रकानमयात्मनि । अन्यसंविद्दशोन्मुक्तः स्वान्यद्वकुं न वेदयहम् ॥ ४६ स्वपक्षोद्धायनपरा अहन्तारमैकवर्धनम् । मोक्षार्थमप्यचिमनो नयन्ति शतशाखताम्॥ 80 जीवतोऽप्युपशान्तस्य व्यवहारवतोऽपि च। शववद्यद्यस्थानं तदाहुः परमं पदम् ॥ 86 आवहिःसाधनं शान्तमनन्तःसाधनं समम्। न सुखं नासुखं नाहं नान्यदित्यादि तं शिवम् ४९ मुक्तताया अहन्तेयमभावो भावनं क च। तयैवान्विष्यते सेति जात्यन्धश्चित्रमीक्षते॥ 40 स्पन्दनेऽस्पन्दने चैव यत्पापाणवदासितम्। अजडस्पैव तद्विद्धि निर्वाणमजरं पदम्॥ 48 तश्च नान्यो विजानाति स्वयमेवानुभूयते। लोकैषणाविरकेन क्षेत्र करवमिवात्मनि॥ 42 तत्राहन्ता नच त्वत्ता नानहन्ता नचान्यता। केवलं केवलीभावो निर्वाणममलं शिवम् ॥ 43 चेत्योनमुखत्यमेवाहुश्चेतनस्यास्य चेतनम्। एव एव च संसारो बन्धः क्वेशाय भूयसे॥

प्याहार्यारोपेणाइन्तात्मन एकस्पेव वर्धनं कुर्वाणाः शत-शाखतां नयन्ति नलज्ञवद्यामुखन्तील्यर्थः ॥ ४७ ॥ नैता-वतैषां पाण्डित्वप्रकटनव्यवहार एव परमं पदमिति वेदि-तब्यं किलन्यदेवेत्याह-जीवत इति ॥ ४८ ॥ परमपदमेव विशिनष्टि-अवहिःसाधनमिति । अन्तर्वहिःसाधनशून्यलादे-वनाहं कर्तृभोक्तलशून्यमतएव भोग्ये मुखदुःखरहितं खप्रका-शनिरतिशयानन्दभूमात्मकलाच्छिवम् ॥ ४९ ॥ ननु किमर्थ तत्स्वप्रकाशमुच्यते । विषयमुखबद्भोग्यमेव तार्कि न स्यात्त-त्राह-मुक्तताया इति । इयमहन्तैव मुक्तताया मुक्तरभावः प्रामावस्थानीया । तादशेनाहंभावेन मुक्तेभावनमनुभवः क । नह्यभावेन प्रतियोगी अनुभवितुं शक्यः । तह्यसु मुक्ततयेव मुक्तिभावनं तत्राप्याह—तथैवेति । पक्षद्वयेऽपि जात्यन्धिन त्रदर्शनन्यायः स्वादिल्यर्थः ॥ ५० ॥ तर्ह्यहंकारप्राणादिस्यन्दने अस्पन्दने च वृक्षमृगादिस्पन्दनास्पन्दनयोगिरिशिलावदचळत-या श्वितलात्तद्वजडमेव किं न स्यातत्राह-स्पन्दन इति। आ-सितमवस्थानम् । भावे कः । यतस्तित्रवीणमजरमपक्षयादिवि क्रियाशून्यम् । तथाच । गिरिशिलायामप्यपक्षयेण चलनमस्त्ये-वेति नात्यन्तिकमचललमिति चलेष्वेव जाड्यं न कूटस्थे इति भावः ॥ ५१ ॥ अतः स्वप्रकाशत्वमेव परिशेषात्सिद्धमित्याह-तचेति । लौकिकात्मनि प्रसिद्धं इत्वं घटादिस्फूर्तिफलमिय नहि तज्ज्ञानान्तरवेदामनबस्थापातादिति भावः॥ ५२॥ त-तत्र ॥ ५३ ॥ तस्य परप्रकाशतैव संसार इत्याह—चेत्योन्म-

चेतनस्याचेतनत्वमचेत्योनम्खतात्मकम् । मोक्षं विक्रि परं शान्तं पदमव्ययमेव च ॥ ue दिकालाद्यनविच्छन्ने शान्ते शान्तात्मनि स्थिते । चेत्यं न संभवत्येव कः किं चेतयते कथम्॥ ५६ संकल्पः स्वप्तदृष्येऽन्तः संविन्मात्रात्मतां विना । यथान्यवद्भवेद्धपास्तथैवास्मिन्बहिर्गते ॥ 40 मनोबुद्ध्यादयश्चेते संविन्मात्रानुरूपिणः। मनोबुद्ध्यादिशब्दार्थभावितास्तु जडात्मकाः ॥ ५८ संविन्मात्रे समे स्वच्छे सवाह्याभ्यन्तरे तते । आमिन्ने मेदबुद्धियां किमनर्थाय जम्मते॥ ५९ संविन्मात्रस्य शुद्धस्य शून्यस्य च किमन्तरम् । यचान्तरं तद्विबुधा विदन्त्येति न वाग्गतिम् ॥ ६० सदसद्रप आभासो यथा किमपि उध्यते। तमसीक्षितयह्नेन ब्रह्मणीटं तथा जगत्॥ ६१ अयमाकाशमेवाहं यदि शाम्याम्यवासनम्। वासनां तु न वधासि स्थित एघासि चिन्नभः ६२ इति निश्चयवानन्तस्तज्ञो ह्र इय संज्ञया। चिद्वपूर्विद्यमानोऽपि शाम्यत्यसदिव स्त्रयम् ॥ ६३

खलमिति । चेतनं चेत्यव्याप्तिलक्षणां कियाम् ॥ ५४ ॥ ईदश-चेतनाभावेनाचेतनत्वं तु मोश्ले इष्टमंबेखाह—चेतनस्येति ॥ ५५ ॥ ननु मोक्षेपि चंत्यमस्त तत्राह—दिगिति ॥ ५६ ॥ एवमन्तर्मुखतामात्रेण खतःसिद्धां मुक्तिमुपपाद्य बहिर्मुखतामा-त्रेण जगद्विकल्पप्रसरं दर्शयति — संकल्प इति । हे भूप श्रोतृसंबोधनम् । यथा स्वप्नदृश्ये जगति संविद्नतर्गतस्तत्तद्वास-नानुसारिसंकल्पः संविनमथोऽपि संविदात्मतां विद्वायान्यवद्भवे-त्त्रयेवास्मित्रात्मनि बहिर्गते बहिर्मुखे सति स्वार्मवान्यवज्जडप्र-पद्मात्मा भवेदिलार्थः ॥५०॥ एवं मनोषुद्धादयोऽपि बहिर्मुख-तायामेव जडात्मका अन्तर्मुखतायां तु संविन्मात्रानुसारिणश्चि-देकरसाः ॥ ५८ ॥ एवमन्तर्वहिश्व सर्वस्य चिदेकरसत्वे चितो बहिर्मुखतालक्षणा मेदबुद्धिरेकव व्यर्थोऽनर्थहेतुरिलाह —संवि-नमात्र इति ॥ ५९ ॥ सर्वदृश्यापगमेऽविद्यष्टं संविनमात्रं शुन्य-कल्पमपुरुषार्थं इति तु न मन्तव्यम् । तस्य निरतिशयानन्दरू-पताया विद्वद्भिरनुभूयमानलादिलाह—संविन्मात्रस्येति । वा-ग्गति बाग्गोचरतां नेति । 'यतो बाचो निवर्तन्ते' इलादिश्रुते-रिति भावः ॥ ६० ॥ विवेकियौक्तिकदृष्ट्या तर्हि कथं जगत्त-दाइ-सदसद्भ इति । ईक्षितस्य चक्षःप्रणिधानस्य यक्षन तमित यथा सदसदूप आभासो लक्ष्यते तद्वत् ॥ ६९ ॥ ल-मपि वासनां यदि बधार्माति संवन्यः ॥ ६२ ॥ अन्योऽपि पुरुषः अयमाकाश एवाहामिति निश्वयवास्तज्ञ एव । ससंज्ञया व्यवहारेणाइ इव विद्यमानोऽपि चिद्वपुरेव सन् सत्यपि दहा-दावसदिव शाम्यति । 'तदो यो देवानां प्रत्यव्यथ्यत स एव तदभवत्तवर्षीणां तथा मनुष्याणाम्' इति श्रुतेरिखर्थः ॥६३॥ ननु जीवानामविद्या कि चिदात्मना शाम्यति उत जहेन । जीवानां इप्तिगुप्तेन ज्वलब्रहानवायुना । अविद्याग्निः प्रबुद्धानां पुनस्तेनैव शाम्यति ॥ ફપ્ર अजडानां यद्शानं स्थाणुनामिव शाम्यताम् । तमाहुर्मोक्षमञ्जुन्धमासितं पदमक्षयम् ॥ ६५ श्रत्वेन श्रत्वमासाद्य मुनिर्भवति मानवः। अञ्चत्वाद्श्वतामेत्य प्रयाति पशुवृक्षताम् ॥ ६६ अहं ब्रह्म जगचेदमित्यविद्यामयो भ्रमः। असत्यः प्रेक्षया ध्वान्तं दीपेनेव न स्रभ्यते ॥ ६७ समग्रकरणग्रामोऽप्यसंकल्पो विवेदनः। न किंचिद्प्यनुभवत्यन्तर्वाह्ये च शान्तधीः॥ ६८ सुपुप्तत्व इव स्वप्नः समाधौ प्रविलीयते । दृश्यं सर्वे इबोधेऽन्तः पुनः स्वात्मैव लक्ष्यते ६९ नीलत्वं च यथा य्योक्ति तथा पृथ्वादिता शिवे। भ्रान्तिमात्राहते नान्यद्यथा व्योम तथा शिवः ७० वासनामिरुपेतोऽपि समस्ताभिरवासनः। भवत्यसावसत्सर्धभिदमित्येव यस्य धीः॥ ७१ संकल्पेष्वद्भतं भव्य स्वप्नमायेन्द्रजालकम्। यद्वत्संसृतयस्तद्वदृष्टेप्यास्था किमत्र वे ॥ ७२

नाद्यः । चिदारमनः प्रत्युतः नस्साधकरवेनाविरोधिलात् । न द्वितीयः । जडमात्रस्याविद्याकार्यत्वेन तद्विरोधिलादित्याश-क्याह--जीवानामिति । अहमज्ञ इति साक्षिज्ञमेरज्ञानसाधक-लाजीवानां संसाररुक्षणोऽविद्याप्रिस्तदीयद्विप्रिरक्षितेनाह्मानवा-युना ज्वलत्रपि पुनरहं ब्रह्मान्धीति ब्रबुद्धानां तेषां चरमसाक्षा-त्कारवृत्त्यात्मना परिणतेनान्तर्गतसाक्षिगुप्तेनाज्ञानवायुनेव शा-म्यति न तृतीयमपेक्षत इलायेः ॥ ६४ ॥ ननु मुक्तेर्जग-ज्ज्ञायते न वा । आदे संसाराविशेषः । द्वितीये आत्मज्ञानमेकं परिहरता लया जगदज्ञानान्यनन्तानि स्वीकृतानि स्यः। स्थाण-तुल्यानां च कथं तेषां मुकता तत्राह—अजडानामिति।अना-वृतस्वप्रकाशनिरतिशयानन्दात्मरूपसादजडानां तेषामज्ञानं सां-सारिकज्ञानश्चन्यमत एवाशुब्धं दुःखक्षोभरहितं यदासितमव-स्थानं तं मोक्षनामानमाहुः । नयानन्ताज्ञानप्रसक्तिरेकविज्ञाने-नैय सर्वविज्ञानात्सर्वाज्ञानेगाशात्, आन्तिज्ञानाभावस्थात्मरूप-तया तत्त्वज्ञानवैलक्षण्याभावाचेति भावः ॥ ६५ ॥ किंच सति मूलाज्ञाने तद्वर्टेनव वाद्यार्थज्ञानाभावानां मीर्ख्यापादकता तुष्राञ्चे तु मुनिल्संपादकतेत्याशयेनाह—इत्वेनेति ॥ ६६ ॥ किंच वद्मज्ञानं जगद्भमथ सर्वोष्यज्ञानमेव नचाज्ञाननियृत्तिरज्ञानं येन मुक्तिन स्यादित्याशयेनाह—अहमिति॥६ आर्तार्ह जीवनमुक्तानां चक्षुरादिकरणवैष्ट्यज्ञानदर्शनान्युक्तता न स्यात्तत्राह-समप्रेति ॥६८॥समार्था इस्य वोधे सकुजाते पुनर्यत्सर्व दृश्यं दृश्यते तत्स्वा-र्दमव लक्ष्यतं न अनारमा नाम तेषामणुमात्रमप्यस्तीत्यर्थः॥६९॥ कतो विलीयत इति चेद्रान्तिमात्रलादिखाह—नीललमिति ॥ ७० ॥ अतएव बाघितार्थवासना वासनैव न भवतीत्ववासन एव ह इत्याह—नासनाभिरिति ॥ ७१ ॥ ननु विचित्रभुव-

न दुःखमित न सुखं न पुण्यं न च पातकम्।
न किंचित्कस्यचिन्नष्टं कर्तुभोंकुरसंभवात्॥ ७३
सर्वे शून्यं निरालम्बं ममताप्रत्ययोऽप्ययम्।
द्विचन्द्रस्वप्रपुरवद्यस्यासौ सोऽपि नास्ति नः॥७४
केवलो व्यवहारस्थः काष्ठमौनगतोऽथ वा।
काष्ठपाषाणवित्तष्टम्बद्धतामधिगच्छति॥ ७५
शान्तत्वे चित्तत्वे नानानानात्मनीह हिवे।
अवयविनोऽवयवित्वे त्विह युक्तिविद्यते नान्या ७६

अर्थागतस्वभावस्य च नैव च संभवादमले।
एतस्मिन्सवंगते ब्रह्मणि नास्ति स्वभावोक्तिः॥ ७७
नच नास्तिकोपलम्भात्संवित्तेरस्तिता च नैवाजे।
प्राह्मप्रहृष्ट्रेरसंभवादस्ति किंचिव्रिषे॥ ७८
राममलमहार्यमार्यजुष्ट्रं

शमममलमहायमायेज्ञाष्ट शिवमजमक्षयमासितं समं यत्। तद्वितथपदं तदास्स्व शान्तं पिष छल भुङ्क्ष्व भवानयं हि मास्ति ७९

इत्यापें श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्घे भावनाप्रतिपादनं नामैकोनित्रशः सर्गः ॥ २९ ॥

नैर्देवनरतिर्यगादिमिर्विहिर्तानेषिद्धानेककर्मभिस्तत्फलभोगनिय-तिमिधेश्वरेणाधिष्ठितमद्भतमिदं जगत्कथमसदनृतं संकल्पमा-त्रमिलायुक्तिभिस्लया अपलप्यते । नहि संकल्पमनोरयादि-ब्वेवंविधार्थाः सन्तीत्याशक्का तत्राप्यद्भतार्थसत्तां दर्शयति-संकल्पेष्विति । हे भव्य, यथा सांकल्पिकार्थेषु स्वप्नमायेन्द्रजा-लकं यद्वदद्धतं तद्वत्संसत्तयोऽपि । प्रत्यक्षदृष्टेऽपि खप्नादार्थे कि-मास्या युक्ता तद्वत्संस्रतिष्वपीखर्यः ॥ ७२ ॥ सतोहिं कर्त्-भोकोरस्त सर्वसुखदुःखभोगाय पुण्यपापनियतिस्तयोरेवासंभवे का तद्यवस्थानियतिरित्याह-नेति ॥ ७३ ॥ अयं ममताप्र-खयो यस्याहंकारस्य सोऽपि नास्ति ॥ ७४ ॥ केवलः सर्वहै-तश्चन्यस्तरविद्यवहारस्थी वास्तु अथवा काष्ट्रपाषाणवदचलः समाधी तिष्टनकाष्ट्रमानगतोऽस्त सर्वथापि ब्रह्मतामधिगच्छ-त्येव ॥ ७५ ॥ इत्थं मायिकविवर्तवादसिद्धान्तमाश्रित्याध्यारो-पितस्य जगतोऽपवादेन तत्त्वविदः परमपुरुषार्थे प्रतिष्ठा द-र्शिता । ये लन्ये तार्किका अन्यथान्यथा सिद्धान्तान्कल्पयन्ति तेषां जगदुत्पस्यादिव्यवहारे परमपुरुषार्थं उक्षणे परमार्थे च युक्तिनांसीत्याह-शान्तत्व इत्यादिना । इहास्मिन्शिवे प्रत्य-गात्मनि प्राणमुद्धिमनोदेहादितादात्म्येन नानात्मनि भिष्मश्व-भावे सांसारिकानर्थशतसंक्रले प्रत्यक्षं भासमाने तनिराकरणेन शान्तत्वे निर्दःखनिरिवशयानन्दाद्वयरूपपरिशेषणे वादिना-मन्यादर्शिताऽध्यारोपापवादन्यायातिरिका युक्तिने विश्वते । निखशान्तसभावे शिवेऽभ्यूपगम्यमाने तु तस्य निर्विकारकृट-स्थस्य चलनपरिच्छित्रस्वभावचित्तरूपत्वे देहेन्द्रियादिनानाना-नाभावेन संसारेण युक्तिरुपपत्तिन विद्यते । यदि त तिसद्धये तस्य परिच्छित्रता परिणामिता सावयवता चाभ्युपगम्येत त-ह्यंबयविनस्तस्य चेतनैर्जंडेवां अवयवैरवयवित्वे यक्तिने विद्यते। अवयवानां चेतनत्वे ऐकमत्यासंभवेनावस्यंभाविनि विश्लेषे अवयविनाशप्रसङ्गात अचेतनत्वे त्ववयविनोऽप्यचेतनत्वापरे-रुभयत्राप्यनित्यस्यारव्यस्य प्राक्तनप्रष्यपापासंभवेन भोगासिद्धेः रित्यादियुक्तिसहस्रेभ्यः । एवं जगत्कारणेऽपि शिवे शान्तत्वे निर्विकारकूटस्थरवेऽभ्युपगते जगरसृष्ट्यनुकुलसंकल्पात्मकचि-त्तरवे तत्त्रवर्तके नानानानात्मनि प्रपञ्चरूपे तदन्तर्गतप्रचिव्याच-बगमिनोऽवयवित्वे वान्या युक्तिनं विद्यत इति विवर्तदृष्टिरेव शरणमित्यर्थः ॥ ७६ ॥ नन्वात्मनः शान्तत्वेऽपि प्रलयान्ते ली-

नानां सर्वपदार्थानां ब्रह्मणि प्रलयकाले सलात्तत्प्रयुक्तस्यसा-वविषित्रयवछादेव चित्तलनानालाऽनानालसावयवलादिवेचि-त्र्ययुक्ताः सर्गादावाविभविष्यन्ति तत्राह-अर्थागतेति । अर्थ-वैचित्र्यहेतुः स्वभावः शिवे परमात्मवस्त्रन्यर्थेभ्य आगत उत खतःसिद्धः तत्रार्थेभ्य आगतखभाव इति व्याहतम । खो हि भावः खभावः । आगन्तुकोऽन्याधीनश्च कयं खभावः स्यात् । तथा असङ्गलादद्वयलाचामले परप्रयुक्तस्वभाववैचि-त्र्यमलसंबन्धश्च नैव संभवति । नचार्यास्ते प्रलये सात्रक्येण सन्ति येन खखभावयलादेव विचित्रा आविर्भवेयरिति द्योत-नार्थः प्रथमश्रकारः।अतः परिशेषादनागन्तुको ब्रह्मण एव खस्ब-भावो वाच्यः । एतस्मिन्सर्वगते ब्रह्मणि वैचित्र्यहेतस्वभाव-स्योक्तिसंभव एव नास्ति । सर्ववस्त्रनां सर्ववैचित्र्यप्रसङ्गात् । निह सर्वगते ब्रह्मणि अत्रैवायमेव खभाव इति प्रलये व्यवस्था-पकमस्ति । सर्वत्र सर्ववैचित्र्याभ्यूपगमे च वैचित्र्यमेव लुप्येत । नहि सर्वसाधारणो धर्मो वैन्वित्र्यं भवति नापि किंचिद्धेदकं सिध्यतीति सर्वजगदैकरस्यप्रसङ्गादिति भावः ॥ ७७ ॥ नन्वेवं सार्वजनीनस्यापि जगद्वैचित्रयस्य यक्तयसहलादपलापे तत्संवि-त्तरप्यपलापः किं न स्यात् । नहि संवेद्यमन्तरेण संवित्प्रसिद्धेति श्रान्यबादः प्रसक्त इति चेत्तत्राह-नचेति । संवेदापलापे संवि-त्तरप्यस्तिता नास्तीति न च वक्तं शक्यम्।संविदपलापिनो नास्ति-कात्मन एवोपलम्भादपलपितुमशक्यलात्।सहि खातिरिक्ते एव संवित्संवेदो अपलपेत्र तु खात्मानम् । यदा सर्वापि संवित्तदा-त्मैव तदा तत्र संवेद्यमपलपन् संविदं परिशेषयखेव । किंच निराधारनिषेधायोगाद्वाह्यमाहकयोरमाह्य**माहकात्मनि** काशे आधारे प्रतिषेधो वाच्यः । स एव तस्यात्भेति तेनाऽजे स्वात्मन्येव प्राह्मप्राहकदृष्ट्योरसंभवप्रतिपादनपर्यवसानात्सर्वप्र-तिषेधावधिभतं किंचिदजं तस्याध्यसीति सिद्धं तदेव ब्रह्मेखर्थः ॥ ७८ ॥ हे राम, लमार्थेब्रह्मविद्धिजुष्टं सेवितमहार्थं परिदृर्तु-मशक्यं यच्छिवमवित्यं परमार्थसत्यं पदमासितं निव्यसिद्धं तदेव भूला परमार्थत आस्ख । व्यवहारे चेतरलोकवित्यन भुद्ध छल कीडख तथापि भवान्मुक एव । हि यसादयं दृश्यबन्धस्तव नास्तीत्यर्थः ॥ ७९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारा-सायणतास्पर्यप्रकाझे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकोनश्रिधा-तितमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंदाः सर्गः ३०

8

वसिष्ठ उघाच। अहन्तैव परा विद्या निर्वाणपदरोधिनी। तयैवान्विष्यते मुद्रैस्तदित्युन्मत्तवेष्टितम्॥ अहन्तैवालमञ्चानाद्वस्यस्य निद्रानम्। नहि तज्बस्य शान्तस्य ममाहमिति विद्यते॥ जहन्तामलमुत्युज्य निर्वाणः खमिवामलः। सदेहमपदेहं वा इस्तिष्टति गतज्वरः॥ न तथा शरदाकाशं न तथा स्तिमितोऽर्णवः। पूर्णेन्द्रमध्यं न तथा यथा इः परिराजते ॥ चित्रसंगर्युद्धस्य सैन्यस्याध्नुब्धता यथा। तथैव समता इस्य व्यवहारवतोपि च॥ निर्धाणैकतया श्रस्य वासनैव न वासना। रेखादामोपमा त्यच्धेरूम्यादि न जलेतरत्॥ तरत्तरङ्गो जलघिर्जलमेव यथाखिलम् । रद्योच्छनमपि ब्रह्म तथा ब्रह्मेय नेतरत्॥ अतस्तरक्रतोऽश्लब्धो बहिरस्तंगतः शमी। विद्यते चोदितो यस्य स मुक्त इति कथ्यते ॥ अहन्त्वसर्गक्रपेण संवित्संविन्मये परे।

ययाह्रन्ताचविद्योत्थनानात्वञ्जान्तिशान्तितः। स्याद्रहाणि स्थिरो धीरः सा दृष्टिरिष्ठ साध्यते ॥ १॥ याबदहन्ता न परित्यका ताबद्रह्मविचारोऽपि नावतरति द्रे तहाभ इत्याशयेनाह-अइन्तैवेति । परा सर्वासां कार्याविद्यानां मुख्खम्मभूता निर्वाणपदस्य रोघिनी आवरणी । तत् निर्वाणपदम् ॥ १ ॥ अज्ञानादुरपन्ना अहन्तैबाइलस्य निद-र्शनं खिन्नं यथा धूमोऽमेः । तस्य व्यतिरेकव्याप्तिं दर्शयति— नहीति ॥ २ ॥ अलं निःशेषं अहन्तालक्षणं मलमिति वा॥३॥ अहन्तापगमादेव इस्य नैर्मल्यं निर्विक्षेपं पूर्णतां च वर्णयति-न तथेति ॥ ४ ॥ यथा चित्रलिखिते संगरे युद्धस्य । युषेः 'गस्ययीकर्मक-' इति कर्तरि क्तः। परस्परं संप्रहरतोऽपि से-न्यस्य क्षुच्धताप्रतिभासेऽपि न क्षुच्धता ॥ ५ ॥ एवं व्यवहार-कार्यि छिन्ने ना नुमीयमाना वासनापि वाधेनान्तर्निर्वाणेकतया द-म्भपटतन्तुरेखादामोपमलाम वासना ॥ ६ ॥ कर्म्यादीति-द्रष्टान्तं विशद्यति—तरत्तरङ्ग इति ॥ ७ ॥ तस्यान्तर्वोद्यस-**वैवासनावा**थे किलक्षणमिति चेदक्षोभशमादिकमेवेलाशये नाइ-अन्तरिति । उदितः सदैव प्रसन्नः ॥ ८ ॥ संविन्मये-परे अज्ञातात्मनि । स्फुरति विवर्तते ॥ ९ ॥ अञ्चखण्डरूपेण व्योप्ति रफुरतो नीहारधूमस्य गजरथादिरूपा व्युहा आकाररच-नामेदाः ॥ १० ॥ इदानीं भगवान्वसिष्टः सर्वान्त्रोतृन्संबो-ध्याह--संविदिति । हे श्रवणार्थमागता ज्ञा अभिज्ञजनाः, यूर्य विषादं मा कुरुत किंतु मदुक्तरीत्या सर्वे।पि विषादहेतुः प्रपन्नः संविदो आन्तिर्विवर्तमात्रमिति विच।रेण आन्तितद्विषयतस्व-

स्फुरत्यम्भोम्भसीवातो नानातेयं किमात्मिका ॥९ धूमस्य स्फुरतो ब्योझि यथा गजरथादयः। ब्युहा धूमान ते मिन्नास्तथा सर्गाः परे पदे॥ १० संविज्ञान्तिविचारेण म्रान्स्यलाभविलासिनः। विजयध्वं विषादमागता श्रास्तज्यता हि वः ॥ ११ अङ्करोऽनुभवत्यन्तर्वृक्षपत्रफलं यथा। तथा जगदहम्त्वे इः स्वात्मा स्वात्मखमप्यलम् १२ रूपालोकमनःसत्ताज्वालार्चिष्विव दण्डता। सत्योपि च न सन्त्येता भ्रान्तेश्वित्ताबला इव १३ यथासुस्रं यथारम्भं यथानाशं यथोदयम् । यथादेशं यथाकालमजराः शान्तमास्यताम् ॥ १४ इष्टानिष्टोपलम्मेषु शान्तो व्यवहरम्रपि । शयवस्रान्यतामन्तर्निर्घाणोऽनुभवत्यलम् ॥ १५ अमनोवासनाहन्ता धत्ते यत्र जगिबरम्। जीवतोऽजीवतश्चेव चिज्जीवः स परं पदम्॥ १६ सत्तैष जडवाहेन दुःखभाराय केवलम् । नृणां पाशावबद्धानां पोतकानामिवार्णवे ॥ १७ मोक्षसत्ताश्रयति तं नाज्ञानानुभवादिव ।

परीक्षणे भ्रान्तीनां निःखरूपतापत्त्या अलामेन विलासिनो विलसनशीलाः सन्तो विजयध्वं सर्वोत्कर्षेण वर्तध्वम् । हि यतो मदुपदेशेन बस्तुइतैवास्ति न लइतेलर्थः ॥ ११ ॥ कीदशी सा संविद्धान्तिरहोनानुभूयते तदाह-अड्डर इति । अज्ञः खात्मा वस्तुतः खात्मानं खमाकाशकल्पमपि जगदहन्त्वे अनुभवति।प्रगृह्यसंथिरार्षः । यथा अङ्करः स्नात्मनि वासनात्मकं वृक्षपत्रफलादिभावं तद्वदित्यर्थः ॥ १२ ॥ कीदशस्तत्र विचा-रस्तमाह—रूपेति । बहिः रूपालोकसत्ता अन्तर्मनःसत्ताश्वाधि-ष्टानारमना सत्योऽपि स्वरूपेण न सन्ति । यथा भ्राम्यमाणोह्म-कज्वालार्विःषु दण्डचकताद्य इत्यर्थः । चित्ताबलाः विधुरचि-त्तकल्पितकामिन्य इव ॥ १३ ॥ अतो हे श्रोतारः, सर्वे जगत् यथा उदेति, स्थितं च यथा स्वकार्यमारभते, यथाच सुखदुः-सेऽनुभावयति, यथाच नश्यति, यथाच तदीयाँ देशकाली तथा तथा उत्पत्तिस्थित्युपशमप्रकरणोक्तयुक्तिभिविंसृश्य मिथ्येति निश्चित्य शान्तमास्यताम् ॥ १४ ॥ शववन्निर्वाणः शान्त-चित्तः । अतो नानुभवति ॥ १५ ॥ जीवन्मुकानां मनोवास-नारहितैवाहन्ता चिरं यावहेहपातं यज्जगदत्ते यश्च तद्भोक्ता या-वरकारुं जीवति तदुभयं चिजीव एव न जडांशोऽणुमात्रमपि तत्रास्तीति परमं पदमेव तदित्यर्थः ॥ १६ ॥ एवं च नि-ष्कर्षे जीवजगतोर्जडप्रवाहात्मना सत्तैवानर्थ इति फलितमित्या-शयेनाह—सत्तेवेति । पोतकपक्षे डलयोरमेदाज्जलहरेण बाहे-नाधारेणाणेंचे सत्तेव दुःखसदशपण्यभारवह्नायेति योज्यम् ॥ १०॥ अतएव तमझमझानजाच्यानुभवापराधादिव चिदै-

मृतेन यत्किल प्राप्यं जीवन्प्राप्तोति तत्कथम् ॥ १८
यद्यत्संकरप्यते तत्तत्संकरपादेष नाशमाक् ।
न संभवति यत्रैतत्तत्त्त्त्यं पदमक्षयम् ॥ १९
नान्यो न चाहमसीति भाषनािक्षभयो भष ।
सत्यं युक्तं भवत्येतद्विषमप्यमृतं यथा ॥ २०
जडं देहादि चित्तान्तं विचार्य सकलं वपुः ।
लभ्यते नाहमसीति तसााकासीति सत्यता ॥ २१
शान्ताशेषविशेषाणांमहन्तान्ताविचारणात् ।
केषलं मुक्ततोदेति नतु किंचिद्विनश्यति ॥ २२
भोगत्यागविचारात्म पौठषान्नान्यदत्र हि ।

उपयुज्यत इत्यक्षाः स्वात्मैवाद्यु प्रणम्यताम् ॥ २३ निर्वासनं मननमेवमुदाहरन्ति मोक्षं विना भवति तन्न च जातु बोधात्। सन्नो जगक्रम इतीह परः प्रबोधो न प्रत्ययोऽत्र यदतः सुचिराय बन्धः २४ जगदहमस्वित्यवेत्य सम्य-ग्जनधनदारदारीरनिर्व्यपेक्षः। भवति हि स च चेतनस्वरूपः परिमित्वं खलु नान्यथास्ति मुक्तिः॥२५

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे बाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थोपन्यासयोगो नाम त्रिशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकर्त्रिचाः सर्गः ३१

२

यसिष्ठ उद्याच । सर्वात्मिन चिदाभासे तदेवाश्वनुभूयते । संवेधते यदेवान्तरसत्यं वस्त्ववस्तु वा ॥ तदेवाभ्यासतः पूर्व वाद्यार्थानुभवात्मना । स्फुरतीव बहिष्ट्वेन खस्त्रपोऽत्र निदर्शनम् ॥ चिद्र्पं सर्वमेतद्य चिद्च्छा गगनादिष । चिद्विनोति चिदेवातो नैतर्तिकचन कुत्रचित् ॥

करस्यपूर्णतासक्षणा मोक्षसत्ता न श्रयति । यथा मृगुपातादिना स्तेन प्राप्यं खर्गादि जीवन्तं श्रयति तद्वदिखर्थः ॥ १८॥ नजु मास्तु मोक्षः सांकल्पिकस्तर्गादिफलेष्वेव कश्चित्रित्यः पुरु-षार्थोऽस्तु तत्राह-यदिति । तत्राशे चावश्यं भयमस्तीति भावः । कि तहीभयमक्षयं च तदाह-न संभवतीति। एतत्सं-कल्पनम् ॥ १९ ॥ एतत् अनहंभावनं अज्ञहस्या भयावहत्वा-इहीतुमयुक्तमपि परमार्थहशा सत्यमिति युक्तमिति प्रहीतुम् । यया मूदेन विषषुच्या उपेक्षितममृतमिमेहेन प्रहीतुं युक्तमि-खर्यः ॥ २० ॥ तरसत्यतामुपपादयति--जडमिति ॥ २१ ॥ अतएवाशेषशान्तेरहन्खशान्तिरवधिः सैव मुक्तता । तस्यां च धृतकाठिन्यविलये धृतस्येव नाणुमाश्रमध्यात्मनः किंचित्रष्टमिति न सर्वनाशोऽयमिति मेतव्यमित्याशयेनाह—शान्तेति ॥२२॥ अत्रास्यां मुक्ती भोगत्यागो विचार आत्मन इन्द्रियमनोनिप्रह-पौरुषं चेति त्रयान्नान्यदुपयुज्यते इति निश्चित्य हे अङ्गा मुमु-क्षवः, सर्वमनात्मवर्गं परित्यज्य खात्मैव प्रणम्यतां तत्त्ववोधेन शरणीकियतामिखर्यः ॥२३॥ एवमहन्तावधिकसर्वद्वैतोपशमेन निर्वासनं सर्ववासनाक्षयोपलक्षितं यन्मननं मनसो ब्रह्मभावेना-बस्थानं तदेव मोक्षं श्रुतयो विद्वांसश्चोदाहरन्ति । तच बोधात्त-रवज्ञानाद्विना जातु कदाचिदपि न भवति । सच परः प्रबोधो जगद्भाः सन् परमार्थी नो न भवत्येव इह मोक्षशाक्षे प्र-सिदः । यद्यस्मात्कारणादत्र ईट्हो बोधे 'नेह नानास्ति किंचन'

न नाशो नास्ति नानथों न जन्ममरणे न खम्।
न शून्यता न नानास्ति सर्व ब्रह्मैव नैव च ॥ ४
नाशे जगदहन्त्वादेने किंचिदिप नश्यति।
असतः किल नाशोऽपि स्वप्नादेः किं जु नश्यति ५
मिथ्यावभासे संकल्पनगरे कैव नष्टता।
तथा जगदहन्त्वादौ नाशो नासिति विद्यते॥ ६
कुतो जगदुपालम्भ इति चेसदबस्तुनि।

इलादिशुला जायमानोऽपि रागादिपुरुषदोषप्रावस्याक्षगत्सल्यताभ्रमदार्व्याच प्रलयो विश्वासो नास्ति। अतो हेतोः सुचिराय जीवस्य संसारवन्धोऽनुवर्तत इल्यंः ॥ २४ ॥ तस्माच्छाक्षा-दिविश्वासदार्व्याक्रगदिलहमिति चोभयमप्यसत् नास्त्येवेति सम्यक् श्रवणमननाभ्यासेनोपेत्य वन्ध्वादिजने धने दारेषु खश्चारीरे च निर्व्यपेक्षः सन् परमार्थतत्त्वं बुद्धा परिमितः उपाधि-परिच्छिन्नचिदाकाशक्षः स जीवश्वाक्रगत्त्व चेतनं चिन्मान्नं तत्त्वक्ष्मी भवति सैवास्य मुक्तिरयमेव तदुपाय इतोऽन्ययास्य मुक्तिनांस्तीलयंः ॥ २५ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामावणता-स्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तराधं न्निशः सर्गः ॥ ३० ॥

चिताग्रसमचित्र्पमसदेव सदेव वा। न किंचिश्वष्टमिखत्र निर्याणस्थितिरीर्यते॥ १॥

निखनिरतिशयानन्दपूर्णाद्वयनिदाकाशस्त्रश्नणां निर्वाणस्थिन तिमनुभावियतुं प्रागुक्तं दृश्यानुभवस्य संवेदनाभ्यासाधीनत्वं स्मारयति—सर्वात्मनीति ॥ १ ॥ २ ॥ अस्त्वेतं किं ततस्त-त्राह—निद्रूपमिति । सर्वमेतिचत एव रूपं कत्यितवेषमेदः, वास्तनं तिर्हे नितः किं स्कर्णं तत्राह—निदच्छेति । यतो ष्टतं स्वात्मनि काठिन्यमिव निदेव जगद्वेषं निनोति अतिश्व-देव ॥३॥ अस्त्वेवं ततोऽपि किं तत्राह—नेति । ततो ब्रह्मा-द्वैतिषष्टं सिद्धमित्यर्थः ॥४॥ ननु जगदहन्तादेर्जडाशस्य तत्त्व-बोषेन नाश इष्टः स स्थमपल्यते तत्राह—नाशे इति । ना-शोऽपि क इति शेषः ॥ ५ ॥ ६ ॥ यदसदेव जनत्रर्धनर्थ-

१ अहरताया अन्तो यस्या तथाविधा मुक्ततेत्वयः ।

न निर्णयः संबद्धति खपुष्पाणां किमुच्यते ॥ 9 निर्णय एव एषात्र यदशेषमभाषयन्। प्रयास्थितं यदाचारं पाषाण इव तिष्ठसि ॥ 4 जगत्संकरपमात्रात्म तत्र तेऽर्थयुतं भणात्। शास्यत्यदेशेषेणेत्येच निर्णयः सर्गविस्रमे ॥ Q सर्गेऽनर्गल प्वायं ब्रह्मात्मकतयाक्षयः। अन्यथा तु न सर्गोऽयमस्ति नास्ति च सन्ति वा ॥ येषां च विद्यते सर्गः स्वप्नपुंसामिवासताम्। स सर्गः पुरुषास्ते च मृगतृष्णाम्बुवीचिवत् ॥ ११ असतामेव सन्द्रावमिव येषामुपेयुवाम्। न वयं निर्णयं विद्यो वन्ध्यापुत्रगिरामिव ॥ १२ परिपूर्णाणंबप्रख्या काप्यपूर्वेव पूर्णता। तज्ज्ञानां द्रष्ट्रह्यांशहष्टी नहि पतन्ति ते॥ १३ अचला रव निवाता दीपा रव समत्विपः। साचारा वा निराचारास्तिष्टन्ति स्वस्थमेव ते 18 आपूर्णेकार्णवप्रख्या काप्यन्तः पूर्णतोदिता । अन्तःशीतलता इतिईस्यापूर्वेय लक्ष्यते ॥ १५

रूपस्यपंनेन तस्योपालम्भो निन्दा हैयत्वेन निर्णयश्व शास्त्रेषु **इ**तः कियत इति चेत् सत्यम् । अवस्तुनि नोपालम्भस्तरफलं विचारी निर्णयो वा न संभवत्येव खपुष्पस्य किमुपालम्भो नि-र्णया वा केनचिदुच्यते तद्वदित्यर्थः ॥०॥ तर्हि किं तच्छास्रवै-यर्थमेव नेत्याह-निर्णय इति। खाभाविकखरूपस्थितिसिद्धर्थ-मसदिप सदिव कल्पयिला निन्दादिना वैराग्यविवेकादिस्तत्त्व-साक्षात्कारान्त उपायः कल्पित इति एष एव निर्णयः सिद्धान्त इत्यर्थः । यथास्थितं यथाशास्त्रं यथाचारं यथासंप्रदायं च भू-मिकाकममभ्यस्पेत्यर्थः ॥८॥ अस्त्वेबमात्मतत्त्वे निर्णयः खर्गा-दिजगत्खरूपे को निर्णयः सफलस्तमाइ—जगदिति । तत्र प्रागुकस्थिती । अर्थः सांसारिकपुरुषार्थाभासस्तयुत्तम् ॥ ९ ॥ ननु सर्गः सुषुप्तिप्रलययोः स्तत एव क्षीयते किं तस्य ब्रह्म-मात्रतापरिज्ञानेन तत्राह—सर्गे इति । अनर्गलो मूलोच्छेदा-त्पुनरद्भवश्चन्यः । अन्यथा प्रख्यादौ क्षये तु बीजात्मनास्ति कार्यात्मना नास्ति सन्ति वा प्रलयेऽप्यैन्दवाख्यानोक्तरीत्या कार्याणि । सांकन्पिकस्य पैरः क्षेप्तमशक्यलादित्यर्थः ॥ १०॥ तर्हि सति मर्गे कथं प्रख्यस्तत्राह--येपामिति । प्रख्यसंकल्प-यितुर्देष्ट्या तेषामसत्त्वातस्यसांकत्पिकसर्वनाशादेव तस्य प्रलय-व्यवहारादित्यर्थः ॥ १२ ॥ अतएव जीवजगद्रपाणामनिर्णे-यलादनिवंचनीयलमुक्तमित्याह—असतामेवेति ॥१२॥ अत-एव च तश्चविदां सदैवाद्वितीयचिदानन्दपूर्णतेत्याह-पारेपू-र्णेति । हि यस्माते द्रष्टृदर्याशदृष्टी न पतन्ति नामिनिविधन्ते ॥१३॥ अचला इवाप्रकम्प्या इति शेषः । साचाराः । इवार्ये बारान्दः ॥ १४ ॥ १५ ॥ अज्ञपुरुपास्तर्हि किसहपास्तदाद्-बासनेबेति ॥ १६ ॥ अनारोकन प्रकाशास्कृतिः । कृष्णं तमः

वासनैवेह पुरुषः प्रेक्षिता सा न विद्यते । तां च व प्रेक्षते कश्चित्रतः संसार आगतः॥ १६ अनालोकनसिद्धं यत्तदालोकाच विद्यते । कृष्णाचनुपलम्भोऽत्र द्रष्टान्तः स्पष्टबेष्टितः ॥ १७ भूतानि देहमांसादि तथासद्विभ्रमो जडः। बुद्धाहंकारचेतांसि तन्मयान्येव नेतरत्॥ १८ भूतादिमयतां त्यक्त्या बुद्धाहंकारचेतसाम् । अत्यन्तं स्थितिरभ्येति यदि तन्मुकतोदिता ॥ १९ चिच्छिष्टा चेत्यनिष्टत्वात्तादृष्टवेवात्र कास्तिता । तस्मात्केष कुतः कुत्र बासना किंस्वरूपिणी ॥ २० यस्य चैष भ्रमः सोऽसन्त्रेक्षयासन्न लक्ष्यते । मृगतृष्णाम्बुवसेन संसारः कस्य कः कुतः॥ २१ तदेवं तर्हि तस्य स्यादिति चित्तोदयो हि यः। पुनः स एव संसारविभ्रमः संप्रवर्तते ॥ **२२** तस्मात्सर्वमनाश्चित्य व्योमवत्समुपास्यताम्। अपुनःसारणं श्रेय इह विसारणं परम्॥ 23 नेह द्रष्टा न भोकास्ति नाऽस्तिता नच नास्तिता। यथास्थितमिदं शान्तमेकं स्पन्दि सदाव्धिवत २४

आदिपदात्तत्कार्यचोरयक्षादिस्तस्य आलोकस्फृतीवनुपलम्भो द-ष्टान्तः । तृष्णेति पाठे तृष्णा मृगतृष्णा । स्पष्टचेष्टितः । अति-सप्ट इति यावत् ॥ १७ ॥ कीहशादालीकात्तमाइ-भूता-नीति । देहमांसादिस्थूलदेहोपादानं पश्चीकृतानि भृतान्येव । तथा बुद्धहंकारचेतांसि सूक्ष्मशरीरोपादानोपलक्षणम् । तान्यपि 'अन्नमयं हि सोम्य मनः' इत्यादिश्रुतेस्तनमयान्यपश्चीकृतभू-तविकारभूतान्येव ॥ १८ ॥ अस्त्वेवं किं ततस्तत्राह-भूता-दीति । तत्र बुद्धादिघटित्छिङ्गोपाधावहंभावेन प्रविष्टविद्यास्मा तद्वारा स्यूलदेहमप्यविद्ययाहमित्यमिमन्यते । तस्य विवेकेन बुद्धहंकारचेतसां भूतादिमयतां वाचारम्भणश्रुतिदर्शितोपायेन सक्ता असन्तं खप्रकाशचित्मात्रसभावेन या स्थितिर्यद्यभ्येति तलाई सैव मुक्तता उदिता आधिर्भता । स एवालोको मयोक्त इस्तर्यः ॥ १९ ॥ एवमात्मलोके प्रसते वासनापि बाधितैवेति तयापि न बन्धप्रसिक्तिरित्याह—चिदिति । लिङ्गोपाधावात्म-चित् किष्टा तादातम्याध्यासेन मिलिता चेत्तस्याश्रेत्योन्मुख-लात्तादरयेव वासनास्तिता प्रसिद्धा । सा चात्र अस्यामुक्त-तायां का ॥ २० ॥ बध्यस्य जीवस्येव तत्त्वदर्शने अनुपल-म्भाव केन कस्य बन्धप्रसक्तिरित्याह-यसंति । असन् अ-र्जीकः । असच प्रेक्षया तत्त्वदृष्ट्या न लक्ष्यते ॥ २१ ॥ आ-त्मालोकमान्ये तु पुनिधत्तोदयेन संसारः स्यादेवेति तहार्ध्यम-पुनःस्मरणाविष कार्यमित्याह्—तदेवमिति द्वाभ्याम् । तत्त-सादेवमात्मालोके प्रवृत्तस्यापि विषयस्मरणे यथिलोदयः स. एव प्रनः संसारः संप्रवर्तते संप्रवर्तेत ॥ २२ ॥ परं विस्मरणं भूमिकाभ्यासेन साधयेदिति शेषः ॥ २३ ॥ तदभ्यासपरः कथं पश्येत्तदाह-नेहेत्यादिना । स्पन्दिप्रारच्धोपनीतव्याधितव्यव-

सर्वे रुच्यं जगद्रहा सदिखवगते स्फुटम्। जलशोषादिवोदेति बिम्बबिम्बिक्षये शिवम्॥ २५ शान्तताव्यवहारो वा रागद्वेपविवर्जितः। विश्रान्तस्य परे तत्त्वे दृश्यते समदर्शिनः ॥ २६ अथवा शाम्ततैषास्य निर्वाणस्यावशिष्यते । निर्वासनः किल मुनिः कथं व्यवहरत्वसौ ॥ २७ यावस्वस्य न निर्वाणं परिपोषमुपागतम्। ताबद्यबहरत्यस्तरागद्वेषभयोद्यः॥ २८ बीतरागभयक्रोधो निर्वाणः शान्तमानसः। शिलेषाप्यशिलीभूतो मुनिस्तिष्ठति नित्यशः॥ २९ कोशेऽस्ति पद्मबीजस्य यथा सर्वाक्विनी तथा। अनन्या स्वप्नविभ्रान्तिरात्मन्यस्ति न बाह्यता ३० बाह्यताभावनाद्वाह्यमात्मैयात्मत्वभावनात् । भवतीदं परे तत्त्वे भावनं तत्त्वेव हि॥ 38 **या**न्तः स्वप्नादिविभ्रान्तिः सैवेयं बाह्यतोदिता ।

मनागप्यन्यता नात्र द्विभाण्डपयसोरिय ॥ 32 स्थेर्यास्थेर्ये तथैवात्र भ्रान्तिमात्रमये तते। आधाराष्ट्रेयते ते हे यथा जलतरङ्गते॥ 33 स्वप्रादावात्मनोऽन्यत्वज्ञानादन्यत्ववेदनम्। अनन्यतावबोधे तु तदनन्यन्न चोद्यि ॥ 38 कलनारहितं शान्तं यद्र्पं परमात्मनः। भवस्यका तत्तद्भावादतद्भावाच तद्भवेत्॥ 34 स्वप्नादिज्ञानसंज्ञान्तौ यदूपं शुक्रमेश्वरम्। न तदस्ति न तन्नास्ति न वाग्गोचरमेय तत्॥ ३६ आत्यन्तिकभ्रान्तिलये युक्त पवावगच्छति । स्वरूपं नोपदेशस्य विषयो बिदुषो हि तत्॥ **QUE** शान्तं निरस्तभयमानविषादछोभ-मोहात्मदेहमननेन्द्रियचित्तजाड्यम्। त्यक्त्वाहमक्षयमपास्तसमस्तभेदं निर्वाणमेकमजमासितुमेच युक्तम् ॥ 36 इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाञ्मीकीये दे॰ मो॰ निर्वाणप्रकरणे उ० निर्वाणयुत्तयुपदेशवर्णनं नाम एकत्रिशत्तमः सर्गः॥३१॥

ब्राब्रिंदाः सर्गः ३२

2

वसिष्ठ उवाच । यदा चितिः प्रसरति तदाह्रग्ताजगद्भमः। असदेवाभ्युदेतीव स्पन्दादपि च वायुता ॥ उदितोऽपि न खेदाय ब्रह्मरूपत्ववेदनात्। परमाय त्वनधाय जगच्छव्वार्थभावनात्॥

इरिनिमित्तम् । सदा अविधवत्पूर्णम् ॥ २४ ॥ विम्बनं विम्ब-विदाभासः सोऽस्यास्तीति बिम्बी उपायिस्ततुभयक्षये ॥ २५ ॥ शान्तता समाधिपरता व्यवहारी वैति द्वयमपि दृश्यते ॥२६॥ ॥ २०॥ सप्तमभूमिकाविश्रान्तिपर्यन्तं परितोषं नोपागतम् ॥ २८ ॥ २९ ॥ एवंच ब्रह्मणि स्वाभाविकभावानुसारेण जगद्भपमस्ति, शास्त्रीयतत्त्वभावानानुसारेण तालिकं रूपमप्य-स्तौति यथेच्छमनर्थः पुरुषार्थी वा सुलभ इत्याशयेनाइ—कोशे इत्यादिना । बाह्यता आत्मान्यनिष्ठता जगतो नेत्यर्थः ॥ ३० ॥ बहिरस्तीति प्रतीतिस्लात्मन्येव बाह्यताभावन।न्नान्याधारता-दिखाइ--बाह्यताभावनादिति । तथाच तत्तद्भावनात्मकमेव बाह्यसमान्तरत्वं चेति फलितमित्याशयेनाह्-भावनमिति ॥३१॥ अतएव स्वप्नजाप्रतोर्न प्रतीतितो भेद इसाह—येति । भिन्नभाण्डस्थक्षीरयोरिव अन्यतामेदो विशेषो नास्ति॥ ३२ ॥ ननु जाप्रत्सप्राधीनां स्थैर्थास्थैर्थे विशेषः प्रत्यक्ष उपरुभ्यते तस्य का गतिस्तत्राह—स्थेयंति । एवं स्वप्रस्य जाप्रहेहाधार-ताप्रखयोऽपि न मेदक इस्याह—आधारेति ॥ ३३ ॥ स्त्रा-र्थानां याबदात्ममात्रता नानुसंधीयते ताबदेव भानम्। आत्म-मात्रताञ्चसंधाने तु झटित्येव जागरणाद्वाधादात्मानन्यत्वं प्र-सिदं तद्ववाप्रदर्थेष्वपि बोध्यमित्याशयेनाह-सप्रादानिति । रूपानुभवमादत्ते चक्षुःप्रसरणाद्यथा। चितिः प्रसरणात्तद्वज्ञगद्विभ्रममास्थिता ॥ ŧ यासौ प्रसरति व्यर्थे चेत्याभाषात्र सा सती। असत्कथं प्रसरति वन्ध्यापुत्रः क नृत्यति ॥

रुद्गि पृथगाविभीववन्न च ॥३४॥ अतएव वास्तवोऽपि न्नहा-भावसाद्भावनाधीन इति यदुक्तं तत्सिद्धभित्याह्-कछनेति ॥ ३५ ॥ अस्तितानिरूपककालदेशाधारायभावात्र तदस्ति । स्वह्मस्याबाधात्र नास्ति । अतएव वाचामगोचरमित्यर्थः॥३६॥ कर्य तर्हि तदाचा गृहणोपदिश्यते तत्राह--आखन्तिकेति । युक्तः समाधिस्थः खानुभवेनैवावगच्छति कान्तामंभोगसुख-वन परं प्रत्युपदेशस्य विषयस्तथापि तदुपायप्रदर्शनेन तत्र श्रोतृबुद्धवतारणमेवोपदेशफलमिति भावः ॥ ३७ ॥ अतो हे राम, अहमद्दंकारं त्यक्ला निरस्तानि जाड्यान्तान्येकादश यस्मि-स्तथाविधमत एव शान्तमजमक्षयमपास्तसमस्तमेदमेकं निन र्वाणं ब्रह्म भूला सदेव समाधावासितुं युक्तमुचितं न व्यवहार-विषयेष्वित्यर्थः ॥ ३८ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्प-र्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकत्रिशत्तमः सर्गः ॥३ १॥

साधुसंगमसच्छास्रविचाराभ्यासशालिनः । मोक्षोऽत्रावश्यभावित्वात्स्वायत्त उपपाद्यते ॥ १ ॥ विद्याविद्याभ्यां बन्धमीक्षयोः स्वायत्तत्वं वर्णयिष्यन् प्रथम-मविद्यया चित्प्रसरणाधीनं स्वायत्तं बन्धं दर्शयति ---यदेति ।

स्पन्दादिप चेति दृष्टान्तार्थम् । इवचेति पाटः स्पष्टः ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ उदितोऽपि न खेदायेति यदुक्तं तद्वपपादयति— 4

9

१०

११

१२

अयं त्वनुभवादेव मुधेवानुभवन्स्थितः। असदेवाननुभवस्वयमर्भकयक्षवत्॥ अहंभावोऽपि दुःखार्थमहमित्येव वेदनात्। अवेदनान्नाहमतः स्वायत्ते बन्धमुक्तये॥ तक्यानं स समाधिर्घा यदवेदनमासितम्। अजडानां जडमिव समं शान्तमनामयम् ॥ वैतावैतसमुद्धेदैर्वाक्यसंदर्भविभ्रमैः। मा विपीदत दुःखाय विबुधा अबुधा इव ॥ असदाभ्रयते दुःखं स्वप्नवद्यनवासनः । रूपालोकमनस्कारान्संकल्परचितानिव ॥ दुःखं सदेव नाश्चाति सुप्तवश्वनुवासनः। रूपालोकमनस्कारान्संकस्परहितानिय ॥ अखन्ततनुतामेख वासनैवेति मुक्तताम् । देशकास्त्रियायोगात्पदार्थे भावनामिव॥ अखन्ततनुतां याता वासनैवेति मुक्तताम्। पराणुपरिणामेन खतां खेऽम्रादिका यथा॥ **अहंभावन**या बोधे वासना घनतानवा ।

यासानिति । कृटस्थचितो बाह्यार्थोपसर्पणलक्षणं प्रसरद्रूपं वि-षयाभावात्खतध नास्त्येवेति विद्यया वाधान्न खेदायेति भावः ॥ ४ ॥ अयं चित्रसरोऽनुभवादेव सिन्धेत् । सचानुभवो वि-बाध्यमानोऽसदर्यमननुभवनेवार्भकयक्षानुभववन्मुधैव स्थित इसर्थः ॥ ५ ॥ उक्तो न्याय आन्तरे अहंभावात्मकप्र-सरेऽपि तस्य इति दर्शयन् बन्धमोक्षयोः खायत्तता सिद्धे-स्याह-अहंभाव इति ॥ ६ ॥ मोक्षस्य स्वायत्ततामुपपाद-यति—तदिखादिना। विद्या मूलजाज्यापहाराचिदात्मैकरस्या-पर्या अजडानां मनोबुख्यादिसर्ववस्तुनां जडं पाषाणादीव नि-बलं यदवेदनं वैद्यवेदनभावनिर्भुक्तमासितमवस्थानं तदेव ध्यानं समाधिर्वा । तदुपरुक्षिता मुक्तिरिति यावत् ॥०॥ अय-मेव विश्रान्तिहेतुः सिद्धान्तः । अन्यया कल्पने तु वादिनां कळहमात्रपर्यवसानेन वृथा कण्ठशोषः स्यादित्याशयेन तान्संबो-**ध्याह—हैतेति । हे विव्यक्षाः** पण्डितंमन्या वादिनः, यूयमव्या मुखी इव द्वेतादिनानाविकल्पसमुद्गेदेर्वहुविधकलहात्मकवाक्य-सदर्भविश्रमेमी विवीदत वृथाकण्डशोषलक्षणं विवादं माप्नुत । इममेब परमपुरुषार्थहेतुं सिद्धान्तमवलम्बध्वमित्यर्थः ॥ ८॥ भनवासनस्य बहुर्मुकस्यासदिप रूपादिदर्शनमिव दुःखमपि दढ-तरं दुर्वारम् । तनुवासनस्यान्तर्भुखस्य तु तद्वदेव प्रारब्धप्रसं-जितमपि दुःखमापाततो भुज्यमानं खानन्दानुभवतिरोहितला-इमुक्तप्रायमेव भवतीत्याह-असदिति द्वाभ्याम् । आश्रयते भुद्धे ॥ ९ ॥ अप्यर्थे एवकारः । सत् प्रारम्धसंचितमपि दुःखं नाश्राति न भुद्गे । सुप्तो निदासुखपरवशिषतो यथा मशकम-क्कणादिदंशनदुःखं नानुभवति तद्वत् ॥ १० ॥ अतो वासना-मामेबोपचयारसंसारानुभव इवापचयो देशकालक्रमेण मु-જાતાનુમનોડિવ લિધ્યતીત્યાદ—અત્યન્તેતિ n

विपश्चित्संगमाभ्यासात्पाण्डित्यमिष मृढता ॥ १३ नाहमस्तीह मधुत्तया निश्चयोऽन्तः शमात्मकः। जीवतो जीवतस्थास्ति रूढवोध इति स्मृतः ॥ १४ षाया द्वनद्वभिषात्रेवं जगदादि च भासते। कोहं कथमिवं चेति विचारेणैव शाम्यति॥ १५ नाइमित्येव निर्वाणं किमेतावति मृढता। सत्संगमविचाराभ्यामेतदाश्ववगम्यते॥ १६ क्षीयते तत्त्ववित्सङ्गादह्मित्येव बन्धनम्। आलोकेनेव तिमिरं दिवसेनेव यामिनी॥ १७ कोऽहं कथमिदं रह्यं को जीवः किंच जीवनम्। इति तत्त्वइसंयोगाद्यावजीवं विचारयेत्॥ १८ जीवितं भुवनं भाति ततोऽहमिति नइयति । तत्वमेकेन तज्जार्कसेवनात्स निषेव्यताम्॥ १९ यो यो बोधातिशयवांस्तं तं पृथगुपास्स्व भोः। संगमे कथयोदेति तेषां वादपिशाचिका॥ २० वादयक्षेप्यभ्यदिते बालस्येव विपश्चितः। युक्तियुक्तमलं मुख्यमुदेत्यहमिति भ्रमः॥ २१

अपक्षयक्रमप्राप्तेन परेणाणुना सूक्ष्मतमेन चरमपरिणामेन। आदिपदान्नीहारधूमादिपरिव्रहः ॥ १२ ॥ वासनातानवे तर्हि क उपायस्तमाह-अहंभावनयेति । ब्रह्माहंभावनया बोधे अभिवृज्यमाने वासना दिनेदिने घनं निरूढं तानवं सौक्ष्म्यं यस्यास्तथाविधा सती मुक्तिः संपद्यते । यथा विपश्चितां पण्डि-तानां संगमाद्विद्याभ्यासाद्वर्धमानानमूढता धनतानवं प्राप्य पाण्डित्यं संपद्यते तद्वदित्यर्थः ॥ १३ ॥ कियत्काळं बोधो वर्ध-नीय इति चेद्रुढवोधतापर्यन्तमित्याशयेन रूढवोधलक्षणमाह-नाहमिति । मद्युत्तया अहंब्रह्मेति भावनाळक्षणेन प्रत्यगात्मयो-गेनाभ्यस्यमानेनेह जीवतो योगिनोऽजीवतः परलोकं गतस्य वा अहंशब्दार्थी जीवो नास्तीति शमात्मको निश्वयोऽन्तर्य-स्यास्ति स रूढवोध इत्यर्थः ॥ १४ ॥ द्वन्द्वं द्रव्यं क्रियेति च करप्यमानम् । स्पन्द इति पाठे स्पष्टम् । आदिपदाञ्जीवः ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ जीवनं प्राणादिधारणं किम् । याव-जीवप्रहणमामोक्षोपलक्षणम् ॥ १८॥ सच विचारो गुरुसेव-नाच्छीघ्रं फलपर्यन्तः सिध्यतीत्याशयेनाह—जीवितमिति । यतस्तज्ज्ञस्तत्वविसल्लक्षणस्याकेस्य सेवनाःसंपक्तेद्भवनं जगदेव बोधेनोजीवितं भाति । अहमिति सर्वपदार्थतस्वावरणं तमो नस्यति वसुतर्त्वं च एकेन क्षणेन प्रथते अतः स तज्ज्ञाकीं निषेव्यतामित्यर्थः ॥ १९ ॥ यदा तु बहुषु विद्वत्यु तार्किकेषु च सत्खयं तत्त्वहोऽयं नेति निर्धारणे असमर्थोहं तदा कि कर्यो तत्राप्याह-यो य इत्यादिना । ननु पृथगुपाखेति किमर्थ-मुच्यते, समुदितोपासी को दोषस्तमाह-संगमे इति । क-थया परस्परविरुद्धयुक्तिकयनेन । 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना तुण्डे तुण्डे सरस्रती' इति न्यायादिति भावः ॥ २० ॥ उदेत नाम वादिपशाचिका को दोषस्तत्राह—बादयक्षे इति । बादलक्षणे अतः प्रत्येकमेकान्ते प्राष्टः सेवेत पण्डितम्।
एकीकृत्य तदुकांस्तानथान्बुद्धा विचारयेत्॥ २२
विचारयेत्तदुक्तयर्थे बुद्धा बुद्धिविवृद्धये।
सर्वसंकरपमुकं यत्तत्सत्तनमयतां वजेत्॥ २३
विपश्चित्संगमैर्बुद्धि नीत्वा परमतीक्ष्णताम्।
अज्ञानलतिका सैका कणद्दाः क्रियतामलम्॥ २४
एषोऽर्थः संभवत्येव तेनेदं कथयाम्यहम्।
स्वानुभूतं वयं बाला नासमञ्जसवादिनः॥ २५

व्योद्घोऽम्बुचाहाविविज्ञम्भयेष तरक्रमक्रोच महाजलस्य । न युज्यते नापि च नश्यतीह नाशोदयौ निर्मननस्य किंचित् ॥ २६ इदं हि सर्व मृगतृष्णिकाम्बुच-श्रिरामये ब्रह्मणि शान्त आतते । विचारिते नाहमितीह विद्यते कुतः क कस्मान्मननादिविभ्रमः ॥ २७

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सत्यावबोधनोपदेशो नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२॥

त्रयित्रदाः सर्गः ३३

3

विसष्ठ उवाच ।
स्वपौरुषेण स्वधिया सत्संगमविकासया ।
यदि नानीयते इत्वं तदुपायोऽस्ति नेतरः ॥
स्वं किर्नतं किर्नतं च प्रतिकरणनया स्वया ।
तदेवान्यत्वमादत्ते विषत्वममृतं यथा ॥
करणना चाकरणनान्ता मुक्तता यदकरणनम् ।
एतच भोगसंत्यागपूर्वं सिध्यति नान्यथा ॥

यही विशाचेऽभ्यदिते सति विवेकिनोऽपि श्रोतुरश्रोतुमपि युक्तिमिस्तर्केर्युक्तं तार्किकैः प्रतिपाद्यमानमहं प्रत्यक्तस्वं मुख्यं तदेवालं पर्याप्तं ममेति भ्रम उदेति । तथाचान्धगोलाजुलन्या-येन तदालम्बनेऽनर्थ एव स्यादिति भावः ॥ २१ ॥ सेवेत सेवाद्यपचारेण वशीकृत्य पृच्छेत् ॥ २२ ॥ श्रुतियुक्तिस्वानुः भवविद्वदन्तरसंवादैविंचारयेद्रवतत्त्वमिव परीक्षेत सर्वसंदेहो-च्छेदेन बुद्धेः शुद्धये । एवं मननेन बुद्धिशुद्धौ निदिध्यासनं कार्यमित्याह-सर्वसंकल्पमुक्तमिति । तत् सत्परमार्थस्तन्म-यतां निर्विकल्पसमाधितस्तदैकरस्यम् ॥ २३ ॥ तेन तत्त्वज्ञा-नोदयेनाज्ञानोच्छेदं दर्शयति-विपश्चिदिति ॥ २४ ॥ तदसं-भवशङ्का न कार्येत्याह-एषोऽर्थ इति ॥ २५ ॥ सर्वसंकल्प-मुक्तं यत्तदेव सत्, तन्मयताप्राप्तौ सर्वजगद्यवहारैरिप विदुषो न कश्चिदिष्टनाशोऽनिष्टोदयो वेलाह-व्योम्न इति । यथा व्योमः अम्बुबाह्नीहारातपादिविज्ञम्भया यथावा महाजलस्य समुद्रस्य तरकादिभक्त्या किंचिदनिष्टं न युज्यते नापि किंचिदिष्टं नस्यति तद्विभननस्य निःसंकल्पस्य योगिनोऽपि नेष्टानिष्टनाशोदयावि-खर्थः ॥ २६ ॥ आकाशसमुद्रयोः सद्वितीयलात्तद्योगवियोग-शङ्कापि स्याद्विदुषस्तु कूटस्थाद्वयब्रह्मरूपलामाध्यस्तविवर्तेस्त-च्छद्वापीत्याशयेनाह—इदं हीति । निरामये आतते पूर्णे ब्र-द्वाणि विचारिते प्रवुद्धे सति इदं सर्वं मृगतृष्णिकाम्बुवदहमिति च प्रथगात्मरूपं न विद्यते । एवं स्थिते इह तत्त्वविदि मनना-दिविश्रमः कुतः क कस्पात्स्यादिलार्थः ॥ २७ ॥ इति श्रीवा-सिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्वा-त्रिंचाः सर्गः ॥ ३२ ॥

वचसा मनसा चान्तः शब्दार्थाषविभावयन् । य आस्ते वर्धते तस्य कल्पनोपशमः शनैः ॥ ४ वर्जयित्वाहमित्येव नाविद्यास्तीतरात्मिका । शान्ते त्वभावनादसिकान्यो मोक्षोऽस्ति कश्चन ५ अहंभावमधादेहं किंचिच्छ्रयसि नश्यसि । जगदादिद्विस्तांसिस्यके शाम्यसि सिध्यसि ॥ ६

> इहोपवर्ण्यते भ्रान्तिकस्पना प्रतिकस्पना । परलोकिषिकित्सा च संविध्यसरवारणात् ॥ १ ॥

तत्रादे। प्रतिकल्पनां वक्तं प्रस्तावं रचयति स्वपौद्ववेणेति । ना अधिकारयोग्यक्षरीरे प्राप्तः पुरुषो यदि इत्वं तत्त्वज्ञानं नीयते प्राप्यते । नयतेर्द्धिकर्मकात् 'प्रधाने नीहकुष्वहाम' इति प्रधाने कर्मणि छः । तत्तर्हि नेतरो नान्यते सर्थः ॥ १ ॥ की-दशं तत्पीरुषं येन इत्वं नीयते तदाह-सं कल्पितमिति। सं स्वाभाविकमशास्त्रीयम् । कल्पितं कल्पितमिति वीप्सा । सर्वे कल्पितं चात्तनमूलं वासनाविद्यादि च खया खीयया शाखीयया प्रतिकल्पनया तदेवान्यत्वं बन्धहेतुतामपहाय मोक्षोपयोगिल-मादते । यथा खभावतो मरणहेत्रपि विषं रसायनशास्त्रोक्तो-पायप्रतिकल्पनया विषत्वं विहायामृतममरणसाधनं रसायनं भवति तद्वत् ॥ २ ॥ कियत्कालं प्रतिकल्पना कार्येति चेरसर्व-कल्पनानिवृत्तिपर्यन्तमित्याह्-कल्पनेति । अकल्पनं सर्वेकल्प-नानिश्वतिरन्तोऽवधिर्थस्याः सा ययसाद्धेतोरकल्पनमेव परि-शिष्टस्यात्मनो मुक्तता । तत्रावश्यकी वैराग्यलक्षणां संन्यास-ठक्षणां च प्राथमिकी प्रतिकल्पनां दर्शयति — एतचित । पूर्व-मादी भोगसंखागात् 'त्यजतैव हि तज्ह्येयं त्यक्तः प्रत्यक्परं पदम्' इति श्रुतेरिति भावः ॥ ३॥ ततः श्रवणमनना-भ्यामात्मतत्त्वं निश्चित्य वाद्यनसनिरोघछक्षणा प्रतिकल्पना कार्येत्याह—वचसेति ॥ ४ ॥ ततोऽनहंभावलक्षणा सा कार्येत्याह—वर्जयित्वति । अभावनात्सर्वभावनानिवर्तकतत्त्व-साक्षात्कारात् । अस्मिन्नहंकारे शान्ते बाधिते सति ॥ ५ ॥ अथ तत्त्वसाक्षात्कारोत्तरमपि प्राक्तनजगजीवभवे रुचियेस्य

अचेतनादिदं सर्वे सहेवासदिव स्थितम्। शान्तं यस्योपलस्येव नमस्तस्य महात्मने ॥ G अचेतनादिदं सर्थमुपलस्येव शाम्यति । शुन्याख्यातः परा लीनचित्तस्य चित्त्वभावनात् ८ इदमस्त्वथवा मास्तु चेतितं दुःखबृद्धये। अचेतितं सुखायान्तरचेतनमचेतनात् ॥ 9 द्वी व्याधी देहिनो घोरावयं लोकस्तथा परः । याभ्यां घोराणि दुःखानि भुङ्के सर्वैहिं पीडितः १० इहलोके यतन्ते हा व्याघी भोगेर्द्ररीपधैः। आजीवितं यथाशकि चिकित्सा नापरामये ॥ ११ परलोकमहाव्याधी प्रयतन्ते चिकित्सनम्। दामसत्सङ्गबोधाख्यैरमृतैः पुरुषोत्तमाः॥ १२ परलोकचिकित्सायां सावधाना भवन्ति ये। मोक्षमार्गमष्टेच्छायां शमशक्तया जयन्ति ते॥ १३ इहैच नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः। गत्वा निरीपधं स्थानं सठजः किं करिष्यति ॥ १४ इह्छोकचिकित्साभिजीवितं यातु मा क्षयम्। आत्मशानौषधैरशाः परलोकश्चिकित्स्यताम् ॥ १५ आयुर्वायुचलत्पत्रलवाम्बुकणमङ्गरम् । परलोकमहाव्याधिर्यक्षेनाग्र चिकित्स्यताम् ॥ १६ परलोकमहाव्याधौ यह्नेनाशु चिकित्सिते। इहलोकमयो व्याधिः स्वयमाशूपशास्यति ॥ १७

तथाविधः सन् आदेहं स्थूलदेहपर्यन्तं किन्विदल्पमप्यहंभावं यदि श्रयसि तदैवापरिच्छित्रपूर्णानन्दस्यरूपविसारणात्रश्यसीव। संसारदःखे तपसीत्यर्थः । तस्मित्रहंगावे त्यके तु शाम्यसि सर्वेदुःखनिवृत्ति लभसे । निरतिशयानन्दखभावेन सिद्धसि च ॥ ६ ॥ अचेतनाद्वहिर्मुखनृत्या अदर्शनात् ॥ ७ ॥ परस्मि-न्ब्रह्मणि आलीनचित्तस्यात एवोपलस्येव बहिरचेतनादन्तिध-श्वभावनात्साधकाभावाद्वाधकसत्त्वाचेदं सर्वे दृश्यं शाम्यति ॥ ८ ॥ मुखदुःखयोर्दश्यसलासत्वे नोपयुज्येते किंतु तद्दर्शना-दर्शने एवेति तचेतनाय प्रवृतं चित्तमेव निरोद्धव्यमिलाशये-नाह-इदमिति। द्रयस्याचेतनमदर्शनं तु अचेतनाचित्तिवया-निरोधेन ब्रह्माकारतापादनान्तप्रतिकल्पनावशादेयेखर्थः ॥ ९ ॥ परलोकनिकित्सां वर्णयितुमुपक्रमते—द्वाविति । सर्वैराष्या-सिकादिभावैः ॥ १० ॥ इह लोके प्रसिद्धे क्षुत्तपादिव्याधावन्न-पानादिभोगलक्षणें र्दुरीषधैर्यथाशकि यतनते । अपरामये पार-होकिकनर्कजनमपरम्परादिव्याधी भोगैश्विकित्सा न जायत इत्यर्थः ॥ ११ ॥ चिकित्सनं कर्तुमिति शेषः ॥ १२ ॥ अप-ध्यभोगत्यागे सत्सन्नायौपधसेवने च सावधानाः। शमाख्य-स्पीषभस्य शक्तया ॥ १३ ॥ ननु परलोकव्याधेसत्रेव वि-कित्सा करिप्यते किमत्र तिचन्तया तत्राह-इहैवेति । निरीषधं साञ्चसंगमसच्छालाबीपधशून्यं नरकस्थावरादिस्थानम् ॥१४॥ हे अज्ञाः ॥ १५ ॥ १६ ॥ इह लोकव्याधिविकित्सार्थे प्रथ-

संविन्मात्रं विदुर्जन्तुं तस्य प्रसरणं जगत्। परमाणुद्रेऽप्यस्ति तच्छैलशतविस्तरम्॥ १८ यत्संविदः प्रसरणं रूपालोकमनांसि तत्। ब्योमन्येवानुभूयन्ते नातः सत्यो जगद्भमः॥ १९ प्रलयेष्वपि रुष्टेषु जगदृश्याख्यविभ्रमः। न नश्यति न जायेत भ्रान्तिमात्रैकरूपिणः॥ 20 भोगपङ्कार्णवे मग्न आत्मा नोत्तार्यते यदि । स्वपौरुषचमत्रुत्या तदुपायोस्ति नेतरः॥ २१ अजितात्मा जनो मृढो रूढो भोगैककर्दमे। आपदां पात्रतामेति पयसामिव सागरः॥ २२ जीवितस्य यथा बाल्यं दृष्टं प्राथमकिएकम्। निर्वाणस्य तथा भोगसंत्यागो रागशान्तिकः॥ २३ तज्ज्ञस्य जीवितनदी सक्छोलाप्यसंभ्रमा। समं वहति सौम्यैव चित्रसंस्थेव नीरसा ॥ 28 अन्नजीवितनेद्यास्तु रसनात्यन्तभीपणाः। आवर्ता वृत्तिविश्लोभकल्लोलाः सहवाहिनः॥ २५ सर्गवर्गाः प्रवल्गन्ति संवित्प्रसरस्रेशकाः । **क्षिचन्द्रबालवेतालमृगाम्ब्स्वप्रमोहवत् ॥** २६ संविद्वारितरङ्गीघा भान्ति सर्गाः सहस्रदाः। विचारितास्त्वसत्यास्ते सत्यास्त्वनुभवभ्रमात् २७ जगन्त्याकाशकोशेऽपि संवित्प्रसरणभ्रमात् । सन्तीवाप्यनुभूयन्ते न तु सत्यानि तानि तु ॥ २८

ग्यक्षो न कार्य इत्याह—परलोकेति ॥ १७ ॥ परलोकव्याधे-स्तपस्तीर्थयद्वदानप्रायश्वित्तादिचिकित्सा यद्यपि सन्ति तथापि ता नात्यन्तिकतदुरुछेदहेतवः किंलात्मज्ञानमेव । तत्र श्रवणा-दिपूर्वकसमाध्यभ्यासलक्षणसंवित्त्रसरनिरोधादेवेत्याशयेन तदु-पायान्वक्तं भूमिकां रचयति - संविन्मात्रमिति । तज्जगत्परमा-णुदरेऽपि संविदः पूर्णलादस्त्येव ॥ १८ ॥ प्रसर्णं बहिर्म-खतया विवर्तनं तदेव रूपालोका बाह्यार्था मनांसि कामसंक-ल्पाद्याभ्यन्तरा इत्यर्थः । व्योमनि चिदाकाशे ॥ १९॥ मिथ्या-लादेव प्रलयसहसैरपि नास्य निश्चत्तिः सृष्टिसहस्रेरपि न सत्ता किंत्वात्मज्ञानादेवेत्याशयेनाह—प्रस्रयेष्वपीति । न जायेत स्-ष्टिषु दृष्टेष्वपीति शेषः । तत्र हेतुमाह---श्रान्तीति । श्रान्ति-मात्रैकरूपिलादित्यर्थः ॥ २० ॥ आत्मज्ञाने तर्हि के उपाया इति चेत्प्रथमं वैराग्यमेवेत्याह—भोगेति ॥ २१ ॥ २२ ॥ जीवितस्य आयुषः ॥ २३ ॥ रागशान्तिदः इति विशेषणस्य तात्पर्यं तज्ज्ञाज्ञजीविसनदीवेलक्षण्यवर्णनेन दर्शयति—सज्ज्ञ-स्येत्यादिना ॥ २४ ॥ रसनाः आऋन्दध्वनयस्ताभिरत्यन्तमी-षणाः ॥ २५ ॥ अज्ञानामविचारादेव सर्गादिप्रतिभासविश्लेप-रूपाः संवित्प्रसरलेशा इत्याह--सर्गति । प्रवल्गन्ति प्रसरन्ति ॥ २६ ॥ अनुभवश्रमाद्भान्तानुभवात् ॥ २७ ॥ प्रसिद्धे आ-काशकोशेऽपि गन्धर्वनगरादि जगन्ति सन्तीवानुभूयन्ते॥२८॥

१ नधस्तु शति पाठः.

संविद्विकासपयसो बुद्धदः सर्गविभ्रमः। अहमित्यादिसद्भावविकाराकारकपवान्॥ २९ संविश्विवीणमजगत्संविदुन्मीलनं जगत्। नान्तर्न बाह्यं नासत्यं न सत्यं सर्वमेव तत्॥ ३० चिद्रपमजमव्यक्तमेकमव्ययमीश्वरः। स्वत्वभावत्वरहितं ब्रह्म शान्तात्मखादपि ॥ ब्रह्मणो निःस्वभावस्य सर्गसंवेदने स्वतः। स्पन्दने पवनस्यव कारणं नोपयुज्यते ॥ 32 स्वप्रानुभववद्भान्तिर्वह्मान्धी ब्रह्मवीचयः। सर्गता वस्तुतस्त्वत्र न स्वप्नो न च सर्गता ॥ ३३ एकमेव निराभासमचित्त्वमजडं समम्। न सन्नासन्न सदसदिदमव्ययमद्वयम्॥ રેક यथास्थितस्यैव सतो यस्यासंवेदनात्मकम्। संवित्प्रशमनं जातं तमाहुर्मुनिसत्तमम्॥ 34 सतोऽपि मृन्मयस्येव यस्यासंवेदनात्मकम्। साहं जगद्विगलितं तमाहुर्मुनिसत्तमम्॥ ३६ यथा शास्यत्यसंकल्पात्संकल्पनगरं तथा ।

वेदनोत्थं जगदहं चिति शाम्यत्यवेदनात् ॥ स्वभाववर्ज राब्दार्थाः सर्वे एव सहेतुकाः। स्वभाषस्य तु यो हेतुर्मुक्तिस्तद्वुभाषनम्॥ ३८ न कस्यचित्पदार्थस्य स्वभावोऽस्तीह कश्चन। महाचिदम्बुद्रयताः सर्वा एवानुभूतयः॥ 36 महाचिदनिलस्पन्दा एता एवानुभूतयः। पतास्ता ब्रह्मगगनशून्यता इति बुध्यताम्॥ 80 वातस्पन्दाविवामिश्री ब्रह्मसर्गी विभिन्नता । तयोस्त्वसत्या स्त्रभ्रान्तौ स्वप्ने स्त्रमरणोपमा ॥ ४१ भ्रान्तिस्तु तावत्तत्त्वार्थविचारो यावदस्फुटः । विचारे तु स्फुटे भ्रान्तिब्रह्मतामेव गच्छति ॥ भ्रान्तिस्त्वसत्या वस्त्वेव प्रेक्षयातो न लभ्यते । शशश्दुज्ञवदत्यच्छमतो ब्रह्मेव शिष्यते॥ 83 अनादिमध्यान्तमनन्तमच्छं समं शिवं शाश्वतमेकमेव। सर्वा जरामोहविकारभार-भ्रान्ति विमुच्याम्बरभावमेहि॥ 88

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० सलार्थोपन्यासयोगो नाम त्रयस्त्रिशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंदाः सर्गः ३४

वसिष्ठ उषाच । प्राप्तेषु सुखदुःखेषु यो नश्यति स नश्यति । यो न नश्यत्यनाशोऽसावर्छं शास्त्रोपदेशनः ॥ यस्य चेच्छोदयस्तस्य सन्त्यवश्यं सुखादयः।

अहमित्यादिमिः सद्धिर्भावविकाराकारे रूपवान् ॥ २९ ॥ सं-विदो निर्वाणमप्रसरः । अजगत् सर्वजगन्निष्टत्तिः । उन्मीलनं प्रसरः ॥ ३० ॥ स्वप्रसरनिरोधयोः स्वयमेवष्टे इति ईश्वरो ब्रह्मेखर्थः ॥ ३१ ॥ स च स्पन्दो मिध्याभूताविद्याविवर्ते एव नतु सत्यव्रह्मस्वभावज इत्याह---व्रह्मण इति ॥ ३२ ॥ आ-विद्यकत्वे च विवर्तरूपा एव सर्गताः ब्रह्मणो वीचयो आन्ति-रेव । बह्यतस्तु न खप्नो नापि सर्गतेत्थर्थः ॥ ३३ ॥ परमार्थ-तस्तर्हि ब्रह्म कीदशं तदाह-एकमेवंति । अचित्त्वं चित्त्वाख्य-भर्मान्तरश्चन्यम् ॥ ३४ ॥ तादशब्रह्मभावेन स्थितिरेव योगिनः संवित्प्रशमनं मुनित्वं चेल्याह्—यथास्थितस्येति ॥ ३५ ॥ साहं जीवभावसहितम् ॥ ३६ ॥ संकल्पसप्टेरसंकल्पनमिव दृष्टदृष्टेरस्या अदृष्टिरेव निवृत्तिरित्याह्—यथेति ॥ ३७ ॥ सर्वजडवसुष्वनुगतः खभावो जार्च्यं सेव मूलाविद्या तामेकां वर्जियिला सर्वे एव शब्दार्था नामरूपाणि सहेतुकास्तदेतुकाः तस्य खभावस्यापि यो हेतुः साक्षितया साधकस्तदनुभावनं खात्मनस्तन्मात्रतापादनं मुक्तिरित्यर्थः ॥ ३८ ॥ अनिद्यापगमे न कस्यचिदपि जाड्यं परिशिष्यत इति चिदेकरसं योगिनो जगिदलाह्—विदिलादिना ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४९ ॥ किय- ते चेत्सम्यिकित्स्यन्ते पूर्वमिच्छेव मुच्यताम् २ अहं जगदिदं भ्रान्तिर्नास्त्येव परमे पदे। इदं शान्तमनालम्बं सर्वं निर्वाणमञ्जयम्॥ ३

त्कालं सा आन्तिस्त्राह्—आन्तिस्त्रित ॥ ४२ ॥ ननु आन्तः कथं त्रद्धातां गच्छति तत्राह्—आन्तिस्त्रित । आन्ता यः सत्तास्पृत्यशः स त्रद्धातां गच्छति अन्यस्तु नास्त्ये-वेति न तदिभिप्रायेणोक्तिमिति भावः ॥ ४३ ॥ सर्वभान्तिबा-धपरिशिष्टं त्रद्धा दश्यम् रामं तद्भावस्थितौ स्थापयति—अना-दीति । हे राम, त्वं देहप्रसङ्गप्रसक्तां सर्वा जरामोहादिविकार-भारभ्रान्ति विमुच्य त्रद्धाकाशभावभेहि । प्राप्नुहीत्यर्थः ॥४४॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे त्रयिक्षशक्तानः सर्गः ॥ ३३ ॥

दृष्टस्ष्टिजंगत्तस्यादर्शनादेव संक्षयः।

इति यद्मस्तुतं तस्य वण्यंन्तेऽत्रोपपत्तयः ॥ १ ॥
'वेदनोत्थं जगददं चिति शाम्यत्यवेदनात्' इति यदुक्तं
तत्रोपपत्तीविवधुर्भगवान्वसिष्ठः प्रथमं नश्वरीम्यः मुखदुःखानुभवित्रपुर्टीम्यः पृथकृत्यानश्वरमात्मानं दर्शयंस्तद्शेनादेव सर्वशास्त्रोपदेशानां चरितार्थतेत्याह्—प्राप्तिष्वति ॥ १ ॥ यस्त्विच्छादिमान् स नित्यदुःखी नात्मा किलिच्छात्यागाद्युपायन्विकित्सनीयसंस्तिरोगकोटावेवत्याश्येनाह—यस्य चेति ॥ २ ॥
यस्त्विवनार्यात्मा तत्रेच्छासमिमानी तदिममन्तव्यं जगन्न न

अहं ब्रह्म जगश्चेति शब्दसंभ्रमविभ्रमः। सर्वस्मिञ्छान्त आकाशे केन नामोपकल्पितः॥ ४ नेहास्यहं नच जगन्न च ब्रह्मादिशब्दकाः। शान्तस्येकस्य सर्वत्वात्कर्ता भोकेह कः कुतः ॥ ५ उपदेश्यातिशायित्वात्सर्वापद्वव एव व। कृतोऽयं स च सत्यात्मा त पवाहं विशिष्यते ॥ ६ अत्रस्थतिद्धसंचारो शायते नापि दारुणः। यंथकपार्श्वसंसुप्तनरः स्वप्नाभ्रगर्जितम् ॥ ও शर्मा नास्ति यतस्तेन सिद्धाचारो न लक्ष्यते। स्वभाव इति सर्वेण इप्तिस्थो हानुभूयते ॥ ረ इतिरप्यातमभूतेव सर्वे भाति हि तन्मयम्। तसात्साहं जगत्सर्धमभिन्नं परमात्मनः॥ Q श्वतिर्जगत्तया भाति संकल्पस्वप्रयोरिव। अनानावययोदंति जलमूर्मितया यथा॥ १० एकात्मैयोदये श्रप्तेनानातामिव चागतः। अञ्चानात्सत्ववस्तुत्वात्प्रक्षितो नोपलभ्यते ॥ ११ यथा स्वाचयवानेव सर्वानवयवी भवेत्। नित्यानवयवं शान्तं ब्रह्मेंबेदं तथा जगत्॥ १२ भाण्डलक्षाणि धत्ते उन्तश्चिद्रपकनकेष्टिका। यदेव सा चेतयते जगदादीव वेत्ति तत्॥ १३ ब्रह्मेव कचतीवेदं सत्तयाच्छजगत्तया। चिद्रपत्वाद्रवात्मत्वात्तरङ्गादितयाब्धिवत्॥ १४

संभाव्यभेवत्याह-अहमिति ॥ ३ ॥ एवं चाहमादिशब्दास्तत्र निर्विषया इत्याह—अहमिति ॥ ४ ॥ तदभावे दूरापासीव कर्तभोकादिकथेल्याह—नेहिति ॥ ५ ॥ ननु सर्वापहवे उपदे-शादिरप्यपद्भयेत । तथाच तद्बोधोपायो न लभ्येत इति चेदस्तु नामैवम् । उपदेश्यस्य ब्रह्मणः सर्वापह्नवेऽप्यनपह्नवादपह्न्यमा-नानृतसर्वार्थभ्यः पारमाधिकरात्यप्रत्यगात्मखरूपातिशयवस्वा-बापह्रवोपायेन तद्वोधानन्तरमुपदेशाद्यपायस्यानपेक्षणा चेत्या-श्येनाह--उपदेशति । विशिष्यते परिशिष्यते अतिशय्यते च ॥ ६ ॥ अस्त्वेवं तथापि कथमदर्शनमात्रेण दृश्योपशमस्त-त्राह-अग्रस्थेति । यथा पुरोभागेऽपि स्थितानामन्तर्धान-शक्या अन्तर्हितानां सिद्धानां पिशाचादीनां च संचारी व्यव-हारी दाहणी भयंकरोऽपि न ज्ञायते । यथावा एकशय्याप्रदेशे सप्तस्य नरान्तरस्य स्वप्ने प्रसिद्धानामश्राणां गर्जितं दारुणमपि न ज्ञायते तचास्पद्दच्या नास्त्येव तद्वदिस्पर्थः ॥ ७ ॥ तदे-वाह - इप्ताविति । सर्वेणापि द्रष्ट्रा स्वइप्तिस्थोऽनुभूयते इति स्वभावो हि प्रसिद्ध इसर्थः ॥ ८ ॥ अस्त्वेवं कि ततस्तन्नाह-क्रिप्रपीति ॥ ९ ॥ अनानावयवापि इप्तिनीनावयवजगत्तया भाति ॥ १० ॥ नानातामिवागत एक आत्मैव इप्तेरज्ञानाद्वि-वर्तरूप उदयः । सतूदयोऽवस्तुलात्तत्त्वदशा प्रेक्षितो नोपल-भ्यते ॥ ११ ॥ यथाऽयमननयनोऽपि जीवः स्वान् इस्तपादा-

यचचेतयतेऽन्तस्तु जगदादीव पद्यति। अरूपमपि रूपं स्वं यस चेतयते न तत्॥ १५ चेतनाचेतनत्वोक्ती तस्येशत्यात्स्वदेहगे। उपदेशार्थमेवोक्ते न सद्विषयमर्थतः॥ १६ न जगत्सम्भ वैवासङ्गासते चेतनाश्विति। अचेतनाम कचित क इवार्थप्रहोऽत्र नः॥ १७ अचेतनं चेतनं च स्पन्दास्पन्दवदात्मनः। स्वायसेन कदर्थस्थे स्वस्थपाषाणवित्स्थते ॥ १८ यस्येक्षितस्य नो सत्ता नाघारो न च कारणम्। सोऽहमित्येच यो यक्षो न जाने कुत उत्थितः॥ १९ यस्याहमिति यक्षस्य सत्तेवास्ति न सत्यतः। अहो नु चित्रं तेनेमे भवन्तो विवशीकृताः॥ २० काकतालीयवद्भान्तमहं ब्रह्मणि भासते। स्वमेव रूपं रम्भ्रान्तौ केशोण्ड्रकमिधाम्बरे॥ 31 ब्रह्मैवाहं जगचात्र कुतो नाशसमुद्भवौ। अतो हर्षविषादानां कित्वेव कथमास्पदम्॥ 22 सवंश्वरत्वादीशस्य विभातीयं प्रचेतितम्। अचेतितं च नो भाति तेनाचेतितमस्तु ते ॥ २३ काकतालीयविश्वत्वाज्जगतो भाति ब्रह्म खम्। २४ स्वप्नसंकल्पपुरवत्तत्तसाद्भिद्यते कथम्॥ यधोर्म्यादि जले वृक्षे यथा वा शालमञ्जिका। यथा घटादयो भूमी तथा ब्रह्मणि सर्गता ॥ २५

द्यवयवान् कल्पयन्खप्रमनोरथादाववयवी भवेत्तथा ब्रह्मापी-स्पर्यः ॥ १२ ॥ चिद्रूपा कनकेष्टिका कुलाली चेतयते स्मरति ॥ १३ ॥ १४ ॥ यत्र चेतयते नाध्यस्यति न तत्परयति॥१५॥ ईशलान्मायाशबळत्वेन सर्वशक्तिसंपन्नलात्खदेहभूतमायागते। इदं तु वचनमर्थतः सद्विषयं परमार्थगोचरं नेत्यर्थः ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ अस्त्वेवं किं ततस्तत्राह-अचेतनमिति । खायते खाधीने न कदर्थस्थे यक्षश्रमसाध्ये । यथा खस्थस्य निश्वलस्य स्फटिकपाषाणस्य स्वान्तर्गतप्रतिनिम्बसहस्रस्पनदास्पनदे न यज-साध्ये तद्वस्थिते ॥ १८ ॥ सर्वकल्पनामूलसैकस्याहंकारसैव परीक्षणेन मिथ्यालावधारणे सर्वजगन्मिथ्यात्वं सिद्धमित्याश-येनाह-यस्पेति ॥ १९ ॥ सत्यतो वस्तुतः । सत्ता विद्यमा-नता ॥ २०॥ काकतालीयवदाकस्मिकम् ॥ २१ ॥ एवं च यःफलितं तदाइ--- नद्दीवेति । किमास्पदं विषय आश्रयध ॥२२॥ वर्णितां दृष्टसृष्टिकल्पनामन्य तत्फलमाह—सर्वेश्वरला-दिति । ते तव अचेतितं जगददर्शनम्खु । तदेव सर्वदर्यमार्जन नरूपा मुक्तिः फलमित्यर्थः ॥ २३ ॥ वर्णितरीत्या जगतोऽपि चिन्वाह्रह्म खमेव खप्रसंकल्पपुरवत्काकतालीयवदकसादन्यशा भाति । बखुतसू तज्जगत्तसात्कथं भिष्यते, तद्भेदे सत्तास्फूर्त्थ-लाभेनालीकलप्रसङ्गादिखर्थः ॥ २४ ॥ स्तिमिते जळे यथा कर्म्यादि । अनुत्कीणे यक्षकाचे सालभन्निका । भूमी चानु-

अनाकृतावसंस्थाने सब्छे यव्तुभ्यते। तत्तरेवात उदितं किनामाहं जगनित किम्॥ રદ महतः स्पन्दवैचित्र्यं सत्त्रयेव यथा तथा। ब्रह्मणो निःस्वभाषस्य जगदाद्यहमादि च ॥ २७ यथाभ्रे लक्ष्यते वृक्षगजवाजिमृगादिता। अस्तिवेशाकृतिनि सर्गाहन्ते तथापरे॥ २८ सर्गोऽवयववद्भाति सर्व एव परे शिवे। एवं तद्पमां विद्धि कार्यकारणवद्यथा॥ २९ अन्तःशान्तमनायासमनुपाधि गतस्रमम्। जगत्यसंभवादेव व्योमवत्सममास्यताम्॥ 30 न भवन्तो नच वयं न जगन्ति न खादयः। सन्ति शान्तमशेषेण ब्रह्मेदं निर्भरं स्थितम् ॥ 38 अशेषेष्वविशेषेषु शान्ताशेषविशेषता । सत्या सैबाहमित्याश त्यक्तवा मोक्षाय भाव्यताम् ३२ वेदनं बन्धनं विद्धि विद्धि मोक्षमवेदनम्। यथास्थितं यथाचारं भव शान्तमवेदनम् ॥ 33 द्रष्टा न दृश्यतां याति चितिनीयाति चेतत्याम्। चेत्याभावादजगति कः किं चेतयते कथम् ॥ 38 द्रष्ट्रहरूयद्शाभावाज्जाप्रत्येव सुबुप्तिवत् । शरदाकाशकोशाभमसत्तोपममास्यताम्॥ 34 तथैकब्रह्मचिद्र्पे पवनस्पन्द्ने यथा। अत्राचिद्वोधता सर्गी मोक्षो ब्रह्मैकबोधता ॥ 36 चित्स्पन्दो ब्रह्ममस्तो यत्र सर्ग इति स्मृतः। नात्र चित्रपन्दनं यत्यान्निर्वाणं तदुदाहृतम् ॥ ३७ इस्पार्वे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमार्थयोगोपदेशो नाम चतुश्चिशः सर्गः ॥ ३४ ॥

बीजमन्तर्यथा वेसि स्वरूपं पल्लवादिकम्। तथा महाचिद्नतस्यं स्वरूपं वेत्ति सर्गताम् ॥ पत्रादिवेदनाद्वीजं यथा पत्रादि तिष्ठति । परा चित्सर्गसंवित्तिस्तथा भवति सर्गता ॥ 30 यथा भावविकाराभाश्चित्पराः सर्गतास्तथा । सर्वे बीजानि दृष्टान्तास्तद्र्पा एव तन्मयाः॥ So निर्धिकारपरब्रह्ममयं सर्विमिदं जगत्। निर्विकारमनाद्यन्तमेवं विद्धि निरामयम् ॥ કર निजसंकल्पमात्रात्मा निजसंकल्पनात्क्षयी। द्वैताद्वेतविकारोऽयं संकल्पनगरं यथा॥ પ્રર शुन्यत्वाकाशयोभेदो यादशोऽवगतस्त्वया। भेदं निरात्मकं विद्धि तादशं ब्रह्मसर्गयोः॥ 83 महाचिद्रपिणी शान्ता या सत्ता ब्रह्मणः पुरा। स्वतः सेयमहंत्वं च मानवोऽसीत्यवोधतः॥ 83 ब्रह्मण्यसिञ्जगद्रपे न किंचिदपि जायते। जातमप्यथ नष्टं च न नश्यत्यम्ब्र्वीचिवत् ॥ ઝપ पदार्थब्रह्मरूपेण ब्रह्मवात्मनि तिष्ठति । अवयवीवाययवे खे खं वारीव यारिणि॥ ૪૬ निमेषादर्धभागेन देशाहेशान्तरस्थितौ। यद्रपं संविदो मध्ये स स्वभाव उपास्यताम् ॥ ४७ संक्षुष्धमञ्जूष्धमिति द्विरूपं संवितस्वरूपं प्रवदन्ति सन्तः। श्रेयः परं येन समीहसे त्वं तदेकनिष्टो भव माऽमतिर्भः॥ 86

द्भता घटादयस्तथेत्यर्थः ॥ २५ ॥ असंस्थाने निरवयवे । ह्यान्ते यथाश्रे इति वक्ष्यति ॥ २६ ॥ सत्तामेदादर्शनादपि तन्मात्रसमित्याह---मरुत इति । निःस्वभावस्य निरविद्यस्य ॥ २७ ॥ गजवाजिम्गादिता तत्तदाकारः तादशसंनिवेशाकृ-तिश्वन्ये अश्रे आकाशे नीहारे वा ॥ २८ ॥ अवयक्बद्वक्षशा-सावत् । कार्यं वटादिः कारणं तद्वीजादिस्तद्वयथा लोके सूक्ष्मा-थोंपमानानि प्रसिद्धानि एवं तयोः सर्गब्रह्मणोरप्युपमां विद्धि ॥ २९॥ वर्णितरीत्या जगत्याः जगतः स्वव्यतिरिक्तस्यासंभ-बादेब व्योमबस्समं निर्विश्लेपमास्यताम् ॥ ३० ॥ निर्भरमति-बेछम् । पूर्णमिति यावत् ॥३१॥ चिदतिरिक्तरूपानिरूपणादशे-बेषु पदार्थेष्वविशेषेषु सत्स विशेषभ्रमं खन्ता शान्ताशेषविशे-वता परमार्थसत्या सा चिदेवाहमिति भाव्यताम् ॥ ३२ ॥ बबाबारं विद्वदाचारं भूमिकाभ्यासमनतिकम्य ॥ ३३ ॥ तत्त्व-बोधडाळें जडार्थचेतनप्रसिक्तरेव नास्तीत्याह—इधेति ॥३४॥ असत्तोषमं शून्यकल्पं नत् शून्यमेव ॥ ३५ ॥ ब्रह्मण्यज्ञानात्प-बनसम्दवद्वेददर्शनम् । तथाच चिद्चिद्वेददर्शनमेव सर्गः ऐक्यदर्शनमेव तन्मोक्ष इति निष्कर्ष इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ बेढदर्शनस्यैव सर्गतां रष्टान्तैरुपपादयति-वीजमित्यादिना

॥ ३८ ॥ वेदनसमकालमेव तद्भावस्थितावप्येतादश एव ह-ष्टान्त इत्याह-पत्रादीति ॥ ३९ ॥ वृक्षस्य पड्भावविकारा अप्यत्र दृशन्ता इत्याह—यथेति । भावविकाराणामाभाः क-मिकप्रतिभासाः धीजादिरूपेण स्थितायाश्रित एव विकारला-त्तन्मयाः ॥ ४० ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पुरा पूर्वसिद्धा सेव अबोधतो मानवोऽस्मीत्याकारेणाहन्ता चाजगत्ता च भवतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥ जातमपि न जायते । नष्टमपि न नर्यात ॥ ४५ ॥ पदार्थरूपेण ब्रह्मरूपेण च स्थितं ब्रह्म आत्मन्यविकृतस्वनावे तिष्ठति । यथा वृक्षः स्वावयवे ॥ ४६ ॥ वास्तवी स्थितिस्त चितो निर्विषयैवेखाह—निमेषादिति । प्राग्व्याख्यातमेतत् ॥ ४७ ॥ हे राम, सन्तो वियेकिनः शास्त्रज्ञाः । संवित्स्वरूप-मेकं संधुरुधं सविवर्तमञ्जानुभवसिद्धमपरमक्षुरुधं निविवर्त कूट-स्थपूर्णानन्दैकरसमिति दिष्ट्पं प्रवदन्ति । तयोर्मध्ये येन त्वं परं श्रेयः परमपुरुषार्थं समाहसे तदेकनिष्ठो भव । अपरीक्ष्य यक्तिचिहाही अमतिरविवेकी माभूरित्यर्थः ॥ ४८ ॥ श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरण उत्त-रार्थे चत्रस्थिशसमः सर्गः ॥ ३४ ॥

पश्चित्रंशः सर्गः ३५

| वसिष्ठ उवाच । | |
|---|----|
| देशादेशान्तरं दृरं प्राप्तायाः संविदः क्षणात्। | |
| यद्रुपममलं मध्ये परं तद्रुपमात्मनः॥ | १ |
| गच्छेऽद्धुण्वन्स्पृशञ्जिब्रघ्नुनिमपन्निमिषन्हसन्। | |
| मूनं निरामयत्वाय नित्यमेतन्मयो भव ॥ | ર |
| तत एव निराभासात्सत्यान्निर्वासनेषणात्। | |
| यथास्थितं यथाचारमचलामरदौलवत्॥ | 3 |
| पतद्रुपमविद्यायाः प्रेक्षिता यन्न लभ्यते । | |
| प्रेक्षिता लभ्यते चेत्सा तद्विचैव पराभवत्॥ | ક |
| अविद्यासंभवाश्वेत्यचित्वे संभवतः क किम्। | |
| चेत्यते कथमेवान्तः शान्तिरेव बलोदिता॥ | બ |
| सत्यं ब्रह्म जगश्रकं स्थितमेकमनेकवत्। | |
| सर्व वा सर्ववद्गाति शुद्धं चाशुद्धवत्ततम्॥ | દ્ |
| अशुन्यं शून्यमिव च शून्यं वा शून्यवत्स्फुटम्। | |
| स्फारमस्फारमिव तदस्फारं स्फारसन्निभम्॥ | ૭ |
| अविकारं वीकारीय समं शान्तमशान्तवत्। | |
| सदेवासदिवादृद्यं तदेवातदिवोदितम्॥ | < |
| अविभागं विभागीय निर्जाङ्यं जडवद्गतम्। | |
| अचेत्यं चेत्यभावीय निरंशं सांशशोभनम्॥ | ९ |
| अनहं सोहमिव तदनाशमिव नाशयत्। | |
| अकलक्कं कलक्कीच निर्वेद्यं वेद्यवाहिवत्॥ | १० |
| भारतेविष्याद्यप्रयम्बद्धासम्बद्धाः गराम्याः । | |

सप्रपञ्चाप्रपञ्चात्मवस्त्वलण्डेक्यदृष्ट्ये । सत्यानुतोभयाभासं ब्रह्मरूपं प्रपञ्चयते ॥ ३ ॥

संक्षुच्धमक्षुच्धमिति द्विरूपं ब्रह्म विरोधामासोक्तिमिः प्रप-श्रविष्यन्नक्षरूपं प्रथमं प्रायक्तोपायपरिचितं तन्निष्ठताविधा-नाय सारयति—देशादिति । क्रमिकविषयदयान्तरालकाले यित्रविषयं रूपं तत्परमक्ष्यमित्यर्थः ॥ १ ॥ एतन्मयो निर्वि-षयचिन्मात्रनिष्टो नूनमवस्यं भव ॥ २ ॥ यथास्थितं जीवन्मु-क्तिस्थितिमनतिकम्य यथाचारं खकुलाचारमप्यनतिकम्य व्यव-हरप्रपि ततस्तादशनिष्ठायाः सकाशादचला नचरीव । नवर्थोऽय-मकारो न नम्। अचला तिष्ठतैव विशेखर्थः ॥ ३ ॥ वस्य-माणोपयोगितया तद्विरुद्धामविद्यां लक्षयति-एतदिति । प्रे-क्षिता प्रमाणैविम्प्या ॥ ४ ॥ चेलच्चि विचेलमेदौ । मे-दासभवे च खान्तरेव कथं चेखते चेतनाय व्याप्रियते । अतो-विमर्शे शान्तिनिवैद्यवेदनचिन्मात्रस्थितिरेव बलाद्रदितेत्यर्थः ॥ ५ ॥ विद्याविद्यामिश्रितया आन्तरालिकभूमिकारूढविवेकि-दृष्ट्या त ब्रह्म नियतैकरूपमध्यनियतविरुद्धनानास्त्रभावमिव तिष्ठ-तीति विरोधाभासैः प्रमाणयुक्तयनुभवादिमिश्वासर्गसमाप्तेस्त-त्प्रपश्चयति—सत्यमित्यादिना । ब्रह्म जगम सत्यं परमार्थत

| परमाणोरपि तनु गर्भीकृतजगद्गणम् ॥ | ११ |
|---|----|
| सर्वात्मकमपि त्यक्तं दृष्टं कष्टेन भूयसा । | |
| अजालमपि जालाव्यं चादोषवद्नैकधा ॥ | १२ |
| निर्मायमपि मायांशुमण्डलामलभास्करम् । | |
| व्रह्म विद्धि विदांनाथमपामिव महोद्धिम्॥ | १३ |
| जगद्रसमहाकोशं तुलायां तूलकाल्लघु । | |
| मायामरीचिदाशिनमपि नेश्लेणगोचरम्॥ | १४ |
| अनन्तमपि निष्पारं न च कचिदपि स्थितम्। | |
| आकाशे वनविन्यासनगनिर्माणतत्परम्॥ | १५ |
| अणीयसामणीयांसं स्थविष्ठं च स्थवीयसाम्। | |
| गरीयसां गरिष्ठं च श्रेष्ठं च श्रेयसामपि ॥ | १६ |
| अकर्त्वकर्मकरूण्मकूरणमकारकम् । | |
| अन्तःशुन्यतयैवैतश्चिराय परिपूरितम्॥ | १७ |
| जगत्समुद्रकमपि नित्यं शून्यमरण्यवत्। | |
| अनन्तर्रालकठिनमप्याकारालवान्मृदु ॥ | १८ |
| प्रत्येकं प्रत्यहं प्रायः पुराणं पेलवं नवम् । | |
| आलोकमन्धकाराभं तमस्त्वालोकमाततम्॥ | १९ |
| प्रत्यक्षमपि दुर्लक्ष्यं परोक्षमपि चाप्रगम्। | |
| चिद्र्पमेव च जडं जडमेव चिदात्मकम्॥ | २० |
| अहमेषानहंभावमनहं वाहमेव च। | |
| अन्यदेव तदेवाहमहमेवान्यदेव तत्॥ | २१ |
| अस्य पूर्णार्णवस्थान्तरिमे त्रिभुवनोर्मयः। | |

एकभेव तदेकभेव अनेकवत्तद्विरुद्धरूपेण स्थितमिति योज्यम् । एवमश्रेऽपि सर्वं पूर्णम् ॥ ६॥ शून्यभिव प्रलये । अशून्यव-त्सर्गे कालतो देशतस्तु स्फारम् ॥ ७ ॥ अहस्यं द्रष्ट्रमशक्य-मिल्यसदिव ॥ ८॥ सांशमिव शोभनं शोभमानम् ॥ ९॥ नाशवदिव । वेद्यं वहति प्रथनेन निर्यहति तच्छीलभिव ॥१०॥ आलोक स्वप्नकाशम् । राहोः शिर इतिवद्धेदकल्पनादिभिः ॥ १९ ॥ भूयसा यज्ञदानतपश्चित्तशुद्धिवैराग्यश्रवणमननादिना कष्टेन पुरुषप्रयक्षेन खर्फ दष्टं दश्यजातं येन । अनेकथा स्थित-मप्यशेषविविविविविश्लेषश्च्यम् ॥ १२ ॥ मायालक्षणस्योद्यम-ण्डलस्य रहिमजालस्यामलभास्करहृपम् । वित् वेदनमात्रस्वहः-पमपि । अप्यर्थे हिशब्दः । विदां सर्ववेदनानां नाथं खामि-भूतमिव सर्वज्ञम् ॥ १३ ॥ ब्रह्माण्डात्मना जगद्रक्षमहाकोशम्। गुरुतममपि विवेकतुरु।यां तीलने गुरुखमात्रसानृतलात्रुळ-वादपि लघु ॥१४॥ अनन्तं कालतः निष्पारं देशतः । तथापि क्रिवेहेरो काले वा नावस्थितम् । आकाशे शून्यदेशेऽपि॥१५॥ ॥१६॥ परिपूरितं कत्रीदिकारकैः ॥१०॥१८॥ प्रत्येकं प्रतिवस्त । प्रलाई प्रतिकालम् । जगतिरोभावकलात्तमः । अप्यर्थे तुशब्दः ॥ १९ ॥ २० ॥ अनहं युष्मदर्थः । अन्यदिदमर्थः । इस्यपौनह-त्त्यम् ॥ २१ ॥ उक्तेष्वर्थेषु मायामात्रलमभिप्रेखोपपतीराह---

| रफ़रन्त इव तिष्ठन्ति स्वभावद्रवतात्मकाः॥ | રર |
|---|----|
| विभर्ति सर्वमङ्गस्यं तुषारमिव शुक्कताम्। | |
| भाति सर्वस्त्वनेनेय तुषारेणेव शुक्रता॥ | २३ |
| अदेशकालावयवोऽप्येष देवो दिवानिशम्। | |
| असज्जगत्तनोतीय यथा वारितरङ्गकम् ॥ | २४ |
| पत्तिसन्विकसन्तीमा विपुलाकाराकानने । | |
| जगज्जरटमञ्जर्यः प्रसरत्पत्रपञ्चकाः॥ | २५ |
| एष स्वप्रतिबिम्बस्य स्वयमालोकनेच्छया । | |
| अत्यन्तनिर्मेलाकारः स्वयं मुकुरतां गतः॥ 🥏 | २६ |
| व्योमवृक्षफलस्यास्य स्वेच्छावयव उद्धवलाः । | |
| सर्गीपलम्भ उद्यय चमत्कुर्वन्ति संविदि ॥ | २७ |
| अन्तस्थेन बहिष्ठेन् नानानानातयात्मनि । | |
| एष सोऽन्तर्बहिर्भाति भावाभावविभावया॥ | २८ |
| एतद्रूपा पदार्थश्रीरेतसिश्रेतदिच्छया। | |
| चमत्कारोत्येतदर्थं जिह्नेव स्वास्यकोटरे ॥ | ર્ |
| अस्याम्भसी द्रवत्वं यत्तदिदं ज्गदुच्यते । 💎 | |
| संवित्स्वादृपलम्भाङ्गं भुवनावर्तवृत्तिमत् ॥ | ३० |
| शाम्यत्वत्र पदार्थक्षाः स्वीसामेव भास्वति। | |
| पतस्मादेव चोदेति खलोक इव तेजसः॥ | ३१ |
| इदमेब जगत्सर्वे शुक्कृत्वं तुहिने यथा। | |
| अत पताः प्रवर्तन्ते विद इन्दोरिवांशवः॥ | ३२ |

| पतस्मान्नकृतोऽनङ्गाज्जगिबन्नमिदं स्थितम्। | |
|--|-----|
| विद्धाभावविकारादिशान्तमेतन्मयं ततम्॥ | 33 |
| अस्पाद्यनतरोरेताः स्वरूढा गगनाङ्गणे। | |
| दृश्यशाखाः प्रवर्तन्ते जगज्जाल्गुलुच्छकाः॥ | ३४ |
| व्ययोदयवती जूनमत्र दश्यतरिक्षणी । | |
| नानातानन्तकुसुमा वहत्यविचलाचले ॥ | 34 |
| अस्मिन्व्योमात्मके रङ्गे भुवनामिनयभ्रमः। | |
| नृत्यत्यविरतारम्भं वारैर्नियतिनर्तकी ॥ | ३६ |
| जगत्कोटिमहाकल्पकल्पोन्मेयनिमेषणः। | |
| विताने नाट्यते भूयो जन्यते कालवालकः॥ | ३७ |
| उद्यत्स्वपि जगत्स्वेष शान्तमेवावतिष्ठते । | |
| अनिच्छ एव मुकुरः प्रतिविम्बद्यतेष्विव ॥ | ३८ |
| भूतानां वर्तमानानां सर्गाणां संभविष्यताम्। | |
| पयोऽकारणकं बीजं सूर्गाणामिव कारणम्॥ | 36 |
| अस्योन्मेषो जगहास्मीर्निमेषः प्रख्यागमः। | |
| अनुन्मेपनिमेषोऽसावात्मन्येघावतिष्ठते ॥ | 80 |
| उद्यन्त्यमूनि सुबद्दृनि महामहान्ति | |
| सर्गागमप्रख्यजन्मद्शा जगन्ति । | |
| सर्वाणि तान्ययमपारस्वरूप पव | |
| प्रस्पन्द्रनानि सहदेव यथास्त्व शास्त्रस | 188 |

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्माकीये भोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० परव्रहासस्यवर्णनं नाम पश्चित्रिशः सर्गः ॥ ३५ ॥

अस्येत्यादिना ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ प्रसरन्ति दळस्थानी-यानि पद्मभूतलक्षणपद्मकानि यासाम् ॥२५॥ स्वप्नतिबिम्बस्य वर्णितस्य जीवजगद्रृपस्याकारान्तरस्य । मुकुरतां दर्भणताम् । अपरिच्छिन्नब्रह्मसंविदि नृक्षो गगनोतुम्बरस्तदीयफलकल्पस्य ब्रह्माण्डस्य स्वेच्छाकत्पिते त्रैलोक्यावयवे उज्ज्वला दीप्यमाना-धन्द्रसूर्योद्यस्तेभ्य उदाचक्षुरादिकरणजालं च जीवभूतस्या-त्मनः सर्गोपलम्मे रूपादिदर्शने उपकरणतया चमत्कुर्वन्तीत्यर्थः ॥२६॥२७॥ स एष परमातमा अन्तस्थेन वासनामयप्रपश्चेन बहिष्टेन भुवनात्मना जामत्स्वप्तयोनीनात्या सुपुप्तावनानात्या च भावाभावविभावनया खयमेवान्तर्यहिश्व भाति नान्यदती-**ऽणुमात्रमप्यस्तीत्यर्थः ॥२८॥ एतदेव प्रवश्रयति--एतद्र्वेत्या-**दिना ॥ २९ ॥ संविदेव खादु थया स्यात्तथा उपलभ्यन्त इत्युपलम्भान्यङ्गानि रूपरसायेकदेशा यस्य ॥ ३० ॥ सर्वासा-मेब सूर्यचन्द्राधिकणादिभारां रूपादिपदार्थश्रीरत्रास्मित्रेव भा-खित सुष्तप्रस्थयोः शाम्यति जामस्स्रप्रयोधैतस्मादेवोदेति । यथा सूर्योदितेजसः खालोकः प्रभामण्डलम् ॥ ३१ ॥ इदं ब्रह्म । अतोऽस्या विद्धिद्रूपब्रह्मणः सकाशात् । एताः पदा-श्रीत्रयः ॥ ३२ ॥ अनन्नानिस्वयवादञ्जलो रजकद्रव्यात् । जन्मादिभावविकारेरादिपदारखगतवैचित्र्येक्ष श्रून्यम् । एतन्मयं 🖟

चिन्मयमेव विदि ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अत्र एतसिन्नविचळे ऽचले अचले पर्वते व्ययोदयो हासमृदी तद्वती दृश्यलक्षणा तरिक्षणी नदी वहाति ॥ ३५ ॥ वारैः कल्पभेदरूपैर्वासरैनिंय-तोत्सववासरैश्व ॥ ३६ ॥ तया नियतिनर्तक्या अधारक्रमाया-विताने काळलक्षणः खबालकः पुत्रो भूयोभूयो नाट्यते उपसं-हत्य च भयो जन्यते । स कीदशः । जगतां ब्रह्माण्डानां कोटयो महाप्रलया अवान्तरप्रलयाश्च नेत्रोन्मेषनिमेषणे यस्य तथाविधः ॥ ३७ ॥ आंगच्छ इच्छादिविकियाशून्यः ॥ ३८ ॥ भौतिक-सर्गाणां कारणं भूतपञ्चकमिव ॥ ३९ ॥ उन्मेषो निमेषध समा यस्य । निर्मायस्वसौ अनुन्मेषनिमेषः । अतएव खात्म-न्येवावतिष्ठते ॥ ४० ॥ परिमाणतो महान्ति च तानि काल-संख्यावैभवादितो महान्ति च महामहान्ति जगन्ति ब्रह्माण्डा-स्तेषां तदन्तर्गतपदार्थानां च सर्गः अगमनमगमः स्थितिः प्रस-यश्च तत्र प्राणिनां जन्म देहपरिष्रहः बाल्यादिदशा जाप्रदा-दिदशा उत्कर्पापकपदशाश्रेलम् निदाकाशे उदानित तानि सर्वाण्यपारोऽपरिध्छन्नखरूपश्चिदाकाश एव यथा मरुत्रस्य-न्दनानि मरुदेव न वस्लन्तरमिति बुद्धा शान्तमास्त्रेसर्थः ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वा-णप्रकरणे उत्तरार्धे पञ्चित्रिशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंदाः सर्गः ३६

वसिष्ठ उवाच । चमक्रवेन्स्रथानशी आवर्ता इव वारिणि। एकस्वभावाः सकला यथा वारितरङ्गकाः॥ सर्वस्यैवास्य विश्वस्य निर्शेयश्रेयरूपिणी। परमाकाशतारूपं परोपशमसंश्रया ॥ बालिवन्ता पुरोज्योसि न किंचिद्पि मे यथा। तथेदं तत्त्वतो विश्वं सत्यं तु शिशुचेतसि ॥ अरूपालोकमननं शिलापुत्रकसन्यवत्। रूपालोकमनस्कारा भाग्ति केवात्र विश्वता ॥ रूपालोकमनस्कारसारश्चिन्मात्रतां विना । न लभ्यतेऽसावपरं व्योमेघात्र क विश्वता ॥ विदो विस्वं जगद्भान्तिरविस्वं तु न विभ्रमः। विस्वाविस्वे त्वदायसे चित्ताचित्ते यथा तव॥ परमाकाशरूपत्याचिद्योस्रो वितताकृतेः। न स्वनाचविपर्यासः कश्चित्संभवति कचित्॥ ७ तन्मषस्यास्य विश्वस्य न स्वभावविकारिता। विद्यते प्रक्ष्यमाणापि किमु सास्य भविष्यति ॥

> तुष्ण्यस्मानिच्छतो भोगो न बन्धायेति वर्ण्यते । इच्छैव परमो बन्धसस्यागान्मुक्तिरिसपि ॥ १ ॥

इह सर्वे पदार्था विरुद्धानेकरूपा अविरुद्धैकरूपाथ भासन्ते तत्र प्रथमं रूपं रागद्वेषाद्यद्भवेन दुःखहेतुलादनर्थरूपम्, द्वि-तीयं तु तदुपशमेन मोक्षोपथोगीति दर्शयति—चमत्कुर्वन्तीति। सक्छाः पदायी वारिष्यावर्ती इव भिष्ठरूपाः प्रथमं चमत्कु-विन्ति इच्छोत्पादनेन चिसं भ्रमयन्ति । अथानन्तरमनर्था राग-द्वेषनरकाविरूपाः पर्यवस्यन्ति । यथा तरङ्गकाः वारि जलमात्रं तवा एकसभावास्तु न वमस्कुर्वन्ति नाप्यनर्था इति भावः ॥ १॥ कि तदविरुद्धं रूपं येन रूपेणैकस्त्रभावास्तइर्शयति-सर्वस्येवेति । सर्वस्याप्यस्य विश्वस्य सत्तामात्रह्मा परमाकाश-तैव ताइशं रूपं सा च सर्वेभ्यो ब्रेयेभ्यो विशेषरूपेभ्यो नि-कृष्य क्रेयं यत्सन्मात्रं तद्रपिणी अतएव परेण समाधिलक्षण-नोपशमेन संश्रयो यस्यास्त्रथाविधा ॥ २ ॥ प्रसिद्धे न्योन्नि बालबुद्धिवेशं यक्षपिशाचादिभीषणरूपं श्रीत्वद्विवेशं तत्रिष्कृष्टं श्चरूपं च दृष्टान्ततया प्रसिद्धमिलाइ—बार्टेत । बाठस्य विन्ताविन्तनकाल्पतरक्षःपिशाचादिरूपं प्रीढस्य रख्या यथा न कि चिद्रित तथा निदुषों में दृष्ट्या विश्वं नास्ति ॥ ३ ॥ बिकापुत्रकसैन्यवदरूपाटोकमननमेव विश्वं विद्वदृशा तत्र वि-श्रता केव । अञ्चरशा तु रूपालोकमनस्कारा भान्ति ॥ ४ ॥ रूपालोकमनस्कारयोरपि तत्त्वतो विमर्शे चिम्मात्राविरिकं रूपं वर्छमं दरे ताभ्यां विश्वतासिदिरित्याद् — रूपेति ॥ ५ ॥ सद्याच विदा विदित्पुरुषस्य द्विश्वमेव जगञ्जान्तिरवेदितृस्तमेव न विश्वमः । सर्वविश्वमद्यान्तिस्ति फळितम् । तम स्प्रत्यस्य-

सर्वे चिद्योम चैवेदं न सत्त्वमहमित्यपि। विकाराद्यस्ति न इप्तावइप्ति न लमेत्कचित् ॥ Q सर्वे शान्तं शिवं शुद्धं त्वमहन्तादिविभ्रमम्। न किंचिवपि पद्यामि व्योमजं काननं यथा॥ 80 संविदाकाराशुन्यत्वं यसिद्धिः वची मम। इवं त्वत्संविदाकारा स्वयमात्मनि तिष्ठति ॥ ११ पदमाहुः परं सद्यदनिच्छोदयमासितम्। पापाणपुरुषस्थेव चित्रस्थस्येव चासनम् ॥ १२ स विश्रान्तमना मैं।नी यस्य प्रभृतकर्मसु । स्पन्दो दाहनरस्येव विगतेष्ळमनाकुलम्॥ १३ अन्तःशून्यं बहिःशून्यं विरसं गतवासनम्। जगद्वेणोरिव शस्य जीवतो भाति जीवनम् ॥ 88 यस्य न स्वदते दृश्यमदृश्यं स्वदते हृदि। सबाह्याभ्यन्तरं शान्तः स वितीणी भवार्णवात १५ उच्यन्तां शब्दजालानि वंशवद्गतवासनम्। रसेनानङ्गलग्नेन प्रकृतानन्यचोदनैः॥ १६ स्पृष्ट्यन्तां स्पर्शनीयानि यथाप्राप्तान्यवासनम् ।

तिवत्स्वायत्तमित्यर्थः ॥ ६ ॥ अपरं व्योमेवेति यदुक्तं तद्विश-दयति-परमाकाशेति । नहि चिजाडीभवति न वा व्योम मूर्ति-भेवतीति भावः ॥ ७ ॥ ब्रह्मदर्शनबाध्यलादपि जगन्न ब्रह्म-विकार इत्याह-तन्मयस्यति । या यत्र प्रेक्ष्यमाणापि न विद्यते बाध्यते अस्य सा किमु भविष्यति उत्पत्स्यते स्थास्यते वा । नैतत्संभावितमित्यर्थः ॥८॥ अभिमन्तव्यस्य विकारनिरासन्या-येनाभिमन्त्रविकारोऽपि निरसनीय इत्याह—सर्वभिति । वि-कार आदिपदाद्वाधश्व इसी चिदात्मनि नास्त्यतः कचिदण्य-शति विद्यतिरिक्तम् ॥ ९ ॥ १० ॥ इत्थं च मदीयसुपदेश-बचो यत्तदपि संविदाकाशरूपं शून्यत्वं विद्धि । यसादिदं व-चस्लत्संविदाकाशरूपे आत्मन्येव खयं तिष्ठति न जडखरूपे । शन्दतत्त्वस्थापि चिद्रपरफोटात्मनेव निष्कर्षे पर्यवसानादिति भावः ॥११॥ एवं मेयमातृमानानां चिन्मात्रत्वे सिद्धे इच्छा-विषयादेरभावादनिच्छोदयं यदासितमबस्थानं तदेव।परमं पद-माहुः ॥१२॥ इच्छाभावेऽपि जीवनहेतुव्यवहारसिद्धिमाह-स इति॥१३॥ एवं व्यवहारेण जीवतो इस्य कथं जगङ्गाति तदाह— अन्तरिति । वेणोर्वशनारुखेवान्तर्बहिश्व शून्यम् ॥१४॥ न ख-दते न रोचते ॥ १५ ॥ अखदनमेव प्रतीन्द्रियविषयं प्रपद्मयं स्तद्वत्तीर्णतां दर्शयति---उच्यन्तामित्यादिना । प्रकृतः प्रस्तुतः प्रारब्धशेषक्षयस्तदुपयुक्तान्यशब्दोचारणरहितैर्व्धवहारैरनक्रछ-मेन व्यवहारा इंदेहादाब हुं ममता संबन्धरहितेन रसेन माधुर्येण वंशवन्युरलीवद्भतवासनं यथा स्यात्तया शब्दजासान्युष्यन्तामु-बार्यन्ता वागिन्दियेणेत्यर्थः ॥ १६ ॥ एवं त्वगिन्द्रियेण त्वया नटभटवंश्यादिक्टनिवासगृहेणवानिच्छममनोदयं च स्पर्शनी-

कृटागारवद्धुब्धमनिच्छममनोद्यम्॥ १७ स्वाद्यन्तां रसजालानि विगतेच्छाभयेषणम्। अपरागाभिलषणं यथाप्राप्तानि द्विवत्॥ १८ दृश्यन्तां रूपजालानि पुनः प्राप्तान्यवासनम् । अरसं निर्मनोमानमगर्वे चित्रनेत्रवत्॥ १९ जिझ्यन्तां गन्धपुष्पाणि विगतेच्छमवासनम्। स्पन्दबन्धोपलद्मानि त्यागाय वनवातवत्॥ इति चेद्विरसत्वेन योधयित्या चिकित्सिताः। न भोगरोगास्तद्वश्च शान्त्ये नास्ति कथैव च ॥ २१ यः स्वादयम्भोगविषं रतिमेति दिनेदिने । सौऽग्नौ स्वमूर्ति ज्वलिते कक्षमक्षयमुज्झति ॥ २२ निरिच्छत्वं समाधानमाहुरागमभूषणाः। यथा शास्येन्मनोऽनिच्छं नोपदेशशतिस्तथा॥ २३ इच्छोदयो यथा दुःखमिच्छाशान्तिर्यथा सुखम्। तथा न नरके नापि ब्रह्मलोकेऽनुभूयते ॥ इच्छामात्रं विद्शिष्टां तच्छान्तिमीक्ष उच्यते। पताबन्त्येव शास्त्राणि तपांसि नियमा यमाः॥ २५ यावतीयावती जन्तोरिच्छोदेति यथायथा । तावतीतावती दुःखवीजमूष्टिः प्ररोहति ॥ २६ यथायथेच्छा तनुतां याति जन्तोर्विवेकतः। तथातथोपशाम्यन्ति दुःखचिन्ताविषृचिकाः ॥२७ यथायथेच्छा घनतां याति लोकस्य रागतः। तथातथा विवर्धन्ते दःखचिन्ताविषोर्मयः॥ इच्छा चिकित्स्यते व्याधिर्न स्वयक्षीपधेन चेत्।

यानि स्नऋन्द्नादीनि स्पृत्यन्ताम् ॥१७॥ १८ ॥ अरसमनि-च्छम । निर्मनोमानं मनो मीयते निर्मायते येन वासनाजारेन तद्रहितम् । अगर्यं निर्मामानम् । चित्रलिखितपुरुषादिनेत्र-बत् ॥ १९ ॥ जिध्यन्तां घ्रायन्ताम् । अशिति जिघादेशरछा-न्दसः । जिघ्रन्तामिति पाठे विकरणव्यस्यः । अपानीपनीतं गन्धं स्पन्देन बधाल्यसङ्गणप्मनेति स्पन्दबन्धो घाणं तदुपल-मानि । लागाय नतु रागाय ॥ २० ॥ इति उक्तरीला अनु-फेष्वपि कर्मेन्द्रियावषयेषु तद्वत्प्राग्वचाज्ज्ञानेन्द्रियवच विरस-रवेन निःसारत्वेन मनो बोधयिला भोगरोगाश्चेत्र चिकित्सिता-स्तदा दुःखशान्त्यै कथैव नास्ति चादनर्थपरम्परोद्भवश्रास्तीत्यर्थः ॥ २९ ॥ तदेवाह--य इति । कथं तृणपूलम् । अक्षयमख-ण्डितम् । अजस्रमिति यावत् । उज्झति क्षिपति ॥२२॥ अतौ भोगेच्छात्याग एव मनःशान्ती भुएयो हेतुरिति स्तीति—नि-रिच्छलमिति ॥ २३ ॥ नापि ब्रह्मलोके इति । तथाचीकं ययातिना-'यम कामसुखं लोके यच दिन्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्येते नाईतः धोडशीं कलाम् ॥' इति ॥ २४ ॥

तदत्र वलवन्मन्ये विद्यते नौषधान्तरम्॥ 56 इच्छोपशमनं कर्तुं यदि कृत्सं न शक्यते। स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मागेस्थो नावसीदति ॥ 30 यस्त्विच्छातानवे यसं न करोति नराधमः। सोऽन्धकूपे स्वमात्मानं दिनानुदिनमुज्यति ॥ ३१ दुःखपसवशालिन्या बीजमिच्छैव संस्रतेः। सम्यग्हानाग्निदग्धा सा न भूयः परिरोहति॥ ३२ इच्छामात्रं हि संसारो निर्वाणं तद्वेदनम्। इच्छानुत्पादने यत्नः क्रियतां कि वृथाभ्रमैः॥ 33 शास्त्रोपदेशगुरवः प्रेक्ष्यन्ते किमनर्थकम् । किमिच्छाननुसंधानसमाधिर्नाधिगम्यते ॥ રુષ્ઠ यसेच्छाननुसंधानमात्रे दुःसाध्यता मतेः। गुरूपदेशशास्त्रादि तस्य नूनं निरर्थकम्॥ 34 इच्छाविपविकारिण्यामन्त एव नृणामलम् । दुःखप्रसरकारिण्यां हरिण्या जन्म जङ्गले॥ ३६ न बालीफियते त्वीपदात्मज्ञानाय चेदसौ । **१**च्छोपशान्तिः क्रियतां तयालं तदवाप्यते ॥ ३७ निरिच्छतैव निर्वाणं सेच्छतैव हि बन्धनम्। यथाशक्ति जयेदिच्छां किमेतावति दुष्करम् ॥ ३८ जरामरणजन्मादि करञ्जखदिराचलेः। बीजमिच्छा सर्दवान्तर्दश्चतां शमवहिना॥ 38 यतोयतो निरिच्छत्वं मुक्ततैव ततस्ततः। याबद्गति यथाप्राणं ह्न्यादिच्छां समृत्थिताम् ४०

एतावन्त्येतावनमात्रपर्यवसितानि ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ लोकस्य जनस्य ॥ २८ ॥ तिचिकित्सायां च धेर्यलक्षणः पुरुष-प्रयक्ष एवीवधं नान्यदिलाह—इच्छेति ॥ २९ ॥ स्वरूपमः पीति । अल्पाल्पेच्छानिरोधाभ्यासक्रमेण सर्वत उपशमोद्युकेन भाव्यमित्यर्थः । मार्गस्थः सन्मार्गप्रविष्टः ॥ ३० ॥ दिनानुदिनं प्रतिदिनम् ॥ ३१ ॥ आह्यन्तिकेच्छ।वाधस्तु ज्ञानेन तन्मूलना-शादेवेत्याह—दःखेति ॥ ३२ ॥ तस्या अवेदनमसत्वापाद-नम् । 'विद सत्तायाम्' भावे त्युद् । यथाश्रमैर्थकान्तरैः॥३३॥ इच्छाप्रशमनयन्नाभावे शास्त्रादिवैयध्यमपीलाइ-—शास्त्रेति । समाधिश्वित्तसमाधानोपायः कि नाधिगम्यते किमर्थ नाश्चीयते ॥ ३४ ॥ मतेः स्वविवेकात् ॥ ३५ ॥ इच्छाविषविकारिण्यां संसती नृणामन्तो मृत्युरेव । यथा हरिण्या व्याघादिसंकुले जङ्गले मृत्युरेव तद्वत् ॥ ३६ ॥ असौ ना इच्छया चेत्र बाली-कियंते बालवचपलो न कियते तदा आत्मज्ञानाय तु ईषदेव प्रयक्तः अत इच्छोपशान्तिरेव फियतां तथैव तज्ज्ञानमवाप्यते ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सदैवाभ्यस्तेन शमवहिना दह्यताम् ॥३९॥ यावद्विवेकवैराग्याद्यपायप्राप्ति। यथाप्राणं यथावर्यादवलम्४०॥

१ मनोदयभित्यार्थस्. २ अपानोपनीतमिति 'ऊर्ध्व प्राण उन्न-

यत्यपानः प्रत्यगस्यती'ति कठवहीश्रत्यन्ररोधेनेति श्रेयम्.

यतो यतम् सेच्छत्वं बन्धपाशास्ततस्ततः।
पुण्यपापमया दुःस्तराशयो विततार्तयः॥ ४१
श्चानिरासरिहते गते साधोः क्षणेऽपि व।
दस्युमिर्मुषितस्येव युक्तमाक्रन्दितुं चिरम्॥ ४२
यथाययास्य पुंसोऽन्तरिच्छा समुपशाम्यति।
तथातथास्य कल्याणं मोक्षाय परिवर्धते॥ ४३

आत्मनो निर्विवेकस्य यदिच्छापरिपूरणम् । संसारविषवृक्षस्य तदेव परिषेचनम् ॥ ४४ इृहक्षजाः स्वसुखदुःखकुबीजकोशौ वैरादिवाश्रयकृतादशुमाच्छुमाच । आसाच दुष्कृतकृशानुशिखाः शितान्ता इच्छाच्छमच्छमिति पुंस्पशुमादहन्ति ॥४५

इत्यार्षे श्रीषासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे संसारबीजकथनं नाम पद्त्रिशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंदाः सर्गः ३७

विसष्ठ उवाच ।
इच्छाविषविकारस्य वियोगं योगनामकम् ।
शान्तये शृणु भूयोऽपि पूर्वमुक्तमपि स्फुटम् ॥ १
आत्मनो व्यतिरिक्तं चेद्विद्यते तिदृहेच्छया ।
इच्यतामसति त्वेतत्स्वात्मान्यत्वं किमिप्यते ॥ २
निर्मागाययमा स्क्ष्मा ब्योद्धः शृन्यत्रैव चित् ।
सैवाहं अगदाकारा सती किं तत्त्येष्यते ॥ ३
सा ब्योमरूपा ब्योमेव व्योमात्मवेद्यवेदिका ।
ब्योमात्मअगदामासमत्रेच्छाविषयोऽस्ति कः ॥ ४
माह्यप्राहकसंबन्धः कुतिश्वदिति तन्न नः ।
विद्यतेऽसी प्रशान्तानां येषामस्ति न वेद्या तान् ५

दस्युमिर्छण्टाकेमुंषितस्यापहृतसर्वखस्येव ॥४१॥४२॥ कल्याणं साधनचतुष्ट्यम् ॥ ४३ ॥ विषयोपभोगेनेच्छायाः परिपरणं यसदेव॥४४॥इत् हृद्यं तहःश्रणाद्वश्वादाश्रयादिन्धनाच जाताः वितान्ताः निविताया इच्छा इच्छारूपा दुष्कृतकृशानु-शिखास्तत्रस्थं चिदाभासरूपं पुंस्पश्चं जीवरुक्षणं पश्चं स्वाश्रये इदि इतादशुभात्पापलक्षणाच्खुभात्पुण्यलक्षणाच साथयद्य-णापराधादुत्पन्नाद्वेरादिव मोइधूमैरन्धीकृत्य स्नेहपाशैर्दढं बद्धाः च आसाय पातियता तरीयी मुखदुःखबीजानां कोशी कुसूछ-स्थानीयो तद्वपणौ आसमन्ताहरूनित वीर्ताकवद्वर्शयन्ति । छम-च्छमितीति तद्वसादाहोत्थशब्दानुकरणम् । इच्छाः कर्न्यः । **दुष्कृतकृशानुशि**खाः आग्राच प्रज्वाल्य तदीयकुवीजकोशी दद्द-न्तीति वा । कुवीजकोशी आसाद्य पुंस्पशुं दहन्तीति वा य-येच्छमन्वयः । 'पुमः खय्यमपरे' इति रुत्वे 'संपुकानाम्'इति सस्वम् । पुंपश्चमिति पाठस्तु च्छान्दसः ॥ ४५ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकारी निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे षट्टत्रिंदासमः सर्गः ॥ ३६ ॥

यथेष्ठेव म जायेत जातापि ब्रह्म केवसम् । तथोपपत्तिभिर्भूयो ज्ञानयोगोऽश्र वश्यते ॥ १ ॥ वियोगफडकलाद्वियोगम् । इच्छाम्लकसर्वानर्थशान्तये॥१॥ इच्छया इप्यताम् । यथेच्छमिच्छा प्रवर्ततामित्ययेः।इच्छता-मिति पाठेऽप्ययमेवार्थः । तथाच यावदात्मा न ज्ञायते तावदेव

प्राह्मग्राहकसंबन्धः स्वनिष्ठोऽपि न लभ्यते।
असतस्तु कथं लाभः केन लन्थोऽसितः शशी ॥६
एपव ग्राहकादीनां सत्ता यन्नात्मनिष्ठता।
स्वभावावेक्षया सत्या न जाने क प्रयान्ति ते॥ ७
एप एव स्वभावो यद्गृष्ट्रश्यक्षयोऽस्त्रिलः।
ज्ञात्वाऽसत्या विनिर्वाणमहन्तात्मनि गच्छति॥ ८
निर्वाणे नास्ति दश्यादि दश्यादा नास्ति निर्वृतिः।
मिथोऽनयोरनुभवा न च्छायातपयोरिव ॥ ९
उमे एते मिथोऽसत्ये असत्ये च न निर्वृतिः।
यतो निर्वाणमजरमदुःसमनुभूयते॥ १०

द्वितीयवस्तुसत्यताश्रान्त्या इच्छोदय इत्यात्मज्ञानयोग एव विष-यापहारद्वारा तन्नियुत्त्युपाय इति भावः॥२॥यदि तु ज्ञानेन जग-त्सत्यं ब्रह्मेव संपत्रांमति न मिन्येति मन्यसे तदाप्यव्यन्तामेदे एषित्रादित्रिपुटीघाँटतेच्छाया आंतिद्धितित्वाह—निर्भागेति । निर्गतो मागस्त्रिपुटीविभाजकोपाधिभेदो विभजनीयावयवमेदश्र यस्याः । अहमाकारा जगदाकारा च सैव सती॥३॥४॥ बुद्धाः अगृहीते विषये इच्छानुदयाद्वाह्यप्राहकसंबन्धाभावे प्रहणस्या-सिद्धेरपि विदुषां नेच्छात्रसक्तिरिखाह—प्राह्मेति । प्रशान्तानां नः असौ अज्ञदृष्टिप्रसिद्धो प्राह्मप्राह्कसंबन्धः कुतश्चिद्पि नि-मित्तात्प्रमाणाद्वा न विद्यते इत्येतस्मादेतोरपि किमिष्यते इत्य-न्वयः । येषामद्भानमस्ति तान्न वेदि । तेऽपि सत्त्वदशा अन स्वन्ताप्रसिद्धा इस्वर्धः ॥ ५ ॥ स्वर्धे अपिशब्दः । असितः श्यामः ॥ ६ ॥ प्राहकादीनां सर्वत्रिपुटीनामेषैव सत्ता । कैषा यत्रात्मनिष्टता तास्विके आत्मन्यविश्वान्तिः । अज्ञानमिति या-वत्। ते च प्राहकाद्यः स्वभावोऽशास्त्रीयदृष्टिसादपेक्षया सत्याः शास्त्रीयतस्वदृष्ट्यद्ये क प्रयान्तीति न जाने ॥ ७ ॥ तस्वज्ञा-नस्याप्येष एव स्वभावो यदसत्या अहन्ता शास्नतः स्वतत्त्वं शाला तसिनात्मनि गच्छः अपिति । स एवाखिळो द्रष्ट्रहस्यक्षयो विशिष्टं निर्वाणं चेखर्थः ॥ ८ ॥ दश्यनिर्वाणयोः परस्परासह-भावोऽपि खभावत एवेत्याह—निर्वाण इति । गिथोऽनुमवः सहानुभवः ॥ ९ ॥ कुतो न सहानुभवोऽपीति तत्राह—उमे

१ बार्ताकं मृन्ताकन्.

२ इच्छतामिति पाठे विकरणस्यत्यय आर्थः.

भ्रमभूतं च दश्यादि नित्यं नात्र सुखप्रदम्। असब तद्भाव्यतां मा निर्वाणे स्थीयतामजे ॥ 88 शुक्तिकारूप्यसदृशं प्रेक्षितं यन्न लभ्यते । अर्थकार्यपि तन्नास्ति किमत्रापह्नवेन च ॥ १२ तत्सद्भावान्महर्दुःखमसद्भावान्महत्सुखम् । अभावः सोपपत्तिस्तु दढतां याति भावनात् १३ तत्किमात्मनि वन्धाय विदग्धं न मुधाधमाः। स्पष्ट प्रवोपचयादेर्वस्तुन्यस्तमिताऽपदे ॥ १४ कार्यकारणभावादि ब्रह्मैय सकलं यदा। तदा तु ब्रह्मता हास्मिन्संविन्मात्रात्मके तते ॥ 814 मार्गयन्ति प्रबोधाय तैर्मृगेरलमस्तु नः। व्योमरूपे किलैकस्मिन्सर्वात्मनि तते सति॥ १६ कार्यकारणताढ्यानां मुक्तीनामेव कः क्रमः। यो हेतुः स्पन्दने वायोईवत्वे सलिलस्य च ॥ १७ शुन्यत्वे नभसः सौम्य सर्गादित्वे चिदात्मनः। कार्यकारणभावादि ब्रह्मेय सकलं यदा ॥ १८ तदा ब्रह्मणि सर्गाणां कारणार्था विलज्जता। न दुःखमस्ति न सुखं शान्तं शिवमयं जगत्॥१९ नास्ति चिन्मात्रतान्यत्वमत इच्छोदयः कुतः। मुद्देहयोधसेनायां न मृन्मात्रेतरद्यथा ॥ 20 न सज्जगदहन्तादी दृश्ये ब्रह्मेतरत्तथा।

इति । यदि मिथः सह स्यातां तदा उमे परसारबाधितला-इसत्ये स्याताम् । स्ताममत्यं को दोपस्तत्राह—असत्ये चेति । तथाच विद्वदनुभवविरोध इत्याह—यत इति ॥ १० ॥ ननु तर्हि सर्वजनप्रसिद्धं दर्यादिमहाकौतुकं निर्वाणे दुर्लभं स्यादि-व्यनाश्वासं परिहरनाह-अमभूतमिति । असत् चादनर्थरूपं च तहुर्यादि मा भाव्यतां न चिन्खताम् ॥ ११ ॥ तत् अर्थ-कारि पुरुषार्थसंपादकं नास्त्येव । अत्र ईरशे ट्रये अपह्रवेन किं केतुकं गतांमेलर्यः ॥ १२ ॥ अभावः शाब्दज्ञानकृतो बाधः सोपपत्तिर्मननसृहितो भावनात्रिदिष्यासनात् ॥ १३ ॥ इदानीं परमकारुणिको अगवान्वसिष्टो दश्यकीतुकासक्तानध-माधिकारिणः श्रोतुन्वलान्निर्भरस्य दश्यासिक स्याजयन्नाह-तित्किमिति । हे अधमाः, यूयमुपचयादेविकारजातस्य अपदे परमार्थवस्तुनि स्वप्रकाशलाच्छास्राचार्योपदेशाच करतलामल-कवरस्पष्टे एव स्फुरति सल्यस्तमदर्शनं कि इत प्राप्नुत । भवद्भि-स्तद्द्यजातं किमारमनि यन्धनाय न विद्ययम् । कि बन्ध ए-वाभिलवितोऽस्ति येन दश्यासित्तिः न मुश्रतेत्वर्थः ॥ १४ ॥ यदा कार्यकारणभावादिसर्व ब्रह्मेव भवति तदेव त देहादिप-रिच्छेदापगमात्तते विस्तारं प्राप्ते चिन्मात्रात्मके मझता सिख्यति नाणुमात्रमपि दश्यपरिशेषे ॥ १५ ॥ अतएव न्योमरूपे सर्वात्मनि पूर्णेऽपि कार्यकारणतादिदश्यमजीकृत्य ये **बद्धप्रकोधा**य साधनानि नार्गयन्ति मृगयन्ते तैर्वादिमृगे-योग० १४४

श्रीराम उवाच। एवं चेत्तद्देत्विच्छा मावोदेतु मुनीश्वर॥ २१ सा तु ब्रह्मेव कोऽर्थः स्यादस्या विधिनिषेधने। वसिष्ठ उवाच। क्रातायां संप्रयुद्धायामिच्छा ब्रह्मेव नेतरत्॥ २२ यथा संवुद्धवान्राम तत्सत्यं कि त्विदं शृणु। यदायदा क्षतोदेति शाम्यतीच्छा तदातदा ॥ २३ वस्तुस्वभावादुदयत्यादित्ये यामिनी यथा। शाम्यत्येव न तृदेति ज्ञप्ताविच्छादि तत्त्रथा॥ २४ यथायथोदयो इप्तर्द्धैतशान्तिस्तथातथा । वासनाविलयश्चेव कथमिच्छोदयो भवेत्॥ 5,5 तस्या विद्योपशान्तेयं निर्मेटा मुक्ततोदिता। अशेषदृद्यवैरस्याद्यस्येच्छोदेति न कचित् ॥ २६ विरक्ततास्य नो दृश्ये नोदेत्यत्रास्य रक्तता । केवलं द्रप्रदृरयश्रीः स्त्रदृते न स्वभावतः ॥ 3.9 काकतास्टीययोगेन परप्रेरणयानया । यदि किंचित्कदाचिश्व सम्यगिच्छति वा नवा तदस्य सेच्छा नेच्छा या ब्रह्मचात्र न संशयः। इच्छा न जायते ज्ञस्यावश्यमेवानु घा नवा ॥ २९ बता चेद्दिता जन्तोस्तदिच्छास्योपशाम्यति । नितयोः स्थितिरेकत्र प्रकाशतमसोरिव ॥ ३० प्रतिषेधविधीनां तु तज्हों न विषयः कचित्।

स्तार्किकैः शिष्यमृगैर्वा अलमस्तु । प्रयोजनं नासीत्यर्थः ॥१६॥ वदि चावश्यं हेतुर्वाच्यसाहि सर्वस्त्रभावस्या स्वाविदेवेत्याशये-नाह—य इति ॥ १० ॥ अताएव वितुषां तद्वाधात्सर्गादिहे-तुनिह्नपणे निर्वज्ञता दोष इत्याह—कार्येति ॥ १८ ॥ कारण-प्रतिपादनार्थ। उक्तिविलज्जता निलंजना ॥ १९ ॥ २० ॥ यदि सर्व ब्रह्मेंब तहि इच्छापि सुतरां ब्रह्मेति तदुत्पत्ता का क्षतिरिति विद्वदृष्ट्या रामः शङ्कते—एवं चेदिति ॥ २१ ॥ इच्छानुत्पादने यज्ञः कियतां कि दृथाश्रमेरिलादिप्रायुक्तयलि-धिनिषेधने निवारण सत्यं विदुष इच्छोदयेऽपि न काचित्स्रतिः। विद्याबाधितायास्तस्या उदय एव दुर्वम इत्युत्तरमाह—ज्ञाता-यामिलादिना ॥ २२ ॥ २३ ॥ 'इटकिटकटी गती' इत्यन्न ई इति प्रश्लिष्टस्य धातोः शत्रन्तस्य सप्तम्येकवचने अयतीति रूपं नखयतेः । तस्यात्मनेपदिलात् ॥२४॥ २५ ॥ मूलोच्छेदादपि विदुषी नेच्छोद्यसंभव इलाशयनाह --तस्यति ॥ २६ ॥ न खदते न रोचते ॥ २० ॥ सम्यक् ज्ञास्त्रानिषिद्धं देहधारण-भाश्रसाघनमत्रदानादि ॥ २८ ॥ तत्तदा अस्य विद्रषः सा इच्छा नेच्छाऽनिच्छा वा उभयं ब्रह्मैव । अथवा इस्य विदुषो नवा अभिनयभोगचमत्कारविषया इच्छा अवस्यं न जायत एव । प्रागम्यस्तमनुख्य तु वा आनयतेत्यर्थः ॥ २९ ॥ ज्ञता तत्त्वज्ञानम् । तत्तदा ॥ ३० ॥ अतहव रागतः प्रसक्तनिषिद्ध-

१ यथानि बुद्धवानिति पाटः.

शान्तसर्वैषणेक्छस्य कोऽस्य किं वक्ति किंकते॥ ३१ पतदेव इताचित्रं यदिच्छास्वतितानवम्। हादनं सर्वेलोकानामथानुभव एव वा ॥ 32 दृष्यं विरसतां यातं यदा न स्वद्ते कचित्। तवा नेच्छा प्रसरति तदेव च विमुक्तता ॥ ३३ बोधादनैक्यमद्वैतं यः शान्तमवातेष्ठते। इच्छानिच्छादयः सर्वे भाषास्तस्य शिवात्मकाः ३४ बोधादस्तमितद्वैतमद्वैतैकाविवर्जितम्। यः स्वच्छो विगतव्यग्रः शान्त आत्मन्यवस्थितः३५ नैव तस्य कृतेनार्थे। नाकृतेनेह कश्चन । न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिवर्थव्यपाश्रयः॥ 38 नानिच्छया नेच्छयाथ न सता नासता सदा। नैवात्मना न चान्येन नैतैर्मरणजीवितैः॥ OF इच्छा च तस्य नोदेति निर्वाणस्य प्रबोधिनः। यदि चोदेति तस्येच्छा ब्रह्म शाश्वतमेष सा॥ ३८ न दुःखमस्ति न सुखं शान्तं शिवमजं जगत्। इति योऽन्तः शिलेवास्ते तं प्रवृद्धं विदुर्वधाः ॥ ३९ दुःसं सुखं भावनया कुर्वन्विषमिवामृतम्। इति निश्चित्य घीरात्मा प्रबुद्ध इति कथ्यते ॥ ४० तित्स्यतं व्योमिन क्योम शान्ते शान्तं शिवे शिवम्। शुन्ये शुन्यं सति च सद्यद्वस्थि जगितस्थतम् ४१ असंवेदनसंघित्ले ततेऽविश्वमिति स्थिते।

कियाप्रतिषेधशास्त्रे नीरागीयं नाधिकारीत्याह-प्रतिषेधेति।किं-कृते कस्मै प्रयोजनाय । नद्यनन्धस्य कृपे न पतनीयमिखन्धेन वक्तव्यमस्त्रीति भावः ॥ ३१ ॥ बाह्यच्छानिवृत्तिः स्वानन्दानु-मवतृप्तिश्व तत्त्ववोधोदयचिह्नमित्याह-एतदेवेति । सर्वलोका-नामभयदानेन हादनम् ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अद्वैतं द्वैत-ष्वंसरूपं वस्त्वन्तरम् । ऐक्यं मेलनमेकलसंख्या च तैर्विवर्जितं यथा स्यात्तथा य आस्ते तस्येति परेणान्वयः ॥ ३५॥ अर्थ-व्यपाश्रयः प्रयोजनलाभः ॥ ३६ ॥ नानिच्छयेति । अर्थव्यपा-श्रय इति सर्वत्रानुषज्जते ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३८ ॥ इति प्रा-ग्वर्णितमात्मतत्त्वं निश्चित्य दुःखं च निरतिशयानन्दात्मभाव-नया विषमसत्तिमव कुर्वन् ॥ ४० ॥ तद्बोधानुसारिणी स्थिति-रेव सर्ववस्तूनामविपर्थस्तस्थितिनीज्ञप्रसिद्धेलाह—तदिति । त-त्तदा ॥ ४९ ॥ इति उक्तरीत्या अविश्वं निर्जगत्वं यथा स्यात्तथा स्थिते सति ॥ ४२ ॥ चिन्तापुरं मनोराज्यनगरं तदपमम ॥ ४३ ॥ परः पुरुषान्तरं तदीयमनोराज्यकल्पितायाः परो नगर्यो मध्ये तव यथा अन्तर्गमागमावांवन्नं कुट्यादिन्नतिबन्ध-शून्यं सिद्धातस्तथा विदुषोऽण्यस्मिन्जगद्भमे सिद्धात इत्यर्थः ॥ ४४ ॥ तत्कृतस्तत्राह-अब्यीति । यतः अब्ध्यादिश्च-य-तरात्मनि द्रष्टुरन्तःकरणमेवाब्ध्यादिशोभात्मना जूम्भते । यथा

सौम्ये समसमे शान्ते शिवेऽहंताभ्रमः क्षयी ४२ यदिवं रहयते किंचिज्ञगतस्थावरजंगमम्। तत्सर्वे शान्तमाकाशं परचिन्तापुरोपमम् ॥ કર परचिन्तापुरोमध्ये गतविघ्नं गमागमा । यथान्तस्तवं शून्यत्वात्तथेवास्मिअगद्भमे ॥ કક अभ्धिषुर्वीनदीशैलशोभाशून्यतरात्मनि । जुम्भते द्रष्टुकरणं गततृष्णाम्बुवीचिवत् ॥ ४५ स्वप्ननिर्माणपुरवद्वालवेतालतालवत् । यदिदं दृइयते तत्र किं किलासत्यतेतरत्॥ કદ असस्यनेवाहमिति भासते सत्यमेव च। म्रान्तिभाजं विनैवेयं भ्रान्तिः स्फुरति सा सती ४७ न समासन्न सदसत्किमपीदमतीन्द्रियम् । अवाच्यं जगदित्येव भात्यवश्चमितं खवत् ॥ इहेच्छानिच्छते शस्य शाम्यतां यदलं समे। तथापि श्रेयसे मन्ये नन्यनिञ्छोदयं स्फुटम् ॥ ४९ अहं जगदिति इतिः खे खस्येवेयमास्थिता। चिदात्मनो यथा वायोः स्पन्दो नात्रास्तिकारणम् ५० वितश्चेत्योन्म्खत्वं यत्ति सं संय संस्ताः। सेच्छा तन्मुक्तता मुक्तियुक्ति शात्वेति शाम्यताम् ५१ इच्छा भवत्वनिच्छा वा सर्गी वा प्रलयोऽथवा। अतिर्न कस्यचित्काचित्र च किंचिदिहास्ति हि ५२ इच्छानिच्छे सदसती भाषाभावौ सुखासुखे।

तृषितश्रान्तपुरुषस्य चक्षुरूपं करणमम्बुशून्ये पुरोदेशे मृगत-ष्णाम्बुवीच्यात्मना जुम्भते तद्वदिखर्थः ॥ ४५ ॥ असत्यताया इतरत् सत्यत्वं कि किल ॥ ४६ ॥ भ्रान्तिभाजो मिथ्यालादपि भ्रान्तेर्भिध्यासमित्याह-असत्यमेवेति । यतः सत्यं ब्रह्मेवाह-मिद्मिति चासलमेव भासते अत इयं भ्रान्तिभानितभाजं विनेव स्फुरतीत्यसतीत्यर्थः ॥ ४७ ॥ अत्यन्तासत्त्वे शून्यवा-दिमतप्रवेशः । अत्यन्तं सत्त्वे अद्वैतश्रुतिविद्वदनुभवविरोधः । उभयरूपत्वं त विरोधादसंभवीत्यनिर्वचनीयतायति पुंस्त्वबदस्य परिशेषादित्याह---न सदिति । अर्तान्दियं इन्द्रियानवधार्यत-त्त्वम् । खवत् इन्द्रियवत् । गन्धर्वनगराद्याकारावश्चम्थाकाश-बद्धा ॥ ४८ ॥ इस्य तत्त्वविदस्तत्त्वबोधवलादेवालं शाम्यतां विषयाणां यत् यद्यपि इच्छानिच्छते समे तुत्यफले तथाप्य-निच्छोदयमेव स्फुटं निर्विक्षेपसुखामिव्यक्तिहेतुं श्रेयसे मन्ये । नन्विति रामसंबोधने ॥ ४९ ॥ यथा आंवकृते एव स्ते 'आ-काशाद्वायु'रित्यादिश्रुत्युक्तकमेणाइं जगदिति ज्ञितरास्थिता तद्व-दज्ञानावृत्तिचिदात्मनोऽपि । नात्र कारणान्तरं मृग्यमित्यर्थः ॥ ५० ॥ तथाच चिदारमनो बहिःप्रवणतैवेच्छा चित्तं संसारध, अन्तःखरूपे स्थितिरेव मुक्तिरेति फलितमिलाह-चित इति ॥ ५१ ॥ तथा चेश्वरस्य स्तर्गप्रस्ययोरिव विदुष इच्छानिच्छयोर्न कश्चिहाभः क्षतिर्वेत्याह—इच्छेति । अस्ति फलमिति शेषः ॥५२॥ तत्रोपपत्तिमाह—इच्छानिच्छे इति ।

१ स्वस्य इति पाठः.

इत्यत्र फलना व्योम्नि संभवन्ति न काश्चन ॥ इच्छानां तानवं यस्य दिनानुदिनमागतम्। विवेकशमतृप्तस्य तमाहुर्मोक्षभागिनम्॥ 48 इच्छाश्चरिकया विदे हृदि शूलं प्रवर्तते। अयन्ति यत्र नैतानि मणिमन्त्रीपधानि च ॥ ५५ यान्कार्यकरणव्युहान्कृतवान्पूर्वमेव तान्। संप्रेक्षया न पश्योमि मिथ्याभ्रमभराहते॥ 48 भ्रमभूतेन कुर्मश्रेद्यवहारमवस्तुना । तत्कस्मात्परचित्ताद्रिः कम्बलत्वं न नीयते ॥ 40 असता व्यवहारश्चेत्प्रेक्षामात्रविनाशिना । कियते शशम्बद्धेण तत्कथं छाद्यते न खम् ॥ 46 अहंभावाचिदाकाशो जाड्यातिशयतः क्षणात् । पाषाणतां जलमिव मनस्त्वाद्याति देहताम्॥ ५९ चित्त्वादनुभवत्येतामसत्यामेव देहिताम् । अविनष्टैव चिच्छक्तिः स्वप्ने स्वमरणं यथा ॥ o3 ब्योद्ध्यसत्यमवस्तुत्वात्सत्यं चानुभवाद्यथा । नीलत्वं तद्वदीशेऽस्मिन्सर्गो नासन्न सन्मयः॥ ६१ यथा शुन्यत्वनभसोर्यथा स्पन्दनभास्वतोः । मेदो नास्ति तथा सर्गव्रह्मणोरेकरूपयोः॥ ६२ नेह संजायते किंचिज्ञगदादि न नश्यति ।

कळनाः कल्पनाः । अत्र तत्त्वविद्वपे व्योन्नि चिदाकाशे॥५३॥ ॥ ५४ ॥ इच्छालक्षणया क्षरिकया क्षरप्रवाणशस्येन । शूलं शोकमोहादिवेदना । यत्र यस्मिन् श्रूले एतानि लोकप्रसिद्धानि मणिमन्त्रीषधानि न जयन्ति । कुण्ठीभवन्तीति यावत् ॥५५॥ विधाता प्राणिदु:खिविचिकित्सार्थ यानीषधमस्त्रयस्त्रादिकार्थ-करणप्रामान् पूर्वमेव बहुशः परीक्षणार्थं संप्रेक्षया यतमानोहं मिथ्याभ्रमभरेण आहते पुंसि तिचिकित्सासमर्थात्र परयामि ॥ ५६ ॥ ननु भ्रान्तिसिद्धेनैव केनचिदुपायेन तिचिकित्सादि-व्यवहारोस्तु तन्नाह-भ्रमभूतेनेति । भ्रमो भ्रान्तिज्ञानं तेन भूतेन सिद्धेन । अस्मद्रान्तिसिद्धोपायेन परश्रान्तिसिद्धदुःखनि-वारणे अस्मन्मनोरथकल्पितबहुयोजनविस्तृतमुखेन परकीयस्व-प्रशैलादेः कवलनप्रसञ्ज इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ भ्रान्तिसिद्धस्या-सत्त्वाद्धि न पारमार्थिके परदुःखनिवारणे सामर्थ्यमित्याह---असतेति । कियत इति पूर्वान्वयि । तस्मात्तदीयं तत्त्वज्ञाना-मिव्यक्तं परमार्थसत्यं ब्रह्मेव तदीयसर्वश्रमदुःखनिवारणी-पायो नान्य इति भावः ॥ ५८ ॥ नन्वमूर्तमनोश्रान्तिमात्रं जगबेत्कथं मूर्तदेहादिभावं याति तत्राह—अहंभावादिति । देहाद्याकाराहंभावात्। जलं जाड्यातिशयतः पाषाणतां कर-काभावमिव ॥ ५९ ॥ ऋत्पिते चितः स्वमरणतुल्ये जडदेह-भावेऽपि वास्तवचिद्रुपमक्षतमेवति तेन तामनुभवतीत्वाह— चित्त्वादिति ॥ ६० ॥ प्रातिभासिकजडभावः प्रतिभासाधीन-सत्ताकलाद्निवेचनीय इत्याह—व्योम्रीति ॥ ६१ ॥ अतएव स्वप्नो निद्वागतस्येच केवलं प्रतिभासते॥ ६३ अविद्यमाने पृथ्व्यादी प्रतिभामात्ररूपिणि । सर्गे क इव संरम्भस्त्यागादानैश्चिदम्बरे ॥ ६४ न देहः प्रतिभातोऽस्ति पृथ्व्यादिकारणान्वितः। केवलं ब्रह्मचिन्मात्रमेवात्मन्येव संस्थितम् ॥ 64 बुद्धादेः करणत्वं च द्वेतिक्यासंभवान्न सत्। अनेनेदं क्रियत इत्यस्यार्थं याति संभवात्॥ 33 अहेतुरक्रमं भाति चिति कल्पक्रियागणः। क्षणेनेव यथा स्वप्ने मृतिजन्मादि सत्वराः॥ र ७ खमेव पृथ्वी खं शैलाः खमेव रढमित्तयः। खमेव लोकाः स्पन्दः खं सर्गसंवेदनं चितेः॥ ६८ व्योमभित्तौ जगिबन्नं चिद्रह्मययमाततम्। नोदेति नास्तमायाति न शाम्यति न ताम्यति ६९ चिद्वारिणि जगनुङ्गतरङ्गद्रवरूपिणि। किं जुबा कथमुत्पन्नं किं शान्तं च कदा कथम् शान्ते महाचिदाकाशे जगच्छुन्यत्वशालिनि । चेत्यासंभवतः सन्ति नोदयास्तमयौ कुतः ॥ ७१ पर्वता गगनायन्ते गगनं पर्वतायते । संवेदनप्रयोगेण ब्रह्मणः सगेता स्थिती ॥ ७२ संविष्णंप्रयोगेण निमेषार्थेन योगिनः। कुर्वन्ति जगदाकाशमाकाशं त्रिजगन्ति च ॥ ७३

जहहासत्तयोरैक्याद्भेदो नास्तीत्याह--यथेति ॥ ६२ ॥ प्राति-भासिकार्थस्य स्वाप्नार्थवत्प्रतिभागातिरिक्तमुत्पत्त्यादिकमप्रसिद्ध-मिलाइ-नेहेति ॥ ६३ ॥ अतएव तत्त्यागादानयोरभिनिः वेशो न युक्त इत्याह—अविद्यमाने इति ॥ ६४ ॥ देहार्थ हि पृथ्यादास्य त्यागादाने स्याताम् । यदा तदुभयं प्रतिभा-समात्रलादसत्तदा ते अप्यसती इलाशयेनाह—नेति । प्र-तिभातः प्रतिभासमात्रखात् ॥ ६५ ॥ एवं बुड्यादेरपि स्वप्र-तिभासकचैतन्यापेक्षया द्वेतैक्ययोर्भेदामेदयोरसंभवादनेनेदं कि-यत इलास व्यवहारस्य कारणलम्प्यसत्सद्र्यं परमार्थवस्त्वेव याति । तस्यैव संभवादित्यर्थः ॥ ६६ ॥ एवं अक्षणि कल्पम-हाकल्पादयस्तत्रत्यकियागणाश्च निर्हेतुका निष्कमा एव सहेतु-संक्रमब्दप्रतिभासन्त इत्याह—अहेतुरिति।मृतिजनमाद्यः सल-रा दीर्धकालरहिताः ॥६७॥ तथाच सर्व चिदाकाश एवेति फ-लितमित्याह--खमेवेति । यतिश्वतेः खात्मन्येव सर्गसंवे-दनं नान्यत्रेत्यर्थः ॥ ६८ ॥ न ताम्यति न ग्टायति ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ स्तां तर्हि चित एव जगदात्मना उदयास्तमयौ ने-त्याह--शान्ते इति । चेत्यासंभवतो यदा जगन्त्येव न सन्ति तदारमना चित उदयास्तमया कुतः । कस्मान्सिध्यत इलायः ॥ ७९ ॥ यदि तु मायाविलासटशा दृश्यते तदा सर्वस्य सर्वः ह्रपता यथेच्छमुपपद्यत इत्याह-पर्वता इति । संवेदनस्य वा-सनावैचित्र्यानुसारिकल्पनालक्षणेन प्रयोगेण संकल्पेन ॥७६॥ अतएव योगसिद्धानामैच्छिकौ विषद्धकल्पना क्षणातिमध्यती-

3

सिद्धसंकल्पनगराण्यसंख्यानि यथाम्बरे । तथा सर्गसहस्राणि सन्ति तानि त् चिन्नभः॥ ७४ महार्णवे यथावर्ता अन्योन्यमपि मिश्रिताः। प्रथगेवावतिष्ठन्ते पयसोऽन्ये च नैव ते॥ 150 महाचिति महासर्गा अन्योन्यमपि मिश्रिताः। प्रथगेवायतिष्ठन्ते व्यतिरिक्ता न ते ततः॥ ७६ सर्गात्सर्गान्तरालोके या प्रवुद्धस्य योगिनः । सिद्धलोकान्तरे प्राप्तिः सेवेति विवधोक्तयः॥ છછ अविनाशिनि भूतानि स्थितानि परमे शिवे। व्योस्रीय शुन्यतोल्लासाः सर्गवर्गा निर्गलम् ॥ ७८ परमार्थनिजामोदाः सहजाः सर्गविभ्रमाः। नोद्यन्ति नोपशाम्यन्ति लेखा इव शिलोदरे ॥ ७९

अन्योन्यं कुसुमामोदा मिलिता अप्यमीलिताः। व्योमरूपास्तथा सर्गा अन्योन्यं सिद्धभूमयः॥ ८० संकल्पाकाशक्रपत्वात्सर्वानुभववत्स्थितेः। तनुसंकल्पमोहानां सत्याश्च मननोक्तयः॥ ८१ न ज्ञानवादिता सत्या न बाह्यानर्थवादिता। यथावेदनमेतानि वेदनानि फलन्ति यः॥ ८२ चिति चिरवं यद्स्यन्तर्जगदित्येष भाविते। भेदो इवत्वपयसोरिय नात्रोपपद्यते ॥ 23 कालो जगन्ति भुवनान्यहमक्षवर्ग-स्त्वं तानि तत्र च तथेति च सर्वमेकम्। चिद्योम शान्तमजमव्ययमीश्वरात्म रागादयः खत्रु न केचन संभवन्ति ॥ ८४ इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे दश्योपदेशयोगो नाम सप्तशिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंदाः सर्गः ३८

वसिष्ट उवाच । चित्पश्यति जगन्मिथ्या स्ववेदनविवोधिता। ब्योम्नि मायाञ्जनासिका दिगवाचळतान्तरम् ॥ १

स्याह—संविदिति । संविद्धक्षणं यत्सिद्धौपधचूर्णं तरप्रयोगेण ॥ ७३ ॥ यथा प्रसिद्धं अम्बरे आकारी अनन्तानि सिद्धसं-कल्पकल्पितानि नगराणि परस्परमसंख्यान्यन्तर्हितानि सन्ति तथा ब्रह्मणि संगसहस्राणि सन्ति ॥ ७४ ॥ तत्र दृष्टान्त-माह-महार्णवं इति ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ अन्योन्यमन्तर्हिता-नामपि सिद्धलोकान्तराणामिच्छयालोकने योगिनो या खोपा-**धेर्मूलचिति प्रविलापनेन परिचत्तानुप्रवेशद्वारा तल्लोकानुप्रवे**-**शरुक्षणा प्राप्तिः सेव खसर्गात्सर्गान्तरालोकनेऽपीति विव्रधानां** विदुषामुक्तयः । तथव लीलोपाट्यानादै। वर्णनादिति भावः ॥ ७७ ॥ एवंच सर्वप्राणिनां तद्भोग्यसर्गाणां च शाश्वते ब्रह्म-**ण्येय वितर्ते**स्या स्थितिः फलितेलाइ—अविनाशिनीति॥७८॥ तथाच परमार्थचिदाकाशस्य निजामोदकल्पाः संगीयश्रमा-स्तत्स्वरूपा एवेति नोत्पत्त्यादिरेपामस्ताल्याह—परमार्थेति । स्फटिकविलोदरे दश्यमाना लेखा रेखा इव ॥७९॥ सिद्धभूमय इनेति शेषः ॥ ८० ॥ अतएव प्रपक्षस्य स्थलसंकल्पमोहानां पामराणां दृष्ट्या स्थूलानुभवविस्थितिः सृद्मसृद्भतरसृद्भतम-संकल्पमोहानां योगिभेदानां दृष्या सुरुमादिभावन स्थितिरिति रार्वानुभवाननुमारिलात्स्रस्वानुभवानुसारिण्यः । सला इत्याह—संकल्पेति । तनवः सूक्ष्माः संकल्पा मोहाध येषां योगिनां तेषां मननपूर्विका जगत्सीक्ष्म्योक्तयश्च सत्याः न पामरानुभवविरोधेनामत्या मन्तव्या इत्यर्थः ॥ ८१ ॥ अत-एव वादिमेदानां नानाविधकत्यना अपि तत्तद्वासनासंकरपा-नुसारेणैव सत्याः न सर्वसंकल्पानुसारेण परमार्थतो बेति ता-न्धंबोध्याह-नेति । ज्ञानवादिता आन्तरविज्ञातमात्रपरमार्थ-

ब्रह्मसर्गश्चित्तसर्गो हावेती सहशो मती। परमार्थस्वरूपत्वादश्रुब्धत्वात्सदैव च ॥ शानरूपतयावाहां वाहां चातुभवात्तथा।

वादिता । बाह्या टर्या ये अनर्था दःखहेतवो द्रव्यगुणकर्माः दिसप्तपदार्थास्तरमात्रवादिनापि सला । यथावेदनं यथासंकल्पं तत्तदर्थकिया समर्थतया फलन्ति ॥ ८२ ॥ कस्तर्हि प्रामा-णिकः पक्षस्तमाइ-चितीति । चित्त्वं त्रिपुटीप्रकाशनशक्तिः । 'सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः' इत्यादि श्रुतेरिति भावः ॥८३॥ उक्त-मन्दा प्रकृते योजयन्नपसंहरति-काल इति । सर्वाधारः कालस्तदन्तर्गतानि जगन्ति ब्रह्माण्डासादन्तर्गतानि चतुर्दश-भवनानि तदन्तर्गता अहन्त्वभित्वादयो भोक्तारस्तेषां भोगोप-करणभूनोऽक्षवर्गस्तानि शब्दस्पर्शादिभोग्यानि तत्र च तथा विवित्रों भोगश्रेत्येतत्सर्वमीश्वसारम् मायिकसार्वेध्यसर्वशक्त्यादि-संपन्नं परमार्थतः शान्तमेकं चिद्योमेव । एवं खलु निश्चित केचन रागादयो न संभवन्तयेवे अयमेवेच्छादिपर्वदीपजये सु-ख्योपाय इस्तर्थः ॥ ८४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सप्तत्रिशत्तमः सर्गः ३७

इह चिश्रेससंसर्गभेदभ्रमनिरासतः। चिद्व जगदित्येतत्सत्तकेंहपपाद्यते ॥ १ ॥

चेलस्य सर्वजगतिबन्मात्रतां तक्षेरपपादयिष्यन् भूमिकां रचयति-निदिति । मिथ्या सर्वेदनं खस्या अब्रह्मताश्रमस्ते-न विवोधिता विक्षिप्ता । यथा माया दर्शनहेतुनाजनविशे-षेणासिक्ता हक् चक्षुर्व्योधि अचलतां पर्वतभावं तदान्तरं नि-तम्बप्रस्थशिखरदरीवनकुञ्जादि च पश्यति तद्वदिखर्थः ॥ १ ॥ श्रान्तिकल्पितस्लयं संगिधित्रसर्गवन्मनःकल्पनयैव श्रुब्धव-द्भाति न वस्तुन इत्याह--वद्मेति ॥ २ ॥ अस्त्वेवं किं ततस्त-

१ मिश्रिता अप्यमिश्रिता इति पाठः.

80

सत्यरूपमतः सत्यां विद्धि बाह्यार्थरूपताम् ॥ बाह्यार्थवादविज्ञानवाद्यारेक्यमेव नः । वेदनात्मेकरूपत्वात्सर्वदा सदसंस्थितेः ॥ अशुव्धखानिलालोकजलभ्शान्तिशालिनी । तता शूत्या महारम्भा ब्रह्मसंख्ये सर्वतः ॥ तसे सर्व ततः सर्व तत्सर्व सर्वतः ॥ तसे सर्व ततः सर्व तत्सर्व सर्वतः ॥ तदा सर्वमयं नित्यं तसे सर्वातमने नमः ॥ विग्मयत्वाद्यत् वेत्यमेति द्रष्टृ चितेकताम् । तदा दश्याक्रयेवत्रचेत्यते नान्यथा चिता ॥ यदा चिन्मात्रमेवेयं द्रष्टृदर्शनदश्यदक् । तदानुभयनं तत्र सर्वस्य फलितं स्थितम् ॥ द्रष्टृदर्ये न यद्यकमभविष्यचिद्यात्मके । तदृश्यास्यादमक्षः स्थान्नादृश्च्युभिवोपलः ॥ दिन्मयत्वाचितां चेत्यं जलमण्यिव मजिते । तेनानुभूतिभवति नान्यथा काष्ट्योरिव ॥

त्राह—क्वानेति । यथा भित्तस्थिधभूमगी बाह्ययभितिरूपेण मित्तरबाह्यो ब्रान्तानुभवात्मना तु तद्वाद्यस्तद्वदक्षानं कल्पितः स-भौडपि बास्तवज्ञानस्यतवा अवाद्यो खान्तानुभवारमना तु बाह्य इति मिद्धे बाने सत्यरपमित्यती हेलोबीद्यार्थस्पतामणि तदा-रमना सत्या विद्योग्यर्थः ॥ ३ ॥ एवं अस्मन्मतं न बाह्यार्थः बादेन नापि विज्ञानवादेन विरुध्यते । अत्रीभयीरकरस्यातः । सर्वदा चिद्तिरिक्तस्थान्तरविज्ञातस्य बाह्यप्रपत्रस्य चासतः अ-संस्थितेः । अनम्युपगमादित्यर्थः ॥४॥ सर्वस्य चिदेक्ये चितः सदैवाक्षरभलात्रिर्विशेषलाच क्षुर्धानां खादिपश्चभुतानां शा-न्तिरर्थसिदेति पूर्णबद्धासत्तामात्रपरिशेषः सिद्ध इत्याह--अ-क्षद्भेति ॥ ५ ॥ तदेवं सर्वकारकियाफठात्मकं जगद्रह्माभूनं नमस्यति—तस्मै इति ॥ ६ ॥ व्यवहारकालेऽपि चेलस्य चि-दैक्यापत्तिबलादेव सत्तास्कृती नान्ययेलाह—चिन्मयलादिति। घटादि चेत्यं तदा चिन्मयलादेव द्रष्टचिता चाक्षपवृत्त्यवन्छि-**न्नप्रमातृचेतन्येन** यदा वृत्तिव्यामिद्वारा एकतामेति तदा दश्य-**मन्नं शरीरं यस्यासाथा**विधर्यव तया चिता एतद्धटादि चेखते **नान्यथेत्यर्थः ॥ ७ ॥ एवं द्र**ष्टा तद्दशनमाधनं टरपं टक् त-रफलं चेरयेतत्सर्व चिद्वयाधीनसिद्धिकलाखदा चिन्मात्रसव तदा सर्वस्य जगतोऽनुभवनमात्रमेव स्वरूपं परमार्थतः स्थितं फिलितमित्यर्थः ॥ ८ ॥ द्रष्ट्रद्ययोगैक्यसाधनानुप्राहकं तर्क-माइ-इष्टरये इति । द्रष्ट्रदये चिदात्मके साक्षिणि यदेके नाभविष्यत् तत्तर्हि इक्षुभक्षणे प्रयत्तो ना पुरुष इक्षुं द्रष्ट्रा चोपयन्नपि उपल इव दृश्यस्यास्त्रादं तन्माधुर्यमहोऽननुभव-न्स्यात्, नहि जडो रसमनुभवितुं शक्नोति, न वा जडो रससं प्रति स्फ़रिष्यति येनानुभवदित्यर्थः ॥ ९ ॥ तयोधिन्मयला-भ्युपगमे अनुभवितृचिती चेत्यमनुभवनीयम् । अप्सु पतितो ज-छनिन्दुरिव तद्वुप्रवेशेन मजाति तन हेतुना इक्षमायुर्यमास्वा-दयामीति त्रिपुट्याः स्फरणानुप्रवेशेनानुभूतिभविति । सिद्धती- सजातीयेकताभावाद्यद्वत्काष्ट्रं न चेतते । दारु तहद्पि द्रष्टा रह्यं नाक्षास्यदाजडम्॥ ११ यादक्सत्तानि काष्टानि तारम्यं त्वचेतनम् । जानन्ति नेतरत्तसादृद्यं चिद्दृदयचेतनम्॥ १२ महाचिदात्मनेवास्ति जलानिलधराइमतम्। नेतेषु स्पन्दवुद्ध्यादि प्राणजीवाद्यभावतः॥ 83 प्राणवुद्भ्यादयः सत्तां भावनावशतो गताः। भावना चिद्यमत्कारः स यथेच्छमुदेति च ॥ १४ जगत्तया शान्ततया ब्रह्मसत्तावतिष्ठते । पुंस्तया गत पवात्मा रेतीचटकवीजयोः॥ 866 सर्वात्राणुमये वीज योऽसाद्रयगतोऽणुकः। सस तत्तद्भवत्ययं बीजं स्वात्मनि संस्थितः॥ १६ ब्रह्म सर्वपराण्वातमा यो यस्मादर्थतोऽणुकः। सस तत्तद्भवेद्वस्तु वस्तु ब्रह्मय तिष्ठति ॥ 8.0 द्रव्यमेव यथा द्रव्यं तिर्यगुर्ध्वमधस्तथा।

त्यर्थः ॥ १० ॥ व्यतिरेके काष्ट्रयोरिवेत्युक्तद्यान्तसाम्यं दार्छान्तिके उपपादयति—सजातीयेति । कार्यं कर्तृ दारु द्वितीयं कार्य कमें यथा काष्ट्रांबेन सजातीयस्थेऽपि चिदैक्या-भाषायद्वर्ग रोतते तथा दशांपि आजडं सर्वथा चिदैक्य**श्रन्**यं हर्य नाज्ञास्यत् ॥ ११ ॥ नच द्रष्ट्रहरययोजंडस्ये काष्टद्वयाद्वि-र्रापं केचिकानस्तीत्याह—साटगिति । यादशी **सत्ता स्थिति**-र्येषां तानि । इतर्र्युष्ठक्षण्यं तु न जागन्ति केचिदपीत्यर्थः । तस्मादुक्ततर्ववलादुर्यं सर्व विद्रुपेणैव द्रष्टा दृश्यं चेतनं **चिद्-**मित्रं चेति सिद्धमिस्त्रर्थः । कमैधारयः ॥ १२ ॥ एवं द्रष्टु-हर्ययोश्विद्र्पृत्ये हर्ये जगति घरानिलजलादि**मेदापगमाद्रष्टरि** च स्पन्दवृद्धिप्राणादिभेदापगमात्सर्वस्य जगतो ब्रह्मैक्यमेव सिद्धमित्याह---महाचिदात्मनेति । अश्मतान्ते समाहारद्वन्द्वे नपुसंकहस्यः ॥ १३ ॥ भावनाकिष्पतत्वादपि प्राणादिभेदानां मिथ्यालमिलाह--प्राणिति ॥ १४॥ ब्रह्मसत्ताविवर्तमाबलादपि जगद्भेदानां मिध्याखमित्याह—जगत्तयेति । शान्ततया सुप्ति-प्रख्यात्मना । एवेत्यत्र भा इवेति च्छेदः । पुंग्तया प्रसवशक्त-तया आगत आकान्तः । वट एव चटकः ॥ १५ ॥ तत्र वटवीजे पुंस्लाकान्तं सृक्ष्ममविकृतं ब्रह्मसत्ताकं भागं तत्र व-टादिविवर्तं च दर्शयति—सर्वाप्रति । अग्रशब्दः सारपरः । योयोऽश्रगतोऽणुकोऽतिसुक्ष्मः ससः परमात्मा । स एवाङ्कर-काण्डशासादौ तत्तदुत्तरोत्तरकार्य पुरोभूयाप्रं बीजं च भव-तीत्वर्थः ॥ १६ ॥ तत्र योयो यस्मात्सूक्ष्मः कारणतया प्रसिद्धः सस ब्रह्मकोटी, यथ स्थूटः कायात्मना प्रसिद्धः स मायाकोटी मिथ्येत्युपरुक्षयेदिखाशयेनाह—ब्रह्मेति । एवसुपरुक्षिते सर्वत्र वस्तु ब्रह्म तिष्ठति नान्यदिखर्थः ॥ १७ ॥ यथा घटाबेकैक-ब्रव्यमामुलावं तदेव द्रव्यं नाणुमात्रमपि तदन्यदस्ति तथा सर्वे

१ बाजं च स्वातमान स्थित इति पाठः.

सर्वमेव तथा ब्रह्म येन तेन यथा तथा॥ 28 हेमत्वमेव नान्यत्वं हेमरूपशते यथा। शान्तत्वमेव शान्तस्य सर्गाहन्त्वगणे तथा ॥ १९ पार्श्वस्थस्वप्रमेघौघा यथा तव न काश्चन। सर्गप्रलयसंरम्भास्तथा खात्मान एव मे ॥ २० पञ्जना कल्पिता ब्योस्रो या पुत्रक पताकिनी। सा यथा शान्ततामात्रं खमेवेदं तथा जगत्॥ २१ संकल्पम्रम एवान्तः पुष्पीभूय जगतिस्थतम्। जलावनितलक्षित्रवीजं फल्प इव हुमः॥ २२ अनहन्तात्मनो इस्य सत एकत्वमासतः। जरचुणलवायन्ते नतु नामाऽणिमादयः॥ 23 त्रैलोक्ये तन्न पश्यामि सदेवासुरमानुषम्। एकरोमांशविश्वस्य यहोभाय महात्मनः॥ રઇ यथा तथा स्थितस्यापि यत्र तत्र गतस्य च। द्वैतसंकल्पसंदोहा न सन्त्यधिगतात्मनः॥ **ર્**ષ विश्वमेव नभो यस्य शुन्यं सर्वं महात्मनः। कुतः कस्य कथं तस्य भवत्विच्छा निरात्मनः॥ २६ शान्ताशेषविशेषस्य निरेषणविशेषतः। सत्तामसत्तां सहशो क आकल्यितं क्षमः॥ मारैर्न किंचिन्ध्रियते जीवैः किंचिन्न जीवति । **ग्रद्धसं**विन्मयस्यास्य समाहोकस्य खस्य च ॥ २८ मिथ्यालोकस्य कचतो भ्रान्त्या मरणजन्मनी । असत्यपि भ्रान्तिभाजि मृगतृष्णानदीतरे ॥ २९ सम्यक्परीक्षितं यावन्न भ्रान्तिनं परीक्षकाः।

जगदामूलाघं येन येन पुरुषेण यथायथा परीक्ष्य दृष्टं सन्मात्र-रूपं ब्रह्मेव नाणुमात्रमपि तदन्यदस्तीत्यर्थः ॥ १८॥ अवि-कारित्वेऽपि द्रष्टान्तमाद्द--हेमलमिति । सर्गी जगद्भावः अहरत्वं जीवभावस्तद्वणे ॥ १९ ॥ तस्य विवर्तेर्रहोपमाह---पार्श्वस्थेति ॥ २० ॥ व्योन्नो या पद्भता मलिनता कल्पिता या च गन्धवंपुत्रकाणां पताकिनी सेना सा यथा खमेव ॥ २१ ॥ हृदयान्तः पुष्पीभूय बहिर्जगत्फलं स्थितम् । यथा जलेनाव-नितले हिन्नमादीभूतं वटादिबीजं कल्पते छायाश्रयादिना प्रा-**ण्युपकारसम**र्थी भवतीति कल्पा महान्वटादिद्यमः संपद्यते तहत्. ॥ २२ ॥ ननु यदि परमसूक्ष्मं ब्रह्म तद्भाविश्वतिरेव मोक्षस्त-र्धणमादिसिद्धिभररी तुल्य इत्यासङ्घा वारयति-अनहस्ता-रमन इति । अहंतादिप्रतिवन्धनिरासेनाविभूतनिरातिशयानन्दस्य इस्प दृष्येलार्थः ॥ २३ ॥ एको रोमांश ६व विश्वं यस्य तथा-विधस्य महारमनः ॥ २४ ॥ २५ ॥ निरात्मनो निःखरूपाद्धी-गादिनिमित्तात् ॥ २६ ॥ सत्तां विभवं असत्तां दारिद्यं च सहरो। समे पर्यतः क आकलयितं क्षमो महिमानमिति शेषः ॥२०॥बन्धुपुत्रादिमरणजीवनादिनापि नास्य हर्षविषाद्रप्रसक्ति-रिखाशयेनाइ-मारितित । मारेर्भरणहेतुभिजविजीवहेतुभिः ॥ २८ ॥ लोकस्याज्ञजनस्य भ्रान्सा मृगतःणानदीतद्वप्रावे

न नाम जन्ममर्णे केवलं शान्तमव्ययम्॥ 30 दृश्याद्यो विर्गति यात आत्मारामः शमं गतः। स सन्नेवासदाभासः परितीर्णभवार्णवः॥ 38 दीपनिर्वाणनिर्वाणमस्तंगतमनोगतिम् । आत्मन्येव शमं यातं सन्तमेवामलं बिदुः॥ 32 आबुद्ध्यादि जगदृदयं यसै न स्वदते स्वतः। आकाशस्येव शान्तस्य तमाहुर्मुक्तमुत्तमाः॥ 33 अहमस्त्यविचारेण विचारेणाहमस्ति नो । अभावादहमर्थस्य क जगत्कच संस्रुतिः॥ 38 संवित्संवेदनादेव बुद्ध्याद्याकारचित्स्थतम्। रूपालोकमनोरूपं जगद्वेत्ति चिदम्बरम् ॥ 34 सर्वार्थरिकमनसः सतः सर्वात्मनस्तव । सर्वथा सर्वदा सर्वे सर्वमाचरणं शिवम्॥ ३६ यत्करोषि यदभासि यज्जहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि इंस्पेपि तत्सर्वे शिवमव्ययम्॥ ३७ यदहं यत्त्वमाशा यद्यत्त्रियाकालखादयः। यहोकालोकगिरयस्तचिद्योम शिवं ततम्॥ 3८ यद्रपालोकमननं यत्कालित्रतयं जगत्। यजारामरणार्त्यादि तन्महाचित्रभः शिवम् ॥ ३९ निश्चिकित्सो निराभासो निरिच्छो निर्मना मुनिः। भृत्वा निरात्मा निर्वाणस्तिष्ठ संतिष्ठसे यथा ॥ ४० गतेच्छमननं शान्तमनन्तस्थमभावनम्। व्यवहारोऽस्तु ते मा वा स्पन्दास्पन्दैर्यथानिलः ४१

भ्रान्तिभाज्यात्मनि मिथ्यैव मरणजन्मनी कचतः॥ २९॥ यावदस्माभिः सम्यवपरीक्षितं तावत्र भ्रान्तिर्नवा परीक्षका नवा जन्ममर्णे सन्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥ न परीक्षका इति कथ-मुच्यते तत्त्वविदः परीक्षकस्यावाधात्तत्राह-इश्यदीति । ब्रह्म-भावेन सर्वाप देहेन्द्रियादिसहितपरीक्षकात्मना असदाभास इलार्थः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मात्मना सन्तमेव दीपनिर्वाणमिव नि-र्वाणं विदुः ॥३२॥ अतएव तस्य न संसारः खदते इत्याह— आवुष्मादीति ॥३३॥ तत्त्वज्ञश्रेदीपवन्निर्वाणस्तर्हि स्वं वसिष्ठः कथमसि तत्राह—अहमिति ॥ ३४॥ अभावः कुतस्तत्राह— संविदिति । बास्तवं चिदम्बर्मेव स्वसंविदोऽन्यथा संवेदनादेव ब्रह्माद्याकारवस्थितं सत् ॥ ३५ ॥ ममेव यथार्थसंबेदनेन भ्रान्तिनाशे सर्वार्थरिक्तमनसस्तवापि निर्वाणरूपैव स्थितिः से-रस्यतीत्याह—सर्वार्थेति ॥ ३६ ॥ सर्वमान्वरणं प्रपश्चयति— यदिति ॥ ३७ ॥ आचरणप्रहणं जगन्मात्रोपलक्षणमित्याशये-नाह--यदिति । आशा इच्छा दिशश्व ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ निधिकित्सो दुःखप्रशमोपायान्वेषणश्चत्यो निर्विचिकित्सो वा । 'निर्विकल्प' इति पाठः स्पष्टः । यथा निर्वाणः संतिष्ठरी तथा तिष्ठ ॥ ४० ॥ यथा आनिलः अनिलसंबन्धी स्पन्दास्पन्दैर्यः-

१ निर्मम इति पाठः. २ अलेप इति पाठः.

निर्वासना निष्कलना शान्ता पुरुपतास्तु ते। शास्त्रण यम्बवाहेन वाह्या दारुमयी यथा॥ ४२ भूतालोकस्तु मा स्नेहो मा वा स्नेहश्च वाह्यगः। अनिर्देशधरालोकश्चित्रदीपवदास्यताम्॥ ४३ निर्वासनस्य विरसस्य निरेपणस्य शास्त्राद्धते क इव तत्त्वविनोदहेतुः। शास्त्रार्थसज्जनमतोऽप्यमलस्य तस्य संवेदनेष्यनभिसंधिमतः स्वरूपम्॥ ४४

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये भोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्घे निर्वाणवर्णनं नामाप्रविद्याः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंदाः सर्गः ३९

वसिष्ठ उवाच ।
संजाताकृत्रिमक्षीणसंसृतिप्रत्ययः पुमाम् ।
असंकल्पो न संकल्पं वेत्ति तेनासदेव सः ॥ १
श्वासान्म्लानिरिवादरों कृतोऽप्यहमिति स्थिता ।
विदि साऽकारणं दृष्टा नहयन्त्याशु न लभ्यते ॥ २
यस्य श्लीणावरणता शान्तसर्वेहतोदिता ।
परमामृतपूर्णात्मा सत्त्यैव स राजते ॥ ३
सर्वसंदेहदुर्ध्वान्तमिहिकामातरिश्वना ।
भाति भास्वद्भिया देशस्तेन पूर्णेन्द्रनेव स्वम् ॥ ४

वहारस्तथा ते तवाप्यस्तु ॥ ४९ ॥ पुरुपता पुरुपोचितचेष्टा ते **शास्त्रलक्षणेन यम्त्रवाहेन वाद्या** निर्वाद्यास्तु ॥ ४२ ॥ हे राम, तव बाह्यमो मातृपितृबन्धुजनादिभृतानामाळोकनमाळोक आम्नेहः म्नेहबहुरो माभूत् अम्नेहो वा माभूत् किंतु अनिर्दे-शघरः अस्ति नास्तीति परीक्षकिनिर्देष्ट्रमशक्य आलोकः प्रका-शो यस्य तथाविधोऽस्तु । एवंच लया चित्रदीपवदास्यतां स्थीयताम् । तम्यापि हि चित्रलिखिततैलपूर्णंबात्परमार्थतस्ते-लाभावाच भूताना प्राणिनामालोकनमालोक आखेहः खेहव-हुलः अक्रेह्स्तच्छुन्यश्च न भवति । आलोकः प्रकाशश्च चित्रलि-खितः अस्तिनास्तीति निर्देशाही न भवतीति साम्यादित्यर्थः ॥ ४३ ॥ निर्वासना निष्कलनेति श्लोकार्थमेव पुनरनुवादेन दृढीकुर्वश्रुपसंहरति---निर्वासनस्येति । वर्नमानभोगेषु विर-रास्य । भाविषु निरेपणस्य । शास्त्रात्सच्छास्नात् । तत्त्वे स्व-सुखे विनोदो विश्रान्तिसाद्धेतुः । आदेहधारणमवस्यभाविखा-दवर्जनीये व्यवहारे सच्छास्त्रानुसरण एव चित्तदोपनिर्हरणन विवेदासुद्वोधनेन च तत्त्वज्ञानप्रतिष्ठासिद्धरिति भावः । अतः अनिसंधिमतः अतएवामलस्यापि तस्य तन्त्रविदः संयेदन-पूर्वकव्यवहारेषु शास्त्राधं स्वस्थवर्णाधमोचिताचारे शमदमादी च सज्जनं सम्यगनुवर्तनमेव खरूपमसाधारणं लक्षणं न यथेष्टा-चरणांमत्वर्थः । तथाचाहुर्वद्धाः 'विदितब्रह्मतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि । शुनां तत्त्वदशां चव को मेदोऽश्रुचिमक्षणे ॥' इति ॥ ४४ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणे तात्पर्यप्रकारो नि-वीणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

प्रबुद्धात्मनि विश्वान्तो यद्भाः परिशिष्यते । जगच तस्य यद्भां तत्सम्यगिष्ट वर्ण्यते ॥ १ ॥ विदुषः शास्त्रानुसारनियमे तक्षियामकसंकल्पस्यापि प्रसक्ति-

विसंस् तिर्विसंदेहो लन्धज्योतिर्निरावृतिः।

शरदाकाशविशदो श्रेयो विशायते बुधः॥ ५
श निःसंकल्पो निराधारः शान्तः स्पर्शात्पिषत्रताम्।
अन्तःशीतल आधृत्ते ब्रह्मलोकादिवानिलः॥ ६
असद्पोपलम्भानामियं वस्तुस्वभावता।
यत्स्वर्गवेदनं स्वप्नवन्ध्यापुत्रोपलम्भवत्॥ ७
अविद्यमानमेवेदं जगद्यद्युभूयते।
असद्र्पोपलम्भस्य संपा वस्तुस्वभावता॥ ८
असत्येष्वेव संसारेष्वास्तामर्थः कुतो भवेत्।

माशक्काह--संजातेति । संजाती यथाभृतार्थगोचरसादक्विमः क्षीणा संस्कृतिर्यस्मात्तथाविधः प्रत्ययः साक्षात्कारं। यस्य तथा-विधः पुमान् शास्त्रीयत्र्यवहारनियमेऽप्यसंकल्प एवावतिष्ठते । यतोऽयं तत्तद्यवहाराभासद्देतुसंकल्पाभासं स्वात्मैयेति पदयन् संकल्पं न वेति । नच वेदनमन्तरेण कस्य चित्सत्ता प्रसिद्धेति ससंकल्पाभासोऽसदलीकमेवेखर्यः ॥ १ ॥ न संकल्पं वेत्तीत्यु-क्तेविवरणाय सर्वसंकरूपबीजस्याहरताध्यासस्य बाधादपि तस्य न संकल्पप्रसक्तिरित्याशयेनाह-शासादिति । प्राग्नोधात्कु-तोऽप्यनिवंचनीयाभिमित्ताभिःश्वासीत्था आदशै म्लानिरिव अन हमिखहन्ता स्थिता । सा तत्त्वविदि अकारणमाशु नश्यन्ती दृष्टा येन्नेनान्विष्टापि न लभ्यते ॥ २ ॥ कामनया हि संकल्प-प्रसक्तिः सा च पूर्णकामस्य नास्तीत्याद्ययेनाह- यस्येति । स-त्तया निरतिशयानन्दस्यरूपसत्तर्थेव ॥ ३ ॥ एकलाभादेव सर्वेलाभाहस्थव्यविषय इव एकविज्ञानेनैव सर्वविज्ञानाज्ज्ञातव्य-विषयेऽपि भ्रमसंशयाद्यभावात्तदर्थमपि तस्य न संकल्पप्रसक्ति-रित्याशयेन।ह—सर्वेति । भास्त्रती निरावरणात्मकप्रकाशा धीर्यस्य तेन । अत एव सर्वेषां देहलक्षणानां दुर्ध्वान्तनिमित्तमि-हिकानां मातरिश्वना । तद्देशस्थसर्वजनश्रमसंशयनिराससमर्थस्य तत्प्रसत्त्यभावादिति भावः ॥ ४ ॥ यतो वुधस्तत्त्ववित् 'शिवमर्द्वतं चतुर्थ मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः' इत्यादिश्रुतिषु क्षेय आस्मेवेति विज्ञायत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ स्पर्शास्त्रण**तिशुश्रूपा**-दिना संगमात्। जनानां पांवत्रतां निष्पावताम् । ब्रह्म-ळोकादागतः अनिल इव ॥ ६ ॥ न संकरपं वैत्तीत्येत-द्विशदीकृत्य तेनासदेव स इति लच्छेषं विशदीकर्तुम-सदूर्योवलम्भस्य स्वरूपं प्रपद्ययति—असदूर्यति चतुर्भिः ॥७॥ ॥८॥ खप्रवन्ध्यापुत्रीपखम्भवदित्युक्तद्दयन्तसाम्यं दर्शयति---

सर्गापवर्गयोः शब्दावेच वन्ध्यासुतोपमो ॥ ୧ जगद्वस्रतया सत्यमनिर्मितमभावितम्। अनिष्टितं चान्यथा तु नाहं नावगतं च तत्॥ १० आत्मस्वभावविश्रान्तेरियं वस्त्स्वभावता । यद्द्दन्तादिसर्गादिदुः खाद्यनुपलम्भता ॥ ११ क्षणाद्योजनलक्षान्तं प्राप्ते देशान्तरे चितः। चेतने यस्य तद्र्यं मार्गमध्ये निरञ्जनम्॥ १२ अस्पन्दवातसद्दशं खकोशाभासचिन्मयम्। अचेत्यं शान्तमुदितं छताविकसनोपमम्॥ १३ सर्वस्य जन्तुजातस्य तत्स्वभावं विदुर्वधाः । सर्गोपलम्भो गलति तत्रस्थस्य विवेकिनः॥ १४ सुपुप्ते स्वप्नधीर्नास्ति स्वप्ने नास्ति सुषुप्तधीः । सर्गनिर्वाणयोञ्चीन्ती सुयुप्तस्वप्नयोरिव ॥ १५ भ्रान्तिवस्तुस्त्रभावोऽसी न स्वप्नो न सुपुप्तता । न सर्गो न च निर्वाणं सत्यं शान्तमशेषतः ॥ १६ भ्रान्तिस्त्वसन्मात्रमयी प्रेक्षिता चेब लभ्यते । शुक्तिरूप्यभिवासत्यं किल संप्राप्यते कथम् ॥

असत्येष्विति । कुतो भवेत् कि सत्याद्वतासत्यात् । न तावत्स-लात् । तस्य कृटस्थलात् । न द्वितीयः । असत्यादसलस्योत्य-सेरप्यसस्वापत्तेः । एवं क्ष आस्तां सहास्यासङ्गाद्वयत्वादसह्यस्या-**धारलायोगा**दिति भावः । अतः असत्येष्येव संसारेषु सर्गस्य बन्धस्य तदपवर्गस्य च शब्दावेव यत्र वनध्यासुनोपमा तत्र दूरे तदर्थसिद्धिरित्यर्थः ॥ ९ ॥ यदा तु जगत्सत्यमिति पक्षस्त-दापि स ब्रह्माभेदेनव निर्वाह्म इत्युत्पतिस्थितितन्निरूपकादिवि-भागो निरालम्बन एवेलाह--जगदिति । अभावितं भावनया अविषयीकृतम् । आधारविशेषे अनिष्टितं च । अन्यथा ब्रह्म-तानभ्युपगमे तु ॥ १० ॥ असद्र्षोपलम्भस्वभावसुपवर्ण्य सद्रू-पोपसम्भखरूपविश्रान्तेर्वस्तुस्त्रभात्रं प्रपन्नयति-आत्मेत्यादिना । अनुपलम्भता । निर्विषयचिन्मात्रतेति यावत् ॥ ११ ॥ चितो निर्विषयताया अप्रशिद्धिमाशङ्कमानं प्रति देशोद्दशान्तरप्राप्ता-विति क्षोके दर्शितां तत्त्रसिद्धं स्मार्यति—क्षणादिति । शाखादिदेशाचन्द्रादिदेशान्तरे योजनलक्षान्तं चक्षद्वीरा प्राप्ते चेतने चाक्षपप्रस्यविक्विनेतन्ये मार्गमध्ये अयते व्याप्नोतील-यस्य वतन्त्रस्य यद्चेत्यं खकोशाभाशांचन्मयं रूपं सर्वस्य जन्तुजातस्य प्रसिद्धं तत्स्वभावं बिदुरिति व्यवहितेन संबन्धः ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ सुप्रुप्तिस्वप्रयोः परस्पर्रावषयश्चन्यतेव वा तुरीये निर्विषयता चितः संभावनीयेत्याह—सुपुप्त इति ॥१५॥ स्वप्नसुषुप्रयादिविभागोऽपि ज्ञान्ते। वस्तुस्वभावभृतः परमार्थो नास्तीत्याह—भ्रान्तीति ॥ १६ ॥ कुती नास्ति तत्राह—भ्रा-न्तिरिति ॥ १७ ॥ भ्रान्तिविषयोऽर्थो भ्रान्सा न रुव्धोऽप्यूपन लम्भान्तरेण रुभ्यतां तत्राह—खभावादिति । श्रान्तरम्य इपलम्भः प्रमातमको वाच्यः स च कस्यचिद्धान्तिगोचरार्शस्य साक्षिस्त्रभावादन्यो नास्तीत्वर्थः ॥ १८ ॥ एवंच सम्यग्विमा- यन लब्धं च तन्नास्ति तेन भान्तरसंभवः। स्वभावाद्यलम्भोन्यो नास्ति कस्य न कस्यचित् १८ स्त्रभाव एव सर्वसी स्वदंते किल सर्वदा। अनानेव हि नानेव किं वादैः संविभाव्यताम्॥ १९ अस्त्रभावे महदुःखं स्वभावे केवलं शमः। इति बुद्धा विचार्यान्तर्यदिष्टं तद्विधीयताम् ॥ २० सुक्ष्मे बीजेऽस्त्यगः स्थलो इष्टमित्यपपद्यते । शिवे मृतं जगन्मृर्तमस्तित्युत्तमसंकथा ॥ २१ रूपालोकमनस्कारबुद्ध्यहन्तादयः परे। स्वरूपभूताः सिछिले द्रवत्वमिव खात्मकाः॥ २२ मूर्ती यथा स्वसद्दीः करोत्यवयवैः क्रियाः। आत्मभूतैस्तथा भूतैश्चिदाकाशमकर्तृ सत्॥ २३ आत्मस्थादहमित्यादिरसदादेरसंस्तेः। शब्दोऽर्थभावमुक्तो यः पटहादिषु जायते॥ २४ यद्भातं प्रेक्षया नास्ति तन्नास्त्येव निरन्तरम् । जगदूपमरूपात्म ब्रह्म ब्रह्मणि संस्थितम्॥ રવ येपामस्ति जगत्स्वप्रस्तं स्वप्नपुरुषा मिथः।

वने साक्षिमाभाव एक एव स्वात्मनि त्रिपुटीकल्पनया प्रथते नान्यदस्भादणुमात्रमपीत्याह - स्त्रभाव इति । स्वदते परमप्रे-मास्पदतया प्रथते ॥ १९ ॥ तस्य स्वभावातिरिक्तकल्पनमेव संसारदःखमकल्पितस्यस्पायस्थितिरेव केवल्यसुखमिलाह-अखभावे इति । विधीयतां उपादीयताम् ॥ २० ॥ तदुपादाने क उपाय इति चेत्तदध्यसास्य विश्वस्य तन्मात्रतादर्शनमेवेत्या-शयेनोत्पत्तिप्राक्षाठादारभ्य तद्युथक्सलां दर्शयति—सुक्षे इति । अगो वृक्षः । उत्तमानां तत्त्वविदां वेदानां च संक्रथा सदुक्तिरित्थर्थः ॥ २१ ॥ एवं प्रत्यगातमन्याध्यादिमकभावना-मप्यपृथक्यत्तव स्वधमेताप्रतीतेः सर्वानुभवशिदेखाह — रूपेति ॥ २२ ॥ एवं तत्वदार्थव्यवहारः सर्गादिस्वंपदार्थव्यवहारश्र चिदात्मा पृथवसत्ताकलात्तदवयवप्रायः सर्वपदार्थः प्रवृत्त इ-लाह्-मूर्त इति।खसद्शैः खात्मप्रायैः खाष्ट्रथक्सत्ताकैरितिया-वत् ॥ २३ ॥ अर्थव्यवहार इव शब्दप्रयोगादिव्यवहारोऽप्यपृ-थक्सत्तया चिद्धिष्टितादेव देहवागादेजीयते इलाह-अात्म-स्थादिति । असंस्रतेज्ञहत्वेन स्वतो व्यवहारासमर्थादस्मदादेवै-सिष्ठरामादिवेदायोऽहामित्यादिरश्रेत्रकाशनाभित्राययुक्तः शब्दो जिह्नादिकरणव्यापारेण जायते स आत्मस्याचिदातमाधिष्ठितादेव जायते । नटीपदकमतालाभिज्ञवादकपुरुषाधिष्ठितेषु पटहादिषु यथा सद्दिश्यायानुसारिविचित्रशब्दो जायते तथेति शेषः ॥ २४ ॥ एवं सर्वजगद्यवहारस्य निद्मेदनिर्वाह्यत्वे आस्य-न्तिक एवामेदोस्तु किमर्धजस्तीयेनाविचारमात्र**सिद्धजाङ्यांशमे**-दोषगमेनेत्याशयेनाह—यदिति । आपाततो भातम् । प्रेक्षया विचारजन्यतत्त्वज्ञानेन । अतो जाख्यमेदांशरूपं जगद्रपमरू-पारम निःखह्रपभेव । एवंच ब्रह्म ब्रह्मणि खख्मावे संस्थि-तम् । सेवास्य खरूपावस्थितिरिति भावः ॥ २५ ॥ नन्वसंसा-

न सन्ति ह्यात्मनि मिथो नास्मास्यम्बरपुष्पवत् २६ मयि ब्रह्मैकरूपं ते शान्तमाकाशकोशयत्। वायोः स्पन्दैरिवाभिष्ठवर्यवहारेश्च तन्मयि॥ २७ अहं तु सन्मयस्तेषां स्वप्नः स्वप्नवतामिव। ते तु नूनमसन्तो मे सुबुप्तस्वप्रका इव ॥ २८ तैस्त यो व्यवहारों में तहहा ब्रद्मणि स्थितम्। ते यत्पदयन्ति पदयन्तु तत्तरलमलं मम॥ २९ अहमात्मनि नैषासि ब्रह्मसत्त्रयमातता । त्यदर्थं समुद्रेतीय तथारूपैय वागियम्॥ ३० अविरुद्धविरुद्धरा शुद्धसंविन्मयात्मनः। न भोगेच्छा न मोक्षेच्छा दृदि स्फुरति तद्विदः 39 स्वभावमात्रायत्तेऽस्मिन्बन्धमोक्षकमे नृणाम्। कव्यनित्वहो मोहाद्वोष्पदेऽप्युद्धिभ्रमः॥ 32 स्वभावसाधने मोक्षेऽभावोपरामरूपिणि।

न धनान्युपकुर्धन्ति न मित्राणि न च क्रियाः ॥ ३३ तैल्लिन्दुर्भवत्युचैश्वक्रमप्पतितो यथा । तथाशु खेत्यसंकल्पे स्थिता भवति चिक्रगत् ३४ जान्रति स्वप्रवृत्तान्तस्थितिर्याद्यसा स्मृतौ । ताद्यसाहंत्यजगज्जालसंस्था विवेकिनः ॥ ३५ तेनवाभ्यासयोगेन याति तत्तनुतां तथा । यथा नाहं न संसारः शान्तमेवावशिष्यते ॥ ३६ यदा यदा स्वभावार्कः स्थितिमेति तदातदा । भोगान्धकारो गलति न सन्नप्यनुभूयते ॥ ३७

मोहमहत्तारहितः

स्फुरित मृतौ भवति भासते च तथा। बुद्धादिकरणनिकरो

यसाद्दीपादिवालोकः॥ ३८

इत्यार्षे श्रीवा • वाल्मीकीये मो • नि • उत्तरार्थे वसिष्ठगीतासुखभावविश्रान्तियोगोपदेशो नाम एकोनचलारिशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंजाः स्गीः ४०

वसिष्ठ उवाच । रूपालोकमनस्कारबुद्धादीन्द्रियवेदनम् । स्यरूपं विदुरम्लानमस्त्रभावस्य घस्तुनः ॥ १

रिष्ठहाबद्धा स्वभावे तिष्ठत नाम तेन संसारिणां को लाभ इत्या-शक्का तेषां पुरुषार्थविन्ता वन्ध्यायाः खपुत्रराज्यादिलाभचि-न्तावह्यैवेत्याशयेनाह—येषामिति । मियः अन्योन्यं भ्रान्ति-श्रुवापि जागरे खप्रान्तरे च तत्तदात्मनि न सन्ति, मिथः परमैकान्ततमत्रद्वाभूतेष्वस्मासु खपुष्पवष्मतरां सन्तीखर्थः । एवार्षे हिशन्दः ॥२६॥ अस्मानु जडांशे एव ते तथावहाराश्व खपुष्पवत्, सचिदंशे तु मधि वर्धकरूपलात्संत्येवेखाह--म-यीति । ते पुरुषाः वायुस्पन्दवत्स्वामिन्नैस्तैस्तैः खव्यवद्दारैः सह मयि सन्त्येव। यतस्तदुभयं शान्तं सद्रह्मात्मैकरूपं तन्न ब्रह्म मथि प्रवागतमस्त्रभावेऽस्तीत्यर्थः ॥ २७ ॥ अपरं विशेषमाह--अ-इंलिति । अप्रवृद्धदृष्ट्या जगत इय वांसप्रदेहस्यापि सत्यत्वा-दिति भावः । ते लिति । प्रबुद्धदृष्ट्याः जगता सह तद्देहादीनां बाधादिति भावः ॥ २८ ॥ अनुप्रहोपदेशादिव्यवहारसैस्सदृष्टि-सिद्धसत्यभावेर्मध्यवहारैमेम । अल्मलामिति वीप्सा आत्यन्तिक-निष्प्रयोजनताद्योतनाय ॥ २९ ॥ अहं आत्मान वरिष्ठ-देहभावेनैवास्मि । इयं वसिष्ठायाकारा खदर्थं बहाससेव समुदेतीं । इयं वागपि तथारूपा लद्धं ब्रह्मसत्ताविवर्तस्पैव मम दृष्ट्या तु नास्त्येवेत्यर्थः ॥ ३० ॥ सर्ववस्तूनामानन्दैकर-सात्मताद्रश्नेनादिवददं विरुद्धं दुःखादिकमपि यस्य तथावि-धस्य तस्विबदः ॥ ३१ ॥ भोद्दाद्विस्द्वनिर्तिदायानन्दात्मा परिज्ञानादिति प्रसिद्धा इथं संसारकदर्थना मोक्षोपायकमाभ्या-सकदर्यना च ॥ ३२ ॥ अभावस्थासत एव दुःसम्भोपशमरू-

अस्वभावतनुत्वेन स्वभावस्थितिरातता । यदोदेति तदा सगां भ्रमाभः प्रतिभासते ॥

पिणि ॥ ३३ ॥ अप्सु पतितः अप्पतितसंखिनदृयंथा नाना-वर्णं नकं भवति ॥ ३४ ॥ ज्ञानवाधितं तु जगत्स्वप्रवरस्मृतिसान्नयोग्यतामापद्यत इलाइ—जाम्नर्ताति । स्मृतां प्रतिभासमाना याद्यसा याद्यिवधा ॥ ३५ ॥ तेन प्रागुक्तेनेव भूमिकाभ्यासयोगेन । तज्जगजालम् । तनुतामपक्षयम् ॥ ३६ ॥
प्रस्वप्रवणदृष्ट्या परीक्षणे इदानामि तद्यक्षयो बाधधानुभवितुं शक्य इत्याययेनाइ—यदायदेति । गलति अपक्षीयते
आत्यान्तकवाधेन । न सन् कालप्रयेऽपि नास्तीत्यप्यनुभूयते
॥ ३० ॥ एवं भोगान्धकारस्य मृतौ विनाशे सति बुद्धादिकरणनिकरो मोहेनात्मावरणेनाज्ञानेन महत्त्या स्थूलदेहायभ्यासेन च रहितो भवति । तथा प्रद्याकारप्रसित बोधेन स्पुत्रति । यस्मात्पुरणादीपात्मस्त आलोक इय सर्वतो न्याप्य वन्
द्याभूनो भःसते चेत्यर्थः ॥ ३८ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे एकोनचत्वारिशः
सर्गः ॥ ३९ ॥

न संस्तीं ब्रह्म भाति न ब्रह्मणि च संस्तिः । जीवन्सुक्ती द्वयं भाति पर्यायेणेति वर्ण्यते ॥ १ ॥

तत्रादी निःस्त्रभावस्य बाह्याभ्यन्तरवस्तुनस्तन्साक्षिनेतन्य-मेव वास्तवं स्वरूपमिति विद्वदनुभव इत्याह—स्पेति । अ-म्लानं निर्विकारकलक्षम् ॥ १ ॥ तत्र तद्वोधान्वयव्यतिरेका-नुविधानलक्षणां युक्तिमाह—अस्त्रभावति द्वाभ्याम् । यदा आनता अपरिन्छिता वास्तवस्यभावरिधतिः अस्यभावस्तिरो-

योग० १४५

यदा स्वभावविश्रान्तिः स्थितिमेति शमातिमका।
जगद्दृश्यं तदा स्वप्तः सुषुप्त इव शाम्यति॥ ३
भोगा भवमहारोगा वन्धवो दृढवन्धनम्।
अनर्थायार्थसंपत्तिरात्मनात्मनि शाम्यताम्॥ ४
अस्वभावात्मता सगः स्वभावेकात्मता शिवः।
भ्यतां परमव्योम्ना शाम्यतां मेह ताम्यताम्॥ ५
नात्मानमवगच्छामि न दृश्यं च जगद्धमम्।
ब्रह्म शान्तं प्रविष्टोऽस्मि ब्रह्मवास्मि निरामयः॥ ६
त्वमेय पृश्यसि त्वन्त्वं सत्वं शब्दार्थजुम्भितम्।
पृश्यामि शान्तमेवाहं केवलं परमं नभः॥ ७
ब्रह्मण्येव पराकाशे रूपालोकमनोमयाः।
विभ्रमास्तव संजातकरुपाः स्पन्दा इवानिले॥ ८

ब्रह्मात्मा वेति नो सर्ग सर्गात्मा ब्रह्म वेति नो।
सुषुप्तो वेति नो स्वप्तं स्वप्तस्थो न सुषुप्तकम् ॥ ९
प्रबुद्धो ब्रह्मजगतोर्जाग्रस्वप्तदशोरिव।
रूपं जानाति भारूपं जीवन्मुक्तः प्रशान्तधीः ॥ १०
यथाभूतिमदं सर्व परिजानाति बोधवान्।
संशाम्यति च शुद्धात्मा शरदीव पयोधरः ॥ ११
स्मृतिस्थः कल्पनस्थो वा यथाख्यातश्च संगरः।
सदसद्धान्ततामात्रस्तथाहन्त्वजगद्धमः ॥ १२
आत्मन्यपि नास्ति हि या
द्रष्टा यस्या न विद्यते कश्चित्।
न च शून्यं नाशून्यं
भ्रान्तिरयं भासते सेति॥ १३

इत्यार्थे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा॰ मो॰ निर्वाणप्रकरणे उ॰ वसिष्टगीतासु आत्मविश्रान्तिकथनं नाम चलारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंदाः सर्गः ४१

विसष्ठ उवाच । अस्वभावस्वभावोऽयं सर्वोहन्तादिवेदनः । स्वभावेकस्वभावेन निर्वाणीक्रियतां स्वयम् ॥ यत्रादित्यो भवेत्तत्र यथास्त्रोकस्तथा भवेत् । परं विषयवैरस्यं तत्र यत्र प्रबुद्धधीः ॥ अकर्तृकर्मकरणमदृदयदृष्टृदर्शनम् ।

भात्री अविद्या तत्तनुत्वेन तत्कृतपरिच्छेदेन तच्छरीरतया च उदेति तदेत्यन्वयोक्तिः ॥ २ ॥ व्यतिरेकमाह--यदेति । खबोधेनेति शेषः। बीजशेषवैषम्येष्यदैतात्ममात्रस्थित्यंशे सुपु-प्तदृष्टान्तः ॥ ३ ॥ अतुएव खरूपविश्रान्तिविरोधिनो भोगाः दयोऽनर्था एवेत्याह—भोगा इति ॥ ४ ॥ एवंच खायत्तानां खभावस्थितौ नानर्थे पातो युक्त इत्याह-भूयतामिति । इह रांसारे । मा ताम्यतां ग्लायताम् ॥ ५ ॥ खायत्ततामेव खा-नुभवाभिनयेन दशयति-नेति । आत्मानं द्रष्ट्रादित्रिपुट्या-मार्च विसप्रजीवम् ॥६॥ हे राम, विसप्रस्लामिति त्वंशब्दार्थ-बृंहितं लन्लमपि स तादशस्त्वभेव पश्यसि, अहं तु शान्तमेव पश्यामि ॥ ७ ॥ तवापि एते शब्दार्थादिरूपालोकमनोमया त्रिश्रमा न परमार्थतो जाताः किंतु संजातकल्पाः ॥ ८॥ मम द्वैतादर्शनं न द्वेतप्रदेषात् किंतु द्वेताद्वेतयोर्थुगपदर्शना-संभवादित्याह—ब्रह्मात्मेति ॥ ५ ॥ अत्यन्तादर्शने कथं तदु-पदेशप्रसिद्धिस्तत्राह--प्रवुद्ध इति । जीवन्मुक्तस्तु पर्यायेणो-भयं पदयतीत्युपदेष्टा भवतीत्याशयः ॥ १० ॥ सोऽप्युत्तरोत्तर-भूमिकासु करोण द्वैतादर्शनात्प्रशाम्यतीत्याह—यथाभूतमिति ॥ ११ ॥ तदृष्ट्या द्वैतस्योत्तरोत्तरं पेरुवतां दशान्ताभ्यामाइ---स्मृतिस्थ इति । संगरी युद्धम् ॥ १२ ॥ या परिदृश्यमाना

१ शब्दाधंबृद्धितं दति पाठः साधुन्यास्यानुगुण्यातः

जगदप्राद्यसंभारमित्तौ चित्तमुित्थतम् ॥ ३ नचोित्थितं किंच न चा शान्ते शान्तं यथास्थितम्। अनामयं परं ब्रह्म सत्यमव्ययमेव तत्॥ ४ चिष्मम्कारमात्रात्मकल्पनारङ्गरञ्जनाः। संख्यातुं केन शकान्ते खे जगिष्यत्रपुत्रिकाः॥ ५ रसभाविकाराक्वं नृत्यन्त्यमिनयैनवैः।

जगन्माया परमार्थसत्ये आत्मिन अपिशब्दादत्यन्तासित शून्ये च नास्ति । यस्याः कश्चिष्ट्रष्टा जीवोऽपि न विद्यते । इति शून्या-श्रत्यविरुक्षणेयं आन्तिरनिर्वचनीयेव भासते इत्यर्थः ॥ १३ ॥ इति श्रीवासिष्टमंहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चरवारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

> त्रिजगरपुत्रिकानृत्यमस्वभावस्वभावतः । स्वभावेकस्वभावेन निर्वाणं चात्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

अखभावोऽविद्या तत्स्वभावोऽयमात्मा सर्वजगद्भणः सन्नहन्तादिवस्यमाणित्रजगत्पुत्रिकानृत्यं वेत्तीत्सहंकारादिवेदनः संपन्नः। एवमनिर्वाणोऽयमात्मा स्वयं शास्त्रीनोपायप्रभवविद्याविभूतेनाद्वितीयस्वप्रकाशपूर्णानन्दछक्षणस्वभावेकस्वभावेन स्वेनैव
निर्वाणीकियताम् ॥ १ ॥ साच विद्या विद्वत्समागमविवेदजन्याद्वैराग्यादेव सिष्यतीत्याश्येनाह— यत्रेति ॥ २ ॥
तत्र वराग्यार्थमविद्यास्वभावाच्छुदे जगिवत्राध्यासं वर्णयति—
अकत्रिति ॥ ३ ॥ विद्यास्वभावेन तदपोद्य निर्वाणस्कर्षं दर्शयति— नचति ॥ ४ ॥ तत्राद्यमस्वभावस्वभावं त्रिजगवृत्यदनन्तपुत्रिकात्वेन वर्णयति— विषमत्कारेत्यादिना । विषमत्कारमात्रात्मानो ये जीवास्त्रभां कत्पनामात्रात्मके रक्षे नृत्यमण्डपे श्वारादिनानारसरअना यासाम् । जगिबत्रपुत्रिकाः से
नृत्यन्तीति परेणान्वयः ॥५॥ रसैः श्वारादिमिर्मावैः स्थाविमा-

परमाणुप्रति प्रायः खे स्फुरन्त्यम्बरात्मिकाः॥ ६ सर्वेर्तुरोखरधरा दिग्बाद्युलतिकाकुलाः। पाताळपादलतिका ब्रह्मलोकशिरोधराः॥ चन्द्रार्कलोलनयनास्तारोत्करतनूरुहाः । सप्तलोकाङ्गलतिकाः परितोच्छाम्बराम्बराः॥ 4 द्वीपाम्बुराशिवलया लोकालोकाद्विमेखलाः । भृतभारचळजीवप्रवहत्प्राणमारुताः ॥ 9 वनोपवनविन्यासहारकेयुरभूषिताः । पुराणवेदवचनाः क्रियाफलविनोदनाः॥ 80 त्रिजगत्युत्रिकानृत्यं यदिवं इदयते पुरः। ब्रह्मवारिव्रवत्यं तत्तद्रह्मानिलवेपनम्॥ ११ अस्वभाषस्थितैवास्य कारणं कारणात्मकम्। असुबुप्तस्थिता स्वापे स्वप्नस्थेव सतीय सा ॥ १२ असुषुप्तसुषुप्तस्थः स्वभावं भावयन्भव । जाम्रत्यपि गतव्यम्रो मा स्वप्नमिद्माश्रय॥ १३ यजाप्रति सुषुप्तत्वं बोधादरसवासनम्। तं स्वभावं विदुस्तज्का मुक्तिस्तत्परिणामिता॥ १४ अकर्तृकर्मकरणमदृश्यद्रष्ट्रदर्शनम्। अरूपालोकमननं स्थितं ब्रह्म जगत्तया ॥ १५ इलार्षे श्रीना । नाल्मीकीये दे । मो । निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे खहूपविश्रान्त्यर्थमुपदेशकरणं नाम एकचलारिशः सर्गः ॥ ४९ ॥

कान्ते कान्तं प्रकचित पूर्णे पूर्णे व्यवस्थितम्। ब्रित्वैक्यरहिते भाति ब्रित्वैक्यपरिवर्जितम्॥ सत्यं सत्ये स्थितं शान्तं सर्गात्मन्यात्मनि स्वयम् । आकाशकोशसदशं शिलाजठरसंनिभम् ॥ 20 सुरत्नजठराकारं घनमप्यम्बरोपमम्। प्रतिबिम्बमिव शुब्धमप्यशुब्धमसम् सत्॥ १८ भविष्यन्नवनिर्माणं चेतसीव स्थितं पुरम्। १० ब्रह्म बृंहितभारूपममेदीकृतमानसम्॥ यथा संकल्पनगरं संकल्पान्नेव भिद्यते। तथायं जगदाभासः परमार्थात्र भिद्यते ॥ २० हेमपीठमिवानेकभविष्यत्संनिवेशवत्। लक्ष्यमाणमपि स्फारं शान्तमव्ययमास्थितम् ॥२१ अजस्त्रनाशोत्पादा ढ्यमेकरूपमनामयम् । अनाद्योत्पादमजरमनेकमिव कान्तिमत्॥ २२ ब्रह्मेच शान्तिघनभावगतं विभाति सर्गोदयेन विगतास्तमयोदयेन। ब्योमेव शुन्यविभवेन गलत्स्वभाव-लाभं प्रति प्रसममेव ननु प्रयुद्धे ॥ 53

द्विचत्वारिंदाः सर्गः ४२

वसिष्ठ उवाच। चित्तवत्कचनं शान्ते यत्तत्तसान्न भिद्यते।

बॅविंकारैः कम्पस्वेदादिसंचारिभावैः आद्यं यथा स्यात्तया । अभिन्यैस्तत्तद्वस्त्वाकारव्यक्षकचेष्टाभिः । परमाणुप्रति परमाणु-मात्राखपि विद्यमाने खे चिदाकाशे। प्राय इति संभावित खद्योत-नार्थः ॥६॥ ब्रह्मलोकः शिरोधरा कन्धरा यासा ब्रह्मलोकरूपाणां, शिरसां धरा धारयित्र्य इति वा ॥ ७ ॥ नारीत्करास्तन्रहाणि लोमानि यासाम् । परितो दिश्च अच्छं खच्छमम्बरमाकाशमे-वाम्बरं वस्नं यासाम् ॥८॥ भूतानां भौतिकशरीरादीनां भारेण धारणेन पोषणेन च निमित्तेन चलन्तो जीवा एव प्रवहन्तः प्राणमाहता यासाम् ॥ ९ ॥ पुराणानि वेदाश्च वचनं यासाम्। तत्तिक्रयाफलसुखदुःखानि विनोदनानि विलासा यासाम् । एवंविधा जगत्पुत्रिका मृत्यन्तीति पूर्वत्रान्वयः ॥१०॥ ११ ॥ अस्य च मृत्यस्य अस्वभावस्थितेव चित् कारणम्।यतस्तादशमेव कारणात्मकं श्रुतिषु प्रसिद्धम् । यथा खापे निद्रायामसुषुप्तं स्थिता सा सामस्य कारणं तद्वदित्यर्थः ॥ १२ ॥ एवमस्यभावस्यभाव-मुपदर्ण्यदानी स्वभाविक्यस्वभावेन निर्वाणीकरणे उपायमाह-असुपुरोति । हे राम, त्वं पारमार्थिकस्त्रभावं भावयन् जाप्रत्य-प्यज्ञाननाशादसुषुप्तं सर्वद्वतोषसंहारात्सुषुप्तं च तुर्वं पदं तत्स्थो भव ॥ १३ ॥ रसो रागो वासना च तच्छून्यम् । तत्परिणा-मिता तत्खरूपेण परिनिष्ठितत्वम् ॥ १४ ॥ तस्यां परिनि-।

अव्यक्तिमलतया काऽतः सर्गादिसंभवः॥

ष्टायां व्यवहारकालेऽपि चिदेकरसं जगद्भातीलाह-अकर्त्रि-स्यादिना ॥ १५ ॥ द्वित्वैक्यरहिते शोधिते प्रतीचि दूर्वैक्यप-रिवर्जिनं शोधितं ब्रह्म अखर्ण्डकरस्येन भाति ॥ १६ ॥ सर्गा-त्मनि स्थितं सत्यं सत्ये आत्मनि शान्तं स्वयमेव स्थितम् ॥ १७ ॥ शिलाजठरवद्यकाशस्त्रभावतान्त्रान्ति वारयति---सुरक्षेति । अतएव जगत्प्रतिबिम्बं प्राप्य क्षुट्यमिव स्थितमप्य-क्षुच्धम् ॥ १८ ॥ अमेदीकृतमेकरसीकृतं गानसं यत्र ॥१९॥ ॥ २० ॥ हेमपीठं पीठवचतुरस्रो हेमपिण्डः । स्फारं नाना-विस्तारं लक्ष्यमाणमपि ॥ २१ ॥ कान्तिमत् भग्खरम् ॥२२॥ ननु हे राम, प्रबुद्धे सति शान्तिघनभावगतं ब्रह्मैव प्रसभमद्वे-तस्वभाववलादेव विगतास्तमयोदयेन ्रार्गलक्षणेन उद्येन खाराज्यविभवेन भाति । यथा व्योमगलत्खभावलाभं वाधि-तस्बरूपलाभं केशोण्ड्कगन्धर्यनगरतलम्लिनतादिकं प्रति प्र-समं बलादेव स्फूर्तिनिरासी भयप्रदेन स्वीयश्र्स्यविभवेन विभाति तद्वदित्यर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायण-तारपर्यप्रकाहा निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एक बस्वारिशः सर्गः ४ १

भूयः प्रपद्भयते चात्र विश्वविश्ववेरेकता । विवेकैः पूजनीयश्च स्वात्मैव परमेश्वरः ॥ १ ॥ प्रायुक्तां जगतो ब्रह्ममाश्रतामनुभावियतुं जगद्भेदकचनहे- चिसदीपं गते यान्ति भ्रान्तिवज्ञान्तिसे स्थिते। रूपालोकमनस्कारसंविदोऽम्बुद्ववोर्मयः॥ 2 निरस्तकरणापेक्षं मरुतः स्पन्दनं यथा। यथा विसरणं भासस्तथा जगदिदं परे॥ द्ववत्यमिव कीलाले शुन्यत्यमिव चाम्बरे। स्पन्दत्वं मरुतीयेदं किमप्यात्ममयं परे ॥ महाचिति महाकाशे यदिवं भासते जगत्। तिश्वत्यमेव कचति निर्मलत्वं मणाधिय॥ यथा द्ववत्वं पयसि यथा शुन्यत्वमम्बरे । यथा प्रस्पदनं वायौ महाचिति तथा जगत्॥ É वेति वायुर्यथा स्पन्दं तथा वेत्ति जगश्चिति । न द्वेतैक्यादिभेदानां मनागप्यत्र संभवः॥ હ अविवेकविवेकाभ्यां भासुरं भङ्गरं जगत्। वोधे सदैव सदूपमभासुरमभङ्गरम्॥ 4 अधिमात्राहते ग्रद्धादादिमध्यान्तवर्जितात् । नान्यदस्तीह निर्णीतं महाचिन्मात्ररूपिणः॥ ९ तत्कस्पचिष्ठियं शान्तं कस्यचिद्वह्य शाश्वतम् । कस्यचिच्छ्रन्यतामात्रं कस्यचिज्ज्ञतिमात्रकम् ॥ १०

तोश्चित्तस्य चिद्भेदं निरस्यति—चित्तवदिति । शान्ते कृटस्था-त्मनि प्रथमं यत् चित्तवत्कचनं तत्तस्मात्कचनरूपाधिदात्मनो न मिराते । कुतः । अव्याकृतलादमळलाच । तथाहि । नाम-रूपभेदाद्भि छोके भेदः प्रसिद्धः । सच नामरूपव्याकरणात्पू-र्वभूतजीवभावानुप्रवेशोपाधी चित्ते न संभवति । तस्याव्या-कृतलात् । सुक्ष्मतेजोवन्नात्मकलिङ्गसृष्ट्यनन्तरं हि 'सेयं देवतै-क्षत हुन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य ना-मरूपे व्याकरवाणि' इति तद्याकरणं श्रयते । तथा अमललाश्र चितो न मियते । चिदप्यमला चित्तमपि । नच तादशयोः प्रभाकाशयोरिव भेदः केनचिष्ठक्षयितं शक्यते । चित्तस्य चि-ब्रेदनिरासादेव तदधीनो जगद्भेदः मुतरां निरस्त इत्याह---कात इति ॥ १ ॥ इदमेव स्फटमाह्—चित्तदीपे इति । क्षिते कूटस्थे खे प्रस्पगत्माकाको स्लालोकमनस्कारसंविष्ठक्षणा अ-म्बुद्रवोर्ययो सृगतृष्णाश्रान्तियद्भान्ति । तेच चित्तलक्षणे दीप-यतीति दीपः सूर्यसास्मन्नस्तं गते थान्ति अपगच्छन्तीत्मर्थः॥२॥ सत्तायां विदतिरिक्तकारणनिरपेक्षलादपि जगबिदेवेति इष्टा-न्तैरुपपादयति--निरस्तेत्वादिना । निरस्ता करणापेद्धा येन । भासः प्रभाया विसर्ण प्रसारः ॥ ३ ॥ कीलाले जले । आ-रममयमारमविवर्तः । किमप्यनिर्वचनीयम् ॥ ४ ॥ प्रतीचि चित्तादीनामवस्थाद्वये अचनमिव ब्रह्मणि मायाधीनं वियदा-दिकचनमपि तदभिन्नमेवेलाशयेन तैरेव दृष्टान्तैरुपपादयति---महाचितीत्वादिना ॥ ५ ॥ ६ ॥ स्फूर्ताविष चिद्तिरिक्तनिर-पेक्षलाबिदभेद इत्याशयेनाह—चेत्तीति । द्वेतं चैक्यं च संख्येयभेदाथ राषाम् ॥ ७ ॥ अविवेकन मासुरं विवेकेन भ-

तदनन्तातम चिद्रपं चेत्यतामिष भाषयत्। स्वसंस्थमेव शेयत्वमश्रत्यमिष गच्छति॥ ११ चित्तया नास्ति सत्ता च चित्तता नास्ति तां विना। विनाविना यथा वायोर्यथा स्पन्देख कारणम् तथा महाचितीच्छायाः सर्गसंवित्तिवृत्तिषु । नित्यं सत्वमसत्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्॥ इत्यत्रार्थी भविष्यत्सद्भित्यैकत्वास्तिताबद्यात् । कोऽत्र कल्पयिता द्वित्वमेकत्वं वा महाम्बरे ॥ १४ विष्वन्विश्वमपारैकपरमाकाशकोशता । यथा स्पन्दानिलद्वित्वं शाब्दमेष न वास्तवम् १५ विश्वविश्वेश्वरिहत्वं तथैवासम्मयात्मकम्। सदेवासंभवद्भित्वं महाचिन्मात्रकं च यत्॥ १६ विश्वामासं तदेवेदं न विश्वं सम्न विश्वता। देशकालादिमस्वेन कदाचिद्रेम्नि सत्यता॥ १७ कटकत्वस्य भिन्नस्य विश्वस्य च तथा परे । ब्रित्वैक्यासंभवे चात्र कार्यकारणता कुतः॥ १८ स्याश्चेत्तत्करूपनामात्रमेवैतन्नान्यवस्तृता । शुन्यता नभसीवात्र द्रवत्वभिव चाम्भसि॥ १९

हुरम् । परमार्थवोघे तु ब्रह्ममात्रलादुभयशून्यम् ॥ ८॥ बो-घेन यन्निर्णीतं तदाइ--क्षप्तीति ॥ ९ ॥ तत्रैव वेदानुसारि-णामवेदानुसारिणां च विचारयतां वादिनां यथार्थायथार्थरूपैः कल्पनामेदाः प्रवृत्ता इत्याह-तिदिति ॥ १० ॥ तत्रैवानादा-विद्यादिहरूयाकारताध्यास इत्याह—तदिति ॥ ११ ॥ तत्र चि-त्त्वकादेवाध्यस्तस्फूर्तेश्चित्तया विना ज्ञेयस्य सत्ता नास्ति तां सत्तां विना च तस्य चित्तता चित्तस्य नास्ति । यथा विनाश-न्यात्मना कृटस्थेनाकाशेन विना वायोः कारणं नास्ति । वायं च विना स्पन्देष कारणं नास्ति तद्वदित्यर्थः॥१२॥तथा नित्यब्रह्म-सत्ताधीनसत्ताकास संर्गञ्जान्तिष्वधिष्ठानमपेक्ष्य निरयं सत्वं खरू-पतस्त निलमसर्वं चेति द्वेघापि शास्त्रं 'सदेव सोम्येदं नेहनाना' इति च व्यपदेश इत्यर्थः । अन्यस्य हेतोरनपेक्षणात् अ**समर्थ**-समासङ्खान्दसः ॥ १३ ॥ चिज्जडद्विलस्य तत्कारणैकलस्य च अस्तिता खतः सत्ता तद्वशादि अत्र सर्गसंवित्तिषु इति प्रसिद्धी-र्थोऽभविष्यत् । कूटस्थाद्वये निदम्बरे द्विलमेक्तवं वा कः कल्प-विता सत्तास्फ्रातिभ्यां समर्थियता । जडेषु न कश्चित्तादशोऽस्ती-त्यर्थः ॥ १४ ॥ एवंच आकाशद्विलाप्रसिद्धिवत्स्पन्दानिलमे-दाप्रसिद्धिवन विश्वविश्वेश्वरिद्धितस्याप्रसिद्धिरेव फलितेत्याह-पिष्वगित्यादिना ॥ १५ ॥ १६ ॥ अथवा ब्रह्मदृष्ट्या अनृत-स्यापि विश्वस्य खन्यूनदेशकालस्वकार्यापेक्षयाऽधिकदेशकाल-व्याह्या सत्यतामाशह्य परिहरति—-देशकालेति ॥ १७ ॥ कार्यकारणभेदे सिद्धे तथा स्यात्स एवासिद्ध इत्याह-दिश्वै-वयेति ॥ १८ ॥ काल्पनिकः कार्यकारणभेदोऽश्लीकयत इति

१ सर्गनान्तिभाति मृष्टससर्गत्यादेरथः.

से सलेसाप्यभिन्नेच किलास्ति जगदादिता। यदूपं ब्रह्म तदूपं जगत्कात्र द्वितैकते ॥ 20 यद्र्पं स्योम तद्र्पमेषं शून्यं किलाखिलम्। पकात्मनि तते स्वच्छे चिन्मात्रे सर्वरूपिणि ॥ २१ शिलापुत्रकसेनायां पाषाणत्व इवास्थिते। कार्यकारणवैचित्र्यं कथं संभवति क वा॥ २२ कथमव्योमता व्योम्नि द्वितीयासंभवाद्भवेत्। प्रतिभात्मेब भारूपो भाति सर्गो महाचिति ॥ २३ पुत्रिकेवोपलोत्कीर्णा तन्मयत्वास्तदात्मिका । साधो यथास्थितस्यैवं बुद्धौ विश्वं प्रलीयते ॥ २४ काष्ट्रमौनदशाभासं संसारमवशिष्यते। यथा निमीछिताझस रूपालोकमनोभ्रमः॥ સંપ स्वप्ने जाम्रत्यनम्रस्थोऽप्यसन्नेवास्तिभावनात् । तथैषोन्मीलिताक्षस्य रूपालोकमनोभ्रमः॥ २६ स्वप्ने जाप्रत्यनप्रस्थोऽप्यसन्नेवास्तिभावनात् । भावनोपदामं कृत्या शिलीभूय यथास्थितम् ॥ २७ अशिलीभूतमेवान्तः स्वभावं सममास्यताम् । आविवेकोपहारेण यथाप्राप्तार्थपृजनैः॥ 36 वोधाय पूज्यतां बुद्ध्या स्वभावः परमेश्वरः । विवेकपृजितः स्वात्मा सद्यः स्फारवरप्रदः॥ **२९**, रुद्रोपेन्द्रादिपुजात्र जरन्मलवायते ।

चेत्र काल्पनिकेन तेन सत्यतानिर्वाह इत्याह—साचेदिति ॥ १९ ॥ अखरताभेदेऽपि खलेखेति खे भेदकलपना द्रष्टेति जगदिप तद्वस्यादिखाह—खे इति ॥ २० ॥ खस्य छेखेति खाद्भिमीन कृत्पितं लेखापदवाच्यं भ्योग यद्यं तद्रुपं वद्मणो जगदिल्यर्थः । एवं स्थिते ब्रह्मण्यपि जगत्कारणता गतेलाह---एकात्मनीत्यादिना ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ यथास्थितस्य वः-स्तवसैव तत्त्वं बुद्धाः ॥ २४ ॥ काष्टमीनं वाह्यमानससर्वचेष्टा-श्रून्यत्वं तादशया दशया आभासं स्फुरत् ब्रह्म संसारमवधूय शिष्यते । भावनालक्षणमनःसम्दमात्रज्ञन्यः सर्वः संसार-**श्रमो भावनात्यागास्पन्दावस्थितिमात्रेण** विध्ययते इत्याह -- **यथे**लादिना ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ विदेकरसत्वेन शिला-**वैरुक्षण्यादृन्तः अशिलीभूतं खभावमवरुम्ब्य आस्यताम् । ता**-दशस्थित्वनुकुलविवेकवैराग्यादिसायनाभ्यास एव परमेश्वरस्या-**त्मनः सर्वो**त्कृष्टा पूजेत्याह्—आविवेकेति । आसमन्तात्सर्वतो यो विवेकस्तलक्षणनोपहारेणोपचारेण ॥ २८ ॥ स्फारं निरति-**शयानन्दलक्षणं वरं** प्रददातीति स्फारवदप्रदः ॥ २९ ॥३० ॥ ॥ ३९ ॥ अन्यमनात्मभूतं तटस्थमीश्वरम् । 'अथ योऽन्यां दे-बतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मिति न स वेद यथा पशुरेव स देवान।म्' इति श्रुतेरिति भावः । ननु तटस्थेश्वरः पूजनेन प्रसन्न एनं शाखाहिविषवहित्रभृतिभ्य उपघातकेम्यः सर्वती रिक्षण्यति कृटस्थात्मा कि करिष्यति तत्राह—सत्सक्षेति। शा- विचारशमसत्सङ्गबलिपुँग्पैकपूजितः॥ 30 सद्यो मोक्षफलः साधो स्वात्मेव परमेश्वरः । सत्यालोकनमात्रैकपूजितोऽनुत्तमार्थदः॥ 38 यत्रास्त्यात्मेश्वरस्तत्र मुढः कोऽन्यं समाभ्रयेत्। सत्सङ्गरामसंतोषविवेकापूजितात्मनः ॥ ३२ शिरीषकुसुमायन्ते शस्त्राहिविपवह्नयः। देवार्चनतपस्तीर्थदानान्यतिकतान्यपि॥ ३३ भस्मायन्ते निरर्थत्वाद्विवेकामहात्मनाम्। एतान्यपि विवेकेन फियन्ते सफलानि चेत्॥ 38 विवेक एव तत्कस्मात्स्फुटमन्तर्न साध्यते। यथाभूतार्थविज्ञानाद्वासनोपरमे परे॥ 34 यक्तो विवेकशब्दाक्यो भवत्यात्मप्रसादतः। तथातथा त्रिवेकोऽन्तर्वृद्धि नेयः शमामृतैः॥ ३६ यथायथा पुनः शोषमुपयाति न विभ्रमैः। देहसत्तामनादृत्य यथा भूतार्थदर्शनात्॥ ३७ ळजां भयं विपादेप्यें सुखं दुःखं जयेत्समम्। जगदादिशरीरादि नास्त्येचादौ कुतोऽच तत् काये चेत्कारणस्येतत्तथापि ब्रह्ममात्रकम्। प्रतिभामात्रमेवाच्छं नतु क्षप्तेर्घटादि सत्॥ 36′ श्वानात्मिकेव प्रतिभा इप्तिरेवाखिलं जगत्। श्रप्तिरप्यात्मतत्त्वश्रीः परिश्वातोपशास्यति ॥ 30

समन्तात्पृजित आत्मा येन तस्य ॥ ३२ ॥ किंचाऽविवेकिमिः कृतेषु देवतार्चनादिष्वपराधावस्यंभावेन नै**ण्कस्या**नर्धयो**रवस्यं**-भावात्तत्रापि देशकालद्रव्यपात्रकर्त्रादिविशुद्धिविवेदः श्रद्धाभ-क्तिशान्तिदान्खादयो यद्यावस्यकासार्वाक्रेशे महाफले आत्मद-र्शने एव ते कुतो नोपयोज्यन्ते इत्याह—देवार्चनेत्वादिना ॥ ३३ ॥ देशकालपात्राद्यविवकेन । अमहात्मनां दुरात्मनाम् ॥ ३४ ॥ कोऽसी विवेको यः साध्य इत्युच्यते तमाइ---य-थाभुतेति ॥ ३५ ॥ यहा इति । तथाच वराग्यादिसर्वसाधन-संग्रह इति भावः । आत्मप्रसादतो निष्कामानुष्ठितयद्भदानादि-साध्यचित्तप्रसादात् ॥ ३६ ॥ विश्रमिर्विषयश्रान्तिमिः ॥३७॥ दहसत्तानादरे उपायं विचारं दर्शयति—जगदादीति । शरी-रस्य आदिकारणभूतं जगत् आदिपदात्तत्कारणं च आदी ना-स्त्येव । यज्ञारी नास्ति तदय कुती भवत् । 'नासती विश्वते मावः' इति न्यायात् ॥३८॥ ननु 'सदेव सोम्येदमप्र आसीत्' इति ब्रह्मात्मना आदी सदेव कारणस्य ब्रह्मणः कार्थमस्त त-त्राह-कार्य चेदिति । तथापि त्रह्ममात्रकमेव न ततो भि-यते । सद्भेदे असत्त्वापतेः । अद्भयकार्यस्य कारणे अद्भयतावि-धातकत्वेन भेदप्रतिभासस्य विकल्पमात्रलादिलाह्-प्रतिभा-माल्लभविति । इसेः पृथगिति रोषः ॥ ३८ ॥ विकल्पप्रतिभापि विदानासज्ञानाहिमकैवेति सैवाखिलं जगदिखर्थः । सा चिदा-भासउक्षणा इतिरप्यक्षातात्मतस्यस्यैव दर्पणदृष्टा मुखश्रीरिव

२ पुष्पीषपूजित इति पाठः.

श्रेयाभावे त्वनिर्घाच्या शिष्यते शाश्वतं शिवम् । अशरीराद्यविश्वातम सर्वे शान्तमिदं ततम्॥ कानकेयकतिमुक्तं दयन्मीनमिव स्थितम्। शान्तान्तःकरणाः स्वस्थाः शिलापुत्रककोशवत् ४२ चलन्त्रशालयन्त्रश्च श्ररूपा एव तिष्ठत । अह्रेयहत्वसद्रुपाः सद्सत्सारक्रिणः॥ 83 आकाशकोशविशदा भवता भवभूमयः। यथास्थितं च तिष्ठन्ति गच्छन्तश्च यथागतम् ॥ ४४ यथाप्राप्तैककर्माणः संपद्यन्ते वुधाः परम् । अथवा सर्वसंत्यागद्यान्तान्तःकरणोज्ज्वलाः॥ ४५ पकान्तेष्वेव तिष्ठन्त चित्रकर्मापिता इव। संकल्पशान्ती संकल्पपुरवत्सर्वदाखिलम् ॥ યદ स्वप्रवच प्रबुद्धस्य सदैवास्तं गतं जगत्। सनेत्रक्षपानुमवं जातितोऽन्ध इव भ्रमैः॥ પ્રહ निर्वाणं वर्णयन्नकस्ताप्यतेऽन्तर्न शास्यति । करपनांशोपवेशेन लोकोऽविद्यामयात्मना॥ 36

येन केनचिदश्रत्वात्कृतार्थोऽसीति मन्यते। अकृतार्थः कृतार्थत्वं जानन्मौर्क्यविमोहितः॥ પ્રશ विश्वास्यत्यकृतार्थत्वं क्षणान्तरकदर्थनैः। उपायं कल्पनात्मानमनुपायं विदुर्बुधाः॥ 40 दुःखदत्वान्त्रिमेषेण भावाभावैषणभ्रमैः। जगद्भमं परिशाय यदवासनमासितम्। विरसारोपविषयं तद्धि निर्वाणमुख्यते॥ 48 आख्यायिकार्धप्रतिभानमेत्य संवेत्स्यचिद्वारिभराह्ववातमा । अवेद्यचिद्रुपमशेषमुच्छं पश्यन्विनिर्वासि जगत्स्वरूपम् ॥ ५२ जात्यन्धरूपानुभवानुरूपं यद्रागमैर्बुद्धमवोधक्ष्मम्। अधस्पदीकृत्य तदन्तरेऽस्मि-न्योधे निपत्यानुमयो भवाभूः॥ ५३

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे निर्वाणोपदेशो नाम द्विचलारिशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचस्वारिंदाः सर्गः ४३

वसिष्ट उवाच । अहन्तादिजगचेदं परिकानादसत्यताम्।

प्रत्यगात्ममात्रत्वेन दष्टमात्रा - मेदकोपाध्यपगमेनोपशाम्यति ॥ ४० ॥ यत उपाधिभूतह्रेयामावे बिम्बात्पृथगिवानिर्वाच्येति पूर्वान्वयि । अनया रीत्या प्रत्यरभावे अदारीरादिवहाभावे अ-विश्वारमेखखण्डं सर्वं पूर्णं शाश्वतं शिवं शिष्यत इत्यर्थः ॥४९॥ तक्कावस्थितिरेव भवक्किः सर्वैः संपायेत्याह-शान्तेति ॥४२॥ तस्यास्थितौ यथा प्राप्तव्यवहारेऽपि न क्षतिरित्याह—चलन्त इलादिना ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ समाधी वा कामं स्थीयतामि-त्याह-अथवेति ॥ ४५ ॥ सर्वदा समाधिकाले व्यवहारकाले च प्रबुद्धस्याऽियच्छित्रप्रवोधस्य पुंसः संकल्पपुरवत्स्वप्रवच स-दैव तुच्छलादस्नं गतम् ॥ ४६ ॥ प्रवोधधः स नेत्रस्य रूपानु-भववस्परिनिष्ठितः पूर्णानन्दानुभवपर्यन्तो निर्वाणे उपयुज्यते न जात्यन्थकपकल्पनातुत्यः परोक्षकल्प इत्याशयेनाह--स ने-त्रेखादिना ॥ ४७ ॥ अज्ञः कतिपयवाक्यश्रवणेनैव तत्त्वज्ञोऽहं संपन इति अमे निर्वाणं वर्णयन् सनेत्रस्य रूपानुभवं वर्णयन् आखन्य इवान्तर्मानापमानादिमिस्ताप्यते नतु तत्त्वज्ञवच्छा-म्यति । शान्तिसुखमनुभवतीलार्थः। अन्धगोलाङ्गलन्यायेनासदु-परेशप्रतारितानामपि कृतार्थतात्रान्तिलीके प्रसिद्धेलाह—क-स्पनांशेति ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तस्मात्कल्पनात्मकं ज्ञानं न नि-र्वाणोपाय इत्यमिज्ञानुभवेनोयसंहरति—उपायमिति ॥ ५०॥ निमेषेण भावाभावपणअमैर्युःखदलात्कल्पनात्मानमुपायमनुपा-यं विदुरिति पूर्वत्रान्वयः । तसार्व्वागुक्तं सम्यग्रहानमेव वासनाः

याति सानुभवो मोहात्सत्यमेवान्यथाधियाम्॥ १

नाशपर्यन्तं दृढीकार्यं तदेव निर्वाणं पर्यवस्यतीत्याशयेनाह-जगदिति । विरसा अशेषा हैरण्यगर्भपदान्ता विषया यत्र ॥ ५१ ॥ अतएव हे राम, त्यं मदुपदिष्टमधैमास्यायिका उ-पराच्यार्था लाकिकी पौराणिकी वा कथा तदर्थहव परोक्षः कस्पनामात्रहणः प्रतिभासो यस्य तथाविधमेख बहिर्मस्वतया अधिगम्य न कृतार्थी भविष्यति किंतु भराद्वासनामात्रपुरातिश्व-यात् इवातम परितः प्रवहत्स्वरूपं जगत्स्वरूपमचिद्वारि संवेत्सि परयस्यव । प्रत्यग्दछ्या लशेपं पूर्णमच्डमवेदाचिद्रूपं पर्यन्साक्षा-दन्तभवन् विनिर्वाति निर्वाणविश्रान्तो भविष्यसीखर्थः ॥ ५२ ॥ तदेतद्रदयनाह्---जात्यन्धेति। आगमेरपदेशवास्येवहिर्भुखतया जात्यन्धकपानुभवसद्शं यद्वदं तदबोधरूपमेव । अपरोक्षे व-सुनि परोक्षज्ञानस्य भ्रान्तिमात्रलात् । अतस्तादशबोधमध-स्पदौकृत्य पादेनाकम्येव तिरस्कृत्य । 'अधःविरसौ पदे' इति सत्वं च्वः । आन्तरे प्रत्यगात्मरूपे अस्मित्रित्यापरोक्षे बोधे साक्षादनुभवंन निपत्य अभूजंनमादिशून्यः सोऽनुभव एव त्वं भव । तदेव ते निवाणमित्यर्थः ॥ ५३ ॥ इति श्रीवासिष्टम-हारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तराधे हिचला-रिश सर्गः ॥ ४२ ॥

मनोयशपुरपाये जगत्यज्ञानकस्पिते । बोधमात्रेण निर्मृष्टे वद्यौकस्थितिरीयेते ॥ १ ॥ आन्तरमहन्तादिवाह्यसिदं जगन भोकुभोरयहपं सर्वे तदः

अज्ञानवरमुकस्य बोधशीतलितात्मनः । एतदेव भवेचिह्नं थङ्गोगास्य न रोचते॥ अलमन्यैः परिज्ञानैर्वाच्यवाचकविश्रमेः। अनहंबेदनामात्रं निर्वाणं तद्विभाव्यताम्॥ परिशाता यथा स्वप्ने पदार्था रसयन्ति नो। मच सन्ति तथैवास्मिश्नहं जगदिदंभ्रमे ॥ यथा स्वभावनाद्यक्षस्तरी सस्वजनं पुरम्। पद्यत्यसत्यमेवैवं जीवः पद्यति संसृतिम् ॥ विभ्रमातमा यथा यक्षो यक्षलोकश्च ते मिथः। सद्वरी सुस्थिती मिथ्या तथाहन्त्वजगद्भमी ॥ अनावरणतोऽरण्ये यक्षा विभ्रमरूपिणः। यथा स्फुरन्ति भूतानि तथेमानि चतुर्दश ॥ भ्रममात्रमहं मिथ्यैवेति बुद्धा विभावयन्। यक्षोऽयक्षत्वमायाति चित्तं चित्तत्वतामिदम् ॥ ८ निरस्तकलनाशङ्कं त्यागप्रहणवर्जितम्। अविसारिसमस्तेच्छं शान्तमास्ख यथास्थितम् ९ असत्तासंभवं हृद्यं द्रष्टात्मकमिदं ततम्। अथवा नैव द्रष्टातम सद्वाच्यं किमास्यते॥ वसन्तरसपूरस्य यथा विटपगुल्मता ।

नुभवरूपभोगतत्त्वपरिज्ञानादसत्यतां याति । चिदवसानो हि भोगः सहि भोक्तभारयसंबन्धानुभवः तेनानुभवेन हि मोहा-दात्मिषिनिमयेनान्यथाधियां भोक्तर्यवात्मयुद्धिमतां मास्मा सानुभवो न स्वत इति सत्यं ब्रह्मव स इत्यर्थः ॥ १ ॥ अतएव तत्त्वविदां भोग्यवगैष्वरुचिरित्याह्-अज्ञानेति॥ २॥ एवं भोग्येषु विरक्तानां भोक्तर्यहंकारांशलागमात्रेण चिन्मा-त्रपरिशेषात्मकं निर्वाणं सिद्धमित्याह---अलमिति । वाच्यं रूपं वाचकं नाम तद्विषयभ्रान्तिरूपैः ॥ ३ ॥ भौगाम्यु न रोचते इत्येतद्विशदयति-परिज्ञातेति । स्वप्ने दृष्टाः पदार्था यथा जा-गरूकं पुरुषं न रसयन्ति न रज्ञयन्ति न सन्ति च तथैवाहं जगदिदमिति भ्रमे दृष्टाः पदार्था अपि तत्त्वक्रमिल्यर्थः ॥ ४ ॥ अरण्ये यक्षो गन्धवंमायाकत्पितं नगरं वात्र दृष्टान्त इत्याह-य**येति । 'यक्ष**तनौ' इति पाठे यक्षविद्यानिपुणमनुष्यः स्वभा-बनाकरिपतयक्षतनौ स्थिला स्वजनसहितं पूरं यथा करपयिला पश्यतीति व्याख्येयम् ॥ ५ ॥ तत्र यक्षी विश्रमातमा आन्ति-कल्पितभोक्तस्वरूपः यक्षरोकस्तन्नगरं च भ्रान्तिकल्पितभोग्य-रूपमित्युभयं नास्त्येव तथापि तौ मिथ उपमोगलक्षणार्थिक-याकारितया यथा सद्भपाविव स्थिती तथेत्यर्थः ॥ ६ ॥ ६-ष्टान्ते दार्ष्टान्तिके चासतोऽपि सत्यनया प्रतिभासे अनावृतसा-क्षिण्यच्यास एव निमित्तामित्याशयेनाह---अनावरणत इति । भुवनोपाधिसंख्यया चतुर्दश ॥ ७ ॥ यक्षस्य स्वकल्पितदेह-नगराच्यपसंहार इव जगद्भमनाधेऽपि तान्मिश्यालदर्शनमेव हे-त्रिरेखाइ-अममात्रमिति । चित्तत्वतां चिद्रपतालिकभावम् ॥ ८॥ चलारि कियाविशेषणानि ॥ ९॥ तत्त्वतो विसर्शे

स्वरूपमात्रभरितसंबिदः सर्गता तथा ॥ यदिदं जगदाभासं शुद्धं चिन्मात्रवेदनम्। कात्रेकता द्विता का वा निर्वाणमलमास्यताम् १२ भूयतां चिन्मयव्योम्ना पीयतां परमो रसः। स्थीयतां विगताशकुं निर्वाणानन्दनन्दने ॥ १३ किमतास्वतिश्च्यासु संसारारण्यभूमिषु। मानवा वातहरिणा भ्रमधो भ्रान्तबुद्धयः॥ १४ जगञ्जयमरीच्यम्यु विप्रलब्धान्धबुद्धयः। माधावत गतव्यग्रमाशयोपहताशयाः॥ 24 रूपालोकमनस्कारमृगतृष्णाम्युपायिनः। व्यर्थमायासमायंषि मामा क्षपयतैणकाः॥ १६ जगद्रन्धर्वनगरगुरुगर्वेण नश्यथ । सुखरूपाणि दुःखानि नारानायैव पश्यथ ॥ १७ जगन्केशोण्डुकभ्रान्त्ये मा महाम्बरमध्यगम्। अवळोकयताभ्रान्ते स्वरूपे परिणम्यताम्॥ मानवा वातलोलोच पत्रप्राप्ताम्बुमङ्गरः। मानवासु न चास्वन्धगर्भशस्यासु सुप्यताम् ॥१९ अविराममनाचन्ते स्वभावे शान्तमास्यताम्। द्रएडर्यद्शादोपादस्वभावाद्विनस्यताम्॥

रश्यस्य द्रष्टमात्रता तुच्छता वा पर्यवस्पतीत्याह--असतेति । न विद्यते सत्तायाः संभव उत्पतिर्यस्मिस्तथाविषं नैव वा इ-ष्टारम । कुतः । सत् परमार्थचिद्र्षं द्रष्ट् तत्त्वमवाच्यं तुच्छं दृश्यक्षपं किमास्यते स्थाप्यते । नहि सतौऽसद्भूपता केनिक्सं-पादिवतुं शक्येत्यर्थः । आसेरण्यन्तकर्तुर्ण्यन्ते 'गतिबुद्धि-' इति कर्मत्वे कर्मणि लः ॥ १० ॥ द्रष्टुर्दश्यात्मलाभावेऽपि व्यव-हारे दश्यमसास्फूर्तिनिर्वाहकता संभवत्येवेति दष्टान्तेन दर्श-थति-वसन्तेति ॥ ११ ॥ परमार्थे तु द्रष्ट्रैक्यादिसंभावनापि नास्तीत्याह-यदिदमिति ॥ १२ ॥ इदानीं भगवान्यसिष्ठः सर्वान्त्रति दयया हित्मुद्धोषयभुपदिशति-भूयतामिखादिना। परमो रसो निरतिशयानन्दः 'रसो वै सः' इति श्रुतेः। निर्वाण।नन्दलक्षणे नन्दने स्वर्यने ॥ १३ ॥ बात**हरिणा बा**त-प्रम्य इवेति शेषः । श्रम्य उ इति च्छेदः ॥ १४ ॥ आशया तृष्णया उपहताशयाः सन्तो गतन्यमं प्राप्त**वैगम्यं यथा** स्यात्तथा मा धावत ॥ १५ ॥ रूपालोका बाह्यभोगा मन-स्कारा आभिमानिकभोगास्त एव मृगतृष्णाम्यूनि । **आयासं** प्राप्यति शेषः ॥ १६ ॥ जगद्वृषे मन्धर्वनगर इव वि॰ वकहारी यो गर्वस्तेन नस्यथ मा इत्यनुषज्जते ॥ १७॥ महाम्बरं अह्याकाशस्त्रनमध्यगमञ्जाननेत्यं कयत किल्लानाने यथार्थती दृष्टे खरूपे परिणम्यताम् ॥१८॥ हे भानवाः, बातेलीलानि उचेषुध्वेशाखास्थितेषु पिप्पडपत्रेषु प्राप्तानि स्कन्नान्यवश्यायाम्बृनीय मङ्गरा मानवा मनुष्यदेहा यास आस संसार्वक्षणास्वन्धगर्भशय्यासु मासुप्यताम् ॥१९॥ भविराममखण्डितम् । खभावे पारमार्थिक ब्रह्मभावे । द्रष्टादिद्-

अवायबुद्धः संसारः स हि नास्ति मनागपि। अवशिष्टं च यत्सत्यं तस्य नाम न विद्यते ॥ त्रोटिषत्वा तु तृष्णायःश्रञ्जलावितं बलात्। संसारपञ्जरं तिष्ठ सर्वस्योध्वं मृगेन्द्रवत्॥ आत्मात्मीयग्रहभ्रान्तिशान्तिमात्रा विमुक्तता । यथा तथा स्थितस्यापि सा स्वसत्तेव योगिनः २३ निर्वाणताऽचासनता पराऽपतापताञ्चता । संसाराभ्वनि खिन्नस्य शान्ता विश्रामभूमयः॥ २४ तज्यकातो न मूर्खाणां मूर्खकातो न तद्विदाम्। विद्यते जगदर्थोऽसाववाच्यार्थमयो मिथः॥ विश्वताम्रान्तिसंज्ञान्तौ संस्थितैव न स्रभ्यते। महार्णवाम्बुचलिता पुत्रिकेव पयोमयी॥ म्रान्तिशान्तौ प्रयुद्धस्य विनिर्वाणस्य विश्वता.। यथास्थितेव गलिता विद्यते च यथास्थितम् ॥ २७ निर्देग्धतुणभस्माली कापि याति यथानिलैः। सतां स्वभावविश्रामः कापि याति तथा जगत् २८ जगद्भसपदार्थस्य संनिवेशः सतुत्तमः। ब्रह्मराब्दार्थरूपातमा न जगच्छब्दकार्यभाकु॥ अविद्यातस्य बालस्य पदार्था यादद्या इमे ।

शादोषलक्षणादस्वभावात्स्वरूपविनिमयानमा विनद्यताम् ॥२० ॥ २१ ॥ तृष्णालक्षणया अयःश्यक्षलया यहितं वेष्टितं संसार-पक्षरं ज्ञानबलात्रोटियला मृगेन्द्रः सिंहस्तद्वत्सवंखाध्वेमुत्कपे-काष्ट्रायां तिष्ठ ॥ २२ ॥ आत्मात्मीयप्रदः अहंममेखिमानस्त-इक्षणश्रान्तिशान्तिमात्रा तावनमात्रस्ररूपा विमुक्तता नान्या काचिद्ति । साच योगिनः स्त्रात्मसत्तेवेखर्थः ॥ २३ ॥ तामेव संसाराष्वसिन्नविश्रान्तिभूमिभेदत्वेन कल्पायित्वाह्-निर्वाण-तेति । अवासनतेति च्छेदः । परा उत्कृष्टा अपनापता अपग-तित्रविधतापता । एताः पद्यम्याद्यास्तिस्रो भूमिकाः ॥ २४ ॥ मिषः परस्परमवाच्या वक्तमयोग्या येऽर्थास्तन्मयस्तत्प्रचुरः । तण अइस्य दुःखीयमयं इस्यानन्दमयं जगदिति प्रागुक्तमेवेति ॥ २५ ॥ गङ्गागोदानमंदेखादिरूपा पयोमयी पुत्रिका आका-रमेदकल्पना यथा महार्णवाम्द्रविता सती तद्रूपेण संस्थित-वार्णवावामिभिने रूप्यते तद्वन्नान्तिसंशान्ती ज्ञानिभिर्विश्वतापी-<mark>खर्थः ॥ २६ ॥ तदेव सप्टमाह</mark>—श्रान्तीति ॥ २०॥ २८॥ **ब्रह्मपदस्य बृंहणहर्षोऽर्थस्तस्य संनियं**श आकार्विशेषः सनु त्रद्वाशब्दस्य मुख्यार्थरूपो निर्विकल्पस्तप्रकाशनिरतिशयानन्द-प्रस्मगातमा चंदुत्तमः । गच्छति पद्विधविकारः परिवर्तत इति जगदिति जगच्छब्दप्रवृत्तिनिमत्तिकारकार्यमाकचेत्रोत्तम इत्यर्थः ॥२९॥ जगति निर्विकत्यानुनवः विशोरपि प्रसिद्ध इति तत्साम्यमाह—अविज्ञातस्यति । न विद्याने विज्ञानं विशेषज्ञानं यस्य बालस्य शिशोः॥३०॥ 'तज्ज्ञज्ञातो न मृखीणां मूर्यज्ञातो न तद्विदाम्' इत्युक्तिमुपपादितां भगवद्वयनेन संवादयति-या

विदुषस्तादृशा एव तिष्ठतः श्रीणवासनम्॥ या निशा सर्वभृतानां तस्यां जागतिं संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पर्यतो मुनेः ३१ स्थितमेवाऽविरामी यञ्जाप्रदस्य सुबुप्तवत्। चित्रावलोकित इव जाग्रत्योऽस्य रसैपणाः॥ जात्यन्धरूपानुभवसमं भुवनवेदनम् । भ्रान्तप्रायमसद्र्पं श्रस्य भाति न भाति च ॥ 33 विमृदद्वः खं त्रिजगित्रमृदविषयं न सत्। स्वप्ने स्वप्नतया ज्ञाते रूपालोकमनःकियाः॥ રેઇ न स्वदन्ते यथा तद्वजात्रत्स्वप्ने स्फूरन्तु मा। निर्विभागः समाश्वस्तोऽविरोधं परमागतः॥ 34 आशीतलान्तःकरणो निर्वाणो शोऽवतिष्रते । तज्बस्याक्रप्रमुक्तस्य समं ध्यानं विना स्थितिः॥ ३६ निम्नं विनेव तोयस्य न संभवति काचन। अर्थ एव मनस्कारो मन एवार्थरञ्जनम्॥ ३७ एष एवेष आभासः सवाद्याभ्यन्तरात्मकः । आसमुद्रं नदीवाह्दातसंघमयात्मकम्॥ ३८ यथेकश्रेषपिण्डातम् बहत्यम्यु तरङ्गिणाम् । सबाह्याभ्यन्तराकारमर्थानर्थमयात्मकम् ॥ 36

निशेति ॥ ३१ ॥ तदिदं व्याचष्टे-- स्थितभेवेत्यादिना । यदा-सादेतोः सर्वजनानामहानान्धकाराष्ट्रतलात्सुषुप्तवत्थितमेवा-त्मतत्त्वमस्य तत्त्वविदः अविरामी विरामशून्यो जाश्रजागरसः स्मात् 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागतिं' इत्युच्यत इत्यर्थः । यसाचार्य जायलो मृढजनजाप्रत्वेन प्रतिद्धा रसैषणा इन्द्रियैः शब्दादिविषयास्त्रादाधित्रावलोकितनृत्ययुद्धादिरिव अपि न सन्ति तम्मात् 'यस्यां जात्रति भूतानि सा निशा पश्यतौ मुनेः' इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ उत्तरार्घ पुनर्याबष्टे--जा-लन्धेति । भाति चेत्रिशास्त्रप्रवत्र भाति चेत्रिशासुप्रसबदिति भावः ॥ ३३ ॥ विमूढाना दुःखत्वेन प्रसिद्धं त्रिजगद्विमूढवि-षयमेष न प्रवुद्धविषयं यतो न सदित्यर्थः । ननु इस्य यदि विषयीपभोगी नास्ति तर्हि केन स तृप्ती जीवति तत्राह-खप्ने इलादिना ॥ ३४॥ जाप्रत्खप्ने जाप्रत्खप्रभोगा मा स्फूर-न्तुनाम तथापि क्रो निर्वाण आशीतलान्तःकरणोऽवतिष्ठते इति परेणान्वयः ॥३५॥ आकृष्टानि भोगवासनाभिश्वित्तस्य बहिरा-कप्रणानि नेर्मुक्तस्य वर्जितस्य तज्ज्ञस्य ध्यानं चित्तनिरोध**यत्रं** विनेत्र समं स्थितिभवति ॥ ३६ ॥ तदुष्टान्तेनोपपादयति--निम्नमिति । यथा तडागादितोयस्य कुल्यादिनिम्नमार्ग विना काचन प्रवाहादिकिया न संभवति तद्वदिखर्थः । नत् तत्त्वज्ञान नेन वाह्यार्थवाधे बहिरिन्द्रियाणि न प्रवर्तन्तां मनस्कारनिरी-धम् कथं सिद्धेसत्राह—अर्थ एवेलादि ॥ ३० ॥ **एव मन**-स्कार एवपोऽर्थामासः । यथा तरिक्षणामाससुदं नदीप्रवाहाय-नन्तमेदात्मकं प्रसिद्धं सर्वमम्ब एकत्र क्षेषे एकपिण्डात्मकं मन पष रफ़रत्यर्थनिर्भासं व्याततं तथा। नास्त्यर्थमनसोद्धित्वं यथा जलतरङ्गयोः॥ 80 एकामावे द्वयोः शान्तिः पवनस्पन्दयोरिव । नुनमेकोपशान्त्येव निःसारे परमार्थतः॥ 88 एकत्वादर्थमनसी सममेवाशु शाम्यतः। अर्थः संकल्परूपात्मा नेहितव्यो विजानता ॥ ४२ मनश्च सम्यग्हानेन शान्तिरेवं भवेसयोः। अनष्टे नर्यतश्चेते श्रस्यार्थमनसी स्वतः॥ 83 मृत्मये द्विपति शानाद्विपद्भावभये यथा। यथासंस्थं स्थिते एव ब्रह्मार्थमनसी सदा ॥ 88 किमप्यपूर्वमेवान्यत्संपन्ने भावरूपिणि। संहितार्थजगत्कालोऽप्यक्षो क्षविषयोऽप्यसत् ४५ पार्श्वसुप्तनरस्वप्त इव क्रीवाप्रयक्षवत्। ब्रस्य साम्रं जगन्नास्ति वीरस्येव पिशाचधीः ॥ ४६ **झमक्षो** भावयत्यज्ञं चिरं वन्ध्यापि वर्धते । विनेव ज्ञातशब्दार्थमर्थभावमिवागतम्॥ 8/9 स्थितं योधमनाचन्तं स्वभावं संगंगं विदुः। मनः शब्दार्थरहितं विभागान्तविवर्जितम्॥ 86 योधवारिमनोवुद्धितरङ्गमिव निर्मलम्। क संभवत प्वान्तः के वार्थमनसी किल ॥ પ્રશ निर्धिकैव विभ्रान्तिः स्वभावमयमास्यताम् ।

जलसामान्यमेव स्फुरति तथा सबाह्याभ्यन्तरं सर्वार्थाकारं मनएव स्फ़रतीति परेणान्वयः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ततस्तत्राह-एकाति । तत्त्वज्ञानेनार्थवाधे मनोऽपि बाधितमेवेति न मनस्कारप्रसक्तिरित्यर्थः ॥ ४९ ॥ ॥ ४२ ॥ अयं च तयोर्वाधः स्वाप्तव्याघ्रनाशवदनष्टनाश इन त्याह--अनष्टे इति ॥ ४३ ॥ यथा सृनमये प्रतिमायां स्रा-न्तिकरिपते द्विषति खवैरिणि ज्ञानाद्वाध्यमाने तस्मिन्द्विषद्भाव-स्तत्प्रयुक्तभयं च नदयतस्तद्वदिखर्थः । यथासंस्थं पारमार्थिक-बद्धासभावेन स्थितं॥४४॥अन्यत्सांसारिकदशाप्रसिद्धरूपादन्य-त्पूर्णानन्दरूपं संपन्ने भावरूपिणि परमार्थसद्भूपिणि संहिते हेतु-फलभावेन घटिते अर्थः मुखदुःखभोगस्तत्साधनं जगत् त्रै-लोक्यं च येन तथाविधः संसारकालः अपिशब्दात्कालकृताः पदार्थानां जन्मादिविकारासाद्धोक्ता अज्ञस्तद्विषयः शब्दादि-विषयोऽपीति सर्व तत्त्वज्ञरख्या असत् ॥ ४५ ॥ तत्र दशन्ता-वाह-पार्श्वेति । क्लीबपदेन अधीरी बालादिर्लक्ष्यते तद्ये भासमानयक्षवच ॥ ४६ ॥ वन्ध्यापि पुत्रपौत्रादिविस्तारेण वर्धते तदृष्ट्येति शेपः । तत्त्वज्ञास्तहिं जगत्स्वभावं कीदशं विदुरतमाह-विनेवेति । ज्ञातश्चब्दस्यार्थी ज्ञानविषयत्वं तं वि-नैव स्वप्रकाशसादेवार्थाभासमिव स्थितं भासमानमनाचन्तं बोधं ब्रह्मवेति विदुरित्यर्थः ॥ ४७॥ बाह्यार्थेपुक्तवेदनप्रकार

१ सर्वगं इति पाठः.

शुद्धवोधस्वभावस्थराकाशमिव शारकैः॥ 40 जाप्रत्स्वप्रसुषुप्तान्तैर्मनस्त्वं नानुभूयते । विधूयानन्तनानात्त्रमसद्भावमनामये ॥ 48 क्षेयं रज्जरिवारोप स्वभावे तिष्ठ चिद्धने। क्षप्तिरेवान्तरं बाहां चार्थत्वमधितिष्ठति॥ 42 बीजं शाखाफलानीव कातोऽर्थमनसी बद। क्षेयासंभवतो क्षप्तिरप्यनाख्यं पदं गता ॥ 43 शान्तारोषविशेषात्मा तेन शेषोऽस्ति सत्स्वभाः। अर्थ एव मनस्कारः स चाभावात्मको भ्रमः मन एवार्थसंस्कारः स चाभावात्मको भ्रमः। सर्वात्मत्वादजस्येतद्यकारणकं मनः॥ ५५ भ्रमानभवतोऽर्थश्च मिथ्येवास्तीव भासते । अकारणकमेवार्थनिर्भासं भासते मनः॥ 48 विद्यद्विलसिताकारमस्थिरं तरलायते। त्वं मनस्कारमात्रात्मा संस्तौ विभ्रमायसे ॥ 40 स्वभावेकपरिज्ञानाम्नासि नापि भ्रमायसे। मनसैव हि संसार आत्मषोधेन शाम्यति॥ 46 शुक्तिरूप्यभ्रमाकारो जनो मिथ्येव ताम्यति। अभावभावस्त परं बोधरूपमसंसृतिः॥ ५९ निर्वाणादितरा सत्ता दुःखायाहमिति भ्रमः। मृगतृष्णाम्बुरूपोऽहमसच्छ्रन्यस्वरूपकः॥ ξo

आन्तरेषु मानसेष्वपि बोध्य इलाह—मनः शब्देति ॥ ४८ ॥ निर्मेलं विदृरित्यनुजते । एवं प्रपधितयोरज्ञतत्त्वज्ञजगद्भोधप्रका-रयोर्मध्ये द्वितीय एवोपादेवो यथार्थलानाच इत्याह-केति ॥ ४९ ॥ स्तुभावस्थितौ निरुद्धायामवस्थात्रयस्य तुरीयबोध-भात्रतासंपत्तेर्मन्तव्याभावान्मनसो मनस्त्वमध्यपैतीखाह—शु-देति । शार्दः पद्मज्योतिर्भिजनैवी ॥ ५० ॥ जामत्स्वप्रसुषु-प्रदक्षणेरन्तैरवस्थापरिच्छेदैः अनन्तानि नानालानि यस्पि-स्तथाविधमरोपं द्वेयं विध्याध्यस्तरार्पं विध्य रन्त्रितानामये स्वभावे तिष्ठ ॥ ५१ ॥ अधितिष्ठति धत्ते ॥ ५२ ॥ ज्ञापि-बुद्धिरृत्तिः ॥ ५३ ॥ स्वभाः स्वप्रकाशः । अर्थमनसोः परस्प-राधीनतिरूपणलादमेदे द्वयोरपि भ्रान्तिमात्रता पर्यवस्यती-त्याह-अर्थ एवेति । बाह्यस्थान्तरभावात्मकत्वादान्तरस्य ब-हिरभावात्मकलाचेति भावः ॥ ५४ ॥ अर्थ इव मंस्कियत इल्थिसंस्कारः । घनन्तलात्पुमान् 'घनवन्तः' इत्यजहिक्काः । तहीथीं मनश्र तत्त्वतः विः तत्राह-सर्वोत्मखादिति । अ-जस्य ब्रह्मणः सर्ववस्तूनामात्मलान्मन इति रूपेणापि तदेव भासते । तन्निकृष्टरूपेऽपि तुच्छमेवेति भावः ॥ ५५ ॥ न्नह्म मनोरूपेणेव मनोऽप्यथंरूपेण निष्कारणमेव भासत इत्याह— श्रमानुभवत इति ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ अमानभावो बोधः ॥ ५९ ॥ केनोपायेन तर्हि इतरा अहमिति सत्ता शा-म्यति तमाह-मृगतृष्णेति । अहमहंकारो मृगतृष्णाम्बुसहशः

श्रत्येवात्मपरिश्वानाद्दमित्येव शास्यति । श्रात्वा श्वानमयो भूत्वा सवाद्याभ्यन्तरार्थताम् ६१ गतं स्वमत्यजद्वपं तरङ्गत्वं यथा पयः । मृलशाखामपर्यन्ता सत्ता विटिपनो यथा ॥ ६२ निर्विकारमलं श्रप्तेश्वंच भासते । यथा योजनलक्षाभमेकमेवामलं नभः ॥ ६३ एकमेव तथा श्वानं श्रेयान्तं भात्यखण्डितम् । शून्यत्वादेकममलं यथा सर्वगमेव खम् ॥ ६४ तथकममलं श्वात्वा श्वानश्रेयदशास्वपि । घृतेनातमा घनीभूय पापाणीक्रियते यथा ॥ ६५

चिता चेत्यतयात्मैव स्वचित्तीक्रयते तथा।
देशकालं विनैवात्मा बोधाबोधेन चित्तताम् ॥ ६६
अबुद्धो नीयते न्यायैरेकमेवैष सुस्थितः।
अत्र यद्यप्यबोधादेः संभवो नास्ति कश्चन।
तथापि कल्प्यतेऽत्रैव बोधनाय परस्परम् ॥ ६७
महानुभावा विगताभिमाना
विमुद्धभावोपशमे गलन्ति।
निर्मान्तयोऽनन्ततयैव शान्ता
नित्यं समाधानमया भवन्ति॥ ६८

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये मोक्षो० निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मेकतानतीपदेशो नाम त्रिचलारिशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंदाः सर्गः ४४

श्रीराम उवाच ।

क्रमात्समाधानतरोराजीवफलक्शालिनीम् ।
सलताकुसुमां बृहि सत्तां विश्रान्तिदां मुने ॥

वितिष्ठ उवाच ।

आजीवमुचदुत्सेथं विवेकिजनकानने ।
पत्रपुष्पफलोपेतं समाधानतरुं श्रुणु ॥

यथाकथंनिदुदितं दुःखेन स्वयमेय च ।

शून्यखरूपक इलोव शाम्यति ॥ ६० ॥ कृत एवं तत्राह— ज्ञात्वेति । यस्तद्रह्मसर्गादी सर्वज्ञतया स्वातमभूतमेव स्रष्टव्यप-दार्थ शाला तादशङ्गानमयो हिरण्यगभेः स्वयं भूला तत्संक-ल्पानुसारेण स्वयमेत्र सबाह्याभ्यन्तरार्थतां स्वरूपमत्यजदेव ग-तमित्यर्थः ॥ ६१ ॥ अस्त्वेतं कि ततस्तत्राह--मूलेति । इत-मतः सिद्धं यथा विटिपनो मुलाच्छाखाप्रपर्यन्ता एकैव सत्ता तथा शातृशानशेयरूपे जगस्यप्यलमस्यन्तं निर्विकारं स्थिता शे-यान्ता एकंव सत्ता भाराते न सत्तान्तरमस्तीति ॥ ६२ ॥ सत्तेक्ये द्वश्चान्तान्तरमपि सत्तेक्यमुपपादयति-यथेत्यादिना ॥ ६३ ॥ तस्य नर्मल्येऽध्ययमेव द्रष्टान्त इत्याशयेनाह--- श्र-म्यलादिति ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ बोधरूपस्य स्ततत्त्वस्याबोधेन ॥६६॥ 'तदात्मानं स्वयमकुरुत' इति श्रुतिदर्शितैर्लाघवतकीनु-गृहीतन्यायैः शङ्कते---अत्रेति । अत्र शुद्धे चिदारमनि । परि-इरति-तथापीति । अत्रव अस्यामबोधदशायामेव न तस्वत इ-त्यर्थः । तथाचोकं वार्तिके—'अविद्यासीत्यविद्यायामेवासित्वा प्रकल्यते। ब्रह्मदृष्ट्या लिब्दोयं न कथंचन युज्यते' इति॥६७॥ असंभवद्रपत्नादेव तत्त्वज्ञानोद्येनाज्ञानेन सह सर्वे गलन्तीत्य-पसंहरति-महानुभावा इति । अतएव महानुभावा अधि-कारिदेहादिसंघातास्तत्त्वशानेन विमुदभावस्य मुलाझानस्य ज्ञा-नेनोपशमे पृतकाठिन्यवत्खारमन्येव गढन्ति । तद्वलनाचान-न्ततथा निर्दतिषयानन्दपूर्णभावेन शान्ताः सन्तो निर्धान्तयो ।

संसारवनियंदं वीजमस्य विदुर्वुधाः ॥ ३
ग्रुमजालहलाकृष्टं रसासिकमहिनंशम् ।
प्रयहच्छ्रसनाकुल्यं क्षेत्रमस्य विदुर्वुधाः ॥ ४
समाधिवीजं संसारिनवेंदः पतित स्वयम् ।
चित्तभूमौ विविकायां विवेकिजनकानने ॥ ५
स्वचित्तभूमौ पतितं ध्यानबीजं महाधिया ।
सेकैरमीमिर्यक्षेत संसेकव्यमखेदिना ॥ ६

निर्विशेषा नित्यमनवरतमेव समाधानं समाधिविश्रान्तिस्तत्परा भवन्तीत्पर्थः ॥ ६८ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्य-प्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे त्रिष्यत्वारिषः सर्गः ॥ ४३ ॥ वण्येते वर्धनीयोऽत्र समाधानसुरद्वमः ।

तले तस्य च विश्रान्त्ये श्रान्तो देहिमनोस्रगः ॥१॥ कमाद्वीजक्षेत्रसेकाङ्करीभावपत्रकाण्डशाखापुष्पफलच्छाया-विस्तारादिवर्णनकमात् । आजीवनमाजीवो विवेकिजनैः सर्व-प्रकारेरुपजीवनं तस्फलशालिनीम् । लताः शाखाः कल्पल-ताश्व तत्सहिताम् । मनोपृगविश्वान्तिदाम् । सत्तां स्थितिम् ॥ १ ॥ आजीव्यते सर्वात्मना उपजीव्यतः इत्याजीवस्तथावि-धम् ॥ २ ॥ शत्रुखजनापमानादिजन्यदुःखेन भाग्यवशात्ख-यमेव वा साधुमुहजनोपदेशादिना निमित्तान्तरेण वा यथा-कथंचिदुदितं निर्वेदमुत्कटजिहासात्मकं परवेराग्यमस्य समाधा-नतरोबीं जो विदुरित्यर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥ तच संसारनिर्वेदरूपं समाधिवीजं विवेकिजनलक्षणे कानने नन्दने विविक्तायां विवे-कपरिष्कृतायां चित्तभूमा स्वयमेव पतित नवा पापेक्षा-स्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ उक्तवैराग्यलक्षणं ध्यानबीजं महाधिया तत्परिवर्धनोद्युक्तद्रब्धिया पुरुषेणाऽमीमिर्वस्यमाणलक्षणैः सेकैः संसेक्कव्यं न प्रसूतिवैराग्यवरपुनर्भोगासक्त्या नाशनीयमि-त्यर्थः । अखेदिना कामकोधादिवेगः खेदस्तरसहिष्णुना ॥ ६ ॥

१ मनो बिदुः इति पाठो युक्तः.

शुद्धैः स्निग्धैः पवित्रेश्च मधुरैरात्मनोहितैः। सत्संगमनवश्रीरैरैन्द्वेरमृतैरिव ॥ 8 अन्तःशून्यप्रदेः पूर्णैः स्वच्छेरमृतशीतलेः । विस्तैरमृताकुस्याशास्त्रार्थवरवारिभिः॥ स्वचित्तभूमी पतितं परिकाय महाधिया। बीजं संसारनिर्वेदो रक्ष्यं ध्यानस्य यह्मतः ॥ ९ तपःप्रकारदानेन पदार्थघटने शितः। तीर्थायतनविश्रान्तिवृतिविस्तारकल्पनैः॥ 80 कर्तव्योऽङ्करितस्यास्य रक्षिता शिक्षिताशयः। संतोषनामा प्रियया नित्यं मुदितयान्वितः॥ ११ पश्चारिस्थताशाविहगान्परप्रणयपश्चिणः। असादापततः कामगर्वगृधान्निवारयेत्॥ १२ मृतुमिः सत्त्रियाकुन्तैर्विवेकाकातपैरपि। अचिन्त्यालोकदैरसान्मार्जितव्यं रजस्तमः॥ १३ संपदः प्रमदाश्चेष तरङ्गा भोगभङ्गराः। पतन्त्यशनयस्तस्मिन्दुष्कृताभ्रसमीरिताः॥ १४ **धैर्योदार्यद्यामश्रैर्जपस्नानतपोद्रमेः** । विनिवारयितव्यास्ताः प्रणवार्थत्रिश्रलिना ॥ 30 इति संरक्षितादसाद्यानवीजात्प्रवर्तते। आभिजात्योद्यतः श्रीमान्विवेकाख्यो नवाङ्करः तेन सा चित्तभूभीति सप्रकाशा विकासिनी। भवत्यालोकरम्या च खं यथाभिनवेन्द्रना ॥ 5.3 तसादक्करतः पत्रे उभी विकसतः स्वयम्। एकं शास्त्राभिगमनं द्वितीयं साधुसंगमः॥ 86

सत्र प्रथमं सरसंगमरुक्षणैनवैः क्षीरैः पश्चात्तन्मुखावगतशास्त्रा-मृतैः सेक्तव्यमित्याह—शुद्धैरिति द्वाभ्याम् ॥ ७ ॥ नितिनेतीति सर्वद्वैतनिषेधादन्तःसर्वसंसारश्रुन्यात्मप्रदेः अतएव पूर्णः सर्वता-पोपशमनादमृतवत्स्वाद्शीत्रः। गुरुहृदयस्थस्य ब्रह्मसरसो व्या-ख्याद्वारा प्रसतैः । अमृतप्रवाहस्यासमन्तात्कुल्यावद्वारभूतप्रव-णमननादिशास्त्रार्थवरवारिमिः ॥ ८ ॥ ध्यानस्य बीजं संसार-निर्वेदरूपं रक्ष्यम् ॥ ९ ॥ के ते यहास्तानाह — तप इति । तपोऽत्र भगवदुक्तं 'देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्'इत्या-दिकं कायिकं बाचिकं मानसं च त्रिविधं सालिकं तहक्षणेन प्रकीर्यन्त इति प्रकाराः क्षेत्रदोहदास्तद्दानेन । पदार्था अमानि-बादयस्तेषां घटनेन ईशितैः समिथंतैः । तीर्थायतनादिपुण्य-स्थाने विश्रान्तिवासस्तब्रक्षणस्य वृत्तिविस्तारस्य प्राकारप्राचीरा-बावरणविस्तारस्य कल्पनैः ॥१०॥ एवं सेचनाद्यपार्थरङ्करितस्य संजाताङ्करस्यास्य बीजस्य रक्षणीयायेषु शिक्षिताशयो निपुणतरो मुदिताख्यया त्रियया परुयान्वितः संतोषनाम। रक्षिता परि-पाउकपुरुषः कर्तव्यः ॥११॥ अस्माद्रक्षकाद्वेतोः पश्चात्पूर्वया-सनासु स्थितानाशास्यशणान्विहगान्परेष्वात्मातिरिक्तेषु पुत्र-मित्रधनादिषु प्रणयोऽनुरागस्तद्रपान्पक्षिणः कामगर्वादिगृधांश्र ध्यानाश्चरविषातार्थमापततो निवारयेत् ॥ १२ ॥ अहिसाप्रधा-

| स्तम्भमेष निबंधाति स्थयं नाम समुद्रातिम्। | |
|--|----|
| संतोषत्वग्विवलितं वैराग्यरसरञ्जितम् ॥ | १९ |
| वैराग्यरसपुष्टात्मा शास्त्रार्थप्राष्ट्रपान्वतः। | |
| स्वल्पेनेव स्वकालेन परामेति समुप्रतिम्॥ | २० |
| शास्त्रार्थसाधुसंपर्कवैराग्यरसपीवरः। | |
| रागद्वेषकपिक्षोभैर्न मनागपि कम्पते ॥ | २१ |
| अथ तस्मात्प्रजायन्ते विश्वानालंकताकृतेः। | |
| लता रसविलासिन्य इमा विततदेशगाः॥ | २२ |
| स्फुटता सत्यना सत्ता घीरता निर्विकल्पता। | |
| समता शान्तना मैत्री करुणा कीर्तिरार्यता॥ | २३ |
| लतामिर्गुणपत्राभिः स ध्यानतरुक्तितः। | |
| यशःषुष्पाभिरेताभिः पारिजातायते यतेः॥ | રક |
| इत्यसौ क्षानविटपी लतापल्लवपुष्पचान्। | |
| भविष्यज्ञ्ञानफलदो दिनानुदिनमुत्तमः॥ | २५ |
| युशःकुसुमयुच्छाक्यो गुणपल्वलास्वान्। | |
| वैराग्यरसविस्तारी प्रश्नामअरिताकृतिः॥ | २६ |
| सर्वाः शीतलयत्याद्याः प्रावृषीव पयोधरः। | |
| सर्गात्र्पं रामयति सूर्यतापमिवोडुपः॥ | २७ |
| प्रतनोति शमच्छायां छायामिव धनागमः। | |
| निरोधमास्फारयति शमोऽनिल इवाम्बुदम्॥ | २८ |
| निबधात्मात्मना पीठं कुलाचल इव स्थितम्। | |
| फलस रचयत्युर्धं घटिकामङ्गलादिताम्॥ | ર્ |
| विवेककल्पवृक्षे तु वर्धमाने दिनेदिने। | |
| छायावितानवितते पुंसी हृदयकानने ॥ | ३० |

नलान्मृदुभिर्यमनियमासनप्राणायामेश्वरोपासनादिसत्क्रियाल-क्षणः कुन्तमार्जनीपुरुः । अस्मादङ्करक्षेत्राहजो । माजितव्यम् । एवमचिन्त्वब्रह्मलोकाँदविवेकातपैस्तमोऽज्ञानतिमिरमपि मार्जि-तव्यम् ॥ १३ ॥ तस्मित्रक्करे ॥ १४ ॥ प्रणवमात्राभिर्वि-राडादिभिः स्थूलसूक्ष्मप्रपश्चावलापनेन । तद्वोघेनंति यावत् ॥ १५ ॥ आभिजात्येन पुष्टिसीन्दर्यातिशयेनोन्नतः ॥ १६ ॥ ॥ १० ॥ १८ ॥ साम्भं काण्डम् , स्थेर्य हढमूलताम् । समुत्रतिमुच्छायम् ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ विज्ञानं श्रवणा-ज्ञानम् । इमा वश्यमाणाः । विततदेशगाः प्रतानविस्तीर्णा अपरिच्छित्रात्मप्रदेशगताश्च स्फुटता खात्मतत्त्वस्य स्फुटीभावस्तदेकसत्यता । सत्ता तदा-रमना स्थितिः । धीरता तत्राप्यकम्प्यता । समता सर्ववेषम्य-निवृत्तिः ॥ २३ ॥ गुणाः शान्त्यादयः पत्राणि यासाम् । यतेः सन्यासिनः ॥ २४ ॥ भविष्यञ्ज्ञानं मूलाज्ञानोच्छेदक्षमो ब्रह्म-साक्षात्कारः सप्तमभूमिकाविश्रान्तिपर्यन्तः ॥ २५ ॥ २६ ॥ सर्गातपं सांसारिकतापम् ॥२०॥ निरोधं चित्तस्थर्यम् ॥२८॥ पीर्ट मूलबन्धम् । फलस्य कैवल्याख्यस्य घटिकां घटयित्रीम् । मञ्ज्ञादितां शान्त्यादिकल्याणगुच्छित्रयं रचयति ॥२९॥३०॥

प्रवर्तते शीतलता तलतापापहारिणी। अम्युह्मसन्मतिलता तुषारोदरसुन्दरी॥ 38 यस्यामवान्तरश्चान्तो विश्वाम्यति मनोमृगः। आजन्मजीर्णपथिकः पथि कोलाहलाकुलः॥ 32 सत्तामात्रात्मशारीरचर्माथं प्रेक्षितोऽरिमिः। नानातासारसाकारगोपयक्कर्जरोन्मुखः॥ 33 संसारारण्यविसरद्वासनापवनेरितः । अहन्तातापसरिता सर्वदा विप्रदारदी॥ રેઇ दीर्घादरीदूरचितसारसंचारजर्जरः। पुत्रपौत्रपरामश्रेत्रतापात्पतितोऽवटे ॥ 34 **स्था**सिताविलुठनात्संकटैः कुण्ठिताङ्गकः । तृष्णाश्रीसरितं गृह्वन्कलोलेर्वूरमाहतः॥ ३६ व्याबिदुर्ध्याधवैधुर्यपलायनपरायणः। अशङ्कितविधिर्ध्याधपातादिव कृताकृतिः॥ 30 क्षेयास्पदसमायातदुःखसायकशङ्कितः। वैरिविद्रवणव्यन्नो द्यदाहरणाङ्कितः॥ ३८ उन्नतानतसंपातनिपातेनातिघूर्णितः। विकारोपलनिर्घातैः पारम्पर्येण चूर्णितः ॥ ३९ **तृष्णाचारु**छताजालप्रवेशयश्विक्षतः ।

त्रजस्य मूळभूमेईदयस्य प्रशिद्धानाध्यात्मिकादितापानपहरति तच्छीला ॥ ३१ ॥ अवान्तरेषु संसारप्रान्तरेषु श्रान्तो मनोमृगो यस्यां छायायां विश्राम्यति । तमेव मनोमृगं सर्गोपान्सकोकस्थमनोहरिणक इत्यन्तं बहुतरश्रमादिहेतूपपा-दकैर्विश्रषणैर्वर्णयति--आजन्मेत्य।दिना । पथि देवारप्राप्ते स-न्मार्गेडपि नानाबादिकोलाहलैराकुलो व्ययः सन्श्रंशित इलार्थः ॥ ३२ ॥ अरिभिः कामायरिषद्वर्गेलुब्धकैः । सत्तामात्रात्मा **यः शारीरः पुरुषस्तब्रक्षणस्य चर्म**णोऽपद्दारार्ये प्रेक्षितः। अनुस्तत इतियावत् । नानातालक्षणेष्वसारेषु साकारेषु शरीरादिकण्ट-**ककुजेषु सुद्दर्भद्व**र्निलीय स्वं गोपयंश्वासी तद्दोषकण्टकेर्जर्जर-मुर्ध मुखं यस्य स चेति बहुवीह्यलरपदः कर्मधारयः ॥३३॥ अह्न्तालक्षणया तापसरिता मृगतृष्णानद्या सर्वदा विप्रधावनन दारदो विषमेदः सोऽस्यास्तीति दारदी विषाकानत इवानतर्दाह-तृष्णादिव्याकुछ इसर्थः ॥ ३४ ॥ दीर्घेष्वेव भोगविस्तारेष्वा-दरोऽस्यास्त्रीत्यादरौ नाल्पसंतुष्ट इत्यर्थः । अतएव दूरेऽप्यप-चितेषु सारेषु हरिततृणप्रायेषु विषयेषु संचारेण धावनेन ज-र्जरः शियिछितगात्रः । पुत्रपैत्रादीनां परामर्शः परिपालनं तत्त्रयुक्तादाध्यात्मिकादिजिविधदावामित्रतापादवटे अनर्थगर्ते पतितः ॥३५॥ लक्ष्मीः संपत्तक्रक्षणासु लतासु पादवेष्टनेन वि-**छठनाच्छत्रु नोरराजादिप्रयुक्तैर्धन्धनताडनदण्डनादिसंकटैः** कु-फितान्नकः । कल्लोरीः अशनायापिपासाशोकमोद्दजरामृत्युल-क्षणैक्सिंमिः ॥ ३६ ॥ न शक्कितः संभावितो विधिर्दैवं येन । कृताकृतिः संकृत्रिताकारः ॥ ३७ ॥ श्रेयानां नेत्रादिशाने-न्त्रियाखाद्यानां गौतघण्टारावयवाद्वरादीनामास्पदेभ्यो निमित्त-

| विषयाजगरोदारविषक्त्रकारमूर्विद्धतः। कामुकः कामिनीभूमौ रसात्मायो विपोधितः ध कोपदावानलप्रुष्टपृष्ठविस्फोटदाहवान्। सदा गतागतानेकदीर्घदुःखप्रदाहवान्॥ स्वात्मलग्नामिलापांशदंशदोषरपदुतः। भोगलोभलसन्मोदश्यगालचिरविद्धतः॥ स्वक्रमंकर्तृतोद्भान्तदारिद्यद्वीप्यनुदुतः। व्यामोहमिहिकान्धत्वक्रूटाषटलुठन्तनुः॥ मानसिंहसमुल्लासहृदयोत्कम्पनातुरः। मरणेन रणे येन वृक्षपुष्पमिवेश्वितः॥ गर्वेण गिरणायाशु दूरतो जनसेवितः। कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः॥ तारुण्यनारीसुद्धदा क्षणमालिक्क्य वर्जितः। दुःसंचारेष्र्पवनैः कुपितैरिव वर्जितः॥ कदाचिन्निर्वृति याति स शमं च तरौ कचित्। | Ro |
|---|-----|
| विषयाजगरोदारविषक्त्त्कारमूर्विछतः। कामुकः कामिनीभूमी रसात्त्रायो विपोधितः ध्रक्षोपदावानलप्रुष्टण्डविस्फोटदाहवान्। सदा गतागतानेकदीर्घदुःखप्रदाहवान्॥ ध्रम्मात्रामेललापांशदंशदोषरपद्धतः। भोगलोभलसन्मोदश्र्यगालचिरविद्धतः॥ ध्रम्मकर्मकर्तृतोद्धान्तदारिष्यद्वीप्यनुद्धतः। व्यामोहमिहिकान्धत्वक्र्र्यास्त्रस्यनातुरः। मानसिंहसमुल्लासहृद्योत्कम्पनातुरः। मरणेन रणे येन वृक्षपुष्पमिवेश्चितः॥ ध्रम्मातेणविरणायाद्यु दृरतो जनसेवितः। कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः॥ ध्रममेः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः॥ ध्रममेन्दिक्विवीतं याति स्वामं च तरौ कचित्। | |
| कामुकः कामिनीभूमा रसात्त्रायो विपोधितः ध कोपदावानलसृष्ट्पृष्ठविस्फोटदाहवान् । सदा गतागतानेकदीर्घदुःखप्रदाहवान् ॥ स्वात्मलग्नामिलापांशदंशदोषरपद्गतः । भोगलोभलसन्मोदश्यगालचिरविद्गतः ॥ स्वक्मंकर्तृतोन्नान्तदारिद्यद्वीप्यनुद्गतः । व्यामोहमिहिकान्धत्वकृटाषटलुठन्तनुः ॥ मानसिंहसमुल्लासहृद्योत्कम्पनातुरः । मरणेन रणे येन वृक्षपुष्पमिवेक्षितः ॥ गर्वेण गिरणायाग्रु दृरतो जनसेवितः । कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः ॥ तारुण्यनारीसुद्भदा क्षणमालिक्क्य वर्जितः । दुःसंचारेषूप्यनैः कुषितिरव वर्जितः ॥ कदाचिन्निर्वृति याति स शमं च तरी कचित् । | ४१ |
| कोपदावानलसृष्ट्रपृष्ठविस्फोटदाहवान् । सदा गतागतानेकदीर्घदुःखप्रदाहवान् ॥ स्वात्मलप्रामिलापांशदंशदोष्ठपदुतः । भोगलोभलसन्मोदश्यगालचिरविद्वतः ॥ स्वक्रमंकर्तृतोद्धान्तदारिद्यद्वीप्यनुदुतः । व्यामोहमिहिकान्धत्वकूटाषटलुठत्तनुः ॥ स्वक्रमंकर्तृतोद्धान्धद्वकूटाषटलुठत्तनुः ॥ स्वानिसिहसमुह्लासहृद्योत्कम्पनातुरः । मरणेन रणे येन वृक्षपुष्पमिविश्वतः ॥ स्वाविण गिरणायागु दृरतो जनसेवितः । कामः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः ॥ स्वाक्ष्यनारीसुहृदा क्षणमालिक्क्य वर्जितः । दुःसंचारेष्र्पवनैः कृषितरिव वर्जितः ॥ स्वदाचिन्निर्वृति याति स शमं च तरौ कचित् । | |
| सदा गतागतानेकदीर्घदुःखप्रदाहवान् ॥ स्वात्मलग्नामिलापांशदंशदोषरपद्भतः । भोगलोभलसन्मोदश्यगालचिरविद्भतः ॥ स्वक्रमंकर्तृतोद्भान्तदारिष्णद्वीप्यनुद्भतः । व्यामोहिमिहिकान्धत्वक्रटाषटलुठक्तनुः ॥ स्वानिसिहसमुलासह्दयोत्कम्पनातुरः । मरणेन रणे येन वृकपुष्पमिवेश्नितः ॥ स्वानिष्णायाशु दूरतो जनसेवितः । कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः ॥ स्वानिस्प्यनिसुह्दा क्षणमालिक्क्य वर्जितः । दुःसंचारेष्व्पवनैः कुपितिरिव वर्जितः ॥ स्वानिश्वर्वृतिं याति स शमं च तरी कचित् । | ४२ |
| स्वात्मलग्नामिलापांशदंशदोषैरुपद्यतः। भोगलोभलसन्मोदश्यगालचिरविद्यतः॥ स्वक्रमंकर्तृतोद्भान्तदारिद्यद्वीप्यनुद्यतः। व्यामोहमिहिकान्धत्वक्रूटाषटलुठन्तनुः॥ भानसिंहसमुल्लासहृद्योत्कम्पनातुरः। मरणेन रणे येन वृक्कपुष्पमिवेक्षितः॥ शर्वेण गिरणायाग्रु दृरतो जनसेवितः। कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः॥ तारुण्यनारीसुहृदा क्षणमालिक्क्य वर्जितः। दुःसंचारेषूपवनैः कुषितरिव वर्जितः॥ सदाचिक्षिर्वृतिं याति स शमं च तरौ कचित्। | |
| भोगलोभलसन्मोदश्यगालिक्रिवहुतः॥ ध्वक्रमंकर्तृतोद्भान्तदारिद्यद्वीप्यनुहुतः। व्यामोहिमिहिकान्धत्वकृटाषटलुठन्तनुः॥ ध्वमानिसिहसमुल्लासहृदयोत्कम्पनातुरः। मरणेन रणे येन वृक्षपुष्पमिवेक्षितः॥ ध्वमानि गिरणायाशु दृरतो जनसेवितः। कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः॥ ध्वमाने समन्तते समन्ति समन्ति समन्तते समन्ति सम | ક ક |
| स्वकर्मकर्तृतोन्नान्तदारिद्यद्वीप्यनुदुतः । व्यामोहमिहिकान्धत्वकूटाषटलुठत्तनुः ॥ ४ मानसिंहसमुल्लासहृद्योत्कम्पनातुरः । मरणेन रणे येन वृक्षपुष्पमिवेक्षितः ॥ ४ गर्वेण गिरणायाशु दृरतो जनसेवितः । कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः ॥ ४ तारुण्यनारीसुहृदा क्षणमालिक्क्य वार्जतः । दुःसंचारेषूपवनैः कुषितरिव वार्जतः ॥ ४ कदाचिक्षिर्वृति याति स शमं च तरौ कचित् । | |
| व्यामोहिमिहिकान्धत्वकूटाषटलुठत्तनुः॥ मानसिंहसमुह्नासद्भ्दयोत्कम्पनातुरः। मरणेन रणे येन वृक्कपुष्पमिवेक्षितः॥ गर्वेण गिरणायाग्रु दृरतो जनसेवितः। कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः॥ सारण्यनारीसुद्धदा क्षणमालिक्का वर्जितः। दुःसंचारेषूपवनैः कुषितैरिव वर्जितः॥ अदाचिक्षिर्वृतिं याति स शमं च तरौ कचित्। | 88 |
| मानसिंहसमुह्यासहृद्योत्कस्पनातुरः। मरणेन रणे येन वृक्षपुष्पमिवेक्षितः॥ ४ गर्वेण गिरणायाशु दृरतो जनसेवितः। कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः॥ ४ तारुण्यनारीसुहृदा क्षणमालिक्क्य वार्जतः। दुःसंचारेषूपवनैः कुषितैरिव वर्जितः॥ ४ कदाचिक्रिर्वृतिं याति स शमं च तरौ कचित्। | |
| मरणेन रणे येन वृक्षपुष्पमित्रेक्षितः ॥ ४ गर्वेण गिरणायाशु दृरतो जनसेवितः । कामैः समन्ततोदम्तवितानितयवाङ्करः ॥ ४ तारुण्यनारीसुद्धदा क्षणमालिक्क्य वार्जेतः । दुःसंचारेषूपवनैः कुपितरिव वार्जेतः ॥ ४ कदाचिन्निर्वृति याति स शमं च तरौ कचित् । | ४५ |
| गर्वेण गिरणायाशु दूरतो जनसेवितः। कामैः समन्ततोदन्तवितानितयवाङ्करः॥ ४ तारुण्यनारीसुद्धदा क्षणमालिक्का वर्जितः। दुःसंचारेषूण्यनैः कुषितैरिय वर्जितः॥ ४ कदाचिक्रिर्वृतिं याति स शमं च तरौ कचित्। | |
| कामैः समन्ततोदन्तिवतानितयवाङ्करः॥ ४ तारुण्यनारीसुद्धदा क्षणमालिङ्क्य वार्जितः। दुःसंचारेषूपवनैः कुपितरिव वार्जितः॥ ४ कदाचिन्निर्वृति याति स शमं च तरौ कचित्। | ४६ |
| तारुण्यनारीसुद्धदा क्षणमालिक्का वर्जितः। दुःसंचारेषुण्यनैः कुषितरिय वर्जितः॥ ४ कदाचिन्निर्वृति याति स शमं च तरी कचित्। | |
| दुःसंचारेषूपवनैः कुषितैरिव वर्जितः ॥ ४ कदाचिक्रिर्वृतिं याति स शमं च तरौ क्रचित्। | 80 |
| कदाचित्रिवृतिं याति स शमं च तरौ कचित्। | |
| | ४८ |
| | |
| मनोहरिणको राजन्नाजीवमिव भास्वति ॥ ४ | ક્ષ |

भूतेभ्यो लुब्धकक्षेत्रकाविभ्यः समायाताहुःखसायकाच्छक्कितः। दषद्भिराहरणः प्रहारेरिव पूर्वपूर्वदुःखानुभवसंस्काररक्कितः ३८ उन्नतानतेषृष्ट्यीयस्तनेषु स्वर्गनरकादिषु कमारसंपातनिपातेन । दपदाहरणाङ्कित इत्यत्र दपत्पदार्थं दर्शयति—विकारेति । वि-काराः कामकोधभयादयः । पारम्पर्येण नैरन्तर्येण ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ सुदुर्प्रहो गजेन्द्रः कामः ॥ ४१ ॥ विपोधितो वि-मर्दितः ॥ ४२ ॥ कोपदावानलेन प्लुष्टो दग्धः । अतएव पृष्ठे विस्फोटादिव बहिर्दाहवान् । सदा गतागर्तर्तिषयेषु पुनःपुनर्श्र-मण्रनन्तचिन्ताशोकादिदीर्घदुःखेरन्तःप्रदाहवान् ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ दारिद्यलक्षणेन द्वीपिना व्याघ्रेणानुद्वतः । पुत्रकछ-त्रासक्तिलक्षणया व्यामोहमिहिकया अन्धत्वं सति कृटेषु कप-टेपु गिरिश्टक्षेष्ववटेषु नीचकृत्येषु गतेषु च छठतनुः ॥ ४५ ॥ हृदयस्योरकम्पनं भयं तेनातुरः । येन प्रसिद्धेन मरणेन मृत्यु-व्याध्रेण रणे संप्रहारे वर्कन्ते आददते वृक्षन्ति वा वृकाः ख-नकास्तेषां पुष्पमिव सुखदार्थ ईक्षितः ॥ ४६ ॥ गर्वेणार्थाद-जगरेण निगरणाय दूरती जना यस्मालहरतीजनं महारण्यं तत्र सेवितः । निरं प्रतीक्षित इति यावत् । कामैनिमित्तः सम-न्ततो दैन्ययात्रादिना दन्तविकासाद्वितानिता विस्तारिता इव दन्तप्रभा यवाङ्करा येन ॥ ४७ ॥ तारुण्यलक्षणेन नार्यर्थ सु-हदा न खतः । पवनैर्क्षक्षापवनसद्देशिन्द्रयेर्दुःसंचारेषु नरक-स्थावरादियोनिकान्तारेषु वर्जितो बहुशः क्षिप्तः ॥ ४८ ॥ हे राजनिति दशरथस्य भावितृत्त्या रामस्य वा संबोधनम् । इंदशोऽयं मनोहारेणकः कदाचिद्वहजनमसंचितस्कृतपरि-पाकभाग्योदयकाले कविद्धिकारिजन्मनि शमादिसाधनसः

तालीतमालवकुलादिकचुक्षगुल्मः विश्रान्तिषु प्रजुरपुष्पविलासहासैः।

नामापि यस्य न विदन्ति सुखस्य मृदाः प्राप्नोति तच्छमतरोः स्वमनोमृगो वः॥ ५०

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मनोस्मावपद्वर्णनं नाम चतुक्षलारिशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पश्चचत्वारिंदाः सुगैः ४५

वसिष्ठ उवाच ।
इति विधान्तवानेष मनोहरिणकोऽरिहन् ।
तत्रैव रतिमायाति न याति विटपान्तरम् ॥
पतावताथ कालेन स विवेकद्भमः फलम् ।
अन्तस्यं परमार्थात्म शनैः प्रकटयत्यलम् ॥
ध्यानद्भमफलं पुण्या तद्त्ती स्वमनोमृगः ।
अधःस्थितः प्रान्तगतं तस्य पर्यति सत्तरोः ॥
आरोहति नरो वृक्षं तदास्वाद्यिनुं फलम् ।
अन्यवर्गपरित्यागा वितताध्यवसायवान् ॥
विवेकवृक्षपाद्माम वृत्तीस्त्यज्ञति भूगताः ।
उत्रतं पद्भासाध भूयो नाधः समीहते ॥
तेनोसमक्लार्थन संस्कारान्प्राक्तनानसो ।
विवेकवृद्धपारुद्धस्त्यज्ञत्यहिरेव त्वचम् ॥
इसत्यक्षः पद्मस्दमात्मानमचलोकयन् ।

हितं यथा स्यासथा वर्णितलक्षणे ध्याननरे निर्दृति विथान्ति-सुखं याति । यथा आसमन्ताज्ञोवरीत्वाजीयं प्राणिजातं राजी दीतान्यकारार्तं भास्ति सृर्येऽभ्युदितं निर्दृतं याति तद्वदित्ययेः ॥ ४९ ॥ हे श्रोतारः, तालीतभालादिदृक्षमूलविशान्तिसदृशेषु भूम्यादिसत्यलोकान्यलोकवासेषु प्रचुरपुष्पविलासहाससदृशेरिन-त्यभोगाभासिर्यस्य निर्दित्यस्य भूमाद्वयस्य सुरुस्य नामापि भूता आरमज्ञानश्च्या जना न विद्वन्ति तसादशमपुनरावृद्वि-मोक्षविश्रान्तिसुखं वः स्वमनोस्यः प्रासुक्तरोत्या क्षेत्रयोजसे-कादिना विधिताच्लमतराप्योनकत्यवृक्षात्प्राप्नोतीत्वर्थः ॥ ५० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्वर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्षे चतुश्रत्वारिशः सर्यः ॥ ४४ ॥

> वर्ण्यते मनसो ध्यानपादपारोहणक्रमः । आरोहतः सुम्बोरकर्पोऽप्युत्तरोत्तरभूमिषु ॥ १ ॥

हे अरिह्न् । तत्र ध्यानकस्पतरायंव ॥ १ ॥ एतावता प्राग्वणितेन गुच्छारम्भान्तेन मनोमृनविश्रान्त्यन्तेन च कालेन स वर्णितो विवेकसिह्तध्यानद्वमोऽन्तस्थं पश्चकोशान्तस्थं गुच्छान्तस्थं च परभार्थात्म पारमार्थिकस्यस्थ्यं केवल्यफले शनेन-स्यमणभूमिकारोहणक्रमेण परिपच्यमानं प्रकटयति साक्षादनु-भावयति ॥ २ ॥ तत्रादावसंभावनादोषस्थेषत्क्षयान्मन्दान्ध-कारे घटादेरिव संभावनाप्रायं साक्षात्कारे चतुर्थभूमिकाद्वारे दर्शयति—ध्यानेति । प्रान्तगतं शास्त्राम्भंत्रम् ॥३॥ प्राक्तनमृगह्यदेश्यकस्य वृक्षारोहणे अनुपर्योगान्वापळपञ्चभावादिनिवृत्तेश्व नर दृत्युक्तः ॥ ४ ॥ कथमारोहति तदाह—विवेकेति । वि-

एतावन्तमहं कालं कुपणः कोऽभवं त्विति॥ ও करूणादिषु तेष्वस्य भ्रमञ्ज्ञाखान्तरेषु सः। लोमव्यालमधः कुर्वन्सम्राडिच विराजते ॥ 4 हृद्येन्दोर्गलश्रेणी दुःखाक्वतिमिरावितः। कृष्णायःश्रृङ्खलातृष्णा दिनानुदिनमुज्झति ॥ Q, उपेक्षते न संप्राप्तं नाप्राप्तमभियाञ्छति । सोमसीम्यो भवत्यन्तः शीतलः सर्ववृत्तिषु ॥ 80 शास्त्रार्थपल्ववेष्त्रेव निपण्णात्मावतिष्ठते । उन्नतावनतायाता अधः पश्यञ्जगद्वतीः॥ 38 भीमद्रमलतोत्कीर्णपुष्पप्रकरदन्तुराः। प्राक्तनीः स्वाः स्थलीः पद्दयन्हसत्यन्तवेराकताम१२ तेषु तत्स्कन्धदेशेषु तथोड्डीनविडीनया । हारिण्या विहरक्षात्या राजेव परिराजते ॥ १३

वेकरको रहप्रतिष्टितः पादो यस्य तथाविषो नाम प्रथमं भूला प्राक्तनीः संसारभूगता देहादिष्वहंममतादिवृत्तीस्त्यजति--'पा-दस्य लोपोऽहरुखादिभ्यः' इति लोपः समासान्तः । नाधः समी-हते आरोडव्यावलम्बनीयपृक्षमागेष्येव सावधानहांष्ट्रचित्तनि-वेशनादिति भावः॥ ५ ॥ संस्कारांस्त्यजति । न किचित्पूर्यतनं सारतीति यावत् ॥ ६ ॥ कदाचिँदवात्स्मरत्रपि इसति । कृपणो विषयसुखकणप्रार्थनया दीनः ॥ ७ ॥ करणा सर्वभूतद्या आ-दिपदात् 'अभयं सलसंशुद्धिः नयोगव्यवास्थतिः देखादा दैव्यः संपदो गृह्यन्ते । तद्वक्षणेषु अस्य वृक्षस्य शाखान्तरेषु असन् व्युत्थानकाले विहरन्सम्राडिव पूर्णकामः ॥ ८ ॥ हृदयेन्दोः सद्बद्धिचन्द्रस्य गठलस्मित्रिति गठः कठाक्ष्यहेतुर्दर्शस्य श्रेणी पङ्किभृता । दुःसलक्षणस्य अञ्जस्य चन्द्रस्य बहुलभ्रान्तिहेतु-स्तिमिरं नेत्ररोगांवदाषस्तदावितः कृष्णायः अयोजातिमेदस्त-त्रिमिता श्रद्धछेव प्राणिना बन्धनहेतुः ईटशी तृष्णा शुमेच्छा-रम्भदिनमारम्य दिनानुदिनं क्षीयमाणा चतुर्थभूभिकायां निः-शेषमुज्झति । 'रसोऽप्यस्य परं हट्टा निवर्तते'इति भगवद्वचना-दिति भावः ॥ ९ ॥ १० ॥ शास्त्रमध्यातमशास्त्रं तदर्थाः शम-दससतोपादयस्तल्लक्षणेषु पहचेषु किसलयेषु । इतरशास्त्रानु-सारिप्रवृत्ती प्राणिनां ब्रह्मलोकपर्यन्तमुन्नताः खाभाविकप्रवृत्ती निरयान्तमवनताश्च जगद्भतीरघः अज्ञदशायामेवेति परयन् ॥ १९ ॥ भीमा भयानका विषद्वमळतासत्त्रोत्कीर्णैर्विषपुष्पप्र-करेदेन्द्रराः प्रकटितोन्नतदन्ता इव स्थिताः स्थलाः प्राग्वणिताः सप्त अज्ञानभूमिकाः पश्यनस्मरन् ॥ १२ ॥ तस्य ध्यानतरोः

पुत्रदारसमग्राणि मित्राणि च धनानि च। जन्मान्तरकृतानीव स्वप्नजानीव पश्यति॥ १४ रागद्वेषभयोनमादमानमोहमहत्त्रया । नटस्येवास्य दृश्यन्ते शीतलामलचेतसः॥ १५ उन्मत्तचेष्टिताकारा हसत्यपि पुरोगताः। तरङ्गभङ्गराधाराः संसारसरितो गतीः॥ १६ न स चेतयते काश्चिल्लोकदारधनैपणाः। अपूर्वपद्विश्रान्तो जीवन्नेव यथा रावः॥ १७ केवलं केवले शुद्धे बोधात्मनि महोन्नते। दत्तदृष्टिः फले तिसम्परं समधिरोहति ॥ १८ स्मृत्वा स्मृत्वापदः पूर्वं संतोषामृतपोषितः। अर्थानामप्यनर्थानां नाशेषु परितृष्यति ॥ १९ व्यवहारेषु कार्येषु भोगसंपादकेष्वपि । परमुद्वेगमायाति सनिद्र इव बोधितः॥ २० दीर्घाध्वग इवोदारामनारतमयाधिताम्। चिरं मौर्ष्यभ्रमाकान्तो विश्रान्तिमामेवाञ्छति २१ निःश्वासबोधितोऽप्यग्निरनिन्धन इवात्मनि । श्वासमात्रसमोऽप्यन्तरतिष्ठन्नेव शाम्यति ॥ २२ आपतन्तीं बलादेव पदार्थेष्वरति शनः। न शक्तोति निराकर्ते दृष्टिमत्र च्युतामिव ॥ २३ तां महापदवीं गच्छन्परमार्थफलप्रदाम् । भूमिकामप्युपायाति वचसामप्यगोचराम्॥ રઇ

स्कन्धदेशेषुत्तरोत्तरभूमिकाभेदेग्वभ्यायदशायामारुह्यावतरणा-दुर्हीनविडीनप्रायया अतएव विहरशाला चित्तवृत्त्या ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ व्यवहारे नटस्येव पराजुरञ्जनमात्रप्रधानया कृति-मया रागादिमहत्तया अस्य दश्यन्ते । व्यवहारा इति शेपः ॥ १५ ॥ पुरोगता अपि संसारमृगतृष्णासरितो गर्तार्मिश्याख-बुद्धा हसति ॥ १६ ॥ १७ ॥ परं पश्चमभूमिकास्थानम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ यथा सनिदः पुरुषो बोघितः सन्निदासुखर्वि-च्छेदादद्वेगमायाति तद्वदयमवश्यकार्येषु व्यवहारेषु परेवींध्य-मानः समाधिसुखविच्छेदादुद्वेगमायातीत्यर्थः ॥ २० ॥ प्राक् चिरं मौर्ह्यप्रयुक्तन जन्ममरणपरम्पराश्रमश्रमेणाकान्त इति सांत्रतं समाधिविश्रान्तिमेवाभिवाञ्छतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ श्वा-समान्नेणेतरजनसमोऽप्यन्तरहंभावाभिमानेनाऽतिष्ठन्नेवेति पूर्णा-त्माने शाम्यांत ॥ २२ ॥ बाह्यपदार्थेष्वरति पूर्वाभ्यासवछा-दापतन्ती अत्र बाह्यार्थेषु च्युतां स्वळितां यथात्राप्तोपमी-गर्षिमव निराकर्तुं न शकोति अप्रतिकूळलादिति भावः ॥ २३ ॥ भूमिकां षष्ठभूमिकाम् ॥ २४ ॥ अचेष्टितेषु प्रयक्ष-रहितेष्वेन कुतोऽपि परप्रयत्नादिनिमित्तातप्राप्तेषु ॥२५॥२६॥ खगः सिद्धः । अगपदवीं मेरशिखरमिव पक्षी बृक्षाप्रमिवेति वा ॥ २० ॥ तस्य स**प्तमभू**मिकाप्रतिष्टामाह—तत इति । अ-श्विकां बुद्धिं विहायेखनेन तत्रास्यात्यन्तिकवासनाक्षयमनोनाशौ वर्शिती । गृह्णाति भूमानन्दभद्यभावफरुमिति शेषः । आव-

कुतोऽप्यचेष्टितेष्वेव संप्राप्तेषु विधेर्पशात्। भोगेष्वरतिमायाति पान्धो मरुमहीष्विव ॥ રલ घूणैः श्लीण इचानन्दी सुप्तः संसारवृत्तिषु । अन्तःपूर्णमना मानी कामपि स्थितिमृष्छिति ॥ २६ स तारम्पतामेख परमार्थफलस्य तत्। क्रमान्निकटमाप्रोति खगोऽगपदवीमिव ॥ २७ ततस्तद्खिलां वृद्धि विहाय वियता समः। गृह्वात्यथास्वादयति भुद्धेऽथ परितृप्यति॥ २८ संकल्पार्थपरित्यागाहिनानुदिनमातता । शद्भस्वभावविश्रान्तिः परमार्थाप्तिरुच्यते ॥ २९ मेदबुद्धिर्विलीनार्थाऽभेद प्रधावशिष्यते । शुद्धमेकमनाधन्तं तद्वक्षेति विदुर्वधाः॥ 30 लोकैषणाविरकेन त्यकदारैपणेन च। धनैषणाविमुक्तेन तस्मिन्विश्रम्यते पदे ॥ 38 परेण परिणामेन मिधश्चित्परमार्थयोः। तापेन हिमलेखेव भेदबुद्धिर्विलीयते॥ 32 तज्बस्याकृष्टमुक्तस्य स्वभावेषूपमां विना । स्थितिः स्रग्दामकस्येव न संभवति काचन ॥ ३३ यथाऽप्रकटिताङ्गान्तःसंस्थिता शालभिक्षका । न सती नासती स्तम्मे तथा विश्वस्थितिः परे ३४ ध्यानं न शक्यते कर्तुं न चेतद्वपयुज्यते । अबोधेन विवुद्धस्तु स्वयमत्रैव तिष्ठति ॥ ३५

रणभन्नाद्वहाति निर्विक्षेपस्फुरणादास्वादयति तदेकप्रवणधृस्या भुद्रे तद्भावेन पूर्णस्थित्या परितृष्यतीति चतुर्ध्यादिभूमिकाफ-लानामत्र लाभो दर्शितः ॥ २८॥ सर्वभूमिकारोहणोपायर-इस्यमाह—संकल्पेति ॥ २९ ॥ तत्राप्युपायमाह**—मेदेति** । मेदबुद्धित्रपुटोमेदसाक्षिचित् विलीना अर्थास्त्रिपुटीमेदा य-स्यास्तथाविधा सती अमेद एवावशिष्यते । सच ग्रदं बही-वेखर्थः ॥ ३० ॥ तस्याध्युपायमाह—लोकैषणेति द्वाभ्याम् । दारैषणास्यागेनैवार्थात्पुत्रेषणात्यागो सभ्यत इत्याशयः ॥३१॥ दृश्यतत्त्वशोधने सन्मात्रं परमार्थः । द्रष्टतत्त्वशोधने चिन्मा-त्रम् । तयोरखण्डंक्यलक्षणेन परेण निरतिशयानन्दात्मना प-रिणामश्वित्तस्य चरमसाक्षात्कारशृतिस्तेनेत्वर्थः ॥ ३२ ॥ नन आकृष्टमुक्तधनुष इव चित्तस्याखण्डाकारवृत्त्युपरमे पुनः पूर्वा-वस्थास्थितिर्दुर्वारेत्याशङ्गाह—तज्ज्ञस्येति । तज्ज्ञस्य छन्ध-साक्षात्कारस्य धनुरादिकठोरोपमां विना कोमलतरस्य स-ग्दामकस्येव स्थितिः। भूमौ पतितं हि सम्दाम ऋजुवकादि-भावेन यथैवाकृष्य स्थाप्यते तथैवावतिष्ठते न धनुर्वत्पूर्वावस्था-स्थितिस्तस्य संभवतीत्यर्थः ॥ ३३ ॥ किं सा खायत्ता ध्यान-रूपा नेत्याह-यथेति द्राभ्याम् । अत्रकदिताङ्गा अनाविष्कृता-वयवा ॥ ३४ ॥ अस्तवेवं कि ततस्तत्राह-ध्यानमिति । इत्थं प्राग्बोधात्सप्रपश्चे ब्रह्मणि निष्प्रपश्चस्वभावस्याबोधेन ध्यानं ता-बत्कर्तुं न शक्यते । साक्षादिवद्धाः स्वयं तत्स्वभावे एव ति

आत्यन्तिकी विरसता यस्य हइयेषु हइयते। स बुद्धो नाप्रबुद्धस्य दृश्यत्यागे हि शकता ॥ ३६ दृश्यस्य बोधता बोधो यो बोधादपरिक्षयः। स समाधानशब्देन प्रोच्यते सुसमाहितेः॥ ₹\9 द्वपृहद्यैकतारूपः प्रस्ययो मनसो यदा । स तदेकसमाधाने तदा विश्राम्यति स्वयम्॥ ३८ स्वभावो दृदयवैरस्यमेव तत्त्वविदो निजः। दृश्यस्पन्दनमेवाहुरतत्त्वश्रत्वमुत्तमाः॥ 39 अतुज्यायैच विषयाः स्वदन्ते नतु तद्विदः। नहि पीतामृतायान्तः स्वदते कटु काञ्जिकम् ॥ ४० वितृष्णस्यात्मनिष्ठत्वादेषणात्रयमुज्झतः। ज्ञस्याप्यनिच्छतो ध्यानमर्थायातं प्रवर्तते ॥ बोधः स्फूरति तृष्णायाः सैव यस्य न विद्यते । तस्य स्वरूपमृत्सुज्य कासौ तिष्टति कः कथम् ४२ इस्यानाराधको ध्येयबोधो नयतु यो भवेत्। अनन्ता सा वितृष्णस्य निर्विभागोदितः स्वयम् ४३

ष्टन्कर्थ तद्यातुं शक्कुयात् । नहि खपआगरूको वा अस्वप्रो-**ऽहमस्मीत्यात्मानं ध्यातुं शक्नोतीति भावः ॥३५॥ जागरू**केण स्वाप्नार्थेष्विव तत्त्वविदा प्रपत्रे तुच्छवुद्धा आत्यन्तिकवैरस्य-मात्रं तु कर्तुं शक्यमिलाशयेनाह—आलान्तिकमिति ॥ ३६॥ यदि न ध्यानं तर्हि तदविषये ब्रह्मणि कथं समाधिः धारणा-ध्यानसमाधीनामेकविषयत्वनियमात् । तथाहि भगवतः पत-जलैः सूत्राणि 'देशवन्धधित्तस्य धारणा' 'तत्र प्रख्यैकतानता ध्यानम्' 'तदेवार्थमात्रनिर्मासं खरूपशुन्यमिव समाधिः' 'त्रय-मेकत्र संयमः' इति तत्राह—हर्यस्पेति । यो दश्यस्य त्रिपुटी-लक्षणस्य जगतस्तत्साक्षिस्तरूपबोधमात्रताबोधः स एव सुष्ट् सम्यायथार्थस्वभावे आहितेः स्थापनाद्वेतोः सम्यगाधानं स-माधिरिति विष्रहे समाधानशब्देनोच्यते । तादशबोधस्यभा-बादि प्रपञ्चोऽपरिक्षयः शाश्वतो भवतीति सम्यक्खभावं तस्या-धानं संपन्नमित्यक्षरार्थानुगमादित्यर्थः ॥ ३७ ॥ अर्थमात्रनि-र्भासं खरूपशून्यमिवेति पत्रज्ञलिवचनस्यापि दग्दर्यक्यापाद-नेन मनसो विलये तात्पर्यं सुत्रचमित्याशयेनाह—द्रष्टिति । द्रष्टा साक्षिदस्या त्रिपटी तदेकतां रूपयतीति रूपः ॥ ३८ ॥ दृश्यस्य वैरस्यं जाड्यदुःसादिरसताविरुद्धचिदानन्दरसभावः ॥ ३९ ॥ विषया अचिरस्वभावा अचिरस्वभावदेहाद्यारमने अ-तत्त्वज्ञायैव खदन्ते। 'कृच्यर्थानां प्रीयमाणः' इति संप्रदानता। तिहिंद इति तस्यैव शेषलविवक्षया पष्टी । काञ्जिकं मद्यविशेपः ॥४०॥ यदि तु पुनःपुनः खखरूपानुसंधानमेव ध्यानं मन्यसे तिह तजागरूकस्य जाप्रदातमनीव विदुषः सहजसिद्धमित्याह-विकृष्णस्येति ॥ ४९ ॥ वितृष्णस्येत्युक्तेस्तात्पर्यमुद्धाटयति-बोध इति । बोधः खरूपानुसंधानलक्षणं ध्यानं तृष्णादिविक्षे-पहेतोः स्फरति संचलतीति प्रसिद्धम्। यस्य तत्त्वविदः।

अनन्त्रमपरुष्णस्य स्वयमेव प्रवर्तते । ध्यानं गितपक्षस्य संस्थानमिव भूभृतः॥ 88 शुज्रवोधात्मनि इत्वादसमाहिततोदिता। न जात सुसमिद्धेशी वृतविन्दोरवस्थितिः॥ છહ परं विषयवैतृष्णयं समाधानमुदाहृतम्। आहतं येन तम्ननं तसी नृब्रह्मणे नमः॥ ઝદ नुनं विषयवैतृष्ण्ये परिप्रौढिमुपागते । न शक्षवन्ति निर्हर्त ध्यानं सेन्द्राः सुरासुराः 80 परं विषयवैतृष्ण्यं वज्रध्यानं प्रसाध्यताम् । भेदे विगलिते ज्ञानादन्यध्यानतृणेन किम्॥ 86 मुर्खस्थो विश्वराद्यार्थो नामुर्खविषयस्तथा। तज्ज्ञाज्ञयोस्तयोश्चेव विश्वविश्वेशयोस्तथा ॥ પ્રશ यत्रकीभय कचनं तत्र विश्वाम्यतां वुधाः। बोधभूमिषु सिद्धानामधानां वा विवेकिनाम्॥ ५० सत्तासत्ते द्वयंक्ये च निर्णाते नेह केनचित् । उपाय एकः शास्त्रार्थों द्वितीयो श्रसमागमः॥ ५१

तथान परिशेषात्म्वरूपानुसंधानस्येव सिद्धिरित्याह-नस्येति । किंग्रुसानि दरयद्रष्ट्रदर्शनित्रपुटीपरामशीनि ॥ ४२ ॥ अथवा वितृष्णस्य इत्य सा तृष्णा अनन्ता अपरिच्छेदा । यतोऽयं म्बर्य निर्विभागोऽपरिच्छिन्नातमस्य एवोदितः । अतो ध्येयस्य चिन्तनीयस्य बाह्यार्थस्य बोघो यो यादशो भवेत्स तादशे स-माधी व्यवहारे वा नयतु तथाप्यसी तस्याऽनाराधको न तत्त-ष्णापृतिसमर्थं इत्यर्थः ॥ ४३ ॥ अतो बाह्यार्थेऽपगततृष्णस्य तस्य लाइशतुष्णाया नित्यनिरतिशयानन्दारमेव परिशेषाद्रोधक इति तद्नुभवछक्षणमनन्तध्यानं खयमेव प्रवर्तते न यक्षम-वेक्षत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥ अतएव शुद्धबोघोदयपर्थन्तमेव सन माधियलः । शुद्धबोधात्मनि साक्षादनुभूते इस्वविरोधादेवा-Sसमाहितत्वं समाधियकानिवृत्तिस्तत्त्वविद्धिरुदितेत्यर्थः । विरोधं द्यान्तेन प्रकटयति---न जालिति ॥ ४५ ॥ विश्लेपहेसूनां रागादिदोषाणामात्यन्तिको च्छेदलक्षणं तु समाधानं विदुषामे-वारुखतस्ते नमस्या इत्याद-परमिति । आहृतं संपादितम् ॥ ४६ ॥ तृष्णापाशवद्धान्स्वपश्चन्त्रत्येव देवानां तृष्णोद्दीपनेन विद्यसमर्थसादिति भातः ॥ ४७ ॥ विषयवैतृष्ण्यं च ज्ञानेन सर्विविषयबाधपर्यवसितकार्यं तदेव वञ्जबदृढं ध्यानमपीति प्र-शंसति - परमिति ॥ ४८ ॥ अतएव विदुषां विश्वशब्दो बा-धितार्थक इत्याह-मुर्खेति । तज्ज्ञाश्चयोरित्याद्यत्तरश्चोका-न्वयि । तथोस्तद्विशेषज्ञानाज्ञानयोः ॥ ४९ ॥ यत्र यस्मिन्भू-मानन्दे द्वेतवाधाभित्रायेणैकीभूय कचनमित्यूच्यते न त्वेकल-संख्याभित्रायेण । यतो विवेकिनामाहरुध्यूणां मननादिबोधभू-मिषु रिद्धानामास्टढानां साक्षात्कारादिबोधभूमिषु वा आत्मा-तिरिके सत्तासन देतेक्ये च केनन्वदिष न निर्णिते इखन्वयः ॥ ५०॥ तत्र विश्रान्तावुषायानाह--उपाय इति । शास-

દ્ધ

ध्यानं तृतीयं निर्वाणे श्रेष्ठस्तत्रोत्तरोत्तरः । जीवादर्शान्मिथो रूपं गृह्वात्येपा महत्रुपुः ॥ 42 जगत्युदेति संघट्टादाविशेषं समे समे। श्चानपूर्वीपराशेषजगद्रप्रापदस्थितेः॥ 43 एकसिद्धाः द्वयोः सिद्धिर्योधवेत्रष्ण्यदीपयोः । मतिचात्याधुतो व्योम्नि दग्धो श्रानाग्निनाखिरुः५४ जगत्तुलः परे शान्ते न जाने काश्च गच्छति । चित्राग्निनेव बोधेन तेन जाड्यं न शास्यति॥ ५५ निर्मूलापि जगद्भान्तिर्येनाशु न विलीयते । ५६ यथा श्रस्य जगज्ज्ञतिरपञ्चानात्प्रदीप्यते ॥ तथा श्रस्य परिश्वानात्तदश्विः प्रदीप्यते । तज्ज्ञस्याज्ञजगज्ज्ञतिशब्दार्थरहिता स्थिता॥ 6/3 यथास्थितव त्रिजगज्ज्ञतिश्चित्र इवोदिता। शन्यत्वेनैव रचिता सुप्तत्वेनेव निर्मिता॥ 46 भासते भामयी वाञ्छा जगज्ज्ञपिर्धचेतसि ।

नृनं वोधे विमृदस्य नाहन्ता न जगित्स्यतिः ॥ ५९ मासते परमाभासक्षिणः काप्यवस्थितिः । बोधावोधात्मकं चित्तं भाति गुष्कार्द्रकाष्ट्रवत् ६० बोधादेकं जगद्भावजांक्यास्नात्मत्म । मिथो बोधाद्विवद्ति मैत्रीं भजति बोधतः ॥ ६१ य एवास्याधिको भागस्तन्मयत्वेन तिष्ठति । बुधः सतत्त्वं नावति जगतोऽभावभावयोः ॥ ६२ जाम्रत्स्वमसुषुप्तानां स्वभाविमिव तुर्यगः । वासनैव मनः सेयं स्विध्वारेण नश्यति ॥ ६३ अवस्तुत्वादतो मोक्षो नात्मनाशे प्रवर्तते ॥ ६४ ध्यानद्वमात्स्वयमुपोढमनल्पपाका-

ध्यानद्वमातस्ययमुपाढमनस्पपाकाः त्कालेन बोधमुपयातवतः ऋमेण । भुक्तवा रसायनफलं परबोधमाद्य-मिच्छन्मनोहरिणको निगडाद्विमुक्तः॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्माकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे मनोहरणिकोपाख्यानं नाम पञ्चचलारिशः सर्गः॥४५॥

षट्चत्वारिंदाः सर्गः ४६

वसिष्ठ उवाच । परमार्थफले ज्ञाते मुक्ता परिणांत गते ।

स्याध्यातमशास्त्रस्यार्थनमादरनैरन्तर्येणाभ्यासः शास्त्रार्थः ॥५१॥ फुळसंनिकष्वियाच्छेष्टः । एवं विचारजन्यक्षानवैराग्ययोरपि निर्वाणोपायतां परस्पराधीनप्रतिष्ठां च दशयितुमविवेकप्रयुक्त-जीबोपाधिपरिच्छेदाधीनरागद्वेपाभ्यां प्रियाप्रियविषयसंघ-द्वात्साम्यवैषम्यकल्पनां दर्शयति--जीवेति । महद्वपुरपरि-रिछन्ना एवा नित्यापरोक्षा नहाचिजीवास्यस्य सप्प्रप्रतिबि-म्बस्यादर्शभृतादन्तःकरणोपाधेर्वशान्मिथः परस्परं विभिन्नं रूपं मृह्णाति ॥ ५२ ॥ तत्र जगति प्रियाप्रियसंघद्वान् आविशेषं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान्विशेषानभिव्याप्य स्तर्कावैवित्र्यात्सम-विषमे शरीरमेदे उदेतीत्यर्थः । तदेवमनादिकालात्संसर्तां जीवानां मध्ये कस्यचिद्धाग्योदयाज्ज्ञानाधिकारयोग्ये जन्मनि शास्त्रसन्त्रनसङ्गाद्यपायलाभाज्ज्ञातपूर्वीपराशेषजन्ममरणश्रमण-ह्मपुजगच्छारिफलकीड!स्थितेः पुरुषयारेयस्य बोधवैतृष्ण्यह्प-योदींपयोरेकसिद्धौ द्वयोरपि सिद्धिरित्यन्वयः ॥५३॥ ज्ञानामिना दाघो भस्मोभूनोऽखिलो जगत्तृलश्विद्योष्ट्युत्तरभूमिकाभ्यासल-क्षणया मतिवालया धुत उङ्गायितः सन् क गच्छति न जाने ॥ ५४ ॥ भ्रान्तिनिवारणसमर्थ एव बोधो मूळाज्ञानजाञ्जो-च्छेदहेत्रनेलापातज्ञानमात्रमित्याह—चित्राप्रिनेति । जाञ्यम-हानं शीतं च ॥ ५५ ॥ अइस्यामिनिवेशस्र्वणादपङ्गानाराया संसारश्रान्तिरभिष्ट्या प्रकाशते तथा तत्त्वज्ञस्य नाभिष्ट्या उत्तरोत्तरभूमिष्वज्ञानमधिकं दह्यत इत्याह---यथेति ॥ ५६ ॥ दश्यमानेऽज्ञाने जगत्कीदशं तेषां भासते तदाह—तज्ज्ञस्यति ॥ ५० ॥ ५८ ॥ अविमृहस्येति च्छेदः ॥ ५९ ॥ अधेप्रबुदस्य तर्हि कीहशं भाति तदाह—याधेति ।

बोघोऽप्यसद्भवत्याशु परमार्थी मनोमृगः॥ 🔠

॥ ६० ॥ द्विवत् उभयस्वभाववत् । बोधतो बोधाधिक्येन सर्वजनेष्वतिमेत्रीं भजति । आत्मोपम्येन सुखदुःखे दयया पर्यतीत्यर्थः । अबोधादबोधांशेन विवद्ति विवादादिना व्यन वहरतीति वा ॥ ६१ ॥ यस्त ब्रुधः परिपक्कानः स तु जगतः अभावभावयोः सत्त्वासत्त्वयोः सत्तत्वं याथाध्ये नावैत्येव ॥ ६२ ॥ यथा तुर्थगः सप्तमभूमिकारूडो जाप्रदादीनां खभावं न पश्यति तद्वदिति भेदकल्पनादुपसा । ननु मनोहरिणकस्य ध्या-नतरै। विभान्तः प्रसुतेति तस्यव रूपान्तरेण तदारोहणे परम-पुरुषार्थफलावाप्तिवीच्या, तत्र मनोनाशलक्षणो मोक्षः कथं तस्य पुरुषार्थः स्यात्तत्राह—वासनैवेति ॥ ६३ ॥ अवस्तु<mark>लादिति ।</mark> तथाचारमन एव माथिकमनोहरिणवेषेणान**र्थावश्चान्यादिवर्णनं** प्रस्तुतमिति भावः ॥ ६४ ॥ तथाचायं मनोनाशो मनोहरिण• वेषेण वर्णितस्यात्मनो निगडमोक्षप्रायः फलित इत्युपसंहरति— ध्यानेति । इच्छन्मुमुक्षुः प्रस्तुतो मनोहरिणको वर्णितहरू पादञ्करकाण्डशास्त्रापष्ठवपुष्पफलान्तपरिणामलक्षणानस्पपरिपा-कारकालेन स्वयमुपोढमुपचितं बोघं फलमुपयातवतो ध्यानह-मादायं परबोधोऽखण्डाकारवृत्त्यभिव्यक्तः परमानन्द्रसाह्रक्षणं रसायनफठं भुक्ला संसारनिगडाद्विमुक्तो भवतीलर्थः ॥६५॥ इति श्रीवासिष्ठमदारामायणतात्पर्यप्रकाही निर्वाणप्रकर्णे उत्तरार्धे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

> ध्यानद्वमफलास्वादे यादशी मनसः स्थितिः। दृदं विषयवैरस्यं यादकदिह वर्ण्यते॥ १ ॥ ति साक्षादनभते। बोधअरमसाक्षादकारवितस्य

इति साक्षादनुभूते । बोधश्वरमसाक्षात्कारवृत्तिरपि स्त्रोपा-दानाङ्गानबाधादसङ्कवति मनोमृगश्च परमपुरुषार्थस्य आत्भैव कापि सा मृगता याति प्रक्षीणक्षेहदीपवत्। परमार्थदशेवास्ते तत्रानन्तावभासिनी॥ ध्यानद्रमफलप्राप्तौ बोधतामागतं मनः। षञ्जसारां स्थिति धत्ते छिन्नपक्ष इवाचलः॥ ममस्ता कापि संयाति तिप्रत्यच्छैव बोधता । निर्बाधा निर्विभागा च सर्वाऽखर्वात्मका सती ४ सुविविकतया चित्तसत्ता बोधतयोदिता । अनाद्यन्ता भवत्यच्छप्रकाशफलदायिनी ॥ स्ययमेव ततस्तत्र निरस्तसकलेषणम्। अनाधन्तमनायासं ध्यानमेवावशिष्यते॥ यावन्नाधिगतं ब्रह्म न विधान्तं परे परे। तावस्तन्मननत्वेन म ध्यानमवगम्यते ॥ परमार्थेकतामेला न जाने क मनो गतम्। क वासना क कर्माणि क हर्पामर्थसंविदः॥ केषलं दृश्यते योगी गतो ध्यानैकनिष्ठताम्। स्थितो वज्रसमाधाने विपक्ष इव पर्वतः ॥ विरसाखिलभोगस्य प्रशान्तेन्द्रियसंविदः । नीरसाद्देषस्यस्य स्वात्मारामस्य योगिनः॥ १० क्रमेण विगलहत्तेर्बलाहिश्रान्तिमीयुपः। अर्थायातं समाधानं केन नाम विचार्यते ॥ ११ तावद्विषयवैरस्यं भावयन्त्युचिताशयाः। न पर्यन्त्येव तान्यावद्भोगांश्चित्रनरो यथा ॥ १२ अपइयञ्जागतानर्थान्निर्वासनतयात्मवान् । बलाइज्रसमाधाने त्वन्येनेव निवेदयते ॥ १३ इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्घे साम्याववोधनो नाम पद्चलारियः सर्गः ॥ ४६ ॥

प्रावृषीय नदीपूरो यः समाधिरुपस्थितः। बलादेव तमायातं भृयश्चलति नो मनः॥ 88 सर्वार्थशीतलस्त्रेन बलाज्याने यदाऽऽगतम्। श्वानाद्विषयवैरस्यं स समाधिर्हि नेतरः ॥ १५ हदं विषयवरस्यमेव ध्यानमुदाहतम्। तदेव परिपाकेन वजसारं भवत्यसम् ॥ १६ तदेतद्भोगवतृष्ण्यं ध्यानमङ्करितं हि तत्। तदेव पीठवन्धेन बद्धं भवति वन्ध्रम्॥ 8.0 सम्यन्द्वानं समुरुद्धनं सदैवोज्झितवासनम् । ध्यानं भवति निर्वाणमानन्दपदमागतम् ॥ १८ अस्ति चेद्भोगवैतृष्ण्यं किमन्यद्यानदुर्धिया। नास्ति चेद्भोगवैतृष्ण्यं किमन्यद्यानदुर्धिया ॥ १९ दृश्यस्वदनमुक्तस्य सम्यग्नानवतो मुनेः। निर्विकर्षं समाधानमयिरामं प्रवर्तते ॥ २० यसौ न स्वदते दृश्यं स संबुद्ध इति स्मृतः। न स्वदन्ते यदा भोगाः सम्यग्वोधस्तथोदितः २१ यस्य स्वभावविश्रान्तिः कथं तस्यास्ति भोगिता । अस्वभावो हि भोगित्वं तत्क्षये तत्कथं कुतः ॥ २२ श्रतपाठजपान्तेषु समाधिनिरतो भवेत्। समाधिविरतः थान्तः श्रुतपाठजपाञ्छ्येत् ॥ २३ निर्वाणमासीत निरस्तखेदं समस्तराङ्कास्तमयामिरामम् । सुपुप्तसीम्यं समशान्तचित्तं शरद्धनाभोगविश्दसम्तः॥ २४

भवतीत्यर्थः ॥१॥ सा प्राक्तनी मृगता विषयतृणान्वेषणस्वभा-वता याति अपैति ॥ २ ॥ स्थितिरचाश्रत्यम् ॥ ३ ॥ मनस्ता बाह्यार्थमननस्वभावता । सर्वो पूर्णा । अतएवासर्वात्मका वो-धता चिन्मात्रता तिष्ठति ॥ ४ ॥ चित्ते या सत्ता प्राग्जडदे-हाराविवेकाज्जडेवाभृत्सैव सांत्रतं देहादेः स्र्विविक्ततया स्थिता बोधतया उदिवेव । यतः परमार्थप्रकाशफब्दाथिनीत्यर्थः॥५॥ यतो निरस्तसकछैषणमतस्तदनन्यगतिकस्वात्स्वात्मभ्यानमेव प-रिशेषादवगम्यत इत्यर्थः ॥ ६ ॥ कदा तर्हि तन्मनो न ध्यानं तदाह-याबदिति । तन्मनः । मननत्वेन विषयान्तरानुसंधा-नरवेन ॥ ७ ॥ ८ ॥ ध्यानवत्तस्य समाधिरप्यर्थसिद्ध इत्याह— केवलमिति द्वाभ्याम् ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ तस्य परवराग्य-मप्यर्थसिद्धमिलाह्—तावदिति । चित्रनरिवत्रलिखितान्पुरु-षान् ॥ १२ ॥ वज्रवदमेखे समाधाने समाधावन्यंन नियन्त्रेव बलात्रिवेरयते ॥ १३ ॥ यः समाधिराविभृतानन्दैकरसः प्रथ-मवृत्तावुपस्थितस्तं गुडपिपीलिकान्यायेन वस्तुस्वभाववलादेवै-<mark>काश्यमायातमास्वादयन्मनस्ततो न चलति ॥१४॥ ज्ञानाह्</mark>ला-दागतं यद्विषयान्तरे वरस्यं स एव समाधिः । नहि रागादिना दन्दश्यमाने चेतरि समाधानं कदाचिदपि कस्यचित्प्रसिद्धमिति ॥ १५ ॥ एवं भ्यानोपपत्तिरपि विषयवैरस्ये सत्येव नान्यथे-त्याह--रहमिति ॥ १६ ॥ तथाच भोगवैतृष्ण्यं बीजमेवाष्ट्र-रितावस्थं ध्यानं प्ररूढावस्थं समाधिरित्यभेदेऽपि व्यपदेशभेदः फलित इत्याह—तदेतदिति ॥ १७ ॥ साक्षात्कारवृत्त्याविभूतं ब्रह्मेव अविद्योच्छेदितया ज्ञानं वासनोच्छेदितया ध्यानं सर्व-दुःखोच्छेयानन्दरूपतया निर्वाणमिति व्यपदिश्यत इत्याह— सम्यगिति ॥ १८ ॥ सर्वमिदं भोगवैतृष्ण्ये सत्येव सिज्यति नान्यथेति तदेव दृढीकर्तुं प्रशंसति—अस्ति चेखादिना॥१५॥ ॥ २० ॥ २१ ॥ पूर्णाद्वयस्त्रभावविरुद्धं भोगिलमञ्जानकृतस्त्र-मावविपर्ययकालमात्रे संभवति नाज्ञाननाशोत्तरमित्याह-य-स्येति ॥ २२ ॥ अभ्यासकाले व्युध्यितेन कि कार्य कदा वा समाधिः सेव्यस्तत्क्रममाइ-अतित । श्रुतं गुरुसतीध्यादिभिः सह वेदान्तश्रवणम् । पाठ उपनिषदाद्यावर्तनम् । जपः प्रण-वादेः । तथा चोक्तं स्कान्दे-- 'जपश्रान्तः पुनर्ध्यायेख्यान-श्रान्तः पुनर्जपेत् । जपध्यानाभियुक्तस्य प्रसीदति परः शिवः' इति ॥ २३ ॥ तत्रापि सर्दव समाधिप्रधानेन भाव्यमिखाश-येनोपमंहरति--निर्वाणमिति । सप्टम् ॥ २४ ॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे षट्-चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंदाः सर्गः ४७

8

९

वसिष्ठ उवाच । संसारभारसुश्रान्तः संकटेषु छठत्तनुः । योऽभिवाञ्छति विश्राति तस्य क्रममिमं श्रुणु ॥ १ पूर्व विवेककणिका यदा स्वद्वदि जायते । संसारनिर्वेदमयी कारणाह्याप्यकारणात् ॥ तदा श्रयन्ति सच्छायान्साधुत्वसुविशालिनः। अध्वश्रमहरांस्तापतप्ता मागतस्रुनिव ॥ दूरे परिहरत्यज्ञान्यज्ञयूपानिचाध्वगः। स्नानदानतपोयज्ञान्करोति विवुधानुगः॥ पेशलं चानुरूपं च व्यवहारमकुत्रिमम्। लोक्यमाहादनं धत्तं चन्द्रविम्बमिवामृतम्॥ परप्रज्ञानुगो भव्यः परार्थपरिपूरकः। पवित्रकर्मरसिकः कोऽपि सौम्यः प्रवर्तते ॥ नवनीतस्थलीवाच्छा क्रिग्धा मृद्वी मनोहरा। जनं सुखयति स्वाद्वी तदीया नवसंगतिः॥ शौतलानि पवित्राणि चरितानि विवेकिनः। इन्दोरियांशुजालानि जनं शीतलयन्खलम् ॥ न तथोद्यानखण्डेषु पुष्पप्रकरहारिषु । विभाम्यते वीतभयं यथा साधुसमागमे ॥

भूयोऽपि विस्तरान्मुक्तिसाधनक्रमवर्णने । प्रस्तुते रढवैराग्यप्राध्यन्तमिह वर्ण्यते ॥ १ ॥

बहुकुलोऽपि पथ्यं वदितव्यमिति न्यायमाश्रित्व परमका-रुणिको वसिष्ठः पूर्व ध्यानवृक्षोत्पादनपरिपालनफलोन्मुखौकर-णमनोहरिणकाश्रयणतदारोहणफरोपभोगान्तहः पकपरंपरया व-णितमेव शुभेच्छादिमोक्षसाधनभूमिकाकमं पुनः कुत्र कुत्र किय-द्भणसंपहाम इत्येतत्प्रतिपादनप्रकारेण स्पष्टं मन्दाधिकारिप्रबोध-नाय वर्णयिष्यंसाच्छवणाय शिष्वमभिमुखीकरोति—संसारेति। मरणमुर्च्छादिसंकटे छठन्ति तन्त्री यस्य । कमं तत्र तत्र गुणप्र-कर्षनाभक्रमम् ॥ १ ॥ तत्र विवेकाक्करोदये येषां गुणानां नाभ-स्तान्दर्भयति---पृत्रेमित्यादिना।कारणादैहिकयक्कतपोदानादिपा-पक्षयकारणात् । अकारणात्तदभावात्। जन्मान्तरानुष्ठितसत्कर्म-भिरेव क्षीणपापानां बाल्यात्प्रभृत्येव विनैवैहिककारणं विवेको-दयदर्शनादिति भावः। यदैव निर्वेदमयी विवेककणिका जायते तदैव साधुरवेन सुष्ठ विशालिनो विस्तीर्णा वश्यमाणगुणास्तं श्रयन्तीति परेणान्वयः ॥ २ ॥ तत्र दष्टान्तस्तापत्रप्ताः प्रमुषाः सच्छायान्मार्गतहःनिवेति ॥ ३ ॥ तत्राज्ञजनसङ्गत्यागो यङ्गदा-नादिपरता देवताराधनादिशुणाः प्रथममुद्यन्तीत्वाह--दूरे इति। एवममेऽपि गुणा योज्याः ॥ ४ ॥ लोकेम्यः परिणामे हितं लोक्यं सराक्षाहादनम् । चन्द्रविम्बं कर्तृ । अमृतं कर्म ॥ ५ ॥ खपक्षरागलोभाभिमानायभावात्परहितकारिलाच परप्रज्ञांनुगः। अतएव सर्वजनत्रियो भवतोति भन्यः । पवित्रेषु शासानिषि-

मन्दाकिनीपयांसीच संगतानि विवेकिनाम्। प्रक्षालयन्ति पापानि प्रयम्बन्ति विशुद्धताम् विवेकिषु विरक्तेषु संसारोत्तरणार्थिषु । जनः शीतलतामेति हिमहारगृहेप्विच ॥ ११ नतु नामरतोदारा या विवेकिनि विद्यते। सुरगम्धर्षकन्यासु मानवीषु न यिद्यते ॥ ,5 प्रका प्रसादमायाति क्रमादुचितकर्मणः। अतः करोति शास्त्रार्थमर्थे मुकुरभृरिष ॥ १३ सत्प्रक्कोश्रतिमायाति शास्त्रार्थरसशालिनी। विवेकिनि विलासेन कदलीव महावने ॥ 68 अन्तरेबानुभवति सर्वार्थान्प्रतिबिम्बितान्। आद्दीवद्देषेण प्रज्ञानैर्मस्यद्यालिनी ॥ १५ साधुसंगमशुद्धात्मा शास्त्रार्थपरिमार्जितः। प्राक्तो भात्युद्धतं वह्नरिप्तशौचिमवांशुकम्॥ १६ कचत्काञ्चनकाम्तेन विमलालोककारिणा। भुवनं भास्करेणेव भाति साधुः स्वतेजसा ॥ १७ तथानुगच्छति प्राष्ट्रः शास्त्रसाधुसमागमौ । यथात्यन्तानुषङ्गण तावेषानुभवत्यसौ ॥ १८ क्रमात्सज्जनतामेत्य शास्त्रार्थभरभावितः।

देषु कर्मसु रसिकः कोऽपि सर्वजनोत्कृष्टः सीम्यः सन् प्रवर्तते व्यवहरति ॥ ६ ॥ नवनीतस्य स्थली मुख्याश्रयो दिघमण्ड इवाच्छा क्रिग्घेत्यादिसाधारणम् । नवसंगतिः प्रथमसमागमः । मथनविवेचनपरिपाकक्रमेण चिरसंगतेरुत्तरोत्तरसारलात्खादुत-रार्थलाभद्देतुलसूचनाय नवेति विशेषणम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ हिमेर्हारैश्व रचितेषु गृहेष्विव ॥ ११ ॥ न विद्यते सेति शेषः ॥ १२ ॥ कमादनुष्टितादुचितात्रिष्कामकर्मणो हेतोः प्रज्ञा बुद्धिः प्रसादं विशुद्धिमायाति । तच्छुज्या च विविदिषो-दये गुरुमुखश्रुतं श्रास्त्रार्थमन्तः करोति । हृदि स्थापयतीत्वर्यः। मुकुरभूर्दर्पणतरुं खप्रतिविम्बितार्थमिव ॥ १३ ॥ विवेकिनि धिवेकवति **इ**त्स्थाने । विलासेन मूलप्ररोहादिविस्तारेण ॥१४॥ सा विवेकिप्रज्ञा सर्वार्थानन्तर्मनोविलासमात्रतया अनुभवति ॥ १५ ॥ अमावेव शौर्च मालिन्यदाहाद्विशुद्धिर्थस्य तथावि-धमंशुकं वस्त्रसमिव । तिद्धं दिव्यं सिद्धाम्बरं मलदाहोत्तरं वहेरद्धृतं विद्युत्पुजमिव भाखरतरं भातीति शास्त्रप्तिदम् ॥ १६ ॥ साधुर्विवेकी । खतेजसा आन्तरेणात्मप्रकाशेन ॥ १० ॥ शास्त्रमभ्यासेन साधोर्धुरोः समागमं च सेवादिना तथा अनुगच्छति निरन्तरमनुसरति यथा अत्यन्तं तदुपदिष्टा. र्थाभिनिवेशलक्षणेन तद्नुषक्षेण खप्नेऽपि तिबन्तनतष्ट्रश्रूषाप-रस्तावेवानुभवति न तदतिरिक्तं स्वशरीरादिकमपीखर्यः ॥ १८ ॥ रागद्वेषलोभप्रमादादिदोषक्षयमैत्र्य।दिगुणसंचयक्रमा-

भाति भोगानधःकुर्धन्पञ्जरादिव निर्गतः॥ १९ भोगाभिगमदौर्भाग्यं दिनानुदिनमुज्झता । तेन तत्कुलमामाति ताराचक्रमिवेन्दुना ॥ २० अभोगकृपणा कापि न चेवास्य प्रवर्तते । मुखे कान्तिरपूर्वेष चन्द्रे राहुमृते यथा॥ २१ वृणीकृतत्रिजगतां महतामभिषेयताम्। स याति करुपविटपी नभसीव दिवौकसाम् ॥ २२ भोगानां द्वेषणेनान्तर्रुज्जमानो मनस्यपि । भोगानामप्यसंपत्त्या परमं परितुष्यति ॥ 23 स्वा एवोपहसत्यन्तस्तरुणीस्तरलक्षियाः । खेदसेरमुखो जातिर्जातिसर इवाधमः॥ રક अध तं द्रष्टुमायान्ति सौहार्देनैच साधवः। भूमाविवोदितं चन्द्रं विसायोत्फुल्ललोचनाः॥ 24 नित्यानारतभोगोऽसा ततोऽप्यचितया घिया । प्राप्तमप्युचितारम्भं भोगं न बहुमन्यते ॥ 78 पूर्व संस्तिवैरस्यमन्तरेवोदितात्मनः। जायते जीर्णजाड्यस्य पाकादिव दारत्तरोः ॥ २७ ततः सज्जनसंपर्कमुद्रकेश्रेयसे स्वयम्। करोति स्वस्थतागुभ्रभिषगाश्रयणं यथा ॥ २८ तेनोदारमतिभूत्वा शास्त्रार्थेषु निमज्जति। महान्महाप्रसन्नेषु सरःस्विव महागजः॥ 28 सज्जनो हि समुत्तार्य विपक्को निकटस्थितम्। नियोजयति संपत्सु स्वालोकेष्विव भास्करः ॥ ३०

त्सञ्जनतां निर्देषिगुगवज्जनताम् ॥ १९ ॥ भोगान्त्रति व्यसनि-तया विषयामिमुख्येन गमनं भोगामिगमस्तक्रक्षणं दीर्भा-ग्यम् । कुलं वंशस्तद्धटिनसमानश्च आभाति ॥ २० ॥ अभो-गक्रुपणा भोगकार्पण्यनिर्भुक्ता अभिनवेव कापि कान्तिरस्य मुखे प्रवर्तते । राहुं ऋते विना । राहुनिर्भुक्ते यथेति यावत् ॥ २१ ॥ अभिषेयतां प्रशंसनीयताम् । नभत्ति स्तर्गे ॥ २२ ॥ प्राप्तभोगानां परित्यागे तुष्यन्नपि त्यक्तसर्वद्वेषेण सया भोगेषु द्वेषः कथं कृत इति मनसि लजमानोऽपि कदाचिद्भवतीति न तथा परितुष्यति । भोगानामसंपश्या अलामेन तु लजाप्र-सक्त्यभावात्परमं परितुष्यतीत्यर्थः । लथेऽपिशब्दः ॥ २३ ॥ प्राक्तनीस्तरुणीः रागादिप्राँखाः खाः खीया एव भोगीत्युक्यत-रलाः कियाः सांप्रतं सारन् खेदन स्पेरमुखः सप्नन्तरपहसति यथा अधमधाण्डालादिर्दैवाजातिसारः सन् स्था एव जाती-रन्तरपहसति तद्वदिखर्थः ॥ २४ ॥ तादशं तं द्रष्टुम् । साधवः सिदाः ॥ २५ ॥ ततस्तेभ्यः सिद्धेभ्यः प्रसन्नेभ्यः प्राप्तमुचि-तारम्भमनिषिद्धमपि सिख्यादिभोगं स न बहुमन्यते ॥ २६ ॥ क्तो न बहुमन्यत इति चेहुदशास्त्रसंपकीत्पूर्वमेव वैराग्यादि-साधनानां दढाभ्यस्तलादिलाशयेनोक्तमेव गुणोदयक्रमं पुनर-**नुकामति—पूर्वमि**खादिना ॥२७॥२८॥२९॥ ३०॥ अ ३१ ॥ स्वार्थानप्युपेक्षमाणः परार्थं कुतः स्पृह्येदिति भावः

परस्वादानविरतिः पूर्वमेव प्रवर्तते । विवेकिनो निजार्थेषु संतोपश्चोपजायते ॥ 38 परस्त्रादानविरतः संतोषामृतनिर्भरः। विवेकी क्रमशः स्वार्थानप्युपेक्षितुमिच्छति ॥ 32 ददाति कणपिण्याकशाकाद्यपि हि याचते। तेनैवाभ्यासयोगेन स्वमांसानि ददात्यसी॥ 33 नुनं विलयचित्तानां विवेकमनुधावताम्। मीर्ष्यं लघुत्वमायाति धावतामिव गोष्पदम् ॥३४ परार्थादानविर्रातं पूर्वमभ्यस्य यस्ततः। आहर्तव्या विवेकेन ततः स्वार्थेप्वरक्तता ॥ 34 ततो भोगनिरासेन सह स्वार्थनिराकृतिः। परमाय सुविश्रान्त्ये त्रियते कृतिभिः क्रमात्॥ ३६ न ताद्यशं जगत्यसिन्दुःखं नरककोटियु । यादशं यावदायुष्कमधापाजनशासनम्॥ ३७ आसने रायने याने गमने रमणे जने। आधिचिन्तापरा एव नजु मृढा विदन्तु ताम् ३८ नन्वर्धा विततानर्थाः संपदः संततापदः । भोगा भवमहारोगा विपरीतेन भाविताः॥ ३९ तावद्यायाति वैरस्यं चिन्ताविषयज्ञम्भणैः। यावदर्थमहानथीं न कदर्थार्थमर्थ्यते॥ 80 अनुसमसुखं यसै चिराय परिरोचते। जगस्णिहासादृष्ट्या सोऽर्थ पर्यतु शाम्यतु ॥ ४१ भूरिभावविकाराणां जरामरणकर्मणाम् ।

॥३२॥ तेनैव लागाभ्यासयोगन खमांसान्यपि याचमानेभ्यो ददाति ॥ ३३ ॥ विवेकानुसरणक्रमेण विजीयमानवित्तानां दिनेदिने ज्ञानप्रचयेनाज्ञानं क्षीयत इत्याह-नृनमिति । मी-र्ह्यमङ्गानम् । छपुत्वमपक्षयेणाल्पताम् । यथा धावतामश्रा-दीनां गोष्पद्मनायासोष्ठक्वयलस्यं सुद्रत्यमायाति ॥ ३४ ॥ परेपां स्वं धनादि तस्य आदानाद्विरति निश्क्तिम् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अर्थापार्जनप्रयुक्तं शासनं दण्डनम् । ऐहिक-पारळैकिकदुःखजातभितियावत् ॥ ३० ॥ सत्र मृढानां पारठौ-किकदु:खास्मरणंऽपि एहिकं सर्वप्रसिद्धं स्मारयति-आसने इति । विन्दन्तु स्मरन्तु ॥ ३८ ॥ अर्जनरक्षणव्ययादै। राजची-रादिभ्यथार्थार्थेनामनर्थसङ्खस्य प्रसिद्धसाद्विततानर्थाः रागनि-परीतेन विवेकेन भाविताः पर्यालोचिताश्चेदित्यर्थः । अथवा भावप्रधानो निर्देशः । अनर्थहपा अप्येते मोहाज्जनेसद्वैपरी-त्येन भाविता इत्यर्थः ॥ ३९ ॥ यावत्यदर्थार्थमर्थत्रक्षणोऽनर्थः पुरुषेण नार्थ्यते नाभिखध्यते तावत्स पुरुषो वैरस्यं तापत्रयप्र-युक्तशोषं नायाति ॥ ४० ॥ यस्मै पुरुषाय मोक्षारूयमनुत्तमं मुखं रोचते स पुमानर्थ धनं जगहक्षणस्य तृणस्य शिखेव तु-च्छतर्रामित दृष्ट्या परयतु । धनरपृहात्याग एव मुख्या मोक्षो-पायस्तरेयत्यर्थः ॥ ४९ ॥ तुच्छतामेव द्रदयितुं पुनःपुनर्धनं

१ अर्थिनता इति पाठः.

वैन्यदौरात्म्यदाहानामर्थः सार्थ इति स्मृतः॥ ४२ अस्मिञ्जगति जन्तूनां जरामरणशालिनाम्। अजरामरणं कर्त्तं संतोषोऽस्ति रसायनम्॥ 83 वसन्तो नन्दनोद्यानमिन्दुरप्सरसः स्मृताः। इत्येकतः समुदितं संतोपामृतमेकतः ॥ 88 सरसः प्रावृषेवान्तः संतोषेणव पूर्णता । गम्भीरां शीतलां हृद्यां प्रसन्नां रसशालिनीम् ४५ साधुरोजस्वितामेख संतोषेणैव राजते । सुपूष्पितवनाकारो वसन्तेनेव पादपः॥ યુદ્ पादपीठपरामर्राषिष्टकीटवदीहते । दीनप्रकृतिरथीर्था दुःखादुःखान्तरं वजेत्॥ 80 कल्लोलविकलाः श्लब्धसमृद्रपतिता इव । नामुत्रन्ति स्थिति स्वस्थां बिकृताकृतयोऽर्थिनः ४८

संपदः प्रमदाश्चैव तरङ्गोत्तुङ्गभङ्गराः। कस्तास्विहकणच्छत्रच्छायासु रमते बुधः ॥ પ્રશ अधीपार्जनरक्षाणां जानन्नपि कदर्थनाम् । यः करोति स्पृहां मूढो नृपशुं तं न संस्पृशेत् 40 मनसो बाह्यमारम्भमान्तरं च छनाति यः। समं वैतृष्णयदात्रेण तस्य क्षेत्रं प्रकादाते ॥ ५१ जगत्त्वमन्नसंबुद्धं को विदन्नसदेव यत्। सतीव तत्र स्फुरति तदनभ्यासजृम्भितम्॥ ५२ संसारनिर्वेददशामुपेत्य सत्संगमं शास्त्रमुपेत्य तेन। शास्त्रार्थभावेन निरस्य भोगा-न्वैतृष्ण्यदार्ढ्यात्प**र**मार्थमेति ॥ ५३

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ॰ मुमुक्षप्रथमोपकमो नाम सप्तचलारिशः सर्गः ॥४७॥

अष्टाचत्वारिंदाः सर्गः ४८

विसष्ठ उवाच ।

कहे संसारनिवेंदे स्थिते साधुसमागमे ।

शास्त्रार्थे भाविते बुद्ध्या भोगवेतृष्ण्य आगते ॥ १
जाते विषयवेरस्ये सज्जनन्त्रे तथोदिते ।
प्रकाशे सोन्मुखीभूतं हृदये कलितोदये ॥ २
धनानि नाभिवाञ्छयन्ते तमांसीव विवेकिना ।
स्यज्यन्ते विद्यमानानि संद्युष्कामेध्यपर्णवत् ॥ ३

निन्दति-भूरीति । चिन्ताशीकमोहादिभावविकाराणां जरा-मरणयोर्देष्कर्मणां दैन्यादीनां चार्थ एव सार्थः समूह इत्यर्थः । अजन्तुधिपयेऽपि जन्तुवदुपचारात्सार्थशब्दः ॥ ४२ ॥ संतोष एव वैराग्यप्रतिशागंन सर्वदः खहारीति तं प्रशंसति-अस्मि-निति ॥ ४३ ॥ सर्वेमुखहेतुरपि स एवंखाइ—वसन्त इखा-दिना । एकतः स्मृता इत्यन्वयः ॥ ४४ ॥ पूर्णता पुरुषस्य भवतीति शेषः । शिष्टमुत्तरान्विय ॥ ४५ ॥ साधुः संतोषे-णैव ओजिखतामेख सुपुष्त्रितवनाकारी राजते॥ ४६॥ असं-तुष्टस्त्वर्थार्था सन् पादपीटेन पादुकया परामृत्रो दैवादास्क-न्दितो निष्पष्टश्च यः कीटस्तद्वद्दीनप्रकृतिः सन् ईहते चेष्टते ॥ ४७ ॥ अर्थिनो धनलिप्सवः ॥ ४८ ॥ तासु तह्रक्षणाखिहि-फणच्छत्रच्छायासु बुधः को रमते । न कश्चिदित्यर्थः ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ बाह्यमारम्भमिन्द्रियानुधावनलक्षुणमान्तरं संकल्पादि-रुक्षणं वा क्षेत्रं ज्ञानवीजोद्भवस्थानं मुक्तिनिधानस्थानं वा हृद-यम् ॥ ५१ ॥ अनुकान्ता दहवैराग्यान्ता गुणा अभ्यस्ता एव ज्ञानं प्रतिष्टापयन्ति न हेल्या सेविता इत्याशयेनोपसंजिहीर्ष-राह-जगत्त्वामिति । अज्ञैः संबुद्धं जगत्त्वं जगदाकारवैचित्र्यं त्रसाक्षिण्य पदेवति विदन्नपि इः अपक्रशानतथा तत्र जगद्वै-चित्रये सतीव सत्यार्थ इवाज्ञवद्यतस्फरति व्यवहरति तत्प्रस्तुत- भाराय पान्थदृष्टेच दृदयन्ते दारदन्धवः ।
यथाशक्ति यथाकालमुप्चर्यन्त एव च ॥ ४
दिन्द्रयेष्विप संलग्ना दिन्द्रयार्थाः पुनःपुनः ।
न भोगा अनुभूयन्ते नृनं शान्तमनस्तया ॥ ५
एकान्तेषु दिगन्तेषु सरःसु विपिनेषु च ।
उद्याने पुण्यदेशेषु निजेष्वेष गृहेषु वा ॥ ६
सुद्दृत्केलिविलासेषु शुभोद्यानाशनादिषु ।

वैराग्यान्तगुणानभ्यासविज्ञम्भितमित्यर्थः ॥ ५२ ॥ प्रथमं सं-सारे निवेंददशामुपेत्र तेन सत्संगमं शास्त्रभ्यासं चोपेत्र तद-र्थंदढभावनया सर्वान्भोगानिरस्य द्शितठक्षणाद्वेतृष्ण्यदार्ळा-त्परमार्थं स्ततन्त्रं भूमिकापरिपाकक्रमेणेतीत्यर्थः ॥ ५३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणसात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे ससचरवारिशः सर्गः ॥ ४७ ॥

निरूढे परवैराग्ये पुंसो येर्डक्षणैः स्थितः।
येश्व ज्ञानप्रतिष्ठायां वर्ण्यन्ते तानि विस्तरात्॥१॥
तत्रादानप्टमिवॅराग्यप्रतिष्ठायां सत्यां यानि लक्षणानि भषनित तान्याह—रूढे इत्यादिना॥१॥ श्लोकद्वयं प्रागुक्तानुनादः॥२॥ संगुष्काण्यमेध्यान्यपवित्राण्युच्छिष्टादिपणानि यथा
ग्रहानिरस्यन्ते तद्वत्॥३॥ यथा पान्थानां दृष्ट्या उपयुक्ता
अपि भाण्डोपस्करा बोद्धमशक्त्या हातुं भाराय दृश्यन्ते तद्वद्विरक्तेनापि दाराश्च बन्धवश्च दृश्यन्त इत्यर्थः। 'क्रियाधीपपदस्य च कर्मणि' इति चतुर्था। लकारेण दिशिकियानिरूपितकर्मशक्तरिधानेऽपि गम्यमानजहातिक्रियानिरूपितायासस्या
अनिभानात्। ति किं सहसैव त्यज्यन्ते नेत्याह—यथाशकाति॥४॥५॥ तदेव प्रपद्ययति—एकान्वेष्वित्यादिना
॥६॥ आस्थीयते आस्थावता भूयते आसक्त्यभावािष्ठरं न

२२

शास्त्रतर्कविचारेषु म तथाऽऽस्थीयते चिरम् ॥ उपशान्तेन वान्तेन स्वात्मारामेण मौनिना। कातैवान्विष्यते क्षेत्र विकानैकान्तवादिना ॥ एवमभ्यासवदातः परे विश्वम्यते पदे। निम्नेवाम्मसि शान्तेन स्वयमेय विवेकिना ॥ ९ सबाह्याभ्यन्तरं शान्ता इतैवार्थतयोदिता । न संभवति मिन्नोऽर्थ इत्येच परमं पदम्॥ ξo नार्थोपलब्धिनी शुन्यमस्ति बोधात्मतां विना। इत्यन्तरनुभृतिस्थमाद्यस्तत्परमं पदम्॥ ११ एकबोधातिसंबन्धपरिणामान्न बोधता। न शुन्यता नार्थतेति विद्धि तत्परमं पदम् ॥ १२ स्वसंविन्मात्रविश्रामवताममनसां सताम्। न स्वदन्ते हि विषयाः पर्यासि दृषदामिष ॥ १३ निरोधपदमापन्नो निर्मना मौनमन्थरः। स्वभावे स्थित एवास्ते चित्रे कृत इवारमवान् ॥ १४ सर्वार्थमर्थरहितं महदेव पराणुवत्। अशुन्यमेव शून्यात्मा हृद्यं वेद्यवेदिनः॥ १५ अहन्त्वं जगदीहादि दिकालकलनादि च।

स्थीयत इति वा ॥ ७ ॥ दैवादास्थितेनापि तत्रतत्र ज्ञाता त-त्त्वविदेव ज्ञानदार्क्यायान्विष्यते । अथवा ज्ञाता देहेन्द्रिययु-च्यारीनां साक्षाइष्टा प्रलगातीन चेतसान्निष्यते न तबातिरिक्तं किचिदित्यर्थः ॥ ८ ॥ एवं निरन्तरान्वेषणेऽवस्यं खात्मद-र्शनेन विश्रान्तिः सिद्धातीत्याह--एवमिति ॥ ९ ॥ कीदर्श तत्पदं यत्रास्य विश्वान्तिः कीदशनिश्वयात्मिका च सा तदाइ-सवाह्याभ्यन्तरमिति । अज्ञता स्वाज्ञानमैवाऽर्थतया हश्यवर्गा-कारेणोदिता सा च मित्रोर्थों न संभवतीति शान्ता सा शा-न्तिरेव परभं पदमित्यर्थः । अथवा सबाह्याभ्यन्तरं मिन्नोर्थो न संभवतीत्येव निश्चयरूपा ज्ञता चरमसाक्षात्कारवृत्तिरेव द-ग्घेन्धनाप्रिवश्चिदात्मनि शान्ता चेत्तदेव परमं पदमित्यर्थः ॥ १० ॥ इति अनुभूतैं। स्वानुभवे सर्ववाधावधित्वेन स्थितं यत्तदेव परभं पदमित्यर्थः ॥ ११ ॥ तस्य परमपदस्य न बो-भता न भूत्यता नाप्यर्थतेति विद्धि । कुतः । सर्वस्य वद्धाः जातस्यैकेनाद्वयेन बोधेनैवातिशयितः संबन्धोऽतिसंबन्ध आ-स्यन्तिकैकरस्यं तथा परिणामात् । नहि बोध्याभावे तथावृत्ता बोधताप्यपदेषुं शक्या, नापि तदर्थता तस्यैव व्यपदेषुं शक्या. नाष्यर्थश्चन्यतामात्रेण बोधस्य श्रून्यताप्रसक्तिरिति भावः ॥१२॥ तद्विभान्तावास्यन्तिकं विषयपैरसं शिज्यतीस्याइ-स्वेति । यथा अमनसां देवदां क्षीराणि न खदम्ते तद्वत् ॥ १३ ॥ बह्रिभुंखचित्तानां खात्मप्रवणतां खात्मविश्रान्तानां च बहि-मुंखतां निरुणदीति निरोधस्तथाविधं पदम् । चित्रे कृती लि-सित इव निधलः ॥ १४ ॥ कीटशं तदा तस्य मनी भवति तहाह-सर्वार्थमिति । वेद्यमवश्यवेदनीयमात्मतस्वं वेदितं ब्रस्य ज्ञानादिश्चादि स्थितमेव न विचते ॥ १६ क्षेनामलपदस्थेन दीपेनेव निरस्पते। तमो हाईं तथा बाह्यं रागद्वेषभयादि च ॥ १७ रजोरहितसर्वोशं सस्वात्पारमुपागतम्। असंभवत्तमोरूपं प्रणमेत्तं नृभास्करम्॥ १८ मेदप्रविलये जाते चित्ते चारश्यतां गते। या स्थितिः प्राप्तबोधस्य न वाग्गोचरमेति सा १९ ददात्येतन्महाबुद्धे निर्वाणं परमेश्वरः। अहानेंशं परमया चिरं भत्तया प्रसादितः ॥ श्रीराम उवाच। ईश्वरः को मुनिश्रेष्ठ कथं भक्त्या प्रसाधते। पतनमे तस्वतो त्रृहि सर्वतस्वविदां वर ॥ २१ वसिष्ठ उवाच।

ईश्वरो न महाबुद्धे दूरे न च सुदुर्लभः। महाबोधमयैकात्मा स्वात्मैव परमेश्वरः॥

तसी सर्व ततः सर्व स सर्व तर्वतश्च सः।

सोऽन्तः सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नमः ॥२३

शीलं यस्य तथाविधस्य तस्य हृद्यं मनः अर्थरहितमेव सत्स-वार्थं भवति । सर्वस्य तत्त्वतस्तन्मात्रलात् । तथा अपरि-च्छिमब्रह्माकार्लान्महदेव सद्यतिरेकेण दुर्छभ्यलात्परमाणु-वद्भवति ॥ १५ ॥ अशून्यमेव शून्यात्मेति शेषं व्याचष्टे-अहन्लिमिति । यतो ज्ञानादि अतस्तत्त्या स्थितमेव, यतव शू-न्यादि अतो न वियते-- 'नासतो वियते भानो नाभानो विद्यते सतः' इति न्यायादिति भावः ॥ १६ ॥ भयादि यत्तव निर-स्यते ॥ १७ ॥ पक्षद्वयेऽपि विशेषणानि स्पष्टानि । अज्ञान-निशातिरोहितत्वेऽपि सलात्पारं तमोध्धिपारम् ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ एतद्वर्णितं परमपदलक्षणं निर्वाणं परमेश्वरो ददाति। तपःप्रभावदिव प्रसादाचेलादिश्रतेरिति भावः ॥ २० ॥ राम-प्रश्नः स्पष्टः ॥ २१ ॥ २२ ॥ ईश्वरता हि ईश्यविषये सर्वणा खातक्यम् । तत्र सर्वे प्रति सर्वेप्रकारेण खात्मन एव संभ-वतीत्युपपत्तिमाइ-तसी इति । अचेतनं हि सर्व रचयुहप्रा-सादादि चेतनार्थम्। नच तद्तिरिक्तोऽन्यश्चेतनधातुरस्ति । 'ना-न्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' इत्यादिश्चतेः । अनेन सर्वोपभोक्ततासात-न्यमुक्तम् । कर्तृतादिखातद्वयमपि तस्यवेत्याह-तत इति । तृतीयापश्चमीषष्ठीसप्तमीविभक्त्यन्तात्सार्वविभक्तिकस्तसः कः र्तृकरणनिमित्तस्वाम्यादिभावेनातिस्वातस्ययोतनार्थौ बोध्यः । ससर्विमित्युपादानाधिग्रानतादिस्वातऋयप्रदर्शनाय । एवं सर्वत इलपु सर्वशक्तिनिरूपकतास्त्रात्रष्ट्रययोतनाय बोध्यम् । सौ-क्र्यसर्वगतलपरिणामादिखानक्रयमपि तस्यव संभवतीलाह-सोन्तः सर्वमय इति । इत्थं सर्वथा सर्वदा सर्वात्मनस्तस्यैव सर्वयापि सर्वोत्कर्षात्म एवेश्वर इति नमस्कार्य इत्साइ-न्तरमै

तसादिमाः प्रसूयन्ते सर्गप्रस्यविकियाः। अकारणं कारणतो गतयः पवनादिव ॥ રઇ अनिशं पुजयन्त्येताः सर्वाः स्थावरजङ्गमाः। यधाभिमतदानेन सर्वे ते भूतजातयः॥ રપ सुबहुन्येष जन्मानि यथामिमतयेच्छया। यदा संपृजितस्तेन प्रसादमधिगच्छति ॥ २६ प्रसन्नः स महादेवः स्वयमात्मा महेश्वरः। बाधाय प्रेरयत्याद्य दूतं पूतं द्युमेहितैः॥ २७ श्रीराम उवाच। आत्मना परमेरोन को दूतः प्रेयंते मुने। स दृतो बोधनं वापि करोति वद में कथम्॥ २८ वसिष्ठ उवाच। आत्मसंप्रेरितो दृतो विवेको नाम नामतः। इहहायां सदानन्दस्तिष्ठतीन्दुरिवाम्बरे ॥ ર્ स एष वासनात्मानं जन्तुं बोधयति कमात्। संसारसागरादसात्तारयत्यविवेकिनम् ॥ 30 बोधात्मैषोऽन्तरात्मैव परमः परमेश्वरः । अस्पैव वाचको नाम प्रणवो वेदसंमतः॥ 38 जपहोमतपोदानपाठयञ्चक्रियाऋमैः। **इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० विवेकमाहा**त्म्यं नाम अष्टचलारिशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एप प्रसाद्यते नित्यं नरनागसुरासुरैः॥ 32 द्योर्भूर्घा पृथिवी पादौ तारका रोमराजयः। भूतान्यस्थीनि इदयं व्योमास्य परमेश्वरः॥ 33 सर्वत्रेष चिदात्मत्वाद्याति जागर्ति पद्यति । तेनैष सर्वतो लक्ष्यकरकर्णाक्किपादभृत्॥ 38 विवेकदृतमुद्धोध्य हत्वा चित्तपिशाचकम्। आत्मनः पदवीं स्फारां जीवः कामपि नीयते ३५ त्यकत्वा सर्वविकल्पौघान्विकारानर्थसंकरान्। पौरुषेणात्मनैवात्मा स्वयमेव प्रसाद्यताम् ॥ ३इ भ्रमन्मनःपिशाचेऽस्मिन्कृष्ठोलजलदाकुले। संसाररात्रितिमिरे स्वात्मैवापूर्णचन्द्रमाः॥ ३७ अगाधमरणावर्तकहोलाकुलकोदरे । तृष्णातरङ्गतरले स्वमनश्रण्डमारुते ॥ 36 महाजङ्खवाधारे संसारविषमार्णवे। इन्द्रियप्रामगहने विवेकः पोतको महान्॥ 39 पूर्वे यथामिमतपूजनसुप्रसन्नो दत्वा विवेकमिह पावनदूतमात्मा। जीवं पदं नयति निर्मलमेकमाधं सत्सङ्गदाास्त्रपरमार्थपरावबोधैः॥ Ro

एकोनपश्चाद्याः सर्गः ४९

वसिष्ठ उवाच। परिपृष्टविवेकानां बासनामलमुज्यताम् । महत्ता महतामन्तः काप्यपूर्वेच जायते ॥

इति ॥ २३ ॥ अतएव श्रुतिप्रसिद्धं जन्मादिहेतुतालक्षणं न-स्रोताशयेनाह-तस्मादिति ॥ २४ ॥ सर्वाराध्यतापि तस्यव प्रसिद्धेत्याहु--अनिशमिति ॥ २५ ॥ २६ ॥ स एव महा-दंबः ग्रुमेह्तिः मुकृतैः प्रसन्नः सन् बोधाय तत्त्वज्ञानाधानाय पूर्त विशुद्धतमं वश्यमाणं दूनं प्रेरयति प्रेपयति ॥२०॥ कथं क-रोति तन्मे वद ॥ २८ ॥ तेनात्मना देवेन संप्रेरितो विवेको नाम द्तः प्रागुक्ताधिकारिणो इद्गहायामागत्य तिष्ठति याव-ज्यानप्रतिष्ठं स्थिरीभवति ॥ २९ ॥ स विवेकद्नः यद्वोध-यति तदेव तस्य तारणमित्याशयः ॥ ३० ॥ एप सर्वजगत्त्र-बाहेतुस्वेन प्रसिद्धी बोधारमवान्तरात्मा न वासनात्मा । स एव परमः परमेश्वरः । प्रणवोऽस्येष वाचकः सन्नाम भवति ॥३९॥ ॥ ३२ ॥ तस्य स्यूलप्रपन्नोपहितं वैश्वानरहत्मात्मभेदभ्रमनि-रासायोपास्यं दर्शयति-चौरिति । तथाच श्रुतिः । 'अप्रि-र्भूषो चक्षुवी चन्द्रसूर्यो दिशः श्रोत्रं वाग्विववृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृद्यं विश्वमस्य पत्र्यां पृथिवी होप सर्वभूतान्तरात्मा' इति ॥ ३३ ॥ 'विश्वतश्रक्षकत विश्वतीमुखी विश्वतीवाहुरुत

औदार्योदारमर्यादां मति गाम्भीर्यसुन्द्रीम्। महतां नावगाहन्ते भुवनानि चतुर्दश ॥

२

विश्वतस्पात्' इत्यादिश्रुर्तानामप्यत्रेय सामञ्जस्यमित्यारायेनाह---सर्वत्रेति । सर्वतो लक्ष्यं करकर्णाक्षिपादं विभर्ति तथाविधः ॥ ३४ ॥ नीयते अनेनेति होपः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कल्लोठाः षड्मेयस्तहक्षणेज्ञेलदैराकुळे संसारलक्षणरात्रेस्तिमिरे स्वात्मेव आसमन्तात्पूर्णधन्दमाः । साहादप्रकाश इत्यर्थः ॥३७॥ वि-वंकस्यवोत्तारणत्वं वकुं संसारं समुद्रतया रूपयति-अगाधेति द्वाभ्याम् ॥ ३८ ॥ महतां स्थावरजङ्गमभूताद्यात्मनां जडल• वानां जलकणानामाधारे ॥ ३९ ॥ उक्तं प्रश्लोत्तरं संक्षिप्यो-पसंहरति-पृवेमिति । सप्टम् ॥ ४० ॥ इति श्रीवासिष्टम-हारामायणतारपर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टच-त्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

सुप्ररूढविवेकानां महत्ता यादशी भवेत्। यादक विश्वं भवति स्फुटं तदिह वर्ण्यते ॥ १ ॥ कापि लोकोत्तरा महत्ता जायते ॥ १ ॥ तामेव प्रपद्य-यति--- औदार्येखादिना । औदार्थस्य सर्वलोके तारतम्येन प्र-**चिद्रस्य** उदारां श्रेष्टां मर्यादामवधिभूनां गाम्भीर्येण च सुन्द्री

१ सर्वे ते इति न साधु, सर्वास्ता इति सुवचम्.

२ संकटान् इति पाठः. ३ झाहगहने इति पाठः,

चित्तभ्रान्तिर्जगदिति प्रकृष्ठे प्रस्यये सताम्। बाह्यआन्तअरज्ञकप्रहो मोहश्च शाम्यति॥ द्वीन्द्रवसापजलवस्केशोण्ड्रकवदम्बरे । बिस्फूरन्त्यां जगद्भान्ता वासनाप्रत्ययः कुतः ॥ ४ वसनाप्रत्यये शून्ये शून्यं व्योमेव शिष्यते। साप्यवस्था मनोऽसत्वे कुतस्त्याज्या विवेकिना ५ त्रयमेतत्तु यावस्थात्रयेणानेन वर्जिता। पद्यन्तीवाप्यपद्यन्ती सावस्था परमोच्यते ॥ विचित्ररत्नरद्भयोघ इव नानात्मकं जगत्। आभासमात्रं नत्वातमा न घनं न च पार्धिवम्॥ ७ रूपालोकनमात्रं हि शून्यमेव जगतिस्थतम्। खे विचित्रमणिव्यूहकरजालमियोत्थितम्॥ नेह सत्यानि भूतानि न जगत्ता न शून्यता। इदं ब्रह्माख्यरतेदाप्रभाजालं विज्ञस्भितम्॥ सृष्ट्योऽसृष्ट्यो ब्राह्म्यो नानाता च न नाशताः। अमूर्ता एव भासन्ते कल्पनार्कगणा घनाः॥ ŠΦ एवं तावद्धनीभूतः पिण्डग्राहो न विद्यते। संकल्पिते च ब्योझीय शून्यतैवावगम्यते॥ ११

महतां मति चतुर्दशापि भुवनानि तद्गतसंपदो जनाश्च नाव-गाइन्ते । न प्रलोभियतुमियत्तया कलियतुं वा शक्रुबन्तीसर्थः ॥ २ ॥ बहिः शब्दादिलक्षणेष्वतित्रहेषु भवो बाह्यः अन्तः संकल्पविकल्पादिक्षेश्वरत्रतएव ह्दान्तर्वहः कप्रायो प्रहः समनस्केन्द्रियादिकअपस्तनमूलभूतो मोहोऽज्ञानं चकाराद्वासनाकामकर्मादिश्व शास्यतीत्वर्थः ॥ ३ ॥ भ्रा-न्तीनां सत्यताभिमानां यावत्कालं तावदेव तद्वासनोपचयः तासां भ्रान्तित्वेन स्फुरणे तद्वासनानामपि मूलोच्छेदादुच्छेदो कोके प्रसिद्ध इति दशन्तानुदाहृत्य दर्शयति—द्वीनदुवदिति । जगद्भान्तौ भ्रान्तिरेवेयमिति तत्त्वबंधाद्भिरुरन्त्यां सत्याम् ॥४॥ सा बासनाशून्या अवस्थापि मनसः असत्वे सति सिद्धति । सा निर्वासना निर्मनस्कावस्था सप्तमभूमिकायां विवेकिना प्राप्ता कतस्त्याज्या । तत्त्यागे हेतुनीस्त्येवेलर्थः ॥ ५॥ एतत्तु जाम-दारावस्थात्रयमेव सर्वेषां प्रसिद्धम् । यातु अनेन त्रयेण व-र्षिता साबस्था दर्शनादिव्यवहारमूलबःधादपश्यन्खपि जीवनमा-त्रहेतुप्रारव्धशेषेण पश्यन्तीवान्यदशा भाति, तदृष्ट्या तु परभैव सोच्यते न दर्यानुषक्तित्यर्थः ॥ ६ ॥ तादशां व्युत्थानकालेऽपि जगन्न आत्मा न घनं नापि पृथिन्यादिघटितं किंतु विचित्रो रक्ररस्योघो निविडितप्रभापुज इव घनतादाभासमात्रमिखर्थः ॥ ७॥ ८॥ ९॥ यतो नानाता नास्त्यतः सृष्टयो न सन्ति । यतथ नाशताः न सन्ति अतः अस्ष्टयः प्रत्याक्ष न सन्ति किल-मूतौ एव कल्पनार्वगणा घनीभूय भासन्त इखर्थः । अर्कपदेन तत्करणा छक्ष्यन्ते ॥ १० ॥ संकल्पकल्पितमूर्ताकाराणां मनी-राज्यादी शुन्यतैव प्रसिद्धा न पिण्डप्रह इत्याह—एवं तावदिति ॥ ११ ॥ शून्यतात्रसाधनस्य फलमाह—तस्यामिति । तस्रां

तस्यामवस्तुभूतायां कथं भाषनिबन्धनम्। भविष्यदाकारातरी विभान्तः को विहंगमः॥ १२ पिण्डत्वं नास्ति भूतानां शून्यता च न विद्यते । चित्तमप्यत प्यास्तं शेषं सत्तन्न चास्थिति॥ १३ अनाना सममेवास्त नानारूपो विबोधवान्। अन्तरालीननानार्थी यथा कनकपिण्डकः॥ १४ यथास्थितस्य साहन्त्वं विश्वं चित्तं विलीयते । ब्रस्यावाच्यमचित्वं सत्स्वरूपमवशिष्यते ॥ क्किरयते केवऌं युद्धिकत्तराधरदर्शनैः । स्तोकयाभ्यस्तया युत्तया सत्योऽधों हावगम्यते १६ विराज्ञोजोविरहितं कार्यकारणतादिभिः । भूतभव्यभविष्यस्य जगदङ्गस्य संभवम् ॥ १७ येन बोधात्मना बुद्धं स व्र इत्यभिधीयते। अद्वैतस्योपशान्तस्य तस्य विश्वं न विद्यते ॥ पूर्वोक्ताः सर्वे प्वैते उपदेशा विशेषणाः । ज्ञस्यानुभवमायान्ति स्वतः साधुकथा इव ॥ पिण्डत्वं नास्ति भृतानां शून्यत्वं चाप्यसंभवात्। अतएव मनो नास्ति शेषं सत्तत्तव स्थितिः॥

शून्यतायां अहंममतारागद्वेषादिभावनिवन्धनं कथम् । न संभ-बत्येवेलर्थः ॥ १२ ॥ एवं जगतः पिण्डलाद्यपरापे सन्मात्रं सारतया परिशिष्टमित्याह—पिण्डलमिति । तन्तु दुरपहवमि-त्याह—तम चास्थितीति ॥ १३ ॥ अतएव तत्त्वविज्ञामत्यपि सुषुप्तस्थो भासमाननानालानां सन्मात्रात्मन्यन्तर्रुयादिति स-दशन्तमाह-अनाना सममेवेति ॥१४॥ ननु इस्य तत्सन्मा-त्रमवशिष्टचिद्रपमेव किं न स्यात्। सति हि चित्ते चिदिभि-व्यक्तिः प्रतिद्धा तद्विलये तदसंभवादिलाशक्काह-यथास्थि-तस्येति । यद्ययथास्त्रभाने जाङ्ये स्थितस्यास्य साहन्तवं विश्वं चित्तं च विकीयेत तदा जडसन्मात्रपरिशेषो भवेत् । नत्वेषं किंत इस्य यथाभूतिवदेकखनावे स्थितस्य साहन्त्वं विश्वं चित्तं च तत्त्वदर्शनाद्विलीयते, तदा तु परिशिष्टचिदेकरसस्याचित्त्वं वक्तुमशक्यमिति चिदेकरससत्परिशेषसिद्धिरित्यर्थः ॥ १५ ॥ यदि तत्खरूपमेव ताई सर्वेषां कृतो न युरुभमिति चेदुबाव-चविषयेष्वेव बुद्धेश्वश्वलतमा स्थैर्याभावादिलाइ—क्रिश्यत इति ॥ १६॥ कासी स्तोका युक्तिस्ता दर्शयंस्तदभ्यासफलं ज्ञानल-क्षणमित्याइ-विराडिति । येन अधिकारिणा भूतभव्यभविष्य-त्सर्ववस्तुलक्षणस्य जगदन्तस्य संभवं जन्म कार्यकारणतादिमि-विमृद्य वाचारम्भणश्रुतिद्शितन्यायन विराजा स्थूलप्रपन्नेन ओजसा तद्विष्टम्भकसूत्रात्मकप्रधानेन सूक्ष्मप्रपश्चेन विरहितं परित्रिष्टसन्मात्ररूपाखण्डबोधात्मना बुद्धं स एव इस्तत्त्ववि-दिति सार्थस्यार्थः ॥ १० ॥ १८ ॥ सर्वोपदेशानां तत्तदसंभा-वनांशव्यावर्तकानां तादशानुभवे पर्धवसानमित्याह--पूर्वे का इति ॥१९॥ युत्तयन्तरमाह--पिण्डलमिति । चतुर्विधभूतमा-माणां पृथिव्यादिमहाभूतानां चावयवशो गुगशक्ष विविच्य द-

बेत्योन्यसत्वमेषाम्तञ्जेतनस्यास्य चेतनम् । उदितं तदनर्थाय भेयसेऽसुदितं मवेत्॥ 28 उदितं बाह्यतामेति तत्र गच्छति पिण्डताम् । स्वयं संवेदनादेव जाड्यादम्बिव शैलताम् ॥ **२**२ स्वप्राचर्यवदादसे बोघोऽबोधेन पिण्डताम्। तक्राहकतया चित्तं भूत्वा बधाति देहकम्॥ 23 पतावतीष्ववस्थासु बोधस्योदेति गान्यता। शुष्टकल्पनया मेदः केवलं परिकल्पितः॥ २४ बहिरन्तम बोधस्य मात्यात्मैवार्थरप्रिमिः। अन्तस्त्वेन बहिद्रेन नैवास्य मनसो यथा ॥ २५ बोधस्याकाराकल्पत्वात्कालाकाराादि तद्वपुः। पदार्थाभीव स्वात्मानः स्वप्नवन्नार्थरूपि स्वम् ॥ २६ षाद्यार्थता नान्तरत्वं तद्वद्वोधवशाद्रजेत । नासाद्ययं हि बोधत्वं गन्तुं शक्तं जडं कचित् २७ बोधो दृश्यद्शां नैति प्राप्तो वापि च तां स्थितिम् । स यथास्थितमेवास्ते मनागप्येति नान्यताम् अस्तर्थे श्रद्धबोधैकपरिणामे कृतोदये। बोधाबोधार्थशब्दानां श्रुतिरप्यस्तमेष्यति॥ २९ आतिवाहिकदेहानां चित्तानासेव जायते।

स्यमानानां परमाणुभावेऽप्यविश्रान्तेः पिण्डलं तावन्नास्ति।नापि य ग्रन्यत्वं प्रसक्तायसंभवात् । उभयासंभवे च सर्वविकल्पा-पगमात्तदधीनस्थितिकं मनोऽपि नान्तीखिवकरपं सन्मात्ररूपं स्फरणमेव पिष्यत इति शेषं तदेव तव पारमार्थिकं रूपं शितिः प्रतिष्ठेखर्यः ॥ २० ॥ युक्तयन्तरमाह्—चेलोन्मुखलांमति । अन्तर्वेतनस्यास्य प्रत्यगात्मनश्चेत्योन्मुखलमेव चेतनं संसारा-त्मना बोचः ॥ २१॥ कथमनथीय तदाह-उदितमिति। श्रीलतां करकोपलभावम् ॥ २२ ॥ बोधश्विदारमा । अवोधन खाज्ञानेन ॥ २३ ॥ ईटशविवर्तसह्स्ररिप चितो नाणुमात्रमपि विकार इति वेषां वाचारम्भणमात्रस्रमित्याइ---एतावती-ष्टिति ॥ २४ ॥ यथा स्वप्नस्य मनसा दर्शने मनस एवान्त-स्त्वेन बहिद्वेन च मन एव विकृतं भाति न तथा बोधात्मा अ-बंद्दष्टिमिर्मासमानोऽपि विकृत इत्यर्थः ॥२५॥ कृतो न विकृत-सात्राह-बोधस्येति। कालाकाशादिवद्विकृतमित्यर्थः। अर्थक्षि अर्थाकारपरिणामि ॥२६॥ चिज्जडबाह्यार्थाकारेण न विकियतां बडमेव तत्त्वबोधवशादान्तरचिदाकारत्वेन विकियतां तत्राह-बाह्यति । हि यस्माम्बडमसादृश्यमत्यन्तविसद्शमित्यर्थः ॥२०॥ तां दरमस्थिति विवर्तवशात्त्रामोऽपि बोधो यथास्थितमविकृत ए-बास्ते॥२८॥सप्तमभूमिकाविश्रान्तिपर्यन्ते परिणामे परिणती २९ दृरमस्य मनोभावनयेव दढीमाव इव तयेव शिथिलोभाव इ-साह-आतिवाहिकेत्यादिना ॥ ३० ॥ नटैः पिशाचवेपना-टनाय कल्पिता विशायतेव ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ भावना अर्थस-व्यतानासना ॥३३॥ एतस्यारछंदे उच्छेदे परा उद्युक्ताः ॥३४॥

आधिभौतिकताबोधो रहभावनया स्वया ॥ आकाशविश्वविश्वनिर्भावितेपातिवाहिकैः। आधिमौतिकता मिथ्यानटैरिव पिशाचता ॥ ञ्चान्तिरञ्चमणाभ्यासात्प्रज्ञातैषोपशाम्यति । नोन्मत्तोऽसीति संबोधाच्छाम्यत्युन्मत्तता किछ३२ म्रान्तेः स्वयं परिज्ञानाद्वासना विनिवर्तते । स्वमे स्वमतया बुद्धे कस्य स्यात्किल भावना ॥ ३३ वासनातानवेनैव संसार उपशाम्यति। वासनैव महायक्षिण्येतच्छेदपरा बुधाः॥ રેક अज्ञानोन्मत्तता पंसां यथाभ्यासेन भाविता। तथैव बोधात्स्वभ्यासात्सा कालेनोपशाम्यति ३५ आतिघाहिकदेहोऽयमाधिभातिकतां यथा। नीयते भावनां तर्ज्यांधसत्ताप्रसादतः॥ 36 आतिवाहिकदेहोऽपि नीत्वा जीवपदं तथा। **द्दे**न बोधाभ्यासेन नेतच्यो ब्रह्मतामपि॥ ३७ स्वयस्त्वश्चेद्रत्पत्तिर्वृध्यते बोधरूपिणी। तदातिवाहिकी बुद्धिः कथमित्यपि बुध्यते॥ 16 नोचेत्तत्प्रतिवाच्यार्थात्तह्रन्थिविनवर्तते । भूतोत्सादनसूत्रस्य प्रतिपत्तृपदं यथा ॥ 36

सा अज्ञानप्रयुक्ता उन्मत्तता ॥ ३५ ॥ बोधस्य सला अभ्या-सद्दीकृता स्थितिस्तत्प्रसादतः आतिवाहिकदेहो भावनां म-ह्याहंभाववासनामात्रतां तथा नीयत इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ भावनां नीला जीवपदं जीवतां नीला ततो ब्रह्मतां नेतव्यः ॥३०॥ कथं जीवपदं नेतव्यः कथं च ब्रह्मनां तदाह्—स्ववस्तुवदिति । उत्पन्नान्हि बाह्यानाध्यात्मिकांथ भावान्त्रति रागाद्यद्भावनेना-रमानमतिवहतीत्यतिवाही वासनासङ्गस्तदुद्भवो हि लिङ्गहेह आतिवाहिक इत्युच्यते । तत्र सर्वभावानां प्रथमो विकार उ-रपत्तिः सा चेद्विगृदय खवल्तुवत्कृटस्था बोधमात्ररूपिणी बुध्यते तदा आतिवाहिकीवुद्धिरिप कथं कितत्त्वा इति तुल्यन्यायेन बु-ध्यते । न तावत्कस्यचिद्धावस्य कृटस्थबोधस्वभावव्यतिरेकेणो-त्पत्तिर्निरूपियतुं शक्या । तथाहि । सा हि प्राक्क्ययमुत्प**ध** भावान्विधिष्यादनुत्पद्य वा । द्वितीये श्वन्नमपि शशं विश्वि-ष्यात् । आर्वे स्वयमुत्पत्त्यादिमिर्विशेष्यमाणाः भाव एव स्यान भावविकारः।एवं तदुरपत्तिरपीत्यनवस्थादोषाभ्युपगमे निर्विकार-भावानवर्ध्यव स्पादिति नोत्पत्त्यादिविकाराः कस्यचित्केनचि-त्रिरूपयितुं शक्या इति कृटस्थवोधरूपा एव ते इति बुद्धे कः कसी कमतिवहेिक तदतिवहनं का वा तद्वदिरन्या स्था-दिति सापि तस्वतो बुध्यत इलार्थः ॥ ३८ ॥ अनर्थेव रीला तत्त्वंपदार्थशोधने सर्वमहावात्रयान्यखण्डार्थयोधनेन सर्वसंदेह-र्यान्थमेदने समर्थानि । अन्यथा तु भूतोत्सारणमञ्जगतहुंफडा-दिपदवदनर्थकान्यंव श्रवणमात्रवलात्संसारं कल्प्यं स्यादित्याह-नोचेदिति । सूत्रस्य मन्त्रस्य प्रतिपत्त्वच-

जगद्वोधेकतां बुदा बोद्धव्या तावद्वणम्। अस्यन्तपरिणामेन यावत्सापि न बुध्यते ॥ 80 सबाह्याभ्यन्तरे चित्ते शान्ते भाति स्वभावता । शीतलां ब्योमनिर्भासां तामेवाश्रित्य शाम्यताम् ४१ **क्षानवान्क्षानयकस्थो** ध्यानयूपं विरोपयन्। जगद्विजित्य जयति सर्वत्यागैकदक्षिणः॥ પ્રર पतत्यङ्गारवर्षे च वाति वा प्रलयानिले। भूतले वजित ब्योम्नि सममास्ते ह आत्मनि॥ ४३ वैतृष्ण्यशान्तमनसो निरोधमलमीयुषः। स्थितिर्वज्ञसमाधानं विना नान्योपपद्यते ॥ 88 यथा बाह्यार्थवैतृष्ण्ये नोपशाम्यत्यलं मनः। न तथा शास्त्रसंदर्भनीपदेशतपोदमैः॥ છહ मनस्तुणस्य सर्वार्थवैतृष्ण्यामिर्विबोधितः। सर्वत्यागानिकैः संपदत्यापदिति भावनात्॥ ક્ષ षहिरन्तका मोहका पिण्डमाहोऽर्थवेदनम्।

इतिरेवेति कचति ज्ञात्वा मणिरिवात्मनि ॥ 83 नरनागासुरागारगिरिगह्नरदृष्टिभिः। चितिरेवेति विस्ता धूमोऽम्युद्तयेव खे॥ 86 वेपरते चिद्रवत्वेन ब्रह्माण्डजडभाण्डगाः। स्विवर्ततरङ्गिण्यो जीवशत्त्या पतद्रसाः॥ 86 जीवकाजीर्णशकरी व्योमवारिविहारिणी। मोहजालेन बलिता न स्मरत्यात्मनि स्थितिम् घनीभूता घनत्वेन चिद्धना गगनाङ्गणे। नानापदार्थरूपेण स्फुरति स्वात्मनात्मनि॥ લ રૂ सर्व एव समा जीवा वासनामन्तरेण च। शुष्कपर्णवदुष्टीना जडाः श्वसनवेणवः ॥ 快艺 आहत्य पीरुपबलान्यवजित्य तन्ही-मृत्थाय तर्जितसमर्जितवासनीयम् । संसारपाशघनपञ्जरमञ्जसेव भङ्कत्वाभ्यदेयमभितो इसमेन भाव्यम् ५३

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्त० सर्वोपशान्तिर्नामेकोनपञ्चासः सर्गः ॥ ४९ ॥

टकं हुंफडादिपदं यथा तथा भवेदिति शेषः ॥ ३९ ॥ तत्य-दार्घशोधाय वाचारम्भणन्यायेन प्रथमं जगत्कारणेश्वरखरूप-बोधेकतां बुद्धाः तदनन्तरं त्वंपदार्थशोधाय प्रस्वकिदपि 'स पर्यगाच्छुकमकायमवणम्' इति श्रुतिदर्शितदिशा असङ्गाद्वया बोद्धव्या । कियत्कालं पदार्थद्वयशोधनपरेण भाव्यं तत्राह-**अत्यन्तेति । यावत्पदार्थयोरखण्डैकरसवावयार्थरूपेणात्यन्तप-**रिणामेन सा अखण्डाकारवृत्तिरपि न बुध्यते तावत्कालमित्यर्थः ॥४०॥४१॥ स एव मुख्यो विश्वचिदाख्यो ज्ञानयज्ञ इत्याह-श्चानवानिति। विरोपयन्दढं निखायोच्छयन्सन् । सर्वत्याग एवैका मुख्या सर्वखदक्षिणा यस्य तथाविधो भूला जगद्विश्वं विजित्य ज-यति सर्वोत्कर्षेणास्ते ॥४२॥ सर्वोत्कर्षमेव सर्वविषदप्रकम्प्यत्वेन प्रथमं वर्णयति-पतर्ताति ॥ ४३ ॥ वज्रसारवैतृष्ण्यशान्ति-मुस्रोत्क षंस्थैरेंणापि तं वर्णयति—वैतृष्ण्यमित्यादिना ॥ ४४ ॥ शान्तिसाधनानां मध्ये वैतृष्ण्यस्योत्कर्षमाह—यथेति ॥४५॥ संपत्सर्वाप्यत्यापदिति भावनान्मनोरुक्षणस्य तृणोश्ययस्य मध्ये **सर्वत्यागलक्षणैरनिलैविबो**घितः सर्वार्थवेतुष्ण्यल**क्षणोऽ**प्रिज्ञीला वरमसाक्षात्कारज्वालात्मना प्रवृध्य बहिरन्तश्च प्रसिद्धी यो मोहान्धकारो यथ तत्प्रयुक्तश्चोरयक्षादिकल्पनातुल्यो बद्धाण्ड-भूतभौतिकमूर्तलक्षणिपडमाही यच तत्रयुक्तं चक्षरादिना शब्दार्थवेदनं तत्सर्व इपिश्वदात्मैवेत्यखण्डाद्वयखभावनैव क-चित । यथा वजादिमणिः स्वप्रतिबिम्बितवस्तुजातं सैकरस्येन प्रययन्त्वत एव कचित तद्वदिति द्वयोरन्वयः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ विस्ता विविधं वैचित्र्यं प्राप्ता ॥ ४८ ॥ ब्रह्माण्डभाण्डा-न्तर्गतसर्ववस्तूनां चिद्याप्त्यधीनस्पन्दलादपि चिद्विवर्तमात्र- ।

लमिखाशयेनाह—वेपन्ते इति । जीवशक्तया प्राणेन आप-तद्रसा सरसाः 11 88 11 तत्र चत्रविधशरीग्टलण-चिद्विवर्ततराज्ञणीषु जीवशफरीणां मोहजारेन बन्धान्स्यन् न्वास्परणमित्याह—जीवकेति ॥ ५० ॥ त्मनि खरूपरुक्षणे गगनाङ्गणे घना मेघा इव संपदा विश्वता धनत्वेन भूरादिमूर्ताकारेण नानापदार्थहपेण स्फरति ॥ ५५ ॥ तत्र जीवानां तुस्यस्वभावत्वेऽपि वासनाविन्दिक्यादेव संसार-दुःखवैचित्रयं नान्यकृतमिलाह्—सर्व एवति । वासनामन्तरेण विना इतरांशे समा वासनावैषम्यादेव शुष्कपर्णवद्शेनाः सन्तो विचित्रस्वर्यनरकादिभूविभागेषु पतन्ति न खतः । यतौ ज**डोपाधिसाम्याज्ञडाः श्वसनस्य प्राणस्य वेणव इय**्वानेवेत्ति-व्येऽपि वासनाङ्गुलिचेष्टावैचिव्यमन्तरेण क्षमन्त इलार्थः ॥५२॥ अतएव वासनावञ्चपजरभेदनार्थभेव निखन्द्र ग्रेहपप्रवाही वर्ध-नीयस्तत एव परमपुरुषार्थसिद्धिरित्युपसंहरति--आहत्वेति । आदी पौरुषबळानि साधनचतुष्टयश्रवणमननादीन्याहरू । तती ध्यानविष्ठभूतां तन्दीमासनप्राणायामायम्यासेनावजिल्यः संप्रज्ञा-तसमाधिना बहिर्देष्टेरस्याय निविकत्पाराप्रज्ञानसनाध्यसुप्रवेशनः देव समर्जितं प्राक्समर्जितवासनीयङक्षणं संगारपारापनपः ए-मंभ्रमा शीप्रमेव तत्त्वसाक्षात्कारेण भइकला अभितः पणानन्दै-करसब्रह्मात्मना उदेयं खया न खब्रसमेन संगारान्ववितिना भाव्यमिखर्थः ॥ ५३ ॥ इति श्रीवातिष्टमहारामायणे तात्पर्यप्रकाशे निर्याणप्रकरणे उत्तराधं सर्गः ॥ ४९ ॥

पश्चाद्याः सर्गः ५०

वसिष्ठ उवाच।

इमे ये जीवसंघाता दृश्यन्ते दृश दिग्गताः।
नरनागसुरागेन्द्रं(?)गन्धर्वाद्यमिधानकाः॥ १
ते स्वप्नजागराः केचित्केचित्संकल्पजागराः।
केचित्केवलजाम्रत्स्थाश्चिराज्ञामृत्स्थिताः परे॥ २
घनजामृत्स्थिताश्चान्ये जाम्रत्स्वप्नास्तथेतरे।
श्लीणजागरकाः केचिज्जीवाः सप्तविधाः स्मृताः ३
श्रीराम उचाच।

पतेषां भगवन्भेदो बोधाय मम कथ्यताम् । जीवानां सप्तरूपाणां जलानामर्णवेष्विव ॥ वसिष्ठ उवाच ।

किंसिश्चित्प्राक्तने कर्षे किंसिश्चिज्ञगति किंचित्।
केचित्सुप्ताः स्थिता देहैर्जीचा जीवितधर्मिणः॥ ५
ये स्वप्तमिपद्यन्ति तेषां स्वप्तमिदं जगत्।
विद्धि ते हि खत्रूच्यन्ते जीवकाः स्वप्तजागराः॥६
किंचिर्य प्रसुप्तानां यः स्वप्तः स्वयमुत्थितः।
विषयः सोऽयमसाकं तेषां स्वप्तनरा वयम्॥ ७
तेषां चिरतया स्वप्तः स जाप्रत्वमुपागतः।
स्वप्रजागरकास्ते तु जीवास्ते तद्गताः स्थिताः॥ ८

बासनादार्क्यशैथिस्यमेद्वैश्वित्यकस्पितम् । इह बोधाय जीवानां साप्तविषयं प्रपद्मयते ॥ १ ॥

सर्व एव समा जीवा वासनामन्तरेण चेत्यन्ते यज्ञीवानां वासनावैचित्र्यमात्रेण वैचित्र्यमुक्तं तत्साप्तविध्येन लक्षणैर्निरू-प्रितं प्रतिजानीते—इमे इति । नरनागादिदेहवैचित्र्येये दृश्यन्ते ते इति संबन्धः ॥ १॥ २ ॥ ३ ॥ अर्णवेषु क्षीरादि-रसमेदबासितानां जलानामिव ॥ ४ ॥ तत्राद्यान्जीवटोपास्या-नदर्शितन्यायमवरुम्ब्य रुक्षयति--कस्मिश्विदिखादिना । देहै-जीवितथार्मिणो जीवन्तः सन्तो ये खप्रमिपश्यन्तीति परेणा-न्त्रयः ॥ ५ ॥ ६ ॥ तेषां स्वयमुत्भितो यः स्वप्नप्रपञ्चः सोयं समानकमंवासनोद्भववशादस्माकं यदा विषयो भवति तदा वर्ष तेषां स्वप्ननरा इत्यर्थः । उपपादिनो स्वयमर्थः प्राग्लीलोपा-स्याने ॥ ७ ॥ तेषु स्वप्नजागरकशब्दमुपपादयति—तेषा-मिति । उपागतो यतोऽत इति शेषः ॥ ८ ॥ तेषां स्वप्ननरा वर्गमिति यदुक्तं तद्प्युपपाद्यति—सर्वज्ञलादिति । नन्वस्म-दायदेशादिप्रपन्नो यदि वासनात्मना तिवसे स्यातदा स एव तेपां खप्ने उद्भूत इति तदन्तर्गतानामस्माकं तदीयखप्ननरत्वं स्यात्। न त्वेतत्संभवतीति चेन्मैवम्। येन हेतुना सर्वं सर्वत्र विदाते सर्वसत्ताप्रदस्य मायाशबलब्रह्मणः सर्वगस्य सर्वत्र सर्व-इलात्। अतो वयं तेषां खप्रनरास्तदन्तःकरणे वासनात्मना स्थिता एव वत्स्वप्रे कर्मसाम्याद्युगपदिभव्यक्ता इत्यर्थः ॥ ९ ॥ अस्त दैशिकी सर्वत्र सर्वस्थितिः कालिकी तु न संभवति ।

सर्वेश्वत्वात्सर्वेगस्य सर्वे सर्वत्र विद्यते । येन स्वप्नवतां तेषां वयं स्वप्ननराः स्थिताः ॥ ९ श्रीराम उवाच ।

येषु कल्पेषु ते जाताः श्रीयन्ते कल्पकल्पनाः।
यदि तास्तत्कथं तेपां प्रवुद्धानामवस्थितिः॥ १०

वसिष्ट उवाच। इह स्वप्नभ्रमान्ते ते मृच्यन्ते वा विनिद्रताम्। प्राप्य संकल्पतो देहांस्तथैवान्यान्श्रयन्त्यलम् ॥११ तथैवान्यं प्रपद्यन्ति जगत्करुपं च करिपतम्। कल्पनाभासनभसो नहि संकटता भवेत्॥ संकल्पनात्मकजगज्जीणीयुम्बरकीटकाः। स्वप्नजागरकाः प्रोक्ताः श्रृणु संकल्पजागरान् १३ कस्मिश्चित्पात्तने कल्पे कस्मिश्चिजागति कचित्। अनिद्राऌव पवान्तः संकल्पेकपराः स्थिताः ॥ १४ ध्यानाद्विलुठिता वाथ मनोराज्यवशानुगाः। संकल्पदार्क्यमापन्ना गलितात्रानुभूतयः॥ १५ संकल्प एव जाग्रस्वं येषां चिरतयांशतः। तत्रास्तमितचेष्टानां ते हि संकल्पजागराः॥ १६ संकल्पोपरामे मूयस्तमन्यं वा श्रयन्ति ते।

भतीतकल्पेषु वर्तमानवस्तुस्थित्ययोगादन्यथा सर्वकल्पानां यौ-गपद्यापत्त्या भेदाभावप्रसङ्गादित्याशयेन रामः पृच्छति—ये-प्विति । प्राग्येषु कस्पेषु ते अस्मत्प्रपञ्चस्वप्रद्रष्टारो जीवा जाता जन्म प्राप्तास्तेषां कल्पानां कल्पनाः सह तरेहै: सांप्रतं यदि क्षीयन्ते नष्टास्तर्धेतसात्स्वप्रात्प्रबुद्धानां तेषां पुनर्तिते कल्पे नावस्थितिः सिद्यति । नह्यचतनस्वप्रात्प्रबुद्धेन पूर्वेद्युस्त-नोऽपि जागरोऽनुभवितुं शक्यो दूरे पूर्वकल्पस्थः स इति भावः ॥ १० ॥ ते जीवा यद्यसात्त्रपत्रात्मके स्वप्ने तत्त्वज्ञानं देवा-क्रभन्ते तर्हि मुच्यन्त एयेति नैतहोषप्रसक्तः, यदि तु तत्र ल-भन्ते तर्हि न तत्कल्पशेषसंत्रामतीत इलामे उद्भविष्यत्येव । अन्यकल्पनाकल्पितानाभेवात्ययात् । तश्वेतसि प्रातिश्विकतत्क-ल्पशेषकल्पनाया अग्रेऽप्यैन्दवोपाख्यानन्यायेनोपपत्तेरित्याशय-न वसिष्ठः समाधत्ते-इहेति । अन्यान्ध्यन्तीत्युत्तया दृष्टगृष्टि-वादमालम्ब्य प्रत्यहं जागरे देहान्तरकल्पनायामपि संस्कार-वशादेव प्रत्यभिन्नेत्यपि दर्शितम् ॥११॥ संकटता निरवकाशता ॥ १२ ॥ आदाजीवानां निरूपणसुपसंहत्य द्वितीयान्वक्तसुप-त्संदरपपराः ॥ १४ ॥ अथवा जीवटोपाख्यानोक्तभिक्षुबद्धाः-नाद्विद्धिताश्विताः । गलिता अपानुभृतिः पूर्वावस्थानुसंघानं येषाम् ॥ १५ ॥ येषां जीवानां संकल्प एव निरानुवृत्त्या घनी-भूते जायस्यं जागराभिमानः तत्र सांकल्पिकार्थेष्वेबास्तमिता न पूर्वापरप्रतिसंभानक्षमा मनवेष्टा येषाम् ॥ १६ ॥ तं प्राकनं

१ (रेव) (भूत) इस्त चेंदरं।

देहे तेषां वयमिमे संकल्पपुरुषाः स्थिताः ॥ १७ संकल्पजागराः प्रोक्ता एते संकल्पजायिनः । जीवा जीवितगा लोकाः श्रृणु केवलजागरान्॥१८ प्राथम्येनावतीर्णास्ते ब्रह्मणो बृंहितात्मनः । प्रोक्ता केवलजागर्याः प्रागुत्पस्यविकासिनः ॥ १९ भूयो जन्मान्तरगतास्त एव चिरजागराः । कथ्यन्ते प्राढिमायाताः कार्यकारणचारिणः ॥ २० त एव दुष्हतावेशाज्जदस्थावरतां गताः । घनजाप्रत्तया प्रोक्ता जाप्रत्सु घनतां गताः ॥ २१ ये तु शास्त्रार्थसत्सङ्गवोधिता बोधमागताः ।

पर्यन्ति स्वप्रवजाम्रजाम्यस्वमा भवन्ति ते ॥ २२ ये तु संप्राप्तसंबोधा विश्वान्ताः परमे परे । श्लीणजाम्रत्मभृतयस्ते तुर्या भूमिकां गताः ॥ २३ इति सप्तविधो मेदो जीवानां कथितस्तव । समुद्राणामिव मया बुद्धा श्रेयःपरो भव ॥ २४ भ्रान्ति परित्यज्ञ जगद्रणनात्मिकां त्यं वोधैकरूपघनतामलमागतोऽसि । शून्यत्ववर्जितमशून्यतया च मुक्तं तेन द्वयैक्यकविमुक्तवपुस्त्वमाद्यम् ॥ २५

इलार्वे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षो । निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्वे जीवसप्तकप्रकारवर्णनं नाम पत्राशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपश्चाद्याः सर्गः ५१

श्रीराम उवाच । कथं क्षेत्रलजाग्रस्वमकारणमनर्थकम् । पराद्विकस्ति ब्रह्मन्गगनादिव पादपः ॥ वसिष्ठ उवाच । अकारणं महाबुद्धे न कार्यमुपलभ्यते । तज्जाग्रतः केवलस्य न कश्चिदिह संभवः ॥ तस्यातो संभवादन्ये जीवभेदाः सजीवकाः ।

व्यवहारमन्थं तद्विलक्षणं वा । तेषां दथ्या तु वयं संकल्पपुरुषा एव तुल्यसंकल्पोद्धवादिलार्थः ॥ १७ ॥ एते जीवाः तेषां सं-कल्पजीवितं गच्छन्ति प्रविशन्ति तथाविधा अस्मदादिछोकाश्व तदृष्ट्या संकल्पजागरा एव।तृतीयान्त्रावयति--श्विति॥१८॥ स्टिसंकल्पेन बंहितात्मनो बहाणो वस्यमाणरूपादस्मिन्कल्पे प्राथम्येनावर्ताणी लब्धशरीरास्त्रस्मिन्जन्मनि खप्नपूर्वकलाभा-वात्केवळजागर्याः । यथा प्रामुक्ता दामव्यालकटाः । यतस्ते प्रागुरपत्तिविकासलक्षणस्त्रप्रज्ञाः कल्पान्तरीयजाप्रत्यंस्कारस्य जाप्रजननेनैवोपक्षीणस्येतत्करुपीयस्वप्रहेतुत्वाकरुपनादिति भा-वः॥१९॥ चतुर्थानाह--भूय इति । जन्मान्तरेषृत्तरोत्तरजन्म-परंपरासु गताः कार्ययोजीमतस्वप्नयोः कारणे सुप्रती च संचर-णशीलाः ॥ २० ॥ पञ्चमाहक्षयति—त एवेति । जाप्रत्सु जामद्शासु घनतामज्ञाननिबिडताम् । जामत्स्विति विशेषणा-रखप्रे स्थावराणामपि कदाचिन्मनुष्यभावादिदशैनमस्त्येवेति गम्यते । इति पश्चधाभिन्ना बद्धजीवाः ॥ २१ ॥ अविशिष्टं भेदद्वयं जीवन्मुक्तेषु दर्शयिष्यन्षष्टानाह—योत्तिति । चतुर्थ-पश्चमपष्टभूभिकास्था इति यावत् ॥ २२ ॥ सप्तमभूमिकारूढा एव सप्तमा इलाशयेनाह—येलिति ॥ २३ ॥ श्रेयःपरः उ-त्तरीत्तरश्रेष्टभूमिकातत्परः ॥ २४ ॥ हे राम, त्वं जगतो गण-ना द्वितीयादिवस्तुबुद्धा दर्शनं तदारिमकां भ्रान्ति परित्यज । यतः अलं बोधैकरूपघनतामागतोसि । तेन द्वितीयाद्यभावेन त्यावृत्तेक्यस्याप्यसंभवेन द्वयंक्यकाभ्यां मुक्तवपुः अत्यव श्- सर्वे न संभवन्येव कारणाभावविश्वताः॥ ३ नेह प्रजायते किंचिन्नेह किंचन नदयति।
उपदेश्योपदेशार्थे शब्दार्थकलनोदयः॥ ४ श्रीराम उवाच।
कः करोति शरीराणि मनोबुद्ध्यादिचेतनैः।
को मोहयति भूतानि स्नेहरागादिबन्धनैः॥ ५

न्यस्वितिमध्यश्च्यतास्ययमेणापि मुक्तम् । आयं सर्वेकस्य-नाभ्यः प्राथमिकमधिष्ठानसन्मात्रमेव त्वं शिष्ट द्स्यर्थः ॥२५॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतास्ययमकाशे निर्वाणध-करणे उत्तरार्धे पश्चाशक्तमः सर्गः॥ ५०॥

ब्रह्मद्रष्टावनुत्पन्नमात्मद्रष्टी सृपोद्भयम् । बोधादमूर्तं च जगद्यया तदिह वर्ण्यते ॥ १ ॥

'प्राथम्येनायतीणीस्ते ब्रह्मणी बृहितात्मनः। प्रोक्ताः केवल-जागर्याः इति यदुक्तं तदनुषपनम् । शूटस्थाद्वयस्य ब्रह्मणः प्राथ-म्बेन जीवतथावतारे बीजप्रयोजनयोरसंभवाःकामकर्मवासना-दिबीजानां जीवभावोत्तरकाळखादिति रामः शङ्कते—कथमिति ॥ १ ॥ अलल्पमिदमुच्यते कृटस्थाद्वयारकेवलजागराष्ट्यजी-वावतारी न संभवताति तन्मू अभजीवान्तराणां जगतश्रावता-रस्यानुपपत्तेस्तुस्यत्वात् किंतु कृटस्थाद्वयवस्तुनी जगजीवोभया-पळापमन्तरेणोपदेष्ट्रमशक्यत्वात्तदुपदशार्थ ब्रह्मण एव जीव-जगच्छव्दार्थाकारकलना श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु कल्पितत्यु-त्तरं वसिष्ठ आह्—अकारणमित्यादिना ॥२॥ कारणाभावादेव विक्षता । निरस्ता इति यावत् ॥ ३ ॥ ४ ॥ अस्तवेवं तथापि भोगायतनस्य देहादेः कभीविद्वारा साक्षादा कश्चित्रिमीता अ-वस्यं वाच्यः । कार्यमात्रस्य सकर्तृत्वानेयमात् । तत्र च जीवं प्रवेश्य विष्यैर्व्यामोह्यिताऽन्यो विनाव्यामोहकं चेतनस्य व्या-मोहादर्शनात् । तथाच व्यामोह्यव्यामोहकी द्वी चेतनावन्यौ जीवेश्वराख्याँ सगीदेश्वतियुक्तिप्रामाण्यात्स्वीकार्यावेवेति पुनः

वसिष्ठ उवाच ।

न कश्चिद्व कुरुते शरीराणि कदाचन। न मोहयति भूतानि कश्चिदेव कदाचन ॥ अनाद्यन्तावभासात्मा बोध आत्मनि संस्थितः। नानापदार्थरूपेण कमुम्योदितया यथा॥ O बाह्यं न विद्यते किंचिद्वोधः स्फूरति बाह्यवत् । उनेति बोधहृद्याद्वीजादिव बरद्रुमः॥ 4 योधस्यान्तरिदं विश्वं स्थितमेव रघुद्वह । स्तम्भस्यान्तयंथा शालभञ्जिका प्रकटीकृता ॥ Q सवाह्याभ्यन्तरात्मकमनन्तं देशकालतः। बोधामोदप्रसरणं जगदेव प्रबुध्यताम्॥ 20 अयमेव परो लोको भाव्यतां वासनाक्षयः। शाम्यतां परलोकस्थं काः किलायान्ति वासनाः ११ देशकालक्रियालोकरूपचिसात्मसत्पदम् । देशकालादिशद्धार्थरहितं न च शून्यकम् ॥ १२ पदे पदविदामेव तस्मिन्बोधगतिर्भवेत्। द्रपृणां शान्तरस्यानामेवान्येषां न राघव ॥ १३ ये व तरलगम्भीरमहन्तागर्तमाश्रिताः। पर्यन्ति ते तमालोकं न कदाचन केचन ॥ १४ चतुर्दशविधानन्तभृतजातसुधुंघुमा ।

रामः शङ्कते-कः करोतीति ॥ ५ ॥ अवेतामावश्यकौ यदि शरारादिकरृता व्यामोद्यव्यामोहकभावश्व सत्य इति श्रुतियुक्ति-सिदं स्यात् । वाचारम्भणश्रुत्या तत्त्वमस्यादिश्रुतिभिध तस्या-इतस्य निरूढे प्रतिभासमात्रस्य कृटस्थाद्वयेनापि विवर्तमात्रेण निवीदं शक्यलाम तयोरायस्यकतेत्याशयेन वसिष्ठ उत्तर-माइ--न कश्चिद्वेत्यादिना ॥ ६ ॥ कं जलं यथा अम्योदि-तया तरक्रतया स्वात्मनि स्थितं तथा बोधात्मात्मनि स्थितः ॥ ७ ॥ ननु बाह्यार्थस्य कथमान्तर्चिदात्मविवर्तता व्याश्रय-लात्तत्राह—वाह्यमिति । आन्तराद्वीधहृद्यादेवान्तरेव बाह्य-वद्देति ॥ ८ ॥ बीजाहुमो बहिरेबोदेतीति विषमो स्थानत इलाशक्का समं तमाह-बोधस्येति । अथवा यदान्तरुदितं स्यात्तर्धन्तरेव स्थितं स्यात् बहिहि विश्वं तिष्ठति तत्राह-बो-धरमेति ॥ ९ ॥ वस्तुतस्तु चिद्वस्तु नान्तरं न बाह्यं कि खन्तं तदन्तरेवामोदवदान्तरबाह्योभयविधजगत्कल्पनेत्याह्-सबान ह्यति ॥ १० ॥ नन्वत्रेय चेजगरकल्पना तर्हि ब्रह्मलोकादिः परलो होऽर्चिरादिमार्भगम्यो दूरे कथं प्रसिद्ध इति चेत्तादशाना-दिवासनाप्रवाह्वशादेव । वासनाक्षये त स सर्वोऽपि स्वात्ममा-त्रतयात्यन्तसंनिहित एवेत्याशयेनाह-अयमेवेति । शाम्यतां विद्या परलोकात्मना इहैव स्थितमारमानं न दूरलादिवासनाः समायान्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥ ननु प्रत्यगात्मैव चेत्परहोकदेश-कारु।दिसर्वात्मा तर्हि देशकारु।दिवाधे शून्यरूप एव कि न सालत्राह—देशेति ॥ १२ ॥ यदि न शून्यं तर्हि प्रधानना- जगइष्टिरियं श्रस्य शरीरावयवोपमा ॥ १५ कारणाभावतः सृष्टिनीदिता न च शाम्यति । यादशं कारणं वा स्यासादम्भवति कार्यकम् ॥ १६ यदि स्यात्कारणे कार्य स्थितं कारणतास्य का। कार्यमेवोपलम्भात्तदसद्भयमवेदनात्॥ १७ सौम्यस्यान्तर्यथाम्भोधेक्रम्यावर्तादयः स्थिताः। ब्रह्मण्यसंभवशोमे जगिश्चत्तादयस्तथा॥ १८ सर्वात्मैवामलं ब्रह्म पिण्ड एक इव स्थितम्। नानाभाण्डातम हेमैव यथान्तस्थितस्पकम्॥ स्वप्रकाले स्वप्न एव जाप्रद्यप्रापरिष्रहात्। जायत्काले जाप्रदेव स्वप्नः सत्याववोधतः॥ २• चित्तमात्रतया बुद्धं सृगतृष्णास्ब्वत्स्थितम्। जाग्रत्स्वप्रत्वमायाति विचारविकलीकृतम्॥ २१ सम्यग्हानेन भूतानि इस्य देहतया सह। पीठबन्धं विमुश्चन्ति गतकाल इवाम्बुदाः॥ **२२** यथा गलितुमारम्धो घनो गगनतामियात्। तथा सत्यावबोधेन शाम्येत्सात्मग्रहं जगत्॥ २३ शरदभ्रवदालुना मृगतृष्णाम्बुवस्रथा। पुनः संस्पृश्यमानैव बोधाङ्गलति दृश्यता ॥ 28

नामपि प्रपद्मापलापमात्रेण तस्मिन्पदे कृतो न बोधगतिस्त-त्राह--पदे इति ॥ १३ ॥ १४ ॥ तद्दर्शिनस्तर्हि कीदशी जग-दृष्टिस्तामाह-वृत्देशेति ॥ १५ ॥ तेषां समाहितदशा सृष्टिः कीदशी व्यवहारदंशा च कीदशी तामुक्तोपपादनाय पूर्वोत्तराधी-भ्यामाह--कारणेति॥१६॥तत्र पूर्वार्धोक्तं तर्केणोपपादयति-यदीति । कुतो न स्थिता तत्राह--कार्यमेवेति । कुण्डलच्य-तिरिक्तवस्खन्तरादर्शनाम्न कारणमन्यदस्तीत्वर्थः ॥ १७ ॥ उ-त्तराधीकमपि द्रष्टान्तेनोपपादयति—सौम्यस्येति ॥ १८ ॥ अन्तर्गतनानाभाण्डात्मा एको मृत्पिण्ड इव ब्रह्म स्थितम् । यथा अन्तर्गतकटककुण्डलादिरूपकं हेम तथावस्थितम् । पि-ण्डाबस्थाया अपि कार्यत्वेन कुण्डलादिसाम्यादिति भावः॥१९॥ यथा पिण्डकाले घटः पिण्ड एव घटकाळे च पिण्डो घट एवेति व्यवस्थितमेकस्येव दर्शनमेवं प्रपश्चस्यापि सप्रकाछे जाग्रत्स्वप्न एव जाग्रत्कालेऽपि स्त्रप्नो जाग्रदेवेति व्यवस्थितमेक-मेव जगत्तत्त्वक्षेर्युप्यत इत्याह—स्वप्नेति । व्यप्रस्य वासनावि-स्ताराभिनिविष्टस्य मनसः अपरिष्रहादनवरोधात् ॥ २०॥ जा-प्रत्कालेडपि जाप्रश्चित्तमात्रतया पर्याकोचितं खप्रतुस्यतामेवैति सैव विदुषः सृष्टेः शरीरावयवोपमतेत्थमुपपादितेत्युपसं**हरन्स-**म्यग्ह्याने तस्यापि समूलं बाधमाह—चित्तमात्रतयेति ॥२१॥ गते वर्षाकाळे अम्बुदाः पीठवन्धस्तकारणनीहारभावमपि यवा विश्वचन्ति तद्वदिखर्यः ॥२२॥ आत्मप्रहोऽहंकारस्तरसहितम् । चरमसाक्षास्कारवृश्चिसहितं वा ॥ २३ ॥ संस्पृत्यमाना स्वर्का-

यथा दीवानले लीनं सुवर्णे घृतमिन्धनम्। एकतां याति विज्ञाने तथा भुवनचित्तदक् ॥ बोधेन तनुतामेति पिण्डवन्धो जगन्नये। पिशाचवुद्धिः सदने वोधितस्य यथा शिशोः ॥ २६ बोधस्यानन्तरूपस्य स्वयमेवात्मनात्मनि । जगिश्चत्तादिता भाता पिण्डवन्धः किलात्र कः२७ बोधाबोधनमेवेदं जगिधत्तमियोदितम्। तनेवास्तं गतं वोधात्पिण्डवन्धस्य कास्तिता ॥ २८ जहाति पिण्डकाठिन्यं जाव्रत्स्वप्राववोधतः। परां पेलवतामेति हेम द्रुतमिवाग्निना ॥ સ્લ यथास्थितं वोध एव घनतामिच गच्छति। विनेव देशकालाभ्यां तो विनिर्माय हेमवत्॥ OF जाप्रत्येवं विचारेण स्वप्नामे पेलवे स्थिते। क्षीयमाणे शरतकाल इवैति तनुतां रसः॥ 38 परां पेलवतां याता दृदयलक्ष्मयः स्थिता अपि। स्वमा इव परिशाता न स्वदन्ते विवेकिनः॥ 32 क किल स्वात्मविश्रान्तिः केतद्विपयवेदनम् । सुबुप्तजात्रतोरैक्यं भ्रान्ताभ्रान्तात्मनोर्भवेत् ॥ ३३ चित्तमात्रे भ्रान्तिमात्रे स्वप्तमात्रात्मनि स्थिते। जगतीह पदार्थेभ्यः सत्यबुद्धिर्निवर्तते ॥ 38 कस्य स्वदन्तेऽसत्यानि कथमेव महामते। मृगतृष्णाजलानीव दृश्यान्यपि पुरःस्थितैः ॥ सत्यवुद्धौ विलीनायां जगत्पदयति शान्तधीः। जालद्वीपांशुजालाभमपिण्डात्माम्बरात्मकम् ॥३६ जात्रतो वस्तुतः शुन्यात्परिक्षातान्निवर्तते ।

दिना अनुभूयमानेव ॥ २४ ॥ २५ ॥ पिण्डवन्धो मूर्ताद्याका-रब्रहः । तनुतां कमाद्विलयम् ॥२६॥ अयं च विलयो न जतु-काठिन्यविलयवित्रिमित्तापायाद्येति किंतु शुक्तिरूप्यवदसस्प्रति-योगिकत्वादपुनरागामीत्याशयेनाह—योधस्येति । अन्तान्त्रिवि-धपरिच्छेदा रूपाण्याकारभेदाथ न विद्यन्ते यस्य तथाविधस्य बोधस्य साक्षिचितः खयमेव निर्निमित्तमेव जगच तद्विकल्पकं चिसं च तदाधज्ञानं चेति त्रिरुपता भाता । अत्रास्मिन्बोधे ॥ २७ ॥ तथाचातृतजगित्तत्तम।वेनातृतमज्ञानमेव विज्ञम्भत इति फलितमित्याह--शेधाबोधनमेवति ॥ २८ ॥ एतेन जा-श्रदेव सप्रकाले स्थीत्यं विद्वाय सूक्ष्मप्रपश्वतां याति । स्वप्र-श्रान्तिरेव चिराभ्यासाद्धनतया जाप्रतामिव गच्छतीत्यादि य-द्रप्रायुक्तं तिसद्मित्वाह—जहातीत्वादिना ॥ २९ ॥ ताँ जा-प्रत्खप्री ॥ ३० ॥ रसी भोगरागी जलं च ॥ ३१ ॥ पेलवतां तुच्छताम् ॥ ३२ ॥ आत्मसुखतृप्तलाद्यि तस्य विषयेष्वना-दर इत्याशयेन।ह-केति । यदि लक्षस्यापि विषया खदेरं-स्तर्हि सुषुप्तजाप्रतोरेक्यमपि संभाव्येत, तथा श्रान्ताश्रान्ता-रमनोर्भूढतत्त्वक्रयोधक्यं संभाव्यतेत्वर्थः ॥ ३३ ॥ जगति चि-समात्रे संपन्ने खप्रमात्रात्मनि स्थिते सति इह सक्वन्दनाहि -

वित्तभ्रमात्मनो भ्रान्तिरूपास्त्रादनभावना ॥ 30 यदवस्त्वित विश्वातं तत्रोपादेयता कुतः। केन म्वप्नं परिज्ञाय स्वप्नहेमामिगम्यते ॥ 36 स्वप्नादिव परिक्राताद्वसो दृश्यात्रिवर्तते। द्रपृहद्यद्शादीपप्रन्थिच्छेदः प्रवर्तते ॥ 36 नीरसः शान्तमननो निर्वाणाहंकृतिः कृती। वीतरागो निरायासः शान्तस्तिष्ठति बुद्धधीः 80 रसे नीरसतां याते वासना प्रविद्यायते। शिखायां प्रविलीनायां प्रशिपस्यांशवो यथा ॥ ४१ बोधाद्दीपांशुजालाभमधनं व्योम रदयते । भ्रान्तिरूपं जगत्कृत्स्नं गन्धवेनगरं यथा ॥ કર नैवात्मानं न चाकादां न शून्यं न च वेदनम्। अत्यन्तपरिणामेन पश्यन्पश्यति तत्पद्म्॥ 85 यत्र नात्मा न शुन्यं च न जगत्कलनापिच । न चित्तदृर्योदयधीः सर्वं चास्ति यथास्थितम् ४४ भूम्यादिना इसंदुद्धा ज्ञानादस्तमुपागता । श्रस्य शुन्यैव संपन्ना संस्थितापि न विद्यते ॥ છષ भवत्येकसमाधानसौम्यातमा व्योमनिर्मलः । तिष्ठत्यपगतासङ्गः स्थित प्वाप्यसत्समः॥ ઝદ अस्तंगतमना मौनी निरोधपदवीं गतः। तीर्णः संसारज्ञछधेः कर्मणामन्तमागतः॥ 80 तनुभुवनगगनगिरिगण-करणपरं परममञ्जानम्। विगलति गलिते तस्मिन सकलमिदं विद्यमानमपि॥ 86

पदार्थेभ्यः सत्यताबुद्धिर्निवर्तते ॥ ३४ ॥ असत्यान्यपि भो-ज्यानि तस्य खदन्तां तत्राह-कस्येति । वार्थे एवकारः । कथं वा खदन्त इसर्थः ॥ ३५ ॥ जाले वातायने प्रविष्टस्य दीपांशुजालस्याभेव प्रकाशहत्यमध्यपिण्डात्मकमेवाम्बरात्मकं प-**३यति ॥ ३६ ॥ अतएव चित्तमात्रात्मनः खप्रस्रक्चन्दनादेः** खदनभावना जात्रतः पुरुषस्य शून्यस्येन परिज्ञातात्तस्मानिव-र्तत इति प्रसिद्धसिखर्थः ॥ ३७ ॥ खप्रहेम उपादातुं केना-मिगम्यते ॥३८॥३९॥ रसनिवृत्तावसा कथमास्ते तदाह-नीरस इति । नीरसो निःक्षेही बन्ध्वादिषु । वीतरागो विषयेषु ॥ ४० ॥ ४१ ॥ प्राम्ब्रान्तिरूपं कृत्नं जगतत्त्वबोधादीपांशु-जालवत्प्रकाशैकरसम्बनं सद्योमतुल्यं दृश्यते ॥ ४२ ॥ सप्तमभूमिकास्थितिरुक्षणेनात्यन्तपरिणामेन तर्हि कथं भवति तदाह—नेवेति । पर्यंस्तत्त्वज्ञः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अज्ञैः पिण्ड-प्रहेण संबुद्धा भूम्यादिता तु ज्ञानादस्तं बाधमुपागता ॥४५॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ यस्मात्कारणात्तनूनां चतुर्विधशरीराणां त-दाधाराणां भुवनानां तदाधारस्य गगनस्य विहारस्थानानां गि-रिगणानां तत्साधनानां करणानां च परमुपादानकारणं परम-

१ चित्तमात्रात्मन इति पाठः सुबचः.

संशान्तान्तः करणो

गलितविकल्पः स्वरूपसारमयः। इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्षे विश्वान्तियोगोपदेशो नामैकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५९ ॥

परमशमामृततृप्त-

स्तिष्ठति विद्वान्निरावरणः॥ 86

बिपश्चादाः सर्गः ५२

श्रीराम उवाच । बोधो जगदिवाभाति मुने येन क्रमेण ह। तं ऋमेण ऋमं बूहि भूयो भेदनिवृक्तये॥ वसिष्ठ उवाच। वृक्षस्येव विमृदस्य यहुष्टी तत्स्वचेतसि । यन्न रष्टी न तिश्चले भवत्यस्पतरस्मृते॥ भव्यः पश्यति शास्त्रार्थमेव पूर्वापरान्वितम्। न दृष्टिविषयं वस्तु यत्पदयति करोति तत्॥ भावानुष्टाननिष्टः सन्शास्त्रार्थेकमना मुनिः। भूत्वोपदेशं त्वभिमं शृणु श्रवणभूषणम् ॥ इयं दृइयभरभ्रान्तिर्नन्वविद्येति चोच्यते। बस्तुतो बिद्यते नैषा तापनद्यां यथा पयः॥ उपदेश्योपदेशार्थमेनां मदुपरोधतः।

मज्ञानं मूलाज्ञानमेव नान्यत्। अन्तःकरणात्तस्मिन्मूलाज्ञानं ज्ञानेन गलिते सति इदं तनुभुवनादिसकलं जगदशहशा विद्यमानमपि विगरुति । असद्भवतीसर्थः ॥ ४८ ॥ एवंरीसा गरितविकल्पो थोगी खरूपसारमयः सन्परमशमामृतेन खानन्देन तृष्टो निरा-वरणभुमानन्दस्त्रभावस्तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ट-महारामायणतास्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरण उत्तरार्धे एकप-द्वाशत्तमः सर्गः ॥ ५९ ॥

इह तार्किकतकीत्थकल्पनान्तरखण्डनैः। अनिर्वाच्यजगद्भावः कृटस्थस्य समर्थ्यते ॥ १ ॥

बोधः कूटस्थियदात्मा येन क्रमण प्रकारेण भाति तं क्रमं वा-**बन्तरक**ल्पनामेदखण्डंनः समर्थनकमेण भूयो ब्रृहि ॥१॥ चि-दात्मनी जगद्भावोऽयमनिवंचनीय एवेल्यस्यार्थस्य रामर्थनाय प्रथमं दष्टस्थिपक्षमवलम्बयः दुष्यन्वयव्यतिरेकानुविधार्थिस्थ-तिकर्त्वं तस्य दर्शयति - वृक्षस्येवति । विमृहस्याश्चस्यात्मनो बन क्षस्य मूलदामपत्रपल्लवादिनानाकारघटितस्येव नानाकारं यज्ञग-द्वृपं तत् दृष्टे। सलामेत्र असीति स्वचेत्रति प्रसिद्धं नान्यथा । अतएव ह्यल्पत्तरमपि दृष्टमेव स्मर्थते न चह्नप्यदृष्टं नत्सत्ताऽप्र-सिद्धरित्वर्थः ॥ २ ॥ विद्वदविदुषोः शास्त्राशास्त्रानुसारिकिन यावेलक्षण्यदर्शनादिप तत्तदृष्ट्यनुसारव्यवस्थितव जगत्सत्ता ग-म्यत इलाशयेनाह—भव्य इति । इष्टेनेत्रस्य विषयं सनिकृष्ट-मपि निधिदं वस्तु भोग्यतया न पश्यति ॥ ३ ॥ अतएव हि मयापि त्वं शास्त्रीयदृष्टित्र्यवस्थापनमुखेनैव श्रवणादी निय-म्यसं इत्यारायनाह—भावति । भावतिसञ्ज्यनुकुछं कर्म ॥ ४ ॥ आंवयासप्रसिद्धेरपि तत्त्रथेस्याह—इयमिति ॥ ५ ॥

सत्यामिव क्षणं तावदाश्रित्य श्रूयतामिदम्॥ દ્દ कुत एपा कथं चेति विकल्पाननुदाहरन्। नेदमेषा न चास्तीति स्वयं शास्यसि बोधतः॥ S यदिदं दृइयते किंचिज्जगतस्थावरजंगमम्। सर्वे सर्वेप्रकाराच्यं कल्पान्ते तद्विनद्यति॥ अस्य भागविभागात्मा नाशोऽवश्यमवारितः। बिन्दुना बिन्दुना बोधे उद्धतस्यास्ति हि क्षयः॥ ९ पवं स्थिते द्रव्यनाशे ब्रह्मणस्तन्मयत्वतः। नानन्तत्यं न चास्तित्वं न चवै संभवत्यलम्॥ मदशकिरिव ज्ञानमिति नासासु सिध्यति। देहो विश्वानतोऽस्माकं स्वप्नवस्नतु तस्वतः॥ ११ नइयत्येव च दृहयश्रीः संघ नान्येव नेव च। इत्थं भवेत्समुचितं कृशं शास्त्रं च नान्यथा ॥ १२

तर्हि कथं शास्त्रीपदेशतत्फलासिदिस्तत्राह—उपदेश्येति ॥६॥ उपदेशफलसिद्धिकाले लियं भ्रान्तिनिःशेषं निवर्तते ततोऽपि तथेत्याशयेनाह—कृत इति । अनुदाहरत्रनुहित्वन् ॥ ७॥ इत्यं विवर्तपक्षमनुभवपर्यवसितं प्रदर्श पक्षान्तरेषु दोषान्वि-वश्रः सत्यस्यव प्रपचस्य वृक्षशास्त्रान्यायेन । ब्रह्माभेदमभ्युपग-च्छतां पक्षे ब्रह्मण आनन्त्वहानिः स्यादिति दोषं वक्तं जगतो नश्वरत्वं प्रतिजानीते --यदिदमिति ॥ ८ ॥ प्रतिज्ञातं साधय-ति--अस्पेति । अस्य जगतो भागानां भूराद्यवयवानां विभागो विश्वंषस्तदातमा नाशो बोघं विमर्शे दुर्वारः सावयवलात्। हि यस्माद्धटादिगतजलस्य बिन्दुना त्रिन्दुना पृथक्त्योद्धृतस्य क्षयो लोके प्रसिद्धोऽस्ति तद्वदित्यर्थः ॥ ९ ॥ अस्तु नाशः को दोप-स्तत्राह-एवमिति । शाखाद्यवयवनाशे ग्रक्षनाशवद्भरादिद्रव्य-नाशे ब्रह्मणोऽपि नाशप्रसक्षे श्रुत्युक्तमनन्तरवं न सिड्यति । अवयवेभ्यः पृथक्तस्यावयविनो विमर्शे असत्त्वादस्तित्वं च न रिख्यति, नच चिदेकरसं निरवयवं च ब्रह्म मृतीदिजगदवय-वकं संभवतीत्यर्थः ॥ १० ॥ नतु माभूचिदातमा जडजगदवय-वकः जडानामेव भूम्यादिभूतानां कायाकारपरिणतानां मदिरा-वयवानुगता मदशक्तिरिव चैतन्यं धर्मोऽस्त्विति चावाकपक्ष-मुरुक्क्य दृषयति—मद्शक्तिरिवेति । अस्मासु आस्तिकेषु । न ।सद्धालस्मानप्रति चार्वाकेण साधयितुं न शक्यमिति यावत्। यतोऽस्माकं प्रामाणिकानां मते देहा विज्ञानाधीनसिद्धिकला-स्वाप्रदेहवत्तालिको न भवति । निह विज्ञानातिरेकेण देहस-त्तासाधकमस्ति, न चासिद्धे देहे मदशक्तिवद्विज्ञानमुत्पत्तमई-तीति भावः ॥ १९ ॥ किंच जगतो ब्रह्मामेदे उच्यमाने दृश्य-

सैवैतीत्यसमुहेखं कथं नष्टस्य संभवः। तद्र्पान्येति युक्तं स्यादनुभूतानुगा वयम् ॥ सैव व्योमतयेवासीदित्यसत्सैव सा कथम्। तथैव व्योमसंस्था चेन्नाइां तर्हि न सा गता ॥ १४ कार्यकारणयोरेकरूपतेवं यदा तदा। कार्यकारणताभावादेक्यमेवास्मदागमः॥ ફ હ્વ : शुन्यत्वमुपलम्भत्वं यद्गतं नष्टमेव तत्। अन्यस्तर्हि भवेश्वादाः कीददाः किल कथ्यताम् १६ नष्टं भूयस्तदुत्पन्नमिति यत्प्रत्ययेति कः। नद्यत्यवद्यं तेनेदं पुनरन्यत्प्रवर्तते ॥ १७ मध्येमध्ये यदुत्सेश्रफलाद्यवयवैकिका । आदेहं वीजसत्तास्ति कार्यकारणता कतः॥ १८ देशकालकियात्मैकं यथादृष्टमिह् स्थितम्। वीजमेवैककर्मातो न घटः पटकार्यकृत्॥ १९ सर्वदर्शनसिद्धान्ते नास्ति भेदो न वस्तुनि। परमार्थमये तेन विवादेन किमन्न नः॥ २०

नाशाद्रह्मणोऽन्तवत्त्वशङ्का स्यात् । आध्यासिकं लभेदे प्रतियो-गिन इव तन्नाशस्यापि वस्तुतो ब्रह्मसंस्पर्शाभावात्र तत्त्रसक्तिः शास्त्रसाफर्यं चेत्याशयेनाह्—नश्यत्येवेति । यतः पुनःपुन-नेष्ट्रा उद्भवन्ती दश्यश्रीः सेव न, अन्येव च नेवेखानिवंचनीया अविद्यामात्रम् । इत्थं सत्येव विद्यया तद्वाघे शास्त्रं कृतं सफले भवेत् । अन्यथा सत्यवन्धनिवृत्ती शास्त्रस्यानुपायत्वाद्यर्थमेव स्यादिलार्थः ॥ १२ ॥ प्ररुपे नष्टाया भुवनसंस्थितेः पुनः सृष्टा-बुद्भवन्त्याः सेवान्येवेत्यनिर्धार्यत्वादण्यनिर्वचनीयतैयत्याह---सैवैतीत्यादिना । या नष्टा सैव पुनहन्मजनेनैतीत्यसमुद्धेखं संभावयितुमशक्यम् । अनुभृतानुगाः अनुभवानुसारिणो वयं नानुभवविरुद्धमण्वपि सहामहे इत्यर्थः ॥ १३ ॥ अनु-भवानारोह्रमेव स्फुटयति—र्संघेति । सा मूर्तवैव प्रख्ये ब्योमतया अमूर्तभावेनासीदिव्यसत् । यतः सा मूर्ततैवामूर्तता **कथम् । व्योम**संस्थापि सा तथा पूर्वावस्थापश्चेव चेत्प्रखये नाशं न गतैवेति प्रलयवादोच्छेदः स्यादित्यर्थः ॥ १४ ॥ एवं सर्गेपि प्रख्यावस्थाया अपि तुरचन्यायेन प्रसक्ती प्रख्यावस्थादव्याकः-तात्कार्थस्य सर्गस्येवयापत्तौ कृटस्थवादापत्तिरिखाह्-कार्येति। अस्मदागमोऽस्मित्सद्धान्तः स्यादित्यर्थः ॥ १५ ॥ यद्वस्तु उप-लम्भत्वं गतमपि शुन्यत्वं गतं तन्नष्टमेव । सदा उपलव्धिका-**लेऽप्यसत्ताभ्युपगमात् । असत्त्वापत्तिरेव हि नाशः ।** यदान्या-दशो नाशो लोके भवेत्तर्हि स वीदशः कथ्यताम् । नचोपलब्ध-लबलान्नष्टमप्यनष्टं भवति । नष्टानामपि खप्ने उपलम्भदर्शनाद-नष्टलासिद्धेः ॥ १६ ॥ भूयः समुत्पत्तिदर्शनान्मध्ये नष्टस्यापि सर्वं कल्प्यत इति चेद्धदेनाप्यत्पत्युपपत्तेः । प्रत्यभिद्धादेरदर्श-नाच नैवमिखाह—नष्टमिति । प्रखयेति प्रखमिजानाति । अयतेर्रुटि पदवर्णव्यखयर्छान्दसः ॥ १७ ॥ ननु यथैकस्मि-श्रेव तरी मध्येमध्ये कोटरस्कन्धशास्त्रादिवैचित्र्यभेदेऽप्यामुळावं

इदं शान्तमनाद्यन्तं तद्रपत्वाद्विचारतः। व्योमाभं वोधतामात्रमनुभृतिप्रमाणतः॥ २१ यथेतन्नानुभृतं सद्यथैतदनुभूयते। यथैतित्सिक्सिमामोति तदिवं कथ्यते कमात्॥ महाकल्पान्त उन्नष्ट सर्वस्मिन्दश्यमण्डले। आमहादेवपर्यन्तं समनोवुद्धिकर्मणि॥ २३ व्योमन्यपि शमं याते कालेऽप्यकलितस्थिती। वायाविप त्वपगते तेजस्यत्यन्तमस्थिते॥ રષ્ટ तेजस्यपि गते ध्वंसं वार्यादी सुचिरं क्षते। अलमन्तमनुप्राप्ते सर्वशब्दार्थसंचये॥ २५ शिष्यते शान्तवोधातम सदच्छं वान्यवर्जितम्। अनादिनिधनं साम्यं किमप्यमलमव्ययम् ॥ રદ अवाच्यमनभिव्यक्तमतीन्द्रियमनामकम् । सर्वभूतात्मकं शुन्यं सदस्य परं पदम्॥ २७ तम वायुनं चाकाशं न बुद्ध्यादि न शुन्यकम्। न किंचिदपि सर्वातम किमप्यन्यत्परं नभः॥ २८

बृक्षदंहस्येकता, शाखादितत्कार्याण्येव भिद्यन्ते, एवस्रतपत्त्यादि-विकारभेदेषु प्रलये पुनरुद्भवे च भुवनाधेवर्तव कि न स्यादिति चेत्तत्राह—मध्ये इति । उत्सेघ औन्नत्यं फलानि आदिपदा-च्छाखोपशाखादाहस्कन्धपत्रपुष्पादयश्च ये अवयवान्तेष्वेकिका अनुगता बृक्षदेहमभित्र्याप्य स्थिता वीजसत्तेवाखण्डा तत्रा-स्तीति सत्तैकयदशै शाखादैः पृथक्सत्तार्आस्त्रेः कार्यकारणती-च्छेदः स्यादिलर्थः ॥ १८ ॥ दशन्ते उक्तं कार्यकारणतीच्छेदं दार्शन्तिकं दर्शयति-देशेति । यदि प्रलयसर्गादिदेशकाल-कियात्मकमेकं सन्मात्रमेव बीजमभ्युपगम्येत तर्हि तत् एकं स्वयमेवैकं कमें किया तत्फरुं च यस्य तथाविधं सत् न कि-चित्कुर्यात् । असमर्थलात् । नहि घटः पटकार्यासमर्थस्तत्क-रोतीत्यर्थः । अथवा तदनुगतं बीजदेशात्मकं कालात्मकं कि-यात्मकं वा एकस्वभावं वाध्यम् । नहीकं नानाखभावं संभवति । खभावभेद एकलानुपपत्तः । तथाच यदि देशैकखभावं तर्हि कालकार्य न कुर्यात् । नहि घटस्त्रभावं नस्तु पटकार्यक्रहप्रसि-त्यर्थः ॥ ५९ ॥ नानास्त्रमावमेकं वस्त्विति वदन्सवेदर्शनसि-द्धान्तातिलङ्गनार्द्वतिष्डिकः स्यादित्याशयेनाष्ट्—सर्वेति । व-रत्वेक्ये कार्यभेदः सर्वदर्शनसिद्धान्ते नान्ति । परमार्थमये व-स्तुनि वस्तुस्त्रमावेऽपि मेदो नानात्वं नास्ति । अतः सर्वदर्श-नविरुद्धवादिना सह विवादेन किमित्यर्थः ॥ २० ॥ परिशेपा-देकस्त्रभावत्वे तु चित्रवभावस्यैबोपजीव्यस्यकस्य परिशेषः सिद्ध इत्याह—इदमिति । सर्वेकल्पनानामनुभूतिप्रमाणसारत्वात्तत्त्व-मानापलापायोगेन परिशेषाज्ञडस्वभावस्यैव हानादिति भावः ॥ २१ ॥ तद्वपपादनं प्रतिजानीते — यथैतदिति ॥ २२ ॥ अतएव हि सर्वभेदप्रलयेऽप्यविपरिन्नसोऽनुभवास्मैवाविध्यत इलाह—महाकल्पान्त इलादिपधिमः ॥ २३ ॥ २४ ॥२५॥ ॥ २६ ॥ २० ॥ परिशिष्टं वाय्वादिखह्मपमेव कि न स्यात-

तद्विदा तत्पदस्थेन तन्मुक्तेनानुभूयते । अन्यैः केवलमास्नातरागर्मरेय वर्ण्यते ॥ २९ न कालो न मनो नात्मा न सन्नासन्न देशदिक् । न मध्यमेतयोनान्तं न बोधो नाष्यबोधितम्॥ ३० किमप्येष तदत्यच्छं बुध्यते योधपारगैः। शान्तसंसारविसरः परां भूभिमुपागतैः ॥ 33 प्रतिपिद्धा मयेते तु येऽर्थाः सर्वत्र ते स्थिताः । असाद्ब्रह्मा परिच्छेद्याः सीम्याम्भोधेरिवोर्मयः ३२ यथास्थितं स्थिताः सर्वे भावास्तत्र यथनाथा। अनुत्कीर्णा महास्तम्मे विविधाः शास्त्रभञ्जिकाः ३३ पवं तत्र स्थिताः सर्वे भावा एवं च न स्थिताः। असर्वात्मेय सर्वातम तदेव न तदेव च॥ 38 पटं यथैतत्सर्वातम सर्वार्थपरिवर्जितम्। यथा तत्र च पदयन्ति तत्रकपरिणामिनः॥ 3'1 सर्वे सर्वात्मकं चैव सर्वार्थरहितं पदम्। सर्वार्थपरिपूर्णे च तदाद्यं परिदृदयते ॥ 38 तवतायन्महाबुद्धे सर्वार्थोपरामात्मकम्। न सम्यग्दानमुत्पन्नं संशयोऽत्र निदर्शनम्॥ श्र यः प्रवुद्धो निराभासं परमाभासमागतः। स्यच्छान्तःकरणः शान्तस्तं स्वभावं स पश्यति ३८ अयं त्वमहमित्यादित्रिकालगजगद्धमः । तत्रास्ति हेमपिण्डान्तरिय ऋपकजालकम्॥ ३९ हेमपिण्डाद्यथा भाण्डजालं नानोपलभ्यते ।

तथा न लभ्यते मिन्नं परमार्थवनाज्जगत्॥ 80 सर्वदैव हि भिन्नातमा स्वाङ्गभूनोपलम्भदक् । स जगद्वैतमेवेदं हेमेवाङ्गदरूपकम्॥ ४१ रिकं देशादिशब्दार्थेदेशकालकियात्मकम्। यधास्थितमिदं तत्र सर्वमस्ति न वास्ति च॥ ઇર यथोम्यादि समे तोये चित्रं चित्रहरीहते। भाण्डवृत्दं मृदः पिण्डे तथेदं ब्रह्मणि स्थितम् ४३ तथैतदत्र नो भिन्नं नाभिन्नं नास्ति चास्ति च। नित्यं तन्मयमेवाच्छं शान्ते शान्तमिवं तथा॥ ४४ अनिखातैव भातीयं त्रिजगच्छालभञ्जिका । स्वरसस्येव दृश्यत्वमिता ब्रह्मणि दारुणि ॥ 84 निखाता दृश्यतां यान्ति स्तम्भस्थाः शालभञ्जिकाः असिन्नक्षोभ्य प्यान्तस्तरङ्गाः सृष्टिदृष्ट्यः ॥ પ્રફ सरस्यतिरसे भान्ति चिद्धनामृतवृष्ट्यः। अविभागे विभागस्था अक्षोभे क्षभिता इव। अविभाता विभान्तीव चिद्धने सृष्टिष्टप्रयः॥ 80 परमाणौ परमाणावत्र संसारमण्डलम्। विभाति भासरारम्भं न विभाति च किंचन ॥ ४८ आकाशकालपवनादिपदार्थजात-मस्याङ्गमङ्गरहितस्य तद्यवङ्गम्। सर्वात्मकं सकलभावविकारशुन्य-मप्येतदाहरजरं परमार्थतस्वम्॥ પ્રવ

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० ब्रह्मस्वरूपवर्णने नाम द्विपद्याशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्राह—तदिति ॥ २८ ॥ इदानीमपि तद्विद्वदनुभवसिद्धमि-त्याह—तद्विदेति ॥ २९ ॥ तत्र 'कालः स्वभावो नियतिर्थ-हच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्लम्' इलाद्यागममर्थतो दर्शयति—न काल इति ॥ ३० ॥ 'तद्यदात्मविदो विदुः'इत्या-गमं च तथोदाहरति--किमपीति । चतुर्थ्यादेः पराम् ॥३१॥ मयापि तेऽर्थाः श्रुखनुसार्यनुभवमाश्रिख मुद्दः प्रतिषिद्धा इ-त्याह-प्रतिषिद्धा इति । सर्वत्र श्रुतिषु प्रतिषेध्यतया स्थिता येऽर्थास्त एव मया प्रतिषिद्धाः ॥ ३२ ॥ तर्हि 'सदेव सोम्येद-मम आसीत्'द्खादिसत्कार्यवादश्रुतीनां कोऽभित्रायस्त्रमाह— यथास्थितमिति । ब्रह्मस्यभावस्थितिरेवाविकल्पिता जगतोऽपि सतेत्याशयस्तासामिति भावः ॥३३॥ अतएव 'नेह नाने त्या-दिश्वतीनां 'सदेव सोम्ये'व्यादिश्वतीनां चाविरोधनेकमेवोभय-थापि व्यपदिस्यत दलाशयेनाह—एवमिति ॥ ३४ ॥ अनु-रकीर्णशिलायां पुत्रिकाभेदानामिव योगिनां तत्रेच्छया अस्ति-नास्तीत्युभयथापि दर्शनं प्रसिद्धमिलाह--पदमिति॥३५॥३६॥ एतावत्त्राग्वर्णितसमाधिकालपर्यन्तम् । संशयोऽत्र सम्यग्रहाना-नुत्पत्ती निदर्शनं लिक्सम् । 'छियन्ते सर्वसंशयाः' इति श्रुते-र्निश्चिते तत्त्वे संशयाननुभवाचेति भावः ॥ ३७ ॥ निराभासं सर्वेदरयाभासनिर्मुक्तम् । परं आभासं चरमसाक्षारकारम् ॥३८॥

हेमपिण्डान्तः रूपकाणां रूप्यमुदाणां जालकं समूह इव कल्प-नया अस्ति ॥ ३९ ॥ तर्हि कि रूपकवद्वेदेनापि जगत्सत्. नेत्याह-हिमपिण्डादिति । नाना पृथक्यदिति यावत् ॥४०॥ यद्यप्यनृतं सतो न भिगते तथापि सलनृताद्भिदात एवेलाह— सर्वदेवेति । अङ्गरुरूपकमियानृतमिखार्थः ॥ ४१ ॥ देशादिश-ब्दानामथैः प्रशृतिनिमित्तेजीतिगुणाकेवादिभिः रिक्तं रहितम् ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तथैव भेदादिना दुर्निरूपस्त्रभावसमृतं ब्रह्मणि स्थितमित्याह—तथात । तत्त्वज्ञानेन शान्ते ब्रह्मण शान्ता-त्मनेव स्थितम् ॥ ४४ ॥ अनिसाता अनुत्कीणां । खरसस्य खसाक्षिणः शिल्पिनो हृदयत्वं इतेव । ब्रह्मणि दारुणीति च्य-स्तरूपकम् ॥ ४५ ॥ तत्र यो विशेषस्तमाह-अस्मिन्निति । अक्षोभ्ये अविकार्थे विवर्तरूपास्तरङ्गाः ॥ ४६ ॥ तमेवाह---सरसीति सार्धेन । अतिरसे निरतिशयानन्दजलपूर्णे चित्स-रसि चिन्मेघायृतवृष्टिप्रायाः सृष्टिदृष्ट्यो विभाजक्षमभगून्येऽपि विभागस्था अक्षोमेऽपि धुमिता अविभाता एव विभाग्तीवे-त्यपि विशेष इत्यर्थः ॥४७॥ तत्राविभाता विभान्तीत्येतद्वि-शद्यति-परमाणाविति ॥४८॥ वर्णितं कृटस्थस्य जगद्भावं संगृह्योपसंहरति-आकाशेति । अङ्गरहितस्य निरवयवस्यास्य यदाकाशकालपवनादिपदार्थजातकप्रमहं वर्णितं तदिष सि-

त्रिपश्चादाः सगैः ५३

દ્દ

9

श्रीराम उवाच ।
यथा चेत्ये चेतनता यथा काले च कालता ।
यथा च ब्योमता व्योम्न यथा च जडता जडे ॥ १
यथा वायो च वायुत्वमभूतादावभूतता ।
यथा स्पन्दात्मन स्पन्दो यथा मूर्ते च मूर्तता ॥ २
यथा मिन्ने च भिन्नत्वं यथाऽनन्ते ह्यनन्तता ।
यथा रह्ये च रहयत्वं यथा सगेंबु सगता ॥ ३
पतत्क्रमेण हे ब्रह्मन्वद मे वदतां वर ।
आदितः प्रतिपाद्यव वोध्यन्ते ह्यल्पवोधिनः ॥ ४
वसिष्ठ उवाच ।

तदनन्तं महाकाशं महाचिद्धनमुच्यते ।
अवेद्यचिद्र्पमयं शान्तमेकं समस्थिति ॥
ब्रह्मविष्ण्वीश्वराद्यन्ते महाप्रलयनामनि ।
शब्दार्थं रूढिमापन्ने यच्छुद्धमवशिष्यते ॥
सर्गस्य कारणं तत्र न किचिदुपपद्यते ।
मलमाकारबीजादि मायामोहभ्रमादिकम् ॥
केवलं शान्तमत्यच्छमाद्यन्तपरिवर्जितम् ।

व्याखाद्धिष्टानमात्रपरिशेपाचानकं निरवयवमेव । एवं सक-लभाविकारशून्यमप्येतद्जरमात्मतत्त्वं सर्वाध्यारोपेण सर्वा-त्मकं श्रुतय आहुरिखर्थः ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारा-मायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

अध्यारोपितचेत्यानां प्रातिस्विकभिदाजुपाम् । भावस्त्वप्रत्ययावर्थां ब्रह्मवेत्युपवर्ण्यते ॥ १ ॥

ब्रह्मणोऽध्यारोपितानिर्वचनीयजगद्रुपप्राप्तिकमे वार्णते तत्र कतिपयव्यक्तिष्वनुगतमितराभ्यो व्यावृत्तं लतलादिभावप्रत्य-याभिषेयं यजात्वादिहपं तत्त्वरूपं तत्त्वतो जिज्ञासू रामः पृ-च्छति-यथेत्यादिना । चेत्ये स्मृतिविषये । चेतनता स्मृतिवि-षयभावः। वषयिकाधारे ल्युटि तल्। चेखतेति यावत्॥१॥ अभूतं वर्तमानं आदिपदाद्धिविष्यच तत्र अभूतता ॥ २ ॥ मिन्ने वस्तुकृतपरिच्छेदादिमति । अनन्ते तच्छुन्ये ॥ ३ ॥ एतदेवंरूपं सर्ववस्तूनामसाधारणं भावं बोधकोपायकमेण मे वद । क्रमेणेत्युक्तराशयमुद्धाटयति आदित इति ॥ ४॥ लत्पृष्टभेत्यादिवस्तूनां भावश्विदारभैव तस्यव स्वाध्यस्तेष्वन्यो-न्यतादारम्याध्यासे तद्भावताविभावनादित्युत्तरमभित्रेव्य तस्य निखसदूपतां दर्शयितुमारभते—तद्नन्तमिखादिना । यत्त्वया पृष्टं तदिदमिल्पर्थः ॥ ५ ॥ सर्वनाशे परिशिष्यमाणलात्स एव सर्ववस्तुनां भावः । भूधातोभावे धत्रि नित्यसत्तार्थे भावश-ब्दन्युत्पत्तिरित्याशयेनाह—ब्रह्मोति । शब्दार्थे नामरूपे । अरूहिं तिरोभावमापन्ने । असन्मात्रप्रलयेन परिशिष्टे सच्छब्दार्थं कृदि प्रतिदिमापने इति वा ॥ ६ ॥ ननु तदपि खकारणे ली-

तद्विद्यते यत्र किल लमषि स्थूलमदमवत्॥ ረ नच नास्तीति तद्वकुं युज्यते चिद्वपुर्यदा । नचैवास्तीति तद्वकुं युक्तं शान्तमछं तदा ॥ ۹, निमेषे योजनशतं प्राप्तायामातमसंबिदि । मध्ये तस्यास्तु यद्वपं रूपं तस्य पदस्य तत्॥ १० सबाह्याभ्यन्तरे शान्ते बासनाविषयभूमे । सर्वचिन्ताविहीनस्य प्रयुद्धस्यार्घरात्रतः॥ ११ शान्तं निःसुखदुःखस्य पुरुषस्यैव तिष्ठतः । यदस्पन्दि मनोरूपं रूपं तस्य पदस्य तत्॥ १२ तृणगुल्माङ्करादीनां सत्तासामान्यमाततम् । यदुद्धावोद्भवं रूपं रूपं तस्य पदस्य तत् ॥ १३ तस्मिन्पदे जगदूपं यदिदं दृश्यते स्फुटम्। सकारणमिवाकारकरालमिव मेदवत् ॥ १४ तत्सर्वे कारणाभावान्न जातं न च विद्यते। नाकारयुक्तं न जगन्न च द्वेतैकासंयुतम्॥ 24 यदकारणकं तस्य सत्ता नेहोपपद्यते । स्वयं नित्यानुभूतेऽर्थे कोऽत्रापह्नवशक्तिमान्॥ १६

यतां तेनासद्खु तत्राह-सर्गस्येति । तत्र सदात्मनि सर्गस्य जन्मनः कारणं किचिदपि नोपपद्यते । मलमायादीनां तदधी-नसिद्धिकलादिति भावः ॥ ७ ॥ यत आद्यन्तपरिवर्जितमत-स्तत्सदैव विद्यत इति सत्तार्थकभावशब्दार्थं इति भावः ॥ ८॥ तयदा शाम्तमलं तदा असीति वाच्यवृत्त्या वक्तं न युज्यते. तदा हि भविता स्यात्र भाव इति भावः ॥ ९ ॥ तादशनि-विषयचित्स्वभावस्यात्यन्ताप्रसिद्धिमनुभवप्रदर्शनेन बार्यति--निमेषे इति । शाखाचन्द्रदर्शनकाले निमेषमात्रेण शाखोध्व-देशे योजनशतं चाश्चषष्टतिद्वारा प्राप्तायां प्रमातृसंविदि शाखा-चन्द्रयोर्मध्ये तस्या निर्विषयं रूपं प्रसिद्धमिति प्रागसकृद्दश्चित-मेबेलर्थः ॥१०॥ अर्थरात्रिपर्यन्तं गाढनिद्रया मनसो निद्रा-कालुष्येऽपनीते सति ततः समाध्यारूढानां योगिनां तद्भपमनु-भवसिद्धमित्याह-सबाह्येति द्वाभ्याम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ तृ-णानां गुल्मानामञ्करकाण्डतरुविद्यादीनां च सर्वपदार्थानाम-द्भवे उद्भवं तदनुषक्ततयाविभूतं यत्सत्तासामान्यमातत-मनुगतं रूपं तदेव खरप्रययाद्यर्थ इस्पर्थः । तथाचोक्तं वाक्य-पदीये 'सा सत्ता सा महानात्मा तामाहुस्खतलाद्यः' इति॥१३॥ तस्मित्रेव सत्तासामान्यरूपे तादारम्येनानुषक्तं व्यावृत्तमिव य-द्धटपटादिजगद्रपमागन्तुकलात्सकारणमिव कम्बुप्रीवाद्याकारैः करालमिव च भासते तत्सर्वमनृतम्, अतएव कारणाभावान्न जातं न विद्यते चेति परेणान्वयः ॥ १४ ॥ तन्तु सदूपं नाकारयुक्तम्, अतएव न जगत् हैतेवयादिनापि न संबद्धम् ॥ १५ ॥ तत्कृतस्तत्राह--विदिति । अत्रार्थे सर्वेषां खानुभव एव मानमित्याह—खगमिति ॥ १६॥

योग० १४९

नच शून्यमनाद्यन्तं जगतः कारणं भवेत्।
ब्रह्मामृतं समूर्तस्य दृश्यस्याब्रह्मरूपिणः॥ १७
तस्मासत्र जगद्र्पं यदाभातं तदेव तत्।
स्वयमेव तदाभाति चिदाकाशमिति स्थितम्॥१८
जगिष्यद्रह्मभाषाच तथा भावो भ्रमादिव।
सर्वमेकमजं शान्तमद्वैतक्यमनामयम्॥ १९

पूर्णात्पूर्णं बिसरित पूर्णे पूर्णं बिराजते।
पूर्णमेवोदितं पूर्णे पूर्णमेव व्यवस्थितम्॥ २०
शान्तं समं समुद्यास्तमयैर्बिद्दीनमाकारमुक्तमजमम्बरम्क्यमेकम्।
सर्वे सदा सदसदेकतयोदितातम्
निर्धाणमाचमिदमुक्तमबोधक्रपम्॥ २१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्ल्माकीये मोक्षोपायेषु नि॰ उत्तरार्धे निर्वाणवर्णनं नाम त्रिपबादाः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपश्चाद्याः सर्गः ५४

वसिष्ठ उचाच । जगन्नाम नभः स्वच्छं सद्ग्रह्म नभिस स्थितम् । नभो नभिस भातीदं जगच्छदार्थ इत्यजम् ॥ १ त्वमदं जगिदत्यादि राष्ट्राधों ब्रह्म ब्रह्मणि । दान्तं समसमाभासं स्थितमस्थितमेव सत् ॥ २ समुद्रगिरिमेघोवीविस्फोटमयमण्यजम् । काष्ट्रमौनवदेवेदं जगद्गह्माघितष्ठते ॥ ३ द्रष्टा द्रष्टेव दृद्यस्य स्वभावात्स्वात्मनि स्थितः । कर्ता करींव कर्तव्याभावतः कारणाहते ॥ ४

अस्तु तर्ह्यसतो जगतः श्रून्यमेव कारणं तत्राह-नचेति। ब्रुन्यस्य कारणत्वे तस्य देशादिपरिच्छेदाभावात्सर्वं सर्वत्र सदा स्यादित्याशयेन विशिनष्टि-अनायन्तामिति । अतएव न ब्र-ह्मापि कारणम् । अमूर्तस्य मूर्ताकारपरिणामाथोगाचेत्याह--- ब्र-क्षेति। तथाच श्रुतिः 'तदेतद्रद्धापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमय-मात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः' इति ॥ १७ ॥ तस्मादीदशे ब्रह्मणि यजगद्रपं भातं तद्रह्मेव तथा भातमिति । ब्रह्मेव सर्ववस्तूनां भावस्वतलायर्थं इत्युपसंहरति—तस्मादिति ॥ १८ ॥ एवं जगतिबहुहाभावादापातप्रतीतस्तथा भावो घटपटाद्याकारो अ-मादिनेति सिद्धे सर्पत्र सर्वनेकमेव ॥१९॥ भ्रान्ला तस्य जग-जीवभावे श्रान्खपगमे वास्तवब्रह्मभावे च 'पूर्णमदःपूर्णमिदम्' इत्यादिश्रुतिः प्राग्दर्शितैयेत्यनुवदति---पूर्णादिति ॥ २० ॥ व-र्णितरीत्या सर्वमाकारमुक्तं सत् सदसदेकतया सदा उदिता-रमेति यदिदम्तमबोधरूपं बद्धा परिशिष्टं तदेव निर्वाणमिति भा-वप्रस्ययार्थतस्वमित्यर्थः॥२१॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणेउत्तरार्धे त्रिपञ्चाशक्तमः सर्गः ५३

सर्वे वस्तु स्वभावस्थं स्वभावेन क्रियाभिदे । अविकारमतोऽद्वैतं सन्मात्रमिति वर्ण्यते ॥ १ ॥

घटपटादीनां न घटलपटलाधनुष्ठिख्य खरूपं भेदो वा नि-रूपयितुं शक्यं घटघटलयोरपि परस्परं न निरविच्छित्रप्रतियो-गिताको भेदौ निरूपयितुं शक्यायिति पृथकरणे निर्विकरूप-तया समाभासयोभीवभवित्रोर्विभागस्य विकल्पमात्रलात्सर्वेब-स्तूनां भावमात्रत्वे घटे घटलमिस्यादिशब्दार्थनिष्कर्वे ब्रह्म ब- न इत्यं न च कर्तृत्यं न जडत्यं न भोकृता।

न शून्यता न चार्थत्यमिह नापि नभोर्थता ॥ ५
शिलाजटरयत्सस्यं घनमेकमजं ततम्।
सर्वे शान्तमनाधन्तमेकं विधिनिषेधयोः ॥ ६
मरणं जीवितं सत्यमसत्यं च शुभाशुभम्।
सर्वमेकमजं ज्योम वीचिजालजलं यथा ॥ ७
विभाग एव दश्यत्यं द्रष्टृत्यं चैव गच्छति।
एतम्म कल्पनं स्वप्नपुरादिष्वनुभूयते ॥ ८
एवमच्छं पराकाशे स्वप्नपत्तनवज्जगत्।
भाति प्रथममेवेदं ब्रह्मवेत्थमतः स्थितम्॥ ९

हाणि स्थितमित्येव पर्यवस्यतीति प्रसाधितस्य भावप्रस्यार्थ-निष्कर्षस्य फलमिहोपपादियतुमारभते-जगन्नामेखादिना । घटलपटलादिभावेभ्यो निष्कृष्यमाणं जगन्नभ इव खटछं नि• र्भेदकल्क्समेव प्रसिद्धम् । तत्र च घटलपटलादिभावः प्रागुक्त-रीत्या ब्रह्मेव स्थितम्। तथा चैवंदर्शने घटः पट इत्यादिभावे नभएव नभि भाति स एव जगच्छब्दस्य घटपटादिशब्दस्य चार्थस्तवाजं जन्मादिविकारशून्यमेवेति न कार्यकारणभावः कस्यचित्किचित्प्रतीत्यर्थः ॥ १ ॥ अमुमेवार्थं पुनः सप्टमाह--लमहमिति । भावभवित्रोः पृथक्त्य दर्शने अत्यन्तेक्यदर्श-नेऽपि वा सौक्ष्म्यादिना समसमाभासमेव पृथगस्थितमेव तथा सत् ॥ २ ॥ एवं समुद्रगिरिमेघोर्व्यादिविभागप्रचुरं विचित्र-कारकियाफलभेदेर्भासमानमपि तत्तद्भावभवितृतत्त्वं निष्कर्षे निष्कियं बद्दावानिष्ठत इत्यर्थः ॥ ३ ॥ तदेव ब्रष्ट्रादिविभाग-प्रसुरं विचित्रकारकेषु तत्तद्भावनिष्कर्षेण प्रपद्मयात—इहेति । दरयस्य स्वभावात्रिकृष्टो द्रष्टा चिन्मात्रस्वभावे स्वात्मनि स्थितः सन्तक्र्ष्टेव भवति एवं कर्तापीखर्यः ॥ ४ ॥ भनगा रह्या सर्व-जगद्वेचित्र्यमपमार्डं शक्यमिति दर्शयति—नेति ॥ ५ ॥ भा-वाभावविभागस्याप्यपमार्जनाद्विधिनिवेधयोरेकम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ ब्रह्मणो जीवभावेन विभागे सत्येकमेव चिदंशप्राधान्येन द्रष्टृतां, सदंशप्राधन्येन चिद्रूपं तिरोधाय दश्यतां चैव गच्छति । यथा खप्रे व्यावहारिकजीवात्धातिभासिकजीवस्य विभागे स्वापति-रोहितो व्यावहारिकजीवः स्वाप्रजीवदृश्यपुरादिभावं गच्छति तद्वदिलयः ॥ ८ ॥ प्रथमं निष्प्रपत्रं यद्वा तदेवातो जीवा-

तदिवं ताहरां विदि सर्वे सर्वात्मकं च यत्। देशाहेशान्तरप्राप्ती विदो मध्यमनक्रितम्॥ 80 विद्योबः शान्तशान्तस्य मध्यमे चैवमास्थितम् । जगत्त्रथेव सलिलमेषोर्म्यादितया यथा ॥ ११ यद्वेत्यदितं यश्व यश्व नोदेति नोदितम्। देशाहेशान्तरप्राप्ती विदो मध्यात्र भेदितम्॥ १२ अतः किलास्य सर्गस्य कारणं शशश्कुवत् । प्रयक्तेनापि चान्धिएं न किंचिदुपलभ्यते ॥ १३ यदकारणकं भाति तदभातं भ्रमात्मकम्। भ्रमस्यांसत्यरूपस्य सत्यता कथमुच्यते ॥ १८ कारणेन विना कार्य किल किं नाम विद्यते। यद्पुत्रस्य सत्पुत्रदर्शनं स भ्रमो न सत्॥ १५ यस्त्वकारणको भाति स स्वभावो विज्ञम्भते। सर्वरूपेण संकल्पगन्धर्वनगरादिवत्॥ १६ देशाहेशान्तरप्राप्तौ क्षणान्मध्यं त्रिदो वपुः। स्वरूपमजहरवेच राजतेऽर्थविवर्तवत्॥ १७ बोध एव कचत्यर्थरूपेण स च खादणुः। दृष्टान्तोऽत्रानुभूतोऽन्तः स्वप्नसंकरूपपर्वतः॥ १८ श्रीराम उवाच। विद्यते बटबीजान्तर्यथा भाविमहाहुमः। परमाणी तथा सर्गो ब्रह्मन्कसान्न विद्यते॥ १९ वसिष्ठ उवाच। यत्रास्ति बीजं तत्र स्याच्छाखा विततरूपिणी।

हमना विभागादित्थं जगद्भावेन स्थितम् ॥ ९ ॥ तत्तस्मादिदं सर्वात्मकं जगद्भपं प्रथमं यादशं निष्प्रपश्चं तादशमेव सदिति विदि । तादशं निष्प्रपश्चमनावृतं चितो रूपमप्रसिद्धमिति तु न वाच्यम् । शाखाचन्द्रोभयदर्शनवृत्यभिव्यक्तचितस्तदुभयमध्य-मप्रदेशे तथा प्रसिद्धेः प्रागसकृतुक्तल।दिखाह—देशादिति । अनिक्षतं विषयविशेषेणाचिहितम् ॥ १० ॥ इदानीमपि प्रत्य-ग्दष्ट्या पर्यालोचने तद्रूपं सुद्रीमित्याशयेन दृष्टान्तः सलिलमे-वेति ॥ १९ ॥ सर्वे जगत्तादशनिर्विषयचैतन्याभिन्नमेवेत्याह-यदिति । उदेत्युदितं च कार्यरूपं, नोदेति नीदितं च कारणरूपम् । न मेदितं न मिन्नम्। खार्थण्यन्तात् क्तः ॥ १२ ॥ अस्ल-मिन्नं कि ततस्तत्राह—अत इति ॥ १३ ॥ ततोऽपि कि तत्राह-यदिति ॥ १४ ॥ यदपुत्रस्य वन्ध्यापतेः स्वप्ने सत्पु-त्रदर्शनं स अम एवेखर्थः ॥ १५ ॥ खभावो द्रष्ट्रचिदेव सहस्यं जहत्तथा विज्ञम्भते !! १६ ॥ क तर्हि खरूपमजहवाजते त-त्राह—देशादिति । शाखाचन्द्रदेशयोरेव परमार्थविवर्तवदित्यु-**मबह्पकचनं तत्र प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ १७ ॥ असत्यप्यर्थे बो-**घोऽर्थरूपेण कचते इत्यर्थऽपि दृष्टान्तावाह—वोध एवति ॥ १८ ॥ वोध एवार्थरूपेण कचतीति किमर्थ कल्यते वटवी-जान्तः सूक्ष्मो वृक्ष इव बोधान्तर्जडात्मकः प्रपन्नो लक्ष्य एव

जन्यते कारणैः सा च वितता सहकारिमिः॥ २० समस्तभूतप्रलये बीजमाकारि किं भवेत्। सहकार्यथ किं तस्य जायते यद्वशास्त्रगत्॥ २१ यसु ब्रह्म परं शान्तं का तत्राकारकरूपना । परमाणुत्वयोगेऽपि नात्र केवात्र बीजता ॥ २२ कारणस्येति बीजस्य सत्यासत्येककारिणः। असंभवाजागत्सत्ता कथं केन कृतः क का ॥ २३ जगदास्ते परस्याणोरन्तरित्यपि नोचितम् । सार्षपे कणके मेहरास्त इत्यक्षकल्पना ॥ २४ सति बीजे प्रवर्तन्ते कार्यकारणदृष्यः। निराकारस्य किं बीजं क जन्यजनकक्रमः॥ २५ अतो यत्परमं तस्वं तदेवेदं जगत्स्थितम्। नेष्ठ प्रथयते किंचिन्न च किंचिद्विनदयति ॥ २६ चिवाकाराश्चिदाकारो हृदि चिरवाजागद्भमम्। अशुद्धवदिवाशुद्धे शुद्धं शुद्धे प्रपश्यति ॥ 20 खमेवाभासते तस्य रूपं स्पन्द इवानि हे। सर्गशब्दार्थकलना नेह काश्चन सन्ति नः॥ २८ यथा शून्यत्वमाकाशे द्रवत्वं च यथा जले। अन्यतात्ममयी शुद्धा सर्गतेयं तथात्मनि ॥ २९ भारूपमिदमाशान्तं जगद्वस्यव नस्ततम्। अनादिनिधनं सत्यं नोदेति न च शाम्यति॥ ३० देशाहेशान्तरप्राप्ती क्षणान्मध्ये विदो वपः। यत्तज्जगदितीवेदं ब्योमात्मनि व्यवस्थितम्॥ 38

प्राक् स्थित इत्येव कुतो वा न करण्यत इति रामः शहते-बिद्यत इति ॥ १९ ॥ साकारे हि यीजेऽन्तर्निराकारी वटः प्रा-गभूत् सच भूजलादिसहकारिकारणसमवधानेऽह्वरादिकमेणावि-रभूत्। नच सर्वजगत्प्रलयं किचित्साकारं संभवति सहकारिणो वा लक्ष्यन्त इति विषमो दशान्त इत्युत्त रंवसिष्ठ आह--यत्रे-त्यादिना ॥ २० ॥ आकारोऽस्यास्तीत्याकारि कि बीजं भवेत् । एवं सहकार्यपि तस्य वीजस्य कि भवेत् ॥ २१ ॥ ननु ब्रह्मीय तत्र जगच्छक्तिगर्भ बीजगस्य तत्राह --यत्वित । अत्रास्मिन्त्र-ह्मणि परमाणुखयोगोऽपि नास्ति आकारकल्पना दूरापास्तेत्यर्थः ॥२२॥ अतएव कारणासंभवः प्रागुक्त इत्याह—कारणस्येति । इति अनया रीत्या ॥ २३ ॥ यदि तु 'अणुः पन्था विततः पुराणः' 'अणोरणीयान्' इत्यादिश्रुतिवलादणुलमस्युपगम्येत तथापि तत्र जगस्थितिर्दश्पपादेखाह्-जगदिति ॥ २४ ॥ यदि तु जगदपि निराकारमेवेत्यभ्युपगम्येत तर्हि सुतरां बी-जाद्यसंभवात्तादशबद्धातैव पर्यवसितेत्याद्--सतीति द्वाभ्याम् ॥ २५ ॥ प्रथयते आविर्भूय खरूपं प्रख्यापयति ॥ २६ ॥ कि तर्हि तत्तदाह—िचदाकाश इति ॥ २० ॥ २८ ॥ आत्ममयी खविवर्तरूपा खान्यता ॥ २९ ॥ अधिवर्ष तर्हि कीटक् त-दाह-भारूपमिति ॥ ३० ॥ तदप्रसिद्धिसु बहुशो वारितेति यथा स्पन्दोऽनिले तोये द्रचत्वं व्योम्नि शून्यता। तथा जगदिवं भातमनन्याश्वेषमात्मनि॥ ३२ संविश्वभो नजु जगन्नभ इत्यनर्क-मात्मन्यवस्थितमनस्तमयोदयं क।

तस्वङ्गभूतमस्त्रिलं तदनन्यदेव दृद्यं निरस्तकलनोऽम्बरमात्रमास्स्य ३३

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अहैतैक्यप्रतिपादनं नाम चतुःपश्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पश्चपश्चादाः सर्गः ५५

वसिष्ठ उवाच ।
भावाभावप्रहोत्सर्गस्थूलस्थ्मचराचराः ।
आदावेष हि नोत्पन्नाः सगादां कारणं विना ॥ १ न त्यम्तों हि चिद्धातुः कारणं भवितुं कचित् । स्वात्मा शक्तः स मृतानां बीजमुर्वीयहामिव ॥ २ स्वभाषमेव सततं भावयन्भावनात्मकम् । आत्मनेष हि चिद्धातुः सर्वोऽनुभववान्स्थितः ३ आस्वादयति यं भावं चिद्धातुर्गगनात्मकः । स्वध्यः सर्गः प्रस्तापेन श्लीयः श्लुष्धतया यथा ॥ ४ यदा सर्वमनुत्पन्नं नास्त्येवापि च दृष्यते । सदा ब्रह्मेच विद्धादं समं शान्तमसत्समम् ॥ ५ चिन्नमश्चिन्नभस्येव पयसीव पयोद्ववः । चित्वात्कचित यत्तेन तदेवेदं जगत्कृतम् ॥ ६

स्मारयति—देशादिति ॥ ३१ ॥ अन्यंन वस्तन्तरेणाश्रेषः संवन्धस्तच्छ्न्यम् । असङ्गाद्वयमिति यावत् ॥ ३२ ॥ विणितं सर्व जगतिवस्त्वभावमात्रत्वं संग्रह्योपदिश्रानुपसंहरति—संविदिति । हे राम, जगत् आत्मनि परमार्थस्त्रभावेऽवस्थितं सत् । निवति निश्चयेन संवित्रभ एव श्रन्यतापत्रं सत्प्रसिद्धं नभ एव कि न स्यात्तत्राह—नभ इति । अनर्कं सूर्यरहितं तदस्तिमयोदयरहितं व आत्मनि स्वरूपमात्रेऽवस्थितं च नभ इति क प्रसिद्धम् । नहि नभः सिवत्स्वभावमकीदिश्रन्यं वा प्रसिद्धमपिन्तु जडं श्रन्यम् । किच सर्वदश्यानां यत्तत्वं सिवत्स्वभावस्यं तदस्तिम् । विज्ञ सर्वदश्यानां यत्तत्वं सिवत्स्वभावस्यं तदस्तिम् योत्तात्वमपिनेत्रत्वं न श्रान्यनभोक्तम्, येन तन्मात्रं स्यात् । अतस्तेन सिवदात्मनेवानंत्यत् । तस्मात्त्वमपि निरस्तसक्त्यदश्यिदम्बरमात्रं सत् आस्त्व तिष्टेन्स्ययं ॥ ३३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थं चनुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

भन्यभावनयान्यां स्वां पश्यन्ती चिजनस्थिता। स्वभावनादनस्येति परमार्थमयं जगत्॥ ९॥

एवं जगत आत्यन्तिकं ब्रह्माभेदे अनुत्पत्तिरेव फिलते-त्याह—भावेति ॥ १ ॥ उत्पत्तिबादे लवश्यं बीजं वाच्यं तत्त्व दुर्घचिमत्यसङ्कदुक्तं स्मारयति—निलति ॥ २ ॥ अतएय तक्तवादसर्वं जगिमत्त्वभावमेव भावयंस्तद्भावेनैव स्थित इ-त्याह—स्वभावमेवित। सगीनुभवयान् इति पाठे तु अङ्गाधिद्धा-द्धारामन्येव सर्गस्वभावं भावयंस्तथानुभववान्स्थत इति न्या-जन्ममरणभीतिप्रसक्तिदेव नास्ति प्रस्तुतोभयथापि सुसमेवे-

स्वप्ते तदेव जगदित्युदेति विमला यथा। काचकसंघ कचति तथेत्थं सादि सर्गस्ते॥ 9 चित्काचकस्य कचनं यथा स्वप्ने जगद्भवेत्। तथेय जाप्रद्विधं तत्त्वमात्रमिदं स्थितम् ॥ 2 आदिसर्गे हि चित्स्वप्रो जाप्रदिखिभशब्दते। अद्य रात्री चितेः स्वप्नः स्वप्न इत्यपि शब्दाते ॥ ९ पूर्वप्रवृत्ता सरितां रूढाद्यापि यथास्थिता। तरङ्गलेखा दृष्टीनां पदार्थरचना तथा ॥ १० यथा वारितरङ्गश्रीः सरितां रचनामिता। तथा चिद्योम्नि चिद्वीजसत्तान्तः सृष्टितामिता ११ मृतस्यात्यन्तनाशश्चेत्तन्निद्रासुखमेव तत्। भूयश्चोदेति संसारस्तत्सुखं नवमेव तत्॥ १२

रुयेयम् ॥ ३ ॥ अतएवाज्ञातमना स्त्रभावभावनारुषः सर्गो लब्ध इत्याह--आखादयतीति । यथा मदिरादिश्चब्धतया आत्मनेव क्षीबः स्वात्मा लब्धस्तद्वत् ॥ ४ ॥ अतएवानुत्वन्न-बस्लन्तरस्वभावदर्शने तद्भावस्थितिरिति विद्धीत्याह-यदेति ॥ ५ ॥ कथं तर्हि तेनेदं जगत्कृतमिति श्रुखादिप्रवाद उपप-श्रस्तत्राह—चित्रभ इति । यदासात्तेन चिदातमना निमित्तेनेद-मध्यसां जगत्कचित तेन हेतुना जगद्वध्य जगदाकारेण तेनव कृतमिति प्रवाद इति शेषः ॥ ६॥ सचार्य स्वप्रद्रष्टः 'अथ रथान् रथयोगान् पथः सजते' इति धुतौ तत्स्रष्ट्ताप्रवादवदिखाह— खप्ने इति । यथावा काचकद्षितनेत्रस्य नभसि केशोण्डकादि कचित तथा इत्थं विचित्रं सादिरूपं सगत्मभाविते निदाकाशे कचर्तात्यर्थः ॥ ७ ॥ तत्तसात्खमात्रं चिदाकाशमात्रम् ॥ ८ ॥ कस्तर्हि तथा सति जामरस्त्रप्रयोभेदस्तमाह-अदिति । आदी प्रवृत्ते हिरण्यगर्भात्मकसर्वे । आदरात्रौ प्रवृत्ते खखत्र्यक्वन्तः-करणमात्रपरिमाणरूपे सर्गे यश्चितेः खप्रः ॥ ९ ॥ आदिसर्ग-संकल्प एवामहाप्रलयं सर्वपदार्थस्वभावव्यवस्थापिका नियति-स्तदनुसारंणेवाद्यापि यथास्थितं पदार्थरचनारूढा यथापूर्वप्रवृत्ता सरितां तरङ्गरेखा दर्धानां प्रत्यक्षा रूढेत्यन्वयः ॥ १० ॥ त-थाच वारिसत्तातिरिक्तसत्तां यथा तरङ्गश्रियो नास्ति एवं जग-तश्चित्सत्तातिरिका सा नास्तीत्याशयेन ब्रह्मोपादानकताप्रवाद

कुकर्मभ्यस्तु चेद्गीतिः सा समेह परत्र च । तसादेते समसुखे सर्वेषां मृतिजनमनी ॥ १३! मरणं जीवितं वास्तु सहजे वासने तयोः। इति विश्रान्तिचसो यः सोऽन्तःशीतल उच्यते ६४ सर्वसंवित्तिविगमे संविद्रोहति यारशी। भूयते तन्मयेनैव तेनासी मुक्त उच्यते ॥ १५ अत्यन्ताभावसंवित्या सर्वेद्दयस्य वेदनम्। उदेखपास्तसंवेद्यं सति वाऽसति सर्गके ॥ १६ यश चेत्यं न चिद्र्पं यश्चितेरप्यचेतितम्। तद्भावेषयं गतास्तज्ज्ञाः शान्ता व्यवहृती स्थिताः १७ चित्काचकाचकच्यं यज्जगन्नाम्ना तदुच्यते । अस्यच्छे परमाकाशे बन्धमोक्षदशः कुतः॥ 26

चिन्नभःस्पन्दमात्रातम संकल्पातमतया जगत्। सद्भतमयमेवेदं न पृथ्यादिमयं कचित्॥ १९ नेह देशो न कालोऽस्ति न द्रव्यं न किया न खम्! सदिवाखिलमुच्छूनं वाष्यनुच्छूनमप्यसत्॥ ર૦ भाति केवलमेवेत्थं परमार्थधनं घनम्। यन शुन्यं न वा शून्यमत्यच्छं गगनाद्षि॥ २१ साकारमप्यनाकारमसदेवातिभास्वरम्। अतिशुद्धैकचिन्मात्रस्फारं स्वप्नपुरं यथा॥ २२ निर्वाणमेवमिदमाततमित्थमन्त-श्चिद्योस आविलमनाविलह्रपमेव । नानेय न कचिद्पि प्रसृतं न नाना शून्यत्वमम्बर इवाम्बुनिधौ द्रवत्वम् ॥२३

इत्सार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० मो० निर्वाणप्रकरणे उ० जगतः परमार्थमयत्तवर्णनं नाम पत्रपश्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पश्चादाः सर्गः ५६

वसिष्ठ उवाच।
सर्वत्र सर्वथा सर्व सर्वदा व्योम्नि चिन्मये।
साधु संभवति स्वच्छं शून्यत्वं ख श्वाखिले॥ १
यत्र चित्तत्र सर्गश्रीरव्योम्नि व्योम्नि वास्ति चित्।
चिन्मयत्वात्पदार्थानां सर्वेषां नास्त्रचित्कचित् २
पदार्थजातं शैलादि यथा स्वभे पुरादि च।
चिदेवैकं परं व्योम तथा जाव्रत्पदार्थभूः॥ ३
पाषाणाख्यानमत्रेदं शृणु राम रसायनम्।
पूर्व मयैव यषुष्टं चित्रं प्रकृतमेव च॥ ४

त्याह्-मृतस्यति । यदि मृतस्याखन्तासत्त्रं तथापि ब्रह्मसुख-सत्ताया एव तत्तनाशोभयसत्तात्मनः परिशेषाभिदायां सुपुर्शा निरतिशयानन्दत्वेन प्रसिद्धं सुखमेव प्राप्तं भूयश्च पुनर्मृतौ देहाद्यात्मना संसारो यद्युदेति तत्तस्य नवसंसारहपमपि तदेव सुखं नहि सुखान्यसत्तार्लाति न कचिद्भयप्रसिक्तिरत्यर्थः॥१२॥ ननु मृतस्य कुकर्मभ्यो नरकादिदुःखसंनावनाद्भयं कि न स्या-दिल्याशङ्कामुत्थाप्याह-कुकर्मभ्य इति । सा भीतिरिह जीवतः परत्र मृतस्य च समा नरकादेर्जीवनस्य च ब्रह्मसुखसत्तातिरि-क्तसत्ताभावाद्दुःखस्यापि सुखसत्तयैव स्थितेविशेषाभावादित्यर्थः ॥ १३ ॥ तयोमीरणजीवितयोवीसने सौक्ष्मयेण स्थितिरूपे सत्ते सहजे खामाविकब्रह्मसुखरूपे ॥ १४ ॥ तेन दर्यवन्धस्य पृ-थक्सत्तापगमेनासौ मुक्त उच्यते ॥ १५ ॥ एवं दृश्यस्थात्यन्ता-भावसंबित्त्या परसत्त्या सर्गके सत्यसित वा सर्वेट्डयस्य वेदनम-पास्तसंवेद्यं निर्विषयमेवोदेतीति मुक्तलोपपत्तिरित्यर्थः ॥१६॥ षेत्याभावादेव तत्सापेक्षचितिक्रियारूपं न ॥ १७ ॥ अभीक्ष्णं कचतीति कचकचस्तद्भावः काचकच्यम् ॥ १८ ॥ १९ ॥ प्रतिभासमात्रेणोच्छूनं वाष्यनुच्छूनमेवेत्यसत् ॥ २० ॥ २९॥ ॥ २२ ॥ है राम, नियोन आविलं जगद्रपमित्यमुक्तरीत्या अहं विदितवेद्यस्वात्कदाचित्पूर्णमानसः।
स्यक्तमिच्छुरिमं लोकव्यवहारं घनभ्रमम्॥ ५
ध्यानैकतानतामेत्य शनैर्विश्रान्तये चिरम्।
स्यक्ताजवं जवीभाव एकान्तार्था शमं व्रजन्॥ ६
इदं चिन्तितवानस्मि कसिश्चिदमरालये।
संस्थितो विविधाः पश्यन्भङ्गरा जागतीर्गतीः॥ ७
विरसा खिव्यं लोकस्थितिरापातसुन्दरी।
न जातु सुखदा मन्ये कस्यचित्केनचित्कचित्॥ ८

अनाविलं हपमाततं निर्वाणभेव । अनेन क्रचिद्धि न प्रस्तं न किंतु सर्वत्र प्रस्तमेव । अम्बरे शून्यलमिव अम्बुधौ द्रवलमिव च इदं अगन्न नाना किंतु तदंबेल्यर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणताल्पर्यप्रकाशं निर्वाणप्रकरणे उत्तराधै पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥ ५५॥

> चिदेव सर्व सर्वत्र सर्व चिदिति निश्चितः । द्वीकाराय पाषाणाख्यायिकात्रोपवण्यते ॥ ३ ॥

चिन्मये व्योप्ति ब्रह्माकाशे तत्सत्तया सर्वत्र सर्वदा साधु असंकुचदृत्तितया संभवति तच सर्व सर्वदा सर्वत्र खच्छमेव खमालिन्यं छेशनापि ब्रह्म न दृष्यति । यथा खे शून्यत्वमिख्छे
तिस्मित्रे ल्यातमा भासमानसपि न खं दृष्यती त्यच्छां तद्वदित्यर्थः ॥ १ ॥ उक्तार्थे उपपत्तिमाह—यत्रेति । अव्योप्ति पृथिव्यादी ॥ २ ॥ सर्वस्य चिन्मात्रता खप्ते प्रसिद्धेति तदृष्टान्तेन जाप्रत्यपि तां साध्यति—पदार्थजातामिति ॥ ३ ॥
रसानां माधुर्यवैचित्रयाणा श्रद्धारादीनां चायनं स्थानं श्रान्तिरोगमेषजं च विविचक्रयोक्ति भित्रत्वाभित्रं विस्तरेण वर्णयितुं
प्रकृतं प्रस्तुनं न ॥ ४ ॥ ६ ॥ अमराख्ये संस्थितोऽहमिदं वश्यमाणं चिन्तितवानस्य ॥ ।॥ केनचिद्ध्युपायेन प्रका-

उद्वेगं जनयत्यन्तस्तीवसंवेगस्रेदतः। इमा रहयरशो द्रष्टुरिष्टानिष्टफलप्रदाः॥ किमिदं दृदयते किं या प्रेक्षते कोऽहमेय वा। सर्व शान्तमजं व्योम चिन्मात्रात्मनि रिक्रकम् १० तसात्समस्तसिद्धेन्द्रवेषदैत्यादिदुर्गमम्। स्त्रप्रदेशमितो गत्वा संगोप्यात्मानमात्मना ॥ अदृदयः सर्वभूतानां निर्विकल्पसमाधिगः। समे स्वच्छे पदे शान्ते आसे विगतवेदनम्॥ १२ तसात्को नु प्रदेशः स्यादत्यन्तं शुन्यतां गतः । यत्रैता नाजुभूयन्ते पश्च बाह्यार्थवेदनाः ॥ १३ शब्दकाननवार्यब्दभूताघाभिसमाकुलाः। श्रोभयन्त्यथ संश्ुरधास्तसान्मे गिरयोऽरयः ॥ १४ नानाविधा नगेन्द्राणामन्तरावलिता जनैः। वेशा विषमया एव निःशेषा विषयाहिभिः॥ १५ जनैर्जलचरैर्व्याप्ताः सागरा नीरकुक्षयः। विविधारम्भसंभ्रुष्धेर्नगराणीव नागरैः॥ १६ तटान्यद्यम्बुराशीनां लोकपालपुराणि च। भृताकुलानि शृङ्गाणि पातालकुहराणि च ॥ १७। गायन्त्यनिलभांकारैर्नृत्यन्ति लतिकाः करैः। पुष्पेर्हसन्त्यगेन्द्राणां गुहा गहनकोटराः॥ १८ मीनिमीनमुनिस्पर्शकस्पिनाळचळाम्युजाः। सरस्रो बिरसा एव वार्यावर्तविराविताः॥ १९ पवनस्पर्शसंश्चुब्धतृणपांसुपताकिनी । रदत्यनिस्भांकारैर्निर्झरोध्यंप्यसंयता ॥ २० तसादाकाशमाशून्यं कस्मिश्चिहरकोणके।

रेण च।कचिंद्शं काले च॥८॥ न सुखंदत्येतावदेव न किंद्र दुरन्तदुःखदापीत्याह्-उद्वेगमिति ॥९॥ अल्पं रिष्ठणं रि-क्क विवर्त इत्यर्थः ॥ १० ॥ तस्माद्विश्लेपोद्रेगस्यावश्यह्यद्वा-त्तद्भानायेखर्थः । आत्मानं स्वदेहमात्मना स्वेनवान्तर्धानाद्य-पार्वः संगोप्य गृहयित्वा संरक्ष्य च ॥ ११ ॥ विगतवाह्यार्थवे-दनं यथा स्यात्तथा ॥ १२ ॥ १३ ॥ ननु गिरिशिखरप्रस्थ-द्रोण्यादयः सागरकुक्षितटादयः पातालकुहरादयश्च बहुव एका-न्तदेशाः प्रसिद्धास्ते कृतो नाध्यास्यन्ते समाध्यर्थे तत्राह--श-**ब्दे**त्यादिना । विश्लेपहेतुशब्दप्रचुरः कार्ननर्वारिभिरव्देर्भेधेः सिं-ह्व्याघ्रादिभृतीषेखाभितः समाकुला गिरयः खर्यं संधुच्धाः सन्तोऽन्यानपि क्षोभयन्ति तस्माते मे अरय इव प्रतिकृता **इत्यर्थः ॥ १४ ॥ अन्तरा द्रोणीप्रदेशाः किरा**तादिजनविलिता वेष्टिताः विषयाहिमिर्द्षितलाद्विषमया एव ॥ १५ ॥ वि-विभारम्भसंक्षुक्षेरित्युभयान्वयि ॥ १६ ॥ अद्रीणां अम्बुरा-शीनां च तटानि शृष्ट्राणि च ॥१७॥ गिरिगुहास्तहिं सेव्यन्तां तत्राह्-गायन्तीति । सिंह्सर्पादिगर्भलाद्वहनकोटराः ॥१८॥ सन्त तर्हि महासरांखि दक्षिणायथे सरस्य इति प्रसिद्धाः खतीरे समाधिद्वेतवस्तत्राह्—मीनीति । दर्पभयन्याङ्गुलानां मीत्रानां 🖡

अत्र तिष्ठाम्यवष्टभ्य योगयुक्तिमनिन्दिताम्॥ कसिक्षिदेककोणेऽत्र कृत्वा कल्पनया कुटीम्। वजोदरहढं तस्यामन्तस्तिष्ठाम्यवासनम्॥ **२२** इति संचिन्त्य यातोऽहमाकाशमसि निर्मलम्। यावसदिप पदयामि सकलं विततान्तरम्॥ २३ क्षचिद्धमस्सिद्धगणं कचिद्धवर्जव्म्बुदम्। कचिद्विद्याधराधारं यक्षोत्क्षिप्तश्चर्यं कचित् ॥ २४ कविद्रमत्पुरवरं प्रारब्धसमरं कवित्। कचित्रवज्जलधरं कचित्रहसयोगिनि॥ २५ कचिहैत्यपुरोड्डीनसगन्धर्यपुरं कचित्। कचिद्धमद्रहगणं तारकाकुलितं कचित्॥ २६ क्षचित्रसे खगसंघृष्टं कचित्कुद्धमहानिलम्। कचिदुत्पातवलितं कचिन्मण्डलमण्डितम्॥ २७ कचिदपूर्वभूतौधं नागराविततं कचित्। कचिदकरथाकान्तं कचिदन्यरथोद्धरम्॥ २८ कविदादित्यदाहान्तं शशिशैत्यान्यतं कवित्। कचित्रुद्रजनासद्यं कचिद्रयीणयदुर्गमम्॥ कचित्रसालवेतालं गरडोड्डामरं कचित्। कचित्सप्रलयाम्भोदं कचित्सप्रलयानिलम् ॥ 30 ततो भूतगणांस्त्यक्त्वा दूराइरतरं गतः। प्राप्तवानहमेकान्तं शून्यमत्यन्तविस्तृतम्॥ ३१ अत्यन्तमन्द्रपवनं स्यंप्रऽप्यप्राप्यभूतकम् । मङ्गलोत्पातरहितमगम्यं विद्धि संस्तेः॥ **३**२ कल्पिताथ मया तत्र कुटी प्रकटकोटरा। नीरन्ध्रकुड्यनिविडा पद्मकुड्यलसुन्द्री॥ 33

स्नानशीलानां मुनीनां च स्पर्धेः की डास्नानायभिषातैः कम्पन-र्शार्लर्भार्लश्वलान्यम्बुजानि यासु तथाविधाः सरस्यो वार्यावर्तै-र्विराविताः सत्यः समाधिभङ्गहेतुत्वान्मम विरसा यतोऽहं तदा मीनाम्न तिन्नारणसमर्थः ॥ १९ ॥ अस्तु तिर्ह विश्रान्तिहेतुसत्राह—पवनेति । असंयता निर्झरोवी ते अनियता । अनिवारितविक्षेपेति यावत् ॥ २०॥ परिशेषा-सर्वविक्षेपहेतुवर्जनाच्छरणमिखाशयेनाह— एव तस्मादिति ॥ २१ ॥ बच्चोद्रस्टडामिति पूर्वोत्तरोनयकियावि-शेषणम् ॥ २२ ॥ विततान्तरं विक्षेपहेतुसहस्रव्याप्तगर्भम् ॥ २३ ॥ विक्षेपहेतुबाहुल्यमेव विशेषणः सर्वतः प्रपन्नयति— कचिदिलादिना ॥ २४ ॥ उद्गता उन्मादराद्रवृता योगिन्यो यत्र ॥ २५ ॥ आसनैदेंत्यपुरहृशनानि सगन्धर्वाण्येव देवपु-राणि यत्र ॥ २६ ॥ मण्डलैमैघादिचकवालैमीण्डतम् ॥ २७ ॥ अपूर्वाः अपूर्वदृष्टविचित्राकारा भूतीयाः पिशाचसङ्घा यस्मिन् । नागॅरर्नगरसमूर्दरावलितम् । अन्येषां चन्द्रादिप्रहाणां **रयेर-**द्धरम् ॥ २८ ॥ आदित्यसंनिधर्दाहरन्तो मृत्युः प्राणिनां यत्र। क्षुद्रजर्नर्भूतप्रेतादिभिरसत्तं वीभत्सम् ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मङ्गर्लः ग्रुभचिहेरुत्पातरशुभचिहेश्व रहितम् ॥३२॥ कल्पिता

घुणश्चण्णाङ्गपूणेन्दुबिम्बोद्यमनोहरा ।
कहारकुन्दमन्दारपुष्पश्चीकोशशोमिता ॥ ३४
समस्तभूतागम्यत्वं तत्र संकल्प्य चेतसा ।
अगम्ये सर्वभूतानामहमासं तदा ततः ॥ ३५
बद्धपद्मासनः शान्तमनाः परममौनवान् ।
संबत्सरशतान्तेन निर्णायोत्थानमात्मनः ॥ ३६
निर्विकल्पसमाधिस्थो निद्रामुद्रामिवागतः ।
समः सौम्यनभःस्वस्थः समुक्तीर्ण इवाम्बरात् ३७
चिरं यदनुसंघत्ते चेतः पदयति तत्क्षणात् ।
चिरेण खाशापवनव्यक्तिवद्विततं यदा ॥ ३८
तदा वर्षशतेनात्र बोधवीजं वृतान्तरम् ।

आसीन्मे इदयक्षेत्रे कालमेकं विकासतः॥ 36 संप्रबुद्धोऽभवन्मेऽथ जीवः संबुद्धवेदनः। शिशिरक्षीणगात्रस्य मधाविव रसस्तरोः॥ 80 तच्छतं तत्र वर्षाणां निमेयभिव मे गतम्। बह्नयोऽपि कालगतयो भवन्त्येकधियो मनाक् धर विकासमागतो बाह्यं गतो वुद्धीन्द्रियक्रमः। वासन्तः पुष्परूपेण मदस्येव रसो मम ॥ 85 मां प्राणपूरितमुपागतसंबिदंश-मभ्यागतं त्वहमिति प्रसृतः पिशाचः । इच्छाङ्गनाविवलितोऽथ कुतोऽपि सद्यः प्रोन्नामसन्नमनवायुरिवोग्रवृक्षम् ॥ ४३

इलार्षे श्रीवा ॰ वाल्मीकीये मो ॰ निर्वाण ॰ उ० पाषाणो ॰ आकाशमन्दिरे वसिष्टसमाधानवर्णनंनाम षदपद्याशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपश्चादाः सर्गः ५७

3

श्रीराम उवाच ।
त्वामप्युदितिवर्गणमहंकारपिशाचकः ।
बाधते किमिति बृहि मुने संदेहशान्तये ॥
विसष्ट उवाच ।
अहंभावंविना देहस्थितिस्तज्ज्ञाश्रयोरिष्ट ।
आधेयस्य निराधारा न संस्थेहोपपद्यते ॥
अयं त्वत्र विशेषस्तं शृणु विश्राग्नचेतसः ।
श्रुतेन येनाहंभावपिशाचः शान्तिमेति ते ॥

सल्यसंकल्पेन निर्मिता ॥ ३३ ॥ घुणैः कीटमेर्दः क्षुण्णं छिद्री-कृतं पूर्णेदुबिम्बोदरमिव । मनोहरेखभूतोपमा ॥ ३४ ॥ तत्र अहं चेतसा समस्तभूतागम्यलं संकल्प्य वश्यमाणलक्षणनिर्वि-करपसमाधिस्थः आसमिति व्यवहितेनान्वयः ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पुनः शतवर्षांतरं समाधेर्व्युत्थाने निमित्त-माह-चिरमिति । ततश्चिरेण वर्षशतान्ते चित्तमाशावत्पवन-वन यदा विततं तदा बोधवीजं व्युत्थाननिमित्तं कर्म हृदयक्षेत्रे एकं कालं विकासती धृतमान्तरं मध्यभागी यस्य तथाविधमा-सीदिति परेणान्वयः । 'नासापवनव्यक्तिवत्' इति पाठे प्राणा-भिव्यक्तिवदित्यर्थः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ मधी चैत्रमासे ॥ ४० ॥ एकधिय एकामिनितस्य मनाक् अखल्पा भवन्ति ॥ ४१ ॥ तदनन्तरं ते किमभूतत्राह—विकासमिति । वृक्षाणां मदस्य पल्लवादिपुष्टिहेतोई षेस्य निमित्तभूतोऽन्तर्गतो रसः पुष्परूपेणेव ॥ ४२ ॥ ततः किमासीत्तदाह-मामिति । अयं प्राणेः पष-वृत्तिवायुभिरिन्दियेश्व पूरितं तद्वशादेव उपागत आविर्भूतो जीव-संविदंशो यस्य तथाविधं देहं सदाः अभ्यागतं तु माममिलक्ष्य इच्छालक्षणया अङ्गनया पिशाच्या विवलितः परिष्यक्तः अह-मिति प्रसिद्धोऽहंकारियाचः कुतोऽप्यतर्कितास्प्रदेशास्प्रसतः त्राप्तः। यथा उपं शाल्मस्यादिवृक्षं प्रोन्नामानां तरूणां सन्नम-नो वायुधण्डपवनः प्रसरति तद्वदित्यवैः ॥ ४३ ॥ इति श्रीवा- अहंभाविपशाचोऽयमझानशिशुनामुना ।
अविद्यमान प्वान्तः किल्पतस्तेन संस्थितः ॥ ४
अझानमिप नास्त्येव प्रेश्चितं यन्न लभ्यते ।
विचारिणा दीपवता स्वरूपं तमसो यथा ॥ ५
यथायथा विलोकाते तथातथा बिलीयते ।
इहाइतापिशाचिका नथा विचारिता सती ॥ ६
किल सत्यामविद्यायामझतोदेति शाश्वती ।
बुद्धिमोहात्मिका यक्षी निर्देहैव यथा निशि ॥ ७

सिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे षट्-पञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५६॥

ज्ञाज्ञाहंकारयोरत्र विशेषप्रतिपत्तये । ज्ञानबाधितदृश्यस्य चिन्मात्रस्यं समर्थ्यते ॥ १ ॥

मामहमिति प्रस्तः पिशाच इत्युक्तया प्रोन्नामसन्नमनबायु-रिति दष्टान्तोलया च वसिष्टस्याप्यहंकारपिशाचकृतवाधावग-माज्ज्ञानफलानिखलं संभावयन्रामः प्रच्छति—लामपीति । उदितं निर्वाणं ज्ञानमूलं यस्य तथाविषं खामपि ॥ १ ॥ न प्रारम्भशेषभोगमात्रप्रयोजनदग्धपटप्रायदेहधारणनिमिलाहंका-राभासप्रतीतिमात्रेणाज्ञवज्ज्ञानिनो बन्धप्रसक्तिरित दर्शयितु-महाहंकारालत्वज्ञाहंकारे निदंषिताविशेषप्रदर्शनेनोत्तरमाह वसिष्ठः---अहंभावं विनेत्यादिना । देहस्थितिनोपपद्यते यस्मा-दाधेयस्य निराधारा संस्था नेति नञावृत्त्या व्याख्येयम् ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ अज्ञानलक्षणेन शिशुना बालेन किंपतः । तेनाज्ञान-वर्शनैव संस्थितः ॥ ४ ॥ अस्त्वेवं किं ततस्तत्राह्-अज्ञान-मपीति । ज्ञानेनाज्ञाने बाधिते तद्धीनस्थितिकोऽहंकारोऽपि बाधित एवेत्याशयः ॥ ५ ॥ तथाच विदुषामनुभवोत्कर्षकमे-णाज्ञानक्षयोत्कर्षः प्रसिद्ध इत्याह-यथायथेति ॥ ६ ॥ अस-एव विद्याप्रागभावकालनियता अज्ञता प्रसिद्धेलाह--किलेति । सति सर्गे त्वविद्यायाः संभवो नान्यतः कचित्। सति ब्रितीये राशिनि ब्रितीयो विद्यंत राशः॥ सर्गस्त्वयमजातत्वादश्रशातो न विद्यते। म जातः कारणाभावात्पूर्वमेव खबृक्षवत् ॥ परमाकाशकोशान्तगढिसर्गं निरामये। पृथ्यादेरपलम्भस्य भन्नेत्किमिव कारणम्॥ १० मनःपष्टेन्द्रियातीतं मनःपष्टेन्द्रियात्मनः। साकारस्य निराकारं कथं भवति कारणम् ॥ ११ बीजात्कारणतः कार्यमङ्गरः किल जायते। न बीजमिप यत्रास्ति तत्र स्यादङ्करः कुतः॥ १२ कारणेन दिना कार्य न च नामोपपद्यते। कदा क इव खे केन हुए। लब्धः स्फूटो द्वमः 83 संकल्पेनाम्बरे यद्वद्वदयते विटपादिकम्। ससंकल्पस्तथाभूतो न तत्रास्ति पदार्थता ॥ 8.8 एवं येयं चिदाकाहा सर्गादावनुभूयते। शून्यरूप इवाकाशे सर्गस्थितिरनर्गेला ॥ १५ सम एव चिदाकाराः कचत्यात्मनि तत्तथा। स्वभाव एव सर्गारूयश्चित्वाचैतन्यमीश्वरः॥ १६ स्वप्रसर्गोऽत्र दष्ट(न्तः प्रत्यहं योऽनुभूयते । स्वयं संवेदने स्वप्ते स्फ्रात्यद्विप्राकृतिः॥ १७ चित्स्वभावे यथा स्वप्न आस्ते सर्ग इवेह यः। असर्गे सर्गवद्धाति तथा पूर्वे महाम्बरे ॥ १८ अवैचवेदनं शृद्धमेकं भात्यजमव्ययम् । सर्गादी यदनाद्यन्तं स्थितः सर्गः स एव नः ॥ १९ नेह सर्गोऽस्ति नवायं पृथ्यादिगणलोलकः।

अज्ञता कार्याविद्या वा ॥ ७ ॥ एवं कारणाविद्यापि कार्याविद्यो-दयकालमात्रव्यवहारलात्तदुपाधिकजीवचिद्वेदालाच । तदधीने-त्याह—सतीति । संभवः अनुभवाधीना सिद्धिः ॥ ८॥ असु तथा कि ततस्तत्राह-सर्गस्तित ॥ ९ ॥ कारणाभाव-सपपादयति-परमाकाशैति ॥ १० ॥ मनःषष्टेन्द्रयाद्याह्य-लात्तदातमनो मनःषष्टेन्द्रियसिद्धं विना उहेखायोगादनहिस्ति-तस्य कर्तुमशक्तेरिति भावः । एवं साकारस्य घटादेः साकारे-णैव कुलालमृत्पिण्डादिना करणमुचितं न निराकारेणेलार्थः ॥ १९ ॥ १२ ॥ १३ ॥ यदि नोन्पन एव सर्गस्तर्हि कस्तथा भासते तं सद्दशन्तमाह-संकल्पेनेत्यादिना ॥ १४ ॥ सर्गा-दिकाले येयमनगेला सर्गस्थितिरनुभूयते सापि आकाशे शून्य-स्पो वृक्षादिरिव घोष्या ॥ १५ ॥ तर्हि कि श्रून्यमेव सर्गा-हमना प्रथते नेत्याह-सम इति । समः सर्गाकारवैषम्यरहित ईश्वर एव तथा प्रथत इखर्थः ॥ १६ ॥ अविकृतस्यैव विकार-जगदात्मना स्फरणे खप्ने खात्मैव द्यानत इलाह—खप्नेति ॥ १७ ॥ १८ ॥ तथाच सर्गात्प्राग्यादशमात्मतस्य तादशमेव सर्गकालेऽपीत्याह-अवेद्यवेदनमिति ॥ १९ ॥ २० ॥ २१॥ ॥२२॥ तथान खच्छे आकाशे प्रतीतनर्णवैचित्र्यमिव ब्रह्मण्ये-

सर्वे शान्तमनालम्बं ब्रह्मेष ब्रह्मणि स्थितम् ॥ सर्वशक्तयात्म तद्रक्ष यथा कचति यादशम्। रूपमत्यजदेवाच्छं तथा भवति ताददाम् ॥ २१ यथा स्वप्नपुरं जन्तोश्चिनमात्रप्रविज्ञम्भितम्। तथैव सर्गः सर्गादौ शुद्धचिन्मात्रज्ञम्भितम्॥ २२ स्वच्छे चित्परमाकादो चिदाकाद्यो य आस्थितः। स्वभाव एव सर्गोऽसाविति तेनैव भावितः ॥ २३ भाव्यभावकभावादिभूमीनां भावनं भृशम्। सर्वे चिन्नभ एवाच्छमात्मनात्मनि संस्थितम्॥२४ पवं स्थिते कुतः सर्गः कुतो विद्या क चाहता। ब्रह्म शान्तं घनं सर्वे काहंकारादयः स्थिताः॥ २५ अहंभावस्य संशान्तिरेषाऽसौ कथिता तव । अहंभावः परिज्ञातः पिशाच इव शास्यति ॥ मया त्वेवमहंभावः परिशातो यदाखिलः। तदा मे विद्यमानोऽपि निष्फलः शरदभ्रवत् ॥ २७ चित्राग्निदाहो विश्वातो यथा दाह्येषु निष्फलः। तथाहंभावसर्गादि ज्ञातं निष्फलतामियात्॥ २८ इति मेऽहंकतेस्त्यागे रागे च समता यदा। तदा व्योच्च इवाव्योद्धः सर्गे सर्गे च मे स्थितिः २९ अहंभावस्य नैवाहं नाहंभावो ममेति च। तेन विद्धि चिदाकाशमेवेदमिति निर्घनम्॥ ३० यथा मम तथान्येपामपि बोधवतामिह। अग्नित्वमिव चित्राग्नेर्नास्त्ययं वोधविश्रमः॥ 38 नाहमस्मि नचान्योऽस्ति सर्वे नास्तीति निश्चये। प्रकृतव्यवहारस्त्वं शिलामीनमयो भव ॥

व ब्रह्मस्वात्मभूतेन वैचित्रयेण खेनैव स्वयं स्फुरतीति तत्स्वभाव एव सर्ग इति फलितमित्याह—खच्छे इति ॥२३॥ ननु खभा-वपदं भाव इति भावप्रशन्तपदेन भवनमुच्यते, तच भावक-व्यापारहणभावनाफलं भाव्यनिष्टं, भावना च भवितुर्भवनातु-कुलो भावकव्यापारः करणादिकारकनिवेत्यं इति भाव्यभाव-कादित्रिपटीभूमीनामेकरसे कथं संभवस्तत्राह-भाव्येति । न कल्पितं नानारसत्वं वास्तवैकरस्यविरोधादिति भावः ॥ २४ ॥ स्थिते निश्चयेन स्थिरीभूते ॥ २५ ॥ तथाचाज्ञाने वाहंभावो बाधते न तज्ज्ञानिति फलितमिलाह—अहंभाव इति । पि-शाचो बालकत्पितपिशाच इव ॥ २६ ॥ एतेन खत्प्रश्नः समा-हित इति दर्शयति - माया लिति ॥ २७ ॥ दाहः अध्यस्ता दहनिकया ॥ २८ ॥ समाधी त्यागे व्यवहारकाले रागे च अव्योश्नो मेघाडम्बरातपवाय्यादिना निरवकाशीकृतस्य स्थितिः समेति शेषः ॥ २९ ॥ संबन्धत्यागमात्रेणाप्यद्वन्ता न बाधते किं पुनर्भाषितेत्याशयेनाह-अहंभावस्येति । नितरां घनं नि-र्धनम्॥३०॥ अस्पित्रर्थे सर्वविद्वदनुभवसंवाद इत्याह—यथेति । अयं अहंभावादिः ॥३१॥ लमप्यह्मिवान्तः सर्ववाधेनाद्वितीयो भवेत्याह-नाहमिति । प्रकृतं व्यवहरतीति प्रकृतव्यवहारः॥३२॥

१४

आकाराकोराविरादाकृतिरेव तिष्ठ निर्देशविषरमपद्वतसर्वमावः।

अधादितश्च किल चिन्मयमेष सर्वे नो इष्यमस्ति शिवमेषमशेषमित्थम्॥३३

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वास्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे ४० पाषाणो०विदितवेचाहंकारविचारो नाम सप्तपद्याद्याः सर्गः ५७

अष्टपत्राज्ञाः सर्गः ५८

3

છ

8

Ø

भीराम उषाच। अहो यु विततोदारा विमला विप्लाचला। भवता भगवन्भृत्यै भूयो दिहरुवाहता ॥ सर्वया सर्वदा सर्वे सर्वे सर्वत्र सर्वदा। सदित्येव स्थितं सत्यं समं समनुभृतितः॥ अथमस्ति मम प्रह्मन्संदायस्तं निवारय। किमिदं भगवन्नाम पाषाणाख्यानम्ख्यते ॥ षसिष्ठ उवाच। सर्वत्र सर्वदा सर्वमस्तीति प्रतिपादने। पाषाणाख्यानद्वधान्तो मयायं तच कथ्यते ॥ नीरन्ध्रैकघनाङ्गस्य पाषाणस्यापि कोटरे। सन्ति सर्गसहस्राणि कथयेति प्रदर्शते॥ भृताकारो महत्यसिन्खशून्यत्वमनुज्यति । सन्ति सर्गसहस्राणि कथयेति प्रदर्शते॥ अन्तर्गुल्माङ्करादीनां प्राणवाय्वम्बुतेजसाम्। सन्ति सर्गसहसाणि कथयेति प्रदर्शते॥

निर्देशो निरवकाशः शिलाघनसद्वत् । अद्य सर्गकाले । आ-दितः सर्गप्राक्ताले । सार्वविभक्तिकस्तसिः ॥ ३३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणसारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्त-राषे सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

> सर्वत्र सर्वसर्गश्रीः सदैवास्ति नचेति च । इष्टिभेदेन पाषाणाक्यायिकार्थोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

प्राविक्तके जीवन्मुक्ताहंकारस्यावाधकरवे समर्थिते प्रकान्तस्य सर्वत्र सर्वया सर्वमित्यावर्थस्य पाषाणाख्यायिकया समर्थनं यरप्रतिकातं तदेव प्रश्नुं भूमिकां रचयति—अहो इति ॥ १ ॥ सर्व सर्वत्र सर्वया सर्व सर्वत्र सर्वया च सत् इति यरप्र-खुतं तदनुभूतितो विग्रथमानं सममविषममेकरसमेव पर्यवस्थिति । सर्वधर्मधार्मणां देशतः कालतो बस्नुतस्य सर्वभावे व्यावतिकतावसिद्धेरिति भावः ॥ २ ॥ तत्र प्रष्टव्याशं दर्शयति—अयमिति । इदं पाषाणाख्यानं कि केनांशेन साम्यम्मित्रेखोच्यते । व्यावर्तकधर्मवतोरेव साधारणधर्मेण साहश्यप्रकिदेरिति भावः ॥ ३ ॥ अयं वक्ष्यमाणप्रकारः ॥ ४ ॥ न पाषाणास्यायं सर्वधर्मसंकर्ते वा वक्तुं पाषाणाख्यायिकारभ्यते कित्र पाषाणोदराध्यासाविष्ठाने बद्धाणि असंकीर्णतयैव सर्वजगन्तरे पाषाणोदराध्यासाविष्ठाने बद्धाणि असंकीर्णतयैव सर्वजगन्तरे पाषाणोदराध्यासाविष्ठाने बद्धाणि असंकीर्णतयैव सर्वजगन्तरे स्थानावे स्थानावे स्थानावे स्थानावे स्थानावे स्थान्तरे स्थानावे स्य

श्रीराम उवाच। कुड्यादी सन्ति सर्गीया इति चेल्कथ्यते मुने। तत्से विभानित सर्गोघा इति किं न प्रदृश्यते॥ वसिष्र उवाच। एतत्ते वर्णितं राम मुख्यमेव मयाखिलम्। योगमालक्ष्यते सर्गः स ख एव खमास्थितम् ॥ ९ आदावेव हि नोत्पन्नमद्यापि न च विद्यते। दृदयं यचावभातीदं तद्वह्य ब्रह्मणि स्थितम् ॥ 80 नास्ति भूरणुमात्रापि सर्गेनिर्विवरा न या। न च कचन विद्यन्ते सर्गा व्रह्मांख्रमेव ते॥ 22 न तेजसोऽणुरप्यस्ति सर्गैनिविंवरो न यः। न च कचन सर्गास्ते सन्ति ब्रह्मखमेव तत्॥ १२ न वायोरणुरप्यस्ति सर्गैर्निविंवरो न यः। न च कचन विचन्ते सर्गा ब्रह्मखमेव तत्॥ १३

खं नाणुमात्रमप्यस्ति सर्गेनिविवारं न यत्।

नच कचन सर्गास्ते सन्ति ब्रह्मखमेव तत्॥

र्श्यते ॥ ५ ॥ अथवा भावोदरचितीव शूल्यात्मकाकाशस्या-भाषाधिष्ठानचित्यप्यसंकीर्णतया सर्वजगदारोपः संभवतीत्याचा-येनाइ-भूताकाशेति ॥ ६ ॥ अयं न्यायः सर्वत्र योजनीय इत्यारायेनाइ--अन्तरिति ॥ ७ ॥ यदि कुच्यादिसर्वभावा-भावावन्छिन्नचिति सर्वजगदध्यास आस्वायिकाभिष्रेतस्तर्हि शुद्धे चिदाकाशे सर्वजगदध्यास इत्येव पक्षः कुती न परिग्र-हाते, येनाध्यस्यजगद्वाधे शुद्धमेव परिशिष्यत इत्यपरमनुकलं स्यादिति रामः प्रच्छति-कुड्यादाधिति । तत्तर्हि । से शुद्ध-चिदाकाशे ॥८॥ सत्यमेष एव पक्षो मुख्यतया मे विवक्षितः । शुद्धचिदाकाशः सहसा न परिचेतुं शक्य इति तदुपायत्या उपहितचित्यपि प्रत्येकं सर्वजगदध्यासो दर्शित इत्याशयेनोत्तर-माह-एतदिति । संविदाकाशात्मकमेव ॥ ९ ॥ एवं दत्यमा-त्रस्येव ब्रह्ममात्रत्वे अनुत्पत्तिरेव फलितेलाह—आदावेवेति । परमार्थहष्टेरित्यर्थः ॥ १० ॥ आरोपहर्ष्टौ तु प्रतिभूतपरमाणु स-विमारोप्य इष्टुं शक्यम्, अपवाददृष्टी तु तद्वैपरीत्यमित्याशये-नाह--नास्तीत्यादिना । निर्विवरा गाढभरिता या न ताहशी अणुमात्रापि भूनीस्ति । सर्वापि सर्गमिततैवेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि योज्यम् ॥ ११ ॥ तत् तेजः ॥ १२ ॥ तत् सः ॥ १३ ॥ भतानां प्रक्रमे अपां खागायीगाङ्कतेजसीरन्तराहेन चापामणु-

र वियन्ते सर्गा जहा इति पाठः.

योग- १५०

१५

न सा महाभूततास्ति सगैनिविवरा न या। नच कचन विद्यन्ते सर्गा ब्रह्मखमेव तत् ॥ शैलानां नाणुरप्यस्ति स सर्गयों न निर्धनः। नच कचन विद्यन्ते सर्गा ब्रह्मख्रमेव तत्॥ ३६ ब्रह्मणो नाणुरप्यस्ति सर्गेनिविवरो न यः। नच कचन सर्गास्त सन्ति ब्रह्मखमेव तत्॥ 80 सर्गेषु नाणुरप्यस्ति न ब्रह्मात्मैव यः सदा । ब्रह्मसर्गास्तथेत्वेष वाचि भेदो न वस्तुनि ॥ १८ सर्गा एव परंब्रह्म परं ब्रह्मेव सर्गता। मनागप्यस्ति न द्वेतमत्रादृयकौष्णययोरिष ॥ १९ इमे सर्गा इदं ब्रह्म तेऽत्यन्तावाच्यरष्ट्यः। विदार्य दारुरववद्भान्त्यर्थपरिवर्जिताः॥ 20 द्वैतमैक्यं च यत्रास्ति न मनागपि तत्र ते। सर्गब्रह्मादिशब्दार्थाः कथं कस्येव भानतु के ॥ २१ शान्तमेकमनाद्यन्तमिदमच्छमनामयम्। व्यवहारवतोऽप्यङ्ग श्रस्य मौनं शिलाघनम्॥ निर्वाणमेवमिक्छं नभ एव दृश्यं त्वं चाहमद्रिनिचयाश्च सुरासुराश्च । ताहग्जगत्समघलोकय याहगङ्ग स्वप्नेऽथ जन्तुमनसि व्यवहारजालम्॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाण० उ० पाषाण० सर्गमहालप्रतिपादनं नामाष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

Ş

ર

श्रीराम उचाच । अनन्तरं नभःकोशकुटीकोटरतो मुने। तव ध्यानात्प्रबुद्धस्य वृत्तं वर्षशतेन किम्॥ वसिष्ठ उवाच। ततो ध्यानात्प्रवुद्धोऽहं श्रुतवांस्तत्र निस्वनम्। मृद् व्यक्तपदं हृद्यं नच वाच्यनुगो यतः॥ स्वीस्वभाव।दिव मृदु मधुरं वा निनादि वा।

रप्यस्तीत्यादिश्लोकोऽप्यूषाः ॥ १४ ॥ महाभूतेति पश्चानां समुदितरूपव्यपदेशः ॥ १५ ॥ १६ ॥ ब्रह्मणो हिरण्यगर्भस्य सूक्ष्मभूत्रेपाथेः॥१७॥सर्गेषु तत्कृतेषु भुवनभूतप्रामेषु।तथासति यत्फलितं तदाद्व— ब्रह्मेति ॥ १८ ॥ अभ्यकंयोर्ये औष्ण्ये तयोरिव ॥ १९ ॥ सर्जनात्सर्गे। वृंहणाइह्रोति सजिब्हिकिययोः परस्परं मेदाभावादाधाराधेयभाषस्य दुर्वचलाच न क्रियापि खरूपाद्यतिरिच्यत इति सर्गव्रद्यादिशब्दाः प्रवृत्तिनिमित्तधर्मः रूपस्वार्थपरिवर्जिताः सन्तः कुठारादिना विदार्थे काष्ठे ये दा-रणो रवाः प्रसिद्धास्तद्वदर्थपरिवर्जिताः सन्तो लक्षणया अत्य-न्तमबाच्ये दृष्टिः प्रतितिर्येभ्यस्तथाविधा भानतीत्यर्थः । अथवा दीर्यत इति दाह तदेव विदार्थमिति पर्यायप्रायी या रवी शब्दी तद्वद्भित्रार्थपरिवर्जिता भारतीत्वर्थः ॥ २० ॥ मास्तु परमार्थे ते-षामर्थमेदस्तत्र द्वेतेक्थयोरभावात् । व्यवहारे तु ब्रह्मैकं सर्गा नानेत्यर्थनेदसलाद्भिषार्थाः कि न स्युस्तत्राह—द्वैतमिति । यत्र व्यवहारं ईतमन्यं चास्ति, तत्रापि सर्गब्रह्मादिशब्दार्था म-नागपि न भान्ति । ते हि द्वतात्मकस्य द्रष्टुर्भायुरद्वैतात्मकस्य वा । आदेऽइस्य तस्य वर्षं भान्तु, द्वितीये कस्येव भान्तु, के किस्तभावा भान्तु, नहाँद्वेते भानाद्भास्यवैद्यक्षण्यं सुवचमिति भावः । अथवा अत्यन्तावाच्यद्दष्टितामेव प्रकटयति—द्वैतमिति। यत्र वस्तुनि द्वैतमेक्यं च मनागिप नास्ति तत्रेखम्बयः ॥२१॥ अतएव तत्त्वविदो व्यवद्दारकालेऽपि तत्त्रधैवास्ते इत्याहं-शान्तमिति ॥ २२ ॥ वर्णितं पाषाणाख्यायिकातात्पर्यमुपसंद- स्वरपाङ्गत्वादंनिर्हादि मया तद्वाकामृहितम्॥ इन्दिन्दिरस्ताकारं तन्त्रीरणितरञ्जनम्। न रोदनं च पठनं विसकोशसमस्वनम्॥ 8 तदाकण्याञ्च तत्रेदमहं चिन्तितवानथ। शाब्दिकान्वीक्षणात्पश्यन्दिशो दश सविस्मयः॥५ ब्योम्नोयं सिद्धसंचारमार्गशून्यान्यनन्तरम्। भागो योजनलक्षाणि समतिक्रम्य संस्थितः॥

रति-निर्वाणमिति । हे अङ्ग राम, त्वं जगत्तादक्समवलो-कय । अथ जागरानन्तरं जन्तुमनसि खप्ने दृष्टं याद्यव्यवद्वार-जालमीषरसर्यमाणमप्यारममात्रशेषमित्यर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्त-रार्चे अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

समाधिविरमे सुक्ष्मध्वनिश्रवणमीर्यते । तम्मूलान्वेषणध्यानेऽनन्तकोटिजगस्मथा ॥ १ ॥

एवं सर्गद्वयेन प्रासिक्षके प्रश्नविषये उपवर्णिते पुनराख्या-यिकाशेषं श्रोतुकामो रामः पुच्छति-अनन्तरमिति । वर्षश-तेन ध्यानाः प्रवृद्धस्य तव प्राग्वणिते च्छाञ्चनासहिताहकारपि-शाचप्रसरानन्तरं किं बृत्तमिति प्रश्नः ॥ १ ॥ निखनं शब्दम् । मृत्व्यक्तानि नातिस्पष्टान्यक्षराणि पदानि च यत्र । तत् कृतः । यतोऽयं निखनो वाच्यानुगः । पदार्थप्रतिपादनसमर्थो बा-क्यार्थवोधनसमर्थक्ष न ॥ २ ॥ स्त्रीकण्डप्रभवप्रयुक्तसमाववि-शेषादिव मृदु मधुरं निनादि अनुरणनशीलं च । सल्पान्नसा-दतारखादनिहादि । अदूरश्रवमिति यावत् ॥ ३ ॥ इन्दिन्दिरो भ्रमरस्तदीयं इतं ध्विनस्तदाकारम् । तन्त्री वीणा तद्रणितस्य रज्जनं रक्तिप्रदम् । न बाढरोदनप्रायं नापि प्रौडपठनप्रायम् । विसकोशे प्रसिद्धश्रमरखनसमस्वनम् ॥ ४ ॥ कस्य शब्दकर्तुरन्वीक्षणादन्वेषणाद्दश दिशः पश्यन् । 'शब्द-दर्दुरं करोति' इति ठक् ॥ ५ ॥ कृतः सविस्पयः किंवा चिन्तितवानि तदाइ-न्योम्न इचादिना । तिदानामपि

तिहेहेग्विधय स्यात्कृतः शब्दस्य संभवः । शाब्दिकं नच पर्यामि यक्नेनापि विलोकयन्॥ ७ अनन्तमिद्माशून्यं पुरो मे निर्मलं नभः। इह भूतं प्रयक्तेन प्रेश्यमाणं न दश्यते ॥ 4 यदेति चिन्तयित्वाहं भूयोभूयो विलोकयन्। शुब्देश्वरं न पर्यामि तदा चिन्तितवानिदम् ॥ ९ आकाश एव भृत्वाहमाकाशेनैकतां गतः। आकारागुणराष्ट्रार्थान्करोम्याकाराकोराके ॥ १० देहाकाशमिह स्थाप्य ध्यानेनेह यथास्थितम्। चिदाकाशवपुर्व्योद्धा याम्यैक्यं वारिवाम्बुना ११ चिन्तयित्वेत्यहं त्यक्तं देहं पद्मासनस्थितः। आसं समाधिमाधातुं पुनरामीलितेक्षणः॥ १२ स्यक्त्वा बाह्यार्थसंस्पर्शानैन्द्रियानान्तरानपि । चित्राकाद्योऽहमभवं संवित्स्पन्दमयात्मकः ॥ १३ क्रमात्तद्पि संत्यज्य बुद्धितस्वपदं गतः। संपन्नोऽहं चिदाकारेा जगज्जालैकदर्पणः ॥ १४ ततस्तेन स्वभावेन भूतव्योमैकतामहम्। संप्रयातोऽम्बुनैवाम्बु सीरभं सौरभेण वा ॥ १५ संपद्मोऽथ महाकारां व्याप्यानन्तोऽथ सर्वगः। अनाकारोऽप्यनाधारः सर्वार्थाधारतां गतः ॥ १६ अहं त्रैलोक्यवृन्दानि संसाराणां शतानि च ।

संचारयेपयेर्मार्गैः श्रून्यानि यानि योजनलक्षाणि तानि सम-तिकम्याभन्तरं तद्र्वमयं व्योम्रो भागः संस्थित इत्यन्वयः॥६॥ तत्ताहरो 📢 एकान्तस्थाने ईहरिवधस्य स्त्रीवाक्यसदशस्य । शा-ब्दिकं शब्दकर्तातप्॥ ७॥भूतं प्राणिमात्रम्। प्रयक्तेनापि प्रेक्ष्यमा-णमन्विष्यमाणम् ॥ ८ ॥ शब्देश्वरं शब्दोश्वारणसमर्थे यदा न परयामि तदा । इवं वक्ष्यमाणम् ॥ ९ ॥ अहं प्रथममुपाघि-स्यागेन चिदाकाश एव भूला तदध्यस्ताव्याकृताकाशेनैकतां गतः संस्तरकार्यभूताकाशगुणं शब्दं तदर्थाश्च तस्मित्राकाशको-शके विद्यमानान्साक्षात्करोमि । अनुभविष्यामीति यावत्॥१०॥ **तदेव सोपायमाह—देहा**काशमित्यादिना । व्योन्ना अव्याक्ट-ताकाशेन । वार्जलबिन्दुरम्बुना जलसामान्येनेव ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ऐन्द्रियानिन्द्रियसंबन्धिनो बाह्यार्थसंस्पर्शात्रिरोधेन ल्यक्ता । भारतरानन्तः करणचतुष्टयविषयान् मन्तव्यादीनपि मननादिनिरोधेन स्वष्टला ॥१३॥ युद्धितस्वपदं गतः संस्तदपि संखज्य चिदाकाशे वास्तवरूपे स्थितः सन् खाध्यस्तजगजाल-प्रतिबिम्बानामेकदर्पणः संपन्नः ॥ १४ ॥ अम्बुना जलसामा-न्येन अम्बु समुदादिजलमिव ॥१५॥ तस्मिन्भूताकाशे तत्का-र्थसर्वजगदवलोकनाय चिदाकाशामेदकस्पनमाह—संपन्न इति। तया चासन्नाद्वयत्वाद्वाधारोऽप्यहं सर्वाधारतायोग्यभूताकाशा-मेदात्सर्वार्थाभारतां गतः ॥ १६॥ तत्र तदमस्थापभे चिदा-कारो ॥ १७ ॥ मियः अन्योन्यदृष्ट्या खानि अव्याकृताकाश-मात्रहपाणि । अतएव परस्परमदद्यानि ॥ १८ ॥ तत्र द्या-

तत्र ब्रह्माण्डलक्षाणि पश्याम्यगणितान्यपि ॥ परस्परमदृष्टानि मिथः खान्यमलानि च । नानाचारविचाराणि शून्याम्येव परस्परम् ॥ १८ स्वप्रक्रपाणि सुप्तानां तुस्यकालं नृणामिव । महारम्भानुमृष्टानि शून्यानि च परस्परम्॥ १९ जायमानानि नदयन्ति वर्धमानानि भूरिशः। वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्ति च सर्वशः॥ २० अनेकचित्रजाळानि महाभित्तीनि खानि च। मनसेवोग्रराज्यानि कृतानि विविधेर्जनैः॥ २१ निरावरणरूपाणि तथैकावरणानि च। पञ्चावरणयुक्तानि घडेकावरणानि च॥ 22 दशावरणचित्राणि योडशावरणानि च। चतुर्विशत्यावृतीनि षद्त्रिशतवावृतानि च ॥ २३ शून्यानि भूतपूर्णानि पञ्चभूतमयान्यपि। एकपृथ्यादिभूतानि चनुःपृथ्यादिकानि च ॥ २४ त्रिःपृथ्यादीनि चान्यानि द्विःपृथ्यादीन्यथापि च। तथा सप्तमहाभूतान्येकजातिमयानि च॥ २५ त्वादशानुभवाभोगषिषद्वातिवृशानि तु । तथा नित्यान्धकाराणि सूर्यादिरहितानि च॥ २६ तथा मीलितसर्गाणि एकनाथावृतानि च । षिलक्षणप्रजेदाांशविचित्राचारवन्ति च ॥ २७

न्तमाह—खप्रेति । तुल्यकालं ग्रप्तानां जनानां खप्ररूपाणीव । एकदशा महारम्भाष्यपरदशा अनुमृष्टानि । अतएव शून्यान्य-श्चानि च ॥१९॥२०॥ महाभित्तीन्यनेकचित्रजालानि खानि निर्भित्तीनि च ॥ २९ ॥ तत्र स्त्रप्रवहुष्टस्रिषु ब्रह्माण्डावरणत-रसंख्यादिनियमोऽपि नास्ति । यस्य यावद्विषये वासनाविर्मृता तं प्रति ताबत्सभस्यैव कल्पनादित्याशयेनाह-निरावरणेत्यादना । पश्चीकृतानां पश्च अपयोकृतानां पर्वाते दशावरणचित्राणि । तैः सद्द तन्मात्राण्यहेकारो महत्तले प्रकृतिकेति सांस्कृत्रस्य-नया षोडशावरणानि । तेषामेव तत्त्वगणनया चतुर्विशस्याय-तीनि । शैवकस्पनया षद्भिंशतत्वरुक्षीः स्वेराकाशकर्णरा-वरणैरावृतानि च ॥२२॥२३॥ एकेकानि पृथ्यादीन्येय भूतानि येषु ॥ २४ ॥ एवं पृथिव्यादिद्वित्रेचतुर्नृतयुक्ताने च । काल-दिशोः सावयवत्वेन भूतत्त्वकल्पने सप्त महाभूतानि॥२५॥ सि-द्धविद्याधरगन्धवयक्षराक्षसादिकल्पनावैचित्रयाणे मनुष्यवुद्धाः संभावयित्रमध्यशक्यानीत्याशयेनाह—लादशेति । लादशाना-मनुभवाभोगे विरुद्धा अखन्तमसंभाव्याः । अतिशयितदशा अतिद्शा भूतानां सौक्ष्म्यवैचिष्यपारणातेभेदा यासु तााने ॥ २६ ॥ मीकितसर्गाणि प्रलयसुषुक्षित्रायाण । सर्गादी एके-नैव नाचेन हिरण्यगभाँदिना आवृतान्यधिष्ठितानि । प्रजेशाः प्रजापतयस्तदंशा देवादिगणास्तेषां विचित्राचारेस्तद्वन्ति ॥२०॥

१ तैः सहेत्यायंश्चो विचारणीयः.

तथा निर्वेदशास्त्राणि निःशास्त्राणि तथैव च। कृमिकमसमारम्भदेवादिप्राणिमन्ति च ॥ २८ जात्या तु पारम्पर्येण संकेताचारबन्ति च। तथा निखप्रकाशानि ज्वलिताविमयानि च ॥ २९ तथा जलैकपूर्णानि पवनैकमयानि च। स्तब्धानि परमाकादो वहन्ति च तथानिदाम् ॥ ३० जायमानानि पुष्यन्ति परिपृष्टानि चामितः। तिर्यग्गच्छन्ति चान्यानि पूर्णसर्वमयान्यपि ॥ 38 देवमात्रैकसर्गाणि नरमात्रमयानि च। दैत्यबृन्दमयान्येव कृमिनिर्विवराणि च॥ 32 अन्तरस्तस्तदस्तश्च स्वकोशेऽप्यणुकंप्रति । जातानि जायमानानि कद्लीद्लपीठवत्॥ 33 प्रस्परमदद्यानि नानुभूतानि वै मिथः। सैनिकस्वप्रजालानि जातानीय महान्त्यपि॥ इंड विविधान्यप्यनन्तानि स्वच्छाकाशात्मकान्यलम् । अन्योन्यमन्पनुत्तीनि न मिधोन्यस्थितीनि च॥ ३५ मियश्चान्यान्यशास्त्राणि मिथोनस्तानि यानि च। अम्योन्यसन्निवेशानि मिथोऽन्योन्यानि यानि च ३६ अन्योन्यं परलोकानि मिथः सिद्धपुराणि च। अन्यादशमहाभूतान्यन्यादिग्दिग्गरीणि च॥ OF त्याहशानुभवेहानामगम्याभ्यागतानि च। असमश्रसद्भपाणि कथ्यमानानि मार्द्यौः ॥ 36

तदेव प्रपद्मयति-तथेत्यादिना । उदुम्बरकृमिसदृशसमारम्भै-दॅबादिमिः प्राणिमन्ति ॥ २८॥ क्षचिस्कलियुगारम्भाद्वेदशास्रो-च्छेदे बाह्मणादिजात्या पारम्पर्यमात्रेण संकेतितबाह्मणाचाचा-रवन्ति ॥ २९ ॥ कानिचित्परमाकाशे स्तष्यानि निश्वलानि कानिचिद्रहन्ति चरुन्ति च ॥ ३० ॥ पुष्यन्ति वर्धमानानि । पूर्णसर्वभोग्यमयानि ॥३९॥ ३२॥ अणुकं परमाणुमपि प्रति अन्तरन्तस्तदन्तश्च कल्पिते स्वकोशेऽपि जातानीत्यायन्वयः ॥ ३३ ॥ सैनिकानां स्वप्नजालानीव परस्परमदृष्टानि ॥ ३४ ॥ तथा विविधानीत्यादि योज्यम् । अन्यवृतौनि मिन्नार्थकियाणि । मियोऽन्यस्थितीनि न समस्थितिकानि चेखर्यः ॥ ३५ ॥ यानि सिधः अनन्तानि अपरिच्छेदाबद्यसावानि । धर्मान-न्खाद्वा अनम्तानि । मेदेप्यन्योन्यखेव संनिवेशो येषां तानि । प्रसमिक्रायामन्योन्यात्मकानि च ॥ ३६ ॥ एकत्र मृतैरपरत्र गमनादन्योन्यपरलोकानि परस्परं प्रखन्तर्धानशक्तियोगानिमधः सिद्धनगरप्रायाणि च ॥ ३७॥ अतएवान्यस्यान्यत्र वर्णने अपरिनिष्टितमतीतामगम्यलाद्समजसरूपाणि भान्तीत्याह---खादशेति । अनुमवानामीहानां प्रयक्तातां चागम्यान्यविषय-भूतान्यभ्यागतान्यमिमुसमागतानि । संनिहितान्यपीति या-बत्। तर्हि तानि लादशां कमनैकीसन्ते तत्राह-असमध-सेति ॥ ३८ ॥ निदादिसस्योऽध्यमण्डलप्राये सर्वतः प्रसते

अणवस्सेष्यमाणानि चिदादित्यांशुमण्डले । परमार्थिश्रियो ब्योझि रिक्मजालानि कुण्डले ॥ ३९ कानिचित्तानि तान्येव भृत्वा भृत्वा भवत्यसम्। कानिश्चित्तादशान्येष जातानि वनपर्णवत ॥ अन्योन्यत्वाच सहशान्यन्यानि सहशान्यपि। कंचित्कालं सुसरशान्यन्यान्येव च कानिचित् ४१ फलानि तान्यनग्तानि परमार्चमहातरोः। अनन्यान्येव चान्यानि तन्मयान्येव वै ततः ॥ ४२ कानिचित्स्वस्पकस्पानि दीर्घकस्पानि कानिचित्। अन्यान्यनियतं भूरि नियतं भूरि कानिचित् ॥ अन्यान्यज्ञातकास्त्रानि यदच्यावदातः स्वयम् । जायमानानि पुष्टानि सुस्थिराणि स्थितानि च ४४ तानि शुन्यत्वजालानि परमाकाशकोशके। अपरिवातकालानि कडान्यबातदोपके ॥ अञ्चर्काकाशमेर्वादि शतैराबलितान्यलम् । विश्वमत्कारखे स्वप्नजालान्यामान्ति शाविसम् ४६ अनुभूतेर्भ्रमात्मत्वात्कारणानामभावतः। पृथ्यादीनामहेत्नामत्यम्तं सम्त्यसन्ति च॥ मृगतुष्णाम्ब्रभवद्भिचन्द्रव्योमवर्णवत्। संपन्नानि न सत्यानि सत्यान्यप्यनुभृतितः॥ 86 चित्संकल्पनमधेष भासमानानि भूरिदाः। वासनावातनुत्रानि विलुठन्यात्मचेष्टितैः॥ ४९

चैतन्ये ये अणवो जालसूर्यमरीचिषु प्रसिद्धास्तद्वरसेष्यमाणानि प्रसिद्धिभाजि । 'शेष्यमाणानि' इति पाठे परिशेषभाजि । तथा परमार्थित्रयो मोक्षसाम्राज्यलक्ष्म्याः कुण्डले ताटह्मप्राये व्योत्रि अव्याकृताकाशे भूताकाशे च विचित्ररहरिमजाळप्रायाणि ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तेषु कानिचिदेकत्रैव चिति सर्वेषामध्यासा-दप्रवक्सत्वेनान्योन्यात्मकलात्सदशान्यन्यादशान्यपि । एवं स-द्यान्यपि कंचित्कालं सुसदशानि । कानिचिदन्यान्यखन्तविस-हजान्येव। मायाया अघटितघटनापटीयस्वादिति भावः ॥४१॥ वृक्षफलबद्वा तत्र मेदामेदकल्पनेखाइ-फलानीति ॥ ४२ ॥ अनियतं देशकालवसुत्रसभावनियमरहितमेव भूरि बहुनि । कानिचित्रियतं तद्विपरीतमित्यर्थः ॥ ४३ ॥ सूर्योद्यभावादहा-तकालानि ॥ ४४ ॥ तानि कि सत्यानि नेखाइ—तानीति । कदाप्रशृति तर्हि कडानि तत्राह-अपरिज्ञातेति । अनादौनी-लर्थः। अज्ञातमञ्जानं तदेव दोषो गस्मिल्लयाविषे प्रतीचि रूढानि ॥४५॥विचमत्कारकपे से विदाकाशे। आविलं रजसामः कल्लितं यथा स्वात्तवामा ४६॥अहेत्नां पृथ्वादीनामनुभूतेश्रमात्मकला-त्तानि जगन्त्वत्वन्तमिष्ठानात्मना सन्ति सरूपेण ससन्ति व ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अतथ तथेलाइ--चित्संकल्पेति ॥ ४९ ॥

१ सेभ्यमाणानीति विचारणीयम्

सुरासुरादिमशका बहुशीतुम्बरद्वमे । फलानि रसपूर्णानि घूर्णमानानि माहतैः॥ 40 अमिजातस्वभावस्य सर्गारम्भकरस्य च। शुद्धिचित्तस्यवालस्य संकल्पनगराणि से॥ 48 त्यमहं स इदं चेति घिया बलहढान्यलम्। संपन्नान्यकेदीस्येघ पङ्कक्रीडनकानि च ॥ ५२ कृत्तानि रसशालिन्या नियत्वा नित्यतुप्तया । षनान्युप्रफलानीव वसन्तरसलेखया ॥ 43 महाकर्तृण्यकर्तृणि न कृतान्येव खानि वा। स्वयं संपन्नरूपाणि चिद्योद्भयेव कृतानि वा॥ 48 परमार्थमयान्येव तदन्यद्वोदितान्यपि । अलब्धान्येव लब्धानि सदाऽसन्त्येव सन्ति च ५५ चतुर्वदाददेशकादिविधभूतगणानि च। पुनस्तान्येव तान्यन्तरन्यान्यन्यान्यथो बहिः॥ ५६ नरकस्वर्गपातालबन्धुमित्रमयान्यपि ।

महारम्भम्यान्येव शून्यानि परमार्थतः॥ 40 क्षीराम्बुधेजेलानीय क्षेहसाराणि सर्वतः। तरङ्गभङ्गराण्यन्तर्वहिश्चाषृत्तिमन्ति च॥ 46 आभासमात्ररूपाणि तेजस्यात्मविषस्वतः। जातानीव स्वतस्तानि स्पन्दनानि नभस्वतः॥ ५९ **वृक्षरूपाणि पत्राणां बुद्ध्यहंकारचेतसाम्** । असतामप्यसन्त्येव स्वप्ने न्यस्तनृणामिव ॥ Ęo पुराणवेदसिद्धान्तकल्पनातल्पपालिखु । घननिद्राणि सुप्तानि बिभ्रन्ति रावतामिव ॥ ६१ परमार्थमहारण्ये चिद्गन्धर्वकृतानि वै। सूर्यदीपकदीप्तानि गृहाणि गहनात्मनि ॥ દર प्रजायमानानि नभस्यनन्ते विशीर्यमाणानि च निर्निमित्तम्। तदा त्वहं ये तिमिराक्षदृष्ट-केशोण्डुकानीय जगन्त्यपश्यम्॥ ६३

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे०मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्घे पा० जगज्जालवर्णनं नामैकोनषष्टितमः सर्गः॥५९॥

षष्टितमः सर्गः ६०

वसिष्ठ उवाच । ततोऽहमभितो भ्रान्तस्तादशं प्रविचारयन् । बहुकालमसंदद्धसंविदाकाशतां गतः ॥ इान्दं पश्चात्तमश्रीषमहं वीणास्त्रनोपमम् ।

ब्रह्मोदुम्बरहुमे सुरासुरोरगनरादयो मशकाः।ब्रह्माण्डानि तु भो-गर्वेचित्र्यरसपूर्णीने फलानि ॥ ५० ॥ अथवा जगन्ति शुद्धस्य **फेवडस्य चित्तस्व**रुक्षणबारुस्य संकल्पनगराणि ॥ ५१ ॥ सं-कल्पनगरत्वे दार्व्ये को हेतुस्तमाइ—लमिति । अइन्ताद्यमि-मानिया बलेन अलमल्यन्त दढानि संपन्नानि । पद्मगानि कीडनकानीव । चकारो हिमेन पृतकरकादीनीवेति द्यान्तान्त-राभ्यहनार्थः ॥ ५२ ॥ नित्यमभीक्ष्णं तृप्तया तृप्तिमत्या रसो रागो द्रवत्वं च तच्छालिन्या कर्मफलावश्यंभावनियत्या वृत्तानि निष्पन्नशाखोपशाखानि ॥ ५३ ॥ सृष्टिश्रुतिदशा महद्रद्वीव कर्तृ येषां तानि । 'अपूर्वमनपरं' इत्यादिश्वतिदशा तु अकर्तृणि अ-कर्तृकाणि ॥ ५४ ॥ तदन्यद्वा तदन्यदिव । मणीवोष्ट्रस्थेतिव-दिवार्षे वाशब्दः । सदा असन्त्येवेति च्छेदः ॥ ५५ ॥ भुवन-**संख्यया चतुर्दश, देवयोनिमात्रसंख्यया दशविधाः, मनुष्याये-**कैकजात्या एकविधा आदिपदाद्यथासंभवं ब्यादिनियतिधधा भूतगणा येषु ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ स्नेहो घृतं त्रीत्यतिशयभ त-रसाराणि, आदृतिः परिवृत्तिसाद्वन्ति च ॥ ५८ ॥ स्रतो जा-तानि नभस्ततो वायोः सम्दनानीव ॥ ५९ ॥ बुद्धहंकारचि-त्तहपाणां पत्राणामाश्रयभूतदृक्षहपाणि । असतां खातिरिक्त-द्रष्ट्वणामपि साधारणायमानानि असन्त्येव यथा खप्ने नितराम-

१ बहुश्रोद्धम्बर दलार्षः संविः.

क्रमात्स्फुटपदं जातं तत आयीत्वमागतम्॥ २ शब्ददेशपतदृष्टिद्धवान्यनितामहम्। पार्थे कनकनिष्पन्दप्रभया भासिताम्बराम्॥ ३ आलोलमाल्यवसनामलकाकुललोचनाम्।

स्तानामसतां स्वातिरिक्तनृणां दृशानीत्यर्थः ॥६०॥ पुराणादिप्रसिद्धवतदानयञ्चादिफलावद्यंभावकल्पनालक्षणेषु तल्पवृत्तिषु
स्वप्रेषु दृढविश्वासघननिद्राणि आत्मस्क्ष्पस्याखन्तमप्रबोधाच्छवतामिव विश्रन्ति । अभ्यस्ताच्छतुर्नुम्छान्दसः ॥ ६९ ॥
परमार्थो बद्धा तल्लक्षणे महारण्ये मायोपहितचिद्गन्धवेण कृतानि
सूर्यस्वक्षणैदींपकैदींसानि गृहाणीत्युर्प्रक्षाः ॥ ६२ ॥ हे राम,
अहं तदा तस्मिन्समाधिकाके अनन्ते चित्रभसि निर्निमित्तं
प्रजायमानानि निर्निमित्तं च विश्वीर्यमाणानि तिमिराक्षदृष्ठकेशोण्ड्कानीव श्रान्तिमान्नसिद्धानि जगन्ति अपस्यम् दृष्टवानित्यर्थः ॥ ६३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्वपैप्रकाशे
निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे पृकोनचष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

समाधौ शब्दकारिण्याः स्त्रियो दर्शनमीर्थते । सामनादत्य भूयोऽपि विचित्रजगर्शक्षणम् ॥ ३ ॥

तादशं प्रागुक्तं प्रकारं शब्दकारणं प्रविचारयन्नन्विष्यन् । असंस्द्रसंविदाकाशतामपरिच्छिन्नचिदाकाशताम् ॥ १ ॥ आ-र्यात्वं आर्याच्यच्छन्दोलक्षणखित्तलम्। यथादुः 'यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्त्रया तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्यके पश्चदश सार्या ॥' इति ॥ २ ॥ शब्दस्य प्रभवप्रदेशे पतन्ती दृष्टियोगदिष्टियेस्य तथाविषः सन् बनितां श्वियम् । पार्थे इति पूर्वोत्तरान्वि ॥ ३ ॥ तामेव वर्णयति—आलोकेसादिना । 4

लोलद्रिमल्लियलनामन्यां श्रियमियागताम् ॥
कान्तकाञ्चनगैराङ्गीं मार्गस्थनवयौवनाम् ।
वनदेवीमियामोदिसर्घावयवसुन्दरीम् ॥
सा पूर्णचन्द्रबदना पुष्पप्रकरहासिनी ।
योवनोद्दामयदना पश्मलक्षणशालिनी ॥
आकाशकोशसदना शशाङ्ककरसुन्दरी ।
मुक्ताकलापरचना कान्ता मदनुसारिणी ॥
स्वरेण मधुरेणवमार्यामार्यविलासिनी ।
पपाठाकिं वामा मत्पार्थ्वे मृदुहासिनी ॥
असदुचितरिकचेतनसंस्तिसरिति प्रमुद्यमानानाम् ।
अवलम्बनतटविटपिनममिनौमि भयन्तमेव मुने ॥
वसिष्ठ उवाच ।

इत्याकण्योहमालोक्य तां चारुवद्गस्वनाम्। ललनेयं किमनयेत्यनादृत्येव तां गतः॥ १० ततो जगदृन्दमयीं मायां संप्रेक्ष्य विस्मितः। अनादृत्येव तां ब्योक्ति विद्र्तुमहमुद्यतः॥ ११ ततस्तां तत्कृतां चिन्तामलमुत्कृत्य से स्थिताम्। जगम्मायां कल्लितुं ब्योमात्माहं प्रवृत्तवान्॥ १२ षावसानि तथोग्राणि जगन्ति सकलानि सम्।

लोलत् वसलं धिमाह्नवलनं केशबन्धनं यस्याः ॥ ४ ॥ मार्ग-स्थमिव गच्छत् नवयौवनं यस्याः ॥ ५ ॥ ६ ॥ आकाशकोशः प्राग्वर्णितभूताकाशः सदनं गस्याः । मामनुसरति तच्छीला ॥ ७ ॥ सा बामा मत्पार्थे अकठिनं मृदु यथा स्यात्तथा मधु-रेण खरेण एवं वक्ष्यमाणरूपामार्या पपाठ ॥ ८ ॥ तामेवार्या-मुदाहरति-असदिति । हे मुने, अहं असतां खलानामु-चितै रागद्वेषकामलोभमोहादिदोषैः रिक्ता विरहिता चेतना तथा संस्तिलक्षणायां सरिति चेतो यस्य तथाविधम्। प्रमुखमाणानामब लम्बनभूतं तटविटपिनं तीरप्रक्षभतं भवन्तमेव अभितो नौमि प्रशंसामि नान्यमित्यर्थः ॥ ९ ॥ तच्छ्रला त्वं किमकापींस्तत्राह—इतीति ॥ १० ॥ तदुत्तरा-धौंकं स्फूटयति-तत इति ॥ ११ ॥ अनादत्येति पदं विह-र्दमिति पदं च व्याचछे—तत इति । खे शून्यसभावे स्थि-ताम् । न्योमात्मा चिदाकाशरूपः ॥ १२ ॥ खे स्थितामित्ये-तदुपपादयति-याबदिति । यसादिलार्थे यावच्छन्दः । सं-कस्पे मनोराज्ये । कथने कथार्थप्रकाशने । चार्थे तथाशब्दः ॥ १३ ॥ शून्यरूपलादेव तानि जगन्ति कानिचित् कचिदपि परमार्थतः किंचिदपि न पश्यन्ति न शुण्वन्ति । अतएव कल्पेषु महाकल्पेषु महाजन्मसु सर्गेषु च समता ऐकरूप्यमेव येषां तानि । बहुबीही 'गोक्रियोरुपसर्जनस्य' इति टापी इसे 'नपंसकस्य क्रक्यः' इति ज्ञास प्रनर्दीर्थः । परसरोत्पत्तिसमा-

शन्यमेष यथा स्वप्ने संकल्पे कथने तथा॥ न पश्यन्ति न भ्रुण्यन्ति कदाचित्कानिचित्कचित्। तानि कल्पमहाकल्पमहाजन्मेकतान्यथ ॥ १४ प्रमसपुष्करावतीनुनमसोत्पातमावतान्। स्फुटितादीन्द्रदाकारघटितब्रह्ममण्डपान् ॥ १५ ज्बलत्कल्पाग्निविस्फोटचटदैडविडास्पदान्। प्रतपद्भादशाकारकन्द्रमार्तण्डमण्डलान् ॥ 38 लुठत्सुरपुरवातवितताक्रन्दघर्षरान्। रणसर्वाद्विकटकश्रेणीनिगिरणोद्धटान्॥ १७ कल्पाभ्रिज्वलनोल्लासपटस्पटपटारवान् । आत्मभ्रंदाबृहत्क्षोभश्चष्याम्बरमहार्णवान्॥ १८ देवासुरनरागारघर्घराऋन्दकर्कशान्। सप्तार्णवमहापूरपूरितार्केन्दुमण्डलान्॥ १९ न विचेतन्ति कल्पान्तान्सर्वाण्येव परस्परम् । एकमन्दिरसंसुप्ताः स्वप्ने रणरयानिव ॥ 20 तत्र रुद्रसहस्राणि ब्रह्मकोटिशतानि च। द्यानि विष्णुलक्षाणि कल्पवृन्दान्यलं मया॥ २१ तत्र क्रिवदनादित्ये निरहोरात्रभृतले । आकल्पयुगवर्षान्ते जगत्यहैः श्रयोदयः॥ **२२** चिति सर्वे चितः सर्वे चित्सर्वे सर्वतश्च चित् । चित्सत्सर्वात्मिकेत्येतइष्टं तत्र मयाखिलम् ॥

रम्मानिव परस्परप्रलयसमारम्भानपि तानि न पर्यन्तीत्येत-दपि प्रख्यसंरम्भवर्णनपुरःसरं दर्शयितुमारमते-अथेखा-दिना ॥ १४ ॥ सर्वेषां द्वितीयाबहुवचनान्तानां पद्ममेकोकस्य कल्पान्ताभविचेतन्तीत्यत्रान्वयः ॥ १५ ॥ कल्पामिविस्फोटैश्व-टन्ति ध्वनन्ति ऐडबिडास्पदानि क्वबेरभवनानि येषु । प्रत-पन्ति द्वादशाकारकन्दुकवहिवि भ्रमन्ति मार्तण्डमण्डलानि येषु ॥ १६ ॥ रणतां सर्वाद्रिनितम्बश्रेणीनां निगिरणे उद्भटान् ॥ १७ ॥ कल्पामीनां यानि ज्वलनानि तेषां ये उह्यासास्तैस्त-त्प्रयुक्तवंशादिवन्थिविस्फोटनैः पठन्तो व्यक्तसुत्ररन्तः पठपठा-रवा येषु । आत्मखभावभ्रंशप्रयुक्तगृहत्क्षोभादिवदेव यादोगण-क्षोभैः क्षुच्याः अम्बरमहार्णवा येषु ॥ १८ ॥ द्युलोकपर्यन्तं सप्तार्णवामित्रस्या सप्तार्णवमहापुरैः पुरितान्यर्केन्द्रमण्डलानि येषु ॥ १९ ॥ ईदशानपि तत्तदन्तःप्रयुत्तान्कल्पान्तान् सर्वा-ण्येव जगन्ति परस्परं न विचेतन्ति ॥ २० ॥ एवं जगतां प्रासितकी परस्परं शून्यरूपतामुपपाय प्रस्तुतमेवाह-तत्रेखा-दिना । तत्र तेषु जगत्यु मया द्यानि ॥ २१ ॥ तत्र तस्मि-न्वर्णितबहुप्रकारे जगति कचित्रिद्वसुनि ऊहैर्वितकैरेव श्रय उदयब दृष्ट इत्यनुषज्यते ॥ २२ ॥ अतु कहैरेव क्षयोदयः कि ततस्तत्राह—चितीति । ततः प्रागुक्तं पाषाणाख्याविकाह-दर्ग चिति सर्वमिखादिरूपं मया अन्वयव्यतिरेकाभ्यां परीक्ष

१ पद्ममेति इतः पद्ममो विद्याः श्लोको शेयः.

त्वं किंसिदिति चेद्रक्षितत्र किं सिदिवाङ्ग सित्। सा हि शून्यतमा ब्योस्रो न च नाम न किंचन २४ तवाकाशमिदं भाति जगदित्यभिशब्दितम्। नेनेव शब्दनभसा सर्व हि परमं नभः॥ ર્ષ इच्यइहिरियं भ्रान्तिराकाशतरुमञ्जरी। चिद्योमाङ्गकमेवेति तत्राहमनुभूतवान्॥ २६ बुद्ध्याकारीकरूपेण व्यापिना बोधरूपिणा। तत्रानन्तेन संकल्पमनुभूतमिदं मया॥ २७ ब्रह्मस्योम जगजालं ब्रह्मस्योम दिशो दश। ब्रह्मध्योम कलाकालदेशद्रव्यक्रियादिकम् ॥ २८ तत्राहमिय संसारशते भाते मुनीश्वराः। दृष्टा वसिष्ठनामानो ब्रह्मपुत्राः सदुत्तमाः ॥ २९ ब्रह्मन्द्वासप्ततिस्रेताः सर्चा एव सराघवाः। तत्र दृष्टं कृतदातं द्वापराणां दातं तथा ॥ ३० मेदोदयेन वै द्रष्टास्तास्ताः सर्गद्शास्तथा । बोधेन चेसदत्यच्छमेकं ब्रह्म नभस्ततम्॥ 38 नेदं ब्रह्मणि नामास्ति जगद्रह्मण्यथ त्विदम्।

दृष्टमित्यर्थः ॥ २३ ॥ कीहरीन कहेन चिति कीहरा उदयः कीदशो वा क्षयस्तानुदाहरति—लमिति । हे राम, त्वं घटः पटः कुष्यमिति वा यदेव किंन्विदिति रूपं संकल्प्य नाम्ना विश्व तत्र तस्यां दशायां चित् खद्विवक्षितं तत्तिः चित्तद्वत् तत्तन्ना-मरूपात्मनेव भवति स उदयः । सैव व्योम्रोऽपि शून्यतमा वि-वक्षिता सती न किंचन नाम भवति न किंचन रूपमिति स तस्क्षय इत्यर्थः ॥ २४ ॥ किंच अगदिति नामरूपकल्पनया तच्छन्यात्मकमाकाशमेव भाति । आकाशस्यैव वाय्वादिक्रमेण जगदाकारपरिणामश्रुतेः । तचाकाशं शब्दतन्मात्ररूपलात्सर्वव-क्तनो नामसामान्यमपि भवति । वेनैव 'तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्मि नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिशब्दात्मना परिणतेन नभसा सर्वे जगरपरमं चिन्नम एव भवति । स एवास्याखन्तिकः क्षय इलार्यः ॥ २५ ॥ एवं विमर्शे सास्य यादशोऽनुभवोऽभूत-माइ--रक्येति । हे अन्न, परिविष्टं यिवद्योम तत् कं सुखमेव निरतिशयानन्दैकरसमेवेखनुभूतवानिखर्यः ॥ २६ ॥ बुद्धिध-रमसाक्षात्कारवृत्तिस्तद्भपो य आकाशस्तत्राविभीवात्तदेकरूपेण व्यापिना पूर्णेनाऽनन्तेन त्रिविधपरिच्छेदरहितेन मया तत्र तस्मिन्समाधौ न संकल्पं निःसंकल्पमिदं वश्यमाणमनुभूतम् ॥ २०॥ जगजालं ब्रह्माण्डसमूहास्तदन्तर्गता दशदिशस्तद-न्तर्गतं कळाकाळदेशादिकं च सर्वं ब्रह्मव्योमैव तथा स्थितं दष्ट-मिखर्षः ॥ २८ ॥ तत्र वस्यमाणमेदोदयेन भाते संसारशते अडमिन मत्समानरूपा मुनीश्वराः ॥२९॥ द्वासप्ततिसंख्याकाः सराचवा रामावतारसहिताक्षेतायुगमेदा दृष्टा इत्यनुष्टुष्यते ॥ ३० ॥ मेदोदयेन मेदवासनोद्वोधेन । बोधेन तत्त्वदशा त्र एतत्सर्वे बद्धा नम एव दष्टमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ तथाच बद्धाणः

ब्रह्मवाजमनाचन्तं तत्सर्वे तत्पदादिकम्॥ 32 पाषाणमीनप्रतिमं न किंचिदमिशब्दितम्। यत्तरिकचिदिति द्योतरूपं ब्रह्म जगत्स्मृतम् ॥ 33 विभात्यचेत्यं चिद्योम्नि स्वससैय जगत्तया। निराकारे निराकारा स्वप्नानुभवसंनिभा॥ 38 अनन्यमात्मनो ब्रह्म सर्वे भामात्ररूपकम्। प्रकाशनमिवालोकः करोति नकरोति च ॥ 34 तेषु नामानुभूयन्ते जगह्नक्षेषु तत्र वै । उष्णानि चन्द्रविम्बानि सुर्याः शीतलमूर्तयः॥ ३६ प्रजास्तमसि पश्यन्ति पश्यन्त्येच न तेजसि । उलुकस्य समाचारास्तस्यैव सददास्वराः॥ OF इतः श्रमेन नश्यन्ति यान्ति पापैस्तथा दिवम् । विषादानेन जीवन्ति ब्रियन्तेऽसृतभोजनैः॥ यद्यया बुध्यते बोधे यथोदेत्यथवा स्वतः। तथाश स्फ्रटतामेति सद्वासद्वा तदेव तत्॥ विटपाकारमुलौघदर्शनाद्वज्ञशोमिमिः। घूर्णते पत्रपुष्पाभैः पादपैन्यांसि काननम् ॥

सप्रपश्चता निष्प्रपञ्चता च दृष्टिमेदेनाविरुद्धेत्याह्-नेदमिति । अध खिदमस्तीति शेषः । पद्यते झानेन प्राप्यत इति पदं तदात्म-कम् ॥३२॥ न किंचिदिमशिब्दितं सर्वनामरूपश्च्यम् । धोतरूपं ज्योतीरूपम् । तदेव जगद्वेषेण स्मृतमित्यर्थः ॥३३॥ अचेत्यं चेत्यं विनापि चितः खसत्तैव चेत्यजगत्तया विभाति ॥ ३४ ॥ विभातीत्येतत्प्रत्यगमेदप्रदर्शनेनोपपादयन्खयंज्योतिष्टं यति-अनन्यमिति । अनन्यं अनन्यत् । अद्बादेशाकरणं छान्दसम् । भामात्ररूपकं ब्रह्म सर्वे करोति न करोति च । यथा-लोकः प्रकाशनं करोति स्वातिरिक्तप्रकाशनाप्रसिद्धेर्नकरोति च तद्भत् ॥ ३५ ॥ ननु यदि चिदेव जगलर्हि चन्द्रः शीत एव सूर्य उच्च एवेति व्यवस्थिता नियतिविपर्यस्येतेति चेदिष्टापतिः ब्रह्माण्डमेदे वैपरीलस्यापि दर्शनादिलाह—तेष्विलादिना ॥ ३६ ॥ उल्लबस्य दिवान्थस्य । उल्लबेन सम भाचारो दर्श-मादिव्यवहारी यासाम् । समशब्दार्थस्य नित्यं प्रतियोगिसापे-क्षत्वेन सामर्थ्याविघातात्समासः । तस्यैव तेनैव ॥ ३० ॥ इत इति । मनःकल्पनाया निरङ्कशलादियमुक्तिनेतु वस्तुतः । वै-दाप्रामाण्यापादकलादिति बोध्यम् ॥ ३८ ॥ तत्क्रतस्तत्राह--यदिति । चिराभ्यासदढीकृते बोधे यद्वस्तु हिताहितसाधनत्वेन यथा बुध्यते तथैव मोजकादएवशादुदेति । यथोदेति तथैव भोगकालेऽपि स्फूटतामेति । अन्यत्र सद्वा असद्वास्त्र न वि-शेषः । यतस्तद्वद्मीय तद्वासनाकर्मानुसारेण विवर्तत इसर्थः ॥ ३९ ॥ एतद्रश्चाण्डप्रसिद्धकाननिवपरीतपत्रपुष्पसंस्थानार्थ-कियासंपर्भ ब्रह्माण्डान्तरे प्रसिद्धमित्याह—विटपेति । विटपाः शासास्तदाकाराणां मूखीघानां दर्शनाद्वज्रमणिवद्दृढैः शोभा-बद्धिः पत्रपुष्पैराभान्तीति पत्रपुष्पाभैः पादपैरुपस्रक्षितं घूर्णते

सिकताः पीडिताः सत्यः स्नवन्ति स्नेहुजं रसम्। शिलाफलककेभ्यभ्य जायन्ते कमलान्यलम् ॥ ४१ दारुण्यदमनि भिसौ च चञ्चलाः शालभक्षिकाः। देवाङ्गनाभिः सहितं गायन्ति कथयन्ति च ॥ ४२ मेघान्परिद्धत्युचैर्भृतान्युचैः पटानिव। प्रतिवर्षे विजातीयान्यत्पद्यन्ते फलान्यगे॥ 83 संनिवेदौर्न नियतैरङ्गानां विविधाङ्गकैः। शिरोमिः सर्वभूतानि परिकामन्ति भूमिगैः॥ 88 शास्त्रवेदविहीनानि निर्धर्माण्येव कानिचित्। यर्टिक सनैककारीणि तिर्यग्वन्ति जगन्त्यधः॥ 84 कामसंवित्तिहीनानि निःस्रीजातानि कानिचित्। भूतैः संशुष्कहृद्यैर्ध्याप्तान्यद्ममयैरिव ॥ કદ पवनाशनभूतानि समरकाश्मकानि च। अजातार्थान्यत्रस्थानि निगर्वाणीय कानि च ॥ ४७ कचित्रवर्षेकमात्मानं पद्यस्याप्नोति नेतरत्। बहुभूतकमप्यस्ति जगदित्येकभूतकम्॥ 84 नखकेशादिके यहत्तहदन्यत्र संस्थितः। आत्मवत्सर्वभूतानामेकीभृतात्मभावना॥ ४९ अनन्तापारपर्यन्तं शुन्यमेव बहु कवित्। यक्रतः संविदाप्रोति तस्यान्ते न जगत्युनः॥ 40

इत्यर्थः ॥ ४० ॥ एवमसंभावितसहस्रमप्यन्यत्र संभावनीय-मिलाइ-सिकता इति । पीडितास्तिलयन्त्रनिष्पीडिताः । क्रेडजं रसं तैलं स्रवन्ति ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ भूतानि प्राणिनः पटानिव मेघान्परिद्धित परिधानं कुर्वन्ति । अगे वृक्षे ॥४३॥ ॥ ४४ ॥ तिर्थेग्वन्ति पश्चादिमात्रपूर्णानि । अघः भूम्याद्यधो-कोकेष ॥ ४५ ॥ यतः कामसंविष्या हीनान्यत एव निस्नी-जातानि ॥ ४६ ॥ पवनाशनाः सपी एव भूतानि प्राणिनो यत्र। समानि रकान्यश्मकानि च यत्र । अजातार्थान्यसंजातधनानि। धनादिव्यवहारशून्यानीति यावत् । अतएवालुब्धानि । निगर्वाणि निरहंकाराणीव । कानिच कानिचित् ॥ ४७ ॥ कचिद्याध्यहं-भावभेदंविना विराडहंभावनैकारम्येनैव सर्वदेहीभदव्यवहार-माइ--कचिदिति । इतरदात्मान्तरं नाप्नोति । तत्रापि चतु-विषम्तमेदेशहुम्तकं स्वेदजाधेकैसभूतपूर्णं चास्तीलर्थः॥४८॥ तत्र देहमेदेष्वेकीभूतात्मभावना कीदशी तां दर्शयति-न-बेति । यद्रमखकेशादिके छिद्यमाने जायमाने चात्मनः ख-**च्छेदनजन्मादि परयती**त्यन्यत्र संस्थित इव भवति । तस्यौ-न्दर्यादिसुखभोगे त्वेकीभूतात्मभावना अस्य दश्यते तद्वदि-स्पर्यः । अतएवाह श्रुतिः 'नह वै देवान्पापं गच्छति पुष्यमे-बात गच्छति' इति ॥ ४९ ॥ कवित्त सर्गमेदवासनाजुद्भवा-इच्याकृताकाशमात्रतया विभाव्यत इत्याह-अनन्तेति । तर्हि कथं सर्वेत्र सर्वात्मकं तदित्युक्तं तत्राह-यनत इति । तिरो-माबाबस्थाद्दष्टिं तिरोभाव्यसंस्कारविषयाविभीवनयक्रतस्य घर-

अत्यन्ताबुद्धबुद्धानि मोक्षशस्त्रार्थदष्टिषु । दारयश्रमयाशेषभूतीघानीच कानिचित्॥ 42 श्रुशचक्रविहीनानि निष्कालकलनानि 🖼 । मुकसंकेतसाराणि भूतजाळानि कानिचित्॥ ५२ कानिचिद्वार्जितान्येष नेत्रशब्दार्थसंविदा । व्यर्यदीप्तात्मतेजांसि भूतानीत्येकचिन्तया॥ प्राणसंविद्विहीनानि व्यर्थामोदानि कानिचित्। मुकानि शब्दवैयर्थ्याच्छुतिहीनानि कानिचित् ५४ वाक्यसंविद्विहीनत्वान्मुकान्यन्यानि कानिचित्। स्पर्शसंविद्विहीनत्यादश्माङ्गानीच कानिचित् ॥५५ संविन्मात्रमयान्येव दृष्टान्यपि च कानिचित्। व्यवहारिण्यप्यप्राह्याण्येव नित्यं पिशाचवत् ॥ ५६ भूमयान्येकनिष्ठानि निष्पिण्डान्येव कानिचित्। कानिचिद्वारिपूर्णीन बह्विपूर्णीन कानिचित्॥ ५७ कानिचिद्वातपूर्णानि सर्वाकाराणि कानिचित्। जगन्ति व्योमरूपाणि बत तत्र कवन्ति से॥ धरापीठैकपूर्णेषु तिष्ठन्त्यन्येषु देहिनः। मेका इव शिलाकोशे कीटा इव घरोवरे॥ 49 जलैकपरिपूर्णेषु तिष्ठन्त्युर्वीघनाद्विषु । म्रमन्यन्येषु भूतानि नित्यमेवोद्रमीनवत् ॥

न्यस्यान्तेन तिरस्करणेन पुनर्जगदाप्तोति पश्यति ॥ ५० ॥ मोक्षश्चन्दार्थी निर्विशेषत्रद्वभावस्तदृष्टिषु अत्यन्ताबुद्धान्यली-कानि तद्वद्वदानि । चित्पृथकारबुद्धौ तु दारुयश्रमयानि इस्ख-श्वादिरूपाण्यशेषाणि भृतौघानीव चेतनतया दृष्टानि ॥ ५१ ॥ ऋक्षचक्रैज्योतिबक्रैर्विहीनान्यतएव निष्कालकलनानि कानि-चित्। शब्दाभाषाच्छोत्राभावाद्वा मुकानां इस्तपादाद्यभिनय-संकेतसाध्यव्यवहारलात्तत्साराणि कानिचिदिति विभज्यान्वयः । एवमप्रेऽपि यथायोगं बोध्यम् ॥ ५२ ॥ नेत्रशब्देन सद्र्येन नेत्रेण तज्जन्यसंविदा रूपादिदर्शनेन च वर्जितान्येव । अत-एव व्यर्थदीप्तारमकानि सूर्यादितेजांसि येषु । इति इयं जन-त्थितिः एकचिन्तया एक।अचित्तयोगिमनःकल्पनया मयोके-लर्यः ॥ ५३ ॥ प्राणो घाणेन्द्रियं तज्जन्यगन्धं संविच ताभ्यां विहीनानीत्यादिपूर्ववत् ॥ ५४ ॥ अश्माजानीव लगिन्दि-यरहितानि ॥ ५५ ॥ संविन्मात्रमयानि । मनोराज्यकल्पानीति कानिचित्त व्यवहारीण्यपि पिशाचवदनुद्ध-तगुणभूतारब्धलादिन्द्रियैरप्राह्याण्येव नीलर्यः ॥ ५६ ॥ निष्पिण्डानि घनीभावरहितानि ॥ ५७ ॥ सर्वाकाराणि सर्वकार्यक्षमसर्ववस्तुकानि । प्राकाम्यसिद्धिशालि॰ मनःकस्पनयेदमुक्तम् । तत्र खे चिदाकाशे । बतेलाश्वर्ये ॥५८॥ भूमयान्येवेति यदुकं तत्र भूतजीवनानुपपत्तिशृष्टां रहान्तेन परिहरति---धरेति ॥ ५९ ॥ एवं वार्यादिपूर्णेष्वपि जीवनो-त्पत्तिनोप्येखाइ--जलेति । उपमीनो प्राइसाइत् ॥ ६० ॥ अन्येष्यक्र्येकपूर्णेषु जलादिरहितान्यपि । भूतान्यक्रिमयान्येव स्फुरन्यलमलातयत् ॥ ६१ अन्येष्यनिलपूर्णेषु भूतान्यस्तेतराण्यपि । वातमात्रमयाङ्गानि स्फुरन्त्यर्ज्जनवातवत् ॥ ६२ अन्येषु व्योममात्रात्मदेष्टेषु व्योमहृपिणः ।

प्राणिनः सन्ति सर्गेषु दर्शनव्यवहारिणः॥ ६३ पातालपातिषु तथाम्बरमुत्पतत्सु तिष्ठत्सु विभ्रमपदेष्वथ दिश्युखेषु । नानाजगत्सु किमिवास्ति मया न द्रष्टं यन्नाम चिज्जलधिचञ्चलबुद्धदेषु ॥ ६४

इत्यार्षे श्रीबासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषा० जगज्ञालवर्णनं नाम पष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१

वसिष्ठ उद्याच ।
चिदाकाशाश्चिदाकाशे पयसीच पयोरयाः ।
चिद्याजीवाः स्फुरन्त्येते एत एव मनांसि नः ॥ १
विशदाकाशरूपाणि तान्येव च मनांसि नः ॥ २
जगन्ति तान्यनन्तानि संपन्नान्यमितः स्वयम् ॥ २
श्रीराम उवाच ।
सर्वभूतगणे मोश्नं महाकल्पक्षये गते ।
पुनः कस्य कथं सर्गसंयित्तिरूपजायते ॥ ३
वसिष्ठ उवाच ।

महाप्रलयपर्यन्ते क्षितिजलपवनहुताशाकाशा-शेषविशेषविनाशे आब्रह्मस्थावरान्तेषु मुक्ती परि-

भारतबद्धमदुल्मुकवत्स्फुरन्ति संचलन्ति ॥ ६९ ॥ अर्जुन-बातो रोगविशेषः । तद्वन्तो हि जना भाकाशे अमन्तीति देश-विशेषे प्रसिद्धम् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ तत्र चिदाकाशे अप ऊर्ध्वं परितथ कल्पिते दिग्विभागे छवमानानि सर्वाणि विचित्राणि जगन्ति तदन्तर्गतवस्तूनि च मया दृष्टानीत्युपसंहरति—पाता-छेति । चिज्ञलभेथलनुदुद्रप्रायेषु नानाजगत्सु मया यत्र दृष्टं नाम तिकिमिव । न किचिदित्यर्थः । सर्वज्ञसाक्ष्यविषयस्याप्रसि-द्वेरिति भावः ॥ ६४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्य-प्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तराधं पष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

अज्ञातबहाहदयं जगनाहोऽप्यनश्वरम् ।

श्राते तु ब्रह्मणि जगन्नासीद्दित भविष्यति ॥ १ ॥ अनाद्यज्ञातं ब्रह्मेव खक्टस्थपूर्णानन्दिन्दस्वभावविस्मरणाबल्जनपरिच्छेदादिस्मावान्तरं परिकल्प्य मनःप्राणादिक्रमेण मोक्ता जीवो भोग्यं जगन्न भूला सर्वत्र सर्वदा सर्वरूपेण संसरस्येवेत्यस्य यावद्विद्यं संसारः शाश्वतस्वभावः । तदेव शाबाचार्योपदेशाज्ञातं चेत्सर्वदा सर्वतः सर्वात्मना च पूर्णानन्दचिदेकरसमात्रं न कदापि कापि कश्चिदपि कस्यचिदपि संसारचेशः संभावितुं शक्य इति नित्यमुक्तसभावमेव तदिति
च्युत्पाद्यितुं विषष्ठो भूमिकां रचयति—चिदाकाशादिति ।
चिक्त्वाद्वातचिदेकरसस्यभावात् । जीवाः प्राणोपाधिपरिचिक्ताः स्फुरन्ति अनादितादशवासनोद्भवाद्भात्मते । त एवोतरोक्तरं संकल्पविकल्पसहस्थैः संसरणवीजत्वात्स्वात्मनि करणभावित्यापद्यमानानि मनांसि इत्युच्यन्त इत्यर्थः ॥ १॥ ता-

णतेषु भूयो यथेदं जगदनुभूयते तथा शृणु । अन्यपदेद्यं यत्परमार्थधनं ब्रह्म चिन्मात्रमित्याच-क्षते मुनयः तस्य इदयमिदं जगत्तसमादव्यतिरि-क्रमेव, स एव च देवस्तदात्मीयं इदयं स्वभावं जगदित्यवगच्छति च विनोदेनेव नतु वास्तवेन क्रपेण जगदिति किंचितुपलमामहे विचारयन्त-स्तसमात्किमिव नदयते किमिव जायते यथा परम-कारणमविनाहा तथा तद्वृदयमविनाद्यं च । महा-कल्पाद्यश्च तद्वयवा एव, अपरिकानमात्रमत्र केवलं मेदायेव तद्पि प्रेक्ष्यमाणं न लभ्यत एव ॥४

न्येव मनांसि खान्तर्गतभोग्यजगद्वासनानां जगदाकारेण वि-कासादनन्तानि जगन्ति संपन्नानीत्याह-जगन्तीति ॥ २ ॥ नन्वेवं सति ब्रह्मेव स्वाविद्यया नानाजीवभावेनीनासंसारा-त्मना एकमेव संसरति एकमेव स्वविद्यया सर्वजीवसंसारभा-वेभ्यो मुच्यत इत्युक्तं स्यात्तथाच प्राक्तनप्राकृतप्रलयान्ते सर्व-जीवसमध्यात्मनो हिरण्यगर्भस्य तत्त्वज्ञानेनाज्ञाननिवृत्तो तन्मू-लसर्वजीवजगद्भावानां बाधावर्जनात्सर्वमुक्तिरवर्यं वाच्येति मुक्तस्य ब्रह्मणः पुनरेतज्जगज्जीवपरम्परया संमारो निर्वीजः कथं संपन्न इत्याशयेन रामः शक्कते—सर्वेति । 'भूयश्वान्ते विश्वमा-यानिवृत्तिः' इति श्रुतेः सर्वमुक्तेरवश्यवाच्यलादिति भावः ॥ ३ ॥ प्रश्नमन्य तदुत्तरं गद्यपंधेर्वकुं विषष्ठः प्रतिजानीते--महाप्रलयेखादिश्यभ्विखन्तेन । आकाशान्तानामशेषविशेषाणां विनाशे सति ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु जीवजगत्मु मुक्ते। परिणतेषु अव्यपदेश्यं बह्य चिन्मात्रमवशिष्यत इति यद्यप्याचक्षते तथापि तस्यावशिष्टस्य ब्रह्मचिन्मात्रस्य हृद्यमिदं जगतस्माद्रद्मणोऽव्य-तिरिक्तमेवेति पूरियला व्याख्येयम् । अयंभावः —यद्यपि मु-फटट्या सर्वजीवन्मु फिरेव न कस्यनित्धिनित्परिशिष्यते तथा-प्यन्येषां प्रत्येकं तत्त्वज्ञानोदयाभावात्तदृशा खम्बाविद्या न नष्टे-वेति बन्धानुभव एव । यथा चन्द्रलोकस्थानां सांप्रतं चन्द्र-मण्डलं गतानां च दृष्ट्या अत्यन्तासदिष चन्द्रप्रादेशिकत्वं भू-मिष्ठानां दशा तथैवास्ते तद्वदिति । एतदेवाह--स एव देव इत्यादिना । अवगच्छति बद्धदशा । नकारात्रावगच्छति च मु-क्तदशा । यूर्यं जीवन्युक्तास्तर्हि कीदशं जगदुपलभध्वे तत्राह—

तसाम्र कस्यचितिकचित्कवाचित्रस्यति कचित्। न चैव जायते ब्रह्म शान्तं दृश्यमजं स्थितम्॥ आकाशपरमाणुसहस्रांशमात्रेऽपि या शुद्धचि-न्मात्रसत्ता विद्यते॥ દ્દ बपुर्जगदिवं तस्या ननु नाम महाचितेः। क्यं नइयत्यनष्टायां तस्यां सा च न नइयति ॥ ও संविदो हृदयं स्वप्ने यथा भाति जगत्तया । व्योमात्मव तथैवादिसर्गात्त्रभृति भासते ॥ 6 चिद्योमावयवः सर्गः सर्गस्पैतारदाः क्षयाः। उदयाश्चेति सं सर्वं किं नाहि। किमनाही च ॥ ९ प्पा हि परमार्थसंविदच्छेद्या अवाद्याऽक्रे-द्याऽशोष्या, सा हातब्रिदामदृश्या तस्या यद्धदयं तत्तदेव भवति यथासौ न नश्यति तदन्तर्वर्ती जगदाद्यसभयो न जायते न नश्यत्येवेति केवलं स्मरणविसारणवदोन स्वभावरूपेणात्रभवानन्त्रभवी कल्पयतीच ॥ यद्यदात्मकं तस्वं तद्विनारां विनाऽक्षयि। तस्माद्वसात्मकं दृश्यं विद्यि ब्रह्मवद्क्षयम् ॥ ११ महाप्रलयाद्यस्तद्घयवा एष ॥ १२ चिन्मात्रे परमे व्योक्ति कुत एव भवाभवी।

कुतो भावविकारादिः कथं व्योम्नि निराकृते ॥ १३

विनोदनविति । विनोदेन बाधितानुवृत्तिरूपकौतुकेनैव दम्धप-टवदिलार्थः । तस्मादेवं दृष्टित्रयेऽप्यव्यतिरिक्तलाज्यगत्किमिव नश्यति किमिव जायते । यद्यविनाश्येव तर्हि कथं महाकल्पा-वान्तरकल्पादयस्तत्राह-सहाकल्पादय इति । नहि शाश्वतस्य तस्यैकदेशा अशाश्वताः शक्या वक्तुम् । नवा नष्टाः कल्पमेदाः पुनः पुनरागन्तुं शक्नुवन्ति । अतः सतामेव कस्पसर्गभेदानां ज-पमालावयववत्परिवृत्तिरेव पुनःपुनः कालचकात्मनेति भावः । कथं तहांतीतानागतकल्पादिषु भेदप्रत्ययस्तत्राह-अपिक्वान-मात्रमिति ॥ ४ ॥ गद्यप्रसाधितमर्थं पद्येनोपसंहरति तस्मा-दिति ॥ ५ ॥ जगतोऽविनाशित्वे युक्तयन्तरमाह-अाका-शेति । महत्त्वोत्कर्षात्रधावाकाशं अणुखोत्कर्पावधौ परमाणुस-हस्रांशमात्रे च जगति ब्रह्मचित्सत्तरीय सत्तेति यदा सिद्धान्त-स्तदा तद्विनाभावे कथं विनाशोपपत्तिरिति समुदायार्थः । व-पुरित्यादीनि पद्यानि ॥ ६ ॥ ७ ॥ संविद्धृदयत्वं च संविन्मा-त्रसारे खप्रेऽपि प्रसिद्धमिलाह—संविद इति ॥ ८॥ ९॥ तर्शस्य संविदोऽपि नाशस्तत्र गयेनोत्तरमाह-एषा हीति । यथा असी संविष्ठ नश्यति तथा तदन्तर्वती तद्भृदयभूती ज-गतस्तदेखज्ञानस्य चानुभवः प्रतिभापि न जायते न नश्यति च । यदि न नश्यत्येव तर्हि कथं सुखदुःखादीनां कादाचित्क-त्वानुभवस्तत्राइ—केवलमिति ॥ १० ॥ जगतः शाश्वतेना-रमना सात्मकलादि न नश्ररतेति पर्येनाह-यदिति। ययदिति दर्शनात्तत्तिव्यध्याहार्यम् । तत्तत्तिहिनाशं विना अ-

महाकरपादयो भावा नामैतानि जगन्ति च।
ब्रह्मात्मकतयैवास्मिन्संविद्वस्मणि संस्थितम्॥ १४
निराकृत्यच्छचिन्मात्रं दृद्यं संकरूप तद्वराम्।
याति येनैव घटितो यक्षस्तबृद्ये किछ॥ १५

यथावयिवनो वृक्षस्य शास्त्राविटपफलप्रस्वपुष्पाद्योऽययवास्तथा परमार्थघनस्याकाशाद्य्यस्क्रक्षपस्याव्यपदेश्यस्य प्रलयमहाप्रलयनाशोद्धेद्भावाभावसुखदुःखजननमरणसाकारिनराकारस्वाद्योऽवयचाः । यथेव चासाववयव्यनाशोऽव्यपदेश्यश्च तथेव त इति ॥ १६
अवयवावयिनोर्दश्ययोर्वाप्यश्चययोः ।
एकात्मनोरेच सदा मेदोऽस्ति न कदाचन ॥ १७
यथा तरोः संविन्मूलं तथा परमार्थघनस्य क्रिक्रिकचित्त्वं कचित्सर्गस्तम्बः क्रिक्शिकान्तरिवटणाः
कचिद्यवस्थाः शास्त्राः क्रिक्तप्रश्चेपस्थाः क्रिक्तः
काशकुसुमम् कचिदन्धकारकाष्यं कचिक्रभःकोः
टरं कचित्प्रलयगुल्माः क्रिक्तम्बाप्रलयगुल्माः क्र

चिद्धरिहरादिगुलुच्छकाः कचिज्ञाड्यत्वकु एवम-

नाकारं व्योमक्रपमेच संविदात्मनि ब्रह्मणि ब्रह्मस-

दशभावादव्यतिरिक्तमेवैतित्स्थतम् ॥

क्षयि अविनाशि ॥ ११ ॥ यदि ब्रह्मात्मकं विश्वं तर्हि तन्ना-नालाद्रह्मनानात्वं कि न स्यात्तत्राह-महाप्रलयादय इति । तस्य महाकालात्मनो ब्रह्मणः अवयवा एव ॥ १२ ॥ नन्य-चेतनसर्गप्रस्याद्यनन्तावययघटितं कथं चिदेकरसं स्यादिति चे-द्विरिवृक्षनगरायनेकप्रतिबिम्बघटितस्फटिकशिलाया खच्छशि-ठैकरसलवदिलाशयेन पद्येनोत्तरमाह—चिन्मात्रे इलादिना । निराकृते निराकारे । भावे क्तः बहुबीहिः ॥ १३ ॥ यथा वि-चित्रप्रतिबिम्बभेदाः स्फटिकात्मनैव स्थितास्तद्वन्महाकल्पादयो विचित्रभावाः संविदेकरसे ब्रह्मणि संस्थिता इत्यर्थः ॥ १४ ॥ यथा मनःसंकल्पजानां यक्षनगरसेनादीनां मनोमात्रत्वं तथा चित्संकल्पजस्य जगतोऽपि चिन्मात्रलमित्याशयेनाह--निरा-कृतीति ॥ १५ ॥ अस्त्वेषं तथापि कथं जगतामविनाशिख-मिति चेदविनाश्यवयवलादेवेत्याशयेन वृक्षशासास्येन गरोन वर्णयति--यथेत्यादिना । असौ ब्रह्मरूपोऽवयवी यथैवाविनाशः अव्यपदेश्यक्ष तथेव ते अवयवाः सर्गप्रलयादय इत्येतस्मारका-रणादित्यर्थः ॥ १६ ॥ तत्कृतस्तन्त्र पर्येनाह्--अवयवावयवि-नोरिति । ननु दश्यादश्ययोः कथमभेदस्तत्राह—दश्ययोर्वेति । अमेदेऽपि स एव स्थील्ये दश्यो भवति सीक्ष्म्ये लदश्य इति । न दृश्यलादृश्यत्वे मेदनियते इल्याशयः ॥ १७ ॥ तत्राषयवा-वयविनोरभेदं बृक्षतदवयवसाम्यनिरूपणेनोपपादयति--यथे-त्यादिना । यथा तहसद्भावे तहसंविदेव मूलं तथा परमार्थय-नस्य जगतोऽपि सद्भावे संविदेव मूलमिति साम्यं प्रसिद्धम् ।

इतो भाष्य इतो भाष इतः सर्ग इतः सयः। स्वभाव एवानुभव इति ब्रह्माचछं स्थितम् ॥ १९ प्यंमयेऽपि परमे ब्रह्माकाशे न रञ्जनाः। काश्चिरेवाङ्ग सन्तीन्द्रविम्बे विमलता यथा॥ २० निर्मले परमाकाशे क भावाभावरञ्जनाः। कादिमध्यान्तकलनाः क लोकान्तरविभ्रमाः ॥ २१ अपरिकानमेवैकं तत्र वोषवद्वत्थितम्। केवलं तत्परावृत्य प्रेक्षणात्परिशाम्यति ॥ **२२** अज्ञानं ज्ञप्तिबोधेन परामृष्टं प्रणद्यति । इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षो । निर्वाणप्रकरणे उ० पाषाणो । जगदाकाशैकबोधो नामैकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

येनैवाभ्यदितस्तेन पवनेनेव दीपकः॥ २३ अज्ञानं संपरिकातं नासीदेवेति बुध्यते । अबन्धमोक्षं ब्रह्मेव सर्वमित्यवगम्यते ॥ २४ एवं बोधावयो राम मोक्ष उक्ताः स्वसंविदा। विचारयलो लभते नात्र कश्चन संशयः॥ 24 इदं जगजालमनाधजातं ब्रह्मार्थमाभातमितीह रष्टा। विचारदृष्ट्याऽष्टगुणेश्वरत्वं पश्यंस्तृणं स्वात्मनि जीव आस्ते॥ २६

क्रिषष्टितमः सर्गः ६२

श्रीराम उवाच। यदेतद्भवता दृष्टं चिद्योमवपुषा तदा । तदेकदेशसंस्थेन किमुत भ्रमताम्बरे॥ वसिष्ठ उवाच। संपन्नोऽहमनन्तात्मा व्यापी व्योम तदा किल।

एवं संविन्मुलतयैव क्रचित्प्रदेशे किंचिद्वैचित्र्यं तहवदेव दर्श-यति—किचिदिति । सर्गलक्षणः स्तम्बो मध्यकाष्ट्रम् । तरसं-लमा भूरादिलोकान्तरलक्षणा विटपाः स्कन्धाः । तत्रापि ज-म्बूद्गीपादिव्यवस्थाः शाखाः । तेषु गिरिनदीजनपदादिपदार्थाः पह्नवाः । तेषु चन्द्रादित्यादिप्रकाराः कुगुमम् । अन्धकारत्रक्षणं हरितच्छदकार्ण्यम् । प्रलयलक्षणा गुल्मा प्रन्थिमेदाः । हरिहरा-दिदेवोत्तमलक्षणा गुळुच्छका गुच्छाः। सजलमेघजाब्यलक्षणा लकु। एवं वर्णितरीत्या अनाकारं व्योमरूपमेवाकारभेदैः सं-विदारमनि ब्रह्मणि ब्रह्मसदृशस्वच्छभावादेव।व्यतिरिक्तंः स्थित-मिलार्थः ॥ १८ ॥ उक्तमेवार्थं पर्वराह—इतर इलादिना । भान्यो भविष्यदर्थः । भवत्।ति भावो वर्तमानपदार्थः । अती-तस्याप्यपलक्षणमेतत् । सच सर्वोऽप्यनुभवाधीनसिद्धिकलाद-नुभव एव । सच स्वो भाव आरमविति ब्रह्मवाचलमेकमेवं वैचित्र्यकल्पनया स्थितमिखर्थः ॥ १९ ॥ तर्हि ब्रह्मणि सर्गप्र-लयादिरजनाः किं सत्याः, नेत्याह-प्वमिति । काश्विदपि न सन्त्येवेखन्वयः । इन्दुबिम्बे विमलता निष्कलङ्कता यथा ना-स्तीति कथंचिद्रपमा । तथा निर्मले इत्युत्तरान्वयो वा ॥२०॥ ॥ २१ ॥ तर्हि तथा विभ्रमे को हेतुः कुतो वा तच्छान्तिसा-श्राह-अपरिकानमेनति । पराष्ट्रय पराग्द्धिमपहाय प्रखगा-स्मप्रवणया थिया प्रेक्षणात् । 'कश्चिद्धीरः प्रत्यगातमान-मैक्षदावृत्तचक्षुरमृतलमिच्छन्' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥२२॥ चरमसाक्षात्कारवृत्तीद्धस्य अज्ञानसाधकस्यैव तद्वाधकत्वे युक्तिमाइ-अज्ञानमिति ॥ २३ ॥ ज्ञानस्याज्ञानतत्कार्य-बाधकरवं प्रसिद्धमेवेत्याह--अज्ञानमिति । बाधपरिशिष्ट-ब्रह्मानुभवमभिल्प्य दर्शयति—अवन्धमोक्षामिति ॥ २४ ॥ ।

स्यातां तस्यामवस्थायां कीहशौ तौ गमागमौ ॥ २ नैकस्थानस्थितमयो नाहं गतिमयोऽभवम् । तदनेन स्व प्वास्मिन्द्रप्रमेतन्मयात्मनि ॥ 3 यथाङ्गानि शरीरत्वे पदयाम्यापादमस्तकम् । चिन्नेत्रे नाप्यनेत्रेण तथतदृष्ट्यानहम्॥

हे राम, मया मोक्षे एवं वर्णितह्या वोधादय उपाया उक्ताः। एतांस्तुपायानिरन्तरं विचारे यत्नो यस्य तथाविधोऽधिकारी लभते ॥२५॥ अनादि इदं जगजालं मदाप्यजातं नोत्पन्नमेव किंत बह्मवार्थयते प्रार्थयते भोगमोक्षावित्यर्थम् । अज्ञातस्वस्व-रूपमिति यावत् । इति वर्णितजगद्भृदयादिरूपेणाभातं वर्तते । जीवः अधिकारी इति विवेकत्रष्ट्या इति विचारत्रष्ट्या अणिमा-द्यष्टगुणसंपन्नमीश्वरत्नमपि मायामात्रत्वादसारमेवेति परवैरा-ग्थोत्कर्षेण तृणप्रायं पश्यन् निरतिशयानन्दं ब्रह्मयाहासिति नि-श्विल खात्मन्येव पूर्णकाम आस्ते इत्यर्थः ॥ २६ ॥ इति श्री-वासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकादो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

देहवजगतां वीक्षा वर्ण्यतेऽत्र मुने खिया। संभाषाव्योमरूपस्य स्वप्नवद्योमरूपया ॥ १ ॥

लया तज्जगज्जालं किं परिच्छित्रभावेन स्थितः पश्चिवदः म्बरे भ्रमता दृष्टमुतापरिच्छिन्नचिद्योमभावनेति संदिहानो रामः प्रच्छति-यदेतदिति ॥ १ ॥ तत्र द्वितीयकल्पमालम्बय विषष्ठ उत्तरमाह--संपन्न इति । तस्यामानन्यावस्थायां गमा-गर्मा । कियामात्रोपलक्षणमेतत् ॥ २ ॥ मयटौ प्राचुर्ये । तत्तसादेतोः खे एवासिन्निखापरोक्षे आत्मनि एतज्ञगन्मया दृष्टम् ॥ ३ ॥ एकदेशस्थित्यादिकल्पनां विना स्वात्मतयानातम-दर्शनात्रसिद्धि दष्टान्तोपन्यासैनिराचष्टे-यथेत्यादिना । शरी-रत्वे देहात्मतादर्शने । अङ्गाने हस्तपादादीनि । यथा दहै-कदेशस्थितिर्देहान्तरश्रमणादिकल्पनां विनापि अनेत्रेण अक्षि-गोलकानपेक्षेणापि चिन्नेत्रेण यथा पश्यामि तद्वदिखर्थः ॥ ४॥ अनाकृतेर्निरवयवस्थितेस्तदा तथा भवद्विमलचित्रम्बरात्मनः। जगन्ति तान्यवयवजालकानि मे यथा स्वतो न विगलिता न वस्तुता॥

प्रमाणमत्र ते स्वप्तरहोऽभुवनविभ्रमः। स्बप्तेऽनुभूयते दृश्यं न च किंचित्लमेष तत्॥ Ę यथा पश्यति बृक्षः स्वं पत्रपुष्पफलादिकम्। स्वसंवेदननेत्रेण तथैतदृष्टवानहम्॥ 9 यथाम्बुधिरनन्तात्मा वेत्ति सर्वाञ्जलेचरान्। तरङ्गावर्तफेनांश्च तथैतद्वद्भवानहम्॥ अवयवान्स्यानवयवी यथा वेत्ति निजात्मनि । अनन्यानात्मनः सर्गास्तर्यतान्बद्धघानहम् ॥ अद्यापि तानहं देहे ज्योसि शैले जले स्थले। तथैव सर्गान्पद्यामि राम बोधैकतां गतः॥ १० पुराऽस्माकमिदं विश्वं गृहस्यान्तर्वहिस्तथा। पूर्णमेतज्जगहन्दैर्वेशि बोधैकतां गतः॥ ११ यथाम्भो रसतां वेत्ति शैत्यं वेत्ति यथा हिमम्। स्पन्दं वेत्ति यथा वायुक्तथतद्वेत्ति गुद्धधीः॥ १२ योयो नाम विवेकात्मा शुद्धबोधैकतां गतः। सम एव मंगैकात्मा वेश्वि स्वात्मानमीदशम् ॥ १३ अस्या रष्टः परिणतेर्वेत्त्वेदनवेद्यधीः। न काचिदस्त्यभ्यदिता विज्ञानात्मेकता यतः ॥ १४

असङ्गोदासीननिरवयवत्रहाभूतस्य तदा जगदवयवता कथमभू-तत्राह--अनाकृतेरिति । तदा तस्यां समाध्यवस्थायामनाकृते-र्निरवयवस्थितेर्विमलचिदम्बरात्मनोऽपि मे तानि जगन्ति तथा अवयवजालकान्यभवन् यथा खतो वस्तुता न विगलिता नापि वस्तुता अभवत् मत्सत्तया सत्त्वाद्वस्तुता न विगलितेति मद-वयवता, स्रतः सत्ताश्रत्यलातु न वस्तुता, तथाच वास्तवी सावयवता नाभवदित्यदोष इति भावः ॥ ५॥ उक्तेऽर्थे ख-प्रजगतस्तथाविधतां प्रमाणयति-प्रमाणमिति ॥ ६ ॥ 'यत्र लस्य सर्वमारमेवाभूत्तरकेन कं पश्येत्' इत्यादिश्रतिस्त निर्वि-कल्पसमाध्यादावेव जगददर्शनमाह न सविकल्पसमाधावित्या-शयेन नेशादिकरणानि विनापि तहर्शने दृष्टान्तान्तरमाह-यथेति । यूक्षो यूक्षदेहात्मभूतो जीवः ॥ ७ ॥ अम्बुधिः समुद्राभिमानी जीवः ॥ ८ ॥ कि बहुना सर्वप्राणिष्वपि खावयवानां तथा यदनं प्रसिद्धमित्याशयेनाह-अवयवानिति ॥ ९ ॥ तदैव मे स्वात्मनि जगद्भदयतादर्शनमिति न किंतु सदैव तत्प्रवणया रष्ट्या तद्रष्टुं शक्यमित्याह—अद्यापीति । अद्य अपिशब्दाच्छ्रोऽपि ॥ १० ॥ ११ ॥ अम्भआदिपदानि तत्तद्देवतापराणि ॥ १२ ॥ कि खमेक एव वेरिस नेत्याह—यो य इति । स सर्वोपि मया सह एकात्मा अहं च खात्मानमीहशं

दिव्या दगद्विसंस्थस्य तथा योजनकोटिगान्। भाषान्वेसि वहिश्चान्तरेवं तद्भुद्धवानहम्॥ १५ यथा भूमण्डलं भावान्निषिधातुरसादिकान्। वेरयेवं तन्मया बुद्धमनन्यहृश्यमात्मनः॥ १६ श्रीराम उवाच। ब्रह्मसनुभवत्येवं त्वयि तामरसेक्षण। सा किं कृतवती बृहि कान्ता ऽर्यापाठपाठिनी १७ वसिष्ठ उवाच। तामेवार्यो पठन्ती सा तथैवाजुनयान्विता। मत्समीपे नभोदेहा व्योक्ति देवीय संस्थिता ॥ १८ यथाहमाकाशवपुस्तथैवासी स्वरूपिणी। सेन दृष्टा न सा पूर्व देहेन ललना मया॥ १९ अहमाकाशमात्रातमा सा खमात्रशरीरिणी। जगजालं खमात्रं तदिति तत्र तदा स्थितम्॥ २० श्रीराम उवाच। शरीरस्थानकरणप्रयत्नप्राणसंभवैः । यदुदेति चचो वर्णैस्तत्कुतस्तादद्याकृतेः॥ २१ रूपालोकमनस्कारः कुतो नामात्मनामिति । बृहि मे भगवंस्तरवं यथावृत्तश्च निश्चयम् ॥ २२ वसिष्ठ उवाच ।

रूपालोकमनस्काराः शाद्यपाठवचांति च।

यथा स्वप्ने नमस्येव सन्ति तत्र तथाम्बरे ॥

२३

तदात्मभूतं वेद्यीति मत्प्रत्यया एव सर्वविद्वां प्रत्यया इति न ते पृथगन्वेष्या इत्याशयः ॥ १३ ॥ परिणतेः परिपाक-वशाद्वेदित्रादित्रिपुटीबुद्धिर्न काचित्स्वात्मातिरिक्तास्ति यतो वि-ज्ञानेनैकात्मतैव तेषामभ्युदितेत्यर्थः ॥१४॥ एकेन ज्ञानेन कथं व्यवहितविप्रकृष्टसर्वदर्शनमिति चेत्तदृष्टान्तेन संभावयति-दिव्येति । अद्रिसंस्थस्य पर्वतारूढस्य पुंसस्तिमिररोगाग्रप्रतिहत-लादीषधादिपरिष्कृतलाद्वा आजानसिद्धलाद्योगपरिष्कृतलाद्वा दिव्या बहिराधिभौतिकानन्तराध्यात्मिकांश्व भावान् वेसि साक्षात्पर्यति । एवं तद्वदिखर्थः ॥ १५ ॥ भूमण्डलपदेन त-दिमानी जीवो गृह्यते ॥१६॥१७॥ अनुनयेन प्रशंसादिप्रीति-जनकव्यापारेगान्विता ॥ १८ ॥ यदि समीपे संस्थिता तर्हि विनैव समाधि प्रागेव लया कुतो न दृष्टा तत्राह-यदेति ॥ १९ ॥ तत्र तस्मिश्रिदाकाशे । तदा समाधिकाले ॥ २० ॥ यदाकाशरूपैव सा तर्हि जिह्वाताल्वोष्ट्रप्राणवाय्वाद्यभावात्कथ-मार्या पठितवतीति रामः प्रच्छति - शरीरेति । तादशाक्कते-राकाशशरीरायाः ॥ २१ ॥ एवमाकाशमात्रस्य तद तद्रूपदर्श-नपर्यालोचनाद्यपि दुर्लभमित्याद्ययेनाह—हपालोकेति । त्वं च तदा यथा यादशं वृत्तं संभाषणादिव्यवहारी यस्य स यथावृत्ती-भूतिश्रिथमं च ब्र्हीस्पर्थः ॥ २२ ॥ तत्र खप्रदशन्तेनैव कत्य-

रूपालोकमनस्कारैः स्वप्ने चिन्नभ एव ते। यथोदेति तथा तत्र तह्रदयं खात्मकं स्थितम् રઇ न फेवलं तु तहुइयं यावनु विषयं वयम्। जगचेदं खमेवाँच्छं यथा तन्नस्तथाखिलम्॥ २५ परमार्थमहाधातुर्वेद्यनिर्मुक्तचिद्वपुः। एवं नाम स्वयं भाति स्वभावस्येव निश्चयः॥ 76 शरीरस्थानकरणसत्तायां का तव प्रमा। यथैव तेषां देहादि तथासाकमिदं स्थितम्॥ २७ यथैष तत्तथैवेदं तथैबेदं यथैव तत्। असत्सत्तामिव गतं सन्नासदिव च स्थितम् ॥ २८ यथा स्वप्ने धराध्वाद्रिपृष्ठव्यवहृतिर्नभः। तदा हाई च त्वं सा च तदिदं च तथा नभः॥ २९ यथा स्वप्ने नृप्तिर्युद्धकोलाहलगमागमाः। असन्तोऽप्यनुभूयन्ते संसारनिकरास्तथा ॥ 30 वक्षि चेत्स्वप्रदृश्यशीः कस्मात्तद्समञ्जसम्। अवाच्यमेतदेतुर्हि नान्योऽस्त्यतुभवस्थितेः ॥ ३१ कथमालक्ष्यते स्वप्त इति प्रष्टः प्रकथ्यते। यर्थवं पदयसीत्येच हेतुरत्रास्ति नेतरः॥ 32 स्वप्रजन्तुरिव व्योम्नि भाति प्रथमसर्गतः-। प्रभृत्येव विराडात्मा खे खमेव परस्परे॥ 33 स्वप्रशब्देन बोधार्थे तव व्यवहराम्यहम्। दृद्यं त्विदं न सन्नासन्न स्वप्नो ब्रह्म केवलम् ॥ ३४

नया सर्वमुपपन्नभित्युत्तरमाह्—क्ष्पेत्यादिना ॥ २३ ॥ २४ ॥ अत्यल्पमिदमुच्यते तदा तहृदयं खात्मकमिति। तत्त्वतो विचारे इदानीमिदं जगदपि खात्मकमेव । अत्रापि शरीरादिश्रान्त्यैव व्यवहारभ्रमश्रेलाह--- न केवलभिति । वयमस्माकं विषयं गो-चरं च यावत् तत्सर्वं जगवेत्यन्वयः ॥ २५ ॥ नामेति श्रुति-विद्वदनुभवादिप्रसिद्धमिदमिति द्योतनाय । स्वभावस्य जग-द्वासनोपहितचित्स्वभावस्य ॥ २६ ॥ का प्रमा तत्सलाबुद्धेः 'अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्' इत्यादिश्रुतिबाघितला-दिति भावः ॥ २७ ॥ सत् निर्विशेषात्मतत्त्वं चावृतत्वादस-दिवासन्ताप्रसिद्धमिव स्थितम् । नकारश्चिदानन्दस्वभावव्य-खासोऽप्येवमित्यनुक्तसमुचयार्थः ॥ २८ ॥ धराष्ट्रष्ठे कृष्यादि-व्यवहृतिरध्वपृष्ठे गमनादिव्यवहृतिः सौधादिपृष्ठे शयनादिव्यव-इतिथ नभश्रिदाकाश एव ॥ २९॥ ३०॥ सप्रवेचित्र्येपि हेलन्तरसंभावनायास्त्र नावकाशः। अनवस्थादिदोषभयेन तत्र सर्ववादिनां मुकीभावाद्विद्योपहितचिदात्मन एव खभावोऽय-मिति मत्पक्षस्थैव परिशेषात्सिद्धेरिखाह—वक्षाति । तते व-चनमसमञ्जसम् । खाप्रानुभवस्थितेरन्यो हेतुईं यस्मान्नास्ति ॥ ३१ ॥ प्रष्टुः सर्वेरेव यथेव पश्यसीति तदनुभव एवोत्तरं प्र-कथ्यते नेतरोऽत्र हेतुस्तत्साधकोऽस्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥ तथाहि सुष्तिसद्दशप्रस्यानन्तरं प्रथमसर्गतः प्रशृत्येव स्वप्नजन्तुरिव

अथ राघव सा कान्ता मया कान्तानुपङ्गिणी। संविदं तन्मयीं कृत्वा पृष्टेदं एइयरूपिणी ॥ 34 व्यवहारो यथोदेति स्वप्ने स्वप्नजनैः सह। तथा तदा तया सार्ध व्यवहारो ममोदितः॥ 38 य्यव स्वप्रसंकाशो व्यवहारः खमेव सः। तथैव त्वमिमं विद्धि मामात्मानं जगच खम्॥३७ यथा स्वप्नजगद्वपं खमेवैवमिदं जगत्। जाव्रदादी स हि स्वप्तः सर्गादी जगदुद्भवः॥ ३८ स्वप्तोऽयं जगदाभोगो न किंचिद्वा खमेव च। निर्मलं ब्रितितामात्रमित्थं सन्मात्रसंस्थितम् ॥ ३९ स्वप्तस्य विद्यते द्रष्टा साकारो युप्मदादिकः। द्रष्टा तु सर्गस्वप्रस्य चिद्योमैवामलं स्वतः॥ Ro यथा द्रष्टामळं ब्योम एइयं तद्वद्वतं तथा। स्वप्रकप्रजगत्यु धैर्जगस्वेनामलं नभः॥ ક્રશ चिद्योम्नोऽनारुतेः स्वप्नो हृदि स्फूरति यः स्वतः । सर्गस्तस्य कुतस्तेन सारुतित्वं कथं भवेत्॥ धर साकारस्येव यत्स्वप्रजगत्तद्योम निर्मलम् । निराकारस्य चिद्योद्धः सर्गः स्वप्नः कथं न खम् ४३ निरुपादानसंभारमभित्तावेव चित्रभः। पद्यत्यकृतमेवेमं जगस्वप्नं कृतं यथा ॥ 88 मृद्या चिदाकारामृदा ब्रह्मणा ब्राह्मणेन खे। कृतोऽपि न कृतः सर्गमण्डपोऽक्षगवाक्षकः ॥ ४५

कल्पनारमा विराज्ञारमा चिदाकाशे चिदाकाशमेव प्रथत इलाइ-खप्रेति । परस्परे विषयविषयित्या अन्योन्यसापेक्षरूपे ॥३३॥ तर्हि कि दृष्टान्तभूतस्वप्रस्वभावमेव जगत्, नेत्याह-स्वप्रश-ब्देनेति ॥ ३४ ॥ एवमवान्तरप्रश्नं समाधाय पूर्वप्रष्टकथाशे-षमाह-अथेलादिना । कान्ते वध्यमाणे अनुषक्तिणी अनुरा-गवती । तन्मयी तद्भिप्रायजिशासाप्रधानां संकल्पसंविदं कृता ॥ ३५ ॥ अशरीरस्य ते तया सद्द कथं प्रश्नादिव्यवहारोऽभू-त्तत्राह-व्यवहार इति ॥ ३६ ॥ त्वया सहेदानींतनव्यवहा-रोऽपि मम तादश एवेत्याह—यथैवेति ॥ ३० ॥ कथं तर्हि खप्र इति जगदिति च नामभेदस्तत्राह्—जामदादाविति॥३८॥ अयं जगद्वेष आत्मनः स्वप्न एव, अथवा न किंचित् ॥ ३९ ॥ अथवा कश्चिद्विशेषोऽपि वक्तं शक्य इत्याशयनाह — सप्रस्येति । युष्मदादिवासनाकारेण साकारः ॥ ४० ॥ गतं द्रष्टृदरयान्तरा-लिकं दर्शनमपि तथा ब्योमैव ॥ ४९ ॥ यः खप्रः स्फुरति तस्य सर्गी जन्म कुतः । तेन च बन्ध्यापुत्रकल्पेन जगता सा-कृतित्वं कथं भवेत् ॥४२॥ यत्र साकारस्य युष्मदादेः प्रसिद्धं खप्रजगदसत् तत्र निराकारस्य ब्रह्मणः स्वप्नभूतः सर्गस्तथेति किं वाच्यमित्यर्थः ॥४३॥४४॥ ब्रह्मणा हिरण्यगर्भाख्येन ब्राह्म-णेन अक्षा इन्द्रियच्छिद्राण्येव गवाक्षा यस्मिस्तथाविधो देहादिस-

नो कर्तता न च जगन्ति न भोक्ततास्ति

पाषाणमीनमघलम्ब्य यथाप्रचाह-

नास्तीति नास्ति न च किंचिदती बुधः सन्। इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे॰ मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्त पाषा०चिदेक्यं नाम द्विषष्टितमः सर्गः॥६२॥

माचारमाचर शरीरमिहास्तु मा वा॥ ४६

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

श्रीराम उवाच। तब सियाऽस्वरूपेण देहेनाभूत्तया कथम्। कथमुकारितास्तत्र वर्णाः कचटतादयः॥ 8 चसिष्ठ उवाच । वर्णेषु खदारीराणां वर्णाः कचटताद्यः। कदाचनापि नोचन्ति शवानामिव केनच॥ ₹ वर्णीचारो भविष्यचेत्रकटार्थस्ततः कचित्। स्वप्नेष्वन्वभविष्यसं विनिद्रः पार्श्वगो जनः॥ Ę तसाम किंचित्स्वप्रेषु तत्सर्यं भ्रान्तिरेव सा । चिन्मात्राकाशकचनं तत्तथा खे स्वभावजम्॥ तदेन्दुकाण्यंखतनुशिलागेयादितां गताः। इवामानित चिदाकाशास्त्रथा देहरवादयः॥ तिचिदाकाशकचनं यश्राम स्वप्नवेदने । आकाशमेव नमसः कचनं विद्धि नेतरत ॥ દ્દ

र्गमण्डपः कृतोऽपि न कृत एव ॥४५॥ अतः सर्वेदश्यमार्जना-रपरिविष्टो बुधस्तत्साक्ष्येव सन् परमार्थः । अतो हे राम, लमन्तः पाषाणमीनमवलम्बय बहिर्यथाप्रवाहमाचारमाचर । तत्र ते श-रीरं यावत्प्रारम्धशेषमस्तु तदुत्तरं मास्तु वा न कश्चिद्विशेष इलार्थः ॥ ४६॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणे ताल्पर्य-प्रकाही निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्विषष्टितमः सर्गः॥ ६२ ॥

अज्ञपक्षेऽन्तरन्तः सन्त्यनन्ताः सर्गसंपदः । बद्धीय बद्धावित्पक्षे चिद्रकवनमीर्यते ॥ १ ॥

खप्रव्यवहारदृष्टान्तेन प्राक्समर्थितमप्यशरीरस्य संवादादि-व्यवहारं मन्दप्रहानां स्फुटबोधाय पुना रामः प्रच्छति -- तवेति । हे मुने, तव तथा पूर्वोक्तया श्रिया सह अखरूपेण मुखजिहायव-यदश्चने वासनामात्रात्मना देहेन कथं व्यवहारोऽभूत् । तत्र तस्यां दशायां कचटतपादयो वर्णास्लया विना जिह्नां कथमुखा-रिताः ॥१॥ वर्णीचारणादिव्यवहारे शरीरस्य न कारणता सत्यपि शवशारीरे तददरीनाद्विनापि शरीरं खप्ने तद्दरीनादन्वयव्यतिरेक-व्यभिचारात् सहेतुकत्वे व्यवहारस्य सत्यतापत्तेव किंतु कल्प-नामात्रम् । तत्र तदापि सुलभमित्याशयेन वसिष्ठ उत्तरमाह---बर्णेष्वित्यादिना । खमेव शरीरं येषां तत्त्वविदां तेषां मते वर्णेषु मध्ये ये कचटतपादयस्ते कदाचनापि नोद्यन्ति । कस्प-नामात्रकपलादिलार्थः ॥ २ ॥ उक्तेऽर्थेऽनुकूलं विपक्षे प्रति-कुळं च तर्कमाह--वर्णोचार इति । प्रकटश्वासावर्थश्व प्रकटार्थः परमार्थ इत्यर्थः । यदि स्वाप्नवर्णोचारः परमार्थः स्यालदा पा-र्श्वस्थित्रवणानुभवगोचरः स्यादिति तर्कः ॥ ३ ॥ स्वभावजं ।

यथा स्वप्नस्तथैवेदं जाव्रदव्रे व्यवस्थितम्। आकाशमप्यनाकाशं यथेवेदं तथेव तत्॥ ૭ यथा कचित तथारु चेतनं चतुरं तथा। यथास्थितं तदेवेदं सत्यं स्थिरमिव स्फ्ररत्॥ ረ श्रीराम उवाच । भगवन्स्वप्र एवेदं कथं जाव्रद्वस्थितम्। असल्यमेव सत्यत्वमिव यातं कथं भवेत्॥ ९ वसिष्ठ उवाच। श्रुणु स्वप्रमयान्येव कथं सन्ति जगन्त्यलम्। नान्यानि नच सत्यानि न स्थिराणि स्थितानि च १० अनुभूतानि बीजानि बीजराशाविवाम्बरे। अन्यान्यन्यानि तान्येय समानि न समानि च प्रत्येकमन्तरन्यानि तथेवाभ्युदितानि च। परस्परमद्दष्टानि बहुनि विविधानि च॥ १२

निदासभावबलक हिपतम् ॥ ४ ॥ यदैवं तदा किं तत्राह-तदेति । तदा नैमिरिकाध्यस्तमिन्दकार्ण्यमाकाशमूर्तताशिला-कर्तृकं गीतमित्रादिप्रातिभाषिकार्थतां गतास्तदवच्छित्रचिदा-काशा इव स्वाप्तदेहशब्दादयोऽपि तत्तब्रद्धसंस्कारोपहितचि-दाकाश एव तथा भानतीति सिद्धमित्यर्थः ॥ ५ ॥ ते विदा-काशा एव तथा भान्तु किं ततस्तत्राह-तदिति । यथा न-भसो मूर्तात्मना कचनं नभसो नेतरत् तथा ति बदाकाशकच-नादि यत्स्त्रप्रवेदने जगदाकारं प्रसिद्धं तिश्वदाकाशमेव विदि ॥ ६ ॥ एवं खप्रार्थानां चिदाकाशमात्रतां प्रसाध्य तत्साम्ये-नैव पुरः स्थितानां समाधिदृष्टानां चार्थानां चिदाकाशमात्रते-त्याह-यथेति । तत्समाधिदृष्टम् ॥ ७ ॥ तथाचायं सर्वोऽपि चित एव कचनचमत्कारो नाणुमात्रमप्यचिद्वपं किंचिदस्ती-लाह-तथेति । इदं जगत्सलमिव स्थिरमिव च स्फरइबित तथा चतुरं तचेतनं ब्रह्म स्थितमित्यन्वयः ॥८॥ प्रमाणगम्यस्य जामत्प्रपश्चस्य तदगम्यस्वप्रसाम्यम्युक्तमिति रामः शहते-भगवन्निति । असत्यमेव सत्यत्वं बश्चरादिप्रमाणवेदातां कथं यातं कथं संभवेत् ॥ ९ ॥ अस्खापातत्वक्षक्षरादिमानगम्यता तथापि तक्षतो विमर्शासहत्वेनास्थिरत्वेन च खप्रसाम्यमस्त्ये-वेत्याशयेनोत्तरमाह--शृश्वत्यादिना स्वप्नबदेबात्मनो न्यानि नाप्यात्मवत्सत्यानि स्थिराणि चेत्यनिर्वचनीयान्येवेत्या-त्मसत्त्रयेव स्थितानि चेत्यर्थः ॥ ५० ॥ एवं परस्परं बीजमा-वाद्विरद्धभेदाभेदसमासमरूपलाच खप्तसाम्यमित्वाह-अनुभू-तानीति ॥११॥ कदलीलक्संनिवेशवस्परस्परमन्तरन्तरानन्त्ये-

अन्योन्यं तानि सर्वाणि न पश्यन्त्येव किंचन । जडानीवैकराशीनि बीजानीव गलन्स्यपि॥ १३ ध्योमात्मत्वाम्न गगनं न विदन्ति परस्परम् । अपि चेतनरूपाणि सुप्तानीव निरन्तरम्॥ १४ सुप्ताः स्वप्नजगज्जालमहनि व्यवहारिणः। असुरा निहता देवैस्त स्वप्नजगति स्थिताः॥ १५ अश्वानाम्न गता मुक्ति न जाड्याज्जडतामिताः। न देहचन्तः किं सन्त् विना स्वप्नजगितस्थतेः॥ १६ सुप्ता स्वप्नजगज्जाले स्वाचारव्यवहारिणः । पुरुषा निहताः पुंभिस्ते तथैव व्यवस्थिताः॥ १७ निर्मोक्षा निःशरीरास्ते चेतनावासनान्विताः। **दृष्टं** स्वप्नजगज्जालं विना च क वसन्तु ते 🛭 १८ सुप्ताः स्वप्नजगज्जालव्यवस्थाचारचारिणः। ये हता राक्षसा देवस्त यथैव व्यवस्थिताः॥ १९ एवं ये निहता राम किं ते कुर्वन्ति कथ्यताम्। अन्नत्वान्न गता मुक्ति चेतनान्न दपितस्थताः॥ २० साम्राब्ध्युवींजनं रहयमिदं सर्वे यथास्थितम् । चिरायानुभवन्त्येते यथेमे वयमाहताः॥ २१ तेषां कल्पजगत्संस्था यथासाकं तथैव ताः ।

नावस्थानानुभवादपि मिथ्यालात्स्वप्रसाम्यमेवेलाह--प्रश्येक-मिति । खप्रवत्परस्परमदृष्टलाद्पि तथेल्याह्—परस्परमिति ॥ १२ ॥ तदंवोपपादयति-अन्योन्यमिति । कुसूलस्थवीजा-नीवान्तरेव गलन्खपि ॥ १३ ॥ गलितान्यपि तानि चेतन-रूपाण्येवेति न प्रतप्तखर्परनिपतितजलबिन्दुवद्योमात्मतां प्राप्य शुन्यमेव संपद्यन्ते नापि अस्मदादिवत्परस्परं विदन्ति पर्यन्ति किंतु अज्ञानावृतचेतनरूपलात्रिरन्तरं सुप्तानीव स्वप्नमेवानुभ-वन्तीखर्थः ॥ १४ ॥ तत्र सप्ता जीवाः स्वप्नजगजालं प्राप्य तत्रैव किएते अहिन सर्वव्यवहारिणो भवन्तीति प्रतिजा-नीते-सप्ता इति । प्रतिशातमर्थमसुरमनुष्यराक्षसादीनां ख-प्रहतानां गत्यन्तराभावात्परिशेषानुमानेन साधिषव्यनप्रथमम-सरेषु दर्शयति -असुरा इति सार्धेन ॥ १५ ॥ असुरा देखाः सीप्तिकेन देवैनिहिताः सन्तः खखप्रजगत्येव स्थिताः। यतो ज्ञान नाभावान्मुक्ति न गताः। नापि जडतां पाषाणादिभावसिताः। नापि देहवन्तः संपन्नाः । ईश्शास्ते स्वप्रजगित्थतेर्विना कि सन्तित्यर्थः ॥ १६ ॥ एवं पुरुषा मनुष्या अपि खखप्ररूपे ज-गजाले वासनामिव्यवहारिणः । ते च तत्रैवान्यैः पुंभिनिंहताः सन्तस्तथैव प्रागुक्तासुरजीववत्स्वप्नपरम्परायामेव व्यवस्थिताः ॥ १७ ॥ यतस्तंऽपि ज्ञानाभावात्रिमीक्षा निःशरीराश्रेति न जागरक्षमा वासनामिश्व व्यवहरणशीलाः । ईरशास्तु ते स्तप्त-जगजालं विना क वसन्तु । तेषां खप्नं विना नान्या गतिर-सीलार्थः ॥ १८ ॥ अयमसुरेषु मनुष्येषु च दर्शितो न्यायो राक्षसादिष्वपि योज्य इत्याशयेनाह—सुप्ता इति द्वाभ्याम्

असाकं जगतीसंस्था यथा तेषां तथैव च ॥ परेषां स्वप्नपुरुषास्त प्रवेमे वयं स्थिताः। ये च ते नाम संसारास्तभ्य एकमिमं विदुः॥ २३ ते स्वप्नपुरुपास्तेषां सत्या पवानुभूतितः। आत्मनोऽपि परस्यापि सर्वगत्वाचिदात्मनः॥ २४ यथा ते स्वप्रपुरुषाः सत्यमात्मन्यथा परे। तथापि स्वप्नपुरुषाः सत्यमेव तथैव ते ॥ २५ स्वस्वप्रपुरपौरा ये त्वया दृष्टास्तथैव ते। स्थितास्तत्र तथाद्यापि ब्रह्म सर्वात्मकं यतः ॥ २६ प्रबोधेऽपि हि भिद्यन्ते स्वप्नभावा यथा स्थिताः। तथास्थित्यानुभूयन्ते परब्रह्मतयाथवा॥ २७ सर्वे सर्वातम सर्वत्र सर्वदास्ति तथा परे। यथा न किंचिन्नाकारां न कचिन्न च हन्यते॥ २८ निरन्तरे पराकाशे निरन्ते च विनोदये। निरन्ते चित्तसंघाते निरन्ते जगतां गणे॥ २९ प्रत्याकाशकलाकोशं प्रतिसंसारमण्डलम्। प्रतिलोकान्तराकारं प्रतिद्वीपं गिरि प्रति॥ ३० प्रतिमण्डलविस्तारं प्रतिप्रामं पूरं प्रति। प्रतिजन्तु प्रतिगृहं प्रतिवर्षे युगं प्रति॥ 38

॥ १९ ॥ २० ॥ तेषां स्वस्तप्रक्षिरातुवृत्त्या अस्पदनुभवसा-म्याजाप्रदवस्थेव भवतीत्याह—सादीति । आहताः सत्यत्वा-मिमानिनः ॥ २१ ॥ २२ ॥ तथा चास्मामिरनुभूवमानं जग-सदन्तर्गता वयं च यदि तैर्देष्टास्तर्हि अस्मजाप्रतेषां खप्नो वयं च तेषां खप्रपुरुषाः संपद्यामहे इत्याह—एतेषामिति ॥ २३॥ आत्मनोऽपि परस्य पुरुषान्तरस्याप्यनुभृतितः अनुभवाद्यत-सुल्या अतः सत्या एव तत्सत्तानिमित्तस्याधिष्ठानिदातमनः सर्वगतत्वेन तुल्यलादित्यर्थः ॥ २४ ॥ अपिशस्दो मिन्नकमः । यथा ते स्वप्रपुरुषाः सत्यास्तथा अपरेऽपि मया प्रतिस्वप्रमनु-भूयमानाः पुरुषाः सत्यमेय तथैव ते त्ययापि स्वप्नपुरुषा बोध्याः ॥ २५ ॥ २६ ॥ यथा ते ते स्वप्नभावाः प्रबोधे जागरणे यथा मिधन्ते विशीर्थन्त इत्यनुभूयते तथा स्वप्नकाले स्थित्या स्थिता इन त्येवानुभूयनते । तथाच तद्वाध इव तत्सत्ताप्यनुभववलं छब्धा नापहोतुं शक्येत्यर्थः । अथवा ब्रह्मसत्ताया एव सर्वसत्तातम-कलात्कस्यापि सत्ता कदापि नापक्षोतुं शक्येत्वाशयेनाह— परत्रह्मतयेति ॥ २७ ॥ तथाच प्राक् प्रतिज्ञातं फल्रितमि-त्याह-सर्वमिति । यथा सर्वं जगदाकाशकार्यलादाकाशमेवेति तद्रपेण न क्षिचित्किचिदपि हन्यते तथा प्रथमं विनोदये उत्प-तिश्र्न्ये मध्ये निरन्तरे अप्रे च निरन्ते परमाकाहो ब्रह्मण तत्र निरन्ते असंख्ये चिलसंघाते तेषु चासंख्ये जगतां गणे तत्रापि प्रत्याकाशं तत्रापि प्रतिसंसारमण्डलं तत्रापि प्रतिभूरा-दिलोकं तत्रापि प्रतिद्वीपं तत्रापि प्रतिगिरि तत्रापि प्रतिमण्ड-लविस्तारं तत्रापि प्रतिप्रामं प्रतिपुरं तत्रापि प्रतिगृहं तत्रापि यायन्तो ये मृताः केचिजीवा मोक्षविवर्जिताः । स्थितास्ते तत्र तायन्तः संसाराः पृथगक्षयाः ३२ तेषामन्तर्जनाः सन्ति जनं प्रति पुनर्मनः । पुनर्मनः प्रति जगज्जगत्प्रति पुनर्जनः ॥ ३३ इत्थमाचन्तरहित एष दृश्यमयो भ्रमः ।

ब्रह्मेव ब्रह्मवित्पक्षे नात्रेयत्तास्ति काचन॥ ३४ कुड्ये नभस्युपलके सलिले स्थलेऽन्त-श्चिन्मात्रमस्ति हि यतस्तदशेषविश्वम्। तद्यत्र तत्र जगदस्ति कुतोऽत्र संख्या तज्ज्ञेषु तत्परमथाज्ञमनःसु दृश्यम्॥ ३५

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पा०जगतत्त्वैक्यप्रतिपादनं नाम त्रिपष्टितमः सर्गः ॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

वसिष्ठ उवाच । ततस्तत्कुचलोल्लासिमालतीमास्यलोचना । ललना ललितालोका लीलया लपिता मया ॥ १ का त्वं कमलगर्भामे किमर्थ मामुपागता । कस्यासि किं प्रार्थयसे क गतासि किमास्पदा ॥ २ विद्याधर्युवाच ।

मुने श्रुणु यथात्रस्वमात्मोदन्तं वदाम्यहम् ।
प्रष्टुमहंसि विस्रव्धमाती करुणयार्थिनीम् ॥ ३
परमाकाशकोशस्य कस्मिश्चित्कोणकोटरे ।
युष्माकं संस्थितं किंचिदिदं तावज्ञगद्गृहम् ॥ ४
पातालभूतलस्यर्गा १हापवरकास्त्रयः ।
कल्पनेका कुमार्यत्र कृता धातृत्वमायया ॥ ५

प्रतिजन्तु प्रतियुगादिकालं च यावन्तो ये जीवा मृता मोक्षवि-वर्जिताः स्थितास्तावन्तः संसाराः पृथकपृथगकक्षया एव स्थिता इति पद्यानमेकान्वयः॥ २८॥ २९॥ ३०॥ ३१॥ ३२॥ तावत्संख्ययापि जगत्संख्याया न विश्रान्तिरित्यनवस्थेव मा-याया भूषणमित्याशयेनाह—तेषामित्यादिना॥ ३३॥ ३४॥ हे राम, कुच्चे नभित उपले पाषाणे सिलले स्थले चान्तिर्हि यतिथनमात्रमस्ति तदेवाशेषविश्वं न जगन्नाम वस्त्वन्तरम् । तत्त्रया सित चितः सर्वगलायत्र तत्र सर्वत्र जगदस्त्येव । अत्र जगित संख्या कुतः । तत्र विश्वं तज्ञेषु परं निर्विशेषं निरित-शयानन्दंकरसं बद्धोव । तुशब्दार्थेऽथशब्दः । अञ्चानां मनः-सु तदेव दश्यप्रपद्यमेवेत्यनर्थस्यमेवेत्यर्थः । तथाच श्रुतिः 'तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्नानस्य' इति ॥ ३५ ॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्याणप्रकरणे उत्तरार्थे निष्ठितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

> पृष्टचेह वसिष्ठेन विद्याधर्या हि विस्तरात्। स्वगेहजम्मकर्माचा निर्वेदान्ता निरूपिताः॥ १॥

प्रासिकं प्रश्नं समाधाय श्रीवसिष्ठः प्रस्तुतकथाशेषमाह— तत इत्यादिना । कुवलयान्युत्पलानीवोहासिनी कटाक्षमाला-मिमीलतीमाल्यानीव प्रसरती लोचने यस्याः सा ललना मया सालोक्य लीख्या कौतुकेन आलपिता संमापिता । पृष्टेति या-वत् ॥ ९ ॥ कस्यासि दुहिता मार्या वेति शेषः । किमास्यद-

१ ततः कुबलबोलासि शति पाठः सुबनः. कुबलयपर्यायः

तत्र द्वीपैः समुद्रैश्च वितं वलयैरिव।
पाटलोत्थं जगल्लक्ष्म्याः प्रकोष्टमिव भृतलम् ॥ ६
अन्ते द्वीपसमुद्राणां सर्वदिकमवस्थिता।
योजनानां सहस्राणि दश हेममयी मही॥ ७
स्वयंप्रकाशसंकरपफलदाम्बरनिर्मला।
चिन्तामणिमयी स्वच्छा स्वच्छायाजितविष्टपा॥ ८
साप्सरोमरसिद्धानां लीलाविहरणावनिः।
संकर्णमात्रसंपद्मसर्वसंभोगसुन्दरी॥ ९
अन्ते तस्या भुवः शैलो लोकालोकोऽस्ति विश्वतः।
भूपीठस्य प्रकोष्टस्य वलयावलनां दधत्॥ १०
कचिन्नित्यं प्रकाशात्मा मृदबुद्धेरिवाशयः।
कचिन्नित्यं प्रकाशात्मा मनः सत्त्ववतामिष्व॥ ११

मावासस्थलं यस्याः ॥२॥ आत्मनः स्वस्या उदन्तं वृत्तान्तम् । एकान्ते विसन्धं परदारसंभाषणम्युक्तमिति शङ्कां वारयति-प्रष्टुमिति । आर्तां आर्तिप्रशमनोपायार्थिनी मां करणया वि-स्रव्धं प्रष्टुमईसीखन्बयः । तथाच सतामार्ताश्वासनमुचितमे-वेति भावः ॥ ३ ॥ तत्र प्रथमं स्वास्पदं वक्तुमुपक्रमते—पर-माकाशेखादिना । कस्मिश्चिदिति । 'पादोऽस्य सर्वा भूतानि' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥ ४ ॥ इहास्मिन्युष्मज्जगह्नहे अपव-रका अन्तर्ग्रहप्रकोष्टाः । अत्र एष्वपवरकेषु धातृत्वं हिरण्यग-र्भता तदाकारया मायया सर्गवैचित्र्यकल्पनाख्या एकैव कुमारी गृहसामिनी कीडार्थं कृतेत्यर्थः ॥ ५ ॥ यतो द्वीपैः समुद्रेश्व वलयेरिव वलितमतएव तद्वर्णैः पाटलं सदुत्थमुन्नतं जगह्नक्ष्म्याः प्रकोष्ठं करमूलमिव स्थितमित्यर्थः ॥ ६ ॥ सप्तानां द्वीपानां समुद्राणां चान्ते सर्वदिकं परित इति यावत् । योजनानां दश-सहस्राणि परिणाहतो दैर्घेण ॥ ७ ॥ तां महीं वर्णयति—ख-यमित्यादिना । स्वयमेव रात्रावि प्रकाशते इति स्वयंप्रकाशा । संकल्पानां सर्वकामानां फलदा । अम्बर्मिव निर्मेला । वि-न्तामणिप्रवुरा । खच्छा नीरजस्का । खकान्त्या जिता विष्टपाः स्वर्गादिलोका यया ॥ ८ ॥ साप्सरसाममराणां सिद्धानां च ली-लाविहरणोचिता अवनिः । सेति पृथक्पदं वा ॥ ९ ॥ अन्ते बहिः प्रान्ते भूपीठलक्षणस्य जगन्नक्षीप्रकोष्टस्य बलयवदावलका परितः स्थितिम् ॥ १० ॥ तं शैलं वर्णयति—कचिदिसा-

कुबलशब्दोप्यस्तीति यथावस्थितोपि संगच्छत एव.

| कचिदाहादजन्कः साधूनामिव संगमः। | |
|---|----|
| कचितुद्वेगजनको मुर्खेरिय समागमः॥ | १२ |
| कचित्रकटसर्वार्था मनो मतिमताभिष । | |
| कचिद्त्यन्तगहनो मूर्खश्चोत्रियचित्तवत्॥ | १३ |
| कचिदप्राप्तसोमांशुः कचिदप्राप्तसूर्यभाः। | |
| कचिल्लोकमयस्तेन कचिदाशून्यदिकटः॥ | १४ |
| कचिद्देवपुरव्याप्तः कचिद्देत्यपुरान्वितः। | |
| क्रचित्पातालगहनः क्रचिच्छुक्रोध्वेकन्धरः॥ | १५ |
| कचिच्छ्रभ्रभ्रमहृधः कचित्सानुमनोहरः। | |
| क्रचिच्छुङ्गदीखाकान्तवैरिश्चनगरान्तरः॥ | १६ |
| क्रचिच्छुन्यमहारण्यवहत्कल्पान्तमारुतः। | |
| कचित्युष्पवनोद्यानगायद्विद्याधरीगणः॥ | १७ |
| क्रचित्पातालगम्भीरगुहाकुम्भाण्डभीषणः। | |
| कचिन्नन्दनसोद्यमुन्याश्रममनोरमः॥ | १८ |
| क्रचिद्शयमत्ताभ्रः क्रचिहुर्लभवारिदः। | |
| कचिद्रभेगुहाभ्वभ्रगहनोपान्तमण्डलः॥ | १९ |
| कचित्रञ्जब्धजनाक्षेपसमुत्सादितभूतभूः। | |
| किंबहास्तव्यजनतासीजन्यजितविष्टपः॥ | २० |
| कचित्रित्यं वहद्वाताजातस्थावरजङ्गमः। | |
| क्षचित्सर्वश्वयोन्मुकस्थिरस्थावरजङ्गमः॥ | २१ |
| कचिन्महामरुमस्नमुक्तभांकारभीषणः। | |
| क्वित्कणत्कमलिनीमत्तसारसभूषणः॥ | २२ |
| कचित्सलिलकहोलजलदोहासप्रेर्धरः। | |
| क्विन्मत्ताप्सरोदोळाविळासजनितसरः॥ | २३ |
| कचित्पिशाचकुम्भाण्डवेषिताचेष्टितकदः। | |
| कविद्विद्याधरीसिद्धनृत्यगीतसरित्तदः॥ | રક |
| | |

दिना ॥ १९ ॥ १२ ॥ १३ ॥ लोकमयो जनप्रचुरः । कवित्तु बहिर्मांगे तेन लोकेनाशून्यानि दिक्तटानि यस्य ॥ १४ ॥ पा-तालमिव गहनो दुष्प्रवेशः ॥ १५ ॥ श्रृङ्गशिखाकान्तवैरिधन-गरान्तर इत्योन्नत्यातिशयोक्तिः ॥ १६॥ १७॥ पातालग-म्भीरासु गुहासु कुम्भाण्डैः पिशाचभेदैर्भीषणः ॥ १८ ॥ अ-क्षयाणि सदा स्थितानि मत्तानीव गर्जनपराण्यभ्राणि यस्मिन् ॥ १९ ॥ जनपद्धोमेण शुब्धानां संचलितानां जनानामाक्षेपैः खप्रकुठारादिप्रहाँरः समुत्सादिता भूतभुवी रक्षःपिशाचादिनि-बासा यस्मिन् । बास्तव्यजनसमूहानां सौजन्येन जितन्निविष्टपः ॥२०॥नित्यमभीक्ष्मं वहद्भिर्वातैरेव आजाता उद्भुता अजाता वा स्थावरजङ्गमा यत्र । विषशस्त्रापिरोगादिनिमत्तमेदजैः सवैः क्षयैरुन्मुका अतएव चिरं स्थिराः स्थावरजङ्गमा यत्र ॥२१॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ पिशाचैः कुम्भाण्डेश विष्टितानि अतएव आन्देष्टानीव दिक्कटानि यस्य ॥ २४ ॥ उद्वर्षतामम्भोदानां सिहिक्षणैर्वाहुमिर्छठलटो विशीर्यमाणवप्रः ॥२५॥ कमलिन्याः कोशस्यावकस्यभ्रमरनेत्रेरारब्धध्यानं अर्थात्सरोजिनीमण्डलं यत्र । स्वर्गात्रनानामप्सरसां सिद्धसुन्दरीणां च दन्तासाम्बू-

| कचितुद्वषेद्रभोदसरिद्वाहुलुठसटः। | |
|--|-----------|
| कवित्सततगानीतनीतनानाभ्रसत्पटः॥ | २५ |
| कचित्कमिलनीकोदावक्रस्थाध्यानमण्डलः। | |
| क्रित्स्वर्गाङ्गनासिद्धसुन्दरीदन्तमण्डनः॥ | २६ |
| कवित्रपद्दिनकरजनताचारसुन्दरः। | |
| क्रविकेशतमोगेहनृत्यन्मत्तनिशाचरः॥ | २७ |
| कचिदुत्पतदुत्पाततया नृश्यज्ञनावनिः। | |
| कचित्साराज्यसंपत्त्या श्रोद्भवतपुरमण्डलः॥ | २८ |
| कचिदत्यन्तनिःश्न्यः कचिज्ञनपदावृतः। | |
| कचिच्छ्रमान्तगम्भीरः कचित्पातालभीषणः ॥ | २९ |
| कचिद्वहत्कल्पतरुः कचिन्निर्जलजङ्गमः। | |
| कचिन्महाकरिकुलः कचिन्मत्तहरिव्रजः॥ | ३० |
| कवित्रिर्भूतमुद्यातः कविदुन्मत्तराक्षसः। | |
| कचित्करञ्जगहनः कचित्तालमहायनः॥ | 38 |
| कचिद्योमोपमसराः कचिद्दीर्घमरुखलः। | |
| कचित्रित्यस्रमत्पांसुः कचित्सर्यर्तुकाननः॥ | ३२ |
| शिखरेषु शिलास्तस्य सामान्याचलसंनिभाः। | |
| सन्ति सुस्थितकल्पाम्ना रत्नमय्योऽम्बरामला | : ३३ |
| क्षीरोदकार्कगौरीणां वनस्कन्धीकसामिव। | 200 |
| विश्राम्यन्त्यनिशं यासु हरयो हरियोनयः॥ | રૂક |
| तासामुत्तरिंग्भागे पूर्वश्टङ्गहीलोदरे । | 31. |
| निवसाम्यहमशीणवज्रसारसमत्वि ॥ | રૂપ |
| विधिना तत्र यद्धासि वसाम्युपलयक्षके। | 20 |
| अत्रासंख्या मुने याता मन्ये युपगणा मम ॥ | 38 |
| म केवलमहं बद्धा यावद्धर्तापि तत्र मे। | 3 |
| बद्धः सार्यतने पद्मकुङ्मले पट्पदो यथा॥ | <i>३७</i> |

कैमण्डयतीति तथोक्तः । नागवल्लीवनभूषित इतियावत् ॥२६॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥ निःश्रन्यः श्रन्यएव । जलपूर्णेः अञ्चान्तैर्ग-म्भीरः शुर्केस्तु पातालभीषणः ॥ २९ ॥ मत्ता हरिवजाः सिंह-वानरादिसमुहा यस्मिन् ॥ ३० ॥ निर्भृतं प्राणिनिकायश्चर्यं यथा स्यात्तथा उद्यातः । वृथोन्नत इति यावत् ॥३१॥ नेर्मल्य-विस्तारादिभित्र्योमोपमानि सरांसि यस्मिन् । सर्वे ऋतवो यत्र तथाविधानि काननानि यस्मिन् ॥ ३२ ॥ तस्य वर्णितुरूपस्य लोकालोकश्रहस्य शिखरेषु सामान्याचलाः सह्यमलयादयस्त-त्संनिभा रह्ममध्यः शिलाः सन्ति ॥ ३३ ॥ क्षीरमिवोदकमि-वार्क इव च गौरीणामबदातानां यासां शिलानां पृष्टेषु वने स्कर्न्धीकसां महातहणां स्कन्धेध्विव अन्येषां हरीणां योनयः कारणभूताः राषुत्रपात्रा इति यावत् । हरयः सिहवानरादयो विश्राम्यन्ति ॥ ३४ ॥ तासां बिलानां मध्ये तस्य गिरेहतर-दिग्भागे पूर्वदिकस्थस्य श्वन्नस्य या शिला तदुदरे अहं निव-सामीति किमासदा इति प्रश्नस्योत्तरम् ॥३५॥३६॥ कस्यासी-त्यादिप्रश्नानामुत्तरं वक्तमारभते—न केवलगित्यादिना ॥३०॥ तेन सार्ध मया भन्ना शिलाकोटरसंकटे। अनुभूता चिरं कालमत्र वर्षगणा गताः॥ 36 अद्याप्यात्मैकदोषेण नहि मोक्षं लभावहे। चिरं तत्रैव तिष्टावस्तयैघावद्धभावनी ॥ 39 पाषाणसंकटे तिसन्बद्धावाद्यां न केवलम्। बद्धो याचदशेषेण परिवारोऽपि तत्र नौ॥ 80 पुराणपुरुषो बद्धो द्विजस्तश्रास्ति मे पतिः। पकस्थानात्र चलति जीवन्युगरातान्यसौ॥ કશ आबाल्याद्वह्मचारी च श्रोत्रियः पाठकोऽलसः। पकान्त पक पवास्तेऽजिह्मवृत्तिरचापलः ॥ કર अहं व्यसनिनी भार्या तस्य वेदविदांवर। न निमेषं समर्थासि तं विना देहधारणे॥ 83 शृणु तेन कथं ब्रह्मन्भायीहं समुपार्जिता। कथं वृद्धिमयं यातः स्नेहोऽस्माकमकुत्रिमः॥ 88 तेन जातेन मञ्जूर्या घालेनैय सता पुरा। किंचिज्येन सतैकेन तिष्ठतात्मालयेऽमले॥ ४५ श्रोत्रियत्वानुरूपेण जाया मे जन्मशालिनी। कुतः संभवतीत्येव निर्णीय चिरचिन्तया ॥ 38 स्वयमेवानषद्याङ्गी तेन तामरसेक्षण। उत्पादितासि नाथेन ज्योत्स्रेय दाहीनाऽमला ४७ मानसा मनसीभार्या मन्दरोत्तमसुन्दरी। ततो वृद्धि प्रयातास्मि वसन्त इव मञ्जरी॥ 86 सहजाम्बरसंखन्ना भृतानां चित्तहारिणी। पूर्णेन्दुबिम्यवदना धौरिवामलतारका ॥ 86 कोरकोश्वस्तनभरा समग्ररसशालिनी। **लतावरवनेनेव करपल्लवशालिनी** ॥ 40 सर्वस्य जन्तुजातस्य नित्यं हृद्यहारिणी।

३८ ॥ एको दोपः कामस्तेन । आबद्धा भावना ममता याभ्यां तो ॥ ३९ ॥ परिवारः पुत्रपात्रभृत्यादिः परिजनः । नी आवयोः ॥ ४० ॥ असा मे पतिर्युगशतानि जीव- भपि एकस्थानात्स्वासनात्र चलति नीलष्टति ॥ ४९ ॥ शो- त्रियः स्वाप्यायशीलः । अत्यवान्येषां पाठकोऽपि । अजिद्धा- मृतिः ऋजुः । अचापलः इन्द्रियचापलश्च्यः ॥ ४२ ॥ स्वयं तु न तथेस्थाह—अहमिति ॥४३॥ अस्माकं आवयोः । 'अस्मदो द्वयोध्व' इति बहुवचनम् ॥४४॥ स्वजन्मप्रकारमाह—तेनेति ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४० ॥ ४८ ॥ स्वां वर्णयेति—सह- जेस्यादिना ॥४९॥ रस्यन्त इति रसा गुणास्तः शालिनी॥५०॥ हरिष्या इन तारे वीर्षे नयने यस्याः ॥ ५९ ॥ व्यसनिनीति यदुक्तं तद्विष्णोति—लीलेस्यादिना ॥ ५९ ॥ व्यसनिनीति यदुक्तं तद्विष्णोति—लीलेस्यादिना । नच तृप्ता भोगेष्वस्थिः ॥ ५२ ॥ समदर्शिभर्तृमनःकल्पनामयस्वाहक्ष्यस्यलक्ष्ययेः प्रियासस्वीव समदर्शिनी । अत्यव मोहजालानामभिनापि संप्रवासस्वीव समदर्शिनी । अत्यव मोहजालाने स्वत्वस्व सम्बन्याने सम्बन्यस्व सम्बन्यस्य सम्बन्यस्व सम्बन्यस्य सम्बन्यस्य सम्बन्यस्व सम्बन्यस्य सम्बन्यस्य सम्बन्यस्य सम्व

हरिणी तारनयना मदनोन्माददायिनी ॥ ५१ लीलाविलासैकरता हेलावलितलोचना । गेयवाद्यप्रिया नित्यं नच तृप्तानुरागिणी ॥ 42 सौभाग्यभोगपरमा **लक्ष्म्यलक्ष्म्योः प्रिया सन्ती** । अनन्या मोहजालानामखिन्ना संपदापदोः॥ ५३ न केवलमहं गेहं धारयामि द्विजनमनः। यावब्रेलोकासदनमिदमङ्ग विभर्म्यहम्॥ 48 अहं कुलकरी भार्या कलत्रभरणक्षमा। त्रैलोक्ययृहसंभारधारणैकभरोद्वहा ॥ 44 अथाहं तरुणी जाता समुद्धिषोश्रतस्तनी। लतोल्लक्कुलुच्छेव विलासरसशालिनी॥ ५६ पतिर्मा दीर्घसुत्रत्वाच्छोत्रियत्वात्तपोरतः। कयाप्यपेक्षयाद्यापि न विवाहितवानिमम्॥ 40 तेन यौवनसंपन्नविलासरसद्यालिनी। तं विना व्यसनेनाहं दह्येऽग्नाविव पश्चिनी ॥ 46 शीतानिलविलोलासु नलिनीसु निरन्तरम्। अङ्गदाहमवाप्रोमि पृताङ्गारस्थलीप्विच ॥ 49 उद्यानावनयः सर्वाः पूर्णाः कुसुमवर्षणैः । संपन्नास्तप्तसिकताः शून्या मे मरुभूमयः॥ ફ૦ जलकञ्जोलकहारकमलोत्करकोमलाः। सरस्यः सारसारावसरसा मम नीरसाः॥ ६१ अहं पुष्करमन्दारकुमुदोत्करमालिता। भृशं दाहमवाप्नोमि कण्टकेप्विव दोलिता॥ ६२ कुमुदोत्पलकहारकदलीतल्पपालयः । मद्द्रसङ्गमाद्रीप्यमर्मरा यान्ति भस्पताम्॥ ६३ यत्कान्तमुचितं स्वादु विचित्रं चित्तहारि च। तदालोक्य भवाम्यन्तर्वाप्पपूर्णायतेश्रणा ॥ દ્દપ્ત

क्यधारणमि मद्धीनमेवेलाह—न कैवलमिति ॥ ५४ ॥ कुलकरी पुत्रपात्रपरम्पराप्रसवयोग्या । कलत्रं पोष्यवर्गस्तद्भर-णक्षमा ॥ ५५ ॥ उहलहुलुच्छा उहसरफलपुष्पगुच्छा लतेव ॥ ५६ ॥ इमामेवंगुणलक्षणामि मां पतिः सः बाद्मणो दीर्घ-सूत्रलादशीप्रकारितास्त्रभावात् कयापि वश्यमाणया मोक्षा-पेक्षया न विवाहितवान् ॥ ५० ॥ अविवाहे त्वं कथं तस्य भार्या तत्राह—तेनेति । तेन सह यावनेन संपन्नो यो भोग-विलासविषयो रस इच्छा तच्छालिनी । अहं स्वमनोरथेनैव भतीरं वृतवतील्याः ॥ ५० ॥ पृतानां भस्ममार्जनेन संधुक्षि-तानामन्नाराणां स्थलीप्विव ॥५९॥ तप्ताः सिकता यास्र तथा-विभा महभूमयः संपन्नाः॥६०॥ कहाराणां पद्मभेदानां कमलानां चोरकरः कोमलाः सुस्त्रसर्थाः ॥ ६९ ॥ दाहशान्तये पुष्करा-दिकुसुमोर्करः सस्वीमिदांलाशय्यादिरचनेन मालिता दोलिता विद्यितेव ॥ ६२ ॥ अन्नसन्नमान्निक्ताक्षणेण तापोष्मणा शुष्काः प्रथमं ममरा भूला ततो मस्मतां यान्ति ॥६३॥६४॥

खसनानलसंतप्ताः पतन्तो बाष्पिबन्दवः । छमच्छमिति मज्जन्ती कमलोत्पलपिक्कषु ॥ ६५ कदलीकन्दलीस्कम्धदोलान्दोलनलीलया । लाखितोद्यानखण्डेषु मुखमाच्छाद्य रोदिमि ॥ ६६ तुषारिनकराकीण कदलीदलमण्डपम् । पद्याम्यूष्माणमुज्झन्तं खदिराङ्गारभीषणम् ॥ ६७ निक्तनीनालदोलासु सारसी सारसाश्रिताम् । दीनानना विलोक्यान्तर्निन्दामि निजयौवनम् ६८

रम्ये रोदिमि मध्यस्थे पदार्थे यामि सौम्यताम् । हृष्याम्यशोभने दीना न जाने किमहं स्थिता ॥६९ हृण्याने कुन्दमन्दारकुमुदानि हिमानि च । मया कामाग्निदग्धानां भस्मानीव दिशं प्रति ॥ ७० आनीलपल्लवमृणाललतोत्पलानां कहारकुन्दकदलीदलमालतीनाम् । श्रय्या ममाङ्गचलनेन विशोषयन्त्या व्यर्थे गतानि नथयौषनवासराणि ॥ ७१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पा० विद्याधरीव्यसनवर्णनं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

पत्रबष्टितमः सर्गः ६५

विद्याधर्युवाच ।
अध कालेन महता सोऽनुरागो विरागताम् ।
प्राप्तो मम दारकान्तौ विरसः पहावो यथा ॥ १
वृद्ध एकान्तरसिको नीरसः केहवर्जितः ।
भर्ताऽजिद्यमतिमीनी किं मन्ये जीवितेन मे ॥ २
वरं वैधव्यमावास्याद्वरं मरणमेव च ।
वरं व्याधिरथापद्वा नाहृद्यप्रकृतिः पतिः ॥ ३
एतावजन्मसाफस्यं सौभाग्यमविखण्डितम् ।
रसिकः पेदालाचारो यन्नार्यास्तरुणः पतिः ॥ ४
हता नीरसनाथा स्त्री हताऽसंस्कारिणी च धीः ।
हता दुर्जनभुक्ता श्रीर्हता वेदयाहृता च हीः ॥ ५
सा स्त्री यानुगता भर्जा सा श्रीर्यानुगता सता ।

छमच्छमीति प्रदीपनिपतत्सार्चिः सेहबिन्दुनिपातशब्दसादश्य-द्योतनार्थमव्यक्तानुकरणम् । 'डान्वि वहुलं द्वे भवतः' इत्यत्र बहुलप्रहणाद्भित्वे 'अव्यक्तानुकरणस्यात इताँ' इति उत्तरदछा-च्छब्दस्य परहरम् । 'नाम्नेडितस्यान्सस्य तु वा' इति निषेधस्तु छान्दसलान्नेति बोध्यम् । मज्जन्ति अन्तःप्रविशन्ति खो-ध्मणा कमलोत्पलानि झटिति शोषयन्तः खयमपि शुध्य-न्तीति यावत् ॥ ६५ ॥ उद्यानखण्डेषु सखीभिः कदलीकन्दली-स्कन्धकरिपतपत्नवदोलामु आन्दोलनलीलया लालिता सती ता-भ्यः खदुःखं वक्तुमशक्ता लजया मुखमाच्छाय रोदिमि ॥६६॥ ॥ ६७ ॥ सारसेन भर्त्रा आश्रितां संगताम् ॥ ६८ ॥ अशो-मने मूर्छाजडीभावादी हृष्यामि यतस्तदानीमहं कि स्थितेति न जाने । तथाचाह्र-ताविलये तदूतदुःखस्याननुभवाद्विश्राम्यामी-त्यर्थः ॥ ६९ ॥ दिशंप्रति प्रतिदिशम् । असमासे अद्विर्वचनं **छान्दसम् ॥ ७० ॥ आनीस्रानां तमास्रादिपह्नवानां मृणारुस्र-**तानां उपलानां च तथा कहारादीनां च शय्याः अङ्गचलनेन देहसंयोगेन विशोषयन्त्या मम नवयीवनवासराणि व्यर्थ ग-तानि ॥ ७१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुःपष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

सा धीर्या मधुरोदारा साधुता समदिष्ता ॥ ६ नाधयो व्याधयो नैव नापदो न दुरीतयः । कुर्वन्ति मनसो बाधां दंपत्योरनुरक्तयोः ॥ ७ उत्फुल्लाः कुसुमस्थल्यो नन्दनोद्यानभूमयः । धन्वायन्ते कुनाधानां विनाधानां च योषिताम् ८ सर्व पत्र जगद्भावा यथेच्छं गुणलेशतः । संत्यज्यन्ते प्रमादाचु वर्जयित्वा पति स्त्रिया ॥ ९ स्थिरयोवनया दुःखान्येतानि मुनिनायकः । भुकानि वर्षवृन्दानि पद्य दौर्माग्यज्ञम्भितम् ॥ १० अथ क्रमेण तेनैव सरागो मे विरागताम् । अाययौ हिमदग्धाया नलिन्या इव नीरसः ॥ ११ विरागवासनास्तेन सर्वभावानुरक्षना ।

इह कालेन संप्राप्ते स्वानुरागे विरागताम् । संसिद्धा धारणाभ्यासर्जितामुः सा न्यवेदयत् ॥ १ ॥ शरच्छान्ती हेमन्तारम्मे पहनो यथा निरसः सन् निरा-गतां प्राप्नोति तद्वत् ॥ १ ॥ कीदशविचास्क्रमेण विरागतां प्रा-प्रस्तमाइ-- गृद इलादिना । अजिह्ममतिः ऋजुनितः । कि फलमिति शेषः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ असंस्कारिणी शास्त्रीयसं-स्कारहीना । तथा हीः सरकुठाचाराद्यचिता पुंसां रुजा च वे-इयाभिः पुंश्रलीभिह्ता चेद्धता ॥ ५ ॥ शमदमादिसंपत्त्या मन धुरा या सेव धीः सा बुद्धिः । एवं सेव साधुता या समदृष्टिते-त्यनुषज्यते ॥ ६ ॥ दुष्टा ईतयः 'अतिवृध्दिनावृध्दिः शलभा मूषकाः खगाः । अत्यासन्नाध राजानः षडेता ईतयः स्मृताः' ॥७॥ धन्वायन्ते मरभूमिवदाचरन्ति । संतापयन्तीति यावत् ॥ ८ ॥ अतएव सर्वे मुखनं पतिरेको दुम्खन इत्याह—सर्वे एवेति । जगति प्रसिद्धा भावा गृहक्षेत्रबन्धुधनादयः । गुण-लेशतः गुणाल्पतावशात् प्रमादादनवश्वानाद्वा । तुशब्दो भिन्न-क्रमः । पतिमेकं तुवजयित्वेति ॥ ९ ॥ भुक्तानि मयेति शेषः । वर्षेष्टन्दानीति कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया । दै।-भीरयज्ञिमतं समेति देखः ॥ १०॥ अथवा ममायं भाग्योदयः

तवोपदेशेनेच्छामि मुने निर्वाणमात्मनः॥ अप्राप्तामिमतार्थानामविश्रान्तिधयां परे। मरणेषद्यमानानां जीवितान्मरणं वरम् ॥ १३ स मद्भर्ताध निर्वाणमीहमानो दिवानिशम्। राजा राह्रेव मनसा मनो जेतं प्रबुध्यते ॥ १४ ब्रह्मस्तस्य च मञ्जर्तुर्मम चाह्यानशान्तये। न्यायोपपन्नया वाचा कुरु स्मरणमात्मनः ॥ १५ यदा मामनपेध्यैव स मद्भर्तात्मनि स्थितः। तदा विरागो वैरस्यमनयनमे जगत्स्थितिम्॥ १६ संसारवासनावेशवर्जितासि ततोऽवसम्। निबच्यामिमतां तीवां व्योमसंचारधारणाम् ॥ १७ अर्जियित्वा तथा व्योम्नि गति धारणया मया। अभ्यस्ता धारणा भूयः सिद्धसङ्गफलप्रदा ॥ ततः स्वजगदाधारपूर्वापरनिरीक्षया। स्थिताहं धारणां बद्दा सापि सिद्धि समागता १९ अथ स्वजगतो दृष्टा हृद्यं तस्य बाह्यगा। इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमद्दारामायणे वाल्मीकीये मोक्षो०निर्वाण०उ०पाषाणो० विद्याधरीजन्मव्यवहारवर्णनं नाम पश्चषष्टितमः सर्गः६५

अहं दृष्टवती स्थूलां लोकालोकिगरेः शिलाम पतावतापि कालेन दंपत्योरावयोर्भुने । परं द्रष्टुमभूदिच्छा न काचन कदाचन ॥ २१ मज्ञाती केवलं शुद्धवेदार्थैकान्तचिन्तया। नच यातं नचायातं वेत्त्यहो विगतैषणः॥ २२ तेनासौ मत्पतिर्विद्वानिप न प्राप्तवान्पदम्। अद्य सोऽहं च बाञ्छावः प्रयत्नेन परं पदम् ॥ २३ तदेतामर्थितां ब्रह्मन्सफलां कर्तुमईसि। महतामार्थेनो व्यर्था न कदाचन केचन ॥ २४ भ्रमन्ती सिद्धसेनासु सदा नभि मानद्। त्वरते नेह पर्यामि घनाशानद्यानलम्॥ २५ ब्रह्मन्विनेव करुणाकरकारणेन सन्तो यतोऽधिजनवाञ्छितपूरणानि । कुर्वन्ति तेन शरणागततामुपेतां मामईसीइ न तिरस्करणेन योक्कम्॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

यसिष्ठ उवाच। अधेत्युक्तवती पृष्टा सा मया कव्पितासना ।

एवेत्याशयेनाह-अथेत्यादिना । ऋमेण नी(सः सन् विरागता-माययौ ॥ ११ ॥ तेनोक्तेन क्रमेण विरागवासनाः प्राप्य सर्व-भावेषु तदनुरजना यस्यास्तथाविधा अहं संप्रति तवीप-आतमनो निर्वाणमिच्छामि ॥ १२ ॥ ईहरोऽपि लाहशोपदेशुलामेऽपि विश्वान्तिमनिच्छन्खा जीवनं व्यर्थमपि तु मरणमेत्र वरमित्याशयेनाह--अप्रा-प्तेति । मरणैर्मरणतुल्यदुःखप्रवाहैरुह्यमानानाम् ॥१३॥ सह्ध-र्मचारिणीनां श्लीणां भर्तृसमानशीलीचित्याच भन्नी सह त्या-हमुपदेश्येत्याह--स इति द्वाभ्याम् । यथा राजा राहेव सहा-येन राजानं जेतुं प्रबुध्यते नीतिशास्त्रोक्तोपायैर्जागरूको भवति तद्वत्स मम मर्तापि मनसैव मनो जेतुं प्रयुष्यते । विवेकोपाय-जागरूको वर्तत इत्यर्थः ॥ १४ ॥ आत्मनः स्मरणं विस्मृतकः ण्ठचामीकरवत्प्रबोधनम् ॥ १५ ॥ मां अनपेक्ष्य मदपेक्षां वि-हायैवेखर्यः । विरागो जगतिस्थातं वैरसं नीर्सतामनयत् । नयतेर्द्विकर्मता प्रसिद्धा ॥१६॥ इदानी खस्याः धारणाभ्यास-स्थिरचित्तत्वेनाप्यपदशाधिकारसंपत्तिरस्तीत्याशयेनाह—संसा-रेति । व्योमसंचारसिदिदां प्राग्वणितां खेचरीमुद्रास्यां धार-णाम् ॥ १७ ॥ सिद्धसत्रः सिद्धैः सह संवादादित्र्यवहारस्त-रफलक्रदा । अतएवान्यैरगम्यमपीदं रहःस्थानमागख स्वया सह संवदाशीति भावः॥ १८ ॥ खजगत्खावासत्रहाण्डसादा-कात्स्य पूर्वापरभागधटिताकारस्य शास्त्रदशा योगदशा च कर-तलामळकवित्ररीक्षया तदाकारां भावनां बद्धा स्थिता । साधाः । सनस्थेन मया तस्मिन्नेव नर्भातः कल्पितामनस्थिता इति आन

संकविपतासनस्थेन स्थितेन नभसि स्थिता॥

Ş

रणापि मे तदवयवसर्वभूतजयक्रमेण सिद्धिमागता ॥ १९ ॥ हृदयमन्तर्गतसर्ववस्तु दृष्ट्वा तस्य बाह्य निर्गता अहं प्राव्विनितां स्रजगद्गर्भामेतद्रह्माण्डस्थस्य लोकालोकगिरेः शिलां दृष्टवती ॥ २० ॥ प्राक्त कदाप्ययं ब्रह्माण्डो मया मत्पतिना वा न दृष्टस्तदिच्छाभावादित्याह-एतावतेति ॥ २१ ॥ शुद्धवेदार्थो धर्मः परमात्मा च तदेकान्तचिन्तया । यातं गतं कालं अयातं वर्तमानं भविष्यत्कालं तदन्तर्गतपदार्थान्त्रह्मतस्वं च न वेति ॥ २२ ॥ तेन तत्त्व।वेदनेन । अद्य लदुपदेशथवणमननाह-प्रयक्षेन परं पदं ज्ञातुमिति रोपः ॥ २३ ॥ महतां भवादशानां संनिधी। अधिनः पुरुषार्थलिष्सवः । अप्यर्थे चनशब्दी ॥२४॥ अन्य एव सिद्धा इममर्थं कृतो न प्रार्थितास्तत्राह -- भ्रमन्ती इति ॥ २५ ॥ इत्थं स्वयुत्तान्तमसिलं जिज्ञासितं च निवेश शरणं प्रतिपद्य स्वस्या अनुपेक्षणीयतां प्रार्थयते-व्यव्यन्ति। यतः कारणात्सन्तो विनेव कारणेन अधिजनवाञ्छितप्रणानि कुर्वन्ति तेन कारणन शरणागततासुपेतां मां तिरस्करणेनोपे-क्षणेन योक्तं नार्हीस । अधिनामुपेक्षाया एव तिरस्कारलादिति भावः ॥ २६ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणसारपर्वप्रकाशे निर्वाणप्रकरण उत्तरार्धे पञ्चपष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

कथं स्थितिरनाकाशे गृहं वाते शिखोदरे । पृष्टवेति तया तत्र जगहिसार ईथेते ॥ १ ॥ प्राग्वणिते ब्रह्माण्डोध्वनभित स्थितन तत्रापि संकल्पिता- 3

कथं शिलोदरे बाले त्वविधानां भवेत्स्थितिः। कथं संचलनं तत्र किमर्थं तत्र चास्पदम्॥ विद्याधर्युवाच।

मुने यथेदं भवतां जगत्स्फारं विराजते। तथासाकं जगत्तत्र सर्गसंसारयुक् स्थितम्॥ स्फूरन्ति नागाः पाताले तिष्ठन्ति भूवि पर्वताः। आप्रदेखलखलायन्ते वहन्ति ब्योम्नि वायवः॥ अर्णवा अर्णसा भान्ति यान्त्यन्तः शनकैः प्रजाः। भूतान्यजस्रं जायन्ते म्रियन्तेऽविरतं यथा॥ बान्ति बाता वहन्त्यापो भान्ति चाभान्ति खे सुराः। तिष्ठन्त्यगाः समुद्यन्ति प्रहा यान्ति महीं त्रूपाः ६ देवासुरमनुष्याणां व्यवहारपरम्पराः । लोलाः प्रवृत्ता आकल्पमासमुद्रमिवापगाः ॥ दिनपश्चानि भूलोकसरस्याकस्पमानभः। **छोलाभ्रालीनि फुल्लानि मीलितोन्मीलितान्यलम् ८** चन्द्रचर्चाश्चतुर्दिकं चन्द्रनेनात्मतेजसा । रचयवात्रिरोहिण्योस्तमो हन्त्यपि हद्गतम्॥ स्वद्शास्वादनरता वातयत्रसुचारिता । रोदःसमानि सूर्याख्या दीप्यते दिवि दीपिका ॥ १० ब्रह्मसंकव्पितो रुद्धो वातसंचारचारिभिः।

ग्वर्णितप्रकारेण खश्रुतान्तसुक्तवती सा अथानन्तरं पृष्टा ॥१॥ कि पृष्टा तदाह--कथांमति । निरवकाशे शिलोदरे शरीरादि-मतीनां लद्विधानां स्थितिः कथं भवेत् । संचलनं च कथं तत्र आसादं गृहं च ते किमर्थं किंप्रयोजनकम् । यत्र प्रवेश एवासंभावितस्तत्रेदं सर्वमत्यन्तासंभावितमित्यर्थः ॥ २ ॥ नैताबदेव लया असंगावितं तत्रास्तीति संगावनीयं किलीदशं जगदन्तरमपीति विद्याधरीत्रश्रस्योत्तरमाह-मुने इति ॥ ३ ॥ तरेव प्रपश्चयति — स्फुरन्तीत्यादिना । छलछलायन्ते इत्यव्य-क्कच्चन्यनुकरणम् ॥ ४ ॥ अर्णसा उदकेन । यान्ति गमना-दिना व्यवहरन्ति । यथा अत्रेति शेषः ॥ ५ ॥ नक्षत्रादि-हरेण भान्ति । खस्वशरीराकारेण आभान्ति ॥ ६ ॥ 🔸 ॥ आकर्षं कालतः । आनमो देशतः । अमिविधावाडौ । लोलान्यभ्राण्येवालयो भ्रमरा येप तथाविधानि द्मानि भूळोकसरति फुहानि अलं भीलितान्युरमीलितानीति तदन्तःपातिपदार्थकेसराद्यभित्रायम् ॥ ८ ॥ चन्द्रः अहमते-जसा चन्द्रिकालक्षणेन चन्द्रनेन चतुर्दिकं चर्चाः लेपनानि रच-यन्सन् रात्रेः रोहिण्याश्च हृदूतं बहिर्गतमपि तमः हन्ति ॥९॥ स्वीयदशदिग्लक्षणाया दशाया वर्तिकाया आस्वादने दवन्नहो-पभोगे रता बातलक्षणेन यन्त्रण सुचालिता परितो भ्रमिता रोदशी बावाभूमी तहक्षणे सदानि गृहे ॥ १० ॥ इदानी रो-दस्या अमता उयोतिश्वकण घरदृयन्त्रतया रूपयति - ब्रह्मेति द्वाभ्याम् । खे ऋक्षाणां चकं ज्योतिश्वकरूपो गुणरावतीत इति गुणावती घरधो विवर्तते अमति । सच विवर्तमानधर्वार्वधमः

खेऽनिशं चक्रमृक्षाणां गुणावतीं विवर्तते ॥ ११ भृततण्डलमास्येः पिनष्टि भ्रुवकीलकः। नियत्या चलितो रोदःकपाटाम्भोदघर्घरः॥ १२ द्वीपान्धिशंक्षेर्भृषीठं विमाननगरेर्नभः। दैत्यदानवनागीर्घः पूर्णे पातासमण्डसम् ॥ १३ कुण्डलं त्रिजगहास्म्या नीलं भूतलमण्डलम्। स्थितं चञ्चलमाचारचञ्चलायाः स्फुरन्मणि ॥ १४ बुद्धादिरहितां स्पन्दसंविदं वायवीमिष । स्थावरं जंगमं चैव सुक्ष्ममादाय जायते ॥ १५ मुनिर्मीनैर्घरा वार्भिर्माहतैः कपिचापलम् । आकादीरवकादित्वं तेजोभिर्भासनं श्रितम् ॥ १६ बुक्षोर्व्यब्ध्यद्भिखचराः प्राणिनोन्तःस्फुरन्त्यलम् । मृतिजन्मोन्मुखाः कीटसुरासुरजलौकसः॥ ससुरासुरगन्धर्वाः कालः कलयति प्रजाः । दोर्भिः कल्पयुगाब्दैश्च स्वपशूनिव पालकः ॥ १८ अनन्तविषुलागाधगम्भीरे कालसागरे । उत्पत्योत्पत्य लीयन्ते ते त्वावर्तविवर्तया ॥ १९ चतुर्वशविधा वातवेश्विता भूतपांसवः। नाशाकाशे विलीयन्ते शरदम्भोदलीलया ॥ २० भूवनं बोधयन्ती द्यौधन्द्रार्ककरचामरैः।

तलक्षणतण्डलमास्रष्टेः स्रष्टिकालमारभ्य पिनष्टि । केनासी शि-ल्पिना निर्मितस्तमाह--- ब्रह्मसंकल्पित इति । कैरयं विष्टब्ध-स्तानाह । वातसंचारचारिभिर्वातरिमभिः रुद्धः अवष्टब्धः । किसन्कीले रुद्धस्तमाह—ध्रवकीलक इति । रोदस्योः कपाट-बित्पधानोद्घाटनस्वभावेरम्मोदैर्धर्घरो ध्वनन् ॥ ११ ॥ १२ ॥ तत्राप्यत्रेव भूरादिलोका यथोचितं द्वीपपर्वतादिभिः पूर्णाः स-न्तीत्याह--द्वीपेति । विमानसंनिवेशरचितैर्नगरैर्नभः पूर्णम् ॥ १३ ॥ तत्रापि नीलं भूतमण्डलमाचारचञ्चलायास्त्रिजग-ह्रक्षम्याः स्फुरन्मणिचश्चलं कुण्डलमिव स्थितम् ॥१४॥ तत्रापि स्थावरं जक्रमं चैव प्राणिजातं बुद्धादिरहितां बाह्यां वायवीं कियामिवे आन्तरी सूक्ष्मां प्राणाख्यां स्पन्दसंविदमादाय जा-यते जन्मादिविकराँष्ठभते ॥ १५ ॥ तत्रापि मुनिर्मीनेर्मुनि-कर्मभिः श्रितः । घरा समुद्रादिवार्भिः श्रिता । मारुतैः कपिव-चापलं श्रितम् । आकाशस्तत्तदुपाधिमिकेषपाध्य**नुरूपमवका**-शित्वं त्रितम् । सर्ववस्तूनां स्वभावा नियतासुल्या इत्यर्थः ॥ १६ ॥ वृक्षचरा मर्कटादयः उर्वीचरा मनुष्यादयः अविध-चरा मत्स्यादयः अदिचरा मृगादयः खचराः पक्षिदेवादय-स्तत्राप्यन्तरालं स्फुरन्ति ॥ १७ ॥ कालः सुरादिसहिताः प्रजाः पालकः पुरुषः स्वदोभिः स्वपञ्जनिव कल्पयुगवर्षादिलक्षणै-दें[भि: कलयति पालनादिना उपभुद्धे ॥ १८ ॥ ते सुरादयो यादोगणाः कालसागरे आवर्तविवर्तया कालगत्या उत्पत्नोत्पत्य ळीयन्ते ॥ १९ ॥ नरयत्यस्मित्रिति नाशः तथाविधे अव्याक्र-ताकाशे ॥ २० ॥ आकाश एवांश्चकं वस्त्रं यस्याः । आकल्प-

स्थिताकाशांशुकाकरपतारकोत्करशेखरा॥ २१ स्थिताः पवनभूकम्पमेघतापसहिष्णयः। स्यं प्रदेशमनुज्झन्त्यः ककुमः स्तम्भिता इष॥ २२ उत्पातमेघनिर्हादभूमिकम्पप्रहम्रहेः। अक्रातरिप विकातभूतानां जायते गतिः॥ २३ सप्तानां जलमम्थीनामोर्वाग्नः पिषति ज्वलन्। लोकान्तराणामाकल्पं कालो भूतगणं यथा ॥ २४ पातालमाविशाति याति नभोबिलं च दिग्मण्डलं भ्रमति भूतगणः समन्तात्। पर्येति पर्वतमहार्णवमण्डलानि द्वीपान्तराणि च महत्सरणक्रमेण॥ २५

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पाषाण० बिलान्तरवर्णनं नाम षद्वपष्टितमः सर्गः॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

विद्याधर्युवाच।
यावत्तं सर्गमागच्छ प्रसादः क्रियतां मुने।
आश्चर्यंषूपपन्नेषु महान्तो हातिकौतुकाः॥ १
तेथेत्युक्तं मया सार्थं गन्तुमारब्धमम्बरे।
यास्या सौरमेणेव शून्ये शून्येन शून्यया॥ २
अथाहं दूरमध्वानं शून्यमुह्यक्वय नामसम्।
नभःस्यं भूतसंघातं तया सार्धमवामवान्॥ ३
तमुह्यत्व चिरेणात्र भूतसंचारमम्बरे।
छोकालोकशिरोज्योम प्राप्तोऽस्मि धवलाम्बुदम् ४
उत्तरांशेन्दुशुम्राभूपीठाक्विगत्य तां शिलाम्।
आनीतोस्मि तयोनुङ्गां तप्तकाश्चनकल्पिताम्॥ ५
यावत्पश्याम्यहं शुम्नां शिलां तां नच तज्जगत्।
कल्यौतमयीमुधरमिलोकतटीमिव॥ ६
तदा मयोका सा कान्ता क भवत्सर्गभूरिति।
क हद्वाकांग्नितारादि क लोकान्तरसप्तकम्॥ ७

भूतास्तारकीत्कराः शेखरे यस्यास्तथाविधा यौधन्द्रार्ककरचामरैः संवीज्य सुप्तं भुवनं बोधयन्तीव स्थिता ॥ २९ ॥ तत्रापि क-कुभो दिशः स्तम्भिताः स्थावरप्राणिन इव पवनभूकम्पवृष्ट्यात-पसिहणवो भूला स्थिताः ॥ २२ ॥ ज्योतिःशास्त्रकृशलैविज्ञान्तैरन्येरज्ञातरपि उत्पातादिनिर्मित्तर्भूतानामिष्टानिष्टलक्षणा गति-सत्त्रापि जायते ॥ २३ ॥ लोकान्तराणां चतुर्दशभुवनमेदानां भूतगणं प्राणिनिकायं यथा कालः पिवति तद्वत् ॥ २४ ॥ उक्तं सर्वं संक्षिप्योपसंहरति—पातालमिति । तत्रापि पातालवोग्यो भूतगणः प्राणिनिकायः पातालमाविशति । नभोवि-लवासयोग्यो नभोविलं याति । इतरस्त्वन्तराले दिखाण्डलं अभिति । सहतो वायोः सरणक्रभेण संचरणवत्पर्वत्तमहाणवमण्ड-लानि द्वीपान्तराणि च पर्यति । तथाच सर्वे।ऽप्यत्र व्यवहार-स्त्त्रापि वर्तत एविति संभावयेख्यः ॥ २५ ॥ इति श्रीवासि-ष्टमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अत्ररार्घे पट्टपष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

कीतुकात्तां शिलां गरवाप्यस्या सुनिना जगत्। पृष्टयाभ्यासमाहास्म्यं निचाधर्यात्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

१ श्रीवसिष्ठ उवाचेत्वपश्चितमय.

| कार्णवाकाराककुभः कोन्मज्जननिमज्जने । | |
|---------------------------------------|----|
| क महाम्भोदसंभारः क ताराम्बरङम्बरम्॥ | 4 |
| क शैलशिखरश्रेण्यः क महार्णवलेखिकाः। | |
| क द्वीप्वलयाः सप्त क तप्तकनकावनिः॥ | 9 |
| क कार्यकालकलनाः क भूतभुवनभ्रमः। | |
| क विद्याधरगन्धर्वाः क नरामरदानवाः॥ | १० |
| क्षर्पिभूपालमुनयः क नयापनयक्रमः। | |
| क पञ्चयामयामिन्यः क स्वर्गनरकभ्रमः॥ | ११ |
| क पुण्यपाप्कलना क कलाकालकेलयः। | |
| क सुरासुरवैराणि क द्वेषक्षेहरीतयः॥ | १२ |
| वृदत्येवं मयि वचः सोवाच वरवर्णिनी। | |
| विस्तयाकुलमालोक्य शिलामलविलोचना ॥ | १३ |
| विद्याधर्युवाच । | |
| पदयाम्यक्लिलमात्मीयमहं सर्वमिहोपले। | |
| मुकुरप्रतिविम्बस्थपुरान्यपुरवज्जनम् ॥ | १४ |
| | |

हे सुने, त्वं यदि मदुक्तार्थजातमसंगावितं मन्यसे तहिं ख-यमेव साक्षात्तं सर्गं यावत्साकल्येन द्रष्टमागच्छ ॥ १ ॥ इति तया उक्ते सति मया तथास्त्रित्यभ्युपगम्य तथा सहाम्बरे गन्तुमारच्धमित्वन्वयः । वालया सह सौरमेण चम्पकादिग-न्धेनेव ॥ २ ॥ भूतसंघातं देवादिप्राणिनिकायम् ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ उत्तराया दिशः अंशे पूर्वभागे स्थितादिन्दुवच्छुभ्रा-दभ्रपीठाइधो निर्मेख ॥ ५ ॥ अहं अमिनावलोक्यतं इस-भिछोकां मेरतटीमिन स्थितां तां शिलां यावत्साकल्येना-न्विष्य पर्यन्नपि तत्तयोक्तं जगत्तत्र न ॥ ६ ॥ भवत्सर्गभुः क तत्र स्वया वर्णिता रुद्राकी-दयश्च केति सा मयोक्तेति सर्वत्राप्ते संबन्धः ॥ ७ ॥ ककुभो दिशः । उन्मज्जननिमज्जने प्राणिनां जन्मनाशौ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ १० ॥ ऋषयो भूपाठास्तेषु मुनयश्च क । 'भूपाताल-मुनयः' इति पाठे तु स्पष्टम् । पद्मयामा हेमन्तयामिन्यः ॥११॥ ॥ १२ ॥ मयि एवं वदति सति सा मामुवाच ॥ १३ ॥ अहमपि न पूर्ववत्पर्यामि किंतु प्रागुक्तं सर्वे देवमनुष्यासुरा-दिजनं मुकुरे प्रतिनिम्बभावेनास्थितं यत्प्रसिद्धपुरादन्यतपुरं

नित्यानुभव एवात्र दर्शने कारणं मम। तदभावो मुने मन्ये ते कारणमदर्शने ॥ १५ अन्यव चिरकालैकद्वेतसंकथयानया । शुद्धातिवाहिकैकात्मदेहता विस्मृतावयोः॥ १६ ममातिसुचिराभ्यस्तमपि व्योम लतामिव। गतं निजं जगदिदं यतः पश्यामि न स्फुटम् ॥ १७ अभूद्यत्स्वजगत्पूर्वमतिप्रकटमेव मे । तत्पद्यामीदमाद्दी इव विम्वितमस्फुटम्॥ 36 चिरव्यर्थोत्थया नाथ संकथाव्यथया मिथः। स्वास्थ्यं विस्मृतमात्मीयमवदाततमं ततम्॥ १९ योऽभ्यासः प्रकचत्यन्तः शुद्धचित्रभसो रसात्। भवेत्तन्मयमेघान्तराबालमिव लक्ष्यते ॥ न सच्छास्त्रेण सा विद्धि न सन्यायेन सा कला। अस्ति नास्त्यमितोद्योगाद्यदभ्यासान्न सिद्ध्यति २१ स्वजगत्संतताभ्यासवशतो मां कथाभ्रमः । नुनमात्रान्तवानेष इयोर्हि वलवाञ्जयी ॥ २२ इष्टवस्त्वर्थिनां तज्ज्ञसूपदिष्टेन कर्मणा। पानःपुन्येन करणाञ्चनरच्छरणं मुने ॥ २३ अयमित्थमिहाज्ञानभ्रमः प्राँढोऽहमात्मकः । शाम्यति ज्ञानचर्चाभिः पदयाभ्यासविज्ञम्भितम् २४ अहं शिलावला चाला पदयामि त्वं न पदयसि । सर्वेश्रोऽपि शिलासर्गं परयाभ्यासविज्ञम्भितम् २५

तद्वत्परयामीत्वर्थः ॥ १४ ॥ तदभावस्तत्तिरोधानम् । पादादी ते इति छान्दसम् ॥ १५ ॥ सर्वसृक्ष्मार्थय्रहणक्षमविद्युद्धमनो-मात्रदेहताविस्मृतिवशादपि तव तददर्शनं भभ तदस्फाटदर्शनं चेत्याइ---अन्यचेति ॥ १६ ॥ ममापीदं निजं जगद्गतं नष्ट-प्रायम् । यतिश्वराभ्यस्तां व्योमलतामिवेदं न स्फुटं पश्यामीत्य-न्वयः ॥ १७ ॥ १८ ॥ स्वास्थ्यं प्रागुक्तधारणाभ्याससिद्धशु-द्धातिचाहिकैकात्मदेहत्वं नतु स्वरूपावस्थितिः पूर्वप्रन्थविरो-धात् ॥ १९ ॥ अभ्यासपदंन तजन्यदृढसंस्कारो लक्ष्यते । प्रकचित उद्घद्धः प्रकाशते । इवकारो भिन्नकमः । अन्तः आ-न्तरं चित्तं तन्मयमेव भन्नेदिवेति ॥२०॥ अत एवाभ्यासही-नस्य धवणमनने निष्फले इत्याह—नेति । सा कला अस्तीति पूर्वत्रान्वयः । अम्यासस्य लसाध्यं न किचिदसीस्याह्—ना-स्तीति ॥ २१ ॥ अयं लत्संवादकथान्नमः स्वीयजगत्संतता-भ्यासवशतो मां पूर्वजगद्धमवतीम(कान्तवान्वशीकृतवान् । तेन तत्संस्कारस्तिरोहित इवाभृदिखर्थः । अतीतश्रमापेक्षया वर्तमानस्य वलीयस्वादित्याशयेनाह—द्वयोहीति ॥ २२ ॥ अतएव छोकिकं वैदिकं वा शिल्पविद्यादिफलमिच्छताम् । तत्त-ब्रह्मपदिष्टक्रमेण पुनःपुनस्तदभ्यास एव शरणं नान्यदित्याह-**इष्टेति ।** तर्ज्यर्थुरुभिः सूपदिष्टेन कर्मणां तत्करणप्रकारेण॥२३॥ अनाद्यनन्तः संसारानर्थोऽपि ज्ञानाभ्यासान्नस्यति चेत्किमन्य-दनिष्टमवशिष्यते । यदभ्यासेन न चिकित्स्येतेत्याह--अय- अहोऽपि तज्ह्यतामेति शनैः शैलोपि चुर्ण्यते। बाणोव्येति महालक्ष्यं पदयाभ्यासविज्ञिभतम् २६ इत्थं नाम परिप्रीढा मिथ्याज्ञानविषुचिका । शाम्यत्येव विचारेण पश्याभ्यासविज्ञम्भितम् २७ अभ्यासेन कट्टह्रब्यं भवत्यभिमतं मुने । अन्यसं रोचते निम्बस्त्यन्यसं मधु रोचते॥ अवन्धुर्वन्धुतामेति नेकट्याभ्यासयोगतः । यात्यनभ्यासतो दूरात्कोहो बन्धुचु तानवम् ॥ २९ आतिवाहिकदेहोऽयं शुद्धचिद्योम केवलम्। आधिभीतिकतामेति भावनाभ्यासयोगतः॥ आधिर्मातिकदेहोऽसौ धारणाभ्यासभावनात् । विहंगवत्खमभ्येति पदयाभ्यासविज्ञिभतम्॥ ३१ पुण्यानि यान्ति वैफल्यं वैफल्यं यान्ति मातरः। भाग्यानि यान्ति वैफल्यं नाभ्यासस्तु कदाचन ३२ दुःसाध्याः सिद्धिमायान्ति रिपवो यान्ति मित्रताम् विषाण्यमृततां यान्ति संतताभ्यासयोगतः ॥ ३३ येनाभ्यासः परित्यक्त इष्टं चस्तुनि सोऽधमः। कदाचित्र तदाप्रोति वन्ध्या स्वतनयं यथा॥ यदप्यभिमतं वस्तु स्वभ्यासेन तदर्जनात्। तद्यक्तिपृषेकं त्याज्यमामृत्योजीवितं यथा॥ 34 इष्टे बस्तुनि नाभ्यासं यः करोति नराधमः। सोऽनिष्टेऽनिष्टमाप्नोति नरकान्नरकान्तरम् ॥

मिति । ज्ञानस्य चर्चाभिः श्रवणाद्यभ्यासेः ॥ २४ ॥ अभ्यास-पाटवे बालानामपि श्रीडता द्वष्टा तद्विस्मरणे तु महतामपि व्यामोहः मंभावित इलार्थे आवामेव निदर्शनमिलाह—अह-मिति। अहं शिष्यभूतापि शिलासर्ग पर्यामि, त्वं सर्वज्ञो गुरु-रपि न पश्यसि, आश्चर्यभेतदस्यासविज्ञम्भितमित्यर्थः ॥२५॥ वाणः अचेतनोऽपि महदलक्ष्यं सृक्ष्मतममपि लक्ष्यं शरसंधा-नाभ्यासपाटवादेति प्राप्नोति ॥ २६ ॥ २७ ॥ निम्बमक्षणा-भ्यासवते द्रविडाय निम्बोपि रोचते ॥ २८ ॥ बन्धुतां बन्धु-वरिम्नग्धताम् ॥ २९ ॥ देहे भौतिऋतात्रानितरपि स्वाभावि-कात्तदभ्यासादेवेत्याह--आतिवाहिकेति ॥ ३० ॥ समभ्येति खेचरसिद्धि लमते ॥ ३१ ॥ कीर्तनायल्पापरापेनापि महा-न्खपि पुष्यानि वैफल्यं यान्ति । भाग्यानि धनानि ॥ ३२ ॥ औषधार्थमभ्यासेन सेवितानि विषाणि अमृतवदारोग्यादिहे-तुतां यान्ति ॥ ३३ ॥ अतएव शास्त्रीयशुभास्यासः कदापि न परित्याज्य इत्याह—येनेति ॥ ३४ ॥ तर्हि शास्त्रीयलाद-मिमतं दारपुत्रधनसत्कर्मानुष्ठानादिवस्तु तत्कदापि न त्याज्यं नेलाह—यदपीति । स्वभ्यासेन प्रयत्नसहस्रेण तदर्जनादत्यन्ता-भिमतं दारादि यद्वस्तु तदि न सहसा खाज्यं किंतु वैराग्या-भ्यासेन वृत्त्यादिपरिकल्पनादियुक्तिपूर्वकं त्याज्यम् । यथा आमृत्योरत्यन्ताभिमतमपि जीवितं थोगिभिर्शुक्तिपूर्वकं त्यज्यते तद्वदित्यर्थः ॥ ३५ ॥ तत्त्वज्ञानाभ्यासस्तु सर्वथा न त्याज्यः ।

तरित सरितं स्फीतां संसारासारसेविनः ।
त एवात्मविचाराख्यमभ्यासं न त्यजन्ति ये ॥ ३७
अभ्यासभासोऽभिमतं वस्तु प्रकटयन्त्यलम् ।
प्रापयन्ति च निर्विप्तं घटं दीपप्रभा यथा ॥ ३८
यथा करपहुमलताः सिबन्तामणयो यथा ।
फलन्ति शरदश्चेतास्तथैवाभ्यासभूमयः ॥ ३९
इष्ट्रचस्तु चिराभ्यासभास्वान्भासयति प्रजाः ।
तथेन्द्रियास्यां देहोर्ग्यां रात्रि पद्यन्ति नो यथा ४०
सर्वस्य जन्तुजातस्य सर्ववस्त्वयभासने ।
सर्वदेवैक एवोश्चेर्जयस्थासभास्करः ॥ ४१

वतुर्वशिषधायास्तु भूतजातेर्न कस्यचित्।
सिध्यत्यभिमतं वस्तु विनाभ्यासमकृतिमम्॥ ४२
पौनःपुन्येन करणमभ्यास १ति कथ्यते।
पुरुवार्थः स प्रवेह तेनास्ति न विना गतिः॥ ४३
हढाभ्यासाभिधानेन यत्ननाम्मा स्वकर्मणा।
निजवेदनजेनेव सिद्धिभैषति नान्यथा॥ ४४
अभ्यासभास्त्रति तपत्यवनौ वने च
वीरस्य सिद्ध्यति न यन्न तद्स्ति किंचित्।
अभ्यासतो भुवि भयान्यभयीभवन्ति
सर्वासु पर्वतगुहास्वपि निर्जनासु॥ ४५

इस्पार्वे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ०पाषा० अभ्यासप्रशंसानाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६०॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

विद्याधर्युवाच ।
ततः प्राचीनमभ्यासं बोधधारणयामले ।
कुवैः प्रकटतां तेन जगदेष्यति दीलगम् ॥ १
विसिष्ठ उवाच ।
युक्तियुक्ते तथेत्युक्ते विद्याधर्या धरोरित ।
बद्धपद्मासनोऽथाहं समाधानुदितोऽभवम् ॥ २
सर्वार्थभावनात्यागे चिन्मात्रैकान्तमावितः ।
अत्यक्तं तमहं पूर्वकथार्थकलनामलम् ॥ ३

तत्यागे देहारंभावाद्यभ्यासस्य नान्तरीयकस्य वार्यातुमशक्य-लादनिर्मोक्ष एवेत्याशयेनाह—इष्टे इति । अनिष्टे देहायहं-भावे अनिष्टमेवाभ्यासम्बभावादेवाप्रोति । ततश्च नरकात्ररका-न्तरम् ॥ ३६ ॥ संसारः असारो येन तादशविवेकसेविनो ये पुरुषा आत्मविचाराख्यमभ्यासं न स्यजनित तएव स्फीतां मा-यासरितं तरन्तीत्यन्वयः ॥ ३७ ॥ यथा घटार्थिने दीपप्रभा घटं प्रकटयन्ति निर्विधं प्रापयन्ति च तथा आत्मवस्लर्थिने अभ्यासलक्षणभासः प्रकाशा अभिमतमात्मवस्त् प्रकटयन्ति निर्विद्यं प्रापयन्ति च । तत्र श्रवणमननाभ्यासोऽसंभावनाति-मिरनिरासेन प्रकटयति । निदिध्यासनाभ्यासस्तु विपरीतभा-बनारूप्विझनिरासेन प्रापयतीत्याशयः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ दह-सक्षणायामुर्व्यामिष्टं वस्तु परमप्रेमविषय आत्मेव तद्विचारा-भ्यासरुक्षणो भाखान् सूर्यस्तथा भासयति यथा प्रजाः प्रकृष्ट-जन्मानोऽधिकारिजना इन्द्रियास्यां रागद्वेषजन्ममरणाद्यनर्थ-सहस्रदःखस्त्रमोहनिदाप्रदां रात्रिं न पर्यन्तीत्यर्थः ॥ ४० ॥ ॥ ४९ ॥ अप्यर्थे तुशब्दः । चतुर्दशभुवनस्थाया अपि भूतजा-तेर्मध्ये कस्यन्वदपि प्राणिनः किन्विदप्यभिमतं वस्तु अभ्यासं विना न सिड्यतीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ अभ्यासस्त्ररूपं दर्शयति — पीनःपुन्यनेति । स एव इह शास्त्रे पुरुषार्थः प्राम्बहुशो वर्णितः पुरुषप्रयक्षः परमपुरुषार्थफलस्तेन विना गतिर्निस्तारो नास्ति अथ चिद्योमतां प्राप्तः परां दृष्टिमहं गतः। शरत्समयसंप्राप्तो व्योम निर्मलतामिव॥ ततः सत्यावधानैकघनाभ्यासेन देहके। ममाधिभौतिकभ्रान्तिनूनमस्तमुपागता॥ उद्यास्तमयोन्मुका सततोद्यमय्यपि। महाचिद्योमतास्वच्छा प्रोदितेव तदाभवत्॥ अथ पश्याम्यहं यावत्स्वस्यैवामलतेजसा। वस्तुतस्तु न चाकाशं नोपलः परमेव तत्॥

4

Ę

॥ ४३ ॥ निजवेदनं खविवेकस्त जेनव ॥ ४४ ॥ वीरस्येन्द्रियजयादिश्ररस्य पुंसः अभ्यासभास्त्रति तपति प्रकाशमाने सत्यवनौ भूमो बने जले चादन्तिरिक्षे च यदिभलितं वस्तु न सिध्यति तन्नास्ति किचित् । भयानि भयहेतुव्याप्रसर्पादीनि॥४५॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्ययेष्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सत्यष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

इहाधिभौतिकभ्रान्तिनिरासेन समाधिना । आतिवाहिकभावस्य स्थितिः सस्या समर्थ्यते ॥ ९ ॥

यतो दृढाभ्यासास्यसमाधियन्नमन्तरेण देदादावाधिभौति-कताश्रान्तिनं निवर्तते आतिवाहिकभावध नाविभवति तं विना च सर्गान्तरस्थितिः साक्षिप्रत्यक्षेण द्रष्टुमशक्या, ततो हेतोरमले परमात्मनि सर्वबोधानुक्लया समाधिस्प्रधारणया प्राचीनमा-तिवाहिकभावभ्यासमावां कुर्वस्तेनोपायेन शेलगं शिलान्तर्गतं मदुक्तं जगत्प्रकटतामेष्यति ॥ १ ॥ तया विद्याधर्या युक्ति-युक्तं इति एवंस्पे वचस्युक्ते सति । धरस्य शैलस्पोरसि अधि-त्यकायाम् । उदित उद्युक्तोऽभवम् ॥ २ ॥ तत्र समाधौ सर्व-बाह्यार्थकलनात्माने सति पूर्वकथार्थ आधिभौतिकदेहादिभाव-नातत्संस्कारमलमप्यत्यं त्यक्तवानित्यर्थः ॥ ३ ॥ इदमेव स्पष्टमाह्—अथेत्यादिना ॥ ४ ॥ ५ ॥ सत्ततोदयमयी नित्या-नावृतस्वप्रकाशा ॥ ६ ॥ स्वस्य साक्षिण एव वृत्तीदेन अमल- परमार्थघनं स्वच्छं तत्तथा भाति तादशम्। तथा भावनया ह्यात्मा मदीयो दष्टवांस्तथा ॥ यथा स्वप्ने सुमहती दृष्टा गेहगता शिला। ब्योमैच केवलं तद्वतसुशुद्धं चिन्नभःशिला॥ स्वयं स्वप्नान्वितोऽन्यस्य स्वप्नपुंस्त्वं गतो नरः। स्वप्ने ज्ञानप्रबुद्धस्य यादकादक्स्वरूपतः ॥ १० स्वप्रस्थानां शिरदिछन्नं येषां ते संस्तृता स्थिताः। कालेन श्वानलामेन विना कुर्वन्तु किं किल॥ बोधः कालेन भवति महामोहवतामपि। यस्मान्न किंचनाप्यस्ति ब्रह्मतस्वादतेऽक्षयम् ॥ १२ अतस्तिचिद्धनं स्वच्छं ब्रह्माकाशं शिलाकृति । दृष्टं मया तथा तत्र न तु पृथ्यादि सत्कचित् १३ भृतानामादिसर्गे यच्छु इं यत्पारमार्थिकम्। बपुस्तदेव होतेषां ध्यानसभ्यमवस्थितम् ॥ १४ ब्राह्मं वपुर्हि भूतानामात्मीयं यत्पुरातनम्। तदेवाद्य मनोराज्यं संकल्प इति कथ्यते ॥ १५ सत्तातियाहिको देहस्तत्परं परमार्थतः। प्रत्यक्षं परमं यत्तत्तदाद्यं कचनं चितः॥ १६ उद्यत्त्रथममध्यक्षं जीवस्य प्रथमं घपुः। मनःप्रत्यक्षमित्युक्तं तत्तेनाधैव दुर्धिया ॥ १७ योगिप्रत्यक्षमित्युक्तं मनःप्रत्यक्षमित्यपि । तत्स्वमेव चितो रूपं गतमेवान्यतां मुधा ॥ १८

तेजसा । वृत्तेजेडायाः खतो दक्शक्त्यभावादिति भावः ॥ ७ ॥ तरपरमार्थघनं परं तस्वमेव मदीय आत्मा तथा उपलभाव-नया उपलं रष्टवानिलार्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥ यद्ययं व्यवहारः स्वप्न एव तर्हि कथं स्वपरजामताप्रतिभासस्तत्राह - स्वयमिति । खप्ने अज्ञानवशादेव प्रवृद्धोऽहमिति मन्यमानस्यान्यस्य सप्तर-इयपुरुषत्वं गतः खप्नान्वितः स्वयं खरूपतो साहक प्रतिबु-द्धोऽस्मीति प्रतिभानि तादगित्यर्थः ॥ १० ॥ अतएव सौप्तिके सप्तहतानां जागरणोपायदेहाभावादगला खप्न एव तेषां जाग-रता परिशिष्यत इति प्रागुक्तं मयेति स्मार्यति—स्वप्नस्थाना-मिति ॥ ११ ॥ तस्मान्मुलाज्ञाननिदोच्छेदेन खरूपप्रतिबोध ए-बास्य मुख्यः प्रतिबोधोऽन्यदा तु स्वप्रएव वृथा जागरामिमान इखाह-चोध इति ॥ १२ ॥ अतएव मयापि स्वरूपजागरा-त्तत्त्रागदृष्टशिलाकृति खच्छं चिद्धनं दर्धं न पृथ्वादिधिकारं सदित्यर्थः ॥ १३ ॥ सर्गस्यादिरादिसर्गो महाप्रलयस्तदेत्यर्थः । एतेषां तत्त्वविदां ध्यानलभ्यभकाम्यप्राप्यम् ॥ १४ ॥ ब्राह्म रूपमेव सर्वभूतानां वपुः पारमाथिकरूपं इति एवं जगदाकारेण कभ्यते । मुँढारिति शेषः ॥ १५ ॥ अस्त्वेवं तथाप्यातिवाहिको देहः यः, यद्भावे सर्वजगर्शनं चित्स्वभावकवनं च प्रागुक्तं तमाह-सतित । मायाशबलं ब्रह्म सदित्युच्यते । तत्र चितो जगत्संस्कारसंबिकतांशरासा स एवातिवाहिको देहः । नित्या-परोक्षशुद्धविदंशसु खरूपकचनमित्यर्थः ॥ १६ ॥ तर्हि योग० १५३

इदमद्यतनं नाम प्रत्यक्षमसदुत्थितम् । असत्प्रत्यक्षमेवेति विद्धि प्रत्यक्षमङ्ग तत्॥ १९ अहो जु चित्रा मायेयं प्राक्प्रसक्षे परोक्षता। निर्णीतासिस्त्वनध्यक्षे प्रत्यक्षकलनागता ॥ 20 आतिचाहिकदेहत्वं प्रत्यक्षं प्रथमोदितम्। सत्यं सर्वगतं विद्धि मायैव त्वाधिमौतिकम् ॥ २१ अनुभूतापि नास्त्येव हेम्नः कटकता यथा। तथातिवाहिकस्याधिभौतिकत्वं न विद्यते ॥ २२ भ्रममञ्जमतां यातमभ्रमं भ्रमतां गतम्। वेत्ति जीवो विचारेण विनाहो नु विमुदता ॥ २३ आधिभौतिकदेहोऽयं विचारेण न लभ्यते । आतिवाहिकदेहस्तु किल लोकद्वयेऽक्षयः॥ રય आधिभौतिकचिद्रुढा ह्यातिचाहिकदेहके। मरौ मरीचिकास्त्रेव यथा मिध्यैव वारिधीः॥ २५ जाताधिभौतिकी संविदातिवाहिकचित्कमे। देहरुष्टिचशात्त्रीढा स्थाणी पुरुपधीरिब ॥ २६ शुक्तौ रजतता तापे जलतेन्दौ यथा द्विता। आधिभीतिकता तद्वन्माययेवातिवाहिके॥ 33 यदसत्तत्कृतं सत्यं यत्सत्यं तक्सत्कृतम्। अहो नु मोहमाहात्म्यं जीवस्यास्याविचारसम् २८ योगिप्रत्यक्षमेवास्ति किंचिदस्ति तु मानसम्। यसाह्योकद्वयाचारस्ताभ्यामेव प्रसिध्यति॥

कथं मनो जीवस्यातिवाहिको देह इति प्रायुक्त तत्राह-उद्यदिति । तत्सत्तारूपं सर्गोदयेन तदाकारमिवोद्यत् सर्गगोच-रमध्यक्षं जीवस्य चिदाभागात्मनः प्रथमं हिरण्यगर्भाख्यं सम् ष्टिरूपमातिवाहिकवपुर्भवति । तत्पुनः समष्टिभावस्यापि दु॰ र्षिया विसारणे अधैव व्यष्टितां गतं तत्सर्वजनप्रस्रक्षं मन इति प्रामुक्तमिखर्थः ॥ १७ ॥ तदिः यं स्वयमेव चित्रो रूपं सम्रिट-रूपेण योगित्रस्यक्षं सर्वजनसाधारण्येन तु भनःप्रस्यक्षमित्यध्य-क्तम् ॥ १८ ॥ तत्र इदमयतनं मनःप्रत्यक्षमाधिनातिकदेहा-दिकल्पनया अल्पन्तासद्भूपेणवोत्थितमित्यसत्प्रत्यक्षमेव विदि । तद्योगित्रलक्षमेवं हे अङ्ग, सथायास्म्यस्फूर्नेर्मुख्यं प्रत्यक्षम् ॥ १९ ॥ कथं तर्हि सर्वजनानां तस्मिन्त्रस्यक्षे परोक्षतानुभवः इतरत्र च प्रत्यक्षतानुभवस्तत्राह—अहो इति ॥२०॥ प्रथमो-दितमिति सुक्षमपूर्वकलारस्थील्याध्यासस्यव्यर्थः । 'यद्मे रो-हितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुकं तद्यां यत्कृष्णं तद्वस्यापागा-दमेरमित्वं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्' इति श्रुतः । गत्यं सम-ष्टिभावास्सर्वगतं माथवानृतमेव ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ ४४ू-**उख सुक्ष्मात्प्रथक्तवे अप्रथक्तवे वा की**दशे खरूषं स्मादिलादि-प्राक् प्रपत्नित्विचारेण । इहासुत्र च सर्वव्यवहारनिर्वाहकला-दामोक्षमक्षयः ॥ २४ ॥ आधिनीतिकविदाधिनीतिकताप्रया रुहा ब्राहुर्भूता ॥ २५ ॥ २६ ॥ २०॥ २८ ॥ स्फूर्तिस्पन्दने व्यवहारसर्वस्वम् । ते च लोकद्वयसाधारणलादातिवाहिकदेहस्यैव

आद्यं प्रत्यक्षमुत्सस्य यः सत्येऽस्मिन्छतस्यितिः। प्रत्यक्षे मृगतृष्णाम्य पीत्या स सुखमास्थितः॥ ३० यत्सुखं दुःखमेवादुः क्षणनाशानुभृतिभिः। अकृत्रिममनाद्यन्तं यत्पुखं तत्पुखं विदुः॥ ३१ प्रत्यक्षेणेत्रमध्यक्षं प्रत्यक्षं प्रविचार्यताम्। ३२ यदाद्यं नत्सद्रध्यक्षं तत्त्रत्यक्षेण रहयताम् ॥ लोकत्रयानुभवदं त्यक्त्वा प्रत्यक्षमेहिकम्। मायात्मकं यो गृह्वाति नास्ति मृदतमस्ततः॥ ३३ आतिवाहिकमेवेषां भूतानां विद्यते वपुः। अत्राधिभौतिकव्याप्तिरसत्यैय पिशाचिका ॥ 38 अजातसंकल्पमयं प्रत्यक्षं सत्कथं भवेत्। स्वयमेव न यत्सत्यं तत्स्यात्कार्यकरं कथम्॥ 34 यत्र प्रत्यक्षमेवासदन्यत्कि तत्र सञ्ज्वेत्। क तत्सत्यं भवेद्रस्तु यदसिद्धेन साध्यते ॥ 36 प्रत्यक्ष एच भावत्वे नप्टे केवानुमादयः।

उहान्ते वारणा यत्र तत्रोर्णायुषु का कथा॥ अतः प्रमाणसंसिद्धं दृश्यं नास्त्येव कुत्रचित् । अनन्यदिदमस्तीय तत्तद्वह्य घनं घनम् ॥ ३८ स्वप्ते द्रष्टः खमेवाद्विगृष्टे नान्यस्य वै यथा। तथा तद्भावनवतोरावयोः सा शिलैय चित् ॥ ३९ अयं शैल इदं व्योम जगदेतदिदं त्वहम् । इति चिन्मय आत्मान्तः खं चमत्कुरुते स्वयम् ४० पद्यत्येतत्प्रवृद्धात्मा नाप्रवृद्धः कदाचन । श्रोतुः कथार्थसंवित्तिर्नाश्रोतुर्भवति कचित् ॥ ४१ अप्रयुद्धमिति भ्रान्तिरेवेयं सत्यतां गता। क्षीवस्य सुस्थिरा एव नृत्यन्ति तरुपवेताः ॥ सर्वत्राप्रतिहतमेकरूपयोधं प्रत्यक्षं शिवमनुबुध्य चित्स्वरूपम्। प्रत्यक्षान्तरमिह पेछवं श्रयन्ते ये मुढास्तृणतनुभिः शटेरलं तैः॥ 83

इत्यापे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्गीकीये मो० नि०उ०पा० प्रमाणाप्रतिसिद्धा दश्यानुपपत्तिवर्णनं नामाष्ट्रषष्टितमः सर्गः॥६८॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

विसष्ठ उवाच । जगदङ्गमनाभासमद्दयं दृदयविस्थतम् । परया दृदयते दृष्ट्या तद्रह्मैय निरामयम् ॥ तत्र दें। त्रसरित्स्रोतोलोकालोकान्तरभ्रमाः ।

निष्कर्षे पर्यवस्थतः इत्याह—योगीति । भानसं स्पन्दनमिति शेषः। तच प्रत्यक्षाधीनसिद्धिकलार्किन्यदस्ति न प्रत्यक्षसमसत्ता तस्यार्स्तात्यवृतमेव तदपीति भावः ॥२९॥ तथाच सर्वसाधारण-प्रत्यक्षमात्रे सर्वमन्यद्विहाय योगेन स्थिरता कार्या न पागरजन-मात्रप्रसिद्धे एहिकमात्रे स्थलदिशत्यक्षे इलाशयेनाह—आद्य-मिति॥३०॥एवं सुखेऽपि सर्वलोकसाधारणे योगिनामेवानुभव-सिद्धं परमपुरुषार्थता न पागरजनप्रसिद्धं इत्याशयेनाह-य-दिति । क्षणमात्रेण नाशानुभृतिभिद्धाःखपर्थवसितं प्राक दुःख-राहस्रनिष्पादिनं यद्भिपयसुरां सद्दुःसभेवाद्वविवेकिन इसर्थः ॥ ३१ ॥ उत्तमेव दर्दाविकीर्युः पुनराह—प्रत्यक्षेणेखादिना ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मिथ्यासंकल्पमयस्य जन्मेन यत्र दुर्हमं तस्य सत्ता अत्यन्तदुर्हमा, असतश्चार्धकिशासमर्थता त्ततोऽपि दुर्गनरस्तेत्याह—अजातेति ॥ ३५ ॥ ननु चक्षरा-दिप्रमाणप्रसाधितः प्रपञ्चः कथमपरुप्यते तत्राह—यत्रेति । योगिप्रह्मधावाधितत्त्वाचक्षरांदरपीति भावः ॥ ३६ ॥ यदा राक्षादर्थसायकेषु चक्षरादिष्वियं गतिस्तदा तन्मूला अनुमाना-द्योऽपि दृर्निरस्ता इत्याह—प्रत्यक्ष एवेति । ऊर्णायोर्मेषस्य । मल्यायो युपु ॥ ३७ ॥ एवं दश्यमार्जने फलितमाह -- अन-न्यदिति । यदिदं सदनन्यदर्स्तावेति भासते तद्भनं सैन्यवघनतुल्यं

१ क तिसम्बं भवेत् इति पाठः.

भान्ति ते परमाद्शें महाब्योमनि विम्बिताः ॥ २ सा प्रविष्टा ततः सर्गे तमनगैलचेष्टिता । अहमप्यविशं तत्र संकल्पात्मा तया सह ॥ ३

वहाधनमेवेति फलितमिल्ययंः॥३८॥स्त्री अदिद्रष्टुः प्रसिद्धोऽदिन्स्तदानीमिष सं शून्य एव। यतस्तिस्मिनेव काले जामतः स्वपतो वा अन्यस्य सोऽदिनीस्ति । यथाऽयं दृष्टान्तस्तथा शिलाभाव-नवतोरावयोर्दश्यापि सा शिला चिदेवेल्ययंः॥३९॥ चमन्तुकते । भासत इति यावत्॥४०॥ चिदेवेल्ययंः ॥३९॥ चमन्तिति प्रवृद्धात्मेव पर्यति नाप्रवृद्धः। यथा भारतादिकथार्य-संवित्तिस्त्रच्छोतुरेव नान्यस्य तद्वदिल्ययंः॥४९॥ ४९॥ ४९॥ ये तु योगिप्रलक्षं पूर्णानन्देकरसं स्वस्पमनुवृध्यापि तद्वाधितं च-धुरादिप्रलक्षान्तरं पेलवं तुच्छमपि प्रमाणत्वेन सहन्ते तृणतानुभिस्तृणप्रायंः शर्रेरात्मवद्यवेस्तः अलं न किचित्प्रयोजनमस्ति । स्वानुभवेऽपि विश्वासञ्चल्याः परवावयं कथं विश्वसीर-भिल्यनुपदेश्या एव ते इल्पर्यः॥४३॥ इति श्रीवासिष्टमहाराम्मणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टषष्टितमः सर्गः॥६८॥

शिलासर्गप्रवेशोऽत्र तत्रस्यविषिदशैनम् । स्वासितस्य मुनेस्तेन संभाषा चात्र वर्ण्यते ॥ १॥

शिलोदरे जगत्सद्भावसंभावनाय तत्सत्तास्कृतिंत्रदं तदिन-ष्टानं ब्रह्म द्श्येति—जगदङ्गमिति । जगम्ति अङ्गानीव वस्म । अनाभासं सूर्यादिज्योतिवामविषयः । अदृश्यं चक्षुराखनिवयः ॥ १॥ २॥ सा विद्याधरी । तत्र शिलोदरे । तं श्रायुक्तं

यावत्सा तत्र वैरिश्चं लोकमासाच सोद्यमा। उपविष्टा विरिश्चस्य पुरः परमशोभना॥ वत्त्रययं मुनिशार्वृत्व पतिमं पाति मामिमाम्। विवाहार्थमनेनाहं जनिता मनसा पुरा॥ 4 षुराणः पुरुषोऽप्येष मामप्यद्य जरागताम्। **न विवा**हितवांस्तेन विरागमहमागता ॥ बिरागमेपोऽप्यायातो गन्तुमिच्छति तत्पदम्। यत्र न द्रष्ट्रता नेव रहयता नतु श्रून्यता ॥ महाप्रलय आसन्नो जगत्यस्मिश्च संप्रति। ध्यानाम्न च चलत्येषु शैलमीनादिवाचलः॥ तसान्मामेनमपि च बोधयित्वा मुनीश्वर। आमहाकल्पसर्गादौ परमे पथि योजय॥ इत्युक्तवा मामसी तस्य योधायेदमुवाच ह । नाथायं मुनिनाथोऽद्य सद्म संप्राप्तवानिदम्॥ पपोऽन्यसिञ्जगद्वेहे ब्रह्मणस्तनयो मुनिः। पुजयैनं गृहायातं गृहस्थगृहपूजया ॥ ११ बुद्ध्यतामर्घ्यपाद्येन पूज्यतां मुनिपुङ्गवः। महन्महत्सपर्याभिर्महात्मभ्यो हि रोचते ॥ १२ तयेत्युक्ते महाबुद्धिर्वुयुधे स समाधितः । स्वसंवित्तिद्ववात्मत्वादावर्त इव वारिधी॥ १३ शनैकन्मीलयामास नयने न्यकोविदः। मधुः शिशिग्संशान्तायवनौ कुसुमे यथा ॥ १४ शनैः प्रकटयामासुस्तान्यङ्गान्यस्य संविदम्। मधुपल्लवजालानि नवानीय नयं रसम्॥ १५ सुरसिद्धाप्सरःसङ्घाः समाजग्मुः समेततः ।

सर्ग प्रविष्टा ॥ ३ ॥ सोद्यमा तैदानयनोद्यमवती सा तत्रस्यं वैरिज्ञं लोकमामाद्य विरिज्ञस्य पुरः उपविष्ठासती अयं मे पतिरि-त्यादिवाक्यं यावद्वत्ति तावदस्भिजगति महाप्रलय आसन्न इति पद्मभेऽम्वयः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ पुनः सेवाह-संप्रती-त्यादिना ॥ ८ ॥ तत्त्वोपदेशेन बोधियत्वा आमहाकल्पं वज्ञा-निकप्रलयपर्यन्तं ये ये प्रसिद्धाः सर्गास्तेषामादी मूलभूते ब्रह्मास्ये पथि योजय ॥ ९ ॥ तस्य चतुर्मुखस्य वोधाय समा-धिव्युत्थानाय उचितार्थावगमाय च ॥ १० ॥ गृहस्थानां गृहे-पूचितया पूजया प्जय श्रीणय ॥ ११ ॥ खया अयं मुनिपुंगवः पूज्यत्वेन बुध्यताम् । अतएव।ध्यपाद्येन पूज्यताम् । यतो महा-रमभ्यस्लाहरोभ्यो महत्सपयोभिः प्राप्यं यन्महत्फलं तदेव रोचते न श्रुद्रम् । 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इति चतुर्था ॥१२ ॥ ॥ १३ ॥ कुसुमे ह्वे नयनयोहपमे मधुर्यथा उन्मीलयति तद्वत् ॥ १४ ॥ मधोः संवन्धीनि पहन्त्रजालानि नवं स्वरसमित्रं-खर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ प्रणवपूर्वकैः स्वंदः सुन्दरं यथा स्यात्तथा ॥ १७ ॥ करामलकवत् दष्टः संसारलक्षणस्य असारस्य सारः आत्मा येन ॥ १८ ॥ १९ ॥ दृष्या कटाक्षेण दर्शिते मणिमय

१ अत्र मुनिरुवाच इत्यपेक्षितम्.

यथा हंसालयो लोलाः प्रातर्विकसितं सरः॥ द्दर्शासी प्रःप्राप्तं मां च तां च विलासिनीम्। उवाचाथ वचो वेधाः प्रणवस्वरसुन्दरम्॥ १७ अन्यजगद्वसोवाच । करामलकवद्दृष्टसंसारासारसार हे। ज्ञानामृतमहाम्भोद मुने स्थागतमस्तु ते॥ 26 पद्वीमसि संप्राप्त इमामतिद्वीयसीम्। दृराध्वसुपरिथान्त इदमासनमास्यताम्॥ इत्युक्ते तेन भगवन्नभिवादय इत्यहम्। वदनमणिमये पीठे निविष्टो रिष्ट्रदर्शिते॥ २० अधामरर्षिगन्धर्वेमुनिविद्याधरोदिताः । प्रस्तुताः स्तुतयः पूजा नतयः स्थितिनीतयः २१ ततो मुहूर्तमात्रण सर्वभूतगणोदिने। शास्ते प्रणतिसंरम्मे तस्योक्तं ब्रह्मणो मया॥ किंमिदं भूतभव्येश यदियं मामुपागता। वक्ति ज्ञानगिरासांस्त्वं वोधयेति प्रयत्नतः॥ २३ भवान्भूतेश्वरो देव सकलज्ञानपारगः। इयं तु काममूर्खा किं त्रूते बृहि जगत्पते ॥ રક कथमेषा त्वया देव जायाथे जनिता सती। नेह जायापदं नीता नीता विरसतां कथम्॥ अन्यजगद्गहोवाच । मुने श्रुणु यथावृत्तमिदं ते कथयाम्यहम्। यथावृत्तमशेषेण कथनीयं यतः सताम्॥ २६ अस्ति तावद्जं शान्तमजरं किंचिदेव सत्। ततश्चित्कचनैकान्तरूपिणः कचितोऽस्म्यहम् २७

पीठे अहं निधिष्ट उपविष्टः ॥ २० ॥ स्थितिनीतयो युक्तव्य-वहारनीतयः ॥ २५ ॥ सर्वेनृतगणेर्गन्धर्वादिनिरुद्वि वागादि-भिः कृते प्रणतिसंस्म्भे - बान्ते सति ॥ २२ ॥ इयं विद्याधरी मामुपागता सनी अस्पांएनं ज्ञानगिरा बोधयति सद्वक्ति इदं किमुचितमनुचितं वेखर्थः ॥२३॥ कुतस्तेऽयं संशयस्तवाह — भवानिति । तथाच तव कृतकृत्यसान्मदुपदेशापेक्षेत्र नाम्ति अस्यास्तु साधनसंपष्यभावादधिकारो नास्तीत्युपदेशप्रार्थनानुप-पत्तेः संशय इति भावः ॥२४॥ संशयान्तरं दर्शवति—कथ-मिति । विरसतां निर्वेदम् ॥ २५ ॥ सस्यं गमास्यःश्च नीपदेन शाहेता तथापीयं स्वयासन्येव ममाप्यक्षतां स्यस्या अधिकारं च मन्यमाना लां प्रार्थितवर्धा तथा अस्या जन्ममार्घ मया संपा-दितं जायार्थमहं जनिता अहं चास्य भायोग्मीत्यादिकस्पना सर्वाप्यस्याः स्थवायनयेव संपन्ना। अतएवास्या मद्वायनामात्रशा-न्मिथ्याभृतायाः सांप्रते मम विदेहकेवस्यप्राप्त्येव सह स्वकल्प-तप्रपेशन प्रदयस्वरसमञ्जेष भविष्यतीत्युत्तरं विभाराद्वकुकामः प्रतिजानीते—सुने इति ॥ २६ ॥ तत्रादी वक्ष्यमाणीपोद्धातेन ज्ञानप्रतिषं यस्य पंराग्यं च जगत्पतेः । ऐश्वर्यं चैव धर्मश्व

२ तस्यां शिलायामानयमं तहती.

आकाशकप पवाहं स्थित आत्मिन सर्षदा ।
भिविष्यति स्थिते सर्गे स्वयंभूरिति नाम मे ॥ २८
बस्तुतस्तु न जातोऽस्मि नच पश्यामि किंचन ।
चिदाकाशिश्वदाकाशे तिष्ठाम्यहमनाष्ट्रतः ॥ २९
यद्यं त्वं ममाहं ते यदिदं कथनं मिथः ।
तत्तरङ्गस्तरङ्गात्रे रणतीविति मे मितः ॥ ३०
पवंरूपस्य मे कालवशतोऽविशदाहृतेः ।
सा कुमार्याश्चिदाभासमात्रस्यान्तः स्वभावतः ३१
ममानन्या तवान्यस्य चान्येवेह विभाति या ।
सोदितानुदितेवान्तर्ममाहमिति बासना ॥ ३२

अनाशसत्तानुदितस्त्वहमात्मात्मिनि स्थितः।
स्वभावादच्युताकारः स्वात्मारामः स्वयं प्रभुः ६६
तस्या अहमिति भ्रान्तेर्वासनाया जगितस्थितेः।
संपन्नयमधिष्ठातृदेवता देहरूपिणी॥ ६५
वासनाया अधिष्ठातृदेवतेषमियं स्थिता।
नतु मे गृहिणी नापि गृहिण्यर्थेन सत्कृता॥ ६५
स्ववासनावेशयशेन भावं
गृहिण्यहं ब्रह्मण हत्युपंत्य।
पपा स्वयं व्यर्थमितातिदुःखं
यसात्किलैपैच हि वासनान्तः॥ ६६

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषाण० सर्गप्राप्तिर्नामकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

अन्यजगद्गस्रोवाच ।
अधाहं चिन्मयाकादास्त्वन्याकादामयीं स्थितिम् ।
परां ब्रहीतुमिच्छामि तेनेहोपस्थितः क्षयः ॥ १
महाप्रलयकालेऽस्मिस्त्यक्तमेषा मयाधुना ।
मुनीन्द्र नूनमारब्धा तेन वैरस्यमागता ॥ २
आकादात्वाद्यदाद्योऽयं पराकाद्यो मद्यास्यहम् ।
तदा महाप्रलयता वासनायाश्च संक्षयः ॥ ३

सह सिद्धं चतुष्टयम्' इति पुराणप्रसिद्धमौत्पत्तिकं तत्त्वज्ञानं खस्यास्तीति प्रकाशियतुं खकारणं ततः खोत्पत्तिखरूपं चाह --अस्तीति । कचितोऽस्मि प्रकटीभूतोऽस्मि ॥ २७ ॥ तादश-तत्त्वज्ञानवाधिता स्वोत्पत्तिस्तत्प्रयुक्तस्वनाम च कथं प्रसिद्धं तत्राह-आकाशेति । व्यवहर्न् प्रजासर्गे उत्पद्य स्थिते सति तदृष्ट्या व्यावहारिकं खयंभूरिति नाम भविष्यति ॥ २८॥ वस्तुतस्तत्त्वदशा तु ॥२९॥ तर्हि तत्त्वविदोरावयोः प्रश्नोत्तरा-दिव्यवहारः कीदशस्तत्राह-यदिति । यथा एकएव समुद्रोऽख-ण्डतरङ्गभेदैः राण्डनपरस्पराघातैर्ध्वनिवैचित्र्यं दर्भयति तद्व-दिति भावः ॥ ३० ॥ एवं समुद्रात्तरक्षवदीषत्कल्पितस्त्रपरह-ष्टिवेद्यमेदरूपस्य काळवशत ईषत्त्वरूपविस्मरणाद्विशदाकृतेमें नान्तरीयकचिदाभासमात्रस्यान्तर्या ममाहमिति वासना उदिता सा कुमार्था अन्यस्य तव अन्येव विभाति मम तु अनन्या विभाति । सा उदिता अनुदिता चावयोर्दशेति द्वयोरन्वयः ॥३१॥ ॥ ३२ ॥ त्वं तर्हि खदशा कीटक् तत्राह—अनाशेति । अहं त अनाशसत्ता यतोऽनुदितः ॥ ३३ ॥ ईदशात्त्वत्त इयं कथ-मुत्पन्ना काच वा तत्राह—तस्येति । आ अहमिति भ्रान्तेः । स्मरणे आकारः अधित् प्रगृह्यः । पूर्वपूर्वाहंकारसंस्कारप्रभव-लात्स्मृतिकत्पाया अहमिति आन्तेर्जगत्स्थितेर्वासनायाधाधि-ष्टात्री देवता इयं मत्संकल्पाइहरूपिणी संपन्नेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ तहींयं त्वां कथं पतिरिति ब्रुते तत्राह—खेति। यस्मादेपेव अन्तः सर्वजगद्वासना अतो गृहिण्यहमिति स्वम- तेनेषा विरसीभूता मन्मार्ग परिधावति ।
नानुगच्छति को नाम निर्मातारमुदारघीः ॥ ४
इहाद्यायं कलेरन्तश्चतुर्युगविपर्ययः ।
प्रजामन्विनद्भदेवानामधैवान्तोऽयमागतः ॥ ५
अधैव चायं कल्पान्तो महाकल्पान्त एव च ।
ममायं वासनान्तोऽद्य देह्दयोमान्त एव च ॥ ६

नीषयैवोपेत्य व्यर्थमतिदुःखमिता प्राप्ता ॥ ३६॥ इति श्री-वासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९॥

> दर्ण्यते वासनादेच्या इह निर्वेदकारणम् । प्रख्यो जगतश्राथ मिथ्याविश्रममान्नता ॥ १ ॥

'कथमेषा लया ब्रह्मन् जायार्थ जनिता सती। नेह जाया-पदं नीता' इति प्रश्नस्योत्तरमुक्तम् , इदानीं 'नीता विरसतां क-थम्' इति प्रश्नस्थोत्तरं वक्तमारभते—अयेत्यादिना । अथ स्न-संकल्पकल्पितद्विपरार्धायुःप्रमाणादनन्तरं चिन्मयः चिद्विवर्त-रूपो यश्वित्ताकाशस्तद्रूपोहं परां निरतिशयानन्दरूपामन्याका-शमयीं ब्रह्माकःशाल्मिकां कैवल्यस्थितिम् । तेन हेतुना इह म-द्वासनाकल्पिते जगति क्षयो नित्यो निर्मित्तको दैनंदिन आत्य-न्तिकश्चेति पुराणप्रसिद्धश्चतुर्विधोऽपि प्रलय उपस्थितः ॥ १ ॥ खक्तं मूलोच्छेदात्खसत्तातः प्रच्यावयितुम् । तेन**्हेतुना वैरस्यं** क्षयोन्मुखताम् ॥ २ ॥ तत्रोपपत्तिमाह—आकाशलादिति । ल्यच्छोपे पश्चमी । अयमहं यदा चित्ताकाशतां विहाय आबी ब्रह्माकाशो भवामि तदेखर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥ कळेश्वरमकल्पच-रममन्वन्तरचरमकलियुगस्यान्तः परिस्नमाप्तिकालः । प्रजाश्र मनुधेन्द्रश्च देवाश्च तेषाम् ॥ ५॥ चतुर्विधप्रख्यानामद्य युग-परप्राप्तिरित्याह्-अधैयेति । वासनान्तः इत्यात्यन्तिकवैज्ञानि-कप्रलयोक्तिः । देहव्योमान्तः इति प्राकृतप्रलयोक्तिः ॥ ६ ॥

तेनेयं वासना ब्रह्मन्क्षयं गन्तुं समुचता । केव पद्माकराशोषे गन्धलेखावतिष्ठताम्॥ यथा जड़ाब्धिलेखाया जायते लहरी चला। वासनायास्तथेवेच्छा मुधोदेत्यपकारणम् ॥ आमिमानिकदेहाया वासनायाः स्वभावतः। अस्या आत्मावलोकेच्छा स्वयमेवोपजायते ॥ आत्मतस्वं चु पद्यन्त्या धारणाभ्यासयोगतः। ह्यष्टोऽनया भवत्सर्गो वर्गव्यप्रनिर्गेलः॥ १० अनयाम्बरसंचारपर्याद्विशिरःशिला । रष्टा स्वजगदाधारभूतास्माकं तु खात्मिका ॥ ११ प्तधस्मिञ्जगद्यत्र तहपत्त्वं जगद्विरौ। अस्रज्ञगत्पदार्थेषु संत्यन्यानि जगन्त्यपि ॥ १२ वयं तानि न पश्यामो भेदहशै स्थिता इमे। बोधेकतां गतास्त्वाद्य पदयामस्तानि वीक्षणात् १३ घटे पटे बटे कुड़्ये खें उनले उम्भास तेजास। जगन्ति सन्ति सर्वत्र शिलायामिय सर्वदा॥ १४ जगन्नाम मुधा भ्रान्तिः किल स्वप्नपुरोपमा । मिध्येवेयं क नामासौ चिद्रुपास्त्यथं नास्ति च १५ परिशाता सती येपामेषा चिश्वभसेकताम्। गता ते न विमुद्यन्ति शिष्टास्तु भ्रमभाजनम् ॥ १६ अधान्यधारणाभ्यासात्स्यविरागवशोदितम्। साधयन्त्यर्थमाःमीयं दृष्टस्त्वमनया मुने ॥ 20

तेन आत्मावलोकनेच्छादिकारणकलापेन ॥ ७ ॥ खनाशहेती स्वात्मावलोकनेऽस्याः कथमिच्छा जायते इति चेत्स्वभावादे-वेति सोपपत्तिकमाह—यथेलादिना । अपकारणं कारणान्तरं विना खभावादेवेलार्थः ॥ ८॥ ९॥ तहास्या अस्मदीयब्रह्मा-ण्डदरीने को हेत्स्तमाह—आत्मेति । आत्मज्ञानार्थे प्रवृत्तस्य धारणाभ्यासस्य ब्रह्माण्डान्तरगमनादिसिद्धयो नान्तरीयकं फल-मिति तत्परीक्षेच्छेन तद्वेतुरिति भावः । वर्गेषु धर्मार्थादिचतु-वेरीषु व्यवा निर्गेलाः प्रजा यस्मिन् ॥ १० ॥ प्रायुक्तशिला-द्श्रेनमप्यस्यास्तद्वराद्वेत्याद् — अनयेति ॥ ११ ॥ १२ ॥ भेदहरी व्यत्थानदशायां स्थिता वर्यं न पर्यामः । समाधिना भोधेकतां गतास्त् योगदशा वीक्षणा दयाम एव ॥ १३ ॥ १४ ॥ इयं जगन्माया मिथ्यैय । असी मिथ्याश्रान्तिः नामास्ति । यद्यस्ति च तहाधिष्टान'चद्रूपा अन्यथैवास्ति प्रतीयमानजडरूपेेखर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ किमिदं भूतभन्येश यदियं मामुपागता' इति यत्खसभीपागमनसामर्थकारणं पृष्टं तस्योत्तरमाह-अथेति । अथ प्रागुक्तनिर्वेदप्राध्यनन्तरं ख-विरागवशाद्दितमारमीयं खामिकवितमारमज्ञानानुकूलं च गु-रूपसदनश्रवणमनन।यर्थं लदुपदेशात्साधयन्याः साधयितुमि-च्छन्ता अनया अन्यासां प्रागुक्तजगत्सर्गदर्शनहेतुधारणाव्य-खेचर्सिद्धिब्रह्माण्डान्तरसंचारपरमनःकल्पितसू-क्षार्थानुप्रवेशसिद्धसंदर्शनसंभाषणादिसिद्धिहेतूनां चूडाळीपा-

इति मायेव दुष्पारा चिच्छक्तिः परिजृम्भते । इत्थमाधन्तरहिता ब्राह्मी शक्तिरनामया ॥ १८ प्रवर्तन्ते निवर्तन्ते नेह कार्याणि कानिचित्। द्रव्यकालक्रियाचीता चितिस्तपति केवलम् ॥ १९ देशकालिक्षयाद्रव्यमनोबुद्ध्यादिकं त्विदम्। चिच्छिलाङ्गकमेवैकं विद्यानस्तमयोदयम्॥ २० चिवेषेयं शिलाकारमवतिष्ठति बिभ्रती । अङ्गमस्या जगज्जालं मरुतः स्पन्दनं यथा ॥ २१ विश्वानघनमात्मानं जगदित्यववुष्यते । अनायन्तापि सायन्ता चित्त्वादिति गतापि चित् चिच्छिलेयमनाद्यन्ता साद्यन्तास्तीति बोधतः। साकारापि निराकारा जगदक्रेति संस्थिता॥ २३ यद्वत्स्वप्ने चिदेव स्वं रूपं व्योमैव पत्तनम्। वेत्ति तद्वदिदं वेत्ति पाषाणं जगदङ्गकम्॥ २४ न सरन्तीह सरितो न चफ्रं परिचर्तते । नार्थाः परिणमन्त्यन्तः कचत्येतज्ञिदम्यरम् ॥ न महाकल्पकल्पान्तसंविदः संविदम्बरे । संभवन्ति पृथग्रुपाः पयसीव पयोन्तरम् ॥ २६ जगन्ति सन्त्येच न सन्ति शान्ते चिदम्बरे सर्वगतेकमूर्ती। नभोन्तराणीव महानभोन्त-भ्रित्सन्ति सत्तानि पराम्बराणि॥ २७

ह्याने वर्णितधारणाविशेषाणामभ्यासात्त्वत्संकल्पकल्पितं लरस-माधिस्थानं परिज्ञाय तत्र गतया अनया अन्तर्हितोऽपि त्वं दृष्ट इत्यर्थः ॥ १७ ॥ इति वर्णितप्रकारेण जीवचिच्छक्तिरविद्या ऐन्द्रजालिकमायेव परिजृम्भते । ब्राह्मी च मायाशकिरित्थमेव परिज्ञम्भते । स। तु विद्या, निरस्तावरणशक्तिलादनामयेति विशेष इलार्थः । अथवा पूर्वार्धेन मायेव मायिकोपाधीननुसन् रन्ती जीवचिच्छक्तिर्विज्ञम्भत इलज्ञकथा, उत्तरार्धे तु बाझी-शक्तिराविर्भता ब्रह्मचिदेव सर्वतो विज्ञम्भत इति तत्त्वइकथेति योज्यम् ॥ १८ ॥ प्रवर्तन्ते उत्पयन्ते । निवर्तन्ते नश्यन्ति । किंतु केवलं चितिरेव द्रव्यमिव काल इव कियेव द्योतमाना तपति स्फरति ॥ १८ ॥ अञ्चानां प्रतिकृतिरशकम् 'इवेप्रति-कृतीं इति कन् ॥ २० ॥ अवतिष्टत्यवतिष्ठते । छान्दसः पद-व्यख्यः ॥ २१ ॥ चित एवेदं विपरीतदर्शनं भ्रान्तचित्खभा-यादेवेखाइ-विज्ञानेति । साधन्ता देशकालकृतपरिच्छित्रा इति एवंविधयस्तुकृतपरिच्छेवमपि गता ॥ २२ ॥ निराका-रापि साकारा सती जगन्ति अन्नानि यस्यास्तथाविधेति वैप-रीत्येन संस्थिता ॥ २३ ॥ यद्वत् यथा स्वप्ने निधार्भेन स्वरूपं पत्तनं वेत्ति तद्वजागरेऽपि जगचिद्योमैव जगदत्तनं गिरिपा-षाणमंपि वेति परयति ॥ २४ ॥ खप्रवदेव प्रबोधे बाधसाम्यं दर्शयति—न सरन्तीति ॥ २५ ॥ पयसि समुद्रे तरङ्गादि पयो-न्तरमिव पृथप्रपाः ॥ २६ ॥ एवं सति अध्यारोपदृष्ट्या दर्शने

विसष्ठ तक्रफ भुने जगत्स्वं त्वं चासने संप्रति शान्तिमेहि।

बुद्धादिरूपाणि परं व्रजन्तु वयं बृहद्गस्यदं प्रयामः॥

२८

इखार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा ॰ मो ॰ निर्वाणप्रकरणे उ०पाया ॰ श्रिलान्तर्जगित्वतामहवाक्यानि नाम सप्ततितमः सर्गः॥७०॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

षसिष्ठ उवाच।

इत्युक्तवा भगवान्द्रसा द्रसलोकजनैः सह ।
बद्धपद्मासनोऽनन्तसमाधानगतोऽभवत् ॥ १
ओंकाराधोंऽधमात्रान्तः शान्तिनःशेषमानसः ।
लिपिकमीपिंताकार आसीदांशान्तवेदनः ॥ २
तमेवानुसरन्ती सा तथेव ध्यानगा सती ।
वासनासीदशेषांशा शान्ता चाकाशक्रपिणी ॥ ३
परमेष्टिन्यसंकल्पे तस्मिस्तानवमेयुषि ।
सर्वगानन्तिच्छोमक्रपोऽपश्यमहं यदा ॥ ४
यावत्संकल्पनं तस्य विरसीभवति क्षणात् ।
तथैवाशु तथैवोर्व्याः साद्रिद्धीपपयोनिधः ॥ ५
कृणगुस्मलताशालिसमुद्भवनशक्ता ।
समस्तवास्तमागन्तुमारच्या च शनैःशनः॥ ६

अगन्यनन्तानि सर्देव सर्वत्रेव चिरसत्तया सन्येव नाणुमात्रमिष कापि किचिद्प्यपलिपितं शक्यम् । अपवाद्द्ष्या दर्शनेन
कापि किचिद्पि चिरखह्पव्यतिरिक्तं समर्थयितं शक्यमिति फलितमिखाह—जगन्तीति । यथा महानभोन्तर्घटाकाशाःदिनभोन्तराणि महानभःसत्त्या सन्ति पृथङ्क सन्ति तथा तानि
जगन्यपि पराम्बराणि शून्यान्यपि चिन्सन्ति सङ्गवन्तीत्यर्थः
॥ २० ॥ हे विष्ठमुने, त्वं संप्रति तत्स्वं जगद्रूच्छ तत्र चेकान्तकल्पिते प्राक्तने निजासने समाधिना शान्ति निविभेषसुस्रमेहि । इमानि मत्कल्पितानि बुद्धादिजगद्रूपाणि प्रलयेन
परमव्यक्तं वजन्तु । वयं तु हेरण्यगर्भोपाधिसहितम्लाङ्गानवाधेन परं पदं केवल्याख्यं प्रयाम इत्यर्थः ॥२८॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सप्ततित्रमः सर्गः ॥ ७० ॥

कल्पनाहेतुर्वधात्रमंकल्पोपशमकमात् । सन्कल्पितानां भूतानां वर्ण्यते प्रलयकमः ॥ १ ॥

न विद्यते अन्तः अवसानं पुनर्व्युत्थानं यसात्तथाविषं यस्साधानं समाधिस्तव्यतः ॥ १ ॥ ॐकारस्य उत्तरार्धं या धर्षमात्रा तदन्तनं दिवन्दुशक्तिशान्तास्यतद्भागेषु क्रमाचित्त-विद्यापनेनान्ते शान्तिनिःशेषवासन इति संग्रहोक्तिः ॥ २ ॥ न शिष्यन्ते अंशाः स्पृतिबीजभेदा यस्यां तथाविधा भूला शान्तासती आकाशरूपिणी शून्यस्वभावा आसीत् ॥ ३ ॥ इदं तदीयमान्तरं रहस्यं त्वं कषमदाक्षीस्तत्राह—परमेष्टिनाति ।

किल तस्य विराडात्मरूपस्याङ्गैकदेशताम्। सा विभर्ति मही तेन तदसंबेदनोदयात्॥ S विचेतना सा विरसा थभूव परिजर्जरा। मार्गशीर्पान्तवलीय जराविधुरतां गता ॥ यथासाकमसंवित्तेरङ्गाली विरसा भवेत्। तथा विरिचिसंविसेर्धरा वैध्यमागता॥ Q, संपन्ना संहतानेकमहोत्पातमरावृता। दुष्कृताङ्गारनिर्दग्धनरकोन्मुखमानवा ॥ १० दुर्भिक्षाकाण्डदीस्थित्यदैन्यदारिद्यदर्भगा। दुःशीलाशेषवनिता निर्मर्थादनरावृता ॥ ११ पांसुप्रमन्दनीहारधृत्विधृसरसूर्यका । द्वन्द्रिमूर्खमहादुःखिव्यसनिव्याधिनाकुळा॥ १२ अग्निदाहजलापूरयुद्धपोच्छिन्नमण्डला । अवृष्ट्यबप्रहोश्रप्रकप्टचेप्रितपामरा ॥ १३

स्थूलसुक्षमकारणलक्षणार्थसहितप्रणवमात्राप्रविलयकमेण खबा-सनाक्षयात्तानवमुत्तरोत्तरसूक्ष्मभावं आ ईसुषि एयुषि सति अहमपि समाधिना सर्वगानन्ति बोमहपः संस्तृत्सर्वमपद्यम्। ननु इंयुपीति परोक्षे लिटः क्रमुरपर्यमिलपरोक्षोक्तिश्च विह-ध्यते । नैप **दोषः** । वसिष्ठस्य समाध्यारमभात्प्राग्दशामालम्ब्य पारोक्ष्यम्, समाध्यार ढदशामालम्बयापारोक्ष्यमित्युभयोपपत्तेः। नचवं तुल्यकालताबोधकभावलक्षणसप्तमीविरोधः । सामीप्या-तिशयेनापि भावस्य भावान्तरलक्षकलद्शनात्तुत्यकाठलोप-चारेणापि तदुपपत्तेरिति ॥४॥ तस्य विधेः संकल्पनं शनैःशनस्त-रक्षणादारभ्य यथायथा यावदिरसीमवति तावसर्थेव तथैव सादिद्वीपपयोनिषेरव्यास्तृणगुरुमादिसमुद्भवनशक्तता तथा स-मसीव जलादीनामपि शक्तिरस्तं गन्तुमारव्येति परेणान्वयः ॥ ५ ॥ ६ ॥ मुमूर्पीर्विदुपः सर्वदेहत्याभिसंबदनस्यः तत्संहारे तदन्नवैरस्यवद्वा तत्र विराङ्कदेहावयवपृथ्व्यादीनां वैरस्यं वोध्य. मिलाशयेनाह-किलेति। तद्संघेदनस्य तत्संघेदनोपसंहारस्य । उदयान्सा विचेतना सती विरमा परिजर्जरा वभूवति परेणा-न्वयः ॥ ७ ॥ ८ ॥ आशयस्यं इष्टान्तं प्रकाशयति—यथेति ॥ ९ ॥ कथंकथं विजर्भरा वभवेत्यतः प्रपन्नयति - संपन्नेत्या-दिसाधपन्नदशभिः। तत्र मनुष्याणां नाशादी काठिकल्मप-मपि निमित्तमित्याशयन तस्त्रपञ्चयत्राह—दुष्कृतेत्यादि ॥१०॥ र्दास्थित्यैः राजचीराद्युपप्रवः ॥१२॥ पांसुवत्प्रमन्दैनहार्रधूळि-भिध धृयरो भास्करो यस्याम् । शीतोष्णादिद्वन्द्विभस्तित्ररा-सोपाय मुर्केरतएव महादुःश्विभिद्ध्यसनिभिव्यश्वित्य आकुला

१ भाशान्तवासनः शंत पाठः सुवधः.

| अशङ्कितमहोत्पातपतत्पर्धतपत्तना । | |
|---|------------|
| शिशुश्रीत्रियमुन्यार्थगुणिनाशस्त्रज्ञना ॥ | १४ |
| अशङ्कितस्थलीमध्यसंजातागाधकृपका । | |
| वर्णसंकरनारीणामासक्तजनभूमिपा॥ | શ્વ |
| अदृश्कुलाखिलजना शिवश्लचनुष्पथा। | |
| केरीकराूलवनिता पात्रराूलजनेश्वरा॥ | १६ |
| दुःखशूलसमाचारा द्वन्द्रशूलाखिलप्रजा। | |
| अधर्मशूलवनिता पानशूलजनेश्वरा॥ | ક્.૭ |
| अध्मेशूलवलिता कुशास्त्रशतशूलिनी । | |
| दुर्जनाखिलवित्ताख्या विपद्विहत्सज्जना ॥ | १८ |
| अनार्यवसुधापाला त्दनाह्तपण्डिता । | |
| लोभमोहभयद्वेपरागरोग्रजोरता ॥ | १९ |
| अप्यन्यगामिषुरुषा रुषाभिहतसद्विजा। | |
| अनारतपराऋन्दपरापूर्यन्तपामरा॥ | २० |
| द्स्यूत्सन्नपुरप्रामदेवहिज्समाश्रया । | |
| आपातमधुरारम्भदुःखदोदरभङ्गुरा॥ | २ १ |
| आलस्योहासविलसत्कार्यवैधुर्यधर्मिणी । | |
| सर्वापदुपतापान्ता क्रमेणोत्सन्नदिग्गणा॥ | २२ |
| भस्मद्रोषपुरमामा निर्जनाखिलमण्डला । | |
| रोक्ष्यमाणभसाभ्रकुण्डलोहामराम्बरा॥ | २३ |
| दुर्भगाडम्बरारम्भरोद्नोरुरवोद्री । | |
| मुष्टिप्रमाणजनता जनतापानुपङ्गिणी॥ | રધ |
| | |

| नारसाशषदशान्ता सषतुगुणवाजता। | |
|---|------------|
| इत्यस्य पार्थित्रे धातौ ब्रह्मणो गतवेदने ॥ | २५ |
| पृथिवी पृथुवैधुर्या संपन्नासन्ननादातः। | |
| अथ तत्संविदुन्मुक्तो जलधातुः क्षयोन्मुखः॥ | २६ |
| यदा विश्वभितात्मासीत्तदा नियतिलङ्कनात्। | |
| समुन्सार्यार्यमर्यादामर्णवा विद्युतार्णसः॥ | २७ |
| प्रवृत्ता विकृति गन्तुमुन्मत्ता इव राविणः। | |
| वीचिविक्षोभविन्यासैवेंलाविपिनलावकाः॥ | 20 |
| कह्योखवलनावर्तविवर्ताद्वर्तिताश्रयाः । | |
| महाभ्रभ्रमदुत्तुङ्गतरङ्गात्तनभोदिशः॥ | ३९ |
| बृहहुलुगुलावर्तगर्जनोद्गवकन्दराः । | |
| सीकरीयमहारम्भघनसंवृत्तिताचलाः॥ | ३० |
| चलचलचलद्वीरमकराघूर्णितान्तराः । | |
| उह्नसन्मकराकान्तद्वमकाननितोदराः॥ | 38 |
| दरीविदारणभ्रष्टांसहाहतज्ञलेचराः। | |
| ऊर्म्युदस्तमहारत्नभरतारिकताम्बराः ॥ | 33 |
| उत्फालमकरच्छन्नमश्चरवृहद्धनाः। | |
| पस्परोर्मिसंघट्टभांकारकडुटांकताः ॥ | 33 |
| तरत्तरलमातङ्गफूत्कारा धौतभास्कराः। | |
| अन्योन्यवेह्ननव्यप्रप्रविदीर्णाद्रिमित्तयः॥ | 38 |
| तटपर्वतलुण्टाकतरङ्गकरमण्डलाः। | 5 . |
| गर्जद्विरिदरीगेहविशदुन्मत्तवारयः ॥ | 34 |

॥ १२॥ १३॥ १४॥ जलदोलंभ्यादशद्भितं स्थलामध्ये यत्र क्रचन जलाशयाखननात् । सर्वतः संजाता अगाधकूपका यसाम् । वर्णसंकराय नारीणां मध्ये गोत्रसापिण्ड्यागम्यादि-विचारं विनव विवाहाद्यासक्ता जना भूमियाथ यस्याम् ॥१५॥ अवत इत्यहमोदनादि शुलं विकयापहारादिना उपजीव्यं नेपां तथाविधा अखिलजना यस्याम् । शिवः शुल्कं तदेव श्रूलमुप-जीन्यं येषु तथाविधानि चतुष्पथानि यस्याम् । केशो भगः स एवेंकं श्रूलमुवजीव्यं यासां तथाविधा वनिता यस्याम् । पात्रं शिरः करस्तदेव शूलमुपजीव्यं येषां तथाविधा नरेश्वरा राजानी यस्यामिति संप्रदायव्याख्या। अथवा 'अट अतिक्रमे' इति धातोः अद्रः खखवर्णाश्रमोचितवृत्यतिकमः । शिवाः सुगालाः । केशाः प्रसिद्धा एव । पात्रं वेश्यानतेक्यादयश्च शूलरोग इव व्य-सनकन्दनहेतवो येषामिति यथायोगं योज्यम् । रोषं प्राग्नत् ॥ १६॥ एवं दुःखान्येव शुलानीव प्राणिकन्दनहेतवो येषां तथाविधा जनसमाचारा यखाम्। एवमश्रेऽपि ॥ १७ ॥ अ-धर्मशुक्तरभर्माकोशपरैर्जनैः सर्वतो बिलता । कुशास्त्रशतेर्वे-दबाँसः श्लुलिनी रोगार्तेव साक्रन्दा । दुर्जनाश्चीरपिश्चनाद-योऽखिलजना वित्ताक्या यत्र ॥ १८ ॥ १९ ॥ अन्यगामिनः स्वधर्मत्यागेन परधर्मप्रवृताः पुरुषा यत्र । रुषा कोधेन अभि-हताः सन्तौ द्विजाः खधर्मोवदेष्टारो यत्र । अनारतं परेषामा-कन्दे रोदने तत्परा अपर्यन्ताः पामरा यत्र ॥ २० ॥ अन्या- याजितवित्तर्भरणकाळे आपातमधुरारम्भं परिणामे परलोके च दुःखदं उदरं येषां तथाविधा भङ्गरा अल्पायुषो यत्र ॥ २१ ॥ आछस्योहासेन विलसःसंध्यावन्दनादिकार्यवेधुर्य येषां तथा-विधा धार्मणो धार्मिकजना यत्र । सर्वेषामापद उपतापा रो-गाश्चान्ते यस्याम् ॥ २२ ॥ रोह्रयमाणैर्ध्वनिद्धर्भस्माश्रोभयकु-ण्डरेश्वकवातेहर्शमरमिवाम्बरं यस्याम् ॥ २३ ॥ दुर्भगानां प्रजानामाडम्बरारम्भ रोदनैश्व उरुरवं ध्वनिबहुलमुद्दरं यस्याः। 'नासिकोदरीप्र-' इति डीप् । मोषणं मुष्टिश्वीर्यं तत्प्रमाणा ज-नता जनसमूहो यस्याम् ॥ २४ ॥ सर्वेः ऋतुगुणैर्वाजेता । इति वर्णितप्रकारेण अस्य ब्रह्मणो विधातुर्विराइदेहारम्भके पार्थिवे धाती गतवेदने उपसंहत बतन्ये सति पृथिवी पृथुवैधुयी संप-न्नेति परेणान्वयः ॥ २५ ॥ आसन्नान्नाशतः प्रख्यात् । एवं जलभागादपि चैतन्योपसंहारारम्भे सप्तार्व्धानां क्षोमेण निर्म-र्यादसमासीदित्याह्—अथेसादिना ॥ २६ ॥ विश्वताणंसो विस्तृतजलाः ॥ २० ॥ घेलाविपिनानां लावकार्छेदकाः ॥२८॥ महार्अर्भमद्भिष्ठत्तुञ्जतरंगैश्वात्ता नभी दिशश्व यैः॥२९॥ **षृद्दिर्शुलुशुलायमानैरावतैर्गर्जनेन उद्गवाः क्**जन्तः पर्वतक-न्दरा येषाम् ॥ ३० ॥ खखवेगोत्कर्षस्यापनेनेतरज्ञार्थं च-लक्षसारक्षेभ्योऽप्रे चलद्भिस्रोऽप्यये चलक्किराम्बरीराम्बरी तान्तराः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उत्फालैरुच्छलद्भिमंकरैर्छका न-अधरा बृहन्ती घनाथ येषाम् ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

भूषाः परपुराक्रान्ता लग्ना इव हतारयः। **सारारवरणद्वेहविद्यावितनभश्चराः** ॥ ३६ प्रलुण्डितवनव्यृहलूनकाननिताम्बराः। सपक्षपर्वताकारतरङ्गापूरिताम्बराः॥ υE महारवमरुच्छिन्नकहोलाचलचालिताः। चञ्चसीरगिरिवातपतत्तटरटजालाः॥ 36 उल्लसिद्वपुलावर्तप्रोत्क्षिप्तमकरोत्कराः। विमजान्निस्तलावर्तनिगीर्णगिरिकन्द्रराः॥ ३९ दरीदलनसंप्राप्तदयद्वशनदन्तुराः। श्टङ्गलम्बदरीप्रान्तमग्नवीचिजलेमकाः॥ 80 व्यालोसवलनाक्रान्तविटपिप्रोतकच्छपाः । यमेन्द्रबसुधावाहै रुत्कर्णभयविद्वलैः॥ धर भूयमाणपतच्छैलतटीकटकटारवाः । मत्स्यपुच्छच्छटाच्छिन्नमग्नोन्मग्नबुताद्रयः॥ ४२ **छीलाल्नवनन्यृहशीतलासारवारयः।** प्रज्ञवलद्वडवावह्निज्वालावलिमिलजलाः॥ કર सरसेन विभोर्नाशैर्विशङ्कितमहानलाः। मिलच्छिखरिमालाप्रजलमातङ्गयोधिनः॥ 88 नृत्यन्तीय तर्भोधर्जलायलनवेधिनः। जलाचलाचलान्योन्यसंघट्टस्फोटपण्डिताः॥ 84

हता अरयः खबिरोधिदवाप्रयो यः । तारारवं उत्तैः म्यरं यथा स्या-त्तथा रणद्भिस्तरंगीहेभ्यो विदाविता नभश्ररा देवादयोर्थः॥३६॥ प्रलुष्ठितैहरसायोग्नातवनव्युईर्छ्नकाननमिव कृतमम्बरमाकाशे र्थः ॥ ३७ ॥ मरिद्धिरिछर्नेविंभक्तैः कहोलैरचला इव चा-लिताः । रक्षधात्वादिप्रभागिश्वधर्तारेम्यो गिरित्रातेम्यः पत-द्भियंत्रे रटजलाः ॥ ३८ ॥ निस्तर्लरगार्धरावर्तेर्निगीणां गिरय-स्तरकन्दराध येषाम् ॥ ३९ ॥ दरीदलनवशाःसंप्राप्तः स्फटि-कादिरपद्दर्शनर्दन्तुरा इसन्त इवेति यावत् । श्टक्षेपु लम्बिषु दी-र्धेषु दरीप्रान्तेषु ममाः प्रविष्टा वीचयो जलेभका यादोगजमेदा येषाम् ॥ ४० ॥ यमस्य इन्द्रस्य वसुधायाश्च वाहैर्वाहनैर्महिपः रावतदिमाजादिमिः उत्कर्णेरूविकृतकर्णैः ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ लंहास्तेषु वनव्युहेषु विधान्तानीव शीतलान्यासारवारीणि येषाम् ॥ ४३ ॥ स्त्रीयेन रसेन जलेन विभोराध्रयस्पेन्धनस्य नाशेविंशक्किता भीता दव तिरोभृता महानला येभ्यः । अथी-रत्थलमार्तन्नः सद्द मिलन्तः शिखरिमालाग्रेषु जलमातन्ना यो-थिनो युद्धशीला येषाम् ॥ ४४ ॥ जलरचलानामचलरन्योन्य-संघट्टे स्फोटने च पण्डिताः ॥ ४५ ॥ उद्वामराः उद्धवन्त्यो या मृतवनगजोत्फुलशरीरलक्षणा मेर्यस्तासां तरताप्रताडनैर्यद्वादनं वेन भार्द्धरः कहोर्लर्वृहत्तरप्रराष्ट्ररः पातालमिव अखमत्यन्त-

यृहद्गिरिवनवातप्राणिमण्डलमण्डिताः। उड्डामरवनेभेन्द्रभेरीवादनभासुरैः॥ 86 असुरैरिव पातालं कहोलैरलमाकुलाः। अधोदपतदुष्रासदिङ्ग गवदनध्वनिः॥ 80 पातालतलतास्वन्तर्विस्फोटामोटनोद्धटः। चञ्चलाचलकीलोर्धा चचाल क्षणचालिता॥ 86 लोला दौवालवल्लीव व्यालोलाम्भोधिलङ्किता। अथ दुर्वारनिर्घापनिर्वाताडम्बरान्विता॥ પ્રશ पुरुफोटेच पतन्ती धौर्दिशां पतिरवारवैः। आवर्तवलनाकाराः केतवः पेतुरम्बरात्॥ 40 हेमरत्नमया मुक्ताः सिन्दृरभुजगा इव । ककुष्भ्यो नभसो भूमेरुद्गुर्दग्धदिकटाः॥ 48 चलज्वालाजरारोपा विविधोत्पातपङ्कयः। पृथ्वादीन्यसुरादीनि ब्रह्मोन्मुकानि सर्वतः॥ द्विविधानि महाभूतान्यलं संश्लोभमाययुः। चन्द्रार्कानिस्दाक्राग्नियमाः कोसाहसाकुराः ॥५३ परिपातपरा आसन्ब्रह्मलोकगतेभ्बराः। कम्पैः कटकटारावपतत्पादपपङ्कयः ॥ 43 भूमेरन्वभवनभूरिदोलान्दोलनमद्रयः। भृकम्पलोलकेलासमेरमन्दरकन्दराः । पेतुः कल्पतरून्मुका रक्तस्तवकत्रृष्टयः॥ ५५

माकुला इति परेणान्वयः ॥ ४६ ॥ अथ सागरक्षोभानन्तरं तत्र प्रवमानलादुत्रासानामृथ्वीकृतपुष्कराणां दिङ्गागानां दिग्ग-जानां ध्वनिश्द्पतदुद्वतोऽभूत् ॥ ४७ ॥ कीहशः स ध्वनिः । पातालतललक्षणस्य तालुनः अन्तर्विस्फोटेन विदारणेन आमो-टनेन पिण्डीकरणेन चोद्घटो धनतरः । दिग्गर्जश्चानुह्यमाना उर्वी चश्रलानि भेशीयचलकीलानि यस्यास्तथाविधा भूला क्ष-णादेव खस्थानाचालिता सती व्यालेलिएमोधिमिर्लक्किता च सती छोला शैवालवङ्गीब चचालेति परेण सहान्वयः ॥ ४८ ॥ ततः किमासीत्तदाह्-अथेति । दुर्वाराणां प्रजयाम्युदानां निर्घोपनिर्घातानामाडम्बररन्विता द्यादिशां प्रतिध्वनिरुक्षणरा-रवैः पतन्ती पुरुकोटेव ॥ ४९ ॥ कतव औरपातिकधूमके-तवः पेतुः उत्पेतुः ॥ ५० ॥ वर्णनो हेमरत्रमया इव मुक्ता इव सिन्दूरवर्णभुजगा इव चेखिप्रमोत्पातपं-त्त्युपमानानि । ककुच्न्यो दिरम्यो नभसो भूमेब्रोत्पातप-इय उदगुरिति व्यवहितेनान्वयः ॥ ५१ ॥ ब्रह्मणा प्रागुक्त-धात्रा उन्मुक्तानि विधारणसंकल्पोपसंहारादुपेक्षितानि असु-रादीनि पृथ्यादीनि चेति द्विविधान्यपि महान्ति भूतशस्द-वाच्यानि संक्षोभमाययुः ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ त्रझलोकं गत ई-श्वरः खखाधिकारनिवाहकः प्रभावी येषां तथाविधाः सन्तः

પદ્

लोकान्तराद्विपरवारिधिकाननान्त-

कोलाह्कैर्जगदभूतप्रविकीर्णशीर्ण पूर्णाणेवे त्रिपुरपूर इवामिपाती ॥ मृत्पातकस्पपवनेन मिथो हतानाम्। इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० कस्पक्षोभवर्णनं नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

ब्रिसप्ततितमः सर्गः ७२

वसिष्ठ उवाच। अधारुष्टवति प्राणान्स्वयंभुवि न मोभुवः। विराष्ट्रात्मनि तत्याज घातस्कन्धस्थितिः स्थितिम् १ ते हि तस्य किल प्राणास्तेन क्रान्तेषु तेष्वपि। ऋक्षचके स्थिति कोऽन्यो धत्ते भूतैकधारिणीम् २ वातस्कन्धे समाक्रान्ते ब्रह्मणा प्राणमारुते। समं गन्तुं परित्यज्य संस्थिति क्षोभमागते ॥ निराधाराः सवाताग्निदाहोस्मुकवदापतन्। ब्योझस्तारास्तरोः पुष्पनिकरा इव भूतले॥ कालपाकचलन्मुला जगत्खण्डफलालयाः । प्रशान्तपवनाधारा विमानावलयोऽपतन् ॥ प्रलयोनमुखतां याते ब्राह्मे संकल्पनेन्धने। सिद्धानां गतयः शेमुरिद्धानामर्चिपामिय॥ ફ प्रभ्रमन्त्योऽम्बरे करूपमारुतैस्तनुतूलवत् ।

॥ ५४ ॥ ५५ ॥ लोकान्तराष्यद्रयः पुराणि वारिधयः कान-नानि चेत्येतदन्तं सर्वं जगदुत्पातसहितेन कल्पपवनेन मिथो-न्योन्यं इतानां हन्यमानानां जनानां कोलाइलैः रुद्रगाणाप्ति-दाहेन अभिपाती अभितः पतनशीलश्रीणि पुराणि पूरयतीति त्रिपुरपुरो देंत्यसंघ इव पूर्णार्णवे प्रविकीर्ण दीर्णमभूदित्यर्थः ॥ ५६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वा-णप्रकरणे उत्तरार्धे एकसर्शाततमः सर्गः॥ ७१ ॥

> धातुः प्राणिनरोधेन वातस्कन्धस्थितिक्षयः । तत्प्रसङ्गात्पुनः पृष्टा वर्ण्यते अप्रे विराट्स्थितिः ॥ ३ ॥

विराडात्मनि खयंभुवि प्राणानाकृष्टवति साहृत्प्रदेशे उपसं-हर्तुमारब्धवति सति वातस्कन्धस्थितो नभोभवो वायुः स्थिति **प्रहनक्षत्र**विमानादिविधारणमर्यादां तत्याज ॥ १ ॥ ते नात-स्कन्धास्तस्य खयंभुवः प्राणाः । कान्तेषु उपसंहतेषु ॥ २ ॥ स्थिति प्रायुक्तां लक्ता सममुपसंह।रेण साम्यावस्थां गन्तुं धी-भमागते सति ॥ ३ ॥ सवाते अग्निदाहे उड्डीनैहल्मुकैस्तुल्यं ताराः भूतले आसमन्तादपतम् ॥ ४ ॥ जगस्वण्डे अर्जितस्य सुकृतफलस्य आलयाः भोगस्थानभूता विमानावलयः का-लविपाकेन चलद्विच्छिन्न भोगमूल कर्म येषां तथाविधाः सन्तः अपतन् ॥ ५ ॥ इदानां दीप्तानाम् ॥ ६ ॥ खेचरादिसिद्धीनां क्षयिष्णुतां तुच्छतां च सूचयन्नाह-प्रभ्रमन्त्य इति । मुका वाग्त्र्यापारेऽप्यसमर्थाः ॥ ७ ॥ इन्द्रादिनगरैः सहितानि सेन्द्रादिनगराणि अमरभूशृतो मेरोः षिरांसि शिखराणि च पेतः ॥ ८ ॥ नन् ब्रह्मणः स्थूलदेही

स्वशक्तयपचये मुकाः सिद्धसंततयोऽपतन्॥ संकल्पह्रमजालानि सेन्द्रादिनगराणि च । पेतुर्भुकम्पलोलस्य शिरांस्यमरभुभूतः ॥ 4

श्रीराम उवाच ।

चिति संकल्पमात्रात्मा विराइ ब्रह्मा जगद्वपुः। किमक्षं यस्य भूलोकः किं स्वर्गः किं रसातलम् ॥ ९ कथमेतानि चाङ्गानि ब्रह्मस्तस्य स्थितानि च। कथं वा सोऽन्तरे तस्य स्वस्यैव वपुपः स्थितः १० ब्रह्मा संकल्पमात्रात्मा निराकृतिरिदं स्थितम्। जगदित्येव जातो मे निश्चयः कथयेतरत्॥

वसिष्ठ उवाच। आदौ तावदिदं नासन्न सदास्ते निरामयम्।

चिन्मात्रपरमाकाशमाशाकोशैकपूरकम् ॥ १२

वद्माण्डरूपो विराद् तदन्तर्गतः सत्यलोकनिवासी चतुर्भुखदे-इस्तु तन्मनःकल्पितः प्रातिभासिक एव । नच सोऽपि तस्य स्थूलदेइ एवेति युक्तम् । विराइदेहान्तःस्थित्ययोगात् । नहि कस्यचिदपि स्थूलदेहान्तः स्थूलदेहान्तरं दृष्टं श्रृतं वा संभाव-यितं वा शक्यम् । एवं सति मानसे चतुर्भुखंदहे प्रातिभासिके स्वाप्तदेहप्रारो प्राणोपसंहारसंकल्पेन कथं विराइदेहविष्टम्भकप्रा-णस्थानीयवातस्कन्धादिक्षयः। नहि खप्रदेहे प्राणाद्यपसंहारेण मरणदर्शने जाप्रत्यसिद्धस्थूलदेहक्षयो दश्यत इत्याशयेन रामः शक्कते—चितिसंकल्पमात्रारमेखादिना । ब्रह्मा चतुर्भुखिनित संकल्पपात्रं मनस्तदात्मा जगद्वपुर्वह्माण्डशरीरकः प्रसिद्धः। तस्य संकल्पमात्रात्मनश्रतुर्भुखस्य भूलीकादयो लोका अङ्ग अवयवाः किम् । नह्यमूर्तस्य मनसो मूर्तान्यक्रानि संभवन्ति । यदापि संभवन्ति तदा भूठीकः किमजे, पादा अन्यो वा खर्गश्च किमन्नं, रसातलं च किमन्नं कोऽत्रयव इति विभागप्रश्नः ॥ ९ ॥ अस्तु वा चतुर्मुखदेहोऽपि मूर्तस्तथाप्यरूपरिमाणस्यतस्यतान्य-तिविस्तृतानि भूरादीन्यङ्गानि कथं स्थितानि । तस्यापि विस्तृ-तलकल्पनेन ब्रह्माण्डात्मता यद्युच्येत तर्हि स खस्येत्र वपुष एतस्य ब्रह्माण्डस्यान्तः सत्यलोके कथं स्थितः ॥ १० ॥ किंच ब्रह्मा संकल्पमात्रात्मा निराकृतिरमृतं एव, इदं तु जगत्साकारं स्थितमिति मे निश्चयो जातः । अत इतरत्प्रकारान्तरमस्ति चेत्कथय ॥ ११ ॥ तत्र प्रथमं पृष्टं स्थूलदेहस्य मनोमयदे-हानन्यत्वं तदवयवानां तदवयवत्वं चानुभावयितुं भूभिकां मुलोद्धाटनेन रचयति-आदावित्यादिना । आशानां सर्वाभि-

योग० १५४

तत्स्वामाकाशतां चतंत्र्यस्यमित्यववुध्यते । १३ स्वरूपमत्यजन्नित्यं चित्त्वाद्भवति चेतनम् ॥ विद्धि तश्चेतनं जीवं सघनत्वान्मनः स्थितम्। एतावति स्थितिजाले न किंचित्साकृति स्थितम् १४ इन्ह्रं व्योमेच चिद्योम स्थितमात्मनि पूर्वेचत्। यदेतत्व्रतिभातं तु तदन्यन्न शिवात्ततः॥ १५ अथ तन्मन आभोगि भाविताहंकृति स्फूरत्। संकल्पात्मकमाकाशमास्ते स्तिमितमक्षयम्॥ १६ तत्संकल्पचिवाभासनभोऽहमिति भावितम् । १७ असत्तमेवानुभवत्यंनिवेशं खमेव खे॥ वेत्ति भावितमाकारं पद्दयत्यनुभवत्यपि । संकल्पकात्मकं शुन्यमेच देव इति स्थितम् ॥ १८ शुन्यमेव यथाकारि संकल्पनगरं भवान्। पश्यत्येवमजो देहं खे खमेवानुभूतवान्॥ १९ संविदो निर्मलत्वात्स याचदित्यं तथाविधम्। अनुभूयानुभवनं स्वेच्छयेवोपशाम्यति ॥ 20 यदा तत्वपरिशानमस्मदादेस्तदाततम्। इदं संवरणं विद्धि शून्यं सत्यमिव स्थितम्॥ २१ यथाभृतपरिज्ञानादत्र शाम्यति वासना । अद्वैतान्निरहंकारात्ततो मोक्षोऽवशिष्यते ॥ २२ एवमेष स यो ब्रह्मा स एवेदं जगितस्थतम्।

विराजो ब्रह्मणो राम देहो यस्तदिदं जगत्॥ संकल्पाकाशकपस्य तस्य या भ्रान्तिकत्थिता। तदिवं जगदाभाति तद्वह्याण्डमदाहृतम् ॥ २४ सर्वमाकाशमेवेदं संकल्पकलनात्मकम् । वस्तृतस्त्वस्ति न जगत्वसामसे च न कचित् २५ कचिन्मात्रेऽमले ज्योसि कथं वा केन वा जगत्। किं जायते किमत्रास्ति कारणं सहकारि यत्॥ २६ अतोऽलीकमिदं जातमलीकं परिदृश्यते । अठीकं स्वदतेऽछोकमेवं पश्यति शुन्यकम् ॥ जगदादिकया भासा चिन्मात्रं स्वद्ते स्वतः। आत्मनात्माम्बरे द्वैते स्पन्दनेनेव मारुतः॥ २८ इदं किंचिन्न किंचिद्रा द्वैताद्वैतविवर्जितम्। चिदाकाशं जगद्विद्धि शून्यमच्छं निरामयम् ॥ २९ शान्ताशेषविशेषोऽहं तेन राघव संस्थितः। सन्नेवासन्निवातस्त्वमेवमेवास्त्व निर्ममः॥ 30 निर्वासनः शान्तमना मौनी विगतचापलः। सर्वे कुरु यथाप्राप्तं कुरु मा वात्र किं प्रहः॥ 38 अनादिनित्यानुभवो य एकः स एव रहयं नतु रहयमन्यत्। सत्यानुभूतेऽननुभूतयो याः 32 स्रविस्तृता दृश्यमहादशस्ताः॥

इत्यापें श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० निर्वाणवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

लापाणां दिशां च कोशानां भूमानन्दात्मकलादेकमेव पूरकम् ॥ १२ ॥ तदेतत्परमाकाशं स्वरूपमत्यजद्विकारमनापद्यमानमेव स्वामाकाशतां चन्द्रो द्वितीयचन्द्रमिव कल्पयत् परं स्वातिरिक्तं वस्लिति अववृध्यते ॥ १३ ॥ तत्र बोध्यवोधबोद्धभावस्था-त्रिपुटीमननेन सघनखाद्धनीभावान्मनोवेषेण स्थितं तथाभूतं चेतनं जीवं विद्धि । खरूपमत्यजदिति यदुक्तं तदुपपादयति— एतावतीति । एतावति त्रिप्रटीजीवभावपर्यन्ते स्थितिजाले अ-ध्यासेन संपन्नेऽपि तेषु न किंचिदपि साकृति परस्परव्यावृताका-रसिंहतं रूपं परमार्थतः स्थितं किंतु शुद्धं व्योमेव शून्यमेवेति परेण संबन्धः ॥ १४ ॥ कि ताई स्थितं तदाह—चिद्योमेति ॥ १५ ॥ एतमभिमानाकारभावनादसतैव तद्भावेनापि स्फर-तीत्याह-अथेति ॥ १६ ॥ अहंकारकल्पनोत्तरं स्थूलदेहकल्प-नापि तस्यावस्तभृतैवस्याह—तदिस्यादिना ॥ १७ ॥ १८ ॥ यदि देहं शून्यमेव तर्हि कथं साकारमनुभूयते तत्राह--शून्य-मेवंति ॥ १९ ॥ प्रख्यमोक्षादिकल्पनाप्येवमेवेलाह—संविद इति ॥ २० ॥ कदोपशाम्यति तदाह-यदेति । तदा आत-तमिति च्छेदः ॥ २१ ॥ यथाभूतं परमार्थसत्यं ब्रह्म तत्परि-ज्ञानान्मिश्यावासना अत्रास्मिनेव जन्मनि शाम्यति ॥ २२ ॥ अस्त्वेवं तथाप्येतदुत्तया यत्पृष्टं किं समाहितं तत्राह-एय-मिति ॥ २३ ॥ तथाच ब्रह्माण्डस्यापि आन्सीव स्थूलदेहत्वं विचारतस्त तदीयमनोमात्रलमिति तदक्षोपसंहारेणोपसंहारः सिद्ध इति भावः ॥ २४ ॥ जात्रदुन्मुखतायां खाप्रदेहाङ्गोप-संहारेण खाप्रभरादिलोकोपसंहारवद्वा तदुपसंहारः । द्वयोरपि संकल्पाकाशमात्रलादित्याशयेनाह—सर्वमिति ॥ २५ ॥ अ-वास्तवत्वं कथं होयमिति चेदसंभाव्यलादिखाशयेनाह-केति । किंवृत्तपञ्चकं देशकालादिसवीप्रकाररप्यसंभाव्यलस्य समर्थना-र्थम् ॥ २६ ॥ खदते प्रियाप्रियभावेन प्रथते । आलोकं नि-ष्प्रपश्चं ब्रह्मेव आन्त्या शून्यकं जगच्छूच्यं खमेव एवं जगद्भा-वेन पर्यति ॥ २७ ॥ तदेव स्पष्टमाह- जगदादिकयेति । आदिपदात्तद्धमा उत्पत्त्यादिभावविकारा गृह्यन्ते ॥ २८ ॥ द्वैतिविवर्जनात्किचित्। अद्वैतस्यापि वर्जनाम्न किचिद्वा ॥ २९ ॥ तस्मादहमिव लमपि एवं परमार्थतः असन् देहादिरिव आस्ख किंतु निर्मम इत्यर्थः ॥ ३०॥ व्युत्थितः सर्वं व्यवहारं कुरु समाहितः सन् मा वा कुरु कि प्रहः किमर्थमेकत्राप्रह इलार्थः ॥ ३१ ॥ तस्मात्सर्वे दश्यं ब्रह्मेव तद्श्रानान्येव भ्रान्त्याकारपरिणतानि दश्यानुभवा इति निष्कर्ष इत्युपसंहरति-अनादीति । सत्ये अनुभूते । भावे कः। अनुभवैकरसे ब्रह्मणि या अननुभूतयः अज्ञानानि ता एव भ्रान्तिवैचित्र्यैः सुविस्तृता द्यमहादश इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

श्रीराम उवाच। बन्धमोक्षजगद्बद्धिनं शून्या नापि सन्मयी। नास्तमेति नचोदेति किमप्याद्यमसौ किल ॥ उपदिष्टमिदं ब्रह्मंस्त्वया बुद्धमलं मया। भूयः कथय तृप्तिहिं श्रण्यतो नास्ति मेऽमृतम्॥२ सर्गादिसंभ्रमदशः शुन्यतादिदशस्तथा। न काश्चन विभो सत्या असत्याश्च न काश्चन ॥ ३ प्रवंस्थिते त् यत्सत्यं तत्सवे बुद्धवानहम्। तथापि भूगो बोधाय सर्गानुभव उच्यताम्॥ वसिष्ठ उवाच । यदिदं दृश्यते किंचिजगत्स्थावरजङ्गमम्। सर्व सर्वप्रकाराक्यं देशकालकियादिमत्॥ तस्य नारो महानारो महाप्रलयनामनि। ब्रह्मोपेन्द्रमरुदुद्रमहेन्द्रपरिणामिनि॥ शिष्यते शान्तमत्यच्छं किमध्यजमनादि सत्। यतो बाचो निवर्तन्ते किमन्यद्वगम्यते ॥ सर्पपापेश्रया मेरुर्यथातिविततारुतिः। तथाकाशमपि स्थूलं शून्यं सद्यदपेक्षया ॥ रीलेन्द्रापेक्षया सुक्ष्मा यथेमे त्रसरेणवः।

> इहारोपक्रमो भूयो बोधदार्ढ्याय वर्ण्यते । कथमेतस्य चाङ्गानीत्यादिप्रश्लोत्तरं ततः ॥ ३ ॥

'किमङ्ग तस्य भूलीकः, कथमेतानि चाङ्गानि, कथं वासोन्तरे तस्ये'तिप्रसुतप्रश्रत्रयोत्तरोपोद्धातत्वेन वर्णितं शुद्धे त्रह्मणि जग-द्प्यारोपप्रकारं पुनः कमशस्तात्पर्यतश्च सम्यग्जिज्ञासमानो राम-स्तत्र तात्पर्यतः खज्ञातांशं दर्शयितुं सिंहावलोकनन्यायेन व्यवहि-तोक्तनिष्कर्षं स्मारयति—वन्धेलादिना।सन्मयी सलार्थविषया । सर्वसाक्षिलादेव खयं नास्तमेति नोदेति च। अतः असौ सर्वसा-क्षिणी बुद्धिरेव विषयमार्जने किमपि वाड्यनसागम्यमायं त्रहोति ल्या तात्पर्यगल्या उपदिष्टम् । किलेति गुरुवुद्धिविसंवादशङ्का-परिहाराय । इदं मथा बुद्धमिति परेणान्वयः ॥ १ ॥ तर्हि किमुपदेशोपरमोऽस्तु नेत्याह्-भूय इति ॥ २ ॥ सत्या अवा-धिताथीः असत्या बाधिताथी अपि न । तत्तद्यवहर्तृहशा ब्रह्मण एव तथास्थितेर्थंकियाऽविसंवादादसत्कार्यपक्षानभ्युपगमात्स-वैशक्तिमति ब्रह्मणि सर्वश्रुत्यतापादनशक्तरपि संभवान्मायया सर्वविरोधपरिहाराश्चेति भावः ॥३॥ मायाशबलबद्धमाहातम्य-मिव तद्धिष्ठाननिर्विशेषनित्यमुक्तब्रह्मतत्त्वमप्यहं बुद्धवानि-त्याह-एवमिति । सर्गानुभवः प्रपद्याध्यासक्रमो भूय उच्य-ताम्। भूयसां श्रोतृणां बोधाय, बोधबाहुल्यायेति वा ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ स्थूलस्य भूतभौतिकस्य सूक्ष्मभूतेषु नाशे भूतसूक्ष्मैः सह अव्याकृतानुप्रवंदो । महानादो प्राकृते प्रलये इति यावत् । **ब्रह्मोपेन्द्रादिदेहानां परिणामश्चरमो भावविकारस्तद्वति त**च्छीले

तथा सूक्ष्मतरं स्थूलं ब्रह्माण्डं यदपेक्षया॥ ď अमानकेलिते सीम्ये काले परिणते चिरम्। शान्ते तिसन्परे व्योमन्याचे ह्युअभवारमनि ॥ 80 असंकल्पो महाशान्तो दिकालेरमिताकृतिः। अन्तर्भहांश्चिदाकाशो वेत्तीव परमाणुताम् ॥ ११ असत्यामेव तामन्तर्भावयन्स्वप्तवस्वतः। ततः स ब्रह्मशब्दार्थे वेत्ति चिद्रपतां तताम् ॥ १२ चिद्भावोऽनुभवत्यन्तश्चित्त्वाचिदणुतां निजाम्। तामेव पैइयतीवाथ ततो द्रप्टेव तिष्ठति ॥ १३ यथा स्त्रप्ते मृतं पद्यत्येक पवात्मनात्मनि । मृत एव मृतेर्द्र्ष्टा तथा चिद्युरात्मनि ॥ દ્રસ ततश्चिद्धाव एषोऽन्तरेक एव ब्रिताभिव। पदयन्स्वरूप पवास्ते द्रपृददयमिव स्थितः॥ 714 चिद्धावशुन्य पवातिनिराकारोऽप्यणुं तनुम्। पश्यन्दृश्यमिवोदेति द्रष्टेव च तदा द्विताभू ॥ १६ प्रकाशमणुमात्मानं पश्यस्तदनुभावतः। उच्छनतां चेतयते वीजमङ्करतामिव ॥ 20 देशकालिक्षयाद्रव्यद्रपृदर्शनरग्रहाः । अर्थान्तरस्वभावेन तिष्ठन्त्यनुदिताभिधाः॥ 86

वा ॥ ६ ॥ तदा यच्छिष्यते तद्वर्णयति—शिष्यत इत्यादिना ॥ ७ ॥ अन्यापेक्षया शून्यं परमसुद्भं सद्याकाशं यदपेक्षया स्थूलम् ॥ ८ ॥ तथा अन्यापेक्षया स्थूलं विशालनममपि ब्र-ह्माण्डं यद्पेक्षया सूक्ष्मतरमणुतरम् ॥ ९ ॥ मानहेतुसूर्यस्य-न्दाद्यपाधिप्रलयादमानकलिते तादशप्रलयकाले चिरं द्विपरा-र्धपरिमितब्रह्मायुःकाळतुल्यप्रमाणपरिणते आतिवाहिते ॥ १० ॥ माधावरणान्तःसुपुप्तप्रायश्चिदाकाशः स्वप्नोन्मस इव स्वान्तलीनजगत्संस्काररूपां परमाणुतां बेत्ति पर्याठोचयतीय ॥ १५ ॥ भावयन्पर्यालोचयन् । तत्पर्यालोचनेनेषदुचितभाव-प्राप्तेर्वेहणाइद्येति प्रसिदं ब्रह्मशब्दार्थम् । तथाच श्रुतिः 'तपसा चीयते ब्रह्म' इति ॥ १२ ॥ तद्गोचरतालक्षणे तद्वेदने चित्ख-भावाति(को हेर्नुर्वनिरूप इत्याह—चिद्धाव इति । तेनैव द्रष्ट-तासंपत्ति दर्शयति-तामेवति ॥ १३ ॥ नन्त्रेकत्र इत्यद्रपृन भावो विरुद्धः कथं संपद्यते इति चेरस्वप्रवद्धिरोधापर्याछोच-नादिलाह—यथेति॥१४॥ तथा कल्पनेऽपि न वास्तवैक्यक्षति-रिखाइ—तत इति ॥ १५ ॥ शून्य एवेखस्य व्याख्या अति-निराकार इति । दृश्यमित्र द्राप्टेत च द्वितां तदा उदेति उद्वहति ॥ १६ ॥ सच द्रष्टा मायावछेन प्रकाशस्वभावमणुं परिन्छिन-मात्मानं पर्यन्संस्तदनुभावत उच्छूनतामुपचयं चेतयते कल्पः यति ॥ १७ ॥ तदैव तस्य तमान्तरीयकतया देशकालादिवि-भागकल्पना अपि भवन्ति परंतु ता वागाद्यभित्र्यक्तयभावाद-

१ पद्यतीवान्तरिति पाठः.

चिद्रण्यंत्र भातोऽसी देशो मितिमुपागतः। यदा भातस्तदा कालो यद्भानं तर्तिकया स्मृता १९ उपलब्धं विदुर्द्दव्यं द्रष्टताप्युपलब्धता । आलोकनं दर्शनता हगालोकनकारणम्॥ 20 एवम्ब्छनता भाति मितानन्ताथ वा ऋमात्। असत्येव नभस्येव नभोरूपैव निष्क्रमा ॥ २१ चिद्रणोभीसनं भातं तत्प्रदेशेन देहगम्। येन पश्यति तश्चक्षः संत्रहोऽक्षदशामिति ॥ २२ चिद्रगुप्रतिभासेऽन्तः प्रथमं नामवर्जितम् । 23 तन्मात्रशब्दमेतेषामेतदाकाशरूपि तत्॥ चिद्यप्रतिभाकाशिषड एव घनस्थितिः। अनुसंधानविवशश्चेततीन्द्रियपञ्चकम्॥ રક दवं चिद्युसंधानं हृदयपोषमुपैत्यलम् । तदेव ज्ञानमित्युक्तं युद्धिरित्यमिधीयते॥ ર્ષ ततो मनस्तदारुढमहंकारपदं गतम्। देशकाळपरिच्छेद इत्यङ्गीकृत आत्मना ॥ २६ चिदणोरस्य भावस्य प्रत्यप्रं यत्र वेदनम् । स तत्रोत्तरकालेन पूर्वामिष्यां करिष्यति॥ २७ अन्यसिन्नेकरेरो सा ऊर्ध्वामिल्यां करिष्यति।

नुदिताभिधा इत्याह—देशेति ॥ १८ ॥ तद्विभागकल्पनाप्र-कारं विशद्यति-चिद्णुरिति। परिच्छिनस्य देशकालानवगा-ह्मप्रतीत्मप्रसिद्धेरिति भावः ॥ १९ ॥ तदैव त्रिपुटीविभाजको-पाधिमेदानां साक्षिणस्तदालोकननिमित्तभावस्य च कल्पना भ-वतीत्याह--उपलब्धमिति । द्रव्यगुणिकयादिकल्पनाधारलाह्र-ष्टव्यम् ॥ २० ॥ एवमेव कर्ता कार्य कारण भोका भोग्यं भोग इत्यादित्रिपुरीभेदानां तत्साक्षिणस्तन्निमित्ततायाथ कल्पनं सर्वत्र बोध्यमित्याशयेनाह-एवमिति । देशकालवस्तुपरिच्छेदैर्मिता, संख्येयसादिना अनन्ता वा ॥ २१ ॥ तत्र रूपादित्रिपुटीसिद्धौ चक्षरादिकरणविभागकल्पनादि नान्तरीयकीभवतीति संक्षेपेण दर्शयति-चिद्रणोरिति । चिद्रणोजीवस्य भातं भासनं सौरा-द्यालोकं येन गोलकप्रदेशेन चिछदेण येन चातीन्द्रियेण करणेन पर्यति तदुभयं चक्षुः। सर्वासां श्रोत्राद्यक्षदष्टीनामप्ययं न्यायः सम इति संप्रहः संक्षेपः ॥ २२ ॥ श्रोत्रादीन्द्रियपघकविषये-ब्वेव नामरूपमेदकल्पनात्प्रागवस्था तन्मात्रशब्देनोच्यत इ-त्याह-चिदण्विति । एतेषां श्रोत्रादिपश्वकविषयाणां प्रथमं प्रा-क्तनं यन्नामवर्जितं खरूपं तत्तनमात्रमिति शब्दो यस्य तथाविधं यस्तदेतदाकाशरूपि सूक्ष्मतमामेखर्थः ॥ २३ ॥ एवं क्रमेण चिदणोः प्रतिभालक्षण आकाश एव घनस्थितिः सन् पिण्डः स्थूलदेहो भवति तत्र रूपायनुसंधानवशादिन्द्रियपश्चकं चेतती-त्युपसंहारः ॥ २४ ॥ अन्तःकरणचतुष्टयकल्पनाप्रकारमाह---एवमिति । दर्येषु शब्दादिषु पुनःपुनरनुभवात्वोषमुपचयमुपैति तत्रेन्द्रियगृहीतविषयाणां स्मृतिदशायां शानं चित्तमिति अध्य-वसायदशायां बुद्धिरिति चाऽमिधीयते ॥ २५ ॥ ततः संक-

एवं दिगमिधानादि कल्पयिष्यति स क्रमात् देशकालक्रियाद्वव्यशब्दानामर्थवेदनम्। भविष्यति स्वयमसावाकाशविशदोऽपि सन् इत्थं स्वातुभवेनैष ब्योक्केय ब्योमरूपभृत्। आतिवाहिकनामान्तर्वेहः संपद्यते चितेः॥ ३० एष एव चिरं कालं तत्र भावनया तया। गृहाति निश्चयं पूर्णमाधिमौतिकमात्मनः॥ 38 व्योमा व्योभ्येव रचितो निर्मलेनेति विभ्रमः। असता सत्समास्तीर्णस्तापनद्या जलं यथा॥ संकल्पनाम्पादत्ते स्वदेहे गगनाकृतिः। शिरःशब्दार्थदां कांचित्पादशब्दार्थदां कवित् ३३ उरःपार्श्वादिशब्दार्थमयीं कचिदनाविलाम्। भावाभावग्रहोत्सर्गराब्दाद्यर्थमयीमपि ॥ 38 नियताकालकलनां देशकालादियम्त्रिताम् । विषयोन्मुखतां यातामिन्द्रियवातवेधिताम्॥ ३५ सोष्टः पद्दयत्यथाकारमात्मनः स्वात्मकव्पितम् । इस्तपादादिकलितं चित्तादिकलनान्वितम् ॥ एवं संपद्यते ब्रह्मा तथा संपद्यते हरिः। एवं संपद्यते रुद्ध एवं संपद्यते कृभिः॥ €§

ल्पविकल्पदशायां मनोभिमानेनाहंममतया तदारूढं तदभि-निविष्टं सत् अहंकारपदं गतम् । देशकालविभागकल्पनां वर्ण-यितं प्रस्ताति-देशेति । इति वक्ष्यमाणरीत्या ॥ २६ ॥ तत्र काले देशे च पूर्ववत्कल्पना उत्तरकाळकल्पनामपेक्येव प्रवर्तत इलाइ-चिदणोरिति । अस्य प्रसिद्धस्य भावस्य शब्दादिवि-षयस्य प्रत्यमं नवम् । आद्यमिति यावत् । यत्र देशरूपे काल-रूपे वा आधारे वेदनं यस्य चिदणोजीवस्य भवति स चिदणु-स्तस्य देशकालस्य चोत्तरकालेन व्यावर्लेन निमित्तेन पूर्व इस्य-भिष्यां नाम करिष्यति कल्पयिष्यतीति प्रतिजीवं प्रतिवस्त चेदमनियतमेवेति भावः ॥ २७ ॥ तां कल्पनामपेक्ष्य अर्ध्वा-भिख्यां ततोऽन्यस्मिन्काले एकामेव करिष्यति । दिशि तूर्ध्वद-क्षिणपश्चिमाराभिधानानि बहुनीति विशेष इति भावः ॥ २८ ॥ एवं देशकालवस्तुमेदांस्तन्नामानि च कल्पयिला गृहीतसंके-तानां पुरुषाणां शब्दभवणे तलदर्थवेदनातमनापि खयमेव सं-पत्स्यत इत्याह—देशेति ॥ २९ ॥ एवं स्वयमेव प्रथममातिवा-हिकदेहस्ततो देशकालिकयावस्त्रविभागस्ततस्तत्तनामभेद इति कमेण नामान्तं सर्वजगच्छरीरं संपद्यत इत्यर्थः ॥ ३० ॥ एवं सर्वजगतो मनःकल्पनामात्रत्वेनातित्राहिकदेहावयवत्वे कथ-माधिभौतिकताप्रत्ययस्तत्राह—एष एवेति ॥ ३९ ॥ ३२ ॥ स गगमाकृतिश्विदणुः खदेहेऽपि कल्पनीये वक्ष्यमाणप्रपचां संकल्पनामुपादते ॥ ३३॥ एवं वाह्यार्थहानोपादानादिव्यव-हारकल्पनापि बोध्येत्याह-भावेति ॥ ३४॥ इत्थमाकारो गौरित्थमश्च इत्यादिनियताकारकलनाम् ॥ ३५ ॥ ३६॥ ईश्व-राणामपि देहादिकल्पना संकल्पवशादेव किं पुनरन्येषामि-

नच किंचन संपन्नं यथास्थितमवस्थितम् । शुन्यं शुन्ये विलितं इतिईपी विज्ञिमता॥ प्रतिकन्दः दारीराणां बीजं त्रैलोक्यवीरुधाम् । सर्गार्गछप्रदो मुक्तेः संसारासारवारिदः॥ कारणं सर्वकार्याणां नेता कालकियादिषु । सर्वाद्यः पुरुषः स्वरमित्यनुत्थित उत्थितः ॥ नास्य भूतमयो देहो नास्यास्थानि शरीरके। अवष्टब्धुमसी मुख्या शक्यते नतु केनचित्॥ 88 तेनाव्धिमेघसंब्रामसिंहगर्जोर्जितात्मना। अपि सुप्तनरेणेव नृनं मौनवता स्थितम्॥ जाप्रतः स्वप्रसंदृष्टयोद्धारभटिवेदनम् । यथास्मृति गर्त नासन्न सत्तद्वदसी स्थितः॥ ४३ बहुयोजनलक्षीधप्रमाणोऽपि बृहद्वपुः। परमाण्यन्तरे भाति लोमान्तस्थजगन्नयः॥ कुलदै।लगुणीघात्मा जगहुन्दात्मकोऽपि सन्। कुळायं धानकामात्रमपि नो पूरयत्यजः॥ 89 जगत्कोढिशताभोगविस्तीर्णोऽप्यणुमात्रकम्। वस्तुतो व्याप्तवानेष न देशं स्वप्नशैलवत्॥ કદ स्वयंभूरेप कथितो विराडेप स उच्यते। ब्रह्माण्डात्मा जगहेही वस्तृतस्त नभोमयः॥ ४७ सनातन इति प्रोक्तो रुद्र इत्यपि संशितः। इन्द्रोपेन्द्रमरुन्मेघशैलजालादिदेहकः॥ 28 तेजोणुमात्रं प्रथितं चेतित्वात्प्रथमं वपुः। इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषाणो० विराडात्मवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

क्रमेण स्फारसंवित्तिर्महानहमिति स्थितः॥ स्पन्दसंवेदनात्तेन स्पन्द इत्यनुभूयते। यः स एवानिलाभिख्यो वातस्कन्धात्मना स्थितः ५० प्राणापानपरिस्पन्दो वेदनादनुभ्यते। तेन यः सोऽयमाकाशे वातस्कन्ध उदाहृतः॥५१ ४० चित्ताचे कल्पितास्तेन वालेनेव पिशाचिकाः । तेजःकणा असन्तोऽपि त एते धिष्ण्यतां गताः ५२ प्राणापानपरावर्तदोला तद्वदरोदिता । वातस्कन्धाभिधां धत्ते जगत्तद्भद्यं महत्॥ ५३ प्रतिच्छन्दशरीराणां प्रथमं वीजमेष सः। जगद्गतानां सर्वेपामाकल्पव्यवहारिणाम् ॥ 43 प्रतिच्छन्द्याद्यदेतस्मादुत्थिता जगदात्मना । देहास्तदा यथा वाह्यमन्तरेषां तथा स्थितम् ॥ ५५ चितिस्तस्याद्यबीजस्य पूर्वमेव यथोदिता। तथैवाद्यापि जीवेऽन्तस्तथोदेति तदीहिता॥ 39 श्ठेष्मपित्तानिलास्तस्य चन्द्राकंपवनास्त्रयः । ग्रहा ऋक्षगणास्तस्य प्राणाष्ट्रीवनसीकराः **॥** तस्यास्थीन्यद्विजालानि मेदसो जातिका घनाः। शिरः पादौ त्वचं देहान्पइयामस्तस्य नो वयम् ५८ वपुर्विराजो जगदङ्ग विद्धि संकल्परूपस्य हि कल्पनात्म । आकारारीलाचनिसागरादि सर्वे चिदाकाशमतः प्रशान्तम्॥ ५९

ल्याह—एवमिति ॥ ३० ॥ सर्वापीयं कल्पना अनृतैवेल्याह— नचेति ॥३८॥ व्यष्टिवत्समध्यात्मा विराडप्येवमेव कल्पनयो-स्थित इत्याह-प्यतिकन्द इति । व्यष्टिशरीराणां प्रतिनियतः कन्दः प्रतिकन्दः । तदाधार्त्रेलोक्यवहीनामपि स एव बीजम्। मुक्तेद्वीरेषु प्रतिबन्धकविषयसर्गार्गलप्रदः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ भूतमयदेहायभावादेव मुख्या अवध्यमुं न शक्यते ॥ ४९ ॥ यथा खप्ने अवधीनां मेघानां संग्रामाणां सिंहानां च गर्जामिर्म-हाध्वनिभिश्वोर्जितात्मनापि सुप्तनरेण वस्तुतो मीनवता निःश-ब्दमेव स्थितं तथा तेनापि विराजा निष्प्रपश्चे खरूपे स्थितमि-त्यर्थः ॥ ४२ ॥ स्वप्नसंद्रष्टानां योद्धणामारभटी कोलाइलस्तद्वे-दनं जामतः स्मृतिपथं गतं सदाथा नात्यन्तासन्नापि सत्तथा प्रपन्नोऽयं स्थितः ॥४३॥ मायामात्रलादेवासंभावितसद्स्रम-प्यत्र संभवत्येवेत्याशयेनाह—बह्निति ॥ ४४ ॥ धानका वट-बीजादयस्तावन्मात्रमपि कुलायं नीडच्छिद्रं न पूर्यति ॥४५॥ ॥४६ ॥४७ ॥४८ ॥ उक्तं सर्वं संक्षिप्याह—तेज इति । अणुमात्रं तेजः परमसुक्ष्मा चित् प्रथमं चेतित्वाचित्तवपुः संप-भम् । स एव चित्तात्मा वार्णतक्रमेण स्फारसंवितिः सन् महा-न्त्रह्माण्डात्मैवाहमिति स्थित इति संप्रह इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ अ-तएव तदीयाः प्राणाः वातस्कन्धास्तद्वपसंहारेण वातस्कन्धम-

क्षोऽस्माभिवंर्णित इत्याशयेनाह-सन्देति ॥ ५० ॥ सन्दसं-वेदनात्तेन प्राणस्पन्द इत्यनुभ्यते इति यदुक्तं तत्सर्वानुभवप्र-सिद्धा समर्थयति-प्राणिति । सीयं तदीयप्राणस्यन्दस्तद्भग्ना-ण्डाकाशे वातस्कन्धोऽस्मामिरदाहृतः प्रागित्यर्थः ॥ ५१ ॥ घिष्णको सर्वचन्द्रप्रहमध्यादिस्थानताम् ॥ ५२ ॥ हृद्यं उद-रान्तर्भतमासास्थ्यादीति यावत् ॥ ५३ ॥ प्रतिच्छन्दाः प्रति-जीवभेदामेच्छास्तरकल्पितव्यष्टिशरीराणाम् ॥ ५४ ॥ **परेच्छा-**कल्पिता देहाः कथमेतस्य व्यष्टितां गतास्तत्राह-प्रतिच्छन्धा-दिति । प्रतिच्छन्दं भवः प्रतिच्छन्यः । दिगादिलायत् । यदा-स्मादेतोस्तथाविधादस्मादुत्थिताः प्रतिपुरुषदेहं तत्तद्वासनामया ब्रह्माण्डा एवमेव बोध्या इत्याह—देहा इति ॥ ५५ ॥ तत्रैक-वीजान्तरन्तर्यथा वृक्षवीजपरम्परा क्रमेणोद्भवदर्शनादस्तीति संभाव्यते तद्वदत्रापि संभाव्यतामित्यमिश्रेत्याह्—चितिरिति । तदीहिता तेन हिरण्यगर्भेण वाञ्छिता ॥ ५६ ॥ तस्य हिरण्य-गर्भस्य श्लेष्मपित्तादयः । अतएवान्येऽपि प्रहा ऋक्षगणा नक्ष-त्रसमृहाश्च प्राणेन यदा धीवनं निष्ठीवनं तत्सीकराः श्लेष्मिन-न्दव इेखर्थः ॥ ५० ॥ मेदसो जातय इव जातिकाः । घना मेघाः । तस्य शिरः ऊर्ध्वकपालं पादी अधःकपालं लचं ब्र-द्याण्डावरणानि च वयं दूरस्थलान्न पश्यामः ॥ ५८ ॥ हे अङ्ग,

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

वसिष्ठ उवाच। तिसन्करूपे तु संकरूपे तस्य यद्वपुरास्थितम्। भ्रुणु तत्र व्यवस्थेयं विचित्राचारहारिणी ॥ परमं यश्चिदाकाशं तिहराडात्मनो वपुः। आद्यन्तमध्यरहितं लघुत्वस्य वपुर्जगत्॥ ર संकल्परहितो ब्रह्मा स्वाण्डं संकल्पनात्मकम्। वपुपः परिनो भास्वत्पइयत्वाकाशमेव तत्॥ 3 ब्रह्मात्मेष स्वसंकरुपं स्वमण्डमकरोद्धिधा । तैजसं तैजसाकारः पुष्टः पुष्टं विहंगवत् ॥ अण्डस्येकं नभोदृरं गतं संयुद्धवानसा । भुवोधःसंस्थितं भागं व्यतिरिक्तं च नात्मना ॥ ų ब्रह्माण्डभाग अर्ध्वस्थो विराजः शिर उच्यते । अधोभागोऽस्य पादाख्यो नितम्बो मध्यमात्रखम् ६ दूरं विमुक्तयोः संधिः खण्डयोरिति विस्तृता । अनन्ता व्योमलेखा सा इयामा शून्येति दृश्यते ७ द्यौस्तालु विपुलं तस्य तारारुधिरबिन्दवः। संविद्वातलवा देहे सुरासुरनरादयः॥ ረ देहान्तः कृमयस्तस्य भूतप्रेतपिशाचकाः ।

इदं जगद्विराजो वपुर्विद्धि । तच संकल्परूपस्य कल्पनात्मनः कल्पनामार्थं न वाह्यसाधनसाध्यं नच मनःकल्पनात्मकं किचि-द्वास्तवं संभवति । अतो हेतोराकाशशिलादि सर्व प्रशान्तं चि-दाकाशमेवेल्यथः ॥ ५९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणता-रपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

यान्यङ्गान्यस्य ये लोका ये चास्यावयवाः पृथक् । यथा चान्तःस्थितोऽस्यैप तःसर्वमिह वर्ण्यते ॥ १ ॥

इदानीं किमक्नं तस्य भूटोंकः कि स्वर्गः कि रसानलभिति विभागप्रश्रस 'कथं वासोऽन्तरे तस्य' इति प्रश्नस्य, 'कथं वा तन्मनोमात्रं निराकृतिरिदं स्थितम्' इति प्रश्नस्य च विस्तरेणो-त्तरं वक्तुं श्रोतारमवधापयति—तस्मित्रिति । तस्मिञ्शिलोदर-दृष्टे ब्रह्मकत्यात्मके तस्य विराजः संकल्पे यद्रद्माण्डात्मकं वपुः स्थितं तस्य इयं वक्ष्यभाणाः जन्मकर्मावयवादिविभागव्यवस्थाः तां श्वाप्तित्वर्थः ॥ १ ॥ तत्रास्य वर्धव वास्तवं खरूपं प्राथमि-कमकल्पितं वपुर्विरादशरीरं तु काल्पनिकं तदृष्ट्या अतिलघुत-रमिलाइ--परममिति ॥ २ ॥ चिदाकाशमाधन्तमध्यरहितं तस्य खरूपमिति कथं ज्ञायते तत्राह—संकल्परहित इति । यतः स बद्धा खसंकल्पवपुषो ब्रह्माण्डाद्वहिः संकल्परहितो निःसंकल्पसाक्षिचिदाकाशमात्रः सन् संकल्पनात्मकं स्वाण्डं परयति तच परमार्थदशा आकाशभवेत्यर्थः ॥ ३ ॥ तत्रादी तस्य शिरः पादो नितम्बं च वक्तुं ब्रह्माण्डस्योर्ध्वाधःकपालद्वय-विभागमाह-महोति। तैजसं हिरण्मयम्। तैजसाकारो लिङ्ग-समध्यभिमानिचिदाकारः ॥ ४ ॥ दूरमूर्ध्वं गतमिति संबद्धवा- लोकान्तराणि रन्ध्राणि सुविराण्यस्य देहके॥ ब्रह्माण्डखण्डमस्याधो विस्तृतं पादयोस्तलम्। जानुमण्डलरन्ध्राणि पातालकुहराण्यधः॥ १० जलैश्चलचलायन्ती सुविरानेकरन्ध्रिका। भूरन्तर्मण्डलीलोला समुद्रद्वीपवेष्ट्रना ॥ ११ जलैर्गुडगुडायन्यो नद्यो नाड्यः सरिद्रसः। जम्बूद्वीपं हदम्मोजमस्य हेमादिकर्णिकम्॥ १२ कुक्षयः ककुमः सून्या यक्तसीहादयोऽचलाः । मृद्यः स्निग्धाः पटाकारा मेदसो जालिका घनाः१३ चन्द्राकी लोचने तस्य ब्रह्मलोको मुखं स्मृतम् । तेजः सोमोऽस्य कथितः शृंख्या प्रालेयपर्यतः १४ अग्निलोकस्तथौर्वाग्निः पित्तमस्यानिदःसहम् । वातस्कन्धमहावाताः प्राणापाना हृदि स्थिताः१५ कल्पद्वमयनान्यस्य सर्पवृन्दानि च कचित्। लोमजालान्यनन्तानि वनान्युपवनानि च ॥ १६ अर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डं तु समस्तमुग्नमस्तकम्। ब्रह्माण्डप्रान्तरस्त्रार्चिरस्य दीप्ता शिखोत्थिता १७ स्वयमेष मनस्तेन मनो नास्गोपयुज्यते।

न्संकल्पितवान् एवमात्मना न व्यतिरिक्तमभिन्नं च संकल्पित-वान् । मध्यमात्रसं आस्तराकाशमध्यमिति यावत् ॥ ५ ॥६॥ खण्डयोः कपालयोः संधिरन्तराछं शून्या स्थामा व्योमलेखेति हर्यते जनैः ॥ ७ ॥ तालु काकुदम् । मंबिद्वातयोद्वीद्विप्राणयो-र्वता यृत्तिभेदाः ॥ ८॥ भृतप्रेतपिशाचका रक्तमांसाद्यप्रचिछो-लुपलात्क्रमयः । छोकान्तराणि सूर्यचन्द्रादिलोकाश्वक्षरादिर-न्ध्राणि । याम्यादिनारकठौकान्तराण्यथःसुपिराणि ॥ १० ॥ चळचळायरती चब्रहायमाना । अस्तुमंण्डळी मध्यस्य-वस्तिजधननितम्बमण्डली । लोला कामरोगजरामरणादिल्या-कुळा समुदा द्वीपाथ वेष्टनान्यन्तरीयकानीकटिस्वप्रायाणि यस्याः ॥ ११ ॥ नाड्यः शिराः । सारित्पदेन तज्जलं छक्ष्यते । तन्छिरान्तर्गनो रगः ॥ १२ ॥ कुक्षयः कुक्षिभागाः । ककुमो दिशः। यक्टरश्रीहादयो मांसभेदाः। मेदसी घातुविशेषस्य जालिकाः पटल्यः । घना मेघाः ॥ १३ ॥ तेजो रेतः ॥१४॥ वातस्कन्धेषु प्रसिद्धा आवहनिवहप्रवहादयो महावाताः ॥१५॥ कल्पद्वमवनान्यन्यानि चनान्युपवनानि च कनित्पातालादौ प्रसिद्धानि सर्पयुरदानि चास्य लोमजालानि ॥ १६ ॥ ब्रह्माण्ड-स्योध्वेत्रान्ते रन्ध्रे प्रसिद्धं दीप्तानिः 'अथ यदतः परो दिबो-ज्योतिर्दाप्यते विश्वतःष्टुष्टेषु सर्वतःष्टुष्टेष्यनुत्तमेषूत्तमेषु छोकेषु इति श्रुतिप्रसिद्धमर्चिज्योतिरस्य दीप्ताशिखा चृडा ॥ १७ ॥ एवंविधविराइदेहकल्पनाकर्नुस्तस्य कि मनः कानीन्द्रियाणि त-त्राह्—खयमिति । यतः सर्वमनःसमध्यात्मा एष विधाता खयं मन एव । अतोऽस्य सर्वकल्पनासु अन्यन्मनो नोपयुज्यते

आत्मेव भोकतामेति किल कस्य कथं कुतः ॥- १८ स्वयमेवेन्द्रियाण्येष तेनान्यश्रास्तिता कृता। यतस्तत्करूपनामात्रमेत्रेन्द्रियगणः किल ॥ १९ अवयवावयविनोरिवेहेन्द्रियचित्तयोः। न मनागपि भेदोऽस्ति चैकामेकशरीरयोः॥ २० तस्य तान्येव कार्याणि जगतां यानि कानिचित्। संकल्पा एव पुंबृत्या चलन्त्यारुपितहिताः॥ जागते तस्य विश्वये नान्येऽस्य मृतिजन्मनी। स पवेदं जगत्यसात्संकल्पात्मास्य नेतरत्॥ तत्सत्तया जगत्सत्ता तन्मृत्यैव जगन्मृतम्। यादशी स्पन्दमस्तोः सत्तेका तादशी तयोः॥ २३ जगद्विराजोः सत्तैका पवनस्पन्दयोरिव । जगद्यत्स विराडेव यो विराइ तज्जगत्स्मृतम् २४ जगद्रह्मा विराट्ट चेति शब्दाः पर्यायवाचकाः। संकल्पमात्रमेवेते गुद्धचिद्योमरूपिणः॥

अनवस्थाप्रसङ्गात्। यदि तु आत्मैव स्वनोगाय भोग्यवर्ग कल्प-यतीति मन्येषासत्र । सस्य कृटस्थाद्वयस्त्रभावस्त्रादिखाह्— आरमेवेति किन्नुतानि प्राग्वत् ॥ १८ ॥ एवमिन्द्रियाण्यप्यस्य नोपयुज्यन्तं । यतस्तेनान्यत्र अस्पदादिषु इन्द्रियाणामस्तिता ऋता करियता । न चेन्द्रियकल्पनायामिन्द्रियाणां निमित्तसमन-वस्थात्रसङ्गादिति भावः ॥ १९ ॥ कथं तर्हि इन्द्रियमनसोर्भेद-व्यवहारस्तत्राह--अवयवेति । अस्ति चैत्रयं मनःप्रवृत्त्यन्वयव्य-तिरेकदर्शनादिन्द्रियप्रकृतः स्वप्ने मनसँव सर्वेन्द्रियकार्यनिर्वाह-दर्शनाचेति भावः ॥ २०॥ अतएव च सर्वजगत्कियास्त-क्तिया एवेति न कियापि पृथक् प्रष्टव्येखाह्-तस्येति । यत-स्तदीयसंकरप एव पुंत्रत्या व्यष्टिसर्वपुरुपवेषेण आरुपितद्विता आरोपितभेदाः सर्वत्र्यवहारात्मना चलन्ति ॥ २१ ॥ तहाँस-दादिमरणजन्मनी तस्यव मरणं जन्म च स्याताम्। तथाच द्विपरार्धकालजीवनप्रसिद्धिवरोधस्तत्राह—जागते इति । सम-ष्टिजगन्मृतिजन्मनी एव तस्य मरणजन्मनी विज्ञेये । अन्ये अस्मदादिव्यष्टिमात्रप्रतिदे तु अस्य न । यत इदं जगति सम-ष्टिरूपं स एव अस्पत्संकल्पात्मापि स एव नेतरश्रेतर इलार्थः। अथवा तस्य विधातुः सह सिद्धं चतुष्टयमिति पुराणदर्शितन्या-येन तत्त्वज्ञतया जीवन्मुक्तस्य द्विपरार्धान्तादिकालप्रसिद्धे अस्म-दादिव्यष्टिपु प्रसिद्धे च मृतिजनमनी जागते जगदन्तर्गतास्मह्-ष्टिकल्पिते एव नान्ये । खद्षिसिद्धे इत्यर्थः । यतः स एवेदं जगति प्रसिद्धः । असारसंकल्पातमा व्यवहारोऽप्यसीव रूपं नेत-रदिलार्थः । अथवा इन्द्रियमनांसीव तस्य मृतिजन्मनी अपि जागते अस्पदादिप्रसिद्धे विज्ञेये नान्ये । प्रथकत्ये तस्य संक-ल्पात्मापि जगति प्रसिद्धः अस्मत्संकल्पात्मैव । यतः स एवदं सर्वे नेतरिकंचिदस्तीत्वर्थः॥ २२ ॥ कृतः स एवेदं तत्राह—

श्रीराम उवाच । संकल्पात्स विराडेव खमेवाकृतिमागतम् । अस्तुनाम स्वदेहान्तः कथं ब्रह्मेव तिष्ठति ॥ २६ वसिष्ठ उवाच ।

यथा ध्यानेन देहान्तस्तिष्ठसि त्वं यथा स्थितम्।
तथास्तं निजदेहेऽन्तः संकल्पात्मा पितामहः २७
नृणां तथा च मुख्यानां जीवो ब्रह्मपुरोदरे।
उत्पत्तिपुत्रिकादेहः प्रतिबिम्बोपमोऽस्ति सः॥ २८
यत्र त्वमपि देहान्तः कर्तुं शक्तोऽस्यलं स्थितम्।
संकल्पात्मा विभुस्तत्र ब्रह्मा किं न करिष्यति॥ २९
वीजान्तः स्थावरं द्यास्ते पदार्थे यत्र जंगमः।
किं नास्ते तत्र देहेऽन्तर्निजचित्कल्पनात्मिका॥ ३०
साकारो गगनात्मास्तु निराकारं समस्तु वा।
आस्तं विहरधान्तश्च मिन्ने वाद्यान्तरे विहः॥ ३१
आत्मारामः काष्ठमौनी न जलोऽपि दण्जलः।
अहंत्वमित्यादिमयो विराजात्मनि तिष्ठति॥ ३२

तत्सत्तयेति । तस्य च जगतश्च तयोः ॥ २३ ॥ २४ ॥ एते विराइजगती शुद्धचिन्मात्ररूपिणः परमात्मनो 'बहुस्यां प्रजा-येय' इत्यादिश्रतिप्रसिद्धं संकल्पमात्रं तच निःखरूपमिति ब्रह्मेब परिशिष्टमिति निष्कर्षः ॥ २५ ॥ अस्तु नामेखन्तेन उक्तम-भ्यूपगम्य श्रीरामः श्रिष्टं प्रश्नं स्मारयति — खदेहान्तरिति । 'कथं वासोऽन्तरे तस्य खस्यंत्र वपुपः स्थितः' इति प्रश्नस्योत्तरं वदेखर्थः ॥ २६ ॥ ध्यानेनेति । मानसपूजायां हि हृदि क-ल्पिते रत्नमण्डपे देवमुपवेदय स्वं तत्समीपस्थं छत्रचामरव्यज-नदर्पणताम्ब्लादिमिदैवं परिचरन्तं यथानुभवसि तद्वदिखर्थः ॥ २०॥ किंच स्थूलदेहात्मकस्य खस्यान्तर्हेदयपुण्डरीके लिप्न-देहारमकस्य खर्यावस्थानं सर्वेषां विविकनामनुभवसिद्धमि-त्याह-नृणामिति । मुख्यानां विवेकिनाम् । ब्रह्मपुरे शरीरे । उत्पत्तिपुत्रिका औत्पत्तिकतत्त्वेद्दप्रतिमाकारः । अतएव दर्प-णान्तर्गतप्रतिबिम्बोपमः ॥ २८ ॥ केमुतिकन्यायेन धातुः स्वदेद्दान्तस्थितिरित्याह—यत्रेति ॥ २९ ॥ यत्र स्थावराणा-मपि खबीजदेहान्तरवस्थानमामर्थं तत्राविभूतसर्वशक्तिकचि-त्कल्पनात्मिकायाधतुर्भुखमूतेः कि तद्राच्यमित्याइ-चीजेति ॥ ३०॥ तथाच बद्धा ब्रह्माण्डाकारेण साकारः संश्विद्गगनात्मा वास्त मनःसमष्टिरूपेण निराकारं खमस्त वा पक्षद्वयेऽपि बहि॰ रन्तश्चास्ते बाह्यान्तरभावकल्पने एव परं खरूपाद्वहिःस्थिते मिन्ने नल्दकल्पितमान्तरं सद्भूपं मिचत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ स तर्हि बहिरन्तश्च कीटशः कीटशे खभावे परमार्थतस्तिष्ठति त-दाह-आत्माराम इति । स बहिर्विराड् ब्रह्माण्डात्मा अन्तस्तु अहं लिम त्यादि अष्टिसमष्टि भूतर्भातिकमयः । आत्मनि तु आ-त्मारामः सन् काष्ठमीनी निवीक्यो दबदिव जडः स्थितः

आत्रेष्टितोज्झितलतातृणदारुपुंव-दुच्छद्मम्बुग्यवच विरोषिताङ्गः।

नानाविधेऽपि विहरस्रपि कार्यजाले तज्ज्ञः शिलाजठरशान्तमनस्क एव ॥ ३३

इखार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० विराडात्मवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पश्चसप्ततितमः सर्गः ७५

चसिष्ठ उचाच। अधात्रस्यब्रह्मलोको ब्रह्मणि ध्यानशालिनि । निश्चिप्ताक्षः शनैर्दिश्च रुएवानहमप्रतः॥ Ş वितीयमर्के मध्याहे पश्चादभ्युदितं स्फुटम्। विग्दाहमिय दिग्यके यनदाहमियाचले॥ २ बह्रिलोकमिय ज्योसि घडवाग्निमिवार्णवे। ततोऽपद्यमहं दीप्तं सुर्यं नैर्ऋतदिङ्युखे॥ 3 सूर्य याम्ये ककुन्भागे सूर्यमग्निककुन्मुखे। सूर्यमेन्द्रककुष्भागे सूर्यमीशानदिक्षुखे॥ R कुबेरककुमि सूर्य सूर्य वायव्यदिकटे। सुर्यं वरणदिग्भागे तेन विसायवानहम्॥ 4 याविद्वचारयाम्याशु विधिवैधुर्यमाकुलम्। उद्भृद्भृतलात्तावदर्क और्व इवार्णवात्॥ દ્ एकादेशेऽखिलाकीणां प्रतिबिम्बमिवोत्थितम्। उदभूत्रयमकीणामन्तरे दिग्गणाम्बरे॥ S

सोऽपि चिदेकरसलाम्न जडिसिष्ठति ॥ ३२॥ न केवलं विराज एवेरशी स्थितिः किंतु तस्वज्ञानां सर्वेषामिति दर्शयितुं तामेव रष्टान्तैर्विशदयति—आवेष्टितेति । तज्ज्ञस्त्ववित् परापराध-सहिष्णुताविषये यथा लता तृणं कक्षः दारु पुमान्प्रतिमा वा पूर्व रक्षादिना आवेष्टिता बद्धा पश्चादुज्ञिता मुक्ता अपि न कुष्यन्ति किंतु निःशब्दं तृष्णीमेवासते । यथा अम्बुरयो जल-प्रवाहो निरुद्धो विरोपिताङ्गः शातितावयवोऽपि प्राक्तनस्थिति न जहाति तथा नानाविधे कार्यजाले विहरम्रपि शिलाजठरमिव शान्तमनस्कः पूर्वस्थिलवास्ते न मनागि क्षेधहर्षविषादादिना विक्रियत इल्प्यंः ॥ ३३ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-यणे ताल्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुःसस्रतिसमः सर्गः॥ ७४॥

विधासिर ध्यानपरे द्वादशादित्यसंभवः । दहस्रत्र जगस्तर्वं वर्ण्यते प्रख्यानसः॥ १॥

प्रश्नप्रसिक्षिकं समाप्य प्रस्तुताख्यायिकामेवानुसंघते—अथेलादिना । अथ सेन्द्रादिनगरमेरुशिखरपत्तनदर्शनानन्तरं श्रेनिर्दिश्च निक्षिप्ताक्षोऽहं द्वितीयमकं दृष्टवानिति परेणान्वयः ॥ १ ॥ मध्याह इल्यनेन मध्यदिश्यकं सतीति गम्यते—दिश्च दिशां मध्ये । अप्रतः पुरोगते पधाहिग्वके पश्चिमदिश्चुखे मध्यस्यादकंद्वितीयमकंमहं दृष्टवानिति संबन्धः ॥ २ ॥ दिग्दादृमिवेलादीनि सर्वेषामकाणामुपमानानि प्रत्येकं योज्यानि

| तद्धि रौद्रं वपुस्तत्र तन्मध्ये छोचनत्रयम्। | |
|---|----|
| तद्वादशपरीमाणं दीप्तं वृन्दं विवस्वताम्॥ | 6 |
| सर्वदिकं ददाहोधैः शुष्कं वनमिवानलः। | |
| अथोदभूज्जगत्खण्डशोषणग्रीष्मवासरः॥ | ९ |
| अन्ध्रिरब्रिदाहो द्वागद्योल्मुकगुल्मकः। | |
| अनग्निनाग्निदाहेन तेन तामरसेक्षण ॥ | १० |
| अङ्गानि दावदग्धानि खिन्नानीव ममाभवन्। | |
| प्रदेशं तमथ त्यक्त्वा दूरमारूढवाहनम्॥ | ११ |
| रढहस्ततलाघातहतकन्दुकवन्नभः। | |
| अपइयं गगनस्थोऽहमुदितं चण्डतेजसम्॥ | १२ |
| तपन्तं द्वादशादित्यगणं दिश्च दशस्विप। | |
| बृहत्तत्र सतारावंज्वालेव भगूणं चलम्॥ | १३ |
| महाकुह्कुहाराष्ट्रं कथत्सप्ताब्धिडम्बरम्। | _ |
| सज्वालोल्मुकनीरन्ध्रलोकान्तरपुरान्तरम्॥ | १४ |
| ज्वालाघनपटाटोपसिन्दुरीकृतपर्वतम् । | |
| दीप्यमानमहागारस्थिरविद्युत्ककुत्पटम्॥ | १५ |

॥ ३ ॥ ४ ॥ वरुणदिरभागे इति प्रागुपकान्तानुवादः ॥ ५ ॥ विधिवैधुर्यं देवप्रातिऋल्यम् ॥ ६ ॥ दिग्गणानागन्तरे आन्तरालिके मध्यमाम्बरे । असमर्थसमासङ्खान्दसः । मध्य-मस्यैकादशत्वोक्तेरूर्घमप्यन्योऽकं उदित इति गम्यते । तेषु मध्यमे एकादशेके दर्पणोदरे प्रतिबिम्बर्मित्रान्यदर्काणां त्रयमुद्र-भूत्। तद्भि मध्यतनादित्यान्तरुदितमर्कत्रयात्मकमेकं ब्रह्मविष्णु-शिवारमकस्यंकस्य रुद्रस्येदं राद्रं वपुः । तदेव तत्सवितुर्वरेण्यं भग इति गायत्र्या प्रकारयते । अतएव हि तचतुर्विशत्यक्षरप्र-सृतचतुर्विशतिसहस्रक्षोकात्मकस्य पूर्वरामायणस्य सारसंब्रहा-रमके आदित्यहृदये 'ब्रह्मेशानाच्युतेशाय रीद्राय वपुषे नमः' इति त्रिमूर्तिमूलपरशिवत्वेन नमस्कृत्मिति तदेव सर्वेत्कृष्टमु-पास्यमित्याहुः ॥ ७ ॥ तत्र तस्मित्रके तन्मध्ये रीद्रवपुर्मध्ये लोचनत्रयं तदौदं वपुरेव द्वादशादित्याकारपरिमाणं विवस्ततां **वृत्दं भूला ददाहेति परेणान्वयः ॥ ८ ॥ ९ ॥ अहर्**यो**ल्मुक-**गुल्मकलादेव प्रसिद्धामिरहितः सौरामिदाह उदभूत् ॥ १० ॥ दूरमुर्ध्व नभ आरूडवान् ॥ ११ ॥ १२ ॥ तत्र तासु दिक्षु सतारं नभः अवति व्याप्नोतीति सतारावा ज्वालेबावर्ताकारेण चलं भगणं नक्षत्रचक्रमपर्यमित्यर्थः ॥ १३ ॥ इत ऊर्ध्व सार्धद्वादशकोकेषु स्थितानि सर्वाणि द्वितीयान्तपदानि प्रस्तुत-द्वादशादित्यगणविशेषणत्वेन योज्यानि । कुह्कुहेति कथनशब्दा-नुकरणम् ॥ १४ ॥ ज्वालालक्षर्भेर्धनः पटाटोपैः रक्तवस्नाड-

स्फुरत्कटकटाटोपचटत्पत्तनमण्डलम्। विद्धन्नतलोन्नतथुमदण्डैः शिलाघनैः॥ काचस्तम्भसहस्राख्यं भुवनस्थानमण्डपम्। कयद्भुतमहाभूतताराक्रन्दातिघर्घरम्॥ १७ भूतलोकपुरापातस्फुटचटचटोद्भटम् । ताराविशरणोद्धातघृष्टरक्षधरातलम्॥ १८ सर्वेस्थलालयचलद्द्यमानजनवजम् । सीणाकन्दकथद्भृतगणदुर्घासदिकटम् ॥ १९ उत्तप्ताम्बृदराखिन्नजलेचरमहार्णवम् । सर्वदिकानल्छोपक्षीणाकन्दपुरान्तरम्॥ 20 विदलद्वयदिग्दन्तिदन्तोत्तम्भितभूधरम्। धराधरदरीरन्त्रधूममण्डलकुण्डलम्॥ २१ पतत्पर्वतनिष्पष्टप्रुष्टपसनमण्डलम्। पवत्पवत्पवाशब्दशन्दिताद्रीन्द्रकुक्षरम्॥ **२२** तापतत्रोन्नमञ्जूतज्वरितार्णवपर्वतम् । इदयस्फोटनिःसारपतद्विद्याधराङ्गनम् ॥ २३ आकन्दरोदनश्रान्तमूर्धनिःसरणामरम्। नागलोकज्वलज्ञवालापातालोत्तप्तभूतलम् ॥ २४ शुष्कार्णवसदापक्रविवर्तीम् जलेचरम् । और्वेणाविन्धनाभावात्प्रोड्डीयेव सहस्रधा ॥ २५ गतेन नृत्यतोत्थाय गृहीतगगनाङ्गनम् ।

म्बरैः सिन्दूरवर्णाः कृताः पर्वता येन । दीप्यमानेषु महतां लोकपालानामगारेषु स्थिरविद्युत इव ककृत्पटा येन ॥ १५ ॥ धूमदण्डैर्दण्डाकारेर्धूमैः । काचस्तम्भसहस्राट्यं भुवनस्थानस्रक्षणं मण्डपं विद्धत्कुर्वाणमिवेति संबन्धः ॥ १६ ॥ भूतानां प्रा-णिनां महाभूतानां पृथिव्यादीनां च तारैः आऋन्दै रोदनैरति-षर्घरम् ॥ १७ ॥ भूतानां प्राणिनां लोकानां भुवनानां तदन्त-गेतपुराणां च आसमन्तात्पातेः स्फुटतां पदार्थानां चटचटाश-**ब्दैरुद्भटम् ।** ताराणामश्चिन्यादीनां विशरणैः पतनैर्ये उद्घाता **अभिघा**तास्तैर्**ष्टेष्टरत्नं** घरातलं येन ॥ १८ ॥ सर्वेषु स्थलेषु **भारुयेषु खखगृहेषु च**रुन्तो धावन्तो दह्यमाना जनवजा येन । क्षीणैर्मृतैराकन्दपूर्वकं कथद्भिः पच्यमानैथ भूतगणैः प्राणिनि-कायैर्दुर्वासानि दुर्गन्धीनि वासायोग्यानि च दिक्तटानि येन ॥ १९ ॥ सर्वदिग्वापिना अनलेन होषो दाइस्तेन श्लीणाऋन्दं शान्तरोदनं पुरान्तरमन्यन्नगरं येन ॥ २० ॥ विदलतां विशी-येमाणानां दग्धानां च दिग्दन्तिनां दन्तैरेव स्तम्भश्रायैद्दत-म्भिता अधोभागे धारिता दिगन्तभूधरा येन ॥ २१ ॥ २२ ॥ तापतप्तेरुत्रमद्भिरुच्छलद्भिश्व भूतैर्ज्वरिताः संजातज्वरा इवा-र्णवाः पर्वताक्षयेन ॥ २३ ॥ केचिदाकन्दै रोदनैश्व श्रान्ताः केचियोगबलेन ब्रह्मरन्ध्रं विदार्थ मूर्धनिःसरणा अतएवामराश्च योगिनो यत्र॥ २४॥ ग्रुष्केष्वर्णवेषु सदा पकाश्चिरक्रथिता विवर्तैः परिवर्तनैदमा मीषणाध नकादिजकेचरा येन ॥ २५॥

अधोदभूषवलक्षवालाकिशुकांशुकशोभितः॥ २६ ताण्डवायेव कल्पाग्निस्तरलोल्मुकमाल्यवान्। तारं पटपटाटोपी रटव्हट इवोव्हटः ॥ २७ ज्वालोक्षुजो धूमकचो जगज्जीर्णकुटीनटः। जज्यलुर्वनजालानि पुराणि नगराणि च॥ २८ मण्डलद्वीपदुर्गाणि जङ्गलानि स्थलानि च। सर्वेखानि महाकाशमाशा दश दिवः शिरः ॥ २९ श्वभ्रक्षपारघट्टाट्टपट्टनोदारदिक्तटः । श्रृङ्गाणि सिद्धवृन्दानि गिरयः सागरार्णवाः ॥ ३० सरः सरस्यः सरितो देवासुरनरोरगाः । आशाः शनशनाशब्दैः पुरुपेश्च शिवार्चिपाम् ३१ आसन्ध्वेडाकुराक्षस्यो ज्वालाजालोक्क्वलोर्ध्वजाः। भमद्भिति भांकारैभींपणैर्भरिभस्मिः॥ 32 ज्वालाः श्वभ्राद्रिभूमीनां गुहाभ्यः परिनिर्ययुः। ज्वालोदरस्था अरुणाः समस्ता भूतजातयः ॥ ३३ स्थलपद्मोदरालीनामाजद्वः श्रियमश्रियः। सद्यो निःसतरकामैः सिन्दूराम्भोदसुन्दरैः॥ धगद्धगिति गायद्भिज्वीलाजालैर्जगद्वतैः। आसीद्रक्तांशुकैः कीर्ण संध्याभ्रेरिय वा मभः॥ ३५ उत्फुलकिंशुकवनैरुड्डीनैरिव वावृतम् । और्षेण चाषृता आसन्फ्रह्लाशोकवना इव ॥ 38

यहीता गगनान्तना अप्सरसो येन । एवं द्वादशादित्यगणमुप-वर्ण्य तदुद्भवं प्रख्याप्तिं नटत्वेन वर्णयति — अथेत्यादिना नट इसन्तेन । ज्वलक्वालारूपैः किशुकपुष्पवर्णेरंशुकैर्वस्नैः शोभितः ॥ २६ ॥ तरलैहत्मुकैर्मास्यवान् । तारं विस्फुटक्किर्वेण्वादिभिः पटपटाटोपी नानावाद्याडम्बरवान् ॥ २०॥ २८॥ सर्वाणि खानि पातालादिभूच्छिदाणि । भूमेरूर्ध्वं महाकाशम् । दिवो द्युलोकस्य शिर कर्ध्वभागः ॥ २९ ॥ तथा कवित् अभ्रह्यः कचिदारघष्ट्रयात्रेरहैः सीधिक्ष युक्तैः पद्दनेश्वोदारो रम्यो दिक्तटः । तथा पर्वतश्वनाणि तत्रत्यसिद्धवृन्दानि तद्युक्ता गिरयः सागरा-र्णवाः ॥ ३० ॥ आशा दिशश्च तदन्तर्गतपुरुषेः सह शिवा-र्विषां रुद्रनेत्रज्वालानां शनशनाशब्दैर्भज्वल्लरिति पूर्वत्रान्वयः ॥ ३१ ॥ किंचैता आशाः ज्वालाजालैरज्वला अर्ध्वजाः केशा यासां तथाविधाः सत्यो भमद्भमिति प्रसिद्धैर्भाष्णेर्भोकारध्वनि-मिर्भूरिभसामिश्र परसारं विक्षिपन्तः । क्ष्वेडा परसारधूलिज-लादिप्रक्षेपैः कीडा तत्पराः कुराक्षस्य इव आसन् ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ किचाश्रियः संपद्रहितास्ता दिशः सयो निःसतरका-भैज्वीलाजालैः स्थलपद्मोदरालीनां श्रियमाजहुर्जगृहुः ॥ ३४ ॥ वेत्युत्प्रेक्षयोर्विकल्पः ॥ ३५ ॥ आवृतं नभ इत्यनुषक्यते । बा-शब्दः प्राग्वत् । एवमीर्वेणामिना संवृता अर्णवाध फुल्लान्यशो-कवनानि येषु तथाविधा इय स्थलान्जैर्वलिता इव राविराः बालरविनिकरच्याप्ता इव वा आसिन्नित परेण सहान्वयः।

इय स्थलास्वयस्तिता राविरा ६व चार्णवाः । नानावर्णज्वलज्ज्वालाधूमविन्यास बन्धवान् ॥ ३७ रुद्धं विद्विमिषाधातुं चित्रसौधलताश्रयम् । अनन्त इव विन्यासवनयौवनपावकः॥ ३८ उद्यास्तमयादिभ्यो बिन्ध्यो बिधुरतामगात्। अङ्गारकस्पनिटपेज्वांलावनविवस्गनैः॥ 38 शनरीषदिव श्लुब्धेः सह्योऽसह्यत्वमाययी। मध्यमध्यकचरकाष्ण्यभ्रमद्भालिमालितम्॥ वलज्ञवालाह्ममलिनं द्वष्टं सर इवाम्बरम् । क्षेऽद्रीणां शिखरे व्योम्नि शिखाशिखरशेखराः४१ ननृतुर्नीरसा नाशनर्तक्यः केतुकुन्तलाः। तलाहितानलज्वाला ब्रह्माण्डोध्वेकपाटभुः॥ ઇર तर्जनप्रोत्पतद्भृतथानीघा म्राष्ट्रभूमिका। कणच्छ्रेणी मुज्जलाग्निनीनावर्णाननारुणा॥ કરે इत्प्रकोष्ठे जगस्नुस्म्याः सीवर्णीवाभवत्तदा । दीला**भटचटास्फो**टंब्रेक्षाः कटकटारवैः ॥ 88 देशा इलहलोलासैरलं विदलनं ययुः। अब्धयः क्रथिताकाराः फेनिलोल्लासमांसलाः ४५ वीचीकरतलाघातांश्चकुरर्कमुखे मुखे ।

रबीन् रान्ति स्वीकुर्वन्तीति रविरास्त एव राविरा इति स्वार्थि-कोऽण् करूप्यः ॥ ३६ ॥ तथा वनेषु योवनं युवभावो यस्य तथाविधः पावको दवाप्रिश्चित्रलिखितं सौधतलाश्चयं मिथ्या-विह प्रौढं यथार्थभूतमाधातुं संपाद्यितुमिव नानावर्णानां ज्व-लक्षवालानां धूमविन्यासानां च बन्धः प्रवन्धः श्रेणिरिति यावत् तद्वान्सन्फणासहस्रव्रबन्धवाननन्तः सर्पराडिव विनि-आस विस्तृतो नितरामासीदित्युत्तरेण सहान्वयः ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ किंच सूर्योदयास्तमयादिवैधुर्याकाह्विणो विन्ध्यस्य मनोरयस्तदा फलित इलाशयेनाह-उदयास्तमयादिभ्य इल-र्धेन । अङ्गारेत्याद्युत्तरान्वयि ॥ ३९ ॥ सह्यो दक्षिणदेशे प्र-सिद्धो गिरिः । मध्येमध्ये कचत्प्रकाशमानं कार्ण्यं येषां तथा-विधेर्धूमलक्षणेरलिमिमीलितम् । वलिद्गर्धूमसंबलितेपवीलाल-क्षणेरब्जैर्मलिनं चेति नभसः सरःसाम्योपपत्तिः ॥ ४० ॥ शि-खाशिखरशेखराः ज्वालात्रोत्तंसाः । केतुर्धूमावर्ती धूमकेलाख्य उत्पातविशेषश्च कुन्तलस्थानीयो यासां तथाविधा नाशा मृत्यव-स्तल्लक्षणा नर्तक्यः अद्रीणां खे विवराकाशे शिखरे श्टक्तदेशे व्योत्रि अद्यादिश्चन्यशुद्धाकाशप्रदेशे च नीरसाः करुणादिरस-शून्याः सत्यो नतृतुः ॥ ४१ ॥ ब्रह्माण्डस्य ऊर्ध्वभाग एव क-पाटं पिधानं यस्यासाधाविधा भूः पृथिवीतले अधीभागे आ-हिता अनलज्वाला यस्यास्तथाविधा सती तर्जनैवर्धथनैः प्रोत्प-तन्ति भूतानि प्राणिनिकाया एव धानौषा भज्यमानबीजस्था-नीया यस्मां तथाविधा भ्राष्ट्रभूमिका अम्बरीपखर्परमभूदिति शेषः ॥ ४२ ॥ किंचेयं पृथिषी तदा प्रलयकाले सोरस्ताडनं रदन्सा जगन्नभ्रमा हदि प्रसक्ते प्रकोष्ठे द्वीपमेदभिन्नासिर्मृद्धिः

अन्योन्यवेह्नितोह्नोस्रभूतलाकारपर्वतम्॥ ક્રફ जहुर्वीचीकरैर्देष्टे जेडाः प्रकुपिता इष । आशाकाशाशिनामेषां गुहागुहगुहारवान् ॥ 80 पपाठ शब्द आग्नेयो ज्वालातरतरोद्भवः। लोकपालपुरापाततप्ताङ्गाराद्रिमित्तयः॥ 86 दिशो दशापि वैवश्यं ययुरुन्मसृष्ट्रस्यः। काञ्चनद्रवसाद्रीन्द्रद्रमागारगुहागृहः॥ ४९ शनैश्चार्वाकृतिर्मेरुरासीद्धिम इवातपे। क्षणेनैवानलात्तसाद्धिमवाञ्जतुवद्गतः॥ 40 सर्वान्तःशीतलः शुद्धो दुर्जनादिव सञ्जनः । तस्यामपि दशायां तु मलयोऽमलसौरभः॥ 48 आसीत्यजत्युदारात्मा न नादोऽप्युत्तमं गुणम्। नदयश्रपि महान्हादं न खेदं संप्रयच्छति॥ ५२ चन्दनं दग्धमप्यासीदानन्दायैव जीवताम्। न कदाचन संयाति वस्तू सममयस्तुताम् ॥ ५३ प्रलयानलनिर्देग्धमपि हेम न नष्टवत् । हे हेमनभसी तिसम्न नप्टे प्रलयानले ॥ બ્યુ तयोरेव वपुः श्लाष्यं सर्वनाशेऽप्यनाशयोः। नभो विभुतवाऽनाशि हेमारुष्टतवाक्षयम्॥

सप्तसमुद्रादिकक्षणैर्जलेखद्याप्तरमिभिश्व काचतरकान्तिकाश्वन-स्थानीयैनीनावर्णेराननैर्भुखेर्मणिभिश्व अरुणा सौवर्णा क्रणत्कंक. णश्रेणीवाभवत् ॥ ४३ ॥ विदलनं विशीर्णताम् ॥४४॥ एवम-ब्धयोऽपि परस्परं मुखमाहल रुरुदुरिवेत्युरप्रेक्षते---भन्धय इति । अर्कमुखे सूर्यप्रतिबिम्बतिलके खमुखे ॥ ४५ ॥ किंच तेऽच्धयः अन्योन्यं वेक्षितं संबद्धं तरङ्गास्फालनैरुस्रोलमतएव क्रमेण मृत्पाषाणादीनां समीकरणाद्भृतलाकारतां प्राप्तं पर्वतं जहुः आजहुः । आहारतां निन्युरत्रसिन्नितयावत् । प्रकुपिता जडा मुखी मृत्तिकाशिलादि प्रसन्तीति प्रसिद्धम् ॥ ४६ ॥ क-चिच एषामन्धीनां गुहामुखनिर्गतान् गुहगुहेत्येवंहपानारवान् प्रदेशान्तरे ज्वालातटस्य गिरितटस्य संघद्दनादुद्भूत आग्नेयः शब्दः पपाठ । गुरूक्तान् शब्दान् शिष्यध्वनिरिव अनुचकारे-त्यर्थः ॥ ४७ ॥ किंच तदा प्रलयाम्बुदानां निय्तेष्ठनमुक्तशृष्टयो दशापि दिशो लोकपाळपुराणां दशानामप्यापतिर्दाहे प्रतप्ताङ्गा-रभरितादिभित्तयः सत्य उन्मत्तयृत्तयो भूला वैवदयं व्याकुळतां ययः ॥ ४८ ॥ काश्वनद्रवभूतः अद्रिभिः प्रत्यन्तपर्वतैरिन्द्रेण हुमैरागारें ग्रेहा गृहेश्व सहितश्वार्वा कृति में रुपर्वतः शनैः आतपे हिम इव विलीन आसीत्॥ ४९॥ जतुबह्नाक्षाबहृतो विलीनः ॥ ५० ॥ अमलसौरभः सुगन्धिरितियावत् ॥ ५१ ॥ महानु-त्तमपुरुषः ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ दग्धं दह्यमानमपि । न नष्टबत् न ननाश ॥ ५४ ॥ अविनाशिवस्त्वेव सार इति श्वाप्यमित्या-श्येनाह—तयोरेवेति । आकृष्टतया दोवेभ्यो निष्कृष्य शोषि-

१ प्राप्तमिति देव: । देहे प्राप्तं पर्वतमित्वन्ववः.

सत्वमेकं सुखं मन्ये न रजो न च वा तमः। खल्रुखवनानीय विकीर्णाङ्गारवर्षणः॥ 48 दग्धांब्दाद्रिमंहाधूमज्यालोऽभूद्वह्निवारिदः। रसविसारणार्तानां शून्यानां स्फारदेहिनाम् ॥ ५७ शुक्काणां व्योमविटपिपत्राणां पात्ररूपिणाम् । वारिदानां सवारीणां दग्धानां प्रस्रयार्चिषा ॥ ५८ इस्येबाङ्गनदोषाणां दृष्टं भसापि न कचित्। म लक्स्यति कैलासं यावदुल्लसितोऽनलः॥ ५९ तावत्तं कल्पकुपितो रुद्रो नेत्राग्निनादहत्। दाहर्फुटंद्रमस्थूलशिलाचटचढारवाः॥ E0 लकुटोपललोष्टीवैरयुध्यन्तेव भूभृतः। ज्वालाघनघटाटोपसावतंसचलान्तिमाः ॥ ६१ बभृषुर्व्यामविकसत्स्थूलपद्मवना इव ।

सर्गः कदाचिदेवासीदित्यगात्सरणीयताम् ॥ ६२
कल्पान्तः सारयन्मूर्जानगादसरणीयताम् ।
तापोपतापपरमाः परमारणत्यारः ।
वह्नयोऽपह्नयं चकुर्जगतामसतामित्र ॥ ६३
वद्यरानिनिपातपीढिताङ्गाः
कचदनलोल्मुकगुल्ममण्डलामाः ।
प्रलयसमयवायवोऽनलान्ताइलदमरावलयो लये लिहन्तः ॥ ६४
व्यालोलस्फुटदानलहुमवनप्रोद्धतमसोष्मणा
दत्ताम्राम्रमदुल्मुकाहतिवहत्साङ्गारगौरार्विषः ।
भ्रद्यत्पावकश्क्रमध्यविलसङ्गवालावलीह्यामला
निःशेषाग्निनकाशसुस्तवजवा वेगेन वाता वद्यः॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ मो॰ निर्वाणप्रकरणे उ॰ पाषा॰ महाकल्पान्ताप्रिवर्णनं नाम पश्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६

वितष्ठ उवाच । अथ फल्पान्तमरुति वहत्यवधुताचले । बलेनाम्मोधिकल्लोलैर्नभस्यावर्तकारिणि ॥ समुद्रेषु विमुद्रेषु मर्यादोल्लक्कने घने । अधनेषु धनिष्वम्बदारिक्रोपद्रवद्वते ॥

ततया ॥ ५५ ॥ अतएव रजस्तमोनिष्कृष्टं शुद्धं सलमेव ब्रह्म-**सुखाभिव्य**त्तया सुखसारं मन्ये । दग्धा अब्दा अम्बुदलक्षणा भद्रयो येन तथाविधो महाधूमज्वालः प्रलयवह्निलक्षणो वारिदः। षरुन्ति उचानि वनानीव नभि स्फूरन् विकीणीङ्गारवर्ष-णोऽभूदित्यन्वयः ॥ ५६ ॥ रसानां जलानामात्यन्तिकशोषे संस्कारमात्रस्याप्यनवशेषाद्विस्मरणेनातीनां श्रून्यानां स्फारदे-हिनां अण्डजादिचतुर्विधभूतानाम् ॥ ५७ ॥ तथा शुष्काणां दरधानामतएव व्योमविटपिपत्रपात्रप्रायाणां ग्रून्यतां गताना-मितियावत्। अथवा सवारीणामाद्रीणामेव प्रख्यार्विषा बलाइ-मधानां वारिदानां हे अङ्ग, ज्ञानाग्निदम्धानां ज्ञस्य तक्वविदो दो-षाणामिव भस्मापि क्षचित्र दृष्टमित्यन्वयः ॥ ५८ ॥ न लङ्घ-यति नाभिभवति । कैलासं रजतगिरिम् ॥ ५९॥ तं कैला-सम् । कल्पार्थे कुपितः । तद्दाहमपि वर्णयति—दाहेत्यादिना ॥ ६० ॥ भूमतस्तत्पादपर्वताः । किंच ते भूमृतो ज्वालाघन-घटाटोपैः सावतंसानि चलानि अन्तिमानि अप्रशिखराणि येषां तथाविषाः सन्तो व्योम्नि विकसन्ति स्थूलानां पद्मानां वनानि तथाविधा इव बभृबुः ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अस्मरणीयतां प्रत्य-क्षतामिति यावत् । मूर्खान् स्मार्यन् जगदसारतामिति शेषः । असतामलीकानां शशश्दनादीनामिषापहवमत्यन्तास-लम् ॥ ६३ ॥ लये तस्मिन्त्रलये प्रवृते अशनिनिपातैः पीडि-तानि प्राण्यज्ञानि यैः कचित्ररनलोल्मुकैर्युल्मानि क्षुद्रवृक्षास्तन्म- भूतले भूतलेशांशवर्जिते विह्नभर्जिते ।
पातालमपि पाताले गते किमपि कालतः ॥ ३
दिवि वा विद्यमानायां विशीणें सर्गवर्गके ।
लोके व्योमगतालोके शोकीकसि ककुव्याणे ॥ ४

ण्डलाभाः दलन्त्यो विशीर्यमाणा अमरावलयो येस्सथाविधाः प्रलयसमयवायवः अनलान्ताद्विमध्यात्रिगेत्य दिशो लिहन्त इव वतुः ॥ ६४ ॥ पुनः कीदशास्ते वाता वतुस्तदाह—व्यालोलित । व्यालोला ज्वालापलवकोटिभिः स्फुटन्तो विकसन्तश्च ये आनला विष्कमया हुमास्तेषां वनेषृद्भतेन भस्मसहितेनोष्मणा दत्तान्ना व्याप्ताकाशा उत्पादितमेषा वा । तथा श्रमतामुल्मुकानामाहितिभर्गभघातैर्वहन्त्यो निःसरन्त्यः साङ्गारा गौराः पाता अर्विषो येभ्यः । तथा श्रर्यन्तीभिः क्ष्मलारमना स्खलन्तीभिः पावकश्वङ्गप्रायशिखामध्ये विलसन्तीभिः सक्कलात्मना स्खलन्तीभिः पावकश्वङ्गप्रायशिखामध्ये विलसन्तीभिः सक्कलात्मना स्खलन्तीभिः पावकश्वङ्गप्रायशिखामध्ये विलसन्तीभिः सक्कलात्मना निकाशेन प्रदीपनेन मुस्तवः स्तुतियोग्यो जवो येषां तथाविधा वाता वेगेन वत्नुरित्यर्थः ॥ ६५ ॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणतात्त्यर्थप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे पञ्चस्यतितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

जर्धवारुणदिग्भागे पुष्करावर्तकोदयः । वर्ण्यतेऽत्रोपसंहारोऽष्यग्नेराग्नेयदिकाुले ॥ १ ॥

अत्रधूताचले कम्पितरीले ॥ १ ॥ विमुद्रेषु विगतचिहेषु धनिष्वधनेषु सत्सु । अम्बुदारिद्योपद्रवेण अलाभावदुःखेन द्वते पलायिते इति घनेन भूतलेन वा संबन्धः ॥ २ ॥ किमपि प्रसिद्धविलक्षणं पातालं विनाशमिति यावत् ॥ ३ ॥ दिवि द्युलोके न्योमगत आलोकः सौरोऽमिसाद्भावापने ॥ ४ ॥

कुतोऽप्याकाशकुहरादृप्तदैत्यगणा इव । पुष्करावर्तका मेघाश्चकुर्गुलुगुलारवम्॥ ब्रह्मविस्फोटितस्वाण्डकुड्यविस्फोटनोद्भटम् । अन्योन्यास्फालनोत्फालमत्तार्णवरवाविलम् ॥ लोकार्णयपुरोद्गीर्णघनकोलाहस्रोल्बणम् । पतत्कुलाचलस्कन्धबद्धोप्ररवधर्धरम्॥ ब्रह्माण्डदाह्वजठरपूरणावर्तमन्थरम् । स्वर्लोकरोदःपातालतलतोऽतिसगुल्मकम्॥ समस्तद्रदिग्मित्तिहेलाहेलनघर्षुलम्। महाप्रख्यसंपन्नापानकापानतर्षुलम् ॥ प्रसृतप्रलयाख्येन्द्रमत्तरावतबृहितम्। आकल्पश्चन्धमेघान्धिनिहीदमिव संभृतम्॥ १० महाप्रलयसंश्चन्धक्षीरोदमथनारवम् । ब्रह्माण्डोब्रारघट्टेऽसिन्वार्यन्त्रमिव सारवम् ॥ ११ अधास्मिन्सति कल्पाग्नी स्थितिमेति कथं घनः। इति विस्मितवानस्मि हर्रा दिग्नवकेऽत्यजम्॥ यावन्न कचिदेवात्र पदयाम्याशासु केवलम् । तरन्ति तरलास्फालमुल्मुकाशनिवृष्टयः॥ १३ तेन ज्वलनतापेन बहुयोजनकोटियु। पदार्था भस्मतां यान्ति दूरे दिश्च दशस्विप ॥ १४ अनन्तरं भणाद्योचि दूरेऽहमनुभूतवान्। ऊर्धितः शीतलं वातमधस्तादनलोपमम्॥ १५

गुळुगुकेति आरबानुकरणं प्रथमं दूरादतारश्रवणाभिप्रायम् ॥५॥ सामीप्यक्रमेण तस्यैव तारतां दर्शयति-वहोति । ब्रह्मणा विस्फोटिते खाण्डे कुड्यस्य ब्रह्माण्डभित्तेविस्फोटन इव उद्घटं तारतमम् । अन्योन्यास्फालनैहत्फाला उच्छलन्तो ये मता अर्णवासादीयरववदाविलम् । शब्दसमकालप्रसृतस्य दिग्जल-मालिन्यस्योपमेयोपमानयोः शब्देऽप्यारोपादाधिललोक्तिः ॥६॥ लोकेष्मर्णवेषु पुरेषु च प्रतिध्वन्यात्मना उद्गीर्णेर्घनैः कोला-इछैरतितारैरुल्यणं दुःसहम् । एतैः प्राग्वणितैः कुलाचलस्कन्ध-संबद्धेदीहोशरवैर्मिश्रणाद्धर्थरम् ॥ ७॥ ब्रह्माण्डशङ्कजठरपूरणे सति तद्भितिशतिरोधप्रयुक्तैः परावर्तनैर्मन्थरं निविद्यतरमतएव खर्लीकात् रोदोभ्यां पातालतलतश्च अतिशयेन सगुल्मकं शासा-प्रकरसहितभिव ॥ ८ ॥ समस्तदूराणामपाराणां दिनिभत्तीनां हेलया हेलनेन विलेखनेन धर्पुलं कषणशीलमिव । महाप्रलये सप्ताच्धीनां मिश्रणेन कथनात्संपन्नस्य पानकस्य आपाने आखादने तर्धुलं पिपासितमिव ॥ 5 11 प्रसतस्य निजयार्थे निर्गतस्य प्रलयाख्यस्य इन्द्रस्य मत्तरावतगार्जेतमिव स्थितम् । धाकल्पं प्रलयपर्यन्तं चिरनिरोधेन मेचलक्षणानामन्धीनां संभृतं चिरसंचितं युगपन्निः सतं निर्होद-मिव स्थितम् ॥ १० ॥ आरघष्टे घटीयश्वस्थाने प्रसिद्धं बार्यकां जलधारायकामिव ॥ ११ ॥ अध वर्णितमेघध्वनिश्रवणा-

पतावति नभोमार्गे दूरे कल्पाम्बुदाः स्थिताः। यस्तेषामग्नितापानां विषयो न च सहशाम्॥ १६ अय धारणदिग्भागादाययौ कल्पमारुतः। यस्मिस्तृणवदुश्चन्ते विन्ध्यमेरुहिमालयाः॥ १७ तेन ज्वाळाचळाः प्रान्तोड्डीनाङ्गारविद्दंगमाः । लोलोल्मुकवनाकान्ता जग्मुरग्निदिशं द्वुतम्॥ संध्याभ्रसद्याकारास्तेष्ट्यारवारिदाः । भ्रेमुर्भसमराभ्राणि पूताङ्गाररजांसि से ॥ १९ स ज्वालविलसद्वातो दुष्टोऽनलदर्श वजन् । हेमाद्रीणां सपक्षाणामनीकं द्रवतामिव ॥ 20 घराद्रिमण्डलाभोगे सीम्याङ्गारभराश्मनि । ज्वालावलिगणे जाते भाते तेजसि भास्वताम् अर्णवेष्यनलार्णस्सु कथनोत्फालवारिषु । वनेष्वस्मृतपर्णेषु दीप्ताग्नितरुधारिषु ॥ २२ ब्रह्मलोकस्थनाथेषु ब्रह्मलोकपुरेषु च। साङ्गनाबालवृद्धेषु दग्धेषु निपतत्सु सम्॥ २३ कस्पान्तानलपश्चिन्या ब्रह्मात्रावसरोवरे । ज्वालापल्लवशालिन्याः सबीजायाः सटोस्मुकैः २४ अनिलात्मसु मूलेषु नागेषु च नगेषु च। आपातालं निमग्नेषु महत्यङ्गारकर्वमे ॥ २५ उष्ट्रसैन्यमिषालक्ष्य गतिमन्निकटं नभः। आययावजनस्यामः कल्पाम्बुद्गणः कणन् ॥ २६

नन्तरं विस्मितमाध्यं बुद्धिसाद्वानहं संजातोऽस्मि तत अधोदिग-तिरिक्ते दिङ्वके दशं दृष्टिं मेघान्वेषणाय अत्यजं विमुक्तवान् । व्यापारितदानस्मीति यावत् ॥ १२ ॥ न पश्यामि । मेघानिति शेषः। किं तर्हि दष्टवानसि तत्राह्—केवलमिति । तरन्ति आ-कारी प्रवन्ते ॥ १३ ॥ १४ ॥ अनुभूतवान् लगिन्द्रियेण ॥ १५ ॥ एतावति दूरे यो यावान् दूरप्रदेशस्तेषामधःप्रवृता-नामभितापानां सतां तत्र जीवतां प्राणिनां दशां च विषयो न ॥ १६ ॥ १७ ॥ ज्वालालक्षणा अचलाः पर्वताः । पर्वतस्यो-पपादके द्वे विशेषणे ॥ १८ ॥ भस्मभररुक्षणान्य**न्धारणाद-**भ्राणि पूतानां वायुशोधितानामङ्गाराणां रजांसि ॥ १९॥ २०॥ सौम्या निर्फ्वाला येऽक्रारास्तद्भरात्मके जाते सतीति शेषः । भासतां द्वादशादिलानां तेजित रजोपगमाद्भाते स्फूटे सित ॥ २१ ॥ कचिदनला एवार्णीस येषां तथाविधेषु कचित्कथनो-त्फालवारिषु । सर्वेषां सप्तम्यन्तातां कल्पाम्बुदगण आययाबि-त्यमेन्वयः॥२२॥२३॥ सटाः केसरसद्दशाः स्फूलि**नासाद्धटितैरु**-स्मुकैः सबीजयाः ज्वालाप**स्नवशालिन्याः ब्रह्मलक्षणे अत्रावे नि-**रुपले सरोवरे प्ररुदायाः कल्पान्तानळक्ष्पायाः पश्चिन्याः अनि-लारमञ्ज विष्टम्भकवायुप्रधानेषु नागेषु नगेषु च सर्पपर्वतरूपेषु मूळेषु आपातालमङ्गारकर्दमे निममेषु सत्यु इति द्वयोरन्ययः ॥२४॥२५॥वर्मभकामिरहाणां पश्चिमदेशे जलवाहकलप्रसिद्धै-

| स्थिरकस्पानलज्वालातुस्यविद्युन्मयाचलः। | |
|---|----|
| एककोणकविभान्तसप्तार्णवपयोमरः॥ मित्तिभासुरनीहारभारनिर्वारदिकटः। | २७ |
| ब्रह्माण्डकुरु यनिबिडमण्डलास्फोटपण्डितः॥ | २८ |
| कल्पान्तश्चमिताम्भोषिर्वेतुलावर्तवृत्तिमान् । तदिज्ञलचरः सारनिर्हादः खमिवागतः॥ | રર |
| मृतो दग्धो निशानाथस्ततो द्विगुणशीतलः । अन्यमाकारमाश्रित्य परं लोकमिवागतः ॥ | ३० |
| हेमसंभारकपेण हिमालयमिवाखिलम् । जाड्यस्तम्भित्निःशेषजलुकाष्टाचलं द्यत् ॥ | 38 |
| अथ ब्रह्माण्ड्विस्फोटकठिनं घटिताम्बरम्। | _ |
| प्राग्द्वतोद्भटतौषारकाष्टा वृष्टिः पपातह ॥ अग्निदाहवनाकादाविद्युदुन्मेषभीषणा । | ३२ |
| चटद्रडगडास्फोटस्फुटद्रह्माण्डमण्डला ॥ प्रथितोत्थितसीत्कारशतक्ष्वेडाक्षयारवा । | 33 |
| | |

| शीतसीकरनीहारभित्तिबन्धमयाम्बरा ॥ रोदोमण्डपवैदूर्यस्तम्भसंभारमासुरैः। | ₹ĸ |
|---|-----|
| धारासारैर्धराषुर्यशैलशातकशालिनी ॥ | ३५ |
| घराचटचटास्फोटस्फुरदङ्गारपत्तना । गर्जितोर्जितसंपातपतल्लोकान्त्रराकुळा ॥ | 38 |
| सा बभूवाथ साङ्गारजगद्गेहविलासिनी । कृतप्रत्युद्गमा बाष्पश्चिया ज्वलनया भुवः॥ | રૂહ |
| ज्वालालवोह्नलनडम्बरमम्बरं त- द्यूदस्थलाझदलजालमिवालमा सीत् । | |
| ज्वालाभ्रमस्मरपङ्किनिभास्तदासं- स्तत्र स्फुरच्छिद्दीरसीकरपक्षपुञ्जाः॥ | 34 |
| उद्यद्वहम्बटचटारवपूरिताशो | |
| भीमोऽभवत्सिललदानलसन्निपातः । दुर्वारवैरिविपमो महतूां ब्लानां | |
| संप्राम उत्र इव हेतिहतोत्रहेतिः॥ | ३९ |

इत्सार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाण० उ० पाषा० पुष्करावर्तं अम्बरवर्णनं नाम पदसप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्तितमः सर्गः ७७

Ş

यसिष्ठ उवाच । अधावनिपयस्तेजःपवनानां युगक्षये । जाते परमसंक्षोमे वभूवास्मिञ्जगन्रयम् ॥

स्तत्सैन्यमिव ॥ २६ ॥ तमेव वर्णयति—स्थिरेत्यादिना ॥२०॥ भित्तिवत् भासुरैनीहारभारैनिवीराणि निरवकाशानि दिक्तटानि यस्य । ब्रह्माण्डकुड्यपर्यन्तं निबिडस्य भूमण्डलस्यास्फोटे विद-लने पण्डितः । ब्रह्माण्डकुड्यपर्यन्तं खयं निविडः सन् नभो-मण्डलास्फोटनप्राये ध्वनौ पण्डित इति वा ॥२८॥ कल्पान्त-श्चभिताम्भोघिरेव खमायातोऽधिरूढ इवेत्युत्प्रेक्षा । वर्तुलाव-र्तस्थानीयद्वादशादित्यपरिवेष्टवृत्तिमानित्यादिविशेषणान्युरप्रेक्षो-पपादकानि ॥२९॥ उत्प्रेक्षान्तरं दर्शयति—मृत इति । परम-त्यूर्वदेशरूपं परलोकमाश्रित्यान्यमाकारमम्बुदगणलक्षणं शरी-रान्तरमागत् इव ॥ ३० ॥ हेमसंभारसद्दाविद्युद्गणरूपेण जाध्येन साम्भितानि निःशेषाणि समस्तानि जलानि काष्टमिवा-बलानि येन तथाविधं हिमालयं दधत् भारयन्निव ॥ ३१ ॥ **अय मेघागमनानन्तरं वृष्टिः पपात । कथम् । ब्रह्माण्डस्य** विस्फो-टबरकठिनवजानियातेन घटितमम्बरं यस्मिनकर्मणि तथाविधा प्राक् प्रथमं द्वता उद्घटनीहै।रा काष्ट्रा दिशो यस्याम् ॥ ३२ ॥ तां वृष्टिमेव वर्णयति--अप्रदाहेत्यादिना । अप्रदाहराहशेन वनाकाशयोविंद्युदुन्मेषेण भीषणा । चटक्किर्गडगडास्फोटैः स्फुट-इद्याण्डमण्डला ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ रोदसी चावाभूमी तह्नक्षणम-ण्डपस्य वैद्यंस्तम्मानां संभार इव भासुरैः स्थूलतरैर्धाराणामा-सारैः संपातैर्थराधूर्यहाणां शैलानां शातका ये टंकप्रहारास्त-

तापिच्छविपिनोङ्गीतिनिभमसाम्रभासुरम् । महार्णवमहावतेवृत्ति धूमविवर्तनम् ॥ नीलज्वालालवोह्यासं हेलाटिमिटिमारटि ।

च्छालिनी ॥ ३५ ॥ स्फुटन्ति अङ्गारपत्तनान्यङ्गारसमूहा यया ॥ ३६ ॥ साङ्गारजगद्गेह्निकासिनी सा दृष्टिः । अय अञ्चलन्या भुवो बाष्पित्रयाः ससीव कृतप्रत्युद्गमा बभूव ॥ ३७ ॥ तदा तत्तादशमम्बरमाकाशं ज्वालालवानामुहलनं विलासस्तदा- हम्बर् यस्मिस्तथाविषं सद्भूषानि प्रस्त्वानि स्थलान्जदलजान्लानि यस्मिस्तथाविषं सद्भूषानि प्रस्त्वानि स्थलान्जदलजान्लानि यस्मिस्तथाविषमिव आसीत् । तत्र तस्मित्रमन्दौ स्पुरन्तः शिशिराः शीकरपक्षपुष्ठा जलधरास्तु ज्वालामु अमन्ती या अमरप्रिस्तिन्ना आसन् ॥ ३८ ॥ किंच तदा सल्लिवानां मेषान्नामनलानां च संनिपातः समागमः अश्वहृह्षयटचटारवैः पूरिता आशा दिशो येन तथाविषः सन् दुर्वारवैदिविषमः अत्यवोगो महतां बलानां सेनानां हेतिमिर्हता उपा हेत्यो यत्र तथाविषः संप्राम हव भीमो भयानकः अभवत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्वप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तराघे पट्ससतितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

पुष्करावर्तकोत्सृष्टबृष्टिभाराविसंषुक्षम् । सप्ताविभक्षोभनिर्भूतं जगजूयोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥ शवनिश्व पयश्व तेजश्व पवनश्वेरयेषां चतुर्णो महाभूतानां परमसंक्षोमे जाते सति जगज्ञयं यादशं वभूव तद्वर्णयामि ११-विवसर्थः ॥ १ ॥ तापिष्णविपिनं तमास्वनम् ॥ २ ॥ सा-वेंबु दांबोषु भूमनीस्जवासालनोक्कासस्कक्षणाभिर्देस्तिभिष्टिमिटिमे-

१ मूलस्पतीपारपदस्पेवायमर्थः । अथवा पतदनुरोधेन मूले

उद्भटनीहारेति पाठी वा करप्यः.

| क्रतमसाम्रसंमारपूर्णलोकान्तरान्तरम्॥ | 3 |
|---|----|
| उच्छलदीर्घरतकारै इछमच्छमम्यात्मकैः। | |
| तूर्यमुग्नमदासारविसारिजयघोषणम् ॥ | ક |
| म्रमद्भसाम्रध्नाभं बृहत्कल्पाभ्रसंभ्रमम्। | |
| बाष्पाभ्रविभ्रमोद्भान्तसीक्रोग्राभ्रवृन्दचत्॥ | 4 |
| ब्रह्माण्डभित्तिभांकारभीषणमीतरिश्वनः । | |
| प्रसरेरम्बरोड्डीनदग्धेन्द्रादिपुरोत्करम्॥ | દ્ |
| जलानलानिलोहासस्फुटत्कोटिगताश्मनाम्। | |
| प्रविघट्टनटंकारैजंडीभूताक्षकश्रुति ॥ | G |
| नभुः स्तम्भनिभाबन्धधारानीरन्ध्रवर्षणैः । | |
| कर्षणैः कृष्पयञ्जीनां छमच्छमघनध्वनि ॥ | 6 |
| गङ्गातरङ्गिका येषां तादशैः सरितां गणैः। | |
| अभ्रैरिव नभोभीमैः पूर्यमाणाखिला्र्णवम् ॥ | ९ |
| तापिच्छपत्रवृन्दस्थपुष्पगुच्छसमोपमैः। | |
| तपद्भिरकैरालीढपीठकल्पाभ्रमण्डलम् ॥ | १० |
| बह्दिरिसरिद्युहिशिखरिद्वीपपत्तनम्। | |
| करपानिलघनशोभकृतपर्वतकुट्टनम् ॥ | ११ |
| प्रहतारागणैकप्रैर्ध्यप्रैर्विप्रहदुप्रहैः। | |
| पति इति गुणालातलतामा वर्तपाति मिः ॥ | १२ |
| आवहोत्यजलादीन्द्रसंघट्टास्फोटघट्टितम्। | |
| महाप्रलयपर्यस्तपर्वतप्रान्तकुद्दिमम्॥ | १३ |
| घनसीकृतवाष्पाभः कल्पाभ्रेरपि मेदुरैः। | |
| अन्बीकृतार्कजालांशुतमोनिबिडमन्थरम्॥ | १४ |
| विशोर्णवसुधापीठखण्डखण्डैर्गलत्तरैः । | |
| उद्यमानैर्लुठच्छैलपतनैः संकटार्णवम् ॥ | १५ |
| | |

त्यारटनशीलम् ॥ ३ ॥ दीर्घा रुत् ध्वनिस्तत्कारैः सार्देन्धनैः । आसाराणां विसारिजयघोषणं तूर्यमुत्रमदुचच्छदित्युत्प्रेक्षा ॥४॥ पश्चविधाभ्रवन्दवदित्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ प्रविधट्टनैजंडीभृतत्वगा-बक्षकम् । टंकारैर्जडीभृतश्रुति विधरीकृतश्रोत्रम् ॥ ७ ॥ कल्प-वहीनां कर्षणैविं छेखनै विंदारणैरिति यावत् ॥ ८ ॥ तरिक्षका एकैकतरक्षप्राया ॥ ९ ॥ तमालपत्राधस्थानां पुष्पगुच्छानां या उपमा सैवाकीणामिति तत्समोपमैः। आलीडपीठं आखादिता-धारप्रायं कल्पाश्रमण्डलं यत्र । अबिन्धनानामकीणां तदास्ता-दकलादिति ॥ १० ॥ ११ ॥ विष्रहेण परस्परप्रहारेण दुर्घहै-र्दुर्निरोधैः अतएव आवर्तपातिभिरन्ते पतद्भिश्व द्विगुणां भूमिष्टा-ळातेभ्यो द्विग्रणामलातलतां नभस्यपि क्वर्वदिति शेषः ॥१२॥ **आसमन्ताद्वहतीत्यावहः प्रचण्डपवनस्तदुत्थानां** जलादीन्द्रप्रा-याणां मृहत्तरत्राणां संघटैः स्फुटन्तीति स्फोटाः पर्वता यत्र ॥१३॥ घनानि सीकृतानि सीकरा येषु तथाविधैर्वाष्पाञ्जेः ॥१४॥ ॥ १५ ॥ कर्मिभ्य उद्यद्भिक्षिभिक्ष्य्वप्रक्षितेहप्रकेरिछत्रा धना मेचा यैस्तवाविधेषस्मरमारुतैः प्रलयवायुमिभेम्दिक्तटम् ॥१६॥ ब्रह्माण्डकुष्णलक्षणस्य कोडाप्रस्य उरोदेशस्य कुट्टकेरास्फालकैः अतएव कटटांकृतैः कल्पाञ्चकल्पविटपलक्षणकरवाहास्कोटैः

| ऊर्म्युचादुपलिखन्नघनैर्घसारमाधतैः। | |
|---|-----|
| समुद्रघोषैर्निर्घातगम्भीरैर्भग्नदिक्तरम् ॥ | १६ |
| ब्रह्माण्डकुड्यकोडाग्रकुट्टकेः कटुटांकृतैः। | |
| कल्पाभ्रविटपास्फोटैर्घटितैकार्णवारटि ॥ | १७ |
| स्वर्गपातालभूलीकृषण्डस्पडेविंमिश्रितैः। | |
| यथास्वभावं तिष्ठञ्जिर्मेरुबुप्रेर्नृताम्बरम्॥ | १८ |
| मृतार्धमृतदग्धार्धदग्धाङ्गेर्देवदानवैः। | |
| अन्योन्यदर्शनाहात्रवेहितैर्भ्राभितायुध्म् ॥ | १९ |
| कल्पान्तप्रधनोद्धान्तैलोंकान्तरजरकृषिः। | |
| आरब्धार्ज्जनवाताख्यास्तम्भमुद्भूतभस्समिः॥ | २० |
| उद्यमानहालाजालप्रहारविलुठत्तरैः । | |
| पतल्लोकान्तरैः स्फारदुष्कालकटुटांकृतम्॥ | २१ |
| वातोद्यहगिरिवातगुहाभांकारभासुरम्। | |
| पतन्त्रिर्विहितावर्तलोकपालपुरीपुरैः ॥ | २२ |
| कृतकर्कशनिर्हादैरसुरैरिय मारुतैः । | |
| उद्यमानवनन्यूहप्रोतवातायनैर्वृतम् ॥ | २३ |
| पुरमण्डलदेखाग्निसुरनागविवस्वताम्। | |
| निकुरम्बं द्रघद्योस्नि मदाकानामिवोचयम्॥ | રક |
| नइयन्नगबराभोगैर्भागैर्भग्नसुरालयैः। | |
| आवर्तघर्घरारावैर्जलमुर्धमधोनलम्॥ | ર્ષ |
| कुर्वेञ्जलाद्गिनिष्पेपैर्दिक्पालपुरकुट्टमम् । | • |
| निपतदेषवस्येन्द्रसिद्धगन्धर्वपत्तनम् ॥ | २६ |
| कुट्टनं पर्वतादीनां प्रशान्ताङ्गारकपिणाम्। | 74 |
| वातैः कुर्वत्पदार्थानामसारं रजसामिव ॥ | २७ |
| ्याचा क्रियरप्रवाचाचाचार रकारामिय ((| 7.0 |

परस्परषद्वितकार्णव आरटि सोरस्ताडं रुददिति यावत् ॥१०॥ किचोड्टीनै: खर्गादिलोकत्रयखण्डखण्डेर्पुरुतारतम्यक्रमेण यथा-खभावमन्तरिक्षे तिष्ठद्भिः अधोभागे वृष्टिजलासंस्पर्शात्संभावि-तजलभागस्य बायुना शोषणाच मरवित्रर्जलं बुधं मूलमधो-भागो येषां तैः ॥ १८ ॥ समानविपत्कत्वेऽपि परस्परवैरिहामे-वान्योन्यं दर्शनात्परस्परवधाय श्रामितायधम् । तथाच विनाज्ञानं विपत्सहसारिप न वैरदृष्टिरज्ञानां शाम्यतीति सेन विपन्योपि महा-विपदिति ध्वनितम् ॥ १९ ॥ अर्जुनवात इति वातरोमविशेषस्य नाम । तेन हि रोगेण रोगिणो नमस्युद्वीय भ्राम्यन्ते नतु तस्य रोगस्यार्जुनवर्णतास्तीति तन्नाम निरालम्बनं माभूदिति लोकान्तर-जरलुणैः स्रोद्भुतभस्मभिर्वातं धवलीकृत्य आरब्धः अर्जुनवाता-ख्यायाः स्तम्भः प्रतिष्ठा सालम्बनता यस्मिभित्युत्प्रेक्षा ॥२०॥ स्कारं दुष्कालप्रयुक्तं कडुटांकृतं यस्मिन् ॥ २१ ॥ वातस्योब्युहेन संबद्दनेन विरिवातगुद्दानां भांकारैभीसुरम् ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ भावर्तः परावर्तनं उत्पाट्य द्रोणवद्वैपरीत्येन धारणं तेन पर्षरारावैरूर्ण दृष्टिजलमधो निराबाधं दवानलं दधदिति शेषः ॥ २५ ॥ २६ ॥ पर्वतादीनां पदार्थानां रजसामिव कु- ર્

| पुराण्यमरदैत्यानां भ्रमन्त्रित्तीनि शातयत्। |
|---|
| दक्षेः खणखणायन्ति पयांसीव पयस्वताम् ॥ |
| पूर्णाम्बरं पतल्लोकलोकसप्तकमन्दिरः। |
| पूर्णाम्बर् पत्रहाकलाकसप्तकमान्द्रः। |
| चकावृत्या भ्रमद्वैरमरेः सागरेतिव ॥ |
| डीनोड्डीनैः परिचृतं विचलद्वातवेहितैः। |
| द्रश्चाद्रग्धेः पदार्थैः स्रे शीर्णपर्णगणैरिष ॥ |
| हेमस्फटिकवेद्र्यसुसारमणिमन्दिरैः। |
| दिषः पतद्भिराकीर्णमुचज्झणझणस्त्रनैः॥ |
| उत्पेतुर्धूमभस्माद्धाः पेतुर्वारा पुरोत्कराः। |
| उन्ममञ्जूस्तरङ्गीघा ममञ्जूर्भृतलाद्रयः॥ |
| आवर्तघर्घराराचा मिथो विद्छनोद्यताः। |
| जुचूर्णुरर्णवाकीर्णपर्णवस्त्रीढपर्वताः॥ |
| क्रन्देच्छिष्टामरगणं चलत्सजीवभूतकम्। |
| भ्रमत्केतुदातोत्पातं दुष्प्रेश्यमभवज्जगत्॥ |
| मृतार्धमृतया भूतसंतत्यानिललोलया । |
| अभूषीरन्ध्रमाकादां जीर्णपर्णसवर्णया ॥ |
| जगदासीत्पतच्छुङ्गस्थूलधारीधनिर्भरम्। |
| बहद्रहिरिपुरवातपूर्णसरिस्वतम्॥ |
| शाम्यच्छमशमाशब्दशतशाखहुताशनम्। |
| चलान्धिवलनान्दोललोलरोललसत्तरम् ॥ |
| तुणराशिसरिष्यायमिश्रद्वीपार्णवोत्कटम् । |
| अस्यन्तद्रचिद्योमक्षणज्वालासहावनम्॥ |
| षर्वशाम्यद्भुताशोत्थभस्मामोद्दपतत्सुरम्। |
| A Marie Barber and Same A south of |

| भूतपूर्वजगद्भृतं परिविस्मृतसर्गकम् ॥ | ३९ |
|--|-------|
| निर्गेलोलसमावं सर्गलोपशमक्रमम्। | |
| सर्गलोपोल्लसच्छेषं सर्गलोपविवर्जितम्॥ | Ro |
| अनारतिषपर्यासकारिमास्तिनिर्वृतम्। | |
| बीजराशिरिवाजस्रं पूर्यमाणं पुनःयुनः॥ | 8\$ |
| उल्मुकान्योन्यनिष्पेषवहिचूर्णसुवर्णजैः। | |
| रजोमिर्विवृतेर्देमकुद्दिमाकाराकोटरम् ॥ | કર |
| भूमण्डलबृहत्खण्डभ्रेष्टेः सद्वीपसाग्रैः। | |
| पूर्णसप्तमपातालं लुडत्पातालमण्डलैः॥ | ४३ |
| आसप्तमसुतालान्तमामहीतलपर्वतम् । | |
| आष्योमैकार्णवीभूतं पूर्ण प्रलयबायुभिः॥ | 88 |
| पकार्णयोऽथ वचुचे शनैः शीव्रं सरिच्छतैः। | |
| भुवने जलकहोर्छैः कोपो मूर्खाशये यथा॥ | ४५ |
| मुसलोपमया पूर्व ततः स्तम्भनिभाङ्गया। | |
| ततस्तालद्वमाकारघारयासारसारया ॥ | કદ |
| ततो नदीप्रवाहोप्रजलपातैकपातया । | |
| सप्तद्वीपमहीपीठसममेदुरमेधया ॥ | 80 |
| चित्रविदाहरुदृष्ट्या शममभ्याययौ तथा। | |
| शास्त्रसञ्जनसंगत्या गाढमापत्पदं यथा॥ | 84 |
| ऊर्ध्वाधरस्थपरिवृत्तपदार्थजात- | |
| मन्तःकणैः खणखणाचितशैलमञ्जम् | ı |
| ब्रह्माण्डकोटरमभृद्विधुरं कुबाल- | |
| लीलाविलोलमिव विस्वफलं विद्युद्ध | T 120 |
| लालावलालाचन व्यवसाल विद्युक्त | ゾペン |

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्मीकीये मो०नि०उ० पाषा०पुष्करावर्तवृष्टिविसंष्ठुळजगद्वर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः॥७७॥

इनं कुर्वत् ॥ २०॥ पमस्वतां मेघानां पयांसीव रक्षेः खणखणायन्ति भमरदेखानां पुराणि शातयत् ॥ २८॥ पतन्तो
लोका जना येम्यस्थाविधेलें कसप्तकमन्दिरैः पूर्णाम्बरम्
॥ २९॥ ३०॥ आकीर्णामस्यन्तानां सर्वेषां पदानां सर्गाद्यखोकस्थे बभूवास्मिन्जगत्रमिस्यन्तानां सर्वेषां पदानां सर्गाद्यखोकस्थे बभूवास्मिन्जगत्रमिस्यनान्वयः ॥ ३९॥ वारा
दृष्टिजलेन ॥ ३२॥ ३६॥ घलन्तः सजीवा ईषजीवनयुक्ता
भूतकाः प्राणिनो यत्र । अनुकम्पायां कन् ॥ ३४॥ ३५॥
पतन्तः गिरिश्काणीव स्थूलानां घारोषाणां निर्भरा यस्मिन्
॥ ३६॥ ३०॥ तत्त्वक्षानेद्धचिद्योमक्षणदाह्यस्यास्य जगतः
प्रलये चिरेण नाशो नाश्चर्यपदिमस्याश्येनाह—अस्यन्तेति ।
तत्त्वक्षानदीर्लभ्ययोतनायास्मन्तद्रोत्युक्तिः । चिद्योन्नि क्षणजवालां न सद्दे तथाविधमवनं स्थितिर्यस्य ॥३८॥ पूर्व भूतं
भूतपूर्वं जगज्ञूनं चराचरं यत्र । सांप्रतं तु परिविस्मृतसर्गकम्
॥ ३९॥ सर्गस्य लोपेन शमकमो यत्र । परमार्थतः सर्गलोपे
सक्सति शेषः परमारमा यत्र । सर्गलोपभ्यां बक्कतो ववर्जिन

तम् ॥ ४० ॥ सदैव वा सर्गतलोपविशिष्टमित्याशयेनाह—अन्तारतेति ॥४१॥ हेमजुद्दिममिव आकाशकोटरं यत्र ॥ ४२ ॥ छठन्त्रन्यपातालमण्डलानि येषु तथाविधेर्म्मण्डलबृहृत्सण्डैः ॥ ४३ ॥ अभिन्याप्ताबाइ । सप्तमं धुतलमेव द्युतालं पातालम् । छान्दसो दीधेः ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ आसारः संपातस्तत्सारमा ॥ ४६ ॥ ततस्तालपरिमाणधारापातानन्तरं नदीप्रवाहस्य ताम्रपर्यादो प्रसिद्धो मलयाद्यप्राद्य उम्रो जलपातस्तदेकपात्या । एकशन्दः सदशपरः । सप्तद्वीपविशिष्टसमममहीपीठसमा मे-दुरा मेघा यत्या उत्सद्यारस्य ॥ ४० ॥ गावं दुःखकोटिनिविडमापरपदं सर्वविपत्स्थानमज्ञानं यथा ॥ ४८ ॥ कुत्सितानिवडमापरपदं सर्वविपत्स्थानमज्ञानं यथा ॥ ४८ ॥ कुत्सितानिवडमम्दित्यदंः ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यक्राहो निर्वाणमकरणे उत्तरार्धे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८

| वसिष्ठ उदाच । | |
|---|----|
| बातवर्षहिमोत्पातपातमञ्जे धरातले। | |
| जडवेगोऽगमद्दर्धि कलाविव महीपतिः॥ | १ |
| गङ्गाप्रवाहपतितधारापातविवर्धितः। | |
| सरित्सहस्रैः सहसा मेरुमन्दरभासुरैः ॥ | २ |
| आदित्यपथसंप्राप्तकन्दरो जडमन्थरः। | |
| एकार्णवः समुच्छून आसीन्मूर्ख इवेश्वरः॥ | 3 |
| विपुलावर्तवृत्त्यात्तविवृत्ताद्विजरत्तृणः । | |
| स्फुरतुङ्गतरङ्गाद्यनिगीर्णादिस्यमण्डलः॥ | ß |
| मेरुमन्दरकैलासविन्ध्यसहाजलेचरः । | |
| गिलताचनिपङ्कान्तर्ली्नव्यालमृणालकः॥ | 4 |
| अर्धदग्धद्रुमवनन्यूहरीवलसंकटः । | |
| त्रैलोक्यमससंस्रष्ट् आसीत्कर्दमकुत्सितः ॥ | Ę |
| नभःस्तम्भवृहद्धानोत्तालभास्करपुष्करः । | |
| घाराजालमहाम्भोद्विलीननलिनीदलः॥ | S |
| डिण्डीरपर्वतप्रान्तनददुन्मत्तवारिदः। | |
| भ्रमदिन्द्र्।निलार्केन्दुपुरंपत्तनपूरणैः॥ | 6 |
| काृष्ठवत्र्रोद्यमाणोप्रसुरासुरजनोत्करः। | |
| शनैः क्रमोच्छ्नतया लिहन्नादित्यमण्डलम् ॥ | ę |
| तरचारतरारावधाराधरसमुद्भवैः। | _ |
| बुहदैः परिसंदिग्धप्रोद्यमाणमहाचलः॥ | १० |
| भगवत्रविश्वान्तमान्तकरूपान्त्रधारितः। | |

नदीप्रमाणैरासारैरभितः पूरयक्तभः । पुकार्णवप्रवृद्धोऽत्र विस्तरेणोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

जहवेगो जलवेगः ॥ १ ॥ व्योमगङ्गाप्रवाहेषु पतिता या मेषधारास्तरपातेन विवर्धितः । 'विवर्जितैः' इति पाठे विवर्जिन तैर्विसर्वितैः सरित्सहस्नैः समुच्छनः । सहसोत्थितेमेरुवन्मन्दर-वश्व भाग्नरेस्तरक्षेः आदिखपथसंत्राप्ताः प्रवाह्यमाणगिरिकंदरा यस्य तथाविध एकाणीव आसीदिति द्वयोरन्वयः ॥ २ ॥ ३ ॥ तमेवैकाणंबमासर्गसमाप्तेविशिनष्टि—विपुलेखादिना । विपुला-नामावतीनां वृत्त्या आत्तानि अतएव विवृत्तानि भ्राम्यमाणानि भद्रिजरत्तुणानि यस्मिन् ॥४॥ सह्यान्ताः जलेचरा इव यस्य । तमेबार्णवं पद्माकरत्वेन संभाषयति—गलितेत्यादिना । गलिता या अवनिस्तरपद्धान्तर्निलीनाः शेषादिव्यालमृणालका यस्य ॥ ५ ॥ ६ ॥ नभोलक्षणेषु साम्मेषु नालेषु बृहतीषु कर्णिकासु षानाभिवींजभूतैः किरणैक्ताला भास्करा द्वादशादित्या एव पुष्कराणि पद्मानि यस्मिन् । धाराजाला महाम्भोदा एव ज-लोपरि संलप्नलाद्विलीनप्रायाणि नलिनीदलानि यस्मिन् ॥ ७॥ ॥ ८॥ ९॥ किमेते बहुदा उत महाचला इति परितः सं-दिग्धाः प्रोद्यमाना महायका यस्मिन् ॥ १०॥ उत्ताले-

| उत्ताहैस्तैरनाधारैः पश्यन्नपरवारिदम्॥ | ११ |
|--|----|
| महाप्रवाहबायोंघघोषघुं घुमिताम्बरः। | |
| एकप्रवाहमहितस्वयोमकुलपर्वतः॥ | १२ |
| चण्डवातकतापूर्वज्ञलीघकुलपर्वतैः । | |
| महाघुरघुरारावघर्घरोप्रमृहार्यः ॥ | १३ |
| ब्रह्माण्डखण्डसंघट्टपरावृत्तिभिरुद्धतः । | |
| कुर्वन्योजनस्रक्षाणि वित्तान्युक्षतानि च ॥ | १४ |
| तृणैरिव तरक्केषु दोलान्दोलनमद्रिभिः। | |
| कुर्वद्भिरुपलाघातभग्नभास्करमण्डलः॥ | १५ |
| शून्यब्रह्माण्डविपुलजलघातकुलायके । | |
| नीलानचलकाकोलाञ्ज्हन्सलिलजालकैः॥ | १६ |
| मृतामृतमहद्भूतम्ञानोन्मञ्जनाकुलान् । | |
| तरंगमकरावर्तप्रतिबिम्बान्वितानिव ॥ | १७ |
| मृतशिष्टान्पुरभ्रष्टान्फेनाद्रितटिकोटिषु । | |
| द्धज्जलयलश्रान्तांस्त्रिद्शान्मशकानिव॥ | १८ |
| विपुलाद्यतनाकाशविपुलानम्बुबुद्धुदान् । | |
| सहस्रसंख्यान्कलयंह्नोचनानीव वासयः॥ | १९ |
| शरद्योमसमाभोगैर्वलद्भिर्बुद्धदेक्षणैः। | |
| पश्यन्निव नदीधारान्मेघानाताम्नपूरकान्॥ | २० |
| पुष्करावर्तकाभ्राणां बहुभिर्वीचिमण्ड्लैः। | |
| कुर्वन्नालिङ्गनानीय सपक्षाद्रिवदुत्थितैः॥ | २१ |
| त्रिजगद्गाससंतृप्तः प्रगायन्निव घर्घरैः। | |

रलयोरमेदादुद्गतास्ताराः कनीनिका येपां तथाविधस्तैः समेध-बुद्धदैरनाधारैः खाधारमुखमात्ररहितैनेत्रैः अपरं समिहितं वा-रिदं पश्यित्युत्प्रेक्षा ॥ ११ ॥ धोषैर्षुष्ठमितं मुखरीकृतमम्बरं येन । एकस्मिन्त्रवाहे महिता ममाः सन्योमकुरुपर्वता यस्य ॥ १२ ॥ १३ ॥ तिर्थेग्विततानि अर्ध्वमुत्रतानि च योजनल-क्षाणि खिस्मिन्कुर्वन् ॥१४॥ तृणवद्दोलान्दोलनं कुर्वद्विरद्विमि-रुपलाघातैभेग्नानि भास्करमण्डलानि येन ॥ १५ ॥ किंच श-न्यब्रह्माण्डलक्षणे विपुले जलसंघातस्य कुलायके नीडे स्थिता-श्रीलान् अचलाः पर्वतास्तत्रक्षणान् काकोलान्द्रोणकाकान्। यृह-न्मद्गनिति यावत् । सलिललक्षणैर्जालकैरानायैर्जहन् बद्धाहर-त्रिव । हरतेः शतुरछान्दसो लिइद्भावः ॥ १६ ॥ अचलकाको-लानेव द्वाभ्यां विशेषणाभ्यां विशिनष्टि-एतेति । इवेति पूर्व-क्षोकान्वयि ॥ १०॥ फेनलक्षणानामद्रीणां तैटिषु कोटिषु शि-खरेषु च। दधत् बहन् ॥ १८ ॥ विपुलो योद्यतनः प्रसिद्धः आकाशः अधोमुखीकृतरजतकटाइवद्र्यमानस्तद्वद्विपुलानिति बुदुदान्तर्निविष्टप्राणिद्धयोक्तिः । लोचनानीय वासय इति बहिष्ठरच्या उपमा ॥ १९ ॥ नय इव भारा येषां तान् ॥२०॥ ॥ २१ ॥ अदय एव कटकानि वलया येवाम् । अदिकटकक-

१ अस्य प्रस्तान्तत्वं विचारणीयम्.

स्वैर्नृत्यन्निव चोत्राद्रिकटकैर्वीचिदोर्दुमैः॥ २२
नदीधाराधरैकथें मध्ये दग्धेर्धराधरैः।
अधो धराधरैर्नागैरधरः पङ्क्रगैर्वृतः॥ २३
धारात्रिपथगापूरैर्निपतद्भिर्निरन्तरम्।
मग्नोन्मग्नो ह्यमानाद्रिश्टङ्गडिण्डीरचुद्भुदः॥ २४
उद्यमानदलत्स्वर्गखण्डकन्दक्रभश्चरः।
यहिद्धधाधरीवृन्दपिश्चनीसुन्दरान्तरः॥ २५
पकार्णवपयःपूरैर्घर्धरारावरंहित।

त्रैलोक्यखण्डसंहारे प्रोह्यमाणे महाम्भसि ॥ २६ नासीत्कश्चित्परित्राता हन्ता वीन्विवशोऽपि च । शक्तोति कः परित्रातुं कालेन कवलीकृतम् ॥ २७ नाकाशमासीत्र दिगन्त आसी-दधोऽपि नासीत्र तक्ष्वेमासीत् । भूतं न आसीत्र च सर्ग आसी-दासीत्परं केवलमेव वारि ॥ २८

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु नि० उ० पा० एकार्णयवर्णनं नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९

विसष्ठ उवाच ।

पतस्मिन्ननरे चक्षुव्योमस्थोऽहमथात्यज्ञम् ।

ब्रह्मलोके महालोके प्रभातेऽकंप्रभामिव ॥

यावहृष्टो मया तत्र हैं।लादिव विनिर्मितः ।

परमेष्टी समाधिस्थः प्रधानपरिवारवान् ॥

समृद्दश्चैव देवानां मुनीनां भावितात्मनाम् ।

ग्रुको वृहस्पतिश्चैव शको वैश्रवणो यमः ॥

सोमोऽथ वरुणोऽग्निश्च तथान्येऽपि सुर्पयः ।

देवगन्धवंसिद्धानां साध्यानां च विनायकाः ॥

लिपिकर्माणिताकाराः सर्वे ध्यानपरायणाः ।

बद्धपद्मासनास्तत्र निर्जीवा इव संस्थिताः ॥

अथ ते ब्रावशादित्यास्तमेवोद्देशमगताः ।

टकैरिति वार्थः । श्रमुखः खरमुख इतिवद्दृत्तिविषयेऽद्विपदस्य त्रत्कटकपरलात् ॥ २२ ॥ न विद्यते धरा यस्य ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ दलति विशरणशीले स्वगेखण्डे कन्दन्तो नभश्वरा देवतालक्षणा हंसादयो यस्य अतएव पश्चिनीसुन्दरान्तरः॥२५॥ ॥ २६ ॥ वीचीनां वशो न भवतीत्यवीचिवशोऽपि कश्चिना-सीत् । हन्तेति खेदे ॥ २७ ॥ सप्टम् ॥ २८ ॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टसप्तितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

सर्षिदेवगणस्यात्र धातुर्निर्वाणमीर्यते । स्वप्तस्येव प्रबोधेन बाधसान्न समर्थ्यते ॥ १ ॥

अथ एतिसम्मन्तरे तपोलोकपर्यन्तमेकाणिववारिपूरणोत्तरकालं सखलोकसंनिहितव्योमस्थोऽहं महालोके प्रकाशबहुले ब्रह्मलोके चक्कः अलाजम् । दर्शनाय प्रेरितवानिति यावत् ॥ १ ॥ प्रधानः परिवारः प्राणाद्यपासनाभिः सालोवयादिमुक्ति प्राप्तो ब्रह्मणा सह विदेहकेवल्यं विविधुर्जीवन्मुक्तपरिवारस्तद्वान् । तथाचीक्कम् 'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यान्ते कृता-स्मानः प्रविशन्ति परं पदम्' इति ॥ २ ॥ देवानां शकादीना-माधिकारिकदेवानां तादशशुक्रादिमुनीनां च समूहस्तत्र मया एष्ट इस्यन्वयः । तानेव काश्विद्वयुत्याह—शुक्त इत्यादिना योग० १५६

बद्धपद्मासनास्तरथुस्तथैवाशु यथैव ते ॥ ફ ततो मुद्दर्तमात्रेण दृष्टवानहमञ्जाम्। पुरोविनिद्रतां यातः स्वप्तदष्टमिवाद्रगम्॥ 9 ब्रह्मलोकजनं सर्वे महतामिव वासनाम्। नापइयं स्वप्ननगरं बुध्यमान इवाव्रगम्॥ 4 अरण्यशुन्यमेवासीसहर्ह्यमननं तदा । कठिनाकाण्डविध्वस्तं पृथिव्यामिव पत्तनम्॥ ९ सर्व एव न च कापि ते तथा तारशास्तदा। ऋषयो मुनयो देवा सिद्धा विद्याधरादयः॥ १० श्वातं ततोऽवधानेन मया नभसि तिष्ठता। याविश्ववीणमापन्ना ब्रह्मवत्सवे एव ते ॥ ११ वासनायां विलीनायामद्रशनमुपागताः।

॥ ३ ॥ विनायका नियन्तारः । स्वामिन इति यावत् ॥ ४ ॥ सर्वे निजीवा इव संस्थिता मया दृष्टा इति विपरिणामेनानुषकः ॥ ५ ॥ तदनन्तरं यद्वतं तदाह-अधेत्यादिना ॥ ६ ॥ तस्य धातुद्वितीयपरार्धान्त्यमुहूर्ती गीयते येन चरमक्षणेन स मुहूर्त-मात्रसेन तदीयनरमसाक्षारकारबोधेद्वत्रद्वाचैतन्येन तदविद्याक-ल्पिततहेहसहिततदोयसर्वप्रपथ्याधाद्विनिद्रतां प्रयोधं प्राप्तः पुरुषः खप्रदर्धं खाप्रगं खाप्रपदार्थजातमिव बाधितमात्ममात्र-परिशेषमपस्यं तदेवास्य विदेहकवल्यमित्यर्थः ॥ आ प्रायक्तत-त्परिवारजनेध्वध्येवमेव केवल्वं ब्रुत्तमित्याह-व्यक्षालोकजन-मिति । महतां तत्त्वज्ञाना ज्ञानवाधितां पूर्ववासनामिवेत्यपरो इष्टान्तः । बिष्टं प्राग्वत् ॥ ८ ॥ तदा तदीयचरमसाक्षास्कार-क्षणे तहवानगरं ब्रह्माण्डं या अरण्यभिव शून्यं गृहजनादिर-हितमेवासीत् । कठिनेनाकाण्डेनाकस्मिकेन नाशहेतुना विध्व-स्तम् ॥ ५ ॥ ते मुनिदेवादयोऽपि सर्वे तथा ताहशाः शुन्य-मेवासन्निति विपरिणामेनान्वयः । यतस्ते न क्रापि गता इति दोषः ॥ १० ॥ नामरूपात्मना शुन्यभावेऽपि स्वरूपेण त निर्वाणात्मतया स्थिता एवेत्यादमानुभवेन दर्शयति-इत-मिति । अवधानेन प्रणिधानेन ॥ १३ ॥ रीव तैषां वासना-

१ मधसंकल्पसिद्धम्.

स्वप्रलोकाः प्रवृद्धानामिव स्वं रूपमागताः॥ १२ आकाशात्मैव देहोऽयं भाति वासनया स्फ्रटः। तदभावास नो भाति स्वप्नो बोधवतो यथा॥ १३ अन्तरिक्षगतो देहो यथा स्वप्ने विलोक्यते। बोधे तक्रासनाशान्ती न किंचिदपि लक्ष्यते॥ १४ जाग्रत्यपि तथैवायं वासनायाः परिक्षये । नैवातिवाहिको नैव लक्ष्यतेऽत्राधिभौतिकः॥ १५ स्वप्रानुभव एपोऽत्र रुप्रान्तत्वेन स्थयते। आबालमेतत्संसिद्धमनुभूतं श्रुतं स्मृतम् ॥ १६ अपहते च या योऽपि स्वमेवानुभवं शठः। स त्याज्यः को हालीकेन सप्तमुद्वोधयेत्किल ॥ १७ वेहकारणकः स्वप्नो देहाभावान्न दृश्यते। इति चेत्तवदेहानां परलोकोऽपि नास्ति च ॥ १८

कल्पितरूपापगमेन वास्तवस्वरूपावाप्तिरित्याशयेनाह-वासना-यामिति ॥ १२ ॥ तदेवोपपादयति -- आकाशात्मैवेत्यादिना । बोधवतः प्रबोधशालिनः ॥ १३ ॥ अन्तरिक्षगतः आकाशग-मनवान् ॥१४॥ खप्ताज्यागरे स्वाप्तादिमौतिकमात्रवाधस्तत्व-बोधे लाधिभीतिकादिदेहत्रयस्यापि बाध इति विशेष इत्याशये-नाइ--जामखपीति । वासनाक्षयद्देतुतत्त्वप्रबोधस्य प्रमाणजस्य जाप्रत्येव संभवाज्वाप्रस्पित्युक्तिः ॥१५॥ तथाच स्वप्नबाधाः नभव एकांशमात्रसदशोऽप्यायालप्रसिद्धलादृष्टान्तत्वेनोदाह्निय-त इलाइ—लमेति । 'तस्य त्रय आवसयान्त्रयः खप्राः' इति श्रतं पुराणादिषु च स्मृतम् ॥ १६ ॥ एवं खपरानुभवसिद्ध-भपि खप्रवाधं योऽऽपहृते खप्रादिसर्वदृश्यस्यतावादी स न प्रबोधनीय एवेत्याह-अपह्नते इति । अलीकेन मिषेण सुप्तं खापं विश्वम्बयन्तम् ॥ १७॥ ननु तथापि न खप्रदृष्टान्तो युज्यते पित्रादिदेहकारणको हायं देहः खप्रदेहस्त न तथेति सप्तदेहस्यात्यन्तासत्वेन वैषम्यादिति चेत्तर्हि यहादिना जाय-मानखर्गिवेहस्यापि वेहकारणकलाभावेनात्यन्तासस्वप्रसङ्गान्ना-स्तिकलमेव प्रतिवादिनां प्रसञ्येतेत्याह—देहेति ॥१८॥ किंच देहकारणकस्य देहस्यात्यन्तासन्ते आतिवाहिकदेहसमझ्यास्मनो हिरण्यगर्भस्याप्यत्यन्तासत्त्वप्रसङ्गस्तथासति सर्गायर्थकियाप्य-कीकैव स्वादित्याह—इत्येतदिति । इति एवंरीत्या लदुक्तमेतद-संस्वमभविष्यश्चेत्रहिं पूर्वसर्गप्रलयान्ते सर्वशरीरसंस्य एतत्स-गीदिकाले शरीरहेतुकशरीराभाषादयं सर्गाऽपि नाभविष्यतः। परिदृश्यमानोस्त्येव सचायं एवं पूर्वपूर्वसर्गेऽप्येषः शक्यमिलाशयेनाह्-सर्वदेति नत तर्हि मास्त कवापि प्रलयः, अनादौ संसारे अविच्छित्र-प्रवाहाः सर्वे देहकारणका एव देहा अर्थिकयासमधी अवि-ष्यन्ति । हिरण्यगर्भदेहस्य वा पूर्वपूर्वनारायणादिदेहादुस्पत्तिः कल्पयिष्यते । तथाच न कदाचिदनीदशं जगदिति जैमिनीयमतं षुषयति-अवयवेति । क्षित्यादिभूतानां हि सावयवलादेव संयोगस्य विभागावसानलाद्विनाशो दुर्वारः । तथाव न कदा-

इत्येतदभविष्यश्चेत्रच्छरीरकसंक्षये। नाभविष्यदयं सर्गः स चास्त्येच च सर्वदा॥ अवयवविभागात्मन्यवर्यभाविनि क्षये। न कदाचिद्निःयं तज्जगदित्यप्यसंस्थितम्॥ २० न कदाचिजगन्नाशो देहोद्भतगुणादिकम्। मदशक्तिरिव इतिरुदेतीति च वक्षि चेत्॥ 21 तत्पुराणेतिहासानां सर्वसंक्षयवादिनाम्। स्मृत्यादीनां सवेदानां वैयर्थ्यमुपजायते ॥ २२ अप्रमाणतयैतस्मिन्नधें तेषां महामते। अन्यत्रापि प्रमाणत्वं वन्ध्यादावपि किं भवेत्॥ २६ न चैतदिष्यते लोके जगतुष्केदकारणात्। अम्यचास्तामेतवङ्ग ममेवमपरं शृण् ॥ 58

चिद्नीदशं जगदिति मतमसंस्थितमप्रतिष्ठितमेव । भूम्यादि-नाशे चतुर्विधभूतमामशरीराणामाधाराभावेनावस्थानायोगामा-रायणदेहस्यापि सावयवलाद्विनाशिलावरणादप्सु शयानलप्रसि-द्धेर जन्मविना शत्वे देहाकारणकरवेनात्यन्तासरवप्रसङ्गाचेति भावः ॥२०॥ अत्र प्रसङ्गाचार्वाकमतमपि निरसित्तमनुबद्धति---न कदाचिदिति । पृथिन्यादिभूतचतुष्टममेव हि चतुर्विध-देहाकारेण घटपट।बाकारेण च संमिलकागत् । तस्य च प्रथि-व्यादिभ्तारमना कदाचिदपि नाशो नास्ति । देइसा भ्ताना मेलने उद्भतज्ञानेच्छादिगुणा हस्तपादाधवयवसंस्थानतत्त्वभि-व्यक्त्या जातिरित्येवमादिकमेव तदीयो धर्मसंघातः। तत्र यश्रपि क्रिनिकैकत्र भूते दर्यते तथापि सरारम्भकेषु पिष्टतीयक्षारिकः ण्वादिद्रव्येषु मिलितेषु कालपाकादिना मदशक्तिरिव देहाकारपः रिणतेष चतुर्व भतेष क्षप्तिगुण उदेति तेन तक्कणको देह एवा त्मेति हे चार्वाक, लं विक्षे चेत् शृणु । तस्योत्तरमिति होषः ॥ २१ ॥ तत्तर्हि सर्ववस्तुनां संक्षयो नित्यनैमित्तिकप्राकृतवै-हानिकास्याधतुर्विधाः प्रख्यासाद्वादिनाम्सादशपुराणानां भार-ताबीतिहासानां पारलैकिकारमहिताहितधर्मा**यमंबोधकमन्दा-**दिस्मृतीनां सदाचाराणां च वैयर्धं प्रसज्येतेत्वर्धः ॥ २२ ॥ नन्दस्त वेदपुराणादीनामप्रामाण्यममिमतमेव चार्वाकाणामिदं लया आयादितमिति चेत्तत्राह-अप्रमाणतयेति । निर्दोषा-णामेतेषां वेदपुराणादीनामेतस्मिन्प्रलयधर्माधर्मात्मतस्बल्धाः अर्थे अप्रामाण्ये सति भोगलाम्पव्यलोभद्वेषादिदोषसद्द्वतुष्टे अन्यत्र खद्राक्येऽपि इयं वन्थ्या शतं पुत्रानस्तेखादिवाक्य-तुरुये कि प्रामाण्यं भवेत् । संभावनायां लिक् । तत्संभावनापि दुर्लमेखर्थः ॥ २३ ॥ नवैतरवदुक्तं वेदपुराणादीनामप्रामार्ण्य लोके प्रेक्षाविद्यिरिष्यते अनीिकयते । कृतहानाकृताभ्यागमादि-दोषेण निर्धाजप्रयोजनसर्गाद्यसंभवेन च जगतुच्छेदप्रसङ्गात् । किंच देहात्मबादे किमवयवाः सर्वेऽप्यात्मान उतावयव्येव । आधे बहुनां चेतनानां सदैकमत्यनियमाभावेन वैमत्ये देहोन्म-थनप्रसङ्गः । द्वितीये वृक्षे हस्ताधेकावसवे अवयविनाशास्त्रीय-

मद्शस्यात्मिन काने दृष्टा देशान्तरेषु या।
प्रमृतानां पिशाचादिदेहता सा न सिध्यति ॥ २५
अथ सापि मुघा भ्रान्तिर्याबहेहं प्रदृश्यते।
इति चेश्वस्मुधा नाम सस्यमित्येष वो भवेत्॥ २६
एवं चेश्वत्परो लोकः सत्स्वर्गनरकादिकम्।
इत्येषापि न संबितिक सस्यतामुपगच्छति ॥ २७
न पिशाचप्रमा सस्या मद्शक्तिमतोऽपि हि।
प्रतिभास्य न सस्या स्यारपरलोकात्मिका कथम् २८

नाभावप्रसन्न इत्यायन्यच दूषणसहस्रमस्त्येवेत्यास्तामेतत् । ए-तेन हे अन्न, लया किष्वपिष्टजलादिसंघाते मदिरायां मदशक्ति-रिव कायाकारपरिणतभूतसंघाते शिसगुण उत्पद्यत इति यवुक्त तदपि दत्तोत्तरमेव । तत्र इदमपरं दूषणं वक्ष्यमाणं श्रुण्वित्यर्थः ॥ २४ ॥ ज्ञाने ज्ञानगुणे मदशक्तयात्मनि मदशक्तिरिव आत्मा स्वभावो यस्य तथाविधे अभ्युपगम्यमाने गुणिनो देइस्य नाशे गुणस्याप्यवदयनाशादेशान्तरेषु प्रमृतानां जीवानां देहस्योच्छेदा-त्पिशाचादिदेहान्तरेण स्वदेशागमनं परशरीरावेशेन प्राक्तन-खजनादिप्रत्यभिन्नासंभाषणाद्यर्थकिया च या लोके प्रसिद्धा सा न सिध्यति ॥ २५ ॥ अथ यदि ब्र्याः सा पिशाचादिकल्प-नापि मुधा भ्रान्तिरेव, पिशाचानामप्रलक्षलाचार्वाकमते प्रसक्षातिरिक्तप्रमाणाभावात् । नहि प्रसक्षातिरिक्तं प्रमाणं संभवति । शतशो दृष्टसह्चारैष्वपि पार्थिवललोहलेख्यलादिषु **वज्रमण्यादी व्य**भिचारदर्शनात् । उत्पातादिकालान्तरे गवादी खरादित्रसृतिदर्शनाद्देवतात्रतिमादिभ्यश्व विनापि वर्ह्हि धूमोद्गम-दर्शनात्सर्वत्र लिक्केषु देशान्तरे कालान्तरे च व्यभिचारशङ्काया बारियद्भमशक्यत्वेनानुमानप्रामाण्यायोगात्।कृरक्षेकदेशसादद्य-विकल्पेनोपमानप्रामाण्यासिद्धेर्मानान्तरामूलकशब्देषु लोके अ-र्थसिद्धिनियमादर्शनादन्यशब्दानामनुवादिलाच शब्दप्रामाण्या-योगाद्यीपस्यनुपलब्धोश्च व्यतिरेकव्याध्युपजीविन्योरनुमानसः मानयोगक्षेमलात्संभवैतिहायोः संभावनामात्रलादनुमानादौ च संभावनास्वेव प्रामाण्याभिमानातप्रवृत्तिसिद्धेः । संदिग्धेऽपि फले अर्थोतुराणां प्रवृत्तिनियमदर्शनेनार्थनिश्चयस्य प्रवृत्त्यनङ्ग-लाच सर्वव्यवहारोपपत्तेः। किच पिशाचग्रस्तस्य पिशाचवाग्रव्य-हारोSपि यावहेहमेव दश्यते नतु तन्मरणे । अतस्तहेहस्यैव सान्निपातिकभ्रान्तिरिव पिशाचमस्तोऽहमिति वृथा भ्रान्तिरिति **चेत्, तत्त्वदुक्तं** सर्वे नाम शब्दजातं मुधा त्र्यर्थमेव । स्त्रोक्तयैव व्याहतलात् । नहि प्रत्यक्षातिरिक्तस्य सर्वस्याप्रमाणत्वे चार्वा-कानां वाक्यं प्रमाणं भवति । तस्यापि प्रसक्षातिरिक्तलात । नचानुमानादीनामप्रामाण्ये लया खोक्तोऽर्थो युक्तिभिः समर्थ-यितुं शक्यः । युक्तीनामनुमानतया तत्त्रामाण्यापत्तेः। नच ते दृष्टान्तोऽस्ति सादर्यस्योपमानगम्यलात्तदप्रामाण्ये तदसिद्धेः । नापि खपक्षे अनुकूलः परपक्षे प्रतिकूलो वा तर्कस्लयोद्भाव-**यितुं शक्यः । तर्कस्यान्वयव्यतिरेकव्यामिघटितःवेन तदपरा-**पिनस्ते तदप्रसिद्धेः। आपत्तिव्यतिरेकयोरनुपपत्त्यनुपरुज्ध्य- पिशाचोऽस्तीति चेत्संवित्सत्यार्था तेन संविदः।
मृतस्यास्ति परो लोक इत्यस्यां किं न सत्यता २९
क्राकतालीयवद्देहात्पैशाची व्रतिरस्ति चेत्।
परलोकार्थसंविक्तिः कथं नास्ति सकारणा॥ ३०
यान्तवेत्ति यथा संवित्सा तथानुभवत्यलम्।
अस्तु सत्यमसत्यं वा सिद्धमित्यनुभृतितः॥ ३१
मृतस्यास्ति परो लोको विदित्येवंमयी भवेत्।
सति वा सति देहेऽस्मिस्तेन किं सदस्य किम् ३२

धीनत्वेन तदभ्युपगमे अर्थापत्त्यनुपरुव्धिप्रामाण्याभ्युपगमा-पत्तेः । प्रमाणषद्कमपि सत्यमित्येव वश्चार्वाकाणामभ्युपगन्तव्यं भवेदित्यर्थः ॥ २६ ॥ अस्त्वेवं तेन कस्ते छाभस्तमाह--एवं चेदिति । एवं शब्दादीनां प्रामाण्यमभ्यूपगनं चेतत्तस्मा-त्रिदीषशब्दरूपायाः श्रुतेः प्रामाण्यावश्यं मानादेनोः श्रुतिजन्या-परो लोकः खर्गनरकादिकं च सत् इत्येषापि संवित् सत्यतां प्रामाण्यं कि नोपगच्छति । ज्ञानानां हि स्वत एव प्रामाण्यं कारणदोषबाधकज्ञानाभ्यां क्षानिद्योद्यते । न चात्र कारणे दोपोस्ति नापि स्वर्गनरकादयो न सन्तीति बाधकं प्रमाणज-ज्ञानमस्तीति भावः ॥ २७ ॥ अथ सापि मुघा श्रान्तिरित यदुक्तं तदृषयति—नेति । पिशाचप्रस्तस्य पिशाचिविषयिणी प्रमा पिशाचस्य परदेहे स्थितस्य तदनुभवसिद्धा दर्शनश्रवणादि-प्रमा द्रष्ट्रणामस्मदादीनां परदेहेन पिशाचव्यवहारप्रमा च ज्ञानानां स्वतःप्रामाण्यादेव लोके सत्या प्रसिद्धा । सापि यदि न सला तर्हि अस्य क्षीबस्य मदिरादेर्नदशक्तिमतो द्रव्यस्य मदश-क्तिप्रतिभापि न सत्या स्यात् । नह्यमत्तानुभवसिद्धार्थापळापि-नस्ते प्रमत्तप्रतीतिसिद्धमदशक्तिः परेणापलपनीया । तथाच तव दृष्टान्तासिज्या ज्ञानस्य भूतगुणलागिद्धेः परलोकात्मिका खर्गनरकादिस्थितः कथं लया निरिधतुं शक्येति शेषः ॥२८॥ तेन सर्वजनप्रसिद्धेन ज्ञानानां सतःप्रामाण्येन पिशाचोऽस्तीति संविरसत्यार्था चेदनुभववजातप्रसिद्धा मृतस्यापि परहोकोऽस्तीति श्रुतिजन्यायां प्रतीता तद्दलादेव किं न सत्यता ॥ २९ ॥ किंच पिशाचप्रसास्य पैशाची इतिर्ने श्रुतिसदशद्दवतरप्रमाणजा किंतु काकतालीयवदाकस्मिकी । तथाविधापि सा स्त्रानुभवापलापा-योगादस्ति प्रमा चेत्सकारणा दृढनरश्रुखादिकारणसहिता पर-लोकार्थसंवित्तिः कथं नास्ति कुतो न प्रमेलार्थः ॥ ३० ॥ ननु नानुभववलादेवार्थसत्त्वमवधारितुं शक्यं शुक्तिरजतानुभ-वेऽपि तदर्थसत्वादरीनादिलाशक्षाह—येति । या संवितः अन्तर्यदर्थसरवं यथा वेनि तदर्थसरवं तथानुभवति तत्र ग्र-क्तिरजतसंवित् स्वप्रतिभासकालिकमर्थसत्त्वमवगाहते । नेदं रजतमिर्खात्तरकालिकी बाधसंबित्त न्नैकालिकं रजतासत्वम् । तत्रायसंविद्वलात्प्रातिभासिकं रजतादेः सल्बमखु । द्वितीयसंवि-द्वरादसत्त्वं वा अनुभूतितः सिद्धम् । अर्थरूपं नानुभवमन्त-रेणापलपितुं शक्यमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ तत्र यदि जीवतः सति देहे श्रुत्यादिप्रमाणवशाद्वा मृतस्य असति देहे स्वप्नवत् प्रति-

तस्मात्स्वभावः प्रथमं प्रस्फुरन्वेत्ति संविदम् बासनाकारणं पश्चाद्वद्वा संपद्यति भ्रमम् ॥ ३३ तत्क्षयाच्छममायाति द्रपृष्ट्यरगामयः। तत्सत्तायामुदेतीयं संस्त्याख्या पिशाचिका ॥ ३४ उपलम्भ उदेत्यादौ ब्रह्मणो वासना ततः। तष्ठानित विद्धि निर्वाणं तत्सत्तां संसृतिभ्रमम् ३५ उत्पन्नेष च सानादी परव्रह्मण्यसंभवात्। उत्पन्ना समयाद्यासी ब्रह्मेव प्रमेव सत्॥ ३६ पतावधत्परिकानं तक्षिर्वाणं विदुर्बुधाः। यदत्रैवापरिज्ञानं तं बन्धं विद्धि राधव ॥ 30 विज्ञानघन एवायं कचनाकचनात्मकः।

स्वयमेव कचत्यन्तर्न कचत्येव वा स्वयम्॥ 36 संविवंशपरावृत्तिमात्रे पेलवरूपिणि। बन्धरक्योक्षरक् चेति क्रेशस्तत्साधनं कियत् ३९ संविद्द्वोधने वन्धस्तदनुद्वोधने शिवम्। असत्सद्वज्जगद्भाति संविदुद्बोधनोदरम्॥ 80 अजडं वेदनं सुप्तं मोक्ष इत्यमिधीयते। प्रवृद्धं बन्ध इत्याहुर्यदिच्छिस तदाहर॥ કશ निर्घाणवासनमनन्तमनाद्यमच्छ-योधेकतानमपयम्रणमस्तराङ्कम् । अद्वेतमैक्यरहितं च निरस्तशून्य-माकाशकोशविशवाशयशान्तमास्ख ४२ इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षो०निर्वाणप्रकरणे उ०पा० वासनाभावप्रतिपादनं नामकोनाशीतितमः सर्गः॥७९॥

भामात्रबलाद्वा यदि परो लोकोऽस्तीत्येवंमयी एवमनुभवरूपा संविद्यक्यं भवेदेव तर्हि तेन मरणेन कि जीवदनुभवितदं सन्मृतानुभवसिद्धमसदिखपलप्येत किंवा विपरीत्येन। नोभयम-प्यपरुपितुं शक्यमिति सिद्धं श्रुत्यादित्रामाण्यमित्यर्थः ॥ ३२ ॥ स यदि म्यात्कायाकारपरिणतेभ्यो भूतेभ्यः संविदुद्भवात्र मृ-सस्य कायनाशे पारलेकिकी संविदुद्भविष्यतीति तर्हि स संविदः शाश्वतलात्स्वतः सिद्धलात्प्रत्युत तिसद्भिवलेनेव वासना-मयस्यातिबाहिकदेहस्य तत्कित्पतस्थूलदेहस्य बाह्यप्रपश्चस्य च पश्चात्सिदेस्तदन्यस्य ट्रियसिदिहेतोरप्रसिदेनं देहाधीनं संवि-अन्मेति प्रतिबक्तव्य इति सूचयंस्तत्प्रतिवचनमुपसंहृत्य 'वास-भायां विलीनायामदर्शनमुपागता' इत्यादिना प्रागनुकान्तं वास-नाक्षयादेव सर्वटश्योच्छेदं समर्थयितुं प्रसौति—तस्मादित्या-दिना । तस्माद्वेदादिप्रमाणस्य ज्ञानानां स्त्रतःप्रामाण्यस्य च सिद्धलाज्ज्ञानस्त्रभावः परमारमा स्वप्नकाशलारसर्वव्यवहाराहप्र-थमं खरूपां संविदं खत एव नित्यसिद्धां वेति न तद्वेदनफल-मन्यतोऽपेक्षते स्वीष्ण्यप्रकाशात्मतामिव विह्निरित्यर्थः । वास-मानां कारणसुद्भवोपादानं सर्वजगद्वासनामयमातिवाहिकदेहं तु ततः पश्चात्म्रश्चित्रात्रदारम्भक्षणे खरूपचित्स्यभावबलादेव बुद्धा ततो देहादिश्रमं संपद्मतीति न सर्वतः पूर्वतिद्धसंवित्सिद्धिर्दे-हाधीनेति भावः ॥ ३३ ॥ अतएव वासनाक्षयादेवातिवाहिक-**देहस्यदारा स्वीनर्थक्षयः सिद्ध इत्याह—तत्क्षयादिति ॥३४॥** तत्र सर्गादी ब्रह्मण आदी वासनान्तर्गतप्रपञ्चपर्यालीचनारमा उपलम्भ उदेति 'तरैक्षत बहुत्यां प्रजायेयेति' इति श्रुतेः । ततस्तस्मात्प्राक्षनजगद्वासनानां जगदात्मना उद्भवो भवति । बासनाशान्ती तु बीजाभावादेव जगदनुद्भवार्थसिद्धं निर्वाणमि-ब्याह्—तदिति ॥ ३५ ॥ ननु वासना कुत उत्पन्ना । न ताव-इक्कणः। तस्य 'तदेतद्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्मम्' इत्यादिश्च-तिमिः कारणलप्रतिषेधादसङ्गकूटस्थाद्वयलश्चतेश्व । नापि पूर्वक-स्पीयजगतः। तस्य प्रलये खयं विनर्यतः अन्योत्पादनाशक्तेः। नतु न विनश्यति खयमेव चरमभावविकारेण सूक्ष्मीभूय विष्टति तथा स्थितिरेवास्य प्रख्यो वासनारमेति चेन् । तथा- स्थितिरस्य किं प्रलये स्वसत्तया उन ब्रह्मसत्तया । आग्रे 'स-देव सोम्येदमम् आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इत्यादिश्रृतिविरोधात्। द्वितीये खतोऽसत्परसत्तया तिष्ठतीति प्रलापस्यालीकेऽप्य**तिप्रस**-क्तलारपक्षद्वयेऽपि सृष्टिप्रस्ययोरविशेषापत्तेरभासमानसत्ताऽप्र-सिद्धेर्नष्टं तिष्ठतीति च व्याघातादिति चेत्सलम् । सा वासना आदौ प्रलये पूर्वसर्गे वा उत्पन्नेव।न। असक्वाद्वये परब्रह्मण्यसं-भवस्य लयेवोक्तलात् । तथाप्यद्वितीयब्रह्मबोधनोपायतया शा-स्रकल्पितात्सर्गादिसमयाभिर्बीजजगदुत्पत्त्ययोगात्सा वासनापि प्राक् केनचित्रिमितेनोत्पन्नेति याबद्वोधोदयं खीकियताम् । बोधोदये तु सर्व जगद्वहाँव सा वासनापि परंबहाँबेति पर्यव-स्यतीत्वर्थः ॥ ३६ ॥ नच श्रुतिभ्यः असङ्गाद्वयं ब्रह्मापरिज्ञाय तत्र वासनायसंभवस्लयोद्भावित्रं शक्यः । तत्परिहाने तु सर्वसंशयवीजाज्ञानोच्छेदानिर्वाणमेव संपन्नमिति न वासनोत्प-त्त्याचनुपपत्तिशङ्काप्रसक्तिरित्याशयेनाह-एतावदिति ॥३०॥ थौक्तिकदृष्ट्या निष्कर्षे तु अज्ञातं ब्रह्मेव जगसद्वासना तद्विद्या चाज्ञातं ब्रह्मेव तिवृत्तिर्विद्या तत्फरुं निर्वाणं चेति पर्धवस्य-तीत्याशयेनाह्—विज्ञानेति । श्रुत्यादिप्रमाणलाभातप्राक् न कचत्येव ॥ ३८ ॥ बद्धास्मीति स्वभावतः स्वां मन्यमाना खयमेव खबन्धो निलमुक्तास्भीति प्रमाणतः खां प्रबुद्धा सा खयमेव मोक्ष इति निष्कर्षेऽवगते न कश्चिन्मोक्षसाधने क्रेश इत्याह—-संविदंशेति ॥ ३९ ॥ तदिदं परीक्षकैर्व्युत्थानसमा-थिभ्यां व्युत्थानसुपुप्तिभ्यां च सार्षं द्रष्टुं शक्यांमत्याशयेनाह-संविदुद्बोधने इति । संविद उद्बोधने बहिर्मुखलापादने । शिवं निर्वाणम् । संविद्दद्वोधनोदरमेव असजगत्यद्वद्भाति ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ एवमैन्छिकयोबन्धमोक्षयोमीक्षस्त्रभावाहरणमेव नि-र्विभेषपरमानन्दरूपलाद्युक्तमित्याशयेनोपसंहरति—निर्वाणवा-सनमिति । हे राम, लमच्छबोधेकतानं ब्रह्मैव सम्रपयम्त्रणं नि॰ र्मुक्तबन्धमास्ख । विशेषणान्यन्यानि ब्रह्मणि वा कियायां वा योज्यानि ॥ ४२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्र-काशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पुकोनाशीतितमः सर्गः ॥७९॥

अशीतितमः सुर्गः ८०

| वसिष्ठ उद्याच । | |
|--|----|
| इति ते सर्वे आयाता ब्रह्मलोकनियासिनः। | |
| अष्टदयतामेव गता दीपाः क्षीणद्शा इव ॥ | Ş |
| अथ ते द्वादशादित्या ब्रह्मणि ब्रह्मतां गते। | |
| जगहद्रहालोकं तमदहन्भास्त्ररार्चिपः॥ | ર |
| षैरिश्चनगरं दम्ध्वा ध्यानं कृत्वा विरिश्चिवत् । | |
| तेऽपि निर्वाणमाजग्मुनिःस्नेहदशदीपवत्॥ | 3 |
| तत पकार्णवापूरो विरिश्चनगरान्तरम् । | |
| रात्री भुवमिव ध्वान्तं पूरयामास सुर्मिमान्॥ | 8 |
| आब्रह्मलोकमभवज्ञगदापूर्णमर्णसा । | |
| तुर्च रसेकपूर्णेन पकदाशाफलेन तत्॥ | tq |
| तत्तवृर्मिगिरिवानखंगराविष्ठताः खिलाः। | |
| विच्छिन्नाः कस्पजलदा जल एव निलिस्यिरे ॥ | Ĉ |
| पतस्मिन्नतरे तत्र दृष्टवानद्दमम्बरात्। | |
| यावदभ्युदितं भीमं भीतः किंचिन्नभोन्तरात्॥ | ও |
| कल्पान्तजगदाकारं कृष्णमापृरिताम्बरम् । | |
| आकर्ष संभृतं नेशं देहेनेबोत्थितं तमः॥ | 6 |
| तरुणादित्यलक्षाणां तेज आभास्त्ररं दधत्। | |
| आदित्यत्रयसंकाद्याः स्थिरविद्यवयोत्यणः ॥ | ۹, |

वैज्ञानिकम्सवदशा वर्णितः प्रलयक्रमः । प्राकृतो योगिगस्योऽस्यो वर्ण्यते प्रस्तवक्रमः ॥ १ ॥ <mark>भात्रवीसना</mark>कल्पितस्य तहोकदेवस्यनादिसर्वेशपशस्य तत्शा-रब्धक्षयक्षणीत्पर्यन साक्षात्कारेण यो बाधस्तक्ष्यणी वैज्ञानिकः प्रस्यः 'नापश्यं स्वप्ननगरं बुध्यमान इवाप्रगम्' इत्यादिना स्वप्न-माधसहराः सोपपत्तिकं मुक्तदशा उपवर्णितः । बद्धदशा त धा-तुर्देहस्य तदारम्भकोषाधीनां तदिन्द्रियादीनां च स्वस्वकारणे लयद्वारा मायाशबले ब्रह्मणि लयलक्षणे प्रक्यमुपवर्णयितुमुप-कमते—इतीति ॥ १ ॥ ब्रह्मणि विधातृर्दहे । मायाशबङब्रह्म-साम् । जगद्वद्भम्यादिवत् ॥ २ ॥ आदित्याद्यधिकारिजीयानाम-प्यधिकारप्रारच्यसमाप्तेश्वरमसाक्षात्कारेण समसाखखप्रपद्यवा-भात्तद्ववेव विदेहकैवस्यमासीदित्याह--विरिन्नति ॥ ३ ॥ तदु-तरं किमासीत्तदाह--तत इति । प्राक्प्रकान्त एवेकार्णवापूरः। 'मूर्तिमान्' इति पाठे पश्चीकृतजलातमा ॥४॥ अर्णसा जलेन । तद्रद्वाण्डम् ॥ ५ ॥ तैस्तैरूर्मिभिः प्रवसानैगिरिवातैः खोर्देव-शरीरैश्वावलिता विभट्टिता अतएव खिला विशीणी थिच्छि-माश्च कल्पजलदाः प्रागुक्ताः पुष्करावर्तकादयः ॥ ६ ॥ एत-स्मिनन्तरे अहमम्बरादभ्यदितं भीमं भयानकं किचिद्र्पं दृष्ट-बान् नतु विशिष्य रहोऽयमिति परिचितवान् । तावद्गीत इ-खर्थः ॥ ७ ॥ तदेव रूपं भीतिहेत् भिरद्वतिर्वशेषणैर्वर्णयति--कल्पान्तेत्याबष्टभिः। आकल्पं द्विपरार्धावसानकालपर्यन्तं प्रति-निशं जातं तम एकत्र संशतमुपचितं संदेहेनोत्थितमिवेति सं-

| नेत्रेरासास्त्ररमुखं ज्वाळाषुञ्जसमुद्गिरम् । | |
|---|------|
| पञ्चाननं दराभुजं त्रिनेत्रं शुलपाणिकम्॥ | १० |
| आयान्तमन्तमुकेऽपि व्योद्धीय वितताकृतिम् | ì |
| खमिवासि घनदयामं देहमासाद्य संस्थितम्॥ | ११ |
| स्थितमेकार्णवापूर्णाद्वह्माण्डाद्वहिरम्बरे । | |
| व्योभेव हस्तपादादिसंनिवेशेन छक्षितम्॥ | १२ |
| घोणानिळपरावृत्तिविधृतेकमहार्णवम् । | |
| गोविन्दमिव दोईण्डक्षोभितक्षीरसागरम्॥ | १३ |
| कल्पार्णवजलापुरं पुंस्त्वेनेव समुत्थितम्। | |
| मृतियुक्तमहंकारमस्तकारणमागतम्॥ | १५ |
| कुलाचलबृहहुन्द्रमिबोद्भयनडम्बरैः ! | |
| पक्षीवैद्यतियतं व्योम समस्तमभिपूरयत्॥ | 84 |
| ततस्त्रिश्लनयनैर्मया रहोऽयमित्यसा। | |
| दुरादेव परिशाय परमेशो नमस्कृतः॥ | १६ |
| श्रीराम उवाच । | |
| किं स ताइग्विधो रुद्रः किं कृष्णः किं महाकृति | T: 1 |
| किं पञ्चवदनः कस्माइशवाहुः स तिष्ठति ॥ | १७ |
| कि त्रिनेत्रः किमुत्रात्मा किमेकः किप्रयोजनः। | |
| केनेरितः किमकरोच्छायासीद्वद का मुने ॥ | १८ |

हारमूर्तेरघोरहदस्य कृष्णवर्णोत्कषीदुत्प्रेक्षा ॥ ८ ॥ वर्णन कृष्ण-त्वेऽपि तेजसा माखरखमपीव्याह—तरुणति । दधदित्येतदुत्त-रखोकेऽप्यामाखरं मुखं दघविति संबध्यते ॥ ९ ॥ ज्वाळा-पुत्रं समुद्रिरतीति ज्वालापुष्ठसमुद्गिरम् ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ घाणा नासा तदनिलस्य श्वासवायोः परावृत्तिभिर्श्रमणैः ॥१३॥ पुंस्त्वेन पुरुषाकारेण समुत्थितमिव । सर्वोहंकारसमष्टिरूपं मूर्ति-युक्तं भूला आगतमित्र । सर्वकारणलात्स्वयमस्तकारणम्॥१४॥ ॥ १५ ॥ ततस्तादशहपदर्शनानन्तरं मया त्रिश्क्लेन त्रिमिनय-नेश्व प्रसिद्धर्रुक्षणरमी रहः परमेशो जगदीश्वर इति परिशाय नमस्कृतः ॥ १६ ॥ नतु परमेश्वरः 'मायां तु प्रकृतिं विद्या-न्मायिनं तु महेश्वरम्' इत्यादिश्रतिषु मायाशवलं बद्दीवामूर्त महेश्वर इति प्रसिद्धं, तत्किमर्थं कथोपाधिभिः पत्रवदनादिवि-शिष्टां मूर्ति घत्ते, सर्वातमनी वा कथं परिच्छित्रमूर्विभाव इति विशिष्य जिज्ञासमानी रामः पृच्छति—किं स इति । स स-र्वश्रुतिप्रसिद्धः परमेशस्तादृग्विधस्त्रदृणितरीत्या भथानकस्वरूपः किनिर्मित्तं केनोपाधिना स्थित इति प्रश्नस्य प्रपत्रभूता दशप्र-श्रास्त्रयः खतन्त्राः । स तिष्ठतीत्यत्रापि केत्यध्याहृत्याधारप्रश्लो बोध्यः। एवं किसुमः किसारमेति किसः प्रस्येकं संबन्धाद्वी प्रश्नी ॥१७॥स किं खतन्त्र उत परतन्त्रः। यदि खतन्त्रस्तर्हि पूर्णकाम-स्यास्य किमर्थं संहारे प्रवृत्तिः । यदि परतत्त्रस्तार्हं केनेरितः । तस्मित्रीश्वरे रहरूपं सति तदीयच्छायारूपा मायापि का आ-सीलद्भदेखर्थः ॥ १८ ॥ हे काकृतस्थ, असी परमेश्वरः सर्वसर्ग-

वसिष्ठ उवाच।

काकुरस्य रुद्रनामासावहंकारतयोत्थितः। विषमैकाभिमानात्मा मृतिरस्यामसं नभः॥ १९ ब्योमाकृतिः स भगवान्व्योमवर्णी महाद्यतिः। चिद्योममात्रसारत्वादाकाशात्मा स उच्यते ॥ २० सर्वभूतात्मभूतत्वात्सवेगत्वान्महाकृतिः । यानि तस्यानुषकानि पञ्च खानीन्द्रियाण्यलम् २१ तानि तस्य मुखान्याहुस्तपद्रपाणि सर्वतः। कर्मेन्द्रियाणि विषयास्ते हि तस्य भुजा दश ॥ २२ सर्वभूतनरैः सार्धे ब्रह्मणा परमेयुषा । यदासी संपरित्यकस्तदा स्वां मृर्तिमागतः॥ 23 स वैकांशैककपारमा नास्ति तस्य हि साकृतिः। तथा रूपत प्वासी भ्रान्तिमात्रेण मृर्तिमान् २४ चिदाकाशगते स्फारे भूताकाशे स तिष्ठति। देहे च सर्वभूतानां नित्यं वायुरिवेश्वरः॥ २५

स्थितिसंहारादिगोचरसंकल्पाध्यवसायादिबीजभूतसर्वःभिमाना-स्मकमायावृत्तिरूपया अहंकारतया सर्वजगद्ध्यासमूळल्लम्भभू-तया सर्वप्राणिरोदने सर्वशरणागतरुग्दावणे च निमित्तभृतया रहनामा समुत्यितः । तत्र रोदने विषमाभिमानात्मा रुग्दावणे 🖪 एकाभिमानात्मा संपद्यते । अस्य सा मया दृष्टा मूर्तिस्ल-मलं नभः आकाशमेव ॥ १९ ॥ अनेन कि स ताहिंग्वधः किं कृष्णः कि महाकृतिरिति प्रश्नत्रयं समाहितमित्याह-च्योमेति ॥ २०॥ किं पश्चवदन इति प्रश्नस्योत्तरमाह-यानीति । त-स्याहंकारस्य प्रतिशरीरमनुषक्तानि यानि पश्चज्ञानेन्द्रियाणि तानि तस्य रहस्य मुखान्याहुस्तत्त्वविदः ॥२१॥ अतएव हि ज्ञानेन्द्रि-याणि सर्वतस्तपद्भूपाणि प्रकाशस्त्रभावानि॥२२॥ कस्माइशबाहुः स इति प्रश्नं समाधत्ते-कर्मेन्द्रियाणीति । वाक्पाणिपादपायुप-स्थाख्यानि पश्चकर्मे न्द्रियाणि दक्षिणतः,वचनादानविहरणोत्सर्गाः नन्दाख्याः पत्र तद्विषयाश्च वामत इति कमात्तस्य दशभूजा इत्य-र्थः। तर्ह्यसौ प्रागपि तादशमूर्त्या कुतो न दष्ट इति चेचराचरनाम-रूपकार्याकाराध्यारोपव्यामुखद्धिमिस्तद्दन्तर्गतकारणस्वभावस्य **दुर्भहलादे**वेत्याशयेनाह—सर्वेति । सर्वैभूतिश्चतुर्विधशरीरैर्नरीत-त्तजीवैश्व सार्थ परं कारणं मायाशबलं ब्रह्म आ ईयुषा प्रलयेन प्राप्तवता ब्रह्मणा चतुर्भुखेन खाध्यारोपितकार्येण पटेन तन्तु-रिव यदासी परित्यक्तस्तदा खां प्रागुक्ताकाशमात्रपरिशेषरूपां वर्णितां मूर्तिमागतः। कारणरूपेण स्फुटीभूत इतियावत्॥२३॥ यद्यसावाकाशमात्रात्मा तर्शमूर्तस्य तस्य प्राम्बर्णिता देहाकृतिः कर्थ दृष्टा तत्राह-समेति । स च रुद्रः सर्वकार्यविशेषप्रवि-लयावशिष्टो यः कारणैकांशस्तदेकरूपारमा तस्य सा मया बर्णिता देहाकृतिनीस्ति । तथा उपासकैः खवासनया असौ इरयत इत्यर्थः ॥ २४ ॥ प्रश्नेषु स तिष्टतीत्वत्र केलम्याहत्य आधारप्रश्रो यो वार्णितस्तस्योत्तरमाह--विदाकाशगते इति ।

सर्वभूतपरित्यकस्तस्मिन्काले खमूर्तिमान्। क्षोभयन्स क्षणं क्षीणः परमां शान्तिमेण्यति ॥ २६ ये गुणाकृतयः कालाश्चित्ताहंकारबुद्धयः। प्रणवस्य च ये वर्णा ये च बेदास्तथा त्रयः॥ रुद्रस्य तस्य ते नेत्रसंनिवेशेन संस्थिताः। त्रिशूलं तेन त्रैलोक्यं गृहीतं करकोटरे॥ २८ यसात्तद्यतिरेकेण सर्वभूतगणेष्यपि। अन्यन्न विद्यते किंचिदेहात्मैव ततः स्थितः॥ २९ सर्वसत्वोपलम्भातमा स्वभावोऽस्य प्रयोजनम् । ईरितः शिवरूपेण चिन्मात्राकाशरूपिणा ॥ तेनैय च निगीर्णः सन्परमां शान्तिमेत्यसी। निर्मलाकाशरूपातमा कृष्ण इत्येष ईश्वरः॥ 38 कृत्वा करूपं जगत्सर्वे तत्पीत्वैकार्णवं तदा । स प्रयाति परां शान्तिमभूयःसंनिवृत्तये॥ 32

इदं नानस्थानं तत्तदन्तर्थामिभावेनेति सूचनाय वायुरिवेति ॥ २५ ॥ २६ ॥ कि त्रिनेत्र इति प्रश्नस्योत्तरमाह-ये इति ॥ २० ॥ ते गुणादिपश्चत्रिका रुद्रस्य पश्चमु वक्तेषु कमाश्चिने-त्रपद्मकसंनिवेशेन संस्थिता इत्यर्थः । किसुप्रात्मेत्यत्र किंशब्दस्य प्रत्येकमन्वयात् किसुप्रः किमात्मेति द्वी प्रश्नी वर्णितौ । तन्ना-यस केन त्रिश्रूलायुधेनोत्र इति गूढार्थस्य रामाभित्रेतस्य सर्व-इतां स्यापयन्मुनिरुत्तरमाह--त्रिशूलमिति । करकोटरे मुष्टि-च्छिदे ॥ २८ ॥ किमारमेति द्वितीयस्थोत्तरमाह—यस्मा-दिति । सर्वभूतगणदेहात्मेखर्थः । अतएव हि सर्वभूतानामहं-कारात्मकरदाभिध्यानादेव देहात्मलाभिमानः। तथाच भगवतो बादरायणस्य सूत्रम् 'पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्ध-विपर्ययौं' इति ॥ २९ ॥ किंत्रयोजन इत्यस्योत्तरमाह—सर्वेति । खरष्टानां सर्वेषां सलानां खखकर्मानुरूपविषयभोगात्मको य उपलम्भः क्रमाज्ज्ञानसाधनप्राप्तावन्ते यः खात्मतत्त्वोपलम्भक्ष तदातमा यः शास्त्रीयधिहितनिषिद्धकर्मज्ञानफलदानस्वभावः स एवास्य सर्गादा प्रयोजकलात्प्रयोजनम् । तथाचोक्तं गौड-पादैः 'देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा' इति । केनेरित इति प्रश्नं समाधत्ते-ईरित इति । चिन्मात्राकाशरूपिणा शिवं वाब्यनसागीचरनिरतिशयभूमानन्दात्मकं परमकल्याणं सक्षं यस्य तथाविधेन परमात्मनैव 'बहुस्यां प्रजायेये'ति संक-ल्पात्मकमायावृत्त्या ईरितः सर्गाद्युन्मुखतया प्रेरितः सजति ॥ ३०॥ प्रलयार्थमीरितश्च सर्गक्रमविपरीतक्रमेण जगिन-गीर्थाकाशभावेन स्थितः स्वयमपि तेनैव शिवरूपेण सा-त्मना निगीर्गः सन् आकाशभावमपि विद्वाय भूमानन्दस्वरूपप्रतिष्ठालक्षणां शान्तिमेतीत्वर्यः । किं कृष्ण इलादिप्रश्नानां सर्वेषां सोपपत्तिकं समाधानमुक्तं यष्प्रपंहरति—निर्मलेति सार्धेन 11 39

अनन्तरं मया दृष्टस्तत्रासौ याववुद्यमात्। प्रवृत्तः प्राणवेगेन तमाऋष्टुं महार्णवम् ॥ 33 अथ तस्य मुखं स्फारं ज्वालामालाकुलान्तरम्। प्राणाकृष्टो महाम्भोधिर्वाडवाग्निमियाविशत्॥ ३४ स एव धाडवो भृत्वा वहिराकल्पमर्णवे। अहंकारः पियत्यम्बु रुद्रः सर्वे तु तत्तदा ॥ ३५ पातालमिव पानीयं सर्पो विलमिव क्षणात्। पश्चवायरिचाकाशमविशत्तन्मुखं जवात्॥ 38 समुपेत्यापिबद्रुद्रः स मुद्रूर्तेन तत्पयः। कृष्णाङ्गोऽर्क इच ध्वान्तं सत्संपर्क इवागुणम् आख्रह्मलोकपातालं शान्तं शून्यमथाभवत् । रजोधूमानिलाम्भोधिभूतमुक्तं समं नभः॥ केवलं तत्र हदयन्ते चत्वारो व्योमनिर्मलाः। इमे पदार्था निस्पन्दाः शृणु तात्रधुनन्दन ॥ ३९ एकस्ताबदसी मध्ये ठद्रः कृष्णाम्बराकृतिः। निराधारः स्थितो ब्योम्नि निस्पन्दामोद्बिम्यवत्४० द्वितीयोऽवस्थितो दूरे पृथ्व्याकाशतलोपमः। भागो ब्रह्माण्डसदनस्याधः पातालसप्तकात् ॥ ४१ पातालभूतलदिवां सशैलेन्द्रदिवौकसाम् । व्याप्तः पार्थिवभागेन पङ्कमात्रात्मनात्मभाक् ॥ ४२ कृतीयोऽत्र पदार्थोऽभृदृश्वं ब्रह्माण्डभागभूः। ष्टिश्रयात्सुदूरत्वादुर्रक्ष्यगगनासितः ॥ કર

कथारोषशुश्रुषाविषयत्वमभिप्रेतं **किमकरोदि**त्युपान्सप्रश्नस्य **इालोत्तरमाह-अनन्तरमिखादिना ।** प्राणवेगेन निलवेगेन । आकष्टुम् । पातुभिति यावत् ॥ ३३ ॥ जलस्य **तेजस्यु**पसंहारद्योतनाय ज्वालामालासमाकुलमित्युक्तम् ॥३४॥ इतरकालेऽपि जलशोषे तेजस्येवोपसंहारः प्रसिद्ध इत्याशये-नाह-स एवेति ॥ ३५॥ पश्चवायुः पश्चयृत्तिः प्राणः प्राणिनां मुखाकाशमिव । अपानस्यापि प्राणात्मकलात्पश्च दृत्तिकलव्यपदे-शः ॥ ३६ ॥ अगुर्व दोषजातम् ॥ ३७ ॥ समं सर्ववैषम्यनि-र्भुक्तम् ॥ ३८ ॥ इमे वक्ष्यमाणाः पदार्थाः ॥ ३९ ॥ आमोदः सौरभं तद्विम्बं तत्खरूपं तद्वत् ॥४० ॥४९ ॥ त्रयाणां लोकानां तद्गतपदार्थानां च भस्मीभावात्पुनर्जलक्षेदनेन पह्नमा-त्रारमना पार्थिवभागेन व्याप्तः सम्नारमभाक् ऊर्ध्वभागापे-क्षया किंचिद्रपचितात्मा ॥४२॥ दृष्टिक्षयात्रयनरश्मीनां तत्रा-प्रसरात्। तत्र हेतुः---सुदूरलादिति ॥ ४३ ॥ चतुर्थः पदार्थस्तदुभयान्तरालाकाशमेवेत्याह्—दूरेति । ब्रह्मेव निर्मलम् ॥ ४४ ॥ असौ भन्तरालाकाशः । अत्र मत्पुरोगतपदार्थमध्ये एतसामतुष्टयादन्यरिकचन नैवासीदिखन्वयः ॥ ४५ ॥ साव-रणाभ्यां ब्रह्मसद्मकटाहै। ब्रह्माण्डखर्परे ताभ्यां बहिः कि विद्यते। तत्र तयोः का आवरणाः । ताथ कियत्यः । निराधाराध कथं संस्थिता इति चलारः प्रश्नाः ॥ ४६ ॥ तत्र मध्यमप्रश्नयोः प्रथममुत्तरमाह-व्याण्डसण्डयोरिति । तच जलमनन्तमति-

दूरविश्विष्टयोर्मध्यं यसद्भक्षाण्डखण्डयोः। तवाकारामनाचन्तं ब्रह्म निर्मलमाततम्॥ 88 चतुर्थोऽसौ पदार्थस्तु तदा संसक्कितो मया। **चतुष्टयादश्र नान्यदेतस्मादेव किंचन** ॥ ४५ श्रीराम उदाच। बहिः किं विद्यते ब्रह्मन्ब्रह्मसन्नकटाहतः। कास्तत्रावरणा बृहि कियत्यः संस्थिताः कथम् ४६ घसिष्ठ उवाच । ब्रह्माण्डखण्डयोः पारे ततो दशगुणं जलम्। संध्याकाशमनन्तं तद्वजीयेत्वा ततः स्थितम्॥४७ ततस्तर्थव उवालात्म तेजो दशगुणं स्थितम् । ततस्तथैव पवनः पवनो निर्मलः स्थितः॥ ततस्तथैव विमलं नभो दशगुणं स्मृतम्। ततः परममत्यच्छं ब्रह्माकाशमनन्तकम् ॥ अन्यत्रान्यत्र तस्याथ दृष्टयोऽन्यास्तथैय खे। कचन्त्यनन्ता दूरस्था मिथो दृशतमसृष्ट्यः॥ श्रीराम उघाच । अर्धे ब्रह्माण्डखण्डस्य तथाधस्तान्म्**नीश्वर** ! तज्जलादिमहाकारं क कथं केन धार्यते॥ ५१ वसिष्ठ उवाच । स पार्थिवपदार्थानां स्थितः पुष्करपत्रवत् । भागस्तमेवाधावन्ति ते सुता मातरं यथा॥ 42

विस्तृतं खण्डद्रयसंध्याकाशमन्तर्वर्जयिखा **वहिरेवाततं स्थितम्।** यद्यपि खण्डद्वयसंध्याकाशो **बृहदारण्यके 'तद्यावती क्षुरस्य** धारा यावद्वा मक्षिकायाः पत्रं तावानन्तरेणाकाशः' **इ**ति *क्षुरधा-*रामक्षिकापक्षपरिमितोऽत्यन्तसूक्ष्मः प्रतिपादितस्तथापि प्रागत्र चतुर्भुखो ब्रह्माण्डखण्डद्वयं विभेद तच भिन्नं द्रतरं गतमिति वर्णितलात्तदनुसारेण संध्याकाशस्यानन्तलो**क्तिरिति वोध्यम्** ॥४७॥ तथैव जलवदेव पवनस्तज्जलपवित्रीकरणः स्वयं च रजो-मालिन्यरहितः पवनो वायुः स्थितः ॥ ४८॥ नभ आ**काशम् ।** प्रथमप्रश्रस्योत्तरमाह—तत इति । अतिसूक्ष्मलादस्यच्छं मा-याशबलब्रह्माकाशं स्थितम् ॥ ४९ ॥ ननु पुराणादी आकाशा-त्परतो दशगुणमहंकारतत्त्वं ततः परं तद्दशगुणं महलस्वं तदमे अनन्ता प्रकृतिश्व वर्णिता तदत्र कथं परिखक्तं तत्राह-अन्य-त्रेति । तस्य मायाशयलब्रह्मणः खे आवृते खरूपाकाशे अन्य-त्रान्यत्र योगिमाहेश्वरपाञ्चरात्रकापिलादितन्त्रेषु अन्यान्या महद-हंकारादितत्त्वभेदावरणकल्पनादृष्टयः, अनन्ताः कचन्ति, ताब मिथः परस्परं संवादेन द्रष्टात्मकल्पनासृष्टयः पुराणेषु कीर्स्यन्ते न श्रुतिषु, ताः प्रक्रियाः सन्तीत्यस्माभिष्ठपेक्षिता इत्यर्थः । मह्मा-ण्डमेददृष्टिपरतया वा श्लोको व्याख्येयः ॥ ५० ॥ चतुर्थ प्रश्नं परिचिष्टं स्मारयन् रामः पृच्छति—ऊर्ध्वे इति । ब्रह्माण्डाद्-व्यक्तरोत्तरं दश्चदशगुणविस्तारात्महाकारम् ॥ ५१ ॥ तं पार्थिवं ब्रह्माण्डखर्परभागमेव आधावन्ति आधारादिभावेनाश्र-

अतो यदेव नेदीयो ब्रह्माण्डाख्यं महावपुः। तत्पदार्थाः प्रधावन्ति तृषिताः सलिलं यथा॥५३ अवलम्ब्य तदेवान्तः संस्थितास्तैजसादयः । न स्थिति प्रविमुञ्जन्ति स्वां यथावयवा इव ॥ ५४ श्रीराम उवाच। ब्रह्मन्ब्रह्माण्डखण्डे ते तिष्ठतः कथमुच्यताम्। किमाकृती धृते केन कथं वा परिनश्यतः॥ 44 वसिष्ठ उवाच। अधृतं धृतमेवोधैरपतधैव वा पतत्। अनाकृत्येव साकारं जगत्स्वप्नपुरं यथा ॥ ५६ किमस्य नाम पतित किंवा केनास्य धार्यते। यथा संवित्ति कचनं तथैतदवतिष्ठते ॥ 40 यथा केशोण्डकं व्योसि यथा च व्योसि शून्यता।

यथा वा पवने स्पन्दो जगिकद्भगने तथा ॥ ५८ चिता संकल्पनगरं ब्रह्मण्डाख्यं जगृहृह्म् । खे खमेवाप्यनाकारं प्रत्याकारमिव स्थितम् ॥ ५९ पातसंवित्समुद्धृतं पतदास्ते दिवानिशम् । गच्छन्त्या संविदोद्धृतं गच्छदास्ते दिवानिशम् । उत्पतन्त्या चितोद्धृतं तिष्ठदास्ते दिवानिशम् । उत्पतन्त्या चितोद्धृतमुत्पतश्चेच तिष्ठति ॥ ६१ पति नाशविदा नाशं महाकल्पादिवेदनैः ॥ ६२ आभाति मौक्तिकगणः शरदम्बरान्त-र्ष्टावसत्य उदितोऽप्यतिसत्यक्ष्यः । भ्रान्त्या यथा नभसि च स्फुरतां तथैणां संख्यां विधानुमिह् को जगतां समर्थः ६३

इस्रार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्माकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० श्रान्तिमात्रलप्रतिपादनं नामाशीतितमः सर्गः ॥८०॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१

२

રૂ

वसिष्ठ उवाच ।
अथ राग्नच रुद्रं तं तदा तिसन्महाम्बरे ।
प्रमृत्तं निर्तितुं मत्तमपश्यं वितताकृतिम् ॥
स्योमेवाकृतिमापन्नमजहद्यापितां निजाम् ।
महाकारं घनश्यामं दशाशापितपूरकम् ॥
अर्केन्द्रविहनयनं चलद्दशिद्यम्बरम् ।
घनदीर्घप्रभाजालमालानं श्यामलार्चिपाम् ॥
वडवाग्निरशं लोलभुजोर्मिभरभासुरम् ।

यन्ति । यथा सुता वानरीशिशवो मातरमुदरे दृढं गृहीला प्रवनेऽपि न पतन्ति तद्वदिखर्थः ॥ ५२ ॥ अर्ध्वसर्परोपरित-नजलस्याप्यपतने अयमेव न्यायः सामीप्यानुगृहीतो बोध्य इत्याशयेनाह—अत इति । नेदीयः संनिहिततरम् । 'अन्ति-कबाढयोर्नेदसाधा। इतीयसुनि नेदादेशः ॥ ५३ ॥ यथा शरीरसंयुक्ता हस्तपादाद्यवयवा दढतरसंयोगस्थिति न प्रतिमु-मन्ति तद्वत् ॥ ५४ ॥ इतरावरणाधारयोर्वद्याण्डसर्परयोरात-गुरुलादवश्यं पिपतिषतोः कस्तर्धाधार इति रामः प्रच्छति-ब्रह्मिति । क्यं केनाधारेण तिष्ठतः ॥ ५५ ॥ सत्यतादृष्टावि-यमाधारादिचिन्ता । मिथ्यादशै तु न गुरुतराणामप्याधारादि-नियमोऽसीति सप्तरप्टान्तेन वसिष्ट उत्तरमाह-अधृतमिति । अनाकृति अमूर्तम् ॥ ५६ ॥ ५० ॥ ५८ ॥ प्रत्याकारं प्रतिनि-यताकारमिव ॥ ५९ ॥ सर्वपदार्थानां यथा संवेदनमेव ख-भावो नियतोऽनियतो वा सिष्धतीत्याह-पातेति । गच्छन्त्या गमनाध्यासवत्या ॥६०॥ तथाच हिमाकृती धृते केनेति प्रश्ना-विष स्वसंवित्कल्पितनियतानियताकृती संविदेव धृते इलार्था-इत्तोत्तरी ॥ ६१ ॥ कथं वा परिनर्यत इत्यस्योत्तरमाद--ए- पकाणंवाणां द्राग्देह्यन्धेनेय समुत्थितम्॥ ४ पद्याम्यनन्तरमहं यावत्तस्य द्रारीरतः। छायेय परिनिर्याति नर्तनानुविधायिनी॥ ५ स्र्येप्वविद्यमानेषु महातमसि चाम्बरे। स्थिता कथमियं छाया भवेदिति मतिर्मम॥ ६ यावद्विचारयाम्यागु तावत्तस्य तदा पुरः। सा स्थिता परिनृत्यन्ती विस्तीणां श्रीविळोचना ७ कृष्णा कृदाा शिराळाङ्गी जर्जरा वितताकृतिः। ज्वाळाकुळानळाळोळवनसंभारदाखरा॥ ८ तीति॥ ६२॥ यथा शरदम्बरान्तविलोकयतो दृष्टी पतद्वदरकाकारो मीक्तिकगण आभाति, तथा चित्रभिष श्रान्त्या स्पुर्रतामेषां जगतां संद्यामाधारादितत्त्वपरिगणनं कर्तु कः समर्थः। न कश्चिद्यर्थः॥ ६३॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतान्तरान

रुद्रः स नृत्यन्त्रलये भैरवोऽत्रोपवर्ण्यते । तच्छायाकालरात्रिश्च नृत्यन्ती जगदङ्गिका ॥ १ ॥

त्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अशीतितमः सर्गः॥८०॥

किमकरोदिति प्रश्नोत्तरशेषं 'प्रलयाकाशे रहतृत्यं छायासीद्वद का मुने' इति प्रश्नोत्तरं नृत्यत्कालरात्रिखरूपं च वर्णयितुमुपकमते—अर्थति ॥ १ ॥ नृत्यं तावद्वर्णयति—व्योमेवेत्यादिना ॥ २ ॥ श्यामलार्थियां नीलप्रभाजवालानामालानं वन्धनत्तमभिव ॥ ३ ॥ वडवाप्तय इव दशो यस्य । देहवन्धेन
शरीरप्रहणेन समुत्यित्तमिवेत्युत्प्रेक्षा ॥ ४ ॥ नर्तनानुविधायिनी रहनर्तनमनुकुर्वाणा ॥ ५ ॥ इति मम मितराशहा आसीदिति शेषः ॥ ६ ॥ श्रीमन्ति त्रीणि लोचनानि यस्याः
॥ ४ ॥ तां वर्णयति—कृष्णेत्यादिना । जर्जरा शिषालाती ।

१ ज्वालाकुलानना इति पाठी युक्तः.

मिन्नाञ्जनतमः इयामा यामिनीवाकृति गता। तमःश्रीर्देहयुक्तेव साकारेवाम्बरद्यतिः॥ अतिदीर्घा करालास्या नभो मातृमिषोद्यता । दीर्घजानुभुजभ्रान्त्या मातुकामेव दिख्युखम् ॥ १० कृशा बहुपवासेव परिनिम्नमहातनुः। कज्जलस्यामला मेघमालेव पवनाकुला ॥ ११ कृशाशका यदा स्थातं सुदीर्घा विधिना तदा। ष्रिथितेव शिरारूपैर्दामभिदैं ध्यंशालिभिः॥ १२ तथा नाम सुदीर्घा सा यथा तस्याः शिरःखुरम्। मया दृष्टं प्रयत्नेन चिरोध्वीधोगमागमैः॥ अज्ञात्मतन्त्रीप्रधितद्दिरःकरखुरोत्करा । आमुळात्स्त्रविता कण्टकांनामिव स्थली॥ १४ विश्वरूपमयाकी दिशिरःकमलजालकैः। **फ्तमालामलालोकवातवह्रिमयाञ्चला** ॥ १५ प्रसम्बद्धां स्त्रसितनागा नृशवकुण्डसा । ध्रुष्कतुम्बीलताष्ट्रीला दीर्घा लोलासितस्तनी ॥ १६ कुमारवर्हिपिच्छोघेर्ब्राह्ममूर्घजमण्डलैः। लाञ्छितोचसुराधीशशिरःखट्वाङ्गमण्डला ॥ दन्तेन्द्रमालाविमला विमलोद्योतपाततः। तमोर्णवोर्द्वलेखेव वृत्तावर्तविवर्तिनी ॥ १८ शुष्कतुम्बीलतेवोश्चराकाशतरुसंस्थिता ।

लोलो वनसंभारो वनसमृद्धिरिव पुष्पपहृवादिभूपितः इयामलः शेखरो यस्याः ॥ ८ ॥ तिस्र उत्प्रेक्षाः ॥ ९ ॥ मातुं खदैर्घ्यः साम्येन परिमातुमुपमानुँ च ॥ १० ॥ परितो निम्ना सगर्ता महती तनुर्यस्याः ॥ ११ ॥ सुदीर्घा कृशा च सा यदा स्थातु-मशक्ता विधात्रा लक्षिता तदा शिरारूपैर्दामभिर्दार्ट्याय प्रथि-तेवेत्युत्प्रेक्षा॥ १२ ॥ सा तथा सुर्दार्घायथामया प्रयत्नेन योगबलान्मनोवेगेन चिरमनेकसहस्रवर्षकालमूर्ध्वमधश्च गमा-गमैधीवनैस्तस्याः शिरःखुराः पादनखाध तेषां समाहारः शिरः-खुरम् । 'द्रन्द्वश्च प्राणितुर्थ' इत्येकवद्भावः । दृष्टं नान्येन द्रष्टुं शक्यमिति भावः ॥ १३ ॥ अन्त्रैः शिराजालैरान्त्रतन्त्रीमिश्र प्रथिताः शिरःप्रभृतिकरपादनखान्ता अङ्गोत्करा यस्याः । आ-मुलान्मूलमारभ्य शाखाश्रपर्यन्तं सूत्रैवीलता कण्टकानां स्थली निवासभूमिः खदिरादिछतेव स्थिता ॥ १४ ॥ विश्वरूपमयैनी-नावर्णेरकीदिदेवदानविशरःकमलजालकैः कण्टे कृतमाला भू-षिता । अमल आलोको यस्य तथाविधो वातप्रदीहो यो वहिं-स्तन्मयान्यञ्चलानि पटचराणि यस्याः ॥ १५ ॥ प्रलम्बयोः कर्णयोराञ्जलिता नागा यस्याः । तथा नृशवे कुण्डले यस्याः । शुष्का सम्बफला तुम्बीलतेव आष्टीलं ऊरपर्वप्रन्थिपर्यन्तमा-दीघोवालोलावसितौ स्तर्ना यस्याः ॥ १६ ॥ कुमारवर्हिणां पिच्छोपैर्वाह्मेर्पूर्पजानां केशानां मण्डलैश्च लाञ्छितान्युचानि सुराधीशानामिन्द्रादीनां शिरांसि यस्मिस्तथाविधं खद्वाङ्गमण्डलं यस्याः ॥ १७ ॥ दन्तलक्षणया इन्द्रमाळया विमला। अतएव योग० १५७

विलोलावयवाष्टीला वातैः पटपटारवा ॥ १९ बृहत्तरङ्गोर्धभुजा इयामलोलासशालिनी। एकार्णवोर्मिमालेच जुनाबुन्तिविवर्तिनी ॥ २० क्षणमेकभुजाकारा क्षणे बहुभुजाकुला । अनन्तोष्रभुजाक्षिप्तजगन्नर्तनमण्डपा॥ २१ क्षिप्रमेकमुखाकारा क्षिप्रं वहुमुखाकृतिः। अनन्तोत्रमुखी क्षिप्रं निर्मुखी चापि च क्षणम् एकपादान्विता क्षित्रं क्षित्रं पादशतान्विता। क्षणं चानन्तपादाढ्या निष्पादाकारिणी क्षणम् २३ क्रालरात्रिरियं सेति मयानुमितदेहिका । काली भगवती सेयमिति निर्णीतसज्जना ॥ રપ્ उवाळापूर्णारघट्टोग्रखाताभनयनत्रया । ज्वलद्धरेन्द्रनीलाद्विसानुपमललाटभूः॥ ٦'٩ लोकालोकेन्द्रनीलोग्रश्वभ्रभीमहत्रुद्धया । वातस्कन्धगुणप्रोतनारामुक्ताकलापिनी ॥ २६ इन्द्रनीलाद्रितुल्योचतोरणोचैःप्रभाम्यरे । विश्रान्तकाचरोळाभभगभीषणवायसी ॥ २७ नृत्यद्भजलतापुष्पैर्नखशुस्राभ्रमण्डलैः। पूर्णचन्द्रशतानीच भ्रामयन्ती नभस्तले ॥ २८ भ्रमद्भिर्याप्तदिक्चका भुजैः कल्पाम्बुदैरिय। वर्षद्भिः प्राणिजप्रान्ततारालेखावृहत्प्रभाः ॥ २९ नखपुष्पाङ्गरीचर्लाजारुभ्रान्तशुजदुमैः ।

तदीयविमलोद्योतपातवशादभिष्टद्वा । वृत्तरावर्तीर्ववर्तिनी व्या-लोला तमोलक्षणस्याणंत्रस्य कर्ध्वलेखाः उपरिभाग **इव स्थिता** ॥ १८ ॥ आकाशलक्षणमाकाशप्रसूतं च तर्र संस्थिता । एव-मग्रेऽपि विशेषणे उनयत्र योज्य ॥ १९ ॥ २० ॥ अनन्ति ह-प्रभुक्तराक्षिमी व्याकुलिनो जगन्नुत्वमण्डपो यथा ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ इति निर्णाताः सज्जनाः याम् । निपृर्वस्य नयतेरवग-त्यर्थलात् 'गलर्थाकर्मक-' इति कर्तरि क्तः ॥ २४ ॥ पुनस्तां मुखादिपादान्तं वर्णियतुनारभने--ज्यालेखादिना । आरपदः यन्त्रस्य शिरःकाष्ठे प्रसिद्धं खानत्रयं ज्वालाभिः पूर्णं स्थातदा नेत्रत्रयोपमा बोध्या । ज्वलन्ती घरा यस्मिस्तथ।विधो य इन्द्र-र्नालादित्रस्यस्तदुपमा उलाटभूर्यस्याः ॥ २५ ॥ ठोकालोका-चलस्य प्रसिद्धमिन्द्रमीलथञ्जमिवाधोनिम्रलात्कुण्डलकान्तिप्रका-शाप्रकाशमतएव भीमं हतुद्वयं यस्याः ॥ २६ ॥ इन्द्र-नीलादी तुल्ये तुलनाई उपमायोग्ये उस तोरणे नगरबहिर्दारे पद्मरागादिप्रभारत्रिते अम्बरे द्वारान्तिश्छेदे विश्रान्तः प्रति-ष्टितः अधोसुखः कृत्रिमः काचशैल इव भगवायसो भगनामा काको यस्याः॥ २७॥ २८॥ कल्पाम्बुदपक्षे स्फुरत्प्रभाः प्राणिजा गजप्रभवा दन्ता इव प्रान्तेषु ताराः बृह्त्प्रभालेखा-धाराश्रेणीर्वेपीद्भः । भुजपक्षे प्राणिजा गजादिप्रभवा मुक्ता इव प्रान्ते प्रखये निपतन्त्यसाराश्रेणीय च भाग्यमाना नखपद्भि-बृहत्प्रभाः वर्षेद्धिः ॥ २५ ॥ कृष्णैरतएवोयमूर्तिभिः । नसा

क्रुच्याः काननिताशेषगगनाग्रोग्रम्।तिभिः॥ ३० तमालतालतः स्थलां भूवं दग्धमहाबनैः। विडम्बयन्ती विकतां जङ्घासङ्घन लोलता ॥ 38 अप्यनन्ते महाद्योस्नि पारं प्राप्तः शिरोरुहैः। कुर्याणेवाततं वासं चरत्तिमिरदन्तिनः॥ 32 उहान्ते मेरवो येन तेन निश्वासवायुना। घनघुंघमदिक्चऋगगनग्रामघोषिणा ॥ 33 घनमारुतफुत्कारक्ष्वेडगेयं प्रगायता **।** 38 नियतानुनयेनेय चलिता सानुवृत्तिना ॥ ततो नृत्तवशावेशाद्वधैमानशरीरिणी । मया रुप्रावधानेन गगनाभोगभूरिणा॥ 34 यावस्यावृता देहे हेळावलनसारया। माला मलयकेलाससद्यमन्दरमेरुभिः॥ 36 आसीत्तस्या युगान्ताभ्रमालिकापद्वपद्दिका । आदर्शमण्डलान्यङ्गे श्रीणि लोकान्तराणि च ॥ ३७ कर्णयोर्हिमचन्झेरू रूप्यकाञ्चनमृद्रिके। ब्रह्माण्डघुंघुमर्माला महती कटिमेखला॥ 36 स्रजः कुलाचलाः गृङ्गचनपत्तनगुच्छकाः । जरत्पुरचनद्वीपश्रामपेलवपल्लवाः॥ 36 तस्या अङ्गेषु दशनि पुराणि नगराणि च । ऋतयश्च त्रयो लोका मासाहोरात्रमालिकाः॥ ४० मुक्तालतादिकं नद्यः कालिन्दीत्रिपथादिकाः। धर्माधर्माधुर्मी कर्णभूषणे चान्यकर्णयोः॥ કર

एव पुष्पाणि येषु तथाविधान्यङ्ग्रहीत्रहीजालानि येषां तथावि-धैर्भ्रान्त्रभुजदुर्मः कार्नानतं वनमिव कृतमशेषं गगनाप्रमाकाश-श्रान्तो यया ॥ ३० ॥ लोलता सर्वतथलितेन जङ्घासङ्कन दुग्धेः खर्जुरादिमहावनैयेलितां दग्धशिष्टतमालतालयुक्षमात्रतः स्थूलां प्रोन्नतां भुनं विडम्बयन्ती अनुकुर्वाणा ॥ ३१ ॥ शिरो-रुहै: चरत्तिमिरलक्षणस्य दन्तिनो व्योम्नि वार्ष कुर्वाणा संपाद-यन्तीय ॥ ३२ ॥ प्रतिध्वनिभिर्घनष्टुंषुमं दिककं यस्य तथा-विधे गगनमामे उद्घोषणशीलेन निःश्वासवायुना नियतानुनयेन अतएव सानुवृत्तिना नटेन सह चिलतेवासीदित्युत्तरेणान्वयः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कथं दश तदाइ-यावदिति । हे-लया विलासेन वलनं नृह्यमेव सारोऽभिष्रेतार्थी यस्यास्तयावि-धया तया मलयकैलाससह्यादिगिरिभियीवत्साकल्येन रचिता माला देहे आयृता भूषणत्वेन संनिविशिता । धृतेति वा पाठः ॥ ३६ ॥ किंच जगत्सर्वे तस्या भूषणादिनित्यसामग्री बभवे-त्याशयेनाह्-आसीदित्यादिना । युगान्ते प्रसिद्धा पुष्करावती-द्यभ्रमालिका वक्षति इन्द्रनीलपृष्टपृष्टिका आसीत् । त्रीणि लो-कान्तराणि अङ्गे जघनोदरादी मणिमयादर्शमण्डलान्यास-श्रित्यादिः सर्वत्र यथायोगं विपरिणामेनानुषश्रः कार्यः ॥ ३०॥ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ दष्टानीति 'नपुंसकमनपुंसकेन–' इति नपुं-

स्तनास्तस्यास्तु चत्वारः स्रवद्धर्मपयोलवाः । वेदाः सकलशास्त्रार्थचतुःसंस्थानचूचुकाः ॥ ४२ त्रिशुर्लेः पहिशेः प्रासैः शरशतयृष्टिमुद्गरैः । नियंदायुधजालानि स्रग्दामानि विभर्ति सा ॥ ४३ चतुर्दशविधा भूतजातयो याः सुरादिकाः । तस्याः शरीरशालिन्यास्ता लोमाचलयः स्थिताः ४५ तस्याश्च नगरप्रामगिरयो देहशायिनः। नृत्यन्त्या सह नृत्यन्ति पुनर्जन्म मुद्देव ते ॥ ४५ जंगमात्मैकमेवैतज्जगदस्थावरं तदा। नृत्यतीति मया शातं परलोके सुखं स्थितम् ॥ ४६ निगीणे जगदङ्गस्थं कृत्वा तृप्तिमुपागता। परिजृत्यति सा मत्ता जगज्जीर्णा हि चातकी ॥ ४७ आदर्राप्रतिबिम्बस्थमिवाभात्यखिलं जगत्। तस्या बपुषि विस्तीर्णे स्वरूपिणि सरूपघृत् ॥ 84 सा न नृत्यति तत्सर्वं सर्रालघनकाननम्। ४९ जगन्नुत्यति नानात्म मृत्वा पुनरुपागतम् ॥ तज्जगन्नतेनं चाह तहेहादशसंस्थितम्। चिरं मया तदा दृष्टमविनष्टं पुनः स्थितम्॥ 40 विचलत्तारकाजालं भ्रमत्पर्वतमण्डलम् । ५१ मशकव्युहवद्यातव्याधृतामरदानवम् ॥ संत्रामोन्मुक्तचकाभद्वीपार्णववृताम्बरम् । हेळाबिवलनावर्तप्रौढशैलधरातृणम् ॥ 43 नीलमेघांशुकावृत्तिवातधेधुमिताम्बरम् । काष्ठास्थ्यादिस्फटास्फोटपठत्पटपटारचम् ॥

सक्रोषः ॥ ४० ॥ अन्यकर्णयोः हिमवन्मेरुकुण्डलप्रागुक्तक-र्णातिरिक्तकर्णयोः ॥ ४१ ॥ सक्छशास्त्रार्थक्षीराणि ऋग्यजुःसा-माथर्वाख्यचतुःसंस्थानानि चुचुकानि कुचाप्राणि येषाम् ॥४२॥ ॥ ४३ ॥ ताः प्रसिद्धा लोमावलयो रोमावलयः ॥ ४४ ॥४५॥ सर्वस्यापि नृत्ये चलनादस्थावरात्मकम् । पूर्वं मृतलात्तहेहलक्षणे परलोके मुखं स्थितम् ॥ ४६ ॥ जगह्नक्षणो जीर्णः अहिः सर्पा यथा तथाविधा चातकी पक्षिणी । अत्र चातकीशब्देन मयूरी लक्ष्यते मेघप्रियलसाम्यात् । अहिजरणनृत्ययोस्तस्यां प्रसिद्धेश्व ॥४७॥ स रूपपृक् प्राक्तनजगत्सदशरूपपृक् ॥४८॥ कदाचि-दृतृत्यन्त्यामपि तस्यां तदन्तर्गतं जगन्नृत्यतीति मया दष्टमि-त्याह—सेति ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदेव जगन्नर्तनं वर्णयति— विचलदिखादिना ॥ ५२ ॥ संप्रामे उन्मुक्तचकाणासिव आभा भ्रमणसाददयश्रीर्येषां द्वीपादीनां तथाविधेस्तैर्वृताम्बरम् । हेलया विवलनेश्रमणिरावर्तवार्तरिय प्रकर्षेणोढानि शैलधरात्णानि यस्मिन् । 'प्राद्होढो-' इति वृद्धिः ॥ ५२ ॥ नीलमेघलक्षणा-नामंशुकानां वस्राणामावृत्तिषु परिवर्तनेषु वातेषुंषुमितमम्बर-माकाशं यस्मिन् । अधस्तु परस्परसंघष्टितानां काष्ठा**रध्यादीनां** स्फुटास्फोर्टैः संभिविषद्दनैः। पटरंपटेलायनुकरणाहीरवविश्विष्टम्

जगत्पदार्थेव्यामिश्रेरमिश्रेमुंकुरैर्यथा। व्याप्तमाभोगिभांकारैरङ्गेरङ्गभ्रमस्तथा ॥ 48 मेर्कृत्यति लोलोशकुलाचलवृहद्भजः। भ्रमदभ्रपटोपेतनमस्तुतन्रुहहः॥ 414 अत्यजन्तः समुद्राश्च मर्यादामुद्रणं द्रुमाः। भूमेर्नभस्तलं यान्ति नभसो यान्ति भूतलम् ॥ ५६ पुराणि घर्घरारावैर्ददयन्ते लुठितान्यधः । संगृहाहालघास्तव्यं नच किंचिलठत्यधः॥ 40 तस्यां भ्रमन्त्यां चतुरं चन्द्रार्कदिनरात्रयः । नखाप्रहेखा होकान्तर्ज्ञान्ति काञ्चनसूत्रयत्॥ ५८ विभान्ति सृष्टयस्तस्या घर्माणि जलजालिकाः । इव नीहारहारिण्या नीळवारिदवाससः॥ ५९ खमेव तस्याः संपन्नं कवरीमण्डलं वृहत्। पातालं चरणो भूमिरुदरं याहवो दिशः॥ 03 द्वीपाब्धयोऽस्त्रवलयः पार्श्वकाः सर्वपर्वताः । प्राणापानावलीदोलाः पवनस्कन्धशालिकाः ॥ ६**१** तदानुभूतं नृत्यन्त्यास्तस्या वपुषि विस्तृते । हिमवन्मेरसद्याचैदीलनभ्रममद्रिभिः॥ ६२ तरदद्विगुलुच्छास्ता वलयन्त्या तया स्रजः। पुनः कल्पान्त आरब्ध इव ताण्डवहेलया ॥ ६३ सुरासुरोरगानीकरोमशाङ्गः शरीरकः।

॥५३॥ अन्योन्यसंघद्दनाद्विश्वेषाश्च प्रतिक्षणं व्यागिर्श्वरमिश्रेष्ट ज-गरपदार्थैसाद्वद्भिरङ्गेसाञ्चमणश्च आभोगिभांकारेर्मृर्तिमद्भिभयौरिव व्याप्तम्॥५४॥तदेव जगन्नृत्यं प्रत्येकं वर्णयति—मेहरिखादिना । भमद्भिरभपटैरपेतार्छन्ना नमन्यस्तनवस्तनूरहाः कल्पवृक्षाध यस्य ॥५५॥ मर्यादामुद्रणं वेलामर्यादानियमम् ॥५६॥ वस्तुषु **वेश्मभूमिषु भवा वास्तव्यासादन्तैः स**हितं यथा स्यात्तथा छठि-तानि ॥ ५७ ॥ तस्यां कालराज्यां भ्रमन्त्यां सत्यां चन्द्राकी-दयस्तन्नखाप्ररेखासु ये आलोकाः प्रभाविद्येपास्तदन्तर्भावेण भमन्तः काश्वनसूत्रवदीर्घाकारा भान्ति । अमदलातवहिप्राया इस्रथेः ॥ ५८ ॥ नीहरिर्हारिण्या हारवत्या नीलवारिदवस्राया-स्तर्याः सप्टयो मेपैर्विसप्टा जलजालिका धर्माणि खेदबिन्दव इव विभान्तीत्यर्थः ॥ ५९ ॥ इदानीं जगत्सर्वे तस्या अङ्गत्वेन संपन्नमिति वर्णयति—समेवेत्यादिना ॥ ६० ॥ द्वीपा अञ्घ-यथ अन्त्रसंहिता वलयः संपन्नाः । आवहोद्वहप्रवहादयः पवन-**स्कन्धलक्षणा नभःसौधशालिकास्तस्याः प्राणापानाव**र्लादोलाः संपन्नाः ॥ ६१ ॥ अतएव तदक्षत्वेन संपन्नेहिंमवदायद्रिभिस्त-इपुषि दोलनप्रयुक्ता अमा यस्मिस्तथाविधं प्रेङ्कोलिकाक्रीडन-**द्धसम्बन्ध**तमित्युत्त्रेक्षा ॥ ६२ ॥ तरन्तः ध्रवमाना अत्रि-रुक्षणा गुळुच्छा मजयी यासु तथाविधाः प्राग्वर्णितस्रजो वन **छयन्या परिवर्तय**न्या तया ताण्डवकीलया पुनः प्रलय आ-रब्भ इवेत्युरप्रेक्षा ॥ ६३ ॥ असौ तस्याः शरीरमेव शरीरको

निस्पन्दं स्थातुमशकन्नसौ भ्रमति चक्रवत्॥ દ્દય नानाविभवविद्यानयश्चयश्चोपवीतिनी। सा सरन्ती नभस्यासीद्धनघुत्कारघोषिणी ॥ ह्प तत्र भूतलमाकाशमाकाशमपि भृतलम्। प्रतिकृति भवत्यन्तर्न च किचिहिवर्तते॥ ६६ बृहन्नासागुहागेहनिर्गता घनघुंघुमाः। तत्रोग्रा वायवो वान्ति घोरघूत्कारकारिणः ॥ ६७ नभःकरशतैस्तस्याश्चतुरावृत्तिवर्तिभिः। भाति चण्डानिलोङ्तैराकीर्णमिय पहाँचैः॥ દ્રટ तदङ्गजजगद्धस्तुजातम्रमणसंभवात्। दृष्टिद्वीरापि में मोहे सन्ना सेनेव संगरे॥ દ્ર ୧ प्रोह्यन्ते यश्रवच्छेला निपतन्ति नभश्रराः। लुडन्त्यमरगेहानि वितिते देहदर्पणे ॥ 50 मेरवः पर्णवद्यदा मलयाः पहवा ६व । हिमाद्रयो हिमकणा इवौद्यीऽक्सलता इव ॥ ५ र सह्या मह्यामिय खगा विन्ध्या विद्याधरा इव। बुक्षावर्ते भ्रमन्तोऽन्ता राजहंसा इवाम्यरे॥ ७२ हीपान्यपि तृणानीव समुद्रा वलया इव। सुरलोकालयः पद्मा आसंस्तद्देह्यारिणि॥ ७३ विदादाकाशसंकाशे स्वप्नाक्षनपुरोपमे। अक्ने तस्य बृहज्जं पिण्डादित्यसमित्विषि ॥ ८४

निसान्दं स्थानुमशकन् अशक्तवन्सन् अमनीत्युत्पेक्षा । शकेत्। छ।न्द्रसो विकरणव्यत्ययः ॥ ६४ ॥ कर्मफलभूता विभवासाद-नुष्ठानहेतुविकानानि सदनुष्ठानरूपा यज्ञाञ्चिति त्रिसूत्रयज्ञोपवी-तिनी नभित सरन्ती बृलन्ती सा देवी धनधुरकारा मेधध्व-नयसैद्यीषिणी वंदधीपणवती ब्रह्मचारिणीवासीत् ॥ ६५ ॥ अथवा तत्र तत्रत्येन च किंचियपि जित्रतेते चलति किंतु चक्रसिषेण परस्परस्मिन् भूतखमाकाशं प्रतिकृति परस्परसद्दर्भ सन् पर्यायेण भूतलमाकारां भवति आकारों च भूतलं भवति । तम पर्यता है सह खखगतैः पदार्थेहर्ष्यायां विपर्नते इति आन्तिमात्रमिखर्थः ॥ ६६ ॥ तच्छामयायुग्यणंयति—बृहदिति ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ धीरा धेर्यवर्ता स्थेयवर्ती च में दृष्टिः संगरे सेनेव तदक्षजजग-द्वसुभिः सह जातानि यानि श्रमणानि तन्संभवाच्छमारसन्ना क्रिक्टतशक्तिरासीदिलर्थः ॥ ६९ ॥ तस्या देहद्पंणे वितेते परि-वर्तिते सति॥ ७०॥ उर्व्याभवा और्व्यः अब्जलता इव ब्युढा विशक्तिताः॥ ७९ ॥ अम्बरे राजहंगा इव दृक्षा-वर्ते अन्तर्भ्रमन्तः । अन्ता इति दलोपेऽणा द्विः ॥ ५२ ॥ तद्देहरूक्षणे वारिणि सरसि सुरहोक्षानामालयः पङ्कयः पद्मा इवेत्यनुषज्यते । उत्प्रेक्षापिक्षनिवेशाताभिसादेहे सरोरूपकस-पिण्डीभूतरादिखेः समलिपि मर्थनातः ॥ ५३ ॥ अके विन्ध्यादयः सर्वे जंगमतांगता इति परेणान्ययः ॥७४॥ ७९

विन्ध्यो नृत्यति काञ्चनाचलवने सहाश्च सह्यो गिरिः कैलासो मलयो महेन्द्रशिखरीकौञ्चाचलो मन्दरः । गोकर्णो गगनाङ्गणे वसुमती विद्याधराणां पूरं सर्वे जंगमतां गता वनभुवस्तस्याः शरीरे सदा ७५ अन्धिर्नृत्यति पर्वते गिरिरपि प्रोचैर्नभःकोटरे व्योमापीन्दुदिवाकरेः क चित्रतं भूमेरधस्तद्गतम्। सद्वीपाचलपत्तनो वनगणः प्रोत्कीर्णपुष्पो दिवि व्यालोलं जगदम्बुधाविव तृणं दिकक्षे भ्राम्यति॥ व्योम्नि भ्रमन्ति गिरयोऽम्ब्रधयो दिगन्ते लोकान्तराणि पुरपत्तनमण्डलानि । नद्यः सरांसि मुकुरान्तरिय प्रवृद्ध-वातावकीर्णतृणविक्रमणक्रमेण॥ 20 मत्स्याश्चरन्ति च मरौ वरवारिणीव ब्योम्नि स्थिराणि नगराणि भूवीव भान्ति। खे भूधरा गगनसंक्षयवारिवाह-मुत्पातवातपरिवृत्तंगिरिस्थितं तत्॥ ७८ ऋक्षोत्करो भ्रमति दीपसहस्रयन्त्र-चक्रक्रमेण मणिवर्षणवेगचारः। अन्तर्वहिश्च परितः प्रणयेन मुकं

विद्याधरामरगणेरिव पूष्पवर्षम् ॥

कामनाचलस्य शिरोरहे वने विन्ध्यविरन्तनं वैरं निर्यातयन्निव नृत्यति तदसद्यः सत्यो निरिः कैठासादयश्च गगनान्नणे को-पादिव नृत्यन्ति । तत्पक्षपाताद्वसुमती विद्याधराणां पुरं च नृत्यतः । इतथं सर्वे स्थावरा जंगमतां गता इत्यर्थः ॥ ७५ ॥ किचेदमपरमाश्चर्यम् । अन्धिः पर्वते तृत्यति । सच गिरिः प्रो-बैर्नभःकोटरे नृत्यति । तद्योगापि इन्दुद्वाकरैः सह भूमेर-थस्ताचिति सत्क गतं न ज्ञायते । प्रोत्कीर्णानि पुष्पाणि यस्मिस्तथाविधः सद्वीपाचलपर्वतो वनगणो दिवि द्युलोकं सूर्यादिस्थाने नृत्यति । इत्यं व्यालोलं जगदम्ब्रधी तणमिव दि-कक्षके श्राम्यतीत्वर्थः ॥ ७६ ॥ तथा गिरयो व्योन्नि श्रमन्ति । अम्बुधयश्च दिगनते भ्रमन्ति । पुरपत्तनमण्डलानि नद्यः सरांसि च खाश्रयलोकाल्लोकान्तराणि मुकुरान्तरिव प्रविद्य प्रवृद्धेन तृणानां यानि विक्रमणानि उड्डयनानि बातेनावकीर्णानां लोके प्रसिद्धानि तत्कमेण भ्रमन्तीत्यर्थः ॥७७॥ किंच मत्स्या वरवारिण समुद्र इव मरी चरन्ति । नगराणि च भुवीव व्योन्नि स्थिराणि भान्ति । भूधराः खे भान्ति । गगर्न च संक्षयवारि-बाहाः प्रख्यमेषाश्च तेषां समाहारी गगनसंक्ष्यपारिवाहमुत्पा-तवातपरिवृत्तगिरिषु स्थितं ततारमाधर्यमिलार्थः ॥ ७८ ॥ किंच ऋक्षोत्करो नक्षत्रसमूहो मणीनां वर्षणवेग इव चाहर्मनो-हरः सन् दीपसहस्राणां अमन्ति यानि यन्त्रचकाणि सत्क्रमेण भूमेरन्तर्वहिश्व अमति । यथा विद्याधरामरगणैः प्रणयेन खत्स-भागां मुक्तं पुष्पवर्षमन्तर्वहिध श्रमति तद्भत्॥ ७९ ॥ किंच संहारसर्गनिचया दिनरात्रिभागे बिन्द्रपमा रजतयोर्दिवसोत्कराश्च। कृष्णाः सिताश्च परितोऽमलशुक्कुकृष्ण-स्वादरीमण्डलवदाकुलमुह्नसन्ति॥ रक्षानि भास्करनिशाकरमण्डलानि तारोत्करास्तरलमण्डलकान्तिहाराः । स्वच्छाम्बराणि वलितानि महाम्बराणि कुर्वेन्त्यनारतमनल्पमलातलेखाः॥ कल्पान्तकाल**बिलुठन्निजगन्मणीनि** व्यावर्तनैर्द्धगिति जातझणज्झणानि। तेजांसि झंकृततयोध्वेमध्य यान्ति नानाविधानि गुणवन्ति विभूषणानि संप्राममत्तभटखद्भमरीचिवीचि-इयामायमानसकलातपवासराणाम् । व्यावृत्तिभिविं लुठतामपि सुस्थिराणा-माकर्ण्यते कलकलो जनमण्डलानाम् ८३ ब्रह्मेन्द्रविष्णुहरबह्रिरवीन्दुपूर्वा देवासुराः परिविवृत्तिभिरातपन्तः। अन्येन्य एव बिविधा उपयानित यानित वातावधूतमशकाशनिविभ्रमेण॥ 68

तदेहे संहाराः प्रलयाः सर्गनिचयाध दिनरात्र्योर्भागे पक्षे उल्ल-सन्ति । दिनरात्रिप्राया अल्पा इतियावत् । तथा दिवसोत्करा दिनरात्रिसमूहाश्व मिलनामिलनयो रजतयोर्बिन्दूपमा अखल्पा उन्नसन्ति । कृष्णाः सिताश्व पक्षाः परितः अमला ये ग्रुकाः कृष्णाश्च व त्रेन्द्रनीलादिनिर्मिताः शोभना आदर्शास्तन्मण्डल-वदुष्ठसन्तीत्वर्थः ॥८०॥ तथा तद्देहे भास्करनिशाकरमण्डलानि रक्रानि संपन्नानि । तारोरकरा नक्षत्रसमूहास्तु तरला मण्ड-ठाकारा कान्तिर्येषां तथाविधा हाराः संपन्नाः । खच्छान्य-म्बराण्याकाशास्तु विजितानि विष्ठितानि महान्त्यम्बराणि वस्नाणि संपन्नानि । तेषु अमद्वेद्युताम्यादयः अलातलेखा अनारतमनल्पं प्रकाशं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ८१ ॥ तन्नृत्ये कल्पान्तकाले विद्युटत् त्रिजगबावर्तनैर्झगिति झटिति जातझणज्झणानि संपन्नानि । तथा संकृततया झंकारेण ऊर्ध्वमधश्च यान्ति सूर्या-दितेजांसि नानाविधानि गुणवन्ति नूपुरवलयादिविभूषणानि संपन्नानीत्यर्थः ॥ ५२ ॥ किंचापरमत्यार्थ्यम् । संप्रामेषु म-त्तानां भटानां खङ्गप्रभावीचिभिः इयामायमान्सकलातुपा वास-रा येषाम् । तथा देवीताण्डवं व्यावृत्तिमिश्रमणैर्विञ्जठतामप्यधि-ष्टानमद्मस्थैर्यारमुस्थिराणां वीरजनमण्डलानां कलकलो महा-युद्धकोलाहल आकर्ण्यते ॥ ८३ ॥ किचेदमपरमाश्चर्यम् । अनन्तकोव्यतीतानागतसर्गप्रलयघटितशरीराया अस्यास्ताण्डवे नक्षेन्द्रादयो देवासुरा अधिकारप्रवृत्तिभिरन्येऽन्य एव आपतन्त आपद्यमानाः सन्तो वातावधूतमशकानामशनीनां विद्यतामिव

संदारसर्गसुखदुः खभवाभवेहा-नीहानिषेधविधिजन्ममृतिभ्रमाद्याः। सार्धे पृथक्त विलसन्ति सदैव सर्गे व्यामिश्रतामुपगता अपि तत्र भावाः ८५ भाषोद्भवस्थितिविपत्करणभ्रमाणां संद्वारसर्गभुवनावनिविभ्रमाणाम् । मिध्यैव खे प्रकचतां खरारीरकाणां संलक्ष्यतेऽत्र न मनागपि नामसंख्या ८६ उत्पातशान्तिमरणोत्सवयुद्धसाम्य-विद्वेषरागभयविश्वसनादि तत्र। एकत्र कोश इय रहाचयो विभाति नानारसाप्रतिघसर्गपरंपरं तत्॥ ८७ तस्याश्चिद्मबरमये वपुषि स्वभाव-भूता स्फ्रटानुभवभावजगद्यवस्थाः। सर्वेक्षया मलिनरक्रिताम्बरस्थ-केशोण्ड्रकस्फुरणवत्परितः स्फुरन्ति जगत्संभ्रुच्धमश्रुच्धं दृदयते स्थितिसंस्थिति । संचाल्यमानमुकुरप्रतिविम्य इवास्थितम् ॥ ८९ नृत्यस्फ्ररत्प्रतापान्तर्जगदर्थाः प्रतिक्षणम्। स्थिति त्यजन्ति गृह्वन्ति वालसंकरपसर्गवत् ९०

च प्रसिद्धेन विश्रमेण अस्थिरताविलासेन आयान्ति यान्ति च८४ किंचापरमाश्चर्यम् । तत्र तस्याः शरीरे प्रतीयमाने सर्गे संहार-सर्गादयः परस्परविरुद्धा अपि सर्वभावाः परस्परासंसर्शन सदा सार्धे पृथक् विलसन्ति । व्यामिश्रतासुपगता अपि विलसन्ती-लार्थः ॥ ८५ ॥ किंचात्र तच्छरीरे खे चिदाकाशे मिध्येव प्रक-चतामतएव खशरीरकाणां शून्यानां संहारसर्गभुवनावनिधिश्र-माणां भावादधिष्टानादुद्भयः स्थितिर्विपदपक्षयः करणमर्थिकिया-भ्रमाः परिवर्ताश्चेत्येतेषां संख्या इयत्ता मनागपि न संलक्ष्यते ॥ ८६ ॥ किंच तत्र तद्वपुषि उत्पाततच्छान्त्यादिविरुद्धद्वन्द्व-जातमेकत्र कोशे रक्षचय इव विभाति । यतस्तद्वपुर्नानारसा अपि परस्परमञ्जीघाः सर्गपरंपरा यस्मिस्तथाविधमित्यर्थः ॥ ८७ ॥ किंच तस्याः परमार्थतिश्वदम्बरमये वपुषि खभाव-भतः अशास्त्रीयप्रतीतिसिद्धो यो मायावरणलक्षणोऽस्फटानुभ-वभावस्ताप्रयुक्ता जगव्यवस्थाः सर्वक्षयाश्च परितस्तिमिररोगम-लिनदशा कलितानि अम्बरस्थकेशोण्ड्कस्फुरणानीव स्फुरन्ति ॥ ८८ ॥ अचलायामधिष्ठानसन्मात्रस्थितौ संस्थितिर्यस्य तथा-विधं जगदशुरधमेव मायाक्षोभदछ्या संशुर्धं दरयते, यतस्तद्वि-म्बारयना अचल एव गिरिः संचाल्यमानमुक्ररप्रतिविम्बः सं-थल इव भवति तद्वदास्थितमित्यर्थः ॥ ८९ ॥ नृत्येन स्फुरत्प्र-तापाया मायाया अन्तर्निविद्याः सर्वे जगदर्शः प्रतिक्षणं परि-णामेन पूर्वस्थिति व्यजन्ति अन्यां च स्थिति गृह्वन्ति । तत्र बाछसंकल्पसर्ग एव प्रसिद्धो दष्टान्त इत्यर्थः । तथाचाहुः सांस्याः 'प्रतिक्षणपरिणामिनो हि सर्वे भावाः' इति ॥ ९० ॥

क्रियाशक्तिः शरीरेऽन्तः पूर्यमाणा अनारतम्। राशिभूय विशीर्यन्ते जगन्मद्रकणोत्कराः॥ ९१ क्षणमालक्ष्यते किंचित्र किंचिदपि सा क्षणम्। क्षणमङ्गरप्रमात्रेव क्षणमाकाशपूरिणी॥ ९२ यसात्सा सकला देवी संविच्छकिर्जगन्मयी। अनन्ता परमाकाशकोशशुद्धशरीरिणी ॥ ९३ कालत्रयस्थितजगत्रितयान्तरी हि चित्सा तथा कचित तेन यथास्थितेन। रूपेण चित्रकृदुदारमनःस्थचित्रः संसारजालसहरोन कचज्जवेन॥ 68 सर्वात्मकैकवपुरेकचिदात्मकत्वा-त्संशान्तखेकचपुरेकचिदात्मतस्वात् । पवं निमेषणसम्निमषितैकरूपं सा विभ्रती वपुरनन्तमनादि भाति ॥९५ तस्यां विभाति तदनन्तशिलात्मकोशे लेखाङ्गचकरचनादिवदेव दृश्यम् । व्योमात्मकं गगनमात्रशरीरवत्यां चिरवाद्ववज्ञलधिकोश इषोर्मिलेखा॥ ९६ महती भरवी देवी नृत्यन्त्यापूरिताम्बरा। तस्य कल्पान्तरुद्रस्य सा पुरो भैरवाकृतेः॥

सर्वपदर्थानामुत्पादनार्थमेव कारकिकयाशक्तय उपयुज्यन्ते । उत्तरे तु भावविकाराः स्वत एव काले प्रवर्तन्ते । यथा मु-द्वानां राशीकरणे कारकिकयाशक्तिरुपयुज्यते विशीर्यप्रसरणे त खिम्राधता खभाव एव हेतुर्न कारकान्तरिकयाशिकस्तद्व-दिखाइ-कियाशकीति ॥ ९१ ॥ परिणामिखभावजङजगन्म-यीलादेव सा देवी प्रतिक्षणमन्यथान्यथा रुश्यत इत्याह—क्ष-णमिति ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ सा हि देवी कालत्रयस्थितस्य सर्व-तत्तरपरिणामवैचित्र्यशालिनो जगन्नितयस्यान्तर्भवा आन्तरी चित् । अतः कारणाद्यथास्थितेन पर्यायवर्तिना तत्तत्कामकर्म-वासनापरिपाकानुसारेण कचजवेन चित्रकृतः पुरुषस्य उदारे मनित स्थितं यिनत्रमंसारजालं तत्सद्दशेन यथास्थितेन तेन तेन विचित्रेण रूपेण तथा कचतीत्यर्थः ॥ ९४ ॥ तर्हि किं सा सप्रपर्धेव, नेत्याह—सर्वात्मकेति । सा देवी अविद्यावृतैक-चिदात्मकलात्सर्वसंसारात्मकैकवपुश्चित्रभितिरिवास्ते । विद्या-निरस्ता विद्यैकचिदात्मकलात्त्र संशान्तं यत् समाकाशं तद्वप-र्निष्प्रपद्मैवास्ते । एवं बद्धदशा मुक्तदशा च गम्यं निमेषणेन समुन्मिषितेन चाविद्याविद्याभ्यां पर्यायव्यक्रितेनोपरुक्षितं पर-मार्थतिबदेकरूपमनायनन्तं वपुर्विञ्रती सा भातीत्यर्थः ॥९५॥ विवर्तदशा परिणामदशा च जीवन्युक्तानां यौक्तिकानां च तस्यां जगद्भाने द्रष्टान्तद्वयमाह—तस्यामिति। शिलात्र रफटिकशिला। गगनमात्रशरीरवत्यामित्यन्तमाबद्दष्टान्तस्य विवरणं, शिष्टं द्विती-यस्य ॥ ९६ ॥ इत्थं तस्यास्तन्नृत्यस्य च तत्त्वमुपवर्ण्य पुनस्तकृत्यमुत्प्रेक्षादिभिर्वर्णयति—महतीत्यादिना ॥ ९७ ॥

शिरोमन्दाश्रितोप्राप्तिदग्धस्याणुवनावनिः।
करपान्तवातव्याधृता वनमालेव नृत्यति ॥ ९८
कुद्दालोत्रूखलग्रुतीफलकुम्भकरण्डकैः।
मुसलोदश्रनस्थालीस्तम्भैः सम्धामधारिणी॥ ९९
पर्वविधानां सम्दामजाल्यनां कुसुमोत्करम्।
किरन्ती संस्जन्तीव नृत्तश्चुम्धं स्रयक्षतम्॥ १००
बन्धमानस्तया सोऽपि तथैवाकाश्मैरवः।

तथैव वितताकारस्तदोचैः परिनृत्यति ॥ १०१ डिंबंडिवं सुर्डिवं पचपच सहसा झम्यझम्यं प्रझम्यं नृत्यन्ती शब्दवाधैः स्नजमुरसिशिरःशेखरं ताक्ष्यं पक्षिः । पूर्णं रक्तासवानां यममहिषमहाश्रङ्गमादाय पाणा पायाद्वो वन्द्यमानः प्रलयमुदितया भैरघः कालराज्या ॥ १०२

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमद्दारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० कालरात्रिवर्णनं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्यशीतितमः सर्गः ८२

श्रीराम उघाच ।
किमेतद्भगवन्सर्वनाशे नृत्यति केन सा ।
कि शूर्पफलकुम्भाधैस्तस्याः स्नग्दामधारणम् ॥ १
कि नष्टं त्रिजगद्भयः किं काल्या देहसंस्थितम् ।
परिनृत्यति निर्वाणं कथं पुनरुपागतम् ॥ २
वसिष्ठ उघाच ।
नासौ पुमान चासौ स्त्री न तक्ष्मं न ताबुभौ ।

फरपान्तरुद्दस्य शिरोललाटस्थानममन्दमाश्रितेन उम्रेण तृतीय-नेत्राप्तिना दग्वानि अतएव स्थाणुपरिशेषाणि वनानि यस्यां त-थाविधा अवनिर्भूमिर्यस्यास्त्रथाविधा कल्पान्तवातैर्व्याधृता वन-माला बनपिक्करिव सा नृत्यतीत्युत्प्रेक्षा उपमा वा॥९८॥न केवलं तस्याः प्राग्वर्णितान्येव सग्दामानि किंतु खनित्रमुसलोद्धखला-वपीत्याद्य-- कुद्दालेति ॥ ९९ ॥ नृते क्षुच्धं व्याधृतं क्षयेण भन्नेन क्षतं किरन्ती नवंनवं संखजन्तीय ॥ १०० ॥ १०१ ॥ रक्तासवानां पूर्ण यममहिषस्य महाश्वतं पाणावादाय डिम्बं डिम्बमित्यादिभिन्तालव्यज्ञकैः शब्दवार्धेर्नृत्यन्त्या उरसि शिरः शिरांस्येव स्नजं कुला विभ्रत्या ताक्ष्यपक्षैः शेखरं भूषितवत्या प्रलये जगद्भवला मुदितया कालराज्या वन्यमानः स्तूयमानो भैरवो वः पायात् ज्ञानप्रतिबन्धकदोषनिरासेन रक्षाखित्याशीः॥ डिम्बंडिम्बमिलादेशायमर्थः । हे नैरव, त्वं सर्वप्राणिनां डिम्ब-मनर्थभोगोपाधि स्थूलशरीरादिप्रपत्रं आझम्य । झमु अदने । भक्षियला ततो डिम्बं सूक्ष्मशरीरादिप्रपन्नभि झम्यं भक्ष्यं कृत्वा ततोपि सुडिम्बं मूलोपाधिभूतं कारणशरीरमपि चरमसा-क्षात्कारे तस्वत आविभूय प्रश्नम्यं सम्यग्भश्यं कृत्वा पश्चमा-दियोगभूमिकारोपणेन सहसा शीघ्रमेव पचपच सप्तमभूमिका-पर्यन्तं सम्यवपरिपाच्य विदेहकैवल्येन जरयेति स्तूयमान इति । इति नृत्यन्या कालरात्र्या सह युष्माभिः स्त्यमानी भैरवी वः पायादिति वान्वयः ॥ १०२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-बणतात्पर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकाशीतितमः

चिद्रपस्य शिवस्यात्र तस्यं निष्कृष्य वर्ण्यते । सक्छं यावदञ्चातं परिज्ञातं तु निष्कछम् ॥ १ ॥ सर्वस्य प्रषक्य विस्तरेण प्राक् प्रलयो वर्णितः । प्रलीनस्य तथाभूते तथाचारे आकृती न च ते तयोः ॥ ३ अनादिचिन्मात्रनभो यत्तत्कारणकारणम् । अनन्तं शान्तमाभासमात्रमव्ययमाततम् ॥ ४ शिवं तत्सिच्छवं साक्षाह्यस्यते भैरवाकृति । तथास्थितो जगच्छान्ता परमाकाश एव सः ॥ ५ चेतनत्वास्थाभूतस्वभावविभवादते । स्थातुं न युज्यते तस्य यथा हेम्ना निराकृति ॥ ६

च तस्य नृत्यन्त्याः कालराज्या भूषणादिभावेनाके सद्भावो नृत्तभ्रमणादि च वर्णितमिति नष्टस्य पुनहन्मज्जनमुक्तमसंभा• वितं मन्यमानी रामः प्रच्छति-किमतदिति । सर्वनाशे सति सा देवी केनाक्षेन नृत्यति । शूर्पफलकुंभावैर्नष्टेस्तस्याः स्नग्दाम-धारणं च लगोक्तं कि. कथं संभावनीयमित्यर्थः ॥ १ ॥ तदेव स्पष्टमाइ-किमिति । नष्टं स्थितं चेत्कथं निर्वाणमुपरतं जग-त्युनरुपागतं सत् कथं परिवृत्यतीति व्याहतं प्रतिभातीत्यर्थः ॥ २ ॥ यदि परमार्थदृष्या मदुक्तं व्याहतं मन्यसे तर्ह्यसु नाम परमार्थतश्चिन्मात्रैकरसपूर्णानन्दसन्मात्रातिरिक्तस्त्रीपुंसान दिजगद्भपस्य रुद्धदेव्यादिविभागस्य चात्यन्तासंभावितत्वात् । भ्रान्तदशा तु न किंचिद्याहतम् । ब्रह्मसत्तया सदा सतां सर्वे-वस्त्नां नाशानाशयोविशेषस्य दुनिरूपलादित्यसकृदानेदितला-ष्रष्टानामपि स्वप्नोन्मादयोष्ठन्मजनप्रसिद्धेर्मृतानामपि चिराद्भ-स्मीभूतानां मुनिसिद्धेश्वरादिवरप्रभावात्पुनरागमनप्रसिद्धेर्यावद-ज्ञानं जगदाकारस्य चित्तं संस्कारात्मना सर्वेषां सद्भावेनात्यन्त-आन्तैः केवलजगद्रपेण सर्वजगद्धटितैकमूर्यातम् हददेव्याद्य-पासकैस्तादशरूपेण च योगसिद्धिवलाद्वष्टं शक्यलादिखाशयेन वसिष्ठ उत्तरमाह-नासावित्यादिना ॥ ३॥ ४॥ विवं निरतिशयानन्दैकरसं तत्सद्भश्चेव शिवं नीलकण्ठित्रनेत्रलादिशि-वरूपं सत्प्रलयकाले भैरवाकृति लक्ष्यते उपासकैरिति होष: । यतस्तद्वासनानुसारेण स परमाकाश एव तथा तया आकृत्या स्थित इत्यर्थः ॥ ५ ॥ किंच चेतने ब्रह्मणि जगदुपसंहारः श्रुतिषु प्रसिद्धः । नच निराकारश्चेतनो लोके केनचिह्रस्थतः इति श्रीतो हि संहर्तेश्वर उमासहायं परमेश्वरं प्रभं त्रिलोचनं नीलकण्डं शान्तमित्यादिश्रुतिप्रसिद्धरूपेण संभावनीय इत्याद्यये-नाइ-चेतनलादिति । तृतीयार्थं षष्ट्यो । यथा हेम्रा निरा- कथमास्तां वद् प्राज्ञ चिन्मात्रं चेतनं विना । कथमास्तां वद प्रान्न मरिचं तिक्ततां विना॥ कटकादि विना हेम कथमास्तां विलोच्यताम् । क्यं स्वभावेन विना पदार्थस्य भवेत्स्थितिः॥ विना तिष्टति माधुर्यं कथयेश्वरसः कथम्। निर्माघुर्येश्च यस्त्विश्वरसो नहि स तद्वसः॥ ९ अचेतनं यश्चिन्मात्रं न तश्चिन्मात्रमुच्यते । न च चिन्मात्रनभसो नष्टं कचन युज्यते॥ १० स्वसत्तामात्रकादन्यत्किचित्तस्य न युज्यते । अन्यत्वमुररीकर्तुं ब्योमानन्यमसौ किल ॥ ११ तस्मात्तस्य यदश्चर्धं सत्तामात्रं स्वमासनम्। अनादिमध्यपर्यन्तं सर्वशक्तिमयात्मकम्॥ १२ तदेतञ्जिजगत्सर्गकल्पान्ता व्योम भूर्दिशः। नाश उत्पादनं नाम विनामाभासनं नभः॥ १३ जननं मरणं माया मोहमान्द्यमवस्तुता। वस्तृता च विवेकश्च बन्धो मोक्षः शुभाशुमे ॥ १४ विद्याविद्या विदेहत्वं सदेहत्वं क्षणश्चिरम्। चञ्चलस्वं स्थिरत्वं वा त्वं चाहं चेतरश्च तत् ॥१५

कृति यथा स्यात्तथा स्थातुं न युज्यते तथा तेनापीत्यर्थः ॥६॥ यथा हेम्रो हेमादिद्रव्यस्य पिण्डकुण्डलायन्यतमाकारावश्यंभाव-नियमस्तथा चितोप्यवर्यं चेलाकारावलम्बननियमो लोके प्र-सिद्ध इति निराकारपरिशेषपक्ष एव प्रत्युतासंभावित इति प्रीडि-बादेनाह-कथमिति ॥ ७ ॥ अज्ञातन्त्रितः सविषयतास्त्रभाव-लादप्याकारी दुस्त्यज इत्याशयेनाह---कथं स्वभावेनेत्या-दिना ॥ ८ ॥ ९ ॥ अपिच नष्टानामपि स्मृतौ भानदर्शनाचि-**दृष्ट्या कस्या**पि निरन्वयनाश एवाप्रसिद्ध इत्या**ह—-नचे**ति ॥ १०॥ किंच ब्रह्मानन्यस्य जगतो ब्रह्मसत्तामात्रकातिरिक्तरू-पात्रसिद्धेर्न कस्यचित्राशः प्रसिद्ध्यतीत्याह—स्वेति । 'ननु निरुक्तं चानिरुक्तं च निख्यनं चानिल्यनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च सत्यं चारृतं च सत्यमभवत्' इति ब्रह्मसत्तातिरिक्तं रूपं श्रूयते, अनुभवन्ति च पामरास्तत्राह —अन्यत्वमिति । असौ ब्रह्मात्मा **'बहु स्यां प्रजायेय' इ**ति जगदाकारेण अन्यलमुरशकर्तुं 'त-साद्वा एतसादाःमन आकाशः संभूतः' इति श्रुतेः प्रथमं व्योमानन्यमाकाशामित्रं खात्मानं करोति किल । यदि खा-नन्यं व्योम करोति तर्हि अन्यत्वं कथमुररीकृतं स्यात् । सद्भूपा-नन्यलासंपादने वा कथं व्योम कृतं स्यात् । सदात्मतालाभ एव हि व्योमादेरत्पतिरिति न निरुक्तं चानिरुक्तं चेत्यादिश्रुत्युक्तस्य मूर्तोमूर्तरूपस्य सद्भूपान्यतासिद्धिरित्यर्थः ॥ ११ ॥ कि तर्हि जगद्भुपमिति चेद्रह्मसत्तेव । सा हि तत्त्वाववीधकमानं विना छौकिकदशा जगत्त्रलयाद्याकारेण सर्पातमनेव रजुभोसते। तत्त्वावबोधकमानेन तु यथार्थरूपेणेति निष्कर्ष इत्युपसंहरति-तसादिति ॥ १२ ॥ विनामाभासनं तत्त्वावेदकमानं विनैवावि-**बाद्**षितदशा भासनं तैमिरिकद्दशा चन्द्रव्योमादिभास-

सदसम्राथ सदसन्मौर्स्य पाण्डित्यमेव च। देशकालिक्रयाद्वव्यकलनाकेलिकल्पनम् ॥ १६ रूपालोकमनस्कारकर्मवुद्धीन्द्रियात्मकम् । तेजोवार्यनिलाकाशपृथ्यादिकमिदं ततम्॥ १७ एतत्सर्वमसौ शुद्धचिदाकाशो निरामयः। अजहद्योयतामेव सर्वात्मेवैवमास्थितः ॥ १८ पतत्सर्वे च विमलं खमेवात्र न संशयः। अस्मादनन्यत्स्वप्नादिर्द्षष्टान्तोऽत्राविखण्डितः ॥ १९ चिन्मयः परमाकाशो य एव कथितो मया । पपोऽसी शिव इत्युक्ती भवत्येष सनातनः॥ स एप हरिरित्यास्ते भवत्येप पितामहः। चन्द्रोर्क इन्द्रो वरुणो यमो वैश्रवणोऽनलः ॥ 21 अनिलो जलदोम्भोधिर्ह्यो यदस्त्वस्ति नास्ति च। इत्येते चिन्मयाकाराकोरालेशाः स्फुरन्त्यलम् एवंविधाभिः संज्ञाभिर्मुधा भावनयेहशाः । स्वभावमात्रवोधेन भवन्त्येते तु ताहशाः॥ રર अबोधो बोध इत्येवं चिद्योमैवात्मनि स्थितम्। तस्माद्भेदो द्वैतमैक्यं नास्त्येवेति प्रशाम्यताम् २४

नमिव नभः शुद्धसत्तातिरिक्तार्थशून्यमेवेत्वर्थः ॥ १३ ॥ परमार्थतस्तु जननादि एतत्सर्वे शुद्धचिदाकाशो इति पश्चमे संबन्धः । माया विक्षेपो मोह आवरणं तयोः समाहारः ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ सदनन्यलमिव चिदनन्यलमप्यस्य स्वप्तदृष्टान्तेन संभावनीय-मित्याशयेनाह—एतत्सर्वमिति ॥ १९ ॥ स सचिदेकस्य भावः परमात्मा । 'शिव एको ध्येयः शिवंकरः सर्वमन्यत्परित्य-ज्ये'त्यादिश्वतिषु शिव इत्युक्त एय सनातनः शिवो भवत्येवेति मया रहमूर्तिरुपन्यस्त इत्यर्थः ॥ २० ॥ स एव विष्णवाद्याद्धा-रेणोपासितवतां हरिरिति वेषेणास्ते । एवं पितामहोऽप्यन्येषां भवति । किं बहुना । चन्द्राकीदिवासनावासितिधयां तत्तद्रपोsपि भवतीत्याह—चन्द्र इति । तथाच श्रुतिः 'इन्द्रं मित्रं वरुण-मिमाहरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान् । एकं सद्वित्रा बहुधा वदन्खर्भि यमं मातरिश्वानमाहुः' इति ॥ २१ ॥ स एवानिलो वायुः। ह्यः अतीतं दिनम् । कालमात्रोपलक्षणमेतत् । तत्र यद्वस्वस्ति नास्ति चेति विकल्प्यते तत्सर्वमेष एवेल्यर्थः । तथाच श्रुतिः 'स ब्रह्मा स दृरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराद् । स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽप्रिः स चन्द्रमाः । स एव सर्वे यद्भतं यश्व भव्यं सनातनम् । ज्ञाला तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये' इति । इति वर्णिता एते हरिपितामहादयो भावाश्विन्मयस्य ब्रह्माकाशकोशस्य गुणाद्यपाधिप्रयुक्ता लेशा अंशाः ॥ २२ ॥ मुधा भावनया अन्यधाप्रहणकारिण्या अवि-द्यया परमार्थस्वभावमात्रबोधेन तु एते तादशाश्विनमात्रस्वभावा भवन्ति ॥ २३ ॥ तथाच ब्रह्मैव कंचित्कालमङ्गद्दशा अबोध इति जीवजगद्वेषेण स्थितम्। ततो विद्वदृष्ट्या थोधे इति वेषेण

28

तावत्तरङ्गत्यमयं करोति जीवः स्वसंसारमहासमुद्रे । यावन्न जानाति परं स्वभावं निरामयं तन्मयनामुपेतः॥

રષ

हाने तु शानित स तथोपयाति यथा न सोऽब्धिनं तरङ्गकोऽसी। यथास्थितं सर्वमिदं च शान्तं भवत्यनन्तं परमेत्र तस्य॥

इत्यापें श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० शिवस्वरूपवर्णनं नाम ध्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

व्यज्ञीतितमः सर्गः ८३

र्वसिष्ठ उवाच। चिन्मात्रपरमाकाद्य एप यः कथितो मया । पषोऽसौ शिव इत्युक्तस्तदा रुद्रः प्रनृत्यति ॥ यासी तस्याकृतिर्नासावाकृतिः कृतिनां वर । तिबन्मात्रघनं व्योम तथा कचति ताहराम् ॥ मया दृष्टा तदाकाशमेव शान्तं तदाकृतिः। मयेव तत्परिकातं नान्यः पश्यति तत्तथा ॥ यथा नाम स कल्पान्तः स रुद्रः सा च भैरवी । मायामात्रं तथा सर्वे परिज्ञातमलं मया ॥ चिद्योमैय परं शून्यं संनिवेशेन तेन तत्। तथा संलक्ष्यते नाम भैरवाकारतां गतम्॥ बाच्यवाचकसंबन्धं यिना बोधो न जायते। यसात्तसात्त्वयि मया दृष्टमेव प्रवर्णितम् ॥ थवेच घाच्युपार्हमेतद्राम सदैव ते। **रुढाधिभौतिकदशः क्षणान्मायात्मतां गतम् ॥** 9 न भैरवी सा नैवासी भैरवो नैव संक्षयः। समस्तमेव तद्भान्तिमात्रं चिद्योम भासते ॥ ረ

सक्षे स्थितमिति फलितम् । न तदन्यिक्तिचित्कदाचिदपी-स्याद्द-अबोध इति ॥ २४ ॥ तथा च जीवः अज्ञातस्यात्म-सक्ष्ये संसारमद्दासमुद्दे तावत्कालं जन्ममरणश्रमणादिनानातर-कृत्वं करोति । यावत्परश्रमात्मकं स्थसभावं न जानाति । यदा तु जानाति तदा तन्मयतामुपेतः सन् निरामयं तदेवास्ते इस्यर्थः ॥ २५ ॥ तदेवाद्द-जाते स्विति ॥ २६ ॥ इति श्री-वासिष्ठमद्दारामायणतात्पर्यप्रकादो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे स्वशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

विमात्रमेव स शिवो न काली मैरवाकृतिः।
बोधाय करुपनादृष्ट्या तथा भानीति वर्ण्यते ॥ १ ॥
अतएव तव मया अविद्याश्रान्तिनिरासेन तालिकशिवस्वभावदृष्ट्याद्वाटनाय जगत्त्रलयक्ष्रमृत्यादि स्वानुभूतं वर्णितं न
तदेव परमार्थं इति श्रमितव्यमिसाह—चिन्मात्रेसादिनाः
॥ १ ॥ २ ॥ तत्त्वदृशा तु मया तदाकृतिश्रिद्दाकाश्वमात्रभेव दृशा। अन्यस्तत्त्वदृष्टिहीनः ॥ ३ ॥ तत्त्वदृष्ट्येव
मया कर्षेकृतादिसर्व मायामात्रमिति परिकातम् ॥ ४ ॥ ५ ॥
करुपनादृष्टिदृष्टस्यापि तव पुरतो वर्णनं तु वाष्यवाचकशब्दावर्षवन्धकरूपनं विना निविशेषस्य स्युत्पादनायोगासाकरूपनेन

स्वप्रनिर्माणपुरवत्संकल्परणवेगवत्। कथार्थसार्थरसवन्मनोराज्यविलासवत्॥ यथा स्वप्नपुरं स्वच्छे व्योम्नि मौक्तिकधीर्यथा। यथा केशोण्डकं व्योम्नि तथाऽचिद्धाति चिद्धने १० चिन्मात्राकारामेयाच्छं कचति स्वात्मनात्मि । तथा नाम यदाभाति तदात्मैव जगस्या ॥ यथा चिद्योम्नि कचित स्व एवात्मा तथा पटे। तथा कचित तत्तत्र कल्पान्तानलनर्तने ॥ शिवयोरेयमाकारो निराकारोऽङ्ग वर्णितः। अधुना शृणु ते वश्ये नृत्यस्यानृत्ततास्थितम् ॥ १३ चेतनं चेतनाधातोः किंचित्संस्पन्दनं विना। कचित्स्थातुं न शक्रोति वस्त्वयस्तुतया यथा १४ स्वभावाचेतनं तसादुद्रत्वेन तथा स्थितम्। हेमेच रूपकत्वेन संनिवेशविलासिना ॥ १५ यन्नाम चेतनं यत्र तदघइयं स्वभावतः। स्पन्दधर्मि भवत्येव वस्तुता हि स्वभावजा॥ १६

लझुत्पादनार्थमित्याह-वाच्येति ॥६॥ तन्निरसनं तु कल्पित-प्रक्रियायां सत्यताबुद्धिर्माभूदित्येतदर्थमित्याह-यदेवेति । हे राम, सदैव चिराभ्यासाज्जगति रूढाधिभातिकदशस्ते यदेव बाच्युपारूढं तदेव क्षणानमायात्मतां सत्यताश्रान्ति गतम् ॥७॥ न भैरवीत्यादिना पुनर्निषेधेन तत्समस्तमेव परमार्थतिश्रिद्योमैवेति भासते ॥ ८॥ ९ ॥ तथा अचित् चिद्धने भाति भ्रान्ला ॥ १० ॥ प्रवोधेन तर्हि कथं भाति तदाह— चिन्मात्रेति ॥ ११ ॥ तर्हि कि खप्रकाशचिदात्मनः खपरकचने विशेषोऽस्ति नेत्याह—यथेति ॥ १२ ॥ तथाच कचनैकस्वभावं निर्विशेषं चिद्योमेव शिवयोस्तात्त्विको निराकार एवाकारः परि-शिष्ट इत्यूपसंहत्य नृत्यस्य स्थितिस्तु मायामात्रलादनृत्तता स्थि-तिरेवेत्यंशं व्युत्पाद्यमानं शृष्वित्याह-शिवयोरिति ॥ १३ ॥ यया भ्रान्त्या दरयमानं शुक्तयादि वस्तु रजताद्यवस्तुतया विना स्थातुं न शकोति तथा चेतनाधातीश्वेतनमपि किचित्संस्पन्दनं विना स्थातुं न शकोति । भ्रान्तेः स्वभावविपर्यासकलनियम-साम्यादित्यर्थः ॥१४॥ अतएव सद्भुपं ब्रह्म सर्वजगद्घटितदेह-रद्रदेव्याकारविपर्यासेन अधिष्ठानतास्वभावेन स्थितमिखाह-स्तभावादित्यादिना ॥ १५ ॥ वस्तुता अधिष्ठानता ॥ १६ ॥

यः स्पन्दश्चिद्दनस्यास्य शिवस्यास्य स एव नः। स्ववासनावैशवशात्स्वयमेव विराजते॥ १७ अतः स कल्पान्तशिवो रुद्रो रौद्राकृतिर्द्रतम्। यश्चराति हि तद्विद्धि चिद्धनस्पन्दनं निजम्॥ १८ श्रीराम उन्नाच। प्रामाणिकरूचा रूच्यमिदं नास्त्येव वस्तुतः। यदेषास्तीव तत्सर्वे कल्पान्ते प्रविनदयति ॥ १९ तत्करपान्तमहाशून्ये पतस्मिन्परमाम्बरे। कथंसिन्नाम वा चेत्यं चेता चेतति चिद्धनः॥ २० वसिष्ठ उवाच। पतदेव तदाप्यकः द्वैतैष्याम्भोधिशान्तये। यदि चिन्मात्रनभस्थेत्यमस्ति न किंचन॥ २१ न किंचिबेतति ततः किंचिरिकचित्कदाचन। सर्वे शान्तं दुषन्मीनं विज्ञानघनमम्बरम्॥ २२ यश्चेदं चेखते नाम तत्स्वभावोऽस्य घलाति। चित्स्वभावस्य शान्तस्य स्वसत्तायामवस्थितेः २३

यथा स्वप्ने चिदेवान्तः पुरपत्तनवञ्जवेत् ।

पुरादि नतु यरिंकचिद्विज्ञानाकाशमेव तत्॥ आत्मनात्मनि चिच्छन्यं शात्वा च श्रेयमप्यलम्। तथाच सर्गादारभ्य वेत्ति स्वं कचनं च तत्॥ २५ स्वयमन्तः कचन्ती चित्स्वभावाकाशकोटरे। क्षणकल्पजगद्भान्ति धत्ते कल्पनया स्वया ॥ स्वयमन्तः कचस्कान्तिश्चिदाकाराः स्वभावस्रे । अयं सोहमयं च त्वं करोतीत्यादिकल्पनम्॥ तसान्न द्वैतमस्तीह न चैक्यं न च श्रन्यता। न चेतनाचेतनं वे मौनमेव न तद्यं वा ॥ २८ न चेतति कचित्किचित्कश्चिद्यात्मभावतः। तेन चेतापि नास्तीव मौनमेवावशिष्यते॥ २९ निर्विकल्पसमाधिहिं सिद्धान्तः सर्ववाङ्मये। तम् जीवद्यन्मौनं तृष्णीमेवात आस्पताम्॥ 30 कुर्वेश्विजं प्रकृतमेव यथा प्रवाह-माचारजालमचलः परमार्थमानात्। निर्मानमोहमद्भेदमनङ्गजीव-माकाशकोशविशदाशयशान्तमास्त्र ३१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु नि॰ उत्तरार्धे पापा॰ विश्वरूपदर्शनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

॥ १७ ॥ १८ ॥ प्रामाणिकदृशा नास्त्येवेति न तस्मिन्कल्पे प्रश्नः । अप्रामाणिकदृष्टिकल्पे प्रच्छामि । यदेव किंचिदस्तीव तत्सर्वे कल्पान्ते प्रविनदयति ॥ १९ ॥ तत्त्रथा सति चितः अचेत्यं चेत्यरहितं चिन्नाम वा कथम् । तथा आश्रयाभावे चेता चेतयिता वा कथम् । स्वातिरिक्तचितिकियाभावे चिद्धनश्चेतिति वा कथम् । त्रिपुटी नोपपयत इत्यर्थः । यदि चाविद्या तदानीमसदपि दृश्यं दर्शयतीति तत एव त्रिपुटीसिद्धिष्ट्येत तर्हि सर्गप्रलययोरविशेषः । न ह्यचे-तिते सर्वजगद्धिते रहदेवीशरीरे तम्रत्यं वा संभवति । नहि युगपद्रैतमैक्यं च भावयितुं शक्यमिति भावः ॥२०॥ हे अङ्ग, यदोवं शहसे तदापि तव द्वैतैक्यसंदेहाम्भोधिशान्तये एत-देवोसरं शुणु । तदेवाह-यदीति । यदि सर्वप्रलये परिशि-ष्ट्रस्य चिन्मात्रनभसः किंचन चेखमस्ति तदा ततो द्वितीयास-लादेव कचिहेशे कदाचन काले किंचिदपि वस्त कश्चिदपि न चेतति । 'यत्र खस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इत्यादि-श्रुतेरिति भावः ॥ २१ ॥ तथाचायं प्रामाणिकदृष्टिसिद्धो नि-त्यमुक्तात्मस्वभाव एव प्रस्तय इति त्वयोपन्यस्त इति प्रथमकल्प एव संपन्न इत्याह-सर्वमिति । तथाचात्रामाणिकदशा द्विती-यकस्पमाश्रित्य प्रश्नो नोचित इति भावः ॥ २२ ॥ यदि तु प्र-थमकल्पवैलक्षण्याय प्रलये अविद्यादि किचिबेलमभ्युपगच्छित तिहैं तेनैव त्रिपुरीजगद्धितरुद्धदेवीशरीरे तन्नृत्यं च सेत्स्यतीति नासंभावितं किविन्मयोक्तमित्याशयेनाह-यबेदमित्यादिना ।

खभावः अविज्ञातात्मखरूपमस्य ब्रह्मणः प्रलयेऽपि रुद्धदेवी तमृत्यरूपेण वरुगति प्रथते । नचेतावता वास्तवकूटस्थवित्स्व-भावहानिरित्याह्—चित्खभावस्येति ॥ २३ ॥ भ्रान्त्या अन्य-थालप्रतिभासेऽपि वास्तवस्वभावाप्रच्युतौ दृष्टान्तमाह—यथेति ॥२४॥ तथाच सर्वे होयं हातापि चित् आत्मना आत्मनि स-दैव ज्ञेयं श्रून्यम् । तथाच प्रलयकालेऽपि सर्गारम्भक्षणादार्भ्य यानस्प्रलयक्षणं यद्यथा संपन्नं तत्सर्वं स्वं कचनं वेत्तीति सदा सर्वज्ञं तद्रहा प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ २५ ॥ अनएव तत्सर्गकालेऽपि प्रख्यमतीतानागतसर्वप्रख्यसहस्रैः सह पश्यत्येवेखपि संभाव-नीयमिलाशयेनाह—स्वयमिलादिना ॥ २६ ॥ २७ ॥ अत-एव हि सर्वेदश्यस्य तदभावस्य च परसारवाधितलात्परमार्थव-खुनो भावाभावोभयनिषेधावधितेत्याशयेनोपसंहरति--तस्मा-दिलादिना । सर्गप्रलययोविंशेपोऽपि खानुभवेनैव सिद्धो न युगपरप्रखयेनापरुपितं शक्य इति भावः ॥ २८ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ हे राम, लमपि ईश्वर इव लोकदशा निजं प्रकृतसेव राज्यतत्परिपालनाद्याचारजालं यथाप्रवाहं पितृपितामह्र्याप्त-क्रमेण क्वेन्नेव खदशा परमार्थमौनान्निर्मानं निर्मोहमपगतमद-भेदमङ्गेस्तद्भिमानिजीवेन च रहितमाकाशकोशवद्विशदाशयं च यथा स्मत्तथा शान्तं निर्विक्षेपमास्ख ॥३१॥ इति श्रीवासि-ष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे भूकी-तितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरचीतितमः सर्गः ८४

श्रीराम उवाच ।
अनन्तरं मुने बृहि काली किमिव नृत्यति ।
किं शूर्पफलकु इालमुसलादिस्नजाऽऽवृता ॥ १
विसष्ठ उषाच ।
स मैरवश्चिदाकाशः शिव इत्यमिधीयते।
अनन्यां तस्य तां विद्धि स्पन्दशक्तिं मनोमयीम् ॥ २
यथैकं पवनस्पन्दमेकमौष्णयानली यथा ।
चिन्मात्रं स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा ॥ ३
स्पन्देन लक्ष्यते वायुर्वेह्नरौष्ण्येन लक्ष्यते ।
चिन्मात्रममलं शान्तं शिव इत्यमिधीयते ॥ ४
तत्स्पन्दमायाशक्तयैष लक्ष्यते नान्यथा किल ।
शिवं ब्रह्म विदुः शान्तमवाच्यं वाग्विदामपि ॥ ५
स्पन्दशक्तिस्तदिच्छेदं दृदयाभासं तनोति सा ।
साकारस्य नरस्यन्त्या यथा वे कल्पनापुरम् ॥ ६

शिवशक्तयोनिजं रूपं त्रिविष्यात्रोपवर्ण्यते । शूर्णोदमास्रारूपं च सत्यासत्याविमशेतः ॥ १ ॥

या काठी नृत्यतीति लया वार्णता सा किमिव । किंखरूपे-त्यर्थः । साच किमात्मकशूर्षफलकुद्दालादिस्रजा आवृता तदुभयं ब्रहीलर्थः । 'कालः किमिव तृखति' इति पाठेऽपि कालात्म-त्रश्नस्या एव पूर्वोत्तरप्रन्थयोर्नृत्यस्य ककाली*खरूपस्*यव शूर्पमुसलादिसम्धारणस्य च वर्णनात् ॥ १ ॥ शिवस्य स्रक्षमनिह्प्य तच्छिक्तस्यरूपनिह्मणायोगातुभयरूपं सहैव निरूपितृसुपक्रमते—स इति । चलनस्वभावरजोगुण-प्राधान्येन स्पन्दशक्ति सलगुणखच्छताप्राधान्येन सर्वतिधित्प्र-तिबिम्बव्यास्या जगत्संस्कारघटितत्वेन च सर्गादिसंकल्पविक-स्पहेतुत्वेन मनःसाम्यान्मनोमयीम् । शिवे तादात्म्येनाध्यासा-त्तदधीनसत्तास्फृतिकलाच तदनन्यां मायां तां विद्धीत्यर्थः ॥ २ ॥ अनन्यत्वं दृष्टान्ताभ्यां समर्थयति -- यथेति । मोक्षा-त्यागेव सर्वकालव्यवहारसमाप्तेः सर्वकालव्याप्तिरस्त्येवेत्याश-येन सर्वदेत्युक्तिः ॥ ३ ॥ 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति' इत्यादिश्रुतिषु जगत्सर्गप्राणसन्दादित-क्रियंथेव शिवस्य ब्रह्मणो लक्षणादपि तदनन्यलमिलाह-स्य-न्देनेति द्वास्याम् ॥ ४ ॥ ननु श्रुतौ सर्गादिवद्यालक्षणं तिन्छ-बस्य कथमुच्यते तत्राह--शिवमिति । यतः सर्वाः श्रुतयो ब्रह्मविदश्व शिवमेव ब्रह्म विदुरतो नाशिवं ब्रह्मान्यदस्तीलर्थः ॥५॥ 'सोऽकामयत बहु खां प्रजायेय' इत्यादिषु सा स्पन्दश-क्तिरेव शिवस्थेच्छेत्युक्ता सैव सत्यकामस्य तस्य मनोराज्यमिव जगत्तनोतीलाइ—स्पन्दशक्तिरिति ॥ ६ ॥ सैषा स्वान्तर्गत-चिदाभासप्रदीप्तलाबितिशक्तिजीवचैतन्यमिति श्रेका ॥ ७ ॥ प्रकृतित्वेन जगदाकारपरिणामित्वेन । तथाच श्रुतिः 'मायां त प्रकृति विद्यानमायिनं तु महेश्वरम्' इति । इत्याभासेष्यतु-

करोत्येष शिवस्थेच्छा करोतीदमनाकृतेः। सैपा चितिरिति प्रोक्ता जीवनाज्जीवितैषिणाम्॥ ७ प्रकृतित्वेन सर्गस्य स्वयं प्रकृतितां गता। दृश्याभासानुभूतानां करणात्सोच्यते क्रिया॥ ८ वडवाग्निशिखाकाराच्छोप्याच्छुक्केति कथ्यते। चिण्डत्वाधिष्डका प्रोक्ता सोत्पलोत्पलवर्णतः॥ ९ जया जयैकनिष्टत्वात्सिद्धा सिद्धिसमाश्रयात । जयन्ती च जया प्रोक्ता विजया विजयाश्रयात् १० प्रोक्ता पराजिता बीर्याहुर्गा दुर्प्रहरूपतः। ॐकारसारशक्तित्वादुमेति परिकीर्तिता॥ ११ गायत्री गायनात्मत्वात्सावित्री प्रसवस्थितेः। सरणात्सर्वद्दष्टीनां कथितेषा सरस्वती ॥ १२ गौरी गौराङ्कदेहत्वाद्भवदेहानुषङ्किणी। सुप्तानामथ वुद्धानाममात्रोधारणादृदि ॥ १३

भूतानामुत्यत्त्याप्तिविकृतिसंस्कारलक्षणानां चतुर्विधफलानां क-रणात् ॥८॥ 'द्वीपिचर्मपर्राधाना शुष्कमांसातिभैरवा' इत्यादि-पुराणेषु तस्याः शुष्कताप्रसिद्धेरपि निमित्तमाह—वडवेति । यतः समुद्रादिजलार्द्रब्रह्माण्डदेहा सा वडवाम्निशिखाकाराद्रेष्मा-दिल्यादि ज्योतिषः सकाशाच्छोध्या अतः शुष्केति कथ्यत इति ॥ ९ ॥ यतो जया अतो जयन्ती च प्रोक्ता । तथाच नामद्रय-स्याप्येकमेव प्रवृत्तिनिमित्तम् । विशिष्टो जयस्तु विजयापदस्य । एनमग्रेऽप्यूत्मम् ॥ १० ॥ उमेति परिकीर्तिता ॐकारघटका-नामकारोकारमकाराणां उ म अ इति व्यत्यासेन घटने टापि उमाशब्दनिष्यत्तेरिति भावः । 'समेति परिकीर्तिते'ति पाठे त ॐकारलक्ष्यतुरीयखरूपस्थूलसृक्ष्मादिसर्वप्रपञ्चसारचिच्छक्ति-लात्सर्ववैषम्यरहितेत्यर्थः ॥ ११ ॥ गायना जापकास्तेषां परमपुरुषार्थात्मलात् । स्वर्गापवर्गसाधनसर्वकर्मीपासनद्वानदः-ष्टीनां सरणारप्रसरात् ॥ १२ ॥ भवत्यस्माद्विश्रमिति भव ईश्व-रस्तदेहानुषक्षिणी । उमानाम पुनः प्रकारान्तरेण व्याचर्रे-सु-प्तानामिति । चार्थे अथशब्दः । स्रुप्तानां प्रबुद्धानां च त्रैलोक्य-स्थसर्वप्राणिनां हृदि अनाहतनादातमना अकारादिमात्रत्रयशू-न्यस्य प्रणवनादभागस्य शब्दब्रह्माख्यस्य नित्यं सर्वदैवोचारणा-दङ्गप्रपरिमितहृत्पुण्डरीकच्छिद्रे लिङ्गाकारेण स्थितस्य दहराका-शाख्यस्य शिवस्य मूर्प्ति भूषणभूता बिन्दुरूपा इन्दुकला उमे-त्युच्यते । तथाचीकं वायवीयसंहितायाम्-'ओमित्येकाक्षरं बद्धा ब्रह्मणः प्रतिपादकम् । अउभेति त्रिमात्राभिः परस्ताद-र्धमात्रया । तत्राकारः स्थितो भागे ज्वालालिङ्गस्य दक्षिणे । उकारश्रोत्तरे तद्वन्मकारस्तस्य मध्यतः। अर्धमात्रात्मको नादः श्रुयते लिक्कमूर्धनि' इति । इंसोपनिषदि च पूर्वदले पुण्यमिति रीत्यादिहृदयपुण्डरीकद्लेषु जीवस्य मतिमेद्मुक्ता लिक्ने सुषुप्तिः पद्मखागे तुरीयं यदा हंसो नादे विलीनो मबति तत्तुरीयाती- नित्यं त्रैलोक्यभूतानामुमेतीन्दुकलोच्यते । शिवयोर्व्यामरूपत्वादसितं लक्ष्यते वपुः॥ १४ नभो हि मांसमेताभ्यां दृष्टिकृष्टं विलोक्यते। अस्ति नभो नभस्येव तौ नभोनभसि स्थितौ ॥ १५ नभोनिभावभूताङ्गावच्छौ व्योम्न इवाग्रजौ । इस्तपादास्यमुभी यद्वद्वत्वारूपत्वभेदतः ॥ १६ नानात्वं हलशूर्पादिस्वन्धरत्वं च तच्छुणु। सा हि क्रिया भगवती परिस्पन्दैकरूपिणी ॥ १७ द्यात्कायाच जुहुयादित्याद्यप्रशरीरिणी। चितिशक्तिरनाद्यन्ता तथा भातात्मनात्मनि ॥ १८ साकाशरूपिणी कान्ता दृश्यश्रीः स्पन्दधार्मेणी। देव्यास्तस्या हि याः काल्या नानाभिनयनर्तनाः १९ ता इमा ब्रह्मणः सर्गजरामरणरीतयः। क्रियासी प्रामनगरद्वीपमण्डलमालिकाः॥ स्पन्दान्करोति धन्तऽन्तः कल्पितावयवात्मिका। काली कमलिनी काली क्रिया ब्रह्माण्डकालिका२१ धत्ते स्वाचयबीभूतां हृदयलक्ष्मीमिमां हृदि। न कदाचन चिद्देवी निर्देश्यावयया कचित्॥ **२**२

तमिति लिङ्गमूर्थस्थे नादं सर्वापाधिविलयेन ब्रह्मप्रतिष्ठा तुरी-यातीतावस्थेत्युक्तमिति भावः ॥ १३ ॥ 'काली किमिति नृत्य-ती'ति प्रश्ने किमिति कालीति वर्णनिमित्तप्रश्नमभिप्रेश्योत्तर-माइ-शिवयोरिति ॥ १४ ॥ ननु चिद्रपयोः शिवयोर्जडव्यो-मरूपता कथं तत्राह-नम इति । चिद्रपाभ्यामेवैताभ्यां मांसमयं खशरीरमिव इयामं सर्गसंकल्पदृष्ट्या दृष्टमतः इयाम-मिव जडमिव च विलोक्यते । निराधारस्थितिरपि तयोर्नभो-षदेवानुभेयेत्याह-असीति ॥ १५ ॥ अमूर्तलखच्छत्वे अपि तयोव्योमवदेव बोध्ये इत्याह—नभोनिभाविति । अप्रजी ज्येष्ट-श्रातराविवेत्युपमादाक्शीय संभावना । अमूर्तत्वे हस्तपादादि-मत्त्वं हुलशूर्शदिसम्धरत्वं च कथमिति चेत्तत्रोत्तरं श्रावयति-हरूतेत्यादिना । हस्तपादास्यमूर्ध इति समाहारद्वन्द्वैकवद्भावः । इस्तादेर्यद्वहुलाल्पलभेदतो नानात्वं वैचिष्यं यच इलश्चर्शदि-स्राधरत्वं तच्छण्विति परेणान्वयः ॥ १६ ॥ हि यस्मात्सा भगवती अनायन्ता चितिशक्तिरपि आत्मना खेच्छयैव खात्म-सर्ववैदिककियारूपा भूला दद्यारस्रायाज्ञहुयादित्यादिवेदविहित-दानकानयागादिश्रेष्ठशरीरिणी संपन्ना तस्मात्तस्या देव्या या नानाविधामिनयसहिता नर्तनास्ता इमा ब्रह्मणः कर्मफलरूपाः सर्वप्राणिसर्गस्थितिजरामरणरीतयो बोध्या इति परेणान्वयः ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ यतः असौ देवी किया अतो निरव-यवायाः क्रियाया अप्रसिद्धेः खरूपप्रसिद्धार्थमेव कल्पितहस्तपा-दाद्यवयवात्मिका प्रामनगरद्वीपमण्डलमालिकाः शरीरान्तर्धते तैः सन्दान्करोति । खां क्रियारूपतां प्रकटयतीति यावत् ॥२०॥ कालीनामनिर्वचनेऽपि तस्याः क्रियेकस्वभावत्यं ब्रह्माण्डशरी-त यासर्व लोकाद्यवयवधारिणीत्वं च प्रसिद्धातीत्याशयेनाह—

शिवत्वाच्यतिरेकेण शिवतैवं विद्ययताम् । यथाङ्क शुन्यता व्योद्धः स्पन्दनं मातरिश्वनः ॥ २३ ज्योत्कायाश्चेत्यमेवं हि एइयमङ्गं चितेः किया । शिवं शान्तमनायासमव्ययं विद्धि निर्मलम् ॥ २४ न मनागपि तत्रास्ति स्तैमित्यं स्पन्दधर्मता। सा क्रियेव तथारूपा सती बोधवशाखदा ॥ २५ व्यावृत्त्येव तथेवास्ते शिव इत्युच्यते तदा। चितिशकेः कियादेव्याः प्रतिस्थानं यदात्मनि २६ यथा भूतस्थितेरेव तदेव शिव उच्यते। देव्याः क्रियायाश्चिच्छक्तेः स्वरूपिण्या महाकृतेः २७ कल्पिताकारधारिण्या अनन्यावयवा इमे । सर्गाः सज्जनतावर्गा लोका आलोकभास्वराः २८ सद्वीपसागराः पृथ्वः सवनावनयोऽद्रयः । साङ्गोपाङ्गास्त्रयो वेदाः सविद्यास्थानगीतयः ॥ २९ सविधिप्रतिषेधार्थाः सग्रुभाशुभकल्पनाः । सदक्षिणाग्नयो यक्षाः पुरोडाशाद्यशंसिनः॥ ३० भूपालोॡ्खलबृसीशूर्पयूपादिसंयुताः । संग्रामाः सायुधग्रामाः सशूळशरशक्तयः॥ ३१

कालीति। 'कल गतौ संख्याने च'इति धातोहि कालशब्दः काली-शब्दश्च निष्पद्यते । कलिः कामधेनुरिति च वयाकरणा धारणादि-सर्विक्रियावाची कलधातुरित्याहुः । तथाचेयं ब्रह्माण्डलक्षणानां बीजकोशानां कालिका कलयित्री निर्मात्री धार्यित्री परिणामा-दिधिकारप्राप्यित्री च किया खर्य सती कमलिनी पद्मिनीलतेव कार्ला इयामला संपन्ना । अतएव हि स्त्रपुष्पाद्यवयवीभूतामिमां पृष्व्यादिहर्यलक्ष्मी हृदि घत्ते इत्यर्थः । एवं जगदङ्गधारणेऽपि तस्या असङ्गोदासीनचिद्रपशिवस्वभावलात्रिरवयवसमेवेत्याह-न कदाचनेति ॥ २१ ॥ २२ ॥ अङ्गामावेऽप्यङ्गव्यपदेशे दृष्टा-न्तानाह-यथेति ॥ २३ ॥ ज्योत्स्रायाश्चन्द्रकायाश्चेत्यं प्रबो-धनीयं कुमुदाबक्षम् । 'ज्योत्स्नाक्षमिन्दोः' इति पाठे तु स्पष्टम् । एवं तस्याः कालात्मकं जगदङ्गकं क्रियास्वरूपमुपवर्ण्यं वास्तवं खरूपं वर्णयति-शिवमिति ॥ २४ ॥ तत्र क्रियाखरूपं तस्या अबोधदशामात्रदश्यमवास्तवं, शिवरूपं तु बोधदृश्यं वास्त-विमत्याह-सिति॥ २५॥ यदा बोधवशात्क्रियाखभावाद्यावृत्य तर्भव वास्तवस्वभावेनास्ते तदैव शिव इत्युच्यते । कूटस्थस्य चितिशक्तयात्मिकाया देव्या आत्मनि खस्या अविद्यावशाद्य-त्प्रतिस्थानं प्रतिकूलस्पन्दजडभावेनावस्थानं तदेव क्रियेत्यु-च्यते ॥ २६ ॥ विद्यया यथाभूतचिन्मात्रस्वभावस्थितिरेव हेतोः शिव इत्युच्यते ॥ २७ ॥ तथाच कल्पितजगहेह्धा-रिण्या नृत्ये कल्पिता गीतय इव तादशशूर्यमुसलादिसग्दामभू-षणमेवोचितमिति वक्तं भूमिकां रचयति—कत्पिताकारेति । सन्तो विद्यमाना जनतावर्गा येषु । इमे वश्यमाणाः सर्वे ॥२८॥ ॥ २९ ॥ पुरोडाशहपं यदायमदनीयं तच्छंसिनस्तनिहप्याः । यज्ञानां द्रव्यदेवतानिरूप्यलादिति भावः ॥३० ॥ युद्धानामपि

स भुश्रुण्डी गदाप्रासहयेभभटभासुराः। श्वातयो भूतसंघानां चतुर्दश सुरादिकाः। चतुर्दशाब्धिद्वीपोर्घ्यस्तथा लोकाश्चतुर्दश ॥ 32 श्रीराम उवाच। चितेः कल्पाः शरीरिण्याः सर्गा येऽक्रे स्थितास्तथा । ते किमात्मनि तिष्ठन्ति उतासत्या वदेति भो ३३ वसिष्ठ उवाच । रामासी फिल चिच्छक्तिस्तया यशोदितं तथा। तत्प्रचेतितमेवातः सत्यं चेदमिवाखिलम् ॥ ३४ तत्प्रतिबिम्यितं वाद्यान्मुकुरप्रतिबिम्बवत्। सत्यं तदन्तरेवास्ति चितेर्नासत्यमर्थतः॥ 34 चिद्रुपस्य तथाप्यन्तः सत्संकरूपपुरं भवेत् । हृद्धयानाद्विशुद्धायाश्चितेभयतु सा कथम् ॥ ३६ आदर्रोष्वधवा स्वग्ने सर्गः संकल्पनेऽस्तु वा । स आत्मन्यर्थकारित्वात्सत्य इत्येव मे मतिः॥३७

योद्धस्वर्गसंपत्त्यादिहेत्वविहितकर्मत्वेन यश्वसाम्यात्तदक्षेः सह निर्देशः । भूपालोॡखलबृस्यादिघटितस्रग्दामसंयुताः ॥ ३१ ॥ लोकाश्चतर्दशेखन्तानां सर्वेषामिमे कल्पिताकारधारिण्या देव्या अनन्यावयवा इति पूर्वत्र संबन्धः ॥ ३२ ॥ एवं प्रश्नद्वये ल्या समाहितेऽपि मम प्राक्सर्गकृतदेतिक्ययौगपद्यासंभवश-ह्यायाः सम्यक् समाधानं न रृत्तम् । नष्टस्यासतोऽर्थकियाका-रिलासंभवात् । स्वसत्ताबलेन कार्यसत्तासंपादनमेव हि कार-णानां कार्यार्थिकिया। उपादानेन कार्यस्य तत्तापहारश्च नाशः, नचेकस्मिन्नेव काले कारणेन खकार्य सत्ता संपाद्यते अपहियते चेति श्रिष्यते । नवा सर्वकारणसदात्मप्रहृतसत्ताकैः पदार्थैः प्रख्ये खखार्थिकया संभावयितं शक्येत्याशयेन रामः पृ-च्छति—चितेरिति । स्ट्रकालीशरीरिण्याश्चितेरप्रे प्रलयका-केंSप्यतीतानागताः सर्वे सर्गाः कल्पाः प्रलयाश्व स्थिता इति यस्वया वर्णितं तत्र पृच्छामि । ये स्थिताः सगीस्ते किमात्मन्यर्थिकयासमर्थे सत्खभावे तिष्टन्ति उत असलास्ता-हशसत्स्वभावश्रन्या मृगतृष्णाम्युप्राया इति वदेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ जगतः प्रलयस्य च कदाचिदपि नाखन्तिकं सत्त्वं नाप्यसत्वं कित सत्यसंकल्पानसारिचिता सत्यमिति चेतितं सत्यमसदिति चेति तमरात्यं न खतोऽस्य किचिद्यपदेशाई रूपमस्ति । तथाच प्रख्यकारेऽप्येन्दवसर्गाः स्थिता अर्थकियासमधीश तत्संकल्प-चितो दृष्ट्या । इतरसंकल्पदृष्ट्या तु ते न स्थिता न प्रलीनाश्चेति प्राग्वर्णितमेवत्याशयेन वसिष्ट उत्तरमाह-रामेत्यादिना । यद्वस्तुतया सत्यसंकल्पचिता तत्तद्भोकृवासनाकमैबीजोद्भेदनेन सर्गाय वा प्रलयाय वा चोदिनं तथा तैभीकृभिः प्रचेतितमतु-भूतमेव । अतस्तदनुभवितृदशा इदमखिलं सखिमव । चाद-न्यद्शा अव्यन्ताप्रसिद्धेरसव्यमिय ॥ ३४ ॥ कुतः सव्यमिष त-श्राह्—तदिति । यतस्तत् वाह्यान्मुखादेविम्बाशिमित्तान्मुकुर-प्रतिबिम्बवत्पूर्वानुभववासनादिनिमित्तात्तत्साक्षिचिदिति प्रति-।

मम नार्थाय स इति वक्षि चेत्रत्कथं भवेत्। देशान्तरगताः सर्वे भवन्त्यर्थाय संप्रति॥ ३८ यथा देशान्तरप्रामस्तद्रतस्यार्थकुद्धवेतु । सर्वे तथैव तद्भावं गतस्यार्थविनिश्चयात्॥ 36 यद्यथाभूतसर्वार्थिकियाकारि प्रदृश्यते । तत्सस्यमात्मनोऽन्यस्य नैवातत्तामुपेयुषः॥ 80 तसाचिच्छक्तिकोशस्थाः सर्धाः सर्गपरम्पराः। सख आत्मेति तद्भावं गतस्यान्यस्य नाखिलाः ४१ भूतभव्यभविष्यस्थाः संकल्पस्वप्नपूर्गणाः। सर्वे सत्याः परं तस्वं सर्वातमा कथमन्यथा ॥ ४२ प्राप्यन्ते योगसिद्धन तद्भावं तु गतेन ते। अन्येन पर्वता प्रामा गत्या देशान्तरे यथा॥ चालितस्य यथा गाढनिद्रस्य स्वप्नपत्तनम्। न लुठत्येव लुठितमित्यप्यनुमतं स्फुटम्॥ 88

बिम्बितं तदन्तरेवास्ति अतोऽर्थतस्तं प्रति सत्यमेव ॥ ३५॥ कथं तह्यसत्यं तत्राह-चिद्रुपस्येति । तथा तद्नुभववछात्स-त्यत्वेऽपि चिद्रपस्यान्तरचिद्रपस्य प्रवेशायोगात्तत्संकल्पनगर-वन्मिथ्येव भवेत् । अतएव ध्यानदार्ट्येन वासनाक्षये तत्प्रस-किरेव नास्तीत्याह-- दढेति ॥ ३६ ॥ प्रतीतिमात्रेणाहरशा सत्यलं तु प्रतिबिम्बखप्रायधीन।मपि सुवनं तेषामपि तदन्तः खानुरूपार्थिकियाकारिखदर्शनादित्याह-आदर्शेष्विति ॥३७॥ स आदर्शान्तर्गतो घटादिर्मम बाह्यजलाहरणावर्थाय समयौ नेति चेत् त्वं विश्व वदिस तिहैं शृणु । तदादशीन्तर्गतं बहिर-र्थाय कथं भवेत्। नधन्यत्र विद्यमानमन्यत्र जलाहरणाद्यसमर्थ-मिरयेतावता असद्भवति । किं तव देशान्तरगताः सर्वे घटा-वर्थाः संप्रति ते गृहे जलाहरणाद्यर्थाय समर्था भवन्तीति काकः । देशान्तरे तेषामर्थिकयाकारिलमिव दर्पणस्वप्राचन्तरर्थिकया त प्रतिबिम्बादेरप्यस्त्येवेत्याह—यथेति । सद्भावं सप्तादिबधुभा-वम्॥३८॥३८॥ अतएव तत्तद्धंकियाद्रष्ट्रदृष्टेवेव तत्सत्यं नान्यद-ष्ट्रोति व्यवस्थितं तस्य सत्यलमित्याह-यदिति । भात्मनस्तद्र-ष्ट्रात्मनः सत्यम् । अतत्तां अतद्रष्ट्रतामुपेयुषः अन्यस्य पुरुषस्य दशा नैव सत्यम् ॥ ४० ॥ तद्वदेव प्रकृतेऽपि योज्यमित्युपसं-हरति—तस्मादिति ॥ ४९ ॥ अन्यथा तेषामसस्यत्वे सर्वातमा परं तत्वं कथं स्थात् । नद्यात्यन्तासतस्तत्त्वमात्मा वा प्रसिद्ध इति भावः ॥ ४२ ॥ अतएव परखप्रावर्था अपि योगिमिः प्राप्यन्ते. इच्छ्या उपशुज्यन्ते चेखाइ-प्राप्यन्त इति । अन्ये-न तरसाप्रपुरुषातिरिक्तेनापि परकायप्रवेशेन तस्द्र्यं प्रविश्य तन्मनोभावं गतेन यथा देशान्तरे विद्यमानाः पर्वतप्रामास्तत्र गला प्राप्यन्ते तद्वत् ॥ ४३ ॥ नृत्येन काल्याश्वलनेऽपि तदेह-गतभूम्यायचळनं दृष्टान्तमाह—चालितस्येति । शनैः पर्यक्र-स्यान्यत्र नयनेन शयनस्थलादन्यत्र चालितस्यापि ॥ ४४ ॥

तथा चलन्त्या लुहितं तस्या देहगतं जगत्।
न लुहत्येव मुकुरप्रतिविम्बमिय स्थितम्॥ ४५
स नेलोक्यमहारम्भः सत्योऽपि भ्रान्तिमात्रकम्।
भ्रान्तिमात्रस्य के नाम लुहनालुहने वद्॥ ४६
कदा स्वप्नपुरं सत्यं कदा स्वप्नपुरं मुधा।
कदा स्वप्नपुरं भन्नं कदा स्वप्नपुरं स्थितम्। ४७
भ्रान्तित्वं केवलं सैय दृश्यशीर्यावद्मगा।

त्वं विद्धीमामपि भ्रान्ति जगहुक्ष्मीमवास्तवीम् ४८ संकल्पने मनोराज्ये स्वप्ने संकथने भ्रमे। यथापुरानुभवनं त्रैळोक्यानुभवं तथा॥ ४९ अहमिति जगदिति नान्त-भ्रान्तिरियं प्रकचतीव चितः। परमाकाशकृशाख्या शाम्यति निपुणं परिक्वाता॥ ५०

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे उ०पाषा० शिवशक्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः॥८४॥

पश्चाशीतितमः सर्गः ८५

वसिष्ठ उवाच ।

इति नृत्यति सा देवी दीर्घदोर्दण्डमण्डलैः ।

परिस्पन्दात्मकैंच्यांम कुर्वाणा घनकाननम् ॥ १

क्रियासौ नृत्यति तथा चितिशक्तिरनामया ।
अस्या विभूपणं शूर्पकुद्दालपटलादिकम् । २
शरशक्तिगदाप्रासमुसलादि शिलादि च ।
भावाभावपदार्थौषकलाकालकमादि च ॥ ३
चित्स्पन्दोऽन्तर्जगद्धत्ते कल्पनेव पुरं हृदि ।
सैव वा जगदित्येव कल्पनेव यथा पुरम् ॥ ४
पवनस्य यथा स्पन्दस्त्यैवेच्ला शिवस्य सा ।
यथा स्पन्दोऽनिलस्यान्तः प्रशान्तेच्लस्तथा शिवः५
अमूर्तो मूर्तमाकाशे शब्दाडम्बरमानिलः ।
यथा स्पन्दस्तनोत्येवं शिवेच्ला कुरुते जगत् ॥ ६
नृत्यन्त्याथ यदा तत्र तथा तस्मिन्पराम्बरे ।

दार्धान्तिके योजयति—तथेति ॥ ४५ ॥ तदचलने युक्तयन्तरमाह्—स इति ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इमां इदानींतनीमिष ॥४८॥
तथा त्रेळोक्यानुभवं विद्धीलानुष्यते ॥ ४९ ॥ चितः अन्तः
अहमिति जगदिति च बस्तुतो नास्ति । परंतु इयं आकाशः
कृश इतीव आख्यायत इत्याख्या भ्रान्तिः कचित । नह्याकाशे
कार्यं काष्ण्यं वास्ति । सा ह्यज्ञानाद्धान्तिः । अतएव निपुणं
परिज्ञाता शाम्यतीलर्थः ॥ ५० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तराधे चतुरशीतितमः
सर्गः ॥ ८४ ॥

देवासथा प्रमुखन्या ह्या स्पृष्ठा च तं शिवम् ।
प्रिक्णा सदक्ने विख्यादेकीभावोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥
परिसन्दारमकैदींघंदोदंण्डमण्डलैब्योंमधनं काननं कुर्वाणा
सा देवी इति प्रागुक्तरीत्या मृत्यति ॥ १ ॥ अज्ञातस्वतत्त्वा
चितिक्विकिरेवासी फिया।सा च तथा मृत्यति स्वभावादेवेत्यर्थः
॥ २ ॥ ३ ॥ अलातस्पन्दश्वकाद्याकारमिव स चित्स्यन्द एव
जगदाकारं घत्ते इत्याह—चित्स्यन्द इति । यथा मनोराज्यकत्पनेय हृदि पुराकारं घत्ते तद्वत् । अथवा जगदेव सा न भेद

काकतालीययोगेन संरम्भवशतः स्वयम् ॥ ও निकटस्थः शिवः स्पृष्टः स मनागश्रमन्तिकम् । वाडवोऽग्निः स्वनाशायावहन्त्येवाम्बुलेखया ॥ ८ स्पृष्टमात्रे शिवे तिस्मिस्ततः परमकारणे। प्रवृत्ता प्रकृति गन्तुं सा शनैस्त्रुतां तथा ॥ अनन्ताकारतां त्यक्त्वा संपन्ना गिरिमात्रिका । ततो नगरमात्रासौ ततश्च द्वमसुन्दरी ॥ १० ततो व्योमसमाकारा शिवस्यवाकृति ततः। सा प्रविष्टा सरिच्छान्तसंरम्भेव महाणेवम् ॥ ११ पक प्याभवद्यो शिवया परिवर्जितः। शिव एव शिवः शान्त आकाशे शमनोऽमितः १२ श्रीराम उवाच। भगविञ्छवसंस्पृष्टा सा शिवा परमेश्वरी।

किमर्थमागता शान्तिमिति मे बृहि तत्त्वतः ॥ १३

इलाह—सैवेति ॥ ४ ॥ अथ शिवेच्छा सा शिवाभिन्नेत्वाह— पवनस्येति । इच्छारिमकायास्तस्याः कथं पूर्णकामशिवामेदस्त-त्राह-यथेति । यथा अनिलखान्तः सन्दो नानिलखरूपान द्न्य इत्यस्मन्द एव। एवं शिवेच्छापि शिवादनन्येखनिच्छैव तहु-ष्ट्रोति भावः॥ ५ ॥ कथममूर्वाया इच्छाया मूर्वजगदाकारस्त-त्राह—अमूर्त इति । आनिष्ठः अनिष्ठाश्रितः सप्टदः ॥ ६ ॥ संरम्भः प्रेमनिर्भरस्तद्वशतो यदा शिवः स्पृष्टस्तदा प्रकृति गन्तुं प्रवृत्तेति व्यवहितेनान्वयः ॥ ७ ॥ अन्तिकं अश्रमिव तिरोधा-यकं खावरणशक्खंशं मनाक् अपनीयेति शेषः । यथा वहन्ला समुद्राम्बुळेखया वाडवोऽग्निः खनाशाय स्पृत्यते तद्रत् ॥८॥ प्रकृति अव्यक्तभावम् ॥ ९ ॥ तत्रादी भौतिकानन्ताकारखागेन भूतमात्रभावमाइ-अनन्तेति । ततः पश्चीकरणव्यागेन सूक्ष्म-भूतात्मना नगरमात्रा । ततो विचित्रयासनामात्रपहवशाखाशा-िलात् हम इव सुन्दरी ॥ १० ॥ अव्याकृतव्योमसमाकारा ॥११॥ आकारी प्राग्वणिते शमनः सर्वसंहर्ता सर्वेष्टतशान्त्या विव एक एवामितोऽभवत् ॥१२॥ किमधे किंनिमित्तम् ॥ १३॥

वसिष्ठ उचाच।

सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी। जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा ॥ १४ स परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पवनाकृतिः । शिवरूपधरः शान्तः शरदाकाशशान्तिमान्॥१५ भ्रमति प्रकृतिस्तावत्संसारे भ्रमरूपिणी। स्पन्दमात्रात्मिका सेच्छा चिच्छक्तिः पारमेश्वरी १६ याबन्न पश्यति शिवं नित्यतृप्तमनामयम्। अजरं परमाद्यन्तवर्जितं वर्जितद्वयम् ॥ 80 संविन्मात्रैकधर्मित्वारकाकतालीययोगतः । संविद्देवी शिवं स्पृष्टा तन्मयीय भवत्यलम् ॥ १८ प्रकृतिः पुरुषं स्पृष्ट्वा प्रकृतित्वं समुज्झति । तदन्तरेकतां गत्वां नदीरूपमिवार्णवे॥ १९ आएगा हि पयोमात्रं सङ्गे अर्णव एव सा। यदा तदा तमेवाश प्राप्य तत्रैष लीयते॥ 20 चितिः शिवेच्छा सा देवं तमेवासाद्य शाम्यति । जन्मस्थानशिलां प्राप्य तीक्ष्णघारा यथायसी २१ पुंसद्दछायां निजच्छायाप्रविष्टस्य दारीरकम् ।

यथाशु प्रविशस्येव प्रकृतिः पुरुषं तथा ॥ **२२** चेतित्वा चित्रिजं भावं पुरुषांख्यं सनातनम्। भूयो भ्रमति संसारे नेह तत्तां प्रयाति हि॥ २३ साधुर्वसति चोराँघे तावद्यावदसौ नैतम्। परिजानाति विशाय न तत्र रमते पुनः॥ રક ब्रैते तावदसद्रपे रमते भ्रमते चितिः। परं पदयति नो यावत्तं रष्ट्रा तन्मयी भवेत्॥ चितिनिर्वाणरूपं यत्प्रकृतिः परमं पद्म् । प्राप्य तत्तामवामोति सरिदन्धाविवान्धिताम् २६ ताबद्विमोहवशतश्चितिराकुलेषु सर्गेषु संसरति जन्मदशासु तासु । यावन्न पर्यति परं तमथाशु रष्ट्रा तत्रेय मज्जति घनं मधुनीय भृद्गी ॥ संप्राप्य कस्त्यजित नाम तदात्मतत्त्वं प्राप्यानुभूय च जहाति रसायनं कः। शाम्यन्ति येन सकलानि निरन्तराणि दुःखानि जन्ममृतिमोहमयानि राम॥२८

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ मो॰ निर्वाणप्रकरणे उ॰ पाषा॰ प्रकृतिपुरुषक्रमयर्णनं नाम पद्माशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ८६

वसिष्ठ उवाच ।

श्रृणु राम कथं तत्र महाकाशे तथा स्थितः।
देहे भ्रान्ति तु तां त्यक्त्या स रुद्रोऽप्युपशाम्यति १
स रुद्रस्तौ जगत्खण्डौ तदा चित्र इवार्पिताः।
निस्पन्दा एव तत्रासन्प्रेक्षमाणे स्थिते मयि॥ २
ततो मुद्रुर्तमात्रेण स रुद्रस्तौ नभोन्तरे।

॥१४॥१५॥ सा पारमेश्वरीच्छा ॥१६ ॥ तथा चेच्छाया इष्टप्रासिपर्यन्तमेव स्पन्दस्तरप्राप्ती तु शान्तिरेवोचितित भावः ॥१०॥
॥१८ ॥ प्रकृतित्वं कार्याकारपरिणामम् ॥१९ ॥ अशोपपसिमाह्—आपगेत्यादि ॥२० ॥ आयसी अयोविकारश्चंरादिसंबन्धिनी भारेव ॥२१ ॥ वनादिच्छायां प्रविष्ठस्य पुंसो
निजच्छाया यथा तच्छरीरकं प्रविशति तद्वत् ॥२२ ॥ तर्हि
बनाद्वहिर्निर्गमने पुनश्छायेव ब्रह्मप्राप्तस्यापि पुनः संस्रतिः
स्यासत्राह—चेतित्वेति । पुनरागमने निमित्तस्याशानस्य बाधादिति भावः ॥२३ ॥ पुनः संसारेच्छायां हि पुनरागमः
संभाव्येत तत्त्वषोधे सव दुर्लभेत्याह—साधुरिति । चोरमेव
भ्रान्त्या यावत्त्वहितं परिजानाति । चोरोयं ममाहित इति विझाय तु तत्र न रमते ॥२४ ॥ २५ ॥ यथस्माश्विति निर्वाणप्रशान्तं रूपमेव परमं निरतिशयानन्दं पदं तत्तस्यात्प्रकृतिरङ्गचिद्षि झानेन तत्प्राप्य तत्तामबाप्रोति ॥२६ ॥ उक्तमेवार्थं
बिवृत्त्योपसंहरति—तावदिति द्वान्याम् । स्पष्टम् ॥२०॥२०॥

खण्डौ विलोकयामास दशार्केणेव रोदसी ॥ ३ ततो निमेषमात्रेण घोणाश्वासेन खण्डकौ । तौ समानीय चिश्लेप पातालान्तरिवानने ॥ ४ अतिष्ठदेक प्वासावेकं खे खिमवाखिले । भुक्तब्रह्माण्डखण्डोग्रमण्डमण्डकमण्डलः ॥ ५

इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

> ब्रह्माण्डलपेरम्नासिरुद्रदेहस्य सौक्ष्म्यतः । चिदाकाशे तिरोभावः शिलायामम् वर्ण्यते ॥ १ ॥ तस्प्रदेशाम्तरेष्वन्यशिलानृक्षतृणादिषु । सर्वत्र सर्गवैषिण्यदर्शनं ब्रह्मणीर्यते ॥ २ ॥

तत्रादी रहदेहोपसंहारकमं श्रावयति—शृष्वित । यथा इल्पर्थं कथंशब्दः।स प्राग्विणतप्रभावः॥१॥ती जगत्खण्डी कथ्वीधस्तन-मह्माण्डखर्परे चेति त्रयोऽपि चित्रे अर्पिता लिखिता इव निस्पन्दा एव तत्राकाशे तदा आसन्॥२॥अर्केण सूर्योत्मकया दशा रोदसी यावाभूमी इव । कोणेनेति पाठे कटाक्षेण रोदसी यावाभूमीभूती ती जगत्खण्डाविति व्याख्येयम् ॥ ३ ॥ घोणा नासिका तदुप-लक्षितसुखाकुष्टेन थासेन ॥ ४ ॥ सुक्ते मझाण्डखण्डलक्षणे उमे क्षीरमण्डं च नण्डकं मण्डलं चेत्येते द्वे येन । जलायाव-

१ नतमिति मूलस्यायमर्थः.

ततो मुहूर्तमात्रण लघुः सोऽभ्रमियाभवत्। ततो भषद्यष्टिसमस्ततः प्रादेशमात्रकः॥ ततः काचकणाकारो मया दृष्टः स तादृशः। ततः सोऽणूभवन्दशे मया खादिव्यद्दष्टिना ॥ परमाणुरधो भूत्वा ततस्त्वन्तर्दिमाययौ। इत्यसौ शममायातः शरदम्बुदखण्डवत् ॥ ताह्योऽपि महारम्भः पुरः पश्यत एव मे । इति सावरणे तेन ते ब्रह्माण्डकवाटके ॥ विनिगीर्णे भ्रधार्तेन हरिणेनेच पर्णके। अथाभूक्रिर्मलं ब्योम शान्तं ब्रह्मेव केवलम् ॥ १० अनादिमध्यपर्यन्तं संविदाकाशमात्रकम्। इत्यहं दृष्टवांस्तत्र कल्पान्तमुरुविभ्रमम्॥ ११ द्र्पणप्रतिबिम्बामं शिलाशकलकोटरे। अथ तामङ्गनां स्मृत्वा तां शिलां तैय विभ्रमम् १२ राजद्वारगतो प्राम्य इवाहं विसायं गतः। तामालोकितवान्भूयः कलधौतशिलामहम्॥ १३ यावत्सर्वत्र सन्त्यत्र सर्गाः काल्या इवाङ्गके। बद्धिनेत्रेण रहयन्ते दिव्याक्ष्णा वा न ते यथा ॥१४ सर्वेत्र सर्वेदा सर्वे यदस्येव तदा तथा। दुरघत्रेक्ष्यते मांसदशा यद्यव सा शिला॥ १५ रइयते तच्छिलैयेका न तु सर्गादि किंचन। सावस्थिता शिलैवेकरूपा निविडमण्डला॥ १६ कलधौतमयी स्फारा संध्याजलदसुन्दरी। ततोऽहं विस्मयाविष्टः प्रविचारितवान्पुनः ॥ १७ शिलायामपरं भागं तथेव परया दशा । यावत्तमपि पश्यामि जगदारम्भमन्थरम्॥ १८

रणलक्षणक्षीरमण्डसहिते वा ब्रह्माण्डसण्डमण्डकमण्डले द्वे व्या-ख्येये । क्षीरमण्डेन सह हि मण्डकमण्डलं तद्भुजां रोचते ॥५॥ अभ्रमिव छपुरभवत् । यष्टिर्दण्डस्तत्समः ॥ ६ ॥ काच-कणः सुक्ष्मं काचशकलम् । खादाकाशादप्यण्भवन् ॥ ७ ॥ ॥ ८॥ ९॥ अल्पे पर्णे पर्णके । निर्मेलं दश्यकालुप्यरहितम् ॥ १०॥ पाषाणोदरसंसारकथासमाप्तिं सूचयञ्चपसंहरति-इस्प्रहमिति । कल्पान्तं महाप्रलयम् ॥ ११ ॥ तामङ्गनां विद्याधरीम् ॥ १२ ॥ प्रामे भवो प्राम्यः कदाप्यदृष्टनगरो जन इव । तां शिलां पूर्वदृष्टप्रदेशात् प्रदेशान्तरेष्वप्यालोकित-वान् ॥ १३ ॥ यावदिति साकल्ये यत इत्यर्थं वा। प्राग्दष्टे काल्या अन्नके शरीरे इव सर्वत्र सर्गाः सन्ति । 'कल्पा इव' इति पाठे कल्पाः सर्गा इवेति मिण्यात्मसूचक इनकाव्दो व्याख्येयः । ते सर्गाः ॥ १४॥ यदि सा शिला मांसद्शेव दूरस्थवस्तुवदा-पाततः प्रेक्ष्यते तत्तर्हि एका शिलैवेखन्वयः ॥ १५ ॥ ॥ १६॥ संध्याजलदस्य काश्वनवर्णप्रसिद्धेः स इव सुन्दरी ॥ १७ ॥ जगदारमभैर्मन्थरं संक्षिष्टम्। 'अम्बरम्' इति पाठे तु

तथैव सुषिराकार इघ नानार्थसुन्दरम् । पुनरन्यं तथैवाहं प्रदेशं परिदृष्टवान् ॥ १९ सगेसंरम्भवछितं यावत्तमपि ताद्दशम् । यं यं प्रदेशं परयामि शिलायास्तत्रतत्र वै ॥ 20 जगत्पश्यामि विमलमादर्श इव विम्वितम्। मयातिकौतुकेनाथ सर्वास्तस्य गिरेः शिलाः ॥ २१ अन्विष्टा भूमिभागाश्च तृणगुल्मादयस्तथा । यावत्सर्वत्र तत्तादग्जगदस्ति यथास्थितम् ॥ २२ बुद्ध्येव दृश्यते नाक्ष्णा परया विविधाकृति। कचित्प्रथमसर्गात्म जायमानप्रजापति ॥ २३ कल्प्यमानर्क्षचन्द्रार्कदिनरात्र्यृतुवत्सरम् । कचित्कचिन्महीपीठसंपन्नजनमण्डलम् ॥ રક किर्नित्किचिदखातोप्रचतुःसागरखातकम् । कचित्किचिदसंजातसुरसंजातदानवम् ॥ २५ कचित्किचित्कृतयुगाचारसज्जनभूतकम् । कचित्किचित्कलियुगाचारदुर्जनभूतकम् ॥ રદ્ कचित्किचित्पुरव्यूहदेत्यसंगरदुस्तरम् ॥ २७ क्रचित्किचिन्महाद्यैलजालनिर्विवरावनि । क्रचिर्त्किचिदसंपन्नसर्गमेकाम्बुजोद्भवम् ॥ २८ क्वचिर्त्किचिज्जरामृत्यृन्मुक्तभूतलमानवम् । क्रचिर्तिकचिदसंजातचन्द्रशून्यशिरःशिवम्॥ २९ अनिर्माधितदुग्धान्धिमृत्युमत्सुरपूरितम् । असंजातामृताश्वेभवैद्यगोकमलाविषम्॥ ३० शुक्रामरमहाविद्यानाशनोत्कसुरवजम् । कचित्किचिच गर्भाङ्गकर्तनोत्कसुरेश्वरम्॥ 38 अपरिम्लानधर्मत्वात्स्वप्रकाशाखिलव्रजम् ।

जगतामारम्भा यत्र तथाविधमम्बरं यस्मिन् ॥ १८ ॥ तथा पूर्व-रष्टप्रदेशवदेव सुपिराकारे नानार्थसुन्दरम् । इवशब्दो मिथ्याल-द्योतकः ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ परया आधिभौतिक-देहभावभ्रान्तिश्च्यया सर्वसाक्ष्यहंभाववुध्येव । तत्रतत्र दृष्टा-न्विशेषानप्रपद्मयति किनिदिखादिना । प्रायशो बहुबीह्यः सर्वत्र । जायमानः प्रजापतिर्थस्मिन् । जायमानप्रजापतिना कल्प्यमानक्षेत्यायुत्तरश्लोकार्धेन सह तत्पुरुषघटितबहुवीहिवी ॥ २३ ॥ महीपीठे संपन्नं जनमण्डलं यत्र ॥ २४ ॥ सगरपुत्रै-रद्याप्यखातमुत्रं चतुःसागरखातकं यत्र । अजातसुरं च तत्तं-जातदानवं च ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ एक अम्बुजोद्भवो द्वहिण एव यस्मिन् ॥ २८ ॥ असंजातचन्द्रलाद्भूषणशून्य-शिराः शिवो यस्मिन् ॥ २९ ॥ वैद्यो धन्वन्तरिः । गावः का-मधेनवः । कमला लक्ष्मीः । विषं कालकूटम् ॥ ३० ॥ शुक्रेण तपसा साध्यमानाया अमरमहाविद्यायाः मृतसंजीवनाख्याया-स्तपोविद्याचरणेन नाशने उत्क उत्किष्ठतमनाः सुरव्रजो यत्र । किचित्र भाविखशत्रुविनाशमुद्धिय दितेष्दरं प्रविश्य तद्गर्भ-स्याक्रानां कर्तने उत्कः सुरेश्वर इन्द्रो यत्र ॥ ३१ ॥ पूर्वस्मात्प्र-

१ शिलान्तर्गतं ब्रह्मवृत्तं लयपर्यन्तं तक्षिलासं चेलार्थः.

क्रचित्किचिश्र पूर्वान्यसंनिवेशक्रमस्थिति॥ 32 अपूर्ववेदशास्त्रार्थसमाचारविचारणम् । क्रचित्किचित्र कल्पान्तसंक्षोभिमव संस्थितम् ३३ कचिन्किचिश्च दैत्यायित्रजुण्ठितसुराखयम्। क्रचित्किचित्सुरोद्यानगायद्गन्धवेकित्ररम् ॥ રેઇ क्षचित्किचित्समारम्थगीर्वाणासुरसीहृदम्। भूतभव्यभविष्यत्स्थजगदाडम्यरं मया ॥ 34 तदानुभृतं वपुषि महाविश्वगणात्मनि । एकत्र कल्पविश्वच्यपुष्करावर्तमन्थरम्॥ ३६ एकत्र सीम्यसकलभूतसंततिसंस्थितम्। एकत्र समनुक्षुन्धसुरासुरनरेश्वरम्॥ ३७ एकत्रासंभवद्भानुनित्याभिन्नतमोघनम्। एकत्रासंभवद्वान्तं कान्तं ज्वास्रोदरोपमम्॥ ३८ एकत्र नलिनीनालनिलीनमधुकेटभम्। एकत्र पद्ममञ्जूपासुप्तवालनवाह्नजम् ॥ 36 एकत्रैकार्णवोद्यवृक्षविधान्तमाधवम् । एकत्र कल्परजनीनिःशून्यतिमिराकुलम् ॥ शिलाजठरनिस्पन्दं ब्योमैय वितताकृति। सुषुप्तजठराकारमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥ ४१ अप्रतक्र्यमधिक्षयं सुषुप्तमिव सर्वतः। एकत्र पक्षविक्षुय्धशैलकाकाकुलाम्बरम् ॥ ઇર एकत्र वज्रनिष्पेषद्रवद्ध्धरभासुरम्। एकत्रोहत्तमत्ताब्धिहियमाणधराचलम् ॥ કર एकत्र पुरवृत्रान्धवलिसंगरसंकुलम्। एकत्र मत्तपातालगजकम्पियसुन्धरम्॥ કક एकत्र शेपशिरसः कल्पान्तलुठितावनि । कचिद्रहेपेन रामेण हतरावणराश्वसम्॥ છહ रक्षसा राघणेनैव कचिद्विहतराघवम्।

सिद्धसंनिवेशकमादन्यसंनिवेशकमा पदार्थस्थितिर्थस्मन् ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अमृतमन्थनार्थं समार्व्यं गीवाणानामसुराणां च परस्परसोहृदं यत्र ॥ ३५ ॥ महाविश्वगणात्मिन मायाश्वलिद्वपुषि तदा मया एवं विचित्रजगदाडम्बरमनुभूतमिल्यन्यः । तमेव जगदाडम्बरं पुनः प्रपन्नयति—एकत्रेत्यादिना ॥ ३६ ॥ ३० ॥ निल्यमिन्नेन अविनाशितेन तमसा घनम् ॥ ३८ ॥ भगत्रत्रासिनिलिनीनाले निलीनी मधुकेटभी यत्र ॥ ३८ ॥ ५० ॥ भूम्याद्यनुत्पत्तेन्योममात्रोत्पत्तेव्योमैव एकत्रेन्यनुष्यते ॥ ४० ॥ पद्यन्यते ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पुराणां त्रिपुराणां वृत्रस्य अन्यकस्य बलेश्व संगरेः संकुलम् । मत्तैः पानतालगौदिग्गजैः कम्पिनी वसुन्थरा यत्र ॥ ४४ ॥ अल्पेन

१ अत्र समासैकदेशविष्णुराब्दे तृतीयान्तविशेषणद्यान्वये

भूस्थपादेन देवाद्विशिरस्थशिरसा परम्॥ 86 पद्याम्यम्बरमाकान्तं क्रचिद्वै कालनेमिना। क्रिचापसुरैर्नित्यं दानवैरेव पालितम् ॥ 8/9 कविश्व भ्रष्टदनुजैरमरेरेव पालितम्। जिष्णुयुक्तेन गुप्तेन विष्णुपाण्डवकौरवैः॥ 82 कचिद्रारतयुद्धेन निहताक्षौहिणीगणम्। श्रीराम उवाच। किमहं भगवन्पूर्वमभवं कथयेति मे ॥ કર अभवं चेदनेनैव संनिवेशेन तत्कथम्। वसिष्ठ उवाच । सर्वे एव विवर्तन्ते राम भावाः पुनःपुनः॥ ५० पूर्वमाणा यथा माषाः ऋमेणान्येन तेन चा । सर्वेक्रमसमाः केचित्तयैवान्येन घा मिथः॥ ५१ स्फुरन्त्यर्थसमा भावाः केचिद्ध्धितरङ्गवत् । पुनस्त्वं पुनरेवाहं पुनः पुनरिमे जनाः॥ ५२ न कदाचन नैवान्ये संभवन्यखिलं परे। त पवान्येऽथवाम्भोधौ तरङ्गा इव निर्णयः॥ 43 यहम जायते तहज्ञतानां भ्रमतां भवेत्। आयान्ति यान्त्यनन्तानि भृतानीह् भवद्भग्रैः॥ ५४ तान्येवान्यानि चान्यानि समानि विषमाणि च। आवृत्तिमन्ति तान्येव तथैवान्यानि चामितः॥५५ विद्धि सीकरजालानि भूतानि जगदम्बुधेः। विस्वन्य्वयःकर्मविद्याविज्ञानचेष्टितैः ॥ ५६ तैरेघ केचिज्जायन्ते भूयोभूयः शरीरिणः। अर्धस्तैः सदशाः केचित्केचित्पादेन तैः समाः ५७ तज्जीवास्तैर्विसद्दशा भवन्त्यन्यशरीरिणः । सर्वैरेभिः समाः केचित्कालेनैव विलक्षणाः। कालेन सददााः केचिदनेन च विलक्षणाः ॥ 46

वालेनैव रामेण ॥ ४५ ॥ विहतः सीताहरणेन विधतो राघवो यत्र ॥ ४६ ॥ अपसुरैरपसारितदेवैः ॥ ४७ ॥ जिष्णुर्र्णुनस्तद्युक्तेन विष्णुना कृष्णेन । गुप्तेन पालितस्वजनेन ॥ ४८ ॥ किच्दल्पेन रामेणेखादि श्रुला साक्ष्यों रामः पृ-च्छिति—किमहमिति ॥ ४९ ॥ अनेन इदानीं दर्यमानेनाः वयवाकृतिसंनिवेशेनाभवं किंवा अन्यादशेनेखर्थः ॥ ५० ॥ पूर्वमाणाः कुम्भकुमूलादौ पुनःपुनस्तेनान्येन च कमेण संनिवेशेन यथा विवर्तन्ते तद्वदिखर्थः । तया प्राक्तनयाकृत्या अन्येन वा आकारेण ॥ ५९ ॥ ५२ ॥ तत्त्वद्दशा लाह—न कदाचनेति । मायादशा त एव जायन्ते अन्ये वा जायन्ते इत्यन्ति एवेलाह—त एवेति । निर्णयो यद्वज जायते इत्यन्त्यः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ६दं च प्राक्षुमुक्षुत्ववहारप्रकर्णे उक्तमेवेति स्मारयंस्वदेवाह—वित्तिति ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ जीवैक्ये सद्दशान्येव शरीराणि भवन्तीत्यस्यनियम इत्याह—

छान्दसः समासः.

कालेनाकुलचेष्टयान्य इव ते गच्छन्त्यधोर्ध्व पुन-भृताम्बृनि वहन्ति संस्तिमये तान्यम्बुधौ चञ्चले **र्देहालेखनखेदितान्यगणितान्य**न्यानि चाम्यान्यलम् [।] चक्रावृत्तिमयानि संकल<mark>येतुं राक्रोति कस्तान्यलम्</mark> इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये देव मोव निर्वाणव उव पाषाव जगवन्यायलवर्णनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥८६॥

सप्ताजीतितमः सर्गः ८७

वसिष्ठ उवाच। तत्रिदाकाशवपुर्व्याप्यनन्तो निरामयः। दसावधानो वपुषि तदा पश्याम्यहं कचित्॥ यायदन्तर्गतः सर्गः संस्थितोऽङ्करितोपमः। कुसुलस्येव बीजस्य सिकस्येवाङ्करो हृदि॥ अर्धमुच्छन पवान्तः सेकाद्वीजे यथाङ्करः। आकारवत्यनाकारे चित्रवाचित्रवे तथा जगत्॥ ३ यथोन्मिषति दृइयश्रीः सुषुप्ताद्वोधमेयुषः। जात्रहा बिगते स्वप्ने चिन्मात्रस्य स्वचेतनात् ॥ तथैवात्मनि सर्गादावनुभृतस्त्ररूपिणि । **इदि सर्गदियो नान्यरूप** आकाशरूपतः॥ ų श्रीराम उवाच।

आकाशरूप आकाशे परमाकाश कथ्यताम्।

तज्जीवा इति । एवं जीवमेदे विसदशान्येव तानीत्यप्यनियम इत्याशयेनाइ—सर्वेरिति । अनेन शरीरेण ॥ ५८ ॥ यस्मा-त्कारणासे जीवा रागद्वेषभोगलांपट्यादिदोषाकुकया विचित्र-धर्माधर्मचेष्ट्या कालेन विचित्रनानादेहधारणादन्येऽन्ये इव भूला अधोलोकेष्यवै खर्गादिषु च पुनःपुनर्गच्छन्ति । अधोन ध्वीमिति यळोपासिद्धेः संघिराषेः। तस्मात्कारणामध्ये संस्रति-मये अम्बधी चकावर्तप्रायाणि यानि भनाम्बनि वहन्ति तानि सदशानि विसदशानीति वा तान्येवान्यानीति वा अलं सम्यक् संकडियतं निर्धारियतं कः पुरुषः शकोतीलयः ॥ ५९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणताःपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

> वसिष्ठेन स्वदेहेऽत्र वर्ण्यते विश्वकरूपनम्। सासीय हि स्वयंभूत्वं तन्वक्षाद्यस्रवसमात्॥ १ ॥

कलभौतशिलावृक्षतृणगुल्मलतादि विव मया खशरीरावयवे-ष्यप्यवहितदशा सगी दष्टा इत्याह—तत इति। ततः शिलातु-णगुल्मादिषु विचित्रसर्गदर्शनानन्तरम् ॥ १ ॥ अथम क्रुरितोप-मस्तदाह-कुमूलस्येति । कुमूलस्य हृदि वृष्टिसिक्तस्य यीज-स्येव ॥ २ ॥ आकारवृति मूर्ते अनाकारे अमूर्ते चित्त्वाचित्त्वे चेतनाचेतने सर्ववस्तुनि अन्तःसेकाद्र्ध्वमुच्छूने यीजेऽद्वर इव जगदस्तीति शेषः ॥ ३ ॥ स ख्या समाधौ कथमनुभूतस्त-त्राह-यथेति । यथा सुषुप्तात्सकाशाद्वीधं सप्तदर्शनमेयुषि नमात्रस्य पुंसः स्वचेतनात्स्वाप्रदृश्यश्रीरुन्मिषति । विगते वा खप्ने बोधमेयुषो जामरप्रपश्च उन्मिषति तथैवेखप्रेऽन्वयः ॥४॥ भूयो निपुणबोधाय कथं सर्गः प्रवर्तते॥ Ę वसिष्ठ उवाच। श्रुणु राम यथापूर्वे स्वयंभूत्वं मया तदा । अनुभूतमसत्सद्वदिदं स्वप्नपुरोपमम्॥ 9 तमालोका महाकल्पसंभ्रमं व्योमरूपिणा। भागेऽन्यत्र शरीरस्य संविद्धनमेषिता मया॥ यदेव सामला संवितिकचिद्रनमेपिता स्थिता। तरैवाहं क्रचित्तत्र पश्याम्याकाशतामिव॥ गतं स्वभावं चिद्योम यथा त्वं राम निद्रया । जाब्रह्मा स्वप्नलोकं वा विशनवेत्सि समं घनम् १० दिख्यात्राकाशमेवादौ ततोऽसीत्येव वेदनम्। तहनं कथ्यते बुद्धिः सा घना मन उच्यते ॥

॥ ५ ॥ हदि सर्गोदय इति लया हत्पदेन हृदयाकाश उक्तः, आकाशरूपत इति च चिदाकाश इति मया लदमिप्रायोऽनगत इति संबोधनेन सूचयन् रामः स्फुटपरिज्ञानाय विस्तरात्पुनः कथयेति प्रार्थयते-अाकाशेति। परमाकाश हृदयाकाशरूप हे वसिष्ठ, चिदाकाशहपे लिय कथं सर्गः प्रवर्तते तत्पुनः नध्य-तामिलार्थः ॥ ६ ॥ पृष्टमर्थं विस्तराद्वक्तं प्रतिजानीते--- १८-ण्विति । स्वयंभूत्वं शरीरे सर्वजगत्सर्गकल्पात्परमेष्टित्वम् ॥७॥ तं प्राग्विस्तराद्वर्णितं कलधीतशिलादौ महाकल्पसंत्रममालोक्य चिद्योमरूपिणा मया शरीरस्यान्यत्र भागे स्थिता संवित सर्ग-दर्शनसंकल्पेन कौतुकादुन्मेषितेत्वर्थः ॥ ८ ॥ तत्रादौ 'त-साद्वा एतसादात्मन आकाशः संभूतः' इतिश्रुत्युक्तकमोपलक्ष-णमाकाशकल्पनमाह-यदैवेति । 'यथैव' इति पाठे तथैवेति पाठ्यम् ॥ ९ ॥ इयं चाकाशता न चिद्धनस्यान्तः शून्यभाव-प्राप्तिलक्षणसीक्ष्मयाधिक्यं किंतु चित्सीक्ष्म्यापेक्षया जाड्याधि-क्यात्स्थील्यमेवेल्याशयेन दृष्टान्तेन संभावयति-गतमिति । हे राम, यथा त्वं निद्रया प्राग्वणितस्वप्रजाप्रह्लोकं वा स्वप्नं खप्रलोकं वा विशन् खारमन एव समं घनं तदाधारखभावं वेत्सि तद्वत्संभावयेत्यर्थः ॥ १० ॥ आकाशकल्पनयैव तद्गोचर्-चित्ताबन्तःकरणचतुष्टयसिद्धिभाह-दिब्धात्रेति । दिशो मि-मीते खबलनानुकूलतया खात्मनि पर्यालोचयतीति दिब्बार्त्र तथाविधमाक।शमेवादौ चेतनावित्तं भवति । तत आकाशमह-मस्मीत्येव वेदनं सोऽहंकारः । तदेव घनमाकाशमेवेखवधारणा.. रपूर्वभावविस्मरणाच बुद्धिः कथ्यते । सेव संकल्पविकल्पकाम-

तद्वेत्ति शब्दतन्मात्रं तन्मात्राणीतराण्यथ । पञ्चन्द्रियाणि तत्स्थौल्यादितीन्द्रियगणोदयः ॥ १२ सुषुप्ताद्विशतः स्वप्नं जगदृश्यघनोदयम् । यथा तथेव सर्गादी दुःखं भाति निमेषतः॥ १३ तुस्यकालमनन्तेऽस्मिन्ददयजालावभासने । कथयन्ति क्रमं केचित्केचित्र कथयन्ति च॥ १४ परमाणुकणे कान्ते संपन्नमनुभूतवान्। अहं चेतनमात्मानं वस्तुतोऽमलमेव खम्॥ १५ यथा स्वभावतो ब्योम्नि चलत्येवानिशं महत्। तथा स्वभावात्सर्वत्र पश्यत्येच चपुस्त्वित ॥ १६ याद्यां चेतितं रूपं शक्तया परमया तया। तच्छक्रोत्यन्यथा कर्तुं नैपा यत्त्वन भूयसा ॥ १७ ततः पद्याम्यहं यावत्संपन्नोऽप्यणुरूपकः । चिरवाश्चेतस्तदेवाद्य तथाभूतोस्मि संस्थितः ॥ १८ ततोऽहं बुद्धवान्नृपं तनु तेजःकणाष्ट्रति । तदेव भावयन्पश्चाद्रतोऽहं स्थूलतामिव ॥ १९ प्रेश्ने तावदहं किंचिदिति बोधाल्लघोस्ततः। मनागालोकनायैव संप्रवृत्तोऽनुभृतवान् ॥ २० यन्नाम तत्र तर्तिकवित्तस्येहाद्य रघूद्रह । श्रुण नामानि मुख्यानि किएतानि भवाहरौः २१ द्रष्टुं प्रवृत्तो रन्ध्रेण येन तद्मश्चरुच्यते । यश्च पश्यामि तहुश्यं दर्शनं तु फलं ततः॥ २२

विचिकित्सादिकल्पनघना मन उच्चत इत्यर्थः ॥ ११ ॥ तदेवं विषयान्करपयिला तब्राहकानीन्द्रियाण्यपि कल्पयतीत्याह--त-दिति ॥१२॥ तद्वशादेव प्राङ्गिर्दुःखस्यात्मनः स्वप्न इव व्यव-हारदु:खावाप्तिरित्याह- सुपुप्तादिति ॥१३॥ ननु खप्रे नाका-शादिक्रमेण सर्गः किंतु तुल्यकालमेव सहसा सर्वजगद्दीनमिति वैषम्यं तत्राह—तुल्यकालेति । 'स ऐक्षत लोकान्नु सजा इति स इमाँहोकानस्जत । स तपस्तस्या इदं सर्वमस्जत' इत्यादि-अतिषु तुल्यकालमपि सर्गश्रवणात् क्षणोदरेऽपि कालदैर्ध्यकल्प-**नेन कमो**पपलेरिति भावः ॥ १४ ॥ क्षणोदरे कारुदैर्ध्यमिव परमाणुदरेऽपि देशदैर्ध्यकल्पनया तत्र ब्रह्माण्डात्मकं चेतनमा-रमानमहमेव कल्पनया दष्टवानित्याह-परमाण्विति ॥ १५॥ मरुतश्रकनिमव मनसः शरीरादिकल्पनं खभाव इत्याह-यथेति ॥ १६ ॥ तथा प्राथमिकमनःकल्पनाशक्तया एषा शक्तिः स्वयमप्यन्यथा कर्तुं न शकोतीत्युत्तरकल्पनासु सैव स्थिरा निय-तिरित्यर्थः ॥ १७ ॥ अत एवाहमपरिच्छिन्नोऽपि तस्कृतपरि-च्छेदकल्पनया अणुरूपकः परिच्छित्रः संपन्न इत्याह-तत इति ॥ १८ ॥ तनु सूक्ष्मं लिङ्गशरीरं चित्रप्रतिबिम्बव्यास्या तेजःकणा-कृति । स्थुलतां स्थूलदेहतामिव ॥१९॥ तत्र चक्षुरादिद्वारकल्प-नया रुपादिद्रपृता खस्य संपन्नेलाह-नेत्रेक्षे इत्यादिनां ॥२०॥ ॥ २१ ॥ तद्दुर्य रूपम् ॥ २२ ॥ तदनु निष्पादिनी नान्तरी- यदा पर्यामि कालोऽसौ यथा पर्यामि स कमः। प्रीढा नियतिरित्यस्य यत्र पश्यामि तन्नभः॥ स्थितोऽस्मि यत्र देशोऽसावित्यचैषा प्रकल्पना । तदा त्वहं चिदुन्मेषमात्रात्तन्मात्रकारणम्॥ २४ पश्यामीति ततस्तत्र मनाग्बोधो ममोदभूत्। ततो रन्ध्रह्मयेनाहमपश्यं यत्तद्व्यखम्॥ રષ याभ्यामपद्यं रन्ध्राभ्यां त इमे लोचने स्थिते। ततः किंचिच्छुणोमीति संविदित्युदिता मम ॥ २६ ततः किंचिन्मनाख्यात्रं झेकारं श्रुतवानहम् । प्रध्मातस्येव शह्नस्य शब्दं व्योद्धः स्वभावजम् २७ याभ्यामहमधाश्रौषं त इमे धवणवणे। प्रदेशाभ्यां विचरता मरुता विततस्वनम् ॥ २८ स्पर्शसंवेदनं किंचिदहमत्रानुभूतयान्। येन नाम प्रदेशेन तेन सा त्वक्क कथ्यते॥ २९ येन स्पृष्टमिवाङ्गं तत्तदाहमनुभूतवान्। सत्संवेदनमात्रात्मा सोऽयं वायुरिति स्पृतः ॥३० स्पर्शनेन्द्रियतन्म।त्रमिति वेदिनि संस्थितम्। आस्वादसंविद्याभूनमे तदास्वाद्यरसेन्द्रियम् ॥ ३१ प्राणान्मे ब्राणतन्मात्रमुदितं व्योमरूपिणः। इत्थं न किंचित्संपन्नं सर्व संपन्नमत्र मे ॥ 32 एवमिन्द्रियतन्मात्रजालं चेत्तत्र संस्थितः। यावत्तावद्विदः पञ्च बलादेव ममोदिताः॥ 33

यकी देशकालादिनियतिरपि संपन्नेत्याह—यदेति ॥ २३ ॥ अद्य कल्पनादार्व्यकाले । तदा तर्हि त्वं कीटकत्राह-तदेति । इदानींतनदृष्ट्या सर्वे चिदुन्मेष एवेति तन्मात्रकारणमहमि-त्यर्थः ॥ २४ ॥ देहे चक्षुरादिरन्ध्रकल्पनादिदर्शनादिकौतुका-त्तदाभूदित्याह-परयामीति ॥ २५ ॥ २६ ॥ सहैव विषय-कल्पनामाह्—तत इति ॥ २० ॥ याभ्यां प्रदेशाभ्यां वितत-खनमश्रीषं ते इमे । प्रगृह्यत्वे संघिरार्षः । श्रवणवणे कर्ण-च्छिद्रे । विचरता मरतेति श्रोत्रादिव्यापारस्यापि प्राणाधीनल-द्योतनार्थम् ॥ २८ ॥ एवं लकल्पनेत्याह् —सर्शेति ॥ २९ ॥ सहैव तद्विषयकल्पनामाह-येनेति । वायुप्रहणं लग्विषयमा-त्रोपलक्षणम् । सत्संवेदनं सत्यसंकल्पस्तन्मात्रात्मा ॥ ३० ॥ इति उक्तरीला वेदिनि मथि सर्शनेन्द्रियतन्मात्रं संस्थितं संपन्नमिति पूर्वानुवादः । रसनेन्द्रियकल्पनामाह्-आखादेति । तत् आखाद्यरसभेदसहितं रसनेन्द्रियं संस्थितमित्यनुकृष्यते ॥ ३१ ॥ प्राणात् आघ्राणसंकस्पाकृष्टप्राणमेदादपानात् । घ्राणं च तद्विषयगन्धतन्मात्रा च तयोः समाहारो प्राणतन्मात्रम् । सेयं देहेन्द्रियविषयसंपत्तिः कल्पनामात्रलान्मिध्यैवेति दर्शय-वृपसंहरति—इत्थमिति ॥ ३२ ॥ ततो बलादेव पश्चभोगसं-विद उदिता इत्याह—एवमिति । विदः शब्दादिप्रथास्रक्षणा भोगसंविदो मिश्यालादेव अनाकारा आन्तिमात्रेण तथा भात-

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धमात्रशरीरिकाः। अनाकारास्तथा भातस्वरूपिण्यो भ्रमात्मिकाः ३४ एवंद्रपमहं जालं भाषयन्यत्तदास्थितः। तदहंकार इत्यद्य कथ्यते त्वादृशैर्जनैः॥ 34 एष एव घनीभूतो बुद्धिरित्यभिधीयते। साथ बुद्धिर्घनीभूता मन इत्यभिघीयते॥ 36 अन्तःकरणरूपत्वमेवमत्राहमास्थितः। आतिवाहिकदेहात्मा चिन्मयव्योमरूपवान्॥ 30 पवनाद्यप्यहं शून्यः केवलाकाशमात्रकः । सर्वेषामेव भावानां शून्याकृतिररोधकः॥ ३८ अधैषंभावनाचाहं यदा तत्र चिरं स्थितः। तदाहं देहवान्दष्ट इति मे प्रत्ययोऽभवत्॥ 39 तेनाहंप्रत्ययेनाथ शब्दं कर्तुं प्रवृत्तवान्। शून्य एव यथा सुप्तः स्वप्नोङ्गीननरो रवम् ॥ 80 अध पूर्व कृतः शब्दो बालेनेव तदोमिति। ततः स एष ॐकार इति नीतः पुनः प्रथाम् ॥ ४१ ततः स्वप्ननरेणेव यस्किचिद्रदितं मया। तदेतद्विद्धि वाचं त्यं पश्चान्नीतां प्रथामिह ॥ ધર ब्रह्मेंच सोऽस्मि संपन्नः सृष्टेः कर्ता जगहुरुः । ततो मनोमयेनैव कल्पिताः सृष्टयो मया ॥ ८३ प्यमिस समुत्पन्नो नतु जातोसि किंचन। रप्रवानस्मि ब्रह्माण्डं ब्रह्माण्डान्तं न किंचन ॥ ४४ एवं जगति संपन्ने ममैतस्मिन्मनोमये । न किंचित्तत्र संपन्नं तच्छून्यं व्योम केवलम् ॥ ४५ इत्थं संशुन्धमेवेदं सर्व वेदनमात्रकम्।

खरूपिण्यः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भावयन् अभिमन्यमानः । तेनै-बाहंकारकल्पनाभूदित्याह-तदिति ॥ ३५ ॥ घनीभूतो हढा-ध्यवसायेन बह्लीभूतः । मनोऽपि पुनःपुनर्विषयानस्मरिकतं संपन्नमिखपि बोध्यम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यतोऽहं ग्रन्याकृतिरत एव सर्वेषामेव करूयमानभावानामरोधकः अनिरोधकोऽनिवा-रकश्च ॥ ३८ ॥ तत्र तस्मिन्पूर्वकित्पते ब्रह्मात्मकदेहे चिरं यदा स्थितस्तदा तदन्तः अहं खेनैव चतुर्मुखदेहवान्दष्टः ॥३९॥ तेन तादशदेहप्रव्ययेन खप्ने उड्डीनो नभित संचरमरो यथा रवं करोति तथा शब्दं कर्तुं प्रवृत्तवान् ॥ ४० ॥ तत्र विशेषामि-छापे विनिगमकाभावात्सर्वसाधारणार्थकः शब्दसमध्यातमा ॐकार एव प्रथममुचारित इलाइ-अयेति ॥ ४१ ॥ य-स्किनिषाहतिगायत्रीवेदादि प्रागभ्यस्तं गदितम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा चतुर्भुख एव । मनोमयेनैव चतुर्भुखदेहेन मया ॥ ४३ ॥ स्वीयस्थूलदेहभूतं ब्रह्माण्डं सावरणम् । ब्रह्माण्डान्तं ब्रह्माण्डय-हिर्भूतम् ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अयमेव न्यायः सर्वसर्गेषु बोध्य इलाशयेनाह—इत्थमिति ॥ ४६॥ तद्योम ब्रह्माकाशमेव तथा स्थितम् ॥ ४७ ॥ निर्भूलं निष्कारणमेवान्तःसंतप्तेव मनागपि न सन्त्येते भाषाः पृथ्व्यादयः किल जगन्मृगतृडम्बूनि भान्ति संविदि संविदः। न बाह्यमस्ति नो वाह्यं खे तद्योम तथा स्थितम् ४७ मरी नास्त्येव सलिलं संवित्पश्यति तत्तथा। निर्मूलमन्तः संतप्ता स्वसंभ्रमवती भ्रमम्॥ 84 नास्त्येव ब्रह्मणि जगत्संवित्पदयति तत्तथा। निर्मूलमेव संवित्वादेवं भ्रान्तेश्च संभ्रमम्॥ ४९ असदेवेदमाभाति हृदेव जगदाततम्। संकल्पनमनोराज्यं यथा स्वप्नपुरादिवत्॥ 40 पार्श्वसुप्रजनस्वप्रस्तश्चित्तावेशनं विना। यथा न किंचित्तिक्षत्तावेशनादनुभृयते ॥ ५१ तथा जगत्तदृषदं संप्रविदयानुभूयते । आदर्शविम्बिताकारं दृष्टमप्यन्यधाप्यसत्॥ ५२ आधिभौतिकभावेन नेत्रेण यदि लक्ष्यते। तत्तन्न दृश्यते किंचिद्विरिरेव प्रदृश्यते ॥ ५३ आतिवाहिकदेहेन परं बोधहशा यदि। प्रेक्ष्यते दृश्यते सर्गः परमात्मैय चामलः॥ 48 सर्वत्र सर्गनिर्वाणं प्रज्ञालोकेन लक्ष्यते । ब्रह्मारमैवान्यथा चेत्तन्न किंचिद्रभिलक्ष्यते ॥ ५१५ यत्पश्यत्यवदाता धीः सोपपत्तिविचारणा। न तन्नेत्रेस्त्रिभिः शर्वी नेन्द्रो नेत्रशतरिप ॥ ५६ यथा खमावृतं सर्गेस्तथा भूरिति वुद्धवान्। तदाहमभवं ध्याता घराघारणयान्वितः॥ ५७ तया धराधारणया धरारूपधरोऽभवम्। अत्यजन्नेच चिद्योमवपुः सम्राहिवाचिरात्॥

क्षुब्धा ॥ ४८ ॥ संवित्त्वादज्ञानावृतसंवित्स्वभावात् ॥ ४९ ॥ संकल्पनप्रयुक्तं मनोराज्यं यथा तथेति पृथग्योज्यम् । 'तृमनो-राज्यम्' इति पाठे संकल्पे स्थितस्य नुः पुरुपस्य मनोराज्यं य-थेति ॥ ५० ॥ परकायप्रवेशेन स्वप्नद्रपृचित्तवेशनाद्योगिसिर-नुभूयते ॥ ५१ ॥ तदृषदं तत्कल्पनाधिष्ठानांचेच्छिलाम् । अन्यथा न तथा किलसदिष ॥ ५२ ॥ अतएव प्रागाधिभी-तिकदशा दर्शने लोकालोकगिरिरेव दर्यते न शिलान्तर्गत् ब्रह्माण्डमित्युक्तमित्याह—आधिभौतिकेति ॥ ५३ ॥ समी दृश्यते स च परमात्मैव लक्ष्यते योगिभिरित्यर्थः ॥ ५४ ॥ तत्त्वदशा दर्शने खाह - सर्वत्रेति ॥ ५५ ॥ तत्त्वदृष्टि योगि-दृष्टिं च सर्वोत्कर्षेण प्रशंसति-यदिति ॥ ५६ ॥ तत्र स्वस्य तत्त्वज्ञस्य यदा जीवन्मुक्तयोगिदृशा पदयत आकाशमिव भूरपि सर्वतः सर्गैर्व्याप्तिति बुद्धिरूपन्ना तदा कमाद्भूम्यादेकैकभूताई-भावधारणया यदारकोतुकं स्त्रेन दष्टं तत्सर्व विस्तराद्वणियध्यन्त्र-थमं धराधारणादृष्टं तद्वक्तुमुपक्रमते—यथेति । यदा बुद्धवांस्तदा धराधारणया अन्वितः अभवभित्तर्थः॥ ५७ ॥ यथा सम्राह चक्रवर्ती खदेहमात्राहंभावमत्यजनेव समसाभूमण्डलं ममत्।

ફફ

६७

દ્દ૮

६९

७०

७१

७२

अलंकृतं पुष्पवनैः समारब्धं रजोघनैः॥ धराधारणया चैव धराधातृद्रं गतः। द्वीपाद्रितृणबृक्षादिदेहोऽहमनुभूतवान्॥ नित्यं कृषीवर्कः फृष्टं वीजितं शिशिरानिकैः । 49 संपन्नोऽस्म्यथ भूपीठं नानावनतन्रुहह्म्। तापितं तपनैस्तंत्रैरुक्षितं प्रावृत्तम्बुभिः॥ विपुलाग्रस्थलोरस्कं पद्माकरकृतेक्षणम्। नानारत्नावलीव्याप्तं नानानगरभूषणम् ॥ ξo श्रामगह्नरपर्वाद्ध्यं पातालसुपिरोद्रम्। सितासितघनोप्णीपं दशाशोदरमन्दिरम्॥ कुलाचलभुजादिलपृद्वीपाब्धिवलयान्वितम् ॥ ६१ लोकालोकमहाखातवलयोग्रास्यभीपणम् । तृणीघतनुरोमाढ्यं गिरिखण्डकगुल्मकम्। अनन्तभृतसंघातपरिस्पन्दैकचेतनम्॥ दिग्वारणकटब्यूहभृतं दोषद्दिरःदातः॥ ६२ व्याप्तमन्तर्वहिश्चेव नानाभूतगणैः पृथक् । हियमाणं महीपाँछैः शोभमानेभतन्तुभिः। देवदानवगन्धवेबहिरन्तस्तु कीटकैः॥ पातालेन्द्रियरन्ध्रेषु नागासुरक्षमित्रजैः। प्राणिभिर्भुज्यमानाङ्गं वर्धमानं व्यवस्थया॥ ६३ सप्तस्वर्णवकोशेषु नानाजातिजलेचरैः॥ हिमवद्विन्ध्यसुस्कन्धं सुमेक्षदारकन्धरम् । व्याप्तं नदीवनसमुद्रदिगन्तशैल-गङ्गादिसरिदापूरमुक्ताहाररणत्तनुम्॥ ६४ गुहागहनकच्छादिसागरादर्शमण्डलम् । हीपाय्यजन्तुविषयस्थलजङ्गलीघैः। मरूपरस्थलभ्वेत्सुवराम्बरसुन्दर्म्॥ 814 नानावलीवलितमण्डलकोशखण्डं भूतपूर्वैः परापूर्ण परिपूर्तं महार्णवैः । वहीसरःसरिद्रातिगणा**ज्ञखण्डैः**॥ इत्यार्षे श्रीत्रासिष्ठमहारामायणे वा० मो०नि०उ०पा० पार्थिवधालन्तर्गतजगदानन्त्यत्रतिपादनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः॥८०॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८

वसिष्ठ उघाच। मूपीठेन सता तत्र मया तद्नु मानव। अनुभूतं नदनदीस्वसंवेदनसंस्थितेः॥ क्रचिन्मरणसाक्रन्दनारीकरुणवेदनम् । क्रचिदुत्ताण्डवस्रीणमहोत्सवमहासुखम् ॥ कचिदुर्वारदुर्भिक्षदुराऋग्दं दुरीहितम्।

भावं धते तथा अहमपि चिष्योमवपुर्वद्माहंभावमत्यजन्नेव घराहंभावेन धराह्यधरोऽभवमित्यर्थः ॥ ५८ ॥ घराघातुर्भू-म्यभिमानिजीवस्तदुदरं तद्बुद्धितादात्म्यं गतः सन् ॥ ५९ ॥ यद्नुभूतवांस्तदाह—संपन्न इत्यादिना । इत आरभ्य आसर्ग-समाप्तेर्भूपीठमेव देहाधारेण वण्येते ॥ ६० ॥ ६९ ॥ मिरि-खण्डका गिरिकदम्बा गुल्मरोगग्रन्थय इव यस्य । कदपदेन शिरांसि लक्ष्यन्ते तब्हेंधृतम् । तथा शेषस्य शिरसां शतिर्दशन शतैर्धृतम् ॥ ६२ ॥ शोभमाना इभास्तन्तवः सेनाजालतन्तु-ब्रन्थय इत्र येषां तथाविधेर्महीपालैः परस्परं युद्धैर्हियमाणम् । उत्करनगरादिप्रदेशव्यवस्थया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ गुहागहनाः कच्छादयो देशा यस्मिन्। सागरा आदर्शमण्डला इव य-स्मिन् । महदेशलक्षणेरूषरस्थललक्षणेश्व श्रेतः सुवराम्बरैः सु-न्दरम् ॥ ६५ ॥ पूर्वे भूतेर्भृतपूर्वेर्महार्णवैः प्रलयकाले परापूर्ण-मतएव सांप्रतं सालोद्भतमित्र परितः पूर्वं पत्रित्रम् । पुष्पत्रनि-मोल्यैरिवालंकृतम् । चन्दनस्थानीयै रजोपनः समाछन्त्रं लिप्तम् ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ अग्रस्थलं समभूप्रदेशः ॥६८॥ लोकालोकस-मीपे प्रार्ग्याणतो यो महाखातवलयस्तऋक्षणनोत्रेणास्येन भीपणम् भूतानां परिस्पन्द एव परिस्पन्द एकीभूतं चेतनमेव चेतनं यस्य ॥ ६९ ॥ नानाभूतगणलक्षणैः कीटकैर्व्याप्तम् । तेषु देवदानवे-

कचित्सकलसस्योघसंपन्नघनसीहृद्म्॥ 3 कचिद्रिमहादाहदग्धदेहोत्रवेदनम्। कचिज्ञलप्रवाल्नपुरपत्तनखण्डकम्॥ कचिश्चपलसामन्तऋतलुण्ठनमण्डलम् । कचिद्दामदीरात्म्यरक्षःपैशाचमण्डलम् ॥

त्यवयुत्यानुवादः ॥ ७० ॥ ७**१ ॥ उक्त**मेव सं**क्षि**प्योपसंहर-निविश्वनष्टि-च्याप्तमिति । नद्यादिद्वीपान्तैर्वनतुविषयैः प्राणि-भोग्यैः स्थलजङ्गलंबिश्च व्याप्तम् । नानाविधामिर्गिरिनदीपर्व-ताद्यावलिभिजनावलिभिश्च वलिता मण्डलकोशानां खण्डा य-स्मिन्। तथा वर्शिभः सरोभिः सरिद्धिररातिगणैरञ्जखण्डैश्व व्याप्तमित्यनुषज्यते ॥ ७२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायण-तार्ष्यप्रकारो निर्याणप्रकरणे उत्तरार्धे सप्तानीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

स्वदेहभूते भूषीठे तत्रतत्र ध्यवस्थिताः ।

विशेषा इह वर्ण्यन्ते कौतुकारस्वेन वीक्षिताः ॥ १ ॥ हे मानव मनुवंशोद्भव, वर्णितरीत्या भूपीठभूतेन मया तदनु प्राग्वर्णितसाधारणसर्वभूभमेषटितस्वदेहद्शेनानन्तरं प्रत्येके न-दनदीसमुदादिविशेषाकारप्रातिस्विकसंनेदने च्छावशाद्यथायथा-नुभृतं तच्छ्रिविति शेषः ॥ १ ॥ क्रचित्प्रदेशे भर्तृपुत्रश्रात्रादि-मर्णेन साकन्दानां नारीणां कहणवेदना यत्र तथाविधम्। अत्रापि प्रायेण सर्वत्र भूपीठमेव विशेष्यम् । श्लेणानां स्त्रीसमू-हादीनां महोत्सर्वेमंहत्सुखं यत्र ॥२॥ सुनृष्ट्या फलितैः सकल-सस्योधैः सुभिक्षलात्संपन्नानि घनसीहृदानि यत्र ॥ ३ ॥ जलेन छवनमाष्ठावनं तेनाल्हनाः । पुरपत्तनयोगीधवणिकप्रकर्षाभ्यां Ę

S

<

Q

१०

११

क्रचिज्जलाशयोहासवेहनोत्पुलकात्रकम् । कन्दरोदरनिष्कान्तवातवेहितवारिदम्॥ संविद्वोधोन्नमत्स्वाङ्गकंशोत्थाङ्करलोमकम् । वारिवाहनविश्लोभनतोन्नतलसर्चलम् ॥ सश्ह्रभैरचश्वभ्रपुराद्रिवनपत्तनम्। संविन्मण्डलसंत्राललेखाङ्कमृदुकल्पनम् ॥ कचित्सामन्तसंक्षु ध्यसन्यसंहरणं रणे। कचित्सौम्यसुखासीनसर्वसामन्तमण्डलम् ॥ अरण्यं कचिदाशून्यमुहसद्वातझंकृति । जंगलं कचिदालुनव्युप्तसंपन्नसस्यकम्॥ हंसकारण्डवाकीर्णसरः फुलाम्बुजं कचित्। कचिन्मरुखलस्थूलस्तम्भनार्जनमारुतम् ॥ कचित्रद्वदीवाहहेलानिकपधर्धरम्। कचिद्रक्रुरकार्याङ्गसिकवीजस्य जुम्भणम्॥ १२ कचिदन्तस्तु कीटास्यमृदुस्पन्दनवेदनम्। मां त्वमेयाशु बुद्धेह त्रायस्वेतीव बोधनम्॥ १३ शाखापरिकराभोगं मृद्धागाङ्गनिपीडनैः।

मेदः॥४॥५॥ जलाशयानामुक्रासेन पूर्वा केदारारामादीनां वे-त्रनैः सेकेहत्पुलकसस्यगुल्माद्यप्रकम् । कन्दरोदरेति तत्रोपपत्तिः ॥ ६॥ संविद्धोधेन प्रहर्षेण उन्नमन्तः पुलकिताः खान्नकेशा इव उत्थान्यद्भरलोमानि यत्र । वारीणां बहनमेव वाहनं प्रवाह-स्तद्विक्षोभेण ॥ ७ ॥ नतोन्ननत्वमेव भूतलानां दर्शयति— सश्वतेति । अन्तर्गतबृहन्छिल।दिमिः सश्वतःणीत्र मेरवाणि भी-षणानि अभ्राणि येषु तथाविधानि पुरादीनि यत्र । अतएव संविदन्तीति संविदो नागरादिजनास्तन्मण्डलस्य संचाले ततपद-छेखाङ्कनिपतनादिशङ्कया मृदु कम्पनं च यत्र ॥८॥ ९॥ पूर्व-मासूनं पथाद्युप्तं ततः संपन्नं सस्यं यत्र ॥ १० ॥ मरुस्थलेषु वालोड्डीनधृलिभिः स्थूलान्स्तम्भान्कुर्वन्तीति स्थूलस्तम्भना अन र्जुनाः पांसुधवला माहता यस्मिन् ॥ ११ ॥ अङ्करकार्यार्थे कु-स्याघटीयन्त्रायक्षेः सिक्तस्य क्षेत्रगतबीवादिबीजस्याद्वरादिमा-वेन जूम्भणम् ॥ १२ ॥ शिलादिसंकटनिविष्टं मां हे वरीष्ठ, लमेव आशु बुद्धा त्रायम्बेति कीटेन मां प्रति बोध्यते यत्र ताहशमिव स्थितम् ॥ १३ ॥ कचिद्वटादिवने शिखानां भूसं-लमलानमृद्धागाङ्गनिपीडनैरुपलक्षितः शाखापरिकराणामाऋारी यत्र । क्रचित्र मूलजालमवष्टम्य विरुपानां धारणशीलम् ॥१४॥ कविद्दीणामस्थीनि शिला इव निविदेर्वशैरन्योन्यमलमत्यन्त-माक्रम्य संश्विष्य दिक्तटाङ्गानां निरवकाशीकरणानिपीडनैः अ-णेंबोह्नासेनेव वेहितं वेष्टितम् ॥ १५ ॥ कचित् गाढगृक्षेर्भवि खप्रसरनिरोधापराधादमर्षणैः कुद्धैरार्कैः करैरात्पैः खरसाक-

| मूळजालमवष्टभ्य कविद्विटपधारिणम्॥ | १४ |
|---|----|
| अन्योन्यमलमाऋम्य दिक्तटाङ्गनिपीडनैः। | |
| कचिदद्यस्थिनिविडेरर्णवोहासवेहितम् ॥ | १५ |
| शुर्धकपल्लवसंकोचनिबिडाङ्गनिपीडनम् । | |
| अमर्पणः करैराकैः स्वरसाकर्पणं कचित्॥ | १६ |
| श्रुङ्गमन्दिरमातङ्गप्रहाराशनिभूरुहाम्। | |
| निविडाङ्गोत्कटस्थैर्यपरुपापतनं कचित्॥ | १७ |
| निमीलितेक्षणानन्दतनृनामसमाक्रमम्। | |
| कचित्स्ध्मतरोहेखमङ्करोहासनं नवम्॥ | १८ |
| मक्षिकायीकमशकनिवाससदशं कवित्। | |
| कुड्यलेशकुभुङ्गारिहलहेलानिकर्पणम् ॥ | १९ |
| शीतं शीतविशीणीङ्गजर्जरत्वग्विकीणेयत्। | |
| पापाणीभृतसिललं कचित्परुषमारुतम्॥ | २० |
| उद्दालीभूतमृद्वङ्गमज्ञदन्तः कृमिवजम् । | |
| कचिदुद्भवदङ्गादिमुलं जलनिमज्जनम्॥ | २१ |
| शनैरन्तर्निलीनाम्बुकताहादं बहिश्च रै- | |
| -सोन्नामाङ्कररोमीघं क्रचिद्वर्षविजृम्भितम्॥ | २२ |
| 1 6 | |

र्षणं प्राप्य शुष्कपछवसंकोचं नित्रिडाङ्गनिपीडनं वनं यत्र ॥१६॥ कचित्तु गिरिश्टलमन्दिराणां मातज्ञानां दन्तप्रहाराशनेः भूरुहां वृक्षाणां निविडाक्षीत्कटस्थैर्यं प्रति परुषाण्यापतनानि यत्र । सापेक्षसमासरछान्दसः। 'परुवं पतनं कचिन्' इति पाठे अश-निभिभूहहां निविडाङ्गोत्कटस्थेयेण पहपं पतनमेव कचिनमया-नुभूतमिति योज्यम् ॥ १७ ॥ कचित्तु निमीलितानीक्षणानि येन तथाविधानन्दोपछक्षिततनूनां समाधिनिष्ठानां सूक्ष्मतरं तत्त्वमुक्तिखलानुभूयमानं सूचयति तथाविधमत एवासमाक्रमं नवमपूर्व रोम।इरोछ।सनमनुभूतमित्यर्थः । अथवा कचित्रक्षेत्रप्र-देशे निमीकितेक्षणानामानन्दोपलक्षिततनूनां विषयभोगिनामि-व असममक्रमं च सुक्ष्मतरान्तरानन्दाविमीबोहेखं बीजेभ्योऽ-**क्रुरोह्रासनं नवं चमत्कृतमनुभूतमित्यर्थः ॥ १८ ॥ यूकानां स**• भूहो यै।कं तिश्वशासमिलनाम्बरसदृशम् । कुष्यलेशानामस्प-कुड्यखण्डानां प्रमादात्पद्मकोशशायिनां कुम्क्षाणां चोपमर्दक-लादरयो ये दन्तिनसैईलैरिव हेलामिवैत्रादेनिकर्षणं दष्टम् । 'कुह्मलेश'इति पाठे कुह्मलभेष्ठे पद्मकुह्मले सुप्तानां कुभक्ताणां ये अरय इति व्याख्येयम् ॥ १९ ॥ कचित्कचिद्धिमवत्प्रदेशे शीतं शीतविदीर्णाङ्गानां देहिनां जर्जरलग्व्याप्तवस्थितम् ॥ २० ॥ उद्दलनमुद्दाली विदलनं तथाभूतेषु मृदुष्वक्षेषु मजन्तः अन्तः कृमित्रजा यत्र । कविज्ञलनिमजनमनुभूतमिति पृथक्षंबन्धः ॥ २१ ॥ कचिद्वीजेषु वर्षविज्ञामित्रतमतएव शनैरन्तर्निविष्टर-म्बुभिः कृताहादं ततो बहिश्र रसोत्रामाद्वररोमीयम् ॥ २२ ॥

२ विद्यारिक्य रोनीधमित्यन्तं समस्तं पदम् ।

तनुतरपवनविकस्पित-कोमलनस्निनीदलास्तरणैः। विहरणमिव मे विहितं सरोमिरङ्गेषु निर्वाणम्॥

23

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० भूमण्डलग० विव्व०नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ८९

श्रीराम उवाच। पार्थिवीं धारणां बद्धा जगन्ति समवेश्रितम्। संपन्नस्त्वमसौ भूमिलोकः किमृत मानसः॥ वसिष्ठ उवाच । इदं च मानसं चाहं संपन्नः पृथुभूतलम् । नेदं न मानसं नैव संपन्नो वस्तुतस्त्वहम्॥ अमानसं महीपीठं न संभवति किंचन। यदसंद्वेत्सि यत्सद्वा मनोमात्रकमेव तत्॥ चिदाकाशमहं शुद्धं तस्य मे तत्यदारमनः। यश्चिनमात्रात्मकचनं तत्संकल्पामिधं स्मृतम्॥ तन्मनस्तन्महीपृष्ठं तज्जगत्स पितामहः। संकल्पपुरवद्योसि कचत्येतन्मनीनभः॥ एवं संकल्पमात्रं में मनोमात्रं तदाततम्। धारणाभ्याससंपुष्टं भूमण्डलमिति स्थितम् ॥ नेदं भूमण्डलं तहे तद्यद्धि मनोमयम्। आकारामात्रकचनमचेत्यं कचनं चितेः॥ तदेवाकाशमात्रात्म तथाभृतं चिरं स्थितम्।

किंच में अन्नेषु सरोभिस्तनुतरपवनविकम्पितकोमलनिलनीद-लानामास्तरणैर्निर्वाणं निरतिशयानन्दरूपं विहरणं की उनिमव बिहितमिल्यर्थः ॥ २३॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्य-प्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्ठाशीतितमः सर्गः ॥८८॥

इदंप्रत्ययलब्धत्वान्मानसत्वं समुज्यति ॥

भन्न सद्धारणाद्धं भूमण्डलमिदं तथा । जगरसर्वे च चित्र्योन्नि मनोमाश्रमितीर्यते ॥ १ ॥

हे गुरो, कीतुकारसारमिन जगन्ति समवेक्षितुं प्रवृत्तरलं पार्थिवी धारणां बद्धा किमसावस्मदादि हर्यो मृत्पाषाणादिमयो छोकः संपन्न उत मानसो मनोमात्रमयो मनोराज्यकल्पो मृदा- खघितः सप्तमयो छोकः संपन्न इति प्रश्नः॥ १॥ कल्पना- हशा तस्वहशा वा विमर्शे कोटिद्वयमेदाप्रसिद्धेः संशयानुपपत्ति स्वयन्वसिष्ठ उत्तरमाह—इदं चेति । यदि कल्पनादशा प्र- च्छिति तिर्हे इदं मृत्पाषाणमयत्वेन लत्प्रसिद्धं च तदेव मनो- मात्रविकारलान्मानसं चेति समुख्यः संपन्नः । यदि तु तत्त्वहशा प्रच्छिति तिर्हे नोभयमि संपन्न इत्यर्थः॥ २॥ पूर्वाधोंकं प्र- तिक्वापूर्वकं समर्थयि —अमानसित्यादिना। सत्येव मनसि त- सिमेवासिना जीति विकल्पदर्शनादिति भावः॥ १॥ था। प्रा ॥ १॥ अष्ट प्रसिद्ध सुद्धाषाणादिमयलस्य 'अपागादमेरप्रितं त्रीणि

इदं स्थिरं सुकठिनं विततं भूमिमण्डलम्। अस्तीति जायते बुद्धिव्योद्गीव चिरवेदनात् ॥ न्यायेनेदमिवानेन न स्थितं वसुधातलम्। इदं चैवैकमेवाद्य सर्गस्याद्यमुपागतम्॥ Q0 यथा स्वप्ने प्रत्वेन चिदेव व्योम्नि भासते। तथा चिदेव सर्गादाविदं जगदिति स्थितम् ॥ ११ विद्धिः चिद्रपद्मालस्य मनोराज्यं जगन्नयम्। महीतलादिकं दृश्यमिदं सर्वे च सर्वदा॥ १२ चिद्रपस्यात्मनो नान्यः संकल्पस्तन्मयं जगत्। वस्तृतस्त न सत्यात्म न पिण्डात्म न भासूरम् १३ रदयमस्त्यपरिकातं परिकातं न विद्यते । परिज्ञातं तदेवास्य श्रुणोषि यदिदं चिरम्॥ १४ सर्वे चिन्मात्रमाशान्तं प्रकचत्यात्मनात्मनि । भूमण्डलात्म दृष्यात्म द्वेतैक्याभ्यां विवर्जितम् १५ मणिर्यथा स्वभावेन शुक्कपीतादिकास्त्विषः। अकुर्वन्नेव कुठते चिदाकाशस्तथा जगत्॥ १६ यतो न किंचित्कुरुते न च रूपं समुज्झति । तस्मान्न मानसं नेदं किंचिद्स्ति महीतलम्॥

रूपाणीरयेव सत्यम्' इत्यादिश्रुतिनिषिद्धलालत्त्वज्ञस्य धारणायां दृष्टं नाइदृष्टिप्रसिद्धेदंरूपमित्यसमुचयो वास्त्रित्याशयेनाह्-नेदमिति ॥७॥ यद्याकाशमात्रस्यामृतस्यैवेत्थं कचनं तर्हि कथं मूर्तेदंप्रत्ययमाधत्ते तत्राह्—तदेवेति । तार्हे कि दिशत्वे दुग्ध-लमिव मानसत्वं मुश्रति नेखाइ-इदंप्रत्ययेति । खप्रादाव-स्थुलस्य केवलमानसस्य पृथ्व्यादेजीमद्वदिदंप्रत्ययेनीपलन्धलान द्राधलसाम्यं किंतु तरङ्गकटकशाटकादिभावेऽपि जलकनकका-पीसमयलविदं बोध्यमिति भावः॥ ८ ॥ व्योप्ति नैल्यादि-बुद्धिरिव चिरवेदनाजायते॥ ९ ॥ वाचारम्भणश्रुतिदर्शितन्या-येन तु दर्शने इदमिवाङ्गप्रसिद्धरूपेण वसुधातलं न स्थितं किंला-वसर्गस्य मनोरूपस्य आद्यं सुक्ष्मं यदेकमेव रूपं तदेवोपागतं स्थितम् । 'त्रीणि रूपाणीत्येव रात्यम्' इति श्रुत्योपदर्शितमित्यर्थः ॥१०॥ इदंप्रत्ययलब्धत्वादित्युक्ति विशद्यति—यथेति ॥१९॥ चिद्रपवालस्य चतुर्भुखस्य ॥ १२ ॥ १३ ॥ अज्ञदृष्टिनिष्कर्षे अज्ञातचिन्मात्रं जगत्। तत्त्वनिष्कर्षे त चिन्मात्रमेवेत्याशये-नाह-स्वयमिति । यदिदं चिरं मयोपदिश्यमानं श्रणोषि कथं न प्रबुध्यसे इत्यर्थः ॥ १४ ॥ कीहशं परिज्ञातं तत्राह-सर्व-मिति ॥ १५ ॥ मणिवैद्यीदिः । अकुर्वन् अव्याप्रियमाणः ॥ १६ ॥ नेतिनेत्यादिश्रतिपर्यालीचनेनोपसंहरति—यत इति ।

महीतलिमवाभाति खिद्योमैव निरन्तरम्।
आत्मन्येयातलं व्योम यथामलतलं स्थितम्॥ १८
स्वभावमात्रकचनं तत्तदेव यथास्थितम्।
भूमण्डलिमवात्यच्छं खमेव विश्वतान्तरम्॥ १९
इदं भूमण्डलं तच द्वयमेतन्महाचितेः।
स्वक्रपमेव कचित तव स्वप्नपुरं यथा॥ २०
इदमाकाशमात्रात्म तद्य्याकाशमात्रकम्।
अज्ञानात्मपरिशानाज्ञानान्नदं न तत्कचित्॥ २१
त्रैलोक्यभूतजालानां कालितयभाविनाम्।

संग्रमः स्वप्तसंकल्पो मनोराज्यद्शास्थितौ ॥ २२ भूतान्यथ भविष्यन्ति वर्तमानानि यानि च । भूमण्डलानि तान्यङ्ग सत्तासामान्यतां गता ॥ २३ अहमेव समग्राणि तेषामन्तगतान्यपि । तेन तान्यनुभूतानि तथा दृष्टानि चासिलम् ॥ २४ चिन्मात्रमेतद्जरं परमात्मतत्त्वं धुद्धात्मतामजहदङ्गगतं विभर्ति । सर्वे यथास्थितमिदं जगदात्तमेदं बुद्धं सदङ्ग न विभर्ति तु किंचनापि ॥ २५

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा० मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पा० दृरयमनोमात्रलप्रतिपादनं नामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ९०

श्रीराम उवाच ।
अनन्तरं वद ब्रह्मञ्जगन्ति भवता तदा ।
भूमण्डलानां हृदये कचिहृष्टानि नेव वा ॥
विसष्ठ उवाच ।
परात्मजाम्रस्वमोवीमण्डलोघात्मना मया ।
ततोऽतुभूतं हृदये ष्टष्टं च परया हृशा ॥
यावत्तयेव सर्वत्र जगज्जालमिव स्थितम् ।
सर्वे दृश्यमयं शान्तमपि द्वैतमयात्मकम् ॥
जगन्ति सन्ति सर्वत्र सर्वत्र ब्रह्म संस्थितम् ।
सर्वे शून्यं परं शान्तं सर्वमारम्भमन्थरम् ॥
सर्वेत्रैयास्ति पृथ्वादि स्थूलं तश्च न किंचन ।

॥ १७ ॥ अतलं तलभावश्रस्यम् ॥ १८ ॥ अन्तरं भेदं **अन्तर्दि वा विशता स्वभावेन भूमण्डलमिव दर्**यत इत्यर्थः ॥ १९ ॥ तत्र धारणाकस्पितभूमण्डलमिदं भूमण्डलं च तुल्य-मेव चिद्विवर्तल इलाइ-इदमिति ॥ २० ॥ अज्ञानोपहिता-त्मपरिज्ञानाद्भाति । ज्ञानात्तु न इदं नापि तत् धारणास्थम् ॥ २१ ॥ संभ्रमो भ्रान्तिरेव । सच मनोराज्यदशायाः स्थितौ मर्यादायां तत्साम्ये बोध्य इति यावत् ॥ २२ ॥ सामान्यतां सर्वाधिष्ठानलात्साधारणतां गता आत्मसतेव तानि सर्वाणि सत्तासामान्यमेव तेन हेतुना तानि तदन्तर्भतानि च सर्ववस्तु-न्यहमेवेति धारणायां मया मनसा अनुभूतानि साक्षिदशा च भिष्ठिरं निःशेषं यथा स्यात्तथा दृष्टानीत्यर्थः ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राम, परमात्मतत्त्वमेवाबोधदशायां स्वशुद्धात्मतामजहदत्य-जदेव यथास्थितं सर्वे जगदारमगतं स्वात्मतामिव प्राप्तं सद्रूपं कृता विभर्ति, बुद्धं तु सत् किंचनापि न त्रिभर्ति सैवास्य मु किरित्यर्थः ॥ २५ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणे तात्पर्यप्र-काहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकोननवतितमः सर्गः॥८९॥

पृथिवीहृद्येऽनन्तजगहृष्टिरिहोच्यते । जरुभारणया सर्वजरुठीला च पूर्ववत् ॥ १ ॥ यथा प्रसिद्धे जगति करुधै।तशिलादिप्रदेशभेदेष्वनेकानि चिद्योमैव यथा स्वप्तपुरं परमजातवत् ॥ ५ नेह नानास्ति नो नाना न नास्तित्वं न चास्तिता। अहमित्येव नेवास्ति यत्र तत्र कृतोऽस्ति किम् ॥ ६ अनुभूतमपीदं सदहमित्यादिकंपकम्। नास्त्येव यदि वाप्यस्ति तद्रक्षाजमनामयम्॥ ७ यत्स्वप्तपुरमेवेदं सर्गादावेव चित्रभः। अस्तितानास्तिते तत्र कीहरो क कुतः स्थिते॥ ८ यथाहं दृष्टवांस्तानि जगन्त्यवनिक्पधृक्। तथा मया जलीभूय दृष्टं ताहरामेव तत्॥ ९ वारिधारणया वारि भृत्वा जङमिवाजङम्। समुद्रमन्दिरेष्वन्तिश्चरं गुलगुलायितम्॥ १०

ब्रह्माण्डानि सन्ति तथा धारणादृष्टेष्वपि भूमण्डलेषु प्रतिवस्तु तानि सन्ति नवेति संदिहानो रामः प्रच्छति-अनन्तरमिति। मण्डलक्षाच्दः प्रदेशभेदपरः ॥ १ ॥ उर्वाधारणया परमात्मनौ जाप्रदुर्वीमण्डलात्मना स्वप्नोवीमण्डलात्मना च मया तसदुर्वी-प्रदेशमेदलक्षणे तद्धृदये परया ईश्वरसाक्षिदशा साक्षाद्धं मनसा च विमृश्यानुभूतभ् । खप्तप्रहणं खाप्रोर्व्यादिप्रदेशमेदे-ष्वप्यनन्तजगरसंभवप्रदर्शनाय ॥ २ ॥ कि दष्टमनुभूतं च तदाह—यावदिति । तथा प्राग्दष्टक्रवर्धीतशिलादिवदेव । याविहिति साक्त्ये । शान्तमद्वैतं द्वैतमयात्मकमपि ॥ ३ ॥ कतो द्वेतमयं कृतो वा शान्तं तत्राह—जगन्तीति ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ नाना अनाना वा सत्यमिति प्रसिद्धे तद्दर्शनामिमा-निनि सिध्येत्स एव तावनास्तीत्वाह-अहमित्येयेति ॥ ६॥ ॥ ७ ॥ यद्यस्मात्सर्गादी स्रष्टेः प्राक् चित्रम एव तत्तस्मात्तदु-त्तरं चित्रभिः दृष्टमपीदं स्वप्नपुरसममेव । इत्थं प्रतियोगिन्या अस्तिताया अव्यवस्थिती तदभावो नास्तिताप्यव्यवस्थितेवेत्याह अस्तितेति ॥ ८ ॥ पृष्टस्योत्तरं समाध्य जलधारणया यदार्की-तुकं दृष्टं तद्वक्तमारभते—यथेलादिना ॥९॥ गुलगुलायितुम् । अव्यक्तानुकरणादिवार्थगर्भादाचारे क्यंहि भावे कः ॥ १० ॥

१ दृइयकं इति पाठः.

तृणवृक्षलतागुल्मवल्लीनां स्तम्भनाडिषु। मृद्रलक्षितमारूढं तवाङ्गेष्विय युक्तया॥ ११ सर्वीत्थानोपमास्तम्मे तच्छेदे वलयोपमा । मुद्या केर्णाहिगत्येव रचना प्रकृतोदरे ॥ १२ षष्ट्रीतमालतालादिपल्लवेषु फलेषु च। विश्रम्य पृष्ट्या कृत्या रेखाविरचनं कृतम्॥ १३ मुखेनाविश्य हृदयमृतुवैधुर्यधारिणा। हता विधुरिता भुक्ता लुना देहेषु धातवः॥ १४ सुप्तं पहुचतस्पेषु प्रालेयकणरूपिणा । तुल्यकालमशेषेषु दिश्च सर्वास्यखेदिना॥ १५ नानाइदनदीगेहग्राहिणा विरताध्वना । विधानतं सेतुसुदृदः प्रसादेन कचित्कचित्॥ १६ विदा विद्नुसंधानाज्ञडेन तदनाश्रयात्। जडाशयेषुह्रसितं जलेनावर्तवर्तिना ॥ 80 मया दुष्कृतिनेयोध्वंशिलास्वस्थेन भूभृताम्। स्वावर्तवर्तिना श्वभ्रपातेषु शतथा गतम्॥ १८ ध्रमरूपेण निर्गत्य दारुभ्यो गगनार्णवे ।

मृदुमन्दमलिहातं च यथा स्यात्तथा आरूढम् ॥ ११ ॥ यथा केर्णाहिः सक्ष्मतन्तुनिभः कीटकविशेषो गृद्धा गला अलक्षितः कर्णे लीन इव प्रविशति तद्वतेषां तृणगुल्मादीनां छेदे भेदे पर्वमेदे तदुदरे छिद्रभेदे च गतिरचना प्रकृतेत्यर्थः ॥ १२ ॥ बह्रीनां लतानां तमालतालादिगृक्षाणां च पह्नवेषु फलेषु च रस-रूपेण विश्रम्य पर्णादिभावेन कालतः पुष्टया तत्तत्पर्णादाकृत्या अन्तः शिरारेखाविरचनं कृतम् ॥ १३ ॥ तथा प्राणिनां देहेपु पानकाले मुखेन हृदयमाविश्य वसन्तादिऋतुप्रयुक्तवैषम्यधा-रिणा मया वातपिसकफाख्या धातवः कचिद्धृताः कदाचिद्विधु-रिताः केचिद्भक्ता जटरामिना परिपाचिताः केचिल्रनाः खण्डिता इत्यर्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥ हृदलक्षणा ये नदीनां गेहाः पध्यावा-सास्तद्वाहिणा नित्यं प्रवाहादविरताध्वना ॥ १६ ॥ विदा चैत-न्येनाविदंशस्य विषयतया अनुसंधानातत्र विषयांशमात्रतया तस्य चित्स्वभावस्यानाश्रयाज्ञहेन अतएव लडगोरमेदाज्ञलेन सया जडाशयेषु जडाशयप्रायेषु भ्रान्तिसहस्रेरावर्तवद्वर्तिना उ-ह्रसितम् ॥ १७ ॥ प्रायश्चित्तार्थं भगुपाते प्रयूतेन दुष्कृतिना पापकारिणेय मया भूभतां पर्वतानामूर्ध्वशिलाभ्यः अखस्थेन चिलतेन निर्झरेण श्रभ्रपातेषु विशीणेन शतथागतम् ॥ १८ ॥ गगनलक्षणे अर्णवे समुद्रं नीलवर्णा ये ऋक्षमणयो नक्षत्ररहानि तदन्तर्वर्तिना कणरकेन रक्रकणेन भूला स्थितम् । वसिष्ठवचन-त्रामाण्याद्भर्थेरहर्यानि नीलवर्णान्यपि नक्षत्राणि दिवि सन्तीति

१ मया कर्णोहिगत्येव मृद्या गत्या तृणादीनां स्तम्भे प्रकाण्डे सर्वोत्यानोपमा सर्वेषां नृणादीनामुत्यानमूर्ध्वस्थितिस्तदुपमा बत्स-इशी यथा कर्ष्वस्थितिः स्यात्तथेल्ययः । तेषां तृणादीनां छेदे भेदे पर्वभेदे तदुदरे छिद्रभेदे च बल्योपमा बल्याकारवती रचना

| कणरहेन नीलर्भमण्यन्तर्वतिना स्थितम्॥ | १९ |
|--|----|
| विश्रान्तमञ्जूषीठेषु विद्युद्धनितया सह। | |
| मिन्नेन्द्रनीलनीलेन शेषाङ्गेष्यिव शौरिणा॥ | २० |
| परमाणुमये सर्गे पिण्डरूपेप्वलक्षितम्। | |
| स्थितमन्तःपदार्थेषु ब्रह्मणेवाखिलात्मना ॥ | २१ |
| प्राप्य जिह्नाणुभिः सङ्गमनुभूतिः कृतोत्तमा । | |
| यामात्मनो न देहस्य मन्ये ज्ञानस्य केवलम्॥ | २२ |
| न मया नच देहेन नान्येनास्वादितात्म यत्। | |
| तद्न्तर्विष्ठतं चेत्यमञ्जानाय तद्प्यसम् ॥ | २३ |
| सर्वेर्तुरसरूपेण नानामोदानि दिश्वलम्॥ | |
| भुक्तानि पुष्पजालानि प्रोच्छिष्टं द्दतालये ॥ | રક |
| चतुर्दशप्रकाराणां भूतानामङ्गसन्धिषु । | |
| उषित् चेतनेनेच जडेनाप्यजडात्मना ॥ | २५ |
| सीक्रोत्कररूपेण रथमारुद्य मारुतम्। | |
| आमोदेनेच विहितं विमलन्योमवीशिषु ॥ | २६ |
| राम तस्याम्बस्थायां परमाणुकणं प्रति । | |
| अनुभूतमंदीषेण यथास्थितमिदं जगत्॥ | 30 |

गम्यते ॥ १९ ॥ २० ॥ ष्ठिपुत्तिकाविपरमसूक्ष्मदेहात्मकेऽपि सर्गे तत्तरप्राणिपिण्डरूपेष्वन्तर्गतेषु पर्मसुक्ष्मेषु तन्नाष्यादिप-दार्थेषु ब्रह्मणेव परमसुक्ष्मजलात्मना मया स्थितम् ॥ २९ ॥ किंच मधुरादिरसात्मना मया तदीयजिह्वालक्षणरण्भिः सह सन्नं प्राप्य तेषां रसाखादलक्षणा उत्तमा अनुभृतिः कृता । या-मनुभूतिं न देहस्य मन्ये किंतु केवलं ज्ञानखरूपस्य आत्मन एव विषयानन्दाकाराविर्भूतं खरूपं मन्ये । 'एतस्पैवानन्दस्या-न्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेरिति भावः ॥२२॥ तत्र पृथग्जना विषयमेवानन्दरूपमास्वाद्यमानं मन्यन्ते तन्न तथा विद्यार्कित्ससदुःखरूपमनासादनीयमेवेति तं पृथकृत्य दर्शयति-- मयेति । यचेत्यं विषयह्यं तन्न मया तद्धिष्ठान-चिता नाप्यास्वादकपुरुषदेहे नाप्यन्येन तर्जावेनास्वादितात्म-मुखलेशसाप्यभावेनास्वादनायोग्यत्वात्तत्त्रथाविधं चेत्यं विता यदन्तर्पिषृतं प्रकाशितं तत्केवलं जीवानामज्ञानाय व्यामोहायैव यतस्तचेत्यं तदहानमप्यसदेव। असतः असदर्थलस्यैवीचि-त्यादित्यर्थः ॥ २३ ॥ आखायलपभेऽपि विषयाधिष्टानचिदा-खादितानेव विषयांस्तदुच्छिष्टप्रायानन्ये आखादयन्तीति वा क-ल्पनास्त्वत्याशयेनाह—सर्वर्तिति । अलये श्रमराय ॥ २४ ॥ कल्पनया जडेनापि वस्तुतोऽजडात्मना ॥ २५ ॥ माइतहःपं रथमारुह्य विहितं क्रीडनं जनाह्यदनं चेति शेषः ॥ २६ ॥ तत्रापि परमाणुपर्यन्तसर्ववस्तुषु प्रतिबस्लन्तः कलधीत-शिळायामित्र सर्गा अनुभूता इत्याह—रमेति ॥ २७ ॥ प्रकृता संपादितेत्पर्थ इति योजना कार्या । पूर्वकोके युकोपमया धारोइणमात्रं प्रतिपादितं कर्णांद्रीत्यायुपमया त्वाकारविशेषप्रति-पादनपूर्वकं तत्प्रतिपादितमिति शेथम्.

अजडेन जडेनेष समया जालया तया। अन्तः सर्वपदार्थानां शाताशातेन संस्थितम्॥ २८ जगतां तत्र स्रक्षाणि नाशोत्पातशतानि च। मया दृष्टानि रूढानि कदलीदलपीठवत्॥ २९ एषं जगणाजगद्वा साकारं वा निराकृति। चिन्मात्रगगनं सर्वमाकाशाधिकनिर्मलम् ॥ ३० न किंचन त्वं च न किंचनेदं शुद्धः परो बोध इदं विभाति । स चापि नो किंचन नापि शून्य-माकाशमेवासि विकासमास्स्व ॥ ३१

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो॰ निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० जलजगद्वर्णनं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१

ર

3

પ્ર

वसिष्ठ उवाच ।
ततोऽहमभवं तेजस्तेजोधारणयेखया ।
चन्द्रार्कतारकाम्यादिविचित्रावयवान्वितम् ॥
नित्यं सत्वप्रधानत्वात्प्रकाशास्त्रतिराजगत् ।
सर्वं दृश्यमृते सर्वचीरध्वान्तप्रतापयुक् ॥
दीपादिभिः शनैः क्रिग्धैर्वशाशतविहारिभिः ।
प्रसक्षीकृतसर्वार्थं प्रतिगेहं सुराजवत् ॥
लोकालोके च हृषितेश्चन्द्रार्काचंशुरोमभिः ।
परप्रकाशेकरतैर्दूरोत्क्षिप्ताम्बराम्बरम् ॥
अन्धकारस्य दैन्यस्य समस्तगुणनाशिनः।

जालया जलविषयिण्या समया तुल्यरूपया तया धारणया॥२०॥ प्रतिवस्त्वन्तर्रष्टजगद्गतप्रतिवस्त्वन्तरेऽपि तथाविधजगदन्तराण्यनवस्थितान्यन्तरन्तर्रष्ट्रानीत्याह—जगतामिति। कदलीदलपी-ठवदन्तरन्तःप्ररूढान्यनन्तानीत्यर्थः॥२९॥एवं कल्पितानन्तजग्याप्तत्वेपि नाधिष्ठानचिति किचिन्मालिन्यमस्तीत्याह—एवमिति ॥३०॥ उक्तं न्यायं रामदद्यजगत्यपि योजयन्सर्वाधिष्ठानग्रुद्ध-चिन्मात्रे रामं प्रतिष्ठापयति—न किंचनेति। न किंचन लमित्य-वस्थात्रयेण सह देहेन्द्रियादिप्रतिषेधः । नच किंचनेदिमिति वियदादिबाह्यप्रपत्रप्रतिषेधः । सच शोधिततत्त्वंपदार्थलक्षणो बोधः नो किंचन दर्यस्वभावो नाप्यदद्यस्थानो नाप्यदद्यस्थाने विष्यस्यस्थान्यः किंत्रल्याकाशस्यः स एव त्यमस्यतो विकासम-स्वण्यवाक्यार्थवोधःवस्तर्भवद्वेतसंकोचं यथा स्यात्तथा आस्त्वे-स्यांः ॥ ३०॥ इति श्रीवातिष्ठमहारामायणताव्ययप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे नवतित्तमः सर्गः॥ ९०॥

तेजोधारणया तेजो भावमासाय वीक्षिताः । सूर्येषन्त्राधिरकादिष्यमस्कारा इहोदिताः ॥ १ ॥

ततो जलधारणाकौतुकदर्शनानन्तरम् ॥१॥ आजगत् सर्वं अगदमिव्याप्य प्रकाशाकृतिः । 'राजवत' इति पाठे सर्वं दश्यं चक्कुर्विषयं खापहृतं ऋते विहाय सर्वतश्रीरेष्विव प्रज्ञायमानेषु ध्वान्ते राजवत्प्रतापयुगिति संबन्धः ॥ २ ॥ यथा स्रुराजा दशाशतैनीनावेषेविहारिभः क्रिग्धेश्वरिः प्रतिगे- हं प्रस्यक्षीकृतसर्ववृत्तान्तार्यस्तद्वद्वतिकाशतविहारिभिरीपादिभिः

हश्यं सहृश्यमिनशं सर्गस्य गुणशालिनः॥ ५ तमस्तमालपरशः परशुद्धिकरं पदम्। सुवर्णमणिमाणिक्यमुक्तादिजनजीवितम्॥ ६ शुक्रकृष्णाश्णादीनां नित्यं ज्योत्क्वाङ्गशायिनाम्। पुत्राणामिव वर्णानां सर्वेषां देहदः पिता॥ ७ घनकोहरसं पृथ्या रिश्वतानलवेधनम्। गृहं प्रति घनानन्देर्वृतदीपकपुत्रकम्॥ ८ हृष्टं पातालकेष्वीपत्तमोक्षपेषु पावकम्। अर्थहृष्टं रजोक्षे भूतले भूतमालिते॥ ९ सत्वातमसु महासत्यं नित्यत्वं देवसश्चसु।

प्रसक्षीकृतसर्वार्थम् । तेजएव सर्वत्र विशेष्यमनुवर्वते ॥ ३ ॥ परप्रकाशैकरतेरत एव छोकानां जनानां भुवनानां च आछोके अतिसंतुष्टैः पुरुकितेथ चन्द्राकीचंशुरुक्षणे रोमभिद्रे उत् ऊर्ष्वै क्षिप्तमस्तमम्बरं सर्वावरकतमोवस्त्रमिव दृश्यमानमम्बरमाकाशं येनेत्युतप्रेक्षा ॥ ४ ॥ किमर्थमन्धकारं दूरे उत्क्षिपतीति चेत्त-त्राह-अन्धकारस्येति । यतः सत् विद्यमानं जगत्सर्वे सम-स्तान् गुणान् रूपादीभाशयत्यदर्शनं नयति तथाविधस्यान्धकार-लक्षणस्य दैन्यस्य दर्यं विषयः । सर्वस्य च गुणशालिनः पर-दैन्यनिवर्तनसमर्थस्य सत् उत्तममपगतदैन्यं जगदृश्यं दर्शनाई-मतस्तदपनयनं युक्तमेवेत्यर्थः ॥ ५ ॥ पुनः कीदशं तेजः । तमोलक्षणानां तमालवृक्षाणां परशुः खण्डकम् । पर्मुत्कृष्टं शुद्धिकरं पद्यते अनेनेति पदम् । निस्तेजस्कानां सुवर्णादीनाम-नादरासहक्ष्मणानां जनानां जीवितमादरहेतुः । सुवर्णादिरूपेण जनानां जीवनसाधनमिति वा ॥ ६ ॥ ज्योत्स्रा आलोकस्तद्-क्षशायिनाम् । रूपमात्रस्थालोकांशगुणलादिति भावः ॥ ७ ॥ इदं च तेजः पृथ्व्या सह घनः क्षेहरसः श्रीखतिशयो यस्य तथाविधम् । कुतः । यतो रक्षितमनलाद्वेधनं दहनं येन । सर्वदाहकोऽप्यनलो मृदं न दहति तदस्य स्नेहलक्षणमित्यर्थः । एवं पृथ्यापि खक्रेहलक्षणप्रकटनाय गृहंप्रति प्रतिगृहं घना-नन्दैः प्रीत्यतिशर्येर्भित्तिप्रासादादिभावेन यृतो वाय्वभिघाताद्र-क्षितो दीपकपुत्रको यस्य ॥८॥ तमोरजःसलबह्लेषु पाताला-दिषु लोकेषु तेजसः प्रकाशतारतम्यमाह—हप्रमिति सार्धेन । ईषत्पावकं ई्षत्प्रकाशकम् । अधेदष्टमधेप्रकाशम् ॥ ९ ॥ महासत्वं महाप्रकाशम् । निखत्वं निखता । अम्भस्तमसोमेहा-

१ दूरोत्क्षिप्तासिताम्बरम् इति पाठः.

ξo जगजीर्णकुटीदीपः कृपोम्भस्तमसोर्महान्॥ दिग्वध्रविमलादशीं निशानीहारमारुतः। सत्वं चन्द्रार्कवहीनां कुङ्कमालेपनं दिवः॥ ११ केदारं दिनसस्यानां तमोच्छ्ननामनुब्रहः। नभःकाचबृहत्पात्रक्षालनाम्यु समुहसत् ॥ १२ सत्ताप्रदत्तयाथीनां प्रकाशकतयापि च। चिन्मात्रपरमार्थस्य सहोदर इवानुजः॥ १३ क्रियाकमलिनीभानुर्भृतलोद्दजीवितम्। रूपालोकमनस्कारचमत्कारश्चितेर्यथा ॥ १४ नभस्तलगतासंख्यनक्षत्रमणिमालितः । दिमर्तुषस्सराष्ट्रंद्यवाडवाद्रयादिकेनिलः ॥ 814 चन्द्राकोदितरङ्गान्तरजडं पङ्किलो महान् । षृहद्वसाण्डसातस्थो नित्यमेकार्णवोऽक्षयः॥ १६ हेमादिषु खुवर्णस्वं नरादिषु पराक्रमः। काचकच्यं च रहादी वर्षादिष्यवभासनम् ॥ ज्योत्सामुखेनदुधिम्बेषु पश्मलेक्षणलक्ष्मसु । स्रवत्केहासृतापूरो हाससीहार्दभासनम् ॥ 8% कपोलबाहुनेत्राक्षिभुकरालकलासकः। निजोऽजेयतया जातो विलासः कामिनीजने ॥ १९

नगाधः कूप इवान्तर्शासि ॥ १० ॥ दिग्वधूनां विमल आदर्श इव विविच्य प्रकाणकम् । निशानीहारस्य मारुत इव अपनेतृ । सत्यं जीवितसर्वसम् ॥ ११ ॥ तमगा उच्छृनामुच्छूनानां रूपाणामनुष्रहः। नभोलक्षणस्य काचमयबृहत्यात्रस्य क्षालनार्थः मन्तु ॥ १२ ॥ चिन्मात्रलक्षणस्य परमार्थस्य जाड्यमात्रण जघन्यलादनुज इव ॥ १३ ॥ रूपाछोकस्य चाञ्चपस्य तत्त्रयु-क्तमनस्कारस्य च युरुया रूढचितेरिव विषयावरणतमोनिवर्तन-लक्षणश्चमत्कारः ॥ १४ ॥ किंचेदं तेजो बृहद्रह्माण्डलातस्थो मदार्णव एवेत्युत्प्रेक्षणाय रूपककल्पितरर्णवधर्मैविशिनष्टि---न-भक्तलेति । दिनर्नुवस्तरादिकालमेदलक्षणराबृधैः सर्वतः प्रशृद्धै-र्वाडवाम्यादिभिर्विक्षोमात्फेनिलः ॥ १५ ॥ चन्द्राकीदिलक्षण-तरज्ञान्तःप्रसतै रजोभिः अजडं विनैव जलं कदाचित्पह्लिः ॥ १६॥ किचेदं तेजःसन्नहं हेमादिषु सुवर्णत्वं संपन्नः । नरादिषु पराक्रमः संपन्न इति योज्यम् । काचकच्यं कान्तिवि-शेषः । अवभासनं विद्युत्प्रकाशः ॥ १७ ॥ मुखसदशेष्विन्दु-बिम्बेषु तु ज्योरकासंपन्नः । पश्मलेक्षणलक्ष्मसु मुखलक्षणेन्दु-विम्बेषु तु ज्योत्मासद्दाः स्वत्लेहामृतापूरी हाससीहार्द्युक्तं भासनं च संपन्न इत्यर्थः ॥१४॥ कामिनीजनं लह्मजेयतया प्रसिद्धो निजः खामाविकः कामविलासो जातः। स कीटकः। कपोलाबीनां छासको छावण्यातिशयेन प्रकाशकः । 'लामकः' इति पाठं चलनादिविकारहेतुः ॥ १९ ॥ किचाहं तृणीकृतत्रि-भुवनानां चपेटामिरास्फोटिता द्विषो यैसाधाविधानामपि परा-क्रमिणां युत्रादीनां शिरःसु वजीकरणं वज्रप्रहारः संपन्नः। सिंह।दिनेतसि नीर्यं च संपन्न इति प्रत्येकं विशेषणविशेष्यभा-

| तृणीरुतत्रिभुवनचपेटास्कोटितद्विषाम् । | |
|---|-----|
| शिरःसु बजीकरणं वीर्यं सिंहादिचेतसि ॥ | २० |
| कटुकङ्कटकुटाकखङ्गसंघटटां हतेः। | |
| पटुस्फुटाटोपरटिभटेष्वटनमुद्धटम् ॥ | २१ |
| देवेषु वानवारित्वं सुरारित्वं सुरारिषु । | |
| सर्वभूतेषु सोऽजस्त्वमुन्नामः स्थावरादिषु ॥ | २२ |
| अथ ते मध्यद्भास्तांस्तत्राहमनुभूतवान्। | |
| जगदाकाशकोशेषु तेषु तामूरसेक्षण॥ | २३ |
| दिगन्तदशनिस्तीर्णैः करजालैर्जगत्खगम्। | |
| गृहर्म्यङ्गमर्भत्वं प्रामवहृष्टभूतलम् ॥ | રક |
| कामोत्पले कोशचकं वाड्वं तिमिराणवे। | |
| ब्रह्माण्डसदने दीपं वृक्षं दिनफलावलेः॥ | २५ |
| रसायनहृदाकारमिन्दुत्वं वदनं दिवः। | |
| निशानिशाचरीहासं विकासं रजनीविशाम्॥ | २६ |
| जगलावण्यलक्ष्मीनां सर्वासामुपमास्पदम्। | 5.5 |
| रजनीरोहिणीनःशिकेरवानां परं प्रियम् ॥ | २७ |
| नेत्रवृत्दस्य वक्रस्य द्युलतापुष्पजालकम् । स्वर्णेत्रप्रकृतस्य सम्बद्धाः | 21 |
| स्वर्गीघमशकव्यूहं तारकापटलं सृदु ॥ | २८ |

वेन वा योज्यम् ॥२०॥ किंचाहं भटेषु उद्घटं रणाङ्गणेष्यटनं लक्षणया तत्प्रयोजकं वीर्यं संपन्नः । तत्कीदशम् । कटुनिः क-**क्ष**टानामाथसकवचानां कुष्टाका ये **ख**द्वास्तत्संघद्टजन्येष्टांकृतैः पटु स्फुढाडोपं च यथा सात्त्रशा रिट रटनशीलम् ॥२१॥ उन्नाम औत्रत्यम् । वःय्वादियछेनाप्यनाम्यस्वप्रयोजकं बलं वा ॥२२॥ अथ तेषु खधारणाकल्पितेषु जगदाकाशकोशेषु ते तब प्रसिद्धा मरुखली यथा खान्तर्नदादिकलपनमनुभवति तदूदह्मपि भा-खान्सन्वक्ष्यमाणं सर्वं खान्तरनुभूतवानित्यर्थः ॥ २३ ॥ तथे-वाह—दिगन्तेलादिना। अइमर्कलमनुभूतवान्। कीदशं तत्। दिगन्तेषु दशसु निर्सार्णैः प्रसृतैः करजालैः । अद्रयः अङ्गान्य-वयवा यस्य तथाविधं जगह्रक्षणं खगं पक्षिणं गृह्वत् । पुनः कीदशम् । प्रामवदत्यपरिमाणं दृष्टं भूतलं यत्र ॥ २४ ॥ पुनस्त-त्कीहशमकेलम् । चन्द्रकामवत्युत्पले कोशबन्धनहेतुभूतं च-कम् । बिष्टं सप्टम् ॥ २५ ॥ तथा इन्दुरवं चन्द्रभावमप्यनुभू-तवान् । तदपि कीदशम् । रसायनस्यामृतस्य इद इवाकारी यस्य । दिवो वदनमिव वदनम् । निशालक्षणाया निशाचयो अभिसारिकाया हासमिव हासम्। तथा रजन्यां विशन्ति प्र-वेशादिभ्यवृहारं ये कुर्वन्ति ते रजनीविशस्तेषां विकासं प्रकाश-कम् ॥२६॥२०॥ तथा सर्वप्राणिनां नेत्रवृन्दस्य वकस्य मुखस्य च आह्वाद्विकासहेतुत्वात्वरमं प्रियमित्यनुकृष्यान्वयः । तथा अहं मृदुतारकापटलम् । भावप्रधानो निर्देशः । तारकासमृहत्वं वानुभृतवान् । तदपि कीदशम् । यौराकाशस्त्रक्षमणाया ल-तायाः पुष्पजालक्षमिव स्थितम् । खर्गसुखलक्षणे ओघे तन्म-करन्दप्रबाहे आसक्तं मशकव्यृहमिव सृद् शुद्रम् ॥ २८ ॥

वणिक्यात्रे वणिग्यस्ततुलातोलनदोलितम्। रक्तत्वं जलकहोलहस्तान्दोलनमध्धिमिः॥ अब्धाब्धा द्यापरावर्तमब्धा गोमञ्जरीगणः। अब्दादी दाघदहनं वैद्युतं चोतनं तनी ॥ दारुदारणदुर्वारदीप्तं ज्वलनमानतम्। यज्ञाञ्चिदाहकल्याणं विस्फोटकठिनारयम् ॥ कचत्काञ्चनमाणिक्यमुक्तामणिमयं महः। तपस्तां नीतमाश्चिष्य पाण्डित्यमिव पामंगः॥ ३२ विश्रान्तं स्तनभ्दक्षेषु मुक्ताहारतया तया। असुरोरगगन्धर्वनरनायकयोषिताम् ॥ इ३ पादाहर्ति गतं मार्गे तिलकत्वं वधूमुखे। खद्योतेन मया लब्धं पद्यावस्थासु चापलम् રેઇ क्रचिद्विद्युत्तया तेषु शफर्या चार्णवेष्विव । खस्थेषु विकृतं चारु वार्यावर्तविराविषु ॥ 30 क्रचिद्दीपतयानीय कलिकाकोमलाङ्गया । अन्तःपुरेषु कान्तानां सुरतालोकनं इतम्॥ ३६ 🏻 क्रचित्कजलजालस्य ज्वालाकनकदाऋते । खेदिना घनकूर्मामं सङ्गेनेव स्वकोदरे॥ 30

तथा अहं रह्नलमध्यनुभूतवान् । तम पणिजी मिमीते इति वर्णिस्मात्रो विपणिस्तस्मिन्वणिजां हर्स्तसुलासु तोलनेध दोलि-तमान्दोलितम् । प्राक्त अन्धिगिजलकल्लोलहरेतरान्दोलने प्राप्त-मिति शेषः । बाहुलकात्कर्मणि वा ल्युद् ॥ २९ ॥ किंचाह-मध्यो समुद्रे अपो धयति पिबतीखन्धाः वडवानलः सन्शफराणां क्षुद्रमत्स्यानां मद्भीतानामावर्त परिश्रमणकीतुकमनुभूतवान् । तथा सर्वत्र अषः धयति शोषयतीत्यन्धा गोमजरीगणः सूर्य-किरणमञ्जरीसमूहारमकः संस्तनी स्वशरीरे द्योतनमनुभूतवान्। अन्दादी मेघपर्वतादी प्रविश्य दावदहनवैद्युतं च तत्तच्छरीरे द्योतनं स्वमनुभूतवानित्यर्थः ॥ ३० ॥ किचाहमप्रिभावं प्राप्य दाहणां दारणं विदारणनिमित्तं दुर्वारं यथा स्यात्तथा दीप्तमत एव दाहिबस्फोर्टः कठिनारवमाततं सर्वतोविस्तृतं ज्वलनमनुभू-तवान् । तथा यज्ञाभिः समानाइविदोहकत्याणं चानुभूतवानि-त्यर्थः ॥ ३१ ॥ किंच तस्मित्रधिभावे कच्छावण्यातिशयेन दी-प्यमानं काञ्चनादिमयं महो ज्योतिः कोशागारदाहेन आक्षिप्य प-रिभूय भसादिभावं नीला तत्खामिना तपस्तां संतापविषयतां नीतम् । यथा बलवद्भिः पामरेवेहुभिरेकस्य पण्डितस्य पाण्डित्यं वितण्डावादैरभिभूय संतापविषयतां नीयते तद्वत्। तथाचाभाण-कमाहुः--'पलाशं पण्डितः प्राह् मूर्खा जल्पन्ति पाडलम्। मुष्टिप्रहारैः संक्रिष्टः पण्डितोऽप्याह पाडलम्' इति॥३२॥ प्रसं-गोपात मुक्ताभावेऽपि यदनुभूतं तदाह—विभानतमिति॥३३॥ खबोतमावे यदनुभूतं तदाह—पादाहतिमिति । खबोतभूतेन मया तरखबोतत्वं गार्गे संचरतां जनानां पादाहर्ति गतं रुव्धम्। वधूमुखे तु तिलकत्वं गतं लब्धम् । स्थानमेदप्रयुक्तासूत्केषीप- चिद्योम गच्छेदृश्यत्यं तथा जाड्यं प्रचेतति ॥ ४५

कपावस्थास चापळमनेयत्यं पश्य ॥३४॥ संस्थेषु मेघेषु मया कविद्विद्वत्तयाणेवेषु शफर्येव चार यथा स्थात्तथा विकृतं चेष्टि-तम् । वार्यावर्तेविराविष्यिति द्वयोरपि विशेषणम् ॥ ३५ ॥ अन्तःपुरेषु अःनीय स्थापितेनेति शेषः ॥३६॥ ज्वाठालक्षणं कनकं दाति खण्डयति तथाविधाकृते खकोट**रे व**र्तिका**ग्रे प्रदः** हक्षज्ञलजालस्य सङ्गेनैय खेदिना मन्दप्रभेग दीपेन मया ज्वाला-यवयवसंकोचाद्धनकूर्माभं रूपं कृतमित्यर्थः । कल्पान्ताग्निभृतेन मया कल्पान्तेषु सर्वेषु जगत्मु भ्रमणत्रयुक्ताद्वृहतः श्रमात्कन-हेनासिते स्यामे कवित्खे आकाशे हीनम् । यथा मेघवाइनस्य हदस्य इभे वाहनभूतं भेघे विद्युता लीनं तद्वत् ॥ ३७॥३८॥ गगनेषु शुन्यतां प्राप्तेषु जठराशिषु मया अन्ते गगने ननृते । गात्रविक्षेपार्थस्य रृतेर्धालर्थीपसंगृहीतकर्मेक्तवेनाकर्मकल द्वावे लिट ॥ ३९ ॥ क्रांचदुत्सुकदन्तेन ज्वालाभुजात्मना विलोला-वर्तधूमाप्राण्येव कुन्तलाः केशा यस्य तथाविधेनीजसामिना मया पुराणां प्ररूटकक्षपछ्वानां च दाहेषु कियमाणेषु काष्टा-दिवदार्थाः खादनीचिता भक्षणयोग्याः कृता इति परेणान्वयः ॥ ४० ॥ हे कृताष्ट । कृताः स्थिरीकृता दयादारपृहान्ता गीतमोक्ता अर्थे गुना येनेति व्युत्पत्तेः ॥ ४१ ॥ कविस्कर्मा-रशालादी शक्ष्रियोमुद्धरः पाषाणेश्व हतेन लोहामिषाता-इभिहतेन कणका विस्फुलिङ्गा उपैलताः पाषाणखण्डाश्रोद्गीणीः ॥ ४२ ॥ पाषाणमणिना वज्रवैद्योदिरूपेण स्थितम् ॥ ४३ ॥ तस्यां पाषाणमण्याद्यवस्थायाम् ॥ ४४ ॥ चिदानन्दैकर-सपूर्णब्रह्मभूतस्य मम कैतिकाजगद्भावारोपवीक्षणे न दुःखले-शस्यापि प्रसक्तिः किंतु सुखमेवेत्युत्तरं वक्तुं वसिष्टो भूमिकां

२ आर्परवाद्वामजनेलक तलिति योगविभागादा समुद्रे तलः

कल्पान्तेषु कचित्सर्वजगद्भमघनश्रमात्। खे कजलासिते लीनं रुद्रेभ इव विद्युता॥ ३८ कचिदाकल्पमापीय वाडवाझितया जलम्। जगत्सु गगनेष्वन्ते ननृते जसराशिषु ॥ ३९ कचिदुव्मुकदन्तेन मया ज्वालाभुजात्मना। विलोलधूमावर्तीप्रकुन्तलेनाकुलीजसा ॥ Ro पुरपह्नवदाहेषु कवलीकृतजन्तुना। कृताः कृताष्ट्र काष्टादिपदार्थाः खादनोचिताः हतेन शस्त्रपापाणेरयःपिण्डादिवासिना। हन्तृदाहार्थमुद्रीणाः कणकोपलताः कचित्॥ ४२ कचिन्महाशिलाकोशे पापाणमणिना मया। समस्तभूतादृश्येन स्थितं युगशतान्यपि॥ 88 श्रीराम उवाच । मुने तस्यामवस्यायामनुभूतं त्वया सुखम्। उत दुःखांगति बृहि बोधाय मम मानद्॥ 83 वसिष्ठ उदाच। यथा याति नरः सुप्तो जडतां चेतनोऽपि सन्।

१ बहुवीहि:--आकृतमाकृतिः.

आत्मानं चेतति ब्रह्म पृथ्व्यादीव यदा तदा। सुप्तं जडमिवास्तेऽन्तः स्यादस्य न तदन्यथा॥ ४६ वस्तुतस्तस्य खोर्व्यादि नासद्र्यं न सन्मयम्। द्रपृद्दयमिवाभाति ब्रह्म चैतत्समं स्थितम्॥ पतत्सत्यपरिकानं यस्योत्पन्नमखण्डितम्। न तस्य पञ्चभूतानि न दृश्यद्रष्ट्रविभ्रमः॥ 85 तदा मयैवं शुक्रेन तत्कतं ब्रह्मरूपिणा। ब्रह्मरूपादते किंचिदेतत्कर्तुर्ने युज्यते ॥ ક્ષ यदा सर्वमिदं रह्यं जातं ब्रह्म निरामयम्। 40 तदा ब्रह्मपदस्थेन मयात्मवैवमीक्षितः॥ यदा पुनरहं पञ्चभूतानीत्येव भासयन्। भवामि जड पघाहं तदा चेतामि किं किल ॥ सुप्तोऽस्तिति हृदं भावं बुद्धवांश्चेतनोऽपि सन् । नैद्रमेवैत्यलं जाङ्यं लसश्चेतति किंचन॥ यस्तु ज्ञानप्रबुद्धातमा देहस्तस्याधिभातिकः। शाम्यत्युदेति विमलो बोधात्मैवातिवाहिकः॥ ५३ आतिवाहिकदेहेन तेन योधात्मनाणुना। बृहता वा यथाकामं निर्वाणात्मावतिष्ठते ॥ बोधदेहेन हृद्यं शिलानामप्यंभेदिनाम्। प्रविद्याश विनिर्याति याति पातासमम्बरम् ॥ ५५

रचयति-यथेति ॥ ४५ ॥ अस्य ब्रह्मणस्तद्वास्तवं सचिदान-न्दरूपमन्यथा न स्यादेवेति न दुःखप्रसक्तिरिति भावः ॥४६॥ कुतो न स्यातत्राह--वस्तुत इति । सममविकृतमेव स्थितम् ॥ ४७ ॥ अज्ञाने हि दुःसप्रसिक्तः स्यात्र च तदस्तीत्याह-एतदिति ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ यदि मम पाषाणमण्यादि-भावे वैतन्यमेव न स्यात्ति तदनुभवोऽद्य स्मरणं च न स्यादि-त्याशयेनाह-यदेति । किं चेनामि कथमनुभवामि ॥ ५१ ॥ सुषुप्ती कथं तर्हि न किचिदवेदिषमित्यवेदनप्रत्ययस्तत्राह—सु-शोस्मीति । तत्र नैदं निद्रोपस्थापितमज्ञानमेव नावेदिषमिति प्रतीतिप्रापितं जाड्यं अलं एति । लसत्स्वप्रकाशं किंचन वस्तु चेतत्येव । अन्यथा सुप्तिकालाननुभृतस्य स्वापाङ्गानादेः स्मरणं कथं स्यादिति भावः ॥ ५२ ॥ ज्ञानोदयेन स्थूलव्यष्टिसमष्टिदे-इस्याधिभौतिकभावापगमादपि न जाज्यदुःखप्रसक्तिरित्याशये-नाह---यस्त्वित ॥ ५३ ॥ निर्वाणात्मा जीवन्मुक्तः ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ तथाच न मे दुःखप्रसिक्तिरित्युपसंहरति—तस्मा-दिति ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ खेच्छानिर्मितकौतुकलादिप न दुःखप्रसिक्तिरित्याशयेनाह—स्वेच्छयैवेति । स्वेच्छयैवान्यत्र प्रयाति चेद्यया न दुःखं तथैव तत्तत्रैव स्थिति याति चेदेपि यथा पुनरागतिस्तथैव तत्र स्थितिरपि इष्टैव ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ तवापि तत्त्वज्ञानितया आतिवाहिकदेहत्वं

तसान्मया पुरा राम बोधदेहेन तसदा। तथा कृतमनन्तेन चिन्मयध्योमरूपिणा ॥ ५६ वज्रपाषाणपातालनभोम्बरगमागमान् । कुर्वतस्ताददास्याञ्च न विघ्न उपजायते ॥ 40 बोधमात्रशरीरेण याचदास्ते जडेष्वसी। पदार्थेषु तथाभृतस्तावत्तत्रावतिष्ठते ॥ ५८ स्वेच्छयेष चलित्वाथ ततोऽन्यत्र प्रयाति चेत् । तत्तत्रैय स्थिति याति तत्त्रयैवागतिर्यथा॥ ५९ बोधमात्रं विदुर्देहमातिवाहिकमव्ययम्। इदानीं त्वं तमेवेह बुधोऽनुभवसि स्वयम् ॥ 60 चिन्मात्रव्योमरूपोऽसीत्यर्कादाविति बोधतः। आत्मैवास्तमुपानीतः सन्नेवासन्निवात्मना ॥ ६१ स्थितं स्वप्नादिजगति तमसेवासतेव च। आवृतेनेव वान्यासामलभ्येन स तारदाम्॥ ६२ तरङ्गलेखयाङ्गारसरितः स्वाङ्गलग्नया । मनोराज्यश्रियेवाशुक् प्रोत्पन्नस्तद्वदेह्या ॥ ६३ कज्जलालिकया विद्वविपिनं पुष्पशोभया। फुलस्थलाम्बुजाकारं किंद्युकाशोकरूपया ॥ દ્દપ્ર विततारम्भयाप्युचैर्ज्वालाज्वलतयेद्धया । उपोत्थायाङ्गगछितं खललक्ष्मयेच लोलया॥ ६५

धारणाभेदैर्जगद्भावकातुकदर्शनं च सुलभभेवेति मदुक्तं परी-क्षखेलाशयेनाह--बोधमात्रमिति । तमेवातिवाहिकदेहं धार-णया जगद्भावं चानुभवसि यदीच्छसीति दोषः ॥ ६० ॥ तत्त्वक्षेरिच्छयैव अर्कादिसर्वं जगदस्तं नीला आत्ममात्रतया स्थापयितुं शक्यमित्याह—चिन्मात्रेति । आत्मना आत्मरूपेण सन्नेव जगद्रूपबाधादसन्निव भवतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥ ननु अस्म-दादिदशा सता जगता कथमसतेव स्थितमिति चेत्खप्रादि-जगति जाप्रजागतेवेत्याह — स्थितमिति । यथादशं जाप्रतपुरुष-दृष्टि प्रति सता विद्यमानेनैव जगता सुप्तपुरुषप्रसिद्धसप्रादिज-गति तमसा अज्ञानभावेनेव असता ग्रून्यभावेनेव आवृतेनेव वा अन्यासां प्रप्तदशामलभ्येन स्थितं तद्वदित्यर्थः ॥ ६२ ॥ किंच यथा कश्चिन्मनोराज्यश्रिया करिपताया अङ्गारसरितस्तरः अलेखया खाङ्गलप्रयापि अञ्चक् निर्दुःख एव कौतुकी प्रोत्पन्न-स्तद्वदहमपि आ ईह्या ईषदिच्छया पाषाणमण्यादिभावेन प्रोत्पन्न इति न शुक्प्रसिक्तिरित्यर्थः ॥ ६३ ॥ इत्यं रामप्रश्न-स्योत्तरमभिधाय प्रशुतमेवानुवर्तमान आह—कजलेति । व-हिभूतेनैव मया कज्जलमेवालिकमलिसमूही यस्पां तथाविधया अतएव पुष्पशोभया किञ्चकाशोकरूपया इदया दीप्तया ज्वा-लाञ्चलतयः विद्वयाप्तं विपिनं फुलस्थलाम्बुजाकारं कृतमिति रोषः ॥६४॥ हे अङ्ग, मया इद्धया दीप्तया खललक्ष्म्येव लोलया-

१ पुंग्त्वमार्थम् । अमेदि नेति वा पाठस्तत्रामेदि नेति च्छेदः ।

ना पुरुषः। अभेदीति हृदयविशेषणमित्यनुमीयते.

तेजस्तयापि परमाणुकणोदरेऽपि इष्टेत्थमेवमिह राम मया जगच्छीः।

अन्या च सा नच चिदम्बरतः परस्मा-त्स्वप्ने पुराचलगणोऽत्र निदर्शनं वः॥ ६६

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० तेजसजगद्वर्णनं नामैकनवतित्तनः सर्गः ॥ ९९ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२

ર

3

ও

विसष्ट उवाच। अथ वातमयीं कृत्या जगत्येक्षणकौतुकास्। धारणां धीरया बृत्या विततामहमागतः॥ संपन्नोऽस्म्यनिलो बहीललनालोकलासकः। कमलोत्पलकुन्दादिजालकामोदपालकः॥ सीकरोत्करनीहारहेलाहरणतत्परः। सुरतथान्तसर्वाङ्गसम।ह्रादनतपुंलः॥ तृणगुरमळतावहीद्ळताण्डवपण्डितः । **लतौ**वधिफलोलासकुसुमामोदमण्डितः॥ मृदुर्मङ्गलकालेषु छलनालोकलालकः। भीम उत्पातकालेषु पर्णवत्याढपवेतः॥ नन्दने कुन्दमन्दारमकरन्दरजोरुणः। नरकेऽङ्गारसंभारभृरिनीहारभासुरः॥ सागरे सरलावर्तलेखानुमितसर्पणः। दिवि वारिदसंचारमृष्टामृष्टेन्दुदर्पणः॥ नक्षत्रक्षत्रसैन्यस्य रथो रहोविवृहितः। त्रेलोक्यसिद्धसंचारविमानधरणे हितः॥

ज्वालाज्वलतया उपोत्थाय झटित्येवोत्कर्षं प्राप्य सहसैव गलि-तम् ॥६५॥ हे राम, या तंजस्तयापि परमाणुकणानामुदरेऽपि प्रत्येकं इत्थमेव जगच्छीर्रष्टा सा जगच्छीर्भवदादिप्रसिद्धा च जगच्छीः परमाचिदम्बरतः अन्यान । अत्रास्मित्रयं वः युष्माकं स्वप्ने प्रसिद्धः पुरगणः अचलगणश्च निदर्शनं दृष्टान्त इत्यर्थ ६६ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे प्रक्रवितसमः सगैः ॥ ९१ ॥

वायुधारणया वायुभावे तत्कर्मविसारः। ततः साकाशसार्वारम्यस्थितिश्चात्रोपवर्ण्यते॥ १॥

विततां वायुभावप्रतिष्ठापर्थन्तं विस्तीणां तामागतः प्राप्तः समनिलः संपन्नोऽस्मीत्यन्वयः॥ १॥ प्रसिद्धैरनिल्धर्मेरान्मानं विशिनष्टि—वहीत्यादिना । आमोदान्पालयति स्वाधीनिक्तः रक्षतीत्यामोदपालकः ॥ २॥ ३॥ फलोह्यासानां कुसुमानां वामोदैर्मण्डितः संपन्नोऽस्मीति सर्वत्रानुषद्धः॥४॥ मङ्गलकालेषु भाविकत्याणसूचनाय मृदुशैत्यमान्यसारभयुक्तः। उत्पातकालेषु तु भीमस्तद्विपरीतत्वात्त्वरोष्णपरुषः। प्रलयकाले तु पर्णवद्योदा उद्दायिताः पर्वता येन तथाविधः॥ ५॥ नन्दने स्वर्गे ॥ ६॥ सरलामिरावर्तलेखामिस्तरङ्गलेखामिरनु-भितं सर्थणं प्रवलनं यस्य । मेषापसार्णे मृष्ट इव तदाच्छादने-

| सहोदर इव श्रिप्रगामित्वादस्य चेतसः। | |
|---|------|
| अनङ्गोऽपि समस्ताङ्गः स्पन्दानन्दनचन्दनः॥ | ९ |
| तुषारसीकरासारजरारोमविजर्जरः । | |
| आमोदयौवनोन्मादो मौनमार्दवदौदावः॥ | १० |
| नन्दंनामोद्मधुरा मधुरोदारसंस्रतिः। | |
| चारुचैत्ररथोन्मुको हतकान्तारतथमः॥ | ११ |
| चिरं गङ्गातरङ्गाङ्गद्रोलान्दोलनसश्चमः। | |
| श्रमस्वरूपाइतया निवारिततत्रश्रमः॥ | १२ |
| पुष्पभारानतुः स्पर्शैवैसन्त्वनितालताः । | |
| चिरं चपल्यँह्योलदलहस्तालिलोचनाः॥ | १३ |
| चिरं भुक्त्वेन्दुबिम्वाग्रं सुप्ता पूर्णाञ्चतस्पके। | |
| विधूय कमलानीकमप्नीतरत्रश्रमः॥ | 1ંડ |
| समस्तरजसामेको व्योमगामी तुरंगमः। | |
| आमोदमदमातङ्गसमुह्यासमहासुद्वत् ॥ | १५ |
| घीरेणाप्यतडिच्छृङ्गं पयोदपद्युपालकः। | |
| तन्तुः सीकरमुक्तानामरिधर्मा रजो्हजाम्॥ | રૃદ્ |
| आकाशकुसुमामोदः सर्वश्वसहोद्रः। | _ |
| नाडीप्रणाठीसिळळं भूताङ्गोपाङ्गवर्तकः ॥ | १७ |

नामृष्टो मलिनीकृत इवेन्दुदर्पणो येन ॥ ७ ॥ नक्षत्ररुक्षणस्य क्षत्रसैन्यस्य राजसेनाया रहीभिर्विवृहिती विश्वद्धो रथः । प्रव-हास्यो मरुद्भेदो नक्षत्रचकं अमयतीति ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धेः । तथा बैठोक्यंऽपि सिद्धानां संचारे देवानां विमानधारणे च हितोऽनुकूलः ॥ ८ ॥ ९ ॥ तुषारादिलक्षणैर्नराधवलरोमिन-विजर्जरो बृद्ध इव । कुसुमाद्यामोदैर्थीवनोन्मादवानिव । सौन-भार्दवे शैशविमन यस्य ॥ १०॥ नन्दने इन्होद्याने उदारो म-धुरधः । चेत्ररथात्कुबेरोद्यानादुन्युक्तः प्रसतः ॥ ११ ॥ गङ्गात-रङ्गाङ्गदोलासु आन्दोलनेन सश्रम इव परश्रमानेवारणीतसुक्येन स्वश्रमानभिज्ञतया निवारितास्तता विस्तीणीः परश्रमा येन ॥ १२ ॥ वसन्तस्य वनिता इव स्थिता छता नर्मसर्थेरिक चिरं चपलयन्। टोलदलइस्ताध ता अलिलोचनाधिति कर्म-धारयः ॥ १३ ॥ इन्दुबिम्बे अप्रं श्रेष्ठममृतं विरं भुक्ला । रतश्रमः स्वीयः परकीयो वा ॥१४॥१५॥ तडिष्ठक्षणं श्टबं गोप-बालानां प्रसिद्धं वाद्यमाप्य धीरेण तन्नादेन प्योदलक्षणानां पश्चनां गोमहिष्यादीनां पालकः । रजोहजां धूलिवनाशकानां जलभागानामरिधर्मा । शोषक इतियावत् ॥१६॥ आकाशलक्ष-णस्य कुषुमस्यामोदो गन्धभूतः अतएव तद्भुणानां सर्वशब्दानां

१ नन्दनोदारमधुर: इति पाठो न्याख्यानुगुण:.

मर्मकर्मकरेकात्मा इद्वहागेहकेसरी। नित्यमेकान्तपथिकः सारविज्ञातवेदसः॥ १८ आमोदरक्षलुण्टाको विमाननगरावनिः। दाहान्धकारदीतांद्यः दैत्येन्दुक्षीरसागरः ॥ १९ प्राणापानकलारज्ञ्या प्राणिनां यश्रवाहकः। अरिमित्रं च द्वीपानां द्वीपसंचारणे रतः॥ २० पुरोगतोऽप्यहर्यात्मा मनोराज्यपुरोपमः। तालवृन्ततिलेतैलमालानं स्पन्ददन्तिनः॥ २१ पकक्षणलवेनेय चालिताखिलभूधरः। वर्णावलितरङ्गाणां गङ्गावाह इत्रैकरुत्॥ २२ धूमाम्बुचाहरजसां महावर्तकृदम्भसाम्। युनदीवाहवार्योघनभोनीलोत्पलालिकः॥ રરૂ शरीरावेष्टितोन्मुक्तपुराणतृणचोपनः । **रुपन्दपद्मवना**दित्यः दाद्यवर्षेकवारिदः ॥ २४ व्योमकाननमातङ्गः शरीरगृहगर्गदः। धूलीकदम्बविपिनमालालिङ्गननायकः॥ સ્પ स्त्यानीकरणसंद्योषधृतिस्पन्दनसौरभैः । सदौत्यैः कर्मभिः पङ्किरलब्धक्षण आक्षयम्॥ २६ रसाकर्पणसव्यत्रो नित्यं भ्रातेव तेजसः । इरणादानकर्तृणामङ्गानां विनियोगकृत्॥ २७ शरीरनगरे नाडीमार्गैर्गतिनिर्गलः।

सदोहरः । भूतानां प्राणिनामन्तेषु उपान्नेषु च वर्तकः संहादी-यनाडीलक्षणप्रणालीनां सलिलमिव संपन्न इत्यर्थः ॥ १७ ॥ एवं-भूतानां प्राणभूतत्व।द्भृदयादिमर्मस्थानलान्मर्मकर्मकराणां सर्वे-षामेक आत्मा । एकान्तं नियतं पथिकः संचरणशीलः । जात-वेदसः सारं बलं वेसीति सारवित्। यतो दुर्बलं दीपादिभावे नाश-यति प्रबळं च मित्रभावेन वर्धयति ॥१८॥ आमोदलक्षणरस्नानां क्रण्टाको बलात्कलिकाप्रन्थिमन्मोच्य हर्ता । विमानगणलक्षण-नगरस्य अवनिर्विधारकः । दाहस्तापस्तक्रक्षणान्धकारस्य शी-तांधः । शैत्येन्दोः क्षीरसागर इव जन्मभूमिः ॥ १९ ॥ द्वीपा-नां तरक्रैः खण्डकलादरिः पांसुभिरुपचेतृलान्मित्रं च ॥२०॥ ॥ २१ ॥ प्रत्यकाले एकक्षणलवंनैव चालिता उत्साता अखिला भूधरा येन । वर्णावलिनीनावर्णास्तब्रक्षणानां त-रङ्गाणां गङ्गाप्रवाह इव धूलिमिश्रणेनैकलकृत् ॥ २२ ॥ पुनः कीद्यवायुः । धूमानामम्बुवाहानां रजसाम्भसां च महा-वर्तकृत् । युनदीप्रवाह एव सकरन्दवार्यीघो यत्र तथाविधस्य नभोक्षक्षणनीठोत्पलस्य अलिको भ्रमरः ॥ २३ ॥ वाद्याशरी-रावेष्टनेनोन्मुक्तानां जीर्णतृणानां चोपनो मन्दगतिहेतुः। स्पन्दः कियासामान्यं तह्नक्षणस्य पद्मवनस्य आदित्यो विकासहेतुः । शब्दलक्षणस्य वर्षस्य दृष्टेरेको मुख्यो वारिदः ॥२४॥ शरीरगृहे गर्गटो यम्मविशेष इव सदैव शब्दायमानः। धूलीलक्षणना-विकाकदम्बस्य विपिनमालालक्षणनायिकानां वालिक्सने नायकः ॥२५॥ स्त्यानीकरणं हिमधृतादेः पिण्डीकरणं कर्दमादेः संशोक्षे

| रसभाण्डे परावर्तादायुर्मणिमहावणिक् ॥ | २८ |
|---|-----|
| शरीरनगरीनाशनिर्माणैकपरायणः। | |
| रसिकट्टकलाधातुषृथक्करणकोविदः ॥ | २९ |
| प्रतिस्क्ष्माणुकं देहें ततो दृष्टं मया जगत्। | |
| तत्रेन्थं रूपवानसि स्फुटमाभोगि सुस्थिरम्॥ | ३० |
| परमाणुप्रति त्वत्र प्रोद्यन्त इव सर्गकाः। | |
| न च किंचित्किलोहान्ते खाकृते किमिवोहाते॥ | ३१ |
| सचन्द्रार्कानिलाग्नीन्द्रपद्मवैश्ववणेश्वराः । | |
| सब्रह्महरिगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः॥ | ३२ |
| ससागरगिरिद्वीपदिगन्तरमहार्णवाः । | |
| सलोकान्तरलोकेशकियाकालकलाक्रमाः॥ | 33 |
| सस्वर्गभूमिपातास्रततस्रोकान्तरान्तराः । | |
| सभावाभाववैधुर्यजरामरणसंभ्रमाः॥ | રેક |
| पवं नाम तदा राम भूतपञ्चकरूपिणा। | |
| मया प्रविद्वतं तत्र त्रेलोक्यनिलनोद्रे ॥ | 34 |
| रसः पीतोऽनुभूतश्च ध्माजलानिलतेजसाम् । | |
| मूलजालेन वृक्षाणां प्राणिनां वसता मया॥ | ३६ |
| रसायनघनाङ्गेषु चन्दनद्रवशोभिषु। | |
| खुठितं चन्द्रबिम्बेषु तुपारशयनेष्विव ॥ | ३७ |
| सर्वर्तुवनजालेषु नानामोदानि दिश्वलम्। | |
| भक्तानि पष्पजालानि प्रोच्छिप् ददतालये ॥ | 36 |

मेघादेर्धृतिर्धारणं तृणादेः स्पन्दनं सीरभानि गन्धाहरणानि शैत्यं तापहरणं चेति पङ्किः कर्मभिः आक्षयं प्रलयपर्यन्तमलब्धः क्षणो विश्रामो येन ॥ २६ ॥ हरणादानकर्तृणां हस्तादाङ्गानां विनियोगकुचालक इति यावत् ॥ २० ॥ गतिविषये निर्गलो निरन्तरायः । अन्नरसमये देहभाण्डे प्राणापानादिभावेन परा-वतीदायुर्मणिरक्षणमव्ययविषये महावणिक् ॥ २८ ॥ अन्नर-सानां किष्टस्य मलस्य कलानां सूक्ष्मतरसारभागानां षण्णां ल-गस्ड्यांसमेदोस्थिमजाशुक्राख्यानां वातिपत्तकफाख्यानां वा धातूनां च प्रथकरणे कोविदः कुशलः ॥ २९ ॥ तत्र वायु-भावेऽपि प्रतिसूक्ष्माणुकं परमाणुपर्यन्तं प्रतिहरुयं देहे तत्तदुद्रै मया कलधीतविलावदेव जगहृष्टम्। तत्र तेष्वपि जगत्सु इत्धं पृथिव्यादिजगद्भुपवानहमेवास्मि ॥३०॥ परमार्थहशा तु न च किंचित्किलोद्यन्ते । खाकृते श्रन्याकारे ॥ ३१ ॥ प्रतिपरमाणु किंकिसहिताः सर्गकाः श्रोत्यन्त इव तदाह-सचन्द्राकेंत्यादि-त्रिभिः । सर्वत्र 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुवीहिः । सहस्य सः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ एवमाकाशघारणया आकाशभावे तद्विलासमेदानुभवा अप्यूद्या इत्याशयेनोपसंहरति-एवं ना-मेति ॥ ३५ ॥ कथंकथं प्रविहृतं तरप्रपश्चयति—रसः पीत इलादिना प्राणिनां भूजलानिलतेजःसभवायह्रपाणां वृक्षाणां देहे वसता मया मूलजालेन भीमो रसः पीतः ॥३६॥ रसा-यनममृतं तद्धनान्नेषु चन्दनद्रववच्छेत्यशीक्र्षादिगुणशोभिषु ॥ ३७ ॥ नानामोदानि पुष्पजालानि भुक्तान्यनुभूतानि । स- ततोऽश्वतासु मृद्वीषु स्वास्तीर्णास्वम्बराजिरे। सुप्तं शुभाभ्रमालासु नवनीतस्थलीष्विव ॥ सुमनःपत्रमृदुषु नीललक्ष्मीविलासिषु । सुरतिद्वाङ्गनाङ्गेषु दूरास्तसारवासनम्॥ So कृतः कुमुदकहारकमले नलिनीयने । कोमलः कलहंसीमिर्लीलाकलकलारवः ॥ ઝર सरत्सरिच्छिरासारा मुलभूमण्डलान्विताः। अङ्गेरुढाः स्फुरद्भृता लोमालय इवाद्रयः॥ ४२ । खाद्रयः प्रथिता दीर्घसरित्सूत्रैः समुद्रकैः । आदर्शैरिव विश्रान्तमङ्गेषु प्रतिविभ्बिभः॥ કર भूतसर्गेण विभ्रान्तं सिङ्गविद्याधरादिना। मद्दे चेतितेनेच मक्षिकायीकरूपिणा॥ 88 मत्प्रसादेन मुदितैर्लब्धमकदिभिवेषः। कृष्णरक्तसितापीतहरितैहरितैरिव ॥ 84 समुद्रमुद्रया सप्तद्वीपसप्तात्मरूपया। संस्थया स्थापिता भूमिः प्रकोष्ठे वलयोपमा ॥४६ विद्याधरपुरन्ध्रीणां परामृष्टाङ्मयप्रिना । अर्ष्ट्रेनैच विहितः पुलकोल्लास आत्मना ॥ 80 सरिव्छिरामलस्फाररसानि सुषिराणि च। जगन्त्येवास्थिजालानि ममासन्संस्थितानि च ४८ असंख्येव्यीममातङ्गश्चन्द्रार्कचलचामरेः। उदुम्बरान्तर्मशकैरिव मङ्द्ये स्थितम्॥ ४९ सबैपातालपादेन भूतलोद्रधारिणा।

भोगप्रीच्छिष्टं मकरन्दं अलये ददता मया ॥ ३८ ॥ अम्बरा-जिरे आकाशचलरे सार्लाणीस शुन्नाश्रशय्यास सप्तम् ॥ ३९ ॥ सुमनसां शिरीषादिपुष्पाणां पत्रमिव मृद्यु सुरसिद्धः जनानेषु । किं कामुकेन लया सुप्तं, नेत्याह—दूरास्तेति ॥ ४० ॥ ४१ ॥ किंच बद्माण्डंभूतेन मया सरन्तीनां सारिच्छिरासाराणां मूलभूत-**भूमण्ड**लेनान्विताः भुवनावलयः स्फुरद्भुता अद्रयो लोजामालयः पङ्गय इवाङ्गेरुढाः ॥ ४२ ॥ ये खाद्रयो जगित प्रथितासैदीर्घसरित्सूत्रैः समुद्रकैश्व सह मम अङ्गेषु प्रतिबिम्बसहितैरादर्शैरिव विभानतं स्थितमिखर्थः ॥ ४३ ॥ सिद्धविद्याधरादिना भूतसर्गेण प्राणिनिकायेन तु मदेहे चेतिते-न परिज्ञातेन मक्षिकायौकरूपिणेव विश्रान्तम् ॥ ४४ ॥ तर्हि कि तैमें शिकायुकावद्भीतिः प्रतिक्षणं निवार्यमाणे रिद्विमेरास्थितं, नेत्याह-मत्त्रसादेनेति । वपुःकृष्णेत्यादिसमस्तपदं बोध्यम् । बपुषा कृष्णरकादिवर्णेईरितैः झिम्बेर्वर्क्षरिव स्थिरैः पेपीयमानैन मीदमानैश्वेखर्थः ॥ ४५ ॥ सप्तद्विषिः सप्तविधात्मरूपया सं-स्थया संनिवेशेन प्रसिद्धा भूमिर्मया प्रकोष्ठे बलयोपमा स्थापि-ता ॥ ४६ ॥ तामिरदृष्टेनैवात्मना मया तासां खानन्देन पु-सकोहासो विहितः ॥ ४७ ॥ सरिह्मक्षणशिराभिरमलस्फारान्त-र्गतरसानि सुविराणि चिछ्रवन्ति च पर्वतादिजगन्ति मम देहे अधिजासानि चान्मांसाधीनि च संस्थितानि ॥ ४८ ॥ खमुर्धापि तदा राम न त्यकाथ पराणुता ॥ 40 दिश्च सर्वासु सर्वत्र सर्वदा सर्वकारिणा। सर्वात्मनाप्यसर्वेण शून्यरूपेण संस्थितम्॥ ५१ किंचित्त्वं सद्किंचित्त्वं साकृतित्वं निराकृति। अनुभूतं सजाङ्यं च चेतनत्वमळं मया॥ ५२ मैनाकमुग्धपीनस्य सागरस्यावनि प्रति । सन्ति सर्गसहस्राणि स्थाणुभूतान्यथो मया॥ ५३ जगन्त्यङ्गे मयोढानि गृढानि प्रकटान्यपि। प्रतिविम्यपुराणीय मुकुरेणाजडात्मना ॥ 48 पवं जलानिलाग्नित्वं भूमित्वं खात्मना मया। कृतं चितेव स्वप्नेषु वत मायाविज्ञम्भितम्॥ 44 अपि तस्यामवस्थायां जगन्त्याकाशकोशके। मया इष्टान्यसंख्यानि परमाणुकणं प्रति॥ ५६ परमाणुत्रतिब्योम परमाणुत्रतिस्थितम्। सर्गवृन्दं यथा स्वप्ने स्वप्नान्तर्युतं पुरम् ॥ 60 स्वमेवाह्मभूवं भूमण्डलं द्वीपकुण्डलम् । सर्वात्मनापि न व्याप्तं किंचनापि मया कचित् ५८ समुत्पादयताशेषं छतातरुतृणाङ्करम्। भूतलेन रसाः रुष्टा मयार्थनैव पुंभृताम् ॥ ५९ अवदाततमे युद्धबोधकालमुपेयुषि । जगल्लक्षाणि तिष्ठन्ति न तिष्ठन्ति च कानिचित् ६० चिति यास्तु चमत्कारं चमत्कुर्वन्ति यत्स्वतः। स्वचमत्कृतयोऽन्तस्थास्तदेताः सृष्टिरप्यः ॥

व्योममातकेरेरावतादिभिः । मद्भुदये हृदयाकाशे ॥ ४९ ॥ एवमतिविस्तृतत्रह्माण्डरूपेणापि मया परमसुक्षमचिन्मात्रस्यभा-वता न हापितेलाह-सर्वेति ॥ ५० ॥ शून्यरूपेण सर्वद्वेतशू-न्यचिन्मात्ररूपेण ॥ ५१ ॥ तदा परिच्छेदापरिच्छेदादिसर्ववि-रुद्धधर्माणां खात्मनि समुचयोऽनुभूत इत्याह—किचित्तन-मिति ॥ ५२ ॥ समुद्रादिक्वक्षिदेशेष्यपि कलधौतशिलायामि-वानन्तानि जगम्ति सन्ति तान्यपि मयानुभूतानीत्याह्—मैना-केति । मेनाकवदन्तानेठीनैः पर्वतशिलादिभिर्भुग्धस्य पीन-स्यातिविस्तृतस्य च सागरस्य अवनि प्रति प्रतिदेशं स्थाणुभू-तानि सर्गसहस्राणि सन्ति तानि च मया अथो अनुभूतानीति विपरिणामेनानुषज्यते ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ स्त्रप्रेषु प्रसिद्धया चि-तेव कृतम् ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ प्रतिपरमाणु एवं विस्तृतं व्योम स्थितं तत्र संचरत्व्रतिपरमाणुसर्भष्टन्दं स्थितम् ॥ ५० ॥ स्तं आध्यासिकमात्मरूपमेवाभूवम् । एवं सर्वजगदात्मभूतेनापि मया क्रिविकिचनापि न व्याप्तं न स्पृष्टम् । असङ्गाद्भयलादि-त्यर्थः ॥५८॥ पुंचतां पुरुषादिशरीरभृतामर्थेनैवावशेषं छतात-हतृणाङ्करं समुत्पादयसा मया दृष्टिनिपतिना रसा भूतलेन कृष्टा निर्पाताः ५९ युद्धसद्दशं सर्वद्वैतसंहारकं बोधकालं उपेयुषि मयि जगह्मभणानि तिष्टन्ति न तिष्ठन्ति च ॥६०॥ केन ह्रपेण तिष्ठन्ति

१ शुद्धवीधकालसमें भवि **श**ति पाठः।

अनुभूतं छतं कएं यावत्कचन किंचन।
परमार्थचमत्काराहते नेहोपलभ्यते॥ ६२
प्रत्मेकं विश्वरूपात्मा सर्वकर्ता निरामयः।
प्रबुद्धः शुद्धबोधात्मा सर्वे ब्रह्मात्मकं यतः॥ ६३
सर्वेः सर्वेत्र सर्वात्मा सर्वेगः सर्वेसंथयः।

पतत्प्रबुद्धविषयमप्रबुद्धं न वेष्यहम्॥ ६४ आकाशकोशविशदात्मनि चित्स्वरूपे येयं सदा कचित सर्गपरम्परेति। सान्तस्तदेव किल ताप इवान्तरूप्मा मेदोपलम्भ इति नास्ति सदस्स्यनन्तं ६५

इत्सार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वा० उ० पा० परभार्थसर्गयोरैक्यप्रतिपादनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥९२॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३

वसिष्ठ उवाच ।
अधैषं रूपसंवित्तः परावृत्त्य प्रयक्ततः ।
तमम्बरकुटीकोशदेशमागतवानहम् ॥ १
यावत्तत्र न पश्यामि स्वत्रेहं कचन स्थितम् ।
पश्यामि केवलं सिद्धं कमण्यन्यं पुरः स्थितम् ॥ २
उपविष्टं समाधाननिष्टमिष्टं पदं गतम् ।
सौम्योदयमिवादित्यं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥ ३
बद्धपद्मासनं शान्तं समाधाननिरिक्षनम् ।
गुल्फद्वितयमध्यस्थवृषणं विषयातिगम् ॥ ४
मृष्ट्सोम्यसमाभोगस्कन्धवन्धुरकन्धरम् ।
सुस्थिरोदारविश्रान्तस्कारकस्थितं सुन्दरम् ॥ ५
नाभीनिकटगोत्तानपाणिद्वितयदीप्तिमिः ।
द्वयाम्भोजतेजोभिर्वष्टिष्ठैरिव भासितम् ॥ ६
रिग्रष्टपक्ष्मेक्षणं क्षीणसर्वेद्धं स्वच्छतां गतम् ।

केन च न तिष्ठन्तीति चेक्षिक्षमत्कारमात्ररूपेण तिष्ठन्ति तदन्यरू-पेण न तिष्ठन्तीत्याद्य-चितीति द्वाभ्याम् । चिति या अन्तस्थाः खचमरकृतयः खसत्तास्फूर्तिलक्षणं चमस्कारं यत्खतश्चमरकुर्वन्ति जगलारोप्य प्रकटयन्ति तत्तेन रूपेण एताः सर्गदृष्टयः सन्ती-खर्थः ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अत्रष्वाध्यारोपे प्रत्येकं खसत्तार्पणाद्वि-श्रह्मपारमापवादेन प्रशुद्धस्तु शुद्धवोधारमैवेलार्थः ॥ ६३ ॥ अ-तएव एकेकवस्त्वन्तरे ब्रह्मणि सर्वजगदध्यासात्सर्वः सर्वत्र सर्वात्मा च सर्वगः सर्वसंश्रय इत्येतत्त्रशुद्धविषयं जगद्भपं पर्य-बस्यति । अत्रबुद्धगम्यं तु रूपं न प्रबुद्धेर्द्रशृं शक्यमित्य।ह---अप्रबुद्धमिति ॥ ६४ ॥ तथाचाद्वये निदात्मनि विदुषां सर्वत्र सर्वात्मताकरूपना विकल्पमात्रं न चिद्यतिरिक्तं वस्त किंचिद-स्तीत्याह-आकाशेति । सा अन्तस्तदेव । यथा तापस्यान्त-रूप्मेति प्रयोगे तापपदस्य तदन्तःपदस्योष्मपदस्य च न पृथग-र्थोऽस्ति किंतु वाक्याद्विकल्पमात्रं तद्वद्वेदोपलम्भोपीति न जग-इस्ति किलनन्तं सदस्तीत्यर्थः ॥ ६५ ॥ इति श्रीवासि-इमहारामायणसात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्विन-बतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

बासिडकुट्यां ध्यानस्यसिद्धसेह निरीक्षणम् । पातः कुट्युपसंहारास्त्रीदृन्तीकित्य वर्ण्यते ॥ १ ॥ अथ भारणासिद्धजगदेहदर्शनानन्तरमेवंद्रपाया उक्तस्पायाः सरो निमीलिताम्भोजिमिय सुप्तं दिनास्यये॥ अविश्वुमितमाशान्तमन्तः करणकोटरम्। दधानं धीरया वृत्त्या शान्तोत्पातिमवाम्बरम्॥ ८ अपश्यता निजं देहं तं मुनिं पश्यता पुरः। इदं मया तदा तत्र चिन्तितं चाहचेतसा॥ ९ अयं कश्चिन्महासिद्धः संप्राप्तोऽस्मिन्दिगन्तरे। विचार्याहिमिवैकान्तं विश्वामार्थी महाम्बरम्॥ १० समाधियोग्यमेकान्तं लभेयेतीह चिन्तया। इटी दृष्टेयमेतेन सत्यसंकल्पशालिना॥ ११ मदागमनमेतेन ततोऽचिन्तयता चिरम्। तं स्वदेहं शवीभूतमपास्येह इता स्थितिः॥ १२ तिदृहास्तमहं यामि स्वं लोकिमिति निश्चयम्। यावद्गन्तुं प्रवृत्तोस्मि तावत्संकल्पनक्षयात्॥ १३

कीतुकदर्शनसंवितः सकाशात्परायुत्त्याहं तत्प्राक्तनं खसमाधि-स्थानमम्बरकुटोकोशदेशमागतवान् ॥ १ ॥ यावत्साकल्येना-न्विष्टमपि क्रचन खदेहं न पश्यामि ॥ २ ॥ इष्टं परमञ्जेमास्पदं निरतिशयानन्दनकापदं गतम् । तं वर्णयति - सौम्योदयमिवे-खादिना ॥ ३ ॥ समाधानेनेष्टविषये चित्तस्यैर्येण निरिज्ञनं निश्वलम् ॥ ४ ॥ 'समं कायशिरोप्रीवं धारयन्' इति भगवदु-क्तध्यानाङ्गदेहस्थितिलक्षणान्यस्याह—मृष्टेति । भस्मत्रिपुण्डरे-खामृद्याभ्यां सौम्याभ्यां गाम्भीर्यरम्याभ्यां समाभोगाभ्यां स्कन्धाभ्यां बन्धुरा कन्धरा श्रीवा यस्य । सुस्थिरस्य उदारे वस्तुनि विश्रान्तेन मनसा स्फारस्य प्रसन्नवद्नस्य कस्य शिरसः स्थित्वा सुन्दरम् ॥ ५ ॥ पाणिद्वितयस्य दीप्तिभः फुल्रपदाद-यसद्दशकोभाभिः । हृदयाम्भोजेति तासामेवोत्प्रेक्षा ॥ ६ ॥ क्षीणाः सर्वा ईक्षा बाह्येन्द्रियव्यापारा यस्य । दिनात्यये रात्री ॥ ७ ॥ ८ ॥ इदं षक्यमाणं चिन्तितम् ॥ ९ ॥ पूर्वमहमिवै-कान्तविश्रामार्थी ॥ १० ॥ समाधियोग्यमेकान्तं स्थलं लमेय इति चिन्तया इह संप्राप्तः । एतेन इयं क्वरी खध्यानयोग्या रष्टा ॥ ११ ॥ तत एतेन चिरं मदुपेक्षणाच्छवीभूतं तत्र स्थितं खदेहं वसिष्ठदेहं दृष्ट्रा तत्र पुनर्मदागमनमचिन्तयता अ-जानता तं देहमपास्य अन्यतः क्षित्वा इह कुट्यां स्थितिः कृता ॥ १२ ॥ तन्मय शरीरमिड अस्तं नष्टमतोऽहमातिबा-

सा निवृत्ता कुटी तत्र संपन्नं व्योम केवलम्। स सिद्धोऽपि निराधारः पतितोधः समाधिमान् १४ खप्रसंकरपसंशान्ती स्वप्नसंकलपपत्तनम्। यदा सा सुकुटी नष्टा मत्संकल्पोपशान्तितः॥१५ स पपात ततो ध्यानी जलोत्पीड इवाम्बुदात्। **सादिवानिलनुष्ठोऽव्द इन्दु**बिम्बमिव क्षये॥ षैमानिक इयापुण्यहिछन्नमृत्र इय द्रुमः। कास्यक्त इव पाषाणः स पपात ततोऽवनी ॥ १७ अहं याचदियं ताचत्कुटिकास्त्विति कल्पने। श्रीणे कुटीक्षये जाते स सिद्धः पतितः क्षणात् १८ पतता तेन सिद्धेन ततः सीजन्यकीतुकः। मनसेषाह्मगमं नभसो वसुधातलम् ॥ १९ सोऽपतत्पवनस्कन्धवलनावर्तवृत्तिभिः। सप्तद्वीपसमुद्रान्ते गीर्वाणरमणावनौ ॥ 20 प्राणापानोध्वंगामित्वात्खाद्यथास्थितमेव सः। सृष्टपूर्वीभ्वेमुर्घोद्यी बद्धपद्मासनोऽपतत्॥ २१ : न प्रबुद्धो बभूवासौ विचरं तमचेतनः। पाषाणदेह इब या तूळात्मेवैव वा लघुः॥ मया तद्वबोधार्थमथ यत्तवता तदा। फृत्वा जलदतां ब्योम्नि बृष्टं गर्जितमूर्जितम् ॥ २३ करकाद्यानिपातेन तेन तस्मिन्दिगन्तरे । मयूरं प्रावृषेवामुं बुद्धा बोधितवानसी ॥ २४ षभूषाभासिताङ्गश्रीर्विकासितविलोचनः। **घारानिकरफु**ह्यात्मा प्रावृषीवाम्बुजाकरः ॥ ર્ષ

हिकदेहेनैव खं सप्तर्षिलोकं यामीति निश्चयं कृता यावद्ग-न्तुमइं प्रवृत्तोऽस्मि ताबदित्यर्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ पत्तनमि-वेति शेषः । पूर्वस्य परस्य चायं कुटीनाशस्य दशन्तः ॥१५॥ जलोत्पीडो जलासारः । क्षये प्रलयकाले इन्दुविम्बमिव ॥१६॥ अपुण्यः क्षीणपुण्यः । अवनौ वश्यमाणकाञ्चनावनौ ॥ १७ ॥ अहं यावदिह स्थास्यामि तावदियं कुटिका अस्तु तिष्ठतु इति एवंरूपे मरीयसत्यसंकल्पने गमनसंकल्पेन क्षीणे सति ॥१८॥ तेन सिद्धेन सह अहं मनसा तेनातिवाहिकदेहेनैव वसुधातल-मगमम् ॥ १९ ॥ प्रवहादिपवनस्कन्धानां वलनं परिवर्तनं तत्त्रयुक्तामिरावर्तसद्दावृत्तिभिर्यथा भावर्ते भ्रमज्जलमधः प्र-विशति तद्वदित्यर्थः । गीर्वाणानां रमणाधिकरणे काञ्चनावनी ॥ २० ॥ उच्यो सष्टः प्रथमं निवेशितः पूर्वः पदभागो येन तथाविधक्षासावूर्वमूर्धा च तथाविधः सन् । तत्कुतः प्राणेना-पानस्योर्ध्व आकर्षणेनोर्ध्वगामिलात्कूपेऽवतरतः कुम्भस्य र-व्यवेष तुम्बस्य बृन्तेनेव चोर्ध्वं प्राणापानाभ्यां विष्टब्धत्वेनाधः बिरस्कलाघटनादिल्यर्थः ॥ २१ ॥ तं तथाविधं विचरं चलनं प्राप्याप्यसी समाधेर्न प्रषुद्धो वभूव । यतश्वित्तस्यान्यत्र हढास-केरचेतनप्रायः । तर्हि भतिदूरात्पतनेन भग्नगात्रः कृतो नाभू-त्तनाह--पाषाणेति । वजपाषाणदेह इव योगवलादुहस्तूल-योग० १६१

प्रवुद्धं संप्रशान्तायां हृष्टी तमहमग्रतः।
अपृच्छं स्वच्छया वृत्त्या निवृत्तं परमार्थतः॥ २६
क स्थितोऽसि करोषीदं किं च भो मुनिनायक।
कस्त्वं कस्मादलं दृरान्न ग्रंशमपि चेतसि॥ २७
इत्युक्तो मामसौ प्रक्ष्य संस्मृत्य प्राक्तनीं गतिम।
उवाच वचनं चाह चातको जलदं यथा॥ २८
सिद्ध उवाच।

प्रतिपालय मे यावत्स्ववृत्तान्तं सराम्यहम्। कथिष्यामि ते पश्चात्पाश्चात्यं वृत्तमात्मनः २९ इत्युक्त्वा चिन्तयित्वाशु स यथावृत्तमक्षतम्। स्मृतवान्सायमहीव समाचरितमात्मनः॥ ३० मामथोवाच यचनं चाहचन्द्रांशुशीतलम्। आह्वादनमनिन्दं च निरवदं सुखोदयम्॥ ३१

सिद्ध उवाच ।
अधुना त्वं मया ब्रह्मन्परिक्षातोऽभिवादये ।
अतिक्रमोऽयं क्षन्तव्यः स्वभावो हि सतां क्षमा ३२
मुने चिरमहं भ्रान्तो देवोपवनभूमिषु ।
भोगामोदिवमोहेषु षट्पदः पिद्मनीिष्वष ॥ ३२
हह्यनद्यामथो चित्तजलक्षोलहेलया ।
चक्रावतींह्यमानेन मयोद्विमेन चिन्तितम् ॥ ३४
संसारसागरे हहयकहोलेरहमाकुलः ।
कालेनोद्वेगमायातश्चातकोऽवप्रहे यथा ॥ ३५
संविन्मात्रकसारेषु रम्यं भोगेषु नाम किम् ।
अवतिष्ठे गतोद्वेगसंविद्योद्वयेव केवलम् ॥ ३६

पिण्ड इव लघुरेव वा ॥२२॥ वोधार्थं समाधेर्व्युत्थापनार्थम् । जलदतां भेघतां कृत्वा मृष्टम्। ऊर्जितं बलवत्तरं च गर्जितम् ॥ २३॥ असौ मेधभूतोऽहं प्राकृषा मयूरमिवामुं सिद्धं बुख्या खबुद्धिकीशलेन बहिराकृष्टया तद्बुद्धा वा वोधितवानसमाधे-व्युंत्थापितवान् ॥ २४ ॥ २५ ॥ परमार्थतः परमार्थस्थिति-हेतोः समाधेः ॥ २६ ॥ किमप्टच्छस्तदाह - केति । दूराग्रंश-मधःपातमपि कस्मात् चेतसि न संजानासि ॥ २७ ॥ २८ ॥ प्रतिपालय प्रतीक्षख ॥ २९ ॥ वृत्तं पूर्वखवृत्तान्तं जनमान्तर-वृत्तान्तेः सह । अक्षतं समप्रम् । अद्वि वृत्तमात्मनश्ररितं यथा जनः सायं स्मरति तद्दत् ॥ ३० ॥ वश्यमाणवचनस्य विवेकवैराग्यप्रधानलाचार्वित्यादिविशेषणैः प्रशंसा ॥ ३१ ॥ अतिक्रमः प्रथमदर्शनेऽनमिवादनलक्षणोऽपराधः ॥ ३२ ॥ तत्र क स्थितोऽसीति प्रश्नस्य प्रत्यक्षदृष्टसमाधिस्थानकुटी-विषयलायोगात्तत्पूर्वतनाधारमेदात् जातिसारलं पयन् जन्मान्तरसाधारणानाह-मुने इति ॥ ३३ ॥ चित्त-जलकल्लोलहेलया स्वप्नवदृश्यनद्या मुखमानेन अतएव चिरका-केन विचारोदये संसारादुद्विभेन वक्ष्यमाणं चिन्तितम्॥ ३४॥ अवप्रहे वृष्टिप्रतिबन्धे ॥ ३५ ॥ किं चिन्तितं तदाइ--संबि-न्मात्रेति । भोगेषु कि नाम रम्यम् । यदि तत्र संविदातमना शब्दक्षपरसम्पर्शगन्धमात्राहते परम् । नेह किंचन नामास्ति किमेतावत्यहं रमे॥ OE चिन्मात्राकारामेवैतत्सर्वे चिन्मात्रमेव वा । तत्कमत्रासदाकारे रमे नष्टमतिर्यथा ॥ 34 विषया विषवेषस्या वामाः कामविमोहदाः। रसाः सरसवैरस्या स्टब्हेषु न को हतः॥ 39 जीर्णा जीवितजम्बालजरच्छफरिकामतिः। कायं द्वतगता दातुं जरेच्छति यृहद्वकी ॥ 80 कायोऽयमचिरापायो बुद्धदोऽम्बुनिधाविव। स्फ्रुरक्षेव पुरोन्तर्कि याति दीपशिखा यथा ॥ ४१ विविधाकुलक्क्षोला चक्रावर्तविधायिनी। मृतिजनमबृहत्कृला सुखदुःखतरङ्गिणी॥ ४२ यौषनोह्यासकितहा जराधवलफेनिला। काकतालीययोगेन संपन्नसुखयुद्धदा॥ ६३ व्यवहारमहाव।हरेख!जडरवाफुळा । रागद्वेषघनोद्धासा भूतळाळोळदेहिका ॥ 88 लोभमोहमहावर्ता पातोत्पातविवर्तनी। ष्टा तप्ता जीविताख्येयं नदी नदनशीतला ॥ ४५ अपूर्वाण्यपगच्छन्ति तथा पूर्वाणि यान्खलम् । संसारसरिवम्यूनि संगतानि धनानि च॥ કદ प्रवृत्ता ये निवर्तन्ते तैरलं हतभावकैः। अपूर्वा ये प्रवर्तन्ते तेष्वथास्थंह कीरशी ॥ ४७ सर्वस्थाः सरितो घारि प्रयात्यायाति चाकरात्। देहनद्याः पयस्त्वायुर्यात्येवायाति नो पुनः ॥

प्रथमानं सुखमेव रम्यं तदतिरिक्तानां तत्साधनानां दुःखखरू पत्वेन तन्मात्रसारलात्तर्हि दुःलाशं सर्वे विहाय सारभूते सुल-संविद्योद्भ्येव केवलमवतिष्ठे किमन्येनासारेणेखर्यः ॥ ३६ ॥ नश्चपरिच्छिन्नं मुखं विहास परिगणिते परिच्छित्रे असुखे रम-णमुचितमित्याह--शब्देति। एतावसल्पे ॥३०॥ एतच्छब्दा-दिसर्वे चिन्मात्रे स्वतःसति तद्यतिरेकेण विभाव्यमानमाकाशं श्चन्यमेव तद्व्यतिरेकदर्शने चिन्मात्रमेव पर्यवस्यति । तदेवमु-भयथाप्यसदाकारे अत्र शब्दादी कि रमे। नष्टमतिहन्मती यथा तथेत्यर्थः ॥ ३८ ॥ विषयाः शब्दाद्यो विषवनमरणी-न्मादादिवैषम्यहेतत्रः। वामाः श्रियः। रसा रागाः सरस-स्यापि पुंसी बैरम्यहेतवः । एषु छठन्को न हतः । कुरक्रमात-शादीनामेकैकासक्त्यापि वधवन्धनादिदर्शनादिल्थः ॥ ३९ ॥ एवं कायेप्यासिक्तिनिवितेलाह-जीगैति। हतगताजरा भृह-द्वकी जीवितजम्बाले मृहतीयं शफरिका लब्धेति मतिर्थस्यास्त-थाविधा सनी कायमादातुं प्रसितुमिच्छति ॥ ४० ॥ ४९ ॥ एवं जीवितेप्याशा नोचितेति तमदीत्वेन वर्णयति-विविधे-खादिना। विविधा भाकुला विक्षेपा एव कह्नोला यस्याः ॥४२॥ किलिला पद्माविला ॥ ४३ ॥ व्यवहारलक्षणया महाप्रवाहले- शतशः परिवर्तन्ते प्रतिषिण्डं क्षणं प्रति। कुलालचक्रकाभावा रव भाषा भवाम्बुधौ ॥ चरन्ति चतुराश्चौरा विषमा विषयारयः। हरन्ति भावसर्वस्वं जागर्मि स्विपमीह किम्॥ ५० आयुषः खण्डखण्डाश्च निपतन्तः पुनःपुनः । न कश्चिद्वेसि कालेन क्षतानि दिवसान्यहो ॥ इदमध तथेदं च तथेदमिदमस्य मे। पवं कलनया लोको गतं प्राप्तं न वेस्यहो ॥ ५२ भुक्तं पीतमनन्तासु भ्रान्तं च वनभूमिषु । दृष्टानि सुखदुःखानि किमन्यदिह साध्यते॥ 43 मुखदुःखानुभवनाद्भयोभूयो विवर्तनात् । अनिस्यत्वाच भावानां स्थिता निष्कौतुका वयम् ५४ भुक्तानि भोगवृन्दानि दृष्टा चानित्यता भृशम्। नोपलभ्यत एवाति विश्वान्तिरिह कुत्रचित्॥ भ्रान्तमुन्तुङ्गश्रङ्गासु मेरूपवनभूमिषु । लोकपालपुरीषुचैः संप्राप्तं किमक्त्रिमम्॥ ५६ सर्वत्र दारुभिर्वृक्षा मांसैर्भूतानि भूर्मृदा । दुःखान्यनित्यता चेति कथमाश्वास्यते वद्॥ 40 न धनानि न मित्राणि न सुखानि न बान्धवाः। शक्रुवन्ति परित्रातुं कालेनाकलितं जनम्॥ 46 जनो जीमृतजठरजलबद्गिरिकुक्षिषु। यात्यन्तःशून्य पद्मास्तं पांसुपचयपेलवः॥ ५९ न मे मनोरमाः कामा न च रम्या विभूतयः। द्दं मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गलोलं च जीवितम्॥ 80

खया जडरवैर्भूर्खप्रलापैः लडयोरमेदासहक्षणैर्जलरवैराकुला । रागद्वेषलक्षणैर्घनैर्भेघैरहसति वर्धते तथाविधा ॥ ४४ ॥ हा इति खेदे। नदनं नदनः शब्दमात्रं तेन शीतला वस्तुतस्ताप-त्रयतमा बहतीति संबन्धः ॥ ४५ ॥ संसारसारदम्बुभूतानि संगतानि इष्ट्रप्रमित्रादिसंगमाः । धनानि च पूर्वाण्यपयान्ति अपूर्वाणि चोपगच्छन्ति ॥ ४६ ॥ तत्र गच्छत्स्वागच्छत्सु च न शोकहर्षावुचितावित्याह--प्रवृत्ता इति ॥ ४७ ॥ आयुपि धनादिवैल**क्षण्यमाह—सर्वस्या इति।** आकाराद्विरिमेघादेः ॥४८ प्रतिपिण्डं प्रतिदेहं प्रतिक्षणं च भोग्या भावाः कुलालचक्रकेष्वा-रूढा घटशरावादिभाषा इव ॥ ४९ ॥ भावो विवेकस्ताहक्षणं सर्वस्त्रम् ॥ ५० ॥ ५१ ॥ गतमायुः प्राप्तं मृत्युं च न वेत्ति ॥ ५२ ॥ अन्यत् अपूर्वम् ॥ ५३ ॥ निष्कौतुका भोगेषु निरु-रकण्ठाः ॥५४॥५५॥ अकृत्रिमं शाश्वतं कि संप्राप्तम् । न कि-चिदित्यर्थः ॥ ५६ ॥ सर्वभोगेष्वसारतां विविच्य दर्शयति---सर्वत्रेति ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ पांसूपचयः पांसुराशिरिव पेलवः अस्थिरः अस्तब्ध जनो गिरिकुक्षिषु पतितजीमृतजठरजलबद्धि-षयान्तः भासक्तः सन्क्षणे क्षणे हीयमानः अन्तःपुरुषार्थशून्य एष अस्तं मरणं याति । जरठजीमुतेति पाठे शरनमेधजलबत् केव कस्य कथं नाम कुत आश्वासना मुने। अद्य श्वो बाऽऽपदं पापो मृत्युर्मृक्षिं नियच्छति ६१ दारीरं पर्णवद्धंहि। जीवितं जीर्णसंस्थिति । धीरचीरतया प्रस्ता रसा नीरसतां गताः॥ ६२ नीतं मनोरथैरेव नीरसैर्वाऽऽयुराततम्। न मम स्वं चमत्कारकारि किंचित्रपीहितम्॥ ६३ मोहोऽच मान्धमायातो देहो नेहोपयुज्यते। अनास्थैवोत्तमावस्था स्थानास्थैवाधमा स्थितिः६४ आपदापतितैवेयमहो मोहविधायिनी। नित्यमित्येव मन्तब्यं सक्तब्यं नेह संस्रती ॥ ६५ विधिभिः प्रतिषेधेश्च शाश्वतैरप्यशाश्वतैः। यथेष्टं नीयते लोके जलं निम्नोन्नतैरिव ॥ ६६ विवेकामोदसर्थस्यं चेतः कुसुमकोशतः। द्वत्या मुच्छी प्रयच्छन्ति विषया विषयायवः ॥ ६७ असदेव तथा नाम दृष्टं सत्तामुपागतम्। यथा सदेव सद्दं संपन्नमसदेव सत्॥ ६८ दोलायन्त्योऽधनौ देहं सागरान्सागराङ्गनाः। यथा धावन्ति धावन्ति जनता विषयांस्तथा धावन्ति विषयाँह्रक्ष्यमुन्मुकाश्चित्तसायकाः। स्पृशन्ति न गुणान्भूयः कृतञ्चाः सौद्ददं यथा॥ ७० उत्पातवायुरेवायुर्मित्राण्येवातिदात्रवः। षम्धवो बन्धनान्येच धनान्येवाति नैधनम् ॥ सुक्षान्येवातितुःखानि संपदः परमापदः। भोगा भवमहारोगा रतिरेव परारतिः॥ ७२ आपदः संपदः सर्वाः सुखं दुःखाय केवलम् । जीवितं मरणायैव बत मायाविजृम्भितम्॥ ७३

॥ ५९ ॥ ६० ॥ किंयुत्तानि कालकर्तृप्रकारनिमित्ताक्षेपकाणि । पापः ऋरो मृत्युर्यस्माददा श्वो वा मूर्भि आपदं यच्छति प्रापय-तीत्यर्थः ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ नीरतैर्भोगैस्तन्मनोरथैरेव वा आत-तमायुनीतम् । चमत्कारकारि किंचित्संपुरुषार्थरूपं मम नेहितं न संपादितम् ॥ ६३ ॥ अनास्था विषयेषु । स्थानं जीवनं तदास्थैव अधमा स्थितिः ॥ ६४ ॥ विवेकिनां संपदादिप्राप्ती इयं आपदेवापतितेति मन्तव्यम् ॥ ६५ ॥ विवेकिनः कर्मशास्त्राण्यपि व्यामोहकान्येव भान्तीत्याह-विधिभिरिति ॥ ६६ ॥ यतः कर्मिणामेहिकासुष्मिकविष-याविवेकं हुला अनर्थमेव प्रापयन्तीत्याह-विवेकामोदस-र्वस्वमिति ॥ ६० ॥ बस्तुतस्तुः विषयरूपमसदेव तथा सहुद्या दृष्टं सत्ताभुपागतं न बस्तुतः । यथा सद्रूपमावरणेनासदेव संपन्नं तथा असदेव विश्वेषेण सत्संपन्नम् । मायाशकेरघटि-तघटनपटीयस्वावित्यर्थः ॥ ६८ ॥ तत्र पराग्दष्टीनां विषयो-न्मुखी प्रवृत्तिः खाभाविकीत्याह--वौलायन्त्य इति । कूलद्वया-बनी देहं प्रवाहं दोलावदान्दोलायन्तः सागराञ्चना नचो यथा सागरान्धावन्ति ॥ ६९ ॥ ग्रुणान्विवेकवैराग्यादीन्मीर्वाक्ष

बहुन्कालपरावर्तानिष्टानिष्टान्सुखं मनाक्। परयन्त्रियवियोगांश्च याति जर्जरतां जनः॥ ৫৪ भोगा विषयसंभोगा भोगा एव फणावताम्। द्रान्त्येव मनाक् स्पृष्टा इष्टा नष्टाः प्रतिक्षणम् ७५ आयुर्याति निरायासपदप्राप्तिविवर्जितैः । उदर्कभङ्गराकारैः करार्छः कष्टचेष्टितैः ॥ ७६ भोगाशाबद्धतृष्णानामपमानः पदेपदे । आलानमवलीनानां यन्यानामिव दन्तिनाम् 60 संपदः प्रमदाश्चेच तरङ्गोत्सङ्गभङ्गराः। कस्तास्यहिफणाच्छत्रच्छायासु रमेते बुधः॥ 50 सत्यं मनोरमाः कामाः सत्यं रम्या विभूतयः । किंतु मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गलोलं हि जीवितम्॥ ७९ आपातरमणीयेषु रमन्ते विषयेषु ये। अत्यन्तविरसान्तेषु पतन्ति निरयेषु ते ॥ 60 ह्र-ह्रदोपोपरुद्धानि दुःसाध्यान्यस्थिराणि च। धनान्यभव्यसेव्यानि मम जातु न तृष्ट्रये॥ ८१ आपातमात्रमधुरा दुःखपर्यवसायिनी। मोहनायेव लोकस्य लक्ष्मीः क्षणविलासिनी ॥ ८२ आपातरमणीयानि विमर्दविसराण्यति । दुःखान्यापत्प्रदातृणि संगतानि खरुरिव ॥ ८३ द्यारदम्बुधरच्छायागत्वया योवनश्चियः। आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः ॥ 63 अन्तकः पर्यवस्थाता जीविने महतामपि। चलन्त्यायूषि शाखाग्रलम्बाम्बूनीव देहिनाम् ८५ जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः । क्षीयते जीर्यते सर्व तृष्णेवेका न जीर्यते ॥ ረቒ

॥ ७० ॥ अतितरां क्षेद्दासत्त्या शातयन्तीति रात्रवः । नैधनं निधनसाधनम् ॥ ७१ ॥ आराक्तिजननेनातिदुःखानि । रति-रासक्तिरेव परा अरतिरुद्वेगः ॥ ७२ ॥ प्रायुक्तमेव विवृण्य-न्नाह--आपद इत्यादिना ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ फणावतां सपीणां भोगाः फणा एव । तदुपपादयति—दशन्त्येवेति ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ अवलीनानां खानपानोपवासादिना कर्शितानाम् ॥ ७७॥ न केवलं भङ्करा अपितु सद्यो मृत्युदाश्रेश्याह—-अ-हिफणेति ॥ ७८ ॥ सत्यशब्दावभ्युपगमवादद्यांतको । सन्तु नाम मनोरमा इत्यर्थः ॥ ७९ ॥ आपात इन्द्रियसंथोगक्षणः अविचारो वा । पतन्तीति । विषयव्यसनिनामधर्मावस्यंभावा-दिति भावः ॥ ८० ॥ तदुपायधनदोषमाह्-द्वनद्वेति । अर्जन-काळे शीतोष्णश्चरिपपासादिद्वन्द्वदोषोपरुद्धानि दुःसाध्यानि च । **कष्टेनार्जितान्यपि राजचोरदु**व्येसनप्रमादादिमिर्विनाशादस्थि-राणि च ॥ ८९ ॥ ८२ ॥ संगतानि धनादिसंबन्धाः खंठैः संगतानि मैत्र्य इवेत्यादृत्या योज्यम् ॥ ८३ ॥ अयं श्लोकः किरातार्जुनीये अत्रत्य एव पठितो नोध्यः ॥ ८४ ॥ पर्यध-स्थाता अवस्यं प्रत्यवस्थाता । चलन्ति स्खलन्ति ॥८५॥८६॥

भोगाभोगातिगहने सर्वस्मिन्कायकानने। परमूलासमायाति तृष्णेका विषमञ्जरी ॥ बाल्यं यावनवद्याति यावनं याति बाल्यवत्। उपमानोपमेयत्वं भङ्करत्वं मिथोऽनयोः॥ 66 जीवितं गलति क्षिप्रं जलमञ्जलिना यथा। प्रवाह इच वाहिन्या गतं न विनिवर्तते ॥ ८९ झटित्येयागतो देहः कुतोऽप्यर्ज्जनवातवत्। याति पश्यत पवास्तं तरङ्गाम्बद्दीपवत्॥ रम्येष्वरम्यता दृष्टा स्थिरेष्वस्थिरतापि च। सत्येष्वसत्यतार्थेषु तेनेह विरसा वयम्॥ ६.१ सुखं यदात्मविश्रान्तौ गते मनसि सत्त्वताम्। पाताले भूतले स्वर्गे तम्र भोगेषु केषुचित्॥ ९२ अपि संपूर्णहृद्यार्थाः पञ्चापीन्द्रियवृत्तयः। तावज्जयन्ति मामेता भृद्गं चित्रलता इव ॥ 63 अद्य दीघेंण कालेन निरहंकृतिना मया। स्वर्गापवर्गवैतृष्ण्यमिवमासादितं घिया॥ 6.8 चिरमेकान्तविश्रान्त्यै तेनैतक्रभसः पदम्। त्वमिवागतवानत्र दृष्टवानस्मि तां कुटीम् ॥ ९५ अद्येतत्संपरिकातं यदेषा भवतः कुटी। आगन्ता त्वं पुनश्चेति मया तन्न विचारितम् ॥ ९६ तदा त्वत्र मया बातं कश्चित्सिद्धोऽयमारमना। देहं त्यक्त्वेह निर्वाणं गत इत्यनुमानतः॥ पतनमे भगवन्यू समेवोऽसीति यथास्थितम्। मया ते कथितं सर्वे यथा जानासि तत्कुर ॥ ९८ सिद्धेर्न यावद्यधानपरैर्विचार्य निर्णातमुत्तमधियान्तरशेषवस्तु । ताविञ्चकालकलनं न विदन्ति किंचिः दित्यकाजादिमनसोऽपि मुने स्वभावः ९९

इत्यार्षे श्रीवासिष्टनहारामायणे वा० मो० नि० उ० पा**० आकाशमण्डपसिद्धसमागमगाथावर्णनं नाम त्रिनव**नितमः सर्गः॥९३॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४

वितष्ठ उवाच । अथ हेममयाकाशविस्तीर्णायां महाभुवि । सौहार्दादेव सिद्धस्य तस्येदमहमुक्तवान् ॥ १ त्वया न केवळं तावन्मयापि न विचारितम् । आव्याप्तिरहिता नाम न संभवति देहिनाम् ॥ २

इदानी भोगान्भुका जन्मान्तरे विवेकवैराग्यादि प्राप्यामीति प्रयाशा तु न कार्यवेत्याह—भोगेति । सर्वस्मिन्भाविदेह-परम्पराह्पेऽपि कायकानने ॥ ८७ ॥ तत्रापि बाल्यादिषु न वैतृष्ण्यप्रयाशेत्याशयेनाह—बास्यमिति ॥ ८८ ॥ कृतो याति तत्राह—जीवितमिति । जीवितं आयुः । वाहिन्या नद्याः ॥ ८९ ॥ यो यो देह आगतः स कुतोपि निमित्ता-ज्झटित्येष पर्यत एव अस्तं नाशं याति । तरङ्गवदम्बुद-वहीपवश्व ॥ ९० ॥ सत्येषु सत्यतया ज्ञातेषु । विरसा वि-रागाः ॥ ९१ ॥ सत्त्वतां निर्वासनताम् ॥ ९२ ॥ सांप्रतं दृढवैराग्यं मां संपूर्णसर्वविषयसहिता अपि सर्वेन्द्रियवृत्तयः संभूयापि न जेतुं शक्तुवन्तीत्याह-अपीति । तावज्ञयन्तीति काकुरतेन न जयन्त्येवेत्यर्थः ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ एतत् लाकुटी-कल्पनास्पदम् ॥ ९५ ॥ लःकुटीयं लं च पुनस्तस्यामागतेति न तदा विचारितम् । एतत्सर्वमद्य परिशातमित्यर्थः ॥ ९६ ॥ किं तर्हि तदा हातं तदाह—तदेति ॥ ९७ ॥ क स्थितोऽसी-खादि लया पृष्टं यन्मे वृत्तं तदेतन्मयोक्तमिल्यर्थः । अतः परं **लं** यथास्मित्रपराघे दण्डमनुप्रहं वा जानासि तत्कृर्वित्यर्थः ॥९८॥ हे मुने, सिद्धैरपि युष्मदादिमिर्यावत्पर्यन्तमवधानपरैर्भूला अन्तः अशेषवस्तु उत्तमया घिया विचार्य न निर्णातं तावते त्रिकाल-स्भयुत्तान्तस्य कलनं सम्यग्ज्ञानं किंचिदपि न विदन्ति । अय- कसान्मया तवोदन्तं विचार्यासौ स्थिरीकृता। न कुटी व्योद्धि तेन त्वमभविष्यः स्थिरस्थितिः ३ उत्तिष्ठ सिद्धलोकेषु निवसावो यथास्थितम्। स्वास्पदस्थितयः सौम्याः स्वात्मसिद्धौ सुसाधनम् इति निर्णीय ताबुक्षेदत्सृतौ तारकोपमौ।

मन्जजादिमनसोऽपीदश एव खभावः कि पुनर्मादशस्पेति ख-द्वृत्तान्तापरिज्ञानदेहनिरासाद्यपराधं क्षमस्रेत्यर्थः ॥ ९९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरा-र्धे त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

सिद्धछोकं द्वयोर्यानं पिशाचानां च संस्थितिः । वर्ण्यते देवतानां च मनोमात्रानुसारिणी ॥ १ ॥

हेममय्यामाकाशमिव विस्तीर्णायां सप्तद्वीपसमुद्रबहिःस्थित्तायां महाभुवि । सीहार्दात्सुहृद्भावात् ॥ १ ॥ अयमविवारा-पराधो न केवलं तवैव किंतु ममापि तुल्य इस्राह—लयेति । तत्र सिद्धैनं यावदवधानपरेरिति यस्वयोक्तं तत्सस्यमेवेस्याह— आव्याप्तिति । देहिनां देहवतां योगिनामपि आव्याप्तिः प्रणिधानेन सर्वविषये मनोव्याप्तिस्तद्रहिता अतीतानागतार्थसंविक्तं संभवत्येव ॥ २ ॥ यदि संभवति तर्हि तव पतनं माभूदिति सा संकल्यकृटी स्थिरीकृता स्यादिस्याह—कस्मादित । स्थिरस्थितिः पतनरहितः । तथाच परस्परमादो ह्यामापि सन्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥ सं स्थीयं मया सप्तविधोके स्थानन्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥ सं स्थीयं मया सप्तविधोके स्थानन्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥ सं स्थीयं मया सप्तविधोके स्थानन्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥ सं स्थीयं मया सप्तविधोके स्थान्तव्य स्ति भावः । तत्किमयं तत्राह—स्वास्पदेति । स्थात्मनः सिद्यौ निविद्योपस्थितौ ॥४॥ स च अहं च तौ । 'स्यदादीनि सर्वैनिस्यम्' इति तच्छब्दशेषः । नजु 'स्यदावीनां मिथः सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते' इस्सम्बन्धः

S

सममेकपुरोद्वीनी व्योमयम्त्रोपळाविव ॥ प्रणामपूर्वमन्योन्यमथ छत्वा विसर्जनम्। गतः सोऽभिमतं देशमहं चामिमतं गतः॥ इति वृत्तान्तमिललमुक्तवानस्मि राघव। तवाश्चर्यमयी पदय संस्तिनां विचित्रताम्॥ श्रीराम उवाच । भगवंस्तव देहोऽसी पृथिव्यामणुतां गतः। भ्रान्तः केन दारीरेण सिद्धलोकांस्ततो भवान् ॥ ८

वसिष्ठ उवाच। आ स्मृतं श्रुणु वृत्तान्तं ततो मम जगद्वृहे। ९ भ्रमतः सिद्धसेनासु लोकपालपुरीषु च ॥ अहमिन्द्रपुरं प्राप्तो न कश्चित्तत्र रष्टवान्। मामिमं देहरहितमातिचाहिकदेहिनम्॥ 80 अहं किल तदा राम संपन्नो गगनाकृतिः। न चाधारो नचाधेयश्चिदाकाशमयात्मकः॥ ११ न ब्रह्मता न च ब्राह्यस्त्वादद्याथावयोधिनाम्। नचैव देशकालानां कचिदावृत्तिकारकः ॥ १२ मनोमननमात्रात्मा पृथ्व्यादिपरिचर्जितः। संकल्पपुरुषाकारः पदार्थानामरोधकः॥ १३ अरुद्ध्य पदार्थीवैः स्त्रयं स्वानुभवोन्मुखः।

ब्दशेषे आवामिति भाव्यम् । सत्यम् । छान्दसलात्तनाश्रितम् ॥४ उचेन्योम । उत्सर्ता उद्दीनौ । एकयम्ब्रपुट।दुर्द्वानौ यम्ब्रोपलाविव ॥ ५ ॥ उद्वीय व्योन्नि किं चक्रधुस्तत्राह---प्रणामपूर्वमिति । सः नन्दनं अहं सप्तर्थिलोकादीन् गतः ॥ ६ ॥ इति वर्णितपा-षाणाख्यायिकालक्षणं वृत्तानतं खानुभूतमखिलं सिद्धवृत्तानतं च तवाह्मुक्तवानस्मि । तं वृत्तान्तं प्रसुते योजयति---आश्चर्य-मयीमिति ॥ ७ ॥ कुटीसंस्थरत्नदीयस्थूलदेहः सिद्धेनापास्त इति लगैव खयमूहितमित्युक्तम् । निरस्तश्च पार्थिवो देहः पृ-थिव्यां कालेन पांशुभावमापद्यत इति परिशेषादेव ज्ञातम् । एवं सति मनोमात्रदेहेन सिद्धलोकान्गतो भवान्कर्य तत्रत्यजनैः सह व्यवहृतवान् । नहि मनोमात्रात्मा अन्येः सह व्यवहर्तु शक्कोत्यन्ये वा तेन सह व्यवहर्तुं शक्तुवन्तीत्याशयेन रामः प्र-च्छति--भगविभिति । अणुतां पांसुताम् । भ्रान्तः संचरितवा-निस ॥ ८ ॥ आ इति स्मरणयोतको निपातः । आहित् ॥९॥ ॥ १० ॥ गगनाकृतिराकाशबदस्थूलः । चिदाकाशप्रचुरं यन्म-नस्तदात्मकः ॥११॥ लादशा ये स्थूलार्थावबोधिनस्तेषां नतु सूक्ष्मायंदर्शिनां योगिनाम् । प्रेषणप्रतीक्षणादिनान्येषां देशका-रुपरिवर्तनकारकथ न संपन्नः ॥ १२ ॥ पदार्थानां स्तम्भकु-म्भादीनामसंस्पर्शादरोधकः ॥ १३ ॥ स्वप्नमनोराज्यवत्स्वमनो-मगैर्भृतैव्येवहर्ता ॥ १४ ॥ स्वप्रानुभृतयः स्वप्नानुभवाः सत्र ईदशार्थसंभावने अविखण्डितः समस्तो दृष्टान्तोऽनुसंभेय इ-खर्यः। यस्त नैयायिको श्वानमात्रे अवच्छेदकतासंबन्धेन देहस्य कारणता लब्धनोयोगस्यापि कारणता सुरुप्तो तदमावे

व्यवहर्ता तथाभूतेरेवं पुंभिमेनोमयैः॥ स्वप्रानुभूतयो राम रष्टान्तोऽत्र विखण्डितः। अनुभृत्यपलापं तु यः कुर्यात्तन तेऽस्त्वलम् ॥ १५ यथा स्वप्नचरो गेहे व्यवहर्ता न दश्यते। तथा तदा न हष्टोसि पुरस्थोऽपि नभोगतः॥ १६ अहमन्यान्त्रपदयामि पार्थिवाकारभासुरान् । मामातिवाहिकात्मानं न कश्चिद्पि पश्यति ॥ ११

श्रीराम उवाच । न दृश्यते विदेहत्वाद्भवान्व्योभवपुर्यदि । त्रकथं तेन सिद्धन दृष्टोऽसि कनकावनौ ॥ १८ वसिष्ठ उवाच। असदादिर्जनो नाम यथा संकल्पकल्पितान्।

नासंकव्यितमाप्रोति सत्यकामवपुर्यतः ॥ १९ व्यवहारेषु मग्नेन लौकिकेष्वमलात्मना। क्षणाद्विस्तयेते पुंसा आतिवाहिकमात्मनः॥ २० मया पश्यतु मामेष इति संकल्पितं तदा । तेन मां दृष्टवानेष स्वसंकल्पार्थभाजनम् ॥ २१ जनो जरठभेदत्वान्न संकल्पार्थभाजनम्। स एष जीर्णभेदत्वात्सत्यकामत्वभाजनम्॥ ५२

ज्ञानाभावोपपनिरित्यादि प्ररुपति स मूर्खस्खया न संभाष्य **ए**-वेलाह—अनुभूतीति । तेन सह ते अलमस्तु संभाषणादिना प्रयोजनं नास्ति । सुषुप्ताविष सुखमहमस्वाप्समित्वादिस्मृति-दर्शनेन सुखखापादिशानसत्त्वात् 'खप्रेन शारीरममिप्रह्लासुप्तः सुप्तानभिचाकशीति । शुक्रमादाय पुनरेति स्थानं हिरण्मयः पूरव एकहंसः' इत्याविश्रुतिविरोधानिमिनापात्र्यक्तशारीरेण मया दुःखानुभवासित्रवारणाय ब्रह्माज्ञया मित्रावरणोद्भवशरी-रपरिष्रहाचेति भावः ॥ १५ ॥ गेहे सुप्तः खप्ने चरतीति खप्नचरः पुरुषः खप्ने व्यवहर्ताप्यन्येस्तद्गेहस्थेर्न दर्यते तथा अहमपि नभोगतेर्देवैने दृष्ट इत्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥ मां न कश्चिदपि पश्यतीत्येतले खोक्तिविषद्भ । प्राकृतिदेन दृष्टोऽह-मिति लयेवोक्तलात् । अहमन्यान्त्रपर्यामीखप्यसंगतम् । म-नसो बहिरस्वातक्यात्स्वप्ने स्वमनोमयानामेव दशैनादित्याशयेन रामः प्रच्छति--न दश्यत इति ॥ १८ ॥ सत्यसंकल्पानुसा-रिदर्शनव्यवस्थया उभयं वसिष्टः परिहरति--अस्मदादिरिति । अस्मदादिक्कीनयोगसिद्धो जनः ॥ १९ ॥ ननु ज्ञानसिद्धानां सदैवातिवाहिकदेह एवास्ति न स्थूछ इति लयेवासकृतुकं तत्कयं तेषा स्थूलदेहबुद्या परदर्शनसंवादादिसत्यसंकल्पनं घटते तत्राह्---अवहारेष्विति । सत्यं समाधिविवेककालयो-स्त्रवेव व्युत्थानव्यवद्वारकाले भातिवाद्दिकभावविस्मरणमप्य-स्तीति तत्संकरपनसंभव इत्यर्थः ॥ २० ॥ एव सिद्धः सोऽपि सलसंकरूपः सिद्धभेति वा मां ब्रङ्कं शक्रोतीत्याशयेन तं विधि-नष्टि-स्वयंकल्पार्यभाजनमिति ॥ २१ ॥ विद्वस्येतरजनेभ्यो

द्वयोस्त सिद्धयोः सिद्धविरुद्धेप्सितयोर्मिथः। अधिकैकायदातात्मा जयी पुरुषयस्त्रवान्॥ २३ भ्रमतः सिद्धसेनासु लोकपालपुरीषु मे । विस्मृता व्यवहारौष्ठेः सातिवाहिकतात्मनः॥ २४ यदा तदाहमपरैर्घ्यवहते महाम्बरे। प्रवृत्तो न च मां कश्चित्तत्र पर्यति चञ्चलम् ॥ २५ अत्यन्तमप्यारटतः शब्दो न श्रूयते मम । केनचित्सुरहोकेषु स्वप्नपुंस इवानघ॥ २६ अवएब्धुं प्रवृत्तस्य नान्यावएब्धये मम्। संपद्यते किंचिद्पि मनोमननदेहिनः॥ २७ एवं व्योमिपशास्त्रोऽहं संपन्नो रघुनन्दन। मयानुभूता काप्येषा देवागारिपशाचता ॥ २८

श्रीराम उघाच । पिशाचाः सन्ति लोकेस्मिन्किमाकाराः किमास्पदाः किंजातीयाः किमाचाराः कीदशाः कीदशाशयाः॥

वसिष्ठ उवाच।

पिशाचाः सन्ति लोकेऽसिन्यादशास्तादशान्ध्रणु। न सभ्योऽसौ न यो विक्त प्रसङ्गापतितं वचः ३० पिशाचाः केचिदाकाशसदशाः सुक्ष्मदेहकाः।

विशेषमाह--जन इति । जरठिश्वरवासनाद्वीकृतो मेदः स्व-स्यामग्रमाचे येन तथाविधस्तात् जीर्णभेदलाद्वाधितभेदवासन-लात्स एष सिद्धः सत्यकामलस्य भाजनं योग्यः ॥ २२ ॥ नतु तर्हि यत्र द्वौ सिद्धौ परसरविरुद्धं संकल्पयतः । यथा एकः अहमेनं पदयामीति संकल्पयति अपरस्तु मामयं न पश्यखिति । तत्र कथं व्यवस्था तत्राह-द्वयोरिति । यस्यवा-हमज्ञानवैशवाधिक्यं तत्संकल्पः प्रबलः। यथैकराज्यसिज्धर्थ यतमानयो राजपुत्रथोर्यस्यैव शोर्याधाधक्यं तस्य जयस्तद्वदि-खर्थः । तुल्यबलत्वे तूभयसंपत्तिर्वरशापाविरोधसर्गे वक्ष्यते ॥ २३ ॥ अस्त्वेवं तथापि प्रकृते किं तत्राह-अमत इति । व्यवहारीधैहेंतुभिर्यदा विस्मृता तदा व्यवहर्तुं प्रवृत्त इति परे-णान्वयः ॥ २४ ॥ २५ ॥ आरटतः कूजतः ॥ २६ ॥ अव-ष्टब्धं अन्यस्य पतनारोहणादिप्रसङ्गः कराद्यवलम्बनं दातुं प्रदृ-त्तस्य मम किचिदपि इस्तादान्यस्य अवष्टब्धये अवलम्बनाय न संपद्यते ॥ २७ ॥ एवमनया रीला । देवागारेषु पिशाचता अनुभूता ॥ २८ ॥ प्रासिक्षको रामप्रश्नः ॥ २९ ॥ सम्यः सभार्हः । 'सत्यः' इति पाठे यथार्थवक्ता । श्रोतुः प्रमया हि अर्थयाथार्थ्यप्रदः। नत्र श्रोतुः प्रासन्निकार्थजिज्ञासायामजिज्ञाति-तेऽर्धान्तरे वाक्यात्प्रमोत्पद्यत इत्यनवधेयवचनोसाञ्जन्मसवदुपे-क्येतेति । तथाचाहुर्वाचसातिमिश्राः—'प्रतिपित्सितमर्थं प्रति-पादयन्त्रतिपादयिता अवधेयवचनो भवति । अत्रतिपित्सतं द्व प्रतिपादयमसौ न छैकिको न परीक्षक इत्युन्मसबदुपे-क्येत' इति ॥ ३० ॥ सूक्ष्मदेहका मनोमयदेहकाः । खप्रव-म्मनःकल्पितहस्तपादादिसंयुक्ताः ॥ ३१ ॥ यदि ते मनोमात्र-

इस्तपादादिसंयुक्ताः पदयन्ति त्वमिवाकृतिम् ॥३१ छायया भयदायिन्या त्वन्यत्र भ्रमह्रपया। ते चित्ताक्रमणं कृत्वा बोधयन्ति नराशयम्॥ ३२ प्रन्सदन्ति पिबन्साशु सघुसत्वबसं जनम्। बलं सत्वमधो जीवान्हिसन्त्याकम्य चित्तकम् ३३ आकाशसदशाः केचित्केचित्रीहारसंनिभाः। केचित्स्वप्रनराकाराः साकारा अपि स्वात्मकाः३४ केचिदभ्रदलप्रख्याः केचित्पवनदेहकाः। केचिद्धमात्मका एव सर्वे वुद्धिमनोमयाः॥ **३**५ प्रहीतुं नैच युज्यन्ते प्रहीतुं शक्रयन्ति नो। आकाशशून्यवपुषः पदयन्त्याकृतिमात्मनः॥ 36 शीतातपादिविहितं सुखं दःखं विदन्ति च। पातुमसुमवप्रश्वमीहितुं शक्तवन्ति नो ॥ ३७ इच्छाद्वेपभयक्रोधलोभमोहसमन्वताः। मन्त्रीपध्रतपोदानधैर्यधर्मयशीकृताः॥ 36 सत्वावष्टम्भयन्त्रेण मन्त्रेणाराधितेन वा। दृश्यन्तेऽपि च गृह्यन्ते कदाचित्केनचित्कचित् ३९ देवयोनिर्हि सा तेन केचिद्देवोपमादयः। केचित्ररसमश्रीकाः केचित्रागसमन्वयाः॥

मयदेहास्तर्हि अन्येषामाक्रमणं कथं कुर्वन्ति । मनसो बहिरा-क्रमणाद्यसामर्थ्यादित्यत आहु-छाययेति । ते पिशाचा अ-न्यत्र नरान्तरे तदीयचित्तश्रमहृपया अतएव नानाभयदा-यिन्या खच्छायया प्रतिबिम्बेनानुप्रविश्व तदीयचिते तादातम्य-मिवापच तस्य नरस्याशयं दुःखभोगप्रदं कर्मकामवासनादिकं नानाभ्रान्तिचेष्टाचनुरूपतया उद्बोधयन्तीत्यर्थः ॥३२॥ तन्म-रणानुकूछे कर्माशये सति प्रन्ति खयं च खीयऋणानुबन्धानु-सारेण तदीयदेहधातूनदन्ति रुधिरादि पिबन्ति बलं सत्वं च क्षपयन्तीति शेषः ॥ ३३ ॥ एतेन किमाचारा इति प्रश्नः समाहितः । किमाकाराः किंजातीया इति प्रश्नी समाधते-आकाशेति । विचित्रकर्मानुसारेण तेषां सौक्ष्म्यतारतम्येन देहारम्भादन्तर्थान।दिशक्तितारतम्येन नान।वासनानुसारिह्य-भेदेन चावस्थानमिति भावः ॥ ३४ ॥ अन्नदलं मेघखण्डः । भ्रमात्मकाः भाकमणीयपुरुषभ्रान्त्यतुसारिवेहा इति यावत् ॥३५॥पदयन्ति स्वयमनुभवन्ति । परस्परं च पदयन्ति ॥३६॥ बाह्यजलादि पातुम् । अन्नाद्यतुं भोक्तम् । ईहितुं यथेष्टं दाना-दानादिना व्यवहर्तुम् ॥ ३० ॥ ३८ ॥ फेनोपायेन तर्हि ते दरयन्ते मनुष्येस्तमाह-सत्वेन सलावष्टम्भो योगधारणा-भेदः । यत्रं भृतदर्शनानुकृष्ठबीजाक्षरघटितं रजताविपत्रिक्ष-खितं कण्ठादौ धार्यमाणं तेन । यहान्ते वशीकृत्य सेवादौ नि-युज्यन्ते । केनचिद्भृतविद्यावता पुरुषेण । क्रविदेशे प्रसिद्धमेत-वित्यर्थः ॥ ३९ ॥ एकादशदेवयोनिमेदान्तर्गतलादणिमाधैश्वर्य-तारतम्येन युक्तभोगोऽपि तेष्यसीति सूचयंसामात्याकृतिमेदा-न्त्रपत्रयति-देवयोनिर्धाति । नागैः सर्पैः समन्दयः साहर्यं

श्वश्रमालोपमाः केचित्रामजङ्गलवासिनः। कुल्यावकररध्यासु वसन्ति निरयेषु च ॥ 85 एतदास्पदमेनेषामित्याकाराः प्रकीर्तिताः । पिद्याचा एवमाचारा जन्मेषां श्रूयतामिदम् ॥ ४२ अचेत्यचिन्मयं ब्रह्म सर्वशक्तिस्वभावतः। यत्स्थितं बुद्धमेवान्तश्चेत्यं संकल्पयन्निव ॥ ઇરે तं जीवं विद्धि स प्रौढस्त्वहंकार इति स्मृतः। सोऽहंकारः स्मृतः पुष्टो मन इत्युदितात्मभिः स एव कथ्यते ब्रह्मा संकल्पाकादारूपवान्। असदेवासतो बीजं जगतो विगताकृतिः॥ કુષ एवं मनःस्थितो ब्रह्मा सदेहोऽप्यमलं नभः। तत्स्वप्नपुरुषाकारः सन्नेवासद्वपुः सदा ॥ . દુ पृथ्व्यादिमूर्तिरहितस्त्वातिवाहिकदेहवान्। पृथ्वादयः किल कुतः संकल्पपुरुषस्य खे॥ દ્ય भवन्मनो यथाकारापुरं पश्यति कल्पितम् । तथा मनोविरञ्चित्वं पद्यत्यात्मनि कव्पितम्॥ ४८ यद्वेत्ति कहिपतं तत्सत्पदयत्यनुभवत्यपि। यो यावन्मात्रकस्तत्स कस्मात्किल न पश्यति ४९ स यत्पइयति तत्तादक् शुन्यातमा शून्यमम्बरे । ब्रह्म ब्रह्मणि चा ब्रह्मा तदिदं जगदुच्यते ॥ तथा संप्रति भासोस्य चिरकार्रुकभावनात् । घनीभृतः स्थितः पुष्टः सुदीर्घस्वप्रसुन्दरः॥ 48 आतियाहिकदेहस्य तस्य तिचरभावनात्। 42 सर्गानुभवनं भूरि ब्रह्मणो ब्रह्मरूप्यपि ॥ गतं प्रकटतोत्कर्पादाधिभौतिकदेहताम्।

येषाम् ॥ ४० ॥ निरयेषु नरकप्रायेष्वश्चिदेशेषु ॥ ४१ ॥ एतेन किमाकाराः किमासदाः किमाचारा इति प्रश्नाः समा-हिता इत्याह-एतदिति । किंजातीया इति प्रश्नो यदि जन्म-परस्तथाप्युत्तरं मूळत आरम्य सर्गादिना जगत्तत्त्वं न्युत्पादय-म्भावयति—जन्मेलादिना ॥ ४२ ॥ तत्र प्रथमं मायाशवः लख ब्रह्मणो जीवभावप्राप्ति मनआद्युपाध्युद्भवं क्रमेण दर्श-यति-अचेत्येति । चेलचिन्मयं कार्यव्रह्म तद्विरुक्षणमचेलचिन नमयम् । चेत्यं संकल्पयन् मनः पुरुष इव बुद्धं सत्तद्रूपेण य-तिथतं तदेव जीवं प्रथमा इरं विदि ॥ ४३ ॥ प्रीढः अभि-मानोर्जितः । अज्ञानतिमिरनाशाय तत्त्वसाक्षात्कारभृत्यारूढ-तया उदित आविर्भृत आत्मा येषां तैः ॥ ४४ ॥ स मनो-ह्यो जीव एव समध्यात्मना ब्रह्मा कथ्यते । असतो जगतः असन्मन एव यीजम् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अत-एव स विरिष्ठो यदात्खसंकर्त्यं वेति तत्तदर्थोकारेण पर्यत्य-नुभवस्यपि । यो यावन्मात्रको जीवः प्रसिद्धः स सर्वोऽपि त-बिद्रपं सदेव अतो ज्ञानशक्तिमत्तत्कसमाद्वेतोने पर्यति ॥४९॥ श्रूत्यात्मा निराकारमनोरूपः स ब्रह्मा अम्बरे चिदाकाशे श्रूत्य-मेब बद्धाण्डाकारं पश्यति तदिवं जगदित्यर्थः ॥ ५० ॥५९॥

तेनैव सर्ग इत्युक्तो भेदसंततिभासुरः॥ ५३ स ब्रह्मा ब्रह्ममात्रातमा ब्रह्ममात्रात्मनोस्तयोः। अजातयोरेस सदा तदात्मजगतोर्ह्योः॥ 48 अभिन्नयोरेच भृदां द्यून्यत्वाम्बरयोरिव। षेकातम्येनैय यसतोः पयनस्पन्दयोरिय ॥ 44 वेत्ति भूतमयत्वं तन्मिश्यैव न तु वास्तवम्। तथा यथा त्वं संकल्पपुरुपस्य सतोसतः॥ ५६ ततः शरीरधातृनां तेन पृथ्वादिकाः कृताः। अभिधाः पश्च चित्पुष्टा जगदित्येव ताः स्थिताः ५७ यथा त्वसत्य एवायं संकल्पः सत्य एव ते। तथासाचात्मसंकरूपं सत्यमेवानुभूतवान् ॥ 46 स स्वयं चिन्मयाकादाः ससंकल्पश्चिद्मबरम्। अतः स्वप्नो जगत्सर्व कृतौ नाशोद्धवौ स्थितौ ५९ यथैवैतन्मनः सत्यं तदंशाः सत्यमेष ते । तथैव तत्कृताश्चन्द्रस्ट्रार्केन्द्रमरीचयः॥ દગ एवं स्थिते जगजालं तन्मनोराज्यमुच्यते । ६१ तद्य शुन्यं निरालम्बमाकाशकचनं चिति ॥ यथा स्वप्नपूरं व्योम संकल्पाद्वियथा नभः। तथा ब्रह्मजगद्येव खमेवाच्छमनारुति ॥ ६२ एवमाभासमात्रस्य कचतोऽनिशमव्ययम्। सर्गादिमध्यान्तदृशो मुधेवात्रोदिताः स्थिताः ६३ किंचिदाकाशकोशस्य तत्र वा मम वानघ। जगतो वापि जायेत किंवा नश्यति मे वद् ॥ तत्किमधीमनधीय निर्धकमपार्थकाः। कस्मादभ्यदिता बृहि रागद्वेषभयादयः॥ **ξ**'•

॥ ५२ ॥ ५३ ॥ तदात्मा जीवो जगच तयोईयोः ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ पृथ्व्यादिभृतमथत्वं वेत्ति । यथा त्वं स्वसंकल्पपुरु-षस्य असत एव सतो नगराईभूतमयत्वं वेरिस तद्वत् ॥५६॥ ब्रह्माण्डात्मकस्वशरीरधातृनां कठिनद्रवादिभागानां तेन ब्रह्मणा पृथ्यादिका अभिधाः संज्ञाः कृताः । ताः समुदितरूपेण जग-दित्येव स्थिताः ॥ ५७ ॥ यथा असत्योऽपि ते संकल्पो मनो-राज्यकीतुकाद्यर्थिकयाकारिलात् सत्य एवानुभूयते लया तथा असी ब्रह्मापि आत्मनः संकल्पं सत्यमित्येवानुभूतवान् । तस्य समध्यात्मलाच्च तत्संकल्पजस्य सर्वजनसाधारणार्थकियेति विशेष इति भावः ॥ ५८ ॥ तमेव स्फुटयति—स इत्या-दिना । स ब्रह्मा स्वयं चिन्मयाकाश एव परमार्थतः तत्सं-कल्पोपि चिदम्बरमेव ॥ ५९ ॥ कथं तर्हि तरकृताश्चन्द्रतारा-दयः सर्वार्थिकियाहेतवस्तत्राह-ययैवेति । तदंशास्तद्वसयस्ते सत्यं प्रवृत्त्याद्यर्थकियासमर्था एव ॥ ६०॥ ६९ ॥ ६२ ॥ सर्गस्य आदिमध्यान्तदृशो जन्मस्थितिभङ्गप्रख्याः ॥ ६३ ॥ अतएबात्मनश्चिदाकाशहपतानुसंधाने तन वा मम वान्यस्य वा न कस्यचित्सगीदयः सन्तीत्याह्—किमिति । जगतो जड-लादेव सुतरां न जन्मादिप्रत्ययप्रसिक्तिति द्योतनाय प्रहणं

वस्तुतोऽङ्ग न सर्गादिने सर्गा नाप्यसर्गता। विद्यते सकुदाभातमिदमित्थं सदैव तत्त ॥ आश्वत्यं विपुलाभोगे स्वच्छचिक्कलपूरिते। कलनापङ्गकलिले भविष्यति चिद्रम्बरे ॥ 63 अन्तरिक्षाक्षयक्षेत्रे स्वात्मनो गगनात्मिका । तसाद्रीजादियं जाता भूरिभृतशिलावलिः॥ नास्ति किंचिदिह क्षेत्रं न्युप्तं नाम न किंचन। न बीजमस्ति नो जातं किंचित्सर्वं च संस्थितम् ६९ याः शिलावलयस्तत्र पुष्टास्ता विबुधादयः। पास्त वर्णोक्रवला पताः स्वास्थिता बुद्धबुद्धयः ७० यारबर्धपकास्ता एता नरनागादिजातयः। यास्त्वइयाना रजोनष्टास्ताः कृमिस्थावरादयः ७१ यास्तु गुर्व्यः फलैहीनाः शुन्याकाराः क्षयक्षताः । अशरीराः शरीरिण्यस्ताः पिशाचादिकाः स्मृताः नहि संकर्रितः खेच्छा कचित्पर्यनुयुज्यते। तास्तथेच्या विरिञ्चस्य तथा नाम तथोदिताः॥ ७३ सर्वा एव चिदाकाशरूपिण्यो भूतजातयः। आतिवाहिकदेहिन्यः पृथ्वादिरहितात्मिकाः॥ ७४ ताश्चिराभ्यासबदातस्त्वाधिभौतिकसंविदम्। प्राप्ता दीर्घानुभवनात्स्वप्नजाप्रहशामिष ॥ पिशाचाद्यास्तथा पते तथा भूताधिभौतिकाः।

तिष्ठन्ति तृष्ट्रमनसः स्वसंसारविहारिणः॥ 30 पश्यन्ति काश्चिदन्योन्यं प्रास्या प्रास्येयकानित । स्वप्रैकलोकवास्तव्या इवैता भूतजातयः॥ काश्चिद्वहुनरप्राप्तस्वप्ननिर्माणलोकवत् । नान्योन्यमपि पदयन्ति नानासंस्थानसंस्थिताः ७८ स्थिता यथैता जगति पिशाचाद्याः कजातयः। प्रायस्तरीताः कुम्भाण्डयक्षप्रेतादयः स्थिताः॥ ७९ यथा तत्रेह वै निम्ना जलं तत्रावितष्ठते। तथा यत्र पिशाचाद्यास्तमस्तत्रावतिव्रते ॥ 60 मध्याह्रेपि पिशाचश्चेदजिरे तिष्ठति स्वयम्। तत्तस्यान्धं तमस्तत्र संनिधानं करोत्यलम् ॥ **८१** न निहन्ति च तद्भानुनं चान्यस्तत्प्रपश्यति। स एव चानुभवति पश्य मायाबिज्मितम् ॥ ८२ अग्रेरादित्यचन्द्रादेस्तेजसं मण्डलं यथा । पिशाचादेरजन्यात्म तामसं मण्डलं तथा ॥ याति तेजस्यनोजस्त्वं तमस्योजः प्रधानताम् । उल्रुक्वित्पशाचाद्या आश्चर्यं तत्स्वभाषतः॥ पषा पिशाचा जनितस्य जातिः श्रोका मया ते समयानपेता। पिशाचतुल्यः सुरलोकपाल-लोकेषु जातोऽहमिति प्रसङ्गात्॥

इस्रार्षे श्रीवा० वाल्मी०मो० निर्वा० उ०पाषा० विशाचवर्णनप्रसङ्गेन जगद्रश्चणोरैक्यप्रतिपादनं नाम चतुर्नवितिमः सर्गः ॥९४॥

पुरुषान्तराभित्रायेण ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ बस्तुतः परमार्थ-दशा । सर्गस्य आदिः कारणम् । सकृदाभातं अपनरावरणतया प्रथां गतम्। इदं प्रत्यप्र्यं सदैव तद्रह्मः ॥ ६६ ॥ तथाविधेऽपि विदम्बरे क्षेत्रे अज्ञानकल्पनापहेन कलिले सति खात्मनस्त-स्मादेव बीजादियं भूरिभृतशिलावलिर्भविष्यति प्राग्जाता चेति परेणान्वयः ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ कलनापक्कनिरासे लाह-ना-स्वीति ॥ ६९ ॥ एवं पिशाचजातिवर्णनप्रसन्नेन सर्गतस्वं **म्युत्पाद्य प्रस्तुतानुकूलतया वर्णितभूत**घिलाया अवयवादिमेद-तया जातिभेदान्दर्शयति—या इति । तत्र तस्मिन्कलनापद्य-कलिते भारमक्षेत्रे याः शिलावलयः पुष्टाः संस्टास्ता विद्युधादयो जातय इति सामान्योक्तिः। विशिष्य विभजते—या इलादिना। तत्र यासा वर्णेन कान्त्यतिशयेनोजवला रहरूपा बुद्धबुद्धयो देवर्ष्यादिजातयः॥ ७०॥ अर्धपका अर्धवर्णोज्ज्वलाः शिलाः। आश्याना म्लानाः शिलाः ॥७१॥ गुर्व्यो बहत्यो भारभृताः का-न्तिप्रकाशादिफछैर्दाना वृथापाषाणा इति यावत्। अशरीरा अ-वेहाकाराः शरीरिण्यो देहाकाराश्व शिलाः ॥७२॥ ननु हिरण्य-गर्भस्मोत्तमदेव।दिरज्ञान्येव तत्र शेत्रे उत्पद्यन्तामित्येव संकल्पः क्कतो नाभूत्किमर्थे वृथापावाणरूपपिशाचजारयुरपादनसंक-स्पोऽभूतत्राह—नहीति । संकल्पितुः संकल्पयितुर्धातुरिन्छा बह्र पर्व<u>त्रव</u>्यते भाक्षिप्यते । तत्तस्य अपनिप्राक्षत्रकर्मायनु-

सारिलादिति भावः। विरिश्वस्य ता इच्छास्तथा जातास्तथैव पिशाचजातय उदिताः ॥ **५३ ॥ शिलालोत्प्रेक्षणात्प्रसक्तं** भौतिकत्वं भूतजातीनां वारयति—सर्वा एवेति ॥ ७४ ॥ कथं तहांस्माकं देहे भौतिकलानुभवस्तत्राह—ता इति ॥ ७४ ॥ तथाभूतं चिराभ्यासप्राप्तमाघिभौतिकमाघिभौतिकरवं येषाम् । खयोनिभोग्यभोगैख्रष्टमनसः। तथाच तेषां पिशाचदेहः कृत्सि-तभोगश्च प्रिय एव न बीमत्सो भातीति भावः ॥७६॥ अन्योन्यं पर्यन्ति दर्शनादिना व्यवहरन्ति । प्राम्येयकान् प्रामीणानिव । वाम्यशब्दात्स्वार्थे ढकञ्छान्दसः ॥ ७७ ॥ बहु प्रायेण ॥७८॥ पिशाचजातिवदेव कुम्भाण्डादिजातीनां प्रायशस्तामसी भाति-वाहिकदेहचेष्टादिस्थितिरित्याह—स्थिता इति ॥ ७९ ॥ नि-म्नतातारतम्येन जलस्थितितारतम्यवस्पापतारतम्येन तेषु तम-स्तारतम्यमित्याह—यथेति ॥ ८० ॥ तत्रेति दर्शनाद्यत्रेख-ध्याहार्थम् । अजिरे सातपचलरेऽपि तिष्ठतिचेत् ॥ ८१ ॥ भानुः सूर्यस्तरामो न निहन्ति। स पिशाच एव ॥ ८२ ॥ अस्मदादीनां प्रकाशसिद्धये अन्यादिलादितेजोमण्डङमिव पिशाचादेर्व्यवहारसिद्धये तामस मण्डलमसीखाह-अमे-रिति । इन्धनाद्यजन्यातम ॥ ८३ ॥ अनोजस्त्वं नैर्वस्यम् । तदेतदाश्चर्यम् ॥ ८४ ॥ हे राम, मया ते पिशाचयोगी आज-नितस्य जीवस्य एवा जातिर्यथाप्रश्नं प्रोक्ता । समयः प्रध्म-

पञ्चनवतितमः सर्गः ९५

| वसिष्ठ उवाच । | |
|---|----|
| ततिश्चिदाकाशयपुर्भूतपञ्चकवर्जितः। | |
| विहरजहमाकाशे पिशाच इव संस्थितः॥ | ₹ |
| त मां परयन्ति चन्द्रार्कशका हरिहराद्यः। | |
| न देवसिद्धगन्धर्विकंनरा नाप्सरोगणाः॥ | २ |
| नाकामन्ति मयाकान्ता न च श्रुण्वन्ति मह्नचः | 1 |
| इत्यहं मोहमापन्नो विक्रीत इव सज्जनः॥ | રૂ |
| अथ चिन्तितवानस्मि सत्यकामा इमे वयम्। | |
| पद्दयन्तु मां सुरगणास्तेन तस्मिन्सुरालये ॥ 🧪 | 8 |
| द्रष्टुं प्रवृत्ता मामग्रे वास्तव्याः सर्व एव ते। 💎 | |
| शटित्येय पुरं प्राप्तमिन्द्रजालहुमं यथा ॥ | 4 |
| अथ गीर्वाणगेहेषु संपन्नो व्यवहार्यहम्। | |
| यथास्थितसमाचारः स्थितो निःशङ्कचेष्टितः॥ | Ę |
| यैरविकातवृत्तान्तैर्द्रष्टोऽहमजिरोत्थितः। | |
| बसिष्ठः पार्थिव इति लोकेषु प्रशितोऽस्मि तैः॥ | G |
| न्योमन्यादित्यरिवमभ्यो दृष्टोऽहं यैर्नभोगतैः। | |
| वसिष्ठस्तैजस इति लोकेषु प्रथितोऽस्मि तैः॥ | 4 |
| बातात्समुदितो दृष्टो यैरहं गगनास्पदैः। | |
| सिद्धैर्वातवसिष्ठाख्यसौरहं समुदाहतः॥ | ९ |
| यैरहं सलिलाहृष्टः प्रोत्थितस्तैर्मुनीश्यरैः । | |
| उक्तो बारिवसिष्ठोऽहमिति मे जन्मसंतितः॥ | १० |
| ततःप्रभति लोके रहं पार्थियः प्रशितः क्रचित । | |

बरयं बक्तव्यमिति व्याख्यातृसंप्रदायस्तदनपेता । तद्वशादिति यावत् । सुरलोकपाललोकेष्वहं पिशाचतुस्यो जातोऽस्भीति यदनोचं तत्प्रसङ्गास्वया पृष्टे सतीलर्थः ॥ ८५ ॥ इति श्रीवा-सिष्टमहारामायणताल्पयेप्रकाशे निर्धाणप्रकरणे उत्तरार्धे यतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

सत्यसंकल्पतास्मृत्या व्यवहारः पुनर्जनैः । स्वस्थाकाशवसिष्ठादिनामाप्तिश्रेष्ठ वर्ण्यते ॥ १ ॥

विहरन् संचरन् ॥ १ ॥ २ ॥ मया पादन्यासारोहणाध्या-सनादिना आकान्ता अपि मां न प्रलाकामन्ति । मोहं पूर्वा-परकर्तव्याप्रतिसंधानम् ॥ ३ ॥ चिन्तितनान् चिन्तया स्पृत-बान् । सलकामा इमे वयमिति स्पृलामिनयः । पश्यन्तु मां सुरगणा इति च संकल्पितवानिति शेषः ॥ ४ ॥ अप्रे वस-न्तीति वास्तव्याः । 'वसेस्तव्यत्कर्तिर णिषा' इत्युपसंख्यानात् ॥ ५ ॥ व्यवहारी संमाषणादिव्यवहरणशीलः संपन्नः ॥ ६ ॥ अजिरे चलरभूमौ प्रथममाविर्भूतो दृष्टस्तैस्तत्पृथिवीत एव महुस्पत्ति कल्पयद्भिः पृथिव्या जातः पार्थिवोऽयं विषष्ट इति कोकेषु प्रथितः प्रख्याति नीतोऽस्मि । एवमप्रेऽपि योज्यम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ इति एवंरीत्या परकल्पन्यैन मे पृथिव्या-दिस्यो जन्मनां संततिः परम्परा ॥ ९० ॥ माहतो महन्मय-

| अम्मयः कचिदन्येषां तैजसो मारुतः कचित्॥ | ११ |
|--|-----|
| अथ कालेन में तत्र तिसम्बवातिवाहिके। | |
| आधिभौतिकता देहे रूढारूढान्तरेरिता॥ | १२ |
| यदेतदातिवाहित्वमाधिभौतिकता च खम्। | |
| इयमप्येकदेहात्म ततः कचित मे चितिः॥ | १३ |
| एवमात्म कचिद्योम कचनात्माप्यहं नमः। | |
| परमेव निराकारं युष्मास्याकारवानपि॥ | १४ |
| जीवन्मुक्तो व्यवहरंस्तथास्ते ब्रह्मखात्मकः। | |
| तथैवादेहमुकोऽपि तिष्ठति ब्रह्ममात्रकः॥ | १५ |
| मम न ब्रह्मतापेता ताद्यव्यवहतेरपि। | |
| असंभवादन्यहरो। युष्मदादिष्वहं त्वहम् ॥ | १६ |
| यथाऽइस्य स्वप्ननरे निर्जन्मनि निराकृतौ । | |
| आधिभौतिकताबुद्धिस्तथा मे ज्गतोपि च॥ | 810 |
| पवमेवावभासन्ते सर्व एव स्वयंभुवः। | |
| सर्गाभ्य नतु जायन्ते प्रयाता इव चोदिताः॥ | १८ |
| पष सोहमिहाकाशवसिष्ठः पुष्टतामिव । | |
| गतोच स्वात्मनाभ्यासान्द्रवतां वा भवत्स्थितिः | १९ |
| आकाशात्मान् एवते सर्व एव स्व्यंभुवः। | |
| यथात्वे तन्मनोमात्रमिमे सर्गास्तथैव हि॥ | २० |
| अहमादिरयं सर्गस्त्वपरिक्रानदोषतः। | |
| वेताल इव बालानां गतो यो वजसारताम्॥ | २१ |
| परिज्ञातस्त कालेन स्वल्पेनैवोपशास्यति । | |

देहः ॥ ११ ॥ तस्मिन्नेवातिवाहिके देहे आधिभौतिकता रूढा प्रादुर्भता रूढेन चिराभ्यासपरिणतेन आन्तरेण मनसा ईरिता गमिता । आरूढान्तरैरान्यः सिद्धैरीरिता गदितेति वा ॥ १२ ॥ तर्हि किमजबद्धौतिकदेहात्मैवाभूनेत्याह-यदेतदिति । यत इदं द्वयमपि खमाकाशमेव तद्भूपेणेकदेहात्मेत्येततत्त्वतः परि-बातं ततो मे चितिरेवातमभावेन कचित न देहातमभावेन देहा-त्मभाव इत्यर्थः ॥ १३ ॥ कचिद्योमादिभृतरूपेण कचनात्मा-प्यहम् । एवमात्म चिदेकस्वभावं परं नभ एव न भूताकाशा-दिखभावः । कथं तर्धाकारवान् दश्यसे तत्राह-यूप्पा-खिति । युष्मदुवदेशादिव्यवहारसिद्धार्थामेत्यर्थः ॥ १४ ॥ सदेहविदेहमुक्तयोरैकरूप्यमेवेत्याह-जीवनमुक्त इति ॥ १५ ॥ युष्मदादिषु उपदेशार्थमहं वितिष्ठदेहः संपन्न इत्यर्थः ॥ १६ ॥ शून्ये देहे कथं तर्हि आधिभौतिकता रूढेत्यु-क्तिस्तत्राह-यथेति ॥ १७ ॥ जगतो जनान्तरस्य च ब्रह्मादि-शरीराणि तत्कृतसर्गांखेवमेव परदृष्ट्येवाधिभीतिका इत्याह-एवमेवेति ॥ १८ ॥ भवस्थितिभेवद्वज्यनुसारिभौतिकदेहस्थितिः ॥ १९॥ ममेव हिरण्यगर्भस्यापि खद्थ्या जगद्रह्माकाशात्म-क्मेबेल्याह--आकाशेति । परीक्षकदशा एतन्मनोमात्रम्॥२०॥ बः अङ्गजनानाम् ॥ २१ ॥ दूरगते बन्धी सेही यथा कालेनी-

बासनातानवात्स्नेहो बन्धौ दूरगते यथा ॥ २२ घनत्वमहमासाद्य तथा सर्वस्य शाम्यति। परिश्वाता यथा स्वप्ननिधेरादेयभावना ॥ २३ शास्यन्ति संपरिश्वाताः सकला दृश्यदृष्ट्यः । यथा महनदीवेगवारिप्रहणवुद्धयः॥ २४ महारामायणप्रायशास्त्रप्रेक्षणमात्रतः। प्तदासाद्यते नित्यं किमेतावति दुष्करम्॥ २५ संसारवासनाभावरूपे सक्ता नु यस्य घीः। मन्दो मोक्षे निराकाङ्की स श्वा कीटोऽथवा जनः२६ भोगाभोगः किलायं यः स जीवन्युक्तबुद्धिना । कीरशो भुज्यमानः स्यात्कीरकस्यान्मौर्क्यसेविना२७ महारामायणप्रायशास्त्रप्रेक्षणमात्रतः।

अन्तःशीतलतोदेति परायेषु हिमोपमा ॥ २८
मोझः शीतलचित्तत्वं बन्धः संतमचित्तता ।
पतस्मिभ्रपि नार्थित्वमहो लोकस्य मृहता ॥ २९
अयं प्रकृत्वा विषयेषेशीकृतः
परस्परं क्षीधनलोलुपो जनः ।
यथार्थसंदर्शनतः सुखी भवेस्मुमुश्चशास्मार्थविचारणादितः ॥ ३०
श्रीवाल्मीकिष्ठवाच ।
इत्युक्तवत्यथ मुनौ दिवसो जगाम
सायंतनाय विधयेऽस्तमिनो जगाम ।
सातुं सभा कृतनमस्करणा जगाम
इयामाक्षये रविकरेश्च सहाजगाम ॥ ३१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो॰ निर्वाणप्रकरणे उ० पाषा० वसिष्ठशरीरवर्णनं नाम पश्चनवितमः सर्गः ॥९५॥

॥ दिवसः १७ ॥ पाषाणीपाख्यानं समाप्तम् ॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६

विसष्ठ उवाच।
पाषाणाख्यानमेतले कथितं कार्यकोविद।
अनयेमाः स्फुरहृष्ट्या सृष्ट्यो नमसि स्थिताः॥ १
म च स्थितं किंचनापि कचनापि कदाचन।
स्थितं ब्रह्मघने ब्रह्म यथास्थितमखण्डितम्॥ २
ब्रह्म चिन्मात्रकं विद्धि तद्यथा स्वप्नदृष्टिषु।

पशाम्यति तद्वत् ॥ २२ ॥ अहंकाररूपं घनलं स्थीर्त्यं तथा शास्यति । आदेयभावना उपादेयतावासना ॥ २३ ॥ २४ ॥ श्रायपदं सदशपरम् । एतत् उक्तरूपं जीवन्**मुक्तलम्** ॥ २५ ॥ संसारात्यासत्त्रया अध्यात्मशास्त्रपराष्ट्रासं निन्दति-संसारेति । यस्य जनस्य धीः संसारवासनावशात् अभावरूपे अवस्तुस्य-भावे देहेन्द्रियभोग्यादिरूपे सक्ता मोक्षविषये निराकाही स जनोऽशुचिभोगासिकसाम्याच्य्वा अथवा कीटो नतु मनुष्यः । ज्ञानाधिकारयोग्यमनुष्यदेहस्यायोग्य इत्यर्थः ॥ २६ ॥ यथैक-मेवानं इविःपुरोडाशादिशुचितमरूपं देवद्विजादिमिर्भुज्यते उच्छिष्टपुरीषायशुचिरूपं तु धकीटादिभिस्तथा जीवन्मुकैः शब्दादिर्भोगः शुद्धचिन्मात्रानन्दखरूपो भुज्यते । मूर्बैस्तु अशुचितमविषयरूप इलाशयेनाह-भोगेति । जीवन्युक्तबु-दिना भुज्यमानो भोगस्याभोगः कलापः कीदशः स्यात् । मौर्स्थमन्ययावस्तुवेदनं सेवते तच्छीलेन मूर्खेण च भुज्यमानः कीटक स्यालद्विमृदयमित्यर्थः ॥ २७ ॥ किंचाश्वानां भोग्यार्थे-व्यक्तिरित्र तृष्णाकोघलोमादिलक्षणः संताप एवोदेति शाक्षपरि-शीलिनां सुद्धानां सर्वार्थेषु परा अन्तःशीतळतोदेतीस्पपरी बि-शेष इत्याह--महारामायणेति ॥ २८ ॥ एतसिन्नीदशेऽपि मोझे लोकस्य नार्धिलम्। अही आधर्यम्॥ २९ ॥ अयं जनः प्रकृत्या स्वभावेनैव विषयैर्वशीकृतः अतएव परस्परं पुरं भविष्वजाद्र्पात्र कदाचन भिद्यते ॥ दे स्वयंभूत्वसमापत्ती तथा दृश्यव्यवस्थिती । स्वरूपमजदृत्वेव चिदाकाशमजं स्थितम् ॥ ४ म स्वयंभूनं च जगन्न स्वमपुरमस्त्यलम् । स्थितं संविन्महादृष्ट्या ब्रह्म चिन्मानमेतया ॥ ५ यथा पुरं भवत्स्वमे चिद्रूपं स्वात्मनि स्थितम् ।

युद्धचौर्यहरणादिनापि स्नीधनादिसंपादनात्ताल्लोखपः । एवं भ्रानितसंतापैः सदा दंदत्तमानोऽयं मुमुश्चराष्ट्राणामर्थविनारणानिदिष्यासनाद्युपायतो यथार्थवस्तुसंदर्भनत एव सुन्नी गतसंतापः
पूर्णानन्दो भनेभोपायान्तरेणेल्यर्थः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इति
श्रीवासिष्ठमहारामावणताम्यर्थप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे स्तरार्थे
पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

पाचाणास्थानतात्पर्थं चिद्धिवर्तो जगञ्जमः । वर्ध्यतेऽत्र चिदेवात्मा त्रद्यानन्दोऽजरामरः ।

विस्तरेण वर्णितं पाषाणाख्यानं परमप्रकृते योजयति—पाषाणाख्यानमिति । अनया आख्यायिकया एफुरन्सा विनमाप्तपूर्णतादृष्ट्या सर्वाः सृष्ट्यो नभित विदाकाशे सृष्यमावे च
स्थिता इति निश्चिन्वस्ययः ॥ १ ॥ अद्ययने सैन्धव्यनवदेकरसे स्थाने ॥ २ ॥ जगतिबन्माप्तविवर्तत्वं स्वप्ने सर्वानुभवसिद्धमित्याद्द् — ब्रह्मेति । निजाचित्रूपारकदापि न मियते न
प्रव्यवते । तथाच स्वरूपाद्मञ्ज्युतस्य स्पान्तरप्रतिभासो विवर्ते
इति तक्षक्षणं जगित प्रसिद्धमित्यर्थः॥३॥ स्वप्रवस्यगेऽपि विवर्तता
बोच्येसाद्द — स्वयंभूतसमापत्ताविति । स्वयंभूः समिष्टिजीवस्यरवेन सूक्ष्मोपाधिसमापत्ती दश्यस्युख्यवस्थिती च । अपं विविकारम् ॥ ४ ॥ जगचेद्विवर्तस्यक्ष्यवस्थिती च । अपं विविकारम् ॥ ४ ॥ जगचेद्विवर्तस्यक्ष्यिति परमाण्यक्षाह् — विवितिदाह—नेति ॥ ५ ॥ दश्यन्तेऽपि तस्यमिक्षाह् — विवि-

अ**खण्डमेषमास्**ष्टेरा महाप्रलयस्थितेः 🛚। દ્દ हेमहेमाध्ममोः स्वप्नपुरचेतनयोर्यथा। भेदो न संभवत्येव न मेवश्चितिसर्गयोः॥ चितिरैकास्ति नो सगों हेमास्ति न तद्रमिका। स्वप्राचले चिदेवास्ति न तु काचन शैलता ॥ चिदेव शैलवद्भाति यथा स्वप्ने निरामया। सथा ब्रह्म निराकारं सर्गवद्भाति नेतरत्॥ Q चिन्मात्रमिदमाकाशमनन्तमजमव्ययम् । महाकरपसहस्रेषु नोदेति न च शाम्यति॥ १० चिदाकाशो हि पुरुषश्चिदाकाशो भवानयम्। चिदाकाशोऽहमजरश्चिदाकाशो जगन्नयम्॥ ११ चिदाकारां वर्जयित्वा रावमेव रारीरकम्। अच्छेचोऽसावदाह्योऽसा चिदाकाशो न शास्यति॥ अतो न किंचिन्प्रियते न च किंचन जायते। १३ चित्त्वात्ततश्चित्कचनं जगदित्यनुभूयते ॥ चिन्मात्रपुरुषो जन्तुर्फ्रियते यदि नाम वा। ततो मरिष्यसत्पूत्रो निःसंदेहं पितुर्मृतौ ॥ १४ एकस्मिन्प्रमते जन्तावमरिष्यंस्त सर्वदा। सर्वे एव जनाः शुन्यमभविष्यन्महीतलम् ॥ १५ न चाद्यापि मृतं राम चिन्मात्रं कस्यचित्कचित् । नच शून्या स्थिता भूमिस्तसाचित्युरुपोऽक्षयः १६ एकं चिन्मात्रमेवाहं न शरीरावयो मम। इति सत्यनुसंधाने क जन्ममरणादयः॥ 80 अहं चिन्मात्रममलमित्यात्मानुभवं स्वयम् । अपद्दन्त्यात्महन्तारो निमज्जन्त्यापदर्णवे॥ १८ चिवहं गगनादच्छा नित्यानन्ता निरामया।

अखण्ड विद्रपं यथास्थितमेवमा स्ष्टेरा महाप्रलयाज्यगद्भपं भव-त्तदेव स्थितमिखर्थः ॥ ६ ॥ चिदनुविद्धतया सर्वसर्गानुभवा-दपि सैव तथा स्थितेति निधय इलाइ-हेमेति । हेमारम-मेर्बादी प्रसिद्धम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ आकाशं खच्छं सर्वगत-मछेपकं च ॥ १० ॥ पुरुषो जीवः । भवानित्यादिरक्तस्य प्रपद्धः ॥ १९ ॥ शवं निर्जीवमेव स्यात् ॥ १२ ॥ १३ ॥ चितो मरणे तद्वेदे प्रमाणाभावात्सर्वमरणं स्वादित्याह-चि-म्मात्रेति। 'आत्मा वै प्रत्रनामासि' इति प्रत्रस्य पित्रात्माऽमे-दश्रदेरिति भावः ॥ १४ ॥ 'एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्य-बस्थितः' इति श्रुतेरेकमरणेः सर्वमरणश्रसङ्गधेत्याह्-एकस्मि-भिति । एकैकमरणानधिकरणक्षणाप्रसिद्धे सर्वदेत्युक्तिः । म-द्वीतस्त्रप्रद्वणं जगन्मात्रोपलक्षणम् ॥ १५ ॥ तर्कस्य विपर्ययप-र्यवसानं दर्शयति-नचेति ॥ १६ ॥ तथाच चिदात्मपरिहा-नारेष जननमरणायनर्थनिवृत्तिः सिद्धेत्याह-एकमिति ॥१७॥ विन्मात्रमहमित्येवं रूपमात्मात्रभवं ये अपहन्ति कृतर्केः ख-ष्डवन्ति त एवास्महन्तारः । वचनव्यस्ययञ्चान्दसः । 'अप-

कि जीवितं में किंवापि मरणं वा सुखासुखे॥ १९ ब्योमात्मचेतनमहं के शरीरादयो मम। इत्यात्महापद्गतेऽन्तर्योऽनुभृतं विगस्तु तम् ॥ २० बिदाकाशमहं स्वच्छमनुभूतिरिति स्फूटा। यस्यास्तमागता मुढं तं जीवन्तं शवं विदः॥ अहं वेदनमात्रात्मा कानि देहेन्द्रियाणि मे। लम्धातमानमिति स्वच्छं प्रविलुम्पन्ति नापदः २२ चिन्मात्रं शुद्धमात्मानं योऽवलम्ब्य स्थिरः स्थितः। नाधयस्तं विलुम्पन्ति महोपलमिवेषवः॥ चिस्वं स्वभावं विस्मृत्य बद्धास्था ये शरीरके। तैः सुवर्णे परित्यज्य गृहीतं भस्म बस्तुतः ॥ बलं बुद्धिश्च तेजश्च देहोऽहमिति भावनात्। नइयत्युदेत्येतदेव चिदेवाहमिति स्थितेः॥ ર્ષ चिदाकाशमहं शुद्धं के मे मरणजन्मनी। पवं स्थिते स्युः किंनिष्ठा लोभमोहमदादयः॥ चिदाकाशाहते देहान्योऽन्यत्सारमवाग्रयात्। तसी तग्रज्यते वकुं सन्ति लोभादयस्त्वित ॥ २७ न विछये न च दहाऽहं चिन्मात्रं वज्रविश्वति। न देही निश्चयो यस्य तं प्रस्यन्तकरस्तृणम्॥ २८ अहो नु मुग्धता शानरधीनां यद्विदन्खलम्। शरीरशकलाभावे नश्याम इति मोहिताः॥ ર્ अहं चिन्नभ एवेति सत्ये भावे स्थिरे सति। वज्रपातयुगान्ताक्षिदाहाः पुष्पोत्करोपमाः ॥ go. चिन्मात्रममरं नाहं यश्वश्यामीति रोदिति । अनष्ट एव तहेही जातापूर्वा खरोलिका ॥ 38

हत्य इति वा पाठः ॥ १८ ॥ १९ ॥ इति विद्वितिरन्तरन्भ-तमनुभवं यः कुतर्केरपद्धते स आत्महा तं विगस्त ॥ २०॥ यस्य चिदातभाहमित्यनुभूतिरस्तं नाशमागता तं मूटं जीवन्त-मपि शर्वं विदुस्तत्त्वविदः ॥ २१ ॥ इति बोधेन लब्धात्मानं अविद्यादिमालिन्यापगमात्खच्छं पुरुषं मरणाद्यापदो न प्रवि-क्कम्पन्ति ॥ २२ ॥ २३ ॥ वस्तुतः सुवर्णे परित्यज्य भसा खर्णबुद्धा गृहीतम् ॥ २४ ॥ एतदेव बरुबुद्धादि ॥ २५ ॥ किनिष्ठाः स्यः । नह्यात्मनिष्ठास्ते तदा येन तरात्मा दुष्येदि-स्पर्यः ॥ २६ ॥ देहान्स्थूलसूक्ष्मकारणाख्यान् । सारमात्मान-मवामुयात्परयेत् । तस्मै मृहाय ॥ २७ ॥ अन्तकरो मृत्युः ॥ २८ ॥ ज्ञानदृष्टीनां पण्डितानामपि सुरुधता व्यामोहो दृश्यते । यत शरीरलक्षणशकलस्य जडवरीकदेशस्याभावे नाशे उपस्थिते नश्याम इति मोहिता भीता जायन्त इति शेषः ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ अमरं चिन्मात्रमहं न अतो नश्यामीति यदोदिति तदनष्टे एवात्मनि रोदिति । सेयं विवेकिदशा नटस्येव रोदन-विवयना अपूर्वा खरोलिका परिहासकोडैव जाता ॥ ३१ ॥

इदं चेतनमेशाहं नाहं देहादिहएयः।
इति निश्चयवान्योऽन्तर्न स मुद्यति कहिंचित् ३२
अहं चेतनमाकाशो नाशो मे नोपपद्यते।
चेतनेन जगत्पूर्ण केव संदेहितात्र वः॥ ३३
चेतनं वर्जयित्वान्यित्किचिद्भ्यं जना यदि।
यहुच्यतां महामुद्धाः स्वात्मा किमपलप्यते॥ ३४
तच्चतनं चेन्न्रियते तज्जनाः प्रत्यहं मृताः।
इत् किं न मृता यूयं तन्मृतं किल चेतनम्॥ ३५
तस्नाम्न न्नियते किंचिन्न च जीवति किंचन।
जीवामीति मृतोऽसीति चिचेतति न नश्यति ३६
चिचेतति यथा वा यत्तत्त्या साशु पश्यति।
आवालमेषोऽनुभवो न कचित्सा च नश्यति॥३७

परिपश्यति संसारं परिपश्यति मुक्तताम् ।
सुखतुःखानि जानाति स्वरूपास्य मिद्यते ॥ ३८
अपरिश्वातदेहासु धसे मोहामिधां स्वयम् ॥ ३९
गास्तमेति न चोदेति न कदाचन किंचन ।
सर्वमेष च चिन्मात्रमाकाशविशदं यतः ॥ ४०
न तदस्ति न यत्सत्यं न तदस्ति न यन्भूषा ।
यद्यथा येन निर्णीतं तस्तथा तं प्रति स्थितम् ॥ ४१
यद्यथा जगति चेतति चेतनात्मा
तस्तर्यानुभवतीत्यनुभूतिसिद्धम् ।
दृष्टं विषामृतदृशेव पदार्थजातं
नातोस्ति संविद्विधेयमिति प्रसिद्धम् ४२

इस्रार्वे श्रीवासिष्टमहारामायणे वारंमीकीये मो० निर्वा० उ० अमरस्त्रप्रतिपादनं नाम षण्णवतितमः सर्गः॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७

8

यसिष्ठ उवाच । संविन्मयत्वाज्जगतः स्वप्तस्य परमात्मनः । ब्रह्माकाशतया सर्वे ब्रह्मैवेत्यनुभूयते ॥ भ्रमस्य चातिरृश्यत्वादृरृश्यत्वान्महाचितेः।

इदं नित्यापरोक्षं चेतनं चिन्मात्रमेवाहम् ॥ ३२ ॥ संदेहिता जन्ममरणादिसंशयः ॥ ३३ ॥ चेतनादन्यद्वयमिति हि चेत-यक्रिरुच्येत अचेतयद्भिर्वा । नादाः । चेतयद्भिश्वेतनास्त्रभावं सार्यानुभवद्भिरतथा वक्तुमशक्यलात् । न द्वितीयः । अचे-तयद्भिजंडैर्वयमचेतना इत्यनुभवितुममिलपितुं किंचिदपलपितुं वा शक्यमित्याशयेनाह--चेतनमिति ॥ ३४ ॥ किंच चैतन्यं स्वमरणं चेत्परयति तर्हि सदैव पश्येत् । तदा सर्वदा सर्वेषां जीवतां मरणानुभवः स्यादित्याह--तदिति ॥ ३५ ॥ एवं मर-णाप्रसिद्धी तद्यावृतं जीवनमिखपि कल्पना वृथेखाशयेनाह-तसादिति । चेतति भ्रान्तिमनुभवति । खयंतु कदापि न नश्य-ति । तथाच श्रुतिः 'नहि द्रष्ट्रदेशेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशि-लात' इति॥३६॥ सर्वेषामविनाशिनिषेतनानुसारेणेवाधीनुभवः प्रसिद्धो न तद्वैपरीत्येनेत्याह—चिदिति ॥ ३७ ॥ खरूपाचि-रसमाबात चेलमेदे देशमेदे कालमेदे च न मियते ॥ ३८॥ तर्हि बन्धमोक्षयोः किंकृतः को वा विशेषस्तमाह-अपरिज्ञा-तेति ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तथाच जगद्र्षेषु सखसमिध्याले खख-निर्णयानुसारनियते न वास्तवे इत्याह-न तदस्तीति ॥४१॥ उक्तमर्थं निगमयत्रुपसंहरति-यद्यदिति । पदार्थजातं विषा-मृतदशेव कालमेदाद्ग्रोकृमेदात्सद्दकारिमेदाचानियतविपरीत-व्यवस्थितार्थकियामेदसंविदनुसारेणैव व्यवस्थितं दृष्टमिखतो हेतोः संविद्विधेयं संविद्ननुसारि किंचिदपि बस्तु नास्तीति मदुकं तत्त्रसिद्धमिलार्थः ॥ ४२ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-

मदशक्तिवदात्मेति सत्यतास्यापि युज्यते ॥ २ असत्त्वाद्दृश्यविश्वान्तेरलभ्यत्वान्महाचितेः । उपलब्धुरभाषाच शून्यनाम्नीव सत्यपि ॥ ३

यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे वण्णवतितमः सर्गः॥ ९६॥

> वर्ण्यते सर्वशक्तिःचात्सर्ववाद्युक्तिसत्यता । भोगासक्तिश्च सर्वेषां तत्त्वज्ञविरलस्थितिः ॥ ३ ॥

बद्धाणः सर्वशक्तित्वात्सर्ववाद्यक्तीनां सत्यतेति वश्यमाणा-र्थोपयोगितया 'न तदस्ति न यत्सत्यम्' इति सर्गोपान्त्यश्लोकोक्तं समर्थयितं भूमिकां रचयति--संविन्मयलादिति । परमात्मनः स्त्रप्रतस्य जगतः परमार्थसत्यब्रह्माकाशतया सर्वे ब्रह्मेवेति रात्यमेव जगत्सवैरनुभूयत इति नासत्यं किंचिदस्तीत्युक्तमि-त्यर्थः ॥ १ ॥ एवं ब्रह्मरूपेण सत्यत्वेऽपि कथं प्रतीयमानरू-पेण सत्यता । नहि रज्जुरूपं सत्यमिति तद्ध्यस्तः सर्पः सत्यो भवति तत्राह-भ्रमस्येति । तत्र हि सर्पोऽपि दश्यो रज्रपि दर्या । उभयोद्देयले रज्ञदर्शने सर्पबाधादसत्यता । इह तु जग-द्धान्तिर्दश्या तद्दधिष्ठानं महाचितिरदृश्येति वैवम्याविदारमा मदशक्तिरिव खयमदृश्यो दृश्यभ्रमहेतः कार्यरूपेणैव खसत्तां प्रकटयतीलस्य जगद्रपस्य सलता युज्यत इत्सर्थः ॥ २ ॥ तिहैं न तदस्ति न यन्युषेत्युक्तिः कथं घटतां बद्धाणो मृषाखा-योगात्तत्राह--असन्बादिति । बन्धकाले दश्यविश्रान्तेः सर्व-दृश्योपरमुळक्षणभोक्षस्यासत्त्वादसंपक्षेत्रां विना महाचितेरद्वि-तीयनिदातमनः अखम्यलान्मुक्तिकालेऽपि उपलब्धः प्रमातु-रन्तःकरणोपहितजीवस्योपलम्भकप्रमाणादेशः वाधेनाभावाणा-खन्ताप्रसिद्धप्रायतया सति परमार्थवस्तन्यपि

चिन्मात्रं पुरुषोऽकर्ता समेखव्यक्ततो जगत्। एवं इष्टेः सत्यमेतदेवमर्थानुभृतितः॥ 8 विवर्तो ब्रह्मणो स्रथमित्येवंवादिनोऽपि सत्। मतमेवं स्वरूपाणामधीनामनुभूतितः॥ परमाणुसमुहात्म जगदिखपि सत्यतः। संवेद्यते यथा यद्यत्तत्त्रथेवानुभृतितः॥ यथा दृष्टं तथैवेदमिह लोके परत्र ना। मासम सदिति प्रीदा सत्यमाध्यात्मिकी गतिः O बाह्यमेवास्ति नास्त्यन्यदित्यन्ये सत्यवादिनः। स्वात्मन्यक्षगणातीतं प्राप्नवन्ति न ते यतः॥ अनारतविपर्यासद्दीनात्स्रणभङ्गधीः। युक्तैव तद्विदामाधं सर्वशक्ति हि तत्पदम्॥ कलविक्रघटन्यायो धर्म इत्यपि तदिदाम्। तथात्मसिद्धे म्लेंच्छानां तहेशेषु न दुष्यति ॥ १०

सुनचमित्यर्थः ॥ ३ ॥ एवं सति सर्वेषां वादिनां वाक्यं ख-खानुभवतिद्वार्थप्रतिपादनात्सत्यमेवेति प्रपत्रयिष्यन् प्रथमं सांख्योकः सत्यतां दर्शयति-चिन्मात्रमिति । इदं जगत्सुख-द्रःसमोहात्मतया अन्वीयमानं तथाविधसामान्यपरम्परावधि-भतगुणत्रयसाम्यावस्थालक्षणादव्यक्ततः प्रधानास्यानमूलकार-णान्महदहंकारादिकमेण समेति आविभवति । पुरुषस्तु चि-नमात्रमकर्ता च तस्य भोगमोक्षतिद्वये सर्गः प्रवर्तत इत्येवं दृष्टिर्थस्य कपिछस्य तस्य तथैव तत्सत्यमित्यर्थः ॥ ४ ॥ यस्तु नेदान्ती ब्रह्मणो निवर्तो जगदिति वादी तस्यापि मतं सत्। तथा पर्यालोचने एवंहपाणामेवार्थानामनुभवादित्यर्थः ॥ ५ ॥ एवं कणादगौतमसौत्रान्तिकवैभाषिकाईतानां परमाणुसमुहात्म-कमेव जगदिति कल्पनापि तदनुभवानुसारिखात्सत्यैवेखाह-परमाण्विति ॥ ६ ॥ एवं दष्टराष्ट्रिवादिनामनिर्वचनीयमेवेह छोके परत्र च जगनत सदसदन्यतरकोटिप्रतिष्ठितमित्याध्या-त्मिकी मनःकल्पनामात्ररूपा जगतो गतिरवगतिरपि सत्यम् । **तैस्त्रयेवात्रभवादि**स्तर्थः ॥ ७ ॥ एतं ये अन्ये चार्वाका बाह्यं पृथिव्यादिभृतचतुष्ट्यमेवास्ति अन्यदान्तरमात्मरूपं नास्तीति बदन्ति तेऽपि सल्यवादिन एव । यतस्ते अक्षगणेभ्यश्रक्षरादि-भ्योऽतीतं खात्मनि देहे विमृशन्तो न प्रामुवन्ति ॥ ८ ॥ एवं क्षणिकवादिनां क्षणभन्नभीरपि युक्तेव । प्रतिक्षणपरिणामिनां सर्वभावानामनारतं विपर्यासदर्शनादित्यर्थः ॥ ९ ॥ यथा ध-टेडवरदः कलविद्वस्तन्मुखापावरणे बहिर्द्वीय गच्छति एवं देहान्तः परिच्छिन्नो धर्मो जीवः कर्मक्षये परलोके उद्वीय गच्छतीत्याईतकल्पनापि सत्या । तथा म्छेच्छानां यवनादीना-मीश्वरोत्पादितो देहाकार एव जीवो देहनिखननदेशेषु तिष्ठति स ततः कालान्तरे ईश्वरेण परामृष्टस्तदिच्छया मुच्यते उच्छि-शते । शाश्वतं खर्गे नरके वा निवेश्यत इति कल्पनापि तद्तु-मवाश्वदारादेव न दुष्यति ॥ १० ॥ एवं सर्वेत्र समब्द्धीनां

समाः सन्तश्च विप्राग्निविपामृतमृतिष्वपि। भान्त्येवं तद्विदां सर्वमिदं सर्वात्मकं यतः॥ ११ स्वभावसिद्धमेवेदं युक्तमित्येष तद्विदाम्। अन्विष्टा याति नो प्राप्ति बुद्धिमत्सर्वेकर्तृता ॥ १२ एकः सर्वत्र करंति सत्यं तन्मयचेतसाम्। सोऽयं निश्चयवान्सोऽत्र तदाप्तोतीत्यबाधितम् १३ अयं लोकः परश्चास्ति स्नानाप्त्यादि च नेतरत्। पतदेतादृशं सत्यं विद्धि भावितभावनम् ॥ अशेषं शुन्यमेवेति शैद्धानामेतदेव सत्। लभ्यते तद्विचारेण यत्र किंचन नैव हि॥ १५ चितिश्चिन्तामणिरिव कल्पद्रम इवेप्सितम्। आग्रु संपादयत्यन्तरात्मनात्मनि खात्मिका ॥ १६ नेदं शून्यं न चाशून्यमित्यवस्तु न तद्विदाम्। सर्वशिक्तिहिं सा शक्तिने तिद्विद्यत एव तत् ॥

सन्मात्रवस्तुनि दत्तदशीनां विषायृतसृतिजन्मादिषु विषमत्वेन कादान्वित्करवेन च प्रसिद्धेष्विप सर्वत्र समाः सदा सन्तक्ष भान्ति। यत इदं ब्रह्मेन सर्व सर्वात्मकं चातो न किंचिदत्र बुर्छभमिति । सर्ववादिनामपि सर्वाभिरुषितसिद्धिरिखर्थः ॥**१९**॥ एवं खभावादेव खयमेव सर्व जगदुत्पद्यते खभावादेव नरयति न जगतः कर्ता कश्चिदस्तीति तद्विदां स्वभाववादिनां चार्वा-काणां मतमाप युक्तभेय । यतो घटपटादी दृष्टापि बुद्धिमत्सर्व-कर्तृता वृष्टियातन्णाक्करादौ सम्यगन्विष्टापि प्राप्ति नो याति । नह्यकालवृष्टिसुक्षेत्रतृणाद्यः कृषीवलानां सस्यकर्तृणामनिष्टा विनेव कर्तारं खभावादेव जायमानाः कर्तृकल्पनां न सहन्ते । नहि सर्वानिष्टकर्ता कश्चिद्स्ति तस्य चाकालवृष्टिपरक्षेत्रतृणा-दिना प्रयोजनमस्तीति कल्पना संभवतीति भावः॥ १२॥ क्षित्यक्करादी सर्वत्र कार्यमात्रे एकः कर्ता इति यत्कल्पनं तदिष सलम् । तथा निश्चयवतामीश्वरोपासकानां तत्प्राध्यनुप्रहवरदा-नादार्थिकयादर्शनादिलाह—एक इति । तन्मयं तदासक्तं चेतो येगाम् । सोऽयमुपासको यतस्तथा निश्रयवांस्ततः सोऽन्तस्तत्खोपास्यं सर्वकर्तारं प्राप्नोति नह्यसी पूर्ववादीव तं बाघितं मन्यते । अकालवृष्टिसुक्षेत्रतृणादीनामपि सर्वानिष्टला-सिद्धेः सर्वकर्मफलप्रदस्येश्वरस्य दुष्कर्मफलानिष्टकर्तृत्वे दोषा-भावाचेति ॥ १३ ॥ आस्तिकानामयं लोक इव परोऽपि होकोऽस्ति । अतः परहोकार्थिनां तीर्थकानाभिहोत्रादि इतरत् निष्फलं न । एतादशं तेषामेतद्भावितभावनं सत्यमेव ॥ १४ ॥ एतत्तद्भावनमपि सत्यमेव । यत्र शून्यवादे तत्त्रमाणश्चन्ये प्रमे-यश्चन्यत्वकल्पनसंभवादिति भावः ॥ १५ ॥ सर्ववादिनां ख-खाभिलिषतसदानुवपत्तिमाह—चितिरिति ॥ १६ ॥ एवं श्रून्याश्रून्यविलक्षणानिर्वचनीयतृतीयविधावादिनामपि तत्खा-भिमतमबस्त्यस्यं न । यतः सर्वशक्तेत्रद्यणः सा अनिर्वचनीया मायाशिकः। हि यसातच्छन्यं न । यद्वियते वद्य तदेव च

तसात्विनश्चये यसिन्यः स्थितः स तथा ततः। अवश्यं फलमाप्तोति न चेद्वाल्याश्रिवर्तते ॥ १८ विचार्य पण्डितैः सार्धे श्रेष्ठवस्त्रनि घीमता। स रूढो निश्चयो प्राह्यो नेतरत्र यथा तथा ॥ संभवत्युत्तमप्रकः शास्त्रतो व्यवहारतः। यो यत्र नाम तत्रासौ पण्डितस्तं समाश्रयेत् ॥२० सतां विवदमानानां सच्छास्रव्यवहारिणाम् । यः समाहादको निन्धः स श्रेष्ठस्तं समाश्रयेत् २१ सर्व पवानिशं श्रेयो धावन्ति प्राणिनो बलात्। परिनिम्नं पयांसीच तद्विचार्य समाश्रयेत्॥ **२२** कल्लोकैरुग्रमानानां तृणां संसारसागरे। अज्ञाता दिवसा यान्ति तृणानामिव बिन्दवः २३ श्रीराम उवाच। जगत्पूर्व लतेयापि विश्वान्ता वितते परे। पूर्वीपरविचारेण के पराभावदर्शिनः॥ રપ્ર वसिष्ठ उवाच। जाती जाती कतिपये व्यपदेश्या भवन्ति ते। येषां यान्ति प्रकाशेन दिवसा भास्वतामिव ॥ २५

न उभयविरुक्षणेत्यर्थः ॥ १७ ॥ बाल्यादविश्वासरुक्षणाचाप-छाद्वेतोः पूर्वनिश्वयात्र निवर्तते चेदिल्यर्थः । अथवा बाल्या-इहानाम्र निवर्तते चेत् । तथाच यावदात्मझानं नास्ति ताव-**देव तत्त**त्सिद्धान्ताः सत्याः। आत्मज्ञाने तु आत्मैव सत्यो नान्यदिति भावः ॥ १८ ॥ अतएवाविचाराद्यस्य कस्यचि-त्सिद्धान्तो न प्राह्य इत्याह—विचार्येति ॥ १९ ॥ पण्डितश्रे-ष्ट्रकक्षणमाह-संभवतीति द्वाभ्याम् । शास्त्रतः अध्ययनतः । व्यवहारतः आचरणतः । यत्र देशे । नामेति तस्य दौर्रुभया-न्वेष्यलगोत्तनाय ॥ २० ॥ अतिन्दो निन्दायोग्यनिषिद्धात्र-रणहीनः ॥ २१ ॥ तर्हि कि निश्वयान्तरनिष्ठा विफला एव नेखाइ-- सर्व एवेति । श्रेयः स्वस्त निश्वयानु स्पममिल वितम् । भावन्ति प्राप्नुवन्ति । तत्तेषु परमपुरुषार्थसाधनं किं स्यादिति विचार्य सच्छाक्षसद्वरू एव समाध्रयेत् ॥ २२ ॥ तौ च शीघ्रं समाश्रयेम विखम्बेन आयुषि विश्वासायोगादिखाशयेनाह-कहो हैरिति । कहो हैर्मनोरथपरम्परातरकैः । अज्ञाता अल-श्चिताः तृणानामप्रे लगा निन्दन इव ॥ २३ ॥ भोगतृष्णा-प्रावस्थातिद्वरका मुमुक्षव एव दुर्लभास्तेष्वपि परमात्मतत्त्व-स्राक्षात्कारवन्तस्त्वदुक्तलक्षणाः पण्डितश्रेष्ठा अतिदुर्लभा इत्यमु-मेवार्य विस्तरेण श्रोतुकामो रामः प्रच्छति-जगदिति । बितते पदे ब्रह्माकाशे जगद्विटपसङ्खवितानजालप्रसारपूर्वक-मतिविस्तारेण विश्रान्ता प्राणिनां भोगतृष्णेति शेषः । एवं स्ति पूर्वापरजगत्स्वरूपानर्थविचारेण सारासारविचारेण च मानः परमार्थसार्शीनः परास्त्वदुक्तश्रेष्ठपण्डिताः के वा स्युः। ते अतिदुर्छभा इत्यर्थः॥ २४ ॥ सत्यमतिदुर्छभास्तवापि देवासरमञ्ज्यगम्भदीविजातिमेदेव से सन्त्येवेति प्रयक्षेना-

अधम्मोर्ध्वं च धावन्तस्रकावर्तविवर्तनैः। सर्वे तृणवदुहान्ते मुढा मोहभवाम्बुधौ॥ २६ नष्टात्मस्थितयो भोगविष्ठेषु प्रज्वलन्यलम् । देवा दिवि दवेनाद्रौ दह्यमाना द्रुमा इव ॥ २७ पातिता मदसंपन्ना दानवा दानवारिभिः। गजाइव निरालाना घोरे नारायणावटे ॥ २८ न गन्धमपि गन्धर्वा दर्शयन्ति विवेकजम्। गीतपीतपरामर्शाः सरन्ति हरिणा इव ॥ २९ विद्याधराश्च विद्यानामाधारत्वेन मोहिताः। स्फुरितानामुदाराणामपि कुर्वन्ति नादरम्॥ 30 यक्षा विश्लोभितभुवो दक्षतामक्षता इव। दर्भयन्त्यसहायेषु बालवृद्धातुरेषु च ॥ 38 दन्तिनामिव मसानां रंहसा हरिणारिणा। कृतः करिष्यसि त्वं च राक्षसानां परिक्षयम् ॥ ३२ भृशं पिशाचाः पश्यन्ति भूतभोजनचिन्तया । धूमान्धकारानिलया ज्वालयाहुतयो यथा ॥ नागजालमृणालानि मग्नानि घरणीतले । नगानामिव मूलानि जडानीव स्थितान्यलम् ॥ ३४

न्वेष्या इति वसिष्ठ उत्तरमाइ--जातौ जाताविति । 'तथो यो देवानां प्रत्ययुष्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्या-णाम्' इत्यादिश्रुतिव्यपदेश्या भवन्ति संभवन्त्येव ॥ २५ ॥ अन्ये तु सर्वे मूढा मोहमहाम्बुधी भोगतृष्णाकल्लोकैस्तृणवबु-स्पन्ते ॥ २६ ॥ तदेव देवादिजातिभेदेषु प्रपश्चयति -- नष्टा-त्मस्थितय इलादिना । दवेन वनहुताशनेन ॥ २०॥ दानवा-रिमिर्देवैर्नारायणलक्षणे अवटे महागते पातिताः ॥ २८॥ गन्धं लेशमपि । गीतलक्षणं यत्पीतं मदिरा तद्वशात्परैररिषद्व-र्गैः परामृत्यन्त इति परामर्शा हरिणा इव मृत्युव्याधसंनिधि सरन्ति गच्छन्ति ॥ २९ ॥ ब्रह्मविद्याया अपि विद्यालासवी-ग्यताबछेन स्फूरितानामप्युदाराणां विवेकानामादरं न कुर्वन्ति। भोगसाधनविद्याखेव रमन्त इत्यर्थः ॥ ३० ॥ भयज्वरोन्मा-दादिदोषोत्पादनेन विक्षोभिता भूजनावासो यैः । खयमक्षता इव खदेहं स्थिर मन्यमाना इति यावत् । असहायेष्वेकाकिषु मणिमन्त्रादिबळशून्येषु च बालादिषु खदक्षतां दर्शयन्ति ॥ ३१ ॥ राक्षसानां तु कामबलशौर्यादिना दन्तिवनमत्तानाम-रिणा शत्रुभूतेन हरिणा सिंहभूतेन विष्णुना प्राग्वहुशः परि-क्षयः कृतः अप्रे च त्वं करिष्यसीति तत्प्रमादफलं तेषां प्रत्य. क्षमेवेल्याह्--दन्तिनामिति ॥ ३२ ॥ पिशाचानां तु सदा क्षुभातरलात्प्राणिवधभोजनचिन्तैव सदेति विवेकप्रसक्तिरित्याह-पिशाचा इति । अज्ञानधूमान्धकार-स्यानिळवरक्रोधहिंसादिज्वालासंपादिकया न्तया । यथा अमी पतिता आहुतयः सदैव सधूमज्वा**लया** वंदह्यमानं स्वं पश्यन्ति तथा पिशाचा अपीत्यथः ॥ ३३ ॥ एवं नागजाताविप विवेको दुर्छभ इलाह--नागजाकेत ।

विवरं शरणं येषां कीटानामिव भूतले। तेषामसुरबालानां विवेकेषु कथेवे का ॥ 34 अरुपमात्रकणार्थेन संचरान्त दिवानिशम्। पिपीलिकासधर्माणः प्रायेण पुरुषा अपि॥ 38 सर्वासां भूतजातीनां व्यप्राणां व्यर्थदीर्घया। श्रीबाणामिष गच्छन्ति दिवसानि दुरीहया॥ न कंचित्संस्पृशत्यन्तर्विवेको विमलो जनम्। जलेऽगाघे निपतितं निमज्जन्तं रजो यथा ॥ 36 नीयन्ते नियमाधूता मानवा मानवायुभिः। कास्पिकैः स्फुटतापृताः किरारुनिकरा इव ॥ ३९ पानभोजनजम्बाले गहने योगिनीगणाः। दुर्गन्धपस्बलोद्वारे पतिताः पामरा इव ॥ 80 केवलं यमचन्द्रेन्द्रस्ट्रार्कवरुणानिलाः । जीवन्मुका हरिब्रह्मगुरुशुक्रानलादयः॥ धर

प्रजापतीनां सप्तर्षिदक्षाद्याः कश्यपादयः। नारदाद्याः कुमाराद्याः सनकाद्याः सुरात्मजाः ४२ दानवानां हिरण्याक्षबलिप्रहादशस्बराः। मयवृत्रान्धनमुचिकेशिपुत्रमुरादयः॥ 83 बिभीषणाद्या रक्षस्यु प्रहस्तेन्द्रजिदादयः। रोपतक्षककर्षीटमहापद्मादयोऽहिषु॥ 88 ब्रह्मविष्ण्यन्द्रलोकेषु वास्तव्या मुक्तदेहिनः। मुक्तस्वभावास्तुषिताः सिद्धाः साध्याश्च केवन४५ मानुषेषु च राजानो मुनयो ब्राह्मणोत्तमाः। जीवन्मुक्ताः संभवन्ति विरलास्तु रघूद्वह ॥ भूतानि सन्ति सकलानि बहूनि दिश्च बोधान्वितानि विरलानि भवन्ति किंतु। वृक्षा भवन्ति फलपल्लवजालयुक्ताः कल्पद्भगस्तु विरलाः खलु संभवस्ति ४७

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहासमायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ०विवेकिविरळलवर्णनं नाम सप्तनवितमः सर्गः ॥९०॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८

विविक्तनो विरक्ता ये विश्वान्ता ये परे परे।
विवेक्तिनो विरक्ता ये विश्वान्ता ये परे परे।
तेषां तनुत्वमायान्ति लोभमोहादयोऽरयः॥ १
म हृष्यन्ति न कुष्यन्ति नाविद्यान्याहरन्ति च।
उद्विजन्तेऽपि नो लोकालोकान्नोद्वेजयन्ति च॥ २
न नास्तिक्यान्न चास्तिक्यान्कष्टानुष्ठानवैदिकाः।
मनौहमभूराचाराः प्रियपेदालवादिनः॥ १

धरणीतळे पाताले । नगानां वृक्षाणां मूलानीव जडान्यचेतनाः नीव विवेकहीनानि स्थितानि ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ एवं बलवीर्य-प्रभावादिसंपन्नानां देवाद्यसुरान्तानां विवेकदीर्रुभ्ये अन्येषां तत्कि वाच्यमित्याशयेनाह--अल्पमात्रेत्यादि । पुरुषा मनुष्याः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यथा जले निमज्जन्तं रजः शुष्कपांसुर्न स्प्रशति तद्भत् ॥ ३८ ॥ मानो देहायभिमानस्तल्रक्षणेवीयुभिः अकोघादिनियमेभ्य आध्वाधालिताः कोघादिवर्यतां नीयन्ते । यथा काम्पिकैः शूर्पकम्पकर्त्तिः कृषीवलैर्धानास्फुटतासिज्यर्थे खलेषु पूता उड्डायिताः किराइनिकरा निःसारधान्याभासस-मृहा वायुमिनीयन्ते तद्वदिखर्थः ॥ ३९ ॥ सुरारुधिरपानमां-सादिभोजनलक्षणो जम्बालः पह्यो यसिम्तयाविधे तामसधर्म-फलभोगासिकलक्षणदुर्गन्धपल्वलोद्वारे पतिताः । अविवेकेने-त्यर्थः ॥ ४० ॥ एवं देवादिजातिषु विवेकज्ञानदौर्छभ्यं प्रपश्च्य तेषु ये प्रबुद्धास्तान्परिगणितानिव कतिपयान्दर्शयति-केवल-मिखादिना ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अहिषु नागेषु ॥ ४४ ॥ वसन्तीति वास्तव्याः । मुक्तदेहिनो जीवन्मुक्ताः । दुविदादयो देवयोतिमेदाः। केचन नद्य सर्वे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सर्वजा- सङ्गादाह्यदयन्त्यन्तः शशाङ्कित्यण इव।
विवेचितारः कार्याणां निर्णेतारः क्षणादिष ॥ ४
अनुद्वेगकराचारा वान्धवा नागरा इव।
विदः सर्वसमाचारा अन्तः सर्वार्थशीतलाः ॥ ५
शास्त्रार्थरिकास्तज्का भातलोकपरावराः।
द्वेयोपादेयवेचारो यथाप्राप्तामिपातिनः॥ ६
विद्वद्वकार्यविरता रसिकाः सज्जनस्थितौ।
अनावरणसौगन्ध्यैः परास्पदसुखाशनैः॥ ७

तिष्वपि जीवन्युक्ताः सन्ति किंतु ते विरला इत्येतहृष्टान्तेनो-पपादयति--भूतानीति । सप्टम् ॥ ४७ ॥ इति श्रीवासिष्ठम-हारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे सप्तनव-तितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

रुक्षणान्युपवर्ण्यन्ते सतां तस्वविदामिष्ठ । परीक्ष्योपेक्ष्य तदोषान्कर्तस्यश्च तदाश्चयः ॥ ३ ॥

ततुलमल्पताम् । तथाच लोभादिदोषाल्पतापि तल्रक्षणं चेलिदोषत्वं कि वाच्यमिति भावः ॥ १ ॥ नाविशन्ति कापि विषये नामिनिविशन्ते । एवं नाहरन्ति न संगृहन्ति भोग्यः जातम् ॥ २ ॥ एवं पारलैकिककर्मस्यपि नास्यन्तकायल्लेशाव-हेषु गुष्कवैदिकवद्यशिल्लाश्यन्तीत्याह—नेति । अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य स आस्तिकः । नास्ति स इति मतिर्यस्य स नास्तिकस्तदन्यतरभावाभिमानप्रयुक्ताद्यशिस्यर्थः ॥ ३ ॥ का-र्याणां कर्तुमुचितानां लैकिकवैदिककर्मणां परस्परविरोधादनुः ष्ठानसंकटे अकार्येभ्यो विवेचियतारः संदेहनिर्णेतारः ॥ ४ ॥ नागराधतुराः । सर्वैः समः साधारण आचारो वेषाम्॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ सम्बनस्थितौ सदाचारे । अनावरणमुपदेशेन हृदयकोन

पूजयन्त्यागतं फुला भृङ्गं पद्मा इवार्थिनम्। आवर्जयन्ति जनतां जनतापापहारिणः॥ शीतलास्पद्वतिक्राग्धाः प्रावृषीव पयोधराः । भूभृद्रङ्गकरं घीरा देशभङ्गदमाकुलम् ॥ रोधयन्यागतं क्षोभं भूकम्पमिव पर्वताः। उत्साहयन्ति विपदि सुखयन्ति च संपदि॥ १० चन्द्रविम्बोपमाकारा दारा इव गुणाकराः। यशःपुष्पामलदिशो भाविसत्फलहेतवः॥ ११ पुंस्कोकिलसमालापा माधवा इव साधवः । कञ्जोलबहुलावर्त व्यामोहमकरालयम् ॥ १२ लुठन्तमिव हेमन्तं लोडयन्तं जनास्पदम्। वीचिविक्षोभचपळं परचित्तमहार्णवम् ॥ १३ तच रोधयितं शकास्तटस्थाः साधुपर्वताः। आपत्सु बुद्धिनारोषु कल्लोलेप्वाकुलेषु च ॥ १४ संकटेषु दुरन्तेषु सन्त एव गतिः सताम्। एमिश्चिह्नरथान्येश्च शात्वा तानुचिताशयान् ॥१५ आश्रयेतैकविश्रान्त्यै श्रान्तः संसारवर्त्मना । यसादत्यन्तविपमः संसारोरगसागरः॥ १६ विना सत्सङ्गमन्येन पोतकेन न तीर्यते।

आस्तां किं में विचारेण यज्ञवेदस्तु तन्मम ॥ इत्यन्तः कल्कमासाद्य न स्थेयं गर्तकीटवत् । एकोऽपि विद्यते यस्य गुणस्तं सर्वमृत्सुजन् ॥ १८ अनाहतान्यतहोषं तावन्मात्रं समाधयेत्। गुणान्दोषांश्च विज्ञातुमाबाल्यात्स्वप्रयक्षतः॥ १९ यथासंभवसत्सङ्गद्यास्त्रैः प्राग्धियमेधयेत् । दोषलेशमनाष्टत्य नित्यं सेवेत सज्जनम्॥ 20 स्थूलदोषं त्वनिर्वाणं शनैः परिहरेत्क्रमात् । याति रम्यमरम्यत्वं स्थिरमस्थिरतामपि ॥ २१ यथा दृष्टं तथा मन्ये याति साधुरसाधुताम् । एष सोऽत्यन्त उत्पातो यः साधुर्याति दुष्टताम् ॥२२ वेशकालवशात्पापैर्महोत्पातोऽपि दृश्यते । सर्वेकर्माणि संत्यज्य कुर्यात्सञ्जनसंगमम्। एतत्कर्म निराबाधं लोकद्वितयसाधनम्॥ 23 न सज्जनाद्द्रतरः कचिद्भवे द्भजेत साधृन्विनयित्रयान्वितः। स्पृशन्त्ययत्नेन हि तत्समीपगं विसारिणस्तद्वतपुष्परेणवः॥ રક

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० निर्वाणप्रकरणे उ० सज्जनसमागमप्रशंसानामाष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

शोद्घाटनं तत्त्रयुक्तैर्ज्ञानोदयसोगन्ध्यैः परैः आस्पदेः आश्रयदानैः मुखेरशनेरमेश्व आगतमर्थिनं पूजयन्तीति परेणान्वयः ॥ ७ ॥ पद्मपक्षे अनावरणेत्यादि सप्टम्। आवर्जयन्ति गुणैर्वशीक्रवन्ति ॥ ८ ॥ शीतलमास्पदमुद्यानादि तद्वत्स्रिग्धाः । भूभतां राज्ञां मक्रकरं देशमक्रदं च आकुछं दुर्भिक्षमारीपरचकादिप्रयुक्तं जनकोमं तपःत्रभावसत्कर्मानुष्ठापनसामाद्यपार्यः रोधयन्ति विष्टभ्य निवारयन्तीति परेणान्वयः ॥ ९ ॥ १० ॥ रूपमाध-र्थप्रेमादिगुणाकारा दाराः पतित्रता इव । यश इत्यादिविशेषणः साधन् वसन्तत्वेनोत्प्रेक्षते ॥ ११ ॥ माधवा वसन्ताः । कहो-छेखादीनि परचित्तमहार्णविविशेषणानि ॥ १२ ॥ पद्माकरेषु अतिविविरतरपवनविक्षिप्ततरङ्गच्छलेन लुठन्तं हेमन्तमिव जनास्पदं जनपदं भक्तहंसादिजनास्पदं पद्मवनं च लोडयन्तम्। बीचयः षड्म्यस्तद्विक्षोभैश्वपलं तत्प्रसिद्धलोभद्वेषादिमोहितम् । चोऽप्यर्थे । ईटशमपि परेषां राजादीनां चित्तमहार्णवं सामदा-नादिना विवेकोपदेशैश्व रोधियेतुं शक्ताः ॥ १३ ॥ तटस्था उदासीना वेलासनिहिताथ । साधुपर्वता इति रूपकं नोपमि-तसमासः । सामान्यधर्माणां प्रयोगात् । अतएव सतां विवे-किनामापदादिषु प्राप्तेषु सन्त एव गतिः । कल्लोलेषु अधनाया-पिपासाशोकमोहजरामृत्युलक्षणपहूर्मिषु आकुलेषु देशविव-रादिषु च ॥ १४ ॥ एमिरिदानीमुक्तैः । अथशब्दचशब्दी समुच्ये । अन्येः प्रागुक्तैय ॥ १५ ॥ एकस्मिनद्वये नहाणि विभान्से । उरगभीषणः सागर उरगसागरः ॥ १६ ॥ १७ ॥ करकं प्रमादम् । उत्तर्यणानां मध्ये एकोऽपि युणो यस्य विद्यते तमापे तावनमात्रमुद्दिश्य सर्वं कार्यान्तरमुत्स्जन्सन् अनाहतान्यतहोषं यथा स्यात्तथा आश्रयेदिति परेणान्ययः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ स्थूला दोषा यस्य तथाविधं लनिर्वाणं पूर्वपरिजनं शनैः परिष्ट्ररंत्त्यजेत्। तदपरिद्वारे के दोषाखानाह-यातीति । रम्यं शोधितमपि चित्तमरम्यत्वं रागादिकञ्जवतां याति । स्थिरमपि विधानितस्रखं विच्छेदादस्थिरतां बाति ॥ २१ ॥ कुत एतन्मन्यसे इति चेह्नोकं तथैव दर्शनादि. त्याह-यथेति । अस्त्वेवं ततोऽपि को दोपस्तत्राह-एष इति । उत्पातो जगदनिष्टसचकः ॥ २२ ॥ पापैर्जनानां दुरदृष्टैः । दृज्यते यथा विश्वामित्रस्य छन्धामात्यादिसङ्गाद्वसिष्टकामधेत-हरणे प्रवृत्तिस्तया च परस्परवैरयुख्या बहुतरमाडीबक्युद्धान्तं जगदनिष्टम् । एवं कर्यपविश्रवः प्रमृतीनां भार्यासंगत्यां जग-दनिष्टनिमित्तदेखराक्षसाद्युत्पादने प्रश्रुतिरपि शाद्धमकेलादिप्रसिद्धमहोत्पातवदुश्यत इत्यर्थः । उक्तमनुष्यो-पसंहरति-सर्वेति ॥ २३ ॥ सच सज्जनसमागमो गुणार्जन-क्रमेण ज्ञानप्रतिष्ठासिद्धिपर्थन्तं न विच्छेदनीय इत्याह—नेति । कचिदपि काले सजनाद्वरोद्देरतरो न भवेत्। विनयसेवा-दिकियान्वितः सन् सदैव भजेत्। किं ततस्तत्राह-एष्ट्रश-न्तीति । तेषां साधुनां समीपगमनमयक्रेनैव विसारिणस्तेषां शान्तिदान्त्यादिगुणलक्षणाः पुष्परेणवः सौगन्ध्यविशेषा **अ**-धिवासनमिश्रीकृततिलानिव स्पृशन्ति । अवस्यं संकामन्तीलाकः ॥ २४ ॥ इति श्रीदासिष्टमहारामयणतात्पर्यमकाहो निर्यो-णप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

4

नवनवतितमः सर्गः ९९

श्रीराम उवाच। सन्ति दुःखक्षयेऽसाकं शास्त्रसत्सङ्गयुक्तयः। मन्त्रीषधितपोदानतीर्थपुण्याश्रमाश्रयाः॥ ξ कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तियेक्स्थावरजातयः। कथं स्थिता किमारम्भास्तेषां दुःखक्षयः कथम् २ वसिष्ठ उवाच।

सर्वाण्येवेह भूतानि स्थावराणि चराणि च। आत्मोचितायां सत्तायां विश्वान्तानि स्थितान्यलम् भृतानामणुमात्राणामप्यसाकिमवैषणाः । कित्वल्पास्था वयं विद्यास्तेषां त्यचलसंनिभाः ॥ ४ यथा विराद् प्रयतते वालखिल्यास्तथैव खे। बालमुख्यस्पकायेऽपि पद्याहंकृतिज्ञिभतम् ॥ ५ जायन्ते च म्रियन्ते च निराधारेऽम्बरे खगाः। शुन्यैकविषयास्तेषां स्वास्थ्यं न भवति क्षणम् ॥ ६ पिपीलिकायाश्चेष्टाभित्रीसावासात्मबन्ध्रभिः। असिद्दियसकल्पोऽपि न पर्याप्तः क्षणो यथा ॥ त्रसरेणुप्रमाणात्मा क्रम्यणुस्तिमिनामकः।

> कृमिकीटपतङ्गानां तिर्यक्स्थावरजन्मनाम् । संसारे यादशो भोगसत्सर्वमिद्द वर्ण्यते ॥ १ ॥

कृमिकीटपतक्वादीनामतिमृढजन्तूनां तात्कालिकदुःखोपश-मोपायाभावे जीवनमेव दुर्लभम् । उपायं च ते ज्ञातुं न शक्नु-बन्ति । तथा सति कथं जीवन्तीति तेषां संसरणस्थिति जा-तिप्रसङ्गाजिज्ञासमानो रामः प्रच्छति—सन्तीलादिना । अ-स्माकं मनुष्यजातीनामहिकामुष्मिकदुःखक्षये शास्त्रादय उ-पायाः सन्ति । ये कृम्यादयस्तेषां दुःखक्षयः कथं केनोपायेन, तदभावे च ते कथं स्थिता जीवन्तीखन्वयः ॥ १ ॥ २ ॥ आत्मोचितायां तत्तयोग्यभोगोचितायां सुखमत्तायाम् । तथाच तत्त्वोनिभोग्यविषयसुखलव एव तेषां महान्युरुषार्थं इव भाति। ताबन्मात्रेण विश्रान्तास्तदाशयेव बहुतरदुःखान्यपि सहमाना जीवन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥ एषणाः स्वस्तयोन्युचितसुखभोगेच्छाः सन्तीति शेषः । किंत्र वयं तेषु भोगेष्वल्पास्था अल्पविद्राक्ष । तेषां तु मोहकामादिदोषप्राबल्याद्विवेकाभावाच बह्वी आस्था। अचलसंनिभाः महान्तो बहवध विघाः ॥ ४ ॥ भोगेषु ब-हास्या इति कृतो ज्ञायत इति चेत्प्रयक्षाधिक्यलिङ्गादित्याशये-नाह-यथेति । विराद ब्रह्माण्डशरीरो जीवो यथा खाधिकार-निर्वाह्चेष्टाभिः खभोगाय प्रयतते तथा वालानां केशानां अ-सिछैरप्रभागैः संमितदेहाः कृमिकीटमशकमत्कुणादयोपि तथैव बालमुष्टिन्छदापेक्षया अल्पकायेऽपि खे खावकाशे प्रयतन्ते ॥ ५ ॥ खगाः प्रायुक्ता आकाशपक्षिणः। खास्थ्यं स्थैर्ये। प्रय-**अविच्छित्तिरिति यावत् ॥ ६ ॥ पिपीलिकादीनां कणाद्यर्जनप्र-**यमबाहुल्यदर्शनादिप तेषां भोगास्थाबाहुल्यमनुमीयत इलाश-

गमने व्यव्रता तस्य गरुडस्येव लक्ष्यते॥ अयं सोहमिदं तन्म इत्याकिएतकल्पनम्। जगद्यथा नृणां स्फारं तथैवोश्चेर्गुणैः कृमेः॥ देशकालिक्रयाद्रव्यव्यव्रया जर्जरीकृतम् । क्षीयते वणकीटानामस्माकमिव जीवितम् ॥ १० पादपाः किंचितुन्निद्रा घननिद्राः खलूपलाः। कृमिकीटादयः कार्यं नरवत्स्वप्नबोधिनः॥ ११ शरीरनाश एवेपां सुखं संप्रति दुःखकृत्। असाकमिव तेषां तज्जीवितं तु सुखायते ॥ १२ जनो द्वीपान्तरं याद्यग्विक्रीतः परिपश्यति । पदार्थजालं पश्यन्ति ताहकपशुमृगादयः॥ १३ अस्माकमिव संसारस्तिरश्चां सुखदुःखदः । पदार्थप्रविभागेन केवलं ते विवर्जिताः॥ १४ हृद्यात्सुखदुःखाभ्यां नासातो रशनागुणैः। पशवः परिकृष्यन्ते विक्रीताः पामरा अपि ॥ १५ सुप्तानां यादगस्नाकं वेदनं स्पष्टसुत्वचाम् । वृक्षगुल्माङ्करादीनां तादगुद्दामवेदनम् ॥ १६

येनाह—पिपीलिकाया इति । प्रासावासपदाभ्यां तरसंपादनप्र-यता लक्ष्यन्ते । आत्मबन्धुपदेन च कुदुम्बपीपणप्रयतः । असाहिवसकल्पोऽपि दीर्घः कालस्तासां कणार्जनादिप्रयत्ने क्षण-वन्न पर्याप्तो नालमिखर्थः ॥ ७ ॥ तिमिनामकः कृम्यणुरणु-तमः कृमिरस्ति ॥ ८ ॥ देहे तद्भोग्येषु चाहंममतालक्षणा-ध्यासश्च नृणां कृमेश्व समान इत्याह—अयमिति । उच्चैर्गुणेर्गु-णातिशयैः स्कारं बहुतरास्थायोग्यं तथैव कृमेरि ॥ ९ ॥ विषयास्थया व्यर्थमायुषः क्षयोऽपि कीटादीनामस्माकं च स-मान इत्याह—देशेति ॥ १० ॥ किंचिदुन्निदा ईपजागरूकाः। कार्ये खखोचितविषयभोगे खप्तश्च बोधो जागरश्च येपां स्त इति खप्रबोधिनः ॥ ११ ॥ एषां कृमिकीटस्थावराणां संप्रति शरीरकाले सुखं स्थितानामस्माकमिव शरीरनाश एव दुःख-कृत् । तन्नीवनं शरीरे प्राणावस्थानम् ॥ १२ ॥ अस्मद्भोग्यगृ-हप्रासादधनरक्नादिकं ते कथं पश्यन्ति तदाह-जन इति । खाभोग्यं पदार्थजालमुदासीनतया संमुग्धदशा परयन्तीलर्थः ॥१३॥ पदार्थानामुत्कर्षापकर्पादिबुद्धिहेतुना गुणिकयोपयोगादि-प्रविमागेन ॥ १४ ॥ विक्रीतजनसाम्यं पश्चनामुपपादयति-हृदयादिति । पशवो हि बलीवर्दादयो नाथहरयो हृदयान्मनसः सकाशादन्तः सुखदुःखाभ्यां परिकृष्यन्ते । नासातो नासिकाप्र-देशाश्व नाथनरशनागुणैर्बहिः परिकृष्यन्ते । एवसुमयतः परा-धीनतया कृष्यमाणा अपि किन्वदिप खदुःखं परिहर्तुं निवेद-यितुं वा न शक्विन्त तथा द्वीपान्तरे विक्रीताः पामरा अ-पीति तयोः साम्यमित्यर्थः ॥१५॥ दृक्षादीनां सुखदुःखानुभव-प्रकारमप्यस्मदनुभवानुकूल्येनोपपादयति-सप्तानामिति । सप्ट-

यादगसाकमीत्यर्थक्रमसंसारपातिनाम । पदार्थवेदनं ताहकिरश्चां भ्रान्तमभ्रमम्॥ १७ आहादमात्रसौम्यत्वं सुखतश्चेन्द्रकीटयोः। समं विकल्पविन्मुक्तं विकल्पस्त्वनतिक्रमः॥ 26 रागद्वेषभयाहारमेथुनोत्थं सुखासुखम्। तिरश्चां जन्ममृत्यादिखेदः कश्चिम मिद्यते ॥ ऋते पदार्थभूतार्थभविष्यद्वस्तुवोधतः । शेषं वभवहिगोमायुगजादीनां नृभिः समम्॥ २० निद्रामयानां बृक्षाणां स्वसत्तामचलादयः। स्थिता अनुभवन्तोऽन्ये चिदाकाशमखण्डितम् २१ आपीननिद्रा वृक्षाद्याः स्वसत्तास्यास्तथाद्वयः। जङ्गमानि चिदाकारां नाम किंचित्कदाचन ॥ अखण्डचित्ता शैलादिसत्ता निद्रा च भूरहाम्। द्वैतोपलम्भमुक्तत्वात्खमेवैकमतो जगत्॥ 23 परिशातं जगद्यावदपरिशानसंयुतम्। न त्वं नाहं न चैवास्तिमास्ती नच भविष्यति ॥२४ यथास्थितं सदैवेदं मानमेव शिलाघनम्।

मुलचां मुकुमारलचां मुप्तानां निद्रापरनशचेतसामस्माकं बहुत-रशीतोष्णमशक्मत्कुणादिभिर्बाध्यमानानामसुखनिद्रायां यादक उद्दामं दुःखनेदनं तादृगित्यर्थः । अङ्करप्रदृणं सौकुमार्यात्तत्र कृमिकीटादिदंशने दुःखातिशयद्योतनार्थम् ॥ १६ ॥ तिरक्षां पदार्थप्रविभागेन विवर्जितं वेदनं यदुकं तद्युपपादनेनानुभव-मारोहयति---गृहगिति । ईतिर्देशशोभपलायनेन धावनादि-गतिस्तद्रथे कुशकण्टकतप्तवालुकाक्रमणभारोद्वहनादिक्रमसंसारे पतनशीलानामस्माकं यादशं सर्वतोभयाशिक्ष पदार्थवेदनं तादक् पक्षिसर्पादितिरथामपि सदेखर्थः ॥ १७ ॥ विकल्पविद्धिर्विक्षे-पानुभवैर्मुक्तं चेत् आहादमात्रे सामान्यभूते खरूपानन्दे सु-खतः आहारनिदामेधुनादिसुखेषु च इन्द्रस्य कोटस्य च सौ-म्यलं मनःप्रसादलक्षणं समम् । विकल्पो विक्षेप एव तु द्वयो-रप्यनतिक्रमो दुरतिकम इत्यर्थः ॥ १८ ॥ तिरश्वां इन्द्रस्य चेति शेषः । न भिद्यते न विशिष्यते ॥ १९ ॥ पदार्थाः शास्त्रगम्याः पुण्यपापब्रह्मतत्त्वादयः । भूतार्था अतीतपदार्थाः भविष्यद्वस्तुनि भाविकृषिफलादिपदार्थाः एतेषां बोधतः ऋते एतद्वोधान्विहाय शेषं ज्ञानं बभुर्नेकुरुः अहिः सर्पः गोमायुः रागालः गजादिश्र ये पशवस्तेषां सर्वेषां नृमिः समं तुस्यमि-त्यर्थः ॥ २० ॥ पर्वतादयस्तर्हि कथमनुभवन्ति तन्नाहु—नि-देति । निदाप्रचुराणां सुषुप्तिस्थानां यक्षाणां या गाढमूढतया खसता तां अचलाः पाषाणादयोऽनुभवन्तः स्थिताः अन्ये हिन मवन्मेर्वादयस्तत्त्वक्रपर्वतास्त्वस्तिकतं चिदाकाशमनुभवन्तः सदा समाधी स्थिता इत्यर्थः ॥ २१ ॥ इत्थं च न दक्षादिजी-वहशा जगरकत्यना । तेषामापीननिद्रलात् । नाप्यद्यादिजीव- अनाचन्तमविच्छिद्रमनिद्रं च सनिवृक्तम्॥ पूर्व सर्गाद्यथैवासीत्तथैवैकं समस्थितम्। भविष्यत्यधुनानन्तं कालमेवं तथैव च ॥ २६ नैवात्मता न परता न जगत्ता न शून्यता। न मौनता न मौनित्वं किंचिन्नहोपपचते ॥ २७ त्वं यथास्थितमेवास्त्र यथास्थितमहं स्थितः। सुखासुखे पराकारो शान्ते नेहास्ति किंचन ॥ २८ परमाकाशतां मुक्त्वा कि स्वप्ननगरे वद । विद्यते किल तच्छान्तं विद्योमाच्छमनामयम् ॥२९ अपरिव्रप्तिरेवैका तत्र संभ्रमकारिणी। परिशातमिदं यावद्विचते सापि न कचित्॥ 30 परिवाते जगत्स्वप्ते यावत्सत्यं न किंचन। प्रहस्तदेनं प्रति किं सेहो वन्ध्यासुते तु कः॥ स्वप्तकाले परिवाते जगत्स्वप्तमणावणी। किमुपादेयता कास्था प्रबोधेऽसौ न किंचन ॥ ३२ यम किंचिरप्रबोधोऽस्ति नाप्रबोधोऽस्ति तत्कचित्। यस्तूपलम्भस्तत्काले पूर्वावस्थैव सा तथा ॥

जातिहशा । तेषां खसत्तास्थलात् । जञ्जमजातिष्वपि न तत्त्वक्र-दशा । तेषां चिदाकाशमात्रलात्कितु कतिपयाञ्चजङ्गमजातिदशा । सा च दृष्टिनं बहुतरदृष्टिविरुद्धां जगत्मत्तां साधियतुं क्षमत इत्याद्ययेनाइ--आपीनेति । यानि जंगमानि जीवजातानि तान्यसुषुप्तिमरणमूर्च्छामोक्षाद्यवस्थासु चिदाकाशमेव नाम । तत्र केषांचित्कदाचन खप्ने अर्थविकासेन जागरे सर्विषका-सेन भासमानं किंचिजगद्भहतरदृष्ट्यनुरोधाचिदाकाशमेवेति युक्तमित्यर्थः ॥ २२ ॥ तत्र या शैलादिसता याच भ्रहां निदा सा द्वैतोपलम्भमुक्तलात् खमेव । अतल्लहुशा जगदेकम-ज्ञानोपहितचिन्मात्रमेव ॥ २३ ॥ अन्यदशापि खतस्वं या**वद**-परिज्ञानसंयुतं तावदेव जगत्। परिज्ञातं तु न लं नाहं ना-प्यस्तिनास्ती सत्तासत्ते नापि भविष्यतीति कचित्कोटी व्यव-तिष्ठत इत्सर्थः ॥ २४ ॥ एवमव्यवस्थित्या जगद्भावनिरासे ब्रह्मैव परिशिष्टमिति दर्शयति—यथास्थितमिति । अब्रदशा सनिद्रकं निद्रयेव खारमन्येव जगद्वैचित्र्यं कल्पयदिखर्यः ॥२५॥ परमार्थतस्त्र सदैवैकरूपमिलाइ-पूर्वमिति । अधुना वर्तमा-नकाले तथेवास्ति । अनन्तकालमग्रे च तथैव भविष्यतील-न्वयः ॥ २६ ॥ तस्य च आत्मलादयोऽपि विशेषा न्याव-र्त्याभावात्र सन्ति कि पुनरन्ये इलाइ—नैवेति ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ सा अपरिज्ञिप्तिरपि परिज्ञातमिति हेतोर्न विद्यते ॥ ३० ॥ एवं जगस्त्रप्रं प्रति कि किमर्थं प्रदः अभि-निवेशः ॥ ३१ ॥ अणौ अणौ संभाव्यत इति शेषः ॥ ३२ ॥ प्रबोधकाले असदप्यप्रबोधकाले सदस्त तन्नाह-यदिति। पूर्वावस्था अञ्चतेव । सा तथा तदुपरुम्भारमना प्रयत इरावः विचते वर्तमानत्वं भविष्यद्भतता तथा। बोधाबोधम नो सत्यं घस्तु शान्तं किलाखिलम् ३४ यथोर्मिणोर्मी निष्ठते न काचित्पयसां क्षतिः। तथा देहेन निहते देहे नास्ति चितेः क्षतिः॥ ३५ चितावाकादा पवाहं देह इत्युपजायते। संविदेव ततो देहे नप्टे किं नाम नश्यति॥ 38 प्रबुद्धस्यैव चिद्योद्धः स्वप्नो जगदिति स्थितम्। पृथ्यादिरहितं यसात्तसात्स्वप्रात्मकं जगत् ३७ सर्गादौ पूर्वचित्स्वप्राज्जाता पृथ्व्यादिवस्तुधीः। स्वप्नार्थे सत्यताम्रान्तिः कल्पनामात्ररूपिणी ॥ ३८ पूर्वात्पूर्वतरस्यास्य स्वप्रस्यावयवस्थितौ। सत्येवासत्यरूपायां पृथ्वादिकलना कृता ॥ ३९ सा च म्रान्तिस्तथा रूढा यथासत्यैव सत्यताम्। परमामागता तत्तु सत्यमत्यन्तनिर्मलम् ॥ षस्तुतस्त यथाभृतं चिद्रक्षेवाततं स्थितम्। न च तत्संस्थितं किंचित्सर्तासर्ता किमात्मकः ક્ષ एवं मात्रापरिज्ञानमेवात्र प्रतिबोधकम्। अत्रैच तु परिक्षानं कवाटप्रविघाटनम्॥ ધર पारिशेष्याच पृथ्वादि किंचित्संभवति कवित्।

॥ ३३ ॥ तर्हि काळत्रयमशानं तज्ज्ञानं च कि सत्यं नेत्याह---विवात इति ॥ ३४ ॥ तथाच मिथ्याभूतदेहादी मिथ्याभूतैः शत्रुभिईतेऽपि न तदुभयाधिष्टानात्मनः क्षतिरित्याह---**यथेति ॥** ३५ ॥ आकाशभूतायां चितावेव देह इति भ्रान्ति-संविदेव उपजायते । तथाच आन्तिसंविद्रूपे देहे नष्टे किं नाम नद्रयति ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पूर्वपूर्वचितस्वप्रसंस्कारात् ॥ ३८ ॥ एवं पूर्वारपूर्वतरस्थानादिप्रवाहरूपस्य खप्रस्यावयवस्थितौ इदा-**बीतन्यामसलार**पायामेव सत्येव कलना मूर्डः कृता ॥ ३९ ॥ तत् परमार्थसत्यं लखन्तनिर्मलं न जाष्यकञ्जषमित्यर्थः ॥४०॥ असलाहपायां सत्येव कलना कृतेति इवकारेणोपमिला तेन भ्रान्तिकलनायां सत्यार्थकलनासाहरयं दर्शितम् । तत्र सत्य प्राक्सत्यार्थेषु तद्नुभवे सांप्रतं च तत्सर्तरि युज्यते नान्यथे-खाशक्याह- बस्तत इति । तत् सत्यरूपं पृथ्वादि किचित्प्रा-गपि नच संस्थितम्। एवंच तदनुभवस्याखन्ताप्रसिद्धी साती असाती विसाती वा किमात्मकः ॥ ४९ ॥ तह्यसत्ये असन्ताप्रसिद्धसंखतायाः साहश्यस्य च कि प्रतियोधकमिति चेत् सप्रकाशस्यस्ररापरिज्ञानमेवेत्याद्-एवं मात्रेति । यबार्यभ्तविद्रहामात्रगोचरमपरिहानमञ्जानमेव जगति सत्यता-प्रतिबोधकम् । अतएव तत्त्वपरिक्वानमेवाक्वानावरणकवाटस्य ज-गरसत्यता भ्रान्खादिविश्लेपकपाटस्य च प्रविधाटनमपावरणिन-खर्थः ॥ ४२ ॥ सकार्याक्रानवाधे चिन्मात्रपरिशेष्यात्तत्परि-बिष्टं चिन्मात्रं शिवमेव ॥ ४३ ॥ वाह्याद्विम्वाभिमिसाद्विम्बं

यो द्रष्टा यश्व वा दृश्यं विमलं शिवमेव तत् ॥ ४३ मुकुरे उन्तर्यथा विम्याद्विम्बं भाति जगस्था। चिद्योमनि स्वतो भातमबिम्बादेव विम्बितम् ४४ मुक्तरेऽन्तर्यथा बिम्बं न दृष्टमपि किंचन। तथा चिद्योमगं विश्वं न दृष्टमपि किंचन ॥ ४५ स्थाते यद्विचारेण यत्सकारणकं स्थितम् । तत्सच्छेषं तु भामात्रमभूतं सत्कथं भवेत्॥ 86 भवेक्समात्मकमपि किःचिद्धंकियाकरम्। स्वप्राङ्गनापि कुरुते सत्यामर्थक्रियां नृणाम्॥ यत्तद्भानं तु सा चिद्धा परमं ति बदम्बरम्। इति काहं क विश्वश्रीः क त्वं दर्यदश्रध काः ४८ मृत्वा पुनर्भवनमस्ति किमङ्ग नएं मृत्वा न चेञ्जवनमस्ति तथापि शान्तिः। विशानदृष्टिवशतोऽस्त्यथ चेद्विमोक्ष-स्तन्नेह किंचिदपि दुःखमुदारबुद्धेः॥ ४९ मूर्खस्य यादशमिदं तु तदश पव जानात्यसौ नहि वयं किल तत्र तज्ज्ञाः। मत्स्यो हि यो मृगनदीसिछेले स एव

जानाति तश्चपलवीचिविवर्तनानि ॥

प्रतिबिम्बम् । अविम्बात् विनेव वाह्यं बिम्बमिति सुकुरापे-क्षया विशेषः ॥ ४४ ॥ कस्तर्हि मुकुरदृष्टान्ते विवक्षितींऽशस्त-माह-- मुकुरे इति ॥ ४५ ॥ विचारेण शास्त्रीयविचारेण । सकारणकं सप्रमाणकं तदेव सत् परमार्थसत्यम् । शेषमितरन्तु भामात्रं प्रतिभामात्रं कालत्रयेऽप्यभूतम् ॥ ४६ ॥ असचेत्कथं व्यवहारार्थिकयाक्षमं जगत्तत्राह-भवेदिति । सत्यां खाधि-कसत्तायां चरमधातुविसर्जनलक्षणामधीकियाम् ॥ ४७ ॥ अह-मादिविश्वश्रीर्हि भासमाना सिद्धा नान्यथा । तत्र यसद्भानं सा चिद्धा आत्मखरूपचित्प्रकाश एव नान्या। तद्धानव्या-वर्तकं दश्यरूपं तु भानात् पृथक्कारे शुन्यलाद्भानात्मकत्वे तद्या-वर्तकलायोगाचिदम्बरमेव । इति विमर्शेन किंच्जिगद्वपं प्रसि-व्यतीलर्थः ॥ ४८ ॥ हे अङ्ग, उदारबुद्धेस्तव दर्शितप्रकारा या विज्ञानदृष्टिस्तद्वरातिश्वनमात्रभूतस्य देहापगमेन मृत्वा पुनर्देहा-न्तरोत्परया भवनं चेदस्ति । मोक्षो नास्तीति यावत् । तथापि किं नष्टं का क्षतिः । निर्दुःखनिरतिशयानन्दि चिदात्मनो नाशो-त्पत्तिभ्यामसर्घात् । अथ चेन्मृत्वा पुनर्भवनं नास्ति । विमो-क्षोऽस्ति चेदिति यावत् । तथापि सर्वप्रपद्यशान्तिरेव । तत्तस्मादिह दुःखं किंचिदपि पक्षद्वयेऽपि न प्रसज्जत इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ मूर्कस्य तर्हि कथं मरणजन्मनोर्द्धःखप्रसक्तिरिति चेत्तां स एव जानातीत्याह्—मूर्श्वस्थेति । यो मृगनवीसिछिछे मरस्योऽहमिति मरस्यभावमनुभवति स एव तस्याध्वपळवीचिवि-वर्तनानि जानाति नत् मृगनदीभ्रान्तिश्चन्यः

अन्तर्बहिस्त्वमहमित्यपि चैवमादि सर्वात्मकं तपति चिन्नम एकमेव।

शास्त्राशिस्त्राविटपपत्रफलैकदेहः संकल्पमृक्ष इव बोधसमात्रसारः॥ ५१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० परमार्थनिरूपणं नाम नवनवित्तमः सर्गः ॥ ९९ ॥

श्चात्रतमः सर्गः १००

श्रीराम उवाच ।
युक्तिः स्यात्कीहशी ब्रह्मन्संसारे दुःखशान्तये ।
तेषां येषामयं पक्षः श्रूयतामुच्यतां ततः ॥ १
यावज्रीवं सुखं जीवेश्वास्ति मृत्युरगोचरः ।
भस्तीभृतस्य शान्तस्य पुनरागमनं कुतः ॥ २
विश्वयमादत्ते संविदन्तरखण्डितम् ।
तत्त्रथैवानुभवति प्रत्यक्षमिति सर्वगम् ॥ ३
यथा खं सर्वगं शान्तं तथा चिद्योम सर्वगम् ।
तदेवैक्यमथ द्वैतमन्यार्थस्यात्यसंभवात् ॥ ४
सर्गादौ तहतेऽन्योऽरथीं महाप्रस्त्यक्षपिण ।

॥ ५०॥ तत्त्वविद्वृष्ट्या लन्तर्वेहिध तिश्वन्नभः त्वं अहमपि चैवमादि जगन्नेति सर्वात्मकं भूला एकमेव तपति स्फुरति । यथा बोधकमात्रसार आत्मैव शाखा तिन्छिखा तिद्विटपास्तत्पत्र-फलानि चेत्यायेकदेहः संकल्पवृक्षः सन् मनोराज्ये स्फुरति तद्वदित्यर्थः ॥ ५१ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्य-प्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे नवनवतितमः सर्गः॥ ९९॥

> देहात्मवाद्यादिमते निविष्टानां मतेरपि । यथातरवेऽवसारः स्यात्तथा युक्तिरिहोच्यते ॥ १ ॥

प्राक्सर्गवाद्यक्तिसखतावर्णनकमे 'खमावसिद्धमेवेदं युक्त-मित्येव तद्विदाम्' इति यचार्वाकोक्तीनां युक्तत्वं वर्णितं तत्तेषां देहात्मवादविषये सर्वास्तिकपक्षप्रतिपक्षभूते कथं युक्तम्, तेषां कथं वा पुरुषार्थसिद्धिः स्यादिखेतजिज्ञासमानो रामः प्रच्छति - युक्तिरिति । अयं वश्यमाणी मत्प्रश्री मनी दत्त्वा श्र्यतां ततं उत्तरमुच्यताम् ॥ १ ॥ अगोचरः अप्रलक्षः । न तावजीवतः खस्य मृत्युः प्रत्यक्षः । परेषां मृत्युदर्शनाद्धि स्वस्यापि मृत्युस्तद्वद्वसीयते । नचानुमानं चार्वोकाणां प्रमा-णम् । प्रत्यक्षातिरिक्तप्रमाणानस्युपगमादिति भावः । अस्तु वा देहनाश एव मृत्युस्तथापि पुनर्जन्मानभ्युपगमात्स एव सर्वेदु:खनिवृत्तिलक्षणो मोक्ष एवेति स्पृहणीय एव तेषामित्या-शयेनाह-भसीभृतस्येति । शान्तस्य सर्वदुःखोपशमं प्राप्तस्य । अयं येषां पक्षस्तेपामिति पूर्वत्रान्वयः ॥ २ ॥ संविदः खनि-श्वयानुसारिविवर्तानुभवनियम एव देहात्मभावेऽप्युपपत्तिस्त-न्मोक्षेऽपीत्याशयेन वसिष्ठस्तं समर्थयितुमुपक्रमते—यंयमिति । इति इदं सर्वगं सर्वजनीनं प्रत्यक्षं खातुभवसिद्धम् ॥ ३॥ तत्तद्वादिपामरजनकश्पितदेशादिद्वैतं वेदान्तविद्वदनुभवादिसिद्ध-मैक्यं च तमिद्योभेव । तद्यतिरिक्तस्यात्यन्तमसंभवादित्यर्थः

अकारणत्वान्नास्त्येष ब्रह्मैवेद्मतस्ततम् ॥ ५ समस्तवेदशास्त्रार्थं ये महाप्रलयादि च । नेच्छिति ते महामृद्धा निःशस्त्रा नो मृता इव ॥ ६ सर्वशास्त्राविरुद्धेन सर्वं ब्रह्मेदमित्यलम् । स्थितं सानुभवं योकृ येषां तैनं कथाकमः ॥ ७ नित्या निरन्तरोदेति यादशी संविदाशये । भ्यते तन्मयेनैय पुंसा देहोऽस्तु माथवा ॥ ८ योधाश्चेत्संविदो जातः स दुःखी पुरुषो भवेत् । विरुद्धं वेदनं यावत्तावज्जीवोऽङ्ग तन्मयः ॥ ९ जगश्चिद्योमकचनमात्रमेवेति भाविते । तत्कथं वेदनं व्योद्धा बोधः कस्य कुतो भवेत् ॥ १०

॥ ४ ॥ अन्यस्यासंभवे 'सदेव सोम्येदमप्र आसीत्' इत्यादिश्र-व्यनुगृहीतां युक्तिमाह-सर्गादाविति । सर्गस्य आदौ पूर्वाव-स्थायामद्वितीयब्रह्मरूपे महाप्रलये । तर्हि ब्रह्मणः कारणं ततोऽन्यत्पूर्वमस्त तत्राह-अकारणलादिति ॥ ५ ॥ नन् ब्रह्मरूपो महाप्रलय एव नाभ्युपगम्यते बीजाङ्करादिपरंपरानादि-त्वेन पृथिव्यादिभूतानां प्रवाहानादिलान्न कदाचिदनीदशं जग-दिति कर्मजडानां पूर्वमीमांसकादीनां पक्षं दृषयति --सम-स्तेति । 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'तमेतं वेदानुवचनेन बा-ह्मणा विविदिषन्ति' इत्यादिश्रुतेः समस्तवेदशास्त्रार्थं आदिपदा-जीवानां ब्रह्मप्राप्तिरुक्षणं मोक्षं तत्साधनानि च ये नेच्छन्ति ते मोक्षशास्त्रवैयर्थ्यं तुल्यन्यायेन कर्मशास्त्रस्याप्यप्रामाण्यावार-णान्निःशास्त्रा नोऽस्माकं तत्त्वविदां दशा मृता इव न तस्वोप-देशकथायोग्या इलार्थः ॥ ६॥ येषां योक्तदेहेन्द्रियादीनां सर्वव्यवहारेषु नियोक्त प्रलगातमचैतन्यं मनो वा सर्वशास्त्रांक रुद्धेन सर्वेखिलवदं ब्रह्मेति दर्शनेन सानुभवमलं पर्याप्तं पूर्ण-कामं स्थितम् । कृतकृत्येस्तैः सहापि नोपदेशकथाकम इति जिज्ञासुन्त्रत्येवोपदेशकथात्रस्ताव इत्यर्थः ॥ ७ ॥ प्रासन्निकं समाप्य प्रख्यतमतुसंधत्ते-नित्येति । तथाच चार्वाकामिमते देहारमभावेऽपि तादशदढनिश्वयात्मकसंविदुद्य एवान्वयव्यति-रेकाभ्यां हेतुर्न देही व्यभिचारादिति भावः ॥ ८ ॥ अतएवान नन्दैकरसस्याप्यात्मनो विरुद्धदुःखिलवेदनदार्व्येन दुःसमयता सर्वानुभवसिद्धेत्याह-वोधादिति । अङ्गेति संबोधने ॥ ९ ॥ एवं दुःखमयस्यापि जगतो निरतिशयानन्दिषधोमकचनमा-त्रमेवेति भावनाद्वास्तवतद्भावदर्शने श्रान्तिकल्पितदुःसरूपता तह्रहणब्राह्कःदयश्च शाम्यन्तीति देहात्मवादिनामपि तथाभा-वने निस्तारसिद्धिरिखाशयेनाह--जगदिति । तत् प्राक्प्र-

न कानिचित्रधावन्ति एकनिश्चयसंविदाम्। पुंसां सुखानि दुःखानि रजांसि नभसामिव ॥ ११ संवित्सत्यास्त्वसत्या वा निश्चयस्तावदीदृशः। आबालमेतत्संसिद्धं केनापह्नयते कथम्॥ १२ न देहः पुरुषो वापि जीवोऽन्य उपलभ्यते । संवित्सवीमदं सा तु यथा वेत्ति तथा जगत् १३ सा सत्याप्यथवासत्या तया देहोऽनुभूयते । स्वातन्त्रयेण यथा स्वप्ने पाताले खे जले दिवि॥१४ संवित्सत्यास्त्वसत्या या तायन्मात्रः स्मृतः पुमान्। स यथानिश्चयो नृनं तत्सत्यमिति निश्चयः॥ प्रामाण्यं सर्वशास्त्राणामेतेनैव प्रसिद्ध्यति । सर्वसिद्धान्तसिद्धान्त एप एवेति मे मतिः॥ १६ तस्माद्योधतायास्ते यथा संवित्तथैव सा । भवत्यकलुषाकारा तथैव फलभागिनी ॥ १७ देशकालकियाद्रव्यवेदशास्त्रीपणाभ्रमेः। अबोधता तुया संवित्कदाचित्सा न नदयति १८

सिद्धं दु:खादिवेदनं कथं व्योम्रा कूटस्थाद्वयचिदाकाशेन दु:खा-देबींधः कस्य भवेत कृतो वा निमित्तादित्वर्थः ॥ १०॥ उक्तेर्य 'तत्र को मोहः कः शोक एकलमनुपरयतः' इति श्रुतिमर्थत् उदाहरति—न कानिचिदिति।प्रधावन्ति प्राप्नुवन्ति । क्रिम्पन्तीति यावत् ॥ १९ ॥ स्वस्वदृढनिश्वयानुसार्यर्थानुभवे संविदः प्रामाण्यं चिलवृत्तेः सत्यलं वा नोपयुज्यते देहात्मभा-बाचनुभवे आद्याभावाद्रश्चसाक्षात्कारवृत्ती द्वितीयाभावादित्या-शयेनाह-संविदिति । संवेदनं संवित् सत्या प्रमा । संवेदाते यया सा संवित् सत्या अवाधिता वेत्युभयनियमाभावोक्तिः। **ईटश एतारशसदसद**र्थानुभवहेतुर्भवत्येवेत्यर्थः। कथमप**ड्**यते । नहानुभवविरद्धमवलम्ब्यानुभवोऽपहोतुं शक्य इत्यर्थः ॥१२॥ अत्रुव सर्ववायभिश्रेततत्त्रद्वेषकल्पनासमर्था संविदेवात्मेति सर्वे वादिनो बोधयिखा कृतार्थीकर्तुं शक्या इत्याशयेनाइ—न देह इति । देहथार्वाकाभिमतः पुरुषः सांख्याभिमतो जीवो मीमांसकाद्यभिमतो वापि भोक्ता अन्यः संवित्पृथक्तो नो-पछभ्यते । अतः सर्विमिदं वादिनां कल्पनापदं देहादिसंवि-देव ॥ १३ ॥ स्वातस्त्रयेण स्वकल्पनामात्रेण न पृथिव्यादिकारण-सापेक्षतयेखर्थः ॥ १४ ॥ पुमान् आत्मा । तत् सत्यं तदर्थ-कियासमर्थम् ॥ १५ ॥ संविद एव सर्ववाद्यभिमतात्मादि-भावेनावस्थाने तस्याः परमार्थसत्यलात्तःकल्पितार्थानां तत्तद-भिमतार्थिकयासमर्थलाच सर्वशास्त्रप्रामाण्यं प्रागुक्तं प्रतिष्ठित-मिलाइ--प्रामाण्यमिति । तथाचायं संविदद्वेतात्मवादसि-द्धान्तः सर्वेषादिनामुपजीव्यलात्पुरुषार्थहेतुलाच सर्वसिद्धान्त-शिरोमणिः सिद्धान्त इलाह—सर्वेति ॥ १६ ॥ तर्हि कि संविदेव तलद्वाद्यभिमतदेहाद्याकारेण तलिश्वयानुरोधेन परि-णमते नेत्याह-तसादिति । या संविदि अबोधता अविदा आस्ते सेव यथा तत्तद्वादिनां संवित्तयेव परिणामेन प्रवृत्त्यादि- आविभेवति सा भूयः श्रीणाशङ्का श्रणेन चेत्।
तत्केन संविदो दुःखं कदा नामोपशाम्यति ॥ १९
संविदेव नृणां जीवः स यथा दृढभायनः।
तथा सुखी वा दुःखी वा भवेदित्येष निश्चयः २०
संविद्यद्क्ति तज्ज्ञानां शर्णं भवमेदने।
नास्ति चेत्तचिछलामूकमान्ध्यमेयावशिष्यते ॥ २१
यत्त्येव च संवित्या वेदनेनैव लभ्यते।
अयं स्वभावश्वस्यान्तर्जाङ्यं पुंसेव निद्रया॥ २२

श्रीराम उवाच।

दिश्वधस्ताच नान्तोऽस्या भावी नापि जगत्क्षयः। अस्तीति भावितं येन संत्यकाभाववुद्धिना॥ २३ विज्ञानघनमेवेदमिति नूनमपश्यता। पश्यता च यथा दृष्टं सर्वेक्षयमपश्यता॥ २४ तस्य स्यात्कीदृशी ब्रह्मन्युक्तिराधिविनाशने। इति मे संशयं छिन्धि भूयो बोधामिवृद्धये॥ २५

काले भवति । सैव तत्त्वबोधात्मना परिणामे अकलुषशुद्धचि-दाकारा तथैव मोक्षफलभागिनीत्यर्थः ॥ १७ ॥ अतएव पु-ण्यदेशकालादी स्नानदानादिकियाभिः रसायनमन्त्रीषधादिद्रव्यैः कर्मशास्त्रबोधितैः खर्गपद्मपत्राधेषणाश्रमेश्व सा अबोधता तत्प्र-युक्ता या विश्लेपसंवित्सा च कदाचिदपि न विनश्यति ॥१८॥ बोधे बाधिताया अविद्यायाः पुनराविर्भावस्तु न शक्को बीजा-भावादनिर्मोक्षप्रसङ्गाचेत्याह-अविभेवतीति । आत्यन्तिक-बाधेन क्षीणा न पुनः प्रसत्तयाशङ्कापि । सा अविद्या भूयः क्षणादाविभवति चेत्तत्तर्हि संविदो जीवस्य दुःखं कदा केन बा नामोपशाम्यति--न कदाचित्र केनचिदपीलार्थः ॥ १९ ॥ ॥ २०॥ प्रखगातमरूपसंविदेव तत्त्वतो ज्ञाता खकार्य बन्धं हरतीति सैव मुमुक्षूणां शरणं तदभावे तु जगदान्ध्यमेव स्था-ह्रे मोक्षं प्रत्याशेत्याह—संविदिति । अनशिष्यते परिशेषात्प्र-सज्जते ॥ २१ ॥ कुत आन्ध्यमेव।विधिष्यते तत्राह-यदिति । यद्यसादेतोः खभावज्ञस्या खप्रकाशया तथैव प्रखगात्मसं-वित्या पुंसा निदया खजाड्यमिव आन्ध्यकल्पेन अवेदनेनैवायं प्रपन्नो लभ्यते तत्र संवित्यपलापे असाक्षिकस्यान्धस्यैव परि-शेषादित्यर्थः ॥ २२ ॥ न कदात्रिदनीदशं जगदित्यभ्युपगम्य ये महाप्रख्यादि नेच्छन्ति ते निःशास्त्रा मृता इवेति ये लया निन्दितास्तन्मतानुसारिद्दनिश्वयवतां तत्त्वज्ञानावतारादी यु-क्तिरस्ति न वेति संदिहानो रामः पृच्छति-दिन्विति । प्राच्याद्यूर्ध्वान्तनवदिशु दिशि च अन्त एव नास्ति । एवं जगतः क्षयो नाशोऽपि नास्तीति येन संखक्तप्रागभावायभावत्रयबुद्धिना पुंसा भावि-तम् ॥ २३ ॥ पुनः कीदशेन तेन पुंसा । इदं सर्भ विज्ञानघनमे-विति परमार्थतस्वमपश्यतेति पूर्वेणान्वयः । यथादृष्टं जगदेव

वसिष्ठ उघाच। अत्रैकं ताबदुचितं पूर्वमेव तथोत्तरम्। द्वितीयमुत्तरं न्याय्यं वस्यमाणमिवं शृणु ॥ 26 ईरमावस्त्वया प्रोक्तो यः पुमान्पुरुषोत्तम । स तावचेतनामात्रं भवतीत्यनुभूयते ॥ २७ स चाकारविनाशेन युज्यते नात्र संशयः। अधाविनाशो देहश्चेसदुःखस्यात्र कः क्रमः॥ 26 भवेद्धागविभागातमविनाशस्त्वविचारितः। अवश्यं तस्य भवति किलेति ननु निध्यः॥ २९ मृतः स संविदात्मत्वाद्भयो नो वेत्ति संस्तिम्। शानधौता न या संविश्व सा तिष्ठत्यसंस्तिः अथवा नास्ति संवित्तिरिति निश्चयवान्यदि । ततस्ताहुग्वेदनतो भवत्येष हुपजाडः॥ 38

सत्यमिति पर्यता ॥ २४ ॥ २५ ॥ पूर्व प्रागुक्तं निःशासा नो मृता इब तैर्न कथाकम इत्येवोत्तरम् । अथवा पूर्वपूर्ववादिनं प्रति यदुर्फ 'यं यं निश्चयमादने संविदन्तरखण्डितम्' इत्याद्य-त्तरं तदेवोचितम् । तथाच चैतन्यानतुविद्धतादशनिश्रयाप्रसिद्धेः सोऽपि मन्द्रनैतन्यं व्युत्पाद्य पूर्वनिश्चयस्य तद्विवर्तताब्युत्पादनेन विद्खण्डैकरस्यानुभवे अवतारियतुं शक्य इति भावः ॥२६॥ है पुरुषोत्तम, ईटग्भावस्तदुक्तनिश्चयवान् यः पुमांस्लया प्रोक्तः स कि देहातिरिक्तचेतनात्मदर्शी उत नित्यातिवाहिकदेहात्म-दशीं उत स्थलदेहात्मदशीं उत शुद्धसंविदात्मदशीं उताज्ञाना-वृतसंविदात्मदर्शी उत संविदपळापी। तत्राद्यकल्पे तावदाह---स ताबदिति । स यदि चेतनाः रूपादिसंविदो मीयन्ते यत्र तबेतनामात्रं विदाभासरूपं भवतीत्यभ्यपगच्छति तह्येनुभूयत एव कमात्तेनात्मतत्त्वमित्यर्थः ॥ २७ ॥ तत्कृतस्तत्राह—स-चेति । सर्थेयं चः पठितः । यस्मात्स देहादाकारोपाधिनाशेन परमात्मना सह युज्यते एकीभवति । द्वितीये लाह-अधिति । विनाशिन्यभमये देहे आत्मताबुद्धी सर्वतो विनाशाशह्या दु:सम् । अविनाशिन्यात्मतानिश्चये तु न देहाकारलद्शन-मात्रापराधेन दुःखप्रसक्तिरिति कमात्सोऽपि बोध्यमानस्तत्त्वं प्रतिपत्स्यत इति भावः । तत्तर्हि । कमः प्रसङ्गः ॥ २८ ॥ त्तीये कल्पे ताबदाइ--भवेदिति । भागविभागोऽवयवमेद-स्वद्वदितः स्थलात्मा तस्यारमलदर्शिना तद्विनाशः सम्रपि न विचारितः । अवश्यं च सावयवस्य विनाशो भवति किलेति प्रतिबोधने । तस्यापि तदतिरिक्तात्मनिश्चयः सिज्यतीसर्थः ॥ २९ ॥ चतुर्थकस्पेप्याह--मृत इति । स द्युद्धसंविदास्म-दशीं जीवन्युक्तः सर्वदा सर्वत्र लीलया जगत्पस्यत्रिप मृतो बिदेहतामात्रेण कैवरुयं प्राप्तः सन्भूयः संस्ति नो वेशि । न पत्रयतीत्वर्यः । पश्चमकल्पेऽप्याह—कानेति । या संवित्तरवद्या-नेत न धीता सा संस्रतिबीजभावाविनाशादसंस्रतिर्न तिष्ठति । अवश्यं संसरत्येवेस्वर्थः। तथाच तस्या अपि कचिनन्मनि ज्ञानी- यथावेदनमर्थेषु चित्वे देहक्षयात्क्षते । मृतिरेव परं श्रेयो दृष्टं नानुभवादिति॥ ३२ असंभवच्छुद्धविदो निःशरीरा भवन्ति ये। जडभावा जडीभूय दुर्भेदान्ध्या भवन्ति ते॥ ३३ ये चापि स्वप्नपुरवत्सर्वं पश्यन्ति चिन्मयाः। तेषामिव्भिवारोपं जगजालं प्रवर्तते॥ **38** स्यैर्यास्थेर्येण भूतानां किमपूर्वमतौ भवेत्। भूतस्थेर्ये तथास्थेर्ये सुखं चैवासुखं समम्॥ 34 स्थिरमस्त्वस्थिरं वापि महादि महतामपि। चिद्धामात्रमिदं भाति याबदशानमाततम् ॥ 38 संविदा संविदोऽसत्तामिहाच्याप्य विनष्टया। निर्णीयाङ्गीकृतं यैवी जाड्यं तद्वालकैरसम्॥ ا येषां विद्धाः शरीराणि ते चन्द्याः पुरुषोत्तमाः। शरीरेभ्यो विदो येषां तैरलं पुरुषाधमैः॥ 34

दयात्रिस्तार इति भावः ॥ ३० ॥ षष्ठकल्पेऽप्याह-अधवेति । हषदिव जडो विशेषज्ञानश्रूत्यो भवत्येव चिरमित्यर्थः ॥ ३१ ॥ तेन तत्र किं कथं वा श्रेयो दृष्टं तत्राह्—यथावेदनमिति । आमरणं दढीकृततादग्वेदनानुसारेणैव देहपातादनन्तरं विश्वे विशेषिकाने क्षते नष्टे सति गाढसुष्तिकल्पा सा सृतिरेव नैयायिकमोक्षकल्पा निर्दुःखलात्परं श्रेय इति तेन दृष्टं न**त्** निरतिशयानन्दानुभवाच्छ्रेयस्तेन मूर्खेण दष्टमित्यर्थः ॥ ३२ ॥ ये तु शून्यवादिनो नैरात्म्यद्ददिश्ययास्तेषां मृतानां का गतिस्ता-माइ--असंमवादिति । निःशरीरा मृताः । तथाच श्रुतिः 'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः । तांस्ते प्रेला-मिगच्छन्ति ये केचात्महनो जनाः' इति ॥ ३३ ॥ येऽपि विज्ञानवादिनः क्षणिकविज्ञानमयं खप्ततुल्यं जगदिति पर्यन्ति तेषामपि व्यवहारसिदिखल्येखाह—ये चापीति । विन्मवाः क्षणिकविकारिचिदारमभूताः ॥ ३४ ॥ ये जगतः स्थैर्थवादिनो ये च क्षणिकलवादिनस्तेपामुभयेषामपि मुखदुःस्रभोगान्तव्य-बहारसिद्धिः समेलाह-स्थैर्येति । अपूर्वमती जगधबहारवै-चित्र्यबुद्धौ किमन्तरं भवेत् । असुसं दुःखम् ॥ ३५॥ तस्य-विदां तु भूम्यादिभुतानां क्षणिकलाक्षणिकलयोनीप्रहः। अध्य-खस्याधिष्ठानब्रह्मभात्रसतत्त्वकरवेन शुक्तिरजतमुख्यविचारवत्त-द्विचारस्य व्यर्थलादिखाशयेनाह—स्थिरमिति । मह्मादीनां महतां भूतानामपि ॥ ३६ ॥ संविद्द्धा न क्षणिकत्वं तमा खासत्तारुक्षणस्य खनाशस्य जाब्यस्य च व्यामुमशक्यतया संविद्याप्तिमन्तरेण तदुभयसिज्ययोगाच तदुक्तिसंभवाभावादि-त्याह्—संविदेति । संविदः कालतोऽसत्ता क्षणिकत्वं देशतः असत्ता तु जाच्यं द्विविधामपि तां अव्याप्य अस्पृष्टा विनष्टया क्षणिकलाभिमतसंविदा जाच्यम् । क्षणिकलस्याप्यपञ्चलामे-तत्। यैनिणीयात्रीकृतं तैस्तयाविधैर्वासकैर्मृखैरलं संभाषणेने-त्यर्थः ॥ ३० ॥ अतएव हि कृटस्थचितो विवर्तभावेन तथा-प्रदेहान्तज्ञहप्रपञ्चीत्पत्तिवादिनो धन्याः । वाचारम्भणन्यायेन

चिद्रपो जीवबीजीय आकाशकृमिजालवत् । अर्घे तिर्यगधो याति पूर्यमाण इव स्वयम्॥ 39 चेखते येन कर्ताम्यो वीजौधेन स तत्परः। तथैवानुभवत्यन्तः स्वयमेव विवन्गति॥ 80 यद्यथा चेत्यते येन तज्जीवेनाशु तेन तत्। चिद्रपेणाप्यते सिद्धमेतदाबालमक्षतम् ॥ ४१ यथा धूमस्य नमसि यधाम्मोधौ महाम्मसः। आवर्तवृत्तयश्चित्रास्तथा चिद्योम्नि संस्तेः॥ ४२ पुरी भवति चिद्योम यथा स्वेम नरं प्रति। तथादिसर्गात्प्रभृति तदेवेदं जगत्स्थतम्॥ 83 सहकारिनिमित्तानि यथा स्वप्ने न सन्ति वै। पृथिव्यादीनि भूतानि तथैवादौ जगित्स्यतेः॥ अङ्गानां स्वप्ननगरे वसुधा विविधाः कृताः। थास्ता एव जगत्स्वप्तनगरे पुष्टतां गताः॥ છષ

चिन्मात्राकाशमेवेमाः प्रजा वैतेकावर्जिताः ।
के वात्र रञ्जनान्या से यद्वा भाति समेव तत् ४६
चिद्यन्द्रिका चतुर्विकं शीतलाहादकारिणी ।
तनोति चेतनालोकं तस्येदं कचनं जगत् ॥ ४७
अधिवाधन्तयोव्योंकि चिन्मये सर्गदर्शनम् ।
चिदुन्मेपनिमेपाभ्यां खात्मोदेत्यस्तमेति च ॥ ४८
यद्यथा वेत्ति यस्तत्सत्त्रथैवानुभवत्यलम् ।
यसात्समस्तं चिन्मात्रं किनिवात्र न विद्यते ॥ ४९
शरदाकाशविशदं संविदः सौम्यमानसाः ।
असन्त एव तिष्ठन्ति सन्तोऽधिगततत्पदाः ॥ ५०

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषाः
प्रवाहसंप्राप्तनिजार्थभाजः।
तिष्ठन्ति कार्यव्यवहारदृष्टी
निरामया यन्त्रमया इवेते॥
भ

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्त्मीकीये मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उ० नास्तिक्यनिराकरणं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः १०१

यसिष्ठ उवाच । चिन्मात्रमेव पुरुषस्तदेवेत्थमवस्थितम् ।

विकारानृतलदर्शने चित्परिशेषलाभात् । अचितो देहादेश्रिद्र-त्पत्तिवादिनश्चार्योककणभक्षादयो मूर्खाः चिद्विनाशेन जडपरिशे-षस्यापुरुषार्थत्वात्साधकाभावाचेत्याशयेनाह्--येषामिति। विद्य इति बहुखमविवक्षितम् ॥ ३८॥ जीवसमष्टिरूपहिरण्यगर्भे चिदाभासबहुलाद्वा बहुवचननिर्देशः । तथाच समध्यात्मा हिरण्यगर्भ एक एव नानाजीवात्मना कर्ध्वाधोलोकगमनादिना संसरतीत कल्पनापि साध्वीत्याह—चिद्रूपे इति । आकाशकु-मयो मशकादयस्तजालवत् । यथा मणिकमहिकादौ पूर्यमाणो जलीषस्तिर्थगृर्ध्वमधो याति तद्वत् ॥ ३९ ॥ सा नानाकर्तृजी-वसमष्टितापि हिरण्यगर्भेचितः स्वकल्पनामिनिवेशवशादेवे-लाह—चेत्यत इति । बीजोघेनेतीत्थंभावे तृतीया । येन हिर-व्यगर्भिदाभासेन बीजीयभावेन समष्टितां खस्योपास्यतद्वा-सनानुसारात्कल्पादी अन्यः बहुधा मिन्नो व्यष्टिरूपः कर्ता खान्तथेखते स तत्परस्तदासक्तः संस्तयैव नानाकर्तृरूपं खान्तः स्वयमेबानुभवति तथैव विवल्गति संसरति चेत्यर्थः ॥ ४० ॥ अनेन प्रकारेणापि प्राग्यदस्मामिः प्रतिज्ञातं तदेव सिद्धमि-साह—आबार्ल आवृद्धं च । अक्षतमन्याहतसिद्धम् ॥ ४९ ॥ अतएव हि तजीवचितां वासनावैचित्र्यानुरूपतत्तत्संस्तिचेत-**नवैचित्र्यात्संस्**तिवैचित्र्यमनन्तमित्याह—यथेति ॥ ४२ ॥ त-देव विद्योमैवेदं जगद्भूला स्थितम् ॥४३॥ सहकारिकारणानि विनेष खर्गादी प्रतिभामात्रेण सिद्धलादपि खप्रसाम्यमेवे-त्याह-सहकारीति । भादी सर्गादी ॥ ४४ ॥ अञ्चानां नग-

चिन्मात्रव्यतिरेकेण किमन्यदुपपद्यते॥

विकासेन पेलवाः कृतास्ता एव सम्यग्विकासेन घनीभावात्यु-ष्टतां गताः ॥ ४५ ॥ यत् उ आभातीति च्छेदः ॥ ४६ ॥ त्रिविधतापोपशमनाच्छीतला चेतना अर्थप्रया तल्लक्षणमालो-कम् । तस्य चेतनालोकस्यार्थरूपेण कचनम् ॥ ४० ॥ आदौ सर्गारप्रागनते प्रलये च व्योप्ति सर्ग**श्र्**न्यस्वभावे **चिन्मये** व्योम्नि अद्य वर्तमानक्षण एव सर्गदर्शने प्रसिद्धं, तच खात्म-ब्रह्में वस्वितः परिच्छिन्नरूपेणोन्मेषादपरिच्छिन्नरूपेण निमे-षाच खयमेव खप्रवद्देलसामेति चेति निष्कर्ष इल्परः ॥४८॥ चिचेत्ससाबलेन सत्कृत्य जगत्पश्यति तदा न किचिदसदिति वक्तं शक्यमिलाह—यदिति । एतच्छ्रतिप्रसिदं तद्वस्तु यस्मा-देतोः यदायथा यथा वेति सर्गादौ तदवापि तथैवानुभवति । तस्मात्समस्तमपि चिन्मात्रं तत्र कि न विद्यते यदसत्स्यादि-खर्थः ॥ ४९ ॥ चिधातिरिक्तरूपेणासन्तः चिदातमना तु सन्तः ॥ ५० ॥ तेषां तादशीं स्थिति रुक्षणेनानुभावयति—निर्मा-नमोहा इति । यन्त्रमयाः पुरुषप्रतिमा इव । तत्पक्षे जलादि-प्रवाहवशात्संप्राप्तनिजचेष्टादार्थमाजः पर्**यतामन्येषां कार्यव्य**-वहारदृष्टी तिष्ठन्तीति योज्यम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीवासिष्ठम-हारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

देव विद्योमैवेदं जगद्भूला स्थितम् ॥४३॥ सहकारिकारणानि संविदेकारम्यमसं सदा सर्वत्र पश्यतः । विनेव खर्गादी प्रतिभामात्रेण सिद्धलाद्पि खप्रसाम्यमेवे- सर्ववादिनामपि चिन्मात्रमेव तत्त्वमित्यवगमे यथा अभय- रावयवभूतगृहाणां वसुधा उत्तरोत्तरभूमिकामेदाः । या अर्ध- प्रतिष्ठाप्राप्तिस्यथा वर्णयितुं पीठिकां रचयति—विन्मात्रमेवे-

तचायदातमाकाशं तन्मये द्रष्ट दश्यते । तावन्मात्रं जगदतो हेयोपादेयधीः कुतः॥ न विद्यते परो लोको बाईस्पत्यस्य यस्य तु । षिदोऽन्यत्तस्य किं सारं रागद्वेषावतः कुतः ॥ इष्टानिष्टदशो रागद्वेषदोषाः किमात्मकाः। संविध्योममये स्वप्ने जगदाख्येऽङ्ग कथ्यताम्॥ इदं हेयमुपादेयं बेति संवित्खमात्मनि । निर्मेले निर्मलं भाति केवात्र तदतहृशी॥ संविश्वरोऽमरो नागः संवित्स्थावरजंगमम्। भावाभावादयोऽस्याब्धेस्तरङ्गावर्तवृत्तयः॥ संविदाकाशमेवाहं भवानपि जना अपि। म्रियामहे नो कदाचित्संवित्किल कदा मृता॥ ७ संविदो नास्ति संवेद्यं स्वयं संवेद्यतामिता। चित्त्वादतो विशालाक्ष द्वितैकत्वे क वा स्थिते संविन्मात्राहते तसाद्ध्तं किमिव कथ्यताम्। कथ्यतां म्रियते तश्चेत्तद्येमे कृतो वयम्॥ घादिनः सौगताचा ये ये लोकायतिकादयः। संविदाकाशमृत्सुज्य यन्मयन्ते तदुच्यताम् ॥ १०

खादिना । इत्थमनेन नानावादिपरिकल्पितस्थायिक्षणिकादि-ह्रपेण जन्ममरणभयशोकादिरूपेण च ॥ १ ॥ तदेवीपपादयं-सारफलमाइ--तचेति । तचिन्मात्रं चावदातं निर्मलमाकाश-मेव । तन्मये तद्विवर्तभूते ॥ २ ॥ हेयोपादेयाभावेन राग-द्वेषप्रसिक्तिरिति विक्वानैकस्कन्धवादिनो बौद्धस्यापि संमतं किंतु क्षणिकविज्ञानमसारमित्येव तन्मतमुपेक्षितव्यमित्याह-न वि-धत इति । बाईस्पत्यस्य बृहस्पतिप्रणीतवुद्धशास्त्रानुसारिणो यस्य बादिनः क्षणिकविज्ञानात्परोऽन्यो लोक्यत इति लोको जगन्न विद्यते तस्य । अतो निर्विषयत्वादेव रागद्वेषी कृतः न प्रसम्बेते एव किंतु विदः अन्यत् किं सारं नित्यं पुरुषार्थरूपं यत्संभावनया विदः शाश्वतलं स नेच्छतीलर्थः । रजिप्रशा-णामसुराणां च विमोहनाय वृहस्यतिनापि बुद्धशास्त्रं प्रणीत-मिति मत्स्यपुराणादी प्रसिद्धम् ॥ ३ ॥ कृटस्थसंविद एव विवर्तक्षाः स्वप्नो जगदिस्यस्मित्सद्धान्ते त सुतरां न रागद्वेषप्र-सिकारित्याह—इष्टानिष्टेति ॥ ४ ॥ अस्त वा हेयोपादेयविक-ल्पाच्यासस्तथापि संविदाकारी न किथद्विरोष इत्यारायेनाह-इदमिति । तदतहशौ इष्टानिष्टादिदृष्टी ॥ ५॥ सर्वस्या-विनाशिसंविन्मात्रत्वे जन्ममरणादयोऽपि न संभाविथतं शक्या इत्याह-संविदिति द्वाभ्याम् ॥ ६॥७॥ सर्वस्य संवित्वे संवेद्यमन्यत्र परिशिष्यते । खस्याः खसंवेद्यताकल्पना त साम सास्कन्धारोहणकल्पनाकल्पेत्याह-संविद इति । खयमेव चेरसंबेद्यता इता प्राप्ता अतिश्वस्वादन्यत्संबेद्यतालक्ष-णिकयाकर्ममेदरूपं दिलं तद्यावृत्तमेकरवं वा क स्थिते ॥ ८ ॥

संविदाकारामेवैतत्केनचिद्रह्म कथ्यते । केनचित्र्रोच्यते ज्ञानं केनचिच्छ्रन्यमुच्यते ॥ ११ केनचिन्मदशत्त्यामं केनचित्पुरुषामिधम्। केनचिच चिदाकाशं शिव आत्मा च केनचित् १२ चिन्मात्रमेवमप्युक्तं याति न कचिद्न्यताम्। यसात्स्वयं तदेवैवमात्मानं वेसि नेतरत्॥ १३ चूर्णतां यान्तु मेऽङ्गानि सन्तु मेरूपमानि स। को क्षतिः का च वा वृद्धिश्चित्र्पयपुषो मम ॥ १४ मृताः पितामहाद्याश्चित्र मृता सा म्रियेत **चेत्** । तज्जनमनेव नाम स्यादसाकं मृतसंविदाम्॥ न जायते न म्रियते संविदाकाशमक्षयम्। भवेत्कथं कथय किं किलाकाशस्य संक्षयः॥ १६ जगद्रपैककचनमविनाशि चिद्म्बरम्। उद्यास्तमयोन्मुकं स्थितमात्मनि केवलम् ॥ १७ जगञ्जानं व्धद्वाहं चिन्नभः स्फटिकाचलः। अनादिमध्यपर्यन्तः स्वच्छ आत्मनि तिष्ठति ॥ १८ यथायथान्धकारेण प्रेक्ष्यमाणं प्रणक्यति । किमप्यक्राभ्यकामं तथेदं विश्वमातमनि॥ १९

भूतं नित्यं सद्वस्तु । कृतो वयं जीवाम इति शेषः ॥ ९ ॥ एवं सति संविदाकाश एव सर्ववादिनां खखाभिमतार्थाकारेण प्रयत इति फलितम् । तां विना गत्यन्तराभावादित्याशयेनाह-वादिन इति ॥ १० ॥ उक्तमर्थं ब्रह्मवादिनं पुरस्कृत्य प्रपञ्च-यति--संविदाकाशमिति द्वाभ्याम् । ज्ञानं विज्ञानम् ॥ ११ ॥ केनचिद्दहात्मवादिना । मदिरामदशक्त्याभं देहाकारपरिणतभू-तथर्मभूतम् । पुरुषाभिधं सांख्येन । चिदाकाशं योगिना । शिव ईश्वर आत्मा अणुर्जावश्वेति शैवेन ॥ १२ ॥ एवंबादि-मिर्नेह्धा विकल्पनेऽपि चितो न काचितक्षतिः । सस्याः सर्वविकल्पसाक्षिणीरवेन निर्विकल्पलादिलाह--विन्मात्रमिति ॥ १३ ॥ चिद्रपमेव वपुः खरूपं यस्य तथाविधस्य मम ॥१४॥ अस्माकं पितामहाद्या देहा मृतास्तेषां चित्तु न मृता । सापि म्रियेत चेन्मृतसंविदां तेषां पुनर्जन्मैव न स्यादिखर्थः। अ-साकमिति असाखपि तध्यायसाम्यप्रदर्शनपरतया वा योज्यम् ॥ १५ ॥ आकाशस्य सक्षयः कि भवेत्कथं वा भवेत्कथय ॥ १६ ॥ एवं संक्षयासंभवे जगद्रूपस्य कचनं प्रधारूपं तिब-देवाम्बरमविनाशि स्थितम् ॥ १७ ॥ विश्वमोलक्षणः स्फटि-काचलः खान्तः खयमेय जगद्भानं दधत् खतत्त्वसाक्षात्कार-बहिना तद्दाहं विधाय खच्छ आत्मनि तिष्ठति । यथा खच्छः स्फटिकाचलः खान्तः प्रतिबिम्बवनं प्राग्दधत्कदाचिरप्रतिबि-म्बवहिभावमिव प्राप्तेन खेनैव तदुनं दग्ध्वा खरूपमात्रे अब-तिष्ठते तद्वदित्याशयः ॥ १८ ॥ यथा यथा ज्ञानप्रावस्यं तथा-तथा साज्ञानस्य जगतो नारो दृष्टान्तमाह—ययेति । अन्ध-कारेण निशि संपादितं किमपि अभ्रचकाभं जगदावरणसुपछि प्रेक्समाणं यथायया कमान्निःशेषं प्रणश्यति तथा अञ्चानान्ध-

१ वम्मन्यन्त इति पाठधेरसमीचीनः.

यथाम्बुधिः स्वयं याति तोयाद्यावर्तकादिकम्। स्थितोऽदधत्तथैवेदं चिदाकाञ्चोऽङ्गमात्मनि ॥ २० चिन्मात्रमेघ पुरुषः खबत्स च न नश्यति । कदाचनापि तद्यर्थं यन्नश्यामीति शोकिता॥ २१ देहादेहान्तरप्राप्ती नव एव महोत्सवः। मरणात्मनि किं मुढा हर्पस्थाने विपीद्थ ॥ २२ मृतश्रेष भवेद्भयः सोऽत्राप्यपचयो महान्। भावाभावप्रहोत्सर्गज्वरः प्रशममागतः॥ 23 मरणं जीवितं तसाम्र दुःखं न सुखं यतः। नास्त्येवैतचिवाकाद्याः किलेत्थमभिज्ञम्भते ॥ રપ્ર मृतस्य देहलाभश्चेत्रव एव तदुरसवः। मृतिर्नाशो हि देहस्य सा मृतिः परमं सुखम् २५ मृतिरत्यन्तनाशश्चेत्तद्भवामयसंक्षयः। भूयः शरीरलाभश्चेत्रव एव तदुत्सवः ॥ २६ कुकर्मभ्योऽथ भीतिश्चेत्सा समेह परत्र च। तानि माकार्ष भोस्तसाल्लोकद्वितयसिद्धये॥ २७

मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति भाषसे। भविष्यामि भविष्यामि भविष्यामीति नेक्षसे ॥ २८ क नाम जन्ममरणे क भवाभवभूमयः। संविदात्मकमेवेदं व्योम व्योम्नि विवर्तते ॥ २९ संविदाकाशमात्रात्मा पिव भुंश्वास्व निर्ममः। आकाशकोशकान्तस्य कुत इच्छोदयस्तव॥ ३० स्वप्रवाहबलोग्नुकदेशकालवशादितान्। भवान्भुङ्केऽभयो भव्यः पावनान्पावनादपि॥ 38 मध्यमध्यगतान्दोषान्देशकालवशोदितान् । अनादत्यान्तरेवास्ते सुप्तधीरवहेलयन् ॥ 32 न दुःखमेति मरणात्सुखमेति न जीवितात्। नाभिवाञ्छति न द्वेष्टि स तदास्ते विवासनः॥३३ मरणजीवितजन्मजरत्तृणा-न्यविमृशन्विगतेच्छमवासनः। विदितवेद्य इहाज इवोदितो वसति वीतभयस्त्वचलो यथा॥ 38

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे परमोपदेशो नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्यधिकदाततमः सर्गः १०२

श्रीराम उवाच । परिश्वाते परे वस्तुन्यनादिनिधनात्मनि । संपद्यते वद ब्रह्मन्त्रीदृशः पुरुषोत्तमः॥ वसिष्ठ उवाच । श्रुणु संपद्यते कीदग्झातश्चेयो नरोत्तमः।

कारेण कृतमिदं विश्वमपीलार्थः ॥ १९ ॥ यथा खयमेव तीय-प्रवाहस्तरक्वादिष्य।वर्तकफेनबुद्धदादिकमक्तं द्वधित्थतस्तथैव चि-दाकाशोऽप्यात्मनि जगदक्षं दथत्स्थित इत्यर्थः ॥ २० ॥ २१ ॥ जीर्णदेहत्यागेन नवतरदेहप्राप्तिनिमित्ते मरणे उपस्थिते हर्ष एवोचितो न शोक इत्याह—देहादिति ॥ २२ ॥ यदि पुन-र्जन्म नास्त्येवेति वो भ्रमस्तथापि विपादो नोचितः। मरणा-देव सर्वानर्थप्राप्तिनिवारणादिलाह-मृत इति । उपचयः पुरु-षार्थीत्कर्षः ॥ २३ ॥ इत्थं जन्ममरणयोः सतोरपि यत्र न दुःखप्रसक्तिस्तत्रात्यन्तमसतोस्तयोद्दे तत्प्रसक्तिरित्याशयेनीप-संहरति—मरणमिति ॥ २४ ॥ मृतस्य देहलाभोऽस्ति वा नवेति संदेहादेव मरणाद्भयमिति मन्वानं प्रति उक्तमेवार्थ भक्रयन्तरेणाह्—मृतस्येति । हि यस्मान्मृतिर्जरारोगादिप्रस्तस्य कारागृहकल्पस्य पूर्वदेहस्य नाशः ॥ २५ ॥ अतएव कोट्यन्त-रेऽपि सा तथैवेलाइ---मृतिरिति ॥ २६ ॥ मरणोत्तरं कुक-र्मिणां नरकादिश्रवणाद्भयमिति चेजीवतामपि तेषां राजदण्डा-दिवशादत्युत्कटानामिहैव फलदर्शनाच भयं तुल्यमिति कु-कर्माण्येव मा कुर्वित्याह--कुकर्मभ्य इति । माकार्ष माकार्षाः । सिपरछान्दसोऽकारादेशः ॥ २७ ॥ २८ ॥ परमार्थदशा तु जन्ममरणादिप्रसक्तिरेव नास्तीत्याह-क्रोति ॥ २९ ॥ ज्ञान-पूर्णानां निरिच्छन्यवहारात्र कदापि दुःखप्रसिक्तिरित्याह—संवि- यावज्जीवं कथं चेष किमाचारोऽवतिष्ठते ॥ २ उपला अपि मित्राणि बन्धवो वनपाद्याः । वनमध्ये स्थितस्यापि स्वजना मृगपोतकाः ॥ ३ आकीर्ण शून्यमेवास्य विपदश्चातिसंपदः । स्थितस्यापि महाराज्ये व्यसनान्येव सुत्सवाः ॥ ४

दाकाशेति॥३०॥स्वीयप्रवाह्बलेन प्रसक्तादुद्युक्तात्प्रयक्षादेशकाल्वशाख इतान्प्राप्तान्भावान्शब्दादिविषयां सेष्विष पावनादिष पावनान्भुक्के न मनोमालिन्यविक्षेपहेत् नित्यवंः । 'पावनान्पादपो यथा' इति पाठे स्पष्टम् ॥३१॥ मध्येमध्ये देशक्षोनदुर्भिक्षादिकालेऽप्यस्य न दुःखप्रसिक्तिस्तदा किचित्रेकान्तपर्वतगुहादौ समाधिस्रखानुभवेन तत्कालावहेलनसंभव।दिलाह—मध्येति । अन्तर्निर्विकल्पसमाधा स्प्तधाः ॥३२॥ ३२॥ सर्गोक्तमर्थं संक्षिप्योपसंहरति—मग्णेति । मरणादिलक्षणानि जरत्तृणानि अविमुशन्विदितवेषोऽप्यशोऽतिमृद इय वीतभयः सन्नवले स्वसृशन्विदितवेषोऽप्यशोऽतिमृद इय वीतभयः सन्नवले यथा तथा वसतील्ययः ॥३४॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामा-यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तराधे प्रकाधिकशततमः सर्गः॥ १०२॥

भूयोऽपि बुद्धतस्वस्य वर्ण्यते लक्षणावलिः । तदम्यासदृढत्वेन बोधदार्क्यं भवेदिति ॥ १ ॥

कीद्दशः किंलक्षणिविश्विष्टः संपद्यते ॥ १ ॥ कथंस्वभावः किमाचारश्वावतिष्ठते तच्छृणु ॥ २ ॥ तत्र स्वभावभूतान्यान्त-राणि लक्षणानि प्रथमं वक्तुमुपकमते—उपला अशित्यादिना । मित्रादिषूपलादिषु च संयोगिवयोगादिषु तुल्यान्तःस्थितिरि-लर्थः ॥ ३ ॥ आकीर्णं जनसंकुलं स्थानम् । विपदो धनव-स्थादिनाशाः । व्यसनानि वधवन्धनपारवस्यादिनुःसानि ।

योग० १६४

٤

4

असमाधिः समाधानं दुःखमेच महत्सुखम्। व्यवहारोऽपि सन्मौनं कर्माण्येवात्यकर्मता ॥ 4 जाप्रदेव सुबुप्तस्थो जीवष्ट्रव मृतोपमः। करोति सर्वमाचारं न करोति च किंचन ॥ रसिकोऽत्यन्सविरसो निर्घृणो बन्धुवत्सलः । निर्वयोऽत्यन्तकरुणो वितृष्णस्तृष्णयान्वितः॥ 9 सर्वामिनन्दिताचारः सर्वाचारबहिष्कृतः। वीतशोकभयायासः सशोक इव लक्ष्यते॥ तसान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते तु सः । परमृद्धेगमापन्नः संस्तृतौ रसिकोऽपि सन्॥ 9 नाभिनन्दति संप्राप्तं नाप्राप्तमभिषाञ्छति । आस्तेऽनुभूयमानेऽर्थे नच हर्षविषाद्योः॥ १० दुःखिते दुःखितकथः सुखिते सुखसंकथः। आस्ते सर्वास्वचस्थासु हृदयेनापराजितः॥ ११ कर्मणः सुरुतादन्यदर्स किंचित्र रोचते । स्वभाव एव महतां नतु यन्न विचेष्टितम्॥ १२ नालम्बते रसिकतां नच नीरसतां क्रचित्। नार्थेषु विचरत्यर्थी वीतरागः सरागवत्॥ १३ यथा शास्त्रव्यवहृतेः सुखदुःखेः क्रमागतैः।

सूत्सवा महोत्सवसमाः ॥ ४ ॥ व्यवहारो वाचिकः । कमीणि कायिकानि ॥ ५ ॥ सुप्रसद्दशे निर्विकल्पात्मनि तिष्ठतीति सुप्रमुखः । अशरीरात्मभावस्थितेर्मृतोपमः । अकर्त्रात्मप्रतिष्ठ-लान्न करोति ॥ ६ ॥ विषयसुखेष्वप्यात्मसुखमात्रतादशा रसिकः । तिषयदशा त्वत्यन्तविरसः । स्वीयताबुद्धभावानि-र्षृणः । स्वात्मताबुद्धा तु निहपाधित्रेम्णा बन्धुषु वत्सलः । दयाविषयद्वितीयादर्शनात्रिर्देयः । स्वदेहीपम्येन परशरीरेऽपि सुखदुःखदर्शनादत्यन्तकष्णः । एवं पूर्णलात्स्वयं वितृष्णः । अञ्जनोद्धारस्वभावात्तद्धिततृष्णयान्वितः ॥ ७ ॥ किमाचा-रोऽवतिष्ठते इति पृष्टानि बाह्यलक्षणान्याह—सर्वेति । अज्ञज-नदुःखदर्शनात्ताननुशोचन्सशोक इव लक्ष्यते ॥ ८ ॥ नोद्विजते न निमेति । उद्वेगं भयम् ॥ ९ ॥ अनुभूयमानेऽपि ह्र्षविषा-दहेतावर्थे तयोगीस्ते ॥ १० ॥ सुखदुःखाभ्यामपराजितः अनिभृतः । सहिष्णुरिति यावत् ॥ ११ ॥ नन्विति संबोधने । न विचेष्टितमशास्त्रीयचेष्टावर्जनं यत् तन्महतां स्वभाव एव। 'यक्रविचेष्टितम्' इति पाठे शास्त्रीययक्रमात्रप्रयुक्तं विचेष्टितम् ॥ १२ ॥ रसिकतामासिकम् । नीरसतां निष्प्रणयताम् । अ-र्थेषु धनेषु अर्था उपयाचको भूला न विचरति ॥ १३ ॥ सुखदु:खेरनागतोऽसंस्पृष्टोऽप्यायाति स्पृशतीव । ततो हर्ष विषादितां वा नायात्येव ॥ १४ ॥ सुस्रदुःखाभ्यां स्पृश्यत इवेति यदुकं तिल्होपदर्शनेन विश्वणोति --संप्रहृष्टाश्चेति । न हर्षे न विवादितामित्युक्तिमपि हेतूपदर्शनेन विवृणोति-न समावमिति । समावं निरतिशयानन्दप्रतिष्ठाप्रयुक्तं धेर्यम् । तयाच संप्रहर्षादिलिङ्गविसम्बनं तेषां नटविसम्बनद्वस्यं फलि-

अनागतोऽपि चायाति न हुर्षे न विषादिताम् १४ संप्रहृष्टाश्च लक्ष्यन्ते लक्ष्यन्ते दुःखितास्तथा । न स्वभावं त्यजन्त्यन्तः संसारारभटीनदाः ॥ आत्मीयेष्वर्थजातेषु मिथ्यात्मसु सुतादिषु। बुद्भदेष्विय तोयानां न स्नेहस्तस्वदर्शिनाम्॥ १६ अस्रेह एव सुधनस्रेहाद्रेहृद्यो यथा। बत्सलां दर्शयन्वृत्ति इस्तिष्ठति यथाक्रमम्॥ १७ घायुनिय प्रवाहस्थाः स्पृशन्ति विषयान्मुधा । देहसंसाविषानमुढा लीयन्ते विषयोदरे ॥ १८ बहिः सर्वेसमाचारमन्तः सर्वार्थशीतलम् । नित्यमन्तरनाविष्ट आविष्ट इव तिष्ठति ॥ १९ श्रीराम उवाच । स्वरूपमीद्दां तस्य को वेश्वि मुनिनायक। वद सत्यमसत्यं वा भवत्यक्षो हापीददाः ॥ २० अभ्ववद्वह्यचर्येण चरन्तोऽचारुचेतसः। मिथ्या तपस्विदार्ख्याय भवन्त्येवंविधा मुने ॥ २१ वसिष्ट उवाच। असत्यं वास्तु सत्यं वा स्वरूपं वरमीदशम्। विद्धि वेदविदां त्वेष स्वभावानुभवस्थितः॥ રર

तमित्याशयेन विश्वानष्टि—संसारारभटीनटा इति ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ अज्ञास्तु न स्रज्ञवदनासत्त्या विषयान्मोक्तुं जानन्तीत्याह--वायूनिवेति । ते हि देहात्मनैव या स्वसत्ता तब्रक्षणादिवानमूढाः संतापमूर्चिछता इव कामादिसंतापशान्तये अत्यासक्तया विषयोदरे लीयन्ते । तथा लीना अपि प्रतप्तवैत-रणीनदीप्रवाहस्था नारिकपुरुषा उपरिभागेन वायुनिव विषया-निकचिदेव मुधा स्वृशन्ति न तत्त्वतः कात्स्न्येन विषयमनुभूय विश्रमितुं शक्तवन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ सर्वैः बिष्टैः सम आ-चारो यस्यां स्थितौ । सर्वे अर्थाश्व शीतला यस्यामिति है अपि स्थितिकियाविशेषणे । तिष्ठति तत्त्वविदिति शेषः ॥१९॥ उक्तर्रक्षणेस्तत्त्वज्ञपरिचयो दुर्घटः मूर्खदाम्भिकवश्वकतापसे-ष्वपि हठात्संपादितानामेषां लक्षणानां दर्शनादिति रामः शहते—खरूपमिति । ईदशमुक्तलक्षणपरिचेयं खरूपं सत्यम-थवा असत्यं दम्भादिपरिकल्पितं वेति को वेदिनुं शकोति । हि यतः अज्ञोऽपि दाम्भिक ईटशस्बदुक्तलक्षणवान्भवति लोके इत्यन्वयः ॥ २० ॥ आचारुचेतसो विद्वत्सादर्यवि**डम्ब**न तादशमानपूजादिसापेक्षचिताः । तपखिशन्देन तथा ख्यातिर्रुक्यते । मिथ्यापरिकल्पितस्वतपस्विताप्रख्यातिदार्क्योये-त्यर्थः ॥ २१ ॥ दम्भार्थमपि हढीकृतान्येतानि छक्षणानि शुभोदकीण्येवेति न तह्नक्षणवतासुपेक्षा कार्या। यतस्वादशानाय-नुसरणे खभावसिद्धलक्षणसंपन्नस्तत्त्वविद्पि दैवाह्यभ्यत इस्रा-शयेन श्रीबसिष्ठ उत्तरमाह—असत्यं वेति । ईदशमुक्तलक्षण-संपर्भ सक्ष्पं वरं दुर्रुभलाच्छ्रेष्ठम् । वैद्विदां वेदार्थतस्वविदां तु एष रुक्षणकलापः समावानुमववलादेव स्थितः प्रतिष्ठितो-

अनाविष्टा विचेष्टन्ते बीतरागाः सरागवत्। 23 गतहासा हसन्त्यज्ञान्सहसा करुणाकुलाः॥ चित्तावरीगतं रहयं सर्वं कपटकुट्टिमम्। पदयन्त्यसस्परिक्षातं स्वप्ने हेमेव हस्तगम् ॥ २४ अन्तःशीतलतामेषां तां न जानन्ति केचन। व्राधन्दनदारूणामामोदमिष जन्तवः॥ ર્પ ये त विश्वातविश्वयास्ताष्ट्याः पावनादायाः। जानन्ति तांस्तथैवान्तरहेः पादानिवाहयः॥ २६ भाषं निगृहयन्त्येते तमुत्तममनुत्तमाः। प्राम्येधनैः किलानर्थः कश्चिन्तामणिरापणे ॥ २७ तसिश्चिगृहने भावो यतस्तेपां न दर्शने। निर्घासना गतद्वेता गतमानाः किलाङ्ग ते ॥ ٦८ एकान्तामानदीर्गत्यजनावश्वप्तयस्तु तान्। सुखयन्ति यथा राम न तथैव महर्द्धयः॥ २९ स्वसंवेदनसंवेद्यसारा विदितवेद्यता। नैषा दर्शयितुं शक्या दृश्यते न च तद्विदा ॥ ३० गुणं ममेमं जानातु जनः पूजां करोतु मे । इत्यहंकारिणामीहा नतु तन्मुकचेतसाम्॥ 38 कियाफलानि चिद्योम गमनादीनि राघव। अज्ञानामपि सिध्यन्ति मन्त्रीषधिषशादिह् ॥ 32 यो यादकु क्षेत्रामाधातुं समर्थस्ताद्दगेव सः। अवर्यं फलमान्नोति प्रबुद्धोऽस्त्वश् एव वा ॥ ३३

न इठात्संपादित इत्यर्थः ॥ २२ ॥ अनाविष्टाः क्रियाफलेष्वन-मिनिविष्टाः ॥ २३ ॥ सर्वं दश्यं चित्तादर्शगतं कपटकुष्टिमक-हपमसरपर्यन्ति ॥ २४॥२५॥ यद्यपि तत्त्ववित्खरूपमज्ञा ज्ञातुं न शक्कवन्ति तथापि तत्त्वविदो जानन्त्येवेखाइ-ये लिति । पादान्पदानि ॥ २६ ॥ दाम्भिकास्त लक्षणानि प्रख्यापयन्ति । तश्यक्षास्त निगृहयन्तीलनेन विशेषेण वा ते परिचेया इत्याशये-नाइ-भावमिति । किमर्थं निगृह्यन्ति तत्राह-पाम्यैरिति । माम्येशीमनगरादिषु भवैर्धनैरनर्धः केतुमशक्यश्चिन्तामणिः आपणे कः प्रसार्यते। न कश्चिदित्यर्थः ॥ २७ ॥ आपणप्रसार-णिक्षेत्रेन नायं चिन्तामणिरितिबद्धलात्खगुणप्रख्यापनलिक्रेन दाम्भिकोऽयं न तस्वविदिति श्रेयमित्याशयेनाह—तस्मिशिति। तेषां तस्वविदां तस्मिन्खगुणादी विषये निगृहने एव भाव-स्तात्पर्यं नत् दर्शनपरेभ्यः प्रह्यापने । यतस्ते निर्वासनाः ख्यातिमानादिरागवासनाशून्याः । अन्नेत्यामन्त्रणे ॥ २८॥ किमर्थं ते ख्यास्यादि नेच्छन्ति तत्राह—एकान्तेति। ख्याति-मानधनादिसमृद्धी जनसमाजाभिमानायनर्थसहस्रैर्विक्षेपे आ-समयुखानुभवविच्छेदापसेरिति भावः । अमानं पूजावर्जनम् । दौर्गत्यमिकंचनता । जनै(वज्ञप्तयोऽवज्ञाः ॥ २९ ॥ या विदि-तवेबता सा खसंवेदनेन खानुभवेनेव संवेबः सारी निरतिश-बानम्दो यस्यां सा । एषा अन्यं प्रति दर्शयितुं न शक्या । बतस्तद्विदापि सा न इत्यते न इग्विषयीक्रियते किंत्र खप्रका-

आमोदश्चन्दनसेष स्पन्दनस्य फलं हृदि। सर्वस्यैवास्ति तन्ननं तद्वता समवाप्यते ॥ 38 अहन्तावासनाद्वेतं वस्तृता दृश्यवस्तुष्। यसास्यसौ साधयति खगमादिकियाफलम् ३५ इदं न किंचिक्कान्तिर्वा खं चेति शस्तु वेत्ति यः। सोऽवासनः कर्मवात्याः कथं साधयति क्रियाः३६ नैव तस्य कृतेनार्था नाऽकृतेनेह कश्चन । न चास्य सर्वभृतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ ३७ न तदस्ति पृथिच्यां वा दिवि देवेषु वा कचित्। यदुदारमनोवृत्तेर्छोभाय विदितात्मनः॥ 36 जगदेव तृणं यस्य न किंचिद्रज एव वा। र्कि नाम तस्य भवत् अन्यदादेयतां गतम् ॥ ३९ निर्वाहितजगद्यात्रः परिपूर्णमना मुनिः। यथास्थितमसाबास्ते संप्रयाति यथागतम् ॥ ೪೦ नित्यान्तःशीतलो मौनी सत्वीभूतमनोवनिः। परिपूर्णाणेवाकारो गम्भीरप्रकटादायः॥ કર रसायनपरापूर्णहद्वत् हादमात्मनि । धत्ते करोति वान्यस्य सकलेन्द्ररिवामलः॥ પ્રર मन्दारमञ्जरीकुञ्जपिञ्जरादेव भूमयः। न तथा हादयन्त्येता यथा पण्डितवुद्धयः॥ ક્રફ चन्द्रविम्बैर्षसन्तेश्च महतामहताश्यैः। सारं सौभाग्यसौगन्ध्यसीरभालोकभोगिष ॥

शत्यैव खयं प्रथत इलार्यः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ व्योमगमना-दीनि मञ्जजपादिकियाफलानि अज्ञानामपि तिध्यन्ति । चि-दिति निपातो बाहु ख्ययोतनार्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ स्यन्दनस्य विहितनिषद्धकर्मणां फलं खह्येव सर्वस्यानि अभीरपूर्वात्मना अस्ति । तच कालेनाविर्भृतं समवाप्यते ॥ 🖙 🥫 सिद्धिलक्षण-हरयवस्तुषु अहं भोक्ता स्थामिखहन्तावाक कार्य हैतं परि-चिछन्नास्मकल्पनं यस्यास्ति स खेचर्तिस्यादिकियाप्तरं साधय-तीलार्थः ॥ ३५ ॥ इदं सिद्धिजातं न किंचित्तुच्छं ब्रान्तिमेनो-भ्रममात्रं खमधिष्ठानिदाकाशमात्रं वेति यसु हो वेति अवा-सनः स तत्त्वज्ञः कर्मवात्याश्रमणप्रायखेचरादिसिद्धिफला मन्त्री-षधादिकियाः कथं साधयति ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ का-त्क्र्यपर एवकारः । कृत्स्रं जगद्यस्य तृणं रजो न किंचिदेव वा तस्य धीरस्यान्यदनात्मभूतं किमादेयतां गतसुपादेयमस्त । न किचिदित्यर्थः ॥ ३९ ॥ निर्वाहिता जगवात्रा लोकसंप्रहार्थप्र-वृत्तिर्थस्य । यथा आगतं यथाप्राप्तं विष्यवारं सप्रशाति अन-सरति ॥ ४० ॥ ४९ ॥ स्वयं हादं भने अन्यस्य च करोति ॥ ४२ ॥ हादकारित्वं तस्य विश्वदयति—गन्दारेति । देवमू-मयो नन्दनादयः। पण्डितबुद्धयो बौधनैरित्यर्थः॥ ४३॥ सारप्राही हि विवेकी सुरभिर्प्राप्मर्नुस्तरसंबन्ध्यालोकभोगिप्र चन्द्रबिम्बेः सारमादले, सीगन्यभोगिषु वसन्तैः सारमादले, सीभाग्यभोगिषु महतां तत्त्वविदां अहतैः रागायन्तपहतैः आ-

ञ्चान्तिमात्रमिदं विश्वमिन्द्रजालमसनमयम्। व्यजतीति विनिश्चित्य दिनानुदिनमेषणाः॥ 84 शीतातपादिदःखानि निजदेहगतान्यपि । अन्यदेहगतानीय इः पश्यत्यवहेलया ॥ ଧ୍ୟ करुणोदारया वृत्त्या वृत्त्या वृत्ततिधीरया। नीरसो नीरसारां तु सारतां सरति स्थितिम् ४७ व्यवहारं यथाप्राप्तं लोकसामान्यमाचरन्। चराचराणां भृतानामुपर्यवावतिष्ठते ॥ 85 प्रज्ञापासादमारूढस्त्वशोच्यः शोचते जनान् । भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान्प्रकोऽनुपद्यति॥ चिरं फलोलबलितः समना जलधौ भ्रमे। परं पारमुपागत्य परां विश्वान्तिमेति सः ॥ 40 इसन्स शान्तया बृश्या प्राक्तनीर्जागतीर्गतीः। स्पयमान इवास्तेऽन्तर्जनताश्च घनभ्रमाः॥ ५१ पताः कान्तारनिर्मग्नमिताः संसारदृष्ट्यः। असत्यो हतवत्यो मामित्यन्तर्याति विस्तयम् ॥ ५२ दृष्ट्याष्ट्रगुणमेश्वर्यमनिष्टं मे तृणायते । इत्युपैत्युपशान्तत्वात्स्ययमानोऽपि न स्थयम् ॥ ५३ कश्चिद्विरिगुहारोहः कश्चित्पूण्याश्रमाश्रयः ।

कश्चिष्टहस्थाश्रमवान्कश्चिद्वद्वु रटन्स्थितः॥ 48 कश्चिद्धिभाचराचारः कश्चिदेकान्ततापसः। कश्चिन्मीनवृत्वधरः कश्चिद्ध्यानपरायणः॥ ५५ कश्चिद्विपश्चिद्विख्यातः कश्चिच्छोता श्रुतेः स्मृतेः। कथिद्वाजा द्विजः कथित्कश्चिदन्न इय स्थितः ५६ गुटिकाञ्जनखङ्गादिसिद्धः कश्चित्रभोगतः । कश्चिच्छिल्पकलाजीवी कश्चित्पामररूपभृत् ॥ ५७ कश्चित्त्यक्तसमाचारः कश्चिड्छोत्रियनायकः। कश्चिदुन्मत्तचरितः प्रवज्यां कश्चिदाश्चितः ॥ पुरुषो न शरीरादि नच चित्तादि किंचन। पुरुषभ्रेतनं नाम न स नइयति कर्हिचित्॥ अच्छेचोऽसावदाह्योऽसावक्केचोऽशोष्य एव च । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽसौ सनातनः ॥६० इति सम्यक्प्रबद्धो यः स यथा यत्र तिष्ठति । तथा तिष्ठत तत्रात्र स्थानास्थानियमेन किम्॥ ६१ पातालमाविशतु यातु नभो विलक्ष्य दिकाण्डलं भ्रमत् पेपणमेव येन । चिन्मात्रमेतद्जरं नतु यातु नाश-माकाशकोश इव शान्तमजं शिवं तत ६२

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० मरणाद्यभावीपदेशो नाम खुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

शयैः सारमादत्त इति द्वन्द्वनिर्दिष्टानां व्युत्कमेण संबन्धः । तैरेव हि तरसारो छम्यो नान्यत्रान्यैरुपायैरित्यर्थः ॥ ४४ ॥ महतामाशयैः कं सारमादत्त इति चेत्प्रथमं जगन्मिध्याखदर्श-नाःकमात्सवैषणात्यागमित्याह्—भ्रान्तिमात्रमिति ततः शीतोष्णादिद्वन्द्वसिहण्युतालक्षणं सारमादत्ते इत्याह--शी-तेति ॥ ४६ ॥ तदनन्तरं सर्वभूतानुकम्पाखरूपदढावलम्बनं यथाप्राप्तेन जलमात्रेणापि संतोप इत्यादिगुणसारमादत्ते इसाइ-करणेति । इत्थं नीरसो धिरक्तः सः करणया उदारा वृत्तिः सर्वस्वव्ययेनाप्यार्तपरिपालनवतं तया । वततिर्रुता तद्व-दीरया वृत्त्या परार्थेकप्रयोजनच्छायाफलपुष्पादिसंग्रहः खत-रहढावलम्बो जलमात्रेणापि यथात्राप्तेन संतोष इत्येवंह,पया श्रुत्या श्रीरमात्रमपि सारः संतोषहेत्र्यस्यां स्थिता ताइशस्थि-तिरूपां सारतां सरति ॥ ४७ ॥ उपरि उत्कर्षे ऊर्ध्वमुलभूते मदाणि वा ॥४८॥ उपरिस्थितिमेव दर्शयति—प्रहेति ॥४९॥ तदैवासौ चिरप्रवृत्तरागादिविश्लेपदुःखेभ्यो मुक्तः सम्यग्विश्रा-म्यतीखाइ—चिरमिति । कल्लोलैः पडूर्मिमिर्चलितो विक्षिप्तः ॥ ५० ॥ ५३ ॥ कान्तारे मार्गश्रंशेन निर्ममो योऽन्धस्तेन मिता उपमिताः । हतवत्यो मोहितवत्यः ॥ ५२ ॥ इति एवं शाला स्मयमान ईषद्धसन्नपि स्मयं गर्न नोपैति ॥ ५३॥ तस्य स्थानादिनियमोऽपि नास्तीत्याह-कश्चिदिति । अटन्

रटन् इति वा छेदः ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ रामप्रश्नवाक्ये कीदशः पुरुषोत्तम इति पदं श्रुला तदर्धजिज्ञा-सामपि संभावयन्पुरुषं वर्णयंस्तद्वत्तमतां दर्शयति-पुरुष इति । न स नर्यतीत्यविनाशिलात्स एवोत्तम इत्यर्थः ॥५९॥ छेदमेदादिविनाशहेलसंसाशीदिमिरपि स एवोत्तम इत्याह-अच्छेद्य इति ॥ ६० ॥ एतादशपुरुषोत्तमतत्त्वपरिज्ञानादेव तस्ववित्परुषोत्तमो नतु वर्णाश्रममर्यादापालनमात्रेण । तद्भा-्तस्य पुरुषोत्तमलानपायादिलाशयेनाह—इतीति । स्थानं वर्णाश्रममर्थादास्थितिस्तदास्थानियमेन तस्य किं साध्य-मिति विद्याप्रभावोक्तिरहन्मुखान्यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छिम-तिवत् ॥ ६१ ॥ तस्याविनाशिपुरुषस्रभेव द्रढयनुपसंहरति-पातालमिति । तत्त्वविद्वलात्स्वनाशचिकीपया पातालमाविशत् नभोविलस्योध्वे वा यातु दिस्यण्डलं वा भ्रमतु येन भ्रमणेन मानसोत्तरहोकालोकादिगिरिद्यालासहस्रघर्षणात्पेषणं संचूर्णन-मेव संभाव्यते । 'पेषणमेव यातु' इति पाठे गिरिशिलासहसैः खस्य पेवणं कार्यत् वेद्यर्थः । तथाप्येतत्तत्त्वविरसहपमसङ्गा-द्वयं चिन्मात्रमजरमेवेति नाशं नतु याति । यतस्तदाकाशकोश इव शिवं निरुपप्रवनित्यनिर्तिशयानन्दरूपमेवेलार्थः ॥ ६२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्वप्रकाशे उत्तरार्धे युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकदाततमः सर्गः १०३

वसिष्ठ उवाच। भामात्रं भानमात्रं या शान्तं भासत एव च। चिन्मात्रं यदनायन्तं तस्य नाशः कथं कदा ॥ ٤ ताबन्मात्रं च पुरुषः कदाचित्स न नदयति। यदि नइयति चिन्मात्रं भूयो जायेत किं कथम्॥२ न चान्यदन्यश्चिन्मात्रं क्रचित्किचन कस्यचित्। सर्वानुभवसारस्ये कीरशी नाम सान्यता ॥ 3 सर्वस्पेव हिमं शीतमुग्णोऽन्निर्मधुरं पयः। चिन्मात्रस्याघदातस्य कीद्दगन्यत्वमत्र तु ॥ शरीरनाशे नाशश्चेश्विन्मात्रस्य ततुच्यताम्। हर्षस्थाने विपादः किं मरणे संस्तिश्रये॥ ų नच नाम शरीरस्य नाशे नश्यति चिन्नभः। देहे नप्रेऽपि बन्धनां म्लेच्छैर्रप्रा पिशाचता ॥ દ્દ

चितो नित्यत्वमेकत्वं स्वातस्त्रयमपि साध्यते । सच्छास्रस्रास्य माहात्म्यं हितं चात्रोपदिश्यते ॥ १ ॥

तत्र चित्सामान्यस्याविनाशिलं सर्वानुभववलेन प्रथमं सा-धयति-भामात्रमिति । जाप्रत्खप्रयोरन्तः करणसाक्षितया सु-प्रप्तावज्ञानस्वापादिसाक्षितया च प्रत्यगात्मभामात्रं विषयभा-नमात्रं वा सर्वेषां भासत एवेति प्रत्यक्षेण चकाराद्यवहारस्मृ-खादिलिक्षेन च यदनाधन्तं चिन्मात्रं तत्सिद्धं तस्य कथं केन निमित्तेन नाशो भवेत् तद्गाधितस्य निमित्तस्याप्रसिद्धेस्तत्सा-घितस्य च तदुपजीवकतया तन्नाशनिमित्तलायोगादेवं कदा वा नाशो भवेत् । तादशकालस्यापि तदधीनसिद्धिकस्य तदुप-जीवक खादिति भावः ॥ १ ॥ भवतु चिन्मात्रमविनाशिपुर-षस्य किमायातं तत्राह—तावन्मात्रमिति । तत्राशे अप्रे सृष्टि-रेव न स्यादसाक्षिसगीसिद्धेरित्याह—यदीति ॥ २ ॥ ननु चिदन्तरमुत्पत्स्यते ततः सर्गः प्रवर्त्स्यति तत्राह-नचेति । औत्तरकाछिक्याश्चितः पूर्विचितो मेदः कि मध्ये विच्छेदानुभ-बात्कल्पेत उत वैलक्षण्यात्। न तावद्विच्छेदानुभवादनुभवस्यैव चिलासत्सद्भावे विच्छेदासिद्धेः । नापि वैलक्षण्यम् । अचि-खापत्तेः । सर्वाशे अनुभवस्य पूर्वोत्तरकालयोः सादृश्ये सा अन्यता भिन्नता कीहशी नाम । अलीकेखर्थः ॥ ३ ॥ काल-भेदादिव पुरुषभेदादिष चितो न मेदः । हिमशैत्यादिविषये-िषव चिखपि वैछक्षण्याननुभवादेवेखाह—सर्वसंवेति॥४॥ ननु सुखदुःखानुभवलक्षणविशेषज्ञानातिरिक्तं न नित्सामान्य-मभ्युपगच्छामः । विशेष्यविज्ञानेषु चावच्छेदकतासंबन्धेन श-रीरं कारणं तन्नाशाच झाननाश इखभ्युपगच्छतां चार्वाकवेशेषि-कादीनां शङ्कामुद्भाव्य निरस्यति-शरीरेति । हर्षस्थाने इति । दुः खप्रागभावासमानकालिकदुः खध्नंस एव हि वो सुक्तिः सा च देहनाशाश्वित्सामान्यनाशे उत्तरत्र देहदुःखादिसाधका-भावादेव सिध्यति । नहि चिदतिरिक्तं तस्साधकमस्ति । नच यावच्छरीरसत्ता चेश्वेतनस्य तदुच्यताम्। शवः कस्मान्न चलति सत्यखण्डे शरीरके ॥ O पिशाचानुभवो जीवधर्मश्चेत्तत्स सर्वदा। किं न पश्यति किं वन्धौ मृते पश्यति तत्तथा ॥ ८ जीवधर्मो विशिष्टश्चेत्तादशत्वं नरः कथम्। मिथ्या देशान्तरमृते पिशाचत्वं न पश्यति॥ ९ तसात्सर्वात्मकं त्वेतिश्चनमात्रं न नियन्त्रितम्। यद्यद्यत्र यथा वेत्ति तत्तत्तत्रावगच्छति ॥ १० अबाधितैवैकघना संविद्धयति यादशी। ताद्दयेवानुभृतिर्हि तत्स्वभावोऽत्र कारणम् ॥ ११ अन्यन्न संभवत्यत्र सर्गादावेव कारणम् । यन्नाम तदिदानीं स्थात्कथ्यतां कीदृशं कथम् ॥ १२ सर्गादावेव नोत्पन्नानचैवाद्यावभासते।

निःसाधकोऽप्रिमदेहः सिध्यति । अच तं विना तत्साधिका चिरिसध्यतीति मुक्तिहेतोमरणाद्धपं एव स्यात्र विषाद इलार्थः ॥ ५ ॥ तहीसु तथेखाशया मुखं व्याददानस्याशां छिनत्ति-नचेति । प्रायेण हि पिशाचा बन्धूनेव बाधनते । प्रत्यन्तदेशे-प्वेय बहुधा पिशाचा दृश्यन्त इति श्वोतनाय बन्धुम्लेच्छप्रहणम् ॥ ६ ॥ किंच शरीरनाशाचित्राश इत्यसंगतभेव सत्येव मृतश-रीरे चित्रिवृत्तिदर्शनविरोधादिलाह—यावदिति । न चलति न चेतित ॥ ७ ॥ यदि कश्चित्रार्वाको ब्र्याजीवन् म्लेच्छजीवधर्म एव पिशाचदर्शनं न मृतम्लेच्छचिदवशेषप्र-युक्तः पिशाचस्तत्रास्तीति तदाशङ्कामुहङ्क्य परिहरति-पिशा-चानुभव इति । सर्वदा बन्धुमरणं विना स पिशाचं किं न पश्यति मृते सत्येव कस्मारपश्यतीति वक्तव्यो नियमद्वये लया हेतुरित्यर्थः ॥ ८ ॥ स जीवो बन्धुमरणज्ञानविशिष्टश्चेत्तद्धर्मः पिशाचदर्शनमिति तादशो नियमश्रेत्तत्तथापि जीवत्येव मिथ्या देशान्तरमृतेऽन्येन कल्पिते सति तत्पिशाचलं नरः कथं न परयति ॥ ९ ॥ तस्माचितो भेदविनाशयोरयोगात्सर्वात्मकत्वे सिद्धे सति वस्तुकृतपरिच्छेदेनापि तन्न नियम्त्रितम् । तथाच यदाद्रस्त यत्र देशे काले वा वित्ति खारमानमेव तत्तद्वस्वारम-नावगच्छतीति न तद्वेद्यं पृथगस्तीत्यर्थः ॥ १० ॥ एवंच स-गीदौ सत्यकामलादबाधिता संवित्खसंकल्पात्मना यादश्येव भवति तादृश्येवेदानीं सर्वजनानामनुभूतिः ॥ १९ ॥ सत्यसं-कल्पब्रह्मसंविदोऽन्यत्प्रधानपरमाण्वादिकं सर्गादौ कारणं न संभवत्येव यतकारणं ब्रह्मातिरिक्तं स्यात्तत्कीदशं कथंच तत्का-रणं इदानीं मत्पुरतो वादिभिः कथ्यतां श्रुतियुक्तिभ्यां सद्य एव निरसिष्यामीत्यर्थः ॥ १२ ॥ तव तर्हि कीदशः सिद्धान्तस्त-माह—सर्गादावेवेति ॥ १३॥ यदि केवलं चिन्नम एव भाति तर्हि दश्यमिति सर्वेर्जनैः किमनवुध्यते तत्राह-आभा-समात्रमेवेति । विवर्तमात्रमेवेत्यर्थः । दश्यमित्यववोधेन गृह्य- विकल्पश्रीजंगद्वासा केवलं भाति चिश्रभः॥ १३ आभासमात्रमेत्रेदं दृश्यमित्यवबुध्यते । इष्यमित्यवबोधेन तहते स्यातक हद्यता ॥ १४ सचमत्कारचातुर्यं चारुचित्रभसारसात्। बोधेन बुध्यते रहयमित्यबोधान्न बुध्यते ॥ 84 बोधोऽबोधश्च तद्रुपमेवमेव निरामयम्। मेवोऽत्र वाचि नत्वर्थे तसाम्रास्त्येव दृश्यता १६ या चासीइइयतैपां तां विद्धि त्वमविचारणाम्। सा चेवानीं विचारेण विनष्टातः क रूदयते ॥ \$ 0 असिन्नेव घियो यह्न आत्मन्नानविचारणे। यक्तेन परमोऽभ्यासः स लोकद्वयसिद्धिदः॥ १८ अविद्योपदामस्त्वेष जातोऽपि भवतामिह। अभ्यासेन विना साधो न सिद्धिमुपगच्छति ॥ १९ ष्रोद्वेगं संपरित्यज्य गृहीत्वानुदिनं क्षणम्। स्रोकद्वयहितं पथ्यमिदं शास्त्रं विचार्यताम्॥ २० विज्ञातमप्यविज्ञातमात्मज्ञानमिदं भवेत्। भवतां भूरिभागानां संभूयाभ्यसनं विना ॥ २१ योयमर्थे प्रार्थयते तद्धे यतते तथा। सोऽवस्यं तमयाप्रोति न चेच्छान्तो निवर्तते ॥ २२ तस्रादसान्निवर्तध्वमसच्छास्रविचारणात् । शान्ति प्राप्यथ सच्छास्राज्जयलक्ष्मीयथा रणात्

माणस्यास्य द्यक्तिरजतमरुनदीकेशोण्ड्कादेस्तिक्षभः ऋते क्ष सत्यता दृष्टेत्यर्थः ॥ १४ ॥ तथाच चित्रभसा खचमत्कारचा-त्र्यमेव दर्यमिति रसाजामत्स्वप्रबोधेन बुध्यते सुपुप्तौ चाबो-भाग मुख्यत इति निष्कर्ष इत्यर्थः ॥ १५ ॥ तर्हि तौ बोधा-बोधी की तत्राह—बोध इति । तस्य चित्रभस एव रूपं न जडस्य । अतस्तदात्मना एकमेव । नहि बोधमन्तरेणाबोधस्य रूपं प्रसिध्यति । सति च बोधे तत्र नभोथीं दुर्लभ इति राहोः श्चिरः शिरएव राहरितिवद्वास्थात्रकृतो मेदो नलर्थेऽस्तीत्यर्थः ॥ १६ ॥ अथवा खतत्त्वाविचारणैव चितो दृश्यता विचारे नष्टेलाह-या चेति ॥ १७ ॥ अतएव विचारे एव महा-म्यकः कार्य इति बहुशो मयोक्तमित्याह—अस्मिन्नेवेति । यक्षेन विचारस्य किं स्यात्तदाह-यक्षेनेति । लोकद्वये इह वा अमुत्र वा ज्ञानसिद्धिदः । तथाच सूत्रे 'आवृत्तिरसकृद्पदे-बात्'। 'ऐहिकमप्रखुतप्रतिबन्धेन तद्दर्शनात्' इति ॥ १८ ॥ ननु निल्यापरोक्षे वस्तुनि प्रवृत्तमुपदेशवाक्यं सक्कृत्प्रवृत्त्यैवा-विद्यां शमयिला वस्तु प्रकटियप्यति किमभ्यासेन तत्राह-अविद्योपशम इति सिद्धिं जीवन्मुक्तिप्रतिष्ठाम् ॥ १९ ॥ तर्हि कं प्रन्थमुपादाय विचारोऽभ्यसनीयः केन वा शीघं प्रबोधः सिध्येलत्राह—नेति । त्रा शमादिसाधनसंपन्नपुरुषेण आलस्या-रत्याद्यद्वेगं तदेत्यथेष्टाशनदुःसङ्गादि च परित्यज्य क्षणं गुरुशु-श्रुवादिनियमं गृहीला इदं महारामायणाख्यं शासनाच्छास्रम-ज्ञादनं विचार्यताम् ॥ २० ॥ तत्रच बहुभिः सतीर्थ्यैः संभूया- विवेके चाविवेके च वहत्येषा मनोनदी। यत्रैव वाह्यते यहात्त्रत्रेव स्थितिमुच्छति ॥ રક अस्माच्छास्त्राप्टते थ्रेयो न भूतं न भविष्यति । ततः परमबोधार्थमिदमेव विचार्यताम्॥ २५ स्वयमेव विचार्यदं परो बोधोऽनुभूयते। संसाराध्वश्रमहरो नत्वेतद्वरशापवत्॥ २६ यन्न पित्रा नवा मात्रा न चापि सुकृतैः कृतम् । श्रेयस्तद्वः परिशातमिदमाशु करिष्यति ॥ २७ भववन्धमयी साधो विषमेयं विष्विका। आत्मक्षानाष्टते दीर्घा न कदाचन शाम्यति ॥ २८ महामोहमयी माया मिध्यैचाहमिति स्थिता। शास्त्रार्थभावनेनाद्यु मुच्यतां परशोच्यता ॥ यात माऽऽपातमधुरं ज्योम ज्योमैकरूपिणीम्। शून्यं वायं लिहन्तोऽन्तर्लेलिहाना इवाहयः॥ ३० यान्ति वो दिवसाः कष्टमविज्ञातगमागमाः। व्यवहारे हि तैरेव प्रतिपालयतां मृतिम्॥ 38 तावदाश्वासनैपास्ति भवतां भवभागिनाम्। दिनानि कतिचिद्यावश्रायाति मरणावधिः॥ 32 आगच्छन्त्यां मृतौ कष्टं परितापमवाप्स्यथ । तं यत्राङ्गाङ्गविच्छेदः शीतचन्द्नलेपनम्॥ ३३ श्रीणन्ति प्राणपण्येन धनं मानं घनभ्रमाः।

भ्यसनं परसरानुभवसंवादेन सद्यो ज्ञानप्रतिष्ठाहेतुरित्याह्— विज्ञातमिति । अविज्ञातं विस्मरणादविज्ञातप्रायम् । भूरिभा-गानां बहुविधासंभावनादिशालिनाम् ॥ २१ ॥ ज्ञानं दुर्छ-भमित्युद्वेगाच्छ्वणं न त्याज्यमित्याह—य इति ॥ २२ ॥ अनात्मशास्त्राभ्यासात्रिवृत्तेरेतच्छास्नाभ्यासः कार्य इत्याह-तस्मादिति । जयलक्ष्मीं भूजयलक्ष्मीं स्वर्गजयलक्ष्मीं वा ॥२३॥ यत्राद्विरोधिकोतोन्तरनिरोधप्रयत्नात् ॥ २४ ॥ श्रेयः प्रशस्य-तरं विवेकसाधनम् ॥ २५ ॥ तच्छास्रं विचार्य स्थितेन स्वयं प्रसक्षतया आत्मतत्त्वबोधोऽनुभूयते नतु वरवत् शापबद्वा कालान्तरविलम्बेनेलार्थः ॥ २६॥ पितृमात्राद्यपेक्षयापि शास-मेतदितकृतमामिलाह—यदिति । विचारेण शास्त्रं परिहातं सत्। परिज्ञातं प्रत्यक्षं श्रेय इति वा ॥ २७ ॥ २८ ॥ अह-मिति मिथ्यैव स्थिता महामोहमयी माया तत्प्रयुक्ता परा शोच्यता च मुच्यताम् ॥ २९ ॥ आपातमधुरं व्योम शूर्यं विश्वयजातं लिहन्तः सन्तो व्योमैकक्षिणीमनन्तां संस्रतिं मा यात ळेलिहानाः श्रुधिता रसशून्यं वायुं लिहन्तः अहयः सर्पा इव ॥३०॥३१॥ मरणरूप आयुपोऽवधियीवन्नायाति तावदेव भवतां सच्छास्नावलम्बनयोग्यतया आश्वासना अस्ति ॥३२॥ तदुत्तरं कि भविष्यति तत्राह्—आगच्छन्खामिति । तं तादशं परितापमवाप्यथ यत्र अङ्गानामङ्गानां विच्छेदोऽपि शीतचन्द-नलेपनवदवर्यं भोक्तन्य इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ घनभ्रमा मूर्का जना युद्धादौ प्राणपण्येनापि धनं जयाभिमानं च कीणन्ति ।

यधादास्त्रिः कथं बुद्धाः न कीणन्त्यजरं पदम् ॥ ३४ पदं परमयक्षेन क्रियते यैश्चिद्मवरे। क्यं तैः सद्यतेऽज्ञानशत्रुपादः स्यमूर्धनि ॥ निर्मानमोहमापद्मा गति गच्छत माधमाम्। क्रियते स्वात्मबोधेन मूलकापो महापदाम् ॥ ३६ प्रलपन्तमहोरात्रं युष्मदर्थेन मामिमम् **।** यं प्रदृश्येदमाकर्ण्यं स्वात्मनेवात्मतार्प्यताम् ॥ ३७ अधैव न चिकित्सां यः करोति मरणापदः। संप्राप्तायां मृतौ मुढः करिष्यति किमातुरः ॥ ३८ असाइत्थाहते प्रन्थो नान्यः स्वात्मावबोधने । जुनमर्थकरो प्राष्ट्रस्तिलस्तैलार्थिनामिव ॥ 39 ओत्मन्नानमिदं शास्त्रं प्रकाशयति दीपवत्। षितेव बोधयत्याद्य कान्तेव रमयत्यलम् ॥ 80 विद्यमानमपि ज्ञानं ज्ञातं शास्त्रगणान्न यत्। दुर्षोधं मधुरं तत्तु ज्ञास्यन्तीतो न संशयः॥ પ્રશ इद्मुत्तममाख्यानं मुख्यानां शास्त्रदृष्टिषु ।

यथाशास्त्रविवेकवैराग्यश्रवणाद्यपायैः प्राप्तया तत्त्वबुद्या अ-जरं मोक्षपदं कथं न कीणन्याश्वर्यमेतदित्यर्थः ॥ ३४ ॥ यै-विवेकिसिः अयक्षेन स्वतत्त्वज्ञानमात्रेण चिदम्बरे ब्रह्माकारो पदं स्थानं कियते परं सर्वोत्कृष्टैस्तादशैरज्ञानशत्रुवधसमर्थैः सच्छास्त्राध्यपेक्षया स्वमूर्धनि अज्ञानशत्रुपादः कथं सह्यते ॥ ३५ ॥ हे जनाः, यूर्वं निर्गतौ मानमोही यस्मात्तथाविधं दृढविवेकमापन्नाः सन्तस्तत्त्वं बुद्धा मोक्षगर्ति गच्छत अधमा संसारगतिं मा गच्छत ॥ ३६ ॥ बहुकालं बहुप्रकारैरस्मद्वी-धने प्रकृतोऽयं वसिष्ठः कण्टशोषदुःखाद्विमुच्यतामिति मयि दयया वा मद्वननं सम्यगाकण्यं स्वात्मा युष्माभिर्बुध्यतामिति वात्सल्यातिशयेनाह — प्रलपन्तिमिति । यं जगत्प्रसिद्धमिमं वुष्मद्वोधनायोद्युक्तं युष्मदर्थन अहोरात्रं प्रलपन्तं कण्ठशोपश्र-मादिना नित्यं क्रिश्यमानं मां प्रदश्य सम्यग्दष्ट्वा दयया इदं मद्भजनमादरेणाकर्ण्य प्रमुद्धेनात्मनैव देहेन्द्रियादिपरिच्छिन्नात्म-भावं विहाय यथाभूतब्रह्मात्मता अर्प्यतां प्राप्यतामिति प्रार्थ-नायां लोद ॥ ३७ ॥ किमयंवात्मज्ञानेन अग्रे कदाचित्करि-**ध्याम इति मन्यानानप्रत्याह—अधैवति ॥ ३८ ॥ नान्यः** विद्यते इति शेषः । नूनं निश्चयेन । अर्थकरः अभिरुपितार्थका-रीति बुद्धा प्राह्मः ॥ ३९ ॥ इतराध्यात्मप्रन्थेभ्योऽस्य कोऽति-शयस्तमाह्-आत्मज्ञानमिति । आत्मरूपं ज्ञानम् ॥ ४० ॥ विद्यमानं नित्यप्राप्तमपि यत् आत्मरूपं ज्ञानं शास्त्रान्तराम **बातं तत् इतः अस्याच्छास्नाज्ज्ञा**स्यन्ति ॥ ४१ ॥ शास्त्रदृष्टिषु मुख्यानामाख्यानानां मध्ये इदमाख्यानमुत्तमम् । अस्तिन्ना-स्याने अपूर्वमनादितस्ववित्संप्रदायप्रसिद्धव्यतिरिक्तं स्वक्षोल-कृष्टिपतं किंचन वस्तु नास्त्येव ॥ ४२ ॥ विनोदेन कीतूह्छे-नापि विचारयन्युमान्परमात्मबोधं याति प्राप्नोति ॥ ४३ ॥ पण्डितैः सर्वशास्त्रहैरपि यो बोधोऽद्यापि न संप्राप्तः स इतः

सुखेन बोधदं हृद्यमपूर्वं नतु किंचन ॥ પ્રર नानाख्यानकथाचित्रे विनोदेन विचारयेत्। ददं शास्त्रं परं याति पुमान्नास्त्यत्र संशयः॥ 83 यो ह्यद्यापि न संप्राप्तः पण्डितैरविखण्डितैः । स इतः प्राप्यते बोधः सुवर्णमिव सैकतात् ॥ शास्त्रकर्तेरि मङ्कव्यं न कदाचन कुत्रचित्। शास्त्रार्थ एव तन्नित्यं युक्तियुक्तानुभूतिदे ॥ છપ अज्ञानान्मत्सरान्मोहादविचारिभिरेकता । अवहेलितशास्त्रार्थैः कर्तव्या नात्महन्त्रभिः॥ ४६ जानाम्येव यथैत्रेमा यदहृत्वं यथा घियः। तथा बोधितकारुण्यात्स्वभावो हि ममेरदाः॥ ४७ युष्मत्संविल्लवः शुद्ध एवं वक्तमिह स्थितः। अहं नरो न गन्धवों नामरो न च राक्षसः॥ संविन्मात्रा भवन्तो हि तद्भावोऽस्त्यतिनिर्मलः। स्थितोऽस्मीति भवत्पुण्यैर्नेनु नास्मि न चापरः ४९

अस्माच्छास्नात्प्राप्यते । यथा सुवर्णाकरे क्षालनेन विवेचिता-त्सैकतारमुवर्णे प्राप्यते तद्वन् ॥ ४४ ॥ ननु अस्मान्छासादेव ज्ञानं चेदेतच्छास्रकर्ता कस्माच्छास्राज्ज्ञातवान् । यत एव स हातवांस्तत एव वयमपि ज्ञास्यामः । यदाज्ञालंवैतच्छास्रं प्रणी-तवांस्तर्धसाच्छास्राज्ज्ञानोदये का प्रत्याशेति शङ्कमानान्प्र-त्याह-शास्त्रकर्तरीति । यद्येतच्छास्त्रं युक्तियुक्तमनुभवपर्यव-सितं च न स्यातदा एतत्कर्तृबोधमूलकप्रामाण्यमेतच्छाल-मिति तत्कर्तिर बोघहेतुचिन्तया मङ्गव्यं स्यात् । अस्मिखु शास्त्रे खतो युक्तिसहस्रयुक्ते अनुभृतिदे न सति खानुभवेनैव सर्वशङ्कानिवृत्तेस्तत्रैव तन्मजनं नित्यं युक्तमिति न शास्त्रकर्तरि बोधशङ्कया कदानिन्मङ्गव्यमित्यर्थः ॥ ४५ ॥ अतएवैतच्छा-स्नावहेलनपरः सह मेत्री न कार्येखाह--अज्ञानादिति । ए-कता मैत्री । अध्यात्मशास्त्रावहेलने आत्मज्ञानानवाप्तिरेवारम-हत्येत्याशयः ॥ ४६ ॥ लं तर्ह्यसाभिरन्यैश्वाहैः सह कथं मैत्री भजसे यतो दयया उपदेशे प्रवृत्तोऽसि तत्राह—जाना-मीति । हे राम, इमाः श्रोतृश्रेणयो यथा यादशाधिकारिविशेष-णसंपन्नाः । तं च यथा यादगधिकारिविशेषणसंपन्नः । यथाच वो धियः श्रवणधारणाभ्यासपदुः । अहंच यत् यादशं भवदा-द्युपदेशाय पितुराशापनं प्राप्तस्तत्सर्व जानाम्येव । अतस्तवा-विधभवद्भाग्योदयोद्वोधितात्कारुण्याद्युष्मदुपदेशेऽहं प्रकृत इति शेषः । हि यस्मान्मम स्वभाव ईदशः सदा दीनेषुदुद्धकारुण्य एव न निष्ठर इति युष्मद्भितिषेणो दशालोर्मम वचनमाद्रियध्व-मिति भावः ॥ ४७ ॥ अथवा भवतामात्मेवाहं भवत्युष्यव-शाच्छदं युष्मतत्त्वं युष्मभ्यमुपदेष्ट्रमागतः । मम च भवन्तः परमप्रेमास्पदमारभैवेति युष्मन्मित्रतामिव प्राप्त इत्याह-यु-ब्मदिति द्वाभ्याम् । संविद्धुपो लवः शोधितः सूक्ष्मार्थौ नतु नरगन्धवीदशरीरमित्यर्थः ॥ ४८ ॥ अपरो भवदारमन्यति•

इयामायमाना नायान्ति यावन्मरणवासराः। सारः संहियतां तावहैरस्यं वस्त्रदृष्टिषु ॥ 40 इहेव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः। गत्वा निरोषधं स्थानं सरुजः किं करिष्यति ॥ ५१ सर्वभावेषु वैरस्यं न यावत्समुपागर्तम्। भाषानां भाषना तावसानवं नोपगच्छति॥ 42 आत्मानमलमुद्धर्त् वासनातानवाहते। नास्त्युपायो महाबुद्धे कश्चनापि कदाचन ॥ 43 भावास्तु यदि विद्यन्ते ति ते वस्तुभावना। कित्वेते नैव सन्तीह राराश्टङ्कादयो यथा ॥ ५४ सर्वे एव जगद्भावा अविचारितचारवः। अविद्यमानसङ्गाचा विचाराद्विशरारवः॥ ५५ प्रामाणिकविचारेषु न विद्यन्ते कृतेषु ये। कथं सन्ति जगद्भावास्ते के सन्ति सदैव वा॥ ५६ सर्व एव जगद्भावाः कारणाभावतो भृशम्। सर्गादावेव नोत्पन्ना यचेदं भाति तत्परम्॥ पदे सर्वेन्द्रियातीते मनःषष्ठेन्द्रियात्मनाम् । भावानां कारणं नास्ति मनःपष्टेन्द्रियात्मकम् ॥५८ भाषानां विविधाख्यानामनाख्यं कारणं कुतः।

रिक्तो नास्मि । नन्विति संबोधने ॥ ४९ ॥ अतः परमाप्तत-मोहमिति मदुक्तः प्रथमः सारः सर्ववस्तुदृष्टिषु वैराग्यलक्षणः संहियतां संगृह्यताम् ॥ ५० ॥ सहजः नरकहजाभिः पीड्य-मानः ॥ ५१ ॥ वैराग्यमेव परमः सार इति कृत इति चेत-द्विना बासनातानवासिद्धेरित्याह-सर्वेति ॥ ५२ ॥ वासनाता-नवे वा किमर्थमादरस्तत्राह—आत्मानमिति ॥ ५३ ॥ ननु भावेषु सत्स कथं तद्वासनातानवं प्रसिद्धेतत्राह—भावा-स्विति । यदि सत्यतया विद्यन्ते तत्तर्हि तेषु भावेषु हिते खानकुछे वस्त्रनि वस्तु ममेदमावश्यकं संपाद्यमित्यादिभावना भवेत् ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ नन्त्रेते भावा वेदान्तिनां विचारेषु न सन्ति चेदपि कापिलकाणादादिविचारेषु सन्त्येवेति कुतोऽस-लावधारणं तत्राह-प्रामाणिकेति । प्रामाणिकविचारेषु कृतेषु ये न विद्यन्ते ते के सन्ति किखरूपाः । एकैकवस्तुरूपा उत सर्ववस्तुरूपाः । सर्देव वा ते सन्त्युत कदाचिदेव वा । सर्वथापि प्राक् शतशः खण्डितमेवेत्यर्थः ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ कारणाभावः कुतस्तत्राह-पदे इति । नहीन्द्रियावेदो खप्रका-शचिदेकरसे बद्धाणि इन्द्रियवेद्याः प्रलयकाले संभावयित्रमपि शक्या इति भावः ॥ ५८ ॥ सनामरूपकस्य जगतः अनामरूप-कमपि कारणं न संभवतीति युत्तयन्तरमप्याह-भावानामिति। एवं वस्त्ववस्तुनः कारणं ग्रन्यमग्रन्यस्येति तदपि दुर्वचं तदा-त्मतापस्ययोगादित्याइ-कृत इति ॥ ५९ ॥ एवं निराकारं साकारस्य कारणमित्यप्ययुक्तमित्याह-साकारस्येति । बीजं भवेत् ॥ ६० ॥ बिडम्बनं विडम्बनशावयवदर्थशून्यमिति

कुतो वस्तुन्यवस्तुत्वं व्योमन्यव्योमता कुतः॥ ५९ साकारस्य हि साकारं बटधानादिवद्भवेत्। वीजे तद्वस्तु साकारं जायतेऽन्यत्कुतोऽन्यथा ६० न किंचिदपि यत्रास्ति बीजमाकृतिमन्मनाकु । तत आकृतिमद्विश्वं भवतीति विडम्बनम्॥ ६१ कार्यकारणभावादि तस्मिश्नहि परे पदे। वाचालत्वेन यन्नाम कल्प्यते मौर्ख्यमेव तत् ॥ ६२ सहकारिनिमित्तानामभावे हि न कारणात्। कार्य भवेदन्यदेति वाछैरप्यनुभूयते ॥ ६३ तन्मात्रवेदनं भूयः पृथ्यादीनां च कारणम्। किमस्ति कथ्यतां छाया कथमास्ते वदातपे॥ ६४ परमाणुसमूहा ये जगदिखप्यवास्तवम्। राराश्टक्तं धनुःप्रख्यमञ्चानादमिधीयते ॥ ६५ परमाणुसमृहश्चेत्संभूय कुरुते जगत्। यहच्छयेव तमसि शीर्यते च यहच्छया॥ ६६ तदङ्गमिङ्गते नित्यं देशे देशे गृहेगृहे। अपूर्वात्मरजः शृहं ख्यातं वा स्याहिनेदिने॥ नच तहुश्यते किंचित्कस्य तत्कर्म तादृशम्। भवेद्यर्थमभव्यस्य जडास्तु परमाणवः॥ ६८

यावत् ॥ ६१ ॥ वाचाललेन बहुभाषिलेन ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ जगद्वेदनलादपि चितो न जगत्कारणत्वं घटवेदने घटकारण-लाभावदर्शनादिलाह—तन्मात्रेति । तत्र कुलालवेदनस्य घटकारणलदर्शनाद्यभिचारमाशङ्क्य मात्रपदम् । विल्यचिद्व-स्थानायोगादपि चितो न कारणतेत्याशयेनाह—छायेति ॥ ६४ ॥ अतएव परमाणुकारणवादिनो बौद्धादयोऽप्यपास्ताः । अतीन्द्रियसमूहस्थैन्द्रियकलादर्शनादित्याशयेनाह्-परमाण्विति ॥ ६५ ॥ यदि परमाणवः संभूय जगत्कुर्यस्तर्हि तेषां सदा न-भसि उइयनपतनदर्शनात्प्रतिगृहं दिने दिने गिरेरिव श्वन्नकृपान दिवत्खातो वा स्यादित्याह-परमाण्विति द्वाभ्याम् ॥ ६६ ॥ तस्य जगतः अङ्गमवयवभूतं रजो देशेदेशे गृहेगृहे च अपूर्व न-वं नविभन्नते चलत्येवेति श्वनं खातं वा स्यादित्यर्थः ॥ ६७ ॥ नच परमाण्वाख्यं निरवयवं किंचिद्रव्यं केनचिद्र्रयते। जालान्त-रमरीचिषु सावयवानामेव रजसां दर्शनात् । तदवयवपरम्परा-षधिनिरवयवोऽनुमीयत इति चेन्न । तस्य संयोगानईत्वेनाद्वव्य-लापत्तेः । नहि निरवयवोऽन्येन संयोगमहिति । संयोगस्यैकदेशा-विच्छित्रवृत्तिकलनियमात् । नच तदभावे बणुकादिसिद्धिरिति व्याघातः । किंचातीन्द्रियाणां खपुष्पकल्पानां परमाणनां संयो-जनेन जगद्रचनं कस्य कर्म । किमसंसारिण उत संसारिणः । तत्र संसारिणस्तावत्परमाणुभिर्जगत्रिमीणे असामर्थ्यं स्पष्टमेवे-त्यमव्यस्य भवानर्दस्येश्वरस्य जडस्य वा तद्वाच्यम् । तत्र आ-षस्य व्यर्थे निष्प्रयोजनं जगद्रचनं भवेत्। नहि नित्समुक्तस्ये-श्वरस्य प्रयोजनापेक्षा प्रयोजनं वा सर्गस्योपपादयितं शक्यते।

गाबुद्धिपूर्वं तस्कर्मं संभवत्यङ्ग कस्यचित्। बुद्धिपूर्वे तु यद्मर्थे कुर्यादुन्मसको हि कः॥ १९ जडस्य बुद्धिपूर्वेहा मरुतो नास्ति तां विना। **न संभवत्यणुचयो नान्यत्कर्तोपपद्यते** ॥ 90 वयमात्मान एवेमे खात्मानः खात्मका जनाः। तथा स्थिता यथा स्वप्ने भवतां स्वप्नमानवाः तसान्न जायते किंचिद्धिश्वं नापि च विद्यते। इत्थं चिन्नभ एवाच्छं प्रकचत्यात्मनात्मनि ॥ ७२ विश्वाकाशं चिदाकाशे विष्विध्यान्तिमागतम्। स्पन्दो द्रवत्वं शून्यत्वमनिलेऽम्मसि खे यथा 50 देशादेशान्तरप्राप्तौ निमेषेणातिद्रतः। संविदो यहपुर्मध्ये चिद्योक्नो विद्यि तहपुः॥ CB स स्वभावो हि सर्वेषामर्थानां ते च तन्मयाः। तारशास्त्रभोद्भपास्तेन विश्वमतो नभः॥ ७५ स्वभावस्य परा वृत्तिर्मनागेवाश्च तस्य सा । स्वभावादविभिन्नेव सेदं जगदिति स्थिता॥ ७६ जगिश्वभभसोस्तसाम्न कदाचन मिन्नता। एकमेघ द्वयो रूपं पवनस्पन्दयोरिव ॥ 33 देशाहेशान्तरप्राप्तौ विदो मध्ये हि यद्वपः। शान्ताशेषविशेषात्म तन्मुख्यं नेतरब्रिदुः॥ 50 स स्वभावोऽङ्ग भूतानां तत्र तिष्ठन्ति पण्डिताः। तसाम्न विचलन्त्येते नित्यध्यानाद्धरादयः॥ ७९

नम जबाः परमाणवः स्वतः सर्गे प्रवर्तितुं शक्कवन्तीत्यर्थः ॥ ६८ ॥ ननु चेतनस्य बुद्धिपूर्वके रचने प्रयोजनापेक्षा अतु-द्धिपूर्वके तु न सा तत्राह—नेति । हे अन्न, तत् मनसाप्यचि-न्खरचनात्मकं भूतभुवनं चतुर्विधभूतप्रामसंभृतं सर्गेकमं अबु-द्धिपूर्वं कस्यचित्र संभवति । बुद्धिपूर्वकं तु व्यर्थे कर्मन उन्म-त्तकः कुर्यात् ॥ ६९ ॥ एतेन वायुरेवाणुचयं करिष्यति बुद्धि-पूर्वव्यापारं विनेवाणुचयो भविष्यतीति प्रसाशापि निरस्तेसाह-अडस्पेति । जडस्य महतो बुद्धिपूर्वा ईहा चेष्टा नास्ति । तां विना त अणुचयो न संभवति । जडरार्वज्ञाभ्यामन्यजीवजातं तु प्रलये देहायभावादसमर्थमेवेति न सर्गादी कश्चित्कर्तीपप-द्यत इत्यूपसंहारः ॥ ७० ॥ ननु यदि कर्त्रभावादनुत्पन्नमेव जगत्ति वयं किमात्मकाः कथं वा जगति स्थितास्तत्राह--व-यमिति । इमे वयं खाल्मानो देहादिमूर्तताश्चन्याश्विदारमान एव। एवं जना अपि खात्मका एव। तथापि खप्ने यथा भवतां स्वप्नमानवाः स्थितास्तथा अस्मत्करूपनयेव स्थिता इत्यर्थः॥७१॥ इत्यं सर्वोपपत्तर्भक्षाद्वैतसिद्धान्तो निष्प्रत्यूह इत्याह-तस्मा-दिति ॥ ७२ ॥ अनिलादौ सान्दादि यथा अभिन्नमेव विष्व-विश्वान्तिमागतं तथा चिदाकाशे विश्वाकाशमपीत्यर्थः ॥७३॥ जगच्छून्यस्य चिद्योन्नो यद्भूपं तत्त्राग्बहुशो दृष्टान्तेनानुभावितं स्मारयति—देशादिति ॥ ७४ ॥ सर्वेषां पदार्थानां संविदा-काश एव परमार्थसभावः । अतो हेतोर्विश्वं तेन तद्भावेनैव योग• १६५

आभासाकादामेवेदं भामात्रमवभासनम्। विश्वमाकाररहितं स्वभावं विदुरव्ययम् ॥ 60 न जायते न म्रियते न भूत्वा भावि कुत्रचित्। अनन्यदेव चिद्योद्धः शून्यत्वमित्र खाजागत्॥ ८१ न विश्वमस्ति नैवासीन्न च नाम भविष्यति । इदमाभासते शान्तं चिद्योम परमात्मनि ॥ ८२ चिन्मात्रमेव कचति स्वप्ने पुरतया यथा। तथैच जाग्रदाख्येऽस्मिन्स स्वप्ने कचति स्वयम् ८३ सर्गादावेव भावानामसत्तेत्यस्ति देहकः। कुतस्तस्माच्छरीरत्वं स्वप्न एव नमश्चितेः॥ 28 स्वयंभ्वाख्यं दारीरं स्वं पूर्वः स्वप्नो महाचितेः। इत उत्थानास्तद्नु स्वप्नात्स्वप्नान्तरं वयम्॥ गण्डस्योपरि जातानां स्फोटानामत एव नः। परमेण प्रयत्नेन न मनो नाम यास्यति॥ ረፍ ब्रह्मवासत्यपुरुषः सत्यवश्वानुभूयते । स्थितं ततः प्रभृत्येव नत्वलीकमिदं ततम् ॥ आब्रह्मस्तम्बपयन्तमलीकं जायते जगत्। यथा स्त्रप्ते तथालीकमैत्रमाञ्ज विनदयति॥ 66 चिद्योमेवैत्य विश्वत्वं यथा स्वप्ने विनदयति । अनुदित्वैव विश्वत्वं जाग्रदाख्ये तथैव च ॥ ८९ अनुभूतमलीकं चाप्यलीकं सत्यविस्थितम्। संविदेव यथा स्वप्ने नगरादितयोदिता॥ ९०

नभो न शून्यभावेनेत्यर्थः ॥ ७५ ॥ तस्य चिदाकाशस्य स्व-भावादविभिन्नेव या विवर्तभावेन खभावस्य परा बृत्तिः सैवेदं जगदिति आपातदर्शिनां स्थिता ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ तन्मुख्यं अनुभवस्य संपन्नं निदशनं नेतरदित्यर्थः ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ इदं विश्वं चिर्द्र्पणे आभासाकाशमेव । तदवभासनं च भामा-त्रम् ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ सर्गादौ पृथिव्यादिभा-वानामेवासत्तेति हेतोरयं पार्थिवादिदेहकः कुतः अस्ति । तस्मा-दिदं भारामानं शरीरत्वं नभोहपस्य चितेः खप्र एव ॥ ८४ ॥ पूर्वः प्राथमिकः । इतः खयंभूशरीरादुःथानं येषां ते वयं तदनु खप्नारखप्रान्तरमिवेलर्थः ॥८५॥ अतएव नो मनः परमे-णापि प्रयक्षेन प्रवर्तमानं ब्रह्मणि झटिति न यास्यति । गल-गण्डोत्यतस्य स्फोटस्य गरुनेव व्यवहितसंबन्धन्नान्तिदाद्यी-दिल्याह-गण्डस्येति ॥ ८६ ॥ यथा गलमेव गण्डात्मना स्थिला तद्गतस्फोटात्मनापि स्थितमपृथग्भूतमपि पृथक्सत्यमि-वानुभूयते, तथा बह्मेव हिरण्यगर्भव्यष्टिजीवलक्षणाऽसत्यपुरुषो भूला तद्भावेनैव सत्यवचानुभूयत इत्यर्थः । यदाप्रसृति ब्रह्म जीवभूतं ततःप्रभृत्येव अलीकमिदं जगत्ततं स्थितम् ॥ ८७ ॥ अलीकमनृतम् । एवं स्वप्नवदेव आशु विनश्यति तद्प्यलीक-मेब ॥ ८८ ॥ अनुदिला उदयं जन्म अप्राप्यैव ॥ ८९ ॥ यद्यलीकमेव तर्हि कथमनुभूतं कथं वा सत्यवत्स्थतम् । शश. श्वनादाव्रभयादर्शनात्तत्राह्-अनुभूतमिति । अलीकमप्यनुभू- साकारेय निराकारा स्थिता तद्वज्ञगत्तया।
संविदाकाशमाकाशावणु मेरोरणुर्यथा॥ ९१
किल यत्तस्य नाम स्यादाकाशावणुता कृतः।
कारणाभावतोऽन्यस्य नाकार उपपद्यते॥ ९२
सर्गादावेय यो जातो जातोऽयं जगतः कृतः।
यवेय वेदनाकाशे पुरं स्वप्ने तदेय नः॥ ९३
मेदः स्वप्नाद्विचिद्वयोन्नोर्न शून्याम्बरयोरिय।
यदेय चित्रभो नाम तदेय स्वप्नपत्तनम्॥ ९४
यदेय स्पन्दनं नाम स एव पयनो यथा।
स्पन्दास्पन्दैकक्षात्मा वायुव्यांमोपमस्तथा॥ ९५

तसािश्वम पवेदं जगदाकृति लक्ष्यते।
सर्वे शून्यं निरालम्बं भासनं चिव्रिवस्वतः॥ ९६
शान्तमेवेदमिस्तलं निरस्तास्तमयोदयम्।
सकृद्विभातममलं दणन्मौनमनामयम्॥ ९७
तसाव्रद् कथं भावाः कुतो भावाः क भाषणीः।
क वैतं ककता कादं क भाषाः क च भाषनाः ९८
नित्योदितो व्यवहरमपि निर्विकारो
व्रित्वेक्यमुक्तमतिरुक्तमशीतलोऽन्तः।
निर्वाण आस्स्व विगतामयशुद्धबोधबोधैकतामुपगतोऽङ्ग न सन्ति भाषाः ९९

इत्यापें श्रीवा॰ वा॰ मो॰ नि॰ उ॰ सकलभावाभावोपदेशेन परमार्थेंकताप्रतिपादनं नाम त्र्यविकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकदाततमः सर्गः १०४

वसिष्ठ उवाच । आकाराः राव्यतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रकोऽनिलः । तत्सङ्गोत्कर्पजं तेजस्तच्छान्तिश्चेत्यपां स्थितिः ॥ १

तमलीकमपि सत्यवत्स्थितम् । यतस्तदस्मन्मते संविदेव शून्यमित्यर्थः tt 90 ॥ आकाशादप्यणु । तत्र ह-ष्टान्तः । मेरोः रेणुः परमाणुर्यथा अणुस्तद्वत् ॥ ५१ तर्हि किमाकाशाद्य्यणुता तस्य धर्मा नेत्याह-किलेति । आ-काशादणुताख्यो धर्मः कुतः क वा प्रसिद्धो यत्किल तस्य ब्र-ह्मणो धर्मो नाम स्यात् अणुतोक्तर्राहं कोऽमिप्रायस्तमाह-का-रणेति । अन्यस्य जगतः स्थूल आकारो नोपपदाते ताहश-कारणाभावादिति वक्तं तस्य तथालोक्तिरिखर्थः ॥ ९२ ॥ न-निवदानीमिष्टकादेः पुरादिजन्मदर्शनाज्यगत एव जगजायतां न ब्रह्मणस्तत्राह्-सर्गादावेवेति । यः पुरादिः सर्गादावेव अजा-तः स जगतः कुतो जातः । किच खप्ने विनैत्रेष्टकादिभ्यः पुरा-दयो दृश्यन्ते । जामद्वेदनाकाशे यदेव पुरं तदेव नः सिद्धान्ते स्रप्नेऽपि पुरं तत्र च व्यभिचारः स्फुट इत्यर्थः ॥ ९३॥ एवं खप्रजाप्रदर्थयोभेदाभावे खप्रार्थानां चिष्योममेदाभावाजाप्रद-र्थानामपि तदमेदः सिद्ध इत्याशयेनाह-भेद इति ॥ ९४ ॥ उक्त अमेवे सन्दनपवनौ वाष्ट्राकाशौ च द्यान्तावित्याह-यदेवेति । व्योमोपमो व्योमाभिमः ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ सकृद्धि-भातमखण्डस्फुरणरूपम् ॥ ९७ ॥ एवंच चितो निष्प्रपञ्चता सिदेलाइ—तस्मादिति ॥ ९८ ॥ हे भन्न, त्वं विगतामयशु-द्वबोधरूपस्य तत्त्वस्य बोधेन तदेकतामुपगतः सन् नित्योदितो व्यवहरसपि तदभिनिवेशाभावान्निर्विकारो द्वित्वैक्याभ्यां पर-सरविरुद्धाभ्यां मुक्ता मतिर्यस्य तथाविधः सन् अन्तः उत्तम-शीतलो भूला निर्वाणो निरतिशयानन्दनिर्दृत आस्ख । यतस्ते विक्षेपहेतवो भावा न सन्तीखर्थः ॥ ९९ ॥ इति श्रीवासि-ष्टमहारामायणतास्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे व्यधि-क्षाततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

भूरेषां सङ्घः स्वप्नामे जगन्नाने क्रमस्त्वित । कथं नाम किलामूर्ताङ्ग्योस्नो मूर्तिः प्रवर्तते ॥ २ गत्वा सुदूरमप्येतज्ज्ञप्तेश्चेत्परिकल्प्यते ।

भाकाशादेहिं वाय्वादिभावोऽनुभवतो यथा। चित एव जगद्भावोऽनुभवादेव साध्यते॥ १॥

चिन्मात्रमेव जगदाकारेण खप्रवद्भातीति यदुक्तं तदेवातु-भवालम्बने प्रमाणतः पदार्थतस्वं जिज्ञासमानैः सर्वेराकाशा-दिकमसृष्टिकल्पनापरम्पराभिः सुदूरमपि गला अन्ततः शरणी-करणीयमिति वर्णयिष्यत्राकाशादीनां तैर्थिकप्रसिद्धां खरूपस्थि-तिमाह-आकाश इत्यादिना । तयोर्यः सङ्गोत्कर्षः संघर्षाति-शयस्तस्माजातं रूपतन्मात्रं तेजस्तस्य तेजसः शान्तिः औ-ण्यरौक्ष्यप्रशमनेन शैत्यद्रवलावलम्बनलक्षणं रसतन्मात्रमि-त्यपां स्वभावस्थितिरित्यर्थः ॥ १ ॥ भूस्तु एषां संहन्तीति संघो मेलने घनीमावहेतुर्गन्धतन्मात्रमिति चित एव स्वप्नामे जगद्भाने इयं क्रमस्थितिः । तत्रेदं पृच्छामः । अमूर्ताबोन्नः पृथिव्यन्ता मूर्तिः कथं प्रवर्तत इति । यदि कश्चिद्र्याद्वायुरेव प्रथममाकाशात्कियास्पर्शप्रधान उत्पद्यते सच रूपाभावात्किचि-दाकाशवत्सर्शिकयाशालिल। त्रिचिनमूर्तवद्पीति रूपतन्मात्रप्र-धानं मुतं तेजो जनयिष्यतीति । तम्र । निरवयवकूटस्थेनाका-शेन वायोरेवासिद्धेः । नश्चव्याप्रियमाणं निरवयवं व किचि-दारम्धं विकर्त वा शकोति । किंच यदि कृत्सं विकियेत तथा-काशाभावान्त्रिरवकाशा वाय्वादयः स्यः । यदार्थं ततोऽरुपं वा तह्यीकाशस्यापि सावयवलप्रसङ्गः । अस्तु सावयवमपीति चेत-देव स्परीविक्तयावच स्यादिति वाप्वादिजननवैयर्थं निरवका-शता च तस्य तदवयवानां च स्यात् । एवं वायोरिप नीरूपा-द्रपतन्मात्रीत्पत्तिरारम्भेण परिणामेन वा दुर्निस्पैव । कारण-गुणा हि कार्यगुणानारभन्ते । नच रूपं वायावस्ति । परिपा-केन हि परिणामः स्थात्र च विना तेजः परिपाकोऽस्ति । एव-मुलरभूतयोरप्युद्यमिति ॥ २ ॥ नन्वनुभववलादेव कृटस्थाद-

तदादावेव सत्यर्थं दोषोऽस्मिन्क इवामले ॥ इ
इतिरेवातिविमला स्यरूपात्मिन भाति यत् ।
तदेव जगिदत्युक्तं सत्यभित्येव सत्यतः ॥ ४
न क्रिक्टिसिन्त भूतानि पञ्च कुट्यादयो न वा ।
असम्यण्यनुभूतानि ननु स्वमदशास्त्रिव ॥ ५
स्वभाव पव विमलो यथा स्वमे पुरादिवत् ।
क्रबत्येवं जामतीदं जगद्वह्रस्तु तत्सुखम् ॥ ६
चेतनाकाश पवाहं तदेवेवं जगित्स्थतम् ।

इत्यहं जगदित्येकं खमेवैकं शिलाघनम्॥ ७ यदादिसर्गजननं यत्कल्पान्तिषिवर्तनम्। यद्वा भुयनसंस्थानं ति व्योम निराकृति॥ ८ सति घाऽसति वा देष्टे निर्दुःखसुखत्वमक्षयं मोक्षः। बुद्धेऽमले स्वभावे निर्भरविश्वान्तिरस्तु सर्वेह॥ ९

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० जगदसत्ताप्रतिपादनं नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥१०४॥

पश्चाधिकद्याततमः सर्गः १०५

वसिष्ठ उवाच ।
स्वभावं जगदाकारं चिद्धावोऽनुभवन्स्थतः ।
स्वतः स्वप्तमियानन्यमात्मनः करुपनामिधम् ॥ १
जाप्रत्सुयुप्तमेवेदं शिलाजठरमेव घा ।
आकाशमेष वा शून्यं जगत्वेन च नोज्झितम् ॥ २
स्वप्त प्रवात्र दृष्टान्तः पुरमण्डलमण्डितः ।
स्वप्ते जगन्न किंचित्सदित्थमाभाति भासुरम् ॥ ३
तैलोक्यमसदेवेदं यथा स्वप्तेऽघभासते ।
जाप्रत्यस्मित्त्येवेदं मनागप्यत्र नान्यथा ॥ ४
न जाप्रति नच स्वप्ते जगस्त्रद्रार्थसंभवः ।
स्वं वस्तुतस्तु चिद्योस्नो भानं बुद्धं जगस्त्या ॥ ५

प्याकाशाश्वलनात्मकं वायुं नीरूपाश्च वायो रूपवतेजो नीरसाश्च तस्माद्रसात्मकं वारि अगन्धाच तस्माद्रन्धवती पृथ्वीमुत्पन्नां कस्पयिष्यामः । अनुभवात्मिका इप्तिरेव भगवती नः सर्वै विरोधमुत्सार्ये यथानुभवमधीन्समधीयव्यतीति चेलत्राह-गरवेति । यदि सुदूरमपि गला इतिरेव शरणीकियते तर्हि सैव खप्रादाविव विवर्तमात्रेण सर्वं जगद्वेषं निर्वहिष्यतीति आदी ब्रह्मण्येव सर्वार्थस्वरूपे सति अमले सर्वदोषनिर्मुक्ते सिद्धान्ते को दोष इलार्थः ॥ ३ ॥ कोऽसी सिद्धान्तस्तमाह-क्रिपरेवेति । तदेव जगदिति सखतः परमार्थसखाधिष्ठानवस्रात् : 'सर्वे खिलवदं ब्रह्मे'त्यादि यथार्थवादिश्रुतिबलाच सत्यमित्येव सिद्धान्तरहस्यमुक्तमित्यर्थः ॥ ४॥ भूतभौतिकश्चन्यैव चिद्यतः खप्रे भूतभौतिकवरसर्वानुभवसिद्धेलाह-न क्वचिदिति ॥ ५ ॥ तद्वजाप्रलिप चित्खभाव एव जगद्वत्कचतीलाइ—खभाव इति ॥ ६॥ बस्तुतस्त स्विमत्येतद्विशदयति - चेतनाकाश इति ॥ ७ ॥ अस्त्वयं सर्ग एवमादिसर्गो ब्रह्माण्डान्तरादिसर्गः कल्पान्तविवर्तनं वा अन्यथापि स्यादिति शङ्कां निरस्यति-य-दिति ॥ ८ ॥ एवं सति जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तयोर्ने कश्चिद्विशेष इसाइ-सतीति । अमले खभावे बुद्धे सति यन्निर्दुः खधुक्तत्वं भूमानन्दरूपसमक्षयं स एव मोक्षः सच देहे सति वा असति बा समान एवेति तत्र सर्वा पूर्णा निर्भरविश्रान्तिस्तेऽस्त ताव-

चिद्ध्योम्ना स्वचमत्कारो ज्योमन्यद्यादिकपभृत्।
जगदित्येव बुद्धोऽन्तर्जाम्नत्स्वमे स्वयंभुषा ॥ ६
जगन्न किंचिदेवेदं चिद्ध्पं च न किंचन।
एते किंचिदिवाभातो नभश्चिज्ञगती मुष्या ॥ ७
आभातमेव त्रैलोक्यं यथा स्वमे न किंचन।
शून्यमेव भवेदेवमेवं जामित निर्वेषुः ॥ ८
स्वमे किल महाबुद्धे नानानिर्माणशालिन।
आरम्भा एव नारम्भा असत्सदिव चाततम् ॥ ९
अन्योमैयातिविततं ज्योमान्तपरिवर्जितम्।
न्योमैयाचलसंघातो नानापुरगणोत्करः॥ १०

तेव त्वं कृतार्थं इत्यर्थः ॥ ९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

चिदेवाभाति जाग्रह्रचिदेव स्वप्नवत्तथा । न जाग्रस्वप्नयोभेदः स्वभावेनेति वर्ण्यते ॥ १ ॥

उक्तं खप्रसाम्यं जगतः प्रपचितितुं पीठिकां रचयति—
स्वभाविमिति । चिद्भाविधत्स्वभाव आत्मा ॥ १ ॥ इदं
जाप्रज्ञगत्त्र्यंन नोज्ञितमेव सत् सुप्रप्तमज्ञानमेव मृद्धतः शिलाजठरमेवाधिष्ठानतः शुन्यं समेव सत् स्वप्त इत्ययः॥ २ ॥ स्वप्नोऽप्येतादश एवेति स एवात्र दृष्टान्त इत्याह—स्वप्त इति ॥ ३ ॥
तत्र तृतीयकल्पे स्वप्तसाम्यं स्कुटमित्याह—त्रेलोक्यमिति ॥४॥
दितीयकल्पेपि तत्साम्यं विवेकिनां सुगमित्याश्येनाह—नेति ॥५॥ प्रथमकल्पेऽपि तं दर्शयति—चिद्योग्नेति । स्वयमेव भवित अस्तीति स्वयंभुवा चिद्योन्ना तमोवृतात्मरूपे व्योमिन अद्यादिरूपमृत्स्वन्यत्वारस्तम एव जाप्रत्स्वप्रे जगदित्यम्तर्जुद्धः ॥६॥
पुनस्तृतीयकल्पमेव समर्थयति—जगदिति । भास्यजगतः शुन्यत्वे चितस्तद्भासकं रूपं च न किंचन । नभः अस्यन्तासती
एते चिज्ञगती प्राह्मप्राहकरूपे ब्रह्मणि सुषा भातः ॥ ७ ॥ तत्र
दृष्टाम्तं योजयति—आभातमेवेति । एवं जाप्रत्यपि आभातं
तैलोक्यमेवं निवेषुः शून्यमेव ॥ ८ ॥ ९ ॥ अव्योम ब्रह्मैव अ-

अप्यव्हाब्ध्यद्विनिर्घोषो मौनमेव यथा तथा। न भूणोत्येव पार्श्वस्थः संप्रवृध्यापि किंचन ॥ ११ प्रजायते वा जातोऽपि वन्ध्यायास्तनयो यथा ! जातोऽप्यजात प्वास्तं यथात्ममृतिविस्मृतौ सदसद्भवति क्षिप्रं भुवोऽननुभवो यथा । विपर्यस्पति सर्वे च रात्रिरेव यथा दिनम्॥ १३ असद्यत्संभवत्याद्य दिनमेव यथा निशा। असंभवः संभवति यथा स्वमृतिदर्शनम्॥ १४ असंभवः संभवति जगद्भानमिवाम्बरे। तमएव महालोको यः सनिद्रः सवासरः॥ १५ आलोक प्यति तमो यन्निद्वास्वप्रवासराः। वसुधैव भवेद्वयोम श्वभादिपतने यथा॥ १६ असंखद्भपमेवेति भाति स्वप्ने जगद्यथा। तथैव जाग्रदाभाति मनागप्यत्र नान्यता ॥ १७ यथा ही सहशी सूर्यी यथा ही सहशी नरी। जाप्रत्स्वप्री तथेवैती मनागप्यत्र नान्यता॥ १८

श्रीराम उवाच।

नैतदेवमपि स्निप्रात्प्रत्ययो यत्र बाधकः। स्वप्ने तद्दर्शनेनान्तः कथं जाप्रत्समं भवेत्॥ १९

तिविततं शून्यात्मकं व्योम प्रथमं संपन्नम् । व्योमैव च वाघ्वा-दिक्रमेणाचलसंघातो नानापुरगणोत्करश्च संपन्नमित्यभयभप्या-श्वर्यमित्यर्थः। अथवा अव्योम गिरिमहीपुरादि व्योम भवति एवं व्योमैबाचलसंघातादि भवतीति यथाश्रतं प्रतिज्ञापरम् ॥ १०॥ तत्रार्धं दृष्टान्तेन साधयति—अपीति । अब्दाश्च अब्धयश्च अ-इयश्व तेषां निर्धोषश्व खप्रे एकं सुप्तं प्रति प्रसिद्धोऽप्यपरं प्रति मीनं शुम्यमेव यथा तथा जाप्रदब्दादयोऽपीलर्थः। दृष्टान्ते मीनमेवेत्येतत्कृतस्तत्राह्—न श्रुणोत्येवेति । यतः पार्श्वस्थः अपरः सुप्तनरः संप्रबुध्यापि किंचन अब्दाब्ध्यादि तद्धोषं वा न श्रणोत्येव ॥ ११ ॥ द्वितीयमपि तथा साधयति—प्रजायत इति । अजातोऽपि वन्ध्यायास्तनयः खप्ने प्रजायते तथात्रापि बोध्यमिखर्थः । एवं मृला जातोऽपि पुरुष आत्मनः खस्य मृते-विंस्मती सलामजातोऽनुत्पन्न एवाहमिलास्ते यथा तथेल्थंः ॥ १२ ॥ ध्रप्तस्य स्तप्ते स्वशयनभुवोऽननुभवो यथा तत्सत्त्व-मापादयति तथेखर्थः ॥ १३ ॥ एवमन्येऽपि विपर्यासाः प्रसाध्या इत्याइ-असदित्यादिना ॥ १४ ॥ १५ ॥ यगस्मा-देतोः सप्ताहेतुर्वासरो यस्यां तथाविधा उल्कादीनां निव्रा हश्यते । खप्ने श्वश्नादिपतनेऽनुभूयमानं शयनवसुधेव श्वश्नव्योम भवेत्॥ १६॥ १७॥ द्वौ सूर्यौ पूर्वेद्यस्तनाद्यतनौ । अत्र अनयोः ॥ १८ ॥ वर्णितं जामत्खप्तयोः साम्यमाक्षिप्य वैषम्यं दर्शयन् रामः शङ्कते--नैतदिति । मनागप्यत्र नान्यतेति यत्वयोक्तमेतत्र । कुतः । यत्र यस्मिन्खप्ने क्षित्राज्यायमानो बाधको यो जामत्त्रखयस्तद्दर्शनेनान्तः स्वयमेव तस्याभासता-

बसिग्र उवाच। विहृत्य स्वप्नजगति स्वप्नबन्धजनैः समम्। मृतिमामोति तत्रासौ द्रष्टा स्वप्नस्य राघव॥ २० मृतः सन्स्वप्रजगति स्वप्रजन्तुवियोगवान्। इह प्रबुध्यते जन्तुर्निद्रामुक्तश्च कथ्यते ॥ २१ सुखदुःखद्शामोहान्दिनरात्रिविपर्ययान्। अनुभूय बहुन्द्रष्टा च्रियते स्वप्नसंस्ती ॥ २२ गतनिद्रतया पश्चान्निद्रान्त इह जायते। न सत्यमेतदित्येवं ततः प्रत्ययवान्भवेत् ॥ २३ स्वमद्रप्टा यथा स्वमसंसारे मृतिमाप्तवान्। अन्यं जाप्रनायं स्वप्नं द्रष्टुं भूयः प्रजायते ॥ २४ जाप्रहुए। तथा जाप्रत्संसारे मृतिमाप्तवान्। अन्यं जात्रनमयं स्वप्नं द्रष्टुं भूयः स जायते॥ २५ न स्वप्नमसदित्येवं पूर्वस्मिक्षाप्रदातमनि। पुनः प्रत्ययमाद्ते स्वप्तात्स्वप्नान्तरं गतः॥ २६ स जाप्रत्यत्ययं तत्र पुनर्गृहाति मुग्धधीः। स्वप्रसंदर्शनं त्वन्यसत्राप्यनुभवस्यथ ॥ २७ स्वप्तं जाग्रत्तया जाग्रत्स्वप्रत्वं चेति नामनि । न जायते न म्रियते जायते म्रियतेऽपि च॥ २८ स्वप्रद्रश स्वप्रमृतः प्रबुद्ध रह कथ्यते ।

नुभवात । अतः कथं जामलस्समं भवेदिखर्यः ॥ १९॥ नैतावता वैषम्यसिद्धिः मिन्नदेशस्य जामत्त्रस्ययस्य खाप्रप्रस्ययः बाधकलासिद्धेः । स्वप्नदेशे हि सनिद्रः स्वप्नदेहस्थो द्रष्टा स्वाप्न-बन्ध्वादीन्पर्यति । अपगतस्वप्नदेहो विनिद्रो जाप्रहेहस्यध स्वप्रदृष्टवन्ध्वाद्यसत्वं पश्यति । नच देशान्तरे देहान्तरदृष्टानां देहान्तरे देशान्तरे चान्यदर्शने तददर्शनं तद्वाधः । पूर्वजन्मय-न्ध्वादीनामिह जनमन्यदर्शनस्यापि तद्वाधलापतिरिति साम्या-नपायादित्याशयेन वसिष्ठः समाधत्ते—विहृत्येत्यादिसप्तभिः। मृतिं खप्रदेहापगमम् ॥ २०॥ जन्तुजीवः ॥ २१ ॥ भियते खाप्रदेहं जहाति ॥ २२ ॥ इहास्मिन्शयनदेशे जायते अनेन देहेन संबध्यते । ततस्तदनन्तरमेतत्स्वप्रदृष्टवन्ध्वादि न सत्य-मित्येवं प्रत्ययवान्भवेत् । सच प्रत्ययो न स्वाप्नार्थवाधनसमर्थ इति योतनाय । संभावनायां लिङ् ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जाप्रति मृला जाप्रदन्तरे जातः सन् । पूर्वस्मिन् जाप्रदात्मनि प्रपन्निन खप्रमसदित्येवं पुनः प्रत्ययं यथा आदत्ते तथा खप्रा-स्खप्नान्तरं गत उत्तरखप्ने जामत्त्रखयं पुनर्यक्वाति । तत उत्त-रखप्रे जाग्रतप्रत्ययो यथा मुग्धताप्रयुक्तसद्भृत्वजामति स्वप्न-लासलयोरप्रहणमपि मुग्धताप्रयुक्तमेयेति भावः ॥ २६॥ ॥ २०॥ अथ तत्रापि स्वप्ने स्वप्नसंदर्शनानन्तरमनुभवत्स्वप्नमेव जाप्रतया अनुभवतीति पूर्वेणान्वयः । एवंरीत्या जाप्रत्सप्रत्वं चेत्येवं नामनि अवस्थाद्वयेऽयं जीवः खतो न जायते न ब्रियते । तत्त्रेहाभिमानोपादानत्यागाभ्यां द्व जाय-ते म्रियतेऽपि च ॥ २८ ॥ तथान खप्रवश खप्ने मृतः सन्

इह जाप्रन्मृतो जन्तुः प्रबुद्धोऽन्यत्र कथ्यते ॥ स्वप्रात्स्वप्रस्थितौ जाप्रजाप्रतस्वप्रप्रदर्शनम्। मृत्यान्यत्र प्रबुद्धस्य जाप्रत्स्वप्तो भवत्यलम् ॥ इतिहासमयावेष जाग्रत्स्वप्रावुभावपि। परस्परं गतावेताबुपमानोपमेयताम् ॥ स्वप्नो जाम्रदिवाभाति जाम्रत्स्वप्नमिवोदितम्। वस्तुतस्तु इयमसिक्तत्वं कचति केवलम्॥ स्थावरं जंगमं चैघ भूतजातमशेषतः। चिन्मात्रव्यतिरेकेण किमन्यद्वपपद्यते ॥ मुन्मयं तु यथा भाण्डं मुच्छून्यं नोपलभ्यते। चिचमत्कारमात्रात्म तथा काष्ट्रोपलाद्यपि॥ घस्तुजातमिदं स्वप्ने जाष्रत्यपि तथैव नः। दृष्टो य उपलः स्वप्ने चिद्यमत्करणादते ॥ किमन्यत्संवद प्राप्त किलावइयं चिदेव सा। ननु यादग्वपुः स्वप्ने जाप्रसादगखण्डितम् ॥ जगजातमतः सर्चे चिन्मात्रं ब्रह्मखण्डितम्। जगजातमतः सर्वे चिन्मात्रं ब्रह्मकुद्दिमम्॥ मृन्मयं तु यथा भाण्डं मृष्क्कृन्यं नोपलभ्यते ।

चिन्मयं तु तथा चेत्यं चिच्छ्वन्यं नोपलभ्यते ॥ ३८ रीलात्मकं यथा भाण्डं रीलशून्यं न लभ्यते। चिन्मयं तु तथा चेत्यं चिच्छून्यं नोपलभ्यते॥ ३९ 30 द्रवरूपं यथा वारि द्रवरिक्तं न लभ्यते। चिन्मयं तु तथा चेत्यं चिन्छून्यं नोपलभ्यते ॥ ४० 38 ऊष्मरूपो यथा वहिनिंरूष्मा नोपलभ्यते। चिन्मयं तु तथा चेत्यं चिच्छन्यं नोपलभ्यते ॥ ४१ यथा स्पन्दमयो वायुरस्पन्दो नोपलभ्यते । ३३ विन्मयं तु तथा चेत्यं चिच्छून्यं नोपलम्यते ॥ ४२ यद्यनमयं तद्विना तु तत्कथं किल लभ्यते। काशून्यं लभ्यते ब्योम काघना लभ्यते मही॥ ४३ चिक्योममयमेवेदं यथा घटपटादिकम्। स्वप्ने तथेदं शैलादि चिद्योमाभासमात्रकम्॥ ४४ स्वप्न यथा गगनमेव पुराचलादि संविन्मयं सुभग जाप्रति तहदेव। स्वमोऽथ जामदिति शान्तमनन्तमेकं चिन्मात्रमत्र नजु नाम विनास्तु बादः ४५ इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वाणप्रकरणे उ० जामत्खप्रैक्यप्रतिपादनं नाम पश्चोत्तरशततमः सर्गः ॥१०५॥

षडिकशाततमः सर्गः १०६

३६

३७

श्रीराम उवाच। कीटशं स्याबिदाकाशं तद्रक्षन्त्रहा यत्परम्। भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रुण्यतो नास्ति मेऽसृतम्॥ १

इह जागरे प्रबुद्धः कथ्यते, इह जापति मृतस्तु अन्यत्र खप्ने प्रशुद्धः कथ्यत इति तयोः साम्यमेवेल्यर्थः॥ २९॥ एवंच खप्रात्खप्रान्तरस्थितौ द्वितीयं खप्ररूपमेव पूर्वापेक्षया व-र्तमानलात्प्रकृष्टं दर्शनं जामद्भवति । एवं जामति मृला अन्यत्र खप्ने जाप्रदन्तरे वा प्रबुद्धस्य पुंसः पूर्वजाप्रत्खप्न एवालमवश्यं भवति ॥ ३० ॥ इतिहासः कीर्त्यमानपूर्ववृत्तकथार्थस्तन्मयौ तत्सदृशावेव न यथार्थाविति हेतोः परस्परमुपमानीपमेयतां गतावित्यर्थः । इतिहासमयौ इति दीर्घपाठे तु इति इह असमं विषमं यात इत्यसमयौ, किंचिद्विलक्षणावपीत्यर्थः । 'इतीहा-सन्मयी' इति पाठः साधुः ॥ ३१॥ किंच वर्तमानदशायां खन प्रोऽपि जाप्रदिव प्रत्यक्षमाभाति । अतीतं तु जाप्रदपि प्रसिद्ध-सप्रमिव उदितम् ॥ ३२ ॥ 'चित्सं कचति केवलांमे'त्युक्तिमु-पपादयति—स्थानरमित्यादिना ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ चित्रमत्कर-णाहते अन्यत् कि स्यात् । हे प्राज्ञ, अस्मिन्नर्थे विद्वद्भिः सह युक्त्या संवद संवादेनावधार्य । विचारीत्पन्नतस्वदर्शने सा प्रसिद्धा चिदेव स्वाप्नोपल इति परेणान्वयः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ चिन्मात्रं ब्रह्मेव जगदाकारेण खण्डितं विभक्तमध्यारीपे। अपवादे तु जगत्सर्वे ब्रह्मकृष्टिमं जातमित्यर्थः ॥ ३० ॥ चि-

वसिष्ठ उवाच । समयोर्यमयोभ्रीत्रोव्यवहाराय नामनी। यहत्कियेते हे तहज्जात्रत्स्वप्रशिलामये ॥

धातिरेकेण जगदनुपलम्भादपि चिन्मात्रलमेवेलाह्-मृन्मय-मित्यादिना ॥ ३८ ॥ शिलाया अवयवः शैलस्तदारमकम्॥३९॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ स्पन्दमयः स्पन्दस्वभावः ॥ ४२ ॥ अधना अमूर्ता ॥ ४३ ॥ तथा इदं जाप्रच्छैलाखपि ॥ ४४ ॥ उक्त-मेव स्फुटयश्रुपसंहरति स्थप्ने इति । खप्ने प्रसिद्धं पुराचछादि यथा संविन्मयं गगनमेव हे सुभग, जात्रति प्रसिद्धं पुराचला-द्यपि तद्वदेव संविन्मयं गगनमेव । एवंच खप्रोऽथ जाप्रदिति विकल्पनशान्तमेकं चिन्मात्रमेव परिश्रिष्टम् । अत्र ईदशे तस्वे वादिनां विषयं विना तृथा विवाद इत्यर्थः ॥ ४५ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्त-रार्धे पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

रुक्षणीविश्विदाकाशमिव भूयः प्रदृश्येते । तदेव जगदित्येतदपि भूयः प्रपद्धयते ॥ ३ ॥

प्रपश्चितेन जगतः खप्रसाम्येन यादशचिदाकाशमात्रं तरन मिति प्रतिपत्तव्यं तरखरूपं प्राक् शतशो निरूपितमपि मन्द-मतिभिः कैश्वित्सम्यङ्गावधारितं स्यादिति संभावनया तदनुक-म्पया पुनस्तस्यैव खरूपतटस्थलक्षणमेदैः सम्यग्न्युत्पाद्नं श्रोतु-कामो रामः प्रच्छति—कीरशमिति ॥१॥ प्रष्टं वर्णयिष्यन्यसिष्ठः

बस्तुतस्त्वनयोभेदो न द्वयोः पयसोरिय। ह्यमप्येकमेवैतिश्वनमात्रं व्योम निर्मलम्॥ देशादेशास्तरं दूरं प्राप्तायाः संविदो वपुः। निमिषेणव तन्मध्ये चिदाकादां तदुच्यते॥ याददास्तिष्ठतः स्वच्छं रसमाकर्षतस्तरोः। भवेद्धावो नभःस्वच्छस्तादृशं चित्रभः स्मृतम् ॥ ५ विनिवृत्ताखिलेच्छस्य पुंसः संशान्तचेतसः । याददाः स्यात्सभो भावस्ताददां चिश्रभः स्मृतम् ६ अनागतायां निद्रायां मनोविषयसंक्षये। पुंसः स्वस्थस्य यो भावः स चिदाकाश उच्यते ७ दृणगुरमलतादीनां वृद्धिमागच्छतामृतौ । यः स्यादुन्ममतो भाषः स चिदाकारा उच्यते॥ ८ रूपालोकमनस्कारविमुक्तस्यामृतस्य यः । भावः पुंसः दारद्व्योमविदादस्तविदम्बरम्॥ यदेतदासनं सृष्टं काष्ठपाषाणभूभृताम्। चेतनानां च सत्तात्म चिदाकाद्याः स उच्यते ॥ १० द्रष्ट्वर्शनस्र्यानां त्रयाणामुद्यो यतः। यत्रं वास्तमयश्चित्त्वं तद्विद्धि विगतामयम्॥ ११ यत उद्यन्ति यस्मिश्च चित्राः परिणमन्त्यलम् । पदार्थानुभवाः सर्वे चिदाकाद्यः स उच्यते ॥ १२ यस्मिन्सर्वे यतः सर्वे यः सर्वे सर्वेतश्च यः। यश्च सर्वमयो नित्यं स चिदाकाश उच्यते ॥ १३ दिवि भूमी वहिश्चान्तस्तथान्यस्य समाभिधः।

प्रस्तुतं जात्रत्स्वप्रसाम्यमेव तद्वर्णनपीठिकात्वेनानुवदति---समयोरिति । यमयोर्थमलजातयोनीमनी यहुद्धे मिने कियेते तद्वजाप्रत्स्वप्ररूक्षणाखण्डचित्स्फटिकविरुमये तत्प्रतिविम्बप्राये सद्दे प्रपद्मद्वये द्वे नामनी कियेते इत्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ तस्य विद्योश्रो छक्षणं प्रागुक्तमेव स्मारयन्प्रथममाह-दंशादिति । मध्ये यित्रविषयं संविदो वपुः प्रसिद्धं तदित्यर्थः॥ ४॥ मूलेन भीमं रसं जलमाकषतत्त्वरोः 'पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठ-ती'ति श्रुतिप्रसिद्धो यादशो वृद्धिहासशून्य आहादभावः प्रसिद्ध-स्ताहशमित्यर्थः ॥ ५ ॥ समः सर्ववैषम्यश्रूत्यो भावः सहजसुख-खरूपानुभवः । निविक्षेपदशायामहं सुखं तिष्ठामीति सर्वानुभ-बात् ॥ ६ ॥ अनागतायामिति । यथाहुः 'निद्रादी जागर-स्यान्ते यो भाव उपजायते । तं भावं धारयन्योगी न दुःखै-रभिभूयते ॥' इति ॥ ७ ॥ ऋतौ प्राष्ट्रिष शरदि वा । उ-न्मुक्ता ममता यसिस्तथाविधो य आनन्दभावः ॥ ८ ॥ अ-मृतस्य जीवतः पुंसः ॥ ९ ॥ आसनं निष्क्रियमवस्थानं धात्रा सभावतया सर्थं तदेव चेतनानां जीवानां सत्तारम स्थितिस्वरूपं चेत्स्यात्तदा स निदाकाश उच्यते । तच मनोनाशे सत्येव सिद्धातीति भावः ॥ १० ॥ यतो यस्मात्य्रप्रप्तिसाक्षिणः स्वप्र-जागरयोर्द्रष्ट्रादित्रिपुट्या उदयो यस्मिन्नेव चास्तमयः ॥ १.१ ॥ विश्वित्राः सर्वे पदार्थानुभवा यत उद्यान्त उदयं प्राप्नवन्ति

यो विभात्यवभासातमा चिदाकादाः स उच्यते १४ यसिक्षित्ये तते तन्तौ दृढे स्त्रगिव तिष्ठति । सदसदुत्थितं विश्वं विश्वाङ्गे तश्विदम्बरम् ॥ १५ यसात्सर्वाः प्रसुयन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः। यसिश्चैव प्रलीयन्ते यन्मयास्त्रश्चिद्मबरम्॥ १६ निद्रायां विनिवृत्तायां यतो विश्वं प्रवर्तते । निवर्तते च यच्छान्ती तिश्चदम्बरमुच्यते ॥ १७ यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगत्सत्तालयोदयी । स्यानुभूत्यात्मकं स्वान्तः स्थितं तद्विद्धि **चिन्नभः १८** नेदं नेदं तदित्येवं सर्वं निर्णीय सर्वथा। यत्र किंचित्सदा सर्वे तिश्रद्योमेति कथ्यते॥ देशाहेशान्तरप्राप्ती यन्मध्ये संविदो वपुः। दुरतोऽर्धनिमेषेण तिश्वन्मात्रवषुः स्मृतम्॥ २० विश्वं तन्मयमेवेदं यथा भूतं यथा स्थितम्। क्रपालोकमनस्कारेयुंक्तमप्येवमी<mark>दशम्</mark> ॥ २१ ईषदुन्मेषणादेतदन्यतामिव गच्छति। अनन्यरूपमपि सम्बिद्योम विमलाकृति॥ **२२** पद्यन्नेवेन्द्रियेरर्थान्नुनं निर्वासनादायः । प्रवुद्ध प्रवेकघनः सुषुनावस्थितो भव ॥ २३ निर्वासनः शान्तमना वद वज पिबाहर। पाषाण इव संजीवो नित्यं सुघनमौनवान्॥ २४ इदं न संभवत्येव हदयं पदयसि यत्पुरः। मृगतृष्णाजलमिव द्वैतमिन्दाविवोदितम्॥ २५

यस्मिश्व आलोचनविमर्शनाध्यवसायहानोपादानादिभावेनोत्तरो-त्तरं परिणमन्ति ॥ १२ ॥ द्वी श्लोकी प्राग्व्याख्याती ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ विश्वाते यस्पिष्ठरियतं सन्मूर्तमसदमूर्तं च विश्वं तन्तौ स्रगिव तिष्ठति तत् ॥ १५ ॥ 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इति श्रुत्युक्तं तटस्थलक्षणमाह--यस्मादिति ॥१६॥ युष्तिप्रस्यस्थायां निदायां विनिश्तायां सत्यां यतो यसा-हप्रतीचो विश्लेपशक्तिवशालाप्रत्स्वप्रलक्षणं वियदादिलक्षणं च विश्वं प्रवर्तते आविभेवति । यस्य शान्ती विक्षेपशक्तिशान्ती च निवर्तते ॥ ५७ ॥ उन्मेषथरमसाक्षात्कारवृत्तावाविर्भावस्तेन जगत्सत्ताया लयः । निमेषः खरूपावरणं तेन च उदयः १८॥ एवं सर्वनिषेधावधि सर्वातमलमपि तह्नक्षणमिखाह-नेदमिति। सदा सर्वमपि यत्र किंचित्॥ १९॥ अर्धनिमेषेण अविल-म्बेन देशान्तरप्राप्ती । यिलम्बे हि बृत्तिविच्छेदाद्विषयान्तरा-नुप्रवेशाद्वा न शुद्धचिदम्बरं परिचेतुं शक्यमिति । उपक्रमोक्तस्य पुनः कीर्तनमुपसंहारद्योतनार्थम् ॥ २० ॥ उक्षणान्युका तद-द्वैतसिद्धये विश्वस्य तन्मयतामाह—विश्वमित्यादिना ॥ २१ ॥ तर्हि क्यं प्रख्यावस्थातः सर्गावस्थाया भेदविभावनं तत्राह-ईषदिति ॥ २२ ॥ सेयमन्यताश्रान्तिवीसनावशादेवेति न निर्वासनस्येत्याह--पर्यश्रेवेति ॥ २३ ॥ २४ ॥ अन्यतामि-विति इवकारेणान्यताया मिथ्यालमुक्तं तत्कृत इति चेदसंभवा-

इदमादावनुत्पन्नं कारणाभावतः किल । कारजेन बिना कार्यं न हि नामोपपद्यते ॥ यद्वोपपद्यते किंचित्तद्कारणकोद्भवम् । यथास्थितं परं रूपमुद्धतमिय लक्ष्यते ॥ 3.3 तद्यधास्थितमेवाङ्ग पूर्वरूपमवस्थितम्। भवत्यद्वयमेषाच्छं द्वयेनाप्युपलक्षितम्॥ 26 तन्नेदंप्रत्ययः प्रौढो भवत्यनुभवो हि यः। समायातमिदं भ्रान्तं तत्स्वप्रस्त्रीसमं विदुः॥ २९ तसाइदयं न चोत्पन्नं नैवास्ति न भविष्यति । नच नइयति यन्नास्ति तस्य किं नाम नइयति॥३० तत्तदेव परं शान्तं चिद्योमैय तथा स्थितम्। स्वरूपादच्युतं स्वस्थं सीम्यं जगदिवोदितम् ॥ ३१ नहीद्मग्रे यहुष्टं दृश्यं तत्स्तत्कद्वान्यन । न चापि द्रष्टा दृष्टार्थाभावे क द्रष्ट्रता किल् ॥ 32 श्रीराम उवाच । एवं चेत्तह्रद् ब्रह्मन्द्रपृहर्यावभासनम्। किमिदं कथमाभाति भूयोऽपि वदतांवर॥ 33 वितष्ट उवाच। असद्रुपस्य दृश्यस्य कारणाभावतः सदा । हृद्यतासेखपि प्राहिनिर्देशसात्यसंभवात्॥ રેઇ

यदिदं भासते किंचिद्रपृद्यसमात्मकम्।

देवेलाह—इदमिति ॥ २५ ॥ २६ ॥ यदा किनिद्वीजादङ्क-रादि अन्वयव्यतिरेकदर्शनादुपपद्यते तद्प्यकारणकादद्वयाद्रह्मण एवोद्भवो यस्य तथाविधम् । ननु निर्विकारात्तस्मात्कथमङ्करा-द्मद्भवस्तत्राह—यथास्थितमिति ॥ २०॥ यथा अद्वयमपि चन्द्रबिम्बभ्रान्तौ द्वयेनाष्युपछक्षिनं नद्वदिति भावः ॥ २८॥ तदेव चेत्कथमन्यथाप्रहत्वं तत्राह्—तत्रेति ॥ २९ ॥ माया-मात्रत्वे कि सिद्धं तदाह—तस्मादिति ॥ ३०॥ सद्विश्वं परं शान्तं चिद्योमेव तथा विश्ववेषेण स्थितम् । कि परिणामेन नेखाह—खरुपादिति ॥ ३३ ॥ कुतो न परिणामेनेति चेत्त-त्समसत्ताकलाभावादित्याह-नहीति । अतएव तक्रवृतापि न परिणामः । दृश्यनिरूप्यया तत्समलादित्याह--नचेति ॥ ३२ ॥ यदि द्रष्टृद्रये अत्यन्तासती तर्हि तयोः कथमवभा-सनम् . अखन्तासतो भानादशेनादिति रामः शक्कते-एवं चेदिति । तत्त्रागुक्तमपि भूयोपि वद । हे वदतांवर ॥ ३३ ॥ तत्रासतो भानासंभवं प्रथमक्षोकंनाभ्युपेला अतएव सतः पर-मात्मन एव मायया तथा भानमित्युत्तरं द्वितीयेनाह-असद्गु-पस्येति । कारणाभावतः असद्भारयोत्पत्तेरेवासंभवादस्य दश्य-तापीति प्रीव्या निर्देशः प्रीविवादस्तस्य अत्यसंभवात्मुतराम-संभवादिलार्थः ॥ ३४ ॥ अतएवेदं द्रष्टृदश्यं न असतो रूपं किंतु परमार्थसती ब्रह्मण इत्याह—यदिदामति ॥ ३५॥ परमात्मन एवेदं रूपमिति कथं ज्ञातमिति चेत्स्वप्रनिद्शेना-दिखाइ—सप्ने इति ॥ ३६॥ सप्तसाम्यमस्य कृत इति

जगदादि परं रूपं निद्धिति परमात्मनः॥ 34 स्वप्ने चिन्मात्र एवास्ते यथा गगनकाननम्। तथा जगत्तया भाति स्वयं चिन्मात्रमान्मनि ॥ ३६ इहादिसर्गात्त्रभृति नास्त्युपादानकारणम् । किंचनापि कचि रपि भातीत्थं ब्रह्म केवलम् ॥ ३७ यश्चिदाकाशकचनं स्वयमात्मनि ज्ञम्भते। तदिवं भाति तस्येच जगदित्युद्दितं वषुः॥ 34 यथा भावस्य भावत्वं यथा शुन्यस्य शून्यता । आकारिणो यथाकारस्तथा चिन्नभसो जगत् ॥ ३९. इदं विद्धि चिदाभासं परमार्थघनं घनम् । इत्थं स्थितं स्वयं भातं द्रपुददयदगात्मकम् ॥ वस्तुतस्तु द्वयाभावाद्यानासि न च भासनम्। किमपीदमनिर्देश्यं सद्घाऽसद्वेति वेन्ति कः॥ श्रीराम उवाच ।

एवं चेत्तद्वद् ब्रह्मन्कार्यकारणतादिकः। कथं मेदः किमायातः कथं सत्यत्वमागतः॥ ४२ वसिष्ठ उवाच।

चित्प्रकाशो यथा भानं यदा भावयति स्वयम् । स्वात्मा तथा तदेवाशु पश्यमीत्यसि दृष्टवान् ॥ ४३ चिद्योमैवायमाकारः स्वे व्योद्धेव न मुह्यति । स्वयमेव यथा स्वमं कोऽस्य पर्यनुयोगहृत्॥ ४४

चेत्सर्वकारणकलापश्चन्यमुर्शाप्तसदशात्प्रलयादुः द्वृतलादिखाश-येनाह—इहेति ॥ ३७ ॥ चिदाकाशकचनाधीनकचनलादपि खप्नसाम्यमिलाशयेनाइ—यदिति ॥ ३८ ॥ निर्धर्मकस्य चित्रमसः वर्षं जगद्धमंकतेति चेन्मायिकविकल्पवशादेवेति द्यान्तैरपपादयन्नाह—यथेति । आकारिणो मृर्तस्य ॥ ३९ ॥ धनं रीन्धवधनवदेकरसं परमार्थधनमेव मायायां चिदाभासं इत्थं त्रिपुटीमूय स्थितं विद्धि ॥ ४० ॥ मायास्यागे तु द्वयाभावात्सद्वा अराद्वेति को चेति वाधितस्य विमर्शायोग्यला-दिति भावः ॥ ४१ ॥ एवं 'नाभासि नच भासनम्' इति ल-दुक्तरीत्या द्रष्ट्रस्योभयशस्यं चेत्परमार्थतस्यं तर्दि कार्यकारण-तादिको मेदः कथम् । नहाद्रशृकः कथित्सेद्भुमईति कस्मादुपादा-नानिभित्ताद्वा आयातः । यद्यसल एवेति नृषे तर्हि कथं सत्य-लमागतः सर्वजनानां सल्यत्वेन कथं भातीलर्थः ॥४२ ॥ तत्र प्रथमप्रश्नस्योत्तरगाइ--चित्प्रकाश इति । वस्तुतः स्वात्मापि चित्रकाश ईश्वरः खयं यदा यथाभानं यथाप्राणि कामकर्मवा-सनोद्वीचं यदाया सत्यसंकल्पतया भावयति तत्तदा लं तथेवाशु पश्यिस लदात्मना च स एव इति प्रायुक्त द्रष्टहर्यभावमनुभू-तवान् । तेनास्य सिद्धिरित्यर्थः ॥ ४३ ॥ द्वितीयस्योत्तरमाह-चिद्योमैवेति । अयं कार्यकारणभावाद्याकारश्रिद्योनैव यथा घटो मृदेवेति चिद्योमैवोपादानं मोह एवास्य निमित्तम् । कथिमिदं **इायते । यतोऽयं खे व्यो**ड्यंब परिज्ञाते न **मुखति** अन्यथा द्व मुद्यत्येव । यथा खप्ने खयभेव मुद्यति खात्मप्रबोधादेव मोहं भाषान्ताचान्तरप्राप्ती मध्ये यत्संविदी वपुः। तिबद्योम तरेवेदं सर्व चे स्थिति नेतरत्॥ છુહ कार्यकारणभावादिस्हो विद्याविज्ञिभकाः। जगद्रत्कलपयत्येष कोऽस्य पर्यन्योगकृत्॥ 38 द्वष्टा भोकाथ कर्ता वा कश्चित्सादितरो यदि । तत्कथं किमिदं रहयमिति युज्येत नान्यथा ॥ 80 यत्र स्वप्ने निराभासं चिद्योमेव विराजते। श्चामकमनेकात्म तत्र किं क विकल्प्यते ॥ आस्वयंभ्रव एवेयं चिग्मात्रे भाति सर्गभाः। परिकाता सती सा तु ब्रह्मैच भवति क्षणात्॥ ४९ प्रवेच स्वपरिज्ञाता भ्रान्तिमीयेति कथ्यते । जगित्युच्यते विद्या दृश्यमित्युपवर्ण्यते ॥ 40 बिदाकाराप्रकारीन चित्ता दृदयपिशाचकः। वेतालो बालकेनेच बुद्धोऽसन्नेच सन्निच ॥ जगत्तात्मन्यसत्यापि चिद्योक्षेवानुभूयते। सत्येव साङ्गलेखेव स्वप्नेऽद्विपुरता यथा॥ ५२ अहमद्भिरहं रुद्रः समुद्रोऽहमहं विराद्र। चेराते से चितेवेति स्वप्नेऽद्विपुरता यथा॥ ५३

जहाति तहत्। नतु स्वात्मवोधे समर्थ ईश्वरः स्वयमेव जीवो भूला किमर्थ मुह्मति कुतो वा न प्रबुध्यते तत्राह—कोऽस्येति। सतन्त्रसेश्वरस्य किमर्थं जीवो भूला मुहासीति पर्यनुयोगमाक्षेपं करोतीति पर्यनुयोगकृत्को वा स्यान्न कश्चिदित्यर्थः ॥ ४४ ॥ तृतीयस्योत्तरमाइ-भावादिति । दुग्धभावाइधिभावप्राप्तौ पि-ण्डभाबाद्धरभावप्राप्तौ पूर्वभावनिवृत्तावत्तरभावानुपजने च मध्ये क्षणमात्रं सन्मात्रकपं प्रसिद्धं तत्परमार्थसत्याः संविदो वपुः ख-इपं तदेव विद्योग गया प्रागुक्तं तदेवेदं सर्व च स्थिति वस्तु विभाष्यत इति सर्वे सत्यत्वमागतमित्यर्थः ॥४५॥ ईश्वरस्य जी-वभावकरपनायामिव जीवस्य खाविदाया कार्यकारणरूपावस्थात्र-यकल्पनायामपि न पर्यनुयोगो युक्त इत्याह--कार्यकारणेति । निह खारमानं प्रति कश्चित्किमधेमेवं करोमीति पर्यनुयोगं कर्तुं समर्थं इति भावः ॥ ४६ ॥ आत्मान्यस्य कर्तृत्वे भोक्तृत्वे वा सादेव पर्यनुयोग इत्याह—इप्टेति । इति पर्यनुयोगो युज्ये-त ॥ ४७ ॥ विकल्प्यते पर्यनुयुज्यते ॥ ४८ ॥ ख्यंभुवः आ स्वयं भवमिन्याप्येव सर्गभाः सर्गभान्तिभीति तत्त्वापरिष्ठाना-दिखर्यः ॥ ४९ ॥ एषा सर्गञ्रान्तिरेव तत्त्वतः अपरिद्वाता मायेति शाक्षेषु कथ्यते छोके जगदित्युच्यते अहेरवियेत्युच्यते हिन्दे कि भिर्देश्य मिर्युपदार्थते ॥ ५० ॥ स्त्रीया चित्ता चितस्त भावः प्रधगसमेव सन्निव दश्यपिशाचको बुद्धः ॥ ५१ ॥ असतो निरवयवस्यापि सन् सावयव इत्यतुभवः स्वप्नवदत्रोप-

आकारि कारणाभावाज्ञातं कार्यं न किंचन। महाप्रलयचिद्योच्चि चितिस्थतेत्थमिदन्तया॥ अकारणकमेवेदं ब्योम ब्योच्चानुभूयते। जगदित्येव शुन्याङ्गं चिन्मात्रात्म चिदात्मित ॥ ५५ सर्वे एव जड़ा जीर्णा दर्पणा इव जन्तवः। समीपगत पवान्तः कुवैतस्तु विचारणम् ॥ 48 तत्तत्त्वरूपमृत्युज्य बुद्धा चिन्मात्रखं जगत्। अइमना चेतनेनैव स्थेयं नास्थेतरोत्तमा ॥ यथास्ते चलयहेहं वार्यावर्तजगहवः। चेततीति तथा चिखं स्थिता चित्तज्ञगहुशा ॥ ५८ यथा कल्पद्रमोऽभीष्टं कुर्याचिन्तामणिर्यथा। तथा यद्भावितं स्वान्तस्तत्पूरयति चित्क्षणात् ५९ चितिश्चिन्तामणिरिय कल्पद्रम इवेप्सितम्। आद्य संपादयत्यन्तरात्मनात्मनि खात्मिका ॥ ६० देशाहेशान्तरप्राप्ती मध्यदेशे चितेर्वपुः। यत्तन्मयमिवं दृश्यं कुतो हैतेक्यविभ्रमः॥ ६१ चिच्छायैवं कचत्यच्छमनन्ता भास्तरोदरा। अङ्गरिकापि दृश्यान्तःशून्यता नीलतेव खे॥ ६२

पादनीय इत्याह-जगत्तेति । साम्रहेखा सावयवे च ॥ ५२ ॥ तत्राह्न्ताध्यासेनानुभवं प्रपश्चयति-अहमिति । अदिर्मेरुहि-मनदादिः ॥ ५३ ॥ चिदनुभव एव सर्ग इति किमर्थ वर्ण्यते प्रधानपरमाण्वादिकारणान्तरादेवायं जात इति कृतो न वर्ण्यते तत्राह---आकारीति ॥ ५४ ॥ शून्याकं निरवयवम् ॥ ५५ ॥ सर्वएव जन्तवो दर्पणा इव खान्तःपरिकल्पितजगद्धेदा अपि विचाराभावात्स्वरूपदर्शनासामध्यीज्ञडाः सन्तो द्रया जीणीः । विचारणं क्वर्वतः पुरुषधौरेयस्य तु परमपुरुषार्थोऽन्तःप्रत्यगातम्-रूपलात्समीपगत एवेखर्यः ॥ ५६ ॥ विचारेण खरूपं बुद्धा कथं स्थेयं तत्राह—तत्तरिति । तत्तन्नामरूपखरूपमुत्सुज्य प-रिशिष्टं चिन्मात्रं खमेवेति जगहुद्धा चेतनेन चिदेकघनेनाइम-नेव अचलेन स्थेयं, इतरा मायिकी देहाबास्था नोसमा॥५०॥ चित्कर्षं जगदात्मना स्थिता तत्राह-यथेति । यथा वारि खदे-हं चलयरसत् आवर्तादि जगहवी भूला आस्ते तथा चिदपि चेततीति व्यापाररूपं चित्त्वं खात्मनि परिकल्प्य स्थिता सती तत्कर्म जगहुशा आस्ते ॥ ५८ ॥ यत्र अल्पशक्तीनां कल्पह्रमा-दीनामपि संकल्पितार्थकल्पनसामर्थ्यं तुत्र सर्वशक्तेः परमात्मन-स्तरिकं वाच्यमित्याशयेनाह—यथेति ॥ ५९ ॥ ६० ॥ स्नात्म-केल्येतद्विषयाक्षणेनोपपादयञ्जगतस्तनमयसमाह-देशादिति ॥ ६१ ॥ चितरछाया कान्तिरेव जगद्वेषेण कचति । अन्नैरब-

१ 'अत्र सर्व बस्तिवित नेतरत्' इति पाठौ युक्तः.

२ भास्तरोदया इति पाठः.

विसद्दशकार्यातुभवो न भवति सहकारिकारणाभावात्।

सर्गादायत आद्या विदेव दृश्यं यथा स्वप्ने ॥

६३

इसार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो॰ निर्वा॰ उत्तरार्षे कार्यकारणनिरासो नाम षडिशकशततमः सर्गः॥ १०६॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः १०७

विषष्ठ उवाच ।
अचेखिनमयं विश्वं विष्वगाभाति चिन्नभः ।
अत्र चिच्नेतनं चेदं चेखमण्येवमात्मकम् ॥ १
अतो जीवन्नपि मृत इव सर्वोऽवितष्ठते ।
असावहं च त्वं चेति जीवन्तोऽपि मृता इव ॥ २
काष्ठमौनमृता एव व्यवहारगता अपि ।
खगमा एव वा सर्वे भावाः स्थावरजंगमाः ॥ ३
आकाशकाचकष्यास्म यिदं किंचिदाततम् ।
न किंचिदेव तिब्रिद्ध किंचिद्योचि कृतो भवेत् ॥ ४
केशोण्ड्रकनदीवाहधूमालीमोक्तिकादिवत् ।
यत्वं कचित तत्रास्ति नानुभूतेऽपि वस्तुता ॥ ५
तथैवासिजगन्नाचि चिद्योचि कचने चिते ।
अनुभूतेऽपि निःशून्ये कास्थास्थाभावकम्भ कः ॥ ६
चिद्वालकष्यनाजाले शून्यात्मनि निर्यंके ।
अवस्तभते पृथ्यादौ भ्रान्तिमान्नाम्बरोदये ॥ ७

यवै रिका श्र्न्यापि ॥ ६२ ॥ विस्तरेण व्यवस्थापितमर्थं संप्र-हेणोपसंहरति—विसहरोति । सर्गादी चितो विसहरां जडं य-स्कार्यं तस्यानुभव उद्भवो न संभवति । वैसाहरये निमित्तभूतानां सहकारिकारणानामभावात् । सुसहरो तु भेदकाभावात्कार्येला-सिद्धिरित्याशयः । अतः आदा चिदंवेदं दृश्यं न तद्यतिरिक्तम-णुमात्रमप्यस्तीति स्वप्रदृष्टान्तेन सिद्धमित्यर्थः ॥६३॥ इति श्री-वासिष्ठ० तात्यर्पप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे ४० वद्यविकशस्तसमः सर्गः ॥ १०६॥

द्दोपपाचते चेत्यपृथ्यादीनामवस्तुता । विन्मणेरेव कचनं स्वमवजगवित्यपि ॥ १ ॥

विश्वस्य चेलभावमपलप्य चिन्मात्रभावं परिशेषियंतुं प्रतिजानीते—अचेलेति । यत्श्वित्रभ एव विष्वगाभाति । तथाच
विश्वमोमात्राधीनसिद्धिकलादिखनुमानं दर्शितम्। अत्र चेतयतीति चित् चेतनं किया चेलं चेति त्रिपुटी चिन्मगीति प्रतिहार्थं
इलाइ—अतेति। अत्रास्यां प्रतिहायामेवमात्मकं धुद्धचिदात्मकं
प्रतिहार्थंखेनाभिप्रेतमिति शेषः॥ १॥ शतिहासिद्धेः फलद्वयम्।
स्थितस्येव जगतो जगद्भावनिवृत्तिर्जावतामेवास्माकं जीवभावनिवृत्तिखेखाइ—अत इति ॥ २॥ सर्वभावानां कौटस्थ्यामूर्ततासिद्धिवां तत्फकनिखाइ—काष्ट्रति । काष्ट्रमीनमाखन्तिकिनकिवतालक्षणं कौटस्थं त्रताः प्राप्ताः खे गमनं गमः
आखान्तिकामूर्तभावप्राप्तिर्येषाम् ॥ ३॥ नभोनेस्यादिवद्भा-

किमास्या बालका ब्रुत ममेदमहमित्यलम्। आ शातं रमते वालसंकल्पे बाल एव च॥ पृथ्याद्यसिद्धचारैर्वा व्यर्थ यास्यति जीवितम्। किंचिय न बास्यति भोराकाशक्षालनोद्यतः॥ सहकार्यादिपूर्वाणां कारणानामभावतः। यदादावेव नोत्पन्नं तन्नामाध भवेत्कुतः॥ १० अजातेनासतार्थेन खेन व्यवहरन्ति ये। मुढा मृतमजातं वा तनयं पालयन्ति ते॥ 88 कुतः पृथ्वादयः केन के नाम कथम्रियताः। चिद्योमेत्थमिवं शान्तं प्रकचत्यात्मनात्मनि॥ कार्यकारणकाळादिकस्पनाकुळचेतसाम्। पवं पृथ्यादयः सन्ति तैर्बाहैरलमस्तु नः॥ अपृथ्वादि जगन्नाम सपृथ्वादि च खात्मकम्। कचतीत्थं नभोरूपं स्वप्नादिष्विव चिन्मणिः॥

समानस्याप्यसम्वावधारणं वा तत्फलं विद्धीत्याह—आकाशेति । कानकच्यं काचवत्कचवन्नैस्यम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ तथाच नभोमौ-क्तिकालिष्विव जगति भोगास्था न युक्तेस्यपि फलितमि-त्याह--तथैवेति । आस्थाया भावक उत्पादकश्व कः पदा-र्थोऽस्ति ॥ ६ ॥ ७ ॥ यद्यास्था अनुचितैव तर्हि को हेतुर्यज्ज-नास्तत्रास्थां कुर्वन्ति तत्राह-अा ज्ञातमिति । हेतुस्परणेऽय-माकारो निपातः । क्वातं स्मृतम् । तेषां बाल्यमेव तदास्थाहेतु-रिति स्मृतमिखर्थः ॥ ८ ॥ अत एवेषत्संजातविवेकैः पृथ्या-दीनामसतां लाभादिहेतुं व्यर्थजन्मनाशकरं विचारं त्यक्ला जन्मसार्थक्यापादकं वैराग्यादिसाधनजातमवलम्बनीयमिखा-शयेनाह-पृथ्वादीति । यथा खर्णरत्नादिलोमेच्छया प्रवृत्त-सदाकरस्थानक्षालनं विहाय आकाशक्षालनोद्यतथेनमहतापि श्रमेण न किंचिष फलं ज्ञास्यति द्रक्ष्यति तद्वदिखर्यः ॥ ९ ॥ प्रथ्यादीनामसत्त्वं त अकारणलादजातलादिना प्राक्साधि-तमिलाह-सहकारीति ॥ १० ॥ अतएव व्यवहारेऽमिनि-विष्टता विदुषां हास्यास्पदमित्याह-अजातेनेति ॥ ११ ॥ तत्वदृष्टी पृथ्वादीनामत्यन्तासंभवमनुभवमवलम्ब्याद्--कुत इति ॥ १२ ॥ मूढदष्टिस्तु नास्माकं प्रमाणमित्याइ-कार्येति ॥ १३ ॥ एवंच प्रतिकार्थः सिद्ध इत्याह—अपृथ्व्यादीति । नामेति प्रसिद्धम् । साप्तमपृथ्यादिजगन्नाप्रत्पसिद्धं स पृथ्या-विजगबेत्यभयमपि खात्मकं चिदाकाशात्मकम्। किं तर्हि

१५

अङ्गं यदेतस्य चिदम्बरस्य निराकृति स्वातुभवातुमानम् ।

तदेतदामाति महीतलादि रूपेण वेधेति छतामिधानम्॥

इस्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० नि० उत्तरार्धे अविद्याभावप्रतिपादनं नाम सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकदाततमः सर्गः १०८

श्रीराम उवाच ।
अविद्या दृश्यक्रपेयं कचन्ती यस्य विद्यते ।
चिन्नभःस्वप्रनगरी दृश्यमानापि श्रूत्यकम् ॥ १
तस्यात्रस्य कियरकालं किंक्पा स्यास्किमारिमका ।
कियती सा च वेरयेवं मुने मे कथ्यतां पुनः ॥ २
वसिष्ठ उवाच ।

अविद्या विद्यते येषामझानां भूतलादिका।
तेषामस्यां ब्रह्मणीव नास्त्यन्तोऽत्र कथां श्रृणु ॥ ३
सदद्यां जगतोऽस्यास्ति कचिद्म्यरकोणके।
कस्मिश्चित्रजगर्तिकचिद्नयेव व्यवस्थया॥ ४
अस्ति कश्चिद्धवो भागो भूषणं तत्र भूस्थितेः।
पुरी ततमितिनोद्मा सुव्यक्तकलनाऽवनौ॥ ५

जगदिति कवति तदाह—कचतीति ॥ १४ ॥ खानुभव एवानुस्तं मानं यत्र तथाविधं यदेतस्य चिदम्बरस्य निराकृति
निराकारमः शरीरम् । खरूपमिति यावत् । तदेतदेव महीतळादिरूपेण वेद्यहर्य इति प्रातिपदिकरूपं कृतमभिधानं येन
तथाविधं सदा भाति प्रथते न वस्त्वन्तरमवस्तु वेत्यर्थः ॥१५॥
इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे
उत्तरार्धे सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ १०७॥

अनष्टायामविद्यायां जगदन्तो न कर्हिचित् । अत्रार्थे विस्तराचित्रमविद्यास्यानमीर्यते ॥ १ ॥ तस्मिन्विपश्चित्रदेते चतुर्विश्चविपश्चितः । इह द्विपःसमुःथानोदम्तश्चस्तमुष्यते ॥ २ ॥

वर्णितायाः संस्तिरूपाया अविद्यायास्तरवज्ञानेन त्रैकालिकासत्वापित्तस्यणं वाधं विनापि देशतः कालतो वा अन्तः संभवित नवेति संदिहानो रामः पृच्छिति—अविद्येति । इयं चिन्नभः
स्वप्ननगरी विद्यमानापि ग्रन्यभूताहरयरूपा अविद्या यस्य पुंसः
अवाधात्कचन्ती विद्यते तस्याहस्य सा कियत्कालं स्यात् किरूपा
स्यात्कमात्मिका च स्यात् देशतश्च कियती वा स्यादित्येवं पुनर्मे
स्वया कथ्यतामिति द्वयोरन्वयः ॥ १ ॥ २ ॥ तत्र संशयद्वितीयकोटि परिगृत्व वसिष्ठस्तत्प्रतिष्ठापनाय प्रथमं विपश्चित्कथां श्राववितुं राममवधापयति—अविद्यति । ब्रह्मणि यथा देशतः कालतो
वा अन्तो नास्ति तद्वदस्यामपि नास्ति । अत्रास्मिन्नचे उपपादिकां
वक्त्यमाणकथां श्वण्वस्यद्याः ॥ ३ ॥ तामेव प्रस्तौति—सहशमिति । लोकालोककल्यौतिचिलाप्रायं कस्मिश्चद्वस्तुनि स्थिते
चिद्मवरस्य कोणके तत्रापि कचित्प्रदेशे अस्य जगतक्रैलोक्रमस्य सदशं किचित्रजगदनयैवैत्रजगरप्रसिद्धमा भुवनद्वीपदेश-

तत्रासीत्पार्थिवः कश्चिद्विपश्चिदिति विश्वतः। यः सभायां सुसभ्यायां विपश्चिस्वाद्विराजते ॥ ६ राजहंस इवाक्षिन्यामृक्षचक इवोद्धराट । सुमेवरिव रीलीचे यः समायामराजत॥ निवर्तते यतोऽशक्तया वचनं गुणवर्णनात्। कवीनामचलाकारा भवेद्धा भूघरो यथा॥ 4 प्रातःप्रातर्विकसितात्सर्वाशामासनोद्यतात्। यतः प्रतापजनितश्रीरुदेत्यम्बुजादिव ॥ 9 स ब्रह्मण्यमतिर्मानी विह्नमेवाधिवैवतम्। अपूजयत्समं भक्तया देवं वेक्ति सा नेतरम्॥ १० समत्स्यमकरञ्यूहा गजवाजिगणान्विताः। आवर्तचक्रव्युहोस्याः कहोलबलमालिताः॥ ११

कालादिव्यवस्थया मर्यादया अस्ति ॥ ४ ॥ तत्र जम्बूद्वीपस्था-णाया भूस्थितेभूषणभूतः कथिद्भवो भागोऽस्ति । तत्रापि गिरि-वप्रवालकादिकृतवैषम्याभावात्ररगजतुरगरथादीनां स्रव्यका सं-चारादिव्यवहारकलना यस्यां संभवति तथाविधायामवनौ सम-भूमी नाम्ना ततमितिरिति प्रसिद्धा पुरी अस्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ तत्र तस्यां पुर्यो शोभनाः सभ्या यस्यां तथाविधायां सभायां विपिधत्वात्सर्वशास्त्रेषु विद्वत्त्वाद्विराजते ॥ ६ ॥ वैभवसौन्दर्यादिनापि तस्य तत्र विराजमानतामाहः राजहंस इति । अब्जिन्यामब्जवलां सरस्याम् । ऋक्षचके नक्षत्रगणे उद्धराद चन्द्र इव ॥ ७ ॥ सर्वत्रोत्तरोत्तरगुणोत्कर्षवर्णने प्रकृतं कवीनां वचनं यतो यस्माद्विपश्चितोऽवधेः सकाशाद्वणानन्त्येन निरुपमत्वेन च वर्णनाशस्या वर्णनाश्चिवर्तते तथापि कवयस्त भजन्त एव । यतो यस्माद्विपश्चितः सकाशात्कवीनामचलाकारा स्थिरा संपरस्यातिगुणोत्कर्षप्रयुक्ता भा शोभा भवेत्। स हि भू-धरो मेरुर्यथा स्वाश्रितनरमृगतृणगुरुमादीन्खभासा खणीकरोति ताहश इत्यर्थः ॥ ८ ॥ श्रीः संपत् । अम्युजपक्षे प्रतापादातपा-व्यनिता श्रीः शोभा ॥ ९ ॥ ब्रह्मण्या बाह्मणहिता मतिर्यस्य अतएव देवेषु वहेर्बाद्वाणलाद्वहिमेवाधिदैवतं देवेषु अपूजयत् । तथाचाप्रयुपस्थाने मन्त्रः 'लं देवेषु ब्राह्मणोऽस्पहं मनुष्येषु ब्रा-द्माणो हि ब्राह्मणमुपधावत्युप खा धावामीति । तद्दिमनैव देवेषु ब्रह्माभवत्' इति वाजसनेयके ॥ १० ॥ अस्य मिन्नषु मध्ये अकम्पना थीरा बाहुबलेन चाधिका अकम्पनेन निर्भयेन बलेन सैन्येन वाधिकाबलारी मिल्रिणबलारः सस्सागरा इव चतस्य दिश्च परचकनिरोधेन देशमर्यादापाळने युक्ता नियुक्ता इति द्वयोरन्दयः । तत्र सागराः समस्यमकरम्यूहाः मन्त्रिणस्य

मर्यादापालने युक्ता अकम्पनबलाधिकाः। मुज्जिष्यप्यस्य चत्वारो दिश्च सत्सागरा इव ॥ १२ तैरहोषककुण्वक्रनामिराभासितावनिः। आसीत्सूदर्जयो जेता स सुद्रानचक्रवत्॥ १३ तमेकदा यया पूर्वदिख्युखाचतुरश्चरः। स उचाच रहो रंहोगतिघोराक्षरं वचः॥ १४ देवदोर्हुमविश्रान्तधरागोबन्धनाच्युत । भूयतां मन्मुखात्पश्चाद्यथाप्राप्तं विधीयताम् ॥ १५ पूर्वदिश्वस्तामन्तो ज्वरेणास्तमुपागतः। मन्ये जेतं यमं यातस्त्वयारम्धो जितारिणा ॥ १६ तिसन्समन्ततो जेतुं दक्षिणापथनायकः। पूर्वापराभ्यामाक्रम्य बलाभ्यामरिणा इतः॥ १७ तस्मिन्मृते समागम्य याषद्वारुणदिक्पतिः। बलेनायाति ककुभी ते समादातुमाहतः॥ १८ पूर्वदेशनुपैः सार्धे दक्षिणापथपार्थिवैः। १९ तावदेवारिमिरसावर्धमार्गे रणे हतः॥ वसिष्ठ उवाच। अथासिन्कथयत्येषं त्वरार्तमपरश्चरः। उपप्रवो जडोत्पीड इव हर्म्य विवेश ह ॥ चर उवाच। उत्तराद्याबलाध्यक्षो देवारिमिरुपद्वतः। इत आयाति सबलो भन्नसेत्वम्बुपूरवत्॥ २१ वसिष्ठ उचाच । इति श्रुत्वा महीपालः कालक्षेपमवास्तवम्।

गजवाजिगणान्विताः । समुद्रा आवतंन्यूहात्या मन्त्रिणश्रक्य्यू-हाट्याः। समुद्राः कल्लोलमालिताः । मन्त्रिणो बलमालिताः ॥११॥ समुद्राः अकम्पनानां पर्वतानां बल्डेनायिकाः॥१२॥ तैर्मिश्रिमिः स राजा अशेषाणां ककुप्बकाणां दिककाणां नामिरिन आधा-रभूतः सन् सुदर्शनचक्रवत्युदुर्जयः शत्रुभिरपरिभवनीयः स्वयं जेता च आसीत् ॥ १३ ॥ चरधारः भाययौ । रंहः कालस्य इव दुनिवारलाद्धोराण्यक्षराणि गस्मिन् ॥ १४ ॥ दोईमयो-विभाग्तेन घरागोबन्धनेन अच्युत अविच्युत । सरैव भूस्त्रह्य-जाबष्टकोति यावत् । अत्राच्युतपदक्षेवाद्विष्णुलारोपोऽपि ग-म्यते ॥ १५॥ पूर्वदिश्चुके लया मर्यादापासनाय नियुक्तो यः सामन्तः प्रागुक्तमञ्जी स ज्वरेणास्तंमरणमुपागतः । तत्रोत्प्रे-क्षते-मन्ये इति । जितारिणा लया दिग्विजयाय आरब्धः उपक्रम्य नियुक्तः स दक्षिणदिक्पतिं यमं जेतुं यात इति मन्ये ॥ १६ ॥ तस्मिन्मृते सति दक्षिणापथनायकस्खत्सामन्तः सम-न्ततः पूर्वी विक्षणां च दिशं जेतं प्रशृतः सोऽप्यरिणा पूर्वापराभ्यां बळाभ्यामाकम्य इतः ॥ १७ ॥ तस्मिन्मृते सति वारुणदिशः पतिस्ते सामन्तो याबद्वछेन समागम्यते पूर्वदक्षिणे ककुभी दिशौ समादातुमादतः सन्नामाति तावदेव अरिभिः पूर्वदेशनृपैः सार्ध

मन्यमान उवाचेवं निर्गच्छन्वरमन्दिरात्॥ राज्ञः सम्रह्म सामन्तानानीयन्तां च मित्रणः। उद्घाट्यन्तां हेतिशाला दीयन्तां घोरहेतयः॥ २३ श्लेष्यन्तां कंकटा देहेष्यागच्छन्तु पदातयः। गण्यन्तामाञ्ज सैन्यानि क्रियन्तां वरकल्पनाः कल्यन्तां च बळाध्यक्षाः प्रेष्यन्ताममितश्चराः। वसिष्ठ उवाच। वदत्येवं त्वरायुक्तं संरम्भवति राजनि ॥ र्५ प्रतिहार उवाचेदं प्रविद्याकुलमानतः। प्रतीहार उवाच । उत्तराशावलाध्यक्षो देव द्वार्यवतिष्ठति। काङ्कत्यद्वामिवार्कस्य देवदेवस्य द्रानम् ॥ **२६** राजोबाच । गच्छाविलम्बितं ताबदेनमेष प्रवेशय । जानीमः किं दिगन्तेषु वृत्तं वृत्तान्तसंश्रवात् वसिष्ठ उवाच। इत्युक्त उत्तरादोदां प्रतिहारप्रवेशितम्। प्रणामपरमग्रेऽसी राजाऽपश्यद्वलाधिपम्॥ २८ शतविशतसर्वाङ्गमङ्गमङ्गेषु संततम्। श्वासाकुलं घमद्रकं धैर्येणाबलनिर्जितम् ॥ રৎ स प्रणम्य त्वरायुक्तमुवाचेदमुपक्रमम्। संस्तभ्याङ्गव्यथामाशु संततोच्छ्वासमुच्छ्वसन्॥ ३० बलाध्यक्ष उवाच। देव त्रयोऽपि दिक्पाला बलेन बहुना सह।

॥ १८ ॥ १९ ॥ अपरश्वरस्वरया आर्त पीडितं यथा स्यात्तथा हर्स्य विवेश ह किल। उपहवे प्रलये प्रसिद्धो जडोत्पीडो जल-प्रवाह इव ॥ २० ॥ हे देव ॥ २१ ॥ वस्तूनां वास्तूनां चाहि-तमवास्तवं मन्यमानः सन् वरमन्दिराभिर्गच्छन्नेव उवाच । संनिहितान्पुरुषान्त्रतीत्यर्थः ॥ २२ ॥ किमुवाच । राहस्तया सामन्तान्मित्रणश्च सन्नता युद्धसन्नाहयुक्तानकृत्वा सर्वेऽप्यानी-यन्ताम् । स्यबन्तिक्रयाकर्मणोऽनमिहितलात्पक्त्वीदनं शुज्यत इतिविद्वितीया । पक्त्वौदनो भुज्यत इति प्रयोगे लभिहिते प्रधा-नकियाकर्मणि प्रथमेव। क्लान्तिकयायां लार्थिकोऽन्वयो न शा-ब्दः। हेतीनामायुधानां शालाः कोशगृहा उद्घाट्यन्ताम् ॥२३॥ नरकल्पनाः भटश्रेष्ठसमर्थनाः ॥ २४ ॥ २५ ॥ देवदेवस्य रा-जाधिराजस्य तव ॥ २६ ॥ वृत्तान्तस्य संश्रवात्सम्यक्श्रवणात् दिगन्तेषु किंदुसमिति जानीमो ज्ञास्यामः ॥ २७ ॥ इति राज्ञा उक्ते सति प्रतिहारप्रवेशितमुत्तराशेशममे प्रणामपरं राजा अ-पर्यत् ॥ २८ ॥ अङ्गमङ्गं प्रत्यङ्गं इषुभिः संततम् । अवलमत एव निर्जितम् । धैर्येणेति पदस्योत्तरत्र संबन्धः ॥ २९ ॥ स धेर्येण अङ्गव्यथां संस्तभ्य प्रणम्य अयं वश्यमाण ज्यानको ग्रस्थिसहिटमपक्सं वाक्यमुवाच ॥ ३० ॥ त्रयोऽपि

त्यदाइयेव निर्जेतुं यमं यमपुरं गताः॥ ३१ तदेशपाल्नाधर्थमशक्तं मामिमं ततः। अनुद्रवन्तो बहवो भूपाः प्राप्ता बलादिह ॥ ३२ महत्परबलं प्राप्तमिवं देवस्य मण्डलम् । विधीयतां तथा प्राप्तं न देवस्यास्ति दुर्जयम् ॥ ३३ षसिष्ठ उवाच। अथ तस्मिन्यदृत्येषमार्तिमत्याजिविक्षते । सद्दसैवाभ्युवाचेदं प्रविदय पुरुषोऽपरः॥ 38 पुरुषा मण्डलस्यास्य विपुला दललीलया । स्थितान्यरिबलान्युचैश्चतुर्दिकं नरेश्वर ॥ 34 कचनकगदाप्रासकुन्तकाननकान्तिभिः। घलिता नोऽरिभिर्भूमिर्लीकालोकतदैरिव ॥ 38 पताकायुघयोधङ्गाश्चलत्परिकराकुलाः । विसरन्ति रथास्तत्र प्रोड्डीनत्रिपुरौघवत्॥ 30 करानुषामयन्तः खे मांसवृक्षवनोपमाः। बृंहन्ति वारणव्युहा वर्षावारिदवृन्दवत्॥ 36 नतोषतानि कुर्वन्तः स्पन्देनोर्वानतोष्ठतैः। हेषन्ते हयसंघाता वातस्पन्दमहाध्यिवत्॥ ३९ रसन्ति तुरगापूराः फेनिलावर्तपातिनः। सर्वतो वलयाकारा लवणार्णववारिवत्॥ go

आकाशकान्तिसम्नाहैर्दिशं प्रति बलं बलम् । उदेखलघुकहोकैः प्रलयार्णवपूरवत्॥ 88 शरास्त्रशसमाहमुकुटाभरणत्विषः। कचिन्त त्वत्प्रतापाग्नेज्वीला इव तद्भुगाः॥ ४२ समत्स्यमकरब्यूहाः सचक्रावर्तवृत्तयः । उचन्ति सैन्यसंघद्दैः कल्लोला जलघेरिय ॥ 83 परस्परपरामशीत्कुन्ताद्यायुधपङ्कयः। कोपादियोप्रदुंकारैज्वेलन्ति विरटन्ति स्। 88 इति कर्तुमहं देव विक्रिंस स्वामिनेरितः। तसान्मण्डलसीमान्तगुरमाधुद्धाय गच्छता॥ तमहं देव गच्छामि शक्यपृष्टिशरसंगतः। मयेहाबेदितं सर्वे देवो जानात्यतः परम् ॥ 86 वसिष्ट उद्याच। इत्युक्त्वाथ प्रणामं च स कृत्वा त्वरया ययौ। कृत्वा गुलुगुलाराषं शान्तो वीचिरिवाम्बुघेः॥४७ संभ्रान्तमिन्नपूर्योधनियोगिनाग-नारीरथाश्वपरिचारकनागरीघम्। राशो गृहं स्वभयतोलितहेतिसार्थ

चण्डानिलाकुलमहावनतुस्यमासीत् ४८

नवाधिकशततमः सर्गः १०९

इत्यार्षे श्रीवा०वा०दे०मो०नि०उ०अविद्योपाख्यानान्तर्गतविपश्चिदुपा०अविद्याक्षेपणे पार्थिवसंरम्भवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमः सर्गः

वितष्ठ उवाच । षतसिक्षन्तरे सर्वे मित्रणो मृपमायगुः ।

प्राधुकास्ते दिक्पालाः सामन्ता यमपुरं गताः । मृता **इ**ति बाबत् । लदाइया यमं निर्जेतुमिवेत्युत्प्रेक्षा ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ प्राप्तं परवलं तथा तन्निर्जितासम्द्रस्ववुर्दशाप्राप्तं विधीयताम् ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे नरेश्वर, अस्य मण्डलस्य पुरुषा दलानामश्रस्यादिपणीनां प्रसिद्धया कम्पलीलया विपुला विस्तीर्णाः संपन्नाः । चतुर्दिक्रमरियलान्युचैः स्थितानि ॥ ३५ ॥ मः भूमिररिभिर्वलिता वेष्टिता ॥ ३६ ॥ पताका आयुधानि योदारश्वाक्ते येषाम् ॥ ३७ ॥ करान्शुण्डाप्राणि । वर्षासु प्रसि-द्धवारिदवृत्दवत् बृंहन्ति गर्जन्ति ॥ ३८॥ सम्देन गति-क्रमेण उर्वानतोन्नतैः सदशानि नतोनतानि कुर्वन्तः । वातेन सन्दन्त इति वातसन्दैर्महाव्धिभिस्तुल्यं हेवन्ते ॥ ३९ ॥ रसन्ति ध्वनन्ति । फेनिलाश्व ते आवर्तवत्पातिनो अमन्त इति यावत् ॥४०॥ आकाशवत्खच्छकान्तिभिः कवचशस्त्रादि-संनाहै रुपलक्षितं बलं दिशंदिशं प्रति उदेति । वीप्साव्यलास-रछान्दसः ॥ ४९ ॥ तेषां बलानामञ्जगाः शराखशस्त्रादिलिष-स्लत्प्रतापाभेज्वीला इव कचन्ति ॥ ४२ ॥ मत्स्यमकराद्या-कारैर्ब्युद्दैः सहिताः । उद्घिपक्षे सष्टम् । कल्लोला वृहत्तरज्ञाः

मुनयो वासवमिव दैत्याकान्तनमोभुवम्॥

सैन्यप्रसरमेदाश्च ॥ ४३ ॥ उप्रेर्डुकारे प्रुंकारप्रायेक्षणरकारैः ॥ ४४ ॥ खामिना लत्सामन्तेन लत्समीपे ईरितः प्रेषितः ॥ ४५ ॥ तं प्रेषयितारमहं शत्त्रपृष्टिशरैः संगतः संनदः सन् गच्छामि । तथ्ययवचनं सर्वमिह लत्युरो मया आवेदितं विद्यापितम् । अतः परं यत्कर्तव्यं तद्देवो जानाति नाहमिखर्थः ॥ ४६ ॥ ४० ॥ संभ्रान्ता मिश्रणो नृपा योधा नियोगिनो राजनियोगानुष्ठातारो नागा गणा नायों रथा अभाः परिचारकाः परिचर्याकारिणो नागरौधा यस्मन् । खभयेन तोळिता उद्यता हेतयो यैक्षणविभाः सार्था जन्तुसंधा यत्र । 'अळह-वेतिसार्थम्' इति पाठे अळय इव हता उपहता हेतिसार्था हित्सम्हा यस्मिक्षणविधं राहो गृहं चण्डानिळाइकेन महान्वनेन तुल्यं तुळनाईमखन्तव्याकुळमासीदिल्यः ॥ ४८ ॥ इति श्रीवासिक्षमहारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टोसरकातत्समः सर्गः ॥ १०८ ॥

इह मिस्रवनः श्रुत्वा हुतदेहस्य पावकात्। राज्ञश्रुतिर्भेदेहेर्वानसमुत्यानसुदीर्वते ॥ १ ॥ दैस्रेराकान्ते नभथ भृथेसेते यस्य । नमसि भवतीतिः

मिष्रण ऊच्चः। देव निर्णीतमसाभियीवन्न विषयोऽरयः। त्रयाणामप्युपायानां दण्डस्तेषु विधीयताम्॥ २ प्रणयोऽनुप्रवेदाो या न कदाचन यः कृतः। अधुना तेषु तं देव कुर्यात्तेषु कथेव का ॥ 3 पापा म्हेच्छा धनाढ्याश्च नानादेश्याः सुसंहताः बहुवो लब्धरन्ध्राश्च सामादेनीस्पर्व द्विषः॥ तत्सुसाइसमेवेदं वर्जयित्वा प्रतिक्रिया। नान्यास्ति शीघ्रमेवातो रणोद्योगो विधीयताम् ॥ ५ वीराणां दीयतामाका पूज्यन्तामिष्टदेवताः। आह्रयन्तां च सामन्ता हन्यतां रणदुन्द्भिः॥ Ę सब्रह्मन्तामदोषेण निर्गच्छन्तु रणे भटाः। कियन्तां कालकम्पाभ्रमेदुराराजिता दिशः॥ 6 आस्फाल्यन्तां धर्नुष्युषेः क्रणन्तु गुणपङ्कयः। भवन्तु जलद्दयामाः ककुभः खण्डमण्डलैः॥ स्फुरक्कयाविद्युतः शूरवारिदा घनगर्जिताः। नाराचधारा मुञ्जन्त कचत्कोदण्डकुण्डलाः॥ 9 राजोबाच ।

गम्यतां सङ्गरायाशु संविधानं विधीयताम्। सात्वाहं पूजियताम् १० इत्युक्तवा नृपतिः स्नातो महारम्भोऽपि सक्षणात्। प्रावृषिय नवोद्यानं गङ्गाजलधरैर्घटैः॥ ११ अथ प्रविद्योऽग्निगृहं पूजियत्वा हुताशनम्।

नभोभूः स्वर्गलोको यस्य तथाविधं वासवं मुनय इव ॥ १ ॥ यावदिति साकल्ये । विचार्य सकलं निर्णातमित्यर्थः । किं नि-णीतम् । अरयक्षयाणामप्युपायानां सामदानमेदानां विषयो न ॥ २ ॥ प्रणयो दानमानादिना स्नेहः । अनुप्रवेशः खपक्षी-बाणामेव केषांचिच्छरणागतिच्छलेन फाकोल्डकम्यायेन तद्वधा-यान्तः प्रवेशः । तेषु शत्रुषु तेषु ताहशेषु यशोहरेषूपायेषु कर्तव्य-ताकथैव का ॥ ३ ॥ किंचिद्विश्वासाईषु अनाव्येषु सामदानो-पायप्रवृत्तिरेते त न ताहशा इलाह--पापा इति । म्लेच्छाः प्रस्यन्तदेशवासिनः । छन्धरन्धा ज्ञातास्मन्छिदाः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ भटाः समग्रान्ताम् । ततो रणे निर्गच्छन्तु । दिशः अर्थाद्वअघटामिः कालवर्णैः कल्पाश्चेरिव राजिताः कियन्ताम् ॥ ७ ॥ गुणपङ्कयो मौर्वाश्रेणयः । खण्डमण्डलेरर्धमण्डलसदशै-भेनुभि: ॥ ८ ॥ चनं गार्जितं ।सिंहनादो येषां तथाविधाः श्रर-बारिदा नाराचछक्षणा जलधारा मुखन्तु । कचन्ति कोदण्डकु-ण्डलानि येषाम् ॥ ९ ॥ संविधानं नगरगुप्तिय्यूहरचनादि ॥ १० ॥ प्रावृषि नवोद्यानमिव क्षणात्कातः । महारम्भोऽपी-स्पनेनावर्यकान्यप्यन्यानि कार्याणि त्यक्तवेति गम्यते॥ ११॥ विन्तयामास वक्ष्यमाणार्थमित्यर्थः ॥ १२ ॥ समुद्रितं शास-नसुद्रासहितम् ॥ १३ ॥ दशापि ककुभो दिशः करादिफल-अरेण कता इव निमताः कृताः ॥ १४ ॥ प्रजाचित्तस्थले- आदरेण यथाशास्त्रं चिन्तयामास भूमिपः॥ १२ नीतमाय्रनायासविलासविभवश्रिया। प्रजाभ्यो दत्तमभयमासमुद्रसमुद्रितम्॥ १३ आक्रान्तवसुधापीठाः पादपीठे कृता द्विषः। लताः फलभरेणेच नमिताः ककुभो द्दा ॥ १ध प्रजाचित्तेन्द्रविम्बेषु लिखितं धवलं यशः। भूमावारोपिता कीर्तिलता त्रिपथगामिनी ॥ १५ कोशवद्धरिता रक्षेः सुद्धन्मित्रार्यवन्धवः। निपीतोऽर्णवतीरेषु नालिकेररसासवः॥ १६ द्विपामाकम्पिता भेकगलाङ्गत्वगिवासवः। मच्छासनाङ्किता जाता द्वीपान्तरकुलाचलाः १७ विद्वतं सिद्धसेनासु दिगन्तनवभूमिषु । भूम्यन्तभूभृतां मुर्भि विश्वान्तं मेघलीलया ॥ १८ धियेवोचाः पदे ज्ञानपूर्णयेकान्तशीलया । विलम्धान्यविनष्टानि राष्ट्रानीष्टार्थकारिणा ॥ १९ रक्षांस्यप्यविनीतानि बद्धानि निगडैर्घनैः। धर्मार्थकामैरन्योन्यं चयापचयवर्जितैः॥ २० अम्बर्ण्डितेमेयानीतं पीतातियशसा वयः । इदानीं राष्पविश्रान्तप्रालेयभरभासुरम् ॥ २१ आगतं वार्धकं सर्वभोगसंरम्भमार्जनम् । तस्योपर्यरयो रीद्रा बळवन्तो रणपिणः ॥ २२ संभूय सर्वतः प्राप्ताः संदिग्धो वर्तते जयः। तरिहैवानलायासै देवाय जयदायिने ॥ २३

ष्विन्दुविम्बेषु लिखितं विन्यस्तम् । पृरितमिति यावत् । यशसः कलासाम्यमनुक्तमपि गम्यते । बीर्तिलतालक्षणा त्रिपथगा-मिनी गङ्गा । त्रिपथगामिनीति रूपणादर्कार्तिलताया अध्वीधो-लोकयोरपि वृद्धा प्रतानव्याप्तिर्गम्यते ॥ १५ ॥ आर्थाः पूज्या बाह्मणाः । अर्णवतीरेष्वित्युक्तया चतुःसमुद्रान्तं दिग्विषयो गम्यते ॥ १६ ॥ द्विषां असवः प्राणाः मेकानां रटनकाले गललक्षणे अङ्गे प्रसिद्धा लगिव आकम्पिताः ॥ १७ ॥ दि-गन्ते प्रसिद्धासु नवाखपूर्वासु काद्यनादिभूमिषु । भूम्यन्तभू-भूतां लोकालोकान्तानां प्रसन्तदेशराजानां च ॥ १८ ॥ दष्टा-न्तान्तरमाह - धियेवेति । यथा ज्ञानपूर्णया घिया एकान्तस-माधिशीलया उचैःपदे ब्रह्मणि विश्रान्तं तद्भत् प्रजानामिष्टार्थ-कारिणा मया राष्ट्राण्यविनष्टानि विष्टद्धानि लब्धानि ॥ १९ ॥ अविनीतान्यविनययुक्तानि लङ्कादिनिलयानि रक्षांस्यपि घनैर्नि-गडैर्वद्वानि ॥ २०॥ अन्योन्यमखण्डितैः चयेन उपचयेन अपचयेन च वर्जितैः । समसंचितैरिति यावत् । धर्मार्थकामैर्व-यो नीतम । पीतातियशसेष सांप्रतं जराधवलेन मया शब्पेष्ठ तणाइरेषु विश्रान्तप्रालेयातिशय ६व भासुरं भवलं वार्धकमा-गतमिति परेणान्वयः। 'शक्यविधान्त' इति पाठे घनीभवितुं शक्येषु पठाछादिषु विश्रान्तिति व्याख्येयम् ॥ २९ ॥ तस्य वार्धकस्योपरि । तस्मिन्सतीति यावत् ॥ २२ ॥ २३ ॥

| मस्तकादुतिमेवेमां समुद्यम्य ददामि वै। | |
|--|-----|
| राजीवाच । | |
| इशानो देव मूर्थायं तुभ्यमाइतितां गतः॥ | રક |
| मया पूर्व पुरोडाश इव देवेश दीयते। | |
| यदि तुष्टोऽसि भगवंस्तदनेन कृतेन मे ॥ | ર્ષ |
| चरवारो भवतः कुण्डात्स्वदेहाः श्रोद्भवन्तु मे | i |
| बलवन्तः श्रिया दीप्ता नारायणभुजा इव ॥ | २६ |
| तैश्चतुर्विक्रमेचारीन्वध्यामहमविद्यतः। | |
| त्वया च दर्शनं देयं महां मतिमते विभो ॥ | २७ |
| यसिष्ठ उदाच । | |
| इत्युक्त्वा स महीपालः खङ्गमादाय चिच्छिदे | 1 |
| शिरःकमलमालोलं लीलयेवाशु बालकः॥ | ેર૮ |
| छिन्नमेष शिरो यावज्ञ्होत्यसितवर्गने। | • |
| तावच्छरीरेण सह पपाताझी स पार्थिवः॥ | २९ |
| भुक्त्वाथ बह्निस्तं देहं ददावसी चतुर्गुणम्। | • |
| महतामुपयुक्तं हि सद्य प्यामिवर्धते॥ | ३० |
| चतुर्मृतिरथोत्तस्यौ पावकाद्वसुधाधिपः। | • |
| पतुत्रातस्यातस्या नावकाश्रद्धवावयः। | |

प्रज्वलंस्तेजसां पुंजेनीरायण इवार्णवात्॥ 38 ते देहास्तस्य चत्वारो विरेज्जर्भास्वरत्विषः। सहजातोत्तमोत्तंतभूवणायुधवाससः॥ 32 सकंकटशिरस्राणाः समौलिकटकाङ्गदाः। सहारकुण्डलाभोगाः सर्घाः सर्वे महाशयाः॥ ३३ सर्थे एव समाकाराः सहशावयवान्विताः। चञ्चलोचैःभ्रवःप्रख्यं हयरक्षमवस्थिताः॥ ३४ ससुवर्णशरापूर्णतूणीराः सुमहाशयाः। समानगुणकोदण्डाः समानवपुषः शुभाः॥ 34 समारोहन्ति ते यसिन्धंसि नागे रथे हये। सर्वेषामरिद्रोपाणां नैय गम्यो भवत्यसी ॥ 38 पीरवा घुरवा चिरं कालं गर्ने पुरुषतापिताः। वेद्याभिव हितास्तत्र सागरा घडवार्चिषा॥ Ø\$ रक्षाश्वदेहकुसुमोत्करपूर्णदेहा-श्चत्वार इन्दुइसितैरवभासयन्तः। सन्मूर्तयो हरय एव यथाब्धयो बा वेदा इवाहुतिहुतादनलात्प्रसम्भः॥

इत्यार्वे श्रीवासिष्ठ० वास्मी० मो० निर्वा० उ० अवि० वि० अग्निप्रवेशाहेहलाभो नाम नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

द्शाधिकशततमः सर्गः ११०

२

वसिष्ठ उषाच । पुरोपकण्डसंमाप्तैश्चतुर्विकं सहारिभिः । पतस्मिन्नन्तरे तत्र प्रवृत्तं दादणं रणम् ॥ जुण्डितम्रामनगरं प्रजाकुलमहाकुलम् । अग्निदाहज्वलदेहं धूमाभ्रपटलावृतम् ॥

॥ २४ ॥ पूर्वमिष्टिषु पुरोडाश इव इदानीमयं मूर्धा दीयते । मे त्रष्टोसि तत्तर्हि अनेन इतेन कर्मणा ॥ २५ ॥ चलारो भवतः कुण्डात्स्वदेहा मे प्रोद्भवन्तु ॥२६॥ वध्यां वध्यासमम्। सलोप-रक्षान्दसः। मतिमते खद्दर्शनेच्छया लत्स्मृतिमते ॥ २०॥ लीलया बालकः कमलमिव स महीपालः शिरश्विच्छिदे ॥२८॥ असितवरमैंने कृष्णवर्त्मने । शरीरेण कवन्धेन सह ॥ २९॥ भुका इविद्वेनोपयुज्य । महतामुपयुक्तं । महद्भिः खीकृतमित्यर्थः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ सहैव जातानि उत्तमान्युत्तंसभूषणायुधवा-सांसि येषाम् ॥ ३२ ॥ मौलिपदेन तङ्गूपणानि शिरोरलादीनि छक्ष्यन्ते । सर्वान् अवन्ति रक्षन्तीति सर्वाः । वेरप्टक्तछोपाद्व-लिलोपः पूर्विविप्रवेधेनेति वलिलोपे पूर्वसवर्णदीर्थः ॥ ३३ ॥ भवस्थिता अधिरुढाः ॥ ३४ ॥ ससुवर्णपदं शरैस्तूणीरैश्व संबच्यते ॥ ३५ ॥ अपरमसाधारणं गुणमाह-समारोह-न्तीति । ते देहा यस्मिन्युंसि शिविकावाहे नागे गजे रथे हये वा समारोहन्ति । असी नरो नागादिश्व सर्वेषामरिभ्रयुक्तमञ्च-यन्त्रकृत्याश्रासाद्धादिदोषाणां नैव गम्यः प्राप्यो भवतीति ॥३६॥ शरजालमहाधूमच्छन्नार्कविलसत्तमः।
क्षिप्रदृष्ट्रिय क्षिप्रमदृष्ट्रिये विमण्डलम् ॥ ३
अग्निवाहमहाताप्रप्रतपत्पर्णकाननम्।
लोलालातलताशूलमुसलोपलपूर्णकम्॥ ४

किंच ते देहाधलारः सागराः वडवानिंवा मात्रा प्रथमं पीला ततो गर्भे चिरं कालं छला पुरुषतां पुरुषाकारं आपिताः प्रा-पितास्ततस्त्रत्रामिकुण्डवेद्यामाहिताः प्रसूता इवेरयुरप्रेक्षा ॥३०॥ किंच रमभूषितेषु रमभूतेषु च अश्वदेहेषु कुद्धमोरकरैः पूर्ण-देहा इन्दुसद्दोहंसितैदिशोऽयभासयन्तस्तं चलारो विपिष्ठत आहुतिमिर्द्वतादनलाचलारो हरयो विष्णव एव यथा सन्मूर्तयो मूर्तिमन्त अञ्चयो वा यथा तथा मूर्तिमन्तो वेदा इव वा प्रसक्तुर्निजेग्युः ॥३८॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणसा-स्पर्यमकाहो निर्धाणप्रकरणे उत्तरार्धे नवाधिकशतसमः सर्गः ॥ ३०९॥

पुरोपकण्ठं संप्राप्तेश्चतुर्विक्षु सहारिभिः । प्रवृत्तं दारुणं युद्धं विस्तरेणात्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

पुरस्योपकण्ठे समीपे संप्राप्तेरितिः सह रणं युद्धं प्रश्नतम् ॥१॥ प्रजानां कुलं महाव्याकुलं यत्र ॥ २ ॥ शरजालेमंहाधूमैश्व च्छत्रेनार्केण विलसत्तमो यत्र ॥ ३ ॥ प्रतपत्पणीनि शुप्यरप-त्राणि काननानि यत्र । ठोलेरळातळतादितिः पूर्णं सं यत्र ॥४॥ 4

દ

80

११

१२

१३

१४

१५

| अनलप्रतिबिम्बें। घैद्विगुणज्यलनायुधम् । |
|--|
| रणभग्नमहाशूरपाप्तेन्द्रवनितासुधम्॥ |
| उद्दामवारणारावे रणलम्पटहर्षद्म् । |
| भुशुण्डीमण्ड्लप्रासश्कृतोमरवर्षदम् ॥ |
| भटकोलाहलोलासहस्रङ्गमृतपामरम्। |
| रजःपटलशुभ्राभ्रकृतद्युपथवारणम्॥ |
| मरण्यप्रसामन्त्मुक्त्नादवजद्रजम्। |
| इत्स्रेतस्य निपतवैद्युतोपहत्रप्रजम् ॥ |
| अग्निद्ग्धपतद्गेहप्रोज्झिताग्निमयाम्बुदम्। |
| मरणाहाददास्ंख्यदारधारामयाम्बदम्॥ |
| जितसागरकछोलं तुरङ्गमतरङ्गकैः। |
| व्नित्नत्विनिष्पेषतारक्रेकारकर्कशम्॥ |
| कोटकोटिकुटीकुड्यकण्टकोद्धटसद्घटम्। |
| चटत्कुण्डितकोटाहुक्टाटननट्च्छटम् ॥ |
| ळु ढत्पटन्कुट्टाकसाटोपस्फुटपट्टिशम् । |
| खे वटत्केतुपट्टाष्ट्रपटपटारवम् ॥ |
| दन्तिदन्तगुणोद्गीणैंईतिपाषाणघर्षणैः। |
| तारक्रेकार्हुंकारैराहृतसुरवार्णम्॥ |
| वहच्छरनदीपूरपूर्णाम्बरमहार्णवम् । |
| विचलचक्रकुन्तासिधारामकरकर्कशम्॥ |
| उन्नादयोधसंघट्टकंकटोत्कटटांकृतः। |
| लसज्झणझणारावैर्घटितद्वीपमण्डलम् ॥ |
| पादपातपरापिष्टशरसंजातकदेमम् । |

| The address of the control of the co |
|--|
| द्विगुणज्वलनानि द्विगुणदीप्तानि आयुधानि यत्र । रणभप्नैर्म- |
| हाश्ररैः प्राप्ता इन्द्रवनिता अप्सरसः सुधा च यत्र ॥५॥ रण- |
| लम्पटानां रणोत्सुकानां शूराणां हर्षदम् ॥ ६ ॥ भटानां को- |
| ठाह्छोस्रासभवणमात्रेण हृद्धक्षान्मताः पामराः कातरा यत्र । |
| द्युपथवारणं अन्तरिक्षमार्गनिरोधः ॥ ७ ॥ मरणे व्यप्राणां |
| सामन्तानां मुक्तनादं यथा स्यात्तथा त्रजन्तो त्रजाः स्तोमा यत्र। |
| बैद्युतेनोत्पाताप्रिना उपहताः प्रजा यत्र॥८॥अभिदग्धैः पतिङ्कर- |
| गेंहे: प्रोज्झिता निर्मुक्ता अग्निमया अग्निवर्षिणो धूमाम्बुदा यत्र |
| ॥ ९ ॥ १० ॥ कोटानां दुर्गाणां कोटिषु संक्रमेषु याः कुट्य- |
| सादीयकुक्येषु कण्टकवच्छरावापे उद्भटाः सद्भटा यत्र ।'कंकटो- |
| क्रूट'इति पाटे बारबाणैरुद्धासमानाः सद्भटा यत्र।चटत्सु वहिना |
| नेष्ट्यमानेप्नतएन कुण्ठितेषु कोटाइकूटेषु संक्रमाहालशिखरेषु |
| अटनैर्नटन्तो बह्विच्छटा यत्र ॥ ११ ॥ छुटन्ति पटनकुद्दाकानि |
| गमनविच्छेदकानि साटोपस्फुटानि पहिशानि यत्र । खे वटन्तो |
| वेष्टन्तः केतुपद्दा येषु तथाविधेष्वदेषु पटत्पटपटारवा यत्र॥१२॥ |
| दन्तिनां दन्तगुणानां शीक्षयादीनामुद्दीर्णेठद्वीणहेंतीनामायु- |
| धानां पाषाणेषु घर्षणेधहनैस्तारः केंकारेर्डुकारश्च युद्धोत्साहजन- |
| नाराहृता इव सुरवारणा दिग्गजा यत्र ॥ १३॥ वह्यिः शर- |
| नदीपूरैः पूर्णः अम्बरलक्षणो महार्णवो यत्र ॥१४॥ उन्नादानां |
| योधानां संघद्देषु कंकटानां वारवाणानामुस्कटैष्टांकृतेर्छसद्भिष्ठेराण- |
| नानाना चन्द्रयु कराना नार्याणानाधुरक्रप्रशक्तिकसाञ्चरा |

| बहद्रक्तनदीरंहःप्रोह्यमाणरथद्विपम्॥ | १६ |
|---|------------|
| सुपर्णहेलानिपतत्त्रोत्पतत्पहृपहिशम्। | |
| शरवारितरङ्गार्तभन्नायुधजलेचरम्॥ | १७ |
| हेतिसंघद्दनिष्कान्तज्वालाप्रज्वलिताम्बरम् । | 9.4 |
| वलीपलितनिर्मुक्तशूराक्रान्तित्रविष्टपम् ॥ पाण्डुपांद्धपयोवाहकचचक्राचिरशुति । | १८ |
| हेतिनिर्विवराकाशायुधानाधारभूतलम्॥ | १९ |
| कटक्रटभटाटोपरदत्यतिभटोत्कटम्। | , , |
| चटच्छकटसंघट्टपिष्टकाष्ठलुठद्रथम् ॥ | २० |
| कबन्धभटवेतालमिश्रकण्टकसंकटम् । | |
| वेतालभुज्यमानाप्रयशावमांसहद्म्धुजम्॥ | ૨ १ |
| शूरशातितशीरार्थशिरःकरखुरोस्कम्। | |
| कबन्धदोर्हमस्पन्दवनीकृतनभस्तलम्॥ | २२ |
| तरह्णोलास्यवेतालहासघट्टितपेटकम् । | |
| कंकटोत्कटसाटोपभटभ्रुकुटिभीषणम् ॥ पकान्तमारणेकान्तमरणेकान्तभूषणम् । | २३ |
| प्रहारदानप्रहणकार्पण्यापारदूपणम् ॥ | રક |
| शूरवारणसामन्तमद्यारिविशोषणम्। | 10 |
| मारणैकान्तरसिकछतान्तानन्दपोषणम्॥ | इ५ |
| अविकत्थनगुप्तानां शूराणां जयघोषणम् । | |
| अशूराणां च गुप्तानां प्रभावुद्धोषणं परम्॥ | २६ |
| शीर्यादीनां प्रसुप्तानां स्वगुणानां प्रबोधनम्। | |
| धनमाधारभूतानां राष्ट्रेषु भुजशालिनाम्॥ | २७ |

भ्राणारावैश्व घटितानि व्याप्तानि द्वीपमण्डलानि यत्र ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ शरलक्षणैर्वारितरक्षेरातीनां भमा आयुधजलेचरा यत्र ॥ १७ ॥ देवभावप्राप्त्या वलीपलितनिर्भुक्तैः शूरैराक्तान्तं त्रिवि-ष्टपं यत्र ॥ १८ ॥ पाण्डुषु पांसुलक्षणेषु पयोवाहेषु कचवकल-क्षणा अचिरद्युतयो विद्युतो यत्र । हेतिमिर्निर्विवरं निरवकाशं युधानां संप्रहाराणामनाधारं भूतलं यत्र ॥ १९ ॥ कटन्तः शरान्वर्षन्तो ये भटेभ्योऽपि भटास्तेषामाटोपैः रटद्भिस्तत्प्रति-भटैरुकटम् । तथा चटतां भवमायुण्वानानां शकटानां संघटैः पिष्टेषु रथान्तरकाष्ट्रेषु छठन्तो रथा यत्र ॥ २० ॥ कबन्धादि-मिर्मिश्रा ये कण्टकाः शत्रवस्तैः संकटं दुरवगाहम् ॥२१॥ शूरैः शातितं शीरार्धं श्रिरार्धम् । छान्दसो दीर्घः । शिरांसि करादिकं च यत्र ॥ २२ ॥ तरिद्धः अविद्वर्जीलासैर्वेतालैः प्रह्वविद्वासैर्घ-हितानि शवैः पूरितानि पेटकानि स्वकरण्डकानि यत्र कंकटै-रुत्कटानां साटोपानां भटानां शुकुटिभिभीषणम् ॥ २३ ॥ एकान्तेन नियमेन मारणं मरणं चेत्युभयमपि शूराणामेकान्त-भूषणं यत्र । प्रहाराणां दाने प्रहणे च कार्पण्यमसामध्येमेवा-पारं दूषणं निन्दा यत्र ॥ २४ ॥ २५ ॥ अविकत्थनेन स्वमु-स्रेत स्वशौर्यानभिष्ठापेन गुप्तानां प्रच्छनानां शूराणां किययैव रणे तच्छीरेद्शिजनमुखेन प्रभी जयधोषणं तथा गुप्तानामगू-राणां च प्रमा अशोबोद्धोषणं यत्र ॥ २६ ॥ भुजशालिनामत-

| दुन्त्याक्रढरथारफोटप्रभग्नकटवारणम् । | |
|--|------------|
| | ~ 4 |
| समस्तमत्तगन्धेभदानवारिनिवारणम् ॥ | २८ |
| सारसारवसामन्तमुक्तमत्तम् जम्। | |
| जरज्जितकरानीककल्पितासीकवेदनम्॥ | २९ |
| दिनं दिनकरस्येव नृपस्य शरणं गतम्। | |
| अनागतभटवातपिष्टार्थमृतमानवम् ॥ | ३० |
| मानवायुबलोन्मसनतप्रारब्धकुट्टनम्। | |
| धनानां प्राणपण्यानां नवमापणपत्तनम्॥ | 38 |
| पर्टनद्भपताकौघजातसंचारिदोर्द्रमम्। | |
| रक्तोक्रवलत्वा ब्रैलोक्पलक्ष्म्या भूषणविद्रुमम्॥ | ३२ |
| मन्दराहननोद्भृतश्रीरोदजलसुन्दरैः। | |
| छत्रैदछादितहेत्योघपुष्पाक्यगगनाङ्गनम् ॥ | ३३ |
| गणनीर्वाणगन्धर्वगीतशूराशयं कृतम्। | |
| तञ्चातरलतालाग्रहेतिहालाहलायुधम् ॥ | ३४ |
| संघप्रहरणासंख्ययानुधानाझणज्झणम्। | |
| भुक्तवा चाद्रिगुहागेहपूरितापूर्वेदुर्द्धमम्॥ | 34 |
| कचत्कुन्तवनव्यस्तिशरःकरवृताम्बरम्। | |
| क्षेपणोन्मुक्तपाषाणपूरस्रतककुच्छतम् ॥ | ३६ |
| महाचटचटाशब्द्फुटद्रववृहद्रुमम्। | |

एव राष्ट्रेषु दुर्बेळानामाधारभूतानां श्रुराणाम् । धनं धनवित्रि-यम् ॥ २७ ॥ दन्लारूढानां रथानां च परस्परमास्कोटे युदे प्रभन्नकटा वारणा यत्र। समस्तानां मत्तगन्धेभानां दानवारिणां मदजलानां निवारणं विशोषणम् ॥ २८ ॥ मत्तमतक्रजेषु सरित प्रविष्टेषु सारसिरिव आरवेणाकोशेन सामन्तैस्तरुणैरिप पलायमानैर्भुका मत्तमतङ्गजा यत्र । ततो जरद्भिरपि खङ्गवि-द्यायां जितकराणामनीकैः कल्पितं समर्थितं असिः प्रहरणं येषां ते आसीकास्तद्वेदनं तद्भावप्रकटनं येत्र । शक्तियध्योधि-हित ईकक् छान्द्सलाद्सेः कृतः ॥ २९ ॥ क्रचित् अनागते-ब्वेब भटबातेषु तदागमनभ्राम्सा पर्हायने परस्परपादतल-पिष्टा अर्धमृतप्राया मानवा यत्र । अतएव दिनं दिनकरस्येव नृपस्य पादौ शरणं गतम् ॥ ३० ॥ मानोऽमिम।नस्तह्रक्षणो-न्माद्बायुबलेनोन्मसैनतेष्वपि प्रारब्धं कुट्टनं यत्र । प्राणैः प-ण्यानी धनानां नवमापणस्थानभूतं पत्तनम् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ गणैः प्रमधेर्गन्धवैर्गानीणेश्व गीताः श्रूराणामाशया उत्साहादयो यत्र । तेषां गणानां गन्धर्वाधीनां भाभिस्तरहै-स्तालाप्रैर्ध्वजाप्रैहेंतिहालामिश्व सोन्मादलाद्धलायुधभूता मटा यत्र ॥ ३४ ॥ संघं संभूय लीलया प्रहरणं येषां तथाविधेरसंख्ये-र्यात्रधानेरझणउझणं निःशब्दं खयं भुक्ला चकाराच्छवादिभारा-भीला अद्रिगुहालक्षणे खगेहे पूरिता भोजिता अन्येऽप्यशेषा

| नारीहरूहर्लारावरणन्नगरमन्दिरम् ॥ | \$19 |
|--|-----------|
| मन्दरावानलाकारनभोभातायुधवजम्। | |
| परित्यज्य धनं गेहं तुरोवींबिद्युतप्रजम्॥ | 36 |
| सर्वतोद्देतियहनात्समक्षप्रेक्षकोज्झित्म् । | |
| वर्जितं भीरुभिः पक्षिराजवृन्दमिवाहिमिः॥ | ३९ |
| दन्तिदन्तविनिष्पिष्टशिष्टसद्भटसंकटम्। | |
| कटे मृत्योरिव नरद्राक्षापीडनयद्मके ॥ | go |
| युष्प्रपाचाणसंघद्वपिष्टाम्बरगतायुधम्। | |
| योधनादनदइन्तिवृन्दबन्धुरकन्दरम् ॥ | धर |
| धराधरदरीरन्तःप्रतिश्रुत्योतगर्जितम् । | |
| अर्जितं प्राणसर्वस्वमर्जयद्भिरुपार्जितम्॥ | કર |
| भूजितं हेतिवहुनैरिग्नदाहैश्च संत्तेः। | |
| तैरेवान्यैरथान्येश्च बन्द्वयुद्धैरनिष्ठितम्॥ | કર |
| वेष्टितं मृतशिष्टेश्च सारैः सुभटपेटकैः। | |
| केळासैरिव संशुद्धराध्वराघारतां गतैः॥ | 88 |
| तैरुदारेः समाकान्तं ये मृत्योरपि मृत्यवः। | |
| मरणं जीवितं येषां जीवितं मरणं रणे ॥ | છપ |
| रणे नभसि निर्स्तृनवरवारणवारिजे। | |
| सारसाः सरसीवात्र रेज्जरत्युद्धटा भटाः॥ | ४६ |
| | |

दुईमा विषयक्षप्राया यातुधाना यत्र ॥ ३५ ॥ कचिक्कः कुन्त-वनैः कुन्तारण्यप्रायेः कुन्तधरैर्व्यस्तैरिछत्त्वा क्षिप्तैः शिरोनिः करैश्व वृताम्बरम् ॥ ३६ ॥ भुजास्कोटनजैर्महाचटचटाशब्दैः स्फुटतामिव रवो येषां तथाविषा षृहद्वमा यत्र ॥ ३०॥ ३० ॥ हेतीनामायुधानां सर्वतीवहनात्प्रवहणात्सर्वतः प्रेक्षकैभयादु-जिन्नतम् ॥ ३९ ॥ मृत्योर्नरलक्षणानां द्राक्षाणां निष्पी**डनयन्त्र-**मिव विद्यमाने कटे गण्डस्थले दन्तिमिर्दन्तैविनिष्पष्टिश्राचा सद्भरानां संकटं यत्र ॥ ४० ॥ ४९ ॥ धराधरदरीः प्राप्य प्रतिश्रद्धिः प्रतिध्वनिमिः प्रोतानि गर्जितानि यत्र । तथा म-हता यक्षेन जन्मप्रसृत्यर्जितं प्राणसर्वस्वं बलसर्वस्वं अर्जयद्भि-र्गमयद्भिः प्रकटयद्भिः श्रूरेरुपार्जितं रणं प्रवृत्तमित्यत्रान्ययः ॥ ४२ ॥ पुनः कीदशं तदणं प्रवृत्तं तदाह-भिजतिमिखादि । निष्ठां समाप्तिमत्राप्तमनिष्ठितम् ॥ ४३ ॥ सारतामेव दृष्टान्तेन व्यनिक-कैलासैरिवेति । संशुद्धैः स्वाम्यवश्वकैः अतएव इदि ईश्वराधारतां गतैः सभटपेटकैः । कैलासपक्षे सप्टे द्वे ॥ ४४ ॥ येषां भटानां रणे मरणं जीवितमिव प्रियं पलायनेन जीवितं जीवनं तु मरणमिव द्वेष्यम् । उदारैसीः पुरुषेक्रीलोक्यमपि समाकान्तं जितमिल्यंः । ये मृत्योरि मृत्यवः परमपदप्राप्ताः संपद्यनते । यथाहुः 'द्वावेती पुरुषी लोके सूर्यमण्डलमेदिनी । परिवाज्योगयुक्तथ रणे चाभिमुखो हतः ॥' इति ॥४५॥४६॥

मिलर्थ:. ३ इलायुभी बलराम:. ४ ऋजेगैलर्थसोदं रूपन्.

१ पटनदाः पताकीवा एव संचारिणो दोर्दुमा अभूवन्. । अरङ्गिरिप सन्नविशारवैरावेशवशास्त्रविधाकीश्च प्रकटित-

यक्ताइमक्षेपणानां प्रसरणस-रिता चूकतेः फूत्कतेद्रांक् कान्तानां स्योक्ति मूर्भा शरस-लिसमुखां सैनिकानां च नादैः। टांकारैरायुधानां नभसि विसरतामश्वचक्रेभदान्दे-रासीकिःसंधिबन्धोपलजटर-जडं जीर्णकर्ण गतं तत्॥

80

इस्रार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वा० उ० अविद्यो० विप०संग्रामवर्णनं नाम दशाधिकशततमः सर्गः ॥१९०॥

एकादशाधिकशततमः सर्गः १११

8

ર

3

ષ્ઠ

ų

Ę

S

ረ

वसिष्ठ उवाच। इति कल्पान्तसद्दो यसे समरसंम्रमे। पतन्तीषृत्पतन्तीषु सेनासु समरेजिरे ॥ तूर्यमेरीमहाशह्वखद्गेषु खे नदत्सु च। धनुष्वेनिषु वीराणां तारफ्रेकारकारिषु ॥ अन्योन्यकठिनास्फोटविकटे भटपेटके । कवत्कटकटाटोपे कटुकुट्टितकङ्कटे ॥ किचित्प्रभज्यमानासु विशतकश्मासु संगरे। विपश्चित्पश्चसेनासु लूयमानलतास्विव ॥ उद्भृत्पूरयश्नाशा नृपनिर्याणदुन्दुभिः। चतुर्घाशनिसंपूर्णकल्पाभ्ररवमांसलः॥ स्फुटतां कुलशैलानां तुल्यकालमिवोत्कटः। स्फूटचटचटास्फोटैजंडिताखिलदिकतटः॥ लोकपाछैरिवाकारैर्नारायणभुजैरिव। स बतुर्भिश्चतुर्दिकं निर्जागाम महीपतिः॥ चतुरक्रेण महता सैन्येन परिवारितः। अद्वालघलयारकच्छान्निर्गत्य नगराद्वहिः॥ द्वर्शारमबलं रिक्तं बलवद्रिपुमण्डलम्।

तदेव युदं वर्णयनुपसंहरति—यन्त्रेति । यन्त्राः समा सेपणानां यानि प्रसरणानि प्रवाहास्त्रह्मश्रणानां सरितां घूकृते व्वनि-विशेषस्या द्राक् सद्य एव च्छिन्नोद्दीनानां व्योम्नि कान्तानां चिल्तानां मूर्मा फूत्कृतेः फूत्कारशब्दैस्तथा शरसिल्लमुचां सैनिकानां च नादैस्तथा नभित विसरतामायुधानां नादै-स्तायाऽभवकाणामिभानां च हेषः वृंहितशब्दैश्च गतं व्याप्तं तद्युदं जीणां विधरीकृताः कर्णा यस्मित्तथाविषं सिन्धः संधिवन्धमुपल-जठरमिव जडमासीत् ॥ ४७ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहा-रामावणतास्पर्यमकाशे निर्वाणमकरणे उत्तराधं दशाधिक-शतसमः सर्गः॥ ११०॥

स्तित्ये द्वीयमानेऽत्र निर्गतेन महीमृता ।
वायध्यासैश्वतुर्विष्ठ वर्ण्यते द्विषतां श्रयः ॥ १ ॥
यते प्रवृत्ते । सर्वेषां भावलक्षणसप्तम्यन्तानां पद्ममकोके
उद्भृदित्यत्राम्वयः ॥ १ ॥ तूर्यादिषु त्रिषु प्रतिष्वनिभिः खे
तत्र सङ्गेषु च नदत्यु । वीराणां तारकेंकारानुकारिषु ॥ २ ॥
भटपेटके योषकदम्बे कटु यथा स्वात्तथा कृष्टितकद्वटे कवरकटकहाटोपे सति । कु शब्दे शतुप्रत्यमः॥ ३॥ विशन्ती करमा मूर्च्छा

| गर्जन्तं च लयाकृत्या भीमं युद्धोद्धतार्णवम् ॥ | ۹, |
|---|------------|
| शरसीकरनीरन्ध्रं मकरब्यूहसंकुलम् । | |
| वारणञ्यूहयलितं तरङ्गञ्यूहविस्तृतम्॥ | १० |
| चक्रावर्तवहद्यृहकङ्घोलकिलतान्तरम् । | |
| चलद्रथशतावर्तं प्ताकालहरीगणम्॥ | ११ |
| प्रस्फुरच्छत्रफेनाढ्यं हयहेषितफीत्कृतम्। | |
| समुह्नसद्देतिज्ञलं क्चद्वाराकरं परम्॥ | १२ |
| तरत्तरलमातङ्गतुरङ्गीघतरङ्गकम्। | |
| हेत्यम्भिः कचत्पापमुद्यहुळुगुळोदरम् ॥ | १३ |
| दरीदलनसंक्षुव्धमरुजनितधुंघुमम्। | 5., |
| नतोन्नतस्ताद्रीन्द्रमहास्पन्दशरीरकम् ॥ | १४ |
| मज्जन्मातङ्गतुरगहेलाहतमहीधरम्। | 91. |
| अपारविचरत्पूरकल्लोलालमहाजलम् ॥ अहारकराणस्यासम्बद्धाः | १५ |
| अकालकल्पान्तदशासमुत्थानघनाकृतिम् । आक्रान्तरोदसीरन्ध्ररुधिरैकमद्दार्णवम् ॥ | • = |
| आकान्तरादसारन्ध्रहायरकमहाणवम् ॥ कचदायुधखण्डौधडीनरह्नावृतोदरम् । | १ ६ |
| चलझार्चलक्यस्त्रयन्त्राः । चलझार्चलक्र्यस्त्रयन्त्राः सक्षेपणाः सकम् ॥ | १७ |
| and the same of the same of the same of the same of the | , - |

यासु ॥४॥ ५ ॥ तुल्यकालं स्फुटताम् । जिस्तानि जडीकृतानि ॥६॥ आक्रारेर्मेर्तिघरैर्नारायणभुजैरिव चतुर्निर्देहैः ॥ ७॥ ८ ॥ आत्मबर्ल रिक्तं ददर्श । रिपुमण्डलं तु बलवत् ऊर्जितं ददर्श । तदेव रिपुमण्डलमणेवत्येन वर्णयति-गर्जन्तमित्यादिना ॥९॥ प्रायेण रूपकाणि सर्वत्र ॥१०॥ चकावर्तवद्वहद्भिर्व्यूहैः सेनारच-नामेदैर्जनकल्लोर्जेश्व कलितान्तरम् ॥ ११ ॥ इयानां हेवितमेव यादसां फीत्कारशब्दो यत्र । कचन्तीनां धाराणामाकरम् ॥१२॥ हेतिलक्षणे अम्भसि कचन्तः प्रकाशमानाः पापाः कृ. ब्णसर्वोयमाणा म्लेन्छा यत्र । द्रविबादिभटवार्ताभिरुचदुलुगु-लोदरम् ॥ १३ ॥ नतैरुष्रतैश्व मात्रौः कृता अदीन्द्राणां मजनोन्मजनस्थणमद्दास्पन्दाः यस्मिस्तथाविधविपुरुशरीरकम् ॥ १४ ॥ अपारं विकचन् यः सेनाप्रसादेव कल्लोंकैरलं भूषितं महाजलं यस्य ॥ १५ ॥ अकाले कल्पान्तदशासमुत्थानमिव धना आकृतिर्थस्य । रोदसीरन्ध्रेखलुक् छान्दसः ॥ १६ ॥ क्षिद्विरायुधखण्डीघलक्षणेडीनैहच्छलद्री रक्षेरावृतोद्रम् । चलत्यु सेनाव्युहेषु चलन्तो व्यस्ता यन्त्राश्मक्षेपणाश्मका यन्त्र। समुद्रेऽपि पोतेषु सामुद्रजनानां यन्त्राहमक्षेपणाहमनां प्रसिद्धेरिति

| रह्मसीकरनीहारसंध्याभ्रपटलानतम् । | |
|---|------------|
| क्रचित्पांसुपयोबाहपीतद्देतिपयोधरम्॥ | १८ |
| तमालोका रणाम्भोधिमगस्योऽस्य भवाम्यहम् | 1 |
| इति संचिन्त्य मनसा स पातुं तं रणाणवम्॥ | |
| असं ससार धायव्यं चतुर्दिकं च संदधे। | |
| धनुषि शिखराधारे त्रिपुरान्त इवोद्यतः॥ | २० |
| आत्मीयवेदासैन्यानां श्रेयोर्थ शान्तयेऽनलम्। | |
| नमस्कृत्याथ जश्वाद्य स तत्तत्याज दारणम् | २१ |
| यथा तथैव तत्याज तस्य साहायकाय सः। | |
| पर्जन्याकां महास्रेशं क्रियवातपशान्तये॥ | २ २ |
| तसादसञ्जूषो घोराञ्चनुषः परिनिर्गताः। | |
| अप्रमृतेश्चतुर्विक्रमाशाकुहरपूरकाः॥ | २३ |
| निर्ययुर्वाणसरितस्त्रिश्रूलसरितस्तथा । | • |
| शक्तीनामुद्रसरितो भुशुण्डीसरितस्तथा ॥ | રક |
| | ,,, |
| मुद्रराणां च सरितः प्रासानां सरितो रयात्। | 26 |
| चक्राणां चैव सरितः परश्वधनदीरयाः॥ | २५ |
| तोमराणां च सरितो मिन्दिपालमहापगाः। | |
| पाषाणानां च सरितो वाताः कल्पान्तशंसिनः | વધ |
| अश्वनीनां च सरितो विद्युतां सरितस्तथा। | |
| जलधारासरित्पूराः खङ्ग्चर्षसम्निवताः॥ | २७ |
| सनाराचा महाचर्षहर्षलोत्पातपीवराः। | |
| भागास्य युगपर्यन्तस्फुटिताद्रीन्द्रजा इव ॥ | २८ |
| तेनास्त्रवर्षवेगेन धुतः सोऽरिबलार्णवः। | |
| श्रिटित्येच न कालेन पांसुराविरिवामितः॥ | २९ |
| सक्रिलाशनिशस्त्राणामासारैश्वण्डमारुतैः। | |

भावः ॥ १७ ॥ १८ ॥ तं वर्णितप्रकारं रणहेतुं रिपुबलाम्भोधि-मालोक्यास्य पाने अहमगस्त्यो भवामीति संचिन्त्य स विप-क्षितं बलार्णवं पातुं वायव्यमस्रं सस्पार ॥१९॥ यथा विस्तरा-णामाधारे मेहलक्षणे धनुवि त्रिपुराणां अन्ते वधे उद्यतः शिवः असं संदर्भ तद्वत् ॥ २० ॥ 'शत्रुशान्तये' इति पाठे नमस्कृत्य अनलभिति होषः । सः तदस्रं तत्याज ॥ २१ ॥ यथा वायव्य-मकं तत्याज तथैव तस्य साहायकाय पर्जन्यासमि तत्याजे-खर्थः ॥ २२ ॥ चतुर्दिकं अखद्रयज्ञवः अतएबाष्टमूर्तेस्तस्मादः-क्रपो बाणादिसरितो निर्ययुरिति परेणान्वयः ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ बालाखण्डवायवः ॥ २६ ॥ २७ ॥ महावातेईर्षछाः प्रबुद्धा उरपाता इव पीवराः पुष्टा नागाः सपीक्ष निर्येयुः। युग-पर्यन्ते स्फूटितेभ्योऽद्यीन्द्रेभ्यो जाता इव ॥२८॥ तेन अस्तव-र्षवेगेन सः अरिबलार्णवः कालेन विलम्बेन न किंतु शटिरयेव <u>यांद्धराशिरिव अभितो धुत उड्डागितः ॥ २९ ॥ ३० ॥ इतः</u> पछायमानः संध्यतिहिंदां ययौ ॥ ३१ ॥ तमेव पछायमानं मन छौषं गिरिणदीसाम्योपपादनादिना वर्णयति—बहृदित्यादिना । बाद्यप्रवाहेण बहम्तः खिनाः खेदार्दा बृहस्तक्ष्णिमास पताका

| सरांसीच विसेत्नि सैन्यानि परिदुद्रुदुः॥ | ३० |
|---|-----|
| चतुरङ्गधतुर्दिकं बलीघः स परास्कुसः। | |
| ययौ प्रावृत्तिरिणदीमहावाह इव हुतः॥ | ३१ |
| षहत्स्यब्रबृहच्छित्रपताकाकेतुपादपः। | |
| मरीचिपुष्परावलविलोलासिलतावनः॥ | ३१ |
| विलुद्रत्युष्टपाषाणपृषद्रक्तद्रवावचः । | |
| घोरैर्घुरघुरारावैरलं हृदयभङ्गदः॥ | \$3 |
| उद्यमानषृहद्दन्तिदन्तहुमविघट्टनैः। | |
| स्फूर्जबटचटारावतर्जितोद्गर्जिताम्बुदः॥ | 18 |
| हेतिवृत्तोप्रसंघद्दपुष्पजातसणज्यणः। | |
| तरत्तरलसारायतुरङ्गमतरङ्गकः॥ | 34 |
| रधादिमटचक्रीघहालाक्रॅकारपीवरः। | |
| पदातिरथहस्त्यश्वशिलासंघट्टसंकटः॥ | 38 |
| कटुंचंकारचीत्कारकेंकारपरिपीवरः । | |
| मृता मृता वयमिति घनकोस्नाइलाकुसः॥ | ३७ |
| सेनावारिमहावर्तचलहुलुगुलारवः। | |
| रक्तसीकरनीहारसंध्याम्बुद्वितानकः॥ | ३८ |
| हेतिवीचिवटाच्छिभवारिवामनवारिदः। | |
| वर्षपङ्किलभूपीठतटखण्डनमण्डितः॥ | ३९ |
| कुन्तशूलगदाप्रासवहत्तलतलाद्भुतः। | |
| साऋन्दभीवजनताप्रतपन्मृगपोतकः॥ | ૪૦ |
| मृतहस्त्यश्वयोधीघजीर्णपर्णनिरन्तरः । | |
| पिष्टदेहवसामांसपङ्कसंजातकर्दमः॥ | ४१ |
| चूर्णीकृतखुरापिष्टमहास्थिघनसैकतः। | |
| उद्यमानशिलापुरकाष्ठकोटिकटङ्कटः॥ | ४२ |

केतव एव पादपा यत्र । मरीचिपुष्पैः शवलानि विखोलान्य-सिलतावनानि येन ॥ ३२ ॥ पलायनाशस्त्रया विद्युठन्तः पुष्ट-जनलक्षणा ये पाषाणास्तेषां पृषक्तिर्विन्दुभूतैः रक्तवैरवचो दु-र्वत्रः । तत्र पातमुर्न्छितानां घोरैर्घुरषुरारावेर्द्रवयभन्नदो भीषण इति यावत् ॥ ३३ ॥ गिरिणद्याः प्राष्ट्रश्चिशेषणसम्बद्धकल्पनेनी-पपाइयति-उद्यमानेति ॥ २४ ॥ हेतिषु कृतो य उमः शि-लादिसंबद्दः स एव नदीतीरतरुपुष्येषु जातो अमरझणञ्सण-ध्वनिर्यत्र ॥ ३५ ॥ रवादीनां भटचकीयानां च यच्छिलासं-कटे कुजितं तक्कक्षणेन मेकपक्षादिकेंकारेण पीवरः पुष्टः ॥ ३६ ॥ तदेवाह-कडिति ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हेतिमिवीचि-भिवेटा इव आफ्लिमा बारिणा वामना नमा बारिया यत्र । पिकुलस्य भूपीठतटस्य मार्गनिष्पादनाय सण्डनेन मण्डितः ३९ पलायमानैः कुन्ताविधरैवंहतालतलं तालवनमिवाद्भतः ॥४०॥ ॥ ४१ ॥ चूर्णाकृताम्यस्थीनि ईषत्स्यूलसैकतानि, खरैरापिद्यानि त स्कातमसेकतानीति मेदः । उद्यमानैः शिकापूरैः काष्ट्रकोढि-भिश्व परस्पर्षष्टनारकटक्ट इति ध्वन्यमेदारोपोक्तिः ॥ ४३ ॥

१ टंकारेखपि पाठः.

उद्वर्जत्मस्याम्भोदैवैद्दत्मस्यवायुद्धिः । प्रपतत्प्रख्यासारैः प्रख्यादानिस्कटैः ॥ 83 पश्चिकासिलभूपीठैः सक्षिलोपहृतस्थलैः। सितदीत्यवशाद्यानधाराकृतत्वपञ्जरैः॥ 88 समप्रनगरप्रामगृहुज्वलितवह्निमिः । प्रजाश्वेमपदातीनामाक्रन्देनापि घर्घरैः॥ ४५ रथाम्भोधरनिर्द्धादैदिवि भूमी घनारवैः। चतुर्विकं घनं तारकेकारस्य चतुष्टयैः॥ કદ इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वा० उ० वि० चतुर्दिग्गतवळद्रवणं नामैकादशाधिकशततमः सर्गः ॥१९१॥

विद्युद्धस्रयविस्तारकारिसंघद्वधर्षणैः। शरशक्तिगदात्रासमिन्दिपालादिवर्षणैः॥ 80 सर्वदिक्रमसंख्यानि बलानि बलशाखिनाम् । भूभृतां विद्रवन्त्याशु विनेशुर्मशकीघवत्॥ 86 उद्दामपाचकवनोपमहेतिसार्थ-मेघानलाकुलजनाशनिषर्षपातैः । आसन्बलानि चपलाब्धिजलाबलानि पर्याकुलानि वडवाग्निमिवाबिशन्ति ॥ ४९

ब्रादशाधिकशततमः सर्गः ११२

3

वसिष्ठ उदाश्व । छोकहाराम्बरव्यालं चेदिचन्दनकाननम्। क्रिजं परशुधारामिः पतितं दक्षिणार्णवे ॥ पर्णवत्त्रोद्धे पूरेण पारसीकाः परस्परम्। प्रहरन्तो विमोहेन विनद्य यञ्जलावने ॥ दर्दुराद्री दुरन्तेषु दरदीर्णहृदन्तराः। द्रीरन्ध्रेषु संलीना दरदा दानया इव ॥ चतुरायुधधाराप्रचूर्णनीहारधारिणः । विद्युद्धलियो वातो वेह्नितायुधवारिदाः॥ द्ग्तिनोऽन्योन्यमाभग्नद्ग्तदेहीघपीडिताः। मृत्युदरोम्भकप्रासपिण्डपिण्डा दवाभवन् ॥ तका रेवतिका रात्री रीव्रतोमरताहिताः।

उद्गर्जरप्रस्याम्भोदैरिखादीनां तृतीयान्तानां पश्चमश्लोके इत्यं विद्रवन्ति भूमृतां बलानि मशकीपवद्विनेद्यरिखत्रान्वयः ॥४३॥ सितं तीक्ष्णं यच्छेत्यं तद्वशादश्यानेरशुष्यद्भिर्जलधाराकृतैः खे पन्नरैः॥४४॥४५॥ भुवि रथनिर्हादैर्दिवि अम्भोधरनिर्हादैः । चतुर्दिकं तारस्य विपक्षिद्धनुःकेंकारस्य चतुष्टयैः ॥४६॥ विद्यु-द्वलयविस्तारकारिणां मेघानां संघट्टैर्घवेणेश्व ॥ ४० ॥ ४८ ॥ प्रसन्तभूशतां बलानि उद्दामपानकवनोपमहेतिसार्थैमें यानामन-हैराकुला जना येस्तथाविधैरशनिवर्षपातैश्व पर्योकुलानि सन्ति बरवामिमाविशन्ति चपले अध्यिजले कभ्यमानान्यबलानि यादांसीव आसन् ॥४९॥ इति श्रीवासिष्टम० तारपर्यप्रकाशे नि॰ उत्तरार्थे पुकादशाधिकशततमः सर्गः ॥ १११॥

यत्र यत्र यथा नष्टा ययदेश्याः प्रकायिताः । बर्ण्यन्तेऽत्र तथा सर्वे चतुर्दिश्च द्विषद्भटाः ॥ १ ॥ तत्र प्रथमचेदिवेशभटानां नाशप्रकारमाह---लोकेति।चेदि-भटलक्षणं चन्दनकाननं परशुमिदिछतं सहक्षिणाणंवे पतितम् । तत्र बन्दनवृक्षाणां व्यालवेष्टितस्वप्रसिद्धिसमर्थनाय विशिनष्टि-कोकेति । होक्यन्त इति होका दर्शनीया हारा अम्बराणि च व्याका यसिन् । अत्र सर्वत्र देशनान्नैव भटनिर्देशो बोध्यः

१ मूलसपोक्षेति स्यवन्तस्य प्रवद्दणं प्राप्येत्वर्धकरणे फलितमिदम् .

कविकासिः विशाचीमिर्भुका भागीकृताङ्गकाः॥ ६ तालीतमालगहने दशाणी जीर्णजङ्गले। गले पार्व निधायान्तः कृत्ताः सिंहैर्गतासवः॥ पश्चिमार्णवतीरस्था नालिकेरधरावनी। यवना विगतप्राणा निगीणी मकरोत्करैः॥ ረ नाराचनिकरं नीलं निमेषं नासहब्छकाः। रमठा नलिनीयण्डा इव ताण्डवितासघः॥ ۹, श्रवणाभोगश्टङ्गाप्रो महेन्द्रोऽद्रिर्दिवि वजैः। विद्वतैषंखितो नीलैजीलैजीलमुचामिय॥ १० चामीकरवराकारा भन्ना तङ्गणवाहिनी। मृता हताम्बरा चोरैर्भुकैकान्ते निशाचरैः॥ ११ घौरिवर्शभरैरासीत्तवासारं भुवस्तलम् ।

॥ १ ॥ पारसीका भटा अस्तपूरेण पर्णवत्त्रोर्ह्यमाणा विमोहेन परस्परं प्रहरन्तः सन्तो बज्जुलाबने देशे विनष्टाः ॥ २ ॥ तथा दरदा भटा दर्दुराद्री दुरन्तेषु दरीरन्ध्रेषु संलीनाः ॥ ३ ॥ शरप्रासासिपरशुरुक्षणानां चर्तुणामायुधानां धाराप्रप्रयुक्तशि-लाकवचादिचूर्णलक्षणनीहारधारिणो विद्युद्भिर्वलयिनो वेष्टिता वेक्षितायुधा वारुणास्त्रप्रयुक्ता वारिदा वाताश्वलिताः ॥४॥ तेषु चिलतेषु किमासीलदाइ—दन्तिन इति । अन्योन्यं प्रहारेरा• ममदन्ता देहेषु रुधिरौषेण पीडिताक्ष दन्तिनो मृत्योहदरस्य उ-म्भकाः पूरका प्रासपरिमिताः पिण्डपिण्डा इव अभवन् । द्वि-क्किरनेकलयोतनाय ॥५॥ तज्जा दरददेशजा एव केचित्रैव-तिका रैवतकपर्वते निलीनाः । रूपिकामिः खरूपेण पुरुषवश्चि-काभिः पिद्याचीभिः ॥ ६ ॥ दशार्णास्तदेशजा भटाः ॥ ७ ॥ नालिकेरधरायां वेलावनौ ॥ ८ ॥ नीलं कार्व्णायसं नाराचनि-करं शका नासहन्। एवं रमठा अपि बाताहता नलिनीषण्डा इव ताण्डवितासव आसन् ॥९॥ श्रवणनक्षत्रस्याभोगः संस्था-नमिव त्रीणि श्वनापाणि यस्य तथाविधो महेन्द्रोऽदिर्विद्वर्तर्नालै-दिवि वर्जेभेटैवंलितः सन् जलमुचां जालेवंलित इवासीत्॥१०॥ तक्रणानां भटानां वाहिनी पूर्वं चोरेह्ताम्बरा पश्चादेकान्ते निशाचरैर्भुका सती मृता ॥ ११ ॥ तदा तक्रणसेनाभक्षणकारे

विवर्तमानैरमितः कचद्भिज्वेलनायुधैः॥ १२ <mark>घाराधरधरारन्ध्र</mark>प्रतिश्रुद्धनघुंघुमा । जगद्रेहगुहासीइयौर्घनं गातुमिवोद्यता ॥ १३ द्विपान्तरजनाश्चक्रैर्जर्जरा जीवितं जहुः। मीनजङ्गलजम्बाले जीर्णमत्स्या इवाजले॥ १४ यावद्भीपा जिताः कुक्षी सहादी सममूर्तयः। आश्वस्य दिवसान्सप्त ययुरायासमन्धरम्॥ १५ गन्धमादनपुष्रागचनगुञ्जेषु पुञ्जिताः। विद्याधरकुमारीभिर्गान्धाराः परिरक्षिताः॥ १६ हूणचीनकिरातानां मुक्तैस्तैश्चक्रवर्षणैः। कमलानीव लूनानि शिरांस्यभिमुखानिलैः॥ १७ निलीपा नलिनीनाले कण्टका इव निश्चलाः। **हुमेद्रुमे** हुममया भयात्त्वस्यावसंश्चिरम्॥ १८ चारुसारङ्गरङ्गासु दीलकाननभूमिषु । चतुर्दिकं तदापातैः संपन्नं श्रोमणं घनम्॥ १९ कण्टकस्थलनामानः कण्टकस्थलकर्वशाः । कण्टकस्थलगा आसन्कण्टकस्थलमण्डले ॥ 20 पारसीकाः परं पूरैः पारं प्राप्य पयोनिधेः। निपेतुः पवनैः पूताः प्रलये तारका इघ ॥ २१ बबुरम्भोधिकुट्टाका दृषदां कटकाङ्किताः । सर्वदिग्वनलुण्टाका याताः प्रलयशङ्किताः ॥ २२ आसारसाराः पङ्काम्बुष्ठताः सघनघुंघुमाः ।

तत्रत्यं भुवस्तलमभितो विवर्तमानैः संचरद्भिज्वेलनायुपेरुल्मु-कधरैरतएव कचद्भिर्निशाचरैः ऋक्षभरैर्निक्षत्रसमूहेर्यौरिव सारं शोभमानमासीत् ॥ १२ ॥ किंच तस्मिन्विपश्चिद्विजये जगदेव नेहुनुहा यस्यास्तथाविधा चौर्घाराधराणां धरारन्ध्रेषु गर्जनप्र-तिष्वनिमिर्धनष्ठंषुमा बहुलमृदङ्गध्वनिः सती घनं तद्यशो गातु-मुद्यतेवासीत् ॥१३॥ मीनविद्यारजंगलभूते जम्बाले शैवलप-ल्बले दैवादजले सति मत्स्या इव अशरणाः ॥ १४ ॥ याद-द्वीपाः यावद्वीपामिजना भटाः सह्याद्रौ निलीय सप्तरात्रमा-श्रस्य चिकित्स।दिना वर्णोपशमात्सममूर्तयः सन्त आसौरः क्रियमाना आयासेन मन्यरं मन्दं खदेशं ययुः ॥१५॥१६॥ हुणानां चीनानां किरातानां शिरांसि अभिमुखानिलेरत एव वेगवद्भिर्विपश्चिन्मुकैश्वकवर्षणैः कमलानीव छुनानि ॥ १७ ॥ निलीपारानामकदेशजा भटा द्वममया वृक्षप्रायाः सन्तोऽव-सन् ॥ १८ ॥ सारङ्गाणां मृगाणां पक्षिणां च विद्वारे रङ्गभूमि-भूतासु शैलकाननभूमिषु तस्य विपश्चित आपातैर्धनमतिशयितं क्षोभणं संपन्नम् ॥ १९ ॥ कण्टकस्थलं कर्जवनमिव कर्कशाः कण्टकानां दस्यूनां स्थले मण्डले देशे कण्टकस्थलगाः करजा-दिबननिलीना आसन् ॥ २० ॥ २१ ॥ दषदां प्रहारैः पर्यत-कटकेषु अहिताः कृतन्त्रिहाः । प्रख्यशह्निताः प्रख्यशङ्काविषयी-कृताः ॥ २२ ॥ दशदिशो बहुधुच्यैरायुधैरनिरुध आसार-सारा भूला पहाम्ब्रह्मता अदरया आसन् ॥ २३ ॥ वातेनीहारा

आसन्दरादिशोऽहर्या बहुधुरुधायुधानिकैः ॥ २३ निर्हादकारिभिवातिवह च्छपछपारवम् । प्रसम्भुवि नीहारा महार्णवरया इव ॥ રક बिदूरस्या रथेभ्यश्च वीचिचीत्कारकारिणः। सरोम्भस्यनिकैः पेतुः पद्मभ्य इव षद्भपदाः॥ २५ आयुधौषेऽपि चक्रीघात्पादातं बलमाविलम्। रजोराशिरिघासारे न समर्थ पलायने ॥ २६ हणा आमस्तकं मन्ना उत्तरार्णवसैकते। क्रिश्नास्तत्रेष पङ्कान्तः पूरणाविलश्लवत् ॥ २७ तीरैलावनलेखासु शकाः पूर्वपयोनिधेः। नीता बद्भा दिनं मुक्ता न गता यमसादनम् ॥ २८ मन्दं मन्द्रा महेन्द्राद्री ऋन्दन्तः पतिता दिवः। आश्वासिता मुनिवरैर्निजाश्रममृगा इव ॥ प्रविद्या याचनं सह्ये लच्धाः सुरविलाद्वयम् । अनर्थेनार्थ आयाति काकतालीयतः क्रचित्॥ ३० पतिता दर्दरारण्ये दशाणी जीर्णपर्णवत्। भुक्त्वा विषफलान्यशा मृतास्तत्रैव ते स्वयम् ३१ विद्याल्यकरणीं भुक्त्वा काकतालीययोगतः। हिमाद्री हैहया याता गृहं विद्याधरा इव ॥ 32 पृष्ठनुम्लानकुसुमा धनुर्भिर्युहमागताः। बक्रा नाद्यापि दृश्यन्ते पिशाचत्वभिवागताः

वहच्छपछपारवं यथास्यात्तथा प्रसन्नः । छपछपेखव्यक्तनीहारा-मिघातध्वन्यनुकरणम् । महार्णवरया अपि वातप्रयुक्ता वहच्छ-पछपारवाश्व तदनुभविनां प्रसिद्धाः ॥ २४ ॥ अनिलैः प्रोद्य-माणा विद्रदेशस्था रथिका वीचय इव चीत्कार्कारिणः सन्तः सरोम्भसि पेतुः ॥ २५ ॥ तेषां पादातं बलं तु आयुधीये सत्यपि विपश्चिकत्रोधादाविलमश्चकछषाक्षं सत् आसारे धारासं-पाते रजोराधिः पांसजालमिव पलायनेन समर्थमभूत् ॥२६॥ भवि पूरणेन आविलं मृन्मालिन्यमापयमानं लोहशूकं यथा क्रियते तद्विक्षाः ॥ २७ ॥ शका भटाः पूर्वपयोनिधेसीरैला-वनलेखासु नीताः सन्तो दिनमात्रं विपिष्टता बद्धा पथाइयया मुक्ता यमसादनं न गताः। न मृता इखर्यः ॥२८॥ दिवो घु-वदुश्रताद्गिरिबीखरात् ॥ २९ ॥ सहे। गिरी प्रविष्टा भटाखु मुकाम्बिकासन्निधी कुटजाद्याख्ये तिन्छखरे दैवारप्रविष्टातसुर-बिलात् द्वयं ऐहिक। मुष्मिकं याचनं अमिल षित सिदिफलं लब्धाः प्राप्तवन्तः । तथाहि । भाग्योदयकाले कवित्काकता-लीयन्यायतः अनर्थेनापि अर्थः पुरुषायं आयाति । यतो मर-णाई सुरविलं प्रविष्टैः सिद्धयो छन्धा इत्यर्थः ॥ १० ॥ द-शार्णा भटा दर्दुरगिरेररण्ये पतिताः प्रविष्टाः सन्तः ॥ ३९ ॥ हैहयदेशीया भटा हिमादी विशस्यकरणीमोषभि भुक्ला विद्या-धरा इव खेचराः सन्तो गृहं याताः ॥ ३२ ॥ एवं वन्ना अपि हैमवतीरोवधीर्भुक्ला पृष्ठलमा नरा इव म्छानानि उत्तंसकुद्ध-

अङ्गा वनफलेर्भुकै विद्याधरपदप्रदेः। विद्याधरीमिः क्रीडन्ति दिवि विद्याधराः स्थिताः ३४ तालीतमालखण्डेषु पतिताः पातिताङ्गकाः। पारसीका गता मोहं भ्रमाद्यमानिका १४॥ ३५ तरलासारमातङ्गं पतितं तङ्गणाङ्गणे। अङ्गरङ्गकलिङ्गानां चतुरङ्गं बलं हतम्॥ ३६ क्रमस्यरिबले साल्याः शरशैलोदकोदरे। पतिताः प्रभुणा सार्धमद्याप्येवोपलाः स्थिताः ३७ असंख्याः प्रपलायन्तः ककुमं ककुमं प्रति । नराः सरसरङ्गेषु सागरेषु छयं गताः ॥ ३८ क्षेत्राटवीपुरजलस्थलदौलकुल- कुल्याप्रहारसरिव्ध्यिभृगृहुमेषु । प्रामारपद्दिगिरिक्ष्पगुहागृहेषु अधानि कः कलयितुं कुबलानि शकः ३९.

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० नि० उ० अवि० वि० बलपरिश्रंशो नाम द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ११३

वसिष्ठ उवाच ।
बलान्यनुतरम्तोऽथ तदित्यं द्रवतां द्विषाम् ।
दूराहुरतरं प्राप्ताभ्रत्वारस्ते विपश्चितः ॥ १ सर्वदाक्तिमयैकेन चेतनेनेश्वरेण ते ।
प्रहिता दिग्जयं चकुः सर्व एव समाद्याः ॥ २ दूरात्तावद्विच्छिन्नमनुसम्बुर्वलानि ते ।
यावत्तीरं समुद्राणां प्रचाहाः सरितामिव ॥ ३ दूराविश्रान्तयानेन तेषां तत्सर्वसाधनम् ।
आत्मीयं परकीयं च श्लीणं कुसरिदम्बुवत् ॥ ४ आत्मीयान्यन्यदीयानि तेषां वीक्ष्य बलान्यलम् ।
श्लीणानीव मुमुश्लूणां पुण्यपापानि धावताम् ॥ ५ स्वयमस्वाणि द्यान्तानि कृतकृत्यान्यथाम्वरे ।

मानि येषां तथाविधाः सन्तः शरव्ययारकेवलं धनुर्भिरुपल-क्षिता गृहमागताः सन्तो भयादद्यापि बहिनिःसरणाभावाभ दर्यन्ते ॥ ३३ ॥ दिवि विद्याधरा भूला स्थिताः ॥ ३४ ॥ पारसीकास्तालीतमालखण्डेषु पतिताः प्रविष्टमात्राः शत्रुमिः पातिताङ्गकाः सन्तो मोहं मुच्छां गताः । तत्र च श्रमाद्देमानिका इवाभवन् ॥३५॥ हे अङ्ग, कलिङ्गानां तरलासारमातङ्गं चतुः रकं बलं अक्वेर्रतं सत् पलायमानं तक्षणाक्षणे पतितम् ॥ ३६॥ साक्वा भटाः शराः शैलाः शिलासमूहा उदकानि चोदरे यस्य तथाविधे अरिबले कमति आकमति सति प्रभुणा सार्धे पति-तास्ते बाद्यापि तहेशप्रामदेवताभूता उपलाः प्रतिमा भूला स्थिताः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ न केवलं सागरेष्वेव किंतु क्षेत्रेष्व-टवीषु पुरेषु जलेषु स्थलेषु शैलेषु कूलेषु कुल्यासु अमहारेषु सरित्सु अन्धिषु सगुषु द्वमेषु तथा प्रामेषु आरपष्टिषु शुल्कस्था-नेषु निरेषु कृपेषु गुहासु गृहेषु च श्रष्टानि मृतानि तेषां कुब-लानि कलयितुं गणयितुं कः शक्तः। न कश्चिदपीत्यर्थः ॥३९॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणताम्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

असाणामिरसंशान्त्या साधनानां च संक्षयः। अर्णवानां च विभवो वर्ण्यते विस्तरादिहः॥ ३ ॥ इवतां द्विषां बलान्यनुतरन्तोऽनुधावमानाः॥ १ ॥ सर्वश-

ज्वालाजालानि वक्षीनां दाह्यस्यासंभवादिव ॥ आल्येषु रथाश्वेभवृक्षीघादिषु हेतयः। आसन्निद्रालवो लीना दिनान्ते विहगा इव ॥ 9 तरङ्गा इव तोयेऽन्तर्नीहारा इव धारिदे। मेघा वायाविवामोदा व्योमनीव निलिव्यिरे॥ धारापङ्कतलालीनशान्तहेतिजलेचरः। नाराचसीकरासारनीहारपरिवर्जितः॥ 9 चक्रावर्तशतोत्मुको युक्तः सौम्यतयाच्छया। प्रशान्तमेघसंरम्भतरङ्गोत्तङ्गवर्षणः॥ १० अन्तर्लीनर्क्षरस्रीघकोणसंस्थाकेवाडवः। शून्यतावारिरमलो व्योमैकाब्धिरभृत्पृथुः॥ ११ लम्बप्रकाशगम्भीरं प्रसन्नं कान्तिमत्ततम् ।

क्तिमयेन सर्वशक्तिसंखतेन सर्वदेहेच्वेकेन चेतनेनेथरेण प्रहिता दिग्विजयाय प्रवर्तिताः । समाशयास्तुत्यामित्रायाः ॥ २ ॥ भविच्छिन्नमरिवरैरनुस्यूतं यथा स्यात्तथा अनुसन्नः ॥ ३ ॥ ब्रुमविश्रान्तेन यानेन गमनेन तेषां विपश्चित्सैन्यानां तत्प्र-सिद्धं सर्व जीवनयुद्धादिसाधनं धनास्त्रशस्त्रादि प्रत्यहं व्ययेन क्षीणम् । कुसरितां कुल्यानामम्बुवत् ॥ ४ ॥ धावतां तेषां विपश्चितामात्मीयान्यन्यदीयानि च वीक्षणाहीणि बळानि सै-न्यानि सुसुक्षूणां पुष्यपापानीव अलं निःशेषं क्षीणानि ॥ ५ ॥ ॥ ६॥ आलयेषु निषक्तकोशादिखस्थानेषु रथादिषु च लीनाः सन्तो निद्रालव इव निश्वेष्टा आसन् ॥ ७ ॥ ८ ॥ वर्षभाराप्र-युक्ते पहृतले आलीना अतएव शान्ता हेतिलक्षणा जलेपरा मीनमकराद्यो यस्य । तथा नाराचलक्षणैः सीकरासारनीहारैः परिवर्जित इलादाव्यक्षपकोपपादकविशेषणानां चतुर्थश्लोकस्थे व्योमैकाव्धिरभूदिलत्रान्वयः ॥ ९ ॥ प्रशान्तानि मेघसंरम्भ-प्रयुक्तानि तरक्रेभ्योऽप्युत्तुक्रानि वर्षणानि यस्मिन् ॥ १० ॥ अन्तर्लाना ऋक्षलक्षणा रहीया यस्मिन् । कोणे एकदेशे संस्थः अर्कलक्षणो वाडवो वडवानलो यसिन्।श्रून्यतेव वारि यसिन्। ईदशो व्योमलक्षण एकान्धिः प्रलये प्रतिद्ध एकाणैवः प्रश्वर्वै-स्तृतः अभूत् ॥ ११ ॥ खं महतां मन इव रेजे । अम्बेन

| रजोविरहितं रेजे खं मनो महतामिव॥ | १२ |
|---|-----|
| अथार्णवांसे दरशुराकाशस्यानुजानिव। | |
| विस्तीर्णान्वमलाकारान्पूरिताखिलदिकदान्। | १३ |
| तरङ्गकणकङ्कोळमहागुलुगुलाकुलान् । | |
| भूरिसीकरनीहारहारिहारिष्रारीरिणः॥ | १४ |
| स्थितानास्मानमास्तीर्थ भूमी व्याध्यातुरानिव | l |
| श्वसनातीक्षलदेहान्विवतीर्मिम्हाभुजान् ॥ | १५ |
| जडानपि स्पन्दमयान्कहोलाकोटकोटरान्। | |
| संसारानिष् विस्तीर्णोधकावर्तदशाकुलान्॥ | १६ |
| रक्तराशितटोद्योतपीवरीकृतमास्करान् । | |
| शङ्कराशिविशद्वातशब्दर्तजितधुंधुमान्॥ | १७ |
| मांसलोर्मिघटाघोषघर्घराम्बरङम्बरान् । | |
| वर्तुलावर्तविस्तारप्रभ्रमद्विद्यमद्वमान् ॥ | १८ |
| मकरम्यूहनिर्हाद्घर्षरोदरघुंचुमानः। | |
| मत्त्रपुरुष्टच्छटाव्छित्रमञ्जरपोतकतारवान्॥ | १९ |
| उद्गीवकूर्ममकरनिगीणीर्णनरोत्करान्। | _ |
| ऊर्मिबिम्बितसप्ताभ्वसहस्रार्क्नभोनिमान्॥ | २० |
| भांकारकारिपवनपतद्भत्यततोद्धटान् । | _ • |
| क्रम्युवस्त्मणिवात्बलाज्यणस्णभ्वनीत् ॥ | २१ |
| नानाजालैर्वल्भुजैर्देलास्पृष्टार्कमण्डलान्। | |
| नमदुभम्दुद्रिमर्समाणिक्यम्ण्डलान्॥ | २२ |
| उत्फालफेनिछावर्तविवर्तमकरोत्करान्। | |
| कचित्करिकरोन्नामैः क्षणं वंशवनीकृतान् ॥ 🐩 | २३ |

विस्तीर्णेनात्मप्रकाशेन सूर्यालोकेन च गम्भीरम् । रजोगुणैर्धू-क्रिमिश्व विरहितम् ॥ १२ ॥ आसर्गसमाप्तेरर्णवान्वर्णयितुमु-पक्रमते-अथेति ॥ १३ ॥ भूरिभिः सीकरनीहारहारिभिर्मे-वैहारि मनोहरं शरीरं येषाम् । निल्ययोगाद्यर्थाधिक्यविवक्षया कर्मधारयादपि मलर्थीयः समर्थनीयः ॥ १४ ॥ आत्मानं खदेहं भूमी आसीर्य प्रसार्थ । विवर्त्यन्त इति विवर्ता उत्थि-प्यमःणा कर्मिमहाभुजा येषाम् ॥ १५ ॥ संसारपक्षे कन्नोलाः षद्भंयस्तैराकोटाः कृटिलाः कोटरा जलाशया येषु ॥ १६॥ रमराशिधरैसाटोद्योतैरुदयकाले पीवरीकृतः स्थलीकृत इव भा-स्करो यैः । शक्कराशिषु विशतो वातस्य शब्द एव तर्जितष्रंष-मस्तर्जनष्वनिर्येषाम् ॥ १७ ॥ मांसलानां पुष्टानामूर्मिघटानां बोबैर्मेयघर्षराम्बरडम्बरयुक्तान् ॥ १८ ॥ पुन्छन्छटा पुन्छाप्रं तेन च्छिनेद्विंधाकृतैरतएवं मजद्भः पोतैः कृतारवान् ॥१९॥ उद्मीवैः कूर्नैर्मकरैश्व निगीणी औणी उर्णाम्बरा नरोत्करा येषु । सामुद्राणां नराणां प्रायेणीणांम्बरखद्योतनायीणेति विशेषणम् ॥ २० ॥ विस्तीर्णपटे भांकारकारिभिः पवनैः पतन्तो ग-च्छन्तो भूत्याः भूतिसंश्रतास्तताः उत् अर्थं घटन्ते चेष्टन्त इत्युद्धटाः पोता येषु । बलात् पतनामिषातबलात् ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ करिणां कराणां ग्रुण्डान।सुत्रामैरुत्रमनैर्वशयनमिव

१ वार्षितेलपि कचित्पाठः स न व्याख्यानुगुणः.

| छहरीबह्नरीबालान्पृष्ठतालिषु माधवान्। | |
|---|------------|
| कचिदन्तरविभान्तसंपरिच्छदमाधवान् ॥ | २४ |
| पकदेशस्थितासंख्यनानासुरसुरास्रयान्। | |
| तारानचतरङ्गीघपरिवन्तुरिताम्बरान्॥ | 24 |
| गुहामशकवद्गर्तभीतशाखायिताचलान्। | |
| नयतोम्बुतरङ्गीवैर्वेलाद्रीनतिखर्वताम्॥ | २६ |
| खक्षेत्रारोपितानस्परक्षरिमपथाङ्करान्। | |
| गुज्र गुक्तिमुखोन्मुक्तमुक्तान्तरितसैकतान्॥ | २७ |
| नानारकांशुकौशेयस्त्रचित्रांसरक्रितान्। | |
| विशासदीन्दशादिन्भिः समाकीर्णान्पदानिव॥ | २८ |
| रम्ब्रनीलतटैर्ब्युप्तमुकाञ्चकिशताङ्कितैः। | |
| कचिद्दर्शयतः कान्तरातेन्द्रकनकश्चियम्॥ | २९ |
| रज्ञांग्रुजालसंदिग्धास्तरङ्गादेशविग्विताः। | |
| परिवर्तेयतः फुह्लास्तीरतालीवनावलीः॥ | ३० |
| पलालवङ्गकङ्कोलफलमालां जिघृश्वमिः। | |
| वेळावनळताभ्रष्टामात्तावृत्तीञ्जलेचरैः॥ | 38 |
| च्युतनीपकदम्याप्रविद्दगान्प्रतिविस्वितान्। | |
| भुजानैर्विप्रसम्मेन कृताच्छोटाञ्जलेखरैः॥ | ३२ |
| खेचरप्रतिबिम्बेन विद्ववद्गिरितस्ततः। | |
| भग्नबन्धबृहत्सेत्न्क्षणं प्रति जलेचरैः॥ | 3 3 |
| अमूर्तान्यतिबिम्बेन दृदयस्थजगन्नयान्। | |
| चतुरो व्योमविपुलान्विश्च नारायणानिव ॥ | \$& |

इतान् ॥ २३ ॥ लहरीषु वह्नर्य इव कंरिणां वालाः पुच्छानि येषु तान् । करिणां पृष्ठसमूहः पृष्ठता तह्नक्षणाखालिषु पङ्किषु माधवान्वसन्तानिव फेनपुकैः पुष्पितान् । कवित् श्वेतद्वीपादौ ॥ २४ ॥ नानाविधानामसुराणां सुराणां चालयभूतान् । द्वन्द-गर्भषष्ठीतत्युरुषान्तचतुष्पदबहुवीहिर्वा । प्रतिबिम्बफेनादितारा-विद्वर्नवतरक्रीचैः परिदन्तुरितं परिद्वितमम्बरं यैः ॥ २५ ॥ गुहास्तमशकवत्पातालगर्ते निविष्टा बहिर्निर्गमनभीता अतएव मूलस्थशाखायिता अचला येषाम् । खर्वतां नयत इति वेलाच-पेक्षया । तरश्रीघाणामीभव्यसंपादनादिति भावः ॥ २६ ॥ रिमपयाः रिमप्रसराः । स्वशेत्रे आरोपितास्त्रक्षशणा अहरा यैस्तान् ॥ २० ॥ नानारक्षांशुरुक्षणैः कौशेयस्त्रैश्वित्रान् । विशन्सो नय एव त्ररीप्रवेश्यमानतन्तवो येषां तान् । दशाभू-तामिर्दिग्भिः परितः समाकीणीन् अतएव जयमानपटानिव स्थितान् ॥२८॥ कान्तशतेन्द्रकामिय नसश्चियं किचिइशेयतः ॥२९॥ तरङ्गाणामादेशेषु प्रदेशेषु प्रतिविभिवतास्तीरतासीवना-बळीयस्तरङ्गपरिकृत्य परिवर्तयतः॥३०॥ वेळावनळताभ्यो भ्रष्टा-मेलादिफलमालां जिष्टश्चमिजेलेचरैः भाता भाष्ट्रतयसीरे संबा-रा येषु तान् ॥ ३१ ॥ मध्योपदर्शनादिच्छदाना तरक्रसेनियावा-कृष्य भुजानैर्जलचरैः कृता आच्छोटा अङ्गुलीध्वनयस्तरप्राचा ध्वनयो येषु ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अमूर्तकाविसाधम्येण विश्व अतिगाम्भीर्यंभैमंस्यविस्तारविभवैनंभः।
निगीर्य संवर्धयतो द्वयादिव विम्वितम्॥ ३५ जलवारिविद्वनागं साकाशं प्रतिविम्बितम्।
आशयेर्वधतः सारैः पद्मान्भृक्तमिवात्मगम्॥ ३६ तरङ्गतरलास्फालमायतैराहताम्बरात्।
कन्दरोद्वारगम्भीरैः कल्पान्तजलदालयान्॥ ३७ गुहागुलुगुलावर्तनिर्धोषाशिनभीषणान्।
भूशं भावयतो प्रस्तानगस्यौर्षानलानिष्।॥ ३८

भूरिसीकरपुष्पाणि तरङ्गोधतकणि च ।

प्राप्तान्यम्बुवनानीव लहरीमश्ररीणि खम् ॥ ३९
सरत्तरङ्गजालानि प्रोड्डीनप्राणिमन्स्यधः ।

आकाशखण्डखण्डत्यात्पतितानीय विश्वमात् ४०
प्रलालवङ्गबकुलामलकीतमालहितालतालदलताण्डवखण्डताप्रे ।

प्राप्ते पत्रक्षयणवारिधिदीर्घतीरं
रेखा बभावलिनिभाम्बरशैलमूर्धि ॥ ४१

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो॰ निर्वा॰ उ० श्रवि विप॰ समुद्रवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः॥१९३॥

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ११४

विषष्ठ उवाच ।
अथ तेवां तदा तत्र तत्रस्तांस्तानदर्शयन् ।
पार्श्वगा चनष्ट्रसाव्धिशैलमेघवनेचरान् ॥ १
देव पश्यास्य शेलस्य येयमभ्रंकषाप्रभूः ।
समहन्मध्यदेशादेरहमदेशमुपेयुषः ॥ २
इमा बकुलपुन्नागनालिकेरकुलाकुलाः ।
विपिनावलयो वान्तविविधामोदमाहताः ॥ ३
जुनात्युपस्यकां वार्धिः शैलशालिहीलावलीः ।
वनालिहहरीवान्नरापादफलपल्लवाः ॥ ४

चतुरी नारायणानिव स्थितान् ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ क्षात्रायै-र्ह्रदवैर्दघतः। आत्मगं कोशगर्भस्थम् ॥ ३६ ॥ गम्भीरैरिति भावप्रधानो निर्देशः । अन्तर्गतगिरिकन्दरास्य पवनप्रवेशनि-र्गमरुक्षणो य उद्गारस्तदनुमेयकन्दरागाम्भीर्यैः कल्पान्तनरुदा-नामालयभूतान् ॥ ३७ ॥ गुहासु गुलगुलारूपैरावर्तनिर्वेषिः अ-शनय इव भीषणान् । खप्रासिनः अगस्यानौर्वानलांध गुहो-दरेषु खर्श प्रस्तान्संभावयत इव ॥ ३८॥ तथा खं प्राप्तान्यम्बु-बनानि भावयत इब स्थितान् । कीदशान्यम्बुवनानि । भूरिशीकरा एव पुष्पाणि येषु तानि । तरशीघास्तरवो येषु । छहुयां मक्षयां वेषु ॥ ३९॥ तथा प्रोड्डीनप्राणिमन्ति मत्स्यादियुक्तानि सरन्ति तरक्रजाछानि आकाशस्य खण्डे शक्षेः खण्डने कृते खण्डलादेव अधःपतितानीव विश्रमाद्भावयतथत्तरोऽर्णवांस्ते दहश्चरिति पूर्व-श्रान्वयः ॥४०॥ वर्णितप्रकारैः पततां तरक्रैः प्रत्युद्गच्छतां स्वण-षारिधीनां धीर्घतीरं विपिधत्सैन्ये प्राप्ते सति परितो दीर्घे तीराप्ते अम्बरसंष्ट्रकानां बैलानां मुश्लि एकालबङ्गादिवृक्षाणां जलताण्ड-नैः सण्डिता विभक्ता अलिनिभा स्यामला बनरेखा बभी अशो-भवेखर्यः ॥४९॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्योजप्रकरणे उत्तरार्धे अयोदशाधिकशततमः सर्गः॥११६॥

इत आरम्य वर्ण्यंन्ते विपक्षित्रः प्रवृशिताः । पार्वगैर्वनवृक्षाविषशैक्षमेववनेचराः ॥ १ ॥ अयेति वनाविवर्णनविस्तारारम्भक्षोतनाम । तेषां विपश्चितां पार्थमा मक्षाद्यस्ततः समुद्रचंनिथिप्राप्त्यनन्तरं तांस्तानिवि-

अधित्यकासु मेघालीर्नृत्यतां स्वाम्बुभूभृताम् । धुनोति जलधिर्षालो गृह्धूमायलीमिव ॥ ५ राकाव्धिपूरसंप्रोतदाह्वद्याखास्तटद्वमाः । चन्द्रविम्बफलाः कल्पवृक्षा इव विभान्त्यमी ॥ ६ रक्षपुष्पभरापूर्णरक्तपल्लवपाणयः । भवन्तं पूजयन्तीव लतादारान्विता द्वमाः ॥ ७ प्रोतोर्मिमकरप्रासैर्हपहन्तेर्गुहामुखैः । कक्षवानृक्षवद्गभृद्यसे घुरघुरारवम् ॥ ८

त्रान् वनशृक्षादीन् अदर्शयन् । कीतुकार्थमित्यर्थः ॥ १ ॥ हे देव, मध्यदेशादेरपत्यकाधित्यकाप्रस्थादिप्रदेशात्क्रमेणाप्रे अइम-देशं शिलाप्रचुरभागतामुपेयुषः अस्य शैलस्य येयमभ्रंकषा अ-त्युमता अतएव समहत् प्रचुरवायुयुक्ता, विहरहेवगन्धवीद-युक्ता वा अप्रभूः शिखरभूभिस्तां पश्येत्यर्थः ॥ २ ॥ बान्तः उदीर्णी विविधामीदो माठतो याभिः । या इमा विपि-नावलयस्ता अपि पश्य ॥ ३ ॥ बार्धिलंहरीलक्षणैदीत्रै-रुपत्यकामदेरासनां भूमि छनाति । तथा शैक्षे शास्त्रन्ते शोभन्ते याः शिलाबलयस्ताध छनाति । तथा आपा**रं** फलपहरव्यामा बनालीश लुनाति पश्येत्यर्थः ॥ ४ ॥ जलिः पवनकम्पिततघलताभुजाद्यभिनयैर्नृत्यतां खेदबिन्दु-प्रायखाम्ब्रकणाधितानां भूभृतामधिखकायु विश्रान्ता मेषालीः पवनेन धुनोति । यथा बालः खगृहधूमावली व्यज-नपवनेन धुनोति तद्वरपश्य ॥ ५ ॥ राकासु पूर्णेन्यूदय-काले प्रवृद्धस्याब्धेः पूरैः संप्रोतशङ्काः शास्त्रा येषां तथाविधा अभी तटह्रमाधन्द्रविम्बानीवामृतरसपूर्णीन शुभ्राणि च फ-लानि येषां तथाविषाः कल्पन्नक्षा इव विभान्ति । पर्येति सर्वत्रानुषद्गः ॥ ६ ॥ स्तारूपैर्दारेरन्वता द्वमाः रजसद्शैः पुष्पभरैः भापूर्णा रक्तपह्नब्रुक्षणाः पाणयो येषां संघाविषाः सन्तः खगृहं प्राप्तमतिथि भवन्तं पूजयन्तीव किरन्तीलथैः ॥ ७ ॥ प्रोतोर्मान्मकरान्प्रसन्ति तथाविधैः ग्रह्मदिवर्णदृषद् न्तैर्प्रहालक्षणेर्भुक्तैः ऋक्षवात्राम भूभृत् ऋक्षवद्भव्यवद्भरारवं महेन्द्रो मन्द्रगर्जामिरमिश्चिपति गर्जतः। पर्जन्यानूर्जितो जन्यः प्रतिजन्यान्यथा जडैः॥ 9 चन्दनाकवितः श्रीमाञ्जेतुं जलधिवेहनाः। समुचत इवोचोऽसी महो मलयपर्वतः॥ १० सर्वतः कचितोऽज्ञसं रह्नवीचिमिरम्बुधिः। भूरत्वसस्यम्रान्या प्रेश्यते सूर्यमार्गगैः॥ ११ सरन्ति रह्ममूर्धानश्चलंकानिलपायिनः। वानपूराः पर्वतकाः सर्पा इव नतोन्नतेः॥ १२ भ्रमन्तो वीचिश्टक्षेषु मकरेभाः करोत्कटैः। हरन्ति सीकराम्भोदा मेघानुद्राविता इव ॥ १३ आवर्तविकताकारः सीकरोत्करकीर्णदिक् । पूर्णत्वासु शिरोऽशक्तो म्रियतेऽत्युत्करः करी ॥१४ विविधप्राणिसंपूर्णाः सजलाद्विनतोन्नताः । १५ यथैवाम्भोधयः सर्वास्तथेष द्वीपभूमयः॥ आवर्तानारमनोऽमन्यानप्यन्यानिय भास्यरान्। गृह्यमाणानसदूपान्डश्यपानानपि स्फुटान्॥ १६ तरङ्गतरलानन्तर्जेडानप्यम्बुधिश्चलान् । **धत्ते ब्रह्मजगन्ती**व सान्तानप्यन्तवर्जितान् ॥ १७ यानन्तरिन्द्रवद्भानुमणीन्धत्तेऽम्बुधिर्वह्न ।

धले ॥ ८ ॥ अयं महेन्द्री गिरिसध्वे गर्जतः पर्जन्यानधो मन्द्रगर्जाभिरभिमुखं क्षिपति भत्सेयति । यथा अर्जितो जन्यो यहकुशलः प्रतिजन्यान्तिपुज्जडैर्वाक्यैः क्षिपति तद्वत् ॥ ९ ॥ असी मलयपर्वतलक्षणो मल्लो जलघेः प्रतिमलस्य लहरीभुजने-ह्ननाः जेतुं समुद्यत इव ॥ १० ॥ सर्वतो रत्नयुक्तवीचिभिः कचितोऽयमम्बुधिः सूर्यमार्गगैर्नभर्श्वरतज्ञसं भूरत्रवलयभ्रान्ला प्रेक्ष्यते । 'कचितौजस्कम्' इति पाठे ऐकपद्ये कियाविशेषणं योज्यम् ॥ ११ ॥ वानं वनसमूहास्तैः पूर्यन्त इति वानपूराः पर्वतकाः सूक्ष्माः पर्वताः वायुना वने कम्प्यमाने चलकाः सन्तः सर्पा इव सरन्ति । रक्षमूर्धानः अनिलपायिन इति साधारणे विशेषणे । नतीन्नतैर्गतिमेदैः ॥ १२ ॥ वीचिश्वन्नेषु भ्रमन्तः सामुद्रा मकरा आरण्या इमाध वीचिश्टक्षेषु निर्गच्छत्यु प्रविशासु च परस्परप्रहणाय करेहत्कटैर्न्यातेर्भुखेश अमन्तो मेथै-रनुद्राविता अनुद्वताः सीकरमुचोऽम्भोदा इव हरन्ति कोतुकद-शिंनां मन इति शेषः ॥ १३ ॥ तत्रिकः करी दैवादगाधे जले आवर्तेन कलितः परिवर्तित आकारो यस्य तथाविधः सन् सीकरोरकरै: कीर्णा दिशो येन तथाविधो भूला मजनजलपूर्ण-लान्स शिर उभेतुमशक्त अर्ध्वाकृतकरः सन् श्रियते पश्य॥१४॥ सजलाय ते अदिमिर्नतोत्रता विषमाध अम्भोधयो यथा सन्ति तथा सर्वा द्वीपभूमयोऽपि सम्तीति बोध्यमिखर्थः ॥ १५ ॥ अम्बुधिब्रह्मजगन्तीय आवर्तान् धत्ते इति द्वयोरन्वयः । आ-त्मनोऽनन्यानप्यन्यानिवेत्यादिविशेषणानि आवर्तजगतोः सा-भारण्येन योज्यानि ॥ १६ ॥ १७ ॥ मन्धने देवासुरैरपहृत-

मन्थापद्वतसर्वस्वो देवेभ्यः परिरक्षितान्॥ १८ दृदयमानान्महातेजस्तथा पातालतोऽप्यलम् । प्रतिबिम्यविभक्क्यान्तरसंख्यामिव गोपितान् ॥ तेयां मध्यादेकमेकं प्रत्यहं पश्चिमार्णवे । निक्षेपाय क्षिपति यं तेन मन्ये दिनं भवेत् ॥ नानादिग्देशपयसामग्धौ साधुसमागमः। यात्रायामिव लोकानां मिथः कलकलान्वितः॥ २१ जलेचरावरा नृनं सागराणवसंगमे। अन्योन्यवेलनाद्युद्धं न कदाचन शाम्यति ॥ २२ ताम्यत्तिमितरङ्गाग्रनर्तनावर्तविग्रमम्। वलयन्वायुरायाति वान्तसीकरमौक्तिकैः॥ २३ सरिन्मुक्तालतामध्यमध्यस्थाव्दमणीश्वराः । दीर्घाः खणखणायन्ते चञ्चलाः सर्वतोऽम्बुधेः २४ महेन्द्रादेर्गुहागेहपरावृत्तार्णवाध्वनाम्। भांकारिण्यो भुवः सिद्धसाध्यानां सुसुखावहः २५ मन्दरः कन्दरोद्गीर्णैः प्रसरैर्मातरिश्वनः। कम्पाकुलयनाभोगः पुष्पमेघांस्तनोति खे॥ २६ चृतनीपकदम्याख्यगन्धमादनकन्दरात् । विशन्ति मेघहरिणास्तिडिसरललोचनाः॥ २७

सर्वेस्बोऽम्बुधिस्तस्मिन्कारुं देवेभ्यः परिरक्षितान्गोपितान्यान्ब-हुन्भानुमणीनन्तर्धते । इन्द्रवत् यथा इन्द्रः असुरेभ्यो गोपयः न्मणीनन्तर्धत्ते तद्वत् ॥ १८ ॥ तथा महातेजोरूपानत एव पातालतोऽपि अलं दर्यमानान् यन्मणीन् प्रतिबिम्बविभक्त्या असर्यानिव कुला अन्तर्गोपितान्धते ॥ १९ ॥ तेषां मणीनां मध्यारप्रलाहमेकं यं मणि पश्चिमाणिवे निश्चेपायान्तरिक्षे क्षि-पति तेन तहिनं भवेदिति मन्ये इत्युत्प्रेक्षा ॥ २० ॥ अब्धि-कलकले हेतुमुरप्रेक्षमाण आह--नानेति ॥ २१ ॥ युद्धोत्सा-हवतां मध्ये जलेचरा एव वराः। नूनमिति वितर्के । कुतः। यतः सागरार्णवयोः पूर्वापरसमुद्रयोः संगमे येषां सदैवान्योन्यवेह्न-नान्न कदाचन युद्धे शाम्यति ॥ २२ ॥ ताम्यतां ग्लायतां तिमीनां मत्स्यमेदानां तर्ह्वाञेषु नर्तने य आवर्तविश्रमसं वान्तैरुद्गीर्णैः सीकरलक्षणैः सीकरसहितैर्वा मौक्तिकैः पारितो-षिकेंवीलयनवेष्टयनप्रभुरिव वायुरायाति पश्य ॥ २३ ॥ सरिक्र-क्षणानां मुक्तालतानां मध्ये मध्ये स्थिता अब्दलक्षणा मणी-श्रुरा मणिश्रेष्ठा अम्बुधेः कण्ठे सर्वतो दीर्घा लम्बमानाः परस्प-रामिचातारसणसणायनत इत्युत्प्रेक्षा ॥ २४ ॥ पुनः कीह्शो वायुः । महेन्द्रादेर्भोकारिण्यः अरतिकारिणीः । विमक्तिव्यखं-यरछान्दसः । भुवः प्राप्य तत्रारुच्या गुहागेहेषु रत्यर्थ पराष्ट्र-सार्णवाध्वनां सिद्धानां साध्यानां च देवयोनिमेदानां रितश्र-मापनोदेन सुसुखावहः ॥ २५ ॥ अपरो मन्दरं वर्णयन्दर्श-यति--- मन्दर इति ŀ कन्दरेभ्य उद्गीर्गैर्मातरिश्वनो वायोः प्रसरैः खे पुष्पवार्षणो मेघांस्तनोति विस्तारयति । प्रस्थाह्यहान्मेथान्युष्पैः पूरयतीति यावत् ॥ २६ ॥ २७ ॥ हिमचत्कन्दरोद्गीर्णा वल्लीबलयताण्डवम्। तन्द्याना वायवो यान्ति विभिन्नाब्दाब्धिवीचयः२८ तात चृतकदम्बाप्रपरामशेसुगन्धयः। बलयन्खेब्धिकल्लोलानगन्धमादनवायवः॥ जलदान्वलयन्वायुरलकालकतां गतान्। इत आयाति पुष्पांभ्रं रचयन्वनवीथिषु ॥ 30 कुन्दमन्दारसंदोहमधुरामोदमन्थरान् । तुषारसीकरोन्मिश्रानिवात्र कलयानिलान्॥ 38 **नास्रिकेर**स्रतास्रास्यसम्बद्धानिकसुगन्थयः । पत्तन्ति पवनाः पदय पारसीकपुरीः पुरा ॥ 32 धुन्वानाः पुष्पितेशानयनकर्पूरवारिदान्।

चालयन्तोऽनिला वान्ति कैलासकमलाकरान् ३३ करीन्द्रकुम्भनिष्क्रान्तमद्यम्थरमृतयः। इमे शुकशुकायन्ते विन्ध्यकन्दरवायवः॥ 38 शबरीणां शरीरेषु शीर्णपर्णीत्करे गिरी। 3'4 नाराचैः पर्णशबरैर्धनाली नगरायते ॥ अब्ध्यद्विसरिदम्भोद्वनलेखाङ्गिका दिशः। त्वत्प्रतापबक्षेरेता हसन्तीवार्करियमिः॥ 36 अत्रोपराैलवनवीथिपु पुष्पराय्या विद्याधरीविरचिताः परिवर्णयन्ति । पाश्वेद्वयस्थपरिवृत्तपदात्समुद्रा-द्यावृत्तमुग्धवनितापुरुपायितानि ॥ इस्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वा० उ० अवि० विप० दिग्दर्शनं नाम चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥११४॥

पञ्चद्द्याधिकदाततमः सर्गः ११५

पार्श्वगा ऊच्चः। **अत्रोत्तमाराय**लतावलयालयेषु **लीलाविलोलललनाः कलयन्ति गीतम् ।** उद्दामभावरसविस्मृतवासरेहा विश्रम्य किनरगणाः कलकाकलीकम् १ पते हिमाद्रिमलयाचलविन्ध्यसद्य-क्रीश्वा महेन्द्रमधुमन्दरदर्दुराद्याः। दरस्थिता हिंदा सिताभ्रपटा चहन्ति संग्रुष्कपर्णलवलाञ्चितलोष्टलीलाम्

विभिन्ना अब्दाः अब्धिवीचयश्च यैः । शैत्यमान्द्यसीरभ्योपपाद-कानि विशेषणानि ॥२८॥२९॥ अलकायाः कुवेरपुर्या अलकतां कुन्तलतां गतान्त्राप्तान् ॥ ३० ॥ अत्रास्मिन्गन्धमादने अनि-लान्कलय स्पृश् ॥ ३१ ॥ नालिकेरतरूणां मल्लिकादिलतानां च लास्येन क्रमाल्रब्धस्तन्मचतिक्तगन्धः सुगन्धश्च यैः । पुरा पश्य ॥ ३२ ॥ पुष्पितं यदीशानस्य प्रमदवनं तत्रत्यकदलीक-पूरसुरभीन्वारिदान्धुन्वानाः ॥ ३३ ॥ गुक्रशुकायन्ते इति वी-रणसम्बोद्भताव्यक्तध्वन्यनुकरणम् । अथवा विनध्यशुकैः सह निर्गमनासद्वर्णैः शुकायन्ते हरितायन्ते ॥ ३४ ॥ शबरीणां शरीरेषु परिधानकस्पनया शीर्णपर्णोत्करे मलयगिरी पर्णपरि-धानैः शबरैस्तनाराचेश्व पूर्णा अल्पावशेषमृगपक्षिगणा मलय-वनाली नगरमियाचरति नगरायते ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अन्ना-स्मिन्प्रदेशे उपशैलवनवीथिषु रत्यर्थ विद्याधरेष्ठपरचिताः पुष्प-श्याः परिवर्णयन्ति सूचयन्ति । कस्माहिङ्गार्तिक सूचयन्ति तदाह-पार्वेति । समुद्रादलक्षकमुद्रासहितात्पार्श्वद्वयस्थात्परि-**वृत्तात्सम्यक्टिपमा**त्पदाक्षिक्षात् । पुंसि रतिश्रान्ते सति अधोदे-शाबादताया सुरधवनितायाः उपरि सुरतलक्षणानि पुरुषायि-तानि पुरुषवदावरणानि सूचयन्तीत्यर्थः ॥ ३७ ॥ इति श्रीबासिष्ठमहारामायणताःपर्थप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे रार्षे चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

अमी दूरालोकव्यवहितमहावर्त्मनिचयाः पुरःप्राकाराणां कुलशिखरिणो बिम्नति चपुः। विशन्तीरम्भोधि कलय लुलिता भान्ति सरितः पटस्यान्तः सक्ताः प्रतनुसितस्त्रा इव दशाः ३ दशाशाः शैलानामुपरि परितः प्रावृतघना घनइयामाकाराः खगकलकलालापलपिताः लतामुक्तैः पुष्पैर्ललितवनलेखाभुजलता हसन्त्यस्ते राजन्भवनवनिता भान्ति पुरतः ४

वर्ण्यन्तेऽत्र चतुर्दिक्षु वनानि गिरयो नगाः । नषः समुद्राः पवनपक्षित्रामघनादयः॥ १॥

हे उत्तमाशय, अत्रास्मिन् गिरौ लीलासु विजेला आसक्ता ललना येषां तथाविधाः कित्ररगणा उद्दामेभावे संचारिभावेः रसै: संभोगश्काररसैश्व विरुष्टता वासरेटा दिनचेष्टालक्षणः कालो यैस्तथाविधाः सन्तो विश्रम्य कलाः काकल्यो यस्मिन्त-थाविधं गीतं कलयन्ति गायन्ति भ्रण्यन्ति च ॥ १ ॥ अत्यु-नता अपि गिर्यो दूराहृश्यमाना अल्पवद्भानतीत्याह—एते इति । एते हिमादिमलयःद्याः सिताश्रपटाः शैला दुरस्थिताः सन्तो दशि प्रेक्षकदर्शी संशुष्कपर्णस्वसारिस्सानां लोष्टानां लीलां साम्यं बहन्ति पश्य ॥ २ ॥ किचानी कुलशिखरिणो द्रादालोकनमालोकस्तस्मिन् अपारे परेषां व्यवहिता अन्तरा-स्रदेशवरमंनिचया येषां तथाविधाः सन्तः परस्ररसंत्रमतया परितो दृश्यमानाः पुरःप्राकाराणां वपुर्वित्रति । तथा अम्मोधि विश्वन्तीः प्रवेशस्वर्या च छुलिताः सरितः पटस्यान्तः सक्ताः प्रतनुसितसूत्रा दशा इव मान्ति ॥ ३ ॥ हे राजन् , परितः **शैलानामुपरि प्रापृता धना मेघा यामिस्ताः घना इव दयामा-काराः । खगानां क**लकलालाया एव रुपितानि यासां ताः । तथा स्तामिर्भुक्तैः पुष्पैरूपस्रक्षिताः । सर्विताः शोभमाना १ विवाधरोपरचिता इति पाठ आवश्यक इति न्याख्यातीनुमीयते.

योग॰ १६८

तालीतमालबकुलाकुलतुङ्गश्दङ्गमेकीकृताकृति यनं तरलं विभाति ।
अभ्याहतं जलनिधेस्तरलस्तरङ्गैस्तीरान्तलग्नधनशैचलजालकल्पम् ॥ ५
इतः स्विपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषामितोऽपि शरणाधिनः शिखरिपत्रिणः शेरते ।
इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकरहो विततमूर्जितं भ्रसहं च लिन्धोवेषुः ॥ ६

रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोवेषुः ॥ ६ पते जम्बुनदीतटा रविकरैराभान्ति हेमाखिल-प्रामारण्यपुरस्थलीगिरितरस्थाण्वप्रहारोश्वयाः । ज्वालालीविलताम्बरान्तरिलहोमुञ्चन्तिभासोमित स्सर्वा भूमिप भूरिहवममरासेव्यास्ति नो मानुषैः ७

पते कदम्बवनकम्बलमम्बुदाभमाभान्ति भास्करपथानुगता वहन्तः।
अस्याचलस्य वसुधेव तटं तवास्तु
मा सूर्यरोधकनमस्यघनाघशङ्का॥ ८
प्रषोऽसौ मलयो लयोग्रलवलीवलीलसम्बन्दनस्फीतामोदमदाहसेन तरवो वक्रे क्रियन्ते त्रिभिः।

वनलेखालक्षणा भुजलता यासां तथाविधा दश आशा दि-शस्ते भवनवनिता राह्मीईसन्त्य इव पुरतो भान्ति ॥ ४ ॥ तास्यादिमिराकुलानि तुङ्गानि गिरिश्ङ्गाणि यस्मिस्तयाविधम् । बुराद्वप्रबद्धासमानेषु शैलेप्वेकीकृताकृति । पवनतरलं वनं जल-निधेस्तरलैस्तरक्षेरभ्याहतं तीरान्तलमघनशैवलजालकल्पं वि-भाति । ईषदसमाप्तिद्योतकेन कल्पपा साहदयस्य गम्यमानत्वा-द्गम्यमानोपमा ॥ ५ ॥ शिखरिणः पर्वतास्त्रह्मणाः पत्रिणः पक्षिणः शेरते स्वपन्ति । शीडो रुद्र । सिन्धोः समुद्रस्य वपु-विंततं विस्तीणं ऊर्जितं वलवद्भरसदं बहुभारसहिष्णु अहो भाश्वर्यमनुपर्मामेखर्थः ॥ ६ ॥ कश्चिदुत्तरदिशि प्रस्थितं विप-श्वितं प्रति मरमूछे सीवर्णानजम्बुनद्वातटानप्रद्शयमाह—एते इति । हेमभूताः अखिला प्रामादयो येषु तथाविधा एते अम्बूनदीतटा रविकेरेर्व्याप्ताः सन्तः अभितः आभान्ति । ज्वालालीवलिताम्बरान्तरलिहः सन्तः अमितो भासो मुखन्ति । हे भूमिप, इह एवंभूता सर्वा भूः अमेरेदेवैरासेच्या उपभोक्तं योग्यास्ति मानुषैनी आसेव्येखर्थः ॥ ७ ॥ अस्याचलस्य अम्बु-दामं कदम्बवनकम्बलं वहन्तो भास्करपथानुगता एते अधि-त्यकाप्रदेशा आभान्ति । अतः एषु प्रदेशेषु तव वसुषेव इद-मपि तटमिति बुद्धिरस्तु । सूर्यरोधका नभस्या धनौषा एते इति शङ्का म। स्लित्यर्थः ॥ ८ ॥ अपरो दक्षिणदिक्प्रस्थिताय विपश्चिते मलयादि वर्णयन्दर्शयति-एव इति । एव समीपे दृश्यमानो मलयोऽसावेवंत्रभावः । यस्य अग्राभिः श्रेष्टाभिर्ल-बलीबल्लीमिर्लसतां चन्दनानां स्फीतादामोदमदादन्येऽपि तरवो रसेन चन्दनीभूतास्त्रिभिरपि देवैमंनुष्यरसुरैश्च वके सुखपद्मे अलय इव तिलकीकियनते । किंचास्मादामोदमदारसज्वाल

सज्वालोदहनाक्षसंस्थितकपोलोप्मोदयोत्ताण्डवे अङ्गुष्ठाङ्गुलिमिर्यथोष्णककणास्त्रप्ता यथा योषिताम् यषोऽव्यिष्ठातकलधौततटाचिरूढ-भोगीन्द्रभोगपरिवेष्टितचन्दनोऽगः। विद्याधरीवदनपङ्कजदीत्तिपुञ्ज-

हेमीकताखिलाहीलो मलयामिधानः॥ १० क्रुजत्कुअकठोरगहरनदीकत्कारवत्कीचक-स्तम्माडम्बरम्कमाकुलिकुलःकोश्चाचलोऽयंगिरिः एतस्मिन्प्रवलाकिनां प्रचलतामुद्रेजिताः क्जितै-रुद्रेक्षन्ति पुराणरोहणतदस्तम्भेषु कुम्भीनसाः ११

कोमलकनकलतालय-

विलसितललनाविलोलवलयक्तम् । श्रवणरसायनपानं विततमिहाकर्णयास्य तदे ॥ १२ करिकरदगलितमद्जल-वलितश्चलवीचित्रश्चरीकचयैः । चर्वित एप कद्धित-इव कणनिकरो विरोति वारिनिधौ ॥ १३

ऊर्ध्वो ज्वलनः अक्षे तृतीयनेत्रे संस्थितो यस्य तथाविधस्य रहस्य कपोलयोरुष्मोदयो यस्मिस्तथाविधे उत्कृष्टे ताण्डवे प्रस-कास्तप्ताः यथोपपन्ना उष्णककणाः स्वेदिबन्दवो यथा योषितां रतिश्रमजाः खेदबिन्दवः शिशिरतरास्तथा कियन्ते एवंप्र-भावोऽयमित्यर्थः ॥ ९ ॥ अव्धितरक्षेधौतेषु कलधौतं सुवर्णं तन्मयेषु तटेष्वधिरूढाः प्रादुर्भता भोगीन्द्राणां भोगैः कायैः परिवेष्टिताश्चन्दनवृक्षा यस्मिस्तथाविधः । तथा विद्याधरीणां वदनपहुजदीतिपुर्जहेंमीकृता अन्या अप्याखलाः शिला यस्य तथाविध एष पुरोवर्ती अगो मलयामिधानः । मा लक्ष्मीर्ली-यते अस्मित्रिखन्वर्थनामेखर्थः । 'ड्यापोः' इति हस्तः ॥१०॥ कुजन्तः कुञ्चानां कठोराणां शिलाकटकादिप्रदेशानां गहराणां नदीनां क्रत्कारास्तालध्वनिमेदास्तद्वन्तो ये कीचकस्तम्मास्तेषां गीताडम्बरेण तच्छवणासत्त्या मुकं निःशब्दं में।कुलिनां मुकु-लनिवासिनां भ्रमराणां कुठं यासिस्तथाविधः क्रीवाचलनामायं गिरिः । एतस्मिन् गिरी प्रचलतां प्रकृष्टाः बलाकिनी बलाका-वन्तो नीलमेवाः प्रिया येषां मयूराणां तेवां कृजितैरहेजिताः कुम्मीनसाः सर्पजातिमेदाः पुराणं चिरंतनं रोहणं प्रादुर्भावो येषां तथाविधानां सकोटरजीर्णतरूणां स्तम्मेषु **मध्यकाष्ठेषु** उद्वेष्ठन्ति अधिष्ठा भोगसंकोचेन निलीयन्त इत्यर्थः ॥ ११ ॥ हे राजन्, इहास्य क्रीब्रस्य तटे कीमलकनकलतारचिते आलये निक्रुषे कान्तेन सह विलिसतानां ललनानां रतिविलोर्लेबलयैः कृतं रागि श्रवणयो रसायनपानशायं विततं सिजितमाकणय ॥ १२ ॥ करिणां करटेस्यो गण्डस्थलेस्यो गलितैर्मदजलैर्ब-लितो मिश्रित इति हेतोश्रलवीचिषु चश्राकचरैर्त्रमरसम्हेश-विंत इव वारिनिया कणनिकरो विरोति रोदितीरपुरप्रेक्षा ॥१३॥

पश्यामलेन्द्ररामृत-नवनीत्रारीरसुन्दरीवलितः। पितुरुत्सक्षे कुरुते जललीलां श्रीरवारिनिधौ ॥ १४ नूर्यन्ति मत्तकलकोकिलकाकलीकाः पश्यामले मलयसाजुनि बालबह्नधः। लोलालिजालनयनारुणपत्रपाणि-पुष्पा मध्रत्सवविलासविशेषवत्यः॥ १५ वंशानां हृदि पर्वतेषु जलधा तोयाधिनीनां तु ये शुक्तीनां हृदये विशन्ति समये वर्षाभसां विन्देयः। ते मुक्ताफलतां व्रजन्ति करिणां कुम्भेषु वान्यद्भवेत् श्रुवी मौकिकवत्स्युरुत्तमगुणा पतास्त्रिधा जा-रीलेऽन्धी पुरुषेऽवना जलधरे मेके शिलायां गर्ज नानाकारधरा भवन्ति मणयः कर्माणि तेषां विभो। ह्यादोच्चाटनमारणज्वरभयभ्रान्तिप्रकाशान्धता-केदोत्तापनभूनभोगतिहशो नाशो विधानं तथा१७ षातायनोदरगवाक्षकवाटकक्षा-द्वाराननैरिह पुराण्युदिते पठन्ति । श्वभ्राभ्रकन्द्रदरीवनवेणुरन्ध्र-वर्गेण मन्दर इवामृतसिन्धुमिन्दुम् ॥ १८

अब्धेश्वलं प्रतिबिम्बचन्द्रं दर्शयम्द्रप्रेक्षते--परयेति । हे राजन् , अमछेन्दुः आमृतं अमृतमथनजं यत्रवनीतं तादशशरीरस्ता-**दशशरीराभिनेक्षत्रसुन्दरीभिवैलितः सन् क्षीरवारिनिधा प्रति-**बिम्बितः पितुरुत्सन्ने जललीलां जलकीडां कुरुते । पर्यदे कौतुकमिलर्थः ॥ १४ ॥ अपरः कधिन्मलये लतानृत्यं दर्श-यति नृत्यन्तीति । लोशंतिजालनयना अरुगपत्रपाणिपु पुष्पाणि यासां ताः । मधूरसवविद्यासेः परागैविंशेषवत्यो विशे-षकवलः ॥ १५ ॥ कश्चित्रीनुत्तमान्मुक्ताकरांस्तेपूत्तमगुणमुक्ता-फलोत्पत्ति च वर्णयति - वंशानामिति । पर्वतेषु वंशानां **वेणुमेदानां इ**दि काण्डच्छिद्रे । तथा जलधौ तोयार्थिनीनां शक्तीनां हृदये च स्वातिसमये ये वर्षाम्भसां बिन्दवो विशन्ति ते मुक्ताफलतां व्रजन्ति । अन्यस्तीयं तु मुक्ताफलं करिणां गन्धहस्तिनां कुम्भेषु भवेत् । एषां मुक्तरूपाणां मुक्ताफलानां एतास्त्रिधा प्रसिद्धा जातयः स्थानश्चदी मीक्तिकस्थील्यप्रकर्षव-द्भणतोऽप्युत्तमगुणा भवन्तीत्यर्थः ॥ १६ ॥ एवं रत्नानामप्या-करमेदेनोत्पत्तिं गुणिकयावैचित्र्यं च रक्षशास्त्रे प्रसिद्धमित्याह— शैक्षे इति । तेषां यथायोगं कर्माण शृणु । हादस्तापशान्तिः शत्रूणासुचाटनं मारणम् । ज्वरः भयं भ्रान्तिः अन्धता खेदः उत्तापनं चेति । रक्षस्वामिनो व्यवहितवित्रकृष्टार्थप्रकाशो भूगतिर्देर्गमनशक्तिर्भूमी निमञ्ज्य गमनशक्तिर्वा नभीगतिः प्रसिद्धा अतीतानागतदर्शनं व्याधिदुर्भिक्षादिनाशः परप्रयुक्तवि-

पतच्छक्कं हरति पवनः किंस्त्रिदित्युन्मुखीभि-र्देष्टोत्साहश्चिकतचिकतं मुग्धसिँदाङ्गनाभिः। प्रालेयाद्रेः प्रतितद्यनं प्रोत्पतत्यभ्रमुर्ध्व वज्रस्तम्भो गगनसुतलोत्तोलनायेव भूमेः ॥ १९ गङ्गातरङ्गहिमसीकरशीतलानि विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि । पुष्पाश्चसंवलितपुष्पितकाननानि राजन्विलोक्य महेन्द्रगिरेस्तटानि॥ २० देशान्तरेषु विततानि वनान्तराणि पुष्पस्थलान्युपवनान्यथ पत्तनानि । तीर्थेषु पूत्रभुवनानि जलानि दृष्ट्रा दौभीग्यभीतिरपयाति जवानुविद्या ॥ २१ श्रङ्गाणि पूरितदिगन्तरमण्डलानि श्वभ्राभ्रकन्दरनिकुञ्जकुलाकुलानि । ब्योमोपमान्यपि च वारिधिकुण्डलानि दृष्ट्रा गलन्ति कुरुतानि बृहत्तराणि॥ २२ रम्याश्चन्दनवीथयो हि मलये विन्ध्ये मदान्धा गजाः कैलासे नृप पादजाति कनकं चन्द्रं महेन्द्राचले। दिव्याश्चौषधयस्तुषारशिखरे सर्वत्र रक्वानि वै सन्त्यन्धा खुवदेष जीर्णसदने व्यर्थ जनो जीर्यते २३

षकृत्यायन्त्रादिप्रतिविधानं चेत्यर्थः। चार्थे तथाशब्दः ॥ १७ ॥ अपरः कश्चिदिन्द्दये प्रहुपेप्रवृत्तं नगरे वातायनादिजनघोषं मन्दरे श्रम्रमादिघोषं चोपमयोपमानभावेनोत्प्रेक्षमाणश्रनदस्तव-पाठत्वेनोत्प्रेक्षते-वातायनेति । इहास्मिन्देशे पुराणि कर्नृणि इन्दी उदिते सति बातायनोदरादिलक्षणैराननैर्मन्दरो गिरिः श्वभ्राभ्रकन्दरदरीवनवेणूनां रन्ध्रवर्गेणेव अमृतसमुद्रभूतिमन्दुं पठिनत स्तुवन्तीत्युत्प्रेक्षा ॥१८॥ हिमादितटेभ्योऽभ्रोत्पतनं प-वनकृतश्वबद्दगत्वेन भूम्युविधताकाशपाताछीत्तोलनस्तम्भत्वेन चोत्प्रेक्षमाणः कश्चिदाह—एतदिति । गगनस्य मुतलस्य च गुरुलाधिक्यपरीक्षार्थमुत्तोलनायेव ॥ १९ ॥ २० ॥ पुण्यतम-देशवनतीर्थादिदर्शनस्य दै।भीग्यनिवृत्तिर्महाफलमस्तीत्याह— देशान्तरेष्विति । जवेनानुविद्धा घटिता हुतमपयातीति यावत् ॥२१॥ श्रीशैलादिश्टङाणि । साधुजनपूरितानि दिगन्तराणि । तीर्थक्षपवाप्यादिश्वभ्राणि । हिमवदादीनामभ्रयुक्तानि कन्दराणि चम्पकारण्यादीनि । निकुञ्जकुलैराकुलानि । व्योगोपमानि नि-र्मलानि वारिधिकुण्डलानि सेतुबन्धादितीर्थानि दृष्ट्वा प्राणिना कुकृतानि पापानि बृहत्तराणि ब्रह्महत्यादीन्यपि गरुन्ति न-र्यन्ति ॥ २२ ॥ ततदुत्तमवसुशालिनां कुलशैलानामदर्शने मुणां नेत्राणां वैयर्थ्यमेवेत्याशयेन।ह-रम्या इति । हे नूप, पादजाति श्रेष्ठं कनकम्। चन्द्रं गिरिधातुविशेषः । तुषारशिखरे हिमबति । सर्वत्रान्येष्वेतेषु च रत्नानि सन्ति । एवं सत्यप्येष भारयहीनो जनस्तान्यपश्यश्रनधश्चासावाखर्मूषकश्च तद्वजीर्णे स्

१ छोलालीति विशेषणोभयपदः कर्मधारयोयम्.

सोम्नतं जगदिवोस्तटाकं धारिणा विवलितं तिमिरेण। प्रस्फरन्ति च युगान्त इवैता विद्युतः शफरिका इव लोलाः॥ રપ્ सावद्यायादयाननीहारधारा धारोद्वारान्वारिदान्मादयन्तः। शीतानीतोद्दामरोमाञ्चचर्चाः રપ प्रोद्यच्छन्दं वान्त्यहो वर्षवाताः॥ हा वाति नीलजलदप्रसरानुसारी वातः किरन्विटपिपल्लवपुष्पगुच्छान्। घीरोत्करद्रमवनान्तरचारचार-२६ रासारसीकरकदम्बकसारसारः॥ मारुताः सुरतकान्तकान्तानिःश्वसितैरिमे । बहुन्ति वृद्धि गन्धं च लवं स्वर्गादिव च्युताः २७ कुबलयकुबलयविकचन-कुसुमलताविदलनोद्य<mark>ता मृद्धः।</mark> घनपटपाटनपटवो विभुतोपवना वहन्त्यमी पवनाः॥ 26 संध्याभ्रलेशानुपयन्ति वाता नभस्तले कोमलकम्पनेन। नृपाङ्गणे पुष्पविचित्रलेखा-नुवासिते भूखवरा इवेते॥ ३९

दने व्यर्थं जीर्यते । आश्वर्यमित्यर्थः ॥ २३ ॥ सजलदास्तिमि-रावृता दिशः कश्चिद्वर्णयति-सोन्नतमिति । मेघतिमिरेणा-बृता एता दिशो युगान्ते वारिणा विवलितं सोन्नतमन्तरिक्षलो-कपर्यन्तं पूर्णं जगदेव एकतटाकभूतमिव प्रस्फुरन्ति । तत्र लोला विद्युतस्तस्मिस्तटाके शकरिकाः क्षुद्रमत्स्या इव प्रस्फुः रन्ति ॥ २४ ॥ खर्य सावश्यायाः सहिमाः भूम्यादौ च श्यानाः शोषणेन तनुकृता नीहारधारा थैः धाराः उद्गिरन्तीति धारोद्गारा-स्तथाविधान्वारिदानमादयन्तो मत्तान्कवीणाः । शीतसर्शेन आनीता जनानामुद्दामरोमाश्चचर्चा यैस्तथाविधा वर्षवाताः प्रोचच्छब्दं यथास्वात्तथा वान्ति । अहो इत्याधर्ये ॥ २५ ॥ नीलजलदप्रसरानुसारी अङ्करह्मवनान्तरचारेण चाहः सीग-न्ध्यादिगुणवान् आसारसीकराणां कदम्बकैनिकुरम्बैः सारादपि सारो धारो वातो विटिपनां पहन्तपुष्पगुच्छान्किरन्सन् वाति । हा इति शीतार्तस्य विरहिणो वा खेदोक्तिः ॥ २६ ॥ स्तर्गा-**ख्युताः** जीवाः पूर्वपुण्यवासनास्वमिव ॥ २७ ॥ कुवलये भू-मण्डले यानि कुवलयान्युत्पलानि तेषां विकचने विकासे। तथा कुसुमलतानां विदलने मुकुलपुटमेदने च उद्यता इति सुगन्धयः। घनलक्षणानां पटानां पाटने पटव इति शीताः अमी पवना वहन्ति ॥ २८ ॥ एते वाता नभसाले संध्याश्रले-शान् कोमलकम्यनेन मन्दचालनेनोपयन्ति । यथा पुष्पाणां विचित्रलेखाभिरनुत्रासिते नृपाक्षणे भृत्यवराः पुष्पाण्यनुपम्-द्गन्तः संचरन्ति तद्वदिखर्थः ॥ २९ ॥ कुसुमानामिव गन्धो कचित्कुसुमगन्धयः कमलवर्गगन्धाः कचि-त्कचित्कुसुमवर्षिणो ललितकेसरासारिणः। क्रचिष हिमपाण्डवो हरितपीतलक्यामला वहस्ति शिखरानिलाः सुरतमन्द्रघर्मच्छिदः३० क्रचिद्धंकारकांकारैरङ्गारनिकरान्करैः। किंकरैविंकिरत्वकीं मुर्खसंसर्गवानिव ॥ 38 नररसायनतृप्तिविमुक्तया प्रमद्या मद्यापितळज्जया । उपगते वपुषा न विषहाते विषविमुर्च्छनयेव समायता ॥ 35 विलततामरसा मृदुशीकराः दादािकरोत्करवीचिविमेदिनः । सदद्दना इव तापमयाः पुरो विरहिणीषु वनायनियायवः॥ 33 इह हि पूर्वपयोधितदाबटे विकटपत्रपटाः कटकीतटाः । नवमदासवयीवनसंश्रयाः कलय यान्ति कथं शबरस्त्रियः॥ 38 नवरसासवसारनिशागम-**भयभयातुरचित्ततयाङ्गना ।** त्यजति कान्तमियं न मनागपि द्वतमितो विखतेव पुरोऽहिभिः॥ 34

येपाम् । उपमानपूर्वपदलादित् । क्षचित्कमलवर्गाणां गन्ध इव गन्धो येषाम् । हिमैः पाण्डवः हरितपीतलस्यामलैगिरि-धातुभिस्तद्वर्णाः शिखरसंबन्धिनोऽनिलाः सुरते मन्दानां श्रा-न्तानां धर्माम्बुच्छिदो वहन्ति ॥ ३० ॥ किंकरः सेवकवदा-ज्ञाकारिभिः सूर्यकान्तमणिमिश्हादौ दह्यमानानां प्राणिनां हुं-कारैः कांकारैराकन्दनशब्दैश्रोपलक्षितानङ्गारनिकरान्करैर्विकि-रति प्रक्षिपति ॥ ३१ ॥ नरः पुरुपस्तक्ष्रशणं यत्सन्नमास्त्राचं रसायनं तद्विषये तृप्तिविमुक्तया अतृप्तया अतएव मदेन या-पितलज्जया अपनीतत्रपया प्रमदया वपुषा उपगते आलिक्तिते पुरुषे सुरतोपरमाय । आवश्यककार्यान्तरोपवर्णनलक्षणा समा-यता वधनोक्तिर्विषविमृच्छेनया प्रयुक्ता खमृतिरिव न विष-ह्यते इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ तामरसवलनादित्रयुक्तसर्वगुणसंपन्ना अपि वनावनिवायवो विरहिणीधु सदहना इव दाहकारिण इ-लर्थः ॥ ३३ ॥ हे राजन् , इह पूर्वपयोधितटलक्षणे अवटे निम्नदेशे कटक्यः शबरजातिप्रसिद्धकांस्यादिकटकासादन्वितप्र-कोष्टतटाः । विकटानि निर्धण्डीपत्राण्येव परिधानपटो यासाम । नवो मदासबो यस्मात्त्रथाविधस्य यौवनस्य संश्रयाः राबरिक्रयः कथं यान्ति तद्भमनविलासं कलय पर्य ॥ ३४ ॥ इयमन्नना नबः सुरतरसो यस्मात्तथाविध आसवसारः समदसंभोगो यस्मित्रधाविधस्य निशागमस्य क्षयाच्यूयं तदातुरचित्ततया इतं साईभावं कान्तं मनागपि न खजति। इतः पुरो दश्य- प्रभाततूर्यमुखरैर्दिवसैरिव तर्जिता। इधेव स्फुटिता नारी निलीना द्यितोरसि ॥ 38 प्रोत्फुलकिंशुकैषा दक्षिणजलघेस्तटेऽत्र वनराजी। ज्वलितेव जलतरङ्गेः पौनःपुन्येन सिच्यतेऽम्बुधिना ॥ २७ अस्या निर्यान्स्यनिलै-र्धुमा इव कृष्णकेसराम्बुधराः। अङ्गारा इव कुसुमा-न्युपशान्ताङ्गारवश्य खगभृङ्गाः॥ ३८ ईटर्येच विलोकय वनराजी सत्यविश्वना ज्वलिता । गिरिशिरसि तूत्तरस्यां दिशि दूरे धूयते च खे पवनैः॥ 36 क्रीञ्चाचलस्य भुवि मन्थरमेघचकः गम्भीरताररवनर्तितवर्हिणीयम्। पश्योत्थितं तुमुलमाकुलवर्षवातः व्याधूतपुष्पफलपहाचकाननीयम्॥ 80 अस्ताचले विकटकाञ्चनकूटकोटि-संघट्टनस्फुटितजर्जेरचारसंधिः। खबेरथः पतित स सारवेः सचकः चीत्कारतारतरकृबररास एयः॥ કર

माना अहिमिर्वलिता चन्दनलतेव सेल्पर्यः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ज्विष्टितेवैति पुनःपुनः सेके हेतूःप्रेक्षा ॥ ३७ ॥ प्रफुलकिशुक्यनराजेः सकाशास्मा इव कृष्णाः केसरा अर्थ-भागा येषां तथाविधा अम्बुधरा धूमा इव निर्यान्ति । एवं किंग्रककुसुमान्यकारा इव निर्यान्ति । खगाश्च भूकाश्च उपशा-न्ताङ्गारवच निर्यान्ति । पश्येति पूर्वोक्तार्थे उपपत्तिः ॥ ३८ ॥ कल्पितअवलनां वनराजि दर्शयिखा यथार्थज्वलनां तामुल-रतो दर्शयति-ईद्द्येवेति । पवनैः खे धूयते कम्प्यते च ॥ ३८ ॥ हे राजन् , कीशाचलस्य भुवि मन्धरस्य मन्दगतेर्मे-षचकस्य गम्भीरेस्ताररवैर्नर्तितं बर्हिणीयं बर्हिसमूहो यस्पिस्त-याविभमाकुलवर्षवातव्याधृतपुष्पफलपह्नवमुस्थितमुन्नतं कान-नीयं बनसमूहं पर्य ॥ ४० ॥ स एव रवेः रथः अस्ताचले विकटो विषमो यः काञ्चनमयः कूटः शृङ्गं तत्कोटी संघर्टनेन स्फुटिता जर्जराश्चाइसंधयो यस्य तथाविधः सन् सचकचीत्कार-स्तारतरः कूबरस्य रासो ध्वनिर्थस्य तथाविधः सन् खर्वे निम्न-**देशं पतित स्म भवतरित किले**खीन्नसातिशयोक्तिः ॥ ४९ ॥ **भुवनलक्षणस्य भवनस्य गृहस्य** प्राकारभूते अद्रौ मान-सोत्तरपर्वते उदयगिरिशिखरे निशाकरथन्द्रसाह्रक्षणं मेरुकं मान्नलिकं तरुविशेषजं पुष्पं देशविशेषे प्रसिद्धं तथ मन्नलसूच-करवादमञ्जलान्मालिन्याद्भीतं परितो भासा विकसितमभूत्। तथाविषमप्यदःपुष्पममञ्जलकारिणा विधिना प्रेरितो मलं कलक्र-

भुवनभवनप्राकारेद्री निशाकरमेरुकं परिविकसितं भीतं भासा मलालिरुपाश्रितः। तदिह जगतां वस्तु श्रेष्ठं न किंचन विद्यते विधिरुपहतः कुर्यान्नो यत्क्षणेन कलद्वितम् ४२ त्रिभुवनहराष्ट्रहासो भुवनमहाभवन एष मङ्कोलः। क्षीरसलिलावपूरो धर गगनान्धेश्चान्द्र आलोकः ॥ स्पृष्टप्रदोषमयमन्दरमध्यमान-चन्द्रार्णवोह्नसितदुग्धतरङ्गभङ्गैः। पद्य प्रभाषटलकैः परिपृरिताङ्गीः पूरैरिवोग्रसरितः प्रसरद्भिराशाः॥ पते पतन्त्यतुलतालकराललोल-वेतालबालबलिता निशि गुह्यकीघाः। इणेश्वरस्य नगराणि निरस्तशान्ति स्वस्तिश्रवादिविकलानि बलेन भोकुम् ४५ ताषद्विभाति गगने परिपूर्णचन्द्रो यायद्वधूवद्नमेति न संग्र बाह्यम्। अभ्युद्गतेऽङ्गणनभस्यबलाननेन्दा-विन्दोः सिताभ्रशकलस्य च को विशेषः ४६ वृद्धानि चन्द्रांशुनवाम्बराणि गङ्गीघनिर्धृतशिलान्यम्ननि ।

स्तब्रक्षणः अलिठपस्थित एव । तदेवं सति इह भुवने तत्ताहरां जगतां मध्ये श्रेष्ठं वस्तु किंचन न विद्यते यद्वस्तु उपहतो विधिः क्षणेन कलक्कितं न कुर्यात् । धुवमस्पृशतो गिरिशिख**रनभःस्थस्य** चन्द्रस्थापि यत्रेदशी दशा तत्र कि वाच्यमन्यस्येखर्थः ॥ ४२ ॥ चन्द्रप्रकाशं सर्वतः प्रसतं त्रेधा उत्प्रेक्षते—त्रिभुवनेति । एव गगनाब्धेश्वान्द्र आलोकः प्रदोषकाले नृत्यतिस्रभुवनहरस्य है-लोक्यसंदारिणो रद्रस्याष्ट्रहासः । अथवा भुवनलक्षणे महाभवने मक्कोलः सुधाळेपः । अथवा क्षीरतक्षणस्य सिकलस्यावदातः पुरोऽवपूरः ॥ ४३ ॥ संध्याधातुरागैः स्पृष्टेन प्रदोषमयेन मन्दरेण मध्यमानो यश्चन्द्रलक्षणः क्षीरार्णवस्तदुक्वसितेद्वेग्धत-रज्ञभन्नप्रायैः प्रसरद्भिः प्रभापटलकैः उप्रः शिवस्तद्वि**स्रष्टाया** गङ्गासरितः त्रसरद्भिः पुरैरिव परिपूरिताङ्गीः आशा दिशः पद्य ॥ ४४ ॥ हे अतुल निरुपम, तालबरकरालैर्वेतालबालैर्वलिताः सहिता एते गुह्यकै।घा निशि निरस्तशान्तिकर्मस्वस्तिवाचनम-श्रुलाचरणानि अतएवोत्पातैर्विकलानि श्रुणेश्वरस्य लद्रिपोर्नग-राणि तत्स्थान् जनान् भोक्तुं पतन्ति गच्छन्ति ॥ ४५ ॥ सद्मनो बाह्यमनावरणमञ्जणदेशं वधूवदनं न एति । बाह्याङ्गण-नभि अबलाननेन्दी निर्गमनेनाभ्यु खते सति तत्सीन्दर्यनिर-साशोमखेन्दोः सिताभ्रशकलस्य च को विशेषः । न कथिदिति कामुकोक्तिः ॥ ४६ ॥ चन्द्रकरव्याप्तानि हिमवच्छिखराणि कश्चिद्वर्णयति-श्वदानीति । वृद्धिरत्र दैर्ध्यम् । तुषारशैलेश्वरो

हिमाततान्यु**प्र**लताजटानि तुषारशैकेश्वरमस्तकानि॥ 80 स एप मन्दारवनावतंसो वोलाप्सरोगेयविसारिवातः। क्रचिन्मणिद्योतविचित्रचित्रः संहइयते ब्योमनि मन्दराद्रिः॥ 84 प्रोन्निव्रनीरन्ध्रशिलीन्ध्रसान्द्र-पुष्पादर्थपात्रधमहामहीधाः। सान्द्राभ्रनिर्हादगभीरकुक्षी सर्भान्तरिक्षश्रियमुद्धहन्ति ॥ છર इतः स कैलासगिरिगरीयसा प्रभाप्रवाहेण मितेन यस्य खम्। शंभोरिवाभाति सुतस्य कुहिमं चन्द्रोऽपि च श्रीरसमुद्रगो यथा॥ 40 स्याणुनां छिन्नशाखानां मृत्मयानां च वासवः। संभन्ने पद्य दूराणां वातमुंकिशिखा इव ॥ 48 पते कदम्बकुलकुन्दसुगन्धिवाता लिम्पन्ति मांसलतया मकरन्दवृष्टेः।

ब्राणं घनैः परिमलैरलिजालनीला व्यालोड्य मेघपटलैः खमिबाभ्रकायाः ५२ उन्निद्रकुद्धालदलासु वनस्थलीषु सच्छायशाद्वलघनेषु च अङ्गलेषु। प्रामेषु संततफलद्रमसंकुलेषु लक्ष्मीः स्वयं निवसतीय निवासहेतोः ५३ यातायनागतलतावृतसीधकोश-कोशातकीकसमकेसरमाहरद्भिः। आगुल्फकीर्णमुकुलाजिर एप वातै-र्यामो विभाति नगरं वनदेवतानाम्॥ ५४ उन्निद्रामलचम्पकद्रमलतादोलाविलोलाङ्गनाः कुजिक्षिर्श्वरवारयः परिसरप्रोक्षिद्रतालद्रुमाः। उरफुलोजवलमञ्जरीसितलतागेहोलसद्वर्हिणः पर्यन्तोन्नतसाललम्बजलदा रम्या गिरिष्रामकाः **बातालोलविचित्रपत्रलतिकासंपूर्णनीलस्थलाः** क्रुजल्लावककोककुकुटघटागायत्पुलिन्दाङ्गनाः । बोलाव्याकुलतर्णका विधमधुक्षीराज्यपानोज्ज्वलाः कस्येवामृतमण्डपा विरचिता रम्या गिरिप्रामकाः

इत्यार्थे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ मो॰ नि उ॰ अवि॰वि॰विपश्चिदनुकृतपदार्थवर्णनं नाम पखदशाधिकशततमः सर्गः ॥१९५॥

हिमवांस्तस्य मस्तकानि शिखराणि ॥ ४७ ॥ दोलाः श्रेह्वास्त-दारुढानामप्सरसां गीतानि विसारयति तच्छीलो वातो यस्य । अत्युष्गतत्वाद्योमनि संदर्यते ॥ ४८ ॥ प्रोन्निदाणि नीरन्ध्राणि पुष्पभरितानि यानि शिलीन्ध्राणि तान्येव सान्द्रपुष्पाण्यध्र्यपा-त्राणि धारयन्ति तथाविधा ये महान्तो महीघाः पर्वताः सान्द्रै-रभ्रतिहांदैर्गभीरायां क्रसी द्रोणीप्रदेशे सर्ध ऋक्षेर्नक्षत्रैः सह वर्तमानं यदन्तरिक्षं तच्छियमुद्रहन्ति धारयन्ति ॥ ४९ ॥ इत उत्तरतः स प्रसिद्धः कैलासगिरिर्दश्यताम् । कीदशः । यस्य गरीयसा प्रभाप्रवाहेण मितेन व्याप्तेन खमाकाशमधीभागे शंभोः सुतस्य स्कन्दस्य मुक्ताचूर्णनिर्मितं कीडागृहकुट्टिममिव आभाति । ऊर्ध्वभागे तु चन्द्रोऽपि क्षीरसमुद्रगस्तन्मप्रो यथा तथा आभाति ॥ ५० ॥ हे राजन् , कीतुकी वासवः कुठारै-रिछमशास्त्राना स्थाणूनाममिना छित्रच्छथादिशास्त्रानां मृन्म-यानां कुच्यादीनां च परस्परदूराणामपि वृष्टिसेकेनोभयत्राप्य-हरोपजननान्मुक्तशिखा इव निर्माय वातैः परस्परप्रथनायेव संघत्ते पर्य ॥ ५१ ॥ तथा एते कदम्बकुलैः कुन्दैध सुग-न्धयो बाता मकरन्दवृष्टेहेंतोस्तरपानेन मांसलतया अलिजाल-नीछा अञ्चकायाध्व भूला सर्वाणि परिमलानि व्यालोख्य मेचप-टललक्षणेः समिव घनैः परिमलैर्जनानां प्राणच्छिद्रमपि लि-म्पन्ति पश्येखर्यः ॥ ५२ ॥ वर्षती वनस्थस्यादिषु चतुर्षु स्थानेषु खनिवासहेतोः शोभातिशयस्य दर्शनादिव निवसति

॥ ५३ ॥ एप पुरोवर्ती श्रामो वातायनद्वारा आगतानिरन्तः-प्रविष्टाभिर्थीत्कोशातकीलताभिरावृतेषु सौधकोशेषु कोशातकी-कसमानि तत्केसरांश्वाहरद्विवीतैः आगुरुकं कीर्णानि कसमानि यत्र तथाविधान्यजिराण्यक्रणानि यस्मिस्तथाविधः सन् वनदे-वतानां नगरं विभाति ॥ ५४ ॥ उन्निदाणां पुष्पितानाममल चम्पकहुमाणां खतादोलासु विलोलाः कीडन्त्यः अङ्गना येषु । तथा कुजन्ति निर्झरवारीणि येषु । परिसरेषु परितः प्रोत्रिष्ठाः पुष्पितास्तालद्वमा येषु । उत्फुलाभिरुजनलमञ्जरीभिः सितेष्य-लंकतेषु लतागेहेषु उहसन्तो नृत्यन्तो बहिंगो मयूरा येषु पर्यन्तेषुत्रतेषु सालेषु प्राकारेषु वृक्षेषु वा लम्बा जलदा मेघा येषु। सालवृक्षा एव लम्बा लोला जलदा येष्विति वा । ईहशा गिरिप्रामका रम्याः ॥ ५५ ॥ तथा वातैरालोलाभिः प्रत्वादिदशाविचित्रपत्राभिर्लतिकाभिः संपूर्णानि शाद्वलनी-लानि स्थलानि येषाम् । लावका मधुरस्वराः क्षुद्रपक्षिमेदाः । गायन्तः पुलिन्दानां म्लेन्छजातिमेदानामञ्जना येषु । बालैः पालनादव्याकुलास्तर्णका वत्सा येषु । तथा त एव बाला अव्याकुलास्तर्णकाश्व यथायोगं दिघमधुक्षीराज्यानां पानेन उजनलाः पुष्टा येषु । ईस्त्रा गिरिप्रामकाः कस्य धातुर्विश्रा-न्तये रम्या अमृतपूर्णा विरचिता मण्डपा इत भान्तीखर्यः ॥ ५६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वा-णप्रकरणे उत्तरार्थे पश्चद्वाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५॥

षोडशाधिकशततमः सर्गः ११६

अनुचरा ऊचुः। देव पश्यात्र संप्रामलव्सीमान्तभूभृताम्। कचित हेतिसंघाता विसरन्ति वलानि च॥ 8 हतान्हतानिभुखान्वीरान्वीरैः सहस्रदाः। आरोप्यारोप्य सं यान्ति पश्य पश्याङ्गनारथैः विजिगीयोः पुनः प्राप्ते संकटे प्रकटे रणे। धर्म्य विराजते युद्धं यौवने सुरतं यथा ॥ ş लोकैरनिन्दिता लक्ष्मीरारोग्यं श्रीसमन्वितम्। धर्म्य युद्धं परार्थेन जीवितस्योत्तमं फलम्॥ अविरोधेन धर्मस्य युद्धे संमुखमागतम् । योधानुरूपं यो हन्ति शूरः स्वर्ग्यः स नेतरः॥ हस्तस्थितासिवरनीलसरोजदाम-इयामो हयोत्थवनरेणुनिशागमोऽत्र। आलोकय क्रमणमेष कथं करोति प्रोन्नामहेतिभरभूषणभाजिलक्ष्म्याः॥ पते कचन्ति शरशक्तिगदाभुशुण्डी-शूलासिकुन्तपटुतोमरचकपूर्णाः। तापाः सताण्डवकचप्रचले चलेऽब्धी देहेन वल्गति भुवीव फणीन्द्रसंघाः॥ ७

संग्रामच्योमविरहिशिखरिग्रामडम्बराः । गिरिगद्वरमेघाश्च मूर्खकाकाश्च वर्णिताः ॥ १ ॥ तत्रादौ सप्तभिः संधामं वर्णयितुं प्रस्ताति-देवेति । वलानि चतुर्विधानि सेनाङ्गानि ॥ १ ॥ अङ्गना अप्सर्सः । रथैर्विमानैः ॥ २ ॥ विजिगीपोर्बलवतः शत्रुणां रणे प्रकटे संकटे प्राप्ते विनाध-में ज तेषां वधो न शोभते किंतु धर्म्य धर्मादनपेतं युद्धं विराजते इत्यर्थः ॥ ३ ॥ तत्कृतस्तत्राह्—छोकैरिति । यत एतानीदशा-न्येव जीवनस्योत्तमफलानि नतु निन्दितसंपदादय इत्यर्थः ॥४॥ बोधानुरूपमिति । तद्यथा एकस्मिन्योधे एक एव सः सवाहने सवाहनः सधनुषि सधनुः सखक्षे सखक्षो निरायुधे निरायुध एव बाहुयुद्धं चरन्यो हुन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ हे राजन् , प्रोन्नामा उद्यता हेतिभरा एव भूषणानि तङ्काजि अस्पिन् शूर-पुरुषे एष संप्रामलक्ष्म्या हस्तस्थितासिवरलक्षणेन नीलसरोज-दामा श्यामो ह्योध्यघनरेणुकृतोऽन्धकारलक्षणो निशाग-मोऽत्रास्यां संप्रामभूमी कथं क्रमणं करोति । कि लक्ष्मीरेन-मस्यां निश्चि खयंबरे वृणीते उत नेति कौतुकं पश्येखर्थः ॥ ६ ॥ शरशत्याबायुधैः पूर्णा एते योधाः सताण्डवकचप्रा-यतणदारुप्रचले अचले पर्वते प्रज्वलितास्तापा दवामय इव कचित । तेषु च शरशक्तयादिसंघाः अन्धौ देहेन वल्गति

पश्याम्बरं बलवदम्बुधराब्धिपूर्ण पदयाम्बरं तरस्रतारकतारहारम्। पद्याम्बरं सुधनसक्तमसकसारं पद्याम्बरं विदादचन्द्रकरायसिकम्॥ ८ यत्रानेकसुरासुरास्पद्यटा तारापदेशं गता ऋक्षाणां च यदास्पदं विसरतां सर्वोष्ट्रतामां च यत्। तिसञ्ज्ञन्यमिति प्रतीतिरधुनाष्यस्तं गता नाम्बरे को ऽन्यो मार्जियतुं जनो ऽशरचितं लाकापवादं क्षमः मेघाटोपैः प्रलयदहर्नरद्विपक्षामिघातै-स्तारापूरैरमरदितिजश्चुब्धसंत्रामसंघैः। व्योमाद्यापि प्रकृतिविकृति नाम नायात्यसंख्यै-रन्तःसाराशयगुणवतां लक्ष्यते नो महिन्नः॥ १० आन्दोलयस्यविरलं गगनार्कमङ्क नारायणं च दाशिनं च तथेतराणि। तेजांसि भासुरतहित्प्रभृतीनि साधो चित्रं तथापि न जहासि यदानध्यमन्तः ११ आकाश काशसि तु यत्र शशाङ्कविस्वं त्वत्कीर्णकज्जलतमोमलिनोऽसि तस्वम्। सङ्गान्न यन्नयसि तत्खलु चित्रमुन्नैः को नाम वान्तरमलं मलिनीकरोति

सति तत्रत्याः फणीन्द्रसङ्घा भुवि प्रसूता इव कचन्ति ॥७॥ इतः-प्रश्त्याकाशं चतुर्दिश्च वर्णयति-पश्येखादिना । सुघनं सज्जत इति सुघनसक् तथाविधेन तमसारं एकसारं तुल्यसारं नील-मिति यावत् ॥८॥ यत्र यस्मित्रम्बरे अनेकेषां सुरासुरास्पदानां विमानादीनां घटा तारा इत्यपदेशं व्याजं गता । ऋक्षाणाम-श्विन्यादीनां यदास्पदं यद्विसरतां सर्वोन्नतानां चन्द्रसूर्यादीनां चास्पन्दं तस्मिन्नम्बरे सर्वतः पूर्णेऽपि अज्ञानां शून्यमिति प्रती-तिरधुनापि नार्स्त गता । यत्रवं महान्समथाऽप्याकाशः अद्धर-चितं शून्यतापवादं मार्जियितुं न क्षमस्तत्र कोऽन्यः क्षमः स्यादित्यर्थः ॥ ९ ॥ साराशवगुगवतां महिन्नः अन्तो न दृश्यते ॥ १० ॥ हे साधो, गगनलमविरतमक नारायणं अका-रात्तःपरिजनान्सवीन्देवान् शशिनं चकारादन्यान् प्रहांसाथा इतराणि भासुरतिहित्प्रभृतीनि तेजांसि च अङ्के आन्दोलयसि तथाप्यन्तर्थदान्ध्यं तमः इयामिकालक्षणं तत्र जहासि चित्रमा-क्षर्थमित्यर्थः ॥ ११ ॥ हे आकाश, त्वं मलिनोऽसि । यत्र श-शाङ्कविम्बं खया छिद्रात्मना कीर्ण कजारुतमःप्रायं संपन्नं तत्र कलहुच्छलेन मलिनः प्रत्यक्षं काशसि तु दृश्यसे खित्वत्यर्थः। एवं सति खसक्षारसंपूर्ण शशाक्रविम्बं यत् असितत्वं न नयसि-तत् उचैर्महचित्रम्। वा अथवा मलिनसङ्गादन्तमं लिन एव

पूर्णस्यापि जगहोवैः सर्वदैवाविकारिणः।
स्वस्य मन्ये बुधस्येष सुसं सर्वार्थशून्यता॥ १३
कल्पाभ्रद्वमवीरुतृष्मतिरशां कर्तासि धर्तासि च
आकाशेन्द्रधनाकिकश्वरमदत्स्कन्धामराणामपि।
सर्वे रम्यमसंकुलाशयसमस्वच्छस्वभाषस्य ते
यन्त्रेतहहनत्वमङ्ग तदहो मुख्याय खेदाय नः॥१४

आकाश काशमिस निर्मे छम् हैंराधार उन्नततयोत्तममुत्तमानाम्।
त्वामेत्य किंतु विरलं करकाधनोऽयं
लोकं विमर्दयति तेन परोसि नीचैः॥१५
आकाश कर्षकप एव निकर्पणं ते
मन्ये चिरं समचितं नतु किंचिद्रन्यत्।
शूर्योसि यज्जलधरश्रंत्रिमानचन्द्रसूर्यानिलान्वहसि भासि न चार्थशून्यः१६
अहि प्रकाशमिस रक्तवपुर्दिनान्ते
यामासु कृष्णमथ चाखिलवस्तुरिकम्।
नित्यं न किंचिद्पि सद्वहसीति मायां
न ब्योम वेसि विदुषोऽपि विचेष्टितं ते१७

बहिरपि मालिन्यमापद्यते । अन्तरमलं तु को नाम मलिनीक-रोति न कश्चिदिलार्थः ॥ १२ ॥ अथवा सन्त्र मालिन्यादयः सर्वेडपि दोषास्तथापि निर्विकारताबलेनैव तत्प्रयुक्तसर्वानर्थश्-न्यतासुखं सुलभमिखाशयेनाह-पूर्णस्थापीति । बुधस्य तत्त्व-विद इव ॥ ९३ ॥ हे अङ्ग, असंकुलाशय उदारबुद्धे हे आका-श, रवं कल्पाञ्राणो प्रलयाम्बुदानां द्वमाणां वीरुधां लतानां चोन्नति पर्यन्यभिलयन्तीत्युन्नतिदशस्तेषामवकाशदानेनोन्नतेः कर्तासि । इन्द्रश्च घनाथ अर्कथ किन्नराथ महरस्कन्याथ अम-राश्वेत्येषामपि धर्ता आधारश्वासीति समखच्छखभावस्य ते सर्वे कर्म रम्यमेव । यत्त्वप्नेः सूर्यस्य च प्रज्वलनावकाशदानेन दहनत्वं संतापकत्वं एतत्कर्म नः मुख्याय खेदाय नतु सुखा-येति दावाम्यातपादिसंतप्तस्योक्तिः ॥ १४ ॥ हे आकाश, लं निर्मेक्षेमच्छं कार्श भाखरं उन्नततया उत्तमानां देवादीनामु-त्तममाधारबासि किंतु विर्लं सावकाशं लामेल आश्रिल अयं करकावर्षा घनो होकं जनं विमर्दयति तेन तश्वेषेण परः नीचैः अल्पन्तमप्रकृष्टोऽसीलार्थः ॥ १५ ॥ हे आकाश, ते तब खर्ण-ब्रह्मपंक्षे क्षंक्षणस्थाने निक्षोपल एव निघर्षणं चिर्मु-चितम् । नलन्यरिकचित्त्वरपरीक्षास्थानमित्यर्थः । यदास्मात्त्वं श्रुत्योसि तथापि जलधरान् ऋक्षाणि विमानानि चन्द्रं सूर्यमनि-लांध बहुसि भासि अर्थशून्यो निष्प्रयोजनध न चासीति तब सकलकनकगुणशालिनो गुणपरीक्षार्थमपि तद्भणपरीक्षास्थानस्यै-नीचित्यादिति भावः ॥ १६ ॥ हे न्योम,—'न हिसंबुद्धाः'इति अकिंचनोऽपि कार्याणि साधयस्यातताद्याः।
अन्तःशून्यमपि व्योम सर्वस्योक्षतिकारणम्॥ १८
न तृणसिललं नैव प्रामो न नाम च पत्तनं
नच दलभरिकाधच्छायस्तर्धनं च सत्प्रपा।
तद्पि गगनाध्वानं सूर्यः प्रयाति दिनेदिने
विषममपि यत्प्रारब्धं तत्त्यजन्ति न सात्विकाः१९
यामा ध्वान्तपटेन शीतलक्विः कर्पूरपूरैः करैरक्तिकोकनवांशुकेन दिवसस्तारीधपुष्पोत्करैः।
सौरम्भोदनुषारवारिकुसुमः सर्वर्तवो भूषयन्त्येतेकालकलात्मनोस्त्रिभुचने व्योमाङ्गणं नाथयोः

धूमाभ्ररेणुतिमिराकंनिशेशसंध्या ताराविमानगरुडाद्रिसुरासुराणाम् । श्रोभैरपि प्रकृतिमुज्झति नान्तरिशं चित्रोत्थिता स्थितिरहो च महाशयस्य२१ दिग्भित्तिबद्धमिदमूर्ध्यतलान्तरिक्ष-मुर्वातलं घनपुराचलभूरिमाण्डम् । विद्याधरामरमहोरगजालकारं लोकौघसंसरणसंघपिपीलिकाल्यम् २२

नलोपनिषेधरछ।न्दसरवादनिखलाद्वा नाश्रितः। लं **अहि प्रकाशं** भास्तरवर्णमसि । दिनान्ते संध्यारागेण रक्तवपुरसि । यामास्र नाभैकदेशे नामग्रहणात्रियामासु कृष्णमसि । अथच नित्यं न किं-चिदपि सद्वस्तु वहसीतिहेतोरखिलवस्तुरिक्तमसि इति तब मार्या विद्रपस्तलविदो विचेष्टितमपि न कश्चिदपि वेत्तीलयः॥ १७॥ आतताशयः अतिविपुलबुद्धिस्तत्त्ववित् ॥१८॥ गगनाध्वनि अ-ध्वगविश्रान्तिसाधनं तृणं सलिलं च नास्ति । शामखु नैवास्ति । पत्तनं नगरं च न नाम अखन्तासंभाव्यमित्यर्थः । दलभैरः क्रिग्धच्छायस्तरुश्च नास्ति । सती रम्या प्रपा पानीयशाला च नास्ति । तत्तथापि सूर्यो गगनाध्वानं दिनेदिने प्रयाति । सालिकाः सलवन्तो विषममन्येषामसाध्यमपि तम्र खजन्ति स्वसामध्येनावश्यं साधयन्त्येत्रेखर्थः ॥ १९ ॥ दिवसः अर्कालोकलक्षणेन नवांद्युकेन स्वं भूषयति । यौः रात्रितारीघपुष्पोत्करैः स्त्रं भूषयति । सर्वर्तवो बसन्तादयः अम्भोदतुषारलक्षणैर्वारिकुमुभैः खं भूषयन्ति । एते सर्वेऽपि मिलित्वा कालकलात्मनोस्त्रिभुवने नाथयोः खामिनोश्चन्द्रसूर्ययोः क्रीडास्थानं व्योमाञ्चणं भूषयन्तीत्यर्थः ॥ २० ॥ महाद्ययस्य रिथतिश्रित्रा आश्वर्यरूपा उत्थिता उन्नता दर्यते यतोऽन्तरिक्षं धुमादीनां त्रयोदशानां क्षोभरिप प्रकृतिं पूर्वावस्थां नोज्यति ॥ २१ ॥ अपरः कश्चित्रिभुवनमेकजीर्णगृहत्वेन वर्णयति —दि-गिभतीति । दिश एव भित्तयस्ताभिवेद्धमूर्ध्वतलं उपरितनसौध-भूतमन्तरिक्षं यस्य । उर्वा भूमिरेव अधस्तलं यस्य वनं पुराण्यच-लाश्व भूरिभाण्डं गृहोपस्करो यस्मिन्। विद्याधराद्यो जालकारा ऊर्णनाभिकीटा यस्मिन् । तथा लोकी पाश्ववर्षि धम्तपामास्तकश्व-

१ मेघाचावरणश्च्यम्.

कालः किया च भुवनं भवनं चिराय नामाधितिष्ठत इवोपवनं त्रिकासि। आशक्काते प्रतिदिनं नतु नष्टमेव नाचायि नदयति च केयमहो तु माया॥२३ युगलकम्।

सं मन्ये पादपादीनां रोधयत्यधिकोन्नतिम्।
अकर्तुरेव महतो महिस्नोदेति कर्नुता ॥ २४
जगतां यत्र लक्षाणि नभवन्त्युद्धधन्ति च।
तच्छ्न्यमुच्यते व्योम धिक्पाण्डित्यमस्वण्डितम् २५
व्योमन्येव प्रलीयन्ते व्योमतः प्रोद्धचन्ति च।
गच्छतोन्मस्तामेतामीश्वरान्यभिदा हता॥ २६
आयान्ति यान्ति निपतन्ति तथोत्पतन्ति
सर्गश्चियः कणघटा इच पाचकोत्थाः।
यत्रामलं तदहमेकमनादिमध्यं
मन्ये समेव नतु कारणमीश्वराच्यम्॥ २७
आधारमायततरं त्रिजगन्मणीनामन्ने विभत्यमिनमन्तरदोषवस्तः।

णाभिः संघपिषीलिकाभिराट्यम् ॥२२॥ ईटशमिदं भुवनं भवनं कालः किया चेति दंपती चिराय नाम अधितिष्ठतः पालयतः। यथा मालाकारदंपती विकासि उपवनमधितिष्ठतस्तद्वत् । यद्यपि कालकियाभ्यां नाथिष्ठीयते प्रतिदिनं नतु नष्टमेवाशक्काते तथापि नाद्यापि नर्यति चकाराष्ट्रयति च तथापि प्रवाहेणा-जुबर्तत एव । एवं नश्यदपि न नश्यतीति विरुद्धधर्मकलादहो नु माया । इन्द्रजालसदशमेतदिलार्थः । तथाच श्रतिः 'कस्मा-त्तानि न क्षीयन्ते अद्यमानानि सर्वदा' इति । 'पुरुषो वा अक्षितिः स हीद्मन्नं थिया थिया जनयते कर्मभिः' इति॥२३॥ मन्ये इत्युत्प्रेक्षायाम् । आदिपदादृद्धिमतां सर्ववस्तूनाम् । ननु निरोधकव्यापारश्चन्यस्य खस्य निरोधे अकर्तृतैव तत्कथं तद्वि-रदा कर्तृतोत्प्रेक्ष्यते तत्राह-अकर्तुरेवेति । 'रुम्धन्ति मार्ग गिरयोऽध्वगानाम्' इतिवदिति भावः ॥ २४॥ कथिद्योमशून्य-ताबादिनो युक्तया खण्डयन्निन्दत्ति—जगतामिति । नभवन्ति **छीयन्ते, उद्भव**न्ति जायन्ते च ॥ २५ ॥ अपरो व्योद्ध्येवेश्वर-रुक्षणानि पश्यंखदन्यताबादिनं निन्दति-व्योमन्येवेति । **ईश्वरादम्यक्योमेति** भिदा उन्मत्ततां गच्छता प्राप्तेन वादिना **कृता । यतः सर्वाणि जगन्ति व्योमन्येव प्र**हीयन्ते व्योमत एव श्रोद्भवन्ति चकाराध्योमन्येव तिष्ठन्तीति 'जन्मायस्य यतः' इति शास्त्रसिद्धमीश्वरलक्षणं व्योष्ट्रयेव दृश्यत इति तदेवेश्वर इत्यर्थः। **'ईश्वराद्यभिधाः कृताः'इति पाठे एतां उक्तार्थयोधप्रयुक्तां उन्म-**ततां भ्रान्ति गच्छता वादिना अन्यताभ्रमेण व्योप्न एवेश्वराद्य-भिषाः कृताः ॥ २६ ॥ यदि व्योम्नः सकाशादेदामिविस्फुलि-इन्यायेन जगजनमादि मन्यसे तहिं न जडं न्योम तत् किंतु विद्योमरूपोऽहमेव । 'मय्येव सकलं जातं मिथ सर्व प्रतिष्टि-योग० १६९

ब्योमैष चिद्वपुरहं परमेव मन्ये यत्रोदयास्तमयमेति जगद्भमोऽयम्॥ 24 वनावनी घनचरचारुकामिना मनोहरहुमगहनेषु गीयते। इतो गिरेः शिरसि विलोक्यतेऽमुना वियोगिना पथि वहता रसाकुलम्॥ ર્શ गीतं शङ्गतरुषपहावपुटे निःभ्वस्य सोत्कण्ठया कण्ठाश्चिप्रगिरा वियोगहतयाविद्याधराणांस्त्रिया। यन्नामात्र तदेप नाथ पथिकः सोच्छासमाकर्णयन् दोलान्दोलनयेव चञ्चलिया नो याति नोन्च्यते। गायत्यदिशिरस्तरी दलपुटे निःश्वस्य विद्याधरी काकस्या तिलकं वियोगविधुरा बाष्पाकुलैया पुरः। नाथोत्सङ्गगृहे गृहीतचिवुकं सोरं भवश्चम्बनं स्मृत्वास्वाद्य रसायनं हतसमा नीता मयेता इति अस्याः प्राप्भवस्तरपतिः स मुनिना शापेन वृक्षीकृतो वर्षद्वादशकं तदेव गणयन्त्येषैय सात्र स्थिता। गायत्युत्कलिता तदेच दयितं तं पादपं संश्रिता मार्गे मार्गविहारिणां घदनतो राजन्ममतच्छुतम् ३२

तम् । मयि सर्वे छयं याति तद्रबाद्रयमस्म्यहम्' इति श्रुतेरह मेव स ईश्वर इति तटस्थेश्वरपक्ष एव निरसनाई इति तत्र कश्चित्तस्वविदाह—आयान्तीति । ईश्वराष्ट्यं तटस्यं नैयायिकाद्यमिमतं नतु ॥ २७ ॥ अमिनं यदशंषवस्तु त्रिभति त्रिजगन्मणीनामायततस्माधारं चिद्रपुः परं बहीवेत्यहं मन्यं ॥ २८ ॥ कश्चिद्रिरी कीतुक-विशेषं दर्शयमाह-वनावनाविति । गिरेः शिरसि वनावनी वनचरेण चारुणा कामिना मनोहरद्वमगहनेषु गीतं गीयते। अधःपथि बहुता गच्छता अमुना वियोगिना पुरुषेण तद्गीतं श्रुला रसाकुरुं यथा स्थात्तथा स गाता ऊर्ष्वं विलोक्यते॥२९॥ अपरस्तथाविधमपरं कौतुकं दर्शयत्राह-भीतमिखादिना । हे नाथ, गिरिश्वनवने उच्चो यस्तरस्तदीयपहनपुटप्राये कुन्ने वियोगहत्त्वा सोस्कण्ठया विदाधराणां स्त्रिया निःश्वस्य कण्ठा-श्चिष्टिगरा यद्माम गांतं तदत्राधस्ताद्गच्छन्नेष पथिकः सोच्छा-समाकर्णयन्सन् दोलायामान्दोलनयेव चयलया थिया अप्रे नो याति । अनुगरिष याहीति नोऽनूच्यते चित्रमित्यर्थः ॥ ३०॥ सा विद्याधरी बाष्पाकुला सती अतिलकं वि-मृष्टविशेषकं यथा स्वात्तथा गायति । कि गायति तदाह । हे नाथ, लदुरसङ्गलक्षणे ग्रहे गृहीतचित्रकं स्मरमीपदास्यस-हितं भव भुम्बनलक्षणं रसायनं स्मृखा पुनःपुनराखाच इह मया एता इतसमा निन्दाः संवत्सरकाला नीता इति गायति ॥३१॥ किमर्थं तत्रेव सा स्थिता गायति तत्राह—अस्या इति । सः गीयमानः प्राग्भवतीति प्राग्भवः सन् युवा पतिर्विद्याधरो मुनिना केनचिद्पराधेन निमित्तेन शापेन वर्षद्वादशकं दृक्षी-कृतस्तदेव गणयन्ती सेपा अत्रैव स्थिता उत्कलिता उत्क-

पर्येष सोऽसाद्वलोकनशान्तशापो विद्याधरो विटिपतामवमुच्य बालाम्। कण्ठेकरोति विद्याकृतिविश्रलम्भैः स्तरेव वाहुभिरछं स्पुटपुष्पहासः॥ 33 शिखरिणां करिणां कुसुमोत्करो विटिपेषु स्पुटरोमसु राजते। गगनविच्युततारकलीलया शिखरमेष तुषारसमानया॥ 38 मीनावलीसरभसष्ट्रतिघट्टिताम्बु-बीचीवि**ळोळविरुवत्कुररीकरा**ळा । कावेर्यहो कुसुमशुक्कपटाऽवभाति निःराङ्करङ्ककुलसंकुलकुलकच्छा॥ રૂપ भात्यत्र पदय रविणा कटके सुवेछ-शैलस्य काञ्चनशिला सकलामलश्रीः। **वे**लावलोलवरुणालयवीचिभङ्ग-पर्यस्तवाडवरुशानुकणोपमानम् ॥ ३६ आसमपीनजलदायलितालयानां गेहोपशस्यपरिफुह्मवनद्वमाणाम्।

ण्डिता तमेव सार्वियनं पादवं संध्यिता सती सा गायति । है राजन् , मार्गविद्वारिणां बदनती मया एतन्मार्गे श्रुतम्॥३२॥ स च मुनिरस्मद्र्शनभेव धापान्तमकरोदतः स एष युक्षभूतो विद्याधरोऽस्मद्वलोकन।देव शान्तशापः सन् विटपितामवमुख्य तां विद्यावरी विद्याकृतिव्यक्तिसेरेव **स्फुटपुष्पाण्ये**व हःसत्येन संपन्नानि यस्य तथाविधः स**न् भालिक्य** कर्ण्डेकरोति पश्य ॥ ३३ ॥ अपरः शिखरिणो वर्णयति—शिखरिणामिति । शिखरिछश्चणानां ऋरिणां वि-टपिलक्षणेषु स्फुटरोमसु कुमुमोत्करः शिखरेषु मेवतुपारी **बा**सन्दिकहिमकणस्तरसमानयाः गगन्बिच्युततार्कलीलया ा। ३४ ॥ अवरः कावेरी वर्णयति—मीनेति । मीना-षळीनां सरमसहिताभिषीदृतास्त्रमञ्जूषाचिषु विकोळामिः की-**डन्तीभिर्विरुवतीभिः कुरर्राभिः कराला कुग्रुमशुक्क्षपटा निःहाँहैः** रङ्कभिर्मगभेदैः संकुलाः कूलानि कच्छा जलप्रायदेशाक्ष यस्यास्तथाविधा कावेरी अवभाति । अही इत्याश्चर्ये ॥ ३५ ॥ है राजन् , अत्र धुवेलशैलस्य कटके सकला कान्ननशिला प्रदोखमाना वेलाखबढोलस वरुण!लयस्य र्वाचिमक्रैः पर्यस्तस्य वाडवक्रशानीवंडवाग्नेः कणा एवीपमानं यस्यास्तथाविधा भाति Ħ રેધ ॥ तथा आसमेः पनिर्वलदेरावित्तालयानां गहोपशस्येषु गृहसीमान्तेषु परिफुलवनदुमाणां तथा पलाशपटलैरावलिताम्बराणां घोषीक-सामाभीरपहीग्रहाणां लक्ष्मीः समवलोक्षय ॥ ३७ ॥ तथा उभिद्रैः पुष्पैः पदुपाण्डुरा अतिशुम्राः पुष्पसण्डाः पुष्पनाटिका येषु । तथा मन्दारयक्षा एव भाग्डानीव बहुतरपुष्पभाजनानि येषु तथाविधा विविधशिखण्डिनां मृह्यस्थानलात्तःकरण्डप्रायाः

ळक्ष्मीः पळाद्यापटळावळिताम्बराणां घोपीकसां समघलोकय पर्वतेषु॥ ØF उन्निद्रपुष्पपटुपाण्डुरपुष्पखण्डा मन्दारभाण्डविशिखण्डिकरण्डकच्छाः। श्रामाः प्रपातजलज्ञःलविलासवाद्या वल्गहृहागहनगीतजना जयन्ति॥ 36 उन्निद्रकन्द्रलदलान्तरलीयमान-कुजन्मदान्धमधुर्यान्मद्पामराणाम्। मन्ये न सा भवति तुष्टिरिहामराणां या गोकुलेषु गिरिगह्नरिणां नराणाम् ॥ ३९ भृङ्गावदोलितलताकुलकाननान्त-र्गायत्पुलिन्दद्यिताननद्त्तनेत्रम् । लीलाकुला गतपुणं गिरिगहरेषु किं झन्ति रात्रुमित्र मुग्धमृगं किराताः॥ ४० नानाविकासिकुसुमोत्करसारलब्ध-वहीदस्ययसन्धीतसिताध्वगाङ्गाः। साम्भःपथत्रसरणेन तरक्तरङ्गा श्रामा गिरीन्द्रगहनेषु जयन्ति चन्द्रम् ॥ ४१

कच्छा जलप्रायाः शिशिरप्रदेशा येषु । तथा प्रपातेषु अर्ध्व-देशात्पनतो जलजालस्य विलासा एव शिसाण्डनां मृत्ये बाद्यानि येषु । तथा प्रतिध्वनिभिवेल्गन्त्वो गुहा यत्र तथाविषेषु गहनेषु गीतानि येषां सथाविधा जना येषु एवंविधा गिरि-प्रामा जयन्ति स्वर्गामिति शेषः ॥ ३८ ॥ तदेव स्फुटयति-उन्निदेति । इह गिरियामे गोकुछेषु उन्निदाणां सद्योविकसितानां कन्दलानां मुक्कलानां दलानतरेषु गर्नेषु लीयमानैः कुजद्भिर्म-दान्धेर्मधुपैनिरीक्षितैरुन्भदानामुद्दीपितकामानां पासराणामपि गिरिगहरिणा नराणां घोषांमञ्जनानां या तुष्टिर्भवति सा तुष्टिर र्नन्दने कीडतामप्यमराणां न भवतीति मन्ये ॥ ३९ ॥ भृत्तै-रवदोळिताभिदींठालेन कत्थिताभिर्वताभिराक्करकाननस्यान्त-गिरिगहरेषु गायन्तीनां पुल्टिन्दद्यितानामाननेषु **दत्तनेत्रं** स्यात्रथा लीलासु श्रहारचेष्टानिराकुलाः किराता मुग्धमृगं शत्रुमिव गतप्तर्णं निर्दयं क किं कथं झन्ति । अहा येषामन्यत्र दसद्धीनामन्यमनसां चललक्ष्यवेधनपाटव-मीदशसमयेऽप्यतिनिर्देयत्वं चेखर्यः । अथवा भृजाबदोलि-तलतासदशपुलिन्दललनानामाननेषु दत्तनेत्रलान्मुग्धमृगाणां पुळिन्द् उछनानेत्रसीन्दर्शापहारिल्डतापहवाशि**लप्रतिसंघाना**-च्छत्रुभिव मन्यमाना दयायोग्यसमयेऽपि निर्दयं प्रनित किमि-त्युत्प्रेक्षा ॥ ४० ॥ किंच नानाविधेभ्यः कुसुमोरकरेभ्यो लब्धः शैल्यसीगन्ध्यपरागादिसारी येन तथाविधस्य वायोविधी-दलानां चावलनैः शीतलितानि अध्वगानामङ्गानि यैः। अम्भोभिः सह तद्भुणेन शैरयेन प्रथन्त इति साम्भःप्रथास्तथाविधानां बायूनां प्रसरेण तरत्तरङ्गा जलाशया विधा प्रामाः सौरभ्यगुणाधिक्येन चन्द्रं जयन्ति । तथाच क्जिकिरवारयः परिसरत्योश्रिद्धतालहुमा हेलोहासितपुष्पपहाषवलहृहीत्रितानाम्बराः । पर्यन्तोन्नतसाललम्बिजलदा रम्या गिरित्रामका-श्चन्द्राश्वत्थमितार्वानं शशिपुरोद्यानस्य भागा इव॥ आसन्नपीतघनधर्षरमेघनाद-

सिन्नपात्यन्ययस्य विभिन्न स्वाहित्य विश्व विश्व

चन्द्रमण्डलस्थेभ्योपि देवेभ्यो प्रामदासिनां सुखाधिक्यमिति भावः ॥ ४९ ॥ पादत्रयं व्याख्यातम् । ईद्शा गिरिप्रामकाः शशिपुरस्य स्वर्गस्थचन्द्रनगरस्य थैान्युद्यानानि तद्भागा इव 'सोश्वत्यः सोमर वनः' इति श्रुतेश्वान्द्रामृतस्राधिणा अश्वत्थेन मितां ब्रह्मलोकारानि च जयनती अनुषज्यते ॥ ४२ ॥ किंचेते गिरियामा आसभाः पीता विद्युतो येपां तथाविधानां धनधर्षराणां मेघानां र देर्नुखतां शिखण्डिनां नवताण्ड-वेषु विप्रकीर्णैः कलापिकुलानां कोमलेबिईखण्डैः प्रोड्डोनाथन्त्र-कलक्षणा मणिप्रकरा येषु तथाविधाः सन्तौ जयन्ति प्रागुक्त-मित्यर्थः ॥ ४३ ॥ किंचैकपार्श्वस्थं यचारुशशिमण्डलं तदेव मण्डनं येषाम् । एकपार्श्वे च विश्रान्ता वारिगुरवो वारिदवारणा येषु तथाविधेषु गिरितटेषु स्थितेषु प्रामेषु या विलासलक्ष्मीः सा विभववत्सु विरिष्धेः राज्येष्वपि कुतः । दुर्रुभेखर्थः ॥४४॥ खामोदनन्दनवनान्तरमिव सुन्दरेषु । संतानकस्य कल्पगृक्षमे-दस्य स्तबकान्हसन्ति तच्छीला निकुछका येषु । उन्निदाः पुष्पिता मन्द्रध्वनिमधुपाकुलाः पारिभद्रा निम्बतहरूपाः सान्द्रा द्वमाः येषु तथाविधेषु गिरिह्वरेष्वहं अभिरम ॥ ४५॥ पुष्पेषुर्मन्मथस्तस्पुरेष्विव ॥ ४६ ॥ स्फाटिकस्तम्भानां संभारा इव रम्याणि धारापातीनि निर्द्धरवारीणि येषु ॥ ४७॥ रणन्ति ध्वनन्ति निर्मरपुष्कराणि निर्मरजलानि यस्मिस्तथा-विधे अत्र प्रामगहरे ॥ ४८ ॥ हारीतैः पक्षिभेदैई।रिणो मनो-हरा हरिता उपवनहुमा यास । तथा वापीप्रमाणेन हंससार-सादिरणितस्रक्षणा अमलाः काकस्यो यासु । गिरिगहरैगीपि-

१ अत्र यदुषानं तद्भागा श्वेति पाठो युक्तः यहा यान्युषानानीत्येव

स्फादिकस्तम्भसंभाररम्थनिर्धरबारिणि । नृत्यन्त्येताः शिखण्डिन्यः पश्यासिम्यामगहरे ४७ शिखण्डिन्यो विलासिन्यः पुष्पभारनता लताः । अत्र नृत्यन्ति कुञ्जेषु रणनिर्द्धरपुष्करे ॥ 28 हारीतहारिहरिनोपवनद्रमासु वापीप्रमाणरणितामळकाकळीषु । श्रामस्थलीयु गिरिगह्नरगोपितासु भन्ये मुद्देग रमते स्वरसेन कामः॥ श्रीमहत्तमहाशयातपहर प्रोद्यगंभीरास्रते भूभृत्मूर्यसु भूषणं भवसि भो भूमे रसैकास्पदम्। एतत्तु क्षपयेनमनांसि यदिदं मेघ त्वया वर्षना हर्षादृषरपरवस्थस्यस्तरुष्वम्भोविभागन्नमः ५० नित्यं स्नासि सुतीर्थवारिविसरैरुंचःपदस्थोऽम्बुद् शुद्धः सन्त्रिपिनाचनौ निवससि प्रारम्थमानवतः । रिक्तस्याप्यतिकान्तिरेव भवतः कावाश्रया छक्ष्यते प्रोत्थायाशनिमातनोषि किमिदं तुच्छं तवाचेष्टितम् वस्त्वस्थानगतं सर्वे द्युममप्यद्युमं भवेत्। दुमैघं स्थानमासास वारि त्वसिततां गतम्॥ ५२

तासु व्यवहितासु प्राथस्थलीयु एव रावेजगरप्रसिद्धः कामो मुदा स्वरसेन रमते इति मन्य ॥ ४९ । आरार्धसमाप्तेरित आरम्य प्रायंगान्यापदेना गेथ्याः । हे श्रीमतां वृत्तमिव वृत्तं महीदार्थ यस्य तथाविध जगरवरिपाटनैष्तुत्वान्महाशय, आत-पहरा प्रोधिरवता गभीरा च आकृतिः वार्गरं अस्य तथाविध भो मेघ, लं भूरतां पर्वतानां मूर्घमु भूषणं भवति । तथा भूमेः क्षेत्रारामादिसंपत्तिहेतोः रसस्य जलसैकःसदमसि । एवं सद्भणसङ्ख्यापि हर्षाद्वर्षता लया यदपात्रभृतेषु अपरस्थलेषु पत्वसम्बर्धेषु तत्रस्यकण्टकादित्रषु च सुक्षत्रसाम्येन अम्मोन विभागकम आस्थित एतरो सदरात्यात्रावभागापरिज्ञानं तु सतां मनः क्षपयेत्पीडयेत् । यदि भवादशा महान्तोऽपि सुपात्र-गुणोत्कर्ष न मानयन्ति तक्षिग्ये के मानयिश्वश्तीति भावः ॥ ५० ॥ दानप्रारम्भादिकाले रक्षकटु कर्णकठोरजल्पनं तु दातृणां महान्दुःसहो दोव इत्याशयनाह—निवासिति । हे मेघ, ले सुतीर्थानां समुद्रगङ्गादीनां वारिविसंगीत्वं स्नाम । तथा उच्चःपदस्यः सर्वप्राणिनामम्यु ददःसीलम्युदः । किंच शुद्धः सन् विपिनावनी प्रारब्धं मौनं सुनिमवान्धमतं येन तथाविधो निवससि । किंच शरदि रिक्तस्यापि भवतः अतिश-यिता धवलकान्तिरेव कायाश्रया द्रयते। ईदशोऽपि लं दानार्थमुत्याय अशनि विद्युद्धिपुरःसरं कटुव्वनिमात्तनोषि । इदं तुच्छं क्षुद्रोचितं तव आचेष्टितं किम् । सर्वथा अनुचित-मेवेलर्थः ॥ ५१ ॥ तटस्य आह्—वस्त्विति । शुभगपि वस्तु अयोग्यस्थानगतं सदशुभं भवेत् । बारि तु इति च्छंदः॥५२॥

न्याख्यापाठआदृतश्चेन्छशिपुरस्योद्याननागाइदेति मूले पाठो योज्यः

अहो नु मेघेन जलं विमुक्त-महो ज तोयेन विप्रिता भूः। अहो जु भूमी परिपोषितश्च 43 जलैर्धनात्येः प्रणयीव दीनः॥ नैर्घुण्यमस्थैर्यमथाद्युचित्वं रध्याचरत्वं परिकृतिसतत्वम् । श्वभ्यो गृहीतं किमु नाम मुर्खे-र्मुखंभ्य एवाथ शुना न जाने ॥ 48 गुणैः कतिपथैरेय बहुदोषोऽपि कस्यचित्। उपादेयो भवत्येव शौर्यसंतोषभक्तिमिः॥ 44 उन्मत्तमत्तपतनोन्मुखधावमान-मानाधिकान्विषयवीथियु मुक्तमूर्तिः। यन्मन्यते तृणलवात्रविलोकयेच्छा-सत्वं जडत्वमुत वास्य विचार्यतां तत् ॥ બદ कोलाहलः समानेऽपि तिर्धक्तवे भ्रब्धमानसैः। अन्यथा सहाते सिंहैर्मीलितैरन्यथा श्वभिः॥ 40 नित्याश्चे प्रियजने भषणैकनिष्ठ रथ्यान्तरभ्रमणनीतसमस्तकाल।

दीनो दरिद्रः प्रणयी सुहृदिव भूमी म्लानसस्यादिः परितोषि-तथ ॥ ५३ ॥ दशौदार्थादिगुणवर्णनप्रसङ्गात्तद्विपरीतनैर्घृण्यादि-शालिनो मुर्खान् कश्चिच्छ्रगुणविनिमयसंदेहप्रदर्शनेन निन्द-ति - नैर्घण्यमिति ॥ ५४ ॥ यदि मूर्खी निन्दा एव तर्हि कथं महीपास्तं संगृह्णन्त तत्राह--गुणिरित । श्रेव मूर्खोऽपि शोर्था-दिगुणैः कस्यचित्कुनृवादेरवादेयो भवति ॥५५॥ विषयवीथिषु भोगपरम्परासु दत्तमूर्तिः प्रसंजितशरीरो विषयलम्पटो मुर्खो ध-त्तरादिभक्षणेनोन्मत्तान्मदिरादिना मत्तान्त्रमादकोधावेशादिना कूपादिपतनोन्मुखान्पिशाचाद्यावेशेन धावमानांस्तत्त्वज्ञानप्रक-र्षण देहादिपरिच्छेदविस्मरणादहं ब्रह्मेति सर्वीत्कृष्टप्रमाणप्रतिष्ठा-नाच मानाधिकान्षष्ठादिभूमिकारूढांश्व खाभिज्ञतारोपेण यत्तुणं मन्यते। हे तृणलवाम्,तत् लमेव विलोक्य। अस्य विषयलम्पटस्य इच्छासलमुत वा जडलिमिति तद्रहस्यं विचार्यताम्। यदी-च्छासत्त्वं तर्हि स एव श्वभिस्तुल्यः । यदि जडत्वं तर्हि तणल• वाश्रादपि विषयलाम्पट्यादिदोषाधिक्यात्ततोऽपि खयं नीच इति तृणशाम्यमपि तस्य दुर्छभतरमिति विचारे फलिब्यतीति उनमत्तादिस्थो नीचत्वं तस्य किं वाच्यमित्यर्थः ॥ ५६ ॥ घन-गर्जितादिकोलाहलःसिंहेरअञ्चमानसरनादरान्मीलिताक्षैःसह्यते श्वभिक्त क्षुव्धमानसभयानमीलिताक्षेः सहात इत्यभयत्रान्यथा-लमिति भावः ॥५७॥ हे कौछेयक श्वन् , आशयश्विलवृत्तिस्तेन समानतया खगुणशिक्षायोग्यं लां मन्यमानेन केनचिन्म्खण निखाशुचिलादीन्खगुणांस्लं शिक्षितोऽसि । मन्ये इति प्योक्ति संदेहे निर्णयः । तथाहि सति शिष्याद्वरोर्गुणाधि न्यदर्शनसपप-

कैलियकारायसमानतयैष मन्ये मुर्खेण केनचिदहो यत शिक्षितोसि॥ ५८ नित्यं सर्वे जगवसददां कुर्वतोषैर्विधात्रा दौहित्रेऽसिञ्छ्नि समस्रो निर्मितं सर्वमेष। वासोऽमध्यावकरकुहरे भोजनं गूथपूर्य सर्वालोके कुरति कुरतिः सर्वनिन्यं शरीरं ५९ त्वतः कोऽधम इत्युदीरितवते श्वोवाच हासान्वितं मत्तो मीर्ख्यममेध्यमान्ध्यमशुभं यः सेवते सोधिकः शौर्य भक्तिरकृत्रिमा धृतिरिति श्रीमान्गुणो योस्ति मे मूर्खादेष गुणः प्रयक्षनिचयैरन्विष्य नो लभ्यते ६० भुक्केऽमेध्यममेध्य एव रमते नित्यं महावस्करे तूष्णीमित सचेतनं कृतरतिर्निधेतनं कृन्तति । सर्वेरेत्य रते श्रनीविचलिते लोप्टेर्जनैस्ताज्यते धात्रा खेलसमन्वितस्थितिरलं लोके कृतो नेश्वरः लिङ्गस्योर्ध्वं रटत्काक आत्मानं द्र्शयत्ययम् । सर्वाधःपातकोत्तुङ्गगतं पदयत मामिति ॥ ६२

द्यत इति भावः ॥ ५८ ॥ असदृशं कर्म वैषम्याद्विषमं जगत्कु-वेता विधात्रा दौहित्रं दृहितुः सरमाख्याया देवगुन्या अपत्य-भूतेऽस्मिन्शुनि समानामनुरूपाणां सर्वधर्माणां दशे दर्शनाय सर्वमेव वक्ष्यमाणं समं निर्मितम् । किं तत्सर्वं तदाइ-वास इति । अमेध्ये अवकरस्य स्वनिर्मिते कुहरे गर्तकुलाये । गूर्थ परीषं पूर्व च भोजनम् । सर्वैर्जनैरालोक्यत इति सर्वालोको रथ्या-मार्गस्तस्मिन्कत्सिता चिरप्रन्थिला या रतिर्मेश्वनं तद्विषये कर-तिर्देरिच्छा तथा सर्वेनिन्धं शरीरं चेति सर्वमित्यर्थः ॥ ५९ ॥ उदीरितवते पृष्टवते पुरुषाय श्राहासान्वितं यथा स्यात्त्रया उवाच । मौर्ह्यमज्ञानम् । अमेध्यमपवित्रं देहायमिमानम् । आन्ध्यं विचारनेत्रराहित्यम् । तर्हि तव मूर्खापेक्षया कैर्गुणैरा-धिक्यं तानाह -- शौर्यमिति । धृतिरल्पसंतीयः । एप गुणकः-दम्बश्चिरमन्त्रिष्यापि दर्शने मूर्खात्रीलभ्यते अतः स मत्तोऽधम इत्यर्थः ॥ ६० ॥ अवस्करे पुरीषे । 'वर्चस्केऽवस्करः' इति सुद । सचेतनं सजीवमिप नकुलमूबकादि दैवालब्ध्वा तूळी निरपराधमेवाति । निश्रेतनं निर्वेत्वं च छागवत्सादि तूःणी निरपराधमेन कृन्तित दशित । शुनीविवलिते रते प्रसक्तः सर्वेजनरेख लोष्टेसाञ्चते । एवमलमखन्तं नेश्वरः असमर्थः शा धात्रा खेलनं खेलो दुर्विलासकीतुकं तेन समन्विता याव-दायुःस्थितिर्यस्य तथाविधः कृत इसर्यः । 'श्वेष समन्वित-स्थितिः' इति पाठे नेश्वरः सेवकः ॥ ६१ ॥ कचिनदीतीरे निर्मास्याक्षतमक्षणाय विवलिङ्गस्योर्ध्व रटन्तं काकं दृष्ट्वा कवि-त्तद्रटनतारपर्यमुरप्रेक्षते — लिङ्गस्येति । आत्मानं सं दर्शयति नि-द्शियति । किमिति निदर्शयति तदाइ । सर्वेषामधःपातकानाम-धोगतिहेतूनां मध्ये यदुत्तुनं शिवस्वभक्षणाय शिवलिङ्गाश्रयणं

१ अत्र टीकानुरोधेन दत्तमृतिः इति पाठोऽपेक्षितः.

काकक कटुकल्कारव कवितिगुणकर्दमे भ्रमन्सरसि। अन्तरयसि मधुपरवं यदतो में शिरसि फलभूतः॥ ६३ कवलयति नरकनिकरं परिहरति मृणालिकां ध्वाङ्कः। यदतोस्त मा सायस्ते स्वभ्यस्तं सर्वदा स्वदते॥ દય विविधवनकुसुमकेसर-धवलवपुहेस इव दृष्टः । काकः कृमिकुलकवलं क्रिश्रमधो कवलयन्ज्ञातः ॥ GIA तुस्यवर्णच्छवः छप्णः संगतैः किल कोकिलैः। केन विशायते काकः स्वयं यदि न भाषते॥ दह अरण्याच्या सृदः स्थाणौ स्थितः काको निरीक्षते ।

चैत्याइशदिशश्चोरो निशि सुप्ते जने यथा॥

त्पुष्करमकरन्दसुन्दरे सरसि।

सरभससारसविदल-

तद्गतं मां प्रत्यक्षं काकभूतं परयतेति ॥ ६२ ॥ अपरः सरसि रटन्तं श्रमन्तं काकमपदिस्याह—काककेति । हे कुरिसतकाक काकक, कटुभिः कल्कार्यदेम्भध्वनिभिः कवलिता हंससारसा-दिगुणा येन तथाविध, त्वं सरसि कर्दमे भ्रमन्सन्मधुपानां रव-मन्तरयसि खकदकरवैर्थदन्तर्थरसे अतो हेतामें शिरसि वेदना-हेतुलारफलभूतः शस्यभूतोऽसि ॥ ६३ ॥ सखायं प्रति कथि-दाह-कवलयतीति । ध्वाङ्गः काको नरकनिकरं नानाविधम-मेध्यं कवलयति मृणालिका प्राप्तामपि परिहरतीति यत् अतस्ते स्मयो विस्मयो मास्तु । यतः कुत्सितमपि खाद्यं व्यसनितया खभ्यस्तं चेत्तदेव सर्वदा खदते । यथा लशुनोपस्कृतं व्यञ्जनं तद्भजामित्यर्थः ॥ ६४ ॥ विविधानां वनकुमुमानां केसरैः केसर्थैः परागर्धवलवपुः काको श्रान्खा हंस इति दृष्टः। इत्यर्थे इवशब्दः। अथो अनन्तरं क्रिन्नं कृमिकुलकवलं कवल-यन काको जातः ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ अरण्यान्या महारण्यस्य मृदः स्थाणा मृन्मयजीर्णभित्तिस्तम्भे स्थितोऽयं काको यथा निशि सुप्ते जने चोरश्रेखवृक्षमारुख दसदिशो निरीक्षते तद्द-**निरीक्षत इत्यर्थः ॥ ६७ ॥ सरभ**मैः सारसेविदलतां पुष्क-राणां पद्मानां मकरन्देश्व सुन्दरे इह सरसि स्फुरता वायुनो-द्भयमानधूलिना अनकरेण धूसरः स्कन्धो यस्य तथाविधः कोकः कथं विहरति । अनुचितमिदमिखर्थः ॥ ६८ ॥ स्फु-टानां विकसितानां पुण्डरीकाणां कोशे इष्टवपुषि अभिमतस्व-हरे सरसि स्थित राजहंसैः सह एषः कषन्तीति कषाः शिला-स्तामिराइननयोरयं मुखं यस्य तथाविधः काकः पिशाचः

कथमिह विहरति काकः स्फुरदवकरनिकरधृसरस्कन्धः ॥ 23 हा कप्टमिएचपुषि स्फुटपुण्डरीक-कोशं कपाइननयोग्यमुखः पिशाचः। पर्येष काक उपविषय कुपस्वलेखिन् लीलाः करोति विविधाः सह राजहंसैः६९ हे काक कर्कशास्य ऋक्सेकचिह्न तादक्स्यराङ्कनमपि क नु तेऽद्य यातम्। कसादनर्थकमिदं पिकपाकमेक-पुत्राशया तदपि ते ह्यपहाससिख्य ॥ ७० आलोक्य पङ्कावने सविलासवन्तं काकं कळङ्कसदृशं भृशमारदन्तम्। हा कष्टराब्दशतनष्टविचेष्टितो यो नो रोदिति अकचकेन विदार्यतां सः ७१ विशराहशराहमये वकमहुधने च पस्वले चपलाः। स्युर्यदि कीशिककाकाः स्तत्स्यादेपा समन्विता गोष्टी ॥ ७२

अस्मिन् कुपल्बले उपविदय राजहंसविडम्बनाय लीलाः करोति हा कष्टं हे राजन् , त्वं पश्य ॥ ६९ ॥ वश्चनाप-हारादिना खळम्यघनादिभागं न्याय्येनोपायेन साधुर्मो प्राप-दिति शङ्कया तन्निरासाय राजसभासु कटु रटन्तं खलं प्रखन्या• पदेशेन कश्चिदाह--हे काकेति । कर्वशस्त्रलक्षणी यः श्रीतृक-र्णविदारणः ऋकचः स एवेकं चित्रं यस्य तथाविध है काक, खभागमकाको मा भुद्धामिति शङ्कया गदा काकानेवाह्ययंस्त्वं रटिस तत्ते तादक् स्वशङ्कनमद्य क्ष नु यातम् । लमेकः पुत्रो मे जीवलिलाशया पिकस्य कोकिलस्य पाकमर्भकं कस्पादनर्थकं व्यर्थं पुष्णामि । हि यस्माद्धेतोः कटुभाषणैकशीलस्य तद्भान्सा कियमाणमपि सुखर्पिकपोषणं न मनोरथसिङ्यं किंतु उपहास-सिद्धी भविष्यतीत्वर्थः ॥ ५० ॥ वाकमालोवय कश्चिदाहेति शेषः । किमाहः तदाह--हा इति । हे काक, यः पुरुषस्तव खलानां वा कष्टेः कुरः शब्दक्तैः श्रुतैः खेदानप्रविचेष्टितः सन् न रोदिति स पुरुषस्त्रया कटुरवककचकेन विदायताम् । अहं तुन तथेति किमर्थे स्टसीस्यर्थः ॥ ७१ ॥ खलसभायाम-न्येऽपि खला एव योग्या नैकोऽ!पे साधुरिखन्यापदेशेनाह— विशरार्विति । विशरारुभिः संचरद्भिः शरारुभिर्हिष्टेः प्रचुरे वर्कमद्विभिज्ञलकाकेश्व धने पत्वले यदि चपलाः कीश्विका उ-लूकाः काकाश्च स्युस्तत्तर्हि एवा पत्वलरूपा गोष्टी समा त-योग्यैः समन्विता स्यात् । कौशिककाका इलाश्र सतोपि विरो-धस्याविवक्षितलात् 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' इति द्वन्द्वैक-बद्धावो न कृतः । शकुनिद्वन्द्वैकवद्भावस्तु वैकल्पिकः ॥ ७२ ॥ कोकिलः काकसंघातैः समसंवरणाकृतिः।
गिर्दितैर्व्यक्ततामेति सभायामिव पण्डितः॥ ७३
मृदुकुसुमाङ्कुरदलनं
सोदुमलं कोकिलस्य कुसुमलता।
नतु कङ्कुग्रथमहकवककुकुटवायसादीनाम्॥ ७४
श्रोत्रोत्सवं तव कलं कलकण्ड कोऽत्र
नादं श्रणोति रतिविग्रहसंधिदृतम्।
काकैयलूककलहरिह गुल्मकेषु
केकारघर्घररवैः श्रुतिरागतास्तम्॥ ७५

वाचाकोमलयासुकोकिल हिाशुःक स्याणक रूपां कथां सर्वावर्जनमार्जवेन कुरुते यावत्युरो रागिणाम् तावन्मत्तनयोयमित्यविरतं द्वांकारभीमारवे-ध्वांक्कणोपवने निपत्य नभसः सर्वे छता नीरसाः ७६ किं किं कोकिल कूजसि द्वतरवं हर्णात्समुहासितं ग्रीवाकोटरतः प्रवेशय पुनर्मा भूखिरं ते भ्रमः।

उद्दामेः कुसुमैर्निरन्तरतरं नेदं मधोर्जृम्भितं यामायाति दिशं स्त्रभावसुभगः सैवास्य माहा-हेमन्तेनकृतास्तुषारनिकरैःशुरका अमी पादपाः त्म्यदा॥ ८१ इस्तार्षे श्रीवाश्वाश्मोश्मोशे निर्वाश्यः नाम अविश्विष्टिश्व श्वकाककोकिलन्योक्तिवर्णनं षोडशाधिकशततमः सर्गः॥१९६॥

कुजत्कोकिलकोमलं कलरवैर्नित्यं प्रशस्ताकृते केनेदं बत शिक्षितोसि वचनं दुःखप्रदं दुर्भगम्। चैत्रे चित्रनवाङ्करे विरहिणी चक्ति त्वया यात्मनः कस्यायं मधुरित्यतस्तवतवेत्युक्तं त्वरोचैस्तरोः ७८ मौनस्पन्दविहारवर्णयपुषां साम्येऽपि काकवजे काकः कोकिल एव कान्तिरुचिरो दूरात्परिक्रायते मध्ये मुर्खजनस्य पण्डित इव स्वाकारभव्यक्रियः सर्वां हि प्रथिमानमेति सददास्वान्तश्चमत्कारतः भ्रातः कोकिल कुजितैरलमलं नायात्यनर्थो गुण-स्तुष्णीमास्त्र विशीर्णपर्णपटलच्छन्ने कचित्कोटरे उद्दामद्रमकन्दरे कटुरटत्काकावलीसंकुलः कालोऽयंत्रिज्ञिरस्यसंप्रतिसखेनायंवसन्तोत्सवः॥ चित्रं मातरमेष कोकिल्हीशः संत्यज्य काकीं गतः सेपेनं तुद्तीति यावदहमप्याचिन्तयामि क्षणम् । तावत्सोऽपि तथाशु मातृसदशं शिष्टो रसाह्रधितुं यामायाति दिशं स्त्रभावसुभगः सैवास्य माहा-

वर्णतः समाः संवरणाः शरीराच्छादकाः पक्षा आकृतिः सं-स्थानं च यस्य । गदितैर्व्यक्तवाग्मिः ॥ ७३ ॥ साधूनामपरा-घोऽपि सोढुं शक्यः खलानां तु संबन्ध एव दुःसह इत्याशये-नाह-मृद्धिति । वायसादीनां संस्पर्शमपीति शेषः ॥ ७४ ॥ खलसभायां सद्विद्योपन्यासीत्सुकं जनं प्रति कश्चिदाह--श्रोत्रेति। हे कलकण्ठ कोकिल, अत्र दंपलोः रतिविष्रहे मानादिनिमित्ते प्रणयकरुहे संधी संधाने द्रुतभूतं कलं मधुरमतएव श्रोत्रोत्स-वभृतं तव नादं कः श्रणोति । यतः इह पिचुमन्दगुल्मकेषु उछकैः सह सदेव कलहो येषां तथाविधैः काकैः केश्वारघर्घरवैः सर्वेषां श्रुतिः श्रोत्रेन्द्रियमस्तमागतां बधिरतां गतेति यावत् ॥ ७५ ॥ उपवने रागिणां श्रवणानुरागवतां पुरःसु क्रोकिल-शिशः कोमलया वाचा कल्याणं महोत्सवस्तत्करूपां कथां कृला याबदार्जवेन सर्वेषां श्रोतृणामावर्जनं मनोरञ्जनं कुरुते तावद्धा-हुंगोपनिपत्य अयं कोकिलेशिद्युमेत्तनयो मम पुत्रो मया पुष्टी मयोजीवित इत्यादिभिद्यांकारो न्यकारस्तद्र्येभीभैरारवैः सर्वे श्रोतारो नीरसा निरुत्साहाः कृताः ॥ ७६ ॥ अयोग्येषु श्रोतृ-ष्वसमये योग्यतादिश्रमेण स्वगुणप्रदर्शनोत्सुकं कंचित्प्रत्यपर आह-किकिमिति । हे कोकिल, रवं श्रोतृणां, योग्यतादिकमवि-वार्येव खगुणप्रस्यापनीत्सुक्यप्रयुक्ताद्धवीत् हुतरवं किकि कू-जसि । आबाधे द्विचनम् । श्रीवाकोटरतो ह्वीरश्रवृतं समुह्ना-सितं कुजनसमुद्धासं पुनरन्तः प्रवेशय । ते चिरमयं गुणोपन्या-सकाल एते च श्रवणयोग्या इति श्रमो माभूत्। इदं उद्दामैः

कुमुमेर्निरन्तरतरं मधोवेसन्तस्य जृम्भिनं न किंतु हेमन्तेन अमी पादपास्तुषार्गनकरैः ग्रुष्काः कृताः। तथाच नैतेषु खद्गिरां साफल्यमित्यर्थः ॥ ७७ ॥ चित्रा नदा अङ्करा यस्मिस्तथाविधे चैत्रे मासि या विरहिणी सावक्ति । किं वक्ति । नित्यं प्रशस्ता-कृते हे कृजत्कोकिल, अयं मधुबैत्रो मासः कस्येखतः अस्मा-न्मरप्रश्नात्त्वया आत्मनः खस्य मधुस्तरोः सकाशात्त्वरोचैस्तवत-वैति कलरवैः कोमलं यदुक्तमिदं दुःखप्रदं दुर्भगमृततं वचनं केन बिक्षितोऽसि । बतेति खेदे । नहि विरहदुःखिताया मम मधः किंतु प्रियया सह कलं गायतस्त्रवैव एवंच ममममेति व-क्तव्ये तवतवेखन्तोक्तिर्मत्वीडनायैव तवेखर्यः ॥ ७८ ॥ का-कवजे काकसमूहे मैं।नस्पन्दस्य पक्षादिचलनस्य विद्वारस्य वर्णस्य वपुषो गात्रस्य च साम्येऽपि कान्तिद्यिर एष कोकिलो मुखेजनस्य मध्ये पण्डित इह दूरादेव अकाकः परिज्ञायते परिचीयते । तथाहि । सर्वोऽपि स्वाकारसूचितभव्यकियः पुरुषः सदृशाद्युक्तात्स्वान्तश्चमत्कारतो निगृहोऽपि प्रथिमानं प्र-ह्याति एति ॥७९॥ हे सखे आतः कोकिल, अयं कदुरटत्का-कावलीसंकुलः शिशिरस्य कालो वसन्तोत्सवो न । संप्रति कू-जितेरनध्यों गुणो नायाति अतः कृजितैरलमलम् । किच-दुर्महुमकन्दरे विशीणैः पर्णपटलैश्छन्ने कोटरे तूष्णीमास्स ॥ ८०॥ तत्राक्षयांणि दर्शयति - चित्रमिति । एव को-किलशिशुः काकी मातरं संखज्य यद्गतस्तदेकं चित्रम्। तदुलरं सेवा काकी माता एनं कोकिछशिशुं चयूचरणेन त्रदित इत्यपरं चित्रमित्यहं क्षणं यानदाचिन्तयामि तानत्स

१ समवर्णाननाकृतिः इति पाठः.

सप्तद्वाधिकशततमः सर्गः ११७

सहचरा ऊचुः। पश्याद्रिसानाविव विम्बितं खं पुरःसरो मारपुरःसरो यः। **कहारपद्मो**त्पलजालनाल-ललद्विचारवपक्षिवीतम् ॥ Ş विकासितोइण्डसहस्रपत्र-कोशस्थलस्थोद्धरराजहंसम्। पीठद्विरेफद्विजलोकजुष्टं भूवीव गेहं कमलासनस्य ॥ ર आकीर्णसीकरकरालदिगन्तराले फुल्लोत्पलाक्कपटलोदररेणुगीरम्। आमोदमत्तमधुपद्विजगीतिगीतं यातं वितानकभिवाम्बरगं यहन्तम् ॥ कचित्तरत्तारतरङ्गभङ्ग कचिद्विषद्धरिविराविभृद्गम्। कचिद्रभीरामलवारिसुप्तं कचित्सरोजोज्ञचलपुष्पगुप्तम् ॥ પ્ર

कोकिलिशिशुरि रसादुत्साहान्मातृसदशं वर्धितं स्टिष्ट उद्यु-कोऽभूदित्यपरं चित्रम् । तथाहि । स्वभावसुभगो भाग्यवान् जनो यां दिशमायाति सैव दिगस्य माहात्म्यदा संपद्यत इत्यर्धः ॥ ८१॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाण-प्रकरणे वसरार्थे पोढशाधिकशततमः सर्गः ॥ ५१६॥

वर्ण्यतेऽत्र सरः पश्चकुमुदोत्पलमण्डितम् । पश्चभ्रमरहंसाचासत्प्रसङ्गेन वर्णिताः ॥ १ ॥

तन्नादी त्रयोदशभिः सर एव प्राधान्येन वर्णयितुं प्रस्तौति-प्रश्येति । हे राजन् , इह पुरः अदिसानी कहारपद्मीत्पलजालानां नालेषु मृणालार्थं ललद्भिः कीडद्भिविचित्रारवैः पक्षिमिवीतं व्याप्तम् । अतएव सनक्षत्रपक्षिकं प्रतिबिम्बितं खमिव स्थितं सरः पर्य । यः अदिसानुः सरःशोभातिशयेन मारस्योदीपकला-रपुरःसरः प्रधानभृत्य इवास्तीत्यर्थः ॥ १ ॥ तदेव सरी विशि-नष्टि-विकासितेत्यादिद्वादशभिः । विकासितेषुद्दण्डेषु सहस्रप-त्राणां पद्मभेदानां कोशस्थलेषु स्थिता उद्धरास्तच्छोभाधुरन्धरा राजहंसा यत्र तथेन्द्रनीलपीठस्थानीयैद्विरेफेद्विजैः सारसकाश्वा-दिपिश्विभिन्नां झणेलीं कै अनेश्व जुष्टं सेवितं भुवि कमलासनस्य गे-हिमद स्थितम् ॥ २ ॥ आकीर्णैः सीकरैः करालानि सहिमानि दिगन्तरास्त्रानि येन फुल्लान।मुत्पलाब्जादीनां पटसस्य समृह-स्योदरस्थे रेणुभिगौरम् । आमोदमत्तानां मधुपानां द्विजानां च गीतिभिगीतम् । ऊर्ध्वे यातं वितानकमिवाम्बरगं मेघनीहारा-दिप्रतिबिम्बच्छलेन वहन्तं वहत् । पुंस्त्वं छान्दसम् ॥ ३ ॥ क्रवित् तरन्तस्तारास्तरक्षभक्षा यस्मिन्। क्रविन्मदोरकर्षात्परस्परं क्रियन्तः अतएव भूरिविराविणो भृता यत्र । गर्भारेणाम- कणाणुमुक्ताजलतापटालं तीरेषु सिंहे सुलतासुटालम्। तरङ्गनिर्धृतशिलोप्रकच्छं 4 महीतलाकाशमनन्तकच्छम् ॥ तडित्प्रकाशोदरमस्य मेघ-नुषास्त्रजातोत्थरजःप्रभामिः। पृषद्धरध्वान्तमयैकदेशं संध्याम्बराभोगमिवात्रकादाम् ॥ Ę वातावकीर्णशारद्म्युद्खण्डखण्डं ब्योमेय केवलसमीरणमानुताङ्गम्। हंसेर्रसद्विसलताकवलालसांसः कालेन संचयकृतैरिव चन्द्रबिम्बैः॥ 9 आमोदमन्दमकरन्दकरालवात-व्याधूतपङ्कपुटपाटनपाटवेन । उचन्महापरपटा वयतीव लेखा-भूभ्यत्लगाथितलतोज्झितपुष्पवर्षम् ॥ ८

खवारिणा निश्वस्त्वातसुप्तमिव । सरोजि**र**ज्ञवस्पुष्पैः **कुमुदैश्व गुप्ते** शोषितमिव च्छनम् ॥ ४ ॥ कणाणुभिः सीकरीभूर्तर्भु-क्तात्रार्वेजेंबेस्तापं टालयति अवसारयतीति तापरालम् । तीरेषु सिंहे प्रतिबिम्बसिंहान्तरशक्र्या जलपानाप्रगल्भतां कचिद्वक्षात्रादारभ्य जलपर्यन्तं प्रलम्बिताभिः सुलताभिः प्रतिबिम्बद्र्शनिरोधेन सुष्ठ टालयतीति तत्तथा । तथा तरक्षेनिधृतशिलाः पङ्कोमाः कच्छा जलप्रायप्रदेशा यस्य । अनन्तैमंधैरनन्तकच्छं। महीतछे अवतीर्णमाका-शमिब स्थितम् ॥ ५ ॥ अस्याः निरसनीया मेवा यस्य तथाविधेन वायुना तुर्त्र कम्पितं यद्बजजातं पद्मसमृहस्तदुरथ-रजःप्रभाभिस्ति डित्प्रकाशिमव उदरं यस्य । अतएव एकतः पृषद्भरमयो जलविन्दुप्रचुरः अन्यतश्च ध्वान्तमयोऽन्धकारप्रचुर एकदेशो यस्य तथाविधं संध्याकालिकमम्बराभोगमाकाशसंस्था-नमिव आसमन्तात्प्रकाशत इत्याप्रकाशं ईषत्प्रकाशमिति वा ॥ ६ ॥ बिसलतामृणालानि तह्नक्षणानि यानि कवलानि ब्रि-शूनां पोषणाय नीडं प्रति नीयमानानि तद्भारेण अलसा अंसाः स्कन्धा येषां तथाविधेईसैः कालेन एकत्र संचयरूपेण कृतैश्वनद्र-बिम्बैरिव स्थितैः आवृताङ्गं सत् वातावकीणीः शरदम्बुदानां खण्डखण्डा बहुवः खण्डा यस्मिस्तथाविधं व्योमेव केवलसमी-रणमपि लसत् किं पुनः सर्वगुणोपपत्रसमीरणमिल्यर्थः ॥ ७ ॥ अस्य सरसः आमोदभरादिव मन्दैर्भकरन्दसंपकीत्कराछैराईँवी-तैर्व्याधृतस्य पङ्कपुटस्य जलसंमित्रितपङ्कभागस्य यत्पाटनं पङ्क-स्याधोनयनेन जलाद्विभजनं तद्विपये पाटवेन लरया उद्यन्महा-न्पटपटा इति शब्दो यस्यास्तथाविधा लेखा तरङ्गपङ्किः खच्च-

बेल्लन्महाकमलपल्लबतालबुन्त-संवीजितं यस्रितचामरचारुफेनम् । राजायमानमलिकोकिलगीतगीतं सहत्तपङ्कजलताललिताङ्गनीघम् ॥ ९ भृङ्गात्रभाजनमनोहरहारिगीतं राजीवरेणुरणकीर्णपिशङ्गतीयम्। द्धिगडीरपिण्डपरियाण्डुरपुण्डरीक-खण्डोपमण्डिततरोपवनावतंसम्॥ १०

विविक्तहृदयाम्भोजं हृदयाह्यादनं परम्। रसवत्स्वादु भातीदं सरः सत्संगमोपमम्॥ ११ बिम्बितेन मरुष्योसा भातीदं सौम्यनिर्मलम् । शास्त्रार्थपरिणामेन महतामिय मानसम्॥ १२ किंचिल्लक्ष्यमपद्यामं पृषत्परुषमारुतम्। हिमाभ्रमिव भातीदं सरः सरससारसम्॥ यथेदं ब्रह्मणो दृश्यमविकारादि नेतरत्। यथाम्भसि तरङ्गादि राजन्पृथगिव स्थितम् ॥ १४ आत्मनैवोद्यमानानां चक्रावर्तविधायिनाम्। जडाशयानां विषमा हा कल्लोलपरम्परा ॥ 8.4

नि क्षुभ्यत्खगैराश्रिताभिस्तीरङताभिरुज्झितं पुष्पवर्षं बृष्टानि पुण्पाणि सरःपटवृञ्चे वयतीव संतनोतीयेल्यर्थः । क्षुभ्यदित्या-दिबहुवीह्याश्रयणेन विच्छिनं स्ततन्त्रं सरोविशेषणं वा ॥ ८ ॥ तदेव सरो राजसाम्येन वर्णयति---वेछदिति । वेछद्भिश्वछद्भि-मेहाकमलपहनलक्ष्णेस्तालवृन्तैः संबीजितम् । विदितानि चाम-राणीव चारफेना यस्य । अलोनां कोकिलानां च गीतिनिगीं-तम् । सद्दतः चारवर्त्छः सभारितथा पद्दत्र छतालक्षणो ललितः अङ्गनीघो यस्य । अतएव राजायमानम् ॥ ९ ॥ भृङ्गलक्षणा-नामप्रभाजनानां श्रेष्ठपात्राणां सनोहराणां हारि सनोहरं गीतं यस्मिन्। तथा राजीवरेणूनां पद्मपरागाणां रणेन विमर्देन कीण व्याप्तम् । अतएव पिश्चन्नं पीतवर्णं तोयं यस्मिन् । डि-ण्डीरपिण्डा इत्र परिपाण्डुरैः पुण्डरीकखण्डेरुप समीपे मण्डित-मलंकृतम् । तटबनस्यावतंसं शिरोभूवणं पुष्पजालं येन ॥१०॥ एवंविधमिदं सरः सत्संगमोपमं भाति । विशेषणान्युभयत्र योज्यानि ॥ ११ ॥ महदेशवित्रर्जलेन व्योम्ना शरदाकाशेनेति-यावत् । हे सौम्य, शास्त्राधीं बद्धा तदाकारेण चरमसाक्षात्का-रश्रुतिरूपेण परिणामेन ॥ १२ ॥ हेमन्ते तर्हि इदं सरः की-दशं तत्राह-किचिदिति । सर्वतो नीहारावृतलारिकचिछक्ष्यम् । नीहारैः खनर्णसाम्यापादनाद्यगतस्यामम् ॥ १३ ॥ न विचते विकारः परिणामः । आदिपदादारम्भसंघातविवर्ता गृह्यन्ते । न इतरत् कृटस्थं किंतु ब्रह्ममात्रं तथास्य सरसोऽम्भसि तरहादि भम्भोमात्रमित्यर्थः ॥ १४ ॥ आत्मना खेनैवाम्भसा उह्यमा-नानाम् । हा इत्याश्चर्ये । छाययदं ब्रह्मण्यपि योज्यम् ॥ १५॥ 🗍 कुपवाप्याद्यपाधिमेदेनाम्मति तारतम्मिन नारीपुरुषादिशरी- किंतु तितातिताभ्यां रूपाभ्यामेव वैसादृश्यं वैसक्षण्यं भवे-

कृपवापीसरोब्धीनां दृश्यते यादगन्तरम्। नारीपुरुषतोयानां विश्वेयं तारुगन्तरम् ॥ १६ जन्तोरिवास्य मनसो जलजातिबन्ध-जीर्णस्य जर्जरदशालहरीभ्रमेण। आवर्तवृत्तिषछितान्यतिसंततानि को नाम संकलचितुं कमलानि शकः १७ चित्रं विज्ञम्भितमहो जङसंगमस्य पद्मोपि यन्निजगुणानगुणानिवेषः । अन्तः प्रगोपयति कण्ठतले निवेदय सर्थस्य दर्शयति दुर्भगकण्टकौधम् ॥ १८ सव्छिद्रैरहर्षेः सूक्ष्मैर्गोपितेर्जाङ्यसंयुतेः।

अनल्पैरपि निःसारैः पश्चस्येव गुणैरलम्॥ १९ महतां कुलप्रधानां गुणसौन्दर्यशालिनाम्। प्रभावं नास्ति संख्यातुं वासुकेरपि शक्तता ॥ 20 हरिषक्षोगता लक्ष्मीरिप शोभार्थमेव यत्। बिभर्ति कमलं इस्ते कान्याशंसाधिका भवेत् सितासिताभ्यां रूपाभ्यां कमलोत्पलखण्डयोः। वैसाद्दयं भवेत्कितु समा जडजडैतयोः॥ २२

रोत्कर्यात्तदास्मन्यपि तारतम्यविभावनमित्याह-कृपेति । अ-न्तरं उत्कर्षापकर्षतारतम्यम् ॥१६॥ जले जातिर्जनम येषां पद्मो-त्पलादीनाम् । लङ्गोरभेदाज्जङाज्जातयो नानायोनिभेदाश्च तेषां बन्धेन संबन्धेन जीर्णस्य जन्तोर्मनस इवास्य सरसः पद्मारीनां तलहेहानां च जर्जरदशान्ता या लहर्यस्तरका भोगोत्साहश्व तक्क-मेणातिशयेन संततानि आवर्ततुल्यानि इच्छाद्वेषादियुत्तीनां विलतानि परिवर्तनानीवासंख्यातानि कमलानि संकलयितं को नाम शक्तः। न कश्चिदित्यर्थः॥ १७॥ पद्मानि वर्णयितुं प्र-स्तीति-चित्रमिखादिना । इतः परं प्रायेणान्यापदेशाः । ज-**इसंगमस्य जलसंबन्धस्य मूर्खसमागमस्य च विज्**मिनतं **चित्रमा**-व्ययमूर्तं अहो । तरकुतः । यद्यत एप सङ्गुणनिधिरवेन प्रसिद्धतमः पद्मोऽपि निजान् सीरभ्यसीन्दर्थमकरन्दादीन् गुणानगुणान् दोषानिव मुकुलितः सन् कण्डतले निवेश्य अन्तः प्रयोपयति। दुर्भगं कण्टकींघं च बहिः सर्वस्य जनस्य दर्शयति ॥ १८ ॥ ये तु पद्मस्य गुणशब्दबाच्यास्तन्तवस्तरसदृशाः सदोषा गुणास्तु सर्वत्रोपेक्ष्या एवेति प्रसङ्गादाह—सन्छिदैरिति । सन्छिद्रला-दिदोषदुष्टलात् अलं उपादेयतां नास्तीत्युपेक्ष्या इत्यर्थः॥१९॥ कुलपद्मानां यशःसारमेण कुलप्रस्यापकानाम् । बासुकेः शेष-स्यापि ॥ २० ॥ तस्य पद्मस्य सर्वसीन्दर्शाधिदेवताया छक्ष्म्या अपि शोभासंपादकलापेक्षया अन्याशंसा प्रशंसा सर्वसौन्दर्यो-त्कर्षेक्तिरधिका का भवेत् । 'तत्साम्यं कस्य वा भवेत्'इति पाठे तु सप्टम् ॥ २१ ॥ एतयोः कमलोत्पलखण्डयोर्ज**डेन जलेन** जडा अचेतना चन्द्रसूर्यद्वेषरूपमी ख्र्यलक्षणा च श्रुतिः समा

साम्यं न फुह्नविपिनेन सरःसु याति व्योमा न तारकयुतेन न चेन्दुवृन्दैः। **नृत्यद्वधूबिहसिताननशो**भयैति फुलस्य पङ्कजवनस्य नवोदिता श्रीः॥ २३ येषां पुष्पलतास्वादैरनन्यमनसां गतम्। भृज्ञाणामायुरायामि त एव सुभगोत्तमाः॥ રેઇ चृतचारुचमत्कारं चञ्चरीकाश्चरन्ति ये। त एव सचमत्कारा इतरे जातिपूरणम्॥ २'१ मत्ता मधुमदामोदैः पुष्करेषु रणन्ति ये । तुष्टानामितरस्वादैर्भ्रमराणां हसन्ति ते ॥ येनोषितं विरुतमुह्नसिनं प्रसुप्तं पद्मोदरेषु राशिकोटरकोमलेषु । भूकः स एव शिशिरे विरसेषु भावं कष्टं करिष्यति कथं तरुपुष्पकेषु ॥ २७ अफुलमलिकोद्दाममुकुलोपरि पर्पदः। द्दयते कालरुद्रेण शूले प्रोत इवान्धकः॥ २८ आस्वादयन्विविधपुष्पमधूनि भृक्ते नित्यं भ्रमन्सकलशैललतागृहेषु। नाद्यापि तुष्यसि किमङ्ग दुराशयोऽसि मन्ये न सारमुपगच्छिस वा वनेभ्यः २९

दिति योज्यम् ॥२२॥ सरःसु फुल्लस्य पङ्कजवनस्य नवोदिता श्रीः शोभा फुल्लेन मन्दारादिविपिनेन साम्यं न याति । तारकयुतेन व्योम्रापि साम्यं न याति । एविमन्दुविम्बैरप्येकत्र मिलितैः साम्यं न याति । किंतु नृत्यन्तीनां वधूनां विहसित्युक्तया भाननशोभया साम्यनेति लभते इत्येतद्विध्यर्थापूर्वीपमाननिरा-किया ॥ २३ ॥ प्रसङ्गाद्भृङ्गान्वर्णयति-येषामिति । येषां भक्षाणां पुष्पलतास्त्रादैरायामि दीर्घमायुर्गतं ते भक्षा एव सुभ-गोत्तमाः। हे सुभगेति पृथक्पदं वा ॥ २४ ॥ चूतस्य चारुच-मत्कारं सुगन्धि मकरन्दरसं नवाक्करकषायरसं च चरन्ति आखादयन्ति ये भृताः कोकिलाश्च ॥ २५ ॥ पद्ममकरन्दाखा-दिनो भुजा बनान्तरासकान् भुजान् इसन्तीवेखाइ--मताइति । ये स्क्राः श्रमराणां इसन्ति । जन्मेति शेषः । कर्मणः शेष-लविवक्षा वा ॥ २६ ॥ येन भृतेन पद्मोदरेषु उपितं विद्वतं उम्रसितं प्रसुतं च स एव भृतः शिशिरे विरसेषु तश्युष्पकेषु भावं प्रीतिं कथं करिष्यति ॥ २० ॥ मुकुलपदेनैवाफुल्लत्वे लब्धे अफुलपदं विकासोन्मुखब्यावृत्त्या शूलसाम्योपपादनार्थम् ॥ २८ ॥ अङ्ग हे भुङ्ग, त्वं विविधपुष्पमधूनि आसादयन्सन् सक्छशैळलता गृहेषु नित्यं श्रमश्रवापि कि न तुष्यसि । मधुल-म्पटलाहुराशयोऽसि अवापि वनेभ्यः सारं नोपगच्छति वा । कष्टमिति खेवे । मन्ये इति वितर्के । नहि सारलामे अपरितोषो भ्रमणं वा संभावयितुमपि शक्यमिति भावः ॥ २९ ॥ कमल-इन्हें पद्मवने कवलनं कवलो मकरन्दाखादनं तत्र कोविद हे मधुप, खं सरः पद्माकरं गच्छ । हृढं मकरन्दपुष्टं खदेहं बदर-

कमलकुलकबलकोविद गच्छ सरो मधुप मारूढम्। बदरदरीषु विदीर्ण देहं कुरु कण्टकक्रकचेः॥ 30 अतसीकुसुमे कुवलय-दलघलये विकसिते च तापिच्छे। परभागमेहि मधुना तासु विसद्दरीव पण्डितः पुरुषः॥ 38 पद्यैषा नाभिनलिनी केसरैः पालिता श्रिया। २६ । हंसमालामलावली सामगायनकृतिता ॥ 32 दोलाकमलनीलस्थां इष्ट्रा खे प्रतिविभिवताम्। हंसो हंसीमनुसरन्मण्डले नेह चेतति॥ 33 मा भूत्कस्यचिवेवैषा राजन्यसनिता भृशम्। पदयैतां विम्बितां हंसो हंसीमनुसरन्मृतः॥ ३४ हेलया राजहंसेन यत्कृतं कलकृजितम्। न तद्वर्पशतेनापि जानात्याशिक्षितं वकः॥ 34 समानेष्वाकराकारजातिचेष्टाशनादिषु । हंसस्य राजहंसस्य दूरमत्यन्तमन्तरम्॥ ३६ शुक्रपक्षस्थितो ब्योद्धि कुमुदाकरभासकः। आह्राद्यति चेतांसि हंसश्चन्द्र इवोत्थितः॥ 3.0

दरीषु कण्टकककचैविंदीर्ण मा कुरु ॥ ३० ॥ हे मधुप, यासु हेमन्तिशिशादिकालकलासु कमल:नि न लमसे तास्त्रपि स्त्र-द्वर्णसद्दे अतसीकुसुमे तथा कुवछयद्छवलये तथा विकसिते तापिच्छे तमाले च यथायोगं प्राप्तेन मधुना आयुषः पर-भागं एहि यापय । यथा पण्डितः पुरुषः खानुरूपप्रभुसमाजा-धलाभे विसद्दिश प्रभी वसन्नपि विद्वत्प्राप्तये वसति न किरात-कुले तद्वदिखर्थः ॥ ३९ ॥ तत्र इंसमालां वर्णयन्दर्शयति— पश्येति । हे राजन् , सरोनाभिनां अभीनां केसरैरुपभुक्तेस्तत्समा-नवर्णरूपया श्रिया शोभया पाठिता हंसमाठाठक्षणा अमला वही सामगायनमिव गर्म्भारं कूजितं यस्यास्तथाविधास्ति तो पर्येखर्यः । गायनमिखशिखास्त्राभावर्छान्दसः । अथवा भग-वन्नामिनलिनीकेसँरः श्रिया लक्ष्म्या पालिता य**थार्थसामगान**-मेव कूजितं यस्यास्तथाविधेति दैवादृष्टमाह्यदंसमालापरतया व्याख्येयम् ॥ ३२ ॥ इह सरोमण्डले खे इंसीमनुसरन् हंस-प्रतिबिम्बितां दोलासदशे कमलनीडे स्थितां हंसी दृष्ट्या तत्पत-नमजनशङ्कया न चेतति । मूर्ज्छतोऽभूदिखर्थः ॥३३॥ तादशी स्त्रीव्यसनितां निन्दति--माभूदिति । अप्यर्थे एवकारः॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ आकरो जन्मस्थानम् । आकारः संस्थानम् । अशन-माहारः । आदिपदान्नामवर्णादयो गृह्यन्ते । इतरहंसस्य राजहं-सस्य चास्यन्तमन्तरं तारतम्यं दूरं विप्रकृष्टम् । यतस्ते मानसे खर्णपदावने कीडन्ति समुद्रे च निमज्य मुक्ताः खादन्ति सर्व-पक्ष्यगम्ये अर्ध्वभागे नभसः संचरन्ति नान्ये इति भावः । 'राजहंसाखु ते चश्चचरणैलीहितः सिताः'॥ ३६॥ शुक्रेन पक्षेण

उन्नालनिलनीनालकद्कीस्तम्मसंकुले।
वने विहरतां लक्ष्मीं हंसानामेति कः खगः॥ ३८
तरङ्गवलयालोलसीकरोत्करहारिणी।
कुमुदोत्पलकहारपुण्यसंभारसुन्दरी॥ ३९
भृङ्गलोलालकलता रणत्सारसन्पुरा।
वर्तुलावर्तनाभीका चलद्वीचिविलोचना॥ ४०
प्रतीक्षमाणा द्यितं रसपूरकरंधरम्।
नारीव सरसी चारुहंसकाभ्यां विराजते॥ ४१
हे हंस महुबककाकशरायसारे
मा त्वं सरस्यविरतं कुरु घासमेकः।
आपद्यपीह समझीलवयोवखोभिः
श्रेयःफला भवति संगतिरात्मवर्गैः ४२

पादाक्रान्तमहेममस्तकतटः पद्माकरैकालयः कहारोत्पलकुन्दचम्पकलतासंभोगसौभाग्यवान् । भृक्रोऽप्येष विघेषेशेन शिशिरे लोष्टं तृणं स्वादयन् शीते शुष्कवकत्यहो तु विपदा दैन्ये मनो दीयते ॥ पुत्रस्येह दलोदरे द्यतितरत्तारं चिरं संस्मृतं हंसस्यांसवितुष्मनालगहने संचारिणा भो मया। शुक्लासारमियाम्जिनी विकिरति स्वं वारिविन्दूत्करं मध्याहे शिशिरं विकासि सहसा मूर्भि स्कुटं दश्यताम्॥ ४४

व्योक्नीन्दोरिव सौम्यवारिणि चिरं निःशब्दकं सर्पतो हंसस्यांसहताज्ञनालवलनानिष्कम्पटङ्कक्षतेः। गङ्गावारिवदत्र पुष्करपुटाङ्गाद्यादिवास्योपरि ४२ भ्रष्टा ये जलविन्दवो जलचरा दृष्टाः पिवन्स्याशु तां

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो०नि०उ०अविद्यो०विप०पदाश्रमरहंसवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमः सर्गः॥१९७॥

अष्टाद्द्याधिकदाततमः सर्गः ११८

सहचरसहचर्यः क्रमेणोचुः। निर्गुणस्य वकस्यास्य गुण एकोऽस्ति दृश्यताम्। यत्प्रावृषं स्मारयति प्रावृद्प्रावृद्धिति बुवन्॥

चन्द्रः ग्रुष्टाभ्यां पक्षाभ्यां हंसो व्योन्नि स्थितः । कुमु-दानामाकरस्य भासको विकासकश्चनदः शोभाहेतुईस इति तयोः साम्यम् ॥ ३७ ॥ उन्नाला या नलिन्यस्तन्नाललक्षणैः कदलीसम्भेः संकुले कदलीवनप्राये पद्मवने विहरतां हंसानां लक्ष्मी शोभामित्युत्तानोऽर्थः । तात्पर्यतस्तु । योगेन अर्धाकु-तनाला या हृदयपद्मलक्षणा निलनी तस्याः प्राणायामाभ्यासा-द्विकासेन कदलीवयः स्तम्भनं स्तम्भस्तत्संकुले प्रागुक्तहत्पद्म-श्रयलक्षणे वने निरस्तिशिविधतापनिरतिशयानन्दास्वादनेन सदा विद्दरतां हंसानां यतीनां जीवन्मुक्तिसुखसाम्राज्यलक्षणां स्क्मी संपदं खगो देवोपि क एति प्राप्नोतीलर्थः ॥ ३८ ॥ इदानीं तां सरसीं नारीसाम्येन रूपयशुरप्रेक्षते-तरक्केत्यादिना। तरङ्गा एव वलया यस्याः । लोलैः सीकरोत्करैर्हारिणी हारवती ॥३९॥ मृत्रा एव छोछा अलकलता यस्याः ॥४०॥ रसो मनो-र्थो जलं च तस्य पूर्तिः पूरस्तत्करंधरं पर्वतं प्रतीक्षमाणा प्रति-मुखमीक्षमाणा । इंसकाभ्यां मजीराभ्यां इंसपीताभ्यां च ॥४१॥ प्रसङ्गात्कश्चिदन्यापदेशेन कंचित्प्रत्याह—हे हंसेति । हे हंस, त्वं महुजेलकाको वकः प्रसिद्धकाकथ एतद्रूपा ये शरारवो हिंसा-सात्सारे तत्प्रधाने सरसि एको वासं मा कुरु। यतः इह आ-पद्यपि समशीलवयोवचोभिरात्मवर्गेईसैरेव सह संगतिः श्रेयः-फळा सुखोदकी भवति नान्यैरिखर्थः॥ ४२ ॥ अन्यः प्रसन्ना-दाइ-पादेति । पादैराकान्ता महेमानां मसकतटा येन तथा पद्माकर एवेक आलयो यस तथा कहारादिलतावधूना संभो-गश्रकारवान् एष ईदशप्रभावोऽपि मुद्रो विषेदैंवस्य वशेन शि- बक हंस इवामासि सरःस्थो महसौहदम्। नृशंसत्वं च वाणीं च स्यक्त्वा हंसो भव स्फुटम् २

शिरतौं लोष्टं तृणं च खादयमाखादयन्सन् शुक्को बक इवाच-रति बकति । 'सर्वेप्रातिपदिकेभ्य आचारे क्रिब्बक्तव्यः' इति किए। अहो इति सखेदाश्वर्ये । विपदा महद्भिरिप मनो दैन्ये दीयते ॥४३॥ भी राजन् , इंसस्यांसाभ्यां पक्षाभ्यां विनुत्रे नाल-गहने नालवने प्रविष्टेन मया द्युति योतमाने पदादलोदरे निवि-ष्टस्य पुत्रस्य हंसपोतस्य तरित्रःसरत् तारमुन्नेःखरं खिपतरं प्रति यद्वनं तत्सदशदर्शनोद्वोधकसमवधानात्संस्मृतम् । कि तद्वचनं तदाह- शुक्तेति। हे तात, थब्जिनी शुक्तं मुक्तामयमासा-रमिव स्तं वारिबिन्द्त्करं विकिरति । मूर्जि बिरोभागे मध्याह्यका-केऽपि सहसा विकासि शिशिरं हिमं स्फुटं प्रत्यक्षं दश्यतामिति ४४ हे राजन् , इह सरसि व्योष्ट्रयाकाशे इन्दोरिव चन्द्रवत् सौम्ये प्रसन्ने वारिणि निःशब्दकं सर्पतो गच्छतो हंसस्य अंसाभ्यां प-क्षाभ्यां इतानि यान्यव्जनालानि तरसंवलनलक्षणेनिष्कम्पट्या-धातैः पुष्करपुराह्राह्मात् हिरण्यगर्भासनपुष्करपुरादिव ये ज-**रुबिन्द**वः अस्योपरि भ्रष्टास्तान् जलचरा मरस्यादयो **ह**ष्टाः सन्तो गङ्गावारिवदाशु विवन्ति ॥ ४५ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामा-यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे सप्तदशाधिकश-ततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

वक्षमहुमयूराणां पान्धानां च वियोगिनास्।
सत्सानां चातकानां च चरित्रमिद्द वण्यते ॥ १ ॥
प्रात्रद्रप्राङ्गिति वकशब्दस्याव्यक्तस्य व्यक्षवर्णेरतुकृत्योक्तिः १
अत्राप्यन्यापदेशोक्तयः प्राग्वत् । हे चक्र, सं वर्णतो इंस इवाभाति । महसीहदादिदोषत्रयं सक्ता इंसो भवेस्ययः ॥ २ ॥

गम्भीरं बारिगर्भे प्रसृतजलचरं ये प्रविदय प्रविदय प्राचात्स्यान्त्रोतचञ्चवश्चतुरतर परं जग्धवन्तो विदः म्बाः ते केनाप्यच दिख्या मृततिमिगमिताः काल्युके महिसा नाकामन्ति क्रमस्थाः सुहरमपि पुरः पङ्गवो महयो-उसी ॥ ३ एवं विहन्यते लोकः स्वार्थनेति प्रदर्शयन्। महर्महरुतां यात इत्येवं स्तौति दुर्जनः॥ उत्कन्धरो विततनिर्मलचारुपक्षो हंसोऽयमत्र नभसीति जनैः प्रतीतः। गृहाति पव्यलजलाच्छफरी यदासी बातस्तदा खलु बकोयमितीह लोकैः॥ ५ अतिबद्धकालविलोला-नवलोक्य बकांस्तपोदम्भान् । अत्रैवातिमिरस्यां-स्तटवनिता विस्मिता धूर्तान्॥ દ્ अत्र जले हिमहेलाः पद्यैता अपहरन्ति सितपद्मान्। इच्छसि ता अनुगन्तुं नाहं ते वल्लभा त्रजामीति॥ O

हे चतुरतर, मत्स्यवधे विदग्धाः पण्डिता ये मद्भवः प्रस्ता ज-छचरा यस्मिस्तथाविधं वारिगर्भं प्रविश्य प्रविश्य । पुनःपुनः प्रविद्येखर्थः।प्राक् गिछनसमये मत्स्यैः प्रोताश्वश्ववो येषां तथा-विधाः सन्तो मत्स्यान् जाधवन्तो भक्षितवन्तस्तेऽमी मद्भवो दिष्ट्या दैववदात्केनापि महिन्ना मृतैस्तिमिमिर्मत्स्यजातिमेदैर्ग-स्रकं गमिताः सन्तः क्षुधातिशयकालयुक्ते आक्रमणे तीरे क्र-मेण पहिचन्धेन स्थिताः सन्तोपि पुरस्तीरप्रदेशागतं सुहर-मपि मत्स्य पङ्गवः सन्तो नाकामन्ति । आश्वर्थमित्यर्थः ॥ ३ ॥ दुर्जनैर्ठोकहिंसनेन खार्थसंपादनं महुभ्यः शिक्षितमिति भक्त्य-न्तरेणाह---एवमिति । एवं महुवदेव खार्थेन वाव्छितेन लो-को विह्न्यते हुन्तुं युज्यते इति इममर्थं प्रदर्शयन् महुमम गुरुमंद्ररुखद्भावं प्राप्त इति एवं दुर्जनी मद्भं स्तौति प्रशंसति ॥ ४ ॥ अत्र मभसि उत्कन्धर ऊर्ध्वाकृतकण्ठो विततौ निर्मली बारू पक्षी यस्य तथाविधोऽयं पुरोवती हंस एवेति प्राम्जनैः प्रतीतो निश्चितो बको यदा असी इह भूमी पत्वलजलाच्छफरी युकाति तदा वकोऽयमिति लोकेंक्षीतः ॥ ५ ॥ पत्वलादी म-रस्यार्थमतिषहकालं विलोलान् अत्रैष सरसि तपोदम्भान् ब-कान्विलोक्य झातधूर्तचरित्रा काचित्तटवनिता तथैवान्यत्राति-बहुकालं विषयलाम्पळ्येन विलोलानत्रैव तपोदम्भान् आतिमि-रस्यान् तिमिरोद्यपर्यन्तं प्रतीक्षमाणान्धूर्तान्विकोक्य विस्मिताः भूवित्यर्थः ॥ ६ ॥ पान्यस्त्री पद्महारिणीः पश्यन्तं पान्यं प्र-खाइ । हे कान्त, अत्रास्मिष्ठले हिमं शीतं हेलयन्ति न गणयन्ति तयाविधा एता प्रामीणवध्यः । हीति पृथक्पदम् । महिला एव

कुपितां तामनुनेतं यक्षपरः पान्य एव पथि कान्ताम्। अवलोकय नरनायक कुसुमलताकुहरकेलितीरवने ॥ 6 इति हावभावविलसित-विवलनकोपार्धदृष्टिहसितानि । कुर्वाणा वरवनिता 9 कथयति ते रहयतां राजन्॥ वकमहुराराक्षणां नित्यमेकौकसामपि। संकरोऽस्ति मिथो बुद्धेनं मूर्खविदुषामिव ॥ १० चञ्चवप्रे खञ्जरीटस्य कीटः किटिकिटायते। दीभाग्यस्य पुराणस्य पताकेवोच्छितोन्नते ॥ ११ तारं तीरतरी स रौति तरलो याबद्वकः प्रोझसं-स्तावत्पच्वलगोष्पदेऽम्बुकलिले याबद्वलादेहकम्। मज्जन्त्या वियवश्रसीच निपुणं त्रातं राफर्या भया-मुद्भनेन महापदीह हि मृतेर्नान्यद्भवेत्सौख्यदम्१२ वकाजगरमद्भूनां इदि या प्राणिनां धृतिः। अचर्वितनिगीणीनां मन्ये निद्रोपमैच सा ॥ १३ आसन्नमहुबकगृप्रविडालसर्प-**दृष्ट्या भयं भवति य**त्सिललाशयानाम् ।

महेला इति वा । सितपद्मानपहरन्ति त्वं ता अनुगन्तुमिच्छसि । तेन अहं ते बह्नमा प्रिया न इति हैतोरहं ब्रजामीति ॥ ७ ॥ एवंवादिनीं कुपितां तां कान्तामनुनेतुमेष पथिकः पयि कुसु-मलताकुहरे केलितीरवने यन्नपरः प्रार्थयते । हे नरनायक, ल-मवलोकयेति द्वयोरन्वयः ॥ ८ ॥ इममेव पविकं मिश्चनचरित्रं प्रागल्भ्यात्कथयन्ती वाराक्षनां राह्ने दर्शयति—इतीति ॥ ९ ॥ शराहणां हिंसाणां निषादादीनाम् । बुद्धेः संकरो मेलनं प्रीति-रिति यावतः ॥ १० ॥ कीटोऽत्र पतझः । किटिकिटीति राति किटिकिटायते । डाजन्तादिवार्थनिष्ठात्करोसर्थे क्यइ। 'स्फिडि किटायते' इति पाठे स्फेटयति विमोचयति पक्षाविति स्फिटि चक्रवभे किटायते केटतीति किटः कम्पमानः स इवाचरति । पुरांणस्य प्राक्संचितस्य दींभीग्यस्य पापस्य उन्नते कर्ध्वभागे उच्छिता पताकेव ॥ ११ ॥ पल्वलतीरतरौ श्रोत्नसन् स बको यावद्रौति कूजति तावदम्बुकलिछे ईष्यलाई पल्वलगोष्पदे याबद्धलात् । याबदिति साकल्ये । सर्वप्राणेनेत्यर्थः । प्रिय-वक्षसि रागादिव भयान्मजन्या शफर्या मृलापि खदेहकं न्नातम् । इद संसारे महापदि प्राप्तायां इद्भन्नेन मृतेर्म-रणादन्यत्सी ह्यदं शरणं न भवेत् । तथाच मृलापि तया कृतं खदेहरक्षणमुचितमेवेलार्थः ॥ १२ ॥ वकादीनां हृदि उदरे प्रविष्टानामचर्वितं निर्गाणीनां मतस्यादिप्राणिनां या भूतिश्वित-स्थितिः सा निद्रोपमा सुषुप्तिसदशी मूर्च्छेवेति मन्ये ॥ १३ ॥ सिललाशयानां मत्स्यादीनां आसन्तमद्भवकादिद्श्वेनेन यद्भयं भवति तस्य भयस्याप्रतः अशनिपातप्रयुक्तो भक्तो भयं तुणसि-

तस्याप्रतस्तृणमिवाशनिपातभङ्गो जातिसारेण विदुषोक्तमदः पुरा मे ॥ १४ इह सरोवरतीरतरोस्तले कुसुमशालिनि मुग्धमृगान्पुरः। समवलोकय लोकमली बला-त्समवकीर्णनवोत्पलकेतकान्॥ १५ षहीं प्रोन्नतचित्तत्वात्तोयमिन्द्रं प्रयाचते। स पूरवति तेनास्य महात्मा निखिलां महीम् १६ मेघाननुसरन्त्येते मयूरास्तनपा इव। मिलनो मिलनस्येष पुत्र इत्यनुमीयते ॥ १७ मृगानालोक्य पथिकश्चिन्तयन्द्यितेक्षणे। पुरःस्थेषु पदार्थेषु यद्मपुत्रिकतां गतः ॥ १८ शिखी वार्यपि नादत्ते भूमेर्भुङ्के बलादहिम्। दौरात्म्यं तम्र जाने किं सर्पस्य शिखिनोऽथवा १९ सज्जनारायनीकारां त्यवःचा वहीं महत्सरः। पिबत्यम्बञ्जनिष्ठयुतं मन्ये तन्नतिभीतितः॥ २० लसत्कलापजलदाः पदय मृत्यन्ति बर्हिणः। धुन्वानाः पिच्छकान्तीन्दुं प्रावृषः पोतका इव २१ वरवने वनवातविसारिणां चपलचन्द्रकचाक्तरङ्गिणाम् । इह पयोनिधिरेव कलापिनां विस्तमुक्ततयेव विलासनः॥ २२

वाल्पमेव । अदः रहस्यं मे पुरा जातिस्परेण मत्स्यादियोनिदुः-खानि स्मरता विदुषा खानुभूतमुक्तं नासत्यमिति मन्तव्यमि-खर्यः ॥ १४ ॥ नेत्रश्रोत्रशोभावलात् अली श्रमरे सति सम्य-गवकीणीनि नवीत्रलानि केतकानि च यैस्तथाविधान्मुरधमृगान् लोकं प्रियाजनं समवलोकय दर्शय ॥ १५ ॥ वहीं मयूरः मो-त्रतिकत्तादश्रद्वाशयत्वादिन्दं तोयं प्रयाचते । याचेर्द्विकर्मकत्वा-दिन्द्रोऽप्यक्षितं कर्म।स इन्द्रस्तेन प्रोन्नतिचत्त्वगुणेन संतुष्टःसन् अस्य प्रीत्यं निखिलां महीं तोयेन पूरयति।यतो महास्मा अत्युदार इल्पर्यः॥१६॥स्तनं पिधन्तीति स्तनपा वत्सा इत्र॥१७॥यश्चनि-र्मित्पुत्रिकातुस्यताम् । निधेष्टतामितियावत् ॥ १८ ॥ किं सर्पस्य दौरातम्यमयवा शिखिनो दौरातम्यं तम जाने ॥ १९ ॥ तत्तसी सरसे या नतिः शिरोनमनं तद्भीतितः ॥ २०॥ २१॥ वि-सता विश्राणिता मुक्ता येन तद्भावेनेव इह वने पयोनिधिरेव कछापिनां मयुराणां विलासनो नर्तयिता न मेघः पश्येखर्थः ॥ २२ ॥ हे चकितचातक, ते बनावनौ श्रीष्मे पावकद्षिता संभावितपावका शुष्कतरुकोटरवासनिर्धन्त्रसुचिता अतिमानिता ग्रसाय नहि भवति । कदलीवनसंनिहितानि शीतलहरितत्-णानि चर । कुल्यादिष्यम्बु पिब । कदलीवने विश्रमणं कलयेख-म्यापदेशः ॥ २३ ॥ हे मयूर, अयमन्ने प्रदश्यमानः अम्बर-माहरूकः पदार्थे। मकरालयस्य समुद्रस्य बारिभिः पूर्णोदरो

चर तृणानि पिषाम्यु वनावनौ कलय विश्रमणं केंद्रलीवने। चिकतचातक पावकद्षिता नहि सुखाय भवत्यतिमानिता ॥ २३ नायं मयुर मकरालयवारिपूर-पूर्णादरो जलघरोऽम्यरमारुरुभुः। दावाग्निदग्धवनपादपकोटराग्र-धूमावलीवलय उत्थित एष शैलात् २४ येनाब्देन शरद्विधायपि शिखी संतर्पितो वारिमि-नी वर्णस्वपि पूरयेद्यदि सरस्तद्वाललोकोखितम्। आरम्धं समवेश्य सज्जनजनो हासेन दुःस्यो भवे-द्वर्हीत्यात्मत्वेव नेतुमखिलं कालं समभ्युद्यतः २५ रफटिकविमलं पीत्वा तोयं घनोदरनिर्गतं पिवति न पुनर्मार्गे श्चभ्यंस्तृषापि शिखी जलम्। स्फुरति च घनं समृत्वा समृत्वा न चापि विपद्यते गुणवति जने वद्धाशानां श्रमोऽपि सुखावहः २६ इहातिचाहयन्त्येते मार्गदौस्थ्यं घनागमे । कथाभिः पथिकाः प्रायो विमृदा जीवितं यथा २७ पश्यात्र नाथ सरसः कमलोत्पलकुमुद्विसमृणालानाम् । कहारपत्रपयसां

भारानादाय बालिकाश्चलिताः॥

ર૮

जलधर इति ते आन्तिमीभृत् कित्वेप दावामिना दग्धानां वन-पादपानां कोटराप्तेर्भुमावलीवलयः शैलादुत्थितस्तथा चास्थाने ते नृत्यारम्भसंत्रम इलार्थः ॥ २४ ॥ अनावृष्टौ भौमं वार्यपिवतो मयूरस्याशयं कश्चिद्वर्णयति-येनेति । येन अब्देन मेघेन शर-त्कालेऽपि शिखी मयूरो वारिभिः संतर्पितः स वर्षासु वर्षतीवपि सरो न पूरवेदिति यश्वरित्रं तद्वाललोकानां क्षुद्राणामेवोचितं न महतस्तस्य । औदार्थयोग्ये समयेऽप्यारब्धमिदमनौदार्थे स-मवेक्ष्य पामरेः कृतेन हासेन सजनजनो दुःस्थो दुःखितो भ-वेत् । इति एवं विचिन्ख बही मयूरः आत्मनस्तृषैव निखिलं कालं नेतुं समभ्युद्यत उद्युक्त इत्यर्थः ॥ २५ ॥ तर्हि स मयुरः किमनुचितकारी नेत्याह-स्फटिकविमलमिति । शिखी तृषा क्षुम्यश्रि प्राक् स्फटिकविमलं घनोदरनिर्गतं तोयं पीला पु-नमींगें सकर्दमं जलं न पिबति । तहिं स कुतो न तुषा मियते तत्राह-स्फुरतीति । सघनं मेथं स्मृला स्मृला स्फुरत्युह्नसति नापि च विपद्यते मियते । यतो गुणवति जने बद्धा आशा यैस्तेषां श्रमोऽपि सुस्नावह एव न दुःखद इत्पर्यः ॥ २६ ॥ कान्तावियोगिनां पणिकानां वर्षास क्रचित् कथालापादिना क-ष्टेन कालयापनं यथा आत्मज्ञानहीनानां मुर्खाणां जन्मयापनं तथेलाह—इहेति । एते पथिकाः ॥ २० ॥ कहारपत्रनि-बद्धपयसां च भारानादाय बालिकास्तरुण्यश्वलिताः । हे नाथ,

किमिदं न यथेति ततः
पृष्टामिस्ताभिरुकमेतस्य ।
व्यसनज्वरतप्तायाः
पिथक वयं बालसख्य इति ॥ २९
अथ रागरकहृद्याः
स्तनभरवितता विलासलिताङ्गाः ।
पिथकानां स्मरणपर्थं
भूयोऽप्यनयन्त्रियाः स्वगेहस्थाः ॥ ३०

सा नृनं मम कान्ता
द्या सुक्तिग्धघनतमः इयामम्।
गगनं च शून्यगहनं
प्रलपति भुवि पतति विस्खलति॥ ३१
भृङ्गावलीकुचलयावलिताक्वपात्रसंप्रेयमाणनलिनीमधुपानमत्तः।
हा वाति तीरतरुपहुवलास्यलब्धसंमुग्धशब्दगणगीतगुणो नभस्तान् ३२

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ मो॰ नि॰उ॰ अवि॰वि॰ हरिणमयूरकमुग्धादिवर्णनं नामाष्टादशाविकशततमः सर्गः॥११८॥

एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ११९

सहस्या ऊचुः।
कथयत्येष पथिकः पश्य मन्दरगुरुमके।
प्रियायाश्चिरहरुशया वृत्तां विरहसंकथाम्॥ १
एकत्र श्र्णु किंवृत्तमाश्चर्यमिदमुत्तमम्।
दातुं त्वन्निकटे दूतमहं चिन्तान्वितोऽवदम्॥ २
अस्मिन्महाप्रलयकालसमे वियोगे
यो मां तयेह मम याति गृहं स कः स्यात्।
नैवास्त्यसो जगति यः परदुःखशान्त्यै
प्रीत्या निरन्तरतरं सरलं यतेत॥ ३

पर्य ॥ २८ ॥ इदं भारजातं कि किमर्थ नयथ इति प्रष्टाभि-स्तामिनीलिकाभिरेतस्य प्रष्टुर्मम उत्तरमुक्तम् । हे पथिक, वयं वियोगव्यसनज्वरतप्ता याः बाह्रसख्यस्तथा च तदुपचाराय कमलोत्पलादिभाराष्ट्रयाम इत्यर्थः ॥ २९ ॥ अथ तदुत्तरं ख-कान्तेषु रागरक्तहृदयास्ताः खाः पश्यतां पथिकानां खगेहस्थाः प्रियाः स्मरणपथमनयन् । सदशदर्शनस्य संस्कारोद्वोधकला-दिति भावः ॥ ३० ॥ तत्र कश्चित्पथिकः खप्रियां स्मरनाइ---सेति । युक्रिग्धा ये घना मेघास्तहक्षणस्त्रमोभिः दयामं गगनं सुक्षिग्धं घन इव तम इव च श्यामं गहनं वनं च हृष्टा मम कान्ता प्रलपति भूवि पतित गच्छन्ती च विस्खलति । नून-मिति संभावनायाम् ॥ ३१ ॥ भृज्ञावस्या कुवल्येश्व आवलिते-नान्जलक्षणेन पानपात्रेण संप्रेर्थमाणं यत्रलिनीमधु तत्पानेन मत्तत्वा तीरवहाणां तवब्रीनां पह्नवलाखेन लब्धो यः सं-मुग्धो मृदुमन्द्रशब्दगणस्तेन गीतः ख्यापितः शैल्यमान्यसौ-रभ्यादिशुणो यस्य तथाविधो नभस्वान्वायुर्वाति । दा इति विरहोद्दीपनप्रयुक्तखेदे ॥३२॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तारपर्वप्रकाही निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टादशीत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

पथिकः स्वां प्रियां प्राप्य तद्ये तद्वियोगजाम् । प्राक्तनीं स्वां दशामत्र श्मशानान्तामवर्णयत् ॥ १ ॥ हे राजन्, मन्द्रगिरेः कुश्चगुल्मके एव पथिकविरलन्धायाः आ एष शिखरे मेघः स्तराश्व इच संयुतः।
विद्युल्लताविलासिन्या विलतो रसिकः स्थितः॥ ४
भ्रातमेघ महेन्द्रचापमुचितं व्यालम्ब्य कण्ठे गुणं
नीचैर्गर्ज मुहूर्तकं कुरु दयां सा वाष्पपूर्णेक्षणा।
वाला बालमृणालकोमलतनुस्तन्वी न सोढुं क्षमा
तां गत्या सुगते गलजललवैराश्वासयातमानिलैः५
चित्तत्लिकया व्योमि लिखित्वालिङ्गिता सती।
न जाने काधुनैवेतः पयोद दयिता गता॥ ६

प्रियायाः पुरतः प्रारष्ट्रतां खां विरह्एंकथां कथयति तं पश्य॥१॥ प्रियामे तेन वर्णितां विरद्दसंकथां वर्णयितुसुपक्रमते -एकत्रेत्या-दिना। हे प्रिये, लिद्वियोगदशायां मम एकत्र एकस्मिन्दिने जातं किंगुतं वृत्तान्तमाश्चर्यमिदं वक्ष्यमाणं त्वं शृणु । लिन्निकटे खगू-त्तान्तं दातुं प्रेषयितुं दूतं विचारयंश्विन्तान्विनोऽहमिदमवदम् ॥२॥ किमवदं तदाह्--अस्मिन्निति । अस्मिन्महाप्रलयकालसमे वियोगे वियोगलक्षणायां महापदि इहस्यं मां वृत्तान्तप्रापणेन तया सभाजयितुं यो मम गृहं याति स ताहशो दयाछुर्दृतः कः स्यात्। यः परदुःस्रशान्त्यै प्रीत्या सरलं यथा स्यात्तथा निरन्तरं यतेत । असी तादशः पुरुषो जगति नैवास्ति ॥३॥ आ इदा-नी स्मृतः पुरोवर्तिगिरिशिखरे एष परिदृशयमानी सेघः प्रीत्या सततं परदुःखोपशमनादिगुणैः संयुतः स्मरस्याश्च इव शीघ्रं मह्रहगमनसमर्थः परोपकाररतिको विद्युव्वतालक्षणया विस्नाति-न्या विलतः स्थितोऽर्स्तालर्थः ॥४॥ अतोऽहमेनमेव प्रार्थयि-ष्याभीत्यभित्रेलाह—भातरिति । हे भातर्भेष, त्वं कण्ठे गुणो यस्य स कण्ठेगुणस्तथाविधं गुणवतस्तव उचितं महेन्द्रचापं व्या-**लम्ब्य गृहीला सुगते हे शोभननभोमार्गगामिन्, तां मिप्पयां** गला गळजळळवैरारमानिकैः प्रथममाश्वासय । ततो मरसंदेशं प्रापियतुं नी वैमेन्दं गर्ज मुहूर्तकं दयां कुरु । यतस्ते गाढगर्जितं मद्विरहृदु:खाद्वाष्पपूर्णेक्षणा बालमृणालकोमलतनुस्तन्वी बाला सा सोद्धं न क्षमा ॥ ५ ॥ हे पयोद, सा दियता मया हृयो-

इत्थं चिन्तापरवशमतेस्तन्त्रि सार्धे त्वयाऽसा-वन्तर्जीनप्रसरमनसः कापि याता स्मृतिर्मे । संपन्नोऽहं परवशवपुः काष्टकुड्योपमाङ्गो भक्नं सोदुं क इव विरह्छे शजं नाम शक्तः॥ ७ पश्चाजातः कलकलरवः संतते पान्थसार्थे दीनालापैर्व्यसनविधुरैरालपन्ते च मेघम्। कएं पान्धो मृत इति महारम्भसंपन्न हाहा-शब्दः प्रोद्यत्पथिकवनिताविस्मृतोरःप्रहारः॥ ८ लोकेनायं मृत इति ततो बाष्पसंप्रिताक्षं शाबी पूजां विरचितवता संचयीकृत्य दार। दर्भं नीतोस्म्यतिभयमहं प्रज्वलिबत्यनन्तः प्रोद्यत्स्फोटस्फुटपटपटारावरीद्वं इमशानम् ॥ ९ तन्नाहं तैः कमलवदने बाष्पपूर्णाक्षिपक्षे-र्न्यस्तः केश्चिकितिशयनके वद्यलोकालिलेखे । धूमोद्वाराविरलजटिले मस्तके मत्तमृत्यो-भ्रुडारक्षोत्तम इत्र कलामात्रहर्येऽभिरेखि अस्मिन्काले कुवलयलताकोमला धूमलेखा नासारन्ध्रं मृदुगलविलं मे प्रवृत्ता नियातुम् ।

मि चित्तत्विकया लिखिला आलिक्रिता सती अधुना इतः क्रोव गतान जाने ॥ ६ ॥ हे तन्वि, इत्थं मेथं प्रत्युक्ला खिक्तापरवशमतेः अन्तरेव लीनप्रसरं मनी यस्य तथा-विधस्य मे सा प्रसिद्धा स्मृतिः पूर्वीपरप्रतिसंधानसमर्था बुद्धिस्त्रया सार्धे कापि याता । ततः स्मृतिलोपादहं परवशवपुः सन् काष्ट्रकृष्योपमान्यङ्गानि यस्य तथाविधः संपन्नः । तथाहि । विरह्रक्षेशजं अर्ज्ञ-परिभवं सोढं क इव शक्तो नाम। न कश्चिद-खर्थः ॥ ७ ॥ ततः पश्चान्मां तथाविधं परयति संतते मिलिते पान्धसार्थे पान्धजनसमूहे महारम्भेण संपन्ना हाहाशब्दा यस्मिस्तथाविधः प्रोधन्तीनामागच्छन्तीनां पथिकवनितानां विन स्तता उरः प्रहाराश्च यासिस्तथाविधश्च पान्थो मृत इति कल-कुछरवः कोलाइलध्वनिर्जातः । तत्र केचिश्यसनेन विधुरैर्भ्रष्ट-खरैदीनालापैमैघं च आलपन्ते अधिक्षिपन्ति ॥ ८ ॥ ततः किमभूतत्राह-लोकेनेति । ततस्तेन पान्थलोकेन अयं मृत इति निश्चिस बाब्पैः संपूरिताक्षं यथा स्मात्तथा शावीं शवीचितां गम्धमास्यादिभिरलंकरणरूपां पूजां विरिचतवता दाह काष्ठं संचयीकृत्य संग्रह्म दग्धमहमतिश्यितं भयं यत्र तथाविधं प्रज्य-**छन्तीभिश्वितिभिरनन्तैः प्रोबक्किः स्फोटस्फुटपटपटाराबैः रीह-**मुद्देगदं इमशानं नीतोस्मि ॥९॥ हे कमरुवदने, तत्र अहं कै-बिद्वाष्पपूर्णोक्षिपक्षेत्रैः पान्धेश्विति शयनके न्यस्तः। तत्र ब-दा परितो लोकालिरिव लेखा पङ्कियस्य तथाविधे धूमोद्वारेर-विरलं जटिछे मलस्य मृत्योर्मसके प्रसिद्धचूहारकोत्तमे इव बोतमाने अमिलक्षणे हेमि कलामात्रेण दृश्ये जाते सति॥१०॥ तिसम काले क्रवलगरुतेव कोमला मुद्री तथा उच्चा कृष्णा उष्णा कृष्णा नकुलकिता सत्यरं बालसर्पी
भूमे रन्ध्रं तनुमिय दरादेश्यसंकोचकुद्धा ॥ ११
त्वरसंकरपामृतकवितो नापविद्यस्तयादं
कुन्तश्रेण्या दृढपतन्या वज्रकायो यथाजः ।
त्वामासकां मदनसरितं हृदृद्दे गाहमानो
मर्भच्छेदेष्वपि विलसिता नाविदं वेदनास्ताः १२
पतावन्तं समयमुचितं तन्वि साधं त्वयान्तलीलालोलं हृदि चिरतरं तन्मयात्रानुभूतम् ।
यस्मिन्दं मृतहृद् इवोन्मज्जनोष्वर्यथासौ
राज्याभोगो विशसनिमवारूपारूपमेवेति बुद्धः १३
सा लीला ते विलासा वचनमपि च तत्सस्मितं ते
कटाक्षाः

सानन्दानन्तरस्य प्रसरसमुचिता दूरमण्येकभूषा।
तानीहारावसारावहसनचलनावेगविक्षोमितानि
किंवा तत्तक्ष यत्संस्मृतममृतरसाह्यादमन्तःकरोति
त्वत्संगमे सुरतसाख्यरसायनेन
बाले ततोऽहमतिनृततया श्रमार्तः।
तत्र स्थितो मृदुनि तत्पतले शशाङ्कविस्वे शर्राच्छिशिरनिर्मलशोचिषीय॥ १५

दैर्ध्यसंकोचात्कुब्जा धूमलेखा मे मृदुगलबिलं नासारन्ध्रे नकुलेन कलिता भीषिता पूर्वीक्तविशेषणकदम्बनती बालसपी तनुं सूक्ष्मं भूमे रम्प्रमिव नियातुं निश्चितं प्रवेष्ट्रं प्रयुत्ता ॥ ११ ॥ हे प्रि-ये, अहं लदाकारेणामृतेन कवचितः कवचेनावृतः संस्तया धू-मलेखया नापविद्धो न पीडितः । यथा वश्रकायः अजो ब्रह्मा मुत्योर्दढपतनया कुन्तश्रेण्या नापविद्धस्तद्वत् । किंच हृद्रहे आ-सन्नां मदनसरितं लां गाहमानोऽहमभिदाहेन मर्मच्छेदेव कि-यमाणेष्वपि विलिसता उद्भतास्ता वेदना नाविदं किंपुनर्धूम-मात्रस्येत्यर्थः ॥ १२ ॥ हे तन्त्रि, एतावन्तं समयं मया हृदि अन्तस्त्वया सार्धे विरचितमत्रात्यां मुर्च्छायां तत्तादशं सुखमनु-भूतम् । कीदशं तदाह - यस्मित्रिति । अमृतहदे उन्मजनी-वैर्यया तथा यस्मिन् सुखे दृष्टे सति असी प्रसिद्धो राज्यस्याभो• गह्मेहोक्यराज्याधिपलयुखमपि प्रागुक्तं मर्मविशसनं दुःखमिव अल्पादप्यल्पं तुच्छमेनेति बुद्धिभेनतील्यर्थः ॥ १३ ॥ हे प्रिये, तब सा अनुभवेकगम्यनिरतिशयानन्दरूपा अनुपमा लीला ते ताहशा एव भ्रविश्वेपादिविलासास्तत्ताहशमेव वचनमपि तत्ताह-शमेव स्मितं ते च कटाक्षास्तथा दूरे मणिमयी एकभूषा प्रधान-भूषणभूता एकावली यस्यां तथाविधा सा आनन्दस्यानन्तरस्य सुरतस्य प्रसरे समुचिता अर्थादालिश्वनिकया तानि ताहशानि ईहा नसक्षतादिचेष्टा रतिकृजितायारावास्तत्साराण्यवहसनानि चलनावेगेन चित्तविक्षोभितानि चेत्येतेषु यत्संस्मृतमन्तरमृता-इदं न करोति तसर्ति वास्ति। न किचित् सर्वमपि अमृतर-साहादं करोत्येवेखर्थः ॥ १४ ॥ हे बाले, ततसादनम्तरमहं लत्संगमे सुरतसीह्यमेव रसायनं यस्मिस्तथाविधे अतित्रातया

अत्रान्तरे झटिति चन्दनपङ्कशीता-हीर्घादिवेन्द्रशकलाद्शानिः सशब्दः। दृष्टो मया चितितलज्वलितो दुताराः श्रीराध्यियाडयनिमोऽङ्गगतः स्वतस्पात् १६ सहचरा ऊचुः। इत्युक्तवृति कान्तेऽस्मिन् हा हतास्नीति वादिनी। मुग्धा मीग्ध्याद्वरावर्तशङ्क्या मुर्चिछता स्थिता १७ तामेनामेष नलिनीदस्रवीजेन वारिमिः। आश्वासर्यस्तथावस्थां कण्ठेकृत्वात्र संस्थितः॥१८ पनः प्रष्टोऽनया चिक पश्य तामेव संकथाम । प्ष पार्श्वगतामेनां गृहीत्वा चिबुके प्रियाम् ॥ १९ हाहा द्वताश इति किंचिदियोपजात-खेदो धदामि खलु यावदहं त्वराघान्। ताविकतिशेटिति तैरवलुण्डिता सा पान्थैः भ्रणात्खरखराकुितालसद्भिः ॥२० पान्धास्ततस्तरस्तरस्वास्ववास्याद्य-भालिक्य मामतनुशेखरपूरिताङ्गम्। उत्थापितस्थितिमलं परिवार्यं सर्वे સ १ नेदुर्जगुर्जेहसुराननृतुर्वेवल्गुः॥ बिषमधिनायकसुखदं वलितं भस्माहिशवशिरःप्रकरैः। शशिधवलास्थिकपालं वपुरिष रीद्रं इमशानमथ रूपम् ॥ २२ पार्श्वच्छायां हरन्तो विचलितविदलक्षित्रकङ्गाल-गंस्धा-स्तन्यन्तो भूरिभसप्पविततमिहिकामाधुनानाः केशानाकाशकोशे शशिगलितशराकारिणः शांकराणा-मस्थीनां टांकृतेनारचितखरगिरस्तत्र वाता वहन्ति ॥ २३ ज्वलद्नलचितिप्रवाहनिर्य-रपचनहतोष्मविश्यकपर्णवृक्षा । ज्वलनपवनभास्करात्मजानां रमणगृहानुकृति विभर्ति सा भूः॥ રપ્ हप्रं इमशानं तदनन्तभीमः करङ्ककालघनामगन्धि । माद्यच्छिवावायसकङ्कृगृध्र-पिशाचवेतालविरावरीह्रम् ॥ રૂપ आनीतनानाशवबन्धुसार्थ-संरोदनाह्वादिदिगन्तकुञ्जम् । खगावद्यष्टाई द्वीरास्त्रतस्त्री-निवद्भवग्धद्रमखण्डजालम् ॥ २६ कचिषितिश्लोभकृतप्रकाशं कचिन्महाकेशरुताव्दवृन्दम्। क्रचिष रक्ताक्तधरावितानं नक्तं स्तनत्यभ्रमिवास्तरीलम् ॥ 20

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठ० वाल्मी० मो० निर्वा० उ० अवि० विप० पथिकविरहृष्ट्रत्तवर्णनं नाम एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥१९९॥

श्रमेणार्तो मन्धरः संस्तत्र मृदुनि तल्पतले शरदि शिशिराणि शीचींषि यस्मिस्तथाविधे शशाह्रविम्ब इव स्थितः ॥ १५॥ अत्रान्तरे अस्मित्रवसरे चन्दनपङ्कशीताहीर्घादन्द्रशकलादश-निरिवालन्तमसंभाव्यः खतल्पादुत्थितः खाक्रगतः सशब्दश्रि-तित्रहे ज्वलितो हताशः श्रीराव्धिसंबन्धिवाडवो वडवानलस्त-त्रिभो दृष्टः ॥ १६ ॥ कान्ते इति इमां कथामुक्तवति सति तच्छला सम्या सा स्त्री मौम्ध्यादेव वरः श्रेष्ठ आवर्तः संवर्त-स्तर्केष्ट्रया मूर्न्किता भूला स्थिता ॥ १७ ॥ तां तथाविधा-मेनां कान्तामेष कान्तो नलिनीदलैवींजनं वीजस्तेन शीतैर्वारि-मिश्र आश्वासयंसारमुच्छीमपनयन्संस्तथावस्थां तां कण्ठे कृला भन्न मन्दरकुने संस्थितः ॥ १८ ॥ तां प्रागुक्तामेव संकथाम्। कथाशेषमिति यावत् । विक्त पश्य ॥ १९ ॥ तमेवाह--हा-हेति। हे प्रिये, अहं किंचिदिवोपजातखेदः सन् हाहा हुताश इति याबद्वदामि ताबज्झटिति तैर्छसद्भिः प्रहृष्टैः पान्थैः खरखरध्व-निमिराकुलिता सा चितिः सर्वोत्मकापहारेणावल्लाफिता॥२०॥ मृतस्य पुनरुबीवनहृषीत्यान्यास्तर्लतालविलासवादं यथा स्या-त्रथोरयापितचितास्थितिमतनुभिर्वहुमिर्मङ्गलार्थैः मक्करीगणोत्तंसैः पूरितानं मामालिक्स्य सर्वे परिवार्य हर्षाभेदुर्ज-गुर्जेहसुरासमन्तात्रनृतुर्ववलारुबेळुबेलार्यः ॥ २१ ॥ अय मया इमशानं राह्नं संहाररुद्धसंबन्धिवपरिव भीवणं दृष्टम् । विशेष-

णान्यभयत्र तुल्यतया योज्यानि ॥ २२ ॥ तत्र तस्मिन् इम-शाने वाता वायवो वहन्ति । कीदशास्ते । पार्श्वे वनस्य हरित-च्छायां भस्मक्षेपैर्हरन्तो विचलिताः प्रस्ता विदलत् क्रिन्नकं-कालानां गन्था यैभूरिमस्मभिः प्रविततां मिहिकां नीहारपटली तन्वन्तः शवानां केशान् आधुनाना आकाशलक्षणे कोशे निषक्षे शशिनः सकाशाद्रलिता ये शरास्तदाकारिणस्तया शांक-शंकरभूषायोग्यानामस्थीनां टांकृतेनामिघातशब्देन आरचिताः खरा रूक्षा गिरः शब्दा गैसाथाविधा इत्यर्थः ॥ २३ ॥ ज्वलन्तः अनला यासु तथाविधाभ्यरि तिस्यः प्रवाहेण निर्यता सधूमस्फुलिक्केन पवनेन हता अतए-बोध्मणा विद्युष्कपणी बृक्षा यस्यां तथःविधा सा रमशानभूज्यै-लनस्याग्नेः पवनस्य भास्करात्मजस्य शनैश्वरस्य च रमण-योग्यं यह हं तदनुकृति तत्सदशलक्षणानि विभर्ति ॥ २४ ॥ तलाहशं रमशानं दृष्टं यत् अनन्तैर्भामैः करंकैरर्धद्रग्धेः कड्रालैः वावैधेनमत्यन्तमामगन्धि दुर्गन्धि ॥२५॥ पुनः कीदशं तच्छु-शानम् । आनीतानां नानाशवानां यो बन्धुसार्थस्तदीयसंरोदे-नैरासमन्तात् । हादिनो दिगन्ताः कुजाश्च यस्मिन् । सगैरव-कृष्टा या आही शिरा आश्वतस्यथ तामिनिवदं दग्धप्रायं द्रमखण्डं छताजालं च यस्मिन् ॥ २६ ॥ चितेः क्षोभः संब-

विंशाधिकशततमः सर्गः १२०

सहचरा ऊचुः। एवंप्रायाः कथाः कुर्वत्पश्यैनस्मिधुनं महत्। पानं प्रवृत्तवत्सारं पातुं पद्मनिभेक्षण ॥ कदलीकन्दलीखच्छगुच्छाच्छोटनपण्डिताः । विविधा वायवो वान्ति पुष्पकेसरमण्डिताः॥ बान्ति वाता वनोद्वान्तविविधामोदमांसलाः । રૂ पीतघर्मकणाः कान्तललनालकलालकाः ॥ कुलाचलगुहागेहघलनोयन्मृगाधिपाः । सरन्त्यसुरसंरम्भैर्छचणार्णवमारुताः ॥ तमास्रतास्रतरस्रहीसान्दोस्नसास्रिताः । अनिलाजलक्ष्वोलोत्कान्तकोमलपल्लवाः ॥ **ळळन्नवळताचान्तपुष्पधूळिविधूसराः** । सरन्ति महतो मन्दमुद्यानेषु तृपा इव ॥ मधुरं वंदाविश्रान्तो गातुमेष बनानिलः। प्रवृत्तः पाण्डुनगरनारीभिरिव शिक्षितः॥ निकारः कर्णिकारेण पवनस्य यदा रुतः। तदा परिहरन्त्येनं भ्रमरा अपि दूरतः ॥ न ददाति फलं किंचिदर्थिने न च पल्लवम्। तालः स्तम्भतयाऽऽरम्भं हारूपैच विनाऽऽकृतिः ९

लनं तेन ज्वालोद्दीपनात्कृतप्रकाशम् । महाकेशैः कृतमब्दयुन्दं मेघसमूह इव यत्र । क्षचित्तु अस्तस्त्यक्तः शेलो येन तथा-विधं रक्तैः स्थितम् ॥ २०॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामा-यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तराधं एकोनविंशाधिक-शतसमः सर्गः ॥ ११९॥

वर्ण्यन्ते वायवो बृक्षा भ्रमरा वनपङ्कयः । देवस्त्रियोऽविभवीष्यश्च हेमचूडलगादयः ॥ १ ॥

हे पद्मिनेक्षण, एवं प्रागुक्तप्रायाः कथाः कुर्यदेनत् प्रागुक्तं मिथुनं स्रीपुंसयुग्मं संप्रति सारमुक्तमं सीधुपानं पातुं प्रकृतवत् पर्यति मिथुनकथोपसंहारः । 'अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः' हत्येनदादेशः ॥ १ ॥ वायून्कश्वद्वणंयति—कद्लीखादिना । गुन्कानामान्छोटने विकासने पण्डिताः ॥ २ ॥ कान्तानां विक्षिप्तानां ललनालकानां लालका विलासकाः ॥ ३ ॥ कुला-कलानां गृहागेहेषु वलने प्रविश्य अमणे उद्यन्त उद्युक्ता मृगा-धिपाः सिंहा इव । अमुराणामिव संरम्भेमेंहशिखराकमणोद्योगैः सरन्ति ॥ ४ ॥ तमालेषु तालेषु च तरलशिद्युवत् लीलान्दो-लनेद्विताः । जलकक्षालेभ्य उत्कुल कान्ता वृक्षाप्रकोमलप्रकृत्वा यैः ॥ ५ ॥ ललन्त्यो या नवा लतासाभिवान्ता याः पुष्पधूलयस्तामिविधूसराः॥६॥ वंशेषु कीचकवनेषु विश्रान्तः । पाण्डनगरे हस्तिनापुरे नार्यो गानविद्याकुशका इति प्रसिद्धिः

राग एव हि शोभायै निर्गुणानां जडात्मनाम् । राजेव राजते राजन्रागेणवैष किंद्युकः॥ १० आगच्छ कर्णिकारोऽयं विकारसीव भाजनम्। निरामोदः किमेतेन निर्गुणेनेच जन्तुना ॥ ११ विलोलमञ्जरीजालतडित्सङ्गस्थितोऽसितः । चातकस्याम्युदभ्रान्ति तमालः कुरुते मुधा ॥ १२ पत्राला घनसंघाताः सच्छायावृतभूभृतः। गुणानां महतां योग्या यंशा वंशा इवोन्नताः॥ १३ हेमसान्वासनस्थोऽद्रयो वातव्याधितदोऽम्बुदः। तडित्पीताम्बरं धत्ते क्षुंब्धं हारिरिघोद्भैषः॥ प्रवेशनिर्गमव्यप्रतरत्खगशिलीमुखः। प्रकुलकिंशुको भाति वीरो रक्त इवासुजा॥ १२ मन्दारमञ्जरीपुञ्जपिञ्जराम्भोदमन्दिरे। महेन्द्रमस्तके मत्ताः सुप्ता गन्धर्यकामिनः॥ १६ कल्पद्रुमवनच्छाया विश्रान्ता विततान्विताः। पदय पार्थिव गायन्ति सिद्धविद्याधराध्वगाः ॥१७ पश्य कल्पद्वमस्यास्य पल्लवे पल्लवे यने । विश्रान्ताः सुरसुन्दर्यो गायन्ति च हसन्ति च १८

॥ ७ ॥ भ्रमरैः कर्णिकारवृक्षस्य दूरतस्यागे हेतुमुत्प्रेक्षते— निकार इति । निकारो गन्धपरागाद्यनपंणेन तिरस्कारः ॥ ८ ॥ अयं तालः स्तम्भप्रायतया दुरारोहलादधिने फलं न ददाति पत्नवं च न ददाति । हि यस्मात्कारणादुश्रताप्याकृतिरस्य अर्ध्य-भिलापपूरणारमभं विना अरूपैव । न शोभत इत्यर्थः ॥ ९ ॥ ओदायौदिगुणशून्यानां जडात्मनां मूर्खाणां वस्रालंकाराचाड-म्बरेण रागः शरीररञ्जनमेव शोभायै नान्यदित्यर्थः । किंग्रुकः पुष्पितः पलाशः ॥ १० ॥ विकारस्य वृथायमनुसृत इति विषा-दलक्षणस्य चित्तविकारस्यैव ॥ ११ ॥ मञ्जरीजाललक्षणतिष्ठ-रसङ्गेन स्थितः असितध तमालधातकस्याम्बद्धान्ति कुरुते । मुधा वृथा ॥ १२ ॥ पत्रैः पर्णैर्वाहनेश्व अलाः भूषिताः। घनो दुर्भेद्यः संघातो येषाम् । सतीभिरछायाभिर्वता भूमतो निरयो येः। सतां छायार्थे दृताः स्वीकृता भूवृतो राजानो यैः। गु-णानां धनुर्भावे मौर्वाणां सन्मानादीनां च ॥ १३ ॥ हेममय-सानुलक्षणे आसने तिष्ठत्यम्बुदः, हेमसानुसद्दो हरिः। अतप्-वाप्रे भवोऽम्यः । वात्लक्षणो व्याधिस्तटेषु यस्याम्युदस्य वात-व्याधिरुद्धवस्तटे सिन्धी यस्य हरेः । तिष्ठिद्भः पीतमम्बरमा-काशं धत्तेऽम्बुदः, तिबद्वत्पीतमम्बरं वक्षं धले हरिः ॥ १४ ॥ प्रवेशनिर्गमयोव्येषाः सरन्तः खगा इव शिलीमुखा बाणाः भ-लयश्च यस्य । वीरो योघः असःजा रक्तप्रवाहेण रक्तो रजित इव ॥ १५ ॥ महेन्द्रस्य गिरेर्मस्तके शिखरे । पानमलाः सन्तः स्रप्ताः ॥ १६ ॥ विशिष्टेस्ततैर्वीणादिवाचैरन्त्रिताः ॥१०॥१८॥

संचलितं स्फुरत्. २ उद्भव अर्ध्वभवः, पक्षे उत्कृष्टैश्वयं:.

१ धुन्धमिलत्र आकाशपक्षे तिहिद्रिरेव धुन्धम् । वस्त्रपक्षे

मन्दिरं मन्दपालस्य मन्दरे सृदुमन्दिरे । मुनेरिद्मुदारस्य भायी सा यस्य पश्चिणी॥ १९ अन्योन्यामतसिंहेभनकुलोरगकेलिकाम्। **पद्य मुन्याश्रमश्रे**णि सर्वेतुकुसुमद्रुमाम्॥ २० **विह्नमद्भम**िश्राणामम्भोधितदवीरुधाम्। बिम्बितार्काः कचन्त्येते पह्नवेषुद्धिन्दवः॥ २१ वीचयो रत्नमाणिक्यपदेष्वावर्तवृत्तिभिः। विलसन्ति विलासिन्यो वक्षःस्त्रिव विलासिनाम२२ नागलोकेन्द्रलोकस्त्रीगमनागमनोञ्जवः । दिब्यो भूषणझांकारः श्रूयते नभसः शृणु ॥ २३ श्रवणोपान्तविभ्रष्टमदमसालिनीस्वरैः । पेरा**चणक्रानि**भुवो गायन्तीच गुहा गिरेः ॥ રપ્ हसतोऽनुदिनं रूष्णपक्षे रूष्णान्तलेखिकाः । ष्टदयन्ते कृदागात्रस्य वास्तुकावळयोऽम्बुधेः॥ २५ आमोदगन्धश्वसना सच्छाया शीतलाङ्गिका। पकान्तदर्शिताकारा नानाकुसुमपूरिता ॥ રફ वनविन्यासवसना निर्ह्मरामलहासिनी। आस्तीर्णपृष्पास्तरणा धन्या वनविलासिनी ॥ २७ रक्षाये क्षान्तिपूर्व चिरमतुलवलं शान्तया शास-रमन्ते नन्दनोद्याने न तथोदारबुद्धयः। इत्यार्षे श्रीवासि० वा० मो० निर्वा० उ० अवि० विपश्चि० दिगन्तरवृत्तिवाय्त्रादिवर्णनं नाम विशलाधिकशततमः सर्गः ॥१२०॥

यथोपशान्तशब्दासु शुद्धासु धनभूमिषु ॥ २८ सुविरक्तं मुनेश्चेतो रक्तं च विषयार्थिनः। रमयन्ति समं रम्या विजना वनभूमयः॥ २९ सिललाधौतवप्राणामम्भोघितदभृभृताम् । नृपुरेरिव रत्नीयैः पादा भान्ति ध्वनन्ति च ॥ ३० पुंनागनगविश्रान्ताः कान्तकाञ्चनकान्तयः । हेमचूडाः खगा भान्ति दिवि देवगणा इव ॥ ३१ भ्रमराम्भोद्धृमाढ्याः फुल्लचम्पककाननाः । कम्पन्ते पदय वातेन ज्वलिता इव पर्वताः॥ कुर्घन्तं करबीराग्रलतान्दोलावदोलकम् । कोकिलं कोकिलालिङ्ग्य लोलालापयति प्रियम् ३३ **ळसत्कळकलारावमेता लावणसैन्धवीः** । पूर्णास्तदभुवो भूषैः पद्योपायनपाणिभिः॥ आ पूर्वादा परसालवणजलनिधरोत्तराइक्षिणाद्वा देवोदब्राजिशिष्टा इह नग्पतयःपादपीठीक्रियन्ताम् दीयन्तां मण्डलानां दिशिदिशि च यथाशास्त्रमस्त्रा-

एकविंदात्यधिकदाततमः सर्गः १२१

वसिष्ठ उवाच। अध तेष्वर्णवतटेष्वेते भूमौ विपश्चितः।

मन्द्रपालस्य मुनेर्महाभारतादी प्रसिद्धस्य सा प्रसिद्धा पक्षिणी जः रितास्या गृर्धा॥१९॥ अन्योन्यममतानां सिंहेभादीनां जातिवैर-परित्यागेन प्रीतिकेलिका यस्यां तथाविधां मुन्याश्रमश्रेणिम्॥२० विद्रमहमैभिश्राणां संविह्यतानामम्भोधितटस्थानां वीरुधां लता-ना पहनेषु बिम्बतः अर्को येषु तथाविधा एते उदबिन्दवः उद-क्विन्द्वः कचन्ति । 'मन्धोदनसक्क्विन्दुवञ्रभारहारवीवधगा-**हेषु च' इ**त्युदकस्योदादेशः ॥२१॥ र**लमा**णिक्यानां पदेष्वाकर-स्थानेषु वीचय आवर्तवृत्तिमिर्मुहुर्महुः परिवर्तनेविंससन्ति क्रीड-न्ति । विलासिन्यस्तरुण्यो विलासिनां खकान्तानां वक्षः खिव २२ ॥ २३ ॥ श्रवणोपान्ताद्गण्डस्थलाद्विश्रष्टैर्मदैर्मत्तानामलिनीनां स्वैररेरावणस्यैरावतस्य ज्ञानभूमेर्गिरेरिमा गुहा गायन्तीव परय ॥ २४ ॥ कृष्णपक्षे चन्द्रमनु हसतः अम्बुधेः कृष्णान्तरेखारूपा वास्तुके निवासभूमिभूते वेठातटे पह्नयो दश्यन्ते ॥ २५ ॥ व-नान्येव कथित्त्वीरूपेण वर्णयति-अमोदेति द्वाभ्याम् । विशे-षणानि सर्वाणि श्वेषादिनार्थद्वयपराण्येकीकृत्य योज्यानि । वना-मोद एव गन्धयुक्तं श्वसनं श्वासो यस्याः ॥ २६ ॥ वनलक्षण-बिलासिनी स्त्री॥ २७॥ उदारशुद्धयो देवादयः ॥ २८॥ मुनेविंरकं चेतो विषयार्थिनः कामिनो रकंच चेतः समं तु-स्यतया रमयन्ति ॥ २९ ॥ पादाः प्रस्यन्तपर्वतास्तलक्षणाध-रणाश्व ॥ ३० ॥ ३१ ॥ भ्रमरैरम्भोदेश्व धूमाद्याः । यतः क-योग० १७१

उपविद्यैतद्खिलं चक्कु राज्यप्रयोजनम्॥

म्पन्ते अतो जबलिता इव ॥ ३२ ॥ करवीरस्य अपलता कर्त्व-शाखा तहक्षणदोळाया। अवदोलकमान्दोळनं कुर्यन्तं कोकिलं तरित्रया कोकिला आलिक्स्य मधुरगीतमालापयति ॥ ३३ ॥ हे राजन्, एता खबणसिन्धोरिमा सावणसैन्धवीः' हुः समिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युमयपदमृद्धिः । लसत्कलकलं यथा स्था-त्तथा उपायनपाणिभिर्भूषैः पूर्णास्तटभुवः पर्य ॥ ३४ ॥ हे देव, आ पूर्वाहवणजलियेः आऽपरस्मात्पश्चिमाह्रवणजल-निषेश्व तथा आ उत्तरादादिक्षणाद्वा लवणजलिनिषः । मर्यादा-यामाङः । इहास्मिन् जम्बूद्वीपे उदमे आजी भिष्टा अवशिष्टा ये यावन्तो नरपतयस्ते सर्वे पादपीठीकियन्ताभू । शिरसि पादा-र्पणेनानुगृद्यान्तामिति यावत् । किंच तत्तन्मण्डलानामवन्या दिशिदिशि चिरं रक्षाये यथाशास्त्रं नीतिशास्त्रोक्तप्रकारेण क्षा-न्तिपूर्वं समाधानपुरःसरं शान्तया धिया शासनानि दीयन्ताम्। तदन्वसाणि दीयन्तां तदनु च बलं खर्तेन्यं दीयताम् ॥३'४॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्धाणप्रकरणे उत्तरार्धे विंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

भन्न मण्डलमयीदां संस्थाप्याप्तिमुपेयुपाम् । बराद्मेर्दिगन्ताच्चां दुर्शनोषोग ईर्यते ॥ १ ॥

अध एते प्रागुक्ता विपश्चितस्तेष्वर्णवतटेषु उपविश्य एत-स्प्राक्यिक्शिमिनिवेदितं मण्डलमयोदास्थापनरूपं प्रयोजनं चकुः

तदा तत्रैव ते वासभूमि ऋत्या यथाक्रमम्। तस्थुर्मण्डलमयीदां स्थापयामासुरक्षताम्॥ २ अथ वर्णयितुं श्रीमांस्तत्प्रतापमिषागतम्। संप्रविदय समुद्रान्तरन्यस्रोकान्तरं रिषेः॥ 3 आययाँ यामिनीइयामा मेघलेखेव तानवम्। संपादिताहर्व्यापारास्तस्थुः स्वशयनेषु ते ॥ 8 आसमुद्रं नदीवाहा इव दूरादुपागताः। इदं संपादयामासुर्विसयाकुलचेतसः॥ 4 अहो नु दूरमध्वानं प्राप्ता वयमयहातः। प्रभावादेवदेवस्य वहेर्दिव्यैः स्ववाहनैः॥ Ę कियती स्यात्प्रविस्तीणी दृश्यश्रीरियमातता। इतः समुद्रास्तदनु द्वीपभूरम्बुधिः प्रभुः॥ इतो द्वीपं ततोऽम्भोधिः किमन्ते स्यात्ततोऽपि च । कियती कीदशी वा स्थान्मायेयं चेत्यरूपिणी ॥ तत्त्रार्थयामहे देवं हुताशं तद्वरादिमाः। प्रेक्षामहे दिशः सर्वा आपर्यन्तमखेदिनः॥ ۹, इति संचिन्त्य ते सर्वे यथास्थानमवस्थिताः। सममेवाह्ययामासुर्भगवन्तं हुताशनम् ॥ १०

| बभूष भगवानेषामथ दृष्यो हुताशनः। | |
|--|----|
| आकारवान्वरं पुत्राः प्रगृहीतेत्युवाच ह ॥ | 15 |
| विपश्चित ऊचुः। | |
| पञ्चभूतात्मकस्यास्य दृश्यस्यान्तं सुरेश्वर । | |
| देहेन मुखदेहेन तद्नते मनसापि च ॥ | १२ |
| यावत्संवेदनं यावत्संभवं यावदात्मकम्। | |
| पद्यम इति नो देव दीयतामुक्तमो वरः॥ | १३ |
| आसिद्धगम्यमध्वानं पश्येम वपुषा वयम्। | |
| तदन्ते मनसेवाध दृइयं पृश्यम भो प्रभो ॥ | १४ |
| आसिद्धगम्यमध्यानं मृत्युरसाकमस्तु मा । | |
| अध्यन्यसंभवदेहे मन एवं प्रयातु नः॥ | १५ |
| घसिष्ठ उघाच । | |
| अधेवमस्त्वित प्रोच्य पावकः सहसागमत्। | |
| क्षणादीर्वतया यातुं समुद्र इव सत्वरः॥ | १६ |
| अग्निजेगामाथ समाजगाम | |
| निशा विसम्ब्याथ जगाम सापि। | |
| समाजगामापि रविजेगाम | |
| तेषां च धीरार्णवस्कृतेहा ॥ | १७ |
| | |

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो०निर्वा०उ० अवि०विष० निपश्चिमिणयो नामैकविशत्यधिकशततमः सर्गः॥१२१॥

द्वाविंदात्यधिकदाततमः सर्गः १२२

यसिष्ठ उवाच । ततः प्रभाते प्रसभं पृथिच्याः कृत्वा यथाशास्त्रमलं व्यवस्थाम् ।

॥ १ ॥ स्वयं तत्र तस्थुर्मेण्डलमयीदां च स्थापयमासुः ॥ २ ॥ तेषां त्रिपश्चितां प्रतापम् । लोकान्तरं ज्योतिषमते पाताललो-कम् । पाराणिकमते मेरूत्तरभागस्थं वर्षान्तरम् । समुद्रान्तः प्रविश्येति समुद्रतीरस्थजनदृष्ट्योक्तिः ॥ ३ ॥ तानवं विस्तारम् । ते विपश्चितः ॥ ४ ॥ इदं वश्यमाणं मनसि संपादयामासुधि-न्तयामासः ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदेवाह-कियती स्यादित्यादिना । इतः अस्माञ्चम्बृद्वीपात् परतो छवणसमुद्रस्तदमु प्रक्षद्वीपभूस्तत इक्षरसाम्बुधिः प्रभुमेहान् लवणसमुद्राद्विगुणायाम इति यावत् ॥ ७ ॥ इतः इक्षुसमुद्रात्परतः कुशद्वीपं ततः परतः सुरोदो-Sम्भोधिः । एवं कमेण सप्तद्वीपसमुद्राणामन्ते कि स्यात् । त-तोऽपि च परतः कि स्यात् । इयं चेखरूपिणी माया कियती स्याद्वस्तुवैचित्रयेण कीदशी वा स्यात् ॥ ८ ॥ तत्सर्वे द्रष्टुं हु-ताशं देवं प्रेक्षामहे प्रार्थयेमहि ॥ ९ ॥ यथास्थानं चतुःसा-गरकूळेष्ववस्थितास्ते समं युगपदेव ॥ १० ॥ ११ ॥ यावद-नेन देहेन गन्तुं शक्यं तावदनेन देहेन । एतदगम्ये वैदिकम-श्रप्रभावसंस्कृतेनानेनेव देहेन । तदगम्ये मनसा ॥ १२ ॥ यावरसंवेदनमिति प्रत्यक्षयोग्यसर्वार्थोक्तिर्यावत्संभवमिखनुमा. नगम्यसर्वार्थोक्तियावदात्मकमिति श्रुत्यादिगम्यतदुक्तिः। अ-

आविष्टदेहा इव ते रसेन निषेध्यमाना इव मित्रमुख्यैः॥

थवा आद्येन यावत्स्थूलोकिर्द्वितीयेन यावत्सूक्ष्मोकिस्तृतीयेन यावत्कारणप्रपद्मोकिः । इति नः अस्मभ्यं वरो दीयताम् ॥ १३ ॥ सिद्धा योगिनस्तेषां योगप्रभावगम्यमिनव्याप्येखासि-द्धगम्यम् । वपुषा अनेनैव देहेन । अथ तदन्ते तदगम्यमिति यावत् ॥ १४ ॥ अथ्वानं गच्छतामिति शेषः । असंभवदेहे अध्वनि दक्षिणोत्तरायणादिमार्गरूपे मृत्वैव गन्तुं शक्ये अध्वनि ॥ १५ ॥ अथ तद्धरप्रार्थनानन्तरम् । और्वत्या यडवामिभा-वेन समुद्रे यातुं सलर इव ॥ १६ ॥ एवं वरं दत्त्वा अफ्रिजे-गाम । अथ निशा समाजगाम । सा निशापि यामबदुष्टयं विलम्बय जगाम । अथ रिवः समाजगाम । तेषां विपिवतां धीराणवलक्क्षनेहा च समाजगाम ॥ १७ ॥ इति श्रीवासिष्ठ-महारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणमकरणे उत्तरार्थे प्कर्वि-शास्त्रिकशतसमः सर्गः ॥ १२१ ॥

पदैरव्धितरङ्गेषु गच्छम्तोऽत्र विपश्चितः । विदार्थात्रतेमकराश्चियीताः साधुवर्णिताः ॥ १ ॥

यथाशासं नीतिशास्त्रमनतिकस्य राज्यविभागपरिपासनी-पायोपदेशमर्थादास्थापनादिव्यवस्थां ऋता। रसेन दिगन्तदर्शनी-त्वण्ठातिशयेन प्रहायाविष्टदेहा इव साक्षात्रिवेसुमशक्रुवद्भि- ર

3

19

निवार्य सर्चे परिवारमात्र-मान्नन्यमानं वदने रुद्धिः। निरस्य चाक्रेहतयाभिमान-मारसर्वलोभाभिभवैषणादि॥ दिगन्तमालोक्य समुद्रपारे श्रणारसमायाम इति ब्रवन्तः। स्वमन्त्रशत्त्रयोत्तमतां गतेस्ते-रद्धिः पदैरेव तदा प्रविष्टः॥ विपश्चितस्ते दिशिदिश्यनस्पे र्भृत्यैः समुद्रं प्रविशक्तिरेव । भृत्येश्च केश्चिरवनुगम्यमाना ययुर्यथा वारिणि पद्भिरेव॥ तरङ्गजालेषु पदानि कृत्वा पृष्ठे स्थलस्येव जलस्य चान्तः। चत्वार एकैकतयैव युका भृशं वियुक्ता निजसेनया ते ॥ पदक्रमेणैव महार्णवान्त-स्तावस्पविद्या अवलोकितास्ते। तटस्थितैर्यावदृहर्यभावं शरन्भो मेघलवा इवापुः॥ तमध्वानमधोद्वस्ते जलधौ पादचारिणः। वितताध्यवसायेन वद्धकक्षाहरा इव ॥ उन्नतावनतामद्भिसमारोहावरोहणैः।

मीज्रमुख्यैरिक्रितैनिषेध्यमानलादिवकारः ॥ १ ॥ परिवारमान्नं कृत्नं परिजनं निवार्थ । अमिभवः शत्रुपराभवस्तदेषणा।आदि-पदाहाज्यस्त्रीपुत्राचेषणापरिष्रहः । अथवा अमिभवः शत्रुभिरु-पहसद्भिस्तिरस्कार एषणाश्च प्रागुक्ताः। आदिपदाद्राज्यधनादीश्च मिरस्य हिला ॥ २ ॥ वयं समुद्रपारे दिगन्तमालोक्य क्षणा-च्छीघ्रमेव समायाम इति परिजनसमाधानाय खुवन्तः सन्तो जग्मरित्यध्याहारः । अग्निप्रसादहेतुमन्त्रशत्तर्येव भूमिजला-दिभतजयेनोत्तमतां सिद्धतां गतैस्तैस्तदा अन्धिः पदैरेव प्रविष्टो नत पोताधुपायेनेलार्थः ॥ ३ ॥ ब्रेहातिशयात्समुदं प्र-विशक्तिः कैश्रिद्धरथैरनुगम्यमानाः पद्धिरेव ययुः ॥ ४ ॥ कथं ययुस्तदाह-तरक्षेति । स्थलस्य भूमेः पृष्ठ इव तरक्षजा-छेषु पदानि कुला विन्यस्य । युक्ता उद्युक्ताः ॥ ५ ॥ तटस्थि-तैर्भृत्यजनैस्ते ताबत्कालमवलोकिता यावच्छरमभोमेघलवा इव अदृश्यभावमापः ॥ ६ ॥ विततेनाध्यवसायेन दढनिश्वयेन । हस्तिपकस्थानीयेन प्रेर्यमाणास्ते विपश्चितो बद्धां कक्षां हरन्ति तथाविधा गजा इव तं जलाध्वानं ऊहुः अतिबाहयामासुः ॥ ७ ॥ अद्रिसमैः आरोहानरोहणैर्निम्रोन्नतीमानैः उन-ताबनता वारितरङ्गाणां श्रियं शोभां खयमपि तत्खीका-राखरम्तः । अतएव हरेर्मृतिरिव मृतिर्येषाम् । हरिमृर्तिरिप

| श्रियं वारितरङ्गाणां हरन्तो हरिमूर्तयः॥ | C |
|---|-----|
| आवर्तेषु तृणानीव भ्रान्ता विगतसंभ्रमम्। | • |
| चिरं चञ्चलमत्ताभ्रचन्द्रमण्डलशोभिषु॥ | ۹, |
| मस्रविद्यावलौजोभिर्दुर्जयाः शस्त्रपाणयः । कचित्प्रमसर्भकरैर्निगीणोद्गीणेदेहकाः ॥ | १० |
| जलकहोळविश्रान्तवातोत्सारितमूर्तयः। | (., |
| नीतानीताः क्षणेनैव योजनानां द्यतं दातम्॥ | ११ |
| जलकञ्चोलमातङ्गतुङ्गिताङ्गतया तया । | |
| वधाना निजराज्येभपृष्टरोहस्थितिश्रियम्॥ | १२ |
| विस्तीर्णोर्मिघटापट्टपाटपट्टनपाटवैः । द्रशयन्तो जलाम्भोदनिष्कान्ति मारुता इव | 6.5 |
| यरायन्ता जलास्माद्दानप्ताान्त मारुता इव तरत्तरस्यमातङ्गतरङ्गोघविघट्टिताः । | १३ |
| अत्यजन्तो निजं धैर्य वेलावरतटा इव॥ | १४ |
| महोर्मिमुक्तामाणिक्यमण्डलप्रतिविम्बिताः। | |
| एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव ॥ | १५ |
| पाण्डुडिण्डीरिपण्डेषु कुर्वन्तो लाधवात्पदम्। | |
| श्वेतपग्रपरिकान्तराजहंसश्चियं दधुः॥ | १६ |
| घननिर्घातनिर्घोषभीषणार्णवद्यंघुमात् । न भीता भूभृतस्तत्र वेळावळनजृम्भितात् ॥ | १७ |
| अभ्रं लिहजलाद्दीन्द्रपातीत्पातविघट्टिताः। | ,,, |
| क्षणं पातालमाजग्मुः क्षणमर्कास्पदं ययुः॥ | १८ |
| अशङ्कितोत्पतद्वारिपूरपातपटावृताः । | |
| उत्पातपातनिपतद्वितानकवृता इय ॥ | १९ |
| | |

हि मन्धादेमेन्थनकाळे वारितरङ्गाणां समारोहावरोहणैरुन्नताब-नतां श्रियं रुक्ष्मीं जहारेति प्रसिद्धमिति भावः ॥ ८ ॥ मत्ता-भ्रप्रविष्टेन चन्द्रमण्डलेनेव खप्रवेशाच्छोभमानेष्त्रावर्तेषु तृणा-नीव चिरं भ्रान्ताः ॥ ९ ॥ पूर्व निर्मार्णाः पश्चाजरणाशक्तया उद्गीणी देहा येषाम् ॥ १० ॥ ११ ॥ जलकल्लोललक्षणिर्मातं-गैस्तुंगिताङ्गतया आरोहिताङ्गतया अपूर्वचमत्कारिण्या ॥१२॥ विस्तीर्णानाम्भिघटालक्षणानां शिलापद्यानां यः पाटः पाटनं विदारणं यस पटनमधोमुखीकरणं तत्र पाउवैः कौश्लैः जललक्षणादमभोदाभिष्कान्ति मारुता मरुद्दोपिता विद्युत इव दर्भयन्तः ॥ १३ ॥ तरस्यमातकेरिय तरकेषिविधिटिता अपि वेलास प्रसिद्धा वरतटाः शिलावप्रा इव निजं धैर्यं अत्यजन्तः ॥ १४ ॥ महोसिंबु मुक्तामाणिष्यमण्डलेषु च प्रतिविम्बिताः सन्तः पुरुषाणां समूहः पौरुषेयं तेन परिवृता इव भासमानाः ॥ १५ ॥ श्वेतपद्मेषु परिकान्तस्यारूढस्य राजहंसस्य श्रियम ॥ १६ ॥ निर्घातः स्फूर्जेथुः । भूतत इति श्रिष्टम् । यतो भूरतस्ततो न भीताः ॥ १७ ॥ अश्रंलिहेभ्यो ज**रुम**-बेभ्योऽद्वीन्द्रेभ्यः पातैरुत्पातैश्च विघहिताः सन्तः ॥ १८ ॥ उ-स्पातस्य पाते प्राप्ती निपतन्ती ये मेघवितानकार्रीर्वता इव।।१९॥ प्रकान्तास्तेम्बुराशौ सहचरमकराः शूरनकैः कुली-रैर्ब्याप्तावर्ताविवृत्ताःसलिलतहलतासीकरैरन्त-

कुर्चन्तः कान्तियुक्तं चपुरिव कुसुमैर्भ्रान्तमाणिक्य-मुक्तै-र्व्यकाव्यक्तांशुजालैः प्रतिपदमितरैरम्रह्रपैरवस्नैः२०

तया मकरमातङ्गनिगीणीद्रीर्णमृर्तिमान्।

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाह्मीकीये मो० नि० उ० अवि० वि० बलपरिश्रंशो नाम द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

त्रयोविंदाधिकदाततमः सर्गः १२३

विसष्ठ उवाच ।
इत्येते दृदयक्तपाया अविद्याया विचारणे ।
प्रवृक्ताः पादचारेण समुद्रद्वीपगामिनः ॥
अब्धेद्वीपं पुनर्द्वीपाद्यादिश्व द्वीपं गिरि चनम् ।
लाघवालक्ष्यामासुदृष्ठेदभेदविचार्जेताः ॥
पीतो विपश्चित्पाश्चात्यो मीनेनामरमानिना ।
विष्णुमीनकुलोत्थेन वितस्तावाहनौजसा ॥
श्वीरोदं प्राप्य मत्त्येन तेनोद्वीणः सुदुर्जरः ।
तेन श्वीरोदमुलक्ष्य गतो दूरं दिगन्तरम् ॥
दक्षिणो यक्षनगरे संप्रेक्ष्येक्षुरसाणवे ।
दिक्षणो यक्षनगरे संप्रेक्ष्येक्षुरसाणवे ।
दिक्षणो यक्षनगरे संप्रेक्ष्येक्षुरसाणवे ।
दिक्षणो यक्षनगरे संप्रेक्ष्येक्षुरसाणवे ।
पूर्षो मकरमात्रम्य यदा गक्कां निकस्तवान् ।
गक्रया स तदानीय कान्यकुष्ये समुज्ज्ञितः ॥
बस्तरस्तुत्तरकुकनाराध्य प्राप्तवाव्श्ययम् ।
तं तयैनं न वाधन्ते दिगन्ते मृतभीतयः ॥

अतिचकाम सुबद्द्वनद्वीपान्तरकुळाचळान्॥ 6 पश्चिमः पृष्ठमारोप्य हेमचुडेन पक्षिणा । कुशद्वीपे कुशाङ्गश्रीस्तरसा तारतोऽर्णवान्॥ Q क्रीअद्वीपाचले पूर्वी निर्माणी रक्षसा वने । तद्रक्षः पाटितं तेन हृदयेऽस्त्रविकर्तनैः॥ १० दक्षिणो दक्षशापेन यक्षतामागतः क्षणात्। शाकद्वीपे शतेनासौ वर्षाणां मोक्समागतः॥ ११ उत्तरस्तरसोत्तीर्णतारावरतरङ्गिणः । महार्णवसुवर्णीव्यी सिद्धशापान्छिलां गतः॥ १२ ततो वर्षशतेनासौ प्रसादाज्ञातवेदसः। तेनेवोन्मोचितस्तत्र सिद्धेन रतिमाप्तवान्॥ १३ वर्षाण्यष्टावभूद्राजा नालिकेरनिवासिनाम्। पूर्वः परमधर्मिष्ठः प्राप्तवान्त्राक्स्मृति ततः ॥

अद्भेबेहलें स्मृह्ये काल्यकां गुजाले मी निषयमुक्तासम् है: अन्तराले सिललमयतहलता प्रायाणां तरक्षाणां सीकरैश्च कु-सुमेरिव बपुः कान्तियुक्तं भूषितं कुर्वन्तः तथा शूर्रे नैकैः कुलीरैः कर्के हकैश्च व्यासे व्यावतियु आसमन्ति द्विष्टताः सहचरा मकरा येषां तथाविधास्ते विपश्चितः अम्बुराशी समुद्रे प्रकान्ताः चिलता इस्पर्धः ॥२०॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणे ताय-वैप्रकाशे नि० उ० द्वाविंशाधिकशतसमः सर्गः ॥ १२२ ॥

इह द्वीपससुदेषु प्रयातामां विपश्चिताम् । पाश्चात्पादिकमात्प्राप्ता वर्ण्यन्ते विविधा दशाः ॥१॥

इति अनया रीत्या एते विपश्चितः पाद सारेण दृश्यक्षपाया अन् निवाया अन्तपर्यन्तं निचारणे प्रवृत्ताः ॥१॥ लाघवाच्छैद्रयात् ॥ २ ॥ तत्र पाश्चात्यः पश्चिमदिगन्तदर्शनाय प्रवृत्तो निपश्चिन् इमरोऽहमित्यभिमाननता मीनेन पीतो निर्गाणः। वितस्ता नदी साह्यत्यन्तशीप्रणा प्रसिद्धा तद्वाहनस्य नौकादेरोज इन शीप्रतर्मोजो यस्य तथाविधेन ॥ ३ ॥ सुदुर्जरो जरियतुमशक्यः ॥ ४ ॥ दिद्वीमस्योदन्तमाह—दक्षिण इत्यादिना। इश्वरसाणीवे स्थिते यश्चमणरे। वशीकरणविद्याशिक्षाविषये दक्षिणया कुशल्या यश्चिष्या प्रेक्ष्य विद्याबलेनाक्षित्य स्वकामुकीकृतः ॥५॥ तृती-यस्योदन्तमाह—पूर्व इति । पूर्वदिश्वा प्रयुत्तो विपश्चित् गङ्गा-सहस्रमुखसंभेदान्कमण पश्चम्यदा क्रविम्मकरं प्रसित्कामं ब-

लादाकम्य तस्मोद्धाराय गङ्गामानीय निकृत्तवान् विदारितवान् तदा स विपश्चित् गङ्गया पराष्ट्रत्यानीय कान्यकुरुजे नगरे ससु-िञ्जतस्यक्तः ॥ ६ ॥ चतुर्थस्योदन्तमाह--उत्तरस्विति । उत्तरकुरून् उक्षणया उत्तरकुरुषु देव्या सह कीडन्तमीश्वरमा-राध्य श्रियमणिमाधैश्वर्य प्राप्तवान् । अतएव तमेनं विपश्चितं त्यैव श्रिया दिगन्ते प्रस्तमपि मृतं मरणं तत्प्रयुक्ता भीतयो न बाधनते । अमरोऽभूदित्यर्थः ॥ ७॥ तया श्रियंव तरप्रभावे-णैवेल्यर्थः ॥ ८ ॥ पुनः पश्चिमस्योदन्तमाह--पश्चिम इति । हेमचूडेन गरडेनेति यावत् । कुशद्वीपे हि कुशस्तम्बे स्थिती गरुडः पूजादिना प्रसादितस्तद्वीपमर्णवांश्व तारयतीति प्रसिद्धिः। खर्णमयकुशस्येव अञ्चर्शार्देहकान्तियस्य ॥ ९ ॥ पुनः पूर्वस्यो-दन्तमाह-- कौन्नेति । कौन्नद्वीपे प्रसिद्धे वर्षसीमाचले रक्षसा निगीर्णः । अथ तद्रक्षस्तेन विपश्चिता अन्त्राणां विकर्तनैः पा-टितं विदारितम् ॥ १० ॥ पुनर्दक्षिणस्योदन्तमाह-दक्षिण इति । मोक्षं शापमोक्षम् ॥ १९ ॥ तरसा जनेनैव उत्तीर्णा-स्तारा महान्तः अवराः क्षुद्राश्च तरिक्वणेश्च तरिक्वणः समुद्राश्च तरिक्षणो येन । महार्णवस्य स्वाद्दस्य परतः प्रसिद्धायां सुव-र्णोर्क्यो बिलां बिलारवं गतः ॥ १२ ॥ येन सिद्धेन शापी दत्तहतेनैव शापादनमोचितः सन् रति मनःप्रीतिमाप्तवान् ॥ १३ ॥ पुनः पूर्वस्योदन्तमाह-वर्षाणीति । कान्यकुब्जदे-

१ अत्रैकशेषः.

कल्पहृक्षयने मेरोहत्तरेऽप्सरसा सह।
उवास दशवर्षाणि नालिकेरफलाशनः॥ १५
बिह्नगाश्वासतस्वज्ञः शाल्मलिद्वीपशाल्मली।
पश्चिमः पश्चिणीनीडे कीडया न्यवसत्समाः॥ १६
मन्द्राद्री मृदुतले मन्दारतस्मन्दिरे।

किंनरी मन्दरीनाझी दिनमेकमसेवत ॥ १७ श्रीरोदवेळावनकल्पगृक्ष-वनावळीनन्दनदेवतामिः । सार्घ समाः सप्ततिमप्सरोमि-र्निनाय कामाकुळितोऽथ पूर्वः ॥ १८

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० निर्वा० उ० अवि०वि० दिग्विहरणं नाम त्रयोविंशाधिकशततमः सर्गः ॥१२३॥

चतुर्विदालधिकदाततमः सर्गः १२४

ર

3

श्रीराम उवाच ।

एकसंविन्मयाः सर्व एवैकवपुषोऽपि ते ।
विविधेच्छाः कथं ब्रह्मन्संपन्ना एकदेहिनः ॥

षित्र उवाच ।

एकसंविद्धनाकाशमण्यनानैव सर्वगम् ।
स्वयं नानेव संपन्नं सुन्ने चित्तमिवात्मिन ॥
तस्याच्छत्वात्तथाभूतमात्मैवात्मिन बिम्बति ।
तादशस्य तथाभूतौ मुकुरस्येव निर्मला ॥

एकलोहमया एव यथादशीः परस्परम् ।

तथैते प्रतिबिम्बन्ति पदार्थाः पारमार्थिकाः ॥

शादुत्तरां दिशं गतस्तत्र नालिकेरप्रधानदेशनिवासिनां राजा-ऽभवदित्यर्थः । प्रावस्मृतिं पूर्वोदन्तस्मरणम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ पुनः पश्चिमस्मोदन्तमाह—विहगेति । विहगानामाश्वासे वशी-करणविषये तत्त्वक्षो रहस्यकः । अनएव प्राग्गरुडेन पृष्ठमारो-प्यार्णवांस्तारित इत्युक्तम् । पक्षिण्या नीडे तया सह कीड्या दशसमाः न्यवसदित्यर्थः ॥ १६ ॥ तदनन्तरं मन्दराद्रौ गतं तं पश्चिमविपश्चितं मन्दराद्रौ किन्नरी दिनमेकमसेवत ॥ १७ ॥ अय पूर्वो नालिकेरवनात्क्षीरोदवेलां गतः संस्तत्रत्यकल्पदृक्ष-वनावलीषु नन्दनदेवतामिरप्सरोभिः सार्थं कामाकुलितः सन् सप्ततिसमाः निनाय ॥ १८ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-तास्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे श्रयोविद्याधिकशत-समः सर्गः ॥ १२३ ॥

एकस्वापि चतुर्देहेर्श्वहारः समर्थ्वते । द्वीपेषु नानारोलेषु विदारश्च विपश्चिताम् ॥ १ ॥

चतुर्णामेकदेहत्वे एकजीवकत्वे च भिन्नेच्छलमनुपपन्नमिति रामः शङ्कते—एकेति । एकसंविदेकं साक्षिचैतन्यं तन्मया एकस्यैव वपुषश्चतुर्धाभावादेकवपुषश्च ते विपश्चितः । एकः देही जीवो येषाम् । तथाच जीवमेदं विना युगपदिच्छ।भे-दोऽनुपपन्न इत्यर्थः ॥ १ ॥ एकस्यापि जीवस्याविद्यया खप्ने नानोदेहादिकत्पनदर्शनात्तेषु च शत्नुमित्रोदासीनभावकत्पने नानेच्छलदर्शनाच सर्गादी ब्रह्मणि जीवे जामलपि तादशकर्मस्तवे सर्वसंभव इत्याशयेन वसिष्ठ उत्तरमाह—एकसंविदिति ॥ २ ॥ तस्य संविद्यनाकाशस्याच्छलाइर्पणवदतिखच्छलात्तथा-भृतं नानास्मतामिषापनं भारमा समेवास्मनि विम्वति दर्पणो-

तेन यस यदा यदातुरो भवति वस्त्वसी।
यद्धं युज्यते तेन चिद्धनेकस्त्रभावतः॥ ५
इत्यनानेव नानेदं नानानाना च वस्तुतः।
नच नाना न चानाना नानानात्त्रमकं ततः॥ ६
तेन यस यदायातं पुरोवस्तु विपश्चितः।
स तेन संविन्मयतामेत्य तद्वशमागतः॥ ७
एकदेशगता विष्वग्व्याप्य कर्माणि कुर्वते।
योगिनस्त्रिषु कालेपु सर्वाण्यनुभवन्त्यपि॥ ८
अब्दोऽपि व्याप्तिमानेकस्तुल्यकालं पृथक् कियाः।
आह्यदस्तेन पादेन करोत्यनुभवत्यपि॥ ९

दराकाशे गिरिनदादिसहितं महाकाशमिवेलार्थः । तादशस्य खच्छस्यापि तथाभूतौ नानाजगदाकारभवने मुकूरस्येव नि-र्मेला खच्छतैव हेतुरिति शेषः ॥ ३॥ ननु जगदपि वस्तुत-श्रिदेव । तथासति चितएव चिति कथं प्रतिबिम्बनमिति चे-च्छ्णु दष्टान्तमित्याद्द—एकेति । पारमार्थिकाः परमार्थतिथि-द्रूपा अपीलर्थः । मायोपाधरचिन्त्यशक्तिलाद्गन्धर्वनगरस्फटि-ककुञ्चरूपे नमसि सचन्द्राकोन्नमहानभःप्रतिथिम्बनदर्शनाचेति भावः ॥ ४ ॥ अतएवाध्यस्तभोग्यजगदाकारं ब्रह्म विषयेन्द्रयः संयोगे बुद्ध्यवच्छिन्नजीवमिति प्रियाप्रियविषयभोगाकारेण प्रति-बिम्बतीत्याह-तेनेति । यद्यद्गोग्यवस्तु पुरो भवति सन्निकर्ष-मापद्यते तेन वस्तुना असी तद्धे तद्भोगार्थ युज्यते उपपद्यते। यदि भोग्यं वस्तु बुद्धौं न प्रतिबिम्बेत भोग एव न युज्येते-त्यर्थः ॥ ५ ॥ तहींकस्य नानाऽनानात्मकत्वं विरुद्धं माययापि कथं स्यात्तत्र युक्तिर्वाच्यंति चेत्तत्राह—नचेति । यदि नाना-लमात्रनिषेधः स्यात्तदा नियत्तेकरूपमेव स्यात्। अनानालधर्म-स्यापि निषेधात्रानात्वेनापि तत्संभावयितं शक्यमित्यविरोधे युक्तिरित्यर्थः ॥ ६ ॥ अतएव विपश्चितौ नानादिगाभोग्यानां युगपद्गोगप्रदक्रमंपरिपाके एकस्पैव देहादेश्वातुर्विच्यं तत्तदेशस्य विषयाणां तत्रतत्र बुद्धी युगपत्त्रतिविम्बनं च संपन्नमित्याशये-नाइ-तेनेति ॥ ७ ॥ यदा योगिनामगस्त्यादीनां मलयादि-नियतैकदेशे निर्धं स्थितानामपि नानादेशेष्वतीतानागतादिका-छेषु योगबलात्संनिधानेन सर्वानुभवितृत्वं प्रसिद्धं तदा भिन्न-देशं प्रयातानां निपश्चितां तत्कि वाच्यमित्याशयेनाह—एकदे-शेति ॥ ८ ॥ नानादेशेषु युगपदेकस्य मिलकियाकारित्वे तत्त-

तुस्यकालमसंख्यातमीश्वरप्रतियोगिनः । कर्मजालं जगजातं कुर्वन्त्यन् भवन्ति च ॥ १० एको विष्णुश्चतुर्भिः स्वैर्बाहुमिर्वा शरीरकैः। पृथक्षवैन्त्रियाः पाति जगद्भक्के वराङ्गनाः॥ ११ बहुबाहुर्यदा द्वाभ्यां हस्ताभ्यां द्यर्थसंत्रहम्। करोति बहुमिर्भूयः संप्रामं सततं करैः॥ १२ तथैव तैर्विपश्चिद्धिः सर्वदिकं तथा स्थितैः। तथा व्यवहृतं प्राप्तमेकसंविन्मयैरपि॥ १३ सप्तं तैर्भमिशय्यास भूकं द्वीपान्तरेषु च। विद्वतं घनलेखासु प्रकान्तं मरुभूमिषु ॥ १४ उषितं गिरिमालासु भ्रान्तं सागरकुक्षिषु । विभान्तं द्वीपलेखासु निलीनं घनमालिख् ॥ १५ **रूटमर्णव**मालासु वात्यासु जलवीचिषु । क्रीडितं भूभृदब्धीनां तटीपु नगरीषु च ॥ १8 दााकद्वीपोदयगिरितटे सप्तवर्षाण सुप्तं पूर्वेणान्तर्विदलगहने यक्षसंमोहितेन। पाषाणाम्य प्रसभमम्नेयात्र पीत्वा हपत्ता-मागत्यान्तः स्थितमथ समाः सप्त जात्येन भूमेः

शाकद्वीपेऽस्तरीलस्य शिरस्यभ्रग्रहागृहे । पिशाचाप्सरसा मासं पाश्चात्यः कामुकीकृतः १८ यत्र शान्तभये वर्षे जलधारे महागिरी। हरीतकीवने वर्ष पूर्वोऽन्तर्धानमाययौ॥ १९ अत्र रैवतके रैाले वर्षे शिशिरनामनि। दशरात्रमभूर्तिसहः पूर्वी यक्षवशीकृतः॥ २० अत्र काञ्चनशैलादिवरीदर्दुरतां गतः। पिशाचमायाछिलतो दशवर्षाण्युवास सः॥ २१ कौमारं वर्षमासाद्य इयामाद्रेरुत्तरस्तटम् । शाकद्वीपेऽन्धकूपेऽन्धो न्यवसच्छरदां शतम् २२ मरीवकेऽकरोद्वर्षे वर्षाण्यत्र चतुर्दश। विद्याधरत्वं पाश्चात्यः स विद्याधरविद्यया ॥ २३ रतक्रमक्रान्तपुरारिलक्ष्मी-चलाङ्गलेखाक्रमशीकराकम्। पलालतालिङ्गनलब्धगन्ध-मालम्ब्य वेलावनगन्धवाहम्॥ २४ इस्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्भीकीये मो० निर्वा० उ० अधि० विप० नाम चतुर्विशस्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

पश्चविं शत्यधिकशाततमः सर्गः १२५

वसिप्र उवाच। वर्षे शान्तभयाभिख्ये जलधारे गिरौ तरी।

हेशव्याप्तिरेवोपयुज्यते न जीवभेद इत्याह—अब्द इति । यथा धर्मातीन् आहादयतीलाहादः अन्दो मेघोऽपि महत्त्वा-**ानानगरगिरिनदीक्षेत्र**(दिव्याप्तिमां स्तुल्यकालं क्षालनकृदमेदनजलवर्धनसस्यपोषणादिपृथक् कियास्तुल्यकालं तेनतेन पादेनांशेन करोति तदिसमानी जीवध मयेमाः कियाः कृता इत्यनुभवत्यपि तद्वद्वात्रोपपत्तिबीध्येत्यर्थः ॥ ९ ॥ अणिमार्थेश्वर्यलाभादीश्वरप्रतिमाः योगिनः ॥१०॥ चर्तार्भः श-रीरकै: कचियोगनिद्रां कचिलपः कचिदिन्द्रानुजतया तत्साहाय्यं कचिद्वेकुण्ठे भोगजातमिति प्रथक्कियाः कुर्वन् जगत्पाति वराक्ष-ना भुद्गे अनुभवति ॥११॥ यदा द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वयोरर्थयोः संप्रहप्रसिक्तस्वा तं संभूय सर्वैः करैः संप्रामप्रसक्तौ तं च करोति ॥ १२ ॥ इष्टान्तान्त्रकृते योजयति—तथैवेति । प्राप्तं सुखदुःखादिकमिति शेषः ॥ १३ ॥ प्रकानतं चलितम् ॥ १४ ॥ धनमालिषु मेघमालावत्सु पर्वतात्रेषु निलीय स्थितम् ॥ १५ ॥ रूढं प्रादुर्भूतम् ॥ १६ ॥ तथा पूर्वेण विपिबता शाकद्वीपे प्रसिद्धस्योदयगिरेस्तटे विदलस्य दलर-हितस्य महीवृक्षस्य गहने अन्तर्यक्षेण संमोहनविद्यया संमो-हितेन सप्तवर्षाणि सुप्तम् । अमुनैव पूर्वविपिधता पाषाणकरं अम्ब अत्रास्मिन्गिरी कवित्पीक्षा प्रसमं बलाहुवत्तां पादाणमा-

तारकर्तर पानीयं शाकद्वीपे पियन स्थितः॥

वमागत्य भूगेरन्तसम्भात्येन भूला सप्तसमाः स्थितम् ॥ १७ ॥ अश्रसंहिते गुहायहे ॥ १८ ॥ शान्तभयाख्ये वर्षे भूमिमेदे कस्यचिन्मुनेः शापाद्धरीतकीवृक्षतां प्राप्याऽन्तर्धानं जनैरहरूय-ताम् । वर्षं सप्ततिवर्षम् ॥ १९ ॥ २० ॥ दरीषु दर्दुरतां भेकताम् ॥ २१ ॥ उत्तरस्योदन्तं पुनराह—कौमारमिति । **रयामाद्रेनीलगिरेः । अन्धो दर्दुरः स**न्निखर्यः ॥ २२ ॥ **पाश्चा-**व्यस्योदन्तमाह-मरीबक इति । विद्याधरत्वप्रापिकया मन्त्र-विद्यमा ॥ २३ ॥ किमालम्बय विद्याधरत्वमकरोत्तदाह--र-तेति । रतं सुरतं तत्रत्येन क्रमेन क्लान्तस्य पुरारेर्कक्म्या शो-भातिशयेन चलानामङ्गलेखानां ऋमेणोद्भतैः सीकरैः रक्त संप्रक्तम् । तथा एठाठतानामालिङ्गनैर्ठब्धगन्धं वेलावनस्य गन्धवाहं वायुमालम्ब्य आनन्दहेतुरवेनाश्रित्येल्यर्थः ॥ २४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणे तात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुर्विशत्यधिकदाततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

परस्परोपकारित्वं विपधन्न विपश्चिताम् । विष्यगर्धिकया जीवन्युक्तानां चोपवर्णयेते ॥ १ ॥ तत्र विपश्चितां मिन्नदिक्षु भ्रमतां परस्परानुसंधानं विपरम् परस्परानुषाहकत्वं चास्ति न वेति रामस्य संशयं लिक्नैहपलक्ष्य तं निराचिकीर्प्वेतिषद्धः प्रथमं पूर्वस्य शान्तभयवर्षे इरीतकीत-

पूर्वोऽथ वर्षसप्तत्या पाश्चात्वेनैत्व मोक्षितः। विचया ककचेनेव छित्त्वा वृक्षत्वमक्षतः॥ पाश्चात्यः शिशिरे वर्षे पाषाणत्वमुपागतः। मोचितो दक्षिणेनाद्य गोमांसादिप्रयोगतः॥ शिवेऽस्ताचलपारस्थे वर्षे वर्षेण पश्चिमः। मोचितो दक्षिणेनैत्य गोपिशाच्या वृपीकृतः॥ अत्रैय क्षेमके वर्षे आक्विकेयगिरी तरी। दक्षिणो यक्षतां यातो मोक्षं यक्षेण लब्धवान्॥ अत्रैष चूंपके वर्षे शैले केसरनामित । केसरित्वं गतः पूर्वः पाश्चात्येनैव मोचितः॥ थीराम उवाच। एकदेशगता विष्यग्याप्य कर्माणि कुर्वते। योगिनस्त्रिषु कालेषु सर्वाणि भगवन्कथम् ॥ वसिष्ठ उवाच । इह रामाप्रयुद्धानां यदस्त्यस्त्वलमेव नः। तेन यसु प्रबुद्धानां तदिदं श्टणु कथ्यते ॥ चिन्मात्रसत्तासामान्यादतेऽन्यन्नात्म तद्विदाम्। रुरयात्यन्ताभावबोधे सर्गासर्गरहोः श्रये॥ चिन्मात्रसत्तासामान्ये विश्रान्तस्य निरन्तरम्।

रुभावसंकटे पश्चिमकृतमनुष्रहमाह—वर्षे इति । शान्तभयमि-त्यमिस्या प्रसिद्धिर्थस्य तस्मिन् वर्षे । अत्र शान्तभये वर्षे जल-थ।रे महागिराचिति प्राक्सगीकि गिरी हरीतकीवने हरीतकीवृक्ष-भूतस्तादक्तदवस्थः कर्तरीयश्वसदसभूम्यन्तःशिलासंबन्धि पा-नीयं मूळैः पिबन् स्थितः पूर्वो विपश्चित् पाश्चात्येन विपश्चिता तद्वतान्तं ज्ञाला तत्र एल आगल शापप्रदं मुनि प्रसाद्य तह-त्तया विद्यया करुचेन वृक्षत्वं छित्त्वेव वृक्षभावान्मोक्षित इति परेणान्वयः ॥ १ ॥ २ ॥ एवं पाश्चात्योऽपि शिशिराख्ये वर्षे पिशाचपतिशापात्पाषाणलमुपागतो दक्षिणेन एख गोमांसादि-प्रयोगतः पिशाचपति प्रसाद्य मोचितः ॥ ३ ॥ गोह्रपया पि-शाच्या पिशाचिवया पृषीकृतो वृषपिशाचीकृतः पश्चिमी दक्षिणेन मोचितः ॥ ४ ॥ यक्षतां पिशाचमेदताम् । देवता-यक्षभावस्य मोक्षणे प्रयोजनाभावात् । यक्षेण पश्चिमप्रसादितेन यक्षपतिना निमित्तेन ॥ ५ ॥ अत्रास्मित्रेन शाकर्द्वापे ॥ ६ ॥ विष्वक् सर्वतो व्याप्य विविधं आप्य । कर्माण अनुप्रहादीनि क्यं कुर्वते तत्रोपपत्तिर्वाच्येखर्थः ॥७॥ योगिनां हशा सर्वप्र-पद्यस्य मनोमात्रलान्मानसिकयासु च मनसः सर्वत्र युगपद्यव-हारेऽपि निरङ्कशस्वातक्याविचातात्सर्विकयोपपितिरत्याशयेन विषष्ठ उत्तरमाह—इहेत्यादिना । हे राम, इह जगति अप्रबु-द्धानां दशा यञ्जूतभीतिकादिस्थूलं वस्त्रस्ति तेन नः प्रबुद्धाना-मुपपत्तिचिन्तया असम् । प्रबुद्धानां दशा यत्तु चिन्मात्रं मनो-मात्रं बद्धा तत् सर्वत्रार्थिकयासमर्थं यथोपपदाते तथा कथ्यते

सर्वेशस्येह सर्थत्वं सर्वातमत्वं च सर्वेदा ॥ १० वद केन कथं कुत्र कदा किमिय रोध्यते। सर्वगस्त्वथ सर्वात्मा यत्र भाति यदा यथा॥ ११ तथा भाति तदा तत्र सर्वात्मनि किमस्ति नो। अतीतं वर्तमानं च भविष्यत्स्थूलम्प्यणु ॥ १२ तथा दरमदुरं च निमेपः कल्प एव च। स्वरूपमजहत्येव सामान्ये तानि सर्वदा॥ १३ सर्वात्मनि स्थितान्येच पद्य मायाविज्ञिन्भतम् । अजातमनिरुद्धं च यथास्थितमवस्थितम्॥ १४ विशानधनमेवेदमत एव जगन्नयम्। नभस्त्वमत्यजंश्चेव सर्वात्मैव नभः स्थितम्॥ १५ जगदातमा जगदूपं द्रपृष्टस्यतयोदितम्। विश्वात्मद्दग्वपुर्यत्सास्तिक केन कथं कदा ॥ १६ दुःसाध्यं बृहि तत्त्वज्ञ साध्यासाध्यस्वरूपिणः। तसादसाः सदैकसा विपश्चिद्राजसंविदः॥ प्रबोधमनुगच्छन्त्या अप्राप्तायाः परं पदम्। पक्रम्या अप्यनेकम्याः सर्व सर्वत्र युज्यते ॥ १८ बोधाबोधातमस्पे हि किं नामास्ति परात्मनि। अप्राप्तायाः परं बोधं पदार्थाकुलतोचिता ॥ १९

श्विवसर्थः ॥ ८ ॥ तत्र चिन्मात्रमेव बह्लिति कल्पे सर्वश्व-रस्येव सर्वत्र सर्वार्थिकयोपपत्तिरित्याह—चिन्मात्रेति । तन द्विदां तत्त्वविदां दशा चिन्मात्रसत्तासामान्यादते अन्यत् जग-द्रूपं न विद्यते आत्मा खरूपं यस्य तन्नात्म । नशब्दोऽयं नत् नम् । निःसरूपमिति यावत्॥९॥ १० ॥ किंवृत्तानि प्राग्वत् । रोध्यते सर्वत्र सर्वार्थिकयाविषये निवार्यते । दृष्टसृष्टिपक्षमा-लम्ब्यापि तदनिरोधमाइ-सर्वग इति । अथेति पक्षान्तरयो-तनाय ॥ ११ ॥ कि नो अस्ति कि तयनतः सत्तां न रुभत इखर्थः । अतीतमिखादिस्तत्त्रपद्यः ॥ १२ ॥ सामान्ये सत्ता-सामान्ये । तान्यतीतादीनि ॥ १३ ॥ अनिरुद्धमनष्टम् ॥१४॥ अतएव सत्तासामान्याधीनस्थितिकलादेव । अविकृतस्य सदा-त्मन एव नभआदिरूपेण स्थिति प्रपश्चयति—नभस्त्वमिति । अव्यजन् स्वसत्तया अनुगृह्णतेव ॥ १५ ॥ मायाशवस्त्री हि जगदात्मा तदेव द्रष्टृदश्यतया जगद्रूपमुदितम् । यत्तु विश्वा-त्मनः शबलस्य दब्यात्ररूपं वपुस्तत्केन कथं कदा कि स्यात् । श्रद्धे परिणामविवर्ताग्रघटनादित्यर्थः ॥ १६ ॥ साध्यासाध्यस्य-रूपिणः शबलस्य दुःसाध्यं किं, न किंचिदिति सर्वदा सर्वत्र सर्वार्थिकियीपपत्तिरित्यर्थः ॥ १७ ॥ रामप्रश्रसमाधानं प्रकृते योजयनुपसंइरति-तस्माविति । ईश्वरचित एवोपाधिमेदे विपश्चिदादिजीवलादेकस्या अप्युपाधिनानात्वेनानेकभावाप-न्नाया अम्यादिप्रसादात्सर्वे सर्वत्र कार्ये युज्यत इत्यर्थः ॥१८॥ बोधाबोधातमरूपे शबले किं नामास्ति । असाध्यमिति शेषः । तत्रैव युक्तयन्तरमाह-अत्राप्ताया इति ॥ १९ ॥ किंचिद्वोधं प्रविद्यायाः सिद्धताप्युचितेव सा । पवं ते सर्वदिकसंस्थाः सर्वमेव परस्परम् ॥ २० पद्यन्त्यनुभवन्त्याशु चिकित्सन्ते च संकटम् । बोधाकाशः स्वकाद्र्यादीषच्युत इवाशु चेत् ॥ २१ तद्न्यतामिषाद्ते सुस्थितोऽपि यथास्थितम् ।

भीराम उवाच । विपश्चितः प्रबुद्धाश्चेत्कथं सिंहबृपादिताम् ॥ २२ दिश्च यान्तीति मे ब्रह्मन्वोधाय कथयाश्वलम् ।

वसिष्ठ उचाच।

प्रमुद्धाः कथिता ये ते योगिनस्ते मयानघ॥ २३ प्रसङ्ग्रह्मपान्तरतो न प्रबुद्धा विपश्चितः। विपश्चितो महाबाहो प्रवुद्धा निपुणं न ते॥ २४ बोधाबोधहरोोर्मध्ये ते हि दोलायिताः स्थिताः। मोश्चिह्यानि हर्यन्ते बन्धिसहानि चामितः॥२५ नित्यधर्मप्रबुद्धानां तथाभूततया तया। विपश्चितो धारणया योगिनो न परं गताः॥ २६ धारणायोगिनस्ते हि धारणाप्राप्तसिद्धयः।

योगिनामे च्छिकार्थिकयासामध्येलक्षणसिद्धतायामप्यपपत्तिमाह -- किंचिदिति । बोधप्रकर्षकमेण अकामहतलप्रकर्षसंभवात-त्प्रयुक्तानन्दोत्कर्षप्रयोजकैश्वर्यप्रकर्षकमस्याप्यपपत्तेरिति भावः । से विपश्चितः संकटं विपद्रोगं चिकित्सन्ते प्रतिक्षर्वन्ति ॥ २०॥ प्रशुद्धानां मनोमात्रमेव सर्ववस्थिति कल्पे त सर्वत्र सर्वार्थिकि-**या मनोराज्यवद्वपपन्नतरैवेत्याशयेनाह— वोधाकाश इति । ईष-**रखरूपात्प्रच्युतिरेव मनोभाव इत्युत्पत्तिप्रकरणे बहुशो व्युत्पा-दितलादिति भावः ॥ २१ ॥ यथास्थितं सुस्थितोऽपि तत्तस्मा-न्मनोभावलक्षणादीषच्यवनदोषादन्यतां जगद्रपतां युगपदा-दत्ते । विपश्चितप्रसङ्गे योगिनां प्रबुद्धानां युगपत्सर्वार्थिकयोप-पत्ती वर्णितायां विपश्चितोऽपि प्रबुद्धा इति मन्यमानो रामः **शहरो-विपध्वित इति । प्रमुद्धानां सर्वार्थकियास्त्रातक्येण** पारतक्येण सिंहपृषादिदेइसंकटात्रसक्तः परसरानुष्रहोक्तिरसंग-तेति भावः ॥ २२ ॥ लया योगिनः कथं व्याप्य कर्माण कवते इति प्रष्टमिति मयात्र योगिनः प्रबद्धा वर्णिता नत विपश्चितोऽपि प्रबद्धा योगिन इतीति वसिष्ठः समाधत्ते-प्रबद्धा इति ॥ २३ ॥ लारप्रश्नसमाधानार्थे विपिधारप्रसङ्गरूपस्यान्त-रतः अन्तरेण योगिनस्ते कथिता नतु विपश्चितोऽपि प्रबुद्धा इसाशयेनेस्थंः ॥ २४ ॥ तर्हि ते किमसन्तमुढा नेसाह-बोघेति । द्वितीयभूमिकास्था इत्यर्थः । भाविमोक्षचिहानि विवेकारीनि । बन्धविकानि रागादीनि ॥ ५५ ॥ तया उक्तया तथाभृतया दोलायिततया धारणया योगिनो नतु परं गता योगिन इत्यर्थः ॥ २६ ॥ इदयादिप्रदेशेष्वभिदेवतायां चित्तनिरोधेन तत्प्रसादप्राप्तसिक्षिलाद्वारणायोगिनो नत् ज्ञान-बोगिनो येष्वविद्या नष्टेखर्थः ॥२०॥ ते ज्ञानयोगिनश्चेदविद्या कि किमर्थमवेश्वन्ते । तहर्शनेच्छैवैषामविद्यातच्छेदे लिश्वसि-

ये परं बोधमायाता येष्वविद्या न विद्यते॥ २७ किमविद्यामवेक्षन्ते ते तामरसलोचन। धारणायोगिनो होते वरेण प्राप्तसिद्धयः॥ २८ अविद्या विद्यते तेषां तेन तेऽतविद्यारिणः। अन्यस श्रुण हे राम जीवन्मुक्तशरीरिणाम्॥ २९ भवेद्यवहतावेव पदार्थान्तरवेदनम्। मोक्षोऽपि चेतसो धर्मश्चेतस्येव स तिष्ठति॥ 30 न देहे देहधर्मस्त् न देहाब्रिनिवर्तते। न कदाचन निर्मुक्त चेतो भूयो निबध्यते ॥ ३१ यक्षेनापि पुनर्वद्धं केन वृन्तच्युतं फलम्। देहस्त देहधमंण जीवनमुक्तिमतामपि॥ 32 गृहाते तहतं तेषां चेतस्यचलमेव तत्। मोक्षो हि न परश्चेयो धारणादिप्रयोगवत्॥ 33 आत्मसंवेद्य पवासी मध्वाद्यास्वादसीख्यवत् । सुखदः खर्यतो योसी स्वयं बन्धानुभृतिमान् 38 तन्मुकौ मुक इत्युक्तः स्वानुभूतिप्रदस्त्वसौ। अन्तःशीतलचित्तो हि मुक्त इत्यमिधीयते ॥ રૂપ

त्यर्थः । धारणापरिपाकान्ते देवताप्रसादजेन वरेण प्राप्तसिद्ध-यस्ते ॥२८॥ ते विपश्चितः अतद्विचारिण आत्मविचारग्रुन्याः। जीवन्मुक्तानां व्यवहारकाल एव देहादिभानं समाधौ तु विदे-हकैवल्यसाम्यमेवेति विपश्चित्र्यो विशेषान्तरं श्रावयति--अन्य-बेत्यादिना ॥ २९ ॥ व्यवहर्तां व्युत्थानकाले एव । कुतस्तेषां समाधावेव तथात्वं तत्राह-मोक्ष इति । यो हि बदस्तस्य बन्धनिवृत्तिमीक्षः । वित्तमेव बध्यते नात्मेति मोक्षोऽपि तद्धमी एव । अतः समाहिते चेतस्येव स मोक्षास्तिष्ठति न देहे देह-भावापने व्युधितं इत्यर्थः ॥ ३० ॥ न देहे इति पूर्वान्वयि । यस्त देहधर्मी देहभावाधीनी व्यवहारः स जीवन्मुकस्यापि देहात्र निवर्तते इति पदार्थान्तरवेदनोपपत्तिरिखर्थः । तर्हि जीवनमुक्तचेतोऽपि देहमावे बध्येतेति चेन्नेखाह-न कदाच-नेति ॥ ३१ ॥ वृन्तास्यतं पतितं फलं पुनः केन समर्थेनापि वृत्ते पूर्ववद्वद्वम् । न केनापील्यर्थः। अतएव मुक्तानाममुक्तानां च देहधर्मानुवृत्तिस्तुल्या न चित्तधर्मानुवृत्तिरित्याह-देह-हिलति ॥ ३२ ॥ अतएव ते परैजीवन्युका इमे इति न इत्तं शक्यन्ते धारणादिसिद्धास्य इत्तं शक्यन्त इत्यपरो विशेष इत्याह-मोक्ष इति ॥ ३३ ॥ मनोधर्मी मोक्षः कथमारमसं-वेदा इत्युष्यते तत्राह-आत्मसंवेदा इति । बन्धवन्मोक्षस्यापि मनोगतस्य साक्षिस्वानुभूत्यैव सिद्धेरिति भावः। यदि बन्ध-मोक्षी मनोधर्मी तर्हि कथमात्मा बद्धो मुक्त इति च शास्रे व्यवहियते तत्राह-सुखदुः सेरिति । खानुभृतिप्रदः असौ आत्मा तु मनोधर्मैः धुखदुः खेर्युतः सन् यो जीवः खयं बन्धानुभृतिमान् भवति स तस्य मनसो मुक्तौ मुक्त इति शाक्षे उक्त इखन्वयः ॥ ३४ ॥ नन्वेत्रं सति देहादयोऽपि मनोधर्माभ्यां ताभ्यां बद्धा मुक्ताश्रेति व्यवह्रियेरेखत्राह-

बन्धः संतप्तचित्तेति देहादेस्तन्न टर्यते। शरीरे कणशः कुले राज्ये वा विनियोजिते॥ ३६ ददतो हसतश्चेष जीवन्मुक्तमतेरिह। न दुःखं न सुखं किंचिदन्तर्भवति तत्स्थतम् गृह्वतोऽप्यनुभृतिस्तु तत्रवैपास्ति नापरे। हृदयन्ते पण्डिता भद्गा रूपान्तरमुपागताः॥ ३८ देहादिजीवन्मुक्तानां स्वभावान्न कदाचन । मृतोऽपि नैव म्रियते रुद्दश्रपि न रोदिति॥ ३९ विहसन्न हसत्येव जीवन्मुको महोदयः । वीतरागाः सरागाभा अकोषाः कोपसंयुताः 80 अमोहा मोहवलिता रहयन्ते तत्त्वदर्शिनः। इदं सुखमिदं दुःखमित्यादिकलनास्तु ताः ॥ प्रश अलं दूरगतास्तेपामङ्करा नभसो यथा। जगदातमा च नास्त्येव यस्यैकं सर्वमस्ति च ॥ ४२ सुखपुःखादि तस्येति वाग्व्योमविटपोपमा । अशोका एव शोचन्ते जीवन्मुक्ता जयान्विताः ४३ अच्छित्रा एकतद्भावा दश्यन्ते तत्त्वदर्शिनः। शिरःकमलजस्यो**चैः सामगायनतत्परम्** ॥ हरो नखेन चिच्छेद सुकुमारमिवाम्बुजम्। <u> शकोऽपि न पुनर्प्रह्मा जनयामास ति</u>च्छरः ॥ ४५

न्तरिति । आन्तरयोराह्मादसंतापयोरान्तरे एव चिदात्मन्यध्या-सोऽनुभवसिद्धोऽभ्यूपगन्तुं व्यवहर्तुं च युक्तो न बाह्ये देहादा-विति भावः ॥ ३५ ॥ संतप्तचित्तेति संधिरापैः । युक्ते मनसि शरीरधर्माणामिव मनोधर्मस्य मोक्षस्य शरीरे प्रतीतिप्रस-क्तिरित्याशयेनाह—शरीरे इति । कृते छिन्ने ॥ ३६ ॥ तित्थितं देहप्रयुक्तम् ॥ ३७ ॥ ननु पादे मे कण्टकदुःखं देहे में चन्दनपुखमिति देहेऽपि जनो मनोधर्मसुखदुःखादीन् गृ-हाति तत्कथमात्मन्येव तदध्यासस्तत्राह---गृहत इति । अय-च्छेदकतासंबन्धेन देष्टे भुखदुःखादीन् गृह्नतोऽपि जनस्य अहं मुखी अहं दुःखीत्यात्मन्येव तदनुभवपर्यवसानात्तत्रैवैषा कल्प-नास्ति न अपरे बाह्ये देहादी। अतएव हि आत्मन्यध्यासमन-भ्युपगच्छन्तो देहाद्यात्मतामिमानाद्वपान्तरमुपागताश्वार्वाकनै-यायिकसांख्यबौद्धकाणादादयः पण्डिता मोक्षोपायालाभाद्धमाः पराभूता दृश्यन्ते, वेदान्तिभिर्वा जल्पकथायां भगाः पराजिता दृरयन्त इति योज्यम् ॥ ३८ ॥ अस्तु वा बन्धस्य गुखदुःखा-देर्देहेऽपि कथंचिदनुभवो मोक्षस्य तु स नास्त्येव । जीवन्मुक्तैः समाधौ देहामाने स्फुटं तदनुभवाहेहभाने व्युत्थानकाले मन्दमध्यमञ्जानिमिस्तदनुभवाश्रेत्याशयेनाह—देहादीति । ख-भावाभित्याशरीरात्मस्वभावात् । तथाच श्रुतिः शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानं मत्त्वा धीरो न शोचति' इति । अतएव स मरणादिदेहधर्मैन युज्यत इलाइ--मृतोऽपीति ॥ ३९ ॥ मनोधर्मैरपि तेषामसंबन्ध-माइ-वीतरागा इति ॥ ४० ॥ ४९ ॥ जगदारमा जगरस्व-

व्योमैकतास्य चिद्योस्रो मुधा मूर्प्नेतरेण किम्। नेव तस्य कृतेनाथीं नाकृतेनेष्ट् कश्चन ॥ 88 यद्यथा नाम संपन्नं तत्तथास्त्वितरेण किम । हरो हरिणशावाक्षीमभीणशरतोऽश्रु च। धने वपुषि दुग्धाव्धिर्गुप्तामृतकलामिव ॥ 80 शकोऽपि रागितामेष न त्यजत्युत्तमाशयः। पञ्चेषुदाहसमये दृष्टा नीरागतागुणाः ॥ ય૮ नैव तस्य कृतेनार्थी नाकृतेनेह कथन । न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ છ૧ रागितैषास्त् मा घास्य किमरागितयान्यया । यद्यथा नाम संपन्नं तत्तथास्त्वितरेण किम्॥ 40 करोति कारयत्युचैर्म्नियते मार्यतेऽपि च। जायते वर्धतेऽजस्रं जीवन्मुक्तो जनार्दनः॥ ५१ न चाजवं जवीभावं त्यकुं राक्तोऽप्यसौ न तम् । तेन त्यकेन नैवार्थस्तस्य नैवाश्रितेन च ॥ ५२ तद्यथास्थितमेघास्तु इह इत्यस्तवासनम्। हरिनिरिच्छ पवास्ते शुद्धचिन्मात्ररूपभृत्॥ 4રૂ आत्मानमान्दोलयति कालकन्दुकतां गतम्। अजस्रं नित्यमादित्यो जगद्वहनभोङ्गणे ॥ 48 नच रोधयितुं देहं न समर्थी दिनेश्वरः।

रूपं चकारात्तनमूलम्हानं च यस्य नास्त्येव। यस्य सर्वमेकमेक-रसं सदस्ति च तस्य जीवन्युक्तस्य युखदुःखाद्यस्तीति वाग्व्योम्रो विटपाः शाखाः सन्तीति वागुपमेखन्वयः ॥ ४२ ॥ 'तत्र को मोहः कः शोक एकलमनुपरयतः' इति श्रुतेः शोकमो-हजयान्विताः ॥ ४३ ॥ शिरआयङ्गच्छेदेऽप्यच्छिमा एकत-द्भावा अद्वितीयात्मभावाः । क तदृष्टं तदुदाहरति-श्वर इति । गायनमित्यशित्यालाभावरछान्दसः ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अस्य कमलजस्य व्योमैकता आकाशसमता अतो मुधा मिध्याभूतेने-तरेण पश्चमेन मूर्जा कि प्रयोजनमित्यर्थः । तर्हि तस्य चतुर्भिः शिरोमिर्वा किमर्थं वेदोपदेशकरणं तत्राह—नैवेति ॥ ४६ ॥ संपन्नं प्राणिकभेवशादिति शेषः । इश्वरस्यापि प्राणिकमीजसारे-णैव व्यवहारो न स्वार्थ इत्याह—हर इति । अनुप्रदीतादक्षी-णशरतो मन्मथाद्धरिणशावाक्षीमधीके धत्ते । निगृहीतात्त निरु-पञ्जवसमाधित्रवृत्तेरानन्दाश्च च वपुषि धते । गुप्तामृतकलामिवे-त्यभयदृष्टान्तः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अर्थव्यपाश्रयः प्रयोजनलाभः ॥ ४९ ॥ अरागितया अन्यया रागितया वा कि को छाभः का वा क्षतिरित्यर्थः ॥ ५० ॥ स्वयमसुरनिष्रहादि करोति इन्द्रादिद्वारा कारयति । म्रियते अवतारसमाप्तिषु मरणमङ्गी-करोति । तदनुकूछैः शरभछुब्धकादिभिर्मार्थतेऽपि च ॥५१॥ तुं प्राणिकर्मदशोपगतं आजवं जवीभावं व्यवहारव्यप्रतां नच त्यक्तं शक्नोति ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ सूर्योदीनामपि निरिच्छाना-मेव प्राणिकमानुसारादेव खखाधिकारपालनमिलाइ--आत्मा-नमिति । आन्दोलयति भ्रमयति ॥ ५४ ॥ निर्वाणो जीव-

योग० १७२

योगवासिष्ठः ।

निरिच्छ एव निर्वाणस्तथाप्यास्ते यथास्थितम् ५५ चन्द्रोऽनुभवति व्यर्थमाकरूपं क्षयमक्षयम्। जीवन्मुक्ततया खिन्नो यथास्थितमवस्थितः॥ ५६ मरुत्तहव्यगीरीशवीर्यप्रासादिखेदिताम्। जीवनमुक्तो वहत्यग्निर्यथा स्थित्या समस्थितिः ५७ बद्गीभिर्विजिगीपाभिः रूपणाविव तिष्ठतः । जीवन्मुकावपि गुरू लोके शुक्रवृहस्पती ॥ 46 करोति जनको राज्यं जीवन्युक्तमना मुनिः। जगत्यामाजिपूत्रासु देहं जर्जरतां नयन्॥ ५९ नलमान्धातृसगरदिलीपनद्वषादयः । जीवन्युक्ताश्चिरं राज्यं चक्कराकुलिता इव ॥ ફ૦ व्यवहारे यथेयाइस्तथैव खलु पण्डितः। वासनावासने एव कारणं वन्धमोक्षयोः॥ ६१ विलप्रह्वादनमुचिवृत्रान्धकमुरादयः। जीवन्मुक्ताः स्थिति चक्कर्वीतरागाः सरागवत् ६२ तस्मादसत्त्वे सत्त्वे च रागद्वेषक्षयोदये। न मनागपि मेदोऽस्ति इखं प्रति स्वरूपिणि ॥ ६३ श्वानेनाकाशशास्त्रेन धर्मान्ये गगनोपमान्। विन्दन्ति जीवन्युक्तानां तेषां मेदमतिः कुतः ॥ ६४

न्मुक्तः ॥ ५५ ॥ आकर्षं कल्पान्तावधि । क्षयं राजयक्ष्मा-णम् ॥ ५६ ॥ मरुत्तस्य यज्ञे द्वादशवर्षपर्यन्तं गजज्जुण्डाप्रमाणा-जस्रनिपतद्भत्रधारादिह्व्यप्रासप्रयुक्ताऽजीर्णेन स्कन्दोत्पत्तिप्रसङ्गे गौरीशस्य गीरीसंगमे देवैविद्याचरणे स्थानात्क्षुभितस्य वीर्यस्य ब्रह्मणो नियोगाह्रासः पानं तत्प्रयुक्तेनान्तर्दोहेन, आदिपदाहे-वानां दिवानिशं हव्यैवहनदेवस्वापहरणाप्स्रनिलयनादिना खे-दिताम् ॥ ५७ ॥ विजिगीषामिः परस्परजयेच्छाभिः ॥ ५८ ॥ आजिषु युद्धेषु ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ एतेन जीव-न्मुक्तानां रागद्वेषाभासदर्शने Sपि मुक्तिसंदेहो निरस्त इति दशयनुपसंहरति—तस्मादिति । इखं जीवन्युक्तचिदाकाशं प्रति लक्षीकृत्य रागद्वेषयोः क्षये उदये वा चरिते नच सत्वे सुचरित्रत्वे असत्वे दुधरित्रत्वे वा खरूपिणि आविर्भृतस्व-क्रपवित मोक्षे मनागपि मेदः संशयो नास्ति ॥ ६३ ॥ नाहं ब्रह्मेति मेदमती सत्यां हि मुक्ती संशयः स्यात् सेव तेषां नास्तीत्याह-शानेनेति । आकाशो ब्रह्माकाशस्तद्वच्छुद्वेन चर-मसाक्षात्कारवृत्त्यात्मकशानेन ये धारयन्ति देहमनःप्राणादी-निति धर्मा जीवास्तान् गगनोपमानसङ्गाद्वयपूर्णब्रह्मभावेनाका-वासद्यान्विन्दन्ति रुभन्ते तेषां जीवन्युक्तानां मेद्ध्रमहेल्हा-नस्य नष्टलात्पुनर्भेदमतिः कुतः। कस्मान्निमित्तारसंभाव्येतेस्यर्थः ॥ ६४ ॥ तत्त्वसाक्षात्कारेण जीवजगद्भेदः कुतो बाध्यत इति चेत् भ्रान्तिमात्रसिद्धलादिलाशयेन तस्मावस्नुतां दृष्टान्तेन सा-धयति-भाखरमिति । शककोदण्डमिन्द्रचापः । मेघपटलस्थाः

सूर्यररमय एवेन्द्रचापात्मना दृश्यन्त इति प्रसिद्धम् ॥ ६५ ॥ ब्रह्माण्डलक्षणाः परमाणवः ॥ ६६ ॥ व्यक्ति प्रकटताम् । अ-जातमनुत्पन्नम् । अनिरुद्धमनष्टम् ॥६०॥ अप्यर्थे तथाशब्दः । जातमप्यजातमेव रुद्धं नष्टं च अरुद्धमनष्टमेव । जगस्यापि गृहीते नित्यकूटस्थासङ्गाद्वये वस्तुनि आद्यन्ताद्यप्रसक्तिरित भावः ॥ ६८ ॥ जगद्भाव इव तज्जन्मनिरोधभावोऽपि ब्रह्मणि कल्पनयोपपाद्यते इति चेदिष्टापत्तिः, कल्पनामात्रेण कौटस्थ्या-क्षतेरित्याशयेनाह--जातमिति । यथा स्तम्भो दाहमयो दार्वव तथा तस्य स्तम्भस्यैकदेशस्था शालभिका प्रतिमापि दार्वेवे-त्यर्थः ॥ ६९ ॥ अकल्पनं तु जगद्रह्मैवेति समाधिदृष्ट्या अनु-भनमारोपयेदिखाह्–समस्तेति । समाधिना समस्तकलनोन्मुक्तं निर्निदं च समं यदासनमात्ममात्रतयावस्थानं तन्मयं तन्मात्र-मेव तज्जगद्विद्यात् ॥ ७० ॥ असमाधावपि शाखाचन्द्रदर्शेने बुद्धिवृत्तेः शाखादेशायन्द्रदेशप्राप्तौ मध्ये यश्रिविषयं वृत्यभि-व्यक्तं संविदः खरूपं तन्मयं जगद्वियादिसाह-देशादिति ॥ ७९ ॥ तत्र ताहरो चिदात्मनि यद्वैतं विशेषरूपमैक्यं सामा-न्यरूपं नाभाति तद्पि तत्तस्माचिद्यकाशस्त्रभावादेव नैव ना-स्लेविति मन्ये मननेन निधिनोमि । तत् केवलं व्योम शून्य-मिति च यद्वाति तदपि च नैव । पूर्णानन्दैकरसे शून्यलस्याप्य-योगादिलार्थः ॥ ७२ ॥ ग्रन्यता पूर्णता च सप्रतियोगिका लोके याहशी प्रसिद्धा । यथा जलेन शून्यो घटो जलेन पूर्ण इति वा । सा आत्मनि न संभवति किंतु जगदिदं जगद्भावस्यास्यन्तात्र-सिच्या आकाशमेवेदमिति शून्यसम् । एवमात्मैवारमिन संस्थि-तमिल्यन्यनिरपेक्षं पूर्णलम् । यथा भविष्यत्पुरमिदानीं प्रतियो-

भास्वरं शक्रकोदण्डं यथा नानेव शून्यकम्। आभासमात्रमेवायं तथा रह्यात्मको भ्रमः॥ ६५ शक्रवापे यथा भान्ति नानावर्णा नभोक्रणे। तथा शून्यात्मका एव ब्रह्माण्डपरमाणवः॥ ६६ इदं जगदसद्भाति सदिव व्यक्तिमागतम्। अजातमनिरुद्धं च यथा शून्यत्वमम्बरे ॥ છ્ટ્ર साद्यन्तमप्यनाद्यन्तमशुन्यमपि शुन्यकम् । जगजातं तथा जातमरुद्धं रुद्धमेव च ॥ 86 जातं निरुद्धमस्त्येवं ब्रह्म ब्योमेच भासते। यथा दारुमयः स्तम्भस्तथा तच्छालभिक्षका॥ ६९ समस्तकलनोन्मुक्तं समं निर्निद्रमासनम् । यदेकान्तचिदाकाशं तद्विधासन्मयं जगत्॥ 90 देशादेशान्तरप्राप्ती यन्मध्ये संविदो वपुः। अनुन्मेषं चिदाकाशं तद्विद्यासन्मयं जगत्॥ ७१ तत्र यद्वैतमैक्यं तन्मन्ये तद्पि नैव च। तद्योम केवलं भाति मन्ये तद्यि नैव वा॥ ७२ जगदाकाशमेवेदमात्मैवात्मनि वा स्थितम्। भविष्यत्पुरवदृष्टमपि स्कारमपि स्कुटम् ॥ ७३

आकाराकोराविश्वदाशय दृश्यजातं मौनात्म तिष्ठति शिलाधनमेथ शान्तम्।

यन्नाम तस्य जगदित्यमिथां विधाय स्वारमैव मोहित इवायमहो नु माया ॥७४

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा० मो० नि उ० अवि० वि० जीवन्मुक्तकलनं नाम पश्चविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२५॥

षड्विंशाधिकशततमः संगः १२६

4

श्रीराम उवाच। अनन्तरं मुनिधेष्ठ कुर्यन्तः किं विपश्चितः। आसंस्तेषु दिगन्तेषु सद्वीपाब्धिवनाद्रिषु ॥ वसिष्ठ उवाच। शृणु किंवृत्तमेतेषां तात तत्र विपश्चिताम्। तालीतमालमालाख्यद्वीपादिवनचारिणाम्॥ क्रीअद्वीपगिरेरेको विपश्चित्पश्चिमे तटे। क्षेट्रेनाद्वितटे पिष्टः करिणा कमलं यथा॥ द्वितीयो नभसानीतो रक्षसा विश्वताङ्गकः। निश्चित्तो वाडवे वही तत्र भस्तत्वमागतः॥ तृतीयस्पेदशं देशं नीतो विद्याधरेण वै। गतोऽप्रणामकपितशकशापेन भसताम् ॥ चतुर्थश्चतुरं गच्छन्कुशद्वीपगिरेस्तटे। दुर्वारेण नदीकच्छे मकरेणाष्ट्रधा कृतः॥ इति ते पञ्चतां प्राप्ता दिक्युखेष्याकुलाशयाः। क्षये चतुर्ष चत्वारो भूपाला लोकपालघत्॥ अथ तेषां वदर्शासी व्योद्येव व्योमरूपिणाम्।

गिनिरपेक्षश्चन्यतया दृष्टं स्फारं दिकालादि यथा प्रतियोगिनिरपेक्षपूर्णतया स्फुटं दृष्टं तद्वदिल्यर्थः ॥ ७३ ॥ हे आकाशकोश इव विशदाशय राम, यदृत्यजातं शिलाधनप्रायमेव शान्तं ब्रह्मैव मीनं तिष्ठति नाम तस्य स्वात्मैव जगदिल्यमिपां विधायायं मोहित इव तिष्ठति, अहो तु माया अत्याक्ष्यंभूते-ल्यर्थः ॥ ७४ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे पञ्चविंशाधिकशततमः सर्गः॥१२५॥

मृतानामिह सर्वेषां स्वान्तः संसृतिविश्रमः । उत्तरस्य तमःखातवृद्धीनान्तोऽनुवर्ण्यते ॥ १ ॥

तेषु पूर्वादिषु दिगन्तेषु गतास्ते विपिश्वतः किं कुर्वन्त आस्तन्।। १ ॥ एतेषां किंद्रसं वृत्तान्तम् ॥ २ ॥ तेषां मध्ये एको विपिश्वत् कौंनद्वीपे प्रसिद्धस्य वर्षसीमगिरेः पिश्वमे तटे भागे करिणा अदितटे वप्रशिलायां कटेन गण्डेन दन्ताभ्यां पिष्टः संनूर्णितो सृत इत्यर्थः। वरप्रार्थनकाले 'आसिद्धगम्यमध्वानं मृत्युरस्माकमस्तु मा' इत्यवधिकरणात्तुत्तरं सिद्धागम्योऽध्वेत्यनुक्तमपि गम्यते। एवमभेऽपि बोध्यम् ॥ ३ ॥ दि्तीयो विपश्चिद्धस्ता युद्धे विक्षताङ्गको नभसा नभोमार्गेण नीतो बाढवे वही सामुद्दे निक्षिप्तस्तन्त्र भस्तत्व चागतः ॥४॥ नैद्धं देशमिन्द्रसमां गतः। तत्र च अप्रणामानमस्काराकर-णात्कृपितस्य शकस्य शापेन भस्मतां गतः॥ ५ ॥ चतुर्थो

संवित्पाक्तनसंस्काराद्व्योमात्मावनिमण्डलम् ॥ ८ सप्तद्वीपान्धिवलयं पुरपसनभूषणम्। सुरशैलिशरःपीठं ब्रह्मलोकशिरोमणिम्॥ चन्द्रार्कविम्बनयनं तारामुक्ताकलापकम्। विलोलमेघवसनं नानावनतन् रहम्॥ १० देहान्विपश्चितां संविद्दर्श चतुरोऽपि सा। प्राग्वत्कल्पपरावृत्तौ द्यौदिंगन्तानिवाततान्॥ ११ आतिवाहिकसंवित्तेस्तेऽव्योम्नि व्योमतात्मकाः। आधिभौतिकदेहत्वभावान्दहशुरप्रतः॥ १२ अस्यात्मकत्वे विद्येयं कियती स्यादितीश्चितुम्। चत्वारोऽपि प्रवृत्तास्ते संस्कारवशतः पुरः ॥ १३ **दृश्यदृशीनयोर्ज्वीमण्डलानुभवारुतेः** । निष्ठां द्रष्टमविद्याया भ्रेमुर्द्धीपान्तराणि ते ॥ १४ द्वीपसप्तकमुहङ्क्य समहार्णवसप्तकम्। विपश्चित्पश्चिमः प्राप घनभूमौ जनार्दनम् ॥ १५ तसादनुपमं ज्ञानं समासाद्य दिगन्तरे। तिसम्भेष समाधाने सोऽतिष्टद्वर्पश्चकम् ॥ १६

विपश्चित्कुशद्वीपगिरेस्तटे नदीकच्छे मकरेण अष्टधा शकलीकृतो मृत इखर्थः ॥ ६ ॥ इति अनया राखा ते चलारो भूपाला विपश्चितः पन्नतां मरणं प्राप्ता यथा क्षये कल्पान्ते चलारो लोकपालाः पञ्चतां यान्ति तद्वत् ॥ ७॥ अथ मरणानन्तरं तेषां संविद्योमात्मा भूला तस्मिन्त्र्योध्येव अवनिमण्डलं पूर्ववद्द-दर्श ॥ ८ ॥ अवनिमण्डलं कीहरां ददर्श तदाह-सप्तद्वीपे-खादि । सुरशैलो मेरुः स एव शिरःपीठमिवोन्नतो यस्य । ब्रह्म-लोकोऽत्र मेरुस्थं ब्रह्मगृहम् ॥ ९ ॥ १० ॥ कल्पः प्रलयस्तरप-राष्ट्रती सगीरम्भकाले । शौरिति तत्र प्रथमस्रष्टाः प्रजापतयो युग्रन्ते ॥ ११ ॥ अव्योष्ट्रयेव चिदात्मनि व्योमताप्रतीतिस्तदा-स्मकास्ते विपश्चितः आतिवाहिकसंवित्तेर्मानसप्रतिभासमात्रस्य विषये प्रातिभासिकदेहे आधिभौतिकदेहलप्रयुक्तस्थीत्यजाच्या-दिभावान् अप्रतो दृदशुः ॥ १२ ॥ अस्यैवं निश्चितस्य देहस्य अज्ञात आत्मा आत्मकस्तद्भावे सति इयं दश्यपृथ्व्यादिरूपा अविद्या कियती किंपरिमाणा स्यादितीक्षितुं पूर्वसंस्कारवशात्प्र-वृत्ताः ॥ १३ ॥ दर्यदर्शनयोर्मध्ये उर्वीर्मण्डलह्याया अनुभ-बाइतेरविद्याया निष्ठामियत्तया परिच्छिति द्रष्टुम् ॥१४ ॥ तेषु पश्चिमो विपश्चित् घनभूमी प्रागुक्तखणंघनायां भूमौ कीडन्तं जनार्दनं भाग्योदयवशात्प्राप ददर्श ॥१५॥ तस्माजनार्दनाद- १७

ततो देहं परिलाज्य चित्ते सत्तामुपागते । स तत्थाण इवाकादां परं निर्वाणमाययाः॥

अपमें जाने ब्रह्मविद्यां समासाद्य तस्मिन्नव दिगन्तरे राः समा-भाने समाधी वर्षपश्चकमतिष्ठत् ॥ १६ ॥ देहं देहभानं परि-खड्य बीतहव्योपाख्यानोक्तरीत्या चित्ते सत्तां सन्मात्ररूपताम । असत्तामिति वा च्छेदः । स विपश्चित् परं निर्वाणं कैवल्य-मायगै, तथा तस्य प्राण आकाशभावमायया तद्वत् । रुपलक्षणमेतत् षोडशकलानाम् । 'गताः कलाः पश्चदश प्र-तिष्ठाम्' इति श्रतेः ॥ १७ ॥ पूर्वः पूर्वदिकप्रशृतो विपश्चित् पर्वणि राकायां शीतांशोः पूर्णचन्द्रस्य श्रिम्बपार्श्व चन्द्रसंनिधा-वितियावत् । स्थितं स्वं वपुश्चिरमैन्दववदा तद्भावोदयं चिन्तय-मुन्नष्टदेही भूला चन्द्रपुरे स्थितः । नन्विद्मयुक्तम् । चतुर्विपि शारीरे बेको हि विपश्चिमीवो योगिकाय व्यहेरिवव विभक्त स्थितः । तस्य पश्चिमशरीरे विष्णप्रसादाज्ज्ञानेन निर्वाणप्राप्ती कोऽन्यः पुनः पूर्वविपश्चिच्छरीरं चन्द्रोपासनया चन्द्रलोकं या-यात् । नहोकसैव जीवस्य कचिन्मुक्तिः कचिद्वन्धश्च युगपत्स-मलसी । मुक्तिफलस्य पाक्षिकलपरिच्छिन्नलथोरापत्तेः । नर्च-कस्य देहचतुष्टयधारणेन जीवचतुष्टयभावो जीवान्तरोत्पत्तिर्वा युक्ता । आदे चतुर्धा विभागे पूर्वजीवस्य नाशापतेः । द्विती-येऽप्यभिनवोत्पन्नानां कामकभवासनादिवीजाभावेन संसाराना-पतः । नव भोगवैचित्र्यमिव बन्धमोक्षवैचित्र्यं कमंमिर्मागया बा अविरोधेन निर्वेदं शक्यं मोक्षस्याकर्मतन्त्रलादिश्रमायानि-वृत्तिश्रतिविरोधाचेति चेत् । सलम् । अयमत्राशयो भगवतो विशिष्टस्य रुक्ष्यते---न जीवो नाम ब्रह्माकाशादतिरिक्तः कथि-दस्ति । ब्रह्मैव हान्तःकरणोपाधिषु मायया विभक्तं तद्गतकाम-कर्मवासनानुसारेण संसरदिव विभाव्यमानं जीव इत्युच्यते । तत्रान्तःकरणानां वीपवद्वहृनां मेलने एकलमुपचयश्व भवति । एकस्य च योगदेवताप्रसादादिनिमित्तवशाद्यगपद्विरुद्धानंकदेश-भोग्यकर्मोद्भवाचानेकभावोऽपि भवति । तत्र यदा वहनां जीवानां तुष्यदेशकालभोग्यसमानकामकर्मवासनोद्धवस्तदा त-क्रोगाय मेलने एकजीवलमेव भवति यावद्विरुद्धदेशभीगहेतु-कर्मीद्भवं लाधवादेकमेव भोगायतनं शरीरं संपद्यते । यथा युधिष्ठिरजीवो धर्मस्य इन्द्रस्य च मेलनेनैको जीवः, यथा-बा भीमस्य वाध्विन्द्रयोर्मेलनेनैको जीवः, यथावा अर्जनजीयो द्वयोरिन्द्रयोर्नरस्य च मेळनंनैकः, यथावा नकुलसहदेवयो-रिन्द्रस्याश्विनोश्व मेलनेनेको जीवः । द्रौपद्याश्व नारायणी-लक्ष्मीगौर्यशमेलनेनको जीवः पश्चेन्द्रोपाख्यानादिपर्यालोचने प्रसिद्धः । यथावा अप्रेर्वायोधन्द्रशापादगस्त्यावतारे मेळनेनीको जीव इत्याद्यक्षम् । एकस्य जीवस्यानेकवोपाधिविमागे अनेक-जीवतापि । इन्द्रहन्तारं पुत्रं कश्यपादुर्भे प्राप्य अञ्चल्विन सप्ताया दितरेकजीवैकशरीरकस्य गर्भस्येन्द्रेण प्रथमं सप्तथा छेदने सप्तजीवास्तत एकेकस्य सप्तथा छेदने जातानामेकोनप-माशन्मरतामेकोनपद्माशस्त्रीयाः संपन्नाः । वटेक्षद्वीदीनां च

पूर्वः पर्वणि शीतांशुविम्यपार्श्वं स्थितं वपुः । चिन्तयंश्चिरमुत्रप्रदेहश्चन्द्रपुरे स्थितः ॥ १८

काण्डशास्त्राहरां प्रतिशासं प्रतिकाण्डं च प्ररोहेण जीवनदर्श-नादेकस्य नानावीयात्मनापाधिको विभागश्च प्रसिद्धतर एव । इत्थं च प्रकृतेऽपि चतुर्णा जीवानां यावत्समानकामकर्मोद्भवे एकदेहत्य। राज्यपरिपालनम् , विरुद्धभिन्नदेशभोग्यकर्माद्यद्भवे च देहादिविभःगेन दिगन्तरप्रसर्पणांमिति कल्पने वा एकस्पेव विपिधजीवस्थोपाधिविभागेन मस्तू अतुर्जीवभावोऽभूदिति कः ल्पने वा एकमुक्ती न सर्वमुक्तिप्रसङ्गः । नच बहुनां मेलनेनैक-जीवारम्भे तस्याभिनवस्य कर्माभावात्संसारानुपपतिः। आरम्भ-वादेनामिनवजीवोत्पत्त्यनभ्युपगमात् । गङ्गायमुनयोर्मेळनेनै-क्यापत्तावप्यभिनवगङ्गोत्पत्तिवद्धामावेन सर्वयं गङ्गेति प्रत्यभि-क्षया द्वयोरप्येकगङ्गात्मनावस्थानवदनादिजीवयो**रेवैक्येनावस्था**≉ ने वाधकाभावात् । उपाधिद्वयस्य मेलनेनैक्ये उपहितेऽपि मे-लनेनैक्यस्य सर्वप्रस्ययसिद्धलात् । एकत्वेनापि प्राक्तनकर्मभो-गसंभवात् । एवमेकस्य चतुर्जीवभावे प्रत्यभिज्ञया चतुर्णामपि प्राक्तनजीवादभेदेन तद्गतकामकर्मव।सनाराशीनां चतुर्धी वि-भागेन व्यवस्थितेः संसरणोपपत्तिस्तत्रैकस्य मुक्तावप्यपरस्य ज्ञानाभावात्संसरणोपपत्तिश्च । नचैवं मुक्तिफलस्य पाक्षिकलप-रिच्छिमलयोः प्रसङ्गः । व्यष्टिजीवानां मुक्ताविप समष्टिहिरण्य-गर्भजीवस्थाधिकारान्ते मुक्तिवदुपपत्तेः । नहि समध्यात्मनो हिरण्यगर्भस्य तत्त्वक्षानं व्यष्टीनां मुत्त्यभाने पाक्षिकपरिच्छित्र-मोक्षफलम् । यत्र वर्तमानेऽपि व्यष्टिसमध्यमेदेन मुक्तिसंकर-स्तत्र सांप्रतिके जीवभेदे सति प्राक्तनतदभेदमात्रेण सुक्तिसंक-रापादनस्यानवसर एव । 'भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः' इति श्रुतिरपि तत्तन्नीनोपाधिकृत्स्नवीजनिवृत्तिपरा । अन्यथा एकमु-क्त्रैव झानशून्यानामि सर्वजीवानां मुक्तयापत्तेः । 'तथो यो देवानां प्रत्यवुष्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम्' 'बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः' इत्याद्यनेकश्रतिस्मृति-वैयर्थ्यापत्तेश्च । नचेदानींतनमन्दाधिकारिणी भाविबहुतरजन्म-लम्यमोक्षप्रखादाया साधनानुष्टानं न स्थान्मभैकस्थानेकजीव-भावे कचिन्मोक्षेऽपि कचिद्वन्धानुषृत्यनिषृत्तिः शहया अनिर्मोक्षशहानपनयादिति वाच्यम् । मोक्षसाधनानुष्ठा-नप्रकृतेः 'खल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' 'नहि कल्याणकृत्किधिदुर्गति तात गच्छति' 'अनेकजन्मसंशिद्धसाती याति परां गतिम्' इति स्मृतित्रामाण्यानुरोधेनोत्तरजन्मसु नानाजीवारमना अविभागस्य विभागे वा सहैव साधनसंस्कारै-विभागारसवैत्र क्रमेणावश्यं ज्ञानोदयस्य वातुमानेन साधनातु-ष्टाने प्रवृत्युपपत्तेः । वर्णिता हि तथैव भिश्चजीवटोपाख्याने भिक्षोः साधनानुष्टानवतः प्रामादिकसंकल्पप्राप्तनानाजीवभाव-स्यान्ते शतरुद्रभावे सर्वेषां तद्विभागजीवानां ज्ञानावासिर्भुकि-थेति । नचैवं सर्वजीवमुक्तयनापत्तिरिष्टापतेः । मायादृष्ट्या मायानन्त्यस्प'न रूपमस्येह तथोपरुभ्यते नान्तो न चादिने च

दक्षिणः शाल्मलिद्वीपे राजश्रुत्सन्नशात्रवः। करोत्यद्यापि न सतो विस्मृतान्यविनिश्चयः॥ १९ उत्तरस्तरलास्फालकहोले सप्तमाम्बर्धा। सहस्रमेकं वर्षाणामुवास मकरोद्रे॥ २० मकरोदरमांसाशी मृते मकरनायक । मकरोदरतोऽब्धेश्च निर्गतो मकरो यथा॥ २१ ततोऽशीतिसहस्राणि योजनानां घनावनिम्। हिमकल्पजलाम्भोधेरुलङ्गय सुघनोदरीम् ॥ २२ प्राप्तो दशसहस्राणि योजनानां महामहीस् । सीवर्णी सुरसंचारसर्गण मृतवानसी ॥ ર્રે तस्यां भूमी च मध्ये च विपश्चिषाकितामगात्। उत्तमामन्निमध्यस्थं क्षणात्काष्ट्रमियान्निताम् ॥ २४ प्रधानदेवो भृत्वासौ लोकालोकगिरिं गतः। इत्यार्षे श्रीवा० वा० मो० निर्वा० उ० अवि० विप० विपक्षिजन्मान्तराचरणं नाम पहविशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

अस्य भूमण्डलतरोरालवालमिव स्थितम्॥ ર'૧ स पञ्चाशात्सहस्राणि योजनानां समुन्नतः। आलोकलोकाचाराढ्यो भाग पकोऽस्य नेतरः २६ लोकालोकशिरः प्राप्तं तारकामार्गसंस्थितम्। अधःस्थिता अपइयंस्तमुश्चनक्षत्रराङ्क्या ॥ २७ तसात्वदेशात्तत्यारे तमस्तस्य महागिरेः। चतुर्दिकं महाखातं नभः शृन्यमनन्तकम् ॥ २८ ततो भूगोलकोऽयं हि समाप्तो वर्तुलाकृतिः। नभःशून्यं महाखातं ततस्तिमिरपूरितम् ॥ २९ तत्रालिकजालतमालनभोन्तराल-नीलं तमो नच मही नच जंगमादि। नालम्यनं नच मनागपि वस्तुजातं किंचित्कदाचिदपि संभवतीति विद्धि॥ ३०

सप्तविंशाधिकशततमः सर्गः १२७

श्रीराम उवाच । भगवन्कथयैतनमे कथं भूगोलकं स्थितम्। कथमृक्षगणो याति लोकालोकः कथं गिरिः॥ वसिष्ट उवाच । यथा संकल्परचिता शिशोव्यीमनि तिष्ठति ।

संप्रतिष्ठा' 'निर्शेव सा जगन्मृतिस्तया सर्वमिदं ततम्'इत्यादि-स्मृतिसिद्धलात् । तत्त्वदृष्ट्या तु जीव एव नास्तिकस्य मुक्तय-नापत्तिः । नच 'अतोऽन्यदार्तम्' इति श्रुतिविरोधः । तस्याः श्रु-तेर्व्यक्तयार्तिमात्रेणाप्यपपत्तः प्रवाहानन्त्येप्यविरोधात् चरमव्य-क्तिनाशस्यैव प्रवाहनाशतया सर्वजीवसंसारचरमव्यक्तयप्रसिद्धी तन्नाशस्याप्रसिद्धेः । प्रकृते तु पश्चिमविषश्चित एकस्येव भगव-द्धक्तिपरिपाकोदितालदनुप्रहाज्ज्ञानलामो नान्येषामिति तस्यै-कस्यैव मुत्तयुपपत्तिरिति ॥ १८ ॥ अथ दक्षिणो विपश्चित्किम-करोत्तत्राह-दक्षिण इति । उत्सन्नाः शात्रवा येन तथाविधः सन् । सतः पारमार्थिकतत्त्वस्य लाभाद्विसपृतः अन्यविनिश्वयो बाह्यार्थनिश्वयो येन तथाविधस्त न ॥ १९ ॥ सप्तमाम्बुधी स्वाद्दमकरेण निगीणः सन् मकरोदरे वर्षाणां सहस्रमेकमु-बास ॥ २० ॥ तत्र किमाहारोऽभूतत्राह—मकरोदरेति ॥ २१ ॥ ततः हिमकल्पजलस्य स्वाद्दाम्भोधेरवशिष्टान्यशी-तिसहस्राणि योजनान्युहरूष सुघनं विशालमुदरं यस्यास्तथा-विधां सीवर्णी महामहीं प्राप्त इत्युत्तरेणान्वयः ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ अथ तस्यां भूमौ स विपश्चिनमृतः सन्नतमां नाकितां देवभावमगात् । यथाप्रिमध्यस्थं काष्ठं क्षणादिवतां गच्छति तद्वत् ॥ २४ ॥ असौ विषिव्यद्मधानदेवो देवश्रेष्टो भूला प्राक्त-नदिगन्तोपसर्पणवासनया ततो लोकालोकगिरि गतः । कीदशं ठोकालोकगिरिम् । उत्तरे आमेरुश्क्रमुत्रतखात्तरप्रायस्यास्य भूमण्डलस्य मुळे आलवालं सेतुमिव स्थितम् ॥ २५ ॥ अस्य वीटा चिन्मात्रवालेन कविपता भूस्तथाम्बरे॥ यथा तिमिरिकाक्षाणां केशचन्द्रादिवर्शनम्। चिदाकाशस्य सर्गादी तथा पृथ्वादिदर्शनम् ॥ ३ यथा संकल्पनगरं धार्यमाणं न दृश्यते । धार्यतेऽधार्यते मा च तथोर्व्यन्भवश्चितेः॥

लोकालोकगिरेः एकः प्रथमो भागः सूर्यालोकेन लोकानां जनानामाचारेण व्यवहारेण चाढ्यः, इतरसु न ॥ २६ ॥ लोकालोकगिरेरारोहणेन तच्छिरःप्राप्तं तं देवविपश्चितं अधःस्था जना नक्षत्रशङ्कया अपस्थन् ॥ २०॥ तस्य महागिरेः पारे परभागे तमः । चतुर्दिकं परितः महत् खातं परिखाकारो गर्तः । नम् इव सर्वप्राणिश्च्यमनन्तकमनेकयोजनविस्तृतम् ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे राम, तत्र तस्मिन् खाते अलिरिय कज-लमिव तमाल इव नभोन्तराले नीलं तम एवास्ति । नच मही नच जंगमादिप्राणिजातमस्ति । आलम्बनमाश्रयश्च नास्ति । नच किनिद्वस्तुजातं कदाचिदपि संभवतीति लं विद्वीलर्थः ॥ ३०॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकारो निर्वा-णप्रकरणे उत्तरार्थे पद्वविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

> भूमिनक्षत्रचकादेः स्थितिस्तरपरतो नभः। ब्रह्माण्डलपेरह्रन्द्वस्थितिश्वात्रोपवर्ण्यते ॥ १ ॥

प्रासिकको रामप्रधः । निराधारं भूगोलकं कथं स्थितम् । ऋक्षगणो नक्षत्रचकं च निराधारं कथं याति अमति । लदुक्तो गिरिध कथं लोकालोकः । तत्संज्ञानिमित्तं किमित्यर्थः ॥ ९ ॥ तत्राद्यप्रथस्य वसिष्ठः प्रथममुत्तरमाह—यंथेति । वीटा कन्दुकः । चिन्मात्रबालेन हिरण्यगर्भेण करिपता भूरपि तथा अम्बरे आकाशे तिष्ठति न पततीत्यर्थः ॥ २ ॥ मिध्यात्वाद्वा पतनसंभावना वारणीयंखाह-यथेति । तिमरमस्यास्तीति तिमिरिकम् । मलर्थीयप्रन् ॥३॥ धार्यमाणं केनचिदाधारेणा- यच्या यावदाभाति चिति चित्वात्स्वभावतः ।
तत्त्रथा तावदाभाति तत्र तत्र तदात्मकम् ॥ ५
तिमिराकान्तनेत्रस्य केशोण्ड्रकमिषाम्बरे ।
चिन्मात्रस्य महीगोलो यो भातः स तथा स्थितः६ कर्ष्यं वहन्त्यः सरितस्तद्धस्ताद्धताशनः ।
चिति चेत्स्वप्रवद्भाति तत्त्रथा तत्स्थतं भवेत् ॥ ७
तस्मात्पतन्ती भूभाता पतत्येयानिशं जगत् ।
उत्पतन्ती तु चिद्भाता तथा नानात्मिका भवेत् ८
स्तब्धभाता स्थिना स्तब्धा सालोका तु प्रकाशिनी ।
निरालोका निरालोकलोकानामात्मनि स्थिता ॥ ९
चिद्भानेका जुसारेण ताराचकं तथा मही ।
असदेव सदैवेदं भातीदमविखण्डितम् ॥ १०

धियमाणं न दृश्यते नानुभूयते । सांकल्पिकैरेव साम्भकुड्यादि-मिर्धार्यते यद्यपि तथापि सांकल्पिकस्तम्भादेरवस्तत्वानमा धार्यते न धार्यते च तथोव्येपीलार्थः॥४॥सर्ववस्तुस्वभावानां चिद्यीन-सिद्धिकलादधृतगोलकाकारेण चिता सिद्धाया भूमेस्तादश एव स्वभावो वातुमीयतामित्याशयेनाह-ययथेति । तदात्मकमिति वसुस्त्रभावस्तथेति तत्प्रकारस्त्रभावस्तावदिति तदायुर्नियतिस्त-भावः परिष्रद्वाते ॥ ५ ॥ केशचन्द्रादिदर्शनमिखत्र केशदर्शनं स्पष्टयति-तिमिरंति । तथा भ्रान्त्यैव स्थितः ॥ ६ ॥ नदा-बीनां निम्नवाहि लखभावादिविपरीतस्वभावोऽपि चेत् कचि-बिता भार्येत तर्धस्तीखेन प्रतिपत्तिः स्यान नास्तीति यथा खप्रे इलाइ—-ऊर्ध्वमिति । तासामधस्तादभोमुखज्वाली दुताशन-थिति चेत्सर्गादा भाति ततप्रतीतं वैपरीत्यमिदानीमपि स्थित-मेव भवेत्रास्थितम् ॥७॥ अतएव वादिनां भूमेरजसपतनोध्व-गमनभ्रमणष्ठवनादिकल्पनादि तत्तद्धस्यवच्छित्रचित्सत्तया सत्यै-वेखाशयेनोपसंहरति-तस्मादिति । तथाहि वादिनः केचि-द्भरतादजसं महाकाशे पतलेव भूः, आकाशस्याधोदेशावध्य-भावाच न कचिदस्याः पतनं विश्राम्यति, विपुलतरलाच तत्य-तनमस्मामिनं विभाव्यते । ज्योतिश्वकं चोभयतो मेहसंलग्ने भवद्वये बद्धं सहैव पतति। तच लघतरखात्पतनवशादेवानादि-कालाद्भमतीति मन्यन्ते । अन्ये तु 'योऽप्तु नावं प्रतिधितां वेद प्रत्येव तिष्ठति' इतिश्रतेर्भूम्याधारोऽर्णवोऽस्ति तत्रानिबद्धा नौरिव भ्रमन्त्येवास्ते भूः प्रलये च तंत्रेव निमज्जति सर्गकाले च जलतुम्बिकान्यायेनोध्वंमायातीति । अन्ये तु मन्यते । उपर्यधस्तात्परितश्च भूमेरपरिन्छिनं जलमेवास्ति । तत्रान्तिश्छ-द्वेषु भूमेः सप्तलोकाः पवनपूर्णान्तरालाः सन्ति । तत्रान्तरस्य बायोलीघवातिशयबलाञ्चलमम्बद्धम्बीफलमिव सततमुर्ध्व गच्छ-तीति । अपरे तु मन्यन्ते भूगोलात्परित आकाश एव । तस्य चानन्त्याद्भरुलान्मेरसंलप्रदेवदशा दक्षिणभागस्यवाधोभागला-इक्षिणत एव सदा पततीति। अन्ये लासुरा वादिनः पातालमेवो-ध्वेंदेशं मन्यमाना देवाभिमतागूध्वेदिशमध इति कल्पयन्त उत्तरत एव गुरुलाद्धः पततीति मन्यन्ते । अन्यैव रीखा ।

आलोकालोकमेवाथ नभःखातं ततो महत्। तम एकार्णवाकारं स्थितं तत्र कचित्कचित्॥ ११ दूरत्वादक्षचकस्य करालत्वान्महागिरेः। कचित्तमः कचित्तेजस्तत्रैयाचत्वरेऽपि च॥ १२ लोकालोकगिरेः पारे स्थितावाकाशमण्डलात्। दशदिकं सुदूरेण ऋक्षचकं विवर्तते॥ १३ आपातालदिवोनद्रमुक्षचकं तदम्बरे। दशदिकं प्रसरति पतकृष्वीहतेऽभितः॥ १४ भूलोकमेव पातालयुतं नक्षत्रमण्डलम् । पर्येति लोकालोकान्ते नान्यश्चित्कल्पनाश्च तत् १५ सलोकालोकभूलोकद्विगुणात्खादनन्तरम् । पकाश्रोटस्य भिस्सेव स्थितं नक्षत्रमण्डलम् ॥ १६

प्राच्यपाश्वात्या अपि स्वस्वदेशमेवोर्ध्व मन्यमानाः प्राचीप्रती-च्योरिप पतनं मन्यन्ते । अन्ये तु ज्योतिश्वकं न भ्रमति किंतु भूरेव खस्थाने श्रमति तद्वयमविभावयन्तो नौस्थास्तरुचलनमिव ज्योतिश्वकं भ्रमत्पर्याम इति । अपरे तु भूमिरेव सर्वतोऽध-स्तस्याः परितः स्थितानां जनानां दृष्ट्या तत्तन्छिरोदेशोपल-क्षिताः सर्वा एवोध्वेदिशः । तत्र गुरुवायस्यामधोदिशि पृ-थिव्याः पतनं संभाव्येत सेव निर्भारितरूपा नास्तीति विनि-गमनाविरहातकापि न पततीति खस्थाने स्थिरेवास्ते इति । तेषां तेषां वादिनां खखबुद्धावच्छित्रचित्सत्तया सर्वे सत्यं खतस्तु न किचिदपि सत्यमिति भावः। तथा तत्तद्भानानुसारेण विरुद्धनानात्मिकेव भवेत् ॥ ८ ॥ साब्धा निधलेति भाता स्तब्धेव । दिवारात्रं ये प्राणिनोऽप्रतिदृतचक्षुषस्तदृष्ट्या सदैव सालोका प्रकाशवती । एवं निरालोकलोकानां जात्यन्धानां दशा सदैव निरालोका । आत्मनि बुद्धवन्छिन्नचिति ॥ ९ ॥ एवं सदसद्वादिनां चिद्धानानुसारेण तथापि ताराचकं मही च तथैव भवतीत्याह-विद्धानेति ॥ १० ॥ प्रश्रद्वयोतरे समाप्ते तृतीयप्रश्नोत्तरमारभते-अलोकालोकमिति । इयं भूः आलो-कालोकं लोकालोकमभिव्याप्य स्थिता तावत्येव । अथ तदन-न्तरं नभोरूपं खातं गतीं बलयाकारस्तत्र च महत्तमस्तत्रैकार्ण-वाकारम्। क्रचित्कचिदित्युक्तया तच्छुन्नद्वयान्तराल ईवत्सौरालो-कप्रवेशोऽप्यस्तीति गम्यते ॥ ११ ॥ तस्य लोकालोकनामप्र-वृत्तो निमित्तमाह—दूरलादिति । ऋक्षचकस्य नक्षत्रचकस्य खातात्परतः परिवर्तिनः अतिदृरलात् गिरेश्व कराललात्कचि-देकभागे तमः । चलरशब्देनाधिलका गोण्यावस्योच्यते । आचलरेऽधिलकापर्यन्ते क्रियद्वागे तेजोपि चेति स लोकालो-काख्य इत्यर्थः ॥१२॥ दूरलमेव दर्शयति —लोकालोकेति । विवर्तते परिश्रमति ॥ १३ ॥ अध ऊर्ध्वं च कियद्विस्तृतं तत्राह्-अापातालदिव इति । सर्वोध्वीद्भवादते अन्यत्सर्वं पत-द्धमत् ॥१४॥ इदं नक्षत्रमण्डलं पातालसहितं कृत्स्रं भूलोकं पर्वेति प्रदक्षिणीकरोति । सच चित्कल्पनादन्यम् ॥ १५ ॥ पकस्याक्षोटफलस्य भिस्सा बीजसारावरणभाग इब ॥ १६ ॥

ब्रिगुणा नभसस्तसादशचक्रस्य पुष्रता । दशदिकं विसरतो विल्वत्वक्सदशस्थितेः॥ १७ संविद्धनस्य कचनं याददां कल्पनात्मकम्। यदित्थं संनिवेशेन नन्वियं जागती स्थितिः॥ नक्षत्रचक्राद्विगुणं ततोऽन्यद्विद्यते नभः। तच कचित्रकाशाख्यं कचित्सान्द्रतमोमयम् ॥ १९ पर्यन्ते तस्य नमसः स्थितं ब्रह्माण्डखर्परम्। एकमुर्ध्वे परमधो गगनं मध्यमेतयोः॥ २० इत्यार्पे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा० दे० मो० नि० उ० अ० वि० भूगोळनिर्णयो नाम सप्तर्विशाधिकशततमः सर्गः ॥१२७.।

योजनानां कोटिशतं पुष्टं वज्रहढं च तत्। स्थितं संवेदनमयं व्योक्ति व्योममयात्मकम् ॥ २१ सर्वदिकं महागोले नभिस स्वर्कतारकम्। किमत्रोध्वेमधः किं स्थात्सर्वमुर्ध्वमध्य वा॥ २२ पतनमुत्पतनं गमनं स्थितं चित इति स्फुरितं नतु घस्तु तत्। पतनमस्ति न चोत्पतनं न वा गमनमागमनं स्थितमित्यपि॥ २३

अष्टाविंशाधिकशततमः सर्गः १२८

वसिष्ठ उषाच। अस्पदादेर्जनस्पैतत्प्रत्यक्षं नानुमानिकम्। द्युद्धवोधशरीरेण नाधिभौतिकरूपिणा॥ पतदस्मज्ञगत्स्वप्ने नान्येषु कथितं मया । अन्येष्वस्ति जगत्स्वप्तेष्वेवमन्यापि च स्थितिः॥ २ जगत्स्वप्रेषु चान्येषु संस्थानकथनेन किम्। नद्यापयोगिकादन्या कथा भवति घीमताम् ॥ सर्वपामुत्तरे मेरलोकालोकश्च दक्षिणे। येपामित्यनुमादोपभूतीचे तेन पण्डिताः॥ प्रत्यक्षमेतदुरनेपां यत्र तेऽन्ये जगद्भमाः।

तसाङ्ग्रहोकद्विगुणात्रमसः ऋक्षचकस्य द्विगुणा पुष्टता अन्तर्द-रुविस्तारः ॥ १७ ॥ संविद्धनस्य शवलत्रह्मणः सत्यसंकल्पा-रमकं यादशं कचनं तदेवेरथं सिष्ठवेशेन ब्रह्माण्डतदवयवरूपेण जागतीस्थितिरित्यर्थः ॥ १८ ॥ ततः परतः पूर्वोक्तनभसोऽन्य-भ्रमो विद्यते ॥ १९ ॥ २० ॥ तदन्तर्देलपरिमाणमाह-योज-नानामिति । संवेदनमयं कल्पनामात्ररूपं परमार्थतो व्योमवि-कारपत्रीकृतभूतकार्यभूतं व्योम चिदाकाशमेव ॥ २१ ॥ महा-गोलाकारे नभसि खर्कतारकं ज्योतिश्वकं सर्वदिकं तिष्टति। एवंसति किमन्न अस्मिन् ज्योतिश्वके किमूर्ध्वं किमधः स्यात्, यदि स्यालिहिं सर्वमूर्ध्वं सर्वे चाधः । नशब्दात्सर्वे दक्षिणोत्तर-पूर्वपश्चात्तोऽपि वा स्यादिसर्थः ॥ २२ ॥ सर्ववस्तूनां पतनं उत्पतनं तिथेगगमनं स्थितम् । एकत्रावस्थानं यद्भाति तश्वितः प्रत्यगात्मनः स्फुरितं प्रतिभानमात्रमेव । वस्तुतस्तु न पतन-मस्ति न चोत्पतनमस्ति नवा गमनमागमनं स्थितमवस्थितं किंचिदिलप्यस्ति । अद्वयलविरोधादिलर्थः ॥ २३ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतास्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सप्तविभाधिकशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

> तमः अञ्चं समुत्तीर्थं ब्रह्माण्डावरणानि च । विपश्चितोऽत्र अमणमविषायामुदीर्यते ॥ १ ॥

इदं ज्योतिश्वकतस्परिमाणादिकं लया केन प्रमाणेनावगतं तत्राह-अस्मदादेरिति। जनस्य योगिजनस्य योगज्ञानाभ्यास- नास्माकं विषये ते हि तथा संस्थानशोभिनः॥ ५ सर्वेपामुत्तरे मेरलीकालोकश्च दक्षिणे। सप्तद्वीपनिवासानां नान्येषामिति निश्चयः॥ ફ प्रकृतं शृणु हे राम तद्रह्माण्डकवाटकम्। यत्प्रमाणं ततो वारि वाह्ये दशगुणं स्थितम्॥ S तद्रह्माण्डकवाटं तु तृणं तृणमणिर्यथा। धत्ते वारि स्वभावेन नित्यं कल्पकरह्मवत्॥ 4 सर्वेषामेव भाषानां स्थितः कल्पकरत्नवत् । सर्वदा पार्थिवो भागस्तेनात्रेते पतन्त्यसम् ॥

शोधितत्वाच्छुद्धो यस्तत्त्वबोधः सर्वजगत्तत्त्वसाक्षात्कारस्तत्प्र-धानेनातिवाहिकशरीरेण नत्वाधिर्मातिकस्थूलरूपेणेत्यर्थः ॥**१॥** एतद्यन्मया लोकालोकज्योतिश्वकादिसंस्थानं कथितं तदस्य-हुष्टे जगरस्त्रप्ते प्रसिद्धं कथितमन्येषु तु न कथितम् । अन्येषु ब्रह्माण्डान्तरलक्षणेषु जगत्स्त्रप्रेष्त्रप्येवमेवोत्सर्गतः स्थितिः क्र-न्विदन्यादृश्यपांत्यर्थः ॥ २ ॥ तर्हि तदपि वद तत्राह्—जगिदिति ॥ ३ ॥ हे पण्डिताः, तेन उत्सर्गेण तु सर्वेषां ब्रह्माण्डानां मध्ये सर्वद्वीपसमुद्राणामुत्तरे भेठलीकालोकस्तु दक्षिणे इति अशेषभूतीचे येषां जिज्ञासा तेषामनुमानमनुमा प्रवर्ततामिखर्थः ॥ ४ ॥ ये लवान्तरविशेषास्ते तत्रत्यानामेव प्रसक्षा नात्र-त्यानामित्याह-प्रत्यक्षमिति ॥५॥ अन्येषां ब्रह्माण्डाद्वहिर्गता-नाम् ॥ ६ ॥ ब्रह्माण्डस्य कवाटकं प्रागुक्तखर्परद्वयं यत्प्रमाणं प्रागुक्तशतकोटियोजनप्रमाणं ततः परं बाह्य दशगुणं वारि जलावरणं स्थितम् ॥ ७ ॥ ननु तस्य क आधारस्तत्राह्—त-दिति । तद्रद्भाण्डकवाटमेव पार्थिवभागतया आकर्पणशक्तया तद्वारि धत्ते । यथा तृणमणिस्तृणचुम्बकमणिविशेषस्तृणमाकर्ष-णशक्तिरूपखभावेन धरो । यथावा कल्पवृक्षोऽर्थिवाञ्छितानि रल्लानि धत्ते तद्वदिखर्थः ॥ ८ ॥ तर्हि मेघनिर्भुक्तजलकरका-दयः समुद्रनयादिषु न पतेयुर्जले आकर्षणशक्त्यभावातिकतु द्रादपि तीरभूमिमेवोपसत्य तत्र पतेयुस्तत्राह—सर्वेषामिति ।

१ खर्गतारकं इति मूले व्याख्यायां च पाठ:.

जलाहरागुणं बाह्य स्थितं तेजो निरिन्धनम्। आकाशविशदं शान्तस्तब्धज्वालोदरोपमम् ॥ १० तसाहशगुणो वाह्यं संस्थितो वायुरायतः। वायोर्दशगुणं वाहो व्योम तिष्ठति निर्मेलम् ॥ ११ ततः परतरं शान्तं ब्रह्माकाशमनन्तकम्। न प्रकारां नच तमो महाचिद्धनमव्ययम्॥ १२ अनादिमध्यपर्यन्ते तस्मिन्ब्रह्ममहाम्बरे। महाचित्राद्धि सर्वात्मन्ययोनिर्वाणरूपिणि ॥ १३ ब्रह्माण्डानां तादशानां दूरे दूरे प्नःपुनः। मिथोलक्षाणि लक्षाणि कचन्त्युपरमन्ति च ॥ १४ न किंचित्कचयत्वत्र समे कचनरूपिणि। तारुद्धायं तथारूपं तदात्मन्येव संस्थितम् ॥ १५ एप ते कथितः सर्वी दृश्यानुभवनक्रमः। अधुना शृणु किंद्रूनं लोकालोके विपश्चितः॥ १६ स्वभ्यस्तपूर्वसंस्कारो विलसन्निश्चयेरितः। लोकालोकगिरेर्मूईस्तमः श्वभ्रं पपात सः॥ दद्र्भा तत्र शिखरप्रतिमधिहगैर्यपः। विकर्तितं मनोदहं प्रसृतं च स्वचिन्तिते॥ १८ देशस्य तस्य पुण्यत्यादेहं तद्यातियाहिकम्। आधिभौतिकताबोधं नानयन्निर्मलादायः॥ १९ तावनमात्रप्रवीधोऽसी नाधिकं वोधमागतः।

एते वृष्टिजलादयः ॥ ९ ॥ प्रागुक्ताद्रवाण्डावरणजलाद्वाह्ये ॥ १० ॥ ११ ॥ महाकाशमविदाशवलबद्याकाशम् । चिद्धनं प्रज्ञानघनं सुषुप्तिकल्पम् ॥ १२ ॥ अयोधनवद्च्छिद्रनिर्वाणरू-पिणि ॥ १३ ॥ कचन्त्युद्धवन्ति । उपरमन्ति प्रलीयन्ते ॥१४॥ कि तत्कारणं यद्रह्माण्डलक्षाणि कचयति तत्राह-न किचि-दिति । किंतु तद्रहीनात्मनि अधिराया ताहडायमेवावस्थितम् ॥ १५ ॥ प्रश्नोत्तरमुपसंहत्य प्रकृतं श्रावयति-एष इति ॥ १६ ॥ सुष्टु अभ्यस्तः पूर्वी दिगन्तदर्शनोद्योगसंस्कारी येन तथाविधनिश्वये निरतो विपश्चित्तस्य लोकालोकगिरेर्भूर्धः शिख-रात्परतः प्रागुक्तं तमःश्वन्नं पपात विवेश ॥ १७ ॥ तन्न च निजं स्वं देवनपुः पर्वतशिखरप्रतिभैमेहसरैविंहगैर्रधादिमिर्वि-कर्तितं विच्छिद्य भक्षितं ददर्श । तदनन्तरं च खिचिनितते दिगन्तदर्शन मनोदेहमेव प्रश्तं ददर्श ॥ १८ ॥ तस्य मरणप्र-देशस्य पुण्यलात्स्यूलवेहभावगोचरसंस्कारोद्वोधकचतुर्विधभूत-श्रामादिश्रन्यलादितियावत् । तन्महिश्रा तदातिवाहिकं देहमा-धिभौतिकताबोधं न अनयत् । आतिवाहिकमावं न विसस्मा-रेति यावत् ॥१९ ॥ तावन्मात्रः स्थूलदेहातिरिक्तात्ममात्रगो-चरः प्रबोधो यस्य तथाविधोऽसी विपश्चित् ततोऽधिकं देहन-यातिरिकशुद्धचिन्मात्रात्मभात्रगोचरं बोधं नागतः। ततो दिगन्तदर्शनलक्षणं कार्यमसितमपर्यवसितं चिन्तयिला प्रकृते-इपसर्पणसभावस्य हितः अनुकूलो बभूव नोपरत इत्सर्थः ॥ २० ॥ नन्वदेहं चित्तं वहिः कथं प्रसरति गच्छति । तद-

चिन्तयित्वासितं कार्यं बभूव प्रकृतेर्हितः॥ श्रीराम उवाच। अदेहं प्रसरतेतिश्चरं कार्यं कथं मुने। आतिवाहिकसंवित्तेर्वोधः स्यात्कीदशोऽधिकः वसिष्ठ उवाच। संकल्पपथिकत्वेन यथान्तःपुरवासिनः। इदं मनः प्रसरति तथास्य प्रसृतं मनः॥ २२ भ्रमे स्वप्ने मनोराज्ये मिध्याज्ञाने कथाश्रुतौ। यथा मनः प्रसरति तथा तत्प्रसृतं मनः॥ २३ पतन्ति तु शरीरं तदातिवाहिकमुच्यते । आधिभौतिकधीर्भाति विस्तृत्यात्रैव कालतः॥ २४ ते तदान्तर्धिमायाने सप्रजासमोपमे। आधिभौतिकदेहेऽसिक्छिप्यते त्वातिवाहिकः आतिवाहिक एपोऽङ्ग निप्णं प्रविचार्यताम्। चिन्मात्रव्यतिरेकेण यावदत्रान्यद्क्ति नो॥ २६ देशाहेशान्तरप्राप्ती यन्मध्ये संविदो वपः। चिन्मात्रसास्य तद्र्यमनन्तर्येकरूपिणः॥ २७ क ब्रैतं कच या द्वेपः क रागादि तु कथ्यताम् । सर्वे शिवमनाद्यन्तं परो वोध इति स्मृतः॥ 26 निर्मनोमननं शान्तमासितं बोध उत्तमः। आतिवाहिकदेहस्थो न तं बोधमुपागतः॥ २९

भ्युपगर्मेषि पूर्व देवशरीरेणापि नभोवःमैन्यप्रतिहतगतिः स आसीत्ततस्तकाशेऽपि मनोदहेन ननोमार्गे गच्छतस्तस्य पूर्वदेन हान्मनीमात्रमयदेहस्य को विशेषोऽभूदिति रामः पृच्छति—अ-देहमिति ॥ २१ ॥ तत्राद्यप्रश्रस्योत्तरमाह—संकल्पेत्यादिना । नहि संकल्पस्य पथि प्रसरी देहप्रसरमपेक्षते इत्यर्थः ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ द्वितीयस्थोत्तरमःह---पतन्तीति । तुशब्द आधिभी-तिकापेक्षया विशेषद्यातनार्थः । यस्मिख्न देहे ते श्रमस्वप्रमनो-राज्यादयः पतन्ति प्रसरन्ति तच्छरीरमातिवाहिकमित्यर्थः । अत्रातिवारिके देह एव तद्भावविस्मृत्या आधिभौतिकताबुद्धि-रुदेतीति प्रागुक्तस्यानुवादो विशेषत्रदर्शनार्थः ॥ २४ ॥ कदा तर्हि आधिभौतिकभावनिष्टस्या आतिवाहिकपरिशेषस्तत्राह्— ते तदेति । ते इति पदं पूर्वक्षोकान्वयि । विचारेण आधिभी-तिकश्रमे अन्तर्धिमायाते सति तदा आतिवाहिकः शिष्यते ॥ २५॥ आतिवाहिकदेहनियुत्या चिन्मात्रपरिशेषेऽपि विचार-एवोपाय इलाशयेनाह--आतिवाहिक इति । निपुणं 'तेजसा सोम्य शुरोन सन्मूलमन्बिच्छ' इति श्रुतिदर्शिततत्त्वदर्शनोपायेन ॥ २६ ॥ निर्विषयचिनमात्रा प्रसिद्धिसु प्राम्बहुशो वारितैवे-त्याशयेन प्राग्यहुशः पठितमेव श्लोकार्धं पुनः पठति—देशा-दिति । तद्रूपं प्रसिद्धमेवेति शेषः ॥ २७ ॥ तत्रच द्वैतह्रपस्य विषयस्य तत्प्रयुक्तरागद्वेषादेश्व प्रसक्तिरेव नास्तीत्पाह-किति ॥ २८ ॥ यत्रिर्गतमनोमननमासितमवस्थानं स एवोत्तमो बोधः । आतिवाहिकदेहस्थो विपश्चित्तु तं बोधं नोपागतः किंद्र

विपश्चित्तद्विबोधोऽसी ददर्श विसरन्मनः। आतिबाहिकबोधेन गर्भवासोपमं तमः॥ ३० तमसोऽन्ते विरिञ्चाण्डकवाटच्छेदभूतलम्। वजसारं हेममयं कोटियोजनविस्तृतम् ॥ ३१ तवृन्ते प्राप सलिलं तसाद्रपृगुणं ततः। कपाटभूम्यैव समं स्थितमर्णवपृष्ठवत् ॥ 32 तमतीत्य ततः प्राप नेजोऽकंगणभीषणम्। प्रलयाग्निघनज्वालापिण्डकोटरभास्वरम् ॥ 33 दाहरोकादिमुक्तेन वपुषा मानसेन तत्। तत्र गच्छन्स बुबुधे वहनं पूर्ववासितम्॥ 38 उद्यमानो विवेदासावात्मानं त्वातिवाहिकम्। चित्तमात्रात्मनः स्वस्य किमिवोद्यत इत्यपि॥ 34 इति बोधेन घीरात्मा तं तताराऽनिलार्णवम्। प्राप तद्विततं व्योम तसाइशगुणं स्थितम् ॥ 36 तवतिक्रम्य स प्राप ब्रह्माकाशमनन्तकम्। यत्र सर्वे यतः सर्वे यत्र किंचित्र किंचन॥ ३७ मनसा प्रभ्रमंस्तत्र दूराहरतरं ययौ। तेन इष्टं च पृथ्व्यापस्तेजो वायुस्तथा जगत्॥ ३८ पुनः संसाररचनाः पुनः सर्गाः पुनर्विदाः । इ० श्रीबा० वा० मो० नि०उ० अवि०विप०नद्मगीतासु नद्माकाशविपश्चिज्ञगचन्द्रदर्शनं नामाष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥१२८॥

पुनर्महीश्ररा ब्योम पुनर्देवाः पुनर्नराः ॥ **३९** पुनः पञ्चमहाभूतपर्यन्ते ब्रह्म निर्घनम्। पुनस्तत्र जगन्त्युद्धैः पुनः सर्गाः पुनर्दिशः॥ Ro ब्रह्माकाशस्त्रतः सर्गाः पुनरत्ये त्वनिष्ठिताः । इत्यसौ विहरन्दीर्घकालमदापि संस्थितः॥ ध्र स्वनिश्चयाचिराभ्यस्तान्नासौ विरतिमेति हि। अन्तो नैवास्त्यविद्यायाः सा हि ब्रह्मैव सत्यता ४२ वस्तुतो नास्त्यविधेह ब्रह्मण्यविकलात्मनि । इदं इइयमविद्ययमित्यातमेष विकासितः॥ 83 यद्यथा जात्रति स्वग्नं इष्टं द्रक्ष्यसि पश्यसि । तत्तथा ब्रह्म सच्छान्तमासीदस्ति भविष्यति॥ 88 घनतमः प्रविद्योकनचक्रकं क्रमजगत्प्रतिभानभिदं महत् । परतया प्रतिभात्मतयानया नच सदङ्ग न वाष्यसदाकृति॥ 84 तेष्वेव तेष्विय च तेषु तनूतरेषु ब्रह्मोदरेषु चिरदूरतरं जगत्सु । सोऽद्याप्यसंविदिततत्त्वतया तयोधैः खण्डेषु रङ्कारेय राघव बंभ्रमीति ॥ સદ

एकोनर्त्रिदादधिकदाततमः सर्गः १२९

श्रीराम उवाच । तयोईयोर्भुनिश्रेष्ठ संपन्नं किमतः परम् ।

तद्विबोधः आतिवाहिकदेहमात्राःमबोधवान् । अत एवाप्रे विसरन्मनो ददर्शेति परेणान्वयः ॥ २९ ॥ गर्भवासोपमं त-मध दर्श ॥ ३० ॥ विरिधाण्डस्य कपाटप्रायो यर्छेदः खण्ड-स्तद्भूपं भूतलं, संपुटविभागसंधिभूतमिति थावत् ॥ ३१ ॥ तदु-त्तरं तदावरणप्राप्तिमाइ—तदन्ते इति । कवाटभूम्यैव समं तुल्यतया द्वीपान्ते अर्णत्रप्टप्रविस्थितम् । जलस्य निराधाराव-स्थानायोगादण्डकपारुखण्डमाधित्य तद्वदेव विभज्य स्थितमिति भावः ॥ ३२ ॥ तैजसादावरणस्य तु न जलवदाधारापेक्षेति <mark>संधि</mark>विभागाभावात्पिण्डकोटरमिव भास्त्ररमित्युक्तिः ॥ ३३ ॥ तत्र तैजसावरणे गच्छन् स विपश्चित्तदुत्तरं वाय्वावरणे वहनं बुबुधे ॥ ३४ ॥ तच्च तस्य स्त्रप्रकल्पनाप्रायं न वास्तविमिति बुबुधे इति पदस्य तात्पर्यमित्याह—उह्यमान इति ॥ ३५ ॥ तादशवेदनबलादेव वाय्वावरणतरणं तस्येत्याह-इतीति ॥३६॥ ब्रह्माकाशमविद्यासबलब्रह्माकाशम् ॥ ३७ ॥ दष्टं संस्कारवशा-दिति भावः ॥ ३८ ॥ पुनर्नरा दष्टा इति विपरिणामेनानुष-ज्यते ॥ ३९ ॥ निष्ठितं घनं निर्घनम् ॥ ४० ॥ अनिष्ठिता अव्यवस्थिताः ॥ ४१ ॥ निश्चयाज्ञगत्सत्यतानिश्चयात् । स-खता सत्यसभावः पर्यालोचितथेत्सा ब्रह्मेव ॥ ४२ ॥ तत्कृत-स्तत्राह—वस्तुत इति ॥ ४३ ॥ यहहा जात्रति खप्ने च यथा

पश्चाद्विपश्चितोस्तस्य रुद्धयोर्वे विपश्चितोः॥

यादशवासनोद्भवेन प्राग्दर्ध सांप्रतं पश्यस्यवेऽपि द्रक्ष्यांस तद्वह्य तथैवासीदस्ति भविष्यति च ॥ ४४ ॥ अतएवेदं जगत्सदसद्भिः लक्षणमनिर्वचनीयमेवेल्याह—धनतम इति । इदं आसीदस्ति भविष्यतीति क्रमयुक्तं जगत्प्रतिभानं धनं तमः अविद्यामात्रभेव प्रमीलितयोर्विटोचनयोसैमिरिकं चक्रकभिव महद्भाति । तथ परिश्वनमात्रात्मा तत्तया न सत् प्रतिमात्मतया अनया अहर-ष्टिप्रसिद्धया तु न असदाकृति । अत उभयद्दश्रिपामाण्ये अति-वैचनीयमेवेलर्थः ॥ ४५ ॥ हे रायव, स विष्वित् अदापि असंबिदिततस्वतया तेषु पूर्वद्षेष्वेव तेष्विव तत्सदशंष्वन्येषु च वासनामात्रलातानुतरेषु त्रह्मणां विराजामुदरेषु प्रसिद्धेषु जगत्सु वनखण्डेषु रङ्कमृगविशेष इव उधैः स्वनासनीयत्येन बंध्रमीति पुनःपुनर्भमति । श्रमेर्यद्लुकि अभ्यासस्य नुक् ॥ ४६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वा-णप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टाविश्वत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२८॥

विपश्चितोरुद्दन्तोऽम्र वर्ण्यतं स्ववशिष्टयोः । तत्रैकस्य मृगत्वेऽन्ते तथा रामसमागमः ॥ १ ॥ एको विपश्चिद्विष्णुप्रसादाज्ज्ञानं प्राप्य मुक्तो द्वितीयस्त्वद्या-प्यविद्यायां बेश्रमीतीति श्रुला अविश्वियोर्द्वयोः समाचारं रामः प्रच्छति-तयोरिति । चन्द्रलोके शाल्मलिद्वीपराज्ये च भोगै-

योग० १७३

3

8

वितष्ट उवाच ।
तयोरेकश्चिराभ्यस्तवासनाविवशिष्ठतः ।
भ्रमन्द्रीपेषु देहाँघस्तामेव पद्वी गतः ॥
तथैवावरणांस्त्यक्त्वा प्रमाकाशकोटरे ।
प्रयन्संगारस्काणि तथैवाद्यापि संस्थितः ॥
तयोद्वितीयः स्वाभ्यस्तादावावासंगतेवैशात् ।
त्यक्तवान्प्रभ्रमदेहेर्य शैसे मृगः स्थितः ॥
श्रीराम उवाच ।
प्रकेव वासना श्रह्मन्या चतुर्णा सदोदिता ।
नानातां सा कथं प्राप्ता हीनोक्तमकस्त्रप्रदाम् ॥

यसिष्ठ उवाच ।
स्यभ्यस्ता वासना जन्तोर्देशकालिक्ष्यावशात् ।
तनुदाद्ध्यांन्यतामेति घनदाद्ध्यंति नान्यताम् ॥ ६
देशकालिक्ष्याचतदेकता वासनैकता ।
तयोर्यदेव बलवसदेव जयति क्षणात् ॥ ७
एवं विभागेनेतेऽत्र चत्वारः समवस्थिताः ।
कृष्यन्ते क्षाविद्यार्थमन्यो मुक्तो सृगोऽपरः ॥ ८
नाद्यापि तैरविद्याया लच्योऽन्तो म्रान्तियुक्तिभः ।
अनन्तेयमविद्येयमक्षानपरिष्ठंहिता ॥ ९

र्निहद्भयोविषश्चितोभीगासारलाभिज्ञयोस्तयोर्द्धयोः पूर्वेदक्षिणवि-पश्चितोः पश्चादनन्तरं अतः प्राणुक्तात्परमन्यत्तस्य दिगन्तदर्श-नवरस्य संवन्धि कि चरित्रं संपन्नभिति प्रश्नः ॥ १ ॥ तामुत्त-२विपश्चितः पदवीं ब्रह्माण्डावरणलङ्गनेन रावले ब्रह्मणि संसार-लक्षकोटिय अमणलक्षणामेव पदवीं दक्षिणो विपिथद्भत इलार्थः ॥ २ ॥ तथैवेखादिरक्तस्येव प्रपचः ॥ ३ ॥ द्वितीयः पूर्वी विपश्चित् स्वेन चन्द्रसंनिधावभ्यस्ताचन्द्रमुगक्षेद्वातिशयलक्षणात् आसंगतेरासङ्गस्य वजात् चन्द्रेण सह प्रतिमासमुद्भतेः प्रश्रग-रेंहैरपरुक्षितस्तानि व्यक्तवान्सन् अद्य शेले मृगो भूला स्थितः ॥ ४ ॥ एकरूपाया वासनाया अन्तःकरणस्य देहस्य च चतुर्घा-भावेऽपि वासनाविभागस्य हीनोत्तमफलमेदस्य वाऽसंभवं रामः शब्दते—एकैवेति ॥ ५ ॥ तत्रायप्रश्नस्योत्तरमाह—ख-भ्यस्तेति । तनदार्क्या कोमला । घनदार्क्या अतिपरिपाकदर्श-भूता । अन्यतां विभागम् ॥ ६ ॥ वासनानामेकीभावे विभागे वा को हेत्सात्राह--देशेति । यदा भोग्यफलानकलानां देश-कालकर्मप्रयक्षसामधीणानेकता तदा तद्नुकुलसमानविषयवा-सनानामप्येकता संपद्यते । यदा तु भेदस्तदा विभागः । यदा तु समानदेशकालकियाफला काचिद्वासना तिङ्कित्रदेशकालिक-याफला चापरा वासना है उद्भुते तदा तयोर्मध्ये यदेव बलय-त्तदेव जयति । बलवता च फलानुमेयेति भावः॥ ७॥ एवमनया रीखा एते विपश्चितो युगपदुद्भृतविरुद्धदेशादिभोग्य-वासनाविभागप्रयुक्तनाश्रयविभागेन चलारः सन्तः समव-स्थिताः । तत्राद्यावविद्यार्थमपरो एग इति त्रयोऽपि कृष्यन्ते वासनाभिः। अन्य एकस्तु मुक्तः ॥ ८॥ तैस्त्रिभिः अज्ञा-

क्षिप्रेण शान्ता भयति विज्ञानालोक आगते। अंमुलमेच गलति तिमिरशीरिवोद्ये॥ १० कालेनान्यजगज्जातं भ्रयु तृत्तं विपश्चितः। तिसन्दरतरे देशे कसिश्चित्संस्तिभ्रमे॥ ११ कचिद्रहामहाव्योक्ति कस्मिश्चिद्रस्यमण्डले । तस्य दृश्यात्मना प्राप्ते वस्तुती ब्रह्मरूपिणि ॥ १२ स एकः शुभसंगत्या विदुषां मध्यमागतः। दृष्यं यथाविद्वश्वाय ब्रह्मतामलमागतः॥ १३ तत्रैवाश परिशानात्साऽविद्या स च देहकः। मृगतृष्णाम्बिवाशान्तिमागतौ रागतिसतौ ॥ १५ इति ते सर्वेमाख्यातं विपश्चिश्वेष्टितं स्फूटम् । अनन्तेयमयियेयं ब्रह्मवत्तन्मग्री यतः॥ 8.4 येन यत्रेव वर्षाणां लक्षलक्षाणि गम्यते । तत्र तत्र स्वभावेन चिता किमपि एक्ष्यते ॥ १६ तदेवाश्वपरिक्षातं मिथ्या विद्यति कथ्यते । परिशातंतुतच्छान्तं तथा ब्रह्मेति कथ्यते ॥ १७ भेदो न भेदस्तत्रायं भेदोऽयं यन्मयः किल्। तहसीव चिदाभासं चिद्रपैय हि भिन्नता॥ १८ ब्रह्माण्डमण्डपस्यास्य स्नमतेस्यविपश्चिता ।

नैर्जान्तिसहर्मः परितो वृहिता वर्धिता ॥ ९ ॥ अमूलं निःशे-षमेव गलति ॥ १० ॥ क्षिप्रंण कालेनेति पृत्रीकोन्नवि । इदानी पश्चिमविपश्चितो येन वृत्तेन मुक्तिजीता तरपुनः श्राय-यति—अन्येति । अन्यस्यिन्स्ववाननाकल्पिते जगति ब्रह्माण्डे जातम् । तस्मिन् ब्रह्माण्डे । दात्रं स्वाद्दधिपरमागस्यस्वर्णभ-देशे ॥ ११ ॥ बह्ममहाव्योषि कचिद्ध्यसे कस्मिश्विद्वयम-ण्डले । किंव(स्तवेनेव्याह---तस्मेति ॥ १२ ॥ श्रमस्य शान्ति-दान्तिभगवद्भत्तयादिगुणीघस्य संगला स पश्चिमी विपश्चिदेको विदुषां जीवन्मकानाम् ॥ १३॥ तस्य सा जगदाकारा अविद्या स देहश्व मोक्षोत्तरं क मती तबाह—तत्रैवंति। आशान्ति बाधमागती यतस्ती रागः कामसात्तिश्रती तदधीन-स्थितिकी । तथाच श्रुतिः 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा थेऽस्य हृदि श्रिताः । अध मत्यौं ऽमृतो भवलात्र जन्म समश्रते ' इति ॥ १४ ॥ प्रकृतकथामुषसंहरति-इतीति । इयमविद्या कार्या-विद्या सर्वदिक्ष्वधापि तैरन्तादर्शनादनन्ता कारणब्रह्मवत्॥१५॥ तत्कल्पकाज्ञातचित आनन्यादेव तदानन्यमिति ब्रह्मवदिति दृष्टान्तोक्तस्यात्पर्यमित्याह्—येनेति ॥ १६ ॥ तन्मयीर्युक्ते-रपि तारपर्यमाह—तदेवंति । तद्वदीव ॥ १७ ॥ नन्वविधेति ब्रह्मेति च मेदे सति कथं तदेव तत्राह-भेद इति । अयं मेदो न भेदो यतोऽयं तन्मयः अविद्यामय एव सा च मद्रीवेति । चिद्धास्यलादपि भेदो न चितोऽन्य इलाह—तदिति ॥ १८ ॥ क्षानशुन्येनोत्तरविपधिता तु युगशतेनाप्यविद्याया अन्तो न

१ समूलमेव इति पाठः.

लम्घो युगरातैरन्तो नाविद्याया विपश्चिता ॥ १९ श्रीराम उवाच । स ब्रह्माण्डकपादः किं न संप्राप्तो विपश्चिता। स्ययेतत्कथितं ब्रह्मन्न कथं बदतां घर॥ २० वितष्ठ उवाच । जातेनैव विरिश्चेन पुरा ब्रह्माण्डमण्डलम्। ह्याभ्यामधस्तादुर्ध्वात्स्वभुजाभ्यां प्रविदारितम् २१ भागस्तेनोध्वेतस्तस्माद्तिदूरतरं गतः। अन्यो भागो गतोऽधस्तादतिवृरतरान्तरम् ॥ २२ ताविवाश्रित्य तिष्ठन्ति जलाद्यावरणास्ततः। त एव च तदाधारा छम्यन्ते संस्थितास्तयोः॥२३ पतयोर्मध्यमाकाशं विदुरण्डकपादयोः। अपारावारमानीलमिदमालक्ष्यते तु यत् ॥ રક जलाद्यावरणास्तव न लगन्ति न सन्ति च । तिक् निर्मलमाशुन्यभालानं कल्पक्रुशिभिः॥ 44 तेन मार्गेण यातोऽसी विपश्चिरश्चननवत्। अविद्यायाः परीक्षार्थमामोक्षमतिदीक्षितः॥ २६ ब्रह्मेवानन्तरूपेयमविद्या तन्मयी यतः। अतोऽस्ति साऽपरिकाता परिकाता न विद्यते 219 विपश्चित इति प्राप्य दुराहरं परेऽम्बरे । जगद्रपेष्वविद्याया भ्रमन्त्यन्येषु केषुचित्॥ २८ कश्चिनमुक्तो सृगः कश्चित्कोचिदद्यापि तो कचित्। भ्रमतः प्राक्तनानस्पसंस्कारविवशीकृती ॥ २९ श्रीराम उवाच। कीडरेाषु क दूरेषु ते जगत्सु विपश्चितः।

लब्ध इत्याह-नद्भाण्डेति । इति उक्तरीत्या भ्रमता अविपः श्चिता अविदुषा, विपश्चिता तु अविधाया अन्तो युगशर्तरपि न रुक्षः ॥ १९ ॥ उत्तरविपश्चितो ब्रह्माण्डकयाटसंध्याकाश-मार्गेण निर्गमनं कथं ब्रह्माण्डभन्ने कारणानुत्त्या संध्याकाशस्त्र-वासंभावनादिलाशयेन रामः शङ्कते—सङ्गति । ब्रह्माण्डकपाट एव कि न संप्राप्तः, तथाच तं भित्त्वा यथा स बहिर्गतः एतत् लया कथं न कथितम् ॥२०॥ वसिष्टी ब्रह्माण्डकपाटद्वयविभागे कारणं प्राक् पाषाणाख्याने उक्तमेव स्मार्यति-जातेनेति ॥ २१ ॥ अन्यद्तिदूरतरं अतिदूरतरान्तरम् । अतिदूरतरम-न्तरमवर्धि गत इति वा ॥ २२ ॥ जलायावरणास्तौ भागा-विव विभक्तास्तावेवाश्रित्य तिष्टन्ति । आश्रित्य स्थितिः साधा-रणी विभक्तता तु जलावरणमात्रस्थेति प्रागुपपादितगेव॥२३॥ ॥ २४ ॥ तत्र आकारो अपारलोक्तिरितरभूतापेक्षया वैपुल्य-ख्यापनाय । अन्यथा वाह्याकाशावरणस्य पूर्वावरणदशगुणपरि-माणलानुपपतेः । तद्मे ब्रह्माकाशवर्णनायोगाच । आलानमि-तरभूतानामाधारः । याष्ट्रप्रलयं कल्पकालकल्पनेः ॥ २५ ॥ अविद्यायाः परित ईक्षार्थमतिशयेन दीक्षितो गृहीतदीक्ष इव ॥ २६ ॥ तर्हि स दढतरपुरुषप्रयमाविच्छेदादविद्यान्तं कृतो

भ्रमन्तीति मुने बृहि मयि चेजायते रूपा ॥ Яo कियत्यध्वनि संसारास्ते जाता येषु ते मुने। महदेतिदिहाश्चर्यमस्माकं कथितं त्वया ॥ 38 वसिष्ठ उचाच । स्थिती विपश्चिती राम ताबुभी जगतीर्ययोः। तेऽस्माकं गोचरं याते जगती यक्षतोऽपि नो ॥ ३२ तृतीयो मृगतां यातो विपश्चिचत्र तिष्ठति । स कदाचित्ससंसारो गोचरे नोऽवतिष्ठते॥ श्रीराम उवाच । विपश्चिन्मृगतां यातो यसिञ्जगति संस्थितः। तज्जगत्क महाबुद्धे यथाचत्कथयेति मे ॥ 38 वसिष्ठ उयाच। दूराद्वरतरं गत्वा परब्रह्ममहाम्बरे। मृगो विपश्चिज्ञगति स यस्मिस्तज्जगच्छुणु ॥ 34 तिद्दं विद्धि त्रिजगदिहासी संस्थिती मृगः। इदं तत्परमाकाशं दूराहरे जगितस्थतम् ॥ ३६ श्रीराम उवाच। विपश्चिद्सादेवासी जगतस्तां गति गतः। इहैवाद्य मृगो जातः कथमेतत्समञ्जसम्॥ 30 वसिष्ट उघाच। अवयवानवयवी नित्यं वेत्ति यथाखिलान् । तथा सर्वानहं वेषि ब्रह्मण्यात्मन्यवस्थितान् ॥ ३८

अनिष्टितान्ससंहाराश्वानाकारांस्तु तान्यद्वन् । मिधः प्रोतान्मिधोदृदयान्स्वरूपानिव पार्थिवान् ३९

न ददर्शेति चेत्तस्यावस्तुतांऽनन्तब्रह्मात्मक्तादेवेत्याह्-वर्ध-विति । तर्षि तत्त्वहैसादन्तः कथं दृश्योः नवादः-परिशातेति ॥ २७ ॥ अविद्याया जगहस्रणेषु रूपेषु केष्ट ल्या १८ ॥ ॥ २९ ॥ रामप्रक्षाः साष्टाः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वप्रदेशेऽपूर्वी प्राम इतः कियइरेऽलीति प्रथवदामप्रश्तीऽयं योजनसंख्योत्तया न समाधातुं योग्य इति मला विचिष्टसादपरिज्ञानोक्तिच्छलेन खाशयं सुचयव्रत्तरमाह-स्थिताविति । यक्षतः पर्यालोच-नेऽप्यस्माकं ते जगती गोचरं बुद्धिविषयतां नो याते ॥ ३२ ॥ स ब्रह्माण्डस्तदन्तर्गतसंसारैः सहितः सपंसारो नो गोचरे बुद्धि-विषयभावेऽवतिष्ठते ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ पूर्वतनविपश्चि-ज्जनमदेशाद्रशद्दे व्यवस्थितम् ॥ ३६ ॥ तां दिगन्तदर्शनगति गतः सन् इहैव मृगो जात इति कथं समझसम्। पराष्ट्रया गमने विना इह मृगजन्मासंभवादिलार्थः ॥ ३७ ॥ दूरे पूर्-तरं चेत्यादिसर्वं वरिच्छित्रात्मदर्शिनामेव भवति । अपरिच्छिन भारमदर्शिनो लवयविनामवयवा इव सर्व संनिहिततरमेवेति खानुभवेनेयमुक्तिरिखाशयेनोत्तरमाह-अवयवानिति । सर्वा-न्नद्वाण्डानिति शेषः॥ ३८॥ अन्यदशा अतीततराणामपि ब्रह्मदशा सांप्रतं सन्निहिततरलमेनेति काळतोऽपि न कस्यचि-

तत्र कस्मिश्चिद्नयसिन्मागंऽसिन्निव तिष्ठति ।
यहत्तं कथितं राम तदेनज्ञ्चते मया ॥ ४०
विपश्चितोऽन्यसंसारे देहँ श्रीन्ता दिगन्तरान् ।
ताननन्ताम्बरे व्योक्ति तायत्कालमित्रक्षधीः ॥ ४१
इहेव हरिणो जातः कसिश्चिद्विरिकन्दरे ।
काकतालीययोगेन भ्रान्त्वा भूरिजगङ्कमम् ॥ ४२
स जगन्ति भ्रमन्दूरे यसिन्सगं मृगः स्थितः ।
ससर्गोऽयमिति व्योक्ति काकतालीयवत्स्थितम् ४३

श्रीराम उवाच।

पवं चेत्तद्वर् ब्रह्मन्कस्यां ककुभि मण्डले । किस्मिन्कस्मिश्च शैलेऽसों वने किस्मिन्द्याः स्थितः ४४ किं करोति कथं दूर्वाश्चर्वयन्युवैरास्पदः । जाति तां जरहज्ञानी कदोदारां सारिष्यति ॥ ४५ वसिष्ठ उयाच ।

योऽसौ त्रिगर्तनाधेन दत्तः क्रीडामृगस्तव । स्थितः क्रीडामृगागारे विद्धि तं त्वं विपश्चितम् ४६ श्रुखेति राघवस्तस्यां सभायां विस्तयान्वितः। बालकान्सृगमानेतुं प्रेषयामास भूरिशः॥ 80 अथानीतो सुगो मुग्धः सभां स्फारां विवेश सः। सर्वैः सभ्यगणेर्द्धः पृष्टिमांस्तुष्टिमानपि ॥ 86 ताराबिन्द्युतं देहविन्द्भिः सं विडम्बयन्। दृष्टिपातोत्पलासारैः सुन्दरीः परितर्जयन् ॥ ४९ आहतानाहतसभैनीला मरकतिवयः। धार्चस्त्रणेच्छया लोलं मुग्धैश्वकितवीक्षितैः॥ 40 उत्कर्णोन्नयनोद्वीवं अणभक्रावलस्थितैः। उत्कर्णनयनोद्वीयैः सभ्यानाकुलयञ्जवैः ॥ ५१ मृगमालोक्य तं लोकाः सराजम्निमन्त्रिणः। अनन्ता बत मायेति चिरमासन्स्पयाकुलाः ॥ आश्चर्यचर्षणसुविस्नितसर्घलोका सर्वावलोक्तमघनोत्पलवर्षकृष्णम् । रतांश्जालकचितं मृगमीक्षमाणा सासीत्सभा कमलिनीलिपिनिर्मितेच ५३

इलार्षे श्रीवा ॰ वास्मी ॰ दे ॰ मो ॰ निर्वा ॰ उ० अवि ॰ विष ॰ विषयिनमुगलाभो नामैकोनत्रिंशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १२९ ॥

त्रिंशदधिकशततमः सर्गः १३०

वार्त्मीकिरुवाच । अथ राम उवाचास्य मुने केन विपश्चितः । स्यादुपायेन दुःस्वान्तः प्राक्तनात्मोदयादिति ॥

इरतास्तीत्याशयेन तान्विद्यानिष्ट—अनिष्ठितानिति । चिरकाली-सरभाविलात्सां प्रतमनिष्ठितान् असंजातान् तथा समंहारान् पू-र्वकालनिष्पसंस्हारसहितान् नानाकारान्वित्रान् मिथः पर-सरमदृश्यानिप एकत्र चिखश्यासात्वरसरश्रोतान् पार्धिवान पृथ्वीविकारभृतपटतन्त्रादिसहरपानिव स्थितान् ॥ ३९ ॥ तत्र ब्रह्माण्डेषु कस्मिश्चिद्न्यस्मिन्मार्गे अस्मिन्नेतह्ह्याण्डस्थे मार्गे इव तिष्टति सति यद्दलं तन्मया भवत एतद्रह्माण्ड इव कुला अन्नैव विपक्षिजनमराज्यादीति कथितं तत्त्वतः प्रकारतश्च मेदाभावादिखर्थः ॥ ४० ॥ तान् पूर्वोक्तान् दिगन्तरान् खस्रवासनाकरिपते अन्यान्यसंसारे ताहँशरेव देहेंवैस्ततो भारताः नैकस्मिसात्र पृत्ते विपश्चिदिहैय हरिणो जात इत्युत्त-रत्रान्वयः ॥ ४३ ॥ ॥ ४२ ॥ व्योम्नि बह्माकाशे ॥ ४३ ॥ कक्कभि दिशि ॥ ४४ ॥ उर्वरा सस्याद्या भूमिस्तदास्यदः जरठं जरयेव शिथिएं ज्ञानमस्यास्तीति जरठज्ञानी स भूगस्तां प्राक्तनीं जाति विपश्चिजन्म कदा संस्मरिप्यति ॥ ४५ ॥ त्रिगर्ता देशविशेषास्तेषां नाधेन राज्ञा तव उपायनत्वेन यः कीडामृगो दत्तः स इदानीं कीडामृगवन्धनागारे स्थितोऽस्ति तं मृगं त्वं विपिधतं विद्धि ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ देहगर्त-बिन्दुसिः १षद्भिस्ताराबिन्दुयुर्वं खं विष्टम्वयत्रनुदुर्वेन् ॥४९॥ आहता दर्शनादरवत्यपि अनाहता सभा यैस्तशाविधेश्वकितवी-

वसिष्ठ उवाच । येनैवाभ्युदिता यस्य तस्य तेन विना गतिः । न शोभते न सुखदा न हिताय न सत्फळा ॥

क्षणः सभयकटाक्षेनीं ठवणाः सभास्तम्भादिखचितम् एकति विषे हितितृणम्नान्तिप्रयुक्तया इच्छया आदातुं घावन् ॥ ५० ॥ कर्ष्वाकृतकर्णनयनभीवं यथा स्यात्तथा क्षणमङ्गरस्थिरैरवलेर-निवार्थेः स्थितेरवस्थानेम्नथाविधेर्जवेश्व सभ्यान्सभागतान् जनान् दर्शनोत्कण्टया आस्कन्दनशङ्कया च आकुळयन्॥५१॥ स्याये विस्मयस्तदाकुळा आसन् ॥ ५२ ॥ सर्वेषां सभासदाम-वलोकनळक्षणेष्वनीतिष्ठे हरण्ठवेषेः कृष्णं नीळवर्णाकृतमित्र स्थितं नानाविधरक्षानामंशुजालेः कान्तिसमूहं रचितं परिष्कृतं तं मुग्नीक्षमाणा सभा आश्वर्थस्याद्भुत्तरसस्य यचवेणं विगळितवेद्यान्तरतया अन्तरास्वादनं तेन मुविस्थिता विस्मय-जडीकृताः सर्वे लोका यस्यां तथाविधा सत्ती लिपिनिर्मिता चित्रलिखता कमिलिनी पद्मवनीव आसीत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे एकोनार्श्वराद्यिकशततमः सर्यः ॥ ३२९ ॥

वसिष्ठध्यानजे वह्नौ सृगस्यात्र प्रवेशनस् । विपश्चिदेहस्राभेन प्रावस्सृतिश्रात्र वर्ण्यते ॥ १ ॥

प्राक्तन आतमा विपश्चिद्देहस्तस्योदयासुनराविभीवाज्ज्ञानेन वास्तवात्माधिभीवाच इति राम उवाचेस्यन्वयः ॥ १ ॥ यस्य पुरुषस्य येनैव चिरोपासितेन दैवतेन गतिः पुनःपुनरभिलियत-सिद्धिः प्रागम्युदिसा तस्य पुरुषस्य तेन दैवतेन विनाऽपि अमे 3

विपश्चितोऽग्निः शरणं तत्प्रवेशाद्यं मृगः।
पूर्वरूपमयाप्नोति निर्मलं कनकं यथा॥
करोम्येतदृहं सर्वं दृश्यतां दृशयामि वः।
अग्निप्रवेशं हरिणः करोत्येषोऽधुना पुरः॥
वाल्मीकिरुवाय।

इत्युक्त्वा स मुनिस्तत्र वसिष्ठः श्रेष्टचेष्टितः। उपस्पृदय यथान्यायं स्वकमण्डलुवारिणा ॥ दध्यावनिन्धनं वर्द्धि ज्वालापुञ्जमयात्मकम्। तद्यानेन सभामध्याज्ञवालाजालं समुद्ययो ॥ દ્ अङ्गाररहिताकारमिन्धनेन विवर्जितम् । स्वच्छं धमधमायन्तमधूममपकज्जलम् ॥ मुग्धमुग्धकचत्कान्ति हेममन्दिरसुन्दरम्। उत्फुलकिशुकाकारं संध्याम्बुद्यवृश्यितम्॥ दूरापसृतसभ्यं तज्ज्वालाजालं विलोकयन्। मृगः प्राग्भक्तिभावेन श्रोहलास तिलोकितैः॥ तं समालोकयन्वह्नि विविश्वः क्षीणदुष्कृतः । पश्चादुपससाराशु दूरं सिंह इवोत्पतन्॥ १० पतस्मिन्नन्तरे ध्याने विचार्य मुनिपुङ्गदाः। मृगं विलोकितः क्षीणपापं कुर्वेखवाच ह ॥ ११ संस्मृत्य प्राक्तनीं भक्ति भगवन्हव्यवाहन। कुरु कारुण्यतः कान्तं सूगमेनं विपश्चितम् ॥ १२ षदत्येयं मुनी दूराद्यावित्वा नृपसंसदि । मृगोऽिश वेगनिर्मुक्तः शरो छक्ष्यमिवाविशत् १३ ज्वालाजालं प्रविष्टोऽसावादर्श ६व विस्वितः। संध्याभ्र इच विश्रान्तो रष्टस्पष्टशरीरकः॥ १४ स पद्यत्स्वेव सभ्येषु मृगोऽथ नरतामगात्।

गतिरभिलंषितसिद्धिनं जायते जातापि । शोभते शोभितापि परिणामे न सुखदा कथंचितसुराप्राप्तावपि परलोकहिता कदा-चन न भवति । तथाच श्रुतिः 'यः स्तां देवतामतियजति प्रसाये देवताये च्यवते न परां प्राप्नोति पापीयान्भवती'ति । अभियुक्ताखाहुः 'लामतियजेत भगवन्यः कुलदैवं द्विजाति-कुलजातः । उमयभ्रष्टो नस्येदभ्यद्योपाञ्चयाजवत्स जडः ॥' इति ॥ २ ॥ शरणं इष्टार्थप्रदानेन रक्षिता । पूर्वरूपं प्राक्तनवि-पश्चिद्दम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ उपस्पृत्य आचम्य । यथान्यायं 'शि-रश्चधुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालस्य' इति श्रुत्युक्तन्यायमन-तिकम्य ॥ ५ ॥ दशरथसभामध्यप्रदेशात् ॥ ६ ॥ धमधमा-यन्तमित्यस्यकानुकरणाष्ट्राचि 'डाचि बहुलं हे भवतः' इति द्विस्वे 'लोहितादिडाजभ्यः क्यम्' इति क्यमन्ताल्लटः शत्रा-देशः । अपकजलमकज्जलिति यावत्॥७॥ मुग्धमुग्धं कचन्ती कान्तिर्थस्य तथाविधं हेममन्दिर्भिय द्धन्दरम्॥८॥ दूराद्वयगताः सभ्या यस्पात्तथाविधं तज्ज्वालाजालं विलोकयन्सन् स मृगः प्राक्तनेन भक्तिभावेन विलोकितैः सादरदर्शनैः प्रोष्ठलास जहर्ष ॥ ९ ॥ १० ॥ उवाच । वहिं प्रतिति शेषः ॥ ११ ॥ १२ ॥

ज्वालोदरे नभस्यभ्रलघो रूपान्तरं यथा॥ १५ अदृश्यताथ ज्वालायामन्तःकनककान्तिमान् । पुरुषः पावनाकारः कान्तावयवसुन्दरः॥ १६ अर्कविम्य इवादित्यश्चन्द्रविम्ब इवोड्गः। महाम्भसीय वरुणः संध्याम्र इव वा दाशी ॥ चक्षुःकनीनिकाकोदो मुकुरे सलिले मणौ। प्रतिबिम्ब इवाकीभो भक्तिनाधारपाचकः॥ 24 अनन्तरं सभामध्याद्वातैर्वीप इचाहतः । ज्वालाजालं ययौ कापि संध्याम्बद इवाम्बरात १९ कुटीकुक्षेषु भन्नेषु प्रतिविम्य इवामरः। अतिष्ठत्पुरुपस्तत्र पटान्नट इबोद्गतः॥ २० अक्षमालाधरः शान्तो हमयशापवीतवान् । अक्रिशीचाम्बरच्छन्नः सद्यक्षन्द्र इवोदितः॥ २१ अहो भा इति सभ्योक्त्या तस्य वेपस्य भासनात् । भास्यानिव विशास्त्राभो भास इत्येप शब्दितः २२ असी मुर्त इचाभागो भासनाम्ना भविष्यति। सभास्थैः कैश्चिदित्युक्तं तेन भासः स उच्यते ॥ २३ अथोपविदय तत्रैव स मासो ध्यानसंस्थितः। आत्मोदन्तमशेषेण सस्मार प्राक्तनं तनौ ॥ २४ सभालोके गतस्पन्दे स्पयनात्मनि तिष्ठति। भासो मुहूर्तमात्रेण रष्ट्रा स्वोदन्तमक्षतम्॥ રં! आययौ पूर्वजन्मभ्यो ध्यानालोकाद्यबुध्यत । सभामाळोकयामास समुत्थाय यथाक्रमम्॥ २६ स चागत्य वसिष्ठाय प्रणाममकरोत्मुदा । श्वानार्कप्राणद् ब्रह्मन्नमस्तेस्त्वत्युदाहरत्॥ ২৩ तमुवाच वसिष्ठोऽपि हस्तेन शिरसि स्पृशन्।

॥ १३ ॥ दृष्टो जनेरिति शेषः ॥ १४ ॥ नरतां सनुष्याकारम्। नभसि मृगरूपोऽभ्रलवः । रूपान्तरं मनुष्यरूपं यथा तथा ॥ १५ ॥ कान्तैः कान्तिमद्भिरवयवैः सुन्दरः ॥ १६ ॥ अर्कन बिम्ब इवेत्याद्यपमामाला ॥ १० ॥ यशुरित्यादिमालितोपमा । चक्षःकनीनिकाकोशादी प्रतिविम्य इव आधारः पावको । यस्य तथाविधो मक्तिरेव ना पुरुषमृतेव स्थितः । अकामः पुरुषः अदृश्यतेति पूर्वत्रान्वयः ॥ १८ ॥ अनन्तरं तक्र्यालाजालं या-तैराहतो दीप इव कापि ययौ । उपशशामेति यावत् ॥ १९ ॥ देवालयकुट्याः कुड्यंषु भन्नेषु सत्सु तदन्तर्गत आमरः विष्ण्वा-द्यमराकारः प्रतिविम्बः प्रतिमेत्र । पटाश्चिरस्करणीवस्त्रादद्वती नद इव ॥ २० ॥ अग्निदाहेनैव शौचं नैमेल्यं यस्य तथाविधै-रम्बरैश्छन्नः ॥ २१ ॥ एष भास इति नाम्ना शन्दितो जनै-हक्तः ॥ २२ ॥ २३ ॥ अत्मनः खस्य प्राक्तनमुदन्तं वृत्तान्तम् ॥ २४ ॥ स्मयेन विस्मयेन । इष्ट्रा स्पृत्वा ॥ २५ ॥ आययौ इलस्य ध्यानाठोकाद्ययुष्यतेति विवरणम् । यथाऋमं मुनिराज-सामन्तादिक्रमेण ॥ २६ ॥ स भासाख्यो विपश्चित् । उदाहर-दुक्तवान् ॥ २७ ॥ सुचिरादृश्यमानायास्ते अविद्याया अद्य

अद्य ते सुचिराद्राजन्नविद्यायाः श्वयोस्त्वित २८
रामं जयेति जल्पन्तं नतं दशरथोऽध तम्।
आसमार्तिचेदुनिष्ठन्समुवाच हसन्निय॥ २९
दशरथ उवाच।
स्वागतं तेऽस्तु भो राजन्निदमासनमास्यताम्।
अनेकभवसंभारम्नान्त विश्वम्यतामिह ॥ ३०
वाल्मीकिरुवाच।
वरत्येवं दशरथे विश्वामिन्नादीन्मणमन्मुनीन्॥ ३१
दशरथ उवाच।
अहो वस चिरं कालमालानेनव दन्तिना।

धन्येनाविद्यया दुःखमनुभूतं विपश्चिता॥ ३२ असम्यग्बोधवुर्द्देषेरहो नु विषमा गतिः। व्योद्येव द्दायत्येपा सर्गाडम्बरसंभ्रमम् ॥३३ कियन्त्याश्चर्यमेतानि जगन्ति विततात्मनि। संततानि चिरं तानि विभ्रान्तानि विपश्चिता ३४ व्योमात्मनोऽपि महिमायमहो नु कीद-गस्य स्वभावविभवस्य चिदात्मवृत्तेः। यः शून्य एव परमात्मघनेऽम्बरेऽन्त-रेवंविधानि विविधानि जगन्ति भान्ति ३५

एकर्त्रिदाद्धिकदाततमः सर्गः १३१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वार्त्मीकीये दे० भो० नि० उ० अ० वि० मृगविह्मप्रवेशो नाम त्रिशद्धिकशततमः सर्गः ॥१३०॥

द्शस्य उद्याच ।

क्रिप्टोयं यदविद्यार्थं विपश्चित्रविपश्चितः ।
तद्दं चेष्टितं मन्ये कप्टोऽवस्तुनि किंग्रहः ॥
वास्मीकिष्वाच ।
अस्मिन्नयसरे तत्र राज्ञः पार्श्वे व्यवस्थितः ।
प्रसङ्गपतितं वाक्यं विश्वामित्रोऽभ्युवाच ह ॥
अप्रासोत्तमबोधानां बोधवेद्या विलक्षणाः ।
भवन्त्येवंविधा राजन्यद्वनां बहवो भृशम् ॥

क्षयोस्तिति ॥ २८ ॥ रामं प्रति जयेति जल्पन्तं व्यक्तं बदन्तम् । नतं नमस्कुर्वाणं तं भासम् ॥ २९ ॥ ३० ॥ विष्टरे आसने । 'इक्षासनयोविष्टरः' इति पलम् ॥ ३९ ॥ आजानेन बन्धनस्तम्भेनेव ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ विपिश्वता वित-तात्मनि कियन्ति विश्वान्तानि । इदमाक्षर्यम् ॥ ३४ ॥ चिदान्तमृत्तेभीयास्त्रभावरूपस्यास्य विभवस्य वस्तुतो व्योमात्मनः श्रूत्यस्याप्ययं महिमा कीटक्। अहो इत्याक्षर्ये। नुइति वितर्के। यो महिमा श्रूत्यस्याप्ययं महिमा कीटक्। अहो इत्याक्षर्ये। नुइति वितर्के। यो महिमा श्रूत्य एव सनम्बरददसङ्गे श्रूत्ये एव परमात्मघने अन्तः एवंविधानि प्रागुक्तप्रकाराणि विविधानि विचित्राणि जगन्ति भूला भान्ति । इदमत्याक्षर्यमिल्यर्थः ॥ ३५ ॥ इति श्रीवासि-हमकतार्ययंप्रकारो नि०उ० श्रिंशदिकशततसः सर्गः १३०

वटधानाराजपुत्रकथामुक्त्वा प्रचोदितः ।
कीशिकेन विपश्चिर्ष्वा आस्ति विस्तरतोऽववीत् ॥१॥
धर्म विपश्चिद्विद्यार्थ दिगन्तद्वीनलक्षणामपुरुषार्थक्ष्यामविद्यामुद्दिय यहिष्ठः क्षेत्राननुभूतवांस्तरसर्वमहमविपश्चितः अङ्गस्म आत्महानद्यास्यास्य आन्तिरूपं दृधा चेष्टितं मन्ये !
यतः अवस्तुनि मिध्याभूते दिगन्तदर्शनादिकीतुके कुत्सितो
प्रहः किप्रहोऽवश्यं साध्यामीति दुराष्टः कष्टः क्षेत्रपल इत्यर्थः ।। १॥ राजवाक्मश्रवणादुद्वस्वदधाना राजपुत्रकथार्यस्कारो

अद्य सप्तद्यां वर्षलक्षमश्रीणनिश्चयाः।
प्रवमेष भ्रमन्तोऽस्यां षटधाना भुवि स्थिताः॥ ४
भूमेरन्तावलोकार्थमयाप्युद्धेगवर्जितम्।
प्रवृत्ता न निवर्तन्ते वहनात्सरितो यथा॥ ५
अयं खलु महालोको वर्तुलो व्योम्नि संस्थितः।
बालसंकर्पत्रवद्भाह्मसंकर्पिनश्चयः॥ ६
कन्दुके व्योम्नि संरुद्धे दशदिकं पिपीलिकाः।
इत्थं भ्रमन्ति भूतानि तदाधाराणि नित्यदा॥ ७

प्रस्तुतविपिधदृत्तान्तवर्णनप्रयोजनदार्क्यहेतुलाडु-पेक्षानहीं तां कथामाहेति वाल्मीकिराह—अस्मित्रिति ॥ २ ॥ हे राजन्, त्या सम्यगेवोक्तं यतो न प्राप्त उत्तमनी-धस्तत्त्वज्ञानं यैस्तथाविधानां बहुनामेवंविधा विलक्षणा विचित्रा बहुवो भ्रान्तिरूपा बोधास्तद्वेचा वासनामया अनन्तकोटिजगद्रुपा अर्थाध भृशं भवन्तीति वक्ष्यमाणकथापीठिकारचनम् ॥ ३ ॥ तत्र कथां प्रस्तौति-अशेल्यादिना । वश्यमाणायां भु-वि वटघानाख्या राजपुत्रा अपि एवं विपश्चिद्वदेवाद्यपर्यन्तं स-सदशं वर्षे छक्षं भ्रमन्तः स्थिता वर्तन्ते ॥ ४ ॥ ५ ॥ तामेव भूवं वर्णयितं प्रस्तौति—अयमिति । अयं प्रसिद्धः पा-तालभूम्यादिचतुर्दशलोकघटितलान्महान् लोको भुवनसमष्टिः भूवदेव बर्तुलैरन्तरिक्षलंकैर्वर्तुलः सन् भूमेः परितो व्योप्ति संस्थितः । सच ब्राह्मो हैरण्यगर्भः संकल्पनिश्वय एव नान्यो निरूपयितं शक्यः । अयं भूगोललक्षणो महान्तो लोकाश्वद्वदेश-भुवनाश्रिता जना यस्मिन् यदाधारास्तथाविधः खछ ज्योतिः-शास्त्रप्रसिद्धो व्योम्नि आकाशे बालसंकल्पतस्वत्संस्थितो यतोय-मपि ब्राह्मः संकल्पनिश्चय एवेत्यर्थः ॥ ६ ॥ तस्य निराधारस्य कथं जनाधारत्वं तन्नाह-कन्दुकं इति । यथा मध्वक्ते कन्दुके दशदिकं पिपीलिका भ्रमन्ति इत्थमेवं तस्मिन्परितस्तदुपजीवीनि भूगोलकाधोभागानि तव्ज्ञान्युध्धेवन्ति च। तदा भूतानि तिष्ठन्ति तान्याविषय भ्रमन्ति च ॥ ८ तमेवाविदय दूरेण सरितश्चर्शमण्डलम्। असंस्पर्शा भ्रमन्त्युष्धेः सचन्द्राकीदि संततम्॥९ इहैय सर्वदिकं चौस्तामावेष्ट्य व्यवस्थिता। सर्वदिकं खमत्यृभ्वं तस्याधस्तान्महीतलम् ॥ भावाः पतन्तो धावन्ति तस्याधः सर्वतोङ्गकम् । यत्रोत्पतन्तो गच्छन्ति तदुःवीमिति शब्दितम् ॥ ११ तत्रैकदेशे विद्यन्ते वटधानाभिधानकाः। जातास्तेषां त्रयो राजन्नाजपुत्राः पुराभवन्॥ १२ ते होबमेकसंकल्पा भूम्यादेईइयवरमेनः। कोन्तः स्यादिति निर्याता विहुर्ते रहनिश्चयाः १३ पुनर्वारि पुनर्भमिस्तेपामाक्रमतां चिरम्। नवलम्धरारीराणां दीर्घकालो व्यवर्तत ॥ १४ स्त्रक्ककन्द्रकवम्रीकन्यायेनानिशमत्र ते। भ्रमन्तो नामुवन्त्यन्तमन्यत्वं संविदन्ति च ॥ १५ व्योमस्थकन्द्रकभ्रान्तिपिपीलिकवदाकुलम्। अद्यापि संस्थिता राजन्न च खेदं वजन्ति ते ॥ १६ वेदां भूगोलकस्यास्य यं यमासादयन्ति च ।

भूतानि दशदिकं भ्रमन्तीत्यर्थः॥ ७ ॥ यानि भूगोलकस्याघी-भागगतानि यानि च अर्ध्ववन्त्युपरितनानि तदङ्गानि तान्या-बिइय यदा यत्र यानि भूतानि तिष्ठन्ति तदा तानि तत्र अ-मन्ति च ॥ ८ ॥ अन्तरिक्षवहा मन्दाकिन्यादिसरितो ज्योति-श्वकरूपमृक्षमण्डलं च तं भूगोलमेव दूरेण वायुवन्धनवशादा-श्रिय असंसर्शा उचैश्रमन्ति । श्रीशेपरछान्दसः ॥ ९ ॥ तां सज्योतिश्वकां भुवमाविष्य धाँरिह अस्यामेव भुवि व्यवस्थिता। तत्र च खं सर्वायु दिशु अध्वेमेव महीतलं च सर्वाधस्तादेवे-त्यर्थः ॥ १० ॥ ननु भूगोलाधस्तनस्य सस्य कथमूष्वंत्वं तदपे-क्षया महीतलस्य कथमधस्तात्त्वं तत्राह—भावा इति । तस्य महीतळस्याधी ये भावाः पदार्थाः संचरन्ति ते तस्य सर्वतोङ्ग-कमवयवं तत्तरप्रदेशे पतन्तः प्राप्तवन्त एव गच्छन्ति संचरन्ति। यत्र यसिन्नभसि पक्ष्यादय उत्पतन्तो गच्छन्ति तत्तत्र अर्ध्वमि-स्येव शब्दितं नलघ इति तिर्थंगिति वेखर्यः ॥ ११ ॥ तत्र तस्मिन्भूगोलके एकदेशे कचिद्वटधानाभिधानका देशा वा तदधीश्वराः क्षत्रियाध विद्यन्ते । तेषां कुछे त्रयो राजपुत्राः पुरा जाता अभवन् ॥ १२ ॥ ते राजपुत्रा एवंविपश्चिद्वदेव हर्यवर्शनो भूम्यादेर्जगतः कोऽन्तः स्यात्तं द्रक्ष्याम इत्येकसं-कल्पा दढनिश्वयाश्व सन्तस्तद्शनाय निर्याताः ॥ १३ ॥ द्वीपस-मुद्रभेदेन पुनःपुनर्वार पुनर्भूमिरिति क्रमेण आकमतां मध्ये मध्ये मरणेन नवानि लब्धानि शरीराणि यैस्तथाविधानां तेषां बीर्घकालो व्यवर्ततेत्यर्थः ॥ १४ ॥ खच्छे कन्दुके संलग्ना ये वन्नीकीटास्तन्यायेन अमन्तस्ते । 'वल्मीकन्यायेन' इति पाठे

इहेव तत्र तत्रोधरधक्षोर्ध्व तथा दिशः॥ १७ ते वद्गित महाराज यद्यसाभिरितोद्यतेः। न ताबद्दन्तः संप्राप्तः संचराम इतः परम्॥ १८ इत्थं न किंचिदेवेदं ब्रह्मसंकल्पडम्बरम्। किंचित्संकल्पमञ्चानमनन्तं स्वप्नद्यवन् ॥ १९ करपनं तरपरं ब्रह्म परं ब्रह्मव करपनम्। चिद्र्पं नानयोर्भेदः शून्यत्वाकाशयोरिव ॥ २० चिन्मात्रं यद्यदाभातं जलवाहविवर्तवत् । तत्तारकथमन्याभमन्यस्यामंभवाज्ञवेत् ॥ २१ अभावः खे च खिमदं सर्गादौ परमाम्बरम्। स्वयं जगदिवाभाति नान्यत्प्रळयसर्गकौ ॥ **२२** यथा कषति चिद्रुपं तथैव रतिमेख तत्। दृष्टादृष्टैः स्वयंसारैश्चिरमास्ते यथा चिरम्॥ २३ दृद्यात्मकं रूपमेकमेकमस्यवमक्षयम्। स्वयमेवमजं भाति यन्न भातीव किंचन ॥ રક चिदणोहदरे सन्ति समस्तानुभवार्णवाः। शिलाः शैलोदर रूव स्वच्छाः खात्मनि खात्मिकाः॥ स्वेभावनिष्ठास्तिष्टन्ति ते यदव्याञ्चतात्मनि । मा तिष्ठन्ति तु वै ते यदच्यावृत्ताः परे पदे ॥

वल्मीकपदेन तिश्रमीतारो वस्रीकीटा एव छक्ष्यन्ते । अन्यत्वं देशान्तरत्वम् ॥ १५ ॥ १६ ॥ यं यमधस्त्रनं पार्श्वगतं वा आसादयन्ति । दिशः पश्यन्तीति शेषः॥ १७ ॥ इतोद्यतैः प्राप्तोद्योगैः ॥ १८ ॥ कथामुपसंहृत्व प्रकृते योजयति—**इत्य-**मिति ॥ १९ ॥ संकल्पकल्पनस्य चिद्धिष्टानकलाचिन्मात्रं तत्त्वमिति व्यतिहारेण द्रढयति—कल्पनमिति ॥२०॥ जलस्य वाहः प्रवाहस्तत्रत्यावर्ततरङ्गबुद्धदादिविवर्तवत् । आवर्तादौ नाभीकुहरादिसाद्दयात्कर्थनिद्न्याभतापि भवेदिह तु सद्दशस्य विसदशसा चान्यस्यात्यन्तासंभवादन्याभमपि कथं भवेदित्यर्थः ॥ २१ ॥ इदं जगत्सर्गस्यादौ अभावः अतः सं शून्यमेवेति तदा परमाम्बरं ब्रह्माकाश एवेति तावदावेवादम् । तथाच तदेव स्वयमिदानीमपि जगदिवाभातीति दृष्टी प्रलयसर्गकौ अन्यत्र ॥ २२ ॥ तच चिद्रपं कामकर्मवासनानुसारेण यथा यथा कषति कल्पनामाछिङ्गति तथैव तत्र रतिमासक्तिमेख दशदर्श्वेदावेदीर्ज इचिद्रपैरन्योन्यतादातम्याध्यस्तैः खसंसारैर्थ**श** प्राक्षिरमासीत्तथाप्रेऽपि चिरमास्ते ॥ २३ ॥ दष्टादष्टरूपते तयोविंवृण्वन् द्वितीयस्याक्षयत्वं दर्शयति---दरयात्मकमिति ॥ २४ ॥ चिदणोषदरे तत्तदाकारवासनावच्छित्रा जगदनुभ-वाणवस्तिष्ठन्तीत्याह--चिदणोरिति ॥ २५ ॥ कि शुद्धचिदणो-हदरे नेखाह—स्त्रभावेति । स्त्रभाव आवृतात्मस्त्ररूपं तद्भताः । परे पदे निरविधे चैतन्ये तु मातिष्ठन्ति न सन्त्येव । यतस्तत्र व्यावर्त्यरूपान्तरा प्रसिद्धेरव्यावृता अलान्तामिन्ना एव स्युरि-

१ अत्र स्वभावभूता इति पाठी व्याख्यानुक्छः स्याद,

| तदेत्र जगदित्युक्तं ब्रह्म भारूपमाततम्। | |
|--|-------|
| पूर्वीपरपरामशीन्त्रिपुणं निपुणाशयाः॥ | २७ |
| अत्याश्चर्यमनष्टोऽयं परमात्मदनात्स्वयम्। | |
| नानात्वबुद्धा नानव जीयोऽहमिति ताम्यति | २८ |
| उच्यतां भास भो राजन्विपश्चिद्पराख्य है। | |
| कियहृष्टं कियद्भान्तं दृश्यं सारसि र्किच वा॥ | २९, |
| भास उवाच । | |
| षहु दृष्टं मया दृद्यं बहु भ्रान्तमखेदिना। | |
| बह्नेव यहुधा नूनमनुभूतं स्मराम्यहम्॥ | ३० |
| मयानुभूतानि महान्ति राजं- | |
| श्चिरं सुदृरे विविधः शरीरैः। | |
| मुखानि दुःखानि जगन्त्यनन्ताः | |
| न्यनन्त्मायाध महाम्यरं तत्॥ | ३१ |
| विचित्रदेहंबैरशापयोगा- | |
| दृत्रयान्यनन्तानि मया महात्मन्। | |
| जन्मान्तरावर्तविवर्तनानि | |
| रहेकचित्तन वरात्कशानोः॥ | ३२ |
| हद् यात्मकोर्यावपुषस्त्वविद्या | |
| हशो जवेनान्तपरीक्षणाय। | |
| देहेन देहेन जगत्यति प्राक् | |
| स्मृतेः सदाहं घ्नयत्नमासम्॥ | ३३ |
| समाः सहस्रं विटपोऽहमास- | |
| ्र मन्तर्मनाश्चेतनभुक्तदुःखः। | |
| चित्तं विना पुष्पफळप्रताने | |
| घा कन्दवत्तत्तरसाङ्गरागः ॥ | રુષ્ઠ |
| | |

त्यर्थः ॥ २६ ॥ यनस्तत्राच्यायतास्ततस्तदेव जगन्नेतरदिति निपुणं पूर्वापरपरामर्शान्मयोक्तम् । हे निपुणाश्चयाः ॥ २७ ॥ एवं ग्रुद्धचिदैक्ये परमात्सदनात्र नष्टः अप्रच्युतोऽप्ययं जीवो नानालबुद्धाः जीवोऽहमिति यत्ताम्यति ग्लायते तदत्याश्वयमि-खन्वयः ॥ २८ ॥ इत्थं वतिष्ठोक्तं विपश्चिम्रति स्वोक्तया संवाद्य भासमुखोत्त्यादि संवाद्यितं विश्वामित्र उवाच--- उ-च्यतामिति । हे विपश्चिदपराख्य, हे भास, लया कियदस्यं दृष्टं कियम भ्रान्तं तत्र किंच वा स्पर्रात तृत्वित्वित्वेक्षित्य उच्य-ताम् ॥ २९ ॥ ३० ॥ तन्महाम्बरमव्याकृताकाशमासाय ॥ ३१ ॥ सया कृशानीर्वराद्दिगन्तदर्शनविषये दर्देकचित्तेन जन्मान्तरावर्तेषु विवर्तनानि तत्रानन्तानि दश्यान्यनुभूतानीत्य-नुषज्ञते ॥ ३२ ॥ अहं जगत्प्रति प्रतिब्रह्माण्डं देहेनदेहेन नानावेहमेदेन भ्रमन्नपि प्राक्तनदढनिध्यस्मृतहैतोई स्यात्मको-र्व्यादिखरूपाया अविद्यादशः अन्तपरीक्षणाय जवेन घनयत्रं यथा स्यात्तथा आसं अभवमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ ततः अहं तस्य चित्तस्य तरसा मृतिकाले तहदर्शनप्रयुक्तसंस्कारयेगेन अङ्गे देहप्रहुणे रागो यस्य तथाविधः सन् सहसं समाः विटपः । अकारो मलर्थीयः । विटपी आसम् । स कीदशः । बहिःप्र-

समाः शतं मेरुमृगोऽहमासं सुवर्णवर्णस्तरुपर्णकर्णः। दूर्वाङ्करास्वादनगीतिनिष्ठ अहन्कनिष्ठो चनवासिमध्ये॥ 34 पादाप्रकेरावलितात्मपृष्टो मृतेऽम्भसः क्वेशकृतात्ममृत्युः। समाः शतार्धे शरभोऽहमासं क्राञ्चाचले काञ्चनकन्दरासु ॥ 38 कालागुरुद्रमलतावलितागिलेन विद्याधरीसुरतधर्मकळामृतानि। पीतानि में मलयसानुनि मन्दरे च मन्दारचन्दनकद्म्वलतागृहेषु॥ 30 हेमारविन्दमकरन्दपिशङ्कितानि । पीतानि पञ्चदशवर्पशतानि मेरी। वैरिञ्चहंसतनयेन मया पर्यासि तीरान्तरेष रमतोपरि निर्ह्मरिण्याः॥ क्षीरोदबेळावनगन्धवाह-विलोलनीलालकवल्लरीणाम्। समाः शतं शोकजरापहारि गीतं श्रुतं माधवसुन्दरीणाम् ॥ 36 कालञ्जरे मञ्जरिते करञ्ज-गुञ्जावने जम्बुकतां गतोऽहम्। गजेन पिष्टे हरिणा हतोऽसी हस्ती मयात्रार्थमृतेन दृष्टः॥ 80

वृत्तिनिमित्तप्राणचेष्टानाविष्करणादन्तरेव मनो यस्य । चेतनेन वृक्षदेहाभिमानिजीवेन भुक्तं दुःखं यत्र । तथा पूर्वीपरपराम-र्शहेतुं चिसं विना पुष्पफलादीनां प्रताने जननविस्तारे वा कन्दः कन्दविशेषस्तद्वद्वीमरमकालादितस्त्रः इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ दुर्वाङ्कराणामास्त्रादने गीतिषु च निष्ठा दढाविक्तर्यस्य । वनजा-तानों मृगाणां मध्ये कनिष्ठः अल्पदेहोऽल्पबलश्च । अतएव कमपि अहन् अहिंसन् ॥ ३५ ॥ शरभजातेः पृष्ठतोऽपि पाद-चतुष्टयेन संचारादिसामध्ये उदरप्रदेशस्यापि पृष्ठलसंभवात्पा-दाष्टकरावलिते आत्मनः पृष्ठे यस्य। मृते मरणे प्रसक्ते तु गर्जन्मेघनिर्गतात्करकाम्भसो निमित्तान्मेघेन सह योद्धं गिरि-शिखरादुत्पतनपतनादिक्षेशेनैव कृत आत्मगृत्युर्थस्य ॥ ३६ ॥ ततो में इति कर्तुः शेषत्वे पष्टी । विद्याधरजनम प्राप्तेन मया मलयसान्ति मन्दरे च कालायुरुद्धमाणां लतामिर्वेलितेनालि-क्रितेन अतएव शीतमन्दसुरमिणा अनिलेन सह विद्याधरीणां सुरतधर्मेषु तदीयकलालक्षणान्यमृतानि पीता**न्यनुभूतानि** ॥ ३७ ॥ विरिश्वहंसस्य तनयेन पुत्रजन्मप्राप्तेन मया मेरोह-परि निर्झारण्या मन्दाकिन्यास्तीरान्तरेषु रमता हेमारविन्दानां मकरन्दैः पिशक्षितानि पिन्नलवर्णाकृतानि पर्यासि पीतानि ॥ ३८॥ ३९॥ ततोऽहं कालजरे गिरी कर**णग्रजाप्रतरे**

संतानकप्रकरहासिनि सहासानी करिमश्चिव्यजगतीन्दुमुखी सुरस्री। पकाकिनी कृतयुगार्धमधाहमासं कल्पह्रमस्तवकसदानि सिद्धशापात्॥ ४१ अद्रीन्द्रकच्छकरवीरलतालयेषु नीतं समारातमराङ्क्षिया मयान्यत्। अन्यत्र दूरजगतीन्द्रगिरी विरावि वाल्मीकपक्षिवपुपाऽनिशमेककेन॥ ४२ अन्यत्र सानुनि मया परिलम्बमानाः सच्छायचन्दनवनाचलिते लतानाम् । दृष्टाः स्त्रियः फलमिवायलिता विलासे-र्भुक्ताम्ब ता अपहृता अपि सिद्धपान्थैः ४३ अन्यत्र पर्वतनितम्बकद्म्बकच्छे नीतानि तापसतयोत्तमया दिनानि। प्राप्येकवस्त्वमिनिवेशविषुचिकास-चित्तन तान्तमतिनाऽमतिना मयान्तः ४४ ब्रह्माण्डसंपूरितमन्यद्स्ति जलेचरारीषदिगन्तभूतम्।

बने जम्बुकतां स्रगालजन्म गतः प्राप्तः। तत्रापि गजेन पिष्टे संन्। र्गते खदेहे सत्यर्थगृतेन मया असी मत्पेष्टा हसी हरिणा सिंहेन इतो दृष्टः ॥४०॥ अथ संतानकानां कल्पवृक्षभेदानां प्रकरेहीसिन इ।सवतीव शोगमाने सहाणिरेः सानौ अहमिन्दु-मुखी सुरकी कृतयुगस्यार्थं सिद्धशापादासम् ॥ ४९ ॥ ततो मया भदीन्द्रस्य संनिधानात्सहास्य कच्छे जलप्राये प्रस्तानां करवीराणां लताः शासास्तदन्तरप्रदेशेषु विरावी सदैव रवण-बीलो वाल्मीकनामा पक्षिजातिमेदस्तद्वपुषा समानां शतं नीतम् । ततः करनीरवने सहभार्यापुत्रादिभिरुच्छित्रे सति अन्यत्र दूरश्ये जगति इन्द्रगिरी महेन्द्रपर्वते गृशं वियोगार्तेनै-ककेन शेषं वयो नीतम् ॥ ४२ ॥ एवं जन्मद्वयेन सिद्धशाप-मोक्षानन्तरं सिद्धानुमहादेव सिद्धभूतेन मया महेन्द्रगिरेरेव सच्छायचनंदनवनावलिते अन्यत्र सानुनि लतानां दोलायु तरफलमिव परिलम्बनाविलासैराविलताः श्रियो दृष्टाः, सिद्धपा-न्येरपहृता अपि ता भुक्ताश्च ॥ ४३ ॥ तदनन्तरममतिना भविवेकेन एकपसुनि अविद्यान्तद्शनलक्षणे योऽभिनिवेशस्तलः क्षणया विषुचिकया आतं वशीकृतं चित्तं यस्य तथाविधेन भतएव तान्ता ग्लाना मतिर्यस तथाविधेन मया अन्तर्निर्वेदं प्राप्य अन्यत्र पर्वतनितम्बकदम्बकच्छे तापसत्या दिनानि मीतानि ॥ ४४ ॥ इत्थं खजन्मपरम्परावर्णनान्तराहे बहा-रस्मृतान्यसाध्याणि कानिचितुत्कण्ठया वक्तुमारभते -- ब्रह्मा-ण्डेलादिना । हे मुने, अन्यदेकमलाश्चर्यमस्ति तच्छृणु । कीर्दशं तत् । ब्रह्माण्डैरनन्तैः संपूरितम् । जलेचरा इवाशेषदि-गन्तस्थितानि भूतानि यत्र तथाविधम् । जलेचरा इवेति रष्टान्ततारपर्य विवृण्वन्विशानष्टि-संदिरधेति । संदिग्धा

संदिग्धतेजोम्बरवातसत्तं जलस्यभूताकृतिमात्रभूमि॥ 84 एकत्र दृष्टा वनिता मयका तस्याः दारीरे त्रिजगन्ति भान्ति । प्रतिविभिषतानीव सुदर्पणेऽन्त-राकादादीलादिदिगादिमन्ति॥ 88 पृष्टा मयासी घरगात्रि कासि शरीरमेतश किमीहशं ते। तयोक्तमङ्गेह चिव्सि शुद्धा ममाऋमेतानि महाजगन्ति॥ 83 यथाहमेवं सायदेहिकेयं सर्व तथैवाङ्ग न चित्रमेतत्। अन्यैः स्वभावो विदितो न ग्रुह्यो यदा न पश्यन्ति तदेत्थमङ्ग ॥ 84 अवेदशास्त्रेण जगत्यशेषे-र्भृतैः खदेहालयभित्तिभागात्। पति हिधेयं न विधेयमेत-पुनिः स्वतः भ्रयत एव नित्यम् ॥ 86

तेजोम्बरवातास्यानां त्रयाणां महाभूतानां सत्ता यस्मिन् । जलस्यं जले प्रतिबिध्वितं भुतमिवाकृतिर्थस्यास्तथाविधाकृति-मात्रा भूमिर्थस्मन् । तदिद्मीषधाकृतनामस्यावस्थं बद्भौवा-खाश्चर्यमस्तीखर्थः ॥ ४५ ॥ तत्ताश्चर्यं कळवीतशिळान्यायेन वनिताशरीरादिसर्वपदार्थेप्वपि सर्वजगढर्भ प्रत्येकं पर्याप्तमस्ती-रयेतसत्राधर्यान्तरं मया दप्टमिति वक्तं कांचिद्वनिनामुदाद्व-रति-एकत्रेति । तस्या वनितायाः शरीरे सुदर्पणे अन्तः प्रतिम्बितानीव आकाशशैलादिसहितदिकालप्राण्यादिमन्ति त्रि-जगन्ति भान्ति तदलन्तमाश्चर्यमिलर्यः ॥ ४६ ॥ अथ सा बनिता मया पृष्टा । हे बरगात्रि, त्वं कास । ते एत-च्छरीरमीद्दशं त्रिजगद्धदितं किमिति । तत्म्त्या मां प्रत्य-कम् । हे अङ्ग, इहास्मिन्बस्तुजाते या शुद्धा वित् सर्वावमा-सिका साहमस्मि । इमानि च महाजगन्ति मम अर्थ मूर्ती-मूर्तात्मकं शरीरम् । 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त चेवामूर्ते च' 'यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम्' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥४७॥ हे अज, इयं लद्दृष्टा अहं यथा जगद्धितलात्सायो विसाय आक्षर्यं तद्योग्यदेहवती तथा इदं सर्वमेतत्स्तम्भकुम्भादिव-स्तजातमपि सर्वजगद्धितलादिचित्रमलाश्चर्यभूतमेव । तार्द अन्यैः पृथाजनैरपि सर्वे वस्तु इत्यं कुनो न दर्यते तत्राह-अन्यैरिति । यदा इत्थं स्त्रभावः प्रतिवस्तु न विदितस्तदा इत्थं न पर्यन्ति । यदा त्वातिवाहिकमात्रभावदढीकारे वि-दितो अविष्यति तदा इक्ष्यन्त्येव तेऽपीति भावः॥ ४८ ॥ निवदमसमञ्जसम् । मया खदेहस्य सर्वजगद्धाटेतत्वेनाननु-भवादेदान्तध्यक्षराद्यप्रवेशेन यदि तत्र जगददशंनं अषे ताह तत्रखवेदशाखादेः श्रोत्रेण श्रवणं न स्यादेवेति ममासंभावनां

ईहक्समावैच पदार्थसत्ता सा तेऽत्र यद्धिस्यचलादयोऽपि। स्वप्नादिमायास्त्रिव मे वदन्ति धार्च न युष्मास्वसमञ्जसं तत्॥ ĆΟ अस्रीकसंसारगतेन इष्टं मया क्षचिद्यावदनस्यकामम्। भतानि निर्यान्ति बहुनि भूता-48 हिरान्ति भृतानि बहुनि भृतम्॥ एकानि इपानि मया असानि खेऽभ्राण्यदभाङ्ग झणज्झणानि । बृष्ट्या समंतान्निपतन्ति खण्डै-र्भवन्ति तीक्ष्णानि जनायुधानि ॥ ५२ अन्यत्र रुष्ट्रं गगने न यात्र-दिहान्त्रया त्रामगृहाणि यान्ति। विशन्त्यमुत्रान्त इहाभयहो ग्रामः स प्रवान्यत एव छन्धः॥ 43 नरामराऽहिप्रविभागमुका-न्यन्यत्र भृतानि समानि सन्ति।

खादेव सर्वाणि समुद्धवन्ति तत्रेव काले न लयं प्रयान्ति॥ 48 अचन्द्रतारार्कमनन्धकारं स्वयंप्रकाशाखिलभूतजातम् । स्मगमि किचिज्ञगदेककान्तं ज्वालोदराभं दिनरात्रिमुक्तम्॥ ابرلو अपूर्वेदैत्याहिनरामरादि-भूतान्यपूर्वद्रमपत्तनानि । अपूर्वेळोकान्तरकार्यवन्ति स्मरास्यनन्तानि महाजगन्ति॥ ५६ दिगस्ति सा नो विद्वतं न यस्यां न सोऽस्ति देशः खुळु यो न हुएः। यन्नानुभृतं न तदस्ति कार्य-मृन्याश्रयं नापरमस्ति मर्शात ॥ 4.9 क्षीरोदकभ्रमितमन्दररत्नश्टङ्ग-भाराग्रनिर्दलनजातझणज्झणानाम् । एकत्र संयुतसुपेन्द्रभुजाङ्गदानां दाष्ट्रं सारामि घनगर्जितशङ्कितेन ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दै०मो०नि०उ० अ०वि० भाससंसारवर्णने नाम एकत्रिशाधिकशततमः सर्गः॥१३५॥

लिक्केरपरुष्य तरसंभावनार्यं सा मामाह-अवदेति द्वाभ्याम्। लदादिमिरशेषरपि भृतेः प्राणिभिः अवेदशास्त्रत्वेनाभिमतेऽपि बाह्यादन्यस्मिन् दहान्यगतं जनति स्वदेहालयभित्तेर्मागात् एकदेशभूतास्यखकणेशक्क्षणेपदेशावित्यमनाहराष्ट्रानिः सर्वेषे-दशास्त्रादिशन्दसामान्यरूपनादात्मकः स्वतः श्रूयत एव। स एव हि एतमिखनैमित्तिकं कर्म समदमादिशानसाधनं च विधे-यमवस्यमगुष्टेयमिति सर्वविधिगर्भः । एतस्कलज्जमक्षणादि न विधेयमिति सर्वनिषेधवेदशःस्त्रगर्भश्चेति तच्छवणेनव तदन्तर्गत-विधिनिषेधशास्त्रमिय तदर्थभूतं जगद्पि दहेऽस्तीति संभाव-येति भावः ॥ ४९ ॥ उत्तरसायेन साम्मक्रमनायेष्वपि रार्वे-जगत्सद्भावः संभावनीय इत्यादायेनाह—देहिगति । सर्वपदा-भेवतुगता सत्तापि यादक् शब्दसामान्यस्वभावोऽनाहतध्वनिः **११वस्यभा**विव सर्वजगद्धदितसामान्यस्वभाविव । यदासात्कार-णादत्र जगति प्रसिद्धा भित्त्यचलादयोऽपि सा नहाससैव । मच भिरुवादयो वाचं न वदन्तीलचेतना एवेति प्रमितव्यम्। बतस्ते स्नप्नादिप्रसिद्धमायास्त्रिव इदानीमपि मे पुरतः वाचे बदन्ति । यदा अखन्तजडत्वेन प्रसिद्धेष्वपि कुष्यादिषु सर्व-जगद्धितचेतनत्वं नासमञ्जसं तदा चेतनप्रायेषु युष्मासु यु-ध्मदादिदेहेषु सुतरां तन्नारामजसमित्यर्थः ॥ ५० ॥ वनितासं-धादलक्षणमाधर्यं सद्दृष्टमुपयण्योध्ययीन्तरं तादशं वर्णयति-अस्त्रीकेति । क्रिनिदेशे काले च न विधनते क्रियो यत्र तथा-विधी यः संसारी जगतद्वतेन मया यावत्सकले प्राणिजानं न

दृष्टम् । तर्हि तत्र कर्ष पुत्रपात्रादिसंगतिः पूर्वेषां मरणे वा तत्राह-भूतानीति ॥ ५१ ॥ आश्चर्यान्तरमाह-एकानीति । आजसानि उत्पातादिनिमित्तनिरपेक्षाणि । एकानि अन्यानि अग्राण से राष्ट्रति । दानि च गर्जनैः राख्नसंपदनध्यनिसाम्येन संजामज्ञणव्याणांन । सेम्यो गणा वानि वियुदादीनि जल-बतिपतिन्। तमने राण्डेः खराकर्छज्ञनानामायुषानि भवन्ति ॥ ५२ ॥ अन्यत्र । अध्यत्तिकारं इष्टम् । कि तत् । इहासिन अगति यावत् शावन्ति भ्रामगृहाणि सन्ति तावन्ति अन्धया तिमिराद्युपहत्तदृष्टीय गगनेन आकाशमार्गेण याप्ति असुत्र दुरे दिगन्ते विश्वन्ति स च वो प्रामः इह अभवत् । स एव मया अन्यतोऽस्कृतेव उच्च इलाजवीमत्वर्यः ॥ ५३ ॥ अन्यत्र दृष्टमाक्षयीन्तरमाह---नरेति । एते नस एते अनस एते अहुय इति लोकत्रयवागिनां ये अवास्तरप्रविमाधार्मभुक्तानि अतएव समानि ॥ ५४ ॥ अन्यत्राश्चर्यान्तरमाह--अचन्द्रेति । अनम्धकारत्वे हेतुः स्वयंत्रकाशेति ॥ ५५ ॥ आश्रयोन्तर-प्रसिद्धसंस्थानव्यवहारवे**रुक्षण्यमपूर्वता** माह--अपूर्विति । ॥ ५६ ॥ कि बहुना। सया यस्यां दिशि न विह्नतं सा दि-क्वास्ति। यो देशो न रष्टः सोऽपि नास्ति। यत्कार्य कीतुकं नातु-भूतं तद्पि नास्ति । मदीयान्मशीद्विमशीदनुभवरूपात्सर्वसा-क्षिणः सकाशाद्याध्ययमन्याधिष्ठानकमप्रं तयातिरिक्तं च य-रस्यासदिप नास्ति ॥ ५०॥ शीरोदके समुद्रे मथनार्थं श्रमितो यो मन्दरगिरिसद्वियक्समयश्वताणां तीक्ष्णैः शाणप्रायेधाराप्र-विश्वते अन्यस्थाः कामो व्यतिकराभिलाषी यस्य तथाविधं । निर्देलने निशातने जातक्षणज्ञाणानां सिजितानासुपेन्द्रस्य भ-

ह्यात्रिंशाधिकशततमः सर्गः १३२

भास उवाच मन्दरे मृदुमन्दारमन्दिरे मन्दरासिधाम्। आहिङ्गाप्सरसं सुप्तं सरिच्णभिवानयत्॥ मामधासी मया पृष्टा समाध्वास जलाकुला । षाले किमिद्मित्युक्तं तया चपहनेत्रया ॥ इह चन्द्रोदयेष्वेताश्चन्द्रकान्तकटप्रजाः। नद्यो माद्यन्ति वनिताः सेष्टा इव निदासम् ॥ त्वत्संगमरसावेशवशात्तश्चतु विस्मृतम्। इत्युक्तवा मामुपादाय सोट्टीना विद्रगीय खे॥ भूत्रे शक्तवतः शक्ते गक्ता कनकपङ्कते । अहमासं समाः सत्र तिक्किलोऽकर्वमाष्ट्रते ॥ अन्यनमया जगहुप्रमुक्षचक्रविवर्जितम्। गर्भगर्भस्थेकजातिस्ववकाशजनावृतम् ॥ न दिग्विभागो न दिनानि यत्र न चेव शास्त्राणि न वेदवादाः। न चैव दैलादिस्राहिमेदो जगन्मया ताहगधात्मदीप्तम्॥ Ÿ विद्याधरामरविहारविमानभूमा-वभ्रंलिहाचलनितम्यकदम्यक्रहे।

गवतो भुजाङ्गदानां घनगर्जितशङ्किनेन सेवगर्जनशङ्कया जनैः श्रुतमत्यार्श्वर्थभूतं शब्दं स्मरासीधाश्रधीकीनाभुपर्यहारः॥५८॥ इति श्रीवासिष्टमहारासायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे एकत्रिशदुत्तरभत्ततसः सर्गः॥ १३३ ॥

वर्ण्यन्तेऽत्रापि भारतेन भूयो जन्मपरिश्रमाः। आश्रयीणि च भूरीणि निःसारत्वं च संस्तेः ॥ ३ ॥ आश्चर्योपवर्णनेरन्तरितां स्वजनपरम्परावर्णनकथां पुनरनु-संघत्त-मन्दरे इत्यादिना । पर्वतनितम्बकदम्बकच्छे तापस-भावानुभवेन बहुदिनयापनेन प्राप्तिति अतएव मन्दरपर्यते मृदुनि मन्दारकुञ्जमन्दिरे मन्दराभिधामप्सरसमालिक्स्य सुप्तं मां पक्ष्यमाणा सरित् स्वप्रवाहपतिनं तृणमिवानयत् । प्रवाहितवतीत्यर्थः ॥ १ ॥ मामिति पूर्वान्विय । अथानन्तरं जरून आकुला व्याकुला असी अप्सराः मया समाश्रास्य पृष्टा । हे बाले, इदमाकस्मिकं नदामावयोः प्रवहणं किनिमित्तमिति । ततो भयावपलनेत्रया तथा उक्तम् ॥ २॥ किमुकं तदाइ— इहेति । हे कान्त, इहास्मिन्प्रदेशे चन्द्रोदये सति चन्द्रकान्त-बिलामयानां कटानामद्रिकटकानां प्रजाः संतानभूता एता नयो मायन्ति प्रस्वज्ञ वैर्धन्ते । यथा निशागमे सप्टाः इप्टेन प्रियत-मागमनेन सहिता वनिताः कामेन माधन्ति तद्वत् ॥ ३॥ तर्हि निद्रागमात्प्रागेवायमर्थस्खया मधं कृतो न निवेदितस्त-त्राह-लत्सन्नमेति । ननु इति कोमलामन्त्रणे । विस्मृतं मयेति शेषः । यथा गङ्गाकनकपश्चले स्थिता विह्मी सहचरं मृङ्गमुपा- आसं समाः समरसोऽमरसोमनामा संवान्यसंवससमुद्रतदे तपस्वी॥ पवनवहनसंनिवेशनाना-सहयपयोधरदेहकरनेकैः। गजहरिणमृगेन्द्रबृक्षवली-म्गनगपन्नगपन्निभः परीतम्॥ गगनमवनितः समेत्य वहे-र्वरविभवेन जगत्यनन्तकोशम्। कचिदहमभितो दिदृश्ररप्रे सृत उरगाशनवद्वसाद्विद्याम् ॥ १० कचिदहं जगतः परिनिर्गतः पतित एकमहार्णबविस्तृते। नमस्ति तत्र निवासनिमे सितः समयमन्वभवं पतनं तथा॥ ११ आकाशकोशपतनानुभवैकवृत्तेः श्रान्तस्य मे पदमकार्यथ निद्यान्तः। ताहक सुबुतवयुपाथ मयोपलब्धं स्वप्रात्मजाप्रति तदात्मनि तत्र विश्वम् १२

दाय खमुड्डीना तथा सा मामुपादाय खमुड्डीनेति परेण सहा-न्वयः ॥ ४ ॥ तेन जलेन क्षित्रोऽहं तदनन्तरमकर्दमाहते निर्मेले मन्दरग्रहे समसमास्त्रया सह आसम् ॥ ५ ॥ तती जन्मान्तरे साथ्यंजगदन्तदर्शनमाद-अन्यदिति । ऋक्षचकेण ज्योतिश्वकेण विवर्जितम् । कदलीलच इव गर्भस्य गर्भे स्थिता एकजातयः स्वप्रकाशाध्य ये जनासीरावृतम् ॥ ६ ॥ तर्हि तत्र कथं लौकिकवैदिकव्यवहारप्रवृत्तिस्तत्राह-नोति । आत्मनैष दीप्तं प्रकाशमानम् ॥७॥ ततो जन्मान्तरमाह—विद्याधरेति । समुद्रतदे समुद्रतटसंनिहिते अस्रेलिहानामत्युन्नतानामचलानौ नितम्बकदम्बकच्छे अहं अमरसोमनामा विद्याधरः सप्त अन्यत सप्त चतुर्दशसमास्तपस्वी आसम् ॥ ८ ॥ नतोऽहं बहेर्नेरविभ-वेन जगति अभितः अविद्यां दिहशुः सन् क्षन्यित् पवनवद्वहनं प्रवाहरूपेण गमनं तद्यक्तक्रमसंनिवेशैनोनाविधा ये सुहया जा-लक्षाः पयोधरा मेघा इव न देहा येषां तथाविधै जैनैर्गजैहीर-र्णिर्श्तेन्द्रैर्वृक्षैर्विश्लीसिरन्येश्व सृगैर्निगैः पर्वतैः पत्रगैः पश्लिसिश्व परीतमनन्तकोशं गगनमवनितः समेख उरगाशनो गरुडस्तद्व-द्बलात् वेगेनामे सतः प्रसत इति द्वयोरन्वयः ॥ ९ ॥ १० ॥ तसाजगतः परिनिगतोऽहं कचिदेकमहार्णवयद्विस्तृते नभि पतितः । तत्र निवासिनिमे नक्षत्रगणे सिती बद्धः सन् दिनरा-त्रिमासर्लोदिसमयमन्वभवम्।तथा दिशु पतनं गमनं चान्वभवम्। ॥ ११॥ वर्णितेन प्रकारेण आकाशकोशे पतनस्य गमनस्यानु-भवनमेवैका मुख्या वृश्चियस तथा चिरपतनेन श्रान्तस्य मे भूयो दिगन्तभुवनामरमन्दराद्रिसंसारचञ्चलतया लतयेव पक्षी।
अक्षीणवातवलया परिचाल्यमानस्तन्मासु तासु पतितो हि जगहुहासु १३
विषयाशाहशो यावत्तावद्यातः क्षणादहम्।
पुनस्तथेव पश्यंस्तु हश्यं यातः पुनः पुनः॥ १४
इति हश्यमहश्यं च गम्यं चागम्यमेव च।
वेगाल्लङ्गयतो देशं मम वर्षगणा गताः॥ १५
हश्याख्याया अविद्याया न त्वन्तं प्राप्तवानहम्।
मिथ्येव हृदि रूढायाः पिशाच्या इय बालकः॥ १६
नेदं नेदं सदित्येव विचारानुभवे स्थितम्।

तथापीदिमदं चेति दुर्दष्टिर्न निवर्तते ॥ १७
प्रतिक्षणं सुक्षेदुंः केदेंदाकालैः समागमैः ।
सरिद्वारिवदालोला नवमायान्ति यान्ति च ॥ १८
तालीतमालवकुलातुलतुङ्गश्टङ्गमुद्यादवातजवमेकमदं स्परामि ।
सूर्यादिमिर्विरहितं प्रकटं स्वकान्त्या
सस्थावराद्रितटजङ्गममेव विश्वम् ॥ १९
यदेतवेकान्तविहारहारि
स्वच्छन्दमेकामितमस्तदाङ्कम् ।
कचिन्मया चारुजगरसुदृष्टं
नुस्या न तस्यामरराजलक्ष्मीः ॥ २०

इत्यावें वारिष्टमहारामायणे वा०मो० नि० उ० अवि०वि० भासवर्णितस्वजन्मपरम्परा नाम द्वात्रिंशाधिकशततमः सर्गः ॥१३२॥

त्रयस्त्रिशाधिकदाततमः सर्गः १३३

£

विपश्चिद्वाच ।
कांसिश्चिद्नयत्र जगत्यपूर्वे
हर्षं मयेदं श्रणु कि विमित्रम् ।
महाघवुत्तान्तद्शासमानमविद्ययान्धेन वलात्कृतं यत् ॥
अस्ति कवित्खे भवतामगम्ये
जगज्जवलद्दीप्तिविचित्रसर्गः ।

भधानन्तरं निद्रया अन्तर्हदि पदं स्थानमकारि । तादशा सर्व-जनप्रसिद्धेन सुषुप्तवपुषा स्थितेन मया अथ अनन्तरं प्रशृते खन्नात्मके जामति तदा तत्र अन्तरेव आत्मनि खस्मिन्विश्वमु-परुष्धं दृष्टम् ॥ १२ ॥ तत्रापि भूयो दिगन्तभुवनादिसंसारेण चम्रळतया अक्षीणवातब्रळ्या लत्या पक्षीव परिचाल्यमानोऽहं तासु पूर्वसंकल्पितासु तेषां दश्यानां मानानि माः इयत्तया परि-च्छेदास्तहक्षणासु जगद्वहासु पतितः ॥ १३ ॥ दशश्रक्षुषो या-बरपर्यन्ते विषयाशा प्रसता अहं तावत्प्रदेशपर्यन्तं क्षणाद्यातः पुनरपि तथैव पर्यन्तसंस्तद्शनकौतुकेन पुनःपुनर्दर्यं यातोऽस्मी-व्यर्थः ॥ १४ ॥ इति एवंरीत्या जागरेषु स्वप्नेषु च द्रष्टुं शक्यं हर्यं तिद्वित्रमहर्यं च विषयमुहिर्य गम्यमगम्यं च देशं वेगा-ह्रह्रयतो मम वर्षगणा वहवो गताः॥ १५॥ १६॥ यदापि मया नेदं सत् नेदं सदिति विचारानुभवे स्थितं तथापि इदं सरामिदं चासरामिति प्रतिविषयं दुर्दष्टिनं निवर्तते चिराभ्यस्त-द्वैतसखतासंस्कारस्य प्रबळलादिति भावः ॥ १७ ॥ विचारेण निरस्ता अपि दुर्देष्टयः प्रतिक्षणं प्रसक्तैः सुखैर्दुःखैर्देशकालमेदै-रिष्टानिष्टजनसमागमेश्व सरिद्वारिवत् नवं नवमायान्ति ॥१८॥ तत्रेकमाश्चर्य स्पृतमाह—तालीति । तच शक्तं सूर्यादिमिर्विर-हितमपि खकान्त्या प्रकटं भारतमानम् । विश्वं तु तस्य श्वन्नस्य स्थावरेरदितटैर्जेश्वभेश्व सहितं यत्सानु तत्स्थानीयमिति सर्वाधि-ष्टानं नदीवात्राश्वर्ये श्वःतं निर्दिष्टम् ॥ १९॥ यदेतच्छुन्नमे-

पतादगप्यम्बरतस्तद्न्यत्
स्वामं पुरं जाम्रति चेतसीव ॥ २
तिसान्मया विहरता दृद्यस्थमर्थमन्वेष्टमिस्न निहितं ककुमां मुखेषु ।
पद्यामि यावद्चलप्रतिमा घरायां
छायालिजालमलिना परिबंग्नमीति ॥ ३

कान्ते विद्वारो येषां तत्त्वविदां तेषां द्वारि मनोहरं खच्छन्द-मेकमितमस्तिविकारशङ्कं चेति त्रिविधपरिच्छेदशून्यं तथ कचित्राहजगत्मु ब्रह्मविन्मण्डलीयु दृष्टम् । अमरराजसेन्द्रस्य हिरण्यगर्भस्य च लक्ष्मीस्तस्य तुलया संमिता तुल्या न । हैरण्यगर्भान्तानन्दानां परिमितलादिति भावः ॥ २० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अत्त-रार्वे द्वात्रिशाधिकशततमः सर्गः ॥ १३२ ॥

अत्याश्वर्यं कचिदृष्टं भासेनात्रोपवर्ण्यते । सप्तद्गीपत्रमाणस्य शवस्य पतनं दिवः ॥ १ ॥

अविद्याख्यानेऽस्मिन्नसाश्चर्यवर्णनप्रसिन्ने शवीपाख्यानं भा-समुखेन वर्णयितुं प्रसीति—कस्मिश्चिदिति । हे मुने, अस्मा-जगतीऽन्यत्र कस्मिश्चिदपूर्वे जगति मया इदं वश्यमाणं वि-चित्रमसाश्चर्ये दृष्टं तच्छुणु । यन्महाघानां व्रद्यहरसादीनां फलभूतरीरवादिनरकृत्तान्तद्शासमानमतिबीभत्समप्यविद्य-या अन्धेन मया विववरप्रार्थनावलात् कृतं संपादितम् अनुभू-तमितियावत् ॥ १ ॥ भवतामगम्ये गन्तुमशक्ये किच्छोन्नि जगत् तत्र च जवलन्त्या चन्द्रसूर्यदिदीह्या विचित्रः स-गौऽस्ति । तच सिन्नविश्चत एताहगतद्रद्वाण्डसहशमप्यम्बरत एतहृष्ट्या श्रन्यस्तो हेतोरस्मादन्यदेष । तत्र दृष्टान्तः । यथा स्वाप्नं स्वप्तदे चेतिस् भातं तद्वदिस्थः ॥ २ ॥ तस्मन् जगित

आश्चर्यमात्रम्चितं किमिदं निमेषा-दिलाक्षि वे जगति यावदहं त्यजामि। खात्तावदद्रिमतुर्ल पुरुपाकृति द्रा-गावर्तवृत्तिभिरपश्यमहं पतन्तम् ॥ कः स्यादयं गिरिगुरुः पुरुषो विराद्वा । पर्यस्तपर्वतवदाश्च पतच्छरीरः। आकाशपूरकवपुः परमाम्बरोऽपि यो नैव भाति पिहिताखिळवासरश्रीः ५ पवंविधा हृदि मनाक्रलयामि याव-त्तावस्पपात सहसा नभसो विवस्तानः। कल्पान्तवातपरिवृत्तपितामहाण्ड-पृष्टावपातधनघोपञ्जषा जवेन ॥ દ્દ तस्मिन्पतति भीमात्मन्यपारावारदहिनि। सप्तद्वीपां वसुमतीं परिपूरयति श्रणात्॥ S स्वात्मनो नाशमाशङ्ख सद्वीपभुवनैः सह । अवदयभाविपार्श्वस्थमहमग्निमथाविशम् ॥ ረ स जातवेदा भगवान्जन्मान्तरदातार्चितः। माभैपीरिति देहेन मामुवाचेन्द्रशीतलः॥ Q जय देव त्वमसाकं प्रतिजन्म परायणम्। अकाल पत्र कल्पान्तो जातोऽतः पाहि मां प्रभो९० इत्युक्तेनाक्षिना प्रोक्तं माभैपीरिति तत्पुनः।

निवसता मया हृदयस्थं खामिलिषतमर्थं दिगन्तेष्वन्वेष्टं क-कुभां मुखेषु अद्धि निहितम् । श्रेरितमिति यावत् । तेषु यावत्कौ-तुर्कं पर्यामि तावद्धरायां अलिजालमलिना अचलप्रतिमा महती छाया बंभ्रमीति एशं भ्रमति ॥ ३ ॥ ततः अतिमहत्त्वादा-श्चर्यमात्रमिदं छायाकारं किमुचितमिति विस्शन् यावदिक्ष जगति ऊर्ध्वभागे त्यजामि प्रेर्यामि तावदद्रीणां मानं परिमाणं अद्रिमा सा तुला यस्य तथाविधं सादावर्तविभिः पतन्तं पुरुषाकृतिमहं द्रागपद्यम् ॥ ४ ॥ गिरिरिव सुकः आकाशपूर-कवपुः पतच्छरीरोऽयं पुरुषः को ब्रह्मा वा स्याद्विराद् ब्रह्माण्डश-रीरो वा स्यादिति वितर्के । येन परमाम्बरोऽपि यः प्रसिद्धः सूर्यः पिहिताखिलवासरश्रीः सन् नैव भाति ॥ ५ ॥ अहमेवंविधां चिन्तां यावन्मनाक्षरुयामि तावत् सहसा नभसो विवस्तान् सूर्यः कल्पान्तवातैः परिगृतस्य परावर्तितस्य पितामहाण्डपृष्ठस्य ब्रह्माण्डोर्ध्वकपालस्य अवपात इव घनघोषवता जवन वेगेन पपात ॥ ६ ॥ तदा त्वं किमकार्षास्तत्राह—तस्मिनिति द्वा-भ्याम् । भीमात्मनि भयानकखरूपे पुरुषाकारे वस्तुनि पतति सति अहं स्वाटमनः शरीरस्य तदुपमदीदवश्यभाविनाश-माश्चा अथ पार्श्वस्थमप्रिमविशमिति द्वयोरन्वयः ॥७॥ ८॥ स भगवान् जन्मान्तरशतार्थितो जातवेदा इन्द्रशीतलः सन् मां माभैषीरिलाह ॥ ९ ॥ तदानीं खकुतामित्रप्रार्थनामाह— जयेति । जातः प्रसक्तः ॥ १० ॥ हे अनघ, महोकमिलोकं गच्छावस्त्रमगच्छ इति च प्रोक्तम् ॥ ११ ॥ खवाइनश्चकपृष्ठे उत्तिष्टागच्छ गच्छावो महोकिमिति चानघ॥ 28 इत्युक्तवा शुक्रपृष्ठेऽसावारोप्य भगवांस्ततः। देहें कदेशे तत्पाति भूतं दग्ध्या नभः हुनः ॥ १२ अनन्तरं नभः प्राप्य दृष्टः षष्टारुतिर्मया। स तारम्भतसंपातमहोत्पातो भयप्रदः॥ १३ तिसम्जवेन पतिते वसुधा त्रचाल साम्भोधिद्येलचनपत्तनजङ्गलौघा । चके भृगुद्धयमयानजलस्रवन्ती भीमाकृतीन्वधुरदेहविभेदगर्तान्॥ १४ उर्वी ररास ककुबुत्तरतो ररास पूर्वा रगस विररास च दक्षिणा दिका। द्यौराररास विररास संशेलभूतं सर्वे जगत्प्रलयसंस्रमभीतम् श्रेः॥ १५ उर्वी ररास धरणे सविरावरंहः-संरम्भवर्जितसमस्रदिगन्वरोसा । व्योमापि घुंघुममलङ्गयमलं चकार नागारिवृन्दभयविद्रवणप्रचण्डम्॥ 8 6 निर्घातशब्द उदभूदिसतो भयाय भीमाय भूधरदरीहद्धदारणोत्थः। उत्पातभीमजबजाळयुगान्तवातः संरब्धकरुपघनघोपवितीर्णतर्जः ॥ १७

मामारोप्य तत् प्रायुक्तं पातोऽस्यास्तीति पाति भूतं शवं देहै-करेशे दम्बा छिदीकृत्य नभः हतः ॥ १२ ॥ १३ ॥ तस्मि-न्महाशवे जबेन पतिते सति अम्भोध्यादिसहिता वसुधा चवाल । अयानजलाः निरुद्धोदकप्रवाद्याः स्वन्त्यो नद्यो यस्यां त्रवाविधा सती गिरिनदीनां कुलदूर्य मार्गान्तरेण जलस्रवणात् भुगुद्द्यं जलप्रपातद्वयं चके। पतन्ति जलानि भीमाकृतीन्भयं-कराकारान् अदेहविभेदान् मनुष्यादिदेशकृतभूविदारणजन्य-वापीकृपादिविलक्षणान्गर्तान्त्र्यभुश्वकुः । 'विधुरदेहविभेदकर्तान्' इति पाठे वसुधाविधुरेण विसंपुलेन खदेहविमेदेन कर्तान् वप्रादिकर्तनानि चके इत्यर्थः ॥ १४ ॥ पुनः किमासील-दाह--उवीति। उवी भूः उत्तरतः ककुप् उत्तरा दिक् तथा पूर्वा दक्षिणा चकारात्पश्चिमा च ककुष् यीः शेलैभूतैश्च सहितं सर्वे जगन्न प्रलयसंभ्रमेण भीतं सत् उन्नैः रतास दध्वान हरोद च । धालावृत्तिस्तत्तच्छन्दवैलक्षण्ययोतनाय ॥ १५ ॥ उक्तमेव स्पष्टं पुनराष्ट्र—उर्वाति । घरणे पतितस्य शवस्य धारणे । तारत्वाधि-क्येन शब्दान्तरेरलङ्क्यं घुंघुनं ध्वनिमलमत्यर्थं चकार । नागा-रीणां गरुडानां भयेन विद्रवण इव प्रचण्डं दुःसहस् ॥ १६ ॥ भूधरदरीणां दढदारणादुत्थ उत्थितो निर्धात आस्फालनं तिक. मितः शब्दो भयाय भीमाय भयहेत्वं श्रोत्रहृदयादिमेदनाय च उदभूत्। स कीदक् । उत्पातिभीमजवलाजालवदाकर्षिणो ये युगान्तवातास्तः संरब्धा ये कल्पघनाः प्रख्याम्बुदास्तद्वो-

१ रासो ध्वनिः.

तिसञ्ज्ञेन पतिते वसुधा ररास सारावदिङ्गुखतया दातवेधमागात् । तत्रास्फुटन्कुलगिरीन्द्रमहातटानि पातालदेशमविशन्हिमविङ्गरांसि ॥

पातालद्शमावशान्हम्याच्छरास ॥
आसीत्तरपतनं तस्य मेहशैलिशिलाकृतेः ।
दलनं शेलश्क्षणां विदारणकरं सुवः ॥
क्षोमणं जलराशीनामद्रीणां भृतलापंणम् ।
पीडनं सर्वभूतानां जीडनं प्रलयाधिनाम् ॥
पातनं भूतले भानोः स्थगनं डीपपद्धतेः ।
चूर्णीकरणमद्रीणां दलनं मण्डलावनेः ॥
द्वितीयमिव भूपीठं ब्रह्माण्डार्घमिवापरम् ।
पतितं खिमवाकृत्या तद्पदयसभक्षराः ॥
अथ पद्याम्यहं यावदस्ता मां समयोऽचलः ।
न माति सप्तद्वीपायां भुवि तस्याङ्गमेककम् ॥
तमालोक्य मया देवः प्रसादे समवस्थितः ।
संपृष्टो भगवान्वद्विः प्रभो किमिदमिल्यथ ॥
कथं मां समयः सार्ध स चार्कः पतितो दिवः ।

स न माति हि भूपीठे सपर्यतवनाम्बुधौ ॥ २५ अग्निम्बाच ।

्प्रतिपालय पुत्र त्वं क्षणमेकं गतत्वरः । ं यावच्छाभ्यति दोषोऽयं कथविष्यामि ते ततः २६ ं अथ तस्मिन्वदत्येवं समाज्ग्मुनंभश्चराः ।

 तज्जगज्जात्रातीया दिग्भ्यो गगनजाखिलाः ॥ २७ तिद्धसाध्याप्सरोदेल्यगन्धवीरमिकत्रराः ।

ऋषयो सुनयो यक्षाः पितरो मातरोऽमराः॥ २८
 अथ सर्वेश्वरी देवी शरण्यां ते नमश्चराः।

२१ सक्तिनम्रशिरःकायाः काळरात्रि प्रतुष्टुवुः ॥ <mark>२९</mark> नभश्चरा ऊच्चः ।

बद्धा खद्वाङ्गश्रद्धे कपिलमुरुजटामण्डलं पद्मयोनेः कृत्वा दृत्योत्तमाङ्गः स्नजमुरसि शिरःशेखरं तार्क्ष्यपक्षेः।

यादेवी मुक्तविश्वा पिषति जगदिदं साद्दिभूपीठभूतं सा देवी निष्कलङ्का कलिततनुलता पातु नः पालनीयान् ॥ ३०

इत्यार्थे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्योशीन ०उ० अर्शतरुवविष्याने महाशववर्णनं नाम त्रयक्षिशाधिकशततमः सर्गः ॥१३३॥

२३

चतुस्त्रिद्याधिकदाततमः सर्गः १३४

विपश्चिदुवाच । पतस्मित्रन्तरे व्योद्धः स पतन्तुरुपो मया । स्थागिताखिलभूपीटः शवरूपो विलोकितः ॥ १ स यावदुदराभिल्यो देहभागोऽस्य येन भूः । सप्तद्वीपापि पिहिता मातुः शैलोपमो महान् ॥ २

षेभ्यो वितीर्णा विश्वाणिता तर्जो भर्त्यमा येन तथाविधः ॥१७॥ तस्मिन्शवे शतगुणं वेधमभिघातमागःत्राप तत्र तस्मिन्वेधे ॥१८॥ तस्य शवस्य तत्तादशं पतनमामीत्। कीदशं तदाह -दल-निमत्यादि ॥१९॥ भूतले अर्पणं समीकरणसाधनमिति यावत् । प्रस्यार्थिनां रद्रगणानाम् ॥ २० ॥ स्थमनमाच्छादनम् ॥२३॥ आकृत्या मूर्ताकारेण ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ मानमयो दहः कथं पतितः । तेन सार्धं स प्रसिद्धोऽर्कश्च कथं पतित इस्यावस्या **योज्यम् ॥ २५ ॥ प्रतिपालय प्रतीक्षस्त्र । अय**मेतरपतनदोषो यावरसाकल्येन शास्यति ॥ २६ ॥ गगनजमसिलं वस्त्रमूषण-माल्यादि येषाम् ॥ २० ॥ ते नभश्वराः के के तानाह-सि-देति ॥ २८ ॥ २९ ॥ या देनी महाकल्पान्ते संहतस्य पद्म-योनेः कपिरुमुरुजटामण्डलं खद्वाङ्गश्यक्षे बद्धा तथा देखाना-मुत्तमान्नैः शिरोनिः उरसि छजं छला संहतस्य ताक्ष्यस्य गरु-डस्य पक्षैः शिरःशेखरमवतंसं च कृत्वा भुक्तं विश्वं प्राणिजातं यया तथाविधा सती साद्रिभूवीठभूतमिदं जगत्विबति । एवं सर्वेजगरसंहारेऽपि दोषकेशेनाप्यलिप्तलानिष्कलहा शुद्धन्तिन्मा-

विद्वनोक्तमनन्तं तत्तद्भुजोश्शिरश्च मे ।
लोकालोकात्परं पारं प्राप्तं द्यविषये नृणाम् ॥ ३ व्योमवासि च यो देवीमथ स्तुवित सादरम् ।
व्योम्भः प्रकटतामागाच्छुष्का नु भवति स्वयम् ४ व्रतनृत्देरनुगता मातृमण्डललालिता ।
कुम्भाण्डयक्षवेतालजालतारिकताम्बरा ॥ ५

त्रस्वभावाध्यस्मदनुत्रहायः काँठवतनुष्ठता स्वीकृतशरीरा सती अवश्यपाठनीयात्रः अस्मान्यानु रक्षतु ॥ २० ॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे त्रय-स्विशद्धिकशतनमः सर्गः ॥ १३३ ॥

> देव्यास्तदाविभूतायाः शरीरमिह वर्ण्यते । तःपीतरक्तकुणपखादनं च गणरथ ॥ १ ॥

एतस्मित्रन्तरे देवारक्वदेवीस्तुतिकाले स प्राग्वाणितः पतन्पु-हवी मया स्थितिमाच्छादितमिखिलं भूषीठं येन तथाविधः शव-ह्यो निर्जावो विलोकितः परिहातः ॥१॥ येन शत्रभागेन सप्त-द्वीपापि भूः पिहिता सोऽस्य संपूर्णभूमी यावत् साकल्येन अमा-तुमीनमप्राप्नुवतः शवस्य शैलेपमो महानुदरामिख्यः कुक्षिसं-इको भागः स एव मया दृष्ट इल्पर्थः ॥ २ ॥ तिर्हे तद्भुजोह-दिरस्लया दूरस्यं कथं झातं तत्राह—विह्नेति । तसर्हि ह प-तितं तत्राह—लोकालोकादिति ॥ ३ ॥ सा स्वयं शुक्का नीर-क्षेव भवति । तु इति वितर्के ॥ ४ ॥ कीदशी सा तदाह— प्रेतवृन्दैरिलादिना । तारिकतं संजाततारकमिव इतमम्बरं यया शिरालदीर्घदोदंग्डयनीकृतनभक्तला। किरन्ती कीर्णदिग्दाईईष्टिषातैर्दियाकरान्॥ દ્ **स्फूरमानायुधाकारकच**उझणझणध्यनि । शतखण्डं खगानीकं कुर्वाणा व्योमकोटरे ॥ S. देहज्वालेक्षणोप्मार्ख्यः शरीरावयवस्तिवयः। दीर्घवेणुयनाकाराः किरन्ती कोटियोजनाः ॥ 6 दन्तकान्तीन्द्विद्योतदुग्धस्रपितदि उपुला । क्रशातिदीर्घविस्तीर्णदारीरापृरिताम्बरा ॥ Q निरालम्बास्पदा सांध्या विततेवाभ्रमालिका । प्रेतासनसमारूढा सुरुढा परमे परे॥ 20 स्फुरन्ती प्रज्वलद्रूपा संध्या जलघरारुणा । द्धाना गगनाम्भोधो वाडवज्वलनश्रियम्॥ 8, 7, शबैः शवाङ्गर्भस्र्षः प्रासतोमरमुद्गरः । वृतिकोलुखळहरूः किरन्ती चञ्चला स्रजः॥ १६ प्रजां कटकटाटोपैचेहन्ती गगनाङ्गण । रपदां घर्घरारावैः प्रावृद्धिरित्वाचले ॥ १३ देवा ऊचुरयं देवि उपहारीकृतोऽम्बिकं । सार्घे स्वपरिवारेण शीघ्रमाहियतामिति ॥ 53 बदरयेवं सुरानीके तं शवं प्राणवायुना । देवी प्रचवृते रक्तसारमाक्रष्ट्रमञ्जला ॥ 814 प्राणेनारुष्यमाणं तद्रकं भगवतीमुखे। आविशत्सांध्यमेघोध इव मेरोगृहान्तरम्॥ १६ ताबद्रकं तथा पीतं प्राणाऋष्टं नभःस्थया । यावच्छुकासती तृप्रा पीना सा चंडिका स्थिता१७ ततो वभूव सा रक्तपरिपीनदारीरिणी। रका वर्षाभ्रमालेव तडित्तरललोचना ॥ १८

॥ ५ ॥ शिरालैः शिराचांद्रदाँधेदीर्दण्डैवेनांसव संपथमानं क्रतं नभस्तलं यया । दृष्टिपार्तार्दवाकरान्किरन्ती विक्षिपन्ती ॥ ६॥ स्फुरतां नानायुधानामाकारैः कचञ्झणझणष्यनि यथा स्यात्तथा व्योमकोटरे खगानीकं पक्षिसमूहं शतखण्डं कुर्याणा ॥ ० ॥ देहज्वालाभिरीक्षणाप्मभिर्नेत्राप्न्यीण्यैधार्ट्यः संपन्नैः शरीराप-**यवैद्धिवेणुवनाकाराः** कोटियोजनपरिमितास्लिपः किरन्ती वि-क्षिपन्ती ॥ ८ ॥ ९ ॥ निर्मते आलम्बास्पदे यस्माः । अभ्र-मालिकापक्षे निरालम्बमम्बरमास्पदं यस्याः । परमे पदं ब्रह्मणि सुषु रुढा प्रादुर्भूता ॥ १० ॥ वाडवज्वलनो वडवानलस्तच्छियं द्धाना ॥ ११ ॥ बृसिकाः आसनानि ॥ १२ ॥ कटकटैति दन्तध्वन्यतुकरणं तदाटोपेस्तदाडम्बरैः प्रजा जनशरीरमालां गगनाञ्चणे बहुन्ती। यथा प्रावृत्तिरिर्देषदां मालां घर्षरारावैनिर्द्धर-रचले खदेहे बहति तद्वत् ॥ १३ ॥ देवास्तां देवीमृजुः । किम्युः । हे अम्बिके, अयं दावस्ते उपहारीकृतोऽस्मानिः स्वप-रिवारेण साध शीप्रमाहियतां भुज्यतामित्यूचुः ॥ १४ ॥ देवी खयं सर्वप्राणशक्तिलात्प्राणानां रक्ताधारलात्प्राणवायुनैव तद्रकसारमाकष्टं प्रवृद्धते ॥ १५ ॥१६॥ प्राक् शुब्का सती तृप्ता

| लम्बोदरा भगवती विषमाहिविभूषणा। | |
|---|------------|
| रक्तासवमदक्षीवा समस्तायुधधारिणी॥ | १० |
| व्योम्नि नर्तनमारेभे स्वशरीरार्धपृरिते। | |
| पर्यन्तगिरिमालाग्रस्थितामरनिरीक्षिता॥ | २० |
| ततः पिशाचकुम्भाण्डरूपिकादिमहागणाः। | |
| शवमायारयांचकुर्महाचलमिवाम्बुदाः॥ | २१ |
| शवर्रालो गृहीतोऽसी कुम्भाण्डैः कटिभागतः | l |
| उद्रादृषिकावृन्दैर्यक्षेः कुञ्जरविक्षतैः ॥ | २२ |
| भुजोरकन्ध्रराद्यास्तं तस्यान्येऽवयवा यतः। | |
| ब्रह्माण्डस्य परं पारं प्राप्ताः परमविस्तृताः ॥ | २३ |
| ततस्तैर्भृतसंघातैः स्थिता दुरे दिगन्तरे। | |
| न प्राप्ता वे हि तत्रैय कालेन कलिता स्वयम्॥ | રક |
| नृत्यन्त्यां चण्डिकायां से भृतवृन्दे दाधाकुले। | |
| देवेष्वद्रिषु तिष्टत्सु वभूव भुवनं तदा ॥ | ३ ५ |
| पिण्डाहार्यामदुर्गन्धि गुण्ठीकृतककुब्गणम्। | |
| रक्तगर्भाभ्रनिव्यूहैः खादिरज्वलनोज्ज्वलम् ॥ | २६ |
| मांसचर्यणसंरम्भप्रोद्यच्छवशवस्वनम् । | |
| लतास्थिखण्डनोड्डीनवृहत्कटकटारवम् ॥ | २७ |
| भृतसंघट्टविक्षेपवद्याद्वीपणनिःस्वनम् । | |
| हिमचद्विन्ध्यशैलाद्रिप्रमाणास्थ्यचलाचृतम्॥ | २८ |
| देवीमुखानलज्वालापक्रमांसाक्तभूतलम् । 💎 | |
| रक्तसीकरनीहारसिन्दृरितककुव्यणम्॥ | २९ |
| सर्वतः प्रक्षकेदवैः सप्राकारदिगन्तरम्। | |
| रुधिरैकार्णवीभूतसप्तद्वीपवसुन्धरम् ॥ | ३० |
| अत्यन्तान्तर्हितारायसमस्ताचलमण्डलम् । 🥏 | |
| रक्तप्रभाभ्रसंभारवस्त्रावृतदिगङ्गनम् ॥ | ३१ |

भूबा पक्षत्पीना पुष्टा भूबा स्थिता ॥ १० ॥ यथा वर्षाकाले तिकत्तरल्लोचना रक्तवणी अञ्चमाला स्थिता तद्भत् ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ खदारीरेणार्धपूरिते व्यक्ति नर्तनमारेमे उपचक्रमे । पर्यन्तगिरिलीकालोकपर्वतस्त्रदीयशिखरमालामेषु र्निरीक्षिता ॥ २० ॥ २१ ॥ उदरादुदरमारम्य । यक्षैस्तु स्त्रीयकुजदन्तविक्षतिः परिशिष्टेः पार्श्ववृष्टमार्गर्ग्हतितः ॥ **२२ ॥** ननु भुजोहकन्धरादिभागे कुतो न यहीतस्तत्राह-भुजोविति । यतसं ब्रह्माण्डखपरस्य परं पारं जलाद्यावरणदेशं प्राप्तास्ततो हेतोर्सर्भृतसंघातैर्द्रे दिगन्तरे स्थितास्तेन प्राप्ताः किंतु तत्रैव कार्छन ख़यमेव करिता गलिता इति द्वयोरन्वयः ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ कीदशं बभव तदाह--पिण्डेखादिना । पिण्डश आहर्षिर्भक्ष्यमाणेनीयमानिश्च आमदुर्गन्धिभिमोसवसादिमिर्गु-ण्डीकृता अवगुण्डिता व्यासाः ककुरगणा यत्र तथाविधम् ॥ २६ ॥ शवशवेति चर्वणध्वन्यनुकरणम् । श्रीभरक्षो रसः । लतानामित्र शिराणामस्थीनां च खण्डनादुर्द्वान आकाशे प्रस्तो बृहत्कटकटारवो यत्र ॥ २०॥ २८ ॥ २९ ॥ सप्राकारं यरणविधितमिव दिगन्तरं यत्र ॥ ३० ॥ अत्यन्तमन्तर्हितं वृत्तालोलभुजभ्रान्तहेतिच्छश्रनभस्तलम्।
दूरस्मृतिपथप्राप्तपुरपत्तनमण्डलम् ॥ ३२
अत्यन्तासंभवद्रपसर्वस्थावराजंगमम् ।
संपन्नानन्तकुम्भाण्डस्पिकाद्येकसंगमम् ॥ ३३
नृत्तलोककराकारखगावलनजालकः ।
मानस्प्रैरिव विधेरन्यद्रचयतो जगत् ॥ ३४
भूमेराकंगतं नीतैः पिशाचरात्रवन्तुभिः ।
विमानभिव दिकुञ्जेस्तिर्यगूर्ध्वमधो जगत् ॥ ३५
जगदालोक्य तत्तादगुदक्तोपप्रवाष्ठतम् ।
भूतपूर्वमहीपीत्रस्थित रक्ताणवीकृतम् ॥ ३६
द्वीपस्तकपर्यन्ते लोकालोकादिम्प्र्यनि ।
तद्ककरमाकान्ते स्थिता खिन्नतराः सुराः ॥ ४७
श्रीराम उवाच ।

श्रीराम उवाच । ब्रह्माण्डादपि निर्गत्य यस्य तेऽवयवा गताः । लोकालोकाचलस्तेन ब्रह्मश्र स्थगितः कथम् ॥ ३८ वसिष्ठ उवाच ।

हीपसप्तकमध्येऽस्मिन्राम तस्योदरं स्थितम्। द्विरःखुरभुजायङ्गं ब्रह्माण्डात्परतः स्थितम्॥ ३९ पार्थ्वाभ्याम्हमध्याच कटिपार्थ्वद्वयात्तथा। द्विरोसहयमध्याभ्यां लोकालोकः स लक्ष्यते ४० सत्रोपविद्यास्ते देवा लक्ष्यन्ते श्रङ्गमूर्थसु।

भूप्रवेशादस्थ्यावाच्छादनाच तिरोधानं प्राप्तमशेषं समस्तं वि-खरसहितम्बलमण्डलं यत्र । रक्तप्रभारत्रितरश्रमसंभारिः रक्तवसायता इव दिगङ्गना यत्र ॥३१॥ हेतिभिर्देवीतद्रणायुधै-**२छन्नं नभस्तरुं यत्र ॥ ३२ ॥ संपन्नः अनन्तानां कुम्भाण्डरू**ः पिकादीनामेवैकः संगमः समाजो यत्र ॥ ३३ ॥ रुते प्रसक्ता ये होका भूतगणाक्षेषां ये अभिनयकराकारास्तहश्रणानां खगा-मामावलनाय बन्धनाय प्रसारितजीलकैरिव नभसि अन्यजन गद्रचयतो विधेर्मानसूत्रीरिव च स्थितैर्भूमेरारम्य आ अर्कगतं सूर्यमार्गपर्यन्तम् व्यमधश्च दशदिग्लक्ष्णेः कुप्रैस्तिर्यक् च पि-शाचैरातानवितानाभ्यां नीर्तराश्चलक्षणस्तन्त्रभिर्जगद्धाण्डोदरं विमानमिव तदा भुवनं श्रैलोक्यं बभूवेति द्वयोरन्वयेनोपक्रमेण संबन्धः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ पूर्व भूते मृतपूर्व महीपीठे स्थिति-र्वेषां तथाविषे रक्तरणंवीकृतम् । अतएव उदक्तेन उद्गतेनो-पष्ठवेनाहुतमास्कन्दितं जगदालोक्य द्वीपसप्तकपर्यन्ते तस्य शवस्यात्रकैः कुत्सितरिष्ठेरनाकान्ते लोकालोकादेर्मूर्धनि स्थिताः सुराः खिन्नतरा अभिनिति द्वयोरन्वयः ॥ ३६ ॥ ३७॥ यस्य शवस्य ते अतिदीर्घ। हन्तपादायवयवा ब्रह्माण्डादपि बहि-र्निर्गत्य गतास्तेन ताहरोन महाशवेन छोकाछोकाचलः कथं न स्थगितो नाच्छादित इति रामेण सर्वज्ञो वितिष्ठ एव पृष्टो न भासः। तस्य लोकालोकपर्यन्तं दृष्ट्यप्रसरेण तदनभिद्मलनिश्चया-दिति भावः॥३८॥ अतएव वसिष्ठ एव तदुत्तरमाइ—द्वीपेत्था-दिना । हे राम, तस्य उदरं उदरोपलक्षितं मध्यशरीरं द्वीपसप्त-

सुगुद्धकान्तयस्तापादजला जलदा इव ॥ धर प्रसारिताङ्गकमधो वकं तत्पतितं शवम्। संभक्षयति भूतौधे प्रमुखन्तीषु मातृषु ॥ ४२ वहत्स्वस्वयवाहेषु मेदोगन्धे विजृम्भिते। दुःखिताश्चिन्तयामासुः प्रत्येकममरा इदम् ॥ 83 हा कप्टं क गता पृथ्वी क गता जलरादायः। क गता जनसंघाताः क गता धरणीधराः॥ 88 तारकन्दनमन्दारकदम्बवनमण्डितः। मण्डपः पुष्पराशीनां कष्टं क मलयो गतः॥ 84 उच्चावदाता विपुला हिमवद्भमयोऽपि ताः। नीताः शीक्क यरुषेवाशु रुधिरेणात्मपङ्कताम् ॥ ४६ क्रीञ्चद्वीपतले क्रीञ्चे योऽभूत्कल्पद्वमो महान्। ब्रह्मलोकलसच्छाखः सोऽपि चूर्णत्वमागतः॥ ४७ हा क्षीरार्णवपारिजातकमलाचन्द्रामृतानां पते हा द्रथ्यणवनावनीतशिखरिप्रोद्धतवेळावन । हा मध्वर्णवनालिकेरगिरिके योगेश्वरीसेवित केदानीं समुपैष्यथ क चनिता दिग्दर्पणत्वं गता४८ हा कल्पद्रुमकाञ्चनामललतानिःसंधिबन्धाचल क्रीअद्वीपविरिश्चहंसनिलनीनीरन्ध्रदिग्जालक। यातः क्रंह कद्म्यकाननद्रीविश्रान्तविद्याधरी-क्रीडाकोविदनागरामरगृह त्वं पुष्करद्वीपक ॥ ४९

कमध्ये स्थितम् । शिरःखरोपरुक्षिती पादी भुजावशं च बद्धाण्डात्परतः स्थितमिति भासोक्तं सत्यभेव ॥ ३९ ॥ तथापि शवस्य पाधीस्यां अवीर्मध्यात्कटिपार्श्वद्वयात् तथा शि-रीसद्वयमध्याभ्यां च श्वन्नाणामनाच्छादनात्स लोकालोकपर्व-त ऊर्ध्व लक्ष्यते हर्श्यत एवेत्वर्थः ॥ ४० ॥ एवं प्रश्नो-त्तरमुक्ला कथाशेषमपि भासेनापरिज्ञातं वसिष्ठ एवाह-तत्रेखादिना । तापादन्तः संतापाच्छरदर्कातपाच ॥ ४१ ॥ अधोवकं तच्छवं भूतौषे संभक्षयति सति इदं वस्यमाणं चिन्तयामासुः ॥४३॥ तदेवाह—हा ऋष्टमि-खादिना ॥ ४४ ॥ पुष्पराशीनां मण्डप इव स्थितो **मलयः** ॥ ४५ ॥ रुधिरेण कत्री हिमकृते शौक्रये विषये रुषा कोधेनेव तदभिभवाय आत्मपद्वतां स्वीयकर्दमभाषम् ॥ ४६ ॥ क्रीध-नाम्नो द्वीपस्य तले कै।खे गिरी यः कल्पहुमोऽभूत् ॥ ४७ ॥ पारिजातानां कमलायाधन्दस्यामृतस्य चोत्पादकलात्पते खामि-न्हे क्षीरार्णव । नावनीता नवनीतभरिता ये शिखरिणस्तेषु प्रो-द्भृतं वेलावनं यस्य तथाविध हे दध्यर्णव, वेलास्थे नालिकेर-प्रधाने अनुकम्पी गिरी गिरिके योगेश्वर्या सेवित हे मध्वर्णव, हा भवतां प्रत्येकं शोच्यतेत्वर्थः । इदानीं क समुपेष्यय स्फटि-कादिरक्षशिकामिर्वनितानां देवस्त्रीणां दिशां च दर्पणस्यं क वा गताः ॥ ४८ ॥ कल्पद्वमेण काश्वनीमिरमठामिर्छताभिष निःसंधिर्निरुपाधिर्वन्धः संबन्धो यस्य तथाविधः क्रीबाचलो यासिस्तथाविध हे कौश्चद्वीप, लम् । तथा विरिधिहंसैर्नछिनी-

स्वाद्दोदप्रतापावलकुसुममहीपावनानां वनानां
गोमेधद्वीपकरपद्वमकनकलतासुन्दरीणां दरीणाम्।
गाकद्वीपावलानाममरतरुवनदिशितानां सितानां
स्मृत्येवोदेति पुण्यं सुरपदसुखदंमानवानांनवानाम्
मन्दानिलावलितपल्लववालवलीसंतानमासितसमस्तदिगन्तराणि।
ध्वस्तानि तानि सकलानि वनानि कप्टमाश्वासमेध्यति कथं जनता न जाने ५१
कदा न तानिश्चरसाध्यितीरे
बनानि खण्डाचलभूमिकासु।
द्रस्येम भूयो गुडमोदकानि
तथा कुमाराण्यपि शर्करायाः॥ ५२
कदम्बकरपद्वमशीतलेषु
तालीतमालीसवनाचलस्य।

कदा नु तबन्दनसुन्दरीणां

पद्येम नृत्तं कनकालयेषु ॥

गतानि कष्टं सारणीयरूपतां जम्बुद्रमस्याग्रफलानि तान्यपि । येषां नदीं द्वीपसमुद्रमेखला वहत्यसौ जम्युमती रसाम्बुभिः॥ 48 शिलीन्ध्रनीरन्ध्रमहीधरन्ध्र-क्षीबामरस्त्रीकृतगीतनृत्यम्। संस्मृत्य संस्मृत्य सुरोदतीरं प्रागद्ममुर्वीव हृदावदीयें॥ 44 परयास्गम्भसि नवार्णवमुर्भि भासा सावर्णपर्वतशताग्रशिखाः कचन्ति। संध्यारुणा उदयनास्तमयावनीनां स्तोकोदितेन्द्रकलिका इय दिज्युखेषु ५६ ताद्यसागरवारिराशिवलया द्वीपान्तरालंकता प्रोचाद्रीन्द्रनिविष्वारिद्घटानीकोत्पलानां स्थली। स्रोतोजङ्गलकाननोधनगरधामाध्रहाराम्बरा ५३ ं नो जाने तरुपलवाद्भरवती कष्टं क याता मही ५७

इसार्षे वा वा वे वमो वि उ व अवि विप श्वोपाल्याने देवपरिदेवनवर्णनं नाम चतुः अंशदिधकशततमः सर्गः॥१३४॥

मिश्र नीरन्ध्रं निबिटितं दिग्जालं यस्य तथाविध । तथा क-दम्भकाननदरीषु विश्रान्तानां विद्याधरीणां रतिकीडासु कोवि-दानां नागराणाममराणां च गृहभूत हे पुष्करद्वीपक, त्वं चेति युवां इह क यातः क गती ॥ ४९ ॥ स्वाद्दस्य समुद्रस्य तदी-यानां उद्यतापं आवलयन्ति निहन्धन्ति तथाविधानां कुसुमच्छ भमहीपावनानां वनानाम् । तथा गोमेधद्वीपस्य तदीयकल्पह-माणां तत्रत्यकनकलतानां ताभिः सुन्दरीणां दरीणां । तथा अमरतरूणां कल्पष्टक्षाणां वनैर्देशितानां कश्चकितानां तत्पुष्पैः िखतानां को बद्वीपसहितानां तदचलानां चेति नवानां पदार्थानां स्मृत्येव मानवानां सुरपदं खर्गस्तत्सुसदं पुण्यमुदेति ॥ ५० ॥ मन्दानिष्ठेरावलितपलवा या बालवलयसाद्युक्तैः संतानैःकलपत्रुक्ष-भेदैर्भासितानि समस्तदिगन्तराणि येषां तानि तादशानि सकलानि बनपने ध्वस्तानि भमानि । कष्टमिति खेदे । अतः परमस्पद।दिज-नता आश्वासं विश्रामं चित्तसमाधानं च कथमेव्यति न जाने इति तत्र कस्यचिदुक्तिः ॥५१॥ इथुरसाब्धेस्तीरे खण्डः शिलीभृतश-र्करा तन्मवैरचलैर्भृषितासु महीषु तानि प्रसिद्धमाधुर्याणि गुडमो-दकानि कदा न दक्ष्यम पश्येम दक्ष्याम इति वा।छान्दसी विकरण-व्यत्ययः। तथा शर्करायाः कुमाराणि की डार्थाः पुत्रिका अपि कदा-इक्ष्यामः॥५२॥तालीतमालीमिः सवनस्य तद्चलस्य कदंबैः कल्प-ह्रमेथ शीतलेषु कनकालयेषुपविष्टाः सन्तस्तत्प्राग्बहुशोऽनुभृतं **चन्दनलिप्तानां सुन्दरीणामप्सरसां दृत्तं** चन्द्नलतालक्षणानां सु-न्दरीणां मृतं वा कदानु पश्येम। आशंसायां लिङ्॥५३॥जम्बृहुम-स्य तानि गजप्रमाणरवेनामृतरसत्वेन जाम्यूनदस्वणंहेत्रत्वेन च

प्रसिद्धान्यप्रफलानि स्मरणीयरूपतां गतानि । कष्टमिति खेदे । येषां फलानां रसाम्ब्रिसः प्रभवां नदीं द्वीपाः समुद्राश्च मेखला यस्यास्तथाविधा असी जम्बुमती जम्बुद्वीपरूपा मही बहति ॥५४॥ तथा शिलीन्ध्रेनीरन्धाणां निरवकाशीकृतानां सहीधाणां रन्ध्रेष गुहास क्षीबानिर्मधुमत्ताभिरमरस्रीभिः इतं गीतसहितं नृत्यं यस्मिस्तथाविधं सुरोदस्य समुद्रस्य तीरं पुनः पुनः संस्मृत्य प्राक् प्रातःकाले अब्जं पद्मामिव संप्रति उर्वीव च अहं हुदा अवरीर्थे । विदारणं प्राप्नोमीत्वर्धः ॥५५॥ हे मित्र, अस्त्रमक्त-मम्भो यस्य तथाविधे नवस्य अभिनवस्यार्णवस्य मुर्धि उपरि-भागे सीवर्णानां मेर्वादीनां पर्वतशतानामप्रशिखाः भ्रकाणि उत्तरादिदिक्युखेषु उदयास्तमयावनीनां सूर्योदयास्तमयसीनहि-तभूमीनां संध्याभ्यामरुणाः स्तोकोदिता इन्द्रकलिका इब भासा कचन्ति दीप्यन्ते लं पश्य ॥ ५६ ॥ तादशा वर्णितप्रकाराः सागरस्या ये बारिराशयो जलसमुहास्ते बलया ६व यस्याः । द्वीपान्तरेद्वीपमेदैरलंकता । प्रोकेष्वद्रीन्द्रेषु अधीरस्तनप्रायेषु नि-विष्ठानामम्बद्धरालक्षणानां नीलोत्पलमालानां स्थली आधा-रभूता तक्क्षितेतियावत् । स्रोतांसि नद्यो जक्करानि काननानि भटेरप्राणि नगराणि प्रामा अप्रहारा ब्राह्मणप्रामाध्याम्बराणि यसाः । तरपहनाद्धरादिभूषणवती मही संप्रति क याता नो जाने कप्टमिति खेदे ॥ ५७ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-यणसारपर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे उत्तराधे चतुर्श्विषद्धिक-दाततमः सर्गः ॥ १३४ ॥

पश्चत्रिद्याद्धिकदाततमः सर्गः १३५

धसिष्ट उवाच । मरेन भूतयून्देन किंचिच्छेपीकृते शवे। इदमुखुः पुनर्दिश्च गिरी देवाः सवासवाः॥ विद्याधरामरविहारविमानभूमा-वप्यास्तृतान्यदिाशिरीकरणाय भृतेः। मेदोमयानि पवनप्रसृतामलाभ्रः खण्डाश्चिताम्बरसमान्युरुजालकानि ॥२ द्वीपेषु सप्तस्वपि पश्य मेदी-जलानि भूतैः प्रत्रिसारितानि । भुक्ते च मांसं रुधिरं च पीतं किंचिद्रता संप्रति दश्यतां भूः॥ मेदःपरेराषिता खिलाङ्गी कएं स्थिता संप्रति मोदना भूः। मेवोमयः शारदमेघजालः सकम्बलानीच चनानि भान्ति ॥ R पश्येतानि तदस्थीनि संपन्नानि महाद्वयः। हिमादिशिखराणीय स्थितान्यावार्य दिकटम् ॥ ५ 💶 वा० महारामाथणे वा० दे० मो० नि उ० अ० वि० शवो० शवोपशमो नाम पन्नश्रिशदधिकशततमः सर्गः ॥ १३५ ॥

वसिष्ठ उवाच। देवेषु कथयत्स्वेवं कृत्वेमां मेदिनीं घराम्। मेदोजालैः स भूतीयो मस्तो ब्योम्नि ननर्त हु ॥ ६ नृत्यत्सु भूतचृन्देषु शिष्टं रक्तं सुर्रेर्भुषः। एकप्रवाहेणैकसिक्षिक्षिप्तं मकरालये॥ 9 सुरार्णयं तमेवैनं संकल्पं विद्धुः सुराः। ततःप्रभृति सोऽद्यापि संपन्नो मदिरार्णवः॥ भूतानि नृत्तमाकाशे तानि कृत्वा पिबन्ति ताम्। मदिरां पुनराकाशे नृत्यन्त्यानन्दमन्दिरे ॥ पियन्त्यद्यापि तानीव मदिरां मदिरार्णवात्। खे नृत्यन्ति च भृतानि सह योगेश्वरीगणः॥ 80 तेषां तान्यथ भूतानां मेदोजालानि भूतले। विस्तृतान्यवशुष्काणि स्थितातो मेदिनी मही॥११ इति क्रमाच्छान्तिमुपागते शवे पुनः प्रवृत्ते दिनयामिनीक्रमे । प्रजाः ससर्जाथ नवाः प्रजापतिः पुनः स सर्गोऽभवदत्र पूर्ववत्॥

पट्त्रिंदादधिकदाततमः सर्गः १३६

भास उवाच। अधाहं तं महादेवं पावकं पृष्टवानिदम्। शुकपक्षतिकोणस्थः श्रूयतामवनीश्वर ॥ ٤ भगवन्सर्वयंबदा स्वाहाधिप ह्रतादान । किमिदं नाम संपन्नं कथ्यतां किमिदं शवम् ॥

> भुक्ते मांसेऽत्र भूतीधेः पीते रक्ते च भूः कृता । मेदसा मेदिनी रक्तशेषेण मदिरार्णवः॥ १ ॥

दिश्च स्थिते कीकालोकगिरी स्थिता देवा इदं वस्यमाणमुखः ॥ १ ॥ विद्याधराणासमराणां च विहाराथीनां विसानानां सं-चारभूमी नभस्यध्यशिशिरीकरणाय भूतैर्देवीगणेर्मेदःप्रचुराणि पवनप्रसृतेरमलैरस्रखण्डे रचितेनाम्बरेण समानि उरूणि आन्त्र-जालकानि आस्तृतानि ॥ २ ॥ दश्यतां दर्शनयोग्यताम् ॥३॥ मोदना सर्वप्रःणित्रमोदप्रदा भूः संप्रति मेदःपटेरावलिताखिला-श्री सती स्थिता कष्टम् । बनानि च मेदोमयैः शारदमेघजार्छः सकम्बलानि धूसरकम्बलसंबीतानीव भान्ति ॥ ४॥ तस्य श-बस्यास्थीनि ॥ ५ ॥ स भूतीयी देवीगणस्तुप्तः सन् इमां पीत-शिष्टमेदोजालेमंदिनीं मेदोलिसां कृत्वा मत्तः सन् व्योन्नि ननर्ते । हेति प्रसिद्धी ॥ ६ ॥ एकप्रवाहेण संकल्पकृतेन सप्तानां मध्ये एकस्मिन्मकराळये समुद्दे निक्षिप्तम् ॥ ७ ॥ तमेवैनं समुद्रं सं-कर्लं विधाय सुराणेनं विद्धुः ॥ ८ ॥ तां तत्रत्या मदिरां पि-बन्ति ॥९॥ तानि भूतानीव अदापि इदानीतनान्यपि भूतानि

वह्निस्वाच्य । श्रूयतामखिलं राजन्यथाचद्वर्णयामि ते। त्रैलोक्यभासुरानन्तशववृत्तान्तमक्षतम् ॥ Ę अस्त्यनन्तमनाकारं परमं व्योम चिन्मयम्। यत्रेमान्यपसंख्यानि जगन्ति परमाणवः॥ ß

तस्मानमदिराणवानमदिरां पित्रनित खे मृत्यन्ति च ॥ १० ॥ तेषां भूतानां तानि पीतशिशानि भेदोजालानि भूतले शुष्काणि अतो हेतोर्मही मेदिनीनाम्ना स्थिता ॥ १३ ॥ एवमादिखोऽपि देवैः पूर्ववत्खपदमारोपितः पर्वतादयश्च पूर्ववत्कृप्ता इति सूचय-माह—इतीति । इति उक्ताःकमान्छवे शान्ति क्षयमुपागते सति सूर्यस्य स्वस्थानारोपणान्मेर्वादीनां चौद्धरणाद्दिनयामिनी-कमे पुनः प्रवृत्ते सति अथ प्रजापतिर्नवाः प्रजाः ससर्जे । अत्र भूतले सः सर्गः पूर्ववद्भवत् ॥१२॥ इति श्रीवासिष्ठमहारा-मायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पञ्चित्रराद्धिक-शततमः सर्गः ॥ १३५ ॥

अग्निर्भासेन पृष्टोऽत्र शववृत्तान्तमादितः । असुरो मदाकश्रेणो व्याधश्रेखारावर्णयत्॥ १ ॥

अमिवाहनस्य शुकस्य पक्षतिः पक्षमूलं तत्कोणस्थः। हे अव-नीश्वर दहारथ ॥ १ ॥ यदिदमिदानी शवं नाम संपन्नं तत्पूर्व कि किनिमित्तं च तथा संपन्नमिति द्वी प्रश्नी ॥ २ ॥ तत्राधप्र-श्रस्योत्तरं वहिः धावयति--श्रयतामित्यादिना॥३॥ तत्रादौ व-

शुद्धचिनमात्रनभसि तस्मिनसर्वगते कचित्। सर्वात्मन्युदभृत्संवित्संवेदनमयी स्वयम्॥ सा तेजःपरमाणुत्वमपद्यद्वेदनावशात्। भावितार्थात्मकतया स्वप्ने त्वमिष पान्धताम् ॥ ६ परमाणुरसंविस्वादपदयदणुतां स्वयम्। भास्वती पद्मजरजस्तुल्यां संकल्पनात्मिकाम् ॥ ७ सोच्छ्रनतां भावयन्ती पुनरप्यभवत्स्त्रयम्। चक्षुरादीनीन्द्रियाणि वपुष्यन्वभवत्स्वतः॥ अपर्यदेशे च जगश्चश्चरादिस्वभावतः। आधाराधेयवद्भृतमयं स्वप्नपुरं यथा॥ असुरो नाम तत्रासीत्प्राणी मानी बभूच ह । असत्यप्रतिभासात्म पितृमातृपितामहः॥ १० दर्पोत्सिकतया तत्र कस्यचित्स महामुनेः। यदा मृदितवानासीदाधमं शर्मभाजनम् ॥ ११ मुनिः शापमदात्तस्य महाकारतयाश्रमः। त्वया यश्राशितो मृत्वा भव त्वं महाकोऽधमः १२ स तच्छापद्वताशोऽध तस्मिन्नव तदा क्षणे। असुरं भस्मसाच्चके जलमीवे इवानलः॥ १३ निराकारं निराधारमाकाशवलयोपमम्। चित्तं किंचिदिवाचेत्यमासीचेतनमासुरम्॥ १४ तदेकत्वं ययौ साम्याङ्गताकाशेन चेतनम्।

स्यमाणसंवेदनभावादाध्यासानां परममूलं ब्रह्मैवेति दर्शयति---अस्तीति । अपसंख्यान्यपगतसंख्यानि ॥४॥ संवेदनं विषया-कारं ज्ञानं तन्मथी ॥५॥ साच स्वविषयतया तेजःपरमाणु-भावं खरव वेदनाखभाववशादेवापस्यत् । यथा खं पान्धं भा-वयन्सुप्तः खस्यैव पान्थतां पश्यपि तद्वत् ॥६॥ असंवित्वाद-श्नानावृतचित्त्वात्परमाणुः पद्मोत्पन्नरजस्तुस्यां भाखतीं स्फुटं भासमानाम् ॥ ७ ॥ साच भाखत्यणुता दृद्धा खोच्छूनतां भा-वयन्ती सती अन्यवश्चरादीनीन्द्रियाणि अन्वभवदनुभूतवती । ततस्तानि वपुषि संलमानीत्यन्वभवत् ॥८॥ चक्षुरादि च अप्रे शब्दस्पर्शादिगुणाधाराधेयवद्भूतमयं जगदपश्यत् ॥ ९ ॥ द्विती-यप्रश्नविषयं निमित्तपरम्परां वर्णयितुमुपक्रमते—असुर इति । तत्र वेदनादिविषयान्ताध्यारोपरूपकार्यकरणसंघातानां मध्ये असुरो नाम जातिविशेषवान् कथित्प्राणी आसीत्। सच असु-रखभावादेव मानी अभिमानवान् वभूव ह किल। तस्य पितृ-मातृपितामहाः कि नासन् । आसन्नेव किंतु ते विदूरथपित्रादि-वदसत्यप्रतिभासात्मानो यस्य तथाविध इत्यर्थः ॥ १० ॥ असु-रखादेव दर्पेणोत्सिकतया आद्राकृतचणकवदुच्छूनतया ॥१९॥ महाकारतया अतिस्थूलशरीरतया।अधमः अतिशुद्रः॥१२॥१३ तदा तदासुरं चेतनं किमासीतत्राह-निराकारमिति । अचेरयं चित्तं सुद्वतम् िंतमिवासीत् १४ तदव्याकृतरूपं चेतनं भूताका-क्षेनैकरवं यये।।तद्भुताकाशं च खास्पदेन वायुनेकरां ययो ॥१५॥ चेतनवातः प्राणस्तदारमा स एव देहलामे प्राणिनामकोऽभवि-

तदास्पदेन तत्राथ वायुना चैकतां यया ॥ आसीचेतनवानात्मा भविष्यत्वाणिनामकः। रजसा पयसा व्याप्तमेजसा नभसाणुना ॥ १६ स पञ्चतनमात्रमयश्चिनमात्रलयकोऽणुकः। स्पन्दमाप स्वभावेन व्योम्नि वातलवो यथा॥ १७ अथ तस्यानिलान्तस्यं चेतनं तद्यद्वध्यत । कालानिलजलेर्भूमी यीजमञ्जूरक्रयथा ॥ १८ शुक्रशापविदन्तस्था मशकत्वविदास्य चित्। वेधिता मराकाङ्गानि विदित्वा मराकोऽभवत् स्वेदजस्याब्पदेहस्य निःश्वासनिपतत्तनोः। द्वे तस्य मशकस्येह दिने भवति जीवितम्॥ २० श्रीराम उवाच । प्राणिनामिह सर्वेषां योन्यन्तरज एव किम्। समुद्भवः संभवति किमुतान्योऽपि वा प्रभो ॥ २१ वसिष्ठ उवाच। ब्रह्मादीनां तृणान्तानां द्विधा भवति संभवः। एको ब्रह्ममयोऽन्यस्तु भ्रान्तिजस्ताविमी शृणु २२ पूर्वेरूढजगद्भान्तिभूततन्मात्ररञ्जनात्। भूतानां संभवः प्रोक्तो भ्रान्तिजो दृश्यसङ्गतः २३ अभातायां जगद्भान्तौ भूतभावः स्त्रयं भवन्।

यः स ब्रह्ममयः प्रोक्तः संभवो न स योनिजः॥ २४

ष्यत्। रजः पार्थिवो भागस्तदादिभृतचतुष्टयव्याप्तः। अणुना अपश्रीकृतेन ॥ १६ ॥ तत्र कियाशत्त्याविभीवमाह—स इति ॥ ९७ ॥ स्पन्देन लिङ्गदेहे ज्ञानशक्तयाविर्मावमाह— अथेति । वर्षादिकालः प्राच्योऽनिलो वर्षादिजलं चेत्येतैरह्वर-कृद्वीजं यथा उच्छूनभावेन व्ययुध्यत तद्वत् ॥ १८ ॥ शुद्धस्य मुनेः शापं वेत्तीति शुद्धशायवित् प्राणान्ते स्थिता स्वमशकल-विदारूपा अस्यासुरस्य चिन् तत्संस्कारविधिता सती मशका-क्वानि पक्षपादादीनि विदिला स्वयमेव मशकोऽभवत् ॥ १९॥ कियोनिः कियरकालं तस्य जीवनं तदाह--सेदजस्येति । निःश्वासमात्रेणापि निपतत्युद्वीयते तनुर्वस्य । द्वे दिने जीवितं परमायुरभवदिखनुपङ्गः ॥ २०॥ स्वप्नवदेव जामदिखसकृ-द्भगवतोक्तम् । स्वप्रदेहस्य च न योनित उद्भवो दश्यते जाप्रहे-हस्य तु हर्यते तहृष्टान्तेन जामहेह्यदेव सर्वत्र योनित एवोक्स-वोऽस्तु उतान्यथापीति संदिहानो रामः प्रसङ्गाद्वसिष्ठं पृच्छति---प्राणिनामिति । विवर्तीपादानांशे ब्रह्ममयः । परिणाम्युपादा-नांशे योनिजः॥२१॥२२॥ तत्र द्वितीयं लक्षयति— पूर्वेति । पूर्वे तद्योन्यनुभवरूढया तदेहतादारम्यदृढन्नान्त्या तत्त-द्भुततन्मात्राणां रजनात्तदाकारेण भूतानां प्राणिनां यः संभवः स भ्रान्तिजः । 'एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुवि-नश्यति । यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति' इखादिश्रुतेरिति भावः २३ निल्यमुक्त ब्रह्मणः कदाप्यभातायामेव जगद्भान्तौ ख्यमेव विव-र्ततया सर्गारी जीवभावेन भवन् यध्वतुर्विधभूतभावः स ब्रह्म- पर्व स्थिते स मशको जगन्त्रान्तिषशोत्थितः। नत् ब्राह्मोरिधतस्तस्य राम चेष्टाक्रमं ऋणु ॥ २५ क्षमेश्वराष्पकक्षादिपुत्रगुत्रेषु गुन्नता। स्वायुषोधं दिनं तेन सर्व भुक्तं विवल्गता ॥ २६ शाद्वलोदरदोलायां दोलनं बाललीलया। चिरमारध्यमेतेन सार्ध मशिकया स्वयम्॥ दोलाश्रमार्तस्तत्रासा याविद्धशास्यति कचित्। तावद्धरिणपादाग्रगिरिपातेन चूर्णितः॥ हरिणाननसंद्शेत्यक्तप्राणतया तया। पूर्वक्रमगृहीताक्षः स जातो हरिणस्ततः॥

विहरन्हरिणोऽरण्ये व्याघेन धनुषा हतः। व्याधाननगरहित्यात्संजातो व्याध एव सः॥ ३० व्याघो वनेषु विहरन्संयातो मुनिकाननम्। तत्र विश्रान्तवान्सङ्गान्मुनिना प्रतिबोधितः॥ भ्रान्तः किमिदमादीर्घदुःखाय धनुषा मृगान्। हंसि पासि न कसास्वं तन्त्रं जगित भङ्गरे॥ आयुर्वायुविघहिताभ्रपटलीलम्बाम्बुवद्गक्र्ं भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सीदामनीच अलाः। लोला योवनलालना जलरयः कायः क्षणापायवाः न्पुत्र त्रासमुपेत्य संस्तिवशान्तिर्वाणमन्विष्यतां ३३ इत्यापे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो०निवी•उ०अ०वि०श०मशक्याधबोधनं नाम षह्त्रिंशद्धिकशततमःसर्गः॥१३६॥

सप्तत्रिंशद्धिकशततमः सर्गः १३७

व्याध उवाच । एवं चेत्रन्मुने बृहि कीहरदुःखपरिक्षये। न कर्कशो न च मृतुर्व्यवहारक्रमो भवेत्॥ मुनिरुवाच ।

इदानीमेव संत्यज्य धनुषा सह सायकान्। मीनमाचारमाश्रित्य शान्तदुःखमिहोध्यताम्॥ २

सय इत्यर्थः ॥ २४ ॥ सत्त आजानसिद्धः कपिलसनकादि-भिरेवानुभूयते नाज्ञैमेशकादिभिरिति आन्तिज एव प्रकृतो मशकसंभव इत्याशयेनाइ--एवमिति । भासोपकान्तकयाशेषं वरिष्ठः स्वयमेवोत्साहाच्छावयति — तस्येति ॥ २५ ॥ क्षमायां भूमी इक्षुगुल्मेषु शप्पेषु बाठतृणेषु काशमुजादिकक्षादिपुजेषु च गुज्जन्ति अव्यक्तभ्वनि कुर्वन्ति ये मशकास्तेषु स्वयमपि गुजना तथा ध्वनता विवल्गता क्रोडता तेन मशकेन दिनद्वयात्मकस्य खायुषोऽर्घमेकं दिनं सर्वं भुक्तम् ॥ २६ ॥ ततो द्वितीयदिन-चेटामाह—शाद्वेठेति । मशिकया मार्थया सार्थम् ॥ २७ ॥ हरिणपादाप्रसेव सशकदृष्ट्या गिरिस्तरपातेन ॥ २८ ॥ आनन-श्रहणेन सपूर्णी हरिणाकारी छक्ष्यते । तस्य यः संदर्शः सम्य-इपरणकाले भावनं तेन लक्तः प्राणो येन तत्तया । पूर्व मशक-देहप्रहणे उक्तो यः कमस्तेनव कमेण गृहीतान्यक्षाणि बाह्या-न्तःकरणानि येन ॥ २९ ॥ ३० ॥ सञ्जात् सत्सङ्गठाभभा-ग्यात् ॥ ३१ ॥ कि प्रतिवोधितस्तदाह—भानत इसादिना। तन्त्रं महाफलानहिंसाभयदानादिशास्त्रमर्यादां कस्मान पासि ॥ ३२ ॥ व्याधकुरु।चार्त्राप्ता जीविका मृगवधस्तरयागे कथं जीवनं कथं वा भोगसिदिस्तत्राह—आयुरिति । न जीवनं भोगा वा पुरुषार्थः । हिंसादिना तत्संपादने अनन्तकालभो-**इयस्य पारलैकिकानर्थस्यावस्यभावात् । आयुषो नद्यभङ्गरल-**मस्ति येन तद्प्रसक्तिः । यत आयुर्वायुविषदितास्त्रभ्रपटलीषु कोछं यदम्बु तद्वद्वहुरम् । तत्र भोगास्तु मेघवितानस्य मध्ये

षसिष्ठ उघाच । इति संबोधितस्तेन परित्यज्य धनुःशराज् । आसीन्मुनिसमाचारस्तत्रैवायाचिताशनः॥ विवेश मनसा मौनी ततः शास्त्रविवेकिताम्। दिनरेव यथा पुष्पमामोदेन नराशयम्॥ अपृच्छन्मुनिशार्वूलं कदाचित्तमरिन्दम। भगवन्द्रयते स्वप्नः कथमन्तर्वहिःस्थितः॥

विल्सन्ती या सीदामनी विद्युत्तद्वच्चलाः । तद्योग्या योवन-ठालना योवनविलासास्तु जलस्य रयो वेग **इप लोलाः ।** कायो भोगायतनं च क्षणं अपायवान् संभावितापायः । हे पुत्र, अती हेतोः पारलीकिकभाव्यनर्थपरम्परा**लक्षणसंस्रतिवशावास**-मुपेत्य अभयदानाहिंसाद्यपायैरात्यन्तिकानर्थनिवृत्रयुप**रुक्षित**-नित्यनिरतिशयानन्दरूपं निर्वाणं ब्रह्म अन्विष्यतां गुरुशास्त्रोपा-येनेत्यर्थः ॥ ३३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे पद्त्रिंशदश्विकशततमः सर्गः॥१३९॥

व्याधिन प्रष्टोऽत्र मुनिर्धारणाभ्यासतः स्वयम् । परकायप्रवेशेन तत्स्वमं इष्टमम्बवीत् ॥ १ ॥

एवं हिंसादित्र्यवहारो दुःखहेतुश्रेतत्तिहैं दुःखपरिश्चये हेतु-भूतो व्यवहारकमः कीरम्भवेतह्रहि ॥ १ ॥ मुनीनामाचार-कम एव दुःखक्षयहेतुस्तत्सहवासेन शिक्षणीय इत्याशयेनो-त्तरं मुनिराह—इदानीमेवेति । मोनं मुनिषु प्रसिद्धं यम-नियमविचाराद्याचारमाश्रिख ॥२॥ तत्र तस्मिन्नाश्रम एव ॥३॥ ततः सत्मङ्गाच्छास्त्रप्रसिद्धां सारासारविवेकशीलतां विवेश । यथा पुष्पं मुकुलपरिपाकविकासादिकमोद्भवेनामोदेन नराणामा-शयं हृद्यं हाद्यद्विशति तद्वत् ॥ ४ ॥ एवं संजातिषवेकः स व्याधः कदाचित्तं मुनिशार्द्लमपृच्छत् । हे अरिन्दमेति दशर-यसंबोधनम् । किमप्टच्छत्तदाइ-भगविश्वति । हे भगवन्, प्राणिनामन्तःस्थितः खप्रो जाप्रदिव बहिः कथं दृश्यते । बहिः प्रपद्मः स्वप्नः सन् कथमन्तर्दश्यते । प्राप्यन्त-स्थितश्र

मुनिरुवाचा ।

ममापि साधो प्रथममेष एव विवेकिनः। पुरा चित्तं वितकींऽभूत्कृतोऽण्यभ्रमिवाम्बरे॥ Ę तत पतिश्रदक्षार्थमहमभ्यस्त्रधारणः। षद्धपद्मासनस्तस्यां संविद्यवाभवं स्थिरः ॥ S तत्रस्थो दूरविक्षिप्तं तथैवाहृतवानहम्। चेतःस्वष्टद्यं सायं रुचेव रविरातपम्॥ ረ वैदनेरणया प्राणस्तर्ताश्चनान्वितो मया। शरीराद्रचितो वाह्ये सौरभं कुसुमादिव॥ ę ब्योमस्थचित्तवितः स प्राणपवनो मया। अप्रस्थस्य मुखात्रस्थे जन्तोः प्राणे नियोजितः १० यः प्राणविकतः प्राणस्तेन नीतो हद्दन्तरम्। स्वेह्या स्वं स्वकः सर्पः करभेणेव हिंसितः॥ ११ ततोऽहं हृदयं तस्य प्रविष्टः प्राणवाजिना । संकटस्थः स्वया बुद्धा तावेवानुसरोन्तरम् ॥ १२ चरद्रसामिर्वह्रीभिनीडीमिरभितो वृतम्। क्रल्यामिः स्थूलतन्वीभिर्वाहादेशमिवाखिलम् १३

र्गतः स्वप्नः कथं केनोपायेन दश्यते । एक्सन्तर्वहिश्व स्थितः प्रपन्नः स्वप्नः कथं दश्वते । स्वप्न एव चेत्वपश्चस्तर्हि भन्त हिरिति द्विघा स्थितः कथं दृश्यते । इत्यनेकसंदेहसंपि-ण्डिताः पश्च तन्त्रेण प्रश्नाः ५५॥ बहुतर्वितर्कगर्भितं प्रश्ने श्र-ला सुनिः खस्याप्येतादशो वितर्कः कोमलविवेकदशायामभूत्स च मया धारणाभ्यासेन स्वयमेव परकायप्रवेजन तदीयस्वप्रादि प्रनःप्रनरवळोक्यान्वयव्यतिरेकाम्यां चिरं परीक्षणेन तत्त्वमव-गम्य समाहित इति कथां विस्तरेण तृतीयप्रश्लोत्तरमुखेन वक्तं मुनिरपक्रमते---ममापीत्यादिना ॥६॥ अभ्यस्ता परकायप्रवे-शानुकूला बहिःकुम्नकथारणा येन । तस्यां सर्वजनानामारमत्वेन प्रसिद्धायां संविदेव स्थिरोऽभवम् ॥ ७ ॥ तत्र तस्यां संविदि स्थितोऽहं दूरविक्षिप्तं चेतस्तयव संविदा प्रत्याहृतवान् । यथा सार्थ रविः खद्या मण्डलकान्त्यैवातपं प्रलाहरति तद्वत् ॥८॥ वेदनं प्राणान्तर्गता चित्तदीरणया जीवस्य प्राणन सह बहिनि-र्गमनातुकूलेन थोगशास्त्रप्रसिद्धप्रयक्षेत चित्तं जीवोपाधिस्तद-न्वितः प्राणः शरीराद्वात्रं देशे रेचितो रेचकेन निःसारितः॥९॥ ततः परकायप्रवेशोपायं खकृतमाह--त्र्योमस्यति । याह्यव्योम-स्थेन चित्तेन जीवोपाधिना संविक्तः स प्राणपवनो सया अप्रे पुरोभागे स्थितस्य कस्यचिजन्तोर्छात्रस्य प्राणे नियोजितो मे-लितः ॥ १० ॥ मदीयप्राणविहतो यस्तस्य जन्तोः प्राणस्तेन तदीयं इदन्तरमइं नीतः । यथा करमेण भलुकेन बिले मुखं निवेश्य बलान्मुखवायुना आकर्षणळक्षणया खेह्या खचेष्टया खकः खाइरारभूतः सर्थः खमुखं प्रवेश्य हिंसितः सन् खहद्यं नीतसद्भत् ॥ ११ ॥ तदीयप्राणलक्षणेन वाजिना अधिन ती परसरसंबलितौ प्राणावेबानुसरतीत्वनुसरोऽहमन्तरं तहेहमध्यं

| पर्शुकापञ्चग्रहीहयगृष्ट्रकादिहिम्बकैः। | |
|--|------|
| संकटं जीवसदनं भाण्डोपस्करणैरिव ॥ | १४ |
| सर्वैः शलशलायद्भिरूणेर्वयवेर्वृतम् । | |
| निदाघनापसंतर्नेक्सिंजालैरिवार्णवम् ॥ | ۶٠٩ |
| नवं नवं यहिःशैत्यं नासाप्राचेतनात्मकम्। | |
| जीवनायानिशं चेतो वातोश्रीतमनारतम्॥ | १६ |
| रक्तकुट्टरसश्रेष्मवसानिःस्नावपिच्छिलम् । | |
| घनान्ध्रकारमुण्णं च संकटं नरकोपमम्॥ 🧪 | १७ |
| उद्यावयवाश्रेपस्पष्टास्पष्टमस्द्रुतैः । | |
| स्थित्यन्तानां तु वैषम्यादागामिगदसूचकम्। | १८ |
| दरत्सरभसच्छिद्राचातवातेन शब्दितम्। | |
| पद्मनालप्रणालान्त्रज्वेलद्र्णववाडवम् ॥ | १९ |
| मिलत्पदार्थनीरन्ध्रं सितमच्छं सवायुमिः। | |
| किंचित्सीम्यं किचित्क्षुत्र्धं चोरैरिव पुरं निशि । | । २० |
| रसनाद्वपूर्वाडीमार्गविद्याधराध्वगैः। | |
| संचरद्भिवृतं वातैराकारार्घार्घगीतिभिः॥ 🥏 | ૨૧ |

प्रविदय स्वया बुद्धाः वक्ष्यमाणसंकटस्यः अभवभिति शेषः॥१२॥ ३३॥संकटतां प्रपधयति—पर्शुकेखादिना। पर्शुकाः पार्श्वास्थीनि तहक्षणे पक्षरे होहराकृती मांसांबद्यायाँ । डिम्बर्कः पिण्डकैः । जी-वस्य सदनं गृहभूतं तच्छरीरम् ॥१४॥ शलशहेति जाठरानलकः-थनध्वन्यनुकरणम् ॥ ३५ ॥ पुनः कीदशं तजीवसदनम् । जी-वनाय चेतसा प्राणादिवातैधानारतमुत्रीतम् । तत्र बहिष्टस्य सोमात्मकस्यापानस्य नासाप्रादन्तः प्रवेशे नवं नवमन्तः प्रविश-द्वहिःशैत्यं यसः । अतएव चेतनात्मकम् ॥ १६॥ रक्तं कुटन्ति नाडीमार्गेम्यो विच्छिन्दन्ति तथाविधा येऽन्नरसाः श्लेब्मादयश्च तेवां निःसःवैः पिच्छिलम् ॥ १७ ॥ रक्तरसश्चेष्मपितानां द्वासप्ततिराहसनाडीभेदेषु कचिदुदर्यः कचिद्वयवेषु आक्षे-पैश्व क्रन्तित्संचारगाकयातस्यशनां क्रन्तिन्मार्गनिरोधादसप्रानां प्राणादिसरतां र्तः श्रीडितः सप्तधातुस्थितानामन्तानां तन्नःशानां च वैषम्यादःगःसिनां गदानां रोगाणां स्व-प्रादिषु सूचकम् ॥ १८ ॥ दरन्ति सरभसानि यान्यपानादि-च्छिद्राणि तेष्यावातेन विशेतेन वातेन शब्दितं संजातशब्दं हृद्यपद्मनालस्य प्रणालं छिदं तदन्तज्वेलन् अर्णववाडव इव जा-टराप्तिर्थस्मन् । तथा चोक्तं महोपनिपदि-पश्चकोशप्रतीकाशं हृदयं चाप्यधोगुखम् इत्युवक्षम्य 'तस्यान्ते सुषिरं सुद्धं तस्मिन् सर्व प्रतिष्टितम् । तस्य मध्ये वहित्रिखा अणीयोध्वी व्यव-स्थिता' इति ॥१९॥ मिलद्भिर्वासनाम्यः पदार्थनारन्धं निवि-डितम् । सवायुभिरिन्दियैः सितं वदम् । साक्ष्यारमस्वभावेन तु अच्छम्। चित्तवृतिभेदैः प्रदेशभेदेश कचित्सीम्यं कचित्स-व्धम् ॥ २० ॥ कोष्टगतानामऋरसानां नादे ध्वनने तत्परस्त एव नाडीमार्गेषु गायद्वियाधराध्वगप्रायेः संचरद्भिवंतिर्वतम् ।

तदहं हृद्यं जन्तोराविशं विषमान्तरम्। नरोऽवयचसंबाधं नरवृन्दमिवाधिकः॥ २२ अनन्तरमहं प्राप्तस्तेजोधातं हृदन्तरे। दूरस्थमिव यक्तेन रात्राविन्दुमिवार्करक् ॥ यसाञ्चिभुवनादशीं दीपस्रैलोक्यवस्तुषु । सत्ता सर्वपदार्थानां जीवस्तत्रावतिष्ठते ॥ રહ काये सर्वगतो जीवः स्वामोदः कुसुमे यथा। तथाप्योजसि किञ्जरकर्मुखे शैर्य विवस्वता ॥ २'५ तक्कीवाधारमोजस्तु प्रविद्योऽहमलक्षितम्। रक्षितं परितः प्राणर्वातैः प्रच्छादनं यथा ॥ २६ ततोऽञ्जः संप्रविष्टोऽहमामोद इव मारुतम्। उष्णांशरिव शीतांशं मृत्पात्रमिव वा पयः॥ २७ ब्रितीयेन्द्रंशुसंकाशे शुक्काभ्रलवपेलवे । नवनीतगुडप्रख्ये श्रीरबुद्भदसुन्दरे ॥ २८ तत्र पर्याम्यहं तिष्ठन्प्रवेशव्यत्रयोज्झितः। स्वीजसीव वसन्स्वप्त इव विश्वमखण्डितम्॥ २९ सार्कं सपर्वतं साब्धि ससुरासुरमानवम्। सपसनवनाभोगं सलोकान्तरदिङ्गुखम् ॥ ३०

द्विमात्र आकारस्तद्धेमेकमात्रस्तद्धींधमात्रक्ष गीतिपु येषां। गी-तिमात्रस्य वातसाध्यत्वादिति भावः ॥२९॥ यथा अधिक श्रेष्टो नरो नरावयवैः संवाधं निरवकाशं नरपृन्दं विशति तद्वत्॥२२॥ तेजांधातुं जठराप्तिरुक्षणस्य तेजमः सारं तेजोरूपोऽहं यन्नेन प्राप्तः । यतः समीपस्थमपि बहुतरनःडोमागैप्राप्यलाह्रस्थानेव । यथेन्दुं रात्री अर्कहरू प्राप्नोति तद्वत् । तथाच श्रुतिः--'एतद्वि **ब्रह्म री**प्यते यदादित्यो दृश्यते । अधैतन्त्रियते यन्न दृश्यते । तस्य चन्द्रमसमेव तेजो गच्छति' इति ॥ २३ ॥ तस्य **तेजः**सारत्वं कृतस्तत्राह्—यस्मादिति । यस्माद्धेतोन्निभुवनस्या-प्यन्तर्भानादादर्शभूतस्त्रेलोक्यवस्तुषु दीपवत्प्रकाशको जीवस्तद्वे-षः परमात्मा तत्र तस्मिन्तेजस्यवतिष्ठते—तथाच श्रुतिः 'तस्य मध्ये बह्विशिखा अणीयोध्वा व्यवस्थिता। तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः । स ब्रह्म स शिवः सोऽजः सोऽक्षरः परमः खराद्र'इति॥२४॥ननु'स एष इह प्रविष्ट आनसामेभ्य'इत्यादिश्रु-तिषु सर्वदेहगतो जीवः श्रुयते तत्क्रथं तेजोधातावेव सोऽनतिष्ठते तत्राह-काये इति । यदापि सर्वगत आत्मा जीवः सन्काये भानखामं प्रविष्टस्तथापि ओजसि तेजाधाती विशेषतोऽवतिष्ठते । यथा विवस्तता विकासिते कुसुमे सर्वगतोऽपि स्वामोदः शैत्यं च किजल्कैहवलक्षितं तन्मुखे विशेषतोऽवतिष्ठते तद्वदिखर्थः ॥२५॥ परितः प्राणः करणाभिमानिभिर्देवैः परितश्चतुष्वीप द्वार्ष् रक्षि-तम् । यथा घटादिप्रच्छादनं दीपज्योतिः सूक्ष्मघटच्छिद्रप्र-विष्टैर्वाते रक्ष्यते तद्वत् । आत्यन्तिकच्छिद्रपिधाने दीपनाश-दर्शनादिति भावः ॥ २६ ॥ ततोऽहं अजः साक्षात्तनीनो-पाधिभूतं मनोमयविद्यानमयकोशसंब्रितमानन्द्मयकोशं संप्र-विष्टः । तहुष्टान्तानाह्—आमोद इवेत्यादिना ॥ २७ ॥ तत्र

सद्वीपसागराम्भोधिसकालकरणक्रमम्। सकल्पक्षणसर्वेतुं सहस्थावरजंगमम्॥ 38 तत्स्वप्रदर्शनं तत्र स्थिरमेव समं स्थितम्। वसाम्यत्येव निद्रान्ते निद्राऽन्ते नागता यतः 32 अनिद्र एव किं स्वप्नं पश्यामीति मया ततः। परिचिन्तयता इतिमिदं व्याधविबोधिना॥ ३३ नतु नामास्य चिद्धातोः स्वरूपमिद्मैश्वरम्। स्वं यद्यपदिशत्येष जगन्नाम्नाम्बरात्मकम्॥ 38 चिद्धातुर्यत्र यत्रास्ते तत्रतत्र निजं वपुः। पद्यत्येप जगद्र्पं व्योमतामेव चात्यजत्॥ 34 अहो त्वचेदमाशातं यदित्थं दृश्यते जगत्। तत्कथ्यते स्वप्न इति स्वचित्कचनमात्रकम्॥ 38 चिद्धातोर्यत्खकचनं तर्तिकचित्स्वप्न उच्यते। किंचिश्व जायदित्युक्तं जायत्स्वप्नौ तु न द्विधा ३७ स्वप्नः स्वप्नो जागरायामेष स्वप्ने तु जागरा। स्वप्तस्तु जागरेवेति जागरेव स्थिता द्विधा॥ चेतनं नाम पुरुषः स मृतेषु रातेष्वपि। शरीरेषु महाबुद्धे कथं कस्य कदा मृतः ॥ 36

स्तत एव स्नेहानन्दयोर्दर्शनात्रवनीत्रगुडप्रख्ये ॥ २८ ॥ पूर्व-स्थानेध्विव प्रवेशप्रयुक्तया व्यप्रया श्रान्खा उजिल्लतः सन् खत्य हृदि स्थिते ओजसीव खस्थो वसन् खीयखप्र इव तदी-यस्तप्ररूपमखण्डितं विश्वं परयामि ॥ २९ ॥ तद्विश्वमेव विशि-नष्टि-सार्कमित्यादिना ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्थिरमनादिप्रवाह-स्थितमेव प्रसिद्धजगरसमं स्थितम् । अहं निद्रान्ते जागरे अति-शयेन वसाम्येव । यतो निदा अन्ते जाग्रदवसाने नागतैब ॥ ३२ ॥ तथापि खप्नं कि पश्यामि इति परिचिन्तयता है व्याध, ततस्तदनन्तरं विबोधिना प्रत्रोधवता मया इदं वस्य-माणं ज्ञातम् ॥ ३३ ॥ कि ज्ञातं तदाइ--निवति । नामेति विवेकिप्रसिद्धी । अस्य चिद्धातीः प्रलगात्मन इदमैश्वरं रूपम्। कीदशम् । एव ईश्वरः अम्बरात्मकं खं घट इति वा पट इति वा जगदिति वा जीव इति वा यदाहरानामरूपं व्यपदिशति खयं तत्तज्ञगन्नामा भवति ॥ ३४ ॥ कि तास्विकं रूपं विहाय नेखाइ—न्योमतामिति । अखजदेव ॥ ३५ ॥ इदमेव खप्न इति जनैः कथ्यत इति अद्य आ ज्ञातं अहो । आ इति स्मरणे अङ्कित् ॥ ३६ ॥ जामदिप तत्त्वतो विमृष्टमिदमेव पर्यवस्य-तीलाह—चिद्धातीरित ॥ ३७ ॥ अनयोः परसरदशा खप्र-लमेव खखदशा तु जागरलमंबिखाह—खप्र इति । खप्रे तु जागरा एषः खप्र एव । खप्रस्तु खद्य्या जागरेवित यदा खद्था दृश्यते तदा जागरेव द्विधा स्थितेति पर्धवसन्नामिखर्थः ॥ ३८ ॥ ननु मरणं तर्हि खप्रजागराभ्यामतिरिक्तं कि स्थात-त्राह--चेतनमिति । नास्त्येव मरणं नाम किंचित् । यतः पुरुषश्चेतनम् । भावे त्युद् । चिन्मात्रमेव । स चानेकशतेषु

१ गुहो गोछ:.

तचेतनं खमेवास्ति स्थितं तद्देहवत्कचत्। अनन्तमविभागातम प्रतिघाप्रतिघात्मकम्॥ 80 स्वभावस्याप्रतिघस्य नित्यानन्तोदितात्मनः। परमाणोश्चिदाख्यस्य मज्जा जगदिति स्मृतः ॥ ४१ चिद्योस उदरे भान्ति समस्तानुभवाणवः। तथा यथावयविनो विचित्रावयवाणवः॥ પ્રર निवृत्तो बाह्यतो जीवो जीवाधारे हृदि स्थितः। रूपं स्वं स्वप्नसर्गोऽयमिति वेसि चिवाकचान् ४३ बाह्योन्मुखं यहिर्जाग्रच्छव्दितं कचितं स्वकम् । रूपं पश्यति जीवोऽयमन्तस्यं स्त्रप्न इत्यपि ॥ 88 द्यौः क्षमा वायुराकाशं पर्वताः सरितो दिशः। प्रसतो जीव इत्यन्तर्बहिश्चैकात्मकः स्थितः॥ अर्कोऽकंबिम्बसंस्थोऽपि यथेहापि स्थितस्त्विपा। तथा जीवो जगद्रपो बहिरन्तश्च संस्थितः॥ प्रद अन्तःस्वप्नो बहिजांत्रदहमेवेति वेत्ति चेत्। चिदात्मको यथाभूतं मुच्यते तदवासनः॥ $s_{\mathcal{S}}$ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमपि जीवोऽन्यथा वदन्। बैतसंकल्पयक्षेण मुह्यत्येव शिशुर्यथा ॥ 86 अन्तर्मुखोऽन्तरात्मानं बहिः पदयन्वहिर्मुखः। आस्ते जीवो जगद्रपं यत्स्वन्ते स्वप्नजात्रती॥ ४९ इति चिन्तयतः किं स्थारसुषप्तमिति मे मतिः।

शरीरेषु सृतेष्वपि कदा सृतः कस्य सृतः कथं सृतक्षेथापि तदप्रसिद्धेरिखर्थः ॥ ३९ ॥ अभ्युपेख शरीरं तन्मरणं चेदमु-कम् । बस्तुतस्तु तदुभयमपि नास्तीत्याह--तदिति । प्रतिइ-न्यत इति प्रतिषा मूर्ताकारस्तद्विलक्षणस्वप्रतिषा तदात्मकं च भारतेवेलर्थः ॥ ४० ॥ तत्र अप्रतिघातमता स्वभावस्तादगा-रमनिश्रदाख्यस्य परमाणोर्मजा सार एव भ्रान्सा देहवज्जग-विवापि स्मृतः ॥ ४९ ॥ मजाखमेवोपपादयति-चिद्योम्र इति । जगद्भान्त्यनुभवस्रभूणा अणवः ॥ ४२ ॥ प्रथमतृतीय-प्रश्नो समाहितो, द्वितीयं प्रश्नं समाधत्ते—निवृत्त इति । बाह्यतो जागरतो जामद्भोगप्रदक्षमीपरमे निवृत्तः सन् स्वं रूपमेव बाह्य-संस्कारान्रोधेन बाह्यः खप्रखगींऽयामिति चिदाकचान् चिद्वि-षतीनेव वेति ॥ ४३ ॥ यदा चित्तं बाह्योन्मुखं तदा स्वकं रूपं जाप्रच्छन्दितं कचितम् । यदा अन्तस्थं चित्तं तदा अयं जीवः स्वकं रूपं स्वप्न इत्यपि पर्यति ॥४४॥ चतुर्थपश्चमप्रश्नयो-**रुत्तरमाह—यौरिति । ए**कात्मक एव जीवो बहिरन्तश्च यौः क्षमेखाद्यात्मकः प्रस्ताः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अतएव सर्वात्म-ताया एव तात्विकलालथा परिज्ञानादेव मुच्यत इलाह-अन्तरिति । यथाभूतं यथार्थम् । भूमिकामेदपरिपाकक्रमेणा-बासनः सन् मुच्यते ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अन्तरात्मानं खमन्त-जेगद्भूपं परमन् स्वप्न एवं बहिर्जगद्भूपं पर्यन् जाप्रश्च स्वयमे-बारते ते एवास्य स्वप्नजामती ॥ ४९ ॥ प्रसङ्गारस्यप्रितृरीय-

जाता तेन सुधुमांशमन्त्रेष्ट्रमहमुद्यतः॥ 40 यावरिक दश्यदृष्ट्यान्तस्तुःणी तिष्टाम्यहं चिरम्। निश्चित्त इति संवित्तिः शमा नान्यत्सुवृष्ठकम् नखकेशादिदेहेऽस्मिन्विताबिदितं यथा। न जडं च जडं चैव सुषुप्तं चेतनात्मनि॥ ५२ संवित्या कि श्रमातीं ऽसि शान्तमासेवि मानसम्। इत्येकपरिणामत्वाश्रान्यदस्ति सुबुप्तकम्॥ ५३ प्तिष्रद्वाघनं जाग्रत्यपि संभवति स्वतः। न किंचिश्चिन्तयाम्यासे शान्त इत्येकरूपकम् ॥ ५४ एपायस्था यदा याति घनता मुख्यते तदा। निद्राशब्देन तन्वी तु स्वप्रशब्देन कथ्यते ॥ 44 सुषुप्रमिति निश्चित्य त्रीयान्त्रेषणामहम्। प्रवृत्तः कर्तुमुद्यको युक्तः परमया धिया॥ બ^દ याचद्रपं तुरीयस्य किंचनापि न लभ्यते। सम्यग्बोधादते शुद्धात्त्रकाशस्त्रमसो यथा॥ 40 यथास्थितमिदं विश्वं सम्यग्बोधाद्विलीयते। यथास्थितं च भवति न च किंचिद्विलीयते ॥ 46 अतः स्वप्नो जागरा च सुप्तं च तुरीयके । सयथास्थितमस्तीदं नुनं नास्ति च किंचन ॥ ५९ कारणाज्ञगद्दत्पन्नं न ब्रह्मेन्थमवस्थितम्। जगत्तया शान्तमजं बोध इत्येव तुर्यता॥ દ્દ

तत्त्वमपृष्टमप्याद्य-इतीति । इति जाप्रत्स्त्रप्ते तत्त्वतश्चिन्त-यतो में सुपुप्तं कि स्यादिति चिन्ताउक्षणा ॥ ५० ॥ दश्यद्या मम कि अहं चिरं तृष्णी निश्चित्त-स्तिष्ठामि । इति अन्तर्यावत्संविधिः शमाशमहत्पा ताव-त्सुयुप्तकं तदन्यत्रेखर्थः ॥ ५१ ॥ चित्तव्याध्यभावे चिदन-मिव्यक्ती घटादिवज्ञडलमाशक्का विशेषतोऽहरतया अविदित-त्वेऽपि नसकेशादिवत्सामान्यतो विदित्तलाद्विदिताविदितात्म-कम् । तत्मुषुप्तं न जडं जडं चैव चेतनात्मनि तत्साक्षिणि स्फरतीत्याह---नरोति ॥५२॥ जामत्स्वप्रभ्रमणेन श्रमातांसि । मम विशेषसंवित्त्या कि कंचित्कालं शान्तमासे इति संकल्पे-Sवगाढनिद्राकारैकपरिणामलमेव सुषुप्तकं नान्यदस्तीत्यर्थः ५३ जामखपि पुरुषे एतःसुपुप्तकं चिन्तापरिखागदशायां संभवती-त्याह-एतदिति ॥ ५४ ॥ नितरां दढा निदेति व्युत्पत्त्या ग्रुप्रितरेव निदाशब्देनोच्यते । तन्वी ईपद्विशेषाकारेण विथिला तु स्वप्रशब्देनेत्यर्थः ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तुरीयस्य यावरपूर्णं रूपं तु सम्यग्बोधाइते न लभ्यते ॥ ५० ॥ अतः सम्यग्बोध एव तुरीयम् । तत्र हि विलीनस्य विश्वस्य अ।त्यन्तिकमविलीनरवं यथा स्थितं भवतीत्याह--यथास्थितमिति ॥ ५८ ॥ अत एवावस्थात्रयं तत्रान्तर्भृतमित्याह-अत इति । यथास्थितेन जगता सहितं सयथास्थितम् ॥ ५९ ॥ जगत्कारणान्नोत्पन्नं किंतु ब्रह्मेयरथं जगत्तयावस्थितमिति बोध एव सदा त्र्यंते-

असंभवात्संभवकारणानां न जायते किंचन नाम सर्गः।

चिचेतनेनेव हि सर्गसंवित् स्वयं गृहीता द्ववताम्बुनेब ॥ 83

इस्यापै श्रीकासिष्ट० वा० भो० नि० उ० अ० वि० जामस्स्यप्रसुप्ततुरीयवर्णने नाम सप्तत्रिशद्घिकशततमः सर्गः ॥ १३७ ॥

अष्टत्रिंदाद्धिकदाततमः सर्गः १३८

तापस उवाच। गन्तुमेवं विचार्याहं ततस्तत्संविद्वेकताम्। प्रवृत्तश्रीत्तमाक्षेन सीरमेणेव सीरमम्॥ यावसमेतनं तस्य तमोजोधातुमत्यजम्। प्रवृत्तं वाह्यसंवित्ती समस्तेन्द्रियसंविदा ॥ संविदं संविदागृह्णंस्तान्वाह्येऽन्तरपि क्षणात् । अहं प्रसृतवांस्तत्र तैलविन्दुरिवाम्भसि॥ तत्संविदि तथेवाथ यावत्परिणमाम्यहम्। भुवनं दृष्ट्यांस्तावत्सर्वं द्विगुणितं स्थितम् ॥ दिशो द्विगुणतां यातास्तपतस्तपनाबुभौ । भूमण्डले हे संपन्ने हे वै द्यावी समुस्थिते ॥ 4 धदनप्रतिबिम्बे हे दर्पणप्रतिबिम्बते। यथा भातस्तथा भाते मिश्रिते ते जगश्चितम् ॥ तैलवद्भाति कोशस्थं यश्वतनतिलद्वये। तसिञ्जगद्वयं तत्त्वाच्या भाति विमिश्रितम्॥ संविद्वितयकोशस्य मिश्रिते अप्यमिश्रिते। ते उसे जगती भाते समे भीरजले यथा॥ निमेषादृष्टमात्रेण सा तत्संविन्मया ततः।

स्वर्थः ॥ ६० ॥ तदेव पुनर्वर्णयनुपसंहरति-असंभवादिति । संभवी जन्म तत्कारणानामद्वये ब्रह्मण्यसंभवात्सर्भः किंचन द्वितीयं न जायते किंतु चितो जगदाकारचेतनेनेव सर्गसंबि-स्खयमेव गृहीता । यथा अम्बना दवता गृहीता तद्वदित्यथं:६१ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे बत्तरार्धे सप्तश्चिंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १३७ ॥

मेलने द्विगुणं विश्वं प्राणिजीवस्वजीवयोः। प्रेक्ये स्वेकं मया दृष्टमित्यादिमुनिनोध्यते ॥ १ ॥

एवं जाभददित्यीन्तावस्थातत्त्वं विचार्यं ततस्तदनन्तरमहं तस्य प्राणिनः संविदा चिदाभासलक्षणजीवेन सहैकतामेकी-भावं गन्तुं प्रवृत्तः यथा चौतं पुष्पितसहकारसंबन्धि सीरभं बायुना पद्माकरे नीतं आब्जेन अब्जोद्भवेन वायुखसीरभेणै-कतां गन्तुं प्रवर्तते तद्भदिखर्थः ॥ १ ॥ अहं तस्य प्राणिनधे-तनं चिदाभासं प्रवेषुं तं प्रागुक्तमोजोधातुं यावदस्यजं ताब-म्मध्ये मदीयया समस्तेन्द्रियलक्षणया संविदा बाह्यसंविती बिर्ह्मुसन्यापारे बलात्प्रवृत्तमित्यर्थः ॥ २ ॥ ततोऽहं ताः बाह्य प्रवृत्ता इन्द्रियसंविदः अन्तःप्रवणया प्रयवसंविदा बला-निएहन्सन् क्षणादन्तरपि प्रसतवान् । कथं प्रसतवांस्तत्र दृष्टा-न्तमाह—तैलबिनद्रिति ॥ ३ ॥ एवमुपाधिव्याप्तिद्वारा अर्ह सक्छैवात्मतां नीता परिमित्येव संविदा ॥ Q ऋतुर्ऋत्वन्तरेणेव सरितेवाहिएका सरित्। वातेनामोदलेखेव धूमलेखेव वार्भुचा॥ १० एकत्वेनाश्च संवित्तर्यया मे जगदेकताम्। दुर्ह्छेर्द्विवपुश्चन्द्रः सुर्ह्छरेकतामिव ॥ ११ ततो मे तिश्चतिस्थस्य स्वं विवेकमनुज्यतः। अस्पीभृतः स्वसंकस्पस्तत्संकस्पस्थितं गतः १२ तश्चित्तवृत्येव ततो वाद्यमालोकयंस्ततः। अभुक्षि तहिनाचारं तत्तद्वयमत्यजन् ॥ १३ ततो यहच्छयेवासी शनैनिद्राकुलोऽभवत्। पद्मः सायमिवापीय पयो अवत्वाश्रमुच्छमः॥ १४ प्रसृतं दिग्निकुञ्जेषु रूपालोकिकियाकरम्। संजहार वहिश्चित्तं सायमकौ रुचि यथा॥ १५ सह चित्तेन तास्तस्य समस्तेन्द्रियवृत्तयः। हत्कोशमविशष्डन्नाः कुर्मस्येवाङ्गसंघयः॥ 12 मुद्रिता हृदयाकारास्त आसंश्रक्षुरादयः। लोष्टरूपा मृतावेच लिपिकर्मार्पिता इव॥ १७

त्कालमध्ये सर्व भुवनं तद्वासनामद्वासनोभयान्तःप्रतिभासा द्विगुणितं स्थितं दष्टवान् ॥ ४ ॥ द्विगुणितलमेव प्रपश्चयति-दिश इलादिना ॥ ५ ॥ ते च मिश्रिते तेन जगत् चितं द्वेगुण्येनोपचितम् ॥ ६ ॥ यचेतनं तिलद्वये तैलव**द्वदिकोशस्यं** भाति तस्मिन्संबलितोपाधिस्यचिदाभःसद्वये द्विग्रणीभूतं तस-जगत्तथा विमिश्रितं भाति ॥ ७ ॥ वासनानाममिश्रणादमि-श्रित ॥ ८ ॥ सा तत्प्राणिचिदाभाससंवित खसंविदा परिमिख परिच्छिधेच आत्मतामेकात्मतां नीता उपाधिद्वयैषयापादने-नेखर्थः ॥ ९ ॥ आत्मतानयने दष्टान्तानाह—ऋतुरिति ॥१०॥ तत्र वासनानामध्येकीकारेण संवित्तेरात्यन्तिकैकत्वेन प्राग् द्विग्र-णीभूतं जगदप्येकतां ययौ ॥११॥ स्तं विवेकं पूर्वापरविमर्शम् । तस्य प्राणिनः संकल्पानुसारिणी स्थितिं गतः प्राप्तः ॥ १२ ॥ अहं तत्र तिवत्रवृत्येव तद्भोग्यं बाह्यं शब्दादिविषयमालोकर्य-साद्ध्यमस्यजभेव तस्य जायधवहारलक्षणं दिनाचारं अभुजि अभुन अं। अन्वभवमिति यावत्। कर्तरि चिण् छान्दसः॥१३॥ ततः असी प्राणी अन्नं भुक्ला पय आपीय उद्भतश्रमः सम् य-दच्छयेव निदाकुलोऽभवत् ॥ १४ ॥ निद्रारम्मे तत्प्राणः किन मकरोत्तत्राह-प्रस्तिमिति ॥ १५ ॥ ततः किमासीत्तदाह-सहेति ॥ १६ ॥ चक्षुरादयो मुद्रिताः सन्तो इदयपचाकारा याबत्तस्य प्राणिवश्चिदाभाससंविदि मेळनेन परिणमामि तावन । आसत् । मृतौ मरणे आ ईषदिव छोष्टरूपा लिपिकर्मार्षिता इब अहं तिक्षसन्तरेष सहसोष्णस्य तित्थितः।
तिकानुविधायित्वात्तस्य द्यमाविशम्॥ १८
संहत्य बाह्यानुभवमन्तरेय तदोजती।
क्षणमन्यभवं शून्यं सुषुनं तल्पकोमले॥ १९
हमाष्णानबहुलैनिवडास्विप नाहिषु।
सुषिरास्येव वा वायुर्ने निर्यात्येच याति च॥ २०
यदा तदात्मकात्मैकपरो हृदि सहस्थितम्।
अप्रधानीकरोत्येतिकतं स्वार्थस्यमावतः॥ २१
स्वार्थमात्रोऽद्य तस्यान्तः परहत्यं न कस्यचित्।
कचति स्वार्थसत्तायामेतदेव वपुर्यतः॥ २२

श्रीराम उवाच।

मनः प्राणवशादेव मनुते किं महामुने । स्वरूपं मनसो नास्ति तसात्तत्तेवलं च किम् २३

वसिष्ठ उवाच।

देह प्रवेह नास्त्येय स्वानुभूतोऽण्ययं निजः।
मनसः कल्पनात्मेदं वपुः स्वभे गिरियंथा॥ २४
तिश्वसमपि नास्त्येव चेत्यार्थाभावयोगतः।
सर्गादौ कारणाभावाहृदयानुत्पत्तिहेतुतः॥ २५
अतः सर्वमिदं ब्रह्म तश्च सर्वात्मकं यदा।
तदा विश्वमिदं विष्वगस्त्येष च यथास्थितम् २६

च निर्व्यापारा आसन् ॥ १७ ॥ अहमपि तिचतानुविधायि-लात्तिकत्त्रक्रिय सह तदिन्द्रियगोलकानि लक्का तत्त्रवाडीमा-र्गेण तद्भृदयमाविशम् ॥ १८ ॥ तल्पवत्कोमले ओजसि प्रायु-क्ततेजोन्तस्ये आनन्दमयकोशे ॥ १९ ॥ तदानी यदा समान नाख्यो वायुः सुविरासु सच्छिदास्वपि नाडीषु क्रमेनात्रपानरसवि-कारैबेहुलैस्तत्रतत्र निरुष्यमानी बहिने निर्यास्येव तथापि सूक्ष्मतरया गत्या याति संचरति च ॥ २० ॥ यदैवं सुपुति-भेवति तदायं प्राणः सेन्द्रियं चिलं किं करोति तदाह-यदेति। यदैवं भवति तदा प्राणस्तदारमको य एकः अद्वेतः संप्रसम आत्मा तन्मात्रपरः सन् हृदि पुरीतित प्रविश्य सह स्थितमे-तिषतं प्रतिला अप्रधानीकरोति स्वाधीनीकरोति । तत्कृतः । खार्थसभावतः सः प्रसगारमा स एवार्थः परमार्थः पुरुषार्थस तरसमाबतः । तत्स्वभावमात्रेण परिशेषलक्षणसुखविश्रान्तौ प्रसक्तलादित्यर्थः ॥ २१ ॥ अस्तु सार्धप्रसक्तत्थापि मनइन्द्रि-बादिपरकार्यमि कतो न करोति तत्राह-सार्थेति। यतो नि-रतिशयानन्दरूपस्वार्थसत्तारूपायां सुषुप्ती एतदेव निरतिशया-**मन्दवपुः कचति न विक्षेपदुःख**लेशोऽपीत्मर्थः ॥२२॥ प्राणिश्वत्तं प्रतिला अप्रधानीकरोतीति यदुकं तत्र रामः शहते-मन इति । मनश्चित्तमित्येकमेव । हे महामुने, मन इदानीमपि प्राणवशादेव मननादिव्यापारान्करोति । तथाच तद्यदि प्राणे-नाप्रभानीकृतं न मनुते तर्हि इदानीमपि कि मनुते । यस्मा-योग- १७६

अस्ति चित्तादि देहादि तहसैव च तदिदाम्। यादकत्रहिदामेतदस्माकं विषये न तत्।। २७ यथेदं त्रिजगद्गह्म यथेति विविधात्मकम्। अन्नेमं राजपुत्र त्वं वर्ण्यमानं कमं ऋणु॥ ર૮ अस्ति चिन्मात्रममरुमनन्ताकाशकृषि यत्। सर्वदा सर्वरूपातम न जगन्न च दश्यता ॥ २९ सर्ववित्वासु तेनेदं मनस्त्वं चेतितं स्वतः। रूपमत्यज्ञता शुद्धं गुद्धमाधिविवर्जितम्॥ 30 मनसा करिपतं हेन यहै सरणमात्मनः। तदेतरप्राणपवनं विक्रि वेद्यविद्वावर ॥ 38 प्राणतेषा यथा तेन कल्पितेवानुभूयते। तथैवेन्द्रियदैहादि दिकालकलनादि च ॥ 33 इति विश्वमिदं विष्वक् चित्तमात्रमखण्डितम्। चित्तं तु चित्परं ब्रह्म तसाह्रह्मदमाततम् ॥ 33 अनाकारमनाद्यन्तमनाभासमनामयम्। शान्तं चिन्मात्रसन्मात्रं ब्रह्मेवेदं जगद्वपुः॥ 38 सर्वशक्ति परं ब्रह्म मनःशक्तया यथा स्थितम्। यत्र तत्र तथारूपं स्वमेवानुभवत्यलम् ॥ 34 संकल्पातम मनो ब्रह्म संकल्पयति यद्यथा। तस्यैवानुभवति सिद्धमाबालमीरशम्॥ 34

त्राणात्प्रथकृतं मनसः खरूपं नास्ति तस्मात्केवलं प्राणविनि-र्मुक्तं कि । न किचिदित्यर्थः । चकारः पूर्वप्रश्नसमुचयार्थः॥२३॥ अधिष्ठानसन्मात्रातप्रथक्करणे देहप्राणादिजगद्भुं किमपि नास्ति। तदपृथकरणे तु तत्सत्तया सर्वमस्खेव । तत्र प्राणपुषकृतं मन एकं नास्तीखल्पमिदं लया शक्कितमिलाशयें वितिष्ठ उत्तर-माह—देह इत्यादिना । यतो भनसः कल्पनारमेर्द वपुः अतो मनःपृथकृतं वपुर्नास्तीत्यर्थः ॥ २४ ॥ एवं चित्तस्यापि चेत्या-र्थनिरूप्यलाश्वेत्यार्थामाचे तत्तृथक्तं सर्वं नासीस्वि सुवच-मिलाह—तदिति । पूर्वपूर्वचेलं तनिस्पकमिति चेतन्ना-प्याह—सगीदाविति ॥ २५ ॥ ब्रह्मणः सर्वात्मकलात्तःसत्तया सन्वोक्ती त मनआदिसर्ववृत्त अस्येवेत्याह—अत इति॥२६॥ **चित्तदेहादिसर्वमस्ति यतस्तत्तदिदां तद्वश्चैव । अम्बा**विदाः त्र एतश्चिलदेहादि यादक तदस्माकं तस्वविदां विषये न ॥२७॥ हे राजपुत्र राम, यथा इदं त्रिजगद्गदीव तथा वर्ण्यमानमध्या-रोपारिकमं व्यविव्यर्थः ॥ २८॥ तत्राधिष्ठानादी निर्दिशति— अस्तीति ॥ २९ ॥ तेनेदं मनस्लं प्रथमं चेतितमध्यारोधिनम् । तेन चाघिष्ठानस्य नान्यधामाव इत्याह—स्वांमति ॥ ३०॥ सर्णं संचरणम् ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यसः सर्वेन शक्ति अतः प्राथमिक्या मनःशतया यथास्थितं पूर्वसिद्धमेवेति यत्र तत्र जागरे खप्ने वा खमेव तथाखरूवं जगद्भतगनुभवति ॥३५॥ संकल्पातमकं मन एव कार्यबद्धा तथया भूरादिलोदान-

प्राणीकृतः स्वयमयं ननु चेतसात्मा देहीकृतस्त्रिभुषनीकृत एव नाद्यः। देहीरुतः खवपुरेव गिरीरुतश्च स्वप्नेषु कव्पितपुरीष्यनुभूतमेतत् ॥ ३७

इलार्षे श्रीवा० वा० दे० मो० नि० उ० अवि० वि० चित्तसर्वात्मकताप्रतिपादनं नामाष्टश्रिशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १३८ ॥

एकोनचत्वारिंदाद्धिकशततमः सर्गः १३९

3

R

£

बसिष्ठ उवाच । चित्तमेव जगत्कर्तृ संकल्पयति यद्यथा। असत्सत्सदसबैव तत्त्रथा तस्य तिष्ठति ॥ तेन संकृतियतः प्राणः प्राणो मे गतिरित्यपि। न भवामि विनानेन तेन तत्तत्परायणम्॥ अहं कतिपयं कालं नजु प्राणविनाकृतः। न भवामि पुनर्नुनं भवाम्येचेति कविपतम्। यत्र तेनाङ्ग तत्रैतत्प्राणेनाश्च क्षणाद्वपुः। उदितं पश्यति मनो मायापुरमिवाततम्॥ न भवाम्येव भूयोऽहं प्राणदेहविनाकृतः। रहिनश्चयभागित्थं चितो भवति नो पुनः॥ दोलायितं तु संदेहादुःखमास्ते कुनिश्चयम्। विकल्पेनैवमस्पैतज्ज्ञानान्नाल्पेन यास्यति ॥ यस्यायमहमित्यस्ति तस्य तन्नोपशाम्यति । षर्जियित्वारमविकानं केनचिकाम हेतुना ॥ नान्यत्र प्रथते ज्ञानं मोक्षोपायविचारणात्।

न्यच संकल्पयति तथैवानुभवति । इदं चावालं बालानमिव्याप्य इंदर्श सिद्धम् ॥ ३६॥ ननु हे राम, खबपुरेव चेतनारमा आयो ना पुरुषः प्रथमं प्राणी प्राणवान् चेतसैव कृतस्थया देहीकृतस्था त्रिभुवनीकृत एव । एतस्पर्व कल्पितपुरीपु स्वस्वदेहेषु सर्वैरिष स्वप्नेष्वनुभूतं तदेव निदर्शनीकार्यमित्यर्थः ॥ ३७ ॥ इति श्री-वासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे दसरार्षे अष्टत्रिशद्धिकवातत्मः सर्गः ॥ १३८ ॥

प्राणादिप हि चित्तस्य प्राधान्यसिष्ठ वर्ण्यते ।

मुनः सुनुसारसमासौ प्रलयेक्षा च विस्तरात्॥ १॥ वित्तस्य सदैव प्राणाधीनलमभ्युपेलाध्यारोपकमे प्राथम्यमात्रेण जाप्रत्स्वप्रयोद्धभयप्राधान्यं सुपुतौ तु प्राणस्यैवेलाशयेन रामप्रश्नः समाहितः, हदानी प्राणादिसर्वजगित्रमाणे चित्तस्यैव खात्रक्या-रप्राधान्यं सुनुत्यारम्भकाले तु श्रान्तलाद्यापारितृमसमर्थमिति खविधान्त्यर्थमेव चित्तं प्राणप्राधान्यमङ्गीकरोतीलाशयेन तत्स-माधानमुपक्रमते—चित्तमेवेलादिना । असत् अलीकम् । सत् व्यावहारिकम् । सदसत् प्रातिभासिकम् । तस्य चित्तारमनः ॥ १॥ गतिमदीयसर्वव्यवहारिवर्गह्वः । तेन प्राणेन विना न भवामि न तिष्ठामि इलपि कहिपतं तेन हेतुना तिकतं तन्रपरायणं प्राणाधीनमुच्यते ॥ २॥ खप्रमनोराज्यादिप्रसिद्धदेहे प्राणाभावेऽपि मनोव्यापारदर्शनाद्विना तेन न भवामीति संकल्यस्य व्यभिचारमाशक्काह—अहमिति ॥ ३॥ यत्रयत्र तेन

ऋते तस्मात्त्रयह्नेन मोक्षोपायो विचार्यताम् ॥ 4 किलाहमिदमित्येव नाविद्या विद्यते कचित्। मोक्षोपायादते नैतत्कृतश्चिद्यतेऽन्यतः॥ 9 एवं यनमनसाभ्यस्तमुपलब्धं तथैव तत्। तेन मे जीवितं प्राणा इति प्राणे मनः स्थितम् १० देहे सौम्ये स्थिते प्राणे मनो मनमबद्धवेत्। क्षुब्धे प्राणगतं क्षोमं पदयन्नान्यत्प्रपदयति ॥ ११ यदा स्वकर्मणि स्पन्दे व्यग्नः प्राणी भृशं भवेत्। तदा तदीहितव्यम् प्राणो नात्मोधमी भवेत् ॥ १२ पते हि प्राणमनसी त्वन्योन्यं रथसारथी। के नाम नाजुवर्तन्ते रथसारियनी मिथः॥ १३ इत्यादिसर्गे स्वात्मैव चेतितः परमात्मना। तेनैषाद्यापि नियतिर्नाबुधानां निवर्तते ॥ १४ देशकालकियाद्वव्यैर्भनःप्राणशरीरिणाम् । प्रयान्खिधगता देहे बाद्धतानां परे पदे ॥ १५

मनसा प्राणेन सह वपुः कल्पितं तत्रैतत् क्षणादुदितं पश्यति ॥ ४ ॥ प्राणदेहकल्पनानन्तरमहं भूयः कदापि प्राणदेहाभ्यां विनाकृतो न भवाम्येवेखास्यन्तद्दुतिश्वयवान् जीवो भवति । चितश्चिन्मात्रस्वभावस्य तु दढनिश्चयवात्रो भवति ॥ ५ ॥ अत-एवास्पविचारजारसंदेहप्रायाज्ञानाम निस्तारः । विपरीतहदनि-श्वयस्य यथार्थहढनिश्चयं विना अनिष्टलेरिलाइ--दोलाबित-मिति । एवं द्वतरमेतुङ्गान्तिङ्गानं तत्त्वज्ञानादल्पेन विकल्पेन न यास्यति ॥ ६ ॥ ७ ॥ दढतरतत्त्वज्ञाने लयं प्रन्थ एवोपाय इ-त्याह—नान्यत्रेति ॥८॥ अहमिदमिति द्विधैवाविद्या विद्यते । अ-न्येति शेषः । अयते अपगच्छति ॥ ९ ॥ मे मम प्राणा एव जीवितं परमप्रेमविषयं रूपमित्येवं यन्मनसा दढमभ्यस्तमित्ये-तसादेतोः प्राणे प्राणाधीनतया मनः स्थितम् ॥ १० ॥ एवं देहाधीनता मनसोऽस्तीत्याह—देहे इति । देहे श्रुच्धे तु तत् क्षोभं प्राणगतं प्रपश्यन्मनः अन्यदात्मतत्त्वविवेकं वा न प्रप-रयति ॥ १९ ॥ अतएव प्राणो निरोधाभ्यासं विना नात्मका-नोन्मुखीभवतीत्याह-यदेति । तस्य मनस ईहितेषु व्यपः ॥ १२ ॥ तत्क्रतस्तत्राह—एते इति ॥ १३ ॥ तदपि कृतस्त-त्राह-इतीति । इति एवं परस्परानुकृतिस्वभावे प्राणमनोरूपेण परमात्मना आदिसर्गे भात्मा चेतितः संकल्पितः ॥ १४ ॥ परे पदे आरूढानामन्युत्पन्नानां मनःप्राणशरीरिणां देहेषु देशका-रुकियाद्रवीर्घिगता व्यवहाराः प्रयान्ति प्रवर्तन्ते ॥ १५ ॥ स्वं प्राणमनसी साम्यात्कुवंती कर्मतिष्ठतः। वैषम्याद्विषमं चैकं शान्ते शान्ता सुषुप्तता ॥ १६ यवाहारादिरुद्धासु नाडीषु कापि पिण्डितः। शान्तमास्ते जडः प्राणस्तदोदेति सुषुप्तता ॥ १७ नाडीप्वश्रावपूर्णासु तथा क्षीणासु वा ह्रमान्। निःस्पन्दस्तिष्ठति प्राणस्तदोदेति सुषुप्तता ॥ १८ नाडीनां मृतुरूपत्वात्पूर्णत्वाद्वा व्रणोदरे। कापि प्राणे स्थिते लीने निःस्पन्दास्ते सुषुप्तता १९

तापस उवाच । अथ यस्य प्रविष्टोऽहं हृद्ये सोऽभवन्निहा। सुषुप्तघननिद्रालुराहारपरितृप्तिमान् ॥ ૨૦ तेन सार्धमहं तत्र तश्चित्तेनैकतां गतः। सुषुप्तनिद्रां सुघनां गुणीभूतोऽनुभूतवान् ॥ २१ ततोऽन्धस्यस्य जीर्णेऽन्तर्नाडीमार्गे स्फुटे स्थिते। **२**२ प्राकृते स्पन्दिते प्राणे सुषुप्तं तनुतां ययौ ॥ सुपुप्ते तनुतां याते इदयादिव निर्गतम्। २३ अपर्यमहमत्रैव भुवनं भास्करादिमत्॥ तच शुब्धार्णवोत्थेन पूर्वमाणं महाम्भसा । विमुक्तेनेच कल्पाग्रैरभ्रंकपतरंगिणा ॥ २४ प्रोह्यत्पर्वतपूरेण महावर्तविराविणा। **बहुद्वनालीत्**ण्याक्यैर्याप्तेनोन्मुलितागया ॥ ર્પ पूर्वमेवावदग्धायासिलोक्याः खण्डखण्डकैः। पूर्णेन परितः प्रीढैः खपुराद्रिमहीमयैः॥ २६

तत्र प्राणमनसी यावत्कालं साम्यारखं कर्म कुर्वती तिष्ठतस्ताव-त्समो व्यवहारी जाप्रदाख्यः प्रवर्तते । यदा प्राण इन्द्रियप्रवर्त-नादुपरतो वैपम्यं भजते तदा विषमं खप्रास्यमेव केवलमानसं व्यवहरणं प्रवर्तते । शान्ते च मनसि सर्वविभेपशान्त्युपलक्षि-ता सुष्पता प्रवर्तत इलार्थः ॥ १६ ॥ कदा पुनर्मनः शान्तं भवति तदाइ-यदेति । आहारेरत्ररसरादिपदादिपत्तादिमिध नाडीषु रद्वासु सतीषु पिण्डितः प्राणो यदा जडो मन्दसंचारो भूला काप्यास्ते तदा मनःशान्त्या सुषुप्ततोदेति ॥ १७ ॥ क्षु-बितादीनामपि अमात्युषुप्तौ निमित्तमाइ--क्षीणासु वेति॥१८॥ मर्दनादिना नाडीमार्दवमपि ग्रुषुप्तिनिमित्तमिखाइ--नाडीना-मिति । एवं शरक्षतवणक्षिरादिपूर्णतापि तित्रमित्तमित्याह्-पूर्णेखादिति ॥ १९ ॥ एवं रामप्रश्नोत्तरप्रासिकं समाप्य व-सिष्ठः प्रख्यततापसोक्तिमेवावलम्बते-अथेत्यादिना । स प्राणी आहारपरितृप्तिमान्सन् सुषुप्तधननिद्राञ्जरभवदिति प्रागुकानु-बादः॥२०॥गुणीभृतस्यक्तस्वातस्यः ॥२१॥ततः अस्य प्राणिन उद्रस्थे अन्यसि अने जीर्णे जाते सति प्राकृते नैसर्गिके नाडीमार्गे प्राणे स्वन्दिते सन्दमाने सति । 'गत्यर्थाक-मेक-' इति कर्तरि कः। तनुतामस्पताम्॥२२॥ततस्तदीयस्त्रप्र-पद्यो मया दृष्ट इत्याह--- सुवृत इति ॥ २३ ॥ तन्य भुवनं प्र-

अहं तत्रैष पद्यामि यावत्र्कासिक्षिदास्पदे। कस्यांचित्पुरि कस्मिश्चिष्टृष्टे वश्वा पुरे स्थितः ₹19 सदारः सहभृत्योऽहं सपुत्रः सहबान्धवः। सहभाण्डोपस्करणः सगृहोऽपहृतोऽम्भसा ॥ उद्यमानं क्षयाम्भोभिस्तद्वहं तच पत्तनम्। ळङ्क्यमानं द्रुमाकारैः पूर्यमाणं च वारिभिः॥ बृहत्कलकलारावं जेतुमन्धिमिवोद्यतम्। अतिश्चुभितवास्तव्यमनपेक्षितपुत्रकम् ॥ Q¢. आवर्ततरलाढ्याभिर्वृत्तिभिर्च्युढमाकुलम्। साकन्दोरस्ताङनोत्कजनजम्बालभीपणम् ॥ 38 स्फुटत्कुड्यत्रुटत्काष्ठरटच्छक्ककृतोद्रटम् । ३२ प्रपतन्छाद्गन्छत्रगवाक्षस्थाङ्गनामुखम् ॥ इति याबत्क्षणं पदयन्नहं तन्नावमागतः। परिरोदिमि दीनात्मा तावत्तत्सकलं गृहम् ॥ 33 चतुर्घा भित्तिमेदेन वृद्धयालाङ्गनान्वितम्। जगाम दातधा बीच्यां दिलायामिव निर्ह्मरः 38 उद्यमानोऽहमभवं ततः प्रलयवारिणि । त्यक्तसर्वकलत्रादिचित्तः प्राणपरायणः॥ 34 श्विप्तस्तरङ्गजालेन योजनाचोजनवजे। उद्यमानद्रुमशिखाज्वालान्तरितजर्जरः॥ 36 काष्ट्रकुड्यतटीपीठकटुसंघट्टघट्टितः। आवर्तनृत्यपातालतले गत्वोत्थितश्चिरात्॥ ३७

लयकालक्षुच्धार्णवेभ्य उदितेन महाम्भसा पूर्यमाणमपर्यम् । तदम्भ एव विशिनष्टि-विमुक्तेनेवेति । कल्पाश्रेर्मुसलप्रमाण-धाराबृष्ट्या विमुक्तेन अधस्त्यक्तेन । इवशब्दो मिथ्यालयोती सर्वत्रानुवर्तनीयः॥२४॥वहन्ती या वनाली तहर्शणा या तृण्या तृणसमूहसादाव्येः पर्वतैर्व्याप्तेन । 'तृणायैर्व्याप्तेन' इति पाटे स-ष्टम्। उन्मूलिता अगा यक्षाः पर्वताक्ष यया तथाविधया बाल्यया विहुज्वालया च पूर्वमेवावदम्धायास्त्रिलोक्याः खण्डखण्डकः पू-र्णेनेत्युत्तरत्रान्वयः॥२५॥ खे प्रसिद्धानि देवासुरादिपुराणि तदा-दिमयै: ॥ २६ ॥ तदाच अहं कस्मिश्चिदासमदे देशे तत्र कस्यां-चित्परि तत्रापि कसिंश्विद्वहे वध्वा भार्यया सह स्थितोऽस्मीति खं पर्यामीलर्थः ॥ २७ ॥ ईट्शथाहं तेन प्रलयाम्भसापहृतः प्रवाहितः ॥ २८ ॥ तदवस्थं तद्गृहं तष्रगरं च वर्णयति ---उद्यमानमिति । क्षयाम्भोभिः प्रख्यज्ञैः हुमाकारस्तरक्रैः ॥२९॥ वास्तुनि बेरमभूमी भवा बास्तव्या जनाः ॥ ३० ॥ इतिमिर्ज-लप्रवृत्तिमिर्न्यूढं प्रवाहितम् । जम्बालैः पद्मैश्व भीषणम् ॥३१॥ त्रुटद्भिः शृक्षुभिः कृत उदुत्कृष्टी रटो ध्वनिर्यत्र॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सित्तीनां मेदेन विदारणेन ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उग्रमाना ये हमास्तत्रत्यप्रलयविद्याका ज्वाला तदन्तः इतैर्धमनैर्जर्जरः अन्तरितरन्तरायैरिति वा ॥ ३६ ॥ काष्ठाबीनां कदुभिर्दुःसहैः

चलाचलागमापायवलहुलुगुलारवे । जले बहुलकलोले मग्नोन्मग्नः पुनः पुनः॥ 36 संधट्टभग्नरौलेन्द्रपङ्किले सलिले क्षणम्। पल्वले वारण इव मध्रः सत्पयसोद्धतः॥ 36 याधदाश्वसिमि क्षित्रं डिण्डीरे चार्द्विखण्डके। ताबदेत्य हतो त्रेगाद्वेरिणेवातिबारिणा॥ 80 नानावलनकहोलजलजालजुषा तदा । न तर्कति न यहुष्टं दुःखं दुःखात्मना मया ॥ पतसिम्नन्तरे तत्र तदा तत्तांमसेक्षण। यावज्ञीवचिराभ्यासाद्विषादित्वात्सचेतसः॥ ४२ प्राक्तनं संस्मृतं रूपं स्वं समाधिमयं मया । आ अही नु जगत्यन्यह्रपेऽहं तापसः स्थितः॥ ४३ अहं कस्यचिदन्यस्य स्वप्तदिष्टिदश्यया । प्रविष्टोऽहमयं स्वप्ने पदयामीमं भ्रमं त्विति॥ 88 धर्तमानदृढाभ्यासभिष्याश्वानमयात्मनि । षञ्जोठेरद्यमानोऽपि ततोऽहं सु**खितः स्थितः** ४५ इदं यारितयापद्यं प्रलयाब्धिविवर्तनाः। उद्यमानःद्विनगरम्भाभोवीखण्डपादपाः॥ ક્રફ उद्यमानामराहीन्द्रनारीनरनमश्चराः । उद्यमानमहारम्भलोकपालपुरालयाः॥ 80 अथाहमदिमिशाम्बुकहोलादिविघट्टनाः । मुद्दः पदयञ्जगञ्चादामनन्तरमचिन्तयम् ॥ 85 चित्रमेष विनेत्रोऽपि जीर्ण तुणमिवार्णवे।

संपर्देषेत्रित आस्फालितः । आवर्तन्त्रेषु अमणेषु पाताळत्छे गला चिरादुत्थितः ॥ ३७ % ३८ % सप्तीऽभूवम् । तत्र दैवा-दागरीन सत्ययसः पुनरुद्धतः ॥ ३५ ॥ डिण्डीरे फेनपुने अ-द्रिखण्डके च यापदाश्वतिम विश्वान्ति हमे ताबद्रतिवारिणा महातरकेण हतः ॥ ४० ॥ कि बहुना तदा सर्वे दुःखं मयानु-भूतमिलाइ—नागेति ॥ ४१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे मया तत्प्राक्तनं सं समायिमयं कपं संस्मृतमिति परेण संबन्धः । 'तामरसेक्षण' इति पाठे सुनिवाक्यमनुबदती वसिष्ठस्य रामसंबोधनम् ॥४२॥ स्मृतिमेव विषम्बयभाह--आ अही द्रायदिना ।स्मृतावनाङ्-**क्षात् 'निपात एकाजनाह' इति अगृद्यता ॥ ४३ ॥ अयमहमिति** प्रत्यभिशायाम् ॥ ४४ ॥ वर्तमानी यः खप्रपथदढाभ्यासस्त-रप्रयुक्तमिथ्यः हानमये आत्मनि देहे कहातिहह्यमानोऽप्यहं तत-स्तत्सरणानन्तरम् ॥ ४५ ॥ वक्ष्यमाणविशेषणाः प्रस्रयाञ्चि-विवर्तना इदं प्रसिद्धं यन्मरुमरीनिवारि तत्त्या । मि-ध्यात्वेनेति यानत् ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ किमचिन्तयं त-दाह—चित्रमिति । अत्र मायामहार्णवे त्रीण्यवस्थात्रयस्थ-णानि नेत्राणि यस्य तथाविध ईश्वरोऽपि जीवो भूखा जीर्णतूण-मिबोह्यते । चित्रमाश्चर्यम् । इतस्य विधेर्देवस्य ॥ ४९ ॥ यथा प्रातरप्तु रवेः प्रभा विकसन्ति पद्मानि दर्शयन्ति तथा गृहाण्यपि

चतुर्धा भित्तिविदारणेन प्रकटाशयतौशोभं यथा स्वात्तथा दर्शय-न्ति॥५०॥एताश्र भूरिमिर्भ्रमेरावर्तैर्वि अमेश्रोपलक्षिताः परागध-वलभ्रमरपङ्किलक्षणं हारं वहन्त्यः पश्चिन्यः मुखकरपादादिपश्च-बत्यो हदिन्यो नद्य एव प्रसिद्धहदिन्यो न सकला अमला नापि जंगमाध्याः । एतास्त्र तद्विपरीताः । अतएव तरङ्गवलनास्र चित्रं सम्बन्धसन्तीवेखन्वयः ॥ ५१ ॥ विद्याधरीणां भुजलताविलेतेषु इन्द्रकान्तेषु कक्ष्याविभागः इव भासमाना मणिजालगवाक्षलः क्ष्म्यो येव तथाविधा देवासुरीरगमहागृहाणां भित्तिभागाः प्रल-याम्बुभरे सौवर्णनीकागणवद्भमन्ति ॥ ५२ ॥ संशीर्यमाणमणि-गेहगतः शकः अत्रास्मिन्त्रलयाम्बुअरे लग्नः रान् कुङ्कमाङ्के मसे-भकुम्भवत्परिणाहिनि विशाले शच्याः पौलोम्याः पयोधरमरे रित-प्रयुक्तेन खेदेन खिन्नः श्रान्तः संस्तद्पनयनाय जलकी डामुखात्। ल्यब्लोपे पश्चमी। जलकीहासुखमुद्दियेव तरक्रदोलाः करोति५३ वारीणां वरुनैर्वेष्टनैराविहतमन्तरिक्षं यस्मिन्कर्मणि तथा । तथा ऋक्षाणि नक्षत्राणि तल्लक्षणानवधूतान्कुसुमप्रकरान्किरन्तो वि-क्षिपन्तो वाताः । पतन्ति विशुधमन्दिराणि विमानानि यत्र तथाविषे रक्षसानी मेरावुचानस्य कोटरे गताः प्रविष्टा सन्न-लार्थ साक्षतेन कुसुमवर्षेण किरन्तो जना इव वान्ति । हा इति खेदे ॥ ५४ ॥ खे आकाशे क्षुव्धानामदिवद्गीमानां भया-

उद्यते हा हतविधेर्नाऽकार्यं नाम विद्यते ॥ चतुर्घा मिसिमेदेन प्रकटाशयतामहम्। पद्मानीव गृहाण्यपसु द्शेयन्ति रवेः प्रभाः॥ चित्रं तरङ्गवलनासु समुह्यसन्ति गन्ध्रविकेनरनरामरनागनार्यः । भूरिस्रमेर्भ्रमरहारमिव हृदिन्यः पद्मिन्य एव सकलामलजङ्गमाख्याः॥५१ विद्याधरीभुजलतायलितेन्दुकान्त-कक्ष्याविभागमणिजालगवाञ्चलस्म्यः । देवासुरोरगमहागृहभित्तिभागाः सौवर्णनौगणवद्म्बुभरे भ्रमन्ति ॥ ५२ मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कमाङ्के शच्याः पयोधरभरे रतिखेद**खिन्नः** । लग्नः सुखादिव करोति तरङ्गदोलाः संशीर्यमाणमणिगेहगतोऽत्र शकः॥ हा वान्ति वारिवलनावलितान्तरिक्ष-मृक्षावधृतकुसुमप्रकरान्किरन्तः । वाताः पतित्वेषुधमन्दिरस्वसाना-बुद्यानकोटरगता इव साक्षतेन ॥ બ્ર यक्रोत्थहेमस्पदा सरशाम्बुरूपं **भुब्धादिभीमजलवीचिशिखेरितं खे।** व्यावर्तते दिवि दलावृतकर्णिकास्थ-ध्यानैकनिष्ठपरमेष्ठिसरोजमेतत्॥

१ मूकस्थस मदं इति महज्ञस्स्यायं फलितार्थः.

मेघा रवातिघनघुंघुमघोषभीमा वीचीचयाः कनकपत्तनविद्यतोऽमी। ब्योक्नि भ्रमन्ति गजवाजिमृगेन्द्रनाग-षृक्षाद्रिकाननमहीतलतुल्यदेहाः॥ ५६ उद्यमानोदभूबीच्यामतसीकुसुमश्रियाम् । यमोऽऽप्ययं यमेनेव वारिपूरेण नीयते ॥ 40 पते हुडन्ति सलिलेऽखिललोकपाला नागा नगैश्च नगरैः सह लक्षसंख्याः। लक्ष्म्याकरोदरगुहागतवारिपूर-व्यावर्तनागुडगुडैरभिलक्ष्यपूराः॥ 40 **दुर्वा**रमारिवलनापरिपूरितेषु पातालभूतलनभस्तलदिकटेषु । मत्स्या १वेन्द्रयमयश्चसुरासुरीघाः सम्रामपत्तनविमाननगा भ्रमन्ति॥ ५९ उद्यमानस्य कृष्णस्य तनुरेवाम्बुरूपिणी। मातृज्ञक्केव बत्सस्य कष्टं बन्धनतां गता॥ ξo अन्योन्यमावलयतामहो बुडबुडारवः। श्र्यते देवदैत्यानां स्वस्नीहलहलाकुलः॥ 83 कोलाइलाकुलपुरोत्तमवेगपात-विश्वब्धवारिपटलीवलिताम्बरासु । दिश्च भ्रमज्जलदजालघनास्विवेष संलक्ष्यते जलमयः स्फुटकुक्यवन्धः ६२ कष्टं ते क गता महर्दि विभवा देवा जगन्नायकाः ६७

हा कष्टमेष तरसा पथसापनीत आवर्तवृत्तिपरिवर्तनया स्वधस्तात्। पते कुबेरयमनारदवासवाद्याः प्राणान्पयोभ्रपटलैर्विधुरास्त्यजन्ति ॥ ६६ प्राज्ञाः प्रशान्तज्ञष्ठवेहिमहोह्यमानं मानोज्झिताः शवतयैष च तद्वहन्ति। ब्रह्मेन्द्रविष्णुपुरखण्डकसंकटाम्बु-संघट्टनेन कटुकुट्टनदश्च तेन ॥ ६४ खीणां गणोऽर्धपरिषिष्ट इहैति कष्टं कस्त्रातुमेनमपरः कुजडं समर्थः। नह्यन्तकस्य दशनैरभिचर्यमाणा त्रातं परस्परमियं जनता समर्था॥ पर्वतप्रतिघसर्पसर्पणाः संसरन्ति विप्ला जलोशयाः। तेषु नाघ इब देवपत्तना-न्युन्नमय्य वपुराश्च यान्त्यधः॥ ĘĘ द्वीपाद्वीन्द्रसुरासुरोरगनरैनीगाव्सरभारणे र्व्यातं वारिविलोलितैः सरसिजैरालुनमुलैरिष। पकाम्भोधिसरःस्थितं त्रिभुवनं कालेन निर्मृतितं

इत्यार्षे श्रीषा । वाल्मी । मो । निर्वा । उ० अवि । वि० श० जगन्नाशवर्णनं नामैकोनचलारिंशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १३९ ॥

नकानां जडवीचीनां शिखाभिरीरितमुद्धिप्तमेतत् । यश्चीदिक्ष-प्तेन हेमदयदा सदशमन्त्रनो रूपं दिनि बह्मलोके दलैः पत्रैरावृतं कर्णिकास्थस्य ध्यानैकनिष्ठस्य परमेष्टिन आसनभूतं सरोजं प्राप्य ब्यावर्तते परावर्तते नान्तराहे इत्यर्थः ॥५५॥ गजवाज्यादित्रस्य-देहाः । अतिघनष्ठंष्रुमघोपैर्भीमाः कनकमयदेवासुरपत्तनान्येव विद्युतो येषु तथाविधा अमी वीचीचया मेघा इव व्योग्नि भ्रम-न्ति ॥ ५६ ॥ अतसीकुसुमसददाश्रियां उद्यमानोदे प्रलयाणीवे भवतीरयुग्धमानोदभूस्तथाविधायां वीच्यां वारिपूरेणायं यमोऽपि यमान्तरेण नीयत इव छक्ष्यत इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ अखिला लोकपाला नागाध साध्यमें वीदिनगैर्नगरेश्व सह श्रुडन्ति मन्दित । तत्र निधानादिलक्ष्म्याकरेषु पर्वतोदरगुहासु गतस्य प्रविष्टस्य बारिपूरस्य व्यावर्तनार्थं निर्गच्छतो बायोर्गुडगुडश-ब्दैरभिलक्ष्यः पूरः पूरणं येषां तथानिधाः सन्तः ॥ ५८॥ सष्टम् ॥ ५९ ॥ दोहनकाले वत्सानामार्भारैभीतृजङ्कायां बन्ध-नादिति भावः ॥ ६० ॥ सार्थ इव स्पर्थ इव वा हलहला-ध्वनिभिराकुछः ॥ ६१ ॥ कोलाइलैराकुलानां देवदानवपुरो-त्तमानां वेगेन पातैर्विधुन्धाभिर्वारिपटलीभिर्वलितान्तरासु दिक्ष अमद्भिर्जेखद्जालैर्यनास्विव जलमयः स्फुटकुक्यवन्धः संल-क्यते ॥ ६२ ॥ एव सर्वजनप्रसिद्धः सूर्य आवर्तवृत्तिपरिवर्त-

नया प्रष्टु अधस्तादपनीतः । विधुरा जीवनासमर्थाः ॥ ६३ ॥ तेन तारशेन बह्मेन्द्रादिपुराणां खण्डकैः संकटस्याम्बनः संघ-हनेन कटुकुटनं पश्यन्तीति कटुकुटनटशस्तेषु मध्ये ये प्राज्ञा-स्तत्त्वविद्रांत प्रशान्तं मृतं अतएव जडं खदेहमिह जले उहा-मानं मानस्तदहंभावस्तदुज्झिताः सन्तः शवतयैव बहन्ति । अतो न ते छेदमेदाभिषातादिदुःखैंखिंप्यन्त इति भावः॥६४॥ कुजडं की पृथ्व्यां जडमतिमूर्वत्वेन प्रसिद्धमेनं श्लीगणं त्रातुं कः समर्थः । जनता जनसमूहः ॥ ६५ ॥ पर्वतान् प्रतिव्रन्ति विदारयन्तीति पर्वतप्रतिधाः सर्पवत्सर्पणं गमनं तथाविधा विपुला जलोचयाः कहोलाः संसरन्ति । तेषु कहो-लेषु देवपत्तनानि प्रथमं स्ववपुनीव ६व उन्नमध्य तदनन्तर-माश्च अधो यान्ति । मजन्तीति यावत् ॥ ६६ ॥ त्रिभुवनं कालेन निर्मूलितं सद्वारिविलोडितैद्वापैरदीन्द्रैः सुरैरसुरैहरगैर्न-रैनांगेंभेजैरप्सरोमिश्वारणेश्व आछ्यनमूलैः सरसिजैरिव व्याप्त-मेकाम्भोधिलक्षणं सरो भूखा स्थितम्। कष्टमिति खेदे। महान्तः ऋदिविभवा येषां ते जगन्नायका इन्द्रादिदेवाः क गताः ॥ ६७॥ इति श्रीवासिष्ठम० ताल्पर्यप्रकाशे नि० ४० एकोनचस्वारिंशदु सरशततमः सर्गः ॥ १६९ ॥

चत्वारिंदाद्धिकदाततमः सर्गः १४०

| व्याध उवाच । | |
|---|-----|
| भगवंस्त्वाददास्तां तामयस्थां च कथं गतः। 🥏 | |
| कथं ध्यानप्रयोगेण तदा नोपशमं गतः॥ | ę |
| मुनिद्धाच । | • |
| कल्पान्तेषु विनदयन्ति नाद्रौर्नानाविधात्मिसः। | |
| जगन्ति भ्रान्तिकपाणि नभस्याभासकपिभिः॥ | २ |
| कदाचित्रमशो नाशः कल्पान्ते संप्रवर्तते । | |
| अदाक्कितं कदाचिद्वागेकधादिविकारतः ॥ | 3 |
| तदा द्वागित्येव यदा विकृतं वारि तस्रधा। | |
| तेन यावत्सरन्त्याद्यं तावश्रीता जलैः सुराः॥ | ક |
| अन्यश्व विपिनाधीश कालः सर्वकषो ह्ययम्। | |
| यत्र काले ततस्तासम्बन्धयं भावि तत्तथा ॥ | 4 |
| षळं बुद्धिश्च तेजश्च क्षयकाल उपस्थिते। | • |
| विपर्यस्थति सर्वत्र सर्वथा महतामपि॥ | દ્દ |
| अन्यश्च विषिनाधीश मयैतत्तव वर्णितम्। | • |
| स्वप्तरप्टं किल स्वप्ने कि न संभवतीह किम्॥ | (9 |
| व्याध उद्याच । | - |
| असदेतधदि विभो स्वप्नसंभ्रममात्रकम्। | |
| क्रिकेन नरेमेन को रर्शः हत्यामानाम् । | , |

प्रख्याक्षेरपगमो प्रामे द्विजतया स्थितिः।
मुनेः प्राणितनोर्वाद्यनिर्गमाद्यत्र वर्ण्यते ॥ ३ ॥

मुनिष्याच । त्यद्वोधनात्मकं कार्यं महत्रस्यत्र वृद्धिमन् ।

अप्ययं चकारः । त्वादशो ज्ञानयोगसिद्धोऽपि तां तां प्राग्व-र्णितबहुप्रकारां प्रखयजलप्रवनादिनानाभ्रान्त्यवस्थां कथं गतः । **घ्यान**ळक्षणयोगाश्चप्रयोगेणातीतानागतसर्वदर्शनोपायेन सर्वभ्रान्त्यपद्यमं कथंन गतीन प्राप्तः ॥ १ ॥ २ ॥ कमिके प्रक्षये योगेन भूतभाव्यर्थपर्यालोचनावकाशः स्यात्। आक-स्मिके तु न तदवकाशी मया स्टब्स इत्युत्तरममिप्रेख प्रस्य-द्वैविध्यं दर्शयति---कदाचिदिति । सप्तानां समुद्राणां युगपदे-कघाभाषादिलक्षणाद्विकारतः ॥ ३ ॥ आर्थ हिरण्यगर्भ प्रति निवेदयितं सुरा यावत्सरन्ति जिगमिषन्ति तावज्जलैनीताः । तथाच सराणामपि यत्र प्रमायस्तत्र मम का कथेत्वर्थः ॥ ४ ॥ कालप्रावस्याद्वा तदा मम ध्यानधारणा न स्कृतेत्वाह-अन्य-बेति । विपिनाधीश हे व्याध, सर्वे कषति नाशयतीति सर्वे-क्षः । यत्र काले यदवश्यं भावि तत्तथा भवतीत्वर्थः ॥ ५ ॥ तदेव प्रपश्चयति-वलमिति ॥ ६ ॥ किचेदं स्त्रप्ने परचित्तानुब-र्तिना मया दएं तत्र च विवेकाप्रसरो महतामपि प्रसिद्ध इति परिहारान्तरमाह-अन्यवेति । इह सर्वजने किमप्रसिद्धमिद-मिखर्यः ॥ ७॥ खप्रसंभ्रमो मात्रा उपमानं यस्य तत्खप्रसंभ्रम-मात्रकम् । तत्तर्हि एतेन मां प्रति कथितेन किं प्रयोजनम् ।

| पतन्त्रमात्मक वात्त भवान्सत्य तु म ऋणु॥ | ۹, |
|--|-------|
| अनन्तरमहं तिसन्मित्तकार्णवरंहिति। | |
| जन्तोरोजः स्थितः स्वप्ने म्रान्तं म्रान्तो व्यलोकर | रं १० |
| यावत्ससकलं वारि कापि निर्गन्तुमुद्यतम्। | |
| विश्चब्धवज्रवित्रस्तसपक्षाद्रीन्द्रवृन्द्यत्॥ | ११ |
| लम्धवानुश्चमानोऽहं कंचिद्दैववशासद्रम्। | |
| अवसं तमवष्टभ्य शिखरप्रान्तसंनिमम्॥ | १२ |
| अथ क्षणेन सलिलं तद्देषेण निर्ययौ। | |
| वीच्यप्रस्फुटिताकारदेंवैस्तारिकताम्बरम्॥ | १३ |
| तारागणेश्च पातालगतैर्मणिमयोदरम्। | |
| आवर्तेषु प्रावृत्तैः स्फारमद्रिजरचृणैः॥ | १४ |
| हेमद्वीपोपमैर्व्याप्तं गीर्वाणपुरमन्दिरैः। | |
| भ्रमत्सुराङ्गनालीननलिनीजालमालितम् ॥ | १५ |
| मध्योद्यमानकल्पाभ्रनीलशैवालजालकम्। | |
| विद्युद्रोरोचनाम्भोद्नीळ्नीरजनिर्भरम् ॥ | १६ |
| स्फुरत्सीक्रनीहारमेघाद्रिकृतदिक्तदम्। | |
| उल्लोलद्वीचिसंदिग्धयहत्कल्पद्वमवज्ञम्॥ | १७ |
| अधैकार्णवस्तातोऽसावभवच्छुष्ककोटरः। | |
| कचिद्रलितसद्याद्रिः कचित्संशीकमन्दरः॥ | १८ |
| कचित्पङ्कनिमग्नेन्दुयमवासवतक्षकः। | _ |
| कचित्पङ्कतिमग्नाधःशास्त्रकल्पद्वमोत्करः॥ | १९ |
| A STATE OF THE PARTY OF THE PAR | |

हे कस्याणकोविदेति, निरर्यकवाक्यवकृता लयि न संभा-व्यंति बोतनाय संबोधनम् ॥ ८ ॥ कस्याणकोविदत्वं प्रकट-यन्मुनिरुत्तरमाह-लद्भोधनात्मकमिति । मोक्षपर्ययसायिला-न्महत् । यतो भवान् वर्णितप्रपश्चसाम्यावगमादेतत्परिदृत्य-मानमपि भ्रमात्मकं वेति । इश्यमात्रस्य भ्रमात्मकृतवे सत्यं तु हमूपो भवानेव परिशिष्यते । अत इममन्वयव्यतिरेका-भ्यामन्यशोधनोपायं कथाशेषं मे मत्तः श्वण्वित्यर्थः ॥९॥ १०॥ कियरकालं भ्रान्ति रवं व्यलोकयस्तत्राह-यावदिति । सक्लै-रावर्तकक्षोछादिभिः सद्द वर्तमानं ससकलम् ॥ ११ ॥ तं तट-मवष्टभ्य आश्रिख अबसम् ॥ १२ ॥ तत्सिलिलं वर्णयति— वीच्यप्रेत्यादिना । वीच्यप्रस्फटितजलकणाकारैप्रहनक्षत्रादिदे-वेस्तारकितं संजाततारकमम्बरं येन ॥ १३ ॥ कैश्वितारागणैः पातालगतेर्मणिमयोदरमिव ॥ १४ ॥ धराञ्चनालक्षणैर्छानैर्न-लिनीजालैर्मालितम् ॥ १५ ॥ कल्पात्रवन्नीलं शैवालजालकं यत्र, विद्युत एव गोरोचनातुल्याः परागा यत्र तथाविधैरम्भो-दलक्षणैनीलनीरजैनिर्भरमतिशयितम् ॥ १६ ॥ स्फुरत्सीकरै-नीहारैमेंपैरविभिध कृतं दिश्च तटं यस्य ॥ १७ ॥ एकाणैव-खातमपि वर्णयति-शुष्केत्यादिना । संशीकः शीर्णलादयं मन्दरोऽन्यो वेति संशययोग्यो मन्दरो यत्र ॥ १८ ॥ १५ ॥

| कचित्कमलवत्कीर्णलोकपालिहारःकरः। | |
|--|------------|
| कचित्पङ्कजविश्रान्तरुधिरहृदपाटलः॥ | २० |
| कचिदाकण्ठनिर्ममकणिह्याधरीगणः। | |
| कचित्स्वप्रमृतेभाभयाम्योप्रमहिषावृतः॥ | चर |
| कचित्सन्नमहाकायगरुडामरपर्वतः। | |
| कचिन्मत्तमहासेतुर्यमदण्डेन भूजुवा ॥ | રર |
| कचित्प्रमृतवैरिञ्चहंससस्मितपङ्क्षेभूः। | |
| कचित्पङ्कविनिर्मग्नदेहार्थामरवारणः॥ | २३ |
| पतिसम्बन्तरे तत्र सानुं प्राप्याश्रमे श्रमात्। | |
| विधान्तोसि यदा तेन भृत्रां निद्राजगाम माम् | રક |
| ततः सुषुप्रनिद्रान्तस्तया धासनयान्त्रितः। | |
| तं ताहनेव कल्पान्तमपद्यं स्वीजिस स्थितः॥ | ३५ |
| रष्ट्रा तद्विगुणं दुःखं चिरेणात्राहमाकुलः। | |
| प्रयुद्धो दृष्टवान्सानुं तमेवास्य हृदि स्थितम्॥ | २६ |
| अध तत्र द्वितीयेऽहि भास्करोदयसुन्दरम्। | |
| सलोकाकाशभूशैलं भुषनं दृष्टवानहम् ॥ | २७ |
| द्यौः क्षमा वायुराकादां पर्वताः सरितो दिदाः | ì |
| इति में चेतसो जातं पत्रादिविटपादिव ॥ | २८ |
| ततस्तरिस्तथा दृष्टे भूतले तैः पदार्थकैः। | |
| व्यवहारं प्रवृत्तोऽहं किंचिद्धिस्मृतघीरितः॥ | २९ |
| जातस्य मेऽद्य वर्षाणि पोडशैप पिता मम । | |
| इयं माह स्पर्व चेद्मिति में प्रतिमोदभूत्॥ | રૂ૦ |
| अपद्यं त्रामकं कंचित्कंचित्र ब्राह्मणाश्रमम्। | |
| किंचिद्रेहं तथा कश्चिद्रन्धुः करिंगश्चिदाश्रमे ॥ | ३१ |
| अथ मे तिष्ठतः सार्धे बन्धुमिर्शाममन्दिरे । | |
| अहोरात्रेषु गच्छत्सु जात्रदादीस्तदेव सत्॥ | ३ २ |
| ततः कालवदाात्तत्र प्राक्तनी बोधधीर्मम। | |

पश्चेत्रीरव विश्रान्ते रुधिरहुदैः पाटलः ॥ २० ॥ स्त्रप्र इव मृतै-रिभाभैर्याम्बेर्यमवाहनैरुप्रमहिषेरायृतः ॥ २१ ॥ रात्री महा-कायगरुडलक्षणोऽमरपर्वतो यत्र । भूजुषा भूमौ पतितेन यम-**दण्डेन मल इ**व जलनिरोधाक्षमो महासेतुर्थत्र ॥ २२ ॥२३॥ सानु तटगिरेः प्रस्थदेशम् । कस्यचिन्मुनेराश्रमे यदा विश्रा-न्तोऽस्मि तदा मां भृशं निद्रा थाजगाम ॥ २४ ॥ सुपुप्तोत्तर-**कालप्रवृत्तनिद्र।न्तस्तादृक्**प्राण्योजोन्तर्दष्टसदद्यमेव खाँजसि स्थि-तोऽहमपरयम् ॥ २५ ॥ अस्य प्राणिनो हृदि स्थितं सानुमहं दृष्टवान् ॥ २६ ॥ २७ ॥ चेतसो मनसः सकाशादेव विटपा-च्छाखातः पत्रादीव जातमुत्पन्नम् ॥ २८ ॥ प्रवृत्तः कर्तुमिति शेषः । इतः पूर्वोनुभूतविषये कि चिद्विस्मृतधीः, विस्मृतिधया **ईरित इति वा ॥ २९ ॥ तत्र चापूर्वा काचित्सिद्धवत्कारेण** व्यवहारप्रतिभा खस्योदभूदित्याह—जातस्येति । आस्पदं **ग्रहम्** ॥ ३० ॥ तत्र कथिद्वन्धुरभूदिति शेषः ॥ ३१ ॥ जांष्रदादीनवस्थामेदाननुभवत इति शेषः। तदेव प्रामादि। सत् ययार्थमिवाभवत् ॥ ३२ ॥ तस्य प्राग्दामव्यालकटाल्याने

| विस्मृता तादशाभ्यासादहो तस्येव मत्स्यता। | 33 |
|---|------------|
| इत्यहं श्रामवास्तव्यः संपन्नो ब्राह्मणस्तदा । 💎 | |
| देहमात्रकवद्धास्थो दूरीकृतविवेकभूः॥ | રૂજ |
| शरीरमात्रात्मवपुर्वारमात्रानुरुञ्जितः । | |
| वासनामात्रसारात्मा धनमात्रैकतत्परः॥ | ३ ५ |
| जीर्णगोमात्रकथनः संरोपितलतावृतिः। | |
| संचितास्यवनिमाणिरुपाजितकमण्डलुः॥ | ३६ |
| चलवृक्षकबद्धास्थो लोकाचाररतः सदा। | |
| गृहपार्श्वगतानीलशाद्वलस्थलिकास्थितिः॥ | ØF |
| शाकशाकायतारामरचनानीतवासरः। | |
| सरिद्भदनदीतीर्थसरसि स्नानतत्परः॥ | 36 |
| गोमयात्रजलाम्ब्विकाष्ठेष्टा कष्टसंचयी। | |
| इदं कार्यमिदं नेति पाशाभ्यां विवशीकृतः॥ | ३९ |
| इति मे जीवत्स्तत्र संवत्स्रशतं गतम्। | |
| पकदाभ्यागतो दूरात्तापसोऽतिथिरात्मवान्॥ | Ŗo |
| पूजितोऽसी विशश्राम मह्हे स्नानपूर्वकम्। | |
| भुक्तवाञ्छयने स्थित्वा रात्री वर्णितवान्कथाम् | ४१ |
| नानादिग्देशशैलोर्वीव्यवहारमनोहरे। | |
| कथाप्रसङ्गे कसिश्चिन्नानाविधरसाश्रये॥ | ४२ |
| सर्वे चिन्मात्रमेवेदमनन्तमविकारि च। | |
| जगत्तयेव कचति यथास्थितमपि स्थितम्॥ | ઇર |
| इत्यहं बोधितस्तेन बोधिकधनतां गतः। | |
| स्मृतवांस्तमशेषेण मृत्तान्तं धारणावशात्॥ | 83 |
| स्मृतवानात्मवृत्तान्तं यस्याहमुदरे स्थितः। | |
| तं विराष्ट्रपमाशङ्क्ष्य तस्मान्त्रिगेन्तुमुद्यतः॥ | 84 |
| तदास्यं निर्गमद्वारमथ जानामि नो यदा। | |
| विस्तीर्णे भवने यस्मिन्भम्यब्ध्यद्विसरिद्वते ॥ | ક્રફ |
| ाजस्ताण नामा भारतन्त्रमञ्जूष्याप्रसारक्षयः । | O 14 |

उक्तस्य निर्वासनस्यापि कटस्य मत्स्यसहवासाभ्यासातपूर्व--बोधविस्मरणेन मत्स्यतेन प्रामवास्तव्यतामसंपन्नेत्यर्थः ॥३३॥ तामेत्रं प्रपद्मयति-इतीत्यादिना ॥ ३४ ॥ वासनामात्र-सारः आत्मा स्वभावो देहो वा यस्य ॥ ३५ ॥ गृहाङ्गणे संरो-पिता निष्पावादिलतावृतिर्येन । संचिताः अप्रिश्व अवनिः क्षेत्रा-दिभूञ्च पश्चादिप्राणिनश्च येन । नलोपरछान्दसः ॥३६॥ चलेष्व-ल्पकाळजीवितेषु तुलसादिवृक्षकेषु बदास्थः। लोकानामाचारेषु जनवद्मामधर्मेषु रतः । गृह्वार्श्वगतासु आनीलशाद्वलासु स्थ-लिकासु स्थितिर्थस्य ॥ ३७॥ शाकानां शाकेरायतानामारामाणां च रचना परिष्कारस्तया नीता वासरा येन । सरोन्तानां द्वन्द्व-कत्रद्भावः ॥ ३८ ॥ इष्टा इष्टकाः । गोमयादीनां कटेन संचय-नशीलः ॥ ३९ ॥ आत्मवानात्मज्ञः ॥ ४० ॥ ४३ ॥ कर्सि-श्चित्कथाप्रसंगे तेनाहं इति बोधित इति व्यवहितेन संबन्धः ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तं प्राक्तनप्राणिशरीरप्रवेशादिखदृतान्तम् ॥ ४४ ॥ तं प्राणिनं सर्वजगज्जठरलाद्विराडूपमाशक्क्य तस्माल-दुदरात् ॥४५॥ यस्मिन् प्राण्युदरे विस्तीर्णे भुवने अमन्तं यद्

तदा तमत्यजन्नेय देशं बन्धुजनावृतम्। सस्य प्राणं प्रविष्टोऽहं निर्गन्तुं पवनं बहिः॥ 80 इहस्थस्य विराजोऽस्य बाह्यमाभ्यन्तरं तथा। अन्यजं सर्वमीक्षेऽहमिति निर्णीय ताहदास्॥ ४८ धारणां संविदा बद्धा प्रवेदां स्वं तमत्यजम्। तत्प्राणैः सह निर्यात आमोदः कुसुमादिव ॥ ४९ पवनस्कन्धमासाद्य प्राप्य तन्मुखकोदरम् । षहिर्वातरथेनाहं निर्गतो दृष्टवान्पुरः॥ 40 यावस्थैव महेहो बद्धपद्मासनः स्थितः। कापि मुन्याश्रमः शिष्यैः पालितो गिरिकन्द्रे ५१ पुरो मे तिष्ठतां तेषां मत्संरक्षणकर्मणाम्। मुहूर्तमात्रं च गतः कालश्चान्ते निवासिनाम्॥ ५२ हृदयं संप्रविष्टोऽसा यस्याहं स पुमानपि। पृष्ठेनोत्सवलब्धेन शेते तृप्तोऽन्धसा सुखम्॥ ५३ तदाश्चर्यं मया दृष्टा नोक्तं किंच न कस्यचित्। पुनस्तस्यैव इदयं प्रविष्टः कीतुकादहम्॥ ष्राप्तोऽस्म्योजःप्रदेशं तं तस्य तस्मिन्द्वदन्तरे । अवेक्सितुं स्वयन्धूंस्तान्त्यामो वासनया तया॥ ५५ यायसत्र युगस्यान्तः संप्रवृत्तोऽतिदारुणः। भुवनं तद्विपयोसमागतं सह संस्थया ॥ 48 अन्य पदाचलास्तत्र वसुधान्या च संस्थिता। अन्य पव ककु॰मेदस्तथान्या भुवनस्थितिः॥ 40 इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वारमीकीये मो०नि०उ०अ० वि० हृदयफल्पनावर्णनं नाम चलारिंशद्धिकशततयः सर्गः ॥१४०॥

ते बन्धवः स च ग्रामः स भूभागः स दिक्तटः। न जाने क गतं सर्घे व्युद्य नीतमिवानिकैः॥ ५८ तदा पर्यामि भुधनं यावदन्यदवस्थितम्। ५९ अपूर्वेसंनिवेशं तंज्जगदन्यदिवोदितम्॥ तपन्ति द्वादशादिस्याः प्रज्वलन्ति दिशो दश । शीतार्यानाम्युवच्छेलाः प्रवृत्ता गलितुं बलात्६० अद्रावद्री दिशिदिशि ज्वलन्ति वनपङ्कयः। वग्धाः स्मृतिपदं याताः समस्ता र**क्तभू**तयः ६१ सर्वे पवाब्धयः शुष्का महावाताः पुरःस्थिताः । अङ्गारराद्गितां यातं भूमण्डलमशेषतः॥ ६२ पातालतो भूतलतोऽथ दिग्भ्यो ज्वाला विनिर्गन्तुमनुप्रवृत्ताः । संध्याभ्रवषाद्य बभूव विश्वं 83 ज्वालामयं मण्डलमेकसेव ॥ ज्वालामये सद्मनि हेमपद्म-

कोशे भ्रमञ्जूङ्ग इव प्रविष्टः। ततोऽहमाराच्छलभक्रमेण न चाप्तवान्दाहविकारदुःखम्॥ દ્દય ज्वालामये साधुमहाम्बुवाहे भ्रमाम्यहं विद्यदिवानिलातमा । ज्वालापरिस्पन्दविलोलवर्ध्मो

स्थलाङ्गखण्डभ्रमरोपमधीः॥

एकचस्यारिंदादधिकदाततमः सर्गः १४१

मुनिरुवाच । तत्र दंदश्यमानोऽपि नाभवं दुःखभागहम्।

निर्गमद्वारं तदास्यं न जानामि तदा तं देशमखजनेव तस्य प्राणं पवनं बहिनिंगेन्तुं प्रविष्ट इति परेण सहान्वयः ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ इहस्थस्य विराजोऽस्य प्राणिनो बाह्यमन्यजं विराड-न्तरोत्पन्नमाभ्यन्तरं चेति सर्वमीक्षे इति बुख्या तादशं तदनु-कुळां तत्त्राणाहंभावधारणां बद्धा तं प्रदेशमत्यजमिति परेणा-न्वयः ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वातलक्षणेन रथेन बहिर्निर्गतः सन् पुरो वक्ष्यमाणं दष्टवान् ॥ ५०॥ बाह्य कापि गिरिकन्दरे मुन्याश्रमोऽस्ति तत्र महेही यावत्सक्छसाथा प्रागनुभूतवदेव **बद्धपद्मासनः** स्थितः ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ स प्राणी अन्तेवासी पु-मान् प्रामे क्रिनिदुत्सवे उच्धेन अन्धसा मृष्टान्नेन तृप्तः सन् **उत्तानः पृ**ष्ठेन सुखं शेते ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तं प्रागनुभूतमोजः-प्रदेशमानन्दमयादिकोशत्रयप्रदेशं यावत्प्राप्तोऽस्मि तावतत्र यु-गस्यान्तः संप्रवृत्त इति परेणान्वयः ॥५५॥ संस्थया धर्माधर्म-व्यवस्थया सह विपयीसमागतं प्राप्तम् ॥ ५६ ॥ भुवनविपर्या-समेव प्रपन्नयति—अन्य इति ॥५०॥ व्यूह्म संकाल्य ॥५८॥ बाबरकुक्रम् ॥ ५९ ॥ शिवेन भारयानं घनीभूतं यदम्बु तद्व-

स्वप्ने स्वप्नोऽयमित्येष जानब्रद्वाचपि च्युतः॥ ज्वालाजालनवोड्डीतिमण्डलैरिखकैर्नभः ।

द्रलिद्धं प्रवृत्ताः ॥ ६० ॥ ६९ ॥ पुरोदिशि स्थिता उत्पिताः ॥ ६२ ॥ प्रथमं पातालस्ततो भूतलतोऽयानम्तरं विगभ्यो ज्वाला विनिर्गेन्द्रं प्रवृताः । विश्वमाञ्च एकमे**व ज्वाला**मयं **म**-ण्डलं सत् संध्याभवदारकं बभूव ॥ ६३ ॥ तस्मिन् उवासा-मये सद्मिन हेमपद्मकोरी भ्रमद्भुनद्दव प्रविष्टोऽहं शस्त्रभक्षमेण प्रसक्तमपि दाहविकारदुःखं नैवासवान्। आतिवाहिकदेहमात्र-निश्वयादिति भावः ॥४६॥ अनिलघारणया अनिलात्मा वायुप्रा॰ योऽहं तस्मिन् ज्वालामये महाम्बुवाहे विद्युदिव साधु भ्रमामि । ज्वालापरिस्पन्देषु विलोलं **बर्ध्म** यस्य तथाविधः स**न् स्थलाब्ज**-सम्बेषु भ्रमन्तो ये भ्रमरास्तदुपमश्रीः संवृत्त इत्यर्थः ॥ ६५ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे **चरवारिंशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १**४० ॥

बह्विज्वालाकुले कोके वायोश्रण्डस्य निर्गमः । विक्षिसाङ्गारवर्षाज्यज्यालामेघोऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥ दंदबामानः सर्वतो दहनव्याप्तोऽपि ॥ १ ॥ उवा**लावाका**- 3

3

ઇ

4

દ્દ

Ø

अलातचक्रवचार केवलं भ्रान्तवानहम् ॥
तं द्वाग्निमहं यावच्तविक्यादिखिन्नधीः ।
विचारयाम्यिखन्नातमा मारुतस्तावदायया ॥
सीत्कारमितगम्भीरं दधन्मेघरवोपमम् ।
जगत्पदार्थेरावृत्तैरुह्यमानः परावृतः ॥
वृह्द्विषुंघुमान्नेगेवने व्रिगुणिताम्बुदः ।
स्यैरावृत्तिमिन्यूंदैविमिश्रालातचक्रकः ॥
ज्वालासंध्याभ्रनिवहेर्वृहद्गिनदीशतः ।
शैलव्रिगुणभूखण्डदानवामरपस्तनः ॥
भूतैर्विगुणपात्रीघो भ्रान्तैरम्यरकुक्षिषु ।
दग्धादग्धामिरप्यर्थदग्धामिरितरेतरम् ॥
पतन्तीमिः सुरस्रीमिर्विगुणाग्निशिखालवः ।
पतदङ्गारधारीघकणसीकरदन्तुरः ॥

अलातिबंधुतो धुन्वन्पूताङ्गारोग्रमण्डलीः । धूमान्ध्रकारः स्थगयनम्लानमृध्वेदिशोमुखम् ॥ ९ भूमेट्योंम्रो दिख्युखेभ्यः समन्ता-ज्ञवालासंध्यावारिदा निर्गतास्ते । येस्तैर्ज्ञालाशैलसंपिण्डमात्रं सच्योमीकाः संस्थिता सप्तलोकी ॥ १० कापि प्रोत्फालकीर्णानलकणकपिलप्रोहसन्मूर्ध-जालिः कापि प्रोद्गीनकुद्ध्यःकदुरटनपदुर्भससंपिण्डपाण्डः कापि ज्वालापटालीं परिद्धद्मितः संपतन्तीं गृहीतां

रौद्रः कर्तुं प्रवृत्तो हर इय स तदा माहतो नत्यलीलाः॥११॥

इलार्षे श्रीवासि वाल्मी मो विव उ० अ० वि० श० कल्पान्तवर्णनं नामेकचलारिशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १४१ ॥

ब्रिचत्वारिंदाद्धिकदाततमः सर्गः १४२

मुनिरवाच ।
वर्तमाने तदा तस्मिन्कष्ट संम्रान्तसंभ्रमे ।
उद्यमानोऽहमत्यन्तं खेदमभ्यागतोऽमवम् ॥
अचिन्तयं तत्स्वप्रोऽयं परस्य दृदये मम ।
तदतः परिनिर्वामि दुःखं पदयामि किं मुधा ॥
ध्याध उवाच ।
किंस्वित्स्यात्स्वप्त इत्येष किल संदेहशान्तये।

नां नवैः उद्वितीनामुद्रयनानां मण्डलैरहमखिलं नमः अलातच-कवद्भान्तवान् ॥ २ ॥ अमणैराखिन्नात्मा ईषच्छान्तमनाः ॥३॥ तमेव मार्क्तं वर्णयति-सीत्कारेत्यादिना । सीत्कारमप्रिफु-त्कारोपमं ध्वनिधिशेषम् । उद्यमानैः शिलोल्युकरजोभस्मा-दिभिर्जगत्पदार्थैः परायृतो स्याप्तः ॥ ४॥ स्यूढैः प्रवाहितै-राष्ट्रितिभः परिवर्तमानैः सूर्येर्द्वादशादित्यैः सह विमिश्राणि **अञ्जातचकाणि येन ॥ ५ ॥ उवालालक्षणैः संध्याञ्जनिवहैः** प्रवर्तितानि बृह्रन्खिमनदीशतानि येन । शैलेभ्योऽपि द्विगुणानि भूखण्डा लोष्टानि दानवामराणां पत्तनानि च यस्मिन् ॥ ६॥ अम्बर्कुक्षिषु आन्तैर्भृतैर्द्विगुणिताः प्रागुक्तनदीशतपत्रीधा येन ॥ ७ ॥ द्विगुणा अग्निशिखा एव ज्वाला संध्याञ्जजललवा यस्मिन् । पतदशारलक्षणेस्तदीयैजेलधारौषेरिमकणलक्षणसी-करैश्व दन्तुर उन्नतदन्त इव स्थितः ॥ ८॥ पूतानां निरस्त-मस्मनामङ्गाराणामुद्रा मण्डस्यो यासु तथाविधास्तदीया अला-तविद्युतो धुन्वन्कम्पयन् । स्थगयन्नाच्छादयन् ॥ ९ ॥ भूमेः सकाशासया व्योम्रो दिख्युखेभ्यश्च ते वर्णितप्रकारा उवालाल-क्षणाः संध्यावारिदा निर्गताः । यैर्वारिदैन्योमौकोमिर्देनादिभिः सहिता सन्योमीकाः सप्तानां लोकानां समाहारः सप्तलोकी ज्यालाशेलसंपिण्डमात्रं भूला संस्थिता ॥ १० ॥ स प्राग्न-

प्रविष्टो हृद्यं तस्य किं तं निर्णातवानित ॥ ३ किमेतद्भवतां दृष्टं हृद्ये क महार्णवः। जठरे कल्पवातः किं हृदि कल्पानलः कथम्॥ ४ चीः क्षमा वायुराकारं पर्वताः सरितो दिशः। कथं हृदि जगन्नाम कथयेति यथास्थितम्॥ ५

णितश्रण्डमारुतस्तदा हरः कालामिरद्रवन्नुव्यलीलाः कर्तुं प्रवृत्तः । किह्यः सन् । कापि कर्ष्यदेशे प्रोत्फालरुच्छलैनः कीणीनल-कणा एव कपिलाः प्रोत्तरान्त्वो मूर्धजानामालयो यस्म । काप्य-धोमागे पादाषातेनेव प्रोद्वीनानि कुड्यानि येन । कट्ट दुःसर्हं यद्रटनं तत्र पद्धः । सस्मिमः संपिण्डितान्यवगुण्ठितान्यवानि यस्म । कापि मध्यभागे अभितः संपतन्ती ज्वालापटालीमुप-संगृतीतां परिद्धत् वसान इत्येवंविधः सित्रवर्थः । विशेषणान्युभयत्र योज्यानि ॥ ११ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायण-तार्प्ययम्भवो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धं एकच्यारिशद्विक-कास्तमः सर्गः ॥ १४१ ॥

इह स्वप्नादिजगतस्तरवं महोति कीर्र्यते । तस्वरम्या जगदीजकर्माभावश्व साध्यते ॥ १॥

खेदं श्रमप्रयुक्तं दैन्यम् ॥ १ ॥ तत्ततः खेदाद्चिन्तयभ् ।
मुधा दुःखप्रदुःखं कि पदयामि । अतः परित्यज्येतद्दर्शनं जागरणेन निर्वामि निर्वृति समेपेत्यर्थः ॥ २ ॥ खप्रम्य तत्त्वं कि
स्यादिति निर्णयाय परस्तप्रं ब्रष्टुं परकाये प्रविष्टस्त्वं कि निर्णाय
तद्दर्शनानिष्ट्तोऽभूरिति व्याधः प्रच्छति—किंस्तिदिति । तं
स्वप्रं तत्त्वतः कि निर्णातवानिति ॥ ३ ॥ परहृदये दृष्टा महार्णवादयः किम् ॥ ४ ॥ हृदि जगन्नाम कथं संभवतीत्येतस्य

मुनिरुवाच ।

अकारणत्वान्सर्गादावेवानुत्पादतः स्फ्रटात् । अकार्तासर्गदाद्धार्थावेद न स्तो मनागपि॥ तकेती सर्वज्ञस्तार्थी त्यन्नाती परमात्मनि। यतस्तत्पद्मज्ञानज्ञानात्मकमनामयम् ॥ अतः सुभग सिद्धान्ते त्वत्पक्षे वोधमागने । मौर्ख्यशान्तावनाद्यन्ते पदे परमपावने ॥ वन्मीदं मृदसंवित्ती यदिदं तन्न वेदयहम्। वस्त्ववस्त्जमाभातं वोधमात्रसिदं ततम्॥ क शरीरं के हृद्यं के स्वप्नः के जलादि च। क योधो बोधविच्छित्तः क जन्ममरणादि च 30 स्वच्छं चिन्मात्रमस्तीह तन्नाम यदपेक्षया। स्थलमेव खमप्यद्विरणनां निकटे यथा॥ २१ स्वभावात्स चिदाकादाः किचिधतति चिन्तंया। खमेव वपुराकाशं यसहित्ति जगस्या ॥ ६२

यथास्थितं तत्त्वं स्वनिर्णातं कथवेलार्यः ॥ ५ ॥ एवं स्वपर-खप्नादिदर्शनेनान्वयव्यतिरेकास्यां परीक्षितस्य शब्दार्थस्यस्य जगतो बाधदशा त्रेकालिकासलमेव तत्त्वम् । परिशिष्टाधिष्टा-नब्रह्मदशा तु तदेव तत्त्वमित्याशयेन सुनिरुत्तरमाह--अका-रणलादिलादिना । अफारणलादसंभवत्कारणकलात्। तथाहि । कूटस्थं वा कारणं विकारि वा । न तावत्कृटस्थम् । अकुर्वतः कारकत्वायोगेन कार्यसञ्चानईत्वेन । उदासीनव्यावृत्तहगानिहय-णेन स्वभावान्तरासुपजनेन च कारणलासंभवात् । विकारिण-श्वानिर्णातनानांशघटितस्य कोंऽशः कारणं स्यात् । मृत्पिण्डे हि घटादिविकारिणि किमपयन्पिण्डाकारः कारणसुतोपयन् घटाकार उत्तोभयानुगती मृदाद्याकारः । नादाः । स्वत्राणे-**ऽप्यसमर्थस्य** कार्यकालास्थायिनः कार्यार्थव्यापारानाधारस्य च तस्य कारणलसंभावनाऽशोगात् । न द्वितीयः । कार्यस्यान न्यस्यानिरूपणात् । न तृतीयः । तस्याकुवैद्रुपत्ये कीटस्थ्याःकु-र्वद्भपत्वे घटानन्त्यप्रसङ्घारसमध्यः क्षेपायोगेन युगपरसर्व-कार्यप्रसङ्घातिण्डघटकपालचुर्णादियीमपद्मापत्तेः । सहकार्य-न्तरसंबन्धव्यवस्थया व्यवस्थेति चेन मृत्कार्थत्वे तदानीमेवापायमानलादन्यकार्थले नन्नापि सर्व-त्तरकार्ययोगपद्यापादमे संबन्धस्यापि तदा आपादनातृतीय-सहकार्थयुक्ती तत्राप्येतहोपानिर्माक्षाद्विनिगमनाविरहेण युगप-रसर्वीत्पादस्य परस्परप्रतिबन्धेन कस्याप्यनुत्पादस्य वा प्रसद्वात्। तस्मारसर्गादेरकारणपक्षस्येव परिशेषारसर्गशब्दार्थी मनागपि न स्त एवेनि तत्त्वं निर्णातमित्यर्थः ॥ ६ ॥ कथं तर्हि छोके सर्ग-शब्दार्थी प्रसिद्धी तत्राह--तबैताविति । एती सर्गशब्दार्थी परमात्मनि तस्वती ज्ञातावेव प्रसिद्धी । तदज्ञातं परमात्मरूपं होती । नन्वज्ञाती चेदप्रसिद्धावेवेति स्यान तु प्रसिद्धाविति तः

यथा स्वप्न पुरतया चिवेवाभाति केवला। नतु किंचित्प्राद्यं जगिबन्मात्रमेव खे॥ १३ इदं शान्तमनाभातमनन्यक्षेतदारमनि । चिति दशौ तमसि खे चक्रकाटीय भाति ते॥ १४ असाकं तु न चाभानं न चासन्न च सन्न खम्। अनाकारमनाद्यन्तमेकं चिद्योम केवलम्॥ १५ भात्यकारणकं स्वेम शुद्धो द्रप्येच केवलः। तेनात्र कारणामायो न द्रशस्ति न द्रशनम्॥ शृद्धं किमपि तङ्गाति स्वानुभूतमपि स्फूटम्। यदवाच्यमनाद्यन्तमेकं हैतेक्यवर्जितम्॥ एकः कालो यथा कल्पः प्रकाशस्त्रोभयात्मकः । वीज वा फलपुष्पान्तं ब्रह्म सर्वात्मकं तथा॥ यदम्यस्य महत्कुङ्धं तदन्यस्यामलं नभः। दृष्टमेतित्स्थरस्वप्रसंकल्पभ्रमभूमिषु ॥ स्वच्छं तदा तदात्मकं भाति चिन्मात्रखं यथा।

बाह-स्यत इति । भवेदेतदेवं यद्यज्ञानमात्रं जगत्स्यात् । यतस्त तद्ज्ञातमारमपर्दं राज्ञछ्लाद्ज्ञानज्ञानात्मकम् । तत्राज्ञानांशमा-दायाज्ञाती ज्ञानांशमादाय प्रतिद्धी च सुवचावित्यर्थः ॥ ७ ॥ यदि प्रसिद्धाः तर्हि सर्गशब्दार्थावेन न सा इति वर्ध वक्षि तत्रा-ह—अत इति । हे सुभग, खत्यक्षे खद्भिप्रेते खप्नादिजगत्तत्वे बोधमागते सात माहर्यसाज्ञानस्य शान्तौ सला परमिषदान्ते परमपावने पदे स्थिता । इदं सर्गशब्दार्थावेव न सा इति वाक्यं वस्मि । गृहानां संवित्तां यदिदं शब्दार्थसस्यं तदहमत्यन्तासं-भवात्र वेद्योत्युत्तरत्रान्वयः ॥ ८ ॥ ८ ॥ सिद्धान्ते तु शरीरा• दिप्रसिद्धिरेव नासीखाह—केति ॥ १० ॥ कि तद्येखि त-दाह—स्वच्छिमिति ॥ ११ ॥ इंधरस्य तत्त्वविदां च जगहर्शनं कोंदर्श तत्राह्—स्वभावादिति ॥ १२ ॥ १३ ॥ व्याधदशा तार्दि कथं भाति तदाह--चितीति । चिति चिद्रुवायां दशौ चक्कि तमसि अज्ञानस्रक्षणतिमिरशेगे सति से चक्रशादि यथा भासते तदते भातीलर्धः ॥ १४ ॥ स्वदशा लाह्-असाकमिति । असत् प्रातिभासिकं सन् व्यावहारिकं खं शृत्यं केवछं चिथीम भातीत्यमुक्ति ॥ १५ ॥ येन हेतुना अकारणकवद्भाति तत्केव-लक्षिपुरीयन्यः शुद्धो द्रश्चेति खप्ने निर्णीतं तेन कारणेन अन्न जाप्रत्यपि कारणाभावः प्रागुपपादित इति द्रष्टादिविवृदी ना-स्त्येवेद्यर्थः ॥ १६ ॥ स्तेनानुभृतमति कुमारीमुखनद्तार्थं तक्त-मशक्यम् ॥ १७ ॥ द्वेतैक्यवर्जितस्य द्वेतैवयात्मना स्थितिः क दश सत्राह-एक इति । कल्पः प्रत्यः प्रकाशः सर्गश्रेत्यु-भयारमको यथा वा बीजमङ्करकाण्डगृक्षवाखापन्नत्रफलपुःपान्तं स्वयमेवावतिष्ठते तथा बद्धा सर्वात्मकमित्यर्थः ॥ १८ ॥ तर्ष्टि ब्रह्म दुंतैक्यवदेव नतु तद्वितं तत्राह-यदिति । यदि पर-मार्थतो हैतिक्यवतस्यात्ति सर्वान्त्रति तथा स्याम तु तथा सर्वे-र्द्यत इति भावः ॥ १९ ॥ यथा आत्मा चिन्मात्रखमेव सन्

१ निस्तय रति पाठः.

ર્ં

स्बप्ते जागृतिबत्तद्वज्ञाग्रत्स्वप्तेऽपि नान्यथा ॥ अरह्ये पवने यहद्रह्यं सीरमं स्थितम्। चिन्मात्रेऽप्रतिघे तद्वज्ञगद्यतिघं स्थितम्॥ २१ समस्तमननत्यागे योऽसि सोऽसि निरामयः। बहिरन्तरनन्तात्मा सुस्थितोऽपि निरन्तरम् ॥ २२ व्याध उवाच। भगवन्याक्तनं कमं केपामिह हि विद्यते। केषां न विद्यते तद्वद्विनापि भवतः कथम्॥ २३ मुनिष्याच । सर्गादिषु स्वयं भान्ति ब्रह्माचा ये स्वयंभुवः। विश्वतिमात्रदेहास्त न तेषां जन्मकर्मणी॥ 28 तेषामस्ति न संसारो न द्वेतं न च कल्पनाः ! विद्युद्धन्नानदेहास्ते सर्वोत्मानः सदा स्थिताः ₹' सर्गोदी प्राक्तनं कर्म विद्यते नेह कस्यचित्। सर्गादी सर्गरूपेण ब्रह्मेबेत्थं विज्ञम्भते ॥ રદ यथा ब्रह्मादयो भान्ति सर्गादौ ब्रह्मरूपिणः।

भान्ति जीवास्तथान्येऽपि शतशोऽथ सहस्रशः २७

अबोधा ये स्वचिदाख्यं बुद्धा द्वेतिमिटं स्वयम् ॥ २८

किंतु ये ब्रह्मणोऽन्यत्वं बुध्यन्ते सात्विकोद्भवाः ।

तेषामुत्तरकालं तत्कर्मभिर्जन्म दृश्यते । स्ययमय तथा भूतस्तरवस्तुखमाश्रितम् ॥

वैस्तु न ब्रह्मणोऽन्यत्वं बुद्धं वोधमहात्मनि ।

खप्रे जामदिव भाति तथा जामन्मये कार्मऽपि भाति नखणु-मात्रमपि खप्ताचाय यन्यथा भारतित तदेवदानीमपि तस्याद्वय-लमेवेखर्थः ॥ २० ॥ ननु प्रत्यसुपुत्योरस्य जगन्न स्थितमिति कथं सदैकस्वभावोऽयामेलाशक्का नादर्शनमात्रेण जगत्तदा न स्थितमिति निर्णेतुं शक्यमित्याशयेनाह्—अदस्य इति । चक्षु-रदृश्येऽपि पवने तादशं सारमं स्थितमिति यथा घ्राणजानुभवन निर्णायते तथा सुपुप्तप्रलयानुभविपुरुषाहर्यमपि जगस्पुरुषान्त-रदशा स्थितमेत्रेखर्थः ॥ २१ ॥ मनोमनन्यागेन दर्शने त कदापि कापि जगन्नासीदस्ति भविष्यतीति निरन्तरमेवात्मा अद्भयः सुस्थिर इलाह-समस्तेति ॥ २२ ॥ तर्हि प्राक्तनक-र्मानुसारेणैव मनो मनुते नान्यथेति कर्मैव संस्कृतिबन्धवीजं प-र्यवसन्नं तथेषां निःशेषं नष्टं तेषां समस्त्रमननस्यागः सिध्यतीति मन्यमानी व्याधसतकेषामस्ति केषां नास्तीति प्रच्छति--भगव-श्रिति। येषां नास्ति तेषां तत्कर्म विनापि मननतत्त्यागे कथंभवतः ॥२३॥ येपामधिकारप्रापकोपासनाफलान्तर्मावर्णेव सह सिद्धं चतुष्टर्यामति न्यायेनीत्यत्तिकं तत्त्वज्ञानं तेषां कर्म नास्तीति सु-निरुत्तरमाह-सर्गादिष्विति । आदिपदात्सनककपिलादयः। जन्मप्रहणं दग्धपटन्यायेन देहस्थितिप्रदर्शनार्थम् ॥ २४ ॥ आत्मलादेव सर्वात्मानः ॥२५ ॥ कर्मश्चन्यास्ते कथं कर्मवता-मारमान इत्याशक्का तदुशा कर्म कस्यापि नास्तीत्याह-सर्गा-दाविति ॥ २६ ॥ २७ ॥ केषां दशा तर्हिकर्म विद्यते ता- निरवधास्त पतेऽत्र ब्रह्मविष्णहरादयः॥ 30 सर्वातम संविदोऽन्छत्वं ब्रह्मात्मन्येव संस्थितम्। तत्क्राचिजीववद्भानं स्वयमात्मनि पश्यति ॥ 38 यत्र वेत्ति तु जीवत्यं तत्राविधेति तिष्ठति । तत्र संसृतिनाम्नात्मा धत्ते रूपं तथास्थितम् ॥ ३२ स्वयमेव हि कालेन बुद्धा स्वं रूपमात्मनः। स्वयमेव स्वरूपस्थं ब्रह्मेव भवति स्वयम्॥ ३३ यथा द्रवत्वाद्मव्यन्तरेति चावर्ततामिव। ब्रह्म चित्त्वात्तथेतीव सर्गतामस्य सर्गकम्॥ ३४ ब्रह्मभानमयं सर्गा न स्वप्नो न च जागरः। कस्य कान्यत्र कर्माणि की दशानि कियन्ति वा ३५ वस्तुतः कर्म नास्त्येव नाविद्यास्ति न सर्गधीः। स्वसंवेदनतः सर्वमसदेव प्रवर्तते॥ ब्रह्मेच समी भृतात्मा कमी जन्मेति कल्पनाः। स्वयं कुर्वेदिदं भाति विभुत्वात्कर्रिपतार्थभाक् ३७ न संभवति जीवस्य सर्गादी कमे कस्यचित्। पश्चात्स्वकर्म निर्माय भुद्धे कल्पनया स चित् ३८ जलावर्तस्य को देहः कानि कर्माणि चोच्यताम् । यथाम्युमात्रमावर्तो ब्रह्ममात्रं तथा जगत्॥ यथा स्वंत्रपु दशनां न प्राक्कमें नृणां भवेत्। आदिसगेषु जीवानां तथा चिन्मात्रह्मिणाम् ४० समें सर्गतया रुढे भवेत्याक्रमेकल्पना।

नाह-किलिति । ये तु अधोधा अज्ञानावृताः सन्तः स्वस्य ब्रह्मलं न बुध्यन्ते किंतु नाई ब्रह्मति ब्रह्मणोऽन्यरवं बुध्यन्ते अ-सालिकान्त्रेवलसलपरिणामविलक्षणरजस्तभोगिश्रसलपरिणा-मादुद्भवो येषां तथाविधा जीवास्ते अचिदाएया दे द्वैतं सल्यमिति बुद्धा तद्वासनावासिता एव प्रास्त्रतास्तेषां कमः मेः सहितं जन्म उत्तरकालं दश्यत इति परेणान्वयः ॥ २८ ॥ यतस्तः स्वयमेव तथा अनिदेदादारमभूतैः परमार्थवस्तु विस्मृत्य अवस्तुत्वमा-श्रितमिखर्यः ॥२९॥ येस्तु कदापि न बुद्धं ते निरवद्याः कर्म-वन्धरुक्षणावद्यरहिताः ॥ ३०॥ अच्छत्वं खाभाविकमिति शेषः । यतो ब्रह्म आत्मिनि खलभावे एव संस्थितम् । क्कचिन्मालिनोपानो ॥ ३१ ॥ अविद्यापि जीवोपाध्यवच्छेदेनै-वास्ते न शुद्ध इत्याह-यत्रेति ॥ ३२ ॥ खयमेवेति । 'ब्रह्म वा इदमध आसीत्तदातमानमेवाऽवेदहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्त-त्सर्वमभवत्' 'ब्रद्धा वेद ब्रद्धीव भवति' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥ ३३ ॥ अद्यातत्रद्वाणः सर्गतात्रान्तिः स्वभाव एवेत्याह— यधेति । अस्य सर्गकं स्वभाव इति शेषः ॥ ३४ ॥ का अस्य सर्गतेति शेषः ॥ ३५ ॥ प्रवर्ततः प्रथते ॥ ३६ ॥ विभुत्वात्स-र्वशक्तिमत्त्वात्सव्यसंकल्पलात् ॥ ३० ॥ पश्चात् अविद्यान्तः-स्थितिकरूपनोत्तरम् । निर्माय देहादिना निष्पाद्य ॥ ३८ ॥ ब्रह्मभावदर्शने तु न कर्मसंभावनापीत्याह--जलेति ॥ ३९ ॥ आदिसर्गेषु श्रद्धसालिकदेहेषु ॥ ४० ॥ कृतो न तत्राह- पश्चाजीवा भ्रमन्तीमे कर्मपाशवशीकृताः॥ ४१ सर्ग पय न सर्गाऽयं ब्रह्मत्थं किल तिष्टति। यत्र तत्र क कर्माणि कानि वा कस्य तानि वा ४२ अपरिकानमात्रं यत्स्वयं वै परमात्मनः। तरेतत्कर्म बन्धाय तत्तज्ज्ञस्योपशाम्यति॥ ४३ यावद्यावत्परिकानं पण्डितस्य प्रवर्तते। तावत्तावत्तदेवास्य कर्म शाम्यति बन्धनम्॥ ४४

यन्नाम किल नास्त्येव तच्छान्ती का कदर्शना ।
परमार्थादते बन्धः किंचिन्नाम न विद्यते ॥ ४५
तावन्माया भवभयकरी पण्डितत्वं न यावचत्पाण्डित्यं पतिस न पुनर्येन संसारचके ।
यत्नं कुर्याद्विरतमतः पण्डितत्वंऽमलात्मक्रानोदारे भयमितर्था नैव वः शान्तिमेति ४६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा॰ दे॰मो॰ नि॰उ॰ अ॰ वि॰ शवो॰ कर्मनिर्णयो नाम द्विचलारिशद्धिकशततमः सर्गः ॥१४२॥

त्रिचत्वारिंदाद्धिकदाततमः सर्गः १४३

मुनिरुवाच ।
सर्वेषामेव धर्माणां कर्मणां दार्मणामपि ।
पण्डितः पुण्डगिकाणां मार्तण्ड इव मण्डनम् ॥ १
आत्मज्ञानविदो यान्ति यां गति गतिकोविदाः ।
पण्डितास्तत्र शक्तश्रीकरत्तृणळवायते ॥ २
पाताले भूतले स्वर्गे सुखमैश्वर्यमेव वा ।
न तत्पर्यामि यन्नाम पाण्डित्याद्तिरिच्यते ॥ ३
पण्डितस्य यथाभूता वस्तुदृष्टिः प्रसीदृति ।
दृषिवेन्द्रां निरम्भोदे सकलामलमण्डले ॥ ४
इदं दृर्यमविद्यात्म ब्रह्म संप्र्यते क्षणात् ।
वधस्य वोधातस्यवाम सर्पत्वमिव शाम्यति ॥ ५

सर्गे इति । तेषां सर्गतया रूट्यभावादेवेति भावः ॥ ४९॥ ॥ ४२ ॥ तथाच न कर्मप्रयुक्तो वन्धः किलज्ञानप्रयुक्त एवेति तदेव कमेवीजमिति कामं व्यपदिस्यतां नान्यदित्याह -अपरि-शानमात्रमिति ॥ ४३ ॥ अतएव कर्माप्यविद्याखादेव यथा यथा ज्ञानप्रकर्पस्तथातथा अपक्षीयत इत्याह—यावदिति॥४४॥ ननु ज्ञानमात्रारकथं वस्तुनाश इत्याशक्का वस्तुखमेव कर्मणो नास्तीलाह-यनामेति ॥ ४५ ॥ अतएव पाण्डिलार्थमेव यकः कार्यसाद्विना भयाशान्तेरित्युपसंहरति—तावदिति । यावत्पण्डितत्वं नास्ति तावत्कालमेव माया भवभयकरी। 'भेषर्तिभयेषु कृत्रः' इति खशो विषयोऽयं न । प्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्त्विधिप्रतिषेधात । तदेव पाण्डित्यं येन पुनः संसारचके न पतसि । नतु शुध्कतकीदिपाण्डित्यमत्री-पयुज्यत इत्यर्थः । अतः कारणाद्विरतममलज्ञानोदारे पण्डि-तरवे अवणादियकं कुर्यात् । इतरथा उपायान्तरेण वो भयं शान्ति निति । 'स एनमधिदितो न भूनकि' 'उदरमन्तर' कुरते अध तस्य नर्वं भवति' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥ ४६॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतास्पर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्विचरवारिशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १४२ ॥

पाण्डित्यस्य प्रशंसात्र तच्च चिन्मात्रवर्शनम् । चिदेव जगदित्येतद्भूषो युक्तया समध्येते ॥ १ ॥ सर्वेपामेय धर्माणां निर्णये धर्माविरुद्धलैकिककर्मणां निर् यित्स्थतं ब्रह्मणि ब्रह्म इतास्तेनैव सत्यता।
स्वभाषेकात्मिकाः संज्ञा देहसगंक्षयादिकाः॥ ६
सगों विद्यत प्यायं न यत्र किल किंचन।
तस्य धर्माणि कर्माणि न चेंचाक्षरमालिका॥ ७
पृथ्व्यादि संभवति चेत्तत्सकारणमस्तु तत्।
तदेव यत्र नास्त्येव तत्र किं तस्य कारणम्॥ ८
ब्रह्मणः प्रतिभातं यत्तदिदं जगदुच्यते।
तेनव कुत प्तानि पृथ्वादीनि क कारणम्॥ ९
स्वमद्रष्टुर्द्ययनृणामित्त काल्पनिकं यथा।
न वास्तवं पूर्वकामं जाद्यत्वमे तथा नृणाम्॥ १०

र्णये तदुभयफर्ठेहिकामुब्भिकशर्मणां तारतम्यनिर्णये च संदे-हमन्थिभेदनेन श्रोतृणां बुद्धिविकासनः पण्डित एव सभामण्ड-नम् । यथा पुण्डरीकाणां विकासे मार्तण्डो नभोमण्डनं तद्व-दिखर्थः ॥ १ ॥ आमुष्मिकसुखमपि सर्वे पण्डितप्राप्यात्मस-खवारिधौ सीकरादि लघुतरिमलाह-आत्महानेति ॥ २ ॥ पाण्डित्यात्पाण्डित्यफलादानन्दात् । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रागुपजीवन्ति' इति श्रुतेरिति भावः पण्डितस्य सच्छास्रविचारजन्यशानवतः परमार्थवस्तुरूपा दृष्टिः खात्मन्येव प्रसीदति आहादते । सक्छामलमण्डले शरत्यूर्णेन्दी दक् चक्षरिव ॥४॥ युथस्य पण्डितस्य सग्दामनि कल्पितं सर्पल-मिव नेह सर्गादिहर्यजातं बोधाच्छाम्यति ॥५॥ तर्हि देहसर्गादि-शान्तिर्वदास्यभावादन्या उत्पद्यते नेत्याह-यदिति । महा स्वत-रवज्ञानेन ब्रह्मणि खखभावे यत्थितं तस्यैव तेनैव खभावै-कारिमका देहसर्गक्षयादिकाः संज्ञाः कृता इति सखता परमार्थ इलार्थः ॥ ६ ॥ कृत एवमिति चेत्परिशिष्टब्रह्मणो दर्यक्षया-स्यधर्मकर्मशून्यलादिलाह—सर्ग इति । अक्षरमालिका तद्वी-धकपदवाक्यादिसपा च नैव ॥ ७॥ त्रैकालिकासलादेव दृश्यस्य सकारणकलं निरस्तमित्याह-पृथ्वादीति ॥ ८॥ प्रतिमानं प्रतिभासः । नहि प्रातिभासिके घटे दण्डचकादि-कारणापेक्षास्तीति भावः ॥ ९ ॥ पूर्वे कामयते इति पूर्वकामं पित्रादिकारणं काल्पनिकमस्ति न वास्तवं यथा तथा जाप्रद्वपे

यथा प्राक्षमें पुंस्तवे च स्वप्ने पुंसां न विद्यते। इह जाप्रत्स्वप्रमुणां भातानामपि नो तथा॥ ११ जीवः सर्वेषु सर्गेषु स्वप्नार्थान्निखिलान्मिथः। प्राक्रमेसत्वं मिथ्यात्म यथावासनमेषु च ॥ १२ सर्गादावथ देहान्ते भाग्ति स्वप्नार्थवन्मिथः। यथासंवेदनं जीवाः सन्तोऽसन्तश्च तेन ते॥ यथासंवेदनं सर्वे भान्ति भावयतस्ततः। ते सन्त्यात्मन्यपि स्वप्ने जाव्रतीयार्थदा मिथः॥ १४ संकल्पसंविदग्रस्थवस्तुनिष्ठतयाऽस्फ्रटम् । फलं चाप्नोति ते स्वप्ने लोकनिष्ठतयाऽस्फुटः ॥ १५ शुद्धा संवित्स्वभावस्था यत्स्वयं भाति भास्वरा। तस्या भागस्य तस्यास्य जात्रत्स्वप्नाभिधाः कृताः १६ सर्गादावथ देहान्ते भातं यहेदनं यथा। तत्तथाऽमोक्षमेवास्ते तदिदं सर्ग उच्यते॥ १७ जाग्रन्समार्थसार्थस्य संविदश्च न भिन्नता। अस्त्यप्रतिघरूपायाः प्रकाशालोकयोरिव ॥ 86 अध्याष्णययोरिव तथा वातस्पन्दनयोरिव। द्रवाम्मसोरिवाऽवीचि वा शैलानिलयोरिव॥ १९ सर्वमप्रतिघं शान्तं जगजातमसनमयम्। इत्थं सन्मयमेवास्ति नारत्यर्थेन च संयुतम् ॥ २०

स्वप्नेडपीक्षिक्षः ॥ १० ॥ पित्रादिवत्कर्भाष्यवास्तवभेवेत्याह-यथेति । पुंस्त्वे पुरुषादिभावे ॥११॥ मिथः पर्यतीति शेषः । एषु च सर्गेषु यथावासनं विध्याभूतसर्वेव्यवहारे प्राक्षमेसल-मपि यथात्रासनं मिध्यात्मेवेखर्यः॥ १२॥ जीवाः सर्गो भूतभूवनादिसर्गस्तत्प्रमृतिके देहसिज्यन्ते संसारे स्वप्नार्थवदेव यथासंवेदनं सास्यसंवेदनान्यनितकम्य भ्रान्तिः तेन स्वप्नार्था इय संवेदनांशे सन्तो विद्यमाना इतरांशे असन्तश्चेखर्थः॥१३॥ यतो यथाभावनं भाग्ति अतः स्वप्नेऽपि सन्ति । मिथः परस्पन रमर्थदा अर्थिकयासमर्थाः ॥ १४॥ ते तव स्वप्ने यथा विनापि बाह्यार्थं भोजनादिसंकल्पसंविदेव पाकादिसंवित्कमे-णामस्यप्रासादिवसुनिष्ठा यस्यान्तथाविधारवेन तृप्त्यादिफलं प्राप्नोति तथा जामरसंकल्पसंविद्पि । अस्फुटः खप्नः जामदित्ये-तानानेव विशेष इलार्थः॥१५॥हफुटमहफुटं ना यदेन भूला खयं भाति तस्यास्तस्यास्य भानस्य जात्रत्यप्तौ इत्यमिधा लोके कृताः ॥१६॥आमीक्षं मोक्षपर्यन्तं तत्त्रथैवास्ते प्रवाहरूपेणेत्यर्थः॥१७॥ जाप्रत्खप्रयोर्वे अर्थाः प्रसिद्धास्तेषामप्रतिपातस्यायास्तत्संविद-श्वातो न भिन्नतेलर्थः ॥१८॥ आवीचि वीचीनभिव्याप्य स्थि-तयोर्द्रवाम्भसोरिव वा ॥ १९ ॥ अप्रतिघममूर्तचिद्र्पलात्प्रति-घातासहम् । इत्थमधिष्ठानचित्स्वभावत्वप्रकारेण तु न्मयमेवास्ति । नेतिनेतीतिश्रुखा निषिध्यमानलान्नास्त्यर्थेन नमा तदर्थेन वा प्रतियोगिभावेन संयुतं च ॥ २० ॥ ब्रह्म ज-गदात्मना प्रोद्भ्य प्रलयात्मना मृला च दरयानुभवरूपिलाल-दनजुभवरूपं च सार्वातम्यव्यवहारे । परमार्थे त एकमेवाचलं

ब्रह्म प्रोद्धय मृत्वा च दृश्यानुभवकृषि च। चिन्मात्रमजरं शान्तमेकमेवामलं स्थितम्॥ २१ कार्यकारणतार्थानां या यथा हृदि किएता। ब्रह्मणा पुरुषेणेव नगर्यन्तस्तर्थव सा ॥ २२ ब्रह्मणो हृदि सगें। ऽयं हृदि ते स्वप्नपूर्यथा कार्यकारणता तत्र तथास्तेऽभिहिता यथा॥ २३ संविद्धनोद्रे समं कार्यकारणता स्थिता। तथा यथोहिता तेन त्वया वा कल्पनापुरम्॥ २४ चिता संकल्परूपिण्या सर्गे संकल्पपत्तने। त्वयैव स्थापिता संस्था कार्यकारणरूपिणी॥ २५ आकाश एव कचनं यश्वित्ते स्वात्मरूपिणी। नियतं संनिवेशत्वात्तदन्तः सर्ग उच्यते ॥ २६ या संविद्रव्यवस्थास्ते हृदि संकल्पपत्तने। सैपा स्वभावसंसिद्धिः कार्यकारणतार्थजा ॥ २७ प्रथमं यद्यथा भाति चित्त्वमस्ति तथेह तत्। तस्यव नियतिः कालो देशादीत्यभिधा कृता॥ २८ या नामाश्र यथा भाति चेतनाकाशश्च्यता। तया तथा वस्तुतया कार्यकारणताश्रिता॥ चिश्रमत्कारमात्रेऽसिन्सर्गामे भावरूपिणि। पूर्वे भावाः प्रवर्तन्ते पश्चात्सर्गाभिधा विदः॥ ३०

स्थितम् ॥ २१ ॥ नगर्थन्तर्मृत्कुड्यादीनामधीनां पुरुषेणेव गग-नपवनादीनां कार्यकारणता ब्रह्मणा या यथा कल्पिता सा तथै-वास्ते । न नियतिभन्नायेदं शास्त्रं किंत्र तत्सत्यताभेदादिभन्ना-येखर्थः ॥२२ ॥ तत्सखताभक्ते स्वाप्तवस्तुनियतिविधनमात्रमेव पर्यवस्यतीत्याह-महाण इति । अभिहिता स्वाप्नी यथा तथा ॥ २३ ॥ यथा ऊहिता सर्गादौ संक्रिक्ता ॥ २४ ॥ खयापि खकीयसंकल्पपत्तने संच्छानुसारिकार्धकारणरूपिणी व्यवस्था मुखापेति सिद्धवत्कृत्याह—चितेति ॥ २५ ॥ संकल्पनगरत-दन्तर्गतव्यवस्थयोध चिदाकाशमात्रकचनत्वं खानुभवसिद्धम् । अर्थ दर्यमानसर्गोऽपि हिरण्यगर्भसंकल्पजलात्संकल्पसर्गान्त-र्गत एवोच्यते श्रुतिपुराणादी न तद्वहिर्भूत इत्यर्थः ॥२६॥ ते हृदि संकल्पनत्तं या संविद्रवेश्विदादित्यस्य स्वत्रकाशतालक्षणा अवस्था सर्वव आस्ते सेवैव कार्यकारणतार्थजा खभावसंतिद्वेति न ततोऽणुमात्रमप्यन्येत्यर्थः ॥ २० ॥ तदेवोपपादयति--प्रथममिति । 'स भूरिति व्याहरत्स भुवमस्रजत' इत्यादिश्रुतेहिं-रण्यगर्भहार्दिचिति सर्गारम्भे यत्पृथिव्यादिपथा गन्धकाठिन्यादि-प्रकारेण चिर्त्वं भाति स्फुरति तदिदानीमपि तथैवास्ति । त-स्यंव तथा स्थितस्य पृथिव्या गन्धकाठिन्यनियतिरपां द्रवलनि-यतिस्तेजस उष्णप्रकाशनियतिर्वायोः सम्दसीक्ष्म्यनियतिरित्या-दिरूपेण अतीतानागतादिकालरूपेण प्राचीप्रतीच्यादिदेशादिरू-पेण च स्थितस्य तथा तथा अभिधा कृतेत्यर्थः ॥ २८ ॥ एवं गोघटादिष सर्वत्र वोध्यमित्याह-या नामेति । यथा गौः प-यसः कारणं घटस्तद्धारणस्य ॥ २९ ॥ 'यदि मनसा ध्यायति शून्यतास्त्रिजगद्रूपास्तथा चिद्योमनि स्थिताः।
अनन्याः पयने संभिय स्पन्दसत्ता यथा निजाः ३१
व्योम्नि संषिर्यनिविद्ध्यं यथा नीत्रमिति स्थितम्।
चिति चेतननैविद्ध्यं तथा सर्ग उपस्थितम्॥ ३२
अभान एव भातेऽस्मिन्द्रच्छ्रात्सर्गे विसर्गता।
बुध्यने रज्ञुभुजगे रज्जस्यं यथा पुनः॥ ३३
मृतः स स्यप्तवन्सर्वः संपद्यति पृथग्जगत्।
तश्चान्यदिदमन्यश्च नित्याप्रतिघमम्वरम्॥ ३४

परतः सुखदुःखार्थे देहः संपद्यते कथम्।
किमस्य हेतुः के बास्य हेतवः सहकारिणः॥ ३५ कुर्वन्ति धर्माध्रमोश्चेत्तन प्रतिघरूपिणा। तद्स्याप्रतिष्ठं रूपं कुर्वन्तीत्यसमञ्जसम्॥ ३६ सुनिरुवाच।

व्याध उवाच ।

धर्माधर्मी वासना च कर्मात्मा जीव इत्यपि। पर्यायशब्दभारोऽत्र कल्प्यते नतु वास्तवः॥ ३७ चित्त्वात्किन्पितचित्त्वेन स्वयं चित्रभसात्मनि। छतानि नामान्येतानि कश्चिदस्तीति चेतसा॥ ३८

तद्वाचा वदिति' इति श्रुतेर्मनिक प्रथमं रूपकल्पना पश्चान्नाम-करुपनेत्याह — चिच्चमरकारेति । साबो भावना संकल्पस्तद्रपिणि ॥३०॥ यत्र या कल्पना सा शुन्यापि तनमात्ररूपेति दशन्तेन दशयति - श्रन्यता इति । यथा पवनस्य सम्दसता तद्यतिरि-कासक्षिश्रान्या तदनन्या तथा चिद्योमनि त्रिजगद्रुपाः श्रून्यता अपील्यर्थः ॥३१॥ तथाच विद्वनतेव आन्तदशां जगदात्मना रफुरतीत्वाह—स्रोन्नाति । सीषिर्यनेत्रिज्यभिति । धूमधूल्या-दिव्याप्ते नभांस नेस्यादर्शनादिति भावः ॥ ३२ ॥ कदा प्रन-र्बद्राणि विसर्गता सुध्यते तदाह—आभात इति । सर्गे आभाते त्रिविधपरिच्छेदशुन्यविन्मात्रस्वभावती भाते सतीत्वर्थः । कृ-च्छारसाधनाभ्यासक्केशात् ॥३३॥ ऐहरूीकिक इव पारलीकिकः सर्गोऽप्यंतादगेवेखाह—मृत इति । तच तदन्यत्तदुत्तरपारही-किकं च इदं च एनदन्यदेहिकं च सर्वमप्रतिधनममूर्तं चिदम्ब-रमेव ॥ ३४ ॥ एतदेहपातात्परतः अन्यो दहः कथं संपद्यते। हेतुरुपादानम् । हेतवो निमित्तानि ॥३५॥ ये धर्माधर्मा एव खभोगार्थ सर्व कुर्वन्तीति मन्यते तेषां कर्मनिर्मितस्य ज्ञाने-न निरुत्तदर्शनादिनमेक्षित्रसङ्गः इत्याहः — कुर्वन्तीति । प्रतिधरू-पिणा तेन देहादिभावेन स्थितस्यास्याप्रतिषं नित्यं तन्मोक्षाह्यं रूपं कर्माणि कुर्वन्तीखसमजसम्। कृतकस्यानिख्वावर्जनादिति भावः ॥३६॥ विहितनिषिद्धाचरणे संस्काररूपेण स्थिते धर्मा-धर्मावित्युच्येते तादशसंस्कारपुज्ञात्मकमेव मनस्तदेव चिदा-भासत्र्याप्तं जीवः सच प्राणादिचेष्टाप्रधानत्वात्कर्मात्मा स एव खवासनानुसारिदेहादिसंकल्पयंसादारमा संपद्यत इवेति चित एवैते सर्वे प्रतिभासविशेषास्तत्र कार्म यथेच्छं कल्ययन्तुं फलतो न मेद इलाशयेन द्वितीयप्रश्नस प्रथमं मुनिहत्त्ताह-धर्मा- संविदातमा स्वयं चित्रवाहेहं वेक्ति खमेव खे। मृत्वा सन्तं सन्तमिव संकल्पस्यप्रयोरिव ॥ 39 स्वयं स्वप्न इवाभाति मृतस्य परलोकधीः। तमेव पश्यति चिरं न तत्राप्यस्ति सत्यता ॥ मृतं निर्माति चेदन्यः कथं वास्य स्मृतिर्भवेत्। कथं वा स्यात्स प्रवासी चेतनत्वं तमेव खम् ४१ मृतो न जायते तस्माचेतसैव स केवलम्। इहायमित्थमित्येघ वेत्ति खे बासनात्मकम्॥ ઇર स्वमेव भावमभ्यस्तमास्ते सोऽनुभवश्चिरम् । स्फ्रटप्रत्ययवांस्त्वत्र सत्यमित्येव वेस्यलम् ॥ ઇરે खात्मा खमेव तत्रव स्वप्नामं दर्यमाहरन्। पुनः स्वमरणं वेत्ति पुनर्जन्म पुनर्जगत्॥ 88 अलीकजालमेवं खे पश्यन्त्रत्येकमास्थितः। पदयत्याचारयत्यत्ति किंचित्कश्चित्र कस्यचित् ४५ इत्येवं जगतां सन्ति कोटीनां कोटिकोटयः। परिज्ञातास्तु ता ब्रह्म केवलं दश्यमन्यथा ॥ કદ ताभिनं कस्यचित्किचिदावृतं न च सन्ति ताः। तासां च बेस्ति प्रत्येकमिदमेव जगस्विति॥

धर्मावित्यादिना । शब्दभारः शब्दग्रशिः । वास्तवोऽर्थभेदस्तु कश्चित्र्रगदेहादिप्रप्रमाऽसीति न सर्सात्यर्थः ॥ ३७ ॥ चेत्रसा कल्पितेन चित्त्वेन चिदाभासरूपेण चित्रभःखरूपे आत्मनि खर्य स्वेनेच एतानि धर्माधर्मादीनि तत्फळसुखदु:-खादीनि च नामानि कृतानि । 'सर्वाणि ह्याणि चिचित्य धीरो नामानि ऋलाऽभिवदन्यदास्ते' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥३८॥ प्रथमप्रश्नं रामाधत्ते—संविदारमेति ॥ ३९ ॥ मरणोत्तरकालं देहादिकत्पनमपि स्वप्नवदेवेत्याह—स्वयमिति ॥ ४० ॥ पित्रादिरीश्वरो वा मृतं पुनर्निर्मातीति अमं वारयति-मृत-मिति । अन्यश्रेत्रिमीति तदा स एवासी कथं स्यात् । 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राधिशत्' इति निर्मातुरेव प्रवंशश्रवणात् । तस्य च खारमलात् । इष्टावत्तावस्य सान्यवानादिप्रवृत्यनुकुला स्मृतिः कथं वा भवेत् । तमेव पूर्वसिद्धमारमानमाधित्य जातस्य चेत-नलं यन्निहर्द तदपि सं शुन्यमेव स्यादित्यर्थः ॥ ४९ ॥ प्रथमप्रक्षोत्तरमुक्तमनुबद्वुवसंहरति-एताबिति । न जायते जन्म न लभते कित चेतसैव केवलग्रिहायमिर्थं जातोऽस्मीति मृषेव खं जन्मादिविकियाशन्ये आत्माने कल्पनया वैति॥४२॥ तस्येव भावस्याभासारस्फुटप्रखयतया जन्मादिव्यवहारी लोक-वंदर्थाने वस्तुत इत्याह—स्वमंवेति ॥ ४३ ॥ आहरत्रध्यस्यन् ॥ ४४ ॥ प्रत्येकं व्यष्टिभावसास्थितः सन् पश्यति खसंनिधि-मात्रेण खाध्यस्तकार्यकारणानि विषयेष्याचारयति प्रवर्तयति । जात्ररस्वप्रयोः सुबुभित्रस्यमोक्षेष्वति च । परमार्थतस्तु न किंचितकस्यचिददनीयं नापि कश्चिदत्तीलर्थः ॥ ४५ ॥ अन्यथा अपरिज्ञातास्त्र केवछं हद्यमेव 'स एनमविदितो न भुनकी'ति श्रुतेरिति भावः ॥ ४६ ॥ ताभिर्जगत्कोटिकोटिभिः । 🎋

भूतानि तासां प्रत्येकं तथैवान्योन्यमास्थिते। सत्यान्येवासत्यदृष्ट्या सत्यदृष्ट्या त्वजं पदम् ॥४८ सद्बिदिनवेदास्य तद्रश्रसासद्श्रयम्। असदात्संप्रबुद्धस्य तत्सदशस्य सुस्फुटम् ॥ 86 चितेर्यश्रयथा भानं तत्तत्सस्यं यथा यतः। सद्रपाणि समग्राणि भूतानीमान्यतो मिथः॥ नित्यमन्योन्यसत्यानि तानि तान्येव वाष्यतः। किल संविविनिर्णेयं रूपमप्रतिधं यतः॥ 48 संविन्मात्रविनिर्णयं कान्यता नान्यता कथा। यथासंवेदनं भाते वस्त्वांचे क व्रितेकते॥ ५२ तद्वेद्भिदं ब्रोस्तदेवेदं भवत्यलम्। तदेवैतसदेवेति भवेज्ञतरसत्यतः॥ 6.3 तबेदर्थस्ततो ब्रप्तेर्नायं तस्याः प्रथक् स्थितः। स्थिते ब्रप्ट्यात्मनि त्वर्थे त्वब्रप्टयायं ततो वजेत् ५४ इति यदेव तज्ज्ञेयं ज्ञेयस्यासंभवत्युथक् । यथा ज्ञानमतो ज्ञेयं तनोत्यात्मानमात्मना ॥ पदयन्तोऽपि मिलन्तोऽपि पृथक्सर्गा न किंचन। सत पवासतो इस्य मूर्ल्झातांस्तु वेद्मि नो ॥ ५६ एकं प्रवोधतः सर्वे चिन्मात्रं तावदात्मखम्।

लयमात्मा तासां मध्ये प्रत्येकमेकैको जीव एकं जगदिदमेव जगन्नान्यदिति बेलि ॥ ४७ ॥ तानां जगत्रबोटीनां प्रथिव्या-दिपश्चभूतानि चतुर्विधभृतश्रामाश्च प्रत्येकमास्थिते तत्तजीवा-भिमते जगति तथैव न विसहशानीत्यर्थः । तानि चाऽसलया व्यवहारहष्ट्या सत्यानि । सत्यया परमार्थहष्ट्या त्वनं ब्रह्मपद-गेवेलार्थः ॥ ४८ ॥ अतएव ज्ञाज्ञयोः सलासत्ये परसार-विवरीते इल्याह—सद्यदिति ॥४९॥ अथवा परमार्थसः यचिति भानस्पलात्सर्वं सत्यमेवेश्यवैपरी श्रभेवेत्याह—चितेरिति॥५० अथवा यंत्रति यदा यज्ञगद्धाति तंत्रति तदा तत्सखामिति व्यव-स्थितं सद्यत्नमिखाह्—निलामिति । यतो जगद्र्यं सत्यमसत्य-मिति वा सल्यम्बिदैव विनिर्णेयं सा चेद्धगवती संवित्सत्यमेवेति निर्णयति कस्तद्वैपरीत्यं तदन्यः साधयेदिति भावः । अप्रतिषं केनापि प्रतिहन्तुमशक्यम् ॥ ५१ ॥ अन्यतानान्यते अत-यालतथारवे तयोः कथा का । अयं न्यायो बखुनेदानेद-द्वित्वैकलादी योज्य इलाह—यथासंवेदनमिति ॥ ५२ ॥ अस्तवेवं किं ततो भवति तत्राह--तदेवेति । इदं होयं तत् शानमेविति शानशेयाभेदश्रभेवशादिदं दश्यजातं तज्ज्ञानभेव भवति । तावतैय सर्वदश्यप्रासाधिदद्वैतं सिद्धमिति भावः । नतु हानापळापेनेत्यं होयमात्रपरिशेष एव किं न स्यालत्राह—तदे-बैतदिति । तज्ज्ञानमेतज्ज्ञेयमेत्र । तथाव तद्वद्यमेव परिचिष्ट-मित्येतत्तु इप्तेरसव्यक्षाद्भवेतसंमान्येत । तथासति निईप्तिका श्रेयिधिदिरेव न स्यादिति भावः ॥ ५३ ॥ अतः परिशेषाज्ज्ञा-नमेवार्थश्रेदयं प्रवश्वस्तस्या क्षतेः पृथक् न स्थितः । एवं सर्व-सिमर्थे इत्यात्मनि स्थिते सति अयं द्रष्टा अइत्या तदहा- तदेवानेकसंवित्या सहस्रं चिज्जडात्मनाम ॥ 60 एकं तथा च चिन्मात्रं स्वंत लक्षात्म तिष्ठति। पुनर्रक्षातम् तत्स्वप्रादेकमास्ते सुप्रमके ॥ 46 चिद्योम्नि स्वप्तसंवित्तियी सेव जगदुच्यते। सुपृष्ठं प्रलयः प्रोक्तस्तसाइयायोऽयमेव सन् ॥ ५९ एकैय संविद्यानात्वं नृत्यक्षत्वं च गच्छति । श्रन्यत्वं च तथार्थत्वं स्वप्तसंकल्पयोरिच ॥ ξo इदमप्रतिघं सर्वं किल वेदनमात्रकम् । शुद्धं तह्रद्यथा यत्र भाति तत्र तथा भवेत्॥ ६१ एकेव संवित्सर्गादी भवत्यस्यम्बुखादिकम्। पृथ्वादि नावत्सर्गार्थं स्वप्तसंकल्पयोरिव ॥ ६२ संविदाकाशरूपैव भाति पृथ्यादिनामिका। यत्तदेव खमेबेदं जगदित्यंव भासते॥ ६३ संवित्सप्रतिषं भाति भाति चाप्रतिषं तथा । न यस्तुतस्तु प्रतिघा संवित्सान्ते निवर्तते ॥ यासि पूर्वी पश्चिमां च दिशं वेत्सि चिरं विदन्। प्रतिघं नाम ते नास्ति नच सप्रतिघा कचिन् ॥ ६५ दृष्टं संकृतिपतं चार्थ सहाभ्यस्पति यश्चिरम् । सोऽवश्यं तदवाशोति न चेन्छान्तो निवर्तते ॥ ६६

नेनेव ततो इक्षिस्वभावाद्वजेत्त्रस्यचेत न बस्तुत इत्यर्थः॥५४॥ तथा चाज्ञानज्ञानमेव ज्ञेयजगदारमतामारमनेव तनोतीति पाल-तमित्याह - ज्ञानमिति ॥ ५५ ॥ तथाच पृथगसतो हत्यात्मना सत एव सगीन्परयती अध्य तत्त्वविदः परयन्ती ग्रज्जन्तथ-क्षरादियमाँसैभिलन्तो रूपादिसर्गा अपि इप्तिव्यविरिक्ता न किचनेति तत्त्वम् । मूर्लक्षातांस्तु सर्गानदं नो विदि ॥ ५६ ॥ चिजाडातमनामज्ञजीवानाम् ॥ ५७ ॥ एकस्यव चिदातमनः खप्ने ठक्षकोट्यातमत्वं सुप्रप्राविकातमत्वं च प्रशिद्धमित्याह — एकमिति ॥ ५८ ॥ स्वप्नसुपुर्योहको च्यायः सर्गप्रक्रययोर्**पि** समानस्त्रशेस्तदभेदादिखाइ—श्रियोष्ट्रीति ॥५९ ॥ भीरयातमः ना नानारवं भोकात्मना नृलक्षरवं च ॥ ६० ॥ ६९ ॥ सर्गार्थं सुर्गसिद्धार्थ १५व्यादि ताबद्धवति । वत्करणमविकारिताद्योत-नार्थम् ॥ ६२ ॥ तदेव स्पष्टमाह् — संविदिति ॥ ६३ ॥ सप्र-तिषं नश्वरं मूर्तमिव, अप्रतिषं निलाममूर्तमिव च । वस्तुतस्तु प्रतिघा नाश एव नास्ति। यतः सा प्रतिघाष्यस्ते निवर्तते निवृत्ता च संबिदेव परिशिष्यते ॥ ६४ ॥ अप्रतिपत्रमेव संविदः समर्थयति । यासीति । लं मनसा पूर्वा पश्चिमां च दिशं चिरं यासि तत्र तत्र च दृष्टश्रुतानुमितादीनथान्विदन्सं वेस्ति । तत्र संविद्वास्य ते प्रतियं नाम नास्त्येवाऽतः क्विवद्यि संविद्धप्रतिधा नेति सिद्धमित्यर्थः ॥ ६५ ॥ ननु जीविष्टतंकत्यानां बहुनां मोधता दश्यते सैव तस्याः प्रतिघत इति राप्रतिघलमिति चेत्रत्राह —हप्रमिति । हप्रं प्रमाणसिदं संकल्पितमर्थ यः पुरुषः सह नेरन्तर्येण चिरमभ्यमति सोऽवस्यं तदवाप्रोति । तथाच संकल्पसादाद्यीवेव मोघता । नद्यद्यः कार्याक्षम इत्येतावता

यासि पूर्वा पश्चिमां च दिशं वेति चिरं विदन्। य आस्ते यात्यसी तत्तामन्यस्त्यक्त्वा तु नेतराम् ६७ दृष्टः संकल्पितश्चार्थः स्यामित्यचलसंविदः। ह्रयं भवेद्वयं नद्यत्यन्यस्याचलसंविदः॥ 53 दक्षिणादुत्तरां वाशां यामीत्यचलसंविदः। द्वयं भवेद्वयं नद्यत्यन्यस्याचलसंविदः॥ हर खे पुरं स्यां भुवि मृगः स्यामित्यचलसंविदः। द्वयं भन्नेद्वयं नदयत्यन्यत्त्वतु तज्जगत्॥ 90 एकं प्रयोधतः सर्व चिन्मात्रं तावदात्मखम् । तदेवानेकसंवित्या सहस्रं चिज्जडात्मनाम्॥ 50 शरीरमस्त्वप्रतिघमध सप्रतिघं च घा। स्वप्नात्मकोऽयं संसारो जीवस्येह परत्र च ॥ ७२ ! पतन्म्लेच्छादिदेशेषु मृतानां दर्शनात्पुनः। स्मृतिपूर्वे च कथनात्प्रत्यक्षमनुभूयते ॥ ५३ ये मृता भससाजाता म्लेच्छदेशेषु ते पुनः। आगत्य कथयित्वार्थे गच्छन्त्यप्रतिघात्मकाः॥ ७४

चितः सप्रतिघलम् । सर्वत्र तत्प्रसङ्गादिति भावः ॥ ६६ ॥ अथवा अटढः संकल्प अटढमेव मानोरियकं दिगन्तरगमनं तत्रत्यपदार्थदर्शनादि करोति । दहस्तु दहमिति न तस्यापि मोघलमिलाशयेनाइ-यासीति । त्वं मनसा पूर्वा पश्चिमां च दिशं यासि । तत्र तांस्तान्पदार्थाधिरं विदन् यः संकल्पयिता आस्ते स तत्तां स्वसंकल्पितदिगन्तगमनतत्रत्यपदार्थाचातमतां खसंकल्पानुसारेण याति । यतः अन्यः पुरुपसु संकल्पं खन्ता इतरां दिशं मनसापि न याति । अनेनेव विशेषेण तत्र चिद-प्रतिषेखर्थः ॥ ६७ ॥ ऐन्दवादेः संकल्पितार्थोऽहं स्यामिति संकल्पादचलसंविदो द्वयं प्रथमं प्रातिभासिकः संकल्पदार्ध्य ब्यावहारिकश्चेति द्वयं भवेदित्ययमर्थी दृष्टः । अन्यस्यासंकल्पः थितः प्रवान्तरस्य स्वारमनि विषयान्तरे वा अचलसंविदोऽपि तद्भयमपि नश्यति न दश्यत इत्यर्थः ॥६८॥ एवं दक्षिणादेशादु-त्तरामन्यां वा आशां यागील चलसंविदो मानसं शारीरं चेति द्वयं भवेत्। पूर्वपश्चिमगमनद्वयं च नदयति॥६९॥७०॥तत्त्वप्रबो-धतः सर्वमेक्रमेव चिन्मात्रं तदेवाप्रबोधतोऽनेकसंविच्या सहस्र निजाडात्मनां जीवानां भवतीत्वर्थः ॥७१॥ नतु चिदेव चेच्छरी-रावाकारेणास्ते तर्हि तस्य सप्रतिघलाचितोऽपि सप्रतिघता प्रसक्ता तत्राह—शरीरमिति । चिद्रपेण शरीरमप्रतिघमेवास्त अथवा अन्यरूपेण सप्रतिषं वास्तु नैतावता कश्चिद्दोषो मिथ्या-र्यगतज्ञणदोषेर्घिष्ठानाद्षणादिति भावः ॥ ७२ ॥ शरीरनाशे तेन सह जीवो न नष्ट इत्येतत्कथं इत्यत इति चेतप्रसक्षाच्छ-दाबेत्याह-एतदिति । म्लेन्छादिदेशेषु मृतानां पिशाव-देहेनेद्वागतानां भूतविधाक्षेः प्रस्यक्षं दर्शनात्पूर्वतनस्वीयगृह-व्यापारादीनां तैः स्मृतिपूर्वकं दृथनाच जीनवित्सत्वं प्रत्यक्षमञ्ज-

एव चेजीवतो धर्मस्तदेशान्तरगे जने। मृत इत्येव बुद्धेऽथें कसान्नेय प्रवर्तते ॥ 99 जीवधर्मः सोऽपि संश्चेन्मतधर्मोऽपि किं न सन्। यादगनुभवस्त्वसिन्समे न्यायद्वये स्थिते॥ स्वप्नवज्ञगदाभानभित्येवं सत्यखण्डितम्। आर्यानुभवशास्त्राणामनेनास्त्येकवाक्यता ॥ 60 द्रष्टिजालं जनौघानां पद्यतामिन्द्रमन्दिरे। यारगप्रतिघं तारुग्जगत्सद्सदात्मकम्॥ 96 सन्मात्रमात्रानुत्रिधमच्छानुभवमात्रकम्। चिन्मात्रं भानमात्रात्म सर्वार्थात्मार्थवर्जितम् ७९ सर्वमप्रतिघं शान्तं जगदेकं चिदम्बरे। अनिङ्गनमनाभासमात्मन्येवात्मनास्यताम् ॥ अचला संविदेवास्ते स्थिरं ऋत्वा यथा यथा। तथा तथा भवत्याशु किमसर्तिक च वापि सत् ८१ शरीराण्यथ कर्माणि दःखानि च सुखानि च। यथा स्थितान्युपायान्तुं यान्तु वा कस्य किं प्रदः८२

भूयते ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ जीवतो भूतवैद्यादेरेवैष पिशाचदर्श-नसंभाषणादित्रमा धर्मों न मृतस्यागमनं संभाषणं वेति चार्वा-ककल्पनां प्रत्याचष्टे-एष इति । वस्त्तोऽमृते मृत इति भ्रान्त्या बुद्धेऽर्थेऽपि एवं दर्शनसंभाषणादिन्यवहारः कस्मान्न प्रवर्तते ॥ ७५ ॥ किंच जीयधर्मः सोऽपि भ्रमः संक्षेरगृतस्य संभाषणादिः किं न । सन् अर्थसिद्धायनुभवशरणानामस्मि-न्त्रीवति यादगनुभवः स मृतेऽपि समः। एवं न्यायद्वये समे सति को विशेष इलार्थः ॥ ७६ ॥ एवमनुभवस्यार्थसाधकत्वे जात्रत्सप्रातुमवयो(पि यावद्वाधं तुल्यमर्थमाधकत्वं प्रबोधना-नुभवमात्रपरिशेषश्चेति स्वप्नवंदेव जगदाभानमिति यहप्रतिज्ञातमे-तदखण्डितं दृढीभूतम् । अनेन च विद्वदन्भवानाम् । तस्य त्रय आवसथास्त्रयः खप्ताः' 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिशा**क्षा**णां चाननैकवाक्यता पर-सरसंवादेनैकार्थनिष्ठता अस्ति । उपपन्नेति यावत् ॥ ७७ ॥ इन्दुमन्दिरे चन्द्रविम्बे पश्यतां जनौधानो दृष्टिजालं यादग-प्रतिषं परपरत्प्रतिघातशून्यं सदसदात्मकं कस्यचित्सत्कस्य चिदसदिखेवमात्मकं जगद्वि ताहगप्रतिघमित्यर्थः ॥ ७८ ॥ प्राह्मं सर्वे सत्वेन पृष्ठामाणं सन्मात्रस्येव मात्राः अंशमेदानतु-विधते । प्राहकं च अच्छानुभवमात्रकम् । नच सन्मात्रमाभा-समानं सिष्यतीति तत्सदेव । तदेव चार्थवर्जितमपि सर्वार्था-त्मकं स्फ़रतीति सर्वमप्रतिघं शान्तं चेखर्थः ॥ ७९ ॥ उक्तम-र्थमनुभाविशतुमुपायमुपदिशति—अनिञ्जनमिति ॥ ८० ॥ यथायथा मनः स्थिरं कृत्वा आस्ते तथातथा आशु भवतीति पैरेणान्वयः ॥ ८२ ॥ कस्य किंविषयो प्रह उपादानम् ॥८२॥

१ परेणेल्यियकं वा पूर्वत्रैकमर्थ पतितमिति वा मन्तस्यम्.

इत्यमस्तु सद्धान्यथास्तु वा भैव भूज्जवतु कोऽत्र संस्रमः।

मुश्च फल्गुनि फले फलावहं बुद्धघानसि इतं परिश्रमः॥

८३

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰दे॰ मो॰नि॰उ॰ अ॰वि॰ निर्वाणबोधोपदेशो नाम त्रिचलारिशदधिकशततमः सर्गः॥१४३॥

चतुश्चत्वारिंशद्धिकशततमः सर्गः १४४

मुनिष्वाच ।
सर्वधाभावभावेषु स्वप्तसंवेदनात्मसु ।
नित्याप्रतिघरूपेषु किं बढ़ं किं विमुच्यते ॥ १ के दृष्टिभासां स्फुरणं याद्दशं ताद्दशं जगत् ।
विपर्यस्यस्यविरतमबोधाह्नक्ष्यते स्थिरम् ॥ २ यद्यथा पुरसंस्थानं चिरैरेति तदन्यताम् ।
जगद्रप्येयमनिशं घार्यावर्तिघवर्तवत् ॥ ३ भूम्पॅम्बम्बरशैलादि भवत्यसदिदं क्षणात् ।
तिसन्नेत्र क्षणोदन्तेर्युगकल्पाभिधाः कृताः ॥ ४ जगत्स्वप्त इवाशेषमसद्य्यनुभूयते ।
यद्रास्ति चेत्रस्थःशेषं चिदेवेत्थं कचत्यलम् ॥ ५ यथेदं नो जगत्तद्वस्थतानां स्व शतानि हि ।
नृणां पद्यन्तु तेषां तु नान्योन्यमनुभूतयः ॥ ६ सरोव्धिकूपभेकानां दृष्टाः प्रत्येकमास्पदे ।
न तेऽस्थोन्यं विदन्त्यन्यां दृश्यादिनियर्ति कचित् ७

फळावहमनस्यफलदं यत्रं मुख ॥ ८३ ॥ इति श्रीवासिष्टम-हारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुश्चन्ता-रिशद्धिकशसतमः सर्गः॥ १४४ ॥

> विदेव जगदाभाति जगदेव च चिद्यथा। युक्तयोऽत्र तथा बद्धा सर्वशक्ति समध्येते ॥ १॥

दृश्यसः चिन्मात्रत्वे बन्धमोक्षत्रिन्ताप्यपगतवेत्याह् —सर्व-थेति ॥ १ ॥ दृष्टिभासां दक्षिरणानां खे यादशं संपतद्वटरक-मुक्ताकेशोंड्कायात्मना स्फुरणं तादशं जगद्विरतं परिणाभेन विपर्यस्यति अधिष्ठानविवेकाबोधात्तत्स्थैयैण स्थिरं लक्ष्यते ॥२॥ विपर्यासमेनानुभानयति-यदिति । यत् प्रसिद्धं पुरसंस्थानं यथा चिरेरन्यतां संस्थानान्तरताम् ॥ ३ ॥ यस्मित्रेव काले भवति तस्मिन्नेच क्षणलवत्रुट्यायन्यवीदन्तैर्युगकल्यायभिधा विद्विद्वः कृताः ॥ ४ ॥ यज्ञगन्नास्तीलपलप्यते चेदशेषं चिदेव कचित ॥ ५ ॥ नः अस्माकं प्रसिद्धमिदं जगधदाधास्ति तद्वत्खे जगतां शतानां शतान्ययुतानि अन्येषां नृणां सन्तीति परयन्तु संभावयन्तु । तेषां प्रत्यक्षमंन्योन्यमनुभूतयस्तु न । अयोग्य-लादिल्यर्थः ॥ ६ ॥ सरभादिशब्दंस्तद्भता जन्तवो गृह्यन्ते । अन्यां खखासदातिरिकाम् ॥ ७ ॥ एकेनानुभूयमानलाद-सन्ति नो । अन्यैरननुभूयमानलात्सन्ति नो ॥ ८ ॥ तदेव स्फुटमाइ--कचन्तीति ॥९॥ खात्मनः अङ्गमवयवभूतिमव । एकस सक्त्यमेवापरस्य नीक्त्यम् । एकस्याप्येकदा सक्त्यमेवाः

यथा जनशतस्त्रप्तनगराण्येकमन्दिरे । तथा जगन्ति खेमान्ति खानि नो सन्त्यसन्ति नो ८ कचन्ति नृशतस्वाप्तपुराण्येकगृहे यथा। नच नाम कचन्त्यंचं सन्त्यसन्ति जगन्ति हो ॥ ९ चिश्रमत्कारमात्रं स्वं स्वात्माङ्गं दृश्यमद्वयम्। सरूपमेव नीरूपं सकारणमकारणम्॥ दघत्याश्चित्स्वभावायाः संस्काराद्यमिधाः कृताः। प्रतिमायाः प्रभाविन्या न संस्कारादयः पृथक ११ अपूर्वत्वात्स्मृतिः स्वप्नः संकल्पार्थानुभृतिषु । स्वमृत्यनुभवाद्यास्तु द्रष्टार्थेसद्शीषु च ॥ 55 इदं सर्गातम सर्गादी प्रतिमेव विजम्भते। चिद्धामात्रात्मिका स्वच्छा नान्यन्नामोपपद्यते १३ ब्रह्मेव भाति जगदित्युक्तमुक्तयानया भवेत्। नच भातं नवं तच ब्रह्मवेदमतः स्थितम् ॥ १४ कारणं कार्यमित्युक्तः स पूर्वः स विद्याष्यते । संस्कार इति तेनैष संस्कारः कृतिरुच्यते ॥ ₹ ₹

न्यदा नीरूपम् । तत्त्वदशा तु सर्वदेव नीरूपनित्यर्थः । एवं सकारणमध्यकारणम् ॥ १० ॥ तत्रिते जीवानां जगत्संस्काराः कि देहे सन्ति उत चिति । यदि चिति तर्हि संवेषां हश्याः स्यः । यदि देहे तर्हि देहापनमे डिच्छ्येरवित्यशास्त्राह — दघत्या इति । न केवलचितो नापि देहप्रतिमायाः किंतु तत्त-दृश्याकारपरिणामं दघत्याश्चिदासासन्यात्या चिरखमावाया बुद्धेरेव संस्कारायभिधाः कृताः । प्रभावन्या बुद्धिप्रभावेणैव प्रभाववत्याः ॥ ११ ॥ यदि जगत्संस्कारधारिण्या बुद्धेरेव परिणामी जगत्तर्हि संकल्पार्थासुन्तिषु स्यतिलमेव स्यात-त्राह—अपूर्वेलादिति । पूर्वेदष्टार्थसद्शीष्यपि संकल्पार्थानुभू-तिषु स्मृतिरेव अपूर्वखात्पूर्वानुभूततत्तांशप्रमोगात्खप्नो भवति । तत्र समृत्यनुभवायासु इह जन्मन्यननुभूता अपि जन्मा-न्तरे अनुभूता एवेति। तत्संस्कारवत्येवाध्यस्यन्ते इति विशेष इलर्थः ॥ १२ ॥ इदं जाप्रत्सर्गातम जगदपि स्त्रप्रप्रतिमेव सर्गादी विज्ञम्भते ॥ १३ ॥ सर्वथा भावाभावेष्यिखाद्यक्ति-मज्ञीमेदानां पर्यवसितं तात्पर्यं पिण्डीकृत्याह—मद्मैवेति । तच नवं भातं न प्राग्भातमिति न किलनादिमारूपं तदैक्यापन्ने चेर्द जगदनादि महीवेति तात्पर्ये स्थितं पर्यवसन्नमिखर्थः॥१४॥ स परमारमैव कारणं कार्यभिति चोक्तः । यतः स एव पूर्वः पूर्वं च कारणं सामान्यरूपम् । रा एव विशिष्यते विशेषरूपं च कार्यम् । कार्यसंस्काराधारो हि बीजं कारणं सम्यक्सरोति कार्य-

तत्स्वप्रादाचपूर्वोऽर्थो इष्टान्त इति भाति यः। स संस्कारादिनामोक्तो न बाह्योऽथींस्ति चेतसि१६ वस्त रहं न रहं च सबास्त चेतनेव खे। स्बभावाद्भाति सात्मापि रष्टवयातिज्ञम्भते ॥ १७ वेदान्ताधीतमकं पूर्वसर्गाभावं प्रवर्तते । ततो वेद्यव्यवस्था है: कियते स्वार्थसिक्स्ये॥ स्बप्ते तु जाग्ररसंस्कारो यस्तजाग्रत्कृतं नवम्। अजात्रज्ञात्रदाभासं कृतमित्येव तद्विदः॥ १९ ततो वायाविवास्पन्ताश्चित्ते भाषाः स्थिताः स्वतः। २० ते स्थतः संप्रवर्तन्ते कात्र संस्कारकर्तृता ॥ एकं तथा व चिन्मात्रं स्वप्ने छक्षात्म तिष्ठति। पुनर्रुभाद्यतः स्वप्न एकमास्ते सुबुप्तकम् ॥ २१ चिद्योम्नि स्वप्नसंवित्तिर्या सैव जगदुच्यते। सुष्तं प्रलयः प्रोक्तस्साष्ट्यायोऽयमेव सन् ॥ २२ एकमेव चिवाकाशं साकारत्वमनेककम्। स्वरूपमजहङ्क्ते यत्स्वप्न इष तजागत्॥ २३ एवं चित्परमाण्यन्तर्जगद्भायमिवं स्थितम्। तदनन्यारम चाभोगि स्वप्नादर्शतलेभ्यिय ॥ રક चिद्योम संविन्मात्रं यत्परमाणुवदाततम् । अनादिमध्यपर्यन्तं तदेव जगदुच्यते ॥ 34

मिति व्युत्पत्तेस्वेनैष आत्मैव संस्कार इत्युक्तः। तत्र कृतिः कार्यानुक्लो यजः कृषालर्थः। सम्यक् करणं संस्कार इति व्युत्पत्त्या कृतिलक्षणः संस्कारोऽप्येष भात्मैवोच्यते ॥ १५ ॥ तसत्र खप्रादी अपूर्वी जामदर्थविरुक्षणो योऽथी जामदर्थः दृष्टान्त इति भाति, स एव सूक्ष्मार्थलात्संस्कारी वासना रागी द्वेष इच्छेखादिनामा उक्तो न कथिद्वासोऽर्थोऽन्यश्चेतसि संस्कारनामा निविधोऽसीलार्थः ॥ १६॥ तथ संस्काराह्यं वस्त खप्ने दष्टं जागरे अदृष्टम् । नचादर्शनमात्रेण नास्तीति मन्तव्यम् । यतिभत्ताकाशे चेतनेव सदैवास्ते । तब खात्मापि साक्षिसभावात्सप्रे भाति जाप्रदृष्टपदार्थवचातितरां जुम्भते विस्तीर्यते ॥ १७ ॥ तदेव साधनसंपत्तिसहितश्रवणावधारि-ताद्वितीयप्रसम्बद्धालक्षणवेदान्तार्थातम् सत् । पूर्वे प्रसिद्धद्वैतस-र्गबाधकात्मकं सत् यथास्थिते खभावे प्रवर्तते एतादृशं तत्ख-भावं निश्वित्य है: पण्डितै: स्वार्थस्य परमपुरुषार्थस्य शिष्ये-ष्वपि सिद्धये प्रागद्गात आसीव जगत्संसारः । सम्यविवचार्य इति सु अद्भयं हरीय मोक्षथेति व्यवस्था शास्त्रेषु कियत इत्यर्थः ॥ १८ ॥ इदानीमन्यकृतं सम्मदर्शनश्रकारमन्य दूषयति-स्वप्ने-लिखादिना।खप्रे यो जामत्संस्कारसाजामत्कृतं नवमपूर्वे रूपं तथ अजामदेव जामदामासं जामदनुभवेन कृतमिति तद्विदः केचि-न्मन्यन्त इत्यर्थः ॥१९॥ तम । यतो वायावास्पन्दा इव स्वप्ना-दात्मताभावाः खत एव स्थिताः । ते च खत एव खप्राकारेण प्रवर्तन्ते तत्र जानतः संस्कारकर्तृता केलार्थः ॥ २० ॥ चिसे सर्वे भावाः स्थिता इति इतो इ।यते तत्राह्-एकमिति॥२१॥

तसाधत्र चिदाकाशमनन्तं सततं स्थितम्। तत्रास्तीति जगद्भानं तद्भानन्यकृषि यत्॥ २६ चिन्मात्र एव भुवनं त्वमहं चिन्मयं जगत्। इति न्यायाञ्जगद्याति परमाणुदरेऽप्यजम्॥ २७ तसादहं पराण्वात्मा समस्तजगदाकृतिः। सर्वत्रैव च तिष्ठामि परमाण्दरेऽपि च॥ २८ चिन्मात्रपरमाणुः सञ्जगदात्माप्ययं नभः। यत्र तिष्ठास्यहं तत्र परयामि भुवनत्रयम्॥ २९ अहं चित्परमाण्वात्मा तेन चित्परमाणुना। पकतामागतो घारि चारिणेच तदीक्षणात्॥ ३० तदोजः संप्रविष्याहं स्थितस्तदनुभूतिषत्। अन्तस्यत्रिजगद्र्यो यथाक्ते बीजमङ्करे ॥ 38 तत्र मे त्रिजगद्रुपमन्तः कचितमात्मनि । तथा तन्नत् तद्वाह्ये विद्यते केनचित्कचित् ॥ 32 यत्रयत्र यदा भाति स्वप्ने जाप्रदितीह घा। सबाह्याभ्यन्तरं रह्यं निजं चिद्धानमेय तत्॥ ३३ भाति स्वप्ने यदा जन्तोर्जगदानन्दमाततम्। चिदणोरेच तद्भानमात्मनस्तत्पदात्मना ॥ ३४ व्याध उवाच। अकारणं चेहृद्यं तत्कथमेतत्प्रसिध्यति ।

२२॥२३॥एवमुक्तयोपपत्या तच चितः अनन्यात्म यथा खप्रेषु यथावा आदर्शतलेषु दष्टं मुखवनपर्वतादि अनन्यातम तद्भदि-स्पर्यः ॥ २४ ॥ परमाणुवत्परमसूक्ष्ममाततं विस्तीर्णे च काल-तोऽप्यन।दिमध्यपर्यन्तम् ॥ २५ ॥ तस्याङ्गमिव अनन्यरूपि । अक्रेति संबोधनं वा ॥ २६ ॥ न्यायाद्वरशास्त्रोक्तयुक्तिकला-पात्परिज्ञानात् जगत्पराणूदरेऽपि याति । स्थूलतां परित्यज्य परमस्क्मि विन्मात्रतामापद्यत इति यावत् ॥ २७ ॥ कीदशं तद्भवशास्त्रोत्तान्यायैः परिज्ञानं तत्स्वानुभवामिलापेन दर्शयति---तस्मादिति ॥ २८ ॥ २९ ॥ चित्परमाण्वातमा शोधितलंपदार्थ-रूपोऽहं तेन चित्यरमाणुना शोधिततत्पदार्थेन ब्रह्मणा सह त्रविक्षणादेकतामागतः । तथाच श्रुतिः—'यथा अलं जले क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् । अविशेषो भवेतद्वजीवात्मा पर-मातमनि ॥' इति ॥ ३० ॥ एवं प्रश्नोत्तरप्रसन्नेनातमज्ञानरहस्य-मुक्खा प्रस्तुतकथामवलम्ब्याप्याह्—तदोज इत्यादिना । तु-दनुभूतिस्तत्त्राण्योजोन्तर्गतवासनामयजगदनुभवस्तद्वदिति प्रा-क्तनकथाशेषानुसंघानोक्तिः। यथा आब्जे अहरे सूक्ष्मरू-पेण स्थितं भावि बीजमन्तस्थभाविवैचिश्यसहस्रगर्भे तहृदि-त्यर्थः ॥ ३१ ॥ तत्र मे अन्तरेबात्मनि तरीयं मदी-यमन्यदीयं च सर्वे वासनामयं त्रिजगद्रूपमात्मनि क्चेतन्ये कचितम्। तज्जगद्भपं किचिदपि बाह्ये न विद्यते। तद्वहिर्देशस्पैवास्यन्ताप्रसिद्धेरिति भावः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तत्प-दारमना स्वप्नस्थानारमना ॥ ३४ ॥ कथं प्रसिष्यति । अकार-

सकारणं चेद्दूष्यं तत्स्वप्ने सर्गादिषीः कुतः॥ ३५ मुनिस्थाच ।

अकारणक प्वायं सर्ग आदी प्रवर्तते। समस्तकारणाभावाद्यतः सर्गात्मचित्रभः॥ ३६ अकारणानां भावानामत्यन्तासंभवादिह । कचिरसप्रतिधः सर्गो न संभवति कश्चन ॥ 30 प्रक्षेवमित्थमाभाति भास्त्ररं चित्स्त्रभावतः। सर्गादिशस्यपर्यायमाधन्तपरिवर्जितम्॥ 36 इत्यकारणके सर्गे कचति ब्रह्मरूपिणि। परस्यावयवाभासे नित्यातमावयवातमनः॥ 30 अनानात्वेऽपि नानात्वे ब्रह्मण्यब्रह्मरूपिणि । अनाकारेऽपि साकारे कचत्यप्रतिघं प्रति ॥ 80 तद्रहीय निराकारं चिद्र्यत्वात्स्फुरद्वपुः। साकारमिव भातात्म भृत्वा स्थावरजंगमम् ४१ देवर्षिमुनिभारूपं करोति नियति क्रमात्। विधीम प्रतिवेधांश्च देशकालक्रियादिकान् ॥ ४२ भाषाभावप्रहोत्सर्गस्थुलसुक्ष्मचराचराः। अर्था व्यमिचरन्त्येते नियतिर्नाखिलास्ततः॥ 83

णकस्य शशश्कादेः स्वरूपसिद्यदर्शनात् । यदि सकारणं तर्हि स्त्रप्रे घटादिसर्गकारणदण्ड चकादीनामभावात्सर्गादिधीः कुतः कारणादिति चंदिहानस्य प्रश्नः ॥ ३५ ॥ अकारणकपक्षमेव बहाद्वितपर्यवसानेन समर्थयन्मुनिरुत्तरमाह-अकारणक एवेति ॥ ३६ ॥ अकारणकः सप्रतिषः स्थलसर्गी न संभवति । प्रातिभासिके तु भिध्याभूते न सकारणकलनियम इति भःवः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इति उक्तरीत्या सर्गे अकारणके अत्यन्तम-संभाविते सति बहारूपिणि परस्य अवयवाभासे मायाप्रति-विम्बन्तिन्ये निस्पस्पारमन औषाधिकावयवारमना अनानारवे-5पि नानारवे अत्यन्तमयुक्ते ब्रह्मण्यब्रह्मरूपिण अनाकारेऽपि साकारे अप्रतिषं प्रतिकचति प्रतिभाते सति निराकारं तह्न्भैव चिद्र्पलात्स्फुरद्रपुः साकारमिव भातात्म भूला देवर्षिमुनिभारूपं स्थावरं जंगमं कमात्सर्वं। नियति विधिप्रतिषेधादीश्व करोतीति फलितमिति चतुर्णामन्वयः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महाइतलादेव भावाभाव। धर्यव्यभिचारेऽपि न तन्नियते व्यभि-चार इत्याह—भावेति।भा अखिलास्ततः सर्वास्तमयलक्षणं मोक्षं मयीदीकृत्येत्यर्थः ॥ ४३ ॥ ततो नियतिकल्पनातः प्रभृति नियतिविशेषह्यां कार्यकारणतां विना भावानां संभवी नास्ति ॥ ४४ ॥ तस्य ब्रह्मणो नियतिस्तत्कल्पको नायको भोका जीवभेति करद्वयसदशसङ्गं ब्रह्मत आत्मना खेनैव प्रयुत्तम् । तद्रक्ष तेनैकेन खानेनापरं करेणापरं करमिय संयमयति नियच्छति ॥ ४५ ॥ अतएव जीवसीवमेव जाशरखप्रलक्षणः सर्गः अनुदिएषंमनिन्छं च काकतालीयवस्त्रवर्तते ॥ ४६॥

ततः प्रभृति भावानां सकारणकतां विना । सैकतादिय तैलानां न संभवति संभवः॥ 88 नियतिनीयकश्चेव ब्रह्मतश्चाङ्गमारमना । स्याङ्गेन संयमयति करेणेव निजं करम्॥ પ્રવ अबुद्धिपूर्व चानिच्छमेयमेव प्रवर्तते। काकतालीयवरस्पन्दादावर्ता इय वारिणि ॥ 88 संनिवेशो हि नियतिस्तां विना प्रतिघोवयम्। ष्रह्म स्थातं न शक्तोति तच सर्वात्मताक्षयम ८७ एवं सकारणं सर्वे सर्वदा दृश्यमण्डलम्। यस्य सर्गे यतः कालात्ततःप्रभृति तंप्रति ॥ 84 भात्यकारणकं ब्रह्म सर्गात्माप्यवधं प्रति। तं प्रत्येव च भात्येष कार्यकारणहम्भ्रमः॥ 83 काकतालीयवत्सर्गे स्थिते त्वावृत्तिवृत्तिवत् । इवमित्थमिदं नेत्थमितीयं नियतिः स्थिता ॥ 40 सकारणत्वं भावानामवङ्यंभाविनि ऋमे । जाप्रत्स्वप्रदशो नेह संभवन्त्यपकारणाः॥ 45 यथा स्वप्नेऽखिलामम्बसंक्षोभात्प्रलयभ्रमाः । दृइयते कारणं तत्र भ्रयतामनुभूयताम् ॥ બરૂ

कारणप्रयुक्तः कार्ये संनिवेशविशेषनियम एव नियतिस्तां संनि-वैशनियति विना क्षणमप्यक्षातं ब्रह्म स्थातुं न शक्तोति । यथा मृज्रुर्णपिण्डघटकपाळाद्यन्यतमसंनिवेशं विना न तिष्ठति तद्व-दिति भावः । तथ संनिवेशधारणं क्षानेन सर्वात्मनैवाखन्तिकः क्षयो यस्य तथाविधमामोक्षमनुवर्तत इत्यर्थः ॥ ४७ 🗈 एवं नियतिकल्पनातः सर्वे सकारणं यं प्रति यतः कालात्प्रसृति नियतिर्थस्य सर्गे प्रवृत्ता तंत्रस्येव न पुरुषान्तरं कालाव्यस्थान विपदार्थं च प्रतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥ अकारणकं ब्रह्म अस्प्रमर्जन प्रति सर्गातमापि भाति ॥ ४९ ॥ विवेकिहशा काकतालीयय-त्सर्गे स्थिते सति पूर्वापरीभावनियममात्रदर्शनादिदं घटादि इत्थं दण्डचक्रमृदादिसामभीतो जातं, इदं पटादि तुरीवैमादित इत्थंविधं जातमिति पर्यालोचनेन निखवेदस्य पदवावयव्या-करणनियतिरिव स्थितेत्वर्थः ॥ ५० ॥ जन्यभावन्।सवर्श्य-भाविनि पौर्वापर्यक्रमे सफारणकलमेवेति यो मन्यते तस्य जाप्रत्सप्रदशः अकारणा न संभवन्ति । नहि स्वप्नभुषुद्रयन्य-तरानन्तरं जाप्रतप्रयोक्षीत्पत्ती कारणानि सन्ति । एवं जाप्रत्यपः हयन्यतरानन्तरं स्वप्रप्रपश्चीत्पत्तावपि कारणानि निरूपयितुं न शक्यन्ते इति सोऽपि न संभवति । नच जाप्रदन्तरितः स्वप्न-प्रपचलाथैवास्ते येन सृष्टि नापेक्षेत एवं स्वप्नसुषुप्रयन्तरितो जा-प्रतप्रयोऽपीलार्थः ॥ ५१ ॥ यथा मयैव प्राण्योजसि खप्ने दृष्टाः अखिलां भुवमिन्याप्याम्बुसंक्षीभारत्रलयश्रमास्तत्र कि कारणं लया द्रयते कि वा तत्र श्रुतितोऽपि श्रुयतां प्रमाणान्तरेण बानुभ्यताम् । संभावनायां लोद् । न किंचित्संभावितमित्ययैः

सर्ववस्तुषु कचन्ति सर्वदा युक्तयः स्फटिकशुक्तयो यथा।

भावनानुभव एव स स्वयं शक्तिमाञ्जयति जीवितात्मकः॥ 43 इस्सार्वे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा० मो० नि० उ० अवि० श० पदार्यविचारो नाम चतुश्रलारिशद्धिकशततमः सर्गः ॥१४४॥

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमः सर्गः १४५

मुनिरुवाच ।

बहिष्ठैर्वाह्यमेचान्तरन्तस्थैः स्वप्नमिन्द्रियैः। जीवो वेत्ति इयस्थातितीत्रसंवेगिभिईयम्॥ यदेन्द्रियाणि तिष्टन्ति बाह्यतश्च समाकुलम्। तदा म्लानानुभवनः संकल्पार्थोऽनुभूयते ॥ यदा त्वन्तर्मुखान्येव सन्त्यक्षाणि तदा जगत्। अणुमात्रं स्ववपूषि जीवस्तेनातिवेति तत् ॥ जगत्सप्रतिषं नास्ति किंचिदेव कदाचन । जीवेक्षणानामक्षाणां दृष्टिरशतिघा जगत्॥ जीवनेत्राणीन्द्रयाणि यदा वाद्यमयान्यसम्। तदा बाह्यात्मकं त्रेति चिति जीवो जगद्वपुः॥ क्षोत्रं त्वगीक्षणं ब्राणं जिह्ना चेतीहितात्मकः। संधारः प्रोच्यते जीवक्षिद्रपोऽनिसमुर्तिमान्॥ सर्वत्र सर्वदा जीवः सर्वेन्द्रियमयः स्थितः । चिक्सियोमाव्ययस्तेन सर्व सर्वत्र पश्यति ॥

॥ ५२ ॥ उक्तप्रकारा ब्रह्मप्रश्चैक्यप्रतिवादिका युक्तयोऽनुयुक्ते-ष्याणि सर्ववस्तुषु बुद्धिनतां स्वत एव कचन्ति स्फुरन्ति । यथा स्फटिकमणयः अक्तयो वा सनि प्रकाशे खनाकचक्येन स्वत एवं कचन्ति तद्वत् । तत्तस्मात्मर्वत्र निर्णये शास्त्रानुसारियुः किसावनानुभव एव स प्रांराद्धः स्त्रयं सर्वतत्त्वनिर्णयशक्ति-**मान्सर्वप्रमाणजी**वितास्मको जयति । सर्वोत्कर्पेण वर्तन इस्पर्यः ॥ ५३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाशे नित्री-णप्रकरणे उत्तरार्धे चतुश्रावारिशद्धिकशततमः सर्गः॥१४४॥

> श्रेकापित्तानिलापूर्णजीवस्थीजसि कल्पिताः। क्यसभेदा इहोस्यन्ते सथाक्षेत्रीद्यविश्वमाः ॥ १ ॥

अयं जीवा वहिष्टेरिान्द्रवेबीहामेव स्वप्नं वेलि । अन्तस्थे-रिन्द्रियेरन्तः खप्नं वेति । बाह्यान्तरद्वयस्थेरमयत्र व्यापारसि-ब्यर्थंसतितीत्रसंवेगितैभिन्दियेस्तु द्वयमपि वेति ॥ १ ॥ तर्हि यहिष्टेरिन्द्रियेया बहिब्र्यवहरति तदा किमान्तरव्यवहारो नास्येत, नेत्याह-यदेति । अस्येव किंतु अनोराज्यकल्पः सर्वकल्पाधी म्लानमनुगवनं यस्य तथाविधां इनुभूयते न स्वप्न-बत्स्प्रायानुभवन इत्यर्थः ॥ २ ॥ अणुमात्रं वाधनामात्रत्याद-तिसध्यसपि स्वातं जगद्विवंति स्थूलमिन पर्यति स एव तस्व अम्छानानुभव इत्यपैः ॥ ३ ॥ बाह्यमान्तरं वा जगतसप्रतिषं स्थलं वस्तुतो नास्त । जीवस्य ईक्षणानां वर्शनकरणभूताना-मक्षाणामिहिद्याणां स्थाल्यकल्पने अत्रतिधा निष्प्रतिधाता या **हरि: सेव** स्थलं जगदिलार्थः ६ ४ ॥ अतएव बहिरस्तर्गा सत्रैन

श्वेष्मात्मना रसेनान्तर्जीव आपूर्वते यदा । तेऽक्षाणुकेऽणुरूपारमा तदा तत्रैव विन्दति॥ 6 क्षीरार्णव इवोड्डीनो नभश्चन्द्रोदयान्वितम्। सरांसि फुलपद्मानि कहारवलितानि च॥ पुष्पाभ्रमतिधानानि परिगीतानि पट्टपदैः। वंसन्तान्तःपुराण्यन्तश्चानान्युदितानि से ॥ १० उत्सवान्मङ्गलाकीर्णालीलालोलाङ्गनागणान् । भक्ष्यभोज्यात्रपानश्रीपरिपूर्णगृहाजिरान्॥ ११ सपुष्पाः फेनहसनास्तरहातरहेक्षणाः । विलासेनाम्युधि यान्ति सरितो मत्तयौचनाः १२ हिमवच्छुन्नश्रङ्गाणि सौधानि शिशिराण्यसम्। सुधावधीतभित्तीनि स्तानीन्द्रतलेरिय ॥ १३ शिशिरासारहेमन्तप्रावृण्मेघवृतानि च। स्थलानि नीलनलिनीलताशाद्वलवन्ति च ॥ १४ पुष्पप्रकरसंछन्ना विश्रान्तहरिणाध्वगाः । क्तिग्धपत्रतरुखायाः पुरोपवनभूमिकाः॥ 914

वेन्द्रियप्रसरस्त्रीय स्थूलवजगद्शनमिलाह—जीवेति॥५॥श्रो-त्रादिश्रहणं वागादीनामप्युपलक्षणम्। अनिलमूर्तिमान्पञ्चत्राणघ-टितः । ईहितमिच्छाप्रधानमन्तःकरणचतुष्ट्यं तदात्मकः संघात आतिवाहिक देहः स एव कूटस्थचिदाभाससंबलनाश्विद्वपो जीवः प्रोच्यत इलार्थः ॥ ६ ॥ तादशो जीवः खवासनामयं जगदन्तः परयतु नाम । बहिस्तु वासनाभावात्कथं तन्मयं जगत्पश्यति तत्राह-सर्वत्रेति । तत्र कूटस्थचिदेव चिदाभासः समष्टिव्यो-ममयः सन् सर्वत्र सर्वदा सर्वेन्द्रियमयः स्थितस्तस्मिन्सर्ववा-सनाधिष्ठाने बाह्यजगदध्यास उपपन्न एवेति भावः॥०॥तत्रान्तः स्प्रविशेषवैचित्र्यदर्शने ओजिस प्रविष्टस्य जीवस्य श्रेष्माद्यन्नर्-सविशेषपूर्णनाडी प्रवेश एव निमित्तमित्येत्त्प्रपद्मयति—क्षेष्मा-त्मनेखादिना । यदा उपसंहतकरणविस्तारः सन्नणुह्नपः सहस्रधा विदीर्णकेशभागप्रमाणसुक्ष्मनाष्यन्तः संचारयोग्यस्ते तव जीवो नाष्ट्रयन्तर्गतेन श्रेष्मात्मना अन्यरसेन आपूर्यते तदा तलदक्षा-णुके तत्रीय नाष्ट्यन्तर्वक्ष्यमाणप्रकारान्स्वाप्रभ्रमान्विन्दतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ खयं क्षीरार्णवे उड्डीन इव भूला चन्द्रोदयान्वितं नभो विन्दतीति सर्वत्रानुषद्धः ॥९॥ पुष्पमयानां दिश्याश्राणां प्रतिधा-नानि प्रतिनिधिभुतानि सरांसि वसन्तराजस्यान्तःपुरभृतान्यु-द्यानानि खे जीवाकाशे उदितानि ॥ १० ॥ ११ ॥ तरलाः शफर्यसाहस्यातरलेक्ष्णाः ॥ १२ ॥ इन्द्रमयैसालैः क्रहिमैः कृतानीय सीधानि ॥ १३ ॥ १४ ॥ विश्रान्ता हरिणा अध्य-

| | 1 | _ |
|---|------------|---|
| कदम्बकुन्दमन्दारमकरन्देन्तुकान्तिभिः। | Ì | 3 |
| भासमानासनस्थानसंस्थानाः कुसुमस्थलाः ॥ | १६ | 1 |
| निलनीजालिनीनीलाः पुष्पकस्थलः जेणीः। | 1 | • |
| वनावलीविलीनाभ्रनिर्मलाकाशकोमेलाः॥ | १७ | , |
| कद्यकीकन्दलीकुन्दकद्रम्बद्यतशेखराः। | | : |
| गिरिमालाश्चलचाहलीलापल्वपेलवाः॥ | १८ | |
| हेलावलितथम्मिहमुक्तमालतिकाल्ताः। | | į |
| इब बालाक्रनानृत्यं तन्वानास्तुनात्रिकाः॥ | १९ | ; |
| उत्पुत्तश्येतनित्रानिमा नरपतः सभाः। | | 1 |
| चारुचामरभृङ्गारचितानकशतातृताः॥ | ३ ० | 1 |
| व्यक्तिमस्भृक्षारावतानकरातारुवाः । | • | |
| बहीबलयविन्यासविलासविताङ्गिकाः। | २ १ | ! |
| बनमालाबिलोलाम्बुप्रणालीकाकलीकलाः ॥ | ~, | ! |
| धरामरकरालाङ्गधाराधरधराधराः। | 22 | į |
| दिशः सीकरनीहारहारोदरधरा द्शा॥ | २ २ | |
| पित्तात्मना रसेनान्तर्जीव आपूर्यते यदा । | | Ì |
| ओजोन्तरणुमात्रात्मा तदा तत्रेय विदान्त ॥ | २३ | |
| पचनस्पन्दसंश्रद्भक्षिशुकद्वमशोभनाः। | | , |
| ज्वालालीगुङ्जवलाम्भोजदलपहवपेलवाः॥ | २४ | |
| संतप्तसिकतासेकसनीहारसरिव्छराः। | | |
| वावानलशिखादयामधूमदयामलदि झुखाः॥ | રવ | |
| कृशानुककेशानकांश्चक्रधाराशिनन्तियः। | | |
| #r##r# शिषाचेदाविषशीत्रसावरान् ॥ | રદ | į |
| स्वेदमुष्णीकृतान्धि वा स्त्रिन्नं त्रेलोक्यमण्डल | म्। | |
| अरत्भाराण्यरण्यानि प्रतर्दगहनान्यपि ॥ | રેહ | , |
| Gia Calial and and the many in the second and and any | | |

गाव यत्र ॥ ५५ ॥ भागमानमासगर्यःनस्रेव संस्थानं यासां ताः ॥ १६ ॥ विलोनाओं निर्मलः सस्दाकाश इव कोमलाः क्रिग्धाः ॥ १७ ॥ कदली कन्दली च मृगमेदास्तरगुल्ममे-दाख । गिरिमालाः पर्वतपङ्गीः ॥ १८ ॥ हेलावर्जिर्धिम्म-क्रेर्युक्ताः प्रसृतसंबिलितशाखा मालतिकालता इव स्थिता नृत्यं तम्याना बालाङ्गनाः विन्दति ॥९९॥२०॥ वनमाला वनपद्गीः । विलोलाम्बूनां प्रणालीयु कुल्यासु पक्षिकाकलीनिः कला ग-म्भीराः ॥२१॥ अराया भरे भरणे वर्षैः पूरणविषये करालाज्ञा ये भाराधरास्तद्युक्ता धराघराः पर्वता शासु तथाविधा दश विकाः ॥ २२ ॥ श्लेष्मपूर्णनाडौद्दयान्स्वप्नविशेषान्प्रपञ्चय पित्त-रसपूर्णनाडीदृश्यांस्तानाह् --पित्तात्मनेत्यादिना ॥ २३ ॥ ज्वा-छाछीर्षिन्दति पश्यतीति यावत् ॥ २४ ॥ ज्वालासीरेव विश्वि-नष्टि संतप्तित । संतप्तसिकतानां सेकैः सनीहाराः सवाष्पाः सरिह्मणाः शिरा याभ्यः ॥२५॥ चक्रधारा इत्र शिता निशिता-रिलापो येषाम् । विपरीता विशेषतो व्याप्ता रसाकरा जलाशया बेभ्यः ॥ २६॥ खेदं साद्रींभाणम् । खित्रं खेदनार्द्रम् । प्रतदी इक्षपुरमतृणादीनामतिनैविक्यं तद्युक्तानि गहनान्यरण्यान्यपि ॥ २७ ॥ प्रतरस्यु प्रवहत्सु भृगतृष्णाम्बुषु सरत्सारसै रूपि श्रोभमानम् ॥ २८ ॥ संत्रमो भयं तद्वशादध्वगमध्वसु धावन्तं

| प्रतरम्मृगतृष्णाम्बुसरस्मारसद्भि च । | |
|--|------------|
| स्थलान्यहष्पूर्वाणि भूतपूर्वतरूणि च॥ | २८ |
| स्थलाम्यहष्टपूर्वारम् पूर्णकर्मानाम् । | |
| अध्वगं संभ्रमवशासप्तशृतिविध्सरम्। | ર ્ |
| द्रादमृतवहृष्टं सिग्धक्लायाध्वपादपम् ॥ | 13 |
| ज्वरज्वालितमाकारं भुवनं तप्तमग्निवत्। | |
| गांसपद्रतदेशानि दिश्राखानि च खानि च ॥ | ३० |
| ब्रह्मामार्णवाद्यव्यिवनव्योमाम्निका दिवाः। | |
| तुहिनाहारहानन्तासंख्याम्बुद्घटोद्घटान्॥ | 38 |
| शरद्वीप्मवसन्तांश्च तापानातपदायिनः। | |
| ्रार्भाष्मवस्तात्र्यसम्बद्धाः ॥ | ३ २ |
| तृणपत्रलतोघाम्रराक्ष्यूष्मपिहितावनीः॥ | • |
| सीवर्णमम्बरतलं भूतलं दिक्तटानि च। | 33 |
| तप्तान्यदभसरमीहिमशैलस्थलानि च॥ | ~ ~ |
| रमानिक वातेन जीव आपूर्यत यदा । | . |
| ओजोन्तरणमात्रातमा तदा तत्रव विन्दत ॥ | 38 |
| वातविश्वद्धसंवित्वादप्य बसुधातलम् । | |
| अपूर्वा नगरप्रामदीलाब्धिवनमण्डलीः॥ | 34 |
| उद्वीयमानमात्मानं शिलाः शैलस्थलानिय । | |
| उद्गायमानमात्मान । श्राका स्वयं | રૂદ |
| वन्धुंतुमसारावानचक्रस्रमणादि च॥ | ٠, |
| ह्योष्ट्रगरुडाम्भोदहसयानावरोहणम्। | 2.4 |
| ग्रञ्जविद्याधरादीनां गत्यागमनसञ्जरम्॥ | ३७ |
| अविद्यार्थनितीशानां चनभ्रामपूर्वशाम्। | |
| कम्पं भयोन्मुखाङ्गानां बुद्धदानामियाणेवे ॥ | ३८ |
| अन्धक्षे निपतितं विपुले संकटेऽथवा। | |
| अथवा रूढमात्मानं समामं पादपं गिरिम्॥ | 30 |
| अथवा रूडमात्मान खनान वादर न्यार र | |

खं पर्यति । अमृतनबृष्टं दर्शनात्संभावितम् ॥ २९ ॥ ३० ॥ गृहादित्योमान्तेषु अग्निकाः ज्वलदिमस्यो दिशः पश्यति । तुहिनं शीनं आहरति भक्षयतीति तुहिनाहारोऽप्रिस्तं जहति मुखन्ति वर्यन्ति तथाविधा अनन्तसंख्या ये अम्बुदासाद्ध्यो-द्भटान्शरक्वीष्मवसन्तानिति परेणान्वयः ॥ ३१ ॥ तृणैः पत्रै-र्छतीथेरञ्जराशिमिकभाभिश्र पिहिता आच्छादिता अवनीर्भू-प्रदेशान् ॥ ३२ ॥ अदभ्रा बहुलाः सरसीः हिमशैलस्य स्थळानि प्रदेशभेदांध तमान्यस्यति ॥ ३३ ॥ रसैरमरसैः श्चेष्मपितादिभिरनुख्य रिके केवलवायुनैव पूर्णे नाडीप्रदेशे प्रविष्टोडणुमात्रात्मा जीवो यदा वार्तन आपूर्यते तदा तत्र प्रागुक्ते ओजोन्तरेव वह्यमाणं खप्नं विन्दते ॥ ३४ ॥ अपूर्व पूर्वहष्टविलक्षणम् ॥ ३५ ॥ धनानां घुंचुमेर्गर्जनैः सारावान्स-शब्दान्देशान् । बिनैव कुलालचकं घटीनां भ्रमणादि च ॥३६॥ हंसान्तैयीनं गमनं तद्वरोहणं च। गतयश्च आगमनानि च दूरतः स्तरधाने संबरणंच । गत्येति प्रथमपदं वा ॥ ३७॥ अदि-मिर्दिवा उच्ची नदीशैलैय सहितानां वने भवन्तीति वनभुवो वृक्षादयस्त्रेषां प्रामाणां पुरां दिशां च भयोन्मुखाङ्गानां मतु-ध्यादीनां च कम्पम् ॥ ३८ ॥ सं मिनोति परिच्छिनस्याभा संस्थानशोभा यस्य तथाविधं पादपं गिरिं च ॥ ३९ ॥

बातिपत्तरहेष्मयुक्तो जीव आपूर्यते यदा। भागैर्वातवदां प्राप्तिरातीऽसी विन्दते तदा ॥ 80 पतन्ती पार्वती वृष्टि सुज्ञिलावृष्टिसंकटम्। ४१ र्फुटाष्ट्रकटकारावभ्रमत्पादपमण्डलम् ॥ भ्रमद्भिर्वनविन्यासः संदिग्धाम्भोधरोत्कदम्। सिंहवारणवर्षाभ्रनिरन्तरदिगन्तरम् ॥ પ્ટર तालीतमालहितालमालाज्वलनसंक्रलम् । ग्रहाघुंघमनिर्हादभांकारघनघर्षरम् ॥ ઇરે मन्द्रमन्दरमन्थानशब्दसंदभेसुन्दरीम्। दरी दलनदुर्वारमिथःसंघट्टघट्टिताम् ॥ 88 श्टक्ससंघट्टसद्याः क्रेंकारोत्करकर्कशाः । नदीर्मुकालतापातसस्रग्दामनभस्तलाः ॥ છષ शिलाशकलपूर्णार्णपूर्णाम्बरमहार्णवम् । बहुद्भनघनोद्धातघट्टितब्रह्ममण्डलम् ॥ ઇદ परस्परविनिर्मृष्टद्दाद्दीनद्नुरम्। **खटत्कटकटारावस्फ्रटत्कटकटिङ्कतम् ॥** 80 स्तपातपधनाधृतघनवातलतोदयम्। र्णवात्महपञ्जीकर्बराम्बुजधारिणम् ॥ 86 प्राग्भटोज्जटसेदोत्धैर्मन्द्रम्यस्यर्वः। क्रराफर्न्देरियाभाति विराजितजगत्रयम्॥ છર

केष्माधेकेकपूरितनाडीभागहद्यान्स्त्रप्रानुक्ला तत्रितयपूरितना-**बीहर्गास्तानाह—नातेखादिना॥४०॥स्फ्र**टला**महा**नां सौधानां गिरिकटकानां चारायैः सह भ्रमत्पादयमण्डलम् ॥ ४१ ॥ सिंहैवीरणैर्वधीश्रेश निरन्तरं दिख्यध्यम् ॥ ४२ ॥ तदेव दिग-न्तरं विधिनष्टि—तालीति ॥ ४३ ॥ दलने दुर्वारो यो मिथः संघइस्तेन घहितां दरीं पश्यति ॥ ४४ ॥ गिरिश्वन्नद्वयमध्ये प्रवाहध्यनिभिः श्ट्रहृद्यसंघटनसहत्राः । चक्रवाकादिकेका-रोहकरै: कर्कशाः । मुक्तालतावदापतनैः स्नग्दामसहितमिय नभ-स्तलं गाभिस्ता नदीः पर्यति ॥ ४५ ॥ स्वद्यः प्रलयार्णवा-दिवर्शनस्त्रप्रोऽप्येतस्मादेव निमित्तादिति सुनयत्राह—शिला-शक्छेति । शिलाशकलपूर्णैरणीभिर्जलैः पूर्णाम्बरं महार्णवं पर्यति । तमेव वर्णयति - वहदित्यादिना । वहतां वनानां घनानां चोद्धातैधीहतमास्फाछितं ब्रह्ममण्डलं सप्तार्षलोको येन ॥ ४६ ॥ परसारं तरक्रसेकैविंनिर्मृष्टानां घौतानां दशानां दिशां इशेनेन दन्तरं इसन्तिमव स्थितम् । चटन् दिश आवृण्यन्यः कटकटारावस्तेन स्फटब्रिएदिकटकेष्टक्षितं संजातटश्राघातध्य-निमिच स्थितम् ॥ ४० ॥ खं पततीति खपातो यः पवनस्ते-नाधृतं कम्पितं यद्भनं तत्र वातानुसारिलतोदयो लतालास्यं बस्मिन् । रणद्भिरात्मकृतैर्धवन्त्रीः कर्नुरवर्णानि यान्यम्युजा-तानि शैवालादीनि धारयति तच्छीलम् ॥ ४८॥ समुद्राक-मणात्प्राग्युगानते प्रश्नीभटोद्भटानां ग्रहाणां मेदेषु परस्परवि-द्वारणेष्विबोत्थितैर्मन्दैस्तालीवनादिमरमरारवैः क्रुराणां प्राणि-मामाकन्दैरिव विराजितं जगत्रयं तदामातीखर्यः ॥ ४९ ॥

इति तैः काष्ठपाषाणमृशुग्वातभदैर्वतः। परिपीडित एवास्ते यदा जीवो जडीकृतः॥ 40 सृदन्तःकीटकणविच्छलान्तर्गतभेकवत् । गर्भस्थापकदि।श्वत्फलान्तर्गतबीजवत्॥ 48 बीजोदरस्थाङ्करवद्वव्यपिण्डोदराणुवत् । अश्रान्तस्तम्बकोशस्थदारुपुत्रकदेहवत्॥ 42 सीषिर्यासंभवात्प्राणपवनस्पन्दवर्जितः। प्रोन्नमत्पर्शुपूरेण शिलापूरेण तर्जितः॥ 43 तदा निविडतेजोन्तरेवानुभवति स्वयम्। सुषुप्तं दीलकोशाभमन्धकृषोद्ररोपमम्॥ 48 यदा परिणतं यतं पुनः सौषिर्यमागतम्। पुनर्वेत्ति तदा जीवः स्वप्नं प्राणावबोधितः॥ ५५ यदा तिसम्प्रदेशेऽन्तर्भागभागान्यतन्ति ते। देहे परिणमन्तोऽन्तस्तदेवात्यद्विवर्षणम्॥ 48 बह्नेव बह्निबहुना स्वरुपेनारूपं प्रपद्म्यति । वातपित्तादियोगेन वहिरन्तश्च संभ्रमम ॥ 4:0 पश्यत्येतद्यथैवान्तरेष जीवो वशीकृतः। वातिपत्तादिवलितो बहिर्वेस्येवमेति वा ॥ 46 क्षुब्धेरन्तर्वहिश्चेव स्वरुपेः स्वरुपं प्रपद्यति । समैः सममिदं दृष्यं वातिपत्तकफादिना ॥ 40

त्रिधातुपूर्णनाडीषु इति वर्णितप्रकारेस्तैः सर्वजनप्रसिद्धैः काष्ठैः पाषाणैर्मृद्युतैर्वातेर्भर्देवा दृतः सन् खप्ने जडीकृतो जीवः परिपी-डित एवास्ते ॥ ५० ॥ मृदन्तर्गतकीटादिवसादशपाषाणादिक-वचानुभवतीति तृतीये सर्वेषां संबन्धः ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हुपुप्तं तर्हि कदा केन निमित्तेनानुमवति तदाह—सौषिथेति । यदायं जीवः पुरीतित नाडीपजरं सर्वपाश्वीस्थ्यप्रघटितहृद्या-स्थिप्रन्ध्यपलक्षिते प्रविष्टो भवति तदा अप्रे संचारार्थ सौषि-र्यासंभवाद्यस्मिन्प्रदेशे प्राणपवनप्रयुक्तेन स्पन्देन वर्जितः सन्ध्रो-न्नमता पश्नां पार्श्वास्थीनां पूरेण प्रनिथना शिलापूरेण जिले निरुद्ध इव तर्जितो व्यापारासमर्थः कृतो भवति तदा प्राग्रक्त-निबिडतरीजःशब्दिततेजोन्तरेव शैलकोशः शिलाजठरं तदा-भमज्ञानगाढल।दन्धकूपोदरोपमं सुपुप्तमनुभवतीति द्वयोरन्वयः ॥५३॥५४॥ ततः पुनः खप्ने कथमायाति तत्राह्-यदेति । भुक्तमन्नं यदा, पाकेन परिणतं यदा चान्नरसक्कतश्रवेशमार्गनि-रोधापगमात्पनः सौषिर्यमागतं तदा ततो निर्गमनयलं प्राण-संचारेण प्राप्य पुनर्जीयः प्राणेनावबोधितः सन्खप्नं वेसि॥५५॥ यदा देहे परिणमन्तरतेऽन्नरसा यस्मिन्प्रदेशे जीवेन सह नाडी-भागेभ्यो भागान्तराणि पतन्ति तदा ओजोन्तरद्विवर्षणं वेति ॥ ५६ ॥ विक्वदुना बहुतरजाठरामिन्यामेन वातिपत्तादियो-गेन बहिरन्तव बहेव संभ्रमं पश्यतीति बहिरपि भ्रान्तिदर्शनं वर्णयितुं पीठिकारचनम् ॥ ५७ ॥ तदेव वर्णयितुमुपकमते--पश्यतीति । ज्ञानेन्द्रियैर्वेलि कर्मेन्द्रियैरेति वा ॥५८॥ वातपित्त-

१ एतद्भिमत्रिकस्यत्तीये इत्यर्थः.

3

ક

बहिः पद्मयस्ययं जीवः कुपितैरेभिरावृतः। स्पन्वं भूम्यद्विनभसां ज्वलनं वानलोश्ययैः॥ 60 आकाशगमनं चैव चन्द्रोदयहिमाचलान्। गहनं वृक्षदीलानां नभः ध्रवनमर्णसाम् ॥ मञ्जनोन्मज्जनं वाब्धी सुरतं सुरसदासु । शैलोपवनशुभाभ्रपीठविश्रमणोश्ययम् ॥ बृहत्क्रकचनिष्पेषं नरकानुभवभ्रमम् । तालीतमालहितालमालावलनमम्बरे॥ चक्रवृत्तेश्च पतनं झगित्युत्पतनं दिवि। शून्येऽपि जनताचृन्दं स्थलेऽप्यन्धिनमज्जनम् ॥६४ विचित्रं विपरीतं च व्यवहारं महानिशि। अहीय भास्करालोकं दुर्भेष्यं चाह्नि वा तमः॥ ६५ साद्रिभृतलमाकारा कुड्यबन्धे घने स्थलम्। कुड्यबन्धांश्च गगने मित्रभावं च विद्विपि॥ દ્ધ स्वजने परताबुद्धि सुजनत्वं च दुर्जने । सुसमस्थलतां श्वभ्रं श्वभ्रत्यं सुसमे स्थले॥ ६७ उद्गीतालापमसृणान्सुधाधीतान्सुचित्रितान् । अद्रीब्द्वेतमयान्वापि नवनीतमयांश्च वा ॥ ६८ कदम्बनीपजम्बीरपत्रस्तवकसद्मसु ।

सुखविश्रमणं स्त्रीमिः साकं पद्मेष्यिवालिनः॥ ६९ अन्तर्निमीलिता होताः पश्यन्त्युन्मीलिता बहिः। धातुनामिति वैषम्याद्भान्तिमिन्द्रियवृत्तयः॥ ७० एवंविधान्यनेकानि पद्यन्त्यनुभवन्ति च। बहिरेव यथा स्त्रप्ते वस्तुन्यसमधातवः॥ ७१ बहिधान्तश्च दृश्यन्ते विपरीतान्यनेकशः। कार्याण्यतिकरालानि जीवैरसमधातुभिः॥ ७२ समेषु घातुष्त्रेषोऽन्तर्जीवोऽनुभवति स्वयम्। तेजोन्तर्गत एवेमां व्यवहारस्थिति समाम् ॥ SO यथास्थितां पुरम्रामपत्तनारण्यसंततिम् । सौम्यवारितरुखायादेशाध्वगगमागमम्॥ as सुखातपमयेन्द्रकताराहोरात्रमण्डितम्। पवमेतदसद्भृतं सद्भृतमिव भासते॥ 40 दृश्योपलम्भं चित्तस्त्रे स्पन्दनं पवने यथा। असदेव सदाभासमभिन्नं मिन्नविस्थितम् ॥ 30 शान्तादुदेति सकलं जगदम्बरात्म शान्तं न किंचन न नाम सदित्युदेति। तद्योमनीरदामनन्तचितेः शरीरे भामात्रमाततमनन्तवपुर्विभाति॥ इ० वा० महारामायणे वा० मो०नि०उ०अवि० वि०षा० जामत्स्वप्रसुषुप्तिवर्णने नाम पश्चचलारिसद्धिकसत्ततमः सर्गः ॥१४५॥

षट्चत्वारिंशद्धिकशततमः सर्गः १४६

व्याध उवाच। अनन्तरं मुनिश्रेष्ठ तसिनहृदि तदोजसि। स्थितस्य तव कि वृत्तं नामतो भ्रान्तिकपिणि॥ मुनिरुवाच । अनन्तरं तदा तत्र शृणु किंवृत्तमङ्ग मे। तेजोधातुनियण्णस्य तज्जीयात्रलिताकृतेः ॥

कफादिना क्षुच्यैः खल्पेरन्नरसैरन्तर्बहिश्रेव खल्पं दृश्यं भ्रान्खा प्रपश्यति समैः समं दृश्यं प्रपश्यति । અતિક્ષુ•ધેસ્લ-तिशयितभानितदृश्यानि प्रपश्यतीत्यर्थोद्गम्यते ॥ ५९ ॥ कृपि-तैरेभिः संनिपातमदमणिमश्रौपधादिनिमित्तेषु ॥ ६० ॥ बहि-भ्रोन्तिदृश्यानि प्रपध्यति--आकाशगमनमित्यादिना ॥ ६१॥ श्चभात्राणां पीठेषु विश्रमणसुपवेशनं शुत्रात्रोचयं च ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ निशि अहीव भास्करालोकम् ॥ ६५ ॥ घने कुष्णबन्धे विकुष्णं विशालं स्थलम् ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ श्वेत-स्फटिकरजतादिमयान् ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ एता आन्तीरन्त-**र्निद्रानिमीलिता इन्द्रियदृत्यः पश्यन्ति । जागरोन्मीलितास्त्** बहिरिन्द्रजालादी पश्यन्ति॥ ७०॥ असमा वातादिधातवी येषां पुरुषाणां ते ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इमां प्रसिद्धां लैं।किकशा-श्रीयव्यवहारस्थितिम् ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ शान्ता-श्रिष्प्रपद्मादेव ब्रह्मणः सकाशात्सकलं जगदुदेति शान्तं च न किं-

तिसम्तदा वर्तमाने घोरे कल्पान्तसंभ्रमे। तृणवत्प्रौढशेलेन्द्रे बहुति प्रलयानिले ॥ गिरिचृष्टिईहित्येव कुतोऽपि समुपायया । उद्यमानवनाभोगशिखरप्रामपत्तेना ॥ तस्यान्तस्तत्र संप्राप्तं तदा परिणतं यदा । तदा तदेव सुक्ष्मोऽहमपद्यं दौलवर्षणम् ॥

चनान्यद्भवति। यतः सदिति परिदश्यमानजन्यरूपेण नोदेति नाम नहि समुत्पयते । तत्तस्म।देतोन्योमन्याकाशकल्पे अनन्ताया-श्वितेः शरीरे भामात्रं प्रतिभासमात्रं जगदिखनन्तवपुर्विभाति न वस्त्वन्यदित्यर्थः ॥ ७७ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणता-त्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पश्चचत्वारिंशव्धिक-शततमः सर्गः ॥ १४५॥

प्रस्तुतस्वप्रवीक्षान्ते सुषुप्तिः स्वस्य वर्ण्यते। पुनः स्वमप्रसङ्गेन भक्षाद्वैतं च विस्तरात् ॥ १ ॥

प्रासन्निकं श्रुला पुनः पूर्वकथाशेषमेव व्याधः पृच्छति---अनन्तरमिति । भ्रान्तिक्षिणि नामतस्तस्य प्राणिन ओज्सि स्थितस्य तवामे कि कीहरां खप्तदर्शनादिवृत्तं संपन्नम् ॥ १ ॥ तनीवेन भाविता मिथिता भाकृतिर्छिन्नदेहो यस्य मे॥ २॥ ॥ ३ ॥ यदा मथा तस्य प्राण्योजसोन्तस्तन्त्रीवात्मना परिणतं तदा तत्र संप्राप्तं तदेव शैरुवर्षणमह्मपर्यम् ॥ ५ ॥

तेनाग्रलवदालोचपूरेण प्रतिपिण्डितः। सुषुप्तमन्धतामिस्रमहमन्वभवं घनम् ॥ अथ कंचित्तदा कालमनुभूय सुबुप्तताम्। तदा पद्माकर इव शनैबाधोन्मुखोऽभवम् ॥ यथा दृष्टिश्चराष्ट्रान्ते भाति चन्नकरूपिणी। सुषुप्तमेव तत्रासीत्तथा स्वप्नत्वमागतम्॥ तथा सुबुप्तविश्रान्तेः स्वप्ने निद्रामष्टं विशम्। अपद्यं दृदयमोजोऽन्तः स्वमुर्मित्वमिवार्णवः॥ संवित्कोशात्मकं दृश्यं तत्तथा मामुपागतम्। अस्पन्दस्यानिलस्यान्तरनन्यत्स्पन्दनं यथा ॥ अप्रयादी च यथोष्णत्वं जलादी द्रवता यथा। मरिचादी यथा तेक्ष्यं चिद्योद्धश्च जगत्तथा ॥ ११ चित्स्वभावैकरूपत्याज्ञगदृश्यं तदाततम्। तत्सुषुप्तात्मनो दृश्यात्त्रसूतं बालपुत्रवन् ॥ व्याध उवाच। तत्सुचुप्तात्मनो रदयादिति तद्यपदेशतः। सुषुप्तदृष्यं किं विश्व वद मे वदतां वर ॥ १३ तत्सुपुप्तात्मनो दृश्यास्वत्सुषुप्तात्मनोऽपि च । किमन्यजायते जन्यमथवान्यसुषुप्तता ॥ १४

तेन तत्प्राणिनाष्ट्र्यन्तर्गतेनात्रर्मान्तगतात्रलवलक्षणेन शैलोच-पूरेण प्रतिपिण्डितः पिण्डीकृताकृतिनिश्चेष्टः संपन्नः सम्बद्दमज्ञान-**ठक्षणया अ**न्धतया मिश्रं संबिततं सुषुप्तमन्वभवम् ॥६॥ यदा निर्ममनमार्गनिरोधकोऽभरसो जीर्णस्तदा उपसि पद्माकर इव बोधोन्मुखोऽभवम् ॥ ७॥ ध्वान्ते निमीलिता दृष्टिर्थया चिरात्ते-जधकाभासरूपिणी भाति तथा सुषुप्तमेवात्मरूपं खप्रलमाग-तमासीदित्यर्थः ॥ ८ ॥ सुषुप्तिविधान्तेः सकाशादहं स्वप्न-निद्रामविशम् । अडभावरछान्दसः । यथा अर्णवः स्वमूर्मित्वं तरभादिसहस्रविक्षेपसंकुळां खमूर्ति पश्यति तथाइमपि तदो-जोन्तर्विक्षेपसहस्रमपर्यामेखर्थः ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ तस्खाप्तं जगत् तत्सुषुप्तात्मनो दश्यान्मातुरुदराद्वालपुत्रवत्प्र-सतम् ॥ १२ ॥ सर्वदश्यविलये हि सुषुप्तिः प्रसिद्धातत्र तत्सु-**पु**प्तात्मनो दर्यादिति सुषुप्तावपि दर्यसद्भावगुक्तं श्रुला तद्-संभावयन्व्याधः प्रच्छति—तदिति तस्मुषुप्तात्मन तच्छब्देन दर्यपदेन च व्यवदेशारसुषुप्तदर्यं किचिद्रतीसमि-प्रेत्य लं विक्षे तन्मे वदेलर्थः ॥ १३ ॥ किंच तस्य प्राणिनः **युषुप्तात्मनश्रापि सकाशाज्यन्ये जगद्रूपं दश्यमन्य**रिक जायते । अन्यताप्रयोजकं जन्म किं, अथ सर्वदश्यलये अन्यसुषुप्तता वा किम् ॥१४॥ किं दर्यतज्जनमादि परमार्थतः किमिति प्रच्छित उत व्यवहारतः । आधे अवस्तुरूपलाभ किचिदित्युत्तरं मुनि-राह-जायत इत्यादिना। द्वेतोपतप्तानां मूर्खाणां कल्पनात्मकः प्रकाषो मयानूदितो न तस्तवादोऽयमिखर्यः ॥ १५ ॥ पण्डि-तविचारे तु जातादिशम्दानां सन्मात्रमेवार्थो नान्य इत्याह---आतशब्द इति।कथं सन्मात्रपर्यायस्तव्स्तृयतासुपपादयामीत्यर्थः।

मुनिरुवाच । जायते भाति कचित घटादि जगदादि च। इति द्वेतोपतप्तानां प्रलापः कल्पनात्मकः॥ १५ जातराब्दो हि सन्मात्रपर्यायः श्रूयतां कथम् । प्रादुभावे जनिस्तृक्तः प्रादुर्भावस्य भूवेषुः॥ १६ सत्तार्थं एव भृः प्रोक्तस्तसात्संजातमुच्यते । सर्गेतो जात इत्युक्ते सन्सर्ग इति शब्दितम्॥ १७ बुधानामसादादीनां न किंचिन्नाम जायते। नच नश्यति वा किंचित्सर्घ शास्तमजं च सत् १८ सर्वसत्तात्मकं ब्रह्म सर्वसत्तात्मकं जगत्। विश्वयः प्रतिपेधाश्च वद् तत्र लगन्ति के ॥ १९ या नाम शक्तिः काचित्सा तत्रैवास्तिच नास्तिच। यसाचदातम तब्रह्म तथेवातम तदातमकम्॥ २० जाव्रत्स्वप्रसुषुप्तादिपरमार्थविदां विदाम् । न विद्यते किंचिदपि यथास्थितमवस्थितम्॥ २१ स्वप्तसंकलपपुरयोनीस्त्यप्यनुभवस्थयोः । मनागपि यथा रूपं सगोदी जगतस्तथा॥ २२ द्रष्टास्पाः स्वप्तरप्टेस्त् जीवः संभवतीह हि । चिद्चेत्या तु सर्गादौ भात्यच्छा गगनाद्वि॥ २३

जनिर्घातुः 'जनी प्रादुर्भावे' इति पाणिन्यादिभिः प्रादुर्भावार्षे उत्तः । तत्र प्रादुरित्यव्ययं प्रकटतां भालर्थस्य द्योतसम्प्रधानं. भूत्रातुरेव तु तस्य वयुः प्रधानं शरीरमिल्यर्थः ॥ १६॥ अस्लेवं कि ततस्तत्राह-सत्तार्य इति । भूषांतुस्तु 'भू सत्ता-याम्' इति पाणिन्यादिभिः प्रोक्तस्सात्प्रादुरुपंसर्गसहिताद्भाव-शब्दारसंजातः प्रकटः सन्नर्थं उच्यते । सच निस्मसिद्धसप्रकाश-चिदातमैवेलार्थः । यदि प्रादुःशन्दस्य सर्गत इलार्यसावापि न काचित्क्षतिः । यतः सर्गशब्दस्यापि सूजधातोर्भावे षि घलर्थ सत्तारूपे भावे एज्यर्थस्यामेदेनान्वये सन्नेव सर्ग इति घाडिदतं नान्यदिखर्थः ॥ १७॥ एवं सति पण्डितदशा नामजन-प्रतिद्धजनमादि कस्यनित्प्रसिज्यतीत्वाह--बुधानामिति ॥१८॥ एवं सर्वसत्तात्मके ब्रह्मणि अस्तिनास्तीति वा वस्तूनां विधि-प्रतिषेधयोरप्यनवकाश इत्याह-सर्वेति ॥ १९॥ तर्धास्त-नास्तीति लोकप्रसिद्धव्यवहारस्य को विषयस्तं दर्शयन्द्रितीये प्राह-या नामेति । या मायाशकिः । यस्मात्तद्रद्धा तच्छ-बललाद्यानां तदातम् । तदात्मेति पदं व्याचष्टे--तथैवेति । यथा यथा मायाशक्तिविज्ञम्मते तथैवात्मा सर्वशक्तिषठितं खरूपं यस्य तत्तदातमकं, तदातमशब्दार्थं इखर्यः ॥ २० ॥ तस्वविदां तु सदा तुरीयपदे प्रतिष्ठितानां जाप्रदायवस्था एव न सन्ति, दूरे विधिप्रतिषेधा इत्याह-जाप्रदिति । विदा पण्डितानाम् ॥ २१ ॥ प्रत्यक्षमनुभवस्थानामप्रापो दुर्घट इति शहां दशन्ताभ्यां वारयति—स्वप्नेति ॥ २२ ॥ तर्हि खप्रमनोरथयोर्द्रष्टा प्राणादिमान् जीव इव सर्गोदावपि प्राणा-

२ उपसर्गसाहृदयादुपसर्गस्वमस्येति शेयम्.

नेह द्रष्टास्ति नो भोका सर्वमस्तीह तारशम्।
यम् किंचिच किंचिच मीनमेवातिवागि।। २४ सर्गादी कारणाभावाद्यद्यथा कचितं चितौ।
तत्त्रथास्ते चिरं क्षं स्वप्रसंकल्पपूर्यथा॥ २५ तथासाचेतनाईताहिमेति न विमेति वा।

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाश्मोश्निर्वाण्डण्डण्डण्या विश्व द्वारा नाम पदवलारिशद्धिकशत्त्वमः सर्गः ॥१४६॥

सप्तचत्वारिंदाद्धिकदाततमः सुगैः १४७

२

मुनिरुवान्तः ।
अनन्तरं महाबाहो सुपुप्ताधिर्गतस्य मे ।
स्वप्ते जगहृश्यमिदं सागरादिव निर्गतम् ॥
आकाशाङ्गादिवोत्कीर्णमुत्कीर्णमवनेरिव ।
उत्कीर्णमिव वा चित्तादुत्कीर्णमिव वा हशः ॥
प्रपुष्ठमिव वृक्षेभ्यः सर्गः पूर्वमिवोत्थितः ।
तरङ्गजालं रोधोब्धेऽरिव वा कचनं दशाम् ॥
नभस्तलादिवायातं कञ्जब्भ्य श्व चागतम् ।
पर्वतेभ्य श्वोत्कीर्णं भूमेरिव समुत्थितम् ॥
हृदयादिव निष्कान्तं संप्रविष्टमिवाम्बुदैः ।
प्रसुतमिव वृक्षेभ्यो जातं वा सस्यवद्भयः ॥
अङ्गेभ्य श्व निर्यातं समुत्कीर्णमिवेन्द्रियः ।
पटादिव प्रकटितं मन्दिरादिव निर्गतम् ॥
हृतोऽप्यागत्य पतितमुङ्गीय गगनादिव ।

दिसदेव ब्रह्म सिख्येक निर्विशेषं तत्राह—द्रष्टति । जीवोपा-धिसर्गोत्तरकारुलात्तयोः प्राणादिमाश्रीवस्तद्रष्टा प्राणाशुत्वतेः प्राक्तु शुद्ध एव तत्स्यगंदिद्रष्टा स्थित इति संभावयेत्यर्थः ॥२३॥ सभ्युपेत्य सर्ग तद्रष्टुः शुद्धलमुक्तम्। वस्तुतस्तु त्रिपुटी सर्वोपीहेव शुद्धे निवर्तत इत्याह—नेहेति । तादशं चिदेकरसम् ॥२४॥ सर्गादावपि चिदेव सर्गात्मना कचिता यावत्प्रलयं तथैवास्त इवेत्याह—सर्गादाविति॥२५॥तथा उक्तप्रकारेण चेतनादात्म-भूतादेव द्वेतादक्षतायामन्यताभ्रान्त्या विमेति । तत्त्ववोधे निमेति । वाशब्दो व्यवस्थितविकल्पार्थः । यथा बालः स्वान्ने लिसेति तद्वदित्यर्थः ॥२६ तत्त्वतोऽनादिमध्यान्तमस्य च्छं व्रद्धेव भ्रान्त्या अतिविकारि नानाच भूला माति यथास्थितम् । अशान्तमपीदं जगत्तत्वतः परिशान्तमेव प्रवोधेनेत्यर्थः ॥२७॥ इति श्रीवासिष्ठमहारा-मावणे तात्यर्थप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे षट्चरवार्रिशविकक्षतत्तसः सर्गः ॥ १४६॥

सुनुसादत्र दशन्तैः स्वमनिर्गमनकमः । तत्र पूर्वकुदुम्बादिवीक्षातश्वं च वर्ण्यते ॥ १ ॥ सागरात्तरङ्गमणिमुक्तादिकमिव निर्गतम् । अत्र सर्वत्र संभवे सपमा असंभवे उरप्रेक्षा बोध्या ॥ १ ॥ उरकीर्णे टङ्क्छेदा-योग० १७९ उपायनं परे लोके गृहीतमिव वा भुवः॥ O प्रसून ब्रह्मचृक्षमा तरङ्गमिव वास्व्धेः। अनुत्कीर्णप्रकटनाभित्स्तम्मे चारुप्रविका ॥ 4 आकारामुन्मयानन्तकुड्यमाकारापत्तनम् । मनो मत्तो गजमयो भिथ्या जीवस्य जीवितम् Q अभित्तिकमरङ्गं च विचित्रं चित्रमम्बरे। शस्त्ररेशस्य सर्वस्त्रमविद्याख्यस्य कम्यचित्॥ महारम्भं स्थिरमपि देशकालविवर्जितम्। नानाट्यमपि चार्वतं रानात्मापि न किंचन ॥ ११ गन्धवेषुरद्दष्टान्तस्याप्यवस्तुतथा समम्। जागरायां हि किल तद्भान्तमध्यपळभ्यते ॥ १२ चिद्धामात्रमनारव्धमण्यारव्धमिव स्थितम्। देशकालिकयाद्रव्यसर्गसंहारसंयुतम्॥ १३ सुरासुरनराधारगर्भगर्भमनोहरम । पृथकोष्टस्थवीजीधसंपूर्णमिव दाडिमम्॥ 68

दिना शिलाप्रतिगानसम्बद्धितम् ॥ २ ॥ पृत्रेशुस्थितः पूर्वेशिद्ध एवं न तदानीसुरपत्र इति भात इत्यर्थः । रोघः कुउं तरसं-निहितादब्पेसारङ्गजारुभिव। इशां नेत्राणां अशोशकद्विचन्द्रा-दिभाजेन कचनमित्र वा ॥ ३ ॥ भूमेः शहालतं कुष्यवस्मी-कादीव ॥ ४॥ अम्बुर्दर्नभगि संप्रविष्टमिव सस्यपद्विद्धवप-रिणामेन ॥ ५ ॥ टङ्क्यानीयैरिन्दियेविशु समुरकीर्ण उद्देख-नेन निष्पादितमिध प्रसारितमित्र वा । पटात्यकटितं चित्रमिष ॥ ६ ॥ राभ्रां प्रजामिराहतसुपायमितः इह लोके संचितं पुष्यं परे होके फलभावेनोपस्थितांनव । मुनः सननाधुपार्वर्यः हीतं निधानमिव वा॥०॥ब्रह्मलक्षणस्य वृक्षस्य प्रमृत्तमिव काळे-नोपनीतम् । उत्थिर्णं विनैव प्रकटनं यस्यास्त्रयाविधाः शाल-भक्षिका ॥ ८ ॥ आकाशलधणमृद्विकारभूतमनन्तमसंख्यातं कुञ्चम् । मनसो मतंगजमयो बिलासः । जीवितं सर्वस्वम् ॥९॥ शम्बरं माया तत्र ईशस्य समर्थस्य अधियाख्यस्य कस्यचिदै-न्द्रजालिकस्य मायासर्वेस्वम् ॥ १० ॥ देशकाउसीक्म्येऽपि विस्तारचिरलद्शिनादेशकालविवजितम् ॥ ११॥ यञ्चान्तमपि जागरायामुपलभ्यते रज्ञुसर्पमृगतृष्योदकादि तैनापि समिन-खनुषज्यते ॥ १२ ॥ १३ ॥ सुरासुराधुपलक्षितत्रैलोक्याचारै-र्गर्भेसाद्वभैध कदलीस्तम्भवन्मनोहरम् । तत्राप्यवान्तरगर्भे-

नदीशैलवनादिस्थव्योमताराभ्रसंकुलम्। गीताब्धिरणपाठास्यपवनारावधरम्॥ १५ ततो विलोकितं तत्र तन्मया दृश्यमण्डलम्। यावसमेव पश्यामि ब्रामं प्राक्तनमारूपदम्॥ तानेच सकलान्बन्ध्रंस्तथा संस्थानसंस्थितान्। तान्प्रशंस्तां महेलां च तदेव च तदा गृहम्॥ १७ तां रघा प्राक्तनीं प्राम्यामाहरद्वासनां वलात्। तटस्थं मुद्यमानाङ्गमिव वीचिर्महार्णवे॥ १८ अथाहमभधं तत्र तदालिङ्गननिर्वृतः। गृहीतवासनो नृनं विस्मृतप्राक्तनस्मृतिः॥ बिम्बं तत्तदुपाद्ते यद्यद्प्रेऽवतिष्ठति । यथादर्शश्चिदादर्शस्तरीवायं स्वभावतः॥ २० यस्तु चिन्मात्रगगनं सर्वमित्येव बोधवान्। द्वैतेन बोध्यते नेह सोऽङ्ग तिष्टति केवलः॥ २१ न नइयति स्मृतिर्यस्य विमला बोधशालिनी। अयं द्वेतपिशाचस्तं मनागपि न बाधते॥ २२ येषामभ्यासयोगेन साधुसच्छास्त्रसंगमैः।

उद्ति बोधधीर्भूयो या विस्तरति नोदयम्॥ २३ अमाढा मे तदा सासीद्वोधधीर्या तया हता। अद्य शक्तोति मे बुद्धि हन्तुं क इव दुर्महः॥ २४ तयापि व्याध विद्धीदं बुद्धिः सत्सक्तवर्जिता। द्वैतबोधेन कप्टेन सुच्छ्रान्समुपैष्यति॥ २५ व्याध उवाच। प्वमेतन्मुने सत्यं पायनैस्त्वद्विबोधनैः। ईटशैरपि मे बुद्धिने विभाग्यति सत्यदे॥ २६

प्वमेतन्मुने सत्यं पायनैस्त्विद्वबोधनैः।
ईष्टद्दीरिप मे बुद्धिने विधाम्यति सत्पदे॥ २६
स्यादीदशमधो न स्यादिति संदेहजालिका।
नैतस्मिन्स्वानुभूतेऽपि वस्तुन्यचापि शाम्यति॥२७
अहो बत दुरन्तेयमभ्याससुदृढीकृता।
अविद्या विद्यमानैव या शान्तैव न शाम्यति॥२८

सत्सङ्गतेः पदपदार्थविबुद्धबुद्धेः सच्छास्त्रसत्क्रमविचारमनोहराङ्गैः। अभ्यासतः प्रशममेति जगद्भमोऽयं नान्येन केनचिदपीति विनिश्चितिमें॥ २९

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठ० वा॰ मो० नि० उ० अ० वि० श० खप्रोपलम्भनं नाम सप्तचलारिशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १४७ ॥

अप्टचत्वारिंदाद्धिकदात्ततमः सर्गः १४८

व्याध उवाच । एवं चेत्तन्मुनिश्रेष्ठ सत्यतासत्यता कथम् ।

ष्वनन्तब्रह्माण्डकल्पनसत्वात्पृथकोष्ठस्थवीजौधेः संपूर्णे दाडिम-फलमिव स्थितम् ॥ १४ ॥ तदेव प्रपन्नयति — नदीति । कल-धौतशिलान्यायेनेति भावः ॥ १५ ॥ तं पूर्वप्रवेशस्वप्रदष्टं प्रामं तत्र प्राक्तनमास्पदं गृहं च पश्यामि अपश्यम् । 'यावत्पुरा-निपातयोर्लंद्र'॥ १६ ॥ तथासंस्थानं प्रागनुभूतवयोवस्थासं-निवेशस्तेन संस्थिताम् । महेलां भायीम् ॥ १७ ॥ महार्णवे वीचिः प्राक्तनं तटस्थं मुखमानं व्याकुलं खाङ्गमिव स्थितां प्राक्तनी प्राम्यां गृहक्षेत्रपुत्रबन्ध्वाद्यमिमानवासनां बलादाहरत् भानयदिति बन्धुपुत्रमहेलागृहविशेषणम् । तत्र 'नपुंसकमन-पुंसकेन-' इति नपुंसकशेषे एकवक्कावः ॥ १८ ॥ तेषां बन्धु-पुत्रमहेलानामालिङ्गनेन निर्देतः सुखितः ॥ १९ ॥ प्रसङ्गा-द्विमृष्ट्विमृष्ट्वितोः स्वभावान्प्रपश्चयति-विम्बमिखादिना । यथा प्रसिद्ध आदशीं यद्यदेपेऽत्रतिष्ठते तत्तरप्रतिबिम्बं खयम-प्युपादते तथा विदादशीं वासनोपस्थापितं यदात्प्रविमवतिष्ठते तत्तदाकाराभासमुत्तरत्र गृहातीत्यर्थः ॥ २० ॥ विमृष्टचितस्त नायं खभाव इत्याह-यिस्त्वति । सः वासनामयेन द्वेतेन प्रतिबिम्बमहणादिना नैव बोध्यते । 'यस्यां जाप्रति भूतानि सा निषा पर्यतो मुनेः।' इति भगवदुक्तन्यायादिति भावः। 'बाध्यते' इति वा पाठः ॥ २१ ॥ तदेवाह—नेति ॥ २२ ॥ या बोधर्धारुदिता चेत्पुनः खोदयं न विसारत्येव। सदैव ब्रह्मा-

स्थितः स्वप्रदशा चैष सुमहान्संशयो मम ॥

नुसंधानात्मना आस्ते इत्यर्थः ॥ २३ ॥ तर्हि तत्त्ववित्त्वं कथं तदा व्यामूबस्तत्राह-अप्रौहेति । या अप्रौढा धीस्तया बन्ध्वा-दिवासनया इता, तहींदानीमपि ते बोधधीरश्रीदेव नेत्याह-अधेति । दुर्पहो दुर्वासनाप्रचयः ॥ २४ ॥ हे व्याध, तव बुद्धिरपि सत्सङ्गवर्जितेति हेतोर्नेदानीमेव शान्तिमेति किंत्र वक्ष्यमाणतपःकाययृद्धिमरणजन्मान्तरराज्यादिना कष्टेन द्वैत-बोधेन कुच्छ्रात्साधनाभ्यासपरिश्रमाञ्ज्ञानमासाद्य शान्तिमुपै-ध्यति ॥ २५ ॥ मुन्युक्तमनुमोदमानो न्याध उवाच-एवमे-तदिति ॥ २६ ॥ २७ ॥ अविद्यमानैवेति सदा शान्तैव न शाम्यति ॥ २८ ॥ सत्सङ्गवर्जितेति यदुक्तं तद्प्यनुमोदमान आह—सत्सङ्गतैरिति । सच्छाखं सत् कमो गुरुसंप्रदायो विचारश्रेखादिना मनोहराक्षेः ससक्षमेः प्रस्ता या पदपदार्थवि-वेकबुद्धिस्तद्भ्यासत्थोत्पन्नात्तत्त्ववोधाद्धमिकाकमेणायं जगद्भ-मः प्रशममेति । अन्येन केनचिदपि न प्रशासनेतीति मे विनि-श्चितिर्निश्चय इत्यर्थः ॥२९॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणता-त्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ससचत्वारिंशद्धिक-शततमः सर्गः ॥ १४७ ॥

स्वमासत्यत्वसत्यत्वहेतुरत्र निरूप्यते । जायत्स्वमसुषुरुवैषयं चित्साचीरुवैषयशुद्धियुद् ॥१॥ यदि वासनानुसारि चिद्वेदनमेव स्वप्नो जायस स्वप्नविशेष

मुनिरुवाच । देशकालकियाद्रव्यैर्या संविक्तिश्चितोदिता । काकतालीययद्भाति सा सत्यस्वप्रनामिका॥ मणिमन्त्राषिद्रव्यैः क्रचिद्व्यभिचारिणी। कचित्सव्यभिचारा चित्सत्यस्वप्राभिधा स्मृता सत्यस्वप्रस्थितिलोंकेष्वीद्रपृपा यदा स्थिता। तर्देषा काकतालीयन्यायादन्या न लभ्यते॥ R यं यं निश्चयमाद्ते संवित्स्वदृढनिश्चया। तथा तथा भवत्येषा फलयुक्तस्त्रभावतः॥ * तमेव निश्चयं त्वस्या अन्यः प्रतिनिहन्ति चेत्। तत्रासी निश्चयः प्रौदः स कथं लक्ष्यभाग्भवेत् દ્દ न बहिर्नान्तरे सन्ति पदार्थाः केचन कचित्। संविदेका जगद्र्पैर्यथेच्छति तथा स्थिता ॥ O स्वमोऽयं सस्य इत्यन्तर्निश्चयेन तथोदिता। तथैवाशु भवत्येषा संशयात्संशयं वजेत्॥ ረ अन्यतोऽपि फलं प्राप्तं स्वप्नसत्यत्वकल्पनात्। स्बप्नेन सुचितमिदं फलमित्येव वेस्ययम्॥ ९ सर्व एव निजया जगत्र्ये संविदातिशयिता हडा अपि।

एवेखेवं चेत्सिद्धान्तसाहिं कि्षतस्वप्न उपित दष्टगजारोहणा-दिर्लोभादिफलसूचकलात्सत्यः । अन्यस्तु अरण्यगमनभ्रम-णादिः फलादर्शनादसत्य इति स्वप्रहशी सत्यतासत्यते कथमुप-पद्येते । एवं हेरण्यगर्भमानोरिथकः सर्गोऽर्थिकयासमर्थलात्सत्यः अस्मदीयस्वसत्य इति जाशजगत्यपि एव संशयः सुमहान्मम स्थितः । अधिष्ठानिकत्सत्यतयाध्यस्ते सत्यता स्वतस्वसत्यता चोमयत्रापि तुल्यैव चेद्रैथम्ये को हेतुरिति भावः॥१॥ या सप्तसंवित्स्वप्रेश्वरीसानिध्यादिदेशे प्रत्यूषादिकाले देवतारा-धनतपोत्रतादिकियामिरं विष्यकुशास्तरणादिद्रव्येश्व प्रमाणैरवर्यमीदशस्त्रप्रसेदशं फलं भवलेवेति निश्चिता उदेति सा संवित् काकतालीयफलकशकुनादिवदवस्यमुत्तरकाले फल-लाभात्सत्यस्त्रप्रनामिका भवति ॥ २ ॥ मणिमस्त्रादिनिमित्तै-जीयमाना तु तद्योग्ये पुरुषे अव्यभिचारिणी अयोग्ये तु सव्य-भिचारापि शास्त्रमर्यादानतिलङ्खनादुभयत्रापि सलखप्राभिधैव स्मृतेखर्थः ॥ ३ ॥ तत्रोभयत्रापि काकताठीयन्याय एव शरणं न दृष्टं नियामकं किचित्रिक्पयितुं शक्यमित्याशयेनाह-सत्ये-ति ॥४॥ हिरण्यगर्भादिसंवित्तु प्राक्तनोपासनापरिपाकजलात्स-त्यसंकल्पक्रपहढानिध्या सती यंथे निध्ययमादते तथा तथा भव-व्येवेत्याह्—यंयमिति । प्राक्तनोपासनफलप्रयुक्तव्यभावतः॥५॥ सापि अन्यदीयतद्विरुदसल्यसंकल्पेन कृतो न प्रतिहन्यते तत्राह-तमेबेति । तस्यास्तं सर्गादिनिश्वयमन्यः प्रतिनिहन्ति चेतत्र प्राक्तनोपासनाकास्त्रे प्रौढो जगत्स्रष्टाइमिति निश्चयः प्रयाणकाल उद्भूतः 'तदैतल्लोकजिदेव' इत्यादिश्रुतिसिद्धस्तल-श्यफलभाक् कथं भवेत् । अतस्तद्विरोधेनैवान्येषां सिद्धानां

कालतो व्यमिचरन्ति देशतो यत्नतश्च चिरतोऽचिरेण वा॥ \$0 सर्गादावेव चिद्योम भानमप्रतिष्ठं जगत्। वस्तुसत्तां चिदेवातो यथेष्टं तनुते तनुः॥ ११ चिन्मात्रं वर्जियित्वैकं ब्रह्मान्यत्सर्वदाखिलम्। विद्धि सत्यमसत्यं च नियतानियतं स्थितम्॥ १२ यसाद्रक्षेत्र सर्वात्म सदेकमेव नेतरत्। तस्मार्तिक नाम तत्सत्यं किमसत्यं च या भवेत् १३ अतः स्वप्नः क्विसत्यः कविद्यान्तत्य एव वा। अबुद्धानां प्रबुद्धानां नासद्रूपो न सन्मयः॥ संविद्धान्तिरियं भाति जगन्नाम्नी स्वरूपिणी। स्वयं च भ्रान्तिरसीति वादिनी कात्र निश्चिता १५ चितिरेव चिरायेदं चित्तं चिमचिमायते। यदात्मन्येव सलिलं द्रवयत्तदिदं जगत्॥ १६ यथा स्वप्नं समालोका सुवुत्तमनुभूयते । तथा जाम्रत्समालोक्य निद्रा समनुभूयते ॥ १७ अतस्त्वं जाग्रदेवेदं स्वप्नं विक्रि महामते। स्वमं च विद्धि जाप्रस्वमेकमेतद्रजं द्वयम्॥ १८ ब्योमैवाचेत्यचिन्मात्रभानमेकमिदं ततम्।

संकल्प उदेति न तद्विरुद्ध इति भावः ॥ ६॥ तथाच मंति-त्स्वातक्रयमप्रतिहतमेवेत्याह—नेति ॥ ७ ॥ शास्त्रादिप्रमाण-कृतनिश्वयेन । शास्त्रादिप्रमाणसंशयात्तु फलसंशयं प्राप्तुयान् ॥ ८ ॥ काकतालीयवदिति यदुक्तं तदुपपादयति - अन्यत इति ॥ ९ ॥ एवं जामस्प्रसिद्धघटादिसंविदोऽपि काकतालीया एव, तद्विषयेष्वपि देशकालमेदेनान्यथाभावदर्शनादिल्याह----सर्व एवेति । निजया तत्तत्पुरुषसंविदा अतिशयिताधिरपरि-शीलिता अर्थिकयादिना हडीकृतघटारिस्वभावा अपि सर्व एव भावा देशतः कारुतश्च मुद्गरप्रहारादियञ्जतश्चान्यथाभावमापद्य-मानाः पूर्वनिश्चितं स्त्रभावं व्यभिवरन्ति ॥ १०॥ चित्तु स्त्रसः-भावं न व्यभिनरतीखव्यभिचार्यप्रतिपक्षभावा सेव सत्या अस-त्यसत्रतिषजगद्वेषं धत्तः इति राद्धान्तः इत्याह—सर्गादाविति ॥ ११ ॥ अतएव चिन्मात्रं सङ्गैकनियतमन्यत्त्वनियनसत्त्वमि-त्याह—चिन्मात्रमिति ॥ १२ ॥ यस्मात्सहद्वीकमेव सर्वात्मकं तस्मात्तदतिरिक्तं सत्यमसत्यं वा कि भावयेत् । नकिचिदित्यर्थः ॥ १३ ॥ एवं विचारे खप्नोऽपि कचित्कदाचित्सलाः कचित्क-दाचिदसत्योऽपि संविदात्मना सलस्तदन्यरूपेणासत्यश्रेलाह— अत इति ॥ १४ ॥ स्वरूपिणी आकारवती । निश्चिता यथार्था ॥१५॥ चित्तं भूत्वेति शंपः । यश्चिमचिमायते साभासं सग्दते तदेवेदं जगत् ॥ १६ ॥ जाध्रत्स्वप्रसुषुप्तशे धनेषद्वतषृतवद-भिन्ना एवंत्युपपादयितुं भूमिकां रचयति — यथेति । निदा खप्रः ॥ १० ॥ अस्लेवं कि ततस्तत्राह-अत इति । यथा धनं पृतमेवेषद्विलीनमीषद्विलीनमेव पुनर्धनतामापद्यत इति ष्टतामेदः प्रत्यभिज्ञानात्तद्वदिखर्थः ॥ १८ ॥ एवं चाविधावृत-

जात्रत्स्वप्रसुषुत्याख्याः पर्यायरचना इह ॥ १९ नेह नामास्ति नियतिर्न चानियतिरस्ति च। नियत्यनियती बृहि कीरदो स्वप्नसंविदि 🛚 याबद्धानं किळ स्वप्ने ताबन्सेव नियम्बणा । स एव संविद्धानस्य कुर्यान्नियमनं मुनिः ॥ ર્શ स्वच्छन्दं वातलेखायाः स्फूरन्त्याः संविदस्तथा । अकारणकमेचाङ्ग नियतिः केव कीटशी ॥ २२ अथाकारादियन्नाम फल्प्यते कारणं विदः। तदकारणकं सर्गः स्थादनन्यभ्र व चितेः॥ पतावत्येव नियत्तिरत्र यद्याम यद्यथा। રક यावत्प्रस्फ्रिति भानं तत्तथा न तद्न्यथा ॥ कदाचित्सत्यना स्वप्ने कदाचिष्ठाप्यसत्यता। अभाषाभियतेरेव काकतालीयमेव तत् ॥ यत्स्येनवातमना भाति मणिमस्रीषधात्मना। यन्नाम नियतं तत्तु जाश्रत्यपि हि दृश्यते ॥ २६ जात्रत्स्वप्रश्च चिद्धानमात्रमेवान्यतात्र का । जात्रति स्वप्ननगरे वेदनात्सदशात्मकम्॥ जाप्रश्न संभवत्येव यज्ञावदिति राव्दितम्।

इत्यार्षे श्रीजा० बार्स्सी० मो० निर्वो० उ० अधि० वि० रा० खप्रनिर्णयो नामाष्ट्रचलारिशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १४८ ॥

स्वप्र एव जगद्र्पं निर्निद्रस्यैव चात्मनः॥ २८ स्वप्नो वा नाम नास्त्येच यः स्वप्न इव दाब्दितः। सुप्तासुप्तैकरूपस्य ब्रह्मणो बोधरूपता ॥ ર્ जाप्रत्स्वप्रादयो वैते न केचन कदाचन। दृदयं पद्मयति सत्ताशु मृतिभ्रान्तेरमन्तरम्॥ ३० यथानवरतं कालमनन्तं सीकरोर्भयः । त पर्वान्यवद्भाशावद्दनन्याः स्फुरन्त्यलम्॥ तथानन्ये परे सर्गाः स्फुरन्खस्फुरिता अपि। शिलाकोशान्तलेखावजाप्रत्खापादि तत्र किम् ३२ जाग्रत्स्वप्रसुषुप्ततुर्यकवषुः साकारतावर्जितं सर्वाकारमपि व्यतीतकलनं सर्गे दारीरं द्धत्।

व्याप्तं चित्रपुपा तथापि सुषिरं शून्येन दृश्यात्मना चिन्मात्रं खमिदं मनागपि नभोमात्रात्र मिन्नं पुनः साकाशानिलवहिवारिश्वरणीलोकान्तराम्भोधरं सर्गादाविप कारणाननुभवाश्वित्तात्मकं केवलम्। नाम्ना वर्जितमेव बोधवपुषा संयुक्तमेवान्ततः शुद्धं वेदनमात्रमेव सकलं दृश्यं न वस्त्वन्तरम्

चिन्मात्ररूपा सुवृक्षिरेचेका धृतवत्सर्वदा द्रष्टव्या । तस्या एव सर्वे नामरूपभेदाः पर्यायरचना इति कछितमित्याह—न्योमै-वैति ॥ १८ । खप्नादेः फर्लायस्यनिवती अपि ततः **पृथक्** स्त इत्याह—नेहेति । मिध्यालादपि ते पृथकु स्त इत्याह— नियस्त्रनियती इति ॥ २० ॥ अज्ञानायुना चिदनियन्त्रिता जाप्रत्स्त्रती । श्रमादिनिमित्तनियन्त्रिता मुद्रस्तिः । प्रयक्षनियन्त्रिता तु समाधिः । अज्ञाननाशं सैव मुक्तिः। एवं राति जाप्रत्रिरोधेन मनोव्यापारमात्ररूपे सप्ते यानत्कालं भानं तावरसैव चितो बाह्यप्रवृत्तिनियन्त्रणाशोकान्तरम् । यावच संविद्धानस्य निय-🗫णा तावत्सुपुप्तीः स आत्मैच सर्वशोकान्तरम् । एवं हाला मुनिविशोकसमाधियुखविश्रान्सर्था नियमनमेव कुर्यादिसर्थः ॥ २९ ॥ नतु न संवित्रियन्तुं शक्यः तस्य वातलेखाया इव खप्राचाकारस्फुरणनियतेरित्याशस्त्राह-स्वच्छन्दमिति । न तार्षाद्वययाकारस्युरणं संविदः स्वभावः सुषुप्तावदर्शनात् । नच खप्ने तथा रकुरणे कारणान्तरं निरूपियतुं शक्यं यक्ति-बन्धना नियतिः स्मादिति का नियतिः कीट्यी वेखर्थः ॥२२॥ ननु बाह्यघटपटाचाकार एव म्बसंबन्धे संविदः खाकारतायां कारणं करप्यते तत्राह-अधेति । भवेदवं यदि सर्गे किचि-दन्यत्कारणं निरूपवितुं शक्येत । यदा तु प्रागुक्तयुक्तः सर्गः अकारणकसादा चितरमन्यदाकारावि चितेः कारणं न स्यादे-वेखर्यः ॥ २३ । तर्हि कि सर्वापि नियतिर्भक्षा नेखाह-एतावरपेवति । या चितिर्यदा यथा स्फुरति तद्वसु तदा तथा पारमार्थिक व्यावहारिकं प्रातिभाषिकं येति नियतिर्यावद्यव-**र**ाग्सस्येवेलर्थः ॥ २४ ॥ स्वप्नसञ्जतानेयतिस्तु यथा शास्त्र-

रवेन सर्वत्रेति काकतालीयवदित्युक्तमेवेत्याह--कदाचिदिति ॥ २५ ॥ मणिमन्त्रीषधात्मना प्रयुक्तसत्यतानियतिस्तु जाप्र-रप्रत्ययेऽपि समेत्याह—यदिति ॥ २६॥ अतएव जाप्रत्स-प्रयोधिनमात्रलादमेद उक्त इत्याह-जाप्रदिति । तयोर्वेग-खरूपं वेदनसरूपं वानुभवतस्तुस्यमेवेसाइ---जामतीति ॥२० अतएव निर्निद्र आत्मनि द्वयोरपि व्यमिचारादसस्वमेवेखाह्— जामदिति द्वाभयाम् ॥ २८॥ २९॥ एवं सति निर्निद्रस्य सुपुप्तरिप नास्त्येवेखारायेनाइ—जाप्रदिति । एवमात्सन्ति-कटश्यादर्शनरूपा आत्मोच्छेदादिरूपा वा मृतिरिप नास्त्येवे-त्याह—हर्यामेति । सत्ता अविपरिञ्जप्तचित्सत्ता ॥ ३०॥ अभवत् दिग्भ्रमे आशा दिशस्तद्वच अनन्यास्त एव अन्यव-रस्फुरन्ति । अनन्या इति बहुत्रीहिः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ **इदमा**-त्मसरूपं जाप्रत्सप्रसुपुप्तवपुरतद्विषद्धतुर्थकवपुष्य तथा साकार-तावर्जितं सर्वाकारमपि व्यतीतकालकलनं सर्गात्मककालपरि-च्छित्रशरीरं दधदपि शून्येनैवानेन चिद्वपुषा शून्येनैव दश्या-त्मना खात्मकमेव सुषिरं शून्यं व्याप्तं तथापि पुनरिदं चिन्मात्रं खमाकाशात्मकं नभोमात्राद्वपान्मनागपि मित्रं नेत्यर्थः॥३३॥ किंच सकलमाकाशादिभूतभौतिकसहितं दृश्यं जगत्सर्गोदावि कारणस्यान्यस्य प्रमाणेरननुभवारकेवछं हैरण्यगर्भचितारमकम्। तथाच चित्तात्मकस्य मनोराज्यगतस्य नामरूपाभावानाम्ना वर्जि-तमेव । बोधवपुषा मनःसाक्षिणा संयुक्तमेव । अन्ततो मनौ-विलये शुद्धं वेदनमात्रमेव न वस्लन्तरमित्यर्थः॥ ३४॥ द्वति श्रीवासिद्धमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धेऽष्ट्रचरवारिशवधिकशततमः सर्गः ॥ १४८ ॥

एकोनपञ्चादाद्धिकदाततमः सर्गः १४९

व्याघ उवाच । अनन्तरं मुने बृहि तत्तस्वं जागतस्य ते । किं वृत्तमुरुवृत्तान्तदातनिर्वाणसंख्तेः॥ मुनिरुवाच ।

ततः शृणु तदा साधी तसिस्तद्भदयीजसि। अपूर्व पय वृत्तान्तः को वृत्तो वृत्तसम्पृह ॥ २ तथा मम च तत्रस्थविस्मृतात्मचमत्वृतेः। अभ्यवतेत वे काल ऋतुसंवत्सरात्मकः॥ कलत्ररञ्जितमतेर्मम वर्षाणि घोडरा। तत्र तानि व्यतीनानि गृहस्थाश्रमतोऽमतेः॥ कदाचिषाजगामाथ गृहमुप्रतपा मम । मुनिर्मान्यो महाबोधो बुधोऽतिधितया तथा॥ सोऽत्र संपूजितस्तुष्टः सुप्तवानभुक्तवांस्ततः । इदगङ्ग मया पृष्टो विमृद्य जनताक्रमम्॥ દ્દ भगवन्भूरियोघोऽसि जानासि जगतो गतीः। यसाददृष्टकोघोऽसि सुखे मृद्धासि नो रतिम्॥ ७ सुखदुःखान्यपायान्ति कर्माप्तेः कर्मशालिनाम्। शुभाशुभैः शरत्काले सस्यानीव फलार्थिनाम् ॥८ सममेवाद्युभं कर्म किमिमाः सकलाः प्रजाः । कुर्घन्त्यासां यदा यान्ति दोषाः सर्वादयः समम् ९ दुर्भिक्षावप्रहोत्पातं सर्वादि सममेव किम्।

> इह तस्स्त्रमञ्जान्ते गृहागतमुनेमुखात् । सङ्गनां तुरुषदुःखादिनिमित्तं श्रुतमीयंते ॥ १ ॥

हे युने, प्राणिदेहे प्रख्यादिमिहहयुत्तान्तशतैः सद्द निर्वाणाः संग्रतयो यस्य तथाविधस्य ते गृहे भाषीहरूवादिसहवासानस्तरं तत्रानुभूयमानस्य जागतस्य इतान्तस्य संवन्धि कि वृत्तं तत्तत्त्वं ब्रुहीत्यन्ययः ॥ १ ॥ हे वृतसस्प्रह हे सायो, ततः परं तस्य प्राणिनो हृदयौजिस अपूर्व एव यो बृत्तान्तो बृत्तस्तं शृषु । य इल्पर्ये क इति प्रयोगः प्रक्षानुवादार्यः ॥ २ ॥ ३ ॥ अमतेः आत्ममननश्रुत्यस्य ॥ ४ ॥ कदाचिद्वधो मुनिरतियितया मम गृहमाजगाम । तथेत्युत्तरान्वयि ॥ ५ ॥ आर्थात् कमात्पूर्व भुक्तवास्ततः स्रुप्तवान् । जनता जनसमृहस्तत्याः समानसुख-दुःखागमकमं विमृश्य विचिन्त्य ॥ ६ ॥ सुखे विषयसुखलवे रतिमासिकम् ॥ ७ ॥ ८ ॥ आसां जनतानां सर्वान्भक्ष्या-अक्यान् आदयन्ति भोजयन्तीति सर्वोदयो दुर्भिक्षादिदोषाः समभेव यदायान्ति तन्न निमित्तभूतमञ्जर्भ कर्म कि सममेव कुर्वन्ति ॥ ९ ॥ यत्सममेव प्रवर्तते तत्कि कस्य दुष्किया समाना । सर्वेषां युगपत्तदनुकूलदुष्कर्माचरणाप्रसिद्धेरित्यर्थः ॥ ९० ॥ स्मयमानो विस्मयवानिवोन्मना ईषद्धसन्निति वा ॥ ११ ॥ नास्य संशयः सर्वसंशयबीजमज्ञानमनिरस्य समा-भातुं शक्य इलिमिप्रेल तदर्थमात्मतत्त्वं दश्यमिध्यात्वं च ब्यु-

जनजालस्य फलति समाना कस्य दुष्किया ॥ १० इत्याकण्ये समालोक्य सायमान इवोन्मनाः । स उवाच वचो चन्द्यममृतस्यन्दसुन्दरम् ॥ ११

अन्यमुनिरुवाच । साधो साधुविविक्तान्तःकरणे यनु कारणम् ।

साधा साधावावकान्तःकरण यनु कारणम्।
सद्वासद्वास्य दश्यस्य कस्माज्ञानासि कथ्यताम् १२
संस्मरात्मानमिखलं कर्त्वं केह स्थितोऽसि च।
काहं वा किमितं दृश्यं किं सारं किंचिदेव च॥ १३
स्वममात्रमिदं भाति किल कस्मान्न वेत्सि भो।
अहं स्वमनरो यत्तं त्वं स्वप्नपुरुषोपैमः॥ १५
अनाकारमनाख्येयमनाद्यमपकल्पनम्।
इदं चिन्मात्रकाचस्य काचकच्यं जगत्स्थितम् १५
रूपमीद्दशमैवास्य चिन्मात्रस्यास्त्यकृत्रिमम्।
सर्वगस्य यदेतद्यद्यत्र वेस्यस्ति तत्र तत्॥ १६
सकारणत्वकलनादस्य सर्वमकारणम्।
अकारणत्वकलनादस्य सर्वमकारणम्॥

अकारणत्वकलनावस्य सर्वमकारणम्॥ १७ आसां प्रजानां त्वस्माकं विराडात्मा स आततः। वयं द्विदि स्थिता यस्य स चास्मिबद्धशादितः १८ भविष्यत्यपरोऽन्यासां विराडात्मा स एव च। कारणं सुखदुःखानां भावाभावात्मकर्मणाम् १९

त्वाद्यितुं स मुनिर्मा पप्रच्छ-साधो इति । हे साधो, विविक्ते चिद्चिद्विवेकवत्यन्तःकरणे सति अस्य दृश्यस्य तु यत्कारणं सद्वा असद्वा साधु जानासि तत्कस्माज्ञानासि कथ्यताम्। खया जानासीति निर्दिशस्यमातुः पृथक्कृत्य साक्षिणः शुद्धस्य प्रश्न-विषयत्वयोतनार्थं कस्मादिति हेतुपधम्या निर्देशः ॥ १२॥ तत्र विवेकासामर्थ्यालुर्णीभूतं मां निरीक्ष्य सः प्राक्तनसर्वेष्ट-त्तान्तैः सद्द तत्साक्षिणमात्मानं सारेत्याह---पंसारेति । कि-चित्तुच्छमसारगेव च किम्॥ १३॥ असारतामेव प्रकट-यति—खप्रमात्रभिति । यद्यसाद्धेतोः ॥ १४ ॥ काचकच्यं कान्तिविशेषः ॥ १५ ॥ तत्राकृत्रिमं चिन्मात्ररूपं खाध्यसे यथावेदनं सत्त्वादि निर्वाहयतीत्याह--रूपमिति ॥ १६ ॥ अतएव सर्ववस्तूनां सकारणकत्वादिवादा अपि तत्कल्पनानु-सारेण व्यवस्थिता इत्याइ-सकारणत्वेति ॥ १७ ॥ समष्टि-व्यष्टिभावकल्पनाप्यस्माकमसाधिदधीनवेत्याह--आसामिति । यस प्राणिनो हृदि ओजसि वयं स्थिताः सोऽस्माकं विरा-डात्मा । सच अस्मिक्तित्यनावशादेव विराङ्गावमितः । स्वक-रूपनया लन्यसाधारणी व्यष्टिरेवेखर्यः॥ १८॥ एतस्प्राणि-वदपरोऽपि प्राणी अन्यासां प्रजानां क्रितहातमा भविष्यतीति संभाव्यते । तस्मिस्तु देहे स एव सुखदुः खारीनां भोकृतया

१ ममेति पाठः ।

विराइधातुविकारेण विषमस्पन्दनादिना। 30 तदङ्गाषयवस्यास्य जनजालस्य वे समम्॥ दुर्भिक्षाचन्रहातीतमायाति शममेति वा। यसाद्विराजो या सत्ता सा सर्गस्यास्य सर्गता २१ काकतालीयवरसाधो केषुचिद्रएकर्मसु । समं पतित दःखादि पादपेष्वरानिर्यथा॥ રર कर्मकल्पनया संवित्स्वकर्मफलभागिनी । कर्मकल्पनयोन्मुका न कर्मफलभागिनी॥ २३ या या यत्र यथोदेति कल्पनाल्पाथवाधिका। सा सा तत्र तथैवास्ते सहेतुकमहेतुकम्॥ રપ્ર नास्त्येव स्वप्नमये कारणसहकारि कारणाविपुरे। तसात्तवनादि शिवं चेतनमजरं परं ब्रह्म ॥ २५ पष स्वप्नभ्रमो नाम भाति कश्चिदकारणम्। कश्चित्सकारणो भाति शून्यः सदसदात्मकः २६ काकतालीयबद्धान्ति स्वप्नाः सकलसंविदः । ताभ्यस्तुल्योपसम्भत्वान्नान्यज्ञगदिदं ततम् ॥ २७ सकारणतया कढमिह यत्तत्सकारणम्। अकारणतया कदमिह यत्तवकारणम् ॥ २८ कार्यकारणमयक्रमोदितं स्वप्त एष चिति भानमात्रकम् ।

कारणं नान्योन्धत्रेति व्यवस्थितमित्यर्थः । भावाः संपदः । अभा-वा विपदः । कर्माणि सुकृतदुष्कृतानि तेषाम् ॥ १९ ॥ जनानां द्रभिक्षावप्रहादिसाधारणदुःखे तु यो यस्य स्थूलसमष्टिरूपो विराद् तदीयधातुविकारभेद एव निमित्तमित्याह-विराडिति द्वाभ्याम् ॥ २० ॥ दुर्भिक्षं च अवप्रदृष्ट अतीतमत्ययः प्रलयश्च एतेषां समाहारो यथायोगमायातिशममेति वातत्कृतस्तत्राह-यसादिति ॥ २१ ॥ तेषां प्राणिनां समानकालपरिपक्कदुष्टकर्मापि तत्रास्त्यंवेखाइ— काकतालीयेति ॥२२॥ तादशं कर्मापि चितैव प्राक्षस्पितं चेत्सा तरफलभागिनी नान्यथेत्याह्—कर्मेति॥२३॥ सहेत्रकरूपना सहेत्रकमेवास्ते । अहेतुककल्पना लहेतुकमेवास्ते ॥ २४ ॥ नच सहेतुकलकल्पनामात्रेण खप्ने सहेतुकता घटा-देरस्तीति निर्हेत्कजगदसिदेश्विन्मात्रमेव ब्रह्म परमार्थतोऽस्ती-लाइ--नास्त्रेवेति ॥ २५ ॥ यतः सदसदात्मकः अतएव श्चन्यो मिथ्याभृतः ॥ २६ ॥ खप्रोक्तो न्यायो जाप्रजगत्यपि तु-स्योपरम्भलादेव बोध्य इत्याइ-काकतालीयेति । चितः ख-प्राद्वा अन्यम् ॥ २० ॥ सकारणलाकारणलप्रसिद्धिरप्यत्र खप्र-बदेव व्यवस्थितेत्याह — सकारणसयेति ॥२८ ॥ खप्ने कार्यका-रणमयक्रमोदितं यटख्यावकं चिति भानमात्रकमेवेति एष नि-णंगो जाप्रदाख्यस्य महतः स्थ्लप्रपश्चस्यापि तुल्य इति शेषः। रोन हेतुना अखिलं शान्तं परमेवेति विदुर्बद्मविद इत्यर्थः॥२९॥ नज सर्वमाबानां सत्यं ब्रह्मेव कारणमस्त । सत्यकारणकलाच

जाध्रदाख्यमहतः स्वभावकं तेन शान्तमखिलं परं विदुः॥ २९ सत्यकारणका भावाः के ते श्रुणु महामते। कारणं किं स्वभावानां किमिहाकाशकारणम् पृथ्व्यादेर्घनपिण्डत्वसर्गादेः किंच कारणम्। किं कारणमविद्यायाः कारणं किं स्वयंभुवः॥ सर्गादौ कारणं किं स्याद्वायूनां तेजसां च किम्। किमपां वेदनामात्ररूपाणां गगनात्मकम्॥ ३२ पिण्डप्रहे देहलामे मृतानां किंच कारणम्। प्वमेव प्रवर्तन्ते सर्गाः प्रथमतोऽखिलाः॥ 33 एवमेष प्रवर्तन्ते जगत्यावलयन्ति च। चक्रकाणीव नमसि चिरसंप्रेक्षणा दशा॥ 38 प्वमेव प्रवृत्तेन सर्गेण ब्रह्मरूपिणा। पश्चात्स्वस्थेव रूपस्य संज्ञाः पृथ्यादिकाः कृताः ३५ यातस्पन्दवदाभान्ति सर्गाः पूर्व चिवम्बरे। स्वयमेव च कुर्वन्ति देहकारणकल्पनाः॥ ३६ यद्यथा कल्प्यते घत्ते तत्तथा नियतिर्वेषः। कव्पितायाश्चितेर्यसादेवमेतन्निजं चपुः॥ श्र ह यद्यद्भानात्मकं रूपं प्रथमं चेतितं चिता। स्वतोऽहमेव चित्येष तद्यापि तथा स्थितम्

तेऽपि सत्याः सन्तु । तथाच कथं सर्वे ब्रह्मेव कथं वा सत्याद्वैतं नत्राह-सत्यकारणका इति । हे महामते, अस्यां शङ्कायामुत्तरं तेऽहं वदामि । लं शृणु । के ते भावा आ-युष्मतः सत्यकारणका अभिमताः । कि खभावानां सत्यं कार-णम्। कि सत्यस्वभावानां सत्यं कारणमुत मिध्यास्वभावानाम्। किं सजातीयानामुत विजातीयानाम् । आध्योक्षेद्मणो ब्रह्मैवो-त्पयेत न जगत् । द्वितीययोर्न महाजस्य सत्यतासिद्धिरित्यका-रणलमेव फलत इति कि लया साधितं स्यात् । किंच सर्वेष करपेषु प्रच्छामः। किमिहाकाशस्य कारणम् । आद्यकस्पयोराका-शपदवाष्यतावच्छेदकवैलक्षण्यासिदिद्वितीययोस्तत्सव्यलासि-द्धिरित्यर्थः ॥ ३०॥ अयं न्यायः पृथ्व्यादाविष योज्य इत्याह---पृथ्यादेरिति ॥ ३१ ॥ वेदनातिरेकेण तत्स्य रूपानिरूपणाद्वेदना-मात्रस्पाणां साधकाभावादेवासिद्धेर्गगनात्मकं श्रन्यम् ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ तस्मात्परिशेषादकारणका भ्रान्तिमात्ररूपा इति सिद्ध-मिखाइ-एवमेवेति । चिरसंप्रेक्षणा चिरकालमनुभवसात्प्रयु-क्तम्रान्तिहशा ।। ३४ ॥ ब्रह्मक्षिणा हिरण्यगर्भाकृतिना पृथ्या-दिस्पर्य खर्येव पृथ्वादिसंद्धाः कृताः ॥ ३५॥ अतएव प्रथमं मनोराज्यवदतिसङ्माश्चिराभ्यासेन स्थूलीभूता देहकर्मादिकारणं-कस्पनाः कुर्वन्ति ॥ ३६ ॥ तत्राद्यकल्पने यद्यथा कल्प्यते तत्त्रया वर्षार्नियतिः संपद्यते । इदं च खेन संकल्पितपदार्थेषु खा-नुभवसिद्धमित्याह--किल्पताया इति ॥ ३७ ॥ विता सर्गानुकु-

Q.

पुनरस्येन यक्षेम तदुत्कृष्टेन सैव चित्। शक्ता तदन्यथा कर्तुं यक्षेन महता पुनः॥ ३९ कल्प्यते कारणं यत्र तत्र कारणसारता। न कल्प्यते विदा यत्र कारणं तदकारणम्॥ ४० बाल्यावर्तवदाभातिमदं प्रथममाततम्।

असदेव यथा भातं तथैवाद्यापि संस्थितम् ॥ ४१ संभूय केचन शुभाशुभमात्मकर्म कुर्वन्ति तस्य सदशं फलमामुद्यन्ति । संप्राप्तवन्ति च शिलाशनिष्य केचि-हुःखं त्वकारणकमेव सहस्रसंख्याः ॥ ४२

इलार्षे श्रीवा० वा० दे० भो० नि० उ० अवि० वि० घा० कारणविचारी नामैकोनपञ्चागद्यिकशततमः सर्गः ॥ १४९ ॥

पश्चादादिधकद्याततमः सर्गः १५०

Ę

मुनिस्वाच ।

एवंप्रकारया युत्तया तेनायं मुनिना तदा ।
तथाहं बोधितो येन गतो विदितवेद्यताम् ॥
ततोऽसौ न मया त्यक्तश्चिरप्रार्थनया तथा ।
अवससेन तत्रासौ मृतस्यापि तथेव च ॥
येनैतन्मुनिना प्रोक्तमिन्दृदयशुभं वचः ।
सोऽयं पद्मय मुनिश्रेष्टस्तव पार्श्वे व्यवस्थितः ॥
अनेनोक्तमगुक्तेन ममतन्मोह्यातिना ।

हर्यपूर्वापरकेन यक्षेनेवात्तम्युर्तिना ॥

अग्निरुवाच । तदाकर्ण्यं षचस्तस्य मुनेर्व्याघोऽभवत्तदा । प्रत्यक्षः स्वप्नसर्गः किमिति खिन्न इव स्मयात् ॥ ५ व्याघ उवाच ।

अहो महिचित्रमिवं मुने मनसि दुःसहम्। क्षितं मेऽद्य भवता भवतापापहारिणा॥

लहैरण्यगर्भिचता ॥ ३८ ॥ आद्यकल्पनाया अन्यथाभावस्तु महतामपि महद्भिर्यक्षः कदाचिदेव भवतीत्याद्द-पुनरिति । यथा नन्दिनहुषादेः सुरसर्पादिभावभिति भावः॥३९॥ क्रचि-हुरधादी दध्यादिभावायातश्चनकालोध्मादिकारणं कल्प्यते । वा-य्वादेर्घनद्रवादिभावाय तत्कल्पनमप्यशक्यमित्याइ--कल्प्यत इति ॥ ४० ॥ तत्र चितः अचित्प्रतिभासो न कार्ये किंतु होयं प्राथमिकलात्तु इदानीमप्यनुवर्तत इलाह—वालावर्तवदिति ॥ ४९ ॥ यत्तु मया पृष्टं 'सममेवाशुभं कर्म किमिमाः सकलाः प्रजाः । कुर्वन्ति किम्' इति तस्योत्तरं वदशुवसंहरति—संभूयेति । केचन जीवाः संभूयापि शुभाशुभं कर्म कुर्वन्ति तस्य फलमपि संभूयैव प्राप्तवन्ति । केचित्तु कर्तृत्वामिमानरहितत्वादकर्तारोऽपि सद्दलसंख्या अकारणकमेव दुःखं संप्राप्नुवन्ति जीवनमुकाः। यया गिरिशिखरशिला दुष्कृतमकुर्वाणाप्यशनिपातमनुभवति तद्वदिखर्थः ॥ ४२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्य-प्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पृकोनपञ्चाशद्भिकशततमः सर्गः ॥ १४९ ॥

तद्वाक्येः स्वारमबोधोऽत्र तस्तहस्थितिरात्मनः । भाग्देहगमनाशकेः प्रश्ने दाहादि चोष्यते ॥ १ ॥ असमहं तेन मुनिना एवं प्रागुक्तप्रकारमा युक्तमा तथा बोधितो यत्स्वप्रकथितस्येयं जाप्रत्मत्यक्षतोच्यते ।
लभ्यतेऽपि च तन्नाम वेद चित्रमिदं मुने ॥
कथमेष महान्स्वप्नपुरुषः स मुनीश्वर ।
जाप्रत्यपि स्थिरीभूतो भूतो बालमतेरिव ॥
पवमाश्चर्यमाष्ट्यानमुच्यतां मे यथाक्रमम् ।

कुतः कस्य किमेतद्रा परमो हि स विस्मयः॥ मुनिध्वाच ।

ततः शृणु महाभाग वृत्तं चित्रं किमत्र मे ।
कथयामि समासेन सहसा मां कुरु त्वराम् ॥ १०
अनेनैतत्त्वा तत्र वर्णितं बोधनाय मे ।
बुधोऽहमभवं चाशु महतोऽस्य तया गिरा ॥ ११
तत पतिहरा पूर्वः स्वस्वभावः स्मृतो मया ।
अववातोऽघदातेन नभसेय तपात्यये ॥ १२
अहो नु सोऽहमभवं मुनिरित्युदिताशयम् ।
अहमासं हदा स्फीतात्कातोऽवस्थितविस्मयात् १३

यथा तेन बोधनेन तदैव विदितनेयतां तत्त्वइतां गतः ॥ १ ॥ चिरप्रार्थनया तया भक्तया अनुपृत्त्या सेवया तेन विनयादिशुण-कदम्बेन च वशीकृतोऽसौ मृतस्य आत्मविचारश्चन्यलात्प्राह्मत-प्रायस्यापि मम तत्र रहे तथैव अवसत्। तथा चोक्तं शृद्धै:---'ग-च्छतस्तिष्ठतो वापि जाप्रतः स्वपतोऽपि वा । न विचारपरं चेतो यस्यासी मृत उच्यते॥'इति॥२॥ तथाविधो दयाञ्चर्मदुपदेष्टा मु-निरिदानीं त्वत्पार्श्वत एवास्तीति तं दर्शयति-येनेति॥३॥आ-समृतिना धृतशरीरेण यहेन मदीययहादिसुकृतेनेव स्थितेन॥४॥ तन्मुनेर्वच आकर्ण्य व्याधः स्वप्नसर्गस्तदुपदेष्टा मुनिरिदानी मत्त्रत्यक्षः किं राभावित इति असंभावनया विस्मयारिखन इव अभवत् ॥ ५ ॥ असंभावनामेव सस्पष्टमाह्—अहो इति॥६॥ कि तिवत्रं मया कथितं तदाह--यदिति । खप्ने खोपदेष्टत्वेन कथितस्य मुनेरिदानी जामत्प्रलक्षता यदुच्यते मया च प्रस-क्षमुपलभ्यते तदहं चित्रं वेदेखर्थः ॥ ७ ॥ भूतो वेतालः ॥ ८ ॥ एवंविधमाश्वर्यमिदमास्यानं मे ययाक्रमं संपूर्णमुख्य-ताम्। इदं खाप्रपुरुषस्यदानीं दर्शनं कृतो निमित्तात्कस्य वेदं दर्शनं किंवा खप्रो जाप्रद्वा ॥९॥ १०॥ अनेन स्तरपार्थक्षेन मुनिना ॥११ ॥ पूर्वः अनादिसिद्धसन्मात्रखभावः । तपात्वये माधमासालये । हिमालय इतियानत् ॥१२॥ ततो मे पूर्वम-

इमां भोगास्थयावस्थां प्राप्तोऽस्म्यज्ञ इवाध्वगः। धावञ्चमार्तिरम्बर्थी व्यर्थया मृगतृष्णया॥ कष्टं रहयोपलम्मेन भ्रान्तिमात्रात्मना सता। बालो वेतालकेनेच प्राक्षोऽपि च्छलितो ह्यहो ॥ १५ अहो तु चित्रमेतेन मिथ्याक्षानेन चल्गता । नीतः सर्वार्थशून्येन पदवीं कामिमामहम्॥ १६ अथवा यः सोऽहमपि भ्रान्तिमात्रं न सन्मयः। तथापि चित्रशतता यन्नामासद्विडम्ब्यते ॥ १७ नार्हमस्मि न चैवेयमिदं नायमपि भ्रमः। चित्रं सर्वमिदं मिथ्या सर्वं च सदिव स्थितम् १८ किमिदानीं मया कार्यमिष्ठ घन्धभिदान्तरः। विद्यते मेऽह्ररच्छेदं तत्तावत्संत्यजाम्यहम्॥ १९ आस्तामेतद्विद्येषा व्यर्थरूपा किमेतया। भ्रान्त्या भ्रान्तिरसद्भूपा त्यक्तैवैषा मयाधुना ॥ २० उपदेष्टा मुनिरयमेपोऽत्र भ्रान्तिमात्रकम् । ब्रह्मैवाह्मिवाभाति रूपमेतिहवाम्रवत्॥ २१ तदेवं ताचदुदितशानं वक्ष्ये महामुनिम्। इति संचिन्त्य स मुनिस्तत्र प्रोक्त इदं मया॥ २२ मुनिनायक गच्छामि तच्छरीरमिदं निजम्। द्वष्टं यश्व प्रवृत्तोऽस्मि शरीरं तदपीश्चित्म् ॥ २३ इत्याकण्यं स मामाह हसन्मुनिवरस्तदा। क्रतस्ती भवतो देही ती सुदूरतरं गती॥ રક गच्छात्मनैव वा पश्य बृत्तान्तं बृत्तकोविद :

निभावोऽपि स्पृतिमागत इत्याह—अहो इति । अवस्थिता-द्विसायाद्वदा स्नात इवादीकृत आसम् ॥ १३ ॥ तामवस्था-मनुशोचित-इमामिलादिना । श्रमप्रयुक्ता आर्तिर्थस्य तथा-विधोऽध्वगः पुरुषोऽम्ब्वर्था सन् व्यर्थया मृगतृष्णयेव भोगा-स्थया अहमिमामवस्थां प्राप्तोस्मि ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ अथवा यः सोयमिति प्रत्यमिश्वाविषयस्तत्ताहंतादिः सोपि भान्ति-मात्रम् । तथाच कस्य चित्रमिति नो वाच्यम् । तथाच यत्सा-क्षिणा असद्र्पं विडम्ब्यते तत्र चित्रशतता अस्येवेखर्थः ॥ १७ ॥ १८ ॥ बन्धं भिनत्तीति बन्धभित् आन्तरो यो ब्रह्माकारकृतिविशेषः सोऽङ्करो विद्यते तदिप छेद्यमेवेति तत्ता-बरसंख्जामि ॥ १९॥ जगद्भान्तिस्तु अविद्यालाद्विद्याष्ट्रत्यै॰ बोच्छित्रवेति न सेदानी त्याज्येत्याह—आस्तामिति ॥ २०॥ अयसुपदेष्टा सुनिरिप अहं घिष्य इव ब्रह्मेव तथा आभातीति न त्यक्तव्यान्तरमस्तीलयः। दिवा वा दश्रभ्रपुरुषवत् ॥२१॥ उदितं यस्मातं गुरुं महासुनि एवं वक्ष्यमाणं स्वाभिप्रायं द्वानं वक्ष्ये ॥ २२ ॥ तत् आश्रमस्थं निजं मुनिशरीरं यंबदं प्राणिशरीरं ब्रष्टुं प्रकृतोऽस्मि तदपि ईक्षितुं बहिर्गच्छामीलर्थः ॥ २३ ॥ तौ देही कृतो भवतः स्तः । यतस्ती दाहेन भस्मीभावात्मुद्रुतरं

१ नायमसीत्यपि पाठः.

पर्य तावद्यथातृत्तं रुपान्तं शास्यसि स्वयम् ॥ २५ इति संचिन्त्य तं देहं विदं भूसत्तयाऽऽसिकम्। त्यक्त्वा चिदातमा तत्प्राणात्पवने योजितो मया २६ प्राक्तनं देहमालोक्य यावदायाम्यहं मुने। रहेव तावरस्थातव्यमित्युक्तवाहं गतोऽनिसम् २७ अथ वातरथारूढो गगनं भ्रान्तवानहम्। पुष्पामोद इवानन्तं गत्वा च त्वरया चिरम्॥ २८ ततश्चिरमपि भ्रान्त्वा यदा गलविलं चलन् । अहं न प्राप्तयांस्तस्य किंचिदस्याद्ययस्थितः॥ तदा खेरमुपायातः परमं पुनरागतः। इदमेव जगजालमहमालानमात्मनः॥ ३० इहेमं लब्धवानप्रे ततो मुनिमनुत्तमम्। पृष्टवानहमेकाम्रस्तत एवमिदं गृहे ॥ 38 किमतद्भगवन्बृहि पूर्वापरविदांवर । त्वं पश्यसि यथावृत्तमुत्तमशानचश्चपा ॥ રૂર यस्य देहं प्रविष्टोऽहं स च महपुरेव च। क ताबुभी गती देही न लब्धी केन हेतुना॥ मयातिचिरमाभोगि भ्रान्तं संसारमण्डलम्। स्थावरादात्मनः कस्मात्प्राप्तं गरुबिछं न तत् રુષ્ટ गत्वेति पृष्टः स मुनिः समुवाच महारायः। जानासि तत्स्वयं कस्मादिति तामरसेक्षण॥ 34 पतदालोकयसि चेरस्वयं योगैकसंविदा । तत्पइयस्येव निःशेषं यथा करतलाम्ब्रजम् ॥

गताविति भावः ॥ २४ ॥ आत्मना स्वयमेव गला तहसान्तं पः स्यवा ॥ २५ ॥ इति तेनोक्ते सतीति शेषः । अ**हं तं प्राक्तनं** देहं संचिन्त्य तत्र गन्तुकांमेन मया खसंविदं खाप्रभूससया आस्मिकं पार्थिवशरीरमेव!हमस्मीति कल्पितं रूपं खका प्राणोपहितचिदातमा खजीवसात्प्राणात् द्वारभूतात्पवनस्कन्धे योजितः ॥२६॥ मुर्नि प्रति किमुका लमनिलं प्रविष्टस्तदाह— प्राक्तनमिति । गतः प्रविष्टः ॥ २७ ॥ २८ ॥ ततोऽहं चिरमपि भ्रान्ला बहिनिंगेमनद्वारं तस्य प्राणिनो गलबिलं किंचिदन्य-दपि द्वारं न प्राप्तवांस्तदा वाताशयस्थितोऽहं खेदमुपायात इति परेणान्वयः ॥ २९ ॥ ततः परममिदमेवात्मन आछानं बन्ध-नस्तम्भभूतं खग्रहं पुनरागतः सन्निहेममनुत्तमं मुनि खगुरमन्ने उपरुब्धवानिति परेणान्वयः॥३०॥ इदं वक्ष्यमाणम्॥३९॥३२॥ स च प्राणी ॥३३॥ आ आत्मन इति च्छेवः। आ स्थावरादारमन आभोगि विशालं संसारमण्डलं भ्रान्तमित्यन्वयः ॥ ३४॥ किमुबाच तदाह-जानासीति । तत्पूर्वस्वशरीरादिवृत्तं मद-कोपायं विना खयं खबुखीव कसाज्वानासि । तामरसेक्षणेति संबोधनामाक्षिसीन्दर्यमात्रेण तष्ट्रष्टं शक्यमिति सुच्यते ॥३५॥ तर्हि तद्शेने क उपायस्तत्राह—एतदिति। योगैकाप्रया संविदा भालोकयसि चेललहिं शानचक्षुषा एति भःशेषं समत्रं पश्यस्येव

तथापि यदि शुभूषा तवास्ति वचसा मम। तदिवं शृणु वश्यामि यथावृत्तमखण्डितम्॥ 50 तपस्तामरसोष्णांद्युः कस्याणकमलाकरः। शानाहास्य हरेर्नाभिनीस्ति तावदयं भवान्॥ રેડ स त्वं कदाचित्तपसि स्थितः स्वप्नदिदक्षया। कस्यचिद्धद्यं जन्तोः प्रविष्टः पुष्टसंविदा ॥ 30 यत्त्वं प्रविष्टो हृद्यं तत्रेदं भुवनत्रयम्। रुएवानसि विस्तीर्णे रोदसी विपूलोदरम्॥ 80 इति त्वयि चिरं व्यप्ने देहस्तस्य तथापि च। स संस्रप्ताइतिर्यत्र स्थितस्तत्र महावने ॥ દ્ધ लग्नोऽग्निर्धूमधुम्राभ्रसाम्बराम्बरङम्बरः। वेलद्वलचलालातचऋसूर्येन्द्रमण्डलः ॥ ઇર दग्धाभ्रभससंपूर्णध्रमाभ्रासितकम्बलैः। आनीलाकाशदलपैरिव संछादिताम्बरः॥ 83 दरीगृहविनिष्कान्तसिंहनिर्हादतर्जितैः। स्फुटेश्चटचटास्फोटैर्जडीकृतदिगन्तरः॥ 88 तालीतमालमालानां गतानामन्निवृक्षताम् । पातैकत्पातवद्वयभ्रकवत्करकरैर्घनः॥ 84 द्रदेशगतैर्दृष्टस्थिरसौदामनीधिया। द्रवत्कनकनिष्यन्दकुट्टिमं ज्योम दर्शयन्॥ 38 कणैस्तारागणं कान्तैर्ध्योम्नि द्विगुणतां नयन् ।

॥ ३६ ॥ यदि मद्दवचनेनैव धोतुमिच्छा न द्रष्टुमिच्छा तर्हि यथावृत्तं वक्ष्यामि शृषु ॥ ३७ ॥ तत्र खजीवतत्त्वं प्रथमं बु-ध्यस्य ततस्ते पूर्वदेहपृत्तान्तं कथयिष्यामीति मन्यमानो व्यष्टि-जीवभावभिश्यात्वं समधिभावस्यव सत्यत्वं 'त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्' इति श्रुतिदर्शितन्यायमाश्रित्याह-तप इति । भवान् अयं लयानुभयमानव्यष्टिजीषविशेषरूपो नास्ति । किंतु सर्वप्रा-णितपस्तामरसानां सुकृताब्जानां फलदानेन विकासनेनोज्णां हाः सूर्यभूतः सर्वेकल्याणानां मानुषानन्दावित्राजापत्यानन्दान्तानां सुखानां कमलाकर इव समष्टिभूतो हरेर्ज्ञानखरूपस्य नाभ्यवजस्य नामिः कर्णिका तद्धिरूढमर्वजीवसमध्यात्मा हिर्ण्यगर्भ ए-वासि ॥ ३८ ॥ तर्हि मम कथं व्यष्टिभावस्तत्रैते आनितविशे-षाथागतास्तत्राह-स लिमिति । व्यष्टिभावस्वप्रदिदक्षया तपसि मनोराज्यहरे आहोचने स्थित आश्रमे तापसोऽभः। तत्र प्र-ष्ट्या व्यष्टिभावसंविदा परशरीरान्तः स्वप्नादिकौतुकदिदृक्षया क-स्यचिजन्तोर्हद्यं प्रविष्टः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इत्यनया रीत्या लिय चिरं परशरीरान्तर्गतस्वप्रदर्शनव्यभे सति तव देहस्तथा तत्र महावने सप्ताकृतिस्लत्प्रविष्टः स प्राणी स्थितस्तस्य देहोऽपि च स युष्मदाश्रमो युष्मदाश्रमकुटीसहितस्तेनामिना दग्ध इति द-शमश्रीकेनान्वयः ॥४१ ॥ तत्र महावने अग्निर्लगः। तमेवाभि वर्णयति—धूमधूम्राभ्रेलादिना । स्फ्रुरद्भिवलाचलद्भिरलात-चकैः संपादितानि सूर्थमण्डलानीन्दुमण्डलानि च येन ॥ ४२ ॥

| वश्रःस्थवाळवनितानयनानन्दनन्दनः ॥ | ઇછ |
|---|----|
| ज्वालाधमधमाशब्दप्रध्मातगगनीद्रः । | |
| दरीगृहविनिष्कान्तभ्रान्तोन्निद्रवनेचरः ॥ | ૪૮ |
| अर्धदग्धद्रवरिसहसृगव्याधविहंगमः। | |
| कथत्सरःसरित्स्रोतोरन्थितोग्रवनेचरः॥ | 80 |
| षलज्ज्वालाज्वलद्वालचमरीचारुचश्रुरः। | |
| दश्चमानवनप्राणिमेदोगन्धावृताम्बुदः॥ | 40 |
| तेन कल्पाग्निकल्पेन यल्गता यनवहिना। | |
| सयुष्मदाश्रमो दग्धः सर्पेणेव प्रसर्पता ॥ | 43 |
| व्याध उवाच । | |
| तत्र तस्याग्निदाहस्य हेतुः कः प्राहतो मुने। | |
| तद्वनं ते यदुवराः सर्वे नष्टं कथं सह॥ | ५२ |
| मुनिश्चाच । | |

यथा हेतुनिरास्पन्दोऽचिराद्धि त्रिजगत्तथा ॥ ५३ हृद्ये च वनान्ते च स्रोभाक्षोभेषु कारणम् । यथा स्पन्दोऽचिरात्स्पन्दस्तथा त्रिजगतामिह ५४ धातुः संकल्पनगरं जगत्तत्स्पन्दनं त्विह । प्रजोदयक्षयस्रोभवर्षावर्षादिकारणम् ॥ ५५ ब्रह्मादिमानसोऽप्यस्य सोऽप्यन्यत्र चिदम्बरे ।

संकल्पकमनस्पन्दः संकल्पादिक्षयोद्ये ।

इत्यपर्यवसानेयं शान्तेका चिक्रभोगतिः॥ ५६

दश्धाञ्चेषु भसासंपूर्णेर्धुमाञ्चलक्षणरसितकम्बलरानीलान्य।काश्च दलानि दिश आवरणेन पान्ति तथाविधैः संछादिताम्बरः॥४३॥ जडीकृतदिगन्तरो बिधरीकृतदिगन्तरालजनः ॥४४॥ सर्वतोऽ-मिव्याह्यामित्रक्षतां गतानां तालीतमालमालानां पातैः स्फुटता-मुत्पातवह्निवदुरपाताभवच कवतां ध्वनतां करकरैः कलकलैर्धनो निबिद्धितः ॥ ४५ ॥ व्योमद्रवत्कनकनिष्यन्द्छिप्तं कुर्हिममिव कृत्वा प्रदर्शयन् ॥ ४६ ॥ कणैविंस्फुलिकैस्तारागणं द्विगुणतां न-यंस्तेरेव कणेर्व्यानि वक्षस्थाया ज्वालालक्षणाया बालवनिताया नयनानन्दनैः कटाक्षेनेन्दन आनन्दयन् ॥४०॥४८॥ रन्धिताः पाचिता उप्रा वनेचरा व्याधव्याघादयो जलचराश्व येन ॥४९॥ ॥५०॥ तेन वर्णितप्रकारेण वनवहिना सयुष्मदाश्रमो युष्मदाश्र-मसहितः स ते देहस्तस्य प्राणिनो देहश्च दग्धः ॥ ५१ ॥ को हेतुः प्राकृतः प्रसक्तः ! ते बद्धवरास्त्रत्प्रविष्टब्रह्मचार्यादिदेहाः । सह युगपत् सर्वं कथं नष्टम् ॥ ५२ ॥ संकल्पादिक्षयोदये यथा संकल्पकपुरुषमनःस्पन्दो हेतुस्तथा त्रिजगत्संकल्पकस्य विधा-त्रचिरात्प्रवृत्तो मनःस्यन्द एव त्रिजगदिति तत्क्षयोदयेऽपि तथा तन्मनः सन्द एव हेतुरिलार्थः ॥ ५३ ॥ यथा हृदये भ-यादिना क्षोभाक्षोभेषु अचिरात्स्पन्दो हेतुस्तथा त्रिजगतां व-नान्ते च क्षोभाक्षोभेषु स एव हेतुरिखर्यः ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अस्य जगतो ब्रह्मादिमानसो मनःसमष्टिहेतुः सोऽप्यन्यत्रान्य-मानसे चिदम्बरे कल्पितः सोऽप्यन्यत्र सोऽप्यन्यत्रेलेषा माया-इाबलस्य चिन्नभसो गतिः कल्पनापरम्परा अपर्यवसाना । अन-

१ स्फुरबल इति पाठी व्याख्यानुकूलः. योग० १८०

चिति नभित चिन्नभःश्रीः कचतीति निरामया विदुषाम्।

मूर्जाणां तु यथेषा यादण्या तन्मयीह न सत्॥

५७

इत्यार्षे श्रीवाशिष्टमहारामायणे वाहमीकीये मो० नि० उ० अ० वि० श० परमोपदेशो नाम पश्चाशद्धिकशततमः सर्गः ॥१५०॥

एकपश्चादाद्धिकदाततमः सर्गः १५१

अन्यमुनिठवाच । तत्र ते नगरं तानि गृहाणि तरवश्च ते । श्लिप्रेण शुष्कतृणवत्सर्व भस्तत्वमागतम् ॥ १ तत्रैवं भस्ततां प्राप्ते सुप्ते ते भवतस्तव । तन् तथातिसंतापविदारितमहाशिले ॥ २ स शशाम शनैवीहानिःशेषीहतकाननः । परिपीताणिवोऽगस्त्य इचास्तं समुपायया ॥ ३ तस्मिन्नस्तं गते वहीं तद्धसंद्धं सुशीतलम् । दुधाव कणशो वायुरशंवं पुष्पराशिवत् ॥ ४ ततो न हायते नासीत्काश्रमः क तन् तथा । क पटकं बहुनां तत्स्वप्रपूर्णाश्रतो यथा ॥ ५ अभावमुपयाते ते यदेवं भवतस्तन् । स्वपतस्ते भ्रमवतः संविदेव विज्ञम्भते ॥ ६ तस्मात्क तद्गलविलं विराहातमा स च क ते । दग्धो दग्थस्य साजस्तः सीजस्कस्येव देहकः ॥ ७

लब्धवानसि नो तसाद्धेतोर्देहद्वयं मुने। अनन्ते स्वप्नसंसारजाव्रतीहावतिष्ठसे॥ तदेवं स्वप्न पवायं जाम्रद्भाषमुपागतः। सर्वे वयमिह स्वप्नपुरुषास्तवं सुवत ॥ ٩ अस्माकं त्वं स्वप्ननरस्तव स्वप्ननरा वयम्। अयमेव चिदाकादाः सर्वदात्मात्मनि स्थितः १० ततः प्रभृति संपन्नो भवान्स्वप्नतरो भवन्। जाग्रत्प्रत्ययवाञ्जाप्रकरो गार्हस्थ्यसुस्थितः॥ ११ पतत्ते कथितं सर्वं यथावृत्तमशेषतः। अनुभूनं सुरुद्यं च ध्यानेनैतश्व पद्यसि ॥ १२ इत्यादिमध्यरहितोऽयमनन्तरूपः संविद्धनः कचति काञ्चनतापवत्खे। तत्फाललोलवपुरात्मनि चिन्मयात्मा सर्गात्ममिर्विकसितैरसितैः सितैश्व ॥ १३

इत्यापें श्रीवासि० वाल्मी० दे०मो० नि० उ० अ० वि०श**० अभावदर्शनं नामैकपश्चाशद्विकशततमः सर्गः ॥ १५१** ॥

विपश्चाद्यादिधकदाततमः सर्गः १५२

मुनिरुवाच । इत्युक्त्वा स मुनिस्तत्र तूर्ग्णी स्वशयने निशि ।

शिखितैबेखर्थः ॥ ५६ ॥ निष्कृष्टद्शेने तु चिति नभति चिन्न्नभःश्रीरेव अन्नतीति निरामया विदुषां दृष्टिः । मूर्खाणां लापान्तदर्शनरूपा एपा दृष्टियंदिग्वा भारते तन्मय्येव इह परमार्थे तु न सत् । अर्लाकेव सेल्पर्थः ॥ ५० ॥ शृति श्रीवासिष्टमद्दान्शमायणतास्पर्यप्रकारे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे पञ्चाशान्वधिकशतसमः सर्गः ॥ १५० ॥

दुग्धाश्रमतनोर्वहेः प्रश्नमो भस्मनोऽनिर्लेः । वर्ण्यतेऽयं नयसस्मातस्वप्ने जागरितस्थितिः ॥ १ ॥

न केवलमाश्रमादिकमेव किंतु नगरादि सर्वं भस्मलमागतम् ॥ १ ॥ तथा अतिसंतापविदारितमहाशिले तत्राश्रमे भवतो वर्तमानस्य तव छुमे ते हे तन् शरीरे एवमुक्तप्रकारेण भस्मतां प्राप्ते इत्यन्वयः ॥ २ ॥ परिपीताणवीऽगस्त्य इव आदावक्षार-मात्रशेषेण शक्षाम । तताऽस्तमदर्शनं समाययौ ॥ ३ ॥ आदौ इदं पथात्सुशीतलम् । वायुर्द्धाव व्यधूनयत् ॥ ४ ॥ वद्द्वां जनानां पेटकं करण्डमूतं तत्रगरम् ॥ ५ ॥ ६ ॥ देहदाहेऽपि तदोजःपरिशेषमाशक्काह—सीजस्क हति।ओजः-

आसीदिस्मयतश्चाहमधासंप्रोह्यमानवत् ॥ १ ततिश्चरेण कालेन मयोक्तं तस्य सन्मने ।

सहितस्येव तस्य ग्रास्य साँजस्क एव देहको दग्धः॥ ७॥ स्वप्नसंसारात्मके जामस्वतिष्ठसे॥ ८॥ तथाच जामस्वप्नयोभेंदो नास्तीति यत्प्रागुक्तं तदिदं निदर्शितमित्याशयेनाह—
तदेवमिति॥ ९॥ सर्वदा अवस्थात्रयेऽप्यात्मिन अद्वयस्यस्मभावे॥ १०॥ प्राक् स्वप्ननरोऽभवन्नपि भवांस्ततः प्रगृति
जामन्नरः संपन्नो गाईस्थ्ये सुसंस्थितः॥ १९॥ संदेहे समिष्यानेन एतन्मदुक्तं सर्व पर्यसि प्रस्यसि । वर्तमानसामिष्ये
वर्तमानवत्॥ १२॥ स्त्रे कामनमयस्ताप आतपस्तद्वत् यः
कचित तत् फालः स्वकचनशक्त्युत्फालस्तेन लोलवपुः संधिनम्यात्मा आत्मिन दुष्कर्मफलभूतैरसितैः सत्कर्मफलभूतैः सितैधान्मिश्वकर्मफलभूतैर्मिश्रेथ विकसितैः सगौतमिभोवैः संविद्वन
एव कचित नान्य इत्यर्थः॥ १३॥ इति वासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे प्रकप्रधाशद्विकशततमः सर्यः॥ १५१॥

स्वप्रार्थसत्त्वताशक्षां निवार्यान्यसुनिर्धेनेः । इह व्याधगुरुत्वस्य हेत्किसुपचक्रमे ॥ १ ॥ अथ अहं वालमा प्रोक्षमानवदासम् ॥ १ ॥ सद्भूपो यथार्थः पवं स्वप्नो विभोः सर्वः सद्भप इति मे मतिः॥ अन्यम्निरुषाच ।

सत्संभवति यत्राभ्यसत्रेदं सदिति सा यः। युक्तो यत्र त्वेतदेव सत्तार्व्य तत्र का प्रमा॥ यथा स्वप्नस्तथैवायमादौ सर्गोऽवभासते। पृथ्वादिरहितोऽप्येष पृथ्वादिभिरवस्थितः॥ इत्थमचतनात्स्वप्नात्सर्गस्वप्नोऽमलात्मकः । श्रुणु पुष्करपत्राक्ष मुने व्याध महागुरो ॥ अद्य रूपप्रदार्थाभ्यां स्वप्नं स्वप्नवतोऽभवत् । सर्गस्वप्रस्तु इष्टार्थ पवादी खे विराजते ॥ एवं सत्स्वप्र इत्येव संदिग्धमिव वक्षि किम्। स्फुटमप्यनुभूतं सत्स्वप्तध्यानोद्यमः कथम् ॥ इदमित्थं यदाभोगि स्फुटं स्वप्नजगन्मने। सदेवानुभवत्येव तत्र संदिग्धता कथम्॥ अथैवंवादिनस्तस्य वाक्यमाक्षिप्तवानहम्। प्रयुवान्याधगुरुता कासी में कथ्यतामिति॥

अन्यमुनिष्ठवाच । श्रुयतामिद्रमाख्यानमपरं कथयामि ते। संक्षेपेण महाप्रान्न नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥

अस्म्यहं तावदादीर्घतपास्त्वमतिधार्मिकः। श्रुत्वेदं मञ्ज्ञचः सत्यमिहैव रतिमेष्यसि॥ ११ इहस्यं मामिमं त्वं च न त्यश्यसि सपर्यया। अहं भवद्भिः सहितो निवत्स्यामीति निश्चयः ॥ १२ साधो यातेषु वर्षेषु ततः कतिपयेष्विह । सर्वबन्ध्विनादास्त दुर्भिक्षेण भविष्यति ॥ १३ मस्तीमान्तसामन्तविष्रहेण तदेव च। सर्वो गृहासनुपाणिर्शमकोऽयं विनङ्कयति॥ 13 ततो दुःखमजानन्तै। चिरमाश्वसितौ मिथः। शान्ती विदितवेद्यत्वात्समा सर्वार्थनिस्पृहौ ॥ १५ इहैवैकन्न कस्मिश्चित्तदखण्डकजालके। समाचारी निवत्स्यावः शून्ये चन्द्रस्वी यथा॥ १६ उत्परस्यते त्वरण्येऽस्मिन्कालेन वनमुत्तमम्। शास्त्रतास्त्रताजास्वरितासिसभूतसम्॥ १७ तालीतमालदलताण्डवमण्डिताशं व्याकोशपद्मवनवन्यविकासिवृक्षम् । कूजशकोरचयचारुळतानिकुञ्ज-मुद्धासिनन्दनमिवागतमन्तरिक्षात्॥ १८ १०

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा॰ मो॰ नि०उ० अ०वि०श० मुनिरान्त्रिमंकथावर्णनं नाम द्विपद्यादाद्धिकशततमः रागेः ॥९५२॥

Q

Ó,

मे मतिरित्युक्तया असंभावनया विस्मयो द्योतितः ॥ २ ॥ यत्र यदि अन्यजामद्वस्तुसत् संभवति सभवेत् तत्र तर्हि इदं सप्रादि सदिति समयो विसायो युक्तः स्यात् । यत्र तु एतजाभदृत्य-मेव सत्तया अल्पं सत्ताल्पं मिथ्याभृतं तत्र खद्रे सखतायाः का प्रमा। सतरां मिध्यालमेवेत्यर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥ इत्यं परि-दृश्यमानाद्वतनादस्मदीयखप्रादपि जाग्रत्वेन प्रसिद्धः सर्ग-खप्नः अमलवैतन्यमात्रात्मकः । इयलपि सला तस्य दुर्लमे-त्यर्थः । हे व्याध महागुरो, हे पुष्करपत्राक्ष मुने, अत्रोपपति शृणु । लदपेक्षयापि मन्दमतेव्यीधस्य बोधनकाले लया उप-पादनश्रमो ज्ञास्यत इति योतनाय तथा संबोधनम् । पुष्करप-त्राक्षेति संबोधनतारपर्यं प्रागुक्तमेव ॥ ५ ॥ वक्तं प्रतिज्ञातासु-पपत्तिमाह-अधेति । अद्य जापति दृष्टाभ्यां पदतदर्थाभ्यां बुद्धी खसंस्काराधानारखप्रवतस्तव रात्री खप्ने शब्दोऽर्थवाभव-दिति संस्कारादिसामश्रीसखात्राखाः संभाव्येतापि । सुष्ट्यादिकाले प्रसिद्धः सर्गस्तप्रसु प्राग्दष्टः अर्थो यस्य तथाविध एव से चि-दाकाशे विराजते । तत्र च चिरप्रलयकालेन व्यवधाने पूर्वानु-भवसंस्कारादेविच्छत्रलादयतनखप्रापेक्षयापि तुच्छ एव संभा-व्यते न समसत्ताकोऽपीत्युपपत्तिरिखर्थः ॥ ६ ॥ एवं जाप्रत्प्र-पश्चस्याधिकमिध्यात्वे सति खप्नो विभो सर्वः सद्भप इति मे म-

तिरिति मतिपदेन संदिग्वमिव सूचयर्निक वाले । एफुटमप्यनुभूतं सदिदं खगृहं मदुपदेशायनुभूय पुनः खप्रधानं तबोयमः कथं जातः । नहि स्वप्नदर्शी कथित्स्वप्रोऽयं मिध्येति तदानीं पर्य-तीति भावः ॥ ७ ॥ किंच सदेव जगदनुभवतको असत्त्वसंदेहे बीजमपि नास्तीत्याह--इदमिति ॥ ८ ॥ आक्षिप्तवान्त्रश्चान्त-रकरणेन निरुद्धवान् ॥ ९ ॥ १० ॥ अहं यावत्त्वं व्याधगुदर्भ-विता तावदिहेवास्मि । हे मुनिनायक, लमपि इदं मद्भवः श्रु-ला इहैव लहु हे रतिमेध्यसि ॥ ११ ॥ इहस्थं मां च त्वं न त्यक्ष्यित ॥ १२ ॥ १३ ॥ वैरषलादिना मत्तानां सीमान्तस्था-नां सामन्तानां क्षुद्रभूपानां विद्यहेण परस्परयुद्धप्रसङ्गेन तनवो-Sल्पीभूताः प्राणिनो यत्र तथाविधः सम्रयं प्रामको गृहाद्विनह्नय-ति पलायिष्यति ॥ १४ ॥ तदा आवां कि करिप्यावसादाह-तत इति द्वाभ्याम् ॥ १५ ॥ १६ ॥ अस्मन्निकासादरण्ये उत्तमं बनं युक्षनिकुरम्बमुत्पत्स्यते । उत्तमत्वमेव प्रपद्ययति—शाले-त्यादिसार्धेन ॥ १० ॥ व्याकोशैः पद्मवनैरधश्वरणाश्रयणाद्वन्दा बन्धमाना इव पुष्पैविकासिनो वृक्षा यत्र । अन्तरिक्षात्खर्गा-दागतं नन्दनमिव स्थास्रु वनमुत्पस्यत इति पूर्वत्रान्वयः ॥१८॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणपकरणे उत्तरार्धे द्विपञ्चाशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १५२ ॥

त्रिपञ्चाद्यादिधिकदाततमः सर्गः १५३

अन्यमुनिरुवाच । आवयोधरतोस्तसिन्वने चिरतरं तपः। मृगानुसरणश्चान्तो मृगव्याध उपैष्यति॥ तं त्वं स्वभावपुण्याभिः कथाभिषाधिष्यसि । तपस्तत्रैव विपिने स विरक्तश्चरिष्यति॥ ततस्तपस्विचर्याणामात्मद्यानवुभुत्सया। मध्ये स स्वप्नजिशासुः प्रध्यति स्वप्नसंकथाम् ॥ ३ कथयिष्यसि तसी त्यमात्मज्ञानमखण्डितम्। स्वप्राख्येन प्रसङ्गेन ज्ञातो योग्यो भविष्यति॥ इत्यनेन प्रकारेण गुरुस्तस्य भविष्यसि। तेन तात मयोकोऽसि गिरा व्याधगुरो इति ॥ इति ते सर्घमाख्यातं यथायं संस्रुतिभ्रमः। यथाहं याददाश्च त्वमिह यसे भविष्यति॥ इति तेनाहमुक्तः सन्विसयाकुलया श्रिया। तेन सार्घ विमृद्यैतत्परं विस्मयमागतः॥ अथ राज्यां व्यतीतायां स प्रभाते महामुनिः। तथा संपुजितो येन तत्रैव रतिमाप्तवान्॥ ረ अनन्तरं गृहे निस्सिन्त्रसिन्त्रामगृहे तथा। स्थितावावां स्थिरमती कृतभावौ परस्परम्॥ Q ततो वहति कालोऽयमृत्संवत्सरात्मकः। स्थितोऽहमागतान्भावांस्त्यजनगृह्वन्गिरिर्यथा नाभिवाञ्छामि मरणं नाभिवाञ्छामि जीवितम्। यथा स्थितोऽस्मि तिष्ठामि तथैव विगतज्वरम् ११ ततो विचारितं तत्र तन्मया दृश्यमण्डलम् । किं कारणमिदं तु स्यात्किमयं वेत्ति चेतसा॥ १२

> इह व्याधागमाशुक्तया तहुरुवसमर्थनम् । काले विवेकादिज्ञानं सर्वेकारम्यं च वर्ण्यते ॥ ९ ॥

तस्मिन् वर्णितगुणे वने ॥ १ ॥ २ ॥ तपस्विचयीणामभ्या-साच्छान्तिदान्त्यादिसाधनसंपत्त्यनन्तरं स व्याध आत्मज्ञानबु-भुत्तया मध्ये तदुपोद्धाततया स्वप्नजिज्ञानुः सन् स्वप्नसंकथां प्रक्ष्यति ॥ ३ ॥ ततस्त्वं स्वप्नाख्येन प्रसन्तेन आत्मज्ञानं कथयि-ध्यति ॥ ४ ॥ तेन हेतुना ॥ ५ ॥ पृष्टस्योत्तरं समाप्य प्राक्त-नमुपसंहरति—इतीति ॥ ६ ॥ एतत् दश्यजातम् ॥ ७ ॥ रिनं प्रीतिम् ॥ ८ ॥ तस्मिन्यनस्ये गृहे तथा तस्मिन्त्राक्तने प्रामगृहे च । कृतभावी बद्धप्रीती ॥ ९ ॥ भावान् अनिष्टेष्टमिधान् । गिरिपक्षे दवापिदृष्ट्यादीन् ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ एंतस्य कारणं निमित्तं किमस्ति ॥ १३ ॥ आत्मिन चिदेकचनस्वभावे स्ववस्थितं चिन्मात्रनभ एव ॥ १४ ॥ स्वे चिदाकाशे अप्रति-

कोऽयं पदार्थसंघातः किं नामैतस्य कारणम्। अस्यसिन्स्वप्रसंदर्शे चिद्योमैकस्वरूपिणि॥ £ \$ द्योः क्षमा वायुराकारां पर्वताः सरितो दिशः। चिन्मात्रनभ प्यैते कचन्त्यात्मन्यवस्थितम्॥ १४ चिषक्रिकाचतुर्दिक्रमवभासं तनोति यत्। तदिदं जगदाभाति चित्रमप्रतिघात्मके॥ 84 नेमेऽद्रयो न चेयं भूनेंदं खं नायमप्यहम्। चिन्मात्रव्योमकचनमिद्माभाति केवलम् ॥ १६ पदार्थजातस्यास्य स्यातिक नाम वत कारणम् । पिण्डप्रहे हेतुना तु विना कोऽप्यर्थसंभयः॥ भ्रान्तिमात्रमिदं चेत्याद्भान्तेः कि नाम कारणम् । द्रष्टा मन्ता च को भ्रान्तेः कारणं वा क की दशम् १८ यस्याहमयसं संविन्मात्रकं हृदयौजसि । असौ मया सह गतः किलाशेषेण भससात् १९ तस्मादिवमनाद्यन्तं चिवाभामात्रमम्बरम्। अकर्तृकर्मकरणं रूपं चिद्धनमकमम्॥ 20 इदं चिद्योमकचनं घटावटपटादिकम्। स्फुटं कुत इवाकारि घटावटपटाद्यतः॥ २१ नापि चिन्मात्रकचनं चिन्मात्रं व्योम केवलम् । तस्य किं कचनं कीहकू कथं कचति किं नभः २२ अयं फेनश्चिदम्भोधेः किमस्य कचनं नवम्। कचत्स्वभाव एवायमनन्तश्चिद्धनः स्थितः॥ રરૂ चिन्मात्रकचनं गुद्धं बह्य बृहितचिद्धनम्। इदं जगदिवाभाति क रहयं द्रष्टता कुतः॥ રક

घारम स्थै। स्था स्था त्रि पाता द्रयोग्यस्त भावम् ॥ १५ ॥ नन्वद्याद्यः सप्रतिधाः स्थमप्रतिधाः स्युस्त त्राहः — नेम इति ॥ १६॥
यदा चिन्मात्रक्तवनं तर्हि कारणमेव नास्ति पिण्डप्रहत्त देखोरप्रसिद्धेरित्याहः — पदार्थिति ॥ १७ ॥ तर्हि आन्तिरेवेयमस्तिल्लाशक्का तत्रापि निमित्त द्रष्टादि दुर्वेचमित्याहः — अन्तीति ॥ १८॥
संविन्मात्रक महं यस्य देहे प्रविष्टः सन् हृदयौजस्य वसमसी
प्राणी मया मदेहेन सह भस्मसाद्रतः ॥ १९॥ तस्मात्तेहमदेहादीनामसत्त्वादिदं सर्वे चिदामामात्रमम्बरमेय ॥ २०॥ घटावटपटायत आकारतो भवितुं स्फुटं रूपं कृत इव अकारि ।
न कुतिश्वदिल्यधः ॥ २९॥ चिन्मात्रक चनमिति सुदिरिप
राहोः श्विर इतिविद्वकल्पमात्रम् । पश्चीतत्युरुषप्रयोजकयोर्भेदसंवन्धयोरप्रसिद्धेरित्याशयेनाहः — नापीति ॥ २२॥ फेन
इव फेनः ॥ २३॥ सदैव बृहितचिद्धनं महा ॥ २४॥

आद्यन्तवर्जितमभेयमनादिमध्य-मेकं विंभुं विगतकारणकार्यसम्बम्।

सत्तामयं भुवनशेलदिगन्तनाना-ऽनानात्मकं किमपि चेतनमेव सर्वम् २५

इति श्रीवासि॰ वा॰ मो॰ निर्वा॰ उ॰ अवि॰ श॰ सर्वैकारम्यप्रतिपादनं नाम त्रिपद्याशदिधकशततमः सर्गः ॥ ९५३ ॥

चतुःपञ्चादादिषकदाततमः सर्गः १५४

मुनिरुवाच । इति निर्णीय दृश्येऽसिम्स्थितोऽसि विगतज्वरः। वीतरागो निराशङ्को निर्वाणो निरहंकृतिः॥ ξ निराधारो निराधेयो निर्मानो निरुपाश्रयः। स्वभावस्थः स्वयं शान्तः सर्गातमा सर्वथोदितः यथाप्राप्तस्य कर्तासा न कर्तासा कदाचन । स्वयमेव हि यो व्योम कर्तृता तम्य कीहशी॥ ą द्यीः क्षमा वायुराकाशं पर्वताः सरितो दिशः। इत्येकात्म नभः सर्व भूतजालैकचिद्वपुः॥ शाम्यामि परिनिर्वामि सुखमासे च केवलम्। न विधिप्रतिपेधौ मे न मे वाह्यं न मेऽन्तरम्॥ इति मे तिष्ठत इह यथासंस्थानसंस्थितेः। अद्यायं त्वमनुप्राप्तः काकतालीयवत्पूरः ॥ इति ते सर्वमाख्यातं यथा स्वप्नां यथा वयम्। यथा अगद्यथा च त्वं यथा दृश्यमिदं तथा ॥ त्वं च ाहरहरयमिदं यथा हश्यमिदं पुरः। यथा भावा यथा ब्रह्म यथेमा जनताः पुरः॥ पतद्वद्धा भवाञ्छान्तो मिथ्या लुब्धकलुब्धक ।

कालत आधन्तवर्जितं देशतोऽप्यनादिमध्यं वस्तुत एकमत एव विगतकारणं विगतकार्यं विगततद्धीनसलकं च स्वतःसत्ताप्र-धानं स्वसत्तयेव भुवनादिसत्तानिर्वादकलान्नानाऽनानात्मकिषय किमिप वाष्ट्रनसागोचरं यभेतनं तदेव सर्वं न तद्यतिरिक्तमणु-मात्रमध्यस्तित्यर्थः ॥ २५ ॥ इति श्रीवासिष्ठ०तारपर्यप्रकाशे निर्वा० उत्तरार्धे त्रिपञ्चान्नाद्धिकशततमः सर्गः ॥ १५३ ॥

> विचारजा निजा जीवन्सुक्तस्थितिरहोदिता। सुनिनाभ्यासहीनस्य व्याधस्य स्वनवस्थितिः॥ १॥

सकृतविवारफलं स्वजीवन्मुकिस्थिति मुनिः प्रपश्चयति— इतीखादिना ॥ १ ॥ निर्मानो विगताभिमानः ॥ २ ॥ यः स्व-यमेव व्योम निष्क्रियं तस्य ॥ ३ ॥ एकात्मरात् नभश्चिदाकाश-मेव ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे व्याध, अयं लमदानुप्राप्तः ॥ ६ ॥ एवमनुप्राप्ताय प्रच्छते ते इति यथावर्णितप्रकारं सर्वम् । तदेव प्रपश्चयति—यथा स्वप्न इत्यादिना । सर्वत्र तथा व्याख्यातमिति संवध्यते ॥ ७ ॥ त्वं द्रष्टा च यादक् । इदं देहेन्द्रियाद्याध्या-त्मिकमान्तरं दश्यं यथा । इदं पुरोद्यथमाधिभौतिकं च दश्यं यथा । तेषु च रागद्वेषहानोपादानादिमाना यथा ॥ ८ ॥ हे क्षम्बक्षडधकेस्वादराद्विवनम् । भवानेतत्सर्वं मिथ्या इति

१ विभुमिति पुंस्त्वमार्थम्.

शान्तैवैवमियं सत्ता चिन्मात्रव्योमरूपिणी॥ स्वयमाभाति निर्वाणा नैव वाभाति किंचन। लुब्धक उवाच।

एवं चेत्तदहं त्वं च सर्वे वा त्रिबुधादयः॥ १० सर्वे एव मिथः स्वप्नपुरुषाः सद्सन्मयाः।

मुनिरुवाच ।

एवमेतदिदं सर्वमन्योन्यं स्वप्नचितस्थतम् ॥ ११ अन्योन्यमात्मनि तथा सदसन्चानुभूयते। दृश्ये येन यथा बुद्धं तथा तेनानुभूयते ॥ १२ नानैकं वस्त्वतोऽनेकं न सन्नासन्न मध्यगम्। जात्रति स्वप्तनगरमिव वेदनमात्रकम्॥ १३ अद्दष्टपूर्वदूरस्थद्दयमानपुरोपमम्। इति ते सर्वमाख्यातं बोधितोऽसि निरन्तरम् 88 स्वयं प्राज्ञोऽसि जानासि यथेच्छित तथा कुर । एवं प्रवोधितस्यापि तव व्याधमते मतिः॥ ęι क्षणं प्रचोधविश्रान्ता न विश्रान्ता परे पदे। नाभ्यासेन विना बोध एप याति मनोहृदि॥ १६

बुद्धा शान्तो भव । यत इयमात्मसत्ता शान्तैव खयं निर्वाणा आभाति नाशान्ता ॥९॥ शान्तिखरूपभेव दर्शयति—नैवंति । आखन्तिकदृरयाभानमेव तच्छान्तिरिखर्थः। स्फुटतरस्य नरदेव-तिर्यक्थावरादेः स्वप्रप्रायस्यमसंगावितभिति काका ध्वनयंहु-ब्धक आह—एवंचेदिति ॥१०॥ सन्त एवासन्मयाः स्युरिति शेषः । इष्टापत्त्या मुनिरुत्तरमाह--एवमेतदिति ॥ ११ ॥ आ-त्मनि सत् अन्येष्वसन् । तथैव सर्वानुभवादित्यर्थः । बोधानु-सारिव्यवस्थलादपि तत्त्रथेत्याह—हर्यामेति ॥ १२ ॥ यतो नानैकं वस्तु । यथैको घटो नानाकपालकपालिकातदवयवपरेप-रापरमाण्वन्तनानावस्त्वात्मक एकत्वप्रतीतेरेकवस्त्वात्मकश्च । तत्र नानालदर्शिनामेकमसत्। एकलदर्शिनां नानालमसत्। उभयदर्शिनामुभयं सदसच पाक्षिकम् । तस्वविदां तु वेदनमात्रकमिति नेकमपीखनुभवसिद्धमिति भावः। मध्यगं सदसत् ॥ १३ ॥ १४ ॥ मतं स्वाभिमते जगत्सत्य-लभ्रमे एव मतिर्विश्रान्ता परे पदे तुन विश्रान्तेति परे-णान्वयः ॥ १५ ॥ तरकुतस्तत्राह्-नेति । एष बोघोऽभ्या-सेन परां परिणतिं विना मनोहृदि मनोन्तर्न याति न प्रवि-शति । यथा अम्बुधारणे कार्ये दारुणि परां कमण्डल्वाद्याकारां कर्तनादिनिर्मितां परिणतिं विना तदन्तरम् न प्रविशति तद्व- परां परिणर्ति प्राप्त दारुणीवाम्बुधारणे। अभ्यासाद्वोधविश्रान्तौ गुरुशास्त्रैकसेवनात्। द्वैताद्वैतदशोः शाम्स्या निर्वाणं चित्तमुच्यते॥ १७ निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिष्ठत्तकामाः। इन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंहै-र्गच्छन्त्यमुदाः पदमव्ययं तत्॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰दे॰मो॰नि॰उ॰अ०वि॰शवो॰यथाभूतार्थवर्णनं नाम चतुःपद्याशदधिकशततमः सर्गः॥१५४॥

पश्चपत्राद्यादिषक्याततमः सर्गः १५५

अग्निरुघाच । इत्याकर्ण्याथ स व्याधस्तदा तिसन्वनान्तरे। आसीचित्रकृताकार इव विस्मयमन्थरः॥ ₹ न विश्वाम चेतोऽस्य स्वाभ्यासेन विना परे। आसीतुद्धान्त इव स प्रोह्यमान इवार्णवे॥ आरूढ इव वा चके चकेण तपसा हतः। नकेणेव समाकान्तः पराक्रमविवर्जितः॥ 3 किमेतत्स्यादुतान्यत्स्यान्निर्वाणमिति संशयात्। नाध्यगच्छद्सी शान्ति मुर्खी योवनवानिव ॥ अविद्याकृतमेवेदं दृश्यमित्येव चिन्तयन्। अविद्या जगदित्येपा नायाति निपुणं हृदि ॥ कियदन्तमिदं दृइयं स्यात्पद्याम्येतदादितः। दूरतोऽर्घप्रमाणेन तपोलब्धशरीरकः॥ भाषाभाषात्मनो नित्यमस्यान्ते स्थीयते सुखम् । तसादाकाशमध्यस्ति यत्र नो तत्र याम्यहम् ॥ इति निर्णीय हृद्ये मूर्ख एव सभूव सः। गतं तारशमण्युकं विनाभ्यासेन भसानि॥ ረ ततस्ततः प्रभृत्येव तेनैव मुनिभिः सह ।

दिति परेणान्वयः ॥ १६ ॥ अभ्यासेन बोषस्यान्तिविश्रान्ती सिद्धायां तिबत्तमेव निर्वाणमिति तदनुभविभिष्ट्यत इत्याह—अभ्यासादिति ॥१०॥ उक्तेऽथे भगवद्वननसंभितं दर्शयति—निर्मानेति । अन्तिर्निर्मानमोद्दाः । बिहिजितसङ्गदोषाः । अन्तर्व-हिक्षाध्यात्मनित्याः । सर्वतः पूर्णानन्दात्मलाभाद्विनिवृत्तकामाः। सुखदुःखयोः सम्यग्ञानं संज्ञा येभ्यस्तथाविधः प्रियादिद्वन्द्वैर्वि-सुक्ता अमुदास्तक्विदसाद्विष्णोः परमं पदं निर्वाणास्यं गच्छन्ति । अनुभवन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारग्मान्यणे तात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे चतुःपञ्चाशद्विकशततमः सर्गः ॥ १५४ ॥

ध्याधस्य मूदतपसा चिरक्केशाद्विधेर्नरात् । मभोगतिः कार्यवृद्धिकृतिश्च सुनिनोध्यते ॥ १ ॥

चित्रकृत भाकारः प्रतिमेव विस्मयेन मन्यरो जडीकृतः ॥ १॥ न विश्वाम विश्वान्ति न छेमे ॥ २॥ केनचित्सिद्धेन तपसा खीयत्रोयछेन चक्रेण चक्रवातेन इत ६व ॥ ३ ॥ ४॥ यत इदं जगद्वियोक्समों इति मायाति अत इदं जगद्विया-

| लुष्धकरव परित्यज्य तपश्चारतुमुद्यतः॥ | 9 |
|--|------|
| तसिञ्जगति तेर्भावैस्तैः समं निवसन्सदा। | |
| वद्गन्यद्धसहस्राणि चकार सुमहत्तपः॥ | १० |
| तपः कुर्वन्कदाचित्स पुनः पप्रच्छ तं मुनिम्। | |
| कदा स्यादात्मविश्रान्तिर्ममेत्याह मुनिस्ततः॥ | ११ |
| मुनिरुवाच । | |
| क्षानं तदुपदिष्टं ते जीर्णदार्वस्पकाग्निवत्। | |
| संस्थितं हृदये किंतु दाह्यमात्रम्य नोचितम्॥ | १२ |
| नाभ्यासेन विना ज्ञाने शिवे विश्वान्तवान्सि । | |
| अभ्यासेन तु कालेन भृशं विश्रान्तिमेष्यसि॥ | १३ |
| भविष्यदिदमारमीयमथाकर्णय निर्णयम् । | |
| मम वर्णयतः कर्णभूषणं भूतलाद्भुतम् ॥ | દ્રક |
| स्रत्तानववुद्धात्मा श्रानस्रारतयानया । | |
| दोलायमानसंवित्वं न मुखों न च पण्डितः॥ | १५ |
| अविद्यारूपमाभोगि किंप्रमाणमिवं जगत्। | |
| स्यादित्यात्मविकल्पेन तपस्त्वं कर्तुमुद्यतः॥ | १६ |
| इत्यं तपस्त्वया घोरं कार्ये युगरातं पृथु । | 8.0 |
| परमेष्ठी ततस्तुप्टस्त्वामुपैष्यति सामरः॥ | १७ |

ख्यया ब्रह्मशक्त्या कृतमुत्पादितं सत्यमेवेति चिन्तयन्सन्॥५॥ इदं दृश्यं कियदन्तं कियदृरावधिकं स्यादेतलपोलन्धशरीरकः स-न्नादितः पृथिवीमारभ्य दूरतया ऊर्ध्वप्रमाणेन देहेन गला पश्या-मि द्रक्ष्यामि ॥६॥ भावाभावात्मनोऽस्य दृश्यस्यान्ते असंसारप्रदे-शे नित्यं मुखं स्थीयते स्थास्यते मया ॥७॥ तादशमतिविस्तीर्ण सदृष्टान्तोपपत्तिकमपि सुन्युक्तमभ्यासेन विना भस्मनि द्वतिमव वृथा गतमित्यर्थः ॥ ८ ॥ तेनैव निर्णयेन ॥ ९ ॥ तैस्तपिखपु प्रसिद्धैभीवैर्देक्षणैः ॥ १० ॥ मम निरुपप्रवे आत्मनि विश्वान्तिः कदा स्यादिति पत्रच्छ । ततो मुनिस्तं प्रत्याह ॥११॥ जीर्णदार्वस्प-काभिवत्संस्थितमित्युक्तया जन्मान्तरे उद्बोधमेष्यतीतिस्चितम्। सांप्रतं दग्धुमुचितं दाह्यं दग्धुं शक्यमपि दश्यानर्थमाक्रम्य न संस्थितम्॥१२॥ कालेषु चिरेण॥१३॥ भूतले केनापि मनसाप्य-संभावनादत्यद्भतम् ॥१४॥ संखुतो ज्ञातुं प्रस्तुतः तया विद्वत्प्र-सिद्धया ज्ञानसारतया अनवबुद्धधात्मा येन तथाविधोऽतएव दोलायमानसंविष्यम् । असमर्थसमासरछान्दसः ॥ १५॥ आ-रमत्रिकल्पेन स्वमनोरथकल्पनामात्रेण ॥ १६॥ इरक्मवेनैव

मार्गियप्यसि तस्य त्वं घरदस्य वरं वेर। दैदमुद्दामदीरात्म्यान्निजं संदेहसंचयम्॥ वैवायं दृश्यरूपेऽस्मिन्द्षेऽविद्याभ्रमे सति। कचिवादर्शवन्नास्ति प्रतिविम्बमलोज्झितः॥ चिद्योमदर्पणस्यास्य परमाण्याकृतेनिष । अन्तस्थस्येव वा यत्र तत्रेदं प्रतिविम्वति ॥ २० : तसात्कियद्नन्तं स्यादिदं दृद्यमनर्थेकृत्। तस्य पारे कियद्वा स्थादाकाशं दश्यमेव तत्॥ २१ एवमर्थमहं ज्ञातुमिमं संप्रार्थये वरम्। शृणु देवेश्वराविधं तश्चैवाशु प्रयच्छ मे ॥ २२ इयं स्वच्छन्दमृत्युर्मे नीरोगास्तु तनुश्चिरम्। गारुडेन च वेगेन संयुता व्योमगामिनी॥ २३ प्रतिनाडीकमेषा तु वृद्धि गच्छतु योजनम्। क्रमेण जगतो बाह्य भवत्वाकाशरूपिणी ॥ રક્ષ साकादास्यास्य दृश्यस्य लभेय परमेश्वर । अन्तमित्थमनन्तस्य परमोऽस्त्विति मे वरः॥ २५ इति साधो त्वया प्रोक्ते देवदेवो वरं प्रभुः। पवमस्तु तवेत्युक्त्वा यास्यत्यन्तर्धिमीश्वरः॥ २६ गते तस्मिन्महादेवे देवैः सह दिवस्पती। तपसा ते कृशो देहश्चन्द्रकान्तिर्भविष्यति॥ २७

सांप्रतं ऋयमाणप्रकारेण । युगशतं व्याधस्य जीवनासंभवाद-र्थादनेकजन्मभिः ॥ १७ ॥ वरदस्य तस्य विधेः सन्निर्धा उन् द्दामदौरात्म्यामिजं मनोरथकल्पितं वरं मार्गयिष्यति । प्रार्थ-यिष्यसीतियावत् ॥ १८ ॥ यत्प्रार्थयिष्यसि तच्छण्वित्याह---देवेति । हे देव विधे, अस्मिन् हरयरूपे दृष्टे अविद्यान्त्रमं सति आद्शेवत्थिते ब्रह्मणि प्रतिबिम्बम्छेनोज्ञितः प्रदेशो नाहित यत्र गतस्य में निर्विक्षेपिश्चितिः स्यादित्यर्थः ॥ १९ ॥ कुतो नास्ति तत्राह्—चिद्योमद्र्यणस्येति।यतःपरमाण्वाकृतेरप्यन्तः-स्थितस्यास्य चिद्योमदर्पणस्य यत्र तत्र इदं जगद्भूपं प्रतिबिम्बति ॥ २० ॥ हे विधे, यसात्साविद्यचितेरियं स्थितिस्तस्मादिदम-विद्याप्रयुक्तं दृश्यं कियद्रमिद्मनर्थकृदृश्यं स्यात् । तस्य दृश्यस्य पारे अनन्तं निरविधं ब्रह्म कियह्रं वा स्यादाकाशवत् संसार-श्रुत्यं ब्रह्म तन्मया दृश्यमवश्यं गला दृष्टव्यमेव । आवश्यके कृतः ॥ २१ ॥ एवंरूपमर्थं ज्ञातुं प्रत्यक्षमनुभवितुमिमं वक्ष्य-माणं वरं संप्राथंये ॥ २२ ॥ इयं मे तनुः स्वन्छन्दमृत्युर्नारी-गा गार्डेन गर्डवेगसहरीन वेगेन संयुता व्योमगामिनी चासु ॥ २३ ॥ तु पुनः प्रतिनाडीकं प्रतिक्षणं प्रत्यवयवं च योजन-मेषा मे तनुर्रेद्धि गच्छतु । कालक्रमेण जगतो लोकत्रयाद्वाह्य भवत बहिर्गेच्छतु । आकाशवद्विशालरूपिणी॥२४॥अहं साका-

१ स्वजातिसिद्धहिंसादिपरित्यागेन तपः प्रवृत्तत्वा छुण्धकस्यैन वरेति संबोधनं. २ नपुंसकत्वमार्ष इममिति वा पाठः. ३ संदेहस्य अविधा-

मामाप्रच्छन्नमस्ऋत्य तिसन्निव क्षणे ततः। ष्ठुतिमेष्यति स ब्योम्नि चित्तस्थार्थदिदक्षया ॥ २८ ब्रितीय इव शीतांशुद्धितीय इव भास्करः। ब्रितीय इव वौर्वाक्षिश्चन्द्रार्कस्पर्धयोत्थितः॥ २९ ततो गरुडवेगेन दृश्यस्य नभसस्तथा। अन्तं प्राप्तुं वहन्वेगाज्जगतः सरितामिव ॥ ३० जगतोन्ते ततोऽजस्नं ततो वर्धिष्यते वपुः। कल्पान्तमत्तार्णवविश्वपाराम्बरपूरणम् ॥ 38 द्रश्यस्थय महाव्योम्नि वर्धमानो बृहद्वपुः। सर्गान्निरर्गेलाधारनिरन्तगगनक्रमात्॥ ३२ परमार्थमहाकाशक्ष्यतावातचक्रकान्। स्वभावद्रवतोदेशाधिदर्णघतरङ्गकान् ॥ ३३ संविद्धने यथा स्वप्ने पुराचा भान्ति खात्मकाः। तथा तदा तवैष्यन्ति सर्गवर्गा निर्गलाः॥ विस्फ्ररन्ति महाव्योम्नि पर्णीघाः श्वभितानिकैः। तथा सर्गाननन्तांस्त्वं द्रक्ष्यस्यक्षीणनिश्चयः॥ ३५ सभासत्येक्षणह्यां यथा जालं सदप्यसत्। जगदात्म तथाकाशसंविदां खे सद्प्यसत्॥ सर्वोधीजनद्रष्टानां लग्नानामिन्द्रमण्डले। याहरज्ञालं जगसाहिकस्थतेऽनन्यत्वमात्मनः ॥ ३७

शस्यास्य दृश्यवर्गस्यान्तं लभेय ॥ २५ ॥ २६ ॥ महति देवे वैधित । त्रिमूर्तीनामभेदाद्वा महादेवे । चन्द्रस्य । कान्तिरिव कान्तिर्थस्य तथाविधो भविष्यति ॥ २७ ॥ स भवान्व्योप्ति त-स्मिन्बरप्राप्त्यत्तरक्षण एव ततो मदाश्रमात्ह्रतिमुर्ध्वमुश्चयनमे-प्यति ॥ २८ ॥ २९ ॥ वहन्गच्छन्सन् सरितामन्तहव जगत-स्रोलोक्यस्यान्ते ते वपुर्वाधंष्यते इति परेणान्वयः ॥ ३० ॥ निष्पारस्याप्यम्बरस्य पूरणं निरवकाशतासंपादकम् ॥ ३१ ॥ निर्गलमप्रतिबन्धमेवाधारभूतं यदनन्तं गगनं तस्य क्रमादाक-मणात् ॥ ३२ ॥ सर्गानेव विश्वनिष्टि-परमार्थेत्यादिना । पर-मार्थमहाकाशस्य शुन्यताप्रयुक्तान्वातचककान्वासा इव स्थि-तान् । स्वभावः अज्ञाततास्वभावस्तहक्षणद्रवताया उद्देशादुरसे-कादाविभूतांश्विदर्णवतरङ्गकान् ॥ ३३॥ एष्यन्ति दष्टिपथमिति शेषः ॥ ३४ ॥ यथा विस्फुरन्ति तथा विस्फुरितानिति शेषः ॥ ३५ ॥ यथा सौधस्थलीजनानां विचित्रवातायनजालेन बहि-ष्ट्रनृत्यसभासत्येक्षणं रोचते नान्यदेषां तथाविधानां विचित्रं वा-तायनजालं सद्य्यसत्प्रायं तथा चिदाकाशसंविदां तत्त्वविदां ज-गदारमकं वैचित्र्यं तत्र सदप्यसत्त्रायमेवेत्यर्थः ॥ ३६ ॥ सर्वै-हवांस्थेजेनैरिन्दुमण्डलसंलमतया दशनां धूमनीहारधूस्यादीनां जालमिन्द्रमण्डलस्थजनदशा यादगत्यन्तासत् जगद्पि आत्मनः

रूपमित्यादिनानुपदोक्तस्य सम्यक् शयः शयनं निष्ट्तिरिति यावत् । स यसिन्निति संदेहसंशयस्यभाविभमिति वरविश्लेषणम् पुनः सर्गः पुनर्व्योम पुनः सर्गः पुनर्नभः। इत्येवं पर्यतस्तेऽत्र दीर्घकालः प्रयास्यति ॥ अध दीर्घेण कालेन प्रस्फुरन्सर्गपर्णके । उद्वेगमेष्यसि व्योम्नि महामहिमनि स्वयम् ॥ 30 उद्वेगमेष्यसि ततस्तपसोऽन्रभवत्फलम् । निर्देश्यसि तदा देहमनन्ताम्बरपूरकम्॥ 80 किमिदं कुशरीरं मे भारभृतमिव स्थितम्। मेर्वादिभूभृतां लक्षमपि यस्मिस्तृणायते ॥ 88 देहो ममाप्रमाणोऽयं व्याप्तं व्योम मयाखिलम् । पूरयामि खमद्यापि भावि नेवोपगम्यते ॥ પ્રર अविद्या वत घोरेयमनन्ता च प्रमीयते । मीयते न च केनापि ब्रह्मज्ञानं समं विना ॥ સર तमिमं संत्यजाम्येव देहमाविवृतान्तरम् । नानेन किंचिदाप्रोमि साधुसच्छास्त्रसंगमम्॥ ५४ अनन्तापारपर्यन्तं निरालम्याम्बरास्पदम् । किनामेदं शरीरं मे सुदुष्प्रापार्थसंगमम्॥ છપ इति संचिन्त्य तं देहं धारणां प्राणरेचनीम्। **छत्वा त्यक्ष्यसि संभुक्तात्फलाच्छुष्कं यथा** खगः ४६ **कृत्वा देहपरित्यागं** जीवः प्राणसमन्वितः । व्योम्नि स्थास्यति ते तस्मिन्वातात्सृक्ष्मोऽपि वातवत् छिन्नपक्षो महामेहरिय देहः पतिष्यति । इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० मो० नि० उ०अ०वि०श० भाविसंपत्तिवर्णनं नाम षटपञ्चाशद्धिकशततमः सर्गः ॥१५५॥

तत्र भूलोकशेलादि सर्वे चूर्णीकरिष्यति॥ 86 शुक्ता भगवती देहं तत्तदाँ भक्षयिष्यति। समातृमण्डला तेन निर्दोषा भूर्भविष्यति ॥ પ્રશ इत्यात्मोदन्तमखिलं श्रुतवान्सि सुवत । तपस्तालीवने ऋत्वा यथेच्छसि तथा कुरु॥ ५० व्याध उवाच । अहो नु भगवन्दुःखं परिभोक्तव्यमक्षयम्। मया व्यर्थमनथीय यदर्थेन दुर्राधितम्॥ ५१ विद्यते किं विभो काचिष्ठक्तिः सेपा स्थितिवेर। अन्यथा भवितव्योऽथों यदि नास्ति तदुच्यताम् ५२ मुनिख्याच । अवस्यं भवितव्योऽर्थो न कदाचन केनचित्। विधातुमन्यथा शकास्तन्न क्षरांते यह्नतः॥ ५३ वासावामहारःपाद्विपर्ययविधौ यथा । पुंसो न विद्यते शक्तिस्तथा भावान्यथास्थिती 48 ज्योतिःशास्त्रार्थविज्ञानैरिह भाव्यर्थवेदनम् । भवत्यन्यदपूर्वे तु न किंचन कदाचन॥ ५५ जयान्ति कमाणि हि वेदनानि येः प्रारुतैरद्यतनान्युपेत्य । शरीरदाहैरपि निर्धिकार-संविष्नयैर्बह्मतयैव सुप्तम् ॥ ५६

पट्पञ्चादाद्धिकदाततमः सर्गः १५६

व्याध्र उवाच । अनन्तरं हे भगवन्वितताकाशवासिनः।

अनन्यत्वं प्राप्य स्थिते तत्त्वविदि ताहक् अत्यन्तासदेवत्यर्थः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ प्रस्फुरन्संचरन् । व्योष्ट्रयव्यक्ताकाशे ॥३९॥ निर्देश्यसि द्रक्ष्यसि वश्यसि च ॥ ४० ॥ तदेवाह-किमिद-मित्यादिना ॥ ४१ ॥ अत्रमाणः अपरिमितः । यद्भावि तन्नैव उपगम्यते ज्ञायते ॥ ४२ ॥ इयं दर्यरूपा । प्रमीयते अनुभू-यते । मीयते इयत्तया परिच्छिचते हिंस्यते वा ॥ ४३ ॥ अ-येनातिप्रवृद्धदेहेन साधुसच्छास्त्रसंगममन्यद्वा मोक्षसाधनं किंचि-भाग्नोमि ॥ ४४ ॥ सुदुष्प्रापः आर्याणां तत्त्वविदां संगमो येन ॥ ४५ ॥ प्राणं रेचयति शरीराद्वहिर्नयति तच्छीलां धारणां कुला । यथा खगः पक्षी संभुक्तात्फलाहाडिमादेः शुष्कं नीरसं बीजलगादिभागं खजति तद्वत् ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तत्र तस्मिन् जगति ॥ ४८ ॥ शुष्का नीरक्ता प्राग्वर्णिता समातृमण्डला भगवती काली तद्देहं प्राग्वर्णितप्रकारेण गणः सह भक्ष-यिष्यति ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इदं भाविखदढसंकल्पफलं श्रुला ततो निर्विण्णो व्याधस्तत्परिहारोपायोऽस्ति वा नवेति पृच्छति-**अहो इलादिना । यद्यसाद्धेतोः अर्थन पुरुषार्थभ्रमेण** दुःखमे-वार्थितं संकल्पेन समर्थितम् ॥५१॥ हे वर श्रेष्ठ भगवन्, सैषा

किं भविष्यति मे तत्र देहेऽधःपातिनि क्षितौ ॥ १

भाव्यर्थस्थितिस्वयोक्ता । अयं भिषतव्योऽधी यया युक्तयान्यथा स्यात्तथाविधा वाचिद्युक्तिर्विद्यते यदि वा नास्ति तस्वया उच्य-ताम् ॥ ५२ ॥ यतस्तत् इदानीतनयन्नतो न क्षरति न नश्यति ॥ ५३ ॥ यथा पुंसः खदेहेऽपि बामावामभागयोः शिरःपा-दयोवी विपर्ययविधी व्यत्यासकरणे शक्तिनी विद्यते तथा भाव्य-र्थानामप्यन्यथास्थिता स्थापने ॥ ५४ ॥ तस्य परिज्ञानमात्रं तु शास्त्रीयोपार्थभवति नान्यथात्मित्याह् — ज्योतिःशास्त्रेति॥५५॥ तर्हि प्राक्तनरढसंकल्पकर्मणामानन्त्यादनिर्मीक्षप्रसङ्ग इत्याश-🗱 १६ -- जयन्तीति । यैः पुरुषधीरेयैः प्राकृतैः सुकृतैरचत-नानि शमदमादिसाधनान्युपेख संवित्रयेत्रह्मसंवित्प्रापकैः अव-णाद्युपायेस्तत्त्वज्ञानं प्राप्य ब्रह्मतयेव सुप्तं न जगहर्शनेन जाग-रितं ते पुरुषश्रेष्ठाः प्राक्तनानि सर्वकर्माणि दुःसंकल्पवेदनानि चात्यन्तदृढतराण्यपि मूलोच्छेदेन जयन्ति नान्ये इत्यर्थः ॥५६॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पञ्चपञ्चाशद्विकशततमः सर्गः ॥ १५५ ॥

वायी स्थितो व्याधजीवः सिंधुर्भूत्वा निवृरधम्। हत्वा मश्रिमुखाच्छोता स्वतस्वमिह वर्ण्वते ॥ १ ॥ कुला देहपरिलागं जीवः प्राणसमन्वितः व्योमि स्था**स्वति**

मुनिरुवाच ।

शृणुष्यावहितस्तस्मिन्देहे तव परिक्षते। किं भविष्यति भव्यात्मंस्तसिन्परमकाम्यरे ॥ २ देहे तस्मिन्परिभ्रष्टे जीवस्तु प्राणसंयुतः। भविष्यस्यम्बरे वातलवो व्याततरूपिणि॥ ₹ तिसन्वातलचे चेतो दृश्यं हृत्स्यं स्थितं पुरः। स्फारं द्रक्ष्यति भूपीठं भवान्म्वप्ने जगद्यथा ॥ 8 महत्त्वाश्चित्तवृत्तरत् जीवो द्रश्यति ते ततः। राजाहमस्मि भूपीठ इति संकल्पितार्थभाक ॥ ţ तत्रास्य सहसेवाञ्च प्रतिभोदेष्यति स्वयम्। अहमस्मि नृषः श्रीमान्सिन्धुनीक्वातिमानितः॥ Ę अप्रवर्णाय मे राज्यं गते पितरि काननम्। भुवश्चतुःसमुद्रायाः पित्रा दत्तमुपागतम् ॥ છ सीमान्ते भूपतिः रात्रुर्विदृरथ इति श्रुतः। विद्यते यः प्रयक्षेन विनानाम न जीयते ॥ 6 इदं मे कुर्वतो राज्यं संवत्सरशतं गतम्। अहो भृत्यकलश्रीधः सह भुक्तं मया सुखम् ॥ Q कष्टमेष प्रवृद्धों में सीमान्तवसुधाधिपः। अनेन सह संग्रामो दारुणः समुपस्थितः ॥ 80 इति चिन्तयतस्तत्र विदुर्थमहीभुजा। भविष्यति महयुद्धं चतुरङ्गवलक्षयि॥ ११ महता तेन युद्धेन हनिष्यसि विदुर्थम्। करवाललतालूनजङ्घं त्वं विरथोऽपि सन्॥ १२ चतुःसागरपर्यन्ते भूतले भूपतिस्ततः। भविष्यसि भयाकान्तदिकपालादतशासनः॥ स त्वं सिन्धुभवन्त्राप्तसकलावनिमण्डलः। पण्डितैर्मन्त्रिभिः सार्घे करिष्यसि कथा इमाः॥ १४ मन्त्री बदिप्यति।

मन्त्रा वाद्प्यात। अत्याध्ययंभिदं देव यदेवं स विदूरथः।

ते तस्मिन्वातात्सूक्ष्मोपि वातव'दिति यदुक्तं तत् श्रुला व्याधस्त-दुसरं स्मिनिष्यं पृच्छति—अनन्तरमिति ॥ १ ॥ परिक्षते नष्टे सिति । परमकाम्बरं अव्याकृताकाशे ॥ २ ॥ ३ ॥ तस्मिनेव वातलवे ते चेतो हृत्संस्थितं स्थान्तस्थं वासनामयं भूपीठं तदु-पछित्तं स्कारं जगत् द्रक्ष्यति ॥४॥ चित्तवृत्तरेव जगदाकारेण महत्त्वाते जीवस्तत्र राजाहमस्भीति द्रक्ष्यति ॥ ५ ॥ अतिशयेन सामन्तेमीनितः पूजितः ॥ ६॥ चतुःसमुद्रान्ताया भुवो राज्यं मे पित्रा दत्तमुपागतम् ॥८॥ यः शत्रुविद्यते स प्रयक्षेन विना न जीयते ॥८॥९॥१०॥ विद्र्यमहीभुजा सह युद्धं भविष्यति ॥ १९ ॥ लं विद्र्यं हिनिष्यसि ॥ १२ ॥ भयाकान्तैर्दिषपालर-प्याहतं शासनं यस्य ॥ १३ ॥ पिडतैः शास्रतत्त्वविद्धः । इमा वक्ष्यमाणाः ॥ १४ ॥ तत्र तत्त्ववित्कश्चिन्मन्त्री वदि-ध्यति—अत्याक्षयंमिति ॥ १५ ॥ सधनलादेव सेनया स्ववा-योग० १८९

| देवेन विजितो युद्धे नीतश्च यमसादनम्॥ | १५ |
|--|-------------|
| त्वं वक्ष्यसि । | |
| भोः साधो सधनस्यास्य कल्पान्तार्णवरहसः। | |
| वैरी विदूरथो राजा किमर्थ वद दुःसह ॥ | १६ |
| मन्त्री वदिष्यति । | |
| लीला नामास्य भार्यास्ति तयातितपसार्जिता | l |
| माता सरस्वतीदेवी जगजात्री निरञ्जना ॥ | وزع |
| गृहीतायाः सुतात्वेन सास्या भुवनभाविनी । | |
| संसाधयति कार्याणि मोक्षादीन्यपि हेळया॥ | १८ |
| वरेण शब्दमात्रण जगद्द्यजगत्क्षणात्। | - |
| करोति सा भवनारो तस्याः कव कदर्थना॥ | १९ |
| सिन्धुवैदिष्यति । | |
| त्वया वै युक्तं कथितं यद्येवं तद्विदृर्थः। | |
| अशक्यो जेतुमाश्चर्य एतस्य समरे वधः ॥ | ξo |
| तदेवं संप्रसादेन भगवत्या समन्वितः। | |
| किमिर्त्यसम्बर्णे तस्मिञ्जयं राजा न सम्धवान् | રશ |
| मन्त्री वदिष्यति । | |
| तेन संप्रार्थिता देवी सर्वकालमसेदिना। | |
| मोक्षोऽस्तु मम संसारादिति तामरसेक्षण॥ | २२ |
| तया तेनँ विभो तस्य स एवावन्ध्यसंविदा । | |
| संपादितस्तन तदाश्रित आजा पराजयः॥ | २३ |
| सिन्धुवैदिष्यति । | |
| यद्येवं तन्मया देवी सद्वेपा प्रपुज्यते। | |
| मोक्षं किमिति में नेषा ददाति परमेश्वरी॥ | રક |
| मर्खा चदिष्यति । | |
| प्रवाहि इतिरास्तेऽन्तः सर्वस्य दृद्ये सदा। | |
| संविद्र्या भगवती सेव प्रोक्ता सरस्वती॥ | Ę ′4 |
| येन येन यथात्मीया प्रार्थ्यते स्वयसेव सा। | |
| प्रयक्ति तथेवादा तसाचित्रसम्पर्ने ॥ | ೭೯ |

हुबलेन च कल्पान्ताणंग्रन्थों सम वित्रुथो राजा किमथे केन बलेन दुःसहो ज्ञातुस्त्रुदेत्वर्थः ॥ १६ ॥ माता आर्जिता मातृ-भावेन खार्थानीकृतेत्वर्थः ॥ १६ ॥ माता आर्जिता मातृ-सा सरस्वती सुतालेन एक्षीताया अस्या लालाया मोक्षादीन्यपि कार्याणि संसाधयति ॥ १८ ॥ तस्या भवतां नाद्यं परिभवं क-दर्थना क्षेत्राह्मपा अशक्तिः केव ॥ १९ ॥ युक्तमुपपत्रं कथितम् । यथेनं तर्हि स विद्रुथों जेतुमशक्य एयात एतस्य समरे यथो यो जातः स आवर्थः असंभाव्य इलर्थः ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ अवन्ध्यसंग्रदा सत्यसंकल्पया तया देव्या स मोक्ष एव संपादितः । तेन स्वत एव पराजय आधितः ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ इक्षिः पराह्या वैखर्यन्तसंवंशन्दर्शजमृता ॥ २५ ॥ आरमीया स्वारमहिता । तस्मात्प्रदानात्तदोयसल्पसंकल्पथिदेव

१ तसिक्षसिन् रणे इति संबन्धः. २ इतुनाः ३ राम्ना विद्र्येन.

न प्रार्थितैषा भवता मोक्षार्थमरिमर्दन। प्रार्थितैव त्वया संविदात्मीया राष्ट्रशान्तये॥ २७ सिन्ध्रवेदिष्यति ।

न प्रार्थिता मया कस्मादनेनेषा सरस्वती। संविच्छदा मया कसात्प्रार्थिता नेह मुक्तये॥ २८ मदारायगताप्येषा श्रप्ति दत्त्वा सरस्वती। मनमोक्षाय किमित्यङ्ग सद्गुपापि न चेष्टते॥ २९ मन्त्री यदिष्यति ।

अशुभः प्राक्तनोऽभ्यासस्तवास्ति रिषुघातिनः।

इत्यार्षे श्रीत्रासिष्टमहारामायणे वा० मो० नि० उ० अवि० श० सिन्धुसंबोधनं नाम षद्रपञ्चाशद्धिकशततमः सर्गः ॥ १५६ ॥

तेनैषा मुक्तये नत्वा त्वया न प्रार्थिता विभो ॥ ३० यश्वित्तस्तन्मयो जन्तुभवतीत्याजगतिस्थतेः। आवालमेव संसिद्धं कर्तुं राक्नोति कोऽन्यथा॥३१ यदेव येनामलयामलात्म संवेद्यतेऽभ्यासमयं विदान्तः। सर्वापमर्देन तदेघ सोऽङ्ग सद्स्त्वसद्वास्तु भवत्यविद्यम् ॥

३२

4

દ્દ

9

4

9

30

सप्तपञ्चादादिषकदाततमः सर्गः १५७

ર

अथ सिन्धुर्वदिष्यति। आयीनार्यवपुः कोऽहमभयं विमतिः पुरा। यद्भवान्मे कुसंस्कारः प्राक्तनोऽस्ति भवप्रदः॥ मन्त्री वदिष्यति।

रहस्यं शुणु भो राजन्सावधानपरः क्षणम्। चोदितः संद्धासीदमध मान्धविनाशनम्॥ किमप्याद्यन्तरहितमस्तीह सदनामयम्। स्थितं त्वमहमित्यादिरूपेण ब्रह्मशब्दितम्॥ तद्वस स्वयमेवाहं चिश्वेतामीति संविदम्। जीवतामिव गत्वास्ते चित्रीभूयात्यज्ञहुपुः॥

वरफलात्मना अनुभूयते ॥ २६ ॥ २० ॥ मयेव अनेन विदुर्थेन राज्यार्थं कस्मात्र संप्रार्थिता । मया वा अनेनेव मुक्तये कस्मान्न प्रार्थितेति इवशब्दाध्याहारेण ॥ २८ ॥ तव स्वेच्छानुसारिप्रवृत्ती मां प्रति प्रश्नोऽयमयुक्त इत्याशका तत्तात्पर्य प्रकाशयति—मदाशयेति । आशयधितं तदता मदारमभूताप्येषा मम मोक्षेच्छालक्षणां इप्ति दत्त्वा साध-नसंपत्तिद्वारेण मन्मोक्षाय कुतो न चेष्टत इत्याशय इत्यर्थः ॥ २९ ॥ नला नमस्कृत्य ॥ ३० ॥ न स्वातक्रयेण देवा अनु-गृह्णित किंतु भक्तिचित्तानुसारेगैवेखर्थे यचित्रस्वनमयो भवति 'गुह्ममेतत्सनातनम्' इति श्रुतिः प्रमाणमित्याशयेनाह-यित्तत्त इति । न नैतल्लोकेऽप्यप्रिषदमित्याह—आबालमिति ॥ ३१॥ येन पुरुषेण अमलया विदा इत्या अन्तः खचिते अमलात्मरूपं यदेव राज्यं मोक्षोऽन्यद्वा अभ्यासमयं दृष्टाभ्यासप्रचुरं यदेव कृता संवेदाते तत् सत्तदानी विद्यमानमसत्तद्विउक्षणं वास्त् त-देव सर्वेतरवासनोपमर्देन स पुरुषः अविद्यं खयमेवावरयं भवति नान्यः कथित्तरफलभूतोऽस्तीलर्थः ॥ ३२ ॥ इति श्रीवा-सिष्टमहारामायणताव्यर्थप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पद-पञ्चाशदधिकशतसमः सर्गः ॥ १५६ ॥

चित्तं तु गगनाच्छात्म वपुर्विद्ध्यातिवाहिकम्। तदेव वास्ति नेहान्यदाधिभौतिकतादिकम्॥ चित्तमेतद्नाकारमपि साकारवित्थातम्। संकर्णः परलोकाद्यैः स्वप्नाद्यैरेतदेव सत्॥ अनाकारमपि स्फारं चित्तं जगदिदं विदः। य एव पवनो नाम स एव स्पन्दनं यथा॥ यथा गगनशुन्यत्वे जगिबसे तथैककम्। अत्राप्रतिघरूपेऽस्ति न मनागपि भिन्नता ॥ हृदयस्थं जगजालं न किंचितिकचिदास्थितम्। जगिद्विच निराकारं चित्तमेव न वास्तवम् ॥ सत्वमेव वपुः पूर्वमुदितं ब्रह्मणः पदान् । अयमेव स संपन्नो योऽद्य तामसतामसः॥

> वर्ण्यते सिन्धुजीवस्य जानिस्तामसतामसी । सिन्धोश्च त्यजतो राज्यं विवेकान्मुक्तिरन्ततः ॥ १ ॥

हे आर्थेति मन्त्रिसंबोधनम् ॥ १ ॥ अवधानपरेण चित्तन सहितः सावधानपरः । अदा मया त्वं चोदितः प्रेरितः सन् मान्यस्य अज्ञानस्य विनाशनमिदं मद्भननं हृदि द्धासि धार-यिष्यसि ॥ २ ॥ पृष्टां सिन्धुजीवप्राक्तनस्थिति वक्तं ब्रह्मण एवोपाथिसंबन्धाजीवभावविवक्षया आयां बदास्बरूपस्थिति द्शेयति-किमपीति । तस्यैव सार्वात्म्यमाह-स्थितमिति ॥ ३ ॥ अहं चित् अतक्षेतामीति संकल्पसंविदं प्राप्य समष्टि-व्यष्टिचित्तीभूय तदुपाथौ जीवतामिव गला आस्ते । वपुरुषा-घिमत्यजत् ॥ ४ ॥ किं तद्वपुर्यदत्यजजीवतां गतं तदेवाह-चित्तं लिति । स्थूलमिदं वपुस्ति किं तत्राह्— तदेवेति ॥५॥ तिश्वतमेव परलोकेहलोकायैः खप्रजामजीवमरणभोगमोक्षायैः संकल्पैरनाकारमपि साकारजगद्वत्थितम् ॥ ६ ॥ इदं रहस्यं तत्त्वविदो विदुर्नान्ये इत्याह—अनाकारमिति ॥ ७॥ अप्रति-घरूपे जगदाकारकल्पने निरङ्कशसामध्ये । अत्र चिते ॥ ८ ॥ मिध्यालाम किचिद्यदयस्थं वासनारूपमेव जगज्जालं बहिरिव किचिदिवास्थितम् ॥ ९ ॥ पूर्वे प्राथमिकसर्गे सालिकदेवताध-

११

सिन्धुर्वक्ष्यति । किमुच्यते महाभाग वद तामसतामसः। कियन्ते पूर्वमेवैताः केन संज्ञाः परे पदे॥ मन्त्री वदिष्यति ।

जन्तोः सावयवस्येह हस्ताद्यवयवा यथा । तथानवयवस्यवमातियाहिकतात्मनः॥ १२ पश्चावात्मनि सैवात्मा नानासंबाः करिष्यति। आधिभीतिकतानाम्नि पृथ्वाद्या आतिवाहिके १३ स्वप्रामेऽस्मिञ्जगद्धाने संकल्पेनात्मरूपिणा । संज्ञात्मनात्मरूपेण स्वयं व्यवहरिष्यति ॥ १४ त्वामातिवाहिकाकारा यत्तत्स्फुरितवाश्रवम्। जातिर्महातमस्कोऽयमिति तत्रामिधा कृता ॥ १५ ब्रह्मणो निर्धिकारस्य विकारिण इव प्रभो । जातयो जीवतापत्तौ कलिता विविधाभिधाः ॥१६ प्राथम्येनैव यद्भुष्टा जीवतामिव गच्छति। तदैव बुद्ध्या भोका तज्जातिः सात्विकसात्विकी१७ वर्तमाने भवे भव्यगुणैर्युका तु मानद् । केवला सात्विकी प्रोक्ता जातिर्जातिविदां वरैः १८ नवा भवेश्चेद्रहमिर्भीगमोक्षेकभागिनी। जातिस्तत्त्रोच्यते तज्ज्ञैः सन्ती राजसराजसी १९ वर्तमाने भवे भव्यगुणैर्मुका तु मानद् । केवला राजसी प्रोक्ता जातिः स्वस्पभवे भवेत २०

टितरूपलात्सलमेव हैराण्यगर्भाख्यं समष्टिवपुर्वद्राणः पदादुदि-तम् । अयं समधिरेव व्यधिभावे तामसविषयासङ्गेनोत्पतिप्रक-रणोक्तरीत्या राजससालिकादित्रयोदशघाविभागक्रमेण स ते जीवोऽय तामसतामसः संपन्नः ॥ १० ॥ प्रश्नः स्पष्टः ॥११॥ अपरिच्छित्रस्यवात्मनो हिरण्यगर्भभावेन परिच्छित्रत्वे मायया कृते हिरण्यगर्भ एव रार्वाः संज्ञाः करोतीत्याशयेनोत्तरमाह---जन्तोरिति । एवं तथा ॥ १२ ॥ भात्मनि खव्यष्टिजीवेषु स समध्यारभैव संज्ञाः करिष्यति । सैवारमेति 'सोचि छोपे चेत्पाद-पूरणम्' इति सलोपः । तथा अतिवाहिके समप्टिखदेहे पन्नी-करणेन आधिभौतिकतानाभि कृते तदवयवेषु पृथ्याद्याः संज्ञाः करिष्यति ॥ १३ ॥ एवं नामरूपे कल्पयिला व्यष्टिमावेन ख-यमेव व्यवहरिष्यति ॥ १४ ॥ तत्र नवं व्यष्टिभावकल्पने ला-मुद्दिय यत् सृष्टिसंकल्पेन यद्यष्टिभावेन हिरण्यगर्भो यत् महा-तमस्कोयमिति रफुरितवान्। तत्तस्माद्धेतोस्तवातिवाहिकाकारा जातिस्तामसतामसी महातमस्केलमिधा कृतेलर्थः॥ १५॥ नेयमेकैवाभिधा किंतु ब्रह्मणो जीवभावे तत्तदुपाधिगुणानुसारेण राजससालिकःदयस्रयोदशामिधाः कृता इलाह—ब्रह्मण इति ॥ १६ ॥ तत्र मोक्षरीध्यविलम्बप्रयोजकित्तमुणदोषैरेव जी-वानां जातिमेदकल्पनेति दर्शयंस्तासु पश्चजातीर्विभज्य लक्षय-ति-प्राथम्येनेत्यादिना । यद्यदि कल्पादी प्राथम्येनैव जीवता-मिव गच्छति बद्धाणि तदा तस्मिन्नेव जन्मनि औत्पत्तिकज्ञानै- प्रथमात्यन्तबह्मिभ्वेश्वेनमोक्षगामिनी। जातिस्तत्प्रोच्यते तज्हैः सङ्गिस्तामसतामसी ॥२१ सामान्येनैव बहुभिर्जन्ममिर्मोक्षभागिनी। केवला तामसी प्रोक्ता जातिर्जातिविशारदैः॥ २२ क्रमेणानेन जातीनां विविधा मेदकल्पना। तासां तामसतामस्यां जातौ जातोऽसि मानद २३ बद्दनि तव जन्मानि समतीतानि तान्यहम्। विविधानि विचित्राणि वीर जानामि नो भवान् २४ विशेषेण त्वनेनैष व्यर्थ काळोऽतिवाहितः। महारावशरीरेण त्वयानन्तखगामिना ॥ રપ पवं तामसतामस्या जात्यासि जनितो यदा। तदा दुर्छभमोक्षस्त्वं संसारकुहरादिति॥ २६ सिन्ध्वदिष्यति। आर्योदाहर केनेपा प्रान्जातिजीयतेऽधमा।

आयादाहर कनपा प्राग्जातजायतऽधमा।
यावत्तथेव तिष्ठामि स्याचेत्तद्वद पावनम्॥ २७
मन्त्री यदिष्यति।
न किंचन महायुद्धे तदस्तीह जगश्रये।

न किचन महायुद्ध तदस्ताह जगन्नय।
यद्तुद्वेगिना नाम पौहषेण न लभ्यते॥ २८
ह्यस्तनी दुष्कियाभ्येति शोभां सिन्कियया यथा।
अध्य प्राक्तनीं तस्तायसात्सत्कार्यचान्भव॥ २९
यो यमर्थं प्रार्थयते तद्यं यतते तथा।
सोऽषद्यं तद्वामोति न चेच्छान्तो निवर्तते॥ ३०

श्वर्ययुक्तया बुद्धा विषयभोक्ता तस्मिनेव जन्मनि मुच्यत इति यावत्तजातिः सात्विकसालिकी यथा सनकादीनाम् ॥ १०॥ कंचित्कालं भवे भवहेतावज्ञाने वर्तमाने सति तस्मिनेव जन्मनि इनिश्वयीदिमिभेव्यगुणेर्युक्ता चेद्भूला मुच्यते तदा केवलसालि-की प्रोक्तिस्पर्यः ॥१८॥ या जातिः कल्पादी नवा अभिनवतया-मिव्यक्तापि बहुभिर्जन्मिभौगेषु भुक्तेषु ऋगेण मोक्षेकभागिनी चेद्भवति तदा राजसराजसीत्यर्थः ॥ १९ ॥ खल्पभवे दशपश्च जन्मोत्तरकालमपि तस्मिन्कल्पे भव्येविवेकादिगुणेमुक्ता रहिता बहुतरजन्मपरंपरोत्तरं भव्यगुणान् रुभते चेरकेवसराजसीखर्थः ॥२०॥ प्रथमा कल्पादिमारभ्य अत्यन्तबहुभिः स्थावरकीटकि-रातादिभिरन्ते मोक्षभागिनी चेत्तामसतामसीखर्थः ॥ २१ ॥ सामान्येनानुरकृष्टेन रक्षःपिशाचश्रद्गादिजन्ममिर्वेहुभिर्मोक्षमा-गिनी चेत्केवलतामसी ॥२२ ॥ तासां जातीनां मध्ये त्वं तान मसतामस्यां जाती जातोऽसि ॥ २३ ॥ भवान् नो जानाति ॥ २४ ॥ २५ ॥ इतिशब्दः प्रश्लोत्तरसमाप्तौ ॥ २६ ॥ प्रा-क्तनी अधमा तामसतामसी जीवजातिः केनोपायेन जीयते अभिभूयते । हे आर्थ, तमुपायमुदाहर । तत्तादशं पावनं शोधनं स्याचेद्यावहेहं तथेव तेनैव लदुक्तप्रकारेण तिष्ठामि स्थास्यामि तद्वद् ॥ २७ ॥ पौरुषेण पुरुषप्रयक्षेन ॥ २८ ॥ अधैव सिक-यया ह्यस्तनी दुष्किया यथा शोभां शोभनतामभ्येति यथा त-स्मादेव यक्षात्प्राक्तनीं जिल्ला सत्कार्यवान्भव ॥ २९ ॥ ३० ॥ ना यथा यतते नित्यं यद्भाघयति यन्मयः। याद्दगिच्छेश्व भवितुं तादग्भवति नान्यथा। मुनिरुवास्त्र।

प्यमुक्तः स तेनाथ सिन्धुरुद्धरया धिया।
तदा तत्र तथा नाम राष्ट्रं त्यक्ष्यत्यदेषतः॥ ३२
गमिष्यति वनं दृरं प्राधितोऽपि हि मिन्निभिः।
नाश्रयिष्यति तद्ध्यो राज्यमुच्छिन्नशात्रवम्॥३३
तिष्टतः साधुमध्येऽस्य तद्धियेककथावदाति।

अष्टपश्चादादिधकदाततमः सर्गः १५८

मुनिरुषाम् । एतत्ते कथितं सर्व भविष्यद्भृतवत्तव । यथेच्छसि तथेदानीं व्याघ साघु विधीयताम् ॥ १ अग्निरुवाच ।

इति तस्य वचः श्रुत्वा विस्तयाकुळचेतनः।
क्षणं स्थित्वा जगामाशु स्नातुं व्यापस्तथा मुनिः २
इति तौ चेरनुस्तत्र तपः शास्त्रविचारणैः।
अकारणसुद्दृदृताषुभी व्याचमहामुनी॥ ३
अधाल्पेनैच कालेन मुनिर्निर्वाणमाययौ।
देहं त्यक्त्वा परे शान्ते परे परिणार्ति गतः॥ ४
क. केन बहुनान्येन ततो युगशतात्मना।
व्याधस्य कामनां दानुं पद्मजन्मा समाययौ॥ ५
व्याधः स्वचासनावेशं निवारयिनुमक्षमः।
जानन्नपि वरं पूर्वे वणितं समयाचत॥ ६
प्रह्मैवमस्त्विति प्रोच्य ययाविमनतां दिशम्।
व्याधस्तपः परुं भोकुं खगवद्योम पुषुवे॥ ७

ना पुरुषः ॥ ३१ ॥ तेन मिल्लिणा एवमुक्तः सन् । उद्भुरया उत्स्रष्टराज्यभारयः ॥ ३२ ॥ नाश्रियण्यति न स्वीकिरिष्यति ॥ ३३ ॥ पुष्पसङ्गात्तेलादिष्वामोद इव विवेकः समुदेष्यति ॥ ३४ ॥ विमुक्ततां जीवनमुक्तताम् ॥ ३५ ॥ स सिन्धुः राजा सत्संगमेन निस्तं विचारणपरः सन् अथ पावनं तत्तादशं मोक्सास्यं पदमेष्यति । यत्र मोक्षपदे काचन हिरण्यगर्भेश्वयैपर्यन्तापि छक्ष्मीवात्विध्ययमानं छुष्कणत्रामिव वस्तुतामुपादेयतां नो वजति किंतु तुष्टेव भवतीत्वर्थः ॥ ३६ ॥ इति श्रीवासिष्ठ-महारामामणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ससपञ्चाक्षयिकशसतमः सर्गः ॥ १५० ॥

श्रुःवा मुनिवचो ध्याधसापः कृत्वा वराद्विधेः। स्वमाद्धतः शवीभृतः पपातेस्यादि वर्ण्यते ॥ १ ॥ भूतवत् अतीतकथात्रत् ॥ १ ॥ क्षणं स्थित्वा विमृत्येति यावत् ॥ २ ॥ ३ ॥ अल्पेनैव कालेनेति मुनैः समाधौ बहुत-

१ अधी मुर्वाति पाठे वपुरिस्थध्याहार्यम्, २ पतनारमागुर्वावीथी

वर्धमानेन देहेन जगत्पारे महानभः। वेगादगणितं कालं पूरयामास शैलवत्॥ 4 महागरु वेगेन तिर्यगूर्धमधस्तथा। ब्योम पूरयतस्तस्य कालो बहुतरो यया ॥ ९ अथ दीर्घेण कालेन यदा विद्याभ्रमस्य सः। अन्तं न समवाप्तोति तत्रोद्वेगमुपायया ॥ १० उद्देगाद्थ बद्धासा प्राणरेचनधारणाम्। प्राणांस्तत्याज नभसि श्राचीभूतमधोवपुः॥ ११ चित्तं प्राणान्वितं ब्योम्नि ययौ तत्रैव सिन्धुताम् । विदूरधारिरूपां तामखिलावनिपालिनीम् ॥ देहो मेठराताकारमहाराव इवाभवत्। हितीयोवींनिभो व्योद्धः पपाताशनिवज्रवत् ॥ १३ पिधानमिव कस्योवीवीथी कस्मिश्चिद्मवरे। केशोण्डुकवदाभाते कस्मिश्चिज्ञागते भ्रमे ॥ १४ आकारपूरिताशेषवसुधाचलमण्डलः। विपश्चिच्छ्रेष्ठकथितमेतंत्ते तन्महाशवम्॥ १५

पुष्पासङ्गादिवामोदो विवेकः समुदेष्यति ॥

ततः कथमिदं जन्म कुतः संसार आगतः।

तद्यत्र पत्रमिव पातविधूयमानं

इत्थं विचारसांतत्यात्स यास्यति विमुक्तताम्

नित्यं विचारणपरोऽथ भवन्स सिन्धुः

सत्सङ्गमेन पदमाप्साति पावनं सः।

रसापि कालसाल्यताप्रतीतेरित्याशयः । यद्यप्यत्र यथाश्रुतप्रन्थात्पूर्व मुनेर्देहत्यागः पश्चाचिरकालोत्तरं व्याधस्य कामनां दातुं
पद्मजागमनं प्रतीयते तथापि पूर्वमुनेभीविष्यत्कथनप्रन्थे व्याधस्य
वरलाभानन्तरे 'मामाप्टच्लक्षमण्डल्स तस्मिन्नेव क्षणं ततः ।
हितिमेष्यस्य स व्योत्रि चित्तस्थार्थिदृदृक्षया ॥' इति मुनिनोक्तलाब्याधस्योर्ध्वगमनकाले मुनेर्जीवनं स्थितमेत्रेति पश्चादेव देहत्याग
इति बोध्यम् । अपदेशस्य निर्दिष्टस्य आयुषोऽन्ते ॥ ४ ॥ ५ ॥
पूर्व मुनिना व्यर्थत्वेन वर्णितं वरं जानप्रपि समयाचत ॥ ६ ॥
॥ ० ॥ जगत्पारे त्रैलोक्यादृष्यम् । महानभः अव्याकृताकाशम् ॥ ८ ॥ ९ ॥ उद्वेगं तत्प्रयुक्तनिर्वेदम् ॥ १० ॥ १९ ॥
सिन्धुतां सिन्धुदेशराजताम् । विदृश्यस्य अदिः शत्रुतद्रूपाम्
॥ १२ ॥ स्यक्तदेहलु व्योगमार्थे पपात ॥ १३ ॥ कस्य बद्धाणः
कासिश्वजागते भ्रमे केशोण्ड्कवदागाते तत्र कसिश्वदम्बरे
उर्वावीथी विशालं पिधानमिव स्थितः ॥ १४ ॥ हे श्रेष्ठ हे

पृथ्व्यवतर्णमार्ग इय पतनोत्तरं च विशालं पिशानमिव स्थित इत्यर्थः

यसिञ्छवं संपतितं जगत्यवनिमण्डले।
तिदं जगदाभातमस्माकं स्वप्नपूर्यथा॥ १६
तदेतच्छवमास्वाद्य शुष्का पूर्णा महोदरी।
संपन्ना चण्डिका देवी रक्ता रक्तान्त्रपूरिता॥ १७
मेदिनी मेदिनी जाता शवस्थेतस्य मेदसा।
पूरिताऽपूर्वक्षेण हिमवद्गिरिक्षिणा॥ १८

तदैवैतन्महामेदो मृजातुत्वमुपागतम् । कालेन वसुधा भूयो भूत्वा मृन्मयतां गता ॥ १९ भूयः प्रजातानि वनानि भूमो ग्रामाः ऋताः पत्तनसंयुताश्च । पातालतः साधुसमृत्थितास्ते दोलाः प्रवृत्ता व्यवहारलक्ष्मीः ॥ २०

इस्रार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा० मो० नि० उ० अवि०विय०श० शवनिर्णयो नामाष्ट्रभगशद्धिकशतत्तमः सर्गः ॥ १५८ ॥

एकोनषष्ट्यधिकदाततमः सर्गः १५९

अग्निरुवाच। विपश्चिच्छ्रेष्ठ भो साधो त्वं गच्छामिमतां दिशम्। स्थिरं भूमण्डलं भूयः प्रकृतव्यवहारवत्॥ १ यक्षं यष्टुं प्रजीधस्य शकः शततमं दिवि। तत्राहृतोऽस्मि मन्त्रेण गच्छामि गतिकोविद्॥ २ भास उवाच।

इत्युक्त्वा भगवानग्निस्तत्रेवान्तरधीयत।
गगने निर्मले याति अनलो वैद्युतो यथा॥ ३
तथाहमपि चित्तेन प्राक्तनांश्च स्वयं वहन्।
पुनः स्वकर्म निर्णतुं भ्रमन्व्योमनि संस्थितः॥ ४
भूयोऽपि दृष्टवानस्मि जगन्त्यगणितानि खे।
नानाचारविचाराणि नानासंस्थानवन्ति च॥ ५
कचिच्छत्रमयाङ्गानि एकीभूतानि भूपते।
भान्ति चेतन्ति चोपन्ति दृद्यानि हरन्ति च॥ ६
कचिन्मुन्मयदेहानि सर्वभूतानि राघव।

विपिथत्, एतन्महाशवं सवृत्तान्तं यथावन्मया कथितम् ॥ १५ ॥ अस्माकं चिते आभातं प्रत्यक्षं रकुरितम् ॥ १६ ॥ रक्तेन आस्त्रेश्च पूरिता सती रक्ता रक्तवर्णा संपन्ना ॥ १० ॥ अपूर्वरूपेण आश्चर्यभूतेन ॥ १८ ॥ १९ ॥ पूर्व वनावीनां शवेन नाशनाङ्क्यो वनानि प्रजातानि । प्रामाश्च भूयः कृताः । ते चूर्णिताः शैलाश्च भूयः पातालतः साधु यथा-पूर्व समुरिथताः । ततो जनानां व्यवहारलक्ष्माः प्रवृत्ते समुरिथताः । ततो जनानां व्यवहारलक्ष्माः प्रवृत्ते समुरिथताः ॥ २० ॥ इति श्रीवात्तिष्टमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे अष्टपञ्चाशद्धिकशतत्तमः सर्गः ॥ १५८ ॥

इहामेरिन्द्रगमनमुपदिश्य विपश्चिते । आश्चर्याण बहुन्यन्ते ब्रह्मतश्वं च वर्ण्यते ॥ १ ॥

श्रेष्ठ भो विषक्षित्, त्वं स्थिरं भूयः प्रकृतव्यवहारबद्भमण्डलं प्राप्य अभिमतां दिशं गच्छ ॥ १ ॥ शको दिवि यहं यष्टुं प्रष्टतः । अहं तत्राहृतोऽस्मि गच्छामि ॥ २ ॥ मूर्त्योकारेणान्तरधीयत । अम्याकारेण तु वैद्युतामिवद्गगने याति ॥ ३ ॥ प्राक्तानविद्यानतद्शेनविषयकसंस्कारान्वहन्सन् स्वं दिगन्तोप-सर्पणकर्मं निणंतुं निष्पादयितुम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ तान्येव खहप्रानि

भान्ति चेतन्ति चोपन्ति पर्वतप्रतिमानि च ॥ कचिद्दारुमयाङ्गानि भान्ति भूतानि कुत्रचित्। कचित्पापाणदेहानि सन्ति भूतानि भूरिशः॥ क्रचिदाजीवमेकत्र स्थितान्युपलदेहवत्। वाड्यात्रव्यवहाराणि भृतान्यालोकितानि खे॥ इत्यहं सुचिरं कालं पदयन्नदयन्मनस्तया। अविद्यान्तमपद्यंश्च तत्रोद्धियोऽभवं दशाम्॥ १० तपः कर्तु समुद्युक्तः किस्मिश्चिन्मोक्षसिद्धये। प्राहेन्द्रो मम चैवेदं मृगयोन्यन्तरं हि खे॥ ११ प्रवृत्तः स्वर्गसंमोहे पूर्वाभ्यासवशीकृतः। मन्दारकानने तत्र भ्रमतो वै ममाम्बरे॥ १२ तेनेत्युक्तं मया शोक्तं देव खिन्नोऽस्मि संस्तेः। मुच्येयं शाघ्रमित्युक्तं श्रुत्योवाच ततो मम ॥ विशुद्धात्मा त्वरूपोऽहमिति चैव हुताशनात्। वरं गृहाणेत्युक्ते स ततोऽन्यं याचितो मया ॥ १४

जगन्ति वर्णयति--कचिदित्यादिना । एकीभूतानि परस्परसंछ-प्रानि । भूवते इति दशरथसंबोधनम् । चोपन्ति मन्दं गच्छन्ति द्रष्टुणां हृदयानि मनांसि हरन्ति च ॥ ६ ॥ ७ ॥ कुत्रचिज्र-गति ॥ ८ ॥ आजीयं यानःजीवम् । उपलदेहवत् प्रतिमावत् । परस्परं संभाषणादिना वाङ्मात्रव्यवहाराणि न गमनादानादि-व्यवहारवन्ति । खे खचित्ताकाशे ॥ ९ ॥ मनस्तया स्वप्न इव मनोमात्रदेहतया । तत्र अविद्यायां हशां हश्यवगीणां विषये उद्विमः अभवम् ॥ १० ॥ एवं समुद्विमोऽहं कस्मिश्विद्रहसि उप-विश्य मोक्षसिद्धरो तप आत्मतत्त्वालोचनं कर्तुं समुद्धकोऽभवम्। ततो मामिन्द्रः प्राह। किं प्राह। हे विपश्चित्, खे चित्ता-काशे मम च तव च इदं सृगयोन्यन्तरमुपस्थितमस्ति ततो नायमात्मतत्त्वालोचनकाल इत्यर्थः ॥ ११ ॥ ननु मभाल्पपुण्यस्य 👚 कदाचिन्मगयोनिप्रापकं दुष्कृतादि संभा-व्येत तव तु महापुण्यस्य कुतस्तरसंभावना तत्राह —प्रवृत्त इति । अहमपि स्वर्भभोगयुक्ते संमोहे दुवासीपराधे प्रवृत्तः । क ते त-रप्रवृत्तिस्तत्र।ह-मन्दारेति ॥ १२ ॥ तेन इन्द्रेण इत्युक्ते सति ॥ १३ ॥ किमुबाच तदाह—विशुद्धेति । शीघ्रं मुक्तिस्तु अरूपः अवस्थात्रयरूपेण मूर्तामूर्तरूपेणच रहितो विशुद्ध आत्मवाहमिति

इन्द्र उवाच ! तवेयं मृगयोन्यन्तश्चिरं संसरते चितिः। अवश्यं भवित्रव्योऽर्थ इति रहो मया तय ॥ १५ मृगो भूत्वा महापुण्यां तां सभां समवाप्तवान्। यस्यां तव्हतं ज्ञानं मदुक्तं बोधमेष्यति ॥ १६ तदेषं तत्र हरिणो भवार्तस्त्वं भवावनौ। आत्मोदन्तमिदं वन्ध्यं सकलं संसारिष्यसि॥ १७ स्वप्रभ्रमभिवाशेषसंकल्परचितोपमम्। परलोकानुभूतार्थकथायातार्थसंनिभम्॥ १८ यदा तु मृगतोन्मुक्तः पुरुषस्त्वं भविष्यसि । श्वानाशिवग्धदेहान्ते तदा हृत्स्थं स्फुरिण्यति ॥ १९ तेन तां त्वमविद्याख्यां भ्रान्ति त्यक्तवा चिरं स्थिताम् भविष्यसि विनिर्वाणो गतस्पन्द इवानिछः॥ इत्युक्ते तेन देवेन तदैय प्रतिभोदभूत्। ममायं हरिणोऽसीति वनेऽसिन्निति निश्चिता २१ ततः प्रभृति संपन्नस्तत्रैवान्तरकोणके। हरिणोऽहं गिरियरे तृणदुर्वाङ्कराशनः॥ २२ ततः सीमान्तसामन्तमागतं मृगयार्थिनम्। दृष्ट्राहमेकदा भीतः प्रायनपरोऽभवम् ॥ २३ ततस्तेन समाक्रम्य गृहं नीत्वा दिनत्रयम्। संस्थाप्य तव लीलार्थमिहानीतो रघुद्रह ॥ ર્પ્ર एष ते कथितः सर्व आत्मोदन्तो मयानघ। संसारमायात्रतिमो नानाश्चर्यरसान्वितः॥ ર્ષ अविद्यैवमनन्तेयं शाखात्रसरशालिनी ।

तस्वज्ञानादेव भवति । तत्तु लया प्राग्व्याधमुनिसंवादवर्णनप्र-सक्रेन हुताशनाच्छ्रतमेवेति शेषः । ततस्त्रमन्यं वरं गृहाणेती-न्द्रेणोक्त सति मया सः अन्यं मृगत्त्रे स्वस्य किमभे भविष्यती-त्येतरपरिकानरूपं वरं याचितः ॥ १४ ॥ संसरते संसर्वमिच्छति ॥ १५ ॥ तां दाशरथीं सभाम् । मद्रक्तं विश्वद्धात्मा लह्नपोह-मित्येवंरूपम् ॥ १६ ॥ हरिणः संस्तदेवं क्रमेण सभा प्राप्य ब-सिष्ठप्रसादात्सकलमारमोदन्तं स्ववृत्तान्तम् ॥ १७ ॥ वन्ध्यल-मेव दशान्तैविष्टणोति—स्त्रप्रेति ॥ १८ ॥ कि मृगदेहेनैव सं-सारिष्यामि नेत्याह-यदेति ॥ १९ ॥ तेन आत्मतत्त्वस्फुर-णेन । विनिर्वाणो मुक्तः ॥ २० ॥ इति तेन देवेनेन्द्रेणोक्ते सति सा पूर्वा मानसी हरिणोस्मीति प्रतिभा निश्चिता व्यवहारार्थिक-यासमधी उद्भृत्॥ २१॥ तत्रैव मन्दारवनान्तरकोणके ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ संसारप्रसिद्धैन्द्रजालिकमायाप्रतिमः ॥ २५ ॥ २६ ॥ इदं वक्ष्यमाणम् ॥ २७ ॥ अन्यसंकल्परूपोयं मृगक्षेदस्माकं दर्यतां यातः । एवं सति असंकल्पोपि पुरुषोऽ-न्यसंकल्पसर्गे स्थितं वस्तुजातं पश्यतीति फलितम् । इदं तु क-यमपपद्यते वदेखर्थः ॥ २८ ॥ महामुनिदेवतादिवरशापादिना अन्यसंकल्पकल्पितोप्यथेऽन्येषामसंकल्पानामपि दर्शनादिव्यव-

आत्मशानादते नैव केनचित्राम शास्यति॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच । यदा विपश्चिदित्युक्त्वा तत्र तूष्णीं स्थितः क्षणात् समयोचत्तदा रामस्तमनिन्द्यमतिस्त्वदम्॥ श्रीराम उवाच । एवं पदयत्यसंकल्पो योऽन्यसंकल्प आत्मनि । मृगश्चेद्दयतां यातः कथं सर्गे चद प्रभो ॥ २८ विपश्चिद्वाच । महाशयं यत्पतितं यसिञ्जगति भूतले । तां भुवं पूर्वमिन्द्रेण यक्षगर्येण गच्छता ॥ २९ पादेनाभिहतो ब्योम्नि दुर्वासा ध्यानसंस्थितः। गतासुरित्यविद्यानात्त्रनासी कुपितोऽशपत्॥ 30 राक्रशकावनितलं ब्रह्माण्डप्रतिमं शवम् । अचिरेण महाघोरं तव चूर्णीकरिष्यति॥ 38 मामिमं शवबुद्ध्या त्वं यदतिकान्तवानतः। शापेन ममतां पृथ्वी शीघ्रमासाद्यप्यसि॥ 32 मृगार्थ तेन मुनिना तथा देवेति सद्यथा। तत्तया कथया यातं तदैव विषयं दशाम् ॥ 33 वस्तुतस्तु न चैकं सन्न द्वितीयं न चाप्यसत्। सा तथा प्रतिभोदेति किं सिक्तमथवाप्यसत् 38 अन्यश्व राघवे मां तां युक्ति त्वमपरां ऋणु। पतस्मित्रयसंदर्भे सुस्फुटप्रतिपत्तये॥ ₹'٩

हारयोग्यो भवतीत्युत्तरं वक्तुं प्रायुक्तव्यवपतनमेव निमित्तान्तरेण वर्णयितुं विपश्चित्प्रस्ताति-सहाशवमित्यादिना । पूर्वे शवप-तनात्पूर्वकाले तां भुवं प्रति मन्दारवने खकृतयन्त्रप्रक्रायजमा-नतागर्नेणान्धवद्रच्छता इन्द्रेण सुनिर्यमिखविद्यानाद्भतासुर्यमि-त्यवज्ञया च दुर्वासाः पादेनाभिद्दाः ॥ २९ ॥ ३० ॥ सक्रशकेति 'वाक्यादेरामन्त्रितस्यास्यासंमतिकोपकुत्सनभरर्धनेषु' इति को-पादिषु द्विवेचनम् । तव गन्तुमिष्टमवनित्रळं चूर्णाकरिष्यति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तेन मुनिना दुर्वाससा विपश्चिता सह शकस्य मृगभावार्थमपि 'तथा देवमृगश्च लं तुल्यकाछं विपश्चिते'ति वाक्येन यथाविपश्चितो मनःसंकल्पितमपि मृतलं सत अन्य-दर्शनादार्थकियासमर्थं भवति तथा स शरा इति शेषः। तल-स्मात्तया इन्द्रशापकथयैव मुनिवाक्यबलात्सांकल्पिकमपि विप-श्रितो मृगझं भवदादिहशां सदैव विषयं विषयत्वमायातम् ॥ ३३ ॥ एवं जगत्त्रसिद्धदशा रामप्रश्नं समाधाय त**त्त्वदशा** समाधते-चसुतस्त्रित । वस्तुतो विचारे एकं व्यावहारिकं जगत् सत् इत्यपि न । द्वितीयं सांकल्पिकं वा असदित्यपि न । द्वयोरपि तत्यत्वादित्याह—सेति ॥ ३४ ॥ महाणः सर्वशक्ति-सर्वात्मकलादि न कोपि विरोध इत्याह-अन्यवेत्यादिना ।

यसिन्सर्वे यतः सर्वे यत्सर्वे सर्वेतश्च यत्।

ब्रह्म तस्मिन्महाभाग किं न संभवतीह हि॥

३६

संकल्पजातं नान्योन्यं मिलतीत्युपपद्यते । संकल्पजातमध्योग्यं मिलतीत्युपपद्यते ॥ संकल्पजातमन्योग्यं मिलतीत्यवगम्यते । सर्वात्मनि हि यत्रैव च्छाया तत्रैव चातपः॥ न संभवति चेत्तत्तकथं सर्वात्मतामियात्। कस्मात्संकल्पनगरं न मिथः श्रिज्यतीति सत् ३९ मिथश्च श्रिज्यतीत्येवमपि सत्सर्वरूपिणि। न तदस्ति न यत्सत्यं न तदस्ति न यन्मूषा ॥ 80 सर्वत्र सर्वथा सर्व सर्वदा सर्वरूपिणि। अहो न विषमा माया मनोमोहविधायिनी ॥ છશ बिधयः प्रतिपेधाश्च यदेकत्र स्थिति गताः । ईंदशी ब्रह्मसत्तेषा यदेवात्मानमात्मना ॥ तया अनादिः सादिश्चेत्यविद्येत्यन्भयते । न इतिमात्रकचनं यदि स्याद्भवनत्रयम्॥ યુર્ तन्महाकस्पनप्रानां सृष्टिः स्यात्कथमञ्जसा । कथमग्नेः कथं वायोः सत्ता भूमेः कथं भवेत् 33 तस्मात्स्वभावकचनमात्रास्मान्यदते जगत्। शास्त्राण्यतुभवालोका आमहाकल्पवादिनाम् ६५ येषां प्रमाणं नो सर्वे प्रशस्तेस्तरहं सताम्। इतिरुध्यानया सर्वे प्रमाणीभवति क्षणात्॥ ૪૬ नान्यया तनुते नैवमेव सारं विदुर्वधाः। धुद्धा ब्रिनिब्रेह्मसत्ता त्वविद्यासीति चेतनात् स्फुरतीयं जगद्रुपा वातश्रीः स्पन्दनादिव । न कथनेह म्रियते जायतं न च कथन ॥ 86 मृतोऽहमिदमस्तीति प्रतिभैव चिदारिमका।

नयायुक्तयस्तासां संदर्भ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ संकल्पजातं पर-स्परं न मिलति भिलतीति च द्वयमपि सर्वशक्ताञ्चपपदाते इत्यर्थः ॥ ३७ ॥ अवगम्यते प्रत्यक्षं मृगदर्शनादौ । उपपत्तिश्वात्रा-स्तीत्याहु—सर्वातमनीति ॥ ३८ ॥ यदि विरुद्धगेकत्र न संभ-बति तदा सर्वोत्मखमेव ब्रह्मणो व्याहन्येतेत्वाह-नेति । इदं च सर्वे प्राग्बहुशो व्याख्यातप्रायम् ॥ ३९ ॥ ४० ॥ भायाया अषटितषटनासमर्थत्वेनात्याश्चर्यहपत्वादिष सर्व घटत इत्याह -अही इति ॥ ४१ ॥ न मायाया एव ब्रह्मसत्ताया अप्येवं माहारम्यमिलाह—ईदशीति ॥४२॥ तया बद्धारास्या ॥४३॥ ॥४४॥ खाभावकचनमात्राहते जगन्नान्यत् । वेदान्तादिशा-स्नाणि विद्वदनुभवा लोकप्रसिद्धदृष्टान्ताध येषां मूर्खाणां प्रमाणं न तैः सतां अलं संभाषणेनेखर्यः ॥ ४५ ॥ प्रशस्तैर्विरोधि-लक्षणया निन्दैः । इतिरद्धा चिद्विलासरद्या ॥४६॥ अन्यया दृष्ट्या तु न प्रमाणीभवति किंतु तनुफल्गु भवति । तेन हेतुना बुधा एवमेव ज्ञानदृष्टिसिद्धमेव सारं विदुः । कथं विदुस्तदाह - शुद्धेति ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अत्यन्तं नाशो दृश्यदर्शनं चेत् सा निद्रा सुष्तिस्तत्सुखोपमा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ कस्मिन् एक-

मृतिरत्यन्तनाशश्चेत्तस्सा निद्रा सुखोपमा ॥ धर पुनर्दश्योपलम्भश्चेत्रतु जीवितमेव तत्। तसान्नेहास्ति मरणं तन्नेवेहास्ति जीवितम्॥ 40 कसिश्चिन्मात्रकचने द्वयं वाप्यस्ति नेव वा । चेतितं द्वयमप्यस्ति नास्ति द्वयमचेतितम्॥ 48 चेतितं चैकमेवास्ति स्वस्यनन्तमतश्चितः। चिन्मात्रव्यतिरेकेण कि नाम वद जीवनम्॥ પર अदुःखमश्रयत्वात्तदतो दुःखं क कस्यचित्। वाच्यं सवाचकं सर्वं यत्र चिद्योममात्रकम् ॥ 43 तदन्यचद्रनत्यश्च के ते तत्रैकताहिते। आवर्तादि यथा तोये शरीरादि तथा परे॥ 48 तत्सत्तासंनिवेशात्म कारणानन्यखात्म च। चिद्धानमात्रमच्यप्रं खमेवाप्रतिष्वं जगत्।। 44 आश्चर्य सुघनं व्यत्रं द्रव्यं सप्रतिषं स्थितम्। तथेते भृतिभूनीस्ति वर्तमानानुभृतिभूः॥ 48 तत्र भ्रान्या पिशाचोऽयं भाति खात्मेति बुध्यताम्। यथेतस्त्वं तथेतस्त्वमेतस्त्वप्रिति खं स्थितम् ॥ तथेतो भूरितो भूनभितोऽन्यदिति खं परम्। येव चिद्धा जगत्सैय नैकतात्र न च द्विता॥ 46 नच प्रतिघता काचित्र चाप्रतिघरूपता । सर्वमप्रतिघं हदयं यथा भूतार्थदर्शिनः॥ 49 तज्ज्ञतातज्ज्ञते चेह न सती नाप्यसिस्थती। सत्ये सदसती चैकं काष्ट्रमीनमतोऽखिलम् ॥ ६० यहर्यं ब्रह्मतानन्तं तदेव परमं पदम्। इदं सर्व परं ब्रह्ममात्रमित्येव संस्थितम्॥ ६१

स्मिन्। एकारलोपरछान्दसः। नैव वेखत्रोपपत्तिमाह—चेति-तमिति ॥५१॥ अत्रश्चितो द्वैतसत्त्रासत्त्वसाक्षिण्याः खिस्ति क्षेम सर्देवेत्यर्थः । अदुःसं जीवनं हि सर्वामिलवितं ग्रुखं तथ चिन्मात्रमेवेति तदेव परपुरुषार्थ इत्याह-चिन्मात्रेति ॥५२॥ बाच्यं रूपं वाचफनामसहितं सर्वे यत्र यस्यां तत्वदृष्टी ॥५३॥ नतु शरीरायेव दुःखमस्तीत्याशक्क्याह—आवर्तादीति ॥ ५४॥ कारणानन्यलात्सर्वकारणखात्मकमेव । अप्रतिघमनषम् ॥५५॥ यत्मुघनं व्यप्नं द्रव्यं सप्रतिषं च स्थितं तदेवाधर्यम् । यथा इते अतीते भूतेः प्रतीतेर्भृविषयो नास्ति तथा वर्तमानेऽपि अनुभूतौ भवतीत्वनुभूतिभूविषयो नास्ति ॥ ५६ ॥ तत्र वर्त-मानानुभूनो अयं खारमा शून्यारमैव दश्यपिशाचो भूला भा-तीति बुध्यताम् । यथा एतत्परिदृश्यमानं खं तथा एति बदाका-शरूपं खम् । यत एतचिदाकाशमेव खमिति प्रतीतं खं शून्यं भूला स्थितम् ॥ ५७ ॥ तथा इतः अधःप्रदेशे भूः इतः प्रदे-शान्तरे वाय्वाकाशादिभूतं इतः दिश्च विदिश्च चान्यादित्य-नेकाकारः परं खमेव भाति नान्यदित्यर्थः ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ पूर्णदृष्टी ज्ञताज्ञताभेदोप्यपंतीत्याह—तज्ज्ञतेति ॥ ६० ॥ एवं च

एवं नामेष चिद्धातुः कचत्येयं यदात्मनि । यस्येदं कचनं व्योक्षो रूपमप्रतिघं जगत्॥ દર सर्गाचा मृतजीवानां सर्वत्रैवाङ्गुलेङ्गुले । असंख्याः सन्त्यसंख्यानामदृश्याप्रतिघामिथः ६३ अन्योन्यं सिद्धलोकास्त स्वं यत्र प्राप्य संगताः। परस्परं न पश्यन्ति मिथः प्रोता अपि स्थिताः ६४ भवत्याकारा पर्वेषा दृदयश्रीगंगनात्मिका। ६५ अनन्यदृषा चिद्रुपा स्वप्नवत्स्वात्मद्रपृका ॥ पया हि संपरिशाता तिष्ठत्यपि यथास्थितम्। भामात्ररूपनिर्वाणा निद्यान्ता प्रतिभाकृतिः॥ ६६ इ० वा० महारामायणे वा० मो०नि० उ० अधि० वि० श० विपिधारसंसारश्रमवर्णनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १५९ ॥

शान्ताशेषविशेषातम् यथास्थितमवस्थितम्। सदसद्वा जगजालं परिश्वानेन शाम्यति ॥ ६७ यथाव्धिजलविन्द्रनां क्षणविन्धेषसंगमम्। चिदणूनां तथा ब्रह्म वारिधौ स्फुरतां मिथः॥ ६८ स्वप्रवद्भाति सर्गश्रीः सर्गादौ चित्रभोमयी। अतः सर्वमिदं ब्रह्म शान्तमित्युपपद्यते ॥ દ્ ୧, दृष्टान्यनन्त्विभवानि मया जगन्ति भुक्तानि कार्यपरिणामविज्ञिभिनानि । भ्रान्ता दिशो दश बहुनि युगानि याध-ज्ज्ञानाद्यते श्रयमुपैति न दृश्यदोषः ॥ ७०

षष्ट्यधिकदाततमः सर्गः १६०

श्रीवाल्मीकिरवाच । विपश्चिति चदत्येचं तहत्तान्तमवेश्रितुम्। इव लोकान्तरं भागुः पदिर्दूरायतैर्ययौ ॥ उद्भृत्पूरयन्नाशा दिनपर्यन्तदुन्दुभिः। तुष्टामिरिव निर्मुक्तो दिग्भिर्जयजयारवः॥ विपश्चिते दशरथो गृहदारधनादिकम्। राज्यानुरूपं विभयं प्रोत्तस्थी कल्पयन्त्रमात् ॥ राजरामवसिष्ठाद्या मिथः रुत्वा विसर्जनम् । यथाक्रमं पूजनं च प्रययुः स्वास्पदानि ते॥

स्नात्वा भुक्त्वा निशां नीत्वा प्रभाते पुनराययुः।

तेनैव संनिवेशेन सा सभा संस्थिताऽभवत्॥

हर्यं सर्वे बहातयेव संपन्नाभेत्याह—यदिति ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ सर्वत्र सर्गाः सन्तीत्याह—सर्गाया इति । इदं च प्राग्वासप्टेन विस्तरेणोपपादितम् ॥ ६३ ॥ उत्तरोत्तरं सूक्ष्मतराः सिद्धलोकाः सं सहर्पं प्राप्य यत्र बद्धाणि संगताः । एतश्च यृहदारण्यके गागांप्रश्ने वर्णितम् 'यदिदं सर्वमप्स्तोतं च प्रोतं चेति कस्मिन् खस्वाप ओताश्व प्रोताश्चेति वाची गागीति कस्मिन् खछ वा-युरोतश्च प्रोतश्चेत्यन्तरिक्षलोकेषु गार्गीति' इत्यादिना ॥ ६४ ॥ वस्तुतस्तु आत्मातिरिक्तद्रष्ट्रकलमेवाप्रसिद्धमित्याशयेनाह—भ-बतीति । यत इयं दृर्यश्रीरात्माकाश एव भवति ततः अनन्य-दशा ॥ ६५ ॥ चिद्रगनात्मकलादेव परिश्वातमात्रा तदाकृतिः संपद्मत इत्याह—एषाहीति । निजाया अन्ते प्रभाते अप्र-तिभाया अन्धकारस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्याः ॥ ६६ ॥ यथास्थितं चेच्छान्ताशेषविशेषात्मकमवस्थितं तदाज्ञानषाध्यं जगत् सद-सद्बाऽस्तु न काचित्क्षतिरित्याइ—शान्तेति ॥ ६७ ॥ अ-स्खित्यं जगजालं तिधवद्धजीवानां ब्रह्मणि कीहशी स्थितिस्ता-माह-यथिति । यावदहानमंशांकिभावेनेत्यर्थः ॥ ६८ ॥ सर्गादी सर्गधीः कथं भाति तदाह—सप्रादिति ॥६९॥ मया अनन्तविभवानि जगन्ति दृष्टानि । कार्याणां स्वकर्मणां परिणाम- क्रमान्मुनिरुवाचाथ तां यथाप्रस्तुतां कथाम्। शशीवामृतमाह्वादमुद्गिरन्मुखदीनिभिः॥ દ્દ राजन्नेयमविद्येयमसत्येव सती स्थिता। नेरशेनापि यत्नेन निर्णितैषा विपश्चिता॥ 8 अविधैवमविज्ञाता चिरानन्तावभासते। परिशाता तु नास्त्येव सृगतुष्णानदी यथा॥ मिश्रणस्ते महाबुद्धे भासस्यास्य विपश्चितः। इतिवृत्तं त्यमित्यस्य स्वयमेव हि दृष्टवान्॥ सदृशोऽयमितस्त्वाभिः कथाभिर्श्वाततत्पदः। अविद्यायां प्रशान्तायां जीवन्मुको भविष्यति

विभृम्भितानि सुखदुःखफलानि भुक्तानि । बहूनि युगानि दिशो श्रान्ताः यावत् साकल्येन । ज्ञानादते दृश्यदोषः क्षयं नोपैती-त्यर्थः ॥ ७० ॥ इति श्रीवासि॰ ता० प्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकोनपष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १५९ ॥

इह सायं सभोत्थानं परेशुः पुनरागमः । भासस्य जीवन्युक्तस्वमविद्या चोपवर्ण्यते ॥ ९ ॥

श्रुतं तस्य भासस्य पूर्ववृत्तान्तं प्रत्यक्षमवे**क्षितुमिव पादैः** किरणचरणः ॥ १ ॥ आशा दिशः । दिनपर्यन्तः सायंकाल-स्तत्म् वको दुन्दुभिः । तुष्टाभिरिति तत्रोत्प्रेक्षा ॥ २ ॥ कल्प-यन्समर्थयन् ॥ ३ ॥ स्वासदानि स्वस्वगृहाणि ॥ ४ ॥ तेन प्राक्तनेनेव संनिवेशेन क्रमण ॥ ५ ॥ शशी अमृतमिव मुख-दीप्तिभिराह्यवयतीत्याहादं वचनमुद्गिरन् ॥ ६ ॥ एवं विप-श्चिदुपवर्णनप्रकारिर्दश्यश्रान्तिरूपा अविद्या न निर्णाता अन्त-वत्तवेखर्थः ॥ ७ ॥ अधिष्ठानब्रह्ममात्रतया अविज्ञाता सती कालतश्चिरादेशतो वस्तुतश्चानन्ता ॥८॥ ते मिश्रणो दृष्टवन्त इति विपरिणामेनापकृष्यते ॥९॥ इतः परमाभिः कथाभिर्ज्ञाततत्त्वो-यमविद्यायां प्रशान्तायां सत्यां युष्मानिः सद्दशो जीवन्युक्तो

१ समाधारदन्दः.

अविद्येति धृता संविद्वह्मणात्मनि सत्तया । तन्त्रमेणासद्प्यस्याः सद्रूपमिष रुक्ष्यते ॥ ११ यदा ब्रह्मात्मिकैवेयमविद्या नेतरात्मिका। तदास्त्येषाऽपरिश्वाता परिश्वाता न भिद्यते ॥ १२ अबिचैषमनन्तेयं नानाप्रसवशालिनी । जडा द्वधा रसमयी मोहमाधवमञ्जरी ॥ १३ अन्तर्राच्या प्रन्थिमती श्रक्षणा स्वद्धरकण्डका । जड़ा रसमयी दौर्घो लतेव वनवणवी ॥ १४ फलाशङ्का मुधेवातिनिष्फला चित्तहारिणी । अकालपुष्पमालेव श्रेयसा नामिनन्दिता ॥ १५ न किंचिद्रपिणी पीना नानाभुवनपूरिणी। भूताकुला निरालोका सुदीर्घेव तमोमयी॥ १६ केशोण्डकम्रान्तिरिच विचित्रप्रनिधवेष्टना । भिथ्येव रूर्यमाना खेऽरूर्यमाना न किंचन ॥ विचित्रवर्णा विग्रणा शुन्ये च वितताकृतिः। जडस्पन्दोत्पातमयी शक्तचापलतेव खे॥ १८ जडकञ्जोलबहुला कलुषोञ्जासफेनिला । चक्रावर्ताक्षयमयी प्रावृषीव तरङ्गिणी॥ १९ अनारतवहच्छ्रन्यजगन्मृगनदीशता । रजोराशिमयी रूक्षा शवभूरिय दुर्भगा॥ 20 अन्तं प्राप्तोति न यथा चिरं स्वप्नपुरे चरन्। जाग्रदाख्ये स्वप्नपुरे तथैवासिश्चिरं चरन्॥ २१ यानि संकल्पजालानि प्रतिष्ठामागतान्यलम् । त्यक्तैकरुष्यजालस्यदेहानां रहचेतसाम्॥ २२ खितानि तानि चिद्योम कोशरहान्यसंकटम्।

भविष्यति ॥ १० ॥ ब्रह्मणा यद्यसाद्विदेति संविद्धता तत्तसमञ्ज्ञमेणेवास्या असद्पि रूपं सद्गूपमिव रुक्ष्यते ॥ ११ ॥ इत्थं चास्या ब्रह्मातिरिक्तस्रह्मपाभावाद्यावदपरिज्ञानं सत्ता,परि-ज्ञानमात्रेण निश्तिश्रोपपद्यत इत्याह—यदेति ॥ १२ ॥ तामे-बाविद्यां वर्णयति-अविद्येत्यादिना । सर्वत्र विशेषणान्यभयत्र योज्यानि । रसमयी आसिक्तिकरी । मोहलक्षणे माधवे वसन्ते प्रफूक्षा मक्तरी ॥ १३ ॥ आपातरच्या श्वक्ष्णा अनुभवकाले तु खङ्कराः सर्वे कण्टका यस्याः । वनवेणी जाता वनवेणवी स्ता शाखेव ॥ १४ ॥ मुधेव फलमस्तीलाशङ्का यस्याम् । श्रेयसा प्रशस्यतरेणामिश्चजनेन नामिनन्दिता औत्पातिकी अकाल-पुष्पमालेव ॥ १५ ॥ भूतैः प्राणिभिः पिशानैश्वाकुला । तमो-मयी रात्रिरिव ॥ १६ ॥ १७ ॥ विग्रणा गुणहीना ज्याहीना च । शक्रवापलतापमे जडस्यन्दो जलसम्दो वृष्टिस्तस्योत्पाताः सूचका विकृताः सूर्यकिरणास्तन्मयी ॥ १८ ॥ १९ ॥ शवभृः इमशानभूमिरिव ॥ २० ॥ चरन् भ्रमन् ॥ २१ ॥ व्यक्ता । एकत्र दरमजाले प्रपन्ने स्थिता देहा मैस्तथाविधानां जीवानां मरणकाछे एतजगदाकारदढचेतसां दढीभूतानि यानि संक-रपजालानि तान्येवैतज्बगहेहाद्याकारेण प्रतिष्ठां स्थितिमाग-योग० १८२

विमानपुरभुम्यादिरूपेणेत्थं स्थितात्मना ॥ २३ तान्येव सिद्धसद्मानि व्योम्नि भान्ति परस्परम् । अदृष्टान्यव्यसंख्यानि सुपलम्त्रान्यसन्त्यपि ॥ २४ सुवर्णमणिमाणिक्यमुक्तायनिमयानि च । भक्ष्यभोज्यान्नपानाद्यरसायनसरांसि च ॥ २५ मधुमद्यद्धिशीरघृतकुल्याकुलानि च । रसायनमयाकारवनिताव छितानि च॥ રદ सर्वेर्तुपुष्पफलपह्नवपूरवन्ति **छीलाविलोलललनाकुलितालयानि** । संकल्पमात्ररचनेन च सर्वकालं संपन्नसर्वविभवोत्करसंकुलानि ॥ २७ सहस्रचन्द्रबिम्बानि शतसूर्याणि कानिचित्। सुवर्णामृतवेषाम्बुमयभूतानि कानिचित्॥ 26 स्बेच्छातमःप्रकाशानि नित्यानन्दमयानि च। कानिचिष्रीयमानानि तनुत्रलस्यूनि च ॥ २९ क्षणोत्पत्तिविनाशानि कानिचित्कलनावशात्। अनन्तस्वन्नपानानि निर्जरामरणानि च ॥ 30 विचित्रसंनिवेशानि विचित्रविमवानि च। सर्वर्तुगुणरम्याणि सर्वकाममयानि च॥ 38 तानि संकरपजालानि किल करयाणकारतः । स्थिराणां मनसां भित्तिः कथमेवं भवेतु सा 32 नान्यत्किचन नामेह ब्रह्ममात्रमयात्मनि । संभवत्यङ्ग तेनैतदुच्यतामस्तु किंमयम्॥ 33 सर्गादावेव सर्गादि किंचनापीदमस्ति नो। कारणाभावतस्तेन जगर्तिमयमस्त्वदम्॥ इप्त

तानि ॥ २२ ॥ २३ ॥ अदृष्टान्यपि सन्ति । सूपलञ्घानि सम्बग्दष्टान्यपि असन्ति । तिद्धसद्यानि सिद्धलोकाः ॥ २४ ॥ तानि सिद्धसद्मान्येव वर्णयति — सुवर्णेखादिना ॥ २५ ॥ चन्द्रस्तन्भयाकारवनिताभिवेलितानि ॥ २६ ॥ सर्वेर्तुषु प्रसिद्धपुष्पफलपहवनदीप्रवाहादिमन्ति । संकल्पेति । 'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठ-न्ते तेन पितृहोकेन संपन्नो महीयते' इत्यादिश्वतेरिति या-वः॥ २७ ॥ सुवर्णमिवामृतमिव येषा येषां तथाविधान्यम्बम-यानि च भूतानि येषु ॥ २८ ॥ नायुना यथामिलवितदेशं नी-यमानानि ॥२९॥ उत्पत्तिविनाशाविच्छया दर्शनादर्शने ॥३०॥ ॥ ३१ ॥ कल्याणकारतः शाखीयसत्कर्मीपासानातस्तत्फलाका-राणां तत्तल्लोकतद्भोग्याकारेण स्थिराणां तन्मनसां परिणतिः । सा तु एवंविधा स्थूला भित्तिः कथं भवेत्॥३२॥ मनःपरिणा-मास्तु मनोरथादी चिन्मात्रसत्ताका एव दृष्टा इति ब्रह्ममात्रम-यात्मनि जगति सति एतन्मदुक्तं सर्वे सोपपत्तिकं संभवति । हे अञ्च प्रकारान्तरमस्ति चेदिदं जगर्तिमयं तदुच्यतां वादिभिरित्य-र्थः ॥ ३३ ॥ यद्यपीदानी भूतमयं भौतिकमित्यत्थेकितं शक्यं

१ स्थिरारमनेति कचित्पाठः.

संकल्पन्ते निरन्तानि किल तानि यथायथा। चितौ तथातथा भाग्ति केवात्र वद चित्रता॥ ३५ इदानीमपि हे साधो न्वमध्यन्येऽपि केपि वा। तीवसंवेगसंकल्पनगराण्येयमेव खे ॥ ३६ कुर्वन्त्येकरसाभ्यासाद्यदि नाम यहच्छया । तत्तानीदं वपुरत्यक्त्वा प्राप्नुवन्त्यचिरेण खे॥ ३७ यस्त्वदं कल्पितं च द्वे चर्तनी अनुवर्तते । स्वर्गादिवदवाप्नोति प्राप्नोत्येवेकमेकधीः॥ ३८ सिद्धाः सदा विभान्त्येयं यथान्तः कल्पनावशात्। नरकादीनि दुःखानि तथैवाभान्ति कल्पनात्॥ ३९ यद्यत्संबेद्यते किंचित्तत्तथाप्यनुभूयते। सति वाऽसति देहेऽस्मिन्देह एव मनोमयः॥ ४० जीवस्त्यज्ञति यञ्चावे एकां देहमयी धियम् । तद्भावैकमयीमन्यामाश्च तत्रैव पद्यति॥ ४१ शुमा संविच्छुभाँहोकान्संपरयखशुमाऽशुमान्। खात्मिका खात्मकानेव चिरं वानुभवत्यपि॥ ४२ श्रद्धाः सिद्धपुराण्येय पश्यत्यनुभवत्यपि । चिद्द्युद्धानि रूपाणि दुःखानि नरकेष्वति॥ ઇક धूर्णत्यापाणयमलगिरिचक्रकपेषणम्। तत्रान्धकृषपतनं पुनरुद्धारवर्जितम् ॥ 88

तथापि सगादिकालं 'रादेव सीन्येदमय आसीदेकमैवाद्विती-यम्' इत्यादिश्रतेनीन्यत्कारणं संनाविषतुं शक्यमित्यकारणं जगदमस्यत्वे अत्यन्तासदेवेत्याद्—समीदाववेति ॥ ३४ ॥ यद्यस्यन्तासन्ति ताई वार्थ जगन्ति भान्ति तत्राह-संक-ल्पान्त इति । अत्यन्तासतामपि सशश्यन्नखपुष्यादीनां संक-रूपने भानदर्शनादिति भावः ॥ ३५ ॥ तश्चेस्मत्संकल्पादेन वैन्ध्यत्वं कुत इति चेत्तीवसंवेगत्वाभावादेव । तीवसंवेगेन तु रवं वा अन्येऽपि केऽपि या खेऽपि नगराणि कुर्वन्त्येत्र । तानि चैकरसाभ्यासादैन्दवन्यायेन प्राप्तुवन्ति चेत्वाह-इदा-नीमिति द्वान्याम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इदं पूर्वेसिद्धमुपासनादिना खकल्पितं चेति द्वे प्रवज्ञे दृढसंकल्पेनावश्यमस्त्येवेति बुद्धा योऽनुवर्तते स पुरुषो यथा यहादिकारी खर्माववस्यमा-प्रोति तथा क्रमेण हे अप्यवागोति । यस्खनयोरेकं स-स्यमिति दढधीः स एकमेवाप्रोतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ सि-द्धलोकेषुक्तो न्यायो नरकादिवागफलकल्पनासपि इस्राह—सिद्धा इति । एतावांस्तु विशेषः । उपासनाफलं यक्षेन तत्सत्यताहरू।भ्यासे सत्येव भवति । पुण्यफळं त्वास्ति-क्यानुष्ठानयोः सतोर्विनापि रादभ्यासं सत्यमित्येव दढं भवति। पापफलं तु आस्तिकवाभ्यासयोरभावेऽपि पापाचरणमात्रेण सत्यमित्येव दढकरपनं भवतीति भावः ॥ ३९ ॥ संवेदनानु-सारित्वं तु सर्वत्र समानमिलाइ--ययदिति । देह एव । कात्कर्य एवकारः । सर्वोऽपि देह इल्पर्यः ॥ ४०॥ अतएव

दारुणेनातिशीतेन देहं पाषाणतां गतम्। भूताङ्गारमयानन्तमरुमार्गास्पर्वं वपुः॥ ४५ पृताङ्गारमयाम्भोदसरदङ्गारवर्षणम् । तप्तनाराचनिकरपरुषासारदारुणम्॥ ४६ वहत्पापाणचक्रासिसरिदाकाशसंचरम्। थक्षोमुक्ताम्युदाकारकुठाराघातमेदनम् ॥ 80 तप्तायः परुषा श्रेषच्छमिच्छमितिमज्जनम् । बृहत्कटकटादाब्द्दास्त्रयम्बनिपीडनम्॥ ४८ चक्रवज्रगदाप्रासशूलासिशरवर्षणम् । शाल्मलीग्रहणं पौशं कुशक्तिशततोवनम्॥ ४९ तप्तसेकतसंभारपातपातालमज्जनम् । दीपच्छन्नानलभयं वृहद्वायसचर्वणम् ॥ 40 निर्निर्गमाकृशाङ्गारमहाङ्गारप्रवेशनम्। शरशक्तिगदाप्रासभुशुण्डीचऋवेधनम्॥ ५१ श्चरक्षोभपरुषप्रेतवातान्योन्याङ्गचर्वणम् । तालोत्तालातिपरुपशिलातलनिपातनम् ॥ પર रुधिरामेध्यपङ्काङ्कपूयनद्यादिसंकटम् । शिलाशस्त्रमयाश्वेभपादपाषाणपेषणम्॥ ५३ श्वभ्राभोत्रुकलिखितं जनीधमुसलाहतम्। शिरःकरखुरस्कन्धखण्डोत्कगुध्रमण्डलम् ॥ 48

मनोनुसारेणैवैकं देहं त्यक्ला अपरं देहं जीवो गृहातीत्याह— जीव इति । तत्रैवाकाशे ॥ ४१ ॥ शुभा कृतपुष्या अशुभा कृतपापा जीवसंथित् ॥ ४२ ॥ या तु कर्मोपासनशुद्धा सा सूक्ष्मतम।नि सिद्धपुराण्येत परेषां पद्यति स्वान्यनुभवत्यपि । अतिदुःखानि परयखनुभवत्यपि ॥ ४३ ॥ नारके यानि परय-व्यनुभवति च तानि प्रपष्टयति-धूर्णदित्यादिना। घूर्णत्पाषाणे ये यमलगिरिचकके गिरिद्रयचकके गोधूमपेषणपाषाणयन्त्राः कारे ताभ्यां पेषणम् । तत्र नरके ॥ ४४ ॥ भूतैः पिशाचरशारेश्व प्रचुरः अनन्तो यो महर्निर्जलो मार्ग-स्तदास्पदं तत्र पान्थभूतं स्वं परं वपुः ॥ ४५ ॥ पूत-निरस्तभसानी येऽज्ञारास्तन्मयाम्भोदेभ्यः सरतां पततामज्ञा-राणां वर्षणम् ॥ ४६ ॥ वहन्सः पाषाणादिसरितो यत्र तथा-विधे आकाशे संचर् संचारम् । वक्षः मुक्तानां पातिताना-मम्बुदाकारकुठाराणामाघातेन वक्षोमेदनम् । बृष्ट्या आसुक्ता-नामिति पाठान्तरे विश्रहः ॥ ४७ ॥ तप्तायःसूर्मिश्र्लादीनान माश्वेषं सशब्दं मज्जनं च ॥ ४८ ॥ शाल्मस्याः सकण्टकाया यहणमाक्षेत्रणम् ॥ ४९ ॥ दीपवेषेण प्रच्छन्नो य उल्कानल-स्तस्माद्भ्यम् । वृहद्भिनायसैश्वर्यणं तोदनम् ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तालाद्युत्तालादुत्रतप्रदेशादतिपरुषघीलातलेषु ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ श्रम्रामेषु देशेषूख्कैर्लितं देहविदारणम् । शिरःकरपादादीनां खण्डनं खण्डस्तत्रोत्क्युत्कण्ठितं गृधमण्डलं

पतसात्कुकृतादेतत्फलमित्येव भावनात्। पद्यत्येषं देशहढाद्यवसंवादिविस्तृतः॥ यद्याम किंचन कदाचन चेतनं खे भातं न भातमध्या यदपूर्वमेय।

तत्कल्पनाञ्चवति तन्मयमेव तिक् तस्माधिरं च चलतीति यदच्छयैव ॥ ५६

इलाषें श्रीवासिष्ठ० वा० मो० नि० उ० अ० वि० श० खर्गनरकोपलम्भवर्णनं नाम प्रक्राधिकशततमः सर्गः ॥ १६० ॥

eqe

एकषष्ट्यधिकदाततमः सर्गः १६१

श्रीराम उवाच । यन्मुनिव्याध्योरेतहृत्तं नानाद्द्रााद्यतम् । अन्यकारणकं किं स्यादेतित्कवा स्वभावजम् ॥ १ विसष्ठ उवाच । ईरद्याः प्रतिभावताः परमात्ममहाम्बुधा । अनारतं प्रवर्तन्ते स्वतः स्वात्मनि खात्मकाः ॥ २ यथा स्पन्दात्मनो वायोरजस्त्रं स्पन्दलेखिकाः । उच्चन्त्येव सतश्चित्त्वाश्चिद्योचि प्रतिभायुताः ॥ ३ या यथा स्वाङ्गभूतासादुदिता प्रतिभा प्रभा । तावत्सेह तथेवास्ते न हता यावदन्यया ॥ ४ नानावययवानेक एवेहावयथी यथा । चिद्रह्मकमिदं व्योम तथैवं प्रतिभात्मकम् ॥ ५ प्रद्मा काश्चित्स्थराः काश्चिद्स्थराः प्रतिभार्थवत् । देहावस्था इवात्मस्थाः स्थितमात्मनि खात्मनि ६

मन्न ॥ ५४ ॥ भावनाच्छास्रतो निर्णयात्राग्वहुश एवंविधदेशेष्वसभवेन दढात् । स्वारमव तत्तन्नरकात्मना विस्तृतः सन्निस्यर्थः ॥ ५५ ॥ उक्तं संग्रह्योपसंहरति—यन्नामेति । यन्नाम किंचन चेतनदेहादि कदाचन से चित्ताकाशे भातम्, अथवा भाविनोऽपि स्वप्ने दर्शनाम भातम्, ना अपूर्वमेव यत् तदपि संकल्पन्नानितस्पात्कल्पनाद्भाति । तत्मर्थं तन्मयं मनोमयमेव । तस्मर्थं तन्मयं मनोमयमेव । स्वर्थं । ५६ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायण-तास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पष्टपिकशत्तमः सर्गः ॥ १६० ॥

स्वात्मनि स्वप्नपुरवद्भानं चिति चमत्कृतिः।

अनन्यकारणं चित्रं चिन्मात्रप्रतिभात्मकम् । अबोधाजगदाभाति बोधे ब्रह्मेति वर्ण्यते ॥ ९ ॥

मुनिव्याधयोरेतद्भासवर्णितं सुखदुःखादिदशाशतं यद्दतं तिकि प्रखद्दं दश्यमानस्वप्नादिवदनन्यकारणकं किवा लवणगा-धिप्रसतीनां चण्डालभावादिकमैन्द्रजालिकभगवद्भरादिनिमित्ता-दिव निमित्तान्तरस्वभावजमिति रामप्रश्नार्थः ॥ १ ॥ तत्र निमित्तान्तरमस्तु मा वा । अज्ञातात्मनि यावन्मोक्षमीदशा भ्रमाः सदैव प्रवर्तन्त इति वसिष्ठ उत्तरमाह—ईदशा इत्या-दिना ॥ २ ॥ यथा व्यजनादिनिमित्तान्तरे सत्यसति च वाया-

किं सारं क्रिमसारं वा किं सन्तिवाप्यसद्भवेत् ७ परिज्ञातमिदं यावत्सर्वे चिद्योममात्रकम्। दृश्यं जगद्भवद्भुद्धं न सन्नासिकमुच्यते ॥ 4 चिद्ध्योममात्रकचनं संसारं सबेतः शिवे। आस्थानास्थानि वि. तज्ज्ञा यथासंस्थानमास्थित९ समुद्यन्ति स्वतोऽम्भोधर्घाचिवत्प्रतिमाकृताः। स्वात्मिकाः स्वात्मनो देवात्कार्यकारणदृक्तया १० स्फारं यत्परमं व्योद्धः स्वसंकल्पस्वसर्गवत् । तत्तेनय जगहुद्धं कुतः पृथ्यादयोऽत्र के॥ १२ भारयेनमयनाभारमो नेच भाति च किंचन। ब्रह्मण्येव स्थितं ब्रह्म तद्विद्याभिधं स्वतः॥ १२ घनता चिढ्नेनेह चिद्योमेवाखिलं जगत्। इत्येव परमो बोध एतत्प्राहिस्तु मुक्तता ॥ १३ चिद्योमशुन्यतारूपमात्रमाभास आततः। इद्मप्रतिधं शान्तं जगदित्येय भासते॥ १४

वल्याल्पतराः सम्दर्शस्त्रकाः सम्दर्भराः सदैवीयम्ति तद्वदि-खर्थः । प्रतिभा अधीकारप्रथा ॥ ३ । ऋखाः आकारान्तर-प्रतिभया यावत्र इता न विनाशिता 🔧 🐠 स्टः पिण्डाद्या-कारो घटाबाकारान्तरपरिणतिविनास्य अध्यक्ति भावः ॥ ४ ॥ तेषु चानन्तेषु प्रतिभासेष्वधिप्रानसन्मात्रारमकं ब्रह्मशाखादिषु वृक्ष इवानुगतं तिष्ठतिल्याह्---गानेति ॥५॥ तत्र काश्चिद्भस्यन्त-रिक्षदिगाद्यवस्थाधिरकालः वस्थानाहित्यराः । अन्या अस्थिराः अल्पकालस्थायिन्यः । यथा देहस्य पिण्डहस्तपादाद्याकारावस्था निमेषोन्मेषाद्यवस्थाश्रेखर्थः ॥ ६ ॥ तासु सारासारज्ञादिमहो वृथेव मुढानामित्याह--- स्वात्मनीति ॥७॥ यावद्यदा भवद्भिरक्षै-र्बुद्धं तु ॥ ८ ॥ यथासंस्थानं यथास्थितं खरूपमालम्ब्य आ-स्थित तिष्ठत । छान्दर्सान्तद्व्यस्ययः ॥ ९ ॥ स्वतः स्वात्मनः सकाशात् कार्यकारणहक्तया प्रतिभाकृताः प्रतिभाकाराः समु-द्यन्ति ॥ १० ॥ यरखसंकल्पवरखसर्गवच स्फारं प्रतिभानं तदेव तेन जगदिति बुद्धम् ॥ १३ ॥ तज्जगत् । स्वतः न कारणान्तरतः ॥ १२ ॥ इह चिद्धनेनैव घनता नान्येन पृथ्या-दिरूपेण । प्रीडिभूमिकाभ्यासेन हडीभावः ॥ १३ ॥ शुन्ध-ताया आकाशताया रूपं नेल्यमिव स्थितमञ्जानमालम्ब्येति

१ धोतमानात्.

ध्यायिनः श्रीणवेहस्य ध्याने दक्त्वे क्षणं स्थिते । चिन्मात्रव्यतिरेकेण शक्तत्वं स्यात्कमुख्यताम् १५ चिद्धात्वयोमभागो यो भाति यत्र यथा यथा। तथा तथा स तत्रास्ते यावदित्यं स्वभावतः॥ १६ अविचारवतो रदयभ्रान्तिर्गगनमय्यपि। जातितैमिरिकद्वीन्द्दोपवन्नोपशाम्यति॥ १७ थविदं दृश्यते किंचित्तद्वश्चीव निरामयम्। निवाकाशमनाद्यन्तं तत्कथं किं प्रशास्यति॥ १८ स्वमसन्त्यजतो रूपं स्वच्छसंवेदनात्मकम्। स्वप्तवत्कचनं स्वस्य यन्नाम तदिदं जगत्॥ १९ शास्त्रार्थेस्तीक्ष्णया बुद्धा मिथो यन्न विकल्पनैः। कृत्वा सुप्तमिषात्मानं किंचिष्क्रदेन बोध्यते ॥ २० रूढा येयमविद्येति संविदव्यमिचारिणी। भवतां नुतु नास्त्येव सा सरित्स्विव पांसुभः २१ यथा स्वप्नेऽवनिर्नास्ति स्वानुभूतापि कुत्रचित्। तथेयं दृदयता नास्ति स्वानुभृताप्यसन्मयी॥ २२ चिद्योममात्रमेवार्थाऽनलबद्धासते यथा । स्बप्ते तथैव जाग्रस्वेऽनलं स्वस्यैष लक्ष्यते ॥ २३ इदं जाग्रदयं स्वप्न इति नास्त्येव भिन्नता। सत्ये बस्त्वनि निःशेषसमयोगीनुभूतितः॥ રપ્ર नैतरेवमिति स्वप्तप्रबोधात्प्रत्ययो यथा। मृत्वामुत्र प्रवृद्धस्य जाग्रति प्रत्ययस्तथा ॥ २५ कालमल्पमनल्पं च स्वप्नजाप्रदितीह धीः।

शेषः । आभासो भ्रमः ॥ १४ ॥ एतच ध्यायिनामनुभवति-द्धानत्याह-ध्यायिन इति । निर्विकल्पसमाधिप्रतिष्ठया क्षीणदे-इस्य उच्छिन्नदेहभावस्य । टक्त्वे साक्षिचिन्मात्ररूपत्वे । शक्त-टबं जगहर्शनसामर्थ्य कि स्यात् । तस्मादज्ञानदृशैव तत्सामर्थ्य परिशेषादिति भावः ॥ १५ ॥ तथा च ब्रह्मेवाइचित्तोपाधौ जगदारमना भाव्यन्यत्र चिन्मात्रस्वभावेनेति व्यवस्थेत्याह-चिद्धालिति । बोधाबोधस्वभावतः ॥ १६ ॥ जातितैमिरिकस्य अन्मप्रमृति तिमिररोगदुष्टचक्षुषः पुरुषस्य ॥ १७ ॥ ब्रह्मभा-षापन्नं तु जगन्न नर्यतीत्याह-यदिदमिति ॥ १८ ॥ तथा चाह्रदशायामपि खप्रचिद्विवर्तमात्रं जगदिलाह—स्वमिति । अविकृतस्यान्यथा प्रतिभासो विवर्त इति तहक्षणयोगादिति भावः ॥ १९ ॥ २० ॥ या भवतां जगदाकारेण रूढा सा-स्माकं नारखेव ॥ २१ ॥ नन्वनुभवः कथसुपलभ्यते तत्राह--मयेति ॥ २२ ॥ रूपाद्यर्थवस्तत्प्रकाराकानलवस यथा स्वप्ने चिद्योमैव भासते । खस्य जात्रस्साक्षिणः अनलमपूर्णे स्वप्र-काशरूपमेव तथा रुक्ष्यत इत्यर्थः ॥ २३ ॥ या मित्रता भासते अनुभूतितः समयोस्तयोः सा नास्त्येनेत्यर्थः ॥ २४ ॥ अमुत्र शरीरान्तरे प्रबुद्धस्य गर्भस्थस्य जातिस्मरस्य जाप्रति प्रसिद्धः प्रत्ययोऽपि तथा नैतदेनमिति वाभितो भवतीत्पर्यः ॥ २५ ॥ कथं तह्यसाम्यप्रसयो जनानामिति चेत्कालाल्पसमहत्त्वाभ्यां

वर्तमानानुभवनसाम्याचुच्ये तयोईयोः ॥ ৼ६ बाह्य तदेवभित्याविगुणसाम्यादशेषतः। न जाग्रत्स्वप्रयोज्यीयानेकोऽपि यमयोरिव ॥ २७ यदेव जाग्रत्स्वप्तोऽयं यः स्वप्नो जाग्रदेव तत्। नैतदेवं किलेत्यस्ति धीः कालेनोभयोरपि॥ २८ आजीबितान्तं स्वप्नानां रातान्यनियतं यथा। अनिर्वाणमहाबोधे तथा जात्रच्छतान्यपि ॥ ६९ उत्पन्नभवंसिनः स्वप्नाः सार्यन्ते बहुवो यथा । तथैष बुद्धैः सार्यन्ते सिद्धैर्जन्मशतान्यपि ॥ 30 एवं समस्तसाधर्में समस्तानुभवारमनि। कचति स्वप्रवज्जायज्ञायद्वत्स्वप्रवेदनम् ॥ 38 यथा रह्यं जगवाति नित्यमेकार्थतां गती। उभी शब्दी तथैवैतज्ञात्रत्स्वप्रात्मकी स्मृती॥ ३२ एवं स्वप्नपुरं स्कारं यथा ब्योमैव चिन्मयम् । तथैवेदं जगदतः काविद्या दृश्यते कुतः॥ ३३ तवेचाकाशमात्रात्म यद्यविद्यति कथ्यते। तद्यदास्ते तदेवाहं बन्धः स्वकलनात्मकः ॥ રુષ્ટ तन्मैवं क्रियताभेतद्बन्धस्यैव बन्धनम्। कान्यता अमलब्योद्धश्चिन्मयस्य निराकृतेः॥ 34 चिन्मयाकाराकचने कास्मिन्किल निराकृतेः। दृदयनामन्यविद्याख्ये बन्धो मोक्षोऽथवा कुतः ३६ नाविद्या विद्यते नाम बन्धो बन्धो न कस्यचित् । मोक्षो न कस्यचिन्मोक्षश्चास्ति नास्तीति नास्त्यलम्

नानुभवत इल्लाइ—कालेति ॥ २६ ॥ गच वाह्ये जाप्रदन्तः खप्न इति मेदः । खप्नीपि बाह्ये । तत्खाप्नमेव जामद्वदेव सर्व-मिति सर्वव क्षुपूभयत्र गुणसाम्यानुभवेन नैकतरज्यायस्लमि-त्यर्थः ॥ २७ ॥ धीर्बाधधीः ॥ २८ ॥ अनिर्वाणस्य जीवस्य महत्यबोधे खापे ॥ २९ ॥ वुद्धैः प्रबुद्धैः सिद्धैर्जातिसारणा-नुकूलयोगसिद्धिमद्भिः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वथं तर्हि नाममेद-स्तत्राह्-यथेति ॥ ३२ ॥ खप्रसाम्यप्रतिपादनस्य प्रयोजनं दर्शयति-एवमिति ॥ ३३ ॥ 'सिंह सप्रो भूत्वे'त्यादिश्रुती खप्रशब्देनेवाविद्याशब्देनापि तह्नह्यैव यदि कथ्यते तर्हि न शब्दे वयं विवदामहे किंतु सर्वश्रमशान्ती यदेवास्ते तदेवाहम् । प्राकृखकल्पनात्मक एव बन्ध इत्येतावदस्मद्भिमतं तच सिद्ध-मेनेति भावः ॥ ३४ ॥ यदैवं तदा नित्यमुक्तस्यात्मनी बन्ध-नम्रान्तिरेव न कार्येत्याह—तदिति । अमलस्य व्योन्नो निरा-कृते श्रिनमयस्य च का अन्यता कि वैलक्षण्यं येन व्योम न बध्यते चिदातमा त बध्यत इति वाचोयक्तः प्रसरेत्। इयोरप्नमूर्ते-लालेपकलस्कातमलादिना अत्यन्तसाम्यादिति भावः ॥३५॥ अस्मिन्द्द्यनामन्यविद्याख्ये चिन्मयाकाशकचने सति बन्धो वा मोक्षो वा कृतो हेतोः स्यादिलार्थः ॥ ३६ ॥ यदा अविदा नाम न विद्यते तदा बन्धो बन्धो न । तथा मोक्षोपि मोक्षो न । यतो ब्रह्मातिरिक्तमस्ति नास्तीति व्यवहारयोग्यमेव दुर्लभ-

नास्त्येव विद्याऽविद्या वा सिदेवेयं कचत्यजा। ख एव खाइतिः स्वप्त इय सर्गस्यदेहिनी ॥ ३८ देशाहेशान्तरप्राप्ती यन्मध्ये संविदो वपुः। तजाप्रत्स्वप्रदृश्यस्य रूपभित्येव निश्चयः॥ ३९ सवाद्याभ्यन्तरे दृश्ये शान्तनिद्रस्य यहपुः। एकस्य निशि तद्वृपं जाप्रत्यप्रदृशामिह ॥ ४० विद्धि तद्वृपमेवेदं भेदवेदनमित्यपि। चित्यन्तमागतः कोऽन्यो नाम साद्वेदभेदने ॥४१ चिद्योमैवाभेद्युद्धिश्वशोमय च भेद्धीः। हैताहते चेकमेव तथा शान्तमखण्डितम्॥ ४२

सर्वशो बोधतहासम्य एव यथा तथा।

हष्टा य एव हर्यं तहतवेदनमेककम्॥ ४३
तहस खं विदुर्वेतमहताहतमेच च।
स्रग एव परं ब्रह्म हेतमहेतमेच सत्॥ ४४
नेति नेति विनिर्णाय सर्वतोऽभिभवत्यपि।
पश्चात्त्यक्ता चिदाकाशे शिलां कृत्वास्थतामिह ४५
यधाक्षमं सुमग यथास्थितिस्थिति
यथोद्यं ब्रज पिच भुंक्व भोजय।
अभीष्यतं गतमननो निरिज्ञनः
सुविन्मये परमपदोपलो भवान्॥ ४६

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार देव मोवनियीव उव अव विव दाव निर्वाणनर्णनं नामैकपष्ट्यधिकसस्तमः सर्गः ॥ १६९ ॥

द्विपष्ट्यधिकदानतमः मर्गः १६२

यसिष्ठ उवाच । चिद्योमार्थतयार्थानां यथास्थितिनदं जगत् । सरूपालोकमननमपि चिद्योम केवलम् ॥ स्वप्रचित्पुररूपत्वादन्यद्यसान्न विद्यते । जगत्तसान्त्रमः शान्तं नेह नानास्ति किंचन ॥ चिद्याभानमनानैव नानद परिलक्ष्यते ।

मिल्बर्थः ॥ ३७ ॥ स्वप्न इत्र चिदेव सर्गाकारखंदहिना भूला कचति ॥ ३८ ॥ मध्ये अधिर्विषयं संविदः स्वरूपं प्रसिद्धं तदेव जायत्स्वप्रशासद्धारयस्य पारमार्थिकं सपमित्येव निश्चयः कार्यः ॥ ३९ ॥ बाह्ये इस्ये आस्यनारे च टस्ये इस्ट्रियमन-साद्विकारादौ प्रकाशनाय सदा जागरूकस्य स्वयंज्योतिरात्मनो यद्भुः खरूपम् । 'असुप्तः सुप्तानभिचाकशीति' इति श्रुतैः । तदेव जामत्स्वप्रदशां तात्विकं रूपमित्यर्थः ॥ ४० ॥ अतएव जाप्रत्सप्रभेदवेदनमित्यपि कल्पनं तद्भृषं तदुभयसाक्षिरूपभेव विदि न चिद्धेदनम् । यतः अवस्थात्रयानुगतायाः साक्षि-चितेरन्तमन्यः क आगतो दृष्टवान् यश्चिति मेदं पर्वेदिलर्थः ॥ ४९ ॥ तथासतीति शेषः ॥ ४२ ॥ यथा ब्रह्मणः सचिदा-नन्दांशेषु सदंशो बोधमयो बोधमाह्यमयश्वेत्युभयत्रामित्रस्तथा द्वैतं तद्वेदनं चैककमिति चिदंशोऽप्यभित्रः । यतो य एव दृष्टा दशां निषयीकृतास्त एव दृश्यमित्युच्यन्ते । नच निषयविषयि-भावश्वित्तादात्म्यातिरिक्तः केनचित्रिरूपयितं शक्यस्तत्तस्मा-देतोरित्यर्थः ॥ ४३ ॥ एकस्य सद्भवस्तुन एन सर्वद्वैतात्मना यदा प्रतिभासस्तदा ब्रह्मैव द्वैताद्वैतमद्वैताभिन्नं च । न तद्यति-रिकं किंचित्प्रसिष्यतीत्पर्थः ॥ ४४ ॥ तर्हि कि द्वैताद्वैतसमुच-**गारमकमेव ब्रह्म बोद्धव्यं नेलाह—नेतीति । पूर्वे स**र्ग एव परं नहा द्वेतमद्वेतमेव चेति मूर्तामूर्तप्रवशस्य महारूपतां विनिणीय पथावेतिनेतीति सर्वद्वैतनिषेधेन सर्वतः कृत्म्रं द्वैतं त्यक्ता भभितो भवत्याविभेतेऽपि इह प्रत्यगात्मनि चिदाकाशे उत्तरोत्तरभूमि-काभ्यासेन सैन्धवधनवदानन्दैकरसघनां शिलां कूला आस्पताम्

अनारमैवात्मनात्मानं स्वभाकादापुरेष्निव॥ ३ सर्गादाविव चिद्योम स्वभाकादापुरं जगत्। आभातमेवासत्यं च नृतं सत्यमिव स्थितम्॥ ४ तज्जाकातो न मूर्खाणामकाकातो न तद्विदाम्। विचते सर्गदार्थः सत्यासत्यमयात्मकः॥ ५

॥४५॥ हे सुगग, एवं सुचिन्मये ब्रह्मणि परमपदोपलभूतो भन्वान् यथाकमं स्ववर्णाश्रमोचितकममनतिकम्य यथास्यितं लोक-स्थिति चानतिकम्य यथोदयं स्वविभवातुरारेणाभीष्मितं देशं विषयं च ब्रज विहर पिय सुंश्व द्विजसुहद्वर्णान्भोजय च । सनीष्मितमिति पाठे निरिच्छं यथा स्यान्था ॥ ४६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यमकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्त-रार्घ एकषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६१ ॥

इह द्वैतस्य कृष्मस्य बह्यमात्रस्ववर्णनैः । हिसोक्तिभिरविद्याया निरास उपपाद्यते ॥ १ ॥

सर्वस्य दृश्यस्य चिद्योमार्थमेव स्फुरणाद्यि तन्मात्रतायरिरोष दृत्याह—चिद्योमेति । अर्थानां विषयाणां बाह्यस्याठोकनेन आन्तरमननेन च सहितं बाह्यमाभ्यन्तरं च दृश्यजातं
गवाद्यर्थनृणादि गवाद्यात्मने चिद्योमोपभोग्यं चिद्योमैव केवलं
परिशिष्यत दृत्यर्थः ॥ १ ॥ चिद्योग्यस्य चिन्मात्रपरिशेषत्वं
केन दृष्टान्तेन साध्यते तत्राह—स्वमेति । यस्माद्वेतोः स्वप्ने
पुरभोकश्याश्वित एव पुरस्पलादन्यम् विद्यते तस्मान्नामन्यद्यि नभ इव शान्तम् । उक्तानुमाने श्रुतिसंमति दर्शयति—
नेह नानास्ति किंचनेति ॥ २ ॥ यदि नाना नास्ति तर्हि किं
तद्यमानेव परिलक्ष्यते तत्राह—चिदाभानमिति । यत्राना तदनात्मैव निःस्वस्पमेष स्वसाक्षिणा आत्मनात्मानं स्वं दर्शयति ।
यथा स्वप्रपुरेष्वाकाशपुरेषु गन्धवनगरेषु च पदार्थस्तद्वदित्यर्थः
॥ ३ ॥ तत्साम्यमेव स्फुटयति—सर्गादाविति । सर्गस्य आदै।
प्रलयकाल इवेदानीमपि जगत्स्वप्राकाशपुरवत् आभातमेवासस्य
चेति साम्यमित्यर्थः ॥ ४ ॥ चन्द्रप्रदेशिकलवन्तरङ्गानानुभव-

तज्ज्ञाज्ञयोस्तयोरन्तः प्रतिपत्ता त यत्स्थितम् । न बोद्धं न च बकुं ते जानीतस्ता परस्परम्॥ Ĝ स्वबुद्धी स्वर्गशब्दार्थी मिथोन्तस्तत्किलानयोः। स्यैयांस्थेर्ये जान्नतो द्वे अक्षीबक्षीबयोरिव॥ 9 द्रवस्थितिमिता यद्वत्सरिद्वारिणि वीचयः। चितौ स्थितिमितास्तद्वश्चेतनात्सगेवीचयः॥ चिद्रपं यन्न किंचित्तदिदं किंचिद्वस्थितम्। भाति रहयमिवारहयमपि स्वप्नपुरेष्विव ॥ चिच्छायेयं प्रकचित जगदित्यभिदाध्दिता। नन्बमूर्तेच मूर्तेच द्रव्यच्छायेच वै तता ॥ 80 कायमात्रकमेवेदं भ्रान्तिमात्रमसन्मयम्। पिशाचिविभ्रमालोकप्रायमायासनं दढम् ॥ ११ मनोराज्यमिवासत्यं लोलं लम्बाम्बुबिन्दुवत् । द्वाभ्यामित्यनुभृतिभ्यां यदसत्तत्र कात्मता॥ १२ विदार्य दारुरवयत्तरङ्गानिलशब्दवत्। खे राष्ट्राः पवनस्फोटा भान्त्यर्था वासनोदयाः १३ सर्गादितः स्वपरिभा कन्नति स्वप्नशैळवत्। बस्तुतस्तु न शब्दोस्तिनार्थोऽस्तिन च दृदयता१४ यदिदं चास्ति चाभाति तत्सर्व परमार्थसत्। अन्यादकारणाभावात्सर्गादावेव नोदितम्॥

विसंवादादपि जगत्तथेत्याह—नज्ज्ञेति । उभयत्र अज्ञात इति च्छेदः । अथवा न मूर्खाणां तद्विदां वा अनुभवननुगृत्य प्रपन्नो व्यवस्थापयितं शक्यः परस्परविसंवादादुभाभ्यामप्य-शातसादिस्यर्थः ॥५॥ तरकृतस्तत्राह् —तञ्ज्ञानथोरिति । यतः केवलान्तर्देष्टयसाज्ज्ञाः केवलवाह्यदृष्टयोऽज्ञाः, प्रपश्रम्पं लन्तः प्रतिपत्ती बुद्धिवृत्ती अन्तराठे स्थितमुभावपि बोद्धं ते तुभ्यं परस्परं वा बक्तुं च न जानीतो न शक्तुतः ॥ ६ ॥ उक्तमेवो-पपादयति-सबुद्धाविति । सर्गशब्दार्थस्तावत्स्वस्वयुद्धी श्वित एव रफ़रति नान्य इत्यविवादं, नत्राक्षावक्षीवयोरिवात्रान्तम्रा-न्तयोरनयोर्मियः परस्परं तत्तरप्रपञ्चरूपमान्तरयुद्धिस्थलादन्तः-स्थम् । किलेति चौक्तिकप्रसिद्धी । तत्र विदुषी बुद्धिः सदैव स्थेर्ये जागतीति स स्थिरमात्मतत्त्वमेव पश्यति । अविद्वद्वद्धि-रस्थेर्ये जागर्ताति सोऽस्थिरं बाह्यमेव पश्यति । बुद्धिगतं तु प्र-पश्चखरूपं नालन्तमान्तरं नाल्यन्तं वाह्यमिति नोभयोरपि तत्प-रिज्ञानमस्त्रीत्वर्थः ॥७॥ ययुभाभ्यामपि द्रष्टुमशक्यः प्रपन्नस्तर्हि कथं स्थिति प्राप्तस्तत्राह-द्रवेति । अज्ञातचित्स्वभावमेवावलम्ब्य जलद्रवतया तरहा इवात्मरात्त्रयैत्रान्तराले स्थिति प्राप्ता इत्यर्थः ॥८॥अतएव चिश्रमत्कारमात्रं जगदित्याह्—चिद्रपमिति॥५॥ स्फरतीत्याह—चिच्छायेति । दर्भणे घटपटादिद्रव्यच्छायेव १० तत्र देहात्मताश्रान्तिरेव सर्वायासमूलमित्याह--कायेति॥१९॥ देह एवास्मास्लिति अमं वारयति --द्वाभ्यामिति । प्राग्वर्ण-ताभ्यां द्वाभ्यां विद्वद्विद्वद्वभूतिभ्यामि विमृश्यमानं यदस-

निरस्तशब्द मेदार्थमनिरस्ताखिलार्थकम्। शाम्यामि परिनिर्वामि ब्योमैवासीति बुद्धाताम् १६ त्यज्यतामारमविश्रान्त्या शुद्धबोधेकरूपया। जीवेऽजयं जवीभावस्त्वसद्गत्थित आत्मना ॥ १७ आत्मेव ह्यात्मनो बन्धुरात्मेव रिपुरात्मनः। आत्मात्मना न चेत्रातस्तद्वपायोस्ति नेतरः॥ तर तारुण्यमस्तीदं यावत्ते ताबद्रवृधेः। नन् संसारनाम्नोऽसाद्धक्या नावा विश्वस्या अद्येव कुरु यच्छ्रेयो वृद्धः सन्कि करिष्यसि । स्वगात्राण्यपि भाराय भवन्ति हि विपर्यये॥ २० दौदावं वाधेकं क्षेयं तिर्यक्त्वं मृतिरेव च। तारण्यमेय जीवस्य जीवितं तद्विवेकि चेत्॥ २१ संसारमिममासाद्य विद्युत्संपातचञ्चलम् । सच्छास्त्रसाधुसंपर्केः कर्दमात्सारमुद्धरेत् ॥ २२ अहो बत नराः क्रुरा गतिः कैषां भविष्यति । कुर्वन्ति कर्दमोन्मग्ने नात्मन्यपि निजोदयम्॥ રરૂ यथामृन्मयवेतालसभा ग्राम्यस्य भङ्गदा । यथा भूतार्थविकानान्मृत्मय्येव न भङ्गदा ॥ રપ્ तथा ब्रह्ममयी दश्यलक्ष्मीरकस्य भङ्गदा। यथा भूतार्थविद्याने ब्रह्मैवास्त न भद्भदा॥ २५

त्तत्र का आत्मतात्रसिक्तरिखर्थः ॥ १२ ॥ कथं तिहं रामोऽहं विस्हरलमिखादिदेहारमञ्जवहारशब्दार्थास्तत्राह—विदार्वेति । यथा पृथिव्यां स्थूलवंशदाहविदारणे तदन्तःस्थितः शब्दी बहिर्निःसरवीव प्रतिनाति न च तदन्तःशब्दः स्थितो निःसतो वा तथा जले तरकेम्यः अमी ज्वालादिम्यः खे प्रतिष्वनि-शब्दाः पवनाच कण्टताल्वादिप्रदेशे वर्णपदवावयस्फोटा निर्गता इव भान्ति नच ते प्राक्तदन्तः सन्ति तद्वद्वासनामया अप्यर्था अभिविस्फुलिङ्गवजाप्रत्स्वप्रयोरात्मनो निर्गता इव भान्ति नच तत्र सन्तीत्यर्थः ॥ १३ ॥ स्वपरिभा स्वात्मचित् ॥ १४ ॥ अन्यादक् सद्यतिरिक्तं रूपं तु सर्गादावेव कारणाभावान्नोदितं नोत्पन्नमेव ॥ १५ ॥ अतः सदैवैकरूपं सद्योमवाहमिति परम-शान्तनिर्वृत्तिरूपं बुध्यतामित्याह—निरस्तेति ॥ १६ ॥ जीवे प्रसिद्धोऽजवं जवीभावो मनोविक्षेपः ॥ १७ ॥ अतएव खवि-वेकेनैवारमानमुद्धरेत्याह--आरमैवेति ॥ १८ ॥ यावतारुष्य-मिल तावदेव बुड्या नावा संसारनाम्रोऽम्बुघेसार परतीरं ब्रज ॥ १९ ॥ वयसो विपर्धये बृद्धत्वे ॥ २० ॥ शैशवं वार्धकं च तिर्थयलवज्ज्ञानासाधकं ज्ञेयम् । विवेकि चेदिति । अविवेकित्वे त्र ततिर्थकादप्यधममिति भावः ॥ २१ ॥ कर्दमात् मोह-करमात्। सारमातमानम् ॥ २२ ॥ ये कर्दमोनमन्नेऽप्यारमनि शास्त्रोपायैर्निजोदयमुद्धारोपायं न कुर्वन्ति तेषां का गतिभीव-ध्यतीत्यनुशोचित वसिष्ठः ॥ २३ ॥ प्राम्यस्य मृन्मयत्वानिन-इस्य संख्येताला सभा मया द्वेति श्रान्तिमत इति यावत् । भक्तदा भयज्वरादिदुःखदा ॥ २४ ॥ २५ ॥ कतो न भन्नदा शास्यत्यशान्तमेवेदं स्थितमेव विलीयते। दृश्यं तत्त्वपरिज्ञानाहृश्यमानं न दृश्यते॥ २६ स्फुटानुभवनस्यापि स्वप्नकाले निजे यथा। परिज्ञानाद्सत्यत्वमेव सत्यपदं गता॥ २७ तथानुभूयमानापि सगस्वेदनाम्बरे। चिन्मये तस्वविद्यानाच्छ्न्यतैवावशिष्यते॥ २८ जातिज्वरज्यतिनजीवितजङ्गलेषु जीर्णानि वातहरिणाहरणक्रमेण। मायन्मनःपवनपातयुतान्यमृनि जित्वेन्द्रियाणि जयमेहि जहीहि जन्म २९

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे घा० दे० मो० नि० उ० अ० वि० अविद्यानिर्सनी नाम द्विषष्टाधिकशतनमः सर्गः ॥ १६२ ॥

त्रिषष्ट्यधिकदाततमः सर्गः १६३

श्रीगम उवाच ।
विनेन्द्रियजयेनेदं नाइत्वमुपशाम्यति ।
तिदिन्द्रियाणि जीयन्ते कथं कथय मे मुने ॥
विश्व उवाच ।
नच प्रभूतभोगेषु न पुंस्त्वे न च जीविते ।
म चेन्द्रियजयोग्मुका दीपस्ततुहशो यथा ॥
तिदिन्द्रियजये युक्तिमिमामविकलां श्रणु ।
सिद्धिमेति स्वयन्नेन सुखेन तनुरेतया ॥
चिन्मात्रं पुरुषं विद्धि चेतनाजीयनामकम् ।
यचेतसि स जीयोऽन्तस्तन्मयो भवति क्षणात् ।
संवित्प्रयस्तसंबोधनिशिताङ्कशकर्षणः ।
मनोमतङ्गजं मसं जित्वा जयति नान्यथा ॥

तत्राह—शाम्यतीति ॥ २६ ॥ ननु स्फुटानुभवनलात्सल्य प्रं गतस्य जगतः कथं ज्ञानमात्रादगरवापित्तिलत्राह—स्फुटेति । यथा स्वप्नकाले स्फुटानुभवनस्यापि स्वाप्नजगतः परिज्ञानात्प्रबोधात् । तथा अनुभूयमाना अतएव सत्यपदं गतापि सर्गसं-वेदनेति परेणान्त्रयः ॥ २०॥२८ ॥ तत्तु ज्ञानं समनरकेन्द्रिय-जयं विना न लभ्यत इति दर्शयश्रुपसंहरति—जातीति । जातिज्वरेर्जन्मज्वरभूतैः कामकोधादिदवाप्तिभिज्वलितेषु दीप्तेषु जीवितजङ्गलेषु वातहरिणानां वातम्याणां यस्तृणपणीद्याहरणकमः कदाचिल्रभ्यते कदाचित्रेरयेवस्पस्तेन जीणीनि शियि-लीभूतानि माद्यतो मनसः प्राणपवनस्य च यः पातो बहिःसंचारस्तेन सुतान्यभूनीन्द्रियाणि जिला ज्ञानेनाविद्याजयमेहि प्राप्तुहि। तेन च सुक्तः सन् पुनर्जन्म जहीहि त्यज्ञ । निवारयेतियावत् ॥ २९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाण्यकरणे उत्तरार्थे द्विषद्यश्विकशतत्मः सर्गः ॥ १६२ ॥

इहेन्द्रियजयोपायश्चित्तरोधश्चिदद्वये । अभ्यासश्चास्य शास्त्रस्य कीर्तिता बोधहेतद. ॥ १ ॥

जिरवेन्द्रियाणि जयमेहि जहीहि जन्मेति यदिन्द्रियनय-स्यावस्यकत्वं वसिष्ठेनोक्तं तत्रोपायं रामः पृच्छति—विनेति ॥ १ ॥ स्थाने लया प्रश्नः कृत इत्यनुमोदमानो वसिष्ठः प्रश्नं पुणाति—नचेति । यथा तनुदृशो मन्द्चक्षुषः पुरुषस्य प्रज्व-स्नपि दीपो न सूक्ष्मार्थदर्शने उप्युज्यते तथा न प्रभूतभोगे-

चित्तमिन्द्रियसेनागा नायकं तजायाज्यः। उपानद्रद्वपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥ દ્ संविदं संविदाकाशे संरोप्य हृदि तिष्टतः। स्त्रयमेव मनः शाम्येन्नीहार इव शारदः॥ G स्वसंविद्यव्वसंरोधाद्यथा चेतः प्रशाम्यति । न तथाङ्ग तपस्तीर्थविद्यायज्ञित्रयागणैः॥ 6 यच संवेद्यते किंचित्तत्तत्संविदि संविदा । नृनं विसार्यते यताङ्गोगानामिति तज्जयः॥ Q, स्यसंवेदनयत्तेन विषयामिषतोऽनिशम्। किंचित्संरोधिता संवित्तत्प्राप्तं वेबुधं पदम्॥ १० स्वधर्मव्यवहारेण यदायाति तदेव मे । रोचते नान्यदित्येव पदे वज्रद्रदीभव ॥ ११

व्वाराक्तम्य, नापि पुंस्त्वे स्वीत्कर्षसंपादने आसक्तस्य, नापि जीविते जीवनीपाये धनार्जनादावासक्तस्य शास्त्रादिसाधनं ब्रह्म-दर्शन उपयुज्यते । तथा इन्द्रियजयोन्मुकाविष तत्रीपयुज्यत इखर्थः ॥ २ ॥ तत्तस्मादिन्दियजयस्यावस्यकतादेतया मदुक्त-युत्तया तनुरल्यापि साधनसंपत् स्वयंक्षेन सिद्धि मोक्षफलस-द्धिमेति प्राप्नोति ॥ ३ ॥ चेतनाचित्तोपनीतार्थप्रकाशकलात् । चित्ताधीनलादितियावत । यनतिति चित्तवृत्त्या व्याप्य प्रथयति तन्मयो भवति तत्रासज्जते । स्त्रीमयो जाल्म इतिवत् ॥ ४॥ एवं सति चित्तस्य प्रखाहारप्रयक्षेनान्तराकर्षणेन बाह्याकारतां निरुध्य ब्रह्माकारताप्रबोधनाभ्यासे स्वतः पङ्ग्नीन्द्रियाण्यर्थादेव जितानि भवन्तीति युक्तिमाह--संविदिति ॥ ५ ॥ तत्कृतस्त-त्राह-चित्तमिति । नायकं स्थामिसायेन प्रवर्तकं निरोधकं च । पादमात्रावरणेन सर्वकण्टकजय इव चिलमात्रावरणेन सर्वेन्द्रि-यंजय इत्याशयेनाह--उपानदिति ॥ ६॥ मनःशान्तौ तर्हि क उपायस्तमाह--संविद्मिति । संविदं चित्तावच्छित्रसंविदं जीवं संविदाकारी ब्रह्मणि संरोप्य एकीकृत्य ॥ ७ ॥ स्वसंविदी जीव-संविदो यक्षेन ब्रह्मणि संरोधादुक्तरूपात् ॥८॥ संवेदाते बला-त्सर्यते तत्तत्वधिष्ठानब्रह्मसंविदि प्रविठापनसंविदा नूनं निध-येन विस्मार्थते तत्संस्कारोच्छेदेन पुनः स्मरणायोग्यं क्रियते । तत्तेनोपायेन भोगानां भोगहेतूनां विषयाणां इति एवं जयः ॥ ९ ॥ संरोधिता संविधेत्तेनोपायन वृद्धधं विद्धधानां तत्त्व-विदामनुभवसिदं साराज्यपदं प्राप्तम् ॥ १०॥ एवं सधर्मकिनि-

संवित्प्रवृत्तिमथेषु विरुद्धेषु विवर्जयन्। अर्जयञ्छमसंतीषा यः स्थितः स जितेन्द्रियः १२ संविद्वसिकतास्यन्तस्तथा नीरसतासु च। यस्य नोद्वेगमायाति मनस्तस्योपशाम्यति ॥ १३ संवित्प्रयत्तसंरोधान्मनः स्वायनमुज्झति। चेतश्चपलतोन्मुक्तं विवेकमञुधावति ॥ १४ विवेकवानुदारात्मा विजितेन्द्रिय उच्यते। यासनावीचिवेगेन भवाब्धी न स मुहाते॥ साधुसंपर्कसच्छास्त्रसमालोकनतोऽनिशम्। जितेन्द्रियो यथावस्तु जगत्सत्यं प्रपद्यति ॥ १६ सत्यावलोकनाच्छान्तिमेति संसारसंग्रमः । मराविव जलज्ञानं मिथ्या पतनदुःखदम्॥ १७ अचेत्यमेय चिन्मात्रमिदं जगदिति स्थितम् । इत्येव सत्यबोधस्य बन्धमोक्षद्वशौ कुतः॥ १८ अनाकारं यथा वारि क्षीणं बहुति नो पुनः। अकारणं तथा दृश्यं ज्ञानिच्छन्नं न रोहित ॥ १९ वेदनं व्योममात्रं त्वमहमित्यादिरूपधृक् । वर्जियत्वैतद्न्यत्याद्हमित्यादिकं जगत्॥ २० अविद्यामात्रमेवेदमहमित्यादिकं जगत्। चिद्योद्येव स्थितं शान्तं शून्यमात्रशरीरकम् ॥ २१ र्दं चिद्योम्नि चिच्छाया जगदित्येव भासते । शुन्यशुन्येय चिद्यासी शुन्या चेत्येव निश्चयः॥ २२ स्वप्रदर्शनदृष्टान्तः केन नामात्र खण्ड्यते ।

ष्ठतादाक्रीमपि वैतृष्ण्यतिदिद्वारा इन्द्रियजयहेतुरित्याह्—स्वध-मेंति ॥११॥ विरुद्धेषु खधमीवरद्धेष्वर्धेषु देह्यात्राहेतुष्वन्नादिषु संवित्त्रवृत्तिभिच्छाम् ॥ १२॥ यस्य मनः अन्तःसंविद्रसिकतासु बहिर्नीरसतासु चाभ्यस्थमानासु निर्वेदमरति नायाति तस्य तदु-पशाम्यति ॥ १३॥ अयनं विषयानुधावनदुर्व्यसनम् । सैवास्य चपलता तदुन्मुक्तं सत् ॥ १४ ॥ १५ ॥ एवं जितेन्द्रियः सन् जगद्यथावस्त सत्यं ब्रह्ममात्रं प्रपश्यति ॥ १६ ॥ मिध्यावस्तुव पतनेन धावनेन दुःखदम् ॥ १७ ॥ १८ ॥ अनाकारं शोष-णेनोन्छिन्नमूर्ताकारम् ॥ १९ ॥ यतो व्योममात्ररूपं वेदनमेव स्वाविषया लमहमित्यादिरूपपृगतः स्वाध्यस्तमहमित्यादिकमे-तज्जगज्ज्ञानेन पर्जयिला विमृज्य अध्यस्तादन्यद्विष्ठानमात्रं स्यात् ॥ २० ॥ शान्तं मिध्यालात्स्वत एव शान्तमिति चिद्यौ-क्येव तास्विके रूपे स्थितम् ॥ २१ ॥ असी चिष जगच्छु-न्याश्चरयेनापि शूर्यत्येव निश्चयः सिद्धान्तः ॥ २२ ॥ उभय-शून्यता क प्रसिद्धेति चेत्खप्रदर्शने इत्याह-स्वप्नेति । अस-म्मय इति शून्यता भनुभूत इति शून्यशून्यता च । अनुभृतस्या-सन्मयरवेषि स एव दष्टान्त इत्याह—खानुभूतोऽपीति ॥२३॥ हे अङ्ग, खखप्रसंवित्तिमात्रमात्मा खरूपं यस्य तथाविधी यदा-द्राज्यं वैभवं भूला महीयते तत्तवितरेव रूपम् । यतसाकर्तृ-कर्मकरणादिकारकनिरपेक्षं रूपम् । तद्वजाप्रज्ञगदपि बोध्यमि ।

असन्मयोऽनुभृतश्च स्वानुभृतोऽण्यसन्मयः॥ २३ सोऽङ्ग संवित्तिमात्रात्मा यद्यद्राज्यं महीयते । न कर्तृ कर्म करणं रूपं तद्वज्ञगचितेः॥ २४ अकर्तृकर्मकरणमहं चिद्धनमात्रकम्। जगश्चद्रमनिर्देश्यं स्वसंबेदनलक्षणम् ॥ રધ यथा स्वप्नेषु मरणमनुभूतं न विद्यते। मरी जलेच्छा विद्येयं विद्यमाना न विद्यते॥ રફ चिद्योचा काचकच्यं स्वं सर्गादौ व्योच्चि चेतितम्। जगदित्येव निर्मृतं काकतालीयवत्स्वयम्॥ २७ निर्मूलमेव भातीदमभातमपि भातवत्। तसाद्यद्वासुरमिदं तत्तदेव पदं विदः॥ २८ जीवादिकचनं त्यत्र यद्भातीदं तदेव तत्। शून्यतेव भवेद्योम वार्यवावर्तपुत्तयः॥ २९ यथावयविनो रूपमेकं सावयवं भन्नेत। एकं जीवाद्यवयवं ब्रह्मानवयवं तथा ॥ \$0 आभासमात्रं दृश्यात्म चिन्मात्रं शान्तमव्ययम् । स्थितमांस्था किमेतस्मिन्स्वभावे स्वे विचार्यते 38 नाद्यन्तमन्तःकलनाः काश्चित्सन्ति परे परे। तद्रपमेवाविद्ययं नाविद्या त्विह विद्यते ॥ 32 जीवः स्वप्ताद्विराञ्जायज्ञायतः स्वप्नमाविरान्। प्रवुद्धो वास्त्वबुद्धो वाष्येकरूपतया स्थितः॥ ३३ स्थिते सुबुप्ततुर्ये हे सदा स्वप्नेऽथ जाप्रति। जाप्रत्स्वप्रावेकमेव तुर्यं वेसि तु बुद्धधीः॥ ३४

व्यर्थः ॥ २४ ॥ यदाकर्तृकर्मकरणादिनिरपेक्षं तत्तचिद्धनमात्र-कमहमेव । इदं जगव सर्गादी कत्रीदिमत्तया निर्देष्ट्रमशक्य-मिति प्रागुपपादितम् । अतो मदीयस्वप्रकाशातमसहपमेवेसार्थः ॥ २५ ॥ तथान स्वाप्रस्वमरणमञ्जलवत्यतीतितो विद्यमा-नापि अविदाहानबाधितलात्र विदात इत्याह-यथेति । जले. च्छापदेन जलभान्तिरुक्ष्यते ॥ २६ ॥ व्योप्ति खात्मनि चेतितं संकल्पितम् ॥ २७ ॥ इदं जगवस्माचित्रकाशान्त्रिमसाद्धा-सुरमपरोक्षं प्रथमानमास्ते तदेव नित्यापरोक्षं परमं पदं बिद्धरि-त्यर्थः ॥ २८ ॥ २९ ॥ अवयवावयविभावकस्पनद्वारा वा जीवादेर्वहीक्यं प्रतिपत्तव्यमिलाह—यथेति ॥ ३० ॥ स्फटि-क्षिलान्तर्वनगिरिनधावाभासवद्वा ब्रह्मणि जगद्वोध्यमिलाह— आभासमात्रमिति । तथाच तत्खच्छता स्वभाव एव जगदा-त्मना भासत इत्याशयेनाह-स्वभावे इति । कि विचार्यत इत्यन्वयः ॥ ३१ ॥ न आदिरन्तं च नाप्यन्तः मध्यप्रदेशानां कलनाः काथित्सन्ति ॥ ३२ ॥ स्वप्नजागरान्वयव्यतिरेकेण परिशोधनेन वा द्यद्धं जीवजगलस्वं होयमित्याह--जीव इति । प्रवोधाप्रवोधयोर्भानैकरूपतया ॥३३॥ सुबुप्तमज्ञानावृत आत्मा तुर्यः शुद्धात्मा च भ्रान्तिकृतसर्गन्तः अज्ञानरज्जुकेवलरम् इव

१ स्थितमञ्चिमिति पाठी युक्तः.

जाप्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च सर्वे तुर्ये प्रबोधिनः । नाविद्या विद्यते तस्य द्वयस्थोऽप्येव सोऽद्वयः ३५ द्वैतमद्वैतमित्येतवृद्दंत्वमिदमित्यपि । निरविद्यस्य कस्त्रना कुतः काप्यम्बरं कुतः॥ ३६ **है**ताहैतसमुद्धेदैर्घाक्यसंदर्भविभ्रमः। क्रीडन्त्ययुद्धाः शिशवो योधयुद्धा हसन्ति तान् ३७ ब्रैताद्वैतविवादेहा हृदयाकाशमञ्जरी। विनैतयेह नोदेति प्रबोधाकारामार्जनम् ॥ 36 सुहृद्भुत्वा विवादेन द्वेताद्वतविचारणा। कृता हृद्यगेहेऽन्तरविद्याभसमार्जनी ॥ ₹¢, तिश्वास्तद्वतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च तिष्ठत्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ 80 तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । जायते बुद्धियोगोऽसाँ येनं ते यान्ति तत्पदम् ४१ किलोपकुरते यहान्त्रणमात्रावगोपने । कथं सिध्यत्ययक्षेन त्रेलोक्यगणगोपनम् ॥ ઇર अध्यात्मव्यसनोन्मुकं ततं हृत्स्थाऽधमाऽप्रभु । उपहासास्पदं यस्या जगद्युत्तमस्थितेः॥ 83

खप्रजाप्रतोरन्तः स्थिते ॥३४॥ प्रवोधिनस्तत्त्ववोधवतः । एव-कारो मित्रकमः । सद्वयस्थोऽप्यद्वय एवेति ॥ ३५ ॥ इत्यपि कापि कलना निरविद्यस्य कुतः, तया अम्बरं शून्यं च कुतः ॥ ३६॥ अबुद्धा अप्रबुद्धाः चिशवो बालाः क्रीडन्ति ॥३०॥ प्रमुद्धा अपि शाक्षेषु कथं दैतविवादानिच्छन्ति तत्राह-दैते-ति । हृद्याकाशे अध्यारोपिता शिष्यप्रयोधफला मझरी॥३८॥ अतएव मयापि सुहद्भावेनाभ्यूपगम्य द्वेताद्वेतविचारणा कृता क्रतकार्या गेहमार्जनीय निरसिष्यत इत्याह-सुहृदिति ॥३९॥ भविद्याभस्मनि मार्जिते सति अधिकारिणस्तविता ब्रह्मचिता ब्र-क्षगतप्राणाः परस्परं बोधयन्तस्तुष्यन्ति रमन्ति चं ॥४०॥ एवं भजता तेषां सततं विकारयुक्तानामसी मदुपदिष्टी बुद्धियोगः काकेन हतो जायते, येनासी तदारमा तरपदं मोक्षास्यं याति ॥ ४९ ॥ सततयुक्तानामिति प्रयञ्जातिशयापेक्षोक्तेस्तात्पर्यमु-द्वाटयति—किलेति । तृणमात्रस्यापि जलविष्ठपश्चादिभ्योवगो-पने रक्षणे यहात्साधित एवोपाय उपकुरुते न हेलया साधितः। त्रैळोक्यगणस्य ब्रह्मीभावापादनेन गोपनमात्यन्तिकपरिरक्षण-रूपं तस्वज्ञानमयनेन कथं सिध्यति ॥ ४२ ॥ यस्या निरति-शयानन्दरुक्षणाया उत्तमस्थितेमीनुषानन्दमारभय हैरण्यगर्भा-नन्दपर्यन्तमुत्तरोत्तरं शतशतगुणोत्कृष्टमुखोपभोगाय चतुर्दशभु-बनमेदेषु ततं विस्तृतं इत्स्थस्य अधमस्य कामस्य जये अप्रभु अ-समर्थम्। कामोपइतमिति यावत् । जगदपि कात्रुर्ये अपिशस्यः। कृत्भं जगळीवजातं तुन्छभोगासक्तलादुपहासास्पदं सा तादशी सर्वोत्तमा स्थितिः कथं न यक्रमईतीलर्यः ॥ ४३ ॥ भोगानां तुच्छतामवयुत्योदाहरणेन दर्शगति—कि नामेति

किं नामेवं किल सुखं यद्राज्यादिमनोङ्गरम्। तस्वज्ञानैकविश्रान्तौ देवराजपदं तृणम् ॥ 83 सुप्ताः प्रबद्धाः पश्यन्ति दृष्यं दृष्ये रता यथा । तथा दृष्ये रताः शान्ताः सन्तः पश्यन्ति तत्पदम् विना यहाभरेणेदं न कदाचन सिद्धाति। महतोऽभ्यासबृक्षस्य फलं विद्धि परं पदम्॥ ઇદ इदं बहुक्तमेतेन किमेतेनेति दुर्मतिः। न त्राह्येतावताप्युक्ते नाद्ते नेदमक्षधीः॥ 80 भूयो भूयः परावृत्या चिरमास्वाद्यते यदि । श्रुयते कथ्यते चेदं तज्ज्ञेनीक्रेन भूयते ॥ 86 यस्त्वेकवारमालोक्य दृष्टमित्येव संत्यजेत्। इदं स नाम शास्त्रेभ्यो भसाप्याप्रोति नाध्रमः ४९ ९व्मुत्तममाख्यानमध्येयं वेद्यत्सदा । व्याख्येयं पूजनीयं च पुरुषार्थफलप्रदम्॥ 40 यदसात्राप्यते शास्त्रात्तत्तहेदादवाप्यते । अस्मिन्द्राते क्रियाज्ञानं द्वयं याति पवित्रताम् ५१ वेदान्ततर्कसिद्धान्तस्यस्मिन्द्राते च युध्यते। **१द्मुलममा**क्यानं व्याक्यातं शास्त्रदृष्टिषु ॥ 42

अज्ञाननिद्रा सुप्ता दश्ये विषयभोगे रता जना यथा दश्यमत्या-सक्तया पर्वनित तथा शान्ताः सन्तस्तरविदो टर्वे अरताः प्रसप्तायास्त्रभिरतिशयानन्दं पदं प्रबुद्धाः पश्यन्तीत्वर्थः । तथाचोक्तं भगवता—'या निशा सर्वभृतानां तस्यां जागर्ति संयमी । यस्यां जामति भूतानि सा निशा पर्यती मुनेः ॥ इति ॥ ४५ ॥ ईटशं निलापरोक्षनिरतिशयानन्दरूपं मोक्षपदं यमभरेण विना कथं सिद्धोदिसभ्यासावस्यकतामाह---विनेति ॥४६॥ अतएव मया भवतामभ्यासदार्व्य भवविति प्रनःप्रनर्भ-क्रयन्तरेण युक्तयन्तरेण कथाख्यानादिविस्तरेण चेदमेव बहुवार-मुक्तम् । भवद्भिश्व पुनःपुनस्तदेव भगवतीच्यते बहुकेन पुनदः क्तसहस्रविस्तारितेनैतेन भन्थेन । एतेनाभ्यासश्रमेण च किंप्रयो-जनमित्यश्रदालक्षणा दुर्मतिने प्राह्य।सुज्ञस्यातिकुशलबुद्धेः कस्य-चिदेव नाभ्यासापेक्षा । अज्ञधीस्तु एतावता विस्तृतेनाप्यक्ते-नोपदेशवाक्येन इदमतिदुरूहमात्मतत्त्वं हृदि नाद्शे । अतस्त-स्यावृत्त्यादिलक्षणोऽभ्यास आवश्यक इत्यर्थः । तथाच भगवतो बादारायणस्य सूत्रम्—'आवृत्तिरसक्तृतुपदेशान्' इति ॥४७॥ अतएवायं प्रत्थो मन्दमध्यमाधिकारिभियीवज्ज्ञानीद्यं प्रतः-पुनः श्रवणाद्यावर्तनेनास्त्रादनीय इत्याह-न्यूयोभूय इति । इदं मदुक्तं शास्त्रम् । अझेनापि एतदावर्तनोपायेनावश्यं तज्ज्ञेन भयते नात्र संदेह इत्यर्थः ॥४८॥ अनम्यासपरस्य तु नैतत्फ-लाबाप्तिरिति तं निन्दति-यस्तिति । शास्त्रेभ्यः अनध्या-त्मशाक्षेभ्यः ॥ ४९ ॥ ५० ॥ प्रत्यक्षवेदोपवृंहणलादस्य का-ण्डद्वयफलसर्वस्वसाधनलादतिप्रशस्ततरत्वं दर्शयति-यदिति । किया पूर्वकाण्डार्यः । ज्ञानमुत्तरकाण्डार्थः । द्वयमपि पवित्रता-मात्यन्तिकाश्चद्धिनिरासफळताम् ॥ ५१ ॥ चकारो मित्रकमः।

र थेनासी याति तत्पदं इति पाठोऽविक्षतद्यीकानुरोधेन. योग• १८३

कारण्याञ्ज्वतामतद्दं विष्म न मायया। भवन्तस्त्ववगच्छन्ति मायामेतद्विचार्यताम् ॥ ५३ असाष्ट्रगम्बवराद्वोधा जायन्ते ये विचारितात्। छवणव्यं जनानीव भान्ति शास्त्रान्तराणि तैः॥ ५४ अनार्यमिद्रमाष्यानमितानादत्य दृश्यधीः। माभवंत्वात्महन्तारो भवन्तो भवभागिनः॥ ५५ तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः स्नारं जलं कापुरुवाः पिवन्ति । यथा भवन्तो विविचारवन्त-स्तथानिशं मा भवताइतास्यै॥ ५६

इसार्पे वासिएमदासामायवं वाव मोव निर्वाव उठ इन्द्रियजयोपायशास्ववर्णनं नाम त्रिषष्ट्यथिकशततमः सर्गः ॥ १६३ ॥

चतुःषष्ट्यधिकशततमः सर्गः १६४

विषष्ट उत्राच। जीवाणयो जगन्यन्तश्चिदादित्यांशुमण्डले। यत्र तेऽवयवास्तुल्यास्तेनानवयवात्मता॥ सर्वे प्राप्य परं वोधं वस्तु स्वं रूपमुज्झति। पुनस्तदेकयाक्यत्वाक्ष किंचिद्वापरं भवेत्॥ सर्वाम्बेबास्ववस्थासु तस्वज्ञविषयं तु तत्।

वेदान्तेषु ये बादगयणादिभिदेशितासात्पर्यनिर्णया**नुक्लोपक-**मादितिज्ञकतकां लेळांवस्थापितः चिद्धान्तः रा चास्मिन् ज्ञाते बु-ध्यत इति विशेषयोतनार्थसुसन्दः । शास्त्रदृष्टिषु मध्ये विशिष्टरवे-नास्यातं व्यास्थातं श्रेष्टाया स्थातमिलार्थः॥५२॥**मायया केत-**वेन न वश्मि किंतु कारण्यात् । भवग्तस्लस्मा**प्छास्रवराद्विचा**-रितादतदुर्यज्ञात भाषां। भिःगेखवगच्छन्खत एतच्छाम्न वि-चार्यताम् ॥५३॥ अस्मान्छास्यसाद्विजारिताथे योघा जायन्ते तैबंबिः शास्त्रान्तराणि उवणेब्बेजनासीय रुचिराणि **भान्तीतीदं** सर्वेशास्त्रोपजोब्यमिलार्थः ॥ ५४ ॥ अनार्यं काव्यलादपुज्यम् । दृश्येषु भंगोष्यासका धीर्येषाम् । 'सुपा सुलुक्' इति छान्दसः पूर्वसवर्णदोषेः पुरुवलयो वा । कित्मनः पुनःपुनर्मृत्युपरंपरा-प्राप्तिहेतुमोहगर्तपातिनः । यदाय पुनःपुननेवनागिनो जन्म-भाजो मा भवन्तु ॥ ५५ ॥ नन्यसारक्षके पूर्वजैस्तपःकर्मादः निष्टैवाकिया न बदानेहा । अस्मदीयाः पूर्वजाः कर्मनीमांसका अस्मदीयाः पूर्वजासापिका अस्मदायाः पूर्वजाः सांख्या **अस्म**-दीयाः पूर्वज्ञास्तान्त्रिका मस्त्रांसद्धा योगनिद्धा ओषवरसायना-दिसिद्धा वा अभूतवता वयमपि तहरयास्तलद्वुखतमेव मार्ग-माध्रयिष्यामी नात्यात्मशास्त्रमिति बुवाणाञ्चना**नुपद्सन्मुम्-**श्रूणां तन्मार्वप्रदृत्ति वारयति—तातस्येति । कापुरुषाः दुरमि-मानेन सनिहितमपि आहुवीजलमनादस्य यथा क्षारं जलं पिब-न्ति तथा भवन्तोध्यज्ञतास्त्रै पुनःपुनर्जन्मपरम्परासु मौर्ख्यास्यै मीर्ह्यस्यव लामाय अनिशं विरुद्धविवधविचारवन्तो मा भव-तेलार्थः ॥ ५६ ॥ इति आवासिष्टमहारामायणतासर्थ-प्रकाश निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्ध त्रिषष्टयिकशत्तसमः सर्गः ॥ ३६३ ॥

श्रक्षभावोद्भयाजीवजगञ्जाविमार्जनैः । द्वष्ट जीवजगद्धस्यसम्बद्धं प्रसाध्यते ॥ १ ॥ सत्रादी जीवभावं विमार्थुमारभते—जीवाणव इसादिना । परमेवामलं ब्रह्म नान्यत्किचित्कदाचन ॥ द यद्यातस्वक्षविषयं तज्जानाति स एव तत् । ययं तु विद्यो नाहं त्यं नातस्वकं न वस्तु तत् ॥ ४ अयं सोहमयं चाक्रः सत्योऽयमिति बुद्धयः । संभवन्ति न तस्वक्षे क्ष मेरौ मृगतृष्णिका ॥ ५ यथैकद्रव्यनिष्ठे हि चिसेऽन्यद्रव्यसंविदः ।

सर्वेतः परिपूर्णस्य चिदादित्यस्य मण्डले अन्तःस्फुरति यत्र जगति ते प्रसिद्धा जीवाणवस्तेन चिदादित्येन तुस्या अभिविस्फु-लिङ्गवत्समानप्रकाशस्वभावास्तेन हेतुना अनवयवात्मता चिदा-दित्यस्य सिद्धा । इस्तपादाद्यवयवानां परसारविरुक्षणाकारादि-स्वभावलद्शेनाद्वयविनधं तेभ्यो भिन्नाकारसंस्थानादिदर्शना-त्तत्र मेदोऽवयवावविभावश्च लोके प्रसिद्धो न चात्यन्ततुस्पत्वे इति भावः ॥ १ ॥ नन्वेवं नक्षत्राणामपि नमसि समानप्रका-शस्त्रभावद्शनात्परसारामेदो निरवयवत्वं च तेजसः किं न स्याद्भिष्ठदेशत्वेन प्रकाशतारतम्येन च परिहारस्तु जीवेष्वपि तुल्य इत्याराङ्गाह-सर्वमिति । न नक्षत्रभेदवजीवानां भेदः किंतु घटकरकाद्याकाशभेदवदीपाधिकः। तच भेदकमन्तः-करणाद्युपाधिवस्तु सर्वे परमखण्डाकारमपरोक्षमहं ब्रह्मास्मीति बोर्च प्राप्य समुपाविहपं सकृतं भेदहरं चोज्झति उत्स्जति । अपगते चोपाधिमेदे प्रतिज्ञासिद्धिरित्यर्भः । अथवा पूर्व जीवा-नामविद्यया परस्परविरद्धधर्मतां प्रदर्श ब्रह्मे कवाक्यताविच्छे-दाद्भेद इव बन्ध इवानर्थ इवाभूत्। इदानीं विद्यया अविद्यां निरस्य विरुद्धधर्मनिरासेन पुनर्बद्धौकथाक्यतासंपादनादवयवा-वयविभावादिना मेदकपरं कि भवेदित्यर्थः ॥ २ ॥ तर्हि किमविद्यान्तःकरणदेहभेदाद्यवस्थासु पूर्वे जीवा भिन्ना एव इदा-नी विद्यया ब्रह्मेक्यं प्रापिता, नेत्याह-सर्वाखेवेति। तत्त्वहविषयं तु यह्रद्वा तत् आसु सर्वाखेवावस्थासु भेदादिगलश्र्न्यमेकरस-मेव । न कदाचिदपि किंचिद्वैतमलं तत्रास्तीत्पर्थः॥३॥कथं तर्हि पूर्वमहंत्यादिमछदर्शनं तत्राह-यचेति । तन्मलिनं वस्तु च न विद्यः॥४॥कृतो विद्यस्तन्नाह—अथमिति । पिपासितश्रान्तहशा हि मृगतृष्णाप्रसिद्धिः । न च स्वर्गभूते मेरी पिपासाश्रमादयः कस्यचिरसन्तीति तद्दप्रसिद्धिरिति गावः ॥ ५॥ यथा स्थाणुरेव शुक्तिरेवेत्वेकद्रव्यनिष्ठे एकह्तपद्रव्यतत्त्वनिश्वयवति पुरुषे अन्या-स्तद्विरुद्धाः स्थाणुर्वा पुरुषो बेति संशयसंविद इदं रजतमिति

१ मुक्सा(महातार इसस्यायसदाः,

न भवन्ति परे तद्वन्नान्यास्तिष्ठन्ति संविदः॥ ६ ६दं नासीम्न चोत्पमं न चास्ति न भविष्यति। जगद्रस्य सद्गूपमिद्मित्थमवस्थितम्॥ ७ चिन्नभः काचकच्यं च स्वात्मन्येवावतिष्ठते। जगदित्येव तत्तत्र तज्ञानेनैच खेत्यते॥ ८ स्वभेषु कल्पनपुरेषु यथान्यदस्ति चिन्मात्रमच्छगगनं नतु वर्जयित्वा। नो किंचनापि न च रूपमरूपकेषु रूपं तथा जगति संप्रति जाप्रदाख्ये॥ ९

पूर्व किलोझवति किंचन नाम नेदं तद्यावभाति तदनादि क्रमेव चिस्वात्। नो कारणं न सहकारि किलास्ति यत्र तस्मात्स्वयं भवति वस्त्विति केयमुक्तिः १० तस्मात्स्वयं भवति नेह हि कश्चिदादी त्रसाद्यो इविदिना नय नाम सन्ति। व्योमेदमाततमयं स इतः स्वयंभू-रित्यादि चिद्रगनमंघ चिता विभाति ११

इत्यार्पे श्रीनासिष्ठमहारामायणे वा॰ दे॰मो०नि०उ० जगरपरमारमनोरैक्यभोगोपदेशो नाम चतु-पष्टविकशततमः सर्गणा ३६४॥

पश्चषष्ट्यधिकदाततमः सर्गः १६५

Ę

यसिष्ठ उवाच ।
जाप्रत्स्वमे स्वम एव जाप्रत्यमनुगच्छति ।
स्वमजाप्रति जाप्रतु स्वमतामुपगच्छति ॥
स्वमो जाप्रत्यविद्यति जाप्रत्स्वमात्मबुध्यते ।
जाप्रत्स्वमं प्रविद्यति प्रबुद्धः स्वमजाप्रतः ॥
जाप्रत्स्वमवता स्वमः स्वम इत्यमिषीयते ।
स्वमजाप्रदता जाप्रजाप्रदित्यमिषीयते ॥

भान्तिसंविद्ध न भवन्ति तद्वत् परे तत्त्वे निश्चिते अन्या मेदभमसंविदो न तिष्ठन्ति ॥ ६ ॥ इत्थं जीवभावं विमुज्य तथेव जगद्भावमपि विमार्धुमारभते—इदमिति । इत्थं मार्जने जगद्रकेव भूलावस्थितम् ॥ ७ ॥ एवं मार्जने जगत्वेन गृहीतं चित्रभः काचकच्यं स्वात्मन्येव शुद्धब्रह्मभावेऽवतिष्ठते।तत्र तस्यां दशायां जीवन्मुकैसादेव जगदिति तज्ज्ञानेनैव चेखते न जडं किंचिदित्यर्थः ॥ ८ ॥ यथा स्त्रप्तेषु मनोराज्यकल्पितपुरेषु च अमलं चिन्मात्रमेकं वर्जियेला अन्यत्रास्ति तथा संप्रति जाप्र-दाख्येऽपि जगति चिन्मात्रं विना न कियनः प्युपाधिखरूप-मस्ति । एवमुपाधिमार्जनेनारूपकेषु जीवेषु नच रूपान्तरमः क्तीति चिर्वेकरस्यं सिद्धमित्यर्थः ॥ ९ ॥ 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुतेर्यत्र सगीत्पूर्व नो कारणं परि-णाम्युपादानं नापि सहकारि निमित्तकारणं च किलास्ति तस्मा-जगद्भवतीतीयमुक्तिः का। अतः किंचनेदं नोद्भवति यचोद्भत-मियानभाति तदनादिवहा समेव चित्सभावात्स्वयमेव तथाव-भातीति सिद्धमित्यर्थः ॥ १० ॥ अमुमेवार्थं दडीकुर्वन्पुनः सष्टमाइ—तस्मादिति । अज्ञैर्विदिता ब्रह्मादयो व्यष्टिसमिटि-जीवतदुपाधयो नैव सन्ति । किंतु स खयंभूरयं प्रपश्चश्च इतो ब्र-हाणः सकाशास्त्रीम शूल्यमेवेदमाततं चिद्रगनमेव खचिता तथा विभातीति तिद्धमित्यर्थः ॥ ११ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामाः बणतास्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुःषष्ट्रशक्षिक-शततमः सर्गः ॥ १६४ ॥

तज्ञात्रज्ञात्रतिवह नतु स्वमः कदाचन ।
स्वमे स्वमो जाग्रदेव नतु जाग्रत्कदाचन ॥ ४
छघुकालात्मकः स्वमः सर्वदेव हि जाग्रति ।
छघुकालात्मकं जाग्रत्स्वमकाले सदेव च ॥ ५
न जाग्रत्स्वमयोभेदः कश्चवान्ति कदाचन ।
एकस्यावसरोऽन्यत्र हथोगपि न सन्मयः ॥ ६
मृतिप्रवोधसमये जाग्रत्स्वमः प्रशास्यति ।

परस्परासुप्रवेशाः परस्परसमुद्धवातः । चिन्मात्रत्वे दृढीकर्तु जाधन्त्रद्वेभवत् संभिते ॥ ५ ॥

जामरस्वप्रसूपमयः परस्वराख्यातिशागः कर्वति । विविधाः । जामनामत् जामरस्यप्तः जामरसपुषि , स्वाकानम् स्वप्नस्वप्नः **खप्रसुप्रसिः, सुप्रसिजामत् सुप्रमिखप्रः हाः वन्द्रमिर्छान् । एते हि सुरेश्वरवार्तिके प्रापुत्पत्तिप्रकर्ण**े लेखिलाम**ने**देशपादिसा **इह सिद्धवदुपादी**यन्ते । तम् जामन्यमे सन्तराज्ये *सन्द्रय व्यापा*र-निरपेक्षलास्केबलमनोमयलाचार्यानो स्वप्नसार्वर स्वप्न एव जान **अस्त्रमुपगच्छति।एवं** स्वतिकपि एतः बत्कालमहं सुप्त इदानी जाग-मीतिप्रतीतिदर्शनाःप्रसिद्धे स्वप्न गाप्रति तु सानुभवनिद्धा जाम-देव स्वप्रसम्बन्धकारीलर्थः ॥ १ ॥ परस्परानुप्रवेशपदनयोः परसर्निमित्तता वासीत्याह—स्वप्न इति । स्वप्नस्यादेव जाप्रतः प्रवुद्धः सन् जाप्रदूरामेव स्वप्नं प्रविशालातंत्रीतः परस्परांनीसन् तापि दृश्यत इलार्थः ॥ २ ॥ अनयोक्यपदेशसांकर्यसपि दृश्यतः इलाह—जाप्रदिति । स्वप्नसप्ती नागणायदित्युभयत्र वीष्सया द्विवेचनम् ॥ ६ ॥ तत्र रुप्तेऽपि जामग्रह्ह जामशीर अनुस-वतो जामदेव नतु स्वप्नः । एवं जामस्खप्नं सनोराज्यं जामस्खप्न एवानुभवतो ततु जा,प्रदिव्यर्थः ॥ ४ ॥ स्वज्यालाकालता जामतो दीधेकालना च परस्परानुप्रविशे विपरीते यह --- छब-कालत्मक इति ॥ ५ ॥ एवं परस्परसांको वात्ववं तदाइ---नेति । द्वशोरप्यन्यत्रः एकस्यावसरः परम्यणनुप्रवेशी गुक्तया सन्मयो न ॥ ६ ॥ ननु खप्तः प्रकोषे प्रशास्यान, खप्तार्थाश्च

स्वप्रानुभवबोधे च शून्य प्वातिभास्वरः॥ O जीवतः स्वप्तसमये मृतिबोधोदयं विना। परलोकात्मकं जाप्रतिकचनापि न दृदयते॥ 4 स्थिते जीवितबोधेऽसिङ्छन्ये नानामयात्मनि। परलोकात्मकः स्वप्नः कश्चनापि न दृश्यते ॥ ٩ चिचमत्कृतिमात्रात्म यथा स्वप्ने जगन्नयम्। हृदि सर्गात्प्रभृत्येव तथैवाभाति जाव्रति॥ 80 सन्त्येवासत्यभूतानि स्फाराणि परमार्थतः। मास्त्येचाकारवत्त्रेयं स्वप्नोर्ब्यामिव जाप्रति॥ ११ मानात्मभासुरमपि स्वप्ने शून्यं यथा जगत्। तथैव जात्रत्यखिलं व्योमेन्नेदं चिदात्मकम्॥ १२ चिद्योम्रो हि स्वभावोऽयं यदिवं जगदम्बरे।

कचतीत्थमिष्ठ स्कारमालोक इव तेजसः॥ १३ चितेश्रमत्हतिरियं जगन्नामी चकारत्यलम्। सहजा गगने कुड्ये परमाणी स्थले जले॥ १४ भ्रान्तावसत्यद्भपायां स्थितायां सत्यवस्तुवत्। आकाशमात्रदेहायां क इवैनांप्रति प्रहः॥ १५ प्रहीतृप्रहणप्राह्यरूपमाशून्यमेव च। सदस्त्वेवासदेवास्तु जगदत्राङ्ग किंग्रहः॥ १६ इत्थमस्त्रिवस्थान्यथास्तु वा मैच भूद्रचतु कोऽत्र संग्रमः। कोऽत्र फल्गुनि फले फलप्रहो बुद्धमेव तदलं विकल्पनैः॥ १७

इत्यार्थे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० मो० नि० उ० जाम्रत्स्वप्रैश्योपदेशो नाम पश्चषष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६५ ॥

षट्षष्ट्यधिकदाततमः सर्गः १६६

यसिष्ठ उवाच । सार्थकेनात्मशब्देन ख्यातिशब्देन चोज्झिताम् । आत्मख्यातिमिमां विद्धि शिलाजठरनिर्धनाम् ॥ १ आदिसर्गात्मभृत्येय चिद्योमेवेत्थमाततम् ।

जमारे ग्रून्य एवावतिष्टन्ते, नैवं जामलक्षाम्यति, नाप्यर्था असन्तो दर्यन्त इति स्वप्नवैधर्म्यशक्षां निरस्यति—सृतीति । अय ज¦महक्षणोऽपि स्त्रप्तो मृतिकाले यः परलोकप्रबोध आत्य-न्तिकद्वेतमृतिलक्षणस्तन्वप्रबोधश्व तत्समये प्रशस्यत्येव । प्रत्यहं स्वप्रानुभवलक्षणे स्वाप्तार्थवीधकाले चकारात्मुवृप्तिकाले च शून्य एवावतिष्ठत इति साधम्यमेव न वैधम्यैमिखर्थः ॥ ७ ॥ नन्य-वतनस्वाप्रार्थाः भस्तनस्त्रप्ते असन्त एव, अवतनजाप्रदर्शासु श्रस्तनजामत्यनुवर्तन्त इति वैधर्म्यमित्याशङ्कां जन्ममेदेष्वननु-वृत्तिप्रदर्शनेन परिहरति -- जीवत इति । सृतिबोधोदयं विना भरणोत्तरप्रवोधहरयानामभावात्परलोकात्मकं जाप्रतिकचनापि न दरयते ॥ ८ ॥ एवं स्थिते अस्मिन्नयतनस्वप्ने जीवनादिसर्व-खाप्रपदार्थश्चन्ये आग्लैंव नानामयात्मनि जीवामीति जीवित-षोधे सति श्रस्तनः पृतेषुस्तनश्च स्वप्नः परलोकात्मकप्राय इति कश्चनापि तत्रत्यपदार्थोऽत्रानुवर्तमानो न हर्यत इत्यर्थः ॥९॥ चिवमत्कारमात्रातमत्वं च द्वयोरपि तुल्यमित्याह—चिदिति । हृदि अन्तःकरणे ॥ १० ॥ स्वर्मषये जामतस्तत्रत्योर्व्यादीनां स्ताप्रार्थवितराकारलमसत्यत्वं च स्फुटमित्याह—सन्तयेवेति १ १ ततश्चिन्मात्रपरिशेषोपि सिद्ध इत्याह-नानात्मेति ॥ १२ ॥ तेजसः सूर्शदेराठोकः प्रभेव ॥ १३ ॥ सहजा खामाविकी॥१४॥ एनां जगद्धान्ति प्रति प्रह् आप्रहः कः । अनुचित एवेखर्थः ॥ १५ ॥ महीत्रादितिपुटीजगद्भ्यमाश्चन्यमसदेव । हार्थे चः । अधिष्टानसत्त्वा सदस्तु अथवा असदेवास्तु अत्रास्मिन्विषये मह एकतरपक्षत्र्यवस्थापनदुराग्रदः किंप्रयोजन इलार्थः ॥ १६॥

कचत्यात्मनि यत्तस्य बुद्धा तेनैव सर्गता ॥ २ न चहन्तीह सरितो नेहोन्मज्जनमज्जने । व्योम व्योक्त्येव चित्रूपं कचत्येवमनिङ्गितम् ॥ ३

अबोधादेकतरपक्षाभिमानसंभ्रमः स्यात् । इदानीं भवद्भिस्त-रवतो बुद्धमेवेति अत्रेतद्ग्तर्गतभोगलक्षणे एतस्सस्यताप्रतिष्ठा-पनेनेतरजलक्षणे च फल्गुनि फले कः फललप्रहः । अनुचित एवेल्पर्थः ॥ १० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्र-काशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे पञ्चपष्टश्रधिकशतसमः सर्गः ॥ १६५ ॥

भारमरूपातिविद्येषोऽत्र तथा रूपात्यन्तरस्थितिः । श्रक्षनीखरित्वारूपानं चोक्तं प्रभोत्तरान्वितम् ॥ १ ॥

 कचनोत्त्या तु रहितां समप्रेणास्तकल्पनाम् । विनोत्तरपदार्थेन स्वात्मख्यातिमिमां विदः॥ 8 आत्मेवदं जगत्सर्धं ख्यातिर्यत्र न किंचन । अख्यातो नाम न रूपात्या कदाचित्र्यापितः कचित् रुयातिरख्यातिरित्यत्र वाचोयुक्तिरवास्तर्वा। कि तत्र ख्यापनं नाम स्याद्वाप्यख्यापनं च किम् ६ अख्यातिरन्यथाख्यातिरसत्ख्यातिरितीतरा । ष्ट्रयाश्चिन्मात्ररूपस्य भासश्चित्त्वचमत्कृताः ॥ यथा यथा यदा येथे चिन्मात्रव्योमभास्वतः। चिदंशवः कचन्त्यच्छास्तदा तेते तथा तथा॥ आत्मख्यातिरसत्ख्यातिर्ख्यातिः ख्यातिरन्यथा। इत्येताश्चिश्यमत्कृत्या आत्मख्यातेर्विभृतयः॥ आत्मख्यातिपदस्यार्थे आत्मख्यातिपदोज्ज्ञितः। अनाधन्तो निरुष्टेखः सोऽयमेकधनः स्थितः ॥ १० तत्रेदं महदाख्यानं शृशु श्रवणभूषणम्। दुषणं द्वेतद्दरीनां द्योतनं योधभास्त्रतः॥ ११ अस्ति योजनकोटीनां सहस्राणि प्रमाणतः। आनीलकुड्यकठिना विमला विप्ला शिला॥ १२

ख्यायते । अनिक्षितं निष्कियम् ॥ ३ ॥ कवनोत्तयाः कचन-धाचकेन स्थातिशब्देन । उत्तरपदं स्यातिशब्दशंन तद्येन च विना स्वप्रकाशमारमानमेव न्यात्मकसर्गेष्ठहवानात्मकखादात्म-स्याति विद्वविद्वांस इञ्जर्थः ॥ ४ ॥ एवं चिन्मात्ररूपे संगे याद्यभिमतार्थानामस्यात्यादिशब्दानामसंगतिरित्याह---आत्मै-यति। यदा इदं जगत्सर्यमार्थ्येव सच स्वप्रकाशाःभव स कदावि खातिरिक्तया ख्याखा न ख्यापित इति अख्यात इति वाची-युक्तिस्तत्र स्यात् । न लख्यातिरिति भावार्थककिशनतपदं तत्र घटियतं शवसमित्यर्थः ॥ ५ ॥ कतो न शक्यं तत्राह—ख्या-तिरिति । एयाघातोर्हि प्रधा अर्थः । प्रत्ययस्य भावः सच सत्ता । तथाच ख्यानात्मका सत्ता ख्यातिशब्दार्थः । तथाविधधा-यमात्माख्यातिरेवेति न नवर्धन संबध्यत इत्यख्यातिरिति परा-भिमता बाचोयुक्तिस्तत्रावास्तवीत्यर्थः । अस्तु तर्हि हेतुमण्य-न्तादत्र किन् । तत्रापि 'गरिनिटि' इति णिलोपे स्यातिरिति रूप-सिद्धेस्तथा च न विद्यते ह्यातिः ह्यापनं यत्र सा अह्याति-रिति ब्युत्पत्त्या परामिमतोऽर्थस्तत्र सेत्स्यतीत्वाशक्काइ—िकं तत्रेति । जडे हि सर्गेऽभ्युपगते तत्रान्यकृतं ख्यापनमख्यापनं चोपयुज्यते।यदा तु स्वप्रकाश आत्मैव सर्गस्तदा दीपे दीपान्त-रेणेब तत्र स्यापनमस्यापनं च न किचिदिति सर्वथा पराभिमतं न घटत इलार्थः। एतेनासत्हयात्यन्यथास्याती अपि वाद्यन्तरा-भिमते प्रत्याख्याते । नयर्थवदसदन्यथाशब्दार्थयोर्। एयाति-पदार्थेन सह अन्वयायोग्यलादिति भावः ॥ ६ ॥ यदितु स्तप्र-मनोराज्यादिहरयान्तरतुल्याः कल्पनामात्ररूपा अख्यात्यादय-श्चिममत्कारा एवेल्यभ्यूपगच्छथ तर्हि तथास्तु न कान्विमः क्षतिरित्याह—अख्यातिरिति ॥ ७ ॥ चिदंशवः अमिविस्फ- न संधिवन्धा निविद्धा यज्ञसारा विसारिणी। अत्यन्तपृष्टकठिनजठराकादानिर्मला॥ १३ असंख्यकल्पनिचयमविनादाः घनाङ्गिका । कान्ताङ्की निर्मलत्वेन व्योमस्पैव लक्ष्यते ॥ १४ जातिस्त बायते तस्या विशिष्टा नैव केनचित्। फथं कुत्र कदा चेति न विशाता सदैव सा॥ १९५ अन्तस्तस्यास्त् हृदये भूतधानुविवर्जिते । निविडानन्तकठिना वज्रसाराऽविनाशिनी ॥ ३६ लेखामयानि विद्यन्ते स्वाङ्गभृतानि भृरिशः। पद्मजालानि राह्माश्च गदाश्चकादयस्तथा ॥ १७ खं बायुः सिलेलं तेजो बसुधेत्यभिधा कृता । नासीत्तत्र स्वलेखानां जीव इत्येष वै तया ॥ 26 श्रीराम उवाच ।

शिलासी चेतनं तस्याः कुत इत्युच्यतां मम । अचेतना शिला नाम कथं नाम करोति च ॥ १९ चसिष्ट उत्थाच ।

न चेतना न च जडा सा शिला विपुलोक्जवला। जाति जानाति कस्तस्याः कस्तत्रान्यश्च विचते २०

लिज्ञबहकल्पितचिद्धागाः ॥ ८ ॥ तथासति भवदिभमतास्त मदीयात्मरुवातेर्विभूतय एवेखाह—आत्मरुवातारित ॥ ९ ॥ वर्णितामात्मस्यातिमुपसंहर्न शिलाजठर्रानर्घनाविति पदं शि-छोप: ह्यानेन व्याख्यात्मपक्रमते — आत्मस्यातिपदस्येति॥१० तत्र एकघनः स्थित इति पदस्यिते शिलाजध्रनिर्धनपद्या-ह्याने विषये ॥ १९ ॥ आसमन्त्राक्षीलमाकाशमेव यदि कुन्धं स्मात्तदिव कठिना विमला विषुला च ॥ १२ ॥ न विद्यन्ते सन्धियनधा अवयवसंक्षेत्रघटना यस्याम् । नशब्दीयं नतु नस् । विसारिणी विस्तारवती ॥ १३ ॥ कल्पनिचयमिति 'कालाध्व-नोरखन्तसंयोगे' इति द्वितीया क्रोशं गिरिरितियत् ॥ १४ ॥ सञातीयवस्त्वन्तरात्रमिद्धेस्तस्या विशिष्टा विजातीयाद्यावृत्ता जातिः केनचिपैव ज्ञायते । एवं तस्या देशकालप्रकारा अप्य-व्यन्ताप्रसिद्धा इत्याह—कथमिति ॥ १५ ॥ भूतघातुभिर्महा-भूतैश्रतुर्विषभूतम्।मेश्र विवर्जिते तस्या अन्तर्जठरे छेखाम-यानि रफटिकविलान्सलेखात्रायाणि पद्मजालादीनि विद्यन्त इति परेणान्वयः ॥ १६ ॥ आदिपदात्सन्नखद्वान्नादिपरिमहः ॥ १७ ॥ तत्र शिलाजठरे खं बायुरित्यादि जगन्नासीदेव किंतु तथा ठक्ष्यमाणानां म्बलेखानामेव खं वायुरित्यायमिधा तया शिलया कृता । खस्याध तया जीव इत्येवाभिधा देहलेखासु कृतेसर्थः ॥ १८ ॥ नन्वसी शिला शिलालादेव अचेतना । नामेति छोकप्रसिद्धौ । तस्याथ चेतनं संज्ञानं कुतः । यदाचे-तनैव सा तर्हि सा खलेखानां खं वायुरिखादिनाम कथं करोति। नामकरणस्य चेतनकर्नकत्वप्रसिद्धेरिति रामः शङ्कते—विलेति ॥ १९ ॥ जातिसुत झायते तस्या विशिष्टा नैव केनचिदिति प्राक्तनोत्त्रयेवायं प्रश्नो दत्तोत्तर इति वसिष्टः समाधत्ते—नेत्या-

श्रीराम उवाच। तस्याः पदयति ता लेखाः कः कथं जठरस्थिताः। कथं वा केन सा भग्ना कदा नामेति मे बद्॥ २१ वसिष्ठ उवाच। न मेलुं युज्यते सोया नच मेत्ता च विद्यते। तथैवापारपर्यन्तदेहिन्या सबैमाधृतम्॥ २१ लेखामयानि विद्यन्तं तत्रानन्तानि कोटरे। बृक्षपर्वतज्ञालानि नगराणि पुराणि च ॥ २३ तत्र लेखामयाः सन्ति देवदानवनामकाः। सूक्ष्मासूक्ष्मा निराकाराः साकारा इव पुत्रिकाः २४ आकाशनासी तत्रास्ति लेखा वेपुस्यशालिनी। उपलेखाश्च सन्त्यस्या मध्ये चन्द्रार्कनामिकाः २५ श्रीराम उदाच । केन रुपा वद ब्रह्मेलखास्तास्तव किविधाः। कथं या वद इष्ट्यन्तं निषिण्डोपलकोशगाः ॥ २६ घसिष्ठ उवाच । मया राघव ता दशस्तादश्यस्तत्र लेखिकाः। तवापीच्छा यदि भवेत्तत्तास्त्वमपि पश्यसि ॥ ६७ श्रीराम उवाच । ताहशी बजसारा सा शिला भङ्गं न गुज्यते। तथापि भवता रष्टा लेखास्तत्कोरागाः कथम २८ वसिष्ठ उवाच । पतस्या जंडरे राम लेखाई जंडरे स्थितः। तेन पदयामि तत्रस्थो लेखाजालं तद्यतम् ॥ २९ कोसी शकोऽन्यथा भङ्गे तां शिलामहमन्तरे।

तत्सर्वे दृष्टवांस्तस्या अहं तत्रान्तरस्थितः॥ ३० श्रीराम उवाच। कासी जिलाथ कथा त्वं वद मे कासि संस्थितः। किमेतद्वद्सि बृहि किमेतद्र्यवानसि ॥ 38 चसिष्ट उवाच । परमात्ममहासत्ता कथितैषा मया तव। अनयेव वचोभङ्ग्या न त्वेपा त्रिपुळा शिळा॥ ३२ परमात्ममहासत्ताशिलाया जठरे वयम्। तच्छिलामांसमेवेमे सापिर्यपरिवर्जिते॥ तच्छिलाङ्गं नभो विद्धि तच्छिलाङ्गं सवागतिः। तच्छिलाङ्गं कियाराज्या वासना कालकरपना ३४ भृमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीदं तसच्छिलाङ्गमदाहृतम्॥ 34 परमात्ममहासत्ता शिला मांसमिमे वयम्। सर्व एव ततोऽनन्येऽप्यन्ये त्विति च विदाहे चिन्मात्रेकात्मिका थेयं किलातिमहती शिला। पतस्या व्यतिरेकेण क तदस्ति किमुच्यताम् ॥ ३७ शुद्धं वेदनमेवंदं घटावटपटादिकम्। यथा स्वप्ने तथा भाति जलमूर्मितया यथा॥ इदं ब्रह्म घनं सर्व चिन्मात्रघनमाततम्। परमार्थधनं शान्तं सर्वमेकधनं विदुः॥ 30 एकं महाचिति शिलोदरमेव सर्वे सांविर्यवर्जितमपारमनादिमध्यम् । तेनात्मनेय कलिता कलनात्मनेयं सर्गो जगद्भवनमित्यपि दृइयनाम्नी ॥ ४०

इत्यार्वे श्रीवासिष्टमहोरानायणे वारु नोर्श्वार उर्श्वारोपास्यानं नाम षद्रपष्ट्यविकशततमः सर्गः ॥ १६६ ॥

दिना अन्यक्ष को विद्यंत यस्तजानि जानीयादिखर्यः ॥ २०॥ यदि तत्रान्यो न विद्यंत तर्हि ताः खं वायुरिआद्याकारास्त-दुक्तास्तज्जठरस्थिता लेखाः कः पश्यति । केन वासाम्तविचित्ररेन खाकारेण भमा टर्डेलिशिता । अन्तष्टद्वप्रवेशाययोगात्कर्य वा भन्ना । कदा नाम भन्नेति वदेति रामप्रश्नः स्पष्टः ॥२१॥५७:-नामपह्नवेनेवोत्तरमाह्—येत्यादिना। उप्रा अतिहढा। आयुर्ते व्या-प्तम् । 'नैनेव किंचनानावृतं वनेन किंचनासंवृतम्'इतिश्रुतिरिति भावः ॥ २२ ॥ २३ ॥ सूक्ष्मा असूक्ष्माश्च पुत्रिकाः प्रतिमाः ॥२४॥ २५ ॥ नित्रसं पिण्डो निषिण्डः अतिघनो य उपलक्षी-शस्तद्भताः ॥ २६ ॥ पश्यसि समाधिना दक्ष्यसि ॥२७॥२८॥ अहं वसिष्ठदेहोपि एतस्या जठरे स्थितो रेखिय तेन हेतुना २९ तस्या अन्तरवस्थितोऽहमन्तरे विद्यमानं तत्रार्वं लेखादुनदं हष्ट-वान् ॥ ३० ॥ इदानीं तत्वतस्तां शिलां वसिष्टं च रामी जिज्ञासः पृच्छति—कासाधिति । एनच्छिलाहर्ग कि वद्नि ॥ ३९ ॥ अनया शिलाख्यानवचीम क्या ॥ ३२ ॥ तन्छि-लाया मांसमिव मांसं खह्तभूता एवेति यावत् । इमे वयम् [।] पर्षष्ट्यधिकशततमः सर्गः ॥ १६६ ॥

॥ ३३ ॥ सर्व जगत्तच्छलात्तमंवति प्रपचमति—तच्छिला-ङ्गमिति । सदागतिर्वायुः । पञ्चभूतोपछक्षणमेतत् । एवं किया-राब्दश्रहणभपि वाय्वाकाशादिसवैभूतमीतिकधर्मापलक्षणम् । वासना मनोधर्मीपळक्षणम् ॥ ३४ ॥ उक्तमेव पुनः सप्ट-माह-भूमिरिति ॥ ३५ ॥ अन्ये इति तु भ्रान्त्या विदाहे ॥ ३६ ॥ एतस्या व्यतिरंकेण किचिदस्ति चेतःकास्ति तच किमस्ति ततुभयमुच्यताम् ॥ ३७ ॥ ननु भूतलघटावटपटा-दिकमेव तथितिरिक्तं प्रसिद्धं नेलाह- गुद्धमिति । नैतिक-मपि तद्यतिरेकेणास्तीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सर्वे जगदेकं त्रहाशिलोदरमेव । तच सामिर्यण च्छिद्रभावेन वर्जितमपार-मनन्तं तथा अनादिमध्यं च । तेन तथाविधेन ब्रह्मात्मना आत्मना स्वेनेय सर्गी जगद्भवनमित्यपि पर्यायनामभिः प्र**सिद्धा** हर्यनाही कंटना कंटिता स्वीकृतेत्यर्थः ॥ ४० ॥ इति श्रीवाः सिष्टमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे

सप्तपष्ट्यधिकदाततमः सगः १६७

वसिष्ठ उवाच।

आत्मस्यातिरसःख्यातिः ख्यातिरख्यातिरस्यथा। शब्दार्थरप्रयस्तज्ञं प्रत्येताः शश्यक्रवत् ॥ कदाचनापि नामाङ्ग संभवन्ति न काश्चन। शान्तमव्यपदेश्यातमा श्र आस्तेऽस्तङ्गतेङ्गनः॥ पता उद्यन्ति चिन्मात्रादात्मख्यात्यादिका हशः। तच शुद्धतरं व्योम तन्मय्येव च दृश्यते ॥ अयमात्मा त्वियं ख्यातिरित्यन्तःकलनाभ्रमः। न संमवत्यतश्चेनं शब्दं त्यकत्वा भवार्थभाक् ॥ गच्छंस्तिष्ठश्रदद्यि सर्वे शान्तमतो जगत्। आकारामीनमेवान्छमच्छिन्नं वा प्रवृत्तिमत्॥ नानामहाशब्दमपि शिलामीनमवस्थितम्। अनारतं गच्छदपि व्योमवच्छैलवत्स्थितम्॥ नानाविधारमभमपि महाश्च्यमनिद्धतम्। पञ्चभूतात्मकमपि खमिवालब्धपञ्चकम् ॥ पदार्थसंकुलमपि शृत्यं संवित्तिमात्रकम्। स्वप्ने महापुरमिच इष्टमण्यच्छचिनमयम्॥ सारम्भमप्यनारम्भं संकल्पनगरं यथा। आकाशमात्रं भ्रान्यात्म स्वप्तस्त्रीसंगमोपमम्॥ ९ अनुभूतमपि व्यर्धे प्रतिविम्वाङ्गनासमम्। नानानुभवनिर्माणं वस्तु शुन्यं तु वस्तृतः॥ १० श्रीराम उवाच।

जात्रत्स्वप्रात्मकमिवं मन्ये स्मृत्येव दृश्यते ।

इह तउज़हशोदस्य वादिख्यानिचनुष्ट्यम् । अवस्थात्रयनिर्मुक्तमात्मतस्वं निरूप्यते ॥ १ ॥

भन्यथास्यातिरिति व्यवहितपूर्वपदेन संवन्धः ॥ १ ॥ जग-रख्यातिसत्वे हि सा किमात्मस्यातिरतासत्स्यातिरिलादिवि-कल्पानामनसरः स्यात् सैन नास्ति चेत्कस्याधातुर्विध्यमित्यादा-येनाह-कदाचनेति । अस्तंगतेङ्गनः स्यात्यादिकस्पनामूळिच-त्तचेष्टश्र्न्यः ॥ २ ॥ दशो श्रान्तिदृष्टयः । तच चिन्माश्रं पर-मार्थतः शुद्धतरं सर्वेकल्पनाशून्यं न्योम । सर्वापि कल्पना तन्मय्येव दृश्यते मया । 'तद्यदिदंमथोदोमयः सर्वमयः' इति श्रुतेरिखर्थः ॥ ३ ॥ शब्दं त्यक्लेति । अतएवास्माभिः सार्थ-केनात्मशब्देन ख्यातिशब्देन चोज्झितामित्युक्तमिति भावः। अर्थभाक् परमार्थभाक् ॥ ४ ॥ गच्छंस्तिष्ठतिति च्छान्दसी ढि**ङ्गव्यखयः ।अतोऽसादर्थदर्शनाद्गच्छ**त् तिष्ठत् अदद्भक्षयद्धि जगदप्रवृत्तिमत् सर्वप्रवृत्तिशून्यं भातीत्यर्थः ॥ ५॥ इद्मेव विशदयति—नानेत्यादिना ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ आकाशमात्र-मतिश्रन्यम् ॥ ९ ॥ ९० ॥ यद्यविद्यमानमेव जात्रत्खप्तात्मकं जगद्वासनामात्राहुरयते तर्हि स्मृलीव द्याते इति मन्ये । इह

सद्गवाद्यार्थकृता स्मृतिरेवेड् कारणम्॥ ११ वसिष्ठ उवाच।

यत्तिकाचकच्येन काकतालीयबद्धपुः। व्योभात्मा भाति भावानां सत्तामात्रमभित्तिमत१२ तदेतद्विनाशात्म सर्वेत्र परमात्मनि । सर्वदा विद्यते शान्ते पयसीव तरङ्गकाः॥ १३ निर्निमित्तं स्वरूपातम तदेतत्परमातमनि। सर्वात्मन्यपि निर्वाणे व्योमात्मनि निरात्मनि ॥ १४ यदा यदावभात्यन्तर्येन तेन यथा तथा। सर्वदा न कदाचिद्वा यत्र तत्र न किंचन॥ १५ तस्यव ब्रह्मभानस्य तेनैवं ब्रह्मणात्मना । खळखेव खभावस खखभावमनुज्यता॥ १६ ददं जायदयं स्वमः सुपुनं तुर्यमित्यपि। कृतं नाम स्वयं चित्वाद्वह्य वात्मेति चात्मनि १७ वस्तुतस्वित्ति न स्वप्नो न जाव्रन्न सुवृप्तता। न तर्यं न ततोऽतीतं सर्वं शान्तं परं नभः॥ १८ अथवा सर्वमेचेदं जाग्रहपं सदैव च। सर्वदैव च वा स्त्रप्तः सुपुप्तं सर्वदैव च॥ १९ सर्वदेव च वा तुर्य तदन्तः सर्वदेव वा। तदिदं वा न यद्विश्वो वयमाशान्तरूपिणः॥ 20 इदं फेनो न किंचिता बुद्धदो वा न कश्चन। शुन्यताम्भसि चिद्ध्योम महार्णवमहोदरे ॥ 38

जगत्प्रतिभाने स्पृतिरेव कार्णं न श्रान्तिः । यतः सा अधि-ष्टानदोषसादर्यसंप्रयोगादिनिमित्तग्रन्या सद्भूषबाह्या अविध-माना ये अश्रीस्तरकृता तन्मात्रगोचरेति रामप्रक्षार्थः ॥ ११ ॥ अविद्यानिक्रविदोषजलाः स्वत्रकाशचिति संप्रयोगानुपयोगाच तद्धिष्ठाना आन्तिरेवेयं न स्यृतिः । पूर्वपूर्वानुभवेष्यपि साप्र-तिकतुल्यतया स्षृतिलापस्या तस्यूकानुभवाप्रसिद्धिप्रसन्नादि-व्याशयेन वारोष्टः समाधनी-शत्तिव्यादिना । तत्राधिष्टानस-द्धावं दर्शयति-यत्तदिति । यत्तवीमात्म सत्तामात्रं काचक-च्येनाभाति तदेवेदं जगविखर्यः ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ आविद्यके नियतदोषाद्यपेदा नास्ति । अनियतदोषास्तु संभ-वन्तेवेत्याशयेन येन तेनेत्याद्यक्तिः ॥ १५॥ तर्हि कस्येथं भ्रान्तिः केन जगदादिनामानि कृतानि तत्राह—तस्येवेति द्वास्याम् ॥ १६ ॥ १७ ॥ ततः अतीतमतिरिक्तम् ॥ १८ ॥ चितः कदापि स्वापाभावात्सर्वदैव जाप्रद्रूपम् । भ्रान्तिमात्रला-रसर्वदेव स्त्रप्तो वा । अधियावरणमात्रलात्सर्वदेव सुपुप्तम् ॥ १५ ॥ खेनैय सदैव वावस्थात्रयातिकमणात्सदैव तुर्थमिखेव वा वक्तं शक्यमिखर्थः । त्रयाप्रसिद्धेस्तस्य तुर्थस्यान्तः असलं वा निर्विकल्पे तदिदं वंत्यादिविकल्पं च न विदाः ॥२०॥२१॥

यथा संवेदाते यद्यस्था तद्युभूयते। सद्वासद्वा भवत्स्वप्ने व्योम्नीव सदस्य तत्॥ २२ संवित्कचनमेवेदं यथा भानं विभासते। ब्योम ब्योमनि चिद्रुपं चिद्रुपे विततात्मनि ॥ संविध चित्रभोमजा सैवंहपैवं सर्वदा। नास्तमेति नचोदेति तस्याः स्वाङ्गमिदं जगत्॥ २४ महाप्रलयसर्गाद्या महाप्रलयरात्रयः। तस्या पद्मावयवतां याताः केशनखादिवत् ॥ २५ तस्या भानमभानं तद्भास्वरं जिह्यमेव वा । नान्यत्स्वभाववत्स्पन्द इव वायोर्महाचितेः ॥ तसारिक नाम जाश्रत्यात्कः स्वप्तः का सुपुप्तता । कि तुर्येका स्मृतिः केच्छा तुच्छा पताः कुष्टप्यः २७ अन्तःसंवेदनं भाति स्यं बाह्यार्थतया यतः। क द्वैतं क च वार्थश्रीः स्मृतिरेचमतः कुतः॥ 26 तिद्दं भाति निर्भित्ति तत्स्यभानं यदात्मना। भानोर्नभिस भारूपमेव भृतविवर्जितम्॥ રવ सद्रपो यदि बाह्योऽथीं विद्यते तत्त्वुत्थिता । स्मृतिः कारणतामेतु नामाद्य जगतः स्थितेः॥ ३० किंतु नास्त्येष बाह्योऽथीं भूतानामत्यसंभवात् । पञ्चानामादिसर्गादी कारणानामभावतः॥ शश्राक्षं यथा नास्ति यथा नास्ति खपादपः। यथा बन्ध्यासुतो नास्ति यथा नास्त्यसितः दादी ३२ तथा सप्रतिभातोऽर्थो जगदायहमादिकः। अप्रेक्षितोऽस्ति नास्त्येव प्रेक्षितः सन्न कथन ॥ ३३ यथास्तीदं महाकारं न किंचिद्र्पमेव घा।

करपनावेदनदशा तु येन यथा यदा संत्रेद्यते तस्य तदा तथेखेव संतोष्टव्यमित्याह-यथेति ॥२२॥२३॥ यतः संविदेव जगदतो नास्तमेति नोदेति च ॥ २४ ॥ महाप्रलयसर्गाद्याः कालविभा-गासात्र महाप्रस्यस्था। रात्रयः सर्गस्थणदिनानि चेत्यप-**रुक्षणीयम् ॥२५॥ भारतरं चिद्र्**पं जिद्धं मायारूपं वा ॥२६॥ उपसंहरति-तस्मादिति ॥ २० ॥ एवंसति स्मृतिश्र कुतः ॥ २८ ॥ निर्भित्त निर्भेदं यदारमना भाति तरखभानं खारम-कमेव भानं न खभिष्रम् । यथा भानोर्नभित निराध्रये भारू-पमेब भानं न भास्यसापेक्षं तद्वदित्यर्थः ॥ २९ ॥ तद्वत्यिता तदन्भवहेतुका एत नाम । आद्यायाः सर्गादिकालिक्या जगतः स्थितेः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जगदादौ सर्गादिकाले अज्ञा-न्प्रति भातोऽहमादिकोऽर्थस्तस्यतोऽप्रेक्षितश्चेदस्ति प्रेक्षितस्त नास्ति ॥ ३३ ॥ तत्त्वश्रविषयं न किंचिद्रूपं मूर्तामूर्तेरूपरहितं चिन्मात्रैकथनं लखण्डितमस्येवेखर्थः ॥ ३४ ॥ नित्योदितापि व्यवहारे उपचारेण कल्पितास्तमयोदया ॥ ३५॥ व्योक्ये-बाह्रो मुधा पृथ्वादितया यदा यदा वेलि तदा तदा पृथ्वा-दिकल्पनां धते ॥ ३६ ॥ महाचितिः स्वभानमेव पृथ्व्यादि-व्यवदेशेन प्रथ्यादिनामा पश्चायपदिशति व्यवहरति ॥ ३७॥

तस्वश्रविपयं राम तथास्तीदमखण्डितम्॥ ३४ संविद्धननभोमजा यथोदेति यदा यदा। नित्योदितोपचारेण कविपतास्तमयोदया ॥ 34 मुधा व्योद्धयेष पृथ्व्यादितया वेस्ति तदातदा । स्वरीव तस्य भानस्य घत्ते पृथ्वादिकल्पनाम् स्वमेव भानमाकाशमात्रमेव महाचितिः। पृथ्यादिव्यपदेशेन पश्चाद्यपदिशत्यजा ॥ 30 आकारा एव पृथ्वीयमिति धत्ते स्वसंविदम्। मनोराज्यपुरं बाल इच चिन्मात्रमव्ययम्॥ 36 किं भानं किमभानं स्यात्तस्येति न विकल्पते। स्पन्दास्पन्दस्वभावं तिवृद्धि बातमिवास्वरे ॥ ३९ यथा भाति चिदाकाशं तथेदमयभासते। व्योम व्योइयेव नीरूपं नेदं पृथ्वादि सत्कचित् ४० यथा भाति चिदाकाशरूपत्वाद्भातमप्यलम्। न सन्नासदिति किंचित्तन्न किंचित्र किंचन ॥ इदमित्थमनित्थं च सद्वाऽसद्वा यथास्थितम्। लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राक्षो जानाति नेतरः ॥ ધર स पव हृद्याकारी कचन्त्या रूर्यसंविदा। षाह्यं ब्रह्माण्डमित्थं च सद्घाऽसद्वा यथास्थितम् ४३ किमत्र बाह्यं कियान्तः किं रहयं कास्य रहयता। शिवं शान्तमशान्तं च सर्वमोमिति शाम्यताम् ४४ नो घाच्यघाचकरशा रहितो विचारः संपद्यते स च विकल्पमयेन सिद्धै। सिक्रिश्च संभवति तेन विना न काचि-

अन्ययं चिन्मात्रमाकाशकल्पे स्वात्मन्येव पृथ्वीयमिति स्वसंविदं धते ॥३८॥ विस्मात्रमेव चेतस्य जगदाकारं भानं कि अभानं च कि स्यादिति तु तम्र विकल्प्यते। न विकल्पनीयम्। यतस्तरप्राण-शक्तया स्पन्दस्वभावं चिच्छक्तया अस्पन्दस्वभावमिति विद्धि ३९ यथायथा बासनोद्भवेन भाति एफुरति तथातथा इदं जगदिखय-भासते ॥ ४० ॥ तद्यथा भाति तथा तद्भात् नाम । भातमपि तिचदाकाशरूपखादलं न सत् नाप्यसदिति । **तरप्रपद्यस्पं** किंचिदपि न किंतु किंचनानिर्वचनीयमेवेखर्यः ॥ ४१ ॥४२॥ यतः स प्राज्ञ एव सर्वेषां सृदयाकाशे आत्मतया आसी अत-स्तद्रुपयेव कचन्ला दश्यसंविदा इदमान्तरं शरीरमिदं बाह्यं ब्रह्माण्डमित्यादिमेदकल्पनया नाम कृतमित्यर्थः ॥ ४३ ॥ सर्व ओमिति प्रणवमात्राऽमेर्कस्पनया प्रविलाप्य शास्यताम् । मामेति पाठे मामा इति निषेधवीप्सया निरस्पेत्यर्थः॥ ४४ ॥ यावद्विचारं लसदपि वाच्यवाचकविकल्पं यथालोकमभ्युपग-म्येव श्रवणादिविधयः प्रवर्तन्त इत्याशयेनाह—नो इति। वाच्यवासकदशा रहितः शास्त्रार्थविचारो नो संपदाते । स**य** विचारो विकल्पमयेन 'विषयो विशयधेव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्। प्रयोजनं च पद्यानं शास्त्रेऽधिकरणं विद्यः ॥' इति प्रविद्धेन

हीपं विना निशि यथा नयनोपलम्भः ४५

आकादप्रदिष शून्यत्वमन्यदन्यदिप स्थितम्॥ ₹ देशाहेशान्तरप्राप्ती मध्ये यत्संविदो वपुः। तदृश्यमिति भातीदं दश्यमन्यश्र विद्यते॥ 3 महाप्रखयसंपत्ताबादिसर्गः पुनः किल । परसात्कारणाभावे कुतो दृश्यस्य संभवः॥ ષ્ઠ तदाणुमात्रमपि हि रहयबीजं न विद्यते। किल यसादिदं चक्रं पुनर्मूर्ते प्रवर्तते ॥ ų उत्पन्नमेव नैवातो मूर्त दृश्यमिदं जगन्। षरध्यापुत्र इवात्यन्तमतोऽस्त्येच न हदयधीः ॥ ६ यबेदं किंचिदाभाति रच्यमित्यभितः स्थितम्। तिबन्मात्रं समेवाच्छं परमेव पदं विदुः॥ G यथा सुषुप्तात्स्यप्रत्वं गच्छद्यात्यनद्यस्थितिम् । चिन्मात्रमजहत्स्वच्छं निजं रूपमनामयम् ॥ ረ सर्गस्यादौ तथैवेदमात्मैव स्वात्मनात्मनि। व्योगात्मैय चिदाभासं दृदयमित्यवभासते॥ यथा पुरतया भाति मनः संकल्पमन्थरम् । तथा दृश्यमिवाभाति सर्गादी चिन्नभः परम् यथात्मन्यनिलः स्पन्दश्चकावर्तवदीहते। सर्गादौ चिन्नभः स्थित्वा दृष्यमित्येव तिष्ठति । ११ अतो ज्ञातमनाभातमेघ एइयं जगत्र्यम् । ब्रह्मेत्रेदं परं भाति स्वात्मनीत्थमबस्थितम्॥ नास्त्येव मूर्ते पृथ्वादि किंचनापि कदाचन।

वियोम्रोऽन्यमः । यथा श्रत्यलमाकाशादन्यम तद्वत् ॥ २ ॥ तथाच निर्विषयमेव चैतन्यं यदेकविषयादपरविषयप्राप्तावन्त-राले प्रसिद्धं तदेव दश्यमिति भातीत्यर्थः ॥ ३ ॥ 'सदेव सोम्ये-दमम आसीत्'। 'यदा तमस्त्रच दिवा न रात्रिने सन्न चासन् बिव एव केवलः' इत्यादिश्रुतिषु सन्मात्रपरिशेषलक्षणमहाप्रल-यसंपत्ती प्राक्सत्यां तदुत्तरं पुनरादिसर्गः किल भवतीति श्रुतम् । तत्र सदेवेखवत्रारणादविकारात्परस्मादन्यस्य कारणस्याभावे कृतोऽस्य दश्यस्य संभवः ॥ ४ ॥ तत्र श्रुतिविरोधात्परमाण्वा-दिकारणान्तरकल्पनाया अनवकाश इत्याह—तदेति । प्रवर्तते प्रवर्तेत ॥ ५ ॥ कि ततस्तत्राह्—उत्पन्नमेवेति । अनुत्पत्ति-प्रतिपादने एव स्रष्टिश्रुतीनां तात्पर्यमिखर्थः ॥ ६ ॥ प्रसक्षं द्द्यमानस्य का गतिस्तत्राइ-यत्रेदमिति । विदुः श्रुतितात्प-र्वेविद इत्यर्थः ॥ ७ ॥ चिन्मात्रस्य दृश्याकारेण भानं सुषुप्ता-स्लप्रगमने प्रसिद्धमित्याह—यथेति ॥ ८ ॥ सुषुप्तात्स्वप्नग-मनवरप्रलयात्सर्गगमनमपि तथा बोध्यमित्याह—सर्गस्येति ॥९॥१०॥ यथा अनिलः स्पन्दः सन्नात्मनि खस्मिन्नेव चन्नाव-र्तवहात्याववीहते तथा चिन्नभोऽप्यज्ञातमात्मन्येव दर्यमिरयेव तिष्ठति ॥ ११ ॥ अतएव शातं चेदूर्यं जगन्नयमनाभातमेव परं ब्रह्मैव भाति॥१२॥ अङ्गहशा ज्ञहशा वा मूर्तममूर्ते वा अस्तु ब्रह्मीव तथा विराजत इति तु निष्कर्ष इत्यर्थः॥१३॥ प्रबोधो जागरणं त-रकाले। प्रबोधे आत्मप्रबोधे॥१४॥धीमन्तश्चिन्तयन्तोपि अप्रबो-योग॰ १८५

| अस्तु मूर्तममूर्त वा ब्रह्मेवेदं विराजते ॥ | १३ |
|--|-----|
| प्रबोधकाले स्वप्नाद्विर्यथा ब्योमेव निवेषुः। | |
| तथेदं शान्तचिन्मात्रं खं प्रबोधे जगन्नयम् ॥ | १४ |
| प्रवुद्धानां परं ब्रह्म निर्धिभागमिदं जगत्। | |
| धीमन्तोऽपि न तहियो यदिदंत्वप्रवोधनम् ॥ | 814 |
| देशाहेशान्तरप्राप्ती यन्मध्ये संविदो वपुः। | |
| स्वस्वभावो हि भूतानां तत्पदं परमात्मकम्॥ | १६ |
| देशाहेशान्तरप्राप्ती यनमध्ये संविदी वपुः। | |
| पतत्तत्यरमाकाशमत्र सर्वे प्रतिष्ठितम् ॥ | ę |
| यादगेतत्पदं तादगिदं सदसदात्मकम्। | |
| येनार्थपञ्चकादन्यत्किचनापि न विधते॥ | 24 |
| रूपालोकमनस्कारा एतदेव पदं विदुः। | |
| पेते ते द्रवतावर्ताः पदस्यास्य महाम्भसः॥ | १९ |
| देशाहेशान्तरप्राप्ती यनमध्ये संविदो वपुः। | |
| पतस्याव्यतिरेकेण जगत्ता नास्ति काचन ॥ | સ્વ |
| रागद्वेषाद्यो भावा भावाभावदशस्तथा। | |
| पतद्र्पममुञ्जन्त पतस्यावयवाः स्थिताः॥ | २१ |
| स्यक्तवा पूर्वापरे कोट्यो मध्ये यत्संविदो वपुः | Į |
| स स्वभावः परो न्नेयो जगतपयसि संनितः॥ | २२ |
| देशादेशान्तरप्राप्तौ विद्धि मध्यमसंविदः। | |
| जगदित्यपरं नाम स्वरूपादच्युतात्मनः॥ | २३ |
| आदिसर्गात्त्रभृत्येव दृश्यमुत्पन्नमेव नो । | |
| | |

धनं कीदशमिति न विद्याः ॥ ५५ ॥ सर्वेभूतानां निर्विषयन्विन्मान त्रमेव खखभाव इलाह—देशादिति ॥ १६ ॥ अत्रेति । सर्वाधिष्ठानमपि निर्विषयचिदेवेत्यर्थः ॥१७॥ अधिष्ठानानुरूपो-Sयमध्यास इलाह-याद्दगिति । केनांदीन सादद्यं तदाह-येनेति । येन हेतुना अर्थपञ्चकात्पञ्चभूतेभ्योऽन्यिकिचित्र वि-दते। तथाच खातिरिक्तखकार्यश्चन्यलमेत्रास्य ब्रह्मसाटस्यमि-खर्षः ॥ १८ ॥ बाह्येन्द्रियजन्यविषयामासा रूपालोका आभय-न्तरमनोधीनास्तु मनस्कारा एते सर्वेष्यंतत्पदमेव॥१९॥ तथाच निर्विषयचिन्मात्रव्यतिरेकेण जगत्ता नास्तीति प्रसिद्धमित्यह देशादिति।जगत्ता जगद्भावः॥२०॥एतद्भूपं सद्भूपं भानरूपं च२१ शाखानन्द्रदर्शने पूर्वा कोटिः शाखा अपराकोटिश्रनदस्तै। खक्ला मध्ये यत्संविदो निर्विषयं वषुः प्रसिद्धं स तस्याः स्वभावः स एक जगन्नक्षणमहमरीचिकापयस्यधिष्ठानसंज्ञित इत्यर्थः ॥२२॥ एतदेवामित्रेख मया पुनःपुनर्निर्विषयविस्तृतापरोक्षचैतन्यस्य सक्छजनसाधारणप्रसिद्धिप्रदर्शको देशाहेशान्तरमिति क्लोक उद्भव्यत इलाशयेनाइ-देशादिति । कूटस्थलादेव स्वरूपा-दप्रच्यतात्मनः । जाप्रदेशात्खप्रदेशप्राप्ती मध्ये सुयुप्तिदशायां यस्तिवदो वपुः पूर्वसर्गदेशात्पुनः सर्गप्राप्तौ मध्ये प्रलये यत्सं-विदो बपुः इहलोकदेशात्परलोकदेशप्राप्ती मध्ये मूर्च्छात्रस्थायां यहसंबिदो वपुस्तदेव तथैव सर्वदा आस्ते तस्येव जगदित्यपरं नामाज्ञैः कल्पितमित्यर्थः ॥ २३ ॥ तथा सति यस्प्रवितं

यन्नाम तदिहासीति मायाशम्बरडम्बरः॥ રક कष्टं नास्त्येव यहुद्यं तद्यस्तीति संस्थितम्। यद्यस्ति परं ब्रह्म कष्टं नास्तीति तत्स्थितम् ॥ २५ अब्रह्मण्यं क गच्छामि विपरीतमतो जगत्। असहदयं सदित्युकं ब्रह्मैवं नावगम्यते ॥ २६ न चोत्पन्नं न चामाति दृदयं विचन कुत्रचित्। यदिदं भाति तहहा व्योमव कचिति स्वयम् ॥ २७ यथा मणिः त्रकचति स्वभासाऽव्यतिरिक्तया । आत्मनोऽनन्यया सप्त्या चिद्योम कचितं तथा २८ तस्मिन्नेच पदे ज्ञान्ते तपन्यंप दिवाकरः। तस्यवावयवश्चेव न नामान्योऽस्ति भास्करः २९ स्थितोऽपि तत्र न तपत्यकीं न च निशाकरः। प्रकाशयति देयोऽसावर्कं नार्कस्तमीश्वरम् ॥ तस्य भाषा विभातीदं तदहो इद्यमण्डलम्। सर्वचन्द्राकेवहीनां पदाश्रानां स दीपकः॥ 3? स साकारो निराकार इति शब्दार्थकल्पना। खपुष्पवदसद्रपा न संभवति तद्विदाम्॥ 32 साङ्गभूनो यथकोऽणुर्भाति जीवार्कतेजसि। न भान्ति भान्ति वा तत्र तथा सुयोदयोऽणवः ३३ चिन्मात्राकाशरत्नस्य सृष्ट्योऽकादिसंयुताः। या भासम्ताः कथं तस्माद्यतिरिक्ताः स्युरुच्यतां३४ चिन्मात्रेणापि रहितं शुन्यत्येनापि वर्जितम् । पदं सर्वात्मरिकं तत्सर्वार्धेश्च समन्वितम्॥ 34

तदाह--आदिसर्गदिति । जगनमाथालक्षणस्य शम्बरस्थैन्द्र-जालिकस्याडम्बरमात्रामाति फलितामिति भावः ॥ २४ ॥ तथाच मुढानामगाग्यवशादेव मणिर्वास्ति कालोऽस्तीति भ्रान्तिब-द्वैपरीत्यश्रमः संपन्नोऽयमित्याह—कप्रमिति । खेवे कष्टशब्दौ ॥ २५ ॥ अहं हा अवद्यार्थं ब्रह्मभावश्चमतो विपरीतं जगत् क्ष गच्छामि क लगेय । मृहेस्त असद्दर्य सदित्युक्तं तैरपि ब-ह्मवैवं नाम गम्यते न दश्यम् । असतो गन्तुमशक्यलादिल्यर्थः ॥ २६ ॥ २७ ॥ अत्रातिरिक्तियेत्यस्य दार्शन्तिके विवरणं खारमनोऽनन्ययेति ॥ २८ ॥ कथमिदं प्रत्येयमिति चेहिवा-करादिजगतः सद्वपेषेव सत्सामान्यैकदेशप्रायतया अनुभूयमा-नलादित्याह्—तस्मिश्रवेत्यादिना ॥ २९ ॥ यथा अर्कादय-स्तदघीनप्रकारा न तथा बहा अकोदाधीनप्रकाशमिलाह-स्थितोपीति । तपति प्रकाशयति । तथाच श्रुतिः 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा बिद्युती भान्ति कुतोऽयमप्तिः । तमेव भारतमञ्जू भाति सर्वे तस्य भासा सर्विमदं विभाति' **इति ॥ ३० ॥ ३**९ ॥ विषयासत्त्वादेवासद्भूषा **॥ ३२ ॥ जीव-**भूतस्य जगरपद्धतोऽस्यार्कस्य तेजसि जालान्तरे यथा एकोऽणु-र्भाति तथा अपरिच्छिन्नचिः प्रकाशे ब्रह्मणि एते अकीदयो भान्ति न भान्ति वेद्यनादरोक्तिः ॥ ३३ ॥ नहि रहालद्वा-

पृथ्वादीन्यपि सन्त्येच तत्र सन्ति न कानिचित्। जीवन्तोऽपि न विद्यन्ते जीवास्तत्र च केचन ॥ ३६ अत्यजन्तोद्वयस्थाल्यं तत्रैते परमाणवः। स्वरूपमत्यजद्वितमेक्यं वात्र न किंचन॥ ইও किंचिदत्र न किंचिष्ठें न किंचिश्व न किंचन। किंचिन्न किंचिदित्येषा कलनात्रातिदूरगा॥ ३८ पका निरन्तरानन्ता नित्यमत्याततात्मना। चिन्मात्रव्योमसत्तेव जगन्नाम्नात्मनि स्थिता 36 एकं चेत्यं त्यक्तवत्या अप्राप्तायाश्चितोऽपरम्। यद्र्पं जगतो रूपमस्य नानात्मनोऽपि तत् ॥ 80 नानेवेदमनानैव चिद्योमेवेदमाततम्। भृतपञ्चकरूपेण स्वप्ने चितिरिव स्थितम् ॥ ४१ सुषुप्ताद्विरातः स्वप्नं सुषुप्तस्यैव चिद्यथा। यथा स्थितैव स्वप्नत्वमेत्येवं सर्गतामिमाम्॥ કર यादक्सुपुप्तं स्वप्नस्तु ताद्दगेव तथैव च । जाप्रसुर्ये तथैवेदमतो व्योमसमं जगत्॥ કર जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च तुर्यमेवाखिलं स्थितम् । तत्त्वविद्गोत्रमृढस्तु यद्वै वेसि न वेषि तत् ॥ 88 जडानामजडानां यः सर्वार्धानामनारतम् । दुर्लक्ष्यपरिणामोऽन्तर्मनोबुद्ध्यादिवर्जितः ॥ ४५ सुराद्वायाश्चितो रूपं पदार्थास्तन्मयाश्च ते। ते वसन्ति न सद्र्पास्तदेव हि तथा स्थितम्॥ ४६ परिणामादिशब्दार्थस्यामत इहानघ। उपदेशार्थमुक्तीनां गन्धोऽप्येवं न विद्यते ॥ 80

सोऽतिरिक्ताः ॥ ३४ ॥ अचिदप्रसिद्धौ व्यावत्योभावाश्विन्मान त्रेणापि रहितम् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अवयवद्वयघटनप्रयुक्तं स्थी-स्यमत्यजन्त एव तत्र चित्प्रकाशे एते सूर्योदयः परमा निर-वयवा अणवः । खह्पं सत्ताम् ॥ ३७ ॥ किंचिदिति । व्यव-हारमात्रस्य निरासे विरोधाविरोधयोरपि तत्र निरासादिति भावः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ देशादेशान्तरमिति श्लोकस्य तात्पर्ये तत्र साधकरवेन वर्णयति-एकमिति॥४०॥ चितिजीवचैतन्यमिव । तथाच भगवतो बादरायणस्य सूत्रम् 'आत्मनि चैवं विचित्राश्व हि' इति ॥ ४१ ॥ तथाच सुषुप्तात्स्वप्त इव प्रलयात्सर्गात्मना चिदेव भातीत्याह-सुषुप्तादिति ॥ ४२ ॥ तदेव स्पष्टयति-याहगिति ॥ ४३ ॥ तत्विवदां गोत्रं ब्रह्मविद्यासंप्रदायसाद्विषये मृदस्त पामरो यद्वेति तदहं न वेद्यि ॥ ४४ ॥ जडानां जगता-मजडानां जीवानां चान्तःस्थित्वा योऽन्तर्यामितया दुर्लक्यमेव यथा स्थात्तथा जगत्परिणामयतीति दुर्रिक्यपरिणाम ईश्वरः स एव शोधिताया जीवचितेः पारमाधिकं रूपम् । जगरपदार्थाश्च तन्मया एवेति तदेव जगदाकारेण स्थितमिति निष्कर्ष इति द्वयोरर्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ननु यदि पृथिव्यादिपदार्थाश्चिद्रपा एव न चिद्रपारपृथक सन्ति तर्धन्तर्यामितया तरपरिणामयितृत्वं कथं तत्राह-परिणामादीति । उपदेशार्थं परिणामं लैकिकमन्नी-

પજ

आदिसर्गात्प्रभृत्येव महासत्तात्मनात्मनि । चिन्मात्रपरमाकाद्यां स्थितमेकं महात्मनः ॥ ४८ प्रपूर्णेकात्मनि प्रख्या सा सर्वव्यापिनी चितिः । स्थिता तयात्मन्येषान्तर्जगदित्यमिधाः छताः ४९ परिक्राते यथा स्वप्ने स्वाङ्गीकारात्सुखं सुखम् । अनङ्गीकारतो दुःखं सदुःखं भवति क्षणात् ॥ ५० गच्छतस्तिष्ठतश्चेव जाप्रतः स्थपतस्तथा । नित्यमेकं समाधानं स्थितं शान्तस्य तद्विदः ॥ ५१ मेदेऽप्यमेदनिष्ठस्य दुःखेऽपि हि सुखस्थितेः । सतोऽप्येवासतो क्रस्य किमन्यद्वशिष्यते ॥ ५२

न संत्यज्ञति नाद्ने किच्छि। यहरत्रिपः । हृदयेन बहिःकार्येऽकार्ये एवाचित्रग्रते ॥ ५३ यथा हिमस्य शीतत्वं बह्नेरीण्ण्यं तथेदशः । स्वभाषोऽस्य भन्नेक्षित्यं नत्वाहार्यो गुणोऽस्य सः५४ यस्य त्वेष स्वभावः स्थान्न नाम न स तत्त्ववित् । पतदेवाक्षताचिह्नं यदिच्छा प्रकृतेतरा ॥ ५५

आश्वस्तान्तः कर्णः

क्षीणविकल्पः स्वरूपसारमयः । परमशमामृततृषः-

स्तिष्ठति विद्वाश्विरावरणः॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा॰ मो॰ निर्वा॰ उ० द्वैतैक्यनिरामययोगोपदेशो नामैकसप्तस्यधकशततमः नर्गः ॥ १७१ ॥

द्विसप्तत्यधिकशततमः सगैः १७२

ર

विसष्ट उचाच ।

एवं पृथ्व्यादिरहितः खमेवाद्यः प्रजापितः ।

मनोमात्रमहं मन्ये संकल्पविदेपी यथा ॥

मन इत्यभिधानेन पश्चादास्था प्रकल्पिता ।

वार्यावर्तविवर्तेन प्रोत्थायावर्तता यथा ॥

सत्तामात्रात्मनस्तस्य कुतो बुद्यादयः किछ ।

कृख प्रवृत्तानामुक्तीनां न परमार्थतः परिणामपरतेत्यर्थः ॥४७॥ क्रत्र तर्हि तात्पर्य तदाइ-आदिसगीदिति । महात्मनस्तत्त्विवदः प्रपूर्णेकारमनि प्रख्या अनुभूतिरत्र प्रमाणमित्युत्तरान्वयि॥४८॥ अभिधाः अज्ञान्त्रकृताः॥४९॥ तथाच प्रवोधे यादश आत्मा परि-शिष्यते तदक्षीकाराध्यञ्जगत्कातुकमनुभूतं तत्सर्वे सुखं सुखमेव भवति । अप्रवोधे तदनक्षीकारे तु सदुःखं यद्वदनुभूयते जन्म-मरणजरामयादि तत्सर्वं दुःखमेव भवति खप्रप्रबोधाप्रबोधवदि-त्याह-परिकाते इति॥५०॥अतएव तद्विदो दुःखविश्रेपाभावा-क्रिलं समाधानसुखमेवेलाह-नाच्छत इति॥५१॥ बहिःसंसारे सतोऽप्यन्तर्भुकत्वात्तत्रासत एव । अन्यत्कि साध्यं परिहरणीयं बा अवधिष्यते ॥ ५२ ॥ बहिःकार्ये व्यवहरत्रपि हृदयेन कि-चित्र सन्त्यजति नादते च किलकार्ये ब्रह्मण्येवायतिष्ठते ॥५३॥ एवंस्थितिश्वास्य खभाव एव नतु यन्नेन आहार्यः संपाद्यो गुणः ॥ ५४ ॥ प्रकृतेतरा आत्मातिरिक्तविषयिणी ॥ ५५ ॥ यो नि-रावणो विद्वान् स आश्वस्तान्तःकरणः सदा समाहितचित्तः प्र-क्षीणशत्रुमित्रादिविकल्पः खात्मसुखसारप्रच्ररः परमेण शमा-मृतंन सदैव तृप्तस्तिष्ठति ॥ ५६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारा-मायणतात्पर्वप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकसप्तत्पधि-कशततमः सर्गः ॥ १७१ ॥

मनोमात्रं विधातात्र तत्संकस्पो जगन्नमः । न देहोऽस्य स्मृतिवेति स्मृतितत्त्रं च कीत्यंते ॥ १ ॥ नतु विधातृस्रष्टं जगच्छ्यते 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापू- अविद्यमाने पृथ्वादी खर्णानन्तस्य कि रजः॥ ३ न तस्य देहचित्तादि नेन्द्रियाणि न वासनाः। सद्योतत्सदा तस्य न किचिद्पि विद्यते॥ ४ प्राक्तनस्य प्रजेदास्य मुक्तत्वात्कथमेव च। भूयः संभवति प्राञ्ज न स्मृतिर्ग च संभवः॥ ५ न भवत्येव मुक्तानां स्मृतिर्देहोदयः पुनः।

वैमकल्पयत् । दिवं च शुथिबी चान्तरिक्षमधी सार' इति । तत्कथे चिन्मात्रकचनं स्वप्नचिति। बार्यनभित्याबद्या पार्यवेतुं तासं-करपानां तस्मयज्ञगतश्च जिन्मात्रलमेशेति वर्णवितुमुपकमते-एवमिति । एत्रमनादिजीवन्युक्तवादिव अवापतिर्विराष्ट्रपि पू-श्व्यादिरहितो निरावरणं खं चिदाकारामेव । तं च मनः सम-ष्टिहिरण्यगर्भमात्रमहं मन्ये । सन्धः अंक अविटपीवः चित्क-चनमात्रं प्रसिद्धमिति चिन्मात्रलावि अवश्वी आवः ॥ १ ॥ क्यं प्रसिद्धं तत्राह--मन इति । मननामारकस्पनात्प्राक्तिक न्मात्रमेव पक्षान्मननःकारकस्यनः नन्तरं भन इस्यमिधानेन तस्यास्था चित्तादात्म्याध्यासः प्रकाल्यता । चथा वारिण्येव आव-**र्तविवर्तीकारेण खयं प्रो**त्थाय आवर्तता तेन कलिपता तद्वता २॥ अतएव तस्य बुद्धादयोऽपि निह्यतिरेकेण च संतीत्याह्—सत्तेति ॥३॥ एवं देहादयोऽपि न संसाखाह—न तस्येति । व्यवहारा-भासनिर्वोद्दार्थमापाततः सद्धि परमार्थता न किविद्धि विद्यते ॥४॥ क्रुतो न विद्यत इति चेदादिसमादी कारणाभावात्। नच प्राक्तनः प्रजापतिरेवोत्तरस्य कारणम् । तस्य प्राक्तनद्विपरार्धाव-साने मुक्तलादिखाइ—प्राक्तनंखात । कैरणाभावाद्भयो देह-बुद्धादिप्रहणे कारणाभावात् । तसाद्भिनवस्य प्रजापतेर्जन गद्रचनानुकुला स्पृतिस्तस्य संभव उत्पत्तिश्च गतः संमवती-व्यर्थः ॥ ५ ॥ संसारे सवामावर्वानां परिपतिपराणां जी-वानामिव मुक्तानां विदेहमुक्तानां संसारस्यतिः पुनर्देही-दयक्ष न भवत्येव । देशान्तरे काळान्तरे वा पुनरावर्तलं

प्रतिभाति मूलव्याख्याधिसंवादाय.

१ कारणायानादित्यादिभ्यास्याभागः केनचितप्रक्षिप्तः इति

न देशकालावर्तन्वमावर्तानां सतामिव ॥ ξ यदिवापि भवेतिकचित्समृत्या देहादि तस्य तत्। तदपृथ्यादिभिः शान्तं संकल्पनगरं तनु ॥ S यथा संकल्पशैलस्य रहयमानमपि स्फ्रटम्। पृथ्वादिरहितं रूपं तद्विराद्वपुषस्तथा ॥ ૮ स्मृतिश्च संभवत्येव न कदाचन काचन। ९ एपा लेकिक बुद्धा या सा सद्भुद्धा न विद्यते श्रीराम उवाच । कथं न संभवत्येषां समृतिः समृतिमतां वर । स्मृतेश्रासंभवे कस्माहुणो गुणगणाकर॥ १० वसिष्ट उवाच । ष्ट्रये हि संभवत्येषा कार्यकारणतात्मनि । तद्भावाभावसंपन्ना नतु संभवति स्मृतिः॥ ११

यती नान्ति । 'इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते' 'न स पुनराव-र्तते' इलादिश्रुतेरिति भावः ॥ ६॥ यदि वापि तस्य प्रजापतेः पूर्वकल्पकृतो वासनाजन्यहिरण्यगर्भाहंभावगोचरसंस्कारवळा-त्तर्थेव स्पृत्या तदेदादि किचित्संभवेत् तत्केवलोपासना-रमक्रमनः कल्पना संस्कारजलात्के वलमानसम्पृथ्यादिभिहत्पन्नं त्य अतितुष्ठं संकल्पनगरप्रायं मिथ्याभूतमेव भवेत्तत्तु सत्य-मित्यस्मतिमद्भान्तिमद्भितिस्थर्थः ॥ ७॥ ननु पृथ्व्यादिघटितलेन हर्स्यमानस्य ब्रह्माण्डात्मकस्यास्य विराद्शरीरस्य कथं तद्रहि-त्तना तत्राह-यथीत ॥ ८ ॥ ननु प्रागुदाहृतश्रुतौ 'दिवं च पृथियी चान्तरिक्षमथी खः' इति पृथ्यादिषटितभेव तद्रुपं श्रुतं तच 'घाता यथापूर्वमकल्ययत्' इति पूर्वतनस्मृतिपूर्वकमेव निर्मितं गम्यते तत्राह्—स्मृतिश्चेति । अस्य प्रजापतेरादिसर्गे पूर्वानुसवाभावातस्यतिर्न संभवत्येव । या चेर्य श्रुतिबलाद्रम्यते एपा ठीकिकानां जगत्सत्यतादशिनामझानां बुद्धाः अनादिसि-द्भवर्ममार्गप्रवाहप्रवर्तनार्थे श्रुखा परबुद्धनुसारेणैव बोधनात् । तस्य तत्त्वविदः प्रजापतः बुद्धाः तु सा स्मृतिर्न विद्यते ॥ ९ ॥ नन्वस्य प्रजापतः पूर्वकल्पे उपासकतादशायां पृथ्व्याद्यनुभवो-इस्येत तद्भावे पृथ्यादिष्ठितविरादशरीरो**ऽहमिति कथम्पा**-सीत । तत्रथासी तद्वअदितत्कल्पादी पृथ्यादिस्मृतेसाद्धितिवि-राद्रशरीरमुपासनबळ्ळब्धविरचनसामर्थ्यस्तत्स्मृत्येव निर्मास्यति अस्मृत्येव निर्माणे 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' इति श्रुतिबोधितः पूर्वकालीयबद्धाण्डगुणः सर्वीऽस्मिन्ब्रह्माण्डे कथं सिद्धोदिति रामः शक्कते-कथमिति । हे गुणगणाकरेति वसिष्ठसंबोधनम् ॥ १० ॥ न वयं कल्पनाश्रान्तिसंस्कारजामर्थश्रन्यां स्मृति प्रसाचक्षमहे विद्यु स्यार्थानुभवजन्यसंस्कारजाम् । तस्यां हि सर्था पूर्वानुभववीचरसर्वार्थजातस्य खगोचरानुभवसंस्कार-स्मृतिद्वारा एतत्कःपीयार्थान्प्रखन्वयव्यति रेककल्पनात्कार्यकार-णभावसिद्धेः स्वकारकसत्तारुज्यसत्ताकस्यास्य जगतः सत्यले वद्माद्वैतानदान्तीपरोधः स्यादिति पूर्वकल्पीये पृथ्वादिदस्ये |

आब्रह्मस्तम्बर्णयंन्तं दृद्यं किसिन्न विचते ।
यत्र तत्र कथं कीदक् कुतः स्यात्संभवः स्मृतेः १२
भूत्वा भावे हि दृद्यस्य स्मरणं स्मृतिरुच्यते ।
दृद्यमेय न यत्रास्ति तत्रैताः कलनाः कुतः ॥ १३
अत्यन्ताभाव प्वास्य दृद्यस्य किल सर्वदा ।
सर्वे ब्रह्मति संस्थार्थास्तत्स्मृतेः कलनाः कुतः १४
स्मृतिर्न संभवत्येव तस्मादाद्या प्रजापतेः ।
आकारवस्त्रमेवास्य शुद्धज्ञानात्मनः कुतः ॥ १५
सर्वव्यं भाववदातः स्मृतिर्नास्त्येव लौकिकी ।
स्मृत्यर्थस्त्वन्यदीयोऽस्ति सत्यात्मा त्वमिमं श्रणु ॥
भूतस्यान्तः पदार्थस्य स्मरणं स्मृतिरुच्यते ।
पदार्थस्तु न चैवास्ति न भूतो न भविष्यति ॥ १७

परमार्थतः सति तद्भावाभावी तदन्वयव्यतिरेकी तद्भशा-रसंपना स्मृतिद्वारिका एषा ठीकिकन्यायप्रसिद्धा कार्यकार-णता संभवति सा द्वारभूता स्पृतिरेव तु न संभवति ॥ १९ ॥ कुतो न संभवति तत्राह-आबद्वाति । 'नेह नानास्ति किंचन' 'एकमेवाद्वितीयम' 'अथात आदेशो नेतिनेति' नान्यत्पर्यति नान्यच्छुणोति नान्यद्विजानाति स 'तदेतद्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः' 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' इत्यादिश्रुतिमिः सर्वेदश्यप्र-तिषेधात्त्रथेव विदुषामनुभवाच । तथाच 'सह खिद्धं चतुष्टयम्' इति स्पृतिदर्शितदिशा सहजस्तत्त्यविदुषो विराजसात्त्वज्ञान-बाधितः प्राक्तनः प्रपन्धो मिथ्यैव संपन्नो न तस्य यथार्थस्मृति-माधातुं तद्वारा सत्यसर्गे प्रति कारणीमवितुं च समर्थ इति भावः ॥ १२ ॥ भूला परमार्थत उत्पद्य भावे विद्यमानत्वे सित प्रमाणेस्तदनुभूय कालान्तरे सारणं हि स्पृतिः शास्त्रहैर-च्यते । नखसतो भ्रान्तिकल्पितस्य तत्त्वबोधवाधितस्य च स्मृतिरस्तील्यर्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ उक्तमेवाभित्रायं सूचय-न्समाधानमुपसंहरति-स्पृतिरिति ॥ १५ ॥ पूर्वजनमन्युपास-नात्मिका या खस्य जगच्छरीरखभावना तद्वशतस्त उपासना-फलसिद्धये जगच्छरीरोऽहमिति तेनावस्यं स्मर्तव्यम् । या द्व लोके विदिता सा में माता सा में दुहितेलादिस्मृतिरिवार्य-प्रमाजन्या सा तस्य नास्त्येव । अन्यदीयो ठौकिकः स्मृत्यर्थस्त मातुद्दित्रादिर्गृहेऽस्ति । उपासनाविषयस्तु मनोराज्यकस्पो नास्तीति वैषम्यमित्यर्थः । कथं नास्ति इममर्थे लं श्रेष्ठ ॥१६॥ भूतस्यातीतस्यापि पदार्थस्य संस्कारवशादन्तः सरणं स्मृतिरिति लोके उच्यते । प्रजापतेस्तु कल्पादौ वर्तमानोपि पदार्थौ नास्ति न भूतोऽस्ति नापि कश्चिद्भविष्यति यत्स्मृतिः स्यादिलार्थः। तथाचोक्तं सुरेश्वरवार्तिके 'तत्त्वमस्यादिवाक्योरथसम्यग्धीज-न्ममात्रतः । अविद्यासहकार्वेण नासीदस्ति भविष्यति' इति । 'तदेतद्रह्मापूर्वमनपरमन्तरमबाह्मम्' इति च श्रुतिः ॥ १७ ॥

एवं हि खल्विवं ब्रह्म प्रमेचाचलं यतः। अनादिमध्यपर्यन्तं कुतः स्मृत्यादयस्ततः॥ १८ सर्वात्मत्वात्पदार्थात्म चिद्योमकचनं तु यतु । व्यवहारेऽप्यलं शान्तं स्मृत्या तच्छित्तं मया १९ तदेतत्सरणं नाम स्वभावकचनं हि तेत्। तेनाभ्यस्तोऽथ बाह्यार्थः सारदयादवभासते यद्यत्संबेद्यते किंचित्तत्स्वभावं स्वभावयत्। तेनायभासते योऽर्थस्तस्य स्मृत्यभिधा कृता २१ अविद्यमानं भातीच यथा दृश्यं तथा स्थितिः। भातवाविद्यमानैत्रं सृगतुष्णा यथोद्यता ॥ **२२** सर्वात्मनि स्थिताः सत्ये याः कचन्ति सुसंविदः । ता प्रवाभ्यासहर्वार्थाः सादद्यात्समृतयः स्मृताः॥ काकतालीयवद्भान्ति सर्वात्मनि सुसंविदः। स्वाङ्गभूताः स्वतः स्वस्थास्ता एव स्मृतयः कृताः २४ थद्यत्भचति सेद्र्षं स्वाङ्गं सर्वात्मनः स्वतः। तदभ्यस्तार्थसारदयात्समृतिरित्युच्यते बुधैः॥ २५ हेती लब्धे ऽप्यलब्धे वा पयनस्पन्दबह्निदः। ता प्वाभ्यासरूढार्थाः साहद्यात्स्मृतयः कृताः २६ काकताङीयबद्धान्ति यास्ताः स्मृत्यभिधाः कृताः। यथा तवैतेऽवयवाः कचन्ति न कचन्ति च ॥

अचलं कूटस्थम् ॥ १८ ॥ यदि सर्वात्मलस्मृत्यारमापि ब्रह्म भवतीति सर्वात्मदशा उच्येत तर्ह्यस्तु नामेखाह-सर्वात्म-लादिति । एतदेवामिप्रेत्य मयापि 'यदि वापि भवेत्किचित्मु-त्या देहादि तस्य तत्' इत्युमिलाह--व्यवहारेऽपीति ॥ १९॥ अज्ञातब्रह्मस्वभावस्य परोक्षतयैव कचनं सेनोपासनात्मना पुनः पुनरभ्यस्तः सन् ब्रह्मात्मैवोपासनाफलीभूतबाह्यार्थ इवोपास-नाकल्पिताकारसाद्द्यादवभासते ॥ २० ॥ अज्ञानोपहितं ब्रह्म जीवेन यदारसंवेद्यते भ्रान्त्या स्मृतिपरंपरया वा तत्त्वभावमेवाव-लम्बय खं खभावयत्सत् तेनाकारेण कालान्तरेण यस्तत्तालिक्षि-त इवार्थोऽवभासते तस्य स्मृतिरिखभिषा खस्मिनेव तेन कृते-खर्थः ॥ २१ ॥ यथा भ्रान्तानुभवे अविद्यमानं दृश्यं भातीव तथा स्मृतावपि स्थितिर्वेष्या ॥ २२ ॥ श्रान्ताभ्यासेन सत्यत एव **कढार्था भ्रान्खनुभवेन समानविषयत्नलक्षणात्सादृश्यारस्मृतयः** स्मृताः॥२३॥काकतालीयवदाकस्मिकोद्वोधकवशेन याः संविदो भान्ति । खाङ्गभूताश्विद्वयवभूता इव विषयतः पारोक्ष्याद-खस्था अपि खत आपरोक्ष्यात्खस्था अविकृताः ॥ २४ ॥ अनुभवे यद्यत्कचित तेनाभ्यस्तार्थेन समानाकारतया साहर्यात् ॥ २५ ॥ हेती उद्बोधके लब्धे अलब्धेऽपि वा । यथा पवन-स्पन्दो व्यजनादिहेतौ लब्धेऽप्यलब्धेऽपि भवति तद्भत् । ता अनुभववृष्युपलक्षिता एव विदः कालान्तरे स्मृतयः कृताः ॥ २६ ॥ यदि संविदोऽवयवभूतास्तर्हि तद्वत्सदैव कृतो न क-

स्थिता एवात्मनि तथा सर्वाः सर्वात्मिका विदः। मिध्याद्मानमया यद्वदर्था घटपटादयः॥ तद्वत्समृतिपदार्थस्य कि भ्रमस्य विचार्यते। दृश्यस्यासंभवाज्यस्य स्मृतिर्नास्त्येव तत्त्वतः स तथैकघनत्वाच चिद्योमत्वाञ्जगत्स्थितेः। यथास्थितमिवं दृष्यमस्त्येवाष्ट्रस्य संप्रति॥ 30 न मोक्षोपायकथनं न च जानामि तत्स्थितिम । संदेहादिव जिक्रासुस्तावन्मोक्षकथोच्यते ॥ यावदृश्यं स्मृतिश्चेव संस्मृतिश्चास्य शाम्यति । अविद्यायास्तु मीर्ल्यस्य विमोहस्यात्यसंभवात् ३२ अन्नस्थो निश्चयोऽसाकं न कदाचन गोचरः। यश यद्विषये नास्ति तन्नवानुभवत्यसौ॥ 33 रजन्यनुभवो भानोर्भवत्यङ्ग कथं वद । भातं वस्तुस्वरूपात्म चिन्मात्रे किंचिदेव यत् । तदभ्यस्तार्थसाददयात्तत्संस्कार इति स्मृतम्। आत्मस्त्रभावभृतानामपि चिद्योगरूपिणाम् सर्वेषां परिकल्पानामाभासे उप्यनवस्थितेः। पयं न संभवत्येव जगर्तिकचित्कदाचन ॥ 38 दृष्टं मृगतृषेवाम्ब नतु तत्परमार्थतः। यदा त्वयं तदा स्ववे सगीदी चावभासते॥

चन्ति तत्राह-काकतालीयवदिति । उद्बोधकसमवधानस्य का-दाचित्कत्वेनेति भावः । अवयवा इस्तपादादयो यथा मन-सस्तत्त्रवणत्ये कचन्त्यन्यप्रवणत्वे न कचन्ति तद्वदित्यर्थः ॥२०॥ खप्रेन्द्रजालादौ यथा घटपटादयो मिथ्याज्ञानमयास्तादशञ्जमस्य स्मृतिपदार्थस्य किं मूलं विचार्यत इखन्वयः ॥ २८॥ अत एवाभान्तस्य इस्य प्रजापतेः स्पृतिनीस्त्येव ॥ २९ ॥ स त-स्ववित्तथैव यथापूर्व निर्विकार एवास्ते । जगत्स्थितेस्तद्वा निबोममात्रलादिखर्थः । अङ्गस्य तु तद्वैपरीलमिखाङ्च--यथास्थितमिति ॥ ३० ॥ तरकुतस्तन्नाइ--नेति । तस्य तस्व-विदः स्थितिम् । अतएव स दैवारसाधनचतुष्टयं प्राप्य संदेहाः द्याविज्ञासुरिव भवति तावन्मोक्षकथा तस्मै गुरुणोच्यते॥३१॥ यथा अज्ञास्तत्त्वज्ञस्थिति न जानन्ति तथा वयं तत्त्वज्ञा अपि अज्ञनिश्वयं न जानीम इत्याह—अविद्या इति ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इदानी स्पृतिहेतुसंस्कारं प्रमार्धे तत्स्वरूपमाह-भातमिति । अन्तःकरणोपहितचिन्मात्रे बाह्यवस्तुसह्पातम यस्किचिदेव भातं तचेत्पुनः पुनर्व्यवहारेणाभ्यस्तं ताहशार्थसाहर्याद्वासितं चितं तत्संस्कार इति स्मृतमित्यर्थः ॥३४॥ तत्र परिकल्प्यानां सर्वेषां वाद्यार्थानां तत्त्वज्ञानेनात्मस्वभावभूतानां वाधितानु-वृत्या दग्धपटन्यायेनाभासेऽपि वस्तुतोऽनवस्थितेस्तरसादश्यस्य चिते मार्जनाम संस्कारस्तरविदां संभवतीति शेषः ॥ ३५ ॥ तथाच यत्फलितं तदाइ--एवमिति ॥ ३६ ॥ तथाच प्रतिकातं

१ तदित्यत्र यदिति पाठ आवदयकः.

२ चिद्र्पमिति पाठः.

84

चिद्योमेय परं सगंपर्यायं स्वात्मनि स्थितम्।
चिद्योमेयेत्थमाभातं न च्युतं सत्स्वरूपतः॥ ३८
आत्मनात्मनि रूपं या सदूपमिय संस्थितम्।
सर्गादायेय कचिते मिथ्या कचदपि स्थितम् ३९
अतः कुतः कचिन्नाम हेयावेयादिभासनम्।
नेदमाकार्यात्किचिन्नापि स्युत्यत्मकं कचित् ४०
कारणाभावतो भाति स्वरूपं परमात्मनः।
आकारयत्त्रे यहुःस्रं भवेत्स्मृत्यां तदेव च॥ ४१
द्वयमेतदसत्तसाद्वन्थो नाम न विद्यते।
चिद्योम्नि भूतव्योमाभे शून्य एव यथास्थितम् ४२
स्थितं स्वरूपमजहद्भुवनार्काचलादिकम्।
यथा स्थितोमदिकालं जगत्स्वं रूपमत्यजत्॥ ४३
स्यमेवात्यजतो रूपं चिद्योम्न उदरे स्थितम्।

स्वानुभूत्येकमात्रातम प्रमातृस्वाप्तपत्तनम्॥ ४४
अपृथ्वादि कुतस्तत्र किल पृथ्वादयो वद ।
तज्ञाति केवलं शान्तं चिदाकाशं तथात्मनि ४५
सर्वादो स्वप्नकाले च पृथ्वादेः संभवः कुतः ।
उज्ञ्येय जगद्गपाद्रह्मसत्तात्मनात्मनि ॥ ४६
करोति पृथ्वाद्यभिधाः पश्चात्सत्यार्थदा इव ।
न स्मृत्यात्म न साकारं पृथ्वादीनामसंभवात् ।
न भ्रान्तिनं विवर्तादि जगद्गह्मात्म केवलम् ॥ ४७
प्रहादमाकचित चारुजगत्स्वरूपं
तश्चेकमेव कचनाकचनात्मनिष्ठम् ।
दश्याभमण्यमलमेव नभः प्रशान्तं

नित्योदितं प्रखयसर्गमयोदयातम्॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा॰ दे॰ मो॰ नि॰ उ॰ जगतो ब्रह्मत्वप्रतिपादनं नाम द्विसप्तत्वधिकशततमः सर्गः ॥ १७२ ॥

त्रिससत्यधिकदाततमः सर्गः १७३

श्रीराम उवाच ।
सर्वातुभवरूपस्य तथा सर्वात्मनोऽण्ययम् ।
अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य देहेऽपि किमहंग्रहः ॥ १
चितः पापाणकाष्ठत्वं स्वप्नादिषु कथं भवेत् ।
इदं पाषाणकाष्ठादि कथं नास्त्यस्ति वा कथम् ॥ २
वसिष्ठ उवाच ।
इतिरिणो यथा हस्ते हस्ततायां यथाग्रहः ।

सिद्धमित्याह—यदालिति । अयमर्थः तिद्ध इति शेषः ॥३०॥ ॥३८॥ आःमना आःमनि इःथमाभातमिति पूर्वत्रान्वयः । अथवा मिश्या कचिद्व स्थितं जगद्भपं चसद्भपं ब्रह्म भूला स्थितम् ॥३९॥ ४०॥ नतु स्मृत्यात्मकताप्यस्य किमर्थं प्रसास्यायते तत्राह—आकारवत्वे इति । स्मृतेनाि भाषी-पुत्रादमरणेन दुःखदर्शनािदिति भाषः ॥४९॥ यधास्थितं जीवन्मुक्तानां यावज्ञीवं व्यवहारक्षमं स्थितमित्युत्तरत्रान्वयः ॥४६॥ ४३॥ स्वप्नप्रचह्मान्तेऽप्यत्र सुसहश इत्याह—समेचेति ॥ ४४॥ साम्यमेवोपपादयति—अपृथ्वादीित ॥४४॥ साम्यमेवोपपादयति—अपृथ्वादीित ॥४५॥ ४६॥ ४०॥ इदं ब्रह्मेव चाह जगत्सक्ष्माकचिति तथा कचनाकचनयोः सर्गप्रस्थयोरात्मन्यविकृतस्वभावनिष्टं वदेकक्ष्ममेव हद्यामं भातमप्यमस्त्रं नभ एव निस्मनादिका-स्रतः प्रस्थयसर्गमयोदयात्मकमुदितमङ्गानामित्यधः ॥४८॥ इति श्रीवासिष्टमहारासायणतारपर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तराधे द्विसस्यधिकशततमः सर्गः ॥ १७२॥

यथा चितोऽपि देहादि जडभाविकयाग्रहः।

यथा सर्वाध्मकरवं च तथेह प्रतिपाचते ॥ १ ॥

यदि सप्रकाशनिषमत्कार एव जगत्ति वितः सर्वत्र तस्य-

सर्वात्मनस्तथा देहे देहतायां तथाप्रहः॥ १ पाद्पस्य यथा पत्रं पत्रतायां यथाप्रहः। सर्वात्मनस्तथा चृक्षे चृक्षतायां तथाप्रहः॥ ४ आकशस्य यथा शून्ये शून्यतायां यथाप्रहः। सर्वात्मनस्तथा द्वय्ये द्वय्यतायां तथाप्रहः॥ ५ स्वप्नोचितः स्वप्नपुरे रूपतायां यथाप्रहः। सर्वात्मनस्तथा स्वप्नजायदायां तथाप्रहः॥ ६

तया अहंभावप्रहो युक्तः । प्रह आप्रहोऽभिनिवेशः । देहे एवातिशयेनाईभावाप्रहोऽन्यत्र नेति नियमः कुत इत्येक प्रश्नः ॥ १ ॥ एवं चितः अचिद्रूपपाषाणकाष्ठादिभावाप्रद्ध कुतः । चिद्भावस्य हातुमशक्यलात्। अचिद्रूपस्य स्वीकर्तुमशक्यलाश्वेति द्वितीयः । एवं चित एव सार्वात्म्ये इदं पाषाणकाष्ठादि नास्तित्वं कथमापद्यते । नितोऽपद्ववासंभवात् । एवं सर्वात्मकचिद्विषद्ध-मचिद्र्पं पाषाणकाष्ठादास्ति वा कथम् । येन सार्वारम्यं स्यादिति द्वी प्रश्नी॥ २ ॥ सर्वशरीरस्याहंतया प्रथायां तुल्यायां हस्ते एव हस्तलं पादे एव पादलं नेतरत्रेति जातिकर्मसंस्थानादीनां यथा व्यवस्थाप्रदः अनादितत्तदाकारसंस्कारव्यवस्थ गैव नान्येन हेतुना तथा देहे देहतायामहन्तादै। चाप्रहो बोध्य इत्याशयेन दष्टान्त-प्रपश्चनेनाया प्रश्नौ समाधत्ते-शारीरण इलादिना। देइतावृक्ष-तादिशब्दास्तलदहंतापराः। अत्र सर्वत्र विषयाध्यासे विषयाध्या-सो ज्ञानाध्यासे ज्ञानाध्यासो दृष्टान्त इति द्वीद्वी यथातथाशब्दी प्रयुक्ताविति बोध्यम्॥३॥वृक्षादाकाशादावप्यमिमानिजीवसला-तत्तदृशाध्यासा उदाहृताः ॥ ४ ॥ द्रव्ये मणिमुक्ताखर्णादिधने । द्रव्यतायां प्रयक्नोपार्ञ्यतालक्षणभव्यतायाम् ॥५॥ अरूपविस्तो-पादानकलाद्रक्पत्वेन भविद्यमुचिते खप्नपुरे रूपतायां साका-

यथागेन्द्रे रपहुक्षत्रार्यादौ स तथात्रहः। तथा सर्वात्मनोऽगेन्द्रपुरतायां तथाग्रहः॥ शरीरस्य यथा केशनखादिषु यथाग्रहः। सर्वात्मनस्तथा काष्ट्रहपदादी तथाग्रहः॥ चित एव यथा स्वप्ने भवेत्काष्ट्रीपलादिता। चिदाकाशस्य सर्गादी तथैवाषयवादिता॥ चेतनाचेतनात्मैकं पुरुषस्य यथा वषुः। नखकेराजलाकाराधर्ममाकारभासुरम् ॥ 10 चेतनाचेतनात्मैकं तथा सर्वात्मनो वपुः। जङ्गमं स्थावरमयं किंतु नित्यमनाकृति॥ ११ यथास्थितं शाम्यतीदं सम्यग्ज्ञानवतो जगत् । स्वप्ने स्वप्नपरिशातुर्यथा रप्टार्थसंभ्रमः॥ १२ चिन्मात्राकाशमेत्रेदं न द्रप्रास्ति न दृश्यता । इति मौनमलं स्वप्नद्रष्ट्रयत्सा प्रवुद्धता ॥ १३ कल्पकोटिसहस्राणि सर्गा आयान्ति यान्ति च। त एवान्ये च चिद्धोम्नि जलावर्ता इवार्णवे ॥ १४ करोत्यन्धौ यथोर्म्यादौ नाना कचकचं यपुः। चित्करोति तथा संज्ञाः सर्गाद्याश्चेतने निजे 84 यथास्थितमिदं विश्वं ब्रह्मेवानामयं सदा । तस्वनं प्रत्यतस्वन्नजनतानिश्चयाद्यते ॥ १६ नार्हे तरङ्गः सलिलमहमित्येव युक्तितः। बुद्धं येन तरङ्गेण कुतस्तस्य तरङ्गता ॥ १७ ब्रह्मणोऽस्य तरङ्गत्वमियामानं यतस्ततः।

रतायां यथा आष्रहः स्वप्नभुजः स्वप्नजागरादी अवस्थात्रये॥६॥ अगेन्द्रे पुरे च विद्यमाने दृषदादी स तथा प्रसिद्ध आप्रहो यथेलार्थः । अद्वितायां पुरतायां च तदमिमानिन आप्रदः॥०॥ अन्यौ प्रश्नावि समाधते--शरीरखेलादिना । यथा चेतन-रवेनाभिमतस्यापि शरीरस्य केशनखादिषु यथा अचेतनला-महस्तथा चिद्रूपस्यापि सर्वातमनः काष्ट्रहषदादौ तथाप्रहः अचे-तनलाप्रदः । चिता चित्त्वस्य हातुमश्वयलमचित्त्वस्य स्वीक-र्तुमशक्यलं च मायागतावरणविक्षेपशक्तिभ्यामघटितस्यापि ध-टनात्परिहर्तव्यमिति भावः ॥८॥ चितस्तद्विरुद्धमचित्रविमव नि-रवयवायाः सावयवलमपि खप्तानुभवबलादेव भवतीति स्त्रीका-येमित्याह--चित एवेति । चितः सकाशादेव ॥९॥ किंच मा-याशकलस्य चेतनाचेतनोभयात्मकैकवस्तुलादप्युभयव्यवहारप्र-वर्तेकता न विरुद्धेत्याशयेनाह-चेतनेति। नच विरोधः ॥१०॥ ॥ ११ ॥ अतएव तत्त्वतस्तज्ज्ञानात्सर्वे विरुद्धधर्माः शाम्यन्ती-लाइ—यथास्थितमिति ॥ १२ ॥ स्वप्नद्रष्ट्रयी सा प्रातः प्रसिद्धा प्रबुद्धता सैव न द्रष्टास्ति न दश्यता किलिदं सर्व चिन्मा-त्राकाशमेवेति निश्वये अर्लं समर्थेत्यर्थः ॥ १३ ॥ सहस्र-कोटिशोऽप्यागतैरीदशाध्यासैर्नाधिष्ठानैकरूप्यक्षतिरिखाह--क-ल्पकोटीति ॥ १४ ॥ करोति सिललमिति शेषः । निजे चेतने

१ अत्रापि पूर्वपदादित्यनुकृत्तेरत्रोदाहरणे अस्य कथं प्रकृतिरिति

तरङ्गत्वातरङ्गत्वे ब्राह्मया शकी स्थिति गते॥ चिद्योम्नोऽत्यजतो रूपं स्वप्नवद्यस्तवेदनम्। तदिदं हि मनो राम ब्रह्मत्युक्तः पितामहः॥ १९ एवमाद्यः प्रजानाथो निराकारो निरामयः। चिन्मात्ररूपसंकल्पपुरवत्कारणोज्झितः ॥ २० येनाङ्गदत्यं नास्तीति बुद्धं हेमाङ्गदेन वै। अङ्गदत्वं कुतस्तस्य तस्य शुद्धेव हेमता ॥ २१ अजे संकल्पमात्रात्म चिन्मात्रव्योमदेहिनि । अहं त्वं जगदित्यादि यहिभातं तदेव तत् ॥ २२ चिश्वमत्कृतयो भान्ति याश्चिद्योमनि शून्यताः। पतास्ताः सर्गसंहारस्थितिसंरम्भसंविदः॥ २३ अच्छं चिन्मात्रनभसः कचनं स्वयमेव तत्। स्वप्राभं चित्ततामात्रं स एय प्रपितामहः॥ 28 यथा तरङ्गस्तेनैय रूपेणान्येन चाऽनिदाम्। स्फुरत्येवमनाद्यन्तः सर्गप्रळयविभ्रमः॥ २'५ चिद्योद्धः कचनं कान्तं यद्विराडिति राव्दितम् । भन्नेत्संकरुपप्रवत्तस्य कुर्यानमनोऽपि वै ॥ २६ सर्गः स्वप्नः स्वप्न एव जाव्रदेहः स एव च। घनं सुपुप्तं तैमियीद्यथा संवेदनं भवेत्॥ २७ तस्य कल्पान्तरजनी शिरोरुहतयोदिता । प्रकाशतमसी कालिकियाख्याः स्वाङ्गसंधयः तस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्घा खं नामिश्चरणौ क्षितिः। चन्द्राकौ रगू दिशा श्रोत्रे करूपनेति विज्ञम्भिता२९

मायाशवलचिति ॥ १५ ॥ १६ ॥ तरक्षेन । 'श्रीतिपदिकान्तनु-म्बिभक्तिषु च' इल्एन्नापि 'पूर्वपदात्संज्ञायाम्' इति सूत्रादग इ-व्यनुत्रुतेनेणलम्। अचेतनस्यापि चेतनवारोपादियमुक्तिः॥१७॥ तरक्रशब्दास्तत्सदशजगत्पराः॥ १८ ॥ व्यस्तवेदनमन्योन्यध-मेविनिमयेन व्यत्यसाचेतनमावं मनः समध्युपहितं यद्गूपं तदिदं मनो ब्रह्मेति शब्दैः पितामह उक्तः ॥ १९ ॥ २०॥ ॥ २१ ॥ समप्रेथिनमात्रले तथाष्टीनामस्पदादीनां तदनुक्तमपि सिद्धमित्याह-अजे इति ॥ २२ ॥ २३ ॥ प्रपितामही हिर-ण्यगर्भः ॥ २४ ॥ २५ ॥ विराडपि ताहगेवेत्याह-विद्योभ्र इति । तस्य विराजो मनोहिरण्यगर्भीपि यत्कुर्याद्भवन-भूतमामादि तदपि संकल्पपुरवदित्यर्थः ॥ २६ ॥ तथाच स निराडेव सर्गः स एव खप्तः खप्त एव जाप्रद्यष्टिसमष्टिदेहः संपन्नः । यथा धनं सुषुप्तं निदातिशयलक्षणतैमिर्यात्स्वप्रसंबे-दनं भवेत्तथा प्रलये अविद्यातिमिरावृत आत्मैव जगरसंवेदनं भवेदित्यर्थः ॥ २७ ॥ जगत्सर्व विराजोऽङ्गतया वर्णयति— तस्येत्यादिना । तस्य विराद्धेषस्य परमात्मनः कल्पान्ता अवा-न्तरप्रज्यास्तद्भुग नतुर्भुखस्य रजनी शिरोहहतया केशतया उदिता प्राथमिकलात् । प्रकाशतमसी दिनरात्री अङ्गसंधयः ॥२८॥ दिशौ प्राचीप्रतीच्यौ श्रोत्रे इत्यनया रीत्या मनःकल्पनैय

विचारणीयम्.

पर्वं सम्यग्दश्यमानो व्योमातमा वितताकृतिः।
अस्मत्संकल्पशैलाभो विराइ स्वप्नाकृतिस्थितः ३०
यश्व चेतिचदाकाशे स्वयं कचकचायते।
तदेतज्जगदित्येवं तेनात्मैवानुभूयते॥ ३१
विराडात्मैवमाकाशं भाति चिन्मयमाततम्।
स्वभावस्वप्रमगरं नगनागमयात्मकम्॥ ३२

अनुभवितैवानुभवं
सत्यं स्वात्मानमप्यसन्तमिव।
अनुभवतीयस्वेन
स्वमनदः स्वप्नदेशमिव॥ ३३
वेदान्ताहितसांख्यसीगतगुरुग्यक्षादिस्का दशो
ब्रहीव स्फुरितं तथात्मकलयास्तादात्मनित्यं यतः।
तेषां चात्मविदोऽनुरूपमस्विलं स्वर्गं फलं तद्भवस्वस्य ब्रह्मण ईदनेव महिमा सर्वात्म यस्त्रहणुः ३४

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठ० वा० मो० नि० उ० ब्रह्मगीतासु परमार्थोपदेशो नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १७३ ॥

चतुःसप्तत्यधिकदाततमः सर्गः १७४

8

विसष्ठ उवाच ।
सर्गादौ स्वप्तसंत्रित्या चित्रेवाभाति केवला ।
जगित्यवभासेव ब्रह्मैवातो जगन्नयम् ॥
सर्गास्तरङ्गा ब्रह्माब्धेस्तेषु संवेदनं द्रवः ।
सर्गान्तरं सुखाद्यातम द्वैतेक्यादीतरत्कृतः ॥
यथा स्वप्तसुषुप्तातम निद्रारूपकमेव खम् ।
दृश्याददयांदामेकातम रूपं चिन्नभसस्तथा ॥
जामति स्वमनगरं यादकाद्दगिदं जगत् ।

विराडाकारेण विज्ञमिमता ॥ २९ ॥ तथाचास्मत्स्त्रप्रतुल्यता तस्य सिदेति निष्प्रपञ्चतैव परमार्थ इत्याह-एवमिति ॥ ३० ॥ यचेतत् चेतनात्मकजीवभाव।पत्रं सत् खत्रं कचकचायते अतिशयेन दीप्यते । दीस्यथात्कचेः पचायचि डाचि द्वित्वे डाजन्तस्यापि भृशादिलकल्पनात्क्यङ् ॥ ३१ ॥ चिन्मयमातत-माकाशमेव एवंरीत्या विराडात्मा भाति । एवंरीत्या दर्शने बिराडात्मचिन्मयमाकाशमेव भातीति वा ॥ ३२ ॥ अ-नुमनिता चिदात्मेव खखरूपमनुभवैकरसं सर्वं खात्मा-नमपि मायावरणादसन्तमिव कृत्वा इयरवेन परिच्छित्र-प्रपश्चमावेनानुभवति, यथा खप्रप्राप्ती नटः खात्मानमेव स्वातिरिक्तनाव्यवष्ट्समाजपूर्ण स्वप्नदेशं कल्पयित्वा खनाव्यं खयमेवानुभवति तद्विदित्यर्थः ॥ ३३ सिन्नर्थे सर्ववादिसिद्धान्तःविरोधः सर्वामिलपितफलसिद्धिश्चेत एवेलाइ-वंदान्तेति । वेदान्ताः ग्रद्धत्रद्वापराः सर्वज्ञेश्वर्-परा बपासमापराध्व । आईता दिगम्बराः । सांख्याः कापिला योगिनश्व । सौगताः सौत्रान्तिकवैभाषिकयोग।चारमाध्यमिकाः । एतेषां ये गुरवो व्यासाईत्कपिलपतञ्जलिखुद्धाः । ज्यक्षः पशु-पतिर्भेरवो वा आगमशास्त्रमेदनिर्माता। आदिपदाद्वैष्णवहि-रण्यगर्भाया आगमनिर्मातारो विश्ववादयो गृह्यन्ते । तैः **पुष्ठ उक्ता खखा**गमेषु प्रातिपादिता या यादशस्ताः सर्वा भूला अस्पदभिमतं बद्दाव तत्तद्वासनालक्षणतदात्मकतया स्फ्र-रितम्। तेषां च वादिनामात्मविदः खखनिश्चयस्यानुक्षं खर्गं पारलीकिक सुबक्ष पमिलल मैहलीकिकंच सर्व फलं तह होव भवति

परिहातं भन्नेदत्र कथमास्था विवेकिनः ॥ ४ सर्गादौ सर्गसंवित्तेर्यथाभूतार्थवेदनात् । जामित स्वामनगरं यादृशं तादृशं जगत् ॥ ५ जामित स्वमनगरवासना विविधा यथा । सत्या अपि न सत्यास्ता जामत्यो वासनास्तथा ६ अन्ययोपप्रपद्यहं कल्प्यते यदि कारणम् । तिर्देक नेदीयसी नात्र भ्रान्तता कल्प्यते तथा ॥ ७

यतस्तदारमरूपमेव नैस्तेस्तथातथा फलं स्तादिलाशास्यते इल्पर्थः। अस्य ब्रह्मण ईटगेव महिमा प्रसिद्धो यद्यसाद्वद्य एवंवपुर्माया-शबलस्वरूपं सर्वात्मकित्यर्थः ॥ ३४॥ इति श्रीवासिष्ठम-हारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे त्रिससस्यि-कशतसमः सर्गः॥ १७३॥

स्वप्रस्थेव प्रबोधेन कृते रहयस्य मार्जने । परिभिष्टश्चिदारमैको वर्ण्यतेऽत्र परं पदम् ॥ १ ॥

यतः सर्गादौ केवला चिदेव स्वप्तित्संवित्त्या जगदिल्यव-भारेऽवभातीति प्रसाधितमतो जगन्नयं न्नक्षेत्रेति प्रबोधे केवल्यं सिद्धमित्यर्थः ॥ १ ॥ अज्ञप्रसिद्धो दुःखात्मकः सर्गो बोधेन प्रभार्जितः । यत्तु तदनन्तरमपि जीवन्मुक्तानां व्यवहाराय जगत्प्रसिद्धं तदानन्दसिश्चदंकरसलात्सर्गान्तरमेव तत्तत्र द्वेतै-क्यादीतरम् असुखरूपं कृतो निमित्तात्स्यादित्यर्थः ॥ २ ॥ वेषां ताहरयसर्गणेकरस्याविषाते अबहरया प्रसिद्धतरे दष्टान्तमाह-यथेति । यथा खप्ने सुप्रप्तिस्वप्रमेदाभासेऽपि निर्देकरस्यं न बि-हन्यते तद्वद्विदेहमुक्तिजीवन्मुक्तिमेदप्रतिभासेऽपि सुखैकरस्यं न विह्न्यत इलर्थः ॥ ३ ॥ कृतो न दुःखमिति चेद्वाचिते विषये विदुष आस्थाभावादित्याह—जाप्रतीति ॥ ४ ॥ याहरां यथा बाधितम् ॥ ५ ॥ दम्धपटबद्वासनामात्रेण स्थि-तिस्तु न दुःखसमर्थेत्याशयेनाह्—जाप्रतीति । जाप्रत्यो जाप्रतो भोगाभासार्थमाविर्भृताः ॥ ६ ॥ ननु जगतो प्रा-नितमात्रत्वे तत्त्वबोधेन तन्मूलाक्कानोच्छेदाद्वाधः स्यात् । प्रधानपरमाण्यादिकारणान्तरैरन्ययोपपरया भ्रान्तिलाकस्पने त

C

१०

११

१२

१३

स्वानुभूयत एवेयं म्रान्तिः स्वप्नजगित्स्वव ।
कारणं त्वनुमासाध्यं कानुमानुभवाधिका ॥
इष्टमप्यस्ति यश्वेशे न चात्मिन विचारितम् ।
अन्यथानुपपत्यान्तभ्रां न्यात्म स्वप्नशैलवत् ॥
निर्विकरूपं परं जाङ्यं सविकरूपं नु संस्तिः ।
ध्यानं तेन समाधानं न संभवति किंचन ॥
सचेत्यं संस्तिध्यानमचेत्यं तृपलस्थिति ।
मोभ्रो नोपलवद्भानं न विकरूपात्मकं नतः ॥
नच नामोपलाभेन निर्विकरूपसमाधिना ।
अन्यदासाद्यते किंचिल्लभ्यते किं स्वनिद्रया ॥
तस्मात्सम्यक्परिकानाद्भान्तिमात्रं विवेकिनः ।
सर्गात्यन्तासंभवतो यो जीवनमुक्ततोद्यः ॥
निर्विकरूपं समाधानं तदनन्तिमहोच्यते ।

न बाधप्रसक्तिरिति ततो दुःखं स्यादेवेत्याशक्काह-अन्यथेति । उपप्रपद्म उपपाय । स्वापे जगति प्रसिद्धतरखाळाषवात् 'वा. चारम्भणं विकारी नामधेयम्' 'तत्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ताः' 'मायां तु प्रकृति विन्दात्' 'भूपश्चान्ते विश्वमायानि-वृत्तिः' इत्यादिश्रुतिबंधितलाच कल्पनान्तरेम्यो नेरीयसी शीघ्रीपस्थितिकःवेन संनिहिततरा आन्तिमात्रतैव जगतः कि न कल्प्यत इत्यर्थः ॥७॥ किंच वाचारमभणश्रुतिदर्शितन्यायेन पर्यालोचने मृत्तन्लादिव्यतिरंक्षघटपटायदर्शनात्तद्विपये स्वा स्वीया इयं श्रान्तिरिति प्रत्यक्षमनुभूयत एव प्रत्यक्षानुभ-वापेक्षया अधिका बलवत्तरा अनुमा क्ष द्रष्टा यद्वलात्प्रधान-परमाण्यादयः सिद्धोरप्रिसर्थः ॥ ८ ॥ किंच जगत्स्वप्रशैल-बदन्तर्भान्सात्मेसात्र दृष्टं प्रस्यक्षं तिज्ञमप्यस्ति । यदासात्कार-णादयं जन आत्मित इष्टमेव स्रष्टमिष्टं सर्ग निवारियतं च न ईशे नेष्टे । छान्दसः पुरुषव्यत्ययः । अहं न ईशे इत्यनु-भवतीति वा अध्याहार्थम । नच तेन प्राग्विचारितं निश्चितमेव हेर्यते अकस्मादेव यहिंकचिदर्थदर्शनात्।सर्गस्य कारणान्तराधी-नत्वे हि तादशकारणसंपत्तिसाध्यं जना इष्ट्रगेव स्जेयरनिष्टं च बारयेयुराकस्मिकं च दृश्यं न पश्येयुः। तहिङ्गन्नयान्यथानुपपत्त्या खप्रशेलवद्भान्तिरित्येव सिद्धमित्यंर्थः ॥ ९ ॥ अतएव ध्यान-मात्रेण निर्विकल्पसमाधिपर्यन्तेन जगदाधं विनैव निस्तारं मन्यमाना योगिनोऽपि निरस्ता इत्याह--निर्विकल्पमिति । यो-गिनां ह्यात्मा अनानन्दचिद्रपः साक्षादनुभूतोऽप्यपुरुषार्थं इति तत्साक्षात्कारकल्पने प्रयोजनाभावात्रित्यानुमेये तस्मिन्भादः हानकरपे निलापरोक्षे जडतैव परिशिष्यते । तत्र चित्तस्य निर्विकल्पं समाधानं संपन्नमिष परं जाड्यमेव । सविकल्पं तु संपन्नं संस्रतिः संसार एव । तेन हेतुना तज्यानं तेन समाधानं च संपन्नमधि किंच न। पुरुषार्थरूपं न संभवती-खर्थः ॥१०॥ तदेव सप्टयति-सचेत्यमिति । पराभिमतमना-नन्दरूपं मोक्षे परिविष्यमाणं यत् ज्ञानं तन्मोक्षः पुरुषार्थविन शेषो न । एतेनात्मनो ज्ञानस्वभाषतामनभ्यपगच्छता वैशेषि-योग० १८६

| | यथास्थितमविश्चुब्धमासनं सर्वभासनम्॥ | iñ |
|---|--|-----|
| | नद्नन्तसुषुप्ताख्यं तत्तुरीयमिति स्मृतम्। | |
| 1 | तन्निर्वाणमिति प्रोक्तं तन्मोक्ष इति शब्दितम्॥ | १५ |
| i | ्सम्यग्वोधेकघनता यासी ध्यानमिति स्मृतम् । | |
| | हृद्यात्यन्तासंभवात्म बोधमाहुः परं पदम्॥ | १६ |
| • | तश्च नोपलवज्जाङ्यं न सुषुष्ठोपमं भवेत्। | |
| | न निर्विकरुपं न च वा सविकरुपं न वाष्यसत् | ₹.9 |
| - | हश्यात्यन्तासंभवात्म तदेवाद्यं हि वेदनम्। | |
| 1 | नरसर्वे तम्र किंचिच तद्वदेवाङ्ग वेत्ति तन्॥ | ₹८ |
| 1 | सम्यक्प्रवोधाक्षिर्वाणं परं तत्समुदाहृतम्। | |
| - | यधास्थितभिदं विश्वं तत्रालंप्रलयं गतम्॥ | १९ |
| | न तत्र नानाऽनाना न नच किंचित्र किंचन। | |
| | समस्तसदसद्भावसीमान्तः स उदाहृतः॥ | २० |
| | | |

कादीनामभिमनोऽपि मोक्षो निवर्ग निरसाः । विकल्पात्मकं सचेत्यं त ततोऽपि मोक्षो न बन्धाविदोपादिखर्थः ॥ १५ ॥ योगिसंमत्समाध्यभ्यासेन भवदभिमत्रमोक्ष एव कि न लम्यते तत्राह-नच नामेति । अन्यत्मांख्याभिमतान्यदस्मदभिमतं यदि छभ्येत तर्हि खनिद्रयापि छभ्येत । वित्तनःशस्यनिव्-त्तेरज्ञानावरणानिष्टतेथोभयत्रापि साम्यादिति भावः ॥ १२ ॥ तस्मात्परोक्तपक्षेष्वनिर्मोक्षदोषानिर्मोक्षाद्धान्तिमात्रं जगत् । निरतिशयानन्दसचिदेकरस एवारमा । तत्त्वज्ञानेन भ्रान्ति-हेलज्ञानावरणक्षयेण आन्तिक्षये परिशिष्यमाणः परमपुरु-पार्थ इत्यस्मत्पक्ष एव सर्वेषां शरणमित्युवसंहरति—तस्मादि-त्यादिना । यो जीवनमक्ततोदयः स एव निर्विकल्पसमाधानं तदेव बानन्तं निर्वाणमित्युत्तरेणान्वयः ॥ १३ ॥ १४ ॥१५॥ आहः 'यत्र नान्यत्पर्यति नान्यच्छणोति नान्यद्विजानाति स भूमां इत्यादिश्रुतयस्तरवविदश्रेत्यथः ॥ १६ ॥ तच गौतम-कणादाभ्यपगतमुक्तिरिवोपलवजाङ्यं न । हरण्यगर्भोपगत-प्रकृतिप्रलयवरमुपुष्तीपमं न । पातञ्चलेपगतम्किवन्निर्विकः-रुपतामात्रं न । पाञ्चपतपाकरात्राद्यमिमतमुक्तिवत्सविकरुपं न । बौद्धामिमतमुक्तिवदसर्वरात्म्यस्थणं श्रून्यमपि न ॥ १७ ॥ कि तहिं तदाह-हर्येति । तदेव सर्वम् । 'ब्रह्म वा इदमम आसीतदात्मानमेवावेददं ब्रह्मास्मीति' 'तस्मातत्सवंमभवत्' इति श्रुतेरिति भावः । 'यत्र नान्यत्पस्यति नान्यच्छुगोति' इत्यादिश्रुतेने किचिच ॥ १८ ॥ सर्वत्वे नकिचिच्चे चोपपति-माह—यथास्थितमिति ॥ १९ ॥ सीमान्त इति । यथा पटः सन्नसन्निति च कल्पनायाः सीमा तन्तुः । तन्तुः सन्नसनिति कल्पनायाः सीमा कार्पासम् । कार्पासं सदसदिति कल्पनायाः सीमान्तस्तद्वीजम् । बीजं सदसद्वेति कल्पनायाः सीमा मृदा-त्मिका पृथिवी । सा सती असती वैति कल्पनायाः सीमा आपस्तासां तेजस्तस्य वायुस्तस्याकार्शं तस्याव्याकृतं तस्य सद-सद्भावकल्पनायाः सीमा केवलिबदात्मैवति स सीमान्त इस्पर्यः

१ तदेवाच्छमिति पाठः.

अत्यन्तासंभयं हड्यं यहै निर्वाणमासितम् । शुद्धबोधोदयं शान्तं तद्विद्धि परमं पदम्॥ २१ स च संप्राप्यतं शुद्धो योधो ध्यानमनुत्तमम्। २२ शास्त्रात्पद्पदार्थज्ञयोधिनोत्पन्नवुद्धिना ॥ मोक्षोपायामिधं शास्त्रमिदं वाचयतानिशम्। बुद्धापायेन ठाउँन पूंसा नान्येन केनचित्॥ २३ न तीर्थेन न दानेन न स्नानेन न विद्यया। न ध्यानेन न योगेन न तपोभिन चाध्वरैः॥ ર્જ भ्रान्तिमात्रं किलेदं सदसत्सदिव लक्ष्यते। प्योमेय जगदाकारं स्वतोऽनिष्टे चिदम्बरे ॥ २५ न शास्यति तपस्तीर्थेभ्रोन्तिनीम कदाचन।

तपस्तीर्थादिना स्वर्गाः प्राप्यन्ते नतु मुक्तता॥ भ्रान्तिःशाम्यतिशास्त्रार्थात्सम्यग्बुख्यावलोकितात् आत्मश्रानमयान्मोक्षोपायादेवेह नान्यतः॥ आलोककारिणात्यर्थे शास्त्रार्थेनैव शाम्यति । अमलेनाखिला भ्रान्तिः प्रकाशेनैच तामसी॥ २८ सर्गसंहारसंस्थानां भासो भान्ति चिदम्बरे । स्पन्दनानीव महति द्रवत्वानीव वारिणि॥ द्रव्यस्य दृष्टेव चमत्कृतिर्निजा नभस्वतः स्पन्द इवानिशं यथा। यथा स्थिता सृष्टिरियं तथास्तिता ळयं नभस्यन्तरनन्यरूपिणी ॥ इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० दे०मो० नि०उ० ब्रह्मगीतासु निर्वाणोपदेशो नाम चतुःसप्तत्यविकशततमः सर्गः ॥ १७४ ॥

पश्चसप्तत्यधिकशातनमः सर्गः १७५

वसिष्ठ उवाच । स्वप्राभमाद्यं चिद्योम कारणं देहसंविदाम्। हर्यान्यता संभवतिश्रह्योसस्तत्कृतो वपुः॥ सर्गादी स्वप्नसंवित्तिरूपं सर्वे विनानय। न सर्गों न परी लोको दश्यमानोऽपि सिद्धति ॥ २ असदेवानुभूरित्धमेवेदं भासते जगत्। स्वप्राह्मनासङ्ग इव शान्तं चिद्योम केवलम्॥

॥ २०॥ यतिवंषि सर्वेष्वेश्वेपरहितं निरनिश्वागनन्दारमना आसितमवस्थानं तदेव परमं पदं परमपुरुवार्थ विद्धि ॥ २१॥ तरप्राप्ती चार्य मोक्षोपायाख्यो प्रन्थ उपाय इत्याह—स चेति ॥ २२ ॥ वृद्धिस्यात्मशास्त्रजन्यज्ञानं तत्रक्षणेनोपायेन । अन्येनोपायान्तरेण कनचिद्षि न प्राप्यते-- 'ज्ञाला तं मृत्यु-मस्येति नान्यः पन्था विसुक्तये' इत्यादिश्रुतेरिति ॥ २३ ॥ तदेव प्रपन्नयति - नेत्यादिना । विद्यया ब्रह्मवि-बातिरिक्तविवया ॥ २४ ॥ जुती च तत्राह---श्रान्तिमात्र-मित्यादिना । यतो ब्रान्तिमात्रमतस्तपस्तीर्थेन शास्यतीति परेणाम्बयः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ प्रकाशेन सुर्योदयेन । तामनी कृष्णगत्रिरित्र ॥ २८ ॥ संस्था स्थितिः । भाराः प्रति-भासाः ॥ २९ ॥ यथा बटवीजादिद्रव्यस्य हृदि वटाकारधार-णचमत्कृतिनेभस्वतो वायोः स्यन्दचमत्कृतिरिव स्थिता तथा मायाशवलचित्रभस्यन्तः इयं यथा स्थिता जगतः सृष्टि-स्तरमा अस्तित। स्थितिश्र अनन्यकृषिणी आस्ते लयं च गिन-ष्यतीति शेषः ॥ ३०॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणता-रपर्यप्रकारी निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुःसप्तत्यधिकशतत्तमः सर्गः ॥ १७४ ॥

एवं नामास्ति चिद्धातुरनादिनिधनोऽमलः। शून्यात्मैवाच्छरूपोऽपि जगदित्यवभाति यः॥ 8 मलस्त्वेषोऽपरिश्वातः परिश्वातः परं भवेत्। कुतः किल परे व्योमन्यनादिनिधने मलः॥ यदेतहेदनं शुद्धं तदेव स्वप्नपत्तनम्। जगत्तदेव सर्गादी पृथ्यादेः संभवः कुतः॥ ક

याधनमीरुपे जगदिव चिदेवाभात्यकारणम् । शास्त्रेण मीर्ख्येऽपहते सा मुक्तेतीह वर्ण्यते ॥ ९ ॥ इयं छष्टिस्तदस्तिता चानन्यरूपिणोत्युक्तेः चितः सर्गः शरी-रमेवेलाशङ्कां प्रसक्तां निराकरोति-स्वप्ताममिति । आयं हि चिष्योम खाविद्यया खप्रामं भूला जीवभावेन संसरहेवोऽहं मनुष्योऽहमित्यादि तत्तहेहतादात्म्याध्यासानां कामकर्मवास-नादिद्वारा कारणं जीवोपाधिसिद्धेः पूर्व महाप्रलये स्वप्नाभलें-प्राप्ती तु हर्यान्यताऽसंभवी निमित्तादिसिद्धेस्तस्मर्गरूपं हर्यं तस्य चिक्नोन्नो वयुः शरीरं कृतो निमित्ताद्भवेदिस्पर्थः ॥ १ ॥ स्तप्तसंवित्तिरूपेणैव जीवभावसमकाला सगीदिसिर्द्धिन निमि-त्तान्तरादिखाह—सर्गादाविति ॥ २॥ नापि चिद्योन्नो वास्तवो जीवभावो जगद्भावो वास्ति येन जगत्तस्य शरीरं भवेदि-त्याह—असदेवेति । अनुभवतीत्यनुभूरन्भवैकरसिश्वदारमा इत्थमसदेव जगद्भुला खाविद्यया भासते ॥ ३ ॥ तर्हि किम-नुभूतिरप्यसती, नेत्याह्—एवं नामेति। यो जगदित्यवभाति सं जगच्छुन्यात्मैवाच्छरूपश्चिद्धातुरस्ति ॥ ४ ॥ एष परमात्मैव यावदपरिज्ञातस्तावनमलः अविधैव । तत्र संसरन् जीव इब पृथगिव भवति । परिज्ञातस्त परं निर्मलं ब्रह्मैव भवेत् । 'स यो इ वे तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मेव भवति' इत्यादिश्रुतेरिति भावः। ब्रह्मभावे लस्य मलप्रसक्तिरेव नास्तीत्याह-कृत इति । प्रबो-धेन खप्रस्येव बाधादिति भावः ॥ ५॥ स्वप्रसाम्यं तु कार-

१ भेषे न शंत पाठष्टीकानुकूछः स्यात्.

चिद्योमात्मावभासस्य नभसः सर्गरूपिणी । कृता पृथ्वादिकलना मनोबुद्धादिता तथा॥ वार्यावर्त रवाभाति पवनस्पन्दवस यत्। अबुद्धिपूर्व चिद्योक्ति जगद्भानमभित्तिमत्॥ प्रशाससीव तेनेव स्वयमैश्वर्यशांसिना। कृतं बुद्धादिपृथ्वादिकस्पनं सदसन्मयम् ॥ स्वयमेव कचत्यच्छा च्छायेयं स्वा महाचितिः। सर्गाभिधानमधीय नभ प्रवेह नेतरत्॥ १० नच किंचन नामाङ्ग कचत्यच्छेव सा स्मृता। चिन्मात्रकैककलनं ततमेवात्मनात्मनि ॥ ११ चिदाकाशिश्वदाकाशे तदिदं स्वमलं वपुः। चित्तं दृश्यमियाभाति यथा स्वप्ने तथा स्थितम् १२ अन्यथान्पपत्यार्थकारणाभावतः स्वतः। सर्गादावेव स्वात्मैव रहयं चिद्योम पर्यति॥ १३ स्वप्नवत्तम् निर्धर्ममनागपि न मिचते। तसाश्चिद्योम चिद्योम शून्यत्वं गगनादिवत् ॥ १४ यदेव तत्परं ब्रह्म सर्वरूपविवर्जितम्। तदेवैकं तथारूपमेवं सर्वतया स्थितम्॥ 84 स्वप्नेऽनुभूयते चैतत्स्वप्नो ह्यात्मैव भासते। नानावोधमा निव ब्रह्मवामलमेव तत्॥ १६ ब्रह्मैवात्मनि . नेद्धावाज्जीवत्वमिव कल्पयत् ॥ रूपमत्यजदेवाच्छं मनस्तामिव गच्छति ॥ १७ इदं सर्वे तनोतीय तच्च खात्मकमेय खम्। भवतीव जगद्रुपं विकारीवाविकार्यपि॥ १८

णासंभवाद्वहुशः प्रसाधिनभेव पुनर्रडोकारायानुवदति-यदि-स्यादिना ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ पश्चाज्जगद्भानानन्तरं जीवभावेन तदनुप्रविश्य हिरण्यगर्भोऽहं भुवनस्रष्टेलैश्वर्यशंसिना बुज्यादि-पृथ्यादिनामस्यव्याकरणलक्षणं कल्पनं ऋतम् । सदसन्मयं मूर्तीमूर्तप्रचुरम् , सत्यानृतमिथुनीकरणरूपं वा ॥ ९ ॥ अच्छा-द्प्यच्छा येयं महाचितिः सा स्वयमेव जगद्रूपेण कचतीति जगिषम्भ एव नेतरत् ॥१०॥ अनया पर्यालोचनया हे अज्ञ, न किचन कचित । चिन्मात्रलक्षणं यदेकमेवैकं तत्कलनमेव वेत्यमात्मनि ततम् ॥११॥ स्वं अलंपूर्णे वपुः सरूपम् । अज्ञातं तदेव खमलं बपुरिति वा। चित्तमिव तदुर्यमिव च ॥ १२ ॥ अन्ययानुपपस्या प्रकारान्तरेण वादिसहस्रैरपि सर्गोपपादना-संभवात्परिशेषात् ॥ १३ ॥ उपपादितं जगद्वपृष्ट्वनिरासमुप-संह्रस विष्टमवधारयति—तस्मादिति । चिथामचिद्योमति अवधारणार्थे वीप्सा ॥ १४ ॥ १५ ॥ उक्तमेव निष्कृष्य पुन-रन्य दृष्यन्तरमाह—स्त्रप्रे इत्यादिना ॥ १६ ॥ १७ ॥ तत्र मनः समष्टिक्पेण इदं सर्वे तनोतीव ॥ १८ ॥ महा। हिरण्य-गर्भः ॥ १९ ॥ पृथ्व्यादिरहितः स मनोरूपो ब्रह्मा अञ्जवर्जिते

मन एव स्वयं ब्रह्मा स सर्गस्य हृदि स्थितः। करोखविरतं सर्वमजस्र संहरत्यपि ॥ १९ पृथ्यादिरहितो यस्मिन्मनोहृद्यङ्गविते । अन्यद्वा त्रिजगद्भाति यथा स्त्रप्ते निराकृति॥ देहरूपजगद्रपरहमेकमनाकृति। मनस्तिष्टाम्यनन्तात्म योधाबोधं पराभवम् ॥ २१ मेह पृथ्यादि नो देहो न चेवान्याप्ति दृश्यता। जगस्या केवलं खं मनः कचकचायते॥ २२ विचार्यष्ट्रयैतद्पि न किचिद्पि विचने। केवलं भाति चिन्मात्रमान्मनात्मनि निर्धनम् २३ यतो वाचो निवर्तन्ते तूर्णीभावोऽवशिष्यते । व्यवहार्यपि खात्मैव तद्वतिष्ठति मुकवन् ॥ રપ્ર अनन्तापारपर्यन्ता चिन्मात्रपरमेष्टका। तुष्णीभूत्वा भवत्येष प्रबुद्धः पुरुषोत्तमः॥ રપ अबुद्धिपूर्वं द्रवतो यथावर्ताद्योऽम्भसि । क्रियन्ते ब्रह्मणा तद्वश्चिनवुद्धादया जडाः॥ २६ अवुद्धिपूर्वे वातेन कियते स्पन्दनं यथा। अनन्यदेवं बुद्धादि क्रियते परमात्मना ॥ २७ अनन्यदारमनो वायोर्यथा स्पन्दनमव्ययम्। अनन्यदारमनस्तद्वश्चिन्मात्रं परमात्मनः॥ 40 चिद्योम ब्रह्मचिन्मात्रमात्मा चिति महानिति । परमात्मेति पर्याया क्षेत्रा ज्ञानवतां वर ॥ २९ ब्रह्मोन्मेपनिमेषात्म स्पन्दास्पन्दात्म वातवत् । निमेषो याद्दगेवास्य समुन्मंपस्तथा जगत्॥

स्बहृदोव यस्या जगतो हृदि स्वयं स्थितन्तमः दत्यद्वा त्रिजग-द्भुला खर्य गाति ॥ २० ॥ खाविद्यस पूर्वमावपरामवं प्राप्य तन्मन एवाइमाकारेण देहजगद्भूपरनन्तात्म भूवा योधाबोध-ह्रवं तिष्ठतीत्याह—देहेति ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रणितदस्यन्तर-मुपसंहरन्त्रकृते योजयति-विचार्येति । निवरां धनं निर्धनम् ॥ २३ ॥ वाद्यनसागोवरनिरतिशयानन्दलामेन तूर्णीमावौ निश्वलता । सा निश्वलता व्यवहारकालेऽपि नापैतीलाह— व्यवहार्यपीति ॥ २४ ॥ चिन्मात्रउक्षणा परमा दृष्टेवेष्टका पर-मप्रेमासादीभूतनिरतिशयानन्दधनता स्वयं भवतीत्वर्थः । **ज्ञानाप्तिपरिपाकेन ट**ढीमाबाद्रह्मभूत एवेष्टकेति वा ॥ २५ ॥ एवं मुक्तस्य पुनः कालान्तरे सर्गादिना बन्धप्रमक्ति वारयितं सर्भसाज्ञानपूर्वकरवं दर्शयति — अबुद्धपूर्यभिति । अबुद्धियाध-नार्यमञ्जानं तरपूर्वम् । अविद्यात्रतबद्धानतन्यस्येव जलादिभाः वेनावतीदिविकल्पमाक्लाज्जलादेहंग्रान्तता ॥ २६ ॥ २७ ॥ चिन्मात्रं सर्वे चिदाभासलक्षमा जीवः आत्मनः प्रत्यप्रवातपर-मात्मनोऽनन्यत् ॥ २८ ॥ अतएव जीवानानपि त्रद्भावर्याया-रमता मतेत्याशयेनाह—चिद्योमेति ॥२९॥आंवयादृतं हि बद्ध चक्षरिव उन्मेषिनिमेषातम वातवतस्यन्दास्यन्दातम् वा । अस्य

अर्थस्य सत्यस्य कारणान्तरस्याभावतश्रेत्यर्थः.

हृदयमस्य समृन्मेषो हृदयाभाषो निमेषणम् । एकमेतिक्रिराकारं तद्वयोरप्युपक्षयात्॥ 38 निमेषोन्मेषयोरेकरूपमेव परं मतम्। अतोऽस्ति रहयं नास्तीति सदसच सदा चितिः ३२ निमेषो नान्य उन्मेषाञ्चोन्मेषोऽपि निमेषतः। ब्रह्मणः सर्गवपुषो निमयोन्मयहृषिणः॥ 33 तद्यथास्थितमेवेदं विद्धि शान्तमशेषतः। अजातमजरं व्योम सीम्यं समसमं जगत्॥ ३४ चिद्चित्यात्मकं व्याम रूपं कचकचायते। चिन्नाम तदिदं भाति जगदित्येव तद्वपुः॥ ३५ न नश्यति न चोत्पन्नं दृश्यं नाप्यनुभूयते । स्वयं चमत्करोटान्तः केवलं केवलैव चित् ॥ 36 महाचिद्योममणिभा दश्यनाम्नी निजाकरात्। अनन्यान्येव भातापि भानुभास इवोष्णता ॥ ३७ सुपुनं स्वप्नवद्भाति भाति व्रह्मव सर्गवत्। सर्वमेक शिवं शान्तं नानेवापि स्थितं स्फूरत् ३८ यद्यत्संवेद्यते यादक्सद्वाऽसद्वा यथा यदा । तथानुभूयते तादकत्सद्स्त्वसद्स्तु वा॥ 39 अन्यथानुपपत्त्या चेत्कारणं परिकल्पते। तत्स्वप्राभो जगद्भावाद्न्यथा नोपपद्यते॥ 80 प्रमातीतात्पराद्धिश्वमनन्यदुदितं यतः । प्रमातीतमिदं चैव किचित्राभ्यदितं ततः॥ પ્રશ यस्य यद्रसिकं चित्तं तत्तथा तस्य गच्छति। ब्रह्मेकरसिकं तेन मनस्तत्तां समश्रुते ॥ ઇર

यादगेव प्रलयात्मको निमेषस्तादगेन सर्गात्मक उन्मेषो जगदि-खर्थः ॥ ३० ॥ यथा उन्मेषयोः साधारणं चक्षगीलक-मेकं तत्रैवोन्मेष्विमेषयोष्ठ्यक्षयात्तथा ब्रह्मार्थात्वाह-एकमेत-दिल ॥ ३१ ॥ अत्रधितेः सकाशादेव दृदयस्यास्तिनास्तीति स्फरणाहुरवं सदसब, चितिस्तु सदा सतैकरूपेवेदार्थः ॥३२॥ उन्मर्थानमेषावीप तदेतुपदमसहितचक्षःस्थानीयशब्द्रवास-ना परस्पराभिन्नावेवेखाइ—निभेष इति ॥३३॥ अनया दृष्ट्या यत्ति दं तदाह—तदिति । समेन निमेपीनमेषसाधारणब्ह्याह्यपेण सममेकरसम् ॥ ३४ ॥ यथा व्योम खाब्यस्तनैल्यस्त्वं कचकचा-यते तथा चिद्धि अचित्यात्मकामव कचकचायते ॥३५॥३६॥ महाचिद्योममणेनी प्रना निजाकरात्मणेः सकाशादनन्या ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सत् भावरूनं वा यदाचिता यथा संवेदाते प्रकाइयतं तथा चिदामासेनानुभूयतं ॥ ३९ ॥ जागती जड-लान्यथानुपपत्त्य। तदनुरूपं प्रधानपरमाण्यादिकारणं परिक-ल्पते चेतत्तर्हे खप्ने आभातीति खप्नामः प्र**पनः प्रधानपर-**माण्वादिभिनियेद्धिनशवयलादारमन एव जगद्भावं विहास नोपपदात इत्ययः । तत्रात्मन एव जगञ्जावास्युपगमे तक्ष्या-येन समाद्वाचाप ब्रद्धव जगद्वेष कारप्यतात तेन प्रयानपर-माण्यादिकरपनं विरद्धामति भावः॥ ४० ॥ एवंच सति ।

यश्चित्तो यहतप्राणो जनो भवति सर्वदा। तत्तेन वस्त्यित शातं जानाति तदसी स्फुटम् ४३ ब्रह्मेकरसिकं यत्यान्मनस्तत्तद्भवेत्क्षणात्। यस्य यद्रसिकं चेतो युद्धं तेन तदेव सत्॥ 83 विश्रान्तं यस्य चे चित्तं जन्तोस्तत्परमार्थसत्। व्यवहृत्यं करोत्यन्यत्सदाचारादतद्वसम्॥ 8.4 द्विरवैकस्यादिकलमा नेह काचन विद्यते । सत्तामात्रं च हगियमितश्चेदसमीक्ष्यते ॥ કદ अहर्यहर्यसद्सन्मूर्तामृतेहशामिह् । नैवास्ति नच नास्त्येव कर्ता भोक्ताथवा क्रचित् ४७ इदमित्थमनाचन्तं जगत्पर्यायमात्मनि । ब्रह्मैकघनमाशान्तं स्थितं स्थाणुरिवाध्वनि ॥ यदेथ ब्रह्मवुद्धादि तदेवतिश्वरजनम्। यदेव गगनं शान्तं शून्यं विद्धि तदेव तत्॥ ४९ केशोण्ड्रकाद्यो व्योक्ति यथा सद्सदात्मकाः। द्वितामिवागता भान्ति परे बुद्ध्यादयस्तथा ॥ तथा बुद्धादि देहादि वेदनादि परापरे। अनेकान्यप्यनन्यानि शून्यत्वानि यथाम्बरे॥ ५१ सुषुप्ताद्विरातः स्वप्नमेकनिद्रात्मनो यथा। सर्गस्थस्यापि न द्वित्वं नैकत्वं ब्रह्मणस्तथा ॥ ५२ एवमेव कचलप्छा छायेयं स्वा महाचितेः। नच किंचन नामाङ्ग कचत्यच्छैवमास्थिता॥ चिद्योसि हि चिदाकाशमेव स्वममलं वपुः। चेत्यं रदयमिवाभाति स्वप्नेष्विष यथास्थितम् ५४

जगतः प्रमागाविषये ब्रह्मण्यध्यासारस्वप्नवद्निवेचनीयतास्रक्षणा प्रमाणानिर्घार्येरूपतापि सेत्स्यतीत्यद्वेताविरोधादपरमनुकूलभ-त्याह-प्रमातीतादिति ॥ ४१ ॥ अतएव ब्रह्मरशिकानां चित्तं जगद्भीय पर्यतीति तदनुभवानुसारोऽपि जात इत्याह— यस्येति ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ यस्य जन्तोश्चित्तं दृढनिश्च-येन यत्र विश्रान्तं तस्य तदेव परमार्थसत् । अतएव अह्मवि-न्नास्तिकथ स्वनिधितान्यद्यागदानादि करोति तत्केवलं लोक-संप्रदार्थव्यवहर्त्ये अतदसमनिच्छमेव बलादिव करोतीलर्थः ॥ ४५ ॥ इत एतस्यान्मदुक्तोपायतक्षेज्ञगदवलोक्यते तदा इदं सर्वे सलामात्रं, इयं हगेव । द्वित्वैकलकलना इह काचन न विद्यते ॥ ४६ ॥ अद्दर्थ बहाब दृश्यं सदसन्मूर्तममूर्ते चेति दुरयेषां तेषां इह कती भोक्ता वा जीवो नैवास्ति नापि नास्थेव । तस्यैव अग्रतया परिशेषादिलार्थः ॥ ४७ ॥ अज्ञानां पान्थानां चोरसंदेहभ्रान्सादियोग्ये कान्ताराध्वनि स्थाणुरिव स्थितम् ॥ ४८ ॥ बुद्धादि बुद्धिसमष्टिहिरण्य-गर्भादि जगत् ॥ ४९ ॥ ५० ॥ परापरे सर्वसामान्यात्मके ब्रह्मणि शून्यत्वानि घटपटाद्यभावाः सर्वे ॥ ५१ ॥ सर्गस्थस्य खाप्रसर्भस्यस्यापि खस्य न द्विरवं नाप्येकत्वं व्यावर्खाप्र-सिद्धेः ॥ ५२ ॥ छाया कान्तिरविद्या वा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अन्यथानुपपस्यार्थकारणाभावतः स्वतः । चिद्योमात्मानमेवादौ इदयमित्येय पदयति ॥ ५५ सर्गादावेव खात्मैव रुष्यं भाति निराकृति । संभ्रमः स्वप्नसंकरपमिथ्याद्यानेष्विवामितः॥ ५६ स्वप्रवत्तव निर्धर्म मनागपि न मिद्यते। विकायपि संधर्मापि चिद्योम्नो वस्तुनो महात् ५७ तत्स्वप्ननगराकारं सधर्माप्यसधर्मकम्। शिवादनन्यमेवेत्थं स्थितमेव निरन्तरम् ॥ 46 **दृश्यं** स्वप्नाद्विवत्स्वच्छं मनागपि न भिद्यते । तसाबिद्योम चिद्योद्धः शून्यस्वं गगनादिव ॥ ५२ यदेव तत्परं ब्रह्म सर्वेरूपविवर्जितम्। तदेवेदं तथाभूतमेव सगैतया स्थितम्॥ 80 स्त्रप्रेऽनुभूयते चैतत्स्वप्ने द्यात्मैव भासते । पुरादित्वेन नतु सत्पुरादिरचितं तदा ॥ ६१ स्वप्ने च प्रत्यभिज्ञायाः संस्कारस्य स्मृतेस्तथा । न सत्ता तदिदं इप्रमित्यर्थसात्यसंभवात्॥ ६२

अन्यधानुपप्तया वादिसङ्क्षेरपि सद्वस्वतिरिक्तस्योपपाद्यितुम-शक्या अर्थस्य सलस्य कारणान्तरस्याभावतध चिद्योम स्वतः आत्मानभेव सर्गादी दर्यनिति पर्यतीत्वेव पक्षी निरुद्ध दलर्थः ॥ ५५ ॥ निराष्ट्रति मूर्वाकारतद्विशेषश्चम् । तत्र भानमभिनः राम्यग्नमः संब्रमः ॥ ५६ ॥ तच दश्यं स्वप्नविधिमं सर्वधर्म-शूर्यं चिद्योमेव । यतस्तन्न मनागपि धर्मी न विद्यते । बस्तुनः परमार्थभूतस्य चिद्योश्रो विकारी सधमोध्याकारोऽविद्यामछा-हप्रतीयत इल्वर्यः ॥ ५७ ॥ प्रतीतितः सधमोपि असवर्मकम् । दिवादिषष्टानसन्मात्रादनन्यमेव अज्ञदशा इत्यं जगदाकारेण निरन्तरमेव स्थितम् ॥ ५८ ॥ न निद्यते खाधिष्टानात् । तस्माचिद्योममावर्वन परिकिष्टस चिक्नोम्रो मगनाद्यि शून्य-लमतिसुक्ष्मत्वं सिद्धमित्वर्थः ॥ ५८ ॥ ६० ॥ ननु स्वप्नकाले श्वत्सत्यं पुरादिजीयंन रचितमस्तु । 'अथ रयान् रथगोगा-न्पथः राजते स हि कर्ता' इति श्रुतेरिसाशङ्क्याह—नित्वित । 'न तत्र रथा रथयोगाः पन्थानो भवन्ति' 'मायामात्रं तु कारुर्वेनानभित्र्यक्तस्वरूपलात्' इत्यादिश्रतिसूपैः स्वप्ने सृष्टि-प्रतिषेधान्मायामात्रखप्रतिपादनःधिति भावः ॥ ६१ ॥ ननु स एवायं देयदत्तसादिदं पूर्वदृष्टमेव महुद्वमित्याद्यवाधितप्रत्य-मिज्ञादिना स्वप्नेऽपि पदार्थाः सत्याः सन्तु तत्राह—स्वप्ने चेति । तदिदमिति प्रसमिज्ञायमानस्य गृहादार्थस्य हृदयकण्डनः छिच्छि-द्रादिदेशे अत्यन्तमसंभवेन प्रत्यभिद्याया असंभवात् । अर्था-संभवे तद्रोचरसंस्कारस्पृत्योरप्यसंभवः साठ एवेति भावः॥६२॥ तसादसंभवादेव प्रसिद्धरमृत्यादिकं त्यक्ला बद्धासंविद एव निदादोषायन्यथाभानं तस्यव जाप्रदृष्टार्थसाददयं कल्पयिला अनुभवव्यवद्वाराभास इव स्मृत्यादिसादश्यमपि कल्पयिला स्मृत्यादितापि मृढैहहितेत्यभ्यपेयमिति शेषः ॥ ६३ ॥ सा-दृश्यादिष सेवेयं छहरी सेवेयं दीपज्वालेखादिप्रत्यभिक्षात्रमा

तसादेतत्रयं त्यवन्या यद्धानं ब्रह्मसंविदः । तस्य रुपार्थसार्द्यानमृद्धेः स्मृत्यादितोहिता ६३ यथा यत्रेव लहरी वारिण्येति पुनः पुनः। तर्त्रवैति तथा तद्धदनन्या खे परे जगत्॥ દ્દય્ર विधयः प्रतिपेधाश्च सर्वे एव सदैव च । विभक्ताश्च विमिश्राश्च परे सन्ति न सन्ति च ६५ तसात्सद्रहा सर्वोत्म किमियात्र न विद्यते । सेत्र सत्तेच सर्वातम चेतद्धंतदातमकम्॥ દ્ધ भ्रान्तस्य भ्रमणं भूमेर्न भूभ्रान्तय वा गणः। न शाम्यति हातुर्गप तथाभ्यासं विनात्र हक् ६७ शास्त्रस्थास्य तु यन्नाम वादनं तद्विनापरः। अभ्यासो दृश्यसंशान्त्ये न भृतो न भविष्यति ६८ न जीवन मृतं चिनं रोधमायाति संसृतेः। अविनाभाविदेहत्वाद्वोधास्त्रेतन्न पश्यति ॥ દ્દQ सर्वेदेवाविनाभावि चित्तं हृदयदारीरयोः। इह चामुत्र चैतस्य बोधान्तं शाम्यतः स्वयम् ७०

स्रोके प्रशिद्धाः सन्तीत्याह—यथेति । कल्पनाधिष्ठाने खे चिदाकाराविषये अनन्या नतु कल्पनाविषयेऽपि तथा खप्तेऽपि । तद्भत् सर्गादी जगद्वि बोध्यमिल्वर्थः ॥ ६७ ॥ कल्पनामात्र-लादेव वस्मणि 'रा दापार पृथिती वासुतेगाम्' 'यस्मन् दौः पृथिता सान्तरिक्षनीतं मनः सह प्राप्तित्र सर्वेक्तमेवैकं जानथ अत्मानम्' इखादिवमद्विषयो 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि-जनस्प्रतिषेत्राधाविरोधेन समावेशं समन्त इत्याह—विवय इति ॥ ६५ ॥ धैव सत्ताः ब्रह्मसत्तेव सर्वात्मेत्वेत्तरसर्वमध्येतदारमकं सदात्मकं सर्वात्मकं च ॥ ६६ ॥ अतएव तत्र सर्वेषां वादिनां सर्ववस्पनानामप्यविरोधन समावंशस्यक्तकत्पनस्य मोक्षश्रो-पपदात इत्यारायेनाह—आन्तस्यति । क्रीडार्थ भ्रान्तस्य भ्रमतो याउस्य वृक्षगिरिनदादिगणैः सह भूमेश्रमणमन्येषां तु भूर्न भ्रान्तिवेत्युभयमपि सदात्मकम् । श्रमत्वे बालस्य भून असतीति ज्ञातुरपि स्थेयीभ्यासं विना उपात्ता श्रम-णहरू न शाम्यति तद्वजगद्धान्तिरमपीति भावः ॥ ६७ ॥ हर्यम्रान्तिशान्त्युपयुक्तः प्रकृते कस्य को वास्यासः कार्यस्त-माह—शास्त्रस्वेति । अस्य मोक्षोपायस्य शास्त्रस्य यत्तरवर्शं गुढे सेवादिना वशीकुत्य वादनं व्याह्यापनं तत्पूर्वकथवणाभ्यासं विना अपरः अन्यः ॥ ६८ ॥ नतु किनेतच्छास्राभ्यासेन योग-शास्त्रप्रसिद्धचित्तनिरोवादेव इद्यादर्शनलक्षणप्रसिद्धिरित्याश-🗱 🗲 नेति । भनेदेतदेवं यदि चित्तनिरोधः सिध्येत् तत्त चित्तं संस्टलिमामाविखहपलाजामत्खप्राम्यां विलयाम्मतं वा यन्नेनापि निरुष्यमानं रोवं नायाति किरवेत-च्छास्राभ्यासाधीनाद्वीचादेव वाधितमेत्तरसंस्रति न पश्यतीत्येत-दभ्यास एवोपाय इलार्थः ॥६९॥यथाचित्तं संस्टलविनामावि एवं द्दबह्या संस्तिरपि चित्तशरीरोभयाविनाभाविनी । तंच द्दब्दा-रीरे एतच्छास्नाभ्यासादसाते प्रतिबन्धे इहजनमन्येव तत्त्वबोधा-

चित्तदृरयदारीराणि श्रीणि शाम्यन्ति बोधतः। पवनस्पन्दसैन्यानि कारणाभावतो यथा ॥ ७१ कारणं मोर्ख्यमेवास्य तद्यासादेव दास्त्रतः। किंचित्संस्कृतवुद्धीनां वाचितादेव शास्यति॥ ७२ अवुद्धमुत्तरयन्थात्पूर्व पूर्व हि बुध्यते । म्रन्थं पदपदार्थम्नः खेदचान्न निवर्तते ॥ ७३ उपायमिद्मिघातो विद्धि शास्त्रं भ्रमक्षये । अनन्यसाधारणतां गतमित्यनुभूयते ॥ ८४ तसादसान्महाशास्त्राद्यथाशकि विचारयेत्। भागो हो भागमेकं वा तेन दुःखक्षयो भवेत् ७५

आरेषेयभिवमिति प्रमादाश्चेत्र रोचते। तद्यदात्मविक्षानशास्त्रं किचिद्विधारयेत्॥ 30 अनर्थनाविचारेण वयः कुर्यान्न भसासात्। बोधेन ज्ञानसारेण दृदयं कर्तव्यमात्मसास् ॥ 60 आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नेन स्थयते। नीयते तह्था येन प्रमादः सुमहानहो॥ ૭૮ अनुभूतमपि च नो स-

हुश्यमिदं द्रपृसहितमपि। स्वप्ननिजमरणवान्ध्रव-रोदनमिव सदिव कचितमपि॥

इत्यार्षे श्रीवागिष्टमहारामायणे वा० मो० नि०उ०अवि० वि०परमार्थगीतास्त्रद्वेत्युक्तिनीम पश्चसप्तत्यधिकशततमः सर्गः॥१७५॥

षद्सप्तत्यधिकदाततमः सर्गः १७६

श्रीराम उनाच। जगन्ति सन्यसंख्यानि भविष्यन्ति गतानि च। तत्कथाभिः कथं ब्रह्मन्त्रवोधयसि मामिमम्॥ ٤ वसिष्ट उवाच । जगत्स्वप्रेषु शब्दार्थसंबन्धोऽवगतस्वया ।

च्छाम्यतः । सतितु प्रतिबन्धे अभुत्र जन्मान्तरे वा प्रतिबन्ध-क्षये बोबोदयाच्छाम्यतः । तथाच भगवतो बादरायणस्य सत्रम् 'ऐहिकमप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्' इति ॥ ७०॥ पवनस्पन्दी तत्प्रयुक्तमेषसैन्यानि च यथा तत्प्रयोजकशुका-स्तोदयादिकारणापायाच्छाम्यन्ति तद्वदिखर्थः ॥ ७९ ॥ किंत-र्श्वत्र चित्तादिशिकस्य कारणं तदाह—कारणमिति । मौर्स्थ ब्रह्मारमभावावरिका अविद्या ॥ ७२ ॥ ननु वाचनमात्रेण कथ-मस्यार्थः सर्वी बुध्यते तत्राह्-अबुद्धमिति । न निवर्तते यदीति शेषः ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ भागमेकमर्धप्रन्थं वा ॥ ७५॥ ऋषिणा कृतमिदं शास्त्रं स्मृतिरूपं रमृतेश्व श्रुतिर्मूलमिति श्रुति-मेव विचार्थिण्याम इति बुद्धा प्रमादवशादिदं शास्त्रं न रोचते तत्तर्हि अन्य च्य्रुतिरूपमुपनिषद्भाष्यादिरूपमात्मज्ञानशास्त्रमेव वि-चारयेन लात्मशास्त्रविमुखो भवेदिल्यत्र नस्तात्पर्ये नलत्रैवाबह इत्यर्थः ॥ ७६ ॥ इ।नसारेण श्रवणाद्युपायेन यथाकथंचित्तत्त्व-बोधेन सर्वे दृश्यमात्मने देयमात्मसात्कर्तव्यम् । बाधमुखेनात्म-ना प्रसनाई कर्तव्यमिति यावत्। 'देये त्रा च' इति सातिप्रत्ययः। बाह्मणसादिदमनं कर्तव्यमितिवत् ॥ ७७ ॥ तत्रालसानुद्यो-जयति—आयुष दाते । खर्णादिराशिसहितैः सर्वरतैरिप प्रमादस्तरयेति शेषः ॥ ७८ ॥ इदं दृश्यं प्रत्यक्षमनुभूतमपि द्रष्ट्रा अन्तःकरणोपहितेन जीवेन सहितमपि खप्ने दैवाहुटे निज-मरणे परितो बान्धवैः कृतं रोदनमित्र सदिव कचितमपि नो सत् मिथ्यैवेति ब्रह्माद्वैतदिग्विजयिकिण्डम इत्यर्थः ॥ ७९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे

१ बहुपुरतकेषु आऋषेयमिति पाठ उपलभ्यते । उभयत्राच्या-

न नाम नच लोकेन व्यर्थ तत्कथनं ततः॥ २ या कथावगतात्मभ्यां शब्दार्थाभ्यां निगद्यते । बुध्यते सेतरा मान्तः सैवेह व्यवहारिणी॥ 3 यदा विदितवेदाः संस्निकालामलदर्शनः। भविष्यसि तदा तानि प्रत्यक्षेणैव भोत्स्यसे॥ 8

उत्तरार्धे पञ्चसप्तत्वधिकशततमः सर्गः ॥ १७५ ॥ स्वमवद्गान्ति सर्गादी ब्रह्माण्डाश्चिद्गाविति । अत्रार्थे ब्रह्मणा प्रोक्तं ब्रह्माण्डास्यानमीर्यते ॥ ३ ॥

यदि दृरयमसदिति दृशयाधेन चिन्मात्रपरिशेष एव पुरु-षार्थस्तर्हि समूलस्य वर्तमानस्यैव हर्यस्य जगतो बन्धतया तन्मार्जनमेवोपयुज्यते । नखतीतानागतानामप्रतीयमानानामव-र्तमानजगतामपि । तेषागप्रतीरीव बन्धसाप्रसक्तेस्तथा च तदु-पन्यासः शास्त्र व्यर्थ एवेलाशयन रामः शङ्कते—जगन्तीति॥१॥ वर्तमानदृश्यमात्रमेवोपन्यासाई नातीतं भविष्यद्वा किंचिदपीति लदाक्षेपो निष्कर्षे फलति । तत्तु न युक्तं पदपदार्थसंबन्धस्य व्याप्तिमहस्य च हष्टान्तप्तिज्ञादीनी चातीतव्यवहाराधीनत्वेन तदुपन्यासंविना विचारात्मकशास्त्रप्रवृत्त्यथोगात् । तस्मादतीता-नागतब्रह्माण्डा वर्तमानब्रह्माण्डान्तराणि च शब्दार्थसंबन्धप्रहा-दावनुषयोगात्रोपन्यसनीया इलेतावानाक्षेपः कर्नु युक्तश्चेद्खु ना-मेखनास्थया अभ्युपगच्छत्रिय भगवान्वसिष्ठ उत्तरमाह—जग-रखप्रेष्वित्यादिना । लोकेन एतच्छाखार्थश्रवणाधिकृतजनेन ॥२॥ अवगतात्मभ्यां निश्चितवाच्यवाचकभावाभ्यां व्यवहारिणी व्यव-हारोपयुक्ता नान्येति केवललौकिकबुद्धानुसारेण पर्यालोचने लया सम्यगाक्षिप्तमित्यर्थः ॥ ३ ॥ तत्त्वन्नेषु प्रसिद्धं त्रिका-लामलदर्शनं यदि पर्यालोचयिष्यति तदा सर्वत्र स्वस्थेव द्रष्टु-बादतीतानागतव्यवहितविप्रकृष्टानन्तब्रह्माण्डानां वर्तमानस्यास्य ब्रह्माण्डस्य च विशेषलेशस्याप्यभावात्रायं तवाक्षेप उत्थातुम-र्दतीत्याशयेनाह—यदंति । वर्तमानाया अपि तत्त्वदृष्टेरप-

र्षेखं समानम्.

स्त्रमे चिन्मात्रमेवाद्यं स्त्रयं भाति जगत्तया।
यथा तथेव सर्गादी नात्रान्यदुपपद्यते॥ ५
अणावणावसंख्यानि तेन सन्ति जगन्ति छे।
तेषां तान्व्यवहारीधान्संख्यातुं क इच क्षमः॥ ६
अत्रैव मे पुरा प्रोक्तं मित्पत्रा पद्मजन्मना।
पद्मरेणुमताख्यानं श्रणु तत्कथयामि ते॥ ७
पुरा पृष्टो मया ब्रह्मा जगज्जालिमदं कियत्।
क षा भातीति वद मे ब्रह्मोवाच ततः स माम् ८

श्रीव्रह्मोवाच । महीवेदं मुने सर्वे जगदित्यवभासते। सतामनन्तं सन्वेन जगन्त्रेनासतामपि॥ द्युभं ममेदमाख्यानं शृजु श्रवणभूषणम्। ब्रह्माण्डपिण्ड इत्युक्तं ब्रह्माण्डाख्यानमेव च ॥ १० अस्ति खे खादनन्यात्मा चिद्योमपरमाणुकः । शुन्यरूपमिवाकारी शुद्धः स्पन्द इवानिले॥ ११ सोऽपश्यदानमना स्वप्त इच जीवन्वमान्मनि । शून्यरूपमिवाकाशं पवनः स्पन्दनं यथा ॥ १२ आकाशरूपमजहदेव जीवस्तृतः स्वयम् । अपस्यदहमित्येच रूपमाकाशरूपकम्॥ १३ अहंकारस्त्वहंबुद्धिरित्येवाषद्यदात्मनि । एकनिश्चयनिर्माणसयी मायानुरूपिणी॥ १४ बुद्धिर्मनोहमित्येवं स्त्रप्ते पद्यदसन्मयम् । नमयन्त्यात्मनात्मानमत्रिकरुपं विकरपनैः।। १५ अपर्यत्तन्मनः स्वप्ते देहे पञ्चन्द्रियं ततः। अनाकारं घनाकारं स्वप्नादित्वमिवाबधीः॥ १इ दद्श स मनोदेहो वपुरित्रभुवनात्मकम्। खात्मा खात्मेय निर्भित्ति भित्तिभासुरमाततम्१७ अनेकभूतवलितं नानास्थावरजंगमम्। कलनाकालकलितं कल्पितान्योन्यसंगमम् ॥ १८ स्वभे प्रत्येकमेवात्र पदयत्यादरीविभ्यितम्। इव त्रैलोक्यनगरं नवरङ्गमनोहरम्॥ १९ अथ प्रत्येकमत्रापि नवरङ्गमनोहरम्। त्रिजगद्वेत्ति हृद्ये स्वादर्श इव विम्बितम् ॥ २० परमाणोः परमाणोरिति सन्ति तन्दरे। अतनृति जगन्त्युश्चैर्घनानीय च तान्यपि॥ २१ अविद्ययमनन्तेयमविद्यात्वेन चेतिता। ब्रह्मत्वेन परिश्वाता भवति ब्रह्म निर्मलम् ॥ २२ एवं द्रष्टापि यः स्वप्नजालं दृष्टे न किंचन। कोऽत्र द्वष्टा कतो दृश्यं क द्वेतं क च कारणम् २३ सर्वे निःशान्तमाभातं खात्म निर्भित्ति केवलम्। ब्रह्मात्मनि स्थितं स्वच्छमाचन्तपरिवर्जितम् ॥ २४ ब्रह्माण्डलक्षनिचयाः परमात्मनीति नित्यं स्थिता निपुणमन्यवद्प्यनन्ये। वारिण्ययारितविसारितरङ्गवेगा-होलं स्थिताम्बुपरमाणुचया यथैते॥ २५

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामाथणे वा॰ मो॰ नि॰ उ॰ ब्रह्मगीतासु ब्रह्माण्डोपाख्यानं नाम पद्रसप्तत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १७६ ॥

र्यालोचनेन वृथात्वापादनात्वरिहासेन भविष्यति भोतस्यसे इति च मथिष्यत्त्वारोपेणोक्तिः ॥ ४ ॥ तत्त्वविदो वर्तमान-ब्रह्माण्डान्तरेषु भविष्यद्भवाण्डेषु च पुनरावृत्तिशङ्कावारणाय त्तेषामपि स्वप्नप्रधानसम्बन् मृटःज्ञानबोधेन बाधप्रतिपादनाय तेऽपि शास्त्रे अवस्यमुदाइरणीया एवेसाह—स्वप्ने इति । सर्गादी अतीतानागतादिसर्वसर्गादी इत्येतावानशस्तत्राप्यप-युज्यते नान्यत्तद्वैचित्र्यं प्रकृतोपयुक्तमत्रोपपद्यत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ तस्कृत इति चेदसंख्यसेन तद्वैचित्र्येयसायाः शास्त्रे वर्णन यितुमशक्यस्वादिसाशयेनाह—अणावणाविति ॥ ६ ॥ अत्र , अणावणावसंख्यानीत्युक्तेऽर्थे पदारेणुमता पदापरागकीणंदहेन मत्पित्राऽऽह्यानं मे श्रोक्तं तच्छुणु ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ तस्य आख्यानस्य द्वे नामनी आह्-अह्याण्डपिण्ड इति। थन्वर्थनाम्ना उक्तं प्रसिद्धम् ॥ १० ॥ तदेव वक्तमार्भते---अस्तीत्यादिना । अनिले शुद्धः सान्द इव स्वसत्तामात्रेण जग-बेष्टाहेतः ॥ १९ ॥ स चिद्योमपरमाणुकः स्वतन्त्रादर्शननि-ब्रावशात्सप्त इवारमनो जीवलं समष्टिजीवलमपर्यत् । यथा वसुभूतमेवाकाशं स्वमसदेव श्रन्यत्वं पश्येत्तद्वत् । यथावा पवनः स्वं सम्दनं पश्येत्तद्वन्न ॥ १२ ॥ तर्हि स कि परिणामी नेखाह-आकाशकपमिति । आकाशक्षपमिकारितामसङ्गतां

पूर्णतां सुक्ष्मतां च । आकाशरूपकमाकाशप्रतिममद्दमित्येव जीवः खं रूपमपद्यत् ॥ १३ ॥ सः अहंकाररूपस्खद्दमात्मनि बुद्धिरिलेव रूपमपद्यत्। साच बुद्धिरेकनिश्चयनिर्माणमयी मायायाधानुरूपिणी असदर्थभ्रमदायिलादिलर्थः ॥ १४ ॥ विकल्पनैर्विकल्पाभासारीपणैरात्मना आत्मानं नमयन्ती न्य-म्भावयन्ती ॥ १५ ॥ १६ ॥ स चिष्योमपरमाणुक इत्थं मनोदेहसमध्यात्मकं संस्त्रिभुवनात्मकं विराद्वपुर्ददर्श ॥ १० ॥ विराद्भपूर्वर्णयति -- अनेकेति ॥ ५८ ॥ व्यष्टिर्भावभेदऋल्पनेन प्रत्येकं त्रेलोक्यद्रष्ट्रतायां दष्टान्तमाह-स्वित्रे इति । नवरङ्गाः द्रष्टा दर्थ दृष्टिभाका भीग्य भीगः कर्ता कार्य कियेति तिस-स्त्रिपुट्यस्तिर्मनोहरम् ॥ १९ ॥ तद्दार्धान्तिकमाह—अयेति । प्रत्येकं प्रतिजीवम् ॥ २० ॥ एवं जीवमेदेन निविक्तस्य चित्प• रमाणोः सर्वस्यापि तनुनि अतिसुक्ष्मेऽप्युदरे इति वर्णित-रीत्या कल्पितानि अतनूनि महान्ति जगन्ति सन्ति । तान्यपि उचैजीवघनैः पृथ्यादिघनैश्व पनानीव ॥ २१ ॥ इयं च सर्वा खतस्वाज्ञानस्था अविवैव । सा ज्ञानेन निवारिता चेहुहा निर्मलम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मत्वेन दधे सति यो जगत्खप्रजालं द्रष्ठा सोऽपि न किंचन ॥ २३ ॥ निर्मित्ति निर्मेदं ब्रह्म आत्मनि खखरूपे स्थितम् ॥ २४ ॥ तथाच परमात्मनि यावदशान-

सप्तसस्यधिकज्ञततमः सर्गः १७७

દ્

श्रीराम उवाच ।
अकारणकमेवेदं जगह्रह्म परात्पदात् ।
यदि प्रवर्तते नाम स्वमसंकल्पनादिवत् ॥
तदकारणतः सिद्धः संभवेऽन्यद्कारणम् ।
कथं न जायते यस्तु क्रचित्किचित्कदाचन ॥
यसिष्ठ उवाच ।

यद्यथा किल्पनं येन स संपद्यति तत्तथा। कल्पनेवान्यथा न स्यात्तादकारणविन्युतेः॥ यथेदं किल्पतं दृद्यं मनसा येन तन्तथा। वेत्त्यसौ यादगन्येन किल्पतं वेत्त्यसौ तथा॥ कल्पनाकल्पनात्मेकं तद्य ब्रह्म स्वभावतः। कल्पनात्मेदशं जन्तुर्यथा केशनखादिमान्॥ अकारणपदार्थत्वं सकारणपदार्थता। ब्रह्मणि द्यमप्यस्ति सर्वशत्त्यात्म तद्यतः॥ यतः स्याद्रह्मणस्त्वन्यत्कनिर्दिकनिरकदान्वन। तत्कारणविकल्पेन संयोगस्तस्य युज्यते॥

निद्रास्ति तावत्परमात्मनि ब्रह्माण्डलक्ष्मित्या इति वर्णित-प्रकारेण निस्ममनन्ये अपि अन्यविस्थताः । यथा वारिणि समुद्रे एते अवारितविसारितग्र्यवेगाविमित्ताक्षेतं स्थितस्या-म्बुनः परमाणुचया असंख्याताः स्थितासद्वदिखर्थः ॥ २५ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्षे पट्सप्तस्यधिकशतनमः सर्गः ॥ १७६॥

> सकारणं कल्पनया वस्तुवृत्या त्वकारणम् । जगरस्वप्रसमं मोहाद्वोधाष्ट्रह्मेति वर्ण्यते ॥ ३ ॥

अकारणक एव खप्रसमोऽयं सम इति बहुशी यद्वर्णितं तत्र रामः सैस्यधान्यादिकार्यस्यापि तर्हि कृषितृष्ट्यादि कारणं विनै-बोत्पत्तिः स्वादित्युत्पत्तिप्रसङ्गं शङ्कतं-अकारणमिति द्वाभयाम् ॥ १ ॥ तत्तर्हि अकारणत एव सर्वाभिछिषतसिद्धेः संभवे अन्यरसस्यधान्यादिकमपि वस्तु कृषीवलानामकारणकं कृषिवृष्टि-यीजवापादिकारणं विनेव कर्श न जायते इक्षर्यः ॥२॥ न वर्य व्यवद्दारव्यवस्थापकं काल्पनिकं कार्यकारणभावं बीजाक्करांदर्वा-रयामः किंतु जगत्सत्यलप्रराजनेन तत्त्वज्ञानवैयर्थ्यापादकं ब्रह्मातिरिक्तं अधानपरमाण्वाद्यश्रीतं वादिभिः कल्पितं कारणं निराचक्ष्महे । जगतो ब्रह्मविवर्तमात्रलप्रसिख्या तत्त्वज्ञानेन बाधे केवल्यसिद्धिर्यथा स्यादितीलाशयेन वसिष्टः समाधते— यधयेति । अनादिव्यवहारे सेन यदायथा रडाध्यासेन कल्पितं स तत्तथा कार्य कारणे वा सर्व पदयति । अन्यथा व्यवहा-रेऽपि व्यावहारिकनियमापलापे कापि कल्पना न स्यादित्यन-भ्यासेनैव सर्वमुक्तिप्रसङ्ग इत्यर्थः ॥ ३ ॥ अतएव कल्पकबु-ब्धनुसारेण व्यवस्थितमेव वस्तु अनुभूयत इत्याह-यथेद-

१ सतुषातुषत्वाभ्यां सस्यथान्ययोर्नेदः.

यत्र सर्वमनायन्तं नानानानातम भासते। ब्रह्मैय शान्तमेकात्म तत्र किं कस्य कारणम् ॥ नेह प्रवर्तते किंचित्र च नाम निवर्तते। स्थितमेकमनाचन्तं ब्रह्मेय ब्रह्म खात्मकम् ॥ Q किं कस्य कारणे केन किमधे भवत् क वा। किं कस्य कारणं केन किमर्थं मास्त् वा कचित् १० नेह शुन्यं न वा शुन्यं न सन्नासन्न मध्यता। ३ | विचते न महाशुत्ये न नेति न न नेति च ॥ 88 इदं न किंचिर्तकचिद्वा यन्नामास्त्यथ नास्ति वा। सर्वे ब्रह्मेय तद्विहि यन्त्रेयात्रथेय तत् ॥ १२ श्रीराम उवाच । अनज्ज्ञविषये ब्रह्मन्कार्ये कारणसंभवे। किमकारणतातम स्यात्कथं वेति वद प्रभो ॥

किमकारणतात्म स्यात्कथं वेति वद् प्रभो ॥ १३ यतिष्ठ उवाच । अतज्ज्ञो नाम नास्त्येव तावत्तज्ज्ञजनं प्रति । असतो त्र्योमवृक्षस्य विचारः कीदशस्ततः ॥ १४

मिति । तथाच निरालम्बनवादनिष्कर्षे भट्टवार्तिके उदाह-तम्—'परित्राद्कासुकञ्चनामेकस्यां प्रमदातनो । कुणपः कामि-नी भक्ष्यमिति तिस्रो विकल्पनाः' इति ॥४॥ तर्हि कि निराळ-म्बनैय करपना, नेत्याह—कस्पनाकस्पनारमेले । नवाचिदंशः करपनात्मा चिदंशम्बकल्पनात्मा उभयघटितमिदं जगत्। यथा जन्त्रधेतनः प्रधाः केशनखाद्यचेतनघटितः प्रतीयते तद्वदित्यर्थः ॥ ५ ॥ अतएव वस्तुतन्तदशा अकारणपदार्थलं कल्यनादशा सकारणपदार्थतीत ब्रह्मणि द्वयमध्यविरोधेनास्ति ॥ ६ ॥ यद्यभयसमकं बद्या वर्ति कथमकारणकलपक्ष एव लया प्रतिष्टापितसात्राह-यत इति । तस्वज्ञानस्यैव सप्रयो-जनलात्तस्यदृष्टिमात्रपक्षपातेन स प्रतिष्ठापित इति भावः ॥०॥ ॥ ८ ॥ ९ ॥ वास्तवसकारणकलं किन्तकार्यानुस्पत्तितदुत्प-स्योर्द्वयोरप्यविरोधीत्याह—कि कसोति ॥ १० ॥ **शून्यत्यू**न्या-द्यमयविधमात्रश्रन्यलान्महाशून्ये । ननेति ननेति चेति तद्द-हेखः ॥ ११ ॥ सर्वस्थापि ब्रह्मै करस्यादेव शुन्यता न शुन्यै-करस्यादिलाह—इदमिति । यदस्मादेतोस्तद्रह्म अध्यारोपे सर्वानुगतलात्त्रथेव अपवादे सर्वतो व्याष्ट्रतलादतथैव च ॥१२॥ नन्वतत्त्वज्ञविषयौ यथा अध्यारोवाववादौ तत्त्वजैस्तद्वोधनाया-भ्युपगम्येते तथा प्रधानपरमाण्वादिप्रयुक्तकार्थकारणसंभवोऽपि कुतो नाभ्युपगम्यत इति रामः शङ्कतं-अतज्ज्ञेति । पृथि-व्यप्तेजोबायुरुक्षणे कार्यं तद्वयवपरंपरासीक्ष्म्यावधीनां परमा-णूनां सत्त्वादिगुणानां कारणानां वा संभवे कि जन्यद्रव्यमका-रणवत्स्यात् कथं वा अद्वितीयब्रह्मपरिशेष इत्यर्थः ॥ १३ ॥ भवेदेवं यदि अद्यातिरिक्तः प्रधानपरमाण्यादिकरूपकोऽतज्जाः प्रसिद्धेत् । यदा तु 'ब्रह्म बा इदमप्र आसील शत्मानमेवावेवहं

एकबोधमयाः शान्तविश्वानघनरूपिणः। तज्ज्ञास्तेषामसद्र्पे कथमर्थे विचारणा॥ १५ अतज्ज्ञत्वं च बोधेऽन्तरवभाति तदङ्गता। गते स्वप्नसुषुप्तेऽन्तरिव निद्रात्म केवलम् ॥ १६ तथाप्यभ्युपगम्यापि मूर्खनिश्चय उच्यते । मयेदमणु सर्वात्म यसाद्वह्य निरामयम् ॥ १७ सन्त्यकारणका एव सन्ति कारणजास्तथा। भावाः संविद्यथा यसात्करूपते छभ्यते तथा १८ सर्वकारणसंशान्तै। सर्वानुभवशालिनाम्। सर्गस्य कारणं नास्ति तेन सर्गस्त्वकारणः॥ १९ हृद्यंगमतात्यकमीश्वरादिप्रकल्प्यते । यदत्र किंचिद्वःस्वादु व्यर्थे वाग्जालमेव तत्॥ 30 अन्यथानुपपस्यैव स्वप्राभाकलनारते । स्थूलाकारात्मिका काचिन्नास्ति एइयस्य दृश्यता २१

ब्रह्मास्भीति तस्मात्तत्सर्वमभवत्' इति श्रुतिदर्शितदिशा ब्रह्मैव स्त्राज्ञानादतज्ज्ञं तस्यैव तत्त्वज्ञानोपयुक्तं शास्त्रं तदा तदध्या-रोपापवादन्यायेनेव तस्वज्ञाने उपयुज्यते न प्रधानपरमाण्याः दिकल्पनयेति वैषम्यमित्याशयेन वसिष्ठः समाधत्ते—अतज्ज्ञ इति ॥ १४ ॥ कुतो नास्ति तत्राह—एकवोधमया इति । 'तराथा सैन्धनधनोऽनन्तरोऽनाह्यः कृतस्रो रसघन एवं ना अरे अयमात्मा विज्ञानघन एव प्रज्ञानघन एव' इति श्रुतेरिति भावः ॥१५॥ ननु ब्रह्मातिरिकः अतज्ज्ञो नास्तीति कथं संभाव्यते । तार्किकैः पामरेश्व नाहं ब्रह्म नाहं ब्रह्मइश्वेति खात्मन्यतत्त्व-इलाइसलयोः प्रलक्षमनुभवादिलाशङ्ग ताहशानुभववले-नैव तदारमनामपि ब्रह्मत्वं समर्थयति--अतज्ज्ञलमिति । **अज्ञानादिसर्वजगदारोपाधिष्टानचिन्मात्रत्वं हि ब्रह्मलम् ।** त-बाहमइ इत्यनुभवितरि तार्किकात्मनि दुर्वारम् । यतः अञ्चत्वं प्रबोधरूपे आत्मन्यन्तरवभाति । यदि च वैशेषिककल्पितो जहोऽयमात्मा स्यात् कथमात्मन्यश्चानमन्तभवेत्। अतः अज्ञा-नाधिष्ठानचिद्रपद्धमस्मादेवानुभवात्सिद्धम् । जगभ केवरुमज्ञा-नात्मैव यतस्तद्वतां गतम् । यथा स्वप्नसुप्ते निदान्तर्निदा-इतां गते केवलं निर्देव न निदाव्यतिरिक्तं तयोः खरूपमस्ति तद्वत् । नच शानखभावे आत्मनि खभावविरुद्धमहानमारी-पमन्तरेण भवितुमईतीसङ्गानादिजगदारोपाधिष्ठानलस्यासादेः बानुभवात्सिद्धेरित्यर्थः ॥ १६ ॥ नन्बद्धानादिजगद्धिष्ठानत्त-कपं सर्वात्मत्वं ब्रह्मलक्षणं चेज्ज्ञानेन तद्याये तदब्रहीव स्यादि-व्याशक्काह—तथापीति । मूर्खप्रतिबोधनार्थं मूर्खबुद्धिमनुस्ख शुद्धबद्धान्युत्पादनार्थे मयेदं ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणमुच्यते। खरूप-छक्षणं तु तस्य शुद्धनिरामयानन्दैकरसारवं नाक्षानुभवपथमव-तरतीत्यर्थः ॥ १७ ॥ तथाचा इबुद्य नुसारेण जगदन्यदिव कुला बद्दाकल्पादी कारणमिति खीकारेऽपि यक्षानुरूपो बलि-रिति न्यायेन मिध्याभूतस्य प्रपश्चस्य तादशी मायैव कारणं तथापि न वास्तवाद्वेतक्षतिरित्याशयेनाइ—सन्तीति । अका-योग० १८७

स्त्रप्रपृथ्याचनुभवे किमबुद्धस्य कारणम्। चित्स्वभाषाहते बृहि स्वप्नार्थो नाम कीहशः॥ २२ स्वप्नार्थो हापरिक्षातो महामोहभरप्रदः। परिवातो न मोहाय यथा सर्गास्तथेव च ॥ **२३** शुष्कतर्कहरावेदााद्यद्याप्यनुभवोज्ञ्यितम्। कल्प्यते कारणं किंचित्सा मीरूर्यामिनिवेशिता २४ अग्नेरोप्ण्यमपां शैत्यं प्राकाश्यं सर्वतेजसाम्। स्वभावो वास्त्रिलार्थानां किमबुद्धस्य कारणम् कि ध्यातृदातलब्धस्य ध्येयस्यकस्य कारणम्। किंच गन्धर्वनगरे पुरे भित्तिषु कारणम्॥ 2,76 धर्माद्यमुत्रामूर्तत्वान्मृते देहे न कारणम् । देहस्य कारणं किंस्यात्तत्र सर्गादिभोगिनः॥ २७ भित्त्यभित्त्यादिक्षपाणां ज्ञानस्य ज्ञानवादिनः। किंकारणमनन्तानामुत्पन्नध्वंसिनां मुहः॥

रणकाः शुक्तिरजतमधनदीरज्ञुसपीदयः । तत्र संबद्धा कारण-जत्वेन करिपताः सकारणका अन्यथाकांत्पतास्त्वकारणका इति सन्मयगीरीगणपत्थोमीत्युत्रतावत्यत्वनानुसारेणेय तथा-वस्थेत्याह—संविदिति ॥ १८ ॥ तत्त्वहशा लखण्डाद्वयचि-न्मात्रमेव सदा नाणुमात्रमाप कदान्विद्विपर्यास इति न सर्भ-कारणं केनचिद्धि निरूपयितुं शक्यमित्याह्-सर्वेति । सर्वे-षामनुभवशालिनां तत्त्वविदाम् ॥ १८ ॥ अत्र ईटरी स्वप्नग-न्धर्वनगरमस्मरीचिकाप्रायः जगति सत्यत्यसाधनाभिनिवेदीन यद्वैशेषिकादिभिः 'मायां तु प्रकृति विद्यानगात्रिनं तु महेश्वरम्' इलादिश्रतिप्रसिद्धमायोपहितत्रह्मातिरिक्ततदक्षेश्वरप्रधानपर-माण्यादि किचित्कारणं प्रकरण्यते तत्प्रखद्धश्रुद्धिश्रद्धनुभवविरो-भाद्वेदान्तशास्त्रप्रसिद्धयुक्तिपराहतलाचे दःखादु लेके सप्परी-श्वरस्य भोक्तुजीवस्य वा पुरुषायीपर्ववसाविकाः उस् । अतः ए-वाभिज्ञानां हृद्यंगमत्या खक्तमहृद्यंगमध्यति एया कण्ठशोषं बारजारुमेव तदित्यर्थः ॥ २० ॥ प्रवोधयाः यदान्यथानुपप-**त्यापि जगस्बन्नाम**मेवति तद्वै न कारणकल्पनावका**रा** इसाह-अन्यथानुपपत्त्येति ॥ २३ ॥ तदेव विश्वदयति-खप्रेति । अबुद्धस्य अप्रबुद्धस्य ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ यद्यवर्यं कारणमपेक्षितं तश्चेज्ञातज्ञहास्तनाव एव तथास्ति-खाशयेनाह्—अमेरिति । अयुद्धसाङ्गानीपहितस्यात्मनः ख-भावो वा कारणमिति शेषः ॥ २५ ॥ मनोरथकल्पितनगरवन द्यातुभेदेन व्यवस्थिताकारल।दपि न सर्वसाधारणमेकं कारणं सुवचिमत्याशयेनाइ--किंमिति ॥ २६॥ धर्माधर्मयोस्तु अमू-तीलादेव मूर्तदेहाद्युपादानकारणना न संभवतीति कर्ममीमां-सककल्पमपि निराचये---धमोबीति । अभुत्र परलोके ॥२०॥ विज्ञानवादिमतेऽप्यमूर्वस्य क्षणिकस्य च विज्ञानस्य मूर्वा क्षणि-कोपादानता दुर्वचेत्वाह--मित्तीति। भित्तयः स्थूलकुड्यादयः अभित्तयसाद्विष्ठक्षणाः परमाणवः। उत्पन्नध्वंखिनामित्युत्तया का-यो**नुकूछव्यापारस्य** कार्यसंबन्धस्य च क्षणिकेष्वसंनयः स्वितः

કક

स्वभावस्य स्वभावोऽसा किल कारणमित्यपि। यदुच्यते स्वभावस्य सा पर्यायोक्तिकल्पना ॥ तस्मादकारणा भ्रान्तिभावा भाग्ति च कारणम्। अहे हे त्विखलं कार्य कारणाद्भवति स्थितम्॥ ३० यद्वत्स्वप्नपरिक्षानात्स्वप्ने द्रव्यापहारिभिः। न दुःखाकरणं तद्वजीवितं तत्त्वदर्शनात्॥ 38 सर्गादावेव नोत्पन्नं हृदयं चिद्रगनं त्विद्म्। स्वरूपं स्वप्नवद्धाति नान्यदश्रोपपद्यते ॥ 32 अन्या न काचित्कलना दृश्यते सोपपत्तिका। असाध्यायादते कसाद्रहाँयैपानुभृतिभृः॥ 33 अर्म्यावर्तद्रवत्वादि शुद्धे जलघने यथा। तथेदं सर्गपर्यायं ब्रह्मणि ब्रह्म भासते ॥ ३४ स्पन्दावर्तविवर्तादि निर्मेले पवने यथा। तथायं ब्रह्मपवने सर्गस्पन्दोऽवभासते॥ 34 यथानन्तत्वसाधिर्यशुन्यत्वादि महाम्बरे। स सम्रासम्बवोधातम तथा सर्गः परापरः ॥ ३६ एषु निदादिकेष्वेते सूपलब्धा अपि स्फूटम्। भावा असन्मया प्रयमेतेऽनन्यात्मका यतः॥

सर्गप्रलयसंस्थानान्येवमारमिन चिद्रने ।
सीम्ये स्वप्रसुषुप्ताभा शुद्धे निद्राघने यथा ॥ ३८
स्वप्रात्स्वप्रान्तराण्यास्ते निद्रायां मानवो यथा ।
सर्गारसर्गान्तराण्यास्ते स्वसत्तायामजस्तथा ३९
पृथ्व्यादिरहितोऽप्येष ब्रह्माकाशो निरामयः ।
अतद्वांस्तद्वदाभाति यथा स्वप्रातुभृतिषु ॥ ४०
स्थिता यथास्यां पश्यन्तां शब्दा घटपटाद्यः ।
जाताजाताः स्थिताः सर्गास्तथानन्ये महाचिति ४१
पद्यन्त्यामेव पश्यन्ती यथा भाति तथैव च ।
यथा शब्दास्तथा सर्गाश्चितैव चिति चिन्मयाः ४२
किंशास्त्रकं तत्र कथायिचारेविवासनं जीवितमेव मोक्षः ।
सर्गे त्वसत्येवमकारणत्वास्यत्येव नास्त्येव न नाम काचित् ॥ ४३
प्या च सिद्धेह हि वासनेति

सा बोधससैव निरन्तरैका।

स्वप्ने चिदेवेह पुरादिकपा॥

नानात्वनानारहितेव भाति

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठम० वा॰ दे॰ मो॰ नि॰ उ॰ वद्मगीतासु सत्यवर्णनं नाम सप्तराप्तत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १७७ ॥

॥२८॥ खभाववादिनश्चार्वाकस्य मतं निरस्यति—स्वभावस्येति । अङ्करादिखभावस्य कालक्षेत्रजलादिसहितवीजादिखभावोऽसी कारणिसति चार्वाकेर्यदुच्यते सा उक्तिरिप बीजखभावपदयो-रर्थभेदानिरूपणादञ्करस्वभावस्थेत्यत्रत्यस्वभावपदे वश्यर्थसंब-न्धस्यापि दौर्छभ्यान्नानार्थस्ये उभयत्रापि पर्यायतया सहप्रयोगा-नापतेः सकलमाधारणस्वभावत्वसामान्याप्रमिद्धेः प्रातिस्विकहः-पापरामर्शप्रसङ्गाचैकार्थ्याघटनाच निर्धिकोक्तिः सेत्यर्थः ॥२९॥ अतः परिशेषात्स्वामिमतं सिद्धं दर्शयति—तस्मादिति । तस्मा-त्सर्वे भावास्तरकारणं चेत्यांखलमञ्ज अकारणा भ्रान्तिरेय, हे त सन्मात्रात्मना स्थितमेव कार्य कारणात्तसादेव चिश्वमत्काररूपे-णाविभवति तिरोगवति च न तद्यतिरिक्तमणमात्रमप्यस्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥ अतएव इस्याकृतैरपराधकोटिभिरप्यन्तर्दुःखं न जायत इत्याह-यद्वदिति । स्तप्ने द्रव्यापहारिभिश्रोरैः कृतं ताडनबन्धनादिकं प्रबुद्धस्य स्वप्नमिध्यासपरिज्ञानायदृद्वःसाक-रणं पीडासंपादकं न तद्वतत्त्वदर्शनोत्तरं जीवनमपि दुःखाक-रणं नेत्यर्थः । 'सुख दुःख तत्कियायाम्' इति डाच् ॥ ३९ ॥ अन्यदुःखं तिविभित्तं च ॥३२॥ अस्माध्यायादते अन्या कलना अन्यादशी वादिनां कल्पना अत एषा जगत्कलना ब्रह्मानुभूति-रेवेत्यर्थः ॥३३ ॥३४॥ ३५ ॥ आसन्नो बोघारमा येन तथाविधं सत् स प्रसिद्धः सन् अकाश एव तथेखर्थः । 'न सन्' इति पाठे

सप्टम् ॥३६॥ कुतः सभेव तत्राह-एष्विति । यतः सदनन्या-रमका इत्यर्थः॥३७॥३८॥ अजः जन्मादिश्रन्यः परमात्मा खय-मेव सर्गात्सर्गान्तरात्मना आस्ते॥३९॥४०॥ पश्यन्त्यां सांप्रति-कसर्वदर्शनात्मनि । जाताः पूर्वतना अजाता भविष्यन्तः ॥४१॥ यदा अनन्ये तदा शब्दास्तद्र्थभूतसर्गाध ब्रह्मणि सन्तीत्युक्तिः पर्यन्यामेन पर्यन्ती तिष्ठतीत्यभिन्नायामेव मेदोपचारेणीप-चारिके आधाराधेयभावे पर्यवस्यतीत्याह-परयन्त्यामेवेति ॥ ४२ ॥ यदा शब्दाः सर्गाध्य चिन्मया एव तदा तत्र कृत-कार्य शास्त्रमपि शास्याभावान्मोक्षफरुस्य प्रथगसत्वान्निरसनीय-प्रपश्चमधाभावाच निवर्तत इलाइ-किमिति । शास्त्रमेव शास्त्रकं तत्र किम्। तत्रत्यकथाविचारैश्व किम्। यतः शास्त्र-फलं निर्वासनं जीवितमेव मोक्षः सिद्धः । एवं वर्णितरीत्या अकारणलारसर्गे असति नानाप्रपद्यरचना प्रत्यक्षं सरयेव काचित्र च नास्त्येवेति निःशेषं मार्जितेत्यर्थः ॥ ४३ ॥ या चैषा वास-नेतीह प्रपश्चवीजतया भाति सा नानात्वेन नानालरहिता बोध-सत्तैव भाति। यथा इह प्रत्यक्षे खप्ने चिदेव पुरादिरूपा भाति तद्वदिखर्थः ॥ ४४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्य-प्रकारी निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे सप्तसप्तराधिकशततमः सर्गः ॥ १७७ ॥

१ तरात्मास्ते इति पाठः.

अष्टसप्तत्यधिकदाततमः सर्गः १७८

8

ર

3

ઇ

દ્દ

S

श्रीराम उघाच ।
पदार्था हिविधाः सन्ति मूर्तामूर्ता जगन्नये ।
यत्र सप्रतिधाः केचित्केचिद्प्रतिधा अपि ॥
तानिहाप्रतिधानाहुर्नान्योन्यं वेल्लयन्ति ये ॥
इह सप्रतिधानाहुर्रन्योन्यं वेल्लयन्ति ये ॥
इह सप्रतिधानां तु इष्टमन्योन्यवेल्लनम् ।
नत्यप्रतिधक्षणणां केषांचिद्रपि किंचन ॥
तत्र संवेदनं नाम यदिदं चन्द्रमण्डले ।
इतः पतत्यप्रतिधं तत्सर्वेणानुभूयते ॥
अर्धप्रयुद्धसंकल्पविकल्पाद्धैतकल्पितम् ।
वदाम्यभ्युपगम्येदं नतु बोधद्शास्थितम् ॥
कः प्राणमाहतः क्षोभं जनयत्याशयस्थितः ।
प्रवेशनिगममयं कथं वा चद् मे प्रभो ॥
कथमप्रतिधं नाम वेदनं प्रतिधात्मकम् ।
इमं देहं चालयति भारं भारहरो यथा ॥

इहाऽमूर्तचिता मृत्चालने युक्तिरुच्यते । जगचामूर्तचिनमात्रमेन्दवाख्यानतः स्फुटम् ॥ १ ॥

'धर्मायमुत्रामृतीलानमृती देहे न कारणम्' इत्युक्ति श्रुला अमूर्तेन चिदारमना मृर्तस्य देहादेश्वालने उपपत्ति जिज्ञास-मानो रामस्तदनुपपत्ति दर्शयितुं भूमिकां रचयति-पदार्था इत्यादिना । मूर्तामूर्तब्रह्मणा दर्शितो विभाग इह नामिप्रेतः किंत प्रतिघातयोग्यतातदयोग्यतोपाधिभेदकृत इत्याशयेन वि-बिनष्टि-यत्रेति ॥ १ ॥ कुसुमकार्पासनवनीतादिमृदुतरप-दार्थानां कठिनशिलादिवत्प्रतिधायोग्यलादमूर्तलमुक्तं माभू-दिति विशेषणतात्पर्यं लक्षणाभ्यामुद्धाटयति-तानीति । षेष्ठयन्ति संशिष्यन्ति ॥ २ ॥ तदेव लोकप्रसिद्धा विशद-यति—इहेति ॥ ३ ॥ अस्त्रेवं प्रस्तुते किं तत्राह—तत्रेति । तत्र संवेदनं नामेदं यत्प्रसिद्धं तद्प्रतिघमेव । यद्यसादेतो-थन्द्रं पर्यतः पुरुषस्य इतः अस्मात्प्रदेशान्त्रयनरद्ग्यनुसारि-चित्तेन सह तदवच्छित्रसंवेदनानि चन्द्रमण्डले अप्रतिषं निःसं-क्षेषमेव पतन्ति । अतोऽमूर्तानीति सर्वेणापि चन्द्रदर्शिना खय-**मनुभूयत इत्यर्थः ॥ ४ ॥ नन्वयमःक्षेपस्ते प्रबुद्धदशा अप्रबु**-द्धरशा वा। आये मूर्तमेवाप्रसिद्धम् । द्वितीये अमूर्ता चिहेहादि प्रवर्तयतीत्यप्रसिद्धम् । देहाद्यहंकारान्तानां संपिण्डितानामेव लैकिकरात्मलानुभवादिलाशक्क्याह—अर्थेति । अर्थप्रबुद्धानां तृतीयचतुर्थभूमिकान्तरालस्थानां संकल्पविकल्पद्वेतेन कल्पित-मिदं जगद्भ्युपगम्य वदाम्याक्षिपामि । बोधदशा स्थितं परि-बिष्टं चिन्मात्रमभ्युपगम्य तु नाक्षिपामीत्यर्थः ॥ ५ ॥ यद्यपि मूर्तः प्राणमास्त एव प्रवेशनिर्गमवृत्तिभेदेन क्षुरुवो देहं प्रव-तैयतीति ध्रवचं, तथापि तस्य प्राणमास्तस्य क्षोमं को जनयति ॥ ६ ॥ नन जीवारमकाश्रदाभास एव तं जनविष्यति यदि सप्रतिघं वस्तु बेहत्यप्रतिधात्मकम्। कथं संवित्तिमात्रेण पुंसः शैलो न बलाति॥ ८

वसिष्ठ उवाच ।

विकासमथ संकोचमत्र नाठी हृदि स्थिता।
यदा याति तदा प्राणदछेदरायाति याति च॥ ९
बाह्योपस्करमस्त्रायां यथाकाशास्पदात्मकः।
वायुर्यात्यपि चायाति तथात्र स्पन्दनं हृदि॥ १०

श्रीराम उवाच।

बहिर्भस्तामयस्कारः संकोचनविकासनैः। योजयत्यान्तरं नाडीं कश्चालयति चालकः॥ ११ शतं कथं भवेदेकं कथमेकं शतं भवेत्। कथं स चेतना एते काष्टलोष्टोपलादयः॥ १२ कसान्न स्थावरं वस्तु प्रस्पन्यपि चमत्स्त्तम्। यस्तु जंगममेवेह स्पन्दि मात्रेव किं वद॥ १३

तत्राह-कथमिति । देहं प्राणादिदेहान्तम् ॥ ७॥ यदि अप्रतिघात्मकमपि संवित्तिमात्रं प्राणादिदेहान्तं नेष्ठति विष्टभ्य चालयति तर्हि शैलश्रलतिति पंसः संकल्प-संवित्तिमात्रेण शैलः कुतो न चाल्यते । याद्यशैलादेर्देहादेश्व को विशेष इलार्थः ॥ ८ ॥ यथा बाह्यसम बायोरयस्कारम्-स्त्रायां प्रवेशनिर्गमाभ्यां तमालकत्वं तथा प्राणवायोर्षि कण्ठा-दिनाळीबिळाकाशसंकोचविकासानुमितप्रवेशनिर्गमास्यां देहा-दिचालकरवं प्रख्यक्षमेत्र हृदयादिप्रवेशेष्वध्येवमेव बोध्यमित्यु-गृढाशयेन वसिष्ठः समाधते-विकासमिति द्वाभ्याम् । छेदैरिछदैः ॥ ९ ॥ आकाशहिछदं तदासादः तदाश्रयसर्वद्रव्यान्तःसंचारस्यभावो वायुर्यथा बाह्यायामयस्का-रोपस्करभक्षायां याति प्रथिशति आयाति निर्गच्छति ॥ १०॥ सर्यं वायुश्वालयति तथाप्ययस्कारादिचेतनाधिष्टितमुखायामेव तथा चालयति नान्यत्रेति चेतनमेवाचेतनस्य नियतव्यवहार्-चेष्टानिमित्तमवर्श्यं वाच्यम् । तत्र नाडी आन्तरं प्रविदय कश्चेतनथालयतीलर्यः ॥ ११ ॥ ननु 'शतं चैका च हृदयस्य नाड्यः' इति श्रुतौ विष्वक्प्रसृताः शतं नाड्यः श्रूयन्ते । तत्रैकशतं नाडीनां तासां द्वासिर्ध्वासप्ततिः प्रतिसाखं नाडी-सहस्राणि भवन्यासु व्यानः संचरतीति च । तत्र सर्वनाडीख े देहादिचलननिमित्तत्वे सर्देव सर्वाङ्गचलनं व्यानसंचारस्य स्यान्नेकैकहस्तपादाद्ययमनं नियतम् । यद्यच्येत एकेकाजीयमने उपस्थिते नाडीनां शतमपि तदक्षे एकं भवति सर्वाक्षचलने उपस्थिते त्वेकमपि सर्वाज्ञव्यापि नाडीशतं भवतीति तत्रा-प्याह—शतमिति । किंचामूर्वचैतन्यस्य संकेषा देहेऽपि नास्ति । आध्यासिकसंबन्धस्त काष्टलोष्टादिष्वपि तुल्य इति तेपि सचेतना बाच्यास्तच कथमिलर्थः ॥ १२ ॥ तथा स्थावर

वसिष्ठ उवाच । अन्तः संवेदनं नाम चालयत्यान्ववेष्टनम्। बहिर्भस्मामयस्कार इव लेकिऽन्चेष्टनम् ॥ १४ श्रीराम उवाच । वाय्यकादिशरीरस्यं सर्व सप्रतिष्ठं मुने। कथमग्रतिया लंबिचालयेदिति मे यद् ॥ १५ संविद्यतिघाकारा यदि सप्रतिघात्मकम्। चालयेदचलिप्यत्तद्रमम्भो यदिच्लया ॥ 28 सप्रतिघाप्रतिघयोर्मिथो यदि पदार्थयोः। वेहानं स्यात्तदिच्छेव कतुंकमंन्द्रियः क किम ॥ १७ सप्रतिघाप्रतिघयोः श्रेयो नास्ति बहिर्यथा। तथेवान्तरहं मन्ये शेषं कथय मे मुने ॥ 26 अन्तः भ्वयं योगिना वा यथैतद्तुभूयते । अमूर्तस्थेव मुर्तेन वेहानं नद्वद्याश्च मे ॥ १९ वशिष्ठ उवाच । सर्वसंदेहवृक्षाणां मुलकापमिदं वन्नः। सर्वेकतानुभृत्यथे श्रृण श्रवणभूषणम् ॥ २० नेह किंचित्र नामास्ति वस्त सप्रतिष्ठं कचित्।

वृक्षलताकाष्ट्रपापाणदि वस्तु चेतनं चेटप्रसारेद कस्मान्न । ्वमृत्कृतम्पि कस्तान मात्रा नियम्बा दहबद्धीगोपवीनन कुछाछादिना अधिदितं नकादीन नियतका**लसम्** किम् ॥ ३३ ॥ कार्यकार्णस्यामिन्या भोक्तृबीवसंविदो यत्रानादिप्रवार होपनीतकामकर्मवासनाप्रयुक्तस्तादारम्याध्यासस्तवालने भ्यासिकस्थतान्।तम्बद्यालिप्राणसंक्षेपद्वारा स्वात्र**स्थमन्यत्र पार**-तक्यमिति व्यवस्थेति गृहाभिसंधिनैय वसिष्ठ उत्तरमाह-अन्तरिति । जान्त्रविष्टनं नार्डासमूहम् । तदनुसारेणैव छोके सर्वोऽपि वहिश्रेष्टनं करोतांति शेपः ॥ १४ ॥ उत्तानार्थेन गुढामिसंहितन च खशङ्गवीजेन परिहतमिति गुढामिसंधि-रंव रामः प्रनः स्तराङ्कामन्त्रवद्धि—वाध्विति ॥ १५ ॥ विष-र्थये दोषमाह--संविद्ति । तत्तर्हि दूरं दूरस्थमप्यम्भः यातीति यन् तपितः पान्थरति च्छया अन्तिष्यत् खयमेवागमिष्यत् ॥ १६ ॥ तथाच बाह्यव्यवहारै सर्वप्राणिनामिच्छर्येव सर्वका-र्यसिद्धेः कर्मेन्द्रयघटाखुपकरणवैयर्ध्यं च स्यादित्याह्—सप्रति-घेति । तसिर्ह इच्छेब बहिर्वचनादानविहरणोत्सर्गादिकं करि-ष्यतीति शेषः ॥ १० ॥ वृद्धिः श्वेषामावेऽप्यन्तः श्लेषोऽस्त तत्र। इ---सप्रतिषेति । एवं स्वत्समाधानयुक्तिषु निरस्तासु दोषं युक्त्यन्तरं अभय नतु निरस्तमेव पुनः पुनः कथयेखर्थः ॥ १८ ॥ अववः विभिना लया स्वयं यथा एतत् अमूर्तस्यैव मृतेन वेष्टनं रोफे जखनात्रशिद्धगपि बोगबर्छनान्तर्यथा येनीपायनानुस्यते । अद्देखायः ॥ १९ ॥ एवमाक्षिप्ती विष्ठष्टः

सर्वदा सर्वमेवेदं शान्तमप्रतिघं ततम्॥ २१ शुद्धं संविन्मयं सर्वं शान्तमप्रतिधात्मकम्। पदार्थजातं पृथ्यादि स्वप्रसंकल्पयोरिव ॥ २२ आदावन्ते च नास्तीवं कारणाभावतोऽखिलम्। भ्रान्त्यात्मा वर्तमानापि भाति चित्स्वप्नगा यथा२३ चौः क्षमा वायुराकादां पर्वताः सरितो दिदाः। महता कारणौधेन बोधमप्रतियं विदुः॥ 58 अन्तःकरणभूतादि मृत्काष्ट्रस्यादि या । सर्व शुन्यमशुन्यं च चेतनं विद्धि नेतरत्॥ २५ तत्रैवमैन्दवाख्यानं शृजु श्रवणभूषणम्। मया च पूर्वमुक्तं तित्वचान्यद्मिवण्यते ॥ **२**६ तथापि वर्तमानोक्तप्रश्रबोधाय तच्छण्। यथेदं सर्वमधादि चिदित्येव तु भोत्स्यते ॥ २७ कसिंश्चित्प्राक्तनेनैच जगजालेऽभवद्विजः। तपोवेदिकयाधारो ब्रह्मिनदुरिति स्मृतः॥ २८ दश तस्याभवन्युत्रा जगतो दिक्तटा इव। महादाया महात्मानो महतामास्पदं सताम् ॥ २९

प्रागुक्तगृढामिसंध्युत्तरमपि वासनानां बाह्याध्यात्मिकपरिच्छे-दञ्जान्तिमात्रमूळलादनवस्थाप्रस्तं निष्कर्षासहं रामेण ज्ञानसु-द्वाटितमपि रामः खण्डयिष्यत्येवेति मन्यमानस्तद्रपेक्ष्य सिद्धान्तावलम्बनेनैवैकोत्तया सर्व समाधते-सर्वेति । तलाज्ञानमूलकलात्सर्वैकतानुभवलक्षण-संदेहानां तत्त्वसाक्षारकारानुभूत्यर्थमिदं वक्ष्यमाणं श्वविवत्यर्थः ॥ २० ॥ भवेदयं लदाक्षेपनिवहः सर्वोऽपि सप्रतिघयथार्थप्रपद्धाभ्युप-गमे । यदा लप्रतिघा चिदेव बाह्याध्यात्मिकवस्तुमेदभ्रान्सा-त्मनां अविद्यावशाद्विवर्तते तदा यथादर्शनमेव प्राणादिवेहान्त-संघाते आन्तरचैतन्यमात्राधीनश्रकनायध्यासी बाह्य घटादी त करावष्टमभाद्यधीन इति व्यवस्थित एवाभ्युपगम्यते न संकीर्ण इति समुदितामिश्रायः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ अतएव तस्व-विदो महता विवेकवैराग्यलागश्रवणमनननिदिध्यासनादिप्रय-लसाध्यकारणौचेन मूर्ताकारं सवासनं निर्मृज्य योः क्षमा नायुरि-त्यादि सर्वं जगदप्रतिषं बोधमात्रमिति विदुरित्यर्थः ॥ २४ ॥ चेतनमिति भावे ल्युद् ॥ २५ ॥ चिन्मात्रमेव सर्वजगन मूर्त किचिद्सीत्यर्थे प्रागुक्तमैन्द्वाख्यानं पुनः श्रावयितुं प्रतिजा-नीते-तत्रेति । पूर्व मनोमात्रं क्षणादित्युत्पत्तिप्रदर्शनायोकः मिह लन्यश्वन्मात्रमेव जगदिति निर्वाणनिष्कर्षार्थमिमवर्ण्यत इलर्थः ॥ २६ ॥ प्रस्तुतप्रश्रासमाधानप्रयोजनमेदादपि पौन-रुत्तयमदोषायेत्याह-तथापीति । अमूर्ता चिदित्येव प्रश्नसमा-धानं खया भोत्खते । कर्मणि ऌिट स्ये भष्भावः ॥ २७ ॥ प्राक्तनेनोत्पत्तिप्रकरणवर्णितप्रकारेण विशिष्टे जगजाले ॥ २८ ॥ जगती ब्रह्माण्डोदराकाशस्य दश दिक्तटा इव आस्पदं प्रतिष्ठा

स तेषां कालवशतः पिताऽन्तर्धिमृपाययौ। दशानां भगवान् रुद्ध एकाव्श इव क्षये॥ 30 तस्यानुगमनं चके भार्या वेधव्यभीतिमिः। अनुरका दिनस्येव संध्या ताराविछोचना ॥ 38 तयोस्ते तनया दुःखकिता विपिनं गताः। कृतीर्ध्वदेहिकारुत्यक्त्वा व्यवहारं समाधये ॥ ३२ धारणानां समस्तानां का स्याद्वनमलिखिदा। धारणा यन्मयाः सन्तः स्थाम सर्वेश्वरा वयम् ३३ इति ते तत्र संचिन्त्य वज्रपद्मासना दश। इदं संचिन्तयामासुर्निर्विद्ये कन्दरोदरे॥ पद्मजाधिष्ठिताशेषजगद्धारणया स्थिताः। भवाम पद्मजोपेतं जगद्रपमविद्यतः॥ 34 इति संचिन्त्य सद्ग्रह्मजगद्वारणया चिरम् । निमीलितदशस्तस्थुस्ते चित्ररचिता इव ॥ 38 अथैतद्वारणावद्वचित्तास्ते तावद्च्युताः। आसन्मासान्दशाष्टी च यावत्ते तत्र देहकाः ₹७ ग्रुष्काः कंकालतां याताः ऋचादेश्वविंताङ्गकाः। नाशमभ्याययुस्तत्र स्वायाभागा इवातपैः ॥ अहं ब्रह्मा जगचेवं सर्गोऽयं भुवनान्वितः। इति संपद्यतां तेषां दीर्घकालोऽभ्यवर्तत ॥ 38 तानि चित्तान्यदेहानि दशैकध्यानस्ततः। संपन्नानि जगन्त्येच दश देहानि वै पृथक् ॥ 80 इति तेषां चिदिच्छा सा संपन्ना सकलं जगत्।

॥ २९ ॥ क्षये महाप्रलये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ दुःखेन वियोग-दुःखेन कल्पिता व्याप्ताः ॥ ३२ ॥ धारणानां विषयविशेषा-कारितमनःस्थैर्यलक्षणानां मध्ये का किविषयिणी उत्तमधारणा स्यादित्यर्थः । सर्वेश्वरा हिरण्यगर्भभूताः ॥ ३३ ॥ निर्विष्ठे श्वापदाद्यपघातरहिते ॥३४॥ पद्मजेन चतुर्मुखेनाथिष्ठितं यद-शेवं जगद्वशाण्डं तदेवाहमिति स्थिता निश्वलाः सन्तः ॥३५॥ ॥ ३६ ॥ अच्युताः मनसो षृत्यन्तरधारणेन प्रच्युतिमप्राप्ताः ॥ ३७॥ कंकालतां शवताम् ॥ ३८॥ जगचेदमहम् । संप-इयतां ध्यायताम् ॥ ३९ ॥ दश चित्तानि दश देहानि दश ब्रह्माण्डरूपाणि जगन्त्येव ध्यानपरिपाकेन संपन्नानि तत्कतुन्या-येनेत्यर्थः ॥ ४० ॥ चिदेवेच्छा भूला जगत्संपन्ना । किंचि-रखभावहानेन नेखाह-अखन्तेति ॥४९॥ तथाच प्रतिज्ञातं सिद्धमित्याह्—संविन्मयलादिति ॥४२॥ नो चेतेषां किल दश-विधं त्रिजगज्जालं तत्किमात्म वा तत्त्वया उच्यतामिति पूर्व-त्रान्ययः । लया किमुच्यते तदाह--संविदिति ॥ ४३ ॥ चलनादिकं न विद्यत इत्यनुकृष्यान्वयः ॥ ४४ ॥ ऐन्द्बजग-त्साम्यं प्रस्तुतेऽपि जगति बोध्यमित्याह्-ऐन्दवानीति ॥४५॥ तुत्यलमेव दर्शयति--यथेति ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कृत इससंभावनोक्तिर्भिथ्यालद्योतनाय ॥ ४९ ॥ एतेन 'कथं सचे-तना एते काष्टलोष्टोपळादयः' इति प्रश्नोऽपि समाहित इत्याध-

अत्यन्तस्वच्छरूपेव स्थिता चाकारवर्जिता ॥ संविन्मयत्वाञ्जगतां तेषां भूम्यचलादि तत्। सर्वे चिदात्मकं विद्धि नोचेदन्यत्कमुच्यताम् ४२ किल यश्रिजगज्जालं तेयां किमात्म तत्तथा। संविदाकाशशून्यत्वमात्रमेवेतरन्न तत् ॥ ४३ विद्यते न यथा किंचित्तरङ्गः सलिलाहते। संवित्तत्वादते तद्वद्विद्यते चलनादिकम् ॥ ક્ષક पेन्दवानि यथैतानि चिन्मयानि जगन्ति से। तथा चिन्मयमेतेषु काष्टलोष्टोपलाद्यपि॥ ४५ यथैवन्दवसंकल्पास्ते जगस्वमुपागताः। तथैवाक्रजसंकल्पो जगस्वमयमागतः॥ 86 तसादिहेमे गिरयो बसुधा पादपा घनाः। महाभूतानि सर्वे च चिन्मात्रमयमाततम्॥ 80 चिद्दशाश्चिन्मही चिद्दशौश्चिदाकारां चिद्द्यः। नाचित्कचित्संभवति तेष्वैन्दवजगत्स्यव॥ चिन्गात्रखकुलालेन स्वदेहचलचक्रके। स्वरारीरसृदा सर्गः कृतोयं क्रियतेऽनिशम्॥ ઇર संकल्पनिर्मिते संगं इपदश्चेत्र चेतनाः। तदत्र लोएरीलादि किमेतदिति कथ्यताम्॥ 40 कलनस्मृतिसंस्कारा दथत्यर्थं च नोदरे। प्राड्यप्टं कल्पनादीनामन्यवार्थकलावताम्॥ ५१ तदाम संविदो धाम्नि मणिराशी मणिर्यथा। सर्वात्मनि तथा चित्ते कश्चिवर्थ उदेत्यलम् ॥

येनाह—संकल्पेति ॥ ५० ॥ कलनमनुभवः स्मृतिस्तजनक-संस्काराश्वकारादिच्छाकृतय इत्येते हि संविद्विशेषा अर्थगोचराः एतेषां हान्तरधीः प्रधन्ते । एतेच खोदरे अमिव्यक्तिन नमात्रमेव दधति न जडमर्थमतोऽप्यर्थाश्विद्रूपा एवेखाह — कलनेति । तत्कृतस्तत्राह--प्रागिति । यत इदं प्रागेवास्मा-भिर्विमृष्टं यत्कल्पनादीनामर्थश्चन्यानामन्यैव स्थितिः । अर्थ-कलावतां तरवावगाहनचमरकारशालिनामन्यैय चमरकृतिरिति। अथवा । ननु छोष्टादिकलनस्मृतिसंस्कारेकरूप्येण छोष्टादाचि-हूपभेव निश्चितं कथं तस्सचंतनमित्युपवर्ण्यते तत्राह-कल-नेति । कलनादयो छोष्टशैलादितस्यं चिन्मात्रमुद्रेण दधति नावगाहितुं राक्षवन्ति यतस्तदर्थकलावतां कल्पनादीनामृत्या-नात्प्रागेवास्तीति मृष्टं परामृष्टम् । अज्ञातविषये हि चक्षुरादिना कलनं, ज्ञातविषये हि स्मृतिसंस्कारें। ज्ञानसमानविषयो । अत-स्तेभ्यः पूर्वमहातविषयसिद्धिरवश्यं वाच्येति भावः । नचा-चिद्रुपं तृणकाष्ठशैरायद्वातं वक्तं शक्यम् । जडेष्वद्वानावरण-प्रयोजनाभावात् । अतो जडेभ्योऽन्यैव ब्रह्मसला तृणादीनां तत्त्वं सेवान्यथाकलनस्मृतिसंस्कारेजंडस्वेन भ्रान्खा विमृद्यत इत्यर्थः ॥५१॥ इतथ काष्ठलोष्टादयथेतना इत्याह—तदिति । यतस्तरारमं चिद्धामैव सर्वात्मनि संविदो धात्रि रामष्टिव्यष्टि-चित्ते मणिराशे। भणिरिव देवीध्यमानमन्तः स्थित्ना कथित्तु॰

अकार्यकरणस्यार्थी न भिन्नो ब्रह्मणः कचित् । स्वभाव इति तेनेदं सर्वं ब्रह्मेति निश्चयः॥ 43 यथाप्रवृत्तं चिद्वारि वहत्यावर्ततेऽवनी । स्वयक्षेनातितीवेण परात्मीयात्मना विना॥ 43 पद्मलीला जगदिव प्रकचिन्त जगन्ति यत् । चिन्मात्राद्वहाणः स्वस्मादन्यानि न मनागपि ॥ ५५ अज्ञातमनिरुद्धं च सन्मात्रं ब्रह्म खारमकम्। शान्तं सदसतोर्मध्यं चिद्धामात्रमिदं जगत्॥ ५६ यत्संविन्मयमद्यादि संकल्पजगति स्थितम्। तवसंविःमयमिति चकाऽन्नो न्नैर्विहस्यते ॥ 40 जगन्त्यात्मेव संकल्पमयान्येतानि बेस्ति खे। खात्मकानि नथेदं च ब्रह्म संकल्पजं जगत्॥ ५८ याबद्यावदियं हिष्टः शीघं शीघं विलोक्यते। ताचत्तावदिदं दुःखं शीव्रं शीव्रं विलीयते ॥ ५९ यावद्यावदियं दृष्टिः प्रेक्ष्यते निचराश्विता ।

तायत्तावदिदं दुःखं भवेत्प्रतिधनं धनम्॥ ६० दीर्घदुष्कृतमुढानामिमां इष्टिमपश्यताम्। संस्तिर्वज्रसारेयं न कदाचित्प्रशाम्यति॥ ६१ नेहारुतिने च भवाभवजन्मनाशाः सत्ता नचेव नच नाम तथास्त्यसत्ता। शान्तं परं कचित केवलमात्मनीत्थं ब्रह्माथवा कचनमप्यलमत्र नास्ति॥ ६२ आद्यन्तवर्जितमलभ्यलताप्रमुलः निर्माणमुळपरिवेशमशेषमञ्छम्। अन्तस्थनिर्गगनसर्गकपुत्रकीघं नित्यं स्थितं ननु धनं गतजन्मनाशम् ६३ सन्मात्रमन्तरहिताखिलहस्तजातं पर्यन्तहीनगणनाङ्गममुक्तरूपम् । आत्माम्बरात्मकमहं त्विदमेव सर्घे सस्तम्भरूपमजमीनमळं विकल्पैः॥

इस्रापे श्रीवासिष्ठमदारामायणे वा० दे० मो० नि० उ० ब्रह्मगीतास्नैन्द्वोपाष्ट्यानं नामाष्ट्रसप्तत्यधिकशतत्रमः सर्गः ॥ १७८ ॥

एकोनाशीत्यधिकशततमः सर्गः १७९

वितष्ठ उवाच । एवं चिन्मात्रमेवैकं शुद्धं सत्त्वं जगत्रयम् । संभवन्तीह भूतानि नाज्ञयुद्धानि कानिचित् ॥ तस्मात्कुतः शरीरादि वस्तु सप्रतिष्ठं कुतः ।

णकाष्ठरीलायर्थ इव उदेति । 'तदनुप्रविदय सच स्यचाभवत्' इति श्रुतेरिति भावः ॥ ५२ ॥ इतथ तृणकाष्टादिथेतनो यतो-यमकार्थकरणस्य तस्य सृष्टिः । यथा सृष्येस्य प्रभा तस्त्रभाव एव नाप्रकाशरूपा तद्धदिदं सर्व चेतनं ब्रह्मेवेखर्थः ॥ ५३ ॥ यथा निम्नावनी प्रवृत्तं वारि परात्मीयात्मना कारणान्तरेण विना खयक्रेन स्वत एव आवर्तप्रवाहतरक्षादिवैचित्र्येणावर्तते तथा चिद्रपीखन्वयः॥ ५४॥ यथा पाद्मे करवे भगवन्नाः भिषद्मकीला एव जगदिव कचित तद्वविस्मात्राहृद्धणः सकाशाज्जगन्ति प्रकचन्ति यत्ततोऽपि मनागपि ततो । नान्यानि ॥ ५५ ॥ अनन्यत्वे यत्फिटितं तदाह्—अजातिमिति । सद-सतोर्भावाभावयोद्वेयोरपि मार्जनान्मध्यम् ॥ ५६ ॥ अतएव तृणरीलकाष्टादयः अचेतना इति द्रष्टारो मूढा विद्वद्भिरपहस्यन्त इलाह—यदिति । वक्ता अज्ञ इति च्छेदः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मा चतुर्मुसस्तत्मंकरूपजलादपि स्वमनोराज्यविष्टमात्रसम्बुमेय-मित्याह-जगन्तीति । आत्मा स्त्रयमित ॥ ५८ ॥ किमर्थ-मियमेव दष्टिभंक्वयन्तरेः पुनः पुनः समर्थ्यते यावदिति । इयं प्रपष्टष्टिर्दढीकृतया चिरुष्ट्या यावद्यावद्विजो-क्यते तावतावदिदं दुःखं विलीयते ॥ ५५ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ अतो महाफललादियमेव दष्टिर्दर्जाकार्येत्यपग्रंहरति—नेहेति ।

यदिदं रहयते किंचित्तद्वतिघमाततम्॥ २ स्थितं चिद्योम चिद्योग्नि शान्ते शान्तं समंस्थितम्। स्थितमाकाशमाकाशं शिव्यंत्रीं विज्ञम्भते॥ ३

त्रिकारः । असत्ता तदभावः । आत्मनि परमार्थचित्स्वभावे । कचित । अथवा ब्रह्मातिरिक्तं कचनसप्यलमत्यन्तं नास्ति । कचधातुप्रवृत्तिनिमित्तामावादिव्यर्थः ॥ ६२ ॥ वचनस्याप्य-भावे बढ़ा की एक स्थितं तदाह-आग्रन्तेति। तद्रहा स्फटिकसा-म्भवदन्तस्थनिर्गेधनसर्गकपुत्रिकौथमपि अलम्या जगह्रतास्तद-प्राणि तन्मूळानि तन्निर्माणानि तन्मूळानां मूळे भूमी परिवेशाः प्रवेशाश्व यस्मिस्तथाविधमायन्तवर्जितं कालतोऽप्यजनमना-शमशेषमच्छमतिखच्छं चिदानन्दैकघनं निलं स्थितं कैवल्य-मिलार्थः॥६३॥ इदमेयामुक्तरूपं यदा तदा अन्तरहितमसंख्यम-खिलं विश्वतीत्र्याप्तं हस्तजातं पर्यन्तेष्यपि ही**नगणनान्यसंख्यानि** नक्षःश्रोत्रशिरःकण्टोद्रपादाद्यश्वानि च यस्य तथाविधमिद्मेव सर्वमासीत् । मुक्तह्यं व्यात्माम्बरात्मकं मुख्तम्भह्यं सन्मात्रं अजमीनं वर्णितस्फादिकसुरूतम्मरूपमिद्महमेव संपन्नमिति पुनर्विकल्पेरलं प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः ॥ ६४ ॥ **इति श्रीवा**-सिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे अष्टसप्तत्यधिकशतत्वमः सर्गः ॥ १७८ ॥

यावदिति । इयं प्रपद्म दिर्ह ही कृतया चिहुष्या यावद्यावद्विछो-क्यते तावतावदिदं दुःखं विळीयते ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६९ ॥ अतो महाफळलादियमेव दृष्टिर्ह कार्येत्युपसंहरति—नेहिति । इह जगलाकृत्यादयो विकल्पा न सन्ति । सत्ता द्वितीयो भाव- विन्ति ॥ १ ॥ अप्रतिषं ब्रह्मैवाततम् ॥ २ ॥ समं सर्ववैष-

सर्वे संविन्मयं शान्तं सत्स्वप्त इव जात्रति । स्थितमप्रतिघाकारं कासौ सप्रतिघा स्थितिः B क देहाचयवाः कान्त्रवेष्टनी कास्थिपञ्जरम्। च्योमेबाप्रतिघं विद्धि देहं सप्रतिघोपमम्॥ Ŀ संवित्करी शिरः संवित्संविदिन्द्रियवृन्दकम् । शान्तमप्रतिषं सर्वं न सप्रतिचमस्ति हि॥ દ્દ ब्रह्मच्योद्धः स्वप्नरूपस्यभावत्वाज्ञगतिस्यतेः। इदं सर्वे संभवति सहेत्रकमहेत्रकम् ॥ O न कारणं विना कार्य भवतीत्यूपपदाते । यद्यथा येन निर्णातं तत्तथा तेन उध्यते ॥ 4 कारणेन विना कार्य सद्घदित्यूपपद्यते। यथाभावितमेवार्थं संविदामोत्यसंशयम् ॥ ९ यथा संभवति स्वप्ने सर्वे सर्वत्र सर्वथा। चिन्मयत्वात्तथा जात्रस्यस्ति सर्वात्मरूपता ॥ सर्वात्मनि ब्रह्मपदे नानानानात्मनि स्थिता। अस्त्यकारणकार्याणां सत्ता कारणजापि च ॥ ११ एकः सहस्रं भवति यथा होते फिलैन्दवाः। प्रयाता भृतलक्षत्वं संकल्पजगतां गणैः॥ १२ सहस्रमेकं भवति संविदां च तथा हि यत्। सायुज्ये चक्रपाण्यादेः समैरिकं भवेद्रपुः॥ १३

| एक एव भवत्यध्यिः स्रवन्तीनां शतेरिष । | |
|--|----|
| एकएच भवेत्काल ऋतुसंवत्सरोत्करैः॥ | १४ |
| संविदाकाश एवायं देहः स्वप्त इवोदितः। | |
| स्वप्राद्रिवन्निराकारः स्वानुभूतिस्फुटोऽपि च | ६५ |
| संवित्तिरेवानुभवात्सैवान्नुभवात्मिका । | |
| द्रपृदश्यदशा भाति चिद्योमेकमतो जगत्॥ | १६ |
| वेदनावेदनारमेकं निद्रास्वप्तसुपुप्तवस्। | |
| वातस्पन्दाविवाभिन्नी चिद्योमैकमतो जगत् | १७ |
| द्रश दृश्यं दर्शनं च चिद्धानं गरमार्थलम्। | |
| शून्यस्वप्र श्वामाति चिक्कोमकमतो जगत्॥ | १८ |
| जगत्त्वमसदेवेदो भ्रान्त्या प्रथमसर्गतः। | |
| ्स्वप्ते भयमिवारोपं परिज्ञातं प्रशास्यति ॥ 💎 | १९ |
| पकस्याः संविदः स्वप्ने यथा भानमनेकथा। | |
| ं नानापदार्थरूपेण सर्गादी गगने तथा॥ | २० |
| ्वहुदीप गृहे च्छाया बहुधो भान्त्येकवद्यथा। | |
| , सर्वशक्तिसर्ववेका भाति शक्तिरनेकधा ॥ | २१ |
| यत्सीकरस्फुरणमस्युनिधौ शिवाख्ये | |
| ्व्योस्रीय वृक्षनिकरस्फुरणं स सर्गः। | |
| व्योस्येष दृक्ष्निकरो व्यतिरिक्तरूपो | |
| प्रह्माम्बुधां नतु मनागपि सर्गविन्दुः २ | ર |

इलापे वार महारामायणे वार देर मोर निर उर ब्रह्मर ब्रह्ममयलप्रतिपादनं नामैकोनाशीखिधकशततमः सर्गः ॥ १७९ ॥

भ्यनिर्भुक्तम् ॥ ३ ॥ सप्रतिषा असी लदुक्ता स्थितिः कास्ति देहतद्वय-यत्र ते शङ्का प्रसरेदित्यर्थः ॥ ४ वादिकं तु स्त्रप्रदेहविमन्गात्रमेव प्रबुद्धदेशेति तत्त्वदशेत्याह-केति । सप्रतिषस्प्र-द्यीव शहर न देहोपममिति कथंचिद्याख्येयं सप्रतिधाप्रसिद्धेः ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ प्रसक्षादिसिद्धस्य मृतस्य देहादेरपलापः साइसमिति तु न मन्तव्यमिखाह--- ब्रह्मत्रोन्न इति । सहेतुकं प्रसक्षादि-प्रमाणिखमप्यहेत्रकप्रमाणकं सकारणकमप्यकारणकं च। 'तस्य **त्रय आवस्थास्त्र**यः खप्नाः' 'नेह नानास्ति किंचन' 'यत्र नान्य-त्पइयति नान्यच्छुणोति' 'अथात आदेशो नेति नेति' इत्यादि-**अ्योव जगदपलापादिति भाषः ॥ ७ ॥ ब्रह्मणो** निर्विकाराद्र-युखाज्यगतः कारणान्तरस्याभावादनुत्पत्तिरेवेखपलाप उपपद्यते तरवहशा । भ्रान्तिहशा खनादिखात्कारणपरम्परासंभवाद्र-आप्रसिदेखोत्पत्त्यादिसर्वमुपपद्यत इति स्वस्वनिर्णयानुसारेणो-भयोपपत्तेरित्यर्थः ॥ ८ ॥ यौक्तिकदृशा तु कारणेन विनोत्पन्नं संविदात्मत्वेन लब्धं चेदं जगभाखन्तमसम्राप्यखन्तं सत् किंत्र सद्बदित्युपपद्यते इत्याह—कारणेनेत्यादिना ॥ ९ ॥ १० ॥ मायावादे तु सर्वमविरुद्धमिलाह—सर्वात्मनीति ॥१९॥१२॥ चक्रपाणेरादिपदाद्वहारुद्रेन्द्र चन्द्रसूर्यादेः सायुज्ये विपश्चिद्रपाः ह्याननिष्कर्षोक्तदिशा उपाधिमेलनद्वारैषयापत्ता । 'इन्द्रस्यैव सायुज्यं सठोकतामाप्रोति' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥ १३ ॥ भित्रसत्तयोः सत्तेक्यप्राप्तिस्त लोकेऽपि प्रसिद्धेत्याह—एक एवेति । ऋतुसंवत्सरोत्कर्राभन्नोऽपि ॥ १४ ॥ तथा एक एवा-त्मा म्रान्त्या देहादिनानात्वं प्राप्त इव भातीत्याह-संविदा-काश इति ॥ १५ ॥ द्रष्टुदरयदेशा आन्तविभागदेशा ॥ १६ ॥ यथा एकेंच निदा खप्ने वेदनात्मा सुपुर्ता अवेदनात्मेति द्वैवि-ध्वेऽप्येका तहत् ॥ १७ ॥ १८ ॥ यतो जगत्त्वमसदेवातः खप्ने प्रसक्तं व्याघादिभयमिव परिज्ञातमात्रं प्रशाम्यति ॥१९॥ गगने त्रह्मणि ॥ २० ॥ अनेकदीपप्रभाणागेकवद्भानमिव एक-स्या अपि मायाशक्तरनेकधाभानं संभावनीयमित्याह-बहु-दीपे इति । छायाः कान्तयः ॥ २१ ॥ व्योग्नि भ्रान्त्या वृक्ष-निकरस्फरणमिव शिवाख्ये अम्बुधी यत्सीकरस्फरणं स एवायं सर्गः । एतावांस्त विशेषः । यद्योप्ति वृक्षनिकरो व्योमधर्मग्र-न्यतानुविद्धःवेनास्फुरणादत्यन्तव्यतिरिक्तरूपः । ब्रह्माम्बुधौ स्फुरन्सर्गबिन्दुस्तु मनागपि व्यतिरिक्षरूपो नेखर्थः ॥ २२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणे तारपर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पुकोनाशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १७९ ॥

अशीत्यधिकशततमः सर्गः १८०

80

११

श्रीराम उवाच ।
इमं में संदायं छिन्धि भगवन्मास्करं तमः ।
भुवनस्येष भावानां सम्यश्पानुभृतये ॥
कदाचिदहमेकान्नो विद्यागेहे विपश्चिताम् ।
संसदि स्थितवान्यावत्तापसः कश्चिदागतः ॥
विद्वान्द्रिजवरः श्रीमान्विदेहजनमण्डलात् ।
महातपाः कान्तिगुतो दुर्वासा इव दुःसहः ॥
स प्रविद्यामियाद्याशु सभामाभास्वरद्युतिम् ।
उपविद्यासने तिष्ठक्षसामिरभियादितः ॥
वेदान्तसांख्यसिद्धान्तवादान्संहत्य सत्तमम् ।
सुलोपविष्टं विश्रान्तं तमहं पृथ्वानिदम् ॥
दीर्घाध्वना परिश्रान्तः सयत्व इव लक्ष्यसे ।
वदाद्य वदतां श्रेष्ठ कृत आगमनं कृतम् ॥
श्राह्मण उवाच ।

प्वमेतन्महाभाग सुमहायत्ववानहम् ।
यद्रधमागतोऽसीह तस्याक्रणय निर्णयम् ॥
वैदेहो नाम देशोऽस्ति सर्वसीभाग्यसंयुतः ।
स्वर्गस्याम्बरसंस्थस्य प्रतिविम्यभिवावनी ॥
तत्राहं ब्राह्मणो जातः प्राप्तविद्यश्च संस्थितः ।
कुन्दावदातद्नतत्वात्कुन्ददन्त इति श्रुतः ॥
अथाहं जातवैराग्यः प्रविहर्तु प्रवृत्तवान् ।
देवद्विजमुनीन्द्राणां संग्रमाच्छमशान्तये ॥
श्रीपर्यतमत्वण्डेहं कदाचित्प्राप्तवानहम् ।
तत्रावसं चिरं काळं मृदु दीर्घ तपश्चरम् ॥

द्वह रामोदिते कुन्ददन्ताख्याने गिरी तरी। प्रकृत्विनसापसस्य वरकाभान्तमीर्थते ॥ १ ॥

खयं प्रबुद्धो रामिश्वरं तत्त्विजिह्मास्था स्थमिश्वतस्य कुन्द-दन्तास्यद्विजस्य प्रस्तुतोपदेशश्वणात्तत्त्वप्रबोधोऽभूक वेति ससंदेहं गुरुमुखेन तं पृष्ट्वा विमार्ष्टकामो वितिष्ठं प्रख्याश्वर्थभूतं तदास्थानं वक्तं भूमिकां रचयंस्यं गुरुं प्रार्थयते—इमिनित । इममास्थानान्ते वक्ष्यमाणम् । यथा भास्करं ज्योतिर्भुवनस्य जगतः सर्वभावानां सम्यश्र्यानुभृतये तमिश्चिनित्त तद्वदिखर्थः ॥ १ ॥ संशयबीजं दर्शयितुमास्यानमारभते—कदाचिदिखा-दिना । यावित्थतस्तावत्तस्थानकाले इति यावत् ॥ २ ॥ ३ ॥ सभा द्विजसभाम् ॥ ४ ॥ तत्र अहं स्थाधीयमानान्वेदान्त-सांस्थ्यसिद्धान्तवादानुपसंहत्य तं तापसिद्धं वस्थमाणं पृष्टवान् ॥ ५ ॥ सयकः कंचिद्धं कच्धं बोद्धं वा यक्षवानिव स्थ्यसे ॥ ६ ॥ निर्णयं स्वत्संदेहनिवारणं मद्वाक्यमित्यर्थः ॥ ७ ॥ अवनी स्फटिकावनी ॥ ८ ॥ तत्र विदेहेषु ॥ ९ ॥ देव-द्विजमुनीन्द्राणां स्थानानीति श्रेषः ॥ १० ॥ अखण्डेहमिति पूर्षान्ययि । अखण्डेऽहं तत्रावसमिति वा । मृदु अनुमं

तत्रास्त्यरण्यं विदितं मुक्तं तृणवनादिभिः। त्यक्ततेजस्तमोभ्रादिभूमाविच नभस्तलम् ॥ १२ तत्रास्ति मध्ये विटपी लघुः पेलवपलुवः। स्थित एपोऽम्बरे शून्ये मन्दरदिमरिवांशुमान् १३ ळम्बते तस्य शाखायां पुरुषः पावनाकृतिः। भानुर्भानाविव रहिमगृहीतो प्रथिताकृतिः॥ १४ मीअदामनि बद्धोध्येपादो नित्यमवाकिशराः। अष्ठीलत्वं दघदिव महाष्ठीलस्य शाल्मलेः॥ १५ दृष्टः प्राप्तेन तं देशं स कदाचिन्मया पुमान्। विचारितो निकटतो वक्षःस्थाञ्जलिसंपुटः ॥ १६ यावजीवत्यसाँ विप्रो निःश्वसित्यहतारुतिः। शीतवातातपस्पर्शान्सर्थान्वेत्ति च कालजान अनन्तरमसावेको नोपचर्य मया बहुन्। दिवसातपखेदेन विश्रम्मे पातितः शनैः॥ १८ पृष्टश्च कोऽसि भगवन्किमर्थं दारुणं तपः। करोषीदं विशालाक्ष लक्ष्यालक्ष्यात्मजीवितः १९ अथ तेनोक्तमर्थस्ते क इवानेन तापस। अर्थे नातिविचित्राहि भवन्तीच्छाः शरीरिणाम् २० इत्युक्तवान्त्रयत्नेन सोऽनुबन्धेन वै मया । यदा पृष्टस्तदा तेन ममोक्तमिद्मुत्तरम्॥ २१ मथुरायामहं जातो वृद्धि यातः पितुर्यृहे । बाल्ययीवनयोर्मध्ये स्थितः पद्यदार्थवित्॥ २२ समग्रसुखसंभारकोशो भवति भूमिपः। इत्यहं श्रुतवांस्तत्र भोगार्थी नवयीवनः॥ २३

दीर्घकाळलाद्दीर्घम् ॥११॥ श्रत्यलांशे नभस्तळदृष्टान्तः ॥१२॥ विटपी बहुशाखी यक्षः ॥ १३ ॥ भातुः सूर्यः भानी स्वर-इमाविव रहिमगृहीतो र<u>ज</u>्बद्धपादः । पादबन्धनरज्वाधार **इति** यावत् ॥ १४ ॥ तदेव स्पष्टमाह--मोक्षेति । अष्ठीलत्वं प्रल-म्भपर्वेप्रन्थिभावं द्धदिव ॥ १५॥ विचारितो मनसा विसृष्टः ॥ १६ ॥ तं विचारमेव स्फुटमाइ--यावदिति । वितर्के यावच्छब्दः । नूनं जीवति यतो निःश्वसितीसर्थः ॥ ९७ ॥ एकोऽसी लम्बमानी ना पुरुषो मया बहुन् दिवसान् दिवसा-तपखेदसहनेनोपचर्य शर्नेर्विसम्मे विश्वासे पातितः ॥ १८ ॥ चिरेणोच्छुसनाह्रध्यालक्ष्यात्मजीवितः ॥ १९ ॥ अनेन मस्क-लदेशतपःप्रयोजनादिपरिज्ञानेन ते कोऽर्थः कि प्रयोजनम् । नहि निष्प्रयोजनेऽर्थे जिज्ञासा संभवतीत्यर्थः ॥ २० ॥ इत्यु-फवान् स तापसो मया यदा प्रयक्षेन प्रणयानुबन्धेन च पृष्टस्तदा तेन ममेदं वक्ष्यमाणमुक्तम् ॥ २१ ॥ **पदानि** शब्दशास्त्रं पदार्था अर्थशास्त्राणि च वेत्तीति पदपदार्थवित् ॥ २२ ॥ भूमिपो राजा समप्राणां सुखसंभाराणां भोगसाम-मीणां कोश इवाश्रयो भवतीति अहं तत्र श्<u>र</u>तवान् ॥ २३ ॥

₹

अथ सप्त महाद्वीपविस्तीणीया भुवः पतिः। स्यामित्यहमुदारात्मा परिबिम्बितवांश्चिरम् ॥ २४ इत्यर्थेन समागत्य देशमित्थमहं स्थितः। अत्र द्वादश वर्षाणि समतीतानि मानद् ॥ 24 तदकारणमित्रत्वं गच्छेष्टं देशमाशुगः। अहं चाभिमतप्राप्तेरित्थमेच रहस्थितिः॥ રહ ! इति तेनाहमुक्तः संस्तमित्थं प्रोक्तवाञ्छणु । आश्चर्यभ्रवणे चेतः खेदमेति न धीमतः॥ २७ साधो यावस्वया प्राप्तो न नामाभिमतो वरः। त्वद्रक्षापरिचर्यार्थमिह तावदहं स्थितः॥ 26 मयेत्युक्ते स पापाणमीनवानभवच्छमी। निमीलितेश्रणः श्रीणरूपस्त्वकलनो बहिः॥ રવ तथाहं पुरतस्तस्य काष्ट्रमौनवतोऽवसम्। षण्मासान्विगतोद्वेगं वेगान्कालकृतान्सहन् ॥ ३० अर्कविम्बाद्विनिष्क्रम्य तत्त्रवेद्यान्तरे स्थितम् । एकदा दृष्वानस्मि पुरुषं भानुभास्त्ररम् ॥ ३१ . स तेन पूज्यते यावन्मनसा कर्मणा मया। उवाच तोवइचनममृतस्यन्दसुन्दरम्॥ ३२ शाखाप्रसम्बनपर हे ब्रह्मम्दीर्घतापस ।

तपः संहर संहारि गृहाणाभिमतं घरम् ॥ 33 सप्ताब्धिद्वीपवलयां पालयिष्यसि मेदिनीम्। सप्तवर्षसहस्राणि देहेनानेन धर्मतः ॥ 33 एवं समीहितं दत्त्वा स द्वितीयो दिवाकरः। गन्तुमस्तमथार्काव्यिमविदास्त्रोदितो यतः॥ 3'4 तिसन्याते मया प्रोक्तं तस्य शास्त्रातपिस्वनः । श्रुतदृष्टानुभृताद्यवरदस्य विवेकिनः॥ ३६ संप्राप्ताभिमतं ब्रह्मस्तरशाखावलम्बनम्। तपस्त्यक्त्वा यथाप्राप्तं व्यवहारं समाचर्॥ 3.9 एवमङ्गीकृतवतः पादी तस्य मया ततः। मुक्ती विटपिनस्तसादालानाकालभाविष ॥ 36 **स्नातः पवित्रहस्तोऽ**सौ चक्रे जस्यायमपंणम् । फलेन पुण्यलब्धेन विटपाद्रतपारणम् ।। तत्पुण्यवशतः प्राप्तैः स्वादुभिस्तैस्तरोः फर्कः। समाभ्यस्तायसंभ्रब्धावावां तत्र दिनत्रयम्॥ सप्तद्वीपसमुद्रमुद्रितदिशं भोकुं समग्रां महीं विप्रः पादपलम्बितेन वपुषा तत्वोध्वेपादस्तपः। संप्राप्याभिमतं वरं दिनकृतो विश्वस्य चाहां त्रयं

सार्ध मत्सुहृदा स्वमेव सद्नं गन्तुं प्रवृत्तोऽभवत्

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा० दे० मो० नि० उ० ब्रह्मगीतासु तापसीपाख्यानं नामाशीत्रश्रिवशततमः सर्गः ॥ १८० ॥

एकाश्वीत्यधिकशततमः सर्गः १८१

कुन्ददन्त उद्याच । आवासमन्तरे गन्तुं प्रवृत्तो मुदिताकृती ।

अथ तच्छ्वणानन्तरमहं सप्तमहाद्वीपविस्तीर्णाया भुवः पतिस्तथा उदाराहमा अर्थिनाममिलपितपूरणसमर्थः स्यामिति चिरं परि-बिम्बितवान् । इच्छां कृतवानिति यावत् ॥ २४ ॥ इति एवं-रूपेण अर्थेन प्रयोजनेन इमं श्रीशैलदेशमागत्य स्थितः ॥२५॥ हे अकारणमित्र, तत्तस्मात्वृष्टार्थस्य मयोक्तलात्त्वमिष्टं देशमा-शुगः शीघ्रगामी भूला गच्छ । मन्दगमने दूरस्थप्रामनग-राद्यप्राप्त्या अरण्ये निशाप्रसक्तिरिति भावः । आ अमिमत-प्राप्तेरहं तु इत्यमेव तपसि दृढस्थितिः ॥ २६ ॥ २७॥ ताबत्कालमहमपि तव रक्षार्थ परिचर्या सेवा तदर्थ च स्थितो भविष्यामीत्यर्थः ॥ २८ ॥ क्षीणस्य मृतस्य रूपमिव रूपं यस्य । यतो बहिरकलनः ॥ २९ ॥ कालकृतान्शीतोष्णादिवेगान्सह-न्सन् ॥ ३० ॥ तस्मिन्प्रदेशान्तरे तस्य तापसस्य पुरोदेशे आगत्य स्थितं भानुभास्वरं पुरुषम् ॥ ३१ ॥ स पुरुषस्तेन तापसेन मया सह यावत्पुज्यते तावदुवाच ॥ ३२ ॥ लं तपः उपसंहर । सम्यक् हारि मनोहरमिमतं वरं गृहाण ॥ ३३ ॥ अनेन देहेन कृतासपोधर्मतो नलनेन देहेन पालयिष्यसीति । उत्तर**मन्य**विरोधात् ॥ ३४ ॥ यतः स्वयं प्रोदितो निर्गतस्त-मेवार्कस्पमब्धिमस्तमदर्शनं गन्तुमविशत् ॥ ३५ ॥ शास्त्रे यः

मथुरानगरीं चन्द्रसूर्याविन्द्रपुरीमिय ॥

श्रुतः स एव प्रस्यक्षं दृष्टी वरदानव्यवहारेणानुभूनश्राम्यः श्रेष्ठो वरद आदित्यपुरुषो येन तस्य शास्त्रात्यभिनः ॥ ३६ ॥ ह ब्रह्मन्,तव तरुशास्त्रात्वलकम्बनस्यं यत्तपस्तत्तंप्रति संप्राममिनमनं यस्मात्तथाविर्यं संपन्नमत इदानीं श्रिं तपस्त्यक्ता नथाप्राप्तं स्वगुह्णमनादिव्यवहारं समाचर ॥ ३० ॥ कालभी कलभमंबन्धिनौ । आलानात्तद्वस्वनस्तम्भादिव ॥ ३८ ॥ पुण्येन तपः-सिद्धिबलेन तस्मादेव विट्याष्ठव्येन फलेन मथा सह व्रतपारणं चन्ने ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उत्तामेव कथां संक्षेपोत्त्योपसंहरति—सप्तद्वीपित । दिनकृतः सूर्यपुरुषात्सकाशादिभमतं वरं संप्राप्य तदनन्तरं तरुतले अहां त्रयं विश्वस्य विश्वाम्य पादपीडानिष्ट्रियनन्तरं मया सुहृद्दा सार्थं स्वमेव मधुरास्यं भवनं गन्तुं प्रवृत्तोऽभवत् ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्यव्यक्ताहों निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे अर्शात्यधिकशततमः सर्गः ॥ ३८० ॥

गण्छतोमें धुरां मार्गश्रंशाद्गौरीवनागमः । तत्र तापसमृद्धेन संवादश्रात्र वर्ण्यते ॥ १ ॥ यथा चन्द्रसूर्याविन्द्रपुरी प्राच्यां प्रसिद्धामानासं गन्तुं सायं काले प्रकृती तद्भदावामपि आसायं चलिला अन्तरे आवासं

प्राप्य रोधाभिधं प्रामं विश्वम्याम्रवणाचले । उषितौ हे दिने तिसन्साठीसे नगरे सुखम्॥ अध्वानन्दितन्त्रित्ताभ्यामावाभ्यामतिवाहितः। हितीयेऽहनि दीताम्बुक्तिग्धच्छायावनद्रमाः॥ नदीतीरळतोन्मुक्तपुष्पप्रकरपाण्डुराः । तरत्तरङ्गद्यांकारगायनानन्दिताभ्वगाः ॥ क्तिग्धद्भमवनच्छायरणन्मृगविहंगमाः । स्थुलशाद्वलशाखात्रप्रोतावश्यायमांकिकाः ॥ जंगलाद्रिपुरब्रामश्वभ्रानृपस्थलावनीः । समुह्यकृष दिने तस्मिन्सित्स्रोतः सरांसि च॥ ६ नीतवन्तौ निशामावां कदछीकानने घने । तुषारशिशिर श्रान्ती कदलीदलतस्पके ॥ प्राप्ताचाचां तृतीयेऽह्नि अक्वपण्डकमण्डितम् । जङ्गलं जनविच्छेद्विभक्तं खमिवाकृतम्॥ तत्र स प्रकृतं मागं परिस्पदय बनान्तरम् । प्रविशन्सम्बाचेदमकायेकरणं बचः॥ गच्छाघोऽत्राथमे गायो मुनिमण्डलमण्डिते । भ्रातरो मे स्थिताः सप्त वनेष्वेवमिवार्थिनः॥ ञ्चातरोऽष्टी वयमिमे जातानेकतया तया। पकसंविन्मया जाना एकसंकल्पनिश्चयाः॥ 88 तेन तेऽप्यत्र तपसे खनिश्चयसमाध्ययाः। स्थिता आगत्य विविधस्तपोभिः क्षपितैनसः॥ १२ तैः साधे भ्रातृभिः पूर्वमागत्याहमिहायसम् । षण्मासानाश्रमे गौर्यास्तेत हुटो मयैप सः॥ १३ पुष्पखण्डतरुक्तायासुममुग्धमृगार्भकः। पर्णोटजात्रविश्रान्तशुकोहाहितशास्त्रदक् ॥ १४ तद्रहालोकसंकाशमेहि मुन्याश्रमं श्रिये। गच्छायोऽच्छतरं तत्र चेतः पूर्ण्यभीविष्यति॥ १५

गन्तुं प्रवृत्तां ॥ १ ॥ आवासस्थानान्येव क्रमणाह्—प्राप्येन्त्यादिना । आप्रवणप्रवृदे अन्ते ॥ १ ॥ दितीये अहिन आयो शीतान्यम्तृनि स्निम्यच्छायायन्द्रमाश्च यासु तथाविधाः अञ्चन्त्यस्थलायम् । समुद्धत्यति भतुर्थे ग्रंबन्धः ॥ ३ ॥ ता एवावनीर्विधिनाष्टि—गद्दानीरेखादिना । गायनमिति अधि-लालाकरणं छान्द्रसम् ॥ ४ ॥ ५ ॥ क्रिक्वक्वरुम्ताः कचिद्वन्त्यम्तः कचिद्वन्त्यम् । इत्याधाः विचित्रपुर्थामम्ताः विचिद्वन्त्रभृताः कचिद्वन्त्यम् । ६ ॥ ५ ॥ अव्वयण्यम् स्थलाश्चावनीः ॥ ६ ॥ ५ ॥ अव्वयण्यम् स्थलाश्चावनीः ॥ ६ ॥ ५ ॥ अव्वयण्यम् । मधिवच्छेदैविभक्तं समिव आसमन्तार्ध्वतम् ॥ ८ ॥ इत्यानी विद्यस्तानां भ्रातृमु-निप्रस्तानां गायोधमे अभावात् (न श्चाता श्चातरं नच्छेदन्वेषण-परः क्षायत् इति विदिश्वतान स्थलाय । ॥ १ ॥ एविन्यार्थिन स्यानकार्योव च्छेदिलाद्याक्षत्रस्त्र । तथा प्राविधिव स्थलात्या स्तर्भेव च्छेदिलाद्याक्षत्या स्वाति । तथा प्राविधिव स्थलात्या स्तर्भेव विश्वद्यति—श्चातर इत्यादिना । तथा प्राविधितया स्तर्भेव विश्वद्यति । स्तर्भावेष्ठा स्वातर्भेव स्तर्भेव स्तर्भेव स्वातर्भेव स्तर्भेव स्वातर्भेव स्वातर्भेव स्तर्भेव स्वातर्भेव स्वातर्भेव स्वातर्भेव स्वातर्भेव स्वात्या स्तर्भेव स्वात्य स्वात्य स्वातर्भेव स्वात्य स्वात

विदुषामपि घीराणामपि तस्वविदामपि। त्वरते हि मनः पुंसामलंबुद्धिविलोकने ॥ १६ तेनेत्युक्ते च तावावां प्राप्ती मुन्याश्रमं च तम्। यावसत्र महारण्ये पद्यावश्चान्तरूपिणम्॥ १७ न वृक्षं नोटजं किंचिन्न गुल्मं न च मानवम्। न मुनि नार्भकं नान्यन्न वेदिंन चवा द्विजम् १८ केवलं शून्यमेवाति तदरण्यमनन्तकम्। तापोपतप्तमभितो भूमी स्थितमिवाम्बरम्॥ १९ हा कष्टं किमिदं जातमिति तस्मिन्वद्त्यथ। आवाभ्यां सुचिरं भ्रात्त्वा दृष्ट एकत्र वृक्षकः २० क्रिग्धच्छविर्घनच्छायः इतितलोऽम्बुधरोपमः । तले तस्य समाधाने संस्थितो वृद्धतापसः॥ २१ आवामग्रे मुनेस्तस्य च्छायायां शाद्वरुस्थले । उपविष्टी चिरं यावन्नासी ध्यानाम्निवर्तते ॥ २२ ततश्चिरेण कालेन मयोद्वेगेन चापलात्। उक्तं मुने प्रबुध्यस्व ध्यानादित्युश्चकैर्वचः ॥ २३ शब्देनोश्चर्मदीयेन संप्रवुद्धोऽभवन्मुनिः । सिहोऽम्युदरवेणेव जृम्भां छत्वाभ्युयाच च ॥ २४ की भवन्ताविमी साधू कासी गौर्याश्रमो गतः। केन वाहमिहानीतः कोलोऽयं कश्च वर्तते ॥ तेनेत्युक्ते मयाप्युक्तं भगवन्विद्धि चेदशम्। न किंचिदायां बुद्धोऽपि कस्माज्ञानासि न स्वयम् २६ इति श्रुत्वा स भगवान्पुनर्ध्यानमयोऽभवत् । द्वरादिन्तमिखलमसाकं स्वात्मनस्तथा॥ 2.9 मुहूर्तमात्रेणोवाच प्रवुध्य ध्यानतो मुनिः। श्रूयतामिदमाश्चर्यमार्यो हि कार्यवेदिनी॥ 24 यमिमं पद्मयथः साधू कद्म्बतरुपुत्रकम्। मदास्पदमरण्यान्या धिमाल्लीव पुष्पितम्॥ २९

वयमप्राविष भ्रःतग्स्तपसे एकसंविन्मया एकस्पद्दुनिश्चयम् भाना जाताः ॥ ११ ॥ १२ ॥ इह गार्याश्रमे । तेन हेतुना यः प्राग्दृष्टः स एवेष पुरो द्रयते इति प्रस्यभिद्याभिलापः ॥१३॥ तमेवाश्रमं वर्णयति —पुष्पेति । उटजामेषु विश्वान्तैः शुकैरिष उद्यादिता उपन्यस्ता नानाशास्त्रद्यो यत्र ॥ १४ ॥ तत्र आवयोध्येतः सर्वदोषक्षयादच्छतरं भविष्यति ॥ १५ ॥ अलंबुद्धयस्त स्वद्योनेन पूर्णमनसो ये मुनयस्तेषां विलोकने विदुषामिष पुंसां मनस्त्रस्तं कि पुनरावयोदिस्यर्थः ॥ १६ ॥ अन्तःसंद्दारस्त्रस्य रूपेणेव रूपिणमाश्रमं शून्यमिति यावत् ॥ १० ॥ तदेन वाह—न यक्षमित्यादिना ॥ १८ ॥ १९ ॥ तस्मिन्मत्सद्वाये तापसे ॥ २० ॥ २९ ॥ ६६ श्रन्यारण्ये ॥ २५ ॥ हे मगवन्, ईदर्श लत्यप्रस्थानं न किचिजानीव इति शेषः । अतस्त्रमेव विद्धि । वुद्धः सर्वक्षेऽपि लं योगवलात्कस्मात्स्यं न जानाित ॥ २६ ॥ २० ॥ २० ॥ २६ ॥ स्वस्त्रमेव विद्ध । वुद्धः सर्वक्षेऽपि लं योगवलात्कस्मात्स्यं न जानाित ॥ २६ ॥ ॥ २० ॥ २८ ॥ इमं मदास्यदं स्वावासमृतम् । अतस्त्वानु-

केनापि कारणेनास्मिन्सती वागीश्वरी सती। अवसङ्शयर्षाणि समस्तर्तुनियेविता॥ 30 तदा तेनेह विस्तीर्णमभवद्भनकाननम्। गौरीचनमिति ख्यातं भूषितं कुसुमर्तुभिः॥ ३१ भृङ्गाङ्गनाजनमनोहरहारिगीत-लीलाविलोककलकण्ठविहंगमङ्ग । पुष्पाम्युवाह्शतचन्द्रनभोवितानं राजीवरेणुकणकीर्णदिगन्तरालम्॥ मन्दारकुन्दमकरन्दसुगन्धिताशं संसूच्यसत्कुसुमराशिशशाङ्क्षनिष्ठम्। संतानकस्तवकहासविकासकान्त-मामोदिमारुतसमस्तळताङ्गनौधम्॥ ३३ पुष्पाकरस्य नगरं नवगीतभृङ्गं भृङ्गाङ्गनाकुसुमखण्डकमण्डपाढ्यम् । चन्द्रांशुजालपरिकोमलपुष्पदोला-दोलायमानसुरसिद्धवधृसमृहम्॥ हारीतहंसद्युककोकिलकोककाक-चक्राह्मभासकलविङ्ककुलाकुलाङ्गम्।

मेरण्डकुकुटकपिञ्जलहेमचूड-राढामयूरवक्षकविपतकेलिरम्यम्॥ 34 गन्धवीयक्षमुरसिज्ञकिरीद्रघृष्ट-पादाञ्चकणिककदम्यसरस्वतीकम्। वातायनं कनककोमछचभ्पकीघ-ताराम्बराम्बुधरपूरगृहीतगन्धम् ॥ मन्दानिलस्खलितपह्ययालच्छी-विन्यासगुप्तदिवसाधिपरदिमशीतम्। पीतं कदम्बकरवीरकनास्त्रिकेर-ताळीतमाळकुळपुष्पपरागपूरेः॥ ३७ कहारकीर्णकुमुदोत्पळपद्मखण्ड-वल्गचकोरवककोककद्म्बहंसम्। तालीसगुग्गुलकचन्द्रनपारिभद्र-भद्रद्वमोदरविहारिविचित्रशक्ति ॥ 34 तस्मिन्वने चिरमुवास हरार्थदेहा केनापि कारणवंशन चिराय गाँरी। भूत्वा प्रसन्नशशिविम्बमुखी कदम्ब-वागीश्वरी शशिकलेव शिवस्य मुर्भि ३९

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० मो०नि०उ०ब्रह्मगीतासु तापसोपा० गौर्याध्यमवर्णनं नामैकाशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥१८१॥

द्यशीलधिकशततमः सर्गः १८२

वृद्धतापस उवाच । तिसिन्नेव कदम्बेऽस्मिन्वर्षाणि स्वेच्छया दश । स्थित्वा गौरी जगामाथ हरवामार्थमन्दिरम् ॥ १ तत्स्पर्शामृततिकोऽयं कदम्बतरुपुत्रकः ।

कंप्यत्वात्पुत्रकमित्युक्तिः ॥ २९ ॥ सती गौरी वागीश्वरी सती सरस्वती भूला अत्र अवसत् ॥ ३०॥ कुसुमप्रधानैः सर्व-र्तुमिर्भृषितमलंकृतम् । तदा तस्मिन्काले । तेन कारणेन ॥३१॥ कीदशमभवत्तदेव वर्णयति-भन्नान्ननेत्यादिना । हे अनेत्यु-भयोः संबोधनम् । भङ्गाङ्गनाजनानां मनोहरगीतलीलामिर्वि-**ठोलाः कलकण्ठविद्य**ज्ञाः कोकिला यत्र । तथा पुष्पवर्षिमि(स्त्रु-बाहप्रायैस्तरभिः शतचन्द्रं नमोवितानं यत्र ॥ ३२ ॥ मन्दाराणां कुन्दानां च मकरर्न्देः सुगन्धिता आशा दिशो येन । समन्ता-रसुषु उच्छूसरसु विकसरसु कुसुमराशिलक्षणेषु शशाङ्कविम्बेषु निष्ठा शोभा पर्याप्तिर्यत्र ॥ ३३ ॥ पुष्पाकरस्य वसन्तस्य नगरमिव स्थितम्। भृष्काङ्गनायुक्तैः कुसुमखण्डकमण्डपैराट्यम् । चन्द्रांशुजालवत्परितः कोमलासु पुष्पदोलासु दोलायमानाः प्ररसिद्धवधूसमूहा यत्र ॥ ३४॥ हारितादिपक्षिकुळैराकुला-न्यक्रानि यस्य । हेमचूडास्तितिरयः। राढाः पक्षिभेदाः ॥ ३५॥ गन्धर्वयक्षादीनां किरीटैर्ष्टे पादाब्जकर्णिके यस्या-स्तथाविधा कदम्बसरस्वती यस्मिन्। सुरभिवातानामयनमत एव कनकमिव कोमलेभ्यश्रम्पकीचेभ्यस्ताराम्युधराभ्यां गृहीतो उत्सङ्ग इव चासीनो न यात्येव पुराणताम् ॥ २ ततो गार्था प्रयातायां तद्वनं तादशं महत्। सामान्यवनतां यातं जनवृत्योपजीवितम्॥ ३

गन्धो यस्य ॥ ३६ ॥ मन्दानिलात्स्खांल प्रवाह । बालवाहीनां विन्यासैः प्रसारें शेषेषु कृषेषु निर्के विवस्ति । प्रशास कदम्बादीनां कुलस्य पुष्परागर्पः पीतं पीत-वर्णम् ॥ ३७ ॥ कहारेः पद्मः कीर्णान मिश्राणि कुमुदोत्य-लाने येषु तथाविषेषु पद्मखण्डेषु पद्माकरेषु वल्गन्तक्षको-रादिकदम्बसहिता हंसा यत्र । तालित्रसतिहमोदरेषु विहाणिणी विचित्रा सर्वाभिलपितार्थपुरणदाक्तियिसन् ॥ ३८ ॥ सकल्वनसंपतिषु यत्कारणं तदाह—त्रास्मिति । विसान्यने हरार्थदेहा गौरी केनापि कारणवशेन कदम्बवार्गाश्वरी भूला चिरमुवास । तदेव वनसंपदां कारणमित्वर्थः ॥ ३९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे प्रकाशीस्यथिकश्वतसमः सर्गः ॥ ३८ ॥

कदम्बतापसेनात्र तद्धाष्ट्रणां समागमः । गृहेषु वरशापानां हेतुसिद्धिश्च वर्ण्यते ॥ १ ॥ तस्मिन्यणितगुणे अस्मिन्नेव मदास्पदे कदम्बे ॥ १ ॥ उत्सक्षे आसीनो बाळ इव पुराधतां जरां न यात्येव ॥ २ ॥ जनवृन्देस्तृणकाष्टकळपुण्याद्युपहारेणोपजीवितं सदितरवनमा-

मालवो नाम देशोऽस्ति तत्राहं पृथिषीपतिः। कदाचित्र्यकराज्यश्रीर्मुनीनामाश्रमान्भ्रमन् ॥ 8 इमं देशमनुप्राप्त इह चाश्रमवासिभिः। पुजितोऽस्य कद्म्वस्य ध्याननिष्ठस्तले स्थितः ॥ ५ केनचिस्वथ कालेन भ्रातृभिः सप्तभिः सह। भवानभ्यागतः पुत्रे तपोर्थमिममाश्रमम् ॥ तपस्विनोऽष्टाविह ते तथा नाम तदावसन्। यथा तपस्विनोऽन्ये ते तेपां मान्यास्तपस्विनः कालेनानन्तरमसावेकः श्रीपर्वतं गतः । स्वामिनं कार्तिकेयं च द्वितीयस्तपसे गतः॥ वाराणसी तृतीयस्त चतुर्थोऽगाद्धि**माचलम्** । इंहब ते परे श्रीराश्चत्वारोऽन्ये परं तपन्॥ सर्वेपामव चेतेपां प्रत्येकं त्वेतदीिसतम्। यथा समस्तर्हीपाया भुवोऽस्याः स्यां महीपतिः १० अथ संपादितं तेषां सर्वपामेतदीप्सितम्। तपस्तुष्टासिरिष्टाभिद्वताभिवेरैवेरैः॥ ११ तपतस्त तनो याता भातरः सदनं निजम्। भूमा धर्मयुगं भुक्त्वा वेधा ब्रह्मपुरीमिव ॥ १२ तेभेवद्गानुभिभेव्यवरदानविधी तदा । इदं वरोद्यता यत्नात्प्रार्थिताः स्वेष्टदेवताः॥ १३ देव्यसाकमिमे सर्वे सप्तर्द्वापेश्वरस्थिती। सत्याः प्रकृतयः सन्तु सर्वे आश्रमवासिनः ॥ १४ तमिष्टदेवतासार्थमुररीरुत्य साद्रम्। तेपामस्त्वेवमित्युक्त्वा जगामान्तर्द्धिमीश्वरी ते ततः सदनं यातास्तेपामाश्रमवासिनः। सर्व एव एताः पश्चादेक एवास्मि नो गतः ॥ १६ अहं केवलमेकान्ते ध्यानकगतमानसः। षागीश्वरीकदम्बस्य तले तिष्ठामि शैलवत्॥ १७

धारणतां यातम् ॥ ३ ॥ इदानीं मुनिः खरुत्तान्तमाह—
मालव इत्यादिना ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ अष्टौ ते तपस्विनस्तदा
तथा तेन प्रकारेण तपस्विनो भूला अवसन्। यथा अन्ये ये
तपस्विनः तपामिष मान्याः पृज्यास्तेऽभवित्रसर्थः ॥ ७ ॥
अनन्तरं केनिक्तालेन तेपां मत्ये असा लमेकः श्रीपवैतं
गतः। एवं त्रवोऽन्यपः ॥ ८ ॥ ९ ॥ ५० ॥ वर्षः श्रेष्टेवरैः
॥ ५१ ॥ ते तप्तलपस्येव तिष्ठतः । 'पष्टी चानादरे' इति
भावलक्षणे पश्चीः धर्मप्रधानं कृतयुगं भूमो भुक्ला अनुभूय
तदन्ते वेपाधनुमुखो बद्मपुर्श बद्मलोकमिव ॥ ५२ ॥ हे
भव्य, इदं वश्यमाणे वरं प्रार्थिताः ॥ १३ ॥ सप्तद्वीपेश्वरेति
भावप्रधानो निर्देशः। प्रकृतथः प्रजाभूताः सर्वे जनाः सलाः
परित्यक्तानृताः सन्तु । तथा सर्वेऽपि सप्तद्वीपवासिनः खलाः
थर्मधर्मेण सन्तु । इदं च वर्णधर्मश्रार्थनाया अप्युपलक्षणम्

अथ काले वहत्यसिष्टतुसंवरसरात्मनि। इदं सर्वे वनं छिन्नं जनैः पर्यन्तवासिभिः॥ १८ ईदं कदम्बमम्लानं जनताः पूजयन्यलम् । वागीश्वरीगृहमिति मां चैवैकसमाधिगम्॥ १९ अधेनं देशमायाती भवन्ती दीर्घतापसी। पतत्तरकथितं सधै ध्यानदृष्टं मयाखिलम् ॥ 20 तसादुत्थाय हे साधू गच्छतं गृहमागती। तत्र ते भ्रातरः सर्वे संगता दारवन्धुभिः॥ २१ अष्टानां भवतां भव्यं सदने स्वे भविष्यति। महात्मनां ब्रह्मलोके वसुनामिव संगमः॥ २२ इत्युक्ते तेन स मया पृष्टः परमतापसः। संदेहादिदमाश्चर्यमार्यास्तद्वर्णयाम्यहम् ॥ २३ एकैय सप्तद्वीपास्ति भगवन्भृरियं किल । तुल्यकालं भवन्त्यष्टी सप्तद्वीपेश्वराः कथम् ॥ कद्म्बतापस उवाच। असमजसमेतावदेव नो याबदुच्यते। इदमन्यदसंबद्धतरं संभ्यतां मम ॥ ર્ષ पतेऽष्टी भ्रातरस्तत्र तापसा देहसंक्षये। सप्तद्वीपेश्वराः सर्वे भविष्यन्ति गृहोदरे ॥ રફ

असमञ्जसमेतावदेव नो याबदुच्यते।
इदमन्यदसंबद्धतरं संश्र्यतां मम॥ १५
पतेऽष्टां भ्रातरस्तत्र तापसा देहसंक्षये।
सप्तद्वीपेश्वराः सर्वं भविष्यन्ति गृहोदरे॥ २६
अष्टां ह्येते महीपीठेष्त्रेतेष्वेतेषु सबसु।
सप्तद्वीपेश्वरा भूपा भविष्यन्तीह में श्रणु॥ २७
अस्त्येतेषां किलाष्टानां भार्याष्टकमनिन्दितम्।
दिगन्तराणां नियतं ताराष्टकमिवोज्ञवलम्॥ २८
तद्धार्याष्टकमेतेषु यातेषु तपसे चिरम्।
बभूव दुःखितं स्त्रीणां यद्वियोगो हि दुःसहः २९
दुःखिताः प्रस्यये तेषां चकुस्ता दारुणं तपः।
इातचान्द्रायणं तासां तुष्टाभूत्तेन पार्वती॥ ३०

॥ १४ ॥ सा इष्टदेवता तं तत्तरप्रार्थितमर्थमुररिक्तस अङ्गीकृत्य ॥ १५ ॥ एक एवा हं नो गतः ॥ १६ ॥ तत्कृतस्तप्राह— अहिमिति ॥ १० ॥ १८ ॥ मां नेव पूजयन्ति ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ इहागती युवां गृहं गच्छतम् । ते आतरः पूर्वमेव दारबन्धुभिः संगताः ॥ २१ ॥ भवतामष्टानामपि संगमो भविष्यति । वसूनामष्टानाम् । ब्रह्मछोके देवछोके ॥ २२ ॥ हे आयां इति रामसभासंबोधनम् ॥ २३ ॥ २४ ॥ एता-वदेवासमजसमसंबद्धमिति नो, यावदात इदमन्यदप्यसंबद्धतरम्यस्नसमजसं मयोच्यते उदाहियते तन्मम मत्तः श्रूयतामित्यद्यं ॥ २५ ॥ श्लोकद्वयमुत्तरिवक्षया पूर्वोक्तानुवादः ॥ २६ ॥ २० ॥ दिगन्तराणां प्राच्यादीनां ताराष्टकमिवेली- त्येक्षिकी उपमा ॥ २८ ॥ यद्यस्मादेतोः पतिवियोगः अहिरिव दुःसहः ॥ २९ ॥ तेषां पतीनां प्रत्ये पुनःपुनः स्मरणे सति

१ वरमत्यन्तमत्वन् तपश्चकुरित्यर्थः । अडमाव आर्थः.

र अय चासी कदम्बद्धीते विग्रहः.

| अरहयोवाच सा तासां बचोऽन्तःपुरमन्दिरे। | | કર |
|--|--|----------------|
| देवी सपर्यावसरे प्रत्येकं पृथगीश्वरी ॥ ३१ | अद्यायमपि संयातु भार्याया निकटं पृतिः। | |
| देब्युवाच । | भ्रातृणां वान्धवानां च भवत्वन्योन्यसंगमः ॥ १ | । २ |
| भर्त्रथमथ चात्मार्थ गृह्यतां वातिके वरः। | इदमन्यद्धेतेषामसमञ्जसमाकुल्म् । | |
| चिरं क्षिष्टासि तपसा निदायेनेच मञ्जरी॥ ३२ | | ४३ |
| इत्याकर्ण्य बचो देव्या दत्तपुष्पा चिरंटिका। | तप्यतां तप एतेषां पितरी ता वश्युती । | |
| स्ववासनानुसारेण कुर्वाणवेश्वरीस्तवम्॥ ३३ | तीर्थमुन्याश्रमश्रेणीं द्रष्टुं दुःखान्वितौ गतौ ॥ | 88 |
| आनन्दमन्थरोवाच वजनं मृदुसापिणी। | शरीरनेरपेक्ष्येण पुत्राणां हितकाम्यया । | |
| आकारासंस्थितां देवीं मयूरीवाभ्रमालिकाम् ३४ | | છ |
| चिरंटिकोवाच । | ता प्रयाती मुनिव्राममागे दहशतुः सितम्। | |
| देवि देवाधिदेवेन यथा ते प्रेम शंभुना। | | ४६ |
| भर्ता मम तथा प्रेम स भर्तास्तु ममामरः ॥ ३५ | धूळीळ्यमनादृत्यं जरत्पान्थश्ङ्कया । | |
| देव्यवाच । | | 80 |
| आसप्टेर्नियतेदीर्ढ्यादमरत्वं न छभ्यते । | सबध्क महामुर्ख तीर्थाधी दारसंयुतः । | |
| तपोदानरतोऽन्यं त्यं चरं वस्य सुव्रते ॥ ३६ | 3. | ४८ |
| चिरंटिकोयाच । | वधूनां ते सुतानां च गच्छतस्तप्सार्जिताः। | • • |
| अलभ्यमेतनमे देवि तन्मञ्जूर्गृहान्तरात् । | | કર, |
| मृतस्य मा विनिर्यातु जीवो बाह्यमपि क्षणात् ३७ | इत्युक्तवन्तं तं यावत्सदारोऽथ वध्युतः। | |
| देहपातश्च में भर्तुर्यदा स्यादात्ममन्दिरे। | | 40 |
| | अथ तौ पितृरी तृपां सत्रध्को सुद्वः खितौ। | |
| | | ५१ |
| देव्युवाच । | अतो बदाम्यहं तेषां नैकं नामासमञ्जसम्। | |
| पवमस्तु सुते स्वं च पत्ना लोकान्तरास्थिते। | असमञ्जसलक्षाणि गण्डे स्फोटाः स्फुटा इव 🤚 | ५२ |
| भविष्यसि प्रिया भार्या देहान्ते नात्र संशयः ३९ | चिद्ध्योमसंकल्पमहापुरेऽस्मि- | |
| इत्युक्त्वा विररामासी भीर्या गीर्गगनोदरे। | न्नित्थं विचित्राण्यसमञ्जसानि। | |
| मेघमाळाध्वनिरिव निरवद्यसमुद्यता ॥ ४० | निःदान्यरूपेऽपि हि संभवन्ति | |
| वेव्यां गतायां भर्तारस्तासां कालेन केनचित्। | ए इये यथा व्योमनि रूइयज्ञुम्भाः॥ | ५३ |
| इखार्षे श्रीवा० बा०मो ०नि०उ०ब० तापसोपास्यानान्तर्गतसप्तः | (विश्वरोपाएयाने सम् ॰ नाम व्यक्तीख्रियश्चतत्तमः सर्गः॥ १८ | ٦॥ |

ता दुःश्विताः सत्यो दाहणं तपश्चकुः । किनामकं तत्तप-स्तदाह-पातचान्द्रायणमिति ॥ ३० ॥ ३१ ॥ निदाघेन मीटमेण ॥ ३२ ॥ दत्तपुष्पा गोरी पादयोः समर्पितपुष्पाञ्जलिन धिरंटिका सुवासिनी ॥ ३३ ॥ आनन्दमन्थरा गृहदस्वरा । ज्येष्ठाया नामधेयं वा ॥ ३४ ॥ अमरी मृत्युरहितोऽस्तु ॥ ३५ ॥ आर्ग्रेशदिसर्गमारभ्य प्रवृत्ताया नियतेरीश्वराज्ञायाः दार्झ्याद्वंक्तुमशक्यव्यात् ॥ ३६ ॥ क्षणादपिशच्दाचिरादपि ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ मूर्जीयास्तस्याः सभीचीनवर्याचनाकुशलतां बुद्धा देवी खयमेव वरान्तरं ददाति-- लं चेति । ठोकान्तरे सप्तद्वीपाधिपत्ये ॥ ३९ ॥ निरवयं निर्देषि जगदानन्दाय समुद्यता ॥ ४० ॥ ककुद्रस्थी दिग्स्यः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ असमज्ञसान्तरमप्युदाहरति—इदमिति । आर्यकायाणां सत्क-मेफलानामुपरोधकम् ॥ ४३ ॥ वधूमिः ख्रुपामिर्युती सहिती ॥ ४४ ॥ दारीरपदेन तद्भोग्यसुखं छक्ष्यते तन्नैरपेक्ष्येण । तं प्रसिद्धं कलापप्रामारूयं तीर्थम् ॥ ४५ ॥ वर्णतः कपिलं

हस्त्रं पुरुषं मार्गे ददशतुः ॥ ४६ ॥ तायष्टानाः मातापितरी जरत्पान्थः कश्चिदशाविति शङ्कया तं मुनिमनादृख नमस्कार-प्जास्तवनाद्या**दरमञ्**ला प्रत्युत गमनलस्या तदुपरि धूलो-लबसुद्भनयन्ती सन्ता यदा जग्मनुस्तदा तेनापराधेन कुवा-न्वितः सं मुनिहवाच ॥ ४७ ॥ किमुत्राच तदाह—सत्रधूकेति । अविहितानतिरकृतनमस्कारः ॥ ४८॥ तपसार्जिता वरा विपन रीता दुःखफला भविष्यति ॥ ४९ ॥ ५० ॥ निराशी सन्ती परावृत्य खगृहभेवागर्ता ॥ ५१ ॥ अतोऽहं बदामि तेषां नेकमेवासमञ्जयं किंतु असमञ्जसळक्षाणि गृहमध्ये सप्तद्वी-पराज्यकरपने तदन्तर्गतगिरिपर्वताद्यतमञ्जसलक्षाणां करपनाया नान्तरीयकतया प्रसक्तेरिति भावः । यथा गर्छे गण्डस्तत्र स्फोटास्ते च स्फुटाः स्फुटिताश्वेदनिष्टोपयनिष्टं तत्राप्यनिष्टा-न्तरं तद्वदिलार्थः ॥ ५२ ॥ एवमन्यत्राप्यस्मिनमायामये जग-त्यसमञ्जसलक्षाणि संभवन्तीत्वाह—चिद्योमेति । अस्मिन्नग-द्वपे चिद्योमसंकल्परचिते महापुरे इत्यं विचित्राण्यसमञ्जसानि

व्यक्तीलिधिककाततमः सर्गः १८३

कुन्ददन्त उघाच।
ततः पृष्टो मया तत्र स गौर्याश्रमतापसः।
तापसंग्रुष्कदभीव्रजराजर्जरमूर्थजः॥ १
एकेच सप्तद्वीपास्ति चसुधा यत्र तत्र ते।
सप्तद्वीपेश्वरा अष्टा भवन्ति कथमुत्तमाः॥ २
यस्य जीवस्य सद्नाद्यास्ति निर्गमनं यहिः।
स करोति कथं सप्तद्वीपेशत्वेन दिग्जयम्॥ ३
यैर्थरा चर्रदेदंत्ताः शापस्ते तद्विरुद्धताम्।
कथं गच्छन्ति गच्छन्ति कथं छाया हि तापताम् ४
मिथोऽशक्यां कथं धर्मा स्थितिमेकत्र गच्छतः।
आधार प्रयाधेयत्यं करोति कथमात्मनि॥ ५

गाँगीश्रमतापस उवाच।
संपद्मयित किमेतेगां भो साधो श्रण्वनन्तरम्।
अष्टमेऽसिन्सुसंप्राप्ते तं प्रदेशं सवान्ध्रवम्॥ ६
इतो भवन्ता तं देशमासाद्य सुखसंस्थिता।
स्ववन्धुसुखसंस्थानां कंचित्कालं भविष्यतः॥ ७
ततसंऽष्टां मरिष्यन्ति भ्रातरः क्रमशो गृहे।
बन्ध्रवोऽथ करिष्यन्ति त्रेषां देहांस्तद्ग्रिसात्॥ ८
तेषां ते संविदाकाशाः पृथक्पृथगवस्थिताः।
मुह्तमात्रं स्थास्यन्ति सुपुप्तस्था जडा इव॥ ९
पतसिन्नन्तरे तेषां तानि कर्माणि धर्मतः।
एकत्र संघटिष्यन्ति वरशापात्मकानि खे॥ १०

कोटिशः संभवन्ति । यथा त्र्योमनि उत्पातवशाद्गन्धर्यनगर-धूमकेतुकबन्धोत्कादिदश्यज्ञम्भाः संभवन्ति तद्वदित्यर्थः ॥५३॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे बाशीत्यधिकशतदमः सर्गः ॥ १८२ ॥

विरुद्धवरकापानां चतुराननवाक्यतः। मिथोऽजयोन्तःसाराणामिह सम्यङ्किरूथते ॥ ३ ॥

तापेन प्रीष्मे संशुष्कं परस्परप्रथितं च दर्भाष्रमिव जराजजरा मूर्पजा यस्य ॥ १ ॥ कि पृष्ठस्तदाह—एकंविति ॥ २ ॥
द्वितीयं पृष्ठमाह—यस्येति ॥ ३ ॥ तृतीयं पृष्ठमाह—यिरिति ।
शीतलच्छायास्तापतां प्रीष्मातपतां कथं गच्छिन्त ॥ ४ ॥
एकस्यैव फलस्य वरशापोभयफललमशक्यलाहुष्करिमत्याह—
मिथ इति । विरुद्धौ वरशापफलतावच्छेदको शुभलाशुभलधर्मायेकश्रेव धर्मिण्यशक्यां स्थिति कथं गच्छतः । एकधर्माश्रितलासंभवंऽपि तथीधमयोः परास्पराश्रितलमस्तु
तत्राह—आधार एवेति ॥ ५ ॥ सर्वेषां प्रश्नानां कथाशेषवण्नमुखेनेवोत्तरं कदम्बतापस उवाच—संपद्यसीति । हे
साधो, एतेषां कि विरुद्धमसमझसं प्रथति । अवन्तरं यहुतं
तच्छुणु । तेनैव ते समाधानं भविष्यतीति भावः । अवतन-

| ? |
|----|
| |
| ą |
| |
| ą |
| |
| |
| 8 |
| |
| |
| 3 |
| |
| |
| Ę |
| |
| S |
| |
| e |
| - |
| Q. |
| |

वासरादष्टम अस्पित्रव वासरे संप्राप्ते सति भवन्तौ तं मथु-राप्रदेशं खबान्यवसहितं प्राप्स्यत इति शेषः ॥ ६ ॥ ७ ॥ तद्रिमसात्तीर्नंतरहिता येऽमयस्तद्धीनान् । अन्त्येष्टिभिस्तत्तद-न्निषु दाहेन संस्करिप्यन्तीति यावत् ॥ ८ ॥ संविदाकाशा जीवाः ॥ ९ ॥ कर्मणां विरोधपारहारं वक्तस्वक्रमते-एत-सिन्निति । धर्मतः बलायस्यंभावस्यभावतः । एकत्र से तत्त-बित्ताविच्छिन्नाकाशे ॥ १० ॥ तानि कर्माणि अधिष्ठातारस्त-त्तरफलप्रदा देवास्तद्रपणि भूला पेटकं खखानुकूलसमृह्यटितं संपूर्व पृथकपृथक् कार्रध्यन्ति । एवं संपुरीभृता वराः शापाध प्रयक्त प्रथक शरीराणि करिष्यन्ति ॥ ११ ॥ तेषां वेषमेद-माह—वरा इति । गमिष्यन्ति प्राप्स्यन्ति ॥ १२ ॥ दुर्वाससो रदांबारवेन तदीयत्वादुष्कर्मफलदानोन्मुखरवेन घोररूपत्वाच त्रिनेत्राः इतुलपाणयः ॥ १३ ॥ ऋतूनां वसन्तारीनामिव ॥ १४॥ १५ ॥ तत्र वरा मूलाधिक्यात्स्वाधिक्यं दर्शयन्ति--भवन्त इति । यतो भगवन्तं सूर्यं मुनिभ्यः पुरा धाता असूजदिति शेषः ॥ १६ ॥ १७ ॥ इत्युक्ला प्रोचता प्रोच-तानि । सुपांसुलुगिति च्लान्दसोऽडादेशस्तातापिण्डानामितिवत्। श्वज्ञाणि भिश्चलामाणि ॥ १८ ॥ अन्तःप्रमाणपूर्वकसम्यग्वि-चारेण प्रभेगीकृतस्याध्यवसितखार्थस्य निथ्यम् ॥ १९ ॥ हे शापाः पापतां त्यक्त्वा कार्यस्यान्तो विचार्यताम्।
यत्कार्यं कलहस्यान्ते तदेवादौ विचार्यताम्॥ २०
पितामहपुरीं गत्वा कलहान्ते विनिर्णयः।
कर्तव्योऽसामिरेतिकिमादौ नेह विधीयते॥ २१
शापैर्वरोक्तमाकण्यं वाढमित्युगरीकृतम्।
को न गृह्वाति मृद्धोऽऽपि वाक्यं गुक्तिसमन्वितम् २२
ततः शापा वरैः सार्थं यास्यन्ति ब्रह्मणः पुरम्।
महानुभावा हि गतिः सदा संदेहनाशने॥ २३
प्रणामपूर्वे तत्सर्वं यथावृत्तं पगस्परम्।
ब्रह्मणे कथियण्यन्ति श्रुत्या तेषां स वक्ष्यति॥ २४
ब्रह्मणे कथियण्यन्ति श्रुत्या तेषां स वक्ष्यति॥ २४

वरशापाधिपा भोभो यतः सारा जयन्ति ते ।
केऽन्तःसारा इति मिथो नृनमन्विष्यतां स्वयम् २५
इति श्रुत्वा प्रविष्टास्ते सारतां समविक्षितुम् ।
वराणां हृदयं शापाः शापानां हृदयं वराः ॥ २६
ते परस्परमन्विष्य स्वयं हृदयसारताम् ।
इतिया च समवायेन प्रवश्यन्ति पितामहम् २७
शापा वश्यन्ति ।

जिताः प्रजानाथ वयं नान्तःसारा वयं यतः । अन्तःसारा वरा एव वज्रस्तम्मा इवाचछाः २८ वयं किलेमे भगवन्वराः शापाश्च सर्वदा । नमु संविन्मया एव देहोऽन्योऽसाकमित्त नो २९

पापतामनुचितकारिताम् । तदेवादी कर्तव्यमिति शेषः ॥२०॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ गतिः शरणम् ॥ २३ ॥ २४ ॥ शास्त्रानुः सारहडाभ्यासोभयकृतं यदाकौरसंपिद्दार्थ्यं ये अन्तःसारास्त **अयन्ति । अन्वि**ष्वतां पर्यालोच्यताम् ॥ २५ ॥ उदरं प्रविश इति कल्पनोक्तिः । परसारास्तः पर्यालीनितवस्त इति यावत् ॥ २६ ॥ समवायेन पररारेकमत्यङङ्गिन सिछनेन ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ तत्र संविदो हडाभ्यासेन यदाकारदार्ह्य तेषां प्राव-ल्यमिति वक्तुं मूळसंबिदं दर्शयन्ति—वर्ग किलिति । देहः **स्ररूपम्** ॥ २५ ॥ तदेवोषपादयन्ति—वरदर्ग्वेत्यादिमा ॥ ३० ॥ वरस्य हि फलं सुखभोगायतनं देहं तन्त्र विज्ञप्ति-मात्रस्य कलनात्मकं कचनम् । ततः सेव विज्ञसिर्देहाकारा भूला देशकालादिकल्पनाशतश्रमैस्ततद्भोग्यार्थाम्परयति अनु-भवति तत्राद्नीयमत्ति ॥ ३१ ॥ तत्र शास्त्रीयतपःकालिक-दृढसंकल्पवशीकृताद्वरदारसंविदारमनो गृहीतलाद्वरकल्पना चि-**त्कालान्तरे फलावस्थायां सम्यक्** भृता पुष्टा यदा तदा सैवान्तः-सारा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तत्कृतस्तन्नाह—यदेवेति ॥ ३४ ॥ तत्रापि शास्त्रीयलेन शुद्धले प्रावस्याधिक्यांमेलाहः-शुद्धा-नामिति । संविदामिति निर्धारणे पष्टी । अतः फलेऽपि साम्यं न विवते ॥ ३५ ॥ ज्येष्ठलादपि वरसंबदः श्रावल्यमर्सा-

यरदस्य हि या संविद्वरो दत्त इति स्थिता। सैवार्थिनि मया लब्धो वरोऽयमिति तिष्टति 30 विश्वतिमात्रकचनं देहं सैव फलं ततः। पद्यत्यनुभवत्यत्ति देशकालशतभूमैः॥ 33 वरदात्मा गृहीतत्वाधित्काळान्तरसंभृता । यदा तदान्तःसारासी दुर्जया नतु शापजा ॥ ३२ वरप्रदानं वरदैर्वरदानां वरार्थिभिः। यदा सुचिरमभ्यस्तं यराणां सारता तदा ॥ 33 यदेव सुचिरं संविदभ्यस्यति तदेव सा । सारमेवाशु भवति भवत्याशु च तन्मयी ॥ 33 गुद्धानामतिग्र्इंच संविज्जयति संविदाम्। अशुद्धानां त्यशुद्धेच कालारसाम्यं न विद्यते ₹'₹ क्षणांदानापि यो ज्येष्ठो न्यायस्तेनावपूर्यते । नार्थे न्यायान्तरं किंचित्कर्तुमुत्सहते मदम्॥ ३६ समेनोनयकोटिस्थं मिश्रं वस्तु भवेत्समम्। ः वरशापविलासेन श्रीरमिश्रं यथा पयः॥ ३७ २७ । समाभ्यां वरशापाभ्यामथवा चिद्विरूपताम् । स्वयमेवानुभवति स्वप्नेष्विव पुरात्मिका ॥ ३८ शिक्षितं त्वत्त एवेति यत्तद्व तव प्रभो। पुनः प्रतीपं पठितं शीघ्रं यामो नमोस्तु ते॥ इत्युक्तवा स स्वयंशापः कापि शापगणे ययौ । प्रशान्ते तिमिरे हुए व्योम्नि केशोण्डुकं यथा

> ह्याहु:-क्षणांशेनापीति । ज्येष्ठस्यासंजातविरोधिलेन सम्य-डिस्टलादिति मानः। अत्रमाणजस्य हि ज्यष्टलं बाध्यले तन्त्रम् । यथा रजतन्त्रमस्य प्रमाणदृढीकृते खर्थे अनपेक्षितस्य ज्ञानस्य ज्येष्टलं वाध्यति तन्त्रमिति प्रति**द्धम् । न्यायान्तरं** न किचिनमदं शापप्रावस्यं कर्तुमुत्सहते इत्यर्थः ॥३६॥ अतएव यत्र विरुद्धकमेणीवंरशापयोगं प्रमाणाभ्यासादिसाम्यं तत्रोभय-मिश्रभेव फर्छ गवतीत्वाह—समेनेति । शुभाशुभोभयकोटिस्थम्। यथा मनुष्यदेहः ॥३७॥ चत्रैककाउं मिसदेशमार्ग्या समी वर-शापा तत्र विपश्चिदुपाख्यानोक्तन्यायेनोपाधेविभागनैकैय जी-विच्युनपहेरुभेदेन द्विरूपतामापचत इत्याह-समाभ्यामिति । यथा स्वप्नेष प्रशासिका चिन् पुरवासिजनदेहभेदेन विभाग-भिवापयतं तद्वत् ॥ ३८ ॥ धातुः पुरतः स्रेषां तत्त्वोद्गार-धार्थ्यमनुचितमनुचिन्छाहुः--बिक्षितमिति । यस्वत एव शिक्षितं तत्तवेव पुरः पुनः पठितं धार्ष्यावहलारत्रतीपं प्रति-कुलमिति नो धार्ष्यापराधं क्षमख । अतसी नमोस्तु वयं शीघ्रं खस्थानं यामः ॥ ३९ ॥ स्वयमेव स्तं तृया प्रयासकारिणं शपतीति खयंशापस्तथाविधः खमीर्ह्यख्यापकं छज्ञया सन् कापि यथौ। यथा दर्शस्तिमिररोगे प्रशान्ते सति व्योप्नि भ्रान्तिकृतं केशोण्डकं कापि याति तद्वत् ॥ ४० ॥

भातिः २ येषामाकार्यादर्यन्।

१ पूर्वप्रक्रमानुरोधेनोत्तरचच भन्ना वदिष्यतीत्वदेश्वितमिति ।

ઝર

83

अथान्यो वरपूर्गोऽत्र गृहनिर्गमरोधकः। स्थानिस्थानमिवादेशः समानार्थोऽभ्यपूरयत् ४१ शापस्थानका चित्रपन्ति । सप्तद्वीपेशजीवानां निर्याणं शवसदानः। देवेश विद्यो न वयमन्त्रकृपादिवास्भसाम्॥ सप्तर्हापेश्वरानेतानिमे द्वीपंषु सदासु। कारयन्ति वरा वर्या वीरा दिग्विजयं रुगे।। तदेवमनिवार्येऽस्मिन्विरोधे विवधेश्वर । यदत्रष्ठयमसाभिस्तदादिश दिवाय नः॥

व्रह्मोबाच । सप्तद्वीपेश्वरवरा गृहरोधवराश्च है। कामः संपन्न एत्रेह भवतां भवतामपि ॥ 814 बजतैतदपेक्षत्वं यावश्रेष्टाविप क्षणात् । चिरं चिराय सदने सप्तद्वीपेश्वराः स्थिताः॥ समनन्तरमेवते देहपातात्स्वसद्मश्च । सप्तद्वीपेश्वराः सर्वे संपन्नाः परमं वराः॥ 83

सर्वे बरा बढिष्यन्ति। कुतो भूमण्डलान्यष्टी सप्तद्वीपानि भूतयः। एकमेवेह भूपीठं श्रुतं हुएं च नेतरत्॥ कथं चैतानि तिष्ठन्ति कस्मिश्चिद्वहकोशके। पद्माक्षकोराके सुक्ष्मे कथं भान्ति मतंगजाः॥ ४९ ब्रह्मोवाच ।

युक्तं युष्माभिरसाभिः सर्वे व्योमात्मकं जगत्। स्थितं चित्परमाण्यन्तरन्तःस्यप्नोऽनुभूयते ॥

एवं दुर्वासःशापेषु गतेषु अथ अन्यः सप्तद्विपाविषदाविरुद्धस्तेषां मृहात्रिगमस्य रोधकः अन्यस्तद्भार्याभयो दत्तो गीरीवरपूर्गो वैयाकरणप्रक्रियायामादेशः स्थानिस्थानभिय सूर्यवरैः सह विवा-दार्थं शापस्थानमभ्यपुर्यत् । यतः सोऽपि समानः अर्थस्तु-ल्यकालं विरुद्धं फलं यस्य तथाविधः ॥ ४१ ॥ शापस्थाने निविष्टाः शापस्थानकाः पत्नीवस बन्धाणंत्रति वदिष्यन्ति । किं तदाह-सप्तर्धापेशाति । हे देवेश, भावसप्तद्वीपेशत्वेना-भिमतानाभेतेषां जीवानां शवसद्यनो बहिर्निर्याणं वयं न विद्यः । अन्सामिस्तन्निरोधादिल्यर्थः । अन्धकृषाच्छन्यकृषात् ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ नः शिवाय सफललाय यदादेश्यं तदादिश । आज्ञापयेत्यर्थः ॥ ४४ ॥ भवतां सर्वेषां कामः संपन्न एव ॥ ४५ ॥ कथे संपन्नस्तत्राह्-ननति । सूर्यमेतत्परस्परा-पेक्षत्वं वजत । यावतः यतो भवतां निरं नेष्टी परस्परेन्छा-विरहेपि तेऽधी आतरो मरणोत्तरक्षणादेव चिराय स्वसदन-एव सप्तद्वीपेश्वरा भूला स्थिताः॥ ४६ ॥ तदेव स्पष्टमाह---समनन्तरमिति ॥ ४७ ॥ भूतयस्तत्त्वेश्वर्याण च कृतः । श्रुतं श्रुतिषु प्रसिद्धं । दृष्टं लोकंपि प्रसिद्धम् ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ स्वप्न-वदेवाविरुद्धमेतदित्युत्तरमाह-युक्तमिति । यतो युष्माभि-

माति यत्परमस्याणोगन्तस्यस्वगृहोदरे। रफ़रितं तत्किमाश्चर्यं कः सायः प्रकृतेः क्रमे॥ ५१ मृतेरनन्तरं भाति यथास्थितमिदं जगत्। श्रन्यात्मेव धनाकारं तिसक्षेत्र क्षणे चितः॥ 43 अणाविप जगन्माति यत्र तत्र गृहोदरे। सप्तद्वीपा वसुमती कचन्तीति किमद्भानम् ॥ ५३ यद्भातीदं च चित्तस्वं जगस्वं न जगस्कचित्। चिन्मात्रमेव तद्भाति शुन्यत्वेन यथाम्यरम्॥ इति ते ब्रह्मणा प्रोक्ता वरदंन वरास्ततः। तानाधिभातिकभ्रान्तिमयान्संत्यज्य देहकान् प्रणम्याजं समं जग्मरातियाहिकदेहिनः। सप्तर्द्वापे च देवानां गृहकोशान्त्रचज्जनान्॥ ५३ यावत्ते तत्र संपन्नाः समृहीपाधिनायकाः ! अष्टावर्षाष्ट्रापुष्टानां दिनाष्ट्रकमहीभुजाम्॥ 40 ते परस्परमञ्जाता अशाश्चान्योग्यवन्धवः। अन्योन्यभूमण्डलगा अन्योन्याभिमते हिताः॥ ५८ तेषां कश्चित्रहस्यान्तरेव तारुण्यसुन्दरः । उज्जयिन्यां महापुर्या राजधान्यां सुखे स्थितः 48 शाकद्वीपास्पदः कश्चित्रागलोकजिगीपया । विचरत्यव्धिजठरे सर्वेदिग्विजयोद्यतः॥ Ço कुराद्वीपराजधान्यां निराधिः सकलप्रजाः । कृतदिग्विजयः कश्चित्सुमः कान्तावलम्बितः ६१ शाल्मलिब्रीपशैलेन्द्रशिरःपूर्याः सरोवरे। जळळीळारतः कश्चित्सहविद्याधरीगणैः॥ ६२

रसामिश्र व्यष्टिसमिटिभिर्युक्तं सर्व जगद्योमात्मकं सिन्नत्पर-माण्वन्तःस्थितमनन्तःसाप्र एवानुभूयते अतसात् परमाणोर-प्यन्तस्थे खग्रहोदरे भातीति परेणान्वयः ॥ ५० ॥ तत्कि-माश्रर्थमपूर्वम् । कः सायो विस्मवः ॥ ५७ ॥ स्वप्नसाम्यमेव दर्शयन्युकं स्फुडबति—मृतेरित्यादिना ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यदिदं जगत्त्रं भाति तत् त्वं चिदेव। यतिधनमात्रमेव तद्भाति अतो न कविज्ञगन्मूर्वमस्ति यहाहे न मायादित्यर्थः ॥ ५४ ॥ तान्त्राकृत्यितानाधिभौतिकभ्रान्तिमयान् देहकांस्तत्त्वविचारेण पंख्यज्य आतिवाहिकदेहिनः सन्तः अत्रं प्रणम्य अविरोधान रसमं साकं तत्तन्मनःकल्पिते सप्तद्वीपे तत्तदेवानां गृहको-शाजग्मारेति परेणान्वयः ॥ ५५ ॥५६॥ यात्रदिति साकल्ये । तेऽधी स्रातरस्तत्र यहे इष्टेर्यज्ञादिसत्कर्ममिर्वन्यजनेश्व आपुष्टानां जगदप्रक्रमेदेन ब्रह्मादनाएके आदिमहीभुजां खायंभुवमनूनां कुले इति शेषः । सप्तद्वीपाधिनायकाः संपन्ना इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ प्रत्येकं भ्रातृसहितलकल्पनादन्योन्यबन्धवः । राज्यभेदेन सर्वे-पामाधिपत्यांशे लज्जाः । अतएवान्योन्याभिमते हिता नत् विरुद्धचंष्टाः ॥ ५८ ॥ तेषां प्रत्येकं चरित्रमेदकल्पनामाह-तेषामित्यादिना ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ शैलेन्द्रस्य शिरः

क्रीश्वद्वीपे हेमपुरे सप्तद्वीपविवर्धिते।
प्रवृत्तो वाजिमेधेन कश्चिद्यष्टं दिनाएकम्॥ ६३
उद्यतः शास्मलिद्वीपे कश्चिद्वीपान्तचारिणा।
योद्धमुद्भृतदिग्वन्तिवन्ताकृएकुलाचलः॥ ६४
गोमेवद्वीपकः कश्चित्पुष्करद्वीपराट् सुताम्।
समानेतुं वशाद्याति कपत्सेनोऽएमोऽभवत्॥ ६५
पुष्करद्वीपकः कश्चिलोकालोकाद्रिभूभुजः।
दृतेन सह निर्यातो धनभूमिदिषक्षया॥ ६६
प्रत्येकमित्थमेतेषां द्वीपद्वीपाधिनाधताम्।

कुर्षतां स्वगृहाकाशे रष्ट्रा स्वप्रतिमोचिताम् ६७
स्यक्तामिमानिकाकारा ब्रिविधास्ते वरास्ततः ।
तत्संविद्धिगृहेण्वन्तरेकतां खानि खेरित ॥ ६८
यास्यन्ति ते भविष्यन्ति संप्राप्तामिमताश्चिरम् ।
सप्तद्वीपेश्वरास्तुष्टा नन्वष्टाविष तुष्टिमत् ॥ ६९
इत्येते प्रविकसितोदितिक्रियार्थाः
प्राप्सन्ति प्रवितत्तवुद्धयस्तपोभिः ।
अन्तर्यत्सुरति विदस्तदेव याह्य
नामं कस्तदुचितकर्मभिः किलेति ॥ ७०

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठ० वा० मो० नि० उ० ब्रह्म० ताप० द्वीपसप्तकाष्टकवर्णनं नाम त्र्यशीत्यियकशततमः सर्गः ॥ ३८३ ॥

चतुरकीत्यधिककाततमः सर्गः १८४

कुन्ददंन्त उवाच ।
इत्युक्तवानसी पृष्टः कद्म्वतलतापसः ।
सप्तद्वीपा भुवोऽष्टो ताः कथं भाता गृहेष्विति १
कद्म्वतापस उवाच ।
चिद्यातुरीहगेवायं यदेष व्योमरूष्यपि ।
सर्वगो यत्र यत्रास्ते तत्र तत्रात्मिन स्वयम् ॥ २
आत्मानमित्धं त्रेलोक्यरूपेणान्येन वा निजम् ।
परिपद्यति रूपं स्वमत्यजन्नेव स्वात्मकम् ॥ ३
कुन्ददन्त उवाच ।
पक्सिन्विमले शान्ते शिवे परमकारणे ।
कथं स्वभावसंसिद्धा नानाता वास्तवी स्थिता ४
कद्म्वतापस उवाच ।
सर्वे शान्तं चिदाकाशं नानास्तीह न किंचन ।
हृश्यमानमपि स्कारमावर्तात्मा यथाम्भसि ॥ ५

शिखरं तद्गतायाः पुर्याः कीडासरोवरे ॥ ६२ ॥ सप्तद्वीपाहत-महर्षिभिविवर्धिते ॥ ६२ ॥ द्वीपान्तचारिणा राह्वा सह योद्ध-मुखतः । उद्भुतैरुत्पाटितैर्दिग्दन्तिदन्तैराकृष्टाः कुलाचला वर्षे-पर्वता येन तथाविधः सन् ॥ ६४ ॥ गोमेदद्वीपकस्तद्वसतिः । समानेतुं जिला परिणेतुम्। वशात्कामवशात् । कघनती शत्रुदेशान्वाधमाना सेना यस्य । यः प्राग् भ्रातृणामष्टमोऽभवत् सः ॥ ६५ ॥ धनभूमिनिधानस्थानं तिहृदक्षया ॥ ६६ ॥ ॥ ६० ॥ व्यक्तः आभिमानिकाकार आतिवाहिकदेहाकारेऽपि यैस्तथाविधाः सन्तस्तेषामष्टानां जीवसंविद्धिरेकतां यास्यन्तीः ति परेणान्वयः ॥ ६८ ॥ तुष्टिमत् राज्यं प्राप्येखर्थः ॥ ६९ ॥ उर्फ संग्रह्मोपसंहरति-इतीति । इति उक्तप्रकारं सप्तद्वीपा-थिपरयं तपोभिः प्रविकसितः पूर्वोदितवरः कियार्थी येषां तथाविधा एतेऽष्टी भातरः प्राप्यन्ति । विदः प्रस्यक्तैतन्यस्य अन्तर्देडनिश्वयात्मना यत्स्फुरति तदेव बाह्य तदुचिततपोज-पादिकमैंमिः कैनीसम् । किलेति प्रसिद्धी ॥ ७० ॥ इति भीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्त-योग० १८९

असत्स्वेषु पदार्थेषु पदार्था इति भान्ति यत्। चित्वं स्वप्तसुषुप्तातम तत्त्रस्थाच्छं निजं चपुः॥ ६ सस्पन्दोऽपि हि निःस्पन्दः पर्वतोऽपि न पर्वतः। यथा स्वप्नेषु चिद्धावः स्वभावोऽर्थगतस्तथा॥ ७ न स्वभावा न चैवार्थाः सन्ति सर्वात्मकोचिते। सर्गादौ कचितं क्षं यद्यथा तत्त्रथा स्थितम्॥ ८ न च नाम परं क्षं कचनाकचनात्मकम्। द्रव्यात्मा चित्र चिद्योम स्थितमित्थं हि केवलम् ९ पक्षेव चिद्यथा स्वप्ने सेनायां जनलक्षताम्। गतेवाच्छैव कचित तथेवास्था पदार्थता॥ १० यत्स्यतः स्वात्मनि स्वच्छे चित्त्वं कचकचायते। तत्तेनेव तदाकारं जगदिस्यनुभूयते॥ ११ असत्यपि यथा वहाबुण्णसंविद्धि भासते। संविन्मात्रात्मके व्योग्नि तथार्थः स्वस्वभासकः॥१३

रार्धे त्यशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १८३ ॥ गृहस्यान्तर्जगन्त्यष्टी संभवन्त्यपि कोटिशः। यतोऽप्रवृद्धचिन्मात्रं तथा भातीति वर्ण्यते ॥ १ ॥ गृहेषु अल्पावकाशे ताः प्रत्येकं पद्याशत्कोटियोजनविस्तीर्णा भुवः कथं भाता इति मया पृष्टोऽसो कदम्बतलतापस इति वक्ष्यमाणमुत्तरमुक्तवान् ॥ १ ॥ व्योमरूपी प्रपश्चशून्योऽपि आत्मानं त्रैलोक्यरूपेण अन्येन सुपुप्ततुर्यरूपेण वा स्वं रूप-मलजदेव परिपर्यतीति द्वयोरन्वयः ॥ २ ॥ ३ ॥ एकत्र नानाता विरुदेति शक्कार्थः ॥ ४ ॥ न वास्तवीयं नानाता किंतु भ्रान्तिकृता । सा चैकस्मित्रपि चन्द्रे द्विलयद्विरुद्वेत्याशयेनो-त्तरमाह—सर्वमिति ॥ ५ ॥ स्वप्नयुष्प्रवद्विस्पृतयथार्थस्वमान वात्म निजमहातं वपुः स्वरूपमेव ॥६॥ अतो न विरोध इति द्रीयति-सस्पन्द इति । स्वभावः सन्मात्रात्मा कल्पितार्थं-गतोऽपि तथैव बोध्य इत्यर्थः ॥ ७ ॥ सर्वोत्मकस्य उचिते बास्तवे रूपे न सर्गादिस्वभावा नापि तत्कृता अर्थाः ॥ ८ ॥ न च द्रव्यात्मनाप्यविश्व ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ स्वप्ने अस-

असरापि यथा स्तम्मे स्वप्ने खे स्तम्मता विवः। तथेदमस्या नानात्वमनस्यद्षि चान्यवन् ॥ १३ आदिसर्गे पदार्थन्यं तत्स्यभावाच्छमेव च । चिद्योद्धा यद्यथा बुद्धं तत्तथाद्यापि विन्दते ॥ १४ पुष्पे पन्ने फले स्तम्मे तहरेय यथा ततः। सर्वे सर्वत्र सर्वान्म परमेव तथाऽपरम्॥ १५ परमार्थाम्थराम्सोधावापः सर्गपरंपरा । परमार्थमहाकाशे शून्यता सगेसंविदः॥ १६ परमार्थश्च सर्गश्च पर्यायो तहबुक्षवत् । योधादेतद्योधानु द्वेतं दुःखाय केवलम् ॥ १७ परमार्था जगचेद्मेकभित्येव निश्चयः। अध्यात्मशास्त्रवोधेन भवेत्सपा हि मुक्तता ॥ १८ संकरपस्य वपुर्वहा संकरपकचिवाकृतः। तदेव जगतो रूपं तस्माइह्मात्मकं जगत्॥ १९ यतो बाचो निवर्तन्ते न निवर्तन्त एव वा। विधयः प्रतिपेधाश्च भावाभावदशस्तथा ॥ २० अमीनमीनं जीवात्म यत्पापाणवदासनम् । यत्सदेवासदाभासं तद्वहाभिधमुच्यते ॥ સર सर्वेस्पिन्नेकसुघने ब्रह्मण्येव निरामये। का प्रवृत्तिर्निवृत्तिः का भावाभावादिवस्तुनः २२ पकस्यामेव निद्वायां सुषुप्तस्वप्नविश्वमाः। यदा भान्त्यविचित्रायां चित्रा इव निरन्तराः ॥ २३ पतस्यां चित्खसत्तायां तथा मुख्कसर्गकाः।

खपि वहाँ खप्रचिदेव यथा उष्णलं भासते ॥ १२ ॥ १३ ॥ कवं तर्श्वर्थिकयानियतिस्तत्राह्-आदिसर्गे इति ॥ १४ ॥ सथा अपरे जगत् ॥ १५ ॥ सर्गमंबिदः सर्गप्रतिभासाः ॥१६॥ ॥ १७ ॥ १८ ॥ कथमेकं तत्राह-संकल्पस्येति ॥ १९ ॥ सर्वशब्दानां तन्मात्रनिष्ठलाम्न निवर्तन्त एव वा ॥ २०॥ सदेवासदाभासम् । 'तदेजति तत्रैजति' इत्यादिश्रतेरिति भावः ॥ २१ ॥ प्रश्रुत्तिः सर्गः । निपृत्तिः प्रलयः ॥ २२ ॥ २३ ॥ मूलका बीजभूताः प्रलयाः सर्गकाश्च ॥ २४ ॥ कथं भाति तदाह—ब्रव्ये इति । यद्यथा दध्यादिद्रव्ये शर्करादिद्रव्यान्तरं ष्टिष्टं मिलितं सत् प्रत्येककार्यापेक्षया कार्यान्तरं हचिप्रिपि-त्तोपशमादिकार्यान्तरमाक्षिपेत्तथा भूतानां प्राणिनामन्तःकरणे भिम्यक्तं प्रमातृनित्सारं बाह्य चक्षुरादिद्वारा निर्मेख घटाद्याका-रप्रतिक्षेषाच्छिष्टं घटपटादि तत्तद्विपयान्तर्यिष्ठानचिदावरणम-न्नेन मिथन्त्रपुटीस्फुरणमाक्षिपेदित्यर्थः ॥ २५॥ अतएव घटाद्यर्था अपि खाभिष्टानचिद्धीनसत्तास्फूर्तिकलात्तरसारमात्रमिलाह— सर्वे इति । यथा सर्गादै। भानित तथा इदानीमपि भानित ॥२६॥ स्थितिरपि तेषां यथासंवेदनमेव । निसम्दिविद्धिष्ठा-नकलादेव सर्वो द्रव्यशक्तयोऽपि खाश्रयात्र चलन्ति न हसन्ति चेखाह-निःस्पन्दा इति । मनस्कारी मानसो द्वैताकारमह-

यहवो भान्त्यचित्रायां चित्रा इष निरन्तराः॥ २४ द्रव्ये द्रव्यान्तरिक्षष्टं यत्कार्यान्तरमाक्षिपेत्। तद्वदन्तस्तथाभृतचित्सारं स्फ्ररणं मिथः॥ २५ सर्वे पदार्थाश्चित्सारमात्रमप्रतिघाः सदा। यथा मान्ति तथा भान्ति चिन्मात्रैकात्मतावशात चिन्मात्रैकारमसारत्वाद्यथासंवेदनं स्थिताः। निःस्पन्दा निर्मनस्काराः स्फुरन्ति द्वव्यशक्तयः २७ अविद्यमानमेवेदं रहयतेऽथानुभूयते । जगत्स्वप्त इवारोपं सरुद्रोपेन्द्रपद्मजम् ॥ २८ विचित्राः खलु दृश्यन्ते चिज्जले स्पन्दरीतयः। हर्पामपंत्रिपादोत्थजङ्गमस्थाचरात्मनि ॥ २९ म्बभाववाताधृतस्य जगज्जालचमत्कृतेः । हा चिन्मरीचिपांश्वभ्रनीहारस्य विसारिता॥ यथा केशोण्डकं व्योम्नि भाति व्यामलच्छापः। तथेवेयं जगद्धान्तिर्भात्यनात्मविदोऽम्बरे॥ ३१ याबत्संकरिपतं ताबद्यथा संकरिपतं तथा। यथा संकल्पनगरं कचतीदं जगत्तथा ॥ ३२ संकल्पनगरे यावत्संकल्पसकला स्थितिः। भवत्येवाप्यसद्भूषा सतीवानुभवे स्थिता ॥ ३३ प्रवहत्येव नियतिर्नियतार्थप्रदायिनी। स्थावरं जङ्गमं चैच तिष्ठत्येव यथाक्रमम्॥ 38 जायते जंगमं जीवात्स्थावरं स्थावरादपि। नियत्याधो वहत्यम्बु गच्छत्यूर्ध्वमथानलः॥ 34

साइहिताः ॥ २० ॥ इत्थं च जगत्त्रातिभासिकमेव प्रतिभास-मात्राधीनसर्वस्ववादित्याशयेनाह्—अविद्यमानमेवेति ॥२८॥ खलु यतः खप्नवदेव हुर्धामर्पविषादोत्था विचित्राः स्पन्दरी-तयो दश्यन्ते ॥ २९ ॥ स्वभावः अज्ञातस्वरूपनिष्टा विक्षेप-शक्तिस्तन्मात्रेण वायुना आधूतस्य । जगजालाकारा चम-त्कृतिर्थस्य तथाविषस्य, चित्रक्षणसलगुणात्मना प्रकाशेन मरीचेः, रजोगुणात्मना पांसुपटलस्य, तमोगुणात्मना आव-रणजाड्यप्राधान्येन अभ्रनीहारसहपनमसि विमारिता विस्ता-रशालिता । हा इति खेदे । कीदशजननमरणायनर्थसदसको-ट्यात्मना संपन्नेत्यर्थः । पांसुरेव पांद्यः । 'तालव्या अपि दन्त्याश्र शम्बद्धकरपांशवः' इति कोशप्रसिद्धेः ॥ ३० ॥ अना-त्मविदः अज्ञानावृतचिद्र्ष्टेः । अम्बरे खात्माकाशे ॥३१॥ त-स्याध कालप्रैकारव्यवस्था संकल्पानुसारेंगैवेल्याह—यावदिति । यथा येन येन प्रकारेण ॥ ३२ ॥ इष्टान्ते तां प्रकटयति---संकरपनगरे इति। असद्भूपापि सतीय स्थिता॥ ३३ ॥ सैव धातुः संकल्परूपा नियतिरद्यापि प्रवहत्यपेऽपि प्रवहत्येव तयैव स्थावरादिप्राणिजातं यथाक्रमं नियतमेव तिष्ठति ॥ ३४॥ तेषां जन्मकर्मस्वभावादिव्यवस्थापि तयैवेत्याह्-जायते इति ।

१ प्रसरिति पाठः.

यहिन्त देहयमाणि ज्योतींषि प्रतपन्ति च। वायषो नित्यगतयः स्थिताः शैलादयः स्थिराः ३६ ज्योतिर्मयं विवृत्तं तु धारासाराम्बरीकृतम्। युगसंवत्सराद्यात्म कालचक्तं प्रवर्तते॥ ३७ भूतलैकान्तराद्य्यद्विसंनिवेशः स्थितायते। भावाभावप्रहोस्सर्गद्वयशक्तिश्च तिष्ठति॥ ३८

कुन्ददन्त उवाच । प्राग्दष्टं स्मृतिमायाति तत्स्वसंकल्पनान्यतः । भाति प्रथमसगं तु कस्य प्राग्दप्रभासनम् ॥ तापस उवाच ।

अपूर्व दृष्यते सर्व स्वप्ने स्वमरणं यथा।
प्राग्द्यं दृष्टमित्येव तत्रैवाभ्यासतः स्मृतिः॥ ४०
चिस्वाश्विद्योम्नि कचित जगत्संकलपत्तनम्।
न सन्नासदिवं तस्माद्भाताभातं यतः स्वतः॥ ४१
चित्रसादेन संकल्पस्त्रमाद्याचमुभूयते।

शुद्धं चिद्योम संकल्पपुरं मा सार्यतां कथम्॥ ४२ हर्पामपंविनिर्मकेर्द्रःखेन च सुखेन च। प्रकृतेनेव मार्गेण केश्वकरिय गम्यते॥ ध३ निद्वाव्यपगमे स्वप्ननगरे याद्यां स्मृती। चिद्योमात्म परं विक्ति ताहरां त्रिजगद्भमम् ॥ ४४ संविदाभासमात्रं यज्ञगडित्यभिदाब्दितम् । तरसंविद्योम संदान्तं केवलं विद्धि नेतरत्॥ यस्मिन्सर्वे यतः सर्वे यत्सर्वे सवेतश्च यत् । सर्वे सर्वेतया सर्वे तत्सर्वे सर्वेदा स्थितम्॥ 86 यथेयं संस्तिबंह्यी भवतो यद्भविष्यति । यथा भानं च हर्षम्य तदेतत्कथितं मया॥ 80 उत्तिष्ठतं ब्रजतमास्पदमह्नि पद्म भृक्षाविवाभिमतमाश्रु विधीयतां स्वम् । तिष्टामि दुःखमलमससमाधिसंस्थं भयः समाधिमहमङ्ग चिरं विद्यामि ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० दे० मो० नि०उ० ब्रह्म०ता० कुन्ददन्ते घडेशो नाम चतुरशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥१८४॥

39

पश्चादीत्यधिकदाततमः सर्गः १८५

कुन्ददन्त उवाच । जरन्मुनिरपीत्युक्त्वा ध्यानमीलितलोचनः । आसीदस्पन्दितप्राणमनाश्चित्र इवार्षितः ॥ १ आवाभ्यां प्रणयोदारैः प्राधितोऽपि पुनःपुनः ।

जीवारस्फुटजीवनाजञ्जमात् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ज्योतिर्मयं कारुचकं दक्षिणायनात्मना विवृत्तं वर्षती धारासारव्याप्ता-म्बरीकृतम् । तथैव नियत्या ॥ ३७ ॥ भूनले च द्वीपभेदैरेका-न्तराणामञ्त्रीनामद्रीणां च संनिवेदाः स्थितवदाचरति स्थिता-यसै ॥ ३८ ॥ नन्वस्पदादिसर्वजनव्यवहारो धातृसंकल्पह्यनि-यसा व्यवस्थितोऽस्तु । धातुः संकल्पव्यवस्थिव तु पूर्वानुभवः जन्यसंस्कारातिरिक्तहेलसंभवादादिसमं च पूर्वानुभवाप्रसिद्धेः कथं सिष्यतीति कुन्ददन्तः शहते---प्राग्दष्टमिति । तत्त-तस्तदनुसारिखसंकरुपनानि भवन्ति । अत एन्यः खसंकरुप-नेभ्यो नियतः सर्गो भाति । इदं तु द्वितीयादिकल्पसर्ग उपपचते । प्रथमसर्गे तु कस्य प्रावसर्गभासनं प्रसिद्धम् । यं **पृच्छेत्स्वयं वा स्मरेदि**त्यर्थः ॥ ३९ ॥ न स्मरणाधीनो घातुः संकल्पः किंतु दिव्यक्तानेनातीतानागतसर्ववस्तुदर्शनाधीनः। 'स ऐक्षत लोकामु सजा इति स इमाँहोकानसजत' इला-दिश्रतेः । तस्मिश्र क्षणे सर्वमतीतानागतं जगदपूर्वमेव द्दयते दशनुसारिणी च चिद्विवर्तरूपा सांकल्पिकी सृष्टिः प्रवर्तते । तत्रेवेदं मया प्राम्हष्टमित्यप्यध्यस्यते कचिदिति तापसः समा-**धते-अपूर्वमित्यादिना ॥ ४० ॥ यतः कदाचिद्धातं कदा-**चिदभातम् ॥ ४१ ॥ दर्शनासामध्ये हि स्मृतिः कल्येत । वाक्येः संसारमविदन्न यचो दत्तवान्युनः॥ २ आवां प्रदेशतस्त्रसाद्यातित्वा मन्दमुत्युकौ । दिनैः कतिपयैः प्राप्तां गृहं मुदितवान्धवम् ॥ ३

स्त्री कल्पनामात्रेण दर्शनसमयीयाधितः स्वृतिकल्पनाद्र्शंनादित्याह्—चित्प्रसादेनेति ॥ ४२ ॥ अतएः गुणदोषाद्यसरणाद्वषीमपरिहितस्त्वद्येः कुळाळचकवत्प्रारः विशेनेव अम्यत
इत्याह—हर्षेति ॥ ४३ ॥ वाधितस्मृतिध न रमृतिः किलधिष्टानमात्रपरिशेषदर्शनमिलाह्—निव्रेति ॥ ४४ ॥ तत्संशान्तं व्योमव ताद्यं लं विद्धि ॥ ४५ ॥ यतिधदेव
संशान्ता सर्वमिलाह—यस्मितित ॥ ४६ ॥ तदेतत्सर्वं मया
भवतः कथितमित्युपमंहारः ॥ ४० ॥ अक हे द्विजा, युवां
वित्रिष्ठतम्। अहि प्रातः पद्मे भक्तविव आस्पदं गृहं वजतम् ।
तत्राभिमतं सत्कर्म विधीयताम् । अहमिदानीमस्तसमाधिसंस्थमलमत्यन्तं दुःसं यथा स्यात्तथा तिष्ट्रामे । अतस्तत्परिहाराय भ्यः अलं समाधि विद्यामीत्यर्थः ॥ ४८ ॥ इति
श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे चत्ररशीत्यधिकशत्तमः सर्गः ॥ ६८४ ॥

तयोर्गृहागमसत्र भावुणां क्रमशः क्षयः।

कुन्द्रदन्तस्य रामाध्या मोहोच्छित्तिश्र वर्ण्यते ॥ ३ ॥ अस्पन्दिते प्राणमनसी यस्य ॥ १ ॥ प्रणयोदारैबीक्यैरा-वान्यां प्रार्थितोऽपि बचो न दत्तवान् । यतो बाह्यपृस्युपरमा-रसंसारमविद्रवनुसंद्धान इत्यर्थः ॥ २ ॥ मुनिवियोगाहु-

२०

२७

Ę

Q

ረ

९

अथ तत्रोत्सयं कृत्वा कथाः प्रोच्य चिरंतनीः। स्थितास्तावद्वयं यावत्सप्तापि भ्रातरोऽध ते॥ ऋमेण विलयं प्राप्ताः प्रलयेष्वर्णवा इव । मुक्तोऽसी में सखेवेक एकार्णय इवाष्ट्रकः॥ ततः कालेन सोऽप्यस्तं दिनान्तेऽर्क इवागतः। अहं दुःखपरीतात्मा परं वैधुर्यमागतः॥ ततोऽहं दुःखितो भूयः कदम्बतहतापसम्। गतो दुःखोपघाताय तज्ज्ञानं प्रष्टुमादतः॥ तत्र मासत्रयेणासी समाधिविरतोऽभवत्। प्रणतेन मया पृष्टः सम्निदं प्रोक्तवानथ ॥

कदम्वतापस उवाच। अहं समाधिविरतः स्थातुं शक्कोमि न क्षणम्। समाधिमेव प्रविशाम्यहमाश्र कृतत्वरः॥ परमार्थोपदेशस्ते नाभ्यासेन विनानघ । लगत्यत्र परां युक्तिमिमां शृणु ततः कुरु॥ ęο अयोध्यानाम पूरस्ति तत्रास्ति वसुधाधिपः। नाम्ना दशरथस्तस्य पुत्रो राम इति श्रुतः॥ ११ सकारां तत्र गच्छ त्वं तसी कुलगुरुः किल। वसिष्ठाख्यो मुनिश्रेष्ठः कथयिष्यति संसदि॥ १२ मोक्षोपायकथां दिव्यां तां श्रुत्वा सुचिरं द्विज । विश्रान्तिमेष्यसि परे परेऽहमिव पावने ॥ १३ इण्यक्त्वा स समाधानरसायनमहार्णवम्। विवशाहमिमं देशं त्वत्सकाशमुपागतः॥ 83 एषोऽहमेतहत्तं मे सर्वे कथितवानहम्। यथावृत्तं यथादृष्टं यथाश्रुतमखण्डितम् ॥ १५

श्रीराम उवाच। सकुन्ददन्त इत्यादि कथाकधनकोविदः। स्थितस्ततःप्रभृत्येव मत्समीपगतः सदा ॥ १६

स एप कुन्वदन्ताख्यो द्विजः पार्श्वे समास्थितः। श्रुतवान्संहितामेतां मोश्लोपायामिधामिह ॥ स एष कुन्ददन्ताख्यो मम पार्श्वगतो द्विजः। अद्य निःसंशयो जातो न वेति परिपृच्छवताम् १८

श्रीवार्ल्मीकिरुवाच ।

इत्युक्ते राघवेणाथ प्रोवाच वदतांबरः। स वसिष्टो मुनिश्रेष्ठः कुन्ददन्तं विलोकयन् ॥ १९ घसिष्ठ उघाच।

कुन्ददन्त उवाच ।

कुन्ददन्त द्विजवर कथ्यतां किं त्वयानघ। बुद्धं श्रुतवता क्षेयं मदुक्तं मोक्षदं परम्॥

सर्वसंशयषिच्छेदि चेत एव जयाय मे । सर्वसंशयविच्छेदो ज्ञातं ज्ञेयमखण्डितम्॥ २१ भातं भातव्यममलं दृष्टं द्रष्ट्वमक्षतम्। प्राप्तं प्राप्तव्यमखिलं विश्वान्तोऽस्मि परे पदे ॥ २२ बुद्धेयं त्वदिदं सर्वे परमार्थघनं घनम्। अनन्येनात्मनो व्योम्नि जगद्र्यण जम्भितम् ॥ २३ सर्वात्मकतया सर्वरूपिणः सर्वगात्मनः । सर्वे सर्वेण सर्वत्र सर्वदा संभवत्यलम् ॥ રપ્ટ संभवन्ति जगन्त्यन्तः सिद्धार्थकणकोटरे । न संभवन्ति च यथा शातमेतदशेषतः॥ २५ गृहेऽन्तः संभवत्येव सप्तद्वीपा वसुधरा । गेहं च शून्यमेवास्ते सत्यमेतदसंशयम् ॥ २६

यद्यदा वस्तु यथोदितात्म भातीह भूतैरनुभूयते च। तत्तत्वा सर्वधनस्तथास्ते ब्रह्मस्थमाधन्तविमुक्तमस्ति॥ इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० मो०नि० उ० ब्रह्म० ता० कुन्ददन्तप्रयोधो नाम पद्याशीलधिकशततमः सर्गः ॥ १८५ ॥

रमुकी ॥ ३ ॥ तत्र यहे कुरुद्वताराधनसुवासिनीबाह्मणभी-जनाबुत्सवं कुला ॥ ४ ॥ प्रत्येषु प्रत्यारम्भे द्वादशादिल-तापात्मप्तार्णवा इव ॥ ५ ॥ स मत्सखः अष्टमोऽपि । वैधुर्य स्रिजनवियागम् ॥ ६ ॥ तत्र्राक्तेनोक्तमात्मज्ञानम् ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ९ ॥ इदानीं मथा ऋतोऽपि ते न लगति । परामन्यां सुक्ति ज्ञानप्राह्यपायम् ॥ १० ॥ १९ ॥ मोक्षोपायकथां कथ-बिष्यति ॥१२॥१३॥ खत्सकाशमिति रामं प्रत्युक्तिः ॥ १४॥ अखिष्डतमितिलम् ॥ १५ ॥ १६ ॥ इह अस्यां सभायाम् ॥ १७ ॥ एवं प्रश्नोपोद्धातमुगवर्ण्य प्रष्टव्यांदामाह-स इति ॥ १८ ॥ १८ ॥ २० ॥ सर्वसंदेहविच्छेदो जात इति श्रीयः । यतोऽवस्यक्षेयमखिष्डतं प्रत्यरमेदलक्षणखण्डतसूत्यं ब्रह्मतस्यं शतम् ॥ २१ ॥ इ।नमात्रेण मोहनिय्रत्या हातव्यान्तरस्य

दृश्व्यान्तरस्य छब्धव्यान्तरस्य चापरिशेषात्कृतकृत्यतामाह-ज्ञातमिति ॥ २२ ॥ खत् लत्त इयमात्मचिन्मया बुद्धा । कथं बुद्धा तदाह--इदं सर्वमिखादि ॥ २३ ॥ २४ ॥ सिद्धार्थः श्वेतसर्पपसादीयकणकोटरेऽपि अधिष्ठानचितः सर्वकल्पनाश-क्तिसंखतायाः सत्त्वात्तद्दन्तर्मायादशा जगन्ति संभवन्ति । पर-मार्थंदशा तु कापि न संभवन्ति च ॥२५ ॥२६॥ तत्र समायं ब्रह्मतत्त्वं निष्कृत्योपसंहरति-यद्यदिति । सर्वधन आत्मैव सर्वजनसार्वकालिकबोधविषयसर्वभावेनास्ते ततोऽन्यत्केनचित्कदाचिद्ध्यनुभूयत इति निष्कर्षे इति भावः ॥ २७ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणे तात्पर्वप्रकाशे निर्वाणमकरणे उत्तरार्धे पद्धाशीत्रधिकशततमः सर्गः 11 264 11

षडदीत्यधिकदाततमः सर्गः १८६

श्रीवाल्मीकिरुवाच । कुन्ददन्ते वदत्येवं वसिष्ठो भगवान्मुनिः । उवाचेदमनिन्द्यात्मा परमार्थीचितं वचः ॥

वसिष्ठ उवाच ।

वत विज्ञानविश्रान्तिरस्य जाता महान्मनः ।

करामलकचिद्धश्वं ब्रह्मेति परिपश्यति ॥

किलेदं भ्रान्तिमात्रात्म विश्वं ब्रह्मेति भात्यजम् ।
भ्रान्तिब्रह्मेव च ब्रह्म शान्तमेकमनामयम् ॥
यद्यथा येन यत्रास्ति याहर्ग्यावद्यदा यतः ।
तत्त्रथा तेन तत्रास्ति ताहक्तावत्तदा ततः ॥
शिवं शान्तमजं मौनममौनमजरं ततम् ।
सुश्न्याश्न्यमभवमनादिनिधनं भ्रुवम् ॥
यस्या यस्यास्त्ववस्थायाः क्रियते संविदा भरः ।
सा सा सहस्रशाखत्वमेति सेकेर्यथा छता ॥
परो ब्रह्माण्डमेवाणुश्चिद्योद्भोन्तःस्थितो यतः ।
परमाण्येच ब्रह्माण्डमन्तःस्थितजगद्यतः ॥

तस्माचिदाकाशमनादिमध्यमर्खाण्डनं सौम्यमिदं समस्तम्।
चिर्णाणमस्तं गतजातिबन्धो
यथास्थितं तिष्ठ निरामयात्मा॥ ८
स्वयं दृश्यं स्वयं जुडम्।
स्वयं किंचिश्र किंचिश्र व्रहात्मन्येव संस्थितम्॥ ९

सर्वे अक्षेति सिद्धान्तो युक्तिभिः कियतेऽचलः । वरसापार्थसिद्धित्र घातुः संकल्पतिश्रतः ॥ ५ ॥

कुन्ददन्तवर्थितं मायाशयलबद्धातस्यं प्रथमतो दर्शकुला निर्मायं शुद्धं तद्वर्णयितुं श्रीवसिष्टः प्रवृत्त इत्याह—कुन्ददन्ते इति ॥ १ ॥ बतेत्यनुकम्पायाम् । ज्ञातेति पाठे ज्ञातेन साक्षा-रकारज्ञानफलेन विज्ञानस्य शास्त्रश्रवणलभ्यज्ञानस्य विश्रान्तिः पूर्णता । करामछकविति तस्यव स्फुटमभिनयः ॥ २ ॥ आन्तिरन्यधामहस्तन्मात्रात्मकं विश्वं बङ्गात्यस्य भाति यतो भ्रान्तिरपि ब्रह्मवेखस्य भाति ॥ ३ ॥ शवलब्रह्मनिष्कपेदशा-नेन यहूर्णितं तद्पि सम्यगेवेत्याह-यदिति ॥ ४ ॥ तच शुद्धाविरुद्धम् । मायाया विकारं विनेव वैचित्र्यप्रकटनादित्या-शयेनाह्—शिवमिति ॥ ५ ॥ संविदा मायाशबळिचता। भरः संकल्पातिशयः ॥ ६ ॥ ब्रह्माण्डमेव परोऽणुः परमाणुः । एवं परमाणुरेव ब्रह्माण्डं यतोन्तःस्थितजगत् ॥ ७ ॥ जग-इस्रैव चेद्यत्फलितं तदाइ—तस्मादिति । अस्तं गतो जातिः शरीरादिवैचिष्यं तद्भुषो बन्धो यस्य तथाविधः सन् यथास्थितं ब्रह्मैन भूला तिष्ठ ॥ ८ ॥ व्यवहारे तु ब्रह्म स्वयमेन दश्या-दिवेषेण संस्थितम् । परमार्थतस्त तत् आत्मन्यद्वितीयस्तप्र-

यथा यत्र जगत्येतत्स्वयं ब्रह्म खमात्मनि । स्वरूपमजहच्छान्तं यत्र संपद्यते तथा ॥ ŧο ब्रह्म दृश्यमिति द्वैतं न कदाचिचथा स्थितम्। एकत्वमेतयोविद्धि शुन्यत्वाकाशयोरिय ॥ ११ रस्यमेव परं ब्रह्म परं ब्रह्मेव रस्यता। एतन्न शान्तं नाशान्तं नानाकारं न चाकृतिः १२ याहम्प्रवोधं स्त्रप्तादिस्ताहम्देहो निराकृतिः। संविन्मात्रातमा प्रतिघः स्वानुभृतोऽष्यसन्मयः १३ संवित्मयो यथा जन्तुर्निद्वात्मास्ते जडोऽभवन्। जडीभृता तथैपासे संवित्स्थावरनामिका ॥ स्थावरत्वाजाडाचित्त्वं जंगमात्म प्रयाति चित्। जीवः सुष्प्रात्मा स्वप्नं जात्रश्चेव जगच्छतः ॥ आमोक्षमेपा जीवस्य भूत्र्यम्भस्यनिलेऽनले । खे खात्मभिजगहर्भः स्वप्नामभीसते स्थितिः चिचिनोति तथा जाङ्यं नरो निद्रास्थितिर्यथा। चिनोति जडतां चिस्वं न नाम जडतावशात् चिता वेदन वेत्तारं स्थावरं कियते वपुः। चिता वेदनवेत्तारं जंगमं क्रियते वषुः॥ 86 यथा पुंसो नखाः पादादेकमेव दागरकम्। तथकमेवाप्रतिघं चितः स्थावरजंगमम्॥ १९ आदिसर्गे स्वप्न इव यत्त्रथामागतं स्थितम्। चितों रूपं जगदिति तस्थेवान्त उच्यते॥ 20

काशानर्देकरसात्मन्येव संस्थितम् ॥ ९ ॥ यत्र यद्वासनया यथा संपद्यते तत्र तथा स्थितमिखनुकर्यः ॥ १० ॥ अहामा-यया दृश्यं जगत्संपन्नांमत्येतावता द्वेतं न कदाचिन्मन्तव्यं, यतो यथास्त्रितगविकृतभेत्रास्ते ॥ ११ ॥ १२ ॥ प्रतीयमाना देहाबाकृतिः कथमपलप्यतं तत्राह --याहगिति ॥ १३ ॥ संविदोऽपि जडस्थावरमाचे दष्टान्समाइ---संविन्मय इति॥१४॥ तस्याः स्थावरभाशेतरं जन्नमभावे चिद्धित्रवर्ता दशन्त-माइ—स्थावरलादिति । यथा सुपुप्तातमा जीवः खप्नं जाप्रचैव जगच्छतकल्पनैगेच्छति तद्वदिखर्थः ॥ १५ ॥ कियत्कालं स्थावरजङ्गमादिभावस्थितिस्तत्राह-अामोक्षमिति ॥ १६ ॥ चिनोति अध्यस्यति । तथाप्यस्याधिन्वमव्याहतमित्याह-चिनोतीति । अध्यस्तजङतावशाजङतां न चिनोति, वस्तुतो जडतां न नाम भजते ॥ १७ ॥ जाञ्यवेदनवेतारं जीयं प्रति स्थावरं वपुः क्रियते तथा जंगममपि ॥ १८ ॥ तथा कृतेऽपि न चिद्धेदः किंतु महानितः खाध्यस्तं सर्वमचेतनं चेतनं च नखपादादिवदययवभूतमेवेखाह-यथेति ॥ १९॥ आदिसर्गे हिरण्यगर्भस्य प्राथमिकसर्गहेती संकल्पे यथा यद्र्पं प्रथमागतं तत्तथैवाधनापि स्थितम् । एवं चिरानडस्पेण

तश्चेषाप्रतिष्ठं शान्तं यथास्थितमवस्थितम् । न प्रथामागतं किंचिन्नासीदप्रथितं हितम् ॥ २१ अयमादिरयं चान्तः सर्गस्यत्यवभासते । चितः सुधननिद्वायाः सुपुप्तस्यप्रकोष्टतः ॥ ર્ર स्थित एको हानाद्यन्तः परमार्थघनो यतः। प्रस्यस्थितिसर्गाणां न नामाप्यस्ति मां प्रति ॥२३ प्रलयस्थितिसर्गादि रदयमानं न विद्यते। प्तन्न चारमनश्चान्यश्चित्रे चित्रवधूर्यथा ॥ २४ । फर्तच्यचित्रसेनास्माद्यथा चित्राग्न भिद्यते । मानाऽनानेव प्रतिघा चित्तत्वे सर्गता तथा ॥ २५ विभागरीनयाप्येप भागश्चिद्धननिद्रया । सुषुप्तान्मुच्यते मोक्ष इति स्वप्नस्तु चित्तकम् ॥२६ प्रलयोऽयमियं सृष्टिरयं स्वप्नो घनस्त्वयम् । भासोऽप्रतिघरूपस्य चित्सहस्ररुचेरिति॥ २७ चित्रिद्वायाः स्वप्नमयो भागश्चित्तमुदाहृतम्। तदेव मुच्यते भूतं जीवो देवासुरादिहक् ॥ 26 पय पव परिशातः सुप्रितमेवति स्वयम्। यदा तदा मोक्ष इति प्रोच्यते मोक्षकाङ्क्रिभिः २९ श्रीराम उवाच। चित्तं देवासुराद्यात्म चिन्निद्रा स्वात्मदर्शनम्।

कियत्प्रमाणं भगवन्कथमस्योदरे जगत्॥

स्थितमपि चिन्मयलादप्रतिषं शान्तमिलादि तद्यवादेन सर्ग-स्पान्त उच्यते इति परेणान्वयः ॥ २०॥ यती नासीदतः अप्रियतं कदापीत्येव हितम् ॥ २१ ॥ एवं सर्गमात्रस्य त्रैकालिकासस्वे आद्यन्तकल्पनापि भिर्ध्यवेखाह --अयमिति । यथा स्वाप्रप्रपश्चस्य सुपुप्ततादिप्रवोधानततापि निद्रा कोष्टान्तरेव कल्प्यते न प्रनोधकोष्ठान्तसाद्वदित्यर्थः ॥ २२ ॥ तत्कृतस्त-त्राह-स्थित इति । मां प्रयुद्धं प्रति नामापि नास्ति दूरे रूपमित्यर्थः ॥ २३ ॥ २४ ॥ यथा चित्रकृता कर्तव्या चित्र-सेना अस्मात्तद्वादस्थाचित्रात्र भिद्यते तथा प्रतिघा मूर्ता सर्ग-तापि स्रष्टुश्वित्तत्वे नानाप्यनानेव ॥ २५ ॥ विभागहीनयापि चिद्धननिद्रया अविद्यया सुषुप्तादेवावरणाद्वास्तवस्वरूपभूतोऽपि मोक्ष इति प्रसिद्धो भागो सुष्यते चोर्यते अपलप्यते । त प्रत्युत चित्तकं भूला एप जामद्भागः खप्रश्र प्रदर्शते इति शेषः । 'सुपुप्तात्सोयते मोक्षः' इति पाठे तु सोयते श्रवणमन-नाद्युद्योगसहिते पुरुषे मोक्ष इति विभागः प्रदर्शते । अन्यस्मिम्त् चित्तकं भूला द्विविधः खप्तः प्रदर्शत इति व्याह्ययम् ॥२६॥ थनो जागरः प्रज्ञानघनतारूपसुषुप्तिकस्य चित्सहस्रहचेरात्म-सूर्यस्य इति एवंरूपा भासः प्रकाशभेदाः ॥ २७॥ तत्र य उद्भुतवासनात्मा खप्रभागः स एव उपाध्यंशप्राधान्येन चिलं चिदंशप्राधान्येन जीवः स एव देवामुरमनुष्यावधिकारिशरी-रहक् संस्तत्वज्ञानेन निदां विधूय मुच्यते ॥२८॥ तदेवाह-एष एनेति । चतुर्थपश्चनभूमिकयोः परिज्ञातः पष्टभूमिकायां

वसिष्ठ उवाच। विक्रि चित्तं नरं देवमसुरं स्थावरं स्त्रियम्। नागं नगं पिशाचादि खगकीटादिराक्षसम्॥ प्रमाणं तस्य चानन्तं विद्धि तद्यत्र रेणुताम्। आब्रह्मस्तम्बर्णयन्तं जगद्याति सहस्रदाः॥ 37 यदेतदादित्यपथादृध्वं संयाति वेदनम्। पतिचलं भूतमेतदपर्यन्तामलाकृति॥ 33 एतद्रश्रं चितो रूपमस्यान्तर्भवनर्द्धयः। यदायान्ति तदा सर्गश्चित्तादागत उच्यते ॥ રુષ્ટ चित्तमेय विदुर्जीवं तदाद्यन्तविवर्जितम्। खं घटेष्यिव देहेषु चास्ते नास्ते तदिच्छया ॥ निम्नोन्नतान्भुवो भागान् गृह्वाति च जहाति च । सरित्प्रवाहोऽङ्ग यथा शरीराणि तथा मनः ॥ ३६ अस्य त्वात्मपरिशानादेष देहादिसंभ्रमः। शाम्यत्याश्ववबोधेन मध्वाःप्रत्ययो यथा ॥ ३७ जगत्यन्तरणुर्यत्र तत्प्रमाणं हि चेतसः। सदेव च पुमांस्तसात्पुंसामन्तःस्थितं जगत् ॥ ३८ यावरिंकचिदिदं दृइयं तिश्चत्तं स्वप्नभूष्विव । तदेव च पुमांस्तसात्को मेदो जगदात्मनोः ॥ ३९ चिदेवायं पदार्थीघो नास्त्यन्यस्मिन्पदार्थता । व्यतिरिका स्वप्न इव हेस्रीव कटकाविता॥

सुपुक्तिभैवति । सप्तमभूमिक(यां मोक्ष इति प्रोच्यते ॥ २९ ॥ चित्तं देवासुरादिभेदेन कियत्प्रमाणं कियत्संस्थानं च भवति विजिहा तस्योदरं जगच कियरप्रमाणं कियरकालं भवतीति प्रश्नार्थः ॥ ३० ॥ तत्राद्यसोत्तरमाह —विद्वीत्यादिना ॥३१॥ रेणुतां परम'णुतामवर्धाकृत्य ॥ ३२ ॥ वैपुल्योत्कर्षमप्यनु-भवमारोह्यति-यदेनभिति । ऊर्ध्वं चक्षः प्रेरणे यदेतदादि-त्यपथान्ध्वेदेशे ध्रवान्धकारादिप्रदेशेऽपि चाक्षपं वेदनं संयाति तदेतावस्त्रमाणं भूतं चित्तमपर्यन्तममलाकृति च सर्वानुभव-सिद्धमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ दुःसहसंसारदुःखबहुललादुमम् । असीव समक्र्यात्मनोऽन्तर्भुवनर्द्धयो यदा ब्रह्माण्डादिकस्पनया आयान्ति तदा सर्गः स चास्मामिश्वित्तागत इत्युच्यते ॥३३॥ आचन्तवित्रर्जितं विभु । अतएव सर्वदेहेषु आस्ते व्यष्टिरूपेण देहादुःक्रमणात्रास्ते च घातुरिच्छयेखर्यः ॥ ३५ ॥ तत्र <mark>शरी</mark>-रप्रद्रणत्यागयोर्देशान्तमाह—निम्नेति । हेऽज्ञा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ एवं सर्वजगद्गर्भितस्य मनसः परमाणुरूपतैवेत्याह्-जगतीति । यत्र जालसूर्यमरीच्यादी सर्वतः सूक्ष्मोऽणुर्यत्त्रमाणः प्रसिद्धः स्तक्षेतसः प्रमाणं परिमाणम् । तदेव च पुमान् जीवः । 'वालाप्रशतनागस्य शतथा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विशेषः स चानन्स्याय कल्पते' इति श्रुतिरिति भावः ॥ ३८ ॥ एनं च जीवजगद्भेदोऽप्यपमृष्ट इत्याह---यावादेति ॥ ३९ ॥ र्जावजगदभेदे चिन्मात्रतापि जगतः सिद्धेत्याह--विदेवेति । अन्यसिक्षिद्धिभेऽभ्यपगम्यमाने सत्तास्फरणगोरलाभावलीक- यथैकदेशे सर्वत्र स्फ्ररन्त्यापोऽम्बुधौ पृथक् । ब्रह्मण्यनन्या नित्यस्थाश्चितो रहयात्मिकास्तथा ४१ यथा द्ववत्वमम्भोधावापो जठरकोशगाः। स्फूरन्त्येवंविदाऽनन्याः पदार्थीघास्तथापरे ॥ ४२ यथा स्थितं जगच्छालभिक्षकाकाशरूपधृक् । चित्स्तम्भोयमपस्पन्दः स्थित आद्यन्तवर्जितः ४३ यथास्थितमिदं विश्वं संविद्योम्नि व्यवस्थितम् । स्वरूपमत्यजच्छान्तं स्वप्नभूमाविचासिलम् ॥ समता सत्यता सत्ता चैकता निर्विकारिता। आधाराधेयतान्योन्यं चैतयोर्विश्वसंत्रिदोः॥ 5,4 स्वप्तसंकल्पसंसारवरशापदशामिह। सरोब्धिसरिदम्बुनामिवान्यत्वं न वाथवा॥ કદ श्रीराम उवाच । वरशापार्थसंवित्तां कार्यकारणता कथम्।

वसिष्ठ उवाच ।
स्ववदातिचदाकाशकचनं जगदुच्यते ।
स्पुरणे पयसामन्धावाधर्तचळनं यथा ॥ ४८
ध्वनन्तोऽन्धिजळानीव भान्ति भावाश्चिदात्मकाः।
संकल्पादीनि नामानि तेषामाहुर्मनीषिणः ॥ ४९
कालेनाभ्यासयोगेन विचारेण समेन च ।

उपादानं विना कार्ये नास्त्येव किल कथ्यताम् ४७

तापत्त्या व्यतिरिक्ता पदार्थतैव नास्ति न सिध्यतीसर्थः ॥ ४० ॥ यथा अम्बुधिलक्षणे एकदेशे एकीभूय स्थिता एवापः पृथक् स्फरन्ति तहुद्रह्मण्यपि दश्यात्मिकास्ता इखर्थः ॥ ४९ ॥ अनन्यत्वे तद्भवखदृष्टान्तुमाह—यथेति ॥ ४५ ॥ एवंच यथास्थितजगन्नक्षणः शालभिक्षानां यदाकाशरूपमात्यन्तिक-श्रन्यता तद्वपपृक् चित्साम्भ एव निस्पन्दोऽचलः स्थितः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ कथं शान्तं कथं च खरूपमखजत्तदाह-समतेति । पधिमः प्रकारेर्नेदाविभावनाच्छान्तमाधाराधेयभा-वेन स्तम्भशालभिकावद्यवहारे ईषद्वेदप्रतिभासात्स्वरूपम-व्यजदिव्यर्थः ॥ ४५ ॥ तत्र प्रातिभातिको मेदो बस्तुतस्त तदभाव इत्याह— खप्रेति । वरशापाभ्यां नन्दिनहृषयोर्देव-सर्पभावप्रतिभासदशामिव व्यवहारसमर्थमन्यलं परमार्थतस्त नवा ॥ ४६ ॥ नन्दिनो मनुष्यदारीरे देवशरीरोपादानं चन्द्रा-मृतभागो नास्ति एवं चन्द्रामृतपरिणामे नहुषस्य देव-शरीरे सर्पशरीरोपादानं तदण्डादि नास्ति । उपादानंविना लोके कार्य च कापि नास्ति तत्रोभयत्र कथं देवसर्पशरी-॥ ४७ ॥ निरावरणविज्ञानस्य रसिद्धिरिति रामप्रश्लार्थः भगवतो रद्वस्यागस्यादीनां च सत्यसंकल्पावच्छित्रा चिदेव सुरसपेशरीरात्मना तत्र विवर्तत इति विवर्तवादेनास्या-क्षेपस्य प्रसर इत्युत्तरं वसिष्ठो वक्तं भूमिकां रचयति--खबदातेखादिना । स्वदातस्तश्वज्ञानविमृष्टलादतिनिर्मलो यिषदाकाशस्तस्य सत्यसंकल्पानुसारि कवनं तदित्यसक्रन्मयो-

जातेर्घा सास्विकत्वेन सास्विकेनामलात्मना सम्यग्हानवतो इस्य यथा भूतार्थदर्शिनः। बुद्धिभवति चिन्मात्ररूपा द्वैतैक्यवर्जिता ॥ ५१ निरावरणविज्ञानमयी चिद्वसरूपिणी। संवित्यकाशमात्रकदेहादेहविवर्जिता ॥ 42 सोऽयं पश्यत्यशेषेण यावत्संकल्पमात्रकम्। स्वमात्मकचनं ज्ञान्तमनन्यत्परमार्थतः॥ 43 अस्या इदं हि संकल्पमात्रमेवाखिलं जगत्। यथा संकल्पनगरं यथा स्वप्नमहापुरम् ॥ વ્ય आत्मा स्वसंकल्पवरः स्वयदातो यथा यथा। यद्यथा संकल्पयति तथा भवति तस्य तत्॥ संकल्पनगरे वालः शिलाप्रोड्डयनं यथा। सत्यं वेत्यनुभ्याशु स्वविधेयनियन्त्रणम् ॥ **પ** દ स्वसंकल्पात्मभूते ऽस्मिन्परमातमा जगन्रये। वरशापादिकं सत्यं वेस्यनन्यत्तथात्मनः॥ 40 स्वसंकलपुरे तेलं यथा लिखाति संकतान्। कल्पनात्सर्गसंकर्णवेरादीह तथात्मनः॥ 46 अनिरावरणक्षप्तर्यतः शान्ता न मेदधीः। ततः संकल्पनाद्वेताद्वराचस्य न सिद्धपति ॥ 49 या यथा कलना रूढा तावत्सायापि संस्थिता। न परावर्तिता यावद्यह्मात्कव्पनयान्यया ॥ 80

च्यते ॥ ४८ ॥ विधातुः स्वात्मचिति जगद्भावाश्विदारमका एवाकस्माद्धान्ति तेषां भानानां 'सोऽकामयत' 'तदैक्षत' 'समक्रुपतां द्यावाष्ट्रयिवी' इत्यादिश्रुतयो मनीयिणः ऋषयश्व संकल्पादीनि नामान्याहः॥ ४९॥ तत्र निरायरणविज्ञानानां यद्भावार्थस्फरणं स एव सखसंकल्प इति दर्शयितुं तादशवि-ज्ञानकारणान्याह---काछेनेत्याना । काछेन कर्कव्यादेः । समेन शत्रुमित्रादिषु समद्दीनेन । देवानां तु जातेः सारिव-कःवेन ॥ ५० ॥ ५९ ॥ ५२ ॥ सोयं निरावरणविज्ञानः पुरुषो यावत्संकल्पमात्रं पर्यति तत्सर्वं परमार्थतः अनन्य-रपश्यतीति तत्संकल्पस्य सत्यतायामुपपत्तिः ॥ ५३ ॥ अस्य आइदमिति च्छेदः। अस्पैवंविधस्य हिरण्यगर्भस्य आसमन्तादुः-इयमानभिदं जगत् संकल्पमात्रमेत्रेत्यर्थः ॥५४॥ एवमन्योऽपि स्वसंकलपवरो निरावरणात्मैवेति यथायथा पत्संकैल्पमात्रं प॰ इयति तत्त्रया तथा भवति ॥ ५५॥ खविषेयं खाधीनं नियन्त्रणं नियमनं यत्र ॥ ५६ ॥ तत्र वरशापात्मकं यत्फलं तत् हिर-ण्यगभी द्यनावरणविज्ञानात्माः आत्मनोनन्यत्सत्यं वेति ॥ ५०॥ जगतथ तदीयसंकल्पात्मकलात्स्त्रसंकल्पपुरे बालस्य सिकता-भ्यस्तैलमिव हिरण्यगभीयात्मनोऽपि वरशापायर्थो निरुपादा-नोऽपि सिज्यति॥५८॥ निरावरणेति विशेषणस्य प्रयोजनं दर्श-यति-अनिरावरणेति । अस्य अङ्गप्रवस्य वरादि न सिष्यति ॥ ५९ ॥ निरावरणहानानां कल्पना तादशकल्पनान्तरोदय-

१ संकल्पयति इति पाठः.

६१

ब्रह्मण्यवयवोन्मुके द्वितेकत्वे तथा स्थिरे । यथा सावयवे तस्त्रे विचित्रावयवकमः॥ श्रीराम उवाच ।

अनिरावरणाझानात्केवलं धर्मचारिणः। शापादीन्संप्रयच्छन्ति यथा ब्रह्मस्तथा चद्॥ वसिष्ठ उवाच।

संकल्पयति यन्नाम सर्गादी ब्रह्म ब्रह्मणि। तसदेवानुभवति यसात्तत्तास्ति नेतरत्॥ £3 ब्रह्म वेत्ति यदात्मानं स ब्रह्मायं प्रजापतिः। स च नो ब्रह्मणो भिन्नं द्वयत्विमय वारिणः॥ દ્રશ્ संकल्पयति यन्नाम प्रथमोऽसी प्रजापतिः। तत्तरेवाद्य भवति तस्यदं कल्पनं जगत्॥ દ્ધ निराधारं निरालम्बं व्योमात्म ब्योम्नि भासते। दुईप्रेरिच केशोण्ड्रं दएमुक्तावलीय च ॥ 53 संकरिपताः प्रजास्तेन धर्मो दानं तपो गुणाः। वेदाः शास्त्राणि भूतानि पञ्च ब्रानोपदेशनाः॥ ६७ तपस्विनोऽथ वादेश्च यह्नयुरविलम्बितम्। यद्यंद्रविदस्तत्स्यादिति तेनाथ कहिपतम्॥ इदं चिद्रसच्छिदं खं वायुश्चेष्टाग्निरुणता । द्रवोऽम्भः कडिनं भूमिरिति तेनाथ कव्पिताः ६९ चिद्धातुरीदृशो वासौ यद्यत्खात्मापि चेतति ।

पर्यन्तं न निवर्वत इत्याह—येति ॥ ६० ॥ निर्वयवे निरावरणञ्जानास्मनि तद्विरुद्धवरशापादिकस्पना कथं तिष्ठति तत्राहु—त्रह्मणीति ॥ ६१ ॥ तद्यंनिरावरणज्ञानानां केवळो-प्रतापसानां बरशापादि मोर्घ स्यादिखाशयेन रामः प्रच्छति-अनिरावरणेति ॥ ६२ ॥ तदीयवरशापादेरपि सत्यतास्त्विति सर्गादौ धातुः संकल्पादेव न तन्भोघतेत्युत्तरं वक्तं भूमिकां वसिष्ठो रचयति—संकल्पेलादिना । इतरत् तस्प्रतियन्धकं नास्ति ॥ ६३ ॥ धातुस्तु सत्यसंकल्पता सत्यब्रह्मात्मवेदित्-लादेव सिद्धेत्याशयेनाह—बह्मेति । स प्रजापतिर्धाता यद्य-स्मात्कारणाइह्य वेति तस्मादेतोर्यं व्रकीव । 'तद्यो यो देवानां प्रखबुध्यत स एव तदमवत्' इत्यादिश्चनरिति भावः ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ की इसं तत्कल्पनं तदाह—निराधारमिति ॥ ६६ ॥ तेन प्रजापतिना । चलारो वेदाः स्मृतयर्थति पम्न । 'श्रमी सांरुयं योगः पशुपतिमतं वैष्णवम्' इति वा पश्च । ज्ञानोपदे-शनाः। ण्यन्ताद्यस् ॥ ६० ॥ अथ तेन प्रजापतिना इति कल्पितं संकल्पितम् । किमिति । वेदविदस्तपिखनो वादैश्व-कारात्सहजन्द्रत्या वा यदाह्रयुस्तत्तदवर्थं स्यादिति ॥ ६८॥ एवं सर्ववस्तुसभावमेदा अपि तेनैव कल्पिता इत्याह--इदमिति । इदं वदा चिजडव्यायृत्तस्वभावम् । सं छिद्रस्वभा-वम् । वायुधेषास्वभावः । अप्रिरुणतास्त्रभाव इत्यादि ॥६९॥ एवमियं सवा कल्पना प्रजापतिवेषस्य विद्वातोरेव कल्पने-

तत्तथानुभवत्याशु त्वमहं स इषाखिलम् ॥ 90 यद्यथा वेति चिद्योम तत्तथा तद्भवत्यलम्। स्वप्ते त्वमहमादीव सदात्माप्यसदात्मकम्॥ ७१ शिलानृतं यथा सत्यं संकल्पनगरे तथा। जगत्संकरूपनगरे सत्यं ब्रह्मण ईप्सितम्॥ ७१ चित्स्वभावेन शुद्धेन यद्धद्धं यश्च यादृशम्। तद्युद्धोऽन्यथा कर्तुं न शक्तः कीटको यथा ७३ अभ्यस्तं बहुलं संवित्पइयतीतरदल्पकम्। स्वप्ने जायत्स्वरूपे च वर्तमानेऽखिलं च सत् 08 सदा चिद्योम चिद्योम्नि कचदेकमिदं निजम्। द्रष्ट्रदयात्मकं रूपं पदयदाभाति नेतरत्॥ ७७ एकं द्रुष्टा च रह्यं च चिन्नभः सर्वेगं यतः। तसाद्यथेष्टं यद्यत्र रुष्टं तत्तत्र सत्सदा ॥ 30 वारवङ्गगस्पन्दनवज्जलाङ्गद्रवभावचत्। यथा ब्रह्मणि ब्रह्मत्वं तथाजस्याङ्गजं जगत्॥ 99 ब्रह्मैवाहं विराडात्मा विराडात्मवपुर्जगत्। मेदो न ब्रह्मजगतोः शून्यत्वाम्बरयोरिव ॥ 96 यथा प्रपाते पयसो विचित्राः कणपङ्कयः। विचित्रदेशकालान्ता निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ ७९ निपत्येवैकया करुपं मनोबुद्ध्यादियर्जिताः। आत्मन्येवात्मनो भान्ति तथा या ब्रह्मसंधिवः ८०

त्याह—चिद्धातुरिति । अनुभवति सत्यसंकल्पलादिति भावः ॥ ७० ॥ ७९ ॥ तत्र सदात्मतां दृष्टान्तेन स्फुटयति--शिलेति । ब्रह्मणः प्रजापतेरधिकारप्रारब्धभोगारेप्सितम्॥७२॥ वरसंकल्पजं वरशापादिसंकल्पेन तद्विरुद्धेन जनैः नान्यथा कियते तन्नाह---चिरम्बमायेनेति ॥ ७३ ॥ अशु-द्धानामस्त्रतस्त्रकरूपनाभ्यासदाद्यीदपि न तद्विरुद्धकरूपनस्वा-तद्भयमित्याशयेनाह-अभ्यसामिति । श्रह्मलाबद्धोऽहमिति रहतरजावरसंस्कारवतः स्वप्नेऽपि श्रह्मलाबन्धपारत**ङ्**यस्यैवा-नुभवादिति भावः ॥७४॥ एवं कल्पितन्त्रिपुटीवेषेण कचनेऽपि चित उदासीनसाक्षिस्वभावेनापि रादेव कचनमस्त्येवेखाइ--सदेति । द्रष्टृदरयग्रहणं त्रिपुट्युपलक्षणम् ॥ ७५ ॥ साक्षि-चित्रस्त्रिपटीव्याप्तिवलादेव तत्सत्तासंपादकलमिलाह-एक-मिति । एकचित्सत्तोपनीविलादेकम् ॥ ७६ ॥ धातृसाक्य-धीनसत्तारफूर्तिकलात्तदङ्गगतमेवेदं जगदिति सद्दशन्तमाइ--वाध्विति । ब्रह्मत्वं जगद्यकार्वृहणहेतुमाशाशकिमस्वं च यथा तथेत्यर्थः । अजस्य विराजः ॥ ७७ ॥ पूर्वे ब्रह्मण्यध्यस्तं जगदित्यसकृदुक्तमिदानीं कथमजस्याक्षगमित्युच्यते तत्राह-ब्रह्मेर्वति ॥ ७८ ॥ प्रपाते पर्वतामात्रकारीनामधः पतनस्थाने ॥ ७९ ॥ एकयैव धारया आकल्पं निपस्य कणसहस्रकोटिमे-दविभक्ताः पुनरेकतामापद्य आत्मनः स्वस्थैकप्रवाहात्मन्येव भान्ति तथा या विचित्रा ब्रह्मसंविदो जगद्भेदा अपि बोध्या इ- तांभिः स्वयं स्वदेहेषु बुद्धादिपरिकल्पनाः। कृत्वोररीकृता सर्गश्रीरद्भिर्द्रवता यथा॥ ८१ तरेषं जगदिस्यस्ति दुर्थोधेन मम त्विदम्। अकारणकमद्वेतमजातं कर्म केवलम् ॥ 42 अस्तस्थितिः शरीरेऽसिन्याद्रपूपानुभूयते । उपलादी जडा सत्ता ताहशी परमात्मनः ॥ 63 यथेकस्यां सुनिद्रायां सुपुप्तस्वप्नकौ स्थितौ। तथैते सर्गसंदारभासी ब्रह्मणि संस्थिते ॥ 63 सुषुप्तस्त्रप्रयोभीतः प्रकाशतमसी यथा। पकस्यामेव निद्रायां सगीसगीं तथा परे॥ 64 यथा नरोऽनुभवति निद्रायां दृषदः स्थितिम्। इत्यापें श्रीवा०वा०मो०नि०उ०ब्रह्मगीतास सर्वे खत्विदं ब्रह्मतिप्रतिपादनयोगोपदेशो नाम पडशीत्यधिकशतनमः सर्गः॥१८६॥

परमात्मानुभवति तथैतज्ञडसंस्थितिम्॥ ૮૬ अङ्गग्रस्याथवाङ्गस्या वाताचस्परीने सति। योऽन्यचित्तस्यानुभवो दुषदादौ स आत्मनः ८७ व्योमोपलजलादीनां यथा देहानुभूतयः । तथासाकमचित्तानामच नानानुभूतयः॥ 66 काले कल्पेषु भान्त्येता यथाहोरात्रसंविदः। तथाऽसंख्याः परे भान्ति सर्गसंहारसंविदः॥ ८९ आलोकरूपमननानुभवैषणेन्छा मुक्तात्मनि स्फ्ररति वारिधने स्वभावात्। आवर्तवीचिवलयादि यथा तथायं शान्ते परे स्फुरति संहृतिसर्गपूगः॥

सप्ताशीत्यधिकज्ञाततमः सर्गः १८७

श्रीराम उघाच। विचित्राणामसंख्यानां भावानां नियतिः कुतः। कथं स्वभावो भावानामेकरूपः स्थितोऽचलः॥ १ सत्स्वसंख्येषु देवेषु सूर्य प्योग्रभाः कथम्। दीर्घत्वमथ हस्वत्वं दिवसानां तु किंकतम्॥ ર

त्यर्थः ॥ ८० ॥ एतावांस्तु विशेषो यत्कणपङ्गयो मनोबुद्धा-दिवर्जिताः तामिर्वद्यसंविद्भित्तु खदेहेषु खयं मनोबुद्धादि-कल्पनाः कृत्वा सर्गश्रीभीग्यत्वेनोररीकृतेति ॥ ८१ ॥ मनो-मुख्यादिकल्पनात्यागे तु अज्ञानमात्रं जगत्पर्यवस्यतीत्याराये-नाइ--तदेवमिति । मनोयुद्धादिविक्षिप्ताज्ञानलक्षणेन दुर्बोधेन। मम दुर्वोधरहितस्य दशा लिदं मनोबुज्यादि सर्वे जगत्कर्म काल-त्रयेप्यजातमेव ॥ ८२ ॥ अस्मिन् शरीरे अस्तस्थितिर्धृतावस्था याद्यपुपा मनोबुष्यादिरहितानुभूयते । उपलादौ जडा सत्ता च यादमूपा तादशी परमात्मनोपि मनोबुद्धादिरहितैव निर्विक्षे-पसत्ता बोध्येखर्थः ॥ ८३ ॥ एवंच सृष्टिप्रस्यौ द्वावप्यज्ञान-निद्राबान्तरविशेषावेनेत्याह्-यथेति ॥ ८४ ॥ ननु सर्गे सूर्या-दिप्रकाशास्त्रहि तरोरूपप्रलयविलक्षणाः कथं तत्राह-सूप्-प्तेति ॥ ८५ ॥ धिःयेव जडाजडमेद्कल्पनेऽपि स्वप्न एव दशन्त इत्याह-यथेति ॥ ८६ ॥ चेतने जाच्यात्रभवाप्रसिद्धि बारयति-अञ्चष्टस्येति । अन्यत्र विषयान्तरे व्यासकत्तिस्य पुरुषस्याक्षप्रस्याकुल्यन्तरस्य वा वातातपभूल्यादिस्पर्शने जाते सति यो जातोऽप्यजातप्रायोऽनुभवः प्रसिद्धः स तादश एव दृषदादौ विद्यमानोऽप्यविद्यमानप्रायो जास्यमित्यर्थः ॥ ८७ ॥ एवं जडस्यापि चेतनभावानुभवप्रसिद्धिमाह—व्योमेति । देहे विराइदेहमाने तत्तद्विष्ठातृदेवतादेहभावे वा यथा अनुभूत-यस्तया प्रख्ये अवितानामस्माकमद्य सर्गकाले सचित्तवला-मेनानुभूतयः । तबास्माकमिति पाठे 'खदादीनि सर्वैनिखं' खदादीनां मिथः सहोक्तो यत्परं तिन्छन्यत इत्येकशेषाभाव-

वसिष्ठ उवाच। काकतालीयबद्धानं यत्परे नियतं स्वतः। यथास्थितं यथारूपं स्थिते तज्जगतुच्यते ॥ 3 सर्वशकेर्यथा यद्यद्वाति तत्तत्त्रथेव सत्। संवित्सारतया यायात्कथं भातमभातताम ॥

रछान्दसः ॥ ८८ ॥ अखण्डकाले ब्रह्मदिनमेदरूपेषु कल्पेषु यथास्माकमहोरात्रसंविदो भान्ति तथा असंख्याः परमात्मनि सर्गसंहारसंविदो भान्ति ॥ ८९ ॥ यथा वारिघने उदकैक-खभावे समुद्रे खभावादेव आवर्तवीचिवलयादि स्फुरति तथा आलोकनमालोकस्तद्विषयरूपं तन्मननं सस्य भोगलक्षणोऽनु-भवस्तदेषणा रागस्ततः पुनस्तत्त्राप्तीच्छेत्यः देविश्वेपविनिर्मुक्ता-त्मनि अतएव शान्ते परे पदे अयं संहतिसर्गपूगः स्वभावत एव स्फुरति न प्रमाणतस्तत्त्वदर्शने सतीत्यर्थः ॥ ९० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणताः पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्त-रार्धे परशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १८६ ॥

> सर्वभावसमावोऽत्र नियतिश्रोपवर्ण्यते । उत्पत्तिजीवतामासिहेत्नां महाश्चदता ॥ १ ॥

नियतिः कार्यकारणभावादिनियमः अभिजल।देरीण्यदव-लादिः सभावध अचलः अव्यमिचरितः कथं केन हेतुना जगति स्थितः । स्वाप्रमानोर्यिकादिमिध्यार्थान्तरेष्वदर्शनादिति भावः ॥ १ ॥ केन कृतं किंकृतम् ॥ २ ॥ आदिसर्गे यद्य-त्काकतालीयन्यायेन धात्रर्यथायथा भातं तत्त्रथैवार्धकियादिना नियतं स्थितं तत्र धातुरिच्छैव तदव्यभिचारे हेतुरेवं वस्तु-स्वभावेऽपि बोध्यमिखाशयेनायप्रश्रयोवेसिष्ठ उत्तरमाह— काकतालीयेखादिना । परे विधातरि यत्काकतालीयविश्यतं सगीदी भानं तद्यथारूपं यथाच कार्यकारणभावेन स्थितं तथै-बाद्यापि जगदुच्यत इत्यर्थः ॥ ३ ॥ नियताया ईश्वरशक्तर-न्यथाभावायोगाद्वा नियतिर्व्यमिचरितेत्याशयेनाइ-सर्वशके-

यथा स्थितं यथा भाति चिस्वाद्वह्य चिराय यत्। तस्य भानमभानाभं नियत्यभिधमेव तत् ॥ इदिमत्थिमिदं चैत्थं स्वयं ब्रह्मित भाति यत्। तिष्वियत्यभिधं प्रोक्तं सर्गसंहाररूपधृक् ॥ जाप्रत्स्वप्रसुषुप्तारूयं यत्स्वतः कचनं चिति । तत्ततोऽनन्यदेकाच्छं द्ववत्वमिघ चारिणि ॥ यथा शुन्यत्वमाकाशे कर्पूरे सौरभं यथा। यथौष्ण्यमातपे नान्यज्ञात्रदादि तथा चिति ॥ 4 सर्गप्रलयनाङ्येकप्रवाहानन्यसत्त्रया । चिन्मात्रगगनात्मेकब्रह्मात्मन्येव संस्थितम्॥ सर्गीयमिति तद्भुद्धं क्षणं यत्कचनं चितः। करपोऽयमिति तद्वुद्धं क्षणं तत्कचनं चितः॥ तत्कालस्तित्रया तत्वं देशद्वव्योदयादि तत् । षत्स्वप्न इव चिन्मात्रकचनं स्वस्वभावतः॥ ११ इपालोकमनस्कारदेशकालक्रियादि तत्। चिस्वं कचति चिद्योम्नि यन्नामानाकृति स्वतः १२ गद्यथा कचितं कालं यरिकचित्कल्पितं तथा। नेनेवेयं हि नियतिरित्यप्याकाशकपकम्॥ १३

देति । संवित्सारतया सत्यसंकल्पसंविदः अस्मदादिस्वप्रमनो-्थसंबिद्धदसारलाभावादित्यर्थः ॥ ४ ॥ मायोदरे स्थितस्यव उर्गकाले भानं प्रलयकाले सीक्ष्म्यापत्या तदेवाभानाभं भव-तीत्यनादिरेव सर्ववस्तूनामर्थिकियाशक्तिरिति तदेव नियति-गमकमिति वा बोध्यमित्याह--यथास्थितमिति ॥ ५ ॥ होव नियतसर्वार्थिकयासमर्थे जगदाकारतां घत्ते इति वा नेयतिप्रतिष्ठसिद्धिरित्याह्—इदमिति ॥ ६ ॥ अवस्थात्र-।स्याज्ञातारमस्यभावलाद्वा यथादप्रनियत्यव्यमिचारसिद्धिरि-याह--जामदिति ॥ ७ ॥ तस्य तत्स्वभावतां दृष्टान्तैः समर्थ-गति-यथेति ॥ ८ ॥ एकप्रवाहानन्यसत्तया बीजाङ्करन्यायेन उर्गप्रलयप्रवाहानादितया चिन्मात्रगगनात्मके एकब्रह्मात्मन्येव गतस्तिष्ठति ततोऽपि नियतार्थिकयासिद्धिरित्यर्थः ॥ ९ ॥ अतएव चित्कचनानुसारेणैव सर्वनियमव्यवस्था । क्षणस्यापि कल्पोऽयमिति चित्कचने अकल्पलसाधकान्तराभावादित्यादा-येनाह—सर्गीयमिति ॥ १० ॥ अतएव कालिकयादेश-इव्यादिवस्तुमेदारमना चित्कचनमेव सर्ववस्तुस्वभावो नियति-श्रेखाइ-तदिखादिना ॥ ११ ॥ १२ ॥ इत्येवं कचितमप्या-काशक्ष्यकमेव न सत्यमिलार्थः ॥ १३ ॥ इदानी 'कथं खभावी भावाना'मिति प्रश्नं समाभत्ते - आकल्पाख्यमिति । कल्पाख्यं बद्धा निमेषमभिव्याप्य भावानां यदेकरूपं कचनं तमेव प्रति-बद्ध नियतसभावं प्राहुः स्वाभाविकाः स्वभावतत्त्वविदः ॥ ५४ ॥ एकस्पैव वहयादिवस्तुनी देशकालमेदेनानेकधाभूत-स्यापि खरूपमनुज्झतो यदेकमनुगतमीव्ययप्रकाशरूपं स एव न रेटेस्ट्रबानकथानः । ग्रथा यंतिरंशका जीवक

आकस्पार्खं निमेषं यत्कचनं चैकरूपकम्। स्वाभाविकाः स्वभावं तं प्राहुः प्रसृतबुद्धयः ॥ १४ एकस्य संविन्मात्रस्य पदार्थशतता तथा। यथेदं संविदंशस्य रूपं स्वंस्वमनुज्झतः॥ १५ संविन्मये संविदो याः कचन्तीव परे तथा। ताभिस्तेषां स्वदेहानां यासां सा कलना हता ॥१६ चिदुर्घी सिललं तेजः स्पन्दः शून्यत्वमेव च। प्रत्येकमाकरस्त्वेषां तानि स्वप्न इवाम्बरम् ॥ १७ तत्र सप्रतिघस्यास्य कठिनस्याकरो महान्। भूपीठं जनताधारो राजन्राजेव राजते ॥ १८ अपामिष्धः प्रधानानां तेजसामेष भास्करः। स्पन्दस्य पवनो व्योम शून्यताया जगद्गतम् ॥ १९ पञ्चानामिति भूतानामाकरत्वेन संविदः। पञ्च तान्युचिता ब्राह्मयः प्रश्नः कि भास्करं प्रति२० बुधा संविचिदित्युक्ता सर्वगा सर्वेक्षपिणी। सर्वत्र स्वमहिद्भैषा सर्वेणवानुभूयते ॥ प्रक्षारमा प्रक्षवालोयं स्वसंवित्स्फ्ररणामिमाम्। ब्योमात्मक्षीमभूनाम्नी स्फारयत्यम्बराकृतिः ॥ २२

चित्खरूपमेव खभावसाद्वदिव्यर्थः ॥ १५ ॥ संवित्प्रचुरे वृति-मेदेऽपि याश्विदाभाससंविदः कचन्तीव ताः खभावः । परे त-द्विषये उर्वासिक्टतेजोबाय्वादौ तामिर्शृत्याभाससंविद्धिः खदे-हप्रायाणां तेषां श्वृत्तिमेदानां मध्ये यासां यासां शृत्तीनां यद्यदाकारकलना या या कृता स आकारः खभाव इलर्थः ॥ १६ ॥ नानाकारमेदानेधोदाहृत्य तेपामधिष्ठानचिदाकाश एव पारमार्थिकः स्वभाव इति दर्शयति--विदिति । तान्यु-र्व्वादीनि प्रसेकं खकार्याणामाकरः खनिः। उदीपार्थिवानां सर्वेवस्तूनामनुगतः स्वभाव एवं सलिलादयोऽपि । तेषां च चिदम्बरं मायाशवलं ब्रह्मैवाकर इखर्थः ॥ १७ ॥ उक्तमेव प्रपञ्चयति—तत्रेखादिना । राजेव जीवनप्रदः॥ १८ ॥ प्रधानानां गङ्गादीनामध्यादीनां च जगद्भतं सर्वस्वस्विधेषे-व्वनुगतम् । नपुंसकैकशेषे एकवद्भावः ॥ १९ ॥ तेषामम्बर-मिलंशं विशदयति-पश्चेति । तानि पश्चमहाभूतानि बाह्यः संवित्तय एव तथोदिता इति ब्रह्मेय तदनुगतः सत्स्वभाव इलार्थः । एतेन 'सत्खसंख्येषु देनेषु सूर्य एवोप्रभाः कथम्' इति प्रश्नोऽपि समाहित इलाशयेनाह-प्रश्न इति । समावप्रश्नो-त्तरेणेव समाहितलात्पृथकप्रश्नो न भवतीलर्थः ॥ २० ॥ व्यथा सर्वावभासकलात्सर्वज्ञा सैव सर्वकिपणीति स्वप्रकाशता-लक्षणखमहिष्रेव सर्वत्र परमः खभावपरमाकारः परमा निय-तिरिति च सर्वेरेवाभिक्षेरवगम्यते ॥ २१ ॥ अयं चतुर्भुखाख्यो ब्रह्मबालः खारमभूतसंवित्स्फुरणं व्योमारमकं क्षीमं प्रावरणं यस्यास्तथाविधां भूनाम्नीं स्वयं ब्रह्मात्मलाइह्माम्बराकृतिरेव

सा यदैतत्त्रधैतच चिरमत्यज संविदा। तदा तदझस्याकीदेनीतो नोत्पादि चञ्चलम् ॥ २३ संकरपपूर्वमशकजालवद्धिण्यचक्रकम्। आषर्तवर्तिना भाति चिद्योमेदं च दृश्यवत् ॥ २४ •तत्र प्रभास्वराः केचित्केचिद्प्यल्पभास्वराः । केचिषाभास्वराभाताः पदार्थाश्चित्ररूपिणः ॥ २५ 🛚 पदार्थजातं त्वेतावन्न जातं न च दृइयते। श्रस्याजातमिदं भाति खमातमा स्वप्रदृश्यवत् २६ चिन्मात्रमातमा सर्वेदाः सर्व एवातिरद्वयवत् । मध्यतीव विदेहें स्वे न च भाति न नश्यति॥ २७ स्वप्तदर्शनवद्भाति यश्विद्योम चिद्रबरे। विद्योमत्वादते रूपं तदस्य जगतः कुतः॥ 26 यद्यथा स्कृरितं तस्य यावत्सत्तं स्कुरद्वपुः। तस्खभावनियत्याख्येः शब्दैरिह निगद्यते ॥ २९ गगनाङ्गस्य सत्तान्तः शब्दतन्मात्रकल्पया । कुशूलवीजाङ्करचत्तिष्ठत्याशान्तरूपिणी ॥ 30 संपद्यते तत इदमितीयं रचनेह या। इता सा मुग्धबोधाय मुर्वैविरिचिता मुधा॥ ३१

स्फुरतेर्वा 'चिस्फुरोणीं' इत्यालम् ॥ २२ ॥ यदा सा माया शयला सर्वेष्ठसंविदजस्य चतुर्भुसस्य संविदा सह तरस्थूलमे-तत्सूक्ष्मं च प्रपश्चमत्ति स्वात्मन्युपसंहरति तदा तदक्रस्य चतुर्भुखसंविदशस्याकीदेश्वश्वलं श्रमणस्वभावं रूपं नीत्पादि । यतस्तत् अतः अस्मादुपसंहारादत्ता ना पुरुष एव संपद्यत इसर्थः। तथाच श्रुतिः 'अथ तत ऊष्वे उदेस नैबोदेता नासमेता एकछ एव मध्ये स्थाता' इति ॥ २३ ॥ 'दीर्घलमय हखत्वं दिवसानां तु किंकृतम्' इति प्रश्नसु ज्योतिश्वके सूर्यस्य दक्षिणोत्तरमार्गगतिमेदप्रसिद्धेव दत्तोत्तर इति सूचयन् ज्योति-धकं दर्शयति -- संकल्पेति । खूताकीटेन संकल्पपूर्वकं बाह्य-साधननिरपेक्षयेव विरचितमशकवन्धनजालबद्धात्रा संकल्प-जालमात्रनिर्मितं महनक्षत्रादिधिष्ण्यभूतं ज्योतिःशास्त्रादौ प्रसिद्धमेव । तदेव दक्षिणोत्तरायणमार्गावर्त-वर्तिना सूर्येण निमित्तेनेदं लत्पृष्टं दिवसानां हस्तदीर्घत्वं तत्तदावर्तवहृत्यवित्रयतं भातीत्यर्थः ॥ २४ ॥ 'सत्खर्षस्येषु देवेषु सूर्य एवोप्रभाः कथम्' इति प्रश्ने ये अनेके देवा उक्ता-स्तान् ज्योतिश्वके नक्षत्रादिरूपेण स्थितान्दर्शयति-तत्रेति । अभाखरा राह्वादयः प्रागुकतामसनक्षत्राणि च ॥ २५ ॥ एवं प्रश्नान्समाधाय प्रकृतमेवालम्ब्याह-पदार्थजातमिति ॥२६॥ लैंगहं सर्व एव अतिहर्यवत्प्रसिद्धो भाति । विदेहे मृते पुरुषे नर्यतीव ॥ २७ ॥ रूपं पारमार्थिकस्वरूपम् ॥ २८ ॥ तत्पारमार्थिकसद्भूपमेबाध्यस्ते यावत्कालं घटादेविद्यमानता तावत्ततादात्म्येन स्फुरद्वपुरास्त तदेव स्वभावनियत्यादिशब्दै-निगयते ॥ २९ ॥ तत्र सा ब्रह्मसत्ता गगनरूपस्य प्रथमजस्य खानस्यान्तः शब्दतन्मात्रकल्पया स्थित्या कुसूलान्तर्गतेषु

नास्तमेतीह नोदेति तत्कदाचन किंचन। शिलाजठरवच्छान्तमिदं नित्यं सदप्यसत्॥ यथावयविनो नान्तः सदैवावयवाणवः। नास्तं यान्ति न चोचन्ति जगन्त्यात्मपदे तथा ३३ ब्रह्म ब्योस्नि जगद्योम ब्योम ब्योसीच विद्यते। तत्कथं किल संश्रद्धमस्तमायात्य्रदेति वा॥ 38 तस्यानन्तप्रकाशात्मरूपस्याततचिन्मणेः । सत्तामात्रात्मकवनं यदजस्रं स्वभावतः॥ ₹'∙ तदात्मना स्वयं किंचिश्वेत्यतामिव गच्छति । अगृहीतात्मकं संविदृहामर्शनसूचकम् ॥ 36 भाविनामार्थकलनैः किंचिद्रहितरूपकम् । आकाशादणु शुद्धं च सर्वसिन्भाविषोधनम् ३७ ततः सा परमा सत्ता सती तचेतनोन्मुखी। चिन्नामयोग्या भवति किचिल्लभ्यतया तया॥ ३८ घनसंवेदनात्पश्चाद्भाविजीवादिनामिका। सा भवत्यात्मकलना यद्भवन्ती परं पद्म्॥ गर्भीकृत्य स्थितानाच्या चिदाकाशापिधानताम्। संप्रति त्वतिशृद्धस्य पदस्यानन्यरूपिणी॥

बीजेष्वनाविभूताङ्करशक्तिवद्वाय्वादिजगद्वीजशक्तितया आशा-न्तरूपिणी अनाविर्भूता तिष्टति ॥ ३० ॥ ततस्तस्याः सकाशा-दिदं वायुतेजोम्बुधरालक्षणभूतभौतिकात्मकं जगत्कमेण संप-द्यते इति इयं कल्पना संमुग्धानामज्ञानां तत्त्वबोधाय जग-द्विरचनप्रतिपादनेच्छया श्रुतिमिर्भुनिभिश्व कृता न सृष्टिरेव ता-त्तिकीति प्रतिपादनाय । तथात्वे मूर्खेरेवेयं सृष्टिकथा विर-चिता मुधेव स्यात् । नहि वासावी सृष्टिरिति परिज्ञाने कस्य-चिर्तिकचिरप्रयोजनं दृष्टं श्रुतं वास्तीति भावः ॥ ३१ ॥ यतस्तत्तालिकं ब्रह्मरूपं नास्तमेति नोदेति च । तत इदं प्रपञ्चरूपं परसत्तया सदिप स्वतः असदिखर्थः ॥ ३२ ॥ अपृथक्सत्ताकत्वे ब्रह्मान्तर्जगद्वयवप्रायमुद्यास्त्रमयरहितसेव पर्यवस्यतीत्वाह—यथेति । आयो नकारः पृथक्सत्तानिरासार्थः ॥ ३३ ॥ ब्रह्मसत्तातिरिक्तजगत्सत्तापल।पे जगच्छु बं ब्रह्मेव पर्यवस्यतीत्यस्तोदयादिवैचित्र्यसस्य गतमित्याह—बहा व्यो-मीति ॥३४॥ एवं जगतस्तत्त्वपर्यालोचने ब्रह्ममात्रतां प्रतिपाद्य ब्रह्मण एव स्वतारिवकरूपविस्मरणे जगद्रपापति वक्तुमुप-क्रमते—तस्येखादिना ॥ ३५ ॥ अगृहीतात्मकमज्ञातमतएव प्रथममन्यथाभावाद्द्वामर्शनसूचकम् ॥ ३६ ॥ तत ऊहित-रूपकं भाविप्रपश्चपर्यालोचनात्तस्योद्वोधनम् ॥ ३७ ॥ तस्य पर्यास्रोचितार्थस्य सम्यकेतनोन्मुखी सती चेत्रयतीति चिदिति **ब्युत्पस्यवसरलाभाविन्नामयोग्या भवति ॥ ३८ ॥ तदुत्तरं** यद्भवति तदाह—धनेति । यद्भवन्ती सती अधिकारिजन्म-लाभे पुनः परं पदं भवति ॥३९॥ ननु सा सदैव परं पदम्। बचनेन तस्या अधिकारिवेहज्ञानलाभेन कोऽतिशयस्तत्राह--गर्भीकृत्येति । यतः सा जीवत्वे चिदाकाशाच्छादिकामविद्यां

स्वतेकभावनामात्रसारसंसरणोन्मुखी। तदा विनाभावकता अनुतिष्ठन्ति तामिमाः॥ ४१ शुन्यरूपा स्वसन्तेका शब्दादिगुणगर्भिणी। चिद्धावनामिसंपन्ना भविष्यवमिधार्थता ॥ धर अहन्तोदेति तद्जु सह वै कालसत्तया। भविष्यद्रभिधार्थं ते बीजं मुख्यं जगिरस्थतेः ॥ ४३ चितिशक्तेः परायास्तु स्वसंवेदनमात्रकम् । जगजालमसद्रुपं चेतनारसदिव स्थितम्॥ 88 एवंत्रायात्मिका सा चिद्वीजं संकल्पशाखिनः। अहन्तां भावयत्यन्तः सैवेह भवति क्षणातु ॥ ४५ जीवाभिधाना सैपाद्य भावाभावश्चय्रमैः। भ्रमत्यात्मपदे वीचिरूपैर्वारीव वारिणि ॥ 38 चिदेवंभावनवती ब्योम तन्मात्रभावनाम् । स्वतो घनीभूय दानैः खतन्मात्रं प्रचेतति ॥ 8.3 भाविनामार्थेरूपं तद्वीजं शब्दौघशाखिनः। पद्याक्यप्रमाणाक्यवेदार्थादिविकारि च ॥ 86 तसादुदेष्यत्यखिला जगच्छीः शब्दतस्वतः । शब्दीवनिर्मितार्थीवपरिणामविसारिणी॥ 89 चित्रेचंव्यवसाया सा जीवशब्देन कथ्यते। भाविशब्दार्थजालेन बीजं भूतौघशाखिनः॥ 40 चतुर्वदाविधं भूतजातमावलिताम्बरम् ।

गर्भाकृत्य स्थिता अतः अनाख्या अत्रख्यायमानपरपदस्त्रभावा शानलामे संप्रति शुद्धस्य पदस्यानन्यरूपिणी लब्धाखण्डेक्येव संपद्यत इत्यर्थः ॥ ४० ॥ तदा आवृततादशायां स्वता आत्म-तादारम्याध्यासस्तदेकभावनामात्रसारेण देहेन्द्रियादिना संस-रणोन्मुखी सती विनाभावः स्वरूपवियोगस्तत्कृतास्तामिमाः । तमु ग्लानी तमनं तामस्तित्रिमित्तकर्माणि तामिमा अनुतिष्ठति । 'ताभिमा' इति पाठे ताः प्रसिद्धाः अभिमानान्यभिमाः । संघि-रार्षः ॥ ४१ ॥ सा स्वसत्ता एकेव वस्त्वन्तरश्चन्यरूपेव शब्दा-दिगुणगर्भिणी सविकल्पचिद्भावनाश्रान्त्या अभिसंपन्ना । भ-विध्यन्तीनामाकाशादिपश्चभूताभिधानामर्थताप्रवृत्तिनिमित्तभूता सूक्ष्मभूतात्मिकेति यावत् ॥ ४२ ॥ तया अहंकारप्रधानिछ-क्रदेहकल्पनामाह—अहन्तेति । लिक्कदेहघटकप्राणिकयाप्रयुक्त-कालसत्तया । तेऽहन्ताकालसते ॥ ४३ ॥ तत्र जीविवद्भि-व्यक्तया तत्र जगञ्जान्तिरित्याह्--चितिशकेरिति ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ आत्मपदे मायाशवलब्रह्मणि ॥ ४६ ॥ तस्याः समष्टिहिरण्यगर्भरूपेण स्थूलपञ्चभूतकल्पनामाह-चिदिति । सूक्ष्मां व्योमतन्मात्रभावनां घनीभूय घनीभाव्य । खतन्मात्रं स्थूलाकाशम् ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ तसादिति । 'स भूरिति व्यावहरत् भुवमस्त्रतः । एत इति वे प्रजापतिर्देवानमृजतः । अस्त्रमिति मनुष्यान् । इन्दब इति पितृन्' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥ ४९ ॥ एवं व्यवसाया ई दशिविचित्रसंकल्पवती ब्रह्म-चिदेव जीवशब्देन कश्यते नान्येखर्यः ॥ ५० ॥ ५९ ॥

जगज्जठरकर्णीघं तस्मात्संप्रसरिप्यति ॥ ५१ असंप्राप्तामिधाचारा जीवत्वाचेतनेन चित्। काकतालीयवत्स्पन्दचिन्मात्रं चेतति स्वयम् ५२ पवनस्कन्धरूपस्य बीजं त्वक्स्पर्शशास्त्रिनः। सर्वभूतिकयास्पन्दस्तस्मात्संप्रसरिष्यति ॥ 43 तत्र यश्विव्रिलासस्य प्रकाशानुभवो भवेत्। रूपतन्मात्रकं तद्वद्भविष्यव्भिधार्थदम्॥ બય प्रकाशचेतनं तेजो न तेजोऽन्यकृतं भवेत्। स्पर्शसंबेदनं स्पर्शो नेतरस्पर्शसंभवः॥ 44 शब्दसंवेदनं शब्दः स्वत प्षानुभूयते। खं खेनेव स्वयं कोशे नान्यच्छव्दरुदस्ति हि॥ किल तस्यामवस्थायां कोऽपरः शन्दकञ्जवेत्। यथा तथा तदाद्यापि हैतैक्यस्यात्यसंभवात् 40 एवं हि रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमेव च। असत्यमेव सदिव स्वप्नाभमिव चेत्यते ॥ ५८ तेजः सूर्यादिज्ञम्भाभिर्यीजमालोकशाखिनः। तसाद्रपविमेदेन संसारः प्रसरिष्यति ॥ ५९ भविष्यद्मिधस्याथ खतः स्वत इवासतः। स्वदनं तस्य संघस्य रसतन्मात्रमुच्यते ॥ ફ્ भविष्यव्रपसंकल्पनामासौ सकलो गणः। संकल्पातमाथ तन्मात्रं गन्धायमञ्जेतति ॥ ६१

तस्याः खस्रष्टभूतभौतिकभोगाय समिधलगादीन्द्रियकस्पनाप्र-कारमाह-असंप्राप्तेत्यादिना । न संप्राप्ती अभिधा शाब्दी व्यवहारः आचारः शरीरादिना व्यवहारश्व यया तथाविधा सती तदर्थे वक्ष्यमाणं चेतति कल्पयति ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ प्रकाशानुभवस्यैव रूपतन्मात्रलमुक्तमुपपादयति---प्रकाशचेतनमिति । एवं स्पर्शायपि बोध्यमित्याह-स्पर्शित्या-दिना ॥ ५५ ॥ यथा खं खेन खेनेव खात्मके कोशे अवकाशं प्राप्य तिष्ठति नान्येन तथा संवेदनमपि खात्मकेनैव शब्देन शब्दकृत् शब्दप्राहकं नान्यदस्तीत्यर्थः ॥ ५६ ॥ सर्गादी सम-ष्टाविवेदानी व्यष्टावपि तत्तत्संविदेव खत्यां तत्तद्यीकारमध्यस्य जगद्वेषेण भासते नान्यदिति बोध्यमित्याह—किलेति । तदा यथा तथा अद्यापि । अवस्यं चेदं सर्वैर्वादिभिरभ्युपगन्त-व्यम् । अन्यथा संविदां विषयव्यवस्थासिद्धेः । संवित्तादातम्य-मेव हि विषयाणां विषयता न लन्या वादिकोटिसहसैरप्युप-पादियतुं शक्या । नच शब्दादीनामसंविद्र्पे संविदेक्यलक्षणं तादातम्यं घटत इत्याशयेनाह—देतैक्यस्येति ॥ ५७ ॥ शब्दे र्दारीतो न्यायो रसादिव्वपि बोध्य इत्याह—एवंदीति ॥५८॥ प्रासिक्षकं परिसमाप्य प्रस्तुतमेवाह--तेज इति । 'अक्षिणी निरभियेतां अक्षिभ्यां चक्षश्रधुष आदित्यः' इत्यादिश्रतेः ॥ ५९ ॥ असतः विकारधून्यात्खत आकाशत इव । खदनं माधुर्थसंवित् । तस्य सङ्घस्य पत्रीकृतस्यात्रपानादेः ॥ ६० ॥ अयं सक्लो गणः कार्यकारणसमुदायात्मा जीवः ॥ ६१

भाविभूगोलकत्वेन बीजमाकृतिशाखिमः।
सर्वाधारात्मनस्तसात्संसारः प्रसरिष्यति॥ ६२
अजात एव संजातस्तम्मात्राणां गणस्त्विति।
अनाकारोऽपि साकारः संपन्नः कस्पनावशात्६३
एप तन्मात्रकगणः काकतालीयवत्स्वयम्।
क्रं येन प्रदेशेन वेस्यक्षीति ततुच्यते॥ ६४
शब्दं येन प्रदेशेन वेस्ति श्लोजं ततुच्यते।
स्पर्श येन प्रदेशेन वेस्ति तसु त्वगिन्द्रियम्॥ ६५

रसं येन प्रदेशेन वेसि तद्रसनेन्द्रियम्।
गन्धं येन प्रदेशेन वेसि झाणेन्द्रियं तु तत्॥ ६६
दिकालभेदाजीवोऽयं नियतामाकृति गतः।
सर्वेणाङ्गेन नो सर्वं वेश्यसर्वात्मतावशात्॥ ६७
६ति कलनमनन्तमात्मनोन्तगतमजुमेयमनन्यदात्मभूतम्।
न तदुद्यमुपैति नास्तमेति
स्थितमुपलोद्दरवद्धनं सुमौनम्॥ ६८

इत्यार्षे श्रीवासि॰ वाल्मी॰ दे॰ मो॰ नि॰ उ॰ जीवलसंस्रतिप्रतिपादनं नाम सप्ताशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १८७ ॥

अष्टाशीत्यधिकशततमः सर्गः १८८

घसिष्ठ उवाच ।
आदिमत्विमदं प्रोक्तमेतस्य कलनस्य यत् ।
परसाद्वितीयं तत्वद्वोधाय न वास्तवम् ॥ १
एवंविधं तत्कलनमात्मनोऽङ्गमकृत्रिमम् ।
चेत्योन्मुखचिद्यासासं जीवशब्देन कथ्यते ॥ २
कलनस्यास्य नामानि वहूनि रघुनन्दन ।
श्रृणु तानि विचित्राणि चेत्योन्मुखचिदात्मनः ॥३
जीवनाश्रेतनाजीवो जीव इत्येच कथ्यते ।
चेत्योन्मुखतया चित्तं चिदित्येघ निगद्यते ॥ ४
इदिमत्थमिति स्पष्टबोधाद्विदिरहोच्यते ।

॥ ६२ ॥ ६३ ॥ चश्चरादिगोलकस्थानकल्पनामाइ—एष इत्यादिना ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ द्विषपपरिच्छेदवरिपण्डाई-भावप्रयुक्तामस्य दिकालमेदकल्पनामाइ—दिगिति । दिकालकल्पनां करोतीति शेषः । किंच सर्वेणाक्षेन चश्चःश्रोत्रादिना रसगन्धादि सर्वे न वेत्ति एवं व्यष्टिभूतः सर्वशरीरेण सर्वे भोग्यं न चेति । असर्वात्मतादोषादित्यर्थः ॥ ६७ ॥ इति अनया रीत्या अनुक्तमप्यनन्तं सांसारिकं कल्पनं प्रति जीवमारमनोन्तर्गतमनुमेयमानन्त्यादेव प्रातिस्विकह्रपेण वक्तुमशक्यम् । तचानन्तं कल्पनात्मनोऽनन्यदात्मभूतमेव । अतस्तत्परमार्थतो नोदयमुपैति नाप्यस्तं नाशमेति किंत्पलोदरवत्सिचदानन्दैकः धनं निर्व्यापारमेव स्थितमित्यर्थः ॥ ६८ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणताल्पयप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे ससा- शिर्वस्वरुक्तत्वसः सर्गः ॥ १८७ ॥

जीवो ब्रह्मेव तस्येयमुत्पत्तिरुपचारतः। किङ्गदेहस्य विभाग्येत्यत्र स्पष्टं निरूप्यते॥ १॥

'धनसंवेदनात्पश्चाद्भावी जीवादिनामिका' इत्यादिना जीवो-त्पत्तिरुपपादिता । सा च न युक्ता । अभिनवोत्पन्नजीवस्य संसारहेतुकामकमैवासनाद्यभावेन संसारासिक्षेष्टपटादिवन्मि-ध्यालापस्या न्नद्यात्मभावायोगान्मोक्षासिक्षेश्रेत्यादाङ्का रामस्य माभूदिति तक्तात्पर्य भगवान्स्वयमेवाह्—आदिमक्तमिति ।

१ रिकालकलनां जीवो नियतामितिपाठो व्याख्यानुगुणः स्यात्.

कल्पनान्मननकत्वान्मन इत्यमिधीयते ॥ ५ असीति प्रत्ययादन्तरहंकारश्च कथ्यते । चेतनाक्यमृतं चित्तमिति शास्त्रविचारिभिः ॥ ६ मीढसंकल्पजालात्स पुर्यष्टकमिति स्मृतम् । संस्तेः प्रकृतत्वेन प्राथम्यात्प्रकृतिः स्मृता ॥ ७ बोधादविद्यमानत्वादिवद्यत्युच्यते बुधैः । इत्यदिकलनस्यास्य नामानि कथितानि ते ॥ ८ पतत्कलनमाद्यन्तमनाकारमनामयम् । आतिवाहिकदेहोक्या समुदाहियते बुधैः ॥ ९

कलनस्य चिदाभासात्मकजीवस्य । तत्कलनं परस्माद्रद्वाणः अद्वितीयमभित्रमिति लद्बोधाय नतु वास्तवमुत्परयादि जीव-स्यास्तीत्याशयेनेत्यर्थः ॥ ९ ॥ कया रीत्या परसादद्वितीयमिति बोधनाय तदाइ-एवंविधामिति । तत्कलनमात्मनो बद्धाण एवंविधमौपाधिकमञ्जमवयवः अतएवाकृत्रिमम् । चेखोन्म-खेति प्रागुक्तस्यानुवादः । तथा चै।पाधिक एव प्रथमभावस्त-त्प्रयुक्तजीवादिनाममेदश्च परस्पेव घटाकाशमठाकाशादिरूपना-ममेद आकाशस्यैवेति तदाशय इति भावः ॥ २ ॥ औपाधि-कप्रशृतिनिमित्ततद्भेदनिमित्तात्राममेदान् जीवस्य श्रावयति-कलनसेत्वादिना ॥ ३ ॥ जीवनान्मुख्यप्राणस्य कर्मेन्द्रियाणां च धारणात् । चेतनाज्ञानेन्द्रियाणां धारणाच जीवः । एवीत्-भूतातीतानागतचेखोन्मुखतया हेतुना चित्तमिति, संनिकृष्ट-चेखोन्मुखतया चिदिति च निगयते ॥ ४ ॥ कल्पनात्सुकल्प-नात् । मननमूहापोहादि तज्ज्ञलाश्व मन इलमिधीयते ॥ ५॥ असीत्यमिमानोहेखः । पामरसाधारणव्युत्पत्त्या प्राकित्तनाम व्याख्यातम् । पण्डितप्रसिद्धाः तु 'चिती संज्ञाने' इति धातुब्युत्पत्तेः स्रतत्त्वचेतनाव्यं ऋतं परमार्थवस्तु आत्मैव चिलपदवाच्यं मुख्यमिति शास्त्रविचारिभिरुक्तमित्यर्थः ॥ ६ ॥ स जीवः संकल्पादिभिः पूर्यन्त इति पुर्यस्तासामप्टकमिति व्युत्पत्तेरिति भावः । प्रकृतत्वेन सार्गादिकाले प्रस्तुतत्वेन ततः प्राथम्यात् ॥ ७ ॥ बोधासत्त्वदर्शनादौपाधिककपेणाविद्यमान-

| इत्येवं स्वप्नसंकल्पपुरवन्निजगद्भमः। | |
|---|----|
| भात्यर्थकार्यप्यवपुः श्रूत्यमप्रतिघात्मकम् ॥ | १० |
| इत्यातिचाहिकः प्रोक्तो देहो देहभृतां वर। | |
| चिन्नमिश्चत्तदेहोऽसी शून्य आकाशतोपि च॥ | ११ |
| नास्तमेति न चोदेति जगत्यामोक्ससंविदः। | |
| चतुर्दशविधस्यैका भूतसर्गस्य चित्तभूः॥ | १२ |
| अत्र संसारलक्षाणि भविष्यन्ति भवन्ति च । | |
| भूतानि च फलानीव यथा कालव्यवस्थया॥ | १३ |
| एप चित्तमयो देहो जगन्त्यन्तर्वहिस्त्वपि। | |
| प्रतिविम्बमिवाद्र्शः शून्य एव नभो यथा॥ | १४ |
| महाकल्पस्य पूर्यन्ते सर्वनादी स्थिरे स्थिते। | |
| महाशून्यपदे प्रौष्ठे ब्रह्मात्मनि निरामये॥ | १५ |
| स्वतश्चितीश्रनोऽचित्त्वाचिद्धानमिद्मात्मनः। | |
| आतिबाहिकदेहामं ऋमेणानेन चेतति॥ | १६ |
| स आतिवाहिको देहस्तदालोकप्रवर्तितः। | |
| कैश्चिद्रह्मेति कथितः स्मृतः कैश्चिद्विराडिति | १७ |
| कश्चित्सनातनाभिख्यः कश्चित्रारायणाभिधः। | |
| कश्चिदीश इति ल्यातः कश्चिदुक्तः प्रजापतिः | १८ |
| काकतालीयवद्भाताः पश्च स्त्रेन्द्रियसंविदः। | |
| यत्र यत्र तथा तेषां स्थितास्तत्र तथा स्थिताः | १९ |
| पवमत्यन्तवितते संपन्ने दृश्यविभ्रमे। | |

| न किंचिदपि संपन्नं सर्वशून्यं ततं यतः॥ | २० |
|---|------|
| अनादिमत्परं ब्रह्म न सद्यन्नासदुच्यते । | |
| तरेवेदमनाद्यन्तं तथास्थितमवेदनम्॥ | २१ |
| आतिवाहिकदेहस्य तस्यानुभवतः स्वयम्। | |
| याति व्यसनिनः स्वप्नः कान्तेव परिपुष्टताम्॥ | २२ |
| शून्योऽप्यनाकृतिरपि घटाकारोऽनुभूयते। | |
| स्वप्रसंकल्पयोः स्त्रस्य देहस्य जगतो यथा ॥ | २३ |
| भवत्यर्थकरोत्युचैस्तचित्त्वस्वप्नवस्तुवत् । | |
| आकाशात्मक प्योग्नः पदार्थ इव भासते॥ | રપ્ર |
| आतिवाहिकदेहोऽसौ स्वतोऽनुभवति क्रमात् | 1 |
| अनाकारोपि शून्योपि स्वप्नाभोऽसम्नपि स्थितः | રષ |
| चेतत्यस्थिगणः स्थूलं कराद्यवयवावलिम्। | |
| त्रिकलोमशिरास्नायुसंनिवेशतया स्थितम्॥ | २६ |
| जन्मकर्मेहितस्थानं परिणामवयःस्थितम्। | |
| देशकालकमाभोगभावार्थायोद्भवश्रमम्॥ | २७ |
| जरामरणमाधानदशदिखाण्डलकमम्। | |
| ज्ञानक्षेयज्ञातृभावमादिमध्यान्तवेदनम् ॥ | २८ |
| श्चिति जलगगनदिवाकर- | |
| जनताव्यवहारनगरशिखरात्मा । | |
| स्वाधाराध्रेयमयं | |
| पदयति चपुषः पुरातनः पुरुषः॥ | २०, |

इत्यार्पे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० नि० उ० जीवरूपवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १८८ ॥

खात्॥ ८॥ ९॥ अर्थी भोगमोक्षी तत्कार्थप अवपुर्निः-खरूपम् ॥ १० ॥ ११ ॥ कियत्कालं स तिष्ठति तत्राह--आमोक्षसंविद इति । भृतसर्गस्य चित्तह्या भूः प्ररोहस्थानम् ॥ १२ ॥ १३ ॥ अन्तर्वहिरपि जगन्ति आदर्शः प्रतिबिम्ब-मिव धत्ते तथापि खं ग्रन्य एवेलार्थः ॥ १४ ॥ कदाप्रसृत्ययं जगन्ति धत्ते इत्यत्राह—महाकल्पस्येति । प्राक्ततप्रस्यस्य पर्यन्ते चरमक्षणे ॥ १५ ॥ अचिलाचिदावरकाहानात्रिम-सात्। अनेन प्रायुक्तेन क्रमेण ॥ १६ ॥ स जीव एवातिवा-हिको देहस्तस्य यो जगदालोकनात्मक आलोकस्तेन प्रवर्तितः कश्चिद्भागो बद्या चतुर्भुखांऽहमिति कथितः शाक्षेषु ॥ १७॥ सनातनप्रहणं सनकादीनां ब्रह्मपुत्राणामुपलक्षणम् ॥ १८ ॥ यत्र भागे पद्य खेन्द्रियसंविदो भातास्तत्र तथार्थाः स्थिताः ॥ १९ ॥ ततं विस्तीर्णमात्मतस्वं यतः सर्वद्दयशून्यम् ॥२०॥ सत् आविभूतम् । असत् तिरोभूतम् । यतस्तदेव अवेदनं खरूपसाक्षारकारहीनं सल्था सदसदाकारेण स्थितम् ॥ २१ ॥ अयं प्रपद्यः कान्तानुसंधानव्यसनिनो विधुरस्य स्वप्नकान्तेन परिष्ठपतां माति ॥ २२ ॥ जगच्छन्यस्येव जगदारमना भाने

दृष्टान्तान्तरमाह--शून्योपीति । खतएव खदेहस्य जगतथा-सतो भाने यथा दृष्टान्त इत्यर्थः ॥ २३ ॥ तादृस्याप्यर्थिक-यासामर्थ्यं तत्रव प्रतिक्रमित्याह-भवतीति । उत्रः कठिनः ॥ २४ ॥ २५ ॥ स चातिवाहिकदेहरूपो जीवः अस्थिगणैः स्थूलं त्रिकस्य पृष्ठवंशस्य लोम्नां आतानवितानलमेदानमांसा-स्थिवेष्टनलोपाधिमेदाद्वा बिरामाध्वीभेदस्वासां संनिवेशात्म-तया स्थितं स्थूलशरीरं देशकालकमासनशब्दादिविषये भोगा-र्थाय चेततीलन्वयः ॥ २६ ॥ तस्मिश्र देहे उद्भवो जन्म तद्धमं चेतिति ॥ २७ ॥ तथा जरामरणं गुणदोषाद्याधानं दशदिकाण्डलेषु अमणं कमो ध्रमणं ज्ञानादिशिपटी सर्वभा-वानामादिमध्यान्तवेदनं च चेतति ॥ २८ ॥ एवमातिवाहिक-वेहभूतः पुरातनः पुरुषः खकल्पितादेव व्यष्टिसमष्टिस्थूलबपुषो निमित्तात्स्वयमेव क्षित्यादिशिखरान्तात्मा सन् खस्य पृथ्व्यादय भाषाराः खयं तु तदाधेय इति भ्रान्तिमयं संसारखप्नं पश्य-तीलर्थः ॥ २९ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतास्पर्व-प्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे अष्टाशीत्यधिकशतत्त्राः सर्गः ॥ १८८॥

एकोननवत्यधिकदाततमः सर्गः १८९

| वसिष्ठ उवाच । | |
|--|-----|
| आतिवाहिकदेहोऽसी तस्याद्यस्य प्रजापतेः। | |
| काकतालीयविश्वत्वाद्यद्यथेत्यादि चेतति॥ | Ę |
| तत्तथा स्थितिमायाति चिरं संवित्स्वभावतः। | • |
| बत विश्वमिदं भातमत्रासस्ये कुतः स्रयः॥ | ર |
| द्रष्टाऽसस्यमसत्यं रगसत्यं दर्शनं ततम्। | |
| सत्यमेवाथवा सर्वे ब्रह्मवात्मतया तया॥ | રૂ |
| श्रीराम उवाच । | |
| इत्यातिवाहिकालोकः स तस्याच प्रजापतेः। | |
| कठिनत्त्रं कथं यातः कथं स्वप्नस्य सत्यता॥ | ક |
| वसिष्ठ उपाच । | |
| आतिवाहिक आलोकः स्वत पवानुभूयते । 👚 | |
| सदानवरतं तेन स एवाभाति पुष्टवत्॥ | ધ |
| यथा स्वप्तस्य पुष्टत्वं चिरानुभवनोचितम्। 💎 | |
| अतिसत्यमिवाभाति स्वातिवाहिकता तथा॥ | દ્ |
| आतिवाहिकदेहस्य चिरस्वानुभवोदये। | |
| आधिभौतिकताबुद्धिरुदेति मृगवारियत्॥ | હ |
| जगत्स्त्रप्रभामासं मृगतृष्णाम्बुवतिस्थतम्। | |
| असदेवेदमाभाति सत्यप्रत्ययकार्यपि॥ | ć |
| आिताहिकरुपाणामाधिभौतिकता स्वयम् । | .\$ |
| असती सत्यवद्दरमर्घाग्वर्शिभिरर्थिता॥ | ૅંલ |
| अयं सोहमिदं तन्म इमा गिरिनभोदिशः। | |
| इति गिथ्याम्रमो भाति भास्त्ररस्त्रमहोलचत्॥ | १० |

| | आधिभौतिकतां चैतित्पण्डाकारं प्रपद्यति॥ | ११ |
|-------------|---|-----|
| | चिन्नभश्चेतनं त्यक्त्वा ब्रह्माहमिति पद्यति । | |
| ţ | अयं देहोऽयमाधार इति बभ्राति भावनाम्॥ | १२ |
| | असत्ये सत्यबुद्धीय बद्धो भवति भावनात्। | |
| ર | बहुशो भावयत्यन्तर्नानात्वमनुधावति ॥ | १३ |
| | शब्दान्करोति संकेतं संक्राश्च स्पन्दनानि च। | |
| 3 | ओमित्युक्ते ततो वेदाञ्छद्रराशीन्प्रगायति ॥ | १४ |
| | तैरेव कल्पयत्याशु व्यवहारमितस्ततः ! | |
| ક | मनो छसौ कल्पयति यश्चेतति तदेव हि॥ | 7.2 |
| | यो हि यन्मय प्वासी स न पश्यति तत्कथम् | l |
| | असत्यैष् जगद्धान्तिरेषं प्राढिमुपागता ॥ | १६ |
| نم ا | आब्रह्मणो मुधा भाति चिरस्वप्रेन्द्रजालवत्। | |
| - 3. | इत्यातियाहिकसोयमाधिभौतिकतोचिता ॥ | 8/3 |
| દ્ | आधिभौतिकता नास्ति काचिरिक्चिदपि कचि | |
| ۲. | आतिवाहिकतेवैनामभ्यासाद्यानि भावनाम्॥ | १८ |
| : • • | मूळादेवेवमायातो मिथ्यातुभवनात्मकः। | _ |
| ، وي | मोहो ब्रह्मण प्वायमित्यस्त्येष महातमनाम्॥ | १९ |
| ٤ | एवमित्थं दशा राम पिण्डबन्धः क विद्यते। | _ |
| | म्रान्तिरेत्रेदमखिलं ब्रह्मवाभातमेव वा॥ | २० |
| ۹, | न शाश्वताद्न्यदिहास्ति कारणा- | |
| | श्र कारणं तत्खलु कार्यतां विना। | |
| 0 | न कार्यता कारणतादिसंभवो- | |
| | ऽस्त्यनामये तत्किमपीदमाततम्॥ | २१ |
| | | |

इत्यार्षे वासिष्टमहारामायणे वा॰ मो॰ निर्वा॰ उ० ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नामैकोननवस्रधिकशततमः सर्गः ॥ १८९ ॥

भातिबाहिकदेहारमप्रजापतिमनोरथे । भाषिभौतिकताभ्रान्तिजैगत्मत्रोपवर्ण्यते ॥ १॥

आतिषाहिकदेहोऽसी स्रष्टुराद्यस्य भावितः।

'कश्चिद्रकोति कथितः स्मृतः कश्चिद्विराडिति' इत्यादिप्रपिश्वतन्त्रकारेण यद्यद्यया चेतित तत्तत्तथा स्थितिमायातीति परेणान्त्रयः ॥१॥ संवित्सत्यसंकल्पसंवित्तत्स्त्रभावत इदं विश्वं भातं । खतेति खेदे ॥ २ ॥ अतो भ्रान्तिमात्रलाद्वष्ट्रादित्रिपुटी असत्या दश्यत इति दक् दश्यम् । दर्शनं शृतिः ॥ ३ ॥ इति अनया रीत्या आतिवाहिक आलोकनमालोको भ्रान्तिदर्शनमात्रं चेत्स कठिनलं शिलादिभावम् । सत्यता पारलौकिकफलाद्यपैकियास्मर्यता ॥ ४ ॥ सदा नेरन्तर्येण । तथा चिराभ्यासात्पृष्टवत् धर्ममर्यता ॥ ४ ॥ सदा नेरन्तर्येण । तथा चिराभ्यासात्पृष्टवत् धर्ममृत् इवामाति ॥ ५ ॥ यथा इरिश्वन्द्रादेः स्वप्रस्य चिरान्त्रभवनोचितं पृष्टलं तथेत्रय्यः ॥ ६ ॥ ० ॥ ८ ॥ अवीगद्विमिर्विविकिभिः । आर्थता आसत्त्रया स्वीकृता ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ एतत् पृथिवीशरीरादिक्षे पिण्डाकारम् ॥ १९ ॥ ब्रह्माहमिति यथार्यचेतनं त्यक्ला अयं देहो मनुष्यादिरदं अयं पृथ्व्यादिमैमाधार इति पश्यति तत्र च भावनामास्थां ब्रम्नाति

॥ १२ ॥ अनुधावत्यनुसरसि ॥ १३ ॥ प्रथमं वैदिकलैकिक-शब्दान्करोति सुजति । तेषां च तत्तदुपाधिमति अर्थे संकेतं करोति संकेतेन संज्ञाः करोति । शब्दकरणप्रकारमाह--ओमित्युक्ते इति ॥ १४ ॥ १५ ॥ यन्मयो यदासक्तः । क्षीमयो जाल्म इति वत् ॥ १६ ॥ आन्नहाण आमशकात् इलनया रीला आधिभीतिकता काठिन्यादिखभावता उचितैव नानुचिता ॥ १७ ॥ एतामाधिमौतिकभावनाम् ॥ १८ ॥ मूलभूताइह्मणः सृष्टुः सकाशादेव एवंह्रपो मोहोऽयमायात इति हेतोरेष जगदर्शनरूपो भ्रमो महारमना तस्वविदामपि याबस्त्रारब्धक्षयमस्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥ चिदेकरसस्य अद्याप एवं हपा इत्यं दुर्दशा क विश्वते किलिदमिखलं संसारदुर्दशा-दिम्रान्तिरेव । अथवा ब्रह्मैव कौतुकवशाव्यगन्त्रीवाद्याकारेणा-भातम् । नहि खाकारः खस्य दुर्दशेखर्थः । अन्ते बन्धमोक्ष-विभागनिष्कषेप्रदर्शनं चैतत् ॥ २० ॥ शाश्वताद्वद्याणोऽन्य-स्कारणं जगतो नास्ति । तथ कार्यतां विना कारणं न । अना-मये कृटस्थचिदानन्दाद्वये ब्रह्मणि कार्यताकारणतादिसंभव एव

नवत्यधिकशाततमः सर्गः १९०

वसिष्ठ उषाच। ज्ञानस्य ज्ञेयतापत्तिर्थन्ध इत्यमिधीयते। तस्यैव क्षेयताशान्तिर्माक्ष इत्यभिधीयते ॥ श्रीराम उवाच। शानस्य श्रेयताशान्तिः कथं ब्रह्मन्प्रधर्तते। सा रुढा बन्धताबुद्धिः कथं वात्र निवर्तते॥ २ वसिष्ठ उघाच। सम्यग्हानेन बोधेन मन्दबुद्धिर्निषर्तते। निराकारा निजा शान्ता मुक्तिरेवं प्रवर्तते॥ Ę श्रीराम उघाच। बोधः केवलतारूपः सम्यन्तानं किमुच्यते । येन बन्धादयं जन्तुरशेषेण विमुच्यते॥ 8 वसिष्ठ उद्याच । श्रामस्य हेयता नास्ति केवलं श्रानमव्ययम्। अवाच्यमिति बोधोन्तः सम्यक्तानमिति स्मृतम् ५ श्रीराम उवास्त्र। शानस्य शेयता भिषा त्वन्तः केति मुने वद् । उत्पाद्यो ज्ञानशब्दश्च भावे वा करणेथ किम्॥ ६ षसिष्ठ उवाच। बोधमात्रं भवेज्ज्ञानं भावसाधनमात्रकम् ।

नास्ति । तत्तस्मादेतोरिदं जगदाकारं किमपि भ्रान्तिमात्रमाततं विस्तृतं न वस्तुसदिति निष्कर्ष इत्यर्थः ॥ २९ ॥ इति श्रीवा-सिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे एकोननवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ २८९ ॥

> अतीतानागताः शङ्काः सर्वाः संस्रुग्य युक्तिभिः। ज्ञानस्य क्रेयताशान्तिर्सुक्तिरत्रोपपाचते॥ १॥

'श्रान्तिरेवेदमिखलं ब्रह्मेवाभातमेव वा' इति वन्धमोक्षनिष्कर्षप्रदर्शनमन्ते यस्कृतं तत्परिष्कृत्याह—ज्ञानस्येति ॥ १॥
अत्र रामः सर्वेवामुपकाराय प्रावसमाहिता अपि शङ्काः प्रश्नोत्तरमालिकाक्रमेणोद्धाव्य समाधानक्रमप्रख्यापनकामस्तद्वुपायं
प्रथमं प्रष्कृति—हानस्येति । कृदा द्वाभ्यस्ता । कथं केनोपायेन ॥ २ ॥ शमदमादिसाधनसहितद्वाभ्यस्तसम्यग्हानलक्षणेन प्रविधेन मन्दबुद्धिर्श्रान्तिर्निवर्तते । अपगते च श्रान्तिस्वप्ने एवंविधा हेयता शान्तिक्षा मुक्तिभूमिकापरिपाकक्रमेण
प्रवतेते ॥ ३ ॥ अनेकविशेषवतो रक्तादेः कृतिपयविश्वेषु
हातेष्वपि विशेषान्तरहानाय पुनःपुनः पर्यात्रोचनजन्यं सम्यग्रहानमन्यत्यात् । निर्विशेषे तु वस्तुन्यापातहानापेक्षया
सम्यग्हानमन्यत्थि स्वायेनास्य बन्धो निवर्तेत इति शङ्कार्थः
॥ ४ ॥ अधिष्ठानचिन्मात्रकृपस्य हेयता कालत्रयेऽपि नास्तीति
सर्वदश्याधपर्यवसित एव तक्ष्यक्षाहकारः । आपाततो धानं

न ज्ञानक्रेययोर्भेदः पथनस्पन्दयोरिष ॥ 9 श्रीराम उद्याच। एवं चेत्रत्कथमयं ज्ञानशेयादिविभ्रमः। सिद्धः शश्विषाणाभो भविष्यद्वतभव्यशः॥ ረ वसिष्ठ उवाच। बाह्यार्थभ्रान्तितो श्रेया भ्रमबुद्धिरिहोदिता। बाह्यक्षाभ्यन्तरक्षार्थो न संभवति कश्चन ॥ ९ श्रीराम उचाच। योयं प्रत्यक्षरच्योऽर्थो मुने त्वमहमादिकः । भूतादिरनुभूतात्मा स कथं नास्ति मे वद्॥ १० वसिष्ठ उवाच। आदिसर्गविधावेच विराडात्मादिकोऽनघ। जातो न कश्चिदेवार्थी क्षेयस्थातो न संभवः॥ ११ श्रीराम उवाच। भविष्यञ्जतमव्यस्था जगइष्टिरियं मुने। नित्यानुभूयमानापि न जातेति किमुच्यते ॥ घसिष्र उवाच। स्वप्राधेमृगतृष्णाम्बुद्वीन्दुसंकविपतार्थवत् । मिथ्या जगद्हं त्वं च भाति केशोण्डकं यथा ॥ १३

तु न तथेरयुत्तरार्थः ॥ ५ ॥ चिदेकरसस्यात्मनोऽन्तस्तद्भिना हेयता का । तथायं ज्ञानशब्दः कि मावे उत्पाद्यो व्युरपादनीयः अथ कि करणे व्युत्पादनीय इति प्रश्नार्थः ॥ ६ ॥ भावे एव क्रानशब्दो व्युत्पायः । क्रेयजगद्भपता च ज्ञानस्यैव मायिको विकल्पो नैकरस्यविघातक इत्युत्तरार्थः ॥ ७ ॥ एवं चेत्ततिर्ह स विकल्पः शशविषाणकल्पः कथं प्रत्यक्षादिमिभूतभव्यभविष्य-द्विभागैर्व्यवहारक्षमी भासते इति प्रश्नार्थः ॥ ८ ॥ नासलमभाने अर्थिकियासामर्थे वा प्रयोजकम् । खप्रभान्तिज्ञाने असत्सह-स्रसापि तर्शनात् । किंतु बाधस्तत्प्रयोजकः । स चात्र विचा-रवतां यौक्तिकस्तरविदामपरोक्षश्रास्त्येवेत्युत्तरार्थः ॥ ९ ॥ लैकिकप्रत्यक्षादिमानसिद्धस्य कथमपलाप इति प्रश्नार्थः॥१०॥ आदिसर्गे जगतो मायातिरिक्तसामम्या दुर्वचलाङ्गान्तिमात्रत्वे अवर्यं वक्तक्ये संप्रत्यपि तथैव वाष्यमिति व्यवहारमात्रावि-संवादेन चरितार्थानि कौकिकप्रत्यक्षादीनि तस्वगीचरयुक्तिभिः श्रुतिभिश्व बाध्यन्त इत्युत्तराशयः । तथाच श्रुतिः 'न निरोधो न चोत्पत्तिनं बद्धो न च साधकः । न मुमुक्कनं वै मुक्तिरि-रयेषा परमार्थता' इति ॥ ११ ॥ भूतभविष्यदायनन्तवस्तु-गोचराणामनन्तानां सर्वेजनीनानां प्रत्यक्षादीनामेकेन तरब-शनेन कथं बाध इति शहार्थः ॥ १२॥ तादशानामपि खाप्न-श्रानानामेकेन जागरेण बाधदर्शनादिरयुत्तरार्थः ॥ १३ ॥

| श्रीराम उवाच । | |
|---|----|
| अहं त्यमयमित्यादिजगज्जठरमप्यलम् । | |
| कथं न जातं भगवन्सर्गादाचनुभूतिमत्॥ | १४ |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| कारणाजायते कार्यं नान्यथेत्येय निश्चयः। | |
| सर्वोपशान्तौ जगतामुत्पत्तौ नास्ति कारणम् | १५ |
| श्रीराम उवाच । | |
| महाप्रलयसंपत्ती शिष्टं यद्जमव्ययम् । | |
| तत्कथं नाम सर्गस्य न भवेत्कारणं मुने ॥ | १६ |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| यदस्ति कारणे कार्यं तत्तसात्संप्रवर्तते। | |
| न त्वसजायते राम न घटाजायते पटः॥ | १७ |
| श्रीराम उवाच । | |
| जगत्स्ध्मेण रूपेण महाप्रलय आगते। | |
| आस्ते ब्रह्मणि तत्तस्मात्पुनरेव प्रवर्तते ॥ | 24 |
| वसिष्ठं उवाच । | |
| महाप्रलयपर्यन्ते केन सर्गास्तितानघ। | |
| अनुभूता महाबुद्धे तत्रस्था सा च कीदशी॥ | १९ |
| श्रीराम उवाच । | |
| श्रह्यात्मिका श्रीस्तत्रस्था तादशैरनुभूयते। | |
| व्योमात्मिका तु न भवेश्व सत्तामसदेति हि॥ | २० |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| पवं चेत्तन्महाबाहो इतिरेव जगन्नयम्। | |
| विशुद्धशानदेहस्य कुतो मरणजन्मनी ॥ | २१ |
| श्रीराम उवाच । | |
| तदेवमाहितो नास्ति सर्गस्तदियमागता। | |
| | |

कया युक्तया बाध इति प्रश्नार्थः ॥ १४ ॥ कारणाभावयुक्तये-स्युत्तरार्थः ॥ १५ ॥ बद्दीव कारणं किं न स्यादिति प्रश्नार्थः ॥ १६॥ ब्रह्मणिधदेकरसत्वेन तत्र जगद्वीजशक्तययोगादि-त्युत्तरार्थः ॥ १७ ॥ तर्हि सांख्याभिमतगुणेष्विव ब्रह्मणि सूक्ष्मरूपेण तदा जगदस्तु इति प्रश्नार्थः ॥ १८ ॥ तत्सलायाः साधकाभावादैकरस्यश्रुतिबाधितत्वाचा-युपगन्तुमशक्यस्वादि-स्युत्तराशयः ॥ १९ ॥ तर्हि श्रद्येकरसत्येव तदा स्वप्नकाशा तत्सतासु न मायाकाशात्मिका। तस्याः शून्यतापर्यवसानेन असतः सदासमना सर्गे आगमनायोगादिति प्रश्नार्थः । हि यस्माद्सत् सत्तां नैति ॥ २० ॥ एवं चेचिदेकरसमेव ततो जगत्स्यात्, तथाच मेदकाभावे को जगच्छव्दार्थ इत्युत्तराशयः ॥ २१ ॥ तर्हि जगद्भान्तेः किं कारणमिति प्रक्षार्थः ॥ २२ ॥ न वास्तवं कारणं तत्कार्यं भावात्मकं जगद्वा अस्ति मायया त ब्रह्मेव तत्ति ब्रपुटी वेषं धते इत्युत्तरार्थः। यश्चेत्यते यचेति-तं यच चेतित तत्रयमपि खात्मैवेलर्यः ॥ २३ ॥ नन्विदं विपरीतम्। यन्त्रसद्धाः कार्थकारणसंघातः अचिद्रूपश्चेतति ताह-मृपलात्सर्वेद्रष्टा चेश्वरो जडह्नं दश्यलमेतीति काष्टं दम्श्रमूला योग० १९१

कुतः कथमिव भ्रान्तिरिति मे भगवन्वद ॥ २२ वसिष्ठ उवाच। कार्यकारणताभावाद्भावाभावी स्त एव नो। इदं च चेत्यते यद्यत्स्वातमा चेत्रति चेतितम २३ श्रीराम उवाच। चेतिता चेतति यन्त्रं द्रष्टा दृद्यत्वमीश्वरः। कथमेति कथं वहिं दहेत्काष्ठं कदा किल। રય वसिष्ठ उवाच। द्रष्टा न याति दश्यत्वं दश्यस्यासंभवादतः । द्रप्रैव केवलो भाति सर्वात्मेकघनाकतिः॥ ₹'4 श्रीराम उवाच। चिन्मात्रं तदनाद्यन्तं चेत्यं चेतयते तदा। तदिदं जगदाभानं कुतः स्याश्रेट्यसंभवः॥ २६ विषष्ठ उवाच । चेत्यं हि कारणाभाषात्र संभवति किंचन। चेत्याभाषां भेतनस्य मुक्तताऽवाच्यता सदा ॥ २७ श्रीराम उवाच । एवं चेत्तदहन्तावि चेत्यं कथमिदं कृतः। कथं जगद्वेदनं च कथं स्पन्दादिवेदनम्॥ 2% घतिष्ठ उवाच । कारणासंभवादादात्रेवोत्पन्नं न किंचन। कुतश्चेत्यमतः शान्तं सर्वं सर्गस्तु विभ्रमः॥ २९ श्रीराम उदाचा। अत्र मे विगतोहोसे निश्चेत्यचलनादिके। सकविभाते विमले विभ्रमः कस्य कीदशः॥

विंद्धि दाहां कुला कदा किल दहेदिति ए दार्थः ॥ २४॥ न द्रष्टा दश्यलं यातीति वयं प्रतिपादयामः किंतु दर्यादित्रि-पुटी इष्ट्रकैवल्यरूपर्ड्यात्रमेवेकघनाकृतिः खयं भातीति न किचिद्विपरीतं किंतु सर्ववैपरीत्यनियुत्तिरवित्युत्तराद्ययः ॥ २५॥ सर्गादावचेतितजगत्प्रतिभासासिदेः शुद्धचिन्मात्रमेव चेलं चेतयते इत्यवर्यं वाच्यम् । तत्र चेत्यस्य कुतः संभव-स्तद्भदेति प्रथार्थः ॥ २६ ॥ चेत्यं चेत्सर्गादौ संभूतं स्यासदा तत्कृतः संभूतमिति प्रश्नावसरः स्यात् । अत्यन्तासंभृतस्य वन्ध्यापुत्रकल्पस्य किमुपपत्तिजिज्ञासयेति निलमुक्त एवात्मा प्रतिपत्तत्र्य इत्युत्तरार्थः। अवाञ्यता वक्तुमनईता ॥२७॥ नित्यमु-कात्वं चेदहन्तादिप्रतिभास एव कदापि न स्थादिति गुहशास्त्रा-दिवेफल्यमिति शङ्काशयः ॥ २८ ॥ नोत्पन्नमेव किचिदिति निस्मुक्तताप्रतिवोधनेन जगहुन्धविश्रमशान्तिरेव शास्त्रादि-फलमित्युत्तराशयः ॥ २९॥ अत्र मे ब्रूह्यत्तरमिति शेषः। विगतोक्षेषं वागगम्ये सकृद्विभाते सदा स्वप्रकाशे नित्यमुक्ते ब्रह्मणि विश्रम एव कस्य कुली वा निमित्तात्कीदशः किंप्रका-रथ । अद्भयेन द्वेतलेशस्याध्यसहनादिति प्रश्नार्थः ॥ ३०॥

वसिष्ठ उवाच।

कारणाभावतो राम नास्त्येच खलु विम्रमः। सर्वे त्वमहमित्यादि शान्तमेकमनामयम्॥ ३१ श्रीराम उवाच।

ब्रह्मन्त्रममिवापन्नः प्रष्टुं जानामि नाधिकम् । नात्यन्तं च प्रबुद्धोऽस्मि पृच्छामि किमिहाधुना ३२ वसिष्ठ उवाच।

कारणसीय निकषं पृच्छ मा कारणश्रयात्। परे स्वभावेऽनिर्वाच्ये स्वयं विश्वान्तिमेष्यसि ३३ श्रीराम उवाच ।

मन्येऽहं कारणाभायात्पूर्वमेष न सर्गता।
उदिता तेन कस्यायं चेत्यचेतनविभ्रमः॥ ३४
वसिष्ठ उवाच।

अकारणत्वात्सर्वत्र शान्तत्वाद्गान्तिरस्ति नो । अनभ्यासवशादेव न विश्राम्यति केवस्रम् ॥ ३५

श्रीराम उवाच।

कुतो भवेदनभ्यासो भवेदभ्यसनं कुतः। कुतोऽभ्यासात्मिका भ्रान्तिरेषा पुनवपस्थिता ३६ वसिष्ठ उवाच।

अनन्तत्वादनन्तस्य भ्रान्तिनीस्ति च संप्रति । अभ्यासभ्रान्तिरखिलं महाचिद्रनमक्षतम्॥ ३७

अस्त शास्त्राधिगताद्वितीयब्रह्मतत्त्वदशा विश्रमोऽप्यनुवपन्नः । नैतावता कृतकार्यं शास्त्रं विफलमित्यूत्तराशयः ॥ ३१ ॥ एवं निरुत्तरीकृतो रामः प्रबोधदार्क्याभावादनिवृत्तसंशयः प्रश्ला-शिक्तमेव खस्य दर्शयति - ब्रह्मिति ॥ ३२ ॥ हे राम, न निक्तरीकरणादप्रतिभामात्रेण प्रश्नादुपरमस्य किंतु प्रश्नकार-णस्य संशयबीजस्य निक्षेषिलवृत्सारासारतापरीक्षास्थानं मा मां आकारणक्षयाचावदाशङ्कं पृच्छ । ततः क्रमेण प्रश्नकारण-संशयानां तत्कारणस्याज्ञानस्य न निःशेषं क्षयात्परे स्वभावे विश्रान्तिमेष्यसि ॥ ३३ ॥ कारणाभावातपूर्वं सगीदावेव सर्गता नोदितेति लदुक्तं सिद्धान्तमहं मन्ये अवगच्छाम्येव, तथापि ममायं चेखचेतनविश्रमः कस्येति संशयो नापगच्छति तत्र को हेतुरिति प्रश्नाशयः ॥ ३४ ॥ यदि मदुक्तं सिद्धान्तं जानासि तर्हि अनम्यासवशासज्ज्ञानादाव्यीदविश्रान्तिरेव ते ष्ट्या नानासंशयहेतुरित्युत्तराशयः ॥ ३५ ॥ यत्र जगद्भान्तेरिप कारणं नास्ति तत्राभ्यासात्मिका श्रान्तिः कुतो हेतोरपस्थिता स्यादिति प्रश्नार्थः ॥ ३६ ॥ मास्तु कापि भ्रान्तिस्तथापि जीव-न्मुक्तानां चिद्धनात्मकसर्ववस्तुभिन्र्यवहारप्रवृत्तिवत्तवाप्यभ्या-सप्रकृतिरस्वित्याशयेनोत्तरमाह—अनन्तलादिति ॥ ३७॥ जी-वन्मुक्तानां भवदादीनां सर्वेस्मिअगद्भमे शान्ततां गते सति अ-नयाऽध्यात्मशास्त्ररूपया शब्दसंपदा उपदेशाहीणामस्मदादीना-

श्रीराम उवाच ।

उपदेश्योपदेशादायनया शब्दसंपदा । क्रिमन्यद्वद् मे ब्रह्मन्सर्वेसिञ्छान्ततां गते ॥ ३८ वसिष्ठ उवाच ।

उपदेश्योपदेशात्म ब्रह्म ब्रह्मणि संस्थितम् । बोधात्मनि न मोक्षोऽस्ति न बन्धोस्तीति निश्चयः३९ श्रीराम उचाच ।

देशकालकियाद्रव्यमेदवेदनचेतसाम् । सर्वेच्यासंभवे सर्वेसत्ता कथमुपस्थिता ॥ ४० वसिष्ठ उवाच ।

देशकालिकयाद्रव्यभेदवेदनचेतसाम् । अज्ञानमात्रादितरा सत्ता नान्यास्ति नो पुरा ॥ ४१ श्रीराम उघाच ।

बोध्यबोधकतापत्तेरभावाद्वोधता कथम्। द्वैतैक्यासंभवे ब्रह्मन्कारणासंभवे सति॥ ४२ वसिष्ठ उवाच।

बोधेन बोधतामेति बोधशब्दस्तु बोध्यताम् । भवद्विषयमेवायमुचितो नास्मदादिषु ॥ ४३ श्रीराम उवाच ।

बोध एव यदाहरत्वमेति बोधान्यता तदा । कुत एवा परेऽनन्ते नासावतिज्ञलेऽमले ॥ ४४

मुपदेशकायप्रवेशशक्तिपातादिना प्रबोधनव्यवहारे किमन्यत्का-रणं स्यादिति प्रश्नः ॥ ३८ ॥ तेषामुपदेशादि सर्वव्यवहारात्मना बह्रीय ब्रह्मणि संस्थितम् । अन्यादशानां बन्धमोक्षतदुपायानां तस्बद्दशा अत्यन्ताप्रसिद्धेरित्युत्तराशयः ॥ ३९ ॥ अब्रद्धिप्र-सिद्धा जगत्सला तर्हि केन हेतुनोपश्यितेति प्रश्नः ॥ ४० ॥ अज्ञा-नहेतुनैवेत्युत्तरम्। यतो जीवन्मुक्तेः पुरा अन्या तदनुभवसिद्धा जगत्सत्ता नो ॥ ४१ ॥ तक्ष्वदशा द्वेतीक्यासंभवे सति बोध्यबो-धकमावापतेरप्यभावातत्त्वबोधस्य बोधता वा कथं, नह्यकर्मको बोधशब्दो लोके प्रसिद्धोऽस्तीति प्रश्नार्थः ॥ ४२ ॥ अबुद्धं हि ब्रह्मबोधेन खाझानक्षयफलाश्रयत्वेन बोध्यतां बोधकर्म-तामेति। तेनैव त बोधशब्दोऽपि बोध्यतां बोधफळवत्तालक्षण-सकर्मकतामेति । इदं सर्वमज्ञानवद्भवद्विषयमेव । जीवन्मुके-व्यस्मदादिषु लहानाभावान बोधस्य सकर्मकता निरूपयितुं शक्येखर्थः ॥ ४३ ॥ नास्मदादिष्विति बदता भवता जीव-न्मुकेष्वप्यसम्बन्धद्रप्रवृतिनिमित्तभूता अहन्ता साच नाबोधकार्यम् । तेष्वबोधाप्रसिद्धेः । अतः परिशेषाद्धोध एव अहन्तालक्षणं परिणाममेतीति वाच्यम् । तदाच बोधा-न्यता तस्य दुर्वारा असावहन्ताहिना जीवाख्यः पुरुषः । एषा च परे अनन्ते त्रिविधपरिच्छेदशून्ये अतएव जलमतिकान्ते अतिजले जलादप्यतिश्थिते अमले चिन्मात्रे खयि कृतः

वसिष्ठ उधास्त्र। यत्तद्वोधस्य बोधत्वं तदेवाहन्त्वमुख्यते । द्वित्वमत्रानिलस्पन्ददशोरिव निगद्यते ॥ ४५ श्रीराम उवाच।

सीम्याब्ध्यन्तस्तरङ्गादिर्यथादत्ते यथास्थितम्। तथा स्त्ररूपमात्रात्म बोध्यं बोधोऽबबुद्धवान् ४६

षसिष्ठ उवाच।

पर्व चेत्तत्कथं कः स्वाहोषो द्वित्वादिदोषतः। अनन्ते स्थित एकस्मिञ्छान्ते पूर्णे परे पदे ॥ ४७ श्रीराम उवाच।

कोऽत्र करुपयिताहरूवं भुद्धे भोका च कथा धा । यन्मूलं यज्जगद्भान्तिरनन्ता प्रविज्ञम्भते ॥ वसिष्ट उवाच ।

भ्रेयसत्तावबोधे हि बन्धनं सच नास्त्वस्म्। श्रप्तेः सर्वार्थरूपत्वाद्धन्धमोक्षावतः कुतः॥ પ્રવ श्रीराम उवाच।

श्रेमेशिह्यार्थता दीपाश्रीलादीय प्रवर्तते। बाह्यस्त्वर्थोऽस्ति सद्रुपो नजु रष्टोपलम्भतः॥ ५० वसिष्ट उद्याच ।

अकारणस्य कार्यस्य बाह्यस्यार्थस्य सत्यता । येयं सा भ्रान्तिमात्रात्मरूपिणी नेतराङ्गिका॥ ५१ श्रीराम उवाच।

स्त्रप्तः सत्योस्त्वसत्यो वा दुःखं तावत्प्रयच्छति । तथैवेयं जगद्भान्तिः क उपायोऽत्र कथ्यताम् ५२

॥ ४४ ॥ बोधैकरसस्यास्मदादेर्यद्वोधलं खरूपभूतं तदेवानि-लसन्दबद्वैकल्पिकव्यपदेशेनाहुन्लमसाभिहृष्यते नाजवद्वि-मानप्रधानेन जीवपुरुषेणेत्युत्तरार्थः ॥ ४५ ॥ एवं चेत्समुद्र-तरक्षन्यायेन जीवनमुक्तानां चिन्मयमेवाहन्तादिजगत् बोध्यबो-धादित्रिपुटी चेति पर्यवसन्नमिति प्रश्नाशयः॥ ४६ ॥ यद्येवं स्थितिरेव तत्त्वं तर्हि तया 'हैतेवयासंभवे ब्रह्मन्कारणासंभवे सति' इति लदुद्भावितो द्विलादिप्रसक्तितो यः अद्वैतहानिलक्षणो दोषः स कथं स्यात् कथ स्यात्तसान्नवं मन्तव्यमिति शुद्धाद्वै-तमेवाबलम्बसेखर्थः ॥ ४७ ॥ तर्हि शुद्धाद्वैतपक्षे अनिल-स्पन्दवदहन्सविकल्पं कल्पयिस्वा को व्यवहारं भुद्गे । जगञ्जा-न्तिविकल्पस्यापि तथैवावर्जने पुनर्वन्धमोक्षकल्पनापि स्माविति प्रश्नार्थः ॥ ४८ ॥ श्रेयार्थसस्त्रसामिनिवेशे हि पुनर्बन्धनं प्रसन्तेत । तस्विधदां तु तज्ज्ञेयं अलं अल्पन्तं नास्ति । तस्व-इ।नेन बाधात् । इसिरेव हि तेवां प्रारब्धशेषभोगाय सर्वा-र्थाकारेव भासते नातः पुनर्वन्धादिकल्पनाप्रसक्तिरित्युत्तरार्थः ॥ ४९ ॥ ननु न इतिः सर्वार्यरूपा । यतो दीपारप्रकाशका-भीलपीतादिरूपस्थितिरिव इतेर्वेशाद्वाह्यचटपटाद्यर्थस्थितिः प्रव-

घसिष्ठ उवाच । एवं ताबद्यथा स्वप्तस्तथेयं चेज्जगितस्थतिः। तित्पण्डप्रहतार्थानां सर्वेव म्रान्तितोदिता ॥ ५३

श्रीराम उवाच ।

किमेतावति संपन्ने संपन्नं भवति प्रियम्। कथं च शाम्यत्यर्थानां स्वप्नादी पिण्डरूपता ॥ ५४

वसिष्ठ उवाच।

पूर्वापरपरामर्शात्पिण्डतार्थेषु शाम्यति । स्बेप्रप्येवं स्थिते स्थूला भावना विनिवर्तते ॥ श्रीराम उवाच।

भावना तनुतां याता यसासी कि प्रपद्यति। कथं शास्यति तस्यायं संसारकुहरभ्रमः॥ ५६ घसिष्ठ उवाच।

उद्गस्तमसदाभासमुन्पन्ननगरोपमम् । वर्षप्रोत्मृष्टचित्राभं जगरपद्यत्यथासनः॥ 40 श्रीराम उवाच।

ततः किं तस्य भवति वासनातानवे स्थिते । पिण्डब्रहे गतेऽर्थानां स्वप्नोपमजगितस्थतेः॥ वसिष्ट उवाच।

संकल्परूपजगतः क्रमात्सापि विलीयते। वासना तस्य तेनाशु स निर्वाति विवासनः ॥ ५९ श्रीराम उवाच।

अनेकजन्मसंहृदा शाखा प्रस्वशालिनी। भयबन्धकरी घोरा कथं शास्यति वासना॥

तीते प्रयां रुमते। तथाच इप्टोपरुम्भतः प्रत्यक्षादिसिद्धौ बाह्योऽर्थः सद्वपो इतिबलादेव सिद्धः कथं तथैवापलपितं शक्य इति शङ्कार्थः ॥ ५० ॥ यदा भाह्यार्थस्याकारणकलाहरम्या-पुत्रसद्दश्रत्वं प्राक्ताभितं तदा तस्य येयमापातदर्शनप्रतिद्धा सखता सा शुक्तिरजतसत्यतेव श्रान्तिमात्रात्मरूपिणी नत् इतरद्यथार्थमुद्धिरक्षं साधकं यस्यास्तथाविधा । तत्त्वविदां त भ्रान्तिमुठाज्ञाननाशास्तत्प्रसक्तिरेव नास्तीत्युत्तरार्थः ॥ ५९ ॥ तात्कालिकार्धिकयासामर्थ्यात्सत्योस्त् । प्रबोधबाध्यलादसत्यो बाइस्तु । अत्र तिचिकित्सायां क उपाय इति प्रश्नः साष्टः ॥५२॥ खप्रसाम्ये सिद्धे तत्त्वबोधेन तत्पण्डमहताबाध एव सर्वदुःख-शान्त्युपाय इत्युलराशयः । तत्तर्हि सर्वेव अर्थानां पिण्डप्रहता-भ्रान्तितैवेति अर्थादुदितैव ॥ ५३ ॥ आशयमप्रतिपद्य प्रश्नः स्पष्टः ॥ ५४ ॥ एवं पूर्वापरपरामर्शेन स्थिते अवस्यं प्रबोधी-द्ये स्थूला खप्रभावना विनिवर्तते ॥ ५५ ॥ यस्य पूर्वापर्वि-मर्शेन जगत्स्थीस्यभावना तनुतां याता स जीवनमुक्तो जगहिंक कीदशं प्रपद्यतीति प्रश्नः ॥ ५६ ॥ उत्तरं सप्टम् ॥ ५७ ॥ ततस्तदनन्तरम् ॥ ५८ ॥ उत्तरोत्तरभूमिकापरिपाककमातः

| वसिष्ठ उचाच । | |
|---|-------|
| यथाभूतार्थविकानाद्धान्तिमात्रात्मनि स्थिते । | |
| पिण्डप्रहवियुक्तेऽस्मिन्ददयचके क्रमात्क्षयः॥ | ६१ |
| श्रीराम उवाच । | |
| पिण्डग्रहविमुक्तेऽस्मिन्ददयचके क्रमान्मुने। | |
| संपद्यते किमेपरं कथं शान्तिः प्रजायते ॥ | ६२ |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| पिण्डम्रह्भ्रमे शान्ते चित्तमात्रात्मतां गते। | |
| निरोधगौरवोन्मुके जगत्यास्थोपशाम्यति॥ | ६३ |
| श्रीराम उवाच । | |
| बालसंकरपरूपेऽसिन्स्थिते जगति भासुरे। | |
| कथमास्थोपशमनं तादुग्दुःखाय किं नरः॥ | ६४ |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| संकल्पमात्रसंपन्ने नष्ट दुःखं कथं भवेत्। | |
| संकल्पचित्तमात्रं यत्तत्तांवत्त्रविचार्यताम्॥ | ६५ |
| श्रीराम उवाच । | |
| कीरदां भगवंश्चित्तं कथं तत्प्रविचार्यते। | |
| किंच संपद्यते बृहि तिसन्सम्यग्विचारिते॥ | દ્દદ્ |
| वसिष्ठ उदाच । | |
| चितश्चेत्योन्मुखत्यं यत्तचित्तिमिति कथ्यते । | |
| विचार एप एवास्य वासनानेन शास्यति॥ | ६७ |
| श्रीराम उवाच। | |
| कियन्नाम भवेत्रहान्न चेत्योत्मुखता चितेः। | |
| चित्तस्याचित्ततोदेति कथं निर्वाणकारिणी॥ | ६८ |
| वसिष्ठ उदाच । | • |
| चेत्यं न संभवत्येव चित्कि चेतयते कुतः। | |
| चेत्यासंभवतश्चित्तसत्ता नास्ति ततश्चिरम्॥ | દ્દ |
| 442. | |

॥ ५९ ॥ ६० ॥ आन्तिमात्रात्मि अस्मिन्दरयके यथाभूतार्थविद्वानासिण्ड प्रह्विमुक्ते दग्धपटन्यायेन स्विते सित
प्रारच्धशेषभोगकमात्तस्यापि क्षय इत्यर्थः ॥ ६१ ॥ अपरे
किं निर्विक्षेपतासाधकं संपयते इति प्रश्नः ॥ ६२ ॥ भोगास्थाद्यान्तिः परवराग्याख्या संपयत इत्युक्तरम् ॥ ६३ ॥
बालसंकल्परूपे अतिपेलवत्यास्थितेऽपि जगति दुःखहेलास्थोप्रामनं कथम् । ति तादगल्यन्तपेलवसंकल्पः विश्वरूपि नरो
दुःखाय किम् । दुःलमनुभवन् कथं दृश्यते इत्यर्थः ॥ ६४ ॥
अविचारेण पेलवलापरिज्ञानादेव शिशोरि दुःखम् । विचारेण
तत्परिज्ञाने तु न तक्षाशादिना दुःलामिति लमपि विचारयेत्युतरमाह—संकल्पेति ॥ ६५ ॥ प्रश्नः स्पष्टः ॥ ६६ ॥ एषः
साप्रतं लया मां पुरस्कृत्य कियमाणो महारामायणश्रवणस्य
एव ॥ ६० ॥ चित्ते जीवति राति तिश्ररोधसाध्या चितेरचेस्वीनमुखता कियत्कार्थ स्थास्यति । अत्रक्षित्तनाशोपायमेव

| श्रीराम उवाच । | |
|--|------------|
| कथं न संभवस्येतचेत्यं यदनुभूयते । | |
| अपह्रवधानुभवे कियते कथमीहराः॥ | 90 |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| यादक्यादक्षविषयं जगत्तस्य न सत्यता। | |
| यादक तज्ञ्जविषयं तदनाख्यं यदद्वयम्॥ | ७१ |
| श्रीराम उत्राच । | |
| त्रिजगत्कीदगद्यानां कथं तस्य न सत्यता। | |
| तज्ज्ञानां तु जगद्यादकद्वकुं किं न युज्यते ॥ | ७२ |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| आद्यन्तद्वैतमज्ञानां तज्ज्ञानां तज्ञ विद्यते । | |
| जगच नो संभवति नित्यानुत्पन्नमादितः॥ | ७३ |
| श्रीराम उवाच। | |
| आदितो यदनुरपन्नं न संभवति कर्हिचित्। | |
| असद्र्पमनाभासं कथं तद्नुभूयते ॥ | હા |
| वसिष्ठ उवाच । | |
| असदेव सदाभासमनुत्पन्नमकारणम्। | |
| जाप्रत्स्यप्रघदुद्भृतमर्थकृषानुभूयते॥ | <i>ঙ</i> ণ |
| श्रीराम उवाच । | |
| स्वप्रादौ कल्पनादौ च यहृश्यमनुभूयते। | |
| तज्जात्रदूपसंस्कारादनुष्ठानानुभूतितः॥ | ७६ |
| घसिष्ठ उवाच । | |
| किं जाम्रदूपमाहोस्विदन्यस्वप्नेऽनुभूयते। | |
| संकल्पे च मनोराज्ये इति मे वद रोघव॥ | ૭૭ |
| श्रीराम उवाच । | |
| स्वमेषु करपनाधेषु जाप्रदेवावभासते। | |
| संस्कारात्मतया नित्यं मनोराज्यभ्रमेषु च ॥ | ૭ ૮ |

वदेति प्रश्नार्थः ॥ ६८ ॥ चेत्यस्यासंभवदर्शनेन मार्जनमेव चित्तनाशोपाय इत्युत्तरार्थः ॥ ६९ ॥ चेत्यं सर्वथा न संभवति चेत्तदनुभवस्य को विषय इति प्रश्नतात्पर्योद्यः ॥ ७० ॥ अक्कपरिक्वातस्यापद्यवे अर्थात्तस्य तत्त्वविपरिक्वातनामरूपातीत-वस्त्वेव विषय इत्युत्तरार्थः ॥ ७१ ॥ प्रश्नः स्पष्टः ॥ ७२ ॥ आग्रन्तौ देशकालकृतपरिच्छेदौ द्वैतं वस्तुकृतपरिच्छेद्ध यस्मि-स्वथाविधं तत्तादशं जगत्तज्ञानां सांप्रतं न विद्यते आवितक्ष न संभवतीति नित्यानुत्पन्नं शशिवषाणवन्ध्यापुत्रप्रामित्यर्थः ॥ ७३ ॥ अस्मन्तासचेत्वथमर्थिकयासमर्थमनुभूयत इति प्रश्नः ॥ ७४ ॥ एवंविधापि जामत्स्यप्रवदनुभूयत इत्युत्तरम् ॥ ७५ ॥ कल्पनादी मनोराज्यवितर्कादी अनुष्ठानं जामद्यवद्यारस्तदनु-भवतः प्रसृतात्तद्वप्रसंस्कारादित्यर्थः ॥ ७६ ॥ संस्कारात्स्यप्रे कि जामत्प्रसिद्ध एवार्थोऽनुभूयते उतान्य इति मे वदेति प्रश्नार्थः ॥ ७७ ॥ तत्राद्यकर्षं रामः परिगृश्वोत्तरमाह—

वसिष्ठ उवाच । तदेव जाग्रत्संस्कारात्स्वप्रश्चेदवभासते। तत्स्वमे छठितं गेहं कथं प्रातरवाष्यते॥ ७९ श्रीराम उवाच। न जाप्रद्राजते स्वप्ने तद्वश्वान्यसदेव हि। बुद्धमेतत्कथं त्वन्यदपूर्वमिव भासते॥ 60 वसिष्ठ उवाच। नानुभूतोऽनुभूतश्च चेतस्यर्थोऽवभासते। सर्गाधन्तादिमध्येषु स्वभ्यस्तरित्वति भासते **ح**۶ श्रीराम उवाच । पर्व स्वप्नात्मकं भाति जगदित्येव वुद्धवान्। गृहचत्स्वप्रयक्षोऽयं कथं ब्रह्मंश्चिकित्स्यते ॥ वसिष्ट उवाच। योयं संसरणस्वप्नः स किंकारणको भवेत्। कार्याञ्च कारणं भिन्नमिति इष्टं विचार्य ॥ ૮३ श्रीराम उदाच । चित्तं स्वशोपलम्भानां हेतुस्तस्मात्तदेव ते। विश्वं चाद्यन्तरहितमनासारमनामयम् ॥

वितिष्र उवाच । एवं चित्तं महाबुद्धे महाचिद्धनमेव तत्। तथास्थितं न स्वप्नादि किंचनास्तीतरात्मकम् ८५ श्रीराम उवाच। अवयवावयविनोर्यथा भिस्नस्तथा स हि। तशानवयमे ब्रह्मण्येकता जगदादिना ॥ ८६ वसिष्ठ उवाच । एवं न संभवत्येव नित्यानुत्पन्नमादितः। जगत्तेनाजरं शान्तमजं सर्वमवेधितम्॥ 20 श्रीराम उवाच। काकतालीयवन्मन्ये सर्गाचन्तादयो भ्रमाः। भ्रान्तिद्रष्टुत्वभोकृत्वसहिताः परमे पदे ॥ ८८ वसिष्ठ उवाच।

या व्यापारवर्ता रसाद्रसविदां काचित्कवीनां नवा दृष्टियां परिनिष्टितार्थविषयोन्मेषा च वैपश्चिती। ते हे अप्यवलम्ब्य विश्वमितलं निर्वर्णितं निर्वृतं यावहृष्टिहरों न सन्ति कलिता नो शून्यता नो भ्रमः

इस्तार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० दे० मो० नि० उ० रामविश्रान्तिनीमः नवस्यधिकशतत्तमः सर्गः ॥ १९० ॥

८२

स्प्रेप्विति । जापन् जाप्रत्यसिद्धोऽथे एव ॥ ७८ ॥ छठितं पातितं गेहं गृहम् । अर्थाभेदे खाप्नपातनस्य जामस्पातनहप-लादिति भावः ॥ ७९ ॥ आधकलपगरमहे द्रिपते रामो द्वितीयकल्पमवलम्बते--निति । जाप्रदर्थः स्वप्ने न राजते न भासते किलन्यत् । तच व्रद्धेवेखेतत्त्वदिभिन्नेतं मया वुद्धम् । एतावांस्त्र संदेहः परिविष्टः---तदन्यद्भक्ष अपूर्वं जगदिव भासते इति ॥ ८० ॥ नापूर्वमिव मारात इत्येव नियमः किंतु कक्षि-दथीं नानुभूतोऽपूर्व इति कश्चित्त प्रागनुभूतो नापूर्व इति वावभासतेऽसौ च येन येनाकारेण सर्गाद्यन्तादिमध्येष्वनु-भवोऽभ्यस्तः स इति तेन तेनाकारेण गासते । तत्र ब्रह्मा-कारताभ्यासे स्वभ्यस्ते तर्धेव भागिष्यत इति भावः ॥ ८९ ॥ एवं लया बोधितोऽहं जायज्ञगदपि स्त्रप्रास्मकमेव भातीत्येव बुद्धवान् । तथाविधोऽप्ययं जगद्यक्षी प्रहृबद्वाधते अतः कथं चिकित्स्यते ॥ ८२ ॥ कारणपरीक्षणेन स चिकित्सनीय इल्या-शयेन वसिष्ठस्तत्कारणं पृच्छति--योयमिति ॥ ८३ ॥ उत्तरं सप्टम् ॥ ८४ ॥ चित्तं च चेत्योन्मुती चिदेवेत्यसकृदुक्तमे-वैति तिश्वतं महाचिद्धनमेव । तथाच तदेव जगदाकारमिव स्थितमिति सिद्धमित्यर्थः ॥ ८५ ॥ तर्हि वृक्षशासान्यायेन भेदाभेदेन ब्रह्मणि जगल्थितमिलेव कुतो नोच्यते न खप्नादि किंचनास्तीति कतो निषिध्यते इति रामः श्रद्धते-अवयवेति। यथा अवयवानां शास्त्रादीनामचयविनो वृक्षस्य च तादात्म्य-रुक्षण एकीभावो मिन्ना भेदसहिष्णुस्तथा चित्रजगतोरप्यस्त । तत्र जगदादिना समष्टिचित्तेन अनवयवे ब्रह्मण्येकताह्लित्यर्थः

॥ ८६ ॥ परिहरति-एवमिति । एवं कल्पना न संभवत्येव । यत आदितो विमर्शे ब्रह्मणि कारणामावाजगन्निखानुत्पन्नम् । नहि मायिककलानामात्रेणावयवाययविभावो भेदामेदो वा भवति । महतदीगन्धर्वनगरादेरपि मरीचिनभःप्रमृत्यवयवता-प्रसङ्गादिति भावः । अवधित्मन्छिदितमखण्डितामिति यावत् ॥ ८७ ॥ एवं समाहितो रामः परिशिष्टां सैद्धान्तिकी स्थिति-मेवाबलम्ब्याह—काकतालीयवृदिति ॥ ८८ ॥ एवं जगद्धाः नितमात्रमेवेति निश्चितवन्तं रामं प्रति सादिभ्रान्तिर्देष्टिद्वय-मूलकेन शास्त्रीयविचारेण मया निराकृतेति वतिष्ठ उपसंह-रति-येति । त्रिविधा हि प्रसिद्धा दृष्टिः पामरदृष्टिर्यौकिः कदृष्टिस्तत्त्वदृष्टिश्चिति । तत्रादौ प्रथमा उत्तराभ्यां द्वाभ्यां निराकार्या द्वितीया सन्ते तृतीययेखाशयेन उत्तरे द्वे दथी अवलम्ब्य मयेदमिललं विश्वं तत्त्वतो निर्वर्णितम् । के ते है । रसाद्रसविदां सारादिप सारं निर्मध्य बोद्धं समर्थानां कवीनां प्रमाणप्रमेयतत्त्वपरीक्षाकुशलानां पद्वतरविचारव्यापारवती अ-तिनिष्कर्षेरूपलादिभिनवा या काचिद्दृष्टिः सैका । या चापरा सर्वविचारशास्त्रश्रवणसनननिदिध्यासनपरिपाकपरिनिष्ठितो यः परमतस्वरूपोऽर्थस्तनमात्ररूपस्य विषयस्य उन्मेषः अपरोक्षतया स्फरणं यस्यां चरमसाक्षारकारवृत्ती ताहशी वैपश्चिती विपश्चित्ध जीवन्सुकेषु प्रसिद्धा । साच ते दे दृष्टी अवसम्बयासिन्धान्ने कियत्पर्यन्तं विश्वं निर्वणितं तद्धः —यावदिति । यावदृष्टयश्व तदुशो जीवाध कालत्ररोऽपि न सन्ति । जगतः ग्रन्यतापि न कठिता भ्रमध न कठितस्ताविध्यापरीक्षपरमानन्दमधाः

एकनवत्यधिकदातृतमः सुर्गः १९१

श्रीराम उवाच । एवं चेत्तनम्निश्रेष्ट परमार्थमयं जगत्। सर्वदा सर्वभावात्मा नोदेति न च शाम्यति॥ भ्रान्तिरेवेयमासाति जगदासासरूपिणी। भान्तिरेवापि वा नेव ब्रह्मसत्तेव केवला ॥ ર वसिष्ठ उवाच । काकतालीयबद्धक्ष यद्भातीवात्मनात्मनि । स तेनैवात्मनात्मैव जगदित्यवबध्यते ॥ श्रीराम उवाच। कथं तपखहो दिक्कं सर्गस्यादौ परत्र च। कथं भिरया विना भाति वद दीपप्रभा मुने ॥ वसिष्ट उवाच । इत्यंहपमिवं भाति चितिरूपप्रभाप्रभा। पद्य सैवात्मनास्ते यत्प्रकाशादिभिरेव च ॥ मित्ती प्रकाशो भातीव तत्कुङ्यं भासनं च तत् । हृद्यस्यासंभवादादी वक्ता द्रष्टा प्रदृश्यताम् ॥ तसाद्वष्टास्ति नो इदयं नैवास्तीदमनामयम्। चित्रभैवात्मना भित्तिभवत्याभासनं तथा॥ द्रपृष्ठश्यात्मिकैकेव स्वात्मनैव विराजते। स्वप्रादिषु यथेहाद्य द्रष्ट्रद्यात्मिका सती॥

त्मैकवस्तुस्थितिपर्यन्तमिति यावा ॥ ८९ ॥ इति श्रीवासिष्ठ-महारामायणताल्पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे नव-व्यथिकदातत्मः सर्गः ॥ ५९० ॥

> प्रक्षेत्र जगदाकारं यथा सात्यप्रवीधतः । प्रबुद्धमात्रनिर्वाणं तत्सम्यगिह वर्ण्यते ॥ १ ॥

एवं प्रतिबोधितो रामः सैद्धान्तिकं पक्षं प्रतिपद्याभिल-पति-एवंचेदित्यादिना । परमार्थमयं पतरत्त्वविवर्तः ॥ १ ॥ भ्रान्तिर्विक्षेपशक्तिप्रधाना अविद्या याक्तिकदशा, तत्त्वदशा त सापि नैव ॥ २ ॥ श्रीरामोक्तमतुमोदमानो वसिष्टसादैवाह-काकतालीयबदिति । काकतालीयवदतक्यया अविश्वया आ-त्मना जीवभतेन तेनैव ब्रह्मणा ॥ ३ ॥ महाप्रलयकाले खालम्बनदिग्विभागादिश्च्यमपरिच्छित्रचिरप्रकाशमसंभावय-ब्रिव सविसायं रामः प्रच्छति - कथमिति । अदिकं दिरभागं विना सर्गस्यादी प्रख्यकाले परत्र मोक्षे च कथं तपति प्रका-शते । अही इत्याश्चर्ये । भित्त्या आलम्बनेन । तथाच विना-सम्बनं प्रभाया इव चिदातमनोपि प्रथा असंभाग्येखर्थः ॥४॥ अन्यत्रादृष्टमत्याश्चर्यम्प्येतस्त्रमाणानुभवबलादेव संभावनीय-मिति समाधत्ते—इत्यंहपमिति । इदमित्यंहपमत्याधर्यमेव । 'विमं चिदानन्दमहत्पमद्भतम्' इति श्रुतेः । 'आश्चर्यवत्पस्यति क्षिदेनम्' इति भगवद्वचनाच । तथापि नासंभावना कार्या । अन्वयव्यतिरेकाम्यां पराक्ष्य त्वं पश्य । यद्यस्मारसैव - चिति- चिद्धात्येव हि सर्गादौ कचन्ती भाति सर्गवत । भासनीयं च भानं च रूपं यत्र स्वयंत्रभा ॥ पकैय चित्रयं भृत्या सर्गादी भाति सर्गवत्। एष एव स्वभावोऽस्या यदेवं भाति भासुरा॥ १० पतत्त स्वप्नसंकल्पनगरेष्वनुभूयते। इत्थंनाम तपत्येषा चिद्वाप्तिः प्रथमोदिता ॥ ११ नभस्यव नमोरूपा यदिदं भासते जगत्। अनाद्यन्तमिदं तस्याः सर्गाः सर्गात्मभासनम् ॥१२ स्वभावभूतमस्माकं त्विदं भाति महात्मनाम्। भाराभासकसंवित्तिर्नदयति प्रतिभागिता ॥ तदा त नाम सर्गादौ नासीद्वास्यो न भासकः। मिध्याद्वानवशादेव स्थाणी पुंस्प्रत्ययो यथा॥ १४ तथात्मनि हिताभानाचित्ते हैतविभासनम्। सर्गाही न च भास्योस्तिनचवानास्ति भासकः१५ कारणाभावतोद्वेतं चिद्योमाभाति केवलम् । कि नाम कारणं बृहि सर्गादी चिति वस्तुतः १६ अभावादर्थस्प्रीनां चिदेवेत्थं प्रकाशते। जगद्भानमिदं यत्तन्न जात्रन्न सुपुप्तकम् ॥ १७ न स्वप्नोऽसंभवादृदयं केवलं ब्रह्म भासते। **चिन्मात्र**व्योमसर्गादावित्थं कचकचायते ॥

रूपा सूर्यीदिप्रभाषा अपि प्रभा अन्धकारकाले आत्मनैव प्रथमाना आस्ते । सुर्थेदियाद्यनन्तरं प्रकाशादिभिः सहाप्यास्ते ॥५ ॥ सुर्योदिप्रकाभोऽपि सित्त्यादिनिरपेक्षप्रकाशस्वभाव एव सन् भित्तै। भावीव । नहि तस्य प्रकाशता भित्तिप्रयुक्ता । प्रस्युत कुल्यं तद्भामनं च तरस्यप्रकाशताबस्यादेव संपद्यते । प्रकाशैकरस्येनैव कृष्यप्रथनात् । तत्र यथा कृष्यादिसंबन्धा-त्प्राङ्गसि प्रकाशो दश्यते तथा सर्गस्यादी प्रलयेडपि बक्ता श्रोता चात्रमारमा निर्विषयो दर्यतामिखर्यः ॥ ६ ॥ एवं निरालम्बनचित्संभावनसिद्धेः सैव सर्गादी जगदाकारेण संप-वेति संभावयेत्याह्—तस्मादिति । भितिमूर्तमालम्बनमाभा-सनं सूर्यादिव्रभा यथा तथैव ॥७॥ एकस्या एव चितस्त्रिपुटी-भावः खप्रादिष्वपि प्रसिद्ध एवेल्याह—दृष्टिति ॥ ८ ॥ यत्र यस्मिन्सर्गादिकाछे ॥ ९ ॥ खभावी मायाशक्तिः ॥ ५० ॥ तपति प्रकाशते ॥ ३३ ॥ तस्याः सगीत्मना भासनं भानमेव सर्गाः ॥१२॥ अज्ञानामेवेदमाश्रर्यवद्भाति नास्माकनित्याह-खभावभूतमिति । अकस्मात्त्रतिभामितापि झटित्येव तत्त्वा-नुसंधानेन नदयति ॥ १३ ॥ कथं तत्त्वानुसंधानं तदाह-तदा लिति ॥ १४ ॥ भासकश्चिदारमा तु न नास्ति अवस्य-मस्त्येव । वाशब्दः सीमुखये ॥ १५ ॥ १६ ॥ सगीदी जगद्धा-नस्य जाप्रदाद्यवस्थात्रयानन्तर्भावादपि तुर्वचिवेवेर्थं प्रकाशत

१ पक्षान्तेर इति पाठः.

यत्स्वमेच चपुर्वेत्ति जगदित्यजगनमयम् । चिन्मात्रव्योमसर्गादावित्यं भाति विकासनम् १९ यदिदं जगदित्येव शून्यत्वाम्बरयोरिच ॥ २० बुद्धा च यावत्स्वतुभूतियुक्तं स्थात्व्यमेतेन विकल्पमुक्तम्। पाषाणमीनं कुजनेन तृकं न ग्राह्यमञ्जन हि भुक्तमुक्तम्॥

२१

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठम० वा० मो० नि० उ० महावादबोधनं (तस्वानुसंधानं)नार्मकनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९१ ॥

ब्रिनवत्यधिकशातनमः सुर्गः १९२

थीराम उवाच। अहो तु सुचिरं कालं संभ्रान्ता वयमन्तरे। अपरिशातमात्रेण संसारपरमाम्बरे॥ युद्धे याचदियं नाम जगङ्गान्तिर्न किंचन। न चाभूष च वास्तीयं न च नाम भविष्यति ॥ सर्वे शास्तं निरालम्यं विज्ञानं केवलं स्थितम् । अनन्तं चिद्धनं व्योम नीरागमपकल्पनम् ॥ ŧ परमाकादामेवेदमपरिज्ञातमात्रकम् । संसारतामिवासाकं गतं चित्रमहो नु भोः॥ इत्यं हैतमिदं भातमिमे छोका इमेऽद्वयः। परभाकाशमित्यच्छमेवानच्छमिव स्थितम् ॥ सर्गादी परलोकादी स्वप्नादी कल्पनादिके। चिदेव चेत्यवद्भाति कुतोऽन्या किल दश्यधीः स्वर्गे ता नरके वापि स्थितोऽस्रीति मतिर्यदि । तत्तस्या नरकस्यान्तो दृदयं संविन्मयात्मकम्॥ ७ नेदं रह्यं न च द्रप्रा न सर्गों न जगन्न चित्। न जात्रत्स्वप्रसिद्धादि किमपीदं तदप्यसत्॥

इलाह—अभावादिति ॥ १७ ॥ १८ ॥ विकासनमित्युत्तरानविय ॥ १९ ॥ श्ल्यलाम्बर्योर्भेद्धिकल्पविकासनम् ॥२०॥
वर्णितं तत्त्वानुसंधानप्रकारमुपसंहरति— बुद्धेति । एतेन
मदुक्ततत्त्वानुसंधानोपायेन तत्त्वं बुद्धा याबद्ध्मिकापरिपाकक्रमेणेदं खनुभूतियुक्तं दृढं भवति ताबद्विकल्पमुक्तं यथा
स्थातव्यम् । अह्नेन खेन परेण च अनादी संसारे पुनःपुनर्भुक्तं
वैराग्यातिशयेन सांप्रतं मुक्तं त्यक्तं वाह्यविषयणातं तु कुजनेन मुंक्षेत्रयुक्तमपि न प्राह्मम् । विषयमहणस्य भोगलाम्पव्यहेतुतया समाधिमुखनिचातकलादिति भावः ॥ २१ ॥ इति
श्रीवासिष्ठमहारामायणतारपर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे
प्रकववव्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९३ ॥

इह प्रबुद्धो रामः स्वं प्रयोधं गुरुसिक्षधौ ।
यथा चिन्माश्रमेवेदं तथा विस्तरतोऽनवीत् ॥ १ ॥
सर्वसंदेहनिष्टस्या सम्यवप्रबुद्धो रामः सुप्तोत्थितः स्वप्नआन्तिमिव संसारभान्तिमार्थ्यतया स्मरणाह—अहो इस्यादिना । संसारस्रक्षणे परमे निरवधौ अम्बरे तत्राप्यन्तरे
एतद्रसाण्डैकदेशे सुचिरं कालं वयमपरिज्ञातमात्रेणात्मतत्त्वेन

कुतोऽस्थाः संभवो म्रान्तेरिति चेहृश्यते मुने । तदेतदपि नो युक्तं भ्रान्त्यभावानुभूतितः॥ ९ भ्रान्तिन संभवत्येव निर्विकारे शतापदे । यस्विदं भ्रान्तिताज्ञानं तत्त्तदेवेतरन्न तत् ॥ १० निरन्तरे निराद्यन्ते व्योक्ति शैलोदरेऽथवा। कुतोऽन्यताकल्पकं स्याज्ज्ञपदे चाविकारिणि ॥ ११ मिध्यैवानुभवो भ्रान्तेः स्वप्ते स्वमरणोपमः। यदनालोकनं नाम शाम्यतीदं विलोकनात् ॥ १२ मृगत्रणाम्बुगन्धवेनगरद्वीन्द्विभ्रमः । तथा विद्याभ्रमश्चायं विचाराश्रोपलभ्यते ॥ १३ बालवेतालवञ्चान्तिनं विद्या जाग्रगापि हि। अविचारेण संस्टा विचारेणोपस्याम्यति ॥ १४ कुत आसीदिति मुने नात्र प्रश्नो विराजते। सत एव विचारेण लाभो भवति नासतः॥ १५ प्रामाणिकविचारेण प्रेक्षितं यन्न स्वभ्यते । तदेतद्सदेवादि तत्तर्धनुभवो भ्रमः॥ १६

संश्रान्ताः ॥ १ ॥ बुद्धे आत्मतत्त्वे तु यावदिति साकल्ये । तथा चोक्तं सुरेश्वरवार्तिके 'तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थसम्यग्धी-जन्ममात्रतः । अविद्या सह कार्येण नासीदस्ति भविष्यति' इति ॥ २ ॥ यतः अपकल्पनमतएव तद्रश्रनाभावात्रीरागम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ कल्पना कात्र्यरचना । आदिपदान्मनोराज्य-परिष्रहः ॥ ६ ॥ मतित्रान्तिः । तत्तस्या त्रान्तेर्वशात्तस्य पंसी नरकस्य अन्तो बन्धः । 'अति बन्धने' षश्र ॥ ७ ॥ चित् चिदाभासः ॥ ८ ॥ श्रान्तेरसद्भूपलासरकारणचिन्ताप्ययुक्तेवे-त्याह-कृत इति । दर्यते आलोच्यते ॥ ९ ॥ ज्ञता तत्त्वज्ञानं तत्पदे ॥ १० ॥ निरन्तरे अन्तरालश्चन्ये शैलोदरे स्फटिकशि-लागर्भे वा ॥ ११ ॥ १२ ॥ द्वीन्द्विश्रमो यथेति शेषः ॥१३॥ जागरणं जाप्रः घसर्थे कः । जागरे प्रत्यक्षदृष्टापि न विद्या न यथार्था ॥ १४ ॥ इयं आन्तिः कुतो निमित्तादासीदिति प्रश्लो-प्यत्र न विराजते । विचारार्थं हि प्रश्नः स चात्र निष्फरुः । तन्मुङस्याज्ञानस्यासतो निर्णेयज्ञायोगादित्यर्थः ॥ १५ ॥ अज्ञा-नस्यासत्वं प्रमाणपूर्वकविचारारुभ्यलादेवेत्याह्-प्रामाणिकेति । आदिजगन्मू बमज्ञानम् । तत्तसात्कारणादेव हि तदनुभवाद्भमः

यश्वास्तीति परिच्छिन्नं प्रमाणैः सुविचारितम्।
स्वपुष्पश्चाभं तत्कथं रुभ्यते सतः॥ १७
सर्वतः प्रेक्ष्यमाणोऽपि यः कुतश्चित्र रुभ्यते।
तस्य स्यात्कीदशी सत्ता यन्ध्यातनयरूपिणः॥ १८
म्रान्तिनं संभवत्येच तस्यात्काचित्कदाचन।
निराचरणविश्वानघनमेवेदमाततम्॥ १९
पर्तिकचिक्रगद्द्यात्र भातीदं परमेव तत्।

परं परे परापूर्णे पूर्णमेवावतिष्ठते ॥ २० न भातं न च नाभातिमह किंचित्कदाचन । इदमित्थं स्थितं स्वच्छं शान्तमेव जगद्वपुः ॥ २१ अजममरमहार्थमार्थजुष्टं परमविकारि निरामयं समन्तात् । पदमहमुदितं ततं हि शुद्धं निरहमनेकमधाद्यं विकासि ॥ २२

इलार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा॰ दे॰ मो॰ नि॰ उ॰ विश्रान्त्युपगमवर्णने नाम द्विनवत्वित्रकशततमः सर्गः ॥ १९२ ॥

त्रिनवत्यधिकदाततमः सर्गः १९३

श्रीराम उषाच ।
अनादिमध्यपर्यन्तं न देवा नर्पयो विदुः ।
यत्पदं तदिदं भाति क जगरक च दृश्यता ॥
द्वेताद्वेतसमुद्धेदवाक्यसंदेहविश्रमः ।
अलमसाकमाशान्तमायं रूपमनामयम् ॥
व्योमनि व्योमभावानां प्रशान्तं यादगासितम् ।
ताद्वक्किद्योमनि द्योमत्वं दृषद्वं दृषदि स्थितम् ।
जलत्वं च जलस्यान्तंजगर्वं चिद्धने तथा ॥
साद्वन्तादिजगद्दृश्यमाशाकाशविसायपि ।
मदाचिदुदरं विद्धि खं शान्तं शून्यतोदितम् ॥
जीवस्यासिन्वमृदस्य परे परिभितोदये ।
प्रस्कुरंश्वापि संसार्पशाच उपशाम्यति ॥
भेदोपलविद्यर्गलित व्यवहारवतोऽप्यलम् ।
जङस्यवाजङस्य विचिरिय जलोदरे ॥

॥ १६ ॥ अज्ञानं तत्कार्यं च सन्मूलकमेव कि न स्यात्तत्राह— यदिति । प्रमाणेवाचीरम्भणेखादिश्वतिमिः ॥ १७ ॥ तर्हि जगदिष सदेव कि न स्यात्तत्राह—सर्वत इति । कुतक्षित्का-रणात्प्रमाणाच ॥ १८ ॥ १९ ॥ परेण निरतिशयानन्देन आपूर्णे परे ब्रह्मखरूपे परं तदेव स्त्रे महिष्ठयवतिष्ठते ॥ २० ॥ ॥ २९ ॥ कीदशं तत्पदमवतिष्ठते तदाह—अजमिति । अहार्ये परेरपहतुमशक्यम् । आर्थेविद्वद्भिर्त्तुष्टं समन्तात्पूर्णमहमेव निरहं सत् बोधादुदितम् । आवरणपरिच्छेदभङ्गात्मवितोविकासि ॥ २२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्प्यमकाशे नि-बाणप्रकरणे उत्तरार्थे द्विनवत्यधिकशत्तमः सर्गः ॥१९२॥

इह रामः प्रबोधेनाऽज्ञाननिद्राक्षये क्षणात् । निर्मृष्टनिष्ठिळद्वैतनिखाःमस्थितिमध्यीत् ॥ १ ॥

देवाः कर्मापासनसिद्धाः । ऋषयस्तपोयोगसिद्धाः । अथवा चक्षुरादिवाह्यान्तः करणान्येनात्र देवा ऋषयश्च । 'ते इ देवा उद्गीयमाजहुः । इमानेव गातमभरद्वाजां' इत्यादिश्रुतेः ॥१॥ द्वैताद्वैतयोरनुसंधाने यो मनसि समुद्भेदस्तस्त्रयुक्तैर्वोक्यव्यवन् होरैः संदेहैिर्विश्रमेश्वास्माकं अर्छ । प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः । आयं

१ वाचारम्मणश्चलादिभिः शति पाठः.

काष्यकानरवी याते प्रतापाद्याकरे भृशम्। संसारसत्तादिवसो यात्यस्तं स निशागमः॥ भावाभावेषु कार्येषु जरामरणजन्मसु। श आजवं जवीमावे तिष्ठन्नपि न तिष्ठति॥ ९ नाविद्यास्ति ह न भ्रान्तिन दुःखं न सुखोदयः। विद्याऽविद्या सुखं दुःखमिति ब्रह्मेव निर्मलम् १० परिकातं सदेतसु यावद्रहेव निर्मलम्। अपरिशातमस्माकमब्रह्मात्म न विद्यते ॥ ११ प्रबुद्धोस्मि प्रशान्ता मे सर्घा एव कुदृष्ट्यः। शान्तं समं सोहमिदं खं पर्यामि जगन्नयम्॥ १२ सम्यग्हातं यावदिदं जगद्रह्मंव केवलम्। अज्ञातात्माभवद्रहा ज्ञातात्मन्यधुना स्थितम् शाताशातमनिर्भासं ब्रह्मेकमजरं तथा। शून्यत्वेकत्वनीलत्वरूपमेकं नभो यथा॥ रेध

सर्वादी 'सदेव सोम्येद्मश्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुति-सिद्धं यद्भुपं तदिदं सर्वं भागीत्यनुकृष्यते ॥ २ ॥ संप्रति जगद्भानं कीटक्संपत्रं तदाह—न्योमनीति । व्योमभावानां केशोण्ड्कमुक्तावलीगन्धर्वनगरादीनाम् ॥ ३ ॥ व्योमादौ व्योमलादि यथा अमेदेन सामान्यरूपेण तद्भावेन च स्थितं तथेखर्यः ॥ ४ ॥ आशासु दिक्षु आकाशे च विसादि असं-ख्येयतया विस्तृतमपि श्र्न्यतया उदितं श्रून्यतोदितम् ॥५ ॥ अपरिमितोदये अस्मिन्परे ब्रह्मणि दृष्टमात्रे जीवस्य संसार-पिशाच उपशाम्यति ॥ ६ ॥ कथमुपशाम्यति तदाह-भेदो-परुष्धिरिति । लडयोरभेदाजलस्यापीत्यपि वीचिपश्चे ॥ ७ ॥ प्रताप आध्यात्मिकादित्रिविधसंताप आदिपदाद्विषयतृष्णा तदाकरे । अस्तमदर्शनं याति स मोक्षसुखविश्रान्तिहेतुर्निशा-गमः ॥ ८ ॥ आजवं जवीभावे व्यवहारविश्वेपे च ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ अस्मारं तत्वविदाम् ॥ ११ ॥ समं सर्वर्द्वतवैषम्य-रहितम् ॥ १२ ॥ नाहं कश्चित्रागधुनाप्यन्यः किंतु ब्रह्मीव प्रागक्षात आत्मा येन तथाविधमभवत् । अधुना तु हाते आत्मनि खखभावे स्थितम् ॥ १३ ॥ अनिर्मासं स्वातिरिक्तद्वा-नाज्ञाननिभोसश्चन्यम् । यथा नीललश्चन्यत्वे नीलत्वे च नभ एकं निर्घाणमासे गतराङ्कमासे
निरीहमासे सुसुखेऽहमासे।
यथास्थितं नित्यमनन्तमासे
तदेवमासे न कथं समासे॥ १५
सर्वे सदैवाहमनन्तमेकं
न किंचिदेवाप्यथवातिशान्तः।

सर्व न किंचिष सरेकमिस नचासि चेतीयमहो न शान्तिः॥ १६ अधिगतमधिगम्यं प्राप्तमप्राप्तमन्यै-गंतमिदमलमस्तं वस्तुजातं समस्तम्। उदितमुदितवोधं नादशं यत्र भूयो-स्तमयसमुदयानां नाम नामापि नास्ति१७

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० दे० मो० नि० उ० विश्रान्तिकथनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९३ ॥

चतुर्नवत्यधिकदाततमः सर्गः १९४

ર

3

श्रीराम उवाच ।
सर्वातम सर्वभावेषु येन येन यदा यदा ।
यथा भाति स्वयं बोधस्तथानुभवति स्वयम् ॥
स्वभाव पव तिष्ठन्ति सर्गाः संमिलिता अपि ।
अत्रापि स्वीकृता पव नानारत्नांशवो यथा ॥
अत्र दृष्टमदृष्टं च मिथो विशति गच्छति ।
जगद्रदिमधनं रत्नं नानारत्न्वधनं यथा ॥
दीपानामिव सर्गाणां बहुनां ज्वलतां परम् ।
केषांचिदस्त्यनुभवो मिथः केषांचिदेव नो ॥
अपस्विष्वव रसोऽम्भोधावावर्तरमणावनौ ।
सर्गेस्ति प्रत्युणुं तस्मिन्नापि सर्गास्तथा क्रमः॥

तद्वदिखर्यः ॥ १४ ॥ तत्तस्मारप्रबोधान्निर्वाणमेव सन्नहमासे । **अज्ञाननिवृत्त्येय** सर्वशङ्कानिवृत्तेगैतशङ्कमासे । सुसुखं निर्विक्षे-पात्मस्रकं तत्रेवेह धारावाहिकचित्तवृत्तिर्यथा स्मात्तथा आसे। एवं प्रश्रद्धोऽहं समासे समस्तात्मनि ब्रह्मणि न कथमासे। तद्भावप्रच्युतिहेतूनां बाधादिल्याः ॥ १५ ॥ सदैव सर्वमहं अथवा अतिशान्तः सर्वोपप्रवरहितो न किचिश्र एकं सदह-मेवास्मि । अथवा देशकालाधाराप्रसिद्धेः कापि नास्मि च । इति इयं निर्वाणास्या इयं सर्वशान्तिरहो अलाश्चर्यस्पेल्यर्थः ॥ १६ ॥ अधिगन्तुं झातुं योग्यमधिगम्यं परमपुरुषार्थह्य-मिष्रगतं क्वातम् । अन्येरक्वैरगम्यं दुष्प्रापं मोक्षसुखं प्राप्तम् । इदं संसारानर्थरूपं वस्तुजातं समस्तमस्तं गतम् । चरमसाक्षा-स्कारोदितप्रकोधं तादृशं निजलकृषं मम उदितम् । यत्र खरूपे भूयः अस्तमयसमुदयानां मरणतिरोधानदुःखाद्यनर्थानां ना-मापि नास्ति । नामेति विद्वत्प्रसिद्धौ ॥ १७॥ इति श्रीवा-सिष्टमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे त्रिनवस्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९३ ॥

> आत्मतस्वं जगत्तस्वं यथा निर्वाणसाधनम् । इह रामः स्वयं बुद्धं गुरवे प्रत्यवेदयत् ॥ १ ॥

तत्राज्ञातपरमात्मस्यभावमाह—सर्वात्मेति । सर्वेषामात्मनां जीवानां सर्वेषु भावेषु मनोवृत्तिमेतेषु यदायदा येनयेन भोग-निमित्तेन यथा खयंबोधः स्वप्रकाशचिदात्मा भाति विवर्तते तथा खयमेव भोकृ नानाजीवभावेन अनुभवति । खयमेव योग० १९२ सर्वत्र सर्वतो नित्यं चिद्धनस्याम्बुवेदनम् ।
संख्यातुं केन राक्यन्ते सर्गाधारपरम्पराः ॥ ६
यथावयविता मिन्ना नैवावयविनः कचित् ।
राद्धमेदाहते मिन्ना न तथा सर्गता परे ॥ ७
एकस्मानन्तरूपस्य कारणाभावतः स्वयम् ।
नोदेति न च यात्यस्तं जगदादिः स्वभावतः ॥ ८
तपन्ती क्रसिरेवेयमखण्डक्षेयतामिमाम् ।
करोत्यकर्तृरूपेव समालोकमिवाकभाः ॥ ९.
वैतृष्ण्यात्सर्वभावानां समाह्यवाक्षयं स्वयम् ।
संपद्यते समाधानं यत्तिवर्षणमुच्यते ॥ १०

त्रिपुटीभावेन स्वमायया विवर्तत इत्यर्थः ॥ १ ॥ एकस्मित्रेव निरवयवे परमसूक्ष्मे ब्रह्मणि सर्वेजीवैर्युगपदध्यासारसंमिलिता अपि अनन्ताः सर्गाः प्रत्येकं ब्रह्माण्डभुवनादिमेद्विर्स्तार्णे खभावे एव परस्परमसंलमास्तिष्ठन्ति । यतस्ते अत्र ईदशे निरवयवेऽपि ब्रह्मणि तादारम्याध्यासेन स्वीकृता आत्मीकृताः परमसक्ष्मीकृताः । न खात्मनि कस्यचिदनवकाशना अवरोधो वास्तित्यर्थः । यथा सूक्ष्मा नानारक्षानामंशवः किरणा एकस्मि-न्यृहे मिढिता अध्यसंबन्धा असंकीर्णास्तिष्ठन्ति तद्भदित्यर्थः ॥ २ ॥ तदेव विशयसति—अत्रेति । दष्टं संनिहितं प्रत्यक्ष-महर्षु देशकाळव्यवधानात्परीक्षं च जगद्रश्मिधनमत्रास्मिन्परः मात्मनि मिथोऽन्योन्यमसंबाधं समाविशति गच्छति संचरति च । नानारत्नानां घनं रिमजालं यथा तथा ॥ ३ ॥ तत्र येषां जीवानां समानकर्मवासनानिभित्तोऽध्यासस्तेषां परस्पर-मनुभवोऽस्ति तद्भित्रानां तु नास्तीत्याशयेनाइ—केषांचिदिति। दीपपक्षे चक्षुष्मतामन्धानां च ॥ ४ ॥ आवर्तानां रमणावनौ क्रीहाम्याने अम्गोधौ अप्खप्स प्रतिजलावयवं रसो लवणादि-रस इव । परमार्थतस्तु न सर्गास्तत्कमोऽपि ॥ ५ ॥ अम्ब-वेदनं जलपरमाणुरसं इव ॥ ६॥ ७॥ एकस्यात्मन एव माययानन्तरूपस्य जगत आदिरिघष्टानं तत्स्वभावतान्नोदेति नाप्यस्तमायाति ॥ ८ ॥ तपन्ती स्फुरन्ती । समालोकं घट-पटादिप्रकाशम् ॥ ९ ॥ कदा तर्हि सा अध्यासव्यसनं जहाति केनोपायेन च तत्राह-नेतृष्ण्यादिति । सर्वेषां भावानां तत्त्व-

न बुद्धा बुद्धते बोधो बोधाबुद्धनं बोध्यते। न बुद्धाते या तेनापि बोध्यो बोधः कथं भवेत ११ प्रवुद्ध एव सप्ताभः स्वयं बोधो विद्युष्यते । देशकालाद्यभावेऽपि मध्यांह्रऽर्कातपो यथा॥ १२ सर्वकर्मवित्रणानां शान्तेच्छानां प्रबोधतः। सतामनिच्छतामेव निर्वाणं संप्रवर्तते ॥ १३ प्रवृद्धयोधो ध्यानस्थः स्वभावे केवले स्थितः । न किंचियपि गृह्वाति न किंचियपि चोज्झति॥ १४ यो यथास्थित एवास्त पश्यन्टीप इवाकियः। अमनोमानमननो मनोमननवानपि॥ १५ व्युत्थाने विश्वरूपाख्यमन्यत्र ब्रह्मसंहितम्। सर्गासर्गातम चिन्मात्रं सत्यं सर्वत्र भासते॥ १६ अभिन्नयोधसद्रपस्यरूपानुभवे स्थितः। व्युत्थितः संनिरुद्धश्च यः पष्यति स शाम्यति १७ जगत्पदार्थसार्थानां बोधमात्रैकनिष्ठताम् ।

ज्ञानेन बाधारसमाप्त्रीय स्वयमक्षयं क्षत्रिष्णु दहादितादारम्या-ध्यासोन्मुकं संपद्यते यत्ततादशं स्वरूपं तदेव सर्वविश्वेप-हेतुक्षयात्ममाधानं निर्दृतिलान्निर्वाणमुच्यतः इत्ययः ॥ १० ॥ अभ्यासपरम्परासमार्ह्यव स्वयं स्वस्य परमपुरुषार्थः परिज्ञिष्यते इति कृतः, बुद्धानुभूयमानस्यैव पुरुषार्थलादननुभूयमानस्य तस्य पुरुषार्थलादर्शनात् । तस्मात्युरुषार्थताप्रयोजिका चरमसा-क्षात्कारबुद्धिर्भुक्ताबावस्यकीति न सर्वभावानां समाप्तिरभ्युपग-न्तुं युक्तेत्वाशङ्क्याह-निति । परमपुरुषार्थरूपो बोधः परमातम-बुद्धाः चरमसाक्षात्कारहृत्या न बुध्यते । जडायास्तस्या बोध-शक्तयभावात् , बोधस्य बुद्धिविषयलायोगाञ्च । तर्हि बोधशः क्तिमान्परमात्मा सुप्तो राजा बन्दिमिरिव प्रबोध्यतां तन्नाह--बोधायुद्धेरिति । न बोध्यतेऽपि । कुतः बोधायुद्धेः । सुप्तं राजानं बुद्धा तद्बोधनाय धन्दिनः प्रवर्तन्ते । बुद्धा तु सुप्तो बोधे न बुद्ध इति कथं तद्बोधने सा प्रवर्तेतेखर्थः । तर्हि बोधेनैव बोधो सुद्धतां तत्राह-नेति । तेन बोधेनापि बोधो न बुध्यते । कुतस्तत्राह-चौद्ध इति । बोधः स्वयंबोद्धो बोधकर्म कथं भवेत् । कियाजन्यातिशयाधारो हि कर्म। नहि बोधे किया तजन्यातिशयसादाधारता वा संभवति। निष्क्रियलान्निर्विकारलात्स्वातमनि क्रियाविरोधाचेति ॥ ११ ॥ तस्माद्ध्यासपरंपराचरमसाक्षात्कारबुज्यन्तपरिणाम-परम्परया स्वयमेव समाध्यते । तस्यां च समाप्तायां स्वप्रका-शलास्त्रवृद्ध एवात्मा नीहारागमात्म्रप्तप्रायतां प्राप्तो मध्याहे मिःशेषनीहारापगमेन स्वितेव तदातप इव च प्रबुध्यत इव । स एवास्य निराप्राप्तानिरतिशयानन्दाभिव्यक्तिरुक्षणः परम-प्रकाश इत्याशयेनाह--प्रमुद्ध एवेति ॥ १२ ॥ कर्मपदेन एडिकासुध्मिकफलं लक्ष्यते ॥ १३ ॥ मोहनिदातः प्रबुद्धो षोधधिदातमा यस्य । ध्यानस्थो निरुद्धबाह्यवृत्तिः॥ १४॥ व्युम्धानकाले स तर्हि कथमास्ते तदाह-य इति । मनोमन-

विना नास्त्यपरा सत्ता व्योद्धः शुन्येतरा यथा १८ शिष्यते स्फीतबोधानां केवलानन्तबोधता । सापि स्वपरिणामेन परेणायात्यवाच्यताम्॥ १९ तद्विधान्तौ परा सत्ता शिष्यते वा न शिष्यते। या काप्यत्यन्तशान्तानां न वाग्गोचरमेति सा २० या समस्य पराकाष्ट्रा सैव बोधस्य सन्मग्री। सर्गस्तन्मय प्यातः सकलं शान्तमव्ययम्॥ २१ निर्वाणाय वितृष्णाय स्वच्छशीतलसंविदे । स्पृहयन्ति सदा सत्तां ब्रह्मविष्णुहरा अपि॥ २२ सर्वार्थात्मेव सर्वत्र सर्वदा सर्वधोदितम्। चेतनं शुद्धमेवास्ति नाशो नास्योपपद्यते ॥ २३ अखन्ततप्तः संसारो निर्वाणमतिशीतलम् । अतिशीतलमेवास्ति तप्तस्त्वेच न विद्यते॥ રક संचेतन्ति शिलान्तस्था यथालं शालमञ्जिकाः। अनुत्कीर्णास्तथा ब्रह्म चेतृतीदमखण्डितम् ॥ 24

नवानपि विष्येष्वासङ्गामावादमनोमानमननः अतएव दीप-वस्प्रकाशयद्मपि अक्रियः ॥ १५॥ १६ ॥ यो व्युत्थिती निरुद्धः समाध्यारूढ्यामिन्नवोधो यः सद्भूपखरूपानुभवस्तत्रैव स्थितः सन् निरोधव्युत्थाने उदासीनवृत्त्या पश्यति स एव संसारविक्षेपाच्छाम्यति नान्यः ॥ १७ ॥ कीटशी सा तादश-सदूपानुभवे स्थितिस्तामाह--जगदिति । बोधमात्रमेव एका निष्ठा यथार्थरूपं येषां तद्भावं विना अपरा सत्ता वस्तुस्थिति-र्नारतीत्येवंरूपा सेखर्यः ॥ १८ ॥ अपरा सत्ता कृतो नास्तीति चेतत्त्वसाक्षात्कारेण जगद्रुपवाधे तस्माक्षी चिन्मात्रसत्ताया एव परिशेष:दित्याशयनाह---शिष्यत इति । स्फीतबोधानामपरि-िछन्नब्रह्मावगाह्नानुस्फारताशालिप्रबोधवताम् । सा तादश-प्रत्यगात्मरूपा बोधतापि स्वस्याः ब्रह्मसन्मात्रपरिशेषलक्षणा-खण्डाकारवावयार्थलक्षणेन परेण परिणामेन अवाच्यतामस्त-ण्डार्यकवाक्यलक्ष्यताम् ॥ १९ ॥ तद्विश्रान्तौ तद्भावेन स्थितौ सत्यां शिष्यते न शिष्यते वेत्युभयविधा वाचामपि गोचरतां सा दशा नैति ॥ २० ॥ समस्य सत्तासामान्यस्य पराकाष्ठा परमावधिः शोधिततत्पदार्शस्त्रपा सैव बोधस्यापि शोधितत्वं-पदार्थह्या पराकाष्टा । वियदादिलक्षणः अवस्थात्रयलक्षणश्च सर्गः अस्ति भातीति सर्वानुभवात्सत्ताबोधमय एव । एवं सति यत्फलितं तदाह-सकलमिति ॥ २९ ॥ तदेव बह्यादीनामपि प्रेयस्तमलानिरतिशयानन्दरूपं निर्वाणमित्याह्—निर्वाणायेति । सदैवाहं स्थां मा कदाचिन्माभूवमिति सदैव तत्सत्तां स्पृह-यन्ति । अपिशब्दात्सर्वप्राणिनोऽपि ॥ २२ ॥ सर्वेषां सार्य-कालिकस्पृहास्पद्मेव वस्तु सर्वदेशे सर्वकाले सर्ववस्खात्मना उदितं चेतनं खतः स्फुरदूपं शुद्धं तदेवेति तस्य नाशः अद-र्शनं क्षणमपि नोपपवते ॥ २३ ॥ तशो निरतिशयदःखरूपः । अतिशीतलमात्यन्तिकदुःखोपशमः ॥ २४ ॥ यथा शिल्पि-बुद्धावनुत्कीर्णाः शिलान्तस्थाः शालभिका यथेच्छं संचेतन्ति

यथा चेतति सौम्याम्बुकोशस्यं वीचिमण्डलम्। तथा चेतति कोशस्यं महाचिश्रेत्यमत्र्ययम्॥ अविभक्तो विभागस्यरिव शान्तैरनन्तकः। परमार्थाम्बराभोगैस्त्वबोधात्मत्वमन्धरैः॥ २७ यैर्येर्यथास्त्र आत्मान्तर्भावितश्चेतितश्चिरम्। भोगमोक्षप्रभेदेखु तेषां तेषां तथोदितः॥ 26 i मृते वाप्यमृते बन्धौ स्वप्ने स्वप्नविबोधिनः। न यथोदेति सत्याख्या तथा दृश्येषु तद्विदः॥ २९ यदिदं किल एश्यादि तच्छान्तमखिलं शिवम् । भावितेऽवगतेऽप्यन्तरिति भ्रान्तेः क उद्धवः॥ ३० सर्वथा देहसंख्येषु वैतृष्ण्यम्पजायते । सम्यग्बोधे सति स्वप्न इत्रापि स्वार्थकादिखु॥ ३१ वैतृष्ण्याद्वर्धते योधो बोधाद्वेतृष्ण्यवर्धनम्। परस्परेण प्रकटे पते कुड्यप्रकाशवत्॥ 32 येन योधेन वैतृष्ण्यं धनदारसुतादि वा । स्वनुनमपि संपन्नं जाङ्यं तत्संस्थितं तथा ॥ 33 पताबदेव वोधस्य बोधत्वं यद्वितृष्णता । पाण्डित्यं नाम तन्मीरूर्यं यत्र नास्ति वितृष्णता 38 नत् वैतृष्ण्यवोधाक्यौ न परस्परवर्धितौ। इत्यापे श्रांबासिष्टमहारामायणे वाल्मी० दे० मो० निर्वा० उ० रामविधान्त्युवगमो नाम चतुनेवत्यधिकशतत्वाः सर्गः ॥ १९४ ॥

असत्यावेव ती नाम नष्टी चित्रहुताराचत्॥ 34 परमा बोधवैतृष्ण्यसंपत्तिमांक्ष उच्यते। तत्रानन्ते पदे शान्ते वसता च न शोच्यते ॥ રેદ गतं गम्यं कृतं कार्यं हृष्टं हृद्यमरोषतः। यावत्सर्वे शिवं शान्तमेकमायमनामयम्॥ ₹.\$ आत्मारामस्य शान्तस्य चेतृष्णयस्यानहंक्रतेः। असंकर्णेय भवति स्थितिः खस्येय निर्मेखा ॥ ३८ सहस्रेभ्यः सहस्रेभ्यः कश्चिद्रत्थाय वीर्यवान् । भिनत्ति वासनाजाळं पञ्जरं केसरी यथा ॥ 35 प्राप्तर्वयोतिवीं घट्टाद्धिः परमन्तःप्रकादावान् । नीहारः शरदीवाश स्वयमेवोपशाम्यति ॥ 80 श्चातश्चेयस्त्वसंकरुपः संकरुपातिशयाशयः। अवासनो व्यवहृती वातवतस्पन्दते न वा ॥ 88 आसीद्वीरान्मनस्कारैर्भ्नान्तिमात्रैकनिश्चयात्। यः सर्वत्र खबद्धावस्तद्वासनमासितम् ॥ પુર निर्वासने भाव उदारसःवे ब्रह्माखिलं इदयभिति प्रवृद्धे । स्थिरकनिर्धाणमतावनन्तो मोक्षामिधानः प्रशमोऽभ्युदेति॥

संस्फरन्ति तथा भावीपहितमखण्डितमविच्छित्रमेव बहा इदं जगद्वेषं चेत्रति स्फुरतीखर्थः ॥ २५ ॥ सीम्याम्बुकोशो जला-शयस्तत्स्थम् । कोशोऽत्रमयादिस्तत्स्थं ब्रह्माण्डकोशस्थं च चेत्यं स्वयमेव भूला चेतति स्फरति ॥ २६ ॥ अबोधः अज्ञानावृती य आत्मा तद्भावेन मन्धर्रजंडप्रायैः परमार्थाम्बर्ख सन्मात्रस्य आभोगैः कृत्रिमवेषैः । इत्यंभावे तृतीया । वैर्वेजीवेर्यथायथा भावितस्तथा चेतित इति परेणान्वयः ॥ २०॥ २८॥ खप्राद्विबोधिनः प्रबुद्धस्य पुरुषस्य खप्ने खबन्धा मृते अमृते जीवलापि वा यथा सलाख्या सत्यताबुद्धिनोदेति तथा तत्त्व-विदः सर्वेषु दश्येश्विति न हर्षशोकप्रसिक्तिरेखर्थः ॥ २९ ॥ यहूर्यादित्रिपुटीक्षपं तदस्तिलं शान्तं शिवभिखन्तर्भाविते सम्यगवगतेऽपि सति भ्रान्तेः पश्चात्क उद्भव इत्यन्वयः॥३०॥ अवगमे सति केन कमेण भ्रान्तेरनुद्भवस्तमाह-सर्वथेखा-दिना । देहे सम्यक् ख्यायन्त इति देहसंस्यास्तथाविधेषु खार्यकादिषु भोगतदुपायेषु ॥ ३१ ॥ अस्त्वेवं ततः कि तत्राह्—वैतृष्ण्यादिति ॥ ३२ ॥ तत्कृतस्तत्राह्—येनेति । येन हेतुना वैतृष्ण्यं वा धनदारादि वा तत्त्वाभिनिवेशलक्षणे-न बोधेनैव सुप्र अनूनं खनूनमुपचितं संपन्नं तद्विरोधि तदनुकूलं वा जाड्यमपि तथा तत्तद्भिनिवेशानुसारेणैव संस्थितमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ परस्परवर्धितावपि तावसत्यावेवेति चित्र-ष्ट्रताशवरकार्याक्षमावेव नष्टाविति नतु मन्तव्यमित्यर्थः ॥३५॥

कुतो न मन्तर्थं तत्राह—परमेति । यतो बोधवैत्रण्ययोः परमा निरतिशया संपत्तिरेव निरतिशयानन्द्रस्थलादाः सन्तिक-दुःखहेतुक्षयरूपलाच मोक्ष उच्यते । अवोध एव हि बन्धमूलं तृष्णैव च बन्धस्ततुभयक्षयरूपो हि मोक्ष इन्यूपपतेरित्यर्थः॥३६ अतस्वाभ्यामेव वर्धिताभ्यां कृतकृत्योऽहं युशः इत्याइ--गत-मिखादिना । गम्यं निरसनीयं गतं निरत्ताम ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तृष्णामोहबन्धभेतारः शूला विरला इलाह---वहसेन्य इति । यतमानानां मध्ये इसर्थः ॥ ३९ ॥ प्राप्तः ज्योतिष आत्मनः सर्यादीनां च बोधो ज्ञानं प्रकाशातिशयथ येन । नीहारो जाः ज्यवासनाभागः प्रतिद्धः ॥ ४० ॥ संगल्यानतिरोते अति-कामत्याशयो यस्य । अवासनी जीवन्मुक्तः सान्दते व्यवदरति न वा व्यवहरति । समाधावेव विश्राम्यतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥ सर्वत्र सर्ववस्तुषु मनस्कारेस्तत्त्वमननैर्धाराहित्यरीमृताद्वान्ति-मात्रैकनिश्वयाद्यः खबद्धाव आसीत्तदेव अवासनमासितमव-स्थानमित्यर्थः ॥ ४२ ॥ उदारसत्वे शुद्धान्तःकरणे पुंति वर्णितरूपे निर्वासने भावे उदिते सति अखिलं दर्श ब्रह्मैविति प्रवृद्धे सति स्थिरैकनिर्वाणमती तस्मिन् पुंसि अनन्तो मोक्ष इस्रमिधानं यस्य तथाविधः सर्वेषंसारप्रशमः अभ्युदेति। स्वय-मेव प्रकटीभवतीत्वर्थः ॥ ४३ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामा-यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुर्नवत्युत्तर-शततमः सर्गः ॥ १९४ ॥

कल्पनीयो वा. २ अत्र पाठी अष्ठ रति न्याख्यातीइनुमीयते.

१ बैत्रण्यस्येति स्वार्थे व्यञ्जि वितृष्णस्यत्यर्थः । तथैव पाठः

पश्चनवत्यधिकदाततमः सर्गः १९५

चसिष्ट उवाच अहो जु संप्रबुद्धोलि राघवाघविघातिनी। वागियं तव संपन्ना प्रबुद्धेष्ववहासिनी॥ षिभातीवासदेवेदमसंकल्पेन शाम्यति। पतच्छान्तिस्तु निर्वाणमित्येव परमार्थता ॥ ર कल्पनाकल्पने रूपं परस्थैवेतरस्य नो । स्पन्दनास्पन्दने वायोर्पथा नात्रैकताहिते॥ प्रबुद्धस्येव या पुंसः द्वीलाजठरविस्थितिः। शान्तौ व्यवहतौ वापि सामला मुक्ततोच्यते॥ वयमस्मिन्परे स्थित्वा राघवाघविघातिनि । शान्तत्वे व्यवहारे च सममित्थमवस्थिताः॥ असिकेव पदे नित्यं ब्रह्मविष्णुहरादयः। तिष्टन्ति व्यवहारस्था अपि शान्ता ब्रक्षपिणः॥ ६ शैलोदरस्थितिमतां प्रबुद्धानामनामयम्। असाकं पदमेवं तदालभ्येतदिहोष्यताम्॥ श्रीराम उवाच। ब्रह्मण्येवमसद्र्पमनुत्पन्नमभासुरम्। अनारम्भमनाकारमेवेदं भासते जगत्॥ मृगतृष्णाम्युसदृशं तरङ्गावर्तिवारिवत् । रुचकादीव कनके स्वप्तसंकल्पशेलवत्॥ वसिष्ट उवाच। बुद्धवानसि चेद्राम तत्स्वबोधविवृद्धये।

शुभाः प्रबुद्धरामोक्तीः प्रशस्य गुरुणा स्वयम् । परीक्षार्थं कृताः प्रभा रामेणात्र समाहिताः ॥ ९ ॥ तत्रादी यथोपवर्णिताः प्रबुद्धरामोक्तीरनुमोदमानो वसिष्ठः प्रशंसति-अहो इत्यादिना । हे राम, इयं तव वाक् अप्रबु-दानामपविघातिनी । प्रवुदेषु लनुभविद्याथीनुवादलाद्यकि-युक्तलाच अवहासिनी प्रहर्पसेरवदनताकारिणी सेपना ॥१॥ असदेवेदं जगत् बोधप्रयुक्तसंकल्पे विभातीवेति बन्धनिष्कर्षः । असंकल्पदार्व्यपर्यवितिन तत्त्वज्ञानेन शाम्यतीति सुक्तिसा-धननिष्कर्षः । एतच्छान्तिरेव निर्वाणमिति मोक्षनिष्कर्षः । सैव परमार्थतेखर्थः ॥ २ ॥ तथाच कल्पनाकल्पनरूपबन्ध-मोक्षी अप्रबुद्धस्य प्रबुद्धस्य च ब्रह्मण एव रूपमिति निष्कर्षीपि फलित इत्याह—कल्पनाकल्पने इति ॥ ३ ॥ शान्ती समाधी ॥ ४ ॥ एतत्पद्धितिरेवासादादिजीवनमुक्तानां समाधिम्य-रथानगोसुस्यक्षपस्थितिरित्वाद्-वयमिति ॥ ५ ॥ इरूपिणः प्रयुद्धाः ॥ ६ ॥ शैलोदर्रामव निर्विक्षेपस्थितिमतामस्माकसे-तत्पदं खयाप्येवमस्मदादिवदेव तदालम्य इह जीवनमुक्ती उष्यताम् । अग्रप्रसतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ एवं वसिष्ठोत्तया जीव-न्मुक्तिपदे प्रतिष्ठिती रामी जीवन्मुक्तानां यादशं जगद्भासते तद्भिठपति—ब्रह्मणीति द्वाभ्याम् । अनुत्पन्नलादेवाभासुरं

कुरु संशयविच्छेदं पृच्छतः प्रच्छकस्य मे ॥ १० इत्यं निलानुभूतोऽपि शिरस्थोऽप्यतिभासुरः। जगवाख्योऽयमाभासः कथं नाम न विद्यते ॥ ११ श्रीराम उचाच। पूर्वमेवेवमृत्पन्नं न किंचन कदाचन। तेन बन्ध्यासुतस्यास्य न सत्ता कल्पनाहते॥ १२ किमिवास्या जगद्भान्तेः कारणं प्रोत्थिता यतः। न कारणं विना कार्य किंचित्संभवति कचित् ॥१३ न चाविकारमजरं सविकारं क्षयाहते। कारणं कचिदेवेह किंचिद्भवितुमहिति॥ १४ ब्रह्मैबेदमनाख्यात्म कारणं प्रविज्ञम्भते। तत्क कस्य कथं नाम जगच्छव्दार्थसंविदः॥ १५ तदनाख्ये परे शान्ते चिरात्प्रथमचेतनम्। कंचित्काललवं तिष्ठत्यातिवाहिकदेहभृत्॥ १६ क्षणे वत्सरसंवित्ति स्वप्ने त्वमिव चेतति। काकतालीयवसत्र चन्द्राकीर्दीश्च पश्यति ॥ १७ संकल्पैकात्मनस्तस्य देशकालक्षियान्वितम् । अत्यन्तमेव ब्योध्येव भुवनं भासते स्वयम्॥ १८ तस्मिन्मध्योपसंपन्ने सं मिध्यापुरुषस्ततः। मिध्यैव तत्समाचारं कुर्वन्विपरिवर्तते॥ १९ अधस्तावृष्वेमायाति पुनस्पर्वाह्रजत्यधः। कल्पितानेन्तसंभारपदार्थानर्थसंभ्रमः॥ २०

पृथगत्रथमानम् ॥ ८॥ ९॥ इदानीं वसिष्टो रामं जीवन्मु-किप्रतिष्ठाख्यापनाय योगपद्दन्यायेन वक्तुपदे स्थापविला स्वयं शिष्यवतपृच्छामि खसंशयविच्छंदं कुर्वित्याह्-बुद्धवानसीति ॥ १० ॥ प्रसक्षादिप्रमाणहढीकृतलादर्थिकियाऽविसंवादाण सत्यतया शिरःस्थितप्रायोऽपि ॥ ११ ॥ तत्र प्राग्युरुणोक्ता-निरेव युक्तिनिः श्रीरामः समाधत्ते-पूर्वमेवेखादिना । नोत्पन्नं कारणाभावादित्यर्थः । कल्पनात् भ्रमादते विना ॥१२॥ कारणाभावमेव दर्शयति—किमिवेत्यादिना। यतः प्रोत्थिता स्यात् ॥ १३ ॥ ब्रह्मणः कारणताप्रसक्तिरेव नास्तीत्याह-नचेति । पूर्वावस्थाक्षयादते सविकारं न च किंचितप्रसिद्धमि-व्यर्थः ॥ १४ ॥ यदि निर्विकारमेव विवर्तीपादानकारणं सन्मायया जगदाकारेण विज्ञम्भत इत्युच्येत तर्हि जगच्छ-ब्दार्थः सत्यो न रूप्यत इत्याह-कारणमिति । संविदो यथा-र्थप्रत्ययाः ॥ १५ ॥ प्रथमं चेतनं हिरण्यगर्भोक्ष्यं द्विपरार्थ-परिमितं कंचित्काललवं विवर्तकपमातिवाहिकदेहमृत् तिष्ठती-वेति जगद्धान्तेः स विषयः पर्यवस्यतीलर्थः ॥ १६ ॥ तस्त्र-थमचेतनमेव क्षणे वत्सरादिकालविस्तारश्रमं पर्यति । यथा लं खप्रे तथा पर्यसि ॥ १७ ॥ १८ ॥ तद्भत्युवनादिसर्थ-समाचारम् ॥ १९ ॥ स एव स्वकल्पिते भवनभेदे व्यष्टिजी-

काकतालीयवत्तस्य संकल्पस्य भवेद्यदि । यद्यथा तत्त्रथाद्यापि सुस्थिरामात्तवान्स्थितिम् २१ शिलावन्ध्यासुतमुखे व्योमचूर्णेन रञ्जनम् । करोतीत्यादिवदिवं मिथ्या जगदुपस्थितम्॥ २२ सत्यमेवेदमथघा मिध्यात्वं तु कुतः किल । न मिथ्यात्वं न सत्यत्वं किमपीदमजं ततम् ॥ २३ आकाशकोशवत्स्वच्छं शिलाजठरवद्धनम् । पाषाणमीनवश्रदं शान्तमेवाक्षयं जगत्॥ २४ चिन्मात्रे सर्वसंकल्पे विराज्ञात्मातिवाहिके। देहे संवेदनं ब्योम जगदित्यवभासते॥ 30 प्यं ब्रह्ममहाकाशमेवेदं क जगत्कथा। शान्तं समसमाभोगमेकमाधन्तवर्जितम्॥ २६ यथा पयसि बीचीनामुन्मजननिमजनैः। न जलान्यत्वमेवं हि भावाभावः परः पदे ॥ 30 परावरविदः केचिदेतस्मिन्परमे पदे । शुद्धे परिणमन्त्यन्तर्वारिथिन्द्रियाम्भसि॥ 34 परेऽपरमिदं भाति परशेव परात्मकम्। संभवन्त्यमले शान्ते न जगन्ति न तत्कियाः॥ २९ स्बप्ने स्वप्न इति ज्ञाते इच्ये ब्रह्मतयापि च। मृगाम्युनि परत्वेन को भावयति भावनाम् ॥ ३०

बारमना दुष्क्रनादिफलभोगायाधस्तादुःर्वं च आय(ति अमतीय ॥२०॥ यदि तस्य संकल्पस्य काकतालीयवद्यथापूर्वस्थितिस्तथै-बाद्यापि स्थितिरभूताई तंत एव प्रलामिक्षाय जगति सुस्थिरां स्थिति आत्तवान् भ्रान्त्या गृहीतवान् ॥२१॥ एवं भ्रान्त्या इत्थ-मुपस्थितमिदं मिथ्या जगत् शिलाकामिनी भूला वन्ध्यासुतस्य कान्तस्य मुखे ललाटे व्योमचूर्गेन तिलकं विरच्य रक्षनं शोभा-तिशयं करोतीत्यादिवाक्यार्थवद्विकल्पमात्रमित्यर्थः ॥ २२ ॥ यदि लखन्तासति मिभ्यालाख्यधर्मस्याप्यप्रसिद्धिः पर्यालो-च्येत तहीधिष्ठानमात्रलात्सत्यमेवताह-सत्यमेवेति । यदि द्व व्यावर्तनीयमिथ्याखाप्रसिद्धा व्यावर्तकसत्यखकरपनमपि तत्र न घटते इति विचार्यते तदा निर्वचनवागप्रसरातिकमपी-दम् ॥ २३ ॥ २४ ॥ चिदात्मनो मायिको यः सर्वीकारसं-कल्पसाद्वपे विराडात्मन्यातिवाहिके देहे संवेदनक्ष्पं यद्योम तदेव जगदिति भासत इत्यर्थः ॥ २५ ॥ एवं सति यत्फलितं तदाह-एवभिति । समेभ्योऽपि सम आव्यन्तिकवैषम्यशून्य आभोगो यस्य ॥ २६ ॥ परे ब्रह्मणि ॥ २७ ॥ परावरविदः सार।सारविवेकिनः परिणमन्धैकरस्यं गच्छन्ति ॥ २८ ॥ परस्य ब्रह्मणो वेष इव कार्यमिव अवयव इव वा अपरमिदं जगजीवरूपं भाति । तच तत्वतो विचारे परमेव संभवति । जगन्ति तत्कियाः व्यवहाराध्य न संभवन्ति ॥ २९ ॥ मृगा-म्बुनि परलेन अन्यत्वेन ऊषरभूमात्रत्वेन परिकारो सति भावनां पुनस्तत्सलताबुद्धिं को भावयति ॥ ३०॥ अन्यस्था- परमार्थचमत्कारमन्तःस्थानुभवं विना । अन्यस्यान्यं न जानाति सीधुस्वादुमिव द्विजः ३१ निर्वाय निज आत्मायं परिवृत्यावलोकितः। चेत्योन्मुखत्वमुत्सुज्य संतिष्ठेच्छान्त आत्मनि ३२ वसिष्ठ उवाच। दृइयं बीजाङ्कर इच स्थितं ब्रह्मणि कारणे। इति सर्गादिसङ्खायः कस्मान्नहोपपद्यते॥ 33 श्रीराम उवाच । वीजेऽङ्करोऽङ्करतया संधितो नोपलभ्यते। बीजोदरे तुया सत्ता बीजमेव हि सा भवेत ब्रह्मणोऽन्तर्जगत्तयं जगत्तेवोपलभ्यते। अस्ति चेन्द्रवेशित्यं सा प्रहीवाधिकारि तत अविकारादनाकाराहिकार्याकृतिभासुरम् । उदेतीति किलासाभिर्नैय दएं न च श्रुतम्॥ 38 अनाकृताबाकृतिमञ्ज चैतत्स्थातुमहिति । परमाणी न चैवान्तरिव संभान्ति मेरवः॥ રું છ समुद्रके रलमिव जगह्रहाणि तिष्ठति। महाकारं निराकार इत्युन्मत्तवचो भवेत्॥ 36 शान्तं परं च साकारस्याधार इति राजते। न वकुं राजते केव साकारस्याविनाज्ञिता॥ 38

शुनिप्रपद्यस्यान्यं भोगरसं न जानाति प्रबुद्धः । यथा द्विजो ब्राह्मणः सीधुखादुं मदामाधुर्यं न जानाति तदूदित्यर्थः ॥३९॥ अयं निज आत्मा बाह्यहर्षः परावृत्त्य चेखोन्मुखलमुत्स्ज्य समाधी निर्वाय चरमसाक्षात्कारवृत्या विलोकितः सन् शान्ते शिवे निखमुके आत्मनि तिष्ठेत् । किश्विदीरं प्रखगात्मान-मैक्षदावृत्तचक्षरमृतलमिन्छन्' इति श्रुतेः ॥ ३२ ॥ एवं समाहितो वसिष्ठः पुनर्वजाङ्करन्यायेन ब्रह्मणि जगत्सत्यतां श्वकते-हर्यमिति ॥ ३३ ॥ समाधते-बीज इति । यदाः हुरः सत्यस्तिहें बीजोदरे संश्यित एव बहिबीजपुटं भिन्वा निर्गच्छतीति स्यात्तत्तु न । यतो यीजभेदनं तदुदरे अङ्करतया संश्रितोऽङ्करो नोपलभ्यते । या तु बीजोदरे सुक्ष्मभागानां सला सा बीजमेव भवेता हुर इत्यर्थः ॥ ३४॥ ब्रह्मगोऽन्तर्ज-गत्सत्ता न तथा किंतु जगत्तैवोपलभ्यत इति वैषम्यं प्रलय-काले तथैवास्तीति चेतत्तर्हि सा महीव भवेदातह्रह्म अवि-कारीति न बीजाङ्करन्यायस्यात्रोपपतिरित्यर्थः ॥ ३५॥ अख्र ब्रह्म अविकारं किं ततस्तत्राह—अविकारादिति । अविकारा-द्विकार्यमुदेति अनाकारादाकृतिभासुरमुदेतीति च न दष्टं न श्रुतं च कापीत्यन्वयः ॥ ३६ ॥ एवमनाकारे निरवयवे च साकारस्य सावयवस्य च स्थूलस्यावस्थानमपि सर्वप्रमाणवि-**इद्धमिलाइ**—अनाकृतादिति ॥ ३०॥ समुद्रके संपुटे ॥ ३८ ॥ शान्तं सर्वोपरमहृषं परं ब्रह्म साकारस्य तादारम्येनाधार इति बोध प्वायमाकार इति कल्पनयापि धीः। अपूर्वेः स्वप्नवदृष्टैः संसारेनीपरुभ्यते ॥ 80 अपूर्व एव स्वप्नोऽयं यद्वै सर्गोऽनुभूयते । स्यप्तः किलानुभूतार्थः स्वभ्यस्त इव दृदयते ॥ ४१ यदेव जाध्रसत्स्वप्न इति नात्रोपपद्यते । स्बंग्न प्रदुग्धः पुरुषः कथं प्रातर्विलोक्यते ॥ ४२ अशरीरस्य न स्वप्न इत्येतद्पि नोचितम्। संभवन्ति पिशाचाद्यास्तेषां च स्वप्नविस्थितिः ४३ तस्मात्स्वप्रवदाभासः संविदात्मनि संस्थितः। सर्गादिनानाकृतिना परमात्मा निराकृतिः॥ કક स्वप्ने चिवेच शैलादिरूपेणात्मनि तिष्ठति । ब्रह्मात्माखिलमुक्तोऽसाधन्येनासौ कृतो यदि 84 नेहास्तित्वं न नास्तित्वमुपछन्धेऽनुभूयते । नैवानुभवितृत्वं च न चानुभवनक्रमः॥ કદ किमपीदमनाख्येयं बुद्धेनैवानुभूयते । स्वसंवेदनसंवेदं सत्तासत्ताविज्ञिभतम्॥ 63 अभावरूपिणो भावा अभावा भावरूपिणः। सर्वदा सर्वथा सर्वे भान्ति भासुरतां गताः ॥ ४८ बृंहति ब्रह्मणि ब्रह्म व्योम व्योमनि वर्धते । न चोपपद्यते किंचिद्रह्म व्योक्ति विबृहणम् ॥ પ્ટલ द्रष्ट्रश्यहगात्मायमहं सर्गादिविभ्रमः। शान्ति खडाोभविस्तारो न कुड्याद्यपपद्यते ॥ 40

वर्क्त न राजते ॥३९॥ एवं सति अपूर्वैः स्वप्रवद्वदेशकारैबीध एव क्षणिकः साकार उत्पद्यत इति बैद्धकल्पनाप्यमुपपन्ने-स्माह—बोध एवेति ॥ ४० ॥ कृतो नोपपद्यत इति तत्राह— अपूर्व इति । यतोऽयं सर्गः स्वप्नः अपूर्वः प्रागननुभूतार्थं एव चक्षुरादिप्रमाणेरनुभूयते । खप्रस्त जाप्रदनुभूतार्थः संस्कार-मात्रेण भासमानार्थी जाप्रति स्त्रभ्यस्त एवार्थः खप्ने दर्यते । किलेति सर्वजनप्रसिद्धी ॥ ४१ ॥ अतएव बीद्धानां जाप्रत्ख-प्रमेदाभावोक्तिरपि तेषामसंगतेत्याह—यदेवेति । सप्ने मृतः इमशानं नीला प्रदग्धः पुरुषः। तस्मान्न चितः साकारलक्षणि-कलादिकल्पनया प्रपश्चस्य स्वप्नसाम्यं सर्वप्रमाणविरुद्धं सिध्य-तीति कटस्ये बद्दाण्यध्यस्तलादेव बाध्यलेन स्वप्नसाम्यं सिद्ध-मिति भावः : ४२ ॥ तत्र चार्वाककृतमाक्षेपं समाधते-भशरीरस्येति । स्थूलशरीरश्र्न्यस्य खप्नो न दष्ट इत्यशरीरे प्रतीच्यवस्थात्रयस्वप्रारोप इत्युक्तिने युक्तेत्याक्षेपांशार्थः । शिष्टं सप्टम् ॥ ४३ ॥ अतः परिशेषात्रिर्दोधः स्वपक्ष एव स्थित इलाइ—तस्मादिति सार्धेन । निराकृतिर्निराकारः परमात्मैव विवर्तरूपानिः सगोदिनानाकृतिभिः स्थित इति सिद्धान्तः प्रतिष्ठित इत्यर्थः ॥ ४४ ॥ प्रपद्मस्य ब्रह्मात्मैकलप्रवोधे स्वप्न-वदेव बाधात्सलासलाभ्यां वक्तुमयोग्या तुच्छतेव परिश्चि-व्यत इलाइ—नदात्मेति । असी प्रलगत्मा अखिलबन्ध-

१ व्याख्यानानुरोधेन आकारैरिति पाठोऽपेक्षित शति.

यथा न सन्न कुड्यादि स्वसंकल्पनपत्तनम् । तथैवायं जगदिति शान्तमेकमनामयम्॥ 48 पूर्णे हि परमं शान्तमिदं सर्वमखण्डितम् । अनिङ्गनमनाभासमनाचन्तमचेतितम् ॥ ५२ अजन्ममरणं शान्तमनादिनिधनं महत्। अनुपाधि निराकारं स्वपदं बुद्धवानहम् ॥ 63 या संविदन्तः स्फ्ररति सैवोपायाति वाक्यताम् । यद्वीजं लीनमवना तद्यात्यङ्करतां किल ॥ 48 ग्रुद्धशानामयैकात्मा द्वेतैक्यपरिवर्जितः। मनागपि न जानामि द्वैतैष्यकलनाकलाम् ॥ सर्वे तूष्णीमया एव जीवन्मुका इमे जनाः। संशान्तसर्वसंरम्भाः खे खभात्र इत्र स्थिताः ५६ जगत्स्पर्शमहारम्भमपि तृष्णीमिदं स्थितम्। चित्रं मित्ताविव कृतं मनोराज्य इवोदितम्॥ 60 शैळादिघोत्कीर्णसमं कथायामित्र वर्णितम् । शम्बरेणेव रचितं व्योम्नि स्वप्न इवोदितम् ॥ ५८ किल स्वप्रवदेवेदं सर्गादावेव भा ति यत्। अभित्तिकं निष्प्रतिघं जगत्केवास्य सस्यता ॥ जगद्भवाविदं सत्यं परिश्रानवतो मृपा। ब्रह्मात्मक इदं ब्रह्म शान्ते शान्तं पराम्बरम् ॥ ६० सर्वे एव इमे भावाः सह स्थावरजंगमाः। अस्पदादय आकारों जगज्जविषयं तथा॥ ६१

मुक्ती ब्रह्मीव । असी च प्रपन्नः अन्येनाह्मानेनेव स्वप्नवत्कृत इति सिद्धान्ते तथाविधे ब्रह्मात्मन्युपलच्धे सति इह प्रपन्ने अस्तिलनास्तिलादिकं नैवानुभूयत इति तुच्छतैव परिशिष्यत इति परेणान्वयः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बुद्धे सति नैवानुभूयते । अबुद्धतादशायामप्यनिर्वचनीयमेव जगदिल्याह—स्वसंवेदने-त्यादिना ॥ ४० ॥ ४८ ॥ विवृंहणं जगदाकारेण वर्धनं ब्रह्म व्योत्रि नोपपयते ॥ ४९ ॥ ५० ॥ यथा खसंकल्पनपत्तनं न सत् तत्र च कुड्यावि सुतरां न सत् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ममेदं वाक्यं सत्यमेव नासत्यमनुभवमूळकलादिति सयुक्तिक-माह-येति ॥ ५४ ॥ द्वेतैक्यकलनायाः कलां लेशमपि मनाः गपि न जानामि ॥ ५५ ॥ सर्वे इमे जनाः खाज्ञानेन जीव-न्तोपि मद्दशा ब्रह्ममात्रलात्रित्यमुक्ताः खे स्वभावः शून्यतेव स्थिताः ॥ ५६ ॥ तथा तद्भोग्यं जगदपि स्पर्शमहारम्भला-रवगादीन्द्रियवेद्यलाश्चित्रं विलक्षणमपि निसी चित्रमिवाभा-समात्रं स्थितम् ॥ ५७ ॥ उत्कीर्णप्रतिमादिसमम् ॥ ५८ ॥ यत्किल सर्गादावेच अभितिकं निरालम्बनं भाति अस्य केव सत्यता ॥ ५९ ॥ तथाच द्रष्टिमेदेन चतुर्धा जगत्संपन्नमि-लाह--जगदिति । इदं जगजगद्भदावशहष्टी सलम् । परिशा-नवतो विवेकिनो रष्टी मृषा । ब्रह्मात्मकं पर्यतो ब्रह्म भूमि-कामेदारोहणक्रमेण शान्ते पुरुषे लन्धकारवत् क्रमेण शान्तं सत्परमम्बरं शून्यमेव पर्यवस्यतीत्यर्थः ॥ ६०॥ तत्र चतुर्थरूपं

१५३१

4

Ę

O

6

९

દર

६३

६४

६५

खमहं सं भवांश्चित्सं जगत्सं सं समेव च । चिवाकाशैकतामेत्य भजेकाकाशरूपताम् ॥ ज्ञानेनाकाशकल्पेन सर्वात्म गगनोपमम्। क्षेयाभिक्षेन संबोधात्तं वन्दे द्विपदांवरम्॥ चिद्रपत्वादुदेतीदं जगत्तत्रैव लीयते । अकारणकमेबान्तः परं ब्योमैच निर्मलम् ॥ **एतत्सर्वपदातीतं सर्वशास्त्रकलातिगम्** । पदमासाद्य निर्ह्हन्द्रं स्वमाकाशात्मकोऽभवः अहं जगद्य नो पादपाण्यादि न घटादि च । सर्वमाकाशमाकाशमेयाच्छं सुश्मचिद्भवेत् ॥ ६६

सर्वापह्नव एवायं मया यो दर्शितस्तव। स निन्दो वादिनां वादेष्वात्मन्नानेषु राजते ॥ ६७ काष्ट्रमानात्मको बादे न सर्वापद्ववो यदा। क्रियते तेन वादेषु नात्मशानं प्रसीद्ति ॥ 86 प्रत्यक्षादिप्रमाणानां यदगम्यमचिह्नितम्। स्वानुभूतिभवं ब्रह्म वादैस्तहभ्यते कथम् ॥ ६९ सर्वागमार्थसमतीतमचित्रमच्छ-माकाशमेकमजमाद्यमनामरूपम्। शुद्धं चिदात्मकमिहास्त्यनुभूतिमात्रं शान्तामिधानकलनं मलशङ्कयालम् ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा० मो० नि० उ० बोधप्रकाशीकरणयोगोपदेशो नाम पश्चनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९५ ॥

षण्णवत्यधिकदाततमः सर्गः १९६

પ્ર

वाल्मीकिरुवाच। एवमुक्त्वा महावुद्धे रामा राजीवलोचनः। मुद्धर्तमात्रं विश्वम्य तृष्णी स्थित्वा परे पदे ॥ परमां तृतिमापन्नो विश्रान्तः परमात्मनि । मुनि पुनरपृच्छत्तं जानश्रपि हि लीलया ॥ श्रीराम उवाच । भगवन्संशयाम्भोदशरत्काल मुनीश्वर । इवानी संशयोऽयं मे जातो मनसि पेलवः॥ प्वमेतन्महाज्ञानं संसारार्णवतारणम् । समस्तमेव वाग्जालं समतीत्यावतिष्ठते॥

तत्त्वश्विषयमित्याह-सर्वएवेति ॥ ६५ ॥ हे गुरो, लं मदुक्तपरीक्षार्थमेकाकाशरूपता भजः॥ ६२ ॥ तं तादशं ब्रह्माकाशभावे स्थितं द्विपदां वरं लामहमाकाशकल्पेन स्वरू-प्रानेन सर्वात्मगगनोपमं ह्रियपूर्णानन्दैकवद्याभेदेन संवोधा-द्वन्दे नमस्करोमि ॥ ६३ ॥ सर्वीत्म गगनोपमं चेत्येतद्विप्रति-विद्यमिति शङ्कां वारयन्नाह—निद्युपलादिति ॥ ६४ ॥ सर्वाः शास्त्रकलाः शास्त्रयुक्तीरतिकम्य गच्छतीति सर्व-शास्त्रकलातिगं तत्पदमासाद्य लमप्याकाशो ब्रह्माकाशस्त-दात्मकः अभवः सदैवासीः । भवशून्य इति वा ॥ ६५ ॥ अहं रामस्तदवयवपादपाण्यादि तद्वाह्यघटादि चेति प्रसिदं जगच नो नास्त्येव । यतः सर्वमाकाशमेव ॥ ६६ ॥ अयं च सर्वापडवो यद्यपि मम माता वन्ध्या मम मुखे जिह्ना नास्तीति बाक्यवद्याधातवैतण्डिकलादिदोषापादकलाद्वादिनां तार्किका-धीनां वादेषु निन्दा इति तत्सभायां न राजते तथाण्यात्मज्ञानेषु बहुमिर्वादिभिर्वेहुधोपन्यस्तेषु मध्ये परमपुरुषार्थपर्यवसितं किं क्रानं स्यादिति परीक्षकाणां सभायां राजते । नहि सर्वोपह्रव-मन्तरेणात्यन्तिकानथंनिवृत्युपलिक्षतिनरतिशयानन्दप्रतिष्ठासि-ध्यतीति भावः ॥ ६७॥ यत इत्यर्थे यदाशन्दः । यतः काष्ट्रमीनपर्यवसितलात्काष्ट्रमीनात्मकः सर्वापह्नवो वादेन संभ-वरयेवेति न कियते । तेन तदकरणे निर्विशेषास्मा परिचया-

यदिवं किल सद्गृह्य स्वसंविन्मात्रनिश्चयम्। तदवाच्यं किल गिरां महतामपि मानद् ॥ एवं स्थिते परं क्षेयं सर्भसंकल्पनोजिझतम्। स्वसंवित्तर्यतन्मात्रलभ्यं दुर्गमतां गतम्॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदसंख्यामेदेषिणां किल । कथं शास्त्रपदैस्तुच्छैः सविकल्पैरवाष्यते ॥ विकल्पसारराध्याधैर्कानं शास्त्रेनं सभ्यते । तत्कमर्थमनर्थाय गुरुशास्त्रादि कविपतम्॥ गुरुशास्त्रादिविश्वाने कारणं वास्त्यकारणम्। तदत्र निश्चयं ब्रह्मन्बृहि मे चदतां वर ॥

हार्द्दश्वात्मज्ञानं न प्रसंदिति नोदेतीलर्यः ॥ ६८ ॥ कुतो नोदेति तत्राह---प्रलक्षेति ॥ ६९ ॥ उक्तं सारतः संक्षिप्यो-पसंहरति-सर्वेति । सर्वे ये आगमाः शास्त्रभेदास्तद्र्येभ्यः समतीतमनुभूतिमात्रा प्रमाणं यत्र तथाविधमचिह्नमत एव शान्तामिधानकलनं धुद्धं चिदात्मकमेकं ब्रह्माकाशमेदास्ति नान्यदणुमात्रमपीति तत्र मलशङ्कया अलं पर्याप्तं। प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः ॥ ७० ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतात्पर्ये-प्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे पञ्चनवत्यधिकशतत्तमः सर्गः ॥ १९५ ॥

गुरुशासाधुपायेन यथा बहोह सभ्यते । द्रारुवैविधकारुयानं तथा संक्षिप्य वर्ण्यते ॥ ९ ॥

हे महाबुद्धे, इति भरद्वाजस्यारिष्टनेमेर्वा संबोधनम् ॥ ९ ॥ लीलया गुरुमुखेन श्रवणकीत्ह्लेन ॥ २ ॥ ३ ॥ करिष्यमाणं प्रश्नं पूर्वे।क्तमनुवदति — एवमिति ॥ ४॥ अवाच्यम् 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति श्रुतेः शब्दप्रवृतिनिमिन त्तधर्मश्रूत्यलानेत्यर्थः ॥ ५ ॥ खसंविद्भूपं यतुर्थमवस्थात्रया-तीतं खप्रकाशवस्तु तन्मात्रसभ्यमत एव जामदवस्थान्तर्गत-गुरुशास्त्राद्यगम्यलाहुर्गमतां गतम् ॥ ६ ॥ तुच्छैः शुद्रतरप्रति-योगिव्यवच्छेदादिसापेक्षलात्तद्वोधनासमर्थैः ॥ ७ ॥ विकल्प-सहस्राजुसंधानश्रान्तिपरम्परानधीय ॥ ८ ॥ तत्तस्मात्तत्वविज्ञाने

वसिष्ठ उद्यान्त्र । पवमेतन्महाबाही न शास्त्रं ज्ञानकारणम्। ानाशम्दमयं शास्त्रमनाम च परं पदम्॥ १० तथापि राघवश्रेष्ठ यथैतदेतुतां गतम्। शास्त्राद्यसम्बोधस्य तत्समासेन मे श्रृणु ॥ ११ सन्ति क्रचिद्वैवधिकाः कीरकाश्चिरदुर्भगाः । दुःखेनाभ्यागताः शोषं ग्रीष्मेणेव जरहुमाः ॥ १२ दारिद्येण दुरन्तेन कन्थासंस्थानकारिणा। दीनाननादायाः पद्मा निर्गतेनेव घारिणा ॥ १३ वौर्गत्यपरितप्तास्ते जीवितार्थमचिन्तयन्। जठरस्य कथा युक्तया वयं कुर्मः प्रपूरणम्॥ १४ इति संचिन्स विधिना दिनान्तेन दिनंप्रति। दाहभारेण जीवामी विक्रीतेनेति संस्थिताः॥ १५ इति संचिन्स्य ते जग्मुर्वार्यर्थे विपिनान्तरम्। ययैवाजीव्यते युत्तया सैवापदि विराजते ॥ ३१ इति ते प्रत्यहं गत्वा काननं भवचारिणः। दारूण्यानीय विकीय चक्कर्देहस्य धारणम् ॥ १७ यत्प्रयान्ति चनान्तं ते तस्मिन्सन्त्यखिलानि हि । गुप्तागुप्तानि रह्नानि दारुणि कनकानि च ॥ इत्यार्षे श्रीवासि० वा॰ दे० मो॰ नि॰ उ॰ काष्ट्रवैवधिकोपाख्याने चिन्तामणिलाभो नाम पण्णवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९६॥

तेषां भारभृतां मध्यात्केचित्कतिपर्यर्षनात् । जातरूपाणि रक्षानि तानि संप्राप्रवन्ति हि॥ १९ कैचिश्चन्दनदारुणि केचित्पुरपाणि मानद। केचित्फलानि विकीय जीवन्ति चिरकीरकाः॥ २० केचित्सर्वमनासाद्य दुर्वाक्रण्येव दुर्धियः। नीत्वा विकीय जीवन्ति वनवीध्युपजीविनः ॥ २१ दार्वर्थमुद्यताः सर्वे ते संप्राप्य महावनम्। केचित्राप्य स्थिताः सर्वे झटित्येवं गतज्वरम् २२ इति यावद्जस्नं ते सेवन्ते तन्महाचनम् । प्रवेशात्ताववेकसात्प्राप्तश्चिन्तामणिर्मणिः॥ तसाधिन्तामणेः प्राप्ताः समग्रा विभवश्रियः। परमं सुखमायातास्तत्र ते संस्थिताः सुखम् ॥ २४ दार्वर्थमुद्यताः सन्तः प्राप्य सर्वार्थदं मणिम्। सुखं तिष्ठन्ति निर्द्वन्द्वा दिवि देववरा इव ॥ सर्वार्थसारपरिपूर्णतया तया ते काष्ट्रोद्यमाधिगतसन्मणयो महान्तः। तिष्ठन्ति शान्तभयमोहविषाद्दुःख-मानन्दमन्थरियः समतामुपेताः॥ २६

सप्तनवत्यधिकदाततमः सर्गः १९७

श्रीराम उवाच । तथा कुरु मुनिश्रष्ट यथा वैवधिकऋमम्। असंवेहमिमं सम्यगवगच्छामि मानद ॥

गुस्तास्नादिकं कारणमस्ति भवति अकारणं वा । अत्रास्मिन् संशये निश्चयं ब्रूहीलर्थः ॥ ९ ॥ रामशङ्कामनुमोदमानो विसष्ठः समाधत्ते-एवगेतदिलादिना । अनागेति । शब्द-प्रशृतिनिमित्तधर्मशून्यलादसंगुष्टलाच परं पदं न पदार्थी न वाक्यार्थश्चेत्यर्थः ॥ १० ॥ यथप्येवं तथाप्येतच्छास्रादि उत्त-मबोधस्य तत्फलस्य मोक्षस्य च यथा येन प्रकारेण हेतुतां गतं तच्छृषु वक्ष्यमाणकाष्ठवैवधिकाल्यानदृष्टान्तेनेत्यर्थः॥११॥ तदेवाह-सन्तीत्यादिना। विवधवीवधशब्दाञ्चभयतोबद्धशिक्ये स्कन्धवाह्ये काष्ट्रविशेषे वर्तते तद्वहन्तीति वैवधिकाः कीरकाः भूद्रजातिभेदा देशविशेषजा वा । शोषं कार्यम् ॥ १२ ॥ कंथा पटचरप्रयिता तथैव प्रावरणसंस्थानकारिणा । कथासं-स्थानेतिपाठे पूर्वानुभूतात्रवस्रादिकथामात्रावस्थानकारिणेत्यर्थः। तटाकभक्तात्रिगतेन वारिणा पद्मा इव दीनाननाशयाः ॥१३॥ दौर्गत्येन दारिद्येणाभितप्ताः ॥ १४ ॥ दिनंप्रति प्रतिदिनम् । दिनान्तेन दिनावसानान्तश्रमसाध्येनेति यावत् । इति संस्थिता निश्चिताः ॥ १५ ॥ १६ ॥ भवचारिणः तत्तद्दिनप्राप्तात्रमञ्ज-णशीलाः ॥ १७ ॥ गुप्तान्यगुप्तानि प्रकटानि च रत्नादीनि

वसिष्ठ उवाच। ये ते वैवधिका राम त एते मानवा भूवि। तेषां दारिद्यदुःखं यत्तदक्षानं महातपः॥

॥ १८ ॥ केचित् भाग्यवन्तः ॥ १९ ॥ पुष्पाणि केतकीच-म्पकादीनि । चिरकीरकाः चिराभ्यासद्दीभृतकीरकवृत्तयः ॥ २० ॥ केचिद्धाभ्यहीना दुर्धियः सारान्वेत्रणाकुश्रलबुद्धयो दुरीरूण्येव नीला ॥ २९ ॥ केचिद्रकादीनि प्राप्य गतदारिध-ज्वरं यथा स्यात्तथा रिथताः ॥ २२ ॥ चिन्तामण्याख्यो मणिर्देवात्प्राप्तः ॥ २३ ॥ २४ ॥ निर्द्वन्द्वा निरस्तशीतीष्ण-**भुत्तवादिदुःसाः ॥ २५ ॥ आख्यानमुपसंहरति सर्वार्येति ।** ते कीरकाः काष्टोदामेनैव अधिगतः प्राप्तः सन्मणिश्विन्तामणि-र्वैस्तथाविधाः सन्तस्तथा उक्तया सर्वैदर्थसारैठत्तमधनैः परि-पूर्णतया शान्तभयमोहविषाददुःखं यथा स्यातथा आनन्द-मन्थरियो भूला इतरलाभालाभादिषु समतामुपेताः सन्त-स्तिष्ठन्ति ॥ २६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे षण्णवत्यधिकशततमः सर्गः॥१९६॥

ર

स्फुटं वैवधिकास्यानतात्पर्यविवृतिकमात्। हेतुत्वं गुरुशास्त्रादेशस्मज्ञानेऽत्र वर्ण्यते ॥ १ ॥ यथा अहमवगच्छामि तात्पर्यतस्तथा कुरु विवरणमिति शेषः ॥ १ ॥ ये वैवधिका मयोक्तास्त साद्वयादेते

यत्तन्महावनं प्रोक्तं गुरुशास्त्रक्रमादि तत्। यदुद्यतास्ते प्रासार्धे जना भोगार्थिनो हि ते ॥ भोगौघाः सिद्धिमायान्तु मम निष्कृपणो जनः। अनपेक्षितकार्यार्थः शास्त्रादी संप्रवर्तते ॥ भोगार्थ संप्रवृत्तोऽपि प्राप्नोत्यभ्यासतः क्रमात्। जन्तुश्चिन्तितमेवाद्य पदं परवशोऽपि सन्॥ दार्वर्थमुद्यतो भाषी यथा संप्राप्तवान्मणिम्। भोगार्थमात्त्रशास्त्रोऽयं तथाप्रोति जनः पदम्॥ ६ किं स्याच्छास्रविचाराभ्यामिति संदेहलीलया। कश्चित्प्रवर्तते पश्चादाप्तोति पदमुसमम्॥ अद्दर्शेत्तमतस्वार्थः शास्त्रादी संप्रवर्तते । संदेहेनार्थभोगार्थ जनः प्राप्नोति तत्पदम् ॥ अन्यथा संप्रवर्तन्ते शास्त्रेर्वासनया जनाः। अन्यदासादयन्त्याद्यं मणि वैवधिका इव ॥ परोपकारेऽविरतं स्वभावे न प्रवर्तते । यः स साधुरिति प्रोक्तः प्रमाणं त्वस्य चेष्टितम् १० साध्वाचारवशालोको भोगसंप्राप्तिशङ्कया । संदेहभाष्यतस्वद्भः शास्त्रादी संप्रवर्तते ॥ ११ भोगार्थ संप्रवृत्तोऽसौ भोगमोश्राबुभावपि। तसात्प्राप्नोति दार्चर्थी चनाश्चिन्तामणि यथा १२ केचिधन्दनदारूणि केचिधिन्तामणि मणिम्।

बोध्याः । एवमप्रेऽपि सर्वत्र । यहारिद्यदुःखं भयोक्तं तलेषा-महानं तत्प्रयुक्तश्च महान् आतपित्रविधसंतापः । 'तत्तु दानं महातपः' इति पाठे दानतपः प्रयोजिका ऐहिकामुध्मिकभोगाशा कक्षणयोच्यते । भोगार्थिनः सन्तत्ततुपायेपूचता इत्यत्र तात्प-र्यमिखर्यः ॥ २ ॥ ३ ॥ मम भोगौषाः सिद्धिमायान्त्विति नितरां क्रुपणः कार्पण्यवानः जनो मानवः अनपेक्षिता इतरकार्यार्था येन तथाविधः सन् । शास्त्रादौ शास्त्रमूलके तदुपाये ॥ ४ ॥ यद्यप्यथं भोगेच्छयैव शास्त्र प्रश्नसत्थापि तच्छास्त्रं गुडजिह्नि-कान्यायेनैनं प्रथमं फलाखादनैः प्रलोभ्यान्ते खतात्पर्यविषये परमे पदे नयत्येवेत्याइ---भोगार्थमिति । शास्त्रतः प्रथमं भोग-फललाभेन तद्विश्वासदाव्येकमासदुक्तसाधनाभ्यासतो भूमिका-मेदारोहणक्रमाचिन्तितं शास्त्रपरमं तात्पर्यविषयमाद्यपदं मो-क्षार्ख्यं ब्रह्म ॥ ५ ॥ भावः सारासारविचारान्वेषणादिः सोऽस्यास्तीति भावी वैषधिकः ॥ ६ ॥ संदेहप्रयुक्तया लीलया कौतुह्रलेन ॥ ७ ॥ अर्ध्यत इस्तर्घो विषयस्तद्भोगार्थम् ॥ ८ ॥ खखवासनानुसारेणान्यादशं शास्त्रफलं संभावयन्ती जनास्तत्र प्रवर्तन्ते । अन्यद्वाब्यनसागीचरं निर्विषयनिरतिशयसुखमा-सादयन्तीत्यंशे वैवधिकाख्यानदृष्टान्तोपन्यास इत्यर्थः ॥ ९ ॥ सर्वजनान।मुरसर्गतः सन्मार्गत्रवृत्तौ साध्वाचारदर्शनमेव मूल-मिति साधुलक्षणप्रदर्शनपूर्वकमाह-परोपकारे इति । प्रमाणं सर्वलोकस्थेति शेवः ॥ १० ॥ अस्तु प्रमाणं कि ततस्तत्राह-साध्यिति । अतत्त्वको लोकः शास्त्रफले संदिग्धे इति संदेहः योग० १९३

केचित्सामान्यरक्वानि प्राप्तवन्ति यथा वनात् १३ केचित्कामं केचिद्धं केचिद्धमंत्रयं तुवा। केचिन्मोक्षमदोपं च लभन्ते दाास्त्रतस्तथा ॥ १४ वर्गत्रयोपदेशो हि शास्त्रादिष्वस्ति राघव। ब्रह्मप्राप्तिस्त्वचाच्यत्वाम्नास्ति तच्छासनेप्वपि 80 केवलं सर्ववाक्यार्थेध्वेन्यमानाचगस्यते । कालश्रीः प्रसर्वेनेच स्वयं स्वानुभवेन सा ॥ १६ सर्वार्थातिगतं शास्त्रे विद्यते ब्रह्मवेदनम् । सर्वगातिगतं स्वच्छं लावण्यमिव योषिति ॥ १७ न शास्त्राम्न गुरोर्वाक्यान्न दानान्नेश्वरार्वनात् । एष सर्वपदातीतो बोधः संप्राप्यते परः ॥ १८ **प्तान्यकर**णान्येष कारणत्वं गतान्यसम् । परमात्मेकविश्रान्तौ यथा राघव तच्छण् ॥ १९ शास्त्राद्भ्यासयोगेन चित्तं यातं विश्रद्धताम्। अनिच्छदेवमेवाश पदं पश्यति पावनम्॥ 20 पतच्छास्माद्यिचायाः सात्विको भाग उच्यते । तामसः सात्विकेनास्याभागेनायाति संक्षयम् २१ नुनं मलं प्रधानेन क्षालयच्छास्त्ररूपिणा । पुरुषः द्युद्धतामेति परमां वस्तुशक्तितः ॥ २२ अनिच्छयोरेष यथा सप्तसप्तिसमुद्रयोः। प्रागदृश्यं तृतीयत्वं स्वभाववदातः स्वतः ॥ २३

संदिहानोऽपि भोगसंप्राप्तिसंभावनया संप्रवर्तते ॥११॥१२॥ ग्रप्ताग्रप्तानीत्याद्यकेत्वात्पर्यमाह—केचिदित्यादिना ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ वर्गत्रयं धर्मकामार्थीस्तस्योपदेशो मुख्यवृत्स्यैवास्ति । तच्छासनेष अधातत्वरेषु शास्त्रेष्वपि पदवाक्यमुख्ययृत्या अहा-प्राप्तिकेशकोधः ॥ १५ ॥ वसन्तादिकालधीः प्रस्वेन तत्तदा-**र्तवफलपुष्पादिजन्मनेव** ध्वन्यमाना सूच्यमाना । आलंकारिक-समये व्यञ्जनाख्यवृत्त्यन्तरेण इतरसमये लक्षणयेति यावत् ॥ १६ ॥ मुख्यवृत्या बोधने असामध्येऽपि शास्त्रस्य स्थणाः द्युपायेबांधने सामर्थ्यमस्त्येवति तेन अधिकारिणां ब्रह्मवेदनम-स्येवेति न वैयर्थमिलाह—सर्वार्थेति।सर्वान् अर्थान् दृश्यवर्गाः क्षिवर्गान्वा अतिकम्य उरक्षेकाष्टां गतम्। गणिदर्पणचन्दादिस-र्वगतसीन्दर्शाष्यतिगतं लावण्यं योषिति श्लीरक्षेऽस्ति तद्रदि-त्यर्थः ॥ १७ ॥ साक्षात्र संप्राप्यत इत्यर्थः ॥ १८ ॥ चित्त-<mark>ञ्ज्यादिसाधनपरम्परोपचयद्वारा कारणलं गतानि ॥ १९ ॥</mark> अनिच्छत् सर्वभोगेच्छानिर्भुक्तं एवमेव प्रतिदिनमन्तर्मुखतयां प्रस्वकप्रवर्ण चित्तं तरपदं बद्धा पर्याते ॥ २० ॥ उच्यते उत्कर्षे नीयते । उच्चराब्दात्तत्करोतीतिणिचि कर्मणिछटि यकि णिलोपः ॥ २९ ॥ शास्त्ररूपिणा प्रथानेन जलेन क्षालयन्सन् । बस्तु-शक्तितः अचिन्लाच्छास्रादिप्रभावात्तद्वोध्यनिलशुद्धात्मवस्तु-सामर्थाच ॥ २२॥ यथा सप्तसप्तेः सूर्यस्य समुद्रस्य च संनिधाने प्रागद्दयमपि प्रतिबिम्बं खच्छप्रकाशस्यभाववशत-

१ तृतीयं तु स्वभाववदात इति पाठष्टीकानुगुण:.

स्वसंनिधानमात्रेण विदितप्रतिभासनम्। सदसन्मयमाभोगि प्रतिविम्बं प्रवर्तते ॥ २४ मुमुक्षुज्ञास्त्रयोरेवं मिथः संवन्धमात्रतः। सर्वसंवित्पदातीतमात्मक्षानं प्रवर्तते ॥ 24 अनयोः प्रेक्षणादेहे विवेको जायते यथा। तथा स्वभावतः शास्त्रविवेकाज्क्षेयवेदनम् ॥ २६ लोप्टेन लोप्टं सलिले भालयन्यालको यथा। क्षयेण लोष्ट्योईस्तनैमेंच्यं लभते परम्॥ २७ तथा शास्त्रविकल्पौधैर्विकल्पांश्चेतनाद्वधः। क्षालयन्खविचारेण परमां याति शुद्धताम्॥ २८ महावाक्यार्थनिष्यन्दं स्वात्मज्ञानमवाष्यते। शास्त्रादेरिश्चरसतः स्वाद्विच स्वानुभूतितः ॥

प्रभामिरयोः समासङ्गाद्यथा लोकोऽनुभूयते । श्रुतश्रुनवतोः सङ्गादात्मज्ञानं तथा भवेत् ॥ ३० त्रिवर्गमात्रसिद्धे यन्न मोक्षाय च तच्छ्तम्। विपुलश्वतचर्चासु तुच्छमश्वतमेव तत् ॥ 38 तच्छुतं यत्किल इत्यै साइतिः समता यया । तत्साम्यं यत्र सौषुप्ती स्थितिजीप्रति जायते 32 पवं हि सर्वमेतसच्छास्रादेः समवाप्यते । तसात्सर्वप्रयक्षेन शास्त्राद्यभ्यासमाहरेत्॥ **3 3** शास्त्रार्थभावनवशेन गिरा गुरूणां सत्सङ्गमेन नियमेन शमेन राम । तत्प्राप्यते सक्रखविश्वपदादतीतं सर्वेश्वरं परममाद्यमनादिशर्म ॥ 38

इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वाल्मीकीये मो० नि० उ० शास्त्रमाहारम्यं नाम सप्तनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९७ ॥

अष्टनवत्यधिकदाततमः सर्गः १९८

3

वसिष्ठ उवाच ।
भूयो निषुणबोधाय शृणु किंचिद्रधूद्रह ।
पुनः पुनर्यत्कथितं तदशेऽण्यवतिष्ठते ॥
राघव प्रथमं प्रोक्तं स्थितिप्रकरणं मया ।
येनेदिशित्धमुत्पन्नमिति विशायते जगत्॥

हतृतीयं संप्रवर्तते । एवं मुसुक्षुशास्त्रयोरिप मिथः संबन्धमात्रत आत्मज्ञानं प्रवर्तत इति त्रयाणामन्वयः ॥ २३॥ विदित-मनुभविद्धं प्रतिभारानं सम्यक् एफुरणं यस्य तथाविधम् ॥ २४ ॥ २५ ॥ अनयोः सवितृसमुद्रयोः प्रेक्षणायथा अत्य-न्तवैधर्म्शादिबोधलक्षणो विवेको जायते तथा शास्त्रकृताद्वि-वेकादिप देहे सर्वीपाध्यसंख्छादितीयहेयवेदनं जायते ॥२६॥ **शासकृतैर्विचार**विकल्पैश्रीन्तिकृतविकल्पानां क्षालनेनारमनैर्म-स्यप्राप्तावपि दृष्टान्तमाह्—लोटेनेति ॥ २० ॥ चेतनात्पुनः-प्रनरात्मतरवपरीक्षणारक्षालय्नसन् ॥ २८॥ केन प्रमाणेन कथं परीक्षणात्तत्राह-महावाक्येति । शास्त्रादेः सूत्रभाष्यतद्या-ह्यामहारामायणादिशास्त्राद्वहवचनादेश्रोपायात्तरतमस्यादिम-हाबाक्यार्थस्य निष्यन्दं तत्त्वंपदवाच्यार्थद्वयपरिशोधनलब्धरस-भूतमस्त्रण्डवाक्यार्थापरोक्षानुभवरूपं स्वात्मज्ञानमवाप्यते। यथा यन्त्रादिनिपीडनोपायात्रिःसारितेश्चरसतः खादु माधुर्याखादनं खानुभूतितः अवाप्यते तद्भदिखर्थः ॥ २९ ॥ यथा नमसि प्रस्तोऽप्यालोकः प्रभाभित्योः समासन्नादभिव्यक्तः स्फुटमनु-भूयते तथा निल्यस्त्रप्रकाश्रहतमप्यातमज्ञानं श्रवणतद्धिकारि-णोर्मेलनात्स्फुटमनुभूयत इत्यर्थः ॥ ३० ॥ तत्र शास्त्रान्तर-श्रवणं तरपाण्डित्यं वा नोपयुज्यत एवेलाइ-नित्रवर्गेति । विपुलश्रुता बहुश्रुतास्तत्त्वविदस्तेषां तत्त्ववोधोपायचर्वासु त-च्छुतमश्रुतं मीर्ह्यमेव यतो मिथ्याविषयफललात्तुच्छं तदि- ततो जगति जातेन परोपरामशालिना।
भवितव्यमिति प्रोक्तं मयोपरामयुक्तिमिः॥ ३
उपशान्तिप्रकरणे प्रोक्तैरुपरामक्रमैः।
परमोपरामं गत्वा वस्तव्यमिह विज्वरम्॥ ४
प्राप्तप्राप्येन तज्क्षेन यथा संसारदृष्टिषु।
विहर्तव्यं हि नः किंचित्स्वस्यं श्रोतव्यमस्ति ते॥ ५

स्यथः ॥ ३१ ॥ अतो निर्विकल्पस्रह्मस्थितिपर्यवसितमेव श्रुतमुपादेयमित्याशयेन प्रशंगति—तिदिति । यत्र जाप्रत्यपि सौषुप्ती निर्विकल्पा स्रह्मपर्थिनिजीयते ॥ ३२ ॥ इदं सर्वे शास्त्राधीनमिति तदावद्यकमित्याह् —एवमिति ॥ ३३ ॥ हे राम,तरसकलविश्वपदाद्रह्मलोकान्तैश्वयंसुस्वाद्य्यतीतमितशियतं पावनं सर्वेश्वरं मोक्षास्त्रयमनादिसुखं गुरूणां निरा शास्त्रार्थं गोपनवशेनेव प्राप्यते तच सत्संगमादिनेत्यर्थः ॥ ३४ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तर्भार्थं सप्तनवस्थिकशत्त्वमः सर्गः ॥ १९७ ॥

वर्ण्यतेऽत्र प्रबुद्धानां निर्विक्षेपसुग्वस्थितौ । हेतुः सेतुरिवाम्बूनां सर्वत्र समदर्शनम् ॥ ३ ॥

निपुणबोधाय बोधदाद्यंहेतुनिर्विक्षेपतासिद्धये किचिद्वर्थं-मानं रहस्यमुपशमप्रकरणादौ कथितमेव पुनः किमर्थमुच्यते इस्यनास्थावारणायाह—पुनःपुनरिति ॥१॥ उत्पत्तिस्थिति-प्रकरणाभ्यामुत्पत्रं जगिदित्यं प्रान्तिमात्रमिति विद्वाते सित समदर्शनप्रतिष्ठया उपशमप्रकरणे समदर्शनं वर्णितं तदेवात्र जीविन्नवीणसुखप्रतिष्ठार्थं पुनर्वर्ण्यत इत्याह—राघवेत्यादिना ॥२॥३॥ इह एतत्प्रकरणप्रतिपाये निर्वाणसुखे ॥४॥ संसारदृष्टिषु व्यवहारेषु यथा येन प्रकारेण विद्वतेव्यं तर्तिक-चिद्रहस्यं नः अस्मन्मुखाते श्रोतव्यमिस्त तदुच्यत इत्यधः

जन्म संप्राप्य जगति बाल्य एव जगितस्थितिम्। यथाभूतामिमां बुद्धा वस्तव्यमिह विज्वरम्॥ દ્દ सर्वसौहार्दजननीं सर्वस्याध्वासकारिणीम्। समतामलमाश्रित्य विद्दर्तव्यमिहानघ ॥ 9 सर्वसंपत्तिसुभगं सर्वसीभाग्यवर्धनम् । समतासुलतायास्तु फलं भवति पावनम् ॥ समतासुभगेहानां कुर्वतां प्रकृतं ऋमम्। ९ सर्वेवेयं जगहृक्ष्मीर्भृत्यतामेति राघव ॥ म तदासाधते राज्यान्न कान्ताजनसंगमात् । अनपायि सुखं सारं समस्वाद्यदवाप्यते॥ इन्होपरामसीमान्तं संरम्भज्वरनारानम्। सर्वदुःखातपाम्भोदं समत्वं विद्धि राघव ॥ ११ मित्रीभूताखिलरिपूर्यथाभूतार्थद्दीनः। दुर्लभो जगतां मध्ये साम्यामृतमयो जनः॥ १२ प्रवृद्धस्य स्वचित्तेन्दोनिंप्यन्दममृताधिकम्। साम्यमास्वाद्य जीवन्ति सर्वे वै जनकादयः॥ १३ साम्यमभ्यस्यतो जन्तोः स्वदोपोऽपि गुणायते । दुःखं सुखायते नित्यं मरणं जीवितायते ॥ साम्यसीन्दर्यसुभगं चनिता मुदितादिकाः। आलिङ्गन्ति महात्मानं नित्यं व्यसनिता इव ॥ १५ समः समुदितो नित्यं समोऽनुदितधीः सदा । न काश्चिदिह ताः सन्ति याः समस्य हि नधेयः ६६ सर्वकार्यसमं साधुं प्रकृतव्यवद्वारिणम्। चिन्तामणिमिघोवारं प्रवाञ्छन्ति नरामराः ॥ १७

॥ ५ ॥ बाल्ये लद्वयस्येव जगित्धिति वुद्धा वक्ष्यमाणरीत्या निर्विक्षेपं वस्तव्यम् ॥ ६ ॥ समतां वस्यमाणां सर्वभूतेष्वैका-त्म्यदर्शनाद्भणदोपदर्शनलक्षणवैषम्यश्च्यतां स्वयेहसमानसुख-दुःखदृष्टितां सर्ववैषम्यरहितन्नहादृष्टिं च । अलं ददम् ॥ ७ ॥ फलं सर्वभूतमेत्रीरूपम् । संपदो बाह्याः सीभाग्यानि सूभग-भावाः कल्याणगुणा इति भेदः ॥ ८ ॥ तदेव द्विविधं फलं प्रकटयति-समतेति द्वाभ्याम् । समत्या सुभगा सर्वभूत-हिता ईहा चेष्टा येषाम् ॥ ९ ॥ १० ॥ सर्वदुः सतद्वेतुप्रश-मोऽपि तया सिख्यतीत्याह-इन्द्रेति ॥ ११ ॥ १२ ॥ साम्या-मृतमय इति पदतात्पर्थे वर्णयंस्तादशजनानुदाहरति-प्रवु-द्धस्येति । आस्त्राद्य जीवन्ति उपजीवन्ति ॥ १३ ॥ स्वदोषः क्रोघलोभादिः क्रमेण शान्त्यौदार्यादिभावेन परिणम्य गुणवन दाचरति गुणायते ॥ १४ ॥ मुदिताद्या मैत्रीकरूणोपेक्षादयो योगशास्त्रे प्रसिद्धाः । व्यसनिताः कामुकीलाद्वर्तृसमागमव्यसन-बस्य इव ॥ १५ ॥ समुदितः कल्याणगुणैः सर्वसंपद्भिश्व सम्यगभ्युद्यं प्राप्तः समुदायतां प्राप्तश्च । न उदिता धीश्चिन्ता यस्य । ऋद्धयः संपदः ॥ १६ ॥ सर्वकार्ये स्वकार्ये परकार्ये च समं पुरुषम् । साधुमपराधिषु क्षमावन्तम् । उदारं त्यागि-

सम्यकारिणमुद्दाममुदितं समचेतसम्। न दहन्त्यन्नयो राम नापः सिश्चन्ति मानवम् १८ यद्यथा तत्त्रथा येन क्रियते रूदयते तथा। आनन्दोद्वेगमुक्तेन कस्तं तोलियतुं क्षमः॥ १९ मित्राणि बन्धुरिपवो राजानो व्यवहारिणः। सम्यक्कारिणि तत्त्वक्षे विश्वसन्ति महाधियः॥ २० नानिष्टात्प्रपळायन्ते नेष्टादायान्ति तुष्टताम्। प्रकृतक्रमसंप्राप्तास्तत्त्वज्ञाः समदर्शिनः॥ २१ त्यक्त्वा सर्वानुपावेयान्राम भावाननिन्दितान्। समतायामदः खायां द्धाना वृत्तिमुत्तमाम् ॥ २२ विष्ठसन्ति जगजालं जीवयन्ति निरामयाः। पुज्यन्ते विबुधैः सर्वैः समतामुदिताशयाः॥ २३ प्रकृतक्रमसंप्राप्तं मुखेन्दौ कोपमेच यः। समादायो धारयति स्यात्साम्यामृतवज्जनः॥ २४ यत्करोति यदश्चाति यदाश्चामति निन्दति। समद्दष्टिस्तदस्येयं स्ताति नित्यं जनावलिः॥ 34 यच्छुमं बाद्यमं यद्य यद्यिरेण यद्य वा । समद्दिष्टतं सम्यगभिनन्दति तज्जनः॥ २६ सुखदुः खेषु भीमेषु संततेषु महत्स्वपि । मनागपि न घेरस्यं प्रयान्ति समदृष्टयः ॥ २७ शिबिभूपः कपोताय मांसमङ्गविकर्तनम्। ददी मुदितया बुद्धा समद्रष्टितयानया॥ २८ प्राणेभ्योऽपि प्रियतमां कान्तामग्रे विकालिताम्। हप्टाप्यक्र महीपालो न मुमोह समाशयः॥ २९

नम् । नरा अमराध प्रवाञ्छन्ति ॥ १०॥ सम्यकारिणं सदाचारसर्वजनहितकर्तारम् । सिघन्ति स्टेद्रःसं कुर्वन्ति ॥ १८ ॥ यदाथा कर्तुमुचितं तत्तथा येग कियते आनन्दोद्वेगी हर्पामधी तन्मुकेन सर्वे कृतं समतया येन दश्यते ॥ १९॥ ॥ २० ॥ २१ ॥ कीदशास्तत्त्वज्ञाः । अनिन्दितानपि सर्वा-नुपादेयान्परे रुपादातुमिष्टान् गृहक्षेत्रादिभावांस्यक्ला उत्तमां निर्लोभसंतोषलक्षणां वृत्ति दघानाः ॥ २२ ॥ जीवयन्ति विवेकोपदेशादिना उज्जीवयन्ति ॥ २३ ॥ समाशयो जनः परहितार्थं प्रकृतकमसंप्राप्तं मुखेन्दी कोपं धारयति चेत्तदप्य-मृतवदेव स्यान्नोद्वेगकरं कस्यचिदित्यर्थः ॥ २४ ॥ यहकर्म अनुचित्रमिति निन्दति जनस्तरपरिहरंस्तदस्य सचरित्रं सर्वे स्तीति ॥ २५ ॥ अञ्चनं प्रमादकृतमपराधमपि चिरेण कृतम्य कृतं वा तदप्यभिनन्दति ॥ २६ ॥ सुखदुःखेषु भीमेषु घोरेष् संततेषु चिरानुष्टलेषु वैरस्यं चित्तोद्वेगम् ॥ २० ॥ इहानीं महत्खपि दुःखेषु समद्षिधीरानुदाहरति--शिविरित्यादिना । कपोताय शरणागतकपोतप्राणरक्षणाय तन्मांसप्रतिनिधितया अङ्गविकर्तनं खमांसं ददी। तच महाभारतादी प्रसिद्धम्। एवमभेष्यसम् ॥ २८ ॥ अमे खपुरोभागे विकालितां शत्रुभिः

मनोरथशतप्राप्तं तनयं समया विया। राक्षसाय त्रिगर्तेशो ददौ स्वपणहारितम्॥ OF नगर्या दह्यमानायां भृषितायां तथोत्सवे। सम एव महीपालो जनको भृभृता वरः॥ 38 न्यायतः परिविकीतं सास्वराट् समद्रानः। स्वमेव विचकर्ताद्य शिरः पद्मदलं यथा॥ कुन्दप्रकरनिर्भासं यशे पाण्डुमिवाचलम्। जहाँ जरचणिमव सौवीरः समया धिया॥ 33 समयैव घिया नित्यं निजमभ्याहरत्क्रमम्। मातङ्गः कुण्डपो नाम प्राप वैमानिकस्थितिम् ३४ सर्वभूतक्षयकरीं साम्याभ्यासेन भूरिणा। तत्याज राक्षसीं वृत्तिं कदम्बयनराक्षसः॥ 34 वालचन्द्राभिजातोऽपि समयुद्धितया जडः। गुडमोदकवदयायप्राप्तमग्निमभक्षयत्॥ ર દ समयुद्धितया क्रुरव्यवहारपरोऽपि सन्। धर्मव्याधस्तनुं त्यक्तवा जगाम परमं पद्म्॥ ३७ नन्दनोद्यानसंस्थोऽपि पुरुषोऽपि कपर्वनः। लुलुमे न सुरस्रीषु नूनं प्रणयिनीष्वपि॥ 34 समिचित्तवास्पन्दः करञ्जगहनेष्वपि। विनध्याकान्तारकच्छेषु राज्यं त्यक्त्वावसिबरम् ऋषयो मुनयश्चेष ये सिद्धाः सुरपूजिताः। समद्दष्टितयोद्धिया न ते तासु व्रतिर्देखु ॥ 80 राजानः प्राकृताश्चेष धर्मव्याधादयोऽपरे। समद्यिपदाभ्यासान्महतां पूज्यतां गताः॥ ४१ इहामुत्र च सिद्धार्थ पुरुपार्थप्रवृत्तये। समद्दष्टितया नित्यं विचरन्ति सुबुद्धयः॥ ४२ अभिवाञ्छेन्न मरणमभिवाञ्छेन्न जीवितम्। यशाप्राप्तसमाचारो विचरेदविहिंसकः॥ ઇરે समकलितगुणागुणैकभावः समसुखदुःखपरावरो विलासी । प्रविचरति समावमानमानः प्रकृतवरव्यवहारपूतमूर्तिः॥ 88

लार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० नि० उ० समदृष्टिप्रशंसा नामाष्ट्रनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९८ ॥

नवनवत्यधिकदाततमः सर्गः १९९

श्रीराम उवाच । नित्यं ब्रानैकनिष्ठत्वादात्मारामतया तथा । मुक्तः कर्मपरित्यागः कसान्न क्रियते मुने ॥ वसिष्ठ उवाच । हैयोपादेयदृष्टी हे यस्य क्षीणेहितस्य वै । क्रियात्यागेन कोऽर्थः स्यात्क्रियासंश्रयणेन वा

हेशिताम् ॥ २९ ॥ स्वस्य पणे वाग्ध्रते हारितं राक्षसेन जितम् ॥ ३० ॥ ३३ ॥ परिविकीतं ऐच्छिकी दक्षिणां ते दास्या-मीति प्रतिज्ञया बाहाणाय विकीतप्रायम् । विचकर्त छिस्वा ददी ॥ ३२ ॥ पाण्डुमचलं कैलासमिव स्थितमैरावतमिन्द्रज-येन लब्धं पुनर्यन्ने ऋलिजां वचनादिन्द्राय जही ददी ॥ ३३ ॥ निजं देहयात्रानिमित्तं क्रमं व्यवहारं समर्थव धिया आहरन् आचरन् कुण्डपी नाम मातक एकां गां वेतनीकृत्य बाह्मणस्य पेश्च पश्चममा गाः समुद्धत्व खवेतनीकृतां गां पुष्करे समया धिया तस्म बाह्यणाय दत्त्वा सद्याः समागतं विमानमारुह्य बैमानिकस्थिति देवत्यं प्राप ॥ ३४॥ ३५ ॥ जङो जडभरतः । म्यायत्राप्तं भिक्षापात्रे भैक्ष्यन्यायेन त्राप्तम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ कपर्दननामा राजर्षिः पुरुषः पुंस्लात्मुरस्रीभोगसमधीऽपि प्रण-यिनीषु खस्मिन्सानुरागाखपि । व छछमे । कामवशो नाभूदि-त्यर्थः ॥ ३८ ॥ स एव राज्यं त्यक्ला विन्ध्यकान्तारकच्छेपु करजगहनेष्वपि अस्पन्दः संधिरमवरात् ॥ ३९ ॥ व्रतेषु तपःहेशेष ऋदिषु भोगेषु च समदृष्टितया भौद्विमाः ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ समतया कलिता गुणा अगुणा

न तदस्तीह यस्याज्यं क्षस्योद्वेगकरं भवेत्। न वास्ति यदुपादेयं तज्ज्ञसंश्रेयतां गतम्॥ ज्ञस्य नार्थः कर्मत्यागैर्नार्थः कर्मसमाश्रयेः। तेन स्थितं यथा यद्यत्तत्त्रथेव करोत्यसौ॥ यावदायुरियं राम निश्चितं स्पन्दते तनुः। तद्यथामातमव्यशं स्पन्दतामपरेण किम्॥

£

8

4

दोषाश्र एकभावा एकीभूता इव यस्य । 'परोपतापचिन्तः' इति पाठे परे: कृता उपतापासत्त्रयुक्तचिन्ताश्र समतया कलिता येन । तथा समे छुखदुःखे परा उत्कृष्टयोनयोऽवरा निकृष्टयोनयश्य यस्य । तथा समाः अवमाना मानाश्र यस्य तथाविधो जीवनमुक्तः प्राकृतव्यवहारेष्वप्यासत्त्यभावारपूत्मृतिरत एव विलासी विलसनशीलः सन् लोकानुम्रहाय देशान् प्रविचरति संचरतील्यांः ॥ ४४ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणता- एपर्यप्रकारो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धेऽष्टनवरयुक्तरहातसमः सर्गः ॥ १९८ ॥

मुक्तानां न कृतैरथीं नाकृतैः कर्मभिः श्वतिः । तथापि तेऽनुवर्तन्ते सस्कर्माणीति वर्ण्यते ॥ १ ॥

मुक्तैजीवन्मुक्तैः ॥ १ ॥ सम्यस्तस्य करणे श्रमाभावास्यागे प्रयोजनाभावाक्षेकानुम्रहवशाच्य तैः कर्मत्यागो न कियत इत्यु-त्स्मं इत्यायनोक्तरमाह—हेयेत्यादिना ॥ २ ॥ संश्रेयताम-वश्यानुष्टेयताम् ॥३॥ यद्यद्वर्णश्रमोचितत्वेन यथास्थितं तत्त-येव करोति ॥ ४ ॥ जीवदेहस्य स्पन्दनावश्यंभावे सम्यस्त-सदानार्रूष्पमेव स्पन्दनं तदेहे प्रवर्तत इत्याह—माथदासुरिति।

अन्यथान्यत्र चेत्कार्या क्रिया त्यक्त्वा निजं क्रमम्। समाने हि कियास्पन्दे को दोषः सत्क्रमे किल समया स्वच्छया बुद्ध्या सततं निर्विकारया। यथा यत्क्रियते राम तददोषाय सर्वदा॥ S इह मह्यां महाबाहो बहवो बहरप्रयः। यहुधा यहुदोषेषु विहरन्ति विचक्षणाः॥ गतसङ्कतया बुद्ध्या विहरन्ति यथा स्थितेः। गृहस्थारम्भिणः केचिज्जीवन्मुक्ताः स्थिता भुवि तज्ज्ञा राजर्षयश्चान्ये वीतरागा भवादशाः। असंसक्तिधयो राज्यं कुर्वन्ति विगतज्वराः॥ केचित्प्रकृतवेदार्थव्यवहारानुसारिणः। यज्ञशिष्टाशिनो नित्यमग्निष्ठोत्रे व्यवस्थिताः ॥ 88 केचिकतुर्व वर्णेषु ध्यानदेवार्चनादिकाम्। स्विक्रयामञ्जतिष्ठन्तः स्थिता विविधयेहया॥ १२ केचित्सर्वपरित्यागमन्तः कृत्वा महादायाः। सर्वकर्मपरा नित्यं तज्ज्ञा एवाज्ञवितस्थताः॥ १३ स्वप्नेऽप्यदृष्टलोकासु मुग्धमुग्धमृगासु च । वनावनीषु शून्यासु केचिद्ध्यानपरायणाः॥ १४ पुण्यवद्भिः सदा जुष्टे पुण्योपचयकारिणि । शमशालिसमाचारे केचिदायतने स्थिताः॥ १५ रागद्वेषप्रहाणार्थे त्यक्त्वा देशं समाशयाः । केचिदन्यत्र देशे च पदमालम्ब्य संस्थिताः॥ १६ वनाइनं पुराद्रामं स्थानात्स्थानं गिरेगिरिम्। भ्रमन्तः संस्थिताः केचित्संसारोच्छित्तये बुधाः १७ वाराणस्यां महापुर्यो प्रयागे चैव पावने । श्रीपर्वते सिद्धपुरे बद्याश्रमके तथा॥ १८

अपरेण स्पन्दत्यागनान्यथा स्पन्दनेन च ॥ ५ ॥ शास्त्रीया-शासीयकिययोः क्रमे समानेऽपि शास्त्रीये संक्रमे सदाचारे को दोषो येन निजं कमं त्यक्ला अन्यथाचरणं स्यादित्यर्थः । भन्यत्रेति दृष्टान्तार्थम् । यथा खगृहे निर्देषि अन्यत्रावस्थाने प्रयोजनं नास्ति तद्वदिति ॥ ६ ॥ समया सिद्धसिद्धोस्तुस्यया ॥ ७ ॥ यद्यपि कर्मसु प्रश्तानां द्रव्यार्जनऋलिगावर्जनादिषु अनुष्टेयार्यनिर्णयेषु च श्रमसाध्यत्वाद्वहुदोषप्रसक्तिरस्ति तथापि सा तैः समदर्शनता विचक्षणता बलादेव सुपरिहरेत्याशये-नाह-इहेति । बहुदृष्टयः सर्वशास्त्रहोकरहस्यदर्शिनः प्रपश्च-यिष्यमाणबहुदृष्ट्यश्च समद्र्शनबलालोकसंप्रहेऽपि विनक्षणाः ॥ ८ ॥ बहुधेत्युक्ति प्रपश्चयति --गतसंगतयेखादिना । यथा-स्थितेः यथाप्राप्तानुकृतेः ॥ ९ ॥ भवादशा इति भाविनीं **वृत्तिमा**त्रित्य रामं प्रत्युक्तिः ॥ १० ॥ ११ ॥ स्रक्तियां स्वस्व-वर्णाश्रमोचितं कर्म तत्र ध्यानं चतुर्थाश्रमोचितम् । ईह्या चेष्टया ॥ १२ ॥ सर्वपरित्यागं फलासङ्गत्यागम् ॥ १३ ॥ खप्रेऽपि न दृष्टा लोका जना यत्रेत्यतिशयोक्तिः ॥१४॥ आय-तने पुण्यतीर्थमुन्याश्रमावी ॥ १५ ॥ बन्धुजनसमागमे राग-

| शालप्रामे महापुण्ये कलापप्रामकोटरे । | |
|--|-----|
| मधुरायां च पुण्यायां तथा कालअरे गिरी॥ | १९ |
| महेन्द्रवनगुरमेषु गन्धमादनसानुषु । | |
| द्र्तुराच्छवप्रेषु सद्यकाचलभूमिषु। | २० |
| विन्ध्यशैलस्य कच्छेषु मलयस्योदरेषु च। | |
| कैलासवनजालेषु ऋक्षवत्कुहरेषु च ॥ | २१ |
| पतेष्वन्येषु चान्येषु वनेष्वायतनेषु च। | |
| तपस्विनस्तथा राम बहुवो बहुदृष्टयः॥ | २२ |
| केचित्रयक्तनिजाचाराः केचिश्व क्रमसंस्थिताः। | |
| केचित्प्रयुक्तमत्यो नित्यमुन्मत्तचेष्टिताः ॥ | २३ |
| केचित्स्वदेशरहिताः केचित्त्यक्तनिजास्पदाः। | |
| एकस्थानरताः केचिद्धमन्तः केचिदास्थिताः | २४ |
| पतेयां महतां मध्ये न्भस्तलनिवासिनाम्। | |
| पातालनिरतानां च दैत्यादीनां महामते ॥ 👚 | र'५ |
| विशातलोकपर्यायाः सम्यग्दर्शननिर्मलाः। | |
| केचित्प्रबुद्धमतयो दृष्टदृश्यपरावराः॥ | २६ |
| अप्रबुद्धियः केचिद्दोलान्दोलितचेतसः । | |
| निवृत्ताः पापकाचारात्सुजनानुगताः स्थिताः | २७ |
| अर्धप्रबुद्धमतयः केचिज्ज्ञानावलेपतः। | |
| परित्यक्तकियाचारा उभयभ्रष्टतां गृताः ॥ | २८ |
| इत्थमसिञ्जनानीके जन्मसंतरणार्थिनः। | |
| वहवः संस्थिता राम बहुधा बहुद्रष्टयः॥ | ર્ |
| संसारोत्तरणे तत्र न हेतुर्धनवासिता। | |
| नापि स्वदेशवासित्वं नच कष्टतपः त्रियाः॥ | ३० |
| न कियायाः परित्यागो न कियायाः समाधयः | 1 |
| नाचारेषु समारम्भविचित्रफलपालयः ॥ | ३१ |
| | |

द्वेषादिविक्षेपसहस्रावर्जनात्तरप्रहाणार्थम् । पदं स्थानम् ॥१६॥ संसारोच्छित्तये संप्रहदोषपरिहारार्थम् ॥ १७ ॥ पूर्वीकानि पुण्यायतनानि प्रपश्चयति--नाराणस्यामित्यादिना । महापुर्या-मिल्यनेन तस्याः सर्वपुण्यायतनोत्कृष्टता सूचिता ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ कच्छेषु जलप्रायदेशेषु । ऋक्षवतः कुहरेषु दरीषु ॥ २१ ॥ बहुद्दष्टयो बहुविधप्रारब्धमोगानुकूलदृष्टयः ॥ २२ ॥ संम्यासविधिना सक्तिनजाचाराः । क्रमा ब्रह्मचर्या-बाश्रमधर्मास्तरसंस्थिताः ॥ २३ ॥ एकस्थाने खगृह एव रताः श्रीतिमन्तः सर्वजनानुकृल्येन विक्षेपशून्या इति यावत् ॥२४॥ अध्वीघोलोकेष्वपि देवदैत्यादयो जीवन्मुक्ता बहवः सन्ती-लाशयेनाह-एतेषामिति । एतेषां मध्ये केचिरप्रबुद्धमतय इत्याद्युत्तरत्रान्वयः ॥ २५ ॥ २६ ॥ अप्रबुद्धधियोऽल्पप्रमुद्ध-घियः । अतएव दोलान्दोलितचेतसः ॥ २७ ॥ **हानाव**लेप-स्तन्त्रज्ञोऽहं सम कि निषिद्धाचरणं करिष्यतीति गर्वतः ॥२८॥ जनानीके जनसमूहे ॥ २९ ॥ तर्हि कि तरकता वनवासाद-योपि संसारोत्तरणहेनवो नेत्याह--संसारेति ॥ ३० ॥ आचा-रेषु सत्कमीचरणेषु समारभ्यन्त इति समारम्भा अनुनिष्पा-

स्वभावः कारणं नाम संसारोत्तरणं प्रति । असंसक्तं मनो यस्य स तीणां भवसागरात्॥ ३२ द्युभाद्यभाः किया नित्यं कुर्वन्परिहरश्रपि । पुनरेति न संसारमसंसक्तमना मुनिः॥ 33 द्यभाद्यभाः किया नित्यमकुर्वन्नपि दुर्मतिः। निमज्जत्येव संसारे परित्यक्तमनाः शठः॥ ३४ मक्षिकेवान्तःसारका दुःखादुःखप्रदायिनी। न निवारियतं शक्या न च मारियतं मतिः॥ ₹'4 काकतालीययोगेन कदाचित्स्वस्य चेतसः। प्रवित्तर्रायते सिद्धे स्वयमात्मावलोकने ॥ 36 अवलोफनतो लब्ध्वा तस्वं नर्मस्यमागतम्। चेतो भवति निर्हत्द्वमसंसक्तमनामयम्॥ OF अचित्तत्वं प्रयातेन सत्वरूपेण चेतसा । समो भूत्वा सुखं तिष्ठ पराकादाांदारूपभृत्॥ 36 अधिगतपरमार्थस्यक्तरागादिवोषः सममतिरुदितात्मा त्वं महात्मा महात्मन्।

रघुतनय विशोकस्तिष्ठ निःशङ्कमेको
जननमरणमुकं पावनं तत्पदं त्वम् ॥ ६९
प्रश्रतिमलविकारोपाधिबोधादिक्षपं
जगति विमलक्षेपे नास्ति किंचित्कचिष्ठ ।
स्फुटमकृतकमस्ति यहा चिद्धाम तथ्य
स्वयमहमिति मत्वा तिष्ठ निःशङ्कमेकः ४०
अधिकवचनगम्यं नान्यदस्त्यङ्ग किंचित्वव शुभमुपदेश्यं ज्ञानसंयोधनाय ।
उदितमखिलमाद्यं ज्ञानसारं समग्रं
विदितसकलवेषो राघव त्यं हि जातः ४१
वालमीकिश्वाच ।

इत्युक्त्वा मुनिनायको व्यपगतारापेषणे राघवे सर्वासम्भ सभाजने स्थितवति ध्यानैकतानोपमे। प्राप्ते ब्रह्मपदं धिया धवलया त्ष्णीमभृत्पट्एदः इत्वेवारणितं सरोजपटलेपातुं प्रवृत्तो रसम्धर

इत्यार्पे श्रीवासिष्टमद्वारामायणे वार देव मोव निव उव मुक्तपुरुषस्थितिवर्णनं नाम नवनवत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १९९ ॥

ब्रिशततमः सर्गः २००

वार्त्माकिरवाच । निर्वाणवाक्यसंदर्भसमाप्तौ मुनिनायके ।

दिनः ख्यातिल।भेश्वर्यवरशापमामध्यीदिख्या विचित्रफलसम्हाः ॥ ३१ ॥ खभावी यथार्थस्वरूपेणासिनिष्पत्तस्वज्ञानरूपा कारणं सच मनसा आस्यन्तिकासक्तिपरिदारसभ्य इसाह--असंसक्तमिति ॥ ३२ ॥ अतएव जीवन्युक्तानां शुभाशुभकर्मा-चरणेऽप्यसंसक्तिवशादेव तदलेव इलाह—श्रमेति ॥ ३३ ॥ परित्यक्तं विषयेषु विसर्ष्टं मनी येन । शठः खात्मवश्वकः ॥ ३४ ॥ तर्हि मनएव विषयेम्यो निवार्यतां मार्यतां च कि तत्त्वज्ञानेन तत्राह-मक्षिकेवेति । अन्तःसारज्ञा आस्त्रादित-विषयरसा मतिर्मधकम्भप्रका मक्षिकेव न निवार्यिलं मारिपतुं वा शक्या ॥ ३५ ॥ कदाचिद्धाग्यवशात्साधनचतु-ष्ट्रयप्राप्ती श्रवणाद्यपायेगातमावरोकने स्वयमेव प्रवृत्तिर्जायते ॥ ३६ ॥ तत्र नैर्मस्यमागतं चित्तमवलोकनतस्तत्त्वं छङ्खा निर्द्धनद्वमतएवानासक्तमनामयं च ब्रह्मव भवति ॥ ३७ ॥ पराकाशरूपो यित्रतादिसर्वप्रयश्चाधिष्टानांशस्तद्र्यप्रत्रातिष्ठ ॥ ३८ ॥ हे महात्मन् रघुतनय, त्वं अधिगतः परमार्थी येन तथाविधस्त्यका रागादिदोषा येन उदित आत्मा यस्य तथा-विधः सममतिः सन्नेको विद्योको महानाःमा भूला निःशहं तिष्ट । यतो जननमरणमुक्तं पावनं तद्वद्यपदं खमेवेखर्थः॥३९ किंच विमलम्झारूपे जगति प्रकृतिरूपं मलरूपं निकाररूपमु-पाधिकपं तद्वीधरूपं तदिच्छात्रयञ्जहानीपादानभौगादिरूपं च किंचिविष कविश्व नास्ति किंतु अकृतकं चिद्धाम ब्रह्मास्ति ।

पाश्चात्यवाक्यविरातं कुर्वति क्रमपालिताम् ॥ १

तच खयं खानुभवंनेय अहमिति मला एको निःशक्कालिष्ठेखर्थः ॥ ४० ॥ अक् हे सुभग, तव ज्ञानसंबोधनाय अन्यदिलो व्यतिरिक्तं अधिकनचनगम्यं शुभमुपदेश्यं नास्ति । यतस्तव
आधं ज्ञानसारमखिलमक्षतं समप्रमुदितम् । हि यस्माक्तं
साप्रतं विदितसकलवेशो जात इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ मुनिनायको
विरिष्ठः इति एवमन्ते उक्ला राघवे घवलया थिया ब्रह्मपदं
प्राप्ते अतएव व्यपगताशेषेषणे जाते सति तथा सर्वस्मिन्सभाजनं च ध्यानैकतानीपमे श्थितवृति सति तथा सर्वस्मिन्सभाजनं च ध्यानैकतानीपमे श्थितवृति सति तथा समायां खयं
ब्रह्मरसायनाखादपरस्तूष्णीमभूत् । यथा पद्यदः सरोजपटले
आरणितं गुजाध्वनि कृत्या रसं मकरन्दं पातुं प्रवृत्तः संस्तूष्णी
भवति तद्वदित्यर्थः ॥ ४२ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणताल्यंप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे नवनवत्यधिकशततमः
सर्गः ॥ १९९ ॥

सिद्धानां साधुवादोऽत्र पुष्पवृष्टिः सदुन्दुभिः । वर्ण्यते प्रकृतः सर्वेर्गुरुपुजामहोत्सवः ॥ १ ॥

निर्वाणप्रकरणान्तमात्मोपदेशं श्रुखा इतार्थानां सिद्धविमान् नवानां तस्यां सभायां विषष्ठपूजामहोत्सवं वर्णयिष्यन् श्रीवान्त्मीकिरवाच—निर्वाणिति । सर्वेषां सप्तम्यन्तानां षष्ठश्लोके कोलाहलः समुदभूवित्यत्रान्वयः । एतत्प्रकरणरूपस्य निर्वाणन्वाययसंदर्भस्य समाप्ती सत्यां मुनिनायके विषष्ठे कमपालितां कमप्राप्तां पाथ्वात्यवाक्यविर्ति क्ववित सति ॥ १ ॥

निर्विकल्पसमाधानसमतां समुवागते। शान्तस्वच्छमनोवृत्तौ सर्वीसम्ब सभाजने ॥ सत्वकोटिमुपारुहे परां पावनतां गते। संवित्तस्वे समग्रस्य जनस्य श्रुतशास्त्रिनः ॥ **झटिरयेवाम्बरहृता पूर्वमुक्तिध्यां मुखात्।** सिद्धानां साधुवादेन व्योमकोटरवासिनाम् ॥ तथा सभास्थितामां च मुनीनां भावितात्मनाम् गाधेयप्रमुखानां च साधुवाद्गिरोचया ॥ कोलाहरुः समुदभृद्धृरिपूरितदिङ्युखः । मधुरः पवनात्तानां कीचकानामिवारवः॥ सिद्धानां साधुवादेन सह वै सहसा तता। देघदुन्दुभयो नेदुः प्रतिश्रुत्पृरिताचलाः ॥ देवदुन्द्रभिभिः साधे तुषारासारसुन्दरी । दिग्भ्यः स्थगितदिक्रका पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥ पुष्पीचपूरितस्थानः शब्दापूरितकन्दरः। रजःसंरञ्जिताकाशो गन्धरञ्जितमारुतः ॥ ९ ससाध्वादशब्दस्य देवतूर्यरवस्य च । **कुसुमासारघोषस्य समवायो रराज ह**॥ उन्मुखाखिलसभ्याश्चिरिदमस्यामलितान्तरः। उत्कर्णमृगमातङ्गहयपश्चिपशुश्चतः॥ ११ सविस्मयभयोञ्जेत्रबालकान्ताजनेश्चितः । विस्मयसेरवदनराजलोकावलोकितः॥ १२ कुसुमासारसारेण शब्दशोभातिशायिना । संरम्भेण जगामाशु रोदोरम्ध्रमपूर्वताम्॥ १३

सर्वस्मिन्सभागते जने चात्रभोगतदेवादिजने च मुनिवाक्यश्रव-णान्निर्विकल्पसमाधानेन समतां ब्रह्मैकरसतां समागते सति॥२॥ निर्विकल्पसमाधिकमेण संवित्तत्त्वे प्रतीचि सत्त्वकोटि सन्मात्र-काष्ट्रां समारूढे अतएव परां पावनतां गते सति ॥ ३ ॥ व्योमकोटरवासिनां पूर्वमुक्तिथियां सनकादीनां अम्बरं हरति व्याप्रोतीत्वम्बरहृत् तथाविधेन साधुवादेन प्रशंसाबाक्येन ॥ ४ ॥ तथा सभायां स्थितानां गाधेयो विश्वामित्रस्तस्त्रमु-खानां मुनीनामुचया साधुवादगिरा च झटित्येव भूरिपूरित-दिखुखो मधुरः कोलाहलः समुदमूदिति परेण संबन्धः ॥ ५ ॥ पवने आत्तानां व्याप्तानां पूर्णरन्त्राणां कीचकानां वेणुमेदाना-मारव इव ॥ ६ ॥ प्रतिश्रद्धिः प्रतिध्वनिभिः पूरिता अचला भूरचलाः पर्वताश्व यैः ॥ ७ ॥ तुषाराणामासार इव सुन्दरी शुभा । स्थगितान्याच्छादितानि दिक्ककाणि यया ॥८ ॥ पुष्पी-घादिभिश्रतुर्भिः पूरितं समास्थानादिचतुष्टयं यत्र तथाविधः साधुवादशब्दादित्रयस्य स समवायः समूहो रराजेति द्वयोरर्थः ॥९॥ १० ॥ तमेव समवायं वर्णयति-उन्मुखेलादिद्वाभ्याम् ॥ ११ ॥ सविस्मयैः समयैश्व अतएव उन्नेत्रैर्वालेः कान्ताजनैश्व इंक्षितः ॥ १२ ॥ रोदोरन्ध्रं द्यावाभूम्यन्तरालम् । अपूर्वता-मलीककचमरकारिताम् ॥ १३ ॥ पुष्पवर्षेण सुधासिर्मकरन्दै- पुष्पवर्षसुधाधातं रटझ्तसुघुंघुमम्।
समतां सदनेनागात् ध्मातशङ्गातेन खम्॥ १४
भुवनं भूरिभांकारमासुरं सुरचारणः।
वृतं मत्तोत्सवं रेजे समं कुसुममण्डितम्॥ १५
शर्नदुंन्दुभिसिद्धाघवाक्यपुष्पभरः समम्।
प्रयया रोदसीरन्ध्रं वेलाचलिमवाम्बुधा॥ १६
तिस्निव्वुध्रसंरम्भे क्षणेन समये गते।
वाक्यानीमानि सिद्धानामभित्रक्तिमुपाययुः १७

सिद्धा ऊचुः।

आकर्षं सिद्धसङ्घेषु मोशोपायाः सहस्रदाः । व्याख्याताश्च श्रुताश्चालमीदशास्तु न केचन १८ तिर्यञ्जो घनिता बाला व्यालाश्चानेन निर्वृतिम् मुनेर्घाक्यविलासेन यान्ति नाम्त्यत्र संशयः रप्टान्तर्हेतुभिर्युक्त्या यथा रामोऽववोधितः। तथा चारुन्धती साक्षात्संबोधयति वा नवा 30 अनेन मोक्षोपायेन तिर्यञ्चोऽपि गतामयाः। स्थिता मुक्ता भविष्यन्ति के नाम भूवि नो नराः २१ श्रषणाञ्जलिभिः पीत्वा ज्ञानामृतमिदं वयम्। परां पूर्णनवीभृतसिक्रयः श्रियमागताः॥ २२ इति श्रुण्वन्समां लोको विस्मयोत्कृञ्जलोचनः । कुसुमासारसंपूर्णा राजीवानां दर्द्श ताम्॥ मन्दार।दिमहापुष्पच्छन्नच्छादनसंचयाम् । पारिभद्रलतागुच्छनीरन्ध्राजिरभूमिकाम् ॥ २४

धीतं क्षालितम् । स्टिझ्र्भ्तैः प्राणिभिः सुधुंधुमं पुण्यशब्दम् । ध्माताः शङ्का यस्मिस्तथाविधं खमाकाशं सदनेन दशरथगृहेण समतामागात् ॥ १४ ॥ भुवनं जगद्धि मत्त उपचित उत्सवी यत्र तथाविधं सत् अर्थाद्वसस्य गृहेग समं तुल्यह्यं रेजे ॥ १५ ॥ दुन्दुभिषदेन तच्छन्दा लक्ष्यन्ते । तेषां सिद्धीय-वाक्यानां पुष्पाणां च भरः समं तुल्यकालं रोदस्योः रन्त्रे दिगन्ते शर्नः प्रययो, यथा अम्बुधी कहोलो वेलाचलं याति तद्वत् ॥ १६ ॥ विवुधानां संरम्भे पुष्पवर्षीद्योगकोलाहले । इमानि वश्यमाणानि ॥ १०॥ अस्माभित्रीख्याता अन्येभ्यश्च श्रुताः ॥ १८ ॥ अत्र यो गुणातिशयस्तमाहुः—तिर्थेश इति । मुनेविसिष्टस्यैतद्रन्थरूपेण वाक्यविलासेन श्रुतेन ॥ १९ ॥ भग-वतो वसिष्ठस्य श्रीरामे मुख्याधिकारिणि श्रेहातिशयं प्रशं-सति—देष्टान्तैरिति ॥ २० ॥ तिर्थधः पशुपक्ष्यादयोऽपि । भुवि नराः के नाम मुक्ता नो भविष्यन्ति यदि श्र**ण्वन्ती**खर्यः ॥ २१ ॥ २२ ॥ छोकः अयोध्याजनः इति एवंविधानि सिद्ध-वाक्यानि श्रव्वन् संस्तां राभां राजीवानां पद्मादीनां कुसुमासारैः संपूर्णो ददशे ॥ २३ ॥ पारिभद्रलता कल्पलताभेदः । मन्दा-

१ धनच्छादनेति पाठः.

३५

२६

२७

२८

३९

३०

38

३२

३३

३४

पारिजातप्रम्नाक्यमहीतलविराजिनाम्।
संतानकमहाम्भोद्याससभ्यहिरःकराम्॥
मौलिरक्षविटंकाप्रविधान्तहरिचन्दनाम्।
वारिप्रप्रसम्बाध्यदालम्बिवितानकाम्॥
इति प्रयन्सभां लोकः साधुवादेन भूरिणा।
तत्कालोचितवाक्येन तेन तेन तथोद्यतः॥
वसिष्ठं प्रयामास सर्वेन्द्रियगणानतः।
कुसुमाञ्जलिमिश्रेण प्रणामसहितेन च॥
नृपप्रणाममालासु किचिच्छान्तासु तास्यथ।
मुनिमाप्रयन्नाह सार्व्यपात्रकरो नृपः॥

दशरथ उवाच।

स्रयातिशयमुक्तेन परमेणात्मवस्तुना ।
परान्तः पूर्णतोत्पन्ना बोधेनाक्रम्धतीपते ॥
न तद्स्ति महीपीठे दिवि देवेषु वापि च ।
महित्किचिद्यद्माप्तं तव पूज्यस्य पूजनम् ॥
तथाप्यात्मक्रमं ब्रह्मक्षिमं नेतुमवन्ध्यताम् ।
अहं विच्म यथाम्राप्तं न कोपं कर्तुमहिलि ॥
आत्मना सकलत्रेण लोकह्मयशुमेन च ।
राज्येनाखिलभृत्येन भवन्तं पूजयाम्यहम् ॥
पतत्सर्वे तव विभो स्वायसं स्व इषाश्रमः ।
नियोजय यथादेशं यथामिमतयेच्छया ॥

वसिष्ठ उवाच । व्रणाममात्रसंतुष्टा ब्राह्मणा भूपते वयम् ।

रादीनि पश्चदेवतहमेदपुष्पाणि ॥२४॥२५॥ वारिपूरैः प्रसम्बेर-श्रेसुल्यं प्ररम्बाभ्रवत्युष्पभारारुम्बिनो वितानका यस्याम् ॥ २६ ॥ तेन तेन तत्कालोचितप्रशंसाबाक्येन तथा । उद्यत उद्युक्तः सन् वसिष्ठं पूजयामासेति संबन्धः ॥ २७ ॥ सर्वै-रिन्द्रियगणैरानतः प्रह्वीभूतः ॥ २८ ॥ अर्ध्यपात्रेण सहितः सार्ध्यपात्रः करो यस्य । नृषी दशरथः ॥ २९ ॥ हे अहन्ध-तीपते, लदुपदेशलब्धेन बोधेन परमेण निरतिशयानन्दरूपे-णारमवस्तुना अन्तःपरा सर्वेत्कृष्टा पूर्णता उत्पन्ना ॥ ३० ॥ एवमीटशपरमपुरुवार्थदातुस्तव पूजनं योग्यं यास्यासत्तादशं बखु महापीठे भनुष्येषु दिनि देवेषु अपि च पाताले वा नास्ति ॥ ३१ ॥ तथाप्यहमात्मनः खस्य अवश्यकर्तव्यमिमं शास्त्रलोकप्रसिद्धं यथाप्राप्तं गुरुपूजनक्रममवन्ध्यतां सफलतां नेतुं कि विद्विध्म प्रार्थयामि ॥ ३२ ॥ लोकद्वये भुवि खर्गे च भोगार्थ यन्मया संचितं शुभं मुकृतं तेन । अखिलाः सा-मन्ता मृत्या यस्मिस्तथाविधेन राज्येन । अखिलभृत्यवर्गेणेति पृथग्वा । भवते समर्पितेनेति शेषः ॥ ३३ ॥ मया तुभ्यं दत्तमेतत्सर्वे तव खायत्तम् । लं नियोजय खामी भूला भाइ।पय ॥ ३४ ॥ रा प्रणामी भवता कृत एवेलान्वयः ॥ ३५ ॥ पातुं रक्षयितुम् ॥ ३६ ॥ अत्र अस्मिन्परमपुरुषार्थ-

प्रणामेनैय तुष्यामः स एव भवता इतः॥ पातुं त्वमेव जानासि राज्यं भाति तवैव च। भवत्वेतत्त्रंवेह ब्राह्मणाः क महीभृतः॥ 36 द्शरथ उवाच। कियन्मात्रं तु राज्यं स्यादिति लज्जामहे मुने । प्रकर्षेणात्र तेनेश यथा जानासि तत्कुर ॥ Sep. याल्मीकिरुवाच । इत्युक्तवति भूपाले रामः पुष्पाञ्जलि ददत्। उवाच प्रणतो वाक्यं पुरस्तस्य महागुरोः॥ 36 निरुत्तरीकृतमहाराज ब्रह्मन्प्रणामि ते। प्रणाममात्रसारोऽहं रामः पावाविमी प्रभो ॥ ३९ इत्युक्त्वा पादयोस्तस्य शिरोवन्दनपूर्वकम्। तत्याजाअलिपुष्पाणि हिमानीव वनं गिरेः॥ ઇ૦ आनन्द्याष्पसंपूर्णनयनो नयकोविदः। गुरुं परमया भत्तया प्रणनाम पुनःपुनः ॥ धर राश्रुघो लक्ष्मणश्चैव तथान्ये तत्समाश्च ये। निकटस्थास्तथैवाद्य ते प्रणमुर्मुनीश्वरम् ॥ ४२ दूरप्रणामैर्दूरस्थाः पुष्पाञ्जलिसमीरणैः। राजानो राजपुत्राश्च प्रणेमुर्मुनयश्च तम्॥ ¥३ अस्मिन्नवसरे तत्र कुसुमाञ्जलिवर्षणैः । हिमैरिच हिमाद्रीन्द्रो मुनिरन्तर्धिमाययौ ॥ 88 अथ शान्ते सभाक्षोमे प्रणामनिचहे तथा। संसरञ्छासनं किंचित्सत्ये कृष्णसिताशयम् 34 मुनिः कुसुमराशि तं बाहुभ्यां प्रविचाल्य सः।

स्वरूपमोक्षदानोपकारे प्रत्युपकारतया राज्यं प्रकर्षेण किय-न्मात्रं स्मात् । मानुषानन्द्परमावधिर्हि निष्कण्टकवित्तपूर्णन निरामयसप्तद्वीपाधिपत्यम् । तदपेक्षया शतगुणौ मनुष्यगन्ध-र्वाणामानन्दस्तदपेक्षयापि देवगन्धर्वाणां स शतगुण इत्येवं क्रमेणोत्कृष्यमाणविषयानन्दानां हैरण्यगर्भानन्दः परमावधिः सोपि यस्मिन् मोक्षानन्दसमुद्रे सीकरप्रायस्तत्रेदं कियन्मात्रं क गणनाई स्वादित्यर्थः ॥ ३० ॥ तस्य महागुरोः पादयोः पुष्पाञ्चालि द्दत्सन् ॥ ३८ ॥ प्रणामेनैव तुष्याम इति लद्द-चनात्त्रणाममात्रं सारः सर्वेत्कृष्टतया आवश्यको यस्य ॥ ३९ ॥ यथा वनं गिरेः पादयोर्हिमानि पह्नवसक्तान्यवश्यायजलानि त्यजति तद्भत् ॥ ४० ॥ ४९ ॥ तत्समाः शत्रुव्रलक्ष्मणसदशा रामसखाः ॥ ४२ ॥ दूरस्थयोग्यैः प्रणामैः ॥ ४३ ॥ अन्त-धिमाच्छादनम् ॥ ४४ ॥ मुनीनां मान्यानां पुरतः स्वकृतं शासनमुपदेशात्मकं शास्त्रं सत्ये बस्तुनि विषये कृष्णाशयं बुद्धिमालिन्यप्रयुक्तं सदोवं, सिताशयं **खन्छबुद्धिप्रयुक्तनिर्दोवं** वा स्यादिति संदिहान इव स्वचित्रिण जनस्य विनयं शिक्ष-यितुं किंचिन्मुनिषु वध्यमाणप्रकारेण प्रष्टव्यं संसारन्सन् मुखं संदर्शयामासेति संबन्धः ॥ ४५ ॥ सितात्रात्सितात्राणि 8/9

86

४९

५०

५१

५२

५३

48

५५

५६

मुखं संदर्शयामास सिताभ्रादिव चन्द्रमाः॥ ४६ शान्ते सिद्धवचोराशौ तथा दुन्दुमिनिःस्वने । नभःकुसुमवर्षे च सभाकलकले तथा ॥ प्रणामानन्तरं तस्मिन्रामाधैः स्वसभाजने । शान्तवात इवाम्भोदे जने सौम्यत्वमागते॥ आकर्णयन्साधुषादं विश्वामित्रं मृदुस्वनम्। उवाचेदमनिन्धातमा चसिष्ठो मुनिनायकः॥ मुने गाधिकुलाम्भोज वामदेव निमे कतो। **मरद्वाज पु**लस्खात्रे घृष्टे नारद शाण्डिले ॥ हे भासभृगुभारण्डवत्सवात्स्यायनादयः। मुनयस्तु क्यमेतसु भवन्निर्महचः श्रुतम्॥ यदत्राचुदितं किंचित्तदनुप्रहतोऽधुना। दुर्यं विगतार्थं वा भवन्तः कथयन्तु मे ॥ सभ्या ऊचुः।

वसिष्टयचने ब्रह्मन्परमार्थेकशालिनि । द्ररथीं भवतीत्यद्य नवैव खलु गीः श्रुता ॥ यत्संभृतमनन्तेन जन्मदोषेण नो मलम् । तत्प्रमृष्टं त्वयेहाच हेस्रामिव हविभुंजा।। ब्रह्मचृंहितया वाचा विभो विकसिता वयम्। कुमुदानीन्दुदीरयेच परमामृतशीतया ॥ सर्वसत्वमहाबोधवायिनं मुनिनायकम्। भवन्तमेकान्तगुरुं प्रणमाम इमे वयम्॥ वास्मीकिरुवाच । इत्युक्त्या मुनिनाथाय नमस्त इति ते पुनः।

वदन्त एकशब्देन तारेणाब्दरवीजसा॥ 43 अर्वाक्पुष्पाञ्जलिवातैः खात्सिद्धैः सममुन्धितैः। विसष्ठं पूरयामासुर्हिमैरब्दा इवाचलम् ॥ 46 इत्थं दशरथं भूपं शशंसुस्थाथ राघवम्। माधवं चतुरात्मानं राघवोदन्तकोविदाः॥ 48

सिद्धा ऊचुः।

नमाम चतुरात्मानं नारायणभिवापरम्। रामं सम्रातरं जीवन्युक्तं राजकुमारकम्॥ ĜO चतुरब्धिनिखातान्तधरावलयपालकम्। त्रिकालस्थमहीपालचिह्नं दशर्थं नृपम्॥ ६१ मुनिसेनाधिपं भूपं भास्करं भूरितेजसम्। धसिष्ठं सुप्रवादाक्यं विश्वामित्रं तपोनिधिम् ॥ ६२ प्यामेष प्रभावेन ज्ञानयुक्ति परामिमाम्। श्रुतवन्तो वयं सर्वे भ्रान्तिसंरम्भनाशिनीम् ॥ ६३

बाल्मीकिरुवाच ।

इत्युक्त्वा गगनादिसद्धा भृयः पुष्पाणि चिक्षिपुः। समायामथ तूर्णी च तस्धुर्मुदितचेतसः॥ तथैव व्योमगाः सिद्धाः शशंसुस्तं जनं पुनः। तथैष सभ्यास्तांस्तत्र समानचुर्घनस्तवम् ॥ Eu नभश्चरा घरणिचरा मुनीश्वरा महर्षयो विबुधगणा ब्रिजा भूपाः। अपूजयित्रति जनमोजसैव ते गिरोचया सह कुसुमाध्येवानया ॥ **६६**

इस्यार्षे बासिष्ठमहारामायणे बा॰ दे॰ मो॰ नि॰ उ॰ साधुवादरावर्यादिवर्णनं नाम द्विशततमः सर्गः ॥ २०० ॥

निरस्य । स्थब्स्रोपे पश्चमी । चन्द्रमा इव ॥ ४६ ॥ ४५ ॥ सं सभाजयति प्रजयतीति स्वसभाजने जने सौम्यलयव्यव-तामागते सति ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ गाधिकलस्य यशःसीरभ-जनकलाद्वाधिकुलाम्भोज हे विश्वामित्र ॥ ५० ॥ भासो विप-खिदन्यो वा । हे मुनयः, भवद्भिर्भान्यैरेतन्मद्भचनं तुच्छं सदोषलारश्रुद्रमनुपादेयम् । नु इति वितर्के । एवं संभावया-मीखर्यः ॥ ५१ ॥ अतोऽत्र यत्किचिदनुचितं दुर्यं विगतार्थ निरर्थकं वा संभावितं तद्भुना सशिष्ये मध्यनुप्रहतो मे कथय-निखति भगवती विनयीक्तिळीके विनयशिक्षणार्थ, महर्षिवच-**नेन प्रन्यस्य निर्देशिताख्यापनार्थं च ॥ ५२ ॥ सभ्याः संबोधिता** गाधिस्रताचाः सुनय ऊच्छः। जगति काप्यप्रसिद्धलाभवैव गीबीणी श्रुता ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ब्रह्मणि वृंहितया विस्तारि-त्रया । इन्द्रदीसिपभे महासदशे आकाशे विस्तारितया ॥५५॥ एकान्तो नियमः । गुरुमेव नतु कुतश्चिदगुरुमिति अपरविद्या-गुरुभ्योऽस्योतकर्षकाष्टा सुचिता ॥ ५६ ॥ ते पुनर्नमस्ते इति बदन्तः सन्तः खादाकाशात्सिद्धैः समं खयमप्युज्यितैरवी-

क्युष्पाञ्जलिवातैर्वसिष्ठं पुनः पूर्यामामुः अचलं हिमवन्तमिब ॥ ५०॥ ५८ ॥ अथ दशरथप्रशंसानन्तरं चतुरात्मानं माधवं राषवं प्रशशंद्धः । यतस्ते राघवस्य विष्ण्ववतारत्ववृत्तान्तकोविदा इत्यर्थः ॥ ५९ ॥ ६० ॥ त्रिकालस्थानि कदाप्यनपायीनि महीपालचिह्नानि राजलक्षणानि यस्मिस्तथाविधं दशरथं नृपं श्रीरामञनकलास्वं धन्यतमोऽसीति पुनः प्रशशंसुः ॥ ६१ ॥ मुनिसेनायाः अधिपं खामिनं भूरितेजसं भास्करमित्र स्थितं विषष्ठं तत्संनिहितं विश्वामित्रं च प्रशशंद्धः ॥ ६२ ॥ एतेषां प्रशंसायां को हेतुस्तमाहुः-एषामेवेति । भ्रान्तिसंरम्भनाः शिनीं वसिष्ठवाणीमिति शेषः ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तान्सिद्धाः न्धनस्तवं बहुस्तवसिहतं यथा स्यासथा समानर्जुः ॥६५ ॥ नभक्षरा महर्षयो वियुधगणा धरणिचरा द्विजा नृपा उभयचरा मुनीश्वराध्व ते इति वर्णितप्रकारेण ओजसा खखसामध्यीनु-सारेण प्रतिजनं सह कुसुमांध्येदानया उच्चया गिरा अपूजयन् ॥ ६६ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्पर्यप्रकाशे नि-र्बाणप्रकरणे उत्तरार्धे द्विशततमः सर्गः ॥ २०० ॥

एकाधिकद्विदाततमः सर्गः २०१

वाल्मीकिरवाच । अथावीषसाधुवादेषु प्रशान्तेषु शनैःशनैः। क्रानोपदेशमासाय प्रोह्नसत्स्वय राजसः॥ प्रशान्तसंस्रुतिभान्ती जने चरितमात्मनः। स्वयं हसति चित्तेन सत्यं समन्धावता॥ २ वल्बित्तकलं बानसमास्वादनतत्परे। विवेकिनि सभालोके शान्ते ध्यानमिवास्थिते॥ ३ बद्धपद्मासने रामे सभातरि गुरोः पुरः। स्थिते कृताञ्जली दीसगुरुवक्रगतेक्षणे॥ 8 पार्थिवे किमपि ध्यानमिवास्वादयति स्थितिम्। जीवनमुक्तात्मिकामन्तरादिमध्यान्तपावनीम्॥ प्रहीत्मर्ची भक्तानां मानितार्थक्रनो मुनिः। तृष्णी भणमिव स्थित्वा प्रोवाचानाकुलाभरम् स्वकुलाकादाद्यीतांद्यो राम राजीवलोचन । किमन्यदिच्छसि श्रोतं कथयामिमतेच्छया॥ G स्थिति च कीरशीमेनामधानुभवसि स्वयम्। किरूपमिद्माभासं जागतं वद पश्यसि॥ इत्युक्ते मुनिना तेन प्राह राजकुमारकः। अविद्वलं मृद् स्पष्टं गुरोरालोकयन्म्खम्॥ ९ श्रीराम उवाच। रवरप्रसादेन यातोऽस्मि परां निर्मलतां प्रभो। शान्तारोपकलङ्काङ्कं शरदीय नभस्तलम् ॥ 80

> अत्र रामेण सूचोऽपि पृष्टेन गुरुणादरात् । पूर्णानन्दपदे स्वस्य विश्रान्तिः प्रकटीकृता ॥ १ ॥

अर्थाक् अधःसमाप्रदेशे ॥ १ ॥ आत्मनः स्वस्य धरितमहदशाचित्रं स्वयमेव सत्यं तत्त्वं समनुपावता सम्यक्पश्यता
वित्तेन इसित सित ॥ २ ॥ सभागते लोके जने वलन्ती
पराष्ट्रसा प्रत्यक्पप्रवणा चित्तकला चित्तवृत्तिर्यस्मिन्कर्मणि तथ्या
स्याल्या झानस्य चिदेकरसानन्दस्य सम्यगास्यादनतत्त्ररे जाते
सित ॥ ३ ॥ दीप्तं शोभमानं यहुरुवकं तद्भतेक्षणे ॥४॥ पार्थिवे
दशर्ये ध्यानमिवालम्ब्य जीवन्मुक्तात्मिकां स्थितिमास्याद्यति
सित ॥ ५ ॥ मुनिविसिष्टो भक्तानां राजादीनामर्वा पूजां प्रदीतुं
पूर्वोक्तरीत्या क्षणं तूष्णीमिव स्थिला तदनन्तरं प्रोवाच ॥६॥
॥ ० ॥ ८ ॥ ९ ॥ शान्ताशेषकल्यः पूर्णचन्दः अङ्कश्चिद्धं
यस्मित्तथाविधं नभस्तलमिव ॥ १० ॥ १९ ॥ स्फटिकालयमध्यस्थस्प्रटिक इय ब्रह्मभावविश्चद्धं जगित तैथाविधा
धीर्यस्य ॥ १२ ॥ आहर्तुं संपाद्यितुं चेत्यर्थः ॥ १३ ॥
परामशो विषयस्मरणं तद्भोगे कीतुकं तद्यीः संकल्पा इति
मेदः ॥ १४ ॥ अस्त्रं मानस्विषयालोचनरहितं अपुनवीधं

सर्वा प्रवोपशान्ता मे भ्रान्तयो भवभक्रदाः। स्वरूपेणावदातेन तिष्ठाम्यच्छमित्राम्बरम्॥ ११ स्थितोऽहं गलितप्रन्थिः शान्ताशेषविशेषणः। स्फटिकालयमध्यस्थस्फटिकामलधीरहम् ॥ १२ अन्यच्छोतुमथाहर्तुं शान्तं नेच्छति मे मनः। परां तृप्तिमुपायान्तं सुषुप्तमिव संस्थितम्॥ १३ शान्ताशेषपरामशे विगताशेषकीतुकम् । संत्यकाशेयसंकरपं शान्तं मम मुने मनः॥ १४ परिनिर्वामि शाम्यामि जाप्रदेव जगरिस्थती। अस्वप्रमपुनवां घं स्विपमीव निरामयम्॥ १५ आशाविधुरितामात्मसंस्थिति प्राक्तनीं तनी। प्रविहस्य स्फूरत्सुकैः स्वस्थस्तिष्ठाम्यसंशयम् १६ गोपदेशेन नार्थेन न शास्त्रैर्न ख बन्धुमिः। त्यागेन च न चैतेषामधुना मम कारणम् ॥ १७ साम्राज्यस्याथवा व्योम्नि या स्थितिः स्रोभवर्जिता। तामेवानुभवाम्यत्र मश्चित्तामनपायिनीम् ॥ १८ खादप्यतितरामच्छं चिदाकाशांशमात्रकम्। जगदित्येव पद्यामि लोचनाचङ्गतां गतः॥ १९ आकाशमात्रमेवेदं जगदित्येकनिश्चयः। दृष्यनाम्नि नभस्यस्मिन्क्षये जागर्मि चाक्षयः॥ यधाकामं यधाप्राप्तं यधास्थितमिव स्थितम् । यद्वकि तद्विधेन करोम्यपगतैषणम् ॥ २१

जाप्रदैन्द्रियकविषयाठीचनरहितं च स्वपिमीव । इवशब्दः धुषुप्तभानस्यापि मिथ्यालान्तुरीयावस्थितियोतनार्यः ॥ १५ ॥ आशामिर्विधुरितां विश्वलितां प्राप्तनीं तनौ देहे आत्मशुद्धा स्थिति प्रविहस्य स्फ्रुरद्भिभवत्स्कैरपदेशवाक्यैः साप्रतं खस्य-स्तिष्ठामि ॥ १६ ॥ अधुना मम उपवेशेन अर्थेन तस्त्रयुक्त-प्रयोजनान्तरेण । एतेषां सर्वेषां त्यागेन च कारणं प्रयोजनं नास्ति ॥ १७ ॥ मिन्तां प्रखगात्ममात्रप्रतिष्ठितिनितामनः पायिनी नित्यां जीवन्मुक्तरियतिं व्योम्नि खर्गे साम्राज्यस्य असुरादिक्षोभवर्जिता या स्थितिस्तामेवानुभवामीति लोकह-शोकिः ॥ १८ ॥ अहं बहिर्दशालीचनावज्ञकादक्रतां गतीऽपि जगत् खादप्यतितरामच्छं चिन्मात्रमित्येव पर्यामि नामवजा-डमिलार्थः ॥ १९ ॥ अस्मिन् जगति क्षये मोहनिद्रया सह बाधिते सति अक्षयोऽहं सदैव जागार्मे ॥ २० ॥ भाविकार्य यथाकामं वर्तमानकार्ये यथाप्राप्तं प्रागवहिथतं कार्ये त यथा-स्थितं यद्भवान्वक्ति तदहमपगतैषणं फलाभिसंधिरहितं गुरु-शास्त्रानुसारेण करोमि । पाठान्तरे खकार्यविषये यथाकामं यथारम्भम् । परकार्यविषये यथाप्राप्तं यथास्थितम् ॥ २९ ॥

१ बहिर्द्शा लोचनादीन्यक्षानि यसां तादशीं स्थिति गतोपीत्यर्थः । २ अक्षमाविश्चादेत्यर्थः ।

३ 'यथाकामं यथारम्भं यथाप्राप्तं यथास्थितम्' इत्येवंरूपे.

न तुष्यामि न इष्यामि न पुष्यामि न रोदिमि। कार्यं कार्यं करोम्येको भ्रान्तिर्दुरं गता मम ॥ २२ अन्यतामेतु सर्गीयं षातु बाव्रख्यानिलः। सौम्यो भवतु वा देशः खस्योऽहं स्वात्मनि स्थितः विभ्रान्तोसि विलक्ष्योसि दुर्लक्ष्योसि निरामयः। नाशामिर्वन्धमाप्रोमि मुने खमिव मुष्टिमिः॥ यथा तरुगतात्युष्पाद्गन्धः प्राप्य नभःपद्म्। तिष्ठत्येवमहं देहादतीतः संस्थितः समः॥ 24 यथैष सर्वे राजानो विहरन्ति यथासुखम्। अप्रबुद्धाः प्रबुद्धाश्च राज्येषु बहुकर्मसु ॥ રેંદ शान्तहर्षविषदाशः स्थिरकसमदर्शनः। स्थित आत्मनि निःदाङ्कं तथैव विहरास्यहम् ₹:9 सर्वस्रोपर्यपि सुखी सुखं नेहामि मे प्रभी। जनसाम्येन तिष्ठामि यथेच्छं मां नियोजय ॥ २८ बालो लीलामित्र त्यक्तशङ्कं संसारसंस्थितिम । याबद्देहमिमां साधो पालयाम्यमलैकद्दक् ॥ भुजे पिबामि तिष्ठामि पालयामि निजिकयाम्।

जातोऽहं विगताशङ्कस्त्वरप्रसादान्मुनीश्वर ॥ ३० श्रीराम उवाच।
अहो यत महापुण्यं पदमासादितं त्वया ।
अनादिमध्यपर्यन्तिमदं यत्र न शोच्यते ॥ ३१ सम्यक्समसमाभोगे शीतले स्वात्मनि स्वयम् ।
नभसीय नभः शान्ते विश्वान्तिमसि लब्धवान् ३२ दिख्या जातो विशोकस्त्वं दिख्या सम्यगवस्थितः।
दिख्या लोकह्रयेऽनर्थशङ्का ते शममागता ॥ ३३ दिख्या रघूणां तनय संज्ञः पावितवानसि ।
भूतभव्यभविष्यस्यां वोधेन कुलसंततिम् ॥ ३४ अधुना मुनिनाथस्य विश्वामित्रस्य राघव ।
पूरियस्वाधितां भुकत्वा पित्रा सह महीमिमाम् ३५

त्वयान्विताः सतनयभृत्यबान्ध्रयाः पदातयः सरथगज्ञाध्वमण्डलाः । निरामया विगतभयाः स्थिरश्रियः सदोदयाः सुभग भवन्तु राघवाः॥ ३६

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मो० नि० उ० विश्रान्तिप्रकटीकरणं नामैकाधिकद्विशतत्तमः सर्गः ॥ २०९ ॥

द्यधिकद्विशततमः सर्गः २०२

8

वान्मीकित्वाच ।

एतच्चुत्वा वसिष्ठस्य वचः संसदि पार्थिवाः ।

सिका इवामृतापूरेरन्तःशीतल्यां ययुः ॥

रामः कमलपत्राक्षो रराज वदनेन्द्रना ।

क्षीरोद इव संपूर्णः सुधापूरेण चाठणा ॥

न तुष्याम्यन्तर्मनसि न हृष्यामि । न पुष्यामि बहिदेंहे इष्ट-प्राप्त्या। एवमनिष्टप्राप्त्या न रोदिमि। कार्यमवद्यकर्तव्यं छौकिकं वैदिकं च कार्यं करोमि ॥ २२ ॥ एवंस्थितस्य ममाहासिमतैर्बन्धुधनराज्यादिनाशैर्दशाविनिमयैर्वा त्राप्तिशकास्त्रीत्याशयेनाह् --अन्यतामिति । सीम्यः सोममा-र्गबन्छून्यो वा भवतु । खस्थो निर्विक्षेपः ॥ २३ ॥ विलक्ष्यो बाह्येन्द्रियेरछक्यः । मनसापि दुर्छक्यः । आशामिस्तृष्णाभिः ॥२४ ॥ देहे अभिव्यक्तस्य देइमतीस्यावस्थाने दृष्टान्तमाह--यथेति । समः अस्य पुष्पस्य देहस्य वायमिति विशेषयितुमः शक्यलात्साधारणः ॥ २५ ॥ तर्हि लमग्रे कथं क इव व्यवहरिष्यसि तत्राह--यथैवेति ॥ २६ ॥ अप्रबुद्धेभ्यो विशे-षमाइ--शान्तेति ॥ २७ ॥ सर्वस्य विषयैश्वर्यानन्दस्योपरि त्रझानन्देनाहं सुखी। अतएव मे देहे विषयसुखं नेहामि नेच्छामि । नियोजयस्य सेवादिविषये आज्ञापय ॥ २८ ॥ अहं मानदेहं बालः सवयोनुह्यां लीलां कीडामिव यथाप्राप्तां संसा-रसंस्थिति पालयामि ॥ २९॥ ३०॥ यत्र पदे स्थितैर्न शोच्यते । भावे लः ॥ ३९ ॥ ३२ ॥ स्रोकद्वये इद्दलोके पर- बामदेवादयः सर्वे तस्वज्ञानविशारदाः।
अहो भगवता ज्ञानमुक्तमित्यूचुरादरात्॥ ३
शान्तान्तःकरणो राजा मुदा दशरथो बभौ।
तुष्टयेव संप्रहृष्टाङ्गो नवां द्यतिमुपागतः॥ ४

लोके च दृष्टादृष्ठश्रुतानर्थशङ्का ॥ ३३ ॥ तनये ति प्रीत्यतिशयेन संबोधनम् । सम्यग्जानातीति संज्ञ आत्मतत्त्ववित्सन् रघूणां भूतभव्यभविष्यस्यां कुलसंतिति बोधेन पावितवानित ॥ ३४ ॥ अर्थितां यज्ञविष्ठपरिहारार्थिताम् । पित्रा सहेति जीवत्येव पितरि तदाश्चया राक्षसवधेन महीं पालयित्वेत्याशयः ॥ ३५ ॥ हे सुमग, लया अन्विताः संगताः सतनयाः पुत्रपीत्रमहिता मृत्यबान्धवाश्च सर्थगजाश्वमण्डलाः पदातयश्चेति द्विविधा अपि जना निरामयाः शरीरे विगतभयाश्चिले सदोदया गृहेषु भवन्लित्याशीः प्रार्थना वा ॥ ३६ ॥ इति भीवासिष्टमहारामयणतारपर्थप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे प्काधिकद्विन्धात्वसमः सर्गः ॥ २०१ ॥

प्रबोधहष्टा राजानी रामश्राग्रीपवर्णिताः । रामेण च स्थितिः स्वीया निर्मृष्टा ज्ञाननिर्मेला ॥१॥ पार्थिवग्रहणं सर्वेजनोपलक्षणम् ॥ १ ॥ सुधानिः पूर्वेत इति सुधापूरः पूर्णचन्द्रस्तेनोदितेन क्षीरोद इव ॥ २ ॥ अहो आश्वर्थभूतमुक्तम् ॥ ३ ॥ तुष्ट्या संतोषातिशयेन संप्रहृष्टाजो

१ तिष्ठेति शेष:. २ रधुकुलसंबन्धिनी भृत्यादय:.

श्वातक्षेयेषु बहुषु साधुवादकथास्वध ।
उवाच गिलताक्षानो रामो वाक्यमिदं पुनः ॥ ५
श्रीराम उवाच ।
भगवन्भूतभग्येदा स्वयासाकमलं मलम् ।
संप्रमृष्टमिदं हेसः द्यामत्वमिव विह्ना ॥ ६
अभूम वयमात्मीयकायमात्रदशः पुरा ।
प्रभो संप्रति संपन्ना विष्वित्वश्वावलोकिनः ॥ ७
स्थितोऽस्मि सर्वसंपूर्णः संपन्नोऽस्मि निरामयः ।
जातोऽस्मि विगताद्दाङ्गो बुधो जागर्मि संप्रति ॥ ८
आनन्दितोस्म्यखेदाय सुखितोस्मि विराय च ।

स्थितोऽनस्तमयायेष शाश्वताथोंदयो मम ॥ ९ अहो बत पवित्रेण शितेन झानवारिणा ।
त्वया सिक्तोसि इच्यामि पद्मवकृदये स्वयम् १०
इयमद्य मया लब्धा पद्मी त्वत्रसादतः ।
यस्यां स्थितस्य मे सर्वममृतत्वं गतं जगत् ॥ ११
अन्तः प्रसन्नमतिरस्तसमस्तशोकः
शोभां गतोऽहममलाशय प्व शान्स्या ।
आनन्दमात्मिन गतः स्वयमात्मवैष
वर्मस्यमभ्यूपगतोऽस्मि नमोस्तु महाम् १२

इत्यावें श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० नि० उ० आत्मविश्रामाङ्गीकरणं नाम व्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०२ ॥

त्र्यधिकद्विदाततमः सर्गः २०३

રૂ

4

वान्मीिक हवाच ।
इत्थं विचारपरयोर्मुनिराध वयोस्तयोः ।
भारकरः श्रवणायेव व्योममध्यमुपाययौ ॥
तीक्ष्णतामाजगामाशु सर्वदिक्षमथातपः ।
पदार्थौध विकासार्थ रामस्यव महामितः ॥
उत्फुल्लहृद्वयाम्भोजस्फाराकारतया तदा ।
छीलाप बाकरा रेजुस्तत्रस्थाः पार्थिवा इव ॥
जालं मुकाकलापानन्तरमाक्षान्तभासकरम् ।
मनतेव तरद्योम विक्षानश्रवणादिव ॥
पुरुष्कु एषारागेषु लग्नाक्षत्रकणित्वषः ।
भासो व्योमतलो द्वीना धियो क्षानकला इव ॥
एवं निर्वृतिमायातं रामे स्वकुलकै रवे ।

रोमाश्वितगात्रः ॥ ४॥ बहुषु साधुवादकथासु प्रवृत्तासु सतीषु ॥ ५॥ मलमझानम् ॥ ६॥ कायमात्रहशो देहपरिच्छित्रात्मरप्टयः । विश्वावलोकिनः सर्वात्मदर्शिनः ॥ ७॥ सर्वः सन्
सेपूर्णः ॥ ८॥ मम शाश्वतस्यार्थस्य परमपुरुषार्थस्य उदय
आविभाविऽभूदिति शेषः ॥ ९॥ पद्मवच्छारदान्जवत् ॥१०॥
पद्वी साम्राज्यपदवी॥ ११॥ अन्तः प्रसमा मतिर्थस्य ।
अत एवास्तमस्तशोकः । यतोऽहं शान्सा सकार्यभूलाझाननाशेनामछाशय एवात्मिन आनन्दं गतः । आत्मनेव सम्यक्परीक्ष्य दष्टेन स्वतःसिद्धनैर्मत्यमभ्युपगतोऽस्मि । अतो
मह्मभेष नमोस्त्रिल्ल्यः॥ १२॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतास्पर्यमकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे स्वधिकद्विशसत्तमः
सर्गः ॥ २०२॥

मध्याद्वतूर्वधोषोऽत्र दिनकृष्यं निशाकमः ।
प्रातः सभायां रामस्य निःसंदेहस्य वर्ण्यते ॥ १ ॥
इत्थं विचारपरयोः सतोः । भावलक्षणे सप्तनीदिवचनम् ।
अर्थात्तदुभयविचारश्रवणायेवेत्युत्प्रेक्षा ॥ १ ॥ सर्वाद्ध दिक्ष्वित्तः
सवैदिकम् । पदार्थोषस्य विकासः स्फुटदर्शनम् ॥ २ ॥

मुनीन्द्रवद्नालोकात्सविकासमिव स्थिते॥ £. रवावीवीपमे ब्योम महाब्धेर्नामितां गते। तेजःपुञ्जलसङ्ग्वाले समग्ररसपायिनि ॥ S नभोनीहोत्पले नीले गलद्रजिस राजति। घर्माग्रुकणिकाकान्ते स्फुरत्किरणकेसरे॥ 4 अवतंसे जगलक्षम्यास्त्रिलोकीकर्णकुण्डले। अन्तर्लीनस्फुरसारारसराजिविराजिते॥ ¢ दिग्वधिमर्शृहच्छुङ्गपाणिमिर्मुकुरेष्विष । धतेषु तापमिश्रेषु महाश्रेषु निरम्बुषु ॥ ८० सूर्यकान्तवरोत्थेन वहिनेव समेघिते। द्विगुणं प्रज्वलत्यर्कशून्ये गगनधामनि ॥ ११

लीलापद्माकरा उद्यानतटाकाः । तत्रस्थास्तत्सभास्याः । पार्थि-वप्रहुणं सर्वजनोपलक्षणम् ॥ ३ ॥ मुक्ताकलापा अनन्तरा अन्यवधानस्विता यसिम्हायाविषं स्फटिकवातायनजासर्कं प्रतिविम्बभावेनाकान्तः संकान्तो भास्करो यसिस्तयाविधे सद्दीस्यतिशयेन व्योम तरत् प्रवमानमिव सत् ननर्तेव । वसि-ष्ठोपदिष्टविज्ञानश्रवणाद्योम ब्रह्माकाशं तरदिवेखनुभववमत्का-रिणी उत्प्रेक्षा ॥ ४ ॥ पद्मरागेषु स्वमस्यार्कस्य तरुणलिषो भासः प्रतिबिम्बकान्तयः । यथा खच्छया धिय उपदेशक्कान-कठाः स्फुरन्ति तद्वत् ॥ ५ ॥ भुनीन्द्रवद्नस्य आलोकयोगा-त्केरविकासकलाचानुकापि चन्द्रता गम्यते ॥ ६ ॥ और्वी-पमे वडवाग्निसहरो । तत्साम्यमेव विशेषणैदपपाद्यते ॥ ७ ॥ एवं नभसो नीछोत्पछलमपि विशेषणैरुपपायते नम इसा-दिना। धर्माश्चः सूर्यसाहक्षणया कर्णिकया कान्ते ॥ ८ ॥ अवतंसे इत्यन्तमुत्पलोत्प्रेक्षा । त्रिछोकीकर्णकुण्डले इत्युत्प्रेक्षान न्तरम् । अन्तर्कीनेति तदुपपादकस् ॥ ९ ॥ दिग्वधूमिनृहिहि॰ रिश्वज्ञस्त्रणेः पाणिसिर्महाश्रेषु मुक्करेष्विव धृतेषु सरस् तापै-रातपैभिन्नेषु संमिन्नेषु विभक्तेषु वा ॥ १०॥ अर्कसन्वेडिप

| विनेदुमेदुरोद्दाममुखमारुतपूरिताः। | |
|--|------|
| मध्याहराङ्काः कस्पान्तवातपूर्णा श्वाणवाः॥ | १२ |
| प्राह्मयश्रीरिवाक्नेषु घर्मश्रीर्धदनेष्विव । | |
| चकार पदमाकीर्णशुद्धमुकाफलोपमा ॥ | १३ |
| गृहमित्तिपरावृत्ता सत्वसंरम्भमांस्ला। | |
| शब्दश्रीः पूरयामास कर्णमणे इवार्णवम्॥ | १४ |
| पुरम्ध्रीमिर्निदाघौघशान्तये समुदीरिता। | |
| उल्लेखास नवा पाण्डुकर्पूरजलदाविलः॥ | १५ |
| स राजा सहसामन्तः सभूपः सपरिच्छदः। | |
| सवसिष्टः समुत्तस्थौ सहरामः स संसदः॥ | કૃદ્ |
| राजानो राजपुत्राध्य मिल्लाम मनुयस्तथा। | |
| अन्योन्यं पूजिता जग्मुमुंदिताः स्वं निवेशनम् | १७ |
| अन्तःपुरगृहाभेषु तालवृन्तानिलाहतैः । | |
| कर्प्रधृलिमिरभूभवैचाम्बुदमालिका ॥ | १८ |
| अथ मध्याहतूर्याणां रवे स्पूर्जिति भित्तिषु। | |
| उवाच वचनं याक्यकोविदो मुनिनायकः॥ | १९ |
| सर्वमेव श्रुतं श्राब्यं क्षेयं क्षातमरोपतः। | |
| त्वया राघव भो नास्ति ज्ञातव्यमपरं वरम्॥ | २० |
| यथा मयोपदिष्टोऽसि यथा पश्यसि शास्त्रतः। | |
| यधानुभवति श्रेष्ट्रमेकवाक्यं तथा कुरु॥ 💎 | २१ |
| उत्तिष्ठ तावत्कार्याय वयं स्नातुं महा्मते । 💎 | |
| मध्याह्मसमयोऽस्माकमयमङ्गातिवर्तते ॥ | २२ |
| अपरं यत्त्वया भद्र स्वाकाङ्काविनिवृत्तये । | |
| प्रष्टव्यं तच्छुभं प्रातः प्रष्टव्यं भवता पुनः ॥ | २३ |
| वाल्मीकिस्वाच । | |
| इत्युक्ते मुनिनाथेन राजा द्रारथः स्वयम्। | |
| पुजयामास तान्सभ्यान्सर्वान्साधून्सपर्वया॥ | રક |

गगनधामनि सूर्यकान्तश्रेष्ट्रेभ्यः उत्थितेन वहिना समेथिते अकीपेक्षया द्विगुणमिय प्रज्वलति सति ॥ ११ ॥ १२ ॥ षर्मश्रीः खेदविन्दुशोभा जनानां वदनेषु पदं चकार ॥१३॥ गृह्मितिष्वभिषातात्प्रतिष्वन्यात्मना परावृत्ता । सलानां प्राणिनां कार्यलराशस्य संरम्भेमीसला पुष्टा । अणी वृष्टिनदीज-समर्गविमिव कर्ण पूर्यामास ॥ १४ ॥ सक्पूरजलसेकलक्षणा बलदाबलिः ॥ १५ ॥ मण्डलदेशाधिपत्यभेदारसामन्तभूपयो-र्नेदः । संसदः सभायाः ॥ १६ ॥ १७ ॥ गृहात्रेषु गृहसुखेषु ॥ १८ ॥ स्फूर्जिति अभिषातेन वर्धमाने ॥ १९ ॥ २० ॥ गुक्पदेशवेदान्तादिशाख्यानुभवानामविसंवादायैकार्यनिष्ठता-सक्षणा एकवाक्यता कार्येत्याह--यथेति ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रष्टव्यं प्रश्नार्हमित चेत्तत्प्रातरवश्यं प्रष्टव्यं नोपेक्षितव्यमित्यर्थः ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ कांश्विन्मणिमुक्तागणनिष्क्रियभूतेनार्ये-न धनेन । कांश्रित् प्रत्यक्षमणिमुकाप्रदानेन ॥ २६ ॥ कन्या-विप्रदानेन ॥ २७ ॥ २८ ॥ सभया सभास्थेन अनेन सह ॥ २९ ॥ ससंरम्भः सल्ररः स सभाया उत्थानसमयः समी-

| सह रामेण धमोत्मा मुनिविप्राभृपांश्च सः। | |
|--|-----|
| वसिष्ठाशुपदिष्टेन ऋमेण ब्योमगांस्तथा ॥ | २'- |
| मणिमुक्तागणार्थेन दिब्येन कुसुमेन च। | |
| मणिरस्नप्रदानेन मुक्ताहारार्पणेन च ॥ | २६ |
| प्रणयेन प्रणामेन प्रदानेनार्थशालिना। | |
| वस्त्रासनाम्नपानेन कनकेन तथा भुवा॥ | ર૭ |
| धूपेन गन्धमाल्याभ्यां यथोदितमनिन्दितः। | |
| पूर्वान्संपूजयामास सर्वानेव महीपतिः॥ | 24 |
| अधोत्तस्यो सभामध्यात्सभया सह मानदः। | |
| सवसिष्टादिदेवर्षिः सायमिन्दुरिवाम्बरात्॥ | २२ |
| स सभोत्थानसमयः ससंरम्भो व्यराजत । | |
| जानुद्रमसुरोन्मुकपुष्पसंजातकर्दमः॥ | ३० |
| संघट्टाघट्टकेयूररहान्यूर्णारुणावनिः। | |
| क्रिश्वहारस्पुरन्मुकाताराजितनिशाम्बरः॥ | ३१ |
| देवर्षिमुनिविप्रेन्द्रपार्थिवस्पन्दसंकुलः। | |
| व्यप्रभृत्याङ्गनाहस्तकेशचष्ट्रत्वामरः॥ | ३२ |
| शानप्रमेयीकरणस्पन्दमानो न दारुणः। | |
| शिरःकरत्रिनयनजिह्नेष्वेव विराजितः॥ | ३३ |
| परस्परमथापृच्छ्य पूजिताः पेशलोक्तयः। | |
| राजानो मुनयश्चेव सर्वे दशर्थादयः॥ | રુક |
| स्वाश्रमान्साधवो जग्मुस्तुएक्षिग्धादाया मिथः | 1 |
| छोकसप्तकवास्तव्या देवाः शक्रपुरादिव ॥ | 3'1 |
| अन्योन्यं प्रणयात्सर्वे पूजियत्वा यथाक्रमम्। | |
| तद्विसृष्टा स्वमागत्य गृहं चकुर्दिनिकयाम्॥ | इद |
| अथ सर्वे चसिष्ठाद्यास्तथा दशरथादयः। | • • |
| चकुर्दिवसकार्याणि राजानो मुनयस्तथा॥ | E F |
| | |

त्थानसमयसहितः, ससंरम्भ इति वा ॥ ३० ॥ तमेव वर्ण-यति-संघट्टेलादिना । संघट्टी घर्षणं आघटः परस्परमाघात-स्ताभ्यां केयूररक्रचूर्णैः अरुणावनिः । छिन्नहारेभ्यः स्फुरन्ती-भिर्मुकाताराभिर्जितं निशाकालप्रसिद्धं सनक्षत्रमम्बरं येन ॥३१॥३२॥ तर्हि किं सर्वजनानां स्वार्थप्रवृत्तिलरया दुर्वलपरो-पमर्दाहारूणो नेत्याह--कानेति । वसिष्ठोपदिष्टस्य दानस्य मन-नादिना भूमिकाक्रमेण प्रमेथीकरणार्थमेव स्पन्दमानी नाम्य-खार्थ खरयेति हेतोर्न दारुणः । किंच कदाचिदीषदक्षघटनेपि परस्परक्षमापणार्थे शिरःकराः शिरसि बद्धाञ्जलयो ये पुरतः पार्श्वयोधिति त्रिषु भागेषु अवजोकनाय क्षमापणाय च प्रवृतं नयनजिद्धं येषां तथाविधारतेष्वेष सर्वजनेषु विराजितो न प्रमत्तनिष्ठुरजनविसंष्ठुल इति न तत्र परपीडादिदोषलेशस्यापि प्रसिक्तिरित्यर्थः ॥ ३३ ॥ पेशला मृतुमधुरा उक्तयो येषाम् ॥ ३४ ॥ मिथः परस्परं गुणस्पृह्या तुष्टः क्रिग्धः केह्युकाध आशयो येषाम् । शऋपुरादेवा इवायोध्यातो छोकससकवा-स्तब्या जग्मः ॥ ३५ ॥ दिनिकयामाहिकम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

यथाप्राप्तं क्रियां तेषु कृतवत्स्वथ दैवसीम्। क्रमेणाकाशपथिको भास्करोऽस्तम्पाययौ ॥ 36 तयैव कथया तेषां रामस्य च महामतेः। प्रबोधवरातः शीघं सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ 36 उत्सारिततमः पांसुताराकुसुमनिर्भरम् । भवनं भवनीक्षवेशाजगाम दिवाकरः॥ 80 करवीरकुख़म्भाभैः करैररुणयन् दिशः । विवेश गगनाम्भोधिमथ बालदिवाकरः॥ 88 राजानो राजपुत्राश्च मन्त्रिणो मृनयस्तथा। बसिष्ठाचाः समाजग्मः पुनर्दाशरथीं सभाम् ॥ ४२ यथाक्रमं यथासंस्थं यथादेशं यथासनम्। सा विवेश सभा तत्र धिष्णयश्रीरम्बरे यथा॥ ४३ ततो द्वारथाचेषु सुमन्त्रादिषु वाप्यलम् । वसिष्ठं संप्रशंसत्सु मुनिमासनसंस्थितम्॥ કક वसिष्ठस्य पितुश्चाप्रे राजीवदऌलोचनः । उवाच राघवो धीमान्मृतुवर्णमिदं चचः॥ છપ श्रीराम उवाच । भगवन्सवेधमेश्च सर्वज्ञानमहार्णव।

सर्वसंदेहपरशो परशोकभयापह ॥ ४६ श्रोतव्यमपरं किं में विद्यते वेद्यमेव वा। श्रोतव्यं विद्यते यद्वा तत्सर्वं वक्तमहिस ॥ ४७ विस्तप्र उवाच।

राम संप्राप्तवुद्धिस्त्वं श्रोतव्यं ते न विद्यते । कृतकृत्या तवेषा धीः प्राप्तप्राप्या स्थितात्मनि ४८ त्वमेव तावत्कथय प्रविचार्य धियात्मना । कीदशोऽद्य भवानन्तः किंशेषं श्राव्यमस्ति ते ॥ ४९

श्रीराम उवाच।

ब्रह्मस्वमहं मन्ये यथाहं एतकृत्यधीः।
निर्वाणोस्मि प्रशान्तोस्मि नाकाङ्का मम विद्यते ५०
वक्तव्यमुक्तं भवता क्षातं क्षेयं मयाखिलम्।
तव विश्रान्तिमायानु कृतकृत्या सरस्वती॥ ५१
अधिगतमधिगम्यं क्षेयमामुं मयेदं
विगतमखिलमेक्यं द्वेतमस्तं प्रयातम्।
परिगलितमशेषं दृश्यभेदावभानं
ननु निपुणमपास्ताशेषसंसारितास्था ५२

इत्यार्षे वातिष्ठमहारामायणे वा० मो० निर्वा० उ० निर्वाणवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०३ ॥

चतुरधिकब्रिशततमः सर्गः २०४

बसिष्ठ उवाच । भूय पत्त महाबाहो भ्रणु मे परमं वनः । आदर्शो राजतेऽत्यर्थ पानःपुन्येन मार्जितः ॥ अर्थो वेदनसंकेतः राज्दो जलरवोपमः । इदयमेतिबिदामानं स्यप्तवस्वासवज्ञगत् ॥

दैवसी दिवससंबिन्धनीम् ॥ ३८ ॥ प्रबोधो जागरणं तद्वशतः ॥३९॥ प्रातर्ग्रहसंमार्जनेनेव उत्सारितास्तमःपांसवस्ताराकुष्ठमनिर्भराश्व यस्मिस्तथाविधं भुवनं जगद्भवनं गृहमिव परिष्कुर्यन्
॥ ४० ॥ ४९ ॥ ४२ ॥ धिष्ण्यश्रीदेविधिष्ण्यभूतनक्षत्रशोभा
॥ ४३ ॥ वसिष्ठं संप्रशंसत्सु स्तुवत्सु ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ परेषां वात्रूणामपि शोकभयापह ॥ ४६ ॥ यदि विद्यते तिर्हं तद्वकुमर्ह्स ॥ ४० ॥ ४८ ॥ अद्य भवान् स्वानुभवेन फीटशः । ते शिष्यत इति शेषं श्राव्यमवद्यश्रोतव्यं किमस्तीति स्वमेव वदेस्वर्थः ॥ ४९ ॥ ५० ॥ विश्वान्तिमुपरमम् । सरस्तती वाणी
॥ ५९ ॥ अस्ति जगदैवयं ब्रह्मैकरस्यं विशेषेण गतं विगतम् । देतं जीवब्रह्ममेदः । यतस्तदुपाधिभूतं दश्यभेदावभानं परिगलितम् । तदिप कृतस्तत्राह—निवति । यतो मया संसारितास्था निपुणं विचार्य अपास्ता स्वर्कस्यः ॥ ५२ ॥
इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतास्वर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे स्वराधं स्वश्वकद्विष्ठासस्यः सर्गः ॥ २०३ ॥

जामहै स्वमसंदृष्टः स्मरणात्म स्थितं पुरः।
संविद्वेदनमात्रं सत्त्रद्याकारवत्ततम्॥ ३
यथाव्छं संविदाकाशं मिय स्वमपुरात्मकम्।
सक्षमिप नीक्षं तथेदं भुवनत्रयम्॥ ४

निष्कृष्टयुक्तया भूयोऽत्र दश्यं चिति विमार्ज्यते । वसिष्ठेन च रामेण चिदारमपरिशुद्धये ॥ १ ॥

परमं युक्तिसंक्षेपेण स्कुटं दश्यमार्जनोपायोपदेशिलादुत्कृष्टम् ॥ १ ॥ रूपं नाम चेति हि द्विषिषं दश्यं, तत्राद्यमार्जनोपायमाह—अर्थ इति । जातिगुणिकयासंस्थानाति हि चतुविधानां शब्दानामर्थः । यथा गीनींठा नपला भद्राख्येति । ते
चैकस्मिन्नेवार्थे व्यावर्त्यमेदाधीनमेदकल्पनरूपाः शब्दमेदप्रश्वति । ते
चैकस्मिन्नेवार्थे व्यावर्त्यमेदाधीनमेदकल्पनरूपाः शब्दमेदप्रश्वति ।
निमित्तत्या कल्पिता आन्तिवेदनसंकेता एव न वास्तवाः । निह्
तत्र वस्तुचतुष्ट्यमस्तीत्यर्थमार्जनमित्यर्थः । द्वितीयमार्जनोपायमाह—शब्द इति । अर्थे मार्जिते निर्धकः शब्दो जलब्दनिसदशः सन्नामतां व्यजन्नर्थतामवापनस्तन्मार्जनेनेव मार्जित
इत्येतद्विधमपि दश्यं चिदाभानमात्रं स्वप्नविति सिद्धमित्यर्थः
॥ २ ॥ यदा जाप्रदेव मिथ्या तदा सैव स्वप्रसंदृष्टार्थः संस्कारमुखेन संपद्यते तत्र स्मरणमिव आत्मा अर्थश्चन्यरूपं पुरःस्थितमिति संविद्वेदनमात्रमेव सत्तद्व्याकारवत्ततं न तत्रापि
संविद्यतिरिक्तं किस्वदस्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥ तथा चोभयोद्धस्य-

9

१०

११

श्रीराम उवाच । संपन्नेयं कथं भूमिः संपन्ना गिरयः कथम् ।

कथं संपन्नमम्भश्च संपन्ना उपलाः कथम्॥ कथं च तेजः संपन्नं संपन्ना च कथं किया। कथं च कालः संपन्नः संपन्नः पवनः कथम्॥

कथं च शून्यं संपन्नं संपन्नं चिन्नभः कथम्। इति क्षातं मया भूयो बोधाय वद मे प्रभो॥

वसिष्ठ उवाच।

मूहि राघव तस्वेन स्वप्तदृष्टमहापुरे ।
संपन्ना भूः कथिमव संपन्नं कथमम्बरम् ॥
कथं वारि च संपन्नं संपन्ना उपलाः कथम् ।
कथं च तेजः संपन्नं संपन्नाश्च कथं दिशः ॥
संपन्नश्च कथं कालः संपन्ना च कथं किया ।
कथमेनिन्नं मित्तादि सर्वं संपन्नमुच्यताम् ॥
केनेदं निर्मितं दग्धमानीतं रचितं चितम् ।
उत्पादितं प्रकटितं किमाचारं किमात्मकम् ॥

श्रीराम उवाच।

आत्मास्य केवलं ब्योम न सद्भ्यवलादिकम्। जगतः स्वमक्रपस्य निराकारो निरास्पदः॥ १२ आत्मैव ब्योमक्रपोऽस्य निराधारो निराकृतिः। विनाकृतेवां ब्योस्नोऽस्य किमाधारेण कारणम् १३ न किंचिरेतत्संपन्नं सद्ययतन्न संविदः। पतिबत्कचनं नाम मन पव तथा स्थितम्॥ १४ दिकालाधन्न चिद्धानं चिद्धानमचलादिकम्। चिज्ञलादि तथा योधाबित्सं वाय्वादि तद्विदः१५ संविदेव किल ब्योम तिम्नति ब्योमतामिता।

तया चिदाकाशमात्रलमिलाह—यथेति । मयि प्रलक्षिति ॥ ४॥ चिति जाड्यं तत्र भूम्यादिवैचित्र्यं च कथं संपन्नमिति प्रश्नः ॥ ५॥ ६॥ इत्येत्रसर्व प्राक् लद्वचनाज्ञातमपि पुन-रसंभावनाशान्ला बोधाभिषृद्धये वद ॥ ७॥ लप्नवदेव सर्व संभावनीयमिलाशयेन प्रतिबन्धेव स्वयं प्रश्नयाजेन विषष्ठ उत्तरमाह—मूहीलादिना ॥ ८॥ ९॥ १०॥ १०॥ १०॥ १८॥ रामः स्वयमपि जगतो मिथ्यालं प्रपन्नयति—आत्मास्येलादिना । अस्य जगत आत्मा स्वरूपं केवलं व्योमैव ॥ १२॥ तर्हि कि श्रत्यस्पमेव नेलाह—आत्मीवित । कारणं प्रयोजनम् ॥ १३॥ अभ्युपेल पृथ्वावाकारसंपतिमिद्मुक्तं वस्तुतस्तु तत्संपत्तिपि वास्त्यवेलाह—न किचिदिति । एतज्ञगदाकारं चित्कचनं स्वप्रवन्मन एव तथा स्थितं नान्यत्॥ १४॥ मनस्थ

रपत्तयास्त काठिन्याद्ववाज्जलभिव स्थिता॥ वस्तुतस्तु न भूम्यादि किंचित्तन्न च दृदयता। चिदाकाशमनन्तं तत्सवीमेकं तदात्मकम्॥ १७ द्रबत्यावम्बद्धशान्धेर्नानावृत्तितया यथा। अमानैव भवेत्राना चिद्योमात्मनि व तथा ॥ १८ काठिन्यवेदनादुवीं गिरितामागतेव चित्। शुन्यतावेदनाच्छन्यं वेसि व्योमेव चिद्वपुः॥ १९ द्रवत्ववेदनाद्वेति वारि स्पन्दतयानिलम्। औष्ण्यसंवित्ततो चहिमत्यजन्ती निजं चपुः॥ 20 एवंस्वभाव एवायं चिद्धातुर्गगनात्मकः। यदेवं नाम कचति निष्कारणगुणकमम्॥ २१ न चैतद्यतिरेकेण किंचिन्नापीह विद्यते। अन्यच्छ्रन्यत्वचारिभ्यामृते खार्णवयोरिय ॥ २२ नतु चिद्रगनादन्यम संभवति किंचन। इदं त्वमहमित्यादि तसादाशान्तमास्यताम् ॥ २३ त्वं यथास्मिन् गृहे कुर्वन्नन्निशैलादिकां विदम्। तदेव पदयस्ययपूरेवं चिद्रगनं तथा ॥ २४ चिद्योम भाति देहाभं सर्गादौ न तु देहकः। अकारणत्वादसतश्चिदुदेतीति चिन्त्यताम्॥ રપ मनोबुद्धिरहंकारो भूतानि गिरयो दिशः। शिलाजठरवन्मौनमयं सर्वे यथास्थितम्॥ २६ एवं न किंचिद्रपन्नं नष्टं न चन किंचन। यथास्थितं जगद्रपं चिद्रह्मात्मनि तिष्ठति ॥ २७ चितौ यत्कचनं नाम स्वरूपप्रविज्ञम्भणम्। तदेतज्जगदित्युक्तं द्रव एव यथा जलम् ॥ २८

चित्फुरणमात्रलासदेव सर्वभित्याह—दिकालेखादिना। तदिदः सर्वतत्त्वविदः॥ १५॥ १६॥ १७॥ हृद्यस्य प्रसन्नस्याब्धे-रम्बुद्रवलादेव यथा तरङ्गफेनावर्तादिनानाष्ट्रत्यारमना अनानैव नाना संभवेसथा विद्योमापीत्यर्थः॥ १८॥ १९॥ चित् आत्मनि द्रवलवेदनाद्वारि वेस्ति। एवं स्पन्दत्या वेदनादनिलं वेसि। निजं वपुरिधिष्ठानचिद्रूपमत्यजन्तीति विवर्तता दर्शता॥ २०॥ निष्कारणगुणकमिति दृष्टसिरिद्धान्तः प्रकटितः॥ २०॥ निष्कारणगुणकमिति दृष्टसिरिद्धान्तः प्रकटितः॥ २०॥ यथा अर्णवस्य वारिलादते अन्यत्तलं नास्ति। सस्य च श्रूत्यलाहते, तथा एतस्माचिद्यातमनो व्यतिरेकेण किनिक्यनस्तर्वनं न विद्यते॥ २२॥ इदं लहमित्यादि जगिब-द्रगनादन्यन्न तु। यतः किचन तदिना न संभवति ॥ २३॥ कुर्वन्सप्रमनोरथादिना रचयन्॥ २४॥ यदा देहको नास्ति तदा अकारणलादसतोऽज्ञानाहेदाकारा चिदुदेति न तस्वत इति चिन्त्यतां विवार्यतामभिक्षरित्यर्थः॥ २५॥ मौनमयम-निर्वाच्यमेनेत्यर्थः॥ २६॥ २६॥ सहपस्य प्रकर्षेण विद्य-

१ नियत्यादीति पाडः.

२९

इदं जगन्हानमभानमेख चिद्योम शून्यं परमार्थ एव । यथार्थसंदर्शनबुद्धबुद्धे-रबुद्धबुद्धेस्तु यथा तथास्तु॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ मो॰ नि॰ उ॰ चिदाकाशैकताप्रतिपादनं नाम चतुरिधकद्विशततमः सर्गः ॥ २०४ ॥

पश्चाधिकद्विदाततमः सर्गः २०५

श्रीराम उवाच।

एवं यथैतद्भगवन्त्वप्ने दृष्यं परं नभः।
तथैव जामतीत्यत्र न चेत्संदेहजालिका॥
इदं मे भगवन्त्रृहि महाप्रश्रमनुत्तमम्।
कथं भवत्यदेहाचिजाम्रतस्त्रो स्वदेहवत्॥

विसिष्ठ उवाच।

द्दरं जाग्रस्थय स्त्रो खाधारं खात्मकं खजम्।

सं च नान्यत्परं जातु संदेहोऽस्त्युपपत्तितः॥ ३
समस्तकारणाकारप्रस्यस्तमयक्षिणि।
सगादावेय भूतानि संभवन्ति न कानिचित्॥ ४
पृथ्व्यादिनियतस्तेन देहोऽयं नास्ति किंचन।
भूतान्येय किलेतानि देहस्तानि न सन्त्यलम्॥ ५
तेन स्त्रमयदाभासमिदं पदयति चिन्नभः।
स्वक्षपमात्रकचनमाकारबिदवाकुलभ्॥ ६
भानमाभानमात्रस्वमिदं यत्तिचिदात्मना।
नभसा स्वप्रशब्देन कथ्यते जगदाकृतिः॥ ७

म्भणं बृंहणम् ॥ २८ ॥ यथार्थसंदर्शनेन प्रबुद्धहरूना इदं जगद्भावेन भानमप्यभानमेत चिद्धोमेव परमार्थः । अबुद्ध-बुद्धेर्मूर्खस्य तु यथा तथास्तु कि तद्विचारेणेत्यर्थः ॥ २९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणत्रकरणे उत्तरार्धे चतुरधिकद्विशततमः सर्गः ॥ १८६ ॥

विवर्तमात्ररूपेयं स्वमतुस्या जगत्स्थितिः।

नोद्धता न स्थिता नास्ता चिन्मात्रमिति वर्ण्यते ॥ १ ॥ एवं जगतः स्वप्नविद्वर्तमात्रस्वं यथोक्तमभ्युपगम्य कृट-स्थाद्वयचिन्मात्रे विवतोऽप्यसंभावित एव हेलभावादिति रामः प्रच्छति—एवमिति द्वाभ्याम् ॥ १ ॥ २ ॥ हेलभावादित रामः विवर्तस्थानुत्पत्तिरतुत्पत्रस्य न स्थितिः स्थादिति इन्यतेव स्थादित्यापादनीयं तचेष्टमव तस्येति निरुपपत्तिकस्ते प्रश्नहेतुः संदेह इति भगवानुत्तरमाह—हत्यमित्यादिना । यतः खजं हेतुद्वन्यादुत्पत्रमतः ग्रन्याथारं ग्रन्यात्मकमेव स्यादित्यापादनीयम् । खं ग्रन्यं च परं ब्रह्मैव नान्यत् । अत उत्पत्त्यादिन्यस्य ब्रह्मोद्देशोवित्योधिनि विवर्ते अनुपपत्तिसंदेशो नोपपद्यत् स्थादे ॥ ३ ॥ अनुत्यित्तिमेवोपपादयति—समस्येत्यादिना ॥ ४ ॥ 'कं भवत्यदेश विज्ञाप्तत्त्वप्रे सदेहवत्' इति प्रश्नोऽप्तानुत्पत्तः । पृथ्वाद्याभावे चतुर्विधभूत्यामस्पदेशानमप्यस्वादित्याह—पृथ्वादीति ॥ ५ ॥ अतो विवर्तपक्षो निर्वोष

यवेतहेवनं नाम विद्योमो व्योमनिर्मलम्।
पतदन्तिश्चितो रूपं स्वमो जगदिति स्थितम्॥ ८
पतस्मिन्नेव तेनाथ स्वभावकचने तते।
चिद्र्पेण कृताः संज्ञाः पृथकपृथ्व्यादिका द्याः ९
चिद्र्पेण कृताः संज्ञाः पृथकपृथ्व्यादिका द्याः ९
चिद्र्पेण कृताः संज्ञाः पृथकपृथ्व्यादिका द्याः ९
चिद्र्पामेव तत्स्वमजगच्छन्दैः प्रकथ्यते।
भानं चास्याः स्वभावः खं तत्कदाचित्र शास्यति १०
बहुषः सर्गदशो मिन्ना प्रह्मैच प्रह्मखे च ताः।
शून्यतानभसी वातस्तिष्ठन्ति च विशन्ति च॥ ११

श्रीराम उवाच।

सर्गाणां कोटयः प्रोक्ता भगवन्भवता किल । काश्चिद्रसाण्डकोशस्थाः काश्चिद्ण्डविवर्जिताः १२ काश्चिन्महीकोशगताः काश्चिद्गकाशसंस्थिताः । तेजःकोशगताः काश्चित्काश्चित्पवनकोशगाः १३ काश्चिद्योमस्थभूपीठा उध्योधस्थविनिश्चयाः । बुभ्नाकाशादृष्वेलुरा लम्बमानवनाचलाः ॥ १४

इलाह—तेनेति । आकुलं मायागुणविक्षक्यम् ॥६॥ यत्त-दाभानमाश्रत्वं तदेव स्वप्नभानं सैव जगदाकृतिर्नभसा विदा-काशरूपेणैव खप्रविवर्तजगदादिशब्देन कथ्यते ॥ ७ ॥ तथाच वेदनान्तर्भासमानं जगद्वपं सौक्ष्म्ये स्वप्न इति स्थौरये जगदिति वेदनमेव तथा स्थितमित्यर्थः ॥ ८ ॥ एवंरूपप्रपन्नस्य वेदनमा-त्रत्वे नामप्रवश्चोपि वेदनस्यैव नामभेद इति वर्यवस्यतीसाह-एतस्मिन्नेवति । तेन रूपमेदकल्पकेन चिद्रपेण चिदात्मना । अथ अनन्तरम् ॥ ९ ॥ अतएव खप्नादिशान्तावपि तत्तरवं भानं कदापि न शास्यतीत्याह--चिद्धानमेवेति । समावस्त-स्वम् ॥ १० ॥ तत्सद्भावादेव तत्र यहवी विवर्ताः प्रश्रुला इलाह—बाह्य इति ॥ ११ ॥ कौतुकादेतद्रह्माण्डस्टरूपं श्रोतु-कामो रामः प्रश्नपीठिकां रचयति—सर्गाणामित्यादिना । प्रोक्ताः लीलोपाह्यानभुशुण्डाख्यानादौ ता **उक्ता एवानुब**-दति-काथिदिखादिना। एते श्लोकाः प्राग्व्याख्याताः ॥१२॥ ॥ १३ ॥ व्योमस्थगोलकाकारभूपीठाः कर्ष्वाधस्थानां पिपी-लिकाबद्भगोलसंलमानां देवासुरादीनां वसमेवोर्धं वसमेवोर्ध-मिति विविधा निश्वमा यत्र । तदेव सप्टमाइ--- ब्रुप्नाकासा-दिति । यतः सर्वेषां दशा भूमेरधोदेशे प्रजाः सुप्राकाशास्त्रिम-मुखाकाशाबुध्वेखुरा ऊर्ध्वपादाः अधःशीर्षाः । **एवम्र्ध्वम्**खा**धः**-शासिक्षास्त्रत्वाह्मस्मानानीव बनान्यतस्थय येषु ॥ १४ ॥

काश्चिद्वातारमभूतीघाः काश्चिक्तस्यं तमोधराः । व्योमसंस्थानकाः काश्चिरकाश्चित्किमिकुलाकुलाः काश्चिदाकाशकोशस्याः काश्चिष्वोपलकोशगाः । काश्चित्सकुण्डकोशस्थाः काश्चिरक्षे खगवत्स्थिताः तासां मध्ये यथादीदं ब्रह्माण्डं यादशं स्थितम् । अस्माकं भगवंस्तन्मे बृद्धि तस्वविदां घर ॥ १७

षसिष्ठ उवाच।

यदपूर्वमद्दं या नाजुभूतं न वा श्रुतम्।
तह्ययते सुद्दशन्तैर्यसते च तद्द्राते ॥ १८
दवं तु राम ब्रह्माण्डमागमैर्भुनिमिः सुरैः।
द्यातशो वर्णितं तत्र कातमेतस्ययाऽखिलम् ॥ १९
यथेवं भवता कातमागमैर्वणितं यथा।
स्थितं तदेतदखिलं किमन्यदिह वर्ण्यते॥ २०

श्रीराम उवाच।

कथमेतद्वव ब्रह्मन्संपन्नं चिन्महानभः। कियत्प्रमाणमेतद्वा कियत्कालं च वा स्थितम् २१ वसिव्र उवाच।

जनादिनिधनं ब्रह्म नित्यमस्त्येतद्व्ययम् । आदिमध्यान्तता नास्ति नाकाराः परमाम्बरे २२ ब्रह्माकाशमनाधन्तमेतद्व्ययमाततम् । पतन्मयमिदं विश्वं विष्वगाधन्तवर्जितम् ॥ २३ परमस्यास्य चिद्योद्धः स्वयं यद्भानमात्मनि । तदेतद्विश्वमित्युकं स्वयं तेनैव तन्मृषा ॥ २४ पुरुषस्य यथा स्वप्नपुरसंदर्शनं तथा ।

वातात्मानो वायुशरीरा भूतीधाः प्राणिसमूहा यासु समोधराः साम्धकाराः व्योमेव प्राणिवेहसंस्थानं यासु ॥ १५ ॥ सकुण्डाः सभाण्डा ये पृहमण्डपादिकोशास्त्रास्थाः यथा मण्डपोपाख्याने दर्शिताः ॥ १६ ॥ इदमस्माकमाश्रयभूतमिव ब्रह्माण्डं यादशं स्थितं तन्मे ब्रहीति प्रश्नः ॥ १७ ॥ नायं तत्त्वविषयस्तत्त्व-हानोपयोगी वा प्रश्नो नापि प्रयोजनवान् प्रकृतोपयुक्तोऽपूर्वो ना नापि नियतार्थः । सनिमिज्योतिषसिद्धान्तमेवेषु भूमिभ्र-बनादिस्थितरन्ययान्यथावर्णनात्। तकोपदर्शितमेव पुरस्तादतो मायामये खप्नोपमेऽस्मिनेकतरपक्षपातेन सिबान्तकथने किचि-रप्रयोजनं प्रमाणं बास्तीति मन्यमानो बसिष्ठः शास्त्रान्तरस्य विषयोऽयं ततस्ख्या ज्ञात एवेति न प्रश्नार्ह इत्येवोक्तया समा-भते--- मदिति । अपूर्वं मानान्तराविषयः । तस्यैव प्रपन्नो न दर्ष नानुभूतं न वा श्रुतमिति प्रसक्षानुमानागमार्थसपरम् । तदेव गुरुणा सुरष्टान्तैर्वर्ण्यते बिष्येण च श्रवणेन गुराते मननेनी सते नेतरविखर्यः ॥ १८ ॥ शतशः अनेकघा अनेकप्रकारेण व ॥ १९ ॥ खञ्जातप्रकारसीय लां प्रति वर्णनं नापूर्वमिति न योग० १९५

तत्तस्य भानं पुरवत्तदिवं विश्वमुख्यते ॥ २५ कठिना नेह गिरयो न द्वाणि जलानि च। म शुन्यमेतवाकाशं कालो न कलनात्मकः॥ ₹६ यद्यथा चाव्ययं यत्र स्वतः संचेतितं चिता । तत्त्रथा तत्र चित्तत्वे अलं शैलादिवत्स्थितम अशिलैव शिला स्वप्ने नभ प्वानभी यथा। भवेत्रथेह सर्गादि स्वप्ने दृष्यस्थितिश्चितौ ॥ २८ अनाकरिव चिच्छान्ता स्वप्नवद्यस्वचेतनम्। वेत्ति तज्जगदित्युक्तं तथानाकारमेव सत्॥ वायोः स्पन्दो यथान्तस्थो वात एव निरन्तरः। तथेवं ब्रह्मणि ब्रह्म न चोवेति न शास्यति ॥ द्रवत्वमम्भसि यथा शून्यत्वं नभसो यथा। यथा वस्तुनि वस्तुत्वं ब्रह्मणीदं जगत्तथा ॥ 38 न प्रयातं न वा यातमकारणमकारणात । नच नास्ति न वास्तीवं भिन्नं ब्रह्मपदे जगत्॥ ३१ न चानादि निराभासं निराकारं चिद्रम्बरम्। दशः कारणमन्यस्याः कचित्रवितमहिति ॥ 38 तस्माद्यथावयविनोऽवययाः स्वात्ममात्रकाः। तथानवयवे ब्रह्म व्योम्नि व्योम जगरिस्थतम् ॥ ३४ सर्वे शान्तं निरालम्बं इतिमात्रमनामयम्। नेह सत्ता न वासत्ता न च नानास्ति किंचन ॥ ३५ संकरपस्वप्रनगरवृत्तवत्सवीमाततम् । स्थितमेव समं शान्तमाकाशमजभ्ययम्॥ 38

युक्तमित्याह-यथेति ॥ २० ॥ तर्हि बह्म कथं ब्रह्माण्डाकारे संपन्नं कियत्कालं वा एवं स्थास्पति तद्वदेति रामः प्रच्छति--कथमिति ॥ २१ ॥ न ब्रह्म कदापि साकारं संपन्नं नापि तस्य कालिकपरिच्छेदोऽस्ति किंतु यावदप्रबोधं सुप्त इव स्वातमान-मेव जगदाकारमिव पश्यतीत्याशयेनोसरमाह-अनादीत्यादिना ॥ २२ ॥ २३ ॥ तेन स्वयमेव विश्वमिति उक्तं तथा मृषा ॥ २४ ॥ २५ ॥ चिदेकखभावे ब्रह्मणि तद्विरुद्धा गिरिकाठि-न्यादिखभावाः कथं सत्याः स्युरित्याइ—कठिना इति ॥२६॥ तथाच चिदेव भ्रान्तिचेतनेन तथातथा स्थितेव न वस्तुत इलाइ-यदिति ॥ २७ ॥ एवकारी भिन्नकमः । अनभ एव यथा नभ इति ॥ २८ ॥ उक्तं शतशो मयेलर्थः ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ प्रयातं प्रलयेन तिरोभूतम् । आयातमाबिन र्भूतम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्म तु कारणलादियोग्यं न भवत्येवेत्याह्--नचेति । अन्यस्याः सर्गदशः ॥ ३३ ॥ स्वात्ममात्रकाः पृथ-गसन्तः ॥ ३४ ॥ सर्वापलापे 'नेह नाना' इति श्रुतिः प्रमाण-मिति भावः ॥ ३५॥ तथाविधस्यापि प्रतिभासे दृष्टान्तमाह--- परमचिदम्बरहृवयं

तदिवं जगदिति कलितं तेनैव तदात्मरूपमाकल्पम्॥

चिरवाधःकचित कान्तममलमलम् ।

इलार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ दे॰ मो॰ नि॰ उ॰ सर्गकारणनिरासी नाम पश्चाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०५ ॥

षडधिकब्रिशततमः सर्गः २०६

वसिष्ठ उवाच। यदकारणकं भाति भानं तन्नेव किंचन। तत्तथा परमार्थेन परमार्थः स्थितोऽनघ॥ अन्नेमं केनचित्पृष्टोऽयमहं तं महामते। सम्यग्बोधस्य पुष्ट्यर्थं महाप्रश्नं परं शुणु ॥ अस्त्यन्त्रिभ्यामुभयतोव्याप्तं ख्यातं जगन्नये । कुशद्वीपमिति द्वीपं भूमी वलयविस्थितम्॥ तत्रास्तीलावतीनाम हैमी पूर्वोत्तरे पुरी। दीप्तिज्वालामयस्तम्भप्रोतावनिनभस्तला ॥ पूर्वे तस्यामभूद्राजा प्रकृतिरिति विश्वतः। अनुरक्तजगद्भृतः शक्रः सर्ग इवापरः॥ केनचित्कारणेनाहं कदाचित्तस्य भूपतेः। प्राप्तः समीपं नभसः प्रलयार्के इव च्युतः ॥ पुष्पार्ध्यात्रमनीयैमी पुजयित्वोपविश्य सः। मध्ये कथायां कस्यांचिदपुच्छत्प्रणयादिदम् ॥ भगवन्सर्वसंहारे जाते शून्यतते स्थिते।

संकल्पेति ॥ ३६ ॥ अमलं स्वच्छं कान्तं स्फुरद्रूपं परमस्य चिदम्बरस्य हृद्यं सारभूतं खरूपमेव चिरखभावाद्यदाकारं भ्रान्या अठं समर्थं कवति तदेव खकल्पितमात्मरूपमाकल्प-मात्रलयं तेनैव जगदिति कलितं बुद्धं नान्यदिल्यर्थः ॥ ३०॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पञ्चाधिकद्विधाततमः सर्गः ॥ २०५॥

> ब्रह्मेव सज्जगन्नासीरयेतश्विर्णयहेतवः। कुशद्वीपेश्वरप्रोक्ताः प्रश्ना द्वह निरूपिताः ॥ १ ॥

परमार्थी ब्रह्मैव परमार्थेन स्थितः । अकारणकं यज्ञगद्भानं भाति तृत्किचनापि नैवास्ति इति पूर्वप्रन्थफिलतार्थ उत्तरप्र-न्थावतारायोपन्यस्तः ॥ १ ॥ अत्रास्मित्रर्थे सम्यग्बोधस्य पुष्टार्थमिमं वक्ष्यमाणं महाप्रश्नं परमन्यं ऋणु ॥ २ ॥ अब्धिभ्यां सुरोदपृतोदाभ्यामुभयतो वलयवद्यासम् ॥३ ॥ पूर्वोसरयोरन्त-राले दिग्भागे। 'विङ्गामान्यन्तराले' इति बहुवीहिः। दीप्तिल-क्षणज्वाल:विलक्तम्भैः प्रोते अवनिनभसाले यत्र ॥ ४॥ तस्यां पुरि पूर्वे भागे ॥ ५ ॥ ज्योतिश्रकाच्युतः प्रख्यकालेऽर्क इव ॥ ६ ॥ ७ ॥ ग्रून्यतया तते विस्तीर्वे नाम प्रवृत्तिनिमि-त्तजात्यादिरूपचतुष्ट्याभावादवाच्ये सर्वकारणानां बीजादीनां पृथ्वादीनां च संक्षये जाते सति ॥ ८ ॥ मूलकारणमुपादा-नम्। सहकारीणि निमित्तकारणानि । तानि यदि सन्ति तर्हि कत उपादानादेः कथं केनोपायेन जातानि ॥ ९ ॥ उत्पन्नं

अवाच्ये परमे व्योक्ति सर्वकारणसंक्षये॥ सर्गारम्भस्य भूयः स्याद्वद् किं मुलकारणम्। कानि वा सहकारीणि कारणानि कुतः कथम्॥९ किं जगरिक च सर्गादि काश्चिमित्यं तमोधराः। व्योमसंस्थाणेवाः काश्चित्काश्चित्क्रमिकुलाकुलाः काश्चिदाकाशकोशस्थाः काश्चिश्चोपलकोशगाः। किंच वा भूतभूतादि कुतो बुद्ध्यादयः कथम् ११ कः कर्ता कोऽथवा द्रष्टा काधाराधेयता कथम्। न कदाचिन्महानाशो जगतामिति निश्चयः॥ १२ समस्तवेदशास्त्रार्थाविरोधाय समर्थितः। यथासंवेदनं नाम तथानामानुभूतयः॥ १३ यतस्ततो वेदनं स्यात्किमनाशमसन्मयम्। अन्यव जम्बूद्वीपादी देशेऽध मुनिनायक ॥ १४ मृतानामग्रिदग्धानामिह या देहनाशिनाम्। नरकस्वर्गभोगाय विदेहे देहकारणम्॥ 83

जगच तत्त्वतः किम्। तस्य सगीदिप्रलयान्ता विकाराश्च किम्। तत्रापि काश्रिद्धमयो निसं तमोधराः । काश्रिद्धग्रहोकादयो व्योमसंस्थार्णवाः । 'अरथ ण्यथार्णवै।' इति श्रुतेः । काश्चित्र-रकादिभूमयः कृमिकुलैराकुला इत्यादिवैचित्र्यं च किम् ॥१०॥ आकाशकोशस्था आन्तरिक्षादिलोकाः । उपलकोशगाः शिलो-दरगता दैखदानवादिनगर्यः । भूतानि पृथिव्यादीनि तद्रत-चतुर्विधभूतप्रामादि च तरवतः किम्। तेषामाध्यात्मिका बुद्धादयश्च कि कथं वा ॥ ११ ॥ एतेषां सर्वेषां कर्ता निर्माता कः । अथ को वा द्रष्टा । यदि तु कमैनह्योभयकाण्डात्मकसम-स्तवेदशास्त्रार्थाविरोधाय जगतां कदाविद्पि महानाशः प्रलयो नास्ति किंतु तत्तरप्राणिकमीनुसारेण सदैव व्यवहाराः प्रवर्तन्ते न कदाचिदनीदृशं जगदिति निश्वयः समर्थितस्तर्हि यथा संबे-दनं तथेबानुभूतय इति प्रसिद्धेः संवेदनं देहादिहेतुरित्युच्येतः उतान्यत् । तत्राधे पक्षे तत्संवेदनं किमनाशं शाश्वतं किंवा असन्मयं नश्वरमिति । यद्यनाशं तर्हि कूटस्थमेवेति न देहा-दिविकारं स्थात् । यदि नश्वरं तर्हि तदुत्पत्तौ कारणं बाच्यं तच दुर्वचं विना संवेदनं तस्यासिदेरिति विरोधादित्युत्तरको-काभ्यां सहान्वयः ॥ १२ ॥ १३ ॥ द्वितीयेऽपि शहते---अन्यचेत्यादिना ॥ १४ ॥ इह कुशद्वीपादौ वा देहनाशवताम् । विदेहे देहोत्पादकमातापित्रादिश्रन्यप्रदेशे देहंप्रति उपादान-कारणं सहकारीणि निमित्तकारणानि वा कानि ॥ १५ ॥ १६

20

२१

किं तस्यात्सहकारीणि कारणान्यथ कानि वा। धर्माधर्माषमूर्ती ही तसामूर्तस मूर्तता॥ निर्दृष्यं कुरुते द्रव्येर्युकिरिस्यसमञ्जसा । मातापित्राद्यभावो हि बीजं कि तत्र कारणम् १७ अन्ये वा हेतवः के स्युः कथं द्रव्यादिसंभवः। परलोकोऽस्य नास्तीति यधासंवेदनं स्थितेः ॥ १८ समस्तलोकवेदादिविरोधाचासमञ्जसम् । अनिच्छितेहितैर्दूरदेशान्तरगतैः फलम्॥ प्रजा प्राप्तोत्यसंबन्धेरमूर्तेरत्र कः कमः। स्तम्भो वरेण सीवर्णी विना हेमगमागमैः॥ क्षणात्संपद्यते तत्र संपत्तिः कथमुच्यताम् । विधीनां प्रतिपेधानां निर्निमित्तं विवल्गताम् रूढानामप्यरूढानां किं प्रयोजनमुख्यताम्। असदासीज्ञगत्पूर्वे सत्संपन्नमनन्तरम्॥ इति श्रुतेः कथं प्रहान्कध्यतां संगतार्थता । अयं भवेत्कथं ब्रह्मा भवेचेत्तन्महामुने ॥ एवंप्रभावाश्वभसः किं सर्वसान्न जायते।

ओषधीनामधार्थानां सर्वेषां वा स्थिति गताः कथंस्वभावाः कथय यथाबोधं मुनीश्वर । पकस्य जीवितं पुंसः सुद्ददा मरणं द्विषा ॥ 24 मृत्वार्थितं प्रयागादौ क्षेत्रे तत्कथमुच्यताम्। खे स्यामक्षयपूर्णेन्द्ररिति ध्यायिचितैः फलैः ॥ २६ तुल्यकालम्बुप्राप्तेः सहस्रेन्द्र न कि नभः। अन्यश्व ध्यायिनां लक्षेध्यातिका स्त्री यथाक्रमम २७ जायात्वेन समं कालं लब्धं ध्यानफलं च तैः। साध्यसाध्वी गृष्टे भर्तुः संस्थिता तपसा परा॥ २८ तेषां च जाया संपन्ना कथमेतन्महामुने। मृहानिर्गच्छ मा कर्ष्यं नृपः स द्वीपसप्तके ॥ ર્ वरत्वं वरशापाभ्यामिति अन्तः क तिष्ठति । वानधर्मादितपसामीध्वेदेहिककर्मणाम्॥ 30 इहस्थानाममूर्तानां मुर्तं प्रीत्यास्ति सत्फलम्। **२**२ व्यवहर्ता न मूर्ताऽत्र विद्यते लोकयोर्द्वयोः॥ 38 देशान्तरे भूशं जीवो भृशं कालान्तरेऽपि वा। 23 फलं संभवतीयत्ति द्वानुभवनं मुने ॥ 35

नन् धर्माधर्मावेव देहादाकारेण परिणंस्येते तन्नाह-धर्माधर्मा-विति । तस्य अमूर्तस्य द्वयस्य मूर्तता असमजसेत्यपकृष्य संबन्धः ॥ १६ ॥ किंच निर्द्व्यं अद्रव्यं द्रव्यभिन्नं तदुभयं द्रव्यैः पार्थि-वादिभागेर्देहादिनिर्माणं कुरुते इति युक्तिरप्यसमझसा । निर्वी-जलादप्यसमझसमिखाइ—मातापित्रादीति ॥ १७ ॥ तहील्ल नास्तिकपक्षस्तत्राह—परलोक इति । अस्य धर्माधर्मादिकर्तः परलोको नास्तीति च असमजसम् । अस्पेव जन्मनः पूर्वज-न्मापेक्षया परलोकलात्। अस्य च यथासंवेदनं स्थितेः ॥ १८ ॥ समस्तलोकवैदादिविरोधप्रसङ्गाच नास्तिकपक्षो न प्राह्य इत्याह—समस्तेति । किंचेयं प्रजा खेच्छाचेष्टाद्यविषयै-रपि देशान्तरगतैरत एवासंबन्धेरमूर्तैरपि राजाह्यादिमिर्वधब-न्धदण्डादिफलं प्राप्नोति तत्र च कः क्रमः का उपपत्तिः ॥१९॥ ॥ २० ॥ किंच शिलादिमयः स्तम्भो देवमुन्यादिवरेण हेम्नः अर्जनार्थं गमनागमनैर्विनापि यत्र सीयर्णः स्तम्भः क्षणात्सं-पद्यते तत्रापि सा संपत्तिः कथं कया उपपत्या। निर्नि-मित्तं अचेतनलात्प्रयोजनसिद्धिकपं निमित्तं विनैव प्रवलातां प्रवर्तमानानां विधिप्रतिषेधशास्त्राणां लोके प्रचारेण निरूढानां कैरप्यननुष्टानादरूढानामपि किं प्रयोजनम् ॥ २१ ॥ तथा 'असद्वा इदमप्र भासीत्ततो वै सदजायत' 'असदेवेदमप्र आ-सीत्' 'सदेव सोम्येदमप्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' 'नासदा-सीनो सदासीत्तदानीम्' इत्यादिश्चतेः कथं परस्परं संगतार्थता ॥ २२ ॥ किंच सर्गादौ श्रून्यात्रभसः सकाशादयं ब्रह्मा हिर-ण्यगर्भः कथं भवेत् । यदि नभस एवंप्रभावता अस्तीत्युच्येत तहीं वंत्रभावारसर्वस्मारसर्वप्रदेशमिषात्सर्वत्र ब्रह्मा कृतोऽन्त्रो न जायते ॥ २३ ॥ औषधीनां स्वस्तपूर्वबीजादिजननस्वभावा

अधान्येषां बह्नवादीनामौष्ण्यादिखभावाश्र कथं तस्कथ्य ॥२४॥ किचेकसीव पुंसः सुहृदा द्विषा च युगपजीवितं मरणं च प्रथागादौ कामप्रदे क्षेत्रे मृला यदा अर्थितमर्थयिला मृतम् मरणकाले तदुत्तरकालं च कामना सतानुगृतेर्भुशं व्यादाय सिपितीतिवदी-सरकालिकांशापेक्षया कथंचिन्मरणस्य पूर्वभावं प्रकल्प काप्र-योगः । तत्कथं संपद्यते ॥ २५ ॥ किच अहं खे नभिस पूर्णन्दः स्यामिति कामनया चन्द्रभावपापकोपासनविध्यनुसारेण ध्यायि-मिर्बहिभरपासकै धितैरवस्य भाविलेन संचितैम्तु स्यकालमनुष्रा-तैश्वन्द्रभावफरीनेमो युगपत्सहस्रेन्दु अनेकतन्द्रसहितं कि न जायते ॥ २६ ॥ २७ ॥ तेषां सर्वेषां च जाया कथं संपन्ना । सा च तेषां भिन्नदेशे गृहे एका कथं स्थिता । सा च खतपसा परा ब्रह्मचारिणी तेषां प्रत्येकं तपसा साध्वी बहुभोग्यलाद-साध्वी कथं संपन्ना ॥ २८ ॥ अहं गृहादनिर्गच्छं निर्गमनं विनेव आकल्पं द्वीपसप्तके नृपः सन् गृहे तिष्टंयमिति च विहर्त । यत्र वराच्छापादा संपादितं तत्र गृहान्तर्भोग्यं वरस्य चरत्वं क तिष्ठति । कथमुपपद्यत इत्यर्थः ॥ २९ ॥ किंच दानधर्मा-दितपसामी ध्वैदेहिकश्राद्धादिकमेणां चाद्यं कियोत्पत्तिप्रदेशे यद्यत्पदाते तर्हि इहस्थानां परलोके तच्छन्यदेशे कथं फलम्। किचाद्यं मूर्तदेहादी श्रीतिजननेन सरफलं वाध्यम् । नच तत्रत्ये मूर्ते देहे तत्सत्त्वमस्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥ यदि मृया व्यव-हती जीवस्तत्समवेतं तददृष्टं यत्र तस्य भोगसत्तत्रास्तीति । तम । यतो द्वयोरपि इहलोकपरलोकयोर्व्यवहर्ता जीवो मर्ती न विद्यते । नचात्रत्या देहादिमूर्ता देशान्तरे कालान्तरे च विद्यन्ते । यदाश्रयेणास्य भृशं फलं संभवतीत्वर्यः ॥३१॥३२॥

38

असमजसमेवाति कथं स्वारसुसमजसम्। इत्यादिसंशयगणं गिरा शीतावदातया। छिन्धि मेऽभ्यवितं भासा साम्ध्यमान्ध्यमिवोद्धपः॥ परमवस्तुनि संशयनाशना-बुभयलोकहितं भवति रफुटम्। तदिह में कुर साधुसमागम-स्तनुफलो भवतीत् न कराचित्॥

इलार्पे श्रीवासिष्टमहारामायणे वा० दे० मो० नि० उ० महाप्रश्नी नाम वडिविकद्विशततमः सर्गः ॥ २०६ ॥

सप्ताधिकद्विदाततमः सर्गः २०७

E

8

4

वसिष्ठ उवाच। शृणु राजन्यथा स्पष्टमेतसे कथयाम्यहम्। येन ते सर्वसंदेहा यास्यन्यलममूलताम्॥ सर्वे ताचजागद्भाया असदूषाः सर्वेष हि। सद्रुपाश्च सदैवेमे यथासंवेदनं स्थितेः॥ इदमित्थमिति प्रोता यत्र संवित्तदेव तत्। भवत्यवद्यं तत्त्वङ्ग सदेवास्त्वसदेव वा ॥ ईरक्स्वभावा संवित्तिस्तया देहो विभाव्यते। एक एव स्वरूपेण तस्यास्ते न च तद्विदा॥ विदमेव विदुर्देहं स्वप्नादावितरेतरा। संवित्काचित्संभवति नचान्यास्ति शरीरता ॥

इलायसम्बसं सर्वे कथं समजसं स्यात्। इलादिसंशयगणं शीताबदातया गिरा उडुपथन्द्रः संध्यायां भवं साध्यमान्ध्यं तम इव छिन्धि ॥ ३३ ॥ है भगवन् , परमवस्तुनि परमा-रमनि विषये उपदेशेन सर्वसंशयनाशनादुभयलोकहितं वि-रुद्धसहस्रफलमप्यविरुद्धं रुफुटं भवति । अतस्तत्परमवस्त्ववोधनं मे कुरु । ननु महाफलमिदं कथं सहसैव मया कार्य तन्नाह— साध्यिति । भवत्सदशमहत्समागमस्तनुफलस्तुच्छफलः कस्य-चिन्मादशस्यापि न भवतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥ इति श्रीवालिङ-महारामायणतात्पर्यप्रकाही निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे पढ-विकद्विशततमः सर्गः ॥ २०६ ॥

कमध्युष्कमतः प्रभाः केचिदत्र समाहिताः । समाधास्यस्यथान्यांस सर्गेक्षिभिक्तृतस्त्रीः ॥ १ ॥ तत्रैकविक्रानेनैव सर्वविक्रानात्सर्वसंशयानां मूलोच्छेदेन प-रिहारात्सामान्यतः सर्वप्रश्नसमाधानं करिष्यामीति प्रतिजाः नीते-शृण्विति । स्पष्टं करतकामछक्षरस्पुटमेतदारमतरवं कथयामि ॥ १ ॥ तत्रादी खतः प्रमाणखधंवेदनानुसारिणाम-र्थतत्त्वव्यवस्थायां कोऽपि कापि संशयोऽनुपपन इत्याह—सर्वे इति । यत्र यदस्तीति प्रत्ययो यत्र च नास्तीति तत्रोभयत्रापि संविदैव भगवत्या ततुभयरूपसमर्थनादिति भाषः ॥ २ ॥ यत्र विषये इदं वस्तु नीलं पीतं घटः पटः अस्ति नास्तीति वा इत्थ-मेवेति अवधारणेन संवित्तिः प्रोता व्याप्ता हे अन्न, तस्य विष-यस्य तद्रूपमवद्यं भवत्येव तत्तु सद्गा असदेव वास्तु न तत्रा-प्रह इस्तर्थः ॥ ३ ॥ तत्कृत इतिचेत्संवित्तेर्यभाप्रतिभासमर्थ-साधकसभावादिलाह—ईंदगिति । तथाच नरकसर्गभोगाय

आश्रितस्वप्तसंदर्शस्तथेदं भासते जगत्। समस्तकारणाभावात्सर्गादावन्यतात्र का ॥ एवं यदेव विमलं वेवनं ब्रह्मसंक्षितम्। तदेवेदं जगद्भाति तत्केष जगतोऽन्यता ॥ O एवं पूर्वापरं शुक्रमविकार्यजगरिस्थतेः। लोकवेदमहाशासीरनुभूतमुदाहतम्॥ 6 अपलाप्येव ये मृढा अन्धक्षपकमेकवत्। समस्तभूतसंविसी बढपूर्ण महात्मभिः॥ वर्तमानानुभवनमात्रमोह्प्रमाणकाः। शरीरकारणा संबिदिति मोहमुपागताः॥ उत्मत्ता एव तेऽहास्ते योग्या नास्तत्कथासु ते।

विदेहे देहकारणं कि तस्यादिति प्रश्नः समाहित इत्याह-तयेति । तया संवित्या देह एकएव खरूपेण आत्मभावेन प्रथमं विभाव्यते । तेन देहेन तस्याः संविदो विदा अभिव्य-किथ विभाव्यते देहस्यात्मता संविदो देहधर्मता चेति वैपरीस-मध्यस्यत इति यावत् ॥ ४ ॥ अतएव हि जनाः साप्रजामतो-देंहं वेतीति वित् तथाविधं चेतियतारमेव विदुरतुभवन्ति । इतरा संवित् इतरा चेतियत्रधंमीं न स्वयं चेतियत्रीति विदुः। अतः काचिद्वान्तिक्या संविदेव शरीरता संभवति तदम्या शरीरता नास्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ भाषप्रश्नत्रयमप्यनयैव दिशा समाधेयं जगतोऽपि संवेदनवलादेव सिदेरित्याधायेनाह-आश्रितेति । सर्गादौ जगदपि समस्तकारणाभावादवश्याश्रय-णीयः खप्नं संपर्यतीति खप्रसंदर्शः संविदात्मैवेत्यं भासते । अत्र जगति अन्यता खप्रवैधर्म्यरूपा का । न काचिवपि । अ-थवा अस्ति भातीति प्रत्यगातमस्त्रभावेनैव जगदन्रभवात्तदः म्यता का। न काचिदपीलर्थः ॥ ६॥ तदेवाह-एवमिति॥ण। एवमविकार्यस्य त्रहाण एव जगद्रूपेण स्थितेविद्रह्मोकैवेदैरध्या-त्मशाक्षेश्व प्रमाणेरेवमेवास्मामिरनुभूतं तदेवोदाहुतं नान्यदि-खर्थः ॥ ८ ॥ समस्तानां भूतानां प्राणिनां संवित्ती कवं रवा-नुभवसिदं सत्तात्मना सर्वत्र पूर्ण च महात्मभिरुकं जगतो निलसंबिन्मात्रलमपलाप्येव ये मूढा आपातवर्तमाननामसप-मात्रानुभवममात्रप्रमाणकाः सन्तः संवित्र निखास्ति कित शरीरमेव कारणं यस्यास्त्रधाविधा जडोपादानिका जडात्मनी गुण इति मोइसुपागतास्ते अहा नैयायिकचार्वाकार्य उम्मता एवेति त्रयाणामन्वयः ॥ ९ ॥ १० ॥ इतो न योग्यासात्राह-

अशीवशीवयोर्मूढबुद्धयोः कैव संकथा॥ ११ यया विपश्चित्कथया सर्वसंशयसंक्षयः। न भन्नेत्रिषु लोकेषु हेया मूर्खकथैय सा॥ १२ प्रत्यक्षमात्रनिष्ठोसी मृदास्य इति वक्ति यत्। तेन निर्युक्तिनोक्तेन शिलासदशवृत्तिना ॥ १३ प्रोक्तः सर्वविवद्धेन सोऽद्यः कृपान्धदर्दुरः। पूर्वापरिधयं स्यक्त्वा वर्तमाने मतिस्थितः॥ १४ वेदा लोकादयक्षेते पृष्टाः स्वातुभवान्विताम्। वदन्तीमां दशं सर्वे यथा नश्यन्ति संशयाः १५ संविदेव शरीरं चेच्छवं कसाम्र चेतति। इति यस्य मतिस्तसी मुहायेदमिहोच्यते ॥ १६ ब्रह्मणी ब्रह्मरूपस्य संकल्पनगरं ततम्। इदं तावजागद्भानं तव स्वप्नपुरं यथा॥ १७ तत्समस्तं सन्वेवं चिन्मात्रात्म निरन्तरम्। मचत्यत्र न ते भ्रान्तिः स्वे स्वप्ननगरे यथा ॥ १८ तत्र ताविद्दराः दाेळाः पृथ्व्यादिनगरादि च । सर्वे चिन्मयमाकाशमिति ते खानुभूतिमत्॥ १९ संविद्योम घनं ब्रह्म तत्संकल्पपुरं विराद्ध। शुक्रसंविन्मयो ब्रह्मा तदिवं जगदुच्यते ॥ 20 ब्राह्मे संकल्पनगरे यद्यत्संकल्पितं यथा। तथानुभूयते तत्तत्त्वत्संकरपपुरे यथा॥ २१ संकर्णनगरे यद्यद्यथा संकर्ण्यते तथा।

अक्षीबेति ॥ ११ ॥ यसु मूढा आस्था बुद्धिर्यस्य तथाविधवा-बाकः असी प्रपद्यः प्रत्यक्षमात्रं निष्ठा प्रमाणं यस्य तथाविधो माप्रसक्षप्रमाणमस्तीति श्रुत्यादिसिद्धं न प्राह्ममिति विकि स तेन निर्युक्तिनोक्तेन सर्वविष्ठदेन अभिक्षजनकर्णकठोरलाच्छि-कासदशद्दिना खोकेनैव निमित्तेन सर्वेविद्वद्भिरकः कृपान्धद-र्देर इति प्रोक्तः । यतोसौ पूर्वापरविचारधियं त्यक्ला वर्तमान-मात्रगोचरे प्रस्मे समसा पशुविस्थत इति इयोरन्वयः ॥ ९२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ नच चार्वाकाद्युक्तया संशया नर्यन्ति अनुमानादिप्रमाणानभ्युपगमेन तदुकेनिर्युक्तिलात्। वेदादयस्त गुरुमुखेन पृष्टाः सर्वसंदायोच्छेदेन पुरुषार्थलिखिक्षमाः । यतस्ते खानुभवान्वितां इमां मदुकां इशं वदन्तीत्याइ—वेदा इति । छोकासारवहजनाः ॥ १५ ॥ यदि प्रत्यगात्मसंविदेव देहादि जगत्तर्हि शर्व मृतशरीरमपि संविक्वात्कृतो न चेततीति मितः शहा यस तसी मूढाय शुभूषने इदमुख्यते १२७ ॥ १६॥ ब्रह्मकपस्य हिरण्यगर्भवेषस्य ब्रह्मण इदं जगद्र्यं मानं संकल्पन-गरं ततं विस्तृतम् ॥ १७ ॥ तद्वस्तुतो निरन्तरं चिम्मात्रात्मैव तथापि अत्र ते खे खप्रनगरे चेतनभ्रान्तिर्थया न तथा शवा-दिजडेऽपि नेति बोध्यमिखर्थः ॥ १८ ॥ तत्र खखप्रे खानुभूति-मत् विचारे खानुभवसिद्धम् ॥ १९ ॥ तद्वव्वगत्यपि चिन्मयत्वं संभावनीयमित्याह—संविदिति । ब्रह्मा हिरण्यगर्भः । विराद ब्रह्माण्डशरीरम् । तत्तादशमेवेदं जगच्छुद्धसंविन्मयमिखर्यः

तत्त्रधास्त्रेव च तदा त्वत्संकरुपपुरे यथा॥ तसादेहस्य नियती यथैती ब्रह्मणा चिता। स्पन्दास्पन्दी कविपती ही स तथैवानुभूतवान् १ महाप्रलयपर्यन्ते पुनः सर्गः प्रवर्तते । समस्तकारणाभावाद्रध्यं तायम विचते ॥ 28 विमुक्तत्वात्मजेशस्य नच संभवति स्मृतिः। ब्रह्मैवेयमतो दीतिर्जगदिखेष भासते ॥ 24 तस्मादाद्यात्मना भातं स्वमेव ब्रह्मणा स्वतः। जगत्संकल्पनगरमिति बुद्धं च खेन खम्॥ २६ यथा संकल्पनगरं चिन्मात्रं भाति केवलम्। तथैयाकारणं भाति चिन्मात्रोन्मेयणं जगत्॥ २७ शरीरमस्तु वा मास्तु यत्रयत्रास्ति चित्रभः। वेस्यात्मानं तत्र तत्र द्वेताद्वेतमयं जगत्॥ २८ तसाद्यथा स्वप्नपुरं यथा संकल्पपत्तनम्। तथा पदयति चिद्योम मरणानन्तरं जगत्॥ २९ अपृथ्वादिमयं भाति पृथ्वादिमयषज्जगत्। यथेदमा प्रथमतो मृतस्याप्यखिलं तथा ॥ of देशकाली न सर्गेण प्रबुद्धस्येष ती यथा। अणुमात्रमपि व्याप्ती तथैव परलोकिनः॥ 38 इदं प्रबुद्धविषये स्वानुभूतमपि स्फुटम्। जगन्न विद्यते किंचित्कारणं गगने यथा॥ 12

॥ २०॥ २९ ॥ २२ ॥ देहस्य जीवत एव सम्दो मृतस्य लस्पन्द इति नियता स्पन्दास्पन्दी ब्रह्मणा हिरण्यगर्भक्ष्पया चि-ता यथा कल्पिती तथव सलमनुभूतवाम वैपरीत्येनेति शवे न चेतनताव्यक्रकसन्दप्रसिक्तिरिखर्थः ॥ २३ ॥ 'निद्रेव्यं कुरुते इब्येयुंक्तिरिखसमंजसा' इति प्रश्नं समाधातुं तदाशयं परिष्क-रोति-महाप्रलयेति सार्धेन ॥ २४ ॥ ननु पूर्वप्रजापतिनि-र्मितं इव्यमत्रोपयोध्यते तत्राह्-विमुक्तसादिति । प्रविप्रख-यात्पूर्वमेव पूर्वप्रजेशस्य विमुक्तलात्तरकृतजगतो निःशेषं प्रज्यादित्यर्थः । अतस्तरप्रकारस्युत्यादिनिमित्तकारणान्यपि न सन्तीति लदाशय इति भावः । अयं च लदाशयोऽस्मत्सिद्धा-न्तिसिद्धावनुकूल एवेति समाधते—वद्मीवेति । दीप्तिः स्वयं-ज्योतिर्वक्रीव जगदिति भासते न द्रव्यक्षं जगदन्यदस्तीलर्षः ॥२५॥ तदेव स्पष्टयनुपसंहरति-तसादिति । ब्रह्मणा प्रथमं आयो हिरण्यगर्भस्तदारमना भातम् । भावे कः । ततस्तेन खयमेव संकल्पनगरं जगहुद्धं च ॥ २६॥ २७ ॥ एतेन मातापित्रायभावेपीति प्रश्नोऽपि समाहित इस्याइ--शरीर-मिति ॥ २८ ॥ मरणानन्तरं जगहर्शनेऽप्ययमेव न्यायो बोध्य इखाइ—तसादिति ॥ २९ ॥ आत्रथमतः आदिसर्गे ॥ ३० ॥ यथा प्रबुद्धस्य तत्त्वविदः खप्रात्प्रबुद्धस्य वा स्वाप्रदेशकाली जामत्सर्गेण अणुमात्रमपि न व्याप्ती तथा परलोकप्राप्तस्यापि नेहिकदेशकाली तत्र व्यागुत इलार्थः ॥ ३१ ॥ एवं तत्त्ववि- अप्रमुखस्यासदेव यथेदं भाति भासुरम् ।
तथेव सर्गवद्भाति व्योमेव परलोकिनः ॥ ३३
धुधरादियमाद्याक्यं खमेव परलोकिनः ।
अभृतपूर्वमाभाति भृतपूर्ववदाततम् ॥ ३४
मृतोयं पुनरुत्पन्नो यमलोके शुभाशुभम् ।
भुजेहमित्यतिधनं मृतो भ्रान्ति प्रपद्मयति ॥ ३५
मोस्रोपायानादरिणामेय मोहो न शास्यति ।

बोधादवासनत्वेन मोह एष प्रशाम्यति ॥ ३६ अप्रबुद्धस्य या संवित्सा धर्माधर्मवासना । ख एव खात्मिका भाति यत्तदेव जगत्स्थतम् ३७ न शून्यरूपं न च सत्स्वरूपं महाभिधं भाति जगत्स्वरूपम् । तचापरिश्वानवशादनर्थ-भूतं परिश्वातवतः शिवात्म ॥ ३८

इत्यार्थे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मी० दे० मो० नि० उ० महाप्रश्रोत्तरं नाम सप्ताधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २०७ ॥

अष्टाधिकद्विज्ञाततमः सर्गः २०८

Ę

૪

4

विसष्ठ उवाच ।

शुभाशुभं यथोदेति प्रजानां गृहसंगमे ।
असंबद्धरप्रतिष्ठदूरस्थस्तदिदं शृणु ॥
ब्रह्मसंकल्पनगरं जगत्तावदिदं स्थितम् ।
यहृदयं दृदययोधेन ब्रह्मवे ब्रह्मबोधतः ॥
यद्यत्संकल्पनगरे यदा संकल्पने यथा ।
तथानुभूयते तत्तत्तादिवद्यनं तदा ॥
पवमस्मिन्गृहे याते संपन्नविमयं प्रजा ।
पवं संकल्पसंपन्ने जगत्येवं भवत्यलम् ॥
पतत्स्वसंकल्पपुरे यादशं ते तथा स्थितम् ।
यथा संकल्पयसि यत्तत्त्था किल पद्यसि ॥
यथैय वरशापाभ्यां शुद्धसंविद्याण्यते ।

द्विषये जगदि न व्याप्रोतीत्याह—इदमिति ॥ ३२ ॥ अप्रबुद्वस्य निद्राणस्य । व्योम विद्योमेव ॥ ३३ ॥ भूतपूर्ववतपूर्वितद्वत् ॥ ३४ ॥ अयमदं मृतः पुनर्नारिकभावेनोत्पत्रो यमलोके
आगतस्तत्र शुभाशुमं भुन्ने इत्यादिश्रान्तिम् ॥ ३५ ॥ सा
आन्तिर्निःशेषं मोक्षोपायसेवनादेव नश्यति नान्यथेत्याह—
मोन्निति ॥ ३६ ॥ एतेन धर्माधर्मावेव जगदाकारेण परिणमेते
इत्यास्तिकपक्षोऽप्यनुएहीत इत्याश्येनाह—अप्रबुद्धसेति ।
संविद्विद्वितनिषद्धाचरणानुभवरूपा ॥३७॥ जगत्वहूपं स्रतः
श्रन्यरूपमि न, सत्वरूपं च न, किंतु ब्रह्माभिधं चैतन्यमेव
जगत्वरूपं भाति । तच अज्ञानवशादेवानर्थभूतं परिज्ञातवत्तसु
विवातम परमकन्याणनिरतिशयानन्दात्मकमेवेत्यर्थः ॥ ३८ ॥
इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्यर्थप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे
उत्तरार्थे सप्ताधिकद्विश्रतत्मः सर्गः ॥ २०७ ॥

वृरदेशगतैर्यक्षेरन्यत्रापि प्रजाफलम् ।
यथा प्राम्नोति तादक्षा भातुरिच्छात्र वर्ण्यते ॥ १ ॥
'अनिच्छतेहितैर्द्रदेशान्तरगतैः फलम्। प्रजाप्राम्नोत्यसंबद्धैरमूर्तेरत्र कः कमः' इति प्रश्नस्योत्तरं श्रावियतुं प्रतिजानीते—
धुभाधुभमिति । अप्रतिषेरमूर्तैः ॥ १ ॥ यद्यसाद्धेतोर्वद्भौवाझानाहुर्यकोषेन दश्यं ब्रह्मकोषतश्च ब्रह्मैव भवति तस्मादिदं
जगत् ब्रह्मसंकल्पनगरमिति तावित्थतम् ॥ २ ॥ कि ततस्त-

संवित्तथैव भवति ब्राह्ममेवेति कल्पनम्॥ Ę प्रजाविधिनिषेधाभ्यामेकयास्थाव्यवस्थया । तथैव फलमाप्नोति ब्राह्ममेत्रेति कल्पनम्॥ 9 देहिनो ये जगत्यसिस्तान्प्रत्यनुपलम्मतः। असदासीजगत्पूर्वं सत्यमित्युपलभ्यते ॥ ረ चिद्रपब्रह्मसंकल्पवद्यादेवैतदङ्ग सत्। चिदुनमेषनिमेपी यौ तावेतौ प्रलयोदयौ॥ Q राजोवाच । किं नोपलभ्यते पूर्व किं पश्चादुपलभ्यते। जगश्चलद्वपुरिदं सुस्थिरारम्भभास्त्ररम्॥ १० वसिष्ठ उवाच । असिश्चित्वोमसंकल्पपुरस्थे भाव ईदशः।

त्राह—ययदिति ॥ ३ ॥ ततोऽपि कि तत्राह—एवमिति । यथा ते तब अस्मिन्संकल्पमये गृहे येथं प्रजा एवं लत्संक-ल्पानुसारिणी संपन्ना तथेव ब्रह्मसंकल्पसंपन्ने जगलापि इयं प्रजा बद्मसंकल्पानुसारिण्येव भवतीत्यर्थः ॥ ४ ॥ तदेव स्पष्ट-माह—एतदिति ॥ ५ ॥ यत्तु जगत्यसात्संकल्पनगरवैरुक्षण्य-मनुभूयते तत्र वरशापमंकल्पसिद्धवद्वोध्यमित्याशयेनाह-यथै-वैति । मुनीनां यमनियमादिनिषेवणशुद्धाः संविद्वरशापास्यां यथा व्यवहारक्षमा अव।प्यते ब्रह्मसंविद्षि तथैय भवतीत्यर्थः। यद्वरशापाभ्यां भवति तदपि ब्रह्मणैव तपिखनां वरशापाः सिद्धन्तित कल्पनाद्वाद्वामेव सत्यसंकल्पनं बोध्यमित्यर्थः ॥६॥ प्रकृते प्रजाविधिनिषेधशास्त्राभ्यां बोधितयोर्धर्माधर्मयोर्मध्ये एकया आस्थाव्यवस्थया तत्फलं यदाप्रीति तदपि ब्राह्मभेवेत्वे-वंविधं संकल्पनमित्यर्थः ॥ ७ ॥ ८ ॥ असतो जगतः किचि-त्कालं सरवे भानमपि ब्रह्मसंकल्पवशादेवेलाह्-चिद्र्पेति । हे अन, एतजगत् ॥९॥ यदि जगत् बहासंकल्पयशात्सलहिं पूर्व सुपुतिप्ररूपयोः कि कृतो नोपलम्यते । पश्चाजाप्रत्सर्गका-लयोः किमर्थमुपलभ्यते चलद्भपुः सदा विकियमाणमिदं जग-त्मुस्थिरारम्भवद्भाखरं भासमानं कि कथमित्यर्थः ॥ १० ॥ मायिकस्यास्य स्वभाव एवेदश इत्युत्तरमाह—अस्मिन्निति । सर्गे सप्रजामतोर्भृता प्रस्यसुपुप्तिमोक्षेषु न भवसेवेति यद-

यद्भरवा न भवत्येच पुनर्भवति च क्षणात्॥ ११ यालसंकरपपुरवद्ध्योमकेशोण्डुकादिवत्। किलैते सद्सद्र्या भान्ति सर्गाधिदात्मनि ॥ १२ त्वं संकल्पपुरं कृत्वा विनाशयसि तत्क्षणात्। स्वतोऽन्यसंत्रिद्वशतः स्वस्वभावः स ते यथा £ \$ चिद्योमकस्पनपुरे यदुन्मज्ञनमञ्जनम् । स्वभावकचनं तस्य तद्विद्धि विमलं तथा ॥ १४ संविद्धनस्त्वनाद्यन्तव्योमैव त्रिजगन्नभः। तेनासावद्य यन्नाम करोत्यपि च चेतति ॥ 80 तदनावरणस्यास्य योजनानां शतेप्वपि । युगैरपि स्वप्न इय कार्यकृत्र्वमानवत् ॥ ६६ किल देशान्तरे नित्यमथ लोकान्तरेऽपि च। १७ निरावृतो य एकात्मा स कि नाम न चेतति यथा मणा प्रकचति प्रोन्मज्जननिमज्जने। परावर्तः स्वभासास्य चिन्मणी जगतां तथा १८ विधीनां प्रतिषेधानां लोकसंस्थापयोजनम्। सैय संविदि रूहत्वात्प्रत्यापि फलदा स्थिता १९ न कदाचन यात्यस्तमुदेति न कदाचन । ब्रह्म ब्रह्मचिदाभानं सचैदात्मन्यवस्थितम्॥ ₹0

साबीदको भावः सामाव एव ॥ ११ ॥ बालसंकल्पपुरादौ यावत्संकल्पभ्रान्तिकालमात्रावस्थाननियमदर्शनेन लावधारणाद्वा तस्र तथालमिलाह—यालेति ॥ १२ ॥ जग-रसंकल्पयित्रैव तत्प्रलयस्यापि संकल्पनाद्याः तथालमित्याद्य— लमिति । अन्यसंविद्वशतस्तरप्रजयसंकल्पवशत आकारान्तर-संकल्पवदातश्च यथायं ते स्तः स्त्रभावस्त्रथा चिद्योमसंकल्पपुरे तस्य ब्रह्मणो विमलं स्वभावकचनमिति परेणान्वयः ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ अतस्त्रिजगन्नभः संविद्धनमात्रं सदनाद्यन्तं व्योम ब्रह्माकाशमेव यतः स्वयमेव जगतेन हेतुना असौ परमेश्वरो यद्यक्षेत्रति करोत्यपि च तत्सर्वमनावरणस्यास्य सत्यसंकल्पव-ठाधोजनानां शतेष्वपि बहुभिर्युगैरपि व्यवहिनं पुण्यपापादि-कम परलोकादिषु समीपे वर्तमानवत्स्वर्गनरकमोगैश्वर्यादिकार्य-क्रुद्भवतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ बहिर्देशकालव्यवधाने कर्मत-त्फलोमयाध्यासाधिष्ठानभूतो निरावरणो य एकात्मा तत्रोभयोः सदैव सन्निधानारिक नाम कर्मफळं स जीवो न चेतति। सर्वे चेत-ह्येवेल्यर्थः ॥ १७ ॥ यथा प्रकचित मणौ स्वभासैव कान्ति-विशेषस्य प्रोन्मजननिमजने अनुभूयेते तथा चिन्मणौ जगतां स्टिप्रज्यात्मको नानाकमेफलवैचित्र्यभोगात्मकश्च स्वभासास्य परावर्तनं परावर्तीऽनुभूयत इत्यर्थः ॥ १८ ॥ विधित्रतिषेध-शास्त्रसाफत्यप्रयोजिका लोकसंस्थेव वा ब्रह्मणि निरूढलाहुर-स्थकर्मणामपि फलं कल्पयतीत्याह-विधीनामिति । मृला परलोकं गला स्थितस्येति शेपः ॥ १९ ॥ बस्तुतस्त

यथा तु द्रष्ट्रहर्यत्वात्कल्पना कल्पनापुरम् । स्वयं जगदिवाभाति जातमित्युच्यते तथा ॥ २१ यदा स्वभावात्कचनं संहत्यात्मनि तिष्ठति । ब्रह्मचिद्रगनेकात्मा शान्त इत्युच्यते तथा॥ २२ कचनाकचने यस्य स्वभावो निर्मलोऽक्षयः। यथैताबात्मनो नान्या स्पन्दास्पन्दी नभस्त्रतः २३ जरामरणहन्तृणि क्षणान्यत्र पृथकपृथक् । भवन्त्वित यथैतानि सन्ति त्वत्करूपनापुरे ॥ २४ ब्रह्मसंकरपनगरे स्वभावा उदितास्तथा। ओपधीनां पदार्थानां सर्वेषां च जगत्रये॥ २'५ न संकल्पयिता राजन्संकल्पनगरे स्वयम्। तृणं तृणं कल्पयति बालः फ्रीडनकानिव ॥ २६ स्वयं स्वभाव एवेप चिद्रनस्यास्य मुस्फुटम्। यद्यत्संकल्पयत्याशु तत्र तेऽवयवा अपि॥ 30 चिदात्मकतया भान्ति नानात्मकतयात्मना । अप्येकसारास्तिष्ठन्ति नानाकारस्यभावगाः॥ २८ प्रत्येकं किल तत्रास्ति ब्रह्म चिन्मात्रतात्मनि । सर्वातिमका सा यत्रास्त यथान्तर्भाति तत्तथा २९

जन्ममरणे एवात्मनो न स्तः किंखस्य खात्मनैव भ्रान्खा तत्कल्पनमित्याह—न कदाचनेति ॥ २० ॥ तथा जातं ज-न्मापि उच्यते वाचा व्यपदिश्यते नतु वस्तुत इत्यर्थः ॥ २१॥ तथा मर्णमपि पूर्वदेहादिश्रान्तिकचनोपसंहार एव नान्य इलाह—यदेति । शान्तो मृत इत्युच्यते जीव इसर्थः ॥२२॥ दृश्याकारकचनाकचने चाह्नानोपहितचितः स्वभाव एवेसाह--कचनेति ॥ २३ ॥ मणिमर्ख्यौषधीनां प्रभावविशेषा अपि ब्रह्मणः सत्यसंकरुपस्वभावा एव तथोदिता इति सद्दष्टान्तमाह--जरेति द्वाभ्याम् ॥ २४ ॥ २५ ॥ तर्हि किमीश्वरः प्रतिक्षणं प्रतिवस्त्रशक्तिकार्यादिमेदान्संकल्पयिता कल्प्यते नेलाह-न संकल्पयितेति । प्रतिबद्ध प्रतिक्षणमीधरो न संकल्पयिता कल्प्यते किंतु बालः कीडनकान्यश्वविशेषानिव सकृदेव संक-ल्पयत्येतज्ञातीयमेतज्ञातीयकार्येकृद्भवतु तच तज्ञातीयमित्थ-सुरपद्यतामिति । तद्वशादेव बीजाङ्करादिक्रमेण पूर्वपूर्वतृणसुत्त-रोत्तरतृणं कल्पयति ॥ २६ ॥ आशु क्षणेनैव यदासंकल्पयति तत्र ते ते पदर्थाः सद्वयवाः शक्तिकायीदिमेदा अपिशब्दा-त्कार्थेपरेपराश्व सकृत्संकल्पादेव सिद्धान्तीरयेष चिद्धनस्य स्व-भावः ॥ २७ ॥ ते संकल्पकल्पितपदार्था आत्मना स्वभावन नानात्मकतया स्थिता अपि प्रथमानस्वभावे चिवेकात्मतया भान्ति एवं खतो नानाकारस्वभावा अपि सद्र्पेण एकसारा-स्तिष्ठन्ति ॥ २८ ॥ तत्र तेषु पदार्थेषु प्रत्येकमात्मनि न्नस-विन्मात्रता अस्ति । यतः सैव चित्सवीरिमका यत्र यथा आस्ते

o **f**

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्ये किंचित्र किंचित्र सद्प्यसत्यम्।

स्थितं यथा यत्र तदात्म तत्र सर्वात्मभूभृततृणादिजाता ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० नि० उ० महाप्रश्रमोक्षणो नाम अष्टोत्तरद्विशततमः सर्गः ॥ २०८ ॥

नवाधिकद्विशततमः सर्गः २०९

विसष्ठ उवाच ।

पकस्य जीवितं पुंसः सुद्धता मरणं द्विचा ।

मृत्वार्थितं प्रयागादौ क्षेत्रे यस्तिदं श्रणु ॥ १

केत्राणामर्थधर्माणां सर्वेषां प्रति तं फलम् ।

प्रक्षणा किएतं सर्गे स्वके संकल्पपत्तने ॥ २

यत्र पुण्यं यद्यं च क्षेत्रं ताभ्यां तथा कृतम् ।

यति तद्विनियोज्यस्य तस्योक्षमति निष्कृतात् ॥ ३

तस्सात्मद्दः पापाद्भागमेनोस्विलं च वा ।

चितिश्चरात्म तत्युण्यं परिभ्राम्योपशाम्यति ॥ ४

विनेयपापमस्यं चेत्क्षत्रधर्माऽधिकस्ततः ।

तत्पापं नाशियत्या तच्छद्य पव विवस्गति ॥ ५

क्षेत्रधर्मेण तेनास्य विनेयस्य महीपते ।

दे द्वारीरे विदी सम्यक्षचतः प्रतिभात्मिके ॥ ६

तत्र तथा भातीत्यर्थः ॥ २९ ॥ एवमनादिमध्यान्तमनन्तनीर्यमपरिच्छेणशक्तिकं बद्धा किंचित्र किंचित्र स्थितमसत्यं
सदिपि स्थितम् । 'सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्'' इति
श्रुतेः । यतस्तत्सर्वातम भवतीति सर्वात्मभुः अतो भूतेषु
प्राणिषु तृणादिजातौ च यत्र यद्वस्तु यदात्म यत्त्वभावं प्रसिद्धं
तत्र स्वयमेव तत्स्वभावं भूता स्थितमित्यर्थः ॥ ३० ॥ इति
भीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तराष्ट्रं अश्वाधिकद्विशाततमः सर्यः ॥ २०८ ॥

सुगपत्रोगसंप्राप्ती विरुद्धफलकर्मणाम् । अविरोधेन साफस्यमिष्ट् युक्तया प्रसाध्यते ॥ १ ॥

प्रश्नेश्वोकमेव प्रश्नानुवादार्थमुक्यार्थ तेवामक्षराणां विनिमवेन तत्समाधि श्रावयति—एकस्पेति ॥ १॥ तं वक्ष्यमाणमविकारिणं प्रति क्षेत्रादीनां सर्वेधां फलं ब्रह्मणा कल्पितं संकल्पेन समर्थितमादिसर्गे ॥ २ ॥ यत्र संकल्पेपत्ते यद्ये यसाधिकारिणो वाब्खितार्थसिख्यर्थ कामप्रदं प्रयागादिक्षेत्रं तत्रानुष्ठितं कानवानतपोयक्वादिपुण्यं तथा ताभ्यां कृतं संस्कृतं शरीरं च यदि शाकविनियोज्यस्य पुरुषस्यास्ति तदा तस्य पुरुषस्य निष्कृताद्वस्यमत्र मदिष्टं फलं मविष्यतीति निश्चित्य कृतात्प्रयागमरणादेः सकाधात्तरकामितं फल्मुत्रमत्याविभेवत्येवेत्यर्थः ॥३॥
अतु कृतपुण्यस्येवं पातकिनस्तु श्रद्धावतः प्रयागमरणादिपुष्यं कि करोति तत्राह—तदिति । तस्यात्प्रयागादिमरणादुत्यत्रं ततो महतो ब्रह्मह्यादेः पापादेकभागमञ्जिलं संपूर्णमेनः
पापं वा क्षेत्रमाहारम्यतारतस्यानुसारेण परिभाम्य निरस्य स्वय-

इत्येवमादिपापानां पुण्यानां च फलं महत्।

ब्रह्मसंकरपकचितं यथा यचत्त्रथेव तत्॥ ७

ब्रह्मांच्यतेऽसी चिद्धातुः सोऽक्रजाचहमादि च।

स यथास्ते तथा तत्तत्तस्य संकर्णनं जगत्॥ ८

प्रतिभैव विनेयस्य क्षेत्रपुण्येन ताहती।

तथैवोदेति सा धानुर्विपरीतवतो यथा॥ ९

पकात्मनाहमधैष मृतोऽमी मम बन्धवः।

घदन्तीमे परं लोकं प्राप्तोऽयमहमेककः॥ १०

बन्ध्नामपि तत्रैव तदैवास्य तथैव च।

प्रतिभा ताहरीवेति धानुक्षोभवतामिय॥ ११

अत्युप्तैः पुण्यपापैः स्वैर्वा महात्मिमरीक्षिते।

लक्ष्याण्यण्यन्यथा सन्ति नृणां चित्करपनावदाात्

मप्युपशाम्यति । 'धर्मेण पापमपनुद्वति' इत्यादिश्रुतेरिति भावः ॥४॥ विनेयस्य शास्यस्य पुंसः पापमरूपं चेत्ततः क्षेत्रार्जितौ धर्मी-ऽधिकश्रेशिःशेषं तत्पापं नाशयिला तच्छरवे श्रुत्यादिप्रतिपाविते फले अंशेन विवलाति । काम्यफलमपि किंचित्साधयत्येवेत्यर्थः । यत्र तु विनेयस्य शास्यस्य पुंसः क्षेत्रार्जितेन धर्मेण समबकं पापमस्ति तत्र तुल्यबललादेव तेन धर्मेण अपनेतुमशक्यस्यास्य पापस्य पुण्यस्य च भोगाय है शरीरे तयोध है विदी चिदाभासी भान्तिप्रतिभारिमके कचतः ॥ ५॥६॥ यश्यथा ब्रह्म संकल्पकचितं तत्तत्तथैव व्यवस्थितमित्यर्थः ॥ ७ ॥ वद्यसंक-स्पक्रचितमित्यत्र किं तद्वहा कर्य वा तत्संकल्पकचित जगल-दाह-नहोति। स एवाव्जजादिसमष्टिजीवा अहमादिव्यष्टिजी-वाश्र स यथा संकल्पयनास्ते व्यष्टिसमञ्जूपाधी तस्य संकल्पनं जगदपि तत्तथास्ते इत्यर्थः ॥ ४ ॥ भादः संकल्पानुसारेणैव विनेयस्य क्षेत्रार्जितपुण्यानुसारेण तत्फलभोगात्मिका प्रतिभैव खप्रवदुदेति । यथा पुण्यविपरीतपापवतो नरकादिप्रतिभोवेति तद्वत् ॥ ९ ॥ कीहशी कीहशी प्रतिमोदेति तामुक्तिस्य दर्श-यति-एकात्मनेति । अहमद्य एक एवात्मना मृतः अमी मम यन्धवः सर्वे जीवन्ति मद्ये रदन्तीमे ॥ १०॥ एतदीयं मरणमिव बन्धूनामपि अस्य तत्र प्रसिद्धं रोदनशवनिर्दरणस्म-शानगमनदाहादिकं सर्वमपि धातुक्षोभवतां सन्निपातश्चरधवा-तपित्तादिधातुमतां पुंसामिव तादशी प्रतिभैवेति बोध्यम् । तादशा इति कमन्तादाप्छान्दसः ॥ ११ ॥ यदा इत्युक्कदानि पुष्पानि पापानि वास्य सन्ति तदा तैः खैरेव क्षुरुवेर्गहास्मिन- अचेतनं शबीभृतं तेऽपि पश्यन्ति तं मृतम्। रदन्ति तं च दहने क्षिपन्ति सह बान्धवैः॥ १३ विनेयः स यथान्येन संविद्यपेण देहिना-। ऽजरामरणमात्मानं वेत्ति स्थितमदुःखितम् ॥ १४ यथास्थितेन देहेन वेरयसी जीवितस्थितम्। १५ मृति त्वदृश्येनान्येन क्षेत्रपुण्यविदेरितः॥ आबिला संबिदा संविष्क्रन्यया वेद्यते क्षणात्। नहि सम्बद्धगात्रस्य क्षेत्रोऽसम्बद्धमेदने॥ १६ पश्यन्ति बन्धवोऽप्येनं तथैवामरतां गतम् । इयमित्येष समते जीवितं मरणं समम्॥ १७ इद्मप्रतिघारम्भं भ्रान्तिमात्रं जगञ्जयम्। न संभवति को नाम भ्रान्ती भ्रान्तिविपर्ययः॥ १८ संकरपस्वप्रपुरयोर्या भ्रान्तिरनुभूयते। तेतोऽधिकोऽयं न न्यूनाज्ञात्रस्वप्रेऽनुभूयते ॥ १९ राजोबाच । धर्माधर्मी कथं ब्रह्मन्कारणं देहसंविदः। तस्यामूर्ती कथं चैको द्विशरीरत्वमृच्छति ॥ २० वसिष्ठ उवाच। संकल्पनगरे ब्राह्म जगत्यस्मिन्महामते। किंनाम नो संभवति सत्यं वाष्यसमञ्जसम्॥ २१

निमहानुमहरस्या इक्षिते सति वा क्षुच्धेः परैर्छक्याणि अन्यथा **परैरलक्ष्याण्यपि वा** तरफलानि शरीरादीनि चित्कलनावशात्सन्ति भवन्तीखर्यः ॥ १२ ॥ ते जना अपि क्रन्विदरयुरकटैः पुण्य-पापैरुतं विनेयं मृतं पर्यन्ति ॥ १३ ॥ 'एकस्य जीवितं पुंसः सुहदा मरणं द्विषा । मृत्वार्थितं प्रयागादौ क्षेत्रे तत्कशमुख्यताम्' इति प्रश्नं समाधरी-विनेय इत्यादिना । वेहिना अजरामरण-मिति च्छेवः। सः सुहृद्विषोः कर्मभ्यां विनेय एकः पुरुषः अन्येन क्रेह्संविद्र्पेण देहिना सुहदा यथा प्रार्थितं तथा स्थितमजरामरणमारमानमदुःखितं वेत्ति ॥ १४ ॥ किं वेहान्तरेण नेलाह-यथास्थितेनेति । तर्हि कथं तक्रियो मनोर्थसिदिस्तत्राइ-मृतिमिति । सुहृत्खजनैरदृश्येनान्येन देहेन मृति वेति । क्षेत्रे प्रयागादी शत्रुमरणानुकूलपुष्यक्र-त्ता द्विषा हैरितः । बलान्मरणाय प्रेरितः समित्यर्थः ॥ १५ ॥ तत्र द्विषरकृताभिचारादिप्रतीकारश्चन्यया यिनेयविदा क्षणात्त-स्कालमेव मरणादिकं वेद्यते अनुभूयते । सन्नद्धगात्रस्य द्विषो वर्मायुषादिना, असमद्भगात्रस्य विश्वसस्य शरखद्गादिना मेद-नेन हि होशः ॥ १६ ॥ १७ ॥ अनेनैव न्यायेन सर्वे विरुद्ध-प्रश्नाः समाहिता बोध्या इत्याशयेनाह—इदमिति । भ्रान्ती को बा आन्तिविपर्ययः । एकश्रमविरुद्धोऽपरो श्रमः को वा न संभवति । खप्रसिषपातादौ विरुद्धसहस्रस्यापि सहभावदर्श-नादिलार्थः ॥ १८ ॥ तदेवाइ--संकल्पेति ॥ १९ ॥ धर्मा- यथेव संकल्पपूरे यज्ञ संभवतीह हि । तभारत्येव तदेतस्मिन्किवास्त् ब्रह्मकल्पने ॥ २२ स्वप्तसंकल्पप्रयोरेको गच्छति लक्षताम्। तथा चैकव चित्स्वप्रे सेनात्वमुपगच्छति॥ २३ सहस्राण्येकतां यान्ति तथा सैव सुषुप्तकम्। अन्यथा स्वप्नसंकल्पसेनानुभवसंस्मृती ॥ 33 संकल्पस्वप्रपुरयोरिति को नानुभृतवान्। संविदाकाशमात्रेऽसिजगत्यनुभवातमनि ॥ ₹'₹ तसादसिधिदाकादासंकरंगे जगदात्मनि। न संभवति किं नाम तरसंभवति वापि किम् २६ एवमेवमियं भ्रान्तिर्भाति भास्वन्नभोमयम्। नेह किंचन सम्रासम्रयाऽऽसदिह किंवन॥ ২৩ यथानुभूयते यद्यत्तनथा तरवद्दिंगः। प्रबुद्धस्यात्र किं नाम तत्स एवाङ्गतेत्यलम् ॥ २८ इह चेब्रिहितो धर्मस्तत्स्वर्गेऽस्तपर्वताः। स्थिता इतीह संकल्पे कस्मान्न प्राप्तवानिगीन २९ इह यत्क्रियते कर्म तत्परश्रोपभुज्यते। इतीह संकर्णपुरे सर्वमेवासमञ्जसम्॥ 30 यदि स्यारसुस्थिरं किंचिद्वस्तु तदृश्यको भवेत्। न्याय प्रषोऽखिलः किंतु संवित्दात्स्वस्वकंस्थितः ३१

भर्मावमृती द्वानिति प्रशमेव प्रकृतकथाक्षेपानुगुण्येन पारकृत्य राजा पुनः प्रच्छति--धर्नाधर्नाविति । तस धर्नेम्य अधर्मस चामृतौँ मृर्ने अभावे द्विशरीरलं द्वितीयशरीरमावं ऋच्छति प्राप्नोति ॥ २० । धातुः सत्यसंकल्पः अमृतिस्नापि मृतीतां घटयित् समर्थ इत्याशयेनोत्तरमाह---संकल्पनगरे ३ति ॥२१॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ सा खप्रसेनैदेकं सुष्ठप्रकं भवति स्वप्रसंकः ल्पानुभृतसेनायाः स्मृतौ समहरूपतया एकाकारे इद्शिति स्थाने तदिति कल्पनेन चान्यथानुभवनं भवडीति सर्वानुभव-**सिद्धमि**खर्थः ॥ २४ ॥ २५ ॥ उपसंहरति—नस्मादिति ॥ २६ ॥ नवा आ सत् ईषस्सत् सदसदिव्यर्थः ॥ २७ ॥ प्रबद्धस्य अत्र कि नाम असमजनमिति शेषः ॥ २८ ॥ धर्ना-धर्मानुष्ठायिनोऽपि जनाः शास्त्रकृतस्यक्षानेश्वयानुसारिस्वगीनेव प्राप्तवन्तीत्याह--इह चेदिति । अभृता देवास्तर्यभोग्याः अमृ-तरसनिर्झरहदफलपुष्पादिपूर्णाध पर्यताः खर्गे स्थिताः सन्तीति शास्त्रतोऽवगम्य तद्वसारिसंकर्षे सति तत्र गला ताहशगिरी-न्त्राप्तवान् स्वात्मानं कस्माञ्चानुभवतीलार्थः ॥ २९ ॥ यदि स मिथ्याखादसमञ्जसमिति ते बुद्धिस्तर्श्ययं लोकस्तत्र धमीयन्। तेन परछोकस्तत्र भोगश्रेलेतत्पर्वमेव जगदममत्रसमेवत्याहः— इहेति—इह जगति ॥३०॥ यदि जगति किचिद्धतभवनादिवस्त सुस्थिरं सत्यं स्यात् तत्रायं विरोधो दश्यको भवत तदा एव इदं समजसिव्यसमञ्जसित्येष न्यायोऽखिलः अकृण्ठितः स्यात् किंतु सर्वोपि द्रष्टा संवित्त्वारखस्त्रकं संकल्पनमेन दृश्यकः

६ ततोऽभिकेयं न न्यूना जामदिति पाठोऽत्रापेक्षित:.

32

33

38

34

इत्येष कथितो न्यायः सिद्धास्त्रनुभवस्ततः। यतो जगन्ति संकल्पश्चितो ब्रह्मस्यरूपतः॥ तव संकल्पनगरे नास्त्येवासंभवो यथा। सर्वार्थानां तथा ब्राह्म संकल्पे नास्त्यसंभवः यद्यथा किंपतं तत्र यावत्संकरूपमेव तत्। स्वभावेन तथेवास्ति यत्स्तत्संनिवेशवत्॥ ततः संप्रक्षणमिष्ठ संकरो न प्रवर्तते। विनाम्यश्चित्वयहोन भवत्यर्थस्त नान्यथा ॥ इत्यार्षे श्रीवासिष्टमहारामायणे वार्वे मोर्शन विश्व उरु महार सर्वास्तिलानुभूतिदर्शनं नाम नवाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२०९॥

आकरपमजसंकरपे यथा भातं जगतिस्थतम्। पुनरन्येन संकल्परूपेणान्यदुपैष्यति॥ 36 संकल्पातम स्वयं भाति कर्षे कर्षे जगत्तथा। प्रतिजीवं चितिस्वमे स्वमे स्वामपुरं यथा ॥ Ø\$ संकल्पपत्तनतनोर्न तदस्ति किंचि-द्यद्यन्न संभवति तद्य चिदात्मनोऽसात् । नान्यत्प्रकम्पयितुराद्यपरस्वरूपा-इक्षेत्र तेन सकलं जगदङ्ग विद्यि॥

द्शाधिकद्विशततमः सर्गः २१०

घसिष्ट उवाच । फले क्षयेन्द्रभारूपे प्राप्ते ध्यातृशतैर्नभः। यथा न शतपूर्णेन्द्र तथेदं कथनं शृणु ॥ चन्द्रविम्यस्य ध्यातारः प्राप्ताः प्राप्तव्यसुस्थिताः । नेवं नभस्तलं प्राप्ता न चेमं शशिनं श्रिताः॥ केवान्यसंकष्पपुरमन्यः प्राप्नोति कथ्यताम्। संकल्पपूर्यामर्थाप्तिस्तज्जन्तावेव नापरे॥ ą पृथक्पृथक्स्वसंकल्पसर्गखेष्वेव ते स्थिताः। चन्द्रास्तपन्ति तत्रैव कलाश्रयविवर्जिताः॥ विशेयमसिन्नेवेन्दाविति ध्याता निशाकरे। असिश्रेव विशयन्तरात्मवृद्धिसुखोज्बितः॥ 4

स्थितो न वास्तवमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ इत्येपोऽस्माभिरासमञ्जूधः-परिहारन्यायोऽपि स्वप्नसंकल्पतिद्धासु कल्पनासु अनुभवः सर्वा-नुभवानुसारी स्थितो जगत्स्रपि योज्यः । यतो जगन्खपि ब्रह्म-खरूपतः स्थितायाथितः संकल्प एव ॥ ३२ ॥ तदेवाह-तविति ॥ ३३ ॥ यद्यथा तत्र बाह्यसंकल्पे कल्पितं तत् ताह-शसंनिवेशवत्तथा सामायेन(स्ति ॥ ३४ ॥ ततस्ताहशसंनिवेश-खभावनियमादेव ज्ञानेन्द्रियैः सर्वेवस्तूनां सम्यगविसंवादितया प्रेक्षणं प्रवर्तते । कर्मेन्द्रियव्यवहारे संकर्ध न प्रवर्तते । पुर्वचिरप्रयक्षेत्र कृतनियतसंगिवेशोऽर्थः अन्यचिरप्रयक्षेत्र विना अन्यथा च न भवति । चार्थे तुः ॥ ३५ ॥ आक-ल्पमाप्रलयं यथा अजसंकल्पे भातं तथेव स्थितं प्रलयानन्तरमन्यत् बद्धाण्डान्तरम् ॥ ३६ ॥ ३० ॥ संकल्प-पत्तनतनोरस्य जगतो यम्न संभवतीति मन्यसे तम्नास्ति सर्वे संभवत्येव तच प्रकल्पयितुरस्माश्चिदाहमनो नान्यत् तेन हेतुना जगद्रदेव विद्धीलर्थः ॥ ३८ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामा-यणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे नवाधिकद्विशत-तमः सर्गः ॥ २०९ ॥

इह वसिष्ठप्रश्नानां समाधानं निरूप्यते। तथा देहादिजगतः सुद्दम्या ब्रह्ममात्रता ॥ १ ॥ 'खेऽस्यामक्षयपूर्णेन्दुरिति ध्याथिचितैः फलैः । तुस्यकाल-मज्ञप्राप्तैः सहस्रेन्द्र न कि नभः' इति प्रश्नस्योत्तरं तत्र प्रथमं

अहमिन्दुं प्रविष्टः स्यामिन्दुबिम्बसुखान्धितः। ध्यातेति तादक्सुखभाग्याते विनिश्चयः॥ युर्वियमनुसंधत्ते स्वभाषं संविद्वया। तं तथैवानुभवति भवेचेद्रहनिश्चयः॥ 9 यथेन्द्रत्वं स्वसंकरुपात्सवध्यातुः पृथकपृथक् । भार्यवमेव वनितालाभः काल्पनिकः स्वतः॥ या ध्याने ध्यातृलक्षाणां साध्यी भायीत्यमागता । तत्कल्पनानुभवनं तेयां सत्वातमनि स्थितम्॥ गृहादनिर्गतो जीवः सप्तद्वीपपरः स्थितः। तस्यापि तस्कालपनिकं राज्यं व्योख्नि स्वमन्तिरे १०

श्रावयति—फले इत्यादिना ॥ १ ॥ सत्यचन्द्रविम्बस्यार्हभावेन ध्यातारः प्राप्तच्ये चन्द्रभावं चिरध्यानेनान्यभावविसारणादैनदः वन्यायेन सुस्थिताः सन्तश्चन्द्रभात्रं प्राप्ता एव तथापि नेदं नभरतलं प्राप्ता नाष्येनं शशिनं श्रिताः । प्रविष्टा इत्यर्थः ॥ २ ॥ कुतो न प्राप्तास्तत्राह-केवेति । अन्यसंकल्पपुरमन्यः प्राप्नोतीत्येतरकेव कुत्र दष्टं दशन्तीकृत्य प्रकृते शक्कते । तज्जन्ती तस्मिन् संकल्पयितृजीवे एव न परे जीवान्तरे दक्षा ॥ ३ ॥ क तर्हि ते स्थितास्तत्राह—पृथगिति ॥ ४ ॥ ५ ॥ अस्मिनेव चन्द्रे ते सर्वे लाधवात्कुरो न प्रविष्टास्तन्नाह— अहमिति । तैस्तु न तथा ध्यातं किंतु लत्प्रश्नानुसारास्त्रे स्याम-क्षयपूर्णेन्दुरिति कामनया घ्यातमिति भावः ॥ ६ ॥ अन्यथा ध्याने इन्यथा फलं कुतो न भवति तन्नाह—यथेति । यथायं स्वभावमयमनुसंधत्ते रहसैकल्पेन ध्यायति तं स्वभावमव्यया साक्षिसंवित्तर्थवानुभवति न वैपरीत्येनेत्यर्थः ॥ ७ ॥ 'अन्यव ध्यायिनां लक्षेध्यातिका स्त्री यथाकमम् । जायात्वेन समं कालम्' इति प्रश्नोऽप्यनेनैव युक्तया समाधेय इत्यतिदिशति-यथेति । स्वतः स्वस्य काल्पनिकः कल्पनासिद्धः ॥ ८ ॥ 'साध्व्यसाध्वी गृहे भर्तुः संस्थिता तपसा परा' इति प्रश्नां-शेऽप्ययमेव समाधिरिलाह—येति । सलात्मनि अन्तःकरणो-पहिते साक्षिण ॥९॥ 'गृहानिर्गच्छमाकल्पं मृपः स द्वीपसप्तके'

समस्तं कल्पनामात्रमिदमाद्यश्चजन्मनः। श्र्न्यमप्रतिघं शान्तं तेष्वपि स्यात्किमन्यथा ॥ ११ दानौर्ध्वदेहिकतपोजपादीनां परत्र यत्। अमूर्तानां फलं मूर्त तदिदं कथ्यते शृणु ॥ १२ दानादिचिहितधियः परत्र स्वप्नवत्फलम्। परयन्त्यमूर्तामूर्ताभमजं चिन्मूर्तिकल्पनात्॥ १३ वेदनाघेदनाकारा स्पन्दास्पन्दात्म वै पुनः। चिन्मात्रस्यास्य तद्भान्तिशान्ती शान्तात्म निर्मलम् चिन्मात्राभमितो दानादमुत्रात्तमवाग्रुयात्। संकल्पात्मेति कवयः कथं तन्नोपलभ्यते ॥ 80 करपनात्मनि संसारे संकल्पोऽकृत्रिमं फलम्। चिन्मात्रमभितोऽदानाद्दानाद्वास्तु यथोदितः १६ पतत्ते कथितं सर्वे यथापृष्टं महीपते। जगदप्रतिघं सर्वमिदं चिन्मात्रकल्पनम्॥ १७ राजोवाच । सर्गादौ भगवन्देहमिदं चिन्मात्रकल्पनम्। कथं भाति कथं कुड्यं विना दीपः प्रकाशते ॥ १८ वसिष्ठ उवाच। त्ययार्थी देहराब्दस्य यो बुद्धः स महामते। तस्वज्ञं प्रति नास्त्येव शिलानृत्तमिवाम्बरे॥ १९ य पव ब्रह्मशब्दार्थी देहराब्दार्थ एव सः । न(र्थयोरनयोर्भेदो विद्यतेऽम्ब्वम्भसोरिव ॥ २०

इति प्रश्नोऽप्यनेन समाहित इत्याह—गृहादिति । स्वमन्दिरे न्योप्ति खनिताकाशे ॥ १०॥ यदा इदमस्मदादिदृश्यं जगदपि समस्तमाद्यस्य इजन्मन औरपत्तिकसार्वश्यवतो हिरण्यगर्भस्य कल्पनामात्रं तदा तेषु उपासककल्पितजगत्सु किमन्यथा अ-न्यादशं सत्यं स्याधेनासमञ्जसता स्यादित्यर्थः ॥ ११ ॥ 'दानध-मीदितपसामी ध्वेदेहिककर्मणाम् । इहस्थानासमूर्तानां मूर्त प्रेखास्ति कि फलम्' इति प्रश्नमनूच तत्समाधानं वक्तुं प्रति-जानीते-दानेति ॥१२॥ चितैव मूर्खाकारकल्पनात् ॥१३॥ मनोज्ञानेन्द्रियेर्वेदनावेदनाकारा भ्रान्तिस्तस्या भ्रान्त्या विषयः प्राप्तये तिचनमात्रं समनस्कैः कर्मेन्द्रियैः स्पन्दास्पन्दारम संप-**चते ।** तक्कान्तिशान्तौ तु निर्मलं शान्तात्मैवावतिष्ठते ॥ १४॥ इत इहानुष्टिताहानादमुत्र परलोके चिन्मात्राभं चित्रितिभाशा-रमकं तत्तरफलमात्तमुपनीतं तत्यंकल्पातमा जीवः अवामुया-दिति कवयो बदन्तीति. शेषः ॥ १५ ॥ इतो दानाददानाद्वा अकृत्रिमः संकल्प एव दानफलं भोगैश्वर्यादि, अदानफलं दारि द्यादि वा परलोकेऽस्तु न कश्चिद्विरोध इति सर्वासमझसपरि-हार इखर्यः ॥ १६ ॥ सर्वोन्प्रश्नान्कण्ठतोऽयोच समाधाय जगतो बहाव तत्त्वमित्युपसंहरति-एतदिति ॥ १७ ॥ देहे एव विद्रभिव्यक्तिदर्शनादनभिव्यक्तविति भ्रान्याद्यर्शनात्स-र्गादौ भ्रान्तिसिदौ देहसिदिस्तित्सच्या च भ्रान्तिसिदिरिल-मन्यमानो राजा प्रच्छति—सर्गादाविति ।

यदेव ब्रह्मदेहोऽसौ स्वप्नाभः स्वप्न एव तु। त्वद्वोधायोच्यते युक्तिनेत् तत्स्वप्न एव तु ॥ २१ स्वप्नस्तवानुभृतार्थस्तेनातस्त्वं प्रवोध्यसे। नत सर्गे चिदामाते साहद्यं खप्रभसना ॥ २२ कस्तत्र नाम देहोऽयं कस्पैते स्वप्नधीः क घा। स्वप्रेन शायबुद्धेन भ्रमेणाशोऽवयोध्यते ॥ २३ तत्र जाग्रश्न च स्वप्नो न सुपुप्तं न चेतरत्। किमपीत्थमिदं भानं खमात्रं मौनमोमलम् ॥ २४ अभातमेव भातीव यद्धेत्थमिदं तु तत्। प्राग्विभातं तथात्यच्छं जाग्रत्स्वप्नादि नो यथा २५ देशाहेशान्तरप्राप्ती यन्मध्ये संविदो चपुः। तन्मयं सर्वमेवेदं हैतमहैतमेव च ॥ २६ अन्यत्र चिन्मयं स्वप्नं द्वेताद्वेतं शुभाशुभम् । निराधरणचिन्मात्रनभसेवोपमीयते ॥ २७ शुन्यमर्थोपलम्भश्च भानं चाभानमेव च । द्वेतमैक्यमसत्सद्ध सर्वे चिद्वगनं परम् ॥ २८ पूर्णात्पूर्णे प्रसरति पूर्णमेव स्थितं जगत्। नच भातं नचाभातं शिलाबद्धोद्ररोपमम्॥ ર૧ यतो जगश्चिदुन्मेषो व्योमात्माप्रतिघं ततः। चिन्मात्रं यत्र यत्रास्ति तत्र तत्रोचितं जगत्॥ ३० चिद्योम चास्ति सर्षेत्र सर्वे चैतज्जगन्मयम् । सर्वे ब्रह्ममयं शान्तं जगदित्यपि शब्दितम्॥ 38

चिन्मात्रं देहशून्यं चैतन्यं तत्कृतं देहकल्पनं कथं भाति । देहं विना चित्प्रथाया एवादर्शनात्कुज्याद्यनाश्रितदीपप्रभाप्रायला-त्तदा चैतन्यस्येत्यर्थः ॥ १८ ॥ न जडो देहश्विद्भिव्यज्ञक इति तत्त्वज्ञपक्षः। तदृष्टै। जडस्येवाप्रसिद्धेः। बद्धा तु सर्वज्ञला-रसदैवाभिव्यक्तचैतन्यं देहादि सर्वं कल्पयतीत्याशयेनोत्तर-माह—खयेखादिना ॥ १९ ॥ अम्ब्यम्मसोरिवेति शब्दद्वया-नुकरणलाम्न 'विरूपाणामपि समानाथीनाम्' इत्येकशेषोऽसह. प्रयोगोऽद्वन्द्वो वा ॥ २० ॥ स्वप्नामंऽसौ देहो यद्वद्य तदेव । नन खप्नेऽप्यस्य न्यायस्य साम्याद्रहात्ये खप्राम इति भेदं सिद्धवरक्रत्य दशन्तोक्तिः कथं तत्राह—लद्बोधायेति ॥ २९ ॥ कथमस्य मद्बोधोपयोगस्तत्राह—स्त्रप्त इति । स्त्रप्रलक्षणेन भस्मना बाधितार्थेन सह चिदारमना आभाने सर्गे साह्ययं नबस्तीखर्थः ॥ २२ ॥ कस्पैते खप्नार्थाः ॥ २३ ॥ ओमिति विराडादिपादत्रयप्रविलयावशिष्टतुरीयोपदेशः । अलमिति तत्र सर्वसाधनपुरुषार्थपर्यासिदर्शनम् ॥ २४ ॥ यद्येरथं भातीव तदाभातमेव। प्राग्विभातमपि तथा। तथाच कदापि जाश्रत्ख-प्रादि यथा नो नास्त्येव तथा अत्यच्छं ब्रह्मास्ति ॥२५॥ देशादिति व्याख्यातम् । निर्विषयचिन्मात्रमयमित्यर्थः॥२६॥अ**इद्येरन्यत्र** ब्रह्मै खप्रादि सर्व चिन्मात्रनभसेवोपमीयते ॥ २७ ॥ २८ ॥ स्फटिकशिलाया आबद्धं धनं यदुद्रं मध्यं तदुपमम् ॥ २९ ॥ उचितं स्थातुमिति शेषः ॥ ३० ॥ मधीब मदामयम् ॥ ३१ ॥

यथास्थितमिदं विश्वं तथालंस्थमनामयम्। ब्रह्मेच निरवद्यातम चित्संकल्पपुराकृति ॥ 32 असंभवादन्ययुक्तेर्युक्तिरेपैव शोभना । अयुक्तयनुभवं तृकं नार्थिनामिह शोमते ॥ 33 लोके शास्त्र उथ वेदादा यत्मिन्नं सिन्नमेव तत् । सदस्त्वसद्यातमनि तदानुं शक्यं न वा कचित्३४ तदेवेत्थं परिवातं ब्रह्मताम्पगच्छति । यदा तेन समं विश्वं स्थितमेव विलीयते ॥ 34 न्यायेनैतदिहोकेन लोकवेदादि सिद्ध्यति। सर्वे स जीवन्मकत्वमेष प्रवेचितस्ततः॥ 3,6 परिश्वातं चिदाकाशमपरिश्वातपाद्ये। सोऽहं त्रिजगदित्येच बन्धमीक्षविनिर्णयः॥ ३७

यथास्थितभिदं रह्यं परिश्वानाद्विलीयते । तज्बस्यास्तंगतस्येव शिलामीनं तु शिष्यते ॥ 36 लोके शास्त्रे च वेदे च यत्सिद्धं सिद्धमेव तत्। संवेद्यते तदेवातस्तदेवं फलति स्फुटम्॥ 39 सकलार्थनिरासेन यद्यत्संवेद्यते चिरम्। तदेव प्राप्यतेऽवइयं सर्वत्रैवान्यभावितम्॥ 80 यथानुभूतं यत्तत्तत्था नामानुभूयते। तत्सत्यमस्त्वसत्यं वा यावलामं तथा नु तत् ४१ इत्थं महाप्रश्नविचारणं ते मयेव्मुक्तं मतिमन्महात्मन्। अनेन गच्छाश्र पथा निराधि-र्निरामयो निर्ध्यसनो भवोचैः॥ 83

इत्यापे श्रीवा व्यार्वे देव मोवांने व उद्भीकोपलम्बनिरासेन महाप्रश्लोत्तरबाक्यसमाप्तिनीम दशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२१०॥

एकादशाधिकद्विशततमः सर्गः २११

धिष्ठ उवाच ।

श्वित तत्रोपविदयाहं पूजितस्तेन भूभुजा ।

प्रयोजनं स्वं संपाद्य स्वर्गन्तुं गगनं हुतः ॥ १
अधितद्भवता प्रोक्तं मया मतिमतां घर ।
अनया सुदशा शान्तमनाः खात्मा भविष्यति ॥ २

प्रक्षेत्र तदिदं सर्व निर्नामेवामलं नभः ।

किमप्येवाजमाशान्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ३
चिद्धानमात्रमित्युक्तं ब्रह्मेति कल्तितामिधम् ।

॥ ३२ ॥ अर्थिनां पुरुषार्थेन्छ्नां श्रीनृणां पुरत इति शेषः ॥३३॥ मत्प्रमाणयुक्तयनुभवसिद्धं तत्सिद्धमेव न हातुं शक्यम् । तथाच सदिति वैदादिसिद्धं ब्रह्म तथैवाभ्युपगन्तव्यमसदिति सिदं द्वेतं त्रवेवाभ्युपगन्तव्यमित्वर्थः ॥ ३४ ॥ तत्पूर्वममहोति गृहीतं विश्वमित्थं परिकातं ब्रह्मतामुपगच्छति । कदा । यदा तेन चरमसाक्षात्कारवृत्तिरूपेण ज्ञानेन समं स्थितमेव विलीयते तदा ॥ ३५ ॥ लयापी देहशब्दस्येत्यादिना एतदन्तेन मदुक्तेन न्यायेन सजीवन्मुफारवं जीवन्मुक्तिसहितं लोकवेदादिसर्व जगदेतद्वद्वीव सिध्यति, तस्मादेष एव मदुक्तो न्यायः परमपुरु-षार्थोपायलादुपादातुमुचित इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ अस्मिन् अपरि-ह्यातात्ममात्ररूपसंसारलक्षणं पादपेऽश्वत्थत्रक्षे परिज्ञातं चिदा-काशमेव न ततोऽन्यद्णुमात्रमप्यस्ति सः अपरिज्ञातः परिज्ञा-तथ चिदाकाशोऽहमेव त्रिजगत् बन्धो मोक्षश्च पर्यायेणेति विनिर्णय इत्यर्थः ॥३७॥ परिज्ञातमात्रत्वं कयं मोक्षस्तत्राह-यथास्थितभिति । तज्ज्ञस्य स्यरूपमिति शेषः। दश्यात्मना अस्तं गतस्य रब्धात्रं वागाद्यगम्यमवशिष्यत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ लोकं जीवनमुक्तजने यत्सिद्धं विचारशतैः परिनिष्ठितं तदेव खानुभ-वैनापि संवैद्यते। अतस्तदेवं परमपुरुषार्थभावेन फछति॥३९॥ तरप्राप्तावितरार्थमात्रत्यागेन तदेकनिष्ठतैवोपायस्तेन वाबद्यं

परात्परमिति प्रोक्तं तत्तु निर्नामकं पदम् ॥ श्रीराम उवाच ।
सिद्धसाध्ययमब्रह्मविद्याधरित्वौकसाम् ।
ब्रह्मन्कथय दृश्यन्ते लोका लोकधराः कथम् ॥ ५
वसिष्ठ उवाच ।
सिद्धसाध्ययमब्रह्मविद्याधरित्वौकसाम् ।
अन्येपामपि भूतानामपूर्वाणां महात्मनाम् ॥ ६
प्रतिरात्रं प्रतिदिनं पुरः पश्चादुपर्यधः ।

तत्त्राप्यत इत्याह—सकलार्थेति । सर्वत्र लौकिकेऽपि कार्ये अन्यद्पि भावितं तथैवेल्यर्थः ॥ ४० ॥ तत्र लौकिककार्यम-सत्यं मोक्षाख्यं तु सल्यमिल्यवान्तरवैलक्षण्यमस्तु नाम, साधनोन् योगतत्फलानुभवे च न विशेष इल्याशयेनाह—यथेति ॥ भूष ॥ हे मतिमन् हे महात्मन् , इत्यं मया ते महाप्रश्नानां विचारणं विचारफलिणंयरूपं समाधानमुक्तम् । लमनेन पया गच्छ । तेन आशु मनस्त निराधिदेहे निरामय इन्द्रियेषु निर्भसनो भूला उचैः सर्वोत्कृष्टो भवेल्ययः ॥ ४२ ॥ इति श्रीवासिष्ट-महारामायणताल्पयमकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे दशा- विकद्विशततमः सर्गः ॥ २१० ॥

. सिद्धसाध्यादिलोकीघदर्शनोपायसंयुतस् । वर्ण्यतेऽत्र पुनः स्पष्टं ब्रह्मैव सक्छं जगत् ॥ ९ ॥

तत्र कुशद्वीपे इलाक्याख्यायां पुरि । तेन प्रकृत्याख्येन भूभुजा। खं प्रयोजनं तदनुप्रहलक्षणम् ॥ १ ॥ अद्य एतस्या-मयोध्यायां भवता विद्यमानेन मया ॥ २ ॥ निर्नाम निःशब्दं नभ एव ॥ ३ ॥ ब्रह्मेत्यपि कल्पनया कलितामिधं न बस्तुतः कृदस्थे मृहधालर्थशृष्ट्यादेरयोगादिस्ययः ॥ ४ ॥ लोकास्तत्रत्या जनाहतेषां धरा आधारभूताः क्यं केनोपायेन दरयन्ते ॥ ५ ॥ ६ ॥ आलोकयन् सूबालोपाक्यानोक्तभारणाविशेषैः

पश्यस्यालोकयँह्रोकानपश्यंश्च न पश्यसि ॥ पते लोकाः किलैतेषां नाभ्यासः स्थानदूरगाः। पते संकल्पलोकाख्या व्याप्तमेभिः किलाखिलम् ८ यथैते कल्पनालोका अयं लोकस्तथैव नः। यथा काल्पनिको चातो लोकालोकास्तथैव ते ॥ ९ संकल्पस्वप्रलोका ये तब भान्ति दिवानिशम्। त एव तादशाश्चान्ये संकल्पेन स्थिरीकृताः॥ ध्यानेन त्वमपीतांश्चेतिस्थरतां सुस्थिरात्मना। नयस्याञ्च तदेवेते स्थिरतां पान्त्यविद्वतः॥ ११ यथामिमतविस्तारा यथामिमतसंपदः। संकल्पभाववितो जनः पश्यति सिद्धवत् ॥ १२ किंतु ते स्थिरतां नीताः सिद्धैः स्वर्धानसंपदा । अस्थिरैर्घ्यानविश्रान्तौ तेर्दुःखैस्तदमी कृताः॥ १३ जगदप्रतिघं सर्वे शान्ति चिद्योम सर्वदा। यथा दृढं संविदितं तथैवाभाति नान्यथा ॥ १४ न भात्येवासंविदितमस्ति नास्ति न चोद्यता । शून्यं हाप्रतिघं चैतत्पराकाशमरोधकम्॥ १५ चित्स्वभावतया भातं भारूपमिव दृदयते। असिश्चिविमानश्च विद्यते न स्वभावतः॥ १६ कार्यकारणभावाश्वत्कथैवात्र न विद्यते। व्योम्रोऽनन्तस्य सिद्धस्य किं कथं किल जायते ॥ १७ यश जातमिवाभाति व्योक्ति व्योमैव तत्त्रथा। तत्रैकद्वित्यकलना कीहशी स्यावरूपिणी ॥ 28

पर्यन्सन् पर्यसि द्रक्ष्यसि ॥ ७ ॥ द्विविधा हि सिद्धलोका य एते महर्जनस्तपःसत्याख्यास्ते स्थानतो दूरगाः । ये हवेते सर्वत्र संचरतां सिद्धानाम् 'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्टन्ति तेन पितृलोकेन संपन्नी महीयते' इत्यादिश्रुतिसिद्धाः संकल्पलोकाख्याः सर्वत्र सन्ति एभिरखिलं विश्वं व्याप्तं । द्विविधानामपि दर्शने धारणाभ्यासः कारणं स व ते नास्तीखर्थः ॥ ८ ॥ तर्हि किं मया तद्दर्शनाय धारणाभ्यासः कार्यः, न कार्यस्तेषामसारलादिति दर्शयति-यथेखादिना । यथैव तेषां ते कल्पनात्मका ठोकास्तथैवायं नोऽस्माकमयं लोकः कल्पनामात्रसिद्धः । यथा काल्पनि-कोऽपि वातः सर्वत्र भ्रमति तथा ते भ्रमन्ति अयं त न तथेत्येतावानेव विशेष इत्यर्थः ॥ ९ ॥ तव संकल्पस्व-प्रलोका ये भान्ति त एव ते सिद्धलोकाः प्रसिद्धास्ताहशा अन्ये च छोकासीर्निर्माय संकल्पेनैव स्थिरीकृताः ॥ १०॥ एवंच लमपि यदि योगधारणास्थिरीकृतेन ध्यानेन इतान् खरंकल्पप्राप्तान् छोकान् स्थिरतां नयसि तदा एतेऽपि स्थिरतां यान्ति ॥ ११ ॥ एवमन्योपि दढतरध्यातृसंकल्पभा-वेन बिलतबेरसोऽपि सिद्धवदेव तान्स्थिरान्पश्यति ॥ १२ ॥ कित्वेताबान्विशेषः। तैः सिद्धैः खः खर्गान् सिद्धलोकान् मान्ति यथा तथाविधया प्राक्तनधर्मसंपदा ते लोकाः स्थिरतां

तिक यादशमेवासीसादगेवावतिष्रते। निर्विकारं यथा स्वप्ने व्योमैवाचलवज्जवेत्॥ १९ संकल्पे चित्तमाकारं यथोदेत्यद्विलीलया । न च सोऽद्रिनं तद्योम तथा ब्रह्म जगित्स्थतिः काष्ट्रवन्मीनमास्थाय रदन्तोऽपि महाधियः। इह व्यवहरन्त्येते बुधा दारुनरा इव ॥ २१ यथा बारिणि वर्तन्ते तरङ्गावर्तवृत्तयः। अनन्याः परिवर्तन्ते तथा ब्रह्मणि सृष्टयः॥ **२२** यथा बाया परिस्पन्दा यथा न्योमनि शून्यता । अनन्याश्चाप्यमूर्ताश्च तथा ब्रह्मणि सृष्टयः॥ २३ यथा संकल्पनगरं शून्यमेव पुरं स्थितम्। साकारमप्यनाकारं ब्रह्मणीदं तथा जगत्॥ 58 चिरानुभूतमप्यर्थकार्यपीदं जगद्रयम् । शून्यमेव निराकारं संकल्पनगरं यथा ॥ રધ यदेव चित्तसंकल्पस्तदेव नगरं यथा। तदा तथायं ब्रह्माच्छं तदेव जगदुच्यते ॥ રદ चिरं नित्यानुभूतोऽपि जगदर्थी न किंचन। विद्यते पुरुषस्पेह स्वप्ने स्वमरणं यथा॥ २७ स्वप्ने पुंस: मृतेनापि स्वदाहो दृश्यते यथा। असदेव सदाभासं जगहुएं परे तथा॥ 26 जगत्ता चाजगत्ता च परस्यैवामलं वपुः। परामिधानं च परं न च सत्परमार्थतः॥ २९

नीता इत्यनाथाससिद्धास्तेषाम् । यैस्लन्येरनित्यैरिदानीतन-धारणाभ्यासैध्यानविश्वान्ती यत्यते तैर्दुःखेः श्रमैरमी लोकाः स्थिरीकृताः स्युरिति ॥ १३ ॥ संविदितं निश्चितम् ॥ १४ ॥ यतस्तत्रासंविदिते अस्तिनास्तीति वा चोयता तर्कविषयता नारित ॥ १५ ॥ कुतः श्रूत्यमप्रतिषं च तत्तत्राह--चित्ख-भावतयेति । यद्दृहसंवेदनेन भातं तिचित्खभाषतया भारूपमिव भासमानं दृश्यते । अस्मिस्ल्यसंविदिते स्वभावतश्चिद्भिमान-श्वित्सत्ताएकुर्तिव्याप्तियतो न विद्यते इत्यर्थः ॥ १६ ॥ कारण-सत्ताबलादेव तत्सत्तान्या भविष्यतीति तु न शक्कामेव निरस्त-लादिखाह—कार्येति । सर्गादौ प्रलयलायोम्नः ॥ १७ ॥ सभ जातमिवाभाति भूतभुवनादि तत्तु व्योम्नि व्योमैव जातमिवा-भातीति तत्रैकलदिलकलनापि दुर्छमा पूरे कार्यकारणभाव इत्यर्थः ॥१८॥ तर्हि बद्धीव कारणम्खु तत्राह —तदीति । विव-र्ताधिष्ठानमेव न विकारीति न कारणमिखर्यः ॥ १९ ॥ आकारं कल्पयित्वेति शेषः ॥ २० ॥ अतएव खद्या निर्व्यापारा एव जीवन्मका व्यवहरन्त इव भान्ति न वस्तुत इत्याह-काष्ठ-बिदिति ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ अर्थकारि छीकिक-वैदिककार्यसमर्थमि ॥ २५॥ तदा संकल्पनगरव्यवहारकाले । तथा अयं परिदृश्यमानः संसारोऽपि ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ यत्परमन्यद्रक्थादि । पराभिधानं सर्पाद्यभिधानगोचरो भवति

इत्यमस्तु यदि वान्यधास्तु वा मैव भूजवतु कोऽत्र संभ्रमः।

मुञ्च फल्गुनि फले फलप्रहं युद्धवानसि इतं परिश्रमः॥

32

इत्यापें श्रीवासिष्टमहारामायणे याल्मीकीये दे० मो० नि० उ० परमार्थोपदेशो नामैकादशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९९ ॥

द्वादशाधिकद्विशततमः सर्गः २१२

8

3

विषष्ठ उवाच । चित्त्वाद्रह्म खमेवाहमिति वेत्तीय यत्स्ययम् । तदेव परमेष्ठित्वं तस्योद्रमिदं जगत् ॥ प्यं स्थितं न च यहाा नच जातं जगितस्थतम् । स्थितं यथास्थितमजं परं ब्रह्मैय पूर्ववत् ॥ संवित्तौ तु जगद्रूपं भासतेऽप्येवमेव तत् । मृगतृष्णेव मिथ्येव दृश्यमानमपि त्वसत् ॥ अतःप्रभृति शून्येयं आन्तिरभ्युदिता नवा । कुतः केव किल आन्तिर्वर्वेष्ठेव तदनामयम् ॥ जगद्रह्मजलावतां द्वित्वैकत्वे किलात्र के । कावर्तपयसोद्धित्वं द्वित्वाभावात्क चेकता ॥ तद्रह्म घनमाशान्तं चित्त्वाश्चेतत्यहं विदत् । निजं शून्यत्वमन्तस्थं व्योमेव विततान्तरम् ॥ पवनः स्पन्दनमिव द्वुताशन इवोष्णताम् । स्वशैत्यमिव पूणंनदुः सत्तामर्थ इवात्मनः ॥

तरपरमार्थतः सन्न ॥ २९ ॥ हे राम, सिद्धलोकभोगादिकलमित्थं मद्वणितप्रकारेणैव कल्यनामात्रमस्त । यदि वा अन्यथा
अन्यैर्भुनिभिर्वणितप्रकारेणान्यादशमेव वास्तु । मेबाभूतथापि
ते जीवन्मुक्तस्य अत्र कः संश्रम आदरः । फल्युनि सिद्धादिफले फलबहं पुरुषार्थताबुद्धिं मुख । यतस्त्यं बद्धातस्यं बुद्धवानिस अतस्ते मायामात्रस्पसिद्धलोकवैभवपरिज्ञानश्रमैः कृतं
अलम्। साध्यं नास्तित्यर्थः ॥ ३० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे एकादशाधिकदिशसतमः सर्गः ॥ २११ ॥

ब्रह्माहंभावकलना परमेष्टी जगद्मयम् । तरसंकलपमयं तसाद्रह्मैवेत्यत्र वर्ण्यते ॥ ३ ॥

महाणि प्रथमं समध्यहंकारातमा हिरण्यगर्भ इव कल्पना-सदुदरे च व्यिश्जीवजगत्कल्पनेति सर्व महाविवर्तमात्रमापात-दर्शनितः परमार्थदशें न हिरण्यगर्मा जीवो जगद्वा किंचिदस्ति महोव केवलं नित्यनिर्मलसिद्धानन्दंकरसं पूर्णमवतिष्ठत इति सर्ववेदान्तिन्छ्यर्थमन्ते वर्णयितुमुपकमते—चित्र्वादिति । महासं स्वयमेव प्रथममहिमत्यदंकारसमध्यातमानं वेसीव तत्ता-दशवेदनमेवास्य परमेष्ठित्वं हिरण्यगर्भता ॥ १ ॥ नच माथि-केन तावन्मात्रापराधेन महा अमहा भवतीति हिरण्यगर्भीद किंचिदन्यशासीदेवेत्याह—एवंस्थिते इति ॥ २ ॥ यदि नासीदेव तार्दे संवित्ती कथं भासते तत्राह—संवित्ताविति । एवमेव प्रातिभासिकमेव सत् न परमार्थसत् ॥ ३॥ अतः

श्रीराम उवाच । एतद्रक्षन्कदा नाम तश्च चेतितवन्मुने। निरावृतमनाद्यन्तं किमिदानीं प्रचेतित ॥ 6 वसिष्ठ उवाच। एवमेतत्सदैवैतदहमाद्यपि चेतति। नहानादेरज्ञस्यास्य काप्यपेक्षा स्वसंविदा॥ ٩ सर्गासर्गनभोद्धपं ब्रह्म सर्वेत्र सर्वेदा । न कदाचिदिवं नेदं शातं नेदं च किंचन॥ १० पवनस्पन्दनं चन्द्रशैत्यं शून्यत्वमम्बरम् । ब्रह्माइंत्वमनन्यात्म न कदाचित्र चेतति ॥ ११ सर्वदेवेहशी सत्ता न कदाचिदनीहशी। जगद्यसादनाद्यन्तं ब्रह्मात्मेव निरामयम्॥ १२ केवलं त्वमयुद्धत्वाच्छद्धश्रवणवेधितः। अद्वये ब्रह्मबोधेऽसिन्द्वतामभ्यूपगच्छसि॥ १३

सर्गकालात्प्रश्वति आन्तिरभ्युदिता अथवा सापि नाभ्युदितैव ॥ ४ ॥ अस्तु नाम जगदनिर्वचनीयो ब्रह्मधर्मस्तथापि न क्षति-रिलाइ—जगदिति ॥ ५ ॥ चित्त्वात्परप्रथाखभावात् । अह-मिलाइंकारसमध्यात्मतां विदत्॥ ६॥ ब्रह्मेवारमना अर्थइव सत्तां चेतति ॥ ७ ॥ यदि खरूपचैतन्यमेवाभिश्रेल्य अर्थ इव चेतवीत्यच्यते तर्हि तत्सदैवास्तीवीदानी प्रचेतवीति किमच्यते इति रामः प्रच्छति-एतदिति । एतदहमादि कदा न चेतित-वत् । यतः सदैव निरावृतं निरावरणमनाद्यन्तं नित्यं च तदि-दानी सर्गादिकालमारभ्य प्रचेततीति किमुच्यत इखर्थः ॥ ८॥ सत्यं यौक्तिकदशा सदेव वाहमादिखतन्त्वं च प्रचंतति तथाच सर्गासर्गोभयरूपं ब्रह्मदृष्टिद्वयप्रामाण्ये पर्थवस्यति तथापि दृष्टिद्वये विषयसत्त्वासत्त्वकृतमन्तरमस्तीति प्रामाण्येन तुल्यमित्याशये-नाभ्युपगम्येवोत्तरमाइ-एवमेतदिखादिना। खसंविदा सहप-वैतन्येन विद्यया खरूपस्कृतीवविद्यया अहमादिस्फ्रती चान्या-पेक्षा यतो नास्तीखर्थः ॥९॥ यतः कदाचिदपि अविवाहष्टी नेदं न्नातं विद्यादशी नेदं च किचन ॥ १० ॥ मिश्रदशी तर्हि कीदशं चेतित तदाह-प्यनेति ॥ ११ ॥ सर्वेदैवेति । विपश्चिद्या-ख्यानोक्तन्यायेन सर्वजीवसंसारोच्छेदकालाप्रसिद्धेरिति भावः ॥ १२ ॥ इमां मिश्रदृष्टिमपि तव बोधानुवृत्तिपर्यन्तमेव शब्द-श्रवणादिव्यवहारसिद्धये लमभ्युपैषि चेदभ्युपगच्छ न परमार्थत इलाइ-केवलमिति । लमद्वये महाबोधे जातेऽप्यमुद्धलाद-बोधमभ्युपेख । ल्यब्डोपे पद्ममी । मतुपदेशशब्दश्रवणे वेशित न कश्चित्किचिदेवेह न कदाचित्र चेतति।
न कश्चित्र तद्न्यात्मा न कदाचित्र चेतति॥ १४
द्दं त्रिभुवनाभासमीदशं भाति सर्वदा।
शान्तं राम समं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन॥ १५
न कदाचन जायन्ते नभसः पादपाद्रयः।
ब्रह्मणश्च जगन्तीति मत्वा शान्ति परां वज ॥ १६
उपदेश्योपदेशार्थे संदेहावसरेऽस्पधीः।
यावन्न बुद्धस्तावस्यं मेदमभ्युपगच्छिति॥ १७
बोधस्य तु विबुद्धस्य न शास्त्रादि न शब्दधीः।
न मेदबुद्धिनों भेदः किमण्येप प्रजापतेः॥ १८
श्रीराम उवाच।

श्रीराम उवाच ।
युद्धमेतन्मया ब्रह्मन्प्रकृतं तदुदाहर ।
वचो मद्वबोधार्थं यदुदाहृतवानिस ॥
किं तसिश्चेतितेऽहंत्वे पदं संपद्यते परे ।
युद्धवानिस शुश्रुषुनीहं तृतिमुपैमि हि ॥

वसिष्ठ उवाच। अहंत्वे सत्यथैतिस्निन्व्योमसत्ता प्रवर्तते । दिक्सत्ता कालसत्ता च भेदसत्ताभ्यदेति च ॥२१ यदा किलेहाहमिति तदा नात्राहमित्यपि। भातीत्यदेति नाना खे स्वात्मैव द्वैतमऋमम् ॥ २२ व्योमारिमकानामेतासां सत्तानामभिधानधीः। भविष्यत्युत्तरं काळं तदा त्वाकाशमेव तत् ॥ २३ पतिसान्परिसंपन्ने दिकालकलनात्मनि । अहंभावे निराकारे ब्योम तन्माबबेदिनि॥ इदमाभाति भारूपं वेदनं ट्यानाम यत्। भूत्वा ब्रह्मैव निर्वाधमब्रह्मेव विराजते ॥ સંવ ब्रह्मैब शान्तमजमेकमनादिमध्यं व्योमव जीवकलनामिव भावयित्वा । व्योद्येव पश्यति निरावरणे विसारि दृइयं स्वरूपमपि चान्यदिवात्मवित्वात्॥२६

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे बाल्भीकीये मो० नि० उ० परमार्थनिरूपणं नाम द्वादशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१२ ॥

१९

२०

त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः २१३

वसिष्ठ उवाच । यथा यस्पृष्टवानच स्वं मामरिनिपूदन ।

आसक्तिचित्तः सन् मिश्रहिष्टलच्यां द्वितां सप्रपथानिष्यपश्ची-भयस्पतामभ्यपगच्छति न तत्त्वदशेलर्थः ॥ १३ ॥ भिश्रदृष्टी हि सर्वात्मकं ब्रह्म तत्र सर्वान्तर्गतः कधिजीवः किंचिचेत-त्येव चेत्रद्भीव तदात्मना चेत्ततीति तदात्मना सर्वः सर्वे चेतति । निविशेषत्रद्वारमना न कश्चिकिचिदपि न कदाचन चेत्रति ॥ १४ ॥ तथाच बद्धदृष्ट्या त्रिभुवनामासमेव सर्वदा बहा भाति मुक्तदृष्ट्या नेह नानास्ति किननेति न किनिद्धाती-सर्थः ॥ १५ ॥ तम्र वद्धदृष्टेर्वाधितार्थलान्मुक्तदृष्टिरेव लया आश्रयणीयेत्याह--न कदाचनेति ॥ १६ ॥ यावदुपदेशप्रवृति मिश्रदृष्टिरभ्यनुज्ञाता मयेलाइ—उपदेरयेति । अभ्युपगच्छति अभ्युपगच्छ ॥ १७ ॥ तदुत्तरकार्छ खहंकारतत्संकल्पजगदा-रमनः प्रजापतेभेदबुद्धिस्तदभावयुद्धिश्च तव न भविष्यत्येव-खर्थः ॥ १८॥ एतद्रह्मन्कदा नामेखादि यन्मया पृष्टं एतन्मया लदुत्तया बुद्धम् । प्रकृतं समष्टयहंकाराद्यध्यासं निरूपयितुं प्रसुतं यन्मदवबोधार्थं बचस्तदुदाहर निरुपयेखर्थः ॥ १९ ॥ तदेव स्मारयन्युच्छति-किमिति । तस्मिन्परे पदे अर्हले चेतिते सति अप्रे किं संपद्यते । लं सर्वज्ञलात्सर्वे युद्धवानसि । अहं च लहूचनशुभूषुर्न तृप्तिमुपैमि अतो वदेखर्थः ॥ २० ॥ व्योमसत्ता आकाशाध्यासः । मेदसत्ता त्रिविधपरिच्छेदाध्यासः ॥ २१ ॥ अहंकाराध्यासस्य परिच्छेदाध्यासहेतुतासुपपाद-यति—यदेति । यदा अस्य इह देहादी अहमिति भाति तदा वेहश्चन्यस्थ के अत्र नाहमिखप्यवश्यं भाति स वेशकृतपरिच्छेदः।

ि शिष्येणैव सता पूर्वमहं पृष्टो गुरुस्त्वया ॥

इस्यनया रीत्या नानाविधः कालकृतपरिच्छेदो वस्तुकृतपरि-च्छेदश्चेति स्वारमेव अकमं देलं भूला उदेति ॥६२ ॥ ततः पर-सरत्यावर्तकजातिगुणिकयादिप्रवृत्तिनिभित्तमेदकल्पनाप्रयुक्तो नाममेदाध्यासो भविष्यतीत्याह—न्योमात्मिकानामिति । ए-तासामुक्तानां पदार्थभेदसत्तानामभिधानधीर्यानकशब्दाध्यासः ॥ २३ ॥ तत्राहंकाशवच्छेदेन जीवसाक्षिमेदेष्वावरणाभावा-त्स्वाभाविकचिदमित्यक्तो तत्राध्यस्तजगदाकारेण वद्यौव अव-द्यौव भास्यतीत्याह—एतस्मित्रित्यादिद्वाभ्याम् ॥ २४ ॥ २५ ॥ तदेव स्पष्टमाह—वद्यौतिते । व्योम जीवजगद्भावश्चर्यं वद्यौव जीवकलनामिव भावियत्वा अध्यस्य निरावरणं जीवसादया-काशे एव विसारि विस्तृततरं दश्यं पश्यति स्वरूपमि बद्धा अन्यदिव पश्यति आ आत्मावेत्त्वाक्तत्वज्ञानोद्यं मर्यार्थकृत्ये-स्वर्थः ॥ २६ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतारप्यंत्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्थे द्वादशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२१२॥

वर्णयेते पूर्वसंवाद इह रामविस्थितः ।

गुरुशिष्याख्यायिकया सर्वे ब्रह्मित निश्चितः ॥ १ ॥
विस्तरेणोपदेशास्करतलामलकवरसाक्षास्कारितमप्यास्मतस्वं
रामस्य जन्मान्तरीयस्त्रोपिष्टार्थे एव ते पुनरुपिष्ट इति
स्मारणेन स्थूणानिस्नननन्यायेन दढीचिकीपुर्भगवान्वसिष्टः
सर्वजगदुपकाराय सर्वेशास्त्रार्थसंप्रहरूपां गुरुशिष्याख्यायिकां
शास्त्रान्ते परममङ्गलकपामुपदेष्टुमारभते—यथेलादिना । हे
राम, समग्रमां प्रति यज्ञगसत्त्वमारमतस्वं च यथा पृष्टवांस्त्रथा

4

દ્દ

4

९

१०

पुराकल्पे हि कस्मिश्चित्तत्वमात्मादिकात्मिका। आसीदियं चित्र्यतिभा गुरुशिष्यात्मना वने ॥ ર गुरुस्तत्राहमभवं शिष्यस्त्वमभवस्तदा । पृष्टवान्मां त्वमत्रस्य इदमुद्दामधीरधीः॥ शिष्य उवाच। सर्वस्य भगविञ्छन्धि ममेममतिसंशयम् । किं नदयति महाकल्पे किं वस्तु न विनदयति॥ ४

गुरुख्वाच ।

पुत्र शेषमशेषेण रहयमाशु विनदयति । यथा तथा स्वप्तपुरं सौपुत्तीं स्थितिमीयुषः॥ निर्विशेषेण नश्यन्ति भुवः शैला दिशो दश । क्रिया कालः क्रमश्चेव न किंचिद्यशिष्यते॥ नइयन्ति सर्वभूतानि व्योमापि परिणइयति । स सर्वजगदाभासमुपलब्धुरसंभवात्॥ ब्रह्मविष्ण्यिन्द्ररुद्वाद्या ये हि कारणकारणम्। तेषामप्यतिकल्पान्ते नामापीह न विद्यते ॥ शिष्यते हि चिदाकाशमव्ययस्यानुमीयते। तत्कालशेषतानेन सर्गानुभवहेतुना ॥ शिष्य उवाचा ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। इवं तत्कथमाभोगि विद्यमानं क गच्छति॥ गुरुखाच ।

न विनद्दयत प्रवेदं ततः पुत्र न विद्यते।

पूर्वमन्यस्मिन् रामजन्मन्यपि अहं गुरुः शिष्येणैव सता लयापृष्टः ॥ १ ॥ संक्षिप्योक्तं विस्तरेणाह--पुरेति । तज्जगत्तत्र त्वं रामः आतमा अहं वसिष्ठः आदिपदात्तव निर्वेदो मदिभगमनं प्रश्रश्वे-त्येषमादिका इयं चित्प्रतिभा कस्मिश्चिद्वने गुरुशिष्यात्मना इदा-नीमिव आसोदिल्पर्थः ॥ २ ॥ इदं वस्यमाणं प्रष्टवानसि ॥ ३ ॥ सर्वस्य जगतो विषये समेसमुच्यमानमतिशयितं संशयमतिः **संशयम् ॥ ४ ॥ हे पुत्र, यथा खप्तपुरं** सोषुप्तीं स्थितिमीयुव **भारमनस्तन्मात्रशेषमशेषेण** विनश्यति तथा जगदृश्यमपि प्रक्रये विनश्यतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ सर्वजगदाभाससहितं व्योमाप्यत्र्याकृते खयात्परिणश्यति उपलभ्यस्य भोग्यस्य भोक-धीनस्थितिकलात्प्रलयकाले उपलब्धुभीकुरसंभवात् ॥ 🕟 ॥ बद्धाद्य एव तदा तद्भोक्तारः स्थास्यन्तीखाशक्कावारणायाह----महोति । अतिशयिते कल्पान्ते प्राकृते वैद्यानिके च प्रलये ॥८॥ आस्मशेषं बिनश्यतीति यदुक्तं तदुपपादयति-शिष्यते हीति । अव्ययस्य चिद्रस्तुनो विवर्ते नष्टे चिदाकाशं शिष्यते इखनुमीयते । हि यसात्कारणात्स्वाध्यस्तसर्गानुभवहेतुना अनेन चिदारमनैव सर्वप्रपश्चश्चग्यतस्कालशेषता सिज्यति । तस्यापि नाशे निःसाक्षिकः प्रलय् एव न सिब्धेदिलर्थः ॥ ९ ॥ सती जगतः असत्तालक्षणो नाश एव न सिज्यतीति शिष्यः शहरो-नासत इति ॥ १० ॥ श्रुतिप्रस्यकानुमानस्मृत्यादिसिद्धो

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः॥ ११ यसु वस्तृत एवास्ति न कदाचन किंचन। तदभावात्म तद्राम कथं नाम विनइयति॥ १२ क स्थिरं मृगतृष्णाम्य क स्थिरो द्वीन्द्विश्वमः। क स्थिरा केशदग्दयोग्निक भ्रान्त्यनुभवः स्थिरः १३ सर्वे दृश्यमिद् पुत्र भ्रान्तिमात्रमसन्मयम् । स्वमे पुरमिवाभाति कथमेतन्न शाम्यति॥ १४ शाम्यतीद्रमशेषेण तथा सर्वत्र सर्वदा। यथा जाग्रहिधौ स्वप्नः स्वप्ने वा जागरो यथा ॥ १५ यथा स्वप्नपुरं शान्तं न जाने काशु गच्छति । शान्तं तथा जगहृदयं न जाने काशु गच्छति ॥ १६ शिष्य उदाच । किमिनं भाति भगवन्न विभाति च किं पुनः। कस्येदं वस्तुनो रूपं चिद्योम्नो वितताकृतेः॥ १७ गुरुरुवाच । चिदाकारामिदं पुत्र स्वच्छं कचकचायते। यन्नाम तज्जगद्भाति जगदन्यन्न विद्यते॥ १८ अस्पैतद्वस्तुनो रूपं चिद्योम्नो वितताकृतेः। रूपमत्यजदेवाच्छं यदित्थमवभासते॥ १९ कचनाकचनं सर्गक्षयात्मास्य निजं चपुः। न्योमात्म शुक्ककृष्णं स्याद्यधावयविनो वपुः॥ 20 यथायं त्वं सितोदान्तरेक एवादितः कचैः। तथा ब्रह्मैवमच्छात्म सर्गे सर्गक्षयेऽक्षयम्॥ २१

जगतो नाशो नापहोतुं शक्य इति तद्वलेन सल्यमेवापातदर्शन-प्रसक्तमपद्भयत इति न दोष इत्याशयेन गुरुः समाधते-नेति । न लदुक्तं युक्तम् । यत इदं जगद्विनस्यत्येव । प्रत्य-क्षादिमिः सावययेषु नाशप्रसिद्धेः अतो न विदात एवेल्यस-तोऽस्य भावो नास्तीलनुकूलमतस्वयोक्तमिल्यर्थः ॥ ११ ॥ यद्वखुतोऽस्येव तर्तिचन अभावात्म असत् न । तद्भावः सद्भावः कथं नाम विनश्यत्यसत्त्वमापद्यते ॥ १२ ॥ आपात-दर्शनमात्रेण जगतः सत्ता नावधारियतुं शक्या । बहुनां तथा दष्टानां सलादर्शनादित्याह्—केति । स्थिरः अर्थप्रतिष्ठः ॥१३॥ ॥ १४ ॥ वाध्यलसाधने जाप्रत्सप्रयोः परस्परं दृष्टान्तभावः प्रसिद्ध इत्याह-शाम्यतीति ॥ १५ ॥ बाधितं त क गच्छति क तिष्ठतीति योगिभिरप्यदर्शनादसत्त्वमेव तस्य शरणमिल्या-शयेनाइ--यथेति ॥ १६ ॥ यदि नास्त्येव दृश्यं तर्हि दृश्यवे-षेण कंचित्कालं परमार्थतः कि वस्तु भाति तदेव बोधोत्तरं पुनस्तथा न विभाति च किमर्थमित्यर्थः ॥ १ ॥ कचकचा-यते शुक्तिरिव खचाकचक्येन रजतमिव स्फुरति ॥ १८ ॥ अस्पेतिदिति । 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्ते चैवामूर्ते च' इत्यादि-श्रुतेरिति भावः ॥ १९ ॥ यथा अवयविनो वपुः सहत्मवयव-मेदभिन्नमिन तद्वचेत्यर्थः ॥ २० ॥ यथा अयं प्रसिद्धस्तं सितो-दस्य खच्छोदकस्य इदस्यान्तः प्रविधो विम्बप्रतिविम्बमेदक्ष-

द२

53

२४

સ્ષ

यथा स्वमे सुष्ते च निर्देकैषाश्यानिशम्।
सर्गेऽसिन्प्रलये चैव प्रसैकं चितिरव्यम्॥
यथा स्वमे जगद्रष्टुः शान्तं शाम्यस्यशेषतः।
तह्रदस्तज्जगदिदं शान्तं शाम्यस्यशेषतः॥
तद्द्रयत्रास्ति खे खाख्यं तथेत्यक्र न विद्यहे।
अशङ्क्षं परखे त्वेतदस्तिषद्योग्नि संभवात्॥
यथेहास्तिषदाकाशक्वनं सर्गसंक्षये।
तथान्यत्संविदाकाशं नैविमस्यत्र का प्रमा॥
शिष्य उचाच।

पर्व चेत्तदाधा स्वप्ने द्रष्टुरन्यः स दृरयधीः। विद्यते तद्वदन्यत्र मन्येऽस्ति जगदादिधीः॥ २६ गुरुरुवास।

प्यमेतन्महाप्राज्ञ स्त्ररूपं तु न तज्जगत्।
चिति भाति स्वरूपं तत्त्रद्वच न भाति च ॥ २७ न भाति न च तिंकचिन्न च तिंकचिदेव सत्।
तिभावाकाशकचनं के तत्र सदसहृशी ॥ २८ विद्यते तद्धि सवेत्र सर्वे सर्वेण सर्वदा।
न विद्यते च तिंकचित्सर्व सर्वेत्र सर्वेदा॥ २९ तत्सत्तरसर्वेदा सर्वेमसम्बासदिवाखिलम्।
तन्मयं तिभावाकाशं न नाशि न च नाशि तत् ३० यन्नाम सिम्दाकाशं सर्वेप्रलयकपि तत्।
तहुःखायापरिकातं परिकातं परः शमः॥ ३१ विद्यते सर्वेथवं सर्वे सर्वेत्र सर्वेदा।

यादेक एव । आदितो हृदप्रवेशात्पूर्वमपि बिम्बप्रतिबिम्बमा-वादिमेदकचनैरप्येक एवाक्षयोदयसाथा ब्रह्मापि सर्गे सर्गक्षये चाक्षयोऽद्वयमेकमेवेत्यर्थः ॥२१॥ चितिः चिरस्वभावगव्ययम-विकारि ॥ २२ ॥ यथा खप्ने प्रसिद्धं जगजाप्रत्सुबुह्योः शान्तमेव शाम्यति ॥ २३ ॥ बाधितमत एव खाह्यं शन्यास्यं तत्खामं जगदन्यत्र देशान्तरे तथैव विवाते इति त बोधदृष्ट्या न विदाहे। परेषां प्रस्थान्तराणां खे जीवाकाशे स्थास्यतीति त अशक्कां शक्कानर्हम् । कुतः । अस्मिक्वोन्न्येनासम्दासनामयस्य संभवादबाधितदशायामपि परिचयोन्नि प्रसत्त्यभावादित्यर्थः ॥ २४ ॥ यदास्यदनुभवसिद्धसर्गः प्रबोधवाधितः परसंविदाकाशं विशेत्तदा परस्य प्रबोधेन शुद्धचिदाकाशकवनं नास्तीत्येव कल्प्यं स्वात्तत्र च कल्पकं प्रमाणं नास्तीत्वाह—यथेति ॥२५॥ एवमुक्तरीत्यास्मत्संविद्विषयः परसंविदि न भाति चेत् स्वप्न-द्रष्टरन्यो जामत्पुरुषो यथा स हर्यभीविद्यते तद्भदन्यत्र प्रलय-कालेऽपि अन्यत्र पुरुषान्तरे जगदादिधीरसीति मन्ये संभा-बये ॥ २६ ॥ अभ्युपगमेन गुरुरत्रमाह-एवमेतदिति । अतएब प्रलयेडप्येन्दवजगरसद्भावदर्शनं धातुः प्राव्वितिमिति भावः । यदि जगिवतः खरूपं स्थातदा सर्वसाधारणं स्थातत्त् न किंतु चिलाध्यस्तं भाति तद्रष्ट्णामन्येषां तद्वदेव न भाति चेति तत्तवनुसारेण व्यवस्थितं तत्सरूपमित्यर्थः ॥ २०॥ साधारणं न भातीत्यत एव तम किचित तच्छं नत किचिदेव योग० १९७

न विद्यते सर्वथा च सर्व सर्वत्र सर्वदा ॥ 32 एप देवो घटः शैलः पटः स्फोटस्तटो घटः। तृणमग्निः स्थावरं च जंगमं सर्वमेव च ॥ 33 अस्ति नास्ति च शून्यं च क्रिया कालो नभो मही। भावाभावी भवो भृतिर्नाशाः पाशाः शुभाशभाः ३४ तकास्त्येव न यन्नाम नित्यमेकस्तथा बहिः। आदिमध्यमथान्तं त् काल्जितयमेव च॥ 34 सर्घे सर्वेण सर्वत्र सर्वेदैवात्र विद्यते। सर्वे सर्वेण सर्वत्र सर्वदात्र न विद्यते ॥ ३६ यदैवं राम सर्वात्म सर्वमेवास्ति सर्वदा । ब्रह्मात्मत्वात्स्वप्रसंवित्पुरन्यायेन व तदा ॥ ₹ø तृणं कर्तृ तृणं भोकु ब्रह्मात्मत्वा सुणं विभुः। घटः कर्ता घटो भोका घटः सर्वेश्वरेश्वरः॥ 36 पटः कर्ता पटो भोका पटः सर्वेश्वरेश्वरः। ह्याः कर्ता ह्याभांका ह्याः सर्वेश्वरेश्वरः॥ ३९ गिरिः कर्ता गिरिभाँका गिरिः सर्वेश्वरेश्वरः। नरः कर्ता नरो भोक्ता नरः सर्वेश्वरेश्वरः॥ 80 प्रत्येकं सर्ववस्तुनां कर्ता भोका परात्परः। अनादिनिधनो धाना सर्वे ब्रह्मात्मकं यतः॥ ક્ષ तृणकुरभादयस्त्वेते स्वया विभुतया विभुः। एवंद्रपा स्थिता हुएं यद्विभातः क्षयोदया ॥ बाह्योऽर्थास्ति स एवेह कर्ता भोका तथाविधः। विश्वानमात्रमेवास्ति कर्तृ भोक्त तथाविदाम् ॥ ४३

सत् किंतु तत्तः जीवचिदाकाशकचनमात्रं तत्र सदसद्दशौ के ॥२८॥ यदि तु चिदाकाशरूपेण विद्यते इत्युच्येत तदा तज्जगत्स-वैण प्रकारेण सर्वत्र सर्वदा विद्यते । खरूपेण तः न किचित्क-त्रचित्कदाचिदपि विद्यत इत्यर्थः ॥ २९ ॥ यतस्तद्वर्धेव सदस्य अतो जगदपि सदस्य भाति। प्रतिश्वदाकशं न नाशि अतस्तन्मयं जगच न नाशि ॥ ३० ॥ यद्यसात्तिचदा-काशमेव सर्गप्रस्त्रयरूपि । तदेवापरिकातं दुःखाय परिकातं तु परः शमः। सर्वदुःखक्षय इत्यर्थः ॥३१॥ तत्र यथा परिहानं हाहयोः सर्वेत्र सर्वेदा विश्वते न विद्यते च ॥ ३२ ॥ तस्यैव सर्वेह्रपेण सर्वत्र विद्यमानतां प्रपद्मयति—एष देव इत्यादिना ॥ ३३ ॥ भवो जन्म ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ब्रह्मभावेन दर्शने तृष्णा-दयः सर्वे पदार्थाः प्रत्येकं सर्वकर्तारः सर्वभोक्तारः सर्वेश्वरा-श्चेत्येतदपि प्रपश्चयति—बह्मात्मलादिलादिना ॥ ३७ ॥ सर्वेषामीश्वराणामिन्द्रादीनामीश्वरः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ सर्ववस्तुनां प्रत्येकमेकं वस्तु कर्ता भोक्ता परात्परः श्रेष्ठादपि श्रेष्टः ॥ ४९ ॥ स्वया प्रत्यगातमरूपया । ययस्मित्रपे क्षयो-द्यी विभातस्ताहशं सर्वे रूपमेवंरूपा विभुतिव स्थिता ॥ ४२ ॥ उक्तेऽर्थे वादिनामनुभवं संवादयति-वाह्योऽर्थ इति । येपां बाखो विकासातिरिक्तोऽयीस्ति तेषां स एव कर्ता भोका च । यथा वैशेषिकसीत्रान्तिकादीनाम् । येषां तु वादिनां विज्ञान-मात्रमेवास्ति तथाविदां तेषां तदेव कर्त भोक्त च ॥ ४३ ॥ न कश्चिष्णेय कर्तेह न च भोका तथाविदाम् ।
कश्चिदीश्वर एवेह कर्ता भोका तथाविदाम् ॥ ४४
सर्वमेव परे तस्मिन्संभवत्युसमोत्तमे ।
विध्यः प्रतिषेधाश्च के ते सन्ति न सन्ति के ४५
धुद्धे द्रष्टेव चिद्योम दश्यतामिव भासयत् ।
स्वमात्मानं जगदिति एश्येत्तिष्ठेदनामयम् ॥ ४६
सर्वा दशो विधिनिपेधदशश्च सर्वाः
संकल्पवेदनविशेषसश्चप्याः ।
सत्यात्मिकाः सत्तमेव न चैव सत्या
कर्पं यथानुभवमत्र यतः स्वरूपम् ॥ ४७
इति त्वया शिष्यतया मदन्तिकाच्युतं पुरा तेन न चासि बुद्धवान् ।

ततोऽनुभूयाम्यजगद्भवाद्भवान्
निहाद्य जातोऽसि तदेव पृष्ठसि ॥ ४८
शानं सदेतद्विछं श्रुतमुत्तमं चित्संसारदीर्घरजनीसितरिदमिबेम्बम् ।
जातस्त्वमभ्युद्यवानमलैकवोध
उत्सार्य मोहमनुतिष्ठ यथागतं त्वम् ॥ ४९
तिष्ठंस्तदात्मिन परे विमलस्वभावे
सर्वात्मके तपति सर्वपदार्थमुकः ।
निर्वाणशान्तमितरम्बरकोशकान्तो
धर्मेण राज्यमनुपालय तीर्णतृष्णः ॥ ५०

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वा॰ मो॰ नि॰ उ० प्राक्तनरामज्ञिष्यलोपास्यानं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१३ ॥

चतुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः २१४

वान्मीकिरुवाच । इत्युक्तवत्यथ मुनौ नमसो ननाद वर्षामृताभ्रमिव दुन्दुभिरामरो द्राक् । शुक्कीकृताखिलककुम्बदनातुषार-वर्षोपमा भुवि पपात च पुष्पवृष्टिः॥

शून्यबादिनां तु तदेवेत्याह-न कश्चिदिति । पाशुपतादीनां कश्चित्तत्प्रकियाप्रसिद्ध ईश्वर एवं कर्ता भोक्ता च ॥ ४४ ॥ एवं मतमेदेपि न वादिनां मध्ये कस्यचिदप्यसंभवदर्थवादित्वं यतस्त्रसिम्नुत्तमोत्तमे सर्वत्र सर्वशक्तिमति सर्वात्मके पदे सर्वमपि संभवति । तस्मिन्पदे सर्वतत्तद्वाद्यभिमताः परस्पर-विलक्षणाः पदार्थप्रिकियासाधनानुष्ठानफलादिविधयः परस्पर-कृतास्तत्प्रतिषेधाधः सर्वेऽप्यावरोधेनासंकीर्णाः संभवन्ति । तत्तद्वद्भविच्छन्नचैतन्ये वरशापन्यायेन यथास्त्रसंकल्पनं व्यव-स्थितविवर्तसंभवात् ॥ ४५ ॥ तत्रतत्र विद्योम शुद्धे स्थारमनि तसद्वासनानुसारिहर्यतामिव भावयत्सत् द्रष्टेव भूला स्वमा-त्मानं तादशं जगदिति पश्यत्तत्रतत्र वस्तुतोऽनामयमेव तिष्ठेत् स्थातुं शक्तमित्यर्थः ॥ ४६ ॥ हे राम, सर्वेषां जीवानां सर्वाः खखानुभवसिद्धाः पदार्थादिदृशः सर्वाः परसारविलक्षणविधि-निषेधदशस्य । यस्मातत्तरसंकल्पतत्तद्वेदनविशेषतत्तदनुभवशेष-वासनासहिततत्त्रकामकर्मपूर्विकास्तस्मात्तत्तद्यवहारे सततमेव तलदर्यक्रियासमर्थज्ञात्सत्यात्मिकाः परदशा तु प्रतीतेरेवाभा-वाम वैव सत्थाः शश्यातकत्याः । यतः प्रत्यगातमहत्यं यथा-नुभवमेव जगद्भृषं धते इति शेषः ॥ ४० ॥ हे राम, पुरा पूर्वयुगे लया शिष्यतया स्थिला गुरोर्मम अन्तिकात् इति एवं वर्णितरूपमुपदेशनं श्रुतं तेनीपदेशेन लं तदा न वासि बुद्धवान् । ततस्तदनन्तरमधोधदोषादेव पुनर्भवान् पुनर्भ-वादन्यजगदनुभूय अद्यास्मिस्नेतायुगे इह दशरथगृहे जा-तोऽसि । तदेव प्राक्यांप्रति पृष्टमद्यापि मां प्रच्छिसि ॥ ४८ ॥ अत्रापि लया मदुपदिष्टमुत्तमं सतु परमार्थवस्तुगोचरमतएव किंजन्कजालदिवसान्तघनाङ्गरागा वातावधूतसितकेसरगौरहारा। पुष्पोदरोत्थमृदुसीकरशीतलाङ्गा प्राप्ता स्वयं सुरपुरादिव पुण्यलक्ष्मीः॥

संसारलक्षणाया दीर्घरजन्यास्तापतमोनिवर्तकलात्सितरशेः पूर्णचन्द्रस्य बिम्बमिव स्थितं झानमिललं समग्रं श्रुतं तेन स्वं मोहमझानमुत्सार्थ निरितिशयानन्द्ररूपपरमपुरुवार्थलाभान्युद्र-यवान् अमलैकबोधरूपो जातः, एतं कृतक्रसस्त्रमतः परं यथा गतं व्यवहारपरंपराप्राप्तं स्वराज्यपरिपालनादिकमनुतिष्ठ ॥४९॥ हे राम, त्वं विमलस्वभावे तपति सर्वतः प्रकाशमाने सर्वात्मके आत्मिन सर्वद्रयपदार्थमुक्तिस्त्रष्ट्रसन् निर्वाणो निरितिशयानन्द्रममोऽतएव शान्ता मतिर्यस्य तथाविधः सन्नम्बरकोशमिव कान्तो मनाहरस्तार्णस्तृष्णः सन् धर्मण राज्यमनुपालयेखन्ते मङ्गलार्थमाशीः ॥ ५० ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायण-ताल्पर्यम्वकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे त्रयोदशाधिकहिन् शत्तमः सर्गः ॥ २१३ ॥

उपदेशप्रशंसात्र श्रीतृणां कृतकृत्यता ।
दिश्यश्च मानुषश्चान्ते वर्ण्यते सुमहोरसवः ॥ १ ॥
महतः शास्त्रस्थान्ते देवैमंतुष्येश्च कृतं गुरुद्विजसुरिष्तृसञ्चनगुजनमहोरसवरुक्षणं मङ्गलं वर्णयिष्यन्वाल्मोकिरवाच—इतीत्यादिना । सुनौ वसिष्ठे इति वाक्यमुक्तवितसति अथ आमरः
अमरसंबन्धी दुन्दुभिवेषांधममृतेन पूर्णमञ्जमिव ननाद ।
दाक् सद्यः शुक्रीकृतान्यस्तिलानि कङ्गण्यदिनानि दिक्शुसानि
यया अतएव तुषारवर्षापमा पुष्पपृष्टिश्च भुवि पपात ॥ १ ॥
सा च पुष्पवृष्टिः किजलकजालान्येव दिवसान्तघना इव शोणः
अक्षरागो यस्याः । तथा पुष्पोदरोतथा मृदवः सीकरा एव

शीतलान्यक्षानि यस्याः । बातावधृताः सिताः केसरा एव

गीरा हाराः यस्यास्तथाविधा । सुरपुरात्स्ययमेवोत्सवदर्शनाय

कर्णान्तकालकपिकस्पितगुष्कशाखात्वर्गदुमात्पतितमाशु विडम्बयन्ती।
तारागणं प्रथितभासमनस्पहासमाशामुखपसृतभैरवमम्बरस्या॥ ३
सा पुष्पवृष्टिरथ दुन्दुमिनादगर्जतिकजस्कपुञ्जलदा शममाजगाम।
आपूरिताखिलसभा हिमहारिपुष्पपूरेण कौतुकविकासकरी क्षणेन॥ ४
तानि दिव्यानि पुष्पाणि यथास्थानमधःस्थिताः।
वसिष्ठाय नमस्कृत्वा सभ्याः संशोकितां जहुः॥५
दशरथ उवाच।

अहो नु सुविशात्मा नः संसारधितताकृतेः।
विश्वान्तासश्चिरं श्रान्ताः शुद्धा मेघा इवाचले॥६
कर्मणाभवधिः पूर्णो दृष्टः सीमान्त आपदाम्।
क्वातं क्षेयमशेषेण विश्वान्ताः सः पूरे पदे॥ ७
ध्यानलब्धपरव्योमचिरानुभवनभ्रमः।
धारणाधारविश्वान्त्या देहसन्त्यजनक्रमः॥ ८
संकल्पनवनिर्माणः स्वप्नदृष्टिजगज्वरैः।
शुक्तिकृष्यानुभवनैः स्वप्नात्ममृतिद्शीनः॥ ९
अनन्यैः प्यनस्पन्दरनन्यैः सलिल्ववैः।

भुवं प्राप्ता पुण्यलक्ष्मीरिव स्थितेत्युत्प्रेक्षा ॥ २ ॥ पुनः कीह्शी सा पुष्पवृष्टिः । कल्पान्तकाल्ळक्षणो यः कपिर्मर्कटस्तेन कंपिताः शुष्काः कल्पहमशाखा दिवपाठपुरलोकमेदरूपशाखाध यस्य तथाविधात्स्वर्गेरूपाद्भमावाशु पतितं आशामुखेषु झटिति पात-नाय प्रस्तो भरवः संहारहदो यस्य तथाविधं प्रथितभासं तारागणमंबरस्था सतीत्यनल्पद्दासं यथा स्यात्तथा विडम्बयन्ती. तारागणप्रथितहासं भैरयं च विडम्बयन्तीति वा उत्प्रेक्षा ॥३॥ दुन्दुभिनादैर्गर्जन् किंजल्कपुअछक्षणो जलदो मेधो यस्यास्त-थाविधा हिमवत् हारिणा मनोहरणपुष्पपूरेण पुष्पप्रवाहेण आपूरिता अखिला सभ। यथा तथाविधा अतुएव ईक्षणेन दर्शनेन कौतुकविकासस्य आनन्दविस्तारस्य करी सा पुष्पवृष्टिः अथ शममाजगाम । ईक्षणेन दश्जननेत्रेण सह कीतुकविका-सकरीति वा, क्षणेन शममाजगामेति वा योज्यम्॥ ४॥ यथास्थानमिति । सर्वेश्वतस्थाने वसिष्ठस्तत्संनिहिते मुनयस्त-रसंनिहिते दशरथरामादयस्तत्सन्निहिते मन्त्रिसामन्तास्तद्वीहै-गमाः प्रजाश्वत्येवं क्रमेणाघःस्थिताः सभ्यास्तानि दिव्यानि पुष्पाण्युपादाय वसिष्ठचरणे पुष्पाञ्चिति दल्या वसिष्ठाय नम-**स्कृ**त्य पुष्पसीरभशैत्यादिसंपर्काटश्वेददीर्गन्ध्यादिसंशोकितां रोग-क्षुत्रपाश्रमादिप्रयुक्तशोकवत्तां जन्ममरणादिसर्वशोकवत्तां च जहुस्तत्यजुः ॥ ५ ॥ संसारलक्षणाद्वितताकृतेरतिर्दार्घात्कान्ता-राचिरं श्रान्ता वयं खदनुप्रहोपंदशात् सुविशः सुखेन प्रवेष्टं शक्य आतमा येषां तथाविधाः सन्तस्तसिन्नेवातमनि चिरं विश्रान्ताः सः । अहो इत्याथर्ये । यया शुद्धा जाड्यकार्ण्यनि-र्भक्ताः शरम्मेषा अचले हिमनदादौ विश्राम्यन्ति तद्वत् ॥ ६ ॥ |

| रन्द्रजालपुरापूर्र्गन्धर्यनगरोत्करैः॥ | १० |
|--|----|
| मायापूर्णर्षुराभोगर्मृगतृष्णानदीरथैः। | |
| आयतै। पवनस्पर्शेद्विचन्द्रानुभवोदयैः॥ | ११ |
| मदभ्रंदापुरस्पन्दैर्मुधा त्वधनिकम्पनैः। | |
| बालयशाद्यनुभवेः खकेशोण्ड्रकदर्शनैः॥ | १२ |
| एवमादिभिरन्येश्च इष्टान्तैः स्वानुभृतिदैः। | |
| अहो नु मार्जिता रहयरिष्टिभगवता मम ॥ | १३ |
| श्रीराम उवाच । | |
| नष्टो मोहः पदं प्राप्तं त्यत्प्रसादान्मुनीश्वर । | |
| संपन्नोऽहमहं सखमखन्तमवदातधीः॥ | રક |
| स्थितोऽस्मि गतसंदेहः स्वभावे ब्रह्मरूपिणि । | |
| निरावरणविज्ञानः करिप्ये व्चनं तय ॥ | १५ |
| स्मृत्वा स्मृत्वाऽमृतासेकसौख्यदं वचनं तव | |
| अर्हितोऽपि च शान्तोपि इष्यामीव मुहुर्मुहुः॥ | १६ |
| नैय मेऽच इतेनाथीं नाहतेनेह कश्चन । | |
| यथास्थितोस्मि तिष्ठाम् तथैव विगतज्वरः॥ | १७ |
| उपायस्तु तथा तेन दृष्टिर्वास्तीह कीदशी। | |
| अहो नु वितता भूमिः कष्टमेताहरी दशा॥ | १८ |
| न रात्रुर्न च मित्रं में न क्षेत्रं दुर्जनो जनः। | |
| ु दुर्वीधैषा जगत्श्रुष्धा शान्ता सर्वार्श्रसुन्द्री॥ | १९ |

किचारमाकं कर्मणां पुरुषार्थसिद्धये आवश्यककर्तव्यानामवधिः पूर्णः । कृत्यकृत्यता संपन्न इलार्थः । आपदांच सीमान्तः परमाद-र्थिहेष्टः । तत्कृतस्तत्राह--ज्ञातमिति ॥७॥ सर्वेषां तृतीयान्त-पदानां पष्ठक्षोके एवमादिभिरन्यैश्व दृष्टान्तैर्दश्यदृष्टिमं।जितेत्व-त्रान्वयः । ध्यानेन लब्धं कल्पितं परमन्यद्योम तत्र विरं विहार। यनभवनभ्रमें शिलोपाख्यानादौ प्रदर्शितैः धारणया सर्वा-धारे ब्रद्मणि विश्रान्या देहसंत्यजनऋगोऽपि लीलाया वर्णित एव ॥ ८॥ खन्ने आत्मनः खस्य मृतिदर्शनेहरिधनदादौ प्रसिद्धेः ॥ ९॥ १० ॥ मायया प्रदर्शितजलपूर्णपूराभोगैः । आयती सर्वात्तरकाले प्रत्ये वर्णितैक्षण्डपवनसर्थैः ॥ ११ ॥ मदाद्विवेकत्रंशे प्रतीयमानैः पुरस्पन्दैः । सुधा उत्पातादिना श्चभाश्चभस्यनं विनेव श्रान्ताः प्रतितिस्वनिकम्पनैः । खे केशाण्डकदर्शनैः ॥ १२ ॥ १३ ॥ सस्यं अद्भीव संपन्नः ॥१४॥ ॥ १५॥ अर्हितः पूजितः । अपिचेत्यनेनापमानितश्र सम-दर्शनेन हर्पविषादानुदयाच्छान्तोऽप्यहं हृध्यामीत्र ॥ १६ ॥ यथा पूर्व व्यवहारे स्थितोस्मि तथैव सांप्रतं तिप्रामि । विगत-ज्वरो व्यवहारप्रसक्तसंतापश्चन्यः ॥ १७ ॥ तेन लद्भचनेन याहशो विश्रान्त्युपायो लब्धस्तथा उपायस्तु कोऽन्यः स्याहु-ष्टिबी अन्या कीदशी स्यात् । अहो नु वितता अपरिच्छित्रा विश्रान्तिसुखभूमिमैया आसादिता, एताहशी जन्ममरणा-द्यन्तानर्थसंकुळसंसारदशा अहो नु कप्टं प्राणिनामिखर्थः ॥ १८ ॥ मम तु दुःखनिमित्तानि कान्यपि न सन्तीखाइ---न शत्रुरिति । क्षेत्रं शरीरं बाह्यं च । जनः सुजनः । एपा

श्रमूलवाठे इस्तत्वमार्पं पुराभोगैरिति वा पाठः साधः.

कथमेतां जनो वेसि विना भवदनुत्रहम्। विनेव सेतुं पोतं वा बालोऽध्धि लङ्क्येत्कथम् २० लक्ष्मण उदाच । जन्मान्तरोपचितसंशयनाशनेन जन्मान्तरोपचितपुण्यदातोदितेन। जातोऽद्य में मुनियचःपरिबोधनेन जातोऽद्य मे मनसि चन्द्र इव प्रकाशः २१ ईरुयां रुश्यमानायां रही दोषद्शाशतैः। २२ काष्ट्रवहहाते लोकः स्वद्भगतया तया ॥ विश्वामित्र उवाच। अहो बत महत्युण्यं श्रुतं शानं मुनेर्मुखात्। येन गङ्गासहस्रेण स्नाता रच घर्य स्थिताः॥ २३ श्रीराम उवाच। संपदामथ हटीनां शास्त्राणामापदां गिराम्। वेशानामथ रुष्टानां रुष्टः सीमान्त उत्तमः॥ રક नारव उद्याच। यञ्च श्रुतं ब्रह्मलोके स्वर्गे भूमितले तथा। कर्णी तज्ज्ञानमाकण्ये याती मेऽद्य पवित्रताम्॥ २५ लक्ष्मण उवाच । हाई बाह्यं च तिमिरमपमृष्टवता त्वया। मुने परमभानुत्यं नूनं नः संप्रदर्शितम् ॥ રદ शत्रुघ्न उधाच । निर्वृतोसि प्रशान्तोसि प्राप्तोसि परमं पदम । चिराय परिपूर्णीसि सुखमासे च केवलम्॥

स्वारमानदेव यावदुवीधा तावरक्षुच्या तुःखदा जगदभूत्, इवानी द्व बाधात् शान्ता सर्वार्थभुन्दरी संपन्नेत्वर्यः ॥ १९ ॥ हे भगवन्, खदनुप्रहं विना एतां दृष्टिं जनः कथं वेसि ॥ २०॥ जन्मान्तरेष्वनन्तजन्मसूपचितदुर्वासनाप्रयुक्तसंशयानां नाश-नेन तथा जन्मान्तरोपचितानां पुण्यशतानामुद्यो बोधफलो-न्मुखता येन तथाविधेन मुनिवचःकृतेन प्रतिबोधनेन जाती विचारोधमी यस्मिस्तथाविधे मे मनसि अदा चनद्र इव परमा-ह्यादकारी परमात्मप्रकाशो जात इत्यर्थः ॥ २१ ॥ ईटर्या निरतिशयानन्दप्रकाशस्यायामात्मदशि भवादशमहानुभावोप-देशाभित्यापरोक्षतया दर्यमानायामप्ययं लोको जनस्तया प्रसिद्धया खदुर्भगतया दौर्भाग्यवशेन महत्सेवाशुश्रूषादिहीनः सन् रागद्वेषाहंकारजन्ममरणादिदोषदशाशतः काष्टविद्वानिशं द्याते तदाधर्यमिलार्थः ॥ २२ ॥ बतेति हर्षे । साम नो बते-तिवत् ॥ २३ ॥ संपदामुत्कर्षे सीमान्त आत्मा निरतिश-यानन्दरूपलात् । दृष्टीनां सीमान्त आत्मदृष्टिः एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानात् । शास्त्राणां सीमान्तोऽध्यात्मशास्त्रं चरमप्रमाण-लातः। पशुपुत्रधनादिनाश्रलक्षणानामापदां सर्वसंसारनाशः सीमान्तो यदुत्तरमन्थो नाशो नास्ति । काव्यरसार्छकारादिशा-लिनीनां गिरां वसिष्टोक्तिः सीमान्तः । दशनां सुखविश्रान्ति-परमात्मदेशः हेत्रनां प्रासादारामगिरिनदीपुलिनादिदेशानां परमविश्रान्तिहेतुलात्सीमान्तो दृष्ट इखर्यः । सर्वत्र परमात्मैव

द्वारथ उवाच । बहुजन्मोपलब्धेन पुष्येनायं मुनीभ्वरः। धीरः कथितवासस्तयेन पावनतां गताः॥ રડ वास्मीकिरवाच । इति तेषु वदत्स्वत्र सम्येषु सह भूभृता। वसिष्ठः स उवाचेदं ज्ञानपावनया गिरा ॥ २९ राजन्रघुकुलकेन्दो यदहं वस्मि तत्कुरः। इतिहासंकथान्ते हि पूजनीया विजातयः॥ Вo तद्य ब्राह्मणीघांस्त्वं सर्वकामः प्रपूरय। वेदार्थसमञ्ज्ञानफलं प्राप्यसि शाश्वतम्॥ 38 मोक्षोपायकथाबस्तुसमाप्ती विजपूजनम्। शक्तितः कीटकेनापि कार्ये किमु महीभृता॥ इ२ इति गीनं वयः श्रुत्वा सहस्राणि नृपो दश। वृतेराकारयामास विजानां वेदवादिनाम्॥ 38 में भुरायां सुराष्ट्रेषु गीडेषु च वसन्ति ये। तेभ्यः कुलेभ्यः सोऽभ्यर्च्यं समानीय व्रिजन्मनां ३४ अधिकास्यधिकज्ञानमक्रतद्विजभोजनः। तदा दशसहस्राणि भोजयामास भूपतिः॥ 34 यथामिमतभोज्याश्रदानदक्षिणया तया। एवं संपूज्य तान्विप्रान्धितृन्देवाशुपांस्तथा ॥ 38 पौरामात्यांस्तथा भृत्यान्दीनाम्यक्रपणांश्च तान्। तसिन्दरारयो राजा दिने सह सुद्रजनैः॥ કુ ૭ लब्धसंस्तिसीमान्तश्रकारोत्सवमुत्तगम्। तथा नृपगृहे तिसन्कीशेयमणिकाञ्चने ॥ 36

वा परमसीमान्त इलार्यः ॥ २४ ॥ २५ ॥ परमं प्रसिद्धभा-न्वपेक्षया उत्कृष्टं भानुखम् ॥ २६ ॥ २७ ॥ नः अस्मभ्यं तत्परमयावनं वस्तु शास्त्रं वा कथितवान् । येन पावनतां गता वयमिति शेषः ॥ २८ ॥ २९॥ इदानी श्रीवसिष्ठो 'मङ्गळादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते नीरपुरुषकाण्या-युष्मत्पुरुषकाणि च भवन्ति अध्येतारश्च मञ्जलयुक्ता यथा स्युः' महाभाष्ये भगवत्पतज्ञलिनोदाहृतां श्रुतिमनुस्ख निर्विप्नं समाप्तस्य महतः शास्त्रोक्तफलसिद्धये ब्राह्मणदेवपितृसु-जनपूजोत्सवादिमङ्गलमीचित्यङ्गापनमुखेनाङ्गापयति—राजिन-त्यादिना । पूजनीया इति विष्यौचित्ययोः कृत्यः ॥३०॥ वेदार्थः प्रकृते श्रवणविध्यर्थस्तस्य सम्यगनुष्ठानं साङ्गतया निष्पादनम् । श्रवणविधेः काम्यविधितया साज्ञानुष्ठानादेव फलसिद्धेरिति भावः ॥ ३९ ॥ कीटकेन कीटकवदनाद्राहेंण दारिझेणापि कार्यमिल्थर्थः ॥ ३२ ॥ मुनिना प्रोक्तं मौनं वचः । गुर्वाद्यायाः धिरसा धारणीयलान्मीनं निरुत्तरं यथा स्यातथा शुरवेति वा ॥३३॥ कुकेम्यः कुलश्रेष्ठेभ्यः पृथक्षृथकसमुदितेभ्यश्व ॥३४॥ अधिकेभ्योप्यत्यथिकं ज्ञानं येषां तत्प्रकृतं तानुपक्रम्य प्रवृत्तं द्विजमोजनं येन ॥ ३५॥ पितृन् श्राद्धादिना । देवा-न्मास्यामोदकोपहारादिना इष्ट्यादिना च । नृपान्यानरत्नादिना ॥ ३६ ॥ सुहुब्बनैः सह उत्सवं चकारेखुतरश्रान्वयः ॥ ३७ ॥ छन्धः संसुतिसीमान्तो येन । अत्रापि सह सहबनैरिति

अविते नगरे चैव गीर्वाणनगसुन्दरे। ननृत्रमत्तकामिन्यो विलासिन्यो गृहेगृहे॥ 36 **ळसद्वंशळताकांस्यवीणामुरजमर्दे**लम् । ताण्डवेनोद्धताराधमन्योन्येतरशेखराः॥ So श्चरचीकृतापणकरम्रान्तिपञ्चविताम्बराः। मुग्धाहृहासविक्षिप्तदन्तेन्दुकिरणच्छटाः ॥ मदाकुलितद्वंकारा लीलासु तरलस्वराः। एकपाद्तलाघातहेलाहतघरातलाः॥ धर स्नग्वामतारविगलत्कुसुमासारपाण्डुराः। धारापातितविच्छिन्नहारमुकास्खलत्पदाः॥ ક્ર लोलाभरणसाकारं कामं ननृतुरङ्गनाः **।** पेद्धः स्फूटपदं विप्रा बन्दिनोऽप्यञ्जनाश्च ताः 88

पपुठसाण्डवं पानं पानपा मद्द्यालिनः।
भोज्यं बुभुजिरे खित्रं भूषिता भोजनार्थिनः॥ ४५
सुधादिपरिलेपेन रिजता गृहमित्तयः।
रेजू रामेन्दुभानेन पुष्पधूपविलेपनैः॥ ४६
वासांसि वसिताश्चित्राण्युत्तमस्रग्विभूषणाः।
चेदः परिचराश्चेट्यश्चारुगन्धा नृपाध्वरे॥ ४७
देहयदिषु संयोज्य वनिता यक्षकर्वमम्।
जग्मुस्ताण्डवनर्तक्यः श्रृङ्गारात्माङ्गणान्तरम् ४८
भवबद्दुलनिशायसानहर्पादिति घनमुत्सवमेष सप्तरात्रम्।
दशरथन्तपतिः सदा नभोगश्चियमक्रोत्यदमक्षयं समेतः॥ ४९

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये मो० नि० उ० महोत्सववर्णनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २९४ ॥

पश्चद्द्याधिकविद्याततमः सर्गः २१५

वाल्मीकिरुवाच।
भरहाज महाबुद्धे मम शिष्याधिनायक।
इति रामावयो ज्ञातक्षेया निःशोकतां गताः॥ १
एतामेव दशं कान्तामयप्टभ्य यथासुखम्।
नीरागस्तिष्ट निःशक्को जीवन्मुक्तः प्रशान्तघीः॥ २
धीरनभ्यस्तसङ्गा हि रामादीनामियानघ।
घनमोहनिमग्नापि विमुढापि न मुद्यति॥ ३

योजनीयम् ॥ ३८ ॥ गीर्वाणनगो मेरुः कल्पह्नमश्च तद्वत्युन्दरे ॥ ३९ ॥ वंशलतात्र मुरली । कियाविशेषणे । ता नर्तकीर्व-र्णयति—अन्योन्येत्यादिना । अन्योन्येतरं परस्परविरुक्षणं यथा स्यातया चिकुरबन्धनालंकारभेदादिना रचिताः शेखरा यासाम् ॥ ४० ॥ श्रुच्पीकृतानामितस्ततश्चालितानाभाषणानां विविधा-भिनयव्यवहारवतां कराणां भ्रान्तिभिः परितः पष्ठवितमिवा-म्बरमाकाशं वक्षं च यासाम् । हास्यरसाभिनये मुग्धेरहहासै-र्विक्षिप्ताः परितः प्रक्षिप्ता दन्तेन्दुकिरणच्छटा याभिः ॥ ४९ ॥ वीररसाभिनयं मदाकलितहंकाराः । करुणाद्भुतादिरसाभिनय-ळीळाखु तरलखराः । श्रन्नारमानायभिनये एकपादत-लाषातेन हेलया इतं ताडितं धरातलं याभिस्ताः॥ ४२ ॥ श्वनारकोपाद्यभिनयं सग्दामविधूननेन तारैर्नक्षत्रेरिव विग-**छद्भिः कुसुमा**सारैः पाण्डुरा जलधारा इव पातिताये विच्छना हारास्तेषु दैवात्पदन्यासैः स्खलत्पदाः ॥ ४३ ॥ लोलैराभरणैः साकारं कामं दर्शयन्त्य इवेति शेषः । साकारं कृत्रिमाकारस-हितं यथा स्यालया कामं यथेच्छं ननृतुरिति वा । पेदुर्थया-कमं वेदस्तवगीतानि ॥ ४४ ॥ तेषु पानपा अविप्राः पानं मध्यासमं पपुः । विप्रादयस्तु भोजनार्थिनो भोज्यं भोजनार्हे चित्रं नानामक्षादिवैचित्रययुक्तं चतुर्विधमत्रं बुभुजिरे ॥४५॥ रामस्भगस्येन्दोर्भानेन देहप्रभाचन्द्रिक्या पुष्पघृपविलेपनैध रेज़ः ॥ ४६ ॥ तृपस्य अध्वरे उत्सवयहे ॥ ४७ ॥ कर्प्राग्रह- प्यमेते महासत्वा जीवन्मुकपदं गताः । राजपुत्रा राघवाद्या राजा द्दारथादयः ॥ ४ त्वं च पुत्र भरद्वाज स्वयमेवासि मुक्तचीः । सत्यं मुक्ततरोऽस्यद्य श्रुत्वेमां मोक्ससंहिताम् ॥ ५ मोक्षोपायानिमान्पुण्यान्त्रत्यक्षानुभवार्थदान् । वालोप्याकण्यं तज्ज्ञत्वं याति का त्वाहदो कथा ६

कस्तूरीकक्कोंकैः समं घृष्टं चन्दनं यक्षकर्दमस्तं देहयष्टिषु संयोज्य विकिप्य ताण्डवनर्तक्यो वनिताः श्वद्वारात्मकं अलंकृतमङ्गणा-न्तरं राजसमाङ्गणमध्यं जग्मुः ॥ ४८ ॥ दशरथनृपतिः अक्षयं ब्रह्मपदं प्रपन्नः सन् भवः संसारस्त्रक्ष्मणा या बहुलनिशा कृष्णपक्षरात्रिस्तस्य अवसानं बोधसूर्योदयेन नाशस्त्रप्रयुक्तात् हर्षात् सप्तरात्रं इति वर्णितप्रकारं सदा नभोगिश्यं दानभोग-शोभासहितं घनमुपचितमुत्सवमेवाकरोत् ॥ ४९ ॥ इति श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे चतुर्वशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१४॥

रामादिवत्प्रबुद्धस्तवं जीवन्मुक्तः सुखी वस । इति वास्मीकिना शिष्यो भरद्वाजोऽत्र शिष्यते ॥१॥

इति अनया वर्णितया रीखा रामादयो निःशोकतां गताः प्राप्ताः ॥ १ ॥ लमपि एतामेव पूर्णम्झात्मदशमवष्टम्य दृढमाश्रित्य तिष्ठ ॥ २ ॥ इदं च मदुपदिष्टं झानं दुःसन्नेन भोगासङ्गाभ्यासेन च यथा न नश्यति तथा रक्षेत्याशयेन्वाह—धीरिति ॥ ३ ॥ दशरथादयो राजानः । मुपां सुद्धिगिति जसश्चान्दसो डादेशः ॥ ४ ॥ स्वयं स्वविचारेणैव रामवत्पूर्वं मुक्तपीरिति । अय तु इमां मोक्षसंहितां श्रुला मुक्ततरोति । संभावितसर्वशङ्कापङ्कक्षाळनादिति भावः ॥ ५ ॥ दष्टपरमपु- श्वार्यफळलादस्य शास्त्रस्य सर्वशास्त्रभ्योऽभ्यहिततेमलं मन्दा-धिकारिष्वप्यभ्यासे फलोपधानसमर्थतं च दर्शयति—मोक्षो-पायानिति । लादशे मुख्याधिकारिण फलोपधाने का इथा

यथा पदं पुण्यमञ्जयाता महानुभावा रघवो विशोकाः। वसिष्ठवाक्यप्रसरेण साधो गन्तव्यमाद्यं पदमेवमेव॥ ૭ सतां नयेनोत्तमसेवया च प्रश्नेन चोदारकथागतेन। विन्दन्ति वेद्यं सुधियोऽप्रमन्ता चसिष्ठसङ्गादिय राघवाद्याः ॥ ሪ तृष्णावरत्राहढबन्धवद्धा ये प्रन्थयोऽज्ञस्य हृदि प्ररुढाः। सर्वे हि ते मोक्षकथाविचारा-द्वाला श्वाला इव यान्सभेदम्॥ ९ मोक्षाभ्यपायान्समहानुभावान् श्रास्यन्ति ये तस्वविदां वरिष्ठाः। पुनः समेष्यन्ति न संस्तृति ते कोऽर्थः सुताऽन्येन बहृदितेन ॥ ξo बहुश्रुता ये प्रविचार्य सम्य-क्प्रघोधितार्थे कथया जनाय ।

॥ ६ ॥ हे साधी, यथा वसिष्ठवाक्यानां हृदि प्रसरेण सर्वसं-शयसहिताहाननाशान्महानुभावा रघवो रामादयः पुण्यं जीव-न्**मुक्तपद्मनुप्रयाताः** सन्तो विशोकाः संपन्ना एवमेव लयाप्यार्थ निखसिद्धबद्धामावलक्षणं जीवन्युक्तपदं गन्तव्यं विश्वांकेन च भाव्यमित्यर्थः ॥ ७ ॥ तत्त्राप्तावन्येपामपि सत्सन्नसेवात्रश्ना-दिरेवोपाय इत्याह—सतामिति । नयेन शिक्षणेन उत्तमया छोभालस्यनिद्रादित्यागसहितया सप्रेमनिरन्तरसेवया । उदा-कथाभिराख्यायिकाभिः राभिबीधोपायभूताभिः तद्वपदेशेन सुधियोऽधिकारिणो वैद्यमात्मतत्त्वं विन्दन्ति छ-भन्ते । अप्रमत्तास्तदेकासक्ताश्चेत् । यथा वसिष्ठसङ्गादाघवादाः अबिदंस्तद्वदिखर्थः ॥ ८ ॥ तृष्णाळक्षणाया वरत्रायाधर्मरज्वा हरवन्धैर्वद्धा अबस्य हृदि प्ररूडा ये देहेन्द्रियादितादारम्यसंस-र्गाध्यासहपा प्रम्थयो ये च गृहपुत्रदारादिषु ममतामिनिवेशल-क्षणाः सर्वभूतेष्वेकारम्यानुभवैकरस्यामावादागद्वेषादिहेतवो म-न्थयस्ते सर्वे ह्नि सस्मान्मोक्षकथाविचारात् यथा बालाः ख्रियः पूर्व बाल्यात्की हाद्यभिनिवेशादसानभिज्ञत्वाच भर्तृषु वैरस्य-युक्ता अपि कार्छन अवार्छाः प्रीढाः सत्यो भर्तृभिरभेद्मेकरस्यं यान्ति तद्वत्सर्वभूतेष्वभेदमैकरस्यं यान्तीत्वर्थः ॥ ९ ॥ हे सुत पुत्रवदनुकम्प्य भरद्वाज, मन्दाधिकारिणामपि श्रवणाभ्यासे अ-**क्षाननिबर्दणसमर्थलारसमहानुभावानिमान्मोक्षाभ्युपायान् गु-**हपूर्वश्रवणेन ये ज्ञास्यन्ति ते तत्त्वविदां वरिष्ठाः सन्तः पुनः संस्रति न समेध्यन्ति । इयं मम संक्षिप्तपरमरहस्योक्तिः । अ-न्येन बहुनः उदितेन उक्तेन कोऽर्यः कि प्रयोजनमित्यर्थः ॥१०॥ इदानी बक्तणामपि गुरुमुखाद्विचार्यैव संप्रदायतोऽर्थ सम्य-ग्नाला अन्येभ्यः श्रावयतामेव बोधफळावाप्तिनीन्येषामिति सन्तो बदिष्यन्ति पुनः शिश्रत्वं न ते प्रयास्यन्ति किमन्यवाक्यैः॥ ११ ये बाचिष्यन्यन्वेश्वितार्था ये लेखियध्यन्ति च पुस्तकं या। ये कारथिष्यन्त्यपि वाचकं वा व्याख्यातृयुक्तं शुभमार्यदेशे॥ १२ ते राजसूयस्य फलेन युक्ता मुहुर्मुहुः स्वर्गमुदारसत्वाः। मोक्षं प्रयास्यन्ति तृतीयजन्म-लामेन लक्ष्मीमिव पुण्य**व**न्तः ॥ १३ इमां पुरा मोक्षमयी विचार्य सुसंहितां सहचनाद्विरिश्चः। प्रयुक्तवानेतद्विन्त्यरूपो भवन्त्वसत्याश्च न तम्य वाचः ॥ १४ मोक्षाभ्यपायाख्यकथाप्रवन्धे याते समाप्ति सुधिया प्रयत्नात्। सुवेदम दत्त्वाांभेमताश्रपान-दानेन विघाः परिपूजनीयाः॥ १५

नियमं सूचयत्राह—बहुश्रुता ये इति । अमुं प्रन्थं ये सन्ती बहुश्रुतानां गुरूणामप्रे स्वयं सम्यक्प्रविचार्य तत्संबादकथया प्रन्थे सम्यक्प्रबोधितार्थे सति पुनः पश्चारखयमपि शुश्रुपवे जनाय संप्रदायतो वदिष्यन्ति ते शिशुस्वं मौष्ट्ये पुनर्जन्म वा न प्रयास्यन्ति । अवस्यं तत्त्वज्ञानफळं प्राप्यन्तीत्यर्थः । अन्येः संप्रदायतोऽनधिगतैर्वाक्यैः श्रुतैः श्रावितैर्वा किम् । किंप्रयोजन-मित्यर्थः ॥ १९ ॥ इदानीमधीवगमं विनापि प्रन्थपारायणस्य पुस्तकलेखनस्य वाचकवृत्तिकश्यनेन व्याख्यापनस्य च फल-माद्द-यं वाचयिष्यन्तीति द्वास्याम् । अनपेक्षितार्थाः ब्यत्य-त्त्यभावादर्थापेक्षारहिता अपि पारायणदक्षिणाद्वव्यानपेक्षा निर्लोभाश्र ये पुस्तकं वा छेखियण्यन्ति । ये वृत्तिकस्पनेन व्याख्यानृपुरुषयूक्तं केवलं वाचकं वा कारयिध्यन्ति ते सका-माधेदाजसूबस्य यज्ञस्य फलेन युक्ताः सन्तो मुहुर्मुहुः स्वर्ग प्रयास्यन्ति । उदारसत्वा निष्कामास्तूतमजन्म सद्ग्रहसच्छान्न-प्राप्य तृतीयजनमञामेन मोक्षं प्रयास्यन्ति । **७६मीमिवेत्युभयत्र द्रष्टान्तः ॥ १२ ॥ १३ ॥ ईद्रशमदाफल-**लमस्य प्रन्थस्य कुतस्तत्राह—इमामिति । मया कृतामिमां मोक्षमर्थी सुसंहितां पुरा पूर्वकाले अचिन्सक्यो विरिधः सतां मुनीनां समाजे आमूलाग्नं स्वयं विचार्य एतद्वाक्यं सर्वान्त्रह्यु-क्तवान्। किमेतत्। सत्यवाचो वाल्मीकेवैधिष्ठस्य स्वस्य च गिरः असला न भवन्तीति । तथाच पूर्वरामायणे महां स्वस्य वरदानं 'न ते वागनृता काव्ये कान्विदत्र भविष्यति' इति सूच-नार्थश्रकारः ॥ १४ ॥ एतच्छास्त्रसमाप्ती गृहात्रधनादिदानं विप्रादिभ्योऽवर्यं कर्तव्यमित्याह्—मोश्नेति । विप्रा वाच-कायाः । उपलक्षणमेतन्मित्रमृत्यदीनान्धक्रपणानामपि ॥१५॥

देयं च तेभ्यः खलु दक्षिणादि चित्तेष्सितं स्वस्य धनस्य शक्त्या। मत्वानुरूपं कृतमेव सङ्ग-पुण्यं यथाशास्त्रमुपत्यसी तृत्॥ एतत्ते कथितं कथाक्रमशतैर्योधाय बुद्धैर्यह-च्छास्त्रं वृंहितब्रह्मतत्त्वममलं वृद्यान्तयुक्तयाञ्चितम्। श्रुत्वैतिश्चरनिर्वृति भज भृशं जीविद्यमुकाशयो १६ लक्ष्मीं ज्ञानतपःक्रियाक्रमयुतां भुक्तवा क्षयामक्षयः

इलाषें वासिष्ठमहारामायणे वा॰ मो॰ निर्वा॰ उ॰ प्रन्थप्रशंसातद्वाचनादिविधिनीम पश्चदशाधिकद्विशतत्तमः सर्गः ॥ २१५ ॥

पोडशाधिकविश्वतनमः सर्गः २१६

षाल्मीकिएवाच । पतत्ते कथितं राजन्कसभयोनेः सुभाषितम्। अमुना तस्बमारीण तत्वदं प्राप्यसि ध्रवम्॥ राजोवाच । भगवन्भवतो रष्टिर्भववन्धविनादानी। आलोकितो यया चाहमुत्तीर्णोऽस्मि भवाम्बुधेः देवदृत उवाच । इत्युक्त्वासी ततो राजा विसायोत्फुछछोचनः। उदांच वचनं मां तु मधुरं श्वश्णया गिरा ॥ राजोवाच । देवदृत नमस्तुभ्यं कुश्राठं चास्तु ते विभो । सतां साप्तपदं मेन्नित्युक्तं तस्वया कृतम्॥ इदानीं गच्छ भद्रं ते देवराजनिवेशनम्। अनेन श्रवणेनाहं निर्वृतो मुद्तिरोऽपि च ॥ श्रुतार्थं चिन्तयन्नत्र स्थासामि विगतज्वरः । इत्युक्तोऽहं ततो भद्रे परं विसायमागतः ॥ न श्रुतं पूर्वमेवतज्ज्ञानसारं श्रुतं सया।

स्थमस्य मध्ये तेषां चित्तिधिता दक्षिणा यथाशस्य। देया । असी कर्ता तत्स्वकृतमेव अवस्यं सज्जत इति सन् पुण्यं फळात्मना यथाशास्त्रमुपैरयंविति मला विचिन्त्येव्यथं। ॥ १६ ॥ हे भरद्वाज, ते तब बुद्धेवायाय अधाकमध्येवृद्धितं ब्रह्मतत्त्वं दृष्टान्तयुक्तया अधितमेतन्द्यास्त्रं मथा कवितम् । एतच्छुला जीवनेच विमुक्तास्यः सन् लोकानुमहाय झानतपाकियाफ-ळयुतां प्रारच्धभोगसत्कर्मफळभूतां योगझानतिर्ध्याथ्यं उद्धनीम-स्थां चिरस्थायिनी मुक्ला संदेही विदेहध चिरनिर्धातं निव्य-निरित्तश्यानन्दरूपां मुक्ति सूर्वं भजेल्याशीरन्ते मञ्जल्यं॥ १७ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणतारपर्यप्रकाशे निर्धा-णप्रकरणे उत्तरार्धं पश्चद्शाधिकद्विश्वततमः सर्गः॥ २१५॥

तेनैच मुदितश्चान्तः पीतामृत इवाधुना ॥

अरिष्टनेमिसुरुचिकारण्यादिकृतार्थता ।

वर्ण्यतेऽत्र गुरुभ्यश्च दिण्यरायमनिषदनम् ॥ १ ॥
कुम्भयोनेविक्षिष्ठस्यागस्त्यस्य च रामादीन्युतीष्णं प्रति च
कुम्भयोनेविक्षिष्ठस्यागस्त्यस्य च रामादीन्युतीष्णं प्रति च
विषये स्पृतिः पर्राञ्चविक्षात्रस्य वर्गमाविवषये दिष्ठसच्रमाणितम् । असुना एतद्रम्थरूपेण ॥ १ ॥ राजा अरिष्टनेसिरुवाच बारुमीकि प्रति । दिष्टः कृपाकटाञ्चः ॥ २ ॥ ३ ॥
विषये यथा निर्विषयास्त्रया निर्विषयाः संपन्नाः । सर्वापि च
मेत्रं मित्रभावः सप्तिः पर्ररनुगतिकेम्थत इति साप्तप्यम् ।
सांसारिकी स्थितिः अजले मरुदेशे मरीचिका यथा तद्वस्यपवैषिकोऽण् । इति यत्सिद्वरुक्तं तत्त्वया सत्यं कृतिमिखर्थः ॥४॥ । त्रिष्ठ ॥ रामादिवदेव यथाप्राप्तिन वर्णाश्रमोचितव्ययद्दासर्वतापोपश्चमेन निर्वतो निरित्वयानन्दलमेन मुदितः ॥५॥ ॥ १३ ॥ रामादिवदेव यथाप्राप्तिन वर्णाश्रमोचितव्ययद्दा-

ततो वार्त्माकिमापृच्छय आगतोऽस्मि त्वद्गिके।
एतते सर्वमाष्यातं त्वया पृष्टं ममानघे।
इतः परं गमिष्यामि शक्षस्य सदनं प्रति॥ ८
अप्सरा उवाच।

नमोस्तु ते महाभाग देवदृत त्यथा मम । श्रावितावर्धविज्ञानात्परां निर्वृतिमागता॥ ९ कृतार्था वीतशोकास्मि स्थास्मामि विगतज्वरा । इदानीं गच्छ भद्रं ते यथेच्छं शक्रसंनिधौ॥ १०

इदानी गच्छ भद्र ते यथेच्छ शक्सनिधी॥ अझित्रेदय उवाच ।

ततः सा सुरुचिः श्रेष्ठा तमेवार्थमचिन्तयत् । स्थिता सा हिमवत्पृष्ठे समीपे गन्धमादने ॥ ११ कश्चिदेतच्छूतं पुत्र वसिष्ठस्योपदेशनम् ।

तत्सर्वमवधार्याथ यथेच्छसि तथा कुरु॥ १२ कारुण्य उवाच ।

स्मृतियोग्हिष्टसत्ता च स्वप्ने वन्ध्यासुनेऽजले। मरीचिका यथा तद्वज्ञानात्सांसारिकी स्थितिः १३ मम नास्ति छतेनार्थां नाकृतेनेह कश्चन। यथाप्राप्तेन तिष्ठामि हाकमीणि क आग्रहः॥ १४

इति राज्ञा अहराजाः संस्वद्भिनयादिगुगसंपदाः परं विसायमा-गतः ॥ ६ ॥ स्वस्थापि सत्सङ्गवशेन श्रवणलामात्कृतार्थता जातेत्याह-न श्रुतमिति । पूर्व कदापि न श्रुतमपूर्वभेवैतज्ज्ञा-नसारं सरसङ्गानमया श्रुतम् ॥ ७ ॥ खदन्तिके खामुपदेष्टमि-त्यर्थः । अनुषे इति संबोधनेन निष्पापलाद्यिकारसंपत्ति लिय रष्ट्रा एतरसर्व ते जुभ्यमाख्यातमिति सुचितम् ॥ ८ ॥ परां निर्दृति सुखविश्रान्तिभागता अहमिति शेषः ॥ ९ ॥१०॥ तमपदिष्टं ब्रह्मारमैक्थलक्षणमेवार्थम् ॥ ११ ॥ तस्मविमिति । 'मोक्ष्म कारणं कर्म ज्ञानं वा मोक्षराधनम्' इति खदीयसं-देहस्य तद्वधारणे गुरु:पगमादेवोच्छेदसिखे**रिति भावः ॥१२॥** अतएव स्वस्य समूलसर्वसंशयावषयवाघाद्वाधितानुवृत्तिमात्रेण ययात्राप्तासुवर्तनभेव जीवनमुक्तस्य परिशिष्यत इति कारुण्य उवाच-स्पृतिरिद्धादिना । अतीतानागते असन्निकृष्टे च विषये स्मृतिः परीक्षधीनीम्ब्यनदारश्च वर्तमानविषये दष्टिस-त्ताप्रत्यक्षं च मम सांप्रतं तक्ष्वज्ञानात्स्वप्ने प्रतीते वन्ध्यासुत-विषये यथा निर्विषयासाथा निर्विषयाः संपन्नाः । सर्वापि च सांसारिकी स्थितिः अजले महदेशे मरीचिका यथा तद्वरसंप-त्रेति कापि विषये न कथिदपि संदृहः परिशिष्ट इलार्थः

अगस्तिरुवाच । इत्युक्त्वा नाम,कारुण्य अग्निवेदयसुतः कृती । प्राप्तकर्मा यथान्यायं कालेकाले श्रुपाहरत् ॥ १५ संदेहोऽत्र न कर्तव्यः सुतीक्ष्ण ज्ञानकर्मणि। संशयाक्रस्यते स्वाधीत्संशयातमा विनश्यति ॥ १६ प्तच्युर्वा मुनेर्वाक्यमनेकार्थेक्यबोधनम्। नमस्हत्य गुरुं प्राह अन्तिके विनयान्वितः॥ १७ सुतीक्ष्ण उद्याच ।

नष्टमज्ञानतत्काये प्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम्। साक्षिणि स्फुरिताभासे ध्रुवे दीप इव क्रियाः ॥१८ सति यसिम्प्रवर्तन्ते चित्तेहाः स्पैन्यपूर्विकाः। 86 कटकाङ्गदकेयूरनूप्रेरिध काञ्चनम्।। पयसीव तरङ्गाली यस्मात्स्फुरति दृशयभूः। तदेवेदं जगत्सर्व पूर्ण पूर्ण व्यवस्थितम्॥ २०

≰खार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वास्मीकीये देवदुतोक्ते मोक्षोपायेषु निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे बालकाण्डे द्वाविकाच्छतसाहरूयां संहितायां पोडशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१६ ॥

रेण तिष्ठामि स्थास्यामि । अक्मीण बलात्कर्मत्यागे ॥ १४ ॥ प्राप्तकर्मो विवाहेन प्राप्तकर्माधिकारः सन् कालेकाले यथोचि-तकाले जानदानामिहोत्रातिथिसपर्यादिकमं उपाहरत् अनुष्ठि-तवानित्यर्थः । नामेति किलार्थे ॥ १५ ॥ 🐧 धुर्ताक्ष्ण, ज्ञान-कर्मणि झानोत्तरं कर्मानुष्ठानविषये कर्म बन्धाय भविष्यतीति संदेहो न कर्तव्यः ॥१६॥ अनेकेषां संदेहविषयविरुद्धानेकको-व्यात्मकानां सांसारिकार्थानां पारमार्थिकश्रह्मतत्त्वात्मना सर्व-विरोधत्यागेनेक्यबोधनं मुनेरगस्त्यस्थतद्वाक्यं श्रुला । अन्तिके समीपे ॥ १७ ॥ यस्मिन् सर्वसाक्षिण परमात्मनि स्वयंज्यो-तिष्ट्रादेव निखर्फरिताभासे ध्रुवे निष्किये स्थितसति नाट्य-शालायां पीपे स्थिते सति तत्त्रकाशमुपजीव्य नटनतेकादीनां किया इव सर्वाः स्पन्दमूर्तयश्चितेहा लौकिकवैदिकिकयाः प्रवर्तन्ते । यस्माच कटकादिमेदैः काम्बनमिव पयसि तरङ्गालीब इस्बभू: स्फुरति । इदं जगत्सर्वे तदेव नाणुमात्रमपि तदन्य-कियाकारकफ्रलादिपृथङ्निरूपयितं शक्यत इति निश्चित्य यथा यसिनाश्रमे प्राप्तस्तव्यवहारमनुवर्ताम्यनुवर्ते । छान्दसः पद-न्यस्ययः ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ इदानीं श्रीगुरुक्त-तस्य परमपुरुषार्थप्राप्कज्ञानदानोपकारस्य जगति प्रत्युपकारो-पायमपर्यंस्तवरणयोर्नेमस्कृत्यात्मानं यावज्ञीवं दास्याय निः वेदयति—कृतार्थोऽहमित्यादिना ॥ २२ ॥ अन्येन केनापि कर्मणा गुरोरपकारादुत्तीर्णता न ॥२३॥ हे स्वामिन्, अहं तव प्रसादेन भवाम्युधेवतीर्णः सन् पूर्णानन्दभावेन आपूरितजग-जालं यथा स्मात्तथाऽस्थितोस्मि नात्र संशय इत्यर्थः ॥ २४ ॥

यथामाप्तोऽनुवर्तामि को लङ्कयति सद्ववः। भगवंस्त्यत्प्रसादेन द्वातक्षेयीऽसि संस्थितः॥ २१ कृतार्थोऽहं नमस्तेस्तु दण्डवत्पतितो भुवि । ग्ररोहसीर्णता केन शिष्याणामस्ति कर्मणा ॥ २२ कायवाद्यानसा तसाच्छिप्यैरात्मनिवेदनम्। गुरोहत्तीर्णता सैव नान्या केनापि कर्मणा॥ २३ स्वामिस्तव प्रसादेन उत्तीर्णाहं भवास्युधेः। आपूरितजगजालं स्थितोसि गतसंदायः॥ રક यत्सर्वे खल्यिदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम्। श्रुत्वा ह्युरीयंते साम्नि तसी ब्रह्मातमर्ने नमः॥ २५ ब्रह्मानेन्द्रं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति ब्रंह्यातीतं गगनसदर्शं तस्वमस्यादिलक्ष्यम्। एकं निखं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभृतं भावातीतं त्रिगुणरहितं श्रीवसिष्ठं नताः साः २६

अस्य प्रन्थस्य सर्वोपनिषत्मारार्थोपबृंहणलान्मुमुश्रुभिरादरणी-यतमत्वं सूचयन् 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तक्षलानिति शान्त उपा-सीत'इति छान्दोग्योपनिषत्प्रदर्शितस्फुटतरोपायसहितज्ञानाधि-गतसर्वात्मकस्यवानन्दाद्वयत्रद्वातत्त्वमनुसंघायान्ते मङ्गलार्थ नमस्यति-यत्सर्वमिति । यद्भग्न सामि सामवेदे 'सर्व खल्वदं बह्म तज्जलानिति' श्रुत्या स्फुटमधिकारिणां करतलामलकवद-परोक्षं यथा भवति तथा परमतात्पर्येणोदीर्यते तसी तद्भावेन परिशिष्टायारमने प्रत्यकिदानन्दघनाय नम इत्यर्थः ॥२५॥२६॥

गजनदर्न शुभरदर्न सम्मनभरणं समस्तगुणसदनम् । सिंचत्मुखसारघनं सदयं हृद्ये सदा बन्दे ॥ १ ॥ निमज्ञयान्तर्भक्तयामृतरसवसिष्ठीक्रिज्ञलधी सदर्भा उन्नीता इह गुरुकटाक्षात्कतिपये । विचिन्वानी ह्यन्तर्जलधिजठरं को नु कलये-दियत्तां रकानां प्रचुरतरयक्षेरपि कृती ॥ २ ॥ निवपमनिजविस्तारं निःसंसारं नितान्तगम्भीरम् । नित्यसुखामृतपूरं पारावारं परं खमेव भजे ॥ ३ ॥ ऋतुरसतुरगमही १७६६ शकविकारिशुभवत्सरस्य शिशिरतीः। फाल्युनसितसप्तम्यां भृगुरीहिणपृषभलप्रके सिद्धम् ॥ ४ ॥ बाक्यपुष्पाञ्जलिः सीयं मया भत्तया समर्पितः । धियः प्रेरकयोः श्रीमन्छिवयोः श्रीपदादज्ञयोः ॥ ५ ॥ इति श्रीवासिष्टमहारामायणताः पर्यप्रकाहो निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धे योडशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१६ ॥

२ अयं श्लोक एकस्मिन् पुस्तके लिखितः काचित्कः. इति श्रीमत्परमहंसपरिवाजक।चार्थवर्षश्रीमस्मर्वज्ञसरस्त्रतीपूज्यपादिशस्यश्रीरामचन्द्रसरस्वतीपूज्यपादिशस्य-श्रीगङ्गाघरेन्द्रसरस्वत्वास्यभिक्षोः शिष्येण श्रीमदानन्दनोधेन्द्रसरस्वत्वास्यभिक्षुणा विरचितः श्रीवासिष्टमहारामायणसारपर्यमकाशः संपूर्णः ॥

समाप्तमिदं निर्वाणप्रकरणोत्तरार्धम्।

१ स्पन्दमूर्त्तय इति पाठी युक्तः.